भगवान् अग्निदेव

से अच्छा उपयोग किस तरह किया जाय। इसके निपटारे का आधार अधिकतर चन्दे की रकम की तादाद पर रहेगा।

'नवजीवन' (गुजराती) में किसीकी भेजी रकम की पहुंच न छपे तो वे मुझे जरूर लिखें। तमाम रकमों की पहुंच देने का संकल्प कायम है। छोटी छोटी रकमों को मिलाकर छापने की तजवीज की है। जो अपना नाम गुप्त रखना चाहे वे ऐसा सूचित करने की कृपा करें।

कपड़े भेजने वाले सज्जन नीचे लिखी हिदायतों पर ध्यान देंगे तो सहूलियत होगी—

१. मैले कपड़े धुलाकर दें,

२. फटे कपड़े सिला कर भेजें,

३. तमाम कपड़े तहाकर उनका बंडल बनावें और उसपर देने वाले और कपड़े के नाम की चिट लगावें

ये कपड़े हम भिक्षुकों को नहीं भेज रहे हैं। हम जैसे ही अच्छी हालत में रहने वाले मध्यम वर्ग के भाई-बहन इनमें होंगे। अपने सगे भाई-बहनों को जिस प्रेम, चिन्ता, और विवेक के साथ हम कोई चीज भेजते हैं या देते हैं उसी प्रेम, विवेक और चिन्ता की आशा मैं इसमें भी रखता हूं। सच बात तो यह है कि हम यदि भिक्षुक को भी कुछ दें तो विवेक और चिन्ता के साथ देना चाहिए। मैले कपड़ों को धोने, फटे हुओं को सीने और सबको तहाने में बहुत वक्त नहीं लगता। उसमें केवल प्रेम की परीक्षा है।

महाविद्यालय के विद्यार्थी

महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने सूत दिया है। पर उसके अलावा उन्होंने मजदूरी भी की है, जैसा कि स्वामी श्रद्धानन्दजी के शिष्यों ने दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह के समय किया था। कोई पौन सौ विद्यार्थी विद्यापीठ की इमारत में जो कि बन रही है मजदूरी कर रहे हैं और यह रकम इस चन्दे में आवेगी। विद्यार्थियों को मैं धन्यवाद देता हूं और आशा रखता हूं कि वे समय समय पर ऐसा ही परिश्रम करेंगे। यह प्राप्त विद्या का शुद्ध उपयोग है।

कहां दें ?

अहमदाबाद में प्रान्तिक समिति कार्यालय, नवजीवन कार्यालय, या सत्याग्रहाश्रम में दें। बम्बई में प्रान्तिक समिति के साथ अथवा प्रिन्सेस स्ट्रीट पर नवजीवन शाखा में दें। हर जगह से धन, सूत और कपड़े की पहुंच जरूर ले लेनी चाहिए।

(नवजीवन)　　　　मोहनदास करमचंद गांधी

महाविद्यालय में गांधीजी

[पिछले सप्ताह राष्ट्रीय महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने गांधीजी को ११०७) की थैली तथा प्रत्येक विद्यार्थी का कता ५ तोला सूत अर्पण किया था। उस अवसर पर गांधीजी ने नीचे का भाषण किया था।　　उप संपादक]

अध्यापक भाइयो, विद्यार्थियो और विद्यार्थिनियो,

आपको कृपलानीजी ने राजा का गीत सुनाया; पर यदि राजा यह कह कर गया हो कि मैं छः साल में आऊंगा, बजाय वह दो ही बरस में आकर खड़ा हो तो इसमें चलन का है, प्रजा का नहीं। राजा को विचार लेना चाहिए तैयारी का समय नहीं मिला। . आय"

आपसे जितना हो सका उतना काम आपने के अन्दर बारे में कुछ कहने के पहले मुझे एक फैसला देना आप सबके नाम लेने की जरूरत नहीं। आप तो उनको जानते अर्थात् अध्यापक ने पत्र लिख कर पूछा था कि चरखा गांधी के काते या देश के लिए? सवाल आसान है। तुम विद्यालय शिक्षा पाते हो। तो यह तो समझते ही होंगे कि हर कम से कम दो बाजू हुआ करती हैं—एक काली उजली, अथवा एक गरम और दूसरी नरम। यदि लोगों के दृष्टि-बिन्दु से सोचें तो दोनों की बातें ठीक शख्स गांधी के लिए सूत कातता है वह अपनी दृष्टि जो देश के लिए कातता है वह भी सच है। क्यों है कि गांधी आज नहीं तो कल दुनिया में न रहेगा कुछ ज्यादह ठीक मालूम होती है, क्योंकि पहले वस्तु का मोह है तहां दूसरे का देश के प्रति प्रेम कोई क्षणिक वस्तु नहीं। यदि हम स्वराज्य को उसे कायम रखने के लिए तलवार रखने की ही जरूरत दुनिया का नियम है। इसलिए जबतक देश है तबतक दई है। इस हेतु में निर्मलता है; मोह नहीं। अब तीसरी हम खुद अपने ही लिए चरखा क्यों न कातें? बलिदान, आदि की जो बातें हम करते हैं उससे हम संसार की आंखों में धूल झोंकते हैं। हमारा त्याग बलिदान नहीं—यह तो विलास हमारी इच्छा को सन्तुष्ट करने का स्वार्थ उसमें रहता है। 'देश के लिए' का अर्थ है हमारे अपने ही लिए। हम अगर लिए चरखा कातने को तैयार होंगे तो फिर उसे कभी न जिस प्रकार कि खाना, पीना आदि शरीर के धर्मों को छोड़ सकते। परन्तु ये तीनों दृष्टियां उन उन मनुष्यों बिन्दु से सत्य हैं।

अखा भगत ने जिन्दगी का कर्तव्य बता दिया है। धोका देने के लिए नहीं, देश को धोका देने के लिए न को धोका देने के लिए नहीं, बल्कि अपने सन्तोष के काता जाय। जबतक हम लोग ढोंग-ढकोसले में काम तभी तक हमारे काम की शोभा होगी। ... अधिक होगा, मोह उतना ही कम होगा। फिर भी मोह या प्रेम के वशवर्ती हो कर करने से भी काम पुत्र के हृदय में पिता के प्रति मोह रहता है। मैं जो सीखा उसमें मेरे पिता का कुछ हिस्सा है। उस समय ज्ञान न था कि सच बोलना ही अच्छी बात है। मुझे जरूर था कि अपने पिता के लिए इतना तो माता के प्रेम के आधीन हो कर मैंने मांस को प्रेम के बदौलत ही मैं व्यभिचारी होते होते आज मैं दुनिया में कोई भारी कृपालो आदमी

...द के बदौलत मेरी उत्पत्ति हुई; पर उत्पत्ति हुई, यह भी कौन कह सकता है? मैं तो वास्तव में गिरते गिरते बचा। माता-पिता के प्रेम के वशवर्ती हो, प्रेम के अधीन हो कर मैं बचा। प्रेम ही जिन्दगी में मेरा सहारा है। तात्पर्य यह कि मनुष्य शुभ कार्य अनेक भावों से करता है। आपने जो सवाल खड़ा किया है उसकी जरूरत ही न थी। असली बात यह थी कि हमारे लिए कातना जरूरी था। यह बात ठीक नहीं कि तुम पांच तोला सूत कात कर चरखे को फेंक दो। ऐसा करने से पतन होगा। इसके लिए तो सतत चलता रहना चाहिए। तुम्हारी भावना पर ही स्थिति और नाश का आधार है।

महाविद्यालय के विद्यार्थियों को वे कितनी ही बातें समझ कर रख लेनी चाहिए जिनके आधार पर विद्यालय की नींव खड़ी की गई है। जिनके बिना राष्ट्रीय विद्यालय राष्ट्रीय नहीं रह सकता। विद्यालय के जो जो साधन माने गये हैं उन्हें समझ लेना चाहिए। उन्हें समझ कर यदि उनका पालन न करेंगे तो गोया हम संसार की आंखों में धूल झोंकेंगे। यदि विद्यालय में खूब विद्या मिलती हो, अंगरेजी का उत्कृष्ट ज्ञान मिलता हो, संस्कृत इस प्रकार धारा प्रवाह बोलते हों कि काशी के पण्डित भी नमस्कार करें तो उसमें कुछ सार नहीं है। यहां रह कर तुमको ये बातें हासिल करनी हैं। कुछ अलौकिक वस्तुयें लेनी हैं। वे दूसरी सब बातों से बढ़ कर हैं। वे हैं चरखा, अन्त्यज को गले लगाना और हिन्दू-मुसलमान-पारसी आदि जातियों की एकता करना। क्या तुम किसी अन्त्यज के लड़के से मिले हो? किसी पारसी अथवा मुसलमान लड़के से मिले हो? उन्हें कभी कहा है, समझाया है, कि उनके लिए महाविद्यालय में गुंजाइश है? उन्हें महाविद्यालय में आने का अनुरोध करते हो? इतना करने पर भी यदि वे न आवें तो फिर कुसूर तुम्हारा नहीं, विधि का है।

बाहर से कोई भी शख्स यदि तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए आवेगा तो वह तुम्हारे अंगरेजी, गुजराती या संस्कृत के ज्ञान का परिचय देने वाले जवाबों से मुग्ध न होगा; वह तो दूर से ही देखेगा कि तुम्हारे यहां चरखे चल रहे हैं या नहीं, अस्पृश्यता का बहिष्कार हो गया है या नहीं। चरखा, अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम-एकता ये तीनों अंग हर दर्शक को फूले-फले दिखाई देने चाहिए। इनको छोड़कर यदि दूसरी बातों में तुम पास हो तो उसमें कुछ बड़ाई नहीं। मानों महाविद्यालय में तुमने अपना समय फजूल गंवाया।

तुम लोग जो-कुछ काम यहां कर रहे हो उसके लिए मैं तुम्हारा उपकार मानता हूं। अब तुम एक कदम आगे बढ़ो—नहीं तो तुम्हें और देश को नीची गर्दन करनी होगी। तुम देश के ऐसे सेवक बन जाओ कि देश तुम पर आफरीं हो जाय। मैं तो गुजरात महाविद्यालय से ज्यादह से ज्यादह आशा रखता हूं। तुम हिसाब लगा कर देखो कि हमने महाविद्यालय पर अबतक कितना रुपया खर्च किया है। (फी सदी ९०) खर्च हुआ है। इस खर्च के अंकों का हिसाब फैला कर देखना कि एक विद्यार्थी पर हमने कितना खर्च किया है। मैं जिस तरह कांप उठता हूं उसी तरह लोगों के भी रोएं खड़े हो जायंगे। तुम्हारे दिल में यह बेचैनी जरूर होनी चाहिए कि जो खर्च हमपर हुआ है उसके बदले में हमने देश की क्या सेवा की है? यदि हमारी भावी प्रजा हमारे काम से सन्तुष्ट न हो तो इस विद्यालय को छोड़ देने में ही तुम्हारी शोभा है। तुम इस बात को समझो और कमर कस लो कि असहयोग के स्वराज्य-मन्दिर के चिरस्थायी अंगों को तुम अपनाओगे। इस बात को समझने में ही तुम लायक बनोगे, तुमपर जो कुछ खर्च हुआ है उस सब का अगणित फल तुम्हें मिलेगा। जिस तरह बीज खेत में फलता है उसी तरह तुम पर खर्च हुई रकम फूले-फलेगी। मित्र, विद्यार्थी और कुलपति की हैसियत से मैं तुमको कहना चाहता हूं कि तुम्हारे पास केवल दो ही रास्ते हैं—तुम्हें इन दोनों बातों को मानना होगा। कुलपति के खातिर सूत देना और मेरे लिए सूत देना—ये दो जुदी जुदी बातें हैं। मुझपर यदि तुम्हारी श्रद्धा हो और मेरे प्रेम या मोह के वशवर्ती होकर यदि तुम सूत कातो तो यह ठीक है, पर मुझे सन्तोष दिलाने के लिए ऐसा करना जुदी बात है। यदि चरखे पर तुम्हारी श्रद्धा हो और तुम न कातते हो और यदि मैं आकर तुम्हारी काहिली दूर करूं और तुम मेरे खातिर कातने लगो तो अच्छा है। पर जिस बात पर तुम्हें मुतलक श्रद्धा ही न हो उसे केवल मुझे सन्तोष दिलाने के लिए करना निहायत ही बुरी बात है। यह पाखंड और दगा है। जिन अध्यापकों ने यह कहा है कि देश के लिए चरखा कातना चाहिए, उन्होंने इसी अर्थ में यह बात कही होगी।

हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी, ये सब हमारे भाई हैं। यदि ऐसी श्रद्धा तुम्हारे दिल में न हो और तदनुसार चलने की तैयारी तुम्हारी न हो तो तुम खुशी से महाविद्यालय को छोड़ देना। तुम अपने रास्ते चले जाओ और महाविद्यालय अपनी कार्य-रेखा निश्चित कर लेगा।

यह बात करते हुए मुझे महाविद्यालय की इमारत की याद आ गई। वहां कितने ही अन्त्यज मजदूर काम करते हैं और उन्हें पानी की तकलीफ पड़ती है। यदि तुम में शक्ति हो और दूसरे मजदूर जाना चाहें तो उन्हें जाने देकर तुम खुद अन्त्यजों के साथ काम में लग जाओ। पर मैं देखता हूं कि तुम्हारे पास ऐसे शरीर नहीं, वह प्रेम नहीं। तुम ऐसे अवसर पर अन्त्यजों के तथा औरों के पानी पीने की व्यवस्था करना। तुम ऊंची जाति के मजदूरों से कह सकते हो कि पानी खींच कर अन्त्यजों को पिलाओ। और उन्हें समझा सकते हो तुम्हें यदि अपने से हीन वर्ण के लोगों पर दया न आवे तो हम पानी भर देंगे। इस प्रकार दया और सत्याग्रह का पदार्थ-पाठ दे सकते हो। तुम कम से कम इतना तो करो कि अन्त्यजों को नहलाकर नहाओ और खिला कर खाओ। हम चाहे जंगल में, टूटे-फूटे मकानों में रह लेंगे, पर अन्त्यजों को न छोड़ेंगे। और ऐसा कर के ऊंचे वर्ण के अत्याचार को मिटा देंगे। यह शिक्षा तुमको अध्यापक लोग नहीं दे सकते, यह पुस्तकों से नहीं मिल सकती। अध्यापक अपने आचरण द्वारा पदार्थ-पाठ पढ़ा कर ही यह शिक्षा दे सकेंगे। विद्यापीठ की स्थापना के समय मैंने कहा था कि यदि केवल अक्षर-ज्ञान के ही लिए यह संस्था खड़ी की गई हो तो मैं कुलपति होने के योग्य नहीं हूं। चरित्रबल को बढ़ाने के लिए ही—इसी शर्तपर विद्यापीठ आदि संस्थाओं की नींव डाली गई। इस बात को याद दिलाना मेरा कर्तव्य है और तुम इस अनिवार्य अंग का स्वीकार करो और इसे यशस्वी बनाओ।

तुम्हारे चरखे यदि धूप और बारिश में सड़ते रहें तो समझना कि तुम पाप कर रहे हो। विज्ञान की प्रयोगशाला में औजार कितने साफ-सुथरे रखते हो? तुम्हारे चरखे भी वैसे ही नजर आना चाहिए। तुम्हारे पास बढ़िया तकुआ, चमरख, रुई, पूनी आदि की आशा मैं जरूर रखता हूं। इसके लिए तुम्हें आश्रम का मुंह देखना उचित नहीं। क्योंकि तुम तो 'विशारद' कहलाते हो। यदि तुमसे नहीं तो फिर और किससे आशा रक्खूं? इतना स्वाभिमान तो तुम्हारे अन्दर जरूर होना चाहिए कि तुम अपने तौर पर इसका इन्तजाम कर लो।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, भादों बदी ३, संवत् १९८१

क्षमा-प्रार्थना

'हिन्दी-नवजीवन' का तीसरा वर्ष आज पूरा होता है। मुझे कहते हुए रंज होता है कि मैं 'हिन्दी-नवजीवन' के लिए स्वतन्त्र लेख बहुत न लिख सका। पाठक इस बात को मानें कि इसका कारण अनिच्छा नहीं, बल्कि समय का अभाव है। और इसके लिए मुझे क्षमा करें।

'हिन्दी-नवजीवन' अब तक स्वावलंबी नहीं हुआ है। मैंने एक समय जाहिर किया है कि किसी अखबार को नुकसान उठाकर चलाना प्रजा की दृष्टि से अच्छा नहीं है। 'हिन्दी-नवजीवन' केवल सेवा-भाव से ही निकलता है। इसीलिए प्रत्येक पाठक उसपर अपनी मालिकी समझे और उसे स्वावलंबी बनाने की कोशिश करे। अब २७०० प्रतियाँ बिकती हैं। स्वावलंबी बनने के लिए कम से कम ३००० प्रतियाँ बिकनी चाहिए। मैं आशा करता हूं कि पाठकगण कोशिश कर के इस घटी को दूर करेंगे।

मोहनदास करमचंद गांधी

जोश चाहिए !

मैं एक ऐसे वकील साहब के पत्र से कुछ अंश यहां उद्धृत करता हूं जिन्होंने राष्ट्रीय कार्य में बहुत कुरबानियां की है। जब उन्होंने असहयोग किया, अपनी किताबें तक बेच डालीं। अब वे नाउम्मीद हो गये हैं। वे यह कह कर अपनी चिट्ठी खतम करते हैं—'मैंने यह खत महज इसलिए लिखा है कि जिससे मेरे मन का गुब्बार निकल जाय। यदि इसकी ओर आपका ध्यान न गया तो मुझे निराशा न होगी।' शुद्ध भाव से भेजे गये किसी भी लेख की उपेक्षा मेरी तरफ से नहीं हो सकती। इसलिए मैंने मध्यम मार्ग स्वीकार किया है। मैंने इस पत्र से निराशात्मक और उपदेशात्मक अंश को निकाल कर उसका निचोड़ निकाला है। वह नीचे दिया जाता है, जो कि विचारणीय है—

"चरखा, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अछूतोद्धार की बातें लोगों को दो साल हो जाने पर भी अभीतक जची नहीं। और अब उनके विचारों में परिवर्तन होने का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता।

अपरिवर्तनवादियों को अपना कार्यक्रम मनुष्य-प्रकृति के अनुकूल बनाना चाहिए। उन्हें इस बात का खयाल रखना चाहिए कि जनता में फिर से उत्साह का संचार करने के लिए जोश दिलाने की बहुत आवश्यकता है। सत्याग्रह से बढ़कर जोश दिलाने का जरिया दूसरा नहीं हो सकता। लेकिन वह सरकार से सीधी और खुली लड़ाई के रूप में होना चाहिए। हमारे अन्दर ही अन्दर भिन्न भिन्न जातियों में सत्याग्रह होना हानिकर है। इससे तो महज सरकार को अंधेरे में और खासे दूर रह कर खाई में छिप कर लड़ने का मौका मिलता है। उसके कारण बहुतेरे षड्यन्त्रों और शरारती प्रचार की गुंजाइश हो जाती है। सरकार से खासी अच्छी मुठभेड़ करने के लिए पक्के कारण चुन लेने चाहिए और उनके साथ लोगों की सहानुभूति प्राप्त करनी और बढ़ानी चाहिए। नीचे लिखी बातें इन शर्तों को पूरा कर सकती है, इनमें से कोई बात चुन ली जाय—

१—अदालतों का बहिष्कार किया जाय और ग्राम, कस्बा, नगर, पंचायतों की स्थापना की जाय, और हर जगह दस्तावेजों को रजिस्टर करने के दफ्तर रहें,

२—सिक्के के चलन का बहिष्कार करके हुंडी का चलन चलाया जाय,

३—शराब तथा नशीली चीजों के व्यवहार को रोका जाय"

मैं इस बात को नहीं मानता कि हमने जनता के अन्दर अभी इतना काम कर दिखाया है कि जिससे हम यह कह सकें कि ये तीनों चीजें उन्हें जँचती नहीं। हमने जनता का अर्थात् देहात का जो कुछ तजरिबा हासिल किया है उससे तो मालूम होता है कि चरखा उन्हें जचता है। उन्हें सिर्फ संगठित करने की जरूरत है। लेकिन हम लोग जो कि उनके नेता होने का दम भरते हैं, गांवों में जाकर उनके बीच रहने और चरखे के जीवन-दायी संदेश को उन्हें सुनाने से इन्कार करते हैं। लेखक का तो जनता से परिचय हुआ नहीं। वर्ना उन्हें मालूम होता कि हिन्दू-मुसल्मान जनता आपस में नहीं लड़ रही है। देहली कोई गांव नहीं। और वहां भी यह कहना उनकी बदनामी करना होगा कि गरीब लोग लड़े थे। हमने उन्हें आपस में लड़ने के लिए भड़काया। हां, अछूतों का सवाल अलबत्ते जनता के अन्दर मुश्किल है। फिर भी वह उन्हें पटता है; पर वह ऐसे रूप में जिसे हम पसंद नहीं करते। जो अकेलापन उन्हें सदियों से विरासत में मिला है वे उसका सेवन करते हैं। लेकिन यदि हम खुद अपनी स्वच्छता, निस्वार्थता और धैर्य के बल उन्हें इस रोग से मुक्त नहीं कर सकते, तो राष्ट्र की हैसियत से हमारी मौत ही समझिए। इस बात को हर राजनैतिक सुधारक जितना ही जल्दी महसूस करेंगे उतना ही भला उनका और देश का होगा। हमें चाहिए कि हम इस लड़ाई को—अछूतोद्धार के प्रयत्न को—स्वराज्य प्राप्त होने तक न छोड़ें, न मुल्तवी कर दें। इसे मुल्तवी करना मानों स्वराज्य को ही मुल्तवी करना है। यह ऐसा ही है जैसे बिना फेफड़े के जीवित रहने की इच्छा रखना। जो लोग यह मानते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम-तनाजा और छुआछूत स्वराज्य प्राप्त होने के बाद दूर किये जा सकेंगे, वे मानों ख्याली दुनिया में विचरते हैं। अपने प्रस्ताव का मर्म समझने की शक्ति इनमें नहीं है। स्वराज्य-प्राप्ति के किसी भी कार्यक्रम में ये तीन अंग अवश्य होने चाहिए। हां, यह काम मुश्किल है; पर असंभव नहीं। इसलिए मैं यह बात दावे के साथ कहता हूं कि यह रचनात्मक त्रिविध कार्यक्रम भारत की मनुष्य-प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल है। वह उन लोगों की दैनिक आवश्यकताओं के बिल्कुल अनुकूल है जो कि अपनी प्रगति पर तुले हुए हैं।

पर ये मित्र तो कहते हैं कि 'जोश' के बिना काम नहीं चल सकता। पता नहीं, 'जोश' कहते किसे हैं। क्योंकि जो लोग कार्यकर्ता हैं उनके लिए तो इन तीन चीजों में काफी जोश मौजूद है। आप किसी भी एक गांव में चले जाइए, एक चरखा लेकर बैठ जाइए और गांववालों से कहिए कि वे अपने अछूत-भाइयों को गले लगावें। गांव के बच्चे तो चरखे के आसपास, जिसे वे बरसों से भूल गये थे, बस नाचने ही लगेंगे और गांववाले यदि आप उन्हें अछूतों को गले लगाने की बात अच्छे और मीठे ढंग से न कहेंगे तो आपको पत्थर मारने पर आमादा होंगे। यह

ऐसा जोश है जिससे जीवन मिलता है। पर एक ऐसा जोश भी है जो हमारी मृत्यु का कारण होता है। वह क्षणिक होता है और लोगों को अंधा कर देता है तथा जरा देर के लिए खलबली पैदा करता है। इस किस्म के जोश से स्वराज्य नहीं मिल सकता। हां, उन लोगों के लिए इसकी उपयोगिता का अनुमान मैं कर सकता हूं जो दूसरे के हाथों से सत्ता छीनने के लिए युद्ध करने को प्रवृत्त हों। पर भारत के सामने जो समस्या दरपेश है वह इतनी सुगम नहीं है। हम न तो हथियार ले कर लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हैं और न हमें इसका अभ्यास ही है। अंगरेज लोग महज भुज-बल के ही द्वारा यहां राज्य नहीं करते हैं। वे हमारा मन-हरण करने—हमें फुसलाने के भी साधन रखते हैं। वे ऊपरी मुलायम मखमल में अपनी तलवार को बड़ी सावधानी के साथ छिपा कर रख सकते हैं। जिस घड़ी हम बुद्धियुक्त संगठन, शुद्ध और अविचल संकल्प तथा पूर्ण और नियमबद्ध संघशक्ति का परिचय देंगे वे अपना शासन-भार हमें बिना ही प्रहार की नौबत पहुंचे सौंप देंगे और हमारी शर्तों पर भारत-भूमि की सेवा करेंगे, जैसे कि हम आज अनिच्छा-पूर्वक या अज्ञान-पूर्वक उनकी शर्तों पर अपनेको उनका गुलाम बनाये हुए हैं।

सत्याग्रह इस पिछले तर्ज का जोश नहीं है। वह तो उल्टा ऐसे वायुमण्डल में मर जाता है। इसके लिए शान्त साहस की आवश्यकता है, जो न तो शिकस्त को जानता है और न बदला लेने की कोशिश करता है। यहांतक कि अन्तर्जातीय सत्याग्रह भी (यदि वह दर हकीकत सत्याग्रह हो तो) राष्ट्र को सरकार के मुकाबले में लड़ाई लड़ने के लिए बल प्रदान करता है। अपरिवर्तनवादियों और परिवर्तनवादियों के बीच जो यह भद्दी लड़ाई हो रही है वह किसी भी अर्थ में सत्याग्रह नहीं है। देहली की शर्मनाक घटनायें मुतलक सत्याग्रह नहीं हैं। अन्तर्जातीय सत्याग्रह के नमूने सिर्फ वाइकोम और तारकेश्वर हैं। मैं वाइकोम के बारे में तो कुछ जानता हूं; क्योंकि मैं उसकी बागडोर रखनेवाला माना जाता हूं। यदि सत्याग्रही धीरजवान, पूर्णरूप से सत्य-परायण, सोलहों आना अहिंसात्मक (अर्थात् मन, वचन और कर्म में) रहें, और यदि वे प्रतिपक्षियों के साथ नम्रता से पेश आते रहें और अपनी छोटी-सी भी टेक पर दृढ़ बने रहें तो सफलता मिले बिना रही नहीं सकती। यदि वे इन शर्तों को पूरा कर देंगे तो सनातनी हिन्दू उनपर आशीर्वाद की वृष्टि करेंगे और राष्ट्र कार्य को कमजोर नहीं, प्रबल बनावेंगे। तारकेश्वर के बारे में मैं नहीं के बराबर हाल जानता हूं। पर यदि वह सच्चा सत्याग्रह होगा तो उसका भी फल अच्छा ही हो सकता है, बुरा किसी हालत में नहीं।

पत्र-लेखक के जोश पैदा करने का तरीका सत्याग्रह-संबंधी उनकी गलत-फहमी के अनुकूल ही है। वे इस बात को नहीं महसूस करते कि पंचायतों और वस्तावेजों को रजिस्टर करने की व्यवस्था में यदि सख्ती से काम लिया जाय, तो उससे लेखक का मूल उद्देश ही नष्ट हुए बिना न रहेगा। और यदि इनमें सख्ती न रक्खी जायगी तो वे चरखे से भी कम जोश पैदा कर सकेंगे—क्योंकि कानूनी अदालतों में किसे पड़ी है जो अपने दस्तावेज रजिस्टर कराने जायगा। चलनी सिक्के का बहिष्कार भी बिना लाठी के निर्जीव रहेगा। हां, यदि शान्तिपूर्ण वायुमण्डल बनाया जा सके और पहरा शान्तिपूर्ण होता हुआ पाया जाय तो शराब की दुकानों पर पहरा बिठाने का काम मैं फिर से बहुत-कुछ शुरू करा सकता हूं। तजरिबा यह सिखलाता है कि १९२१ का 'पहरा' सब तरह शांतिपूर्ण न था।

दूसरा उपाय हमें अपने अन्दर ही मिलेगा। जनता ने नहीं बल्कि हमीने अपना विश्वास खो दिया है। क्योंकि पत्र-लेखक जिनके कि जिम्मे खुद एक महासभा-समिति का काम है, कहते हैं कि मेरे पास धड़ाधड़ इस्तीफे आ रहे हैं। क्यों? इसलिए कि इस्तीफे देने वाले लोगों का विश्वास इस कार्यक्रम पर नहीं रह गया है। अबतक तो वे राष्ट्र के साथ खिलवाड़ कर रहे थे, अब वे अपने और राष्ट्र के साथ संजीदगी से पेश आ रहे हैं। वे सत्य की पुकार का उत्तर दे रहे हैं। इन इस्तीफों को मैं राष्ट्रकार्य के लिए स्पष्टतः लाभकारी मानता हूं। यदि सब लोग ऐसा खेल खेलें और या तो प्रस्तावों का पालन करें और या इस्तीफे दे दें, तो हमें पता लग जायगा कि हम कहां हैं। जिन मन्त्री महाशय के जिम्मे महासभा का काम है उन्हें मैं सुझाऊंगा वे मत-दाताओं को यदि उनके रजिस्टर में उनके नाम दर्ज हों तो, बुलावें कि वे अपने प्रतिनिधियों को चुनें। यदि सदस्य लोग वस्तुतः स्वयंमन्य होंगे जैसा कि मुझे अंदेशा है कि बहुत सी जगहों में होंगे, तो मन्त्री ही अकेला महासभा का सच्चा प्रतिनिधि अच्छी तरह रहे, बशर्ते कि उसे खुद अपने ऊपर और कार्यक्रम पर विश्वास हो। उस अवस्था में उसे अपना सारा समय और ध्यान चरखे के लिए देने की छुट्टी रहेगी। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि वह अपने को चरखा कातने में अकेला न पावेगा। जो मनुष्य अपने पास श्रद्धा और दृढ़ निश्चय रखता है उसे दुनिया में निराश होने का कोई कारण नहीं रहता।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

फिरकी की उपयोगिता

"कल 'नवजीवन' में फिरकी या चातली का हाल पढ़ा। जब मैं पहले पहल मिला था तब चातली के इस्तेमाल करने का वादा मैंने किया था। अब मैंने उसे जमा लिया है। आपके लेखानुसार चर्खे से आधा काम उसपर नहीं निकलता। रुपये में दो आना काम होता है (मेरे हिसाब से) फिर भी चीज है उत्तम। बड़ा से बड़ा विज्ञापन है। रेल में बैठे बैठे मैं उसपर सूत कातता हूं। और चुप रहते हुए भी कातने और खादी पहनने का उपदेश करता रहता हूं।"

यह तो अनेक अनुभवों में से सिर्फ एक है। अभी तो फिरकी अर्थात् चातली का आरम्भ-काल है। अबतक घण्टे में ८० गज सूत कातने की खबर मिल चुकी है। चरखे पर बहुतेरे लोग इससे ज्यादह नहीं कातते। पर इस तरह चातली का मुकाबला चरखे से नहीं किया जा सकता। चातली पर तो जहां ५ मिनिट की फुरसत मिली कि सूत कातने लगे। रेल में चरखा नहीं चल सकता। इसलिए महा-समिति ने सफर में सूत कातना माफ किया है। यदि मुझे उस समय चातली की उपयोगिता का पूरा खयाल होता तो मैं सफर को भी मुस्तसना न करता। इस तरह विचार करने पर भ्रमण करने वाले अथवा दूसरे कामों के बीच बीच में कातने वाले शख्स के लिए चातली शायद चरखे से भी अधिक काम दे सके। फिर भी चातली चरखे के बजाय नहीं, बल्कि उसके अलावा चलानी चाहिए। यह सूत कातने का प्रायः मुफ्त साधन है। यदि ठीकरी की चातली बनाई जाय तो वह तो बिल्कुल ही मुफ्त पड़ती है।

(नवजीवन)

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

टिप्पणियां

देहली में काम-काज

मौलाना महम्मदअली के एक खत से मालूम होता है कि देहली में वे भिन्न भिन्न दलवालों में समझौते की पूरी पूरी कोशिश कर रहे हैं। वे एक जांच-समिति नियुक्त करने की भी चेष्टा कर रहे हैं। इसके लिए निहायत होशियारी से काम लेने की जरूरत है। वहां परस्पर इतना अविश्वास फैला हुआ है कि कितने ही लोग तो कहते हैं कि हमें जांच-समिति दरकार ही नहीं। मौलाना साहब बीमार हैं और बिछौने पर पड़े रहते हैं। एक जगह से दूसरी जगह डोली में बैठकर जाते हैं। हमें आशा रखनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि मौलाना साहब जल्द ही तन्दुरुस्त हो कर अपने सिर के भारी काम को ठीक ठीक कर सकें।

[गत १६ अगस्त को गांधीजी इसी सिलसिले में देहली रवाना हो गये हैं— उप-संपादक।

श्री केलकर और मानहानि

बम्बई की हाईकोर्ट के विद्वान न्यायाधीशों ने श्री केलकर को जो सजा दी है, जो जुरमाना किया है उससे मेरा ख्याल है कि श्री केलकर या केसरी का कुछ भी बिगाड़ नहीं हो सकता। यह जुरमाना देने पर भी दोनों टिके रहेंगे। श्री केलकर इस मामले में जिस बहादुरी से डटे खड़े रहे उसपर उन्हें पत्रकारों और लोगों की तरफ से बहुत कुछ मुबारकबादी मिली है। 'केसरी' की इज्जत तो लोगों में वैसे ही बढ़ी हुई थी, लेकिन इस मामले के फैसले से वह और भी बढ़ गई है। पर न्यायाधीशों में यह इतनी बे-चैनी क्यों पाई जाती है? निःसन्देह ऐसी खुली टीका-टिप्पणी से अवश्य ही उनका कुछ नहीं बिगड़ सकता। हां, हमेशा ऐसी टीकायें ठीक और ऐसी नहीं होतीं कि जिसका बचाव भी किया जा सके। जिन लेखों से अदालत की मानहानि हुई उन लेखों को मैंने देखा नहीं है। लेकिन इस सजा से लोगों को फायदा क्या हो सकता है? क्या लोग या श्री केलकर इस फैसले के कारण न्यायाधीशों के प्रति अधिक उदार ख्याल रखने लगेंगे? यदि इन लेखों में न्यायाधीशों का पक्षपाती होना दिखाया गया है तो वह सिर्फ इतिहास का प्रतिपादन है। ऐसा पक्षपात जानबूझ कर ही होना जरूरी नहीं है। लेकिन जनता का ऐसा विश्वास ही बन गया है कि भारतीयों और यूरोपियनों के बीच के झगड़े में न्यायाधीशों की ओर से आमतौर पर पक्षपात होता है। खुद मेरा दक्षिण-अफ्रिका का विस्तृत और वहां से कुछ काम करने का अनुभव जनता के इस विश्वास का समर्थन करता है। १९१९ में पंजाब के खास ट्रिब्युनल के फैसलों का विश्लेषण मैंने 'यंगइंडिया' में किया था। उससे यह बिलाशक साबित होता है कि पंजाब के इस ट्रिब्युनल के न्यायाधीशों में अवश्य ही पक्षपात था। यूरोपियन और भारतीय के बीच न्याय मिलना मुश्किल है। मैं चाहता हूं कि मेरा ख्याल इसके खिलाफ हो। लेकिन यह संभव नहीं है। मैं मानने के लिए तैयार हूं कि इस परिस्थिति में पड़कर कोई भी मनुष्य ऐसा ही करेगा। यह कहने का एक तरीका है कि मनुष्य-स्वभाव सब अवस्था में एकसा ही रहता है। न्यायाधीश भी मनुष्य हैं और साधारण मनुष्य की तरह उनमें भी वैसी ही कमजोरी है और वैसी ही भावनाओं से उन्हें भी प्रेरणा मिलती है। इसलिए मैं इन न्यायाधीशों को आदर-पूर्वक यह दिखाना चाहता हूं कि जिस प्रकार वे 'केसरी' की इस खुली टीका से बिगड़ गये, वैसे ही यदि बिगड़ा करेंगे तो वे इस प्रकार के [illegible] देनेवाले प्रभाव को रोकेंगे। श्री केलकर के समान अनुभवी पत्रकार जब न्यायाधीशों के फैसलों के खिलाफ टीका करना उचित समझते हैं तो उसे उनके लिए एक रसायन का काम देना चाहिए। यूरोपीयन न्यायाधीश यदि पक्षपात और एक-तरफा प्रभाव के खिलाफ, जो उनपर भारी असर डालता है, प्रयत्न करना चाहते हों तो उन्हें मेरी विनीत राय के मुताबिक भारतीय पत्रकारों की टीका का स्वागत करना चाहिए और उन्हें ऐसा करने के लिए उत्साहित करना चाहिए। किन्तु दुःख की बात तो यही है [illegible] अवश्य ऐसी टीकायें उनके पास फैसले के लिए नहीं आतीं [illegible]" ने उन्हें शायद ही पढ़ते हों। श्री केलकर के खिलाफ [illegible] दिया गया है उससे तो वर्तमानपत्रों के सम्पादक [illegible] सके तो प्रकट ही न करेंगे या नम्र बनाकर प्रकट करेंगे। [illegible] अन्दर ही अन्दर अपना रास्ता कर लेगी। अब भी हमारे पास इस[illegible] कमी नहीं है; साधारणतया कुछ अधिकता ही है। मैं यह कहे बगैर नहीं रह सकता कि श्री केलकर के खिलाफ जो यह फैसला दिया गया है उससे हमारे चारों ओर लोगों के जीवन में कड़वापन और भी बढ़ जायगा और यूरोपीयनों और हिन्दुस्तानियों के संबंध में और भी अधिक कटुता आ जायगी। यह बिलकुल ही अनावश्यक था।

'राजा कभी गलती नहीं करता!'

एक न्यायाधीश पर टीका करने के लिए श्री केलकर को ५,०००) देने पड़े। एक कलेक्टर के खिलाफ लिखने के लिए क्रानिकल को १५,०००) देने पड़े। लेकिन लार्ड लिटन, इसलिए कि वे बंगाल में सम्राट् के प्रतिनिधि हैं, हिन्दुस्तानी स्त्रियों पर दोष लगा सकते हैं और उन्हें कुछ भी सजा होने का भय नहीं। शायद उनके भक्तों की तरफ से उन्हें इस साफ साफ बात के कहने के लिए वाहवाही भी मिली होगी। उन्होंने, कहा जाता है कि एक व्याख्यान में गंभीरता-पूर्वक यह बात कही कि "सिर्फ अधिकारियों के प्रति नफरत होने के कारण ही भारतीय पुरुषवर्ग भारतीय स्त्रियों को पुलिस को बदनाम करने के लिए इज्जत बिगाड़ने के झूठे अपराध लगाने पर तैयार करने में नहीं सकुचाते।" यदि यह बात उनके व्याख्यान की सच्ची रिपोर्ट में न होती और केवल संवाददाता ने उस रिपोर्ट के सार के तौर पर ही लिखी होती तो मैं इस बात पर विश्वास करने से इन्कार करता कि एक जिम्मेदार अंग्रेज भी ऐसी स्पष्ट विचार-हीन बात कह सकता है। यह तो साफ है कि लार्ड लिटन यह नहीं जानते या जानने की परवाह भी नहीं रखते कि इस प्रकार भारतीय स्त्रियों पर दोषारोप करने से भारतीयों के दिलों में कैसी गहरी खलबली मच जायगी। क्या लार्ड लिटन के पास अपनी बात के अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं? यदि उन्होंने केवल पुलिस की बातों पर ही विश्वास रखा है तो उनका यह आधार कच्चा है। उनके सलाहकारों को उन्हें ऐसे एकतरफा प्रमाणों पर विश्वास रखने से सावधान कर देना चाहिए था। लेकिन वे बिना कुछ भी सजा पाये ऐसी अपराध की बात कैसे कह सके? यदि बंगाल या लोकमत और इसलिए सारे हिन्दुस्तान का लोकमत पुर असर होता तो किसी एक मामले में भी इस बात के सच प्रमाणित होते हुए भी वे ऐसी बात करने की हिम्मत नहीं करते? आज देश में ऐसा लोकमत ही नहीं है कि जो अपनी करामात दिखा सके। फिर भी देश के सब से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति को भी यह ख्याल न करना चाहिए कि हिन्दुस्तान को और हिन्दुस्तानी भावों को हमेशा अपमानित

ऐसा है। हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े और परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों के मतभेद राष्ट्रीय हलचल में थोड़े दिन के मेहमान हैं। लेकिन बड़ी बड़ी जगहों पर से अंग्रेज लोग जो अपमान करते हैं वह भारतवासियों के दिलों पर गहरी चोट पहुंचाता है। सम्राट् के गैर-जिम्मेदार प्रतिनिधियों के ऐसे अविचार-पूर्ण कृत्यों के कारण हम अपना मतभेद सब ताक पर रख दें, यह ख्याल भी अपमानकारक प्रतीत होता है।

संवाददाताओं को चेतावनी

मुझ-जैसी मुश्किल से—बड़ी बड़ी तकलीफें उठाके के बाद मनुष्यता हरण करानेवाले का यश मैंने प्राप्त किया था। वह अहमदाबाद के मुकदमे में (मैं आशा रखता हूं कि थोड़े समय के लिए) कर दिया। उसने ऐसी रिपोर्ट भेजी कि मैं प्रलय-पीड़ित मलाबार के लिए केवल यही संदेशा भेज सकता हूं कि जो लोग भूखे, वस्त्र-हीन, और बिना घर के हो गये हैं उन्हें सूत कातना चाहिए। अपनी बदनामी के लिए यदि श्री, पेन्टर को १०,००० मिल सकते हैं तो मुझे अपनी इस बदनामी के लिए मेरा ख्याल है कि कमसे कम १,५०,००० मिलने चाहिए। और अगर मुझे यह रकम मिल जाय तो मैं अपनी खोई हुई कीर्ति कुछ अंश में फिर प्राप्त कर लूं और सारी रकम बिना कुछ भी कम किये मलाबार के प्रलय-पीड़ितों को दे दूं। लेकिन मैं पेन्टर जैसा नहीं बनना और संवाददाता और एसोसियेटेड प्रेस दोनों को सब दोषों से बरी किये देता हूं। स्थानिक संवाददाता ने मुझसे कहा है कि वह सभा में गया ही न था। जो लोग सभा में गये थे उन्होंने ने भी बहुत ही कम सुना था। लेकिन सुननेवालों का ख्याल था कि मैंने कातने के बारे में कुछ कहा था। इससे अधिक स्वाभाविक क्या हो सकता है कि मैं मलाबार के पीड़ित लोगों को कपड़े, खाने और रहने का साधन प्राप्त करने के लिए कातने की प्रेरणा करूं? क्या आचार्य राय यही काम नहीं कर रहे हैं? बेचारा संवाददाता यह भूल ही गया कि आचार्य राय यह काम लोगों के स्थिर रूप से बस जाने के बाद कर रहे थे। खैर; इस प्रकार भूल से संवाददाता और सर्व-साधारण दोनों सबक सीख सकते हैं। सार्वजनिक लोगों का यश संवाददातागण अपनी हथेली में रखते हैं। यह कोई छोटी बात नहीं कि ऐसे लोगों के व्याख्यान और कार्य की गलत रिपोर्ट की जाय। लोगों को भी चाहिए कि वे सब बातों को बिल्कुल सही न मानें। अपने संबंध में तो सर्व-साधारण को और दूसरे लोगों को मुझे यह जताता रहना होगा कि जबतक मैं स्वयं किसी बात का सही होना जाहिर न करूं तबतक वे, मेरे बारे में की गई किसी भी रिपोर्ट पर विश्वास न करें। मेरे सब शब्दों की रिपोर्ट भेजी जाय ऐसी जल्दी मुझे नहीं रहती। जो संवाद वे भेजना चाहते हैं उसका समर्थन जबतक मुझसे न करा लें तबतक यदि संवाददातागण मेरे बारे में कुछ भी खबर न भेजेंगे तो उनकी मुझ पर बड़ी महरबानी होगी।

मुझे यह इसलिए कहना पड़ता है कि मुझे अपनी बातों की गलत रिपोर्ट भेजने का कटुतर अनुभव याद है। १८९६ में मैंने हिन्दुस्तान में दक्षिण अफ्रिका के ब्रिटिश भारतियों के बारे में एक ३० या अधिक सफे की पुस्तिका प्रकाशित की थी। उसका सार पांच लकीरों में रूटर ने नेटाल तार से भेज दिया। उस पुस्तिका में मेरा कहने का जो कुछ भी मतलब था उसके यह बिल्कुल ही खिलाफ था। नेटाल के गोरे इससे भड़क उठे। और जब मैं नेटाल गया तब जोश में आई हुई एक भीड़ ने मुझपर ऐसा हमला किया—ऐसा मारा कि मरते मरते बच गया। मेरे वकील मित्रों ने नुकसानी का दावा करने के लिए बहुत समझाया। लेकिन उस वक्त भी मैं सत्याग्रही था। मैंने दावा करने से इन्कार किया। दावा न करने से मेरा कुछ बिगड़ा भी नहीं। जब उन लोगों ने देखा कि मैं बुरा आदमी नहीं और उनका मुझे समझने में बुरी तरह से धोखा हुआ है तो वे अपनी भूल के लिए पछताने लगे। इसलिए इस वक्त संयम रखने से आखिर मुझे कुछ भी नुकसान न हुआ। लेकिन इससे और भी अधिक यश मुझे मिले तो भी मैं दूसरा ऐसा अनुभव करना नहीं चाहता। यदि ईश्वर की इच्छा है तो मैं चाहता हूं कि और अधिक काम करूं। इसलिए मैं संवाददाताओं को कहता हूं कि अभी कुछ अरसे के लिए मुझे इससे बचा लें।

मुनासिब कार्रवाई

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त प्रांत की सरकार को अध्यापक रामदास गौड़ की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की जब्ती के बारे में नीचे लिखा पत्र भेजा है—

"संयुक्त प्रांत की सरकार ने जो १८९८ के ५वें कानून की ९९ अ धारा के अनुसार अध्यापक रामदास गौड़ की हिन्दी पुस्तक ३ री, ४ थी, ५ वीं और ६ ठी तथा उनके कुछ अंश जब्त किये उसकी ओर संयुक्त प्रांत की प्रांतिक समिति का ध्यान गया है। पिछले कुछ समय से ये पुस्तकें बहुतसी शालाओं में प्रचलित हैं। ये पुस्तकें हिन्दी के खास खास लेखकों के लेखों को चुन कर बनाई गई हैं। इससे यह समझ लेना सहल नहीं है कि पुस्तक का कौन भाग हिन्दुस्तान के ताजीरात हिन्द १२४ अ धारा के अनुसार सरकार को दोषयुक्त मालूम होता है। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूंगा यदि आप यह बताने की कृपा करेंगे कि पुस्तक का कौन सा भाग दोषयुक्त जान पड़ता है, जिससे पुस्तकें जब्त की गई। उसे हमारी प्रान्तिक समिति गौर से देखेगी और यदि उसे यह विश्वास हो जायगा कि पुस्तक के वे अंश वास्तव में सदोष हैं तो वह अ० रामदास गौड़ को यकीनन् सलाह देगी कि आप अपनी पुस्तक से उन हिस्सों को निकाल दीजिए। मैं बहुत खुश हूंगा यदि आप कृपा कर के इस पत्र का उत्तर जल्दी देंगे; क्योंकि ये पुस्तकें मेरी समिति से संबंध रखनेवाले कितने ही मदरसों में जारी हैं।"

पण्डितजी ने एक ऐसा ही पत्र संयुक्त प्रान्त के शिक्षाविभाग के कर्त्ता के नाम भी भेजा है। सर्वसाधारण भी इसके आगे की कार्रवाई को उत्सुकता के साथ देखेंगे। इसी बीच पुस्तक-प्रकाशकों ने इस हुक्म को रद्द करने के लिए कानूनी कारवाई शुरू कर दी है। ये पुस्तकें हजारों की संख्या में बिकी हैं। ऐसी हालत में तमाम पुस्तकों को जब्त करके फिरना सरकार के लिए कठिन होगा। हां लड़के-लड़कियां अपने आप उन्हें फाड़ डालें या जला डालें तो बात दूसरी है। अभी तक तो इस सिलसिले में कोई कार्रवाई नहीं हो रही है। बल्कि पुस्तकें अभी तक ज्यों की त्यों मदरसों में चल रही हैं। लेकिन सरकार के पास तो बहुतेरी तरकीबें छिपी हुई होंगी और ज्योंही वह मौका देखेगी उन लोगों को छका देगी जिनके पास वे कलंकित पुस्तकें होंगी। लोग इस बात को जान कर खुश होंगे कि पुस्तकों के विद्वान् लेखक ने उनका कोई कापी राईट नहीं रक्खा है। (य. इ.)

राष्ट्रीय पाठशालाओं में दण्डनीति

एक महाशय लिखते हैं—'आपने शिक्षा परिषद् में बहुतेरे प्रस्ताव पास कराये। शिक्षकों ने राजी या नाराजी से आपको खुश करने के लिए उन्हें पास कर दिया है। पर उनका पालन

शायद ही होगा। लेकिन आप एक बात का प्रस्ताव करना भूल गये। हमारी राष्ट्रीय पाठशालाओं में विद्यार्थियों को शारीरिक दण्ड दिया जाता है।'

मैं आशा करता हूं कि शिक्षण-परिषद के प्रस्ताव मुझे खुश करने के लिए नहीं हुए हैं, बल्कि पालन करने की इच्छा से मंजूर किये गये हैं। इन महाशय के लेखानुसार मुझे तो अविश्वास बिलकुल नहीं है। मैं यह मान कर चला हूं कि राष्ट्रीय पाठशालाओं में दण्ड-नीति त्याग दी गई है। यदि ऐसा न होता तो कोई न कोई शिक्षक उसकी चर्चा अवश्य करता। दूसरा अनुमान यह भी हो सकता है कि दण्डनीति इतनी प्रचलित है कि उसमें किसीको कुछ आश्चर्य ही नहीं होता। मैं ऐसा अनुमान करने के लिए तैयार नहीं। मैं आशा करता हूं कि इन महाशय ने कहीं एकाध जगह विद्यार्थियों को सजा पाते हुए देखा होगा। जो शिक्षक सजा देता है उसे शिक्षक नहीं कह सकते। वह तो कैदियों का दारोगा है। शिक्षक का तो धर्म है हंसा-खिला कर प्रेम से बालकों को आगे बढ़ाना। यह वहम है कि सजा के डर से बालक पढ़ते हैं। वह तो अब प्रायः दूर ही हो गया है। दुनिया के हजारों शिक्षकों का यह अनुभव है कि धीरज से बालकों को अधिक शिक्षा दी जा सकती है। दण्ड शिक्षक के अज्ञान का सूचक है। शिक्षक का काम है प्रत्येक विषय को दिलचस्प बना देना। अच्छा शिक्षक अंकगणित जैसी वस्तु को भी मनोरंजक बना सकता है।

वे राक्षस थे?

एक महाशय ने रामचन्द्र, युधिष्ठिर, नल, पर किये गये कुछ आक्षेप लिख कर भेजे हैं और उनके जवाब चाहे हैं। 'रामचन्द्र ने सीता का अग्नि में प्रवेश कराया और उसका त्याग किया, युधिष्ठिर ने जुआ खेला और द्रौपदी की रक्षा करने की भी हिम्मत नहीं बतलाई, नल ने अपनी पत्नी पर कलंक लगाया और अर्धनग्न अवस्था में घोर वन में भटकती छोड़ दी। इन तीनों को पुरुष कहें या राक्षस?'

इसका जवाब सिर्फ दो ही व्यक्ति दे सकते हैं—या तो कवि स्वयं या वे सतियां। मैं तो प्राकृत दृष्टि से देखता हूं, तो मुझे ये तीनों स्त्री-पुरुष सवर्णोग हैं। राम की तो बात ही छोड़ देना चाहिए। परन्तु आइए, ऐतिहासिक राम को दूसरे दोनों की पंक्ति में जरा देर के लिए रख दें। ये तीनों सतियां इतिहास में सती न बखानी गई होतीं, यदि वे इन तीनों महापुरुषों की अर्धांगना के रूप में न रही होतीं। दमयन्ती ने नल का नाम रटना से नहीं छोड़ा, सीता के लिए राम के सिवा इस जगत् में दूसरा कोई न था। द्रौपदी धर्मराज पर भौंहें ताने रहती थी, फिर भी उससे जुदा नहीं होती थी। जब जब इन तीनों ने इन सतियों को सताया तब तब हम यदि उनकी हृदय-गुहा में पैठ पाये होते तो उसमें जलती हुई दुःखाग्नि हमें भस्म कर देती। राम को जो दुःख हुआ है उसका चित्र भवभूति ने चित्रित किया है। द्रौपदी को फूल की तरह रखने वाले भी वे पांचों भाई थे। उसके बोल सहने वाले भी वही थे। नल ने जो कुछ किया वह तो अपनी अचेत अवस्था में। नल की पत्नी-परायणता को तो देवता भी उस समय आकाश से झांक कर देख रहे थे जब कि वह ऋतुपर्ण को ले उड़ा था। इन तीन सतियों के प्रमाण-पत्र मेरे लिए बस हैं। हां, यह सच है कि कवियों ने तीनों को उनके पतियों से विशेष गुणवती चित्रित किया है। सीता के बिना राम की क्या शोभा, दमयन्ती के बिना नल की क्या शोभा, और द्रौपदी के बिना धर्मराज की क्या शोभा? पुरुष विह्वल, उनके धर्म प्रसंगानुसार भिन्न भिन्न, उनकी भक्ति 'व्यभिचारिणी'। पर इन सतियों की भक्ति तो स्वच्छ, स्फटिकमणि की तरह अव्यभिचारिणी। स्त्री की क्षमाशीलता के सामने पुरुष की क्षमाशीलता कोई चीज नहीं। और क्षमा तो है वीरता का लक्षण। इसलिए ये तीनों सतियां अबला नहीं बल्कि सबला थीं। पर यह दोष तो पुरुषमात्र का मानना चाहें तो मान सकते हैं—नलादि का विशेष रूप से नहीं। कवियों ने इन सतियों को सहनशीलता की साक्षात् मूर्ति चित्रित किया है। मैं तो सतियों को शिरोमणि के रूप में पहचानता हूं। परन्तु उनके पुण्य-रूप पतियों को राक्षस के रूप में नहीं देखना चाहता। उन्हें राक्षस मानने से सतियां दूषित होती हैं। सतियों के पास आसुरी भावना रही नहीं सकती। हां, वे सतियों से कनिष्ठ भले ही माने जाय, पर दोनों की जाति तो एक ही—दोनों पूजनीय। 'जितनी पुरानी बातें हैं सब हो पवित्र हैं' इस विचार में जितना दोष है, उतना ही इस विचार में भी दोष है कि 'जितनी प्राचीन बातें हैं सब दोष-दुष्ट हैं'। स्त्रियों के अधिकार के विचार की प्रथा डालते हुए हमें उनके धर्म का बलिदान न कर देना चाहिए। स्त्रियों के हकों की रक्षा करते हुए पुरातन कालीन पुरुषों की निन्दा की जरूरत मुझे नहीं दिखाई देती।

विदेशी बनाम स्वदेशी शक्कर

एक सज्जन लिखते हैं—'किस चीनी को अच्छा समझें और किसे स्वदेशी तथा किसे परदेशी मानें?' मैंने बारीकी के साथ इस पर विचार नहीं किया। यह बात नहीं कि स्वदेशी चीनी को हड्डी आदि से साफ न किया जाता हो। हिन्दुस्तान हर साल १८ करोड़ रुपये की चीनी विदेशों से मंगवाता है। पर ऐसा जान पड़ता है कि वह थोड़े समय में इस आवश्यकता को पूरा न करेगा। मैं खुद तो बहुधा चीनी का इस्तैमाल करता ही नहीं। पोषण के लिए उसकी जरूरत बहुत थोड़ी है। जितनी जरूरत है, मीठे फलों से मिल सकती है। गन्ने चूसना शक्कर के इस्तैमाल का सबसे अच्छा तरीका है। जब उसका मौसम न हो तब गुड़ से काम चला लेना चाहिए। फिर भी जिसका काम शक्कर बिना न चलता हो उन्हें देश में बनने वाली शक्करों की खोज कर लेना चाहिए और यदि दुकानदार उनमें मिलावट करे तो यह जोखिम उठाने को भी तैयार रहना चाहिए। (नवजीवन)

गांधीजी के लिए या देश के लिए?

एक मित्र कहते हैं कि आजकल गांधीजी के नामसे विद्यार्थियों को कातने के लिए जोर दे कर कहने का एक रिवाज सा पड़ गया है। वे पूछते हैं कि क्या यह ठीक है? जबतक मैं देश के लिए और देश ही के लिए कार्य करता रहूं तबतक इस प्रकार की अपील खास परिस्थिति में और कुछ हद तक अनुचित नहीं है। मेरे लिए कातने की अपील देश के लिए कातने की अपील से अधिक सीधी असर पहुंचा सकती है। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि सबको देश के लिए कातना ही उचित है। अपने लिए उसके आदर्श अर्थ में कातना और भी अच्छा है। क्योंकि हरएक कार्यकर्ता जो देश के लिए कार्य करता है वह अपने लिए भी कार्य करता है। जो सिर्फ अपने लिए काम करता है वह अपना ही नुकसान करता है। हमारा लाभ देश के लाभ के अनुकूल होना चाहिए—वह उससे जुदा न हो जाना चाहिए। वे लोग जो केवल दिखाने के लिए कभी कभी कातते हैं और फिर बंद कर देते हैं, आंखों में धूल झोंकने का ही प्रयत्न करते हैं। मो० क० गांधी

बोल्शेविज्म या संयम?

वार्षिक	,, ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रति का	,, ‌)।
विदेशों के लिए	,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक २

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, भादों बदी १०, संवत् १९८१ रविवार, २४ अगस्त, १९२४ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

मलाबार-संकट-निवारण

इस सप्ताह में कुल ८२०५-१५-३ चंदा आया है। जिसका ब्योरा इस प्रकार है—

सत्याग्रहाश्रम में	४४८७-१२-६
नवजीवन की बम्बई शाखा मे	८५६-१२-०
गुजरात प्रान्तिक समिति में	१०८४— ०-०
नवजीवन कार्यालय मे	१६३७—६-९
हिन्दी-नवजीवन कार्यालय मे--	१९०—०-०
कपूरजी मगनीराम	१५
देवाजी नरसिंगजी	१५
नारायणदास चुनीलाल	१५
पनाजी देवीचंद	०
गमनाजी प्रागचंद	७
केसरीमल दानमल	७
जटाशंकर भाईशंकर	५
व्यंकटराव डाक्टर	५
वासुदेव श्रीनिवास उमवमी	१०
हंसाजी असलाजी	४
भ्रांचंद दीपचंद	४
माहुमा ओबासा खटवटे	४
लकाजी हिराचंद	३
खमारजी रतनचद	२
कमाजी रामाजी	२
नरसिंगजी गुलाबचंद	२
धर्मासा ओदलीग	२
आमीचंद भगवानजी	१
एक आमीनसाहेब अम्द सम्स	१
तुकाराम नरसिंगराव चवाण	२६
कुंजीलाल पुसुलाल तमाली	२५
भगवानदास स्यामसुंदरलाल तमेली	२५
	——
	१९०

इसके अलावा कपडों के २ गढ्ढ १०० पौंड वजन के आये हैं।

टिप्पणियां

पहली किश्त

महासमिति के कताई के प्रस्ताव के जवाब में जो पहली किश्त सूत की मिली है उसका विश्लेषण करते हुए मुझे खुशी होती है। मै चाहता हूं कि पाठकगण भी उसमें शरीक हों। अभीतक तो गुजरात के भेजे हुए सूत का हिसाब ही मुझे मिला है। क्योंकि अहमदाबाद अ० भा० खा० मंडल का मुख्य स्थान है। जिन प्रतिनिधियों के लिए सूत भेजना लाजिमी है उनकी संख्या यहां ४०८ है। उनमे से सिर्फ १६९ प्रतिनिधियों ने ही सूत भेजा है। अर्थात् फी सैकडा ४२ लोगों ने अपने जिम्मे का सूत भेजा और ५८ लोगों ने नहीं भेजा। यह कहा जाता है कि जिन्होंने अपने जिम्मे का सूत नहीं भेजा वे नौसिखिया हैं। किन्तु यह कारण ठीक नहीं है। श्री वल्लभभाई और तैयबजी नौसिखिया होने पर भी निश्चयपूर्वक काम करने के कारण ५,००० बार से भी अधिक सूत भेज सके हैं। इसलिए मुझे आशा है कि दूसरे महीने में सब प्रतिनिधि अपना अपना सूत अवश्य भेज देंगे।

जिन शख्सों ने प्रतिनिधि न होने पर भी सूत भेजा है उनकी संख्या सूत न भेजनेवाले प्रतिनिधियों की संख्या से भी अधिक है। क्योंकि सब मिलाकर ६७२ लोगों ने सूत भेजा है। यह संख्या सचमुच उत्साह देनेवाली है। यदि व्यवस्था और संगठन थोडा और अधिक किया जाय तो नतीजा बहुत अच्छा दिखाई देगा। सच तो यह है कि यदि यह त्याग-भाव से कातने की हलचल फैल जाय तो हर महीने उसका बडा आश्चर्यकारी फल दिखाई देगा। इनमे से किसी ने भी २००० बार से कम सूत नहीं भेजा है। बहुतों ने ५,००० बार भेजा है। एक ने तो ४३००० बार भेजा है। यह बहुत बडा काम है। सूत भी बराबर अच्छा और बलदार है। पाठकों को यह ख्याल न करना चाहिए कि सूत कातना उनका पेशा है। उन्हें बहुत थोडे अरसे का ही महावरा है एक दूसरे सज्जन ने १२००० बार सूत दिया है। उन्होंने २४००० बार काता था। लेकिन १२००० बार खुद अपने इस्तेमाल के लिए रख लिया। एक तीसरे महाशय ने यद्यपि काता तो है २७,००० बार पर भेजा है ११००० बार ही। ये दोनों महासभा के प्रतिनिधि हैं और बडी जिम्मेवारी की जगहों पर काम करते हैं। हर रोज बगैर तीन घंटे काम किये वे इतना अधिक सूत नहीं भेज सकते थे।

उनका कहना है कि हमारे सुपुर्द जो दूसरा काम है उसको नुकसान पहुंचा कर हमने यह सूत नहीं काता है। वे इतना काम कर सके इसका कारण यह है कि वे सुबह जल्दी उठ बैठते हैं और अपने एक एक मिनट का हिसाब रखते हैं। एक युवक ने ४६,००० सूत काता है, किन्तु सिर्फ उतना ही भेजा है जितना कम से कम मांगा गया था। वह अधिक नहीं भेज सकता था। मैं यह भी कह देता हूं कि बहुतों ने २,००० बार से अधिक सूत काता है लेकिन वे खुद अपने कपडे के लिए भी कातते हैं और इसलिए कम से कम जितना मांगा गया उससे अधिक नहीं भेज सकते हैं। जिलों के हिसाब से खेडा जिले का नंबर पहला है और पंचमहाल का आखिरी।

अली-भाइयों का हिस्सा

बडे भाई ने खूब प्रयत्न किया लेकिन वे सिर्फ एक तोला खराब बटा हुआ सूत ही भेज पाये हैं। इन भाइयों के प्रति पक्षपात रखने का दोष यदि पाठकों की तरफ से मुझपर लगाये जाने का भय न होता तो मैं यह कहता कि जो हमेशा घूमता फिरता रहता है और जिसका शरीर कातने के लिए लगातार बैठ रहने के योग्य नहीं उसके लिए यह कुछ बुरा नहीं है। फिर भी मौलाना शौकतअली ने मुझे यह यकीन दिलाया है कि हमारे भाई अपना हिस्सा पूरा पूरा भेज देंगे। मौ० महम्मदअली ने कुछ अधिक किया है। उनकी बात उन्हीके मुंह से सुन लीजिए—

"मैं शौकत के साथ महासभा के सभापति के कातने के प्रस्ताव का जो कुछ भी परिणाम हुआ है भेज रहा हूं। मेरे कातने का इतिहास इस प्रकार है। जीवन भर में मैंने कभी एक बार भी सूत न काता था। किन्तु अहमदाबाद के बाद मैंने निश्चय किया कि जिस रोज से मैं देहली में स्थायी रूप से रहने लगूंगा उसके दूसरे दिन से ही कातना शुरू कर दूंगा। लगातार सफर करने के बाद मुझे बीमारी ने घेर लिया। लेकिन दूसरी अगस्त को बहुत दिनों बाद मैं आखिर कातने बैठा ही। २-३ अगस्त को जो कुछ भी काम किया उसका परिणाम है मेरे बराबर बटे हुए सूत की दो आंटियां, लेकिन उसमें से कुछ तो मेरी स्त्री का काता हुआ था जो मुझे कातना सिखा रही थी और फिर कुछ आबिद हुसैन का भी काता हुआ था जिसने भी मुझे थोडा कातना सिखाया। ४ तारीख को मैंने तीसरी आंटी काती लेकिन कितने तार काते यह गिनना ही भूल गया। मेरा ख्याल है कि वह ११० बार होगा। ५-६-७ तारीख को मैंने ८० तार काता और फिर मुझे रामपुर माताजी को देखने के लिए जाना पडा। मुझे बडा अफसोस है कि जाने की गडबडी और जल्दी के सबब मेरा चरखा पीछे रह गया। मैंने लौट आने के बाद १५० बार और करीब फिर काता; लेकिन हिन्दू-मुसलमान समझौता-सा की बीमारी और खुद मेरे पैर की नजह से कि जिस पर एक फोडा (carbuncle) अभी अच्छा नहीं हुआ था कि दूसरा निकल आया है, मैं काम में बडा उलझा रहा। आखिर की आंटी में ४६२ बार सूत है यह चार दिन का काम है। मैं आपसे वादा करता हूं कि खुदा ने चाहा तो १५ सितम्बर तक सिर्फ २००० बार ही न कातूंगा बल्कि अगस्त की कमी को भी पूरा कर दूंगा। तब तक क्या आप काम के बजाय इच्छा को ही कबूल न कर लेंगे?"

जो हमेशा सफर में रहता है और बीमार रहता है उसके लिए यह बहुत है। लेकिन मैं यह जानता हूं कि अपने अनुयायियोंसे काम लेने की आशा रखने के पहले सभापति को खुद अपने काम में नियमित रहना चाहिए और उसपर खूब ध्यान देना चाहिए। अली-भाई सिर्फ कांग्रेस के ही प्रतिनिधि नहीं है वे मुसलमानों के भी प्रतिनिधि हैं। सब तरफ से यही पुकार आती है कि मुसलमान लोग महासभा के प्रस्तावों का जवाब ही नहीं देते। उनको उनके कर्तव्य के प्रति जाग्रत करने लिए बडे प्रयत्न की आवश्यकता है। कातने में यदि मुसलमान हिन्दुओं की बराबरी करने लगेंगे तो उसका असर हिन्दुओं पर भी होगा। तब विदेशी कपडे का बहिष्कार सफल होगा और प्रजा का आर्थिक कष्ट भी दूर हो जायगा। आर्थिक कष्ट के दूर हो जाने पर आत्म-विश्वास प्रकट होगा और आत्म-विश्वास से स्वराज्य अवश्य ही प्राप्त होगा।

नेटाल के भारतवासी

नेटाल में रहनेवाले भारतवासियों का म्युनिसिपालिटी के चुनाव में अपनी राय देने का अधिकार, एक हुक्म के द्वारा वहां की सरकार ने छीन लिया है। इसके विरोध में वहां के हिन्दुस्तानियों ने एक करुणाजनक अपील भेजी है। यह लडाई नई नहीं, ठेठ १८९४ ईसवी से चली आ रही है। पिछले समय हमेशा के लिए इस झगडे का फैसला हिन्दुस्तानियों के हक में हो गया था। तत्कालीन नेटाल-सरकार ने इस बात को कबूल किया था कि हिन्दुस्तानी करदाताओं के म्युनिसिपल मताधिकार का छीनना अत्यन्त अन्यायपूर्ण होगा। वहां के भारतवासियों ने राजनैतिक मताधिकार से बहुत वंचित रहना तो कबूल कर ही लिया था। परन्तु सरकारें जब किसी जाति या सम्प्रदाय को पददलित करना चाहती हैं तब कोई पिछले वचन या प्रतिज्ञायें उनके रास्ते में बाधक नहीं होतीं। दक्षिण-आफ्रिका के भारतवासियों के इतिहास में इसके अनेक उदाहरण हमने देखे हैं। मौका पडने ही उन्हें दिया गया प्राय: एक एक आश्वासन तोडा गया है। नेटाल स्थित हमारे देश-भाई इस हुक्म से बडे पशोपेश में पड गये हैं उन्होंने भारत से करुणात्मक अपील की है। पर वे शायद यह नहीं जानते हैं कि उन्हें सच्ची सहायता देने का सामर्थ्य हम नहीं है। हां, हमदर्दी तो हम है। और अखबारों में लेख भी उनके लिए लिखे जायेंगे। यह तो बनी बनाई बात है। पर मुझे अन्देशा है कि इससे अधिक सहायता उन्हें बहुत कम मिलेगी। यदि भारत-सरकार को इस बात पर कुछ शर्म आवे और वह कुछ सहायता करे तो भले हो। वह यदि इस सिर पर मंडरानेवाली छल-खसोट से बचाना चाहे तो अच्छी तरह बचा सकती है। मैं इसे 'सिर पर मंडरानेवाली' इसलिए कह रहा हूं कि इस हुक्म के लिए दक्षिण आफ्रिका की यूनियन के गवर्नर जनरल की मंजूरी दरकार होती है। पहले एक बार वे ऐसे हुक्म को नामंजूर कर चुके हैं। वे अगर अपने विशेष अधिकार का प्रयोग करें तो वे इस हुक्म के द्वारा भारत-वासियों के हुए इस अपमान को बचा सकते हैं। जब श्रीमती सरोजिनी नायडू दक्षिण आफ्रिका में अपना उज्ज्वल कार्य कर रही थीं तब जिन्होंने बडा मैं माना कि उनमें मैं हमारे भाइयों को बडी बडी आशायें बांधते हुए देखता था। परन्तु दक्षिण आफ्रिका के योरपियन जहां सभ्यता के साथ व्यवहार कर सकते हैं तहां वे अपने इरादों को पूरा करने का निश्चय भी रखते हैं—फिर भले ही वह सोलहों आना अन्यायपूर्ण हो—जैसा कि यह मामला है। जनरल स्मट्स की देख-रेख में उन्होंने मीठी मीठी बातें करके अन्याययुक्त कामों को कर ले जाने की कला सीख ली है। इसका आखिरी इलाज तो खुद हमारे देश-भाइयों के ही पास है।

आचार्य गिडवानी

यह कहा गया है कि नाभा जेल में आचार्य गिडवानीजी का वजन ३० पाउन्ड कम हो गया है और श्रीमती गिडवानीजी ने यह बार बार लिख कर पूछा कि मैं अपने पति से कब मिल सकूंगी फिर भी उनको कोई उत्तर नहीं मिला है। यह उदासीनता हृदय

हीन है। पत्रप्रकाशक कम से कम आचार्य गिडवानीजी के आरोग्य संबंधी प्रतिदिन बुलेटिन प्रकट कर सकते हैं और प्रजा को उनकी तन्दुरुस्ती से आगाह कर सकते हैं। श्रीमती गिडवानीजी को जितनी मरतबा वे चाहें अपने पति से क्यों नहीं मुलाकात करने दिया जाता, यह समझना भी बड़ा मुश्किल है। मेरा उनके साथ महानुभूति है। लेकिन मैं जानता हूं कि वे बहादुर पति की बहादुर पत्नी हैं। मैं सिर्फ उनको यही सलाह दे सकता हूं कि वे किसी बात की भी परवा न करें और यही ख्याल रखें कि मनुष्यों की बनाई किसी भी संस्था के बनिस्बत ईश्वर उनके पति की संभाल अधिक रख सकता है। उन्हें और हमें यह महसूस करना चाहिए कि सत्याग्रही और असहयोगी होने के कारण हम ऐसे ही बर्ताव की आशा रख सकते हैं जैसा कि बर्ताव उनके और उनके पति के साथ किया गया है। यदि आचार्य गिडवानी अपना धर्म-मन्तव्य बदल दें तो उन्हें आज रिहाई मिल सकती है। उन्हें सिर्फ नाभा की हद में पैर रखने के बहादुर मानवी कार्य के लिए माफी मांगनी पड़ेगी। बस वे छोड़ दिये जायेंगे। किन्तु वे ऐसा न करेंगे। सत्याग्रहियों का तो यह विश्वास है कि वे अपमानित स्वतंत्र जीवन के बजाय कैद ही को पसंद करते हैं। (न० इं०)

अंधा पार्लियामेन्ट

"यद्यपि यह बिलकुल सच है कि एक बंधन का स्वीकार कर लेने पर अनेक बंधनों से मुक्ति मिल जाती है, लेकिन हमेशा सब हालतों में यह ठीक ही है, यह कैसे कह सकते हैं? आपने अंग्रेजी पार्लियामेन्ट को तो अंधा कहा है लेकिन आप वैसा ही कुछ यहां भी लेना चाहते हैं। क्या स्वराज की पार्लियामेन्ट भी वैसी ही अन्धा साबित न होगी? क्या वह बजाय स्वतंत्रता के स्वच्छन्दता तो न सिखायेगी? आप अभी तो बहुमति के तरीके से काम लेने का बड़ा महत्व देते हैं। क्या यह संभव नहीं कि शायद इससे देश का कल्याण-लाभ न हो? एक सर्वोत्तम दयावान् त्यागी मनुष्य की दुहाई मान लेने से क्या प्रजा का कल्याण नहीं हो सकता? पार्लियामेन्ट का तरीका तो अपवादी है। विलायत में इसीकी आड़ में खूब कपट और दम्भ चल रहा है। आप यहां पर यदि इससे दूसरी आशा रखते हैं तो क्या आपकी यह आशा व्यर्थ नहीं?"

एक पत्रकार ने कुछ ऐसे ही उद्गार निकाले हैं। पार्लियामेन्ट तो सचमुच वन्ध्या ही होगी। मुझे यह भरोसा नहीं कि हिन्दुस्तान में उसका यह गुण बदला जा सकेगा। तो भी मैं इतनी आशा अवश्य रखता हूं कि अपनी पार्लियामेन्ट बन्ध्या ही रहेगी, वह कपूत तो न जनेगी। मैं व्यवहार को नहीं छोड़ सकता। राम का राज्य ही एक आदर्श है। लेकिन हम राम कहां से लावें? पत्रकार लिखते हैं "प्रजा जिसको माने।" किन्तु प्रजा क्या है? पार्लियामेन्ट की और हमारी दृष्टि से इसका यही अर्थ होता है कि यह पार्लियामेन्ट जिस शीलवान पुरुष या स्त्री को माने वही। प्रजा की आवाज प्रजा की ही होना चाहिए। वह आवाज किराये के मत देने वाले लोगों की न होना चाहिए। यही कारण है कि मैं [illegible] अलग मर्यादा रखने की सूचना करता हूं; यही कारण है कि मैं ऐसी युक्तियां ढूंढता हूं कि सब प्रजा की आवाज हम सुन सकें। जितनी पद्धति हैं--जितने तरीके हैं सभी सदोष हैं। आज तो हम उसी तरीके को ढूंढ रहे हैं जिससे कि हिन्दुस्तान को अधिक से अधिक लाभ मिल सकता है। अच्छे आदमी बुरी पद्धति को भी अच्छा बना लेते हैं, जैसे बुद्धिमान गृहिणी धूल में से भी नाज पैदा कर लेती है। दुष्ट आदमी अच्छी से अच्छी पद्धति का भी दुरुपयोग करते हैं, जैसे बुरी गृहिणी अच्छे से अच्छे अनाज को भी बुरा कर देती है। इसलिए मैं भारत में अच्छे आदमियों को ढूंढ रहा हूं। ऐसे आदमी बाहर निकल आवें, इसलिए नाना प्रकार की युक्तियां कर रहा हूं। लेकिन मनुष्य क्या कर सकता है? वह तो केवल शुभ प्रयत्न ही कर सकता है। उसका परिणाम-फल तो ईश्वर के अधीन है। परिणाम का परिपाक होना एक मनुष्य के नहीं किन्तु अनेक मनुष्यों के प्रयत्न पर आधार रखता है। उसमें अनेक प्रकार के संयोग आ जुटते हैं। इसलिए हमारे लिए तो एक पैर आगे बढ़ना ही बहुत है।

अन्तरात्मा की पुकार

पूर्वोक्त पत्र-लेखक ही कहते हैं कि "आजकल अन्तरात्मा की पुकार का भूत लोगों के सिर खूब सवार रहता है। पर कितने ही लोगों के अन्तःकरण इतने पापमय हो गये हैं कि उन्हें पाप ही पुण्य दिखाई देता है। कितने ही लोगों का अन्तःकरण तो औरों के दोष ही दोष देखता है। ऐसे अन्तःकरण की पुकार का क्या जवाब? आजकल के अखबारों को देखिए। तमाम संपादक लोग अपना अन्तरात्मा के अनुसार लिखते हैं; पर उनमें जहरीली टीका-टिप्पणी के सिवा कुछ नहीं दिखाई देता। आपने तो एक बार कहा भी है कि हर शख्स को लिखने का अधिकार नहीं है। पर आज तो ऐसा मालूम होता है कि सब लोग अधिकार ले बैठे हैं। इस पर आप कुछ क्यों नहीं लिखते?"

लेखक की ये बातें यथार्थ हैं; पर ये दोष अनिवार्य हैं। सच्चे के नाम पर यदि बनावटी लोग व्यापार करते हों तो क्या इससे सच्चे आदमियों को त्याग कर दें? अन्तरात्मा तो अभ्यास से जाग्रत होती है। वह मनुष्य-मात्र में स्वभावतः जाग्रत नहीं होती। इसके अभ्यास के लिए बहुत पवित्र वायुमण्डल की जरूरत रहती है, सतत प्रयत्न की जरूरत है। यह अत्यन्त नाजुक चीज है। बालकों के नजदीक अन्तरात्मा की पुकार जैसी कोई चीज नहीं होती। जो लोग जंगली माने जाते हैं उन्हें अन्तःकरण नहीं होता। अन्तःकरण क्या चीज है? परिपक्व बुद्धि के रास्ते हमारे अन्तर-पट पर पड़नेवाली प्रतिध्वनि। अतएव यदि हर शख्स अन्तरात्मा की पुकार का दावा करे तो वह हास्यजनक है।

ऐसा होते हुए भी यदि सब लोग उसका दावा करते हैं तो उससे परेशान होने की जरूरत नहीं। जो अधर्म अन्तरात्मा के नाम पर किया जाता है वह ज्यादह दिन नहीं टिक सकता। फिर वे लोग जो अन्तरात्मा की पुकार के बहाने काम करते हैं कष्ट-सहन करने के लिए तैयार नहीं होते। उनका रोजगार दो दिन चल कर बन्द हो जाता है। अतएव ऐसा दावा भले ही सैकड़ों लोग करते रहें उससे संसार की हानि न होगी। हां, जिन्होंने ऐसी सूक्ष्म वस्तु के साथ खिलवाड़ किया होगा उनके नाश की सम्भावना जरूर है, औरों की नहीं। अखबारों की मिसाल इसके लिए दी गई है। कितने ही अखबार आज लोकसेवा के नाम पर जहर ही जहर फैला रहे हैं। परन्तु यह रोजगार ज्यादा दिन नहीं नहीं चल पावेगा। लोग जरूर उससे ऊब उठेंगे। पजाब इस बात में महा अपराधी है? ताज्जुब की बात तो यह है कि ऐसे अखबार मुल्क चल पाते हैं। लोग उन्हें उत्साहित ही कैसे करते हैं? जब तक सेठ-साहूकार होंगे तबतक चोर भूखों नहीं मर सकते। वहां जबतक लोगों का एक हिस्सा जहरीले लेखों को पढ़ने के लिए तैयार है तबतक ऐसे अखबार जरूर चलेंगे। इसकी दवा है लोकमत को शुद्ध शिक्षा देना।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, भादों बदी १०, संवत् १९८१

बोल्शेविज्म या संयम ?

दो अमरीकन मित्रों ने मुझे बड़ा गंभीर पत्र लिखा है। उसमें वे कहते हैं कि धर्म के नाम पर मैं भारत में बहुत करके बोल्शेविज्म का प्रचार कर रहा हूं, जो कि उनकी राय में न तो ईश्वर को मानता है न नीति-सदाचार को और स्पष्टतः नास्तिक है। वे कहते हैं कि मुसलमानों की ओर आपकी मुलह नापाक मुलह है और दुनिया के लिए एक बला है; क्योंकि, वे कहते हैं, आज मुसलमान रूस के बोल्शेविकों की सहायता से पूर्व-दिशा में अपना आधिपत्य जमाने की धुन में हैं। इससे पहले भी मैंने अपने पर यह तुहमत लगते हुए देखी है। पर अब तक मैंने उसपर कोई तवज्जह नहीं की। पर अब तो जिम्मेवार विदेशी मित्रों ने शुद्ध भाव से यह इल्जाम लगाया है, इसलिए मेरी समझ में इस पर विचार करने का समय अब आ पहुंचा है। सब से पहले तो मैं यह इकबाल करता हूं कि मुझे पता नहीं, बोल्शेविज्म के मानी ही क्या हैं ? मैं इतना ही जानता हूं कि उस मामले में दो दल हैं-एक तो उसका बड़ा भद्दा और काला चित्र खींचा करता है और दूसरा उसे संसार की तमाम दलित-पतित और और पीड़ित जातियों के उद्धार के लिए कमर कसने वाला बताता है। अब मैं नहीं कह सकता किसकी बात पर विश्वास करना चाहिए मैं जो कुछ कह सकता हूं वह यह है कि मेरी हल-चल नास्तिक नहीं है। वह ईश्वर का इनकार नहीं करती। वह तो उसीके नाम पर शुरू की गई है और निरन्तर उसकी प्रार्थना करते हुए चल रही है। हां, वह जनता के हित के लिए जरूर शुरू की गई है; परन्तु वह जनता तक उसके हृदय के द्वारा, उसकी सत्-प्रवृत्ति के द्वारा ही पहुंचना चाहती है। यह हल-चल क्या है ? एक प्रकार की संयम-पालन की विधि है। और यही कारण है कि इसने कुछ मेरे अच्छे से अच्छे साथियों के दिल में निराशा भर दी है।

मुसलमानों से मेरी मित्रता पर मुझे फक्र है। इसलाम में ईश्वर को धता नहीं बताई गई है। वह तो एक सर्व सत्ताधारी परमेश्वर को मानता है। इस्लाम के बुरे से बुरे टीकाकार ने भी इस्लाम पर नास्तिकता का दोषारोपण नहीं किया है। ऐसी हालत में यदि बोल्शेविज्म अनीश्वर-वाद है तो इस्लाम की और उसकी बुनियाद में एकता नहीं हो सकती। उस अवस्था में वह दोनों मित्रों का नहीं बल्कि विरोधियों का आलिंगन होगा। मैंने अमेरिकन मित्रों के पत्र की भाषा का ही प्रयोग किया है पर मैं अपने अमेरिकन पाठकों को तथा औरों को सूचित करता हूं कि मैं किसी भ्रम के अधीन काम नहीं कर रहा हूं। मेरा दावा तो बहुत थोड़ा है। जो मित्रता है वह तो अली-भाइयों के और मेरे बीच है अर्थात् कुछ कीमती मुसल्मान मित्रों के और मेरे बीच है। हां, यदि मैं इसे मुसल्मानों और हिन्दुओं के—मेरे नहीं- बीच मित्रता कह सकूं तो क्या बात हो ! पर यह तो एक दिन का ख्वाब-सा मालूम हुआ। इसलिए वास्तव में तो यही कह सकते हैं कि यह कुछ मुसल्मानों के, जिनमें अली-भाई भी हैं, और कुछ हिन्दुओं के बीच जिनमें एक मैं भी हूं, मित्रता है। अब यह इसे कहांतक आगे ले जाती है, यह भविष्य ही कह सकता है। इस मित्रता में कोई बात गोलमोल नहीं है—अस्पष्ट नहीं है। यह तो संसार में सब से अधिक कुदरती चीज है। दुःख की बात तो यह है कि इसपर लोगों को ताज्जुब—नहीं, डर भी होता है। भारत के हिन्दू और मुसल्मान यहीं जन्मे और यहीं पर्वरिश हुए हैं। एक दूसरे के दुख-सुख, आशा-निराशा के साथी हैं। ऐसी हालत में इससे बढ़ कर कुदरती बात क्या हो सकती है कि दोनों परस्पर मित्र और भाई-एक ही भारत माता के पुत्र—बन कर रहें ? ताज्जुब तो इस बात पर होना चाहिए कि दोनों में झगड़े क्यों होते हैं, इस बात पर नहीं कि दोनों में एकता कैसे हो रही है। और यह दोनों का संयोग संसार के लिए एक संकट क्यों होना चाहिए ? दुनिया का सबसे बड़ा संकट तो आज वह साम्राज्य वाद है जो दिन पर दिन अपनी टांगें फैलाता जाता है, दुनिया को लूटता जाता है, जो किसीके नजदीक जिम्मेवार नहीं, और जो भारत को गुलाम बनाकर उसके द्वारा दुनिया की तमाम निर्बल जातियों के स्वतन्त्र अस्तित्व और विस्तार को नष्ट करने पर तुल रहा है। यह साम्राज्यवाद ही ईश्वर को धता बता रहा है। वह ईश्वर के नाम पर उसके आदेश के खिलाफ करतूतें करता है। वह अपनी अमानुषताओं, डायरशाही और ओडायरशाही को मानवता, न्याय और नेकी के आवरण में छिपा लेता है। और इसमें भी अत्यन्त दुःख की बात यह है कि अधिकांश अंगरेज लोग इस बात को नहीं जानते कि इसमें उनके ही नाम का दुरुपयोग किया जा रहा है। और इससे भी बढ़ कर करुणाजनक बात यह है कि सौम्य और ईश्वर-भीरु अंगरेज लोगों के दिल में यह जंचा दिया जाता है कि भारत में तो चैन की बंसी बज रही है—जब कि दर हकीकत वहां करुण-क्रन्दन हो रहा है, और आफ्रिकन जातियां भी आनन्द-मंगल कर रही हैं, हालांकि वाकई वे उनके नाम पर लूटे और गिराये जा रहे हैं। यदि जर्मनी की और योरप के मध्यवर्ती राज्यों की शिकस्त ने जर्मन-रूपी संकट का अन्त किया तो मित्र-राष्ट्रों की विजय ने एक नवीन संकट को जन्म दिया है जो कि संसार की शान्ति के लिए उससे कम खतरनाक और मारक नहीं है। इसलिए मैं चाहता हूं कि हिन्दुओं और मुसल्मानों की यह मित्रता एक स्थायी सत्य बात हो जाय और उसका आधार दोनों के उच्च हितों की परस्पर स्वीकृति हो। तब जाकर वह साम्राज्यवाद के लोहे को मानव-धर्म के सोने में बदल सकेगी। हिन्दू-मुस्लिम-मित्रता का हेतु है भारत के लिए और सारे संसार के लिए एक मंगलमय प्रसाद होना; क्योंकि उसकी कल्पना के मूल में शान्ति और सर्व-भूत-हित का समावेश किया गया है। उसने भारत में सत्य और अहिंसा को अनिवार्य-रूप से स्वराज्य प्राप्त करने का साधन स्वीकार किया है। उसका प्रतीक है चरखा—जो कि सादगी, स्वावलंबन, आत्म-संयम, स्वेच्छापूर्वक करोड़ों लोगों में सहयोग, का प्रतीक है। यदि ऐसी मैत्री संसार के लिए संकट रूप हो तो समझना चाहिए कि दुनिया में कोई ईश्वर ही नहीं, अथवा यदि है तो वह कहीं गहरी नींद में खुर्राटे ले रहा है।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

शक्ति का दुर्व्यय ?

गत मई मास के 'वेलफेअर' नामक अंगरेजी पत्र के एक लेख की ओर एक मित्र ने मेरा ध्यान खींचा है, जो कि श्री एम्. एन्. राय का लिखा हुआ है और जिसमें उन्होंने कोकनाडा की खादी-प्रदर्शिनी के उद्घाटन के अवसर पर की हुई आचार्य राय की वक्तृता की आलोचना की है। मेरे कागज-पत्रों में उस लेख की प्रति कोई दो महीनों से रक्खी हुई थी। खेद है कि मैं उसे अबतक न पढ़ पाया था। पढ़ चुकने के बाद ऐसा मालूम हुआ कि आचार्य राय के विचारों का श्री एम्. एन्. राय द्वारा किये गये खंडन का खण्डन मेरे लेखों में कई बार आ चुका है। पर पाठकों की स्मृति अल्पजीवी होती है, इसलिए अच्छा होगा कि फिर एक बार यहां मैं अपनी युक्तियों को सिलसिलेवार पेश कर दूं। आचार्य राय के ये आलोचक महाशय मानते हैं कि चरखे के लिए जो इतना उद्यम किया जा रहा है यह महज 'शक्ति का दुर्व्यय' है। आचार्य राय की दलीलों का मुख्यांश यह है कि चरखा खास कर किसानों के लिए अपना एक सन्देश रखता है और वह यह कि 'तुम मेरे द्वारा अपने फुरसत के वक्त का सदुपयोग कर सकते हो।' पर श्री राय का कहना है कि किसानों के पास फुरसत का वक्त होता ही नहीं। और जो कुछ फुरसत उन्हें रहती है उसकी उन्हें जरूरत भी है। यदि चार महीने फुरसत उन्हें रहती है तो इसकी वजह यह है कि वे आठ महीनों तक हद से ज्यादह काम करते हैं और अगर इन फुरसत के ४ महीनों में भी उन्हें चरखे पर काम करना पड़े, तो इस आठ महीनों में काम करने की उनकी कूवत हर साल कम होती जायगी। दूसरे शब्दों में कहें तो आलोचक महाशय की राय में भारत के पास चरखा कातने का समय नहीं है।

ऐसा जान पड़ता है कि राय महाशय को भारत के किसानों का तजरिबा बहुत ही कम है। और न वे इस बात का चित्र ही अपनी आंखों के सामने खड़ा कर पाये हैं कि चरखा किस तरह काम करेगा--नहीं, आज भी कर रहा है। किसानों को चरखे का गुलाम हो जाने की जरूरत नहीं है। बल्कि उसके जरिये कड़ी मिहनत के बाद किसानों को बड़ी तफरीह का मौका मिलता है। इससे उनका दिल खिल उठेगा। हां, भारत की महिलाओं का अलबत्ते यह स्थायी वस्तु के रूप में पेश किया गया है। वे जब जब मौका पड़ेगा चरखा कातेंगी। यदि अधिकांश मिहनत-मजदूरी अर्थात् शारीरिक श्रम करने वाले लोग औसतन् सिर्फ आधा घण्टा रोज चरखा कातें तो न केवल अपने लिए काफी सूत कात सकेंगे बल्कि औरों के लिए भी बचा सकेंगे यह शख्स कम से कम रु० १-११-० हर साल अधिक कमावेगा-जो कि फुरसत के वक्त की कमाई के खयाल से कम नहीं है। इस बात को सब लोग मानते हैं कि आज भारत में हाथ-करघे और जुलाहे तो इतनी तादाद में मौजूद हैं कि हमारी जरूरत का तमाम कपड़ा बुन सकते हैं। ऐसी हालत में सवाल सिर्फ सूत-कताई का ही रह जाता है। यदि किसान भाई इसे अपने हाथ में ले लें, तो बिना ही बहुतेरी पूंजी लगाये भारत के वस्त्र-स्वातन्त्र्य का सवाल बात की बात में हल हो सकता है। इसके मानी यह होंगे कि कम से कम ६० करोड़ रुपया उन करोड़ों सूतकारों, हजारों धुनियाओं, और जुलाहों के अन्दर आता-जाता रहेगा, जो कि अपनी झोंपड़ी में बैठे बैठे काम करेंगे और उसी हद तक किसानों की आमदनी बढ़ाने की क्षमता भी बढ़ेगी।

तमाम दुनिया का यह तजरिबा है कि किसानों के लिए एक ऐसे धन्धे की जरूरत रहती है जिससे वह फुरसत के समय में कुछ कमाई कर सके—अपनी आमदनी बढ़ा सके। इस मौके पर यह बात हरगिज न भूल जाना चाहिए कि बहुत दिनों की बात नहीं है, भारतवर्ष की महिलायें उनके कपड़े के लिए फुरसत के वक्त में चरखा कात कात कर सूत देती थीं। और चरखे के इस जीर्णोद्धार ने तो इस बात की सत्यता को बड़ी अच्छी तरह प्रदर्शित कर दिया है। यह ख्याल करना गलत है कि चरखे की हल-चल असफल हुई। हां, कार्यकर्ता अलबत्ते कुछ अंशों में काम न कर पाये हैं। लेकिन जहां कहीं उन्होंने दिल लगा कर काम किया है वहां बराबर चरखे का काम चल रहा है। हां, यह बात सच है कि अभी उसकी जड़ नहीं जम पाई है। इसका कारण है व्यवस्था और संगठन की अपूर्णता। एक कारण यह भी है कि सूतकारों को अभी यह यकीन नहीं हो पाया है कि हमें काम निरंतर मिलता रहेगा। मैं श्री. राय को आवाहन करता हूं कि वे पंजाब, कर्नाटक, आन्ध्र और तामिल नाड के कुछ हिस्सों का अवलोकन और मनन करें और वे खुद देख लेंगे कि चरखे में कितनी करामात है।

भारतवर्ष को अकालों की भूमि ही समझिए। उनमें हमारे भाई-बहनों के लिए कौन-सी बात अच्छी है? सड़कों पर गिट्टी फोड़ना या रुई धुनकना और सूत कातना? लगातार अकालों से पीड़ित रहने के कारण उड़ीसा की प्रजा भिखमंगे होने की हद तक पहुंच गई है। यहां तक कि अब उनसे काम लेना भी मुश्किल हो गया है। वे धीरे धीरे मौत के मुंह में जा रहे हैं। उनके लिए अगर कोई जिन्दगी की आशा है तो वह है यह चरखा।

श्री राय सुधरे हुए तरीकों से खेती करने पर जोर देते हैं। हां, इसकी जरूरत है पर चरखे की तजवीज कृषि-सुधार के साधनों की जगह नहीं की जा रही है बल्कि उलटे यह तो उसका अग्रगामी अंग है। इस सुधार के रास्ते में भारी भारी कठिनाइयां हैं। हमें सरकार की अनिच्छा से पार पाना होगा, पूंजी का अभाव और तीसरे नई तरीकों को अपनाने से किसानों का दृढ़ता के साथ इनकार करना। परन्तु चरखा-कताई के निस्बत इतनी बातों का दावा किया जाता है—

(१) यह उन लोगों को एक तैयार काम देता है, जिन्हें फुरसत रहती है और दो पैसे ज्यादा कमाने की जरूरत रहती है;

(२) हजारों लोग इससे वाकिफ हैं;

(३) इसे आसानी से सीख सकते हैं;

(४) इसके लिए पूंजी की वस्तुतः बिल्कुल जरूरत नहीं;

(५) चरखा आसानी से बहुत कम दाम में बन सकता है। बहुतेरे लोग यह भी नहीं जानते कि तकली या फिरकी पर भी सूत काता जा सकता है;

(६) लोग उसे हिकारत की निगाह से नहीं देखते,

(७) अकालों और महंगी के दिनों में तुरन्त संकट निवारण का सबसे अच्छा साधन है;

(८) विलायती कपड़े की खरीदी के रूप में हिन्दुस्तान के बाहर जाने वाले धन-प्रवाह बन्द करने का सामर्थ्य अकेले चरखे में ही है,

(९) इस तरह बची हुई रकम को वह करोड़ों गरीबों के घर पहुंचा देता है;

(१०) थोड़ी-सी सफलता भी उस हद तक लोगों को तुरन्त फायदा पहुंचाती है; और

(११) लोगों के अन्दर सहयोग उत्पन्न करने और फैलाने का सब से अधिक समर्थ साधन है।

इसके रास्ते में जो कठिनाइयां हैं वे ये हैं-(१) मध्यम वर्ग के लोगों के मन में इसके प्रति श्रद्धा का अभाव और

मध्यम श्रेणी के ही लोगों में अच्छी तादाद में कातनेवाले मिल सकते हैं [illegible] क्योंकि दिखाई देनेवाले विदेशी कपड़ों के बजाय खादी पहनने का और लोगों की [illegible] यह और भी बड़ी कठिनाई है। (३) इस [illegible] अवस्था में खादी की महंगी एक और कठिनाई है। यदि कातनेवालों के समाज को लोग अच्छी तादाद में पालना हो तो शायद मिल के कपड़े का मुकाबला कर सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस हलचल की सफलता के लिए लोगों को कुछ त्याग करने की जरूरत है। यदि सरकार हमारी अपनी होती, जो [illegible] की जरूरतों का ख्याल रखती और विदेशियों के मुकाबले में उनकी रक्षा करने का निश्चय रखती तो हमें इस प्रत्यक्ष त्याग की [illegible] जरूरत न होती। पर राष्ट्रीय सरकार के अभाव में वही काम जो राष्ट्रीय सरकार कर सकती है, मध्यम-वर्ग के लोगों के कुछ समय के लिए [illegible] त्याग करने से हो सकता है।

और शक्ति के दुर्व्यय का तो सवाल ही नहीं है। आचार्य राय पहले गरीब बहनों को मुफ्त में अन्न बांटा करते थे। अब वे चरखे के रूप में उन्हें एक प्रतिष्ठित पेशा देकर कुछ अंशों में या सर्वांश में स्वावलंबी बना रहे हैं। क्या यह शक्ति का दुर्व्यय है? भीख मांगने या भूखों मरने के अलावा उनके पास दूसरा कोई काम करने को न था। क्या नवयुवकों का गांवों में जाना, उनकी जरूरतें मालूम करना, उनके दुःख में दुःखी होना और उन्हें सहायता करना, शक्ति का अपव्यय है? क्या हमारे हैसियतदार नवयुवकों और युवतियों का करोड़ों अध-पेट रहनेवाले दरिद्र लोगों का ख्याल करते रहना और [illegible]-पर्यन्त उनके लिए आधा घण्टा चरखा कातना शक्ति की फजूल खर्ची है? जब कि कुछ काम न हो, किसी पुरुष या स्त्री का चरखा कातकर कुछ पैसे कमाना उतना ही फायदा है। इसी प्रकार त्याग के भाव से किसीका चरखा कातना भी उतना ही फायदा है। अगर कोई ऐसी हल-चल है जिसमें हर तरह लाभ ही लाभ है, हानि कुछ नहीं तो वह चरखा-कताई है।

(य० इ०) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

जानबूझ कर किया गया अपमान

यदि मुरादाबाद के जिला मजिस्ट्रेट की विज्ञप्ति पर विश्वास किया जा सके तो उसमें जो समाचार प्रकाशित हुए हैं वे बड़े दिल दहलाने वाले और बेचैनी पैदा करने वाले हैं। कहा जाता है कि दो मन्दिर अपवित्र किये गये हैं और वहां एकत्रित हिन्दुओं पर हमला किया गया था। इस प्रकार जानबूझ कर मन्दिरों को अपवित्र करने का कोई कारण नहीं बताया जाता। [illegible] जिला लखनऊ में भी, कहा जाता है कि, ऐसा ही हुआ है। कहा जाता है [illegible] मजिस्ट्रेट के हुक्म के खिलाफ, हिन्दुओं ने बाजा बजाया। यदि उन्होंने ऐसा किया तो यह काम मजिस्ट्रेट का था कि वह उन [illegible] बजानेवालों को सजा देता; किन्तु मुसलमानों का यह काम वाजिब न था कि वे एक बड़ी तादाद में मन्दिर में घुस जाते और [illegible] करते और उसे अपवित्र कर देते। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसे [illegible] को मदद करनेवाली कोई संगठित जमात है। यह जमात [illegible] लोगों की है जो हिन्दू-मुसलमानों में मनमुटाव पैदा करते हैं [illegible]र हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य में जानबूझ कर रोड़े डालते हैं। समझ नहीं आता कि ऐसे काम करने से इन लोगों को क्या हासिल [illegible]। इससे इस्लाम की इज्जत नहीं बढ़ सकती और न [illegible] हो सकता। यदि किसी दुनियावी लाभ पाने के लिए ऐसे [illegible] किये जाते हैं तो वह भी नहीं मिल सकता। यदि वे ऐसे [illegible] से सरकार की मिहरबानी की आशा रखते हों तो उनका भ्रम थोड़े ही दिनों में दूर हो जायगा। (य० इ०)

रास्ते में बातचीत

[देहली जाते हुए गांधीजी से रेल में हुई युक्तप्रान्त के एक सज्जन की बातचीत का वर्णन श्री महादेव हरिभाई देसाई ने 'नवजीवन' में इस प्रकार किया है — उप सम्पादक]

आजकल गांधीजी दलीलें बहुत कम करते हैं, बातें भी कम करते हैं। परन्तु युक्तप्रान्त के एक सज्जन उनसे बात करने के ही लिए उनके साथ जा रहे थे। गांधीजी सारा दिन लिखते रहे। उससे छुट्टी पाते ही बातचीत शुरू हुई। उक्त सज्जन ने पूछा कि बताइए, अब मुझे क्या करना चाहिए? वे विद्वान हैं और उर्दू में अच्छी रचना कर सकते हैं, फिर भी गांधीजी ने उनसे कहा— "यह कातने का यज्ञ हो रहा है। इसमें आपसे जितनी मदद हो सके, कीजिए। जिस विधि से आपका गांवका पड़े उससे आप देशके प्रोत्साहन अर्थ दिलाइए। बस, इतना करेंगे तो समझिए आप अपना काम कर चुके।"

ये सज्जन अपनी कठिनाइयां बताते हुए अपनी मनोदशा का भी वर्णन करने लगे— "आपका काम अद्भुत है। एक जमाना था कि हम राजनीति को महज राजनीति मानते थे, हिंसा और कुटिल-नीति में हमें कुछ बुराई नहीं दिखाई देती थी। पर आपने इस हलचल का धार्मिक स्वरूप हमें समझाया; जेल में इस बात पर ठीक ठीक विचार करके हम निश्चय पर आये कि यही नीति ठीक है। अब आप कहते हैं कि कातने के प्रभाव का हेतु सविनय भंग भी अवश्य है। अर्थात् फिर धार्मिक भूमि से आप हमें राजनैतिक भूमि पर उतरने की प्रेरणा करते हैं। आपके लिए तो यह सब सहज है। पर आपके एक शब्द-मात्र से हमारे दिमाग का कांटा लाखों चक्कर खा जाता है? × × × आप कहना क्या करना चाहते हैं। आपकी तमाम कोशिशें इसी दिशा में हो रही हैं। आपके तमाम लेखों से यही ध्वनि निकलती है। पर यह कटुता दूर कैसे होगी?"

गांधीजी—"विरोधियों के हमलों का जवाब न देने से।"

"पर काम तो अलग अलग करना पड़ेगा है न? और जुदे जुदे काम करने से कटुता आ ही जाती है।"

गां०—"मैं यही दिखाना चाहता हूं कि नहीं आ सकती।"

"आप असहयोग को जीवन का एक सिद्धान्त मानते हैं या संग्राम की एक विधि?"

गां०—"दोनों।"

"यदि इसे संग्राम की एक विधि भी मानते हों तो फिर हम इस विधि को बदल क्यों न दें? इसे बदलने में सिद्धान्त का त्याग तो होता ही नहीं। हम तमाम बहिष्कारों को छोड़ दें तो क्या बुराई?"

गां०—"यदि बहिष्कारों को छोड़ दें तो सविनय भंग का उत्साह हमें नहीं मिल सकता। जहां बहिष्कार छोड़ा नहीं कि सविनय भंग से ऐतबार उठा नहीं। मैं तो कह चुका हूं कि कार्यकर्ताओं का विश्वास अहिंसा पर से भी उठ गया है और जहां अहिंसा से विश्वास गया कि फिर सविनय भंग की बात ही नहीं रह सकती। इसलिए ऐसे लोग जो बहिष्कार को मानते हों, चरखे पर विश्वास रखते हों अर्थात् उसमें धार्मिक श्रद्धा रखते हों, जितने मिल सकें उनको जुटाना चाहता हूं—तभी सविनय भंग का वायुमण्डल पैदा हो सकता है।"

"हां, यह तो ठीक; पर आप तो शक्ति के बाहर लोगों से काम चाहते हैं—जितनी उनकी शक्ति हो उतना ही उनसे काम लीजिए न?"

गां०—"हां, मै ज्यादह कहां चाहता हूं ? पर इसका मतलब यह तो नहीं न कि सिद्धांत को छोड दें ?"

"तो फिर कटुता किस तरह दूर होगी ?"

गां०—"मैं तो काम करने के क्षेत्रों को बदल रहा हूं। आज कुछ और क्षेत्र है, कल कुछ और था। जितने काम करने वाले मिलें उनके साथ आगे कदम बढाते रहे और ऐसा करते हुए ही कडुवापन अपने आप दूर हो जायगा।

पर मै तो बहिष्कार छोडने पर भी रजामंदी जाहिर कर चुका हूं।"

"कब ?"

गां०—"जब एक कार्यक्रम के संबंध में लिखा था तभी। उसकी शर्त सिर्फ इतनी ही है कि सब को—हरएक दल का, राजा, महाराजा को भी—पसंद है .

"तो क्या लार्ड-रीडिंग भी खादी पहनना मंजूर करें ?"

गां०—"हां, उन्हे भी एक दिन मंजूर करना पडेगा। उसके बिना कहीं काम चल सकता है ?"

"पर आप तो सिर्फ लेख लिख कर बैठ रहे। आगे कुछ कोशिश नहीं की। आप और पं० मोतीलालजी मिलकर देश से ऐसी अपील करें तो कैसा हो ?

गां०—"हां, पर ऐसी अपील के करने न करने के बारे मे अभी मुझे पशोपेश है। मै समझता हूं कि स्वराज्यवादी चरखे पर धार्मिक भाव से विश्वास नहीं रखते।"

"वे उसकी आर्थिक उपयोगिता के बराबर कायल हैं।"

गां०—"आर्थिक कारणों से भी यदि वे उसे अमोघ साधन मानते हो तो ठीक, पर ऐसा नही है। मै तो देश मे Heart-Conviction—अन्तःकरण का निश्चय—चाहता हूं। यदि वह न हो तो 'एक कार्यक्रम' किसी काम का नहीं।"

"यदि उन्हे ऐसा निश्चय न हुआ हो तो उसका कारण वही है जो मैं कह रहा हूं—कटुता। यदि यह मनमुटाव निर्मूल हो जाय तो यह अटल निश्चय भी हो सकता है कि चरखा और खादी ही रामबाण इलाज है।"

गां०—"बिल्कुल नहीं। क्या नरमदलवालों के साथ मेरी अनबन है ? अपरिवर्तनवादियों के साथ उनका कोई वैमनस्य है ? बिल्कुल नहीं। फिर भी वे इस कार्यक्रम में शरीक नहीं हो सकते। सच बात यह है कि श्री. शास्त्रीजी चरखे का आर्थिक साधन मुतलक नहीं मानते। मौलाना हसरत मोहानी तो उसे एक 'फजूल बात' समझते है और श्री. चिन्तामणि जैसे तो उसे हानिकारक भी मानते है ! उसी तरह स्वराज्यवादी चरखे को आवश्यक साधन नहीं मानते। उनका रास्ता ही जुदा है। हां, उनके लिए जगह है। मै उनका आदर करता हूं। कटुता के कारण वे उस चीज का त्याग नहीं कर सकते जिसे वे देश के लिए हितकारी मानते है। आप उनके साथ अन्याय करते है। मुझे तो इनके अन्दर विचारों की प्रामाणिकता दिखाई देती है, जो आपको नही दिखाई देती।

मैं ऐसा काम चाहता हूं जैसा डाक्टर राय कर रहे हैं। क्या स्वराज या नरम दलवाले इस श्रद्धा के साथ खादी का काम करेंगे ?"

"वाह ! आप डा० राय के जैसा काम चाहते है ! पर यदि डाक्टर राय की तरह सारे देश की चित्तवृत्ति हो जाय तो सविनय भंग किसी तरह नहीं हो सकता।"

गां०—"जबतक ऐसे कार्य के फल-स्वरूप सविनय भंग पैदा न होगा तबतक वह, मुझे यकीन है, कि स्वराज्य हासिल करने के लिए बेकार होगा।"

"पर आप तो बहुत जल्दी मचाते हैं।"

गां०—"मै ना जिसे जितना समय चाहता है उतना देता हूं और जो जितना मुझे देता है उतना लेता हूं। मै तो उतने ही सिपाहियों से अपना काम चला लूंगा जितने मुझे मिल जायगे गुजरात मे ६७२ लोगों ने सूत काता है। उनसे मै बहुत काम ले सकता हूं।"

"अजी, ये ६७२ क्या काम करेंगे ?"

गां०—"नहीं, बहुत काम कर सकते है। इन भाई-बहनों ने जो सूत कात कर भेजा है उससे मुझे विश्वास होता है कि वे जैसा कहते है वैसा ही करते है।"

"अजी कर चुके जैसा कहते हैं वैसा ! बहुतेरे लोग तो इसीलिए करते है कि गांधीजी का कहना है। मै इन ६७२ के बारे मे नहीं कहता। परन्तु आप ऐसा क्यों मान लेते हैं कि ऐसे सभी लोग सच्चे होते है। संभव है इसमें बहुतेरे लोग लुंगे-लफंगे हों। उनसे आप क्या काम लेंगे ?"

गां०—"होते रहें। पर मै नहीं मानता। अगर होंगे भी तो उनकी बदमाशी भी इसी रास्ते निकल जायगी।"

"अजी महात्माजी, मै जानता हूं, ऐसे भी हमारे भाई हैं जो पांच पांच बार नमाज पढते है फिर भी बदमाशी नहीं छोडते। तो फिर एक घण्टा सूत कातने से बदमाशी क्या मिटेगी ?"

गां०—"आपने नमाज की मिसाल न पेश की होती तो अच्छा था। पर जब आपने पेश कर ही दी है तो मै उत्तर देता हूं। मुमकिन है अब नमाज में सामर्थ्य न रह गया हो; क्योंकि लोग झूठ-मूठ नमाज पढते होंगे। पर आप इस झूठ-मूठ के लिए पढे जानेवाले नमाज से क्यों मुकाबला करते है ? १३०० साल पहले जब नमाज शुरू हुआ तब उसका असर कितना जादू-सा हुआ होगा, इसका ख्याल कीजिए। यही बात कातने के संबंध में समझिए। जब घर घर चरखा काता जाता था तब उसका कुछ भी धार्मिक अर्थ न रहा होगा। पर आज तो वे लोग एक घण्टा सूत कातने का संकल्प कर रहे हैं जिन्होंने कभी चरखा न काता था। क्या उन्हें धीरज, खामोशी और शान्ति की तालीम नहीं मिलती ? मैं मानता हूं कि आज जो लोग देश के लिए कातने का संकल्प करते है वे शुद्ध धार्मिक श्रद्धा हीसे ऐसा करते है।"

"पर आपके ६७२ में कितनी ही औरतें होंगी, कितने ही ऐसे लोग होंगे जिनका महासभा के काम से कुछ भी ताल्लुक न होगा। ये औरतें सविनय-भंग के लिए क्या काम करेंगी ?"

गां०—"हां, जरूर; खूब काम देंगी। जब मर्द बेकाम हो जायंगे तब उन्हींसे काम लेने की आशा मै रखता हूं।"

"तब तो बदमाशों को भी सूतकताई के द्वारा सुधारने की आशा आप रखते हैं ?"

गां०—"जरूर; पर जो बदमाश होंगे वे कातेंगे ही नहीं। और मैं तो आपके दो कदम आगे बढकर कहूंगा कि चाहे बदमाश हो, शराबी हो, व्यभिचारी हो, एक महीना दिल लगा कर कातने से जरूर उसकी बुराई कम हो जायगी, हालां कि मुझे निश्चय है कि इन ६७२ में ऐसा कोई नहीं है।"

"अच्छा, तो फिर मै भेंडी बाजार (बंबई) से ऐसे कातने वाले इकट्ठे कर दूं ? क्या उनकी जिंदगी का सुधार होगा और क्या वे सविनय भंग के काम आने लगें !"

गां०—"हां, लाइए, मै आपसे इकरार करता हूं कि आप उनसे सूत कताइए और मै उन्हें दुरुस्त कर दूंगा।"

"हां, मै कहता हूं कि बंबई की मुसहल्ली टाली में घूमकर मै तीन महीना उनसे सूत कतवा दूंगा।"

गां०—"अच्छा करा दीजिए, और मैं उन्हें सुनहली टोली से छुड़वा दूंगा।"

"अच्छा तो फिर दिलाइए रुपया, मैं काम शुरू करता हूं।"

गां०—"रुपये किसलिए? जिनसे आप कताना चाहते हों उनसे जाकर कहिए कि भीख मांग कर रुई ले आवें, चरखा खोज लावें, धुनकना सीख लें, रुई धुनके, कातना जान लें और कातें। आप बंबई के गुर्गों से इतना कराइए, और फिर मुझसे कहिए कि "लाइए स्वराज्य।"

"वाह, महात्माजी! आप तो सब तरह से बांध लेते हैं। उन बेचारों से इतना सब किस तरह कराया जा सकता है। वे तो सिर्फ कात सकते हैं।"

गां०—"'कात सकने' नहीं, उमंग के साथ कातने वाले होने चाहिए—वे लोग जिन्हें इसका रंग लग जाय और जो इसके लिए आवश्यक परिश्रम करने को तैयार हों।"

"आपके ये ६७२ ऐसे होंगे? क्या ये सब खुद धुनक भी लेते हैं? शायद ही।"

गां०—"हां, मैं मानता हूं कि बहुत से लोग धुनक लेते होंगे। पर ऐसा न भी हो तो मैं उन्हें रुई आदि तो नहीं देता हूं।"

"हां, पर ये लोग निर्मल किस तरह हो जायगे, यह बात मैं समझ नहीं सकता।"

गां०—"भाई, मैं तो अनुभव से कहता हू कि जो लोग इस काम को नियमित-रूप से करने लगेंगे वे यदि स्वच्छ न होंगे तो होने लग जायंगे। मेरे लिए तो इतना काम बस है। मुझे ६०० नहीं पर यदि ६० ही सच्चे आदमी मिले तो मैं उनसे ६० हजार दूसरे पैदा करा लूंगा।"

"कितने वक्त में?"

गां०—"ईश्वर को पता। जबतक सब लोग मर न मिटेंगे तबतक। आज तो मैं इतनी मीयाद दे सकता हू। आप हसते हैं; पर सचमुच मुझे इस बात की परवा नही है कि संसार कहेगा गांधी ने तो सौ साल का कार्यक्रम दिया।"

"ये सब बातें साफ होना चाहिए। यदि ऐसा हो तो फिर स्वराजियों को महासभा सौंप देने में क्या हर्ज है?"

गां०—"कुछ भी नहीं। मै सिर्फ इतना ही चाहता हू कि स्वराजियों को दिक्कत न हो। आज अगर मैं महासभा का भार उनपर डालू तो शायद उन्हें यह खयाल हो कि ऐसा करते हुए भी मै अपने को महत्व देता हू। अबतक मैं महासभा में हू तबतक वे निर्भय हैं। मेरे एकाएक निकल जाने में शायद उन्हें तकब्बुरी भी मालूम हो और इससे उनको उलझन तो जरूर होगी। पर ऐसा करना अच्छा होगा कि जब वे चाहें तब मैं महासभा से निकल जाऊ और बाहर रहकर उन्हे मदद पहुचाऊ। मौ० शौकतअली ने मुझसे पूछा कि इससे देश को आघात न पहुचेगा? मैंने कहा—पहुंचता रहे। देश को यदि मेरे बारे में कुछ भय होगा तो वह दूर हो जाय यही अच्छा है।

स्वराजी प्रामाणिक हैं। वे धारासभा के द्वारा ही काम करना चाहते हैं। मै समझता हूं कि धारासभा के द्वारा स्वराज्य युग-युगान्तर में भी नहीं मिल सकता और यदि मिले भी तो वह किसी काम का न होगा। फिर भी उन्हें कोशिश करने देना ही ठीक है। यदि मै अपने कार्यक्रम के द्वारा शुद्ध स्वराज्य ला सकू तो वे जरूर इस बात को कुबूल करेंगे कि हा, "हमारा कार्यक्रम ठीक न था"

मै यदि उन्हें कठिनाइयों में डाल दूं तो उनकी शक्ति कम हो जायगी। जो काम वे आज कर रहे हैं मै चाहता हूं कि उसमें भी वे अपनी शक्ति का पूरा पूरा परिचय दें। यदि अपरिवर्तनवादी मुझे ऐसा काम करने की सलाह दें कि जिससे उनके काम में जरा भी धक्का पहुंचे तो मैं उसे हरगिज न करूंगा। मै रोम रोम में सत्याग्रही हूं। महासभा से बाहर निकल कर भी उन्हें मदद करूंगा। मैं तो सत्याग्रह का जादू बताना चाहता हू। मै जिस तरह अपने परिवार में व्यवहार करता हूं उसी तरह यहां भी कर रहा हू। एक समय ऐसा आवेगा कि जब उन सबको यह यकीन हो जायगा कि यह आदमी निर्मल है, इसमें तकब्बुरी नही, धोखा-धड़ी नहीं। आज तो मैं ऐसी स्थिति उत्पन्न करना चाहता हू कि वे जानें बस, अब इससे अधिक आशा गांधी से नहीं रख सकते।"

अबतक आया सूत

अखिल भारत खादी-मण्डल के मंत्री ने २१ अगस्त तक के आये हुए सूत का ब्योरा इस प्रकार भेजा है -

प्रान्त का नाम	प्रतिनिधियों के नाम	सूत भेजने-वाले प्रति०	अ-सदस्य जिन्होंने सूत भेजा है
१ आन्ध्र	११६४	२९७	१०१
२ आसाम	१०४	४	...
३ अजमेर	३७	६	९
४ बंबई	२२५	८५	१७
५ ब्रह्मदेश	३६	१	१
६ बिहार	१०७४	१५७	२८
७ बंगाल	१०६६	३५५	४२
८ बरार	...	...	
९ मध्यप्रान्त (मराठी)	९४०	४३	२३
१० मध्यप्रान्त (हिन्दी)	१३२२	५९	६
११ देहली	...	४	...
१२ गुजरात	४०८	१८९	५०२
१३ करनाटक	...	२	...
१४ केरल	५२	१	...
१५ महाराष्ट्र	६७४	४६	...
१६ पंजाब	१५९	१४	...
१७ सिंध	२३८	३५	३
१८ तामिलनाड	...	६५	...
१९ युक्तप्रांत	९४२	११४	२०
२० उत्कल	४१२	२४	५
जोड़	८९४३	१५०१	७५७

इसमे बहुतेरी जगहों के अंक अधूरे हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तों की ओर से जो ब्योरा मिला है उसके अनुसार ये तैयार किये गये हैं। बहुतेरी सूत की पार्सलें अभी जल्द ही आनेवाली हैं। बरार, देहली, आसाम और करनाटक से सूत अभी तक नहीं आ पाया है। तामिल नाड, बरार, देहली और करनाटक ने अभीतक अपने रजिस्टर भी नहीं भेजे हैं।

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल्वे से।

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)॥
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

गुलबर्गा का पागलपन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ३

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, भादों सुदी १, संवत् १९८१ रविवार, ३१ अगस्त, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

लार्ड लिटन का [illegible]मा

लार्ड लिटन ने [illegible]र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाम एक पत्र लिख कर अपनी स[illegible]ी है। उनके खुलासे से मेरी राय में उनके द्वारा किया [illegible]तीय स्त्री जाति का अपमान घटता नहीं उल्टा बढ़ जाता है। [illegible] साहब ने जो व्याकरण के सूक्ष्म भेदों की दुहाई दी है, उससे मेरी समझ में यह मामला तय नहीं होता। मुझे यकीन है कि जब लाट साहब ने ये गंदे उद्गार प्रकट किये तब किसीको भी यह खयाल तक न हुआ था कि लाट सा० का कथन हिन्दुस्तान की स्त्रियों के संबंध में आम तौर पर था। पर लोगों की शिकायत तो यह है कि लाट सा० को यह तुहमत लगाने की जरूरत ही क्या पड़ी थी? जब कोई जिम्मेदार आदमी किसी पर कोई दोषारोपण करता है तब उसके संबंध में हमेशा दो अनुमान होते हैं—एक तो यह कि खुद उसे उन बातों का पूरा यकीन होचुका है और दूसरे वह दुनिया के सामने उसे साबित कर सकता है। दूसरा यह कि जिस बुराई के संबंध में वह इल्जाम लगाया जाता है वह सर्व-सामान्य हो गई है। अच्छा तो अब पुलिस के सबूत के अलावा जनाब लाट सा० के पास कोई ऐसे सबूत हैं जिससे वे सर्व-साधारण को अपनी बात का यकीन करा सकते हैं? और सर्व-साधारण को न सही, कविवर कोही सही। क्या वे इस बात को नहीं जानते कि सर्व-साधारण का मुतलक विश्वास पुलिस पर नहीं रह गया है? क्या वे यह नहीं जानते हैं कि जहांतक सर्व-साधारण से ताल्लुक है पुलिस को आम तौर पर अपनी मुखबिरदोषी साबित करना लाजिमी है? खैर: अच्छा, जरा देर के लिए यह भी मान लें कि यह तुहमत कुछ मर्दों और कुछ औरतों के निस्बत सच है, तो क्या वे यह साबित कर सकते हैं कि यह बुराई इतनी सर्व-व्यापक हो गई है कि जिसके लिए उन्हें जन-साधारण के सामने उसकी निन्दा करने की जरूरत हुई? यदि कोई जिम्मेदार हिन्दुस्तानी यह कहे कि अंग्रेज सिविलियन लोग चरित्र हीनता और अनीतिमत्ता के अपराधी हैं क्योंकि उसने ऐसे इक्के-दुक्के सिविलियनों को देखा है, तो क्या उसका यह कहना न्याय-युक्त होगा? और अगर कोई ऐसा कहेगा तो क्या लाट साहब तपाक के साथ उठकर उसे भली-बुरी न सुनावेंगे और अदालत में घसीट कर उससे इस बात पर माफी न मंगवायेंगे कि जो बुराई केवल कुछ लोगों पर घटती है उसे उसने एक सारे समाज पर लाद दिया। ऐसी अवस्था में क्या वह मुलजिम 'कुछ' शब्द की ओट में अपनी सफाई दे सकेगा? यदि लार्ड लिटन के कहने का अभिप्राय सिर्फ इतना ही होता है कि हिन्दुस्तानी जन-समाज में कुछ पतित औरतें भी हैं, जैसे कि तमाम राष्ट्रों में होती हैं, तब फिर उनकी शिकायत के लिए जगह ही कहां रह जाती है? फिर भी ऐसे भाषण में जो कि गंभीरता से पूर्ण था और वे जानते थे कि इसके एक एक शब्द यहां बड़े ध्यान से पढ़ा जायगा और विदेशों में भी उसका काफी वजन माना जायगा। अतएव मैं अदब के साथ यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि उनका उद्देश यह न रहा हो कि भारतीय स्त्रियों और पुरुषों पर छींटे उड़ाये जायं, तो उनको बिला खटखशा इस तुहमत के लिए माफी मांग लेना चाहिए। ऐसा करके वे अपनी प्रतिष्ठा और गौरव की वृद्धि ही करेंगे। इसके खिलाफ अगर उनके पास वैसे सबूत हों जैसे कि मैंने सुझाये हैं तो उन्हें हिम्मत के साथ अपने इल्जाम की पुष्टि करनी चाहिए। और जन-साधारण के सामने वे सबूत उपस्थित कर देने चाहिए। लचर खुलासा कोई खुलासा नहीं होता। यह तो मानों जले पर नमक छिड़कना है।

ध्यान दीजिए

अ. भा. खादी-मण्डल के मन्त्री ने सूत भेजनेवालों की हिदायत के लिए नीचे लिखी सूचनायें भेजी हैं—

"(१) बहुतेरे सूत भेजने वाले सदस्यों ने अपना रजिस्टर नंबर नहीं लिखा है। इसका कारण शायद यह हो कि प्रान्तीय खादी-मण्डलों ने अपने अपने सदस्यों को उनके रजिस्टर नंबर की खबर न की हो।

(२) रजिस्टरों में अकारादि क्रम से सदस्यों की सूची नहीं दी गई है इससे उनके नाम खोजने में भी दिक्कत पड़ती है। उस तरह की सूची के संबंध में जो हिदायतें दी गई हैं उनका पालन बहुत कम प्रान्तों ने किया है। जिन सदस्यों ने अपना रजिस्टर नंबर नहीं लिखा है उनके नाम, यदि रजिस्टर में अकारादि क्रम से सूची भी नहीं दी गई है, तो छांटना प्रायः असंभव हो जाता है।

(३) कितने ही सदस्य और अ-सदस्य दोनों ने अपना सूत सीधा यहां, इस दफ्तर को भेज दिया है—हालां कि उन्हें भेजना चाहिए था अपने प्रान्त के दफ्तर में। उन्हें खबर हो

जानी चाहिए कि आगे से वे—सदस्य और अ-सदस्य दोनों—अपना अपना सूत अपने प्रान्त के ही दफ्तर में भेजा करें।

(४) बहुतेरे लोगों ने सूत को लंबाई नाप कर नहीं भेजी है। प्रान्तीय मन्त्री को चाहिए वे पार्सल रवाना करने के पहले यह देख लें कि हर शख्स के सूत पर लेबल लगा है या नहीं और उसपर आवश्यक तफसील दर्ज है या नहीं।"

सूत-कताई की व्यवस्था उसी हालत में पुर-असर और कामयाब हो सकती है जब कि दी गई हिदायतों का पालन कामिल तौर पर किया जाय। इसलिए मैं आशा करता हूं कि अगले माह से अ. भा. खादी-मण्डल की हिदायतों का पूरा पूरा पालन किया जायगा।

उपयोगिता का बिल्ला

भारत का हरएक सार्वजनिक कार्यकर्ता इस बात को जानता है कि जब इंग्लैंड में बाहर से लाये जाने वाले सूती कपड़े पर चुंगी लगाई गई तब लंकाशायर के हित के लिए भारत के बने कपड़े पर खास तौर पर चुंगी लगाई गई थी। उसके खिलाफ विरोध की आवाजें उठाई गईं और इस बात का वचन भी दिया गया कि इस पर फिर से विचार किया जायगा। तिसपर भी वह आजतक ज्यों की त्यों कायम है। यह चुंगी हमें निरंतर इस बात की याद दिलाती रहती है कि भारत का हित इंग्लैंड के हित का गुलाम है—उसके आगे गौण है। इसलिए मैं विदेशी मिलों के मुकाबले में हिन्दुस्तानी मिलों की रक्षा करने का पक्ष लेता हूं। पर कितने ही लोग इससे चक्कर में पड़ जाते हैं। वे उसका आशय ठीक ठीक नहीं समझ पाते। क्योंकि एक ओर तो मैं मिल-कते कपड़े के मुकाबले में हाथ-कते कपड़े की सिफारिश जोर-शोर से पर शान्ति के साथ करता हूं और दूसरी ओर मिल-कते कपड़े की रक्षा की आवाज उठाता हूं। पर जरा ही गौर करने से उन्हें ये दोनों नीतियां परस्पर सुसंगत देख पड़ेंगी। यदि भारतवर्ष को आर्थिक विषय में एक स्वाधीन राष्ट्र बनना हो, यदि उसके किसानों की सदियों फाकेकशी मिटानी हो, यदि उन्हें अकालों और ऐसे ही दूसरे संकटों के समय कोई प्रतिष्ठित काम दरकार हो तो देश से विदेशी कपड़े का मुंह काला किये बिना चारा नहीं। अपने कपड़े के मुख्य उद्योग की रक्षा करना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। अतएव मैं विदेशी मिलों की चढ़ा-ऊपरी के मुकाबले में भारतीय मिलों की रक्षा जरूर करूंगा-भले ही उसका फल यह होता हो कि चन्द रोज के लिए गरीबों को दण्ड भुगतना पड़े। ऐसा दण्ड उन्हें तभी भुगतना पड़ेगा जब कि मिल-मालिक देश-प्रेम को इतना खो बैठे हों कि कपड़े का बाजार उनके हाथ में आ जाने पर भी वे उसके दाम बढ़ा दें। इसलिए मैं कपास की तथा भारत के कपड़े पर लगी निषेधात्मक चुंगी के उठा लिए जाने पर बिला हिचकिचाहट के जोर दे सकता हूं।

इसी तरह और बिना किसी प्रकार की असंगति के मैं देशी-मिलों के मुकाबले में हाथकती खादी की रक्षा करूंगा। और मैं जानता हूं कि यदि सिर्फ विदेशों के साथ चढ़ा-ऊपरी बन्द हो जाय तो खादी की रक्षा बिला दिक्कत हो सकती है। ज्यों ही लोकमत इतना प्रबल हुआ कि उसका प्रभाव पड़ सके त्यों ही यहां से विदेशी कपड़े का मुंह काला हो जायगा। और वही शक्ति मिलों के मुकाबले में खादी की रक्षा करेगी। पर मुझे तो यह दृढ़ विश्वास है कि खादी तो मिलों से बिना ही भद्दे लड़ाई-झगड़े के अपना पैर जमा लेगी। परन्तु यह जरूरी बात है कि जबतक खादी के भक्तों की संख्या बहुत थोड़ी है तबतक उन्हें लाजिम है कि वे देशी मिलों तक में बने अथवा उनके सूत के बने कपड़ों के बजाय खादी को ही उत्तेजना दें, एकमात्र खादी का प्रचार करें। लोगों की मर्जीपर ही छोड़ देना मानों खादी को निर्मूल कर देना है।

मिल की खादी

इसपर कोई अधीर देशप्रेमी कहेगा—"जब कि मिल-मालिक नकली खादी भोली-भाली-जनता के सिर मढ़ कर उनकी आंखों में धूल झोंकते हुए नहीं झिझक उठते तब आपके दिल में मिलों के लिए कैसे गुंजाइश हो सकती है!" हां, मुझे इस नकली खादी का पता है। मैंने जान-बूझ कर ऐसी नकली खादी के कुछ बढ़िया नमूने अपने सामने रख छोड़े हैं जिससे कि वे मुझे मेरे कर्तव्य की याद दिलाते रहें। वह कर्तव्य कौनसा? यही कि ऐसे मिल-मालिकों के इस तरह के देश-भक्ति से हीन बर्ताव के होते हुए भी मैं उनपर गुस्सा न करूं। मैं यह भी जानता हूं कि बिना खादी की नकल उतारी में पड़े वे अपना रोजगार अच्छी तरह कर सकते थे। कम से कम वे अपने मोटे कपड़े का झूठ-मूठ खादी के नाम पर बेचने के पाप से अपनेको बचा सकते थे; क्योंकि वे जानते हैं कि 'खादी' नाम केवल उसी कपड़े के लिए इस्तेमाल किया जाता है जोकि हाथ-कता और हाथ-बुना हो। परन्तु यों बुराई का जवाब बुराई से देने से वह भलाई नहीं हो सकती। मेरा सत्याग्रह-धर्म मुझसे कहता है कि बदला लेने की नियत न रक्खो। उनके देशभक्ति-हीन कार्यों का अनुकरण करना उचित नहीं। मुझे निश्चय है कि खादी के अनुरागी लोग यदि अपने विश्वास पर दृढ़ और सच्चे बने रहे तो तमाम कठिनाइयों के होते हुए भी हाथ-कती खादी फूल फल निकलेगी। इसलिए अर्थशास्त्रियों को चाहिए कि बराबर कपास की चुंगी को हटाने की ही नहीं बल्कि मिलों के महान् उद्योग की रक्षा के लिए भी आवाज उठाते रहें। जो जान में या अनजान में कुछ मिलें खादी को हानि पहुंचा रही हैं, इसका कुछ खयाल न करें। (यं० इं०) मो० क० गांधी

आदर्श नगर कैसा हो?

इसी सप्ताह गांधीजी को अहमदाबाद की म्युनिसिपल्टी ने अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया था। उसके उत्तर में गांधीजी ने जो भाषण किया वह दूसरे नगरों के लिए भी उपयोगी होने के कारण यहां दिया जाता है:—

आपने जो यह सुन्दर अभिनन्दन-पत्र मुझे दिया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। पर बड़े दुःख के साथ मुझे यह बात कहनी पड़ती है कि मैं अहमदाबाद के नागरिक की हैसियत से इसके योग्य कदापि नहीं हूं। इसे मिथ्या बात न समझिए। किसी नगर की म्युनिसिपल्टी की ओर से अभिनन्दन-पत्र पाने का अधिकारी वही नागरिक हो सकता है जिसने उस नगर की खास सेवा की हो। मैंने अहमदाबाद की ऐसी कोई सेवा नहीं की है। मेरी जिन सेवाओं के उपलक्ष में आपने यह अभिनन्दन-पत्र दिया है, उनके लिए तो इसके हक में आपको अपनी राय देने की बिल्कुल जरूरत न थी। पर एक तो आपमें से बहुतेरे सज्जन दूसरे क्षेत्र में मेरे साथी हैं और दूसरे हमारा देश स्वभावतः ही उदारता के लिए प्रसिद्ध है, जिसके कि निवासी होने का मुझे अभिमान है। मैं जानता हूं कि इन दो कारणों से मैं इस अभिनन्दन-पत्र के योग्य समझ गया हूं।

दक्षिण आफ्रिका को छोड़कर जब मैं अहमदाबाद में आकर बसा और आप लोगों के आवाहन से यहां अपना पड़ाव डाला, तभी मैंने सोचा था कि मुझे नगर की कुछ सेवा करनी चाहिए और अपनेको इस नगर का निवासी कहलाने के लायक बनाना

चाहिए। उस समय मैं आप बहुतेरे सज्जनों से परिचित न था; पर मैं डा० हरिप्रसाद से अपनी स्वप्न सृष्टि की बातें किया करता था। उनसे मेरी अक्सर मुलाकात होती रहती थी। दक्षिण आफ्रिका में मैंने भिन्न भिन्न नगरों की जो कुछ सेवा की उसका हाल मैं उन्हें सुनाया करता। आप लोगों को उसका कुछ भी पता नहीं है। और इस बात पर मुझे खुशी है। सच्ची सेवा वही है जिसका ढिंढोरा दुनिया में नहीं पीटा जाता। डाक्टर हरिप्रसाद के साथ मैं अहमदाबाद के स्वास्थ्य-सुधार और सफाई-संबन्धी तजवीजों की चर्चा करता। हमने सोचा था कि एक ऐसी सेवक-समिति बनाई जाय, जो नगर के एक एक कोने कुचरे में घूमें और खुद गटरें, पाखाने तथा सड़कें साफ करके लोगों को गटरें, पाखाने और सड़कें साफ करने का पदार्थ-पाठ सिखावें। हमने नगर-विस्तार की तजवीज भी सोची थी। गन्दी और तंग गलियों में रहना छोड़कर नगर के बाहर खुली जगहों में आबादी करने की सलाह दी थी। हमने सोच लिया था कि यह काम रुपया लगाकर न किया जा सकेगा। इसलिए हमने विचार किया था कि हम लोग भिक्षा-पात्र लेकर लक्ष्मी-पुत्रों के घर घर पहुचेंगे और उनसे नगर के बीच में जगह जगह जमीनें मागेंगे जहा कि छोटे बालकों को खेलने के लिए बगीचे बनाये जाते। अहमदाबाद के बच्चे बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने की पूरी पूरी सुविधायें कराने की तजवीज भी हमने सोची थी। हमने यह भी विचारा था कि नगर की तमाम दूध-शालाओं को म्युनिसिपल्टी के अधीन कर के शुद्ध और सस्ता दूध लोगों को पहुंचाने का प्रबन्ध करें। श्री० जीवनलाल देसाई ने तो यह भी सुझाया था कि मैं म्युनिसिपल्टी में शरीक हो जाऊं और अपने सोचे उपायों को काम में लाने की कोशिश करूं। पर होनहार कुछ और ही था। रौलट बिल के रूप में देश में ऐसा भारी बवण्डर उठा कि जो हम सब को अपने वेग में घसीट कर ले उड़ा। उसमें कितनों ही की जानें भी जाया हुईं—कुछने तो कुसूर किया था और कुछ बे कुसूर थे। मुझे अपनी हिमालय के बराबर गलत-अन्दाजी के लिए प्रायश्चित्त करना पड़ा। वह बवण्डर अब भी मौजूद है— हां, उसकी शकल बदल गई है। हम लोग उसे रोकने की कोशिश अपने भर भर कर रहे हैं। पर वह काफी नहीं है। और मुझे ऐसा मालूम होता है कि अभी मैं अपनी उन तजवीजों को कार्य-रूप में परिणत कराने की फुरसत न निकाल सकूंगा। पर मैं यह अभिमान क्यों कर कर सकता हूं कि यदि मैं म्युनिसिपल्टी में घुसा होता तो मैं जरूर ही काम बना लेता? मैं कैसे कह सकता हूं कि आपके पिछले सभापतियों ने या आपने ये सब बातें न सोची होंगी, या अब न सोच रहे होंगे? मैं यह कहने की धृष्टता कैसे कर सकता हूं कि इस बात के लिए अबतक किसी तरह की कोशिश नहीं की गई। मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि जब जब मैं अहमदाबाद की सड़कों से गुजरता हूं तब तब सड़कों की गंदगी कीचड़, दुर्गंध और घिन को देख कर मेरा हृदय रो उठता है। ऐसी धनी लोगों की और ऐसी उदार और बुद्धिमती बस्ती में इतनी गन्दगी, यह पालिकजी क्यों कर रह सकती है?

पर मैं यह अभिमान नहीं रख सकता कि यदि मैं म्युनिसिपल्टी में घुसा होता तो मैं इन तमाम बुराइयों को दूर कर देता। बहुत मुमकिन है वहां भी मुझे बदनामी ही नसीब होती, जैसे कि दूसरी बातों में हो रही है। शायद ईश्वर ने मेरे वहां न जाने में कुछ भलाई ही सोची हो। परन्तु फिर भी आज मेरे कपाल में यह कालिमा तो लगी ही हुई है कि मैं इस नगर की कुछ भी सेवा न कर सका—और तिस पर भी आज यह अभिनन्दन-पत्र ग्रहण कर रहा हूं, जिसके कि मैं सर्वथा अयोग्य हूं। अतः परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि वह सिर्फ मेरे शुभ हेतुओं पर ही ध्यान रक्खे और मेरी त्रुटियों के लिए मुझे माफ करे। आप सज्जनों से भी मैं प्रार्थना करता हूं कि कृपया मुझे क्षमा कीजिए और आज आदर्श नगर की स्वप्न-सृष्टि का जो वर्णन मैंने आपके सम्मुख किया है उसे याद रखिए। मैं फिर एक बार आपको धन्यवाद देता हूं।

(पृष्ठ २३ से आगे)

होगा। मुझे तो ये बातें स्वयं-सिद्ध मालूम होती हैं। यदि हम खादी आदि को सर्व मान्य बनाये बिना ही स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे तो लोगों पर जबरदस्ती किये बिना हम खादी आदि का प्रचार न कर सकेंगे। यदि ऐसा हो तो उसे सच्चा स्वराज्य नहीं कह सकते। फिर यदि बहुतेरे लोग खादी-भक्त न हों तो खादी को सर्वमान्य करने का कानून भी नहीं बनाया जा सकता। इसतरह इतने उदाहरणों से यह दिखाई देता कि जो शर्तें नई मालूम होती हैं वे नई नहीं पर पुरानी ही हैं। अब तो यह बात स्पष्ट हो ही जानी चाहिए कि सामुदायिक भंग के लिए ऐसी एक भी कठिन शर्त नहीं है जिसका पालन न हो सके। परन्तु सत्याग्रह प्रारंभ करने और सञ्चालन करनेवाले के लिए तो कड़ी शर्तें आवश्यक हैं और हमेशा से थीं। संगीतशास्त्री के लिए वर्षों की तालीम की जरूरत है। उसका कण्ठ महीन से महीन स्वर पर होना चाहिए। उसमें यह परीक्षा करने की शक्ति होनी चाहिए कि उनमें कौन कमजोर है और कौन बलवान है। परन्तु समाज के लिए तो इतना ही ज्ञान बस है कि वह संगीतशास्त्री के सुर में सुर मिला दे। सत्याग्रह का नायक संगीतशास्त्री की तरह होना चाहिए।

यहां मैं एक बात का और खुलासा कर देता हूं। अखबारों में मुझपर यह दोष लगाया जा रहा है कि जहां कहीं सत्याग्रह हुआ कि गांधी उसमें बाल की खाल निकाला करता है। इससे सिद्ध होता है कि हर सत्याग्रह का काम गांधी के बिना नहीं चल सकता। यह सहज वहम है। बोरसद, नागपुर, चिरला-पेरला में मैं कहां था? किसीने मुझसे पूछा तक न था। फिर भी वे सत्याग्रह क्यों कर चल पाये? हां, यदि सत्याग्रह करनेवाला व्यक्ति अनुभवी और संयमी न हो तो जरूर मुझसे पूछे बिना चक्कर में पड़ेगा। पर अब हम इस हद तक पहुंच गये हैं कि जो चाहे वह अपनी जिम्मेवारी पर सत्याग्रह कर सकता है। यदि कोई मुझसे पूछता है तो अपनी समझ के अनुसार जवाब देता हूं। पर यह बात नहीं कि मुझसे पूछे बिना सत्याग्रह शुरू किया ही नहीं जा सकता। यदि ऐसा हो तो सत्याग्रह-शस्त्र नाजुक हुआ। मैं अकेला कहां कहां पहुंच सकता हूं? और मैं चिरजीव तो हूं नहीं। सत्याग्रह यदि सर्वकालीन शस्त्र हो तो उसके चलानेवाले स्त्री पुरुष भी अनेक होने चाहिए और हैं भी।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी) । कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल से।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, भादों सुदी १, संवत् १९८१

गुलबर्गा का पागलपन

पिछले सप्ताह मैंने इशारा किया था कि हिन्दुओं के मन्दिरों को अपवित्र करने की जो हवा आजकल बह रही है उसकी सहायता के लिए जरूर कोई संगठित जमात है। गुलबर्गा की यह ताजी मिसाल है। हिन्दुओं की तरफ से अगर मुसल्मान भड़काये भी गये हों तो इससे क्या? क्या मुसल्मानों का इस तरह टूट पड़ना भयानक नहीं दिखाई देता? मंदिरों का अपवित्र करना तो किसी भी हालत में समर्थनीय नहीं कहा जा सकता। मौलाना शौकतअली ने जब संभर और अमेठी का हाल सुना तो वे चौंके और गरज कर कहा कि अगर किसी दिन हिन्दू लोग मुसल्मानों की मसजिदों को नापाक करके इसका बदला लें तो वे ताज्जुब न करें। मौलाना साहब के इन क्रोध-पूर्ण वचनों को सुनकर, मुमकिन है, हिन्दू लोग फूल उठें, या उनके दिल को तसल्ली होने लगे। पर मुझे ऐसा नहीं होता और मैं हिन्दुओं को सलाह देता हूं कि वे भी अपनेको इससे बचावें। वे इस बात को अच्छी तरह समझ लें कि जब जब मुसल्मान धर्मान्ध हो कर हिन्दुओं पर टूट पड़े हैं या टूट पड़ते हैं तब तब बहुतेरे हिन्दुओं से अधिक कहीं मेरे दिल को चोट पहुंची है और पहुंचती है। मुझे इस बात का पूरा ख्याल है कि इस मामले में मेरी जिम्मेदारी क्या है। हां, मैं जानता हूं कि बहुतेरे हिन्दुओं का दिल यह कहता है कि ऐसे बहुतेरे दंगे-फसाद का जिम्मेदार मैं हूं। क्योंकि, उनका कहना है, कि सोई हुई मुसल्मान-जनता को जाग्रत करने में मेरा ही गहरा हाथ है। मैं इस इल्जाम को पसन्द करता हूं। और यद्यपि मुझे अपनी इस कृति पर जरा भी पछतावा नहीं होता, तथापि मुझे मानना पड़ता है कि उनकी दलील पुरजोर है। इसलिए अगर और किसी वजह से नहीं तो इसी अपनी बढ़ी हुई जिम्मेवारी के ख्याल से ही मुझे, बहुतेरे हिन्दुओं की अपेक्षा, इन मन्दिरों के अपवित्र किये जाने की दुर्घटनाओं पर अधिक दुःख होना चाहिए। मैं मूर्ति-पूजक भी हूं और मूर्ति-भंजक भी हूं, पर उस अर्थ में जिसे मैं इन शब्दों का सही अर्थ मानता हूं। मूर्तिपूजा के अन्दर जो भाव है मैं उसका आदर करता हूं। मनुष्य-जाति के उत्थान में उससे अत्यन्त सहायता मिलती है। और मैं अपने प्राण देकर भी उन हजारों पवित्र देवालयों की रक्षा करने का सामर्थ्य अपने अन्दर रखना पसन्द करूंगा, जो हमारी इस जननी जन्म-भूमि को पुनीत कर रहे हैं। मुसल्मानों के साथ जो मेरी मित्रता है उसके अन्दर यह बात पहले ही से गृहीत की हुई है कि वे मेरी मूर्तियों और मेरे मन्दिरों के प्रति पूरी पूरी सहनशीलता रक्खेंगे। और मैं मूर्ति-भंजक इस मानी में हूं कि मैं उस धर्मान्धता के रूप में छिपी सूक्ष्म मूर्तिपूजा का सिर तोड़ देता हूं, जो कि अपनी ईश्वर-पूजा की विधि के अलावा दूसरे लोगों की पूजा-विधि में किसी गुण और अच्छाई को देखने से इनकार करती है। इस किस्म की सूक्ष्म मूर्ति-पूजा—बुत-परस्ती—ज्यादह घातक है: क्योंकि यह उस स्थूल और प्रत्यक्ष पूजा से जिसमें कि एक पत्थर के टुकड़े या सुवर्ण की मूर्ति में ईश्वर की कल्पना कर ली जाती है, अधिक सूक्ष्म और धोका देनेवाली है।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के लिए यह आवश्यक है कि मुसल्मान लोग आपद्धर्म के तौर पर नहीं, व्यवहारनीति के तौर पर नहीं, बल्कि अपने मजहब का एक अंग समझ कर दूसरों के मजहब के साथ सहिष्णुता रक्खें, तब तक जबतक कि वे लोग अपने अपने मजहबों को सच्चा मानते रहें। और इसी तरह हिन्दुओं से भी यह आशा की जाती है कि वे अपना धर्म और ईमान समझ कर दूसरों के धर्मों के प्रति उसी सहिष्णुता का परिचय दें—फिर हिन्दुओं को अपनी भावना के अनुसार वे चाहे कितने ही तिरस्कार के योग्य मालूम हों। इसलिए हिन्दुओं को चाहिए कि वे बदला लेने की इच्छा को अपने दिलों में जगह न दें। सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर आजतक हम बदले की अर्थात् प्रतिहिंसा की आजमाइश करते आ रहे हैं और अबतक का तजरिबा हमें बतलाता है कि वह बुरी तरह बेकार साबित हुई है। उसके जहरीले असर से हम आज बेतरह छटपटा रहे हैं। जो कुछ हो; पर हिन्दुओं को चाहिए कि मन्दिरों के तोड़े जाने पर भी वे मसजिदों की ओर उंगली तक न उठावें। यदि वे बदले का अवलम्बन करेंगे तो उनकी बेड़ियां और भी मजबूत हो जायंगी और ईश्वर जाने क्या क्या दुर्गत उनकी होगी। इसलिए चाहे हजारों मन्दिर तोड़-फोड़ कर मिट्टी में क्यों न मिला दिये जांय, मैं एक भी मसजिद को न छुऊंगा और इस तरह दीन के दीवाने लोगों के दीनो-ईमान से अपने धर्म-कर्म को ऊंचा साबित करने की उम्मीद रक्खूंगा। ऐसे समय यदि मैं सुनूंगा कि पुजारी लोग अपने मन्दिरों और मूर्तियों की रक्षा करते करते सुरपुर को चले गये तो मेरा कलेजा उछल उठेगा। ईश्वर घट-घट व्यापी है। वह मूर्ति में भी विद्यमान है। फिर भी वह अपने और अपनी मूर्ति के अपमान और तोड़-फोड़ को चुपचाप सहन कर लेता है। पुजारियों को भी चाहिए कि वे अपने भगवान की तरह ही अपनी मन्दिरों की रक्षा के लिए कष्ट-सहन करें और मरना सीखें। यदि हिन्दू लोग बदले में मसजिदें तोड़ने लगेंगे तो वे अपनेको भी उन्हीं लोगों की तरह धर्मान्ध साबित करेंगे जो कि मन्दिरों को अपवित्र करते हैं और तिसपर भी अपने धर्म की रक्षा तो वे हरगिज न कर सकेंगे।

अब मैं उन मुसल्मानों से कहता हूं जो कि छिपे हुए हैं और जो इन मन्दिरों की तोड़-फोड़ में भीतर ही भीतर शरीक हैं—"याद रक्खो, इस्लाम की जांच तुम्हारी करतूतों से हो रही है। मैंने अभीतक एक भी ऐसा मुसल्मान नहीं देखा है जिसने इन हमलों की ताईद की हो—फिर वे भले ही किसी के उभाड़े जाने पर क्यों न किये गये हों। मुझे जहां तक दिखाई देता है, हिन्दुओं की तरफ से, अगर हो तो, आपको उभड़ने का मौका बहुत ही कम दिया गया है। पर अच्छा, फर्ज कीजिए कि बात इसके खिलाफ हुई है अर्थात् हिन्दुओं ने मुसल्मानों को दिक करने के लिए मसजिद के नजदीक बाजे बजाये, और यहां तक कि एक मीनारे पर से एक पत्थर उखाड़ लिया। तो भी मैं कहने का साहस करता हूं कि मुसल्मानों को मन्दिरों को अपवित्र न करना चाहिए था। बदले की भी आखिर हद होती है। हिन्दू लोग अपने देवालय को जान से अधिक मानते हैं। हिन्दुओं के जान को नुकसान पहुंचाने का ख्याल तो किया जा सकता है; पर उनके मन्दिरों को हानि पहुंचाने का नहीं। धर्म जीवन से बढ़ कर है। इस बात को याद रखिए कि दूसरे धर्मों के साथ तात्विक तुलना करने में चाहे किसीका धर्म नीचा उतरता हो, परन्तु उसे तो अपना वह धर्म सब से सच्चा और प्रिय ही मालूम होता है। परन्तु जहांतक अनुमान पहुंचता है हिन्दुओं की तरफ से मुसल्मानों को उभड़ने का मौका

ही नहीं किया गया है। मुलतान में जो मन्दिर अपवित्र किये गये हैं उस समय उन्हें हिन्दुओं ने कहां उभाडा था? मेरे हिन्दू-मुस्लिम-तनाजे वाले लेख में हिन्दुओं के संबंध में जो मस्जिदों को अपवित्र करने की बात कही गई है उसके सबूत एकत्र करने की कोशिश में कर रहा हूं। परन्तु अबतक मुझे उनका कुछ भी सबूत नहीं मिला है। अमेठी, सम्भर और गुलबर्गा की जो खबरें प्रकाशित हुई है, ऐसे कामों को करके आप इस्लाम की कीर्ति को बढाते नहीं हैं। अगर आप इजाजत दें तो मैं कहूंगा कि इस्लाम की इज्जत का भी मुझे उतना ही खयाल है जितना कि खुद अपने मजहब का है। यह इसलिए कि मैं मुसल्मानों के साथ पूरी, खुली और दिली दोस्ती रखना चाहता हूं। पर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि ये मन्दिरों को अपवित्र करने की घटनायें मेरे हृदय के टुकडे टुकडे कर रही हैं!"

देहली के हिन्दुओं और मुसल्मानों से मैं कहता हूं—"यदि आप इन दो जातियों में मेल-मिलाप करना चाहते हों तो आपके लिए यह अनमोल अवसर है। अमेठी, संभर और गुलबर्गा में जो कुछ हुआ है उसे देखने के बाद आपका यह दुहेरा कर्तव्य हो जाता है कि आप इस मसले को हल कर डालें। हकीम अजमलखां साहब और डाक्टर अनसारी जैसे मुसल्मान सज्जनों के सहवास का सौभाग्य आप लोगों को प्राप्त है, जोकि अभी तलतक दोनों जातियों के विश्वास-पात्र थे। इस तरह आपकी परंपरा उच चली आई है। अपनी दल-बन्दियों को तोड कर और ऐसी दिली दोस्ती कायम कर के जो किसी तरह न टूट पावे आप इन लडाई-झगडों को अच्छे फल के रूप में परिणत कर सकते हैं। मैंने तो अपनी सेवायें आपके हवाले कर ही दी हैं। यदि आप मुझे दोनों का मध्यस्थ बनाना पसंद करेंगे तो मैं देहली में अपनेको दफनाने के लिए तैयार हूं। और उन दूसरे सज्जनों के साथ जिन्हें आप तजवीज करेंगे, सच्ची बातों का पता लगाने की कोशिश करूंगा। इस सवाल के स्थायी निपटारे के लिए यह आवश्यक बात है कि पहले हम इस बात की पूरी तहकीकात करें कि पिछली जुलाई में दरहकीकत क्या क्या हुआ और वह क्यों कर हो पाया। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप शीघ्र ही किसी बात को तय कर दीजिए। यह हिन्दू-मुसल्मानों का सवाल एक ऐसा सवाल है जिसके ठीक ठीक हल होनेपर ही नजदीकी भविष्य में भारत का भाग्य अवलंबित है। देहली अगर चाहे तो इस सारे सवाल को हल कर सकती है; क्योंकि देहली जो कुछ करेगी, बहुत संभव है उसीका अनुकरण दूसरी जगह हो।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

नवजीवन-प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद

अंकों पर विचार

१५ अगस्त को खतम होनेवाले महीने के लिए आये सूत की आखिरी फिहरिस्त नीचे दी जाती है। २५ अगस्त तक जितना सूत आया है, वह इसमें शामिल किया गया है। इसके बाद जो सूत आवेगा वह अगले महीने में गिना जायगा।

प्रान्त का नाम	प्रतिनिधियों की संख्या	सूत भेजनेवालों की तादाद	अ-सदस्य सूत भेजने वाले	कुल सूत भेजने वाले
आन्ध्र	१६५३	३०२	१२७	४२९
आसाम	२५०	३४	२	३६
अजमेर	५७	९	६	१५
बंबई	२४२	६४	२१	८५
ब्रह्मदेश	३६	१	१	२
बिहार	१०७४	१७४	३४	२०८
बंगाल	१५४०	४०१	४३	४४४
बरार	२५५	१	...	१
मध्यप्रान्त (मराठी)	९५२	४४	२३	६७
,, (हिन्दी)	१३७४	६६	५	७१
देहली	१८५	६	६	१२
गुजरात	५०८	११७	६६८	७८५
*करनाटक	१६२	२३	१८	४१
केरल	५३	२	...	२
महाराष्ट्र	६७४	१३७	२५	१६२
*पंजाब	१५५	२३	...	२३
*सिंध	२८२	३६	१२	४८
*तामिलनाड	८२६	७९	११	९०
युक्त प्रान्त	१५८१	१३५	२७	१६२
उत्कल	४१३	३२	५	३७
	११३००	१७४६	१०३४	२७८०

*यहां के रजिस्टर अधूरे हैं।

महासमिति के प्रस्ताव के अनुसार जिन सदस्यों ने सूत भेजा है उनकी तादाद रजिस्टर में दर्ज संख्या की सिर्फ १४ फी सदी है। अ-सदस्य सूत भेजने वालों की संख्या सूत कातने वाले सदस्यों का ६७ फी सैकडा है। प्रायः हरएक प्रांत से इस बार कम सूत भेज सकने के लिए माफियां चाही गई है। अगले महीने में वे इससे कहीं अच्छा नतीजा दिखाने की आशा रखते हैं। इस सूची में गुजरात का नंबर सबसे पहला है। पर इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि सूत कातने की शिक्षा देने की सुविधायें और व्यवस्था यहां सबसे अच्छी है। बरार सबसे फसड्डी रहा है। मैं तो आशा कर रहा था कि बरार का विश्वास चरखे पर न रहने पर भी वह महासमिति की आज्ञा का पालन अवश्य करेगा और मैं उसे बधाई दूंगा। मैं बरार की प्रान्तिक समिति को आवाहन करता हूं कि वह भी इस होड में शरीक हो। और क्या बरार में ऐसे लोग नहीं है जो सदस्य चाहे न हों पर जो चरखे के कायल हों? गुजरात के बाद दूसरा नंबर है बंगाल का। यह बात ध्यान देने लायक है। ऐसा मालूम होता है कि वह गुजरात को हरा देगा। होना भी यही चाहिए। क्योंकि बंगाल तो उन नफीज सूतकारों की जन्मभूमि है जिनकी टक्कर के सूतकार दुनिया में कहीं पैदा हो न हुए। बंगाल ही को ईस्ट इंडिया कंपनी की निष्ठुरता का पूरा पूरा शिकार होना पडा। ऐसी हालत में इससे—

की गुंजाइश नहीं हो सकती। उस समय सदस्यों का एकमात्र यही कर्तव्य है कि या तो वे उसका तन-मन से पालन करें या इस्तीफा दे कर अलग हो जाय।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

आज बनाम कल

एक सज्जन लिखते हैं—

"सामुदायिक या व्यक्तिगत असहयोग या सत्याग्रह कब हो सकता है, कौन कर सकता है, इस विषय में तीन चार साल पहले जो लेख आपने लिखे थे उन्हें तथा आजकल के आपके लेखों को पढ़ने से मुझे दो बातों में बड़ा अन्तर दिखाई देता है। एक तो आपका लोगों के संबंध में यह विश्वास कुछ कम हुआ दिखाई देता है कि यदि कार्य धर्म्य हो तो लोग जरूर सत्याग्रह या असहयोग करें और उससे फल-सिद्धि अवश्य होगी। दूसरे यह कि असहयोग या सत्याग्रह करने के लिए आज आप पहले से बहुत कड़ी शर्तें पेश करते हैं। मैं तो यह समझता था कि जब राज्य या समाज के खिलाफ किसी दल के दुःख दर्द या शिकायत का कारण उपस्थित हो तब उस दल को चाहिए कि अरसे तक सामोपचार से काम ले और जब उसमें सफलता न मिले तब सत्याग्रह या असहयोग का अवलम्बन करना चाहिए। पहले लोगों को सत्याग्रह या असहयोग का रास्ता मालूम न था, इससे खून-खराबा और हिंसा-कांड का प्रयोग करते थे। जो लोग सत्याग्रह या असहयोग के कायल नहीं हैं वे अब भी इनका आश्रय लेते हैं। पर मैं समझता हूं कि इनके बजाय असहयोग या सत्याग्रह को ही उन्हें उचित और धर्म मार्ग मानना चाहिए। इसमें असहयोग करने वाले दल का कर्तव्य सिर्फ इतना ही है कि एक तो वे शान्ति और सत्यनिष्ठा के साथ तमाम कष्टों और असुविधाओं का सहन करें और दूसरे अन्ततक अपनी श्रद्धा पर अटल रहें। मेरी समझ ऐसी ही थी। पर आज कल के आपके लेखों से मालूम होता है कि असहयोग या सत्याग्रह करनेवालों के लिए आप नीति-शील और व्यवहार-संबन्धी बहुत ही कड़ी शर्तें पेश करते हैं, जिनका कि पालन करना किसी दल या समुदाय के लिए प्रायः असम्भव मालूम होता है। हां, यदि आप असहयोग या सत्याग्रह के अगुआ से इतनी बातें चाहें तो यह समझ में आ सकता है। पर सारे दल या समाज से ऐसे गुणों की चाह रखने का फल यही होगा कि वर्तमान काल की दृष्टि जहां तक पहुंचती है, सामुदायिक सत्याग्रह प्रायः असम्भव हो जायगा। हां, यह तो ठीक है कि असहयोगी और सत्याग्रही-दल जितना विशाल हो उतना ही अच्छा; परन्तु यदि नीति की उत्कृष्ट स्थिति तक पहुंचे बिना असहयोग या सत्याग्रह करने का अधिकार ही किसी समाज को न हो तो इससे सामान्य लोगों के सामान्य जीवन में सत्याग्रह की व्यवहार्यता और प्रयोग-योग्यता बहुत कम हो जाती है।

दूसरी बात यह कि जिन बातों का संबंध परिस्थिति-विशेष से संबंध रखने वाले सत्याग्रह से न हो वहां उन बातों के अभाव में आप सत्याग्रह को अनुचित करार देते हैं। यह बात अभी मेरी समझ में नहीं आती। मिसाल के तौर पर भावनगर परिषद-संबन्धी राज्य की निषेध-आज्ञा को ही लीजिए। उसके लिए सत्याग्रह करने या करने के लिए यदि आप बाल-महाराज और सर पट्टणी की विशेष स्थिति, प्रजा का मन्दोत्साह, तथा ऐसी ही दूसरी बातों पर विचार करें तो यह ठीक ही है। पर ये सवाल कि काठियावाड़ खादी पहनता है या नहीं, अस्पृश्यता का कांटा हटा दिया है या नहीं, शराबखोरी बंद की है या नहीं (ये अपने तौर पर उनके उपयोगी होते हुए भी) क्या इस बारे में अनावश्यक नहीं मालूम होते? मैं तो यह समझता था कि यदि परिषद सचमुच धर्मकार्य हो, उसे सफल करने के लिए बलवती लोकेच्छा हो, उसकी मदद पर सच्चा लोकमत हो और अहिंसात्मक सत्याग्रह का रहस्य समझनेवाला मजबूत दल हो तो इस कानून को तोड़ कर परिषद अवश्य करनी चाहिए। इसी तरह वायकोम सत्याग्रह के प्रश्न पर भी मैं विचार करता। खादी चाहे कितनी ही उपयोगी और आवश्यक वस्तु हो पर पूर्वोक्त विषयों में सत्याग्रह करनेवाले को हाथकता खादी अवश्य पहननी चाहिए, यह नियम मुझे नहीं जंचता। मेरे अनेक समझदार लोगों को इस तरह की शंकायें आया करती हैं। इसलिए प्रार्थना है कि आप इन बातों का खुलासा सर्व-साधारण के हित करने की कृपा करें।"

इस लेख पर विचार करते समय पाठक भावनगर की परिषद को भूल जायं। उस परिषद का जिक्र यहां उदाहरण के तौर पर ही हुआ है। परिषद के विषय में मैं अपने विचार प्रकट कर ही चुका हूं। भावनगर में परिषद न करने के लिए जो कारण मैंने दिये हैं वही हैं दूसरे नहीं। यदि इतनी बातें याद न रक्खेंगे तो एक बात का स्पष्ट करते हुए दूसरी के उलझ जाने की सम्भावना है।

मुझे तो नहीं दिखाई देता कि मेरे पहले के और अब के सत्याग्रह सम्बन्धी लेखों में सिद्धान्त का अन्तर है। हां, यह सच है कि ज्यों ज्यों परिस्थिति बदलती जाती है त्यों त्यों नई दिखाई देने वाली शर्तें खड़ी हो जाती हैं। पर विचारवान मनुष्य तुरन्त देख सकेगा कि ये शर्तें मूल सिद्धान्त में ही समाविष्ट रहती हैं। जैसे कि अहमदाबाद की महासभा में ठहराया था कि शान्ति। मन, वचन और कर्मयुक्त होनी चाहिए। यह शर्त नई नहीं थी। जब तजरिबा हुआ कि लोग हिंसा को हिंसा तो नहीं करते हैं पर दिल में उसके उल्टी इच्छा रखते हैं तब यह स्पष्ट करने की जरूरत पड़ी कि वह मनुष्य उसी दशा में अहिंसक रहा माना जायगा जब कि वह मन, वचन और काया से अहिंसक रहेगा। अर्थात यह बताया गया कि दांभिक शान्ति शान्ति हई नहीं। ऐसे नई बात नहीं कह सकते। मशोलुर आदि की शर्त सत्याग्रह के संचालक के लिए है और पहले भी थी। मामूली कामों में भी इसे मर्यादा की जरूरत होती है फिर सत्याग्रह में तो और भी आवश्यकता है। इसमें आश्चर्य ही क्या? बड़े जन-समुदाय से मैंने कड़ी शर्तों के पालन की आशा कभी नहीं रक्खी। ऐसी आशा करते तो बोरसद में भी सत्याग्रह न हो सकता था। जन-साधारण के लिए तो सिर्फ दो ही शर्तें थीं। एक अन्तिम संग्राम में पशुबल का अवलंबन न करना चाहिए और दूसरे अगुओं की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

भावनगर और वायकोम के सत्याग्रहियों के बारे में मेरी यह धारणा है कि वे महासभा-सैनिकों के सदृश हैं। महासभा के पदाधिकारी उसके असलों को जानते हुए यदि महासभा की सामान्य और स्थायी शर्तों का भी पालन न करें तो वे सत्याग्रह करने के योग्य कैसे माने जा सकते हैं? एक काम के लिए की गई प्रतिज्ञा का पालन अगर वे न करें तो दूसरी प्रतिज्ञा का पालन कैसे करेंगे? स्वराज्य-विषयक सत्याग्रह का संबंध खादी से साथ है। स्वराज्यवादी को दूसरे विषय में सत्याग्रह करते हुए भी अपनी स्वराज्यवादिता सिद्ध करने की जरूरत रहती है। बोरसद के लाखों लोगों को सत्याग्रह करते हुए खादी या शराबबन्दी की जरूरत न थी, पर पदाधिकारियों के लिए तो अवश्य थी। अब अगर बोरसद के भावुक भाई-बहन स्वराज्य के लिए सत्याग्रह करना चाहते हों तो उन्हें अवश्य खादी पहननी होगी, शराबबन्दी करनी होगी, अस्पृश्यता के पाप से मुक्त होना

(शेष पृष्ठ १९ पर)

मलाबार-संकट-निवारण

सत्याग्रहाश्रम साबरमती में आया

यं० इ० में २६।८ तक स्वीकृत रकम	१४,०२०-६-०
उसके बाद म २०।८ तक वसूल हुआ	७५३-२-०
जोड़	१४,७७३-८-०

इस सप्ताह की रकम में नीचे लिखे सज्जनों का चन्दा भी शामिल है—भोलाराम जवाहरमल धूलिया २५) सी.पी.एम. महेन्द्र अलीगढ़ १०) भरथप्रसाद अनूपशहर २५) मूलचन्द कस्रा अजमेर ६॥) नकुलप्रसाद प्रयाग ४) कालिका प्रसाद कानपुर १०) सोहनलाल जयपुर ५०) महावीरप्रसाद बनारस २०) शीलवन्ती देवी प्रयाग २५) बाला केशव चमार नागपुर २) छोटेराम चमार उज्जैन ५) मिसेज खुशीराम सिंध ५) बाबूराम बरेली ५) बल्देवदास नत्थूशाह बुरहानपुर १४) नूरालाल भीलवाड़ा ५) स्वामी चिदानन्द अलमोड़ा ५) भगवान एण्ड कंपनी हैदराबाद २५) लाला ब्रजकिशन देहली ८५) बेगम महम्मदअली साहब १००) कन्हैयालाल टहलराम किरांची १२३) लाला सोरनन्द सिकंदराबाद १००) प्रतापसिंह लुधियाना १८॥) गणपतिराम विद्यार्थी अमृतसर २) त्रिंबक दामोदर पुस्तके उज्जैन २५) श्रीमती किशनवन्ती प्रयाग १०) रामजी पेस्तजी मेरठ ५) गोविंदराम सिंध २) श्रीनिवास हिम्मतसिंग भागलपुर २१) **मंत्री तहसील कांग्रेस कमिटी अग्रमोली के द्वारा** ५।≈) राजबहादुर शुक्ल हरदोई १) **पंजाब प्रान्तीय समिति के द्वारा** ५००) **शुकदेवप्रसाद बांदा की मार्फत** १९) धर्मपत्नी महेन्द्रनाथ भार्गव ५) दामोदरदास विमलाल धूलिया ५) **चंदामल परमदयाल गोविंदगढ़ की मार्फत** १९) लाल गोपाल अलवपुर ५) धर्मपत्नी विश्वेश्वरदयाल चतुर्वेदी आगरा ५) धर्मपत्नी महावीरसिंह आगरा २) मुरलीधर वकील अम्बाला १०) गणेशदास टंडन गुजरात (पंजाब) ११) गुमनाम ५) हरसरूप बुलन्दशहर ५) बनारस म्युनिसिपल्टी के शिक्षकों का मृत २) श्री रामदास गौड़ और उनकी धर्मपत्नी, बनारस, का मृत ।) रघुराज बहादुरसिंह जौनपुर १०) दीनानाथ करमसिंह लालामूसा १०) कपूरचंद पाटणी जैन जयपुर २५) हरीलाल गांदिया २५) श्रीमती उत्तमादेवी असौरा १००) श्रीमती भगवानदेवी देहली ५०) हनुमान सहाणी ५१) हरीरामजी जाजोदिया ५) दुर्गादत्त सोमाणी, ११) खेता जाट ५) लक्ष्मणगढ़; **रामकिसन डालमियां चिरावा के मार्फत** ३५०) **तहसील कांग्रेस कमिटी गोंदिया के मारफत** ७३२॥)॥। जिसकी तफसील— मुलजी सिक्का कं० ५१) मानीरामजी चौथमल ५१) गुप्तदान २५) महावीरप्रसाद अयोध्याप्रसाद २१) मोहनलाल हरगोविंद २१) रामगोपालजी रामकिसन १५) हिरालालजी बलदेव ११) नेनराज गणपतराम ११) लछमनराम रामप्रताप ११) छोटालाल जेठाभाई ११) जगन्नाथजी भूरमल ७) परमानंदजी दयाराम ७) सालिगरामजी सुखदेव ५) चतरभुजजी गिरधारीलाल ५) बिहारीलालजी शर्मा ५) गोविंदरामजी बालचरण ५) विजराजजी मिरचीलाल ५) जिवनरामजी बुधदूलाल ५) शंकरलालजी रामचंद ५) काजी पानदार ५) निर्भारामजी कन्हैयालाल ५) श्रीमती रतियाबाई ५) बद्रीनारायणजी राजमल ५) रामगुलाम गोपालजी ५) भानिधाराजी बालकिसन ५) रामदयालजी पन्नालाल ५) हसराजजी जुगराजजी ५) चैनसुखजी कनीरामजी ५) जैनारायणजी सूरजमलजी ५) रामनाथजी किसनलालजी ५) शिवनारायणजी कन्हैयालालजी ५) माधव हरबस ५) हिरजी कल्याणजी ५) रतनसी लड्डा ५) नरसीभाई लीलाधर ५) अमरनाथ साहू ५) लाला वच्चूलालजी ५) छन्नू मिया ५) जातीप्रसाद दौलतराम ५) चिल्लर फंड १५६॥)॥। माईलाल भीखाभाई कम्पनी २१) गंगारामजी विठोबाजी २१) मुलजी सिक्का कंपनी २१) मोहनलालजी हरगोविंद २१) पटेलभाई बकोरभाई ११) रामकिसनजी रामनाथजी ११) हरीसिंहजी कनैयालालजी ११) शिवदयालजी लछमीनारायनजी ११) फागूजी सीतारामजी ११) हाजी वलीमहम्मद हाजी सुलेमान ७) महादेवजी चुन्नीलालजी ५) चुन्नीलालजी हीरालाल ५) शिवदयालजी बद्रीनारायनजी ५) रामगोपालजी बाबूजी ५) चिल्लर रकम १३) **राजस्थान सेवा संघ अजमेर की मार्फत**—गाराजी खेंगारजी कच्छी ५) वैद्य रामचंद्र शर्मा डाक्टर अंबालाल ३) मुंशी ललता प्रसाद २) बाबू मुसंलाल १-) राजस्थान सेवा-संघ के कार्यकर्ताओं के आठ दिनकी घी की बचत के ३) प. गंगाधर १) प. गुरुदयाल ।) इसके अलावा कुछ कपड़े और चांदी के कड़े के दो टुकड़े। **सेवासमिति जैतों की मार्फत**—जयचंदभाई जीवाभाई १०) मूलचंद माधोजी १०) मंगलदास भीखाभाई ५) चांदुमल बलीराम ५) नदराम तुलसीराम ५) चैनसुखराय हरजीमल १०) **आत्मानंद जैन सभा, अम्बाला की मार्फत**—गोपीचंद जैन ५) मंगतराय ४) चिरंजीलाल ३) वलायतीलाल २) चन्दनमल २) हरीचंद २) जिनदास २) भागमल १) परशराम १) टेकचंद १) चेतनदास १) रचनाराम १) पारसदास १) विलायतीराम १) किशोरीलाल १) गगाबिशन १) तीरथराम ॥)

गुजरात प्रान्तिक समिति में वसूल

ता. २७-८-२४ तक	४३९४-३-०
उसके बाद ता० ३० तक	१९९४-१४-९
जोड़	६३८९-१-९

यंग इंडिया, नवजीवन और
हिन्दी-नवजीवन के दफ्तरों में वसूल—

य० इं० में स्वीकृत	४,४७०-११-९
उसके बाद ता. २९-८-२४ तक	८३३-१४-९
जोड़	५३०४-९-६
इनमें बंबई-शाखा के शामिल हैं—	२५०-०-०
इनके कम करने पर शेष	५०५४-९-६

इस सप्ताह की रकम में नीचे लिखी रकमें भी शामिल हैं—जगलाल पांडे म्हेर २०) गोपालदास मास्टर बनारस ५) खोजवां आदर्श पुस्तकालय काशी १५) दीपचंद गोठा बैतूल १५) रामचन्द्र धामपुर १५) कुमारी शान्तिदेवी लखनऊ १-) रामदयाललाल भटनी ५) विमला देवी लाहौर ३) लाला तिलकराम करंगी २५) लाला भीमसेन सचर गुजरांवाला ११९) मेजर जे. एल्. किंचर सिल्चर १०) सत्यवान प्रयाग १≈) **मुल्कराज, मंत्री सेवासमिति भोपाल के मार्फत** ६२॥।-) लालसिंह सक्कर ११) जुगलकिशोर मुख्तार सरसावा ३०)

नवजीवन की बंबई शाखा में वसूल

पिछले सप्ताहों में	१५७५-४-०
य. इ. में स्वीकृत ता. २१-८-२४ तक	८५६-१२-०
उसके बाद ता. २९-८-२४ तक मिले ब्यौरे की रकम	१३४१-१२-०
जोड़	२३७३-१२-०
इनमें शामिल किये गये पूर्वोक्त	२५०-०-०
कुल जोड़	२८,८४०-१५-३

हृदय-दर्शन

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)।
विदेशों के लिए	,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, भादों सुदी ९, संवत् १९८१ रविवार, ७ सितम्बर, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

लघुतम समापवर्तक

बंबई के एक्सेल्सियर थियेटर में हुआ मेरा भाषण पाठक अन्यत्र पढेंगे। उसमें पाठकों को एक सूचना मिलेगी। अभी देश में भिन्न भिन्न दल हैं। वे एक-दूसरे के खिलाफ काम कर रहे हैं। बहुतांश में वे यह जानते भी नहीं है कि हम ऐसा कर रहे हैं। उन सबके एकत्र करने के संबंध में वह सूचना मैंने की है। क्योंकि मैं जहां जाता हूं लोग मुझसे कहते हैं, गांधीजी, सब दलों को एकत्र कर लीजिए। इसलिए मैं इस बात की चेष्टा कर रहा हूं कि किस तरह ये भिन्न भिन्न शक्तियां एकत्र हो सकती हैं, दूसरे शब्दों में यह कहूं कि वे कौनसी बातें हैं जिनमें उन लोगों की एक बडी तादाद, जिन्होंने कि देश के सार्वजनिक जीवन को बनाने में कुछ योग दिया है, परस्पर सहमत हैं या हो सकते हैं अथवा जो हमारी आन्तरिक शक्तियों की बढती के लिए अनिवार्य है। हां, बाहरी बातों से भी कुछ काम बन सकता है, पर मेरा स्वभाव ही ऐसा बना हुआ है कि मैंने अपने सारे जीवन भर भीतरी शक्तियों और गुणों की बढती का ही विचार किया है। यदि भीतरी शक्तियों का प्रभाव न हो तो बाहरी बातों का प्रयोग बिलकुल निरर्थक है। यदि शरीर की भीतरी शक्तियां पूर्णता को पहुंच गई हों तो बाहरी प्रतिकूल परिस्थिति और प्रभावों का उस पर कुछ असर नहीं होता और न उसे बाहरी साधनों की सहायता की ही जरूरत रहती है। एक बात और है। जब कि आन्तरिक अवयव सुदृढ हों तो बाहरी सहायता अपने आप उसकी ओर खिंचती हुई चली आती है। इसीसे यह कहावत पड गई है कि ईश्वर उन्हीं का सहायक है जो खुद अपनी सहायता आप करते हों। अतएव यदि हम सब मिलकर भीतरी अवयवों की पूर्णता के लिए प्रयत्न करेंगे तो हमें दूसरी किसी हल-चल में पडने की मुतलक जरूरत नहीं। पर हम चाहें ऐसा करें या न करें—कम से कम महासभा को तो भीतरी विकास तक ही अपने काम को सीमा बांध लेनी चाहिए।

अच्छा, तो अब ऐसी बढती या उन्नति के लिए आवश्यक लघुतम समापवर्तक क्या हो सकता है? मैं बराबर कहता आया हूं कि वह है चरखा और खादी, तमाम धर्मों की एकता, और हिन्दुओं के भीतर छुआछूत का त्याग। आखिरी दो बातों में शायद ही किसीका मत-भेद हो। पर मैं जानता हूं कि चरखे के संबंध में अर्थात् सारे राष्ट्र के लिए चरखा कातने और खादी धारण करने की आवश्यकता और इन कामों के करने की विधि के संबंध में—अब भी कुछ मत-भेद है। अन्यत्र मैं इस बात को दिखा चुका हूं कि हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए खादी की कितनी आवश्यकता है और घर घर चरखा कातना ही उसकी एकमात्र विधि है।

कब खातमा होगा?

पर लोग पूछते हैं कि 'काम ... [illegible] का खातमा आखिर कब होगा?' सो मेरा जहां तक ताल्लुक है, मेरी तरफ से तो खातमा ही समझिए। मुझे अब आपस में लडाई लडने की कोई भावना नहीं रह गई है। आगामी महासभा के अधिवेशन में स्वराज्यवादियों से लडने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। और न मैं नरम-दल वालों से ही लडना चाहता हूं। सुलह के लिए अपनी तरफ से मेरी कोई शर्त नहीं है—या अगर कोई शर्त है तो वह है मेरा भिक्षापात्र। मैं स्वराजी, नरम-दलवाले, लिबरल और कन्वेन्शनवाले—सबसे प्रार्थना करता हूं कि वे इस भिखारी की झोली में अपना कता सूत डाल दें। यह है मेरी मनोदशा। अतएव मैं तो राष्ट्र के तमाम कार्यकर्ताओं को सलाह दूंगा कि वे चरखा कातने, एकता बढाने और जो हिन्दू हों वे छुआछूत दूर करने ही में अपनी सारी ताकत लगा दें।

लेकिन अपरिवर्तनवादी मुझसे पूछते हैं कि ऐसी हालत में महासभा की समितियों का क्या होगा? सो मेरी धारणा तो यह है कि हमारा सारा संगठन छिन्न-भिन्न हो गया है। हमारे पास नाम लेने लायक मताधिकारियों का सघ नहीं है। और जहां कहीं रजिस्टरों में उनकी एक कसीर तादाद दिखाई देती है वहां वे लोग महासभा की कार्रवाई में उत्साह के साथ दिलचस्पी नहीं लेते हैं। ऐसी हालत में हम स्वयंभू मताधिकारी और स्वयंभू प्रतिनिधि हैं। जब मताधिकारियों की यह दशा है तब उन मुकामों पर कटुता पैदा हुए बगैर नहीं रह सकती जहां कि एक-दूसरे के खिलाफ उम्मीदवार खडे होंगे। बिला तअस्सुब के काम उसी हालत में हो सकता है जब कि मताधिकारियों की तादाद बहुत बडी हो, वे सब बातों को अच्छी तरह समझते हों और खुद किसी बात का फ़ैसला कर सकते हों। इसलिए मेरी यह सलाह है कि जहां कहीं भी संघर्ष की संभावना हो और रायें दोनों ओर [illegible]

बंटी हुई दिखाई दें वहां अपरिवर्तनवादियों को चाहिए कि उम्मीदवारी से हट जायं । और जहां कहीं संघर्ष की सम्भावना न हो तथा जहां रायें बहुत भारी तादाद में उनके पक्ष में हों, वहां वे पदाधिकारी बने रहें या अपना बहुमत बनाये रक्खें । किसी तरह की चालाकी, चालबाजी या धोखे-धड़ी से काम न लिया जाय । मताधिकारियों का दुरुपयोग करना—ऐसी-वैसी बात नहीं है । कार्यकर्ता लोग ऐसा करके अपने सिर पर एक भयंकर जिम्मेवारी लेते हैं । बहुमत के द्वारा जिन सरकारों का संचालन होता है, ऐसे दुरुपयोग और कर्तव्य-भ्रष्टता को उनके कपाल की कालिमा ही समझिए । ऐसी हालत में जो इन बातों की ज्यादह कदर करते हैं कम से कम उन्हें इनमें शरीक न होना चाहिए ।

सभापति के बारे में

महासभा का सभापति कौन होगा, यह बात अभीतक तय नहीं हो पाई है । बहुतों के लिए यह भी काम के रुक रहने का कारण हो सकता है । खेद है, जब से मैंने सार्वजनिक जीवन में फिर पांव रक्खा है तभी से मैं तमाम काम के रुकने का कारण बन रहा हूं । मुझे इस स्थिति पर बड़ा खेद है । पर क्या किया जाय ? जिस बात की कुछ दवा नहीं हो सकती उसे सहन किये ही छुटकारा ! अभीतक मुझे पता नहीं कि मैं कहां हूं । मैं ऐसा सभापति होना नहीं चाहता जिससे देश में फूट फैले । मैं उसी अवस्था में इस गौरव को प्राप्त करना चाहता हूं जब वास्तव में उसके द्वारा देश की कुछ भी सेवा हो सकती हो । बात यह है कि मैं इन दल बन्दियों से-आपस की फूट-फाट से उकता उठा हूं । जब यरवडा जेल में मैं था तब मैंने जर्मन कवि गेटे का फास्ट नामक एक नाटक दुबारा पढ़ा था । बरसों पहले एक बार मैंने उसे पढ़ा था । पर उस समय उसकी कुछ भी छाप मेरे चित्त पर न पड़ी थी । गेटे के सन्देश को मैं न ग्रहण कर पाया था । मैं नहीं कह सकता कि अब भी मैं उसे ग्रहण कर पाया हूं । हां, मैं उसे थोड़ा-बहुत समझ जरूर पाया हूं । उसकी एक स्त्री-पात्र है मार्गरेट । उसका हृदय दुःख और विषाद से व्याकुल रहता है । उसे चैन नहीं पड़ती शान्ति नहीं मिलती । क्लेश से छुटकारे का कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता । वह चरखे का आश्रय ग्रहण करती है और वह मानों अपने गीत के द्वारा उसकी व्यथा और वेदना को बाहर निकालता है । चरखे के नजदीक उसे कुछ तसल्ली मिलती है । उसके इस चरित्र-चित्रण पर मेरा ध्यान जम गया । मार्गरेट अपने कमरे में अकेली है । उसका हृदय दुविधा और निराशा से टूट-टूक हो रहा है । कवि उसे कमरे के एक कोने में पड़े चरखे के पास भेजता है । यह बात नहीं कि सान्त्वना के लिए वहां दूसरे साधन न थे । बढ़िया चुनी हुई पुस्तकों की लायब्रेरी थी, कुछ सुन्दर चित्र भी थे और एक हस्तलिखित सचित्र बाइबिल भी वहां रक्खी हुई थी । पर न तो चित्र, न वे पुस्तकें और न वह बाइबिल जो कि मार्गरेट के नजदीक ग्रन्थ-शिरोमणि थी, उसे तसल्ली देने में समर्थ थीं । वह बरबस चरखे के नजदीक जाती है और जो शान्ति उसके पास आने से इनकार करती थी वही उसे मिल जाती है । उसकी उन हृदय-द्रावक पंक्तियों का अनुवाद यहां दिया जाता है—

> छोड़ गई है शान्ति मुझे हा !
> हृदय खिन्न अति क्लान्त, म्लान ।
> हा ! खो गया, हुआ वह मेरा—
> सदा—सदा को अन्तर्धान ॥
> जिस थल पर वह नहीं, अमंगल
> है वह केवल घोर स्मशान ।
> शोक, दुःख, चिन्ता, ज्वाला है
> मुझ दुखिया को विश्व महान् ॥
> दीन, मलीन, विकल मन मेरा
> व्यथा-वेदना-व्याकुल है ।
> छीन, हीन, आहत, हिय मेरा—
> टूक-टूक, शोकाकुल है ॥
> छोड़ गई है शान्ति मुझे हा !
> हृदय खिन्न अति क्लान्त, म्लान ।
> प्रेम मुझे हा ! छोड़ तड़पती,
> हुआ सदा को अन्तर्धान ॥

आप इनके कुछ शब्दों को इधर-उधर कर दीजिए—बस ये पद्य मेरी मानसिक स्थिति का चित्र आपके सामने खड़ा कर देंगे । जान पड़ता है, मैं भी अपने प्रेम से हाथ धो बैठा हूं, और ऐसा मालूम होता है कि मैं राह भूल गया हूं-इधर-उधर भटक रहा हूं । मुझे अनुभव तो ऐसा होता है कि मेरा सखा निरन्तर मेरे आसपास है—पर फिर भी वह मुझसे दूर दिखाई देता है । क्योंकि वह मुझे ठीक ठीक राह नहीं दिखा रहा है और साफ साफ हुक्म नहीं दे रहा है । बल्कि, उल्टा, गोपियों के छलिया नटखट कृष्ण की तरह वह मुझे चिढ़ाता है-कभी दिखाई देता है, कभी छिप जाता है और कभी फिर दिखाई देता है । जब मुझे अपनी आंखों के सामने स्थिर और निश्चित रूप से प्रकाश दिखाई देगा तभी मुझे अपना पथ साफ साफ मालूम होगा और तभी मैं पाठकों से कहूंगा कि आइए, अब मेरे पीछे पीछे चलिए ।

तबतक मैं सिर्फ इतना ही करूंगा कि अपना चरखा लेकर बैठ जाऊंगा और उसीके संबंध में कहता-सुनता रहूंगा या लिखता-लिखाता रहूंगा और पाठकों को उसकी आवश्यकता और उपयोगिता जंचाता रहूंगा । अब जब कि मैं सब तरह अकेला पड़ गया हूं—चरखा ही मेरा मित्र है, वही मुझे तसल्ली देनेवाला है, मेरा अमोघ शान्तिदाता है । परमात्मा करें, पाठकों के लिए भी यह ऐसा ही साबित हो । मेरे एक और मित्र भी हैं जो कि मार्गरेट की और मेरी तरह दुःखाक्रान्त हैं । वे भी कहते हैं— "हमारे बड़े भाग्य हैं जो आपने हमें चरखा दे रक्खा है । और मुझसे जितना होता है, चरखा कात कर अपने दिल को तसल्ली दिया करता हूं ।"

फिर नागपुर

डाक्टर मुंजे ने मुझे चेताया है कि मैं नागपुर के हिन्दू-मुस्लिम-तनाजे के बारे में कुछ न लिखूं । यह तीसरा दफा नागपुर के हिन्दू-मुसल्मान आपस में लड़े हैं और एक दूसरे के साथ मार-पीट की है । क्या उन्होंने इस बात का अहद कर लिया है कि जब हम अपने पशु-बल को आजमा देखेंगे तब कहीं जाकर शान्ति के साथ किसी सुलह पर विचार करने के लिए बैठेंगे ? क्या दोनों के वैमनस्य को मिटाने का दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता ? ऐसा मालूम होता है कि नागपुर में दोनों दलों में बराबर बराबर दम-खम है । इतना होते हुए भी उन्हें जल्द ही पता लग जायगा कि हमेशा लठ-बाजी करते रहने से कुछ हासिल न होगा । अवश्य ही नागपुर में ऐसे कितने ही समझदार और तटस्थ हिन्दू और मुसल्मान होंगे जो दोनों के झगड़ों का निपटारा करा दें और पिछली बुराइयों को भुलवा दें । मन्दिरों के अपवित्र किये जाने की तरह इक्के-दुक्के राहगीरों पर टूट पड़ने का नया तरीका और निकल पड़ा है । बहुतेरे झगड़े तो क्षणिक होते हैं और उनका कारण होता है छोटी-मोटी बातों में बात का बढ़ जाना और लोगों का उबल

सकता। लेकिन बेकुसूर लोगों पर टूट पड़ना तो यही दिखलाता है कि दोनों ओर से ऐसी कोशिशें जान-बूझ कर और किसी खास तजवीज के मुताबिक हो रही हैं, पर जबतक दोनों दलवालों की तरफ से ठीक ठीक और विश्वसनीय समाचार न मिलें तबतक मुझे चुपचाप सहन करना लाजिमी है। ऐसी अवस्था में मैं सिर्फ इतनी आशा भर कर सकता हूं कि समझदार और तटस्थ लोग दोनों जातियों में राजी-रजामन्दी के साथ स्थायी शान्ति करा देने में कोई बात न उठा रक्खेंगे।

काशी में कताई

अध्यापक रामदास गौड़ काशी की म्युनिसिपल पाठशालाओं में चरखे का प्रचार कर रहे हैं। उन्होंने अपने काम की रिपोर्ट भेजी है; जिससे जाना जाता है कि उन्होंने किस प्रकार वहां लड़कों में चरखे का प्रवेश कराया। पहले तो उन्होंने ४० पुराने चरखे और धुनकने के धनुहे आदि खरीदे। फिर उन्होंने १३ शिक्षकों को सूत कातना सिखाया। उन शिक्षकों ने दूसरे साथी शिक्षकों को बताया। इस तरह कुछ ऊपर एक महीने में १७५ शिक्षक खासे कताई के उस्ताद बन गये। गौड़जी की धर्मपत्नी और कन्या ने इसमें उनकी सहायता की। इसपर गौड़जी अभिमान के साथ कहते हैं कि हर एक पाठशाला में कोई चरखा मास्टर अलहदा रक्खा जाता तो कमसे कम-१००००) साल खर्च उठाना पड़ता.........कोई ५-६ सप्ताह तक मैंने अपना सिर्फ ४ घण्टा समय मौजूदा शिक्षकों को कातना सिखाने में लगाया और यह समस्या हल हो गई।" आगे आप कहते हैं "अब ऐसा कोई शिक्षक नहीं रह गया है जो कातना या धुनकना न जानता हो और आगे ऐसे किसी स्त्री या पुरुष का शिक्षक की जगह नहीं दी जायगी, जो धुनकना और कातना न जानता हो।" गौड़जी अपनी आगे की तजवीज इस तरह बयान करते हैं-

"जब यह कठिनाई हल हो गई तब मैंने बोर्ड में एक सविस्तर तजवीज पेश की-२६ अपर प्राइमरी स्कूलों में ३५० चरखे दाखिल किये जांय, कमसे कम ७०० लड़कों को धुनकना और कातना सिखाया जाय, ६ करघे बुनाई के लिए जारी किये जांय, एक बुनाई-शिक्षक, एक निरीक्षक, एक बढ़ई और इतना कपास दिया जाय जिसमें हर विद्यार्थी आध घण्टे तक रोज काम कर सके। इसके लिए ६०००) प्रति वर्ष दरकार है। पर बोर्ड इसपर पसोपेश में पड़ी और दो महीने तक इस सवाल को आगे धकाती रही। आखिर पिछली २६ जुलाई को बोर्ड ने एक साल के लिए ३,०००) मंजूर किया। ऐसी हालत में मुझे कपास की मद प्रायः बिलकुल निकाल देनी पड़ी और दूसरी मदों में भी इस तरह काट-छांट करनी पड़ी जिससे काम छोटे पैमाने पर बामिजाज चल सके। अब मैं सिर्फ ३०० चरखे और ६०० चमरखें आश्रम के नमूने के मँगा रहा हूं। आश्रम में मैंने जो कुछ देखा उसके अनुसार कुछ थोड़ा सुधार कर देने से मैं उम्मीद करता हूं कि एक हजार लड़के-लड़की कातना सीख जायगें और रोज चरखा कात कर अच्छा सूत निकाल सकेंगे। अब सिर्फ चरखों के बन आने की इन्तजारी है-वे तो बनते ही बनेंगे। पर इस बीच मै लड़के-लड़कियों के मां-बाप और पालकों से प्रार्थना कर रहा हूं कि वे कपास का इन्तजाम अपने घर से कर दिया करें। चरखा वगैरह चीजें मैं जूना-जरूरी बातें मैं बता दिया करूंगा और वे सिर्फ कपास का इन्तजाम करेंगे। सूत के मालिक वे रहेंगे और अगर वे चाहें तो हमें दे कर खादी बनवा लेंगे। मैं सिलाई सिखाने का भी इन्तजाम कर रहा हूं जिससे खादी की सिलाई सस्ती हो जाय।"

लोग इस आजमाइश को दिलचस्पी और हमदर्दी के साथ देखेंगे। मुझे आशा करनी चाहिए कि और शिक्षक भी अध्यापक रामदास गौड़ का अनुकरण करेंगे।

मलाबार-संकट-निवारण

मलाबार के प्रलय-पीड़ित जनों की पुकार का जवाब धन और कपड़े-लत्ते दोनों के रूप में अच्छी तरह मिल रहा है। परन्तु सबसे अधिक सन्तोषजनक बात यह है कि गरीब-गुरबा भी इसमें अपनी तरफ से अच्छी सहायता कर रहे हैं। अछूत-भाई भी दिल खोल कर चन्दा भेज रहे हैं। मेरे सामने इस समय एक मर्मस्पर्शी पत्र रक्खा हुआ है। उससे जाना जाता है कि एक कुटुम्ब ने अपनी सारी बचत की रकम भेज दी है। यह रकम उन्होंने तरह तरह से कम खर्च करके बचाई थी। प्रोप्रायटरी हाईस्कूल, अहमदाबाद के लड़कों ने ७५०) दिये हैं। गुजरात महाविद्यालय ने ५००) दिये हैं, जिनमें से २००) की उन्होंने नंगों के लिए खादी खरीद की है। मुझे यकीन होता है कि ऐसे दानों की खबर पहुंचने से हमारे उन पीड़ित भाइयों को जरूर सच्ची तसल्ली होगी। मैं आशा करता हूं कि कार्य-कर्ता लोग इस बात को महसूस कर लेंगे कि कुदरत ने हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों और यहूदियों में कोई भेद-भाव नहीं रक्खा है। और इसलिए वे भी ऐसे भेद-भाव से परहेज करेंगे। यदि भिन्न भिन्न दल के लोग अपनी अपनी संस्थाओं के द्वारा मदद पहुंचावें तो इसमें कोई हर्ज नहीं। पर अगर वे महज अपनी ही जातिवालों की सहायता करेंगे तो यह बिलकुल नागवार होगा।

एक उपदेश

"मुसल्मानों की चापलूसी करने की ऐसी लत आपको पड़ गई है कि आप हमेशा यही मानते हुए दिखाई देते हैं कि आप उन्हें उसी अवस्था में हिन्दुओं के साथ रख सकते हैं जब कि उन्हें बिलकुल दोषी न मानें। पर अब तो आपको न्याय की दृष्टि से दोनों पक्षों में निन्दा अथवा स्तुति बांट देनी पड़ेगी। क्योंकि निर्बल और सीधे लोगों की ही हमेशा गलती निकालने और बलवान् तथा जाहिल लोगों की चापलूसी करने की नीति मे बुद्धिमानी नहीं है।"

एक हिन्दू-मित्र ने मुझे एक लंबा-चौड़ा उपदेश सुनाया था। उसका यह एक छोटा सा टुकड़ा है। मै जानता हूं कि दूसरे अनेक हिन्दू ऐसे ही विचार रखते हैं। पर सच बात यह है कि वहम और आवेश से भरे वायु-मण्डल में मेरी निष्पक्षता के पक्षपात समझ लिए जाने की बहुत आशंका है। यदि मैं इस्लाम अथवा मुसल्मानों का जरा भी बचाव करता हूं तो उन हिन्दुओं को आम तौर पर चोट पहुंचती है जो इस्लाम अथवा मुसल्मानों के अन्दर किसी भी अच्छी चीज को देखने से इनकार करते हैं। पर इससे मैं विचलित नहीं होता। क्योंकि मैं जानता हूं कि किसी न किसी दिन तो मेरे हिन्दू आक्षेपक मेरी दृष्टि की यथार्थता को कुबूल करेंगे। शायद वे इस बात को भी मानेंगे कि जबतक एक पक्ष दूसरे पक्ष का दृष्टि-बिन्दु समझने, उसकी कदर करने और उसके लिए कुछ झुकने को तैयार न हो तबतक एकता होना असंभव है। इसके लिए चाहिए बड़ा दिल, चाहिए उदारता। हमें उसी तरह दूसरों के साथ वर्ताव करना चाहिए जिस तरह हम चाहते हों कि दूसरे लोग हमारे साथ करें।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

निखिल भारतवर्षीय पन्द्रहवां हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आगामी ७-८-९ नवम्बर १९२४ को होना निश्चित हुआ है। हिन्दी पत्रों और पुस्तकों की एक प्रदर्शनी भी होगी। समाचार-पत्र और पुस्तकें भेजने की प्रार्थना मन्त्रीजी करते हैं।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, भादों सुदी ९, संवत् १९८१

पतितों के लिए

कोई तीन साल पहले बरीसाल में मुझे हमारी पतित बहनों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो हमारे—पुरुषों के विषय-भोग का शिकार हो रही हैं। उनमें से कुछ ने मुझसे कहा था—"हमें दो से तीन रुपया रोज आमदनी होती है। आप हमें ऐसा कोई काम बताइए जिससे हमें इतनी आमदनी हो जाया करे।" एक क्षण के लिए तो मेरा कलेजा बैठ गया—पर तुरन्त ही मैं सँभल गया और कहा—"नहीं, बहनों, मैं तुम्हें ऐसा तो कोई काम नहीं बता सकता जिससे तुम्हें २-३) रोज मिल सके; पर मैं इतना जरूर कहूंगा कि तुम यह पेशा छोड़ दो, तुम्हें भूखों भी मरना पड़े तो हर्ज नहीं। हां, चरखा एक ऐसी चीज है। अगर तुम उसे अपनाओगी तो वह तुम्हारी मुक्ति का साधन हो सकता है।"

ये पतित बहनें तो भारत के पतित जन-समाज का एक अल्पांश-मात्र हैं। उड़ीसा के नर-कंकाल भी एक अर्थ में इसी समाज के अंग हैं। पतित बहनें जिस प्रकार हमारे विषय भोग की शिकार हो रही हैं उसी तरह ये उड़ीसा के हड्डी-चमड़े के पुतले हमारे अज्ञान के शिकार हो रहे हैं। हमारी इन्द्रियों की पाशविक तृप्ति नहीं, बल्कि धन की लोभाभिलाषा ने उन्हें अस्थिचर्मावशिष्ट कर दिया है। उनके कलेजे के खून से हम मालामाल हो रहे हैं।

पर, अब, ईश्वर को धन्यवाद है कि हम मध्यवर्ग के पढ़े-लिखे लोग अपनी पतित बहनों और क्षुधा-पीड़ित भाइयों के दुःखों को अपना दुःख बनाने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। हम स्वराज्य इसीलिए चाहते हैं कि जिससे उन्हें जीवन मिले। पर हम सब लोग गांवों में आ कर देहातियों की सहायता नहीं कर सकते। हमारी पतित बहनों का चित्र हमें चौबीसों घण्टे इस बात की याद दिलाता रहता है कि हमें अपना चरित्र निर्मल, निष्कलंक करना चाहिए। तब सवाल है कि हम कौन उपाय करें जिससे हमें बराबर उनका खयाल होता रहे, उनकी दुःस्थिति से हमारा हृदय व्यथित होता रहे? हर रोज उनके लिए हमें क्या करना उचित है? हम कमजोर हैं, इतने कि थोड़ा-बहुत जो कुछ उनके लिए कर सकें वही गनीमत। तो वह कौनसा काम है? मेरी नजर में तो सिवा चरखे के और कुछ नहीं दिखाई देता। वह काम ऐसा होना चाहिए जिसे अपढ़-कुपढ़ और पढ़े लिखे, भले और बुरे, बालक और बूढ़े, स्त्री और पुरुष, लड़के और लड़कियां, कमजोर और ताकतवर, फिर वे किसी जाति और धर्म के हों, कर सकें। फिर वह ऐसा होना चाहिए जो सब के लिए एक हो एक-सा हो तभी उससे कुछ काम बन सकता है—वह फलदायी हो सकता है। चरखा ही एक ऐसी वस्तु है जिसमें ये सब गुण हैं। अतएव जो कोई स्त्री या पुरुष रोज आध घण्टे चरखा कातता है वह भरसक अच्छी से अच्छी सेवा जन-समाज की करता है। यही नहीं, वह भरत-भूमि के पतित मानव समाज की सेवा तहे दिल से और सेवा के भाव से, करता है और इस तरह उनको सेवा के लिए स्वराज्य को दिन पर दिन नजदीक लाता है।

हम भारतवासियों के लिए तो चरखा अपनी तमाम सार्वजनिक और सामुदायिक जीवन की नींव ही समझिए। उसके बिना किसी भी प्रकार के स्थायी सार्वजनिक जीवन का निर्माण करना असंभव है। यही एक ऐसा प्रत्यक्ष प्रेम-पाश है, जो हमें अपनी जन्म-भूमि के छोटे से छोटे व्यक्ति के साथ जकड़ कर बांधता है; और उन्हें आशा का सन्देश पहुंचाता है। हां, यदि जरूरत हो तो हम चाहें और चीजें उसके साथ शामिल कर लें; पर सब से पहले हमें उसकी जड़ मजबूत कर लेना चाहिए। होशियार कारीगर पहले इमारत की बुनियाद को पक्का कर लेता है—फिर उसपर मंजिलें बांधता है और इमारत जितनी ही बड़ी और ऊंची बनानी होती है उतनी ही अधिक गहरी और मजबूत वह नींव को करता है। अतएव यदि हम चाहें कि चरखे की कुछ करामात हमें दिखाई दे तो हमें घर घर उसका प्रचार कर देना चाहिए।

परन्तु चरखा खाली देश के ऊंचे और नीचे लोगों को ही एक शृंखला में नहीं बांधेगा, बल्कि वह देश के विविध राजनैतिक दलों को भी एक सूत्र में बांधने का साधन होगा। तमाम दल के लिए यह सर्व-साधारण होगा। वे चाहें तो भले ही दूसरी तमाम बातों में मत-भेद रखते रहें, पर कम से कम इसपर सब सहमत हो सकते हैं।

अतएव मैं हरएक शख्स से, जिसके हृदय में अपने देश के प्रति प्रेम हो, जो देश के दरिद्र और पतित मजदूरों से अनुराग रखता हो, प्रार्थना करता हूं कि कृपा कर आध घण्टा रोज अथवा समय चरखे के लिए दीजिए और उनके लिए, ईश्वर के नाम पर, एकसा और मजबूत सूत भेजिए। राष्ट्र के लिए उनकी तरफ से यह दान होगा। अतएव वे अ० भा० खादी-मण्डल के पास उसे भेज दें—बराबर नियम से जैसे कि किसी धार्मिक नियम का पालन वे करते हों।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हृदय-दर्शन

[पिछले सप्ताह गांधीजी के कई भाषण बंबई में हुए। उनमें एक भाषण प्रायः शब्दशः यहां दिया जाता है। सभा में भिन्न भिन्न दलों के वक्ता और लोग एकत्र थे। अनेक वक्ताओं ने गांधीजी की अपार प्रशंसा की थी। श्री जमनादास द्वारकादास ने अपने भाषण में गांधीजी के लिए 'गांधीजी' शब्द का प्रयोग किया। इस पर कुछ लोग चिल्लाने लगे 'महात्माजी' कहिए। जमनादासजी ने शिष्टतापूर्वक उत्तर दिया—'महात्मा' शब्द गांधीजी को प्रिय नहीं है। मैं उनको अप्रसन्न करना नहीं चाहता। उन्होंने यह भी कहा कि गांधीजी को मैं भारतमाता का सबसे श्रेष्ठ पुत्र मानता हूं। इसी घटना के बदौलत उस दिन की पचरंगी सभा को गांधीजी के अगाध हृदय के विषाद, करुणा और प्रेम-भाव का दर्शन हुआ।

सरोजिनी देवी ने अपने भाषण में एक गुरु की कथा कही थी जिसका शिष्य जहां जाता बहुत बोलता था, पर गुरु चुप रहते थे। और एक जगह गुरुने शिष्य से कहा कि यदि लोग मेरे आचरण को नहीं देखते तो फिर मेरी बकवाद से क्या लाभ?

उप-संपादक]

"मेरा हथियार

आज यहां इतने व्याख्यान हुए हैं कि यदि सरोजिनी देवी की सलाह के अनुसार मैं चुप ही रहूं तो हर्ज नहीं। पर इसमें एक कठिनाई है। मैं अपना हथियार घर रख आया हूं। यदि उसे यहां लाया होता तो आपको पदार्थ-पाठ दे कर कहता कि सब चरखा ले कर मेरी तरह कातने लग जाइए।

चुपचाप मदद

मुझे पता नहीं था कि सरोजिनी बहन से आज ऐसी नसीहत मिलेगी, या मेरे भाग्य में इतने स्तुति-स्तोत्रों को सुनना बदा होगा। मैं अपनी तारीफ सुन सुन कर थक गया हूं। आप निश्चित मानिए, तारीफ मुझे जरा भी नहीं सुहाती। पर यहां इस बारे में अधिक नहीं कहना चाहता। सिर्फ इतना ही कहूंगा कि जिन्होंने मेरी प्रशंसा की है उनका मैं कृतज्ञ हूं और उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे भी जयकर के कथनानुसार चुपचाप मुझे सहायता करें। यदि आप सब की मूक सहायता मुझे मिलेगी तो इस भारी जिम्मेदारी वाले काम का भार उठाया जा सकेगा।

प्रायश्चित्त

कुछ और कहने के पहले मैं कुछ भाइयों से प्रायश्चित्त कराना चाहता हूं। जब कभी हम किसी सभा में जायं तो वहां हमें शिष्टाचार का पालन पूरा पूरा करना चाहिए। सभा में जो लोग निमन्त्रित किये जाते हैं उनके स्वभाव और रुचि को देख कर हमें उसके अनुकूल व्यवहार करना चाहिए। यदि हम ऐसा न कर सकें तो बहतर है कि वहां न जायं। सभा के इस नियम का भंग दो-तीन भाइयों ने किया है। भाई जमनादास ने जो कुछ कहा वह अक्षरशः सच था। 'महात्मा' के नाम पर अनेक वाहियात बातें हुई हैं। मुझे 'महात्मा' शब्द की बदबू आती है। फिर जब कोई इस बात का इसरार करता है कि मेरे लिए 'महात्मा' शब्द का ही प्रयोग किया जाय तब तो मुझे असह्य पीड़ा होती है, मुझे जिन्दा रहना भारभूत मालूम होने लगता है।" यदि मैं इस बात को जानता न होता कि मैं ज्यों ज्यों 'महात्मा' शब्द के प्रयोग न करने पर जोर देता हूं त्यों त्यों उसका प्रयोग अधिकाधिक होता है तो मैं जरूर लोगों का मुंह बंद कर देता। आश्रम में मेरा जीवन बहता है। वहां हरएक बच्चे, स्त्री, पुरुष सब को आज्ञा है कि वे 'महात्मा' शब्द का प्रयोग न करें, किसीको पत्र में भी मेरा उल्लेख 'महात्मा' शब्द के द्वारा न करें। मुझे वे सिर्फ गांधी या गांधीजी कहा करें। जिन लोगों ने भाई जमनादास को रोका है उन्होंने मेरे प्रति शिष्टाचार का भंग किया—यही नहीं, बल्कि आप सब के प्रति अशिष्ट व्यवहार किया, शान्ति का भंग किया। हमारा संग्राम शान्तिमय है। विनय और शिष्टाचार के बिना शान्ति कैसे हो सकती है? विनयहीन शान्ति जड़ शान्ति होगी। हम तो चैतन्य के पुजारी हैं। और चैतन्यमय शान्ति में तो विवेक, शिष्टता, विनय जरूर रहता है। इसलिए मेरी सलाह है कि जिन लोगों ने जमनादासजी के भाषण में रोक-टोक की है वे सब उनसे माफी मांगें। जमनादासजी ने मेरी बड़ी स्तुति की है। पर अगर उन्होंने यह भी कहा होता कि गांधी के बराबर दुःखदायी मनुष्य एक भी नहीं है—और जो ऐसा मानते हों उन्हें ऐसा कहने का पूरा अधिकार है—तो भी उन्हें रोकने का अधिकार किसीको नहीं, तो भी हमें उचित है कि हम शिष्टता और सभ्यतापूर्वक उनके भाषण को सुनें [इस जगह दो-तीन लोगों ने खड़े कर हाथ जोड़ कर जमनादासजी से माफी मांगी]

"आशा प्रार्थी हूं"

अच्छा, अब कोई ऐसा कुसूर न करें। जितने मनुष्य उतने मत हुआ करते हैं। यदि हम एक दूसरे के विचारों को बरदाश्त न करेंगे तो कैसे काम चल सकता है? आज हिन्दू मुसलमान को सहन नहीं करते हैं और मुसलमान हिन्दुओं को नहीं कर रहे हैं और मन्दिरों को तोड़ते हैं। यदि दोनों सहिष्णुता का पाठ सीख लें तो तमाम झगड़े बन्द हो जायं। सहिष्णुता से सब लोग अपने सारे जीवन में लाभ उठाते हैं। एक बार जहां उसका प्रचार हो गया कि फिर हिन्दू-मुसलमान पारसी सब एक दूसरे के विरोध को सहन करेंगे। हमारी प्रगति में बाधक होनेवाली सबसे बड़ी वस्तु है असहिष्णुता। मैं इस स्थिति को दूर करने की कोशिश कर रहा हूं। मैं अल्पप्राणी हूं, महाप्राणी नहीं। यदि महाप्राणी होता तो इस असहिष्णुता को सहज ही रोक सकता। अभी मेरे अन्दर शुद्धता, प्रेम, विनय, विवेक की खामी है। नहीं तो आपको मेरी आंखों में और जबान में वह बात दिखाई देती कि आप हमारे में समझ जाते कि शान्तिमय असहयोग का यह तरीका नहीं है। मैं तो आपको कह चुका हूं कि वाइसराय हमारा शत्रु नहीं है, ओडायर भी हमारा शत्रु नहीं है—उन्हें आप अपना दुश्मन न मानिए—भले ही उन्होंने काम दुश्मनों जैसा किया हो—उनपर आप दयाभाव रखिए। यदि हम उन तक को हिकारत की नजर से नहीं देख सकते तो फिर जमनादासजी को किस तरह दुरदुरा सकते हैं। हमारे यहां जब कोई अतिथि आता है तब हम अपने घर के लोग और इष्ट-मित्रों को दूर बैठाकर उसे आसन पर बिठाते हैं। यदि जमनादास हमारे विरोधी हों तो भी वे हमारे अतिथि हैं। अतएव हम उनका अपमान नहीं कर सकते। और अगर वे हमारे भाई न हों तो उन्हें नीचा दिखाने की बात ही नहीं ठहर सकती।

आप लोगों ने जो जमनादासजी का अपमान किया, इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ था। पर आपके अत्यन्त नम्रता के साथ माफी मांग लेने से वह दुःख सुख के रूप में बदल गया है। यह मुझे बड़ा अच्छा मालूम हुआ। जिन लोगों ने माफियां मांगी हैं उनका तो कल्याण होगा ही, पर हम लोगों का भी जो कि इस दृश्य के साक्षी हैं, अवश्य भला होगा। ऐसे दृश्य धारासभाओं में हमें नहीं दिखाई दे सकते। मैं यहां धारासभा की चर्चा नहीं छेड़ना चाहता। इस उल्लेख के लिए जयकर साहब मुझे क्षमा करें। इस प्रायश्चित्त में मुझे सच्चे स्वराज्य की जड़ दिखाई देती है।

प्रलय-संकट-निवारण

श्री० देवधर ने यदि मलाबार का जिक्र न किया होता तो भी हर्ज न था। क्योंकि आज हम मलाबार के भाई-बहनों के प्रति आदर-भाव प्रदर्शित करने के ही लिए एकत्र हुए हैं। आप लोगों ने तो यथाशक्ति टिकट खरीद कर उनको सहायता की है। श्री० देवधर के भाषण का दुहेरा हेतु था। इसके अलावा उन्होंने आपसे निःस्वार्थ सेवा भी मांगी है। और मैं इससे सहमत हूं। 'नवजीवन' और 'यं. इं.' के पाठकों को मालूम है कि मैं तो बरसों से भी कहता हूं कि जब हमारे सगे भाई-बहन भूखे हों तो तुम क्या करोगे? क्या तुम उन्हें अपने कपड़े और खाने में से कुछ हिस्सा न दोगे? तुम कम खाना खाओ, कम कपड़े पहनो और बचत की रकम मलाबार के लिए दो। मैं इस तरह का दान आपसे मांगता हूं। मुझसे बार बार यह सवाल किया जाता है कि इन दानों का सद्व्यय होता है या नहीं? यह शंका उचित भी है और अनुचित भी है। जहां श्री० देवधर हों वहां अप्रामाणिकता हो ही नहीं सकती। कितनी ही बातों में इनके मेरे विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर है, इनके कितने ही विचार मुझे पसन्द नहीं हैं; परन्तु इनकी पवित्रता के संबंध में मुझे जरा भी शक नहीं। इनके गरीब से घर में मैं जब जब जाता हूं तब तब मुझे मालूम होता है कि इसमें आत्मा का निवास है। ये जंगलों में

घूमते हैं, धूप-छांह की परवा नहीं करते, खराब आबहवा को सहन करते हैं—यह सब महज शुद्ध-सेवा के लिए। अतएव इनके काम में हमें क्यों सहायता न देना चाहिए। हां, यदि वे चरखा के खिलाफ कुछ कहें तो, मैं कहता हूं, इनकी बात बिल्कुल न सुनिएगा।

'अपूर्ण, सम्पूर्ण सलाह कैसे दे?'

हिन्दुस्तान मुझसे कुछ आशा कर रहा है। वह समझता है कि बेलगांव में मैं ऐसा कोई रास्ता बताऊंगा जिससे हम सब एक मत हो जायंगे, अथवा विरोधी विचारों को सहन करने लगेंगे। मैं अपने आपको धोखा नहीं दे सकता। अपनी तारीफ सुनकर मैं यह नहीं मान लेता हूं कि मैं उस तारीफ के लायक हूं। मेरी स्तुति का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि अभी मुझसे अधिक आशा रक्खी जाती है—अधिक प्रेम की, अधिक त्याग की, अधिक सेवा की आशा की जाती है। पर मैं यह किस तरह कर सकूंगा? मेरा शरीर अब कमजोर पड़ गया। उसका कारण हैं मेरे पाप। बिना पाप किये मनुष्य रोगी नहीं हो सकता। ईश्वर ने हमें शरीर नीरोगी रखने के लिए दिया है। पाप का मतलब है कुदरत के नियमों का जान या अनजान में उल्लंघन। राज्य के कानून का उल्लंघन यदि बे-जाने भी हो तो दण्ड मिलता है। फिर प्रकृति के कानून के भंग होने का दूसरा परिणाम कैसे हो सकता है? चोर को माफी नहीं मिल सकती। हां, अपराध यदि अनजान में हुआ हो तो सजा थोड़ी होती है। इसके अलावा और कोई भेद नहीं है। मैं जो बीमार हुआ उसका कारण है मेरा ऐसा कोई पाप ही। और जबतक मेरे हाथों ऐसे पाप जान में या अनजान में होते रहेंगे तबतक समझना चाहिए कि मैं अपूर्ण मनुष्य हूं। अपूर्ण मनुष्य सम्पूर्ण सलाह कैसे दे सकता है? इससे मैं उलझन में पड़ा हुआ हूं।

शान्त, मधुर, सत्याग्रह

फिर भी मेरे पास दूसरा कोई साधन नहीं है। बस एक ही रास्ता है—सत्याग्रह। अबतक मैंने सत्याग्रह का भीषण स्वरूप देश के सामने उपस्थित किया है। अब शान्त, मधुर और गंभीर स्वरूप पेश करना चाहता हूं। उसका अनुकरण यदि हो तो फिर जय ही जय है। मैं मानता हूं कि मुझे सत्याग्रह-शास्त्र पूरी तरह अवगत है। मुझे बराबर यह भय बना रहता है कि आज की हालत में भारतवर्ष उस स्वरूप को हजम न कर सकेगा। यदि हम समझ के साथ शान्त स्वरूप का इस्तैमाल करेंगे तो बेलगांव के पहले तक हम बहुत काम कर सकेंगे। इसमें सहयोगी, असहयोगी, कट्टर अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी, स्वराजी, लिबरल, कनवेन्शन वादी, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी, सब शामिल हो सकते हैं। सत्याग्रह का अर्थ केवल सविनय भंग ही नहीं है।

कल ही मैंने कितनी ही सूचनायें पण्डित मोतीलालजी के पास भेजी हैं। पण्डितजी के साथ मेरी कितनी घनिष्ठता है, यह बात सब लोग जानते हैं। उनके पत्र में मैंने अपना सारा हृदय खोल कर रख दिया है। क्योंकि यदि मैं उन्हें समझा सका तो मैं औरों को भी समझा सकूंगा। विदुषी बेसेंट कल मुझसे मिली थीं। उन्हें भी मैंने ये बातें कहीं। विदुषी बेसेंट की उमर कहां? उनका अनुभव कहां? उनके सामने तो मैं एक बालक-सा हूं। मैंने उसी तरह उनके सामने अपनी बात पेश की जिस तरह बच्चा मां के सामने करता है। इसी ही नम्रता के साथ मैं अपने विचार श्री० शास्त्रीजी के सामने पेश करूंगा। अंगरेजों पर भी प्रकट करूंगा। यदि सब लोगों की समझ में आ जाय तो हमें तुरन्त इसका लाभ मिल सकता है। तफसील की बातों में मैं यहां पड़ना नहीं चाहता। आप इतना जरूर समझ रखिए कि इसमें चरखा अवश्य ही शामिल है। मेरी तमाम योजनाओं के कोने कोने में चरखा जरूर रहेगा। इसके बिना न मैं जी सकता हूं, न भारतवर्ष जी सकता है। मैं देखता हूं कि ऐसा समय आ रहा है जब इसके बिना आपका भी काम न चल सकेगा।

दीन-दुखियों को भजो

आप मुझे 'महात्मा' मानते हैं। इसका कारण न तो मेरा सत्य है, न मेरी शान्ति है, बल्कि दीन-दुखियों के प्रति मेरा अगाध प्रेमही उसका कारण है। चाहे कुछ भी हो जाय पर इन फटेहाल नरकंकालों को मैं नहीं भूल सकता, नहीं छोड़ सकता। इसीसे आप समझते हैं कि गांधी किसी काम का आदमी है। इसलिए अपने प्रेमियों—रतनशी, जमनादास, पिकथाल, बयकर,—सबसे मैं कहता हूं कि आप मेरे प्रति यदि प्रेम भाव रखते हैं तो ऐसी कोशिश कीजिए कि देहात के लोगों को, जिन्हें कि मैं प्रेम करता हूं, अन्न-वस्त्र मिले बिना न रहे। इन दीन-दुखियों को आप भजिए। किस तरह भजेंगे? सो मैं बताता हूं। जो झूठ-मूठ माला फेरता होगा उसे मुक्ति कभी न मिलेगी, उल्टी अधोगति प्राप्त होगी; क्योंकि ऊपर से माला फेरते हुए वह अन्दर तो छुरी ही घिसता रहेगा। मैं मानता हूं कि चरखा चलाते हुए भी मेरे मन में मलिनता होने की संभावना है। पर मलिनता के होते हुए भी कातने के बाह्य फल से तो मैं वंचित नहीं रह सकता। मैं तो सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि ईश्वर या खुदा का नाम लेकर मैं भारत के दरिद्रों के लिए चरखा कातता हूं और आपसे भी ऐसा ही करने की प्रार्थना करता हूं। हो सकता है कि इसमें भूल हो। भविष्य में अर्थ-शास्त्री शायद बतावेंगे कि इसमें भूल है, पर वे कुबूल करेंगे कि इस भूल से भी लाभ ही हुआ है। क्योंकि उससे थोड़ा-बहुत सूत तो मिला होगा और देश में कपड़े की बढ़ती हुई होगी। मुझे सर दिनशा वाच्छा का शिष्य ही समझिए। उन्होंने बताया है कि भारत में फी इसम १३॥ गज कपड़ा दरकार होता है; पर मिलता है सिर्फ ९॥ गज ही। अर्थात् फी इसम ४ गज और पैदा करने की जरूरत है। यदि आप हर रोज १०० गज सूत कातेंगे तो सूत का एक भारी ढेर लग जायगा। एक एक सूत के तन्तु से मजबूत रस्सी बन जाती है। यदि हम सब मिलकर सूत कातेंगे तो उससे हिन्दुस्तान को हम ढक सकेंगे और बांध सकेंगे। मुझे तो अटल विश्वास है कि यदि आप एक बार कातने लगेंगे तो कहेंगे कि गांधी ठीक कहता था।

मुझे इस बात पर विश्वास है कि मेरे प्रति आपका जो प्रेम है उसका कारण और कुछ नहीं—यही है कि मैं दीन-दुखियों के साथ तदाकार हो गया हूं। मैं भंगी के साथ भंगी हो सकता हूं, ढेढ के साथ ढेढ होकर उसका काम कर सकता हूं। यदि इस जन्म में अस्पृश्यता न मिट जाय और मुझे दूसरा जन्म लेना पड़े तो मैं चाहता हूं कि भंगी के ही घर मेरा जन्म हो। यदि अस्पृश्यता के कायम रहने के कारण मुझे हिन्दू-धर्म छोड़ देना पड़े तो मैं जरूर छोड़ दूं और कलमा पढ़ लूं या बप्तिस्मा ले लूं। पर मुझे तो अपने धर्म पर इतनी श्रद्धा है कि मुझे उसीमें जीना और उसीमें मरना है। सो इसके लिए भी यदि फिर जन्म लेना पड़े तो भंगी के ही घर में जन्मूंगा। इसी कारण मैं कहता हूं कि यदि भंगियों, ढेढों, और उड़ीसा के कंगालों पर आपको दया आती हो तो आप विलायती और मिल के कपड़े को भूल जाइए और उन गरीबों का बनाया और ढेढों का बुना कपड़ा पहनिए। वे हमें हमारी आवश्यकता के अनुसार कपड़ा किस तरह दे सकते हैं? वे तो भयभीत लोग हैं। काठियावाड़ की कितनी ही कंगाल बहनों को एक-दो आने भी नहीं मिलते।

उन्हें जब चरखे दिये गये तो उन्हें कुछ पैसे मिलने लगे थे। आज उनके चरखे बंद हो गये हैं। इसलिए वे दो चार पैसे के लिए रोती-फिरती हैं। ऐसी कितनी ही बहनें हैं। इन बहनों को अब मैं कहूंगा कि जयकर कातते हैं, सरोजनी कातती हैं, मिसेज बिसेंट कातती हैं, दादाभाई की पौत्री कातती हैं, शास्त्रीजी कातते हैं तो फिर उनके पास जाते हुए और उनसे फिर चरखा कताते हुए मुझे शरम न आवेगी।

सदाव्रत नहीं चाहता

मैं हिन्दुस्तान में सदाव्रत-दानशालायें नहीं खोलना चाहता। मैं तो सदाव्रतों को-दानशालाओं को दूर करना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि सदाव्रत-दानशालायें हमारे सिर कलंक हैं। इस लिए मैं चाहता हूं कि सब स्वाश्रयी बन जायं। इन बहनों को मैं चार पैसा मुफ्त नहीं दिलाना चाहता। मैं तो इन्हें केवल स्वाश्रयी बनाना चाहता हूं। यदि आप इन बहनों को दूसरे गरीबों को और ढेड़-भंगी को भी स्वाश्रयी बनाना चाहते हों तो यह यज्ञ शुरू कीजिए। हरएक शख्स को अपने हाथसे कता हुआ २००० गज सूत देना चाहिए। फिर मैं एक साल ही में स्वराज दिला दूंगा।

लेकिन याद रखिए मैं मीयाद का वादा नहीं करता हूं। अकेले आप ही कातेंगे तो स्वराज्य मिल जायगा, यह भी नहीं कहता। लेकिन सब कातेंगे तो स्वराज्य मिल जायगा, यह अवश्य कहता हूं। यदि आप कातोगे तो यकीनन दूसरों से भी सूत कता सकोगे। भगवद्गीता में कहा गया है "यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत् तदेवेतरो जनः।" श्रेष्ठ पुरुषों के बर्ताव के अनुसार ही दूसरे लोग भी चलते हैं। यह कहा जाता है प्रिन्स ऑफ वेल्स जैसे पोशाक के नये नये तरीके बदलते हैं वैसे ही दूसरे लोग भी बदलते हैं। आप लोग तो हिन्दुस्तान की नाक समझे जाते हैं—अथवा आप चाहते हैं कि आप वैसे ही समझे जाय। आप यदि कातना शुरू कर देंगे तो क्या दूसरे वैसा नहीं करेंगे?

लेकिन इस बात को भी मैं छोड़ देता हूं। आप लोगों के कातने से स्वराज मिले या न मिले किन्तु मैं आप लोगों से इतनी भिक्षा जरूर मांगता हूं कि यदि आपको भिखारियों के प्रति कुछ दया हो तो उस दया-भाव से प्रेरित हो कर भी आप उनके लिए कातिए। भिखारियों के साथ एक हो जाइए, आप अपने को उनसे मिला दें। मीराबाई ने तो यह कहा है:—

"सूतरने तांतणे मने हरजीए बांधी
जेम ताणे तेम तेमनी रे
मने लागी कटारी प्रेमनी"

यदि अपने करोड़ों भाई-बहनों के प्रति हमारा ऐसा प्रेम रहे तो हम उन्हें और वे हमको सूत के तार से बांध लेंगे। मैं तो यही अर्थशास्त्र जानता हूं, दूसरा नहीं।

एक और बात भी कह देता हूं। नागपुर के दंगे की बात तो आपने सुनी ही होगी। हिन्दू के मन में मैल है, मुसल्मान के मन में भी है। वहां मैं अपनी तीन बातों के सिवा और क्या पेश कर सकता हूं। सभी सत्याग्रह के शान्तिमय प्रयोगों में इन तीन बातों को तो जरूर पावोगे। यदि आप सब इतनी बातें याद रक्खोगे तो मेरा खयाल है कि हम सब एक ही मंच पर खड़े हो सकेंगे। अदालत, धारासभा इत्यादि के त्याग की बातें अलग रक्खो। हम सब इनमें एक नहीं हो सकते। लेकिन जितनी बातों में हमारा मेल हो सकता है उतनी बातों में तो हमें सबको एक साथही खड़े रहना चाहिए।"

इसके बाद अंगरेजी में आपने कहा—"मैंने गुजराती में अपने हृदय का सारा उफान निकाल डाला है। अब इतना थक गया हूं कि अधिक नहीं कह सकता। मेरे स्वभाव के दो अंग हैं—एक उग्र दूसरा शान्त। उग्र या भयंकर रूप के कारण अनेक मित्र मुझसे अलग हो गये हैं। मेरी पत्नी, पुत्र और मेरे स्वर्गीय भाई के बीच खाई हो गई थी। दूसरे-रूप में तो सब।सब प्रेम ही प्रेम है। पहले रूप में प्रेम को खोजना पड़ता है। मुझ जैसे कठोर आत्मनिरीक्षक शायद ही दूसरे होंगे। मुझे विश्वास है कि पहले रूप में द्वेष की गंध तक नहीं है परन्तु उसमें हिमालय जैसी भयंकर भूलें हो जाने की संभावना रहती है। किन्तु मनोविज्ञान के ज्ञाता आपको बतावेंगे कि दोनों का उत्पत्ति-स्थान एक ही है। पारावार प्रेम भीषण रूप धारण कर सकता है। यदि मैंने अपनी पत्नी को दुःख पहुंचाया है तो उससे मेरे दिल में और गहरा घाव हो गया है। दक्षिण आफ्रिका में अपने रात दिन के साथी अंगरेजों को यदि मैंने दुःख पहुंचाया है तो उससे अधिक दुःख मुझे हुआ है। यदि मेरे यहां के कार्यों से अंगरेजों का जी मैंने दुखाया है तो उससे विशेष दुःख मेरे जी को हुआ है।

मैं अंगरेजों से जो यह कहता हूं कि "तुमने हमें खूब चूसा है, आज भी चूस रहे हो। पर तुम्हें पता नहीं है। तुम चोरी और सीनाजोरी करते हो, याद रक्खो, पछताओगे। इंग्लैंड की आंखें खोलने के लिए मुझे अपना भयंकर रूप प्रकट करना पड़ा है।' तो इसका कारण यह नहीं कि मैं उन्हें कम चाहता हूं बल्कि यही है कि मैं उन्हें स्वजनों की ही तरह चाहता हूं। पर अब यह भीषण-रूप चला गया। पण्डित मोतीलालजी को मैंने कहा है कि अब तो लड़ने की भावना ही मुझमें नहीं रह गई। मैं तो शरणागत हूं। जब कि हमारे घर में ही फूट फैली हुई है और कटुता और शत्रुता बढ़ रही है तब दूसरा विचार ही कैसे हो सकता है? मुझे तो इस हालत को दुरुस्त करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना होगा। मैं इस तरह कोई विरोध नहीं करना चाहता, जिससे बेलगांव में या बेलगांव के पहले देश में फूट फैले। मैं मान लूंगा कि मैं हार गया। मैं झुक जाऊंगा और झुक कर सब को एकत्र करने की आशा रक्खूंगा। ऐसा करते हुए जब भारत अपनी विस्मृत दशा से जाग कर अपनी आजादी हासिल करेगा तब मानव-जाति को उससे सबक मिलेगा। इससे ज्यादह मैं क्या कहूं? मैं तो ईश्वर से इतनी ही प्रार्थना करता हूं कि मुझे सत्पथ दिखा, मेरे अन्दर राग, द्वेष या क्रोध का यदि कुछ भी अंश छिपा हुआ रह गया हो तो उसे निकाल डाल और मुझे ऐसा सन्देश पहुंचा जिसमें सब लोग उत्साह और उमंग के साथ सम्मिलित हों।"

'विले पारले' की सभा में कहा—"मौलाना हसरत मोहानी मुझे मिले थे। उन्होंने मुझे कहा—आप छुआछूत दूर करना चाहते हैं। पर उत्तरी भारत में तो हिन्दू मुसल्मानों को भी अछूत मानते हैं। अगर उसे आप दूर करा सकें तो मैं आप जो चाहें—गोवध तक—मुसल्मानों से बंद करा देने को तैयार हूं।' यह बात सुनकर मुझे नीचा देखना पड़ा। मैंने उनसे कहा कि आप अपने धर्म का पालन कीजिए। अगर आप यह मानते हों कि हिन्दुओं के लिए गाय की रक्षा करना पुण्य कार्य है और मन्दिर तोड़ना पाप है तो आप मुसल्मानों को समझाइएगा। मैं आपसे इकरार कराना नहीं चाहता। हां, मैं अपने बारे में आपसे कहे देता हूं कि मैं हर हिन्दू को यह समझाऊंगा कि हिन्दू हो कर किसी भी मनुष्य को केवल उसके जन्म या धर्म के कारण अछूत मानना पाप है। तो फिर मुसल्मानों को अछूत कैसे मान सकते हैं? मुसल्मान, ईसाई आदि विधर्मियों को अस्पृश्य

मानना ही यदि हिन्दू-धर्म हो तो उस हिन्दू-धर्म का नाश हो जायगा।"

भावी कार्यक्रम के संबंध में आपने कहा—"मै लड़ाई से हार गया हूं, थक गया हूं, लड़ने की भावना ही मुझे न रही। स्वराजी और मुसल्मान दोनों ने मुझे हरा दिया है। आपस में लड़कर हम कभी नहीं एकत्र हो सकते। पिछली महासमिति में मैं खूब लड़ लिया। मैंने देखा कि उसके फल-स्वरूप देश में कटुता बढ़ी है। यह देखकर मेरा हृदय रोया है, अब भी रो रहा है। अब बेलगांव में मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

मलाबार-संकट-निवारण

सत्याग्रहाश्रम में आया—

२९-८-२४ तक स्वीकृत रकम	१४,७७३-८-०
४-९-२४ तक वसूल हुआ	२,२५३-११-६
जोड़	१७,०२७-३-६

इस सप्ताह की रकम में नीचे लिखे लोगों का चन्दा भी जमा है—**प्रताप कार्यालय, कानपुर की मार्फत**—लक्ष्मण दलाल ५०) लाला शालिगराम ५०)। छोटेलाल आगरा ७०) आर. एस. रेल्वे बांदा के कर्मचारियों की ओर से १०२॥-) कालूभाई गटूभाई १०) और बहुभाई बुधालभाई १०) खानदेश, वसन्तलाल कलकत्ता ६०) टाऊन और ट्रेनिंग स्कूल बांदा के विद्यार्थियों की तरफ से १८॥) और एक गठ्ठर कपड़ा। **श्री हेमराज, लुधियाना के द्वारा**—हेमराज १०) मनशीराम ३) कृपाराम १०) रामशरणदास ५) अच्छरूमल १) कृपाराम ५) चन्दूलाल १०) जुगलकिशोर ६) तुलसीराम २) रामजीदास १) श्रीमती सरस्वती देवी २) रामकृष्ण २) डाक्टर किशोरीलाल १) गुरुदास १) श्रीमती लाजवन्ति २) डाक्टर अच्छरूमल १०) डा० बनारसीदास २) डा० चन्द्रभान २) लाला अमीनचन्द १) लाला रामरखा ॥) ठाकुर नसीबसिंह वा महाशय हरबंसलाल ६) बालकराम ५) हरबंसलाल २) वैद्य कामताप्रसाद १) शंकरलाल २) महता हरनामदास ५) सालगराम २) ख्वाजा महुमद आजम ५) ख्वाजा महुमद यूसफ ६) श्रीमती यशोदादेवी ५) कुमारी शांतिदेवी २) मगलसेन १) रामचन्द २) हरिराम ५) औरंगराय २) श्रीमती लाजवन्ति १) गुज्जरमल ५) लभूराम १) मानाराय ≈) और मेघराज ६) त्रिलोकनाथ भार्गव, मुल्ताई ३०) निरञ्जनलाल सिकंदराबाद ४) स्वर्गीय ब्राह्मण-पत्नी, कलकत्ता ५०) लक्ष्मीनारायण भंडारी कलकत्ता ११) वैद्य कृपाराम ५) सेठ बद्रीदास ५) और सेठ सांवलराम २) भिवानी सीताराम नागपाल जालंधर ४०) अमीचंद फिरोजपुर ५) बैताराम जिला बनारस ५०) पूननाथ रायबरेली २॥) ए. बी. सिंह टोंकराज्य ४) बनवारीलाल बूंदी ५)

गुजरात प्रान्तिक समिति में वसूल—

३०-८-२४तक पहले स्वीकृत	६३८९-१-९
४-९-२४ तक वसूल	१०३०-१२-६
जोड़	७४१९-१४-३

यंग इंडिया, नवजीवन और हिन्दी-नवजीवन के दफ्तरों में प्राप्त

२९-८-२४ तक पहले स्वीकृत	५०५४-९-६
४-९-२४ तक प्राप्त	२७१२-११-०
जोड़	७७९७-४-६

इस सप्ताह की रकम में नीचे लिखे लोगों का चन्दा भी शामिल है—

नानीलाल भट्टाचार्य सीरामपोर २०) डी. जे. लोबे एन्ड कं. सीयालकोट १२।-) वीर सेवकमंडल जयपुर, ८०) रामपूजन त्रिवेदी मालन ५) धर्मदास टी. शिकारपुर ५) देवजदत्त शर्म्मा इन्दौर २॥-) लक्ष्मणदास बैरागी, बांसवाड़ा १) सेठ जसराम भाटीया, डेरा इस्माइलखान ५०) बिशनलाल सीताराम मद्रास ५) दिनकर डी. डाव अहमदनगर ५) मेठाराम मूलचंद काटड़ी ५) महात्मा एकरसानंद सरायप्रयाग १८॥≈) सी. एम. हरचंद्र सावकारपेंठ १०) डॉ. टंकारी घोष कलकत्ता ७) बी. डी. सन्यंकर छिंदवाड़ा २९०) एम. डी. चतुर्वेदी नैनीताल १२॥) सेके० का. कमिटी सीरसा २५) लालशंकर देवशंकर लायलपुर १०॥) **सीताराम त्रिपाठी के मार्फत** सीरगुजा ३३) श्री मारवाड़ विद्यालय के विद्यार्थी और अध्यापकोंकी ओर से ब्यावर ४) पुरुषोत्तमदास टीचर रामपुर १०) आर. एम. कुर्तकोटी १२) सेवासमिति आश्रम भदौर ४५) बासीराम पालीवाल के मार्फत कलकत्ता १७) विश्वनाथ वासुदेव, इन्दोर ५) बद्रीप्रसाद मारकण्डेयलाल बरगोस ५) मन्त्री नवयुवक सम्मेलन आगरा ३७) भाई महेंद्र के स्मरणार्थ आगरा ४) ए. एस. सिंह, देहरादून ४) जगन्नाथ डी. नाईट टबीलदास, दूधी १०) अमरनाथ, टीमरपुर २) जानारायन गोयनका, कानपुर ५) भगवानदास टहबीलदास, दूधी ४)

नवजीवन की बंबई-शाखा में वसूल—

२९-८-२४ तक पहले स्वीकृत	२६२३-१२-०
३-९-२४ तक प्राप्त	१६२५-११-३
जोड़	४२४९-७-३
गांधीजी को यात्रा में मिले—	१४५८-१२-३
कुल जोड़	३७,९२२-१०-६

रु. १) में

१	जीवन का सद्व्यय	॥।)
२	लोकमान्य को श्रद्धाञ्जलि	॥)
३	जयन्ति अंक	।)
४	हिन्दू-मुस्लिम तनाजा	-)॥
		१॥-)॥

चारो पुस्तकें एक साथ खरीदने वाले को रु. १) में मिलेंगी। मूल्य मनीआर्डर से भेजिए। वी. पी. नहीं भेजी जाती।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डांक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डांक से भेजी जायं या रेल्वे से।

ग्राहक होनेवालों को

[illegible] वार्षिक चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें। भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

एकता का प्रस्ताव

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ५

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, क्वार बदी १, संवत् १९८१ रविवार, १८ सितम्बर, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य

सूरत की सभा में हिन्दू-मुसलमानों की एकता के संबंध में कुछ बोलने का मौका मिला था। कितने ही सज्जन ने संगठन के विषय में मेरे विचार जानना चाहे थे। उसके बाद एक मुसलमान सज्जन का पत्र मुझे मिला। उसमें उन्होंने कितनी ही बातें लिखी थीं। अब मैं देखता हूं कि गुजरात में भी झगड़े का भय दिखाई देता है। वीसनगर का मामला अभी शान्त हुआ नहीं माना जा सकता। मांडल में कुछ उपद्रव हुआ है। अहमदाबाद में कुछ खलबली हुई। उमरेठ में भी डर है। यही हालत और प्रान्तों में भी, जैसे भागलपुर (बिहार) में, हो रही है।

यह सवाल दिन ब दिन गंभीर होता जा रहा है। एक बात तो शुरूवात में ही तय हो जानी चाहिए। यह बात बराबर कही जाती है कि इन झगड़ों में सरकारी लोगों का हाथ है। यह बात यदि सच हो तो मुझे दुःख होगा, ताज्जुब तो कुछ भी न होगा। क्योंकि सरकार की तो नीति ही है हममें फूट डाले रखना—हमें अलहदा अलहदा रखना। सो सरकार यदि यह चाहती हो कि हम लड़े-झगड़े तो आश्चर्य की बात नहीं। और दुःख तो इसपर होगा कि अभी तक दोनों कोम अपना अपना स्वार्थ नहीं समझ पाई है। जिन्हें लड़ाई झगड़ा करने की आदत पड़ रही है उन्हीं लोगों में तीसरा शख्स झगड़ा करा सकता है। ब्राह्मणों और बनियों में तो सरकार की ओर से झगड़ा कराने की बात अब तक नहीं सुनी गई। सुन्नी मुसलमानों में भी लड़ाई कराने का हाल नहीं सुना। पर यह हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े फसाद पैदा करती है; क्योंकि ये जातियां बहुत बार लड़ी और लड़ चुकी हैं। जब ये लड़ने का रास्ता छोड़ देंगे तभी हमें सुख से स्वराज्य मिल सकता है, नहीं तो वह असंभव है।

जबतक हिन्दू डरा करेंगे तबतक तो झगड़े होते ही रहेंगे। और डरपोक होता है वहां डराने वाले हमेशा मिल ही जाते हैं। हिन्दुओं को समझ लेना चाहिए कि जब तक वे डरते रहेंगे तब तक उनकी रक्षा कोई न करेगा। मनुष्य का डर रखना यह सूचित करता है कि हमारा ईश्वर पर अविश्वास है। जिसे यह विश्वास न हो कि ईश्वर हमारे चारों ओर है, सर्वव्यापी है, या यह विश्वास शिथिल हो, वे अपने बाहु-बल पर विश्वास रखते हैं। हिन्दुओं को दो में से एक बात प्राप्त करनी होगी। यदि ऐसा न करेंगे तो हिन्दू-जाति के नष्ट हो जाने की संभावना है।

पहला मार्ग है—केवल ईश्वर पर विश्वास रख कर मनुष्य का डर छोड़ देना। यह अहिंसा का रास्ता है और उत्तम है। दूसरा है बाहुबल का अर्थात् हिंसा का मार्ग। दोनों मार्ग संसार में प्रचलित हैं। और हमें दो में से किसी भी एक को ग्रहण करने का अधिकार है। पर एक आदमी एक ही समय दोनों का उपयोग नहीं कर सकता।

यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों बाहु-बल का ही रास्ता ग्रहण करना चाहते हों तो फिलहाल शीघ्र स्वराज्य मिलने की आशा छोड़ देना ही उचित है। तलवार के न्याय से ही यदि सुलह करनी हो तो दोनों को पहले खूब लड़ लेना होगा, खून की नदियां बहेंगी। दो-चार खून होने या पांच-पचीस मन्दिर तोड़ने से फैसला नहीं हो सकता।

मैं संगठन के खिलाफ हूं भी और नहीं भी। संगठन का मतलब है अखाड़ा और अखाड़ों के जरिये हिन्दू गुंडों को तैयार करना। यह हालत मुझे तो दयाजनक ही मालूम होती है। गुण्डों के द्वारा धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। यह तो एक भय के बदले, उसके अलावा, मानो दूसरा भय तैयार किया जाता है। यदि ब्राह्मण, वैश्य आदि ही अखाड़ों के द्वारा अपनी शारीरिक उन्नति करें और करने के लिए तैयार हों तो मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं। पर मुझे तो यकीन है कि उन्हें लड़ाई लड़ने के लायक शक्ति प्राप्त करने बहुत समय लगेगा। अखाड़ों के लिए अखाड़े खोलना बिल्कुल ठीक है। मुसलमानों को लड़ाई में शिकस्त देने का इलाज अखाड़ा नहीं है। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं।

यदि हम मुसलमानों के दिल को जीतना चाहते हों तो हमें तपश्चर्या करनी होगी। हमें पवित्र बनना होगा। हमें अपनी बुराइयों को दूर कर देना होगा। अगर वे हमारे साथ लड़े तो हमें उलट कर प्रहार न करते हुए हिम्मत के साथ मरने की विद्या सीखनी होगी। डर कर, औरतों, बालबच्चों और घर बार को छोड़कर भाग जाना और भागते हुए मर जाना मरना नहीं कहाता। बल्कि उनके प्रहार के सामने खड़ा रहना और हंसते हंसते मरना हमें सीखना पड़ेगा।

मैं मुसलमानों को भी यही सलाह दूंगा। पर वह अनावश्यक है। क्योंकि वे डराने वाले माने गये हैं। सामान्य अनुभव यह है कि वे मरने में बहादुर हैं। इसलिए उन्हें हिन्दुओं के बाहु-

बल से बचने का रास्ता दिखाने की जरूरत नहीं रह जाती । उन्हे तो यह विन्ती करनी होगी कि 'भाई साहब, अपनी तलवार म्यान में रखिए । अपने गुण्डों को अपने कब्जे में रखकर सुलह से काम लीजिए । मुसल्मानों को हिन्दुओं की तरफ से दूसरे भय चाहे हों-आर्थिक भय है । बकरीद के दिन उनकी क्रिया में रुकावट डालने का भय है। परन्तु उन्हें हिन्दुओं के हाथों पिटने का डर हरगिज नहीं है । इसलिए उन्हें तो मैं यही कहूंगा कि आप लाठी या तलवार के बल पर इसलाम की रक्षा नहीं कर सकते । लाठी का युग अब चला गया । धर्मियों की कसौटी उनकी पवित्रता के द्वारा ही होगी । धर्म की रक्षा आप गुण्डों के हाथों में जाने देंगे तो इस्लाम को भारी नुकसान पहुचावेंगे । फिर इस्लाम फकीरों का, खुदापरस्त लोगों का धर्म न रहेगा ।"

यह तो साधारण विचार हुआ । मौलाना हसरत मोहानी कहते हैं कि मुसल्मानों को चाहिए कि वे हिन्दुओं के खातिर गाय को बचावें । और हिन्दू मुसल्मानों से छूत न मानें । वे कहते हैं कि उत्तर हिन्दुस्तान में मुसल्मान भी अस्पृश्य गिने जाते हैं । मैंने मौलाना साहब से कहा, मैं तो ऐसी बात में सौदा या बदला न करूंगा। मुसल्मान यदि हिन्दुओं के लिए गाय को बचाना अपना धर्म समझें तो गाय को बचावें फिर हिन्दू चाहे अच्छा सलूक करें या बुरा । हिन्दू यदि मुसल्मानों को अस्पृश्य मानते हों तो यह पाप है। मुसल्मान चाहे गोवध करें या न करें, पर हिन्दुओं को चाहिए कि वे मुसल्मानों को अछूत न मानें । अर्थात् जो व्यवहार वे आतियां एक दूसरे के साथ स्पर्श आदि के बारे में रखती हैं वही हिन्दुओं का मुसल्मानों के साथ रखना चाहिए। इस बात को मैं तो स्वयंसिद्ध मानता हूं । हिन्दू-धर्म यदि मुसल्मानों के या अन्य धर्मियों के तिरस्कार की शिक्षा देता हो तो उसका नाश ही होगा । इसलिए बिना सौदे-सट्टे के दोनों को अपना अपना घर साफ करना चाहिए । गाय को बचाने के लिए मुसल्मानों के साथ दुश्मनी करना गाय को मारने का रास्ता है और दुहेरा पाप है । यदि विधर्मी लोग गोवध करें तो इससे हिन्दू-धर्म लोप न होगा। पर हिन्दू गाय को न मारे । यह उनका धर्म है। पर क्या विधर्मी पर जबरदस्ती करके उसके हाथ से गाय को छुडाना उनका धर्म हो सकता है ? हिन्दू लोग भारत में स्वराज्य चाहते हैं, हिन्दू-राज्य नहीं। हिन्दू-राज्य में भी यदि सहिष्णुता का पालन हो तो मुसल्मान और ईसाई दोनों के लिए जगह होनी चाहिए । हिन्दू राज्य में भी यदि दोनों जातियां समझ बूझ कर अपनी खुशी से गोकुशी बन्द कर दें, तभी हिन्दू-धर्म की शोभा मानी जायगी । परन्तु हिन्दुओं के लिए हिन्दू-राज्य की इच्छा करना ही मैं देश-द्रोह मानता हूं ।

अब रहा बाजे का झगडा । बाजे का झगडा दिन पर दिन बढता दिखाई देता है । सूरतवाला पत्र कहता है कि हिन्दू धर्म में बाजा बजाना अनिवार्य नहीं है । इसलिए हिन्दुओं को चाहिए कि वे मुसल्मानों के भावों को आघात न पहुंचाने के लिहाज से मसजिदों के सामने बाजे बजाना बन्द कर दें । मैं चाहता हूं कि यह बाजे की बात उतनी ही आसान हो जितनी कि पत्र लेखक बताते हैं । पर हकीकत इसके खिलाफ है । हिन्दू-धर्म की कोई भी विधि ऐसी नहीं है जो बिना बाजा बजाये हो सकती है । कितनी ही विधियां तो ऐसी हैं जिनमें शुरू से अखीर तक बाजा बजाना जरूरी है । हां, इसमें भी हिन्दुओं को इतनी चिन्ता जरूर रखनी चाहिए कि मुसल्मानों का दिल न दुखने पावे । बाजा धीमे बजाया जाय-कम बजाया जाय यह सब लेन-देन की नीति के अनुसार हो सकता है, और होना चाहिए । कितने ही मुसल्मानों के साथ बातें करने से मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस्लाम में ऐसा कोई फरमान नहीं है जिससे दूसरों के बाजे को बन्द करना लाजिमी हो । इसलिए मसजिद के सामने दूसरे विधर्मी के बाजे बजाने से इस्लाम को धक्का नहीं पहुंचता । अतएव यह बाजे का सवाल झगडे का मूल न होना चाहिए ।

ऐसा होते हुए भी कितनी ही जगह मुसल्मान भाई जबरदस्ती बाजे बन्द कराना चाहते हैं। यह नागवार है। जो बात विनय के खातिर की जा सकती है वह जोरो-जब्र के खातिर नहीं की जा सकती । विनय के सामने झुकना धर्म है, जोरो-जब्र के सामने झुकना अधर्म है। मार के डर से यदि हिन्दू बाजे बजाना छोडें तो हिन्दू न रहेंगे । इसके लिए साधारण नियम इतना ही बताया जा सकता है कि जहां हिन्दू लोगों ने समझ-बूझ कर बहुत समय से मस्जिद के सामने बाजे बन्द करने का रिवाज रक्खा है वहां उन्हें उसका पालन अवश्य करना चाहिए । जहां वे हमेशा बाजे बजाते आये हैं वहां उन्हें बजाने का अधिकार होना चाहिए । जहां झगडे की संभावना हो और हकीकत के बारे में मत-भेद हो वहां हिन्दू और मुस[illegible] पक्षों को पंच की मार्फत ठहराव करा लेना चाहिए ।

जहां अदालत ने बाजा बजाने की मुमानियत की हो, वहां हिन्दू लोग कानून को अपने हाथों में न लें ।

मुसल्मानों को भी [illegible] हिन्दुओं का बाजा बजना बन्द कराने की जिद छोड देनी चाहिए ।

जहां मुसल्मान बिल्कुल न मानें, अथवा जहां हिन्दुओं पर जबरदस्ती किये जाने का अन्देशा हो, और जहां अदालत से बाजे बजाने की बन्दी न हो वहां हिन्दुओं को निडर होकर बाजे बजाते हुए निकलना चाहिए और मुसल्मान चाहे कितनी ही मार-पीट करें, हिन्दू उसे सहन करें। इस तरह जितने बाजे बजानेवाले मिलें सब अपना बलिदान वहां कर दें-इसमें धर्म और आत्म-सम्मान दोनों की रक्षा होगी ।

जहां हिन्दुओं में इतना आत्म बल न हो, वहां उन्हें अपने बचाव के लिए मार-पीट करने का अधिकार है ।

मर कर अथवा मारते हुए मरकर धर्म की रक्षा करने की जहां जरूरत दिखाई दे वहां दोनों दल को अदालत या सरकार की शरण जाने का विचार छोड देना चाहिए । यदि कदाचित एक पक्ष सरकार की या अदालत की सहायता ले तो भी दूसरे को खामोश रहना चाहिए

यदि अदालत में गये बिना काम ही न चले तो अदालतों में बनावटी सबूत हरगिज न दिये जाय ।

मारपीट का यह कायदा है कि पेट भर के मार खाने और मारने के बाद दोनों लडवैया ठंढ पड जाते हैं और दूसरों को सहायता लेने नहीं जाते ।

जिस जगह दोनों फरीक ने लडने का निश्चय किया हो वहां उन्हें पीछे बदला चुकाने का या औरों की सहायता लेने का विचार छोड देना चाहिए ।

एक मुहल्ले का झगडा दूसरे मुहल्ले में न ले जाना चाहिए ।

स्त्रियां, बूढ, अपंग और बालकों पर तथा शान्त रहने वाले लोगों पर हमला न करना चाहिए ।

यदि इतने नियमों का पालन होता रहे तो भी समझा जायगा कि कुछ तो मर्यादा रक्खी जाती है ।

डरकर भाग खडे होना, मन्दिर छोड देना या बाजे बजाना बन्द कर देना या अपनी रक्षा न करना, यह मनुष्यता नहीं है, यह तो नामर्दी है । अहिंसा वीरता का लक्षण है—भीरु, डरपोक

मनुष्य यह तक नहीं जान सकता कि अहिंसा किस चिड़िया का नाम है।

अतएव दोनों कौमों के सर्वसाधारण लोगों को समझदारी से काम लेना चाहिए, हिम्मत रखनी चाहिए, एक को डर छोड़ना चाहिए--दूसरे को डर दिखाने की आदत छोड़ने अभी समय लगेगा। इस बीच दोनों जातियों के समझदार लोगों को हर झगड़े के मौके पर पंचायत के सिद्धान्त का पालन करने का प्रयत्न करना चाहिए। समझदार-वर्ग की हालत नाजुक है। परन्तु उसे चाहिए कि वह अपनी सारी शक्ति सर्व-साधारण को शान्त बनाये रखने में ही लगावे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

सूत की आगामी किश्त

१५ सितंबर सूत की दूसरी किश्त का दिन जल्द ही आने वाला है। पहले महीने में सूत भेजने वालों की संख्या २७८० थी। इसमें सदस्य असदस्य दोनों ही शामिल हैं। कितने ही लोगों और जगहों से न भेज पाने के कारण बताये गये हैं। कितने ही लोग तो यह भी नहीं जानते थे कि अ प्रतिनिधियों को भी सूत भेजना है। इसलिए इस दूसरे महीने में बहुत उन्नति दिखाई देनी चाहिए। सूतकारों को नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(१) सूत एकसा भेजें। जब जब अच्छी पूनी मिले, २० अंक से कम का सूत न कातें। एक ही शख्स ने अलहदा अलहदा अंक का सूत भेजा है। हर सूतकार को ध्यान रखना चाहिए कि बुनाई के समय एक अंक के सूत में दूसरे अंक का सूत काम नहीं दे सकता।

(२) हर आंटी में ५०० गज से ज्यादह सूत न होना चाहिए। हर फालकी में हर १०० गज के बाद एक डोरे से गांठ बांध देनी चाहिए। जब बुनाई के लिए सूत के कोकड़े बनाये जाते हैं तब इससे बड़ी सहूलियत हो जाती है। यदि सूत उलझा हुआ हो तो कोकड़े बनाना प्रायः असंभव हो जाता है। बीच में जो गांठें लगाई जाती हैं उनसे कोकड़े बनाने वाले को टूटा धागा ढूंढने में सहायता मिलती है। १०० ही गज में वहीं धागा खोजना उसके लिए अधिक आसान होगा।

(३) फालकी पर से उतारने के पहले सूत पर पानी फेरने से मजबूती बढ़ जाती है।

(४) एक-से सूत की हर आंटी पर सूत का वजन, लंबाई (गजों में) और अंक की चिट लगानी चाहिए। अंक निकालने का तरीका बड़ा आसान है। सूत की गज लंबाई को उसके वजन-तोला और २१ से भाग दे दीजिए। जैसे--८४० गज की आंटी का वजन यदि १ तोला है तो सूत का अंक $\frac{८४०}{२१ \times १}$ ४० होगा। यदि उसका वजन २ तोला होगा तो उसका अंक $\frac{८४०}{२१} \times \frac{१}{२}$=२० होगा। अंक निकालने में बटे को छोड़ दे सकते हैं।

(५) कुछ लोगों ने सूत की कुकड़ी तकुए से निकाल कर ज्यों की त्यों-बिना आंटी बनाये भेजी है। तकुए से निकालने के बाद उसकी आंटी बनाना निहायत मुश्किल है। जबतक उसकी आंटी न बनाई जायगी और पूर्वोक्त ढंग से उसमें गांठें न लगाई जायगी तबतक वह बुनाई के काम में नहीं आ सकता।

यहां मुझे एक बात कह देनी चाहिए। एक दो शख्स ऐसे हैं जो मिल का सूत भेजते हुए भी नहीं सकुचाये। शायद उन लोगों ने बिना यह जाने ही कि हमारा कर्तव्य क्या है, यह भेज दिया है। मिल-कता सूत आसानी से पहचाना जा सकता है। किसी भी किस्म का सूत भेज देने से कुछ लाभ नहीं है। बल्कि अपना कता अच्छा सूत भेजने से ही वास्तविक लाभ हो सकता है।

तमाम पार्सलें साबरमती के पते पर भेजनी चाहिए--अहमदाबाद नहीं। उनका किराया वहीं भर देना चाहिए

कुछ और अंक

सूत का विवरण प्रकाशित होने के बाद कुछ सूत के पार्सल और आये हैं--आन्ध्र से और तामिलनाड से--जिससे यह मालूम होता है कि इन दोनों प्रान्तों ने रिपोर्ट में दिखलाये अंकों से बहुत ज्यादह सूत भेजा है। आन्ध्र की कुल संख्या है ३४७ और तामिलनाड की है १०५।

कुल सूत का वजन २३ मन २३ पौंड है। इसमें गुजरात का वजन १३ मन, शेष दूसरे प्रान्तों का है। सूत ऊंचे से ऊंचा १०० अंक तक का आया है। हमारी मीलों में आमतौर पर ४० से अधिक अंक का सूत नहीं काता जाता। सूतकारों को जानना चाहिए कि जब वे अपनी खुशी से कातने की मिहनत मंजूर करते हैं तब ऊंचे नम्बर के सूत कातने में खर्च कम लगता है। अर्थात् कच्चा नम्बर कातने में रुपये की बचत होती है। यदि कोई शख्स १० के बजाय २० अंक का सूत काते तो वह कोई आधी कीमत कपास की बचत करेगा। अतएव बेहतर होगा कि सूतकार जरा अंगुलियों और आंखों को रफ्त होने ही ऊंचे अंक का सूत कातने की कोशिश करें। धर्म की दृष्टि से यदि देखें तो कोई ८० पारसियों ने अपने जिम्मे का सूत भेजा है। हां, कुछ ईसाइयों के नाम भी मिलते हैं। महासमिति के १०५ सदस्यों ने सूत भेजा है। कार्य-समिति के, सिर्फ तीन को छोड़ कर, तमाम सदस्यों ने अपना सूत भेजा है। देश के अत्यन्त प्रख्यात पुरुषों में, जो कि महासमिति के सदस्य नहीं हैं, दो सज्जनों ने सूत भेजा है। वे हैं--मौलाना अबुलकरी साहब और आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय।

उचित काम

यह खुश किस्मती की बात है कि पिछले सप्ताह, नागपुर के हिन्दू-मुस्लिम-दंगे में सेठ जमनालालजी पहुंच गये थे। उसमें उन्हें चोट भी आई। मार पीट के बढ़ने का शायद यह भी एक कारण हुआ है। नागपुर की महासभा समिति के मन्त्री बाबू कालीचरण और श्रीयुत अवारी भी अपनी जान को जोखों में डालकर लड़ाई रोकने की कोशिश कर रहे थे। मैं इन तीनों कार्य-कर्ताओं को उनके साहस और शान्ति-प्रियता पर धन्यवाद देता हूं। बहुत मुमकिन है कि चिरस्थायी सुलह और शान्ति के लिए हममें से कुछ लोगों को अपना बलिदान कर देना पड़े। समाज के बदमाशों और गुंडों का संगठन एक-दूसरे के खिलाफ करके हम देश में पुख्ती तक स्थायी एकता नहीं स्थापित कर सकते। ऐसा अन्तःकलह मार्ग और हमारे हाथ क्षय ही की किया है। उसके द्वारा आम सुलह-शान्ति खासी खूनी शान्ति होगी, जिसके लिए बरसों तक दोनों को एक-दूसरे का सिर फोड़ते रहना होगा (यं इं०) मो० क० गांधी

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, क्वार बदी १, संवत् १९८१

एकता का प्रस्ताव

आज-कल मेरे लेखों में आज एक बात तो कल दूसरी बात दिखाई देती है। बहुत संभव है, पाठक इससे चक्कर में पड़ते हों और हैरान होते हों। पर मैं उन्हें यकीन दिलाता हू कि इन्हें आप तब्दीलियां न समझें। बल्कि जिस दिशा की ओर हम जा रहे हैं अथवा हमें जाना उचित है, उसमें हम एक एक कदम आगे बढ़ रहे हैं। हम जिन सिद्धान्तों के पालन करने का दावा करते हैं उनके फलस्वरूप ये स्वाभाविक उप-सिद्धान्त हैं।

यदि हम इस बात को याद रक्खें कि असहयोग की अपेक्षा **अहिंसा** अधिक महत्वपूर्ण है और अहिंसा के बिना असहयोग पाप है, तो मैं आजकल जिन विचारों को इन पृष्ठों में पल्लवित कर रहा हूं, वे सूर्य-प्रकाश की तरह स्पष्ट हो जायंगे। पर मुश्किल यह है कि पाठक इस बात को बहुतांश में नहीं जानते हैं कि नेपथ्य में—परदे के भीतर- इस विषय में क्या क्या हो रहा है। मैं अभी तक सब बातों को खोल कर नहीं बता रहा हूं-कुछ तो जान-बूझ कर और कुछ बदर्जे लाचारी। हां, पल पल में और दिन दिन एक के बाद दूसरी बात का फैसला अपने साथियों तक पहुंचाना दिक्कत-तलब है। मेरा तो इस बात पर विश्वास रहता है कि मेरी तरह उनके भी नजदीक वे स्पष्ट हो जायंगे-क्योंकि वे मेरी समझ में हमारे मुख्य सिद्धान्त से फलित होने वाले उपसिद्धान्त ही हैं।

बात यह है कि जैसी परिस्थिति बदलती जाती है वैसी ही हमारी गति-विधि में भी फर्क होना चाहिए। ऐसे फर्क का उद्गम यदि उन्हीं सिद्धान्तों से हो तो वह असंगत नहीं हो सकता।

अब यह बात हर शख्स के दिल में साफ हो गई होगी कि हमारे मत-भेद दिन पर दिन बढते जा रहे हैं हर दल के लोग अपने कार्यक्रम को सिद्धान्त का रूप दे रहे हैं। हर दलवाले सच्चे दिल से इस बात को मानते हैं कि हमारे ही कार्यक्रम के द्वारा हम लोग हमारे ध्येय के ज्यादह नजदीक पहुचेंगे। जबतक देश में कोई भी एक संस्था होगी और यदि दिन पर दिन उसका विस्तार न होता हो तो भी यदि वह एक बडी संस्था होगी-तबतक ऐसे दल जरूर रहेंगे, जिनका कि कार्यक्रम होगा धारासभाओं के अन्दर काम करना। पर इस हमारे असहयोग ने तो सरकार से असहयोग करने की बनिस्बत हमारे आपस में ही असहयोग करने का रूप धारण कर लिया है हम आपस में ही असहयोग कर रहे हैं। फलतः—हम एक दूसरे को कमजोर बना रहे हैं— और उस हद तक हम उस शासन प्रणाली की सहायता रहे हैं जिसको कि मिटा देना हमारा उद्देश है। इस प्रणाली की सबसे बडी खासियत क्या है? यही कि यह परोपजीविनी है और राष्ट्रीय जीवन की गंदगी पर जीवित रहती है, उस से अपने लिए पोषण-सामग्री ग्रहण करती है।

यह शासन-तंत्र हिंसा की नींव पर स्थित है। हिंसा उसके लिए परम आवश्यक है। उसके खिलाफ अहिंसात्मक शक्ति— सजीव, सक्रिय शक्ति—उत्पन्न करना हमारे असहयोग का उद्देश था। पर बदकिस्मती से हमारा असहयोग कभी सक्रिय-रूप में अहिंसामय हुआ ही नहीं। कमजोर और असहाय की शारीरिक अहिंसा पर ही हम सन्तुष्ट हो रहे। इससे वह इस शासन-प्रणाली को नष्ट न कर सका—तत्काल ऐसा असर न डाल सका। इस कारण वह अब इतने वेग और ताकत से हमीपर उलट पडा है और यदि हम समय पर न चेते तो हमीको निगल जाने की तैयारी में है ऐसी हालत में मैंने तो अपनी तरफ से यह दृढ निश्चय कर लिया है कि मैं इस घरेलू लडाई में शरीक न हूंगा और उसमें लिप्त तमाम लोगों से भी यही दरखास्त करूंगा। यदि हम इस काम में आगे बढ कर सहायक नहीं हो सकते तो कम से कम हमें इसमें कोई रुकावट न डालनी चाहिए। मैं आज भी उसी दृढता के साथ पांचों बहिष्कारों को मानता हूं। पर अब मुझे यह साफ साफ दिखाई देता है कि हम चाहें खुद निजी तौर पर उनका अमल भले ही करें पर आम तौर पर उनके अनुसार काम करने के लायक वायु-मण्डल नहीं रह गया है। यह बात अहमदाबाद की महासमिति के समय मुझे नहीं दिखाई दी थी। आज हमारे आस-पास अविश्वास ही अविश्वास दिखाई देता है। हर कार्रवाई शक की नजर से देखी जाती है और उसका गलत अर्थ लगाया जाता है ऐसी हालत में हम एक ओर जहां खुलासों दर-खुलासों के जग में मुब्तिला हैं तहां दूसरी ओर दुश्मन हमारे दरवाजे पर खडा खुश हो रहा है और अपनी ताकत को जुटा और बढा रहा है। हमें हर सूरत में और हर हालत में इससे बचना चाहिए।

इसलिए मैंने यह सुझाया है कि हम देश के तमाम मुख्तलिफ राजनैतिक दलों का लघुतम निकालें और उसके अनुसार काम करने के लिए सब को महासभा के मंच पर बुलावें। यह है हमारे आन्तरिक विकास का कार्य, जिसके बिना किसी प्रकार का बाहरी राजनैतिक प्रभाव सफलता-पूर्वक काम नहीं दे सकता। जो राज-नैतिक लोग बाहरी काम को भीतरी काम से अधिक महत्व देते हैं या जो समझते हैं कि यह भीतरी काम बहुत देर से फल देगा, उन्हें अपनी शक्ति को बढाने की पूरी पूरी आजादी रहनी चाहिए—पर मेरी राय में यह काम महासभा के बाहर होना चाहिए। महासभा को तो दिन पर दिन जनता का अधिकाधिक प्रतिनिधि होना चाहिए। वह अभीतक राजनीति से अछूती है। उनके अन्दर वैसा राजनैतिक चैतन्य नहीं है जैसा कि हमारे राजकाजी भाई चाहते हैं। उनकी राजनीति तो है—नमक और रोटी—मैं घी इसमें किस तरह जोडूं? क्योंकि लाखों लोग ऐसे हैं जो घी तो ठीक, तेल तक का स्वाद नहीं जानते। उनकी राजनीति एक जाति के दूसरी जाति के साथ यथोचित व्यवहार की मर्यादा से आगे नहीं बढती। फिरभी यह कहना बिल्कुल ठीक है कि जब हम राजनैतिक लोग सरकार के खिलाफ अपनी आवाज उठाते हैं तब हम जरूर जनता के प्रतिनिधि का काम करते हैं। पर यदि हम उनके तैयार होने के पहले ही उनका इस्तेमाल करने लगें तो हम उनके प्रतिनिधि न रह जायंगे। पहले हमें उनके अन्दर काम करके उनके साथ अपना जीता-जागता रिश्ता जोडना चाहिए। हमें उनके दुख को अपना दुख समझना चाहिए। उनकी कठिनाइयों को अनुभव करना चाहिए और उनके अभावों और जरूरतों को जानना चाहिए। अछूत और बहिष्कृत लोगों में भी हमें वैसा ही हो कर जाना चाहिए और देखना चाहिए कि उच्च श्रेणी के लोगों के पैखाने साफ करते समय हमारे दिलों में क्या क्या भाव उदय होते हैं और उनकी जूठी पत्तलों का खाना हमें झेलना चाहिए। हमें बंबई के कुलियों के मल्कों में जिन्हें लोगों ने झूठ-मूठ मकान नाम रखदिया है-रह कर देखना चाहिए कि यह हमारे दिल को कैसा लगता है। हमें देहातियों में देहाती बन जाना चाहिए और देखना चाहिए कि वे किस तरह जेठ-वैसाख की कडी धूप में कमर झुकाकर हल चलाते हैं और हमें जानना चाहिए कि उन गड्ढों से पानी पीना हमें कैसा मालूम

हुआ जिसमें देहाती लोग नहाते हैं, कपड़े और बरतन धोते हैं और जिसमें उनके मवेशी पानी पीते और लोटते हैं। हम उसी अवस्था में अपनेको उनका सच्चा प्रतिनिधि कह सकते हैं, उसके पहले नहीं। और तभी वे यकीनन् हमारी हरएक पुकार पर प्राण-पण से दौड़ पड़ेंगे, उसके पहले नहीं।

इसपर कुछ लोग कहेंगे—"हमसे यह सब नहीं हो सकता। और अगर हमें यही करना हुआ तो फिर आगे एक हजार साल तक स्वराज्य का स्वप्न तक देखने को न मिलेगा।" इस ऐतराज के साथ मेरी हमदर्दी होगी। पर मैं यह बात दावे के साथ कहूंगा कि हममें से कम से कम कुछ लोगों को जरूर इन यन्त्रणाओं से गुजरना पड़ेगा। और उन्हींके द्वारा पूर्ण, बलशाली और स्वाधीन राष्ट्र निर्माण होगा। इसलिए मैं सब लोगों का यह सूचित करता हूं कि वे इसके साथ अपना मानसिक सहयोग करें और अपने मन के द्वारा जनता के साथ अपना तादात्म्य करें एवं उसके दृश्य चिह्न के तौर पर वे उसके नाम पर, उसके लिए रोज कम से कम तीस मिनट सरगर्मी के साथ चरखा कातें। यह मानों भारत के हिन्दू, मुसल्मान, पारसी, ईसाई, आदि के बुद्धि-प्रधान लोगों की तरफ से उसकी अर्थात् भारत-माता की मुक्ति के लिए ईश्वर के प्रति बलवती प्रार्थना होगी।

हिन्दुओं और मुसल्मानों का तनाजा दिन पर दिन गहरा होता जाता है। सिवा इसके कि देश के तमाम दल महासभा के अन्दर एक हो कर इस जटिल समस्या को हल करने का सबसे उम्दा उपाय खोजें, इसे दूर करने का दूसरा कोई रास्ता मुझे नहीं दिखाई देता। यह तनाजा तो मानों किसी फैसले को होने ही नहीं देना चाहता। इसके बदौलत तो राष्ट्र को आजाद करने की—बाहमी विश्वास और सहायता की नींवपर आजाद करने की—हमारी बड़ी बड़ी उमंगें टूक टूक हो रही हैं। अतएव यदि और किसी कारण से नहीं तो महज इस एकता के ही लिए हमें अपनी अन्दरूनी राजनैतिक लड़ाई बंद कर देनी चाहिए।

इसकी सिद्धि के लिए मेरा प्रस्ताव यह है—

(१) १९२५ की बैठक तक महासभा विदेशी कपड़ों के बहिष्कार को छोड़कर अपने तमाम बहिष्कारों को मुलतवी कर दे।

(२) महासभा अंग्रेजी माल के बहिष्कार को उठा दे, बशर्ते कि शर्त १ अमल में लाई जाय।

(३) हाथ-कती और बुनी खादी का प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता का उद्योग और हिन्दू सदस्यों के द्वारा छुआछूत मिटाना—इतनी ही बातों में महासभा अपनी शक्ति लगावे।

(४) मौजूदा राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं का संचालन महासभा करे; और अगर मुमकिन हो तो नवीन संस्थायें खोले तथा उन्हें सरकार के अंकुश और प्रभाव से अलग रक्खे।

(५) महासभा के सदस्यों के लिए जो चार आना फीस है वह उठा ली जाय और उसकी जगह सदस्यों की पात्रता रक्खी जाय—हाथ कती-बुनी खादी पहनना, आध घण्टा रोज सूत कातना और हर महीने कम से कम २००० गज अपना काता सूत महासभा को भेजना—जो सदस्य इतने गरीब हों कि कपास का खर्चा न उठा सकें उन्हें कपास मुहैया किया जाय।

ऊपर मैंने महासभा के संगठन-विधान में जो परिवर्तन सूचित किया है उसके संबंध में कुछ खुलासा करने की जरूरत है। महासभा के वर्तमान संगठन-विधान का मुख्य विधाता स्वयं मैं ही हूं। इस उल्लेख के लिए पाठक मुझे क्षमा करेंगे। इसका उद्देश यह था कि हमारा संगठन दुनिया के तमाम संगठन-विधानों से अधिक जन-सत्तात्मक हो और यदि उसके अनुसार सफलता-पूर्वक कार्य किया जा सके तो बिना कुछ और किये ही हमें स्वराज्य मिल जाय। पर उसके अनुसार यथेष्ट-रूप से काम ही नहीं किया गया। हमारे पास सच्चे और सुयोग्य कार्यकर्त्ता काफी तादाद में न थे। हमें यह बात कुबूल करनी होगी कि जिस उद्देश के लिए वह बनाया गया था उस आशय में वह छिन्न-भिन्न हो गया है। हमारे रजिस्टर में कभी एक करोड़ सदस्य भी न दर्ज हो पाये। इस समय शायद सदस्यों की संख्या सारे भारत में मिल कर कोई दो लाख से अधिक न होगी। और इन दो लाख में से भी अधिकतर लोग ऐसे हैं जो सिवा चार आना दे देने और रायें देने के वक्त हाथ ऊंचा उठा देने के हमारे काम-काज में आम तौर पर दिलचस्पी नहीं लेते हैं। लेकिन हमें जरूरत तो है ऐसी संस्था की जो पक्षदायी हो, तेज-तर्रार हो, सुसंगठित हो, काम ठीक ठीक और तुरन्त करती हो और जिसमें बुद्धिमान्, परिश्रमी, उद्योगी राष्ट्रीय कार्यकर्ता हों। एक भीमकाय, दीर्घसूत्री और ऐसी संस्था की बदौलत जिसका कोई स्थिर मन्तव्य न हो थोड़े लोगों का एक छोटा मण्डल हो तो हम अपने कार्य का अच्छा लेखा दे सकते हैं। इस प्रस्ताव में एक ही बहिष्कार कायम रक्खा गया है—विदेशी कपड़े का। और यदि हम चाहते हों कि उसमें सफलता मिले तो हम कुछ समय तक महासभा को मुख्यतः सूतकारों का संघ बनाकर ही यह कर सकते हैं। यदि हम एक ही भारी और महत्वपूर्ण रचनात्मक काम में सफल हो जायगे तो यह हमारे लिए एक गहरी फतह होगी। मैं मानता हूं कि ऐसी चीज यदि कोई है तो वह है हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी। यदि हम चाहते हों कि खादी का काम राष्ट्रीय दृष्टि से सफल हो तो चरखा ही उसका एकमात्र साधन है। यदि हम चाहते हों कि राष्ट्र के कल्याण-साधन में जनता का भी कुछ स्थायी हित रहे तो चरखा ही उसका एकमात्र साधन है। यदि हम देश से दरिद्रता का मुंह काला कर देना चाहते हों तो चरखे के सिवा दूसरी कोई रामबाण दवा नहीं है।

मेरे प्रस्ताव से नीचे लिखी बातें फलित होती हैं—

(अ) स्वराजी लोग बामिजाज अपना दल संगठित कर सकेंगे—महासभा या अपरिवर्तनवादियों की तरफ से उनका विरोध न होगा।

(आ) दूसरी राजनैतिक संस्थाओं के सदस्य महासभा में शरीक होने के लिए निमन्त्रित किये जायं—इसके लिए उन्हें राजी किया जाय।

(इ) अपरिवर्तनवादी लोगों को मना कर दिया जाय कि वे धारा-सभा-प्रवेश के खिलाफ जाहिरा तौर पर या दबे-छिपे आन्दोलन न करें।

(ई) जो लोग खुद चार में से किसी भी बहिष्कार को न मानते हों वे उसी तरह अपना मनचाहा काम करने के लिए आजाद रहेंगे—मानों ये बहिष्कार प्रचलित थे ही नहीं। इसके लिए उन्हें नीचा देखने की जरूरत नहीं। इस तरह असहयोगी वकील यदि चाहें तो फिर से वकालत शुरू कर सकते हैं और खिताबधारी, सरकारी शिक्षालयों के शिक्षक आदि महासभा में शरीक होने और उसके पदाधिकारी होने के पात्र समझे जायंगे।

इस तजवीज के मुताबिक देश के तमाम राजनैतिक दल मिल जुल कर राष्ट्र के भीतरी विकास के लिए एक साथ काम कर सकते हैं। इस तरह महासभा तमाम राजनैतिक दलों को सम्मिलित होने का खासा मौका देती है और उसके बाहर एक ऐसी स्वराज्य की योजना तैयार करने का मौका देती है जिसे सब मंजूर कर सकें और जो सरकार को पेश की जाय। मेरी खासी राय तो यह है कि अभी ऐसी तजवीज पेश करने का समय

नहीं आया है। मैं तो यह मानता हूं कि यदि हम सब मिलकर एक साथ पूर्वोक्त रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने का उद्योग करें तो उससे हमारी आन्तरिक शक्ति आशातीत बढ़ जायगी। पर देश के उन बहुसंख्यक सज्जनों की राय इसके विपरीत है, जो अब तक लोगों के अगुआ रहे हैं। जो कुछ हो, कम से कम हमारे सुभीते के लिए तो एक स्वराज्य-योजना की जरूरत हुई है। पाठक जानते ही होंगे कि इस मामले में मैं तो बाबू भगवानदास के विचारों का कायल हो गया हूं। अतएव इसके लिए यदि कोई परिषद होगी और उसमें मेरी हाजिरी की जरूरत होगी तो उसमें हाजिर होकर उस तजवीज को बनाने में जरूर मदद दूंगा। इस काम को महासभा के बाहर रखकर चलने पर जो मैं जोर दे रहा हूं उसका सबब यह है कि मैं पूरे एक साल तक महासभा को सिर्फ भीतरी उन्नति के और मजबूती के काम में लगा रखना चाहता हूं। जब हम अपने इस काम में काफी परिमाण में सफलता प्राप्त कर चुकेंगे तब महासभा शौक से बाहरी राजनैतिक हलचलों में भी पड़ जाय।

तो अब सवाल यह उठता है कि यदि यह प्रस्ताव मंजूर न हुआ और देश के तमाम राजनैतिक दलों को महासभा के अन्दर एकत्र करना मुश्किल हुआ, और हमारे और स्वराजियों के बीच की इस खाई को पूरना ना-मुमकिन हुआ तो फिर क्या होगा? मेरा जवाब सरल और सीधा है। यदि सारा झगड़ा महासभा पर कब्जा करने के ही लिए हो तो मैं उसमें शरीक न हूंगा। जिन लोगों के विचार मुझसे मिलते हैं उन्हें भी मैं ऐसा ही करने की सलाह दूंगा। मैं उन्हें यह भी मशवरा दूंगा कि वे महासभा स्वराजियों के हवाले कर दें और उसके लिए वे जो शर्तें चाहें कुबूल कर लें और अपनी तरफ से बिना किसी तरह के आन्दोलन के उनका धारासभा-कार्यक्रम बिला-खटका चलने दें। मैं अपरिवर्तनवादियों को सिर्फ रचनात्मक काम में लगाऊंगा और उन्हें सलाह दूंगा कि वे दूसरे दलवालों से जितनी वे दे सकें, सहायता लें।

जो लोग अपने राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन के लिए महज रचनात्मक कार्यक्रम पर ही सारा दारोमदार रखते हैं उनका काम है कि वे स्वार्थत्याग के रास्ते में पहले आगे कदम बढ़ावें। महासभा में पदाधिकारी बनने और स्वराजियों का विरोध करने से हमें अपनी एक भी प्रिय वस्तु की प्राप्ति न होगी। हम स्वराजियों की मेहरबानी से ही उन पदों पर रहें। यदि हम अपने इशारों पर लोगों को इस आत्मघातक गज-ग्राह के युद्ध में फसावेंगे तो हम दोनों दल के लोग उनको मार्ग-च्युत करने के अपराधी होंगे। क्योंकि लोग तो सीधे-भोले होते हैं और आंख बंद कर महासभा के नाम की पूजा करते हैं। अपनी शुद्ध सेवा के बल पर जो पद और सत्ता हमें मिलती है वह हमारे हृदय को उच्च बनाती है। जो सत्ता सेवा के नाम पर हासिल की जाती है और महज कसरत राय के बल पर प्राप्त की जाती है, वह केवल भ्रम-जाल है। उससे हमें बचना चाहिए—खास कर इस मौके पर तो उससे दूर रहने की और भी ज्यादह जरूरत है।

मैं अपने इस प्रस्ताव की उपयोगिता और उम्दगी का कायल पाठकों को चाहे कर सका हूं या न कर सका हूं, पर मैं तो अपनी तरफ से निश्चय कर चुका हूं। इस खयाल-मात्र से मेरे चित्त को व्यथा होती है कि जिन लोगों के साथ अबतक मैंने कंधे से कंधा भिड़ा कर काम किया है, वे प्रतिकूल दिखाई देनेवाली दिशा में काम करें।

ऊपर मैंने जो बातें पेश की हैं वे मेरे शस्त्र रख देने की शर्तें नहीं हैं। मैं तो बिना किसी शर्त के शरणागत हूं। मैं महासभा की रहनुमाई उसी हालत में कर सकता हूं जब कि तमाम दल के लोग ऐसा चाहें। मैं इस घनघोर अन्धकार में सूरज की किरणें देखने की कोशिश कर रहा हूं। मुझे वह धुंधली-सी दिखाई भी देती है। मुमकिन है अब भी मैं गलती कर रहा होऊं। पर मैं इतनी बात जरूर जानता हूं कि अब मेरे अन्दर लड़ाई का भाव बिल्कुल नहीं रह गया है। मैं एक जन्मजात लड़वैया हूं। मेरे लिए इतना ही कहना बहुत है मैं अपने अजीजों और आत्मीयों तक से लड़ा हूं। पर मैं लड़ा हूं प्रेम-भाव से प्रेरित हो कर ही। स्वराजियों से भी मुझे प्रेम-भाव से प्रेरित हो कर ही लड़ना चाहिए। पर मैं देखता हूं कि अभी मुझे अपने प्रेम-भाव को साबित कर दिखाना बाकी है। मैं समझता था, साबित कर चुका हूं। लेकिन देखता हूं कि मैं गलती पर था। इसलिए मैं अपने कदम पीछे हटा रहा हूं। मैं हर शख्स से अनुरोध करता हूं कि आइए, इसमें मेरा हाथ बटाइए और इन दोनों पक्षों को एक होने में सहायता कीजिए। कम से कम कुछ समय के लिए तो अवश्य ही महासभा को बहुतांश में कातनेवालों की संस्था बनाना आवश्यक है।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

पूना में गांधीजी

भिन्न भिन्न राजनैतिक दलों को एक मंच पर लाने के इरादे से बंबई की अनेक सभाओं में एक कार्यक्रम उपस्थित कर के गांधीजी पूना गये। वहां के कार्यकर्ताओं ने थोड़े समय में ज्यादह से ज्यादह काम लेने का लोभ किया-इससे गांधीजी को मिहनत भी खूब पड़ी और यथेष्ट पूर्णता के साथ चर्चा भी न हो पाई। चर्चा का कुछ अंश बहुत आवश्यक और उपयोगी था। पहले उन के मुख्य भाषण का सार देकर फिर चर्चा का जिक्र करूंगा।

खादी और मिल

रात की सभा में गांधीजी ने सर्व-सामान्य कार्यक्रम पेश किया। आरंभ में उन्होंने पूनावासियों से पिछले दो साल के काम का हिसाब मांगा, और मिल के कपड़े तथा खादी के सवाल की चर्चा की—

"आप पूछते हैं कि मिल का कपड़ा पहनने से बहिष्कार क्यों कर नहीं हो सकता? यह प्रश्न भारी अज्ञान-जनित है। मिल का कपड़ा बहिष्कार के लिए काफी हई नहीं। बंग-भंग के समय में मिलवालों ने बंगाल को किस तरह दगा दिया। इसका शिकायत बंगाल आज भी करता है। उनके अनुभव से हमें यह नसीहत लेना चाहिए कि मिल के कपड़े से बहिष्कार असंभव है। इसलिए हमें केवल खादी का ही प्रचार करना चाहिए। सो बात स्पष्ट है कि मिल के कपड़े को महासभा में बिल्कुल स्थान न होना चाहिए"

श्रद्धा का अर्थ

दिन में स्वराज्यवादियों के साथ खूब चर्चा हुई थी। उसके अन्त में एक महाशय ने पूछा था—'चिपलूणकर की अर्धमूर्ति को खोलते समय आपने कहा था महाराष्ट्र में त्याग है, पर श्रद्धा नहीं, इसका क्या अर्थ?' गांधीजी ने कहा था—इसका जवाब रात की सभा में दूंगा।' यह जवाब देते हुए गांधीजी ने कहा—

"श्रद्धा का अर्थ है आत्म-विश्वास और आत्म-विश्वास के मानी है ईश्वर पर विश्वास जब चारों ओर काले बादल दिखाई देते हों, किनारा कहीं नजर न आता हो, और ऐसा मालूम होता हो कि बस अब डूबे, तब भी जिसे यह विश्वास होता है कि मैं हरगिज न डूबूंगा उसे कहते हैं श्रद्धावान्। द्रौपदी का वस्त्र हरण हो रहा था उसकी रक्षा करने में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, असमर्थ थे। तब भी द्रौपदी ने श्रद्धा न छोड़ी। वह कृष्ण कृष्ण पुकारती रही, उसे इस बात पर श्रद्धा थी कि जबतक कृष्ण मौजूद है तब तक किस कीमजाल है कि मेरा वस्त्र हरण कर सके। आपमें ऐसी श्रद्धा

है ? यदि आपके अन्दर ऐसी श्रद्धा हो तो आप अकेले पूना के बल पर स्वराज्य ले सकते हैं। जो श्रद्धावान् होता है वह ईश्वर के साथ वादा नहीं करता-इकरार नहीं करता। हरिश्चन्द्र ने वादा नहीं किया था। वह अपनी पत्नी के गले पर छुरी फेरने को भी तैयार हो गया था।"

'मैं पागल हूं!'

जो लोग खादी की बात को पागलपन समझते हैं उनको संबोधन करके बोले-"मैंने कर्नल मेडक से पूछा कि आप अपने विद्यार्थियों को खादी न पहनने देंगे ? उन्होंने मुझे नहीं कहा कि तुम पागल हो। उन्होंने तो कहा कि यदि विद्यार्थी पहनना चाहते हों तो मैं क्यों इन्कार करने लगा ? और श्रीमती मेडक विलायत खादी ले गई है। जो काम नहीं करना चाहता वह हजार बहाने बनाता है। मना कोई नहीं करता-करती है हृदय की दुर्बलता। अच्छा मान लीजिए कि गांधी पागल है। मैं कहता हूं देहात के लोग जो कपड़ा पहनते हैं वह पहनिए। क्या यह कहना पागलपन है ? और बातों के लिए आप चाहे मुझे दीवाना कहिए। पर खादी के लिए यदि आप कहेंगे तो मैं कहूंगा कि कहनेवाले ही दीवाने हैं। क्योंकि मैं तो अनुभव की बात करता हूं। मैं कहता हूं कि यदि आपसे और कुछ न हो सके तो गरीबों पर कृपा कर के कमसे कम खादी जरूर पहनिए। चंपारन और उड़ीसा में लोगों को चार पैसे रोज मिलने की भी सांसत पड़ती है। वहां लोग काले चावल खाकर रहते हैं। हड्डी-चमड़ी भर उनके बदन पर रह गई है। उनपर रहम करके, उनके अन्दर रहनेवाले ईश्वर के दर्शन कर के आप २००० गज सूत दीजिए। यही प्रार्थना आपसे है।'

छुआछूत और हिन्दू-मुसल्मान ऐक्य के बारे में विवेचन करके इस तरह उपसंहार किया—

'मैं तो हार गया। पं. मोतीलालजी और श्री केलकर यदि मुझे कहें कि तुम महासभा से चले जाओ तो मैं चला जाऊंगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है। मैं बेलगांव में रायों के लिए हाथ नहीं ऊंचा उठवाऊंगा। हम अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी दोनों रायें ले लेकर जनता को भ्रमित कर रहे हैं। महासमिति में मैंने रायें लीं। अब मैं देखता हूं कि मैंने यह अपराध ही किया है। वहां रायें लेना मेरा पागलपन हुआ। मैं तो सिपाही ठहरा। मुझे समझना चाहिए था कि लड़ाई तो वहीं लड़ी जा सकती है जहां कटुता न पैदा हो, दुश्मनी न पैदा हो। यदि पं० मोतीलालजी और श्री केलकर के साथ लड़ने में कटुता बढ़ती हो तो मैं उनके चरणों में सीस झुकाना बेहतर समझता हूं। मेरे दिल के अंदर यदि किसी के भी प्रति द्वेष हो, दुश्मनी हो, तो बेहतर है, मैं साबरमती में डूब मरूं। हां, जहां सिद्धान्त की लड़ाई हो वहां मैं लड़े बिना नहीं मानता, पर जहां दुश्मनी की बू आती हो वहां क्या लड़ूं-किस तरह लड़ूं ? जहां ऐसी लड़ाई से तीसरी ताकत बढ़ रही हो वहां किस तरह लड़ूं ? इसलिए मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं न लड़ूंगा। पूना-निवासियों को सिर्फ एक ही बात कह कर मैं बिदा लूंगा। यह पागल बनिया आपको कह कर जाता है 'पूना वासियो, श्रद्धा रक्खो और स्वराज्य लो'"

प्रश्नोत्तरी

ऊपर मैंने जिस चर्चा का जिक्र किया है उसमें हुए प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं—

प्रश्न—आप ये तीनों चीजें महासभा में रखना चाहते हैं। इससे क्या महासभा का राजनैतिक स्वरूप मिट नहीं जाता ?

गांधीजी—हां कुछ समय के लिए मिट जाता है-पर मैं एक ही साल का प्रयोग करना चाहता हूं। जब तक विदेशी माल का बहिष्कार कर रहा हूं तभी तक।

प्र०—पर आप तो उन सब लोगों को जो सूत न कातें, महासभा से निकालना चाहते हैं। क्या सिर्फ खादी-काम करने वालों को ही महासभा में रहने का अधिकार है ? जो लोग दूसरे काम करें उन्हें अधिकार क्यों न होना चाहिए ?

गां०—मैं तो लड़वैया ठहरा। इसलिए मैं तो लड़ाई चलाने के ढंग को देख कर, सोच कर बात करता हूं। हिन्दू-मुसल्मान-ऐक्य और अस्पृश्यता के लिए शारीरिक श्रम दरकार नहीं। सिर्फ प्रचार और शिक्षा की जरूरत है यह काम शुद्ध भाव रखने से बहुत कुछ हो सकता है पर खादी के काम के लिए तो शुद्ध भाव के अतिरिक्त हाथ हिलाने की भी जरूरत है। मैं तो कार्यकर्ताओं और जनता को एक शृङ्खला में बांधना चाहता हूं और वह शृङ्खला है चरखे का सूत। महासभा के सदस्य यदि सूत कातेंगे तो करोड़ों लोग उनको देखकर कातने लगेंगे।

प्र०—तो जिन्हें आपके दूसरे काम के साथ हमदर्दी होगी उन्हें तो महासभा के बाहर ही रहना होगा न ?

गां०—हां, वे बाहर रहकर मदद कर सकते हैं। हमदर्दी रखने वाले तो बहुत लोग देश में हुए हैं। उससे क्या काम चलता है ? मैं तो २००० गज सूत कातने वाली फौज खड़ी करना चाहता हूं। क्या २००० हजार गज कातने का वक्त नहीं मिल सकता ? क्या आपके सिर मुझसे अधिक काम का बोझ है ?

प्र०—पर जो सवाल मैंने पहले किया था वही फिर करूंगा—महासभा का राजनैतिक रूप मिट जायगा-यही सबसे बड़ा डर है।

गां०—ना, मिट नहीं जायगा आज मैं लड़ाई में पड़े बिना आपको राजनैतिक कार्यक्रम नहीं दे सकता। पर मैं कहता हूं कि यदि आप इतना करेंगे तो मैं तुरन्त आपको राजनैतिक कार्यक्रम दे दूंगा। मैं साधु-फकीर नहीं, राजकाजी आदमी हूं। हां, जरा सौम्य प्रकार का हूं। क्या दक्षिण अफ्रिका में मैं राजकाजी नहीं था ? राजनीति के ज्ञान के बिना ही मैंने जनरल स्मट्स के साथ दो दो हाथ किये थे ? मुझे लड़ना है, मैं लड़ूंगा-पर भाई, मुझे हथियार भी तो ठीक कर लेने दो।

प्र०—आप कहते हैं कि समितियों का कब्जा दे दिया जाय ? क्या इससे कटुता और शत्रुता कम हो जायगी ?

गां—अगर गुस्से से छोड़ेंगे तो कम न होगी-यदि उन्हें कम करने के इरादे से छोड़ोगे तो जरूर कम हो जायगी।

प्र०—जो आपकी खादी को, आपके सिद्धान्त को, तहस-नहस करने पर ही तुला हो उसका आप क्या उपाय करेंगे ?

गां०—मैं समझता हूं, ऐसा कोई नहीं चाहता। पर यदि चाहता हो तो मैं निश्चिन्त हूं, निर्भय हूं।

प्र०—पर अगर सिद्धान्त पर ही हमला होता हो तो आप सिद्धान्त छोड़कर तो फायदा नहीं उठा सकते ? लड़कर ही सिद्धान्त की रक्षा करनी होगी।

गां०—मेरे सिद्धान्त में ही ऐसी शक्ति है कि उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। सिद्धान्त नहीं छोड़ सकते। जरूरत हो तो महासभा-समितियों को चाहे छोड़ दें।

प्र० यदि समितियां हाथ में न रहेंगी तो हम तो पंगु हो जायंगे। फिर काम किस अधिकार के बल पर करेंगे ?

गां०—जरा अधिक गहरा विचार कीजिए। देखिए, फर्ग्युसन कालेज आपकी राष्ट्रीय संस्थाओं के सामने खड़ा हुआ है। क्या वह महासभा के आश्रय पर खड़ा है ? यह मानना एक वहम है कि महासभा के आश्रय से ही काम चल सकता है। जितनी शक्ति आपके अन्दर होगी उतना ही काम आप कर सकते हैं। और ऐसा तंत्र रखने से लाभ ही क्या कि जिसकी मरम्मत में ही

सारी शक्ति और सारी दौलत खर्च हो जाय ? ऐसी हालत में तो उस तन्त्र को तोड डालना ही बेहतर है। यदि तन्त्र अनायास हाथ में रहता हो तो रहे। जहां वह सारी शक्ति को ही खा जाता है वहां हमारे हाथ से चला भी जाय तो चला जाय।

(नवजीवन) **महादेव हरिभाई देसाई**

मलाबार-संकट-निवारण

सत्याग्रहाश्रम में वसूल हुआ—

४-९-२४ तक स्वीकृत	१७०२७-३-६
उसके बाद ११-९-२४ तक वसूल	७१३८-८-३
जोड	२४१६५-११-९

इस सप्ताह की रकम में नीचे लिखी रकमें भी शामिल हैं— जानकीदास, बीकानेर ४) चन्द्रदत्त पाण्डेय, बनारस ४५) माताबदलसिंह, प्रयाग ५) म. प. गुप्त कानपुर १॥=) **राधाकृष्ण माहेश्वरी सोसाइटी (बरार) की मार्फत**—लक्ष्मीनंद राधाकृष्ण माहेश्वरी ४५) गुमानीराम सेवाराम माहेश्वरी १५) टीकमदास जेठमल ५) लालचंद ५) बलभुज ५) रुस्तमराव देशमुख ५) मुलचंदजी भट्ट माहेश्वरी ५) बनराजजी केला ४) मथुरा महादेव वानेरे ३) नारायणराव भाऊराव देशमुख २) जगन्नाथ शंकर माहेश्वरी २) बिहारीलाल ईश्वरदास ५) **महाराजशरण शर्मा, पटना, की मार्फत**—महाराजशरण शर्मा २) गिरिवरधारीसिंह १) मेदनीप्रसादसिंह १) श्रीपतिसिंह १) फुटकर ०॥) एम. रामचंद्र, मुनेजा ३) लाला रामचंद्र लाहोर १०) रामकृष्ण गुप्त, सारन २५) रामदयाल शर्मा, हाफिजगंज ४) **रामचंद्र जोरावरमल लाला के मार्फत**— रामचन्द्र जोरावरमल ११) नारायणदास रामकिसन ११) सूरजमल ५) फुटकर ५॥) रामदत्तसिंह सहायक, हाजीपुर ८=) **राजस्थान खादी मण्डल ब्यावर की मार्फत**— गणेशदास सुगराज ११) श्रीमती शान्तिदेवी २५) कुन्दनमल लालचन्द ११) लक्ष्मीनारायण वकील १०) चान्दमल मोदी ५) चतुर्भुज छोगालाल ५) फतहचन्द कुंअरलाल ५) बिहारीलाल भार्गव ५) नाथूलाल बोथा ५) तुलसीराम रामस्वरूप ५) हरप्रसाद तुलसीराम ५) हरिगुरुभक्ति रांका बांका सुखानन्द सत्संघ ४॥=) राजस्थान प्रान्तीय खादीमण्डल के बुनकरों से ४) जवानमल शोभाचन्द ४) खेमानन्द राहत १॥) भूरजी भजन लाल २) मन्नू भाई ३) मानमल वकील २) शोभागलाल वकील २) जयदेव शर्मा २) समन्दरा केसरीमल १) कुन्दनलाल दलाल १) रूपलाल १) बलवंतराम फूलचन्द १) लादूरामशर्मा १) मुतफर्रिक २०॥।=)॥। **रामेश्वरदास धूलिया की मार्फत**—गंगाधर शास्त्री केळकर १) सुनीलाल शीवसाय २५) साळगराम रामचंद्र भरनीया २५) मोहनलाल मोतीराम २१) बोदुलाल गणेशराम ११) हरनारायण प्रेमसुख ११) भोलाराम जव्हारमल ११) पन्नालाल नारायणदास १०) बिजेराम केवराज ११) चपालाल पांडुरंग ५) माहादु ओंकार ५) बलभराम तोलाराम ५) कन्यालाल शीवसाय ५) गोविंदजी खीमजी ५) पापालाल शोभचंद ११) काळुराम पन्नालाल २) गुलाबचंद मन्नुलाल १) रघुनाथ जीवकरण १) लालाजी गोविंदा १) बालीराम बाबुराम १) मिठालाल गणेशराम २) मोहनलाल बाळमुकंद १) फीका विश्वर ०॥) श्री कृपा १) **पंजाब प्रान्तीय समिति की मार्फत ३०)** डुंगरदास बालमदास कराची ५१) **जयभगवान ओसवाल, अलनांच की मार्फत** राजमलजी ललवानी २०१) मोतीलाल धाकीवाला जामनेर २) धनराज बच्छमल जामनेर ५) बागमल लक्ष्मीचंद इच्छापुर ११) मोतीलाल मुलचंद बोदवड ५१) सेसमल पूनमचन्द २१) बागमल ग्यानमल २१) बछराज ललवानी ५) नथमल बुधचन्द २१) उजाण खेडगांवकर बन्धु ५१) हमीरमल कलमसरा ५) पूनमचन्द नाहटा ७) एम सी. केलकर १०) रूपचन्द ललवानी ५) रिखबदास ओसवाल ५) एक सज्जन ८।=) नथमल बेणीप्र० ५) रतनचन्द मुलचन्द २) हीराचन्द गुलाबचन्द ७) दोरली मथुमेर १) खुशालचन्द ५) खुशालचन्द बन्सीलाल २ इरकचन्द माणकचन्द २) नारमल गुलाबचन्द २५) मोतीलाल रैदासणी २५) पन्नालाल कलमसरा ५१) फुलचन्द सूरजमल ५) मेम्लाक बब १५) भूरमल भोजराज ११) पूनमचन्द जीवराज ५) फुटकर २८।=) गोविंद मिश्र कटक ३५) रामस्वरूप भाटिया भिवानी ५) रामकिशन जालमिया चिरावा ३१५) उत्तमचंद जैन मेरठ २०) **राईस मर्चेन्ट एसोसियेशन, बर्मा** ३१५०) जानकीदास डालूराम बक्सर २५)

गुजरात प्रान्तिक समिति में वसूल—

४-९-२४ तक स्वीकृत	७४१९-१४-३
उसके बाद १२-९-२४ तक आया	२६८१-१२-०
जोड	१०,१०१-१०-३

यंग इंडिया, नवजीवन और हिन्दी नवजीवन के दफ्तरों में प्राप्त—

४-९-२४ तक वसूल	७७६७—५-३
उसके बाद १२-९-२४ तक आया	१८१२-१२-०
	९५८०—१-३

इस सप्ताह में आई रकमों में नीचे लिखे सज्जनों का चन्दा भी शामिल है—भुवनेश्वरी पुस्तकालय पुरापोर ३॥) बुधमलाल बनियां रायपुर ११) मूलचन्द बागडी रायपुर १०) लालजी मीठाभाई अकोला १५) बी. ए. कं. का आफीस स्टाफ कानपुर ३९) रामकुमार मारवाडी ३) रामनारायण ३) तुलसीराम केदारराम २) लखु बाबू २) भूजलाल प्रहलादराय १) गौरीदत्त १) राधेकृष्ण बन्धु भगत लक्ष्मीप्रसाद १) श्यामलाल १) राजाराम सुखदेवराम १) जमुनाराम १) काशीराम १) रघुवीरराम १) और हनुमानराम काशीराम उस्काबाजार १) और फुटकर चन्दा ४) रामेश्वर बाजपेई १) रामरतन तंबोली ३) और गदाधर धोबी मनासर १) कीर्तिप्रसाद त्रिपाठी मार्फत बीनुली २०॥) बलवन्तसिंह मेरठ १०) अवधबिहारीलाल बेरन १८) विश्वेश्वरदयाल सक्सेना कायमगंज ५) हेडमास्टर एच. ई. स्कूल हाजीपुर २२) सुंदरदास सेर गुजरात (आर. एस.) ११) बालकिशनदास देहली २) मांगीलाल कानजी बालाघाट ५) दत्त एस. हरिते बंडीकोहला ५) जयराम कीशन चवन यवतमाल के मारफत १२॥) ठाकुर सीताराम अलीगढ १००) के. एन. अलीगढ २५) शिवशंकर त्रिपाठी कानपुर १=) जी० सब्बनरा भरकारा २) अमेदत्त तिवारी मेसोब १३) मदनमोहन राधा चन्नापुर ८) आई. एस. सचार जमालपुर २५) गोपालचंद्र शर्मा तरबगंज ५) तार ओफीस का स्टाफ भलवारपुरा ३५)

नवजीवन की बंबई-शाखा में वसूल—

३-९-२४ तक स्वीकृत	४२४९-७-३
उसके बाद ९-९-२४ तक प्राप्त	१४१७-१४-३
जोड	५६६७-५-६

गांधीजी की यात्रा में मिले—

७-९-२४ की संख्या में स्वीकृत	१४५८-१२-३
उसके बाद अबतक मिले	८८०७-०-०
जोड	१०२६५-१२-३
कुल जोड	५९७८०-९-०

पाठक !

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)
विदेशों के लिए	,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ७

मुद्रक-प्रकाशक	अहमदाबाद, क्वार बदी ३०, संवत् १९८१	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
वेणीलाल छगनलाल बूच	रविवार, २८ सितम्बर, १९२४ ई०	सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

गांधीजी के समाचार

आज उपवास का १२ वां दिन है। फिरभी गांधीजी इस तरह उपवास को सहन कर रहे हैं कि दंग रह जाना पड़ता है। एकता परिषद के गांधीजी के एकता-संबंधी सूचित सिद्धान्तों को स्वीकारने और पं. मोतीलालजी के बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने वचन दिया है कि जिस क्षण डाक्टर सचमुच यह कह देंगे कि अब अन्तकाल नजदीक है, मैं उपवास छोड़ दूंगा।

मेरा उपवास

मैं पाठकों को यह यकीन दिलाना चाहता हूं कि मैंने यह उपवास बिना सोचे-समझे शुरू नहीं किया है। सच पूछिए तो जब से असहयोग का जन्म हुआ है तभी से मेरा जीवन एक बाजी हो रहा है। मैंने आंख मूंद कर उसमें हाथ नहीं डाला। इसके साथ रहने वाले खतरों की काफी चेतावनियां मुझे मिली थीं। मैं अपना कोई काम बिना प्रार्थना किये नहीं करता। मनुष्य स्खलनशील है। वह कभी निर्भ्रान्त नहीं हो सकता। जिसे वह अपनी प्रार्थना का उत्तर समझता है, संभव है कि वह उसके अहंकार की प्रतिध्वनि हो। अचूक मार्ग दिखाने के लिए मनुष्य का अन्तःकरण पूर्ण निर्दोष और दुष्कर्म करने में असमर्थ होना चाहिए। मैं ऐसा दावा नहीं कर सकता। मेरी तो भूलती-भटकती, गिरती-पड़ती, उठती और प्रयत्न करती अपूर्ण आत्मा है। सो मैं अपनेपर तथा अपनोंपर प्रयोग कर कर के ही आगे बढ सकता हूं। मैं ईश्वर के और इसलिए मनुष्यजाति के पूर्ण एकत्व को मानता हूं। हमारे शरीर यदि भिन्न भिन्न हैं तो क्या हुआ? आत्मा तो हमारे अन्दर एक ही है। सूर्य की किरण परावर्तन से अनेक दिखाई देती हैं। पर उनका आधार-उद्गम एक ही है। इसलिए मैं अपनेको अत्यन्त दुष्टात्मा से भी अलग नहीं मान सकता (और न सज्जनों के साथ मेरी तद्रूपता से ही इनकार किया जा सकता है)। ऐसी अवस्था में मैं, चाहूं या न चाहूं, अपने तमाम सजातियों को—मनुष्यों को—अपने प्रयोग में अनायास शामिल किये बिना नहीं रह सकता। और न प्रयोग किये बिना ही मेरा काम चल सकता है। जीवन को प्रयोगों की एक अनन्त मालिका ही समझिए।

मैं जानता था कि असहयोग एक खतरनाक प्रयोग है। अकेला असहयोग खुद एक अस्वाभाविक, बुरी और पापमय वस्तु है। पर, मुझे निश्चय है कि शान्तिमय असहयोग प्रसंगोपात्त एक पवित्र कर्तव्य है। मैंने इसे अनेक बातों में साबित कर दिखाया है। पर हां, बहु-जन-समाज पर उसको आजमाने में गलतियां होने की बहुत संभावना थी। लेकिन असाध्य-भीषण रोग का इलाज भी दारुण ही करना पड़ता है। अराजकता तथा उससे भी बुरी बुराइयों के लिए शान्तिमय असहयोग के सिवा दूसरा कोई उपाय ही न था। पर चूंकि वह शान्तिमय था, मुझे अपनी जिन्दगी तराजू पर रखनी पड़ी।

जो हिन्दू-मुसलमान दोनों दो बरस पहले खुल्लमखुल्ला एक साथ मिल-जुल कर काम करते थे वही अब कुछ जगह कुत्ते-बिल्ली की तरह लड़ रहे हैं। यह इस बात को भली भांति दिखाता है कि उनका वह असहयोग शान्तिमय न था। मैंने बंबई, चौरीचौरा तथा दूसरे छोटे-बड़े मौकों पर इसका चिह्न देख लिया था। मैंने उन मौकों पर प्रायश्चित्त भी किया। उस बात से उसका असर भी हुआ। पर इस हिन्दू-मुस्लिम तनाजे का तो ख्याल भी नहीं हो सकता था। जब कोहाट की दुर्घटना का समाचार मैंने सुना तो यह मेरे लिए असह्य हो गया। साबरमती से देहली रवाना होने के पहले सरोजनी देवी ने मुझे लिखा था कि शान्ति के लिए भाषणों और उपदेशों से काम न चलेगा। आपको जरूर कोई रामबाण दवा ढूंढ निकालनी चाहिए। उनका मेरे सिर इसकी जिम्मेवारी डालना ठीक ही था। क्या मैं लोगों के अन्दर इतना जीवन डालने में साधनीभूत न हुआ हूं? और यदि वह जीवन-शक्ति आत्म-नाशक साबित होती हो तो मुझीको उसका उपाय खोजना लाजिमी है। मैंने उन्हें जवाब में कहा कि यह तो प्रयास के द्वारा ही हो सकता है। कोरी प्रार्थना निस्सार आडम्बर होगा। उस समय मैं यह बिल्कुल न जानता था कि वह दवा होगी यह लंबा उपवास। इतना होने पर भी यह उपवास इतना लंबा मुझे नहीं मालूम होता कि जिससे मेरी व्यथित आत्मा को शान्ति को मिले। क्या मैंने गलती की है? क्या धीरज से काम नहीं लिया है? क्या मैंने पाप के साथ समझौता कर लिया है? मुझ से यह सब बन पड़ा हो या न बन पड़ा हो, मैं तो जो अपने सामने देखता हूं वही जानता हूं। यदि उन लोगों

मैं जो आज सह रहे हैं सच्ची अहिंसा और सत्य को समझा होता तो यह चालू द्वंद्व-युद्ध जो आज-कल हो रहा है, असंभव बात होती। इसमें कहीं न कहीं मेरी जिम्मेवारी जरूर है।

अमेठी, संभल और गुलबर्गा की दुर्घटनाओं से मेरा दिल बड़े जोर के साथ दहल उठा था। मैं अमेठी और संभल की, हिन्दू और मुसल्मान-मित्रों के द्वारा लिखी, रिपोर्ट पढ़ चुका था। मैं गुलबर्गा गये हिन्दू और मुसल्मान मित्रों के द्वारा एकमत से भेजा वृत्तान्त पढ़ चुका था। मैं बड़े दुःखित हृदय से उनके बारे में लेख आदि लिखता था—पर उसके इलाज के लिए लाचार रहता था। कोहाट के समाचारों से मेरे हृदय का वह धुआंधार भक से जल उठा। कुछ न कुछ करना जरूरी था। दो रात मैंने मनोव्यथा और बेकरारी में गुजारी। बुधवार को दवा हाथ लग गई। बस, मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए। सत्याग्रहाश्रम में रोज प्रातःकाल प्रार्थना के समय हम कहते हैं—

"कर-चरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवण-नयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शंभो!"

मेरा प्रायश्चित्त है एक विदीर्ण और क्षतविक्षत हृदय की प्रार्थना कि परमात्मन् मेरे अनजान में किये पापों को क्षमा कर। यह उन हिन्दुओं और मुसल्मानों के लिए एक चेतावनी है जो मेरे साथ प्रेमभाव बताया करते हैं। यदि वे सचमुच मेरे साथ प्रेम रखते हैं, और यदि सचमुच मैं उसका पात्र हूं तो वे मेरे साथ, अपने हृदय से ईश्वर को हटा देने के घोर पाप का प्रायश्चित्त करें। एक दूसरे के धर्म को गालियां देना, अंधाधुन्ध वक्तव्य प्रकाशित करना, असत्य बोलना, निर्दोष लोगों के सिर फोड़ना, मन्दिरों या मसजिदों को तोड़ना, अवश्य ईश्वर को न मानना है। हमारी इस 'यादवी' की दुनिया—कोई खुशी के साथ और कोई दुःख के साथ—निहार रही है। हम शैतान के दांव में फंस गये हैं। धर्म का लक्षण फिर उसे आप किसी भी नाम से पुकारिए—यह नहीं है। हिन्दुओं और मुसल्मानों के लिए उचित विधि उपवास नहीं बल्कि अपने कदम पीछे हटाना—अपनी गलती सुधारना—है। एक मुसल्मान के लिए सच्चा प्रायश्चित्त यही है कि वह अपने किसी हिन्दू-भाई के प्रति दुर्भाव न रक्खे और एक हिन्दू के लिए भी यही सच्चा प्रायश्चित्त है कि वह किसी मुसल्मान भाई के प्रति जरा भी दुर्भाव न रक्खे।

मैं किसी भी हिन्दू या मुसल्मान से यह नहीं कहता कि वह अपने धर्म-सिद्धान्त को अणु-मात्र छोड़ें। पर वह अपना यह निश्चय जरूर कर ले कि यह सचमुच धर्म का अंग है। लेकिन मैं हर हिन्दू और मुसल्मान से यह जरूर कहता हूं कि वह किसी पार्थिव लाभ के लिए एक दूसरे न लड़े। यदि किसी भी जाति को मेरे उपवास के निमित्त किसी सिद्धान्त की बात, में झुकना पड़ा तो मेरे हृदय को अत्यन्त व्यथा होगी। मेरा उपवास तो ईश्वर और मेरे बीच की बात है।

मैंने किसी मित्र से इसकी चर्चा न की—हकीम सा० से भी नहीं जो कि बुधवार को बड़ी देर तक मेरे साथ रहे थे—और न मौलाना महम्मद अली से, जिनके घर में मैं अतिथिसत्कार का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूं। जब कोई मनुष्य ईश्वर से अपना हिसाब कर लेना चाहता हो तब वह किसी तीसरे से सलाह करने नहीं जाता। उसे जाना भी न चाहिए। यदि उसे इसके बारे में कुछ शक-शुबह हो तो जरूर सलाह-मशवरा करना चाहिए। पर मुझे इस बात की आवश्यकता में जरा भी शक-शुबह न था। मित्र लोग मुझे उपवास शुरू करने से रोकना अपना कर्तव्य समझते। ऐसी सलाह-मशवरे या दलीलों का विषय नहीं होती। यह तो हृदय की व्याकुलता की बात है। जब राम ने अपने प्राप्त कर्तव्य के पालन करने का निश्चय कर लिया तब न तो वे अपनी पूज्य माता के रोदन-क्रन्दन से, न गुरु के उपदेश से, न प्रजा-जन के अनुनय-विनय से, और यहां तक कि न पिता की मृत्यु की निश्चित संभावना से भी अपनी प्रतिज्ञा से जरा भी डिगे। ये बातें तो क्षणिक हैं। यदि राम ने ऐसे मोह के अवसरों पर अपने हृदय को वज्र न बना लिया होता तो हिन्दू-धर्म में धर्मांश बहुत न रह जाता। वे जानते थे कि यदि मुझे मानव-जाति की सेवा करना है और भावी पीढ़ियों के लिए आदर्श बनना है तो ऐसी तमाम यन्त्रणाओं से गुजरना ही होगा।

पर क्या एक मुसल्मान के घर में बैठ कर मुझे यह उपवास करना उचित था? हां, जरूर था। मेरा उपवास किसी भी प्राणी के प्रति दुर्भाव से प्रेरित होकर नहीं अंगीकार किया गया है। मेरा एक मुसल्मान के घर में रहना इसके ऐसे मानी किये जाने खिलाफ एक गैरण्टी ही होगी। एक मुसल्मान के घर में इस उपवास का शुरू और खतम होना बिल्कुल ही उचित है।

और महम्मदअली भी कौन है? अभी, उपवास के दो ही दिन पहले, एक खानगी मामले में हमारी बातचीत होती थी। मैंने कहा—जो मेरी चीज है सो आपकी है जो आपकी है सो मेरी है। और मुझे सर्व-साधारण से कृतज्ञता-पूर्वक यह बात कहनी चाहिए कि महम्मदअली के घर पर जैसा स्वागत-सत्कार मेरा हो रहा है वैसा मेरा कहीं न हुआ होगा। मेरी हर जरूरत का पहले से ख्याल रक्खा जाता है। उनके घर के हर शख्स के दिल में सबसे ज्यादह ख्याल इसी बात का रहता है कि किस तरह मुझे और मेरे साथवालों को आराम पहुंचावें। डाक्टर अनसारी और डा. अब्दुल रहमान ने अपनेको मेरा डाक्टर ही बना लिया है। वे रोज आ कर मुझे देख जाते हैं। मुझे अपने जीवन में अनेक सुखदायी अवसर मिले हैं। यह अवसर पिछलों से कम नहीं है। भोजन-पान ही सब कुछ नहीं। यहां तो मैं उत्कृष्ट प्रेम का अनुभव कर रहा हूं। यह मेरे लिए भोजन-पान से कहीं अधिक है।

कुछ लोग कानों-कान कह रहे हैं कि मैं मुसल्मान-मित्रों के बीच इतना रहकर अपनेको हिन्दुओं का दिल जानने के अयोग्य बना रहा हूं। पर हिन्दुओं का दिल कोई मुझसे भिन्न चीज है? जब कि मेरे शरीर और मन का एक एक जर्रा हिन्दू है तो निश्चय ही हिन्दुओं के मन की बात जानने के लिए मुझे हिन्दुओं के बीच रहने की कोई जरूरत नहीं है। मेरा हिन्दू-धर्म क्षुद्र वस्तु होगी, यदि वह अत्यन्त प्रतिकूल प्रभावों के अन्दर भी न फल-फूल सके। मैं सहज-स्फूर्ति से ही इस बात को जानता हूं कि हिन्दू-धर्म के लिए किस बात की आवश्यकता है। लेकिन मुसल्मानों के दिल का हाल जानने के लिए जरूर मुझे प्रयास करना होगा। उत्कृष्ट मुसल्मानों के घनिष्ठ सम्पर्क में मैं जितना ही अधिक आऊंगा उतना ही मुसल्मानों और उनके कार्यों के विषय में मेरा अन्दाज अधिक न्याययुक्त होगा। मैं इन दोनों जातियों के बीच एक संधि-साधन बनने का प्रयत्न कर रहा हूं। यदि आवश्यकता हो तो अपना खून दे कर भी इन दो जातियों में सन्धि करा देने के लिए मैं लालायित हूं। लेकिन ऐसा करने के पहले मुझे मुसल्मानों

को यह साबित कर देना होगा कि मैं उन्हें उतना ही प्यार करता हूं जितना कि हिन्दुओं को । मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि सब पर समान प्रेम रक्खो । ईश्वर इसमें मेरा सहायक हो । और और बातों के अलावा मेरे उपवास का एक उद्देश यह भी है कि मैं उस समभाव पूर्ण और निस्वार्थ प्रेमभाव को प्राप्त कर सकूं । २२-९-२४

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

मासिक बढती

कातनेवालों की संख्या २७८० से बढ कर एक महीनें ही में ४०,०८ तक पहुंच जाना कोई बुरी प्रगति नहीं है । पाठक इस बात पर गौर करें कि यह वृद्धि सदस्य और गैर-सदस्य दोनों में ही पायी गई है । गुजरात का नंबर अभी तक तो अव्वल ही रहा है । लेकिन आंध्र इस दौड में उसके बिलकुल पीछे लगा हुआ है । कर्नाटक का ४१ से एकदम कूद कर ३५२ तक जानां और तामील नाड का ९० से ४५६ तक पहुंच जाना बहुत उत्साहवर्द्धक है । इस साल करनाटक को महासभा अपने यहां बुलाने की इज्जत मिली है । इसलिए उसे तो अव्वल नंबर पर ही होना चाहिए । इस महीने का अभी और सूत आना बाकी है । उससे तो वृद्धि और भी अधिक स्पष्ट प्रतीत होगी । यदि इसी तरह प्रगति होती रहेगी तो बहुत जल्द एक बडी संख्या कातनेवालों की हो जायगी । पाठक यह समझ ही लेंगे कि जितने स्वेच्छा से कातने वाले हैं उन सबको इस मीजान में शामिल नहीं किया गया है । जो लोग अनियमित कातते हैं उनकी संख्या नियमित कातने वालों की संख्या से कमसे कम दूनी होगी । और मजदूरी लेकर कातनेवाले इसमें शुमार नहीं किये गये हैं । यदि सिर्फ वे जिन्होंने नियमित कातना शुरू कर दिया है स्वराज्य मिलने तक बराबर कातते रहेंगे (यह कहूं उनसे बहुत बडी आशा नहीं रक्खी जाती) तो हम उसको कुछ जल्दी जरूर पा सकेंगे ।

सभापति की तरफ से इनाम

मौलाना महम्मदअली रोजाना कातने में प्रगति कर रहे हैं । घण्टों सार्वजनिक कार्यों में लगे रहने पर भी कात रहे हैं । गत मास के २००० गज पूरा करने के लिए आधीरात तक बराबर कातते रहे थे । उन्होंने मुझे यह जाहिर करने को कहा है कि उनके कार्य-काल में जो प्रान्त गुजरात से बाजी ले जायगा उसे पांच चरखे इनाम दिये जायगे । जो प्रान्त यह बाजी मारेगा उसके सबसे लायक और गरीब कातनेवालों को ये मिलेंगे । चरखे साबरमती में तैयार किये आखिरी तर्ज के होंगे । जहांतक कातने वालों की संख्या से और सूत के वजन से संबंध है गुजरात से कातने में बाजी मार जाना आसान बात नहीं है । सूत की अच्छाई और बारीकी में बंगाल, करनाटक, आंध्र और तामील नाड गुजरात से बाजी ले जा सकते हैं लेकिन उसको स्वेच्छा से कातने वालों की संख्या में और सूत के वजन में भी हरा देना वह कभी आसानी से न होने देगा । लेकिन मौलाना साहब ने कातनेवालों की संख्या का ख्याल कर के यह इनाम रक्खा है । इस लिए जहांतक मेरा ख्याल है बंगाल, तामील नाड और करनाटक की तरफ से स्पर्धा का जोर पडना ही संभवनीय है । मुझे आशा है कि इस इनाम की कीमत की ओर न देख कर महासभा के सदस्य गण इसी बात का ख्याल करेंगे कि महासभा के सभापति की ओर से यह इनाम दिया जायगा । यह शर्त, मैं चाहता हूं, कि बडी गंभीर और फलदायी हो । इस इनाम को जीतने के लिए अभी तीन महीने बाकी हैं । यदि सब के सब प्रान्त प्रयत्न करेंगे तो मैं जानता हूं कि मौलाना साहब को इससे बडा संतोष होगा, क्योंकि स्वेच्छा से कातने का राष्ट्रीय महत्व वे समझ गये हैं । अपना काता हुआ सूत दिखाने में और उसको रोजाना अधिक सुधार कर बारीक और बराबर कातने का प्रयत्न करने में वे बडी दिलचस्पी ले रहे हैं । (यं० इं०) मो० क० गांधी

और सूत

अगस्त के सूत का ब्योरा पिछले सप्ताह प्रकाशित हो जाने के बाद अखिल भारत खादीमण्डल को और भी सूत मिला है । अब भेजने वालों की कुल संख्या ५८०० हुई है अर्थात् पिछले सप्ताह से कोई ६५० बढ गये हैं । अगले सप्ताह उसकी सही संख्या प्रकट कर दी जायगी । युक्तप्रान्त से ५८१ शख्सों ने सूत भेजा है और आंध्र, तामीलनाड और गुजरात में से क्रमशः २४७,११२, ९० शख्सों ने अधिक संख्या में सूत भेजा है ।

मलाबार-संकट-निवारण

सत्याग्रहाश्रम में वसूल हुआ—

पहले स्वीकृत	२८७६५-१५-०
२३-९-२४ तक वसूल	१३८८-१२-०
जोड	३०,१५४-११-०

गुजरात प्रान्तिक समिति में वसूल—

पहले स्वीकृत	१२,०११-०-३
उसके बाद २३-९-२४ तक आया	७५९-१५-११
जोड	१२,७७१-०-२

यंग इंडिया, नवजीवन और हिन्दी नवजीवन के दफ्तरों में प्राप्त—

पहले स्वीकृत	११५१६-१२-६
उसके बाद २३-९-२४ तक प्राप्त	१६९७-२-०
जोड	१३२१३-१४-६

नवजीवन की बंबई-शाखा में वसूल—

पहले स्वीकृत	७४९८-१२-०
उसके बाद २२-९-२४ तक प्राप्त	२४०-८-०
जोड	८७३९-४-०

गांधीजी को यात्रा में मिले—

	१०३१६-१२-३
कुल जोड	७५,१९६-९-११

हे पाठक !

मैं तुम्हें क्या लिखूं ? मेरा और तुम्हारा संबंध, मेरी दृष्टि से, असाधारण है । 'नवजीवन' के संपादक का पद मैंने न तो धन-लोभ से और न कीर्ति-लोभ से ग्रहण किया । मैंने तो अपने शब्दों के द्वारा तुम्हारे हृदय को हिलाने के लिए यह पद स्वीकार किया है । मेरे सिर तो वह अनायास आ पड़ा है । परन्तु जब से सौंपा है तभी से मैं तुम्हारा ही चिन्तन करता रहा हूं । प्रति सप्ताह 'नवजीवन' में मैंने अपनी आत्मा उंडेलने का प्रयत्न किया है । एक भी शब्द ईश्वर को साक्षी रक्खे बिना मैंने नहीं लिखा है । तुम्हें जो प्रसादी पसंद हो वही देना मैंने अपना धर्म नहीं समझा । कितनी ही बार मैंने कड़वी घूंट भी पिलाई है । किन्तु कड़वी या मीठी हरएक घूंट में मैंने वही बताने की कोशिश की है जिसे मैंने निर्मल धर्म माना है, जिसे मैंने स्वच्छ देश-सेवा मानी है ।

आज जो मैं उपवास कर रहा हूं सो संपादक-पद के अधिक योग्य होने के लिए । मैं जानता हूं कि 'नवजीवन' के अनेक पाठक भाई-बहन मेरे लेखों को देखकर चलते हैं । कहीं मैंने उन्हें गलत रास्ता दिखाकर हानि पहुंचाई हो तो ? यह ख्याल मुझे बराबर खटकता रहता था ।

अस्पृश्यता के बारे में मुझे कभी लेश-मात्र सन्देह न हुआ । चरखे के विषय में तो सन्देह के लिए जगह ही नहीं । वह लंगड़े की लाठी है--सहारा है । भूखे को खाना देने का साधन है । निर्धन स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने वाला किला है । सब लोगों के द्वारा उसके स्वीकृत हुए बिना हिन्दुस्तान की फाकेकशी मिटना असंभव मानता हूं । इस कारण चरखा चलाने में अथवा उसका प्रचार करने में भूल के लिए कहीं भी गुंजायश नहीं है । हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य की आवश्यकता के विषय में भी कहीं संशय के लिए स्थान नहीं । उसके बिना स्वराज्य आकाश-पुष्पवत् है ।

परन्तु विशाल अहिंसा को ग्रहण करने के लिए तुम तैयार हो या नहीं, इसके विषय में मुझे सदा सन्देह रहा है । मैंने तो पुकार पुकार कर कहा है कि अहिंसा—क्षमा वीर का लक्षण है । जिसे मरने की शक्ति है वही मारने से अपनेको रोक सकता है । मेरे लेखों से तुम भीरुता को अहिंसा मान लो तो ? अपने लोगों की रक्षा करने के धर्म को खो बैठो तो ? तो मेरी अधोगति हुए बिना न रहे । मैंने कितनी ही बार लिखा है और कहा है कि कायरता कभी धर्म हो ही नहीं सकता । संसार में तलवार के लिए जगह जरूर है । कायर का तो क्षय ही हो सकता है । उसका क्षय ही योग्य भी है । परन्तु मैंने तो यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि तलवार चलाने वाले का भी क्षय ही होगा । तलवार से मनुष्य किसको बचावेगा और किसको मारेगा ? आत्मबल के सामने तलवार बल तृणवत् है । अहिंसा आत्मा का बल है । तलवार का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है । अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है । जो इस बात को न समझ सके उसे तो तलवार हाथ में लेकर भी अपने आश्रितों की रक्षा जरूर करनी चाहिए ।

ऐसा अनमोल अहिंसा-धर्म मैं शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं कर सकता । खुद पालन करके ही उसका पालन कराया जा सकता है । इससे इस समय मैं उसका पालन कर रहा हूं । मेरे मन्दिरों को तोड़नेवाले मुसलमान को भी मैं तलवार से न मारूंगा । उसपर मैं क्रोध भी न करूंगा । उसे भी मैं केवल प्रेम के ही द्वारा जीतूंगा ।

मैंने लिखा है कि हिन्दुस्तान में यदि एक ही शुद्ध प्रेमी पैदा हो जाय तो वह स्वधर्म की रक्षा कर सकता है । मैं चाहता हूं कि ऐसा बनूं । मैं हमेशा लिखता रहा हूं कि तुम भी ऐसे बनो ।

मैं जानता हूं कि मेरे अन्दर बहुत प्रेम है । पर प्रेम की तो सीमा ही नहीं होती । मैं यह भी जानता हूं कि मेरा प्रेम असीम नहीं है । मैं सांप के साथ कहां खेल सकता हूं ? जो अहिंसा-मूर्ति हो उसके सामने सांप भी ठंढा हो जाता है । मुझे इसपर पूरा पूरा विश्वास है ।

उपवास करके मैं अपनी जांच कर रहा हूं, विशेष प्रेम उत्पन्न कर रहा हूं । मैं अपना कर्तव्य पूरा करके तुम्हें तुम्हारा कर्तव्य बताने की इच्छा रखता हूं । तुम यदि मेरे साथ उपवास करोगे तो वह निरर्थक है । उसके लिए समय, अधिकार, आदि की जरूरत रहती है । तुम्हारा कर्तव्य तो यही है कि जो तीन चीजें मैं भिन्न भिन्न रूप में तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूं उनको साधो । उनके द्वारा दूसरी सब बातें अपने आप सध आवेंगी । यह मेरा विश्वास है ।

मेरे उपवास के औचित्य पर शंका करने के बदले तुम ईश्वर से यही मांगो कि मेरे उपवास निर्विघ्न पूरे हों, मैं फिर 'नवजीवन' के द्वारा तुम्हारी सेवा करने लगूं और मेरे शब्दों में अधिक बल आवे । (नवजीवन)

देहली,
कार बदी ११
बुधवार ।

तुम्हारा सेवक,
मोहनदास गांधी

ईश्वर एक है

पिछले गुरुवार की रात को पहले से वक्त मुकर्रर कर के कुछ मुसलमान मित्र मुझसे मिलने आये थे। उनमें मुझे सरगर्मी और सचाई दिखाई देती थी। शुद्धि और संगठन के खिलाफ उन्हें बहुत-कुछ कहना था। मैं इन हल-चलों के बारे में अपने विचार पहले ही प्रकाशित कर चुका हूं। जहांतक हो सके, इन शुभ दिनों में, मैं विवादास्पद विषयों पर कुछ भी कहना नहीं चाहता। यहां तो मैं इनके बताये एकता के उपाय की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना चाहता हूं। उन्होंने कहा—"हम वेदों कीअपौरुषेयता को मानते हैं। हम श्रीकृष्णजी महाराज और रामचन्द्रजी महाराज (विशेषण उन्हींके हैं) को भी मानते हैं। फिर हिन्दू क्यों कुरान को अपौरुषेय मानकर हमारे साथ नहीं कहते "लाइलाहिल्लिल्लाह महम्मदरसूलिल्लाह" (अर्थात् सब देवों में खुदा एक है और महम्मद उसका नबी है?) हमारा मजहब संकुचित--विभजक नहीं है उल्टा वह तो खसूसन् समावेशक—व्यापक है।

मैंने उनसे कहा कि आपका उपाय उतना आसान नहीं है जितना कि आप बताते हैं। आपका यह सूत्र चाहे कुछ सुशिक्षित लोगों के लिए ठीक हो, पर राह चलते लोगों के लिए यह काम न [illegible]। क्योंकि हिन्दुओं की दृष्टि में गो-रक्षा और हरिकीर्तन—जिसमें बाजे के साथ बेरोक संगीत करते हुए फिर मस्जिद के आगे होकर जाना हो तो भी, जाना—हिन्दू-धर्म का सार है और मुसल्मानों के खयाल में गो-वध और बाजे बजाने की रोक इस्लाम का सार सर्वस्व है। इसलिए यह जरूरी है कि हिन्दू लोग मुसल्मानों को गो-कुशी छोड देने पर मजबूर करना छोड दें और मुसलमान लोग हिन्दुओं को बाजे बंद करने पर लाचार करना छोड दें। गो-कुशी और बाजे बजाने के नियम-विधान का काम दोनों जातियों के सद्भाव पर छोड दिया जाय। ज्यों ज्यों दोनों में सहनशीलता के भाव बढते जायंगे त्यों त्यों दोनों के रिवाजों का रूप अपने आप यथा-योग्य हो जायगा। पर इस नाजुक सवाल का अधिक विस्तार यहां करना नहीं चाहता।

मै तो यहां उन मुसल्मान-मित्रों के बताये आकर्षक सूत्र पर विचार करना चाहता हूं और कहना चाहता हूं कि इसमें से कम से कम मैं क्या मान सकता हूं। मेरा सहज स्वभाव हिन्दू है। और इसलिए मैं जानता हूं कि इसपर मैं जो कुछ कहूंगा वह हिन्दुओं के बहु जन-समाज को भी पसंद होगा।

सच पूछिए तो औसत दर्जे मुसल्मान ही वेदों की तथा दूसरे हिन्दू धर्म-ग्रन्थों की अपौरुषेयता को या कृष्ण अथवा राम के पैगंबर या अवतार या देवता होने की बात को न कुबूल करेंगे। हिन्दुओं के लिए तो कुरान शरीफ या पैगम्बर साहब को भला-बुरा कहने का यह नया तरीका निकला है। हिन्दुओं की जमात में मैंने पैगम्बर साहब के प्रति आदर-भाव देखा है। यहां तक कि हिन्दुओं के गीतों में इस्लाम की तारीफ पाई जाती है।

अब सूत्र के पहले भाग को लीजिए। ईश्वर वाकई एक है। वह अगम, अगोचर और मानव-जाति के बहु-जन-समाज के लिए अज्ञात है। वह सर्वव्यापी है। वह बिना आंखों के देखता है, बिना कानों के सुनता है। वह निराकार और अभेद है। वह अजन्मा है, उसके न माता है, न पिता, न सन्तान—फिर भी वह पिता, माता, पत्नी या संतान के रूप में पूजा ग्रहण करता है। यहांतक कि वह काष्ठ और पाषाण के भी रूप में पूजा-अर्चा को अंगीकार करता है, हालां कि वह न तो काष्ठ है, न पाषाण आदि ही। वह हाथ नहीं आता—चकमा देकर निकल जाता है। अगर हम उसे पहचान लें तो वह हमारे बिल्कुल नजदीक है। पर अगर हम उसकी सर्व-व्यापकता को अनुभव न करना चाहें वह हमसे अत्यन्त दूर है। वेद में अनेक देवता हैं। दूसरे धर्मग्रन्थ उन्हें देव-दूत या नबी कहते हैं। पर वेद तो एक ही ईश्वर का गुण-गान करते हैं।

मुझे कुरान को ईश्वर-प्रेरित मानने में कोई संकोच नहीं होता, जिस प्रकार कि बाइबिल, जेन्दावस्ता, या ग्रन्थ साहब तथा दूसरे पुण्य धर्मग्रन्थों को मानने मे नहीं होता। ईश्वरी प्रकाश किसी एक ही राष्ट्र या जाति की सम्पत्ति नहीं है। यदि मुझे हिन्दू-धर्म का कुछ भी ज्ञान है तो वह समावेशक—व्यापक, सदावर्धमान और परिस्थिति के अनुरूप नवीन रूप धारण करने वाला है। उसके यहां कल्पना, तर्कना और तर्क के लिए पूरा पूरा अवकाश है। कुरान और पैगम्बर साहब के प्रति आदर-भाव उत्पन्न करने में मैंने हिन्दुओं के नजदीक जरा भी दिक्कत महसूस न की। पर हां, मुसल्मानों के अन्दर वही आदर-भाव वेदों और अवतारों के प्रति उत्पन्न करने में मैंने अलबत्ते दिक्कते अनुभव की हैं। दक्षिण आफ्रिका में मेरे एक मुसल्मान मुवक्किल थे। अफसोस है, अब वे दुनिया में न रहे। हमारा वकील-मुवक्किल का रिश्ता आगे चलकर घनिष्ठ साथियों के रूप में परिणत हो गया था। हम बहुत बार धार्मिक बहस भी किया करते। मेरे वे मित्र किसी अर्थ मे विद्वान् तो नहीं कहे जा सकते, पर उनकी बुद्धि कुशाग्र की तरह पैनी थी। वे कुरान की सब बातें जानते थे। दूसरे धर्मों की भी कुछ बातों का ज्ञान उन्हें था। मुझे इस्लाम स्वीकार कराने में वे दिलचस्पी रखते थे। मैंने उनसे कहा—मैं कुरान शरीफ और पैगम्बर साहब के प्रति पूरा पूरा आदर भाव रख सकता हूं—पर आप वेदों और अवतारों को न मानने का इसरार क्यों करते हैं? उन्हींकी मदद से तो मैं आज तो कुछ हूं हो पाया हूं। भगद्गीता और तुलसीदास की रामायण से मुझे अजहद शान्ति मिलती है। मैं खुल्लमखुल्ला कुबूल करता हूं, कि कुरान बाइबिल तथा दुनियां के अन्यान्य धर्म के प्रति मेरा अति आदर-भाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उनका उतना असर नहीं होता जितना कि श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।" तब वे मुझसे ना-उम्मीद हो गये और उन्होंने बे-खटके मुझसे कहा आपके दिमाग में जरूर कुछ खामी है। और उनकी यह एकही मिसाल नहीं है। उसके बाद ऐसे कितने ही मुसल्मान मित्रों से मेरी मुलाकात हुई है जो ऐसे ही विचार रखते हैं। फिर भी मैं मानता हू कि यह मनः स्थिति चंदरोजा है। मैं जस्टिस अमीरअली के इस विचार से सहमत हूं कि हारू-उल्-रशीद और मामू के जमाने में इस्लाम दुनिया के तमाम मजहबों में सब से ज्यादह सहिष्णु था। पर आगे चलकर उनके जमाने के धर्मगुरुओं की प्रतिपादित उदार-वृत्ति के खिलाफ प्रत्याघात शुरू हुआ। इन प्रतिगामियों में भी बडे विद्वान् और प्रभावशाली लोग थे और उन्होंने इस्लाम के उदार और सहिष्णु धर्मगुरुओं और तत्त्ववेत्ताओं का प्रायः दबा दिया था। उस प्रत्याघात के प्रभाव से आज भी हम भारत में दुख पा रहे हैं। लेकिन इस बात में तिल-मात्र सन्देह नहीं है कि इस्लाम के अन्दर इस अनुदारता और असहिष्णुता को निकाल डालने की पूरी पूरी क्षमता है। हम बडी तेजी से उस काल के नजदीक पहुंच रहे हैं जब कि इन मित्रों का सुझाया सूत्र सारी मनुष्य-जाति को मान्य हो जायगा। इस समय आवश्यकता इस बात की नहीं है कि सब का धर्म एक बना दिया जाय बल्कि इस बात की है कि भिन्न भिन्न धर्मों के अनुयायी और प्रेमी परस्पर आदर-भाव और

सहिष्णुता रक्खे। हम सब धर्मों को मृतवत् एक सतह पर लाना नहीं चाहते। बल्कि चाहते हैं विविधता में एकता। पूर्व-परम्परा तथा आनुवंशिक संस्कार, जलवायु और दूसरी आसपास की बातों के प्रभाव को उन्मूलित करने का प्रयत्न केवल असफल ही नहीं बल्कि अधर्म्य होगा। आत्मा सब धर्मों की एक है-हां, वह भिन्न भिन्न आकृतियों में मूर्तिमान् होती है। और यह बात काल के अन्ततक कायम रहेगी। इसलिए जो बुद्धिमान हैं, समझदार हैं, वे तो ऊपरी कलेवर पर ध्यान न दे कर भिन्न भिन्न आकृतियों में उसी एक आत्मा का दर्शन करेंगे। हिन्दुओं के लिए यह आशा करना कि इस्लाम, ईसाई धर्म, और पारसी-धर्म हिन्दुस्तान से निकाल दिया जा सकेगा, एक निरर्थक स्वप्न है—इसी तरह मुसलमानों का भी यह उम्मीद करना कि किसी दिन अकेले उनके कल्पनागत इस्लाम का राज्य सारी दुनिया में हो जायगा, कोरा ख्वाब है। पर अगर इस्लाम के लिए एक ही खुदा को तथा उसके पैगम्बरों की अनन्त परंपरा को मानना काफी होता हो तो हम सब मुसल्मान हैं-इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं। सत्य किसी एक ही धर्म-ग्रन्थ की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है। १५-९-२४

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

इस तपश्चर्या का मर्म

विफल प्रार्थनायें

उपवास के पहले दिन गांधीजी ने मुझे हुक्म दिया था कि मैं उनके सामने कुछ भी दलीलें पेश न करूं। पर कहीं मौलाना साहब (महमदअली) को ऐसा हुक्म दिया जा सकता है? उन्हें तो कहा रोना-गाना नहीं और धीरज रखना। उन्होंने सजल आंखों से दलीलें कीं, प्रेम-भरे रोष से दलीलें कीं. 'बापू यह क्या? इसे मुहब्बत कहते हैं? आपने तो हमें धोखा दिया? आपका तो यह इकरार था न कि जो कुछ काम करूंगा तुम लोगों से सलाह मशवरा कर के करूंगा। वह इकरार कहां गया?'

'कितनी ही बातें ऐसी होती हैं न, कि जिनके लिए मुझे खुदा से ही सीधा हिसाब कर लेना पड़ता है?'

'पर आपने तो खुदा को हमारे और आपके बीच में जो रक्खा है!'

'नहीं, हम दोनों खुदा के बन्दे हैं। दोनों ने खुदा के साथ इकरार किया है। मैं उसके साथ बातें कर रहा हूं। यह काम है ऐसा कि मुझे दूसरे के साथ सलाह मशवरा करने की जरूरत नहीं। यह बात तो मेरी रग-रग में भरी हुई है। मेरा सारा जीवन इसीपर आधार रखता है। पहले मैंने तमाम उपवास किसीसे बिना चर्चा किये ही किये थे।'

'पर इस तरह एकाएक कोई काम करना क्या जल्दबाजी नहीं? आप हंसते हैं, आपको तो इसमें कुछ नहीं दिखाई देता, पर हमारा क्या हाल होगा?'

'आपकी खैरियत ही होगी। और आप ऐसा मान ही क्यों लेते हैं कि मैं मर ही जाऊंगा?'

'आप किसलिए मान लेते हैं कि 'मैं जरूर जीता रहूंगा' आप शरीर के साथ ऐसा खिलवाड़ करते हैं और मानते हैं कि आपको कुछ न होगा?'

'भाई मानो, तसल्ली रक्खो। इस तरह कोई रोता है? मैं कल आपको ज्यादह समझाऊंगा।'

हकीमजी भी घबराये हुए तो थे ही। उनका कहना था कि अभी विचार और चर्चा चल ही रही है। ऐसी हालत में आप का ऐसा भीषण काम कर बैठना ठीक नहीं कहा जा सकता। पन्द्रह दिन की मीयाद दीजिए और अगर इतने दिनों में देश की हालत न सुधरे तो आप जरूर रोजा रखिएगा, हम आपको न रोकेंगे।

'अच्छा पन्द्रह दिन की मीयाद लेकर देख लीजिए। मेरे उपवास की बात पन्द्रह दिन तक जाहिर न कीजिए। यहां किसी को आने न दीजिए और फिर आकर मुझसे कहिए कि अब देश में शान्ति है तो मैं छः दिन के बाद उपवास छोड़ूंगा!' हकीम साहेब हँसे। शरीर की दृष्टि से बातें करने लगे। तब बापूजी कहने लगे '२१ दिन तक रोजे के बाद मेरी तबियत आपसे अच्छी ही होगी'। बेगम साहबा तो परदा छोड़कर सबके बीच में आ बैठी। आग्रह के साथ कहने लगीं—'मैं तो उपवास छुड़ाये बिना यहां से उठूंगी ही नहीं। बी अम्मा अगर ऊपर आने लायक होती तो आतीं। पर वे बिस्तरे से उठ नहीं सकतीं। इसीलिए मैं आई हूं। आप रोजा छोड़ दीजिए, नहीं तो हम सब २१ दिन तक रोजा रक्खेंगे। इस तरह रात के ११ बज गये। तब ज्यादह दलील न करते सब उठे। गांधीजी तो ११॥ बजे कातने बैठे। कातना बाकी रह गया था।

मरने की कुंजी कैसे बताऊं?

दूसरे दिन मुझसे कहा—'अच्छा, महादेव, चौरी-चौरा और बंबई के उपवास का मर्म तो तुम समझे हो न?' 'हां, जरूर'। 'तब इस उपवास का क्यों नहीं समझते?' 'वहां तो आपने अपना कुसूर माना था? यहां ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। यहां कुसूर का तो सवाल ही नहीं है।'

'है। यह कितना भ्रम! चौरी-चौरा में तो ऐसे लोग थे जिन्होंने मुझे न कभी देखा, न कभी जाना-चीन्हा। यहां तो मेरे परिचित, मुझसे मुहब्बत रखने वाले लोग हैं।'

'शौकतअली-महम्मदअली तो रोकने की कोशिश कर रहे हैं। पर कितने ही लोग इनकी मानते ही नहीं, इसका ये क्या करें? आप भी क्या कर सकते हैं? ये तो समय पा कर ही ठीक होंगे।'

'यह दूसरी बात है। शौकतअली-महम्मदअली तो कुन्दन हैं। वे तो खूब कोशिश कर रहे हैं। पर यह बाजी हाथ में नहीं रही। छः महीने पहले थी। मैं जानता हूं कि इस उपवास से उनके दिल में खलबली मचेगी, पर यह उसका गौण असर है। लेकिन, किसी पर असर डालने के लिए तो मैं उपवास करता ही नहीं।'

'परन्तु हां, आपका कुसूर क्या है, यह तो रही गया।'

'कुसूर? मैंने एक तरह से हिन्दू-जाति के साथ विश्वास-घात ही किया। मैंने तो हिन्दुओं से कहा 'मुसल्मानों के गले मिलो, उनकी पाक जगहों की रक्षा के लिए तन, मन, धन अर्पण कर दो' आज भी उनको अहिंसा का, मार का नहीं बल्कि मर कर झगड़े मिटाने का सबक दे रहा हूं। पर उसका नतीजा क्या देखता हूं? कितने मन्दिर टूटे! कितनी ही बहनों ने मुझसे आ कर शिकायतें की हैं! कल ही मैंने हकीमजी से कहा—बहनों को मुसल्मान गुण्डों का बराबर डर बना रहता है। कितनी ही जगह उन्हें बाहर निकलना मुश्किल होता है। —भाई का पत्र आया है। उसमें बच्चों पर जो कुछ बीती है-वह कहीं गवारा हो सकती है? मैं अब हिन्दुओं को किस मुंह से कहूं कि तुम बरदाश्त करते ही रहो? मैंने तो उन्हें विश्वास दिलाया था कि मुसल्मानों की मुहब्बत का फल अच्छा ही निकलेगा, फल का विचार किये बिना आप उनके साथ मुहब्बत करो। इस विश्वास को सच साबित करने की शक्ति आज मुझमें नहीं रही। न महम्मदअली शौकतअली में है। मेरी बात कौन सुनता है? फिर भी मुझे तो हिन्दुओं को मरने की ही

बात कहता हूं। सो यह मैं खुद मर कर ही कर सकता हूं। मर कर ही मरने की कुंजी बता सकता हूं। दूसरे किस तरह बताऊं?

'मैंने असहयोग-आन्दोलन को शुरू किया। आज मैं देखता हूं कि अहिंसा की गंध तक न होते हुए लोग आपस में असहयोग करने लगे हैं इसका कारण क्या है? कारण यही कि मैं खुद अहिंसामय नहीं हू। मेरी अहिंसा हुई क्या? यदि वह पराकाष्ठा तक पहुंच गई होती तो जो हिंसा मैं आज देख रहा हूं वह न दिखाई देती। इसलिए मेरा उपवास प्रायश्चित है, तपश्चर्या है। मैं किसीको ऐब लगाना नहीं चाहता। मैं तो अपना ही दोष समझता हू। मेरी शक्ति चली गई है। हारने, शक्ति गवांने के बाद ईश्वर के दरबार में अर्ज करना ही मेरे लिए बाकी रहा है। अब वही सुन सकता है, दूसरा कौन सुननेवाला था?'

प्रथम से ही प्राण देने की प्रतिज्ञा

बस प्रवाह चल रहा था। उस दिन की तमाम बातें लिखने में असमर्थ हूं। पर क्या यही प्रायश्चित की विधि है? ऐसे उपवास हिन्दू-धर्म के अनुकूल हैं? ऐसे सवाल मन में उठा करते थे। बापूजी कहते हैं—

'वाह! हैं क्यों नहीं? ऋषि-मुनि क्या करते थे? वे घोर तपश्चर्या करते थे, सो क्या बन में फल-फूल खा कर तप करते होंगे? कहते हैं, उन्होंने हजारों बर्षों तक तपस्या की है, गुफाओं में तपस्या की है। पार्वती ने जो अपर्णाव्रत लिया था वह क्या रहा होगा? तप और जप इन दो बातों से सारा हिन्दू-धर्म भरा हुआ है।

'इस उपवास के अन्दर जितना गहरा विचार भरा हुआ है, उतना पहले के उपवासों में शायद ही रहा हो। ऐसा उपवास तो मैंने उसी दिन से सोच रक्खा था जिस दिन मैंने असहयोग शुरू किया। असहयोग की शुरुवात के वक्त मेरे दिल में यह ख्याल आया था कि मैं यह भयंकर हथियार लोगों के हाथ में देता तो हू पर यदि इसका दुरुपयोग हुआ तो? तो प्राण दे देना पड़ेंगे। वह समय अब आया है। अबतक के उपवासों का उद्देश परिमित था। इस समय के उपवास का उद्देश तो विश्वव्यापी है। इसके मूल्य में अपार प्रेम है। और आज इस प्रेम-सागरमें मैं स्नान कर रहा हूं।

बड़े भाई के साथ

तीसरे दिन शौकतअली आये। महम्मदअली उनकी राह ही देख रहे थे। क्यों कि अब भी उन्हें आशा थी कि शायद शौकत अली बापूजी से उपवास छुड़ा सकेंगे। बापूजी ने उन्हें आश्वासन दिया था कि 'अगर शौकत या आप मुझे कायल कर सकें कि उपवास करने में भूल हुई है, उपवास बेजा है तो मैं छोड़ दूंगा।' इसलिए शौकत के आने से महम्मदअली में आशा और बल आया। परन्तु शौकत बापूजी के साथ ज्यादह दलील न करते सुनते ही रहे। और अन्त को 'हां, महाराज, सब ठीक है।' कह कर बाहर निकले। इन बातों का थोड़ा बहुत श्रवण भी यदि करा सकूं तो सारे उपवास के रहस्य पर और भी अधिक प्रकाश पड़ेगा।

शौकत ने कहा 'हमने अभी तक कुछ किया ही नहीं, यह कहूं तो बेजा न होगा। आप अखबारों के द्वारा अपने विचार फैला रहे हैं। पर अभी लंबा सफर आपने कहां की है? आप जहां जहां दंगे फसाद हुए हैं वहां कहां घूमे हैं? घूमकर वायुमण्डल को साफ कीजिए।'

'भाई, मेरे सामने तो मेरे धर्म की बात आकर खड़ी है। मैंने चारों तरफ देखा कि मैं तो अपनी पूरी शक्ति लगा चुका हू। सफर करके मैं कुछ न कर पाता। आज तो सर्व-साधारण लोगों को हमारे विषय में शक पैदा हो गया है। देहली में हिन्दू मुझ पर विश्वास ही रखते हैं, यह न समझना। उन्होंने कोई बात एकमत से नहीं की है। और कारण स्पष्ट है। जिसके घर में खून हुए हैं उसके यहां जाकर यदि मैं माफी की बात करूं तो मेरी कौन सुनेगा! अंजुमन के लोग हकीम साहब की बात मानने से इनकार करते हैं। यह सब हो ही रहा था कि कोहट की खबरें आई। मैंने अपने दिल से पूछा—'रे प्राणी, अब क्या करेगा?' मैं तो irrepressible optimist (अटल आशावादी) हूं। पर हमेशा किसी बुनियाद पर आशा रखता हू। आप भी अटल आशावादी हैं। परन्तु बिना बुनियाद के आशा बांधते हैं। आज आप की बात कोई न सुनेगा। गुजरात के वीसनगर में कोई अब्बास या महादेव की बात सुनने को तैयार न था। अहमदाबाद में झगड़ा होते होते रुका, उमरेठ में तैयारी थी। इन सब को न रोक पाना मेरी कमजोरी है। ऐसी कमजोरी के मौके पर मुझे क्या करना चाहिए? मुझे हजारों लाखों बहनों से साबका पड़ा है। वे यह मान कर 'गांधीजी जो कहते हैं वह ठीक है' अपना काम करती हैं। आज वे भयभीत हो रही हैं। इन सब बहनों को मुझे आज मर बताना है।

दोनों जातियां यदि बहादुरी से लड़ती होतीं तो क्या मैं उपवास करता? पर यहां तो नामर्दी का ठिकाना ही नहीं। पत्थर फेंक कर भाग जाते हैं, गुनाह करके भाग जाते हैं, फिर अदालतें खटखटाते हैं और वहां जाकर झूठे सबूत देते हैं। मैं तो आप पर विश्वास ही रख सकता हू। आप और दूसरे लोग भरसक कर रहे हैं, पर हिन्दुओं से जाकर क्या कहूं? मैं तो उन्हें कहे देता हूं कि मैं अपनी शक्ति खो बैठा हू और अब फिर उसे प्राप्त करना चाहता हू।'

फाके की महिमा

शौ०—लोगों को जो दवा दो वे उसे पीने के लिए तैयार नहीं। उनके शरीर में मर्ज घुस गया है, वह जब बाहर फूट निकलेगा तब उन्हें खबर पड़ेगी कि गांधी की बात सच थी। पर आप तो आज खुदा के साथ कुश्ती लड़ते हुए दिखाई देते हैं। आपने दोनों जातियों को मर्द बनाया—कुछ मर्द तो जरूर ही बनाया—थोड़े दिनों में अजब चमत्कार दिखाया। परन्तु आपकी दवा की खुराक कम पड़ी। पर क्यों आपका बीज मरने वाला है? आप यह क्यों मानते हैं कि आज बीमारी बढ़ गई है? एक डाक्टर है। वह दवा दे रहा है। उसके चले जाने के बाद पीछे रहने वालों ने उसकी दवा जारी रखने के बजाय अपनी ही दवा देना शुरू किया। आखिर फायदा तो आपकी ही दवा से होगा। पर उन "अटवैद्यों" की दवा के उलटे असर को देखकर आप परेशान क्यों होते हैं? आपने तो जातियों का परस्पर जहर बहुत-कुछ कम कर दिया है। वह फिर बढ़ गया है। मैं तो लड़ने की जगह जाकर गालियां देकर कहूंगा—कम्बख्तो! कट मरो कट। खुदा मर नहीं गया है।' आज जो जहर और अन्धापन है, जो शैतानियत जहां तहां दिखाई देती है वहां आपकी या मेरी बात कोई न सुनेगा। लड़ते लड़ते जब थक जायंगे तब जरूर सुनेंगे। मस्जिद किसीके गिराये नहीं गिर सकती, मन्दिर किसीके तोड़े नहीं टूट सकते। हमारे पास ईंट है, चूना है, पानी-पत्थर जितने चाहिए हैं। फौरन् फिर बनवा देंगे। क्या कहे, आपको मुंह दिखाते शरम

आती है। मैं आपको क्या समझाऊं? आपको अपनी कोशिशें ही जारी रखनी चाहिए थी। इसतरह फाका न कीजिए।

गां०—मैं खुदा के साथ कुश्ती कर रहा हूं? मेरे अन्दर यदि कहीं भी तकब्बरी हो तो मैं मिट जाऊंगा। भाई, यह उपवास तो अनेक दिनों की इबादत का परिणाम है। इससे पहले तो रात को तीन तीन बजे उठ कर मैंने खुदा से पूछा है कि क्या करूं, बता क्या करूं? उसका जवाब १७ ता. को दोपहर को मिला। मैं भूल करता हूंगा तो खुदा मुझे माफ कर देगा। मैंने जो कुछ किया है खुदा से बहुत डर डर कर किया है—और सो भी एक मुसल्मान के घर में बैठ कर। मेरे धर्म की ऐसी आज्ञा है कि खुदा की इबादत वही करता है जो कुछ नुकसान सहन करता है। इस्लाम में भी मैंने तप की मिसाल देखी है, 'सिरत' में पढ़ा है कि पैगंबर साहब बहुत बार रोजा करते, पर दूसरों को मना करते। उनसे किसीने पूछा कि ऐसा क्यों करते हो? उन्होंने कहा—मुझे खुदाई खुराक मिलती है। पैगम्बर साहब ने फाका-उपवास—करके ही काम किये हैं। मेरा तो यह विश्वास हो गया है कि जिसका खुदा पर अथाह विश्वास हो वही उपवास कर सकता है। महम्मद पैगंबर साहब को ईश्वरी प्रेरणा होती थी। वह ऐशआराम में नहीं होती थी। वे तो ज्यादहतर फाके करते थे और कभी कभी कुछ खजूर खा लिया करते थे। जब प्रेरणा होती तब जागरण कर के, फाके कर के, रातभर अखण्ड खड़े रहते। आज भी उनकी ऐसी तस्वीर मेरी आंखों के सामने खड़ी है।

मेरे उपवास में यदि कोई खामी है तो वह यही कि यह गौण रूप से कुछ असर पैदा करता है। लोग यदि मुझसे कहें कि शौकत-महम्मद ने आपके साथ विश्वासघात किया तो यह मुझे बरदाश्त न होगा। इसके लिए मुझे मरना ही चाहिए। मैं तो अपना दिल साफ कर रहा हूं-शक्ति प्राप्त कर रहा हूं।

मैं जो आपको इतना कह रहा हूं उससे कहीं गलतफहमी न कर लीजिएगा। मैं तो मानों जरा देर के लिए मुसल्मान बन कर ही मुसल्मानों को यह बात कह रहा हू, यह समझिए। मैंने तो इस्लाम के लिए जितनी हो सके हमदर्दी उत्पन्न की। क्योंकि मुझे तो हर धर्म मे अद्भुतता देखना है। अब मैं दिल को अधिक साफ करने, अपनेको अधिक मजबूत बनाने की कोशिश करता हूं। अगर ये दोनों बातें हो पाईं तो दोनों जातियों पर असर पड़ेगा।

मेरा सिद्धान्त है कि शरीर का जितना ही दमन किया जाता है उतना ही आत्मा का बल बढ़ता है। आज तो हम कोई काम ही नहीं कर सकते। हमें बदमाशी का मुकाबला करना है। आज हमारी तपश्चर्या काफी नहीं है।'

दूसरे का विचार करना ठीक नहीं

शौ०—'पर देश के दिल को आपके उपवास से कितनी चोट पहुंचेगी, इसका विचार भी आपका धर्म न करने देगा?"

गां० 'न, नहीं करने देगा। क्योंकि मनुष्य भोला है। कितनी ही बार वह औरों को खुश करने के लिए अनुचित काम कर लेता है। इसलिए धर्म यही शिक्षा देता है कि तेरे सामने सारी दुनिया खड़ी हो जाय तो भी तू अपना काम करता रह। तुझे क्यों इतना अभिमान होना चाहिए कि तेरे उपवास से सारी दुनिया को दुःख पहुंचेगा।

'और इस तरह किन किन का लिहाज करके हम अपना धर्म छोड़े? ऐसा ही यदि करते रहें तो किसी बात की सीमा न रहेगी। रामचन्द्र की माता कैकेयी ने रामचन्द्र के वनवास जाने का वरदान मांगा। दशरथ को वह कुबूल करना पड़ा। मामूली तौरपर तो यही कह सकते हैं कि दशरथ पागल तो नहीं हो गया था? पर रामचन्द्र क्यों डिगने लगे? उनसे कहा गया, तुम्हारे वियोग में पिता रो रो कर मर जायगे, अयोध्या विधवा हो जायगी। पर उन्होंने सब बातों को तुच्छ समझा—

रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्राण जाइ बरु बचन न जाई।

अयोध्या निस्तेज हुई, दशरथ की मृत्यु हुई। पर राम अटल रहे। विश्वामित्र ने दशरथ से दो लड़के मांगे। क्या दशरथ ने देने में आनाकानी की? हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्नी की गर्दन पर छुरी उठाई? ये सब काम उन्हींसे हो सकते हैं जो ईश्वरभक्त हों-खुदापरस्त हों। खुदा के साथ तकब्बरी करने वाले ऐसा नहीं कर सकते।'

शौ-'ऐसी तपश्चर्या में दूसरे की सलाह काम दे सकती है?

गां-'नहीं यह तो मेरे और खुदा के बीच की बात है। यदि किसी की सलाह की जरूरत हो तो उसे छोड़ ही देना चाहिए'

शौ०-'तपश्चर्या से नुकसान हो, जान और तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुचना हो तो भी दूसरा इन्साफ नहीं कर सकता?'

गां०—'नहीं, यदि ऐसी कमजोरी हो तो वह जरूर मर जाय, भले मर जाय। दुनिया और देह कोई चीज नहीं। जेल में जब मैं 'उसवहे साहबा' पढ़ता था तब मैं नाच-सा उठता था। उसमें एक बात है—नाम तो भूल गया-एक शख्स को हजरत उमर ने ५,००० दीनार भेजे। वह रोने लगा। उसकी बीबी ने पूछा क्यों रोते हो? उसने जवाब दिया--मेरे घर दुनिया-माया-आई है-अब क्या होगा? ये दीनार तो हजरत उमर जैसे पाक आदमी की भेट थी। पर उसे भी उसने माया समझा। बस, देह सब क्षणिक है। किसी काम के नहीं। खुदा को इस शरीर से जितना काम लेना होगा उतना लेता है, अब भी लेना हो तो ले, और ले जाना हो तो ले जाय। यदि इस मामले का कुछ निपटारा न हो तो मैं तो हमेशा के लिए अनशन लेने का विचार करता था—परन्तु मौलाना और हकीमजी की बहुतेरी बातें सुनने पर मैंने उस विचार को छोड़ दिया। हकीमजी ने कहा—इस ख्याल को दिल से ही निकाल डालिए। मैंने कहा—दिल से तो कैसे निकल सकता है? क्योंकि जिसे मैं धर्म मानता हूं उसे तो मैं जरूर पूरा करूंगा। मैं तो आपसे यह कहूंगा कि यदि आपके धर्म में गैर-मुस्लिम कौमों के साथ मुहब्बत रखने की आज्ञा हो और आप मुहब्बत न करें तो हमें फना हो जाना पड़ेगा। और उस समय मुझे जीवित रहने का अधिकार न रहेगा। मैंने तो ख्वाजा हसन निजामी को भी कहा कि रस्ते चलते भिखमगों को, भंगी चमारों को और अनाथों को मुसलमान क्या बनाते हैं? मुझे बनाइए न? मुझे बना लेने से और भी अनेक हो जायंगे। ये बेचारे इस्लाम को कुबूल करके क्या खुदा को पहचानेंगे? इनकी तादाद बढ़ने से इस्लाम की क्या ताकत बढ़ेगी?'

बातें बहुत चलतीं। पर गांधीजी थक गये थे। शौकतअली उठे। उठते उठते कहा—'हररोज नमाज पढ़ते वक्त कितनी ही दुआ मांगता हूं—पहली हिन्दू-मुसल्मान एकता की, दूसरी मेरी मां के इस्लाम के आजाद होने तक कायम रहने और स्वराज्य को देखने की, आखिरी दुआ यह कि महात्मा गांधीजी की दुआ बर आवे।"

(नवजीवन)

चरखा द्वादशी, अनशन-अष्टमी } महादेव हरिभाई देसाई

मैत्री की इच्छा

वार्षिक मूल्य ४)
छ मासिक ,, २)
एक प्रति का ,, -)
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, क्वार सुदी ७, संवत् १९८१, रविवार, ५ अक्तूबर, १९२४ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

हृदय का पलटा

अबतक उन अंग्रेजों के जिनसे कि भारत सरकार बनी हुई है हृदय बदल देने की उत्कण्ठा रक्खी गई थी और उसीके लिए प्रयत्न भी हो रहा था। लेकिन अभी वह तो होना बाकी ही था कि यह प्रयत्न अब हिन्दू और मुसलमानों के परस्पर दिल बदलने लिए करना होगा। स्वतन्त्रता-स्वराज्य का विचार करने के भी पहले उन्हें इतना बहादुर जरूर बनना पड़ेगा कि वे एक दूसरे से प्रेम कर सकें, एक-दूसरे के धर्म को सहन कर सकें, धार्मिक दुर्भाव और वहम को भी दरगुजर कर सकें और एक दूसरे पर विश्वास रख सकें। इसके लिए आत्म-विश्वास होना जरूरी है। यदि हमारे अन्दर आत्म-विश्वास है तो हम एक दूसरे से डरना छोड़ देंगे।

ता. २०-९-२४ (यं० इं०)

मोहनदास करमचन्द गांधी

क्या गुजरात हारेगा?

बंगाल और आंध्रदेश ने गुजरात को सूतकारों की संख्या में हरा देने की धमकी दी है। यदि इनमें से एक भी प्रान्त गुजरात को हरा देगा तो मैं उसे अवश्य मुबारकबादी दूंगा। लेकिन गुजरात कैसे हार सकता है! पूर्ण प्रयत्न करलेने के बाद हारने से भी जीत ही होती है। गुजरात ने तो अभी प्रयत्न शुरू ही किया है। तमाम शिक्षक लोग अभी कहां कातते हैं? विद्यार्थी कहां कातते हैं? वे सब कातें और सभाओं में हाजिर रहने वाले भाई-बहन भी कातें और फिर गुजरात भले ही हारे। बाजी कार्यकर्ताओं के हाथ है। कार्यकर्तागण! चेतो!

(नवजीवन)

आश्विन शु. ६ बुधवार } मोहनदास गांधी

दूसरा सप्ताह

अमृत-औषधि

आज उपवास का दूसरा सप्ताह पूरा होता है। अब शरीर कुछ कृश, परन्तु कान्ति पूर्ववत् ही तेजस्वी और विशेष सौम्य मालूम होती है। दूसरे सप्ताह में खुद उठ कर नहाना-धोना और जीना उतरना बन्द हो गया। अब गांधीजी पलंग पर ही दिन-रात लेटे रहते हैं। सिर्फ कातने के लिए संकल्प-बल का उपयोग होता हुआ दिखाई देता है। डाक्टर ने चरखा छोड़ देने की सिफारिश की थी; पर अत्यन्त आज्ञापालक रोगी की तरह बर्ताव करने वाले गांधीजीने इस बात में डाक्टरों की सुनी नहीं। डाक्टर हारे, आध घण्टा कातने के बाद भी थकावट नहीं दिखाई दी, उलटा नाड़ी की गति और भी अच्छी दिखाई दी। तब डाक्टरों ने जाना कि यह तो आपके लिए एक रसायन ही है।

अशक्ति में दूसरा अपवाद है लिखने की शक्ति का। इसमें भी डाक्टरों को संकल्प-शक्ति ही काम करती हुई दिखाई दी। डाक्टरों की मुमानियत होते हुए भी दूसरे सप्ताह में उन्होंने कम लिखाई नहीं की। एकता-परिषद के सभ्यों के नाम उन्होंने एक लंबा खत लिखा। उसी दिन डाक्टरोंने देखा कि वे इन लेखों के द्वारा कठोर तप करते हुए भी सब को अमृतौषधि दे रहे हैं। 'नवजीवन' के पाठक को लिखा लेख, 'यंग इंडिया' के लिए लिखा छोटा-सा लेख तथा नित्य कर्म की नियमितता से लिखे पत्रों को जो जानते हैं वे इस अमृत-औषधि को परख सकते हैं। बैठ नहीं सकते, सोते हुए तकिये के सामने कागज रख कर लिखते हैं।

डाक्टरों की बेचैनी

सोमवार को सदा की तरह डा० सेन के यहां मूत्र परीक्षा के लिए गया। उसमें पहले से ही कुछ जहरी पदार्थ मालूम होते थे। लेकिन वे घबराहट पैदा करने लायक न थे। सोमवार को उनकी मिकदार बड़ा भयजनक मालूम हुई। चारों ओर चिन्ता की छाया फैल गई। हकीमजी बीमार थे। वे परिषद में भी न जा पाये थे। यह खबर सुनते गांधीजी के पास दौड़े आये। हकीमजी का और डाक्टरों का मत था कि गांधीजी कुछ शक्कर लें तो वे जहरीले पदार्थ निकलना बन्द हो जाय। हकीमजी से पहले ही देश-

बन्धु दास और श्रीमती बासन्ती देवी वहां आ पहुंचे थे । सोमवार मौनवार ठहरा । कौन किस तरह उनसे दलील करता ? फिर भी हकीमजी ने उन्हें खूब समझाया । तब गांधीजीने उर्दूमें लिख कर-जवाब दिया—'मेहरबानी करके कल तक ठहर जाइए । मैं कल सब सुनाऊंगा ।'

हकीमजी कहते हैं—'आप तो सुनावेंगे, लेकिन हम सुनाना चाहते हैं और आपको सुनना ही होगा ।' गांधीजी हंस रहे थे । आखिर फिर उर्दूमें लिखा—'खुदा करेंगे तो कल पेशाब में कुछ नहीं होगा' । हकीमजी जोर से हंस के बोले—'आप तो बली हैं, महात्मा हैं, इसलिए यह कह सकते हैं । मैं तो तबीब हूं । मुझे कैसे यकीन हो सकता है ?' गांधीजी फिर हंसे । हकीमजीने खुद ही कहा—'अच्छा मैं कल सुबह आऊंगा । हकीमजी पर विजय प्राप्त कर के गांधीजी मजे में सो रहे थे कि डाक्टर आये । डा० अन्सारी का चेहरा गंभीर था । वे इस निश्चय से आये थे कि आज तो गांधीजी को जरूर दवा लेने पर मजबूर करेंगे । उनके कुछ कहने के पहले ही गांधीजीने मीठा उलहना दिया—'आपने यह क्या दौड़-धूप लगाई है ? मूत्र के विश्लेषण से इतनी चिन्ता ही क्या है, जब कि और बातों में मेरी हालत उम्मीद से ज्यादह अच्छी है । डाक्टर अब्दुल रहमान कहते हैं-हां, हम मानते हैं कि हालत अच्छी है । लेकिन जहर की मिकदार इतनी ज्यादह है कि यदि वह जरा भी बढ जाय तो दूसरी तमाम अच्छी बातें बेकार हो जायं । उस समय नाड़ी अच्छी चलती रहेगी, दिलकी धड़कन ठीक ठीक होगी, श्वासोच्छ्वास भी ठीक होगा,--फिर भी दिमाग पर इतना असर हो सकता है कि हम कुछ न कर पावेंगे ।' डाक्टर अनसारी समझाने लगे--'मैं आपसे कह देता हूं कि मैं स्वभावतः घबरा जाने वाला आदमी नहीं हूं । सब लोग इस बात को मानेंगे । पर हम तीन-चार दिनों से लगातार आपकी हालत देख रहे हैं । जिस चीज की हमे शिकायत है वह दिन दिन बढती ही जाती है, कम नहीं होती । यदि वह इसी तरह बढती रहे तो हम हाथ मलते रह जायगे । अब उसे बढने देने की गुंजाइश नहीं ।'

गांधीजी ने शान्ति के साथ लिखा 'ठीक' पर अब कल तक राह देखनी चाहिए । कलकी परीक्षा का फल देखकर फिर हम लोग चर्चा करेंगे ।'

डा० अनसारी-'पर आप तो वचन दे चुके है कि यदि डाक्टरों को खतरा मालूम हो तो मैं उपवास तोड़ दूंगा ।' और हम आपको उपवास तोड़ने का कहते ही नहीं हैं । सिर्फ एक सम्मत दवा लीजिए जिससे जहर फैलता हुआ रुक जाय । हम ऐसी तजवीज करेंगे कि जिससे दवा के द्वारा आपके शरीर को कुछ भी पोषण न मिले-अर्थात् दवा इतनी थोड़ी तादाद में देंगे कि आपके उपवास का असर कम न होगा । पर कलतक ठहरने की बात नहीं हो सकती । हम कितनी जोखों ले ? अब तो हद होगई है ।' डा० अनसारी के शब्दों में जो करुणा, प्रेम-भाव और ममत्व था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । जो उस समय उनकी मुखचर्या देखता वही जान सकता है गांधीजी ने जवाब दिया-'पर आज रात को तो मैं शक्कर भी नहीं ले सकता । क्योंकि आप जानते है कि शाम हो जाने के बाद कुछ न खाने की मेरी दूसरी प्रतिज्ञा है । मुझे आशा है कि कलकी मूत्र-परीक्षा आप लोगों को चिन्तामुक्त कर देगी ।'

अनेक प्रतिज्ञाओं का कवच धारण करनेवाली आत्मा के साथ अधिक दलील करना कठिन होता है । फिर भी डा० अनसारी डिगे नहीं । बोले-'अच्छा, हम मुंह के जरिये दवा न देंगे । इंजक्शन के द्वारा नस के रास्ते देने से भी असर वही होगा । इससे आपकी प्रतिज्ञा भी न टूटेगी । कल से आज जहर की मिकदार बढ गई है, इसीसे हम रात का विश्वास नहीं कर सकते ।'

गांधीजी ने फिर यकीन दिलाया -रात के लिए आप बेफिक्र रहिए । हकीमजी भी कल मूत्र-परीक्षा होने तक ठहरने का वचन दे गये हैं ।'

डा० अनसारी—'पर हम आपको १३ दिन से देख रहे हैं, हकीमजी नहीं देखते हैं । इस बारे में मैं हकीमजी की न सुनूंगा । मुझे आपकी तबीयत मालूम है । उन्होंने तो आज ही नब्ज देखी है ।'

फिर गांधीजी ने लिखा—'पर आज तो पेशाब भी कम हो रही है । कल देखिएगा, जहर भी कम मिलेगा ।'

एक ओर डाक्टरों को गांधीजी के दिमाग पर मिहनत न डालने का खयाल था, दूसरी ओर था खतरे का खयाल । पर इस आशा से कि कहीं भगवान करें गांधीजी मान जायं, डा० रहमान बोले—'मैं यह नहीं कहता कि कल की जांच का नतीजा अच्छा न हो सकेगा । क्योंकि आपने तो 'साइन्स' के भी छक्के छुड़ा दिये है । हमे जिन जिन लक्षणों का डर था वह एक भी नहीं दिखाई देता । आपके बारे में तो हमारा किताबी ज्ञान गलत साबित हुआ है । हम तो ठहरे मामूली आदमी, मामूली आदमियों का इलाज करनेवाले । उन्हींके हिसाब से आपकी परीक्षा करने में जोखिम कम है । हम आपसे दरख्वास्त करते है कि आप हमारी जिम्मेवारी पर खयाल कीजिए ।'

इस प्रेम के अधीन हो जायँ या अविचल रहें, इस गांधीजी की उलझन का नाप कौन कर सकता है ? उन्होंने फिर करुणाजनक, आर-पार तीर की तरह, एक वाक्य लिखा-'जो कुछ हो, मेहरबानी कर के कल तक तो मुझपर रहम कीजिए ।' गरीब गाय की इस करुणा वाणी को डाक्टरों के प्रेम-पूर्ण हृदय ने परख लिया । कितने ही क्षण तक कमरे में सन्नाटा रहा । डाक्टरों की गमगीन चुप्पी को देख कर अब दया-याचना करने के बदले गांधीजी उन्हींपर दयार्द्र हो कर उन्हें खुश करने की कोशिश करने लगे । जरा विस्तार से लिख कर उन्हें धीरज रखने का अनुरोध किया—"जुदी जुदी खासियतों का खयाल आप नहीं करते । किसी दूसरे शख्स के लिए जो हालत खतरनाक हो सकती है वह मेरे लिए न भी हो सकती है । फिर आप उपवास करने वालों के अवलोकन पर से किसी अनुमान पर नहीं आये हैं-उपवास न करने वालों को देख कर अनुमान बांधे हैं । उपवास के अनेकविध असर की गहरी परीक्षा में अभी आपके वैद्यकशास्त्र ने हाथ नहीं डाला है ।'

डाक्टर अनसारी ने कहा-नहीं, हम उपवास करनेवालों के अवलोकन के आधार पर से ये बातें कर रहे हैं । उपवास करने वालों के शरीर की क्रिया-विक्रिया की छान-बीन वैद्यक-शास्त्र में की गई है ।'

अब इसका जवाब सिवा इसके दूसरा नहीं दिया सकता था कि-'हाँ, तो वे उपवास करनेवाले मुझ जैसे न होंगे । मेरा तो यह खास केस है ।' परन्तु गांधीजी ने दलील न करते हुए दो शब्द में ही काम पूरा किया—'अब और कल', और आंख पर से चश्मा उतार लिया । डाक्टरों ने समझ लिया कि यह चर्चा बंद करने की नोटिस है । उठते उठते डा० रहमान बोले—आपकी संकल्प शक्ति यदि जहर की बढती को रोक भी दे तो ताज्जुब नहीं । सरल, सहज आत्म-विश्वास-ईश्वर-श्रद्धा से गांधीजी ने हंस दिया ।

इस ऐतिहासिक प्रसंग का अक्षरशः वर्णन करने के लिए मैं पाठकों से क्षमा मांगने की जरूरत नहीं समझता । डाक्टर रात को गांधीजी के पास सोने की—तरह तरह के साधनों, दवाओं की-तैयारी कर के गये थे । शाम की मूत्र-परीक्षा में जहरी पदार्थ प्रायः लुप्त हो गया था । डाक्टर खाली आ कर गांधीजी के पास गहरी नींद

सोये । सुबह जल्दी उठकर डा० रहमान गांधीजी को देखने गये । गांधीजी हँसकर कहते है—क्यों शहर से यहां आ कर सोने से ठीक 'चैंज' हुआ न ?' डा० कहते हैं—'अब हम रोज आयेंगे ।' गांधीजी ने कहा—'जरूर आइए- किन्तु मेरे लिए नहीं, थक-थकाकर आराम करने के लिए ।'

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

टिप्पणियां

अमानुष व्यवहार

श्रीमती गंगाबाई गिदवाणी और डा० चोइथराम नाभा जेल में आचार्य गिदवाणी से मिलने गये थे । लौटने पर उनसे मेरी मुलाकात हुई । वे कहते हैं कि आचार्य गिदवाणी दिन भर कोठरी में बंद रक्खे जाते हैं । तीन महीने में एकबार मुलाकात हो सकती है । ३० पौंड से अधिक वजन उनका कम हो गया होगा । वे यह भी कहते हैं कि बहुत दिनों से आचार्य का वजन भी नहीं किया गया है । जब उन्होंने सुपरिटेंडेंट से इसका सबब पूछा तो उन्होंने अपने कंधे हिला कर कहा—'यहां ऐसा रिवाज नहीं है ।' मै जानता हूं कि जेल महल नहीं होते । कैदी को घर के तमाम सुबीतों की उम्मीद वहां न करनी चाहिए । पर मैं ऐसी बहुतेरी जेलों को भी जानता हू जहां आचार्य गिदवाणी के साथ ऐसा व्यवहार होना असंभव होगा । हां, अधिकारियों के साथ इन्साफ करने के लिए मुझे यह भी कह देना चाहिए कि उन्होंने आध घण्टा रोज सुबह-शाम खुली हवा में कसरत करने की छुट्टी दी थी, लेकिन उन्होंने तिरस्कार के साथ उससे मुंह मोड लिया । इसपर मुझे ताज्जुब नहीं होता । वे स्वाभिमानी हैं । वे जानते हैं कि मैंने कोई गुनाह तो किया ही नहीं है । न उन्होंने इरादतन नाभा की हद में प्रवेश किया है । उनकी मनुष्यता उन्हे वहां घसीट ले गई । न उन्होंने ऐसी कोई बात की है जिसे हम सल्तनत के खिलाफ कह सकें । उन्होंने नाभा-राज्य के खिलाफ कोई साजिश भी नहीं की । न उनपर किसी हिंसात्मक षड्यन्त्र का ही शक किया गया है । तब फिर क्यों वे किसी मामूली कैदी की भी तरह नहीं रक्खे जाते जो कि वस्तुतः दिन भर खुली हवा में रहते है ? यहांतक कि खूनी कैदी भी खुब खुली हवा और कसरत करने की सुविधा पाते हैं । और ऐसी हालत में, जहां तक मै जानता हू, आचार्य गिदवाणी बिला वजह ही पशुओं की तरह एक कोठरी मे बन्द रक्खे जाते हैं । ऐसा एकान्त-वास तो जेल के किसी भीषण अपराध की सजा के तौर पर ही दिया जाता है । यदि आचार्य गिदवाणी ने ऐसा कोई कुसूर किया है तो सर्व-साधारण को उसकी खबर मिलनी चाहिए । हो सकता है कि नाभा-राज्य के पास ऐसा सुबीता न हो कि वह आचार्य गिदवाणी को दिन भर बाहर रख सकें । यदि ऐसा हो तो उनकी बदली दूसरी जेल में कर दी जानी चाहिए । मुझे पता है, सारे भारतवर्ष में एक जेल से दूसरी जेल मे कैदी भेजने का रिवाज है । जैसे- यरवडा सेन्ट्रल जेल में मैंने पंजाब, जूनागढ स्टेट और मद्रास इलाके से आये हुए कैदी देखे थे । जब मैंने श्रीमती गिदवाणी और डा० चोइथराम से यह समाचार सुना तो मेरी सारी सत्याग्रह-शक्ति उबल उठी और मन में लड़ाई छेड देने का भाव जाग उठा । पर ज्योंही मुझे अपनी शक्ति के अभाव का खयाल आया, मेरी गर्दन मारे शर्म के नीचे झुक गई । जब कि देश में हर दल एक दूसरे के खिलाफ खम ठोंक कर लड रहा है और हिन्दू-मुसल्मानों के झगडों से उसकी आत्मा छिन्नभिन्न हो रही है, सत्याग्रह एक असंभव बात दिखाई देती है । पं. जवाहरलाल मुझसे पूछते हैं कि नाभा के राज्याधिकारी ने जो पत्र उन्हें भेजा है उसपर वे उनके आव्हान को कुबूल कर लें और नाभा की हद में प्रवेश कर के अपने साथी से जा मिलें ? अहा क्या अच्छा होता, यदि मैं उन्हें 'हां' कह पाता । इस अवस्था में तसल्ली की बात सिर्फ इतनी ही है कि आचार्य गिदवाणी वीर पुरुष हैं और जेल की तमाम मुसीबतों को वे सह लेंगे । भगवान् उन्हें इस अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होने का बल दें । यह स्वाधीनता की कीमत है और हमें वह देनी ही पडेगी । स्वाधीनता बडी महंगी वस्तु है और जेल उसे तैयार करने के कारखाने हैं ।

दूसरे के द्वारा नहीं

एक महाशय कहते हैं मेरी माता बहुत अच्छा सूत कातती हैं और रोजाना कोई २० तोला कात लेती हैं । कताई का प्रस्ताव पास होने के बाद मैंने अपनी मां से कहा मुझे कातना सिखा दो । बेचारी मां की समझ मे न आया कि क्या जवाब दू । उसने सोचा कि मैं जितना सूत कातती हूं वह सारे घर भर के लिए काफी है—खासकर वह तो रोज उससे दूना सूत कातती है जितना हम हर माह चाहते हैं । सो यदि उस प्रस्ताव के द्वारा सिर्फ सूत की तादादही मांगी गई होती तो उस माता की बात बिलकुल ठीक थी । पर दुनिया मे ऐसे कर्तव्य भी मनुष्य के होते है, जो दूसरों के द्वारा नही कराये जा सकते । हम किसी दूसरे आदमी के द्वारा नहा नहीं सकते, अध्ययन नहीं कर सकते, या ईश्वर की पूजा-अर्चा नहीं कर सकते । इसी तरह जब कि हर शख्स के सूत कातने के द्वारा हम गरीबों के साथ अपनेको एकात्म करना चाहते हों, जब कि हम सूत कात कर दूसरों के सामने मिसाल पेश करना चाहते हों और हम उस कला का ज्ञान इस तरह घर घर फैला देना चाहते हों कि जिससे इस सीधे-सादे तरीके से हाथ कता सूत इतना सस्ता हो जाय कि वह मिल के कपडे की बराबरी कर सके, तब हम दूसरों के द्वारा अपने हिस्से का सूत भी नहीं कता सकते । लडके के सूत कातने पर मां ने जो ऐतराज किया है उसके मूल में यह भाव निस्सन्देह वर्तमान है कि चरखा कातना महज औरतों का काम है । हां, यह बात सच है कि मामूली तौरपर औरतें ही सूत कातती है । इसमें भी कोई शक नहीं कि ऐसे हलके काम के लिए मर्दों की बनिस्बत औरतें ज्यादह मुआफिक होती हैं । पर इसलिए यह कहना कि वे काम पुरुष की शान को बिगाडते हैं, या यह कि वे उनसे जनाने हो जाते हैं एक भारी वहम है । खाना पकाना मुख्यतः औरतों का काम है पर हर सिपाही के लिए खाना पकाना जानना ही जरूरी नहीं है बल्कि उसे खुद अपने हाथ से खाना पकाना भी पडता है, जब कि वह अपनी ड्यूटी पर होता है । पुरुष ही आज दुनिया में सर्वोत्तम पाक-शास्त्री हैं । स्त्री अपने अभ्यास या प्रकृति के कारण घर की रानी है । बडे पैमाने पर काम का संगठन करने के लिए उसकी रचना नहीं हुई है । पुराण-प्रिय और रूढि-रक्षक होने के कारण वह नवीन तथ्यों का शोध नहीं कर सकती । परन्तु पुरुष असन्तोषी और प्रायः रूढीविनाशक होने के कारण नई नई बातें खोज निकालता है । सारे विश्व के लिए ठीक हो या न हो, पर इस बात का कोई खण्डन नहीं कर सकता कि तमाम बडे बडे नूतन शोध पुरुषों के ही द्वारा हुए हैं । खुद हमारे चरखे का शोध भी पुरुषों के ही द्वारा हुआ है । चरखे के तमाम आवश्यक औजार पुरुषों के ही बनाये हुए हैं । चाहे किसी लिहाज से देखिए, चरखा कातना पुरुष के लिए भी उतना ही प्रधान है जितना कि स्त्रियों के लिए है—उस समय तक जब तक कि चरखा घर घर में इतना व्याप्त न हो जाय कि हमारे देहात में उसकी फिर से प्रतिष्ठा हो सके और उसके द्वारा विदेशी कपडे का पूरा बहिष्कार हो जाय ।

(य० इं०) मो० क० गांधी

गांधीजी के समाचार

आज गांधीजी के उपवास का १० वां दिन है। कल के ताजे तार-समाचार हैं कि गांधीजी को रात को अच्छी तरह नींद न आई। पर सदा की तरह प्रफुल्ल और सतेज दिखाई देते हैं। कल सुबह ९ बजे डाक्टरों ने उन्हें देखा था। उन्हें गांधीजी की हालत से पूरा सन्तोष है। हालत निहायत उम्दा है। वे कहते हैं, चमत्कार की बात है कि दिल की धड़कन एक सप्ताह पहले से भी अब और अच्छी है। तापमान भी बहुत ठीक है। रोज की तरह चर्खा बराबर कातते हैं।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, क्वार सुदी ७, संवत १९८१

मैत्री की इच्छा

"परिषद धीरे धीरे आगे बढ़ रही है। अन्त को यह चिर-स्मरणीय हो जायगी। पर मैं ऐसी आशा नहीं रखता कि कुछ चमत्कार दिखाई देगा। इसका फल इतना ही हो सकता है कि सच्चे विचार जाग्रत हो जायगे। गांधीजी ने अपने इस पुण्य अमर कार्य के द्वारा हिन्दु-मुसल्मान-एकता के अत्यावश्यक प्रश्न के हल करने की ओर देश का ध्यान एकाग्र किया है। कड़ी धरती पर रास्ता धीरे ही धीरे पड़ता है, परन्तु विचार सदा पहले ऊपर के तह पर जमते हैं और फिर ठेठ निचले तक पहुंच जाते हैं। इससे पहले दोनों पक्षों में वैर-भाव प्रकट हो उठता था। आज जो लोग श्रेष्ठ माने जाते हैं, जो मार्गदर्शक माने जाते हैं उनके बीच अवश्य वैर-भाव की यह प्रतिध्वनि मानी जाती थी। आज भी एकता करनेवाली दो ही कड़ियां दिखाई देती हैं—एक कड़ी ब्रिटिश राज्य के प्रति दोनों जातियों का वैरभाव और दूसरी कड़ी गांधीजी और अलीभाइयों का शुद्ध, गहरा और व्यक्तिगत प्रेम। पहली कड़ी मिथ्या है और ब्रिटिशों को यदि हटा लें तो वह टूट सकती है। दूसरी बात सच है, अधिक शुभ बातों के आगमन का आरंभ-रूप है। गांधीजी आज दोनों जातियों को जोड़नेवाली एक-मात्र कड़ी हैं। इसीसे 'गांधीजी की जय' इस घोष को आज नवीन अर्थ और महत्त्व मिलता है।"

पूर्वोक्त उद्गार श्री. आर्थर मूर—'स्टेट्स मैन' पत्र के सम्पादक—ने देहली छोड़ने के पहले प्रकट किये थे। इस अंगरेज सज्जन के इन निष्पक्ष उद्गारों में अपार सत्य भरा हुआ है। यहां इतना कह देना चाहता हूं कि गोवध-संबंधी अत्यन्त विवादोत्तेजक प्रस्ताव के पास होने के पहले ही श्री. मूर देहली से चले गये थे। जिस दिन उन्होंने देहली छोड़ी उस दिन उन्होंने विषय-समिति में अत्यन्त कटुता-पूर्ण विवाद देखा था। फिर भी उन्होंने जो आगाही दी थी वह आज सच हो रही है।

यदि कोई यह कहे कि इस परिषद के द्वारा एकता हो गई है तो उसे सीधा भोला ही कहना चाहिए। कोई अपने दिल को यह तसल्ली नहीं दे सकता कि इस परिषद के द्वारा दिल के जख्म भर गये हैं, दिल मिल गये हैं, हार्दिक एकता हो गई है। यह मान लेने की कुछ जरूरत नहीं है कि 'महात्मा गांधीजी की जय' पुकारने वालों ने गांधीजी की मुराद सोलहों आना पूरी कर दी है। पर यह कहे बिना नहीं रह सकते कि जो हुआ है वह अच्छा ही हुआ है।

पहले दो प्रस्तावों में परिषद् का महत्व है। इन प्रस्तावों में पश्चात्ताप है, अहिंसा के अमल करने का निश्चय है, झगड़ा होने पर भी लाठी के बल उसका फैसला न करने का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। यह बात कुछ ऐसी-वैसी नहीं है। गोरक्षा और बाजे बजाने के प्रस्तावों में अदला-बदली की बू आती है, पर इसमें भी महत्व की बात यह है कि यह बात समस्त पक्षों के धार्मिक और राजनैतिक नेताओं ने मिल कर तय की है। विदेशी सत्ता से युद्ध में प्रवृत्त देश का ध्यान आज अपने घर के टण्टे सुलझाने की ओर झुका है और हम आज धीमे धीमे कदम बढ़ाते हुए ऐसी सावधानी रखने की तजवीज में हैं कि कहीं एक दूसरे के पैर न छिल जायं। यह इस बात की हद को सूचित करता है कि हम किस अधोगति को जा पहुंचे हैं। पर इस प्रस्ताव में इस इच्छा की पुनः जागृति दिखाई देती है कि अब हम अधिक नीचे नहीं गिरना चाहते, आगे ही बढ़ना चाहते हैं, एकता करना चाहते हैं, स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं।

श्री. मूर ने जो कहा है कि गांधीजी ही दोनों जातियों को एक शृंखला में बांधने वाली कड़ी हैं, वह वास्तव में वस्तुस्थिति है। पर गांधीजी ऐसा नहीं चाहते कि यह वस्तुस्थिति इसी प्रकार चलती रहे। उनके उपवास का उद्देश यह है कि गांधीजी के खातिर नहीं, बल्कि अपने जीवन के खातिर, दोनों जातियां प्रेम से एक दूसरे के गले मिलें। यदि गांधीजी परिषद में होते तो शायद प्रस्तावों की भाषा और भी अच्छी होती, उसमें कम वकालत होती, कम देन-लेन की गंध होती। पर गांधीजी का न होना ही ठीक हुआ जिससे सब ने अपनी शक्ति के अनुसार, अपनी जुरत के मुताबिक ही प्रस्ताव पास किये हैं। जब गोवध-संबंधी प्रस्ताव पास हुआ तब *'गांधीजी की जय'* का हर्षनाद हुआ और कुछ देर बाद परस्पर विरुद्ध पक्ष के नेता एक दूसरे के गले मिले। अगले दिन के पश्चात्ताप-सूचक प्रस्ताव से शुद्ध हो कर उनका एक-दूसरे से गले मिलना इस बात को सिद्ध करता है कि यदि उनमें एकता न हुई तो कम से कम दुश्मनी जरूर भूल गये हैं।

गांधीजी के उपवास से यदि गांधीजी के हृदय के जख्म का अन्दाज सब लोग कर सकें, तो उन्हें भी थोड़ी बहुत चोट पहुंचे बिना न रहेगी। परिषद् में आने और 'महात्मा गांधी की जय' पुकारनेवाले इन अपूर्ण प्रस्तावों का भी पालन यदि पूरी तरह करेंगे तो थोड़े ही समय में सम्पूर्ण प्रस्ताव करने का समय आ जायगा।

जब मैं वीसनगर (गुजरात) गया था तब एक मुसल्मान सज्जन ने कहा था कुरान शरीफ में कहा है—किसी के दिल को दुखाना मानों काबा जैसे पाक जगह को नापाक करना है। धार्मिक हिन्दू तो 'मम हृदय भवन प्रभु तोरा' में विश्वास रखते हैं। हिन्दू और मुसल्मान यदि अपने इस अटल सिद्धान्त पर दृढ़ रह कर एक-दूसरे के दिल को न दुखाने की प्रतिज्ञा कर लें, यह मानने लगें कि एक-दूसरे के दिल को दुखाना [illegible] अपराध करना है तो एकता होने में देर न लगे। यह [illegible] आज नहीं है—यह स्थिति परिषद् के प्रस्तावों में नहीं है। प्रस्ताव पास करने वालों में से कितने ही लोगों के दिल में यह भाव अभी बाकी रहा है कि—'वे यदि ऐसा करें तो हम ऐसा करें।' पर सब लोगों ने इतनी बात तो स्वीकार कर ली है कि दोस्ती करना है, और दोस्ती का उपाय है पाप के लिए पश्चात्ताप और अहिंसा। उदासीनता और उपेक्षा की जगह अब मैत्री की इच्छा पैदा हो गई है और उसके साथ ही स्वराज्य प्राप्त करने की लालसा का भी पुनर्जन्म हुआ है। इसे ऐसा-वैसा बात नहीं कह सकते। परन्तु मैत्री तथा स्वराज्य प्राप्त करने के संकल्प के लिए तथा उसके हेतु एकता के प्रश्न का सदा के लिए निपटारा करने योग्य हिम्मत आने में अभी समय लगेगा।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

काम नहीं तो राय नहीं

मौलाना हसरत मोहानी ने उस दिन मुझे रूसी सोवीट का रचना-विधान पढ़ने के लिए दिया और कहा कि इसे देखिए यदि और किसी वजह से नहीं तो सिर्फ इसीलिए कि महासभा के और सोवीट के रचना-विधान में कितनी स्पष्ट समता दिखाई देती है। मैंने उसे सरसरी तौर पर पढ़ा तो देखा कि दोनों रचना-विधानों के रूप में निःसन्देह स्पष्ट-रूप से समता है। यह समता बतलाती है कि इस भूमण्डल पर कोई बात मौलिक और नई नहीं है। दोनों में फर्क भी मुझे मिला, पर उसकी चर्चा करने की जरूरत नहीं। हां, उसकी एक बात पर तो मैं लट्टू हो गया। वह थी 'काम नहीं तो राय नहीं' का सूत्र। सोवीट के रचना-विधान में सदस्य की पात्रता न रुपये से परखी जाती है, न चार आने से, न मिल्कियत से, और न तालीम से, बल्कि सिर्फ मिहनत से। इस तरह सोवीट-महासभा को एक कार्यकर्ताओं की महासभा समझिए। क्या दार्शनिक, क्या अध्यापक और क्या दूसरे तमाम लोग सब के लिए, कुछ न कुछ काम करना लाजिमी है। पता नहीं उन्हें मिहनत किस तरह की करनी पड़ती है। मैंने चंद ही मिनटों में उसे इधर-उधर देखा। इससे अगर यह बात उसमें कहीं दर्शाई भी गई हो तो मुझे न मिल पाई। हमारे काम की और मार्के की बात तो उसमें यही है कि हरएक मतदाता को कुछ न कुछ खासा काम कर के दिखाना पड़ता है। ऐसी अवस्था में मेरा यह प्रस्ताव कि अब से हरएक महासभा के सदस्य होने की इच्छा रखनेवालों को चाहिए कि वे अपने राष्ट्र के लिए शारीरिक श्रम करें, न तो मौलिक है, न हास्यास्पद है। जब कि एक बड़े राष्ट्र ने पहले से ही इस सूत्र को मंजूर कर लिया है तब तो हमें उसका अनुकरण करने में झेंपने की कोई जरूरत नहीं। थोड़े समय तक रोज की जानेवाली मिहनत तभी फल दे सकती है जब कि लाखों लोगों के लिए उसकी किस्म या रूप एक ही हो। और हमारे देश के सदृश विशाल देश में ऐसा शारीरिक काम जिसका घर घर प्रचार हो सके, सिवा चर्खा-कताई के दूसरा नहीं है।

लेकिन यह कहा जाता है कि यह प्रस्ताव महज शारीरिक काम का प्रस्ताव नहीं है, उसके अन्दर आर्थिक पात्रता छिपी हुई है। सूत चाहे कितना महीन क्यों न कते १ साल के सूत की कीमत ४ आने तक तो हरगिज नहीं घट सकती। पर आक्षेप-कर्ता इस बात को भूल जाते हैं जिस लेख मे मैंने अपने प्रस्ताव की रूप-रेखा दी है, उसमें मैंने कहा है कि जो सूत कातने की कुवत न रखते होंगे उन्हें प्रांतिक समितियों की तरफ से कपास मिला करेगा। इसलिए लोग जो कपास बिना मूल्य प्रदान करेंगे वह मेरी तजवीज के मुताबिक चन्दा नहीं बल्कि दान होगा। तजर्बे से यह मालूम होता है कि हजारों लोगों के लिए हरसाल २४००० गज सूत कातने लायक काफी कपास मिलना बिल्कुल संभवनीय है। इस बार अ० भा० खादी-मंडल में ८,००० से ऊपर लोगों ने सूत भेजा है। उन्होंने खादीमंडल से कपास नहीं मंगाया। मुमकिन है कि कुछ प्रान्तों ने सूतकारों को सूत पहुंचाने का इन्तजाम किया हो। अगर उन्होंने ऐसा किया हो तो कुछ बेजा नहीं। क्योंकि असली चीज तो है आध घण्टा शारीरिक श्रम करना। हमारे राष्ट्र के इस क्षय का कारण कच्चे माल की कमी नहीं, बल्कि शारीरिक श्रम और साधारण हुनर के अभाव से ही उसका सत्यानाश हो रहा है। हमें अपने हाथों से मिहनत करने की आदत नहीं रह गई है। इसीसे मेरा यह प्रस्ताव कुछ लोगों को अप्रिय मालूम होता दिखाई देता है और राष्ट्र की एक ही आवश्यकता के लिए आध घण्टा काम करने में सारे देश के अपनी राजी-खुशी से लग जाने के लाभों को समझना कठिन मालूम हो रहा है। निश्चय ही मेरे प्रस्ताव में नीति-विरुद्ध तो कुछ भी नहीं है। और न उनमें कोई बात ऐसी है जो किसीकी अन्तरात्मा के खिलाफ हो। न उनमें कोई बात भारी कठिन ही है। भारी कार्यक्रम लोग के लिए भी आध घण्टा खादी मिहनत करना—चरखा कातना कोई कठिन नहीं है। ऐसी हालत में इस प्रस्ताव के खिलाफ जो कुछ ज्यादह से ज्यादह कहा जा सकता हो वह यही कि इस मिहनत का कुछ फल न निकलेगा। अच्छा, जरा देर को फर्ज कर लीजिए कि स्वराज्य या शीघ्र आर्थिक मुक्ति की दृष्टि से इसका कुछ फल न होगा। पर अ०भा०खादी-मण्डल के पास अगर हर माह मनों सूत आता रहे और उसकी सस्ती खादी बने तो क्या यह निष्फल होगा? नहीं। खादी का एक एक गज नया बना कपड़ा कभी बेकार नहीं कहा जा सकता।

दूसरा ऐतराज उसपर यह किया गया है कि उससे महासभा के हजारों मतदाताओं का मताधिकार छिन जायगा। पर मैं साहस के साथ कहता हूं कि यह आक्षेप कल्पना-मात्र है। मतदाता उसीका नाम है जो अपनी संस्था के काम में लगन से दिलचस्पी लेता हो। हमारे मतदाता ऐसे नहीं हैं। कुसूर उनका नहीं, हमारा है। हमने उनके कामों में काफी दिलचस्पी नहीं ली। और जब तक हमें ऐड़ न लगाई जाय तबतक हम ऐसा करेंगे भी नहीं। तकुआ ही वह ऐड़ है। हर महीना महासभा के अधिकारियों को हरएक मतदाता से अपना सीधा संपर्क रखना पड़ेगा। यह बिल्कुल स्पष्ट बात है। ताज्जुब है कि इसे भी खोल कर बताने की जरूरत पड़ती है। हर महीने अपने काम का हिसाब देनेवाले हजारों सच्चे कार्यकर्ताओं की एक संस्था के लाभों की कल्पना तो कीजिए। और, क्या थोड़े पर उत्साही काम करनेवालों की सजीव संस्था उस संस्था से हजारों गुना अच्छी नहीं है जिसमें हजारों सदस्य हों, जिन्हें उसके काम की परवा ही न हो, और जो कुछ आदमियों के इशारे पर अपनी राय देने से अधिक अपना कोई काम न समझते हों। पर सूरत तो ऐसी दिखाई देती है कि यदि हम आवश्यक परिवर्तन करने का साहस-मात्र दिखावें तो हमें इतनी बड़ी तादाद में मतदाता लोग मिलेंगे जो हमारे अन्दाज से बहुत ज्यादह होंगे। दूसरे महीने के सूत भेजनेवालों की तादाद पहले महीने से प्रायः तिगुनी है। यदि हर प्रान्त का हर कार्यकर्ता राजी-खुशी से कातनेवालों का खासा सगठन कर ले तो सूतकारों की संख्या में हमें बराबर वृद्धि ही दिखाई देगी। और यदि कुछ ही महीनों में यह तादाद दो लाख तक पहुंच जाय तो हमें ताज्जुब न करना चाहिए। दो लाख के मानी है हर प्रान्त में दस हजार। और हर प्रान्त औसतन् दस हजार स्वेच्छापूर्वक कातनेवाले लोगों को जुटाने में कोई गैर-मामूली व्यवस्थाशक्ति की जरूरत नहीं है। इसलिए मैं आशा करता हूं कि मेरा प्रस्ताव ना-मंजूर न होगा।

मैंने जान-बूझ कर अपने प्रस्ताव को लघुतम समापवर्तक कहा है, महत्तम नहीं। और लघुतम का मतलब यह नहीं है कि वह सारे देश के लिए मंजूर होने लायक लघुतम हो, बल्कि देश की उद्देश-सिद्धि के लिए आवश्यक लघुतम हो। और मेरा मत हो चुका है कि यदि हमें रक्तपात के बिना स्वराज्य प्राप्त करना हो तो मेरी बताई ये तीन बातें परम आवश्यक हैं। यदि हमारा यह आदर्श हो कि जितने सदस्य हो सकें, फिर आर्य-कार्य की खुशहाली रहे या न रहे—तब हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अस्पृश्यता को भी नमस्कार कर देना होगा। क्योंकि मैं जानता हूं कि अस्पृश्यता-

निवारण के लिए जहां कहीं हमने जोर-शोर से काम किया है वहां बहुतेरे लोग महासभा से अलग हो गये हैं। वे अब भी उसे हिन्दू-धर्म का अभिन्न अंग मानकर उसे आलिंगन कर रहे हैं। और यही बात हिन्दू-मुस्लिम-एकता के भी संबंध में कहनी चाहिए। क्योंकि वर्तमान दुर्घटनाओं के अनुभवों ने यह दिखला दिया है कि कितने ही लोग ऐसे हैं जो न केवल हिन्दू-मुस्लिम-एकता को चाहते नहीं हैं, बल्कि हमारे भेदों को चिरंजीवी बनाना चाहते हैं। जरा जरा से निमित्तों पर वे झगड़ा मोल लेना चाहते हैं। वे बहाने पैदा करने में भी नहीं हिचकते। ऐसी अवस्था में यदि हम अपनी आन्तरिक शुद्धि के साधन-रूप इन तीनों शर्तों को निकाल दें तो फिर महासभा एक खासा बाजार हो जायगी--राष्ट्र की पुकार पर एक आदमी की तरह दौड़ पड़ने वाली महासभा न रह जायगी। कम से कम मैं तो ऐसी संस्था में जहां ये तीनों चीजें जीवित और वास्तविक रूप में न हों, बिल्कुल घबरा जाऊंगा। और यदि बाइबिल के एक वचन की कुछ तोड़-मरोड़ करने में पाप न होता हो तो कहूंगा- 'पहले तुम हिन्दू-मुस्लिम-एकता कर लो, छुआछूत हटा लो, चरखा और खादी को अपना लो, बस फिर दूसरी तमाम बातें अपने आप तुम्हें मिल जायंगी। २०-९-२४

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

एकता-परिषद्

सभापति के द्वारा उपस्थित किये जाने पर नीचे लिखा प्रस्ताव 'एकता'-परिषद में सर्व-सम्मति से पास हुआ:—

महात्मागांधी के उपवास से इस परिषद को बहुत दुःख और चिन्ता हुई है।

इस परिषद की यह दृढ राय है कि अन्तरात्मा और धर्म की व्यावहारिक स्वतन्त्रता परम आवश्यक है और यह पूजा-स्थानों के फिर वे किसी भी धर्म-सम्प्रदाय के हों, भ्रष्ट किये जाने और किसी भी मनुष्य के अन्य धर्म ग्रहण करने या पुनः स्वधर्म में आने के कारण उसके दिक या दण्डित करने की निन्दा करती है और जबरदस्ती किसीको अपने धर्म-मत में मिलाने या दूसरे के हकों पर पदाघात करके अपने धार्मिक रीति-रिवाजों को दूसरों पर लादने या उनकी रक्षा करने के प्रयत्नों की भी निन्दा करती है।

इस परिषद् के सदस्य महात्मा गांधी को यकीन दिलाते हैं कि हम इन सिद्धान्तों का परिपालन कराने और इनके जोश तथा उत्तेजना की अवस्था में भी उल्लंघन करने पर उसकी निन्दा करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

यह परिषद अपने सभापति को इस बात का अधिकार देती है कि वे खुद जा कर महात्मा गांधी पर इस परिषद का यह गम्भीर आश्वासन प्रकट करें और परिषद की यह अभिलाषा भी उनपर जाहिर करें कि महात्मा गांधी तुरन्त अपना उपवास छोड़ कर देश में तेजी के साथ फैलने वाली इस बुराई को तत्काल भली भांति रोकने के तेज उपायों का अवलंबन करने में परिषद को अपने सहयोग, सलाह और रहनुमाई का लाभ प्रदान करें।

२६ सितंबर १९२४ मोतीलाल नेहरू सभापति

गांधीजी ने अपनी उपवास-शय्या से यह स्वहस्त-लिखित उत्तर भेजा—

प्रिय मोतीलालजी,

आपकी रहनुमाई में प्रेम और दया से प्रेरित हो कर परिषद् ने जो प्रस्ताव पास किया है उसे आपने कृपा-पूर्वक कल रात को पढ़ कर सुनाया है। मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप सभा को इस बात का यकीन दिलावें कि यदि मुझसे हो सकता तो मैं खुशी से उसकी इच्छा के अनुसार उपवास छोड़ देता। पर मैंने अपने दिल में फिर फिर यह इस बात पर विचार किया है और देखा कि उपवास छोड़ना मेरे लिए संभवनीय नहीं है। मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि किसी शुभ और उच्च कार्य के लिए जो प्रतिज्ञा एक बार की जाय या जो व्रत एक दफा ले लिया जाय, उसे तोड़ना न चाहिए। और आप जानते हैं कि ४० साल से ज्यादह हुए मेरा जीवन इसी सिद्धान्त के आधार पर बना हुआ है।

इस पत्र में जितना खुलासा कर सकता हूं उससे भी अधिक गहरे कारण मेरे उपवास के हैं। इस उपवास के द्वारा मैं एक बात के लिए अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहा हूं। असहयोग-आन्दोलन का विचार किसी भी अंगरेज के प्रति द्वेष या दुर्भाव से प्रेरित हो कर नहीं किया गया था। उसके अहिंसात्मक रखने का उद्देश यही था कि हम अंगरेजों को अपने प्रेम बल के द्वारा जीतें। पर इसका परिणाम केवल वैसा ही नहीं हुआ, बल्कि उसके द्वारा उत्पन्न शक्ति ने खुद हमारे ही अन्दर एक-दूसरे के प्रति द्वेष और दुर्भाव पैदा कर दिया। इस बात के ज्ञान होने के कारण ही मेरा सिर झुक गया है और मुझे यह अदम्य प्रायश्चित अपने ऊपर लादना पड़ा है।

इसलिए यह उपवास मेरे और ईश्वर के बीच की बात है-सो मैं आपसे केवल यही निवेदन न करूंगा कि उसे न छोड़ सकने के लिए आप मुझे माफ करें, बल्कि यह भी कहूंगा कि मुझे इसके लिए उत्साहित करें और मेरे लिए ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह निर्विघ्न समाप्त हो।

मैंने यह उपवास मरने के लिए नहीं, बल्कि और भी अच्छी और शुद्ध जिन्दगी देश की सेवा के लिए बसर करने के उद्देश से किया है। सो यदि, ऐसी नाजुक हालत हो जाय (जिसकी कि मुझे कोई संभावना नहीं दिखाई देती है), जब मृत्यु और भोजन दो में से किसी बात की पसन्दगी करने का सवाल खड़ा हो तो मैं जरूर उपवास छोड़ दूंगा। लेकिन डा० अनसारी और डा० अब्दुल रहमान जो कि बड़ी सावधानी और चिन्ता के साथ मेरी शुश्रूषा में हैं, आपसे कहेंगे कि मैं इतना तरोताजा रहता हूं कि जिस पर ताज्जुब होता है।

इसलिए सभा से मैं सविनय प्रार्थना करूंगा कि वह मेरे प्रति अपना तमाम प्रेम, जिसका कि चिह्न यह प्रस्ताव है, एकता के लिए ठोस, सच्चे और सरगर्म काम के रूप में परिणत करे, जिसके कि लिए यह परिषद हो रही है।

२७-९-२४ आपका सच्चा
मो० क० गांधी

[आगे पृष्ठ ६४]

६- सदस्यों के रजिस्टर में जहां प्रान्त और जिले के नंबरों में हर एक के लिए एक से नंबर शुरू किया गया है, दुरुस्ती की जरूरत है। उसमें बहुतेरी भूलें होती हैं और उन्हें खोजने में समय बरबाद होता है। नंबरों का क्रम सीधा अटूट रखना चाहिए।

७—असदस्यों का नंबर एक से शुरू होनेमें हर्ज नहीं। पर उसके पहले 'अ' चिह्न लगाया जाय।

अ-सदस्य

अ-सदस्य लोग अभी तक सीधे यहीं पैकट भेज दिया करते हैं। उनसे फिर प्रार्थना है कि वे अपने प्रान्त के खादी-मण्डल को भेजें। उनके पैकटों पर रजिस्टर नंबर नहीं होता। इससे उनका इन्दराज करने में बड़ी दिक्कत पेश आती है। अ. भा. कार्यालय को उनके प्रान्त को सूत की खबर भेजनी पड़ती है-यह काम और बढ़ जाता है।

सूत भेजनेवालों की अन्तिम संख्या तथा भिन्न भिन्न प्रान्तों की पंक्ति का पृथक्करण आगामी अंक में देने की आशा रखते हैं।

एकता-परिषद के प्रस्ताव

१ यह परिषद् हिन्दू-मुसल्मानो की अनबन और हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न स्थानों में हुई मार-पीट पर खेद प्रकाशित करती है, जिसके कि फल स्वरूप जाने जाया हुई है, माल की लूट खसोट हुई है और मकान वगैरह जलाये गये है तथा मन्दिर तोडे गये हैं। परिषद इन कामों को जंगली और धर्म के खिलाफ समझती है। और इससे जिन लोगों के जानो माल को नुकसान पहुचा है उनके प्रति अपनी हमदर्दी जाहिर करती है।

२ इस परिषद की यह राय है कि किसी भी शख्स का बतौर बदला निकालने के अपने हाथों मे कानून ले लेना कानून और धर्म के खिलाफ है। और इस परिषद की यह राय है कि हर किस्म के तमाम मत-भेदो और अनबनों का फैसला पंचायत के मार्फत किया जाय।

३ भिन्न भिन्न जातियों के तमाम झगडों, मत-भेदो की, हाल की दुर्घटनाओं की भी तहकीकात करने और उनका निर्णय करने के लिए, एक 'राष्ट्रीय पंचायत' नामक मध्यवर्ती मंडल की स्थापना की जाती है, जिसमें १५ से अधिक सदस्य न होंगे और उसे अधिकार होगा कि जरूरत पड़ने पर उसमें स्थानिक लोगों को भी शामिल कर ले। उसके सदस्य इस प्रकार होंगे —

गांधीजी (अध्यक्ष), हकीम अजमलखान, लाला लाजपतराय, श्री० भरीचा (पारसी) श्री० एस. के. दत्त (ईसाई) मास्टर सुन्दरसिंग लायलपुरी (सिक्ख)

४ पहले और दूसरे प्रस्ताव मे स्वीकृत सिद्धान्त को अमल मे लाने के लिए तथा तमाम धर्मों के मतों, विश्वासों और आचारों के विषय मे सहिष्णुता कायम रखने के लिए इस परिषद की यह राय है कि—

(अ) हरएक व्यक्ति अथवा समूह को अपना अपना धर्म-मत कायम करने का पूरा पूरा हक तथा दूसरों के मनोभावों के प्रति आदर रखते हुए तथा दूसरे के हकों में बाधा न डालते हुए अपने आचारों के पालन करने का हक होगा। ऐसा करते हुए किसीको दूसरे धर्म के संस्थापकों, साधुपुरुषो तथा सिद्धान्तों की निन्दा न करनी चाहिए।

(आ) हर धर्म के प्रार्थना-स्थानों को पवित्र और अवध्य माने और किसी भी तरह के जोश-खरोश होने पर भी अथवा ऐसे ही स्थानों के भ्रष्ट अथवा खण्डित होने पर भी उसका बदला लेने के लिए उनपर हमला न किया जाय अथवा न भ्रष्ट या खण्डित न किये जायं। ऐसे हमलों अथवा भ्रष्ट करने की क्रिया को रोकने के लिए भरसक प्रयत्न करना और उसकी निन्दा करना हरएक नागरिक का कर्तव्य है।

(इ) हिन्दुओं को मुसलमानो के गोकुशी के हक के अमल को जबरदस्ती से, किसी स्थानिक मण्डल के प्रस्ताव से, या धारासभा के प्रस्ताव से, अथवा अदालत के हुक्म से, रोकने की आशा न रखनी चाहिए—एक दूसरे के समझौते से ही ऐसा करने की आशा रखनी चाहिए, और अपने मनोभावों के प्रति मुसल्मानों के दिल मे अधिक गहरा आदर उत्पन्न करने के लिए मुसल्मानों की भलमनसाहत पर तथा दूसरी जातियों मे अच्छे संबंध की स्थापना पर विश्वास रखना चाहिए।

पूर्वोक्त प्रस्ताव के किसी भी मजमून से दोनों जातियों के पहले से प्रचलित रिवाज अथवा इकरार मे बाधा नहीं पहुंचेगी, अथवा जहां पहले गोकुशी न होती हो वहां करने का हक हासिल न होगा। इस आखिरी बात के बारे मे कोई झगडा खड़ा हो तो तीसरे प्रस्ताव के अनुसार स्थापित पंचायत उसका निपटारा करेगी। जहां गोकुशी होती हो वहां भी वह इस तरह न की जायगी जिससे हिन्दुओं का जी दुखे।

परिषद के मुसलमान सभ्य अपने हमदीन लोगों को सूचित करते है कि वे जितना हो सके गोकुशी कम करने की कोशिश करें।

(ई) मुसल्मानों को, मसजिद के सामने बाजे बजाने के हिन्दुओं के हक के अमल को जबरदस्ती से, किसी स्थानिक मण्डल के प्रस्ताव से, या धारासभा के प्रस्ताव से अथवा अदालत का हुक्म हासिल कर के रोकने की आशा न रखनी चाहिए। बल्कि सिर्फ एक दूसरे की राजी-रजामन्दी से ही ऐसा करने की आशा रखनी चाहिए और अपने मनोभावों के प्रति हिन्दुओं के दिल में अधिक गहरा आदर उत्पन्न करने के लिए हिन्दुओं कि भलमनसी पर तथा दोनों जातियों के उत्तम संबंध की स्थापना पर विश्वास रखना चाहिए।

पूर्वोक्त प्रस्ताव के किसी भी मजमून से दोनों जातियों के बीच पहले से प्रचलित रिवाज तथा इकरार को बाधा नहीं पहुंचेगी अथवा पहले जहां बाजे न बजते हों वहां नये सिरे से बाजे बजाने का अधिकार प्राप्त न होगा। इस आखिरी बात के बारे में यदि किसी बात का विवाद खड़ा हो तो तीसरे प्रस्ताव के अनुसार स्थापित पंचायत उसका निपटारा करेगी।

इस परिषद् के हिन्दू सभ्य अपने धर्म-बन्धुओं से आग्रह करते हैं कि वे मसजिदों के सामने इस तरह बाजे बजाना छोड दें जिससे कि वहां की सामुदायिक प्रार्थना में खलल पहुंचता हो।

मुसल्मानों को घर मे, किसी भी मसजिद मे, अथवा किसी सार्वजनिक जगह में जो कि किसी जाति की धार्मिक विधि के लिए नियत न हो, बांग पुकारने अथवा नमाज पढने का हक है।

जहां पशुओं के वध अथवा मांस-विक्रय के खिलाफ किसी दूसरे कारण से आपत्ति न हो वहां, 'झटका' या 'जिबह' की वध-प्रणाली पर आपत्ति न की जाय।

(उ) हर शख्स को अपने मन चाहे धर्म के पालन करने का और स्वेच्छा से उसे बदलने का हक है। इस प्रकार धर्म बदलने के कारण कोई भी शख्स सजा का अथवा जिस धर्म को उसने छोडा है उसके अनुयायियों की तरफ से परेशान किये जाने का पात्र न होगा।

(ए) कोइ भी व्यक्ति अथवा समूह दूसरे को दलील अथवा अनुराध के द्वारा धर्मान्तर कराने का अथवा किये हुए धर्मान्तर से फिर वापस लाने का हक रखता है। परन्तु ऐसा करते हुए, अथवा उसे रोकते हुए उसे जबरदस्ती या फरेब करने तथा दुनियावी लालच देने आदि ऐसे ही मिथ्या उपायों का प्रयोग न करना चाहिए। सोलह साल से कम उम्र के स्त्री-पुरुषों का धर्मान्तर न किया जाय-यदि उनके पालकों या मा-बाप के साथ हो तो बात दूसरी है। इसके अलावा जो कोई सोलह बरस से कम उम्र का बालक अपने मा-बाप या पालक से बिछडा हुआ और आवारा पाया जाय तो उसे तुरन्त उसके धर्मवालों के हवाले कर देना चाहिए, और किसी भी धर्मान्तर अथवा धर्मान्तर से फिर वापस लाने की विधि मे कोई बात गुप्त न होनी चाहिए।

(ऐ) कोई एक जाति किसी दूसरी जाति के आदमी को उसकी जमीन मे नवीन धर्म-मन्दिर बांधने से जबरदस्ती न रोके। परन्तु ऐसा नया धर्म-मन्दिर दूसरी जाति के विद्यमान धर्म-मन्दिर से काफी दूर बनाना चाहिए।

५ इस परिषद की यह राय है कि अखबारों का एक भाग और खास करके उत्तर भारत का, भिन्न भिन्न जातियों की मौजूदा अनबन बढाने के लिए जिम्मेवार है। लिख का साक

बना कर एक दूसरे के धर्म की निन्दा कर के और हर तरह से द्वेष और धर्मान्धता बढा कर उन्होंने यह किया है। यह परिषद् ऐसे लेखों की निन्दा करती है और सर्व-साधारण से प्रार्थना करती है कि ऐसे अखबारों और पुस्तिकाओं को आश्रय देना वे बन्द करें और यह परिषद् मध्यवर्ती तथा स्थानिक पंचायतों को सलाह देती है कि वे ऐसे लेखों पर देख-रेख रक्खें और समय समय पर सच्चे समाचार प्रकाशित किया करें।

६ इस परिषद के सामने यह बात पेश हुई है कि कितने ही स्थानों में मस्जिदों के सामने अनुचित काम किये गये हैं। यदि कहीं ऐसा हुआ हो तो इस परिषद् के हिन्दू सभ्य उसकी निन्दा करते हैं। इस के अलावा इस परिषद् के हिन्दू तथा मुसलमान सभ्य अपने धर्मबन्धुओं से प्रार्थना करते हैं कि वे ईसाई, पारसी, सिक्ख, बौद्ध, जैन, यहूदी इत्यादि भारत की छोटी जातियों के प्रति उतनी ही सहिष्णुता रक्खें जितनी कि वे दोनों आपस में रखना चाहते हैं और जातीय व्यवहार के तमाम मामलों में न्याय और उदारता की नीति का अनुसरण करें।

७ इस परिषद् की राय है कि एक जाति के लोगों के द्वारा दूसरी जाति के लोगों को बहिष्कृत करने की तथा जातीय या व्यापारिक व्यवहार बन्द करने की कोशिशें जो कि कहीं कहीं हुई पाई जाती हैं, निन्द्य हैं और देश की विविध जातियों के लिए घातक हैं। इसलिए यह परिषद् तमाम जातियों से प्रार्थना करती है कि ऐसे बहिष्कारों तथा दुर्भाव प्रकट करने वाली बातों से मुंह मोडें।

८ यह परिषद देश की तमाम जातियों के स्त्री-पुरुषों से निवेदन करती है कि वे महात्माजी के उपवास के आखिरी सप्ताह में रोज ईश्वर से प्रार्थना करें और आगामी ८ अक्तूबर को देश के गांव गांव में सभायें करके सर्वशक्तिमान परमात्मा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करें और उससे प्रार्थना करें कि देश में सद्भाव और बन्धुभाव फैले, देश की तमाम जातियां एक हों, एवं इस परिषद से स्वीकृत पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता तथा पारस्परिक सद्भाव का सिद्धान्त देश में स्वीकृत हो और भारत की तमाम जातियों के लोग उसके अनुसार आचरण करें।

अगस्त के सूत की परीक्षा

(अ० भा० खादी मण्डल के मन्त्री की तरफ से)

इस मास में सूत की तादाद तो बढी ही है, पर साथ ही इस एक ही महीने के अन्दर कताई में भी सन्तोषजनक उन्नति दिखाई देती है। यहां सूत के पांच दरजे नियत किये गये हैं— (१) ३ से ६ अंक; (२) ११-१६, (३) १० से २२; (४) २३ से ३०, (५) ३१ से ऊपर अंक। उनमें दूसरे दरजे का सूत भेजने वाले कितने ही अग्रणियों तथा सर्व-साधारण स्त्री-पुरुषों की प्रगति आश्चर्यजनक हुई है। परन्तु अभी बहुत से सूत में अव्यवस्थितता की खामी दिखाई देती है। और यह खामी उन उन प्रान्त के कातनेवाले लोगों की खामियों की सूचक है। जबतक वे दूर न होंगी तब तक खादी का कदम आगे नहीं बढ सकता। यह अव्यवस्थितता ही बहुतांश में खादी के महंगी तथा मोटी होने का कारण है।

जिस प्रान्त में आटियों के नाप और किस्में जुदी जुदी हैं उन्हें इस बात पर ख्याल करने की जरूरत है कि बुनने वालों को कितनी दिक्कतों का सामना करना पडता है। कोई कोई आंटी स्त्रियों की चूडियों के बराबर छोटी और घनी होती है। इससे ले कर अनेक प्रकार के नाप की आटियां मिलती हैं। ऐसे सूत को खोलने के लिए बुननेवाले को तरह तरह के फालके जुदा रखना जरूरी होता है। यह वह किस तरह कर सकता है? और वह ऐसा सूत बुनना भी पसंद क्यों करेगा? फिर ऐसी आटियों से कोकडे भरते वक्त यदि तार टूट जाता है तो उसे खोजना बेकार हो जाता है। और कोकडा भरनेवाले का वक्त इतना जाया जाता है कि फिर यदि वह सूत हाथ में लेने की कसम खाले तो ताज्जुब नहीं। एक थोडी सी लापरवाही का ऐसा नतीजा होता है। हर १०० तार लपेटे बाद एक मजबूत दोरे से गांठ लगा देनी चाहिए और ४०० या ५०० तार की फालकी उतारनी चाहिए। इस तरह उसमें ४-५ लटें हों तो उन्हें खोलने में बडी आसानी होती है। परन्तु फालकी पूरी हो जाने के बाद ऐसी लटें बांधना फजूल है। सौ तार लपेटने के बाद एक धागे से गांठ लगाना चाहिए और फिर दूसरे सौ तार के बाद उसी धागे से दूसरी गांठ लगानी चाहिए। इस तरह गांठ से ही फायदा हो सकता है। खोया हुआ धागा यदि न मिले तो इन गांठों के बीच का धागा निकाल कर कोकडा भरने का काम चलाया जा सकता है। यही इन गांठों से लाभ है। कितने ही लोग सूत में पूरी फालकी होने के बाद पीछे से ऐसी गांठें लगाते हैं। हर सूतकार को यह बात समझ लेनी जरूरी है। इसीलिए यहां इतनी तफसील से यह बात समझाई जाती है।

इन्दराज की खामियां

इन्दराज की खामियां दुरुस्त करने की कोशिश हर प्रान्त ने की है परन्तु अभी कठिनाइयां दूर करना बाकी ही है और कुछ तो नई खडी होती हैं। इससे तुरन्त सूत को दर्ज करना, जांचना, उसका नंबर और उसपर राय प्रकाशित करना मुश्किल हो जाता है। नीचे लिखी बातों पर हर प्रान्त का ध्यान जाना जरूरी है—

१- हर पैकट पर चिट मजबूत अर्थात् ऐसी जो कुचल कर फट न जाय, होनी चाहिए। सूत भेजनेवाले ने यदि चिट अच्छी न लगाई हो तो प्रान्तिक खादी मण्डल के दफ्तर में उसे दुरुस्त कर लेने का अनुरोध है। रजिस्टर नम्बर सिरे पर रहे हरफों में फिर तोला, गज, अंक और कोई कैफियत हो तो वह लिखनी चाहिए।

२—पैकट **सिलसिलेवार** फहरिस्त बना कर भेजे जायं। वह पैकटों को देखकर न बनाई जाय बल्कि पैकटों को रजिस्टर में दर्ज करके फिर रजिस्टर पर से तैयार की जायगी तो काम ठीक और आसानी से रहेगा। सारांश यह कि पैकट बेतरतीब और गडबड नहीं बल्कि **यथाक्रम उनकी फहरिस्त मिलनी चाहिए।** यदि ऐसा न किया जाय तो अ० का० कार्यालय में तमाम प्रान्तों का इन्दराज थोडे समय में और सूत की जांच कर लेना गैर मुमकिन होगी फिहरिस्त के लिए आवश्यक छपे फार्म भेजने की तजवीज हो रही है। छपते ही वे भेजे जायगे। इससे आशा है कि अगले महीने से क्रमवार उनकी खानापुरी यथाविधि हो कर आवेगी।

३ फहरिस्त के लेखे के लिए भी छपे हुए फार्म भेजे जायगे। वे खानापुरी करके भेजे जाय।

४—अ-सदस्यों के विषय में भी वैसी ही व्यवस्था रखनी चाहिए जैसी सदस्यों के विषय में हो अर्थात् हर पैकट पर रजिस्टर नंबर, तोला, गज तथा अंक लिखना चाहिए और उसकी फिहरिस्त भी तफसील भेजना चाहिए।

५—नाम न देने वाले भाई-बहनों के नाम 'शुभेच्छक' या 'देश-सेवक' इस प्रकार रजिस्टर में दर्ज करके उसपर नंबर लगाना फजूल है। यदि ऐसे लोग खुद अपना कोई लक्षण दें तो नंबर पर चढाये जा सकते हैं। वर्ना ऐसे पैकटों की तादाद फहरिस्त में दर्ज कर दी जाय।

(शेष पृष्ठ ६२ पर)

उद्यापन

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, ‑)
विदेशों के लिए ,, ४)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ९

मुद्रक–प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, क्वार सुदी १९, संवत् १९८१ रविवार, १२ अक्तूबर, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

मेरा अवलंब

मेरे प्रायश्चित्त और प्रार्थना का आज बीसवाँ दिन है। अब मैं फिर शान्ति के राज्य से निकल कर तूफानी दुनिया में पड़नेवाला हूं। ज्यों ज्यों मुझे इसका खयाल होता है त्यों त्यों मैं अपनेको अधिकाधिक असहाय अनुभव करता हूं। कितने ही लोग एकता-परिषद् के शुरू किये काम को पूरा करने के लिए मेरी ओर देखते हैं। कितने लोग राजनैतिक दलों को एकत्र करने की उम्मीद मुझसे रखते हैं। पर मै जानता हूं कि मैं कुछ नहीं कर सकता। ईश्वर ही सब कुछ कर सकता है. प्रभो मुझे अपना योग्य साधन बनो और अपना इच्छित काम मुझसे लो।

मनुष्य कोई चीज नहीं। नेपोलियन ने क्या क्या मनसूबे बांधे, पर सेंट हेलेना में एक कैदी बन कर उसे रहना पडा। जर्मन सम्राट कैसर ने योरप के तख्त पर अपनी नजर गडाई, पर आज वह एक मामूली आदमी है। ईश्वर को यही मंजूर था। हम ऐसे उदाहरणों पर विचार करें और नम्र बनें।

इन अनुग्रह, सौभाग्य और शांति के दिनों मे मैं मन ही मन एक भजन गाया करता था। वह सत्याग्रहआश्रम में अक्सर गाया जाता है। वह इतना भाव-पूर्ण है कि मैं उसे पाठकों के सामने उपस्थित करने की सुखाभिलाषा को रोक नहीं सकता। मेरे शब्दों की अपेक्षा उस भजन का भाव ही मेरी स्थिति को अच्छी तरह प्रदर्शित करता है —

रघुबीर तुमको मेरी लाज।
सदा सदा मै सरन तिहारी, तुम बडे गरिबनिवाज॥
पतितउधारन बिरुद तिहारो श्रवणन सुनी अवाज।
हौं तो पतित पुरातन कहिये पार उतारो जहाज॥
अघ–खंडन दुख–भंजन जन के यही तिहारो काज।
तुलसीदास पर किरपा करिये भक्ति–दान देहु आज॥

(य. इं.) ६ अक्तूबर १९२४ मोहनदास गांधी

तप की महिमा

हिन्दू-धर्म में तप कदम कदम पर है। पार्वती यदि शंकर को चाहे तो तप करे। शिव से जब भूल हुई तो उन्होंने तप किया। विश्वामित्र तो तप की मूर्ति ही थे। राम जब वन को गये तो भरत ने योगारूढ हो कर घोर तपश्चर्या की और शरीर को क्षीण कर दिया।

ईश्वर दूसरी तरह मनुष्य की कसौटी कर ही नहीं सकता। यदि आत्मा देह से भिन्न है तो देह को कष्ट देते हुए भी आत्मा प्रसन्न रहती है। अन्न शरीर की खुराक है; ज्ञान और चिन्तन आत्मा की। यह बात एसंगोपात्त हर शख्स को अपने लिए सिद्ध करनी पड़ती है।

परन्तु यदि तपादि के साथ श्रद्धा, भक्ति, नम्रता न हो तो तप एक मिथ्या कष्ट है। वह दम्भ भी हो सकता है। ऐसे तपस्वी से तो वामिजाज भोजन करने वाले ईश्वर–भक्त हजार गुना बेहतर हैं।

मेरे तप की कथा लिखने लायक शक्ति आज मुझमें नहीं है; पर इतना कह देता हूं कि इस तप के बिना मेरा जीना असंभव था। अब मेरे नसीब में फिर तूफानी समुद्र में कूदना बदा है। प्रभो! दीन जान कर मुझे तार!

(नवजीवन)

देहली,
आश्विन सु. ११,
बुधवार।

मोहनदास गांधी

क्या यह राजनीति नहीं है ?

(१)

याचक-देश के समझदार लोग सलाह-मशवरे के लिए जमा हुए। उस देश में अन्न के अभाव से लोग क्षुधार्त रहते थे। वे अपने देश के अन्न की समस्या को हल करने के लिए अपना दिमाग छोड़ने लगे। उनमें एक आदमी था, जिसके चहरे पर विचारशीलता छिटक रही थी। जरा देर के लिए सब लोगों की आंखें उस पर गड़ीं। उन्होंने उससे पूछा—'आप इसका कुछ उपाय बतावेंगे?' उसने कहा—'हां, क्यों नहीं? अगर लोग मेरी बात मानें तो इस दुखी देश के लोगों के प्राण बच सकते हैं।' सब लोगों ने बड़ी उत्कण्ठा से पूछा—'क्या उपाय है?' उनकी अन्दर धसी हुई आंखों में आशा का तेज चमकने लगा। "देखो उम्दा हल हमारे पास हैं। ईश्वर ने हमें बड़ी उपजाऊ जमीन दी है, बारिश के जरिये वह अपने करुणा-कण ठीक समय पर, बिना नागा, यहां भेजता है। आओ, हम सब लोग मिल कर जमीन को जोतें और अनाज बोवें। फिर इस भूमि से फाकेकशी का नाम निशान जाता रहेगा।'

जिन आंखों में कुछ क्षण के लिए आशा की ज्योति चमक उठी थीं वे अब निराशा से फीकी पड़ गईं। उन्होंने कहा—'यह तो काम है, खाना नहीं।' और वहां से उठ कर चले गये। भिक्षुक-भूमि के लोगों की समझ में यह बात नहीं आती थी कि अन्न से काम का क्या ताल्लुक है? उन्होंने सोचा था कि यह शख्स हमें सफलता-पूर्वक याचना करने का कोई नया तरीका बतावेगा, पर उसने तो ऐसी अजीब बात बताई, जिसका मतलब ही उनकी समझ में न आ सकता था।

पड़ोस में ही एक रियासत थी, जहां के लोग दुर्भाग्यवश सब अकलमन्द थे। वे भी भूख के कष्टों से व्याकुल थे पर उसका कुछ उपाय न सूझता था। वे भी एक जगह एकत्र हुए और अपनी दुःखमय दशा से छुटकारा पाने का उपाय खोजने लगे। बड़ी गरमागरम बहस हुई-खूब तू तू मैं-मैं हुई, पर इलाज किसीको कुछ न सूझा। उनके अन्दर एक आदमी था, जो चुपचाप बैठा हुआ था और जो बड़ा विचारवान था। अकलमन्द-सरदारों ने उसके पास आकर कहा—'आप चुप क्यों बैठे हैं, आप सब में ज्यादह अकलमंद हैं, फिर भी हमारी कुछ मदद नहीं करते?' उसने कहा—"इसकी दवा है 'काम'। चलो हम सब हल-बैल लाकर जमीन जोतें और अनाज बोवें।" वे लोग कह-कहा कर हंस पड़े और मुंह बना कर कहने लगे—'बस, यही अकल आपके पास है? हमने तो सोचा था कि आ कर आप हमारी कुछ मदद करेंगे।' यह कह कर वे वहां से चल गये।

ये कथायें कपोल-कल्पित हैं। लेकिन इनसे उन लोगों की मनोवृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है जो कहते हैं कि महासभा के लिए गांधीजी का कार्यक्रम तो एक सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम है, उसमें राजनीति तो कहीं है नहीं। उनके नजदीक राजनीति है, भलीभांति भीख मांगना, या कारगर तौरपर डींग हांकना। मूलभूत सत्य सिद्धान्त उनके दिमाग को नहीं जंचता। वे कहते हैं आप तो महासभा का राजनैतिक रूप बिल्कुल ही हटाये लेते हैं। पर वे यह नहीं देखते कि इस विदेशी आधिपत्य का दुहेरा आधार है आर्थिक परावलंबन और सामाजिक व्यवस्था के दोष ही। यदि हमें अनाज की आवश्यकता है तो हमें जमीन को जोत कर खेती करनी चाहिए, न कि भीख मांगने का, या डाका डालने का या ऐसा ही कोई और नया रास्ता खोजें। इसी तरह यदि भारत को आजादी दरकार है तो उसे अपनी समाजिक और आर्थिक समस्याओं को हल करना जरूरी है। यही सच्ची राजनीति है और दूसरी राजनीतियां तो शब्दच्छल हैं,—कोरी बातें हैं। गुलामी ने हमारी आत्मा को इतना जर्जर कर दिया है कि हमें रचनात्मक कार्य में राजनीति नहीं दिखाई देती। हमें वह सिर्फ जल्सों में, मांगें पेश करने में और धुड़कियां बताने में ही दिखाई देती है।

(२)

क्या किसी देश के लोगों के गुलामी की बेड़ियां तोड़ने के निश्चय को प्रदर्शित करने का तरीका हम इससे बढ़कर खयाल कर सकते हैं कि उसके तमाम स्त्री, पुरुष, बच्चे, सब लोग सभ्य और प्रतिष्ठित गुलामी के तमाम खयालात को छोड़ कर, तमाम वक्त ऐसा कुछ काम करें, जो उस आधिपत्य की जड़ को ही निर्मूल कर डालता हो, जिसके शिकार हो कर हम दीन-हीन बन रहे हैं। आप जहां कहीं जाय घर में, बाजार में, रास्ते में, रेलगाड़ी में, मदरसे में, होटल में, मन्दिर में, मसजिद में सब जगह स्त्री-पुरुषों को 'तकली' या 'चांतली' अथवा चरखे पर सूत कातते हुए—देश को विदेशी कपड़े के बोझ से मुक्त करने में यथाशक्ति सहायता करने का निश्चय प्रकट करते हुए—देखें, तो बताइए, ऐसे वायुमण्डल का प्रभाव किसके रोके रुक सकेगा? ऐसे निश्चय का मुकाबला दुनियां की कोई चीज कर सकती है? अपने महास्त्र—बड़ेसे बड़े और बलवान् से बलवान् शस्त्र—का प्रयोग करने से बढ़कर कोई राष्ट्र इसके लिए और कुछ कर सकता है? हम आखिर करना क्या चाहते हैं? यही न कि हम अपने अंगरेज शासकों को यह समझा देना चाहते हैं कि अब आपके यहां शासन करने से कुछ हाथ नहीं आने का। वे हमें अपनी जरूरत का प्रायः तमाम कपड़ा देते हैं और उनके देश के लोग इससे भीतर ही भीतर उत्साहित होकर, और ऊपर से राजनैतिक आधिपत्य के द्वारा रक्षण पा कर अपना व्यापार बरकरार रखना चाहते हैं। यदि हम अपना कपड़ा खुद ही तैयार करके उनके कपड़े की खपत का रास्ता ही रोक दें तो मानों हम उनके यहां राज्य करने की अभिलाषा की बुनियाद ही ढहा देते हैं। और यह हम किस तरहकी जान की बाजी लगा कर के दिखा सकते हैं? हमारे पास सिर्फ ऐसी ताकत है हमारी बहु-संख्या। ऐसी दूसरी ताकत न हमारा वैज्ञानिक कौशल है, न हमारा संगठन है और न हमारी धन-दौलत है। चरखा ही एकमात्र ऐसा शस्त्र है, जिसका प्रयोग हम महज अपनी जन-संख्या के बल पर दिन दूने रात चौगुने असर के साथ कर सकते हैं और तिस पर भी तुर्रा यह कि हमारे संगठन की, कौशल की या पूंजी की खामियों का कुछ बुरा भी असर उसपर नहीं हो सकता। पर आज हम क्या कर रहे हैं? हम अपनी इस ताकत से कुछ काम नहीं ले रहे हैं, उसकी करामात कुछ भी नहीं दिखा रहे हैं, बल्कि अपने प्रतिपक्षी के साथ उसीके मनचाहे हथियारों से लड़ रहे हैं। हम ख्याल करते हैं कि खुद अपने हथियारों से लड़ना कोई ठीक लड़ाई नहीं है; बल्कि अच्छा तो यह होगा कि ऐसे हथियारों से लड़ने की कोशिश करें जिनको हम भली भांति न चला पाते हों!

(३)

सूत-कताई को मतदाता होने की पात्रता नियत कर देने से उसके अनुसार काम हो सकता है? क्यों नहीं? ऐसी बे-फायदा सभा जो कि चाहे लोगों की थोड़ी-बहुत प्रतिनिधि-रूप तो है पर जो केवल लोगों की ख्वाहिशों को जाहिर करती है, अच्छी है या ऐसी कार्य-कुशल सभा बेहतर है जिसमें ऐसे लोगों का अच्छा समूह हो जो इस बात की प्रतिज्ञा किये हों कि देश की स्वतन्त्रता

रूपी भूमि को जोतने और बोने के लिए जो जो कुछ करना जरूरी हो उसे करेंगे, और खुद अपनी मिसाल पेश कर के औरों से भी करावेंगे। कोरी मांग से कुछ काम करना कहीं बेहतर है और मताधिकार की योग्यता की यह कल्पना इतनी वेग और गति देने-वाली है कि जिससे भारत में श्रम करने की उमंग और वृत्ति उत्पन्न हो जायगी, और यही तो हमारी मुक्ति का एकमात्र साधन है। १९२० और २१ में जिन भावों ने हमें उत्तेजित किया था उनसे यह खयाल कहीं अधिक शक्ति-संपन्न है। फिर एक बार गांधीजी को मौका दीजिए! मौजूदा अंकों से अन्दाज न लगाइए, परन्तु इस बात को देखिए कि प्रगति कितनी झपाटे से हो रही है। जरा देखिए तो लोग किस चाव से चरखा कात रहे हैं! शुरू में हर नयी चीज विचित्र और असंभव मालूम होती है। ऐसा न हो तो फिर उनकी नवीनता ही क्या रही? जो वस्तु असंभव दिखाई देती है उसीके पूरा होने से बड़े बड़े सुफल हुआ करते हैं।

व्याख्याताओं और विचार-प्रधान लोगों की सभा को अब कार्यकर्ताओं की सभा का रूप देना होगा। एकबारगी हम इस परिवर्तन के अनुकूल अपनेको शायद न बना सकेंगे। इसलिए यह उचित होगा कि विचार-प्रधान और व्याख्यान-पटु लोगों को कुछ काम भी करना चाहिए और कार्यकर्ता लोगों को कुछ विचार करने और कुछ कुछ बोलने की आदत डालनी चाहिए जिससे दोनों एक जगह आकर आसानी से मिल जायं। इस नयी मतदाता-पात्रता का यही रहस्य है।

जब १९२१ में महासभा की सदस्यता का जन्म हुआ तब उसका आधार यही था कि जो लोग महासभा के सदस्य हों वे अदालतों, शिक्षालयों और धारासभाओं का बहिष्कार करेंगे और हर तरह सरकारी अवलंबन से मुंह मोड़ेंगे। यह संगठन का अंग न था, पर महासभा में प्रवेश करने की कठिन कसौटी जरूर थी। १९२०-२१ में जो जो महासभा के सदस्य हुए थे इस शर्त को स्वीकार करके सदस्य हुए थे। इस कड़ी शर्त के बदौलत बहुतेरे लोगों ने पूर्वोक्त बातों से अपनेको वंचित रक्खा। ये शर्तें कड़ी थीं और यह तजवीज करीब करीब नष्ट-भ्रष्ट हो गई। पर फिर भी यह नहीं कह सकते कि कम से कम कुछ समय तक उसने काम न दिया। पर अब यह प्रस्ताव पेश हो रहा है कि सदस्यता की शर्त और भी हलकी कर दी जाय-पर साथ ही वह ऐसी हो जो थोड़े त्याग के द्वारा ज्यादह करामात दिखा सके और जिस कार्य के लिए हम अपना संगठन कर रहे हैं उसके लिए उसका मूल्य भारी हो। संभव है कि यह प्रजासत्ता के स्वरूपों के खिलाफ पड़ती हुई दिखाई दे; पर वास्तव में वह उससे कहीं अधिक तर्क-शुद्ध है जितनी शुरू में दिखाई देती है। उसके अन्दर एक अद्भुत चेतनाशक्ति है। और यह चेतनाशक्ति ही हमारे बीच विद्यमान् अत्यन्त चेतनामय प्रतिभाशाली व्यक्ति को उसकी सिफारिश करने के लिए प्रेरित करने का रहस्य है।

(यं० इं०) च. राजगोपालाचार्य

भूल-सुधार

२१ सितंबर के हि. न. में मलाबार संकट निवारण-फंड में श्री मुबारलाल शर्मा राजिम के नाम ४।≈) छपे हैं। उसकी जगह पाठक ४२।≈) बना लेने की कृपा करें।

सूचना

स्थान की कमी से म० सं० निवारण फंड का ब्योरा अलहदा छाप कर भेजा जाता है। आशा है, गुजराती लिपि के पाठक दरगुजर कर लेंगे।

उप-संपादक

टिप्पणियां

ऐक्य-सेवा की भाषा

एकता-सम्मेलन में अंगरेजों को तो स्थान था, पर अंगरेजी को न था। हां, प्रस्ताव अलबत्ते अंगरेजी में तैयार किये जाते थे; परन्तु गांधीजी की मौजूदगी के बिना, अथवा उनके आग्रह के बिना उनका उर्दू तरजुमा करना पड़ता था। चर्चा तो प्रायः सारी उर्दू में ही होती थी। पण्डित मोतीलालजी और मौ० महमद अली ने अपने भाषण पहले उर्दू में कर के फिर थोड़े में उसका मतलब अंगरेजी में समझाया था। अंगरेजों को भी यह स्थिति सम्मान-पूर्ण मालूम हुई होगी। जब तक सरकार को ही समझाने या अर्ज-मारूज करने का सवाल था तब तक हमने अंगरेजी भाषा का शौक खूब पूरा किया! यहां तो भाई भाई के बीच गुफ्तगू करनी थी, वह विदेशी भाषा में कैसे हो सकती है? हिन्दी और उर्दू ये दोनों भाषायें आसानी से एक हो सकती हैं; परन्तु जब तक हिन्दू और मुसल्मान एक दूसरे से दूर दूर रहेंगे तब तक ये दो भाषायें भी एक दूसरी से दूर रहेंगी। हिन्दू और मुसल्मान जब तक अपने हकों के लिए लड़ते रहेंगे तब तक उर्दू में फारसी और अरबी लफ्ज ज्यादह आते रहेंगे-यहां तक कि मंदिर का बहुवचन 'मनादिर' और 'हिन्दू' का 'हिनूद' होता रहेगा, और हिन्दू अपना मन्तव्य कतिपय संस्कृत शब्दों के द्वारा व्यक्त करते रहेंगे। ज्यों ज्यों हिन्दू और मुसल्मान अपने छोटे छोटे भेद-भावों को मिटा कर एक होते जायंगे त्यों त्यों उर्दू और हिन्दी भाषा राष्ट्रीय रूप धारण कर के एक स्वरूप होती जायंगी।

देहली की परिषद् में उलेमा की जबान में क्लिष्ट अरबी और फारसी शब्द आते थे; परन्तु पण्डित मालवीयजी अथवा स्वामी श्रद्धानन्दजी अच्छे अच्छे फारसी शब्दों का प्रयोग करते हुए भी कहना होगा कि संस्कृत शब्द बहुत कम काम में न लाते थे। पूरा ऐक्य होने के पहले यदि ऐसे अनेक मिलाप हों तो भी एक नई, सीधी-सादी देश भाषा—हिन्दुस्तानी—आसानी से उत्पन्न हो सकती है।

अनुकरणीय

गांधीजी के उपवास के बाद प्रायश्चित्त के चिह्न के तौर पर स्वामी श्रद्धानन्दजी ने हिन्दू अखबारों से प्रार्थना की थी कि वे मुसल्मान अखबारों पर टीका-टिप्पणी न करें, उनकी आलोचनाओं के जवाब न दें और घटनाओं का विवेचन करना छोड़ दें-कम से कम उपवास के २१ दिन तक तो यह बन्द रक्खा जाय। लाहौर के मुसल्मान पत्रों ने भी जाहिर किया था कि ज्यादह नहीं तो कम से कम सात दिन तक लड़ाई बन्द रक्खी जाय। इस प्रसंग पर विदुषी बेसेंट की भव्य प्रतिज्ञा का स्मरण हो आता है। इसमें तुलना की कोई बात नहीं है—श्रीमती बेसेंट को तो किसी बात का प्रायश्चित्त करना ही न था-फिर भी उन्होंने एक ही क्षेत्र में, एक ही ध्येय के लिए काम करने वालों के खिलाफ किसी भी टीका-टिप्पणी न करने का और अपनेपर हुई टीका-टिप्पणी का उत्तर मौन के द्वारा देने का भव्य निश्चय किया है। उसे देख कर हम लोगों की गर्दन झुक जानी चाहिए। इसमें सत्याग्रह के शुद्ध स्वरूप का दर्शन होता है। ऐक्य को अपना ध्येय मानने वाले सब लोग यदि विदुषी बेसेंट का अनुकरण करें तो आधा काम बन जाय। नेताओं और कार्यकर्ताओं की जबान और कलम की लड़ाई जन-साधारण को लाठी से लड़ने की प्रेरणा करती है। नेता और कार्यकर्ता यदि जबान और कलम की लड़ाई को भूल जायं तो कहना होगा कि हम आधी मंजिल तय कर चुके।

(नवजीवन)

गांधीजी के समाचार

उपवास के दिनों में जिस धीरज और शान्ति का परिचय गांधीजी दे रहे थे, वही प्रफुल्लता और धैर्य वे पारणा के बाद भी दिखा रहे हैं। बेचैनी का कोई चिह्न नहीं। नींद खूब आती है। पारणा के दूसरे ही दिन मित्रों से मिले और बातें कीं। डाक्टरों का आग्रह है कि मन को पूरा आराम देना निहायत जरूरी है। पर वे अपनेको सब तरह की खबरें सुनाने और तमाम जरूरी चिट्ठी-पत्री पेश करने का आग्रह कर रहे हैं।

हालत दिन पर दिन सुधर रही है। दूध लेना शुरू कर दिया है। मूत्र-परीक्षा में पाये जानेवाले तमाम भयजनक चिन्ह लुप्त हो गये हैं।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, क्वार सुदी १०, संवत १९८१

पूर्णाहुति का संदेश

उपवास की पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में देश के चारों कोने से सब धर्मों और सब वर्णों के लोगों ने गांधीजी के अभिनन्दन में जो तार और सन्देश भेजे हैं उनके जवाब मे गांधीजी ने नीचे लिखा सन्देश अखबारों में प्रकाशित कराया है—

ईश्वर की महिमा अगाध है। उसकी महिमा और करुणा का अनुभव मैं इस समय कर रहा हूं। उसने मुझे अग्निपरीक्षा से उत्तीर्ण किया है। डांक और तार-द्वारा मेरे नाम आये अनेक संदेशों को पढ़ने या सुनने की इजाजत अभी मुझे मिली नहीं है। फिर भी जो कुछ थोड़े संदेश मुझे दिखाये गये हैं उनसे मेरा हृदय भर आता है। इन संदेशों के द्वारा देश के असंख्य भाई-बहनों ने मुझ पर जो प्रेम-दृष्टि की है वह ईश्वर की दया की गवाही देती है। इन तमाम भाई-बहनों के प्रेम के लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। पर साथ ही मैं यह भी आशा रखता हूं कि इसके बाद का जो काम अब मेरे सिर पर आ पड़ा है और जिसके लिए मेरी अन्तरात्मा कहती है कि यह ईश्वर का काम है, उसमें आप सच्चे दिल से मेरी सहायता करें। इस संबंध में तीन सप्ताह के पहले जो जिम्मेवारी मेरी थी उससे आज की जिम्मेवारी स्पष्टतः अनेक गुना अधिक है। मेरे उपवास से मेरा कार्य पूरा नहीं होता है बल्कि शुरू ही होता है। मैं इस बात को जानता हूं और इसीलिए इसमें भारतवर्ष के प्रत्येक भाई-बहन के आशीर्वाद और प्रत्यक्ष सहयोग की आशा रख रहा हूं।

मोहनदास करमचंद गांधी

उद्यापन

'तुम कारन तप संयम किरिया
कहो कहां लौं कीजे ?
तुम दर्शन बिनु सब या झूठी
अंतर चित्त न भीजे
चेतन अब मोहिं दर्शन दीजे'

पिछले सप्ताह गांधीजी के व्रत के दूसरे सप्ताह की कुछ झलक दिखाई थी। डाक्टरों की बेचैनी, गांधीजी के साथ उनकी बातचीत और गांधीजी के द्वारा उनकी सान्त्वना का चित्र चित्रित करने का यत्न किया था। अब अन्तिम सप्ताह की बात सुनिए—

डाक्टर भी इस बात को समझ गये थे कि खाने का इसरार फजूल है। गांधीजी के दिये वचन का मर्म भी वे जान गये। गांधीजी के शब्द थे—'यदि आहार और प्राण में से किसी चीज को पसंद करना पड़े' तो पसंदगी करने वाले भी तो खुद गांधी जी ही न? डाक्टर नहीं। डाक्टरों ने देखा कि गांधीजी को सोलहों आना निश्चय है कि इतने उपवासों से शरीर छूटेगा नहीं। इसलिए वचन देते हुए उन्होंने ऐसी बातें करना भी छोड़ दिया। ऐसा मालूम होता था मानों वे भी बापूजी के उपवास को कायम रखना अपना धर्म समझने लगे। जब पूना के उपवास चिकित्सक डा० बिवलकर आये तब उन्होंने बापूजी को देख कर कहा—'यह हाल तो आश्चर्यजनक है, इन्हें तो किसी भी डाक्टर की जरूरत नहीं। मैंने आजतक ऐसा रोगी एक भी नहीं देखा। इतने उपवासों की हालत में तो आदमी मरणासन्न हो जाता है। उसे दो घण्टे से ज्यादा नींद नहीं आती। परन्तु गांधीजी तो सात सात घण्टे सोते हैं। इनका आत्मबल, इनकी भारी एकाग्रता-शक्ति ही इन्हें मदद कर रही है।' जो संसार को दवा दे रहा है, उसे दूसरा क्या दवा देगा? फिर भी डाक्टरों की सेवा अनुपम थी। यदि मैं इस बात का उल्लेख न करूं तो कृतघ्न कहलाऊंगा। डाक्टर रोज सुबह उनको देखते और मुंह मटकाकर गांधीजी से कहते—"महात्मा जी, आपका काम तो अजब है" इस वचन में जो दया की घूंट है उससे कौन इन्कार कर सकता है?

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि आखिरी तीन-चार दिन खूब मंथन में बीते। शरीर को तो किसी प्रकार का कष्ट न था। एक बार सिर्फ इतना कहा—'कष्ट तो बिल्कुल नहीं है। दक्षिण आफ्रिका में तो दूसरे ही सप्ताह में हालत खराब हो गई थी। इस बार सिर्फ मुंह कुछ खराब मालूम होता है, पानी पीने को जी नहीं चाहता। बस। पर इससे भी यह जाना जाता है कि उपवास में कुछ न कुछ खामी रही है।' शरीर को इतनी भी संज्ञा रहना कैसे सहन हो सकता है? शरीर की ममता की जरा भी कोई बात निकलती तो बापूजी को नागवार हो जाती। पिछले सप्ताह कितने ही लोगों की सलाह हुई कि देवदास को आश्रम से बुला लें। मैंने एक बार बहुत आग्रह किया। उस समय चरखा कात रहे थे। झुंझला कर बोले—'तुम पागल तो नहीं हो गये! वह आना नहीं चाहता। तुमने लिखा, डा० अनसारी ने लिखा। फिर भी वह बराबर लिख रहा है कि मैं आना नहीं चाहता। फिर तुम क्यों जिद करते हो? जो मोह को रोक रहा है, उसे तुम क्यों मोह में गिराते हो?' बस, तब से हम लोगों ने देवदास को बुलाने का खयाल छोड़ दिया।

यह कहा जा सकता है कि यह सारा सप्ताह देहाध्यास के अध्यास को निर्मूल करने की लगन में ही बीता। रोज श्री विनोबा से भगवद्गीता के दो-तीन अध्याय का पाठ सुनते, बालकोबा से एकाधिक भजन गवाते। पिछले चार दिनों से तो विनोबा कठोपनिषद्

का पाठ सायंकाल को करते हैं। सारा कण्ठस्थ होने के कारण बत्ती की भी जरूरत क्यों होने लगी? अपार शान्ति के साथ वे एक एक वाक्य सुनाते हैं और उसपर विवेचन करते हैं। ब्रह्म-विद्याचार्य नचिकेत का आख्यान सुनते समय बापूजी आसपास के जगत् से आंखें मूंद लेते हैं। और अब जब स्मरण होता कि दो-तीन दिनों में फिर जंजाल में पड़ना है तो बड़े पशोपेश में पड़ जाते हैं और मन में सोचते हैं कि यदि ये उपवास पूर्ण आत्मदर्शन होने तक चला करें तो क्या अच्छा हो?' और कितनी ही बार तो मानों अधीर होकर

"सुन कारन तप संयम किरिया कहो कहां लौं कीजे?"

इस प्रकार अपने प्यारे प्रभु को उपालंभ देते हुए दिखाई देते हैं। और कभी कभी तो दुनिया के तमाम पापों को अपने सिर लेकर 'हौं प्रसिद्ध पातकी तू-पाप-पुंजहारी' कह कर भगवान् को पाप-पुंज नष्ट कर देने की प्रार्थना करते हुए नजर आते हैं।

इस विषय में कौन सन्देह कर सकता है कि इस महासागर मंथन से अमृत निकलेगा। पर कभी कभी यह मंथन भी असह्य हो उठता है। इतनी तपस्या करते हुए भी यदि इतना मंथन होता है तो फिर पूर्णता के लिए आत्मौपम्य प्राप्त करने में कितना कष्ट सहन करना पड़ेगा-इसका विचार करते हुए पामर बुद्धि कुण्ठित हो जाती है।

इसी पशोपेश में ८ तारीख-दशहरा का पुण्यदिन आ पहुंचा। जगह जगह से उपवास निर्विघ्न समाप्त होने पर तार आने लगे। १२ बजे के पहले तो मकान का सारा निचला भाग मनुष्यों से भर गया। १२ का घण्टा बजते ही बापूजी एक के बाद एक लोगों को बुलाने लगे। इमाम साहब, बालकोबा, एण्ड्रयूज साहब को पहले बुलाना हुआ। श्री शंकरलाल पास खड़े हुए आंखें भिगो रहे थे। उन्हें पास खींच कर पीठ पर हाथ फेरा। डाक्टरों को बुलाने की आज्ञा हुई। पूछा-और कोई नहीं है? किसीने कहा-नीचे तो अलीभाई, बेगम साहब, देशबन्धु, उनकी धर्मपत्नी, पं. मोतीलालजी, उनकी धर्मपत्नी पं० जवाहरलाल, उनकी धर्म पत्नी आदि सब खड़े हैं।' सबको बुलाने की आज्ञा हुई। डा० अनसारी नजदीक आकर मिले-अपने आंसू न रोक सके। फिर मौ. महम्मदअली आये। वे दूर खड़े रहे। उनको 'आओ भाई, आओ' कह कर नजदीक बुलाया। वे लिपट कर रोने लगे। सब बैठ गये। इमाम साहब को कुरान शरीफ से खुदा की बन्दगी करने की आज्ञा हुई। उन्होंने बुलन्द अवाज में—'बिस्मिल्ला-ई रहमान-ई-रहीम' वाली पहली सुरा गाई। इसके बाद उतने ही औचित्य के साथ एण्ड्रूज साहब को—

'When I survey the Woudrous Cross
On which the Prince of glory died'

नाम का गीत गाने का हुक्म हुआ। ईसाइयों में एण्ड्रयूज साहब के अलावा श्री सुधीर रुद्र तथा जार्ज जोसफ भी थे। थोड़ी देर क्रूस के कष्ट और अनशन के कष्ट, ईसामसीह के आंसू और प्रेम तथा बापूजी के आंसू और प्रेम में सबने अभेद-भाव अनुभव किया। कितनों ही की आंखों से आंसू टपक रहे थे। इसके बाद श्री विनोबा से उपनिषद् के मंत्र पढ़ने के लिए कहा गया। उन की मधुर ध्वनि से गाई सत्य की महिमा से सारा खण्ड गूंज उठा था। इसके बाद बालकोबा ने 'वैष्णव जन तो' भजन गाया, फिर 'जय जगदीश हरे' गा कर अन्त की

'रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्राण जाहिं पर व[illegible] न जाहीं'

की धुन में प्रार्थना समाप्त हु[illegible] गद् गद् कण्ठ हो कर बापूजी ने कहा—

हकीम साहब और महम्मदअली,

ये २१ दिन के उपवास बड़ी शान्ति में बीते। हिन्दू-मुसल्मान-ऐक्य मेरे लिए आज की बात नहीं है। पिछले ३० वर्षों से मैं इसका सेवन कर रहा हूं। इसीकी लगन मुझे लग रही है। फिर भी मुझे इसमें सफलता नहीं मिली है। मैं नहीं कह सकता कि खुदा की क्या मरजी है। जब मैंने २१ दिन के उपवास की प्रतिज्ञा की थी तब उसके दो भाग किये थे। एक भाग आज पूरा होता है। दूसरा भाग मैंने हकीमजी तथा दूसरे मित्रों की इच्छा से बन्द कर दिया था। यदि उसे बंद न किया होता तो भी ऐक्य-सम्मेलन के जिस अच्छी तरह होने के समाचार मैं सुन रहा हूं उसके कारण मेरा उपवास आज ही पूरा होता। आज मैं आपसे यह वचन मांगना चाहता हूं,-वचन तो पहले ही मिल चुका है—कि हम हिन्दू-मुसल्मान-ऐक्य के लिए मर मिटेंगे। मैं तो समझता हूं कि यदि यह ऐक्य न हो सके तो हिन्दू-धर्म किसी काम का न होगा और मैं यह कहने का भी साहस करता हू कि इस्लाम भी निरर्थक होगा। ऐक्य के बराबर महत्व-पूर्ण वस्तु दूसरी कोई नहीं है। हमें ऐसा जरूर करना चाहिए कि एक साथ रह सके। यदि हिन्दू बेखटके अपने मन्दिर में प्रार्थना न कर सके और मुसल्मान अपनी मसजिद में अजान न पुकार सके तो हिन्दू-धर्म या इस्लाम के कुछ मानी नहीं। अब मेरे उपवास छोड़ने का समय आया है, अब मैं फिर जंजाल में पडूंगा। इससे यद्यपि आपका वचन तो मिल ही चुका है फिर भी मैं अपना भार हलका करनेके लिए वचन मांगता हूं।"

हकीम साहब ने भी थोड़े में जवाब दिया—'मुझे पूरी उम्मीद है कि आपने जो तकलीफ उठाई है उसका नतीजा अच्छा ही निकलेगा। हम सब मिल कर आपके नेक काम में मदद देने के लिए तैयार हैं। यदि यह काम न हो तो दूसरे तमाम कामों को छोड़ कर भी हम इसे पूरा करने की कोशिश करेंगे। आपको आराम हो और खुदा आपके उपवास को सफल करे।'

मौ० अबुल कलाम आजाद ने कहा—'हकीमजी ने यहां मौजूद तमाम मुसल्मानों की तरफ से आपको यकीन दिलाया ही है। मुझे विश्वास है कि हिन्दू-मुसल्मानों के दिल एक होंगे-और-फिर होंगे और वे जल्द ही होंगे। इस काम के लिए अपनी जिंदगी लगा देने से ज्यादह इन्सान क्या कर सकता है, और मैं अपनी जिंदगी इस काम के लिए देने को तैयार हूं।'

इसके बाद कुछ देर तक शान्ति फैल गई। उपवास छुड़ाने का पहला अधिकार डाक्टर अन्सारी के सिवा किसको हो सकता था? नारंगी का रस लाकर उन्होंने बापूजी को दिया। तकिये पर तकिया रखकर बापूजी ने सोते ही सोते रस पीकर पारणा की। और उसके साथ ही मानों पेट भर खाने-पीने वाले लोगों की जान में जान आई, सबने लंबा उपवास छोड़ कर पारणा की।

हम सब मिलकर यदि इस तपश्चर्या को अपने हृदय-पटल अंकित करें, इसका मर्म समझें और जग उठें तो समझिए कि कृतकृत्य हुए—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

परिषद् का असर

यह जानने के लिए हर शख्स उत्सुक है कि देहली की एकता परिषद् ने क्या किया और उसका फल क्या निकलेगा। इस परिषद् में उपस्थित होनेवाले प्रत्येक पुरुष से लोग परिषद् का हाल पूछते हैं। परिषद् का हाल पढ़कर समाचार-पत्रवाले अपनी रायें जाहिर करते हैं और वक्ता उन्हें पढ़ कर, उसपर अनुमान बांध कर, लोगों के सामने पेश करते हैं। इस तरह 'पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना' न्याय के अनुसार परिषद् की अनेक आवृत्तियां समाज के सामने पेश होने लगी हैं। गांधीजी खुद यदि परिषद् में हाजिर होते तो वे खुद परिषद् का वायु मण्डल, परिषद् का कार्य, और परिषद् के परिणाम के विषय में अधिकारी-रूप से लिखते और लोग उनके लेख को आप्तवाक्य समझ कर उसके अनुसार काम शुरू करते। ऐसे अधिकारयुक्त अभिप्राय के अभाव में यह बात कि परिषद् का कार्य सफल होगा या नहीं, इस बात पर आधार रखता है कि लोग उसे किस भाव से ग्रहण करते हैं। परिषद् ने तो ८-१० दिन की तन-तोड़ मशक्कत मिहनत करके अपने निर्णय प्रस्तावों के रूप में देश के सामने उपस्थित किये हैं। परिषद् की प्रवृत्ति, परिषद् का वायुमण्डल, सब-कुछ उसके प्रस्तावों में साफ साफ दिखाई देता है। ये प्रस्ताव कहते हैं कि हमारे काम के बारे में यदि आप अति आशा रक्खेंगे तो पछतावेंगे और जो काम हुआ है उसके संबंध में बिल्कुल नास्तिकता प्रदर्शित करेंगे तो परिषद् और देश के साथ अन्याय करेंगे। दो जातियों के झगड़ों के लिए जहां समझौते की जगह ही न थी वहां उसके लिए खिड़की खुल गई है। यही नहीं, बल्कि ठीक दिशा में यदि कोशिश होगी तो इस प्रस्ताव की नींव के आधार पर पूर्ण ऐक्य की इमारत भी खड़ी की जा सकेगी।

परिषद् की शुरूआत में दोनों जातियों के प्रतिनिधि दिल खोल कर लड़ लिये थे। हम बहुत बार कहते हैं कि दोनों जातियों के शरीफ लोगों का कोई दोष नहीं है। गुण्डे ही लड़ते हैं और नाहक सारी जाति का नाम बदनाम करते हैं। परिषद् की शुरूआत के दो तीन दिनों ने दिखला दिया कि जिस प्रकार मन में गांठ नीचे है उसी तरह ऊपर भी है। आबरूदार लोग मन में कुड़कुड़ाते रहते हैं, उनके परिचारक वाग्युद्ध-दर्ललबाजी करते हैं, सर्वसाधारण एक दूसरे की निन्दा करते हैं, नापाक लोग गाली-गलौज करते हैं और गुण्डे लड़-मरते हैं। तीन सौ बरसों तक लड़ कर दोनों जातियां जो पाठ सीखी थीं वही तीन दिवस के वाद-विवाद के बाद हमारे नेता लोगों ने फिर एक बार पढ़ा। तीन दिन तक परस्पर एक दूसरे को समझाते रहे। पर पीछे वे अपनी अपनी जाति को समझाने लगे। एक जाति का नेता जब तक दूसरी जातिवालों को समझाने की कोशिश करता था तब तक उसका असर नहीं के बराबर होता था। परन्तु जब अगुआ लोग खुद अपनी ही जाति को समझाने लगे तब उसका असर उन उन जातियों पर हुआ। इसमें तो कुछ आश्चर्य नहीं, परन्तु ध्यान खींचनेवाली बात तो यह है कि उसका असर दूसरी जाति पर भी होने लगा। अमृतसर के दिनों से लेकर आज तक गांधीजी अपने लोगों से बराबर कहते आये हैं कि अपना गुनाह कबूल करो, प्रायश्चित्त करो। ऐसा मालूम हुआ कि इसका रहस्य देश के अगुआ कुछ हद तक समझे। और इसका असर भी उन्हें अच्छा दिखाई दिया। परिषद् शुरू हुई थी ऐसे वायुमण्डल से—'आप अगर ईश्वर से माफी मांगेंगे तो हम अपने ईश्वर से माफी मांगेंगे, आप यदि अपनी जाति के लोगों के दुष्कृत्यों की निन्दा करेंगे तो हम भी हमारी जाति के लोगों के कुकृत्यों की निन्दा करेंगे। आप यदि उदारता बतावेंगे तो हम भी उदारता बतावेंगे' शुरूआत में किसीने इस बात का विचार न किया कि तराजू से तौल कर दी गई समानता में उदारता होती ही नहीं। और दुष्कृत्यों में तो यह नियम हो ही नहीं सकता कि जो अपना है वह दुलारा है। दुष्कृत्यों की निंदा दूसरी जाति को खुश करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी जाति के कुछ लोगों को नसीहत देने के लिए की जाती है। और वह कर्तव्य निरपेक्ष होता है। गांधीजी ने इस बात की तहकीकात किये बिना ही कि अमृतसर में सरकार ने अपने राज्य-कर्मचारियों को सजा दी है या नहीं, अपने देश-भाइयों के किये अत्याचारों की सच्चे दिल से निन्दा की। उसका असर देश पर तो अच्छा हुआ ही, परन्तु विदेशों पर भी कम न हुआ। इसी प्रवृत्ति में अपना कल्याण और अन्तिम शान्ति के बीज हैं, इतना समझने की बुद्धि और जानने का अनुभव तो हर शख्स के पास है, परन्तु उसके अनुसार चलने की हिम्मत बहुत थोड़े लोगों में होती है।

* * *

परिषद् का काम-काज गौर के साथ देखने पर मेरे दिल पर तो यह छाप पड़ी कि गांधीजी के उपवास के बदौलत ही तथा परिषद् में जो साफ साफ बातें हुईं उसके कारण, दोनों जातियों में कुछ हृदय का पलटा जरूर हुआ है। परिषद् में उपस्थित मुसल्मान उलेमा लोगों ने अच्छा भाग लिया था। उन्होंने अपने विचार और भाव जैसे थे वैसे ही बता दिये। उन्होंने यह भी साफ साफ कह दिया कि हम कितना करने के लिए तैयार हैं और कितना नहीं। इससे सब लोगों को इस बात का ठीक ठीक अन्दाज लग गया कि उनसे कितनी आशा रखनी चाहिए। धर्म के हार्द और धर्मशास्त्र के छिलकों में क्या संबंध है, यह बात भी इस परिषद् में भलीभांति प्रकट हो गई। यदि हमें यह चाहते हों कि भारतवासी आजादी अथवा इन्सानियत की ओर कदम बढ़ावें तो इस परिषद् ने इसका उमदा पाठ हमें पढ़ाया कि हमें किस दिशा में कोशिश करनी चाहिए, यद्यपि परिषद् के प्रस्तावों में इसकी कुंजी नहीं है। क्षुद्र स्वार्थ, डरपोकपन, और अज्ञान इन सबोंका साम्राज्य है तब तक ऐसे झगड़ों का अन्त आने का नहीं। ऐसी लोक-शिक्षा ही कि जिसके द्वारा लोगों के अन्दर सच्ची धार्मिकता पैदा हो, स्वराज्य की मुख्य तैयारी है। यही इस परिषद् का मुख्य सन्देश है।

* *

शुरूआत में इसकी बड़ी लंबी चर्चा हुई कि परिषद् का सभापति कौन हो? मुझे तो इस बात का बिल्कुल खयाल तक न हुआ कि इस बात को इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है। परन्तु परिषद् के अन्त में मैं देख पाया कि परिषद् की सफलता का श्रेय बहुतांश में पण्डित मोतीलालजी को ही है। शुरू से अन्त तक उन्होंने सारा काम धीरज और शांति के साथ चलाया। कितनी ही बार उन्होंने शास्त्रविहित तटस्थता को छोड़ कर दोनों पक्षों को समझाने की खूब कोशिश की। जब जब उन्हें ऐसा दिखाई दिया कि प्रस्तावों और तरमीमों पर बहस परिषद् के उद्देश्य के लिए घातक हो रही है तब तब उन्होंने विषय-समिति का काम मुल्तवी करके खानगी में सफाई करने की विधि को उत्तेजना दी। परन्तु पं. मोतीलालजी के काम का सच्चा महत्व तो उस समय दिखाई दिया जब विषय-समिति के बाद परिषद् में गोवध-संबंधी प्रस्ताव पर तरमीमें आने लगीं। उस समय उन्होंने जो भाषण किया उसे मैं सारी परिषद् में सब से महत्वपूर्ण मानता हूं। इस एक भाषण के द्वारा पं. मोतीलालजी ने देश की असाधारण सेवा की है।

हिन्दुओं की ओर से लाला लाजपतराय और पण्डित मालवीयजी के भाषणों में जिम्मेवारी का खयाल पूरा पूरा दिखाई देता था। इसी तरह मुसल्मानों की ओर से हकीम अजमलखान तथा मौलाना अबुलकलाम आजाद भी ऐसा ही काम कर रहे थे। कलकत्ते के बिशप और श्री नरीमान की उपस्थिति भी परिषद् के लिए अत्यन्त लाभदायक हुई।

* * *

परिषद् के बारे में एक शिकायत जरूर करनी है। परिषद् की बैठकों के समय की पाबन्दी रखने में जो शिथिलता हुई है उसे देखकर तो लखनऊ के नवाब की ऐतिहासिक लापरवाही भी भूल जाती है। निश्चित समय के घण्टों बाद तक 'हजरात' इकट्ठे ही नहीं होते थे और 'जनाबे सदर' के आने के बाद भी ठीक आधे या पौन घण्टे तक दूसरे हजरात के आने की राय आमिजाज देखी जाती थी! फिर भी आखिर तक किसीने इस बात में खेद या आश्चर्य तक प्रकाशित न किया। समिति का समय ११ बजे होता तो हम थियेटर में आगे की कुरसियों पर कब्जा करने के लिए जरा पहले अर्थात् बारह बजे ही आ कर बैठते! समय की पाबन्दी में इस परिषद् का अनुकरण यदि हो तो उसे एक राष्ट्रीय आपत्ति ही समझना चाहिए। परिषद् में यथा-समय आनेवाले श्रीमती बेजेंट, श्री मूर और बिशप साहब इन तीनों के मन में यह विचार आया होगा कि हिन्दुस्तान के लोग जबतक इस तरह समय की पाबन्दी करते हैं तब तक ब्रिटिश सल्तनत को डरने की कोई वजह नहीं है।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

अगस्त के सूत की परीक्षा

(अ० भा० खादी-मण्डल के मन्त्री की ओर से)

सूत की आमद

अगस्त महीने में आये सूत के आखिरी अंक नीचे दिये जाते हैं। प्रान्तों के नाम उनकी संख्या के लिहाज से क्रमशः दिये गये हैं। जुलाई महीने के सूत की संख्या भी दे दी गई है जिससे पाठकों को तुलना करने में सुविधा हो।

प्रान्त	प्रतिनिधियों की संख्या	सदस्य	अ-सदस्य	कुल	पिछले महीने की संख्या
१ गुजरात	४०८	१८६	१११३	१२९९	७ ५
२ आंध्र	१६६७	६१०	६६२	१२७२	४२९
३ बंगाल	१५४९	२९१	३४५	६३६	४४४
४ तामिलनाड	१३२१	२६९	३२६	५९५	९०
५ बिहार	१०५४	२५२	१६८	४२०	२०८
६ करनाटक	१६३	८५	२८४	३६९	४१
७ युक्त प्रान्त	१५८१	२१६	८३	२९९	१६२
८ महाराष्ट्र	६७४	९०	१८२	२७२	१६२
९ बम्बई	२४२	६५	१६४	२२९	८५
१० आसाम	२७७	४२	१७२	२१४	३६
११ केरल	१२३	५०	१५३	१०३	२
१२ म.प्रा.(हिंदी)	१३२४	८५	४६	१३२	७१
१३ सिन्ध	२६२	४६	५०	१०५	४८
१४ उत्कल	३८९	७८	२३	१०१	३७
१५ पंजाब	४३६	३३	४१	७४	२३
१६ म.प्र.(मराठी)	४४२	३९	३२	७१	६७
१७ देहली	२७६	१३	७	२०	१२
१८ ब्रह्मदेश	३६	६	१२	१८	२
१९ अजमेर	३७	६	८	१४	१५
२० बरार	३५५	०	७	७	१
	१३०३६	२४६३	३८३७	६३०१	२७८०

जुलाई महीने का पिछड़ कर आया सूत भी इसमें शामिल है। उसका ब्योरा–आन्ध्र ९२, करनाटक १२७, बंगाल ४, तामिलनाड ११३, युक्तप्रांत ३, देहली २, ब्रह्मदेश १, उत्कल १, पंजाब ७, बंबई ८४ और केरल ३२–कुल ४६६.

गुजरात में खास गुजरात के ११६८, काठियावाड के १२७ और कच्छ के ४ हैं।

वजन

	पौंड	तोला
१० अंक तक	५६३	०
११ से १६ अंक तक	४२५	१६
१७ से २२ अंक तक	१५३	४
२३ से ३० अंक तक	५०	११
३१ से ऊपर	१३	६३
कुल	१२०४	

बाकी तथा कुछ और सूत अभी आ रहा है उसे जोड़ कर कोई ३१ मन का अन्दाज हो जाता है। जुलाई में १५ मन ३३ पौंड आया था। सो अगस्त में सूत भेजने वालों की संख्या तो जुलाई से तिगुनी हो गई है पर सूत का वजन दूना ही हुआ है; सूत की लम्बाई का परिमाण तो बराबर ही रहा है। इससे यह जाना जाता है कि सूत कातने में अधिक उन्नति हो रही है।

११ और १६ अंक के बीच के सूत की तादाद में अच्छी बढ़ती हुई है। कताई की शुरूवाती हालत जल्दी चली गई और जिन नेताओं तथा दूसरे लोगों ने जुलाई में ही कातना शुरू किया था उनमें से कुछ लोगों ने तो बहुत तरक्की करली है।

चारों ओर प्रगति

इस मास में प्रायः तमाम प्रान्तों में हर बात में तरक्की नजर आती है। फिर भी अभी वे आदर्श अवस्था को नहीं पहुंच पाये है। भिन्न भिन्न प्रान्तों की खास खास बातें थोड़े में नीचे दी जाती हैं—

आन्ध्र–फालकियों पर चिटें ठीक ठीक लगी हैं। सूत भेजने वालों की अकारादि क्रम से सूची भी होनी चाहिए थी। सब से अच्छा सूत इन सज्जनों का है--

			गज	अंक	
१	श्रीमती के वेंकुवैयम्मा	गज	२०५४	१४०	अच्छा
२	,, जे. बी. कमलामणि	,,	२०५५	१९७	,,
३	,, एम्. कमलाम्मा	,,	२०००	५०	,,

श्री कोंडा वेंकटप्पय्या, प्रान्तिक समिति के सभापति, ने २००० गज १४ अंक का अच्छा सूत भेजा है। आन्ध्र खादी मण्डल के सभापति श्री नागेश्वरराव ने १७ अंक का ३००० गज सूत भेजा है। इस सूत में बल कुछ अधिक लगा है। यह प्रान्त गुजरात की बराबरी पर आ पहुंचा है। कुछ जगहों में कताई-मण्डल कायम हो चुके हैं और नये भी कायम हो रहे हैं।

आसाम- वर्णानुक्रम-सूची न होने की त्रुटि दिखाई देती है। पहले नम्बर के सूत भेजने वाले सज्जन हैं—श्री दुर्गाधर बरुआ २५० गज ३० अंक।

अजमेर—अबतक १४ पैकट मिले हैं। कोई खास बात कहने लायक नहीं।

बंगाल—चिटें अच्छी तरह लगाई गई हैं। परन्तु वर्णानुक्रम-सूची होने से बड़ा अच्छा होता। २२,००० गज श्री माखनलाल सेन ने भेजा है। बंगाल से सब से ज्यादह लंबाई इन्हींके भेजे सूत की है। श्री सतीशदास गुप्त का नंबर दूसरा है, जिन्होंने १५,००० गज भेजा है। इस बार भी सब से बढ़िया सूत श्रीमती

अपर्णा देवी का रहा है। उन्होंने ५,००० गज ८० अंक का बहुत उत्कृष्ट सूत भेजा है। श्री अनन्तकुमार वसु ने २००० गज ७५, अंक का भेजा है। पर सूत एक-सा होने पर भी अच्छा नहीं है।

सूत भेजनेवालों की संख्या में बढ़ती हुई है। यह खादी प्रतिष्ठान के प्रयत्न का फल है। श्री सतीशदास गुप्त लिखते हैं कि बंगाल से अगले महीने में लंबाई में ६०,००० गज तक सूत आने वाला है। वे कहते हैं कि गुजरात सावधान हो जाय।

बिहार—सारे प्रान्त के लिए रजिस्टर नंबर एक-सीधे होने चाहिए। चिटें मजबूत होनी चाहिए। चिटें फट जाने या कुचल जाने से पढ़ना मुश्किल हो जाता है। पतले गत्तों की चिटें होनी चाहिए। श्री गुप्तेश्वर पांडे ने ३०,०८० गज सूत १६ अंक का भेजा है। अच्छा है। इसके बाद श्रीराजेन्द्रप्रसाद का नम्बर आता है। उन्होंने १३००० गज १२ अंक का भेजा है। राजेन्द्रबाबू ने ११,१०० गज भिन्न भिन्न अंकों का भेजा है। इससे मालूम होता है कि सूतकार ने उत्तरोत्तर महीन सूत कातने का प्रयत्न किया है और उसमें वे सफल भी हुए हैं। इस प्रांत के सूत का कपास हलके दरजे का मालूम होता है।

बंबई—रजिस्टर में वर्णानुक्रम सूची की खामी है। श्री पडबिद्री प्रान्तिक समिति के मन्त्री का सूत १०,००० गज १० अंक का मिला है। बहुत हद तक अच्छे से अच्छा सूत श्रीमती मिठिया बहन कल्याणदास का है-८१९० गज २० अंक का। बहुत उम्दा है।

बरार—पिछले महीने में सिर्फ एक पैकट था-अब बढ़कर ७ हुए हैं।

मध्य प्रान्त (मराठी)—सफाई वैसी ही रही है। लेकिन कातने वालों की संख्या में बढ़ती नहीं हुई है। अ-सदस्यों के अलहदा रजिस्टर की जरूरत है। श्री नीलकण्ठ देशमुख ने १५२० गज २५ नंबर का अच्छा सूत भेजा है। पहले नम्बर में आ सकता है।

मध्यप्रान्त (हिन्दी)—वर्णानुक्रम सूची नहीं दी गई है। संख्या में भी बढ़ती नहीं हुई है। सूची में सब से अग्रस्थान इनका है—

	गज	अंक	
श्री बिशंभर	४०००	३६	अच्छा
श्रीमती सुभद्राकुमारी	३०००	३५	अच्छा

देहली—जुलाई में १२ पैकट थे। इस मास में बढ़कर २० हो गये।

गुजरात—संख्या में बढ़ती है। अ-सदस्यों के रजिस्टर में खामियां हैं। बिना नंबरी पैकटों से बड़ा गोलमाल हुआ। एक-सीधे रजिस्टर नंबर रखने की जरूरत है। दरबार श्री गोपालदासभाई का नंबर इस बार भी पहला रहा। तमाम फालकियों का अंक ३७ है और सब की मिल कर लंबाई ५००० गज है। ऊंचे अंक का सूत और लोगों ने भी भेजा है, पर वह कमजोर है। श्रीमती विजयागौरी कानूगा ने ५१११ गज ३२½ अंक का अच्छा सूत भेजा है। गुजरात में सब से ज्यादह लंबाई १५,००० गज है। महात्माजी ने २० अंक का अच्छा कता ५०६४ गज सूत अपने ठीक वक्त पर, अगस्त के आखीर में, भेज दिया था। श्री वल्लभभाई पटेल, अब्बास तैयबजी और शंकरलाल बैंकर ने क्रमशः ७३०० गज २० अंक, ५,००० गज ११ अंक और १२००० गज १६ अंक का सूत भेजा है।

करनाटक—अंकों की गिनती कुछ अधिक लिखी गई मालूम होती है। तागे बना कर सूत भेजना ठीक नहीं है। सब से अच्छा सूत भेजने वाले सज्जन—

	गज	अंक	
१ श्री गंगाधरराव देशपांडे	२६००	२०	अच्छा
२ श्रीमती तुलसाबाई आकोवाल	२५२०	५३	ठीक
३ श्री रावास्वामी	२१००	४३	ठीक
४ अप्पण्णा मिजली	२०००	४०	ठीक

केरल—७० पैकट मिले हैं। वाइकोम सत्याग्रहियों ने ७८ पैकट भेजे हैं। अच्छा सूत भेजनेवाले—

१ श्री गोविंद पनिक्कर	२०००	३२
२ श्री नारायण इलायद	२०००	२४
वाइकोम सत्याग्रही		
१ ,, पी. एस्. सुकुमारन्	१६८०	४०
२ ,, के रमणकुट्टी	१६८०	४०
	१६८०	१६

महाराष्ट्र—सदस्यों और असदस्यों के लिए अलहदा अलहदा रजिस्टर नहीं रक्खे गये हैं। श्री वी. जी. जोगलेकर का सूत ८३५० अंक १५ लंबाई के लिहाज से सर्वोत्तम है। ऊंचे अंक भेजने वाले—

१—श्री बी. एल्. कालकर	२०००	२१
२—श्रीमती आनंदीबाई जोगलेकर	,,	,,

पंजाब—सूत आम तौर पर मोटा—कम अंक का है। फालकियां ज्यादह लंबी हैं। कोकड़ी भेज देना ठीक नहीं। सर्वोत्तम सूत भेजने वाले—

१—श्री उत्तमक राय	६०००	१४
२—,, दीवान चंद	५,०००	१२

सिन्ध—अच्छी तरक्की है। ऊंचे अंक भेजने वाले—

१—श्री मेलाराम मंगतराम	२०००	५०
२—,, परसराम नारायणदास	२०००	२८
अच्छा सूत		
१—,, चांदूराम	३६८०	१५
२—,, जयरामदास दौलतराम	२०००	१७

तामिल नाड—सब से ऊंचा अंक १५१ श्री मीनाक्षी सुंदरम् का है। १०० से ११० अंक तक का सूत भेजने वाले और लोग भी हैं। पर सूत सबका का अच्छा कता नहीं है। श्री च० राजगोपालाचार्य ने ४१०० गज १४ अंक का बड़ा अच्छा सूत भेजा है। कम अंक वाले सूत में आन्ध्र और तामिल नाड में अभी बहुत सुधार की जरूरत है।

युक्त प्रान्त—पैकटों पर चिटें नहीं हैं। चिटों के लिए गत्ते के टुकड़े काम में लाना चाहिए।

एक लकवे के युवा रोगी विजयशंकर मिश्र ने भी अपनी रोग शय्या से अपना ही धुनका और कता २५,०० गज २८ अंक का सूत भेजा है। पं. जवाहरलाल नेहरू ने लगातार सफर में रहते हुए भी ३१३० गज २७ अंक का अच्छा सूत भेजा है। ३५,५०० गज १३ अंक का सूत श्रीमती सी. सी. दास ने भेजा है।

उत्कल—पिछले मास से तिगुनी संख्या हुई है। ऊंचे अंक के सूतदाता—

१—श्री बुधिया बेहरा	३०००	५०
२—श्री विश्वनाथ पारिद	२१००	४५

सर्वोत्कृष्ट सूत

श्रीमती अपर्णा देवी इस मास भी सर्व-प्रथम रही हैं। उनका ५,००० गज ८० अंक का सूत सर्वोत्कृष्ट है।

देश भर में सबसे ऊंचा अंक है १५१ और वह तामिल नाड के श्री मीनाक्षी सुन्दरम् ने भेजा है।

असहयोगियों का कर्त्तव्य

वार्षिक	मूल्य ४
छः मास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)॥
विदेशों के लिए	,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक १०

मुद्रक-प्रकाशक	अहमदाबाद, कार्तिक बदी ६, संवत् १९८१	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
वेणीलाल छगनलाल बूच	रविवार, १९ अक्तूबर, १९२४ ई	सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

चौथा सप्ताह

दिनचर्या

२१ दिन की तपश्चर्या शुरू हुए आज चार सप्ताह पूरे हुए। तीसरे सप्ताह के मनोमंथन और व्रतोद्यापन का वर्णन करके उपवास का प्रकरण पूरा किया था। मालूम होता है कि चौथे पांचवें सप्ताह के बारे में लिखने का सुखद कर्तव्य अभी मुझे और करना होगा। क्योंकि अभी पन्द्रह दिन तक तो गांधीजी को काफी ताकत नहीं आ सकेगी। पारणा के बाद मामूली आदमियों को सुस्ती मालूम होती है, नया खाना रुचिकर होते देर लगती है, अनेक दिवस निराहार रहने से खाना खूब खाने को भी जी चाहता है, परन्तु बापूजी को इनमें से एक भी शिकायत न हुई। जिस सरलता और प्रसन्नता से उन्होंने अनशन आरंभ किया था उतनी ही सरलता और प्रसन्नता से उन्होंने भोजन शुरू किया। व्रत तो १२ बजे समाप्त होता था, परन्तु प्रार्थना इत्यादि के बाद फल का रस कोई पौन बजे लिया। दो दिन के बाद दूध लेना शुरू किया—थोडा थोडा, दो औंस, तीन औंस, चार औंस,—और आज २५ औंस तथा कुछ नारंगी तक पहुंचे हैं। उपवास पूरे होने के पहले अनेक जैन मुनियों ने खास तौर पर पत्र लिख कर अपने आशीर्वाद और धन्यवाद भेजे थे और साथ ही पारणा शुरू करने के संबंध में अनेक सूचनायें की थीं। इनमें खूब प्रेम-भाव भरा हुआ था। पर बापूजी के पांच चीजों के व्रत के कारण फलाहार के अतिरिक्त किसी भी सूचना से वे लाभ न उठा सके। मौजूदा खान-पान से निद्रा इत्यादि सब नियमित चल रहा है।

भागवत-श्रवण

प्रार्थना भजन आदि भी यथानियम जारी हैं। एक दिन एक बहन आई और आग्रह के साथ कहने लगी—'मुझे ऊपर आने दीजिए, मुझे गांधीजी के पास जाना है, एकाध बात पूछनी है।' हम यह समझ कर उसे न आने देते थे कि कोई दुखी स्त्री होगी, घर के या और किसी दुख को रोने आनी होगी। पर उसने ऐसी हठ ठानी कि हमें मजबूर होना पडा। उसने एक ही सवाल पूछा—'महात्माजी, भक्ति किस तरह करनी चाहिए? मैं महादेव की भक्ति करना चाहती हूं। बताइए किस तरह करूं?' गांधीजी कुछ देर चुप रहे, फिर करुण स्वर में कहा—'बहन, मैं क्या बताऊं? मैं खुद ही भक्ति करना नहीं जानता। मैं तो इतना ही जानता हूं कि भला बनें और भले काम करें।' वह बेचारी तो सन्तुष्ट हो कर चली गई। पर ऐसा जान पडता है कि बापूजी के दिल में वह सवाल उठा ही करता था। यहां यह विचार सहज ही उठ सकता है कि इतने दिनों तक जो भक्ति में लीन रहा हो तथा जिनका एक एक कार्य भक्त्यार्पित मालूम होता है, उन्हें ऐसा जवाब क्यों देना पडा होगा? क्या यह कारण तो नहीं कि जिस प्रकार ईश्वर अनिर्वचनीय है उसी प्रकार उसकी भक्ति भी अनिर्वचनीय है? जो हो, दूसरे ही दिन से बापूजी ने भागवत के एकादश स्कंध का पाठ शुरू कराया। भगवद्गीता का पाठ तो चलता ही था, उसके साथ अब भागवत भी शामिल हुई है।

इसके अलावा और समय में साधारणतः वे बाहर के लोगों से मिलते हैं। एक मित्र कहते हैं—'अब तो कृपा कर के ऐसी घोर प्रतिज्ञा कभी न कीजिएगा। दुनिया में दुष्टता तो थोडी-बहुत रहेगी ही।' तुरत ही बापूजी ने हंस कर कहा 'आप यह हरगिज न मानिएगा कि मैं इस बात का घमण्ड रखता हूं कि दुनिया की दुष्टता मिटाने का सामर्थ्य मुझमें है। उपवास तो मैंने अपनेको शुद्ध करने के लिए किया था। इतना प्रायश्चित्त करना मेरे लिए धर्मकृत्य था, सो हो गया। अब फल ईश्वराधीन है।

मानव-जाति का ऐक्य या भारत का?

बहाई सम्प्रदाय की एक अंगरेज महिला ऐक्य-परिषद् के दिनों से बारबार आती है और शाम की प्रार्थना में शरीक होती। तीन दिन पहले आ कर उसने दो-तीन सवाल पूछने की इजाजत चाही। उनमें एक सवाल यह था—'आप सारी मानव-जाति का ऐक्य करना चाहते हैं या केवल भारतीय जातियों का?' गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया—'भारतीय जातियों के ही ऐक्य के द्वारा मानव-जाति का। आज मैं जब भारतीय जातियों का ही ऐक्य नहीं कर पाया हूं तब बाहर का विचार क्या कर सकता हूं? यह बात

मेरी मर्यादा के बाहर हो जायगी । इसलिए अभी मैं सिर्फ यहीं की जातियों में एकता स्थापित करने की कोशिश कर रहा हूं । पर मुझे विश्वास है कि इसे सिद्ध करने में मानव-जाति की एकता एक हद तक सध जाती है ।'

कैथलिक ज्योतिषी

इसी सप्ताह में एक कैथलिक ज्योतिषी आया । एण्ड्रयूज उसे जानते थे । 'वह अपनी ज्योतिष की आमदनी को परोपकार में ही लगाता है । आपसे मिलने के लिए उत्सुक है ।' यह सुनते ही गांधीजीने कहा-'ज्योतिष की बात मेरे सामने न करेंगे, इस शर्त पर शौक से आवें ।' एण्ड्रयूज ने यह शर्त उससे कही । बड़े आनन्द से उसने उसे कुबूल किया और ऊपर गया । कुछ देर बापूजी को निरखता रहा । फिर घुटनों के बल बैठकर कुछ प्रार्थना की, भीगी आंखें ले कर नीचे आये और एण्ड्रयूज से कहा-इनकी तुलना यदि किसीसे हो सकती है तो सिर्फ संत फ्रान्सिस से । दूसरा कोई नहीं दिखाई देता । इन्हें देख कर मैं धन्य हुआ ।

प्रार्थना के दृश्य

इस तरह मेला लगा ही रहता है । एक दिन कितने ही मुसल्मान भाई एकत्र हुए । नमाज का वक्त हुआ । सब छत पर गये । बांग दी गई और सबने नमाज पढ़ी । घण्टे भर बाद सारी छत हिन्दुओं से भर गई । उसमें महम्मद-अली तथा दूसरे मुसलमान मित्र तो थे ही । बालकृष्ण ने प्रार्थना शुरू की । एण्ड्रयूज के भजन भी बार बार होते हैं । मौलाना महम्मद अली के घर भी हम यथा-समय प्रार्थना शुरु करते थे । कभी कभी तो ऐसा होता था कि प्रभात की अजां के खतम होते ही हमारी प्रार्थना शुरु होती थी । यह दृश्य मौलाना महम्मद अली और रा. ब. सुल्तानसिंह के बंगले में ही क्यों कैद रहे ? सारे देश में यदि यह दिखाई दे तो तमाम जातियों की एकता आसानी से हो जाय ।

एण्ड्रयूज के साथ बातचीत

बुधवार को उपवास आरंभ हुआ, उसके बाद के बुधवार को चलना फिरना बंद हुआ, आज बुधवार को वह फिर शुरु हुआ है । आज सुबह डाक्टर अब्दुल रहमान के सहारे बापूजी कमरे से बरामदे में गये । अब डाक्टरों ने थोड़ी बातचीत करने की इजाजत दे दी है । पण्डित मोतीलालजी, जो अभी यहीं हैं, डाक्टरों से पूछ कर ही बातचीत करने आते हैं । एकाध घण्टा बातचीत करके जाते हैं । कल तो सुबह एण्डयूज सा. के साथ, दोपहर को अकालियों के साथ, और शाम को कोहाटवालों के साथ बातें की । कुछ थक गये थे । एण्ड्रयूज साहब के साथ हुई बातचीत बहुत उपयोगी होने के कारण यहां देता हूं ।

सुबह भागवत का पाठ हो जाने के बाद एण्ड्रयूज सा. को बुलावा हुआ । एण्ड्रयूज सा. एक भजन गुनगुनाते हुए आये । आजकल वे हमारी प्रार्थना में गाये जानेवाले भजनों का अर्थ समझ लेते हैं और फिर उनके समानार्थक भजन अपनी भजनावलि में से निकाल कर संसार के ईश्वर-भक्तों के भाव-साम्य पर न्योछावर हो जाते हैं—"इतना साम्य जहां है, वहां कौन इस बात का घमण्ड कर सकता है कि मेरा ही धर्म अच्छा है और दूसरे का खराब । सब को अपने अपने धर्म से आवश्यक बातें मिल जाती हैं ।" यह उसी सुबह उन्होंने मुझसे कहा था । ऊपर आकर बापूजी से कहते हैं,—'आज मैं आपको ऐसा भजन सुनाना चाहता हूं जो आपने कभी न सुना होगा । बाइबिल में वह फौजी अधिकारी ईसा-मसीह को अपने घर के एक बीमार आदमी को चंगा करनेका हुक्म देने को कहता है । ईसा-मसीह उसके घर जाने को कहते हैं । वह जवाब देता है—मैं बड़ा अधम हूं, मैं उसके लायक नहीं हूं । आप सिर्फ अपने श्री-मुख से इतना कह दीजिए कि अच्छा हो जायगा, और वह चंगा हो जायगा । यह प्रसंग है ।'

इतनी प्रस्तावना के बाद उन्होंने अपना भजन गाया । उसका भाव तुलसीदासजी के—

> मम हृदय-भवन प्रभु तोरा ।
> तहं आय बसे बहु चोरा ॥
> कह तुलसिदास सुनु रामा ।
> लूटहिं तस्कर तव धामा ॥
> चिन्ता यह मोहिं अपारा ।
> अपजस नहिं होई तुम्हारा ॥

इससे बहुत मिलता-जुलता था । उसकी कुछ कड़ियां सुनिए—

> I am not worthy, cold and bare
> The lodging of my Soul:
> How canst Thou deign to enter there ?
> Lord speak and make me whole.
>
> * * *
>
> And fill with Thy love and power
> This worthless heart of mine.

'आपके भजन से कितना मिलता हुआ है ?' कह कर एण्ड्रयूज रुके । बापूजी ने कहा—'मैंने उसे सुना है ।' एण्ड्रयूज सानन्दाश्चर्य से सुनते रहे । 'मैंने यह १८९३ में सुना था । तब मैं ईसाइयों के अनेक सम्प्रदायों के लोगों से मिलता था और हर रविवार को उनके गिरजा में जा कर प्रार्थना में शरीक होता था । उस समय सुना याद पड़ता है ।' और फिर वे ईसाई मित्रों की याद करके उनकी बातें कहने लगे । फिर कहने हैं— 'पर आपको जो ऊपर बुलाया था वह दूसरे ही काम से । मैं चाहता हूं कि आप कताई को महासभा के सदस्य होने की शर्त बनाने के बारे में मेरे सब विचार सुन लें ।'

कातने की शर्त और महासभा

'कल के यं. इं. में मेरा लेख आपको अच्छा न लगा । पर मैं कहता हूं कि मेरी दलील लाजवाब है । आपको वह ठीक नहीं दिखाई देती, क्योंकि आप इस बात को भूल जाते हैं कि उसके अन्त में मैंने लिखा है कि यह दलील उन लोगों के लिए है जो देश के लिए ऐच्छिक कातना आवश्यक समझते हों । उन्हें तो महासभा के सदस्यों का २०० गज सूत कातने की शर्त को जरूर मानना चाहिए । यदि कोई शख्स यह कहता है कि अपनी मरजी से कातूंगा, तो उसे कातने की शर्त पर सदस्य बनानेवाले मण्डल का सभासद कातने की शर्त को स्वीकार कर के बनने में कोई झिझक न होनी चाहिए । इसीसे मैंने यह कहा है कि जो देश सैनिक शिक्षा को अत्यन्त महत्त्व की बात मानता है—जैसे कि फ्रान्स—वह सैनिक शिक्षा को अपने राष्ट्र-संघ के सभासद होने की शर्त के तौर पर रख सकता है । यदि भारतवर्ष में कताई का सामर्थ्य, उपयोगिता और आवश्यकता मानी जाती हो तो फिर कताई का सभासद होने की शर्त मान लेना चाहिए ।

ए—'आपकी दलील बहुत कमजोर है । आपका सैनिक शिक्षा से तुलना करना मुझे भयानक मालूम होता है । मैं तो फौज में भरती होने के बदले जेल में जाना पसंद करूंगा—जिस तरह कि रसेल गया था और जिस तरह कि रोलां ने देश छोड़ा था ।

'हां, मैं भी ऐसा पसंद करूंगा। पर इससे क्या? जिसके दिल में यह बात खटकती हो वह जरूर जोखिम उठावे। परन्तु यदि आम तौर पर सारा देश सैनिक शिक्षा शुरू करने का कायल हो तो फिर उसके लिए कानून बना देने में क्या बाधा हो सकती है?'

कमजोर उपमा

एं—'नहीं, आपकी यह कमजोर उपमा मुझे ठीक नहीं मालूम होती। इससे अधिक अच्छी उपमा लेनी चाहिए थी। अमेरिका के मद्यपान-निषेध की उपमा आप ले सकते थे। अमेरिका में जब ८० की सदी लोगों ने शराब छोड़ने की तैयारी दिखाई तभी कानून बनाया जा सका। आप भी एक अखिल भारतीय कताई-मण्डल खोलिए और जब ८० फी सदी लोग कातने लग जायं तब अपनी शर्त रखिए। आज तो आप घोड़े के पीछे गाड़ी रखने के बदले गाड़ी के पीछे घोड़ा रखते हैं।'

'नहीं, मैं तो बिल्कुल न्याय की बात करता हूं। किसी मण्डल को अपने सभासदों से किसी बात के कराने का हक है या नहीं? यदि यह शर्त किसीको न पटती हो तो इससे यह कहना ठीक नहीं है कि शर्त रखने का हक ही नहीं है।'

एं—'अमेरिका में कानून होने के पहले शराब पीने का हक सबको था। आज भी कानून को रद करके शराब मंगाने का हक उन्हें है। मेरा सवाल यह है कि महासभा में लोक-मत का प्रतिबिंब पड़ता है या मुट्ठी-भर लोगों का ही मत व्यक्त होता है? महासभा एक महामण्डल रहेगा या एक छोटी-सी समिति बन जायगा?'

'महामण्डल ही रहेगा। आप मेरे अनुभव को गलत कर सकते हैं, पर यदि एक बार आप इस बात को स्वीकार कर लें कि महासभा को अपने सभ्यों पर कैद लगाने का अधिकार है तो फिर मैं सब बातें साबित कर दूंगा।'

महासभा को एक टोलीन बनाइए

एं—'आपको महासभा को एक टोली न बना देना चाहिए, स्वेच्छा-नियुक्त मण्डल बनाये रखना चाहिए।'

'आपको महासभा की ठीक ठीक कल्पना नहीं है। आज तो वह एक अनिश्चित, अव्यवस्थित मण्डल है। उसके संगठन से अधिक बातें उसमें आ जाती हैं। यदि महासभा सच्चा राष्ट्रमण्डल बनना चाहती हो तो उसका संगठन अधिक जीवनदायी अधिक सच्चा और राष्ट्र की आवश्यकता का अधिक द्योतक होना चाहिए। संख्या की कुछ जरूरत नहीं। मैंने तो जब चार आना फीस रखवाई तब ऐसी आशा रक्खी थी कि यह मण्डल बड़े से बड़ा हो जायगा, लेकिन उसके अनुसार चलने वाले कार्यकर्ता न निकले। आज हमारा देश आलसियों और प्रमादियों का देश हो गया है। गुलामी में रहनेवाले मूक गरीब लोगों पर नहीं बल्कि हम समझदार और वक्ता कहलाने वालों पर मैं यह कथन घटाना चाहता हूं। इन सबको मैं दूसरे किस उपाय से राष्ट्र-कार्य में लगा सकता हूं? दूसरे किस तरीके से महासभा कार्यपरायण संस्था हो सकती है? २००० गज कातने की फीस रखने के प्रस्ताव से मुझे आशा है कि यह बात हो सकेगी। एक कहेगा 'मैं कुल्हाड़ी लेकर काटूंगा' दूसरा कहेगा 'मैं कपड़ा सीयूंगा' और तीसरा कोई और बात कहेगा तो इसका परिणाम कुछ न निकलेगा। मैं सबको एक बात पर एकाग्र करके कुछ नतीजा निकालना चाहता हूं।

अन्तर देखिए

एं—'मुझे डर हो रहा है कि आप सूत कातने और खादी पहनने को एक नया धर्म बना देंगे।———महाशय खादी पहनते हैं या विलायती, इससे मेरा क्या वास्ता? मुझे तो इस बात से काम है कि वह आदमी कैसा है। ईसामसीह ने भी कहा है कि 'मनुष्य का बाहरी आचार नहीं, अन्तर देखो।'

'ईसाई और हिन्दू आदर्श में भेद है।'

'आप तो यह भी कहेंगे कि अमुक प्रकार का भोजन करो तो आध्यात्मिकता बढ़ेगी। मैं ऐसा बिल्कुल नहीं समझता। बिशप वेस्टकोट जैसे सज्जन को लीजिए। उन्होंने तो शराब भी पिया है और मांस भी खाया है। पर क्या वे आध्यात्मिक नहीं हैं?'

"आप एक उदाहरण से सामान्य नियम साबित करना चाहते हैं। यह नहीं हो सकता। आप सर्व-साधारण से यह नहीं कह सकते कि जी चाहे सो खाओ, मन आवे सो पियो और यह मानते रहो कि हमारा अन्तर पवित्र है।"

अमेरिका की मिसाल

एं—'मैं फिर अपने असली मुद्दे पर आता हूं। कानून बनाने के पहले अमेरिका में जितने उपाय किये गये उतने यहां किये जाते हैं?'

'मैं तो रोज उपाय किया ही करता हूं। आज की स्थिति चार वर्ष का फल है। आप यदि महासभा के प्रस्तावों को देखेंगे तो खबर पड़ेगी कि मैं जो प्रस्ताव करना चाहता हूं वह कातने की आवश्यकता की मूल स्वीकृति का परिणाम है।'

एं—'जब आप जेल में गये तब भी यह स्वीकारा जाता था?'

'जब मैं जेल गया तब मूल प्रस्ताव रद नहीं हो गया था।'

एं—'जबतक आप अमेरिका के तरीकों से काम न लेंगे तबतक आपका प्रयोग सफल नहीं हो सकता।'

'अमेरिका की हालत यहां से भिन्न है। वहां तो पहलेसे ही शराबखोरी प्रचलित थी। उन्हें यह समझाने की जरूरत थी कि शराब न पीओ। वहां उन्हें ऐसा काम करना था जो अबतक वहां न हुआ था। यहां तो सिर्फ इतनी ही बात है कि लोग उस बात को करें जिसे उन्होंने जमाने तक किया है और जिसे वे कुछ सालों से भूल गये हैं। और दूसरी बात यह कि यहां तो—

> नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
> स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

एं०—'[illegible] क्यों नहीं? है। हम सब की शक्तियां जुदे जुदे प्रकार की हैं। हो सकता है कि हमें इतना जरूरी काम हो कि आधा घण्टा न निकाल सकें। मैं इन महादेव को ही देखता हूं। ये आधी रात को सूत कातते हैं अथवा महम्मदअली जैसे भी जब आधी रात को चरखा कातते हैं तब मेरे मन में आता है कि इसके क्या मानी हैं?'

'इन लोगों को यदि ऐसे वेवक्त कातना पड़ता है तो यह उनकी व्यवस्था और समय-प्रबंध की खामी को सूचित करता है, और कुछ नहीं।'

एं०—'आधे घण्टे की बात तो एक ओर रही। जब से आपने सूत पर एकाग्रता शुरू की है तब से दूसरी तमाम बातें भूलती जा रही हैं। इस खादी के ही काम में इतनी सारी शक्ति खर्च हो जाती है कि नशीली चीजों और शराब के निषेध को तो सब भूल ही गये हैं।'

'मैंने तो एक ऐसा ऐक्य-पोषक कार्यक्रम बनाया है जो सबकी समझ में आ जाय। शराब की दुकान पर पहरा रखने की बात तो सिर्फ हिंसा-काण्ड होने के डर से ही छोड़ देनी पड़ी है, खादी के काम के कारण नहीं। और दूसरी बात यह कि खादी पर जोर देना जितना जरूरी है कि उतना दूसरे कामों पर नहीं।

इसका कारण यह है कि सब लोग इस बात को मानते हैं कि शराब न पीना चाहिए। इसके लिए लोगों को नया पाठ पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। स्वराज्य होने पर भी कितने ही शराब पीने वाले तो होंगे ही। उनका प्रबंध स्वराज्य के बाद करना होगा।

अफीम की चाट

एं०—'क्या अफीम छोड़ देने के लिए भारी आन्दोलन खड़ा खड़ा करने की जरूरत नहीं है? क्या देश इसके महत्व को समझ गया है?'

'हां, मैं मानता हूं कि समझ गया है।'

एं०—'मिलों में काम करनेवाली औरतें अपने बच्चों को अफीम खिलाती हैं। आप इस बात को जानते हैं?'

'हां, पर इससे यह न कहिए कि अफीम के दुर्व्यसन की जड़ जम गई है, देश उसे बढ़ने दे रहा है। और बच्चों को अफीम न खिलाने के प्रस्ताव में तो मिलों में काम करनेवालों में शिक्षा-प्रचार करने का सवाल है, दवा-दारू का सवाल है, स्त्रियों को मिलों में कितने समय तक काम करने देना चाहिए—यह सवाल है।'

मद्य—निषेध

एं०—'मुझे तो यही मालूम होता है कि जब आपने अस्पृश्यता, हि. मु. ऐक्य और खादी का त्रिविध कार्यक्रम रचा तब मद्य-निषेध को भूल ही गये।'

'ना, भूल नहीं गया। बात यह कि देश को अब इस विषय में नये सिरे से कुछ बताना बाकी नहीं है।

एं०—'अजी, अफीम-बंदी-संबंधी साहित्य में लोगों को दिलचस्पी पैदा कराना असंभव हो गया है!'

'सो तो यदि आप और मैं दक्षिण और पूर्व आफ्रिका के संबंध में लिखना बंद कर देंगे तो लोग उनमें भी अनुराग लेना छोड़ देंगे। यहां तो बड़े बेढब लोगों को समझाना है। पर आप इस बात को भूलते हैं कि मद्य-निषेध का काम आज भी हो रहा है। जहां जहां खादी ने अपना पड़ाव डाला है वहां वहां उसके साथ यह शुद्धि-कार्य भी शुरू हो गया है। बोरसद, रामेसरा, बारडोली में जाकर यदि आप देखेंगे तो खबर पड़ेगी। खादी के केन्द्र के आसपास शराब-बंदी तथा दूसरे तमाम आत्म-शुद्धि के कार्य भी हो रहे हैं।

कताई को धर्म-कार्य बना देंगे?

एं०—'पर यह बात मुझे नहीं जंचती कि आप खादी पहनने या सूत कातने को एक धर्म-कार्य बना दें। लोग खादी न पहनने वाले और न कातनेवाले लोगों का बहिष्कार करेंगे।'

'हां, धर्मकार्य तो यह अवश्य रहेगा। हरएक भारतवासी यदि इसे धर्म-कार्य न बना डाले तो उससे देश का क्या कोई काम होगा? पर इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि खादी न पहनने वालों का बहिष्कार किया जाय। हम खादी न पहननेवाले के गले मिलें, उसके साथ प्रेम करें और प्रेम-पूर्वक यदि उसे समझा सकें तो खादी पहनने के लिए समझावें—निंदा कर के हरगिज नहीं। हां, मैं यह आशा तो रखता हूं कि न पहननेवाले का बहिष्कार या उसपर अत्याचार न होगा। ऐसे अत्याचारों के ही लिए तो २१ दिन तक उपवास किया। अब भी लोग न समझेंगे? किसी भी काम में यदि बहिष्कार की जरूरत पड़े तो वह सिर्फ एक ही किस्म का हो सकता है—उससे किसी तरह की सेवा न लें या कोई लाभ न उठावें। मैं चाहूंगा कि शराबी का ऐसा बहिष्कार किया जाय। पर खादी न पहननेवाले या न कातनेवाले के साथ हरगिज नहीं। क्योंकि शराब पीना जिस तरह का पाप है, विलायती कपड़े पहनना वैसा नहीं।'

'मेरे दिल को बड़ी शान्ति हो रही है। आपके इतने खुलासे से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। पर खादी को एक नीति की कसौटी बना देना मुझे अच्छा नहीं लगता। एक मित्र मुझे लिखते हैं कि मैंने खादी पहनना छोड़ दिया है, क्योंकि वह भले आदमी कहलाने का एक सस्ता साधन हो गया है।'

'यह उस मित्र की भूल है। कोई यदि पाखण्ड करे तो क्या इससे मैं उस बात को करना छोड़ दूं जो मुझे अच्छी लगती है। यह ऐसी ही बात हुई कि यदि कोई सत्य का ढोंग करे तो उससे मैं झूठ बोलने लगूं।'

'शुद्ध'—'अशुद्ध'

एं०—'पर आप 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' ये शब्द खादी की परिभाषा में से नहीं निकाल सकते?'

'कपड़े को तो 'शुद्ध' 'अशुद्ध' कहूंगा। भारतवासी के शरीर पर विदेशी कपड़ा 'अशुद्ध' होगा। यदि वह विलायत में हो तो वहां 'अशुद्ध' न मानूंगा। परन्तु अशुद्ध कपड़े से मनुष्य अशुद्ध नहीं हो सकता। उसी प्रकार शुद्ध कपड़े से अशुद्ध जीवन शुद्ध नहीं माना जा सकता। शुद्ध कपड़े से—खादी से जो आर्थिक लाभ है वह तो जरूर होगा। इसीसे वेश्या भी शुद्ध खादी पहन सकती है और उस हद तक देश में आनेवाला विदेशी कपड़ा रोक सकती है।'

एं०—'आप विदेशी कपड़े को जो अशुद्ध कहते है यह मेरी समझ में नहीं आता।'

'सो मैं जानता हूं। यह हमारा मतभेद भले ही बना रहे। देहली के मैदान की हवा भर कर शिमला पर रहनेवाले के लिए भेजें तो वह उसके लिए अशुद्ध होगी। विदेशी वस्त्र इस अर्थ में और इसी तरह अशुद्ध है।'

एं०—'पर यह मेरी समझ में नहीं आता। परन्तु आपके दूसरे खुलासों से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ।'

उपवास के पहले तो ऐसी रंगत गांधीजी हर किसी के साथ करते थे। उपवास के बाद इतनी लंबी चर्चा—पं० मोतीलालजी के साथ की चर्चा को छोड़कर—यह पहली ही है। यह बात चीत उसके महत्व की दृष्टि से तथा यह दिखलाने के लिए भी कि अब इतनी शक्ति गांधीजी में आ गई है, यहां दे दी है।

भावी कार्यक्रम शक्ति आने पर आधार रखता है। शक्ति आते ही पहले कोहाट जाने का इरादा रखते हैं।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, कार्तिक बदी ६, संवत् १९८१

असहयोगी का कर्तव्य

आगामी महासभा में शायद असहयोग मुल्तवी हो जाय। पर इससे यह न समझना चाहिए कि असहयोगी मुल्तवी हो गया। सच पूछिए तो मुल्तवी हुआ है असहयोग का आभास-मात्र। जहां प्रेम है वहां सहयोग और असहयोग दोनों वस्तुतः एक हैं। बेटा बाप के साथ अथवा बाप बेटे के साथ चाहे सहयोग करे चाहे असहयोग, दोनों प्रेम के फल होने चाहिए। स्वार्थ के वशी-भूत होकर किया सहयोग, सहयोग नहीं घूस है। द्वेष-भाव से किया असहयोग रहा पाप है। ये दोनों त्याज्य हैं।

जो असहयोग १९२० में शुरू किया गया उसके मूल में प्रेम भाव था—भले ही लोग उसे न जानते हों, भले ही लोग द्वेष से प्रेरित हो कर उसमें शरीक हुए हों। फिर भी तमाम नेता यदि उसके मूल स्वरूप को समझे होते और उसके अनुसार चले होते तो जो कटु परिणाम निकले हैं वे न निकलते।

हम शान्त असहयोग का रहस्य समझे नहीं। इसीसे वैर-भाव बढ़ा और अब करनी का फल भोग रहे हैं। जिस वैर-भाव से हमने अंगरेजों के साथ असहयोग अंगीकार किया वही अब हमारे आपसमें फैल गया है।

यह वैर-भाव अकेले हिन्दू-मुसल्मानों में नहीं, बल्कि सहयोगियों और असहयोगियों में भी व्याप्त हो गया है।

इस कारण, असहयोग के इस कुफल को रोकने के लिए, हमें असहयोग मुल्तवी रखना पड़ता है। असहयोग मुल्तवी रखने का अर्थ यही नहीं है कि वकील यदि फिर से वकालत करना चाहें और विद्यार्थी सरकारी मदरसों में जाना चाहें तो बिला शर्म के वकील वकालत कर सकें और विद्यार्थी सरकारी मदरसों में जा सकें। सच पूछिए तो जो वकील और विद्यार्थी असहयोग के सिद्धान्त को समझ गये होंगे वे न तो फिरसे वकालत करना चाहेंगे और न फिर सरकारी मदरसों में भरती होंगे। बल्कि असहयोग के मुल्तवी करने का फल तो यह दिखाई देना चाहिए कि हमें पश्चाताप हो, असहयोगी सहयोगी के गले मिले, उन्हें प्रेम से जीते, उनका द्वेष न करें, वे खुशी से सरकार की सहायता लेते रहें, अदालतों में वकालत करते रहें, सरकारी नौकर हों या धारासभा में जाते हों। उन सब के साथ असहयोगी मिले-जुले। उन सब की मदद हिन्दू-मुसल्मान झगड़े निपटाने में, अस्पृश्यता दूर करने में, विदेशी कपड़े का बहिष्कार कराने में, शराबखोरी मिटाने में, अफीम का दुर्व्यसन दूर करने में तथा ऐसे अनेक कामों में मदद लें और दें।

ऐसे कामों में असहयोगी को पहले कदम बढ़ाना होगा। उसमें असहयोगी की कला, विवेक, सौजन्य, शान्ति और नम्रता की परीक्षा होने वाली है। सहयोगी को प्रेम से जीतने में असहयोगी की योग्यता की कसौटी है। एक तरफ से झूठी खुशामद से बचें और दूसरी तरफ से जहालत से बचें। इन दोनों बातों को साधने के लिए पहला पाठ है हम सब का एक होना। ईश्वर हमारी सहायता करें।

कार्तिक ब. ३
बुधवार

मोहनदास गांधी

कताई की शर्त

महासभा की सदस्यता की पात्रता सूत-कताई को बनाने संबंधी मेरे प्रस्तावों पर जो आक्षेप किया जा रहा है उसका सारांश यह है—'यदि कताई एक ऐच्छिक त्याग रूप हो तो बहुत ठीक; परन्तु उसे मत देने की पात्रता के तौर पर रखना सवालत-तलब है।' मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस आपत्ति को सुन कर मैं दंग रह जाता हूं, क्योंकि आक्षेपकारों का आक्षेप कताई पर नहीं है, बल्कि इस बात पर है कि वह एक भेद है, बन्धन है। पर ऐसा क्यों होना चाहिए? यदि धन के रूप में पात्रता अर्थात् भेद लगाई जा सकती है तो फिर काम के रूप में क्यों नहीं लगाई जा सकती? क्या स्वयं कुछ शारीरिक श्रम करने की बनिस्बत पैसे दे देना ज्यादह सम्माननीय है? क्या किसी मद्यपान-निषेधक संस्था में हरएक सदस्य के लिए मद्यपान-त्याग का बिलकुल अनिवार्य होना सवालत-तलब है? क्या किसी जहाजी बेड़े में हरएक सदस्य के लिए कुछ जहाजी पात्रता का आवश्यक रखना कष्टदायी है? अथवा उदाहरण के लिए, उस प्रांत में जहां कि युद्ध कौशल राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए आवश्यक समझा जाता है, हरएक सदस्य के लिए यह लाजिमी होना कि वह हथियार चलाना जाने तो क्या यह विपत्तिकर है? यदि इन तमाम मिसालों में पूर्वोक्त कसौटियों को रखना कष्ट-दायक नहीं है तो फिर हमारी माननीय राष्ट्र महासभा में कताई को और खादी के विकास को जो कि एक राष्ट्रीय आवश्यकता है, मतदाताओं की पात्रता रखना, या दूसरे शब्दों में सदस्यता की शर्त रखना, क्यों कर दुखदायी हो सकता है? क्या यह कताई और खादी को सर्वजन प्रिय बनाने का और लोगों को अहलकारीन करने का सबसे आसान तरीका नहीं? हां, यह बात सच है कि मेरी यह दलील सिर्फ उन लोगों के लिए है जो कि इस बात को परम आवश्यक मानते हैं कि भारत कम से कम कपड़े के मामले में तो स्वावलम्बी हो जाय और सो भी मुख्यतः चरखे और हाथ-करघे के द्वारा।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

इलाहाबाद और जबलपुर

मेरे उपवास और एकता-परिषद के होते हुए भी इलाहाबाद और जबलपुर में फिसाद और मारपीट हुई है। यह ख्याल तो किसीने भी न किया था कि मानों परिषद अथवा उपवास के जादू से तमाम दंगे एकदम बन्द हो जायंगे। पर मैं इतनी आशा जरूर रखता हूं कि अखबारनवीस लोग ऐसे दंगों के बारे में कलम रोक कर और पक्षपात छोड़ कर लिखेंगे। मैं यह भी आशा रखता हूं कि दोनों जातियों के और तमाम दलों के अगुआ उनके असली कारणों को खोज निकालने में, उनका उपाय करने में और सर्वसाधारण के सामने सच्ची ब्योरा प्रकाशित करने में परस्पर सहयोग करेंगे।

गुरुकुल कांगड़ी

बाढ़ ने तो इस साल बर्बादी और सत्यानाश कर मारा है। गुरुकुल भी, जो स्वामी श्रद्धानन्दजी के धैर्य और आत्म-त्याग-पूर्वक किये गये प्रयत्नों का कीर्ति-चिह्न है, गंगाजी की बाढ़ के शिकार होने से नहीं बचा है। उसके तथा उस महान् संस्था के व्यवस्थापक और विद्यार्थियों के साथ मेरा हृदय गहरी सहानुभूति प्रदर्शित करता है। मुझे आशा है कि चन्दे के लिए की गई अपील का उत्तर लोग तुरंत ही उदारता-पूर्वक देंगे।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

भारत-राष्ट्र का स्वभाव-लेख

प्रमादी मनुष्य को एक बार पढ़ा पाठ बार बार पढ़ना पड़ता है। अन्यथा दुनिया के तमाम धर्मों को आश्रय देनेवाली इस भूमि में धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रस्ताव फिर से एक बार पास न करना पड़ता। स्वयं भारतवर्ष को एक सर्व-धर्म-परिषद् ही समझिए। वास्कोडिगामा के आने के सैकड़ो साल पहले से इस देश में ईसाई-धर्म को आश्रय मिला है। और महम्मद बिन कासिम के सिंध पर चढ़ाई करने के पहले इस्लाम का प्रचार इस देश में हुआ है। ईरान के प्राचीन धर्म को तो इस देश के सिवा अन्यत्र कहीं स्थान ही नहीं है। और यहां राजालोग राष्ट्र की भवितव्यता के साथ इतने एक-रूप हो गये थे कि प्रजा के धर्म में ही वे अपने आश्वासन को खोजते थे। हिन्दुस्तान के अनेक राजा केवल इसी बात का विचार करके सन्तुष्ट नहीं हो रहते थे कि प्रजा का ऐहिक सुख किस बात में है? परन्तु वे इस बात का भी ध्यान-पूर्वक अच्छा अच्छा अध्ययन करते थे कि अपनी प्रजा की धर्म-जिज्ञासा किस प्रवाह में बह रही है और आत्म-दर्शन की यात्रा किस हद तक पहुची है। उपनिषत्काल के मिथिलेश और काशी-नरेश से लेकर हर्ष, समुद्रगुप्त और अकबर तक और अकबर से लेकर आजकल के नामधारी राजाओं तक हिन्दुस्तान के राजपुरुषों ने धर्म-चिन्तन और धर्म-चर्चा में अनुराग रक्खा है। जिस समय अन्य देशों में धार्मिक मत-भेदों के कारण धर्मोन्मत्त लोग असीम मनुष्य-वध करते थे उस समय भारतवर्ष के लोग तर्क, कल्पना और अनुभव को भरसक दौड़ाकर उदारता से धर्मपरिशीलन करते थे। इस राष्ट्र-स्वभाव का विरोध राजाओं की ओर से नहीं होता था-- बल्कि उलटा हार्दिक प्रोत्साहन मिलता था।

भारतवर्ष में धर्म-चर्चा तो भारत के आरंभ से ही चली आ रही है। परन्तु यह कह सकते हैं कि संगठित धर्म-प्रचार भगवान बुद्ध के अनुयायियों ने ही शुरू किया। सब लोग इस बात को जानते हैं कि इन धर्मप्रचारकों में देवानांप्रिय अशोकवर्धन का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने हिन्दुस्तान के चारों कोनों में दूर दूर तक धर्मोपदेशक भेजे थे और वे मानते थे कि धर्म-प्रचार ही मेरा और मेरे राजत्व का अन्तिम साफल्य है। और इस तरह विचार करके मानों भारतवर्ष के हजारों वर्षों का भविष्य जानते हों, उन्होंने धर्म-सहिष्णुताबोधक कई एक शिला-लेख आज से कोई ढाई हजार वर्ष पहले भारतीय इतिहास के साक्षी-रूप पहाड़ो पत्थरों पर खुदवा रक्खे हैं। वह उपदेश अशोक के काल में जितना पथ्यकर था उतना ही आज भी है। २२०० वर्ष के विशाल अनुभव के बाद भी उसमें एक भी शब्द घटाने, या बढ़ाने लायक नहीं है। पाठक खुद ही इस बात को देख लेंगे। अशोक का यह शिलालेख क्या है मानों इस सनातन राष्ट्र का स्वभाव-लेख है। इसी तरीके से भारत की उन्नति हुई है और इसी तरीके से अब भी वह उन्नत होगा। इतिहास और मानव-हृदय घोषणा करके कहते हैं कि इसके खिलाफ प्रवृत्ति इस देश में टिक ही नहीं सकती।

"देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा (अशोक) सर्व धर्म के साधुओं तथा गृहस्थों को दान द्वारा तथा अन्य विविध प्रकार से पूजता है। परन्तु राजा दान और पूजा को इतना महत्व नहीं देता जितना सब पन्थों की सारवृद्धि को। सारवृद्धि अनेक प्रकार की होती है--परन्तु उसका मूल वाणी का संयम ही है। और वाणी का संयम क्या है? हम अपनी भाषा पर इतना कब्जा रक्खें कि जिससे अपने ही पंथ की स्तुति और दूसरे के धर्म की निन्दा न होने पावे। धर्म-चर्चा के सदृश प्रसंग के सिवा जब चाहें तभी अपने धर्म की सुन्दरता और दूसरे के धर्म के दोष दिखाने से हमारी हीनता ही प्रकट होती है। जिस समय जैसा प्रसंग हो उस समय उस प्रकार से परधर्म का आदर करना ही उचित है। ऐसा करके मनुष्य अपने धर्म की आत्म वृद्धि करता है और दूसरे के भी धर्म की सेवा करता है। ऐसा न करके मनुष्य अपने भी धर्म को तोड़ता है और दूसरे के धर्म को नुकसान पहुंचाता है।

मनुष्य जब अपने धर्म की स्तुति करता है और दूसरे धर्म की निन्दा करता है तब वह यह अपने धर्म के प्रति भक्ति-भाव से प्रेरित होकर ही करता है। उसके मन मे होता है कि चलो अपने धर्म को बढ़िया करके दिखावें। पर ऐसा करते हुए वह अपने ही धर्म को सबसे ज्यादह नुकसान पहुंचाता है, अपने ही धर्म का भारी घात करता है। अच्छी बात तो यही है कि सब धर्मों में प्रेम भाव हो, सब मिल-जुल कर रहें-मानों एक कुटुंब हो। ऐसा होने से जुदे जुदे पंथ वाले लोग धर्म का उपदेश सुनते हैं। और उसका पालन करते हैं।

अशोक राजा की खास इच्छा है कि सब पन्थ के लोग बहुश्रुत हों और उनका ज्ञान कल्याणकारी सिद्ध हो। भिन्न भिन्न धर्मों के पारस्परिक झगड़े तभी मिट सकते हैं जब बहुश्रुत होने के कारण मनुष्य के विचार की अल्पता दूर हो जाती है और मनुष्य की विद्वत्ता समाज को कल्याण की ओर ले जाती है। यह बात जिन्हें पसंद हो उन्हें लोगों को समझाना चाहिए कि अशोक राजा दान या पूजा को इतना महत्व नहीं देता जितना सब धर्मों की सार-वृद्धि को अर्थात कल्याण करने की शक्ति को। इसीलिए उन्होंने धर्म-महामात्र नियुक्त किये है, स्त्रियों के लिए उपदेशक नियुक्त किये हैं, व्रात्यभूमिक नियत किये है और दूसरी सभायें भी स्थापित की हैं। इसका फल यह है कि हर एक के धर्म की भी वृद्धि हो जाय और धर्म की विजय हो।"

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

एक हृदय

एक रोज गांधीजी की तसवीरों की बात चली, तब एक मित्र ने कहा था "मुझे तो उनकी उस वक्त की तसवीर सब से श्रेष्ठ मालूम होती है जब वे दक्षिण आफ्रिका की जेल से रिहा हो कर निकले थे। शरीर सूख कर कांटा हो गया था। आँखो में गहरी दया और करुणा भरी हुई थी और उनके चहेरे से निश्चय प्रकट हो रहा था।" जब २१ दिन का व्रत लिया तब गांधीजी ने दो संकल्प किये थे; रोज आश्रम को एक पत्र लिखना और आखिर तक आध घंटा कातना। जिन्होंने आखिर के दिनों में उन्हें कातते देखा है वे उस दृश्य को भुला नहीं सकते। जब वे जेल में से निकले तब चल-फिर सकते थे। लेकिन इस वक्त तो वे केवल कातने के लिए ही बिछौने में उठ बैठते थे। देश के समस्त वायु-मण्डल की छाया दर्शाने वाला उनका चेहरा, इक्कीस दिन के उपवास से प्रतिदिन आंखो में अधिकाधिक प्रकट होने वाला अटल आत्मा का प्रकाश, शक्तिहीन झुरझुरवाले किन्तु चरखा कातने का आग्रह रखने वाले हाथ—मानों वह भारतवर्ष का ही एक करुण चित्र था; यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी। जिस भारतवर्ष ने, सब सम्पत्ति खो दी है, अपना तेज और जौहर खो दिया है वह आज भी आत्मा का नूर बचाये हुए है। जितने आग्रह से इस प्रकाश का रक्षण किया जावेगा उतना ही मधुर फल प्राप्त होगा। (नवजीवन)

टिप्पणियां

आशा की किरणें

ऐक्य-परिषद् निरर्थक न हुई। उसने जो कुछ भी किया है उसका अमल हो तो भी बहुत है। गांधीजी के प्रायश्चित का असर बहुतेरे स्थानों में पाया जाता है। गांधीजी के प्रायश्चित के संबंध में 'स्टेट्समैन' पत्र में जो लेख प्रकाशित किये गये हैं वे सानन्दाश्चर्य दिलानेवाले हैं। उसके संपादक ने गत ८ ता० को अर्थात् पारणा के दिन 'ऐक्य अंक' निकाला था। उसमें अनेक देश नेताओं के और गवर्नरों तथा वाइसराय और स्टेट सेक्रेटरी ने भी संदेश भेजे हैं। 'इंगलिशमैन' पत्र ने भी जो हमारी सब हलचलों का सिर्फ मजाक उड़ाया करता था, गांधीजी के उपवास के संबंध में बड़े गम्भीर भाव से लिखा है—

"हम आशा करते हैं कि हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य के लिए ही अब महात्माजी अपना उपवास छोड़ देंगे। हम जानते हैं कि वे उसे प्रायश्चित समझते हैं। यह प्रायश्चित बड़े ही उदार आशय से किया गया है। लेकिन उन्होंने जो शक्ति उत्पन्न की उसके परिणाम स्वरूप यदि भिन्न भिन्न जातियों में झगड़े हुए हों तो उन्हें उन लोगों के साथ खड़े रहना चाहिए जो उस शक्ति को शांत कार्य में लगा देने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके उपवास से जो कुछ भी बाह्य असर होना था वह हो गया। अहिंसावादी होने के कारण अब उन्हें उपवास करने की कोई जरूरत नहीं है। गांधीजी की अहिंसा-निष्ठा अव्यभिचारिणी है, इसमें किसीको कुछ भी शुबह नहीं।"

उपवास के संबन्ध में बहुत से अंग्रेजों के और ईसाइयों के पत्र आये हैं और अभी आरहे हैं। कुछ ईसाई ऐसी अभिलाषा रखते हैं कि हजरत ईसा की महरबानी गांधीजी पर उतरे और आखिर को उन्हें ईसाई धर्म में शांति मिले और कुछ गांधीजी के प्रायश्चित का रहस्य समझ कर ऐसी प्रार्थना करते हैं कि वह सफल हो। शिमला से एक अंग्रेज सज्जन लिखते हैं:—

"आपके ध्येय-ऐक्य-के संबंध में क्या भारत का 'ईसाई धर्म-सघ' कुछ सेवा कर सकता है? यदि वह कर सके तो उसे किस तरह काम करना होगा, कृपा कर लिख भेजें। संयम के द्वारा ऐक्य साधन करने की आपकी अभिलाषा को मैं खूब अच्छी तरह समझ गया हूं। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में यदि आप कुछ लिखने की महरबानी करेंगे तो उपकार मानूंगा।"

एक यूरोपीय ईसाई बहन के जो पत्र आये हैं वे इतने निजी तौर पर लिखे गये हैं कि प्रकाशित नहीं किये जा सकते। फिर भी उनके निर्मल प्रेम को दिखाने के लिए उसमें से कुछ वाक्य यहां देता हूं। श्री एण्ड्र्यूज को यह बहन लिखती है:—

बापूजी यदि न हों तो देश के लिए मुझे कुछ भी आशा न रहेगी। किन्तु अभी मेरी आशा नष्ट नहीं हुई और आज (दूसरी ता०) से बापूजी को पारणा होने तक मैं भी उपवास करूंगी। हे ईश! हम पर दया कर, हमारे हृदय को नवीन कर दे, उसमें से अप्रेम को निकाल कर प्रेम भर दे। और हम लोग जो सिर्फ नाम-मात्र के ईसाई हैं, ईसा का अनुसरण कर सच्चे ईसाई और जगत में शान्ति स्थापित करने वाले बनें।

गांधीजी के नाम के पत्र में सूत भेजकर लिखती है—

'मेरे प्रेम और प्रार्थना के चिह्न-स्वरूप यह सूत भेज रही हूं यह नहीं कि इतना ही काता है, काता बहुत है-अपना कर्तव्य करने का प्रयत्न कर रही हूं। लेकिन यह तो देव-कपास है। इसका उपयोग मनुष्य नहीं, देव कर सकते हैं, इसलिए यह आपके लिए ही भेजा है। यह सूत मेरी बाड़ी के कपास का है। प्रभात समय में देवी अश्रुओं से भीगे कोमल कपास को अपने हाथ से तोड़ा, बिनौले निकाले और यंत्र के मलिन स्पर्श से उसे बचा कर यह सूत निकाल कर भेज रही हूं। उसे कातते समय मैं जप कर रही थी। अब उसे मैं अपने आंसुओं से भी भिगोती हूं, क्योंकि आपका और भारतवर्ष का ख्याल आने से मेरे हृदय में भग हो रहा है।'

और अधिक प्रेम-चिह्न

इस अपूर्व प्रेम का उल्लेख करते हुए इन २१ दिनों के उपवास दरम्यान और भी अनेक प्रकार से जो प्रेम की वृष्टि हुई है उसका भी जिक्र यहां किये देता हूं। सैंकड़ों तार हिन्दू-मुसलमानों की तरफ से आये हैं। इसके अलावा ऐसी अभिलाषा प्रकट करनेवाले पत्र कि गांधीजी के उपवास निर्विघ्न समाप्त हों और उससे अच्छा फल निकले, इतने अधिक आते हैं कि उन सब को पढ़ना भी मुश्किल होता है। पत्र से भी अधिक मूर्त चिह्न भेजनेवाले भी कम नहीं। एक बंगाली बहन लिखती है—"मैंने अपने पति की आज्ञा लेकर उपवास शुरू किये हैं, जितने हो सकेंगे उतने करूंगी। चरखे को तो मैं अपनी जान भी सौंप दूंगी। मैं और मेरे पति शेष सब उपवास करें तो क्या आप उपवास न तोड़ेंगे?" नौ-दस-और तेरह वर्ष के तीन बालक शिवनिर्माल्य भेज कर लिखते हैं "आप न होंगे तो हमें अच्छा बनना कौन सिखावेगा? आप साधु हैं।" एक मुसल्मान बहन ने उपवास के बाद तुरंत ही छः सात सेर सूत भेजा है। एक ईसाई भाई ने ६ सेर सूत भेजा है। बंगलोर के एक बड़े सरकारी नौकर के घर की एक बालिका ने बड़ा अच्छा सूत भेजा है। पूना में ऐसे पत्र आते थे कि हम इतने दिन गायत्री का अखण्ड जप करेंगे, वैसे अब भी आ रहे हैं। डाक्टर और वैद्य अपने योग्य उपयोगी सूचना और सेवा मांग रहे हैं। इन सब को भुला दे ऐसी वस्तु तो एक अंध बालक का भेजा अपना काता सूत है। मैमनसिंह से एक सज्जन लिखते हैं "मैं ६० वर्ष का हूं। आपका चरखे का संदेश मुझे बहुत पसंद आया है। मैं तीन वर्ष से कात रहा हूं, अतिशय श्रद्धा से नियमित कात रहा हूं। मेरा तो यह अटल विश्वास है कि यदि हम सब चरखा चलाने की प्रतिज्ञा करें तो सिर्फ चरखा ही हम सबको एक कर सकता है।"

जब से उपवास शुरू हुआ तब से उसकी समाप्ति तक-करीब करीब समाप्ति के दिन तक-उपवास बन्द करने की प्रार्थना करने वाले तार आते ही रहे। दीर्घायु चाहनेवाले और "आपका कल्याणकारी कार्य सदा जारी रहे" इस मतलब के तार तो अब भी आ रहे हैं। इन तारों के भेजनेवालों में सभी कौमें आ जाती हैं। उपवास के बाद भी मुबारकबादी देनेवाले और दीर्घायु चाहनेवाले तारों का आना अभी जारी है। इसमें से पारसी कौम का नाम लिये बिना कैसे रहा जा सकता है? अनेक जगहों से—जहां जहां उनकी बस्ती है, उनके तार और पत्र आये हैं। गरीब अंत्यज भाइयों ने भी इस प्रसंग पर तार करना ही उचित समझा। तार का इतना खर्च? इसका विचार करते ही ईसा ने जो उत्तर अपने पर इत्र छिड़कनेवाली स्त्री की टीका करनेवालों को दिया था, याद आता है। इन सब शुभेच्छाओं-सच्ची आरोग्यप्रद शुभेच्छाओं के लिए गांधीजी सबके अत्यन्त ऋणी हैं।

कातनेवालों के-नये कातनेवालों के भी पत्र आ रहे हैं। बहुतों ने उपवास के बाद कातने के व्रत लिये हैं। बहुत सी जगहों से सूत भी आया है। सूत भेजनेवालों से यह प्रार्थना है कि अब वे सूत भेजने का केवल एक पत्र ही गांधीजी को लिख कर सूत सीधा साबरमती भेज दिया करें।

कुछ प्रेमपत्र

गांधीजी का प्रेम किस किस प्रकार के प्रेम को जाग्रत कर सकता है उसके कुछ दृष्टांत ऊपर दिये है। एक यूरोपीय ईसाई बहन के पत्र का कुछ अंश उद्धृत किया जा चुका है। एक दूसरे यूरोपीय ईसाई लिखते हैं -

"मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि इस देश में अपनेको ईसाई कहलाने वाले बहुत से ईसाई ऐक्य के संबंध में उदासीन रहे हैं, और दूसरे धर्म के भारतवासियों के साथ सहयोग करने से अलग रहे हैं। आपकी तपश्चर्या के कारण ऐसे अनेक ईसाइयों के हृदय में अपनी इस उदासीनता के लिए लज्जा उत्पन्न हुई है, और उन्हें अपने कर्तव्य का ख्याल हुआ है। इस बुधवार को ईसाई लोग हिन्दू–मुसल्मान भाइयों के साथ खड़े रह कर देश के पुनरुद्धार की प्रतिज्ञा करेंगे।"

एक महाराष्ट्रीय भाई लिखते है, "आप तपस्वी हैं। ब्रह्मांड पुराण में लिखा है 'तपो नानशनात्परम्'।" अनशन से बढ़ कर कोई तप नहीं। एक दूसरे महाराष्ट्री भाई लिखते हैं "आपका व्रत भीति उत्पन्न करानेवाला था, किन्तु आपकी कारणपरम्परा मुझे इतनी सुसंगत मालूम हुई कि एकान्त में जाकर आपके साथ परमेश्वर की प्रार्थना के उद्देश से मैं समर्थ रामदास महाराज के समाधिस्थान के पास सज्जनगढ़ में आकर प्रार्थना कर रहा हूं।" प्रयाग के एक सज्जन और उनकी पत्नी के पत्र में जो करुणा है उसकी तो सीमा ही नहीं है। "आप न होंगे तो अपनी पुरातन सभ्यता का क्या होगा? हमपर दया कीजिए अकर्मण्य रह कर निकम्मों की तरह यहां पड़े रहने में हमारा हृदय फटा जा रहा है। असमर्थ हो कर मैंने और मेरी पत्नी ने अपने शरीर से खून निकाल कर उससे लिखा है। जो खून हृदय में बह रहा है वह इसी तरह प्रकट किया जा सकता है पर समझ कर ऐसा किया है, जिससे कि आप शायद इन त्रस्त और स्तब्ध आत्माओं की आर्त और करुण प्रार्थना और विनय को सच मान कर स्वीकारें। महाराज! यदि बलिदान की इच्छा है तो हम जैसे भक्तों को आज्ञा दी जाय। हमें आशा है सौ–पचास आदमी निकल आ आपके नाम पर अपने प्राणों की बलि सहर्ष दे देंगे।"

अनेक भाई और बहनों ने उपवास किये। गांधीजी ने उन्हें रोका जिन्हें रोक सके। कितनी ही बहनों ने तो पंद्रह पंद्रह रोज उपवास करके आराम से पारणा करने की खबर दी है। ऐसा शुद्ध प्रेम क्या केवल उसके उद्भवस्थान को ही प्रकाशित करेगा? नहीं। उसका प्रकाश तो चारों ओर फैलेगा। इसमें कुछ भी सुबह नहीं।

फिर डा० राय की गर्जना

डा. राय को आज तीन वर्ष हुए खादी की ही लगन लगी है। वे खादी का ही विचार करते है और खादी के ही स्वप्न देखते हैं। उनकी कलम और वाणी को भी खादी के सिवा दूसरा विषय नहीं सूझता। हाल ही प्रकट किये अपने निवेदन में वे लिखते हैं "मुझे कितने ही बुद्धिमान लोग चरखे के पीछे पागल कहते है। लेकिन इतनी बड़ी उमर में भी मैं आज बंगाल रसायन कार्यालय का और सात जाइन्ट स्टाक कंपनियों का डीरेक्टर हूं। इतना दावा तो मैं जरूर कर सकता हूं कि मुझे आधुनिक व्यापार-शास्त्र का भी कुछ ज्ञान है। तो फिर मैं चरखे के पीछे इतना पागल क्यों हुआ हूं? चरखे का अर्थशास्त्र समालोचकों को समझाने के लिए दो एक सादे दृष्टांत देता हूं। बंगाल की बस्ती ५ करोड की है और यदि हरएक कुटुम्ब में पांच आदमी मान लें तो १ करोड कुटुम्ब हुए यदि एक कुटुम्ब में एक ही शख्स चरखा रोजाना चलावे और दो पैसे रोज पैदा करे तो एक महीने के १ करोड रुपये और साल के बारह करोड रुपये बंगाल पैदा कर सकता है। लेकिन पांच आदमियों में एक ही आदमी क्यों काते? अधिक आदमी क्यों न काते? बरीसाल और मेरे खुलना जिले में एक ही फस्ल पकती है। अपने अनुभव से मैं यह कहता हूं कि किसान लोग सिर्फ तीन महीना काम करते हैं और नौ महीने बातें हांका करते हैं। मिल के साथ स्पर्द्धा का तो सवाल ही नहीं है। जो बहुतेरा समय फजूल जाता है सिर्फ उसको काम में लगाने का यह सवाल है।"

रेम्से मेकडोनल्ड की पुस्तक में से कुछ वचन उद्धृत करके वे कहते है—चरखे को फिर घर घर में सजीवन कर दो–अकेला बंगाल ही ३० करोड रुपया अपनी हद में बचा सकेगा। मेकडोनल्ड कहते है कि 'यह बड़े खेद की बात है कि सरकार ने पुराने कातने और बुनने के व्यवसाय को उठा दिया और सस्ता माल उसकी जगह चलाया।' (नवजीवन)

सूत का कस

अब लोग बारीक सूत भी कातने लगे है, यह अच्छी बात है। परन्तु आन्ध्र के महीन सूत की तरह कसदार न हो तो महीन सूत किसी काम न आवेगा। आशा है कि महीन कातनेवाले अपने सूत को कसदार बनाने में कृतकार्य होंगे। सूत की ताकत का पहला आधार है उसका एकसा कतना और एकसा कतने का आधार है पूनी की अर्थात् धुनकाई की सफाई। यह मान कर कि रुई के मोटे रेशों पर ही महीन सूत का कस अवलंबित है, महीन कातना भूल होगा। हाल ही मछलीपट्टन से एक ब्राह्मण महाशय ने अपने हाथ का तकली पर कता सूत भेजा है। उससे भी यही जाना जाता है कि मोटे रेशेवाली रुई से मजबूत महीन सूत अच्छा नहीं निकल सकता। यह सूत प्रायः ७० अंक का मजबूत है। हमारे अनुरोध पर सूतकार ने अपनी तकली, उसपर काते कोई एक तोले सूत सहित (अंक ७०) यहां भेजी है। नारियल की कटोरी में उसे रख कर दहने हाथ से घुमाते है और बायें हाथ से चरखे की तरह सूत खींचते हैं। कपास का नमूना भी उन्होंने भेजा है। वह 'तीनी' नामका कपास है। उसका बीज छोटा और काला है और रेशा आधा से पौन इंच तक का, पर बहुत बारीक और मुलायम है। पूनी भी भेजी है। बीज से हाथों निकाली रुई को अंगुलियों से संवार कर बनाया रेशों का एक छोटा, सा जत्था ही समझिए। उसमें गर्द या कूड़ी बिलकुल नहीं है। एक पुड़िया मे विभूति थी, वह कटोरी में रक्खी जाती है और कभी कभी उंगलियों में लगा कर उससे तकली घुमाई जाती है, जिससे वह जोर से चलती है। कताई के वेग के संबंध में यह कहा जाता है कि चरखे की ही गति के बराबर है; पर उसे लपेटते हुए अलबत्ते देर होती है। इस सूत का कस अच्छा है। जहां जहां महीन कातने का प्रयत्न हो रहा है वहां कस अच्छा लाने की ओर अधिक ध्यान दिलाने के लिए यह सविस्तर वर्णन किया है।

(नवजीवन) म. क. गांधी

एजंटों के लिए

"हिन्दी–नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते है—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायगी।
२. एजंटों को प्रति पाई)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डांक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल से।

समझौता

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)॥
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १४

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, अगहन बदी ५, संवत् १९८१ रविवार, १६ नवम्बर, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

कलकत्ते में गांधीजी

गांधीजी के शरीर में अभी पूरी ताकत नहीं आ पाई है। परन्तु काम तो उन्होंने पहले की तरह करना शुरू कर दिया है। यह पिछले सप्ताह की घटनाओं तथा इस अंक में लिखे उनके लेखों से दिखाई देती है।

गांधीजी कलकत्ते क्यों गये, किस भाव से गये, इसका उल्लेख पिछले सप्ताह में आ चुका है। अब इस पत्र में इस बात का जिक्र करना चाहता हूं कि उसका क्या फल निकला, क्यों निकला और किस परिस्थिति में निकला? गांधीजी ४ दिन कलकत्ते में रहे। इस बीच उन्होंने जितना काम किया उसे देख कर हर शख्स का यही खयाल होगा कि अब उनकी कमजोरी बिलकुल जाती रही। प्रातःकाल के ५ बजे से रात के ग्यारह बजे तक देर देर तक बातें और चर्चा करते। उससे उन्हें कितनी थकावट मालूम होती थी, सो मैं जानता हूं। और उसका असर अब मालूम भी होने लगा है।

स्वराजियों के साथ सम्मेलन

पहिले ही दिन ४ ता० को देशबन्धु ने गांधीजी को स्वराजियों से मिलने का निमन्त्रण दिया और यह बताने का उनसे अनुरोध किया कि बंगाल में उत्पन्न परिस्थिति को देखते हुए हमें क्या करना चाहिए, तथा देश को क्या करना चाहिए। बड़ी देर तक गुफ्तगू हुई। गांधीजीने अपने उन विचारों को फिर से दोहराया जो उन्होंने वायसराय के जवाबके लेख में प्रकट किये थे और उनसे अनुरोध किया कि सविनय भंग के योग्य स्थिति के अभाव में हम सविनयभंग करने में [illegible] नहीं हो सकते। अतएव चुप रह कर, केवल त्रिविध कार्यक्रम पर अपनी शक्ति एकाग्र करनी चाहिए। उन्होंने कहा—"हो सकता है कि इन तीन कामों में आपको कोई बात उत्साह-प्रेरक न मालूम हो, लोगों को शायद बहुत शिथिल और मन्द कार्यक्रम दिखाई दे। परन्तु बेहतर है कि लोग अपनी धूम-धाम की आशाओं में असफल होकर हमें छोड़ दें। हम व्यर्थ के भीड़ भड़क्के से जो 'महात्मा गांधीजी की जय' या दूसरे किसी की जय बुलाते हैं, देश को कुछ भी लाभ न होगा। [illegible] लोग हमारा [illegible] छोड़ दें इसीमें और और ज्यादे लाभ है। इन तीन बातों पर भी हम सब सहयोग करके बल प्राप्त कर लें यही मेरा हेतु है।"

और इस बात के छिड़ते ही सूत कातकर मताधिकार प्राप्त करने के प्रस्ताव पर बातें चलीं। 'यदि यह मंजूर न हो सके तो?' 'तो मुझे महासभा से निकल जाना होगा और स्वराजियों को काम करने देना होगा। आपने अपनी नियमबद्धता का परिचय दिया है। सरकार पर अपना सिक्का जमा दिया है। हां, यह सच है कि मुझे आपकी नीति पसंद नहीं। पर इस बात से मैं कैसे इन्कार कर सकता हूं कि आपने सरकार पर अपनी छाप बिठा दी है। इसलिए मुझे आपके काम में बाधा-रूप न होना चाहिए। संभव है कि कट्टर असहयोगी मेरे इस रुख को पसंद न करें और मेरा साथ छोड़ दें। पर मैं तो आपके प्रति यही भाव रख सकता हूं। मैं आपके साथ लड़ नहीं सकता।"

परन्तु गांधीजी का महासभा से चला जाना स्वराज्यवादियों के लिए असह्य था। पर इधर वे गांधीजी की शर्तों को कुबूल भी नहीं कर सकते थे। और यह बात उन्होंने साफ साफ उनपर प्रकट भी कर दी।

'आप कहते हैं, चरखा कातकर महासभा के सदस्य बनो। अब आपके साथ दलील करने की गुंजायश न रही। आपकी जैसी श्रद्धा इस बात पर है वैसी हमारी नहीं। हां, हम कातने की आवश्यकता के कायल हैं, पर यह बात हमें नहीं पटती कि खुद हमीको कातना जरूरी है। और जब कि हमे पटती नहीं है तब हम यह शर्त कैसे मंजूर कर सकते हैं?'

फिर भी स्वराज्यवादियों के किये काम को बिगाड़ने के लिए सरकार ने उनपर जो बम गिराया है उसके सिलसिले में क्या गांधीजी उन्हें कुछ भी मदद न दें? इस आपत्काल के अवसर पर गांधीजी के नेतृत्व का कुछ भी लाभ उन्हें न मिलना चाहिए?

कुसुम से भी कोमल

इस समस्या पर विचार करते करते गांधीजी सोये। 'निर्बल के बल राम' के सुर हृदय में गूंज रहे थे। सोये तो रात को इस खयाल को ले कर कि कर्तव्याकर्तव्य की इस उलझन को भगवान् ही सुलझावेगा; पर प्रातःकाल को यह निश्चय कर के उठे कि जितना त्याग

किया जा सके कातना चाहिए, जिस हद तक जाकर मदद दी जा सके देनी चाहिए। यदि अनिवार्य कताई महाराष्ट्र-दल को बहुत ऐसा मालूम होती हो तो वह अपना काता नहीं तो भले ही औरों का काता सूत फीस की जगह भेजा करे। इससे आदर्श स्थिति की रक्षा तो न होगी पर आर्थिक रक्षा तो हक होगा ही; क्योंकि हर सदस्य को किसी न किसी से तो कता कर भेजना ही होगा। यह विचार कर के उन्होंने अपनी शर्तों में पूर्वोक्त परिवर्तन कर देने का विचार प्रकाशित किया। इस परिवर्तन के बाद खादी पहनने का सवाल खड़ा हुआ। पण्डित मोतीलालजी ने तथा औरों ने सब जगह और सब समय खादी पहनने को मताधिकारियों के लिए अनिवार्य करने से पैदा होने वाली कठिनाइयां बताईं। कितनी हो बातें ऐसी हैं कि जिनके बिना काम नहीं चल सकता और फिर भी वे खादी की बनी नहीं मिलतीं। मोजों के लिए क्या किया जाय? जाड़े के मौसिम में भीतर पहनने के कपड़े शुद्ध, हाथ-कते हाथ-बुने ऊन के नहीं मिलते। दूसरे ऐसे अनेक मौके हो सकते हैं जब खादी पहनना अथवा मिलना अशक्य हो। अपवाद भी किन किन चीजों के करें? इसलिए ऐसा नियम बनाना चाहिए कि अमुक अमुक अवसर पर खादी के सिवा दूसरा कपड़ा न पहनें। बाहर यदि पाप से न बच सकें तो तीर्थक्षेत्र में पाप न करो, बाहर यदि अस्पृश्यता से पिण्ड न छुड़ा सको तो भगवान् के पवित्र मन्दिर में तो प्राणिमात्र को समान समझो—इस भाव से ऐसे प्रसंग नियत किये गये जहां पर खादी न पहननेवाला व्यक्ति सभ्य न हो सके।

परन्तु सर्वोपरि विचार तो मन में यही था कि मनुष्य किस हद तक कठोर हो सकता है? 'अपने प्रति मनुष्य वज्र से भी कठोर हो सकता है; पर औरों के प्रति भी क्या वह इतना कठोर हो सकता है? जब कि लोग यह कहते हों कि मेरे नेतृत्व के बिना हमारा काम नहीं चल सकता तब क्या मुझे उचित है कि अपना नेतृत्व महंगा कर रक्खूं? अपने सिद्धान्त से उतरे बिना यदि मैं आदर्श से जरा उतर सकता हूं तो क्यों मुझे अपना आग्रह न छोड़ना चाहिए?' इस भाव से—कुसुम से भी कोमल भाव से—गांधीजी ने उस संयुक्त घोषणा पर अपनी सही की।

अपरिवर्तनवादियों के साथ

परन्तु उसपर हस्ताक्षर करने के पहले कमसे कम बंगाल के अपरिवर्तनवादियों के साथ तो बहुत-कुछ बातें कर लेने का निश्चय किया, और शाम को उनसे मिले। स्वराजियों के साथ मैत्री करने का मुख्य कारण था स्वराजियों पर किया सरकार का हमला—उनकी कठिन परिस्थिति। यह कारण किस हद तक सच है, इस बात पर उनके साथ बहुत देर तक चर्चा होती रही। इसका मा. गांधीजी ने अपने लेखों में बहुत अच्छी तरह दिया है। उनकी दलीलों से अपरिवर्तनवादियों का संतोष हुआ दिखाई नहीं दिया। उन्होंने नम्रता के साथ एक निवेदन किया 'इसमें हमारा सिद्धान्त जाता है, रचनात्मक कार्यक्रम उखड़ जायगा, यह भय हमारे मन से नहीं निकलता। इसलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप एकबारगी इस इकरारनामे पर सही न कीजिए—एक सप्ताह तक इस पर शान्ति के साथ विचार कीजिए, साबरमती जाकर विचार कीजिए, और फिर दस्तखत कीजिए।' गांधीजी ने इस अनुरोध पर विचार करने का वचन दिया। घर आकर विचार किया और निश्चय किया कि स्वराजियों का संकट सच्चा है और इस मौके पर उनका साथ देना जरूरी है। इस निश्चय के बाद भी अपरिवर्तनवादियों को अपनी स्थिति और कर्तव्य ठीक ठीक समझाने के लिए वे दूसरे दिन उनसे मिले। इस बात का सार कुछ विस्तार के साथ देना चाहता हूं—इस विचार से कि गांधीजी के लिखे लेख के उपरान्त उससे कुछ अधिक प्रकाश पड़ेगा'—

मेरा त्याग

शुरूआत में अपने मनोभावों को समझाते हुए गांधीजी ने कहा—'मुझे खुद अपने इस कार्य के औचित्य के संबंध में जरा भी शक नहीं है। अबतक मैं कार्याकार्यता के भंवर में था। पर अब मेरा मन निश्चिन्त है। मुझे निश्चय हो चुका है कि जो कुछ मैंने किया है उससे भिन्न मुझसे कुछ न हो सकता था। अहिंसावादी का धर्म ही यह है—इतना त्याग कर देना कि फिर कुछ त्यागना बाकी न रहे। इसीसे मैं आखिरी सीढ़ी पर आ कर बैठ गया हूं। मुझे इस हद तक त्याग करना चाहिए कि जिससे प्रतिपक्षी को यह मालूम हो कि अब तो हद हो गई—यहां तक कि वह त्याग से लज्जित हो जाय। और यह मेरा पहला अनुभव नहीं। देने—प्रदान करने—का धर्म ही यह कहता है—इतना दो, इतना दे डालो कि मांगनेवाला भी थक कर भाग जाय। हालां कि यहां जो दान मैंने किया है वह वैसा दान नहीं है—उस प्रकार का त्याग नहीं है। मैंने तो जो कुछ दिया है जोखाताकी कर के, अपने धर्म को उधार समझ कर के, दिया है। धीरे, धीरे, क्रम क्रम से एक एक इंच पीछे हटा हूं। हां, कितने ही लोग यह मानते हैं कि मैं उनके अन्दाज से अधिक आगे बढ़ गया हूं और दे चुका हूं।

कौनसा त्याग किया?

'यदि आप एक बार यह समझ जायं कि असहयोग अब नहीं चल सकता तो आप एक क्षण में समझ जायंगे कि मैं जिस हद तक गया हूं उस हदतक गये बिना छुटकारा न था। मैं आज कहता हूं तो हिंसा के सिवा दूसरा कुछ नहीं दिखाई देता। लोगों के हृदयस्तल में हिंसा ही हिंसा भरी हुई है यहांतक कि असहयोग को राष्ट्रीय रूप में जारी रखना एक जुर्म ही माना जा सकता है। परन्तु 'राष्ट्रीय' और 'व्यक्तिगत' में भेद है। इसमें व्यक्तियों ने तो असहयोग जिस हद तक किया था उस हद तक वे जारी ही रक्खेंगी, बल्कि उसे तज देंगी तो उनका मूल असहयोग कमजोर कहा जायगा।

'मताधिकार के लिए सूत कातने के संबंध में बहुत चर्चा हुई है। आप मानते हैं कि मैंने बहुत त्याग कर दिया। खादी को मैंने एक शिष्टाचार-मात्र बना दिया। पर बात ऐसी नहीं है। यदि आप इतिहास देखेंगे तो मालूम हो जायगा कि हम कितने आगे बढ़ गये हैं। आरंभ में खादी की प्रतिज्ञा के अनेक प्रकार थे—शुद्ध, मिश्र, इत्यादि। फिर मिल के कपड़े को तिलांजलि मिली, और खादी आई। फिर चरखे ने प्रवेश किया। फिर खादी स्वयंसेवकों के लिए अनिवार्य हुई। आगे जा कर कताई का काम प्रतिज्ञा करना अनिवार्य हुआ। उससे आगे जा कर सब के कातने पर जोर दिया गया। फिर पदाधिकारियों के कातने का प्रस्ताव पास हुआ और आज हमने कताई का मत देने की शर्त बना दिया है।

'हां, यह ठीक है कि हर सम्भव कातेना पर आज जो लोग कातते हैं वे इससे बंद न होंगे। उलटा उनकी संख्या आज से अधिक बढ़ेगा ही। पैसा खर्च कर के कितने लोग कतावेंगे? अर्थात् बड़ी संख्या तो अपना ही काता सूत भेजेगी। परन्तु जिनका इस विषय में हृदय न हुआ हो उनसे हम जबरदस्ती कैसे कता सकते हैं? सो हमें इसीपर सन्तोष मानना चाहिए कि वह दूसरे से कता कर भेज दें। और यदि अधिक सूक्ष्म विचार करें तो मालूम होगा कि हर सभ्य के लिए कताई का अनिवार्य होना सिद्धान्त की बात नहीं थी। मुझे यह भी कहना चाहिए कि यह विचार बहुतों का नहीं था, मुझ अकेले का ही था। क्योंकि

यह कहना अनुचित न होगा कि वह मेरा आदर्श था । हां, बहुत समय पहले बेलगांव में एक महाशय ने जरूर लिखा था, हर सभ्य के लिए कताई अनिवार्य क्यों न की जाय ? परन्तु उस समय तो मैंने उसे असंभव समझ कर उसपर विचार भी न किया था पीछे मुझे वह संभवनीय मालूम हुई और मैंने उसे देश के सम्मुख उपस्थित किया । । ऐसी अवस्था में मुझे सिर्फ अपने ही आदर्श से—अपनी सोची बात में से ही—कुछ त्याग करना पड़ा है, बस ।

'और क्या आप यह मानते हैं कि मैंने खादी को एक शिष्टाचार बना डाला है ? नहीं । यह भय भी मिथ्या है । खादी पहनने का प्रस्ताव एक बात है, खादी पहनेवाला ही महासभा का सदस्य हो सकता है, यह दूसरी बात है । मत देने का कार्य बहुत निश्चित वस्तु है—उसकी शर्तें भी अनिश्चित और दुःसाध्य न होनी चाहिए । मि० सुहरावर्दी कार्पोरेशन के डिप्टी मेयर कल सिर से पैर तक खादी पहन कर आये थे । वे नियमित रूप से खादी नहीं पहनते । पर कल का प्रसंग उन्हें खादी पहनने के योग्य मालूम हुआ । अब ऐसों को मैं यह किस तरह कह सकता हूं कि आप जब अदालत में जाओ तब लिबास भी खादी का पहन कर जाओ । मुझे तो यही आशा रखनी चाहिए कि जबकि राष्ट्रीय प्रसंगों पर वे खादी पहनेंगे तब केवल जिद के लिए वे आगामी मौकों पर विलायती अथवा मिल का कपड़ा न पहनने लगेंगे । जो खादी इस्तेमाल करते हैं वे तो करते ही रहेंगे । जो कभी न पहनते थे उन्हें कुछ खास मौकों पर खादी पहन कर महासभा में आने का अवसर मिलेगा । आज तो महासभा में जो प्रतिनिधि आते हैं वे भी कहां खादी पहनते हैं ? आज ९० फी सदी लोग पूरी खादी को नहीं बल्कि मिल की पहन कर महासभा में आते हैं । इस शर्त के होने पर ऐसा नहीं हो सकता ।'

स्वराज्यवादियों के साथ एकत्र होने का सवाल निकला । यह क्यों किया जाय, इसकी सविस्तर चर्चा गांधीजी ने अपने लेख में की ही है । उन्होंने सिर्फ इतनी ही दलील पेश की कि 'सरकार ने लोक-कल्याण के विचार से तो स्वराज्यवादियों को पकड़ा ही नहीं है । मेरा यह निश्चय पल पल पर दृढ़ हो रहा है कि स्वराज्यवादियों की गर्दन मारने के ही लिए सरकार ने उन्हें गिरफ्तार किया है ।' उपसंहार करते हुए उन्होंने कहा—

"मुझे विश्वास है कि मेरा यह त्याग 'यं. इं.' में प्रदर्शित मेरे आदर्श का कुछ त्याग अवश्य है, पर तत्व या सिद्धान्त का त्याग नहीं । पर यदि आप ऐसा समझें कि मैंने तत्व का त्याग किया है, आपको यह दिखाई दे कि मेरा त्याग अनुचित है तो आप मेरा पूरा पूरा विरोध कीजिएगा । मैंने श्याम बाबू पर अपना उद्देश प्रकट किया था । आज मेरा उद्देश है तमाम अव्यवस्था को मिटा कर सुव्यवस्था करना, विवाद को मिटा कर संवाद पैदा करना, निष्प्राण प्रजा को एकत्र करके उसमें सामर्थ्य और निर्भयता उत्पन्न करना । मैंने यदि कोई ऐसा वृक्ष उत्पन्न किया हो कि जो केवल अंधश्रद्धा को ही बढ़ाता रहे तो उसमें देश का अहित है । सर्वसाधारण को मैं क्षमा कर सकता हूं, पर आप तो नेता, वक्ता और चर्चा करनेवाले लोग हैं । आपको वही काम करना चाहिए जो आपकी बुद्धि आपको बतावे । यह बात नहीं कि मुझसे भूल नहीं हो सकती । हां, आपसे अनुभव मुझे अधिक है, इससे शायद भूलें कम करूं । पर यह भी संभव है कि जो कदाचित् भूल करता हो उससे कभी बड़ी भारी भूल हो जाय । संभव है कि स्वराजियों के काम को मैं अनुचित महत्व दे रहा हूं, हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य की आवश्यकता को अधिक महत्व दे रहा होऊं । तो आप बेशक नवीन रास्ता अंगीकार कर लीजिएगा, और इसीपर आरूढ़ रहिएगा । ऐसा कर के आप स्वयं अपना और मेरा गौरव बढ़ावेंगे । त्याग दो तरह के होते हैं । अपना स्वतंत्र मत और तत्व-निश्चय । सब कोई कहते कि पहले का त्याग जनकल्याण के लिए हो सकता है, दूसरे का नहीं । इस दृष्टि से आप को रास्ता अख्त्यार करना चाहें, खुशी से कीजिएगा ।

इस के बाद बहुतेरे प्रश्नोत्तर हुए । उनमें से कुछ यहां देता हूं—

प्रश्नोत्तरी

प्र०—अब महासभा गरीबों की न रहेगी, धनवानों की ही रहेगी । क्योंकि धनवान् तो हर कहीं से सूत खरीद लेंगे ।

उ०—नहीं बिलकुल गरीबों की रहेगी । गरीबों को रुई देने का काम होगा महासभा का और अपनी मेहनत देना गरीबों का । सर्वसाधारण भी सूत खरीदेंगे नहीं, खुद ही कातेंगे । हां, जो आलसी होंगे, या जिन्हें कातने से अरुचि होगी वे ही दूसरे से कता कर भेजेंगे ।

असहयोग किसके साथ ?

प्र०—आपने दुष्ट सरकार के साथ असहयोग आरंभ किया और अब उसे धीरे धीरे छोड़ते आ रहे हैं । पर उसके उपरान्त अब तो आप दुष्टता के साथ सहयोग करने का उपदेश दे रहे हैं । स्वराजियों ने ऐसे ऐसे प्रपंच रचे हैं और असत्य का आश्रय किया है कि उनके साथ सहयोग किस तरह किया जाय ?

उ०—मैंने यह कहा ही नहीं कि सब जगह असहयोग किया जाय असहयोग तब करना चाहिए जब किसी के दुष्ट कार्य में हमें हाथ बंटाने की आवश्यकता हो । अपके इल्जाम यदि सच हों तो भी उनकी झूठी बातों में हमें शरीक न होना चाहिए । और आप भूलते हैं कि सरकार के साथ असहयोग हमने ३० बरस सहयोग कर चुकने के बाद किया । स्वराजियों अथवा हमारे भाइयों के साथ तो असहयोग का प्रसंग ही अभी उपस्थित नहीं हुआ । अभी हमने उनके साथ इतना सहयोग ही कहां किया है जो असहयोग करने की नौबत आवे ? आज तो हिन्दू-मुसलमानों के बिगड़े दिलों को बनाना ही मुझे अपना काम मालूम होता है । इसी काम में सबकी सहायता चाहता हूं । जिस दिन उनके दिल पलट जायंगे उस दिन मेरी शीघ्र स्वराज्य प्राप्त करने की आशा अनेक गुना बढ़ जायगी ।

प्र०—आप तो नरम दलवालों को भी लेना चाहते हैं और जो लोग हिंसावादी हैं उनके लिए भी रास्ता खुला कर देना चाहते हैं, यह कैसा ? इन सबका मेल कैसे होगा ?

उ०—मुझे तो सत्य के लिए जीना है और सत्य के लिए मरना है । मैं चाहता हूं कि लोग और कुछ नहीं तो कम से कम सच्चे और प्रामाणिक बनें । जो आदर्श स्थिति मैं चाहता हूं वह यदि सबसे स्वीकृत कराऊं तो इससे दम्भ पैदा होगा, प्रामाणिकता नहीं बढ़ेगी । आज जिस प्रस्ताव पर मैंने अपनी सही की है उससे प्रामाणिकता बढ़ेगी । मैं सिर्फ इतना चाहता हूं कि लोग छोटी से छोटी प्रतिज्ञा करें और उसे पूरी तरह पालें । इसी विचार से मैं कहता था कि महासभा के संकल्प में से 'शान्त और उचित शब्द' निकाल दिया जाय । अहिंसा की प्रतिज्ञा करके हिंसा भाव को धारण करते रहने की अपेक्षा अहिंसा की प्रतिज्ञा ही न करना क्या अच्छा नहीं है ? मेरे आदर्श यदि देश को पसंद हों तो वह उन्हें अपनावे । यदि देश उन्हें न स्वीकारे तो मैं उन्हें अपनी जेब में रख लूंगा । फिर भी जिन बातों का त्याग नहीं किया जा सकता उनका त्याग मैंने नहीं किया

(शेष पृष्ठ १९१ पर)

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, अगहन बदी ५, संवत् १९८१

समझौता

स्वराजदल के सामने जितना झुक जाना मेरे लिए संभव था उतना—मैं और मेरे मित्र जितनी आशा रखते थे उससे कहीं अधिक—झुक जाने की शक्ति ईश्वर ने मुझे दी, इसके लिए मैं उसे धन्यवाद देता हूं। इस समझौते के लिए मैं स्वराजियों का ऋणी हूं। मैं जानता हूं कि रचनात्मक कार्य पर जितना जोर मैं दे रहा हूं उतना और बहुत से लोग नहीं देते हैं। बहुतों को महासभा के सदस्य होने की शर्त बड़ी कड़वी मालूम हुई है। फिर भी देश के लिए और ऐक्य के लिए उन्होंने उसको स्वीकार किया है। इसके लिए वे बड़े सम्मान के पात्र हैं।

इस समझौते से स्वराजी और अपरिवर्तनवादी दोनों की स्थिति एक-समान हो जाती है। यदि मत लेने की झंझट और उसके अभिशाप से बचना चाहते हों तो यह अनिवार्य था। अहिंसा के भावी हैं अपने सिद्धान्त पर दृढ रहते हुए दूसरी बातों को भरसक अपनाना। स्वराजी दावा करते हैं कि हमारा दल एक वर्धमान् दल है। और इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि उन्होंने सरकार पर अपनी छाप डाली है। हां, उसकी कीमत के संबंध में मुख्तलिफ रायें हो सकती हैं किन्तु जो वस्तुस्थिति है उसपर प्रश्न नहीं किया जा सकता। उन्होंने दिखा दिया है कि उनमें निश्चय, एका, तालीम और संगठन है और अपनी नीति के अनुसार दो दो हाथ करने तक की नौबत लाने में वे हिचकिचाते नहीं हैं। यदि धारासभा में जाने की आवश्यकता को मान लें तो यह भी अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने भारतीय धारासभाओं में एक नया ही तेज डाल दिया है। उनकी इस चमक-दमक से राष्ट्र का ध्यान अपनी तरफ से हट गया है, यह मुझ जैसों के लिए अफसोस की बात है। लेकिन जबतक हमारे योग्य से योग्य पुरुष धारासभा-प्रवेश की नीति में विश्वास रखते हैं तबतक तो धारासभाओं का हमें अच्छे से अच्छा उपयोग किये बिना चारा नहीं। अटल अपरिवर्तनवादी होते हुए भी मुझे उनके प्रति न केवल सहिष्णुता दिखाना चाहिए और उनके साथ काम करना चाहिए बल्कि जहां तक मुझसे बन पड़े उन्हें बल भी देना चाहिए।

यदि अपरिवर्तनवादी मुख्य मतभेद का निर्णय मत ले कर न करना चाहें तो वे लोग महासभा का कार्य केवल परस्पर सहिष्णुता और राजी-खुशी से ही कर सकते हैं और यदि वे लड़ना नहीं चाहते हैं तो उन्हें महासभा के अधिकारों को छोड़ देना होगा। यह तो मानी हुई बात है कि कोई भी एक दल दूसरे दल की सहायता के बिना काम नहीं कर सकता। देश में दोनों महत्व के दल हैं। नरम दल वालों के और मिसेज बेसन्ट के दल के महासभा छोड़ देने से महासभा की शक्ति घट गई। लेकिन यह अनिवार्य था; क्योंकि वे सिद्धान्त के तौरपर असहयोग के विरुद्ध थे। अब यदि संभव हो तो हमें इस फूट को आगे न बढ़ाना चाहिए। केवल मतभेद की बातों को यों ही सिद्धान्त मान कर हमें उनपर तू-तू मैं-मैं न करना चाहिए।

यदि असहयोग मुल्तवी रक्खा गया, जैसा कि मैं खयाल करता हूं कि वह होना चाहिए, तो इसका स्वाभाविक नतीजा यही हो सकता है कि स्वराजदल की हलचल के प्रति द्वेष-भाव जरा भी न हो। यदि महासभा के सदस्यों ने धारासभा में जाने का विचार ही न किया होता तो क्या होता, यह कहना और उसपर विचार करना अब अनावश्यक है। हमें तो आज जो स्थिति है उसीपर विचार करना होगा और या तो अपनेको उसके अनुकूल बनाना होगा या संभव हो तो उसे अपने अनुकूल बनाना होगा।

और आखिरी बात यह है कि बंगाल की स्थिति के कारण अपरिवर्तनवादियों को यह उचित है कि वे स्वराजदल की जितनी अधिक से अधिक मदद कर सकें उतनी करें।

कुछ अपरिवर्तनवादियों ने और दूसरे लोगों ने मुझसे कहा, 'लेकिन उस कागज पर जिसमें लिखा है कि सरकार ने क्रान्तिवादियों पर नहीं किन्तु स्वराजियों पर ही आक्रमण किया है, आप कैसे हस्ताक्षर कर सकते हैं? क्या आप इससे सरकार के साथ अन्याय नहीं करते?' इससे मैं बड़ा खुश हुआ और कुछ अभिमान भी हुआ। इसलिए कि जिस सरकार को वे पसंद नहीं करते उसके साथ भी मेरे प्रश्नकर्ता न्याय करने की हार्दिक इच्छा रखते थे। और अभिमान इसलिए हुआ कि प्रश्नकर्ता मुझसे सच्ची समीक्षा और संपूर्ण न्याय की आशा रखते थे। मैंने उन लोगों के सामने यह स्वीकार कर लिया कि भूतकाल के अनुभवों के कारण सरकार के खिलाफ मैं बड़ा साशंक रहता हूं, विलायत और भारत के गोरे अखबारों ने मुझे स्वराज-दल पर आक्रमण होने के संबंध में पहले से तैयार कर रक्खा था, सरकार की यह जाहिरा नीति है कि बड़े बड़े लोगों पर हाथ साफ किया जाय और जो लोग कैद किये गये हैं यदि उनमें कुछ क्रान्तिवादी हों भी तो यह बात बिलकुल सच है कि उनमें से एक बहुत बड़ा हिस्सा तो स्वराजियों का है। और जैसा कि सरकार कहती है क्रान्तिवादियों का एक बहुत बड़ा दल है तो सरकार को मौका सिर्फ स्वराजियों को ही कैद करने का मिले, यह भी बड़े ही आश्चर्य की बात है। मैंने उनसे यह भी कहा कि क्रान्तिवादियों की यदि कोई बड़ी और सजीव संस्था है तो जो भयंकर क्रान्तिवादी हैं वे स्वराज-दल के बाहर ही होंगे, अन्दर नहीं और रात को तलाशी के वक्त, कहा जाता है कि, पुलिस को कुछ भी हथियार हाथ न लगे हैं। मेरे प्रश्नकर्ताओं ने मुझसे जवाब में जो कुछ भी कहा उससे मेरा विश्वास तनिक भी कम न हुआ और मेरा खयाल है कि मेरे प्रश्नकर्ताओं को मैं भी मेरे विचारों के अनुकूल यदि विश्वास न करा सका तो कम से कम मैं उन्हें यह विश्वास तो दिला सका कि मेरे विचारों के लिए मेरे पास काफी सबूत है और अब यह सरकार के जिम्मे है कि वह यह दिखा दे कि उसकी यह कार्रवाई बंगाल में स्वराज-दल के खिलाफ नहीं है।

असहयोगी व्यक्तियों के साथ असहयोग के मुल्तवी कर देने का कुछ भी संबंध नहीं है। उन्हें सिर्फ अपने विचारों पर कायम रहने का ही हक नहीं है बल्कि यदि वे अपनी खासी राय छोड़ देंगे तो उनकी कुछ भी कीमत न रहेगी। उदाहरण लीजिए, असहयोग के मुल्तवी कर देने का मतलब यह नहीं कि मैं अपने लगाये खिताब मांग लूं, फिर वकालात शुरू कर दूं और सरकारी शालाओं में अपने लड़के भेजना शुरू कर दूं। इस प्रकार जहां बहुतायत असहयोगी अपना असहयोग कायम रख सकते हैं तो वे जिन्होंने असहयोग को एक नीति के तौर पर या महासभा के हुक्म से अख्तियार किया है, चाहें तो असहयोग को छोड़ देने के लिए स्वतंत्र हैं और उनपर किसी भी प्रकार का दोष न लग सकेगा। यदि असहयोग का मुल्तवी कर देना स्वीकृत हो तो फिर तो महासभा के किसी भी सदस्य को यह हक नहीं [illegible]

महासभा की नीति या कार्य के तौर पर असहयोग का प्रचार करे। लेकिन उसको यह अधिकार ज़रूर है कि वह जबतक असहयोग मुल्तवी रक्खा गया है तबतक लोगों को असहयोग न करने के लिए समझावे।

अब कातने की शर्त को लीजिए। मेरी तो यह इच्छा थी कि महासभा के सदस्य सब समय खादी ही पहने और बीमारी या आपत्ति की वजह को छोड़ कर हर महीने २००० गज सूत स्वयं कातें। लेकिन यह शर्त भी बदल कर बहुत मुलायम कर दी गई है। उन्हें सिर्फ महासभा के या राजनैतिक कार्य करते समय ही खादी पहननी चाहिए और जो लोग सूत कातना न चाहें वे भी दूसरे से कता कर भेज सकते हैं। लेकिन इसपर भी उनसे दूर जाने की हद तक जोर देना मेरे लिए असंभव था। पहली बात तो यह थी कि महाराष्ट्र दल को, खद्दर पहनने और कातने की सदस्यता की शर्त बनाने में विधि-विधान संबंधी मुश्किलें थीं और दूसरी बात यह है कि स्वराज-दल वाले सब कातने को और खद्दर पहनने को उतना महत्व नहीं देते। जिस प्रकार मैं मानता हूं कि स्वराज्य पाने के लिए और विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने के लिए वे अनिवार्य हैं उस प्रकार वे उन्हें नहीं मानते हैं। इसलिए उनकी दृष्टि में तो इस बदले गये रूप में खादी और कातने को सदस्यता की शर्त मानना बहुत ही बड़ी रियायत थी। ऐक्य के लिए उन्होंने जो यह रियायत की उसको मैं साभार-स्वीकार करता हूं। जिन लोगों का शर्त के बदलने से असंतोष हुआ है उन्हें यह याद रखना चाहिए कि नाम-मात्र को चार आना की रखने के बदले सदस्यता की ऐसी ठोस और फलद थी शर्त रखना कि जिससे महासभा का हर सदस्य जहां तक कपड़े से संबंध है हिन्दुस्तान को स्वयं अपने ऊपर आधार रखने की आवश्यकता हं ने का अपना विश्वास साबित कर सके और वह भी हिन्दुस्तान की कातने की पुरानी कारीगरी को ताजा कर के और इस प्रकार जहां धन के पहुंचने की बहुत ही जरूरत है वहां धन पहुंचा करके, यह एक बहुत बड़ी प्रगति है।

यह भी कहा गया है कि हर शख्स इस रियायत से फायदा उठावेगा और त्याग-भाव से कातने का खयाल ही नष्ट हो जायगा एवं खादी पहनना सिर्फ महासभा के कार्य करते समय और राजनैतिक मौकों पर ही मर्यादित रह जायगा। यदि ऐसा बुरा नतीजा पैदा होगा तो मुझे बड़ा अफसोस होगा। जिन जिन लोगों का यह आशंका है वे यह तो भूल ही जाते हैं कि महासभा का हरएक सदस्य सूत काते, यह तो सिर्फ एक ही शख्स का खयाल था। उसने अपनी बात इस सुधरे हुए प्रस्ताव के मुकाबले में छोड़ दी है। इसलिए सुधरे हुए रूप में भी उस खयाल का सदस्यता की शर्त के तौरपर स्वीकार होना सचमुच मुनाफा ही है और उससे खुशी से कातनेवाले की और खादी पहननेवालों की संख्या बढ़नी ही चाहिए।

अलावा इसके यह भी याद रखना चाहिए कि सुधार के लिए सिफारिश करनेवाले या बंधन-कर्ता प्रस्ताव करना यह एक बात है और उन्हें सदस्यता की अनिवार्य शर्त बनाना यह बिलकुल दूसरी ही बात है। सदस्यता की शर्त में कुछ भी अनिश्चित बात न होनी चाहिए और वह ऐसी होनी चाहिए जिसका अमल आसानी से हो सके। क्योंकि यदि उसका अमल न हो सके तो सदस्यता का हक ही चला जाता है। सब कामों में सब समय खद्दर पहनना हम में से योग्य से योग्य पुरुषों के लिए भी शायद संभवनीय न हो।

व्यवहार में फिर भी हम यह देखेंगे कि यदि महासभा के कार्य-प्रसंगों पर खद्दर ही पहनना पड़ेगा तो जो लोग दूसरी दूसरी पोशाक का खर्च नहीं उठा सकते उन्हें सब समय सब मौके पर खादी ही पहनना होगा। उत्साही सदस्य के लिए तो हर मौके महासभा के ही प्रसंग होंगे और वह स्त्री या पुरुष महासभा का उदासीन सदस्य होगा जिसके पास चौबीसों घंटे लगातार महासभा का काम न होगा। हमारे रजिस्टर पर हजारों मत देने वाले या सदस्य होने चाहिए। वे सब बहुत सी पोशाकें नहीं रख सकते और न दूसरों का काता सूत ही खरीद कर दे सकते हैं। उन्हें स्वयं कातना होगा और इस प्रकार वे कम से कम आधे घण्टे सूत की मजदूरी राष्ट्र को दे सकेंगे। महासभा के स्वयंसेवक जो खुद नहीं कातते हैं उन्हें दूसरों को कताई की आवश्यकता समझाने में बड़ी मुश्किल मालूम होगी। इसलिए इस प्रस्ताव का अमल प्रामाणिकता और वफादारी के साथ करने पर ही सब बातों का आधार है।

यह समझौता-एक जबरदस्त सिफारिश है और वही होने का दावा वह करता है। मैंने उसपर सिर्फ अपनी ही तरफ से हस्ताक्षर किये हैं। देशबन्धुदास और पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज-दल की तरफ से उसपर हस्ताक्षर किये हैं। इसलिए मेरी और स्वराज दल की तरफ से महासभा के तमाम सदस्यों के प्रति, उसपर विचार करने के लिए और उसको स्वीकार करने के लिए यह सिफारिश की गई है। मैं चाहता हूं कि उसके गुणदोष की दृष्टि से ही उसका विचार किया जाय। मेरी सब से प्रार्थना है कि इसका विचार करते समय वे मेरा खयाल छोड़ दें। जबतक इस सिफारिश की स्वीकृति उस के गुणदोष का विचार करके न की जायगी तबतक जो राजनैतिक ऐक्य हम चाहते हैं और जो होना चाहिए, उसे प्राप्त करने में हमें बड़ी मुश्किल होगी और विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने में भी, जो हमें करना जरूर है बड़ी मुश्किल होगी। और ऐसा बहिष्कार सिर्फ सबके कातने से और खादी पहनने से ही होना संभवनीय है। असहयोग को मुल्तवी कर देना या महासभा की तरफ से स्वराज्य-दल की उचित, हार्दिक स्वीकृति करना या खादी या कताई को, फिर वे स्वयं कातें या दूसरों से कतावें, महासभा की सदस्यता की शर्त स्वीकार करना यदि महासभा के निमंत्रित सदस्यों को पसंद न हो तो उन्हें ये बातें नामंजूर कर देनी चाहिए और बिना हिचकिचाहट के उन्हें अपना निर्णय राष्ट्र के सामने पेश करना चाहिए। किसी भी प्रकार के विचार से मनुष्य का आंतरिक विश्वास दूर नहीं किया जा सकता और न किया जाना चाहिए।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

बी-अम्मा का अवसान

(अली-भाइयों की वयोवृद्ध माता बी-अम्मा के अवसान की खबर भेजते हुए गांधीजी ने नीचे लिखा संदेश हमें भेजा है—)

"गुरुवार को सुबह बी-अम्मा का देहान्त हुआ। अन्तिम समय जिन जिन लोगों को उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उनमें श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा मैं था।

डा० अनसारी आखिरी वक्त तक मौजूद थे। दोनों भाई उनके नजदीक थे। शरीरान्त के समय 'अल्लाह' का नाम-स्मरण हो रहा था। बी-अम्मा ने पहले से ही यह इच्छा प्रदर्शित की थी कि सूफी कबरस्तान में मेरा दफन किया जाय। ऐसा ही किया गया। शोक-पीड़ित जनों में अनेक हिन्दू भी थे और कितने ही लोगों को जनाजे को हाथ लगाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सहानुभूति-सूचक संदेशों की वृष्टि चारों ओर से हो रही है।"

खुलासा

'एसोसीएटेड प्रेस' के देहली वाले प्रतिनिधि ने गांधीजी से अपनी मुलाकात में यह प्रश्न किया—

'श्री दास, नेहरू और आपके हस्ताक्षर से जो समझौता-ऐक्य-घोषणा प्रकट हुई है उसका मतलब यदि सहयोगियों को और दूसरे दलों के लोगों को महासभा में वापिस आने के लिए निमन्त्रण देना है तो ऐसी प्रार्थना प्रकट करने के पहले उन लोगों से सलाह-मशवरा क्यों नहीं किया गया ?'

उत्तर में गांधीजी ने कहा "जबतक स्वराजदल और अपरिवर्तनवादियों में समझौता न हो तबतक ऐसी परिषद् की योजना असंभव थी; क्योंकि ऐसी कोई भी प्रार्थना महासभा के दोनों दलों की एकत्र प्रार्थना होनी चाहिए। सच पूछिए तो अपरिवर्तनवादियों के साथ भी सलाह-मशवरा करके किसी बात का निर्णय नहीं किया गया है। यह सच है कि मैं बंगाल के अपरिवर्तनवादियों से मिला और उनसे इस विषय में बातचीत की; लेकिन इस प्रकार तो मैं श्री सत्यानन्द बोस से भी मिला था और उनसे भी बातचीत की थी। मैंने तो इस समझौते पर उनको राजी करने की भी कोशिश नहीं की, क्योंकि मेरे पास ऐसा कोई भी साधन न था जिससे कि मैं यह मालूम कर लेता कि तमाम अपरिवर्तनवादियों की इच्छा क्या है और उन्हें उससे बांध लेता। इसलिए मैंने यह अच्छा समझा कि मैं स्वयं अपनी ही राय जाहिर करूं और वह जिस किसी लायक हो, लोगों के सामने पेश करूं। यह तो आप देख सकते हैं कि यह समझौता महासभा के बाहर और अन्दर तमाम दलों के प्रति सिफारिश के तौर पर प्रकाशित किया गया है। परिषद् करने का समय तो अब है। आगामी महासमिति में अपरिवर्तनवादी अपनी राय जाहिर करेंगे। महासभा के अध्यक्ष मौ० महम्मदअली ने तो तमाम दलों के प्रतिनिधियों को, यूरपीयन एसोसिएशन के प्रतिनिधियों को भी इस परिषद् में शामिल होने के लिए निमन्त्रण भेजा है।

स्वराजदल और मेरी तरफ से की गई यह सिफारिश सहानुभूति-पूर्वक विचार करने के लिए इस बैठक में पेश की जायगी। स्वराजदल तथा मेरे सिवा और किसीसे भी संबंध रखनेवाली कोई आखिरी बात इसमें नहीं कही गई है। हम लोगों को समझाने के लिए हर शख्स स्वतन्त्र है और मुझे यकीन है कि मैं और स्वराजदल किसी भी ऐसे दूसरे समझौते में बाधारूप न होंगे जो एक तरफ से तमाम दलों को एक मंच पर एकत्र कर सकता हो, हमारे सामान्य ध्येय के प्रति हमारी प्रगति में मदद कर सकता हो, और बंगाल-सरकार की दमननीति का पुरअसर जवाब रखता हो और दूसरी तरफ से मार्ग भूले क्रान्तिकारियों की महत्वाकांक्षा को संतोष पहुंचाता हो तथा उन्हें गलत रास्ते से बचा लेता हो। मैं सब नेताओं से यह प्रार्थना करता हूं कि वे मौलाना महम्मदअली के निमन्त्रण को स्वीकार कर लें और बंबई में होनेवाली इस समिति के विचार-कार्य में मदद करें और उसे मार्ग दिखावें।"

रू. १) में

१	जीवन का सद्व्यय	॥।)
२	लोकमान्य को श्रद्धांजलि	॥)
३	जयन्ति अंक	।)
४	हिन्दू-मुस्लिम तनाजा	≡)
		१॥≡)

मनीआर्डर भेजिए।　　नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

टिप्पणियां

कार्य किस तरह किया जाय ?

इन टिप्पणियों में मैं स्वराज्यदल और मेरे दरम्यान के समझौते पर अग्रलेख में जहां पाठकों को छोड़ दिया है वहीं से फिर विचार करना चाहता हूं। यदि आगामी बैठक में हमारी यह सिफारिश स्वीकृत हो गई तो महासभा में संगठन-संबंधी एक बड़ी क्रांति ही होगी। उसके सदस्य सिर्फ साल भर में एक एक या दो मरतबा मत देने के यंत्र ही न रहेंगे बल्कि वे दिन-प्रति-दिन काम करनेवाले होंगे और मुख्य राष्ट्रीय हलचल में अपना ठोस हिस्सा दे सकेंगे। इससे महासभा सूत उत्पन्न करनेवाली, इकट्ठा करनेवाली और उसका वितरण करनेवाली एक बहुत बड़ी संस्था बन जायगी। यह कार्य बिना पद्धति, मिहनत, समय की पाबन्दी, देश भक्ति, आत्मत्याग, प्रामाणिकता और आवश्यक चतुराई के सुव्यवस्थित नहीं हो सकता। जब तक महासभा इस प्रस्ताव का स्वीकार नहीं करती है तबतक कोई भी शख्स चार आना देकर महासभा का सभ्य बन सकता है। फिर भी यदि आगामी समिति ने सदस्यता की इस शर्त का स्वीकार कर लिया तो प्रान्तिक समितियों को अभी से व्यवस्था करना शुरू कर देना चाहिए। अर्थात् जो लोग आज महासभा के सदस्य हैं उन्हींमें काम शुरू कर देना चाहिए। उन्हें सदस्यता की इस शर्त के बदले जाने की खबर देनी चाहिए और उन्हें कातना सीखने की और चरखा पाने वगैरह की सुविधा कर देनी चाहिए। सूत किस तरह इकट्ठा किया जाय और उसका क्या उपयोग किया जाय यह प्रश्न विचारना तो अभी बाकी है। एक प्रस्ताव के सिवा जो महासभा के कार्यकर्ताओं को ही बंधनकर्ता है, महासभा के किसी भी प्रकार के प्रस्ताव के बिना सिर्फ इन पत्रों में लिखे गये लेखों से ही आज सात हजार स्त्री पुरुष स्वेच्छा से कात रहे हैं। उनकी संख्या बढ़ रही है। इसलिए यह मामला बिल्कुल ठीक होगा कि यदि महासभा सदस्यता की इस शर्त को स्वीकार करले तो थोड़े ही महीनों में एक लाख कातनेवाले हो सकेंगे। यदि प्रत्येक सदस्य का काता सूत औसत दर्जे २० अंक का ५ तोला मान लें तो महीने में ३१ ¼ मन सूत होगा, अर्थात् ४५ इंच अर्ज की ६ गज लम्बी १२५७० साड़ियां या साड़ियां होंगी, और जब हम यह जानते हैं कि सूत कातने तक की मिहनत मुफ्त मिली है तब यह धोती या साड़ियां बाजार में दैसी किसी भी चीज के साथ बराबरी कर सकेंगी। यदि एक राष्ट्र सिर्फ इसी एक राष्ट्रीय कार्य के पीछे अपनी तमाम शक्ति लगा देता तो विदेशी कपड़ों का सम्पूर्ण बहिष्कार करने में जरा भी कठिनाई न होती और सच भी ऐसे मार्ग से जो अहिंसात्मक और बड़ा सम्मानास्पद है।

आगामी समिति

लेकिन आगामी समिति पर ही सब आधार है। यह केवल महासमिति की बैठक ही नहीं है लेकिन सब प्रान्तिक समितियों और दूसरी सभाओं या एसोसिएशनों के प्रतिनिधियों की यह बैठक होगी। मैं आशा करता हूं कि मौलाना महम्मदअली के निमंत्रण का जवाब बड़ा ही उत्साहपूर्ण मिलेगा। इस संयुक्त समिति को सिर्फ इस प्रश्न का ही निर्णय नहीं करना है कि महासभा में जो फूट पड़ी है उसको दूर करें लेकिन दूसरे प्रसिद्ध नेताओं को महासभा में वापस आने के लिए समझाना भी उसीका काम है। इस समिति को बंगाल के दमन के जवाब में भी एक प्रभावकारी कार्यक्रम बनाना होगा। अपनी ध्येय पर पहुंचने के मार्ग-संबंधी कितना ही मतभेद हमारे अन्दर क्यों न हो, लेकिन गैर जिम्मेदार सत्ता को उखाड़ने के संबंध में हमारे अन्दर दो मत नहीं है।

जबतक एक अकेले के हाथ की हथेली में, फिर चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, लाखों मनुष्यों के जान, माल और इज्जत रहते हैं तबतक हिन्दुस्तान स्वतंत्र नहीं हो सकता। ऐसी व्यवस्था बिलकुल कृत्रिम अस्वाभाविक और असभ्य है। स्वराज्य प्राप्त करने के पहले इसका अन्त होना परमावश्यक है। (यं. इं.)

कलकत्ते में गांधीजी

(पृष्ठ १७ से आगे)

है। कोई हिन्दू यदि आ कर यह कहे कि हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य को मैं बगैर एक उद्देश के रखना नहीं चाहता तो क्या मैं उसकी बात सुनूंगा? इसी प्रकार मतदाताओं की शर्त में यदि मिल का कपड़ा रक्खा जाता तो उसे भी मंजूर न कर सकता-क्योंकि ऐसा करके तो मैं खादी का नाश ही कर डालता।

प्र०—एक बार आप कहते थे कि एक सरकारी वकील की अपेक्षा ईमानदार बूट साफ करनेवाला अच्छा है। आज तो आप वकीलों और बड़े आदमियों के बनने के लिए तैयार हो गये हैं।

उ०—हां, आपने यह ठीक कहा। मैंने जो कहा था वह अक्षरशः ठीक कहा था। असहयोग आज है कहां? यदि असहयोग आज भी आला दर्जे पर हो, यदि बूट पालिश करनेवाले जैसे लोग भी पूरा असहयोग करते हों तो वे सहयोगियों को दूर रख सकते हैं। पर मैं कोई महासभा का धनी-धोरी नहीं हूं। मैं असाध्य शर्तों को रख कर नहीं, बल्कि सहज साध्य शर्तें रख कर ही लोगों का नेतृत्व कर सकता हूं। यदि हमारे आपस में फूट न होती, यदि जहर न फैला हुआ होता तो मैं पहले की ही तरह अपना डंका बजाता। पर अब तो वह कुछ रहा नहीं। इससे मैंने सोचा कि मुझे खामोश रहना चाहिए और लड़ाई की बात भूल जाना चाहिए।' "

नये दोस्त

इस तरह अपरिवर्तनवादियों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न कर के गांधीजी लौटे। एक अग्रगण्य सज्जन मुझसे कहते थे—'यहां का वायु मण्डल इतना विषैला हो गया है कि स्वराजी और अपरिवर्तनवादी एक दूसरे को शत्रु की दृष्टि से देखते हैं। इससे गांधीजी के 'प्रेम-पथ' का ख्याल इन्हें कैसे आ सकता है? पर गांधीजी की कही तमाम बातों पर यदि विचार करें तो स्वराजियों के साथ एकमत होने में कुछ भी कठिनाई नहीं मालूम होती। जिस दिन इकरारनामे पर दस्तखत हुए उसके दूसरे दिन जाते समय सब लोग गांधीजी के पास आये और पण्डित मोतीलालजी सबकी तरफ से कहने लगे—'महात्माजी, अब तो आप हमें चरखे का सबक सिखाइए—हम आपसे चरखा कातना सीख कर जावेंगे।' ता. ४ को जब पहले पहल मिले तब श्री केलकर ने कहा था—'हम एक जगह बैठे, पुराने दोस्त हैं न?' गांधीजी ने तुरंत कहा—'नहीं पुराने दुश्मन, पर नये दोस्त।'

इस नई दोस्ती के इतिहास को अब यहीं खतम करता हूं।

अंगरेजों और भारतवासियों की मैत्री

इस इतिहास के मुताबिक, कलकत्ते की मुलाकात के मुताबिक और भी बहुत-सी बातें लिखने लायक हैं। देशबंधु दास का मकान हमारे ठहरने की जगह थी। एक तरफ तो स्वराजियों की सभायें होती रहती थीं—और दूसरी तरफ गांधीजी से मिलने अनेक लोग आते थे। यह सब पचरंगी मेला था। बंगाली बहनों का शुमार न था और देशी भाइयों की भी गिनती न थी। नीचे हजारों मनुष्यों की भीड़ लगती थी। वे सिर्फ दर्शन करके शोर-गुल मचाना बन्द करते थे। लेकिन ऊपर भी इतने लोग आते थे कि दूसरी मुलाकात करना असंभव हो जाता। विदेशियों का भी ठाठ मेला लगा था। दो अंग्रेजों ने बड़ी देर तक चर्चा की थी, एक फ्रेंच रमणी, एक चीना सज्जन भी मिलने आये थे। दूसरे अनेक विदेशी सिर्फ दर्शनों के लिए ही आये थे। कलकत्ता छोड़ते समय दो अंग्रेज बहनें स्टेशन पर केवल परिचय करने के लिए और हाथ मिलाने के लिए आई थीं। एक अमेरिकन बहन हस्ताक्षर लेने आई थी। रास्ते में एक डेनमार्क की बहन से ट्रेन में मुलाकात चाही थी। इस प्रकार मैत्री का मन्त्र इतने अधिक स्थानों में पहुंच गया है कि सब मित्र बनाना चाहते हैं। जो दो अंगरेज आये थे वे भी मैत्री—गांधीजी की खासी मैत्री नहीं, भारतवासियों की और अंगरेजों की मैत्री किस तरह हो जाय, इसीका विचार करने के लिए आये थे।

उनमें से एक सज्जन से गांधीजी ने कहा—"दो तीन बातें सिद्ध हो जाएँ तो मैत्री होना आसान है। हिन्दुस्तान को स्वावलंबी बनना चाहिए और उसके लिए आर्थिक प्रश्न तय कर लेना चाहिए। विदेशी कपड़ा जो हिन्दुस्तान को परतंत्र और निःसत्व बना रहा है यदि चला जाय तो उसमें निर्भयता के साथ खड़ा रहने की ताकत आवेगी। आपका यह कहना मैं मानता हूं कि अंगरेजों और हिन्दुस्तानियों के बीच केवल असहयोग की कल्पना तक नहीं की जा सकती। सदा मनुष्य का आधार मनुष्य पर ही रहेगा। लेकिन मैं दोनों के संबन्ध को समान करना चाहता हूं। यदि दोनों के संबन्ध में इन्सानियत हो तो मुझे सन्तोष होगा। आज आप लोग हिन्दुस्तान के बलिदान पर अपनी जेब भरने आते हैं। इसलिए हमारा और आपका हित परस्पर विरुद्ध है। यहां एक दूसरे का खून चूस कर जीता है। इस अस्वाभाविक संबन्ध के दूर होने पर ही मैत्री की नींव डाली जा सकती है। लेकिन आज तो अंगरेज अपनेको भारतीयों से ऊंचे दरजे का मानते हैं। यह ख्याल दूर हो जाना चाहिए।

अब हिन्दू-मुसलमान ऐक्य की बात लीजिए। यह कहा जाता है कि अंगरेज भी इसे चाहते हैं, लेकिन इस विषय में भी सदा शंका ही बनी रहती है। इस विषय में अंगरेज जो कहते हैं वह उनके मन की बात नहीं, यह संदेह हमेशा बना रहता है। अंगरेजों को यह ऐक्य साधने में अपना हित मानना चाहिए, उसीमें कृतकृत्यता माननी चाहिए।

आखिरी बात शराब के कर की है। इसे बंद कराने के लिए अंगरेजों को जी-जान से कोशिश करनी चाहिए। क्योंकि यह कर अनीति-मूलक है। यों कहा जाता है कि इसके द्वारा शिक्षा दी जाती है। मैं कहता हूं कि शिक्षा देना भले ही बंद हो जाय, शराब के कर से यदि हिन्दुस्तान का रक्षण होता हो तो भले ही वह भी बंद हो जाय, किन्तु शराब का कर तो बन्द होना ही चाहिए।

और अब इससे मैं मूल बात पर आता हूं। अंगरेजों को भारतवासियों पर इतना बड़ा अविश्वास है कि उन्होंने करोड़ों का खर्च फौज के लिए उसपर लाद दिया है। यदि अंगरेज लोग सिर्फ भारतवासियों की भलमन्सी पर आधार रक्खें तो परदेशी फौज की कुछ जरूरत न रहेगी। लेकिन आज तो चारों ओर अविश्वास भरा हुआ है—सब जगह फौलाद की दिवारें खड़ी हैं।

यदि इतनी बातों का निर्णय हो जाय तो मैं स्वराज की योजना वगैरह की सब बातें छोड़ दूं। क्योंकि फिर स्वराज मिलने में सिर्फ इने-गिने दिन ही रह जायगे।"

वे सब सुन रहे थे। उन्होंने ऊंच-नीच के ख्याल की बात कुबूल की। उन्होंने कहा "ऐसा ख्याल बहुत अंशों में है, लेकिन यह हृदय का द्वेष नहीं है स्वभाव का दोष है। द्वीप में रहनेवालों के लिए स्वाभाविक-संकुचितता से अधिक कुछ नहीं है। खराब

के कर की अनीति-मूलकता को भी उन्होंने कुबूल किया। सिर्फ कपड़े की बात और फौजी खर्च की बात उनका ठीक न जंची। क्योंकि वे इस बात को मानते थे कि ईश्वर जरूरत पड़ने पर एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के सिर पर रख कर उसका भला करने के लिए पैदा करता है और यह हक अंगरेजों को मिला हुआ है।

परन्तु इन महाशय को तो बंगाल का नया मामला हैरान किये था। गांधीजी को उन्होंने एक नई विधा सुझाई। 'इस समय जो अराजकता व्याप्त है, जो हिंसा व्याप्त है, उसकी आप निन्दा क्यों न करें? यदि आप इसकी भर्त्सना करें तो इस अंगरेजों और योरपियनों को अभयदान मिल जाय, और मैत्री करने की इच्छा हो।'

'पर मैं तो बराबर निन्दा करता आया हूं। वक्त-बेवक्त मैंने बराबर अपने विचार प्रदर्शित किये हैं।'

'सिर्फ आप अकेलेही ने। दूसरों ने कहां ऐसा किया है? मि. दास ने ऐसा कहां किया है?'

'वाह! मि. दास ने नहीं? उनके तो कोई एक दर्जन भाषण मैं ऐसे दिखा सकता हूं जिसमें उन्होंने अराजकता और हिंसा की घोर निन्दा की है।'

'मैं भी इसके खिलाफ उनके विचार पेश कर सकता हूं। पर बात यह नहीं है। आज आप हमारी इतनी दिल्जमई नहीं कर सकते?'

'हां, क्यों दिल्जमई न करावें? मि. दास भी आपको विश्वास दिलावें?'

'पर मैं चाहता हूं कि आप सार्वजनिक सभा करके हमें विश्वास दिलावें। इसका प्रभाव अच्छा पड़ेगा और फिर एक बात पर अंगरेज और हिन्दुस्तानी एक हो सकेंगे।'

'मुझे अन्देशा है कि इससे आपको संतोष न हो सकेगा। ऐसे विश्वास से न आपका काम चलेगा न हमारा। इससे कहीं मैत्री की शुरूआत हो सकती है? इतना तो हम अपने स्वार्थ के लिए भी करेंगे। हम यों अहिंसा—नीति को चाहे मानते हों या न मानते हों, पर हमारे हित के लिए तो हम उसे अवश्य स्वीकार करेंगे। सो केवल इससे आपको संतोष न हो सकेगा। और आप जिस बात को भुला रहे हैं उसका फल, आप जानते हैं, क्या होगा? इसका फल यही होगा कि आज सरकार ने जिस अराजकता का अवलंबन किया है, जिस अनीति का आश्रय किया है, हम उसका समर्थन करते हैं, राष्ट्र की स्वतंत्रता पर जो उसने गाढ़ हमला किया है, उसकी हम ताईद करते हैं।'

'परन्तु सरकार की स्थिति को आप नहीं समझते। गहरी तहकीकात के बाद ही और भारी अराजक-संस्था का निश्चय होने पर ही उसने ऐसी कार्रवाई की है।'

'निश्चय? पुलिस का जो निश्चय सो लाटसा० का निश्चय। मुझे दृढ़ विश्वास है कि जो लोग गिरफ्तार किये गये हैं उनमें से बहुतों का अराजक-दल से कुछ भी संबन्ध नहीं। अराजकदल तो अछूता ही रहा है—सरकार ने तो स्वराज्य-दल पर ही हमला किया है; क्योंकि वह उसके लिए कांटा हो रहा है'

'स्वराजी नहीं; बल्कि उनके काम। गोपीनाथ साहावाले प्रस्ताव ने उस दल को मजबूत कर दिया है और गति दी है'

'मैं नहीं मानता कि गति दी है। उस प्रस्ताव के खिलाफ महासमिति ने प्रस्ताव किया है। और यह प्रस्ताव न होता तो भी गोपीनाथ वाले मूल प्रस्ताव बाद तो एक भी अत्याचार नहीं हुआ'

'पर महासमिति जैसा प्रस्ताव क्या आज नहीं कर सकते?'

'आज उसका मौका ही नहीं है। आज यदि किसीने अराजकता या हिंसा का प्रस्ताव किया होता तो उसकी आवश्यकता अवश्य थी। परन्तु अकारण ही ऐसा प्रस्ताव करना मानों सरकार की जो-हुक्मी की ताईद करना ही है।'

'अच्छा, यह तो ठीक। पर यदि अराजक लोग राज्य के लिए एक खतरा होने लगें तो सरकार क्या करे? आप ऐसी हालत में हों तो क्या करेंगे?'

'मैं, मुझे माफ कीजिएगा, यदि मैं गवर्नर होता और मुझपर लोगों का विश्वास होता तो मैं सुर्ख कानून बनाने के बदले लोक-नेताओं को बुलाता, उनके सामने अपने पास आई बातें पेश करता और उनसे पूछता कि अब मुझे क्या करना चाहिए। यदि लोगों का विश्वास मुझपर न होता तो मैं कुछ भी न करता।

मैं चाहता हूं कि आप मेरी बात को समझ लें। आप जो तरीका बताते हैं उससे मैत्री नहीं हो सकती। पर मैं जो बात बताता हूं उससे होगी। इंग्लैंड का संबंध आज हिन्दुस्तान के साथ अतिशय अस्वाभाविक है। इस संबंध का सुधार करने में अंगरेजों का तो हित है, इससे उनके लिए यह सहज और सुगम है। यदि अंगरेजलोग इस संबंध को उलटा दें तो इससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, उनके प्रति हिन्दुस्तानियों का ममत्व बढ़ेगा—सिर्फ इससे उनकी हानि उसी बात में होगी जिसपर उनका कभी अधिकार था ही नहीं! आप तहकीकात की कहते हैं। सुभाष बोस की कौन तहकीकात की गई थी? अंगरेजों के साथ तो ऐसा व्यवहार कभी नहीं हुआ है। पार्नेल पर बड़े बड़े जुर्म लगाये गये थे। क्या वह अदालत में हाजिर नहीं किया गया था? उसके लिए तो कमिशन बैठा था। बम्बई के एक कमिश्नर—लार्ड—पर तो घूसखोरी के जबरदस्त इल्जाम लगे थे। परन्तु मामूली अदालत में उसपर मामला चलाना मानों उसकी हतक करना था न? सो उसके लिए कमिशन बैठा। मैं कहता हूं कि सुभाष बोस उसीके जैसा—उसीकी कोटि का शख्स था—वह न तो अदालत में पेश किया जाता है, न कुछ तहकीकात ही होती है— पुलिस उसे नाहक बिना किसी वजह के पकड़ कर हवालात में रख देती है!'

'सुभाष बोस बढ़िया आदमी थे। अच्छे हाकिम थे। योरपियन लोग भी उन्हें चाहते थे। परन्तु संभव है, अराजक लोगों के साथ उनका संबंध हो भी और न भी हो। पर यदि जरा भी शक हो तो फिर उन्हें गिरफ्तार करना ही लाजिमी है। और आप यह तो नहीं न चाहेंगे कि तमाम कारण और तमाम कार्रवाई प्रकाशित करनी चाहिए?'

'नहीं, भले ही। पर मुकदमा तो प्रकाश्य-रूप से अदालत में अवश्य चलाना चाहिए। और बड़े बड़े जज भी क्या करते हैं? आपको पता है कि पंजाब के मुकदमों में बड़े बड़े जज नियत थे और उन्होंने कैसे कैसे निर्दोषों को सजायें ठोंकी थीं? लाला हरकिशनलाल, गरीब भक्त जैसे काशीनाथ राय,—इन्हें कितनी सजायें ठोंकी? पंजाब की रिपोर्ट पढ़ देखिए। उसकी एक भी बात और एक भी इल्जाम का निराकरण अभी तक नहीं हुआ है।

और कितनी ही बातें होती रहीं। अन्त को गांधीजी ने कहा—मैं खुद ही अराजकता और हिंसा का शत्रु हूं। मैं इसे निर्मूल करूंगा और अपने इस काम में लाखों और करोड़ों को शामिल करने का प्रयत्न करूंगा—इतना विश्वास मैं आपको दिलाता हूं। पर आपको कहे देता हूं कि इस निश्चय से न आपका फायदा है न मेरा। अंगरेजों को हिन्दुस्तानियों के साथ अपना संबन्ध सोचना और बदल करना ही पड़ेगा।

(अपूर्ण)

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देसाई

सत्य-परीक्षा

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रति का	„ -)
विदेशों के लिए	„ [illegible]

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक १५

मुद्रक-प्रकाशक	अहमदाबाद, अगहन बदी १२, संवत् १९८१	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
वेणीलाल छगनलाल बूच	रविवार, २३ नवम्बर, १९२४ ई०	सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

एक को सो देश की

बंगाल की लाज सारे देश की लाज है। 'एक हिन्दुस्तानी की लाज सारे देश की ही लाज है' इस बात को हम जिस दिन समझ जायंगे उसी दिन स्वराज्य हमसे दूर न रहेगा। यह भाव व्याप्त तो खूब है, परन्तु अबभी उसका उतना प्रचार नहीं हुआ है, जितना कि आवश्यक है। यदि मेरा भाई संकट में हो, यदि उसकी लाज बिना कारण जाती हो तो मैं सहानुभूति का प्रस्ताव पास करके न बैठ रहूंगा, बल्कि उसकी मदद के लिए जा पहुंचूंगा। अभी हमारे अन्दर देश के प्रति ऐसी भावना जाग्रत नहीं हुई है। काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक यदि किसी भी भारतवासी को दुःख हो और अब उसको देखकर करोड़ों के मन में यह भाव उत्पन्न हो कि यह हमारा ही दुःख है तब बंगाल-सरकार की राजनीति को निर्मूल करने का उपाय हमें सहज ही सूझ सकेगा। हम अंधेरे में भटक रहे हैं। क्योंकि हमारी समवेदना इतनी प्रज्वलित नहीं है। जब शुद्ध भाव का उदय होगा तब उसका प्रकाश हमें अपना रास्ता दिखा देगा। हम आज शिथिल हो रहे हैं। जब सहानुभूति और सहृदयता-रूपी बिजली हमारे अन्दर चमक उठेगी तब हमारी गति को महान् वेग मिल जायगा। हम बिखरे हुए दिखाई देते हैं। आपस में लड़ रहे हैं। जब तक सहानुभूति-रूपी गोंद की चिकनाई हमारे अन्दर पैदा होगी तब हम एक-दूसरे से इस तरह गले मिलेंगे और चिपक जायंगे कि हम अनेक होते हुए भी एक-रूप मालूम होंगे।

यदि हमारा भाई भूखों मरता हो और हमें यह मालूम हो कि वह यदि चरखा काते तो उसे आजीविका मिल सकती है, परन्तु वह आलस्य से कातता नहीं है और यदि हम खुद कात कर उसे पदार्थ-पाठ पढ़ावें तो वह कातेगा तो हम जरूर चरखा चलावेंगे। ऐसी हालत आज हिन्दुस्तान में करोड़ों लोगों की है। फिर भी उन्हें पदार्थ-पाठ पढ़ाने के लिए भी आधा घण्टा चरखा कातना हमें भार-रूप हो जाता है। क्यों? हमारे अन्दर अभी एक दूसरे के प्रति भ्रातृ-भाव नहीं है।

यदि हम सब विदेशी कपड़ा छोड़ दें और चरखा चला कर भारत के लिए आवश्यक कपड़ा तैयार कर दें तो यह सल्तनत अधिकांश में स्वार्थ रहित हो जाय। यह जानते हुए भी हममें से कितने ही लोग कातने से इनकार करते हैं; क्योंकि हमारी सहानुभूति अभी तीव्र नहीं हुई है।

सच पूछिए तो कितने ही शहरों में हिन्दू-मुसलमानों में भ्रातृ-भाव है ही नहीं। ऐसी हालत में 'हमारे देश' की पुकार करोड़ों कण्ठों से निकल ही नहीं सकती। और जबतक ऐसी स्थिति न होगी तबतक स्वराज्य की आशा रखना फजूल है। जिस रास्ते से स्वराज्य मिलेगा, उसी रास्ते से बंगाल की राजनीति बंद हो सकती है, यह बात हम सब समझ सकते हैं। अराजक पक्ष की अराजकता स्वराज्य के लिए है। वह निरर्थक है। किन्तु अराजकता के रोग का कारण स्वराज्य का अभाव है। सरकार अपनी सत्ता भरसक छोड़ना नहीं चाहती। यदि स्वराज्य हो तो ऐसी अराजकता नहीं हो सकती। इसीसे मैं कहता हूं कि यदि चरखा स्वराज्य का साधन है, यदि हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य स्वराज्य का साधन है, तो सरकार की दमननीति दूर करने का साधन भी वही है।

और यदि हिन्दू-मुसलमान में भ्रातृ-भाव नहीं है तो अस्पृश्य हिन्दू और दूसरे हिन्दुओं में वह कहां है? भाई-भाई के बीच अस्पृश्यता कैसे हो सकती है? एक भाई मिठाई खाय और दूसरा उसकी जूठन, यह नहीं हो सकता। फिर भी अस्पृश्यता दूर करने में कितनी कठिनाइयां पेश आती हैं, यह वही लोग जानते हैं जिन्हें अस्पृश्यता-निवारण का काम करना पड़ता है।

जहां ऐसी स्पष्ट हालत मौजूद है, जहां बीमारी और उसके इलाज का ज्ञान है, वहां इलाज को काम में न लाना और अधीर हो कर दूसरे इलाज की खोज में पड़ना मानों बीमार का सत्यानाश करना है।

कितने ही लोग कहते हैं—लोग तो धूम-धड़का चाहते हैं। धूम धड़के से कुछ काम भले ही बनता हो, परन्तु दुनिया में आजतक किसी देश ने शोर-गुल मचा कर आजादी प्राप्त नहीं की है। हिन्दुस्तान भी कभी हासिल नहीं कर सकता। हमारा यह स्पष्ट और निश्चित कर्तव्य है कि हम धूम-धड़के को छोड़ कर अपने काम से लगें—उसीमें मशगूल रहें। जो लोग इस बात को जानते हैं वे यदि औरों का मुंह न देखते अपने कर्तव्य-पालन में लग जायंगे तो उसी हदतक स्वराज्य के नजदीक पहुंचेंगे। इसीलिए, देश में और लोग जो चाहें करते रहें, जो इस बात को जानते हैं वे यदि अपने कर्तव्य में दृढ़ रहेंगे तो सारा देश उनके रास्ते चलेगा, इसमें मुझे जरा भी शक नहीं है। क्योंकि इस देश की मुक्ति का दूसरा उपाय है ही नहीं।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचन्द गांधी

विरोधी मित्र

जितनी हम अनुकूल मित्र से शिक्षा ग्रहण करते हैं उससे अधिक शिक्षा हमें बहुत बार विरोधी मित्रों से मिलती है। परन्तु उसमें शर्त यह है कि हमारे पास अपनी त्रुटियोंको सुनने और समझने की सहिष्णुता और धीरज होना चाहिए। मुझे विश्वास है कि ये दोनों बातें मुझमें हैं। इससे मैं अपने कितने ही टीकाकारों से बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण कर पाया हूं। ऐसे एक टीकाकर्ता का एक पत्र यहां देता हूं—

"आपके उपवास के समय यहां के लोगों की तरफ से एक तार मैंने आपके नाम १३-१०-२४ को भेजा था और आपसे प्रार्थना की थी कि कुछ संदेश भेजिए। पर अफसोस है कि आपने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया और उसे कूडे की टोकरी में डाल दिया। इससे मालूम होता है कि आप चाहे कैसे ही हों पर हैं आखिर हिन्दुस्तानी ही। यदि आपकी जगह कोई योरपियन या सरकार होती तो वह जरूर उत्तर देती। हमारे और उनके काम करने की रीति में बडा फर्क है। आप और हम अभी स्वराज्य के लायक नहीं हुए। अपनी वर्तमान स्थिति को देखते हुए यदि स्वराज्य मिल जाय तो हमें बडी हानि पहुंचेगी। पहले तो राज्य-कार्य का सञ्चालन करना और राज्य को कायम रखना हमें जानना चाहिए। स्वराज्य मिलने के बाद स्वराज्य-संचालन-विद्या सिखाने की पाठशालायें नहीं खोली जा सकतीं। आप तो भोले-भाले हैं। आपके आस-पास के लोग ऐसे नहीं मालूम होते। आप हर हलचल में कदम पीछे हटाते हैं। भारत में व्यापार की हालत बहुत मन्द है। हमारे ही व्यापारी, उनके नौकर तथा देश तबाह हो गया है। इसके लिए आप और आपका आन्दोलन ही जिम्मेवार है। इंग्लैंड को कुछ भी नुकसान न हुआ। खादी पर लोगों का विश्वास नहीं। वह मोटी होती है, जल्दी मैली हो जाती है, धोने में तकलीफ होती है और निकम्मेपन की निशानी है। साबुन के ज्यादा खर्च से उलटी महंगी पडती है। चरखा चलानेवाला राज्य चलाने के लिए अयोग्य है। इस महंगी के जमाने में रोजाना २-३ आने मिलने से कुछ काम नहीं चल सकता। सरकारी पाठशालायें छोड कर लडके इधर उधर आवारा भटते हैं। और आपके आन्दोलन से सिर्फ नाफरमानी और बात बात पर कानून भंग करने की टेव के सिवा दूसरा कुछ हासिल न हुआ। स्वराज्य मिलने के बाद भी यदि लोग आज की शिक्षा के अनुसार आपका कानून तोडेंगे तो आप क्या करेंगे? हिन्दू मुसल्मान-ऐक्य भी मुझे असंभव मालूम होता है। आप महम्मदअली और शौकतअली की सुहबत छोड दीजिए। स्वयंमन्य नेताओं के प्रस्ताव तो अच्छे मालूम होते हैं, पर उसका असर कुछ नहीं होता। नेतालोग कुछ हुल्लड करने नहीं जाते। हुल्लड करनेवाले लोग तो और ही होते हैं। आपके उपवास का भी कुछ असर न हुआ। डाक-विभाग के नौकरों ने वेतन बढाने के लिए हडताल की, उसे प्रोत्साहन मिला। इससे सारे देश के नये खर्च का भार लदा और डाक के भाव बढ गये। स्वराज्य तो जब मिलना होगा तब मिलेगा। परन्तु देश तो आज दुःखी हो रहा है। सरकार कुछ विलायत से रुपया ला कर तो खर्च करेगी नहीं। वह तो खर्च का भार हमारे ही सिर पर डालेगी। मैं तो मानता हूं कि आप अब रिटायर हो जायं और हिमालय में जाकर ईश्वर-भजन में अपने दिन बितावें। लोग अब आपकी बात कर आपके पीछे चलने के लिए तैयार नहीं हैं। महात्माजी आपकी सलाम तरंगें अपने ही पास रहने गोपीनाथ बा॰

'पर महात्माजी,

'आज उसका •

महात्माजी गा हिंसा का ৮

मैं मानता हूं कि यह पत्र निर्मल भाव से लिखा गया है। लेखक को गुस्सा तो आ गया है पर उन्होंने वही लिखा है जो वे मानते हैं। उन्होंने काकतालीय-न्याय का प्रमाण माना है। उन्होंने जो तार किया उसका जवाब उन्हें न मिला। इससे उन्हें मेरी सारी करनी निन्द्य मालूम होती है। मैं तो यह मानता आया हूं कि पत्रों के जवाब मैं बहुत नियम-पूर्वक देता हूं और मेरे आस-पास जो मेरे साथी रहते हैं वे दुष्ट नहीं होते, बल्कि सत्य अनुसरण करने का प्रयत्न करनेवाले होते हैं। परन्तु कोई मनुष्य चाहे कितना ही नियम-पूर्वक क्यों न रहता हो, वह अपने तमाम पत्रों और तारों का जवाब नहीं दे सकता। उपवास के समय मिले तमाम पत्रों और तारों का देखना मेरे लिए अशक्य था। ऐसी समझ में आने लायक बात भी पूर्वोक्त लेखक न समझ सके, यह दुःख की बात है।

असहयोग चल रहा है, और इधर भारत में व्यापार भी मन्द है, इसलिए उसकी मन्दता का कारण है असहयोग। असहयोग का प्रवर्तक हूं मैं, इसलिए उसकी जिम्मेवारी मेरे सिर पर। यह है पत्र-लेखक दलील। मैं इससे उलटी दलील पेश करना चाहता हूं। लोगों ने असहयोग को पूरा पूरा नहीं अपनाया, उन्होंने चरखा-धर्म का पूरा आदर नहीं किया। इसीसे दुनिया में प्रवर्तित व्यापार की मंदी का शिकार भारतवर्ष भी हो गया। लोग असहयोग का मर्म न समझ पाये, क्योंकि पत्र लेखक की तरह अधीर और जल्दबाज लोग इस देश में बहुत बसते हैं। इससे भारतवर्ष को दुःख सहन करना पडता है। यदि वे धीरज रख कर असहयोग का मर्म समझें और उसका पालन करें तो हिन्दुस्तान आज मुक्त हो जाय।

फिर इस लेखक ने बेचारी निर्दोष खादी पर प्रहार किया है। उसका जवाब तो बहुत बार दिया जा चुका है। फिरभी लेखक तथा उनके जैसे अ-श्रद्धावान् लोगों के लिए फिर लिखता हूं।

अकेली खादी ही मैली नहीं होती, हर तरह का सफेद कपडा मैला होता है। हां, खादी जरा मोटी होती है, इसके धोने में जरा तकलीफ होती है। पर अगर पश्चिम की नाजुक रहन-सहन से हमारे अन्दर नजाकत न आ गई होती तो खादी को धोने में हम कष्ट नहीं, उलटा आनन्द मान लेते। फिर पहननेवाला कपडे कम पहनता है। इससे आगे बढ कर मैं तो यह भी कहूंगा कि जिन्हें मोटी खादी दुःखदायक मालूम होती है वे महीन सूत कातकर कपडा बुनवा लें। इससे खादी मलमल जैसी हो जायगी और उसका खर्च मलमल से कम पडेगा। क्योंकि कातने तक की क्रिया का तो कुछ भी खर्च न पडेगा। जब से ऐच्छिक सूत कातने की हलचल शुरू हुई है तब से जो महीन खादी पहनना चाहता हो, उसे उसके मिलने की सुविधा हो गई है जो अपने आलस्यवश महीन सूत न कातेंगे उन्हें खादी पर मोटेपन को दोष लगाने का अधिकार नहीं रह सकता। यदि यह ऐच्छिक कातने का क्रम कायम रहेगा और फैलेगा तो बाजार में भी महीन खादी जितनी चाहिए, मिल सकेगी।

चरखे की हलचल का उद्देश है आमदनी का बढाना। वह अन्नपूर्णा है। पत्रलेखक वकील हैं। उन्हें गरीबों की हालत की कल्पना नहीं हो सकती। यदि वे गरीब गांवों में घूमें तो उन्हें पता लगेगा कि एक पैसा भी कंगाल के लिए स्वागत-योग्य हो जाता है। करोडों मजदूरों को दिन में एक आना भी नहीं मिलता है। उनके लिए तो चरखा कामधेनु हो जाता है। इसके एक साक्षी आचार्य राय हैं।

लेखक का ना-फरमानी पर किया आक्षेप विचार करने योग्य है। उसमें बहुत सत्य है। लोग जिस प्रकार असहयोग के प्रथम पद 'शान्तिमय' को नहीं समझे उसी प्रकार 'कानून भंग' के प्रथम पद 'सविनय' को भी नहीं समझे। इससे बुरे परिणाम पैदा हुए हैं, इसमें शक नहीं। लोगों ने मान लिया है कि जो चाहे उसी हुक्म को, जो चाहे उसी वक्त भंग करने का हमें अधिकार है। यह सविनय भंग नहीं, किन्तु उद्धत, अविनय और नाशकारक भंग है। वह खड्गधारी बलवे से भी कुछ अंश में हानिकर है।

पर यह सविनय भंग की खामी नहीं। नाहक भंग करनेवाले की समझ का दोष है। नये आन्दोलन में ऐसी बे-समझी हुआ ही करती है। अपूर्ण मनुष्यों में जब अपूर्ण मनुष्य काम करता है तब ऐसी अपूर्णतायें होना सम्भवनीय ही है। परन्तु यदि दोनों पक्ष-सुधारक और समाज-निर्मल भाव से भूल करें तो यह ईश्वरी नियम है कि वह भूल अपने आप सुधर जाती है। जहां जहां मुझे दोष दिखाई देता है वहां तहां प्रायश्चित्त करता हूं। लोग भी सच्चे दिल से भूल सुधारते हैं। लेकिन उनमें एक दल ऐसा है जो जान-बूझकर बीच में पड़ता है और लड़ाई को नुकसान पहुंचाता है। इसका इलाज है इन नये दिखाई देनेवाले सिद्धान्तों का अधिक प्रचार और अधिक ज्ञान। फिर भी हम सब को सावधान करने के लिए मैं लेखक के उद्गारों का स्वागत करता हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

बी–अम्मा

यह मानना मुश्किल है कि बी–अम्मा का देहान्त हो गया है। बी-अम्मा की उस राजसी मूर्ति को या सार्वजनिक सभाओं में उनकी बुलन्द आवाज को कौन नहीं जानता? बुढ़ापा होते हुए भी उनमें एक नवयुवक की ताकत थी। खिलाफत और स्वराज्य के लिए उन्होंने अथक यात्रायें कीं। इस्लाम की कट्टर अनुयायिनी होते हुए भी उन्होंने देख लिया था कि इस्लाम का त्राण, जहांतक मनुष्य के बस की बात है, भारत की आजादी पर मुनहसर है। इसी निश्चय के साथ उन्होंने यह भी महसूस कर लिया था कि हिंदुस्तान की आजादी बिना हिन्दू मुस्लिम-ऐक्य और खादी के गैर-मुमकिन है। इसलिए वे अविराम एकता का प्रचार करती थीं। यह उनके लिए एक अटल सिद्धान्त हो गया था। उन्होंने अपने तमाम विदेशी और मिल के कपड़ों का परित्याग कर दिया था और खादी इस्तेमाल करती थीं। मौलाना महम्मदअली मुझ से कहते है कि बी-अम्मा ने उन्हें यह हुक्म दे रक्खा था कि मेरे जनाजे पर सिवा खादी के और कुछ न होना चाहिए। जब जब मुझे उनके बिछौने के नजदीक जाने का सौभाग्य प्राप्त होता तब तब वे स्वराज्य और एकता की बातें पूछतीं। उसके बाद ही प्रायः वे खुदा ताला से दुआ करतीं 'या खुदा, हिन्दुओं और मुसलमानों को ऐसी अक्ल बख्श कि जिनसे वे एकता की जरूरत को समझें और रहम करके स्वराज्य देखने के लिए मुझे जिन्दा रहने दे।' इस बहादुर और शरीफ रूह की यादगार को कायम रखने का सब से अच्छा तरीका यही है कि हम सर्व सामान्य कार्यों के प्रति उनके उत्साह और उमंग का अनुकरण करें। हिन्दू धर्म भी बिना स्वराज्य के उतना ही खतरे में है जितना कि इस्लाम है। परमात्मा करे कि हिन्दुओं और मुसल्मानों को इस प्रारंभिक बात के कदर करने की बी–अम्मा जैसी बुद्धि दें। परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति और अली-भाइयों को उनके सौंपे कार्य को जारी रखने की शक्ति दें।

बी-अम्मा की मृत्यु की रात के उस गंभीर और प्रभावकारी दृश्य का वर्णन किये बिना मैं नहीं रह सकता। उस समय मुझे उनके पास ही रहने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। यह सुनते ही कि अब वे अपने जीवन की अन्तिम सांसें ले रही हैं मैं और सरोजिनी देवी वहां दौड़े गये। उनके कुनबे के जितने ही जन आसपास जमा थे। उनके डाक्टर और हितचिन्तक डा० अनसारी भी मौजूद थे। वहां रोने की आवाज न सुनाई देती थी, अलबत्ते मौ० महम्मद अली के गालों से आंसू जरूर टपक रहे थे। बड़े भाई ने बड़ी कठिनाई से अपने शोकावेग को रोक रक्खा था। हां, उनके चेहरे पर एक असाधारण गम्भीरता झलकती थी। सब लोग अल्लाह का नमाज़ कर रहे थे। एक सज्जन अन्तसमय की प्रार्थना गा रहे थे। कामरेड प्रेस बी अम्मा के कमरेसे इतना नजदीक है कि आवाज सुनाई सकती है। परन्तु एक मिनिट के लिए वहां के काम में खलल न हुआ। और न मौलाना ने ही अपने संपादकीय कलमों में खलल आने दिया। और सार्वजनिक काम तो कोई भी मुल्तवी नहीं किया गया। मौ० शौकतअली ने तो ख्वाब तक में न सोचा था कि मैं अपना राम जस कालेज जाना मुल्तवी करूंगा और एक सच्चे सिपाही की तरह मुजफ्फरनगर के हिन्दुओं को दिये निश्चित समय पर उनसे मिले—हालां कि बी-अम्मा की मृत्यु के बाद उन्हें तुरन्त ही वहां से चला आना पड़ा था। यह सब जैसा कि होना चाहिए था वैसा ही हुआ। जन्म और मरण ये दो भिन्न भिन्न दशायें नहीं हैं, बल्कि एक ही दशा के दो भिन्न भिन्न स्वरूप हैं। न मृत्यु से दुखी होने की जरूरत है, न जन्म से खुशी मनाने की।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

पंजाब में 'हिन्दी-नवजीवन' मुफ्त

भिवानी के श्रीयुत मेलाराम वैश्य सूचित करते हैं कि पंजाब के सार्वजनिक पुस्तकालयों और वाचनालयों को 'हिन्दी-नवजीवन' उनकी तरफ से मुफ्त दिया जायगा।

नीचे लिखे पते पर वे अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिख कर भेजें—

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन" अहमदाबाद

रु. १) में

१	जीवन का सद्व्यय	॥।)
२	लोकमान्य को श्रद्धाञ्जलि	॥)
३	शान्ति अंक	।)
४	हिन्दू-मुस्लिम तनाजा	~)
		१॥~)

चारों पुस्तकें एक साथ खरीदने वाले को रु. १) में मिलेंगी। मूल्य मनीआर्डर से भेजिए। वी. पी. नहीं भेजी जाती। डाक खर्च और पैकिंग वगैरह के ०–५–० अलग भेजना होगा।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर।

एजन्टों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं –

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डांक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल्वे से।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, अगहन बदी १२ संवत् १९८१

सत्व-परीक्षा

स्वराजियों का और मेरा जो समझौता हुआ है उसपर अपरिवर्तनवादियों को अत्यन्त असन्तोष हुआ है। यह आश्चर्य की बात नहीं। मैंने बार बार यह बात कही है कि मैं तो अहिंसा-शास्त्र का एक अल्प शोधक हूं। उसकी आन्तरिक गहराई कभी कभी मेरे हृदय को उतना ही विचलित कर देती है जितनी कि मेरे साथियों को। मैं देखता हूं कि अभी तो इस समझौते से मेरे और स्वराजियों के सिवा किसीको भी सन्तोष होता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है। कितने ही अंगरेज सज्जन मानते हैं कि मैंने तो बड़े निन्दनीय रूप से अपनेको स्वराजियों के सामने झुका दिया है। कितने ही अपरिवर्तनवादी इसे विश्वास-घात यदि नहीं तो भारी फिसलाहट मानते हैं। आन्ध्र से एक मित्र ने मुझे पत्र भेजा है जिसपर ध्यान जाना और जिसका युक्ति-संगत उत्तर देना आवश्यक है।

हां, इसमें कोई शक नहीं कि मैं झुका जरूर हूं। लेकिन मैं ज्ञान और विचारपूर्वक झुका हूं, जैसा कि एक अंगरेज-पत्र ने लिखा है, किसी हिंसाकारी-दल को मैंने सिर नहीं झुकाया है। मैं जानता हूं कि ऐसे इल्जाम तो ठेठ दादाभाई नौरोजी और जस्टिस रानडे तक पर लगाये गये हैं। वे हमेशा शक की नजर से देखे जाते रहे थे और खुफिया छाया की तरह उनके साथ रहते थे। लाला हरकिशनलाल का संबंध किसी हिंसाकारी दल से उतना ही था जितना कि खुद सर मायकेल ओडवायर का हो सकता है; पर फिर भी उन्होंने उन्हें गिरफ्तार कराया और जेल भिजवाया। यदि स्वराज्य-दल को इस विपत्ति के समय में उनका साथ न देता तो मैं देश के प्रति अपने कर्तव्य से च्युत होता। कोई इस बात को निर्भ्रान्त रूप से दिखा दे कि स्वराज्य-दल का कुछ भी संबंध हिंसात्मक कार्यों से है, बस कड़ी से कड़ी भाषा में उसको फटकारने के लिए मुझे तैयार ही समझिए। ऐसा सबूत मिल जाने पर मैं अपना सारा सम्बन्ध उससे तोड़ लूंगा। परन्तु तबतक, यद्यपि मैं धारासभा-प्रवेश की उपयोगिता में और धारासभा-संबंधी उनकी युद्ध-रीतियों में विश्वास नहीं रखता हूं तथापि, मुझे उनका साथ जरूर देना चाहिए।

परन्तु स्वराज्य-दल को महासभा का एक अंग मान लेने का यह अर्थ नहीं है कि भिन्न भिन्न व्यक्ति अपना असहयोग छोड़ दें। इसका अर्थ इतना ही है कि महासभा मानती है कि स्वराज्य-दल महासभा का एक बड़ा और वर्धिष्णु पक्ष है। और यदि वह बिना लड़ाई किये महासभा में गौण स्थान प्राप्त करने से इनकार करता है, और यदि यह आवश्यक और समयोपयोगी है कि लड़ाई से विमुख रहें, तो फिर उसके इस दावे का कि बाजाब्ता और निश्चित रूप से हम महासभा का अंग मान लिये जायं, न मानना कठिन है। फिर कोई महासभावादी, सिर्फ इसीलिए कि वह महासभा का सदस्य है, यह नहीं माना जाता कि वह महासभा के कार्यक्रम की तमाम मदों को मानता है। हां, मैं मानता हूं, कि खुद मेरी हालत इससे कुछ जुदा है। मैं इस समझौते के अन्त में सम्मिलित हुआ हूं। और मुझे इसपर दुःख भी नहीं है। सही तौर पर हो या गलत तौर पर, लेकिन देश मुझसे कुछ रहनुमाई की उम्मीद कर रहा है। और मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि स्वराज्य-दल को, बिना अपरिवर्तनवादियों के किसीभी तरह के दखल या बाधा डाले, अपने कार्यक्रम के अनुसार काम करने का पूरा अवसर देने में देश का हित ही है। यदि अपरिवर्तनवादी धारासभा के काम को पसन्द न करते हों तो वे उन्हें मदद करने के लिए बाध्य नहीं हैं। पर वे रचनात्मक कार्यक्रम को आगे चलाने के लिए स्वतन्त्र और बाध्य हैं, जैसे स्वराज्य-दलवाले भी बाध्य हैं। उसी तरह व्यक्तिशः वे अपने असहयोग को कायम रखने के लिए भी आजाद हैं। पर महासभा के द्वारा असहयोग के मुल्तवी किये जाने का यह अर्थ अवश्य है कि असहयोग महासभा से पुष्टि या बल नहीं प्राप्त कर सकता। उन्हें स्वयं अपने अन्दर से बल ग्रहण करना चाहिए। और यही उसकी कसौटी और आजमाइश है। यदि उनकी श्रद्धा कायम रही तो यह उनके और असहयोग दोनों के लिए अच्छी बात है। यदि उसके मुल्तवी कर देने के साथ ही वह उड़ जाय तो असहयोग जो सार्वजनिक जीवन में एक शक्ति-रूप है, वह नष्ट हो जायगा। पर एक मित्र कहते हैं कि 'जब खुद आप ही डगमगाते हैं तब औरों का क्या हाल?' सो मैं डांवाडोल नहीं हूं। असहयोग में मेरा विश्वास उतना ही ज्वलन्त है, जितना कि हमेशा रहा है। क्योंकि कोई ३० साल से यह मेरे जीवन का एक सिद्धान्त रहा है। परन्तु मैं अपना सिद्धान्त औरों पर नहीं लाद सकता, एक राष्ट्रीय संस्था पर तो हरगिज नहीं। मैं सिर्फ इतना ही कर सकता हूं कि राष्ट्र को उसकी सुन्दरता और उपयोगिता का कायल करने की कोशिश करूं। और यदि मैं राष्ट्र की मनोवस्था को देख कर इस नतीजे पर पहुंचूं कि उसे, जहांतक कि महासभा के द्वारा वह अपनेको प्रदर्शित करता है, सुस्ता लेना जरूरी है तो मुझे सिवा 'ठहरो!' कहने के कोई चारा नहीं है। हो सकता है कि महासभा की मनोदशा का अन्दाज करने में मैं गलती कर जाऊं। पर जिस दिन ऐसा होगा, महासभा के अन्दर जो मैं एक बल हूं, वो न रह जाऊंगा। पर अगर ऐसा हो तो यह कोई विपत्ति न होगी। पर हां, अगर अपनी हठधर्मी के कारण मैं अन्य मार्गों के द्वारा हो सकनेवाली देश की प्रगति में बाधक होऊं, जबतक कि वे साधन निश्चयात्मक रूप से बुरे और हानिकर न हों, तो जरूर देश के लिए एक विपत्ति होगी। जैसे, यदि देश सचमुच हिंसा-काण्ड को अपनाने लगे तो मैं अपनी पूरी ताकत के साथ उसके खिलाफ उठ खड़ा हूंगा-फिर मैं चाहे अकेला ही क्यों न होऊं। पर हां, यह बात मैं मान चुका हूं कि यदि राष्ट्र चाहे तो उसे प्रत्यक्ष हिंसा के द्वारा भी अपनी आजादी की रक्षा करने का हक है। पर उस हालत में भारतवर्ष मेरी प्रेम-भूमि न रह जायगी, भले ही वह मेरी जन्म-भूमि बनी रहे जैसे कि यदि मेरी माता सन्मार्ग छोड़ दे तो उसका मुझे अभिमान न रहना चाहिए। लेकिन स्वराज्य-दल तो एक व्यवस्थायुक्त प्रगति चाहनेवाला दल है। हो सकता है कि वह मेरी तरह अहिंसा की कसमें न खाता हो। पर अहिंसा को वह एक कार्य-नीति के तौर पर अवश्य मानता है और हिंसा को त्याज्य मानता है, क्योंकि वह यदि उसे हानिकर नहीं तो निरुपयोगी अवश्य मानता है। महासभा में उसका एक प्रधान स्थान है। पर यदि उसके संख्याबल की जांच की जाय तो संभव है वह सब से प्रधान पक्ष न मालूम हो। हां, मेरे लिए यह बिलकुल आसान है कि महासभा से हट जाऊं और उस दल को महासभा का कार्य-सञ्चालन करने दूं। पर यह मैं उसी हालत में कर सकता हूं और करूंगा जब कि मैं देख लूंगा कि मेरे और उसके बीच में कोई खास सामान्य

नहीं है। परन्तु जबतक मुझे उसके उद्धार की जरा भी आशा है तबतक मैं उसका पल्ला पकड़े रहूंगा—उसी तरह जिस तरह बालक अपनी माता के स्तन को थामे रहता है। मैं उससे अपना संबंध छोड़ कर अथवा उसकी भर्त्सना कर के या महासभा से अपनेको हटा कर उसकी ताकत कम न होने दूंगा।

मैंने उद्धार शब्द का प्रयोग बुरे भाव में नहीं किया है। मेरे पास भी शुद्धि और तबलीग की अपनी विधि है। दुनिया ने अब तक ऐसी सर्वोत्तम विधि नहीं देखी है। अपने आचार और बल का ज्ञान रखते हुए मैं अपनेको इस बात के लिए स्वराज्य-दल के सिपुर्द करता हूं कि वह जितना उससे हो सके अपना असर मुझपर डाले। इससे मुझे उसकी शक्ति और कार्य की पूरा पूरा नाप मिलेगी। और मैं अपना भी यह इरादा किा नहीं रखता कि उससे प्रभावान्वित होते हुए मैं उसपर अपना भी ऐसा असर डालना चाहता हूं जिससे वह मेरी कार्य-विधि के अनुकूल हो जाय। यदि इस सिल्सिले में वह मेरा उद्धार कर दे, मुझे अपने मत का बना ले, तो वाह वाह! उस अवस्था में मैं बुलन्द आवाज में अपने मतान्तर की घ षणा कर दूंगा। यह एक प्रकार की शुद्धि होगी-बुद्धि के द्वारा बुद्धि को समझा कर, और हृदय से हृदय की बातें करा कर की गई शुद्धि हंगी। यह मतान्तरित करने की शान्तिमय विधि है। असहयोगियों को चाहिए कि वे इसमें अपनी शक्ति मेरे साथ लगावें और उसके साथ ही वे व्यक्तिगत रूप से अपने विचार और आचार पर भी दृढ़ बने रहें। यदि उनके असहयोग का उद्गम प्रेम में से हंगा तो मैं प्रतिज्ञा के साथ कहता हूं कि वे स्वराजियों को अपने मत में मिला लेंगे और यदि वे सफल न भी हुए तो उनकी जाती हानि कुछ भी न होगी। यदि देश उनके साथ रहा और स्वराजी, देश का साथ न देंगे, तो अपने-आप गौण स्थान प्राप्त कर लेंगे। और यदि वे इन शान्तिमय १२ महीनों में अपनी जड़ जमा सके तो अवश्य ही महासभा के निर्विवाद कर्त्ता-धर्त्ता रहेंगे और असहयोगियों को अपनी अल्प-संख्या पर सन्तुष्ट रहना होगा। वे अभी से मेरा नाम उस अल्पसंख्या में पेशगी लिख लें।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हमारी असहायावस्था

यह तो साफ ही दीख रही है। प्रस्ताव करने के सिवा हमारे पास कोई शक्ति दिखाई नहीं देती। लेकिन यदि हम सब मिल कर रचनात्मक कार्य करना शुरू कर दें तो इससे आत्म-विश्वास और कार्य करने की शक्ति प्राप्त करने में हम आगे बढ़ सकेंगे। हर शख्स को यह साफ साफ समझ लेना चाहिए कि यदि हिन्दू और मुसलमानों की अकल ठिकाने आ जाय, हिन्दू अस्पृश्यों के साथ अपने भाइयों सा बर्ताव रक्खें, और हम खादी को और कताई को इतना लोकप्रिय बना सके कि विदेशी कपड़ों का बहिष्कार आसानी से होना सम्भव हो जाय तो हमारी इच्छा के प्रति उनका ध्यान खींचने के लिए हमें और कुछ न करना होगा। इसके अलावा हमारे लिए न तो यही आवश्यक होना चाहिए कि हिंसा बढ़ानेवाली गुप्त समितियां बनें और न अहिंसात्मक सविनय भंग ही करें। जब सब मिल कर एक निश्चय से लगातार रचनात्मक कार्य करेंगे तभी यह संपूर्ण हो सकता है। इसलिए, दमन के ज्वालामुखी का या तमाम राष्ट्र की चिरकालीन गुलामी और असहायावस्था का मेरे पास तो यही एकमात्र रामबाण उपाय है। (यं. इं.)

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

विद्यार्थी क्या करें?

"जब कि खुद असहयोग ही मुल्तवी कर दिया गया है तब विद्यार्थियों का क्या होगा? उनकी क्या हालत होगी? वे सरकारी पाठशालाओं में क्यों न जायं? अब उनसे यह कहना कि तुम न जाओ, कितनी निठुरता होगी? उन्होंने सबसे ज्यादह बलिदान किया है अब क्या और भी कराना चाहते हैं? इस तरह तो हमेशा बेचारे गरीब लोगों का ही शिकार होता रहेगा? जब स्वराज्य लेने की विधि में ही ऐसा हो रहा है तब स्वराज मिलने पर तो हम जैसे गरीबों का न जाने क्या हाल होगा? असहयोग के मुल्तवी करने का समाचार सुनकर हम विद्यार्थियों के तो होश उड़ गये हैं।"

कुछ विद्यार्थी इस किस्म का विचार प्रकाशित करते हैं। अब जो परिवर्तन हो रहे हैं उनका समझना यदि पक्के असहयोगियों को भी कठिन हो रहा है तो फिर यदि विद्यार्थियों में घबराहट फैले तो आश्चर्य ही क्या है? उनके बलिदान के विषय में दो मत नहीं हो सकते। इतना होते हुए भी पूर्वोक्त विचार-श्रेणी में भूल अवश्य है।

प्रस्ताव यह नहीं है कि सब तरह से असहयोग मुल्तवी कर दिया जाय, बल्कि यह है कि महासभा असहयोग के प्रचार को मुल्तवी रक्खे। जब किसी बात को राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण भाग जो पहले उसे मानता था, छोड़ता है तब उसका सार्वजनिक रूप रक्खा या कहा नहीं जा सकता। महासभा जिस बात को छोड़ दे, यह आवश्यक नहीं कि सारा राष्ट्र उसे छोड़ दे। महासभा को कितनी ही बातें बे-मन से-अनिच्छापूर्वक-छोड़ना पड़ती हैं। पर फिर भी महासभा यह इच्छा रखती है कि लोग उसे न छोड़ें तो अच्छा। धन के अभाव में आज महासभा ऐसी आदर्श पाठशालायें जगह जगह नहीं खोल सकतीं जिनमें हिन्दू, मुसल्मान, इत्यादि भिन्न भिन्न धर्मों के लड़के एक जगह पढ़ सकें। पर इसका यह अर्थ नहीं कि इस कारण और लोग ऐसी पाठशालायें न खोलें। यही नहीं, बल्कि यदि कोई ऐसी पाठशाला खोलेगा तो महासभा उसे धन्यवाद देगी। उसी प्रकार यदि महासभा आज असहयोग मुल्तवी करेगी तो उसका कारण यह नहीं कि असहयोग के सिद्धान्त से उसकी श्रद्धा उठ गई है, बल्कि यह है कि महासभा के सभ्यों का एक बड़ा भाग उसके अनुसार चलने में असमर्थ है। ऐसा होते हुए भी महासभा की इच्छा ऐसी हो सकती है कि यदि राष्ट्र का कोई भाग असहयोग को जारी रख के उसकी शक्ति को सिद्ध कर दिखावे तो महासभा उसे धन्यवाद देगी। महासभा यह नहीं चाहती कि वकील लोग फिर से वकालत करने लगें। पर अगर कोई वकील लाचार होकर वकालत शुरू करे तो महासभा उसकी निन्दा न करेगी। इसी प्रकार जिन विद्यार्थियों ने असहयोग किया है वे फिर सरकारी पाठशालाओं में जाय-यह महासभा कभी न चाहेगी; पर जो उकता कर या दूसरे किसी कारण से जायं तो वह अवगणना भी न करेगी परन्तु उसके सुभीते के लिए तथा असहयोगी पाठशालाओं को कायम रखने के लिए महासभा प्रयत्न करेगी और प्रचलित पाठशालाओं की सहायता करेगी। असहयोग सिर्फ 'मुल्तवी' किया जा रहा है, हमेशा के लिए बन्द नहीं। पर अगर उसका पुन-रुज्जीवन हो तो क्या सरकारी पाठशालाओं में गये हुए विद्यार्थी फिर उन्हें छोड़ देंगे? असहयोग के दूसरे भागों में चाहे जो परिवर्तन होगा परन्तु राष्ट्रीय शालायें तो जीवित रहनी चाहिए, जीवित रहेंगी और यदि न रहें तो राष्ट्र की नाक कट जायगी। इतना ही नहीं बल्कि आगे आगे जाकर राष्ट्रीय शालाओं में तो

तो वृद्धि ही होनी चाहिए। स्वराज्य मिलने पर असहयोगी वकील अदालत में वकालत करने जायंगे, परन्तु असहयोगी शालायें तो कायम ही रहेंगी। दूसरी शालायें उनके अनुकूल होंगी, असहयोगी शालायें पिछली सरकारी शालाओं के अनुकूल न होंगी। स्वराज्य चाहे आज आवे या भले ही उसके आने में युग बीत जायं। परन्तु उस समय जो असहयोगी शालायें जीवित रहेंगी वे ही आदर्शरूप होंगी और जनता उनकी नकलें लेगी।

इसलिए मुझे कहना चाहिए कि मेरे मुलाकी रखने के प्रस्ताव से जहां जहां बेचैनी फैली हुई देखता हूं वहां वहां असहयोग के प्रति अश्रद्धा दिखाई देती है। जिसे अपने कार्य और सिद्धान्त पर अविचल श्रद्धा है वह दूसरे की अश्रद्धा से या दूसरे के त्याग से क्यों डरने लगा? क्यों बेचैन होने लगा? क्यों चंचल होने लगा? जो श्रद्धावान् होता है वह तो दूसरे की अश्रद्धा देखकर उलटा दुगुना दृढ होता है। सुरक्षित मनुष्य रक्षकों के चले जाने पर जिस तरह अपना धन छोडकर सावधान हो जाता है उसी प्रकार श्रद्धावान् मनुष्य अपने साथियों को भागता देखकर स्वयं सुदृढ होता है और सिंह की तरह अकेला लडता है और पहाड की तरह अटल हो जाता है।

हां, विद्यार्थियों ने बलिदान तो जरूर ही किया है परन्तु बलिदान का मर्म समझने की भी जरूरत है। यज्ञ करनेवाला मनुष्य दूसरे की दया का भूखा नहीं होता। उसकी स्थिति दयाजनक नहीं। वह तो स्पृहणीय है। जो अनिच्छा या विषादपूर्वक किया जाता है वह यज्ञ नहीं। बलिदान के साथ तो उल्लास, हर्ष, उत्साह होता है। बलिदान करनेवाला तो इच्छा करता है कि मुझे अधिक त्याग का सामर्थ्य प्राप्त हो। वह त्याग से दुखी नहीं होता; क्योंकि उसके लिए त्याग में सुख है। उसे विश्वास होता है कि आज यद्यपि यह कष्टदायी दिखाई देता है तथापि अन्त को तो यह सुखदायी ही सिद्ध होगा। जिसने असहयोग किया है उसने गवांया कुछ भी नहीं—बल्कि उसने तो उलटा कमाया है। जो अपनी गंदगी को दूर करता है वह शुद्ध होता है। त्याज्य वस्तु का त्याग करना मानों सिर का बोझ हलका होना है। जो आध घण्टा चरखा कातता है वह बलिदान करता है अर्थात् आलस्य और स्वार्थ-त्याग करता है; क्योंकि दोनों बातें त्याज्य हैं। जिसने सरकारी पाठशाला छोडी है उसने बलिदान किया है; क्योंकि उसने त्याज्य वस्तु का त्याग किया है। वह त्याग के समय मुंह मलिन न करेगा बल्कि उसके मुख पर तो आनन्द छिटकता रहेगा। मीराबाई राज-भोग का त्याग कर नाचती थीं; राज-भोग पर रोती थीं। हमारी दृष्टि से वह भारी बलिदान था। मीराबाई के लिए वह त्याग और भोग था। सुधन्वा उबलते हुए तेल के कडाह में भी नाचता हुआ नारायण का नाम लेता था। इसीसे प्रीतम—एक गुजराती कवि—ने कहा है कि जो लोग किनारे पर खडे हैं उनका हृदय तो कांप रहा है; परन्तु जो मंझधार में कूद पडे हैं वे बडा सुख मानते हैं। इसीसे निष्कुलानन्द ने भी कहा है कि त्याग बिना वैराग्य के नहीं टिकता। जबतक किसी वस्तु के विषय में राग रहता है तबतक उसका यथार्थ त्याग संभवनीय नहीं। उडीसा के क्षुधा पीडित कंगाल निराहारी और त्यागी नहीं हैं। वे तो जबरदस्ती भूखे रहे हैं। उनका राग तो ज्यों का त्यों बना हुआ है। वे तो चौबीसों घण्टे भजन करते हैं; क्योंकि उनकी नीयत भोजन में ही लगी रहती है। जिस असहयोगी विद्यार्थी का मन सरकारी पाठशाला में लगा रहता है पर शरम के मारे या ऐसे ही दूसरे कारण से जिसका शरीर-मात्र राष्ट्रीय शाला में है, वह त्यागी नहीं, असहयोगी नहीं। उसकी स्थिति सचमुच दयाजनक है। जो मन है वहीं शरीर रखनेवाले का उद्धार तो संभवनीय है। परन्तु जो शरीर और मन को अलग अलग जगह रखता है वह अपनेको, संसार को, तथा ईश्वर को धोखा देता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

कलकत्ते में गांधीजी

(२)

हमें न सुधारेंगे?

एक दूसरे अंगरेज भाई आये थे। उनकी सरलता और निर्मलता उनके चेहरे पर छिटक रही थी। उनके साथ हुई बातचीत प्रायः सारी यहां दे देता हूं—

'आपके उपवास पर मैं तो चकित हो गया। ऐसा उपवास पहले कभी नहीं देखा। आपने अपने शरीर को जलते शून्यवत् कर डाली है।'

'क्या करूं, मुझे जिन्दा रहना खलने लगा और जिन्दा रह कर कुछ न कर पाना नागवार हो उठा, तब उपवास पर आना पडा।'

'आप सफल भी हुए। बिशप साहब के साथ मेरी बहुत बातचीत हुई है। उन्होंने मुझे कहा कि आपके उपवास का भारी प्रभाव पडा। मुझे आशा है कि आप अंगरेजों और भारतवासियों का संबंध भी इसी तरह दुरस्त कर देंगे।'

'हां, यह तो मेरा जीवन-कार्य है।'

'पर मैं आशा रखता हूं कि उसके लिए आपको उपवास न करना पडेगा।'

गांधीजी हंस पडे। 'नहीं, अंगरेजों और हिन्दुस्तानियों का तथा हिन्दुओं और मुसलमानों का संबंध जुदे जुदे किस्म का है। अंगरेज अपनेको उच्च समझते हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों में यह भाव नहीं है। अंगरेज अपनेको शासक-जाति का मानते हैं। हिन्दू या मुसलमान ऐसा भाव नहीं रखते। अंगरेजों के हृदय को जानने के लिए बहुत परिश्रम करना होगा। मेरे कितने ही अंगरेज-मित्र हैं। पर वे हैं कुछ ही। आम तौर पर अंगरेजों के साथ बात करते हुए जरा संकोच होता है, संभाल कर बात करनी पडती है। पर मुसलमानों या हिन्दुओं को मैं अपने दिल की बात सुना सकता हूं। क्योंकि अंगरेज मेरी बातों का अधिक अर्थ करते हैं। इससे हमेशा मेरे मन में संकोच रहा करता है।'

'मैं आशा करता हूं कि इस उपवास के बाद आपने यह संकोच दूर कर दिया होगा।'

'जी नहीं, मैं अंगरेजों की शिकायत नहीं करता। मुझे यह डर रहा करता है कि वे मेरी बात को न समझ सकेंगे। दक्षिण आफ्रिका में अंगरेजों के सामने यह साबित करने के लिए कि मैं प्रामाणिक हूं, मुझे २० बरस लगे थे। और २० बरसों तक मुझे उनके गाढ सम्पर्क में आना पडा था, उन्हें अपना काम बताना पडा था, अपना जीवन उनके सामने खोल कर रखना पडा था, तब जा कर उन्हें विश्वास बैठा कि मैं सच्चा आदमी हूं। सो राह चलते अंगरेजों के सामने अपना हृदय खोल कर बात कर सकने के लिए, संभव है, सारा जीवन भी लग जाय।'

'आपका यह खयाल है कि अभी समय नहीं आया?'

'नहीं, यह बात तो नहीं। उन्हें भी मैं कहता रहता हूं। परन्तु हिन्दू-मुसलमानों को कहते हुए मुझे किसी प्रकार संकोच रखने की जरूरत नहीं दिखाई देती। देखिए न, आर्य-समाजियों की मैंने प्रेम पूर्वक कितनी कड़ी आलोचना की थी। क्योंकि वे मेरी बात को समझ सकते हैं। और मैं उनके आशय को समझ सकता हूं। मुसलमानों का भी मैं इसी तरह कह सकता हूं। पर अंगरेजों को इसी तरह नहीं कह सकता। इन गिरफ्तारियों का ही लीजिए, इसकी मुझे परवा नहीं। पर कानून को इस तरह उलट देना मुझे बड़ा खटक रहा है।'

'मैं आपसे सहमत हूं। मुझे भी यह बुरा मालूम हो रहा है।'

'पकड़ें, मामला चला कर जेल भेजें, यह ठीक है। मुझे गिरफ्तार करके छः साल की सजा दी, इससे मुझे खुशी हुई।'

'एक बात पूछूं? हिन्दुओं और अंगरेजों में जितना अन्तर आपको दिखाई देता है, उससे अधिक हिन्दुओं और मुसलमानों में नहीं मालूम होता?'

'जी नहीं; हिन्दुओं और मुसलमानों का अन्तर ऊपरी है, गहरा नहीं। दोनों एक होना तो जरूर चाहते हैं। फिर सर्वसाधारण जनता में यह अन्तर भी नहीं है। ये जो झगड़े होते हैं सो मध्यम श्रेणी के लोग, बदमाशों की मार्फत, अपने स्वार्थ के ही लिए, कराते हैं। पर अंगरेजों और भारतवासियों के बीच यह भारी अन्तर है। एक दृष्टि से तो ऐसा मालूम होता है कि दोनों में एकता का कोई आधार ही नहीं दिखाई देता। एक मामूली 'टामी' को लीजिए। वह तो हिन्दुस्तानियों को तिरस्कार की ही नजर से देखता है। हिन्दुस्तानी उसे देख कर चौंकते हैं। एक दूसरे के प्रति, मान-आदर का भाव ही नहीं है, परस्पर विश्वास ही नहीं है। यह स्थिति बड़ी भयंकर है।'

'मैं नहीं समझता कि यह बढ़ रही है।'

'मैं भी नहीं मानता, पर यह है और अनेकांश में है।'

'इसका कुछ उपाय?'

'अच्छे, भले अंगरेजों को यह अपना कर्तव्य मानना चाहिए कि इस हालत को दूर करें। परन्तु आज तो अच्छे अच्छे अंगरेज भी यही मानते हैं कि भारतवासियों से दो कोस दूर रहने में हमारी रक्षा है, हमारे अस्तित्व का निश्चय है।'

'इसे निर्मूल करने की शक्ति तो आपमें है। उपवास के द्वारा आपने दूसरा परिचय दे दिया है। मुझे आपके जैसी शक्ति दूसरे [illegible] में नहीं दिखाई देती।'

'जी नहीं; यह काम मेरे लिए भी विकट नजर आता है। मुझे अभी अंगरेजों को यह साबित कर देना बाकी है कि मेरा एक एक शब्द मेरे हृदय से निकलता है।'

'नहीं, शायद आपके काम करने के तरीके पर उनका अविश्वास हो।'

'सो तो है ही। मेरी अहिंसा को ही वे नहीं समझ पाये हैं। असहयोग के नाम-मात्र से वे क्यों चौंकते हैं? उसके मूल में [illegible] अहिंसा का है। मेरे लिए तो अहिंसा के बिना असहयोग त्याज्य है। मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि पहले जितनी मलिनता तुम्हारे अंदर हो उसकी निकाल डालो। यदि विकास-क्रम के नियम का कुछ अर्थ हो तो वह यही कि अबतक दुनिया जिस रास्ते चलती आई है, जिस हथियार को बरतती आई है, उसे सुधारे। जब हम मरें तब दुनिया को अपने जन्म के समय से अधिक साफ कर छोड़ जायं, यह हमारा उद्देश होना चाहिए।'

वे समझ गये। बड़ी हमदर्दी के साथ बोले 'मैं अपना काम कर रहा हूं। भरसक कोशिश करता हूं। पर आपकी बात पर सारे हिन्दुस्तान का ध्यान जा सकता है। मेरी बात को कौन सुनने लगा?'

'मैं इस बात को समझता हूं। पर अपनी अहिंसा के विषय में कुछ और कहना चाहता हूं। मेरे स्वराज्य के विचार के मूल में भी विश्वास ही है। इस विश्वास-अन्योन्य विश्वास-पर ही इसकी बुनियाद पड़नी चाहिए। आज मैं हिन्दुस्तान को बड़े अभिमान के साथ अपनी जन्मभूमि मानता हूं पर मेरा यह अभिमान न जाने कहां चला जायगा, यदि हिन्दुस्तान हिंसा-मार्ग को स्वीकार करे। हिन्दुस्तान अरबी समुद्र, हिन्दी-महासागर और बंगाल के उप-समुद्र से घिरा और हिमालय का मुकुट पहनने वाला हिन्दुस्तान ही नहीं है, हिन्दुस्तान के मानी हैं सदियों से अहिंसा के सिद्धान्त का उच्च पंथ और उपदेश करनेवाला देश। अतएव अहिंसा के बिना इसके उद्धार की कल्पना मुझे नहीं हो सकती, मैं उसे स्थान नहीं दे सकता।

आप लोगों के लिए मैंने तो एक दूसरे सज्जन को तीन रास्ते बता दिये हैं—हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य में शरीक होना, विदेशी कपड़े की आमद को रोकने में मदद करना और शराब का कर बंद कराना। अंगरेजों को इतना करने के अपने इस कर्तव्य का ज्ञान होना चाहिए। यदि वे इतना कर सकें तो उन्हें परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिए। आज कितने ही अंगरेज हमें लड़ता हुआ देख कर खुश होते हैं। कितने ही लोग तो यह भी इल्जाम लगाते हैं कि वे लड़ाने की कोशिश करते हैं। विदेशी कपड़े के द्वारा जो रक्त-शोषण हो रहा है उसके कुफलों का वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं। इसने हिन्दुस्तान को निष्प्राण कर डाला है। हिन्दुस्तान के करोड़ों भूखों मरनेवालों का पेशा चला गया, और आज वे बे-कार बैठे हैं। उन्हें सालभर में कम से कम चार महीने की नाहक की बिना तनख्वाह अनिवार्य छुट्टी रहती है। ऐसी छुट्टी मनाकर दुनिया में कोई कौन जीवित रह सकती है? आज तो लोगों को काम में श्रद्धा ही नहीं रह गई है, काम करने की इच्छा ही मर गई है। मैं चरखे को सार्वत्रिक करके फिर उसे सजीवन करना चाहता हूं। शराब की आमदनी के विषय में आपको कुछ कहने की जरूरत है?'

अत्यन्त कृतज्ञता प्रदर्शित करके ये सज्जन विदा हुए। ये दोनों अंगरेज नापतोल-गणित दो प्रकार के अंग्रेजों के नमूने थे। पहले के सामने दिल खोलकर बात करते हुए संकोच होता है, यह डर रहता है कि हमारी बात का अनर्थ करेंगे, परन्तु दूसरे के साथ खुले दिल से बात करते हुए जरा भी आगा-पीछा नहीं करना पड़ता। जब तक ये दूसरे प्रकार के अंगरेज उंगलियों पर गिनने लायक हैं तब तक अभी हमारी लड़ाई की उम्र बहुत समझिए।

विश्वभारती के एक चीनी अध्यापक भी आये थे। वे तो परिचय मात्र के लिए आये थे। चीन की आंतर राजनीति के विषय में उन्होंने बातचीत छेड़ी, परन्तु गांधीजी चीन के संबंध में क्या बात-चीत करते? एक फ्रेंच महिला भी आई थीं। इसके अलावा मो० रोमां रोलां का सन्देश लेकर डा० कालिदास नाग आये थे। डा० नाग यूरोपीय भाषाओं के अच्छे जानकार हैं। और पेरिस के विद्यापीठ की पदवियों से भूषित हैं। मो० रोलां के साथ उनकी अच्छी मैत्री है। गांधीजी का बहुत-कुछ परिचय उन्हें कराने में उनका हाथ है।

उन्होंने पहले यह बात सुनाई कि आजकल गांधीजी के संबंध में जितनी मिल सके जानकारी प्राप्त करने के लिए योरप के लोग कितने उत्सुक और आतुर हैं। उन्होंने यह भी कहा कि गांधीजी पर जो पुस्तक मो. रोलें ने लिखी है उसका अनुवाद तमाम योरपियन भाषाओं में हो गया है। रूस में मैक्सिम गोर्की जैसे अग्रगण्य विद्वान् ने उसका अनुवाद किया है।

परन्तु आज फ्रान्स देश में मो० रमेईन रोलें जैसे महापुरुष की कदर नहीं, उनका अहिंसा और शान्ति का उपदेश सुनने के लिए वहां आज कोई तैयार नहीं, आज वे परिव्राजक हैं।

विएना में होनेवाली शान्ति-परिषद का एक कार्ड उन्होंने डा० कालिदास के साथ गांधीजी के लिए भेजा है। उसपर एक और परिव्राजक—हरमन हेस—के भी हस्ताक्षर हैं। वह जर्मन हैं और गांधीजी को बहुत चाहते हैं। अपनी शान्तिप्रियता के कारण अपने देश से भगा दिये गये हैं।

यह परिषद् इटली में होनेवाली थी, परन्तु यह भी शान्ति-परिषद्, सो वहां न होने दी गई। इस तरह योरप शान्ति से डरता है! मॉ० रोलें का संदेश संक्षेप में यह था—'योरप और भारत आपके जीवन से एक सूत्र हों।'

इस तरह कलकत्ते में चार-पांच दिन सुबह से शाम तक चर्चाओं, बातचीतों और मुलाकातों में बीते। परन्तु इस सख्त भार को हलका करनेवाली बातें भी कम न थीं। एक दिन बड़ी रात को एक देहाती अपने लड़कों-बच्चों को ले कर आया। उस बेचारे को ऊपर कौन आने देता? बाहर तो उस समय भी सैकड़ों लोग रहते थे और यह सवाल रहता था कि किसे आने दें, किसे न आने दें। आखिर बेचारे ने अपने सूत की पुड़की दरवाजे पर देकर कहा कि यह सूत गांधीजी को दे देना। गांधीजी ने पुड़की लेकर तुरन्त उसे बुलवाया। बच्चों के और बाप के आनन्द का ठिकाना न रहा।

परन्तु उनके उद्यम और देश-प्रेम की क्या कहूं? कलकत्ते की किसी संकड़ी गंदी गली में बेचारे का घर है, मिहनत मजदूरी करके पेट भरते हैं, पर साथ ही अपने अपने और गांव के लोगों (यदि मैं भूलता न होऊं गाजियाबाद) से—कलकत्ते में मजदूरी करने वाले लोगों से-सूत कतवाता हैं। पांच सेर से अधिक सूत होगा। यह सूत इस महीने के लिए काता था। उसे यह तो मालूम था नहीं कि महासभा में भेजना चाहिए, सो वह गांधीजी को देने के लिए आया। गरीबों को और महासभा को एक सूत्र में बांधनेवाला यह सूत ही है, इससे बढ़ कर इसका प्रमाण और क्या चाहिए?

किसी किसी दिन शाम को गांधीजी को प्रिय संगीत भी मिल जाता था। श्री दिलीपकुमार राय मो. रोलें का गांधीजी-विषयक भाषा एक पत्र लेकर आये थे। इस पत्र में गांधीजी के कला-विषयक विचारों पर श्री दिलीपकुमार के लिखे लेख की चर्चा थी। परन्तु इस चिट्ठी को पढ़ने के पहले गांधीजी भला उनका संगीत सुने बिना कब रह सकते थे? दिलीप बाबू ने

'जानकी नाथ सहाय करे जब'

के सुन्दर गान से कमरे को गुंजा दिया।

पण्डित मोतीलालजी ने मुग्ध हो कर एक और गीत का अनुरोध किया। तब उन्होंने अपने प्यारे

'जब प्राण तन से निकले'

की तान छेड़ी। इसके बाद कला-विषयक कुछ चर्चा छिड़ी। दिलीप बाबू इस बात को न समझ पाये थे कि गांधीजी केवल सृष्टि-सौंदर्य पर ही इतना जोर क्यों देते हैं? क्या चित्रकार की कूंची में यह सौंदर्य नहीं है, शिल्पकार की मूर्ति में सौन्दर्य नहीं है? इसके उत्तर में गांधीजी ने कहा—

'मेरा काम इन चित्रों के बिना चल सकता है, इससे मैंने कहा कि मेरी दिवारों पर यदि चित्र न हों तो भी मुझे वे अच्छी मालूम होती हैं। इसका कारण यह है कि चित्रों के द्वारा परमेश्वर की लीला देखने की जरूरत मुझे नहीं। ईश्वर ने हमें ऐसी भूमि और जल-वायु में जन्म दिया है कि सुन्दर सूर्योदय, सुन्दर चन्द्रिका और तारायें, सुन्दर जल और स्थल के दृश्य हमें प्रत्यक्ष देखने को मिलते हैं। लंदन में जहां कई दिनों तक सूरज के दर्शन नहीं होते वहां ऐसे चित्रों की जरूरत पड़ती है। इस देश में बसनेवाले गरीब लोगों को ऐसे चित्र खरीदने की सिफारिश मैं क्यों करूँ?

मेरा ध्येय हमेशा है कल्याण। कला मुझे उसी अंश तक स्वीकार्य है जिस अंश तक वह कल्याणकारी है, मंगलकारी है। मैं उसे योरप की दृष्टि से नहीं देख सकता, और योरप भी है क्या चीज? पृथिवी-तल पर आखिर है तो एक बिंदु ही न?

फिर भारतीय कलाकारों ने तो अपनी कला को मन्दिरों में और गुहाओं में प्रकट करके सार्वजनिक कर दिया है। गरीबों को ऐसे स्थानों में जा कर जो चाहिए सो मिल सकता है।'

'तब संगीत के विषय में आपका क्या मत है? संगीत तो आप गरीबों के लिए भी चाहेंगे?'

'हां, जरूर! क्योंकि संगीत तमाम कलाओं में सर्वोपरि है। उसका संबंध अनेक तरह से हमारे जीवन के साथ है और यह अनेक प्रकार से कल्याणकारक होता है। और वह गरीब से गरीब जन के लिए भी सुलभ है।'

दिलीप बाबू ने योरप के संगीत की चर्चा शुरू की, योरप के मन्दिरों के संगीत की बातें कीं। गांधीजी को भी वहां का अनुभव तो था ही। इसलिए उन्होंने अपने सुने बढ़िया बढ़िया संगीत की भी बातें कीं। अन्त को समस्त कलाओं के विषय में इस तरह उपसंहार किया—

'कलाकार जब कला को कल्याणकारी बनायेंगे और जन-साधारण के लिए उसे सुलभ कर देंगे तभी उस कला को जीवन में स्थान रहेगा। जब कला सब लोगों की न रह कर थोड़े लोगों की रह जाती है तब, मैं मानता हूं कि, उसका महत्व कम हो जाता है।' यहां दिलीप बाबू ने उन्हें रोका—'तब तो इस दृष्टि से जो तत्व-ज्ञान लोगों की बुद्धि के लिए सहज गम्य न हो, जो काव्य या जो साहित्य जन-साधारण के लिए सुबोध न हो, वह भी आपको रुचिकर नहीं हो सकता।'

'हां, नहीं हो सकता। हरएक ऐसे बुद्धि के व्यापार का मूल्य, जिसमें कुछ विशेषता हो—अर्थात् जिससे गरीब लोगों को वंचित रहना पड़ता हो—उस वस्तु से अवश्य कम है जो सर्व-साधारण के लिए होगी। वही काव्य और वही साहित्य चिरंजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे, जिसे वे आसानी से पचा सकेंगे।'

अब उस बड़े लंबे पत्र को किसी तरह खतम करता हूं। आखिरी दिन देशबन्धु की एक बहन की लड़की गांधीजी से मिलने के लिए आई। उससे गांधीजी ने मीराबाई का भजन सुनना चाहा। उसने बिना किसी संकोच के दो तीन भजन बड़े मधुर कण्ठ से गाये—

'मीरां चित धीर न माने वेग मिलो महाराज'

की ध्वनि अभीतक कानों में गूंज रही है।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

ईश्वर सहायक हों

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक १६

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, अगहन सुदी ४, संवत् १९८१ रविवार, ३० नवम्बर, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

[illegible]ता करनी है ?

पिछले स[illegible] जो परिषद हुई थी उसके फल-स्वरूप अभी तमाम दलों की एकता न हो पाई। इससे यह जाना जाता है कि इसमें कितनी कठिनाइयां हैं। पर एकता स्थापित करने के उपाय खोजने के लिए जो कमिटी नियुक्त हुई है उससे मालूम होता है कि परिषद इस काम को असंभव नहीं समझती न वह निराश ही है। यही नहीं बल्कि श्री जयसुखलाल महेता के इस प्रस्ताव का समर्थन तो अच्छी तादाद में हुआ था कि कमिटी अपनी रिपोर्ट आगामी १५ दिसंबर तक या उसके पहले प्रकाशित कर दे। उन्हें तो तुरन्त सफलता मिलने की बड़ी आशा है। परन्तु जो सावधानी से काम लेना चाहते हैं उन्होंने ३१ मार्च कायम करके एक ओर जहां इसकी कठिनाइयों को अनुभव किया है तहां दूसरी ओर उसके गर्भित अर्थ के द्वारा कमिटी पर यह भार भी डाल दिया है कि वह कोई ऐसा रास्ता निकाले जो सबको कबूल हो जाय। समाचार-पत्रों के लेखक और संपादक लोकमत को ठीक दिशा की ओर प्रेरित करके कमिटी को बहुत-कुछ सहायता कर सकते हैं। कमिटी पर अपने विचारों का असर डालनेवाली संस्थायें ये है—नरमदल, स्वतन्त्रतदल और नेशनल होम-रूल-दल। होमरूल-दल की नेत्री श्रीमती बेसेंट ने वस्तुतः उन बातों को स्वीकार कर लिया है, जो मेरे और स्वराजियों के बीच तय हुई थीं और जिनपर अब महासमिति ने भी अपनी मुहर लगा दी है। लिबर-दल और स्वतन्त्र-दल के मार्गों की कठिनाइयां एक-सी हैं और वे ये हैं—महा-सभा का संकल्प, धारासभा के काम का स्वराजियों को सौंपा जाना और कताई द्वारा मताधिकार। कहते हैं कि महासभा का संकल्प अमंगलदायक है-बुरा है। मैं साहस के साथ इस इल्जाम को अस्वीकार करता हूं। वर्तमान संकल्प तो हमारी विद्यमान अवस्था की स्वीकृति ही है। इसका अर्थ यही है-स्वराज्य, यदि संभवनीय हो तो साम्राज्य के भीतर और आवश्यक हो तो उसके बाहर। इस संकल्प की योजना करके एक ओर अंगरेजों के सिर पर यह भार डाल दिया गया है कि वे हमारे लिए साम्राज्य के अन्दर रहना—बराबरी के हिस्सेदार बनकर रहना संभवनीय बना दें और दूसरी ओर यह हिम्मत के साथ घोषित करता है कि यदि आवश्यक हुआ तो देश एक पूर्ण स्वाधीन राष्ट्र की हैसियत से अपने ही पैरों पर खड़ा रहने का सामर्थ्य रखता है। साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य के मानी हैं एक आजाद राज्य, साम्राज्य के अन्दर स्वेच्छापूर्वक रहने, और भारतवर्ष वाञ्छनीय समझे तो साम्राज्य के साथ में न रहने की स्वतन्त्रता। साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य ऐसा ही होना चाहिए, जिसमें भिन्न भिन्न राष्ट्र अपनी अपनी इच्छा के अनुसार हिस्सेदार बन कर रहें। यह इतनी महत्वपूर्ण और नाजुक स्थिति है कि उसका त्याग नहीं किया जा सकता। महासभा के नियामक कर्ता-धर्ता भी यदि महासभा के संकल्प को इस तरह बदलने की अभिलाषा करें, जिसका अर्थ हो सिर्फ 'साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य और इसलिए एक पराधीन राज्य' तो महासभा की एक भारी बहुसंख्या इस अवमानना को सिर झुकाने से इन्कार कर देगी। महासभा के संकल्प में लिबरल तथा स्वतन्त्र-दलवालों की इच्छित दिशा में परिवर्तन करने का लक्ष्य रखना राष्ट्र के वर्तमान मनोभावों के प्रतिकूल जाना है। उनके लिए सिर्फ यही मार्ग हो सकता है कि वे महासभा में शरीक होकर उनके सदस्यों को अपने मनोनीत परिवर्तन की आवश्यकता और उपयोगिता का कायल करें—जिस तरह कि मौलाना हसरत मोहानी संकल्प में इस तरह का परिवर्तन कराने का प्रयत्न कर रहे हैं कि जिससे महासभा के ध्येय का अर्थ सिर्फ इतना ही हो जाय, 'ब्रिटिश साम्राज्य से पूरी स्वतन्त्रता'। मैं बड़े अदब के साथ कहता हूं कि कम से कम वर्तमान संकल्प में कोई बात हानिकर या अनीति युक्त नहीं है। बल्कि इसके विपरीत वर्तमान अवस्था में तो यह मानना कि स्वतन्त्रता पाने की शक्ति हमारे अन्दर नहीं है, नीति-शास्त्र की दृष्टि से भारी आक्षेपार्ह बात हो सकती है। दुनिया का कोई राष्ट्र जो दृढ संकल्प रखता है, स्वतन्त्रता के लिए असमर्थ नहीं हो सकता। जो हो। पर हर हालत में मुझे तो यही विश्वास है कि देश के तमाम दल इस बात को मानेंगे कि महासभा में ऐसे मतदाता हैं, जो समय पड़ने पर अपना चाहा करा सकते हैं और ऐसा होना ठीक भी है।

अब रही यह बात कि महासभा में स्वराजी लोगों का क्या दरजा रहे, सो यह उनके अपने निर्णय करने की बात है। आज तो महासभा में स्वराजी और अपरिवर्तनवादी ही प्रधान दल हैं। यदि महासभा असहयोग को मुलतवी कर दे तो फिर शायद स्वराजी अपने आप प्रधानता पा जायेंगे। और यदि दोनों दल

देश-हित को ध्यान में रख कर महासभा में फूट न डालने का निर्णय कर ले तो दोनों संयुक्त और बराबरी के हिस्सेदार माने जाने चाहिए। कलकत्तेवाले इकरारनामें में मैंने सिर्फ इसी सीधी-सादी और स्वाभाविक बात को स्वीकार किया है। यदि कोई दल इससे अधिक चाहता है तो वह महासभा में शरीक हो कर ही और स्वराजियों की बुद्धि को समझा कर तथा महासभा के मतदाताओं में अपने मत का प्रचार कर के और नये मतदाता बनाकर ही ऐसा कर सकता है। महासभा के मतदाताओं की वृद्धि करने की बेहद गुंजाइश है, और यदि किसीको अपने विचार और मतवाले स्त्री-पुरुष मिलते हों तो, हर शख्स महासभा के ऐसे हल्के और कमिटियां बना सकता है।

तीसरा आक्षेप है कताई के द्वारा मताधिकार। यदि यह चीज नई न होती तो न सिर्फ इसपर इतनी उत्तेजना न फैलती और विस्मय न होता, बल्कि लोग इसे मताधिकार की सर्वोत्तम कसौटी समझ कर इसका स्वागत करते। यदि पूंजिपतियों या शिक्षित जनों की जगह आज श्रमजीवियों का सबसे अधिक प्राधान्य और प्रभाव होता और यदि साम्पत्तिक या शिक्षा-सबन्धी कोई कसौटी रक्खी जाती तो उन सबल श्रमजीवियों ने उस बात की दिल्लगी ही उड़ाई होती और यहां तक कि उसे अनीतियुक्त भी कहा होता। क्योंकि उनकी दलील यह होती कि पूंजीपतियों और शिक्षितों की संख्या तो बहुत छोटी है और शारीरिक श्रम तो सर्व-सामान्य है। हो सकता है कि मेरी एक विशेष प्रकार के शरीर-श्रम की—कताई की—कसौटी का कुछ मूल्य न हो, वह मेरा लहरीपन हो, पर वह न तो अनीतियुक्त है और न राष्ट्र के लिए अहितकर ही है। बल्कि इससे विपरीत मैं तो मानता हूं कि इससे देश को सचमुच लाभ होगा—यदि देश के लिए हजारों स्त्री-पुरुष शारीरिक श्रम करें—फिर वह सिर्फ आधे घण्टे रोज ही क्यों न हो। और न खादी-पोश होने की शर्त ही किसी दल के महासभा में प्रवेश करने में बाधक होनी चाहिए। खादी को तो महासभा में पिछले तीन वर्षों से बहुत ही महत्व दिया जा रहा है।

और निस्सन्देह खादी पहनने को मताधिकार की शर्त बनाने पर तो सिद्धान्ततः कोई अकाट्य आक्षेप हो ही नहीं सकता। सो यदि खादी पहनना और सूत कातना मताधिकारी की पात्रता न रक्खी जाय और यदि मेरी भारी भूल न होती हो तो मैं समझता हूं, बहुतेरे सर्वोत्तम कार्यकर्ताओं को महासभा में रहने में दिलचस्पी न रहेगी। इस समय महासभा में दो दल हैं। एक को इस बात में विश्वास नहीं है कि धारासभा के द्वारा स्वराज्य मिल सकता है और जबतक देश शान्तिमय कानून भंग या असहयोग के लिए तैयार न हो तबतक खादी का काम करने में वह सन्तोष मानता है। एक दूसरा दल है जो खादी के आर्थिक महत्व को मानते हुए भी यह मानता है कि यदि स्वराज्य धारासभा-प्रवेश के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता, तो कम से कम उसी दिशा में ऐसी कार्रवाई तो की जा सकती है कि नौकरशाही की मनमानी घरजानी पर कुछ तो अंकुश रहे। अब मैं तो इसमें अपना रास्ता इस तरह निकाल सकता हूं कि एक ओर मैं स्वराजियों से झगड़ा मोल न लूंगा, उन्हें अपने रास्ते जाने दूंगा और दूसरी ओर जितना हो सके और वे दे सकें उनका सहयोग खादी-कार्यक्रम में प्राप्त करूंगा। और मैं लिबरल और स्वतन्त्र दलवालों से भी प्रार्थना करूंगा वे इस बात की कदर करें, जिसमें फर्क करना एक आदमी के बूते का नहीं है। और यह बिलकुल संभवनीय भी है। स्वराजी, तथा लिबरल और स्वतंत्र-दलवाले मिल कर आपस में इस बात पर मशवरा करें और यदि वे इसी नतीजे पर पहुंचें कि खादी में कुछ दम नहीं रहा है और यह सिर्फ एक मेरी सनक है, और यदि वे मुझे अपनी भूल का कायल न कर सकें, तो मैं खुशी-खुशी महासभा के बाहर रहूंगा। मैं उनके काम में-उनके मत के अनुसार देशहित के लिए राष्ट्रीय महासभा का उपयोग और कब्जा करने में—किसी तरह बाधक न होऊंगा। मुझसे एक खास स्वराजी भाई ने कहा है कि खादी-कार्यक्रम असफल हुए बिना रह नहीं सकता और स्वराजियों का उसमें जरा भी विश्वास नहीं है। मैंने उनसे कहा कि मैं आपके इस अविश्वास से सहमत नहीं। मैंने उनसे कहा कि स्वराजियों ने सच्चे दिल से उसे कबूल किया है और वे उत्साह और उमंग के साथ उसमें भिड़ जायंगे। पर मान लीजिए कि इन महाशय का कथन बहुत साधार हो और यदि यह खादी-संप्रदाय हमारे सार्वजनिक जीवन में फूटडालने वाला तत्व हो तो अच्छा है कि यह भ्रम जल्दी दूर हो जाय। हां, जबतक मेरा विश्वास उसपर से उठ नहीं जाता तबतक मुझे उसपर कायम रहने की इजाजत रहे। पर उसके कारण मैं देश के दूसरे तमाम कामों को रोक या बन्द नहीं कर सकता। इसलिए मैं सबको सरगर्मी के साथ यह आश्वासन देता हूं कि मैं जान बूझकर किसी भी सम्मानपूर्ण साधन के स्वीकार करने के मार्ग में बाधक न हूंगा, जो कि देश के तमाम दलों को एकत्र करने के लिए कमिटी तजवीज करेगी। मैं अपनेको जानबूझकर स्वराजियों, लिबरलों और स्वतन्त्र दल[illegible] में रख रहा हूं, नम्रतापूर्वक उनके दृष्टि-बिन्दु को [illegible] समझने का प्रयत्न कर रहा हूं। इसमें मेरा तो कुछ मतलब है नहीं। देश की आजादी के लिए उनके मनमें जो चिन्ता और उत्सुकता है वह मुझे भी है। हां, मेरा रास्ता उनसे जुदा है। यदि मुझसे हो सका तो खुशी से उनके रास्ते चलूंगा। इसलिए हर दल को उचित है कि वे ऐसे उपाय को खोजने का प्रयत्न सच्चे दिल से उत्साहपूर्वक करें। सब दलों की एकता का उपाय खोजने के लिए वे श्रद्धा और दृढ निश्चय के साथ कमिटी में विचार करें। अपने दिल और दिमाग को साफपाक रख कर कमिटी में मशवरा करें।

एक मित्र पूछते हैं कि जबतक सर्वदल-समिति की जाँच पूरी न हो और उसका नतीजा न निकल आवे तबतक मताधिकार की शर्त में परिवर्तन करने का प्रस्ताव मुल्तवी नहीं किया जा सकता? इसपर मैं अदब के साथ कहता हूं कि एक अच्छी तरह विचार-पूर्वक किये गये कार्यक्रम को यों सहसा मुल्तवी नहीं कर सकते। इस अंदेशे से कि शायद लिबरल और स्वतन्त्र-दल के लोग खादी-कार्यक्रम को मंजूर न कर सकें, तीन महीने के पुख्ता काम को यों ही गवां नहीं सकते। फिर भी यदि कमिटी की यह राय होगी कि खादी-कार्यक्रम असाध्य है और हर-असल सबकी एकता में बाधक होता है तो मताधिकार की यह शर्त महासभा का एक विशेष अधिवेशन करके आसानी से हटा दी जा सकती है। मेरी राय में देश का हित यही चाहता है कि हर दल अपने अपने विश्वास के अनुसार कार्य करे; पर साथ ही साथ गलतियां करने और उसके मालूम होने पर पश्चात्ताप कर के पीछे हटने की भी प्रवृत्ति कायम रहे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

पंजाब में 'हिन्दी-नवजीवन' मुफ्त

मियानी के श्रीयुत मेलाराम वैश्य सूचित करते हैं कि पंजाब के सार्वजनिक पुस्तकालयों और वाचनालयों को 'हिन्दी-नवजीवन' उनकी तरफ से मुफ्त दिया जायगा।

नीचे लिखे पते पर वे अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिख कर भेजें— व्यवस्थापक 'हिन्दी-नवजीवन'

अपरिवर्तनवादियों की दशा

अपरिवर्तनवादियों की हालत सचमुच दयाजनक है। और यह खयाल कि यदि संकटों आना नहीं तो, बहुत अंश में, मैं ही इसका कारणीभूत हूं, मुझे खिन्न कर देता है। मेरी तसल्ली केवल इसी विचार से होती है कि मैं तमाम अपरिवर्तनवादियों में सब से ज्यादह कट्टर अपरिवर्तनवादी हूं। मैं समझता हूं कि इससे उन्हें भी तसल्ली होनी चाहिए। पर अपरिवर्तनवादी किसे कहना चाहिए? 'अपरिवर्तनवादी' कोई अच्छा शब्द नहीं। इसका कुछ भी मतलब नहीं होता। पर इसका प्रयोग उन लोगों के लिए होता आया है जो कलकत्ते में १९२० में पास हुए मूल असहयोग-प्रस्ताव को मानते हैं। उसका कार्यकारी भाग है अहिंसा। १९२० के पहले भी हम अपने दिलों में असहयोग कर रहे थे क्योंकि दिल तो सरकार के खिलाफ बगावत के भावों से भरा रहता था। हां, अपने ऊपरी आचरण के द्वारा हम जरूर उससे सहयोग करते हुए दिखाई देते थे। १९२० में यह हालत बदल गई। हमने मन, वचन और कार्य में सहयोग स्थापित करने की कोशिश की। हमने देखा कि यह सहयोग केवल अहिंसा के ही द्वारा हो सकता है। और हमने यह भी देखा कि जितना ही हम अपना सहयोग सरकार से हटावेंगे उतना ही हमारा सहयोग हमारे अन्दर बढ़ना चाहिए। इसलिए अपरिवर्तनवादी है वह जो अपने शासकों का बुरा न मनाते हुए—पर उसकी रची प्रणाली को नष्ट करने में प्रयत्नशील रहते हुए, उस शासन-प्रणाली के कहे जानेवाले लाभों अर्थात् धारासभाओं, अदालतों, शिक्षालयों, उपाधियों और लुभावने विदेशी कपड़ों का त्याग करे। यह उसका निषेधात्मक भाग था। उसका विधायक अंग था स्वतन्त्र शिक्षालयों, पंचायतों की स्थापना और हाथ-कती और हाथबुनी खादी की पैदायश करना। महासभा ने मुख्य धारासभा-मण्डल का त्याग किया था और स्वेच्छा-सेवकों का पुख्ता काम था उनकी ऊंची से ऊंची उपाधियां। परन्तु पूर्वोक्त पांच सरकारी संस्थाओं को हम नष्ट न कर सके और न नव स्थापित संस्थाओं का काफी फल ही दिखाई दिया। इससे हमारे कुछ लोगों का दिल टूट गया और उन्होंने देखा कि अब तो धारा-सभा ही राष्ट्र की सेवा करने का एक मार्ग रह गया है। अब अपरिवर्तनवादियों को, यदि सचमुच उनका विश्वास अहिंसा में था, तो चाहिए था कि वे अपने साथियों की श्रद्धाहीनता पर बिगड़ न उठते। उन्हें चाहिए था कि उन्हें भी प्रामाणिकता और देशभक्ति का उतना ही श्रेय देते जितना कि वे अपने लिए दावा करते थे। बल्कि उन्होंने तो जोर-शोर के साथ अपने उन साथियों का जो कि अब स्वराजी कहे जाते हैं, विरोध किया। यदि वे सचमुच अहिंसा-परायण होते तो वे सहिष्णुता का आश्रय लेकर उनके मत-भेद के प्रति अपना आदर प्रकट करके उन्हें उनके रास्ते जाने देते। पर उनकी इस असहिष्णुता में उनका दोष न था। वे तो यह जानते भी न थे कि हम असहिष्णु हो रहे हैं। पर बजाय इसके कि वे अपने पैरों पर खड़े रहते और अपने ही कार्यक्रम पर अटल श्रद्धा रखते, उन्होंने स्वराजियों से बल प्राप्त करना चाहा, जिस तरह कि हम सब अपनी कमजोरियों को दूर करने की इच्छा न रख कर या उसमें असमर्थ होकर, अपने शासकों से बल प्राप्त करना चाहते हैं। यह असहाय मनोवस्था अबभी कायम है और यही कारण है मेरे और स्वराजियों के बीच हुए उस ठहराव से असन्तोष होने का। क्या अपरिवर्तनवादियों के मन में सचमुच स्वराजियों के प्रति प्रेम है? भले ही स्वराजी वैसे न हों जैसा कि होने का दावा करते हैं या वैसे ही हों जैसे कि हममें से कुछ लोग मानते हैं। यदि उनके अन्दर यह प्रेम-भाव है तो वे स्वराजियों की गति-विधि पर चिन्तित और दुखी न होंगे।

फिर अपरिवर्तनवादियों के बहुत बड़े भाग के लिए सिवा खादी के दूसरा कोई काम नहीं है, जिसमें उनका सारा समय लग सके। हिन्दू-मुस्लिम-संबंध और अस्पृश्यता का विषय तो मनोवृत्ति से संबंध रखता है और वह उनकी तरफ से शुद्ध होनी चाहिए। पर इन बातों के लिए सबको कोई अमली काम मिलना कठिन है। राष्ट्रीय शिक्षालयों में भी कुछ ही लोगों के लिए काम मिल सकता है, और सो भी विशेष प्रकार की योग्यता रखनेवाले चाहिए। पर खादी एक ऐसी चीज है जिसमें जितने स्त्री, पुरुष, युवक, मिल सकें सबका सारा समय लग सकता है, यदि उसमें उनका विश्वास हो। यदि वे वास्तव में अहिंसा-परायण हैं तो उन्होंने यह भी जान लिया होगा कि जबतक आरंभिक रचनात्मक काम न हो जायगा तब तक सविनय भंग एक असंभव बात है। सविनय भंग का अर्थ है असीम कष्ट-सहन की क्षमता—जो भी प्रतिपक्षी का संहार करने की उत्तेजना के नशे के बिना। यह तबतक नहीं हो सकता जबतक कि हमारा वायुमण्डल कुछ हद तक शान्तिपूर्ण न हो और जबतक कि हमें इस बात का काफी यकीन न हो कि हिन्दू-मुसल्मान, ब्राह्मण-अब्राह्मण और उच्च हिन्दू और अछूत आपस में न लड़ पड़ेंगे और जबतक कि हाथ-कताई और हाथ-बुनाई का रहस्य इस हद तक न समझ लेंगे कि उसकी सहायता के बल पर हम सार्वजनिक सहायता के बिना कार्यकर्ताओं के निर्वाह के विषय में निश्चिन्त हो जायं। ऐसे लोगों की संख्या चाहे उंगलियों पर गिनने लायक हो चाहे बहुत। यदि हमारी संख्या अधिक होगी तो उससे हमें वायुमण्डल की शान्तता का निश्चय हो जायगा। यदि हमारी संख्या कम होगी तो फिर हमें अपने आस पास फैले दावानल को बुझाते हुए मर मिटना होगा। यदि ऐसे असहयोगी कहीं हों तो वे इस ठहराव पर झगड़ा न करेंगे। क्योंकि यह और कुछ नहीं, अटल, आग्रही और अदम्य अपरिवर्तनवादियों को, जिनका प्रेम-भाव कड़ी से कड़ी कसौटी पर भी सौ टच साबित हो और त्रिविध रचनात्मक कार्यक्रम के प्रति श्रद्धा, आवश्यकता पड़ने पर, तमाम देश की श्रद्धाहीनता को मिटा दे, खोज निकालने को एक विधि ही है। उन्हें किसी की भी सहानुभूति की जरूरत नहीं, बल्कि उलटे जो कुछ सहानुभूति और पुष्टि वे दे सकते हैं उसकी जरूरत तो मुझे है और मैं उसके लिए प्रार्थना करता हूं। यह वे करें अपने आत्मत्याग के द्वारा, दृढ सेवा के द्वारा, बिना कुड़बुड़ाये और पुरस्कार की इच्छा किये . . . पारितोषिक हो सिर्फ अपनी अन्तरात्मा के द्वारा हुआ अनुमोदन . . . पाठक इस बात का यकीन रक्खें कि ऐसे कार्य-कर्ता भी देश में हैं। उन्हें यं. इं. के पृष्ठों के द्वारा प्रसिद्धि या परिचय की आवश्यकता नहीं है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, अगहन सुदी ४ संवत १९८१

ईश्वर सहायक हों

बहुत प्रार्थना और बहुत कुछ हृदय-शोधन के बाद भय और कम्पित हृदय से मैंने आगामी महासभाके सभापति-पद को ग्रहण करना मंजूर कर लिया है। मैं ऐसे समय में सभापति हो रहा हूं जब कि भारतवर्ष के शिक्षित जनों और मेरे बीच मत-भेद का भारी समुद्र फैला हुआ दिखाई देता है। हाँ, इन शिक्षितों में कुछ अच्छे अच्छे अपवाद भी हैं। पर आम तौर पर कुछ साधारण प्रसिद्ध भारतवासियों को छोड़ कर देश का बुद्धिशाली अंश मेरी विचार और कार्य-रीति के खिलाफ दिखाई पड़ता है। लेकिन फिर भी इसलिए कि मैं सर्व-साधारण जनता में लोकप्रिय दिखाई दे रहा हूं और कितने ही शिक्षित जन को यह विश्वास है कि मैं भी उन्हींके जैसा अपने देश के प्रति प्रेम रखता हूं, वे चाहते हैं कि देश के इतिहास में उपस्थित इस विकट और कठिन अवसर पर मैं महासभा के कार्य का दिग्दर्शक बनूं।

मैं समझता हूं कि मुझे उनकी इस इच्छा को रोकना न चाहिए। बल्कि इसके विपरीत मुझे अपना उपयोग होने देना चाहिए, जो कि मैं आशा करता हूं कि देश-हित के ही लिए होगा। इस बात का आखिरी फैसला करने के पहले मैं महासमिति के निर्णय का इन्तजार कर रहा था। महासमिति की बैठक में स्वराजियों के मौन ने उनकी प्रभाव-पूर्ण वक्तृता का काम किया। मैं जानता हूं कि उनमें से बहुतेरे लोग मताधिकार की शर्त के परिवर्तन पर बहुत खुश न थे। पर सुलह और एकता के लिए उन्होंने मौन रहकर इस परिवर्तन के पक्ष में अपना मत दिया। [illegible] असहयोगियों का हृदय दुःख से भरा हुआ था, वे समझते थे हमारे प्रिय पोषित आदर्शों का त्याग हो रहा है और इसलि[illegible] वे उसपर अपना संताप प्रकट कर रहे थे। उन्होंने विरोध [illegible] किया; परन्तु मत उस ठहराव के खिलाफ नहीं दिया।

यह स्वराजी और अपरिवर्तनवादी [illegible] के लिए भूषणास्पद हुआ, परन्तु यह वायुमण्डल कुछ ऐसा उत्साहदायी नहीं है जिसमें कुछ काम हो सके—और खास कर जब कि एक ही आदमी से बहुत-कुछ उम्मीद की जाती हो। पर यही तो मेरी अहिंसा की आजमाइश का ठीक ठीक मौका है। यदि मेरे दिल में अपरिवर्तनवादियों, स्वराजियों, लिबरलों, बेसन्ट-हेमसन वालों और स्वतन्त्र-दलवालों तथा उसी तरह अंगरेजों के प्रति भी समान प्रेम-भाव होगा तो मैं समझता हूं कि मेरे और देश के दोनों के लिए सब बातें सुगम हो जायंगी।

मैं देश की आंख में धूल न झोंकूंगा। मेरे नजदीक धर्म विहीन राज-नीति कोई चीज नहीं है। धर्म के मानी वहमों और गतानुगतिकत्व का धर्म नहीं, द्वेष करने वाला हो और लड़ने वाला धर्म नहीं, बल्कि विश्वव्यापी सहिष्णुता का धर्म। नीति-शून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है। इसपर कोई कह सकता है कि 'तब तो आपको राजनैतिक क्षेत्र से हट जाना चाहिए।' सो मेरा तजरिबा ऐसा नहीं है। मुझे समाज के अन्दर रहते हुए भी उसके दूषणों से अलिप्त रहने का प्रयत्न करना होगा। किसी भी सूरत में मेरे लिए महासभा से भागजाना कायरता होगी और मेरे लिए तो अब महासभा का अध्यक्ष-पद न स्वीकार करना मानों उससे पलायन कर जाना होगा—खासकर जब कि हर शख्स मेरे लिए मार्ग निष्कण्टक करने की कोशिश कर रहा है।

मुझे अपने कार्य और मानवी गुणों में विपुल श्रद्धा है। दुनिया के किसी भी देश से भारत की मनुष्य-जाति बुरी नहीं है—बल्कि संभवतः बेहतर ही है। और मेरा कार्य तो निस्सन्देह मनुष्य की सत्प्रवृत्ति-विषयक श्रद्धा को पहले ही से गृहीत किये हुए है। यद्यपि रास्ता अंधकार से परिपूर्ण दिखाई देता है तो भी ईश्वर मुझे प्रकाश दिखावेगा और मेरी रहनुमाई करेगा, यदि मुझे उसकी रहनुमाई में श्रद्धा होगी और इतनी नम्रता होगी कि उसके अचूक मार्ग-दर्शन के अभाव में होनेवाली अपनी असहाय अवस्था को स्वीकार करूँ।

यद्यपि मैं अबतक एक पक्का असहयोगी और सत्याग्रही बना हुआ हूं तथापि मैं देखता हूं कि राष्ट्रीय रूप में असहयोग या सविनय भंग करने के अनुकूल वायुमण्डल देश में नहीं है। ऐसी अवस्था में मेरी कोशिश यही होगी कि देश के तमाम दलों को, बिना जाति, रंग, या पंथ के भेद-भाव के, पारस्परिक सहिष्णुता की नींव पर, एकत्र करूँ और यदि संभवनीय हो तो यह दिखाऊं कि महासभा के असहयोग का मूल द्वेष या मत्सर न था। अब मैं असहयोग और सविनय भंग को—टीका टिप्पणी या दमन के द्वारा नहीं बल्कि स्वराज्य प्राप्त करके—असंभव कर देने का भार तमाम दलों पर रख दूंगा। इसलिए देश के तमाम भिन्न भिन्न दलों के प्रतिनिधियों से प्रार्थना करता हूं कि वे मौलाना महम्मदअली के निमन्त्रण पत्र को जरूर स्वीकार करें कि यदि आप प्रतिनिधि बनकर नहीं आ सकते तो दर्शक बनकर ही पधारिए, और अपने सलाह—मशवरे से लाभ पहुंचाइए।

महासभावादियों के सिर पर, फिर वे चाहे स्वराजी हों, अपरिवर्तनवादी हों, हिन्दू या मुसल्मान हों अथवा ब्राह्मण या अब्राह्मण हों, भारी कर्तव्य का भार है। उन्हें अपने कार्यक्रम के अनुसार चलना है और अपने दैनिक जीवन में उसका पालन करना है। महासभा में वे सेवक के रूप में उपस्थित होंगे, सेवा चाहनेवाले स्वामी के रूप में नहीं। दूसरे तमाम कपड़ों को छोड़कर सिर्फ खादी ही धारण कर के वे खादी के प्रति अपनी श्रद्धा को प्रकट करेंगे, जिसका उपदेश वे आज ४ साल से करते आ रहे हैं। एक दूसरे के प्रति अधिक से अधिक सहनशीलता और क्षमाशीलता तथा एक दूसरे को धार्मिक विधियों और क्रियाओं के प्रति परस्पर आदर-भाव दिखला कर वे भिन्न भिन्न जातियों और धर्म-पन्थों की एकता के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय देंगे। महासभा में आनेवाले अछूतों को देख-भाल अपने जिम्मे लेकर—अपनी हद से बाहर जाकर—हिन्दू लोग अस्पृश्यता निवारण के प्रति अपनी श्रद्धा को प्रदर्शित करेंगे। प्रतिनिधि तथा दर्शक, निस्सन्देह, मुझसे हमारी बहुतेरी खराबियों का, जैसे हिन्दू-मुसलिम-वैमनस्य, बंगाल-दमन, अकालियों का निर्दयतापूर्ण पीडन तथा दुरितों की ओर से प्रचलित वाइकोम-सत्याग्रह और सबसे बढ़ कर स्वराज्य की प्राप्ति के नुस्खे की उम्मीद रखते होंगे। पर मेरे पास कोई जादुई नुस्खा नहीं है। इलाज तो खुद प्रतिनिधि और दर्शकगण से ही मिलेगा। मैं तो दिशा दिखानेवाला पटरी की तरह सिर्फ हाथको उठा कर रास्ता भर दिखा सकता हूं। महासभाके सभ्य चाहें तो उसे मंजूर करें चाहें तो नामंजूर। परमात्मा हम सब की सहायता करे।

(यं० इं०)

साबरमती, २६ नवंबर, १९२४ मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

यदि मैं वायसराय होता—

दो अंगरेजों ने जो बंगाल में प्रचलित दमन-नीति के पैरोकार थे, मुझसे पूछा कि "यदि आप लार्ड रीडिंग या लार्ड लिटन की जगह हों तो क्या करेंगे ?" तुरन्त मेरे मुंह से जवाब निकला। पर मैंने देखा कि उससे उन मित्रों को संतोष न हुआ। उन्होंने समझा कि मेरे लिए जवाब देना आसान है, क्योंकि मैं दरअसल उनकी जगह पर तो हूं नहीं। फिर भी मैंने अपने जवाब पर सब तरह से विचार देखा और वह मुझे सबल मालूम हुआ। दूसरे कितने ही अंगरेज ऐसे हो सकते हैं जो उन सज्जनों की तरह बंगाल के दमन को ठीक मानते हों। इसलिए मैं अपना उत्तर जरा विस्तार के साथ यहां देता हूं—

यदि मैं वायसराय अथवा बंगाल के गवर्नर की जगह होता तो पहला काम मैं यह करता कि समाज के विश्वासपात्र हिन्दुस्तानियों को बुलाता और उनके सामने अपने तमाम कागज-पत्र रख देता और वे जो सलाह देते उसके मुताबिक करता। सुभासचन्द्र बोस को तो मैं अपने यहां बुलाता और उनपर अपना सन्देह प्रकट करता और जो खुलासा वे देते उसे प्रकाशित करता। फिर जिन प्रतिष्ठित भारतवासियों की राय मैं लेता उन्होंसे पूछ कर मैं देशबन्धु दास को बुलाता और उनके दल के जिन लोगों पर शक होता उनकी सारी जिम्मेवारी उनके सिर पर डालता। इस विधि के द्वारा मैं आसानी के साथ शान्ति स्थापित कर लेता अथवा अपना भ्रम दूर कर लेता। यदि मुझे अपने धारासभा-मण्डल में विश्वास न होता या उनको एकत्र करने के लिए समय न रहता तो मैं कम से कम इतना जरूर करता। फिर इससे भी आगे चल कर मैं अपनी इस अत्यन्त दयाजनक स्थिति का विचार करता और उसकी असत्यता को तुरन्त समझ जाता।

इस प्रकार उस विषम प्रसंग का पूरा इलाज करके मैं मूल रोग की, जिसके फलस्वरूप यह प्रसंग एक विकरूप में प्रकट हुआ हो, खोज करता। इसके लिए मैं देश के भारतीय प्रतिनिधियों को बुलाता और इस बात का यकीन कर लेने की को[illegible] करता कि ये नवयुवक जो कि सुयोग्य और यों दूसरी तरह से [illegible]न्तमय हैं, क्यों निर्दय हो कर बे-गुनाह लोगों की हत्या कर डालते हैं और बिना सोचे-समझे खुद अपनी भी जान को खतरे में डालते हैं? मैं जान पाता कि वे अपने स्वार्थ-साधन के लिए ऐसा नहीं करते हैं; बल्कि अपने देश के लिए आजादी चाहते हैं। इ[illegible]ए मैं उस असली कारण का इलाज करने में उन प्रतिनिधियों की सलाह के मुताबिक चलता। हां, इस बात का जरूर खयाल रखता कि विदेशियों के न्यायोचित हितों का घात न होने पावे। और इतना कर [illegible] इस विचार से सन्तोष मान कर निश्चिन्त रहता कि ऐसे भावी विषम प्रसंगों का उपाय करने की जिम्मेवारी धारासभा-मण्डल की भी उतनी ही होगी जितनी कि मेरी है।

मैं जानता हूं कि मैंने इसमें कोई नई बात नहीं बताई। पर उसका गुण यही है कि वह पुरानी है। वर्तमान शासन-पद्धति भय-प्रदर्शन की नीति पर ही जीवित रह रही है और एक के बाद दूसरे वाइसराय भारतीयों के साथ परामर्श करने की इस स्पष्ट आवश्यकता की ओर से आंखें मूंदते रहे हैं। इस दुराग्रह से पूर्वोक्त सलाह व्यर्थ नहीं साबित होती। उलटा उस तंत्र का मिथ्यापन ही सिद्ध होता है जिसके अंदर इस तरह लोकमत की विधिवत अवगणना हो सकती है। ऐसी हालत में अब यदि वाइसराय साहब को अपेक्षित पुष्टि के बदले विरोध होता हुआ दिखाई दे तो कौन आश्चर्य की बात है? (मो. क. गांधी)

पारसी रुस्तमजी

मी. अम्मा की मृत्यु होने पर मौ. शौकतअली ने कहा था—हिन्दुस्तान का एक सच्चा सिपाही कम हो गया। पारसी रुस्तमजी की मृत्यु से भी एक सच्चा सिपाही कम हो गया है। यही नहीं मेरा तो एक परम मित्र ही कम हो गया है। पारसी रुस्तमजी जैसे आदमी मैंने बहुत थोड़े देखे हैं। शिक्षा उन्होंने नाम-मात्र के ही लिए प्राप्त की थी। अंगरेजी भी थोड़ी ही जानते थे। गुजराती का ज्ञान भी मामूली था। पढ़ने का बहुत शौक न था। जवानी में ही व्यापार में पड़ गये थे। केवल अपने परिश्रम के बल पर एक मामूली गुमाश्ते की हालत से एक बड़े व्यापारी की सीढी पर जा पहुंचे थे। जितनी उनकी व्यवहार-बुद्धि तीव्र थी उनकी उदारता हातिम के जैसी थी; उनकी सहिष्णुता तो इतनी बढी हुई थी कि खुद कट्टर पारसी होते हुए भी हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई आदि के प्रति एक-सा प्रेम रखते थे। किसी भी चन्दा चाहनेवाले या हाथ फैलानेवाले को उनके [illegible] से खाली हाथ जाते हुए मैंने न देखा। अपने मित्रों के प्रति उनकी वफादारी इतनी सूक्ष्म थी कि कितने ही लोग उन्हींको अपना मुख्तारनामा दे जाते थे। मैंने देखा है कि बड़े बड़े मुसल्मान व्यापारी अपने नाते-रिश्तेदारों को छोड़ कर पारसी रुस्तमजी को अपना वकील बनाते थे। कोई भी गरीब पारसी रुस्तमजी की दुकान से खाली नहीं लौटता था। पारसी रुस्तमजी अपने लोगों के प्रति जितने उदार थे खुद अपने प्रति उतने ही कंजूस थे। आमोद-प्रमोद का तो नाम भी न जानते थे। अपने या स्वजनों के लिए विचार-पूर्वक खर्च करते थे। घर में अन्त तक बहुत सादगी कायम रक्खी थी। गोखले, एन्ड्रूज, सरोजिनी देवी आदि पारसी रुस्तमजी के ही यहां ठहरते थे। छोटी से छोटी बात पारसी रुस्तमजी के ध्यान में रहती। गोखले के असंख्य अभिनन्दन-पत्र इत्यादि के बड़े बड़े पैंतालीस अदद का पैक करना, उन्हें जहाज पर चढाना, [illegible] सारा भार पारसी रुस्तमजी पर न हो तो किसपर हो?

अपनी प्रिय धर्मपत्नी की मृत्यु पर उनके नाम का—जेरबाई ट्रस्ट कर के अपनी सम्पत्ति का बडा भाग उन्होंने धर्म-कार्य के निमित्त रख छोडा था। अपनी सन्तान को उन्होंने [illegible] भी चटक-मटक की हवा न लगने दी। उन्हें सादी रहन सहन सिखाई और उनके लिए इतनी ही विरासत रख छोडी है [illegible] जिससे वे भूखों न मर सकें। अपने वसीयत नामे में उन्होंने अपने तमाम रिश्तेदारों को याद किया है।

पूर्वोक्त प्रकार की ही सावधानी और दृढता के साथ उन्होंने सार्वजनिक हलचलों में योग दिया था। सत्याग्रह के समय में अपना सर्वस्व स्वाहा कर देने के लिए तैयार व्यापारियों में पारसी रुस्तमजी सबसे आगे थे।

अंगीकृत कार्य को हर तरह का संकट उपस्थित होने पर भी उसे न छोडने की टेव उन्हें थी। अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक जेल में रहना पडा, तो भी वे हिम्मत न हारे। लडाई आठ साल तक चली, कितने ही मजबूत लडवैया गिर गये, पर पारसी रुस्तमजी अटल बने रहे। अपने पुत्र सोराबजी को भी उन्होंने लडाई में स्वाहा कर दिया।

इस हिन्दुस्तानी सज्जन की मुलाकात मुझे १८९३ में हुई। पर ज्यों ज्यों मैं सार्वजनिक कामों में पडता गया त्यों त्यों पारसी रुस्तमजी में रहे वफादारी की कदर मैं सीखता गया। वे मेरे

सर्वप्रिय थे। सार्वजनिक कामों में मेरे साथी थे। और अन्त को मेरे मित्र होगये। वे अपने दोषों का वर्णन भी मेरे सामने बालक की तरह आकर' कर देते। वे मेरे प्रति अपने विश्वास के द्वारा मुझे चकित कर देते थे। 1897 में जब गोरों ने मुझपर हमला किया तब मेरे और मेरे बाल-बच्चों का आश्रय-स्थान रुस्तमजी का मकान था। गोरों ने उनके मकान असबाब आदि में आग लगा देने की धमकी दी। पर उससे पारसी रुस्तमजी का रुवां तक खड़ा न हुआ। दक्षिण आफ्रिका में जो नाता उन्होंने जोड़ा सो ठेठ मृत्यु-दिन तक कायम रक्खा। वहां भी वे सार्वजनिक कामों के लिए रुपया-पैसा भेजते रहते थे। दिसंबर में महासभा के समय उनके यहां आने की संभावना थी। पर ईश्वर को कुछ और ही करना था। रुस्तमजी सेठ की मृत्यु से दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों की बड़ी भारी हानि हुई है। सोराबजी अडाजणिया गये, फिर अहमद महमद काछलिया गये, अभी अभी पी. के. नायडू गये और अब पारसी रुस्तमजी भी चले गये। अब दक्षिण आफ्रिका में इन सेवकों की कोटि के भारतवासी शायद ही रहे हों। ईश्वर निराधारों का रखवाला है। वह दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों की रक्षा करेगा। परन्तु पारसी रुस्तमजी की जगह तो हमेशा खाली ही रहेगी।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

सर्व-दल-परिषद्

"बंगाल क्या है? भारतवर्ष का एक अंग है। बंगाल का दुःख सब प्रान्तों का दुःख है। बंगाल पर आई आफत मेरी आफत है। इस आफत में यदि मैं देशबन्धु का साथ न दूं तो मेरा देशाभिमान और देशभक्ति फजूल है।" "अहिंसा के क्षेत्र में मैं ज्यों ज्यों गहरा पैठता हूं त्यों त्यों नित्य नवीन प्रदेश दिखाई पड़ते जाते हैं, नवीन प्रकाश मिलता जाता है। इसलिए मैं सब अपरिवर्तनवादियों से हर वक्त किस तरह मशवरा कर सकता हूं। उन्हें अहिंसा प्रिय है, वे अहिंसा-सिद्धान्त के पूजक हैं। इसलिए मुझे हमेशा यह आशा रहा करती है कि वे मेरे अहिंसा-धर्म को तथा उसके अन्तर्गत मुझे नित्य नई मिलनेवाली बातों को इशारे में समझ जायगे।" इन वचनों में बम्बई की सर्वदल-परिषद् का संयोजक हेतु और गांधीजी की वर्तमान प्रवृत्ति का पूरा पूरा परिचय मिल जाता है। परिषद् का परिमित हेतु था बंगाल का दुःख सारे हिन्दुस्तान को अनुभव कराना और उसके प्रति विरोध प्रदर्शित करना ... हुआ। परिषद् का दूरवर्ती और विशाल हेतु था—देश की वर्तमान अवस्था को दूर करने के लिए तमाम दलों से एक सामान्य कार्यक्रम स्वीकार कराना। वह पूरा न हुआ। परन्तु इस परिमित हेतु की सिद्धि में ही व्यापक हेतु की सिद्धि की आशा है।

* * *

इस परिमित हेतु का विचार करने के बजाय विशाल हेतु का विचार पहले करने की भी सूचना पेश हुई थी। गांधीजी ने इसपर कहा था कि यह तो गाड़ी के पीछे घोड़ा खड़ा करने जैसी विपरीत बात है। और परिषद् के अन्त में सबने कबूल किया कि गांधीजी का कहना यथार्थ था। क्योंकि विशाल हेतु की चर्चा में यदि परिषद् पड़ी होती तो शायद वह आजतक पूरी न हुई होती और बिना ही कुछ नतीजा निकले उसे खतम करना पड़ता। उसकी जगह आज परिमित हेतु—बंगाल में जारी किये बेकायदा कानून का निषेध करना, उसे रद करने का तकाजा करना और यह प्रतिपादन करना ... स्वराज्य स्थापित करने से ही यह परिस्थिति दूर हो सकती है—सफल हुआ है। इससे तमाम दल बड़े हेतु की सिद्धि की भी बहुत कुछ आशायें कर रहे हैं। बड़े उद्देश को सिद्ध करने के लिए जो कमिटी नियुक्त हुई है उसमें, आशा है, तमाम दलों के समाचार-पत्र भी सहायता करेंगे। क्योंकि विनीत-दल के नेता ने तथा पत्रों ने परिषद् के कार्य पर सन्तोष प्रकाशित किया है और आशा प्रकट की है। विदुषी बेसेंट ने भी अत्यन्त सन्तोष प्रकट किया है। यही नहीं, बल्कि महासभा में भी आने का वचन दिया है और ऐसी सम्भावना है कि वे अपने दल के साथ महासभा में शरीक होंगी। ब्राह्मणेतर दल को भी परिषद् के कार्य से असन्तोष न हुआ।

* * *

विदुषी बेसेंट का मत प्रकट करते हुए एक खास बात लिखने लायक मालूम होती है। उन्होंने अपनी राय जाहिर करते हुए एक बात पर खास तौर पर जोर दिया है। 'यद्यपि मैं बंगाल में जारी किये गये फरमान के पक्ष में थी तो भी मेरे विचार बड़ी शान्ति के साथ सुने गये थे।' यह बात सारी परिषद् की कार्रवाई पर घटती थी। परिषद् ने चाहे कोई स्पष्ट फल न पैदा किया हो तोभी उसने शान्ति और सहिष्णुता का वायुमण्डल स्थापित किया है। इस दृष्टि से उसे अपूर्व कह सकते हैं। और इस बात को देखते हुए अंगरेजों को उसमें उपस्थित न होने की अपनी भूल मालूम हो जायगी-हालां कि योरपयन-मण्डलों को खास तौरपर साग्रह निमन्त्रण दिया गया था; परन्तु उन्होंने उसे स्वीकार न किया। बंगाल के बेहूदा प्रस्ताव का मसविदा तैयार करने के लिए जो कमिटी नियुक्त की गई थी उसमें श्री जिन्ना और मौ॰महम्मदअली ने जिस ममत्व के साथ विदुषी बेसेंट को समझाने का प्रयत्न किया था उसका बड़ा गहरा असर उनपर हुआ। अंगरेज लोग उसमें शरीक हुए होते तो उन्हें भी समझाने में किसी बात की कोई कसर न रक्खी जाती। और इस सहिष्णुता और ममता के फल-स्वरूप ही प्रस्ताव के दूसरे भाग—1818 का कानून वापस ले लेने तथा उसकी रू से गिरफ्तार किये लोगों पर, आवश्यक हो तो, अदालत में मामला चलाने के प्रस्ताव—को विदुषी बेसेंट तक सब नेताओं ने स्वीकार किया।

* * *

विनीत दल के साथ हुए गांधीजी के परामर्श की तरह तरह की खबरें अखबारों में प्रकाशित हुई हैं। उनमें कुछ ही अथवा अर्ध सत्य है। इस बात में जरा भी सत्यांश नहीं कि मताधिकार की अनिवार्य शर्त के तौर पर हाथ-कता सूत भेजने तथा खादी पहनने के प्रस्ताव को अब भी ढीला करने की इच्छा गांधीजी ने प्रदर्शित की। मताधिकार-विषयक गांधीजी के विचार 'एकता कहां है?' नामक लेख में सविस्तार आ जाते हैं। इन विचारों के उपरान्त उन्होंने कुछ न कहा था। हां, एक खास बात जानने लायक है। गोष्ठी तो हुई न थी—सिर्फ एक दूसरे के विचार एक दूसरे पर प्रकट किये गये थे। श्री शास्त्रीजी के आक्षेपों पर विचार हुआ और श्री चिन्तामणि ने अपने विचार गांधीजी पर प्रकट किये। और अन्त को गांधीजी ने उनसे साफ साफ कह दिया था—श्री शास्त्रीजी को—विनीत पक्ष को डर है कि मैंने तो असहयोग को सिर्फ मुल्तवी भर रक्खा है और मौका मिलते ही मैं फिर उसे शुरू करूंगा। आप कृपया मेरी तरफ से उन्हें कह दीजिएगा कि उनका डर सच है। असहयोग को तो मैं छोड़ ही नहीं सकता, और मैंने उसे जो मुल्तवी किया है वो प्रतिकूल वायुमण्डल के कारण ही। अनुकूल वातावरण होते ही मैं

जबर उसे शुरू करूंगा; पर साथ ही यह भी कहे देता हूं कि मुझे फिर शुरू करने से रुकना अब आपके ही हाथ है। आप ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं जिससे मुझे असहयोग शुरू करने की आवश्यकता न रहे। आप सरकार को समझा सकते हैं, आप अंगरेजों को समझा सकते हैं और उन्हें जो करना हो सो करने दे कर असहयोग को अनावश्यक कर सकते हैं। इतनी स्पष्ट बात के होते हुए भी विनीत पक्ष के सज्जन अच्छी तादाद में उपस्थित हुए थे—श्री शास्त्री के सभापतित्व में विशाल हेतु सिद्ध करने के लिए कमिटी नियुक्त करने का प्रस्ताव पेश हुआ और पास हुआ—ये सब शुभ चिह्न हैं।

* * *

समस्त दलों से एक कार्यक्रम स्वीकृत करा के उन्हें महासभा में एकत्र करने के लिए जो कमिटी नियुक्त हुई है उसमें गांधीजी ने पहले से ही चुने हुए लोगों के नाम रक्खे थे। अन्त को उनके नाम बढते बढते लगभग सौ सवा-सौ तक पहुंच रहे हैं। इससे कमिटी का काम बढ जायगा, उसमें अनेक कठिनाइयों के आने की संभावना है; परन्तु सहिष्णुता को पराकाष्ठा तक पहुंचाने की इच्छा रखनेवाले गांधीजी ने नामों की संख्या बढाने पर भी कोई ऐतराज न किया। २० दिसंबर तक सब दल के लोग अपनी अपनी एकत्र होने की शर्तें पेश करेंगे और बेलगांव की महासभा के पहले ये शर्तें पेश हो जायंगी, जिससे बेलगांव में एकत्र होनेवाले तमाम दलों में उनपर चर्चा होने में बहुत अनुकूलता हो सकेगी। इस बीच मताधिकार की नवीन शर्तों पर महासभा में भी वादविवाद होगा; और सब लोगों को यह देखने का मौका मिलेगा कि इसके पक्ष में लोकमत कितना प्रबल है। इससे मार्च में देहली में समस्त-पक्ष-परिषद् नियुक्त कमिटी की बैठक की चर्चा के लिए पूरी सामग्री तैयार हो रहेगी। गांधीजी ने परिषद् में तथा इस अंक में प्रकाशित लेखों में यह बात स्पष्ट कर दी है कि खादी और चरखे पर मेरा विश्वास अटल है। यदि यह सिद्ध कर दिया जायगा कि यह श्रद्धा फजूल है तो मैं सब में शामिल हो जाऊंगा और यदि यह सिद्ध न हो सका तो मैं अकेला इस मत का होते हुए महासभा बहु-मति को सौंप कर अकेला काम करूंगा।

* * *

महासमिति की चर्चा का मुख्य विषय तो था बंगाल का ठहराव ही। गांधीजी ने इसका विवेचन करते हुए जो भाषण किया था वह अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इस अंक में अब उसके लिए स्थान नहीं। परन्तु उसके मुख्यांश दिये बिना नहीं रहा जाता। इन व्याख्यानों में उन्होंने अपनी मनोदशा जितनी स्पष्टता के साथ व्यक्त की थी उतनी शायद ही और कहीं की हो। आरंभ में सब को अपना अपना स्वतंत्र मत देने की सूचना कर के उन्होंने एक वाक्य कहा जो उनकी वर्तमान सारी प्रवृत्ति पर बहुत प्रकाश डालता है। 'ऐसा कहीं न हुआ कि दुनिया की किसी हलचल का परिणाम उसके साधनों के अनुरूप न हुआ हो। *इस बात पर मेरी अटल श्रद्धा है।* इसीसे मैं कहता हूं कि साधन और साध्य एक ही चीज है। अगर आप इस बात को मानेंगे तो आप इस बात को समझ जायंगे कि मैं क्यों कहता हूं कि इस ठहराव को मंजूर कीजिए।' आज हमारे साध्य की जो दशा है वह पिछले वर्ष में हुई साधन-शिथिलता की प्रतिध्वनि है। साधन को यदि हम स्वच्छ करेंगे तो साध्य तक जल्दी पहुंचेंगे। यह चेतावनी इन वचनों से दोनों स्वराजियों और अपरिवर्तनवादियों को-मिल जाती है।

ठहराव पर बहस होने के पहले अपरिवर्तनवादियों के साथ गांधीजी ने खानगी में गुफ्तगू भी की थी। उस समय उन्होंने ठहराव का अर्थ बडी अच्छी तरह समझाया और अपने भाषण में उसे और स्पष्ट किया था। "देश के बुद्धिमान् और शिक्षित वर्ग का एक बडा भाग आज जुदी ही दिशा में जा रहा है। एक व्यवहार-दक्ष मनुष्य की तरह मुझे उनके साथ परामर्श करना चाहिए। उसका विरोध करने में मुझे कुछ सार नहीं दिखाई देता। बहुत काल तक महासभा को एक ही मत की संस्था नहीं रख सकते। इसके अनेक कारण हैं। एक यह कि हमें सहिष्णुता-धर्म को समझना चाहिए। महासभा में समस्त पक्ष के लोग होने ही चाहिए। अब इसकी पहली सीढी है महासभा के दलों में ठहराव, इकरार हो जाना। यदि महासभा बहुमत से निश्चय करे कि धारासभा में जाना चाहिए तो जबतक अपरिवर्तनवादियों की संख्या कम है तबतक वे उसे यह कहने से नहीं रोक सकते कि महासभा की तरफ से स्वराज्यवादी धारासभा में जाते हैं; क्यों कि महासभा ने तो धारासभा के कार्यक्रम को स्वीकार ही कर लिया है। इस स्थिति में तथा आज की स्थिति में अन्तर नहीं। बहुमत से किया निर्णय और आपस के मशवरे के द्वारा किये ठहराव का परिणाम एक-सा है। और इसके फलस्वरूप स्वराजवादी और अपरिवर्तनवादी दोनों को महासभा में एक समान दरजा मिल जाता है।"

* * *

मताधिकार के बारे में भी बहुत चर्चा चली थी। खरीद कर सूत भेजने का अधिकार देने से, असहयोग का कार्यक्रम मुल्तवी रखने से, असहयोग बंद हो जायगा, खादी के काम को धक्का पहुंचेगा, इस किस्म की दलीलें पेश हुई थीं। गांधीजी ने खानगी बातचीत में आवेश के साथ कहा था—"उस असहयोग का कोई मूल्य मेरे नजदीक नहीं जिसे बाहरी हलचलों की सहायता की जरूरत हो, जिसको असहयोग-कार्यक्रम के हर क्षेत्र में जारी रहने से ही प्रेरणा मिल सकती है और उसके बिना जो निष्प्राण हो जाय। मैं तो असहयोग और खादी के लिए ऐसी स्थिति चाहता हूं कि वे अपने ही प्रकाश से चमकें, अपने ही बल पर स्वतन्त्र, स्वाधीन खडे रहें।" उन्होंने जरा विस्तार के साथ अपने भाषण में इसकी चर्चा की थी। उन्होंने कहा कि मताधिकार की इस परिवर्तन शर्त के विषय में यदि किसीको कुछ आपत्ति हो तो वह स्वराजियों को हो हो सकती है, अपरिवर्तनवादियों को नहीं, और अन्त में दोनों पक्षों को संबोधन कर के उन्होंने ये हृदयङ्गम विचार प्रकट किये-'देखना, स्वराजियों के लिए कहीं कोई ऐसा न कहे कि चरखे के काम को निर्मूल करने के ही लिए उन्होंने नये मताधिकार की शर्त को स्वीकार किया। इस ठहराव को हम दोनों पक्षों ने स्वीकार किया है। और उसे हमने इसी शर्त पर स्वीकारा है कि हम उसका तन-मन से पालन करेंगे। हमारा कार्य जो न सफल हो सका उसका कारण है तालीम की शिथिलता, तालीम की न्यूनता। *यदि हम इसमें बताये कार्यक्रम में सारे देश की शक्ति लगा सकें* तो फतेह हमारी आंखों के सामने ही समझिए। यदि भविष्य में इस ठहराव के शब्दों के अर्थों पर मिथ्या चर्चा हो, उसकी शर्तों पर कभी मिथ्या हो तो मैं अपंग हो जाऊंगा। अपरिवर्तनवादियों को यह ठहराव यदि बिलकुल त्याज्य मालूम हो तो वे उसके सुधारने का आग्रह मुझसे, देशबन्धु से और मोतीलालजी से कर सकते हैं ... ... आज तो हृदय के अन्दर गोता लगा कर देखने की जरूरत है, सारे ताने-उलहने शिरोधार्य कर लेने की

जरूरत है। मैं तो ठहरा व्यवहारदक्ष आदमी। यद्यपि मैं सिद्धान्त की बात में कभी झुकनेवाला शख्स न हूं तथापि व्यवहार में तो मैं स्वराजियों के आगे झुक गया हूं, लिबरलों के सामने झुक रहा हूं, और कल यदि अंग्रेज प्रायश्चित करने के लिए तैयार हों तो आप मुझे उनके सामने भी झुकता हुआ देखेंगे। मुझे तो अहिंसा के सिवा दूसरा कुछ नहीं दिखाई देता। अहिंसा के पालन के सिवा दूसरा कोई धर्म नहीं दिखाई देता। मुझे विश्वास है कि अहिंसा की सदा जय होती है। जिस दिन मुझे यह प्रतीति हो जायगी कि अहिंसा निष्फल है तब मेरे मृत्यु ही एक विरामस्थान होगा।"

[illegible] दो भाइयों को छोड़कर सबको यह ठहराव पसन्द हुआ। कोई यह सवाल न करे कि परिषद् का नतीजा क्या निकला? परिषद का फल मालूम होना अभी बाकी है और वह सबके हाथ में है। मौ० शौकतअली ने पहले प्रस्ताव का समर्थन करते हुए एक [illegible] पूछा था—'यह प्रस्ताव तो हमने किया, पर यदि कोई हमारी बात न सुनें तो क्या कीजियेगा? इसका अमल कराने के लिए आपके पास कौन ताकत है? यह सवाल तो हमेशा के लिए रहेगा ही। यदि यह शक्ति ही आज रही होती तो इस परिषद् की भी जरूरत न रहती। इस शक्ति को प्राप्त करने के ही लिए गांधीजीने फिर अव्यवस्था में से रचना करने की शुरुआत की है। ऐसा मालूम होता है कि आज हम दस साल पीछे हट गये हैं। श्रीचिंतामणि और देशबंधु के भाषण अत्यन्त शान्त और आवेशपूर्ण थे। रौलट कानून के समय ऐसे भाषण श्री शास्त्रीजी ने भी किये थे, परन्तु उस समय गांधीजी सारे देश में रूह फूंक चुके थे। आज बिजली फैलाने जैसी हालत नहीं—इसी से प्रस्ताव पर सन्तोष मानने की शर्मनाक हालत में आ जाना पड़ा है। इस स्थिति के निवारण का उपाय आगामी महासभा में पेश होनेवाले कार्यक्रम तथा उसपर सब दलवालों के एकीकरण में ही है।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

अब क्या करें?

खादी एक एक कदम आगे बढ़ती जा रही है। अखिल भारत महासमिति ने मताधिकार में खादी को शामिल करने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। हमें आशा रखनी चाहिए कि महासभा भी स्वीकारेगी। परन्तु महासभा चाहे स्वीकारे या न स्वीकारे जिन लोगों का विश्वास कातने की शक्ति पर है वे तो सूत कात कर ही अपनी सभ्यता को सुशोभित करेंगे। स्वराजियों ने शुभ हेतु से कताई और खादी के लिबास को मताधिकार में स्थान दिया है। परन्तु इसलिए कि उन्हें उत्साह मिले, उनका विश्वास दृढ़ हो, अपरिवर्तनवादियों को आगे कदम बढ़ा कर औरों को आगे बढ़ाना चाहिए। अभी तो गुजरात में कई २००० स्वेच्छापूर्वक कातनेवालों को स्थिर रखने के लिए हमें मिहनत करना पड़ती है, हमारी योजना-शक्ति की नाप मिल जाती है, हमारी कुशलता को जांच हो जाती है। इसको बहुत आगे बढ़ाने में तो हमारी तमाम शक्तियों की परीक्षा होगी। जब बहुसंख्यक कार्यकर्त्ता इसकी सतत तैयारी करते रहेंगे तभी हमें सफलता मिलेगी। हजारों लोग तो अपनी मिहनत दे सकेंगे। [illegible] न देंगे, न उन्हें मिल ही सकेगी। वे सब अपने लिए पूनियां भी तैयार न करेंगे। इसलिए हर गांव और हर ताल्लुके में अच्छे धुननेवाले होने चाहिए। हर गांव में, हर ताल्लुके में, अच्छे चरखे और बुनाई के करघे बनानेवाले होने चाहिए। समितियों को आवश्यकताओं का संग्रह रखना चाहिए। यह सब काम जो प्रान्त अच्छी तरह कर सकेगा उसमें, माना जायगा कि अमली शक्ति, तंत्र का संचालन करने की शक्ति आ गई। यदि हम इतना भी न कर सके तो फिर स्वराजतंत्र का संचालन करने की शक्ति कहां से लावेंगे? स्वराज्य मिलने पर ये शक्तियां अपने आप नहीं आ खड़ी हो जायंगी। बल्कि उन शक्तियों को प्राप्त करने में ही स्वराज्य छिपा हुआ है, यह हमारी समझ में आ जायगा। हमारे कताई के पेशे को नष्ट करके ईस्ट इंडिया कंपनी ने हमपर अपना कब्जा जमाया है। अब उसी चीज का जीर्णोद्धार हमारा उद्धार है।

आजतक सूत उन्हीं लोगों ने काता है जो चरखा, पूनी, आदि प्राप्त कर सके हैं। अब यदि हम बहुसंख्यक लोगों से आधे घण्टे की मिहनत की आशा रखते हों तो समितियों को यह सब सुविधा करनी पड़ेगी। यदि हमारे अन्दर सच्ची जागृति हो तो हजारों लोगों को इस अल्प परिश्रम के होनेवाले महायज्ञ में हाथ बंटाना चाहिए। और यदि यह बात सच हो कि चरखे के बिना स्वराज्य नहीं, तो फिर उसमें हजारों लोगों का शामिल होना कोई आश्चर्य की बात न होनी चाहिए। मेरी दृष्टि से तो चरखा ही स्वराज्य प्राप्त करने का सब से सहल साधन है। वह दूसरी तमाम हलचलों को प्रज्वलित कर सकेगा और उसके बिना दूसरी तमाम हलचलें निरर्थक साबित होंगी।

लोगों में सचमुच शक्ति है या नहीं, लोग सचमुच स्वराज्य चाहते हैं या नहीं, इसका अन्दाज लगाने का हमारे पास दूसरा कोई शान्तिमय साधन नहीं है। बड़े बड़े सम्मेलनों में लाखों आदमियों के जमा होने से स्वराज्य-शक्ति सिद्ध नहीं होती। हजारों लोगों के चन्दा देने से भी वह शक्ति नहीं आती। जहां रुपये का उपयोग करनेवाले न हों वहां रुपये की क्या कीमत? बहुतों के हिन्दी या अंगरेजी व्याख्यानों से भी स्वराज्य नहीं मिल सकता। परन्तु चरखा कातने में यह शक्ति किस तरह है, यह बात मैं कई बार अनेक तरह से बता चुका हूं।

यदि चरखा न फले-फूलेगा तो मुझे निश्चय है कि भारतवर्ष के लिए आजादी हासिल करने का एक मात्र उपाय रहेगा खूं-रेजी। केवल धारासभा के द्वारा कभी सच्ची स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। यह बात हरएक भारतवासी को सूत्र-रूप में रट रखना चाहिए। फिर तो एक शक्ति-मार्ग ही रहा। एक शान्त शक्ति मार्ग—उसमें हमें खुद कष्ट-सहन करना होगा—हमें कुछ रचनात्मक काम करना होगा।

दूसरा खूनी शक्ति-मार्ग—उसमें हमें प्रतिपक्षी को दुःख देना होगा। इस रास्ते को अभी तो सब लोगों ने त्याज्य माना है। खूनी साधनों से फिलहाल तो भारत कुछ भी नहीं कर सकता। यह इतनी सीधी बात है कि एक बच्चा भी समझ सकता है।

इससे जहां तक मेरी दृष्टि जाती है, वहां तक यदि मुझे चरखा ही चरखा दिखाई दे तो पाठक मुझे माफ करें और जो बात मुझे दिखाई देती है वही यदि उन्हें भी दिखाई दे तो मैं उन्हें इस भव्य यज्ञ में अपना हिस्सा अर्पण करने के लिए निमंत्रण देता हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन" अहमदाबाद

झुकाया तक नहीं

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रति का	„ -)।
विदेशों के लिए	„ ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक १७

मुद्रक-प्रकाशक	अहमदाबाद, अगहन सुदी १२, संवत् १९८१	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
वेणीलाल छगनलाल बूच	रविवार, ७ दिसम्बर, १९२४ ई०	सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

बेलगांव में

मैं चाहता हूं कि कार्यकर्तागण यह समझ लें कि मैं महासभा के आगामी अधिवेशन का वैसा ही सभापति होऊंगा जैसा कि एक कामकाजी आदमी एक कामकाजी सभा का सभापति होता है। महासभा का दिखाऊपन तो उसकी प्रदर्शिनी तथा वैसे ही और और कामों में दिखाई देगा। किन्तु यदि हम लोग सचमुच कुछ ठोस काम करना चाहते हैं तो हमें उसका एक कार्यक्रम पहले से ही बना लेना चाहिए। यदि हमें यह करना है तो सभी कार्यकर्ताओं को उपस्थित होना चाहिए और सहायता देना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब वे समझौते को समझें, पसन्द करें और पूरे दिल से मान लें। मुझे यह पसन्द नहीं है कि स्वराजी हों या अपरिवर्तनवादी, कोई इसे केवल श्रद्धा या भक्ति के लिहाज से मान लें। यह समझौता केवल दिखाने के लिए नहीं है। दूसरों पर असर डालने के लिए नहीं, किन्तु अपने ही लोगों पर असर डालने के लिए यह समझौता हुआ है। केवल ऊपरी मन से मंजूर करना तो कुछ न करने से भी बदतर होगा। किन्तु मंजूरी के साथ आन्तरिक विश्वास और उत्साह का होना आवश्यक है। कुछ स्वराजियों ने मताधिकार के न बदलने की प्रार्थना की है। सिवा इनके मैंने स्वराजियों की ओर से अब तक कोई विरोध नहीं पाया है। किन्तु अपरिवर्तनवादी तो मुझपर बड़े रोष और दुःख के साथ अपनी नाराजी प्रकट कर रहे हैं। जहां तक मुझसे हो सकता है, मैं इन पृष्ठों में, स्थिति को समझाने का और शंकाओं के समाधान का प्रयत्न करता हूं। तब भी मैं यह जानता हूं कि खुले दिल से मन भर कर बातें करने के समान संसार में और कुछ भी नहीं है। महासमिति की बैठक में मैंने घंटे भर तक अपरिवर्तनवादियों से बात की थी। पर उस एक घंटे में क्या होना था? *मैं इसलिए २० दिसंबर को, बेलगांव में अपरिवर्तनवादियों* से मिलकर विचार करने के लिए अलग निकाल देता हूं। मैं उस दिन सुबह बेलगांव में पहुंच जाने की उम्मीद रखता हूं। मैंने श्रीयुत गंगाधरराव देशपांडे को लिखा है कि मेरे स्वागत में किसी प्रकार की धूमधाम न की जाय। इसमें समय नष्ट करना ठीक नहीं है। मैं सभी अपरिवर्तनवादियों से, जो वादविवाद में भाग लेना चाहते हैं, इस आगामी सभा में आने का अनुरोध करता हूं। तो भी मैं उन्हें इतना पहले बेलगांव में भीड़ लगा देने से रोकना चाहता हूं। २६ ता: के पहले महासभा की बैठक शुरू नहीं होगी। खिलाफत परिषद भी २४ ता: से पहले शुरू नहीं होती है। नेशनल कन्वेन्शन भी इससे पहले न हो सकेगा। इसलिए मैं यह उचित समझता हूं कि हर एक प्रान्त अपने दो दो तीन तीन प्रतिनिधि चुन कर भेजे जो और लोगों के भी विचारों के पूरे जानकार हों। २० वीं तारीख का तीसरा पहर केवल विचार-विनिमय के लिए दिया जा सकता है। यदि जरूरत पड़ी तो २१ वीं को भी बहस चल सकती है। मैं देशबन्धु दास और पंडित मोतीलाल नेहरू से स्वराजियों में भी ऐसी चर्चा की आवश्यकता के विषय में पत्रव्यवहार कर रहा हूं। यदि वे उचित समझें तो मैं बड़ी खुशी से केवल स्वराजियों को भी २० ता. का एक हिस्सा दे दूंगा। जहांतक प्रतिनिधियों की उपस्थिति से संबंध है, मैं आशा करता हूं, दोनों दलों की ओर से पूरी पूरी उपस्थिति होगी। जहांतक स्वयं मुझसे संबंध है, मैं दलबन्दी के लिहाज से मताधिक्य के द्वारा कोई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास कराना नहीं चाहता हूं। मैं केवल प्रतिनिधियों के रुख को जानने के लिए उत्सुक हूं। वे अपने कर्तव्य के पालन में चूकेंगे, यदि वे केवल उपेक्षा और उदासीनता के कारण या नाराज हो कर महासभा में न आवेंगे। जिसे राष्ट्रीय कार्य्य में अपना समय देना नामंजूर हो उसे प्रतिनिधि न बनना चाहिए। जहांतक मनुष्य के बस की बात है, महासभा में उपस्थित होना उनका कर्तव्य है।

विश्वास-घात ?

देश में कुछ ऐसे लोग हैं जिन्हें देश की नीतिमत्ता का ध्यान रहता है। यह एक शुभ चिह्न है। एक मित्र जो कि स्वयं विनीतदल वाले नहीं हैं, पूछते हैं कि महासमिति द्वारा स्वीकृत केवल स्वराजियों और अपरिवर्तनवादियों का समझौता सर्वदल-परिषद् के साथ *विश्वासघात* नहीं है? मेरी तरफ से इसका जोरदार उत्तर है—'हरगिज नहीं'। क्योंकि यह समझौता ही तो इस निमन्त्रण का आधार है। उसके पहले महासभा के दोनों दलों का मिल जाना आवश्यक था। जबतक महासभा का अधिवेशन न हो तबतक महासमिति ही उस एकता को प्रदर्शित कर सकती है। जहांतक महासभा के दोनों दलों का संबंध है, यह समझौता आखिरी है। पर किसी बाहरी दल के चाहने पर इसका विरोध करने, यहां तक कि पुनर्विचार भी करने

की गुंजाइश है । इस विरोध का सफल होना तभी संभव है जब वह दोनों दलों को युक्तियुक्त जचे। किसी दल से यह नहीं कहा जाता है कि एकता के नाम पर वे अपने अपने सिद्धान्तों को छोड़ दें । महासमिति का समझौतेवाला प्रस्ताव ऐसा कोई आखिरी निश्चय नहीं है कि या तो यही मंजूर कीजिए या कुछ भी नहीं। समझौते के अतिरिक्त भी ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन पर सभी दलों को विचार करना पड़ेगा । महासभावादियों से यह आशा नहीं की जाती है कि वे अपने सिद्धान्त या नीति को सर्वदल-परिषद् के निर्णय तक मुल्तवी करेंगे। पर हां, उनसे यह उम्मीद जरूर की जाती है कि वे प्रत्येक प्रश्न पर बिना पहले से कोई धारणा किये विचार करेंगे। वे परिषद् में उपस्थित प्रत्येक बात पर विचार करने के लिए तैयार रहेंगे । इस बहुत ही जरूरी बात को मान कर सभी दलों के लिए यह बेहतर होगा कि वे अपने सिद्धान्त, नीति तथा इरादों को जाहिर कर दें। मन में किसी प्रकार का दुराव नहीं रहना चाहिए । समझौते के प्रस्ताव को स्वीकार किये बिना आगे बढ़ना मन का दुराव कहलाता । हिन्दू-मुसलमानों में अच्छा संबंध स्थापित करने के लिए जिस सहिष्णुता के भाव को पैदा करने की जरूरत है और जिसकी कोशिश भी की जा रही है, वही वही भाव हमारा लक्ष्य होना चाहिए । हमारे अन्दर गहरे मतभेदों के होते हुए भी यदि हम सबका ध्येय एक ही हो तो हमें मेल-जोल से रहना और परस्पर आदर-भाव रखना है । ईश्वर न करे, पर यदि हम लोगों को यह दिखाई दे कि हम सबका लक्ष्य एक नहीं है तो यह हमारे लिए बड़े दुःख की बात होगी जैसे-स्वराज का कोई भी स्वरूप सबको मान्य न हो; हम सबके हित एक ही न हों। उस हालत में मैं कहूंगा कि सभी दलों का महासभा के मंच पर एक होना असंभव है । परन्तु इसका अर्थ यही होगा, मानों इस दरिद्र भारत के लिए स्वराज्य असंभव है । क्योंकि अन्त को तो स्वराज्य होने पर भी सभी दलों को एक ही स्वराज्य पार्लियामेंट में काम करना पड़ेगा । महासभा को ऐसी पार्लियामेंट का पूर्वरूप या नमूना बनाना ही हमारा हेतु है ।

किसे राजविद्रोहात्मक कहें ?

अध्यापक रामदास गौड़ की पोथियों में जो कुछ अन्य प्रचलित पुस्तकों में है, उसके सिवा और कुछ नहीं है, यह मान कर भी इलाहाबाद-हाईकोर्ट ने उन्हें राजद्रोहात्मक कहा है। मुद्दई को उनसे ३,८८) खर्च भी दिलाया जायगा। ये पोथियां छपने के ३ वर्ष बाद जब्त की गई हैं । मैं इतना तो मानता हूं कि केवल समय बीत जाने के कारण सदोष वस्तु निर्दोष नहीं हो जाती है। किन्तु यह पूछना भी तो अनुचित नहीं है कि सरकार ने इस दोष को इतने दिनों तक अछूता ही क्यों रहने दिया ? सरकार ने ऐसा समय चुना है जब कि असहयोग घटती पर है। यह अनुमान अनुचित नहीं है। अब असल प्रश्न यह उठता है कि अध्यापक रामदास गौड़ अब क्या करें, या वे मातापिता या पाठशालायें जो उन पोथियों का व्यवहार करते हैं, क्या करें ? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज काम नहीं है। हम लोग असहयोग मुल्तवी करने जा रहे हैं और इस कारण सविनय भंग भी। इस लिए अब इस तरह के काम महासभा से नैतिक समर्थन नहीं पा सकते । प्रत्येक व्यक्ति या संस्था अपने दायित्व पर ही कुछ कर सकती है। फैसले में पोथियों के उद्धृत अंशों के तीन भाग किये गये हैं :

(१) वे अंश जो सरकार के प्रति घृणा उत्पन्न करानेवाले कहे जाते हैं ।

(२) वे अंश जो पश्चिमी सभ्यता और इसलिए यूरोपियनों के प्रति घृणा उत्पन्न करानेवाले कहे जाते हैं।

(३) वे अंश जो भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी मनुष्यों के प्रति घृणा उत्पन्न करानेवाले कहे जाते हैं ।

पहले तो मैं यह कहूंगा कि पूर्वापर-संबंध तोड़ कर जहां तहां से उद्धृत अंशों के सहारे कोई भी पुस्तक आपत्तिजनक ठहराई जा सकती है । जहां तक मुझे मालूम है जजों को इसके सिवा और प्रकार का मसाला नहीं मिला था । दूसरे यों तो प्रायः प्रत्येक भारतीय समाचार-पत्र राजविद्रोही कहा जा सकता है; क्यों कि वे कानून के द्वारा स्थापित सरकार के प्रति (पद्धति के विरुद्ध, मनुष्यों के विरुद्ध नहीं) अप्रीति का प्रचार करते हैं। प्रत्येक भारतवासी ने इस सरकार के खिलाफ अपनी आवाज उठाई है- और वे या तो उसका सुधार करना या मिटा ही देना चाहते हैं। *जहां तक पश्चिमी सभ्यतासे संबंध है, हिन्दू-धर्मग्रन्थों में* से उसके निन्दा और निषेधात्मक बड़े बड़े भयंकर वचन पेश किये जा सकते हैं । मेरी पुस्तिका, जिसमें से पश्चिमी सभ्यता-संबंधी अंश उद्धृत किये गये हैं, लड़कों को बेधड़क दे दी जाती है । संभव है कि मुझसे निंदा करने में भूल हुई हो । वह किसी जाति के प्रति घृणा का प्रचार करने के लिए नहीं लिखी गई थी, बल्कि प्राणिमात्र के प्रति प्रेम पैदा करने के लिए । मैं ऐसा एक भी उदाहरण नहीं जानता हूं कि एक आदमी को भी उसके पढ़ने से बुरा असर पहुंचा हो । देश, विदेश सभी जगह बहुत-सी भाषाओं में उसके अनुवाद हुए हैं । बम्बई सरकार ने एक बार उसे जब्त कर लिया था । अब वह जब्ती, यदि भाव में नहीं तो व्यवहार में उठ गई है । यह तो आश्चर्य जनक है कि अध्यापक रामदास गौड़ को तो सजा हो और मैं अछूता ही छोड़ दिया जाऊं । तीसरे इस्लाम के विषय में तो मैं केवल एक ही वचन पाता हूं । मुझे उसके पूर्वापर संबंध का पता नहीं । मुझे यह तो स्पष्ट जँचता है कि केवल उस एक अंश के लिए पोथियां जब्त नहीं हुई हैं । मैं जानता हूं कि अध्यापक महोदय को अन्तरात्मा शुद्ध है । उनका हेतु किसी व्यक्ति के प्रति घृणा उत्पन्न कराना नहीं है । मैं यह भी जानता हूं कि पुस्तकों की बिक्री से उन्होंने कोई लाभ नहीं उठाया है । यदि मैं उनके स्थान में होता तो पुस्तकों की बिक्री यथावत् जारी रहने देता । सरकार ने उनकी तमाम प्रतियां तो अवश्य ही जब्त कर ली होंगी । किन्तु जहां ये पोथियां पहले से ही पढ़ाई जा रही हैं, वहां मैं तो उन्हें वैसे ही पढ़ाने देता, जबतक कि लड़कों के मातापिता या पाठशालाओं के संचालक कोई दूसरा निश्चय न जाहिर करते ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

पंजाब में 'हिन्दी-नवजीवन' मुफ्त

भिवानी के श्रीयुत मेलाराम वैश्य सूचित करते हैं कि पंजाब के सार्वजनिक पुस्तकालयों और वाचनालयों को 'हिन्दी-नवजीवन' उनकी तरफ से मुफ्त दिया जायगा ।

नीचे लिखे पते पर वे अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिख कर भेजें— व्यवस्थापक 'हिन्दी-नवजीवन'

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, अगहन सुदी १२ संवत् १९८१

झुकाया तक नहीं

अपरिवर्तन-वादियों की उलझन और घबराहट ज्यों की त्यों बनी हुई है। कितने ही अपरिवर्तन-वादियों की सम्मति और सहकारिता को मैं अन्य सभी चीजों से अधिक मूल्यवान् समझता हूं। उनमें से कुछ अच्छे से अच्छे भी "किं कर्तव्य-विमूढ़" हो गये हैं। उन्हें मालूम होता है कि मैंने, *सम्भवतः अपने आजीवन सिद्धान्तों को* सिर्फ तोप-ढांप के निमित्त छोड़ दिया है। इस आशय का एक पत्र मैं नीचे उद्धृत करता हूं:

"ऐसी रिपोर्ट मिली है कि आपने कहा है कि स्वराज-दलवालों के साथ अभी लड़ाई करने की शक्ति के अभाव में मैं सब कुछ बर्दाश्त कर रहा हूं और अपने मौके की ताक में हूं। परन्तु ऐसा क्यों? सत्य और अहिंसा का कार्य आपसे चाहता है कि आप हम लोगों को एकत्र रखकर, स्वराज्य या महासभा के बाहर हमारी पताका फहराते रहिए—किसी के प्रति शत्रुभाव से नहीं, बल्कि जैसा कि हजरत मुहम्मद ने किया था। उनके अनुयायी घटते घटते केवल तीन ही रह गये थे और उन्हें सिर्फ परमात्मा की ही शक्ति का भरोसा करना पड़ा। निस्सन्देह विपक्षियों से हार मानने तथा उनकी सहायता करने में आपका तो व्यक्तिशः लाभ ही है, परन्तु हमारे कार्य को इससे बड़ी गहरी हानि पहुंचती है; क्योंकि आप तो असहयोगियों को संयुक्तरूप से न तो अपनी ध्वजा फहराते रखने के लिए कहते ही हैं और न फहराने ही देते हैं। अध्यात्म-प्रेमी मनुष्य उस राजनीति में दिलचस्पी नहीं रख सकता जो न तो सत्य और अहिंसा की वृद्धि ही करती है और न उनसे पोषण ही ग्रहण करती है। कोई भी बनावटी एकता ईश्वर को आकर्षित नहीं कर सकती, क्योंकि वैसी हालत में किसी सरकार के साथ लड़ाई अधार्मिक हो जाती है। इसके अलावा स्वराज्य-दलवालों की अमलदारी में *आतुर आदर्शवादियों की हिंसात्मक प्रवृत्तियों* को शुद्ध करने के लिए ऐसी कोई शक्ति नहीं रह जायगी, जैसी कि आपके उच्च नैतिक आदर्शवाद तथा आध्यात्मिक अमलदारी में थी। अब तो निरी निष्फलता तथा पूर्ण निराशा को उनके सिर पर सवार ही समझिए।"

इन मित्र के ये विचार बहुत से असहयोगियों के विचारों के प्रतिनिधि हैं। वे खुद भी इस आन्दोलन की ओर इसकी आध्यात्मिकता के ही कारण झुके थे। इसलिए मैंने उनके इस सन्देश को बार बार गौर से पढ़ा है। लेकिन उन्होंने अपनी यह राय, मेरे वक्तव्यों की मनमानी कटी-छंटी और अकसर गलत रिपोर्टों पर ही कायम की है और यही मेरे लिए आशा-प्रद बात है। वे खुद परिषद् में उपस्थित न थे। वे बम्बई में भी नहीं थे। किसी हल-चल की बातों को केवल अखबारों के विवरण के आधार पर समझ लेना अत्यन्त कठिन है। मैंने वह रिपोर्ट नहीं देखी जिसका जिक्र इन महाशय ने किया है। "स्वराज्यदल के साथ लड़ाई लेना इन शब्दों का अर्थ, यदि उनको तोड़ मरोड़ दिया जाय, तो मेरे अभीष्ट आशय के उलटा भी लगाया जा सकता है। अब इसका खुलासा किये देता हूं। मैं स्वराज्यदलवालों से नहीं कह सकता, यदि उनको मेरे इन विचारों के संबंध में गलतफहमी है, विनीत भाव से कल्पित अहिंसा की लड़ाई जिस भाव से छेड़ी जासकती है, उसे यदि अपरिवर्तनवादी नहीं समझ सकते, यदि सरकार इस लड़ाई का ऐसा लाभ उठाती है जिसका मैंने विचार भी नहीं किया है, या यदि ऐसे संग्राम के लिए आवश्यक वायुमण्डल का अभाव है। पर वास्तव में हुआ ऐसा है कि ये सब बातें थोड़ी या बहुत हमारे सामने हैं। इनके सिवा यह भी याद रखना चाहिए कि मेरे नजदीक अपने कार्य की रक्षा सत्याग्रह पर कभी अवलम्बित नहीं रही है। मेरी योजनाओं को जल्दी कार्यरूप में परिणत किये जाने के रास्ते में शायद मेरी यह मानी जाने वाली सर्वप्रियता ही सबसे बड़ी बाधा होती आई है। जिन लोगोंने बम्बई और चौराचौरी के दंगों में भाग लिया था, यदि वे मेरे लिए बिलकुल अजनबी होते और उन्होंने अपने को अहिंसा का हामी न बतलाया होता, तो मुझे इन दोनों में किसी के लिए भी प्रायश्चित न करना पड़ता। इसलिए जब तक लोगों की भीड़ मेरी ओर दौड़ दौड़ कर आती रहती है तब तक मुझे अवश्य फूंक फूंक कर चलना होगा। एक बड़ी सेना को साथ रख कर सेनापति उतनी तेजी से कूच नहीं कर सकता जितना वह चाहता है। उसे अपनी सेना के भिन्न भिन्न अंगों का ख्याल रखना ही पड़ता है। मेरी स्थिति ऐसे सेनापति की स्थिति से बहुत भिन्न नहीं है। यह कोई अच्छी स्थिति नहीं है परन्तु यह है ऐसी ही। अकसर यह स्थिति ताकत समझी जाती है। परन्तु कभी कभी तो यह स्पष्टतः बाधक हो जाती है। "स्वराज्यदलवालों के साथ अभी लड़ाई करने की शक्ति के अभाव" से मेरा जो तात्पर्य था, शायद वह अब स्पष्ट हो गया होगा।

मैंने किसी तरह भी असहयोग की ध्वजा को कभी नीचा नहीं किया है। नहीं, वह तो आधी नीचे भी नहीं गिराई गई है, क्योंकि किसी भी असहयोगी को यह नहीं कहा जाता कि वह अपने असूल से हटे। संसार के बड़े पैगम्बरों या धर्म-प्रचारकों का उदाहरण पेश करने में सर्वदा जोखिम रहती है। इस संसार में, "चतुर्दिक अन्धकार के बीच," मैं प्रकाश की ओर जाने का रास्ता टटोल रहा हूं। अकसर मैं भूल करता हूं और मेरे अन्दाज गलत होजाते हैं। इस सम्बन्ध में पैगम्बर साहब का नाम लिया गया है, इस लिए पूरी नम्रता के साथ मैं एक बात कहना चाहता हूं। मैं इस आशा से रहित नहीं हूं कि यदि दो ही मनुष्य मेरे साथी रह जांय, या कई भी नहीं रहे, तो उस हालत में मैं कभी नहीं निकलूंगा। ईश्वर पर ही मेरा तो कुल भरोसा है। और मैं मनुष्यों पर भी इसी लिए भरोसा रखता हूं कि ईश्वर पर मेरा पूरा भरोसा है। यदि ईश्वर पर मेरा सहारा न होता तो मैं शेक्सपियर वर्णित एथेन्स के टिमन की तरह मनुष्यजाति से घृणा करने लगता। यदि बड़े बड़े धर्म-प्रचारकों के जीवन से हम कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं तो हम लोगों को यह भी याद रखना चाहिए कि हजरत मुहम्मद ने उन लोगों के साथ सन्धि की थी जिनसे उनका मत बहुत ही कम मिलता था। ऐसे लोगों का वर्णन कुरानशरीफ में बुरे शब्दों में किया गया है। सत्य ही, हजरत मुहम्मद के जीवनसंग्राम का सर्वस्व था और असहयोग, हिजरत, प्रतिरोध और हिंसा तक भी उनके नजदीक अपने जीवनसंग्राम के भिन्न भिन्न रूप थे।

जैसा कि ये मित्र विश्वास करते हुए दीखते हैं, वैसा मैं नहीं विश्वास करता कि एक व्यक्ति को तो आध्यात्मिक लाभ हो सकता है पर उसके आस पास वालों को हानि। मैं अद्वैत में विश्वास करता हूं, मैं मनुष्य की परम आवश्यक एकता में भी विश्वास करता हूं, इसीलिए मैं सभी जीवधारियों की एकता में विश्वास करता हूं। इस कारण मुझे तो ऐसा यकीन है कि एक मनुष्य के आध्यात्मिक लाभ के साथ सारी दुनिया का लाभ होता है। उसी

तरह एक मनुष्य के अधःपतन के साथ उस हद तक सारे संसार की अधोगति होती है—यथा मैं अपने प्रतिपक्षियों की सहायता बिना अपनी और अपने सहयोगियों की साथ ही साथ सहायता किये, नहीं कर सकता। मैंने किसी भी पक्के असहयोगी को यह नहीं कहा है कि वे व्यक्तशः या सामूहिक रूप से, अपनी पताका न फहरावे। उल्टे, मैं तो उनसे ऐसी ही उम्मीद रखता हूं कि वे हर तरह की दिक्कतों के रहते हुए भी अपनी ध्वजा को ऊंचे शिखिर पर फहराते रहेंगे। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि राष्ट्र या महासभा का असहयोग जारी है। वाकयात को सामने रख कर हमें यह मानना होगा, कि राष्ट्र या महासभा जहां तक वह राष्ट्र की प्रतिनिधि है, असहयोग के कार्यक्रम पर अमल नहीं कर रही है। इसलिए असहयोग को कुछ व्यक्तियों में ही परिमित रहना पड़ेगा। असहयोगी वकील, उपाधि छोड़ने वाले, पुराने शिक्षक, और असहयोगी धारासभासद, ये सभी पूर्णरूप से असहयोगी रहते हुए भी महासभा में रह सकते हैं। कताई और खादी यही उनका मुख्य कार्यक्रम रहेगा। इन दोनों को अभी महासभा ने छोड़ा नहीं है। इस मामले में स्वराज्यदलवाले अपरिवर्तनवादियों को सबों के साथ पूरी तरह अपना रहे हैं जहां तक यह काम उनके विश्वास से मगन है। अपरिवर्तनवादियों की तरह वे विदेशी कपड़ों को जल्दी में जल्दी हटाने के लिए, सबके द्वारा कताई के व्यवहार को आवश्यक नहीं समझते। अपरिवर्तनवादियों की, या चाहें तो यों कहिए कि मेरी सहकारिता के रखने के लिए उन्होंने यह देखकर कि हमें कताई के सिद्धान्त में कोई आक्षेप नहीं है, मताधिकार में इसको शामिल करना मंजूर किया है। यहां यह याद रखना अच्छा होगा कि कताई को मताधिकार में शामिल करना एक असाधारण बात है। स्वयं उत्साही कातने वाले होने पर भी श्री स्टोक्स के समान सिद्धान्तवादी मनुष्य भी इसका दिलोजानसे विरोध करते हैं। हमारे कितने ही देशवासी इसकी हंसी उड़ाते हैं तब तो स्वराज्यदल वालों का इसे स्वीकार करना कोई मामूली बात नहीं है। इसलिए यदि वे अपनी बातों के पक्के निकले (और इसमें सन्देह करने का मुझे कोई कारण नहीं है) तो असहयोगियों को किसी अलग संगठन की जरूरत नहीं रह जाती। अपरिवर्तनवादियों को धारासभाओं के कार्यों में योग देने की आवश्यता नहीं और उनके लिए उचित भी नहीं है।

इसलिए धारासभा के कार्यक्रम का पूरा अधिकार और फलतः उसकी पूरी जिम्मेवारी स्वराज्यदलवालों पर ही है। महासभा के नाम का व्यवहार करने का उन्हें पूरा अधिकार होगा, पर अब वे अपरिवर्तनवादियों का नाम नहीं ले सकते। महासभा अब एक सम्मिलित चीज रहेगी जिसकी कुछ बातों की जिम्मेदारी संयुक्त ही रहेगी, और उस के सिवा खास खास काम दल-विशेष को दिये जायंगे जिनका भार वे अपने ऊपर ग्रहण करेंगे।

यदि एकता, अछूतोद्धार और चर्खा, ये इस देश की राजनीति के अंग हैं, तो अपरिवर्तनवादियों को पूर्णरूप से अपने अभीष्ट सत्य, अहिंसा और आध्यात्म मिल सकते हैं। सरकार के साथ अपरिवर्तनवादी की लड़ाई मुख्यतः इसीमें है कि वह अपनेको शुद्ध कर के अपनी शक्ति का विकास करे। उसे अपने किसी भी कार्य से किसी भी स्वराजी की शक्ति को किसी तरह आघात न पहुंचना चाहिए, क्योंकि उसे उनको (स्वराजियों को) अपनी ही तरह ईमानदार समझना चाहिए। औरों को हटाकर अपने ही अन्दर शुद्धता का अभिमान करने में अपरिवर्तनवादी को सबसे पीछे रहना चाहिए। यदि मान भी लिया जाय कि स्वराजियों का ढंग बुरा है, तोभी उन्हें इस तरह काम न करना चाहिए मानो आधुनिक शासन-प्रणाली उससे बहुत ज्यादा खराब नहीं है। अहिंसा में विश्वास रखनेवाले व्यक्ति को भी दो प्रतिस्पर्धियों में यह कहना ही पड़ता है कि कौन कम बुरा है और किसका पक्ष न्याययुक्त है। जापान और रूस के दरम्यान टाल्स्टाय ने अपना फैसला जापान के पक्ष में दिया था। इंग्लैंड और डच दक्षिण अफ्रिका के दरम्यान डबल्यू. टी. स्टेड ने बोअरों का साथ दिया था और इंग्लैंड के पराजय के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी। इसी तरह स्वराजियों और सरकार के बीच, मुझे अपनी राय कायम करने में एक क्षण भी देर नहीं लग सकती। स्वराजियों ने हमारे १९२० वाले कार्यक्रम के खिलाफ बगावत की थी, इसलिए हमारी धारणा के कलुषित हो जाने का खतरा है। अच्छा, थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि स्वराजी वाकई वैसे बुरे हैं जैसे कि सरकार हमें जँचाना चाहती है। तो भी उनकी सरकार मौजूदा सरकार से लाखों दरजे अच्छी रहेगी, क्योंकि इस सरकार के पास तो आचार-स्वतन्त्रता या वास्तविक प्रतिकार के थोड़े भी यत्न को कुचलने के अनन्त साधन तैयार रक्खे हुए हैं। मैं किसी बनावटी एकता को अपना लक्ष्य नहीं बना रहा हूं। मैं तो सिर्फ यही चाह रहा हूं कि महासभा में तमाम दलों के प्रतिनिधि रहें जिससे कि हम एक दूसरे की राय को बर्दाश्त करना सीखें, एक दूसरे को अच्छी तरह समझ सकें, एक दूसरे पर अपने कामों का असर डाल सकें और यदि हम सबके लिए किसी एक ही कार्यविधि की तजवीज न कर सकें तो कम से कम एक सर्वमान्य स्वराज्य की योजना तो तैयार कर सकें।

हां, मैं इन मित्र की आखिरी बातों से जरूर सहमत हूं। निस्सन्देह धारासभा का कार्यक्रम आतुर आदर्शवादियों को उनके दुष्कृत्यों से दूर नहीं रख सकता। यह शक्ति तो केवल अहिंसात्मक असहयोग में ही है, क्योंकि वह स्वार्थत्याग के उच्च से उच्च भाव को जाग्रत करता है और यह त्याग भाव ही उन्हें अपने मार्ग की भूलों से बचा सकता है। मैं प्रतिज्ञा के साथ कहता हूं कि मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया है जिससे किसी पक्के असहयोगी की ताकत कम हो जाय। मैंने तो अपने साथ ही साथ उनको भी आंच में तपाया है। जरा वे निर्मल प्रेम की बलिवेदी पर पूरी शक्तिभर अपना बलिदान तो करें, फिर देखें कि सारी महासभा एक मन से उनका अनुसरण करती है कि नहीं। पर ऐसा प्रेम अदृश्य रूप से अपना काम किया करता है। जो शक्ति जितनी ही उत्तम होती है, उतनी ही वह सूक्ष्म होती है, और मौन रूप से अपना काम करती है। प्रेम ही संसार में सब से अधिक सूक्ष्म शक्ति है। यदि असहयोगी के पास वह शक्ति है तो यह उसके तथा औरों के लिए अच्छा ही है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

मुलतवी या मंसूखी ?

इस सवाल का जवाब कि असहयोग मुलतवी किया जाय या मंसूख, जवाब देनेवाले के ही अपने मन की हालत पर मुनहसिर है। जिसने असहयोग में कभी विश्वास न किया वह तो स्वभावतः ही हमेशा के लिए इसका मंसूख होना चाहेगा। जिसने मेरे समान हो इसमें विश्वास किया है, जब और जहां जरूरत पड़ी इसके अनुसार व्यवहार किया है और इसलिए जो उसीका जप करता है वह तो मुलतवी करने के पक्ष में भी बड़ी मुश्किल से राय देगा। निःसन्देह वह उस आशा के भरोसे रहेगा कि कभी वह दिन भी आवेगा जब हम बाकी और अविश्वासी पक्षों को अपने पक्ष में मिला लेंगे और असहयोग राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में सफल होगा। इसलिए मुलतवी करना ही मध्यम मार्ग है जो सबको मंजूर हो सकता है। जो अहिंसा और असहयोग की ताकत और जरूरत में विश्वास करते हैं, वे ऐसी आशा रख सकते हैं कि जब ऐसी हालत होगी कि फिर असहयोग करना जरूरी हो तो देश उसे फिर शुरू कर देगा। जिन्हें असहयोग में विश्वास नहीं है वे मुलतवी के दिनों में अपनी राय के मुताबिक इसके अनिष्टों का पूरा प्रचार, महासभावालों को अपने पक्ष में मिलाने के लिए, कर सकते हैं। उन्हें यह बड़ा भारी अवसर मुलतवी से मिलता है। मेरी राय में पूरी असहयोगी महासभा मुलतवी से और आगे नहीं जा सकती। मैं महासभा को पूर्ण-रूप से असहयोगी इसलिए कहता हूं कि स्वराजी भी असहयोग में विश्वास प्रकट करते हैं। यदि इसे गुप्त-भेद कह सकें तो मैं यहां एक गुप्त-भेद बताता हूं। तीन मास से भी अधिक दिन हुए, जब समझौते का सब से पहला मसविदा तैयार हुआ था। उसके प्राक्कथन में ही असहयोग में विश्वास प्रकट किया गया था। वह स्वराजियों को पूरी तौर से मंजूर था। किन्तु महासभा में विनीत-दलवालों तथा और लोगों के मिलने का रास्ता सीधा करने के विचार से ही आपस की राय से वह हटा दिया गया। कुछ मित्रों ने ऐसा सुझाया था कि शायद होमरूलवालों और विनीत-दलवालों को प्राक्कथन के पक्ष में राय देने में एतराज हो। सच पूछिए तो सिद्धान्तों का पूरा ख्याल रख कर के इसका मसविदा बनानेवालों ने उन लोगों की भी जरूरियात का बहुत खयाल रक्खा है जो अबतक महासभा से अलग रहे हैं। हां, इतना होने पर भी भिन्न भिन्न राजनैतिक दलों की समस्त आवश्यकताओं को वह मसविदा पूरा नहीं करता है। यह कमी मेरी या स्वराजियों की ओर से चाह या कोशिश में कोर-कसर के कारण नहीं है। इसका कारण तो है हम लोगों का अपने अपने सिद्धान्तों का पूरा ध्यान रखना। यदि कोई इसे अच्छा शब्द समझे तो यों कह सकता है कि यह हम लोगों की सीमाबद्धता है, हद है।

इसे बार बार दुहराने की जरूरत नहीं है कि महासभा के विशाल मतदाताओं पर हमारा सर्वदा ध्यान रहा था। यह सच है कि वे सर्वदा मौका आने पर भी निश्चय-पूर्वक अपने मतों का प्रतिपादन नहीं करते हैं, किन्तु मेरा ऐसा अनुभव है कि कभी कभी वे नेताओं के हजार विरोध करने पर भी बराबर अपनी इच्छा को जोर के साथ जाहिर करते हैं। हम सब को उन एक ही मत दाताओं पर प्रभाव डालना है और उनसे प्रभावित होना है। मेरी राय में, एकता के उपाय ढूंढने में यदि हम एक होकर काम करना चाहें, तो हर एक दल को उतने ही अधिकार मांगने का यत्न करना चाहिए जितना उसकी अन्तरात्मा की मांग के लिए अत्यावश्यक है, और अधिक नहीं।

कोई केवल असहयोग करने के लिए ही असहयोग को नहीं चाहता है। किसीको स्वाधीनता से जेल अधिक पसंद नहीं है। तो भी जब स्वतन्त्रता पर संकट पड़ता है तब असहयोग कर्तव्य हो सकता है और जेल राजमहल। जो लोग हर हालत में असहयोग से विमुख रहना चाहते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि वे ऐसा उपाय करें जिससे फिर असहयोग करना अनावश्यक हो जाय। इसका एक सबसे अच्छा उपाय यह है कि सभी दल एकत्र हों और स्वराज की एक योजना सोचें और साथ ही साथ यह भी सोचें कि क्या कोई ऐसा रास्ता है कि सभी दल एक होकर उस योजना के लिए कार्य करें ?

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

एक मनोरंजक संवाद

दिल्ली में गांधीजी के साथ हुए लोगों के कुछ संवाद मैं पहले दे चुका हूँ। आज एक और रोचक संवाद सुनाता हूँ।

दो अमेरिकन अध्यापक आये थे। एक थे मानसशास्त्र के और दूसरे समाजशास्त्र के। समाजशास्त्र के अध्यापक तो सुविख्यात हैं। उन्होंने Nonviolent Coercion (अहिंसात्मक प्रतिकार) नामक भारत में अति प्रसिद्ध पुस्तक का उपोद्घात लिखा है। मेरा खयाल था वे कुछ सूक्ष्म सवाल पूछेंगे; पर ऐसा न हुआ। जाते समय दोनों अध्यापकों ने कहा-'इनके जवाब कितने बे-धड़क और स्पष्ट थे। हम ... चकित रह गये। इतनी स्पष्टवादिता हमने कहीं न देखी।'

शुरू में इधर-उधर की बातें कर के उन्होंने कहा-हम भारत का अध्ययन करने आये हैं, और जलियांवालाबाग देखने का अपना इरादा जाहिर किया।

गांधीजी—'आसपास का दृश्य तो पहले जैसा ही है। आपको चारोंओर वह दीवारें दिखाई देंगी, परन्तु जमीन—खून से रंगी हुई जमीन—नहीं दिखाई देगी।'

'आपका क्या खयाल है, वहां जो कार्य हुआ वह ब्रिटिश नीति के अनुरूप था, या एक बिगड़े दिमाग गैर-जिम्मेदार हाकिम का कृत्य था ?'

गां०—ब्रिटिश सरकार की मामूली नीति के अनुसार था-एक अतिशयित संस्करण कह सकते हैं। क्योंकि १८५७ ई० के बाद उसके सदृश भीषण घटना याद नहीं आती। परन्तु यह बात तो उनकी नीति में ही दाखिल है-शासित लोगों को डराना-भय-कम्पित कर देना।

(यह संवाद दिल्ली की वर्तमान घटनाओं के पहले हुआ था)

'आपने २५ साल तक सहयोग किया। क्या इस बीच आप को कभी यह न खयाल हुआ कि इस सरकार की तो नीति ही इस तरह की है ?'

गां०—'हां, हुआ था। फिर भी मैंने उस समय समझा था कि इसका संगठन-विधान शुद्ध है, ऐसी बातें इसके अन्दर स्वभावतः हैं जिससे लोगों की शुद्ध आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में दिक्कत न होगी। इससे मैंने समय—कुसमय उस के शासन-विधान की प्रशंसा की है और उसके प्रति अपना विश्वास प्रकट किया है।'

'तब क्या पंजाब ने ही आपकी आंखें खोलीं ?'

'आंशिक रूप से रौलट कानून ने। इस कानून के उद्देश तथा स्पष्टतः लोक-मत के खिलाफ उसे पास करना इन बातों से मेरी आंखें खुलीं। परन्तु विश्वास तो पूरा पूरा नष्ट हुआ खिलाफत और पंजाब के विषय में सरकार के रुख को देख कर। पहला आघात मेरे विश्वास को १९१७ ई० में पहुंचा-जब

कि मेरे मित्र श्री. एण्ड्रयूज ने शुभ इकरारनामों की ओर मेरा ध्यान खींचा था। पर मैं इस चर्चा में नहीं पड़ना चाहता कि उस समय मैंने कोई कार्रवाई क्यों न की। फिर तो योरप का महाभारत पूरा हुआ। सब कोई अच्छा होने की आशा कर रहे थे। हमारे देश ने भी आशा रक्खी थी। परन्तु हमें प्रदान किया गया रौलट कानून और साथ ही वाइसराय ने 'सिविल सर्विस के' ब्रिटिश व्यापारियों के पांव 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ' मजबूत करने का वचन दिया। तब मुझे इस कानून का घोर विरोध करना पड़ा।'

"यह कानून अमल में तो अभी नहीं लाया गया?'

गां०—अमल में तो क्या आता? पीछे तो रद भी कर दिया गया। इस विरोध से सारे देश में खलबली मच गई थी ऐसी कि मानों कोई लंबे सपने से जगा हो।

'आप कहा करते हैं, ब्रिटिश सत्ता ने भारतवासियों को नामर्द बना दिया है, इसका क्या अर्थ है?'

'तीन तरह से, शरीर मन और आत्मा तीनों में नामर्द बना डाला है। देश का सत्व चूस डाला है, उसके मुख्य धंधे का नाश हो गया, और आज देश दिन दिन अधिक गरीबी में डूबता जा रहा है। अर्थात् शरीर निर्बल होने में कुछ भी बाकी न रहा। सरकार जो शिक्षा देती है वह विदेशी भाषा के द्वारा। इससे हमारी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण हो जाती है। हमारे संस्कार में वृद्धि नहीं होती, उल्टा हम नकलची हो जाते हैं. अंग्रेजी भाषा के रूट प्रयोगों के गुलाम बनते जा रहे हैं। और आखिरकार देश को जबरदस्ती निःशस्त्र कर डाला, जिससे देश की आत्मा का नाश होगया। मानसशास्त्र के अध्यापक बोले—'पर क्या आप इस दशा को लाभदायी नहीं बना सकते? आप तो अहिंसावादी ठहरे। आप लोगों को आध्यात्मिक बलशाली नहीं बना सकते?'

गां०—'किस तरह? जो शख्स अनेक तरह के स्वाद चखने के लिए बिलख रहा हो उसे यदि कोई स्वाद से विमुख रहने की बात कहे तो वह क्या सुनेगा? मुझे जेल-जीवन का अनुभव है और मैं कैदियों की हालत को जानता हूं। आम तौर पर कैदी लोग, जेलखाने के बाहर, तरह तरह के स्वादु भोजन नहीं करते, उनके लिए व्याकुल नहीं होते। परन्तु जेल में उन्हें चूंकि कुछ खास चीजों की मुमानियत होती है, इससे उनका मन उन्हीं चीजों के लिए दौड़ लगाता रहता है। यह मुमानियत ही एक तरह का लोभ उनके अन्दर उत्पन्न करती है। कैदी को स्वाभाविक तौर पर अपने अभावों, कठिनाइयों और रुकावटों को बढ़ा कर देखने की आदत पड़ जाती है। यही बात इस देश की स्थिति के विषय में कही जा सकती है। जिन मुमानियतों के फल-स्वरूप यहां हथियार बंद किये गये हैं और छीन लिये गये हैं, उन्हीं के लिए वे हथियार चाहते हैं। अंगरेज लोग जुल्म करने में तो संकोच करते नहीं, हर तरह से भारतवर्ष को गुलाम बनाना चाहते हैं, तब लोग कुदरती तौर पर उनका बदला लेने का तरीका सोचने लगते हैं और उन्हें शस्त्र-प्रयोग में मजा आता है।'

'तब क्या भारतवासियों में कोई उन्नत, धार्मिक या आध्यात्मिक भावनायें नहीं रह गई हैं?'

गां०—'भारतवर्ष को आप एक बड़ा जेलखाना मान लीजिए। फिर आप मेरी बात को समझ पावेंगे। आज सचमुच ही यह एक बड़ा कैदखाना हो गया है-क्योंकि लोग बिल्कुल निःशस्त्र और निराधार कर दिये गये हैं। इसका असर [illegible] हुए बिना नहीं रहता।'

'हमारे यहां तो हथियार ले लिये जाते हैं। हमारे यहां तो ऐसा असर नहीं होता।'

'दोनों स्थितियां भिन्न हैं। यहां भी यदि आपकी तरह स्वतन्त्रता हो और फिर एक भी हथियार न हो तो कोई चिन्ता नहीं। पर जहां मुमानियत रक्खी कि दिक्कत पेश आई। आफ्रिका के तथा यहां के मिलकर १०-१२ जेलों का अनुभव मुझे है और मैं कह सकता हूं कि कैदियों की मनोदशा कैसी होती है।'

'हां, तो आपका खुलासा यह है कि यहां पराधीन मनुष्य की मनोदशा व्याप्त है, न? अच्छा, आपने तो विदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा का दिया जाना भी एक कारण बताया था? क्या अंगरेजी भाषा राष्ट्रीय भाषा नहीं हो सकती?'

'नहीं हो सकती। फ्रेंच सारे योरप की भाषा है; परन्तु कोई अंगरेज दूसरे अंगरेज के साथ फ्रेंच में बात करेगा? भारतवर्ष में आपको यह दुःखजनक दृश्य देखने को मिलेगा। भिन्न भिन्न प्रान्तों के ही नहीं, बल्कि एक ही प्रान्त के लोग यहां एक-दूसरे के साथ अंगरेजी बोलते और लिखते हैं!'

दूसरे बूढ़े साहब बोले—'आप तो भारत के नेता कहलाते हैं। पर आप भी बोलते हैं अंगरेजी ही?'

'नहीं, आपने मुझे लोगों से बातचीत करते हुए नहीं देखा है, मैं हिन्दी ही बोलता हूं।'

'माफ कीजिएगा, हमें मालूम न था। तो क्या हिन्दुस्तानी के द्वारा यह सवाल हल हो जायगा?'

'क्यों न होगा? देश के अनेक करोड़ लोग हिन्दुस्तानी बोलते हैं या समझ लेते हैं - पर अंगरेजी बोलने और लिखने वालों की संख्या १० लाख भी नहीं है।'

'आपने जो उपवास किया था क्या वह व्यक्त करने के लिए कि इन झगड़ों से आपको कितना दुःख पहुंचा है?'

'नहीं, वह तो एक अनिवार्य परिणाम था।'

'किस तरह?'

'क्योंकि मेरे असमर्थता की बात प्रकट हो गई। उसे गुप्त नहीं रख सकते थे और न मेरी इच्छा ही थी। (पुनरुक्ति होने के ख्याल से बहुतसी बातें छोड़ देता हूं) विधि और निषेध संबन्धी पापों के लिए प्रायश्चित्त अवश्य करना पड़ता है।'

'तब क्या यह औरों के लिए न था? ईसाई-धर्म के अनुसार आपने यह नहीं किया?'

'ईसाई-धर्म का सुन्दर बड़ा भाग है। परन्तु प्रायश्चित्त का भाव मैंने उससे नहीं सीखा। मेरा प्रायश्चित्त अपने पाप के लिए था, औरों के लिए नहीं। यह दूसरी बात है कि दूसरों पर उसका असर पड़ता हो अथवा औरों के पापों से मेरा पाप-ज्ञान जाग्रत हो। प्रायश्चित्त का भाव मुझे हिन्दू-धर्म से मिला है। तपश्चर्या के हजारों दृष्टान्त हिन्दू-धर्म में भरे हुए हैं।'

'तब ईसाई-धर्म के ऋणी आप किस प्रकार से हैं?'

'साधारण तौर पर। यह जान कर आपको आश्चर्य होगा कि ईसाई-धर्म के साथ मेरा पहला परिचय किस तरह हुआ और मुझे अपने धर्म-ग्रन्थों के प्रति अनुराग किस तरह पैदा हुआ। मैं तो यह समझता था कि ईसाई होने के मानी हैं गोश्त खाना और शराब पीना। राजकोट में एक शख्स ईसाई हुआ था। लोग कहते थे पर ऐसा ही करता है। इस तरह मेरा पहला परिचय उससे हुआ। इसी ख्याल को ले कर मैं लंदन गया था। दो अंगरेजों ने मुझसे कहा कि चलो हम साथ साथ भगवद्गीता पढ़ें। मुझे तो उस समय भगवद्गीता का भी ज्ञान न था। मैंने आर्नोल्ड का

अनुवाद किया। उसकी बड़ी छाप मेरे मन पर पड़ी। मैंने देखा कि उसने ग्रन्थ का हार्द समझ कर अपने हृदय के उद्गार प्रकाशित किये हैं। तब तो मैं उस पर फिदा हो गया। सायंकाल के प्रार्थना में जिन श्लोकों का पाठ मैं करता हूं वे मेरे रातदिन की साथी हो गये। इसके बाद एक शाकाहारवाले उपाहार-गृह में मित्र एक से भेट हुई। उन्होंने मुझे बाईबल दी। 'पुरानि इकरार' का मैं एक के बाद एक काण्ड पढ़ता गया और मेरी रूह कांपने लगी। मन में सवाल उठा 'क्या ईसाई-धर्म यही है? पर मैं तो उन मित्र को वचन दे चुका था मैं कि आदि से अन्त तक बाइबल पढ जाऊंगा। सो मैं तो नीचा सिर किये पढता ही चला गया। वचन का पालन करने के मेरे आग्रह ने मुझे बचाया। अन्त को पर्वतीय प्रवचन आया और मैंने आनंद से उन्हें झेल लिया। उसने मुझे परम शांति और आश्वासन मिला।

अमेरिकन श्रावकों को इसमें बड़ा आनंद आया। एक ने पूछा—

'ईसामसीह ने जो औरों के दुःखों का भार अपने सिर लिया और सबों को तारा, इसके विषय में आपकी क्या धारणा है?'

'मुझपर इस विचार का कोई ज्यादह असर नहीं हुआ।'

'आपको आघात पहुंचा?'

'नहीं आघात भी नहीं पहुंचा। हिन्दू-धर्म में भी ऐसी कुछ बातें हैं। परन्तु बाइबिल के कितने ही अंश—जोन की वार्ता के कितने ही सुपरिचित अंश—का अर्थ मैं कुछ दूसरे प्रकार से करता हूं। मैं यह नहीं मानता कि कोई किसी के पाप धो सकता है और किसीको मुक्त कर सकता है। परन्तु यह बात मानसशास्त्र-सिद्ध है कि एक के दुःख अथवा पाप से दूसरा दुःखी हो सकता है और इस खयाल से कि दूसरे को दुःख हो रहा है, एक की उन्नति होती है। परन्तु यह बात मुझे नहीं पटती कि एक मनुष्य दूसरों के लिए मर सकता है और उनको तार सकता है।' (अपूर्ण)

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

एक बड़ी छूट

पंडित मोतीलाल जी कहते हैं कि हाल में महासमिति की बैठक में दिये गये मेरे व्याख्यान को जो रिपोर्ट अखबारों में छपी है उसमें एक आवश्यक अंश छूट गया है। वह अंश है स्वराज-दल के अपनी सहायता के लिए प्रार्थना करने के औचित्य पर मेरे विचारों से संबंध रखनेवाला। बेशक वह अंश आवश्यक था और मैं उसका छपना जरूरी समझता था। इसलिए मैं खुशी से उसका भाव यहां देता हूं—

"स्वराजियों को अपनी ताकत बढाने का, अपना संगठन करने का तथा इसके लिए देश से, जिसमें अपरिवर्तनवादी भी शामिल है, प्रार्थना करने का पूरा अधिकार है। यदि असहयोग स्थगित कर दिया गया और महासभा में स्वराजियों को भी वही दरजा मिला जो कि अपरिवर्तनवादियों का है, तब उन्हें उनके उस प्रचार का विरोध न करना होगा। अवश्य ही ऐसा विरोध करना अनुचित होगा। मेरी समझ में असहयोग के स्थगित करने का यही तात्पर्य नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि कट्टर से कट्टर अपरिवर्तनवादी स्वराज-दल में मिल जाय। देशबन्धु ने मुझे स्वराज-दल में शामिल हो जाने को कहा था, और यह कहने का उन्हें पूरा अधिकार भी था। मैंने उन्हें कहा कि जबतक मुझे स्वराज-दल के कार्यक्रम में विश्वास नहीं है, तबतक मैं स्वराज-दल में योग नहीं दे सकता। मैं बाहर रह कर ही उन्हें सहायता दे सकता हूं। इसी प्रकार कोई भी सच्चा अपरिवर्तनवादी उन्हें योग नहीं दे सकता। परन्तु जो सिर्फ इसलिए अलग रहे हैं कि महासभा का कार्यक्रम उन्हें मना

कपास बचाओ

सूत कातने में सब से पहली बात कपास का संग्रह है। उस से भी पहली चीज है कपास की बुवाई। परन्तु यहां उसके विषय में विचार करने की जरूरत नहीं है; क्योंकि सारे हिन्दुस्तान में कपास बहुत बोई जाती है। मगर अफसोस की बात यही है कि, देश में, इतना कपास बोये जाने पर भी हमारे किसान भाई इसका सदुपयोग नहीं जानते और इससे इसका संग्रह करने के बदले, थोड़े द्रव्य की लालच में बेच दिया करते हैं। वे इधर तो अच्छे भाव बेचते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि अन्त में उन्हें उसके बदले में मँहगी चीजें खरीदनी पड़ती हैं।

इस विषय पर और अधिक विचार फिर कभी करेंगे। अभी तो इतना ही काफी है कि जब तक कपास तैयार होकर बुना नहीं जाता है और जबतक विदेशों में भेजे जाने के लिए बिक नहीं जाता है, उस के पहले ही हमारे समझदार किसान भाई उसका संग्रह कर लेवें और यह अनजान भाइयों को भी समझावें।

जिस तरह हम लोग १९२१ में चंदे उगाहा करते थे उसी तरह अब हमे चाहिए कि कपास उगाहें, और उसे कतावाये। चंदे की बनिस्बत कपास ज्यादा लाभदायक है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। क्योंकि रुपया तो सूद का ही द्वारा बढता है और सूद आलसियों का धन है। कच्चा माल मिहनत से बढता है और मिहनत उद्यमी का धन है। मिहनत मजदूरी की कीमत को हमारे मध्यम श्रेणी के लोग पुरुषों ने नहीं समझा है। शारीरिक श्रम में सभी प्रकार के लोग योग दे सकते हैं। यदि हम कपास इकट्ठा कर सकें और उसकी विविध क्रियाओं के लिए हमारे पास काफी कार्यकर्ता हों तो हम कपास का मूल्य अपेक्षाकृत जितना चाहें बढा सकते हैं।

यदि सारी कपास लोग दान दे देवें और उसपर मिहनत भी मुफ्त मिले, तो खादी को हम पानी के दाम बेच सकते हैं। यह बात समझ में आने लायक है। किन्तु प्रस्तुत, ऐसा हो न सकेगा। क्योंकि उसका प्रबंध करने में, उसकी निकासी में, कितने ही सेवकों को केवल आधा ही घंटा नहीं बल्कि अपना सारा समय देना पड़ेगा। और यह स्पष्ट ही है कि बिना कुछ लिये वे काम न कर सकेंगे। पर अगर आधा घंटा देनेवाले हजारों भाई हमें मिल जायें तो थोड़े वैतनिक कार्यकर्ताओं से ही हम बहुत काम कर सकते हैं। मगर हमें इन बातों पर विचार करने के पहले कपास खूब संग्रह कर लेना जरूरी है। इसलिए मेरी सलाह है कि महासभा-समितियां जितना हो सके कपास संग्रह कर लें। संग्रह करनेवालों को चाहिए कि जिस प्रकार रुपये-पैसे का हिसाब रखते हैं, उसी तरह उसका भी हिसाब रखें। एक भी गुच्छा नुकसान न होवे और एक भी पैला हवा में न उड़े।

अब हमें उसके संग्रह करने के उपायों पर भी विचार करना होगा। यह भी जानना जरूरी होगा कि रुई की गाठें किस तरह बांधी जायगी। इस तरह कताई की सब क्रियायें समझ में आ जायगी। जब ये सब क्रियायें सारे राष्ट्र के हित के लिए की जायगी तो उनमें कितनी ताकत आ जायगी, इसका अनुमान पाठक सहज ही लगा सकते हैं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

करता है, वे अपरिवर्तनवादियों की ओर से किसी तरह की बाधा के बिना स्वराज-दल में मिल सकते हैं। अपरिवर्तनवादी धारासभाओं का जबानी विरोध नहीं कर सकते, बल्कि उनके द्वारा अविराम कार्य ही उनका सच्चा प्रचार-कार्य होगा। स्वराजियों को तो चरखा और धारासभायें दोनों वस्तुयें हैं, किन्तु अपरिवर्तनवादियों का अवलम्ब तो केवल चरखा ही है।" (पृ० ९०)

मेरा पथ

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, ५)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक १८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, पौष बदी ३, संवत् १९८१ रविवार, १४ दिसम्बर, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

मेरी पंजाब-यात्रा

इच्छा से नहीं

अपनी इच्छा से नहीं बल्कि आवश्यकता वश, मैंने पंजाब प्रान्तीय परिषद् का सभापति होना स्वीकार किया। पंजाबी किसी बाहर के आदमी को सभापति बनाना चाहते थे और यदि उनके लिए संभव होता तो मौलाना अबुल कलाम आजाद को। मौलाना साहब इसपर राजी न थे। उनका कहना था कि मैं खुशी से परिषद में उपस्थित हो सकूंगा, परन्तु मैं समझता हूं कि मैं अलग रहकर अधिक उपयोगी हो सकूंगा। मौलाना की इस स्थिति को सब ने पसंद किया। उसके बाद पण्डित मोतीलालजी से अनुरोध किया गया। उन्होंने कहा कि यदि कोई खास बाधा न हुई तो मैं सभापति का स्थान ग्रहण कर सकूंगा। और यदि पण्डित मोतीलालजी सभापति होने में असमर्थ रहे, तो सभापति-पद का भार मेरे सिर डाला जाने वाला था। बदकिस्मती से, एक अनपेक्षित घटना हो गई जिससे वे न आ सके। इसके जो कारण उन्होंने बतलाये हैं, वे सार्वजनिक महत्व के हैं, इसलिए मैं उन्हें उन्हींके शब्दों में यहां देता हूं।

जी ऊब उठा

लालाजी के पास भेजे हुए पत्र में वे लिखते हैं —

"इस बात का बड़ा अंदेशा हो रहा था कि मैं पंजाब प्रान्तीय परिषद् के सभापति-पद को मंजूर कर सकूंगा या नहीं। मैं और महात्माजी दोनों इस बात में सहमत थे कि मौलाना अबुलकलाम आजाद ही सबसे योग्य सभापति हो सकेंगे और यदि हम लोग उन्हें राजी न कर सके, तो उस हालत में मैं ही उनका स्थान ग्रहण करूंगा, पर इसी बीच मुझे अपनी पतोहू की भयानक बीमारी की सूचना मिली और मुझे फौरन एक प्रसवबंध को साथ ले कर जाना पड़ा। मौलाना साहब मेरे साथ ही सभाभवन से बाहर आये और मैंने उनसे साफ कह दिया था कि अब मेरे पंजाब और नागपुर के काम पूरे न हो सकेंगे। मैंने यह भी कहा कि आपको ही पंजाब परिषद् का सभापति होना चाहिए और नागपुर के लिए कोई दूसरा समय ठीक कर लेना चाहिए। जिस समय मैं जाता, मैं ऐसा समझता था कि मैं महात्माजी से इस विषय में बातचीत करके यदि वे स्वयं सभापति होने पर राजी न हों तो किसी और का इस काम के लिए ठीक करेंगे। वहां पहुंचने पर हम लोगों ने एक दिन बड़ी चिन्ता में काटा। नवजात शिशु को बचाने की कोशिश करते रहे, परन्तु आखिर बच्चा जाता रहा! जच्चा की हालत साधारणतः अच्छी थी, पर [illegible] होने के कारण पूरी तरह संतोषजनक न थी। इसी [illegible] में मुझे कलकत्ते की घटना की खबर मिली। मुझे सूचना [illegible] दी तुरन्त रवाना होने के लिए तैयार रहने को कहा गया था।

ज्योंही जवाहर की पत्नी के सम्बन्ध में कोई भय न रहा, मैंने प्रयाग के हिन्दू-मुसल्मानों के झगड़ों की ओर अपना ध्यान फेरा। मैंने ऐसा निश्चय किया कि जबतक मुझे कलकत्ते से सूचना न मिले तबतक मैं इसके लिए यथासाध्य प्रयत्न करूं। स्थिति मुझे बहुत ही बुरी मालूम पड़ी। बहुत दिनों तक शहर और सूबे से अलग रहने के कारण मेरे ऊपर चारों ओर से कड़ी शिकायतों की बौछार होने लगी। मैंने लोगों को विश्वास दिलाया कि मैं उनके लिए पूरे १५ दिन काम करके उनकी काफी क्षति-पूर्ति कर दूंगा।

मैं अपने इस आश्वासन को पूरा करने में फौरन् ही जुट पड़ा। पहले जब मैं अपनी यात्राओं में थोड़ी थोड़ी देर के लिए यहां आया था, तो नामधारी अग्रगण्य हिन्दुओं और मुसलमानों से मेरा जी ऊब उठा था। इसबार मैंने ऊपर से काम करने के बदले नीचे से ही काम शुरू करना निश्चय किया। एक हिन्दू-मुस्लिम-संगठन करने का मेरा पुराना विचार था, उसको मैंने हाथ में लिया और इसका काम प्रयाग से ही आरम्भ करने का विचार किया। मेरा सब से पहला काम था विश्वविद्यालय के अध्यापकों और विद्यार्थियों के पास जाना। विश्वविद्यालय में एक [illegible] है। उसकी एक शाखा सामाजिक सेवा के लिए है। दोनों के काफी सदस्य हैं। अध्यापकों के साथ मिलने पर यह निश्चय किया गया कि समाज-सेवा-विभाग को ही हिन्दू-मुस्लिम संगठन का केन्द्र बनाने के लिए प्रयत्न किया जाय। इसके अनुसार एम. ए. वर्ग के दो विद्यार्थी—एक हिन्दू और एक मुसल्मान—चुने गये। जातिगत मामलों में उनकी निष्पक्षता प्रमाणित हो चुकी थी। संगठन के लिए विद्यार्थियों को सदस्य बनाने का काम उन्हें दिया गया। साथ ही साथ, इसी तरह प्रत्येक मुहल्ला संगठित किया जा रहा है। कल से मैं प्रत्येक मुहल्ले में जानेवाला हूं। और साथ ही मैं विद्यार्थियों के दलों को बारी बारी से पर आनन्द-भवन में बुलाकर उनसे बातें करूंगा। जब यह प्रारम्भिक

काम हो जायगा, तब मैं आम तौर पर विद्यार्थियों से मिलूंगा और एक दो आम जलसे कराऊंगा । यदि समय मिला, तो मैं लखनऊ जा कर भी ऐसा ही करूंगा ।

आप देखेंगे कि उपर्युक्त कार्यक्रम में ठोस काम की योजना है । और इसके अन्दर बाहरी दिखावे को बिल्कुल स्थान नहीं है । अभाग्यवश आजकल हमारे सार्वजनिक कामों का सिर्फ यही भाग रह गया है । यदि सच पूछिए तो अब सभा-सम्मेलनों की ओर से मेरा मन बिल्कुल हट गया है, ये सिर्फ चंदरोजा दिखावे हैं जिनसे कभी कोई भी वास्तविक फल नहीं निकलता । नागपुर के झगड़ों के फैसले का सुयोग आ गया है और नागपुर से आये हुए पत्रों से मालूम होता है कि इसकी सख्त जरूरत है कि पंच (मैं और मौ. अबुलकलाम आजाद) वहां मिलकर बेलगांव महासभा के पहले यह झगड़ा तय कर दें । इसके लिए १०, तारीख निश्चय करने का प्रस्ताव करते हुए, मैंने मौलाना अबुल कलाम आजाद को कलकत्ते दो तार दिये हैं परन्तु उनका जवाब नहीं आया है ।

मैंने आपको इतना इसलिए लिखा है कि मैंने अपने लिए जो काम तजवीज किया है उसका आपको ठीक ठीक खयाल हो जाय । इसलिए इस हालत में मेरा पंजाब जाना उतना लाभदायक न होगा । मुझे आशा है कि आप मुझसे इस बात में सहमत होंगे ।”

पण्डितजी के समान ही मैं भी इन सम्मेलनों से घबराता हूं । इसलिए नहीं कि वे बराबर बेकार ही होते हैं, हमारे जीवन के खास खास समयों में उनकी बड़ी जरूरत थी । परन्तु अपनी वर्तमान दशा में उनकी उपयोगिता प्रायः कुछ नहीं रह गई है । यदि उनसे कोई और नुकसान न हो तो भी समय और रुपये का अपव्यय तो होता ही है । उनके द्वारा जो सार्वजनिक भाव जाग्रत हुआ है उसे अच्छे काम के रूप में मूर्त करने के लिए छोटी छोटी समितियों के द्वारा ही सबसे अधिक काम हो सकता है ।

ये समितियां तभी उपयोगी हो सकती हैं जब उनके सदस्य आपस में मेल-मिलाप रखने वाले सर्व-सामान्य प्रजाजन की इच्छाओं का ध्यान रखने वाले तथा अपने ठोस और अमली काम के द्वारा उनसे अपना संबंध बनाये रखने वाले हों । इन परिषदों का त्याग, हम जनता की विमनस्कता या मन्दता के कारण नहीं, बल्कि इसलिए करें कि इनके द्वारा हम जनता को और भी अच्छे उपयोगी काम में लगा सकते हैं । जैसे यह बड़ी नासमझी होगी, यदि खादी के काम में लगे हुए लोगों को बुलाकर हम उन्हें ऐसे विषयों पर प्रस्ताव पास कराने में लगायें जिनपर लोगों का एकमत है । इसी तरह जो लोग अकाल-पीड़ित स्थानों में सहायता पहुंचाने की व्यवस्था करने में लगे हों, उन्हें भी ऐसे काम के लिए बुलाना उचित न होगा । स्वयं पण्डितजी भी प्रयाग में अपने शान्ति-दल को संगठित करने के अधिक उपयोगी काम में संलग्न हैं । और यदि वे सच्चा, हिन्दू-मुस्लिम-संगठन कायम करने में सफल हों तो यह देश के लिए अव्वल दर्जे की सेवा होगी । बोलनेवालों के द्वारा नहीं, बल्कि जड़ से ही काम शुरू करने की उनकी जो धारणा है, उसके फल-स्वरूप हिन्दू-मुस्लिम जनता में सद्भाव फैले बिना नहीं रह सकता ।

मेरा असली काम

यह परिषद् मेरे लिए एक आकस्मिक बात थी । मेरा असली काम तो था हिन्दुओं और मुसलमानों के प्रतिनिधियों से मिलना ही । इसलिए अमृतसर की खिलाफत परिषद में उपस्थित जनता से परिषद् के दूसरे दिन की बैठक को, उस दिन के तीसरे पहर तक मुल्तवी करने का अनुरोध करने में मुझे आगापीछा न हुआ । मेरा ऐसा करने का तात्पर्य यह था कि ८ तारीख को सवेरे सब लोग प्रतिनिधियों की बे-जाब्ता सभा में योग दे सकें । मुझे यह देख कर बड़ी खुशी हुई कि उपस्थित सज्जनों ने मेरी यह राय मान ली । मौलाना जफरअलीखां (सभापति) डाक्टर किचलू तथा अन्य सज्जन बड़ी असुविधा उठा कर भी उस सभा के लिए लाहौर आये ।

परिणाम

पाठक को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि यह सभा खास इसी उद्देश्य से की गई थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों के आपस के तनाजों को रोकने और इन दोनों जातियों के बीच असली अमन कायम करने के रास्ते और साधन पर विचार किया जाय । बाहर से आनेवाले मुसलमानों में हकीम साहब अजमल खां, अली बन्धु और डाक्टर अन्सारी, तथा हिन्दुओं में पण्डित मदन मोहन मालवीय उपस्थित थे । झगड़ों के राजनैतिक कारणों पर ही वादविवाद चला । क्योंकि पंजाब के पढ़े-लिखे लोगों के इस मनोमालिन्य का पूर्ण नहीं तो प्रधान कारण यही दीखता था । लालाजी ने बड़े दुःख के साथ मुझसे कहा कि पहले जहां शिक्षित हिन्दुओं और मुसलमानों में सामाजिक सद्भाव था वहां अब मनमुटाव बढ़ता जा रहा है । इसलिए सभा में इस बात पर बहस हुई कि लखनऊ के ठहराव पर पुनर्विचार करना उचित है या नहीं । पंजाब के मुसलमानों का विचार है कि लखनऊवाला ठहराव यदि शुरू में एक बड़ी भूल न माना जाय तो भी अब वह हमारे लिए नाकाफी हो गया है । उनका कहना है कि जबतक जातिगत द्वेष बढ़ रहा है और पारस्परिक अविश्वास मौजूद है तबतक,—

१. जातिगत प्रतिनिधित्व रक्खा जाय । उसका आधार हो प्रत्येक जाति की जनसंख्या । और निर्वाचक मण्डल कम से कम सबका एक हो या जरूरत हो तो अलग अलग भी रहें । इस बात पर वे लोग एकमत मालूम पड़ते थे कि छोटी छोटी जातियों के चाहने पर ही अलग अलग निर्वाचन का तत्व फिर से स्थापित हो ।

२. किसी भी जाति या पक्ष के साथ रिआयत न होनी चाहिए अर्थात् किसी जाति को अपनी संख्या के लिहाज से अधिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार न होना चाहिए ।

३. व्यवस्थापिका सभाओं और स्थानीय संस्थाओं में भी इसी सिद्धान्त का पालन होना चाहिए ।

४. योग्यता का खयाल रखते हुए, भिन्न भिन्न जातियों को सरकारी नौकरियां संख्या के हिसाब से मिलनी चाहिए । इसलिए यदि किसी खास जाति को एक पद भी न मिला हो तो आगे जितने चुनाव होने वाले हों, आया वे नये हों, या खाली जगह को भरने के लिए हों, उसी जाति में से होने चाहिए जिसमें संख्यानुक्रम के अनुसार चुनाव बिलकुल ठीक हो जाय । दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह है कि किसी वर्गविशेष के साथ खास रिआयत या मिहरबानी न होनी चाहिए । उपस्थित मुसलमान सज्जनों ने यह स्पष्ट कर दिया कि हम सिर्फ अपनी व्यक्तिगत राय दे रहे हैं । अपनी इन बातों से किसी और को नहीं, केवल अपनेको ही बद्ध करते हैं । और यदि कोई जाति किसी खास रिआयत का दावा करे तो वे अपनी राय पर पुनर्विचार कर सकेंगे ।

५. इसका जो कोई उपाय तय हो वह ऐसा हो जो सारे देश पर घटित हो सकता हो और सारे देश की राय से तजवीज हो ।

सिक्ख साहबान का यह कहना था कि पंजाब में हमारी एक खास स्थिति और महत्व है । सो हमारे लिए विशेष व्यवहार की जरूरत है अर्थात् यदि पंजाब में जातिगत प्रतिनिधित्व-प्रणाली

बनाई जाय तो हमें भी संख्या-बल से अधिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिलना चाहिए। उन लोगों ने कहा कि यदि जातिगत प्रतिनिधित्व बिल्कुल ही छोड़ दिया जाय, और यदि एक सिक्ख भी धारासभाओं में या और किसी संस्था में न गया तो भी हमें सन्तोष रहेगा।

हिन्दू लोग चाहते थे कि जातिगत प्रतिनिधित्व कतई न होना चाहिए और यदि हो भी तो निर्वाचक-मण्डल संयुक्त रखना चाहिए। हिन्दू लोग किसी एक बात पर स्थिर न हो पाते थे। पंजाब के हिन्दुओं को यह डर मालूम होता था कि मुसलमानों की इस मांग के मूल में कोई गहरा दांव-पेच है। सचमुच उनके मन में इस तरह का भय था कि यदि पंजाब के शासन-प्रबन्ध में मुसलमानों का बहुमत हुआ, तो अन्य मुसलमान जातियों के नजदीक ही रहने के कारण, खास कर पंजाब को, और सारे भारत को बड़ा भारी खतरा रहेगा।

यही वहां की भिन्न भिन्न जातियों की यथार्थ स्थिति की ओर मैंने भरसक संक्षेप में ठीक ठीक देने का प्रयत्न किया है। ऐसी हालत में किसी निर्णय पर जल्दी पहुंचने के लिए जोर देना सम्भव न था। मैं यह आशा कर रहा हूं कि बेलगांव में भिन्न भिन्न जातियों के प्रतिनिधियों की इससे ज्यादह बाजाब्ता सभायें होंगी और वहां सब कुछ विचार कर इस टेढ़े सवाल का एक सर्वमान्य साधन सारे राष्ट्र के लिए निकल आवेगा।

परिषद्

विषय-समिति और परिषद् दोनों जगहों पर प्रतिनिधियों ने मेरी बड़ी सहायता की। इसके सिवा परिषद् में दूसरी मार्के की बात न थी। मुझसे भिन्न मत रखनेवालों ने भी बड़े धैर्य से काम लिया। मैंने यह बात इसलिए बतलाई है कि सभापति की आज्ञा मानना, हमारे अच्छे सार्वजनिक जीवन के विकास के लिए बड़ा आवश्यक है। निस्संदेह सभापति के चुनाव में सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिए परन्तु जब कोई मनुष्य सभापति बना दिया गया तब उनके साथ शिष्टता और आज्ञा पालन का व्यवहार करना चाहिए। किसी बागी, डांवाडोल या पक्षपाती सभापति के साथ पेश आने का यही उपाय है कि उसके योग्य द्वारा के अविश्वाससूचक प्रस्ताव स्वीकृत कर उसे अपने स्थान से हटा देना चाहिए।

सुसंगठित समाज में, व्यक्ति की नहीं, बल्कि उस पद की इज्जत की जाती है। एकतन्त्री शासन और सुसंगठित राज्य में यही बड़ा फरक है कि दूसरे में पद की इज्जत की जाती है, जो राज्य द्वारा अर्थात् जनता द्वारा निर्मित किया गया है। इस तरह कोई भी शासक या सभापति बनाया जाय, इसका ख्याल न रखते हुए, राज्य ज्यों का त्यों बना रहता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह होता है कि सुसंगठित राज्य का हरएक आदमी अपनी जिम्मेवारी और अपने अधिकारों को जानता है। प्रत्येक नागरिक को अपने स्वत्वों को दूसरों के स्वत्वों के अधीन मानने के लिए तैयार रहने पर ही राज्य की स्थिरता निर्भर है। वह जानता है कि अपना फर्ज अदा करने पर स्वत्व आपसे आप आते हैं। राज्य की ओर से प्रत्येक सदस्य द्वारा किये गये त्याग का योगफल ही राज्य है। प्रतिनिधियों की सावधानी और सज्जनता पर उन्हें धन्यवाद देते हुए, मैं यह कहूंगा कि अब भी हमारी सभाओं के सदस्यों में आत्मसंयम की कमी अज्ञात-रूप से बनी हुई है।

आम या खास जुलूसों के लिए यह अनिवार्य है कि उसमें उपस्थित सज्जन, सबके सब एक बार ही बातें या आपस में काना फूसी न करने लगें, बल्कि जो कुछ कहा जाय उसको ध्यान पूर्वक सुनें। यदि श्रोता ध्यान न दें तो सभाओं का कोई मूल्य नहीं रह जाता। पाठक मेरी इन सम्मतियों की सामयिकता और साथ साथ इनमें मेरी खुदगर्जी समझ जायंगे। मैं बेलगांव के लिए ठीक तैयार कर रहा हूं। जो सज्जन बेलगांव की परिषदों और महासभा में शामिल होने वाले हैं, वे कृपया इस बात पर ध्यान रक्खें।

रविवार तारीख ७ को सबेरे ८ से ११ बजे और संध्या समय ४ से ८ बजे तक, कुल ७ घंटे तक काम होता रहा। विषय-समिति को ६ घंटे लगे। किसीके आने की प्रतीक्षा करने में समय नष्ट न हुआ, इसलिए सभा का काम बड़ी फुर्ती से हो सका। परिषद् संबंधी सभी काम निश्चित समय पर किये गये।

वार्षिकोत्सव

इसके पहले का दिन ता० ६ दिसम्बर भिन्न भिन्न दलों के प्रतिनिधियों से मिलने, जुलूस में शामिल होने (यह जरूरी मगर परेशानी का काम था) और राष्ट्रीय विद्यालय के वार्षिकोत्सव में सफल विद्यार्थियों को उपाधि दी गई। कुलपति की हैसियत से लाला लाजपतराय ने उनसे हिन्दुस्तानी में यह कसम खिलाई कि "मैं शपथ के साथ प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं अपने जीवन में ऐसा कोई काम न करूंगा जिससे अपने धर्म और देश को नुकसान पहुंचे।" उपाधि पानेवाले विद्यार्थियों में एक लड़की और एक मुसलमान भी था। यह रस्म बहुत अच्छा था। परन्तु मैं अपने इन विचारों को नहीं रोक सका कि उपाधि वितरण करते समय मेरी स्थिति वैसी ही है जैसे गोल सुराख में किसी चौरस वस्तु की होती है। शिक्षा के विषय में मेरे विचार क्रान्तिकारी हैं, इस कारण समालोचकों को उनका अजीब मालूम होना ठीक ही है। स्वराज्य के रूप में ही राष्ट्रीय शिक्षा का मैं विचार कर सकता हूं। मैं तो चाहूंगा कि विद्यालयों के विद्यार्थी भी कताई की कला और उसके भिन्न भिन्न उपायों को अच्छी तरह जानने की ओर ध्यान दें। उन्हें खादी के आर्थिक रूप को तथा उसके साथ की अन्य बातों का भी ज्ञान होना चाहिए। उन्हें यह जानना चाहिए कि एक मिल की स्थापना में कितना समय और कितना मूलधन लगेगा। उन्हें जानना चाहिए कि मिलों का बेहद बढ़ जाना सम्भव है या नहीं और उसमें क्या क्या रुकावटें आ सकती हैं। उन्हें यह भी जानना चाहिए मिलों के द्वारा और हाथ-कताई और बुनाई द्वारा किस किस प्रकार धन-वितरण किया जा सकता है। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि किस तरह कताई का व्यवसाय और कपड़े का व्यापार नष्ट किया गया। उन्हें यह स्वयं समझना चाहिए और दूसरों को समझाने के योग्य बनना चाहिए कि भारत के लाखों किसानों की झोंपड़ियों में कताई का क्या प्रभाव पड़ेगा। उन्हें यह जानना चाहिए कि हमारी गृह-कलाओं के पूर्ण पुनर्जीवन किस तरह हिन्दू और मुसलमानों के बिछुड़े हुए दिलों को जोड़कर एक कर सकता है। ये विचार या तो समय के पीछे हैं या आगे हैं। इसकी अधिक परवा नहीं कि वे समय से आगे हैं या पीछे। मैं यह जानता हूं कि एक न एक दिन सारा शिक्षित भारत उन्हें अपनावेगा।

मार्शल ला के कैदी

पाठक को श्री रतनचन्द और बुग्गा चौधरी का स्मरण होगा। वे दोनों मार्शल-ला के कैदी थे-इन्हें फांसी की सजा दी गई और इन्हींकी ओर से पण्डित मोतीलालजी ने प्रिवी कौंसिल में अपील की थी। पाठकों को यह भी याद होगा कि अपील के खारिज हो जाने पर भी फांसी की सजा, आजन्म कारावासदण्ड में परिवर्तित गई थी। श्री बुग्गा चौधरी अण्डमन से मुल्तान लाये गये हैं और मैं सुनता हूं कि श्री रतनचन्द अब भी अण्डमन में ही रखे गये

है। मैं श्री गुप्ता की मास से मिला था। उन्होंने मुझसे कहा कि श्री गुप्ता उन्माद और बवासीर से पीड़ित हैं और करार तीन महीने से उन्हें बुखार भी आ रहा है। असहयोग के उन दिनों में मैं कहा करता था कि ये कैदी जल्द छोड़ दिये जायगे। इस बार मुझे बड़ा दुःख हुआ, जब मैं उस माता को जामाता के शीघ्र मुक्त होने की आशा न दिला सका, यद्यपि वह दामाद दुःख में है और ५ वर्ष तक सजा काट चुका है। इन दोनों सज्जनों के मुकद्दमे में दी गई गवाहियों को देखने पर मैंने अपना यह विश्वास प्रकट किया था कि सबूतों में ऐसी कोई बात नहीं है जो यह साबित करे कि इन्होंने किसीकी हत्या की है। मन को मार होगा कि इस मामले में प्रिवी कौंसिल ने सत्यता की जांच नहीं की। न्यायाधीश लार्ड महाशयों ने केवल जाब्ते की बातों के आधार पर ही अपील खारिज कर दी थी।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, पौष बदी ३ संवत् १९८१

मेरा पथ

योरप और अमेरिका में आज-कल मेरे प्रति लोगों का ध्यान खिंच रहा है। यह मेरे लिए सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनों ही की बात है। सौभाग्य की बात तो इसलिए है कि पश्चिम में भी मेरे संदेश को लोग समझते और मनन करते हैं। मेरा दुर्भाग्य यह है कि कोई तो अनजान में उसकी महत्ता बहुत ही बढ़ा देते हैं और कोई जान बूझकर उसका रूप बिगाड़ देते हैं। सत्य सर्वदा स्वावलम्बी होता है और बल तो उसके स्वभाव में ही होता है। इसलिए जब मैं देखता हूं कि लोग मेरे संदेश को गलत रूप में पेश करते हैं तब भी मैं विचलित नहीं होता। एक योरपियन मित्र ने कृपापूर्वक मुझे इस बात की चेतावनी भेजी है कि, या तो बुरी नीयत से या भूलसे, रूस में मेरे मत के विषय में बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। मालूम नहीं उन्हें कहां तक सच खबर मिली है। नीचे उनके पत्र का अनुवाद लीजिए।

"बोलशेविक सरकार गांधीजी के पीछे अजीब अजीब प्रयत्न कर रही है। कहा जाता है कि बर्लिनस्थित रूसी राज्य-प्रतिनिधि क्रेसटिन्सकी को पर-राष्ट्र-सचिव की ओर से कहा जायगा कि वे अपनी सरकार की ओर से गांधीजी का स्वागत करें। और इस स्थिति से फायदा उठाकर गांधीजी के अनुयायियों में बोलशेविक मत का प्रचार कराने का उद्योग करें। इसके अलावे क्रेसटिन्सकी का यह काम भी दिया जायगा कि वे गांधीजी को रूस में आने के लिए निमंत्रण दें। एशिया की दलित-पीड़ित जातियों में बोलशेविक साहित्य के प्रचार के लिए धन खर्च करने का भी उन्हें अधिकार दिया गया है। ओरियंटल-ब्यूरो सेक्रेटेरियट के काम के लिए वे गांधीजी के नाम पर एक थैली खोलने वाले हैं जिससे कि उनके (गांधीजी के या मास्को वालों के ?) मत को माननेवाले विद्यार्थियों को सहायता दी जायगी। अन्त में, इसमें तीन हिंदू भरती किये जायगे। १८ अक्तूबर को यह सब रूसी समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गया है।

इस मजमून से इस खबर का कुछ रहस्य मिल जाता है जिसके द्वारा मेरे जर्मनी और रूस जाने के लिए आमन्त्रित किये जाने की सम्भावना बताई गई थी। यह कहने की तो जरूरत ही नहीं है कि न तो मुझे ऐसा कोई निमन्त्रण ही मिला है और न मैं इन महान् देशों में जाने की कुछ अभिलाषा ही रखता हूं। क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरे प्रतिपादित सत्य को अभी खुद भारतवर्षने भी पूरे तौर से ग्रहण नहीं किया है—वह अभी यथेष्ट-रूप में प्रस्थापित भी नहीं हो पाया है। हिन्दुस्तान में जो काम मैं कर रहा हूं, वह अभी प्रयोगावस्था में ही है। ऐसी हालत में मेरे लिए विदेशों में जा कर किसी साहसिक कार्य के करने का समय अभी नहीं आया है। यदि हिन्दुस्तान में ही यह प्रयोग प्रत्यक्ष रूप में सफल हो जाय तो मैं पूर्णरूप से सन्तुष्ट हो जाऊंगा।

मेरा रास्ता साफ है। हिंसात्मक कार्मों में मेरा उपयोग करने के सभी प्रयत्न अवश्य विफल होंगे। मेरे पास कोई गुप्त मार्ग नहीं है। मैं सत्य को छोड़कर किसी कूट-नीति को नहीं जानता। मेरा एक ही शस्त्र है—अहिंसा। सम्भव है कि मैं अनजाने, कुछ देर के लिए गलत रास्ते भटका लिया जाऊं किन्तु यह हमेशा के लिए नहीं चल सकता। अतएव मैंने अपने लिए ऐसी कैद निश्चित कर ली है, जिसके दायरे के भीतर ही मुझ से काम लिया जा सकता है। इसके पहले भी मुझ से अनुचित काम निकालने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। जहां तक मुझे मालूम है, वे हर बार निष्फल ही हुए हैं।

बोलशेविज़म को मैं अभी तक ठीक ठीक नहीं समझ सका हूं। मैं इसका अध्ययन भी नहीं कर सका हूं। मैं यह भी नहीं कह सकता कि रूस के लिए अन्त में यह लाभकारक होगा या नहीं। तो भी इतना तो मैं अवश्य जानता हूं कि जहांतक इसका आधार हिंसा और ईश्वर-विमुखता पर है, यह मुझे अपने से दूर ही हटाता है। मैं यह नहीं मानता कि हिंसात्मक लघुपथों में सफलता मिलती है। जो बोलशेविक मित्र इस समय मेरी हरकत पर ध्यान दे रहे हैं, उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि, मैं उनके उद्देश्यों की चाहे जितनी प्रशंसा करूं और उनके साथ सहानुभूति दिखलाऊं, किन्तु श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ कार्य के लिए मैं हिंसात्मक पद्धति का अटल विरोधी हूं। अतएव हिंसावादियों के और मेरे मिलाप के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। इतना होने पर भी मेरा अहिंसा-धर्म मुझे न केवल नहीं रोकता है बल्कि अराजकों और अन्य सभी हिंसावादियों से सम्पर्क रखने पर मजबूर करता है। किन्तु यह संसर्ग केवल इसी आशय से है कि उन्हें मैं उस राह से बचाऊं जो मुझे गलत दिखाई देती है। क्योंकि मुझे अपने अनुभव से विश्वास हो गया है कि स्थायी कल्याण असत्य और हिंसा का फल कभी हो ही नहीं सकता। यदि मेरा यह विश्वास केवल एक भोले की भ्रान्ति ही हो तो भी आप लोग मान लेंगे कि यह है एक मनोहारिणी भ्रान्ति।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी) ॥ कमीशन दिया जायगा और उन्हें पर पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डांक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल से।

એમ મીસ્ત્રી; હાલીયા (ગોધરા) ૧ વિદ્યાર્થી મંડળ; ૨૧૩-૫-૦ નીચ્છાભાઇ વસનજી મારફત મુસલમાનોના હિંદીઓના; (પો. સિ પે. ૨-૭-૬ જ ગળાભાઇ વસનજી નાયક; ૨-૨-૦ નાગરજી રામભાઇ પટેલ; ૧-૨-૦ છે ટુભાઈ રણછોડજી નાયક; ૨-૨-૦ શેખ મહમદ ખલીફા; ૧-૧-૦ નાગુભાઈ વલ્લભભાઈ દેસાઈ; ૧-૧-૦ મોતીભાઇ સોમાભાઈ પટેલ; ૧-૧-૦ લાખુભાઈ બાલાભાઈ મુની; ૧-૧-૦ ખંડુભાઈ રામભાઈ વશી, ૧-૧-૦ કમાલુદ્દીન પેંગાકર; ૦-૧૭-૬ આર. એમ. શાહ (મદ્રાસ); ૦-૧૦-૬ પરાગજી ડાહ્યાભાઈ પટેલ; ૦-૧૦-૬ મુન.લ.લ પ્રાણજીવન ત્રિવેદી; ૦-૧૦-૬ રામજીભાઇ પટેલ), ૧૨-૯-૦ ગામ 'રાણીઆ' (સાવલી) નો ફાળો હા. કાશીભાઇ તલાતભાઇ.

* આ ગામની રકમોમાંથી મનીઑર્ડર ખર્ચના કુલ ૧-૧૨-૦ બાદ

કુલ રૂા ૨૧૧૧૮-૧૪-૪ તા. ૬-૧૨-૨૪ સુધીના

સત્યાગ્રહાશ્રમમાં ભરાયેલાં નાણાં

રૂા ૩૫,૯૬૩-૭-૦ તા. ૭ ૧૧-૨૪ સુધીના પ્રથમ સ્વીકારાએલા

મુંબઇ ૫૫ શાહ મગનલાલ હરજીવનદાસ; અમલનેર ૫ પ્રહ્લાદ કેશવલાલ પટેલ બરેલી ૫ ચિદાબરનાથ, પોરબંદર ૧૦૧ બાઈ મોતીબાઈ હા મનમોહનદાસ નેમીદાસના ધણીયાણી; ૫૦ કલ્યાણજી ગોવીંદજી વોરા; સંભાવા (માડાગાસ્કર) ૧૬૧-૮-૦ શ્રી હસનઅલી સમસુદીન મારફત ફ્રાંક ૧૦૯૫ના (૧૦૦ રજબઅલી બક્ષુભાઇની કું; ૫૦ મુલાજી મહમદભાઈ દીવાન; ૨૦૦ ખાનભાઇ રેમાનજી; ૧૦ અલાભાઈ ઇસા; ૫૦ મુલ્લા જીવાજી મુલ્લા આદમજી; ૨૫ કબરાનજી બક્ષુભાઇ; ૫૦ આલાયા કેર; ૨૫ ઇસાજી નુરભાઇ; ૨૫ હસનઅલી લવજી મુગાના; ૫૦ ફકરૂદીન બક્ષુભાઇ દુકાન સભાવા; ૨૦૦ હસનઅલી સમસુદીન; ૨૦ નુરભાઈ; ૨૦ અસગરઅલી હસનઅલી; ૨૦ સલાઉદીન હસનઅલી; અબીરાબે (માડાગાસ્કર) ૧૦૦ ભાઇ અલીભાઇ ગીદાભાઈ, અંતાલાહા ૫૦ મુલ્લા આદમજી મુલ્લાં મહમદઅલી; સંભાવા ૧૦૦ ભાઈ હસનઅલી નુરભાઈ); અમરેલી ૫ વરજીવનદાસ જમનાદાસ; અમદાવાદ ૫ ઝવેરભાઇ ત્રિભોવનદાસ; ૫ હરીચંદ ત્રિભુવનદાસ.

રૂા. ૩૬૩૫૫-૧૫-૦ તા. ૧-૧૨-૨૪ સુધીના.

ગુજરાત પ્રાંતિક સમિતિનાં ભરાએલાં નાણાં

૧૮,૨૧૦-૧-૯ તા. ૫-૧૧-૨૪ સુધીના પ્રથમ સ્વીકારાએલા.

કલકત્તા ૨૫ ભાઇ લાલભાઈ ભીખાભાઇની કું; ભાણકોટ ૩ મુલકચંદ હા મહેતા ભાઇલાલભાઇ કાળીદાસ; નડીઆદ ૫ એક સેવક હા. અંત્યજ આશ્રમ; હૈદરાબાદ ૪-૫-૦ શ્રી મત્રીજી સીંધ પ્રોવીન્સીઅલ કોન્ગ્રેસ કમીટી, ૨ ઉમેદભાઈ નારણભાઇને જડેલી સોનાવાળી ૧ના વેચાણના; ટાંકવા ૭૫ ગામ ટાકવાની પ્રજાસમસ્ત હા. મુની જીનવિજયજી; પાલણપુર ૧૦૦ બાપાલાલ ગોકળભાઈ હા. કાળીદાસ જ. ઝવેરી; બાવડા ૧૦ પટેલ જગજીવન ગીરધરલાલ; ૫ ભીટાલાલ સ્ટેશન માસ્તર; ૧ અબાલાલ ટીકીટ માસ્તર; વીરમગામ ૧૫ રતીલાલ કેશવલાલ દેસાઈ, ૧૯-૪-૦ શા પ્રેમચંદ ઉમચંદ મારફત ધાયજ (તા. પાદરા)ના ઉઘરાણાના; અમદાવાદ ૫૦ રા નારાયણરાવ હકુમતરાવ ઠાકોર.

કુલ રૂા. ૧૮૫૨૪-૧૦-૯ તા. ૬-૧૨-૨૪ સુધીના.

મુંબઇ શાખામાં ભરાએલાં નાણાં

રૂા. ૧૦૯૭૬-૭-૦ તા. ૨૯-૧૦-૨૪ સુધીના પ્રથમ સ્વીકારાએલા.

રૂા. ૭૮૪-૩-૦ ત્યાર બાદ સ્વીકારાએલા (જેની વિગત હવે પછી પ્રકટ કરવામાં આવશે.)

[નવજીવનના તા. ૭-૯-૨૪ના અંકના વધારામાં મુંબઇ શાખામાં ભરાએલી રકમ રૂા ૧૭૫-૪-૦ સ્વીકારાએલ છે; તેમાંના રૂા. ૧૧૭-૦-૦ ની પહોંચ તા. ૧૭-૮-૨૪ના અંકમાં 'અસ્પૃશ્યતા સંકટનિવારણ' નામના અગ્રલેખમાં આવી ગઈ છે. બાકીના રૂા. ૫૮-૪-૦ની રકમ સ્વીકારાયા છતાં નામો અપાવા રહી ગએલ તે નીચે પ્રમાણે છે: ૨ એક પારસી ગૃહસ્થ; ૫ બાલુભાઈ માધવલાલ; ૨૫ દુલીચંદ મંગલચંદ; ૨૫ હરજી દામજી; ૧-૪-૦ કનૈયાલાલ રામચંદ (એક દિવસના પગારના).]

કુલ રૂા. ૧૧૫૬૦-૧૦-૦

ગાંધીજીની મુસાફરી દરમીયાન મળેલાં નાણાં: રૂા. ૧૦૩૧૬-૧૨-૩ પ્રથમ સ્વીકારાએલા

કુલ સરવાળો રૂા. ૯૭૮૭૬-૧૪-૪

पंजाब की चिट्ठी

२ ता० को निकल कर ४ को लाहौर पहुंचे। आज रावलपिंडी आ रहे हैं। इन चार दिनों में सुबह से ले कर आधी रात तक बराबर काम ही काम रहा। पंजाब पर इस बार गांधीजी की चढ़ाई हिन्दू-मुस्लिम-झगड़ों को रफा करने के सिलसिले में हुई थी। उसमें विजय हुई, यह तो नहीं कह सकते; पर दिल साफ हुए, यह कह सकते हैं।

यहां अविश्वास इस हद तक पहुंच गया है कि बाहर के प्रान्तों को उसका सही खयाल नहीं हो सकता। केवल हिन्दुओं और मुसलमानों के ही दिल नहीं बिगड़े हैं, बल्कि हिन्दुओं के खिलाफ सिक्ख और सिक्खों के खिलाफ हिन्दुओं के भी दिल बिगड़े हुए हैं। कभी हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े से सिक्ख खुश होते हैं, लाभ उठाते हैं; कभी मुसलमान सिक्खों को एक खुदा के माननेवाले कह कर उनको खुशामद करते हैं। यहां पंजाब में हिन्दू जल्सों में अथवा वहां जहां हिन्दुओं की संख्या ज्यादह हो, कौमी नारा 'वन्देमातरम्' की ध्वनि होती है और मुसलमान जल्सों में महज 'नारये तकबीर' 'अल्लाहो अकबर' की गूंज होती है। हिन्दुओं के दिल में यह बात पैठ गई है कि महासभा के नेताओं ने हमें मदद नहीं की-मुल्तान के तथा दूसरे झगड़ों के समय किसी किस्म की सहायता नहीं दी। मुसलमानों को राष्ट्रीय जल्सों से अपना कुछ वास्ता नहीं मालूम होता।

अकालियों के साथ

ता० ५ को अमृतसर गये। वहां दो-तीन अकल्पित बातें हो गईं। सरदार मंगलसिंह गांधीजी को दरबार साहब में अकालियों से मिलाने ले गये। जल्सा जबरदस्त था। मंगलसिंहजी ने भारी कार्यक्रम बना रक्खा था। लंबी लंबी तकरीरें हुईं। सरदार मंगलसिंह ने अकालियों के पिछले दो साल के दुःखों का वर्णन किया। हजारों का जेल जाना, जेलों के अनेक प्रकार के कष्ट, अनेकों की मृत्यु इत्यादि बातों का वर्णन किया। सरदार साहब जब यह वर्णन कर रहे थे, गांधीजी ने आंख में कुछ गिर जाने के कारण या किसी और सबब से अपनी आंख मसली कि सरदार साहब ने उन कष्टों को—दुःखों को गांधीजी जैसों की आंख में भी आंसू लाने वाले बयान किया। इसके बाद एक दूसरे सरदार साहब खड़े हुए। उन्होंने कहा:—"गांधीजी जैसे सच बोलनेवाले दुनिया में बहुत ही कम होंगे। वे देखभाल कर हमारी हलचल के बारे में भी कहें कि उसमें कितनी सचाई, कितनी अहिंसा भरी हुई है। राजनैतिक उद्देशों की सिद्धि हमारा ध्येय नहीं, धार्मिक सुधार ही हमारा उद्देश है' इत्यादि। इन दो बातों के आधार पर ही गांधीजी ने अपना व्याख्यान रचा, पहली बात के संबंध में उन्होंने कहा—"सरदार साहब ने कहा है कि उन्होंने जो कथा सुनाई उससे मेरी आंखों में आंसू आये। मुझे यह कह देना चाहिए कि मेरी आंखों से आंसू नहीं निकले हैं। मैंने इतना अधिक दुःख देखा है कि मेरा हृदय पत्थर-सा कठोर हो गया है और मुझे ऐसा भी मालूम होता है कि जितना दुःख देखा है उससे हजार गुना अधिक दुःख देखना पड़ेगा। यह नहीं कह सकते कि हमारा युद्ध कितने दिनों तक चलेगा, और अपनी भूलों से ही हमें अधिक कष्ट उठाना पड़े तो कोई ताज्जुब की बात नहीं है। इसलिए मैं तो छाती दृढ़ किये बैठा हूं। आंसू गिराने से कष्ट-सहन करने की शक्ति नहीं मिलती। हृदय वज्र-सा कठिन बना कर दुःख सहन करने से ही यह शक्ति बढ़ सकती है।

दूसरे सरदार साहब के वचनों के संबंध में गांधीजी ने कहा:—आप लोगों के कष्ट मैंने आंखों से नहीं देखे हैं लेकिन उनके बारे में सुना बहुत कुछ है। आप लोगों ने धैर्य और सहनशीलता का जो पाठ सिखाया है वह अपूर्व है। लेकिन आप लोगों की सचाई के बारे में जो अभिप्राय मानना पड़ा है उससे प्रतीत होता है कि आप लोगों पर आक्षेप हो रहे हैं। आप कुछ बातें छिपाते तो नहीं हैं, आपके उद्देश्य कुछ गूढ़ तो नहीं हैं? ऐसे ऐसे आक्षेप यदि अनेक दिशाओं से होते हों तो इस विषय में आप लोगों को खूब सावधान हो जाना चाहिए। बम्बई में जो परिषद हुई उसमें मैंने सब पक्षों को एकत्र करने का प्रयत्न किया। बेलगांव में भी यही प्रयत्न करूंगा। स्वराज्यवादियों के साथ संधि में मुहब्बत के लिए विरुद्ध पक्षवालों का अपना सिद्धान्त छोड़े बिना जो कुछ दिया जा सकता है सब मैंने दिया। आप लोगों से भी मेरी यही विनय है कि अपनी कौम में जो अनेक वर्ग हो गये हैं उन्हें आप एकत्र करने का प्रयत्न करें। उनमें से यदि किसीको गुरुद्वारे का कब्जा चाहिए तो उसे वह दे दीजिए और यह जगत् को सिद्ध कर दीजिए कि हम गुरुद्वारों का कब्जा नहीं चाहते सिर्फ उनका सुधार चाहते हैं।

अमृतसर के नागरिकों से सीधी बातचीत

शहर के लोग अभिनन्दनपत्र देने का आग्रह करते हुए आये थे। उन्हें गांधीजी ने प्रथम ही प्रश्न किये "मानपत्र कौन देता है? क्या हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, सनातनी, आर्यसमाजी, तनजीमी—सब इसमें शामिल हैं? यदि शामिल हैं तो मानपत्र लूंगा।' आखिरकार जो शख्स आग्रह करने के लिए आये थे वे सब मंडलों के मंत्रियों से दस्तखत करा कर फिर आये और गांधीजी ने मौलाना शौकतअली के आग्रह से मानपत्र लेना स्वीकार कर लिया। मानपत्र जलियांवाला बाग में दिया गया। लोग कहते थे कि इस दो तीन साल के अरसे में आठ दस हजार आदमियों का यह प्रथम ही जलसा हो रहा था। जो मानपत्र पढ़े गये उनमें हिन्दू-मुसलमानों के दरम्यान बेदिली का भी उल्लेख था और यह भी लिखा था कि "हमारे नेता तो एक कौम को दूसरी से लड़ाने के लिए बांहें चढ़ा कर फिर रहे हैं!" उत्तर देते हुए गांधीजी ने 'जयकार' के संबंध में कितने ही मर्मभेदी वचन कहे·

'१९२१ के प्रवास में जब निकला था तब मैं 'महात्मा गांधी की जय' सुनने की आशा तो रखता ही था। अमृतसर आया तब भी यह सुनने की आशा थी। उस समय मुझे दुःख तो होता ही था और मैं कहता था कि यह सुनकर मुझे दुःख होता है; क्योंकि मेरे नाम को ले कर आपने बुरे काम किये हैं। इसीसे मैं कहता था कि मेरा नाम भूल जाओ और नेक काम करो। फिर भी इस जय-घोष को बरदाश्त कर लिया करता था। क्योंकि उस समय उसके साथ 'हिन्दू मुसलमान की जय' भी मैं सुनता था और समझता था कि मेरी जयकार वास्तव में मेरी नहीं है, हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य की 'जय' है, स्वराज्य की 'जय' है, चरखे की 'जय' है, सत्य की 'जय' है, अहिंसा की 'जय' है। पर आज तो यह जयकार सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आप समझ लीजिए कि मैं तो एक मुरदा हो गया हूं। मुझे जरा भी देर के लिए जिन्दा रहना अच्छा नहीं मालूम होता। मैं ईश्वर से हर मिनट प्रार्थना कर रहा हूं कि यदि तू मुझे जिन्दा रखना चाहता है तो हिन्दू-मुसलमान आदि जातियों का एक-दिल बना दे, दोनों जातियों के दिल से अदावत, ईर्ष्या, द्वेष और विष को निकाल डाल। ये बुराइयां यदि हमारे दिल से दूर न हुई तो समझ रखिए, हमारे कर ललाट पर गुलामी हमेशा के लिए लिख गई है। यहां आपने महात्मा गांधी की 'जय' तो सदा की तरह पुकारी परन्तु किसीने हिन्दू-मुसलमान का जय-घोष नहीं किया और यदि किसीने किया भी होगा तो लोगों ने उसमें

अथवा दुःख न मिलाया होता। जब कि आपने अपने दिये अभिनन्दन-पत्र में कबूल किया है कि हमने इन दो सालों तक शर्मनाक काम ही किये हैं तब जिस बुलन्द आवाज से और 'जय' घोष किया, उसी आवाज से हिन्दू-मुसलमान को 'जय' बोलो। (हिन्दू-मुसलमान की 'जय' अनेक बार बोली गई।) इस 'जय' में यह बात गर्भित है कि हमारे लिए आपस में लड़ना हराम है, हिन्दू-मुसलमान अथवा दूसरे किसी भी धर्म में दूसरे धर्म के साथ लड़ना हराम है, किसी भी इन्सान को काफिर कहना धर्म की निन्दा करना है।"

'झगड़ों के लिए कसूरवार सर्व-साधारण नहीं, परन्तु अगुआ लोग ही हैं' यह कह कर गांधीजीने अदावत और झगड़े की बातें बतानेवाले अगुओं का त्याग करने की सलाह दी और अपने पंजाब आने का उद्देश समझाया। कहा—जिस अमृतसर में हिन्दू-मुसलमानों के खून की नदियां बहीं, जिस अमृतसर में पेट के बल रेंगना पड़ा, जिस लाहौर में कोड़े लगाये गये और अनेक बेइज्जती सहना पड़ी—वहां तो ऐसे झगड़े हरगिज न होने चाहिए-पर उल्टे वहीं से ये झगड़े पैदा हुए हैं। उन्हें दूर करने की कोशिश करने के लिए मैं हकीमजी को ले कर आया हूं। हकीमजी खुद शर्मिंदा हैं और आप लोगों को शर्मिंदा करने आये हैं।

'गांधी तो मुसल्मानों के हो रहे' इस इल्जाम का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा—

'आप कहते हैं, गांधी तो मुसल्मानों का हो गया है। उन्हें वह कुछ नहीं कहता। सिर्फ आर्यों को ही कहता है। इसपर मैं कहता हूं कि मुझे इस बात पर अभिमान होता है कि मैं जो जान-अनजान में मुसल्मानों को ज्यादह नहीं कह-सुन रहा हूं यह कितना अच्छा है! मैं हिन्दू हूं। इसलिए हिन्दुओं को ही अधिक कहना-सुनना मेरा धर्म है। मुसल्मानों को मैं किसलिए और क्या कहूं? कुरानशरीफ की बे-अदबी यदि मैं न करना चाहूं तो मुझे यह देखना चाहिए कि मुसल्मान उसके साथ किस तरह पेश आते हैं। वे जैसा करते हों वैसा ही मुझे करना चाहिए। पर जब मैं अपने मिन्दरों में जाऊं तब क्या मुझे किसी हिन्दू की ओर देख कर कुछ करना पड़ता है? परन्तु दरबार साहब में जब गया तब मैं सरदार मंगलसिंह की ओर बराबर देखता रहा कि किस तरह सिर झुकाना चाहिए, किस तरह अदब रखना चाहिए। इसी तरह मैं तमाम धर्मों के प्रति आदर उत्पन्न कर रहा हूं। और आज कह सकता हूं कि मेरा जितना प्रेम हिन्दू-धर्म के साथ है, उतना ही इस्लाम, सिक्ख-धर्म और ईसाई-धर्म के साथ है। इस तरह मैं पक्का सनातनी होते हुए भी किसी भी धर्म के लिए मरने की शक्ति रखता हूं। यदि मुझे कोई यह कहे कि आपको अपने धर्म के प्रति अथवा दूसरे धर्म के प्रति प्रेम नहीं है तो मैं पूछता हूं कि उस अविश्वास करनेवाले से बढ़कर अज्ञान किसका हो सकता है? पर मैं क्या करूं? इसने अपने दिलों को ऐसा बना डाला है कि यदि मैं हरबात में मुसल्मानों या सिक्खों की भूल न देखूं तो लोग समझते हैं मेरा विश्वास न करना चाहिए, मैं तो कहता हूं कि यदि मेरा काम अच्छा लगता हो तो उसके अनुसार काम करो नहीं तो मुझे छोड़ दो। मेरे काम के सिवा दूसरी किसी बात की ओर न देखो। मेरे जीवन की एक भी बात गुप्त नहीं। मेरे तमाम काम, तमाम बातें खुले-मैदान करता हूं। मैं कहता हूं कि मैं तो हिन्दुओं का, मुसल्मानों का, सिक्खों का गुलाम हूं। यदि मुझे बेवफा पाओ तो मुझे कतल कर डालो। मुझ जैसा, जो सचाई और अहिंसा का पाठ पढ़ाना चाहता है वही, यदि आपको कुमार्ग में ले जाय तो उसे कत्ल कर डालो—मेरे लिए तो झूठ बोलना भी हिंसा है। यदि मैं डर के मारे कुछ करता होऊं तो भी मैं करने लायक हूं। अगुआ बनना और साथ ही डरना—मेरे लिए हराम है। यदि मैं सचाई छोड़ूं, शान्ति छोड़ूं, और भय न छोड़ूं,—इन तीनों बातों में फेल होऊं,—तो समझना मैं ना-पाक हो गया और मानना कि मैं कत्ल करने के लायक हो गया।(अपूर्ण)

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

एक मनोरंजक संवाद

(२)

मानसशास्त्र के अध्यापक का मन चक्कर में पड़ा। वे तो मानस-शास्त्र और तत्वज्ञान के सवालों में उलझने लगे।

'आप स्वतन्त्र संकल्प-शक्ति को मानते हैं?'

गां०—'मैं मानता हूं कि मैं परिस्थिति के अधीन हूं—देश और काल के अधीन हूं। फिर भी परमेश्वर ने कुछ स्वतन्त्रता मुझे दे रक्खी है और मैं उसकी रक्षा कर रहा हूं। मैं समझता हूं कि धर्म और अधर्म का ज्ञान कर उनमें से मुझे जो पसन्द हो उसे ग्रहण करने की स्वतन्त्रता मुझे है। मुझे यह कभी प्रतीत न हुआ कि मुझे स्वतन्त्रता नहीं है। परन्तु यह निर्णय करना कठिन है कि किसी कार्य्य के करने की स्वतन्त्रता अपना रूप बदल कर कर्तव्य कहां बन जाती है। स्ववशता और परवशता की सीमा बहुत ही सूक्ष्म है।'

पर यह तो पाण्डित्य में गोता लगाना था और दूसरे अध्यापक को यह रुचिकर भी न हुआ। उनके मन में तो ब्रिटिशनीति पर किये गये आक्षेपों पर विचार उठा करते थे। 'आपने ब्रिटिशनीति की बड़ी निन्दा की है। आप कहते हैं कि इसके असर से लोग नामर्द हो रहे हैं। पर क्या मुगल लोग इससे बुरे न थे? नादिरशाह ने कितना जुल्म किया था? आज तो चारों ओर शान्ति ही शान्ति है।' इसी आशय की बात उन्होंने कही।

इतिहास में नादिरशाह के हमले का जो वर्णन हम पढ़ते हैं उससे हमें यथार्थ चित्र दिखाई नहीं देता। उसके आक्रमण के असर से सर्व-साधारण तो अछूते ही रहे थे। उसके पास मशीन गनें न थीं, ऐरोप्लेन न थे, आधुनिक सुधारयुग के दूसरे साधन भी न थे कि जिससे वह सर्व-साधारण का संहार करता या उनको तबाह करता। मुगलों के पास सैन्य-शक्ति थी, एकत्रबल था, परन्तु उन्होंने लोगों की वीरता का नाश नहीं किया था। अतएव इन तमाम विदेशियों के साथ अंग्रेजों की तुलना नहीं हो सकती।'

'क्या मरहठों ने भी लोगों की वीरता का नाश नहीं किया?'

'जरा भी नहीं, १८५७ के बलवे के समय की हालत का पता आपको नहीं। उस समय के त्रास के साथ दूसरी किसीकी तुलना नहीं की जा सकती। रेल तार और डाक-व्यवस्था से रहित देश कितना सुखी था, इसका ख्याल आप नहीं कर सकते। शिवाजी के हमलों से कितने लोगों का नुकसान हुआ होगा? लाखों लोगों तक तो वे पहुंच भी न सके होंगे और आज तो अंगरेज सरकार ने साढ़े सात लाख गांवों में अपना जाल फैला रक्खा है।'

'ब्रिटेन की छत्रच्छाया में शांति फैल रही है, यह बात क्या सच नहीं है?'

'हां, यह मृतक की शांति है।'

'नवाब या निजाम क्या वैसा काम न करेंगे जैसे कि अंगरेज करते हैं ?'

'हां, मैं इस भय से कम्पित नहीं होता । इस आफत के लिए मैं तैयार हूं, पर वह आफत आज की आफत से कई दरजे अच्छी है ।'

'पूर्वी जुआ अधिक कष्टदायी न हो जायगा ?'

'नहीं वह तो सह्य हो जायगा । यह पश्चिमी जुआ असह्य है क्यों कि पूर्वी जुए के खिलाफ तो बगावत का मौका मिलता है और दोनों की लड़ाई में लोगों की विजय की संभावना भी आठ आने रहती है ।

'पर अब तो उन्हें भी मशीनगन मिल सकती है ।'

'हां, पर वे उसका इस्तेमाल न करेंगे ।'

'आपको स्वराज्य मिलने के बाद आज के इन राजाओं में से कोई उठ कर आपको अपने पंजे में न लेगा ?'

'भले ही ले ले । कुछ अव्यवस्था हो तो भी एक भी राजा सात लाख गावों पर कब्जा नहीं कर सकता । पर ये सब कल्पनायें आप क्यों करते हैं ? ब्रिटिश सत्ता का नाश हो जाने पर, ब्रिटिश हमको छोड़ कर भाग नहीं जायगे । और अगर ऐसा हो भी और हमारी कमजोरी के कारण ऐसी अन्धाधुन्धी फैले भी तो, हम अपनी कमजोरी कुबूल कर लेंगे । थोड़े ही दिनों में हमें अपनी भूल दिखाई देगी और हम शुद्ध हो जायगे । और यदि हम अहिंसा के ही द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर सके तब फिर किसी प्रकार का डर नहीं । आपको शायद यह खयाल न रहा हो कि अहिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना मेरा मनोरथ है ।'

'पर क्या लोग मार-काट न कर बैठेंगे ? सीमाप्रान्त के लोगों के लिए आप क्या करेंगे ?'

'ब्रिटिशों ने यह एक हौआ खड़ा कर दिया है । और खूबी यह है कि अफगानिस्तान को भारी कर देते हुए भी कुछ-न-कुछ झगड़े तो हुआ ही करते हैं ।'

'अफगान आवें तो ?'

'आवेंगे तो हम समझ लेंगे । हमारे स्वराज्य में यह बात भी समाविष्ट है कि दूसरे राष्ट्रों को अनुकूल बना लेना । पहले जिस तरह अनेक जातियां यहां आ आ कर रहीं थीं उसी प्रकार यदि अफगान भी आवें तो हम उनका समावेश कर सकेंगे ।'

इस बात का अन्त नहीं था । मानसशास्त्री इससे ऊब उठा । उसने दूसरा ही ढंग शुरू किया ।

'पूर्व और पश्चिम एक दूसरे से कुछ लेना-देना चाहते हैं ?'

'ब्रिटिश और भारतवर्ष को ही दृष्टि में रख कर बात करते हैं ।'

'हां'

'मैं समझता हूं कि ब्रिटिश यहां कुछ देने के लिए नहीं आये । उनके सहवास से हमें कुछ हासिल न हुआ । जो कुछ हमें हासिल हुआ दिखाई देता है वह उनके सहवास के होते हुए भी-उनके सहवास का फल-स्वरूप नहीं । मेरी धारणा के अनुसार हिन्दुस्तान को पश्चिम को अहिंसा-धर्म सिखाना है । यदि भारतवर्ष यह न कर सके तो अपनी जन्म-भूमि के तौर पर उसका अभिमान मुझे न रहेगा । हो सकता है, यह मेरा एक स्वप्न हो, पर इस सपने को बहुत समय से मैं अपने हृदय में स्थान दे रहा हूं । यहां अनेक युगों से अहिंसा-धर्म की शिक्षा मिली है । यहां की आबोहवा इस धर्म के अनुकूल है । आमतौर पर यह लोगों की रग-रग में व्याप्त है ।'

'बौद्धों के समय से ?'

'उसके भी पहले से । बुद्ध ने इस धर्म को, जिसे कि लोग भूलते जा रहे थे, प्रधानता दी । मेरी अन्तरात्मा कहती है कि संसार के लिए भारतवर्ष का यही संदेश हो सकता है ।'

समाजशास्त्री बोले—'मैं समाजशास्त्र का स्वाध्यायी हूं । तिरस्कार, द्वेष जैसे भाव शान्ति और अहिंसा के बाधक है । हां, यह मैं मानता हूं कि पश्चिम को भी अहिंसा को स्वीकार किये बिना गति नहीं है । हमें हमारी नीति ही बदलनी पड़ेगी ।'

वृद्ध मानसशास्त्री ने फिर शंका उठाई—'अहिंसा-धर्म आपकी आत्मा में से प्रकट हुआ है या अनुभव में से ?'

'दोनों में से मैंने इसे एक शुद्ध नीति के तौर पर निकाला है और समाज के अध्ययन और अनुभव के बाद भी मैं इसी नियम पर पहुंचा हूं ।'

'आप चमत्कारों में विश्वास रखते हैं ? आग पर चलना, तथा ऐसी दूसरी बातें जो सुनी जाती हैं उनके बारे में आपकी क्या राय है ?'

'यह सच हो सकता है । पर मैंने कभी इसपर गौर नहीं किया, इसमें कभी दिलचस्पी नहीं ली । हमारे शास्त्र तो इसका निषेध करते हैं । जो इसके मोह-जाल में फसते हैं वे तो मानों जन्म-मरण के फेरे में फस चुके और उनके लिए मुक्ति का मार्ग नहीं है । शास्त्र-वचन तो यही है । पर मैं यह नहीं मानता कि ऐसी बातें असंभव है ।'

'पर क्या जन-कल्याण के लिए उसका उपयोग नहीं हो सकता ?'

'नहीं, यदि ऐसा होता तो इन चमत्कार-वालों के द्वारा अबतक कुछ जन-कल्याण हुआ होता । फिर यह ऐसी कोई शक्ति ही नहीं जो आसानी से प्राप्त की जा सके या जिसकी जरूरत भी हो । यदि ऐसा होता तो वह सत्यानाश कर बैठती । कुदरत के कानून को उलट देने में क्या आनन्द है ? यदि किसी के दिल में नहीं तरंग उठे कि मैं सहारा के रेगिस्तान में पानी निकालूंगा और यदि वह निकाल भी दे तो इससे क्या लाभ ? कुदरत का तख्त उलटने से लाभ ही क्या ?'

वृद्ध लोग बातूनी तो हुआ ही करते हैं, यदि उन्हें यह न खबर दी जाती कि हमारी प्रार्थना का समय हो गया है, तो नहीं कह सकते उनकी बातें कहां तक चलतीं । परन्तु बहुत दिनों में गांधीजी ने इतनी लंबी और विविध विषयों पर बातचीत की और विदेश से इस देश का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आनेवाले अध्यापकों को सन्तुष्ट कर विदा किया ।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

चरखे की प्रगति

अहमदाबाद के अनुमान के अनुसार, इस माल के लिए सूत भेजने का आखिरी दिन, इसी सप्ताह में पड़ता है। महासभा के आगामी अधिवेशन के कारण, हर एक प्रान्त को अपना सूत भेजने की जल्दी रहेगी। किन्तु उस दर्जों को, गत मास के सूत का सविस्तर ब्यौरा बहुत शीघ्र देना बड़ा कठिन होगा। भिन्न भिन्न प्रान्तों के भेजे बड़े बड़े गट्ठरों का प्रबंध करने में हम लोगों की बड़ी कड़ी जांच होती है। इन चार महीनों के भीतर आशातीत उन्नति हुई है। गुजरात, तामिलनाड, बंगाल और आन्ध्र की पहले से ही बड़ी प्रशंसा की जाती थी, किन्तु वे, इससे फूल कर कुप्पे न हो गये; बल्कि बराबर नियमित रूप से उन्नति ही करते गये। इन सभी में तामिलनाड की उन्नति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अन्य कई प्रान्तों ने भी बहुत उत्साह दिखलाया है। महाराष्ट्र, बिहार, (हिन्दुस्तानी और मराठी) मध्यप्रान्त, बंबई, सिन्ध, उत्कल, बरार, युक्तप्रान्त, आसाम, केरल, बर्म्मा, और देहली, इत्यादि ने भी अपने अध्यवसाय और सुव्यवस्था का परिचय दिया है। राजस्थान आगे नहीं बढ़ा। पंजाब सूत तो अब अधिक दे रहा है किन्तु और बातों में पहले के ही समान है और अभी उन्नति की बहुत गुंजाइश है।

रुई का संचय और चुनाव

सभी प्रान्तों ने रुई के चुनाव में उन्नति की है। इसमें केवल युक्तप्रान्त ही पिछड़ा रहा है। अभी कपास की मौसम आरही है। इसी समय कातने वालों, और स्थानीय तथा प्रान्तीय समितियों को चाहिए कि वे अगले वर्ष तक के लिए, स्थानीय बाजार की सबसे अच्छी कपास खरीद कर इकट्ठी करलें। कपास की घटती बढ़ती तो सचमुच दुखदायी है। परन्तु यह सवाल तो इस प्रकार कपास जमा करने के अनुभव से ही हल किया जा सकेगा। प्रान्तीय खादी—मंडल अपने इलाके के रुई के व्यापारियों की सलाह और सहायता लेकर, इस दिशा में बहुत काम कर सकते हैं।

एक संयुक्त राज्य में जितने व्यवसाय होते हैं और उनमें कपास का व्यवसाय तो जीवन-मरण का सवाल होता है। वहां एक एक गृहस्थ की फसल का विस्तृत ब्यौरा प्रान्तीय मण्डलों के पास पहुंचता है। उनके द्वारा यह समाचार केन्द्रीय मंडल को इतने नियमित रूप से मिलता रहता है कि वे, इसका ठीक अंदाजा लगा लेते हैं कि सारे देश में कितना और किस प्रकार का अनाज पैदा होगा [illegible] किस अनाज का क्या दर रहेगा? और इस प्रकार संसार [illegible] की कुंजी वे अपने हाथ में रखते हैं। प्रत्येक किसान, [illegible] एक व्यवसायी, प्रत्येक महासभा की संस्था, अवश्य ही देश की सेवा कर सकेगी यदि वह बाजार भाव के चढ़ाव-उतार का ख्याल न करते हुए, रुई संचय कर के रखेगी। अकाल के दिनों में संचित अन्न जिस प्रकार काम आता है, वह संचित रुई या कपास, उससे कम काम न आवेगी।

अड्यार में कताई

कोई एक महीना [illegible], भाई देवदास गांधी तकली पर, एक घंटे में [illegible] गज तक कात लेते थे। उनके इस प्रकार के काम ने उन्हें कताई-मास्टर बनाने लायक बना दिया है। वे इस समय कई, एक सप्ताह से अड्यार में रह कर श्रीमती बेसेंट को तकली कातना सिखा रहे हैं। उन्होंने [illegible] तारीख को मदरास से तार दिया है कि उनकी यात्रा सफल हुई। जबतक डाक्टर बेसेन्ट को सिखलाते ६ दिन हो गये थे। श्रीमतीने बड़ी उन्नति की है। वहां और भी कितने आदमी इस में बड़ी ही दिलचस्पी ले रहे हैं और कातने भी लगे हैं। मिस एमिली ल्युटेन्स तकली में निपुणता प्राप्त करने के लिए सरगर्मी से प्रयत्न कर रही हैं। डाक्टर बेसेन्ट ने तो दो अंग्रेज महिलाओं को कातना सीखने के लिए साबरमती एक महीने के लिए भेजने का निश्चय किया है। भाई देवदास के साथ ही श्रीयुत राजगोपालाचार्य भी वहां इतने दिनोंतक बराबर थे। वे लोग श्रीमती कमलामणि अम्मा को देखने गये थे और उनका चित्र खिंचवाने का भी प्रबन्ध किया। ये श्रीमतीजी [illegible] नंबर का सूत कातती हैं।

महासभा की प्रदर्शिनी

प्रदर्शिनी विभाग के मन्त्री श्रीयुत हणमन्तराव कौजलगी लिखते हैं कि दो बाजी होगी—एक तो एकसप्ताह की और दूसरी एक घंटे की। श्रीयुत सी० वी० राम चेट्टी ने एक सोने का और एक चांदी का पदक सब से अच्छे कातनेवालों को देने का वचन दिया है। ये पदक गांधीजी के हाथ से दिलाये जायेंगे। जिन लोगों को प्रान्तीय समितियों ने नहीं चुना है, वे लोग भी बाजी में शरीक हो सकेंगे।

अबकी बार महासभा में एक सुन्दर दृश्य देखने में आवेगा। दो सौ चरखे एक मंडप में रक्खे जायेंगे। जो कोई चाहेगा, नाम मात्र की फीस दे कर वहां कात सकेगा। वहां का काता हुआ सभी सूत महासभा को भेट कर दिया जायगा।

यदि श्रीमती कमलामणि के समान अच्छे अच्छे सूतकार महासभा में आवें और अपने व्यक्तिगत उदाहरण से देश में सूत की कताई को उत्तेजना दें तो बड़ा ही अच्छा हो।

(य० इं०) मगनलाल खुशालचन्द गांधी

ग्राहकों को सूचना

जिन ग्राहकों की मीयाद कल्ह महीने के अन्त में पूरी होती है उनके पते की चिट पर इत्तिला के लिए महीने के अखीर में मीयाद पूरी होने की सूचना की छाप लगा दी जाती है। ग्राहकों को चाहिए कि जिस महीने के अन्त में उनका चन्दा पूरा होता है उस महीने में मनीऑर्डर द्वारा चन्दा पहले ही भेज दें।

यह छाप महीने के अन्त तक, अर्थात् चार सप्ताह तक, बराबर पते की चिट पर लगाई जायगी और यदि नये साल का चन्दा मीयाद खतम होने के पहले न मिला तो बिना किसी नोटिस के पत्र बंद कर दिया जायगा।

चन्दा भेजने के वक्त मनीऑर्डर के कूपन में अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखना चाहिए।

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन" अहमदाबाद

पंजाब में 'हिन्दी-नवजीवन' मुफ्त

भिवानी के श्रीयुत मेलाराम वैश्य सूचित करते हैं कि पंजाब के सार्वजनिक पुस्तकालयों और वाचनालयों को 'हिन्दी-नवजीवन' उनकी तरफ से मुफ्त दिया जायगा।

नीचे लिखे पते पर वे अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिख कर भेजें—

व्यवस्थापक 'हिन्दी-नवजीवन'

पागल देश-प्रेम

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक १९

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, पौष बदी १०, संवत् १९८१ रविवार, २१ दिसम्बर, १९२४ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

क्या लालाजी भीरु हैं ?

मैं खयाल करता हूं कि बहुत से व्याख्यान-दाताओं की तरह मेरा भी यह दुर्भाग्य है कि संवाद-दाता-गण मेरे व्याख्यानों की अकसर गलत रिपोर्ट भेज देते हैं, यद्यपि वे जानबूझ कर ऐसा नहीं करते हैं। मुझे याद है कि १८९६ में स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहता ने, जब कि मैं पहले पहल भारतवर्ष में व्याख्यान देने के लिए खडा हुआ था, मुझसे कहा था कि यदि आप चाहते हों कि लोग आपके व्याख्यान को सुनें और उसकी सही रिपोर्ट भेजी जाय तो आपको अपना व्याख्यान लिख लेना चाहिए। उनकी इस अच्छी सलाह के लिए मैंने उन्हें हमेशा धन्यवाद दिया है। मैं यह जानता हूं कि यदि उस दिन की सभा के लिए मैंने उनकी सलाह के अनुसार काम न किया होता तो वहां मेरी बडी फजीहत होती। लेकिन जब जब मेरे व्याख्यानों की रिपोर्ट गलत भेजी गई है तब तब बंबई के उस बिना-ताज के राजा की उस सलाह को याद करने का मुझे अवसर मिला है। कहा जाता है कि किसीने यह संवाद भेजा है कि अमृतसर की खिलाफत परिषद में मैंने लाला लाजपतराय को भीरु कहा है। लालाजी जो कुछ भी हों, वे भीरु नहीं हैं। मेरे व्याख्यान का पूर्वापर संबंध देखने से प्रतीत होगा कि मैं उनका इस आक्षेप से कि वे मुसलमान के विरोधी हैं बचाव कर रहा था। उस समय मैंने जो कुछ कहा था वह यह है—लालाजी सदा शंकित चित्त रहते हैं और उन्हें मुसलमानों के उद्देश के बारे में बडी शंका रहती है। लेकिन वे मुसलमानों की दोस्ती सच्चे दिल से चाहते हैं। लालाजी के प्रति मेरा बडा आदरभाव है। मैं उन्हें बहादुर आत्म-त्यागी, उदार, सत्यनिष्ठ और ईश्वर से डरने वाला मानता हूं। उनका स्वदेश प्रेम बडा ही शुद्ध है। देश की जितनी और जैसी सेवा उन्होंने की है उसमें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत कम हैं। और यदि ऐसे शख्सों पर यह सन्देह किया जा सके कि उनके उद्देश हीन हैं तो हमें हिन्दू—मुस्लिम-ऐक्य से उसी प्रकार निराश होना पडेगा जिस प्रकार हमें अली-भाइयों पर हीन उद्देश रखने का संदेह करने पर निराश होना पडे। हम सब अपूर्ण हैं, हमारा मत एक दूसरे के खिलाफ दूषित हो गया है। हम, हिन्दू और मुसलमान, जैसे हैं वैसे ही समझे जाने चाहिए। जो हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को अपना धर्म मानते हैं उन्हें तो जो साधन हमारे पास है उसीके जरिये उसे संपादन करने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने औजारों को बुरा कहने वाला कारीगर आपही बुरा है। कर्नल मैडक ने मुझसे कहा था कि एक मरतबा एक साधारण चाकू से ही मैंने एक म[illegible]र आपरेशन किया था क्योंकि उस समय मेरे पास कोई औजार न था और खौलते हुए पानी के सिवा दूसरी कोई जन्तु-विनाशक औषधि भी न थी। उन्होंने हिम्मत से काम लिया और उनका रोगी भी बच गया। हम भी एक दूसरे का विश्वास करें और हम सब सही-सलामत रहेंगे। एक दूसरे का विश्वास करने के यह मानी कभी नहीं हो सकते कि जबानी तो हम एक दूसरे के प्रति विश्वास जाहिर करें और हृदय में अविश्वास को ही स्थान दें। यह सचमुच भीरुता ही है। और भीरु भीरु में या भीरु और बहादुरों में मित्रता हो ही नहीं सकती।

फिर अपरिवर्तनवादी

अपरिवर्तनवादियों की ओर से मेरे पास करुणाजनक पत्र आ रहे हैं। इनके लेखकों को इसका तो स्पष्ट रूप में विश्वास है कि मैंने असहयोग को मंद डाला। परन्तु मेरे प्रति प्रेम-भाव होने के कारण वे मेरे विरुद्ध उठ खडे भी न होंगे। मैं यह जानता हूं कि वे अपरिवर्तनवादी जो मेरे स्वराजियों के साथ समझौता करने के विरुद्ध लेख प्रकाशित करते हैं, जब्त के साथ ऐसा कर रहे हैं। अपने प्रति उनकी इस नाजुक-खयाली का मैं बडा कृतज्ञ हूं। परन्तु जहां इस ख्याल से मुझे आनन्द होता है तहां साथ ही यह मुझे घबराहट में भी डाल देता है। मैं उन्हें यकीन दिलाना चाहता हूं कि यदि वे मुझे गलत रास्ते में चलता समझ कर मेरा विरोध करेंगे तो मैं इसे बुरा न मानूंगा। मेरे प्रति उनके प्रेम के और मेरी पुरानी सेवाओं के कारण उनकी ओर से विरोध में कोई कमी न होनी चाहिए। विरोध को जितना मृदु, शिष्ट और अहिंसात्मक बना सकें, वे बनावें; परन्तु उसके कारण उसके जोर में कमी न आने देनी चाहिए। सचमुच में तो उनके नजदीक भी असहयोग वैसा ही सिद्धान्त का सवाल है जैसा कि मेरे नजदीक। मैंने बार बार कहा है कि यदि यह पक्का सिद्धान्त है तो इसका व्यवहार प्रियतम संबंधियों और मित्रों के प्रति भी संभव है। मैंने अनेक बार कहा है कि घरेलू जीवन का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर के और उसे ठीक करने में अपनी बुद्धि के अनुसार प्रयत्न कर के ही मैंने इसको पाया है। अपरिवर्तनवादी लोग, जिन्हें मेरी भूल का पक्का विश्वास हो गया है, मुझसे असहयोग कर के ही मेरी सेवा कर

सकते हैं। परन्तु जिन्हे मेरी भूल मे सन्देह है, उनके सन्देह से लाभ उठाने का अवसर मुझे मिलना चाहिए। अपनी ओर से मैं और अधिक प्रयत्न नहीं करूंगा। एक अगरेज मित्र कहते हैं कि अब अधिक ऐसा प्रयत्न करने का अर्थ होगा अनुचित प्रभाव डालना। समझौते के पक्ष मे मुझे जो कुछ कहना था, वह मैं कह चुका। मै बिना पूरा विचार किये शीघ्रता से कुछ भी नहीं कर बैठता हू, इसलिए मैं पीछे पैर हटाने में भी विलम्ब करता हूं। परन्तु अपरिवर्तनवादियों को मुझे यह विश्वास दिलाने की जरूरत नहीं है कि जिस दिन मुझे यह मालूम होगा कि मैने 'अपने सिद्धान्त को बेच दिया है,' उसी समय में बहुत तेजी से पीछे लौट आऊंगा और उसके लिए भरपूर प्रायश्चित्त करूंगा। परन्तु उस समय तक वे मुझसे अपने विश्वासों के विरुद्ध चलने की आशा न रक्खेंगे। (यं० इं०) मो० क० गांधी

मदरास में ग्यारह दिन

गत सितम्बर में विदुषी एनी बेसेंट ने यह ऐलान किया था कि 'यदि चरखा ही एक ऐसी चीज है जो मुझे महासभा में फिर शामिल होने से रोकती है तो मैं 'अपना हिस्सा' पूरा करने को तैयार हू।' असहयोग के मुल्तवी किये जाने पर वास्तव मे कोई महत्व का भेद महासभा तथा विदुषी देवी के बीच में न रहा। असहयोग का विरोध भी इन्होंने विशेष कारण से किया था। आपकी राय यह है कि असहयोग एक ऐसा शस्त्र है कि जिसका प्रयोग अन्तिम समय में ही किया जा सकता है। आपकी राय में महासभा ने असहयोग के संबंध में जल्दबाजी की। किन्तु अब यह शिकायत भी अमली सूरत में दूर हो गई।

जैसी कि आशा श्रीमती एनी बेसेंट के व्यक्तित्व से की जा सकती थी, आपने चरखे को कोई विघ्न न समझा। आपने उसे स्वीकार किया। सितम्बर के ऐलान के बाद, श्रीमतीजी का कुछ भी अनुभव रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास था कि उस पर शीघ्र ही अमल किया जायगा।

गत अगस्त के अन्तिम दिनों की घटना है कि मेरे पिताजी और श्रीमती एनी बेसेंट के बीच देश की वर्तमान परिस्थिति पर मशवरा हो रहा था। मैं पास ही था। बातचीत के बीचमें ही मैं अपनी 'तकली' साथ लेकर बुलाया गया। मैने एक मिनट तकली पर सूत कातने की विधि श्रीमतीजी को दिखाई।

दिसंबर की शुरुआत में मुझे मदरास से बुलौआ आया। 'तकली' दिखलाने का सौभाग्य प्राप्त करके मैंने आगे को जिम्मेवारी मोल ली थी। मेरे संकोच की सीमा न रही। मदरास चरखे का केन्द्र है। मैं जानता था कि चरखे की कला सिखाने के लिए मेरे मदरास तक जाने के खयाल मात्र से मेरे मित्रगण हंस पड़ेंगे। किन्तु वादा पिताजी का था। अतः मदरासियों के इस अपमान की जिम्मेवारी उन्होंने ले ली थी। मेरी व्यग्रता दूर हुई।

टूटे-फूटे चरखों की मरम्मत करना, टेढे तकुए को सीधा करना, कर्कश आवाज को दूर कर मधुर ध्वनि का संचार करना, यह एक उत्तम कला है। इसमें सेवा भी बहुत है। हमारे दुर्भाग्य से इस तरफ बहुत कम लोगों की दृष्टि गई है। जबतक इस काम को पेशा बना कर उसीमें परम सन्तोष माननेवाले नवयुवक काफी तादाद में न निकलेंगे तबतक न हम यह आशा कर सकते हैं कि प्रत्येक स्थान में चरखे बा-कायदा चला करेंगे और न यह कि नये चरखे चलने लगेंगे।

इस प्रकार का काम मेरे फालतू समय का पेशा है। इसके वास्ते मुझे छोटे मोटे औजार तथा बहुतथा चरखे का फुटकर सामान रखना पड़ता है। मेरा यह मन्तव्य है कि प्रत्येक मनुष्य को जो कि न सिर्फ खुद सूत कातता हो बल्कि दूसरों से भी कतवाने में तत्पर रहता हो, इन आवश्यक चीजों को अपने पास रखना चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि जहां जहां जाय अपने साथ ले जाना चाहिए। मैं, कम से कम, अपना यह सारा सामान दो-एक चरखे तथा कुछ 'तकलियां' साथ ले कर मदरास की ओर न्योते के दूसरे ही दिन चल दिया। मेरे साथ श्री राजगोपालाचार्य भी वहां पर शामिल हुए। आप चरखे की शास्त्रीय तथा अमली क्रियाओं में निष्णात हैं। हम दोनों श्रीमती एनी बेसेंट के ही अतिथि थे। जाते ही हमे श्रीमतीजी के दर्शन हुए। आपने प्रेम-पूर्वक हमारा सत्कार किया। एक मिनट आपने श्री राजगोपालाचार्यजी के साथ महासभा के ध्येय-पत्र पर दस्तखत करने के संबंध में बातचीत की। इसके बाद कातने की बात छिड़ी। अब यह कह देना आवश्यक है कि न श्री राजगोपालाचार्य को न मुझे इस बात से सन्तोष था कि श्रीमती एनी बेसेंट 'तकली' से प्रारंभ करें। आपने मुझे सिर्फ तकली सीखने की नीयत से बुलाया था। तकली और चरखे में बड़ा अन्तर है। तकली कभी चरखे के मुकाबले में नहीं ठहर सकती। मैने अपना मनोभाव प्रकट किया। राजगोपालाचार्यजी ने मेरा समर्थन किया। श्रीमतीजी ने स्वीकार कर लिया। दूसरे रोज चरखे के साथ ही मैं बुलाया गया। मेरा आधा काम हो गया।

पहला दिन अडियार में मित्रों के साथ मिलने में तथा नये मित्रों का परिचय करने में बीता। चरखे की धुन हमसे पहले वहां पहुंच चुकी थी। कइयोंने सीखने का इरादा कर लिया। अंगरेज और हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष बड़े चाव से कातने, धुनने तथा देशी रंगाई के संबंध में खोज खोज कर प्रश्न पूछने लगे। कइयों की हालत हमने यह भी पाई कि वे कताई तथा बुनाई का भेद तक न जानते थे। मुश्किल से यह समझ पाये कि चरखे से सूत निकला करता है, कपड़ा नहीं।

शुरुआत श्रीमतीजी ने अच्छी की। कितने ही कातने के उम्मीदवार शुरु मे सूत की जगह रस्सी कातते हैं। परन्तु श्रीमती ने सूत ही काता। इसका श्रेय उनकी अंगुलियों की चपलता को उतना नहीं जितना उनके धीरज को था। उनके घुटनों में बड़ा दर्द होता था, फिर भी वे निश्चय-पूर्वक पलथी मार कर बैठतीं। आंखों से तार उन्हें शायद ही नजर पड़ता। चमरखों को उनके सूराखों में ठीक ठीक डालने में भी उन्हें आंखों पर जोर देना पड़ता। फिर भी दो तीन बार उन्होंने खुद ही यह सब किया। जहां आंखें काम नहीं देतीं, तहां स्पर्श तथा आवाज के सहारे अपना काम चला लीं। तार को तकुए पर लपेटने के बाद फिर तार निकालते वक्त बड़ी दिक्कत पेश आती थी। शुरू शुरू में यह बात उनके खयाल में नहीं रहती थी कि पूनी तभी खिचती है जब तार तकुए की नोक पर आ जाता है। मैं सोच में पड़ा। फिर मैंने देखा कि तकुए की नोक उन्हें साफ दिखाई नहीं देती है। उसके बाद से वे तबतक हाथ खींचती ही न थीं जब तक तार के नोक पर आने की आवाज न सुनाई देती। जब कभी मैं पूछता—थकावट तो नहीं मालूम होती? जवाब मिलता 'अभी से?' जब शुरुआत में कठिनाई पड़ने लगी तब मैं जरा बेचैन हुआ था। मैने ऐसे लोगों को देखा है जो शुरुआत की मुश्किलों को देखकर बिल्कुल निराश हो जाते हैं। लेकिन श्रीमती बेसेंट के बारे में ऐसा अन्देशा रखना मानों उनको न पहचानना था। 'याद रक्खो, तुम्हारे पिताजी को जो वचन मैं दे चुकी हूं, उसको पालन बराबर करूंगी।' उनके

वे शब्द अब भी मेरे कानों में गूंजा करते हैं। रोज लगभग एक घण्टा वे मुझे देतीं, जिनमें कोई पौन घण्टा तो चरखा काततीं और कोई १५ मिनिट मेरे साथ बेनकलुफी के साथ बातें करतीं। पर अब वे कम से कम आधघण्टा रोज तो जरूर ही कातेंगीं। पहले दिन श्री० राजगोपालाचार्यजी ने कहा—आपके लिए सिर्फ उद्देश-पत्र पर दस्तखत करने की जरूरत है, और बस, आप महासभा में आ सकतीं हैं। तब उन्होंने कहा—'हां, और कातना भी न !'

मेरे साथ वाले चरखे को देख कर अड़ियारवाली अंगरेज बहनें उसपर लट्टू हो गईं। अड़ियार के चरखे आवाज बहुत करते थे। कितने ही लोग इसीको 'चरखे का संगीत' समझ कर या तो हमारी मूर्खता और संगीत के ज्ञान पर कह कहा लगाते होंगे या उसी कर्कश स्वर में संगीत सुनने का प्रयत्न करते होंगे। अड़ियारवाली बहनें आश्रमवाले चरखेका गुंजारव सुन कर चकित हो गईं। कितनी ही बहनों ने तुरत चरखा कातना सीख लेने का निश्चय किया। यहां विदुषी बेजेंट के एक वचन की नकल देता हूं—'आमतौर पर अड़ियार के लोग कही बात का पालन करते हैं। नहीं तो यहां रहीं नहीं सकते।'

सो कोई ४ अंगरेज बहनों तथा दूसरे ७-८ लोगों ने इन ग्यारह दिनों में मेरे चरखे पर कातना सीखा। अच्छे सीखनेवालों में एक फ्रेंच बाई मेडम दी मंजियारली थीं। वे पहले से चरखे और खादी को चाहती हैं। उन्होंने कहा—खादी मुझे बड़ी खूब सूरत मालूम होती है। इसीलिए मैं पहनती हूं।' उन्होंने चरखा और 'तकली' दोनों सीख लिया है। अब अड़ियार के काम की जिम्मेवारी उन्हींपर है। श्रीमती एनी बेजेंट ने उन्हें कताई में अपना गुरु बनाया है।

दूसरे दिन श्रीमती बेजेंट को ज्यादह कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर मुझे तो उससे उनकी दृढ़ता और उमंग का ही परिचय हुआ। तीसरे-चौथे दिन उन्होंने खूब एकाग्र चित्त से मिहनत की। जो बात बुद्धि-गम्य न मालूम होती उसपर खूब बहस करतीं। हर बार तार के टूटने का खुलासा पूछतीं। और फिर से भूल न होने देने की कोशिश करतीं। पांचवें दिन से कहने लगीं—'अब मुझे कुछ सुलभ मालूम होता है। अब इसका शास्त्र मेरी समझ में कुछ कुछ आ गया है।' अब तार बहुत सुलझकर और कम मिहनत से निकलता था।

तकली सीखने की इच्छा होते हुए भी चरखा ठीक ठीक सीख लेने की ओर उनकी रुचि दिन ब दिन दृढ़ होती गई। ग्यारह दिनों में दो ही बार उन्होंने तकली पर कात कर देखा। ग्यारहवें दिन मुझे रुखसत किया और उसी दिन मेडम दि मंजियारली से कहा, तकली के लिए तैयार रहना।

इस तरह अड़ियार में समय लगाते हुए भी मुझे और जरूरी कामों के लिए वक्त बच रहता था। मदरास जाने के बाद मेरा पहला कर्तव्य था ४०० अंक का सूत कातनेवाली बहन के दर्शन करना। मैं उनका चरखा और खुद उन्हें कातते हुए देखना चाहता था। ३८० अंक का सूत कातने का चमत्कार मैंने अपनी आंखों देखा। इतने महीन तार के सिवा जो खाली आंखों से मुश्किल से दिखाई देता था, और कोई बात असाधारण न थी। चरखे का चक्कर बड़ा पर हलका था। तकुआ मामूली था। हां! रुई अलबत्ते बढ़िया थी—कातनेवाली बहन, नजर धीरज, और उंगलियों की कला का तो पूछना ही क्या ? बस, यही चमत्कार था। ये बहन रोज ४-५ घण्टा कातती हैं।

श्रीमती कजन्स ने एक स्त्रियों की सभा का प्रबन्ध किया था। उसी दिन मुझे उसमें अपने चरखे का प्रयोग बताना था। श्रीमती कमलम्मा तथा उनके पति श्रीयुत रामराव मेरे अनुरोध से उसमें शरीक हुए थे। यद्यपि रामरावजी खुद कातते नहीं हैं, तो भी खुद कताई के शास्त्री हैं। यह कहने की जरूरत ही नहीं कि दोनों खादी पहनते हैं। सभा पूरी हो जाने के बाद श्रीमती कमलम्मा को स्त्रियों ने चारों ओर से घेर लिया। कृतज्ञता-पूर्वक उनपर आशीर्वचनों की झड़ी लगने लगी। यदि हमारा राज्य-सूत्र हमारे हाथ में होता तो इस-बहन के काम की कदर हम दूसरी ही तरह करते। आज तो हम मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा कर के उनकी उमंग को अपने लिए उदाहरण मानें।

मदरास में मैं 'तकली' के विषय में अधिक खोज करना चाहता था। यज्ञोपवीत के सूत के बारे में मैंने गुजरात में तथा अन्यत्र बहुत-कुछ सुन रक्खा था। अब तो आम तौर पर जापानी सूत और कहीं कहीं तो जापानी जनेऊ भी काम में लिये जाते हैं। इसे मैं अपनी असहाय अवस्था की हद मानता था। मैं जानता था कि मदरास में हाथ-बने शुद्ध यज्ञोपवीत मिलते हैं। खोज करने पर मैं इसे प्रत्यक्ष देख पाया। दो जगह दस बारह ब्राह्मणों ने श्री. राजगोपालाचार्य तथा मुझे अपनी तकली की विधि बताई, तकलियां बिल्कुल सीधी-सादी थीं। बारह इंच लंबी पतली बांस की सीक, एक सिरे पर सुपारी अथवा गोल चपटा पत्थर लगा दूसरे पर एक अंकुआ। अद्भुत कला का यही औजार था। वहां बाजी शुरू हुई। एक जगह जीतनेवाले ने १४८ की घण्टे के हिसाब से ३५ अंक का सूत काता, दूसरी जगह ३५ मिनट में फी घण्टा २०१ गज के हिसाब से ५१ अंक का बढ़िया, एक सा और अच्छे बटवाला सूत काता। इन नतीजों से मुझे बहुत उत्साह मिला। इन्हीं ब्राह्मणों ने मुझसे कबूल किया कि थोड़े ही दिन पहले हम फिर से तकली पर जनेऊ बनाने लगे हैं। क्योंकि वे भी दूसरों के प्रवाह में बह चले थे। भावुक लोगों को विलायती जनेऊ पहनाते थे। पर अब उन्हें तकली का भविष्य उज्जवल दिखाई देता है। आइए, हम भी उनकी आशा में अपनी आशा का योग कर दें।

देवदास गांधी

पंजाब में 'हिन्दी-नवजीवन' मुफ्त

भिवानी के श्रीयुत मेलाराम वैश्य सूचित करते हैं कि पंजाब के सार्वजनिक पुस्तकालयों और वाचनालयों को 'हिन्दी-नवजीवन' उनकी तरफ से मुफ्त दिया जायगा।

नीचे लिखे पते पर वे अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिख कर भेजें— व्यवस्थापक 'हिन्दी-नवजीवन'

जरूरी सूचना

एजंट खास तौर पर ध्यान दें

अबतक हिन्दी-नवजीवन 'यंगइंडिया' से चार रोज बाद प्रकाशित हुआ करता था। इससे उसमें यं. इं. में लिखे गांधीजी के लेखादि हिन्दी-पाठकों को पिछड़ कर मिलते थे। इस असुविधा को दूर करने के लिए आगामी जनवरी से 'हिन्दी नवजीवन' भी यं. इं. के साथ ही अर्थात् हर गुरुवार को प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया है। इस तजवीज के मुताबिक नया अंक आगामी १ जनवरी, गुरुवार, को निकलेगा।

आगामी २६ दिसंबर को बेलगाव में महासभा की बैठक शुरू होगी। उसके उपलक्ष्य में हि० न० का आगामी अंक २८ दिसंबर के बजाय २६ दिसंबर को प्रकाशित होगा।

व्यवस्थापक

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, पौष बदी १०, संवत् १९८१

पागल देश-प्रेम

यदि यह समाचार सच है कि मुलशीपेटा के कुछ सत्याग्रहियों ने एक रेलगाड़ी रोक डाली है, जोकि ताता के कारखाने पर काम करने के लिए कुलियों को ले जा रही थी, और इंजिन के ड्रायवर को चोट पहुंचाई है और गरीब कुलियों को, जिनमें औरतें भी शामिल थीं, बेधड़क मारा है, तो उनके इस जुर्म की जितनी निन्दा की जाय थोड़ी ही है। कहते हैं कि कानून, व्यवस्था और शिष्टता का भंग करनेवाले इन अपराधियों ने ताता के विरुद्ध युद्धघोषणा की है और वे आशा करते हैं कि कुलियों पर हाथ चला कर वे ताता के कारखाने का बनना रोक सकेंगे। एक अच्छे समझे जानेवाले काम के लिए यह जोरो-जुल्म किया गया है। चाहे अच्छे काम के लिए हो या बुरे काम के लिए, सभी प्रकार की आतंकनीति बुरी है। सच्ची बात तो यह है कि उसके हामी को सभी काम अच्छे ही मालूम होते हैं। जनरल डायर ने (और उनके समान हृदय से विश्वास करने वाले सचमुच हजारों अंगरेज पुरुष और स्त्रियां थीं) जलियांवाला बाग-काण्ड एक ऐसे ही हेतु के लिए किया जिसे वह निःसन्देह अच्छा समझता था। वह सोचता था कि केवल एक उस काम को कर के उसने ब्रिटिश साम्राज्य और अंगरेजों की जानें बचाई हैं। 'यह सब केवल कल्पना का ही खेल था' यह कहने से तो उसकी समझ में अपने विश्वास की गहराई कम नहीं हो जाती। लार्ड लिटन और लार्ड रीडिंग हृदय से विश्वास करते हैं कि बंगाल का स्वराज्यदल हिंसा ही में डूबा हुआ है। परन्तु उनकी आतंक-नीति का समर्थन इससे नहीं होता कि उनका हेतु अच्छा था। जिस कार्य को मुलशीपेटा के ये पागल सत्याग्रही अच्छा और न्याययुक्त मानते हैं उसीको तातावाले और उनके समर्थक सचमुच ही बुरा मानते हैं। वे हृदय से विश्वास करते हैं कि उनकी योजना से चारों ओर के गांवों को लाभ पहुंचेगा, जो लोग हटाये गये हैं, उन्हें पूरा बदला दे दिया गया है और उन्होंने अपनी खुशी से अपनी जमीन छोड़ी है और उनकी योजना बंबई के लिए एक वरदान होगी और इसलिए जो उसे विफल कर देना चाहते हैं वे उन्नति के विरोधी हैं। उनको अपना यह मत रखने का उतना ही अधिकार है जितना मुझे यह विश्वास रखने का अधिकार है कि, इस योजना से पड़ोस के लोगों को कोई लाभ नहीं पहुंचेगा, यह वहां की प्राकृतिक शोभा का नाश कर देगी, गरीब गांववालों का कोई निश्चित मत ही नहीं था और इसलिए यह कहना कि उन्होंने अपनी खुशी से गांव छोड़ा है, अनुचित है, कोई भी बदला उस स्थान के लिए पूरा नहीं कहा जा सकता है जिसे वे बापदादों के जमाने से अपना वतन मानकर पवित्र समझते आये हैं और यह कहना कि यह बंबई प्रान्त के लिए एक वरदान होगा, विवादास्पद विषय है। परन्तु जहां मैंने अपने ही सही होने का दावा किया कि मैंने ईश्वर का पद ले लेने की धृष्टता कर ली। परंतु हमारे पास कोई ऐसा अचूक और त्रिकालाबाधित माप नहीं है जिस से हम किसी काम को जांच सकें कि वह सही है कि नहीं, इस कारण हर हालत में आतंकनीति को बुरा ही कहना होगा। दूसरे शब्दों में, शुद्ध हेतु के कारण कोई अशुद्ध बुरा या हिंसात्मक कार्य उचित नहीं कहा जा सकता। इसलिए मैं अपराधियों को अपनी खुशी से आत्म-समर्पण देने पर भी उन की तारीफ नहीं कर सकता। इनसे दंड का निवारण नहीं हो सकता। यह सहज में ही बहादुरी की शेखी भी हो सकती है। उस दिन खिड़की में एक महिला का हत्याकारी, आत्मसमर्पण करके अपनेको नहीं बचा सका। उन निर्दोष स्त्रियों पर, जो ईमानदारी से अपनी रोजी पैदा करती थीं, चोट करना अक्षम्य पाप है। मुलशी के देहातियों के बन बैठे इन दोस्तों को इसका पूरा अधिकार था कि वे यदि चाहते तो मजदूरों के पास जाते और उन्हें समझा-बुझा कर ताता का काम करने से हटा लेते। परन्तु अपने ही हाथ में कानून ले लेने का उन्हें कोई अधिकार न था। उन्होंने आतंक-नीति का सहारा लेकर एक अच्छे काम को हानि पहुंचाई है और जो कुछ जनता की सहानुभूति उनके साथ थी, उससे हाथ धो लिया है। सुधारकों की ओर से तो आतंकनीति का उपयोग वैसा ही अनुचित है जैसा कि सरकार की ओर से, बल्कि कहीं कहीं तो उससे भी बढ़कर; क्योंकि इसके साथ तो झूठी सहानुभूति भी पैदा हो जाती है। मैंने एक महिला को अराजकों के आत्म-बलिदान की चिनगारियां उड़ा कर भाषण देते और श्रोताओं के हृदय को उभाड़ते हुए देखा है। थोड़ा विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि किसी अपराध को, स्वार्थ-त्याग के कारण, जायज नहीं मान सकते। किसी अनीति का या बुरे काम का समर्थन अपना बलिदान करने से भी नहीं हो सकता। यदि आग से खेलने के लिए लड़का खाना पीना छोड़ दे तो उसे उस समय आग से खेलने देने वाला पिता दुर्बल-हृदय कहा जायगा। कलकत्ते के पास एक निर्दोष मोटर-ड्रायवर को करीब करीब मार डालनेवाले युवक केवल इस लिए कि वे देशहित में धन-व्यय करने के लिए डाका डाल रहे थे और इस प्रयत्न में वे अपनी जान भी खतरे में डाल रहे थे, सहानुभूति के अधिकारी नहीं हैं। इस तरह भूले-भटके युवकों के प्रति सहानुभूति दिखलाने के लिए जो लोग प्रेरित होते हैं वे देश को हानि पहुंचा रहे हैं और इन युवकों का जरा भी हित-साधन नहीं करते हैं।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

कोहाट की दुर्घटना

भारत-सरकार ने कोहाट की दुर्घटना पर परदा डाल दिया है। वायसराय ने मालवीयजी को उत्तर देते समय ही, देश को ऐसे किसी प्रस्ताव को सुनने के लिए तैयार कर रक्खा था जैसा कि आज देश के सामने उपस्थित हुआ है। यह निश्चय सरकार की बेरोक प्रभुता और लोक-मत के प्रति लापरवाही का नमूना है। साथ ही उससे हमारी राष्ट्र की निर्बलता भी प्रकट होती है। मेरी दृष्टि में कोहाट की यह दुर्घटना हिन्दू-मुसलिम-अनैक्य का फल उतना नहीं है, जितना कि वहां के स्थानीय शासकों की नालायकी और निकम्मेपन का है। यदि उन्होंने धन-जन की रक्षा करने के अपने प्राथमिक कर्तव्य का पालन किया होता तो यह जो दिन-दहाड़े मनमानी खून-खराबी शुरू हुई और होती भी रही, सो रोकी जा सकती थी। रोम के जलते समय जिस तरह रोम का सम्राट् नीरो उसे देख कर नाच-गान में मशगूल रहा, वैसे ही अधिकारीगण भी बामिजाज उसे देखते रहे। शासक लोग अपने निरुपाय होने का उज्र नहीं पेश कर सकते। उनके पास यथेष्ट साधन मौजूद थे। उन्हें अपनी ही सजा के योग्य गफलत और घातकता की वजह से कुछ उपाय न सूझा हो सो सही। परन्तु अपनी निरुपायता पर तो उन्हें कभी बेचैनी न हुई थी।

और अब तो भारत सरकार भी उनके कामों की लीपा पोती कर के और उनकी लापरवाही बल्कि जुर्म को धीरज और साहस बताकर उनके पाप की हिस्सेदार हो गई है। आशा तो यह की जा सकती थी कि इसकी पूरी खुले आम और स्वतन्त्र जांच होगी। किन्तु उसकी जगह जांच तो केवल सरकारी महकमे के द्वारा हुई और उसमें भी सर्व-साधारण से कुछ नहीं पूछाताछा गया। इसके फैसले पर सर्व-साधारण को कुछ भी ऐतबार नहीं हो सकता। रायबहादुर सरदार माखनसिंह से लेकर प्रायः तमाम कोहाटियों से मैं और मेरे मुसलमान साथी मिले। उन्होंने यह तो स्वीकार कर लिया की लाला जीवनदास ने एक पर्चा जिसमें कि बहुत ही अपमानजनक कविता थी, प्रकाशित किया था, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि हिन्दुओं ने उसके बदले भरपूर प्रायश्चित्त कर लिया था और हिन्दुओं ने आत्मरक्षा में तभी गोलियां चलाई, जब मुसलमानों ने खून-खराबी शुरू कर दी थी। कोहाट के मुसलमानों की ओर से कहा गया कि उस पर्चे के लिए यथेष्ट प्रायश्चित्त नहीं किया गया और मुसलमानों ने तभी मार-काट करना और गोलियां चलाना शुरू किया जब हिन्दू गोली चला चुके थे और मुसलमानों की जानें ले चुके थे। दुर्भाग्य से कोहाट के मुसलमान रावलपिंडी में नहीं आये थे। इसलिए हमें सच्ची बात का पता न लग सका। इस हालत में भारत-सरकार ने जिस प्रकार दोनों जातियों के सिर दोष का बटवारा कर दिया है, उसे गलत कहना कठिन है। तोभी उनका निर्णय पक्षपातहीन या मानने योग्य नहीं कहा जा सकता। कोहाट के हिन्दुओं से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे इस निर्णय को मान लेंगे और कुबूल कर लेंगे। और न इसलिए कि यह मुसल्मानों के पक्ष में दिखाई देता है, इससे कोहाट के मुसलमानों को ही तसल्ली होगी। क्योंकि मुसल्मानों के लिए यह बेजा होगा यदि केवल इस कारण कि इस बार सरकार उनकी ओर ढलती-सी दीख पड़ती है, वे उसके निर्णय पर तालियां बजावें। कोई भी निर्णय, सब को सन्तोष तभी दे सकता है जब वह उन हिन्दुओं और मुसल्मानों का किया हुआ हो, जिनकी कि निष्पक्षता सिद्ध हो चुकी है। इसलिए भारत-सरकार का निश्चय दोनों जातियों के लिए एक तरह की चुनौती ही है। यह निश्चय हिन्दुओं को अपमानजनक शर्तों को स्वीकार करके कोहाट जाने का हुक्म देता है। और मुसल्मानों को उनके हिन्दू-भाइयों का अपमान करने का प्रलोभन देता है। मैं आशा करता हूं कि हिन्दूलोग कोहाट के बाहर मानसहित गरीबी के जीवन को, कोहाट में अपमान के साथ किन्तु सुखी जीवन से अधिक पसंद करेंगे। मुझे आशा है कि मुसलमान इतने पुरुषार्थ का परिचय देंगे कि वे सरकार की दी हुई इस लालच को नामंजूर करेंगे और अपने उन हिन्दू भाइयों का, जो वहां अत्यन्त ही अल्पसंख्यक हैं, अपमान करने में हाथ बँटाने से इनकार करेंगे। शुरू में चाहे जिस जाति ने भूल की हो और उत्तेजना दिलाई हो परन्तु यह बात तो ठीक ही है कि कोहाट से हिन्दुओं को बाहर भागने पर मजबूर होना पड़ा। इसलिए अब यह मुसल्मानों का कर्तव्य है कि वे रावलपिन्डी आवें और उनके जानोमाल की पूरी हिफाजत का विश्वास दिलाते हुए, मित्रभाव से उन्हें कोहाट लौटा लावें। और कोहाट के बाहर के हिन्दुओं को मुसलमानों के लिए हिन्दुओं के पास इस काम के लिए जाना आसान कर देना चाहिए। कोहाट के बाहर के मुसलमानों को वहांके मुसल्मानो पर इस बात के लिए जोर देना चाहिए कि वे अल्पसंख्यक हिन्दुओं के प्रति अपने प्राथमिक कर्तव्य को पूरा करे। इस सवाल के उचित और यथायोग्य फैसले पर हिन्दू-मुसलिम-एकता के प्रयत्नों की सफलता बहुत-कुछ निर्भर है।

हम सभी सहयोगी और असहयोगी, जितना शीघ्र सरकार की रक्षा का भरोसा रखना छोड़ देवें, उतना ही हम लोगों के हक में यह अच्छा होगा और, उतनी ही शीघ्रता से और चिरस्थायी रूप से हम इस मसले को हल कर सकेंगे। उस दृष्टि से देखने पर, कोहाट के अधिकारियों की उदासीनता अच्छा ही फल लावेगी। यदि हिन्दुओं ने अधिकारियों से सहायता न मांगी होती, यदि वे अपने घर पर ही बिना कोई बचाव किये अड़े रहते, या यदि अपनी, अपने धन की और अपने आश्रितों की रक्षा में वे जलभुन कर खाक हो जाते तो आज इतिहास दूसरे ही ढंग से और अधिक आदरपूर्ण शब्दों में लिखा जाता। यदि सरकार ऐसा प्रस्ताव करे कि कोई उससे, जातीय झगड़ों में सहायता की आशा न करे तो मैं ऐसे प्रस्ताव का स्वागत करूंगा। यदि एक जाति दूसरी जाति की ज्यादती से अपनी रक्षा करना सीख ले, तो हम लोग स्वराज्य के सही रास्ते पर हैं, यह कहा जायगा। आत्मरक्षा और आत्म-सन्मान की, जिसे हम स्वराज्य ही कह सकते हैं, यह अच्छी तालीम होगी। आत्मरक्षण के दो ढंग हैं। सब से अच्छा और पुरअसर काम तो है अपने स्थान पर, बिना बचाव किये जोखिम को उठा लेना। दूसरा अच्छा किन्तु उतना ही गौरवपूर्ण तरीका है, आत्म-रक्षार्थ बहादुरी से लड़ना और सब से अधिक खतरनाक जगह में भी अपनेको डाल देना। अगर इस तरह खुल कर कुछ लड़ाइयां हो चुकेंगी, तभी वे समझ सकेंगे कि एक दूसरे का सिर फोड़ना व्यर्थ है। इससे उन्हें यह शिक्षा मिलेगी कि इस प्रकार लड़ने से वे ईश्वर की सेवा नहीं करते हैं बल्कि शैतान की सेवा करते हैं।

मैंने रावलपिन्डी में ठहरे हुए कोहाट के देश-त्यागियों को जो वचन दिया था, उसीको फिर दोहरा कर यह लेख समाप्त करता हूं। कोहाट के मुसल्मानों के हार्दिक आमन्त्रण के बिना वे यदि कोहाट न लौटेंगे तो मैं पहले से ही हाथ में लिए अपने और काम समाप्त करके तुरंत ही मौ० शौकतअली के साथ रावलपिन्डी जाऊंगा और दोनों जातियों का झगड़ा मिटाने का प्रयत्न करूंगा। यदि मुझे इसमें सफलता न मिली तो मैं उनके लिए उचित काम का प्रबन्ध करने में सहायता दूंगा।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

पंजाब की चिट्ठी

२

मुसलमानों का फर्ज

खिलाफत परिषद् का काम तो दस बजे शुरू होने वाला था लेकिन शुरू हुआ तीन बजे। और सभापति ने व्याख्यान पढना ६ बजे शुरू किया। इसलिए गांधीजी को जो अमृतसर ४ बजे छोडना था वह न हो सका। आखिर सभापति का व्याख्यान खतम होने के पहले ही गांधीजी को बोलने का मौका देना जरूरी मालूम हुआ, अन्यथा वे आखिरी गाडी में भी नहीं जा सकते थे। सभापति जफर-अली खां साहब ने कितनी ही बातें विशेष जोर देकर गांधीजी को कह सुनाई। सनातन धर्म परिषद के प्रस्ताव—मालवीयजी के समक्ष पास किये गये प्रस्ताव—दूसरे एक हिन्दू नेता के ऐक्य विरुद्ध लेख, इनका विशेष रूप से उल्लेख किया। गांधीजी ने परिषद में बोलते हुए कहा:—

'तीन साल पहले जितने मनुष्यों पर हम असर डाल सकते थे उतनों को हम आज संभाल नहीं सकते। आज तो सिर्फ कार्यकर्त्ताओं के साथ सलाह-मशवरा करना ही काम बाकी है। आज जो झगडे हो रहे हैं उनका कारण साधारण जनता नहीं लेकिन नेता-लोग ही हैं, जो उन्हें सहन कर लेते हैं; साधारण जनता नहीं, पर मैं हूं, हकीमजी हैं, किचलू हैं, सत्यपाल हैं। इसलिए आप लोग सदर साहब से यह कहें कि लाहौर में कल जो नेताओं का जलसा होने वाला है, उसमें सब मुसलमान नेता इस परिषद् को कल दोपहर तक मुल्तवी रख कर जांय, ऐसा वे प्रबन्ध करें।

(सभापति ने परिषद् का अभिप्राय पूछा और सबने "आमीन" कहा)

'सदर साहब ने जो कुछ भी कहा है मैंने बडे गौर से सुना है और मुझे अफसोस भी हुआ है। मेरे दिल में यह खयाल हुआ कि सदर साहब ये बम क्यों फेंक रहे हैं। अगर हम ऐक्य (इत्तफाक) चाहते हैं तो इस प्रकार एक दूसरे के खिलाफ कबतक शिकायत करते रहेंगे? मैं आप लोगों से क्या कहूं? परन्तु, आप लोगों ने मुझे बडा बनाया है, हालांकि मैं तो अल्पात्मा हूं, मैं खाकसार हूं—इसलिए मुझे तो आपकी और हिन्दुओं की गुलामी ही करनी होगी और इसीसे कुछ कहने का दिल होता है। जब जफरअली खां साहब ने मालवीयजी की शिकायत की तो मुझे मालूम हुआ मुझपर पत्थर गिरा। मुझे यह खयाल नहीं होता कि मालवीयजी मुसलमानों के दुश्मन हैं। यदि हों तो यह जाहिर करने में अवश्य मुझे कुछ भी संकोच न होता। यदि यह मान भी लिया जाय कि वे दुश्मन हैं तो भी उनकी शिकायत करने से कुछ हासिल न होगा। यदि आप लोग यह मानते हैं कि हिन्दुओं को और मुसलमानों को एक होना चाहिए तो आपको मालवीयजी से भी काम लेना होगा। मुझे तो आप अपना दोस्त मानते हैं इसलिए काम लेना बहुत सहल है—यद्यपि मैं आपका दोस्त हूं कि दुश्मन यह तो सिर्फ खुदा ही कह सकता है—लेकिन मालवीयजी को आप अपना दोस्त नहीं मानते हैं और बिना उनके हिन्दुओं के साथ मेल हो नहीं सकता, इसलिए उन्हें कोसने से कुछ भी काम न होगा। हिन्दू तो आज कहते हैं कि मैं मुसलमानों का हो गया हूं—कुछ गुजराती अखबार तो ढिंढोरा पीट कर यह कहते हैं कि मैं मुसलमान बन गया हूं। लेकिन मुझे यह सब सुनाने से क्या फायदा? हिन्दुओं से भी मैं कहता हूं कि हकीमजी बुरे हों तो उनसे मुहब्बत रखने से ही काम चलेगा। अविश्वास रखने से काम न होगा। आप लोगों से भी कहता हूं कि ऐ खुदापरस्तो! अजान की आवाज सुनते ही सब काम छोड कर बंदगी करनेवालो! अमुक व्यक्ति विश्वास का पात्र नहीं, यह कह कर उसे छोड देना आपको शोभा नहीं देता। आप पैगम्बर साहब का अनुसरण करें। उनपर आक्रमण करने वाले के हाथ में तलवार छीन कर भी उन्होंने उसपर आक्रमण न किया और उसे माफी बख्शी और इसी प्रकार उन्होंने इस्लाम को फैलाया। सदर साहब के सामने सर झुका कर मैं यही बात कहूंगा कि लालाजी या मालवीयजी किसीका भी वे अविश्वास न करें। लालाजी का दिल साफ है लेकिन वे डरते हैं। फिरभी वे यह नहीं चाहते कि पंजाब में मुसलमान जो अधिक हैं वे कम हो जांय। यदि वही चाहते हों तो मैं उनका विरोध करूंगा। लेकिन यदि ऐसे कोई हों तो भी आपका तो यही फर्ज है कि आप खुदा से दुआ मांगें कि उनका दिल साफ हो जाय। हिन्दू जो डरते हैं उन्हें मैं डर छोड देने की ही सलाह दूंगा। लेकिन मुसलमानों का भी यह फर्ज है कि वे हिन्दुओं को निर्भय कर दें। मैंने तो बडी लंबी-चौडी बात कह डाली। सब बात की एक बात यही कहता हूं कि यदि इस्लाम की रक्षा करना चाहते हों तो हिन्दुओं से फैसला कर लो और एक दिल हो जाओ। हिन्दू यदि कहें कि वे मुसलमानों को मिटा देंगे तो यह वाहियात बात है। हिन्दुओं को मुसलमानों के दिलों पर कब्जा करना ही होगा। आज हमें इतना तो जरूर समझ लेना चाहिए कि तीसरी ताकत—अंगरेज सरकार—हमारे धर्म की रक्षा न करेगी। उससे रक्षा की आशा रखने से तो हिन्दू-धर्म और इस्लाम दोनों पर समान आफत आ खडी होगी। अब मेरा काम तो यही है कि कुछ हिन्दू और मुसलमानों को साथ लेकर इस आफत से दोनों धर्मों की रक्षा करूं और उनपर आफत लाने वाले से लडूं, ताकि ईश्वर के दरबार में यह कहने की फुर्सत रहे कि जो कुछ तेरा हुक्म था उसपर हमने अमल किया है।'

प्रान्तिक परिषद् में

लाहौर में जो खानगी जलसे हुए उनका तो उल्लेख-मात्र ऊपर किया गया है। राष्ट्रीय विद्यापीठ के विद्यार्थियों को पदवी-दान करने का समारंभ बडा भव्य था और वहां का भाषण भी नोट करने लायक था। लेकिन उसे दूसरे अंक पर छोड देता हूं। अब हम रावलपिंडी भी पहुंच गये हैं। इसलिए प्रांतिक परिषद् का उल्लेख कर के और वहां की हलचल का बयान दे कर इस पत्र को पूरा करता हूं। पं० मोतीलालजी न आ सके, इसलिए गांधीजी को सभापति होना पडा। परिषद ब्रेडला हाल में सुबह आठ बजे होनेवाली थी। गांधीजी बराबर आठ बजे आ पहुंचे। परिषद् में लोगों की हाजरी नहीं के बराबर ही थी। सख्त जाडे में कौन आता है? स्वयं स्वागत मण्डल के सभापति भी हाजिर न थे। लेकिन गांधीजी इस देरी को कैसे सहन कर सकते थे? उन्होंने लालाजी के साथ मशवरा करके अपना—सभापति का व्याख्यान शुरू कर दिया। व्याख्यान खासा लम्बा था। आधा हुआ होगा कि स्वागत-मण्डल के सभापति लाला दुनीचन्द साहब पधारे। लेकिन गांधीजी ने तो अपना भावपूर्ण व्याख्यान जारी ही रक्खा। उसका सार मात्र ही यहां दे सकता हूं। "हम लोग यहां परिषद के लिए नहीं आये हैं। लेकिन अगुओं के साथ सलाह-मशवरा करने आये हैं। इस सलाह—मशवरे में आप हम लोगों की क्या मदद करेंगे? मैंने हिन्दू, मुसलमान, से तो कह दिया है और सिक्खों से कहना चाहता हूं कि यदि एक भी कौम दूसरी से यह कह दे कि "हम भूखों मर जायंगे तो कुछ परवा नहीं, तुम्हें जो कुछ चाहिए ले लो" तो इस झगडे का फौरन ही अंत हो जायगा। क्या कोई यह पूछेंगे कि सिक्ख किसी

छोटी कौम क्यों कर ऐसा कर सकती है ? ऐसा करने पर वह तबाह न हो जायगी ? तो मैं कहता हूं कि सिक्ख तो जरूर ही ऐसा कर सकेंगे। उनके बराबर कुरबानी किस कौम ने की है ? उनके बराबर कुरबानी करने के लिए न मुसलमान तैयार हैं न हिन्दू। उन्होंने 'सत श्री अकाल' नाम लेते लेते सीने पर गोलियां खाई है। अल्लाह का नाम लेकर, राम का नाम लेकर मुसलमान या हिन्दू ऐसा कर सकेंगे या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है। इसलिए सिक्खों को इतना त्याग भाव दिखाना कोई मुश्किल बात नहीं है। मुसलमानों के लिए भी मुश्किल नहीं है। मुसलमानों ने अपनी अक्ल खो नहीं दी है। उनके पीछे उनका १३०० वर्ष का इतिहास है, महम्मद पैगम्बर और दूसरे फकीरों के त्याग की कथाओं की विरासत उन्हें मिली है।

जब कि मैं हिन्दुओं को त्याग का कर्तव्य नहीं समझा सकता तो इन सबको मैं किस मुंह से कहूं कि तुम त्याग करो ? मैं हिन्दू हूं और चाहता हूं कि गीता का एक श्लोक पढते पढते मर जाऊं और मोक्ष प्राप्त करूं। मैं स्वर्ग नहीं चाहता, न विमान चाहता हूँ। पृथ्वी पर चलने से भी अभिमान होता है। विमान पर चढने से क्या मालूम कितना अभिमान होगा ? मैं तुलसी और रामचन्द्र का भक्त हूं और शुद्ध सनातनी होने का दावा करता हूं। इसलिए मैं हिन्दुओं से कहता हूं कि अगर आप लोग ही मेरी न सुनेंगे तो मैं मुसलमानों को क्या सुनाऊंगा ? मैं आप लोगों से इतना ही कहता हूं कि दगे से मत डरो। अगर सिक्ख और मुसलमान दगा देंगे तो दगा देनेवालों का ही नाश होगा। जो ठगे गये हैं उनका कभी नाश नहीं हो सकता। हिन्दू हो कर मैं हिन्दुओं से कहता हूं कि आप इसके निर्णय का भार सिक्ख और मुसलमानों को ही सौंप दो। पांडवों ने क्या किया था ? उन्होंने हस्तिनापुरी न मांगी। इन्द्रप्रस्थ न मांगा, सिर्फ पांच गांव ही मांगे थे। दुर्योधन ने कहा ये भी न मिलेंगे, इनके लिए भी लडना होगा, इसलिए वे लडे। म्युनिसिपालिटी, धारासभा, और लोकल बोर्ड में जगह पाना, और नौकरी इत्यादि आप लोगों के लडने की बातें नहीं हैं। लडने की अगर बात है तो आपका धर्म है, आपकी बहनों की रक्षा करना है। आपकी क्षत्रियता है 'अपलायनम्'—क्षत्रियत्व के माने मारने की शक्ति नहीं लेकिन पीठ न दिखाने की शक्ति, है। यदि मुसलमान कहें कि तुम लोग गौ की पूजा न कर सकोगे, हम उस पूजा में रुकावट डालेंगे, यदि वे कहें कि काशीविश्वनाथ एक पत्थर का टुकडा है और तुम बुतपरस्तों से हमें नफरत होती हैं तो आप उनसे दिल खोल कर लडें। उनसे आप कहें कि हमारे लिए तो गौ पूज्य है, पत्थर की मूर्ति में हमें ईश्वर के दर्शन होते हैं, हमारी कौम ने हजारों वर्षों से इसीके सामने अपने पापों का प्रायश्चित्त किया है। हमें उसके प्रति उतना ही आदर है जितना कि आपको काबाशरीफ के प्रति है। ये बातें ऐसी है कि उन्हें छोड नहीं सकते। मैं तो पंजाब की धारासभा में या म्युनिसिपल-कौन्सिलों में ५१ या ५६ प्रति सैकडा जगह लेने की जिद छोड देने की ही बात कहता हूं। क्योंकि इसे छोड देना ही सारी दुनिया को खरीद लेने का मार्ग है। दुनयवी हकों को छोड कर और दुनिया के सामने सिर झुका कर ही हम उसे गुलाम बना सकते हैं। आप लोग मुझे गुजरात का बनिया कह कर मेरा उपहास करते है, लेकिन मुझे आपकी व्यवहार बुद्धि पर हंसी आती है। मुझे आपके शमशेर-बहादुरी पर दया आती है। क्योंकि जब सारा हिन्दुस्तान एक तीसरी ताकत के हाथ में फंसा हुआ है तब उन्हें ऐसी बातों के लिए झगडा करने की सूझ रही है। इन जगहों को प्राप्त करने में ही क्या हिन्दू-धर्म की व्यवहारबुद्धि खतम हो जाती है ? इन्हें प्राप्त करने में ही क्या हिन्दू-धर्म समाप्त हो जाता है। यदि मैं पंजाबी बन गया होता तो पंजाब को हिला देता और कहता कि मुसलमान और सिक्खों के हाथ में ही कलम सौंप दो। आप लोगों को अफगान का डर है। जिस दिन अफगान आ कर खडा रहेगा उस दिन मेरी आपकी समशेर क्या काम देगी ?" मंदिरों और स्त्रियों की रक्षा के लिए अपलायनम्-मर कर रक्षा करने का और यह न बन सके तो मारते मारते मरने का—अनेक बार कहा गया धर्म गांधीजी ने फिर पुकार पुकार कर सुनाया और यह भी कहा "मेरे दिल में जो आग सुलग रही है उसकी आप लोगों को क्या खबर ? इस आग को कौन बुझा सकता है ? जिन्दा होते हुए भी मरने की कोशिश कर रहा हूं, सो किस लिए ? आपलोग क्या अब भी यह न समझेंगे ? अब भी क्या आप लोग एक होकर मेरी इस आग को न बुझाओगे ?'

हिन्दुओं के अत्याचार के एक दो ताजे सुने हुए किस्सों का उल्लेख कर उन्होंने कहा कि गन्दे अखबारों में ये प्रकाशित हुए थे। फिर भी मैंने खोज की। खोज करने पर मैंने देखा कि उसमें बडी ही अत्युक्ति हुई है। लेकिन यह भी मालूम हुआ कि वे बिलकुल बेबुनियाद भी न थे। इसलिए मैं आपसे कहता हूं कि हिन्दू भी बदला लेने का मौका तो ढूंढते ही रहते हैं—इसलिए नहीं कि वे हिन्दू हैं लेकिन इसलिए कि वे इन्सान हैं। यह दृष्टांत मैंने हिन्दू-मुसलमान झगडे के नहीं लेकिन इन्सान के दिल में जो शैतान है उसीके दिये हैं। इसका उद्देश्य यही दिखाना है कि पाप के विरुद्ध पाप करके आप उसका नाश नहीं कर सकते। वेद या महाभारत यह नहीं सिखाते कि यदि मंदिर तोडा गया तो मस्जिद भी तोडी जाय, या हमारी बहन पर अत्याचार हुआ तो दूसरे कि बहन पर भी अत्याचार करके उसका बदला लिया जाय। मेरा धर्म तो कहता है कि यदि तुम उसकी रक्षा करते करते प्राण दे दोगे तो जीवित ही रहोगे। 'चरखा कातना तो औरतों का काम है', इसके जवाब में गांधीजी ने पूछा 'लंकाशायर में चरखा कौन चलाते है ?' और फिर सबसे कात कर मताधिकार प्राप्त करने की बात स्वीकार करने का आग्रह किया।

रावलपिंडी

ता० ८ को सुबह रावलपिंडी पहुंचे। कोहाट के मुसलमान—खिलाफत कमिटी के मजलूमों—को मौलाना शौकतअली साहब ने बुलवाया था। लेकिन वे न आये। वे सरकार के साथ सलाह कर रहे हैं। सरकार ने भी गांधीजी और शौकतअली आ कर शान्ति स्थापित करने का मान प्राप्त न कर जायं, इसकी पूरी पूरी तजवीज कर रक्खी थी। कोहाट के अगुआओं को पहले से ही बुला रक्खा था। शायद वे गांधीजी के समझाये समझ जाय इस डर से सरकार ने भी सलाह-मशवरा करने के लिए आठवीं और नव तारीख ही मुकर्रर की थी। हिन्दुओं के नेता तो आ गये। लेकिन मुसलमानों की राह आज सुबह तक देखी पर वे न आये। शौकतअली के दर्द की बात क्या कहूं ? वे हैरान हो रहे हैं।

दरम्यान गांधीजी ने बहुतसी बातें और सलाह-मशवरे कर लिये हैं। और अभी यहा से रवाना होने का कार्यक्रम था सो मौकूफ कर दिया और अधिक सलाह-मशवरा करने के लिए रह गये है।

कल शाम को वे कोहाट से भाग कर यहां आश्रय पाये हुए भाईबहनों से मिले। रावलपिंडी के भाइयों ने यहां बडी बडी धर्मशालाओं में उनके लिए बडी अच्छी व्यवस्था की है। पांच पांचसौ आदमी एक ही चौके में बैठ कर भोजन करते है, और ठंड में जो कुछ भी कपडे मिलते है बांट लेते हैं। इन करुणाजनक

दृश्यों को देखकर गांधीजी ने उस रात को रावलपिंडी की सभा में व्याख्यान दिया। आरंभ में उनको मानपत्र दिया गया था। उसके विषय में उन्होंने कहा कि जबतक सारे हिन्दुस्तान की तरफ से मुझे और शौकतअली को बोलने की ताकत थी तबतक एक को ही मानपत्र देना बस था। लेकिन आज खुद मुझे मुसलमानों की तरफ से बोलने की ताकत न रही, शौकतअली को हिन्दुओं की तरफ से बोलने की ताकत न रही, यह दुर्भाग्य है। लेकिन जबतक देश का ऐसा ही दुर्भाग्य रहे दोनों को मानपत्र देना उचित है।

कोहाट की दुर्घटना के विषय में बोलते हुए उन्होंने कहा—

'यह घटना क्यों होने पायी और इसमें सबसे ज्यादा कुसूर किसका था यह दिखाने की आज मेरी इच्छा नहीं है। इसका एक सबब यह भी है कि मुझे उसकी सब पूरी पूरी खबर नहीं मिली है। लेकिन यह बात तो निश्चित ही है कि यहां दो तीन हजार हिन्दू रावलपिंडी का आश्रय लिये पड़े हैं। उन्हें कोहाट छोड़ना पड़ा, इसकी जिम्मेवारी तो हिन्दू-मुसलमान दोनों कौमो पर है। जबतक वे यहां पड़े रहेंगे दोनों कौमों की बदनामी होगी। यह बदनामी दूर हो, इसीलिए तो शौकतअली, किचलू, जफर अलीखां, और मैं यहां आये हुए हैं। अबतक हमे सफलता नहीं मिली है। क्योंकि तीसरी ताकत अपना काम कर रही है। इस ताकत का काम यदि झगड़ा पैदा करना नही है तो उन्हे बढाना जरूर है। और मेरे जानने में तो यह बात नहीं आयी है कि उसने किसी भी झगडे का अंत किया हो। सच बात तो यह है कि करने का काम जो सरकार ने किया होता तो यह दुर्घटना कभी न होने पाती और हिन्दू भागते भी नहीं। वहां के हाकिम या तो नामर्द बने बैठे रहे या उन्होंने अपना फर्ज अदा न किया। सरहद पर लूटनेवाले सबको लूटते हैं। इसलिए जोर देकर यह कहना कि यह सब हिन्दुओं को लूटने के लिए किया गया था मुश्किल है। लूटने का और माल असबाब जलाने का काम करने वाले सरहद पर के लोग न थे किन्तु सरहद पर के हाकिम लोग ही थे, यह मैं जरूर ही कह सकता हूं। जिस तरह कोहाट में यह सल्तनत अपने फर्ज को भूल गई उसी तरह मैं चाहता हूं कि वह अपने फर्ज को हमेशा ही भूलती रहे। यह सल्तनत बिल्कुल ही बैठ जाय और फिर हिन्दू-मुसलमान दिल खोल कर लड़ें और एक दूसरे को लूटें तो मुझे जरा भी दुख न होगा। जबतक दोनों कौमों के दिलों में मैल है, कमजोरी है और डरपोक-पन भरा है तबतक एक दूसरे से लड़ कर वे खून की नदियां बहावेंगे। आखिर दोनों कौमों के अगुआ यह समझेंगे कि वे अधर्म कर रहे हैं और फिर ठंढे हो कर बैठेंगे। लेकिन आज तो हम तीसरी ही ताकत के सहारे लड़ रहे हैं। यदि उसका सहारा ले कर लड़ेंगे तो उसीका सहारा लेकर एक हो सकेंगे। फिर तो यही समझ लो कि उसकी गुलामी सिर लिखी ही रहेगी। यदि आप हिन्दू-मुस्लिम-एकता को समझते हैं तो मैं कहूंगा कि इस तीसरी ताकत को छोड़ दो। आप लोगों से यही कहता हूं कि सरकार यदि गुस्सा हो कर आप लोगों के सामने आवे, मुसलमानों की ही मदद करे तो आप राम का नाम लेकर मर जायं। आज तो सल्तनत के हुक्काम आपको 'शौकतअली के पास जाओ,' 'गांधी के पास जाओ' यह कह कर ताना मारते हैं। मुझे अफसोस है हम कोई आज कुछ भी नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे पास तलवार नही है, मैंने उसे फेंक दिया है, शौकतअली ने उसे म्यान में रख लिया है। इसलिए हमें आपको यही सलाह देनी होगी कि स्वराज लेना हो तो अपने दिल को आजाद करो। इन्सान आप ही अपने को मिटा सकता है, उसे दूसरा इन्सान मिटा नहीं सकता। आप कहेंगे इस राय का नतीजा तो सिर्फ खुवारी ही होगी, इससे मदद क्या मिलेगी? तो मैं कहूंगा कि मैं आपको खुवार होने का तरीका ही बता रहा हूं, मैं तो कुरबान होने की बात कहता हूं।

सरहद पर रहनेवाले हिन्दुओं से मैं कहूंगा, ९५ प्रति सैकड़ा मुसलमानों की बस्ती में रह कर भी वे कभी सरकार की सलाह लेने न जायं। यदि वे जाय भी तो उसी हालत में जायं जब कि सरहद पर के मुसलमान उनसे विनय करें, उनकी इज्जत करें और हमेशा के लिए उनका रक्षण करने का यकीन दिलावें। आप लोग वहां अनेक पीढियों से बसे हुए हैं। उन लोगों को बिना मनाये वहां कैसे रह सकोगे? आपने वहां कमाई की है, दुकानें चलाई हैं। उनके साथ सलाह-मशवरा किये बिना सुख-शान्ति में कैसे रह सकोगे? सरकार किसी भी बड़ी कौम के लिए जमानत नही दे सकती। स्वराज हो, शौकतअली कमान्डर-इन-चीफ हो और मैं वायसराय होऊं और मुझसे कोई एक कौम की रक्षा करने को कहे तो मैं कहूंगा कि ९५ प्रति सैकड़ा बस्तीवाली कौम में मैं आपलोगों की रक्षा नही कर सकता। मुसलमान यदि पांच प्रति सैकड़ा हों तो मैं उनसे भी यही बात कहूंगा। सरहद पर इज्जत और मुहब्बत के साथ रहने का एक यही तरीका है।'

आगे चलकर हिन्दू और मुसलमानों के संबंध के बारे में कुछ विषयान्तर करके आखिर कोहाट-वासियों का धर्म फिर समझाने लगे 'आप लोगों को मैं इतना कहना चाहता हूं कि यदि आप लोग अपनी रक्षा करना चाहते हैं तो सरकार से कहें कि जबतक मुसलमानों के साथ फैसला नहीं किया है, जब तक मुसलमान हमें बुलाकर न ले जायगे तबतक हम यहांसे हिलेंगे तक नहीं। यदि कोहाटी मेरी राय पर चलने को तैयार हैं तो मैं इकरार करता हूं कि बेलगांव के बाद कोहाटियों में आकर दफन हो जाने के लिए मैं तैयार हूं, उनको लेकर सारे भारतवर्ष की सफर करने के लिए भी तैयार हूं लेकिन यदि वे सरकार के कहने से वापस चले जायगे तो हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए बड़े नुकसान की बात होगी। सरकार यदि सारी जायदाद वापस कर दे, तीन करोड़ का नुकसान भी अदा कर दे तो भी उसकी रक्षा का यकीन करके वहां जाने से हिन्दू-मुसलमान दोनों को हानि ही होगी। यदि आप मेरी इस राय को न मान कर चले ही गये तो महासभा में मेरा काम बड़ा मुश्किल होगा। ईश्वर आपको मुसलमानो के साथ होने की ताकत दे।'

मौलाना शौकतअली ने भी इस सलाह के एक एक शब्द का समर्थन किया था।

दैववशात् कोहाटियों को जिसदिन यह सलाह दी गई उसके दूसरे रोज ही कोहाट के संबंध में सरकारी निर्णय प्रकट हुआ है। इस निर्णय के विषय में गांधीजी स्वयं ही हमको कुछ सुनावेंगे। मैं तो इतना ही कहूंगा कि सरकार का आश्रय पा कर कोहाट न जाने की गांधीजी की सलाह अबतक सिर्फ न्याय्य और दुरुस्त थी लेकिन इस निर्णय के प्रकट होने पर तो कोहाटियों के लिए बस, यही एक सलाह हो सकती है। यह स्थिति केवल करुणाजनक है। इन कोहाट के निराश्रितों में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यदि शीघ्र ही कोहाट वापस न जाय तो संभव है कि उन्हें बड़ी हानि हो। लेकिन कोहाटी हिन्दुओं में इस कलंक को सिर पर लेकर कोहाट वापस जाने के लिए एक भी हिन्दू राजी नहीं है। ईश्वर से हम तो यही प्रार्थना करते हैं कि वह इस परीक्षा में कोहाटियों को पास करे।

(नवजीवन)

रावलपिंडी
१०-१२-२४

महादेव हरिभाई देसाई

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, [illegible]

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक [illegible]

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच } अहमदाबाद, पौष बदी ३०, संवत् १९८१ शुक्रवार, २६ दिसम्बर, १९२४ ई० { मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

३९ वीं राष्ट्रीय महासभा-बेलगांव

सभापति-गांधीजी का भाषण

आप लोगों ने जो इज्जत मुझे बख्शी है उसकी जिम्मेवारी को मैंने बहुत पसोपेश के बाद कुबूल किया है। यह असाधारण मान इस बार आपको श्रीमती सरोजिनी नायडू को देना चाहिए था, जिन्होंने कि केनिया और दक्षिण आफ्रिका में ऐसा अद्भुत (हैरत अंगेज) काम किया है। लेकिन ईश्वर को ऐसा मंजूर न था। मुल्क के भीतरी और बाहरी घटनाक्रम ने (मामलात की रविश ने) मेरे लिए इस बोझ को उठाना जरूरी कर दिया। मुझे मालूम है कि जिस ऊंचे पद (ओहदे) पर आपने मुझे बिठाया है उसकी जिम्मेवारियों को ठीक ठीक अदा करने की कोशिश में आप मेरी पूरी पूरी मदद करेंगे।

आरंभ में, मैं इस मौके पर श्री अम्मा, सर आशुतोष मुकर्जी, बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु, डाक्टर सुब्रह्मण्य ऐयर और श्री दलबहादुर गिरि (हिन्दुस्तान में) तथा पारसी रुस्तमजी और श्री पी. के. नायडू (दक्षिण आफ्रिका में) की मौत पर अपने दिली गम को और उनके तईं अपने आदर-भाव (इज्जत) को जाहिर करता हूं। और इससे जो सदमा (दुःख) उनके रिश्तेदारों पर गुजरा है उसके लिए आपकी तरफ से मैं उन्हें अपनी हमदर्दी का यकीन दिलाता हूं।

सिंहावलोकन

सितम्बर १९२० ई० से महासभा (कांग्रेस) ने स्वराज्य मुल्क की भीतरी ताकत को बढ़ाना अपना उद्देश्य (मकसद) बनाया। फलतः (नतीजे) दरख्वास्तों और अर्जियों के जरिए अपने दुख-दर्द दूर करने का तरीका वह अब छोड़ चुकी है। इसकी वजह यह थी कि उसका यह विश्वास (एतकाद) बिल्कुल उठ गया था कि वर्तमान शासन-प्रणाली (मौजूदा निजामे-हुकूमत) किसी भी दरजे तक फायदेमन्द है। मुसलमानों के साथ जो वचन-भंग (वादाखिलाफी) सरकार ने किया उसने लोगों के विश्वास (एतकाद) को पहला सख्त धक्का पहुंचाया। रौलट एक्ट और ओड्वायरशाही ने जो कि अपना रंग जलियांवाला बाग के कत्ले आम में लाई, इस प्रणाली (निजाम) की असलियत का भेद लोगों पर प्रकट (रोशन) कर दिया। इसके साथ ही लोगों ने इस बात को जाना कि इस मौजूदा हुकूमत का दारोमदार जाने या बे-जाने और अपनी मरजी से या मजबूरन लोगों के सहयोग (तआवुन) पर है। इसलिए मौजूदा शासन-प्रणाली (निजामे हुकूमत) को सुधारने या मिटाने के उद्देश्य (गर्ज) से यह तय किया गया कि जिस हद तक लोग अपनी रजामन्दी से सहयोग (तआवुन) कर रहे हैं उसका हटाना शुरू करने की कोशिश करें, और उसका प्रारंभ (शुरूआत) ऊपर की श्रेणी (तबके) से किया जाय। १९२० की महासभा (कांग्रेस) की खास बैठक (इजलास) में, जो कि कलकत्ते में हुई थी, सरकारी खिताब, अदालतों, शिक्षालयों (तालीमगाहों) धारासभाओं (कौन्सिलों) और विदेशी कपड़े के बहिष्कार (बाइकाट) के बारे में तजवीजें पास हुईं। इन तमाम बहिष्कारों पर कम या ज्यादह दरजे तक उन लोगों ने अमल (पालन) किया जिनका उनसे ताल्लुक (संबंध) था। और जिनके लिए ऐसा करना न मुमकिन ही था और न जो इसके लिए राजी ही थे। वे महासभा से अलग हो गये। यहां मैं असहयोग आन्दोलन (तहरीके अदम तआवुन) के रंग-बिरंगे इतिहास (तारीख) का चित्र (नक्शा) आपके सामने खींचना नहीं चाहता। इतना कहना काफी होगा कि यद्यपि (अगरचे) किसी भी एक बहिष्कार (बाइकाट) में पूरी पूरी कामयाबी (सफलता) नहीं हुई, तो भी इसमें कोई सन्देह (शुबह) नहीं कि जिन जिन चीजों का बहिष्कार (बाइकाट) किया गया उन सब की इज्जत (प्रतिष्ठा) लोगों के दिलों में [illegible] ही उठ गई।

सबसे महत्त्वपूर्ण (अहम) बहिष्कार हिंसा (तशद्दुद) का बहिष्कार था। यद्यपि (अगरचे) एक वक्त ऐसा मालूम होने लगा था कि यह पूरी तरह सफल (कामयाब) हो गया, तथापि थोड़े ही अर्से में यह पता लग गया कि हमारी अहिंसा (अदम तशद्दुद) बहुत कच्ची बुनियाद पर खड़ी है। हमारी अहिंसा (अदम तशद्दुद) लाचार लोगों की अहिंसा की तरह निष्क्रिय (लाचारी अम्न) थी, न कि एक हिकमती और जानकार आदमी की अहिंसा। नतीजा यह हुआ कि जो लोग असहयोग (अदम तआवुन) आन्दोलन में शरीक न हुए थे उनके खिलाफ असहिष्णुता की लहर चल पड़ी। यह एक

सूक्ष्म प्रकार (लतीफ किस्म) की हिंसा (तशद्दुद) थी। लेकिन इस भारी खामी के होते हुए भी मैं दावे के साथ यह कहता हूं कि अहिंसा (अदम तशद्दुद) के प्रचार (तहरीक) ने हिंसा (तशद्दुद) के उस तूफान को रोक दिया जो कि अवश्य ही उठ खड़ा होता, अगर शान्तिमय असहयोग (पुरअमन तर्के मवालात) शुरू न हुआ होता। बहुत सोच-विचार के बाद मैं इस पक्की राय पर पहुंचा हूं कि अहिंसात्मक असहयोग (पुरअमन तर्के मवालात) ने लोगों को अपनी ताकत की पहचान करा दी है। इसने लोगों के अन्दर कष्ट-सहन (सब्र) के जरिये प्रतीकार (मुकाबला) करने की छुपी ताकत को जगा दिया है। इसके बदौलत जनता (अवाम) में वह जागृति (बेदारी) पैदा हो गई है जो कि शायद किसी और तरीके से न होती।

इसलिए यद्यपि शान्तिमय असहयोग हमें स्वराज्य नहीं दिला सका, यद्यपि इससे कई खेदजनक (अफसोसनाक) नतीजे निकले हैं, और यद्यपि जिन चीजों का बहिष्कार (बाइकाट) करने की कोशिश की गई थी वे अब भी फल-फूल रही हैं, तो भी मेरी नाकिस राय में शान्तिमय असहयोग ने अब राजनैतिक (सियासी) आजादी हासिल करने के एक साधन (जरिये) के तौर पर जड़ पकड़ ली है और उस पर अधूरे तौर पर अमलदरामद (पालन) होते हुए भी वह हमें स्वराज्य के नजदीक ले आया है। और यह बात सूर्य-प्रकाश (रोजे रोशन) की तरह जाहिर है कि किसी ध्येय (मकसद) के लिए कष्ट-सहन की क्षमता (तहम्मुल और बरदाश्त की कुवत) पैदा करने से उसका मिलना जरूर आसान होता है।

कदम थामने की जरूरत

लेकिन आज हमारे सामने एक ऐसी हालत खड़ी हो गई है जो हमें मजबूर करती है कि कदम थामें। क्योंकि यद्यपि अब भी ऐसे कई शख्स हैं जिनका कि विश्वास व्यक्तिशः (इनफरादी तौर पर) असहयोग पर अटल है, फिर भी उन लोगों की बड़ी तादाद जिनका कि इस आन्दोलन (तहरीक) से सीधा ताल्लुक है, अमली तौर पर उससे सिवा विदेशी कपड़े के बहिष्कार के, विश्वास (अकीदा) हट गया है। बीसियों वकीलों ने फिर से वकालत शुरू कर दी है। कुछ लोग तो वकालत छोड़ने पर पछता भी रहे हैं। बहुत से लोग जिन्होंने धारासभाओं का बहिष्कार किया था अब फिर उनमें चले गये हैं और धारासभा में विश्वास (एतकाद) रखनेवालों की तादाद बढ़ती पर है। सैकड़ों लड़के-लड़कियां जिन्होंने सरकारी मदरसों को छोड़ दिया था, अब पछता कर फिर उनमें लौट रहे हैं। यह भी मेरे कानों में खबर पहुंची है कि सरकारी मदरसों में इतनी जगह नहीं है कि सब को भरती कर सके। इस हालत में इन चीजों के बहिष्कार का पालन (अमल दरामद) एक राष्ट्रीय कार्यक्रम (कौमी प्रोग्राम) के रूप में नहीं किया जा सकता, जबतक कि महासभा (कांग्रेस) उन लोगों के बिना अपना काम न चला सके जिनका कि ताल्लुक उससे है। लेकिन मैं यह मानता हूं कि आज उन लोगों को महासभा के बाहर रखना उतना ही अव्यवहार्य (ना काबिले अमल) है जितना कि असहयोगियों को। यह जरूरी है कि दोनों दल बिना एक दूसरे के काम में दखल दिये और एक दूसरे के खिलाफ टीका-टिप्पणी (नुक्ताचीनी) किये, महासभा के अन्दर रहें। जो सिद्धान्त (असूल) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य (इत्तफाक) के सवाल पर घटित (आयद) होता है वही इन भिन्न भिन्न (मुख्तलिफ) दलों की पारस्परिक (बाहमी) एकता पर घटता है। हमें चाहिए कि आपस में सहिष्णुता (बरदाश्त की ताकत) बढ़ावें। और इस बात का यकीन रखें कि जमाना ही हमको एक दूसरे की राय का कायल कर सकेगा। हमें इससे भी एक कदम आगे बढ़ना चाहिए। हमें नरमदलवालों तथा दूसरे लोगों से जो कि महासभा से अलहदा हो चुके हैं, अनुरोध (इल्तिजा) करना चाहिए कि वे फिर महासभा में शामिल हों। जो असहयोग मुल्तवी हो जाय तो उनके लिए कोई वजह बाकी नहीं रहती कि वे महासभा से अलग रहें। मगर इस बात में पहला कदम हम महासभावालों को बढ़ाना चाहिए। हमें प्रेमपूर्वक उन्हें महासभा में शामिल होने के लिए दावत देनी चाहिए और उनका रास्ता जिस कदर हो सके आसान बना देना चाहिए।

मैं समझता हूं कि अब आप समझ गये होंगे कि क्यों मैंने स्वराजियों के साथ समझौता किया।

विदेशी कपड़े के बहिष्कार का फर्ज

आप लोगों ने देखा होगा कि विदेशी कपड़े का बहिष्कार बदस्तूर कायम रक्खा गया है। एक अंगरेज दोस्त के भावों (जजबात) का लिहाज रख के समझौते के लेख में बहिष्कार लफ्ज की जगह 'विदेशी कपड़ा न पहनना' रक्खा गया है। इसमें कोई शक नहीं कि बहिष्कार शब्द में एक बुरी ध्वनि पाई जाती है। आम तौर पर इससे नफरत का भाव टपकता है। लेकिन जहांतक मुझसे ताल्लुक है, उस शब्द का इस्तैमाल मैंने नफरत के मानी में नहीं किया है। बहिष्कार अंगरेजी कपड़े का नहीं बल्कि विदेशी कपड़े का है। इस भाव में बहिष्कार सिर्फ एक हक ही नहीं बल्कि फर्ज भी है। यह फर्ज उतना ही अहम (महत्वपूर्ण) है जितना कि किसी गैर-मुल्क से लाये गये पानी का बहिष्कार—अगर वह इस गरज से मंगाया जाय कि हिन्दुस्तान की नदियों के पानी के बजाय उसका इस्तैमाल हो। लेकिन यह तो एक प्रसंग से बाहर बात हुई।

मगर जो बात मैं आपसे कहना चाहता था वह तो यह है कि मेरे और स्वराजियों के दरम्यान (बीच) समझौते ने विदेशी कपड़े के बहिष्कार को सिर्फ कायम ही नहीं रक्खा बल्कि उसपर और भी जोर डाला है। मेरे नजदीक तो यह तमाम हिंसात्मक (तशद्दुद आमेज) तरीकों के बजाय एक कारगर हथियार है। जिस तरह कि कई बातें जैसे किसी शख्स को गाली देना, बुरी तरह पेश आना, झूठ बोलना, किसीको चोट पहुंचाना या खून करना ये हिंसा-भाव (दरिंदगी) की निशानी हैं उसी तरह शिष्टता, सौजन्य, सचाई वगैरह अहिंसा-भाव के प्रतीक (इलामात) हैं। बस इसी तरह विदेशी कपड़े का बहिष्कार मेरे लिए अहिंसा का प्रतीक है। अराजक (अनारकिस्ट) लोगों के हिंसात्मक कामों का उद्देश होता है सरकार पर दबाव डालना। लेकिन यह दबाव गुस्सा और अदावत के भावों से प्रेरित है और उसे एक किस्म का पागलपन कह सकते हैं। मेरा दावा है कि अहिंसात्मक तरीकों से जो दबाव डाला जा सकता है वह उस दबाव से कहीं पुरअसर है, जोकि हिंसात्मक तरीकों से डाला जा सकता है। क्योंकि पहली किस्म का दबाव सद्भाव (नेकदिली) और सौम्यता (हलीमी) पर अपनी हस्ती रखता है। विदेशी कपड़े के बहिष्कार से ऐसा ही दबाव पड़ता है। हमारे देश में ज्यादहतर विदेशी कपड़ा लंकाशायर से ही आता है। और यह आता भी है और बाकी सब चीजों से ज्यादह मिकदार (परिमाण) में। इसके बाद शकर का नंबर आता है। ब्रिटेन (बरतानिया) का सबसे बड़ा स्वार्थ (गर्ज) भारत के साथ होनेवाली लंकाशायर के कपड़े की तिजारत पर ही केन्द्रित (मरकूज) है। यही सिर्फ एक चीज है जो कि बाकी सब चीजों से ज्यादह हिन्दुस्तान के किसानों की तबाही का बाइस हुई है और जिसने उनको अपने सहायक (मुआविन) धन्धे से वंचित (महरूम) करके उनके सिर बेकारी मढ़ दी है। इसलिए अगर हिन्दुस्तान के कृषि-जीवियों (जरायत पेशा लोगों) को जिन्दा रखना है तो विदेशी कपड़े का बहिष्कार एक जरूरी बात है। और इसके लिए जो तजवीज निकाली गई है वह यह है कि किसानों को इस बात पर आमादा किया जाय कि वे

न सिर्फ कम दाम और रंगबिरंगे चमकदार विदेशी कपडों से मुंह मोडें बल्कि उन्हें यह भी सिखावें कि वे अपने फुरसत का वक्त का उपयोग धुनकने, कातने और गांव के जुलाहों से बुनवाने में करें, ऐसी ही बुनी खादी को पहने और इस तरह विदेशी तथा मिल के बने कपडे की खरीदी में लगने वाला रुपया बचावें। इस तरह हाथ-कताई और बुनाई यानी खादी के जर्ये किया गया विदेशी कपडे का बहिष्कार न सिर्फ किसान के रुपये की बचत ही करता है बल्कि कार्यकर्ताओं को अव्वल दरजे की समाज-सेवा करने का मौका देता है। यह देहात के लोगों के साथ हमारा सीधा संबंध (लगाव) जोडता है। इसके जर्ये हम उन्हें सच्ची राजनैतिक शिक्षा (सियासी तालीम) दे सकते हैं और उन्हें अपने पांव पर खडे होने का और अपनी जरूरियात खुद रफा करने का सबक सिखा सकते हैं। इस प्रकार खादी का संगठन (तनजीम) सहयोग-समितियों से अथवा दूसरे किसी तरह के ग्राम्य-संगठन (देहाती तनजीम) से कितने ही दरजे बेहतर है। इसके अन्दर भारी से भारी राजनैतिक परिणाम छिपे हुए हैं; क्योंकि ऐसा करके हम बिरतानिया (ब्रिटेन) के रास्ते से सबसे बडा अनीति-मूलक प्रलोभन (वस्वसा) दूर करते हैं। लंकाशायर के कपडे के व्यापार (तिजारत) को मैं इसलिए अनीतिमूलक कहता हूं कि उसकी बुनियाद हिन्दुस्तान के करोडों खेतिहरों (काश्तकारों) की तबाही पर कायम की गई है और अब भी वह उसीके बल पर जिन्दा है। और चूंकि एक बदी इन्सान को दूसरी बदियों के लिए प्रेरित करती है, बिरतानिया के बे-शुमार अनीतिमय कामों (बदियों) की जड जो कि साफ साफ साबित किये जा चुके हैं, यही एक अनीतिमय व्यापार दिखाई जा सकती है। ऐसी हालत में अगर यह एक बडा प्रलोभन बिरतानिया के रास्ते से हिन्दुस्तान खुद अपनी कोशिश से हटा दे तो इसका नतीजा हिन्दुस्तान के लिए नेक साबित होगा, बिरतानिया के लिए नेक साबित होगा और चूंकि ब्रिटेन दुनिया की सबसे बडी ताकत है, सारी मनुष्य जाति (आदम-जात) के लिए भी नेक साबित होगा। मैं इस मसले को कुबूल करने के लिए तैयार नहीं कि पैदावार मांग के कदमों पर चलती है। बल्कि इसके खिलाफ नीति और धर्म का खयाल न रखने वाले (बद दियानत) व्यापारी बनावटी तरीकों से मांग को बढाते हैं और अगर यह बात ठीक है और मैं मानता हूं कि ठीक है कि राष्ट्र (कौमें) भी व्यक्तियों की तरह नीति के नियमों से बंधे हुए हैं तो उन्हें उन लोगों के कल्याण (बहबूदी) का लिहाज रखना जरूरी है, जिनकी जरूरतें पूरा करना वे चाहते हैं, जैसे एक राष्ट्र (कौम) के लिए उन कौमों को जो कि शराब का आदी हैं शराब पहुंचाना एक बुराई और बदी है। और यही मिसाल अनाज और कपडे पर भी घटेगी, अगर इनकी कारत या पैदावार का बंद हो जाना मजबूरन् बेकारी और मुफलिसी का बाइस हो। ये आखिरी बातें भी इन्सान के शरीर और आत्मा (रूह) को उसी तरह नुकसान पहुंचाती हैं जिस तरह कि नशीली चीजें। शिथिलता जोश की एक उलटी तस्वीर है और इसीलिए आखिरकार वैसी ही घातक (तबाहकुन) साबित होती है जैसे कि नशीली चीजें, और कई बार तो इससे भी बढ जाती है, क्योंकि बेकारी या मुफलिसी (निर्धनता,) से पैदा हुई शिथिलता को हमने अभी एक अनीति और पाप मानना नहीं सीखा है।

ब्रिटेन का फर्ज

ऐसी हालत में मैं कहूंगा कि ग्रेटब्रिटन का यह फर्ज है कि वह अपने यहां से बाहर जानेवाली चीजों की तिजारत को हिन्दुस्तान के हित का बखूबी लिहाज रखकर नियमित करे (जाब्ते में लावे)। इसी तरह हिन्दुस्तान का भी यह फर्ज है कि वह अपने यहां बाहर से आने वाली चीजों को अपनी बहबूदी का लिहाज रखते हुए नियमित करे। वह अर्थशास्त्र गलत है जो नैतिक सिद्धान्तों की उपेक्षा करता है। अहिंसा-धर्म के मानी अपने व्यापक रूप (वसी अ सूरत) में, यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय (बैनुलअकवामी) व्यापार के नियमित बनाने में नैतिक सिद्धान्तों को पूरा महत्व दिया जाय। और मैं यह मानने को तैयार हूं कि मेरी महत्वाकांक्षा इससे कम नहीं कि भारत की कोशिशों से अन्तर्राष्ट्रीय संबंध की बुनियाद नैतिक सिद्धान्तों पर बंध जाय। मैं उस बात को नहीं मानता कि मनुष्य-स्वभाव (इन्सानी फितरत) का झुकाव हमेशा नीचे की तरफ ही है।

हाथ-कताई या खादी के जर्ये विदेशी कपडे के बहिष्कार का फल सिर्फ यही अन्दाज नहीं किया गया है कि एक अव्वल दरजे का राजनैतिक नतीजा पैदा हो, बल्कि यह भी अन्दाज किया गया है कि हिन्दुस्तान के गरीब से गरीब नर-नारी को अपनी शक्ति का ज्ञान हो और वे मुल्क की आजादी के संग्राम (जद्दोजहद) में पूरा हिस्सा लें।

विदेशी बनाम अंगरेजी

अब यहां इस बात की शायद ही जरूरत हो कि अंगरेजी कपडे से, या जैसे कि कुछ देश सेवक (मुहिब्बाने वतन) कहते हैं, अंगरेजी माल के बहिष्कार की हिंसामय प्रकृति (खसलत) तो ठीक, उसका निकम्मापन तक प्रत्यक्ष दिखलाया जाय। मैं तो बहिष्कार की बात सिर्फ हिन्दुस्तान के हित को ही मद्देनजर रखकर कर रहा हूं। हर किस्म के ब्रिटिश माल से हमें नुकसान नहीं पहुंचता है। कुछ अंगरेजी चीजें तो, जैसे किताबें, हमें अपनी दिमागी या रूहानी तरक्की के लिए दरकार होती हैं। अब रहा कपडा। सो सिर्फ अंगरेजी कपडा ही हमारे लिए मुजिर (हानिकर) नहीं है, बल्कि तमाम विदेशी कपडा और इस लिहाज से कुछ दरजे में, मिल का कपडा भी हमें नुकसान पहुंचाता है। सारांश कि जो फल हाथ-कताई और खादी के जर्ये हासिल हो सकता है वह 'येन केन उपायेन' किये महज अंगरेजी कपडे के बहिष्कार से हरगिज नहीं हो सकता। मगर यह तभी हो सकता है जब कि तमाम विदेशी कपडे का पूरा बहिष्कार कर दें। इस बहिष्कार का हेतु (मंशा) किसीको सजा देना नहीं, बल्कि उसकी जरूरत तो है राष्ट्र की हस्ती को कायम रखने के लिए।

आक्षेपों पर विचार

लेकिन कुछ लोगों का ऐतराज है कि चरखे के पैगाम ने लोगों के दिलों में घर नहीं किया, उसमें जोश पैदा करने की ताकत नहीं है, यह सिर्फ औरतों का पेशा है, इसके मानी दकियानूसी तरीकों पर फिर लौट जाना है। वे कहते हैं कि यह तो विज्ञान-विद्या के प्रताप शाली (शहानावार) आगे बढते हुए कदम को, जिसकी कि गवाही आये दिन की नित नई कलें दे रही हैं, रोकने की एक फजूल कोशिश है। मेरी नाकिस राय में हिन्दुस्तान को इस समय जोश-खरोश (उत्तेजना) की जरूरत नहीं है, बल्कि ठोस काम करने की है। करोडों लोगों के लिए तो ठोस काम ही जोश और ताकत का नुस्खा है। बात यह है कि अभी तक हमने चरखे की पूरी आजमाइश नहीं की है। मुझे अफसोस के साथ कहना पडता है कि हममें से कइयोंने तो अभी उस पर संजीदगी (गम्भीरता) के साथ गौर भी नहीं किया है। यहां तक कि महासमिति के भी सब सदस्यों ने समय समय पर अपने ही पास किये चरखा कातने के प्रस्ताव पर अब तक अमल नहीं किया है। इनमें से एक बडी तादाद ने तो उस पर विश्वास ही न करने की ठान ली। ऐसी हालत में यह कहना इन्साफ की रू से ठीक न होगा कि चरखे की हलचल, उसके अन्दर जोश दिलाने की कमी से अ-सफल हो गई। और यह कहना कि चरखा महज औरतों

का पेशा है मानो वस्तुस्थिति (हकीकत) को न देखना है। आखिर सूत कातने की मिलें हैं क्या चीज ? सिर्फ बहुतसे चरखों का एक संग्रह (मजमूआ)। उन्हें मर्द नहीं तो और कौन चलाते हैं ? अब मौका आ गया है कि हम इस भ्रम को छोड़ दें कि कुछ पेशे हम मर्दों की शान के खिलाफ हैं। हां, मामूली वक्त में चरखा कातना औरतों का ही काम होगा। मगर हमारी भावी सरकार को हमेशा कुछ आदमी इस काम पर मुकर्रर करना होंगे कि वे चरखे में एक घरेलू धन्धे की हैसियत को मद्देनजर रखते हुए सुधार करते रहें। मैं आपको यह भी बता दूं कि जो सुधार चरखे की बनावट में आज आप पाते हैं वे मुमकिन न होते अगर हममें से कई शख्स इस काम में अपनेको न लगाते और दिन—रात इसी की धुनमें न लगे रहते।

यन्त्र-सामग्री

मैं यह भी आपसे कहना चाहता हूं कि यन्त्र-कला के बारे में मेरे जो खयालात बताये जाते हैं उनको अपने दिमाग से निकाल डालें। पहली बात तो यह कि आज मैं यन्त्र—सामग्री विषयक अपने तमाम विचार ठीक उस तरह आपके सामने पेश करने की कोशिश नहीं कर रहा हूं जिस तरह कि अपने अहिंसा संबंधी विश्वास को भी नहीं पेश कर रहा हूं। चरखा खुद भी यन्त्रकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। मेरा सिर उसके अज्ञात (नामालूम) आविष्कर्त्ता के प्रति रोज आदर से झुक जाता है। मुझे सन्ताप तो इस बात पर होता है कि हिन्दुस्तान के इस एक—मात्र घरेलू उद्योग को बिला—वजह बरबाद कर दिया गया जोकि भूख की बला से १९०० मील लंबे और १५०० मील चौड़े मुल्क के तहते पर फैले हजारों घरों की रक्षा करता था।

कताई के द्वारा मताधिकार

अब आप इस बात पर ताज्जुब न करेंगे कि मैं क्यों चरखे के पीछे पागल हो गया हूं और न इसी बात पर हैरान होंगे कि मैंने इसे मताधिकार की शर्त में शामिल क्यों किया और क्यों स्वराज्य—दल की तरफ से देशबन्धु दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इसे मंजूर किया। अगर आज मेरा बस चले तो मैं एक भी शख्स का नाम बतौर महासभा के सदस्य के महासभा के रजिस्टर में दर्ज न होने दूं जो चरखा कातने पर रजामन्द न हो या जो हर मौके पर खादी का लिबास न पहनें। फिर भी मैं स्वराज्य—दल का कृतज्ञ हूं कि उन्होंने इस दरजे तक भी इस बात को कुबूल किया। शर्तों का ढीला कर दिया जाना हमारी कमजोरी या विश्वास के अभाव (एतकाद की कमी) के खातिर एक रिआयत ही है। लेकिन इस रिआयत को उन लोगों के लिए जिनका कि पूरा विश्वास चरखे और खादी में है, अपनी कोशिश को और तेज करने का प्रेरक कारण होना चाहिए।

कोई नया पैगाम नहीं

मैंने चरखे के बारे में इतनी मविस्तर चर्चा इसलिए की है कि मेरे पास देश के लिए और कोई बेहतर या नया पैगाम नहीं है। अगर हम वाकई 'शान्तिमय और उचित' उपायों से स्वराज्य हासिल किया चाहते हों तो मेरे पास चरखे से बढ़ कर कोई दूसरा रामबाण दवा नहीं है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, सिर्फ यही एक हथियार ऐसा है जिससे हिंसात्मक साधनों की जगह सारा देश कुछ कर सकता है। मैं सविनय भंग पर अब भी उसी तरह अटल हूं। लेकिन जब तक कि हम अपने अन्दर विदेशी कपड़े के बहिष्कार की ताकत न पैदा कर लें, सविनय भंग के जरिये स्वराज्य हासिल करना गैर—मुमकिन है। अब आप आसानी से देख सकेंगे कि अगर चरखे संबंधी मेरे खयालात आपको कुबूल न हों तो मैं महासभा की रहनु-माई (पथदर्शन) के लिए किस तरह निकम्मा हो जाऊंगा। अगर आप चरखे के मूलतत्व को जिसका प्रतिपादन (तशरीह) मैंने किया है, गलत मानते हों तो दरहकीकत आपका यह खयाल करना ठीक होगा कि मैं देश की प्रगति (तरक्की) में रुकावट हूं, जैसा कि कई सज्जन अब भी समझते हैं। अगर आपके दिल और दिमाग दोनों इसको कुबूल न करें तो आप अपने कर्तव्य-पालन में चूकेंगे अगर आप मेरी रहनुमाई को नामंजूर न करें। देखो, कहीं ऐसा न हो कि फिर लोग यह कहें कि हम हिन्दुस्तानियों में 'ना' कहने की ताकत और हिम्मत नहीं है, जैसा कि लार्ड विलिंगडनने एकबार कहा था और ठीक कहा था। आप सच मानिए कि अगर मेरी तजवीज आपको कुबूल न हो और आप उसे नामंजूर कर दें तो इससे देश स्वराज्य की ओर एक कदम आगे बढ़ जायगा।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता

हिन्दू-मुसलिम-एकता चरखे से कम महत्व नहीं रखती है। इसे तो हमारा जीवन-प्राण ही समझिए। इस मसले पर आपका ज्यादह समय लेना मैं जरूरी नहीं समझता। क्योंकि स्वराज्य हासिल करने के लिए उसकी जरूरत के प्रायः सब लोग कायल हैं। 'प्रायः' शब्द का प्रयोग (इस्तैमाल) मैंने जान—बूझ कर किया है। मैं जानता हूं कि कुछ हिन्दू और मुसलमान ऐसे हैं जो अगर अकेले हिन्दुओं या अकेले मुसलमानों का राज्य हिन्दुस्तान में कायम न कर सकें तो बिरतानिया की गुलामी की मौजूदा हालत को तरजीह देंगे। खुशी की बात है वे इने—गिने ही हैं।

मौलाना शौकतअली की तरह मैं भी दृढ़ आशावादी हूं कि यह मौजूदा तनाजा एक चन्दरोजा दिमागी मर्ज (बिमारी) है। खिलाफत आन्दोलन (तहरीक) ने जिसमें कि हिन्दू और मुसलमान दोनों कन्धे से कन्धा भिड़ाकर लड़े और असहयोग ने जो कि उसके बाद शुरू हुआ, गफलत की नींद में सोई हुई जनता को जगा दिया। इसने ऊंची श्रेणी के लोगों में, और क्या जनता में, एक नई जागृति की लहर फैला दी। दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी खुदगरज लोग थे जिन्हें असहयोग के उत्कर्ष (उरूज) के दिनों में निराश (मायूस) होना पड़ा था। जब उन्होंने देखा कि अब असहयोग की पहले की ठाठ न रही तो अपना मौका पाकर वे लगे दोनों कौमों की धार्मिक अन्धता (तअस्सुब) और खुदगर्जी से फायदा उठा कर अपना उल्लू सीधा करने। मजहब को उन्हों ने एक मखौल ही बना डाला और छोटी छोटी निकम्मी बातों को बढ़ा कर मजहबी असूलों के दरजे पर चढ़ा दिया। और मजहबी दीवाने यह दावा पेश करने लगे कि उनका पालन करना हर सूरत में लाजिमी है। और फसाद पैदा करने के लिए आर्थिक (इक्तसादी) और राजनैतिक (सियासी) कारणों का दुरुपयोग करने लगे। कोहाट में तो ये हरकतें चरम सीमा को पहुंच गई थी। स्थानीय हाकिमों की संगदिली और लापरवाही ने उस दुर्घटना को और भी दुखदायी बना दिया। उसके कारणों की छानबीन करने या किसी को कुसूरवार ठहराने में वक्त सर्फ करना नहीं चाहता। और मैं ऐसा चाहता भी तो मेरे पास इसके लिए काफी मसाला नहीं था। बस इतना ही कहना काफी होगा कि कोहाट के हिन्दू अपनी जान के मारे शहरसे भाग निकले। कोहाट में मुसल्मान बहुत भारी तादाद में बसते हैं। और जिस कदर कि एक गैर हुकूमत के मातहत मुमकिन हो सकता है प्रभावकारी (पुर असर) राजनैतिक बल है। उनके लिए यह दिखलाना जेबां (शोभनीय) होगा कि हिन्दू भी उनकी बहुसंख्या के अन्दर उतने ही सुरक्षित (सलामत) हैं, जितने कि वे अगर कोहाट में तमाम ही बसे होते तो सलामत होते। कोहाट के मुसल्मानों को तबतक चैन न लेना चाहिए जबतक कि एक एक आश्रित हिन्दू को कोहाट में वापस न ला सकें। मैं उम्मीद करता हूं कि हिन्दू भी सरकार के लगाये फन्दे में न फंस जायंगे और दृढ़ता के साथ तबतक कोहाट लौटने से इनकार कर देंगे जबतक कि

वहां के मुसलमान उनके जानोमाल की हिफाजत का पूरा पूरा यकीन दिलाकर उन्हें न बुलावें। हिन्दू लोग सिर्फ उसी सूरत में मुसल्मान की भारी आबादी में रह सकते हैं जब कि वे (मुसल्मान) उन्हें दोस्ताना और बराबरी के सलूक के साथ बुलाने और अपने पास रखने पर खुद रजामंद हों। और यही उसूल मुसल्मानों पर भी आयद (घटित) है अगर उनकी संख्या छोटी और हिन्दुओं की आबादी भारी हो-अर्थात् उन्हें अपनी हस्ती को सम्मानपूर्वक (बातौकीर) कायम रखने के लिए हिन्दुओं के दोस्ताना सलूक पर ही अपना दारोमदार रखना होगा। कोई सरकार सिर्फ चोर-डाकुओं से ही अपनी प्रजा (रिआया) की रक्षा (हिफाजत) कर सकती है—हमारी अपनी सरकार हो तब भी वह अगर एक जाति दूसरी सारी जाति का बहिष्कार कर दे तो उससे उसकी रक्षा न कर सकेगी। सरकारें सिर्फ गैरमामूली सूरत पैदा हो जाने पर ही उनमें हाथ डाल सकती है। जब कि लड़ाई झगड़े एक रोजाना मामूल (दैनिक नियम) हो जाय तब ऐसी हालत को गृह-युद्ध (खानाजंगी) कहेंगे और ऐसी हालत में दोनों दलवाले आपस में लड़कर ही निपटारा कर सकते हैं। मौजूदा सरकार एक गैर, और दरअसल परदे में एक फौजी हुकूमत है और इसलिए अपने पास इसकदर सामान तैयार रखती है कि जिससे उसके खिलाफ हमारे हर किस्म के एके से वह अपनी हिफाजत कर सके, और इसलिए उसकी इतनी ताकत भी जरूर है कि अगर वह चाहे तो हमारे जातिगत (फिरकाबंद) झगड़ों का बंदोबस्त भी कर सके। मगर कोई स्वराज्य-सरकार जो कि जरा भी लोकप्रिय होने का (जमूरियत का) दावा रखती हो, हरगिज़ जर्बा पाये पर अपना संगठन कर के अपनी हस्ती कायम नहीं रख सकती। हमारी स्वराज्य-सरकार के माने हैं, वह सरकार जो हिन्दुओं, मुसल्मानों आदि की संयुक्त (मुत्तफिका) और खुली रजामंदी पर कायम हो। सो अगर हिन्दू और मुसल्मान स्वराज्य चाहते हों तो उन्हें तो आपस में मिल-जुल कर अपने भेद-भाव (तफरके) को मिटाने पर मजबूर होना ही पड़ेगा। देहली की ऐक्य-परिषद् ने हमारे मजहबी झगड़ों के तस्फिये का रास्ता सुगम बना दिया है। और सर्व-दल परिषद् की बनाई समिति से यह उम्मीद की जाती है कि वह और बातों के साथ साथ महज हिन्दुओं और मुसल्मानों के ही नहीं, बल्कि मुल्क की तमाम जात, पांत, पंथ और फिरके के राजनैतिक मत-भेदों (तफरकों) का ठीक और सुसाध्य (काबिले अमल) उपाय (तदबीर) खोज निकाले। इसमें हमारा लक्ष्य (मकसद) होना चाहिए जितना जल्दी हो सके जातिगत या पन्थगत (फिरकावाराना) प्रतिनिधित्व को मन्सूख कर देना। मतदातामण्डल (रायदिहन्दों के हलके) मिले-जुले हों और वे सिर्फ गुण और योग्यता (काबिलियत) के लिहाज से निष्पक्ष हो कर (बिला तअस्सुब) अपने प्रतिनिधियों (नुमायन्दों) को चुनें। इसी तरह हमारी नौकरियों में भी बिला तअस्सुब सबसे ज्यादह काबिल मर्द और औरतें ही भरती किये जायं। लेकिन जबतक कि वह दिन न आवे कि जातिगत द्वेष (हसद) और तरजीह के भाव गये-गुजरे न हो जायं तबतक जो छोटी छोटी जातियां बड़ी जातियों की नीयत को शक की नजर से देखती हों, उन्हें अपनी मर्जी के मुताबिक चलने की छूट रहे। और बड़ी जातियों को इस बारे में कुरबानी का नमूना पेश करना चाहिए।

अस्पृश्यता

एक और रुकावट जो कि स्वराज्य के रास्ते में खड़ी है-अस्पृश्यता है। इसका निवारण (तदारुक) उसी कदर जरूरी है जिस कदर कि हिन्दू-मुस्लिम एकता का कायम होना। यह सवाल सिर्फ हिन्दुओं से ही ताल्लुक रखता है और हिन्दू लोग तबतक स्वराज्य का कोई दावा नहीं रख सकते और न उसे पा सकते हैं जबतक कि वे अपने दलित भाइयों को उनकी आजादी न दे दें। उनको दबा कर वे अपनी किश्ती खुद डुबा बैठे हैं। इतिहासकार (मुवर्रिख) हमें बताते हैं कि आर्य-जाति के आक्रमणकारियों ने (हमला आवर कौमों ने) हिन्दुस्तान के मूल निवासियों (कदीमी बाशिंदों) से अगर ज्यादह बुरा नहीं तो कमसे कम बिल्कुल वैसा ही सुलूक किया जैसा कि हमारे अंगरेज आक्रमणकारी आज हमारे साथ कर रहे हैं। अगर यह बात सचमुच ऐसी ही है तो हमने जो एक अछूत जाति ही दुनिया में बना डाली है उसका यह ठीक प्रतिफल (बदला) अपनी मौजूदा गुलामी के रूप में हमें मिला है। यह एक ईश्वरी कोप (कहरे इलाही) ही हमपर हुआ है, जिसके कि हम बिल्कुल योग्य हैं। जितना ही जल्दी हम इस कलंक को अपने सिर से मिटा देंगे उतना ही अच्छा हम हिन्दुओं के लिए होगा। लेकिन हमारे धर्माचार्य कहते हैं कि अस्पृश्यता तो ईश्वर-निर्मित (खुदाई कानून के मुताबिक) है। मेरा दावा है कि मैं भी हिन्दू-मजहब का कुछ ज्ञान (इल्म) रखता हूं। मैं निश्चय (यकीन) के साथ कहता हूं कि धर्माचार्य इस बात में गलती पर हैं। यह कहना कि ईश्वर ने मनुष्य-जाति (आदमजाद) के किसी हिस्से को अछूत करार देने के लिए पैदा किया है, मानो ईश्वर की शान को धब्बा लगाना है। महासभा के हिन्दू सदस्यों का यह काम है कि वे जितनी जल्दी हो सके इन दिवारों को ढहा दें। वाइकोम के सत्याग्रही हमें इसका रास्ता दिखा ही रहे हैं। वे अपने आन्दोलन को दृढता (साबित कदमी) और सौम्यता (हलीमी) के साथ चला रहे हैं। उनमें धीरज, हिम्मत और श्रद्धा है। जिसी किसी हलचल में ये गुण (औसाफ) पाये जाय उसे दुनिया में कोई नहीं रोक सकता। फिर भी मैं अपने हिन्दू भाइयों को आगाह कर देना चाहता हूं कि वे उस लहर से अपनेको बचावें जो कि इन दिनों दलित जातियों को अपने राजनैतिक मतलब गांठने में औजार बनाने की ओर दिखाई देती है। छुआछूत का दूर करना उच्च हिन्दुओं के लिए एक प्रायश्चित है जो कि हिन्दू-धर्म के तथा स्वयं अपने प्रति उनपर लाजिम है। जिस शुद्धि की जरूरत है वह अछूतों की नहीं बल्कि ऊंची कहलाने वाली जातियों की है। कोई ऐब दुनिया में ऐसी नहीं है जो खास तौर पर अछूतों के ही अन्दर हो। मैला-कुचैलापन और आरोग्य-रक्षा के नियमों के खिलाफ आदतें भी महज उन्हीके अन्दर नहीं है। अपनेको ऊंचा समझने वाले हम हिन्दुओं का अभिमान ही हमें अपने दोषों के प्रति अन्धा बना देता है और अपने बेचारे दलित-पीडित (मजलूम) भाइयों के दोषों को राई का पहाड़ बना कर दिखाता है, जिन्हें कि हम दबाते चले आये हैं और अब भी जिनकी गर्दन पर सवार रहते हैं। भिन्न भिन्न राष्ट्रों (मुख्तलिफ कौमों) की तरह जुदा जुदा धर्म (मजहब) भी इस वक्त कसौटी पर चढाये जा रहे हैं। ईश्वरी अनुग्रह (फज्ल) और प्रकाश (इल्हाम) का ठेका किसी एक कौम या जाति (नस्ल) को नहीं है। वे बिना भेद-भाव उन सब बन्दों को प्राप्त होते हैं जो कि उसके हुजूर में हाजिर रहते हैं। उस कौम और उस मजहब का नामोनिशां दुनिया के सतह से मिटे बिना न रहेगा जो कि अपना दारोमदार बेइन्साफी (अन्याय) झूठ (असत्य) और पशुबल (दरिंदगी) पर रखती है। ईश्वर प्रकाश (नूर) है, अन्धकार (तारीकी) नहीं। वह प्रेम है, घृणा नहीं। वह सत्य है, असत्य नहीं। एक ईश्वर ही महान है। ('अल्लाहो अकबर') हम उसके बन्दे उसकी चरणरज (कदमों की खाक) हैं। आओ, हम सब मिल कर नम्र (हलीम) बनें और ईश्वर के छोटे से छोटे बन्दे के भी इस दुनिया में रहने के हक को तसलीम करें (मानें)। श्रीकृष्ण ने फटे-पुराने चिथड़े पहने हुए सुदामा का वह स्वागत-सत्कार (तौकीर) किया जोकि किसीका नहीं किया था। गोस्वामी तुलसीदासजी का कथन है:

'दया धरम का मूल है देह मूल अभिमान'

स्वराज्य हमें चाहे मिले या न मिले, पर इसमें कोई शुबह नहीं कि हिन्दुओंको खुद अपने दिल की शुद्धि (सफाई) करनी होगी। तभी वे वैदिक धर्म के तत्वों के पुनरुज्जीवन की तथा उन्हें जीती जागती सूरत में देखने की आशा कर सकेंगे।

स्वराज्य की रूप-रेखा

मगर चरखा, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और छुआछूत का निवारण हमारी ध्येय-प्राप्ति के भिन्न भिन्न साधन हैं। हम किसी चीज के अन्तिम फल को पहले से कयास नहीं कर सकते। मेरे लिए बस इतना ही काफी है कि मैं अपने साधनों (जराय) का अच्छी तरह चुनाव कर सकूं। मेरे जीवन-सिद्धान्त में तो साध्य और साधन में कोई अन्तर नहीं है। मगर जैसा कि मैं जाहिर कर चुका हूं बहुत अरसे से इस मामले में मैं बाबू भगवानदासजी के विचारों का, जिन्हें कि उन्होंने लोगों के सामने पेश किया है, कायल हो चुका हूं अर्थात् यह कि सर्व-साधारण को हमारे ध्येय का ठीक ठीक, न कि अनिश्चित रूप में, ज्ञान होना चाहिए। उन्हें स्वराज्य की पूरी व्याख्या जाननी चाहिए---उस स्वराज्य योजना का ज्ञान होना चाहिए जो कि सारे हिन्दुस्तान को दरकार है और जिसके कि लिए उसे लड़ाई लड़नी होगी। खुशी की बात है, कि सर्व-दल-परिषद् की कमिटी के सिपुर्द यह काम भी कर दिया गया है और हमें आशा करनी चाहिए कि कमिटी ऐसी तजवीज बना सकेगी जो कि तमाम दलों को मंजूर हो। आपकी इजाजत हो तो मैं नीचे लिखी चंद बातें उसके गौर के लिए पेश करूं—

१ मताधिकार की पात्रता न तो (सम्पत्ति) मालियत हो, और न पद (रुतबा) हो बल्कि शारीरिक श्रम (मजदूरी) हो जैसा कि सूतकताई जिसे मैंने महासभा के मताधिकार के लिये सुझाया है। शिक्षा और सम्पत्ति-संबंधी शर्तें मायावी (ना काबिले ऐतबार) साबित हुई हैं। शारीरिक शर्त मंजूर हो जाने से हर शख्स को जो देश के शासन-कार्य में तथा राज्य के हित-साधन में शरीक होना चाहते हों, ऐसा करने का मौका मिलेगा।

२ मौजूदा घातक (तबाहकुना) फौजी खर्च उस हद तक कम करना चाहिए जिस हद तक कि वह देश की मामूली हालत में जानो-माल की हिफाजत के लिए जरूरी हो।

३ न्याय के साधन सस्ते होने चाहिए और इस बात को मद्देनजर रख कर अपील की आखिरी अदालत लन्दन में नहीं बल्कि देहली में होनी चाहिए। दीवानी मामलात में ज्यादहतर फरीकैन को अपना मामला पंचायत में ले जाने पर मजबूर करना चाहिए। इन पंचायतों का फैसला आखिरी माना जाय, सिवा उन मामलात के जिन में बेईमानी या कानून का दुरुपयोग किया गया हो। दरमियानी अदालतों की तादाद को जरूरत से ज्यादह न बढ़ने देना चाहिए। कानूने नजीर मन्सूख किया जाय और जाब्ते में आम तौर पर सादगी दाखिल करना चाहिए। हमने अंगरेजी जाब्ते की लकीर का फकीर बन कर भारी और जराजीर्ण (उमर रसीदा) कानून का अनुकरण किया है। उपनिवेशों में तो जाब्ते को सरल बनाने की प्रवृत्ति हो रही है जिससे कि फरीकैन अपने मुकद्दमों की पैरवी खुद ही कर सकें।

४ शराब और नशीली चीजों की आमदनी उठा दी जाय।

५ मुल्की और फौजी जगहों की तनख्वाहें इतनी कम होनी चाहिए जिससे वे देश की सामान्य स्थिति के अनुकूल हो जायं।

६ भाषाओं के लिहाज से प्रान्तों की पुनर्रचना (हदबन्दी) की जाय और हर प्रान्त को अपने भीतरी शासन और तरक्की के लिए जहांतक मुमकिन हो पूरी स्वाधीनता दी जाय।

७ एक कमीशन बैठाया जाय जोकि विदेशी लोगों को दिये गये ठेकों की जांच-पड़ताल करे और उसकी सिफारिश पर उन लोगों के तमाम न्याय-पूर्वक (हक्तन) प्राप्त हकों को सुरक्षित (महफूज) रखने की पूरी गैरण्टी दी जाय।

८ देशी राज्यों को गैरण्टी मिलनी चाहिए कि उनका दरजा बदस्तूर कायम रहेगा और मध्यवर्ती सरकार की तरफसे किसी किस्म की रोकटोक न होगी। अगर देशी रियासत की कोई रिआया जिसने वहांके फौजदारी कानून के खिलाफ कोई काम न किया हो, सरकारी इलाके में पनाह लेना चाहे तो उसके हकोंकी हिफाजत करना सरकार का हक होगा।

९ हरतरह के मनमाने अख्त्यारात एक बारगी मन्सूख किये जायें।

१० ऊंचे से ऊंचा पद ऐसे हर शख्स के लिए खुला होना चाहिए जो कि उसके काबिल हो। मुल्की और फौजी ओहदों के लिए परीक्षायें (इम्तहानात) हिन्दुस्तान में होनी चाहिएं।

११ हर पन्थ के लोगों की पूरी मजहबी आजादी का हक पारस्परिक सहिष्णुता के न्याय को मद्देनजर रखते हुए स्वीकार किया जाय।

१२ एक खास मीयाद के अन्दर हर प्रान्त की अदालतों और धारासभाओं का कामकाज उसी प्रान्त की भाषा में जारी हो जाना चाहिए। अपील की आखिरी अदालत की जबान हिन्दुस्तानी करार दी जाय—लिपि चाहे देवनागरी हो या फारसी। मध्यवर्ती सरकार और बड़ी धारासभाओं की भाषा भी हिन्दुस्तानी ही हो। अन्तर्राष्ट्रीय राज्यव्यवहार की भाषा अंगरेजी रहे।

मुझे भरोसा है कि अगर आपको यह मालूम हो कि मेरे विचार के अनुसार बताई स्वराज्य की कुछ जरूरतों की रूप--रेखा में मैं हद से बाहर चला गया हूं तो भी आप छूटते ही उसकी हंसी न उड़ाने लग जायंगे। हमारे पास आज इन चीजों के लेने या पाने की ताकत भले ही न हो। सवाल यह है कि हम इन्हें हासिल करना चाहते भी हैं या नहीं? आओ, पहले हम कमसे कम इस अभिलाषा को ही बढ़ावें। इसके पहले कि मैं अपने इस बड़े कल्पनामय अतएव मनो-मोहक (ख्याली और दिलचस्प) विषय को समाप्त (खतम) करूं मैं उस कमिटी को जिसके जिम्मे स्वराज्य की तजवीज तैयार करने का काम हुआ है, यकीन दिलाना चाहता हूं कि मैं यह हरगिज नहीं चाहता हूं कि मेरे विचारों पर दूसरे किसी भी एक शख्स के विचार से ज्यादह महत्व (अहमियत) दिया जाय। मैंने सिर्फ इस ख्याल से इन्हें अपने भाषण में स्थान दिया है कि उनका ज्यादह प्रचार हो।

स्वतन्त्रता

पूर्वोक्त योजना में यह बात गृहीत कर ली गई है कि ब्रिटेन का संबंध पूरी बराबरी और सम्मानपूर्ण (बाइज्जत) व्यवहार की शर्त पर कायम रक्खा जा सकता है। लेकिन मैं यह जानता हुं कि महा-सभा के अन्दर एक ऐसा दल भी है जो चाहता है कि हर हालत में हम ब्रिटेन से पूरे आजाद हो जायें। वे बतौर एक बराबरी के हिस्सेदार के भी उसके साथ रहना नहीं चाहते। अंगरेजी सरकार जो कुछ कहती है वह यदि ईमानदारी के साथ कहती हो और हमें सचाई के साथ पूरी समानता प्राप्त करने में मदद करे, तो ब्रिटिशों से कतई संबंध तोड़नेकी बनिस्बत यह हमारी ज्यादह विजय होगी। इसलिए मैं तो अपनी तरफ से साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य के लिए ही कोशिश करूंगा—लेकिन हां—अगर खुद ब्रिटेन के कसूर से संबंध तोड़ लेना जरूरी हो जाय तो मैं ऐसा करने में जरा भी आगा-पीछा न करूंगा। इस तरह मैं संबंध विच्छेद का भार अंगरेजों पर छोड़ दूंगा। दुनिया के बुद्धिमानशील लोग आज ऐसे पूर्ण स्वतन्त्र राज्यों को नहीं चाहते हैं जो एक-दूसरे से लड़ते हों, बल्कि ऐसे राज्यों के संघ को चाहते हैं जो एक दूसरे के मित्र और आश्रित हों। भले ही इस उद्देश की सिद्धि का दिन बहुत दूर हो। मैं अपने

देश के लिए कोई भारी भारी दावे करना नहीं चाहता । और मेरी समझ में तो यह बात भी नहीं आती कि पूरी आजादी के बजाय इस विश्व-कुटुंब का एक सहयोगी अंग बनने के लिए अपनी तैयारी जाहिर करना कौन ऐसी भारी या असंभव बात है ? यह बात ब्रिटेन पर छोड देनी चाहिए कि वह ऐलान करे कि वह हिन्दुस्तान से सच्ची दोस्ती करने के लिए तैयार नहीं । मैं यह तो चाहता हूं कि हमारे अन्दर पूरी तरह आजाद हो जाने की काबलियत हो, मगर मैं उस ताकत को जताने की उतनी ख्वाहिश नहीं रखता । इसलिए जबतक ब्रिटेन इस कौल पर कायम है कि उसका मकसद हिन्दुस्तान को साम्राज्य के अन्तर्गत पूरी समानता देना ही है, तबतक जो कोई स्वराज्य की तजवीज मैं तैयार करूंगा वह बिरकत की नींव पर होगी न, कि मित्रता-हीन स्वतन्त्रता की नींव पर । मैं महासभा के हर सदस्य से जोर के साथ यह दरख्वास्त करूंगा कि वे हर बाबत में स्वतन्त्रता की घोषणा करने पर जोर न दें—इस वजह से नहीं कि यह कोई ना-मुमकिन बात है, बल्कि इसलिए कि जबतक यह पूरी तरह जाहिर न हो जाय कि ब्रिटेन दरअसल अपनी घोषणाओं के खिलाफ हमें अपने अधीन ही बनाये रखना चाहता है, बिल्कुल गैर-जरूरी है ।

स्वराज्य-दल

यहांतक तो मैंने अपने और स्वराजियों के दरम्यान समझौते की शर्तें तथा उससे उठने वाले सवालों पर अपने विचार प्रकट किये । स्वराज्य-दल को महासभा में जो बराबरी का दरजा दिया गया है उसके बारे में कुछ ज्यादह कहने की जरूरत नहीं । मैं चाहता हूं कि ऐसा करने की नौबत न आती—इसलिए नहीं कि स्वराज्य-दल इसके लायक नहीं, बल्कि इसलिए कि धारासभा—प्रवेश संबंधी उसके विचारों से मैं सहमत नहीं । लेकिन अगर मेरे लिए यह जरूरी है कि मैं महासभा के अन्दर रहूं और उसकी रहनुमाई करूं तो मेरे नजदीक इसके सिवा कोई चारा नहीं कि जो बातें मेरी आंखों के सामने मौजूद हैं उनको मैं नजर-अन्दाज न करूं । मेरे लिए यह एक सहल बात थी कि या तो मैं महासभा से निकल जाऊं या सभापति बनने से इनकार कर दूं । मगर मैंने उसवक्त यह सोचा और अब भी इसी राय पर कायम हूं कि मेरे लिए ऐसा करना देश के लिए हानिकर (नुकसानदेह) साबित होगा । महासभा में स्वराज्य-दल की यदि बहु-संख्या नहीं है तो कम से कम एक अच्छी खासी तादाद जरूर है और वह दिन ब दिन बढती जा रही है । सो जब कि मैं यह फैसला कर चुका था कि स्वराज्य-दलके दरजे के सवाल का फैसला महासभा में रायों के जरिये न होना चाहिए तब मैं मजबूर था कि उनकी शर्तों को कुबूल करूं अगर वे मेरी अन्तरात्मा (जमीर) के खिलाफ न हों । मेरी राय में वे शर्तें उनके ख्याल से बेजा न थीं । स्वराजी अपनी कार्यनीति को सफल बनाने के लिए महासभा के नाम को इस्तैमाल करना चाहते हैं । अब एक ऐसा तरीका खोजना था कि जिससे एक ओर उनका काम निकले, दूसरी तरफ अपरिवर्तन-वादियों को उनकी नीति के साथ न बंध जाना पडे । इसका एक तरीका यह था कि उनको अपनी नीति की रचना और उसके अनुसार काम करने की बाकी और मुकम्मल जिम्मेवारी और अख्त्यारात दे दिये जायं । और चूं कि मैं यह जिम्मेवारी अपने ऊपर न ले सकता था, और मुझे डर है कोई भी अपरिवर्तनवादी ऐसा नहीं कर सकता, मैं उनकी नीति की रचना करने में शरीक नहीं हो सकता और न मैं उसकी रचना कर ही सकता था जबतक कि मेरा दिल उसकी तरफ रुजू न होता । और दिल तो उसी चीज की तरफ रुजू हो सकता है जिस में कि इन्सान का विश्वास हो । मैं जानता हूं कि एक स्वराज्य-दल को ही धारासभा में अपने कार्यक्रम को चलाने की पूरी सत्ता महासभा की तरफ से दी जाने से, बाकी और दलों की हालत जो कि महासभा में आना चाहती हैं, कुछ नाजुक जरूर हो गई है । लेकिन मैं समझता हूं कि इस से कोई छुटकारा न था । स्वराज्य-दल से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि महासभा में अपने मौजूदा हालात से फायदा उठाना छोड दे । आखिरकार वे अपने निज के लिए फायदा हासिल करना नहीं चाहते हैं बल्कि देश की सेवा के लिए । सब दलों की यही एक महत्वाकांक्षा (चाह) हो सकती है, दूसरी नहीं । इसलिए मैं उम्मीद करता हूं कि दूसरे तमाम दलों के लोग महासभा में शरीक हो कर अन्दर से देश की राजनीति पर अपना असर डालने का काम करें । विदुषी बेसेंटने इस मामले में कदम आगे बढा कर औरों के लिए रास्ता कर दिया है । मुझे मालूम है कि वे यदि चाहती तो बहुतसी बातें करा सकती थीं, मगर उन्होंने केवल इसी आशा पर सन्तोष माना कि महासभा में आ कर और उसके अन्दर काम कर के वे मतदाताओं को अपने मत का कायल कर सकेंगी । मेरी नाकिस राय में अपरिवर्तनवादी भी शुद्ध हृदय से मेरे और स्वराजियों के समझौते के हक में राय दे सकते हैं । अब देश के तमाम दलों के मिल कर काम करने लायक कार्यक्रम सिर्फ यही है—खादी, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और हिन्दुओं के लिए अस्पृश्यता निवारण । और क्या यही वे बातें नहीं हैं जिन्हें सब दल के लोग करना चाहते हैं ?

क्या यह महज सामाजिक सुधार (इसलाह) है ?

यह ऐतराज उठाया गया है कि इस कार्यक्रम के मंजूर करने से महासभा शुद्ध सामाजिक सुधार की संस्था बन जायगी । मैं इस राय से सहमत नहीं हूं । स्वराज के लिए जो जो बातें निहायत जरूरी हैं—वे महज सामाजिक बातें नहीं हैं । उनका महत्व उससे कहीं अधिक है और महासभा को उन्हें जरूर उठा लेना चाहिए । इसके अलावा यह तो किसीने कहा ही नहीं है कि महासभा अपनी तमाम शक्ति हमेशा के लिए सिर्फ इसी काम में लगा दे । तजवीज सिर्फ यह है कि महासभा को आगामी वर्ष में अपनी तमाम कार्य शक्ति (ताकत) रचनात्मक कार्य में अर्थात् जिसे मैंने दूसरे शब्दों में आंतरिक विकास का कार्य कहा है—लगा देना चाहिए ।

और यह बात भी नहीं कि इस समझौते में जिन तामीरी कामों का जिक्र है उन के सिवा कोई और रचनात्मक कार्य नहीं जिनको की महासभा अपने हाथ में न ले सके । जिन कामों का जिक्र अब मैं करूंगा वे हैं तो बडे ही महत्व के लेकिन उनके बारे में कोई मत-भेद नहीं है और स्वराज्य की प्राप्ति के लिए वे सर्वथा अनिवार्य नहीं हैं जैसे कि पूर्वोक्त तीन कार्य । इसीलिए समझौते में उनका जिक्र नहीं किया गया है ।

राष्ट्रीय शिक्षालय

इनमें से एक ऐसा कार्य है—राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं को कायम रखना । शायद जनता को यह बात न मालूम होगी कि खादी के बाद राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं को चलाने में सब से ज्यादा सफलता मिली है । जबतक थोडे भी विद्यार्थी रहेंगे ये संस्थायें बंद नहीं की जा सकती । प्रत्येक प्रान्त के नजदीक अपने विद्यालयों को जारी रखना अपनी इज्जत का सवाल होना चाहिए ।

असहयोग मुल्तवी कर देने का कुछ भी बुरा असर इन संस्थाओं पर न होना चाहिए । बल्कि इन्हें कायम रखने और उनको पुष्टि देने के लिए पहले से भी ज्यादा कोशिश होनी चाहिए । बहुत से प्रान्तों में राष्ट्रीय विद्यालय कायम हैं । अकेले गुजरात में ही एक ऐसा राष्ट्रीय विद्यापीठ है जिसमें १००,०००) सालाना खर्च होता है, ३ महा विद्यालय हैं और ७२ पाठशालायें हैं जिनमें ९,००० विद्यार्थी, शिक्षा पा रहे हैं । अहमदाबाद में उसने अपने लिए जमीन भी खरीद ली

है और २,०५,३२३) खर्च करके मकान भी बनवा रहा है। देश भरमें सबसे अच्छा और चुपचाप काम हुआ है असहयोगी विद्यार्थियों के द्वारा ही। उनका त्याग भी बहुत बडा और उच्च है। दुनियवी खयाल से शायद उन्होंने अपने शानदार भविष्य को नष्ट कर दिया है। पर मैं उन्हें यह कहूंगा कि राष्ट्रीय दृष्टि से उन्हें नुकसान के बनिस्बत फायदा ही अधिक हुआ है। उन्होंने विद्यालयों को इसीलिए छोडा था कि उन्हीं के जर्ये पंजाब में हमारे देश के युवकों को बे-इज्जत और जलील किया गया था। इन्हीं संस्थाओं में हमारी गुलामी की जंजीर की पहली कडी तैयार की जाती है। इसके मुकाबले में हमारी राष्ट्रीय संस्थायें, फिर चाहे उनकी व्यवस्था कैसी ही अपूर्ण क्यों न हो, उन कारखानों की तरह हैं जहां कि हमारी आजादी के पहले हथियार ढाले जाते हैं। कुछ भी हो, आखिर तो इन्हीं राष्ट्रीय संस्थाओं में पढने वाले लडके और लडकियों पर ही भविष्य की आशा निर्भर है। इसलिए मेरे खयाल में इन्हीं राष्ट्रीय संस्थाओं का रखना सबसे पहला हक है। लेकिन ये राष्ट्रीय संस्थायें तभी सच्चे मानों में राष्ट्रीय बनेंगी जबकि वे हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य को बढाने की तालीम देने के कलखघर बन जायं। इसी तरह उनको छोटे छोटे बच्चों को यह तालीम देने के पलना बनना चाहिए जहां कि उन्हें यह तालीम मिल सके कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म पर एक कलंक है और मनुष्यत्व के खिलाफ एक जुर्म है। कताई बुनाई के हुनर की तालीम देनी चाहिए जिससे कि लडके और लडकियां प्रवीण बन कर बाहर निकलें। अगर महासभा का विश्वास चरखा और खादी की शक्ति में ज्यों का त्यों कायम रहे तो इन संस्थाओं के मार्फत एक चरखा-शास्त्र तैयार हो जाने की आशा रखना अनुचित न होगा। ये संस्थायें खादी पैदा करने के कारखाने भी बनना चाहिए। यह कहने से यह मतलब नहीं कि लडके-लडकियों को किसी प्रकार की साहित्य आदि की शिक्षा न दी जाय। पर मैं यह बात भी जरूर कहूंगा कि दिमागी तालीम के साथ ही साथ हाथ और हृदय की शिक्षा भी मिलनी चाहिए। किसी राष्ट्रीय विद्यालय की उपयोगिता और पात्रता की परख उसके छात्रों और विद्वानों की सिद्धियों की चमक-दमक से नहीं होगी बल्कि राष्ट्रीय चारित्रबल और तांत, चरखे और करघे चलाने की निपुणता से होगी। इसलिए एक ओर जहां मैं इस बात के लिए बडा उत्सुक हूं कि कोई भी राष्ट्रीय विद्यालय बन्द न हो, तहां दूसरी ओर मुझे उस पाठशाला को बन्द करने में जरा भी हिचकिचाहट न होगी, जो गैर-हिन्दू लडकों को भरती करने की परवाह न करती हो और जिसने अछूत बालकों के लिए अपने दरवाजे बन्द रखे हों और जिसमें धुनकना और कातना शिक्षा के अनिवार्य (लाजमी) विषय न हों। अब वह समय चला गया जब कि हम सिर्फ पाठशाला के साइन-बोर्ड पर 'राष्ट्रीय' शब्द पढ कर और यह जान कर कि किसी भी सरकारी विश्वविद्यालय (युनिवर्सिटी) से उसका संबंध नहीं है और उसकी व्यवस्था में सरकार का कुछ भी हाथ नहीं है, सन्तोष मान लेते थे। मुझे यहां इस बात की ओर भी इशारा कर देना चाहिए कि आजकल बहुतेरी 'राष्ट्रीय' संस्थाओं में देशी भाषाओं तथा हिन्दुस्तानी के प्रति उपेक्षा रखने की प्रवृत्ति देखी जाती है। बहुत से शिक्षकों को देशी भाषाओं के या हिन्दुस्तानी के जरिये शिक्षा देने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। मुझे यह देख कर बडी खुशी होती है कि श्री गंगाधररावने राष्ट्रीय शिक्षा-शास्त्रियों की एक सभा करने का प्रबंध किया है जिसमें वे मेरी बताई इन बातों के मुताबिक एक दूसरे पर अपना तजरिबा जाहिर कर सकेंगे और यदि संभव हुआ तो उनकी तालिम और कार्य के लिए एक सर्व सामान्य योजना तैयार करेंगे।

बेकार असहयोगी।

राष्ट्र के आवाहन के अनुसार जिन वकीलों ने वकालत छोड दी है और जिन शिक्षकों, और दूसरे सरकारी नौकरों ने अपनी सरकारी नौकरियां छोड दी है, मैं समजता हूं कि उनके उल्लेख करनेका योग्य स्थान अब आ गया। मैं जानता हूं कि बहुत से शख्स ऐसे हैं जिन्हें अपनी गुजर करना मुश्किल हो रहा है। वे हर तरह से राष्ट्र की ओर से सहायता पाने के योग्य हैं। खादी मंडल और राष्ट्रीय विद्यालय ये दोनों कार्य ऐसे हैं जिसमें करीब करीब असंख्य ईमानदार मिहनती लोगोंका सिल्सिला लग सकता है, जोकि काम सीखने और मिहनत करने के लिए तैयार हैं और जिन्हें थोडी तनख्वाह से सन्तोष है। मैं देखता हूं कि राष्ट्रीय कार्य के निमित्त बिना कुछ लिए काम करनेकी प्रवृत्ति कुछ लोगों के अन्दर है। हां, उनकी अवैतनिक काम करनेकी इच्छा अवश्य ही सराहनीय है, लेकिन सब लोग ऐसा नहीं कर सकते। जो शख्स किसी काम को करता है वह जरूर उसके मिहनताना पाने के लायक है। कोई भी देश दिन-रात काम करनेवाले अवैतनिक कार्यकर्ताओं को हजारों की तादाद में पैदा नहीं कर सकता। इसलिए हमें ऐसा वायुमंडल तैयार करना चाहिए कि जिसमें कोई भी स्वदेश-सेवक देश की सेवा करने और उस के बदले वेतन स्वीकार करने में अपनी इज्जत समझे।

नशीली चीजें

इस के अलावा दूसरे राष्ट्रीय महत्व के विषय हैं अफीम और शराब का व्यापार। सन १९२१ में देश में जो उत्साह की लहर इस छोर से उस छोर तक फैली हुई थी वह यदि शान्तिपूर्ण बनी रहती तो हमें आज इन में दिन-ब-दिन बढती हुई तरक्की दिखाई देती। लेकिन दुर्भाग्य से हमारा शराब की दुकानों का पहरा छिपे छिपे हिंसात्मक हो उठा, क्योंकि खुल्लम खुल्ला तो हिंसा कर नहीं सकते थे। इसलिए पहरे का सिल्सिला बन्द कर देना पडा और अफीम और शराब की दुकानें फिर पहले की तरह फूलने-फलने लगीं। लेकिन यह सुन कर आपको खुशी होगी कि यह नशेबाजी को रोकने का काम बिल्कुल बन्द नहीं हो गया है। बहुत से कार्यकर्ता आज भी शान्ति के साथ निःस्वार्थ-भाव से चुपचाप नशेबाजी को रोकनेका काम कर रहे हैं। इतना होते हुए भी हमें यह जान लेना चाहिए कि जबतक स्वराज न मिलेगा हम इस बुराई को दूर न कर सकेंगे। हमारे लिए यह कोई फख्र (अभिमान) की बात नहीं है जो ऐसे अनीतिमूलक कार्यों की आमदनी से हमारे बच्चों को शिक्षा दी जाती है। धारासभा में गये हुए महासभा के सदस्य यदि साहस दिखा कर इस आमदनी को एकदम बिल्कुल ही बन्द कर देंगे—फिर भले ही उसकी आमदनी के अभाव में शिक्षणसंस्थाओं को एक भी पैसा न मिले, तो मैं उनके धारासभाओं में जाने की बात को प्रायः भूल जाउंगा। और यदि वे उतनी ही कमी फौजी खर्च में करने पर जोर देते रहेंगे तो शिक्षा-संस्थाओं को कुछ भी नुकसान न पहुंच सकेगा।

बंगाल का दमन

आपने यह देखा होगा कि अबतक मैंने जो कुछ कहा सिर्फ देश के आन्तरिक विकास के संबंध में ही कहा है।

लेकिन बाहरी परिस्थिति और उसमें भी खास कर हमारे राज्यकर्ताओं के काम का असर हमारे ध्येय पर उतना ही निश्चित होता है जितना कि आंतरिक विकास का, हालां कि वह असर विपरीत होता है। यदि हम चाहें तो उनके कार्यों से फायदा उठा सकते हैं; पर यदि हम उन के आगे झुक गये तो अपना ही नुकसान कर लेंगे। हमारे राज्यकर्ताओं का सब से ताजा काम है बंगाल में शुरु किया दमन। सर्व-दल परिषद् ने साफ साफ शब्दों में उस की

कैसे करना होगा ?

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)।
विदेशों के लिए	,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक २१

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, पौष सुदी ७, संवत् १९८१ गुरुवार, १ जनवरी, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बेलगांव के संस्मरण

जब कि बहुतेरे विचार मन में उठ रहे हों और वे सब प्रकाशित होने के लिए कोलाहल (शोरगुल) मचा रहे हों तब उन्हें प्रकाशित करनेवाले का काम ऐसा हो जाता है जिससे लोग किनाराकशी करते हैं । बेलगांव के अपने संस्मरणों को जाहिर करने के लिए पेन्सिल हाथ में लेते समय मेरी हालत ऐसी ही हो रही है । मैं सिर्फ उन्हें प्रकाशित करने की कोशिश भर कर सकता हूं ।

गंगाधररावजी देशपांडे और उनके साथियों की टोली ने वैसा ही काम किया जैसा कि इस मौके के अनुरूप करना चाहिए था । उनके विजयनगर को तो बस पूरी विजय-सफलता ही समझिए—स्वराज्य की अभी नहीं; पर संगठन की । हर छोटी बात भी विचार के बाद की गई थी । डाक्टर हर्डीकर के स्वयंसेवक तेज-तर्रार और अपने काम पर मुस्तैद थे । सड़कें चौड़ी और साफ सुथरी थीं वे और भी चौड़ी आसानी से की जा सकती थीं जिससे कि वहां के दुकानदारों और हजारों तमाशबीनों की भीड़ के आमदरफ्त में सहूलियत हो जाती । रोशनी का इन्तजाम पूरा पूरा था । विशाल सभा-मंडप और उसके सामने बड़ा संगमरमरी फव्वारा तमाम प्रवेश करनेवालों को अपनी ओर आकर्षित करता हुआ दिखाई देता था । मंडप में कम से कम १७०००, आदमियों की गुंजायश की गई थी । सफाई और तन्दुरस्ती का इन्तजाम यद्यपि बहुत अच्छा था, फिर भी इससे ज्यादह बाकायदा इन्तजाम की जरूरत थी । इस्तेमाल किये हुए पानी को निकालने का तरीका बहुत पहले जमाने का था । मैं कानपुर के लोगों का ध्यान इस तरफ खींचना चाहता हूं, जिन्हें कि १९२५ की महासभा की बैठक अपने यहां करने का सौभाग्य प्राप्त होनेवाला है । उन्हें चाहिए कि वे ऐसे पदार्थों की सफाई और तन्दुरस्ती कायम रखने के निहायत कारगर तरीकों पर अभी से गौर करते रहें और इस बड़े जरूरी काम को ऐनवक्त पर करने के लिए न रख छोड़ें ।

एक ओर जहां मैं बिला खटके बेलगांव महासभा के बहुत कुछ कामिल इन्तजाम की तारीफ करता हूं तहां दूसरी ओर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि गंगाधररावजी इस मोह से अपने को न बचा सके कि बाहरी ठाठ-बाठ में खूब रुपया खर्च किया जाय और बड़े माने जानेवाले लोगों के ऐशो-आराम के साधन मुहैया करने की पुरानी परिपाटी कायम रक्खी जाय । सभापति की झोंपड़ी को ही लीजिए । मैंने तो एक खादी की 'झोंपड़ी' का ही सौदा किया था; पर खादी का एक खासा महल ही तैयार कर के मेरी नजर की गई । सभापति के लिए जितनी लंबी चौड़ी जमीन रक्खी गई थी, वह बेशक जरूरी थी । उस 'महल' के आसपास जो हाता खींचा गया था वह भी बिलकुल जरूरी था, क्योंकि उसकी बदौलत उन लोगों की भीड़ से मेरी रक्षा होती थी जो मेरे प्रति प्रेम और आदर के कारण मुझे बहुत दिक और परेशान करने का बाइस होती है । लेकिन मैं निश्चय के साथ कहता हूं कि अगर उसका ठीका मेरे जिम्मे रहता तो इससे आधे खर्च में सभापति के लिए उतनी ही जगह और उतने ही आराम का इन्तजाम कर देता । ऐसी फजूलखर्ची की मैं और भी मिसालें दे सकता हूं । विषय समिति के सदस्यों तथा और सज्जनों की निहारी और जल-पान में भी ऐसी ही गैरजरूरी ज्यादाखर्ची दिखाई देती थी । जो जो चीजें परोसी जाती थीं उनमें तादाद की कोई कैद या लिहाज नहीं रक्खा जाता था । इसके लिए मैं किसीको दोष देना नहीं चाहता । इस फजूलखर्ची का उगम दर्यादिली से हुआ है । यह सब शुभ हेतु से किया गया था । चालीस बरसों का पुराना रवाज एक दिन में नहीं टूट सकता—जबतक कि ऐसा शख्स जिसकी बात लोग सुन सकें, लगातार उसपर टीका-टिप्पणी न करता रहे । मैं जानता हूं कि जब १९२१ में मैंने वल्लभभाई से कहा था कि गुजरात ही इस बारे में आगे कदम बढावे तो उन्होंने जवाब दिया था कि जहां मैं सादगी दाखिल करने और फजूलखर्ची न होने देने की कोशिश करूंगा तहां मैं अपने प्रिय गुजरात को कंजूस कहलाने का अवसर भी न दूंगा । मैं उन्हें यह बात न समझा सका कि यदि वे कई हजार रुपये खर्च कर के फव्वारा न लगावेंगे तो कोई उन्हें कंजूस न कहेगा । मैंने उनसे यह भी कहा था कि आप जो कुछ करेंगे उसका अनुकरण और जगह भी होगा । पर वल्लभभाई कंजूस कहलाने का कलंक अपने सिर लेने को तैयार न हुए । अब मैं कानपुर को सलाह देता हूं कि वह इसमें आगे बढ़ कर रास्ता खोल दे । कानपुर की कंजूसी दूसरे दिन कजूस-

खर्ची मानी जा सकती है । हां, वल्लभभाई ने भी बहुत सी बातें छोड़ दी थीं । और उन चीजों की निस्बत जिनकी जरूरत दर असल न महसूस हुई कोई शिकायत मेरे कान पर न आई ।

हमें यह बात याद रखना चाहिए कि महासभा की मन्शा उन लोगों को प्रतिनिधि बनाना है जो गरीब से गरीब हैं, मिहनत मशक्कत करते हैं और जो कि भारत के जीवन-प्राण हैं । सो हमारा पैमाना ऐसा होना चाहिए जो उनके मुआफिक आ सके । इसलिए कम खर्च की ओर अपना कदम दिन ब दिन आगे बढ़ाना होगा; पर इसतरह कि न तो हमारे काम में खराबी पैदा हो और न जरूरी बात में आगा-पीछा करें ।

मेरी राय में रहने और खाने का खर्च जो अभी देना पड़ता है बहुत भारी है । हमें इस बारे हमें स्वामी श्रद्धानन्दजी से नसीहत लेनी चाहिए । मुझे याद है कि उन्होंने अपने गुरुकुल के १९१६ के वार्षिकोत्सव में आनेवाले मिहमानों के लिए किस तरह के छप्पर बनवाये थे । उन्होंने, मैं समझता हूं, कोई २०००) में फूस के छप्पर बनवा डाले थे । उन्होंने भोजन के लिए दुकानें अन्दर खुलवा ली थी और रहने का कुछ भी दाम किसीसे नहीं लिया था । उस इन्तजाम पर किसीको कुछ शिकायत न हो सकती थी । वे जानते थे कि हमें किन किन चीजों की उम्मीद रखनी चाहिए ।

इस तरह कोई ४०,००० लोग गुरुकुल के मैदान में बिना किसी तरह की दिक्कत और प्रायः बिना किसी प्रकार के खर्च के रह सके थे । और इससे अधिक बात और क्या हो सकती थी कि हर शख्स जो चीज चाहता था मिल जाती थी और वह अपनी मरजी के मुताबिक थोड़ा या ज्यादह खर्च उठा कर रह सकता था ।

मैं यह नहीं कहता कि स्वामीजी की तजवीज की हरफ-ब हरफ नकल की जाय । पर मैं यह जरूर कहता हूं कि बेहतर और ज्यादह सस्ते इन्तजाम की निहायत जरूरत है । प्रतिनिधियों की फीस के १०) से १) कर दिये जाने पर सब लोग उछल पड़े थे । और मुझे यकीन है कि रहने और खाने के खर्च में कमी करना लोगों के दिलों को और भी ज्यादह पसन्द होगा ।

सो फिर आमदनी की तदबीर क्या हो ? हर एक प्रेक्षक के लिए एक छोटी प्रवेश-फीस रक्खी जाय । महासभा को एक तरह का सालाना मेला सा हो जाना चाहिए जिसमें दर्शक लोग बाफिजाब आवें और दिल-बहलाव के साथ साथ अच्छी अच्छी बातें सीख कर जायं । महासभा का विचार या चर्चावाला हिस्सा एक ऐसी मद होनी चाहिए जिस के साथ साथ दिखाने वाला हिस्सा चलता रहे । और इसलिए इस साल की तरह वह ठीक वक्त पर होजाना चाहिए और उसकी पाबन्दी धार्मिक भाव से होनी चाहिए । मैं निश्चय के साथ नहीं कह सकता कि तमाम सभा—सम्मेलनों—(जलसों) को एक ही सप्ताह के अन्दर भर देने से कोई कौमी काम बनता हो । मेरी राय में सिर्फ वही जलसे महासभा-सप्ताह में रखने चाहिए जिनसे महासभा की ताकत बढ़ती हो । सभापति (सदर) और उनके मन्त्रिमण्डल से यह उम्मीद न रखना चाहिए कि वे महासभा के काम के अलावा और बातों में भी ध्यान दे सकेंगे । मैं जानता हूं कि अगर मेरा वक्त और और बातों में न लगाना पड़ता तो मैं अपने सौंपे काम को ज्यादह अच्छी तरह कर पाता । मुझे सोचने-विचारने के लिए एक लहमा (क्षण) वक्त नहीं बच रहा था । इसीसे मैं कताई के द्वारा मताधिकार को सफल बनाने के लिए जरूरी सिफारिशों का खाका तैयार न कर सका । बात यह है कि दूसरी परिषदों के व्यवस्थापक अपने काम में संजीदगी के साथ नहीं लगते । वे उन परिषदों को केवल इसीलिए करते हैं कि यह एक फैशन हो गया है । मैं जुदे जुदे क्षेत्रों के तमाम कार्यकर्ताओं (कारकुनों) से इसरार (आग्रह) करूंगा कि वे हर साल की अपनी शक्ति की इस फजूलखर्ची से बाज आवें ।

देशी हुनर और उद्योग की नुमाइश एक ऐसी चीज है जिस की बढ़ती साल हरसाल होनी चाहिए । संगीत के जलसों ने हजारों लोगों का मनोरंजन किया होगा । चित्रों के द्वारा किये गये भाषण, जिनमें हमारे देश के सबसे बड़े कौमी धन्धे—वस्त्रकला के सत्यानाश के शोकान्त इतिहास का तथा उसके पुनरुद्धार की संभावनाओं का दिग्दर्शन कराया जाना एक यथा-स्थान, उपदेशप्रद और मनोरंजक चीज थी । सतीश बाबू ने जिसतरह विचार-पूर्वक और भलीभांति उन व्याख्यानों की तजवीज की थी, उसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूं । कताई की बाजी भी एक चिरस्थायी अंग हो जाना चाहिए । यह बाजी लोगों को कितनी पसन्द हुई यह बात उसमें शरीक होनेवाले लोगों की तादाद और उसके उम्दा नतीजों से तथा उसे आश्रय देनेवालों की संख्या से भलीभांति जानी जाती है । इस चरखा-आन्दोलन के बदौलत भारत की स्त्रियां अपने एकान्तवास से जिसतरह बाहर निकल रही हैं उस तरह किसी और उपाय से न निकल पातीं । ११ इनाम पानेवालों में से ४ स्त्रियां थीं । इससे उन्हें जो गौरव (हुरमत) और आत्म-विश्वास मिला वह किसी भी विश्व-विद्यालय की उपाधि से न मिल पाता । वे इस बात को जानती जा रही हैं कि हमारी सक्रिय सहायता भी उतनी ही अपरिहार्य (जरूरी) है जितनी कि पुरुषों की सहायता और इससे भी अधिक बात यह कि उनके द्वारा यह सहायता, यदि ज्यादह नहीं तो कम से कम पुरुषों के जैसी ही आसानी से दी जा सकती है ।

इन विचारों को खतम करने के पहले मैं एक बात का जिक्र किये बिना नहीं रह सकता । महासभा की छावनी में मैला उठाने के काम में कोई ७५ स्वयंसेवक लगे हुए थे, जिनमें ज्यादह तर ब्राह्मण थे । हां, म्युनिस्पल्टी के भंगी भी जरूर लिये गये थे; परन्तु इन स्वयंसेवकों का रखना भी जरूरी समझा गया था । काका कालेलकर जिनके कि जिम्मे यह काम सौंपा गया था, कहते हैं कि मैला-सफाई का काम इतनी अच्छी तरह न हो पाता अगर यह स्वयंसेवकों की टुकड़ी न खड़ी की गई होती । उन्होंने यह भी कहा कि स्वयंसेवकों ने यह काम बड़े खुशी खुशी किया । उस काम को करने में किसीने भी आगा-पीछा न किया, हालांकि मामूली तौर पर उसके लिए बहुत कम लोग तैयार होते हैं । और एक लिहाज से तो यह काम दूसरे तमाम कामों से कहीं ऊंचे दरजे का है । इसमें कोई शक नहीं कि सफाई और तन्दुरुस्ती संबंधी काम स्वयंसेवकों की तमाम तालीम की बुनियाद समझी जानी चाहिए ।

(य. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

पंजाब में 'हिन्दी-नवजीवन' मुफ्त

भिवानी के श्रीयुत मेलाराम वैश्य सूचित करते हैं कि पंजाब के सार्वजनिक पुस्तकालयों और वाचनालयों को 'हिन्दी-नवजीवन' उनकी तरफ से मुफ्त दिया जायगा ।

नीचे लिखे पते पर वे अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिख कर भेजें—

व्यवस्थापक 'हिन्दी-नवजीवन'

टिप्पणियां

दो वचन (वादे)

तामिल के एक प्रतिनिधि ने एक वचन दिया है। वह यह है—"मैं, ३० अप्रेल १९२५ के पहले, मदुरा शहर में दस हजार चरखे चलवा दूंगा।"

आपका सदा का भक्त
एल. के. तुलसीराम

तामिल के प्रतिनिधियों की एक सभा में श्री. तुलसीराम ने यह चिट्ठी मुझे दी थी। दस हजार चरखे चलवाने के दरअसल मानी हैं उतने सदस्य बनाना। यदि मदुरा शहर ही से दस हजार सदस्य मिल सकते हैं तो सारे तामिल-नाड से कितने सदस्य मिल सकेंगे ?

दूसरा वचन जो इससे भी अधिक महत्व का है मौ० जाफरअली खां की तरफ से मिला है। उन्होंने बड़ा गंभीर वचन दिया है कि आपका कार्य-काल खतम होने के पहले मैं २५००० मुसलमान कातनेवालों को सदस्य बना लूंगा। यदि मौलाना का इसमें सफलता मिली तो वे बड़ी से बड़ी मुबारकबादी पाने के हकदार होंगे—इसलिए नहीं कि पंजाब में २५००० मुसलमान सदस्यों की सख्या कोई बड़ी संख्या है, बशर्ते कि लोगों को इस का स्वाद लगे, बल्कि इसलिए कि जब कि इतने लोग कताई से किसी आफत के आ जाने का बुरा भविष्य करते हैं तब उनका इस प्रकार गंभीर वचन देना मेरी राय में सचमुच अद्भुत बात है। मैंने मौलाना से कह दिया है कि यदि आप अपना वादा तोडेंगे तो इसके लिए मुझे उपवास करना होगा। उन्होंने कहा, मैं यह नहीं चाहता कि आप खुदकुशी (आत्महत्या) कर लें। यदि मैं उसे पूरा करना न चाहता होता और उसका पूरा करना मुझे असंभव मालूम होता तो मैं यह वादा ही न करता। मैं चाहता हूं कि हरएक प्रान्त से ऐसे वचन मिलें। लेकिन जोश में आ कर कोई वचन न दें। जब तक वादे के साथ अटल निश्चय-बल न हो तब तक वचन देने का कुछ भी अर्थ नहीं होता। मैं यह जानता हूं कि लड़ाई के वक्त अधिकारियों की तरफ से प्रत्येक प्रान्त का हिस्सा मुकर्रर किया जाता था और प्रान्तों को उतना धन-जन देना पडता था। उसमें उनको कितना देना होगा यह मुकर्रर था और न देने पर उसके साथ सजा भी लगी रहती थी। परन्तु, क्या इसलिए कि प्रान्तों को खुद ही अपना हिस्सा आप मुकर्रर करने के लिए कहा गया है और इसलिए कि वादा तोडने पर कोई सजा तजवीज नहीं की गई है, उन्हें थोडा काम करना चाहिए ?

(यं० इं०) मो० क० गांधी

एक नमूना

बाबू हरदयाल नाग ने गांधीजी को एक खत भेजा था, जिस में उन्होंने अपने बेलगांव न आ सकने के कारण इस प्रकार बताये थे—एक तो मैं परिषदों से घबड़ा गया हूं। दूसरे मैं महज 'दिल्ली बातें करने के लिए' अपना खादी का काम छोडने के लिए अपने दिल को तैयार नहीं कर सकता। तीसरे मैं आपके खिलाफ राय नहीं देना चाहता। चौथे, कलकत्तेवाले समझौते को अब नाटक ही समझना चाहिए। पांचवें, मैं असहयोग को मुल्तवी कराने में साथ नहीं दे सकता। कट्टर असहयोगियों का नाम-निशान मिटा देने के सिवा असहयोग को मुल्तवी करने की जरूरत मुझे नहीं दिखाई देती। छठे, हिन्दू-मुस्लिम-एकता के बारे में मेरे विचार बिलकुल जुदे हैं जो कि कितने ही महासभा के अगुओं से नहीं मिलते हैं। आठवें, [illegible]

'काजल की कोठरी' में रहते हुए भी अपने को धब्बा न लगने दे सकते हैं—पर मेरी हालत ऐसी नहीं। आठवें, मैं बहुमति के नियम के खिलाफ में हूं। और बेलगांव में, मुझे मालूम हुआ है कि ऐसे किसी नियम की पाबन्दी नहीं होगी। और नवें बेलगांव आने की बनिस्बत यहां रह कर खादी पैदा करने में मेरे रुपये और समय का अधिक सदुपयोग होगा। बंगाल की प्रान्तिक समिति जोकि स्वराजियों के हाथ में है, कताई और बुनाई के प्रचार में शायद ही कुछ मदद देती है। बंगाल से प्रायः सब सूत भेजनेवाले लोग कट्टर असहयोगी और उनके मित्र ही हैं।

अन्त में नाग बाबू जनवरी में किसी समय बंगाल आकर कट्टर असहयोगियों से मिलने और बंगाल के कुछ हिस्से में दौरा करने का अनुरोध करते हुए अपना पत्र खतम करते हैं।

इस पर गांधीजी यं. इं में इसतरह टिप्पणी करते हैं—

"बाबू हरदयाल नाग एक बांके असहयोगी हैं। उनके मनोवृत्ति को कितने ही अपरिवर्तनवादियों का नमूना समझिए। उनके इन विचारों को पढकर मैं उनके बेलगांव न आने के फैसले का समर्थन किये बिना नहीं रह सकता। हां, असहयोग को मुल्तवी तक रखने के बारे में उनकी नाराजगी की मैं जरूर कदर करता हूं। अच्छा होता, यदि यह नाराजगी और भी होती। सारे राष्ट्र के कार्यक्रम के तौरपर मैं जो इसे मुल्तवी कर रहा हूं सो इसलिए नहीं कि यह मुझे अच्छा मालूम होता है, बल्कि परिस्थिति ने मुझे मजबूर कर दिया है। अब यह व्यक्तियों के जिम्मे रह जाता है कि वे अपने आचरण के द्वारा और अहिंसात्मक बने रह कर उसकी सफलता दिखावें और यदि जरूरत हो तो फिर उसे राष्ट्रीय स्वरूप दें। मैं बाबू हरदयाल से तथा उन लोगों से जो उनके से खयालात रखते हैं, कहूंगा कि वे अपने प्रतिपक्षियों पर दुष्टता का आरोप करने में बहुत सावधानी से काम लें। "आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्" यह सर्वोत्तम नियम है। जिनपर हम दुष्टता का आरोप करते हैं वे उलट कर आम तौरपर हमपर भी वही आरोप करते हैं जो हमने उनपर किया था। पर यहां भी मैं यह बात जरूर मानता हूं कि यदि कोई किसीको बजकेप दुष्ट मानते हों तो फिर उसे यों असहयोग किये बिना चारा नहीं है, क्योंकि बदकिस्मती से दुनिया में बहुतेरी बातें अपनी अपनी मनोदशा के अनुसार ही करनी पडती हैं। यदि मैं रस्सी को गलती से सांप समझ लूं तो मुमकिन है कि घबड़ाहट के मारे मेरी हवाइयां उड़ने लगें, और मैं अपने साथ खडे लोगों के मनोरंजन का साधन बन बैठूं जो कि जानते हैं कि वह दरअसल रस्सी है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः।" अब बंगाल की महासभा—संस्थाओं की शिकायत से जहांतक ताल्लुक है, आज जो कुछ भी हालत हो, यदि हाथ-कताई मताधिकार का हक हो जाय तो महासभा की ऐसी कोई संस्था कायम नहीं रह सकती जो हाथ-कताई को प्रोत्साहित न करेगी और उसका संगठन न करेगी।

और मेरे बंगाल आने के संबंध में, ज्योंही मौका मिलेगा मैं जुदे जुदे जिलों में भ्रमण करने के लिए आऊंगा। पर वक्त मुकर्रर कर देना मेरे लिए मुश्किल है। २३ जनवरी के बाद कोहाट के आश्रित हिन्दुओं का काम मेरे जिम्मे है। और उसके पहले का कोई दिन खाली नहीं है। और यह कहना कठिन है कि पंजाब की यात्रा पूरी हो जाने के बाद भाग्य मुझे कहां कहां ले जायगा।"

एक इनाम

मेरे अनुरोध करने पर श्री. रेवाशंकर जगजीवन जवेरी ने 'चरखा और खादी का सन्देश' इस विषय पर सब से बढ़िया निबंध लिखने वाले को १०००) पुरस्कार देना स्वीकार किया है। निबंध में इस उद्योग के नाश का इतिहास शुरू से देना होगा और उसके पुनरुद्धार की क्या संभावना है, इसपर बहस करनी होगी। आगे की और बातें अगले अंक में प्रकाशित की जायंगी। मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष सुदी ७, संवत् १९८१

कैसे करना होगा?

महासभा ने एक बहुत ही बड़ा कदम आगे बढ़ाया है या जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, उसने एक पागल आदमी के कहने से बड़ी भारी बेवकूफी कर डाली है। महासभा के सदस्यों को, चाहे वे इच्छापूर्वक कातें या अनिच्छापूर्वक, कातने की शर्त को पूरा करके इस कदम को सही साबित करना होगा। जो काम अब तक कुछ ही लोग कर रहे थे वह अब महासभा के तमाम सदस्यों को करना होगा। महासभा अपने हरएक सदस्य से व्यवस्थित तौर पर मजदूरी करने की आशा रखती है। यदि वह उस मजदूरी को करने के पर रजामन्द नहीं है तो उसे दूसरे की मजदूरी खरीद कर—दूसरे से सूत कता कर, देनी होगी।

पर यह काम स्पष्टतः बड़ा मुश्किल है। यदि यह आसान होता तो इसके सफल होने पर जिस बड़े नतीजे की आशा रक्खी जाती है उसका रखना ही संभव न होता। जब साल में सिर्फ चार चार आने इकट्ठा करने पड़ते थे तब भी तो यह काम मुश्किल ही मालूम हुआ था। और आज सब प्रान्तों में मिला कर ५०,००० भी ऐसे सदस्य महासभा के रजिस्टर में दर्ज नहीं हैं। अब महासभा अपने हर सभासद से यह उम्मीद रखती है कि वह माहवार २००० गज सूत कातेगा या अपनी तरफ से दूसरों से कता कर उतना ही सूत देगा। इसतरह कार्यकर्ताओं को कातनेवालों के संबंध में लगातार आना होगा और मेरी राय में सदस्यता की इस शर्त का जो कुछ भी बल है वह इसीमें है। इससे लोगों को बड़े ऊंचे ढंग की राजनैतिक (सयासी) शिक्षा मिलती है।

अब हरएक प्रान्त के लिए यकीनन् सफलता प्राप्त करने का रास्ता यह है कि जितने मतदाताओं की उम्मीद वह रखता हो उनकी कम से कम तादाद मुकर्रर कर ले और जबतक इतने मतदाता न मिले तबतक दम न ले। अब सारे हिन्दुस्तान में कम से कम तादाद गिनने पर भी कोई ५०,००,००० चरखे तो चलते ही होंगे। ये सब कातनेवाले आसानी से महासभा के सदस्य बन सकते हैं। जो लोग उनसे काम लेते हैं वे अब उन्हें कह सकते हैं कि कौम के लिए आप अपना सिर्फ आधा घण्टा कताई में सर्फ करें। इस के लिए किसी नये संगठन की जरूरत न होगी। रुई, पूनियां, आदि तो तैयार ही हैं। इन्तजाम सिर्फ इतना ही करना होगा कि स्वेच्छा-पूर्वक कातनेवालों या सदस्य बनने के लिए कातने वालों को जितनी पूनियां चाहिए वे महासभा को भेंट में मिलें। कातने वालों से तो सिर्फ २००० गज सूत कातने की मजदूरी ही मुफ्त मांगी गई है। फिर ऐसे लोग भी हैं जो सूत कातने का पेशा तो नहीं करते हैं पर जो अपनी खुशी से सूत कातते हैं। अब जो लोग आज कात रहे हैं उन्हें अपने मित्रों और पड़ोसियों से कातने के लिए और महासभा के सदस्य बनने के लिए कहना होगा। हरएक कार्यकर्ता २० कातने वालों की मंडली—क्लबघर बना कर यह काम कर सकता है। यह क्लब पर छोटे और भरे-पूरे होना चाहिए जिससे कि वे अच्छा काम कर सकें। उसको शुरू करनेवाले सदस्य को धुनकना और कातना अच्छी तरह आना चाहिए; क्योंकि पहले-पहल रुई इकट्ठा करना, धुनकना, पूनियां बनाना और क्लब के सदस्यों में उन्हें बांट देना, इन कामों का सारा बोझ उसीपर रहेगा। तीसरे किस्म का काम है जो लोग इच्छा न होने के कारण नहीं कातते उनके लिए इन्तजाम करना। जो लोग सच्चे हैं और कातना नहीं चाहते वे तो कुदरती तौर पर अपने घर में से ही किसीको अपने बजाय कातने के लिए ढूंढ निकालेंगे। इससे वे यकीनन् अच्छा और सचमुच ही हाथ से कता सूत दे सकेंगे। इससे दूसरे दरजे के लोग जिन्हें कातने की इच्छा नहीं है, अपने बजाय कातने के लिए एक कुशल कातनेवाले को लगा रक्खेंगे। और आखिरी दरजे के लोग वे हैं जो बाजार से सूत खरीद कर देंगे और इस तरह हाथ से कते सूत के बजाय दूसरे सूत को भी खरीदने की जोखिम उठावेंगे। महासभा के जो सदस्य कातना नहीं चाहते उन्हें हमारे सर्व-सामान्य ध्येय की दुहाई दे कर मैं यह चेता देता हूं कि वे इस आखिरी तरीके से बाज रहें। इस आखिरी दरजे के लोगों का सदस्य बनना आसान बात है और यदि बहुतेरे लोग इससे फायदा उठावेंगे तो इससे दगाबाजी सरे आम चल पड़ेगी और इस घरेलू धंधे के साथ जो इतनी मुश्किलों का सामना करते हुए आगे बढ़ रहा है, बड़ा अन्याय होगा। मुझे तो यह आशा है कि ऐसे बहुत ही थोड़े लोग होंगे जो महासभा और देश के लिए कातना न चाहेंगे। सदस्यता की इस शर्त में 'अनिच्छा' शब्द को सिर्फ इसलिए स्थान मिला है कि जो महासभा के पुराने सदस्य हैं और जो यदि महासभा को छोड़ना चाहें तो भी मैं उन्हें छोड़ने नहीं देना चाहता उनकी मुश्किलें हल हो जायं। लेकिन मैं तो यह उम्मीद रक्खूंगा कि इस (कातने की) 'अनिच्छा' को प्रोत्साहन न मिलेगा और सिर्फ हाथ से कता सूत पैदा होने से आलसी और नंगे-भूखे काम नहीं करने लग जायंगे। लाखों को चरखा चलाने के लिए उत्साहित करने को शारीरिक मिहनत करने का और वह भी हाथ से सूत कातने की मिहनत करने का वायुमंडल आवश्यक है। और ऐसा वायुमंडल तैयार करने का यही सबसे उत्तम तरीका है कि महासभा के सदस्य स्वयं कातने में अपनी इज्जत समझने लगें।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

देव और असुर

महासभा की बैठक शुरू होने के पहले यह लेख मैं लिख रहा हूं और इस समय बहुतेरे ख्याल मेरे दिमाग में उमड़ रहे हैं। आज सोमवार—मेरा मौन दिन है। अभी महासभा की बैठक के चार दिन बाकी हैं। बिल्कुल सुबह का वक्त है। खुदा और शैतान–(पारसियों के) अहुरमज्द और अहरिमान की हमेशा की लड़ाई मेरे दिल में जोर–शोर के साथ हो रही है, और वह उनके दूसरे बेशुमार रण–क्षेत्रों की तरह एक खासा मैदाने–जंग हो रहा है। दो दिन तक मैंने 'अपरिवर्तनवादियों' से बातचीत की। उन्हें मैं बड़े कीमती दिन मानता हूं। सरोजनी देवी फरमाती हैं कि 'अपरिवर्तनवादी' एक खराब लफ्ज (शब्द) है। मैंने उनकी बात को मान लिया और ज्यादह मीठा शब्द लोगों के सामने पेश करने का बोझ उनकी काव्य–प्रतिभा (शायरी) पर छोड़ दिया। एक आवाज मेरे दिल में कहती है कि "तुम्हें जो अपना फर्ज (कर्तव्य) दिखाई दे उसीको अगर तुम अदा (पालन) करते रहे और दूसरी फजूल बातों की चिन्ता (फिक्र) न करते रहे' तो सब काम ठीक ही होगा।" दूसरी आवाज उठती है "तुम महज बेवकूफ हो। तुम्हें न तो स्वराजियों की बात माननी चाहिए और न अपरिवर्तनवादियों का भरोसा करना चाहिए। स्वराजी लोग तुम्हारे मुंह पर बात बना देते हैं–वे करना धरना कुछ नहीं चाहते। और अपरिवर्तनवादी तुम्हें ऐन मौके पर आफत में फंसा कर अलग हो जायंगे। इन दोनों में बेचारे तुम्हारे चरखे के धुर्रे उड़ जायगे। इसलिए बेहतर होगा कि तुम मेरी सीख मानो और महासभा से अलग हो जाओ।" लेकिन मैं उस पहली बात को मानूंगा। अगर स्वराजियों ने मुझे धोखा दिया या अपरिवर्तनवादियों ने मेरा साथ छोड़ दिया तो क्या मुजायका है? नुकसान उन्हींका होगा, मेरा नहीं। पर अगर मैं श्रीमान् व्यवहार–चतुर महाशय की नसीहत पर ध्यान दूं तो मैं पहले से ही सब खो बैठा हूं। मैं कल के ख्वाब तो अभी से देख लेना नहीं चाहता। मेरा मतलब सिर्फ आज की चिन्ता रखने से है। ईश्वर ने मुझे आनेवाली घड़ियों पर कब्ज़ा नहीं दे रक्खा है। ऐसी हालत में मुझे जरूर स्वराजियों की बात पर इतमीनान रखना होगा जैसा मैं चाहता हूं कि वे मेरी बात पर ऐतबार करें। मैं अपरिवर्तनवादियों पर भी कमजोरी का इल्जाम लगाने का साहस नहीं कर सकता; क्योंकि मैं नहीं पसंद करता कि वे मुझे कमजोर ख्याल करें। इसलिए मुझे स्वराजियों की ईमानदारी और अपरिवर्तनवादियों की ताकत दोनों पर ऐतबार (विश्वास) रखना होगा।

हां, यह बात सच है कि बहुत बार लोगों ने मेरे साथ दगाबाजी की है। बहुतों ने मुझे धोखा दिया है और कितने ही कच्चे साबित हुए हैं। लेकिन उनके संसर्ग (सोहबत) पर मुझे पछतावा नहीं है। क्योंकि जिस तरह मैं सहयोग करना जानता था उसी तरह असहयोग करना भी जानता था। इस दुनिया में रहने और बरतने का सबसे ज्यादह अमली और शरीफाना (गौरवपूर्ण) तरीका यही है कि लोग जो मुंह से कहें उसपर ऐतबार करें–जब तक कि उसके खिलाफ पक्के वजूहात (कारण) आपके पास न हों।

सो, मेरी दिक्कत यह नहीं कि किसपर ऐतबार करूं और किस पर न करूं। मेरी कठिनाई तो यह है कि दरअसल आधे दर्जन भी ऐसे अपरिवर्तनवादी मुश्किल से होंगे जो सोलहों आना, या कुल मिलाकर मेरे और स्वराजियों के दरम्यान समझौते से खुश हों। उन्हें सच्चे दिल से अपने मनमें शुबह (सन्देह) है। मेरी उनके साथ हमदर्दी है; फिर भी मैं समझता हूं कि उस समझौते पर कायम रह कर मैं ठीक ही कर रहा हूं। अगर उनसे हो सकता तो वे मुझसे अलग हो जाते; पर वे ऐसा नहीं कर सकते। हम एक दूसरे से इस प्रकार बंधे हुए हैं कि छुटाये छूट नहीं सकते। अपने विचारों को एक ओर रखकर वे मेरे फैसले पर विश्वास रखना चाहते हैं। यह हालत सचमुच उलझन बढानेवाली है। यह मेरी जिम्मेवारी को हजार गुना बढा देती है। पर मैं उन्हें यकीन दिलाता हूं कि मैं अपनी जान में उनके साथ विश्वासघात (दगाबाजी) न करूंगा। मैं ऐसा कोई काम न करूंगा जिससे देश के हित या नाम को धक्का पहुंचता हो। सब से ज्यादह तसल्ली तो मैं उन्हें यह कह कर दे सकता हूं यदि वे खुद अपनेतईं सच्चे बने रहेंगे तो सब काम ठीक ही होगा। हर अपरिवर्तनवादी अपना शुरूवाती फर्ज अदा कर चुकेगा, अगर वह हिन्दू–मुस्लिम–एकता का पालन करेगा, अपना तमाम फुरसत का वक्त सूत कातने, खादी–विद्या को जानने में लगावेगा और खादी पहनेगा तथा हिन्दू सज्जन अपने अछूत भाई को अपने ही जैसा चाहेगा। इतना काम तो हममें से हर शख्स बिना किसी की इमदाद के कर सकता है। खुद अमल करने से बढ़कर कोई तकरीर (वक्तृता) और प्रचार का साधन (जर्या) नहीं। यह हर शख्स दूसरे की तरफ से बिला दिक्कत और तबालत के कर सकता है। दूसरों की चिन्ता न करना अहुरमज्द—देव—का रास्ता है। अहरिमान हमें अपनेसे दूर ले जाकर अपने जाल में फांस लेता है। ईश्वर न काबा में है, न काशी में है। वह तो घट घट में व्याप्त है–हर दिल में मौजूद है। इसतरह स्वराज्य भी अपना ही दिल खोजने से मिलेगा–औरों के–अपने साथियों के भी भरोसे बैठे रहने से नहीं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

महासभा के प्रस्ताव

दास–गांधी–समझौता

(१) यह महासभा महात्मा गांधी और स्वराज्य–दल की ओर से देशबन्धु दास और पं. मोतीलाल नेहरू के दरम्यान हुए नीचे लिखे समझौते को बरकरार रखती है।

(२) महासभा को यह उम्मीद है कि इस समझौते के बदौलत महासभा के दोनों दलों में सच्ची एकता हो जायगी और दूसरी राजनैतिक (सयासी) संस्थाओं (जमातों) के लोगों को भी महासभा में शरीक होने की सहूलियत होगी।

महासभा स्वराजियों को तथा दूसरे लोगों को जो कि १८१८ ई. के कानून ३ या नये फरमान की रू से पकड़े गये हैं, बधाई देती है और यह राय जाहिर करती है कि ऐसी गिरफ्तारियां तबतक नहीं रुक सकती जबतक कि हिन्दुस्तान के लोगों में अपनी आजादी और अपने दरजे को संभालने की ताकत नहीं आ जाती और उसकी यह भी राय है कि मुल्क (देश) की मौजूदा हालत में यह कूवत (क्षमता) तमाम विदेशी कपड़े के, जिसने कि एक अरसे से अपने पांव यहां जमा रक्खे हैं, छोड़ने से ही आ सकती है। अतएव इस राष्ट्रीय हेतु (कौमी गरज) को पूरा करने के दृढ निश्चय (इस्तकलाल) और सरगर्मी के चिह्न–स्वरूप (बतौर निशान के) हाथ–कताई के मताधिकार में शरीक किये जाने का स्वागत (इस्तकबाल) करती है और हर शख्स से प्रार्थना (अपील) करती है कि वे इसको अपना कर महासभा में शरीक हों।

(३) ऊपर लिखी बातों को मद्देनजर (ख्याल में) रखते हुए महासभा हर हिन्दुस्तानी मर्द और औरत से यह उम्मीद

रखती है वह तमाम विदेशी कपड़े को छोड़ दे और महज हाथ-कती-बुनी खादी को ही पहने और इस्तेमाल करे। और इस गरज (हेतु) को बिला देरी पूरा करने के खयाल से महासभा अपने तमाम सदस्यों (मेंबरों) से उम्मीद करती है कि वे हाथ-कताई तथा उससे पहले की तमाम विधियों में तथा खादी की पैदावार और बिक्री में मदद देंगे।

(४) महासभा हिन्दुस्तान के तमाम राजों-महाराजों, धनी-रईसों आदि और उन तमाम राजनैतिक (सयासी) तथा दूसरी संस्थाओं (जमैयत) से जो कि महासभा में शामिल नहीं हैं, तथा म्युनिस्पालिटियों, लोकल बोर्डों, पंचायतों तथा दीगर (अन्य) ऐसी संस्थाओं से दरख्वास्त करती है कि वे खुद हाथ-कती-बुनी खादी इस्तैमाल करके तथा और तरीके से और खास कर उन कारीगरों को अच्छा आश्रय दे कर जोकि अब भी बच रहे हैं और नफीज खादी पर बढ़िया कारीगरी कर के दिखा सकते हैं, हाथ-कताई और खादी के प्रचार में सहायता करें।

(५) महासभा उन व्यापारियों से जो कि विदेशी कपड़े और सूत की तिजारत करते हैं, दरख्वास्त करती है कि वे राष्ट्र के हित की कदर करें और अब आगे विदेशी कपड़ा व सूत न मंगावें और खादी का रोजगार करके कौमी घरेलू धंधे को मदद करें।

(६) महासभा पर यह बात जाहर हुई है कि मिलों में और हाथ-करघों पर ऐसा तरह तरह का कपड़ा तैयार किया जाता है जो कि हिन्दुस्तान में खादी बताकर बेंचा जा रहा है। इसलिए महासभा ऐसे तमाम मिल-मालिकों तथा दूसरे कपड़ा बनानेवालों से प्रार्थना करती है कि वे इस बुरे सिलसिले को बन्द कर दें और यह भी प्रार्थना करती है कि वे सिर्फ उन्हीं हिस्सों में अपना काम जारी रक्खें जिनतक महासभा का असर अभी नहीं पहुंचा है और उनसे दरख्वास्त करती है कि विदेशी सूत मंगाना बन्द कर दें।

(७) महासभा हिन्दू-मुसल्मान तथा दूसरे पंथों के धर्म गुरुओं (उलेमा) और नेताओं से प्रार्थना करती है कि वे अपने अपने पंथवालों को खादी का पैगाम सुनावें और उन्हें सलाह दें कि विदेशी कपड़े का इस्तैमाल बन्द कर दें।

कताई द्वारा मताधिकार

महासभा के संगठन की दफा ७ मन्सूख की जाय। उसकी जगह नीचे लिखी धारा कायम की जाय।

(१) हर शख्स जो कि दफा ४ की रू से अ-पात्र न हो, महासभा की किसी प्रान्तीय समिति (सूबा कमिटी) के मातहत महासभा की किसी भी शुरूवाती (प्राथमिक) संस्था का समासद (मेंबर) हो सकता है। पर जो शख्स तमाम राजनैतिक या महासभा के जल्सों में या महासभा के काम में लगे रहते हुए हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी न पहने और जो २४००० गज एकसा खुद अपना काता या अगर बीमार हो, रजामन्द न हो या ऐसी ही कोई वजह हो तो उतना ही दूसरे का काता सूत हर साल न देगा वह समासद नहीं हो सकता। कोई शख्स एक ही साथ महासभा की किसी दो समितियों का समासद नहीं हो सकता।

(२) महासभा का साल १ जनवरी से ३१ दिसम्बर तक माना जायगा। सभासदी का यह चन्दा पेशगी एकमुश्त लिया जायगा या हरमाह २००० गज की किस्तों में पेशगी दिया जा सकता है। जो शख्स साल के बीच में सदस्य होंगे उन्हें साल का पूरा चन्दा देना होगा।

इस साल के लिए सहूलियत—१९२५ के लिए २०,००० गज सूत चन्दा देना होगा और वह १ मार्च तक या उसके पहले दे देना होगा या ऊपर लिखे मुताबिक किस्तों में अदा किया जा सकेगा।

(३) जिस शख्स ने अपना चन्दा (सूत) एकमुश्त या किस्तों में अदा न किया हो वह किसी भी महासभा-संस्था के प्रतिनिधियों (नुमायन्दों) के या किसी समिति (कमिटी) या उप समिति (सब कमिटी) के चुनाव में राय देने का मुस्तहक न होगा और न वह उनमें चुने जाने या महासभा की या किसी भी महासभा-संस्था की या समिति की या उप-समिति की बैठक में शरीक होने का मुस्तहक होगा।

जिस किसी सदस्य ने अपना चंदा (सूत) देने में गफलत की हो वह फिर से अपना वह चंदा (सूत) तथा चलू माह की किश्त देने पर अपने गये हुए अधिकारों (अख्त्यारात) को पा जायगा।

(४) हर प्रान्तीय समिति (सूबा कमिटी) को, महासमिति (आ. इं. कां. कमिटी) को हर माह सदस्यों का और इस दफा के मुताबिक आये सूत का ब्योरा भेजना होगा। प्रान्तिक समितियां चंदे में आये सूत का $\frac{1}{10}$ या उसकी कीमत महा-समिति को देंगी।

प्रवासी—भारतीय

(अ) महासभा को प्रवासी भारतवासियों की दिन-ब-दिन बढ़ती हुई लाचारियों पर बड़ा खेद है और वह अपनी यह राय जाहर करती है कि भारत तथा साम्राज्य-सरकार ने प्रवासी भारतीयों के हितों की रक्षा नहीं की है जिसे कि बार बार उन्होंने अपना 'ट्रस्ट' कहा है। महासभा प्रवासी भारतीयों की तकलीफों पर अपनी हमदर्दी जाहिर करती है, पर साथ ही उसे इस बात पर अफसोस है कि जबतक हिन्दुस्तान में स्वराज्य नहीं हो जाता तबतक वह उन्हें कोई कारगर सहायता करने से मजबूर है।

(आ) महासभा दक्षिण आफ्रिका की यूनियन के गवर्नर जनरल के नेटाल के प्रान्तीय धारासभा के उस फरमान को मंजूर करने पर अपना अत्यन्त (निहायत) असन्तोष जाहिर करती है, जिसके द्वारा वहां बसे हुए लोगों के म्युनिस्पल्टी के मताधिकार जोकि उन्हें बहुत अरसे से हासिल थे, छीन लिये गये हैं।

(इ) महासभा इस मताधिकार के छीने जाने को न सिर्फ साफ तौर पर अन्यायपूर्ण (ना-इन्साफाना) बल्कि १९१४ में यूनियन सरकार और हिन्दुस्तानियों के बीच हुए ठहराव तथा नेटाल सरकार के पिछले एलानों के खिलाफ भी मानती है

(ई) महासभा की यह राय है कि केनिया के सवाल का जो फैसला कहा जाता है वह मानों केनिया-निवासी भारतीयों के कुदरती और न्यायपूर्ण हकों का छीन लेना ही है।

(उ) महासभा श्रीमती सरोजिनी देवी के द्वारा की गई प्रवासी भारतीयों की महान् सेवाओं की कदर करती है, जिन्होंने कि अपनी कार्यशक्ति और लगन के द्वारा अपनेको प्रवासी भारतीयों का प्रीति-पात्र बना लिया है और अपनी वक्तृताओं (तकरीरों) के बल पर वहां के योरपियनों को भी अपनी बात हमदर्दी के साथ सुनने पर तैयार कर लिया था।

(ऊ) महासभा भारत-सेवक-समिति वाले श्री वझे तथा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के द्वारा केनिया-निवासियों की की गई सेवाओं का उल्लेख कृतज्ञतापूर्वक करती है।

बर्मा में दमन

(क) महासभा बर्मा-निवासियों (बाशिंदों) के दुखों के प्रति आदर के साथ अपनी हमदर्दी जाहर करती है और

उसे भरोसा है कि वे उस दमन के दौरदौरे से जो कि आजकल उनके यहां हो रहा है, न किसी तरह डरेंगे, न दबेंगे।

(ख) महासभा बर्मा में जाकर बसनेवाले कुछ हिन्दुस्तानियों के इस दावे की प्रवृति (रगबत) पर कि हमारे प्रतिनिधि (नुमायन्दा) अलहदा हों, अफसोस जाहिर करती है और जोर के साथ उन्हें सलाह देती है वे ऐसा न करें; क्यों कि ऐसी अलग खिचड़ी पकाने की प्रवृति सिद्धान्ततः (उसूलन) खराब है।

(ग) महासभा बर्मा में बसनेवाले हिन्दुस्तानियों को यह भी सलाह देती है कि वे बर्मा के लोगों को जिनके कि मुल्क में वे दुनियवी फायदों के लिए आबाद हुए है, हर न्यायोचित (बजा) तरीके से सहायता (इमदाद) करना अपना फर्ज समझें।

अस्पृश्यता-निवारण

(अ) अस्पृश्यता-निवारण के लिए हिन्दुओं के विचारों में जो प्रगति हुई है, उसपर महासभा सन्तोष प्रकट करती है, पर उसकी राय है कि अभी इसके लिए बहुत-कुछ काम करना बाकी है और समस्त महासभा-संस्था के हिन्दू-सदस्यों से प्रार्थना करती है कि वे इस विषय में और भी अधिक प्रयत्न शील हों।

(आ) महासभा इस प्रस्ताव के द्वारा महासभा की प्रान्तीय समितियों के सदस्यों से प्रार्थना करती है, कि वे अछूत-भाइयों की अड़चनों जैसे कुओं, मन्दिरों तथा पढाई की सहूलियतों, आदि की जांच करके उन्हें दूर करने की कोशिश करें तथा उनकी बेहतरी की ओर अपना ध्यान दें।

(इ) महासभा वाइकोम के सत्याग्रहियों का जो कि ऊंचे दरजे के हिन्दुओं के लिए खुले आम रास्ते से जाने के अछूतों के हकों को जतलाने के काम में लगे हुए हैं, उनकी अहिंसा, धीरज हिम्मत और सहिष्णुता पर बधाई देती है और आशा रखती है कि ट्रावनकोर राज्य जो कि एक आगे बढी हुई रियासत मानी जाती है, सत्याग्रहियों के दावे की न्यायता (इन्साफ) को कबूल करेगा और शीघ्र उनके हक में फैसला कर देगा।

राष्ट्रीय शिक्षालय

महासभा की यह जोरदार राय है कि देश का भविष्य उसके नवयुवकों (नौजवानों) पर अवलंबित (मुनहसिर) है और उसे भरोसा है कि प्रान्तीय समितियां तमाम राष्ट्रीयशिक्षा-संस्थाओं को जीवित रखने के लिए अब और भी अधिक कोशिश करेंगी। पर जहां महासभा की यह राय है कि मौजूदा राष्ट्रीय शिक्षालय (तालीमगाह) कायम रक्खे जायं और नये खोले जाय वहां महासभा उन संस्थाओं को राष्ट्रीय (कौमी) नहीं मानती है जो अपने कामों के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम-एकता को न बढाती हों, जो कि अछूतों को न आने देती हों, जो कि हाथ-कताई और बुनाई को लाजिमी न करार देती हों और जिनमें कि शिक्षक (उस्ताद) और १२ साल से ऊपर के विद्यार्थी (तुलबा) कम से कम आध घण्टा रोज (हर काम के दिन) सूत न कातते हों और जिनमें शिक्षक और विद्यार्थी खादी पहनने के आदी न हों।

अकाली-दमन

महासभा अकालियों को, उनके धीरज, सहिष्णुता और हिम्मत पर बधाई देती है जिसके कि साथ वे अपनी गुरुद्वारा सुधार-संबंधी लड़ाई को चला रहे हैं और आशा रखती है कि उनके ये गुण उनकी वीरता और हिम्मत को कुचलने के लिए की गई पंजाब-सरकार की कुटिल कोशिशों के मुकाबले में अटल रहेंगे।

महासभा को नाभा जेल में हुई १०० से ऊपर अकाली कैदियों की मौत पर बड़ा सन्ताप होता है और उसे वह भीषण समझती है और नाभा के हकिमों के महासभा की कार्य-समिति की मुकर्रर की गई अकाली-दमन-जांच-समिति को जेल के अन्दर जाने की इजाजत न देने पर, अपनी सख्त नापसंदी जाहिर करती है।

महासभा की यह राय है कि कैदियों की ये अद्भुत (हैरत अंगेज) मौतें इस बात का सबूत है कि हाकिमों का सलूक कैदियों के साथ कितना अमानुष (इन्सानियत के खिलाफ) है। उन मृत अकालियों के कुटुम्बियों के प्रति महासभा आदर-पूर्वक अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करती है।

देश-सेवा का मिहनताना

महासभा को यह बात मालूम हुई है कि कितने ही प्रान्तों में काबिल लोग इसलिए महासभा में काम करने के लिए नहीं मिल रहे हैं कि वे अपनी सेवा के लिए कुछ मिहनताना लेना पसन्द नहीं करते हैं। इसलिए महासभा अपनी यह राय देती है कि कौम के लिए की गई अपनी सेवाओं के लिए मिहनताना लेने में न सिर्फ हतक नहीं होती है बल्कि महासभा को यह आशा है कि देश-प्रेमी युवक और युवतियां वफादारी के साथ की गई मुल्क की सेवा के बदले अपनी गुजर के लिए कुछ रकम लेना एक इज्जत की बात समझेंगे और जो लोग काम की फिराक में हों या जो करना चाहते हो वे और जगह के बजाय कौमी नौकरी को ज्यादह पसन्द करेंगे।

कोहाट—दुर्घटना

महासभा देश के जुदे जुदे हिस्सों में जो हिन्दू-मुसलमानों का तनाजा हुआ है तथा दंगे हुए हैं उनपर अफसोस जाहिर करती है।

महासभा उस दंगे पर जो कि हाल ही में कोहाट में हुआ और जिसमें बहुतेरा जानोमाल जाया हुआ है और जिसमें मन्दिर भी शामिल हैं, खेद प्रकट करती है और उसकी यह राय है कि स्थानिक हाकिमों ने जानोमाल को हिफाजत करने के अपने प्राथमिक कर्तव्य (शुरुवाती फर्ज) का पालन नहीं किया है।

महासभा हिन्दुओं के कोहाट छोड़ कर अन्यत्र चले जाने के लिए मजबूर होने पर भी अपना अफसोस जाहिर करती है और कोहाट के मुसलमानों से जोर देकर इसरार करती है कि वे अपने हिन्दू भाइयों को उनके जानोमाल की पूरी हिफाजत का यकीन दिला कर उन्हें बतौर अपने सम्मानित मित्र और पड़ोसी के बुलावें।

महासभा कोहाट के आश्रित हिन्दुओं को यह सलाह देती है कि वे तबतक कोहाट वापस न लौटें जबतक कोहाट के मुसल्मान उन्हें न बुलावें और हिन्दू-मुसल्मान नेता ऐसी सलाह न दें।

महासभा सर्व—साधारण से—फिर वे चाहे हिन्दू हों या मुसल्मान, यह सलाह देती है कि वे भारत-सरकार तथा दूसरों की कोहाट-दुर्घटना संबंधी बातों को (फैसलों को) न मानें और तब तक उसपर अपना निर्णय मुल्तवी रक्खें जबतक एकता परिषद् की मुकर्रर की हुई समिति तथा दूसरी वैसी ही प्रातिनिधिक समिति उस दुर्घटना की जांच न करले और उसपर अपना निर्णय न बना ले।

(पृष्ठ १७० से आगे)

न करेंगे तो मैं कहूंगा—'ईश्वर के लिए मेरी मदद स्वीकार करो। पर अगर मुझसे यह कहा जाय कि मैं खानगी में कहूं कि आपकी नीति अच्छी है, तो मैं यह खुल्लमखुल्ला कहता हूं कि मैं उसका यह अर्थ नहीं करता हूं। पर मैं आपसे खानगी में यह कहलाना चाहता हूं कि यद्यपि चरखे में हमारा विश्वास नहीं है तथापि तुम जरूर चरखा कातो। आप कहते है कि आपका चरखे में अविश्वास नहीं है। पर अगर आप उसे न मानते हों और फिर भी इस समझौते को नामंजूर न करें तो आप अपने धर्म से चूकेंगे।" (अपूर्ण)

अहिंसा का मर्म

गत २५ दिसंबर को विषय-समिति का काम खतम करते हुए गांधीजी ने महासभा में पेश होनेवाले कताई के प्रस्ताव के संबंध में प्रतिनिधियों के कर्तव्य पर जो भाषण किया वह इस प्रकार है—

"मौलाना हसरत मोहानी इस प्रस्ताव का विरोध (मुखालिफत) करने वाले हैं। आप प्रतिनिधियों के प्रतिनिधि हैं। इसलिए मैं आपको चेताये देता हूं कि आप बिना अच्छी तरह गौर किये इस प्रस्ताव को हरगिज मंजूर न कीजिएगा। अगर आप सारा बोझ मेरे ही कन्धों पर रख देना चाहते हों तो मैं आपसे कहता हूं कि मेरे कन्धे इस बोझ को उठाने से लाचार हैं और मैं सिर्फ मुल्क की सहायता के बल पर ही उसे उठाना चाहता हूं। सो अगर आपमें से हरएक शख्स सच्चे दिल से इसमें पूरी पूरी मदद करने के लिए तैयार न हो तो हम अपने मंजिलेमकसूद पर न पहुंच पावेंगे। हमारा उद्देश है विदेशी कपड़े का बहिष्कार करना और यह हम सिर्फ अपने देश के गरीब से गरीब, अमीर से अमीर स्त्री, पुरुष और बच्चों की सहायता पर ही कर सकते हैं। हम अपनी कौम की तरफ से उसके लिए ईमानदारी के साथ मुनासिब कोशिश कर रहे हैं। इस बहिष्कार के पूरा हो जाने के बाद—और मौजूदा हालत में यही एक बात हम कर सकते हैं—हम दूसरी हजारों बातें कर सकेंगे, उसके पहले नहीं।"

राष्ट्रीय-शिक्षा-संबंधी प्रस्ताव पर श्री भोपटकर ने एक ऐसी तरमीम (संशोधन) पेश की थी कि सभ्य भी सिर्फ राजनैतिक और महासभा के मौकों पर खादी पहनें। इसपर गांधीजी ने कहा—"इस तरमीम ने मेरे दिल को चोट पहुंचाई। कताई-शर्त में तो महासभा के हर सदस्य से कम से कम चीज मांगी गई है। अगर आप उसे भी पूरा न कर सकें तो फिर आपको राय देने का हक न रहेगा, जो कि एक पवित्र चीज है। पर इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि ज्यों ही आप महासभा से घर जावें खादी उतार कर रख दें। मैं आपसे कहता हूं कि आप समझौते और प्रस्ताव को बार बार पढ़ें। इसके द्वारा वे महासभा से चाही गई कम से कम और देश से उम्मीद की गई ज्यादह से ज्यादह चीज दे रहे हैं। महासभा ने तो सिर्फ बच्चों से ही नहीं बल्कि बड़े-बूढ़ों से भी हर जगह और हर मौके पर खादी पहनने की उम्मीद चाही है। और कताई के बारे में तो, अनिच्छावाला हिस्सा, उन लोगों के लिए डाला गया है जो अपनी तबीयत से ही अनिच्छुक हैं। वह बच्चों पर नहीं घट सकता। मैं चाहता हूं कि आप इस मताधिकार और प्रस्ताव पर इस तरह अमल करें जिससे विदेशी कपड़े का बहिष्कार करना मुमकिन हो जाय। अगर आप यह निश्चय करके जायंगे कि इसके लिए हम ईमान के साथ काम करेंगे तो आपको देहात में फैल जाना होगा और लोगों को चरखे का पैगाम पहुंचाना होगा। इसमें हमारे अच्छे से अच्छे लोगों की सारी शक्ति काम आ जायगी और अगर ऐसा हो तो मुझे कोई सन्देह नहीं कि हमें पहले की सफलता मिले बिना न रहेगी। इसलिए मैं आशा करता हूं कि कल आप उस प्रस्ताव पर बहुत विचार के साथ, नतीजे को अच्छी तरह सोच-समझकर हाथ उठाइएगा। मैं आपसे यह भी कहे देता हूं कि आपने जो राय यहां दी है उससे आप अपने को बंधा न समझें, यदि कल आप इसे मंजूर न करना चाहें तो आप उसके खिलाफ हाथ उठाने के लिए आजाद हैं।"

इस पर श्री केलकर ने उठ कर कहा—'यह तो आपने स्वराजियों से कहा। अब आप समझौते के दूसरे हिस्से पर जिसका ताल्लुक धारासभा के काम में मदद देने से है, अपरिवर्तनवादियों को भी कुछ कह दें तो अच्छा हो।' तब गांधीजी ने कहना शुरू किया—

"मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूं। मैं पहले ही कह चुका हूं कि कल अपने पवित्र काम के लिए एकत्र होने के पहले अपरिवर्तनवादियों को उनके कर्तव्य की याद दिला देना चाहिए। मेरी यह दरख्वास्त अकेले स्वराजियों से नहीं थी। मुझसे हमेशा यह कहा जाता रहा है कि अपरिवर्तनवादियों में भी ऐसे लोग हैं जिनका विश्वास कताई की शर्त पर नहीं है। इसलिए अपरिवर्तनवादियों से मेरी यह प्रार्थना है कि इस समझौते को वे उसी भाव में ग्रहण करें जिसमें मैंने उसे करना चाहा है और जिसमें करना वे चाहते होंगे। मैं स्वराजियों को अपनी पूरी शक्ति भर मदद करना चाहता हूं—जितनी मदद करना एक शख्स के बूते की बात है उतनी मैं उन्हें उनके काम में करना चाहता हूं। मैं 'उनका काम' जानबूझ कर कहता हूं। हां, यह सच है कि उनका काम सिर्फ उनका या महासभा का ही नहीं है, बल्कि सारे देश का है। मैं कोई न्यायाधीश नहीं। उन्हें यह कहने का पूरा हक है—'यह क्या चरखा चरखा लगा रक्खा है?' मुझे भी यह कहने का पूरा अधिकार है 'यह क्या धारासभा, धारासभा लगा रक्खी है'? वे कहते हैं कि नौकरशाही के साथ लड़ाई में ये धारासभायें हमारे बड़े महत्वपूर्ण हथियार हैं। मैं उनके तरीके से सहमत नहीं। पर हालांकि मुझे उनके तरीके पर संदेह है, फिरभी मैं स्वराजियों की मदद कर सकता हूं और उनकी धारासभा संबंधी नीति को महासभा में निश्चित स्थान दे सकता हूं। मैंने बहुत विचार कर के देखा कि मैं किसतरह उन्हें मदद दे सकता हूं। यह समझौता मुझे सूझा। मैंने देखा कि मैंने उनके साथ कोई मेहरबानी नहीं की। लेकिन हां, कुछ समय के बाद यह बात मेरे ध्यान में आई कि यह उनका हक था। और जब कि यह उनका हक है तो फिर मुझे अपने मन से भी उनके कार्यक्रम में रुकावट न डालनी चाहिए, बल्कि उलटा अपने अन्दर यह विश्वास जमाने की कोशिश करनी चाहिए कि वे जो कुछ कर रहे हैं, ठीक कर रहे हैं। मैं आपसे भी कहूंगा कि आप भी ऐसा ही करें। यही कारण है जो मैं अपनी हद से आगे बढ़ कर हर स्वराजी से संबंध बढ़ाता हूं। मैंने अपने दिमाग को उनकी दलीलों के लिए बिल्कुल खुला रखने की कोशिश कर देखी। यही तरीका है जिससे मैं स्वराजियों को इमदाद दे सकता हूं। पर अगर इसका यह मतलब किया जाय कि मैं उनके प्रस्तावों का समर्थन करके या सभा-मंचों पर उनके लिए व्याख्यान दे कर उन्हें सहायता करूं, तो मुझे अफसोस है, मैं ऐसा न कर सकूंगा। क्योंकि मेरा दिल उसमें नहीं है। मैंने इस अर्थ में यह समझौता नहीं किया है। इसका कारण यह नहीं कि मैं इसके लिए रजामन्द नहीं हूं, बल्कि अभी मैं उसका कायल नहीं हुआ हूं। ज्योंही मैं उसका कायल हुआ नहीं कि दुनिया का कोई ताकत मुझे अपनेको पूरा पक्का स्वराजी ऐलान करने से नहीं रोक सकती। उस हालत में वे मुझसे तमाम चौबीसों घण्टे—हां, नींद का वक्त छोड़ कर—की उम्मीद रख सकेंगे। आज मैं अपने सच्चे दिल से उनका साथ नहीं दे सकता। पर हां, अपने दायरे के अन्दर मैं उन्हें जरूर उत्साहित करूंगा और पूरी मदद दूंगा। मिसाल के तौर पर, जब सरकार आपको और आप के नाम को नुकसान पहुंचाना चाहे तो आप मुझे हमेशा अपने साथ पायेंगे और आपकी सहायता के लिए उत्सुक देखेंगे। मैं आपके साथ कष्ट सहना चाहता हूं और यदि आप मेरी प्रार्थना को कुबूल

(शेष पृष्ठ १६९ पर)

कार्य-समिति

वार्षिक मूल्य ४)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४]

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, पौष सुदी १०, संवत् १९८१ गुरुवार, ८ जनवरी, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

काठियावाड राजनैतिक परिषद्

(काठियावाड राजनैतिक परिषद् में ता. ८ जनवरी १९२५ को सभापति-मंच से किये गांधीजी के भाषण के महत्वपूर्ण अंश नीचे दिये जाते हैं।)

महासभा और देशी राज्य

"मैंने अनेक बार कहा है कि महासभा को देशी राज्यों से संबंध रखनेवाले सवालों से आम तौर पर अलग रहना चाहिए। ब्रिटिश हिन्दुस्तान के लोग खुद ही आज़ादी हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं ऐसे वक्त में अगर वह देशी-रियासतों के कारबार में दखल देना चाहे तो वह मानों छोटे मुंह बड़ी बात होगी, या बहरे आदमी का शंख का पकाना होगा। जिस तरह देशी-राज्यों और ब्रिटिश सरकार के संबंधों के विषय में महासभा साफ़ तौर पर कुछ कहने या करने में मजबूर है वही बात देशी राज्यों और उनकी रिआया के संबंधों पर भी लागू होती है।

इतना होते हुए भी ब्रिटिश हिन्दुस्तान तथा देशी राज्यों के लोग तो एक ही हैं। हिन्दुस्तान भी एक ही है। बड़ोदा और अहमदाबाद के हिन्दुस्तानियों की जरूरतों, रीतिरिवाज में कुछ फर्क नहीं। भावनगर और राजकोट की प्रजा का निकट संबंध (नज़दीकी ताल्लुक) है। फिर भी भावनगर और राजकोट की राजनीति का जुदा जुदा होना कृत्रिम स्थिति है। आजकल के वायुमण्डल में यह बात कि जहां लोग एक हैं वहां राजनीति अनेक हों, ज्यादह वक्त तक चल नहीं सकती। इससे महासभा के बीच में पड़े बिना भी आधुनिक वायुमण्डल के अदृश्य दबाव तक से हिन्दुस्तान में अनेक राज्यों के होते हुए भी राजनीति तो एक ही होगी। उसमें हिन्दुस्तान की शोभा और परीक्षा है।

परन्तु मेरी यह मजबूत राय है कि जबतक ब्रिटिश हिन्दुस्तान पराधीन है जबतक ब्रिटिश हिन्दुस्तान के लोगों के पास सच्ची सत्ता नहीं है अर्थात् जबतक ब्रिटिश हिन्दुस्तान के पास आत्मविकास के लिए शक्ति नहीं—थोड़े में कहूं तो जबतक ब्रिटिश हिन्दुस्तान में स्वराज्य नहीं तबतक दोनों हिन्दुस्तान की हालत भिन्न-भिन्न जरूर रहेगी। उनकी भिन्न-भिन्नता पर ही तीसरी सत्ता की हस्ती का दारोमदार है। इसलिए ब्रिटिश हिन्दुस्तान की स्वराज्य-शक्ति में सारे हिन्दुस्तान की राजनैतिक सु-व्यवस्था समाई हुई है।

देशी रियासतों की हालत

यह सुव्यवस्था कैसी होनी चाहिए? एक दूसरे की नाशक नहीं, बल्कि पोषक। स्वराज्य-प्राप्त हिन्दुस्तान देशी राज्यों का विनाश न चाहेगा, उलटा देशी राज्यों को मददगार साबित होगा। इसी तरह देशी राज्यों की रीति-नीति हिन्दुस्तान के अनुकूल होगी।

देशी रियासतों की मौजूदा हालत मेरी राय में दयाजनक (काबिल रहम) है। उनके पास शुद्ध पराक्रम (जौहर) और प्रजा को प्राणदंड (मौत की सजा) देने के अख्तियार होना कोई सच्ची सत्ता का लक्षण नहीं, बल्कि सच्ची सत्ता तो है सारे संसार के मुकाबले में अपने प्रजा-जन की रक्षा करने की ताकत। आज देशी-रियासतों के पास ऐसी सत्ता (हुकूमत) नहीं और इसमें उसके उपयोग के अभाव में (इस्तमाल न होने से) इच्छा भी मर-सी गई है। बल्कि इसके खिलाफ रैयत की हिफाजत करने की सत्ता चली सी गई है और प्रजा पर जुल्म करने की ताकत बढ़ी हुई दिखाई देती है। जैसा कुए में होता है वैसा घड़े में आता है। साम्राज्य में अराजकता है, इससे साम्राज्य के मातहत देशी-राज्यों में भी अराजकता है। इस कारण देशी राज्यों की इस अराजकता की जिम्मेवारी राजा-महाराजाओं पर ही नहीं, बल्कि वस्तुस्थिति (हकीकत) पर भी बहुत-कुछ है।

समस्त हिन्दुस्तान की वस्तुस्थिति कुदरती अर्थात् ईश्वरी नियम के विपरित (खिलाफ) है और इससे चारों ओर अव्यवस्था और असन्तोष दिखाई देता है। यदि एक भी अंग व्यवस्थित हो जाय तो मेरी मजबूत राय है कि चारों ओर सुव्यवस्था फैल जायगी।

आगे कौन बढ़े?

तब इसमें आगे कौन बढ़े? यह साफ़ ही दिखाई देता है कि पहले ब्रिटिश हिन्दुस्तान ही को आगे बढ़ना चाहिए। वहां प्रजा को अपनी भयंकर स्थिति का ज्ञान हो गया है तथा उसमें आज़ाद होने की इच्छा जाग उठी है और जिज्ञासा के बाद ही ज्ञान हो सकता है उस प्रकार इस भय से छूटने की इच्छा रखनेवाली प्रजा

को ही मुक्ति (छुटकारा) का उपाय सूझेगा और वह उससे काम भी लेगी। इसीलिए मैंने बार बार कहा है कि ब्रिटिश हिन्दुस्तान का स्वाधीन होना ही मानो देशी राज्यों का स्वाधीन होना है। जब ब्रिटिश हिन्दुस्तान के स्वाधीन होने का शुभ अवसर आवेगा तब राजा प्रजा का संबंध मिट नहीं जायगा, बल्कि निर्मल हो जायगा। मेरे कल्पनागत स्वराज्य में राजसत्ता का नाश नहीं है। मेरी कल्पना में धन-संचय का नाश नहीं है। धन-संचय में ही राजसत्ता है। मैं धनिक, मजदूर आदि में सद्-व्यवहार चाहता हूँ। मैं अकेले मजदूरों का या अकेले धनी लोगों का साम्राज्य नहीं चाहता। मैं इन वर्गों (जमात) को स्वभावतः (कुदरतन्) एक दूसरे का विरोधी (मुखालिफ) नहीं मानता। दुनिया में अमीर और गरीब दोनों रहेंगे ही। हाँ, उनके पारस्परिक (बाहम) बरताव में परिवर्तन (फेर-फार) होता रहेगा। फ्रान्स प्रजासत्ताक है, परन्तु वहाँ सब किस्म के लोग हैं।

हमें शब्द-जाल में न फँस जाना चाहिए। जो जो दूषण (बुराइयाँ) हमें भारतवर्ष में दिखाई देते हैं वे सब बढ़े उन्नत और आगे बढ़े हुए माने जानेवाले पश्चिमी देशों में भी पाये जाते हैं। हम उन्हें दूसरे नाम से जानते हैं। पहाड़ जिस तरह दूर से सुहावने मालूम होते हैं उसी तरह पश्चिम की कितनी चीजें हमें दूर से सुन्दर मालूम होती हैं। यदि सच्ची बात की खोज करें तो वहाँ भी राजा-प्रजा में झगड़े हुआ ही करते हैं। वहाँ भी लोग सुख को खोजते हैं पर दुख भोगते हैं।

देशी राज्यों के संबंध में

देशी-राज्यों की राजनीति पर बराबर आक्षेप होते रहते हैं। राजा महाराजाओं की एक शिकायत आम तौर पर होती है। उनका दिन पर दिन यूरप जाने का शौक बढ़ता जा रहा है। काम से अथवा ज्ञान प्राप्त करने के लिए विलायत जाना समझ में आ सकता है परन्तु आमोद-प्रमोद के लिए जाना नागवार मालूम होता है। जिस राज्य के राजा बहुत वक्त तक बाहर रहते हैं उसकी हालत दयाजनक हो जाती है। इस लोक-सत्ता और व्यवहार-ज्ञान के प्रचार के युग में जो राज्य या नृप लोक-प्रिय और लोक-कल्याण-कारी न हो, उसकी हस्ती रह नहीं सकती। यह बात हम देख ही रहे हैं। सम्राट् पंचम जार्ज प्रधान मन्त्री की सम्मति के बिना इंग्लैंड छोड़कर नहीं जा सकते, हालाँ कि सम्राट् की जवाबदेही देशी राजाओं के बराबर नहीं होती।

इस तरह बाहर जाने में जो खर्च होता है वह भी असह्य है। राजाओं की हस्ती का आधार यदि नीति-धर्म पर हो तो वे खुदमुख्तार (स्वतंत्र) मालिक नहीं, प्रजा के धन के ट्रस्टी—रक्षक हैं। उनकी आमदनी प्रजा से मिलने वाला कर है। वे ट्रस्टी की ही तरह उसका खर्च कर सकते हैं।

तन्दुरुस्ती के लिए विलायत जाने की दलील हास्य-जनक है। हमारे इस महान् देश में जहाँ हिमालय जैसा पर्वतराज अचल शासन कर रहा है और जिसकी कोख से गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्रा, सिन्धु आदि महान् नदियाँ निकली हैं, उस देश से तन्दुरुस्ती की खोज में विदेश जाने की जरूरत हो ही नहीं सकती। करोड़ों लोग जिस देश में अपना जीवन सुख से बिता सकते हैं वह राजाओं के आरोग्य के लिए कम होना ही चाहिए?

पश्चिम की संस्कृति से हमें बहुत कुछ सीखने और लेने लायक है, परन्तु उसका बहुतांश तो त्याज्य ही है। पश्चिम के रस्म-रिवाज पूर्व को हजम नहीं हो सकते। पूर्व की रीति-नीति को पश्चिम हजम नहीं कर सकता। पश्चिम में स्त्री-पुरुष संयमपूर्वक एक साथ नाच सकते हैं और शराब पीकर भी मर्यादा की रक्षा कर सकते हैं। हम यदि इसका अनुकरण करने लगें तो क्या परिणाम होगा, यह कहने की जरूरत नहीं। हमारे एक युवराज के मुकदमे की जो चर्चा इन दिनों अखबारों में हो रही है वह हमें कितना शरमिन्दा कर रही है?

राजाओं की फजूलखर्ची की भी शिकायत है। उन्हें एक हद के अन्दर रह कर भोग-विलास के लिए खर्च करने का अधिकार भले ही हो परन्तु निरंकुश अधिकार नहीं हो सकता।

लगान के बारे में अंगरेजी तरीके को अपना कर उन्होंने प्रजा का बहुत नुकसान पहुँचाया है। उन्हें न तो बड़ी फौज की जरूरत है और न अपनी हस्ती के लिए प्रजा की ओर से कोई डर है। प्रजा के सामर्थ्य से अधिक लगान वसूल करने की प्रथा लोगों को बहुत खटकती है। कर लोक-कल्याण के लिए है। यह हमारी पुरानी परंपरा है। चारों ओर मैं इसका त्याग देख रहा हूँ।

आमदनी बढ़ाने के लिए अंगरेजी महकमे आबकारी का अनुकरण करना दुःखदायक है। प्राचीनकाल में भी चाहे आज की तरह महकमा आबकारी हो; परन्तु जितनी पुरानी बातें हैं सब अच्छी हैं यह मोह मुझे नहीं। जितनी बातें हिन्दुस्तानी हैं सब अच्छी हैं, यह मोह भी मुझे नहीं है। नशीली चीजों का व्यापार करना पाप है। देशी राज्यों को शराबखाने बंद कर के अंगरेजी अधिकारियों के सामने मिसाल पेश करनी चाहिए।

चरखा और खादी

दो विषय ऐसे हैं कि जिनमें देशी-राज्यों की तरफ से पूरे प्रोत्साहन की आशा रक्खी जा सकती है। इस देश की आर्थिक नीति यह थी कि हम अपना अनाज पैदा करते थे और खाते थे, तथा कपास पैदा कर के उसका सूत अपने घर में कातते और कपड़ा बुनवा कर पहनते थे। अब इनमें से एक स्थिति मौजूद है और दूसरी प्रायः नष्ट हो चुकी है। खाने के खर्च से पहनने का खर्च दसवाँ हिस्सा होता है। सो सौ में दस रुपया हम अपने देश में और अपने आपस में खर्च करने के बदले विदेशों में और मिलों में कर रहे हैं। अर्थात् हम इतनी मिहनत खो रहे हैं और इस घटी के साथ कपड़े का खर्च उठाते हैं और परिणाम में दुहेरा भार उठाते हैं। कपड़े के विषय में हम ऐसा उलटा काम कर रहे हैं। अपने कपड़े हम या तो विलायत से मंगाते हैं या मिलों से खरीदते हैं। इन दोनों दशाओं में हमारे उद्योग और प्रजा-धन क्षीण होते जा रहे हैं।

आजकल हाथ-कताई और हाथ-बुनाई की कला दिन पर दिन खिलती आ रही है; खादी की महिमा बढ़ती जा रही है। क्या उसमें राजा महाराजाओं को मदद न देना चाहिए? वे किसानों को तैयार करें, अपने राज्य के लिए जरूरी कपास बचा रक्खें, खुद खादी पहनें और खादी का प्रचार करें। इससे उनकी शोभा ही बढ़ेगी। हर तरह की खादी के मोटा होने की जरूरत नहीं। राजा-महाराजा हाथ-कताई और बुनाई को प्रोत्साहन दे कर अनेक प्रकार की वस्त्र-संबंधी कला और कारीगरी को फिर से जीवित कर सकते हैं। रानी महारानियाँ सुंदर, रंग-बिरंगे और घुंघरूदार चरखे पर महीन सूत कात कर उसकी शबनम खादी बुनवा कर उसके द्वारा सुशोभित और सुरक्षित रहें। ऐसी कला की सहायता देना राजाओं का खास क्षेत्र है।

अस्पृश्यता

राजा पर-दुख-भंजन माने जाते हैं। उन्हें तो दुर्बल का बल होना चाहिए। वे क्या अछूतों की पुकार न सुनेंगे? राजा प्रजा की आशीष से जीते हैं। वे अछूतों के आशीर्वाद के अधिकारी हो कर

सेवाभाव, त्याग-वृत्ति, सत्य, अहिंसा, संयम, धैर्य, इत्यादि गुण होने चाहिए। यदि हम चुप-चाप बहुत-कुछ काम करेंगे तो कितने ही सुधार अपने आप हो जायँगे।

राजकाजी वर्ग

देशी राज्यों के राजकाजियों में दंभ, भीरुता, खुशामद इत्यादि दोष पैठ गये हैं। यह वर्ग शिथिल है। इसके उसमें सुधार होने की जरूरत है। यह वर्ग यदि प्रजा का कल्याण चाहे तो बहुत कर सकता है। राजकाजी यदि राजसत्ता के लिए नहीं पर सेवा के लिए राज्यों में नौकरी करें तो वह [illegible] पैदा हो सकता है।

[illegible] लोग

जो लोग [illegible] नहीं हैं, स्वतन्त्र पेशा करते हैं उन्हें बहुतेरी बातें अनुकूल हैं। उनके अन्दर इन दोषों को दूर करने के लिए मैं प्रयत्न कर रहा हूं। चुपचाप सेवा करनेवाले प्रजा के सच्चे सिपाहियों की जरूरत है, उन्हें प्रजा के अन्दर प्रवेश करने की जरूरत है।

चरखा

यह सेवा किस तरह हो सकती है? इसमें मैं चरखे को पहला स्थान देता हूं। चरखे की प्रवृत्ति बहुत फैली है। जिस चीज की आज निन्दा हो रही है उसी सुदर्शन-चक्र समझ कर पूजा करने का दिन मुझे नजदीक आता हुआ दिखाई देता है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि जो आज उसकी निन्दा कर रहे हैं वही ठोकर खाकर, मजबूर होकर करेंगे। हिन्दुस्तान का भाग्य इस चक्र के एक एक पत्ते पर लिखा हुआ है। ग्राम्य-जीवन का पुनरुद्धार एकमात्र इसी पर अवलम्बित है। सूत कातने के काम को मैं एक धन्धा नहीं समझता। वह तो धर्म है। और वह धर्म हिन्दू, मुसलमान तमाम धर्मवालों का, सब वर्णों का है। इस चक्र को चलाते हुए पञ्चाक्षर द्वादशमन्त्र पढ़े, शैव पंचाक्षरी जप करे, मुसल्मान कलमा पढ़ें, पारसी गाथा पढ़ें, ईसाई ईसा की बताई प्रार्थना करें।

एक अमेरिकन लेखक ने लिखा है कि वर्तमान युग शारीरिक-श्रम-मजदूरी का युग है। मूढ़ यन्त्र के चमत्कार से यन्त्र की पूजा करने वाली कौम कहलाती जा रही है। हम शरीर-रूपी अद्वितीय यंत्र को छोड़ कर मूढ़ यन्त्र से काम ले कर शरीर-यन्त्र का नाश कर रहे हैं। शरीर से पूरा पूरा काम लेना ईश्वरी कानून है। उसे हम भूल ही नहीं सकते। चरखा शरीर-यज्ञ का मांगलिक चिह्न है। यह यज्ञ किये बिना जो भोजन करता है वह चोरी का अन्न खाता है। इस यज्ञ का त्याग कर के हम देश-द्रोही बन गये, हमने लक्ष्मी देवी का देश निकाला दे दिया। हिन्दुस्तान के वे असंख्य स्त्री-पुरुष जो हड्डी और चमड़ी भर के बाकी रह गये हैं इस बात का सबूत दे रहे हैं। श्री शिवराम शास्त्रीगार, जो मेरे लिए वन्द्य हैं, कहते हैं कि आप तो राष्ट्र की पोशाक की पसन्दगी में भी दखल देना चाहते हैं। बात बिल्कुल सच है। ऐसा करना हर एक सेवक का धर्म है। लोग यदि पतलून को अपना लें तो मैं जरूर उसके खिलाफ अपना आवाज उठाऊंगा। मैं देख रहा हूं कि पतलून हमारे यहां की आबहवा के मुआफिक नहीं। लोग जो अभी विदेशी कपड़ा इस्तेमाल करते हैं उसके खिलाफ आवाज उठाना हर हिन्दुस्तानी का धर्म है। यह आवाज सच पूछिए तो कपड़े के विदेशी होने के खिलाफ नहीं है; बल्कि उसमें पड़ा होनेवाली बेकारी के खिलाफ है। यदि यहां की प्रजा अपनी ज्वार बाजरी छोड़ कर स्काटलैंड से 'ओट'* मंगावे या कनाडा की गेहूं मंगावे तो मैं जरूर उसके रसोई-घर में दखल दूंगा और लोगों को चिट भर कर गुहार कहूंगा और

* रूस में पैदा होने वाला एक प्रकार का अनाज, कोदों से मिलता-जुलता।

उनके दरवाजे बैठ कर उपवास करके अपना आशीर्वाद सुनाऊंगा। इतिहास में ऐसा हुआ भी है। योरप के पिछले आसुरी युद्ध में वहां की प्रजा खास खास अनाज पैदा करने पर मजबूर की गई थी। प्रजा के खान-पान पर राज्य का अंकुश रहता था।

जिन्हें देहात की सेवा करनी है उन्हें चरखा-शास्त्र का अध्ययन किये बिना गुजर नहीं। इस कार्य में सैकड़ों ही नहीं, बल्कि हजारों युवक और युवतियां अपनी आजीविका पैदा कर सकते हैं और दुगुना बदला दे सकते हैं। उसके द्वारा हम संगठन कर सकेंगे। हर एक गांव से परिचय हो सकेगा। उसके द्वारा देहात को सहज ही अर्थशास्त्र तथा राजनीति का ज्ञान दिया जा सकता है। उसमें बालकों की शुद्ध शिक्षा का समावेश होता है और यह काम करते हुए देहात की अनेक जरूरतें, खामियां आदि दिखाई दे सकती हैं।

इस खास कार्य में राजा-प्रजा के बीच विरोध होने की संभावना नहीं। यही नहीं, बल्कि दोनों का संबंध मीठा ही होने की आशा रक्खी जा सकती है। इस आशा का फलीभूत होना सेवक की विवेकबुद्धि पर अवलम्बित है। इसीसे चरखे को प्रधानपद देने की सलाह इस परिषद् को देते हुए मैं न लजाता हूं, न हिचकिचाता हूं।

अस्पृश्यता संबंधी काम भी ऐसा ही है। अस्पृश्यता दूर करना हिन्दू-मात्र का परम कर्तव्य है। इसमें भी कोई राजा बाधा न डालेंगे। अंत्यज की सेवा कर के, उनकी दिली दुआ ले कर हिन्दू यदि आत्म-शुद्धि करें तो उससे अद्भुत शक्ति पैदा होगी। यह कार्य करते हुए भी सेवक प्रजा के साथ प्रेम की गांठ बांधेगा। जो हिन्दू अंत्यज की सेवा करेगा वह हिन्दू-धर्म का तारक होगा और अछूत भाई-बहन के हृदय का सम्राट् बनेगा।

राज्य दो तरह के हैं। एक दण्ड के भय से मिलता है और दूसरा प्रेम के मंत्र से। प्रेम-मन्त्र से सिद्ध हुआ राज्य दण्ड-भय से प्राप्त राज्य की अपेक्षा हजारों गुना अधिक कारगर और स्थायी है। जब इस राजकीय परिषद् के सभ्य ऐसी सेवा कर के तैयार होंगे तब उन्हें प्रजा की तरफ से बोलने का अधिकार होगा और उस समय प्रजा-मत के खिलाफ होना किसी भी राजा के लिए असंभव हो जायगा। उसी अवस्था में प्रजा का असहयोग संभवनीय है।

परन्तु राजाओं के विषय में मेरा विश्वास है कि वे ऐसे धार्मिक प्रजा-मत को तुरन्त पहचान लेंगे। आखिर राजा भी तो हिन्दुस्तानी ही हैं। यही देश उनका सर्वस्व है। उनका हृदय जल्दी द्रवित हो सकता है। उनसे जन-सेवा कराना मैं बहुत सहज मानता हूं। हमने सच्चा प्रयत्न ही नहीं किया, हम जल्दबाज हो गये हैं। हमारी शुद्ध तैयारी में ही हमारी विजय है—राजा-प्रजा दोनों की विजय है।

हिन्दू-मुसलमानों में एकता होनी ही चाहिए। इस विषय में अधिक कहने की जरूरत नहीं। कोई सेवक प्रजा के किसी अंग को नहीं भूल सकता।

मेरा क्षेत्र

मेरा क्षेत्र निश्चित हो गया है। वह मुझे प्रिय भी है। मैं अहिंसा के मंत्र पर मुग्ध हो गया हूं। मेरे लिए वह पारसमणि है। मैं जानता हूं कि दुखी हिन्दुस्तान को अहिंसा का ही मंत्र शान्ति दिला सकता है। मेरी दृष्टि में अहिंसा का रास्ता कायर या नामर्द का रास्ता नहीं है। अहिंसा क्षत्रिय-धर्म की पराकाष्ठा है। क्योंकि उसमें अभय की सोलहों कलायें सोलहों आने खिल निकलती हैं। अहिंसा-धर्म के पालन में पलायन या हार के लिए

(शेष पृष्ठ १७५, कालम २ में)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष सुदी १४, संवत १९८१

कार्य-समिति

महासमिति में कार्य-समिति के सदस्यों की पसंदगी का भार आखिर श्री देशबन्धु दास पं. मोतीलाल नेहरू और मुझपर छोड़ दिया था। मुझपर यह आक्षेप किया जाता है कि मैंने स्वराजियों के लिए सब कुछ छोड़ दिया है। यदि मैंने ऐसा किया है तो मुझे इस बात पर फख्र है। जब कि पूरे झुके हैं तो पूरा ही झुकना चाहिए। फिर भी हकीकत यह है कि अपरिवर्तनवादियों के नाम वापस ले लेने के लिए मुझ पर किसी प्रकार का दबाव न डाला गया था। मैंने जानबूझ कर ही श्री राजगोपालाचार्य, श्री वल्लभभाई पटेल और श्री शंकरलाल बैंकर के नाम निकाल लिये थे। समिति में श्री सरोजनी देवी और सरदार मंगलसिंह का होना एक सम्मान की बात है। श्री केलकर इस बात के लिए उत्सुक थे कि वे श्री अणे के लिए अपनी जगह खाली कर दें। लेकिन मैं उनकी एक भी सुनना न चाहता था। श्री अणे का नाम लेते ही मैंने हां कहा। पाठक इत्मीनान रक्खें कि यह सारा चुनाव सोलहों आने मित्र-भाव से किया गया था। मान लीजिए (और यह मान ही लेना चाहिए) कि दोनों पक्ष ईमानदार हैं। तब भी दोनों का काम काफी मुश्किल है। हां! उनके विश्वास की मात्राओं में फर्क है और इसीलिए उनका जोर जुदी जुदी बातों पर रहता है। फिर भी दोनों ही को अपने सामान्य कार्यक्रम को पूरा करने के लिए एक सामान्य तरीका ढूंढ निकालने का प्रयत्न करना है। बेशक, अपरिवर्तनवादियों की बहुमति रखनेवाली कार्यसमिति में खादी संबंधी बड़े जोरदार प्रस्ताव पास हो सकते हैं। लेकिन उन लोगों के नजदीक जिन्होंने कि खादी की शर्त को बड़े बे-मन से कुबूल किया है, उसका कुछ भी वजन न होगा। और जिस समिति में स्वराजियों की बहुमति होगी उसके प्रस्ताव यदि कमजोर होंगे तो भी स्वराजियों पर उसका वजन पड़ेगा। और मेरा तो काम है कि स्वराजियों को सच्चे दिल से इस काम में अपना साथी बनाऊं। मैं चाहता हूं कि मैं अपना असर उनपर डालूं और वे अपना असर मुझपर डालें। इस लिए इससे बेहतर कोई बात नहीं हो सकती कि स्वराज-पक्ष के नेता और उनमें भी सबसे अधिक खादी और कताई की शर्त के कट्टे से कट्टे विरोधी, और मैं एक ऐसे वायुमण्डल में रहें जिसमें हम एक ही साथ गाड़ी खींच ले जायं। लेकिन जिनको खुद ही इस बात का शौक और उत्साह है उनके साथ वैसा लगाव रखने की आवश्यकता मुझे प्रतीत नहीं होती। उन्हें काम करने का उत्साह दिलाने के लिए प्रस्तावों या हिदायतों की जरूरत नहीं। उनसे अपनी श्रद्धा के अनुसार पूरी ताकत के साथ काम करने की आशा रक्खी जाती है। इसलिए यदि हम यह चाहते हों कि इस एक साल में महासभा के दोनों पक्षों में स्थायी ऐक्य स्थापित हो जाय तो मेरी राय में कार्य-समिति का चुनाव एक आदर्श चुनाव है। जो हो; कम से कम इसके अनुकूल वायुमण्डल तो तैयार हुए बिना न रहेगा। मैं अपने ध्येय पर पहुंचने के लिए अपनी तरफ से कुछ न उठा रक्खूंगा। इसलिए इस साल में किसी भी एकपक्षीय प्रस्ताव को पास कराना नहीं चाहता। यदि खुद महासभा में ही घोर विरोध होता रहे तो चरखा, और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का कार्य सफलता-पूर्वक नहीं चल सकता। और तो ठीक, पर हमें इस राष्ट्रीय रचनात्मक कार्यक्रम के लिए महासभा के बाहर के लोगों से भी सहायता प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। वे चाहे मेम्बरी की शर्त के तौर पर कताई को या खादी पहनने को पसंद न करते हों, लेकिन विनीति दलवालों में भी जिन जिन से मैं मिला हूं ऐसे बहुत नहीं हैं जिनको घरेलू धन्धे के तौर पर कताई में और सदस्यता की शर्त के अलावा खादी पहनने में किसी भी प्रकार की आपत्ति हो। हो सकता है कि सब पक्षों के लिए महासभा के वर्तमान ध्येय को या सदस्यता की नई शर्त को कुबूल करके महासभा के सदस्य बनना असंभव हो—महासभा के विधि-विधान की कठिनाइयां उनके रास्ते में आवें। लेकिन मैं आशा करता हूं कि महासभा का वर्तमान ध्येय और सदस्यता की नई शर्त उन कामों में रुकावट न डालेंगी, जिन्हें सब मिल कर कर सकते हैं।

(नं० ६०) मोहनदास करमचंद गांधी

श्रम-धर्म

बेलगांव की महासभा का भाग्य काल है कताई के द्वारा मताधिकार। उसके लिए कितना भी त्याग, किसी भी तरह का समझौता ज्यादह नहीं। यदि हम इस बात को अच्छी तरह जान लें तो गांधीजी की आज की यह बदली हुई नीति तुरंत समझ में आ जायगी। जब कि जान पर खतरा हो तब हम उसे बचाने के लिए बदन के दूसरे हिस्से काट डालते हैं। हिन्दुस्तान की आजादी की हलचल एक सजीव (जिन्दा) चीज है। चरखा उसका मर्मस्थान है। उसीको बचाने के लिए गांधीजी ने बिना खटके, बिना हिचके अपने कार्यक्रम के दूसरे तमाम हिस्सों को काट डालना कुबूल किया है। वही सच्चा शस्त्र-वैद्य (सर्जन) है, जो यह जान कर कि बीमार जबर ही नहीं है। वह आत्मा का धर्म है। इसलिए दुःसाध्य नहीं। जो समझता है उसमें सहज ही स्फुरित होता है। मुझे विश्वास है कि भारतभूमि को इसके सिवा दूसरा धर्म अनुकूल नहीं आवेगा। चरखा भारतभूमि के लिए इस अहिंसा-धर्म का निशान है। क्योंकि वही दुखिया का सहारा है, वही कंगाल की कामधेनु है। प्रेम-धर्म को न देश की मर्यादा है, न काल की। इससे मेरा स्वराज्य भंगी, चमार, पासी, बलाई और दीन से दीन लोगों का खयाल रखता है। चरखे के सिवा इसका दूसरा साधन मैं नहीं जानता।

मेरा तो क्षेत्र है ऐसे इलाजों की खोज करना और उन्हें काम में लाना जिनसे प्रजा को शक्ति प्राप्त हो। क्योंकि यदि प्रजा के अन्दर ताकत आ जाय तो वह अपना मार्ग खोज लेती है। राजा को मैं सेवक-राज के ही रूप में सहन करता हूं। प्रजा मालिक है। पर अगर मालिक सोता रहे तो सेवक क्या करेगा? इससे प्रजा-जागृति के लिए प्रयत्न करने में सब बातें आ जाती हैं।

मेरी कल्पना ऐसी है। इसलिए मेरे कल्पनागत स्वराज्य में देशी राज्यों के लिए और प्रजा के हक की पूरी रक्षा के लिए स्थान है। हक का बीज है फर्ज। इसीसे इस भाषण में मैंने दोनों के धर्म की ही, दोनों के कर्तव्य की ही बात की है। यदि हम सब अपने अपने कर्तव्यों का पालन करें तो हक हमारे पास ही है। यदि कर्तव्य को छोड़ कर हक के पीछे पड़ेंगे तो वह मृग-जल की तरह है। ज्यों ज्यों हम उसके पीछे दौड़ते हैं त्यों त्यों वह आगे भागता है। यही बात श्री कृष्ण ने अपनी दिव्य वाणी के द्वारा गाई है—'हे राजा, तुझे कर्म का ही अधिकार है, फल का नहीं।' कर्म धर्म है और फल हक है।

की जान अब इससे बच सकती है, तुरन्त ऐसा करने का फैसला कर लेना हो।

गांधीजी ने १९२० में जो भारी असहयोग आन्दोलन (तेहरीक तर्कमवालात) शुरू किया था वह राजनैतिक युद्धनीति (क्यासी जद्दोजहद) का एक अपूर्व प्रयोग (आजमाइश) था। उसी तरह यह कताई के द्वारा मताधिकार (शर्ते मेम्बरी) भी राष्ट्र निर्माण का एक अपूर्व प्रयोग है। हिन्दुस्तान की तरह दुनिया की ३० करोड़ लोगों का मुल्क मुट्ठीभर विदेशियों के द्वारा इतनी खामोशी के साथ न तो आज तक जीता गया है और न किसी मुल्क पर इतनी शान्ति के साथ हुकूमत ही हो पाई है। और इसीलिए ऐसी अभूत पूर्व (पहले कभी न मौजूद हुई) हालत का मुकाबिला करने के लिए शान्तिमय असहयोग (पुरअमन तर्के मवालात) का अश्रुत-पूर्व (पहले न देखा न सुना) कार्यक्रम (प्रोग्राम) पेश किया गया। हमारी इस गुलामी का असली सबब है सरकार के साथ हमारा ई सहयोग (मवालात) और असहयोग उसका एक ही इलाज है। इसी तरह हमारे रचनात्मक (तामीरी) काम में हमारी कौम की कमजोरी है हमारी सुस्ती, हमारा निकम्मापन; और उसकी दवा है काम करने, मिहनत करने की आदत डालना। अगर हम अपनी कौमी अव्यवस्था (निजाम की कमी) और कमजोरी की जड़ को खोजना चाहें तो हमें पता लगेगा कि आर्य-जाति के पतन (तनज्जुली) का मूल कारण (असली बाइस) है मिहनत और उद्योग का नष्ट हो जाना। हां, दिमाग संस्कृति, साहित्य और धर्म को जन्म दे सकता है, परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि शरीर का निकम्मा रहना हमेशा कौम की आजादी का नाश करता है। कौमी हस्ती (राष्ट्रीय अस्तित्व) की निहायत जरूरी शर्तें क्या है? जिन्दगी की जरूरियात को पूरा करने के लिए काम करने की लगन, सतत उद्योग तथा एकाग्रता। हिन्दुस्तान के स्त्री-पुरुष आज काम करने, मिहनत करने की उस आदत को खो बैठे हैं जो कि उनके बाप-दादों में थी। इसीसे हिंदुस्तान की हालत अस्तव्यस्त (तितर-बितर) हो गई है। आप किसी भी ऐसे शख्स के पास जाइए जिसने लोगों की सहायता से किसी भी एक संस्था को चलाना चाहा हो। वह आपसे अपना तजरिबा कहेगा कि हिन्दुस्तान के मर्द-औरत एकाग्रता और सतत उद्योग, इन गुणों से खाली हैं। यही हमारी इस गुलामी, दूसरे लोगों के परिश्रम पर आधार रखने की हालत का कारण और दुष्परिणाम (सबब और बुरा नतीजा) दोनों है। अगर आप किसी भी पश्चिमी (मगरिब) देश में जायेंगे तो सबसे पहली चीज जो आपको अपनी तरफ मुखातिब करेगी, वहां के लोगों में चारों ओर काम और मिहनत करने की लगन और धुन। पर हिन्दुस्तान में आपको यह नजारा न दिखाई देगा। अगर हम चाहते हों कि हमारा राष्ट्र (कौम) फिर से बन जाय तो हमें फिरसे अपनी उद्योग करने की आदत को बनाना होगा।

अगर गांधीजी हिन्दू-धर्म का पुनः संगठन कर सकते होते तो वे आज एक नई स्मृति ही बना डालते, जिसमें शारीरिक श्रम (मिहनत-मजदूरी) करना हर शख्स का कर्तव्य बना दिया जाता। परन्तु चूंकि आधुनिक युग (जमाने हाल) में नई स्मृतियां बनाना मुमकिन नहीं है, इसलिए उन्होंने हमारे लिए यह कताई के द्वारा मताधिकार की तजवीज की है। वे चाहते हैं कि इस श्रम-धर्म को सब लोग कुबूल करें। तभी भारतवर्ष अपनी आजादी हासिल कर सकेगा और उसे कायम भी रख सकेगा। श्रम महज गौरव की बात ही नहीं है; यह तो हमारे राष्ट्र के अस्तित्व के लिए भी परम आवश्यक है। आप देश के जीवन में सचाई और श्रम करने की आदत को फिर से कायम कीजिए, और फिर देखिए कि दुनिया में कौन आपकी ओर त्योरी चढ़ा कर देख सकता है?

अब आप समझ गये होंगे कि इस कताई के द्वारा मताधिकार का मन्शा और मतलब क्या है? क्या ऐसी भारी चीज के लिए दूसरी तमाम बातों को छोड़ देना ठीक नहीं है? इसपर अच्छी तरह अमल होने के लिए ऐसे वायु-मण्डल की जरूरत है जो हर किस्म के झगड़ों-बखेड़ों से खाली हो। यह एक नई चीज है और साथ ही एक अजीब और क्रान्तिकारी। इसकी आजमाइश ऐसी परिस्थिति (हालत) में होना बेहतर है जिसमें न तो किसी किस्म के खुजन और न रुकावट के लिए जगह हो। कलकत्ते के समझौते का यही रहस्य है। इसे सफल बनाने के लिए क्या यह ठीक नहीं है कि धारासभाओं का झगड़ा खतम किया जाय—इतना ही नहीं बल्कि स्वराजी जो कुछ मांगें वह भी दिया जाय और उन्हें महासभा का नाम भी इस्तेमाल करने दिया जाय? और क्या वे इस ठहराव के पहले भी महासभा के नाम का इस्तेमाल नहीं करते थे? हम उन्हें रोक नहीं सकते थे। ऐसी हालत में हमें चाहिए कि हम सर्जन को दोष न दें। कभी कभी तो उसे किसी प्राणघातक जख्म को अच्छा करने और प्राण बचाने के लिए रोगी के भले-चंगे और काम के हिस्सों को भी काट डालना पड़ता है।

इसपर कुछ लोग कहेंगे, 'अच्छा साहब, यह तो माना, पर उन लोगों के साथ काम करना कैसे मुमकिन है जिनका कि विश्वास (एतकाद) इसमें नहीं है।' जब कि कोई भारी वेग और शक्ति वाला कार्यक्रम शुरू किया जाता है तब यह जरूरी है कि देश के तमाम विश्वास-पात्र नेता उसमें शरीक किये जायें। यही कारण है जो गांधीजी ने १९२० में भारत के तमाम बड़े बड़े नेताओं को असहयोग में शामिल किया था। उन्होंने गांधीजी का विरोध किया था, उनके खिलाफ राय दी थी। पर उनकी हार हुई। फिर भी जबकि कार्यक्रम को महासभा ने कुबूल कर लिया तो वे सब लोग कार्य-समिति में गांधीजी के साथ रहे। क्या किसीने भी यह ख्याल किया था कि ज्योंही कलकत्ते की बैठक में यह प्रस्ताव पास हुआ तो उन लोगों ने जिन्होंने कि गांधीजी की जोर शोर के साथ मुखालिफत की थी, एकदम अपनी राय या अपना मिजाज बदल डाला है? फिर भी काम चलाने में कोई दिक्कत न पेश हुई। क्यों? इसलिए कि उन्होंने गांधीजी को सचाई के साथ सहायता की और उनका साथ दिया।

इसी तरह अब भी गांधीजी आशा करते हैं कि दूसरे नेतागण कताई की शर्त के महत्व को समझ कर उन्हें उसको आगे बढ़ाने में मदद देंगे। कम से कम उनसे यह उम्मीद तो हर हालत में की जाती है कि वे उस भारी आजमाइश के लिए पूरा पूरा अवसर देंगे। आइए, हम अविश्वास और डर छोड़ें और काम में जुट जायें।

अब हमें जरा भी वक्त न गंवाना चाहिए और तुरन्त इस नये मताधिकार को कार्य-रूप में परिणत (अमलदरामद) करने में लग जाना चाहिए। यह एक भारी अंजन है, जिसके लिए हमारी तमाम भाप और तमाम आग दरकार होगी। हमें बिना वक्त गवांये उसके लिए पक्की सड़क बना देनी चाहिए, नहीं तो इस अंजन से हमारा कुछ काम न बनेगा। हर कार्यकर्ता को, फिर वह चाहे महासभा के पद पर प्रतिष्ठित हो या न हो, इस काम में मदद देनी चाहिए। आपके गांव में अच्छे चरखे हैं? यदि न हों, तो नमूने के लिए

एक अच्छा चरखा मंगा लीजिए और अपने गांव के बढ़ई से और बनवा लीजिए तथा अपने मित्रों को कातने पर रजामंद कीजिए। क्या आप धुनकना जानते हैं? इस गांधी-कार्यक्रम में धुनकना सब बातों की बुनियाद है। यदि आप खुद जानते होंगे तो आप अपने पड़ोसियों को भी सहायता पहुंचा सकेंगे और आपका घर एक चरखा-हलके का केन्द्र हो जायगा। अगर न जानते हों तो फौरन् साबरमती आश्रम या ऐसी ही किसी जगह जाकर इस निहायत जरूरी चीज को सीख लें।

अगर हम इस देश में गेहूं की पैदावार करना भूल जायं तो हमारे राजा का यह फरमान निकालना उचित ही होगा कि प्रजा-जन को कर का इतना हिस्सा इतना गेहूं दे कर अदा करना चाहिए। उस हालत में अवश्य ही हर शख्स को गेहूं पैदा करने की विद्या सीखनी होगी और इससे शीघ्र ही उसका पुनरुद्धार हो जायगा। इसीतरह जबकि हम भी अपनी कताई की कला को गवां चुके हैं, जिसका कि पुनरुद्धार हमारे देश की बहबूदी के लिए निहायत जरूरी है, तो तमाम म्युनिसिपलिटियों और लोकल बोर्डों के लिए यह बिलकुल उचित होगा कि वे मकान-कर या दूसरे करों आदि का एक अंश हाथ-कते सूत के रूप में लेने का नियम बनावें। तब इसमें भला कई सन्देह रह जाता है कि ऐसा नियम बन जाने पर लोगों के इस गये उद्योग के पुनरुद्धार में कुछ भी समय न लगेगा? हां, यह सच है कि आज हमारी हालत ऐसी नहीं है कि हम ऐसा कानून बना सकें। पर जो कुछ नियम हम बना सकते हैं वे तो जरूर ही बना डालें और उनका अमलदरामद शुरू कर दें। हम औरों के लिए चाहे कानून न बना सकते हों पर खुद अपने लिए तो जरूर ही बना सकते हैं।

यदि हम चाहते हों कि महासभा ऐसी संस्था हो जो कोरे प्रस्ताव पास कर के या ऊपरी दिखावा दिखा कर न रह जाय, बल्कि अपने निर्णयों के अनुसार काम कराने की शक्ति भी रक्खे तो हमें व्यवस्था के लिए कड़े नियम बनाना होंगे और उनके अनुसार चलना भी होगा, जिससे कि हम सामूहिक शक्ति प्राप्त कर सकें। मुमकिन है कि इस कताई की शर्त को अभी लोक-प्रिय होने में कुछ समय लगे और उससे भी अधिक देर में वह पूरी हो सके। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह विदेशी कपड़े के बहिष्कार की सच्ची बुनियाद है। और यह बहिष्कार एक ऐसी चीज है जिस पर देश के समस्त राजनैतिक दल सहमत हैं और यही सरकार के मुकाबले में हमारे पास कारगर हथियार है।

इसलिए, आइए, हम न तो इसे अविश्वास की दृष्टि से देखें, न इसे देख कर डर जायं कि अरे, यह कहां की अजीब चीज ला कर रख दी है। गांधीजी की महत्ता इसी बात में है कि वे रोग का ठीक और असली कारण खोज कर उसका सच्चा इलाज बताते हैं। इलाज की विचित्रता या दवा के कड़वेपन से तो हमें उलटा अधिक उत्साह मिलना चाहिए, न कि शंका-कुशंका पैदा हो।

च. राजगोपालाचार्य

मारना कब ठीक है?

देहली से लाला शंकरलाल कहते हैं कि ऐसा छपा है कि आपने हिंदुओं को यह सलाह दी है कि कुछ खास मौकों पर वे मुसलमानों को मार सकते हैं—जैसे जब कि वे गाय का वध कर रहे हों। मैंने इस रिपोर्ट को पढ़ा नहीं है। पर चूंकि यह मामला बहुत ही महत्वपूर्ण (अहम) है, इसीलिए इसके बारे में बिलकुल ठीक ठीक और निश्चित बात नहीं कही जा सकती। मेरा यह मत है कि सारी दुनिया या मुसलमानों से झगड़ा मोल लेकर गाय की रक्षा करना हिन्दू-धर्म का अंग नहीं है। अगर हिन्दू लोग इस किस्म की कोई कार्रवाई करेंगे तो वे जबरन् दूसरे से अपना मत मनवाने के अपराधी (कुसूरवार) होंगे। उनका कर्तव्य सिर्फ इतना ही है कि वे गाय का अच्छी तरह प्रेम के साथ लालनपालन करें। पर मुझे यहां चलते चलते यह भी कह देना चाहिए कि हिन्दू इस कर्तव्य का पालन करने में बहुत गफलत करते हैं। हिन्दू लोगों के पास सारी दुनिया को गो-रक्षा के पक्ष (हक) में कर लेने का सिर्फ एक ही उपाय (तदबीर) है—खुद उन्हें सब प्रकार से गोरक्षा का पदार्थ-पाठ पढ़ावें। लेकिन हां, दुनिया का हर शख्स, और इसलिए हर हिन्दू इस बात के लिए बाध्य (मजबूर) है कि वह अपनी जान दे कर भी अपनी मां, बहन, बीबी, और लड़की और सच पूछिए तो जिन जिन की रक्षा का भार खास तौर से उसपर है, सब की हिफाजत करे। मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि औरों की रक्षा के लिए अपनी जान दे दो—दूसरे को मारने के लिए हाथ तक न उठाओ। पर मेरा धर्म मुझे यह कहने की भी छुट्टी देता है कि अगर ऐसा मौका पेश हो कि एक ओर अपने जिम्मे के लोगों को या काम को छोड़ कर भाग जाने या हमला करनेवाले को मारने में से किसी बात को पसन्द करना हो तो यह हर शख्स का कर्तव्य है कि वे मारते हुए वहीं मर जायं, अपनी जगह को छोड़ कर भागे हरगिज नहीं। मुझे ऐसे हट्टे-कट्टे पढ़ते लोगों से मिलने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है जो सीधे-सरल भाव से आकर मुझसे कहते हैं, और जिसे मैंने बड़ी शरम के साथ सुना है कि बदमाश मुसलमानों को हिन्दू अबलाओं पर बलात्कार करते हुए हमने अपनी आंखों देखा है। जिस समाज में जवांमर्द लोग रहते हों वहां बलात्कार की आंखों देखी गवाहियां देना प्रायः असंभव (गैरमुमकिन) होना चाहिए। ऐसे जुर्म की खबर देने के लिए एक भी शख्स जिन्दा न रहना चाहिए। एक भोला-भाला पुजारी, जो कि अहिंसा के मतलब को नहीं जानता था, मुझसे खुशी खुशी आकर कहता है साहब, जब हुल्लड़बाजों की भीड़ मन्दिर में मूर्ति तोड़ने को घुसी तो मैं बड़ी होशियारी करके छिप रहा। मेरा मत है कि ऐसे लोग पुजारी होने के बिलकुल लायक नहीं हैं। उसे वहीं मर जाना चाहिए था। तब अपने खून से उसने मूर्ति को पवित्र कर दिया होता। और अगर उसे यह हिम्मत न थी कि अपनी जगह पर बिना हाथ उठाये और मुंह से यह प्रार्थना करते हुए कि 'ईश्वर इस खूनी पर रहम कर!' मर मिटे तो उस हालत में उन मूर्ति तोड़नेवालों का संहार करना भी उसके लिए ठीक था। परन्तु अपने इस नश्वर शरीर को बचाने के लिए छिप रहना मनुष्योचित न था। सच बात यह है कि कायरता खुद ही एक सूक्ष्म और इसलिए भीषण प्रकार की हिंसा है और शारीरिक हिंसा की अपेक्षा उसे निर्मूल करना बहुत ही मुश्किल है। कायर मनुष्य हरगिज अपनी जान को जोखों में नहीं डालता। पर जो शख्स दूसरे को मारता है वह कभी कभी उसे जोखों में डालता है।

और एक अहिंसा-परायण मनुष्य की जान तो हमेशा उस शख्स के हवाले ही रहती है जो उसे लेना चाहता हो। क्योंकि वह जानता है कि इस शरीर के अन्दर बसनेवाला आत्मा का नाश कभी नहीं होता। और यह हाड़-मांस का पिंजड़ा क्षणभंगुर है। मनुष्य जितना ही अधिक अपनी जान देता है उतना अधिक वह उसे बचाता है। इस तरह अहिंसा के लिए युद्ध के सैनिकों से बढ़कर जवांमर्दी की जरूरत होती है। गीता कहती है, सिपाही वह है जो खतरे में पीठ दिखाना नहीं जानता। (यं. इं.) मो० क० गांधी.

अहिंसा का मर्म

[२]

इसपर श्री केलकर ने कहा—'पर काम तो हमारे मन की शिथिलता के अनुसार ही होगा न? क्योंकि स्वराजियों की श्रद्धा आपके जैसी तो है नहीं; उनके मनमें कुछ दरजे तक छिपी अश्रद्धा तो हुई है।'

गांधीजी—'हां, पर यदि श्रद्धा इस हद तक हो कि चरखे से देश का अकल्याण (नुकसान) होता है तो फिर आपको यह सुलहनामा फाड फेंकना चाहिए।'

श्री केलकर ने कहा—'नहीं, इस दरजे तक तो नहीं।'

गांधीजी आगे कहने लगे—"चरखे के लिए मैं आपसे जो सहयोग चाहता हूं वह वैसा नहीं है जैसा आप मुझसे चाहते हैं और यह बात हमारे ठहराव में साफ साफ दर्ज है। आपसे मैं असंभव (गैर मुमकिन) बातों की उम्मीद नहीं रखता। मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूं कि आप अपनी श्रद्धा और शक्ति के अनुसार जितनी सहायता कर सकते हैं, करें, पर करें बहुत ही ईमानदारी के साथ। मैं चाहता हूं, सब लोग इस भाव से ठहराव को देखें। अगर इस भाव से न देखेंगे तो मैं पहले से कह देता हूं कि समझ रखना, यह हलचल सफल होने की नहीं। मैं तो चाहता हूं कि आप एक दूसरे के प्रति किसी तरह का दुर्भाव और मनमुटाव न रक्खें। इस ठहराव को स्वीकार करते समय अपरिवर्तनवादियों के दिल के तह तक में ऐसे भाव न रहने चाहिए कि स्वराजी देश के दुश्मन हैं।

"अपरिवर्तनवादियों को मैं चेतावनी देना चाहता हूं कि अगर आपका विश्वास चरखे में न हो तो आप आखीर में जा कर देखेंगे कि हिंसात्मक आन्दोलन के सिवा दूसरा कोई साधन (तदबीर) आपके पास नहीं है। श्री स्टोक्स जो आज पंगु हो रहे हैं इसका कारण क्या है? बढ़िया आदमी हैं, खूब कुरबानी कर चुके हैं। पर विदेशी ठहरे। उनकी चरखे की बात लोगों ने न सुनी। बस, अब उन्हें दूसरा कुछ रास्ता नहीं दिखाई देता। वे कहते हैं कि धारासभा के सिवा दूसरा रास्ता नहीं। क्योंकि धारासभा के द्वारा लोगों की छोटी छोटी शिकायतें और दुख-दर्द तो दूर हो सकते हैं, असहयोग के द्वारा यह कैसे हो सकता है? इसलिए आपसे भी कहता हूं कि यदि चरखा आपकी देश-भक्त आत्मा को तृप्त करने के लिए काफी नहीं है तो आपको धारासभा में जाना ही होगा; क्योंकि वहां जा कर और कुछ नहीं तो कुछ धूम-धाम तो कर सकते हैं और कुछ कैदियों को तो छुड़ा सकते हैं। मैंने बार बार कहा है और आज फिर कहता हूं कि कि अगर चरखे में श्रद्धा न हो तो धारासभा में जाना ही पड़ेगा। वहां कुछ तो कर सकेंगे। धारासभा में गये लोग बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधि हैं। वे ठोकर खाये हुए पक्के सिपाही हैं। पंडित मालवीयजी को ही लीजिए। ऐसे आत्मत्यागी पुरुष आपको कहां मिलेंगे? उन्होंने बहुत सेवायें की हैं, फिर भी धारासभा में उनका विश्वास बना हुआ है। वे कुछ बेवकूफ नहीं हैं। जब जब उन्हें देखता हूं मेरा सिर उनके सामने झुक जाता है। चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरू कौन हैं? आज वे ऐसा लिबास पहन कर क्यों बैठे हैं? एक जमाना था कि मोतीलालजी राजा की तरह रहते थे। जब वे अमृतसर की महासभा में गये थे तब अपने साथ अपनी मोटर और नौकरों की फौज ले गये थे। उनका बगीचा एक दिन गुलाब और बेला की बहार से महका करता था—आज वह वीरान हो गया है और उसमें घास खड़ी है। क्या वे देश-द्रोही हैं? मेरा सिर हमेशा उन्हें नमन करता है और जब जब मैं उन्हें देखता हूं तब तब मेरे मनमें यह खयाल उठता है कि मेरे अन्दर कोई नुक्स जरूर होना चाहिए कि जिससे मैं कुछ बातों में उनसे सहमत नहीं होता हूं। और केलकर भी कौन हैं? वे उस महापुरुष के प्रतिनिधि हैं जिनका नाम इतिहास में अमर रहेगा और एक ईश्वर की सत्ता के नीचे ३३ करोड देवताओं को माननेवाले इस देश में देवता की तरह पूजा जायगा। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप अपने दिल साफ कीजिए, प्रेम करना सीखिए और अपने हृदय को समुद्र की तरह विशाल बना लीजिए। क्या कुरान-शरीफ और क्या गीता, दोनों का यही उपदेश है। आप काजी न बनना—अगर बनेंगे तो आपको ऐब देखने वाले भी हजारों निकल पड़ेंगे। ईश्वर ही एक न्यायमूर्ति है। आपके अन्दर अनेक शत्रु घर किये बैठे हैं, अनेक शत्रुओं ने आपको घेर रक्खा है। फिर भी वह उनसे आपकी रक्षा करता है और आपको अपने करुणा-कटाक्ष से शीतल करता है। हम यह क्यों कर कहें कि स्वराजी कुटिल हैं, दगाबाज हैं। ईश्वर हमें मनुष्य-स्वभाव की इस निन्दा से बचावें।

"मत-भेद तो जबतक दुनिया कायम रहेगी तबतक होता ही रहेगा। और अपरिवर्तनवादियों का बड़ा से बड़ा काम तो तब माना जायगा जब वे अपने माने जानेवाले विरोधियों को मित्र बना कर चरखे पर उनकी श्रद्धा बैठा देंगे। वे चरखे को इसीलिए नहीं ग्रहण कर रहे हैं कि उन्हें उसकी उपयोगिता नहीं दिखाई देती। आपको वह साबित कर दिखानी चाहिए। मैं चरखे के पीछे पागल हूं; क्योंकि उसीमें मुझे देश का उद्धार दिखाई देता है। श्रद्धा क्या हिन्दू और क्या मुसलमान दोनों धर्मों का सनातन सिद्धान्त है। जब मैं जेल में था तब मौलाना हसरत मोहानी ने एक पुस्तक मुझे दी थी। उसमें एक शागिर्द की कहानी पढ़ी थी कि उसने हुक्का भरने जैसे क्षुद्र काम को भी दस, बीस नहीं पचास बार श्रद्धा से किया और उससे उसे लाभ हुआ। मैं हिन्दू और मुसलमान दोनों से कहता हूं कि ऐसी ही निःस्वार्थ निष्काम सेवा करो। चरखा औरों के लिए चाहे अच्छा हो या न हो; पर मेरे लिए तो हुई है। इस श्रद्धा से काम करना होगा। काशी-विश्वनाथ की भव्य मूर्ति मौ० हसरत मोहानी के नजदीक एक पत्थर का टुकड़ा हो पर मेरे लिए तो वह ईश्वर की प्रतिमा है। मेरा हृदय उसका दर्शन कर के द्रवित होता है। यह श्रद्धा की बात है। जब मैं गाय का दर्शन करता हूं तब मुझे किसी भक्ष्य पशु का दर्शन नहीं होता, उसमें मुझे एक करुण काव्य दिखाई देता है। मैं उसकी पूजा करूंगा और फिर करूंगा और यदि सारा जगत् मेरे खिलाफ उठ खड़ा हो तो उसका मुकाबला करूंगा। ईश्वर एक है। पर वह मुझे पत्थर की पूजा करने की श्रद्धा प्रदान करता है। वही मुझे पशु में, मेरे सामने की प्रत्येक वस्तु में, अंगरेजों में, अधिक क्या, देश-द्रोही तक में अपने को—ईश्वर को—देखने की शक्ति देता है। मेरे दिल में तो देश-द्रोही के प्रति भी तिरस्कार का भाव नहीं। इसलिए मैं हर असहयोगी से कहूंगा कि यदि आपकी निष्ठा अहिंसा-धर्म में हो तो आप स्वराजियों को गले लगावेंगे, उन्हें कहेंगे कि 'हमसे भूल हुई हो तो माफ कीजिए।' किसीके प्रति घृणा या द्वेष-भाव रखने का अधिकार ही आपको नहीं है। किसीको भी दुर्वचन कहने का हक आपको नहीं। मैं चाहता हूं कि आप इस उच्च-हृदयता के नुस्खे का सेवन करें। इससे बढ़िया नुस्खा मैं आपको नहीं दे सकता। ईश्वर आपको उसके सेवन करने की शक्ति दे और आप देखेंगे कि साल के अन्त में सब तरह कुशल ही होगा।"

नोटिस ?

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)॥
विदेशों के लिए	,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक २३

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, माघ बदी ५, संवत् १९८१ गुरुवार, १५ जनवरी, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी.

अस्पृश्यता का पाप !

[काठियावाड राजनैतिक परिषद् में सभापति के नाते किया गांधीजी का मौखिक प्रारंभिक भाषण नीचे दिया जाता है—]

"मैंने सोचा था कि इस परिषद् में एक ही बात को प्रधानता दूंगा। परन्तु खुशकिस्मती से अब दो बातों को प्रधानता देनी पड़ेगी। एक बात है खादी, जिसके बराबर प्यारी मुझे कोई चीज नहीं। कितने ही लोग मुझे चरखे के पीछे—खादी के पीछे—पागल मानते हैं। और यह बात सच है। क्योंकि आशिक को ही माशूक की कीमत हो सकती है। आशिक ही कह सकता है कि मुहब्बत, प्रेम, इश्क क्या है। मैं आशिक हूं, इसीसे मैं जान सकता हूं कि मेरा प्रेम क्या चीज है और मेरे अन्दर कौनसी आग धधक रही है। पर उस आग के बारे में मैं यहां कुछ नहीं कहना चाहता।

यह राजनैतिक परिषद् है और आप राजनैतिक बातों की चर्चा करने की आशा रखते होंगे। पर मेरे अन्दर तो किसानों के भाव भरे हुए हैं—हालां कि जन्म हुआ है मेरा वणिक् (बनिये) के घर और मेरे पिता तथा दादा राजकाज करते आये हैं। फिर भी मेरे पास राजकाजीपन नहीं है, अथवा हो तो मैं लाचार हूं। मेरे पास एक और चीज है, जो मुझे विरासत में नहीं मिली है, मैंने खुद हासिल की है। वह है किसानपन, भंगीपन, ढेडपन—संसार में जो जो कुछ नीचपन समझा जाता है वह। मेरी यह विशेषता है। इससे मैं 'राजनैतिक' का अर्थ आपकी तरह 'राजकाजीपन' नहीं करता हूं, 'राज्य-विधान' नहीं करता हूं। क्योंकि किसान अपने खेतों की देख-भाल व्याख्यानों के द्वारा नहीं कर सकता, केवल हल से ही कर सकता है, कड़ी धूप में भी वह हल को नहीं छोड़ सकता। बुनाई का पेशा करनेवाला तभी अपना पेशा कर सकता है जब वह उद्यम करता रहे। 'राजनैतिक' का साधारण अर्थ है व्याख्यान देना, आन्दोलन करना, राजा के मुख देखना। पर मैं इससे उलटा अर्थ करता हूं। हिन्दुस्तान के बाहर पिछले २२ वर्ष के कार्य-जीवन में भी मैंने इससे उलटा अर्थ किया है। पर जिस तरह दूर के पर्वत सुहावने मालूम होते हैं, लोग मुझे भी राजकाजी मानते आये हैं। हां, मैं 'राजकाज' जानता हूं, पर वह दूसरे ढंग का है। उसमें विवेक और प्रेम है, षड्यन्त्र और कुचक्र के लिए वहां जगह नहीं है। षड्यन्त्र और कुचक्र से जितना काम निकलता है उससे चौगुना काम विवेक और प्रेम से निकला है। और उसमें किसान, भंगी, ढेड सबके हित का विचार आ जाता है। आप जानते हैं कि मैंने बेलगांव में 'राजनीति' की यही व्याख्या की थी और उसमें मुझे जरा भी शर्म न मालूम हुई। इसी दृष्टि से मैंने खादी का समावेश राज-काज में किया है। मेरा दावा है कि मेरी बात ज्ञान और समझदारी से भरी हुई है और मैं कह सकता हूं कि एक दिन आप कहेंगे कि गांधी की चरखे की बात अत्यन्त चतुराई, ज्ञान और समझदारी से युक्त थी। आज जब लोग मेरी बात पर हंसते हैं और कहते हैं कि चरखा तो गांधी का खिलौना है, तो मुझे उनपर रहम आता है। वे मेरी चाहे कितनी हंसी उड़ावें, मैं खादी की बात को छोड़ने वाला नहीं हूं।

अब दूसरी बात पर आता हूं। जब से 'नवजीवन' में मैंने लिखा था कि यदि परिषद् में ढेडों के लिए अलहदा जगह रक्खी जायगी तो मैं भी उसमें जाकर बैठूंगा, तब से भावनगर में बड़ी खलबली मच रही है। काठियावाड में अस्पृश्यता कैसी है, यह मैंने अपनी आंखों देखा है। मेरी पूजनीया माता भंगी से छूना पाप समझती थीं, पर इससे उनके प्रति मेरे दिल में घृणा नहीं; पर मैं मां-बाप के कुए में डूब मरना नहीं चाहता। मेरे मां-बाप ने तो मुझे स्वतंत्रता विरासत में दी है और यद्यपि मैं आज उनसे उलटे विचार रखता हूं, तो भी मुझे विश्वास है कि मेरी माता की आत्मा कहती होगी—'धन्य है बेटा, तुझे धन्य है।' क्योंकि तूने जो प्रतिज्ञायें मुझसे की थी उनमें यह प्रतिज्ञा नहीं थी कि किसी से छूना पाप है। विलायत भेजते समय उन्होंने मुझसे तीन प्रतिज्ञायें कराई थीं, पर उनमें ऐसी कोई प्रतिज्ञा न थी कि विलायत में अस्पृश्यता को धर्म मानना। मैं जानता हूं कि भावनगर में आज कुछ (अथवा बहुत, मैं नहीं जानता) खलबली मच रही है और नागर तथा वैश्य और दूसरे लोग सन्तप्त हो रहे हैं। उनमें से जो लोग यहां मौजूद हों वे यदि यह मानते हों कि गांधी भ्रष्ट हो गया है और सनातन-धर्म को जड़ उखाड़ने बैठा है, तो उन्हें मैं विवेक और दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूं कि गांधी सनातन-धर्म की जड़ नहीं उखाड़ रहा है, वह जो कुछ कहता है उसीपर सनातन

धर्म की जड़ कायम रहेगी। आपमें भले ही कोई पण्डित हों, वेद के एक एक शब्द को रट डाला हो, तो भी मैं उनसे कहूंगा कि आप बड़ी भूल कर रहे हैं। सनातन-धर्म की जड़ वही लोग उखाड़ रहे हैं जो अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म का मूल मानते हैं। मैं आदर पूर्वक यह बात कहता हूं कि इस विश्वास में न तो दूरंदेशी है, न विचार है, न विवेक है, न विनय है, न दया है। और यदि ऐसे विचार रखनेवाला मैं अकेला ही रह जाऊं तो भी मैं अन्त तक कहूंगा कि आज हम अस्पृश्यता का जो अर्थ कर रहे हैं उसे यदि हिन्दू-धर्म में स्थान देंगे तो हिन्दू-धर्म को क्षयी-रोग हो जायगा। और उसका नतीजा होगा उसका विनाश। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से मैं कहता हूं कि हिन्दुस्तान का उद्धार मुसल्मानों पर उतना अवलंबित नहीं, ईसाइयों पर उतना अवलंबित नहीं, जितना इस बात पर है कि हिन्दू अपने धर्म की रक्षा किस प्रकार करते हैं। क्यों कि मुसल्मानों का काशी-विश्वनाथ यहां नहीं, मक्का में है, ईसाइयों का जेरूसेलम में है। पर आप तो हिन्दुस्तान में ही रह कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। यह युधिष्ठिर की भूमि है, यह रामचन्द्र की भूमि है। ऋषि-मुनियों ने हमसे कह रक्खा है कि यह कर्म-भूमि है, भोग-भूमि नहीं। इस भूमि के निवासियों से कहता हूं कि हिन्दू-धर्म आज तराजू पर चढ़ा हुआ है और संसार के तमाम धर्मों के साथ उसकी तुलना हो रही है और जो बात बुद्धि के बाहर होगी, दया-धर्म के बाहर होगी उसका समावेश यदि हिन्दू-धर्म में होगा तो उसका नाश निश्चित समझ रखना। दया-धर्म का मुझे भान है और इसीके कारण मैं देख रहा हूं कि हिन्दू-धर्म के नाम पर कितना पाखण्ड, कितना अज्ञान फैल रहा है। इस पाखण्ड और अज्ञान के खिलाफ यदि जरूरत पड़े तो मैं अकेला लड़ूंगा, अकेला रह कर तपश्चर्या करूंगा और उसका नाम जपते हुए मरूंगा। शायद ऐसा भी हो कि मैं पागल हो जाऊं और कहूं कि मैंने अपने अस्पृश्यता-संबंधी विचारों में भूल की है, और मैं कहूं कि अस्पृश्यता को हिन्दूधर्म का पाप कह कर मैंने पाप किया था तो आप मानना कि मैं डर गया हूं, सामना नहीं कर सकता और दिक हो कर मैं अपने विचार बदल रहा हूं। उस दशा में आप ऐसा ही मानना कि मैं मूर्छित दशा में ऐसी बात बक रहा हूं।

आज जो बात मैं आपसे कह रहा हूं उसमें मेरा स्वार्थ नहीं, उससे मैं कोई उपाधि नहीं लेना चाहता। उपाधि तो मैं 'भंगी' की चाहता हूं। सफाई करना कितना पुण्य-कर्म है? यह काम या तो ब्राह्मण कर सकता है या भंगी कर सकता है। ब्राह्मण ज्ञानपूर्वक करता है और भंगी अज्ञानपूर्वक। मुझे दोनों पूज्य हैं, आदरणीय हैं। दोनों में से यदि एक का भी लोप हो तो हिन्दू-धर्म लोप हुए बिना न रहेगा।

और मुझे सेवा-धर्म प्रिय है। इसीसे भंगी प्रिय है। मैं तो भंगी के साथ बैठकर खाता भी हूं। पर आपसे नहीं कहता कि आप भी उसके साथ बैठ कर खाओ, रोटी-बेटी-व्यवहार करो। आपसे कह भी किस तरह सकता हूं? मैं एक फकीर जैसा हूं—सच्चा फकीर हूं या नहीं, सो नहीं जानता। मैं सच्चा संन्यासी हूं या नहीं सो भी नहीं जानता। पर सन्यास मुझे पसंद है। ब्रह्मचर्य मुझे प्रिय है, पर नहीं जानता कि मैं सच्चा ब्रह्मचारी हूं या नहीं। क्योंकि ब्रह्मचारी के मन में यदि दूषित विचार आते हों, वह सपने में भी व्यभिचार करने का विचार करता हो तो मैं कहूंगा कि वह ब्रह्मचारी नहीं। मेरे मुंह से यदि गुस्से में एक भी शब्द निकले, द्वेष से प्रेरित हो कर कोई काम हो, जिसे लोग मेरा कट्टर से कट्टर दुश्मन मानते हों उसके खिलाफ भी यदि क्रोध में कुछ वचन कहूं तो मैं अपनेको ब्रह्मचारी नहीं कह सकता। सो मैं पूर्ण सन्यासी हूं कि नहीं, यह नहीं जानता। पर हां, मैं जरूर कहूंगा कि मेरे जीवन का प्रवाह इसी दिशा में बह रहा है। ऐसी अवस्था में मैं यह नहीं कह सकता कि किसी भंगी की लड़की या कोई कोढ़ी आदमी मेरी सेवा चाहते हों तो मैं उनकी सेवा नहीं कर सकता, मुझे यदि अपने हाथ का खाना खिलाना चाहें तो मैं नहीं खा सकता। फिर ईश्वर की इच्छा हो तो मुझे बचावे अथवा मार डाले। पर मैं तो कोढ़ी की सेवा किये बिना नहीं रह सकता। ऐसा करते हुए यह भी दावा करूंगा कि यदि ईश्वर को गरज हो तो मुझे रक्खे। क्योंकि मैं अपना यही धर्म समझता हूं कि भंगी को कोढ़ी को, ढेड़ को खिला कर खाऊं। पर मैं आपसे नहीं कहता कि आप व्यवहार-धर्म की मर्यादा को तोड़ डालो। आपसे तो मैं इतना ही चाहता हूं कि आप पांचवां वर्ण न बनाओ। ईश्वर ने चार वर्ण की रचना की है। इसका अर्थ मैं समझ सकता हूं। पर आप पांचवां—अछूतों का वर्ण न पैदा करो। मैं अछूतपन को गवारा नहीं कर सकता। इस शब्द को सुनकर मुझे चोट पहुंचती है। जो लोग मेरा विरोध करते हैं उनसे कहता हूं कि आप विचार करो। आप मेरे साथ आकर चर्चा करो समझ जाओ कि मैं क्या बक रहा हूं। आप विवेक और विचार को छोड़ कर बात कर रहे हो। उसका फल नहीं निकल सकता। आज मुझे दो पण्डित महाशयों के दस्तखती तार मिले हैं। उन्हें मैं नहीं पहचानता। पर वे लिखते हैं कि हिन्दू-धर्म का सहारा ले कर तथा पण्डितों के नाम पर आप पर जो आक्षेप हो रहे हैं वे मिथ्या हैं। हम अपनी श्रेणी के लोगों के दस्तखत भेजेंगे जिससे आपको मालूम हो जायगा कि अनेक शास्त्री लोग आपका साथ दे रहे हैं। हां, यह सच है कि आप जिस जोर-शोर के साथ काम ले रहे हैं उस तरह हमसे नहीं होता; क्योंकि आप तो ठहरे निडर आदमी। हमें बहुत आगा-पीछा सोचना पड़ता है। द्रोणाचार्य और भीष्माचार्य से जाकर श्रीकृष्ण ने कहा कि आप पांडवों के खिलाफ लड़ेंगे? तो उन्होंने कहा कि भाई क्या करें? हमारे सामने आजीविका का सवाल है। हमारे अन्दर कितने ही द्रोणाचार्य और भीष्माचार्य हैं। जबतक पेट पीछे लगा हुआ है तबतक वे बेचारे क्या करें? उनसे जो कुछ नहीं हो सकता है, इसमें उन विद्वानों का दोष नहीं, विधि का दोष है, परिस्थिति का दोष है। पर वे दिल में तो समझते हैं कि गांधी अच्छा काम कर रहा है और उनका दिल मुझे दुआ दे रहा है। पर इसके साथ मैं एक और बात भी कहता हूं। मैं तो सत्याग्रही हूं। 'मारना नहीं, पर मरना' मेरा धर्म है। सो मैं तो अपने ही तरीके से काम लूंगा। इसलिए आपसे एक प्रार्थना करता हूं। अगर आप ऐसा समझते हों कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म की जड़ है तो आप ऐसा समझते रहिए। पर मुझे भी यह कहने का अधिकार दीजिएगा कि यह हिन्दू-धर्म का पाप है। आपसे हो सके तो आप हिन्दू-संसार के हृदय को जाग्रत कीजिए। पर मुझे भी वैसा करने का उतना ही अधिकार दीजिएगा। सत्याग्रही तो एकमार्गी होता है। उसे दूसरे के साथ लड़ाई-झगड़ा नहीं करना है, न किसी के साथ मुकद्दमा करना है। इसलिए मैं आपको वचन देता हूं कि आपके साथ प्रेम-भाव से बरतूंगा। यदि मैं अकेला रह गया तो भी 'बचना, बचना' कह कर मेरी आवाज उठेगा।

जो लोग आज अस्पृश्यता के विषय में मेरा साथ दे रहे हैं उनसे मैं कहता हूं—ढेड-भंगियों से भी कहता हूं—जो लोग आपको गालियां देते हों उनके प्रति सहनशील रहना। तुलसीदास कह गये हैं—दया धर्म का मूल है। सो अगर प्रेमभाव को छोड़ोगे तो बाकी

हार जाओगे। जिस प्रकार आप अस्पृश्यता को पाप मानते हैं उसी प्रकार आप अपने विरोधियों के तिरस्कार के पाप में भी न पड़ना। जो आपको गालियां दें उनसे हँस कर बोलना। सच्चे दिल से उनके साथ प्रेम करना और शुद्ध आचार और विचार रखना। ऐसा करोगे तो यह अस्पृश्यता-रूपी पाप मिट जायगा।

जानते हैं, नारणदास संघाणी कौन है? वह मेरा लड़का ही है। एक वक्त ऐसा था कि वह मेरा पिलाया पानी पीता था, केवल मेरा सेवक बन कर रहता था, अपनी सारी लायब्रेरी उसने मुझे दे डाली थी। पर परमात्मा ने अब उसे कुमति दी है। (मैं सच मानता हूं कि भगवान ने उसकी मति बिगाड़ दी है) पर अब भी मेरे नजदीक तो वह लड़का ही है। मैं मानता हूं कि इसका उपद्रव बहुत दिनों तक न चलेगा। जो प्रतिज्ञा उसने की है वह संभव है, न फलेगी। और अगर वह मुझपर हाथ उठावे और हमला करे तो मैं कहूंगा 'खैर, जो किया सो किया' और उस समय भी उसे आशीर्वाद करूंगा। प्रह्लाद ने अपने पिता का कहना न माना। वह यही कहता रहा कि मेरे पिता मुझसे अधर्म कराना चाहते हैं, मुझे बुरे रास्ते ले जाना चाहते हैं। सो पिता का अनादर करना मेरा धर्म है। आज अगर नारणदास संघाणी यह मानता हो कि वह मेरे पहले पहल का लड़का है, फिर भी यदि वह मानता हो कि मैं भ्रष्ट हो गया हूं और मेरा संहार करना चाहिए तो वह जरूर मेरा संहार करे। मुझे यकीन है कि वह संहार करते करते उसकी आंखें खुलेंगी और फिर आपके पास आकर नीचा सिर किये प्रायश्चित्त करेगा। वह अभी लड़का है, जवान है; और मैं हुआ बूढ़ा। मुझपर अबतक अनेकों ने हाथ उठाये हैं, फिर भी मैं बच गया हूं। मुझे अपेंडिसाइटिस की बीमारी हुई, आपरेशन करते समय बिजली बुझ गई। पर ईश्वर को मुझे बचाना था? कुछ नहीं हुआ। उपनिषद में एक कथा है, जिसमें हवा से कहा जाता है तू तिनके को हिला दे, आग से पूछा जाता है कि तू तिनके को जला दे। परन्तु वायु और अग्नि 'नहीं कर सकते' कह कर भाग जाते हैं। यदि ईश्वर न चाहेगा कि मेरी मौत आवे तो मुझे कौन मार सकता है? यदि मेरी आयु कम होगी तो मैं इस तरह, बोलता हुआ, मुख से बैठा हुआ होने पर भी प्राण उड़ जायंगे और किसीको मालूम तक न होगा। और उसे कोई रोक भी न सकेगा। पर मुझे व्यवहार का थोड़ा-बहुत अनुभव है, कुछ ज्ञान है। सो आपसे प्रार्थना है कि मेरी बात मानना और नारणदास पर दया करना। अपने लिए मैं आपसे दया नहीं चाहता। दया तो एक ईश्वर से चाहता हूं। पर आपसे चाहता हूं सच्चे सैनिक की प्रतिज्ञा। और आपसे कहता हूं कि आप जो कुछ प्रतिज्ञा करेंगे उसे आपको पालना जरूर होगा। यदि बिना विचारे प्रतिज्ञा करोगे तो मैं बहुत भारी साबित हूंगा। भूत बन कर भी मैं आपसे अपनी प्रतिज्ञा का पालन कराऊंगा। सो सब सोच-विचार कर यहां आना।"

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।

२. एजंटों को प्रति कापी) । कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।

३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।

४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल्वे से।

व्यवस्थापक

स्वराज्य के व्यापारी

मताधिकार में जो नवीन परिवर्तन हुआ है वह अब भी बहुतों को भयानक मालूम होता है, इसपर मुझे ताज्जुब नहीं होता। नई चीज बहुतों को कईबार धपले में डालती है, कितनी ही बार डर पैदा करती है। मुझे आशा है कि ज्यों ज्यों वक्त जाता जायगा त्यों त्यों यह डर भी चला जायगा और लोग मताधिकार में चरखे को स्थान मिलने का महत्व समझ जायंगे। यह समझने में मदद करने के लिए इतना आवश्यक है कि जिन लोगों का विश्वास चरखे पर है वे इसपर अटल रह कर अपना विश्वास साबित करें। प्रान्तिक समितियों की राह न देख कर जो पहले से कात रहे हैं वे ज्यादह नियम-पूर्वक कातें और जो न कातते हों वे कातना शुरू कर दें। ज्यों ज्यों दो दो हजार गज की आटियां तैयार होती जायं त्यों त्यों वे अपनी अपनी प्रान्तीय समितियों में देते जायं और अपने नाम दर्ज कराते जायं। इसके लिए प्रान्तिक समिति की हिदायत की राह देखने की जरूरत नहीं।

जो लोग कातते हैं उन्हें औरों को समझाने का भी काम शुरू कर देना चाहिए। और जो बात कताई पर घटती है वही खादी पर भी घटती है। खादी का प्रचार अभी बहुत होने की जरूरत है। सफर में मैंने देखा है कि अभी बहुत थोड़े लोग खादी पहनते हैं। यह भी सुनता हूं कि बहुतेरे लोग सिर्फ सभा समितियों में खादी पहनते हैं। इस तरह कहीं विदेशी कपड़े का बहिष्कार हो सकता है? स्त्रियों में तो बहुत ही कम खादी देखी गई। सो स्वयंसेवकों से मेरी सिफारिश है कि वे घर घर जाकर खादी के इस्तेमाल की जरूरत और कताई का कर्तव्य लोगों को समझावें।

व्यापारी जिसतरह रातदिन अपने व्यापार की बढ़ती की तजवीजें और तदबीरें सोचा करता है उसीतरह हमें भी करना चाहिए। हम स्वराज्य के व्यापारी हैं। हम जानते हैं कि विदेशी कपड़े का बहिष्कार हो सकने पर ही स्वराज्य का व्यापार बढ़ सकता है।

हरएक स्वयंसेवक को अपनी जिम्मेवारी समझ लेनी चाहिए। हर शख्स डायरी रक्खे और रात को अपने मन से नीचे लिखे सवाल पूछे और इनके जो जवाब मिलें उन्हें उसमें लिख ले—

१. आज मैंने कितना गज सूत काता?

२. आज मैंने कितनों को सूत कातने के लिए समझाया?

३. आज मैंने कितनों को खादी पहनने पर रजामन्द किया?

जो शख्स ईमानदारी के साथ इन सवालों के जवाब हमेशा अपनी डायरी में लिखते रहेंगे उन्हें तुरन्त मालूम होगा कि हमारी काम करने की शक्ति घट रही है। मनुष्य-मात्र में थोड़ा बहुत पुरुषार्थ तो रहता ही है। और हमेशा अपनी हार की बातें लिखना उसे पसन्द नहीं आता। इस कारण ईमानदार आदमी उस हार को हरा देता है और फतह हासिल करता है। अच्छे व्यापारी अपने काम की डायरी रखते हैं और उसके अमूल्य लाभ का अनुभव करते हैं। जहाज के कप्तान के लिए तो रोजनामचा रखना लाजिमी होता है। फिर स्वराज्य के व्यापारी क्यों न रोजनामचा रक्खें? हमारा देश यदि आशावान् बनना चाहे तो उसके लिए महासभा ने सीधा रास्ता दिखाया है। हम यदि आलस्य को छोड़कर उद्यम पर कमर कसेंगे तो तुरंत उसका मीठा फल चक्खेंगे। यह समय न तो टीका-टिप्पणी का है, न शंका-कुशंका का है। सिर्फ मुंह बंद कर के चुप-चाप काम करने का, अर्थात् सूत कातने का, खादी पहनने का और पहनाने का समय है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ वदी ५, संवत् १९८१

नोटिस ?

नीचे लिखा नोटिस मुझे बेलगांव में दिया गया था—

" कुलाबा जिला (महाराष्ट्र प्रान्त) की महासभा-समिति के हम नीचे सही करनेवाले हमारे जिले की खास परिस्थिति की ओर आपका ध्यान दिलाते हैं। कुलाबे जिले में न तो कपास ही पैदा होती है और न वह कपास कातने लायक मुलायम के नजदीक ही है। इसलिए स्वभावतः कताई की तरफ यहां के लोगों का झुकाव नहीं है। यहांतक कि असहयोग के शुरू दिनों में भी बड़ी मुश्किल के साथ वहां कुछ चरखे चलाये गये थे, सो भी कुछ ही महीने चल पाये।

सो इन सब बातों पर खूब अच्छी तरह विचार कर के कुलाबा जिला समिति ने पिछले सितम्बर में यह प्रस्ताव पास किया था जिसका आशय यह था कि इस जिले में कताई के द्वारा मताधिकार की शर्त रखने से काम नहीं हो सकता और महासभा के विधान में उसका समावेश हो जाने से जिले की प्रायः तमाम समितियों की हस्ती खतरे में पड़ जायगी। इसलिए महासभा के द्वारा कताई-मताधिकार के स्वीकृत होते ही हम, बिना विलंब, आपको सूचना किये देते हैं कि हममें से बहुतेरे लोगों ने जो उस प्रस्ताव के हक में राय दी है, या उसके खिलाफ राय देने से अपनेको रोका है उसकी वजह यह है कि एक तो स्वराज्य-दल ने इसे अपने दल का सवाल बना लिया है और दूसरे महासभा में एकता करने के खयाल ने भी इस बात को लाजिमी बना दिया था। सो हमारे लिए इसपर अमल करना मुश्किल है। हम पहले से आपको खबर दिये देते हैं जिससे आपको हताश न होना पड़े।"

इस पर ता० २७ दिसंबर लिखी है और १२ सदस्यों के दस्तखत हैं। जिनमें सभापति और मंत्री भी हैं। मुझे आशा है कि ये महाशय अपनी धमकी को कार्यरूप में परिणत न करेंगे। अगर इन सज्जनों ने तंत्रनिष्ठा (डिसिप्लिन) या एकता के खयाल से कताईवाले प्रस्ताव के खिलाफ राय न दी हो या तटस्थ रहे हों तो मैं उन्हें यह बताना चाहता हूं कि खिलाफ राय न देने या तटस्थ रहने से ही तंत्रनिष्ठा या एकता की शर्तें पूरी नहीं होतीं। तन्त्रनिष्ठा तभी कारगर हो सकती है जब अपनी बुद्धि और तर्क के सहमत न होते हुए भी सच्चे सिपाही की तरह आज्ञा-पालन के भाव से प्रस्ताव पर अमल किया जाय। 'लाइट ब्रिगेड' ने जिसकी वीरता को टेनिसन ने अमर कर दिया है, ऐसे ही भाव से काम लिया था। बोअर-युद्ध में उन सिपाहियों ने भी इसी भाव का परिचय दिया था, जो यह जानते हुए भी कि हम मौत के मुंह में जा रहे हैं स्पीयन पर अपने जनरल के पीछे पीछे गये और बोअरों की गोलियां खाते हुए स्पायनकाप पर खेत रहे। उनके जनरल के इस प्रस्ताव पर कि पर्वत पर कब्जा कर लिया जाय, यदि वे एक काठ की पुतली की तरह हां-हूं कर देते तो उसके कुछ मानी न होते, उलटे शर्म की बात होती। उनके उस कार्य ने ही, जो कि यद्यपि वे मन से तो भी उसमें दृढ विश्वास रखनेवालों के जैसा ही दिलोजान से किया गया था, उन्हें वीर के पद पर प्रतिष्ठित करा दिया। और यह बात याद रखने लायक है कि उन्हें ऐसी लड़ाई लड़ना थी जिसमें पराजय बिल्कुल निश्चित थी। हार के ही मौके पर तो वीरों का जन्म होता है। इसीलिए एक ने कहा है कि सफलता क्या है? एक के बाद दूसरी गौरव-पूर्ण पराजय। सो अगर साल के अन्त में मताधिकार की यह नई शर्त विफल साबित हो जाय तो हर्ज क्या है? यदि महासभावादी दलादली के रहते हुए भी और राजी और नाराज के होते हुए भी यदि उसे सफल बनाने के लिए अपनी पूरी शक्तिभर कार्य करें और उसके बाद भी वह विफल हो तो यह हार एक गौरवपूर्ण हार होगी।

और न यही कहना मुनासिब है, जैसा कि उसपर दस्तखत करनेवाले महाशयों ने कहा है कि बहुतों ने सिर्फ एकता के खयाल से उस प्रस्ताव के हक में राय दी है, यद्यपि उनका इरादा उसके अनुसार काम करने का न था। एकता के लिए इससे कहीं अधिक पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। यह ऐसी चीज नहीं है जिसका प्रस्ताव महज कागज पर लिखा रहे और नतीजा कुछ न नजर आवे। एकता तभी कायम हो सकती है जब कि प्रस्ताव के अनुसार ठोस काम कर के दिखाया जाय। धारासभाओं में मेरा विश्वास नहीं। पर मेरे दूसरे साथियों को उनमें विश्वास है। इसलिए मैंने उन्हें महासभा के नाम का इस्तेमाल करने की आजादी दे दी है। पर अब अगर मेरा दिल मेरे मुंह या कलम का साथ न दे तो मैं एक पाखण्डी साबित हूंगा, न कि एकता में विश्वास रखनेवाला। परन्तु उस प्रस्ताव के हक में, जिसके द्वारा धारासभा-प्रवेश का अधिकार दे दिया गया है, राय देने के बाद मुझे चाहिए कि मैं स्वराजियों का भला मनाऊं, मुझे अपने किसी भी काम के द्वारा उनके कार्यक्रम का नुकसान न पहुंचाना चाहिए। यही नहीं, बल्कि जहां कहीं मुझसे हो सके अपनी पूरी शक्ति के साथ उन्हें मदद भी पहुंचानी चाहिए। और इतना करते हुए भी यदि उन्हें असफलता मिले तो वे यह नहीं कह सकते कि हम इसलिए नाकामयाब हुए कि आपने उस मर्यादा के अन्दर रहकर जो कि पहले से आपस में तय कर ली गई थी, उन्हें मदद न दी। फर्ज कीजिए कि अपरिवर्तनवादी किसी भी तरह से स्वराजियों के काम को न बिगाड़ें तो भी स्वराजियों की असफलता—यदि असफलता हो—भी एक तरह की सफलता होगी; क्योंकि उसके अन्त में जाकर हमें अपना रास्ता नापने का कोई दूसरा रास्ता मिल जायगा। ठीक इसी तरह यदि देश के तमाम दल कताई की शर्त को सफल बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगा देखें और फिर अगर सफलता न मिले तो हम सब कहेंगे कि हां, बात सच है, और साफ शब्दों में अपनी हार को कुबूल कर लेंगे तथा सब मिल कर सफलता के लिए कोई और सबक तैयार कर लेंगे। यदि हम सचमुच तुले हुए हैं तो हम अवश्य ही अपने ध्येय का रास्ता पा जायगे।

और इन कुलाबा के सज्जनों की कठिनाई क्या है? वह खुद उन्हींकी पैदा की हुई है। अगर खुद उनके जिले में कपास नहीं पैदा होती है तो वे खरीद लें। कुलाबा मैंचेस्टर की अपेक्षा बंबई से नजदीक है। पर क्या उन्हें यह जानकर ताज्जुब होगा कि मैंचेस्टर के आसपास कपास का एक टेंडुआ भी नहीं फलता; पर वहां के लोगों को कपास बाहर से मगाने, धुनकने और कातने में जरा भी दिक्कत नहीं होती। मैं इन कुलाबावाले मित्रों को यकीन दिलाता हूं कि आप इसे मैंचेस्टरवालों से आधी भी मुश्किल न पावेंगे। और मैं उनका दिल बढ़ाने के लिए यह भी कह देता हूं कि यदि उन्हें कपास मंगाने और धुनकने तथा कातने की इच्छा न हो तो महासभा के प्रस्ताव ने उन्हें यह छुट्टी दे रक्खी है कि वे आवश्यक हाथ-कता सूत खरीद कर महासभा को दे दें। आप सूत खरीदना भी चाहते हैं या नहीं? यदि सूत हाथ कता हो और एकसा तथा मजबूत हो तो यह भी बुरा न होगा।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

शाबाश!

देशबन्धु ने लार्ड लिटन पर फतह क्या पाई, अपना खासा चमत्कार ही उन्हें दिखा दिया है। वे बीमार थे, और उसी हालत में डोली में बैठकर धारासभा—भवन में आये। इस दृश्य से उस महान् विजय को एक सहज अभिनय की शोभा प्राप्त हो गई थी। बीमारी की हालत में उनके वहां आ जाने ही ने किसी बढ़िया वक्तृता से अधिक काम किया। यदि लार्ड लिटन के अन्दर काफी कल्पना—शक्ति और एक खिलाड़ी के भाव हों तो उन्हें चाहिए कि इन तमाम एक के बाद दूसरी शिकस्तों के बाद आर्डिनन्स को वापिस ले लें, गिरफ्तार—शुदा लोगों को छोड़ दें और उन षडयन्त्रों की तदबीर करने का भार, जिन्हें वे मानते हैं कि बंगाल में फैले हुए हैं, उन लोगों पर डाल दें जिन्होंने देशबन्धु के हक में राय दी है। और इसलिए कि बंगाल धारा—सभा की बहुमति ने उनके खिलाफ राय दी उन्हें उसकी शिकायत न करनी चाहिए। लोकप्रिय धारासभाओं का तात्पर्य यही है कि जो सरकार उनके सामने जवाबदेह है, उसकी हस्ती उनके युक्तियुक्त समर्थन पर ही अवलम्बित रहे। हो सकता है कि कभी कभी वे जिद कर बैठें, बुद्धिहीनता का परिचय दें या सन्देहास्पद मालूम हों। उस हालत में सरकार को धीरज रखकर उनके विचार बदलने तक इन्तजार करना चाहिए, कुशासन अथवा इससे भी अधिक खराबी की जोखिम उठाने को तैयार रहना चाहिए। किसी लोकप्रिय सभा—संस्था से भी यह उम्मीद क्यों रखना चाहिए कि वह स्वेच्छाचार की मर्यादा से मुक्त है। लार्ड लिटन यह तो दावा करते ही नहीं हैं कि मेरे इस उपाय में राजनैतिक अपराध समूल मिटा देने की शक्ति है। पर मुझे बहुत डर है कि हमारे भारतीय पत्रकारों की तमाम जबरदस्त दलीलें यद्यपि वे एकमत से लार्ड लिटन की दलीलों को बुरा बताते हैं, फजूल जायगी। क्योंकि हमारी सरकार तो लोकमत का तिरस्कार करने की आदी हो गई है। इसीलिए मैं देश के सब लोगों से कहता हूं कि अगर आप अपनी दलीलों में बल लाना चाहते हों तो आप चरखा अवश्य कातें। देश के पास इस समय यही एक उत्पादक शक्ति मौजूद है। देशबन्धु दास ने बंगाल की धारासभा में जो तन्त्र—निष्ठा कायम की है वह, चरखे के घर घर में जड़ पकड़ते ही और इस प्रकार विदेशी कपड़े का बहिष्कार सिद्ध होते ही, अपना प्रताप बतावेगी। अहा! क्या अच्छा हो, यदि राष्ट्र समष्टि—रूप से एक ही प्रत्यक्ष कार्य कर दिखावे!

प्रान्तिक समितियों के लिए

मुझे आशा है कि प्रान्तिक समितियां नये मताधिकार के अनुसार संगठन करने के कार्य को शुरू करने में व्यर्थ समय न गंवावेंगी। मैं यह जानता हूं कि म.सभा के कुछ कार्यकर्ता कार्यसमिति की तरफ से इसकी सूचना पाने की आशा में सभासद बनाने के कार्य को करने से रुक रहे हैं। यह जानने के लिये कि किस तरह कार्य किया जाय इस तरह रुकने की कोई आवश्यकता नहीं है। खुद कार्य—समिति को तो नये मताधिकार के अनुसार कोई कार्य संगठित करना नहीं है। सारा भार प्रान्तों पर ही है। और वे जितना जल्दी काम शुरू करेंगे उतना ही अधिक लाभ उस उद्देश को पहुंचेगा जिससे कि नया मताधिकार दाखिल किया गया है। महासभावादियों को यह स्मरण रखना चाहिए कि आजकल जो सदस्य हैं उनकी मीयाद फरवरी के अंत में पूरी हो जायगी। यदि प्रान्तिक समितियां तबतक सदस्य बनाने का काम मुल्तवी रक्खें तो उन्हें मालूम होगा कि काम चलाने के लिए भी उस वक्त उनके पास काफी सदस्य न होंगे। इसलिए अभी से सदस्य बनाने का काम शुरू कर देना चाहिए। संगठन करने के तरीकों के संबंध में श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त ने कीमती सूचनायें दी हैं। सतीश बाबू की लिखी हुई और खादी प्रतिष्ठान की तरफ से प्रकाशित खादी कार्य पर प्रकाश डालनेवाली दो जिल्द अंगरेजी पुस्तकें भी मेरे पास आई हैं। पहली जिल्द में कताई और धुनाई के कार्य का संगठन करने के तरीके बयान किये गये हैं और दूसरी जिल्द में कई से सब बुननेवालों जानने लायक जितनी बातें मिल सकती थीं दी गई हैं। दोनों पुस्तकें समयोपयोगी हैं। इनके लेखक ने बड़ी मिहनत करके ... को आसानी से ज्ञान प्राप्त कराने के लिए बहुतेरी बातें इकट्ठा ... जो लोग खरीद सकते हैं उन्हें इन किताबों को खरीद लेना चाहिए। वे इन जिल्दों के लिए खादी प्रतिष्ठान, १५ कालेज स्क्वेर, कलकत्ता को लिखें। पहली जिल्द की कीमत दो रुपया है और दूसरी जिल्द की एक रुपया।

कातनेवालों से

कुछ कातनेवाले, जो अबतक अपना सूत अखिल भारतीय खादी मंडल को या मेरे पास भेजा करते थे पूछते हैं कि हम अब क्या करना चाहिए। दिसम्बर मास का सूत तो उन्हें उसी तरह भेजना चाहिए जिस तरह भेजते आये हैं। साल के शुरू होने के बाद बालिग लोग जितना भी कातें अपने ही पास रक्खें और सदस्यता के माहवारी चन्दे के तौरपर अपनी अपनी प्रान्तिक समितियों को भेज दें। अबतक कातने वाले जितना कातते, भेज देते थे और बहुत से लोगों ने तो २००० गज से कम सूत भी भेजा है। यदि वे चाहें तो ज्यादह सूत भेज सकते हैं। उन्हें इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि जितना सूत भेजें उसकी बराबर रसीद ले लें। २००० गज से जितना अधिक सूत भेजेंगे उतना दूसरे महीने के हिसाब मे गिन लिया जायगा। छोटी उम्र के लड़के लड़कियां प्रान्तिक समितियों को सूत भेंट कर सकते हैं। वे सदस्य नहीं बन सकते। मुझसे कहा जाता है कि फिर भी कुछ लोग ऐसे हैं जो मुझको सूत भेजेंगे मैं उन्हें अपनी अपनी समितियों को सूत भेजने की सलाह दूंगा, लेकिन यदि वे ऐसा न करें तो मैं खुशी से उनके सूत को स्वीकार करूंगा और उसका अच्छे से अच्छा उपयोग करूंगा।

काठियावाड़ राजनैतिक परिषद्

काठियावाड़ राजनैतिक-परिषद् को यह सलाह देना कोई ऐसी वैसी बात न थी कि उन शिकायतों और तकलीफों के लिए बहुतेरे प्रस्ताव पास न करो, जिनपर अमल कराने का कोई उपाय आपके पास न हो, फिर भले ही लोगों को सन्तोष देने लायक सबूत उनके पास क्यों न हो। मैंने उनसे कहा कि परिषद् में पहले सार्वजनिक सेवा और त्यागभाव को बढ़ाइए और फिर शिकायतों को दूर कराने की व्यवस्था कीजिए। तब आप बहुतेरी शिकायतों और तकलीफों को दूर कराने में ज्यादह समर्थ हो सकेंगे। शान्त प्रतिरोध का यही तरीका है। विषय—समिति ने इसे बिला हिचकिचाहट के स्वीकार कर लिया। परन्तु परिषद् के संचालकों के तैयार किये कताई—मताधिकार—संबन्धी प्रस्ताव पर दिलचस्प बहस हुई। फिर भी वह बहुत भारी बहुमति से पास हुआ। वह प्रस्ताव महासभा के प्रस्ताव से एक बात में भिन्न था। इस प्रस्ताव के द्वारा हर सदस्य के लिए महज राज्य के कामों पर ही नहीं बल्कि सदासर्वदा खादी पहनना लाजिमी किया गया है। यहां तंत्र निष्ठा के ख्याल से राय देने की कोई बात ही न थी। हर सदस्य अपनी मरजी के मुताबिक राय देने के लिए आजाद था।

अब यह देखना है कि इस प्रस्ताव के अनुसार काम किस तरह होता है। हर शख्स इस बात को तस्लीम करता हुआ दिखाई

[गया] था कि इसकी सफलता उन मुख्य कार्यकर्ताओं के उत्साह, उमंग, सरगर्मी और क्षमता पर अवलंबित है जो इस प्रस्ताव को पास कराने के लिए तैयार हैं ।

सर प्रभाशंकर कातेंगे

परिषद में सबसे अधिक आश्चर्य पैदा करनेवाली बात तो सर प्रभाशंकर पट्टनी (भावनगर—राज्य के एडमिनिस्ट्रेटर) की खाना खाने के पहले कम से कम रोजाना आधा घण्टा कातने की प्रतिज्ञा थी—सिवा उस वक्त के जबकि वे इतने बीमार हों कि चरखा ही न चला सकें । उन्होंने सफर का अपवाद नहीं रक्खा है । उनका कहना है और यह ठीक है कि जब वे सफर करते हैं, पहले दर्जे में करते हैं और इसलिए चरखा साथ ले जाने में और सफर दरम्यान कातने में भी उन्हें कोई दिक्कत पेश नहीं आ सकती । सर प्रभाशंकर के लिए यह एक बड़ा भारी कदम है । मुझे आशा है कि वे अपने निश्चय पर जरूर अमल कर सकेंगे । काठियावाड में उनके इस दृष्टांत से कातने की हलचल को बड़ी उत्तेजना मिलेगी । यह कहने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं कि काठियावाड सभा में शामिल होने की उनसे कोई आशा नहीं । मैं यह खुलासा करने के लिए उत्सुक था कि यद्यपि कातने की एक राजनैतिक बाजू है तो भी हरएक कातनेवाले को उससे संबंध रखने की जरूरत नहीं है । यदि राजा लोग और उनके मंत्री मिसाल पेश करने के लिए और जिनपर वे राज्य करते हैं उनसे अपनी एकता के चिह्न-स्वरूप कातेंगे तो मेरे लिए इतना ही काफी है । काठियावाड के किसानों को खूब समय रहता है । लोग गरीब हैं । यदि राजा-रजवाडों और उनके प्रतिनिधियों के द्वारा कातने का रिवाज डाला जाय तो लोग भी उसे अपना लेंगे और राष्ट्र-धन में अच्छी वृद्धि करेंगे । व्यक्तियों पर चाहे इस धन-वृद्धि का असर मालूम न हो लेकिन लोगों पर समष्टि-रूप से उसका खूब असर होगा ।

यह जानना पाठकों को बड़ा दिलचस्प मालूम होगा कि सर प्रभाशंकर ने यह प्रतिज्ञा किस तरह की थी । वे दर्शक की हैसियत से विषय-समिति में निमंत्रित होकर आये थे । कातने का प्रस्ताव पास हो जाने पर मैंने सदस्यों का कातनेवालों में नाम लिखाने के लिए निमंत्रित किया । मैंने उनसे कहा कि बेलगांव में दूसरे लोगों के साथ, पहली मार्च के पहले माहवार २००० गज सूत कातने वाले १०० सदस्य बनाने का भार मैंने भी उठाया है । मैंने यह भी कहा कि जो कातना नहीं चाहते हैं उनमें से भी मैं चाहता हूं कि दो कातनेवाले मुझे मिलें । मैंने श्रोताओं से यह भी कहा कि बेलगांव में जब मैंने यह बीडा उठाया, मुझे यह आशा थी कि वे १०० सदस्य मुझे काठियावाड से मिल जायंगे और इच्छा न होने पर भी कातनेवाले दो सदस्यों में एक सर प्रभाशंकर मेरे खयाल में थे । यह सुनते ही फौरन सरप्रभाशंकर उठ खड़े हुए और लोगों की खुशी के दरम्यान बड़ी गंभीर ध्वनि में उन्होंने अपना पूर्वोक्त निश्चय प्रकट किया ।

सर प्रभाशंकर का शिक्षक मुझी को होना था । यह लिखते समय उन्हें सिर्फ तीन बार पाठ पढाया गया था । तीसरे दिन २ घण्टे से कम समय में ८ नम्बर का अच्छा कता हुआ ४८ गज सूत कात सके थे । सच बात तो यह है कि आध घण्टे के पहले ही पाठ में वे तार निकालने लगे थे । फिर उन्होंने स्वयं ही चरखे के साथ अकेले जूझ लेना चाहा । मुझे आशा है कि दूसरे राज्याधिकारी और मंत्रीलोग भी सर प्रभाशंकर के खुद अपनेको और अपने राज्य के लोगों को फायदा पहुंचानेवाले इस निश्चय का अनुकरण करेंगे ।

रूई का संग्रह

भावनगर रूई का केन्द्र होने के कारण उन गरीब कातनेवालों को जो आधा घण्टे की मजदूरी देने पर राजी हैं लेकिन रूई नहीं दे सकते और न मांग सकते हैं, रूई पहुंचाने के लिए रूई संग्रह करने का भी निश्चय हुआ । नतीजा उसका यह हुआ कि २७५ मन से ज्यादह रूई इकट्ठा हो गई । दो दिन के मांगने पर इतनी रूई का इकट्ठा हो जाना कोई बुरा नहीं । यदि जोश ऐसा ही रहा तो काठियावाड में कातने की हलचल खूब चल पड़ेगी ।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

'हम मूछोंवाले भी चरखा कातें ?'

यह दलील काठियावाड-राजनैतिक-परिषद की विषय-समिति में कताई के प्रस्ताव पर पेश की गई थी । इसके उत्तर में गांधीजी ने कहा था—"लोगों के हृदय पर साम्राज्य स्थापित करने का आज एक ही उपाय है—चरखा । जहां जहां अधर्म का राज्य छाया हुआ है वहां वहां आज चरखा ही फिर से 'धर्म-संस्थापन' कर सकता है । आज हम सबकी हालत त्रिशंकु की तरह हो रही है । और इस भयंकर स्थिति से निकलने का उपाय चरखे के सिवा और कुछ नहीं है । इसीके द्वारा हम प्रजा पर प्रभाव डाल सकेंगे और इसीके द्वारा राजा के मनमें धर्म-जागृति होगी । एक सज्जन ने पूछा है, हम मूछवाले भी चरखा कातें ? उन्हें मैं याद दिलाना चाहता हूं अब मूछें मुंडा डालने का समय आ गया है । जो लोग आज लैंकाशायर में कल-कारखाने चला रहे हैं, और उनके द्वारा सारे साम्राज्य को हिला रहे हैं वे मूछवाले हैं या बिना मूछवाले ? उस विषय पर साहित्य तैयार करनेवाले भी पुरुष ही हैं । घरमें स्त्रियां आम तौर पर खाना पकाती हैं, पर जब बड़े बड़े भोज होते हैं तब मूछवालों के बिना काम पार नहीं पड़ता । और कोई उच्च वर्ण—ब्राह्मण—होने का कारण न पेश करें । हां, वर्णाश्रम का अर्थ 'कार्य-विभाग' मुझे मंजूर है । परन्तु कार्य से अभिप्राय है प्रधान कार्य । उसके सिवा बहुतेरे कार्य सबके लिए एक सा हो सकते हैं और आज तो होने ही चाहिए । श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त ने चरखा-शास्त्र बनाया है । पालीताना से एक बहिवटदार का एक बढिया पत्र मुझे मिला है—वे कहते हैं कि मैं रोज नेम से चरखा कातता हूं । दीवान साहब या ठाकुर साहब की ओर से कोई रुकावट नहीं । ज्यों ज्यों उसका महावरा ज्यादह होता जाता है त्यों त्यों शक्ति का अंदाज अधिक होता जाता है । मैं समझता हूं कि अपने घोड़े पर यदि छोटा सा चरखा ले जाया करूं तो भी हर्ज नहीं ।' ऐसे बहीवटदार यदि लोकप्रिय हों तो कौन ताज्जुब है ? प्रजाजन किस बात पर आपके पीछे पागल हों ? राजा जार्ज जब पहले-पहल जहाज पर काम सीखने के लिए भेजे गये थे तब वहां वे दूसरे खलासियों की तरह 'ब्लैक काफी', 'ब्लैक ब्रेड' और 'चीज' खाते थे । उनके रहने और खाने-पीने के लिए कोई खास इन्तजाम नहीं किया गया था । कपड़े भी उन्हें खलासियों जैसे मिलते थे । यह जानने पर आपको मालूम होगा कि क्यों इंग्लैंड की प्रजा राजा जार्ज के पीछे पागल होती है । राजा और प्रजा, कार्यकर्ता और लोग चरखे के तार से एक दूसरे के साथ जुड सकेंगे ।"

गांधीजी को अभिनन्दन

काठियावाड-राजकीय-परिषद के दिनों में भावनगर प्रजामण्डल की ओर से गांधीजी को अभिनन्दन-पत्र दिया गया था । श्री महादेव हरिभाई देसाई उसके संबन्ध से नवजीवन में इस प्रकार लिखते हैं—

"प्रजामंडल का अभिनन्दन-पत्र नगरसेठ ने पढकर सुनाया । सर प्रभाशंकर उसे देने के लिए मंच पर आ खड़े हुए । पहले

दिन गांधीजी के हाथ से राजकोट के ठाकुर साहब को अभिनन्दनपत्र दिया गया था और आज पट्टणी साहब के हाथ से गांधीजी को अभिनन्दन-पत्र दिया गया। दोनों प्रसंगों कीमहत्ता समान थी, फिर भी आज के प्रसंग में कुछ विशेष रस था। गांधीजी को अभिनन्दनपत्र देनेवाले श्री पट्टणी केवल काव्य ही में खादी-भक्त न थे, बल्कि व्यवहार में भी खादी-भक्त जाहिर हुए थे। ठाकुर साहब को तो अपनी स्थिति का ख्याल रखते हुए अपना व्याख्यान पढना पडा था। लेकिन पट्टणी साहब ने तो प्रसगों के अनुकूल धीरे धीरे बोलना शुरू किया और बोलते बोलते इतने ऊंचे चढ गये कि श्रोताओं का आश्चर्य पट्टणी साहब की पुरुषत्व-शक्ति और उनकी गांधी-भक्ति, दोनों के दरम्यान विभक्त हो गया। यह कोई भी आशा नहीं रख सकता कि उसमें चातुर्य न होगा। उसमें राजनैतिक कौशल न होगा, इसकी भी आशा थोडे ही लोगों ने रक्खी होगी। लेकिन इसमें इतनी अधिक सरलता होगी, इसकी आशा शायद ही किसीने रक्खी हो। 'मुझे गांधीजी के चरणस्पर्श करने का लाभ मिला इसलिए आज मैं अपनेको बहुत भाग्यशाली मानता हूं'। इस वाक्य ने सबको मुग्ध कर दिया। गांधीजी का एक वाक्य लोगों के मुंह खूब चढ गया है। 'लार्ड विलिंग्डन कहा करते थे कि हिन्दुस्तानियों में 'नहीं' कहने की हिम्मत नहीं है। मैं चाहता हूं कि आपमें यह हिम्मत हो। पट्टणी साहब ने एक सरल वाक्य में ही गांधीजी के और अपने चरित्रभेद को प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा—'ऐसे हृदयवाला मैं अल्पजीव हूं। जो 'नहीं' नहीं कह सके।... वहां स्वच्छन्द हो कर और यथेच्छ बोलने की आपको स्वतंत्रता... वहां अर्थात् विषय-समिति में गांधीजी ने मुझे आने की इजाजत... यह क्या उनकी कम उदारता है?' फिर बोले—'गांधीजी के... व्याख्यान में राजा-प्रजा के संबंध के बारे में जो उद्गार हैं, उनसे... स्वराज कैसा होना चाहिए, इसका यथावत् खयाल होता है। सारे... व्याख्यान का मूल-मंत्र मुझे तो यही प्रतीत हुआ—'जो संयमी हैं... अपने सामने सबको झुका सकते हैं—राजा को दंड न उठाना... चाहिए और प्रजा को प्रेम-भाव से अपनी मांग पेश करनी चाहिए। चरखा को किस तरह ग्रहण करना चाहिए, यह कहते हुए उन्होंने महाभारत से एक हृदयंगम प्रसंग सुनाया। 'श्री कृष्ण तो बडे रंगीले थे। वे पांडवों के साथ संधि की बात करने जानेवाले थे। सब से पूछने लगे—संधि के लिए यदि गया और मेरी बात ही किसीने न सुनी तो? भीम से पूछा,—उसने जवाब दिया, उनसे कहना कि यदि संधि न करोगे तो सर तोड डालूंगा। अर्जुन ने कहा, कह देना कि संधि न करोगे तो गांडीव का चमत्कार देख लेना। द्रौपदी से पूछा तो वह कहने लगी कि कौरवों को याद दिलाना कि यदि न मानोगे तो सती के शाप से जल कर भस्म हो जाओगे। लेकिन युधिष्ठिर ने क्या कहा? उसके मुख से एक ही उद्गार निकला—'यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण यत्तुभ्यं न रोचते' आपको जो अच्छा लगे कह देना, कृष्ण, आपको जो अच्छा लगे कह देना। यह ऐसी बात है। महात्माजी को यह पसंद है, इसलिए करो।'

नवंबर का सूत

अनुक्रम नंबर	प्रान्त	सभ्य	अप्रतिनिधि	कुल	कुल लंबाई	जिले	मुसलमान	महासमिति के सदस्य
१	अजमेर	३	४	७	१३,०००	१	०	०
२	आन्ध्र	*	*	१०१७	१८ लाख	*	*	*
३	आसाम	२२	५५	७७	३२,०००	४२	१	०
४	बिहार	१००	२८७	३८७	६। लाख	४४	२४	१९
५	बंगाल	१७४	६५७	८३१	२६॥ „	१०६	५२	३
६	बरार	४	३१	३५	६६,०००	६	०	०
७	बंबई	३१	११८	१४९	३॥। लाख	४९	४	१
८	बर्मा	४	३२	३६	१ लाख	१०	०	०
९	म० प्रा० (हिंदी)	५४	४५	९९	१॥। लाख	६	४	६
१०	म० प्रा० (मराठी)	६३	६८	१३१	२॥ „	२२	१	३
११	देहली	१२	२५	३७	०॥। „	०	२	१
१२	गुजरात	९२	१३४८	१४४०	३५॥ लाख	२६१	५८	९
१३	करनाटक	६९	२२७	२९६	५॥ „	६६	२	५
१४	केरल	१२	६९	८१	१। „	७२	२	१
१५	महाराष्ट्र	१४५	२२०	३६५	७ „	६४	६	*
१६	पंजाब	१४	३८	५२	१ „	*	*	२
१७	सिन्ध	४७	७४	१२१	२ „	५०	५	३
१८	तामिलनाड	१०३	५४६	६४९	११॥ „	९३	२०	१०
१९	संयुक्त प्रान्त	९६	१५४	२५०	२ „	६	४	७
२०	उत्कल	७१	१२५	१९६	२।। „	८	२	८
	कुल जोड	१११६	४१४३	६ ७६	१,०१,३६०,००	९१२	१८७	७४

सबसे ज्यादह लम्बाई (अंक १४) हजार भी एक लाख है। सूत गुजरात के श्री पूजाभाई मनहरभाई पटेल की ओर से मिला है।
गुजरात की संख्या में कमी होने का कारण शायद यह है कि ५ ता० के बाद आया सूत उसमें नहीं जोडा गया है।

बेलगांव के संस्मरण

[२]

नामधारी सिक्ख

छोटे बड़े सभी से मुलाकात कर उन्हें सन्तुष्ट करने में मुझे बड़ी मुश्किल होती थी। नामधारी सिक्ख कागजों का एक पुलिन्दा लेकर मेरे पास आये। उन्होंने आशा रक्खी थी कि अकालियों के खिलाफ उनकी शिकायत को मैं गौर से सुनूंगा। उनकी नम्रता और धीरज को देखकर मेरी अनिच्छा (नाखुशी) भी जाती रही। लेकिन उनकी शिकायतों को न सुनने की वजह मेरी अनिच्छा के बनिस्बत मजबूरी अधिक थी। उनकी नम्रता को देखकर कहीं समय भी रुक सकता है? स्वयं वे भी यह देख सकते थे कि मैं मजबूर था। मैं उनको सिर्फ यही तसल्ली (संतोष) दे सका कि जब मैं फिर कभी लाहौर जाऊंगा, उनके कागजों को पढ़ूंगा और इस बात का खयाल रक्खूंगा कि महासभा की तरफ से उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय (गैर-इन्साफ) न हो। मैंने उनसे कहा, अगरचे मैं बहादुर अकालियों के प्रति पक्षपात रखता हूं फिर भी उनके किये अन्याय या अत्याचारों में मैं कभी शामिल नहीं हो सकता। सरदार मंगलसिंह ने मेरे इस भाव को दुहराया और कहा कि अकाली लोग यह दिखाने के लिए हमेशा तैयार हैं कि वे सिर्फ गुरुद्वारों का नैतिक सुधार ही चाहते हैं।

बौद्धमतावलम्बियों की शिकायत

लंका (सीलोन) के श्री परेरा मुझसे यह चाहते थे कि मैं [illegible] को बुद्धगया के मन्दिर के प्रश्न पर गौर करने के लिए [illegible]। पाठकों को शायद यह याद होगा कि कुछ साल से ऐसी हलचल हो रही है कि बुद्धगया का बड़ा और ऐतिहासिक मन्दिर बौद्धों के हवाले कर दिया जाय। लेकिन मालूम होता है अभी वह ठीकठीक आगे नहीं बढ़ पाई है। कोकानाडा की महासभा ने बाबू राजेन्द्रप्रसाद को इस मामले की जांच करने के लिए और उसपर रपोट करने के लिए मुकर्रर किया था। इस महासभा की बैठक तक वे ऐसा न कर सके थे। महासभा-सप्ताह के दरम्यान इस बात पर स्वयं बहस करने के लिए लंका से बौद्धों का एक शिष्ट-मंडल आया था। श्री परेरा कुछ नेताओं से मिलकर फिर मुझसे मिले। मैं तो पहले से उन्हींके मत का था। कार्यभार मैंने उठा लिया था उसके सिवा और कार्य करने की मुझे फुरसत ही न थी। मैंने उनसे कहा कि मुझे भी उनकी बात में उतना ही विश्वास है जितना कि उन्हें स्वयं है। लेकिन महासभा उन्हें बहुत मदद न कर सकेगी। आखिर मुझसे उन्होंने यह वचन ले लिया कि मैं उन्हें विषय-समिति में अपना वक्तव्य सुनाने का मौका दूं। उनके मीठे बरताव और छोटी लेकिन फसीह तकरीर की छाप समिति पर अच्छी पड़ी और उसी वक्त उस पर विचार करने का निश्चय उसने किया। लेकिन, अफसोस! बहस चलने पर समिति को मालूम हुआ कि वह श्री परेरा को कोई ऐसी मदद नहीं कर सकती। क्योंकि उसे अपने भेजे प्रतिनिधि की रपोट अभी न मिली थी; पिछले साल इस विषय पर बहुत-कुछ चर्चा हो चुकी थी। लेकिन तीव्र मतभेद होने के कारण उसे छोड़ देना पड़ा था। समिति इसलिए सिर्फ इतना ही कर सकी कि उसने बाबू राजेन्द्रप्रसाद से कहा कि अपनी जांच जल्दी खतम करके इसी महीने के आखिर तक अपनी रपोट कार्य-समिति में पेश करें। हां, इसमें तो शक नहीं कि मन्दिर का कब्जा बौद्धों के हाथों में होना चाहिए। पर इसमें कुछ कानूनी मुश्किलें पेश आ सकती हैं। उन्हें दूर करना होगा। यदि यह खबर सच है कि उस मन्दिर में पशुओं का बलिदान दिया जाता है तो बेशक यह अधर्म है। और यदि, जैसा कि कहा जाता है, पूजा भी उन तरीकों से की जाती है जिनसे बौद्धों का दिल दुखे, तो यह भी उतना ही अधर्म है। हमें इस बात में फख्र मानना चाहिए कि हम मन्दिर के हकदारों को मन्दिर का कब्जा दिला देने में सहायता दें। मुझे आशा है कि राजेन्द्र बाबू इस विषय का सारा साहित्य इकट्ठा करेंगे और उसपर अपनी रपोट तैयार करेंगे, जिससे कि इस मामले में बौद्धों की सहायता करनेवाले लोगों को मदद मिले। मुझे यह भी आशा है कि श्री परेरा भारत ही में होंगे और राजेन्द्र बाबू को मदद करेंगे।

शिक्षकों की परिषद्

राष्ट्रीय शिक्षकों की भी आपस में एक परिषद् हुई थी। वे निश्चित परिणाम (नतीजे) पर पहुंच भी सके हैं। बहस खासी दिलचस्प हुई थी। सारी बहस का मध्य-बिन्दु चरखा ही था। अच्छे अच्छे विद्वान् परिषद में आये थे। मुझे आशा है, शिक्षक लोग अपने ही लिए किये गये उन प्रस्तावों पर ठीक ठीक हरफ ब हरफ अमल करेंगे। प्रस्तावों को पास करके उनपर कभी अमल न करना राष्ट्रीय जीवन के नाश का कारण हो गया है। यों ही फजूल वचन देना तो शिक्षकों को कभी मुनासिब ही नहीं। देश के युवकों को बनाने का काम उन्हींके हाथों में है। उन्हें यह बात अच्छी तरह जानना चाहिए कि विद्यार्थी लोग इन प्रस्तावों की पवित्रता पर उनके किये बड़े बड़े प्रवचनों के बनिस्बत उनके वचन-भंग के बुरे उदाहरण का ही ज्यादह अनुकरण करेंगे। राष्ट्र के लिए यह साल एक आजमाइश और इम्तहान (परीक्षा) का साल है। महासभा ने एक ही काम में अर्थात् खादी पैदा करने और विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने में ही अपना सब कुछ लगा दिया है। राष्ट्रीय शालायें तभी राष्ट्रीय कहलावेंगी जब वे राष्ट्रीय कार्य में मदद करेंगी। इसके लिए उनके शिक्षकों को, लड़के और लड़कियों को वे तमाम काम सीखने होंगे जिनकी जरूरत खादी पैदा करने में है। उन्हें स्वयं खादी पहननी होगी, जितना कात सकें कातना होगा। पर इसके लिए यह जरूरी नहीं कि वे अपनी दूसरी पढ़ाई को भूल ही जाय। लेकिन उन्हें उन बातों को तो हरगिज न भूलना होगा जो राष्ट्र के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। शिक्षकों ने बहुत बड़ी बहुमति से इस बात को स्वीकार किया है। मैं आशा करता हूं कि वे अपने वचन के अनुसार कार्य करके इसको सफल बनावेंगे।

विद्यार्थी

विद्यार्थियों की भी परिषद हुई थी। उनमें केवल राष्ट्रीय शाला और विद्यालयों के ही विद्यार्थी न थे, बल्कि अधिकांश में सरकारी शालाओं के ही विद्यार्थी थे। विद्यार्थियों के छुट्टी के दिनों का और दूसरे खाली समय का उपयोग करने की एक योजना श्री रेड्डी-सभापति ने तैयार की थी। उनकी योजना में विद्यार्थियों को (वे वकीलों को भी उनमें शामिल करते हैं) कम से कम एक साल में २८ दिन राष्ट्र को देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होना पड़ता है। प्रत्येक विद्यार्थी को अपने कार्यक्षेत्र के पड़ोस के चार गांवों में काम करना होगा। श्री रेड्डी ने जुदे जुदे विषयों पर व्याख्यान देने की सलाह दी थी। मैं अभी तो इन स्वयंसेवकों के फुरसत का समय खादी के प्रचार में ही खर्च कराना चाहता हूं। लेकिन सेवा का यही एक मार्ग तो नहीं है जिसे विद्यार्थी और वकील लोग कर सकते हों। आखिर वे इतना तो कर ही सकते हैं कि स्वयं खादी पहनें और रोज आधा घण्टा कातें। उन विद्यार्थियों और वकीलों को जिनकी उम्र २१ साल से अधिक है महासभा का सदस्य बन जाना चाहिए और जिनकी उम्र कम हो उन्हें अपना सूत भेंट के तौर पर अपनी समिति को या अखिल-भारत-खादी-मण्डल को भेजना चाहिए।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

के साथ रोटी-व्यवहार रक्खे । परन्तु जिस दोष के दूर होने की आवश्यकता है वह है अछूतपन । उसमें रोटीव्यवहार का समावेश नहीं है ।

अस्पृश्यता-निवारण को मैंने जो महासभा का एक कार्य माना है वह केवल राजनैतिक हेतु पूरा करने के लिए नहीं है । यह हेतु तो तुच्छ है, स्थायी नहीं । स्थायी बात तो है हिन्दू धर्म में, जिसे कि मैं सर्वोपरि मानता हूं, अस्पृश्यता का कलंक न रहे । स्थूल स्वराज्य के लिए मैं अन्त्यजों को फुसलाना नहीं चाहता । इस लालच में उन्हें फसाना नहीं चाहता । मैं तो मानता हूं कि हिन्दुओं ने अस्पृश्यता को अंगीकार कर के भारी पाप किया है । उसका प्रायश्चित्त उन्हें करना चाहिए । मैं अस्पृश्यों की 'शुद्धि' जैसी किसी चीज को नहीं मानता । मैं तो अपनी ही शुद्धि का कायल हूं ।

जब मैं स्वयं ही अशुद्ध हूं तो दूसरे की शुद्धि क्या करूंगा ? जबकि मैंने अस्पृश्यता का पाप किया है तो शुद्ध भी मुझे ही होना चाहिए । इसलिए हम जो अस्पृश्यता निवारण कर रहे हैं वह केवल आत्मशुद्धि है, अस्पृश्यों की शुद्धि नहीं । मैं तो हिन्दू-धर्म की इस शैतानियत को निर्मूल करने की बात कर रहा हूं, अस्पृश्यों को फुसलाने की बात मेरे पास नहीं है ।

परन्तु हिन्दू-जाति के लिए खान-पान का सवाल जुदा है । मेरे कुटुंब में ऐसे लोग हैं जो मर्यादा-धर्म का पालन करते हैं । वे और किसी के साथ भोजन नहीं करते । उनके लिए खाने-पीने के बरतन और चूल्हा भी अलहदा होता है । मैं नहीं मानता कि इस मर्यादा में अज्ञान, अंधकार, या हिन्दू-धर्म का क्षय है । मैं खुद इन बाहरी आचारों का पालन नहीं करता । मुझसे यदि कोई कहे कि हिन्दू-संसार को इसका अनुकरण करने की सलाह दो, तो मैं इनकार करूंगा । मालवीयजी मुझे पूज्य हैं, मैं उनका पाद-प्रक्षालन भी करूं । पर वे मेरे साथ खाना नहीं खाते । ऐसा करके वे मेरे साथ घृणा नहीं करते हैं । हिन्दू धर्म में इस मर्यादा को अटल स्थान नहीं है, परन्तु एक खास स्थिति में वह स्तुत्य मानी गई है । रोटी-बेटी व्यवहार का संबंध जिस दरजे तक संयम से है उस दरजे तक वे भले ही रहें । पर यह बात सब जगह सच नहीं है कि किसीके साथ भोजन करने से मनुष्य का पतन होता है । मैं नहीं चाहता कि मेरा लड़का जहां चाहे और जो चाहे खाना खाता फिरे; क्योंकि आहार का असर आत्मा पर पड़ता है । पर यदि संयम या सेवा की सुविधा के लिए वह किसीके यहां कुछ खास चीजें खाय तो मैं नहीं समझता कि वह हिन्दू-धर्म का त्याग करता है । मैं नहीं चाहता कि खान-पान की जो मर्यादा हिन्दू-धर्म में है उसका क्षय हो । संभव है कि इस मर्यादा को भी छोड़ देने का युग आ जाय । ऐसा होने से हमारा विनाश नहीं हो जायगा । आज तो मैं वहीं तक जाने के लिए तैयार हूं जहां तक मेरा दिल मानता है । मेरी विचारश्रेणी में इस युग में रोटी-बेटी के व्यवहार की मर्यादा का लोप नहीं पा सकता । मेरी इस वृत्ति के कारण मेरे कितने ही मित्र मुझे दम्भी मानते हैं, पर इसमें किसी तरह का ढोंग नहीं है । स्वामी सत्यदेव और मैं अलीगढ़ जा रहे थे । उन्होंने मुझे कहा-'आप यह क्या करते हैं ? ख्वाजा साहब के यहां खावेंगे ।' मैंने कहा, मैं खाऊंगा, आपके लिए मर्यादा है तो आप न खावें । मेरे लिए ख्वाजा साहब के यहां खाद्य वस्तुयें न खाना पतितता है । पर यदि आप खायगे तो पतन होगा, क्योंकि आप मर्यादा का पालन करते हैं । स्वामी सत्यदेव के लिए ब्राह्मण बुलाया गया, उसने उनके लिए रसोई बनाई । मौलाना अब्दुल बारी के यहां भी ऐसा ही इन्तजाम होता है, यहां तक कि हम जब जाते हैं तब ब्राह्मण बुलाया जाता है, और उसे हुक्म होता है कि तमाम चीजें भी बाहर से लावे । मैंने मौलाना से पूछा कि इतने एहतियात की क्या जरूरत ? तो कहते हैं कि मैं दूसरों को भी यह मानने का मौका नहीं देना चाहता कि मैं आप को भ्रष्ट करना चाहता हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि हिन्दू धर्म के अनुसार बहुत से लोगों को हमारे साथ खाना खाने में परहेज होता है । मौलाना को मैं आदर की दृष्टि से देखता हूं । वे सीधे-सादे भोले आदमी हैं । कभी कभी भूल कर डालते हैं, पर हैं खुदा-परस्त और ईश्वर से डरनेवाले ।

बहुतेरे लोग मुझे कहेंगे कि आप सनातनी कहां से हो गये ? आप न तो काशी-विश्वनाथ के दर्शन करते हैं, यही नहीं उलटा ढेड़ की लड़की को गोद ले लिया है । मुझे इन सवाल पूछनेवालों पर रहम आता है ।

अन्त्यज भाइयों, आपके साथ बहुत बातें करने नहीं आया था, फिर भी कर गया, क्योंकि आपके साथ मुझे प्रेम है । आपके साथ जो पाप किये गये हैं उनके लिए मैं आपसे माफी चाहता हूं । पर आपको अपनी उन्नति की शर्तें भी समझ लेना चाहिए । मैं जब पूना गया था तब एक अन्त्यज भाई ने उठकर कहा था—'हिन्दू जाति यदि हमारे साथ न्याय न करेगी तो हम मार-काट से काम लेंगे ।' यह सुन कर मुझे दुःख हुआ था । क्या इससे हिन्दू-जाति का या आपका उद्धार हो सकता है ? क्या इससे अस्पृश्यता दूर हो सकती है ? उपाय तो सिर्फ यही है कि धर्मान्ध हिन्दुओं को समझावें-बुझावें और जो कष्ट वे दें उन्हें सहन करें । आप यदि मदरसे में जाने का हक चाहें, दूसरे लोग जहां जहां जा सकते हों वहां जाने का हक चाहें, जो जो स्थान और पद प्राप्त कर सकते हों उनको पाने का हक मांगें तो वह बिलकुल ठीक है । अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है कि आपके लिए कोई भी ऐहिक स्थिति अप्राप्य न हो । पर आप इन सब बातों को पाशवी तरीकों से नहीं प्राप्त कर सकते । हिन्दू-धर्म में जो विधि कल्याणकारिणी बताई गई है उसीके द्वारा कर सकते हैं । यदि यह मानें कि शरीर-बल के द्वारा कार्य सिद्ध होता है तो इसका अर्थ यह होता है कि आसुरी साधनों के द्वारा हम धर्म-कार्य सिद्ध करना चाहते हैं । मैं आपसे चाहता हूं कि आपके अन्दर यह आसुरी भाव न पैठे और आप सच्चे भागवत धर्म का पालन करें । ईश्वर हमें ऐसी सन्मति दे कि जिससे अस्पृश्यता-निवारण एक क्षण में हो जाय ।"

मात्र और ज्ञान-पूर्वक आज्ञापालन का दर्शन होना चाहिए । और चरखे को खुशी खुश आज्ञापालन और शान्त आग्रह की साक्षात् मूर्ति ही समझिए । इसलिए स्वतन्त्र [illegible] पहले चरखे को सफलता अवश्य मिलनी चाहिए । मैं [illegible] चरखे [illegible] और स्वराजियोंको और इसलिए इनसे संबद्ध स्वतन्त्रों और तमाम दलों को सब-कुछ दे देने पर, फिर चाहे कार्यकर्ताओं को [illegible] एक दल की डालियों पर जितने लायक हों क्यों न रह जाय, इतना जोर दे रहा हूं उसका कारण यही है कि सविनय भंग के लिए आवश्यक वायुमंडल तैयार होने के पहले सविनय भंग शुरू करने के खयाल-मात्र से मुझे रक्त के साथ खेल खेलने का बड़ा डर हो रहा है । सविनयभंग की आड़ में हमें हिंसात्मक भंग हरगिज न कर बैठना चाहिए । चौरी चौरा का सबक मेरे दिल में बहुत गहरा पैठ गया है । वह आसानी से नहीं निकल सकता । बारडोलीवाले निर्णय के संबंध में मेरे दिल में अफसोस का जरा चिन्ह नहीं है, यही नहीं, उलटा मैं तो उसे अपनी तरफ से देश की एक बड़ी से बड़ी सेवा मानता हूं । मो० क० गांधी]

मेरी श्रद्धा

पिछली २८ जून की अहमदाबादवाली महासमिति की बैठक के बाद, महात्माजी ने भिन्न भिन्न प्रान्तों से आये अपने नजदीकी अपरिवर्तनवादी साथियों के साथ सत्याग्रहाश्रम साबरमती में दिल खोल कर बातें की थी। उस समय कुछ लोगों ने यह सुझाया था कि अपरिवर्तनवादियों को महासभा के तमाम पद स्वराजियों को दे देने चाहिए, और महात्माजी को अपना सबध महासभा से तोड़ कर, बाहर रह कर स्वतंत्र-रूप से खादी तथा अन्य रचनात्मक काम करना चाहिए। मैं इस विचार के खिलाफ था। अन्त को महात्माजी ने भी इस विचार को नामंजूर कर दिया। उनकी मुख्य दलील यह थी कि इस तरह महासभा से हटना अत्याचार होगा और स्वराजियों को बहुत नुकसान पहुंचेगा, जिनकी कि सेवा अपने सिद्धान्त को छोड़े बिना मैं भरसक करना चाहता हूं। उसके बाद कितनी ही मार्के की घटनायें हो चुकी हैं और अब हालत यह हुई है कि एक ओर महात्माजी महासभा के सभापति और कार्य-समिति के मुखिया हैं, और दूसरी ओर कार्य-समिति में, जिसके कि जिम्मे महासभा का सारा कारोबार है स्वराजियों की प्रधानता है। एक अर्थ में महात्माजी का तल्लुक किसी दल से नहीं है। पर यह बात माने बिना नहीं रह सकते कि कुछ मूल बातों में स्वराजियों से उनका मत नहीं मिलता है। स्वराजियों और अपरिवर्तनवादियों का संबंध कलकत्ता के ठहराव के अनुसार तय हुआ है। आपस के समझौते के द्वारा और दोनों दलों की रायों की गिनती किये बगैर, महासभा ने स्वराजियों को धारासभा में काम करने के लिए अपनी सत्ता दे दी है और इस ठहराव के अनुसार स्वराजी महात्माजी-निर्मित कताई के मताधिकार के अनुसार काम करने पर राजी हुए हैं।

अब इस साल महासभा के लिए मुख्य काम है नये मताधिकार के अनुसार सदस्यों का संगठन करना। यह तथा खादी की पैदावार करने का काम इस किस्म का और इतना भारी है कि जिसके लिए उन तमाम लोगों की तमाम संगठन-क्षमता, एकाग्रता और अध्यवसाय की जरूरत होगी, जिनकी श्रद्धा चरखे पर अनत है। इसलिए देखते ही यह खयाल हो सकता है कि इस साल महासभा की कार्य-समिति के पदाधिकारी पक्के अपरिवर्तनवादी-चरखावादी होने चाहिए थे और स्वराजियों को, जिनकी कि श्रद्धा और समय चरखे के लिए बहुत परिमित है, वास्तव में महासभा की मुख्य कार्य-समिति में न आना चाहिए था, फिर उसमें उनकी प्रधानता की तो बात ही दूर है। पर जरा और विचार करने पर इस प्रबन्ध का तत्व मालूम हो जायगा। यह व्यवस्था जबरदस्ती महात्माजी के गले नहीं मढ़ी गई है बल्कि खुद महात्माजी ने जान-बूझ कर और अपने अपरिवर्तनवादी सहायकों की पूरी पसदगी के साथ, की है।

इस नये मताधिकार की सफलता का दारोमदार उसकी जजीर की आखिरी कड़ियों पर-कस्बों और देहात में ईमानदारी और होशियारी के साथ काम करनेवाले विनीत स्वयसेवकों के काम पर जो घर-गृहस्थी की जंजालों को, लोगों की उदासीनता को, चारों ओर की छीः थूः और ताने उलहने को सहते हुए भी तांत, टूट-फूट की मरम्मत और कपास के साथ सिर पचाते हैं—है, न कि ऊपर से होनेवाले कार्य-समिति के प्रस्तावों पर। महात्माजी ने केवल इस नीति को ही गृहीत नहीं करवाया है बल्कि उसके कार्यान्वित होने के अनुकूल शांत वायु-मण्डल भी तैयार किया है। उन सच्चे परिश्रमी लोगों के लिए, जो धीरज और श्रद्धा रखते है, वह काफी है। मैं यह नहीं कहता कि महात्माजी और तह के काम करने वाले बस होंगे और जिला तथा प्रान्तिक समितियों और महासमिति की कुछ परवाह न की जाय। वे राह दिखाने, मदद करने और हिदायतें देने का काम देंगी।

परन्तु शारीरिक श्रम की नींव पर जब हम महासभा के काम को शुरू और संगठित करते हैं तब हम ज्यों ज्यों नीचे से ऊपर ठेठ कार्य-समिति तक जाते हैं, कार्यकर्ता कम ही कम कार्यभार उठाते हुए पाये जाते हैं। और ऐसा ही होगा; क्योंकि यह काम ही ऐसा है, यह दिमागी काम नहीं है, शारीरिक श्रम है।

सो अगर हम इस बात को हमारे सामने खड़े असली काम के सिलसिले में याद रक्खें और यह भी याद रक्खें कि यदि और जब जरूरत हो अपरिवर्तनवादियों को महासभा के तमाम दफ्तर और सत्ता स्वराजियों को सौंप देनी है, जिन्हें कि अपरिवर्तनवादियों की अपेक्षा उनको, अपने धारासभा संबंधी खास कार्यक्रम के लिए, ज्यादह जरूरत हो सकती है, और एक और बात को याद रक्खें कि हमारा लक्ष्य यह हो कि इस कार्य-भार को स्वराजियों को इस तरह शान्ति के साथ चुपचाप सौंप दें कि मालूम तक न हो, ताकि इसका सुफल दोनों दल को मिले और दोनों इसके कुफल से बच रहें—तो महात्माजी की वर्तमान कार्य-समिति की रचना और उनकी मौजूदा कार्य-प्रणाली का रहस्य हमारी समझ में आ जायगा।

अब, जो असहयोगी यह महसूस करते हैं कि देश की मुक्ति, उसकी आशा का आधार स्तम्भ चरखे पर ही अवलंबित है,—हरगिज न इधर देखें न उधर, बस ईश्वर को हृदय में धारण कर इस भार को उठा लें। हमारे लिए न आराम है, न थकावट। यह चक्र ही हमारी आशा, हमारा आनन्द, हमारा मित्र, हमारा देव है। जबतक हम जगें उसीका काम करें जब हम सोवें तो उसीके सपने देखें। शुरू में मैं इन सब बातों का मतलब न समझा था। सो मैंने सोचा कि महात्माजी ऐसे रास्ते जा रहे हैं जहां मुझे न तर्क पहुंचाता था, न प्रकाश। पर अब सब बातें मुझे साफ साफ दिखाई देती हैं और आशा करता हूं कि मेरी तरह जो शंका-कुशंकाओं में से इधर-उधर भटकते थे उन्हें भी दिखाई देंगी। 'कातो, कातो, कातो और दूसरों से कताओ, यही हमारा एकमात्र मंत्र, हमारी गायत्री है।

यह सब देखते हुए भी, साथ ही, मैंने यह भी महसूस किया कि इसमें किसी न किसी तरह की बनावट है, किसी न किसी तरह सत्य के साथ राजनैतिक खेल है, जोकि सत्याग्रह की योजना पर अंधकार की छाया फैला रहा है। पर इस बात में मैं अपने गुरु के निर्णय पर अपनी हस्ती रखता हूं, जिनकी कि सत्य-ज्ञान की स्वाभाविक स्फूर्ति मुझसे कितनी ही बढ़ी हुई है। बस, अब मेरा चित्त शान्त है।

च० रा०

[राजगोपालाचार्य की इस स्वयं-स्फूर्त घोषणा को पा कर मुझे बहुत तसल्ली होती है। उनकी समझदारी और निर्णय-शक्ति के प्रति मेरा आदर-भाव पाठक जानते ही हैं। और यह देख कर कि शंका-कुशंका और भय से उनका दिल टूक टूक हो रहा है, मेरे दिल को बड़ा रंज होता था। चरखा कर्यक्रम में 'सत्य के साथ खेल खेलने' की गुंजायश नहीं है, क्योंकि सत्याग्रह प्रधानतः सविनय भंग ही नहीं है, बल्कि शांति और आग्रह के साथ सत्य की शोध है। हां कभी कभी, बहुत कम मौके पर ही, वह सविनय भंग होजाता है। परन्तु यदि कार्यकर्ताओं की संख्या बहुत बड़ी हो तो सविनय भंग करने के पहिले उनकी तरफ से रजामन्दी के

(शेष पृष्ठ १८८ पर)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ बदी १३, संवत् १९८१

एक प्रार्थना

पाठक अन्यत्र काली परज के बारे में कुछ पढ़ेंगे। गुजरात के बाहर बहुतेरे लोग न जानते होंगे कि काली परज के मानी क्या हैं। 'काली परज' का अर्थ है 'काले लोग'। यह नाम गुजरात के कुछ लोगों का उन लोगों के द्वारा रक्खा गया है जो अपनेको उनसे ऊंचा और श्रेष्ठ मानते हैं। जहांतक रंग से ताल्लुक है काली परज के लोग दूसरे लोगों से ज्यादह काले या भिन्न नहीं हैं। पर आज वे दलित-पीड़ित हैं, असहाय हैं, अन्धविश्वासी और भयभीत हैं। शराब पीने की उन्हें भीषण चाट लगी हुई है। बड़ौदा-राज्य में उनकी आबादी बहुत ज्यादह है।

तीन बरस पहिले इन लोगों में भारी जागृति फैली। हजारों लोगों ने शराब पीना और मांस खाना भी छोड़ दिया था। शराब के दुकानदारों को यह बात बड़ी खली। इनमें ज्यादहतर लोग पारसी थे। कहते हैं कि इन लोगों ने इन्हें फिर से शराब पीने की ओर प्रवृत्त करने में कोई बात न उठा रक्खी, और बहुत हद तक उन्हें सफलता भी मिली। कहते हैं कि सरकारी कर्मचारी भी सुधारकों के खिलाफ इस साजिश में शामिल हुए थे। और अब चाहे इन कोशिशों के फल-स्वरूप हो, चाहे और किसी कारण से, इन लोगों में एक ऐसा दल पैदा हुआ है, जो उन्हें उपदेश देता है कि शराब न पीना पाप है और जाति से बाहर कर के तथा दूसरे तरीकों से वे उन लोगों की हिम्मत और उमंग को तोड़ रहे हैं जो इस पुश्तैनी बदी के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं।

काली परज की सभा का जिक्र मैंने अन्यत्र सविस्तार किया ही है। उसमें एक प्रस्ताव यह भी पास हुआ कि बड़ौदा, धरमपुर और बांसदा की रियासतों तथा अंगरेजी सरकार से भी अनुरोध किया जाय कि वे शराब की दुकानें बन्द कर दें। इसपर शायद कोई कहे कि यह तो बड़ा भारी हुक्म है। यह भी कहा जाय कि शराबखोरी बन्द करने की सारी कौम की कोशिश बुरी तरह असफल हो चुकी है। ऐसी हालत में मुट्ठी भर असहाय लोगों की बेकार प्रार्थना से क्या होगा? हां, इसमें कोई शक नहीं कि इस दलील में भारी बल है। पर इन दोनों कोशिशों का रूप जुदा जुदा है। १९२१ की कोशिश असहयोगियों की थी और वह ब्रिटिश सरकार के खिलाफ थी। वे उसके हाथ से अधिकार छीन लेने पर तुले हुए थे। फिर वह उन लोगों की ओर से की गई थी जो खुद शराब की दुकानों के शिकार न हुए थे। पर अब यह प्रार्थना उन लोगों की तरफ से की जा रही है जो खुद ही इस बदी के चंगुल में फंसे हुए हैं। यह निर्बल निरीह लोगों की प्रार्थना सत्ताधारियों से है। यह केवल ब्रिटिश सरकार से ही नहीं बल्कि उससे संबंध रखनेवाली तमाम सरकारों से की गई है। ये लोग असहयोगी नहीं हैं। वे सहयोग या असहयोग का फर्क नहीं जानते। वे बे-मन से और कभी कभी तो जोरोजुल्म से औरों के लिए काम कर कर मरते हैं। वे नहीं जानते कि स्वराज्य क्या चीज है? उनके लिए तो स्वराज है शराबखोरी छोड़ देना और शराब की दुकानों के रूप में शराब पीने का प्रलोभन हटा लिया जाना। इसीलिए उनकी यह प्रार्थना दया-धर्म के आधार पर है और वह जबरदस्त साबित हुए बिना न रहेगी।

सभापति के नाते मैं उनसे उन प्रस्तावों को जो भिन्न भिन्न सरकारों के नाम पास किये गये हैं, कार्यान्वित करने के लिए बाध्य हूं। ब्रिटिश सरकार से यह प्रार्थना धारासभाओं की ही मार्फत की जा सकती है। धारासभा के सदस्य शराब की आमदनी को ठोकर मार सकते हैं। फिर भले ही उन्हें शिक्षा विभाग को भूखे मरने देने की जरूरत क्यों न उठानी पड़े। मैं उन्हें नेवता देता हूं कि वे आकर अपनी आंखों देखें कि यह बदी एक सारी जाति को किस तरह चौपट कर रही है। अगर वे अपने इन देश-भाइयों का उद्धार करना चाहते हों तो उन्हें यह साहस जरूर दिखाना होगा।

पर बड़ौदा, धरमपुर और बांसदा राज्यों की बात जुदी है। यदि वे चाहें तो अवश्य ही शराब की दुकानें बंद कर के अपने प्रजाजन को तथा खुद अपनेको विनाश से बचा सकते हैं। 'खुद अपनेको' इस सर्वनाम का प्रयोग मैंने जान बूझ कर किया है; क्योंकि छोटी रियासतों में बड़ी तादाद में लोगों का तहस-नहस होना खुद उन्हीं का तहस-नहस होना है। क्या वे उन लोगों की प्रार्थना पर ध्यान न देंगे जो खुद अपनी ही बदी से अपनी रक्षा करने में सहायता चाहते हों?

और शराब के दुकानदारों-पारसियों के विषय में? मैं जानता हूं कि उनके लिए यह रोटी का सवाल है। लेकिन उनकी जाति दुनियां में एक बड़ी उद्योगी जाति है। वे बुद्धिमान और उद्यमी हैं। वे बड़ी आसानी से अपने निर्वाह का दूसरा अच्छा पेशा खोज सकते हैं। अबतक कई लोगों ने बुरे पेशों को छोड़ कर अपनी समाज की नैतिक उन्नति के अनुकूल पेशा और काम अख्त्यार किया है। मैं पारसियों से यह बात कहने का हक रखता हूं क्योंकि मैं उन्हें जानता हूं और चाहता हूं। मेरे कुछ अच्छे अच्छे साथी पारसी रहे हैं और अब भी हैं। उन्होंने भारतवर्ष के लिए बहुत कुछ किया है। उन्होंने दादाभाई और फिरोजशाह को देश के अर्पण किया है। और जो ज्यादह करते हैं उन्हीं से ज्यादह करने की उम्मीद की जाती है। पारसी शराब के दुकानदार जरूर इस सुधार-कार्य में दखल देनेसे (उनपर लगाये इल्जाम को सही मानते हुए) बाज आकर इसका श्रीगणेश करें।

(य. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

२५,००० नहीं

मौलाना जफर अली खां ने नीचे लिखा तार मुझे भेजा है—

"मेरे लाहौर पहुचने पर मैंने यहां के अखबारों में 'यंग इंडिया' के आधार पर यह खबर पढ़ी कि मैंने आप से इस साल के भीतर २५,००० मुसलमान सूत कातनेवाले कार्यकर्त्ता देने का वादा किया है। सो मुझे अन्देशा है कि इसमें कोई गलतफहमी हुई है। शायद मेरी बात ठीक ठीक न समझी गई हो। मैंने तो सिर्फ इतना ही वादा किया था कि मैं १०,००० मुस्लिम स्वयंसेवक आपकी खिदमत में पेश करने के लिए हर तरह से कोशिश करूंगा, और मैं इस वादे पर कायम हूं।"

इस तार को मैं बड़ी खुशी के साथ छापता हूं। जहां तक मुझ से ताल्लुक है किसी किस्म की गलतफहमी न हुई थी। मौलाना साहब की प्रतिज्ञा पर मुझे इतना ताज्जुब हुआ था कि मैंने मौलाना साहब को अति उत्साहित न होने के लिए चेताया था। और यह अभिवचन था भी ऐसा कि जो सर्व-साधारण से छिपा न रक्खा जा सकता था। यह वादा तो एक तोहफा था। और कोई भी दूरन्देश आदमी धर्म की गाय के दांत नहीं देखता। खैर। अब १०,००० स्वयंसेवक भी अच्छी और उत्साह

दिखानेवाली तादाद है। पर मैं मौलाना साहब को याद दिलाये देता हूं कि स्वयंसेवक वही हो सकता है जो सूत कातता हो। यह पुराना देहली का प्रस्ताव है—जिसकी ताईद १९२१ में अहमदाबाद में हो चुकी है। इसलिए मैं १०,००० मुसल्मान स्वयंसेवकों पर ही सब्र कर लूंगा, जो कि घड़ी के कांटे की तरह नियम के साथ हर मास दो हजार गज अच्छा सूत कातते हों। अगर मौलाना साहब १०,००० स्वयंसेवक भी जमा कर पाये तो मुझे कोई शक नहीं कि उन्हें २५,००० मिलने में भी कोई दिक्कत न होगी। क्योंकि एक बार जहां चर्खे के आन्दोलन का रंग जमा नहीं कि बर्फ के ढेलों की तरह उसका फैलाव हुआ नहीं।

मो० क० गांधी

कुछ परिषदोंमें

पिछले सप्ताह मे मुझे कितने ही जल्सों में शरीक होने का सौभाग्य मिला था, जिनके विषय में यहां कुछ लिखना जरूरी है। उनके नाम हैं पेटलाद-जिला-किसान-परिषद्, धाराला अर्थात् बारिया क्षत्रिय परिषद्, स्त्री-परिषद् और अछूत-परिषद्। ये सोजित्रा में हुई थीं। किसान परिषद् के अध्यक्ष थे डाक्टर सुमन्त मेहता। बारडोली के नजदीक वेडछी में कालीपरज-परिषद् भी हुई थी। इन तमाम जल्सों में खादी बहुत-कुछ दिखाई देती थी। किसान-परिषद् की एक विशेषता थी डाक्टर सुमन्त मेहता का अभिवचन कि यदि अपना पूरा समय देने वाले ४० स्वयंसेवक मुझे मिल जांय तो मैं एक साल तक पेटलाद जिले में नजरबन्द हो जाने के लिए तैयार हूं। उनके कहने की देर थी कि ४५ स्वयंसेवक पूरे साल भर उनके साथ काम करने के लिए तैयार हो गये। इस परिषद् में दर्शकों के चार दरजे रक्खे गये थे। उनमें एक थे एक निश्चित तादाद में सूत कात कर देने वाले। स्वागत समिति का परिषद् का बहुत कम खर्च उठाना पड़ा। सभा-मंडप विशाल और आडंबर से खाली था। लकड़ी और कपड़ा, खास कर पुरानी खादी मगनी मिल गई थी। मिहनत लोगों ने स्वेच्छा से मुफ्त कर दी थी। गांव के एक सज्जन ने बाहरी यात्रियों के भोजन-पान का इन्तजाम अपनी तरफ से कर दिया था। एक दूसरे महाशय ने मिहमानों का और तीसरे साहब ने प्रतिनिधियों के भोजन का भार अपने ऊपर ले लिया था। यह इन्तजाम सोलहों आना सन्तोषदायक साबित हुआ।

प्रोफेसर माणिकराव बड़ौदा, की व्यायामशाला के शागिर्दों के इन्तजाम से सभा में खूब शान्ति रही थी। सभा की कार्रवाई मुख्तसिर थी और उसमें मतलब की ही बातें हुई। स्वागत-समिति के सभापति के भाषण में सिर्फ १५ मिनिट लगे। उन्होंने अपने छपे हुए भाषण के महत्त्वपूर्ण अंशों को पढ़ सुनाया। सभापति ने ३० मिनिट से ज्यादह अपने भाषण के लिए न लिये। सभा में एक भी फजूल लफ्ज नहीं बोला गया। सभा के पदाधिकारी नेता की बनिस्बत सेवक अधिक मालूम होते थे। प्रस्ताव महज उन्हीं बातों के किये गये जिन्हें लोगों को ही खुद करना था।

धाराला लोग

गुजरात में धाराला एक उग्र और लड़ाका कौम है। उनका मुख्य पेशा है खेती। लेकिन रुपये-पैसे की तकलीफों से उन्होंने लूट-मार को भी अपना पेशा बना लिया है। खून करना उनमें कोई असाधारण बात नहीं है। १९२१ में आत्म-शुद्धि की जो लहर उठी थी उसका असर उनपर भी हुए बिना न रहा। जो कार्यकर्ता तैयार हुए हैं वे उनके अन्दर इसी इरादे से काम कर रहे हैं कि उनका भीतरी सुधार हो। १९२३ में श्री वल्लभभाई ने जिस उज्वल सत्याग्रह-संग्राम को शुरू किया था और जिसमें उन्होंने सफलता भी प्राप्त की थी, उसने उन लोगों के अन्दर एक जबरदस्त जागृति पैदा कर दी। सोजित्रावाली यह परिषद् इसी सुधार का एक फल था। वे हजारों की तादाद में एकत्र हुए थे। उन्होंने पूरी शान्ति और खामोशी के साथ सभा की कार्रवाई को देखा और सुना। जो प्रस्ताव पास हुए उनका सम्बन्ध था शराब और नशीली चीजों का सेवन न करने से और अपनी लड़कियों को शादी के लिए न बेचने से तथा लड़कियों को न भगा ले जाने से। उनमें यह बुराई बहुत फैली हुई है।

अछूत लोग

उसी सभा-मंडप में सोजित्रा तथा आसपास के अछूत भी एकत्र हुए थे। उनके नेतालोग सभा-मंच पर बिठाये गये थे। छूत लोग अछूतों के साथ आजादी से मिल कर बैठे थे। शराब न पीने और खादी पहनने के प्रस्ताव पास हुए। सभा के संचालकों ने अपना सभा-मंडप अछूतों को दे कर अपने साहस का परिचय दिया है। क्योंकि मैंने देखा कि पेटलाद जिला छुआछूत के भावों से खाली नहीं है।

स्त्रियों की परिषद्

इस परिषद् का दृश्य दिल को हिला देता था। पाटीदार स्त्रियां कभी कभी घूंघट निकाला करती हैं। सोजित्रा की जन संख्या छः हजार से ज्यादह नहीं है। पर सभा में कोई १० हजार स्त्रियां जमा हुई थीं। बड़े बड़े शहरों में भी मैंने शायद ही इतनी बड़ी स्त्रियों की सभा देखी और सुनी हो। स्त्रियों ने भाषणों को बड़े ध्यान से बिना शोरगुल के सुना। मैंने अक्सर देखा है कि स्त्रियों की सभा में शान्ति रखना बड़ा कठिन होता है। सो इस सभा का हाल देख कर सबको—सभा के व्यवस्थापकों को भी बड़ा आनन्द और ताज्जुब हुआ। इस सभा में कोई प्रस्ताव न हुआ। व्याख्यान भी खास तौर पर खादी और चरखे पर ही हुए।

किसानों की परिषद् दो दिन में मिलाकर पांच घण्टे में पूरी हुई। दूसरी परिषद् एक एक घण्टे में खतम हो गई।

काली परज

सोजित्रा में तो सभा का प्रबन्ध सादा और कारगर था ही, पर वेडछी ने तो कमाल कर दिया। मेरे मुंह से हठात् ये उद्गार निकल पड़े कि वेडछी परिषद् जैसी भव्य और फिर भी सादी, स्वाभाविक और सुन्दर सभा मैंने कहीं नहीं देखी। जिसने उस जगह को तजवीज किया और सारी व्यवस्था की नींव डाली वह जरूर ही कोई कला-रसिक और कुदरत की गोद में पला हुआ होगा। परिषद् का स्थान एक नदी के किनारे चुना गया था। नदी पेड़ों और पौधों से ढके छोटे छोटे टीलों की कतार के बीच में बहती थी। नदी का पाट रेतीला था, मटीला नहीं। मुख्य सभा-मंच नदी के पानी पर खड़ा किया गया था। वह कोई ८ फीट ऊंचा था। रेती से भरा हुआ थैला पहली सीढ़ी का काम देता था। सभा-मंच के सामने सारी सभा जुटी हुई थी। सामने की टेकड़ियों के सिरों पर भी लोग चढ़े हुए थे। बांस और हरे पत्तों से सारा मंडप सजाया गया था। कहीं भी कोई चित्र नहीं लटकाया गया था। सजावट में न तो एक कागज के टुकड़े से और न एक सूत के धागे से काम किया गया था। ऐसी सजावट में सूत का कोई काम नहीं है और उसके दाम को देखते हुए फजूल नुकसान करना है। मंडप पर छत्र बांसों और हरी डालियों का था। उसका असर बढ़िया और शांतिदायी था। रास्ते के दोनों ओर कोई १२०००

शान्त और खामोश स्त्री-पुरुषों का जमाव था। किसी किस्म की प्रवेश फीस न थी। सब प्रतिनिधि ही प्रतिनिधि थे। प्रतिनिधियों और दर्शकों में कोई भेद-भाव न था। (मैं अनुकरण करने के लिए यह बात नहीं कह रहा हूं। यहां ऐसा भेद-भाव रखना एक तरह की निष्ठुरता होती। हालां कि सु-संगठित सभाओं में उसका रखना अनिवार्य है।) सभास्थान से कुछ ही दूर टीलों की कतार की तरफ किनारे पर एक लंबी पट्टी चरखा-नुमाइश के लिए रक्खी गई थी। बूढे पुरुष, बूढी स्त्रियां और ७ से १० साल तक के छोटे छोटे लडके-लडकी चरखे चला रहे थे। बूढे स्त्री-पुरुषों और छोटे बालकों को ही उसमें लगाने में खास हेतु था। अधेड लोग स्वयंसेवक बन कर सेवा कर रहे थे। वे सब कालीपरज के लोग थे। चरखे की कतार के पास ही गुजरात में बनी खादी रखने की जगह थी। इसीलिए वहां आन्ध्र की बढिया खादी लेने का सवाल ही न था। कालीपरज के जो लोग खादी पहने थे वे मोटी ही खादी पहनते थे। एक छोटे से हिस्से में देश-नेताओं के चुने हुए चित्र रक्खे गये थे। इसमें खर्च एक कौडी न हुआ। बांस और लता-पत्र तो लोगों की ही दौलत थी। वे सब चीजें ले आये और व्यवस्थापक जैसा बताते गये बिना कुछ लिये सब ठाठ बना दिया। हजारों आदमियों के खान-पान आदि के लिए किसी इन्तजाम की जरूरत न थी। वे या तो पैदल आये थे या बैलगाडी में। सबसे नजदीकी रेलवे स्टेशन सभा-स्थान से कोई १२ मील था। लोग घर से अपने लिए पका खाना या सूखा अनाज बांध लाये थे। खुले ही मैदान में जहां जो चाहा उन्होंने अपना पडाव डाल दिया। हर काम बिना शोरगुल और फिक्रों के हुआ।

सारी कार्रवाई बडी स्वाभाविक और हद दरजे तक सादगी से भरी हुई थी।

लोगों के सामने ऐसी कोई बात नहीं पेश की गई जो उनकी जरूरत के अनुकूल न थी।

उनकी दो प्रतिज्ञायें

उनकी यह तीसरी वार्षिक परिषद् थी। परिषद् में थोडे ही प्रस्ताव स्वीकृत किये गये थे। एक प्रस्ताव शराब न पीने, खादी पहनने और औरतों को पत्थर के गहने न पहनाने के विषय में हुआ। शराबखोरी तो इन लोगों की एक घातक आदत हो गई है। शराब न पीने और खादी पहनने के लिए जो प्रस्ताव हुए वे प्रतिज्ञा के रूप में थे। लोगों ने बडी गम्भीरता और धर्म-भाव से खुद शराब न पीना और नम्रता से अपने सहवासियों को भी ऐसा समझाना मंजूर किया था। दूसरी प्रतिज्ञा उन्होंने की खुद चरखा कातने तथा हाथ-कती खादी के अलावा सब किस्म के कपडे से विमुख रहने एवं औरों को भी ऐसा ही करने के लिए समझाने की। मैंने खास तौरपर कोशिश की कि वे उन तमाम बातों का मतलब समझ लें जो कि उनसे कही जाती थीं और जिनकी प्रतिज्ञा उनसे कराई जाती थी। दूर दूर के सिरों पर स्वयंसेवक भेज भेज कर यह दिलजमई करा ली जाती थी कि वे सभा की कार्रवाई को समझ रहे हैं या नहीं। हवा का रुख अनुकूल था। इससे आवाज उन तक अच्छी तरह पहुंच जाती थी। क्या स्त्रियों और पुरुषों दोनों ने ईश्वर का साक्षी रख के प्रतिज्ञा की। पाठक इस बात को जान लें कि वे दो साल से ऐसे प्रस्ताव पास कर रहे हैं। सब लोगों के बदन पर कुछ न कुछ खादी जरूर थी। उन्होंने तत्परता से और समझ-सोच कर उसे अंगीकार किया है। सैकडों लोगों ने कातना सीख लिया है। कुछ लोग तो बारडोली आश्रम में रह कर धुनकना कातना और बुनना सीख गये हैं। कुछ लोग तो कपडा बुन कर अपना पेट भी पालते हैं। उपस्थित जन खादी और चरखे की प्रतिज्ञा के लिए वास्तव में उसी तरह तैयार थे जिस तरह कि नशीली चीजों की प्रतिज्ञा के लिए थे।

मैंने ६० साल के एक बूढे से खूब अच्छी तरह पूछा कि दिन भर खेत में कडी मिहनत करने के बाद क्यों वह चरखा कातता है। वह रोज ४-५ घण्टे सूत कातता है। वह सोता बहुत कम है इसलिए रात को भी कातता है और तडके ही उठ कर फिर चरखे के साथ बैठ जाता है। मैंने सोचा था कि वह मुझसे कहेगा मैं मन-बहलाव के लिए या किसी और के लिए कातता हूं। पर उसने मुझे उसका आर्थिक कारण बताया, जिससे मुझे आनन्द और आश्चर्य दोनों हुए। उसने कहा मैं अपना सूत खुद कातता हूं। अपने लिए कपास भी बो लेता हूं। अब हम अपने ही घर में अपने कपडे बुन लेते हैं और फी इसम १०) साल बचाते हैं। इन लोगों की अपने लिए कपास की तमाम क्रियाओं की व्यवस्था को देख कर हाथकताई और खादी की जरूरत में अविश्वास करनेवाले को भी उसका कायल हो जाना चाहिए। यहां इन भारी से भारी अपढ और अनजान देहातियों में, सच्चे से सच्चे नमूने का ग्राम-संगठन चुपचाप हो रहा है। वह उनके जीवन के हर भाग में क्रान्ति कर रहा है। वे अपनी बातों पर खुद ही विचार करना सीख रहे हैं।

सभा के बाद

परिषद् हो जाने के बाद मैंने बूढे लोगों की सभा की। ३० से ऊपर लोगों ने बतौर कार्यकर्ता के अपने नाम लिखाये। उनमें औरतें भी थी। उन्होंने आप हाथ कर कातने, खादी पहनने और कतई शराब न पीने की प्रतिज्ञा की। पांच हफ्तों के भीतर हर शख्स पांच पांच ऐसे कार्यकर्ता बनावेगा और उसके अंत में उनकी एक सभा होगी, जिसमें इस बात पर विचार किया जायगा कि अब यह सुधारकार्य किस तरह आगे बढाया जाय।

राम-नाम

जोश के प्रभाव में प्रतिज्ञा कर लेना काफी आसान है। पर उसपर कायम रहना और खास कर प्रलोभनों के बीच, महा मुश्किल है। ऐसी हालत में एक ईश्वर ही मददगार होता है। इसीलिए मैंने सभा को राम-नाम सुझाया। राम, अल्लाह, गाड सब मेरे नजदीक एकार्थक शब्द है। मैंने देखा कि सीधे-भोले लोगोंने धर्म से अपना यह खयाल बना लिया है कि मैं मुसीबत के समय उनको दिखाई देता हूं। मैं इस वहम को दूर कर देना चाहता था कि मैं किसीको दर्शन नहीं देता था। एक नश्वर शरीर पर भरोसा रखना उनका महज भ्रम था। इसलिए मैंने उनके सामने एक सादा और सरल नुस्खा रक्खा जो कि कभी बेकार नहीं जाता-अर्थात् हर रोज सुबह सूरज निकलने के पहले और शाम को सोने के वक्त अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा करने के लिए ईश्वर की सहायता मांगना। लाखों हिन्दू उसे राम के नाम से पहचानते है। जब मैं बच्चा था तो जब जब डरता राम नाम लेने को कहा जाता था। मेरे कितने ही साथी ऐसे हैं जिन्हें मुसीबत के वक्त राम-नाम से बडी तसल्ली मिली है। मैंने धाराला और अछूतों को भी राम-नाम बताया। मैं अपने उन पाठकों के सामने भी इसे पेश करता हूं जिनकी दृष्टि धुंधली न हुई हो और जिनकी श्रद्धा बहुत विद्वत्ता प्राप्त करने से मन्द न हो गई हो। विद्वत्ता हमें जीवन की अनेक अवस्थाओं से पार ले जाती है पर संकट और प्रलोभन के समय वह हमारा साथ बिल्कुल नहीं देती। उस हालत में अकेली श्रद्धा ही उबारती है।

राम नाम उन लोगों के लिए नहीं है जो ईश्वर को हर तरह से फुसलाना चाहते हैं और हमेशा अपनी रक्षा की आशा उससे लगाये रहते हैं । यह उन लोगों के लिए है जो ईश्वर से डर कर चलते हैं, और जो संयमपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं, और जो अपनी निर्बलता के कारण उसका पालन न कर पाते हों ।

नमूना-रूप पाठशालायें

इन शिक्षकों और विद्यार्थियों की हिम्मत बढ़ाने के लिए जो महासभा की राष्ट्रीय पाठशाला और विद्यालय की व्याख्या सुन घबड़ा रहे हैं, मैं दो ऐसी पाठशालाओं का जिक्र करना चाहता हूं जिनके शिक्षकों और विद्यार्थियों से मैं इन परिषदों के दिनों में मिला था । एक सुणाव तहसील आणंद में है और दूसरी वराड-बारडोली तहसील में है । वराड में लड़के अपने लिए खुद ही धुनक लेते हैं । हर महिने अ० भा० खादीमण्डल को नियम-पूर्वक कुछ सूत भेजते हैं । मैंने सुणाव के लड़कों से बहुत देर तक बातें की थीं । वे असाधारण बुद्धिमान् मालूम हुए । वे जानते थे वे क्यों सूत कात रहे हैं । उन्होंने कहा हम महासभा को जो सूत देते हैं वह गरीबों के लिए देते हैं और उसके अलावा जो सूत कातते हैं वह अपने कपड़ों के लिए, कपड़ों के बारे में स्वावलम्बी होने के लिए। जिन्हें जिज्ञासा हो उन्हें मैं निमन्त्रण देता हूं कि वे इन शालाओं को जा कर देखें और खुद जान लें कि किस तरह काम करते हैं ।

जब कि गुजरात विद्यापीठ ने अछूत लड़कों को भरती करने पर जोर दिया तब उनकी हालत विषम हो गई थी । पर शिक्षकों ने हिम्मत के साथ तूफान का सामना किया । कुछ लड़के निकल गये; किन्तु मदरसे फल-फूल रहे हैं । वराड में जिन मां-बाप ने अछूतों के लड़कों को भरती करने के कारण अपने लड़के उठा लिये थे, अब फिर उनको राष्ट्रीय पाठशालाओं में भेजना अंगीकार किया है । यदि राष्ट्रीय शालाओं के शिक्षक और प्रबंधक दृढ़ता के साथ ही नम्रता, मृदुता और सहिष्णुता का अवलम्बन करेंगे तो महासभा की व्याख्या के कारण राष्ट्रीय संस्था को हानि पहुंचने का डर रखने का कारण न रहेगा ।

(नं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

विद्यार्थि-धर्म

भावनगर के सामलदास कालेज में विद्यार्थियों के सम्मुख गांधीजी ने इस प्रकार भाषण किया था —

विद्यार्थियों की स्थिति को हिन्दू-धर्म में ब्रह्मचर्य की स्थिति कहा है । ब्रह्मचर्य का अर्थ है हरएक इन्द्रिय का संयम । परन्तु इसके द्वारा विद्या प्राप्त करने के सारे काल का समावेश ब्रह्मचर्य में हो जाता है । ब्रह्मचर्य के इस निर्दोष-जीवन में देने की बातें कम और लेने की बातें ज्यादह होती हैं । इस दशा में वह मां-बाप से, शिक्षकों से, संसार से ग्रहण ही करता है । पर यह किस लिए ? इसीलिए कि मौका पड़ने पर वह वापस दिया जाय--बल्कि ब्याज सहित लौटाया जाय ।

ब्रह्मचर्याश्रम और सन्यस्ताश्रम दोनों के कार्य हिन्दू-धर्म में एक से बताये गये हैं । विद्यार्थी इच्छा के द्वारा नहीं, बल्कि स्वभावतः ही सन्यासी है । आज तो विद्यार्थियों के मन भी खराब हो गये हैं । १२ साल की उम्र में मेरी मति बिगड़ी थी । मुझे विकारों का ज्ञान हुआ था । विद्यार्थी जीवन स्वभावतः निर्विकार होना चाहिए । परन्तु मेरा पतन तो इतनी थोड़ी उम्र में हो गया था । ऐसे हजारों उदाहरण मिलते हैं । मैं सिर्फ अपना ही उदाहरण देकर इसका दिग्दर्शन करा रहा हूं । विद्यार्थी-जीवन स्वभावतः ही सन्यासी-जीवन है । पर सन्यासी स्वेच्छा से उस दशा को प्राप्त करता है । आज तो तमाम आश्रम छिन्नभिन्न हो गये हैं, सिर्फ घसीटन बाकी रह गई है ।

विद्यार्थि-धर्म का ज्ञान आज किस तरह हो सकता है ? आज तो माता-पिता भी उल्टा पाठ पढ़ाते हैं । जान बूझ कर नहीं, बल्कि इस गरज से कि लड़का पढ़ लिखकर धन कमाये, पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करे, वे उसे विद्या पढ़ाते हैं । इस तरह हमारी वास्तविक स्थिति उल्टी बना दी गई है । जो हमारा धर्म होना चाहिए उसे छोड़ कर हम विद्या का व्यभिचार कर रहे हैं । फलतः विद्यार्थि-जीवन में जो परम शान्ति, जो सुख, जो निर्दोषभाव होना चाहिए वह हमें नहीं दिखाई देता । केवल ग्रहण करना, लेते रहना और लेने में विवेक-बुद्धि से काम लेना इतना ही काम विद्यार्थी का है । अनेक प्रयोग दिखा कर शिक्षक हमें ग्रहण करने में विवेक बुद्धि की शिक्षा देता है । वह बताता है कि कौन चीज ग्राह्य है, कौन त्याज्य है । यदि हमें यह विवेक ज्ञान न हो तो हम एक यन्त्र बन जाते हैं । हम तो सजीव मूर्ति हैं, चेतन-रूप हैं । और चेतन का स्वभाव है यह समझ लेना कि कौन वस्तु ग्राह्य है और कौन त्याज्य । इस कारण इस अवस्था में हम सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग, मधुरवाणी का ग्रहण, कठोर और दुःखकर वाणी का त्याग, आदि बातें सीखते हैं और उनके सीखनेसे जीवन सरल हो जाता है । पर आज तो हमने धर्म का संकर कर डाला है । अब हमें इसी-संकर के खिलाफ लड़ना है । यदि माता पिताओं ने शिक्षा दूसरी तरह दी होती और वायुमण्डल बिगाड़ा न होता तो विद्यार्थियों को इस वायुमण्डल का मुकाबला करने की जरूरत न रहती । प्राचीन काल में विद्यार्थि-जीवन ऋषियों के आश्रमों में व्यतीत होता था । पर आज हालत उल्टी है । जहां समुद्र की स्वच्छ हवा आती हो वहां दिल खोल कर हवा खानी चाहिए । पर जहां बदबू आती हो वहां मुंह बन्द कर लेना चाहिए । यहां वायुमण्डल बदबू से भरा हुआ है । इसीलिए मुझे उसके खिलाफ आवाज उठाये बिना चारा नहीं । इस कसौटी के अनुसार आप देखेंगे कि आज आपको बहुतेरी चीजें त्याग करना पड़ेगी । बहुत सी बातें ऐसी होंगी जो महज नुकसानदेह हैं । प्राचीन-काल में मौखिक शिक्षा दी जाती थी । मन्त्र ही सिखाये जाते थे । मन्त्र क्या है ? संक्षिप्त भाषा में कठिन तत्त्व । इसके बाद उनपर टीकायें हुई । आज तो पुस्तकों का ढेर लग गया है । मैं यदि अपने ही काल की बात करूं, तो मुझे बहुतेरी बातें त्याग करने लायक मालूम होती हैं । छठी-सातवीं श्रेणी के विद्यार्थियों में कौन रेनाल्डस के उपन्यास को न पढ़ता हो, यह कहना कठिन है । पर मैं तो था मंद-बुद्धि । मैं महज पास होने का ही खयाल करता था, पिता की सेवा करता था । पिता की सेवा करना और पास होने के लायक किताबें पढ़ लेना, यह मेरा काम था । इससे मैं उन उपन्यासों से बच गया । औरों पर इसका क्या असर होता है सो मैं नहीं जानता । पर विलायत में मैंने देखा कि अच्छे अच्छे लड़कों में ये पुस्तकें पढ़ी न जाती थीं । उनका पढ़ना अच्छा नहीं समझा जाता था । सो मैंने देखा कि उनके न पढ़ने से मेरी कुछ हानि न हुई ।

इसी प्रकार आज अनेक चीजें ऐसी हैं जिनसे मुंह मोड़ने की जरूरत है । हम बड़ी विषम स्थिति में आ फंसे हैं । आज तो १२ साल की उम्र से आजीविका का विचार करना पड़ता है । यह विद्यार्थि-आश्रम के साथ गृहस्थाश्रम का संकर हुआ । गंगा-जमना का संगम तो सुन्दर है; पर यह संगम नहीं, संकर है । अतएव विद्यार्थियों का आज यह जान लेना चाहिए कि देश में क्या हो रहा है । आज शायद ही कोई विद्यार्थी ऐसा होगा जो अखबार न पढ़ता हो । मैं किस तरह कहूं कि आपको अखबार न

पढ़ना चाहिए ? पर विद्यार्थियों से मैं इतना तो जरूर कहूंगा कि अखबारों के क्षणिक साहित्य की ओर आंख उठाकर न देखना। उसमें सच्चा साहित्य, सुगठित शिष्ट भाषा नहीं मिलती। उनसे जो बातें मिलती हैं वे क्षणिक होती हैं। हालां कि हमें जरूरत तो है स्थायी भाषा ग्रहण करने की। विद्यार्थि-जीवन जीवन की बुनियाद है, जीवन की तैयारी है। इस काल में हम अपने लिए अखबारों से विचार-सामग्री किस तरह ले सकते हैं? यदि आप कहेंगे कि हम अखबार न पढ़ेंगे, तो यह आप बना कर ही कहेंगे। क्योंकि आप तो दास या गांधी का भाषण पढ़कर कहेंगे कि फलां भाषण बढ़िया था और फलां यों ही था। यह स्थिति दयाजनक है, भयंकर है। इससे हमें बाहर निकलना ही होगा। यह बात मैं इसीलिए कहता हूं कि मैंने शिक्षा के बारे में अनेक प्रयोग कर देखे हैं। अपने लड़के-बच्चे, और औरों के लड़के-लड़की या जवान लड़के-लड़कियों को साथ रख कर शिक्षा देने की भयंकर जोखिम मैंने उठा देखी है। पर मैं पार हो गया, क्योंकि मेरी आंख चारों ओर फिरा करती थी, जिस प्रकार माता-पिता की आंख अपनी जवान लड़की की गतिविधि पर तैरती रहती है। मैंने उन लड़के-लड़कियों के मा-बाप का स्थान लिया था, डिटेक्टिव होकर बैठा था। राजा भी था और गुलाम भी था। इस बात से मुझे इस बात का अनुभव हुआ कि शिक्षा क्या चीज है? वह कैसी होनी चाहिए? और इसका विचार करते करते मैंने सत्याग्रह को पाया, असहयोग का दर्शन हुआ। और इसलिए मुझे इन प्रयोगों का साहस हुआ। आप यह न समझना कि इन प्रयोगों से मुझे पश्चात्ताप हुआ है। यह भी न मानिएगा कि यह केवल स्वराज्य के लिए किया गया है। मैंने तो संसार के सामने एक चिरंतन सनातन धार्मिक वस्तु रख दी है। इसकी जड़ें गहरी पहुंच गई हैं, इसलिए लड़कों के सामने भी इसे पेश करते हुए मुझे अन्देशा नहीं होता। इसकी निर्दोषता को मैं किस प्रकार प्रकट करूं? मैंने जब देखा कि मेरे शान्ति के प्रयोग से अशांति फैली, मैंने तुरन्त अपने हथियार रख लिये और सिर्फ एक ही शान्ति का हथियार—चरखा—देश के सामने रख दिया। इसे देख कर पहले तो लोग हंसे, फिर तिरस्कार प्रकट करने लगे और अब उसका स्वागत करने का काल आ रहा है। और अब मैं विद्यार्थियों से कह रहा हूं कि इसे अपनाओ। महासभा में भी चरखे का प्रस्ताव हुआ और यदि मिलने का समय आवे तो मैं तो लार्ड रीडिंग से भी कहूंगा कि जनाब चरखा कातिए। यह सुनकर आपको हंसी आई, पर मैं गंभीरता के साथ कह रहा हूं। मैं उन्हें यह कहते हुए जरा भी न हिचकूंगा और यदि वे न मानें तो नुकसान उनका है, मेरा बिल्कुल नहीं। जो भिक्षा मांगता हो उसका क्या नुकसान होगा? उसका तो वह धर्म ही है, पेशा ही है। मेरा यह धर्म है कि उनके सामने हाथ फैला-कर पुण्य करने का अवसर उन्हें दूं। उन्हें अच्छी से अच्छी चीज ग्रहण करने का मौका उनके सामने उपस्थित करूं। अगर वे उसे न अपनावें तो बिगाड़ उनका होगा। कलकत्ते के बड़े पादरी साहब से मैंने अपनी भजन-मण्डली में बैठने का अनुरोध किया। वे बैठे और उन्होंने भजन गाया। इससे उनके और मेरे बीच प्रेम की गांठ बंध गई। पर इतने ही से मुझे सन्तोष न हुआ। मैंने उनसे चरखे की बात कही। कर्नल मैडक ने मेरी जान बचाने के लिए मेरे पेट में नश्तर लगाया। अनेक औजारों के द्वारा प्रयोग किया। मैंने उनके सामने भी चरखे की बात पेश की। श्रीमती मैडक जब विलायत जाने लगी तो मैंने उन्हें खादी का तौलिया दे कर चरखे का सन्देश वहां भेजा। उन्होंने उसे प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लिया और कह गई हैं कि घर घर इस तौलिये का सन्देश पहुंचाऊंगी।

यह चीज बिल्कुल निर्दोष है। इसमें स्वाद नहीं हो सकता। आरोग्यप्रद भोजन चटपटा और तेज नहीं होता। अनेक चीजें ऐसी होती हैं जो नीरस मालूम होती हैं पर दर असल होती सरस हैं। इसी कारण गीता का यह महावचन है जो बात आरंभ में कड़वी परन्तु परिणाम में अमृतमय हो उसे ग्रहण करो। ऐसी अमृतमय वस्तु सूत का तार है। आत्मा को शान्ति देने के लिए, विद्यार्थि-दशा में जीवन को शान्ति दिलाने के लिए, जीवन में धर्म को स्थान देने के लिए, इसके जैसा सामर्थ्यवान् यह दूसरा नहीं है। हिन्दुस्तान के लिए आज मैं दूसरी चीज नहीं दे सकता—गायत्री को भी सारे हिन्दुस्तान के सामने पेश नहीं कर सकता। क्योंकि यह युग व्यावहारिक युग है, तत्काल परिणाम देखना चाहता है। मैं गायत्री जरूर उपस्थित कर सकता हूं, पर तत्काल परिणाम क्या दिखलाऊंगा? पर इसके विपरीत चरखा ऐसी चीज है कि आप सूत का तार निकालते जाइए, राम का नाम लेते जाइए तो आपको सब कुछ मिल जायगा।

ह्युबर्ट ओवन साहब यहां एक बड़े हाकिम थे। आज वे पंचमहाल (गुजरात का एक जिला) में हैं। उन्हें मैंने अपनी पांत में मिला लिया। उसका छुपा भेद मैं आज प्रकट कर रहा हूं। उन्होंने मुझे लिखा है कि चरखा मुझे बड़ा प्रिय हो गया है। मेरी अंग्रेजी 'कामनसेंस' (व्यवहार-बुद्धि) कहती है कि यह मेरी बढ़िया 'हाबी' (शौक) है। मैंने उनसे कहा कि आपके लिए यह 'हाबी' होगी, हमारे लिए तो यह कल्पद्रुम है। अंगरेजी जीवन मुझे पसंद नहीं। पर उसके कितने ही रस का स्वाद मैं लेता हूं—क्योंकि मधु-मक्खियों की तरह मैं तो मधुरता की खोज करता रहता हूं। इन लोगों की 'हाबी' में बहुत रहस्य भरा रहता है। कर्नल मैडक एक आंख से अन्धा था। नश्तर लगाते हुए ही एक आंख चली गई। उनकी उम्र भी कोई साठ साल की होगी, फिर भी वे शस्त्रक्रिया में बड़े निपुण थे। चाकू से सीधा नश्तर लगाते, पर खबर तक न होती। वे चौबीसों घण्टे नश्तर नहीं लगाया करते थे। परन्तु दो घण्टे वे अपनी 'हाबी' बगीचे में काम करना—वे करते थे। और इससे उनका जीवन रसमय हो रहा था।

मैं आपके सामने चरखा इसलिए रख रहा हूं कि आपका जीवन रसमय हो, आपको धर्म मिले, कर्म मिले, शान्ति मिले, विवेक मिले। विद्यार्थि-जीवन में श्रद्धा बड़ी जरूरी चीज है। किसी बात को बुद्धि न कुबूल करती हो तो भी उसे मान लेना पड़ता है। मेरे पारसी मित्र कुबूल करेंगे, क्योंकि भूमिति में वे मेरे सदृश शून्य होते हैं—कि कितनी ही बातें मान लेना पड़ती हैं। भूमिति में मेरी मति रुक जाती थी। २४ वां साध्य समझ में आता ही न था। पर मैं किसी तरह गाड़ी खींचता। आज वह विषय मुझे बड़ा आनंदमय मालूम होता है। आज अगर भूमिति की पुस्तक हाथ में आ जाय तो उसमें गरकाव हो सकता हूं। विद्यार्थि-जीवन में मेरा चित्त श्रद्धामय होने के कारण ही मैंने यह मान लिया था कि किसी न किसी दिन इसका मर्म समझ में आ जायगा। आपमें भी यदि श्रद्धा होगी तो आपको मालूम हो जायगा कि एक शख्स जो कहता था, उसकी बात सच थी। चरखे पर खूब विचार करके ही एक शास्त्री ने श्लोक रचा है—

> नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
> स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

चरखे पर यह बात सोलहों आना घटती है।"

शंका-समाधान

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥
विदेशों के लिए „ ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक २५

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, माघ सुदी ५, संवत् १९८१ गुरुवार, २९ जनवरी, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

गो-रक्षा का अर्थ

[बेलगांव की गो-परिषद् में सभापति के आसन से गांधीजी ने नीचे लिखा भाषण किया था]

मेरे विचार के अनुसार गो-रक्षा का प्रश्न स्वराज्य के प्रश्न से कम नहीं है और इसे मैं स्वराज्य के सवाल से कई अंशों में बहुत बड़ा मानता हूं। मैं मानता हूं कि जिस प्रकार अस्पृश्यता के दोष दूर किये बिना, हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य हुए बिना और खादी पहने बिना हम स्वराज्य न प्राप्त कर सकेंगे उसी तरह, मुझे यह भी कहना चाहिए, कि जबतक हम यह न जानेंगे कि गोरक्षा किस तरह करनी चाहिए तबतक स्वराज्य कोई चीज नहीं है। क्योंकि ऐसा करने में हिन्दू-धर्म की कसौटी है। मैं सनातनी हिन्दू होने का दावा करता हूं, कितने ही भाई हंसते होंगे कि जो शख्स मुसल्मानों में घूमता फिरता है, जो बाइबिल की बातें करता है, जो मुसल्मानों की पकाई रोटी खाता है, जो अन्त्यज की लडकी को गोद लेता है, उसका अपने लिए सनातनी हिन्दू होने का दावा करना मानों भाषा के साथ अत्याचार करना है। फिर भी मैं सनातनी कहलाने का दावा करता हूं और मुझे विश्वास है कि एक समय ऐसा आवेगा जब—मेरी मृत्यु के बाद—सब कुबूल करेंगे कि गांधी सनातनी था। क्योंकि गो-रक्षा मुझे बहुत प्रिय है। बहुत समय पहले 'हिन्दुत्व' पर मैंने य. इं. में एक लेख लिखा था। वह लेख बहुत विचार-पूर्वक लिखा गया है। उसमें हिन्दुत्व के लक्षणों का विचार करते हुए मैंने वेदादि को मानना, पुनर्जन्म को मानना, गीता-गायत्री आदि को मानना, इन लक्षणों के अतिरिक्त 'गोरक्षा के प्रति प्रीति' ही, सर्व-सामान्य हिन्दुओं के लिए हिन्दुत्व का लक्षण ठहराया था। कोई सवाल करेगा कि १०,००० वर्ष पहले हिन्दू लोग क्या करते थे? बडे बडे विद्वान् और पण्डित कहते हैं कि वेदादि ग्रन्थों में गो-मेध का वर्णन है। छठे दरजे में पढते हुए संस्कृत पाठशाला में मैंने यह वाक्य पढा था—'पूर्वे ब्राह्मणाः गवां मांसं भक्षयामासुः', मैंने अपने मन से पूछा 'क्या यह बात सच होगी?' इस वाक्य के रहते हुए भी मैं मानता आया हूं कि यदि वेद में ऐसी बात लिखी हो तो भी उसका अर्थ शायद वह न हो जो हम करते हैं। शायद दूसरा अर्थ हो। मेरे अर्थ के अनुसार, मेरी आत्मा की प्रतीति के अनुसार—मेरे नजदीक पाण्डित्य अथवा शास्त्रीय ज्ञान आधार-रूप नहीं है, आत्मा की प्रतीति ही आधार-रूप है—पूर्वोक्त जैसे कथनों का दूसरा अर्थ न हो तो ऐसा होना चाहिए कि वही ब्राह्मण गोभक्षण करते थे जो प्राण को मार कर फिर सजीव कर सकते थे। परन्तु ऐसे वाद-विवाद से हिन्दू-जनता का संबंध नहीं। मैंने वेदादि का अध्ययन नहीं किया, बहुतेरे संस्कृत-ग्रन्थों को अनुवाद के द्वारा ही मैं जानता हूं। इसलिए मुझ जैसा प्राकृत मनुष्य इस विषय में क्या कह सकता है? पर मुझे आत्म-विश्वास है, और इसलिए मैं अपने अनुभव की बात सब जगह किया करता हूं। यदि हम गो-रक्षा का अर्थ खोजने जायगे तो शायद हमें कहीं एक भी अर्थ न मिले। क्योंकि हमारे धर्म में कलमा की तरह सर्व-मान्य बात एक भी नहीं है, और न कोई पैगम्बर ही है। इससे कदाचित् हमें अपना धर्म-रहस्य समझने में कठिनाई होती हो, किन्तु इससे सरलता भी हो जाती है। क्योंकि अनेक बातें हिन्दू-जनता के अंदर स्वाभाविक तौर पर पैठ गई हैं। एक बालक भी समझता है कि गाय की रक्षा करनी चाहिए, न करें तबतक हिन्दू कैसे?

परन्तु गो-रक्षा करने का वर्तमान तरीका मुझे पसंद नहीं। हमारी गोरक्षा की विधि को देख कर मेरा हृदय रो उठता है। रोना मुझे पसंद नहीं। किसीको रोता हुआ देख कर मुझे दुःख होता है; क्योंकि हमें तो अभी बडे बडे बलिदान करना है और भारी बलिदान करनेवाले रो कर क्या करेंगे? फिर भी मेरा हृदय गो-रक्षा के अनर्थ को देख कर रोता है। कुछ वर्ष पहले 'हिन्द-स्वराज्य' में मैंने लिखा है कि हमारी गो-रक्षणी मण्डलियों को गो-भक्षक मण्डलियां कह सकते हैं। उसके बाद १९१५ में मैं भारतवर्ष आया। तबसे अबतक मेरा यह मत और अधिक दृढ होता गया है। मेरे ऐसे विचार होने के कारण मेरे दिल में यह भाव उठा कि मैं क्या गोरक्षा-परिषद् का सभापति हूंगा, और लोगों को किस तरह अपने विचार समझाऊंगा? परन्तु गंगाधररावजी ने मुझे तार किया कि 'आप अपनी शर्तों पर

सभापति होंगे । श्री चिकोडी आपके विचार जानते हैं और उनसे बहुत-कुछ सहमत हैं । इसलिए मैंने आना कुबूल किया । यह तो भूमिका हुई ।

'नवारण्य' में एक जगह गोरक्षा-संबंधी अपने विचारों को प्रकट करते हुए मैंने कहा था कि जो गोरक्षा करना चाहता हो उसे यह बात भूल जानी चाहिए कि गोरक्षा हमें मुसलमानों से या ईसाइयों से करानी है । आज हम ऐसा समझते हुए दिखलाई देते हैं कि दूसरे धर्म के लोग गो-मांस छोड दें अथवा गोवध बन्द कर दें तो बस उसीमें गोरक्षा की परिसमाप्ति हो जाती है । पर मुझे इस बात में कुछ अर्थ नहीं दिखाई देता । इससे आप यह न समझिएगा कि दूसरों के द्वारा गोवध का होना मुझे पसंद है अथवा गोवध का मैं बरदाश्त कर सकता हूं । मैं किसीके भी इस दावे को कुबूल नहीं करता कि गो-वध से किसी को भी आत्मा को मुझसे अधिक दुःख होता है । मैं नहीं समझता कि दूसरे किसी भी हिन्दू को गो-वध से मुझसे अधिक चोट पहुंचती हो । पर मैं क्या करूं ? अपने धर्म का पालन मैं खुद करूं या औरों से कराऊं ? मैं औरों को ब्रह्मचर्य का उपदेश देता फिरूं और खुद व्यभिचार करता होऊं तो मेरे उपदेश का क्या अर्थ होगा ? मैं खुद तो गो-मांस-भक्षण करूं और मुसलमानों को रोकूं यह कैसे हो सकता है ? पर यदि मैं गो-वध न करता होऊं तब भी मुसलमानों को जबरदस्ती गो-वध करने से रोकना मेरा धर्म नहीं । मुसलमानों को जबरन् गो-वध से रोकना मानों उन्हें जबरदस्ती हिन्दू बनाना है । हिन्दुस्तान में यदि हिन्दू-राज्य हो तो भी उस शख्स को जो गोवध को अधर्म न मानता हो, गोवध के लिए दण्ड की आयोजना न होनी चाहिए । मेरे विचार में गो-रक्षा कोई परिमित बात नहीं है । मेरी गोरक्षा की प्रतिज्ञा का यह अर्थ नहीं है कि हिन्दुस्तान की ही गायों की रक्षा करें । मैं तो सारी दुनिया की गायों की रक्षा की टेक रखता हूं । मेरा धर्म मुझे यह शिक्षा देता है कि मुझे अपने आचरण के द्वारा यह बता देना चाहिए कि गोवध या गोभक्षण पाप है, और उसे छोड देना चाहिए। मेरा मनोरथ तो इतना बडा है कि सारी पृथ्वी के लोग गाय की रक्षा करने लगें । पर इसके लिए पहले तो मुझे अपना घर अच्छी तरह साफ करना चाहिए ।

दूसरे प्रान्तों की बात जाने देता हूं । गुजरात की ही बात करूं कि गुजरात में भी हिन्दुओं के हाथों गोवध होता है । आप शायद न मानेंगे, पर आपको पता न होगा कि गुजरात में बैलों को गाडी में जोत कर, गाडी में मन-माना बोझ लादकर, बैल को नुकीली आरी से गोदते हैं। जिससे खून की धार बहने लगती है । मैं तो इसे गोवध ही कहूंगा, क्योंकि बैल गाय की सन्तान है । पर शायद आप कहें कि यह तो ताडना है, वध नहीं । हिंसा की व्याख्या है दूसरों को दुःख देना, यन्त्रणा पहुंचाना । यदि बैल को वाचा हो तो वह जरूर कहे कि आप जो रोज मुझे आरी चुभा चुभा कर सताते हो इससे तो बहतर है कि एकबारगी कत्ल कर डालो । इस प्रकार बैल पर जुल्म करना मेरी राय में गाय की हिंसा है । एक सिन्धी मुझे कलकत्ते में मिले थे, वे मुझे सुनाया करते थे कि कलकत्ते में गाय पर कैसे कैसे अत्याचार हो रहे हैं । एक बार मुझे उन्होंने कहा कि ग्वालों के घर जाकर उनकी फूंक फूंक कर दूध दुहने की विधि को देखिए । इस खूनी दृश्य को मैंने खुद अपनी आंखों देखा । मुझे विश्वास है कि वह आज भी जारी है । इसके करनेवाले हिन्दू हैं । दुनिया में किसी भी जगह गाय बैलों की वैसी दुर्गत नहीं है जैसी हमारे यहां होती है । हमारे बैलों के बदन पर हड्डी और चमडी के सिवा कुछ नहीं होता ; फिर भी हम उनपर बेहद बोझ लाद देते हैं । जबतक हमारा यह हाल है तबतक हम गोवध बन्द कर देने का तकाजा औरों से किस तरह कर सकते हैं । भागवत में भारतवर्ष के ह्रास के अनेक कारण बताये गये हैं। उनमें एक कारण यह भी है कि हमने गोरक्षा छोड दी है । गोरक्षा करने के हमारे असामर्थ्य के साथ दरिद्रता का घनिष्ट संबंध है । आप और खुद मैं भी शहर में रहते हैं । इससे गरीबों की स्थिति की कल्पना हमें नहीं हो सकती । करोडों लोगों को एक जून पेट भर खाना नसीब नहीं होता । करोडों लोग सडे चावल तथा आटा, नोन और मिर्च खाकर गुजर करते हैं । ऐसे लोग गाय की रक्षा किस तरह कर सकते हैं ? हिन्दुस्तान में अनेक पींजरापोलें जैनों के हाथों में हैं । इनमें बीमार जानवर रक्खे जाते हैं । वहां व्यवस्था या सुविधा जैसी चाहिए वैसी नहीं होती । हमारे यहां केवल पींजरापोलें ही नहीं, बल्कि अच्छी अच्छी दूधशालायें भी होनी चाहिए । बडे बडे शहरों में बच्चों के लिए साफ-स्वच्छ दूध नहीं मिलता । गरीब मजदूरों की औरतें बच्चों को दूध के बदले पानी में आटा घोल कर पिलाती हैं । २३ करोड हिन्दुओं के हिन्दुस्तान में स्वच्छ दूध न मिलने का अर्थ इतना ही हो सकता है कि हमने गो-रक्षा छोड दी है ।

यदि गोरक्षा के बारे में मुझसे कुछ पाठ लेना हो तो मेरा पहला पाठ यह है कि मुसल्मानों और ईसाइयों को भूल जाओ और अपने धर्म का पालन करो । भाई शौकतअली को मैं साफ तौर पर कहता आया हूं कि मेरी गाय तभी बचेगी जब मैं खिलाफत-गाय को बचाऊंगा । मैंने मुसल्मानों के हाथ में अपनी गर्दन क्यों दे दी है ? गाय की रक्षा करने के लिए । 'मुसल्मानों से मैं गाय की रक्षा करना चाहता हूं' इसका अर्थ यह है कि मैं उनपर असर डाल कर उसकी रक्षा करना चाहता हूं । मैं तबतक धीरज रक्खूंगा जबतक उनके दिल में यह समझ न पैदा हो कि हमें हिन्दू भाइयों के खातिर गो-वध न करना चाहिए । अपने कार्यों के द्वारा, अपनी गो-रक्षा और गोभक्ति के द्वारा मैं उनके हृदय को बदल सकूंगा । मेरे नजदीक तो गोवध और मनुष्य-वध दोनों एक ही चीज है । इन दोनों को बन्द करने का यही उपाय है कि हम अहिंसा की वृद्धि करें, मारनेवाले को प्रेम से अपना लें । प्रेम की परीक्षा तपश्चर्या से होती है । तपश्चर्या का अर्थ है कष्टसहन करना । मैं मुसल्मानों के लिए जो हद दरजे तक कष्ट-सहन करने को तैयार हुआ उसका कारण स्वराज्य तो था ही—यह तो छोटी बात थी—पर गाय को बचाना भी था—यह बडी बात भी थी । जहांतक मैं समझा हूं, कुरानशरीफ में ऐसा लिखा है कि किसी भी प्राणी की नाहक जान लेना पाप है । मैं मुसल्मानों को यह समझाने की शक्ति प्राप्त करना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के साथ रह कर गो-वध करना, हिन्दुओं का खून करने के बराबर है । क्योंकि कुरान कहती है कि जो शख्स निर्दोष पडोसी का खून करता है उसे जन्नत नहीं मिलता । इसलिए मैं आज मुसल्मानों का साथ दे रहा हूं, इस तरह पेश आ रहा हूं कि उन्हें दुःख न पहुंचे, उनकी खुशामद करता हूं । यह इसलिए कि उनका धर्मभाव जाग्रत हो, उनके साथ बनियापन या सौदा करने के लिए नहीं । अपने कर्तव्य-पालन के फल के बारे में मुसल्मानों के साथ बातें नहीं करता । उसके लिए तो ईश्वर से ही बातें करता हूं । अपने गीता-पाठ से मैं इतना समझता हूं कि अच्छे कर्म का बुरा नतीजा कभी हो ही नहीं सकता । इसलिए मैंने निश्चय किया कि मुसल्मानों से वादा कराये बिना उनका साथ देना मेरा कर्तव्य है । यही बात अंगरेजों के भी विषय में है । आज उनके लिए जितनी गायें कटती हैं उतनी मुसल्मानों के लिए भी नहीं कटतीं । पर मैं तो उनके भी दिल को ही हिलाना

चाहता हूं और सो भी उनको यह समझा कर कि पश्चिम की सभ्यता जितने अंश में विरोधी हो उतने अंश में उसे भूल जायं और जबतक यहां रहें यहां की सभ्यता सीख लें। हम यदि अपने स्वार्थ के योग्य अहिंसा को भी सीख लेंगे, और उसका पालन करेंगे तो गो-रक्षा हो सकेगी, अंगरेज हमारे मित्र हो जायंगे। अंगरेज और मुसल्मान दोनों को मैं मरकर अर्थात् अपनी कुरबानी के द्वारा खरीदना चाहता हूं। आज अंगरेज हाकिमों के दिल में बड़ा घमण्ड भर रहा है। इससे मैं जिस तरह मुसल्मानों के सामने दीन बनकर जाता हूं उस तरह उनसे पेश नहीं आता। मुसल्मान तो हिन्दुओं की तरह गुलाम हैं। इसीलिए उनके साथ सखा-भाव से बात करता हूं। अंगरेज लोग तो मेरे इस सखा-भाव को न समझ कर मुझे लाचार मान कर मेरा तिरस्कार करते हैं। वे मेरी मदद नहीं चाहते। वे तो बुजुर्ग बनना चाहते हैं। इससे मैं उनके प्रति खामोश रहता हूं। दान पात्र को ही मिलता है, ज्ञान जिज्ञासु को ही मिलता है। यह नियम है। मैं अंगरेज हाकिमों से इतना ही कहता हूं कि आपकी बुजुर्गी मुझे दरकार नहीं। इससे मैं आपके साथ महज प्रेममय असहयोग करता हूं। चौरी-चौरा के समय, बंबई के उपद्रव के समय, अहमदाबाद और विरमगांव के दंगे के समय जो मैंने सत्याग्रह बन्द किया उसका कारण यही है कि मैं यह सिद्ध करना चाहता हूं कि मैं कत्ल कर के नहीं, अंगरेजों को बचा कर, अर्थात् प्रेममय व्यवहार से स्वराज्य लेना चाहता हूं। आज यदि मैं यहां से अंगरेजों या मुसल्मानों का संहार कर के, उन्हें हरा कर के गोरक्षा करूं तो उससे मुझे क्या सन्तोष हो सकता है? मुझे तो सन्तोष तभी हो सकता है जब सारी दुनिया में सब लोग गाय की रक्षा करने लगें और यह शुद्ध अहिंसा के पालन से ही हो सकता है।

अब मेरा गोरक्षा का अर्थ समझ में आ गया होगा— गोरक्षा का स्थूल अर्थ है स्थूल गाय की रक्षा करना। गोरक्षा का सूक्ष्म आध्यात्मिक अर्थ है प्राणि—मात्र की रक्षा करना। आज हम अहिंसा-नीति के परिणाम और शक्ति को नहीं देखते। मुसलमान, ईसाई और हिन्दू नहीं जानते कि उनकी धर्म-पुस्तकें अहिंसा से भरी हुई हैं। हमारे ऋषियों ने मंत्रों का अर्थ करने के लिए भारी तपश्चर्या की। गायत्री का अर्थ जो सनातनी करते हैं वह सच्चा है या जो आर्यसमाजी करते हैं वह सच्चा है, यह कौन कह सकता है? मेरा तो दृढ विश्वास है कि ईश्वर-प्रेरित किसी भी वही का—किसी भी मूल का—अर्थ ज्यों ज्यों हम सत्य और अहिंसा के प्रयोग में आगे आगे बढते जाते हैं त्यों त्यों अधिक स्पष्ट होता जाता है। ऋषि लोग कह गये हैं कि गोरक्षा हिन्दुओं का परम कर्तव्य है, क्योंकि उससे मोक्ष मिलता है। मैं नहीं मानता कि केवल स्थूल गाय की रक्षा करने से हो मोक्ष मिल जाता है। क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने के लिए तो राग-द्वेष को छोडने की जरूरत है। इसलिए गोरक्षा का अर्थ हमारे साधारण अर्थ से व्यापक होना चाहिए। यदि गोरक्षा से मुक्ति मिलती हो तो गोरक्षा का अर्थ केवल गाय की रक्षा ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र की रक्षा होनी चाहिए। इस कारण हर किसीकी हिंसा—कटु वचन से भी भाई, रिश्तेदार आदि को दुःख पहुंचाना—हर किसी प्राणी को दुःख देना, गोरक्षा-धर्म का उल्लंघन है, गोभक्षण है। इसलिए कि हिन्दू-धर्म में गाय की रक्षा करने का उपदेश दिया गया है, क्या गाय को न मारें और बकरी को मारें? अथवा गाय को बचाने के लिए मुसलमान की जान लें! गाय का संकुचित अर्थ करने से ऐसे कितने ही अनर्थ हो जाने की संभावना है। गोरक्षा करनेवाले कितने ही हिन्दू दूसरे प्राणियों का मांस खाते हैं। मेरी अल्प मति है कि वे गोरक्षा का दावा नहीं कर सकते।

लाला धनपतराय नामक एक मुझ जैसा पागल आदमी मुझसे लाहोर में मिलने आया था। उन्होंने मुझे कहा कि आप अगर गोरक्षा चाहते हो तो हिन्दू लोग जो पाप कर रहे हैं उससे उन्हें बचाइए। उन्होंने कहा कि यदि कोई हिन्दू गाय को बेचे ही नहीं तो उन्हें कत्ल कौन करेगा? ईसाई को गाय ही न दें तो वे गाय लावेंगे कहां से? इसके अंदर आर्थिक प्रश्न समाया हुआ है। हमारी गोचर जमीन सरकार ने ले ली। फलतः जहां गाय ने दूध देना बंद किया कि हिन्दू तुरन्त उसे बेच डालते हैं। इसका उपाय धनपतरायजी ने मुझे बताया। उन्होंने कहा कि ऐसी गाय को बेचने की जरूरत नहीं। गाय का उपयोग बैल की तरह क्यों न करें? हमारे धर्म में ऐसी कोई बात नहीं लिखी कि गाय से बोझा उठाने का काम न लिया जाय। हम अपनी माताओं पर जितना बोझा रख सकते हैं उतना उनपर भी रक्खें। गाय को चारा खिला कर सुबह पूजा कर के, उससे थोडा काम ले लिया जाय तो क्या बुरा है? यह उन्होंने मुझसे पूछा। उनके पास बहुतेरी गायें हैं। वे उन्हें खूब हृष्ट-पुष्ट रख कर गाडी में जोतते हैं और हल में भी जोतते हैं। वे फिर से बच्चा देती हैं और गो सन्तान बढती है। मैंने यह आंखों से नहीं देखा, धनपतराय की कही बात है। मुझे इसे न मानने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। मैं समझता हूं की यह बात विचारने लायक है। इस तरह भी यदि कोई गाय की रक्षा करता हो तो उसकी निंदा न होनी चाहिए।

मेरी इच्छा थी कि इस परिषद् में कुछ प्रस्ताव सूचित करूं। पर अब प्रस्ताव का समय नहीं। और आज मैंने जो बातें आपके सामने पेश की हैं उनमें से कुछ बातें आप समझ भी न पाये होंगे। फिर भी प्रस्ताव पर हाथ ऊंचा उठा देने से क्या लाभ है? इसलिए मेरी यह सलाह है कि मेरा यह व्याख्यान सुनकर आप एक समिति बनाइए। कुछ साधु-चरित, गोरक्षा—भक्त हिन्दुओं को उसमें रखिए। वे सभा के संगठन की रचना कर के मेरी सूचित बातों में से जो बातें मानने लायक हों उन्हें स्वीकार कर के सभा को स्थायी रूप देने के लिए आगामी परिषद् के सामने सभा का संगठन-विधान पेश करें।

गबन की हालत में

आन्ध्र-देश से एक सज्जन लिखते हैं—

"बहुत से लोग यह समझ कर कि महासभावाले अदालतों में नालिश तो करते ही नहीं, महासभा—समितियों और खादी-मंडलों का रुपया नहीं देते हैं, और गबन कर जाते हैं। आप तो पहले ही गबन के मामले में अपनी राय दे चुके हैं और अब तो अदालतों की रुकावट भी दूर हो गई है। तो मैं समझता हूं कि महासभा—समितियां ऐसी हालत में अदालतों में दावा दायर कर सकती हैं।"

ऐसे मामलों के लिए मैं अपनी राय पहले ही दे चुका हूं। मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि उन दिनों में जो अब कि बहिष्कार जारी था महासभावालों का यह कर्तव्य था कि वे दगाबाजों और पावना देने से इनकार करनेवालों पर दावे करें। बहिष्कार इसलिए नहीं शुरू किया गया था कि महासभा अपना सर्वनाश कर ले। उसके मूल में यह भाव पहले से ही गृहीत कर लिया गया था कि महासभा से लेन-देन करनेवाले लोग ईमानदारी से बरतेंगे।

हिन्दी-नवजीवन
गुरुवार, माघ सुदी ५, संवत् १९८१

शंका-समाधान

पिछले महीने में एक अंगरेज मित्र के साथ गहरी चर्चा हुई थी। ये मित्र हिन्दुस्तान की बातों में खूब दिलचस्पी रखते है और अपने दम भर उसकी सेवा करने की अभिलाषा रखते है। उन्होंने मुझसे कहा था कि यदि हमारी बातचीत का सार आप छाप दें तो अच्छा हो। मैंने तुरत 'हां' कह दिया, और कहा कि आपने जो जो शकायें उठाई हैं उन्हें लिख कर दे दीजिए। उन्होंने खुशी के साथ लिख दिया। मैं उनका नाम प्रकट नहीं करता, क्योंकि उससे कुछ लाभ नहीं है। असली बात है मेरे विचारों का प्रकट होना, क्योंकि इन दिनों ये लोगों में दिलचस्पी पैदा कर रहे हैं। यदि मैं अंगरेजों का मित्र हूं, जैसा कि मेरा दावा है, तो मुझे जरूर उनकी तमाम शंका-कुशंकाओं का जो उनके दिल में पैदा हों, उत्तर धीरज के साथ देना चाहिए। इस मित्र ने ये तमाम सवाल अपनी ही तरफ से नहीं किये थे, बल्कि ज्यादह तर उन अंगरेजों की तरफ से किये थे जिन्होंने असल में उनसे किये थे।

अब उनके सवाल और मेरे जवाब लीजिए—

स०—खादी-कार्यक्रम को जो आप स्वराज्य का साधन कहते हैं और उसपर इतना जोर देते हैं उसका मतलब क्या है?

ज०—मैं स्वराज्य सिर्फ अहिंसा और सत्य के द्वारा प्राप्त करना चाहता हूं। यह तभी मुमकिन हो सकता है जब खादी-कार्यक्रम उमंग के साथ आगे बढ़े और सफल हो। शान्तिमय उपायों से स्वराज्य तभी मिल सकता है जब हिन्दुस्तान की सारी जनता एक दिल होकर काम करे—थोड़ा ही अच्छा और रचनात्मक काम करे, थोड़े समय तक ही लेकिन हमेशा के लिए करे। ऐसी कोशिश के फल में पहले ही यह बात मान ली जाती है कि राष्ट्र में जागृति—चैतन्य है। यह सिर्फ चरखे के ही द्वारा साध्य हो सकता है। हां, लोग इस के जरिये अपनी आजीविका नहीं पैदा कर सकते। इसलिए जो शख्स केवल आजीविका के लिए इसे ग्रहण करना चाहता हो उसे इसके लिए उत्साह नहीं होता है। फिर भी यह एक हद तक राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए अच्छे तौर पर काफी होगा। फी आदमी १) साल बढ़ती एक आदमी के लिए चाहे कुछ न हो। परन्तु ५,००० आबादी वाले गांव में ५०००) साल की आमदनी से लगान और दूसरे कर तथा अबवाब अदा किये जा सकते हैं। इस तरह चरखे का अर्थ है राष्ट्रीय जागृति होना और देश के हर व्यक्ति की तरफ से राष्ट्र के लिए एक निश्चित रचनात्मक काम का किया जाना। यदि भारतवर्ष अपनी ही स्वेच्छाप्रेरित कोशिश से ऐसा कार्य साधने की क्षमता का परिचय दे तो समझिए कि वह राजनैतिक स्वराज्य के लिए तैयार है। फिर अपने ऐसे संकल्प के साथ जब राष्ट्र की ओर से कोई भी मतालबा पेश किया जायगा तो उसकी गति को कौन रोक सकेगा? चरखे के तथा इससे बनी खादी के भारी आर्थिक मूल्य का तो जिक्र ही अभी नहीं किया है। क्योंकि वह स्पष्ट है। भारत के आर्थिक उत्कर्ष का असर अप्रत्यक्ष-रूप से उसके राजनैतिक इतिहास की गति पर भी राजनैतिक शब्द का प्रयोग संकुचित अर्थ में करने पर भी हुए बिना न रहेगा। और सबसे आखिरी बात यह कि जब लंकाशायर के द्वारा भारत की यह आर्थिक लूट चरखे के द्वारा अपना कपड़ा तैयार करने और फलतः विदेशी कपड़े—और इसलिए लंकाशायर के कपड़े के त्याग करने की भारत की योग्यता के बदौलत, बंद हो जायगी, तो इंग्लैंड भारत को हर उपाय से अपनी अधीनता में रखने के चिन्ता-ज्वर से मुक्त हो जायगा।

स०—इसका तो मतलब है सारे राष्ट्र की रुचि में ही क्रान्ति पैदा कर देना। क्या आप उम्मीद करते हैं कि अपने देश-वासियों से विदेशी कपड़े का इस्तैमाल छुड़वा देंगे।

ज०—जरूर। क्योंकि मैं देश से चाहता भी तो बहुत थोड़ा हूं। लाखों लोगों का ध्यान इस बात की तरफ नहीं है कि हम कौनसा कपड़ा पहनते हैं, वे सिर्फ सस्ताई की तरफ देखते हैं। रुचि बदलने की जरूरत सिर्फ मध्यम श्रेणी के लोगों में ही है। मैं नहीं समझता कि उनके लिए विदेशी कपड़े की जगह खादी को अंगीकार करना असंभव बात है। फिर भी यह बात याद रखना चाहिए कि आजकल खादी एक बहुत बड़ी तादाद में लोगों की रुचि के अनुकूल आ रही है। और दिन दिन पर वह अधिकाधिक नफीस होती जाती है। इसीलिए मेरी राय है कि यदि कोई भी रचनात्मक काम सफल होने योग्य है तो वह है यह खादी-कार्यक्रम।

स०—स्वराज्य से आपका क्या अभिप्राय है और उसमें किन किन भावों का समावेश होता है?

ज०—स्वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोकसम्मति के अनुसार होनेवाला भारतवर्ष का शासन। लोकसम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी से बड़ी तादाद के मत के जरिये से हो, वे चाहे स्त्री हों या पुरुष, इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे हों जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवाया हो। यह सरकार पूर्ण सम्मानयुक्त और बराबरी की शर्तों पर ब्रिटिश-संबंध से युक्त हो। खुद मैं अबतक इस बात से नाउम्मीद नहीं हुआ हूं कि मौजूदा गुलामी की हालत के बजाय बराबरी के हिस्सेदार या साथी की हालत बनाई जा सकती है। पर अगर जरूरत पेश आ जाय अर्थात् यदि इस संबंध के कारण भारतवर्ष की सर्वांगीण उन्नति में रुकावट पड़ती हो तो मैं उससे बिल्कुल संबंध तोड़ने में जरा न हिचकूंगा।

स०—आपने किस दरजे तक स्वराज्य-दल के कार्यक्रम या कार्य-नीति को कुबूल किया है?

ज०—मैंने खुद न तो स्वराज्य-दल के कार्यक्रम को न नीति को कुबूल किया है। एक महासभावादी की हैसियत से मैंने उसके देश पर रहनेवाले प्रभाव को और इसलिए महासभा के प्रतिनिधि बनने के उसके हक को तसलीम किया है। यह हक उसे इस समय बाक्सी ठहराव के द्वारा प्राप्त हुआ पर जिसे वह अपने दल के मतों की गिनती करके भी प्राप्त कर सकता।

स०—आपके और उस दल के नेताओं के संबंध कैसे हैं?

ज०—निहायत ही उम्दा। मैं उन्हें अपने देश की सेवा करने और उसके लिए कुरबान करने का वैसा ही श्रेय देता हूं जो कि मैं खुद अपने लिए पसंद करता।

स०—यह कहा जाता है कि आपने श्री. दास के लिए सब कुछ छोड़ दिया है?

ज०—एक अर्थ में यह बात सच है कि मैंने महासभा के भीतर होनेवाले झगडे को बचा लिया है। परन्तु अगर इसका यह मतलब हो कि मैं अपने सिद्धान्त से एक इंच भी हटा हूं तो यह सच नहीं है ।

स०—बाहावाले प्रस्ताव के समय जो रुख आपका था उससे आज का रुख भिन्न नहीं है ?

ज०—जरा भी नहीं । बाहावाले प्रस्ताव के समय मैं हमारी भीतरी गलती का विरोध कर रहा था । अब मैं सरकार की कार्रवाई का, जो कि गलत अनुमानों के सहारे की जा रही है, प्रतिकार कर रहा हूं । इसके सिवा महासभा के ओहदों का कब्जा एक ही दल के हाथ में रहने और अपने प्रस्तावों के अनुसार व्यवहार कराने की कोशिश को बाहा-प्रस्ताव सबधी मेरी वृत्ति के साथ न मिला देना चाहिए। ये दोनों बातें बिल्कुल जुदा जुदा थीं और न उनका एक-दूसरे से कुछ ताल्लु० ही था । ज्यों ही मैंने देखा कि एक ही दल के हाथ में कब्जा रखने की कोशिश से आपस में कटुता फैलती है, मैंने कदम पीछे हटाये और मैंने स्वराज्य दल के मुकाबले अपनी हार का ऐलान कर दिया ।

स०—कहते हैं कि इस तरह झुक जाने से आपकी नैतिक सत्ता चली गई है ?

ज०—नैतिक सत्ता कभी कोशिश कर के नहीं रक्खी जाती है । वह बिना चाहे आती है और बिना प्रयास रहती है । मुझे नैतिक सत्ता के चले जाने का पता नहीं, क्योंकि मुझे इस बात का बिल्कुल ज्ञान नहीं है कि मैंने कोई एक भी ऐसा काम किया है जिससे मेरे नैतिक आचरण को धक्का पहुंचता हो ।

स०—अब आप असहयोग पर क्यों जोर देते हैं जब कि उस का हरएक अंग असफल हुआ है ? उसके मुल्तवी रखने की बात करने में आपका क्या हेतु है ?

ज०—अब मैं जोर नहीं देता । पर मैं इस बात को नहीं कुबूल करता कि हरएक अंग असफल हुआ है । बल्कि इसके खिलाफ एक हद तक असहयोग का एक-एक अंग सफल हुआ है। मैं इसके मुल्तवी रखने की बात सिर्फ इसलिए करता हूं कि मेरे नजदीक असहयोग जीवन का एक मूल सिद्धान्त है और उसके द्वारा हिन्दुस्तान को, और आप कहलाना चाहें तो सारी दुनिया को, लाभ पहुंचा है, जिसका कि अभी हमको पूरा खयाल नहीं है । और इसलिए भी कि यदि फिर दृढ अहिंसा और देश के लोगों में परस्पर सच्चे सहयोग का वायुमंडल तैयार हो जाय और फिर भी हम अपने ध्येय से दूर ही रहें, तो मैं राष्ट्र को उसे फिरसे ग्रहण करने को सलाह देने में न हिचक पाऊं ।

स०—हिन्दू मुस्लिम समस्या को आप किस तरह हल करना चाहते हैं ?

ज०—दोनों जातियों पर लगातार इस बात का जोर दे कर कि आपस में आदर भाव और विश्वास पैदा करो, और हिन्दुओं को इस बात का आग्रह करके कि वे हर दुविधकी बात में मुसलमानों को अपनी शक्ति के बल पर सब कुछ दे दें, और यह दिखला कर कि जो लोग अपनेको देशहितैषी कहलवाते हैं और जिनकी तादाद बहुत भारी है वे धारासभाओं या सरकारी पदों की भद्दी प्रतिस्पर्धा में योग न दें । मैं यह दिखला कर के भी इस उद्देश्य को सिद्ध करना चाहता हू कि सच्चा स्वराज्य थोडे लोगों के द्वारा सत्ता छीन लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब सब लोगों के द्वारा उसके प्रतिकार करने की क्षमता को प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में स्वराज्य जनता में इस बात ज्ञान पैदा करा के प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता कब्जा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उनमें है।

स०—अंग्रेजों के प्रति आपका सच्चा रुख क्या है ? और इंग्लैंड से आप क्या आशा रखते हैं ?

ज०—अंग्रेजो के प्रति मेरा मनोभाव बिलकुल मित्रता और आदर का है । मैं उनके मित्र होने का दावा करता हूं । क्योंकि यह मेरी प्रकृति के विरुद्ध है कि मैं एक भी मनुष्य-प्राणी को अविश्वास की दृष्टि से देखूं या यह मानूं कि दुनिया की कोई भी कौम उद्धार के नाकाबिल है । मुझे अंग्रेजों के प्रति आदर है । क्योंकि मैं उनकी बहादुरी का, उस ज्ञान के लिए जिसको वे अपने लिए अच्छा समझते हैं, कुरबानी करने की वृत्ति का, उनकी एकाग्रता और उनकी विशाल व्यवस्था शक्ति का कायल हूं । उनसे मुझे यह आशा है कि वे थोडे ही समय में अपने कदम पीछे हटावेंगे और अव्यवस्थित तथा अस्तव्यस्त जातियों को लूटने की नीति को बदलेंगे, एवं इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण देंगे कि भावी ब्रिटिश राष्ट्रसंघ में भारतवर्ष एक बराबरी का मित्र और हिस्सेदार है । ऐसी घटना का होना मुख्यतः खुद हमारे ही व्यवहार पर अवलंबित है । अर्थात् मुझे इंग्लैंड से आशा इसलिए है कि मुझे हिन्दुस्तान से आशा है । हमेशा के लिए हम अस्तव्यस्त और नकलची न बने रहेंगे । वर्तमान अस्तव्यस्तता, कर्तव्यच्युति और कार्यारम्भ करने की शक्ति के अभाव की तह में मुझे व्यवस्था, नैतिक बल और कार्यारम्भ की शक्ति अपने आप संगठित होती हुई दिखाई देती है । वह जमाना आ रहा है जब कि इंगलैंड, हिन्दुस्तान की मित्रता से खुश होगा और हिन्दुस्तान उसके आगे बढाये हुए हाथ से हाथ न मिलाने के लिए रजामन्द न होगा—इस बिना पर कि एकबार उसने उसकी अवहेलना की। मुझे मालूम है कि इस आशा के लिए कोई प्रमाण मेरे पास नहीं। वह तो केवल अटल श्रद्धा पर अपनी हस्ती रखता है। जो श्रद्धा प्रमाण पर निर्भर रहती है वह दुर्लभ है ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

मियां फजलीहुसैन

अभी जब मैं लाहौर गया था, मेरी मुलाकात मियां फजली-हुसैन के साथ हुई थी । उसकी जो छाप मुझपर पडी उसे प्रकाशित करने के लिए एक मजमून लिखते हैं । मैं खुशी के साथ इसे स्वीकार करता हू । मियां साहब के साथ मेरा समय बडी अच्छी तरह गुजरा । उनका व्यवहार हृदयहारी था । बातचीत में वे समझदार और जैसे होने चाहिए वैसे रहे । उनपर हिन्दुओं की तरफ से किये गये पक्षपात के आक्षेप का उन्होंने विरोध किया । उन्होंने कहा, 'मैं सिर्फ न्याय करने का ही प्रयत्न करता था और वह भी मुसलमानों के प्रति पूरा पूरा नहीं । मैं सब से मिलता था और जो लोग इस प्रश्न पर अधिक विचार करना चाहते थे उन्हें मैं अपनी स्थिति समझाने के लिए सदा उत्सुक रहता था ।' इससे अधिक आशा रखने का किसीको अधिकार नहीं। मैं यह नहीं जानता कि मियां साहब की नीति के खिलाफ सच-मुच कुछ कहा जा सकता है या नहीं। मैंने इस प्रश्न पर दोनों तरफ से विचार नहीं किया है । जब मैं यह कर सकूंगा तब मैं मियां साहब के इस दावे पर कि उन्होंने मुसलमानों के साथ पूरा पूरा न्याय नहीं किया है, अपनी राय बडी खुशी से जाहिर करूंगा । तबतक तो मेरे लिए इतना ही कहना काफी है कि मियां फजलीहुसैन, शान्त, गंभीर, मानास्पद और समझदार सज्जन हैं।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

टिप्पणियां

उलटा रास्ता

जमैयतुल-तबलीग इस्लाम ने मुझे अपनी बैठक में हाल ही में हुए नीचे लिखे प्रस्ताव का अनुवाद भेजने की कृपा की है।

"यह निश्चय किया गया कि कोहाट में हाल ही हुए दंगों के वक्त जो शोचनीय घटनायें हुई हैं और जिनके फलस्वरूप वहांके लोगों के जानोमाल को निहायत नुकसान पहुंचा है, उनकी जिम्मेदारी उन लोगों पर है जिन्होंने कोहाट में ऐसे परचे शाया किये जो जोश और गुस्सा दिलानेवाले थे और जिनमें इस्लाम पर बुरी तरह हमला किया गया था तथा मुसलमानों के जजबात को गहरी चोट पहुंचाई थी। जिन हिन्दुओं ने गोलियाँ चलाई और मुसलमानों की जानें लीं वे भी उसके बाद हालत को और नाजुक बना देने के जिम्मेदार हैं। यह जमैयत उन तमाम कोहाट के बाशिन्दों के साथ, बिना जात-पांत के भेद-भाव के, हमदर्दी जाहिर करती है, इन दंगों के दरम्यान जिनके जानोमाल जाया हुए हैं। एक मजहबी जमात की हैसियत से यह जमैयत महात्मा गांधी को तथा दूसरे राजनैतिक नेताओं को यह बताना चाहती है कि जबतक मजहब और मजहबों के प्रवर्तकों तथा मजहबी हल-चलों के नेताओं पर व्याख्यान और लेखों के द्वारा किये जानेवाले हमले पूरी तरह न बन्द किये जायंगे तबतक हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम-एकता की कायमी और पुख्तगी हमेशा गैर-मुमकिन होगी।"

मैं इस जमैयत को इस प्रस्ताव पर बधाई देने में असमर्थ हूं। अभीतक कोहाट की दुर्घटना की कोई जांच निष्पक्षरूप से नहीं हुई है। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि दोनों पक्ष के लोगों ने अपना अपना मत बना डाला है। क्या यह बात साबित हो चुकी है कि कोहाट की तमाम शोचनीय दुर्घटनाओं की जिम्मेवारी उस या उन लोगों पर है जिन्होंने कोहाट में वे जोश और गुस्सा पैदा करनेवाले परचे छापे? क्या यह बात भी साबित हो चुकी है कि 'जिन हिन्दुओं ने गोलियां चलाई और मुसलमानों की जानें लीं वे भी उसके बाद हालत को नाजुक बना देने के जिम्मेदार हैं?' यदि पूर्वोक्त दोनों बातें असन्दिग्ध रूप से साबित हो गई हों तो कम से कम वहां के हिन्दू अपनी जानोमाल की हानि के लिए जमैयत की ओर से प्रदर्शित की गई किसी तरह की हमदर्दी के मुस्तहक नहीं हैं। क्योंकि यह तो उनकी करनी का फल उन्हें मिल गया। ऐसी अवस्था में जमैयत का हिन्दुओं के साथ हमदर्दी जाहिर करना असंगत है। और जमैयत के मुझे और दूसरे राजनैतिक नेताओं को यह दिखाने में उसकी मन्शा क्या है कि 'जबतक मजहब और मजहबों के प्रवर्तकों तथा मजहबी हलचलों के नेताओं पर व्याख्यान या लेखों के द्वारा किये जानेवाले हमले बिलकुल बन्द न किये जावेंगे तबतक हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम-एकता की कायमी और पुख्तगी हमेशा गैर-मुमकिन होगी।' जमैयत का ख्याल अगर सही है तो क्या एकता की असंभावना ऐसी बात नहीं जिसपर राजनैतिक नेताओं के साथ, खुद उसका भी ध्यान जाना चाहिए? और क्या इसीलिए कि कुछ व्यक्ति मजहब पर हमला करते हैं, हिन्दू-मुस्लिम-एकता जरूर ही असंभव हो जानी चाहिए? जमैयत के मतानुसार एक अविचारी हिन्दू या अविचारी मुसलमान हिन्दू-मुस्लिम-एकता को असंभव बना देने के लिए काफी है। सद्भाग्य से हिन्दू-मुसलमान-एकता धार्मिक और राजनैतिक नेताओं पर अवलंबित नहीं है। उसका आधार है दोनों जातियों की जनता के उस स्वार्थ-भाव पर। हमेशा के लिए उन्हें कोई गुमराह नहीं कर सकता। पर मैं आशा करता हूं कि जमैयत का मूल प्रस्ताव इतना खराब न होगा जितना कि यह अनुवाद मालूम होता है।

सूत की बरबादी

कुम्भकोणम् से एक सज्जन लिखते हैं—

"आप जानते ही होंगे कि देश में आजकल नेताओं का सत्कार सूत की माला पहना कर करने का रिवाज पड़ गया है। हरएक राजनैतिक समारोह के अवसर पर ऐसी बेशुमार मालायें पहनाई जाती हैं। पर कोई उनकी संभाल नहीं रखता। इसतरह बहुतेरा हाथकता सूत योंही बरबाद हो जाता है। इसके नमूने के तौर पर मैं एक सूत का पार्सल आपकी सेवा में भेज रहा हूं। यह सूत कुम्भकोणम् में हाल ही हुई तामील नाड की खिलाफत परिषद् में से संग्रह किया है, जिसके कि सभापति मौ. शौकत अली थे। यदि मैं इस सूत को न संभालता तो यह ९६० गज सूत योंही बरबाद हो जाता। मुझे यकीन है कि उस परिषद् में इससे कहीं ज्यादह सूत खराब गया होगा। इसलिए निवेदन है कि आप 'यं. इं.' के द्वारा यह हिदायत दें कि जो मालायें बनाई जायं उनको एक निश्चित तादाद—जैसे २००० हजार गज—हो, जिससे कि वे २००० गज की मालायें बटोर ली जायं और उनका सदुपयोग उस तरह किया जाय जिस तरह कि पहननेवाले चाहें।"

सूत की बरबादी के बारे में इन महाशय ने जो कुछ लिखा है, बिल्कुल ठीक है। नेताओं को सूत की मालायें अर्पण करने का रिवाज अच्छा है पर मालायें सुन्दर होनी चाहिए और उनमें सूत बहुत न लगाया जाना चाहिए। यदि नेताओं को सूत भेंट करने का आशय हो, माला पहनाने का नहीं, तो पत्र-लेखक की सूचना का अवश्य पालन होना चाहिए और एक आकार की फालकियां अर्पण करनी चाहिए। क्योंकि यदि सूत की मालायें अर्पण करने का रिवाज देशव्यापी हो गया और इस बात की संभाल न रक्खी गई, तो बहुतेरा अच्छा सूत नष्ट हुआ करेगा, जो यदि बच रहे तो गरीबों के लिए सस्ती खादी बनाने में काम आ सके।

अ० भा० खादी मण्डल के प्रस्ताव

महासभा के मताधिकार के अनुसार कार्य करने के बारे में अ० भा० खादीमण्डल के नीचे दिये हुए प्रस्ताव पर मैं उन सब लोगों का ध्यान दिलाता हूं जिनका कि संबंध उसके साथ है। प्रस्ताव इस प्रकार है—

"महासभा ने हाथ-कताई को मताधिकार का अंग मान लिया है। सो इस मामले में प्रान्तिक समितियों को सुविधा कर देने के लिए, अ०भा०खा० मण्डल प्रस्ताव करता है कि वह प्रान्तिक मण्डलों के जरिये या सीधे ही नीचे लिखी सहायता करने को तैयार है—

(१) किसी भी प्रान्त को जहां आसानी से रुई नहीं मिल सकती, मंडल रुई देने के लिए तैयार है

(२) उधार मांगने के लिए जो अर्जियां आवेंगी उनपर विचार करने के लिए मंडल तैयार रहेगा। इसकी शर्तें उसी वक्त तय की जावेंगी।

(३) यह मण्डल प्रान्तिक खादी-मण्डलों को यह सलाह देता है कि वे सदस्यों को अच्छे चरखे और तांत के नमूने प्राप्त करने में हर तरह से मदद करें और जबतक सदस्य अपनी व्यवस्था स्वयं न कर लें तबतक तैयार पूनी प्राप्त करने में भी उन्हें सहायता पहुंचावें।

(४) जहां तक मुमकिन होगा मण्डल धुनकना, कातना, इत्यादि कामों में शिक्षा देने के लिए कुशल कारीगरों का इन्तजाम करेगी। इसके लिए मंडल के साथ व्यवस्था करनी होगी।

(५) किसी भी प्रान्तिक समिति से बाजार भाव पर मण्डल सूत खरीदने के लिए तैयार रहेगा या समिति की तरफ से उसे बुनवा देगा।

(६) मताधिकार के अनुसार आवश्यक हाथकता सूत यदि जरूरत हुई तो उचित भाव से देने के लिए मंडल तैयार है।

(७) मंडल व्यक्तियों को और समितियों को चेता देता है कि वे मताधिकार के लिए बाजार से हाथकता सूत न खरीदें। क्योंकि मुमकिन है बाजार का सूत मिल का सूत हो या मिल की पूनी का कता हो और अच्छा कता भी न हो। (केवल कुशल कातनेवाले ही हाथकते और मिल के कते सूत का फर्क समझ सकते हैं और यह कह सकते हैं कि सूत अच्छा कता है या बुरा। जब मिल की पूनी का सूत हाथ से काता गया हो तो कुशल कातनेवाले भी उसे नहीं पहचान सकते।)

(८) अन्त में, मंडल व्यक्तियों को और समितियों को जो कुछ भी समाचार और मदद दरकार हो वह यदि उसके बस की बात हुई तो देने के लिए सदा तैयार रहेगा।

समय का प्रवाह हमसे आगे बढ़ता चला जा रहा है। इसलिए मैं आशा करता हूं कि नये मताधिकार के अनुसार प्रान्तिक समितियां अपनी व्यवस्था कर रही होंगी। यदि ठीक ठीक काम किया गया तो इससे भारी नतीजा पैदा होगा। लेकिन इसका काम करने के लिए छोटी से छोटी बात पर भी ध्यान देना होगा। और एक मरतबा कार्य करने योग्य संगठन बन गया कि वह दिन प्रतिदिन गणित के हिसाब से बढ़े बिना न रहेगा और इससे महासभा अपने पैरों पर खड़ी हो कर धनोत्पादक संस्था बन जायगी।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

गुजरात में छः दिन

बड़ौदा-राज्य में अभिनन्दन-पत्र

पिछली १५ से २० जनवरी तक गांधीजी ने सोजित्रा, पेटलाद, और बारडोली तहसील में यात्रा की। अभिनन्दन-पत्रों और स्वागत-सत्कार की क्या पूछिए? पोज नामक गांव से ही, जहां से गायकवाड़ के राज्य की हद शुरू होती है, अभिनन्दन-पत्र आरंभ हुए। एक गांव में एक नहीं अनेक अभिनन्दन-पत्र। बड़ौदा राज्य के अधिकारियों ने यह हुक्म छोड़ रक्खा था कि गांधीजी को अभिनन्दन-पत्र जरूर दिये जायं। सो कितनी ही संस्थाओं और मंडलों की ओर से अभिनन्दन-पत्र दिये गये थे। राज्य-कर्मचारी भी उसमें बड़े उत्साह से शरीक हो रहे थे। अभिनन्दन-पत्रों की भाषा पर भी राज्य ने कोई अंकुश न रक्खा था।

उलटा पदार्थ पाठ

पीज में कितनी ही बहनों ने एक गीत गाया था—'स्वराज लेवुं सहेल छे—उन्होंने 'खादी खादी पहेरो, परदेशी कापड छोड़ो, मारी बहेनो! स्वराज लेवु सहेल छे!' गाया पर वे खुद पहने हुए थी विदेशी कपड़ा। इसको ध्यान में रख कर गांधीजी ने एक अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में कहा—

'आपने अभिनन्दन-पत्र में जो स्तुति मेरी की है उसके योग्य मैं कहांतक हूं, इसका निश्चय नहीं हो सकता। जिन गुणों का आरोप मुझपर किया गया है यदि उन्हें हम सब प्राप्त करने का प्रयत्न करें, उनके अनुसार आचरण करें तो क्या अच्छा हो? परन्तु इन बहनों के गीत से तो उल्टा ही पदार्थ-पाठ मिला है। सो देखना, इस अभिनन्दन-पत्र के वर्णन के संबंध में भी कहीं ऐसा न हो। मेरी यात्रा में मैंने देखा है कि स्तुति करने की कुटेव हमें पड़ गई है। मैं यह नहीं कहता कि इसमें दम्भ ही होता है, पर यह बात सच है कि बहुत बार हम केवल मुंह से उद्गार निकालने में ही सार्थकता मान लेते हैं। मैं तो ठहरा खादी और चरखे पीछे पागल आदमी। इसलिए मुझे वहां जाना अच्छा नहीं लगता जहां चरखे की निन्दा होती हुई देखता हूं। इन बालिकाओं के मन में तो निन्दा-भाव क्या होगा? पर यह दोष उन लोगों का है जिन्होंने इन बालिकाओं से यह गीत गवाने की तजवीज की हो। इसलिए अभिनन्दन-पत्रों में समय न गंवा कर हम कर्त्तव्य-पालन में ही अपना समय लगावें।'

स्वयंसेवक कैसा हो?

किसान-परिषद् में स्वयंसेवक होने की शर्तों पर गांधीजी ने नीचे लिखा विवेचन किया—

'सभापति महाशय की यह भिक्षा (४० स्वयंसेवक देने की) न दी जा सके तो मैं इस परिषद् को निरर्थक कहूंगा। यदि उनकी मांग भारी होती, आपकी शक्ति के बाहर होती, तो मैं कुछ न कहता। यदि इस परिषद् में ४० स्वयंसेवक न मिलें तो आपके लिए शर्म की बात होगी, जितनी आपके लिए उतनी ही मेरे लिए भी होगी; क्योंकि पाटीदारों से मेरा निकट संबंध है। जब से मैंने यहां आकर काम करना शुरू किया तब से नहीं, बल्कि दक्षिण आफ्रिका से ही। और इस संबंध की रू से मैं आशा रखता हूं कि ४० स्वयंसेवक तो अवश्य ही मिल जाना चाहिए। पुरुष ही नहीं, बल्कि स्त्रियां भी मिलनी चाहिए। उनके लिए यदि इस संग्राम में स्थान न हो तो हमारा काम आधा ही बनेगा। हां, एक लिहाज से यह बात ठीक है कि ये स्वयंसेवक वैतनिक न हों। जो वेतन लेने के लिए वेतन लेना चाहता है, वह स्वयंसेवक नहीं। परन्तु जो समाज स्वयसेवक की सेवा लेना चाहती है वह स्वयंसेवक के निर्वाह की व्यवस्था करने के लिए बाध्य है। ४० सेवक हमारे काम के लिए बस नहीं हैं। हिन्दुस्तान में तो ४० लाख स्वयंसेवक भी मिलें तो दरकार है। हमने जो काम उठाया है उसके लिए कम से कम ५-७ हजार स्वयंसेवक तो अवश्य ही चाहिए। और इस निर्धन देश में इतने स्वयंसेवक बिना कुछ लिये काम कर सकें, यह असंभव है। योरप जैसे देशों में भी ऐसे स्वयंसेवक प्राप्त करना असंभव है। ईश्वर ने हमें इसलिए पैदा नहीं किया है कि हम खाते तो रहें पर काम न करें। हमने प्रकृति के सर्व-साधारण नियम का भंग किया है। लोग खाते हैं पर उसके लिए काम नहीं करते। इससे हजारों लोग रुपया खर्च करते हैं और हजारों भूखों मरते हैं। हिन्दुस्तान के अंगरेजी इतिहासकार हण्टर साहब कहते हैं कि १० करोड़ मनुष्यों को एक जून मुश्किल से खाने को मिलता है और वह भी रोटी और नमक। महासभा ने भी प्रस्ताव किया है कि बिना कुछ दिये स्वयंसेवक मिलने की इच्छा न रखनी चाहिए और मिसाल पेश करने के लिए अग्रगण्य लोगों को सबसे पहले कदम बढ़ाना चाहिए। मुझे भी जरूरत पड़ने पर लेना चाहिए, वल्लभभाई को भी लेना चाहिए, हालां कि मैं तो मित्रों से बहुत सी चीजें ले लिया करता हूं। आज चाहे मुझे और वल्लभभाई को इसकी जरूरत न हो, पर ऐसा समय आवेगा जब वैतनिक स्वयंसेवकों में मैं और वल्लभभाई भरती होंगे। तिलक महाराज और गोखलेजी का ही उदाहरण लीजिए। जब फर्गुसन कालेज खुला तब दोनों ने उसमें सिर्फ ४०) वेतन पर सन्तुष्ट रह कर शिक्षा-क्षेत्र में सेवा करने की दीक्षा ली थी। पीछे से तिलक महाराज ने कुछ कारणों से कालेज छोड़ दिया, पर जबतक वे रहे तबतक वेतन लेने में गौरव समझते थे। गोखलेजी ने २० साल पूरे किये, धारा-सभा के सभ्य थे, अनेक कमिटियों में काम करते थे, उनमें से भी कुछ रुपया मिलता था। जब वे 'महान्' बन गये थे और १००००) मासिक वेतन मिल सकता था तब भी उन्होंने ७५) मासिक की जितनी इज्जत की उतनी बड़ी रकमों की नहीं। अपनी पेन्शन की वह थोड़ी रकम वे बड़े आदर के साथ स्वीकार करते थे।

स्वयंसेवकों को संसार की निन्दा का विचार करना उचित नहीं निकम्मों को और काम ही क्या ? वे स्वयंसेवकों की निन्दा करें तो उससे घबराने की जरूरत नहीं। स्वयंसेवक निन्दा को ही अपनी खुराक समझें, जो दुनिया की निन्दा नहीं सहन सकता वह स्वयंसेवक नहीं हो सकता। स्वयंसेवक की ख गेंडे की हो जानी चाहिए। वह नीचा सिर रख के अप काम ही किये जाय, आगे पीछे न देखे, सिर्फ अपने और अपने काम में ही मगन रहे। वह ऐसा योगी ही होना चाहिए। जो स्वयंसेवक यह मानता हो कि वह जनता के हाथ बिक चुका है उसे अपने काम के ही सपने दिन-रात आने चाहिए। उसे आजीविका के योग्य रकम लेने में सकोच न रखना चाहिए-खीर-पूडी नहीं, परन्तु ज्वार बाजरी लेते हुए। ऐसे पक्के स्वयंसेवक भरती होने चाहिए और सभापति जी को निश्चित कर देना चाहिए। यदि आप सभापति जी को यहां कैद करना चाहते हों तो आ जाओ, नाम लिखाओ। इतने कम स्वयंसेवकों पर संतुष्ट हो जानेवाले दूसरे सभापति आपको शायद ही मिलेंगे।'

चेतो और जागो

आगे चल कर चरखे के संबंध में उन्होंने कहा—'हिन्दुस्तान में आज जो बडी से बडी प्रौढ हल-चल चल रही है उसके संबंध में कुछ कहे बिना नहीं रह सकता—वह हलचल है खादी-चरखा। ज्यों ज्यों लोग चरखे का विरोध करते है त्यों त्यों उसके बारे में मेरा विश्वास दृढ होता है। इसका अर्थ यह न कीजिएगा कि मैं मूर्ख और जिद्दी हू और बिना समझे-बूझे ही एक चीज को पकड कर बैठ गया हू। जिस चीज की मैं बात कर रहा हू वह तो मैंने देश के सामने चार-पांच साल पहले उपस्थित की है। परन्तु उसके विषय में अपनी दलीलें तो मैं पहले कभी चरखे का दर्शन किये बिना भी 'हिन्द-स्वराज्य' में पेश कर चुका हू। और ज्यों ज्यों इसका विरोध होता है त्यों त्यों मैं देखता हू कि विरोध के मूल में अनुभव और विचार नहीं है और अपनी दलीलों में मुझे गहरा विचार और अनुभव दिखाई देता है। मैं अपने को सीधा आदमी मानता हूं। भूल करना अपना धर्म समझता हूं। गंदगी मुझे पसंद नहीं। शरीर में, मन में, हृदय में गन्दगी रखना बीमारी है। अर्थात् भूल न कुबूल करना भी रोग है। जो मनुष्य ईश्वर के सामने अर्थात् संसार के सामने भूल नहीं कुबूल करता—हालां कि वह तो सब कुछ देखता रहता है, पर वह खेल खिलाता है और भुलावे में डाल देता है—उसे क्षयी रोग होता है, आध्यात्मिक क्षय होता है। यह क्षय उस शारीरिक क्षय से अधिक हानिकर है। उससे तो केवल शरीर का नाश होता है, पर दूसरे से तो आत्मा ही नष्ट हो जाती है। आत्मा तो अमर है, अक्षय है। इसलिए उसका नाश नहीं पर नाश की भ्रान्ति होती है। इसलिए अमर आत्मा के नाश की कल्पना करने में दुहेरा रोग होता है। इससे अपनी भूल को कुबूल करने में मुझे जरा भी सकोच नहीं होता। फिर मेरी भूल कुबूल करने के फल-स्वरूप यदि सारे चरखे बंद हो जायं और मेरी गिनती पागलों में होने लगे तो हर्ज नहीं। पर मैं जानता हू कि ऐसा समय नहीं आया है। मुझे चरखे के संबंध में इतना दृढ विश्वास है कि यदि मेरी पत्नी, मेरे लडके, और मेरे लडकों से भी ज्यादह मेरे साथी चरखा छोड दें तो भी मैं अकेला रह कर भी चरखे का मंत्र जपूगा और उसे चलाता रहूंगा। हिन्दुस्तान को आलस्य की बडी बीमारी लग गई है। यह स्वाभाविक नहीं। किसानों के लिए तो यह स्वाभाविक हो ही नहीं सकता। यदि हो तो उसकी खेती बरबाद हो जाय। हमारे यहां चरखे के विनाश होने से ही आलस्य ने अपना प्रभुत्व जमा लिया। करोडो लोगों का पेशा छिन गया। अब करोडों के लिए छोटे छोटे धन्धे नहीं हो सकते। कोई कहते हैं हम डलिया बनावेंगे, कोई कहते हैं ताले बनावेंगे, कोई दियासली और कोई साबुन। इनमें करोडों लोग नहीं लग सकते और यदि करोडों लोग इन्हें करने लगें तो इतने खरीदेगा कौन ? इस तरह यदि हम काम करेंगे तो इससे राष्ट्र-संघ नहीं हो सकता, व्यक्ति-संघ होगा। ऐसे कामों से उद्धार नहीं हो सकता। इसीलिए मैं कहता हूं कि हिन्दुस्तान में एक सहायक धन्धे की जरूरत है। खेडा में ऐसे बहुत कम गांव होंगे जहां मैं घूमा न हूंगा। इनमें से बहुतेरों के पास बहुत वक्त बच रहता है। पर जब मैं यह कहता हूं कि इस वक्त के उपयोग करने का साधन चरखा है तो यह सब को पसन्द नहीं होता। इससे कितने ही चोरी करते हैं, कितने ही कर्ज करते हैं और कितने ही भूखों मरते हैं। ऐसी दयाजनक स्थिति में पडी हुई—जबरदस्ती आलसी बनी हुई जनता का नाश न हो तो क्या हो ? यदि वह खुद न जगे और औरों को न जगावे तो उसका नाश ही समझिए—यह समाज-शास्त्र का नियम है। हां, करोडों लोग इसके द्वारा आजीविका नहीं प्राप्त कर सकते और इसे मैंने आजीविका के साधन के तौर पर पेश भी नहीं किया है। बल्कि मैने इसे अन्नपूर्णा कहा है। अन्नपूर्णा का अर्थ है घी-दूध। असंख्य गरीबों को घी-दूध नहीं मिल सकते, गेहूं की राब (एक किस्म की पतली रबडी) में डालने के लिए दूध का बूंद या घी का कण नहीं मिल सकता। यह भयानक स्थिति है। इसका एक ही इलाज है, चरखा। एक एक आदमी यदि एक एक रुपये का काम करता है तो मालूम नहीं होता; परन्तु सात हजार की आबादीवाला बडा गांव यदि इस तरह सात हजार रुपया पैदा करे तो यह नजर में आ सकता है। फिर इस चरखे की साधना से साथ ही साथ दूसरे भी कितने ही गुण आते हैं। सादगी आती है, सरलता आती है, नियमितता आती है और एक बात की नियमितता से सारी जिंदगी में नियमितता आ जाती है आज अगर आप चरखा न चलावेंगे तो पीछे मुझे याद करेंगे। परन्तु जबतक बंद थोडा ही टूटा है तबतक बंद बांध कर पानी को रोक रखिए। जब पानी बहने लगता है तब उसका प्रवाह रोके नहीं रुक सकता और बंद और पानी दोनों चले जाते हैं। आज भी समय है। इसलिए आपसे कहता हूं कि चेतो, जागो। बनिये की तरह उंगलियां न गिनो। चरखे से आप अकेले को कितनी आमदनी हो सकती है, इसका विचार करते हुए ही इस बात का विचार करो कि देश को कितनी आमदनी होगी। भादरन जैसे छोटे गांव में जब लोगों को हिसाब करके दिखा दिया गया तब वे चकित हो गये। मैंने भादरन के लोगों को समझाया कि आप किस तरह आसानी से दो हजार रुपये बचा सकते हैं। एक सेर रुई पर ज्यादह से ज्यादह खर्च तो कताई का ही है, बुनाई का नहीं। रुई घर की, घर ही में साफ कर लो और कात लो तो सिर्फ बुनाई का ही खर्च पडेगा। और अगर केवल बुनाई का ही खर्च पडे तो हम दुनिया की मिलों के साथ बाजी ले सकते है क्योंकि बुनाई का खर्च तो मिलों में भी प्रायः हाथ-करघे के बराबर हो जाता है। हिन्दुस्तान के लोग इस कुंजी को जानते थे। इसलिए उन्होंने चूल्हे की तरह चरखे को अपनाया था। चरखे के जाते ही हमारा जीवन अपवित्र हो गया, नास्तिक हो गया, ईश्वर का डर जाता रहा। आप अगर आस्तिक होना चाहते हों, पवित्र होना चाहते हों, अपनी बहनों के सतीत्व की रक्षा करना चाहते हों, तो चरखे का अंगीकार करो। चरखे से देश की जागृति होगी, हिन्दू-मुसलमानों की एकता होगी, देश की कंगाली दूर होगी, सारे देश के किसानों का उद्धार होगा। हिन्दू समाज-शास्त्र के पालन का आधार इसीपर है'।

दूसरे की जमीन पर

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक २६

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, माघ सुदी १२, संवत् १९८१ गुरुवार, ५, जनवरी, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

एकता की ओर

सर्व-दल-परिषद् की समिति परिषद् के द्वारा सौंपे अपने काम के निमित्त बैठी थी। उसने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कोई ५० सज्जनों की एक उपसमिति बनाई। उपसमिति ने एक छोटी समिति बनाई और उसके जिम्मे यह काम किया गया कि वह स्वराज की ऐसी योजना तैयार करे जो सब को मंजूर हो सके और उसकी चर्चा की रपोट उपसमिति को करे। विदुषी बेसेंट इस छोटी समिति में अपनी सदा की तत्परता, एकाग्रता और उत्साह के साथ काम कर रही हैं, जिसे देख कर युवकों और युवतियों को शर्म आनी चाहिए। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम-सवाल पर स्वभावतः ही ज्यादह ध्यान एकाग्र हुआ है। इसलिए नहीं कि वह मुझ जैसे व्यक्तियों को छोड़ कर औरों के नजदीक इस कदर ज्यादह महत्व पूर्ण है, बल्कि इसलिए कि उसकी वजह से स्वराज्य का रास्ता ही बन्द हो रहा है। इस समिति के लिए अपने बाजाब्ता रूप में काम करना मुश्किल होने लगा। इसीलिए यह जरूरी मालूम हुआ कि समिति की अपेक्षा थोड़े ही आपस में मिल कर चर्चा करें जिससे दिल खोल कर बातें हो सकें और उसमें और भी कम लोग शरीक हों। तदनुसार हकीम साहब के मकान में हर जाति के कुछ सज्जन आपस में मिले। उसका नतीजा पण्डित मोतीलालजी नेहरू ने संक्षेप में प्रकाशित किया ही है। हां, मैं भी मानता हूं कि चिन्ता या निराशा का कोई कारण नहीं है, क्योंकि सब लोग इस सवाल को हल करने के फिक्र में ही हैं। कुछ लोग आज ही इसका फैसला कर लेना चाहते हैं, कुछ कहते हैं अभी वक्त नहीं आया है। कुछ लोग इसे हल करने के लिए सब कुछ छोड़ देने को तैयार हैं। कुछ होशियारी से कदम रखना चाहते हैं और जबतक उन्हें उनकी कम से कम और अपरिहार्य बातें न मंजूर हो जायं तबतक इन्तजार करना चाहते हैं। पर इस बात पर सब लोग सहमत हैं कि इसका हल हो जाना स्वराज के लिए परम आवश्यक है। और स्वराज तो सभी को दरकार है, इसीलिए इसका उपाय उन लोगों की पहुंच के बाहर न होना चाहिए जो इसकी तलाश में लगे हुए हैं। जिस दिन हम लोग आखिरी बार मिले और फिर २८ फरवरी को इकट्ठा होने का निश्चय किया, उस दिन हम एकता की संभावना जितनी थी उतनी पहले कभी न हुई थी। इस बीच हर शख्स दोनों के मिलाप के नये नये रास्ते खोजेंगे।

जातिगत प्रतिनिधित्व के विषय में लोग मेरा मन जानना चाहेंगे। मैं तहे दिल से इस हक के खिलाफ हूं। परन्तु मैं तबतक किसी भी बात को मान लेने के लिए तैयार हूं जबतक उससे सुलह बनी रहेगी और वह दोनों जातियों के लिए सम्मान-पूर्ण हो। पर अगर दोनों जातियों की ओर से पेश की हुई तजवीजों पर मिलाप न हो तो मेरा सुझाया उपाय काम दे सकता है। पर अभी मुझे उसकी चर्चा करने की जरूरत नहीं है। मैं आशा करता हूं कि दोनों जातियों के जिम्मेवार लोग चाहे खानगी में बातें कर के अथवा सर्वसाधारण में अपनी राय जाहिर कर के एकता को साधने में कोई बात न उठा रक्खेंगे। मैं यह भी आशा रखता हूं कि अखबारवाले भी ऐसी कोई बात न लिखेंगे जिससे दल-विशेष को उद्वेग हो, और जहां वे अच्छी तरह सहायता न कर पावें वहां निश्चयपूर्वक चुप रहेंगे।

दक्षिण आफ्रिका के हिन्दुस्तानी

दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों के शिष्ट-मण्डल को जो उत्तर बडे लाट साहब ने दिया है वह सहानुभूति से तो युक्त है परन्तु उसमें उन्होंने किसी बात का वादा नहीं किया है। उसमें उन्होंने यूनियन सरकार की कठिनाइयों पर अनावश्यक ध्यान दिया है। एक सरकार के लिए दूसरी सरकार की कठिनाइयों पर ध्यान देना ठीक ही है, परन्तु इसमें जरूरत से ज्यादह भी कदम आसानी से बढ़ सकता है। जब यूनियन सरकार के सामने मौका था तब उसने बारीकियों पर ध्यान न दिया। और भारत-सरकार के सामने इसे पसंद करने का मौका बहुत बार आया। एक दफा को छोड़ कर हरबार यह यूनियन सरकार के सामने झुकी। सिर्फ लार्ड हार्डिंग इसमें अपवाद रहे, जिन्होंने द० अफ्रिका की सरकार के खिलाफ आवाज उठाई और द० अफ्रिकावासी भारतीयों का पक्ष लिया। इसके कारण थे। भारतवासी सब रहे थे। उन्होंने सीधा प्रहार किया था। तरीका नया था। उन्होंने प्रतिकार और कष्ट-सहन की अपनी क्षमता को सिद्ध कर दिखाया था। फिरभी वे पूर्णतया और प्रत्यक्ष रूप से अहिंसात्मक बने रहे। पर इस समय द० आफ्रिका के हिन्दुस्तानी नायकहीन हैं। सोराबजी, काछलिया, पी. के. नायडू और अब पारसी रुस्तमजी

की मृत्यु हो जाने के कारण अब उनकी समझ में नहीं आता कि क्या करें और क्या कर सकते हैं। शान्तिपूर्ण मार्ग के लिए अवकाश तो पूरा पूरा है, परन्तु इसके लिए खूब विचार करने और विचार के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता है। लेकिन फिलहाल यह शायद ही मुमकिन हो। फिर भी मुझे दो नवयुवकों से जो कि द० आफ्रिका मे रहते हैं भारी आशा है। इनमें से एक सोराबजी हैं, जो कि बहादुर पारसी रुस्तमजी के लायक बेटे हैं। युवक सोराबजी खुद सत्याग्रह के भुक्तभोगी सिपाही हैं। वे जेल जा चुके हैं। श्री० सरोजिनी देवी का जो भारी स्वागत नेटाल में किया गया उसका प्रबन्ध उन्हींने किया था। द० आफ्रिका के हमारे देशभाइयों को जान लेना चाहिए कि उन्हें अपने उद्धार की कोशिश खुद ही करनी होगी। ईश्वर भी उन्हींकी मदद करता है जो कि खुद अपनी मदद करते हैं। अगर उन्होंने अपनी उसी दृढता, जोश और त्याग-भाव का परिचय दिया तो वे देखेंगे कि भारत के लोग और भारत सरकार भी, उनकी मदद करेंगे और उनकी तरफ से लडेंगे।

बडे लाट साहब की वक्तृता में एक अंश ऐसा है जिसकी पूर्ति करने की आवश्यकता है। "आपके प्रार्थना-पत्र में यह कहा गया है कि नेटाल सरकार ने जब कि १८९६ में भारतवासी पार्लियामेन्ट के मताधिकार से वंचित रक्खे गये, उन्हें यह बार-बार प्रतिज्ञा के साथ आश्वासन दिया गया है कि उनका म्युनिसिपल मताधिकार सुरक्षित रहेगा। परन्तु आपने इस आश्वासन के स्वरूप या उसके आधार का दिग्दर्शन नहीं किया है। इस बात की जांच करने के लिए मेरी सरकार तहकीकात कर रही है।" शिष्ट-मंडल ने जो बात पेश की है, ठीक है। पर यह आश्वासन १८९६ में नहीं, बल्कि शायद १८९४ में दिया गया था। मैं यह स्मृति के आधार पर लिख रहा हूं। हकीकत में कोई फरक नहीं है। १८९४ में नेटाल असेम्बली में मताधिकार छीन लेनेवाला पहला बिल पास हुआ था। जबकि वह उस असेम्बली में पेश था हिन्दुस्तानियों की तरफ से एक दरख्वास्त दी गई थी जिसमें यह कहा गया था कि हिन्दुस्तानियों को भारत में म्युनिसिपल मताधिकार और अप्रत्यक्ष रूप से राजनैतिक मताधिकार भी प्राप्त है। और यह अंदेशा भी प्रकट किया गया था कि यह राजनैतिक मताधिकार का छीना जाना कहीं म्युनिसिपल मताधिकार के छीने जाने का मंगलाचरण न हो। इस दरख्वास्त के जवाब में नेटाल के प्रधान मंत्री स्वर्गीय सर जॉन राबिन्सन ने या अटार्नी जनरल स्व० श्री एस्कम्बे ने यह आश्वासन दिया था कि इससे आगे बढने का हमारा कोई इरादा नहीं है और म्युनिसिपल मताधिकार भविष्य में हिन्दुस्तानियों से नहीं छीना जायगा। यह मताधिकार को छीन लेनेवाला बिल तो बडी सरकार के द्वारा नामंजूर कर दिया गया; पर उसकी जगह एक दूसरा बिल पास किया गया जो कि जाति-गत भेदभाव से रहित था। यह पूर्वोक्त आश्वासन स्व० एस्कम्बे के द्वारा बारबार दुहराया गया था जिनके कि चार्ज में तमाम बिल थे और जो कि वस्तुतः जबतक पदारूढ रहे नेटाल की राजनीति के एकमात्र परिचालक रहे।

हमारी लाचारी

साबरमती आश्रम में चरखे, तकली, पूनी इत्यादि के लिए फरमायश पर फरमायश आ रही है। यदि हम अच्छी तरह संगठित हो गये होते तो हमारी ऐसी असहाय अवस्था होना असंभव था। एक समय था कि हरएक देहाती बढई चरखा बना सकता था। आज तो शहर का बढई भी नहीं जानता कि चरखा क्या है और नमूने पर तैयार करने से इन्कार भी कर देता है। इसी प्रकार पहले हरएक धुनिया पूनियां बनाना जानता था। लेकिन आज तो उसका नाम सुनते ही वे मुंह बनाते हैं या बडे दाम मांगते हैं। हाथ-कताई की सफलता का आधार हमारी कार्य-कुशलता और हिन्दुस्तान के कारीगरों के सहयोग पर है। चरखा और उसके साथ संबंध रखनेवाली चीजों की बढती हुई मांग की पूर्ति कोई भी एक संस्था नहीं कर सकती। सद्भाग्य से अब हालत सुधरती जा रही है, लेकिन उतनी जल्दी नहीं जितनी कि होना चाहिए। जिन्हें जरूरत है उन्हें आश्रम से चीजें मंगाने के पहले अपने शहर में या जिले में उन्हें बनवा लेने का सब तरह प्रयत्न कर लेना चाहिए। बेशक, उनके लिए अनिश्चित समय तक राह देखने से तो आश्रम से मंगा लेना ही बेहतर है। जहांतक पूनियों से संबंध है मेरा श्री. सन्तानम् की राय से इत्तफाक है, जिन्होंने कि अपने उत्तम निबंध में दिखाया है कि हरएक कातनेवाले को खुद अपने लिए पूनियां बना लेना चाहिए। छोटी तांत पर धुनकना इतना सीधा और आसान काम है कि किसीको विश्वास हो न होगा। कताई की अपेक्षा धुनाई बहुत जल्दी सीखी जा सकती है। अच्छा धुनकना आ जाने पर अधिक सूत निकालने में बहुत ही मदद मिलती है और सूत अच्छा एकसा निकलता है। जो लोग मजदूरी लेने के लिए कातते हैं, वे यदि धुनक भी लें तो इससे उनकी आमदनी बढती है। अच्छा धुनकनेवाला दिन में बारह आना कमा सकता है। अच्छा कातनेवाला इतना नहीं कमा सकता। हरएक प्रान्तिक समिति में चरखे और उससे संबंध रखनेवाली दूसरी चीजें बनाने और देने के लिए एक भण्डार होना चाहिए।

खादी को आदी होना

बेलगांव के एक शिक्षक लिखते हैं—"मैं एक राष्ट्रीय पाठशाला का शिक्षक हूं। बेलगांव में राष्ट्रीय पाठशालाओं के संबंध में जो प्रस्ताव पास हुआ है उसने राष्ट्रीय पाठशालाओं के शिक्षकों और विद्यार्थियों में बडी खलबली मचा दी है। कुछ लोग अपने ही हित को दृष्टि में रख कर उसके अनुसार उसका अर्थ लगाने की कोशिश करते हैं। 'विद्यार्थी खादी पहनने के आदी हों' इसका अर्थ कुछ लोग ऐसा लगाते हैं कि इसके द्वारा खादी पहनना अनिवार्य नहीं किया गया है और इसलिए वे कहते हैं कि जो लोग बिना खादी पहने पाठशालाओं में आते हैं वे रोके न जायं। शिक्षकों को सिर्फ इतना ही करना चाहिए कि वे लडकों से कहें कि खादी पहनें और धीरे धीरे खादी से उनका परिचय करा दें। वे कहते हैं कि अगर हमें अनिश्चित समय तक लडके खादी पहने न दिखाई दें तो भी हम अपनी संस्थाओं को बेलगांव के प्रस्ताव की मर्यादा का उल्लंघन किये बिना 'राष्ट्रीय' कह सकेंगे। वे तो कहते हैं कि यदि सौ की सदी लडके भी मिल के कपडे पहन कर आवें तो भी हम अपनी पाठशालाओं को राष्ट्रीय कहते रहेंगे, बशर्ते कि पाठशालाओं के शिक्षक खादी की उपयोगिता और औचित्य की शिक्षा उन्हें देते रहें और यह आशा करें कि वे धीरे धीरे उसे पहनने लगेंगे, चाहे छः महीने में, चाहे एक साल में, चाहे और ज्यादह वक्त में। हमारी राय में उस प्रस्ताव का यह अर्थ नहीं हो सकता। उसका अर्थ तो यह है कि विद्यार्थी बिना खादी पहने पाठशालाओं में आ ही नहीं सकते। हां, आपत्काल में या लाचारी की अवस्था में विद्यार्थी कभी कभी बिना खादी पहने भी आ सकें। हम समझते हैं कि इस प्रस्ताव के द्वारा वे सब लोग रोके गये हैं जो लगातार नियम से बिना खादी पहने पाठशालाओं में आते हैं। अपने क्षेत्रों में हम इसी तरीके पर अपनी संस्थाओं के चलाने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना

करता हूं कि आप मुझे तथा यदि जरूरत समझें तो 'यंग इण्डिया' में उस प्रस्ताव का असली अर्थ स्पष्ट और असंदिग्ध भाषा में लिखें जिससे कि इस प्रश्न पर आपके विचार सब लोगों को मालूम हो जायेंगे।"

मु : 'आदी होने' के अर्थ के सम्बन्ध में अब भी शंका नहीं है। पत्रप्रेषक महाशय ने उसका जो अर्थ किया है वही अर्थ उसका हो सकता है। महासभा के प्रस्ताव के अनुसार वह पाठशाला राष्ट्रीय नहीं कहला सकती जिसके विद्यार्थी नियमपूर्वक खादी न पहनते हों। लेकिन शब्दों का अर्थ जानने के लिए तो सबसे अच्छा मार्ग है कोष देखना। आक्सफर्ड डिक्शनरी में 'हेबिच्युअल' (आदी होना) का अर्थ है 'रायज' 'निरन्तर' 'क्रमबद्ध'।

क्या वे सरकार से संबंध रक्खें?

तब यह सवाल पैदा होता है कि क्या वे पाठशालायें जो इस शर्त को पूरा नहीं करती हैं सरकारी विश्वविद्यालयों से अपना संबंध कर लें? निश्चय ही जिस पाठशाला ने असहयोग किया है उसके लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं है। देश में महासभा तथा सरकार दोनों के आश्रय में चलनेवाली पाठशालाओं के लिए काफी जगह है। ऐसी पाठशालायें हो सकती हैं जिनका विश्वास सरकार के आश्रय, नियंत्रण या हस्तक्षेप में न हो और फिर भी वे खादी या देशीभाषा या हिन्दुस्तानी पढ़ाने की भी कायल न हों। अगर ऐसी पाठशालायें सर्वसाधारण से सहायता पाती हों या संचालक स्वयं ही इतने धनी हों कि वे उनको चला सकें तो क्यों वे जारी न रहें? महासभा ने जो कुछ किया है वह सिर्फ यही कि उसने एक सीमा बांध दी है जिसके अंदर ही वह शिक्षा-संस्थाओं को सहायता दे सकती है। और महासभा के लिए दूसरी कौनसी बात स्वाभाविक हो सकती है, सिवा इसके कि वह अपनी संस्थाओं पर वही शर्तें लगावे जो कि उसकी राय में देश का हित साधन करती हों।

सच हो तो क्या बात?

एक सज्जन पत्र लिख कर मुसलमानों की इस चिल्लाहट पर कि मुसलमानों में शिक्षा की बुरी हालत है, बुरी तरह फटकार बताते हुए कहते हैं कि इस मामले में आपको धोखा दिया जा रहा है। मेरी जानकारी के लिए उन्होंने कुछ अच्छे अंक भी एकत्र करके भेजे हैं जिनसे दोनों जातियों की साक्षरता का पता चलता है। उन्हें मैं यहां देता हूं—

प्रांत	मुसलमान फी हजार	हिन्दू फी हजार
बर्मा	३०२	२८८
म. प्रां. और बरार ..	६२५	८७
मद्रास	२०१	१७०
गुजरात . .	७३	७१
बड़ौदा	३०९	२६४
म. प्रां. (हिन्दी) ...	१६९	७९
मैसार	२३८	१३३
सिकिम	८३२	९१
ग्वालियार	१४२	६०
हैदराबाद	१४०	४७
राजपूताना	६६	५७
स्त्रियां		
बर्मा	८७	८६
देहली	३१	२६
म. प्रां. और बरार ...	२७	८
अजमेर, मारवाड़ ...	१८	१६
बिहार	८	६
युक्त प्रांत	८	६
मैसार	६२	१६
बड़ौदा	४८	४२
हैदराबाद	२५	४
ग्वालियर	२६	६
मध्यभारत	१०	४
राजपूताना	९	३

हां, मैं मानता हूं कि मुझे यह पता न था कि मुसलमानों के हक में ऐसे अंक होंगे। फिर भी मेरा कथन कायम रहता है। प्रतिस्पर्धा छोटे लोगों में—महज मामूली पढ़े लिखों में नहीं है बल्कि दोनों जातियों के उच्च शिक्षित लोगों में है। और मैं समझता हूं कि यह निर्विवाद बात है कि ऊंची दर्जेवाली शिक्षा मुसलमानों में उतनी प्रचलित नहीं है जितनी कि हिन्दुओं में। मैं चाहता हूं कि पत्र-लेखक उच्च शिक्षा संबंधी अंकों की छान-बीन करके कहें कि मेरी बात ठीक है या नहीं। इस बीच अंक के ब्यौरे से प्रेम रखनेवाले उनका निरीक्षण कर के अगर उसमें कोई गलती पावें तो मुझे सूचित करें। जिन प्रान्तों के अंक पत्र-लेखक ने नहीं दिये हैं उनके विषय में मैंने मान लिया है कि वहां के अंक पत्र-लेखक के आक्षेप के अनुकूल नहीं हैं। जहां तक स्त्रियों की साक्षरता से संबंध है यह देख कर मुझे खुशी होती है कि बहुतेरे प्रान्तों में मुसलमान बहनें हिन्दू स्त्रियों से ज्यादह आगे बढ़ी हुई हैं। इससे यह मालूम होता है कि परदा साक्षरता के रास्ते में रुकावट नहीं है। मैं परदे का पक्ष नहीं ले रहा हूं, मैं तो उसके बिलकुल खिलाफ हूं। मैं तो इस बात को सिर्फ आश्चर्यजनक समझ कर इसका यहां उल्लेख करता हूं। क्योंकि मैं यह तो जानता था कि बहुत सी मुसलमान बहनें परदे में रहने पर भी पढ़ी-लिखी हैं। पर यह नहीं जानता था कि साक्षरता में उनकी संख्या हिन्दू-बहनों से बढ़ी-चढ़ी है।

क्या स्वराजी महासभावादी हैं?

मेरे सामने एक अजब खत पेश हुआ है, जिसमें लेखक लिखते हैं कि सिंध में स्वराजियों और महासभावादियों को एक दूसरे से जुदा माना जा रहा है और महासभावादी स्वराजियों के काम में बाधा डाल रहे हैं। मैंने तो यह आशा की थी कि बेलगांव-महासभा के बाद, जिसने कि स्वराजदल को महासभा का एक अभिन्न अंग मान लिया है और असहयोग कार्यक्रम को मुल्तवी कर दिया है ऐसी बातें नामुमकिन हो जायंगी। हर स्वराजी जिसने कि महासभा के प्रवेश-पत्र पर दस्तखत किये हैं और जो नये मताधिकार को मानता है उतना ही महासभावादी है जितना कि एक स्वराजी अर्थात् वह शख्स जो कि धारासभा-प्रवेश को नहीं मानता। और यह बात भी याद रखनी चाहिए कि स्वराज-दल ने अपने विधि विधान बदल कर हरेक सदस्य के लिए नये मताधिकार को मानना लाजिमी कर दिया है। ऐसी अवस्था में न केवल परस्पर एक दूसरे का विरोध न करें बल्कि जहां जहां मुमकिन हो और किसीकी अन्तरात्मा के विरुद्ध न हो वहां वहां एक दूसरे को मदद भी पहुंचावें।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
गुरुवार, माघ सुदी १२, संवत् १९८१

दूसरे की जमीन पर

एक महाशय कहते हैं—"आप हर बार हमसे कहते हैं, मुसलमानों के सामने हर तरह से झुक जाओ। आप कहते हैं, उनके खिलाफ अदालतों में भी किसी तरह न जाओ। आपने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि आप जो कुछ कहते हैं उसका नतीजा क्या होगा? अच्छा, बताइए, जब हमारी जमीन पर कोई हमसे बिना पूछे मसजिद खड़ी करने लगे तो हम क्या करें? जब कि बेईमान लोग हमपर रुपये लेकर या दगा करके और हमारी मिल्कियत जबरदस्ती हमसे छीन लें तो हम क्या करें? अपना जवाब देते समय आपको इन गरीबों का भी ध्यान रखना चाहिए। आप तो कहीं नहीं सकते कि आप हमारी हालत को जानते नहीं हैं। और इतने पर भी अगर आप हमारा कुछ भी खयाल न रखते हुए अपना फतवा देंगे तो फिर आप हमें दोष न दीजिएगा, अगर आपकी ऊंची ऊंची सलाहों के अनुसार हम न चल सकें। मैं यह जरूर कहूंगा कि बहुत बार आप ऐसी बातें कहते हैं जिनका करना असंभव होता है।"

जिन सज्जन ने मुझसे इस लहजे में बातचीत की उनसे मेरी हमदर्दी है। मनुष्य-स्वभाव की कमजोरियों को तसलीम करने के लिए मैं तैयार हूं। और इसका सीधा कारण यह है कि मैं अपनी कमजोरियों का कायल हूं। लेकिन ठीक जिस तरह कि मैं अपनी सीमा का कायल हूं, इसी तरह मैं 'क्या करना चाहिए और मैं क्या नहीं कर पाता हूं,' इनके भेद को भुला कर अपनेको धोखा भी नहीं देता। इसी तरह मुझे औरों को भी इस भेद को न मान कर तथा उन्हें यह कह कर कि आप जो कुछ करना चाहते हैं वह केवल ठीक ही नहीं उचित भी है धोखा न देना चाहिए। कितनी ही चीजें असंभव होती हैं पर फिर भी वही ठीक और उचित होती हैं। सुधारक का तो काम ही ठहरा असंभव को संभव बना देना—अपने आचरण के द्वारा उसको प्रत्यक्ष कर दिखा के। एडिसन के आविष्कार के पहले सैकड़ों मील पर बैठे बातें करना किसे संभव मालूम होता था? मारकोनी और एक कदम आगे बढ़ा और उसने बेतार की तारबर्की को सम्भवनीय बना दिया। हम रोज ही इस चमत्कार को देख रहे हैं कि कल जो चीज असंभव थी आज वही संभव हो रही है। जो बात भौतिक शास्त्र में चरितार्थ होती है वही मानस-शास्त्र पर भी घटित होती है।

अब प्रत्यक्ष सवालों को लीजिए। दूसरे की जमीन में बिना इजाजत के मसजिद खड़ा करने का सवाल निहायत ही आसान है। अगर 'अ' का कब्जा अपनी जमीन पर है और कोई शख्स उसपर कोई इमारत बनाता है, चाहे वह मसजिद ही हो, तो 'अ' को यह अख्तियार है कि वह तुरन्त उसे उखाड़ कर फेंक दे। मसजिद की शकल में खड़ी की गई हर एक इमारत मसजिद नहीं हो सकती। वह मसजिद तभी कही जायगी जब उसके मसजिद होने का धर्म-संस्कार कर लिया जाय। बिना पूछे किसीकी जमीन पर इमारत खड़ी करना सरासर डाकेजनी है। डाकेजनी पवित्र नहीं हो सकती। अगर 'अ' को उस इमारत को, जिसका नाम झूठ-मूठ मसजिद रख दिया गया हो, उखाड़ डालने की इच्छा या ताकत न हो तो उसे यह बराबर हक है कि अदालत में जाय और उसके द्वारा उसे उखड़वा डालें। अदालतों में जाना उन असहयोगियों के लिए मना है जो उसके कायल हो चुके हैं उन लोगों के लिए नहीं जिन्हें अभी कायल करने की जरूरत है फिर पूरा असहयोग तो हम अभी अमल में लाये ही नहीं हैं हरएक नियम में कमी तो रहती ही है, जब कि वह केवल असम्बेधाजनक ही नहीं बल्कि हमारे असली उद्देश पर भी कुल्हाड़ी चलाता हो। जबतक मेरे कब्जे में कोई मिल्कियत है तबतक मुझे उसकी हिफाजत जरूर करनी होगी—चाहे अदालत के बल के द्वारा, चाहे अपने भुज—बल के द्वारा। असल में कार्य एक ही है। सारे राष्ट्र की तरफ से किया गया असहयोग एक प्रणाली के खिलाफ है, या था। उसके मूल में यह बात गृहीत कर ली गई थी कि आम तौर पर हमारे अन्दर एक-दूसरे में सहयोग रहेगा। पर जब कि हम आपस में ही एक दूसरे से असहयोग करने लगे हैं तब राष्ट्र की तरफ से असहयोग एक धोखे की टट्टी हो जाता है। व्यक्तिगत असहयोग तभी मुमकिन है जब कि हमारे पास एक धुर भी जमीन न हो। और यह अकेले संन्यासी के लिए ही मुमकिन है। इसीलिए धार्मिकता की पराकाष्ठा पर पहुंचने के लिए हर तरह की सम्पत्ति का त्याग आवश्यक है। इस प्रकार अपने जीवन के धर्म का निश्चय हो जाने पर अब हमें अपनी शक्ति भर उसका पालन करना चाहिए, ज्यादह नहीं। यही मध्यम—मार्ग है। जब कि कोई डाकू 'अ' की मिल्कियत छीनने आवे तो वह उसे सब कुछ दे देगा—अगर उसे वह अपना सगा भाई मानता हो। अगर ऐसा भाव उसके दिल में न पैदा हो पाया हो अगर वह उससे डरता हो और चाहता हो कि कोई आकर इसे मार-भगावे तो अच्छा हो, तो उसे उसको पछाड़ देने की कोशिश करना चाहिए और नतीजा भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए। अगर वह डाकू से लड़ना तो चाहता हो, पर ताकत न हो तो उसे डाकू को अपना काम करने देना चाहिए और फिर अदालत में जाकर अपनी मिल्कियत को पाने की कोशिश करे। दोनों हालतों में उस के चली जाने और मिल जाने की पूरी पूरी संभावना है। अगर वह मेरी तरह विचारशील पुरुष हो तो वह मेरी तरह इसी नतीजे पर पहुंचेगा कि यदि हम दर असल सुखी रहना चाहें तो किसी किस्म की मिल्कियत न रक्खें, या तभीतक रक्खें जबतक हमारे पड़ौसी उसे रखने दें। इस आखिरी स्थिति में हम अपने शरीर बल के द्वारा नहीं रहते बल्कि उनके सौजन्य पर रहते हैं। इसीलिए हद दरजे तक नम्रता और ईश्वर पर भरोसा रखने की जरूरत है। इसीको कहते हैं आत्मबल के द्वारा रहना। यही आत्म-भाव को प्रकट करने का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ तरीका है। आइए हम इस सिद्धान्त को अपने हृदय में स्थान दें—यह समझ कर नहीं कि कागज पर लिख रखने को यह एक अच्छा बौद्धिक और दिलाकर्षक मन्तव्य है, बल्कि यह समझकर कि यह हमारे जीवन का एक नियम है, धर्म है, हमें निरन्तर उसका साक्षात्कार करना है। और, आइए, हम उस धर्म के अनुसार और उसतक पहुंचने के उद्देश से अपनी शक्ति भर उसका पालन करें।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

कुछ उचित प्रश्न

कुछ दिन हुए मैंने अस्पृश्यता के बारे में बंगाल से प्राप्त एक विचारपूर्ण पत्र छापा था। उसके लेखक आज भी उस विषय में बड़ी सरगर्मी से खोज कर रहे हैं। अब मद्रास की तरफ से भी एक सज्जन ने पत्र लिख कर उसकी बेरी ही की है। उन्होंने के लिए कितने ही प्रश्न पूछे हैं। इस जटिल प्रश्न की खोज करने के लिए कट्टर हिन्दू लोग भी प्रवृत्त हुए हैं यह बड़ा शुभ चिह्न है। इसमें कोई शक नहीं कि प्रश्न पूछने वाले को सच्ची उत्कंठा है। प्रश्न नमूनारूप हैं। क्योंकि इतनी बड़ी सूची में एक भी प्रश्न ऐसा न होगा जो मेरे प्रवास दरम्यान मुझसे पूछा न गया हो। इन सज्जन के पूछे इन जटिल प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न इसी आशा से करता हूं कि मेरे जवाब से पत्र लिखनेवाले सज्जन को—जो एक कार्यकर्ता और सच्चे शोधक होने का दावा करते हैं और दूसरे कार्यकर्ता गण और शोधकों को कुछ रास्ता दिखाई दे।

१ अछूत-पन को दूर करने के लिए अमली उपाय क्या क्या करने चाहिए?

(अ) अस्पृश्यों के लिए सब सार्वजनिक शालायें, मन्दिर, रास्ते, जो अब्राह्मणों के लिए खुले हैं और जो किसी खास जाति के लिए नहीं होते, खुले कर दिये जायं।

(ब) ऊंची जातिवाले हिन्दुओं को चाहिए कि उनके बच्चों के लिए मदरसे खोलें, जहां जरूरत हो वहां उनके लिए कुआ खोदे और उन्हें सब प्रकार आवश्यक मदद पहुंचावें—जैसे उनकी नशे की आदत छुड़ाने और सफाई के नियम पालन करने का रिवाज डालना और उन्हें दवा-दरपन की मदद पहुंचाना।

२ जब कि अछूत-पन बिल्कुल दूर हो जायगा तब अछूतों का धार्मिक दरजा क्या होगा?

उनकी धार्मिक स्थिति वैसी ही मानी जायगी जैसी कि उच्च हिन्दुओं की मानी जाती है। और इसलिए वे शूद्र कहे जायेंगे अतिशूद्र नहीं।

३ जब कि अछूत-पन दूर कर दिया जायगा तब अछूतों और ऊंचे दरजे के कट्टर ब्राह्मणों का क्या संबंध रहेगा?

जैसे कि अब्राह्मण हिन्दुओं के साथ है।

४ क्या आप जातियों को मिला देने का प्रतिपादन करते हैं?

मैं सब जातियां तोड़ कर सिर्फ चार ही वर्ण रक्खूंगा।

५ अछूत लोग मौजूदा देव-मन्दिरों में हस्तक्षेप न करते हुए अपने लिए नये मन्दिर क्यों न बना लें?

ऊंची कहलानेवाली जातियों ने ऐसे साहस के लिए उनमें अधिक शक्ति ही नहीं रहने दी है। यह कहना कि वे हमारे मन्दिरों में दखल करते हैं इस सवाल पर गलत तौरपर विचार करना है। हमें ऊंची हिन्दू जातियां कहने वालों को इन्हें हिन्दुओं के सर्वसाधारण मन्दिरों में आनेदेना चाहिए और इस तरह अपने इस कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

६ क्या आप जातिगत प्रतिनिधित्व के पक्षपाती हैं, और क्या आपका यह भी मत है कि अछूतों को तमाम शासन-संस्थाओं में प्रतिनिधि भेजने का हक होना चाहिए?

नहीं, मैं यह नहीं कहता। लेकिन यदि प्रभावशाली जातियों की तरफ से जानबूझ कर अस्पृश्यों को अलग रक्खा जाय तो इसतरह उन्हें अलग रखना अनुचित होगा और यह स्वराज्य के रास्ते में रुकावट डालेगा। जुदी जुदी जातियों के प्रतिनिधित्व को मैं स्वीकार नहीं करता। इसका मतलब यह नहीं है कि किसी एक जाति को प्रतिनिधित्व न मिले, लेकिन इससे तो उल्टा प्रतिनिधित्व रखनेवाली जातियों पर यह भार डाला जाता है कि वे उन जातियों के प्रतिनिधित्व की ठीक ठीक रक्षा करें, जिनके प्रतिनिधि न हों या जिनके प्रतिनिधि कम हों।

७ क्या आप वर्णाश्रम-धर्म को मानते हैं?

हां, लेकिन आज तो वर्ण का खाका उड़ाया जाता है, आश्रम का ठिकाना नहीं और धर्म का विपर्यय हो रहा है। सारी व्यवस्था का ही पुनः मार्जन होना चाहिए और धर्म के संबंध में हुई नयी नयी खोजों के साथ उसका ऐक्य स्थापित करना चाहिए।

८ क्या आप यह नहीं मानते कि भारतवर्ष कर्म-भूमि है और इसमें जन्म पाये हर शख्स को अपने भले-बुरे पूर्व-कर्म के ही अनुसार विद्या-बुद्धि, धन और प्रतिष्ठा मिलती है?

पत्र लेखक सज्जन जैसे मानते हैं वैसे नहीं। क्योंकि हर शख्स कहीं क्यों न हो जैसा करेगा वैसा पावेगा। लेकिन भारतवर्ष खास करके भोग-भूमि के विपरीत अर्थ में कर्म-भूमि है, कर्तव्य-भूमि है।

९ अछूतपन के दूर करने की बात करने के पहले क्या अछूतों में शिक्षा-प्रचार और सुधार होना लाजिमी शर्त नहीं है?

अस्पृश्यता दूर किये बिना अस्पृश्यों में सुधार या प्रचार नहीं हो सकता।

१० क्या यह बात कुदरती नहीं है, जसी कि होनी चाहिए, कि शराब न पीनेवाले शराब पीनेवाले से परहेज रखते हैं और शाकाहारी अ-शाकाहारी से?

यह आवश्यक नहीं है। शराब न पीने वाला अपने शराब पीने वाले भाई को उस बुरी आदत से बचाने के लिए उसके पास जा कर अपना कर्तव्य करेगा। और इसी प्रकार मांस न खाने वाला खानेवाले को ढूंढेगा।

११ क्या यह बात सच नहीं है कि एक शुद्ध (इस अर्थ में कि वह मद्यपी नहीं है और शाकाहारी है) आदमी आसानी से अशुद्ध (इस अर्थ में कि वह मद्यपी और अशाकाहारी हो जाता है) हो जाता है जब कि वह उन लोगों में मिलता-जुलता है जो शराब पीते हैं, हिंसा करते हैं और मांस खाते हैं?

यह कोई आवश्यक बात नहीं कि वह शख्स जो उसकी बुराई नहीं जानता है यदि शराब पीये या मांस खाये तो वह अपवित्र (नापाक) है। लेकिन मैं समझता हूं कि बुरे आदमी की संगत कराने से बुराई होना संभव है। इस मामले में तो अस्पृश्यों के साथ किसीकी संगत कराने की तो कोई बात ही नहीं की गई है।

१२ कुछ कट्टर ब्राह्मण और दूसरी जातियों से (जिनमें अछूत भी शामिल हैं) नहीं मिलते-जुलते हैं और अपनी एक अलहदा जात बना कर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते रहते हैं, उसका कारण क्या यही नहीं है?

वह आध्यात्मिक स्थिति जिसकी रक्षा के लिए चारों तरफ से बन्द रहना पड़ता है, बड़ी कमजोर होना चाहिए। और अलावा इसके वे दिन भी गये जब कि मनुष्य सदा एकान्त में रह अपने गुणों की रक्षा करता था।

१३ अछूत-पन को दूर करने का प्रतिपादन कर के क्या आप भारत के धर्म और वर्णव्यवस्था (वर्णाश्रम-धर्म) में दखल नहीं देते हैं—फिर वह धर्म और व्यवस्था चाहे अच्छी चीज हो या बुरी?

सिर्फ एक सुधार की हिमायत करने ही से मैं कैसे किसीको दखल करता हूं ? दखल करना तो तभी कहा जाता जब कि मैं जो लोग अस्पृश्यता कायम रखते हैं उनपर जोरो जुल्म करके अस्पृश्यता-निवारण का पक्ष समर्थन करता होता ।

१४ पुराने कट्टर ब्राह्मणों को दूसरा विश्वास कराये बिना ही उनके धर्म में दखल करने से क्या आप उनके प्रति हिंसा के दोषी न होंगे ?

मैं कट्टर ब्राह्मणों के प्रति हिंसा का दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि मैं बिना विश्वास उत्पन्न किये उनके धर्म में कोई दखल नहीं करता।

१५ ब्राह्मण लोग जो और दूसरी जातियों को स्पर्श नहीं करते, उनके साथ खाना नहीं खाते, शादी नहीं करते, अस्पृश्यता दोष के दोषी हैं या नहीं ?

दूसरी जाति के लोगों को स्पर्श करने से यदि वे इन्कार करते हैं तो वे अवश्य दोषी है।

१६ मनुष्यत्व के हक का अमल करने के लिए अस्पृश्य लोग ब्राह्मणों के अग्रहारम् में घूमें तो इससे क्या उनकी क्षुधा तृप्त होगी ?

मनुष्य सिर्फ रोटी खाकर ही नहीं जीता है। बहुत से लोग खाने से आत्म-सम्मान को अधिक पसंद करते हैं।

१७ अस्पृश्य लोग इतने शिक्षित नहीं कि वे अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त को पूरी तरह समझ सकें और ब्राह्मण लोग राजनीति के बनिस्बत धर्म की ज्यादह चिन्ता करते हैं, तो क्या इस बारे में सत्याग्रह करने से वह हिंसात्मक न हो उठेगा ?

यदि इससे वायकोम के प्रति इशारा किया गया है तो अनुभव से यह बात मालूम हुई है कि अस्पृश्यों ने आश्चर्य-जनक आत्म-संयम दिखाया है। सवाल का दूसरा भाग यह सूचित करता है कि ब्राह्मणलोग जिनका इससे संबंध है, संभव है मारपीट कर बैठें। यदि वे ऐसा करेंगे तो मुझे बड़ा अफसोस होगा। मेरी राय में तो तब वे धर्म के प्रति सन्मान के बदले धर्म का अज्ञान और उसके प्रति नफरत ही जाहिर करेंगे।

१८ क्या आपका कहना यह है कि जात-पांत धर्म और विश्वास के किसी प्रकार के भेद के बिना ही सब को समान हो जाना चाहिए ?

मनुष्यत्व के प्राथमिक हकों के बारे में कानून की नजरों में तो यही होना चाहिए, जिस तरह की जात पात और वर्ण का लिहाज रक्खे बिना हम लोगों में भूख प्यास इत्यादि सर्वसामान्य है।

१९ यह देखते हुए कि केवल महान् आत्मायें ही, जो कि अपना कर्म-जीवन समाप्त कर चुकी हैं, उस दार्शनिक सिद्धान्त को पहचान सकी हैं, और उसका पालन कर सकी हैं, मामूली गृहस्थ नहीं, क्योंकि वे तो ऋषियों के बताये मार्ग का अनुसरण करते हैं और ऐसा करते हुए संयमशील होकर जन्म मरण के फेर से छुटकारा पाते हैं, क्या वह सिद्धान्त एक मामूली गृहस्थ के लिए व्यवहार में किसी मसरफ का होगा ?

इस सीधे-सादे सिद्धान्त को मानने में कि केवल जन्म के कारण कोई प्राणी मनुष्य अछूत नहीं माना जा सकता—कोई उच्च दार्शनिक सिद्धान्त बीच में नहीं आता। यह सिद्धान्त इतना सरल है कि अकेले बगैर हिंदुओं को छोड़कर सारी दुनिया उसकी कायल है। और इस बात पर कि ऋषियों ने वैसे अछूतपन की शिक्षा दी है जैसा कि हम पाल रहे हैं, मैंने आपत्ति ही उठाई है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

एक अनर्थ

एक सज्जन टांगानैका से लिखते हैं—

"कितने ही हिन्दू-मुसलमान भाई यहां बरसों से आ रहे हैं। उनमें से कितने ही लोग हबशी औरतों के साथ लुक-छिप कर शादी कर लेते हैं। इस समय कितने ही लोगों की सन्तति शादी करने के लायक होगई है। कितनों ही की उम्र अभी कम है, पर दिन पर दिन बढती जा रही है। अब मुसलमान-भाइयों को तो ऐसी सन्तान को ले जाने में कोई बाधा नहीं है। परन्तु हिन्दू-भाइयों को उनकी जाति, धर्म और आबरू की बाधा, उन्हें देश में लेजाने से रोकती है। फल यह होता है कि अपने बाल-बच्चों को यों ही भटकते हुए छोड़ कर, बिना कुछ इन्तजाम किये चोर की तरह देश चले जाते हैं। भारत की कितनी जातियों के पुरुषों की सन्तान यहां लावारिस है। अपने पिता की निर्दयता के बदौलत बेचारे दुख भोगते हैं। मैं समझता हूं, आपको भी यह सुन कर दुख होगा। इस दुखी सन्तति को रोकने का कुछ उपाय बतलाइएगा। इसके उद्धार के लिए यहीं कुछ उपाय किये जायं या देश में, यह भी लिखिएगा।"

इस वर्णन के बिल्कुल सच होने की संभावना है। पोर्तुगीज राज्य में, अर्थात डेला गोआ बे में, ऐसा मैंने अपनी आंखों देखा है। वहां मुसलमानों ने अपने बच्चों के लिए एक यतीमखाना खोल रक्खा है। हिन्दू अपनी सन्तति को मुसलमानों के हाथ सौंप देते हैं। ये मुसलमान बनकर तैयार होते हैं। यह है एक रास्ता। मैं इसे पसंद नहीं कर सकता। मेरी दृष्टि में दोनों निन्दनीय हैं। पहले तो ऐसे संबंध को शादी मानना ही दोष है। मैं इसे महज विषय-लालसा की तृप्ति कहता हूं। विदेश में बहुतेरे नीति-बंधन शिथिल हो जाते हैं। क्योंकि वहां लोक-लाज नहीं रहती। परन्तु दोनों के दोष में कमोबेशी है। मुसलमान ऐसे विषय-भोग से उत्पन्न सन्तति का पालन करते हैं और अपने धर्म में प्रविष्ट करते हैं। हिन्दुओं के लिए यदि मुसलमानों की बनाई सुविधा न हो तो उनकी सन्तति भूखों-प्यासी मरती रहती है। यह सन्तति केवल विषय-भोग का परिणाम-स्वरूप है। इससे हिन्दू मा-बाप को उसके धर्म की तो चिन्ता ही नहीं। मेरी दृष्टि में तो ऐसे विषयांध पुरुष ने धर्म का ही त्याग कर दिया है। नीति और सदाचार के नियमों का बिलकुल पालन न करनेवाले को धार्मिक मानना मेरे लिए तो मुश्किल बात है। किसी धर्म में जन्म पानेवाले को संख्या की खातिर भले ही उस धर्म का अनुयायी मान ले, पर सच पूछिए तो वह धर्मच्युत ही है। आचरण से भिन्न ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे धर्म की व्याख्या कह सकते हैं। वेदधर्मी वह नहीं जो गायत्री जपता हो, जो वेद पढता हो, परन्तु वही शख्स है जो वेद-वाक्य के अनुसार व्यवहार करता है। कितने ही ईसाई वेदादि का बहुत गहरा अध्ययन करते हैं इससे वे वेद-धर्मी नहीं हो जाते। और न वही शख्स वेदधर्मी है जो ढोंग बना कर या वहम के वशीभूत होकर गायत्री-पाठ करता है। उसका उस धर्म के अनुयायी होने का दावा उसी अवस्था में मान्य किया जा सकता है जब उसे उस धर्म के आदेशों का बोध हो और वह यथाशक्ति उनका पालन करता हो। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि टांगानैका के हिन्दुओं ने हिन्दू-धर्म को छोड़ दिया है।

यह निराकरण तो स्वतन्त्ररूप से हुआ। व्यवहार में ऐसे हिन्दू मुसल्मान बाप हिन्दू-मुसल्मान माने जायंगे। इसलिए हमें व्यवहार-दृष्टि से इसका कुछ निराकरण करना चाहिए। हिन्दू-बाप

को चाहिए कि वह ऐसे संबंध को विवाह का रूप दे दे और बच्चों का प्रेम-पूर्वक लालनपालन करे तथा उनके लिए मदरसे आदि की तमाम सुविधायें करे। यह उपाय तो हुआ उन बच्चों के लिए जो उत्पन्न हो चुके हैं। भविष्य के लिए तो हरएक विदेशगमन करनेवाले को अपने बाल-बच्चों को साथ ले जाना चाहिए। जहां बाप बिल्कुल ही निर्दय है वहां अनाथालय खोले बिना दूसरी गति नहीं। इन अनाथालयों को उन उन देशों में खोलना ही उचित होगा। यह मान सकते हैं कि इनमें मा अपने बच्चों के सहित रहेंगी। माता आजीविका के लिए अपने को इसका शिकार बनाती है। उसे विषय-भोग की सुध नहीं होती। क्योंकि हबशियों में शादी का रिवाज तो है, फिर भी औरतें रुपये के लिए अपने शरीर पुरुषों को बेचती हैं और इसमें नीतिभंग नहीं माना जाता। फिर भी मातृप्रेम तो रहता ही है। इस प्रेम का पोषण करके माताओं से उनके धर्म का पालन कराना उचित है। ऐसी दुःखद घटनाओं में बालकों के लिए मातृभाषा और पितृभाषा जुदी जुदी होती है। तो बालकों को कौनसी भाषा पढ़ाई जाय? साधारण तौर पर बाप को इस तरह उत्पन्न हुई सन्तति के साथ प्रेम कम होता है। इससे बालक माता की ही भाषा सीखता है। इसलिए अनाथालयों के संचालकों को चाहिए कि वे ऐसे बालकों को उनकी मातृभाषा ही सिखावें। अगर दोनों भाषायें सिखाई जायं तो बालकों को भविष्य में रोजी कमाने का एक ज्यादह साधन हो जायगा।

धर्म का सवाल अधिक गूढ़ है। मुसलमान बाप के विषय में तो, हम देख ही चुके हैं कि, कोई सवाल नहीं उठता। हिन्दू बाप से उत्पन्न सन्तति हिन्दू मानी जाय, यह नियम है। सो हिन्दू बाप के बालकों को हिन्दू धर्म की शिक्षा दी जानी चाहिए, इस विषय में मुझे जरा भी शक नहीं है। बालक बेचारा लाचार है। जिस अनाथालय में वह रक्खा जायगा वहीं के वायुमण्डल को वह ग्रहण करेगा। यदि धार्मिक संचालकों के हाथ में उसका कारोबार होगा तो बालकों के अन्दर धर्म-सेवन हो सकेगा।

मैं आशा करता हूं कि टांगानिका तथा उसके जैसे देशों में रहनेवाले हिन्दू अपने कर्तव्य का विचार करके उसका पालन करेंगे। विषय-वृत्ति को छोड़ना यह प्रथम धर्म है। यह भविष्य का विचार है। उत्पन्न सन्तति का पालन करना, उसके लिए धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध करना और हर तरह से पिता के धर्म का आचरण करना, ये नियम हर स्थिति पर घटते हैं। जो कर सकें वे अपनी पत्नी को साथ ले जायं। पुरुषों की तरह स्त्री की भी स्थिति समझना चाहिए। पुरुष जिस प्रकार बहुत काल तक वियोग सहन नहीं कर सकता उसी तरह स्त्रियों की भी हालत समझना चाहिए। उचित उम्र में शादी होने के बाद स्त्री-पुरुष को अधिक समय तक जुदा न रहना चाहिए। यह बात स्वयंसिद्ध है। इसीसे दोनों के चरित्र की रक्षा हो सकती है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल्वे से।

व्यवस्थापक

गुजरात में छः दिन

[२]

अन्त्यज-सेवा

इस यात्रा में गांधीजी ने अछूत-पन के सवाल को हर जगह जुदी जुदी रीति से उपस्थित किया। पीज में उन्होंने पूछा यहां कोई अछूत है? मास्टर सा० ने कहा जी हां, वे दूर बैठे हुए हैं। गांधीजी ने अपने सामने रक्खा हुआ फल तथा मेवे का थाल उन्हें बांट देने को कहा। 'यह मेरी तरफ से नहीं, आपकी तरफ से आपके प्रेम की और उनके साथ अच्छा बरताव करने की इच्छा की निशानी के तौर पर इसे बांट दो।' एक सज्जन ने कहा 'थोड़ा प्रसाद मुझे न मिलेगा? मैं आपका चेला हूं।' गांधीजी उत्तर देते हैं—आप फूल ले जाइए, फल और मेवा अन्त्यजों के लिए हैं।

किसान परिषद् में उन्होंने अछूतों के संबंध में ये मार्मिक बातें कीं—

"मैंने सुना है कि आप पाटीदार लोग अन्त्यजों के साथ अच्छा बरताव नहीं करते हैं। अगर आप अपने को क्षत्रिय मानते हों तो आप अन्त्यजों पर जुल्म नहीं कर सकते। उन्हें मार-पीट नहीं कर सकते। बहुत काम लेना और थोड़ा दाम देना यह राक्षसी न्याय आप नहीं रख सकते। गीताजी कहती हैं कि देवों को सन्तुष्ट रखना चाहिए। देवों को याद सन्तुष्ट न रक्खोगे तो देवता पानी नहीं बरसावेंगे। देवता आसमान पर नहीं हैं। आपके देव अन्त्यज हैं। आपके देव दूसरे अस्पृश्य हैं। हिन्दुस्तान के देव कंगाल लोग हैं। दया-धर्म से हीन धर्म पाखण्ड है। दया ही धर्म का मूल है। और उसका त्याग करनेवाला ईश्वर का त्याग करता है। रंक का त्याग करनेवाला सबका त्याग करता है। यदि अन्त्यजों को हम अपना कर न रक्खेंगे तो हमारा क्षय निश्चित समझिए।"

महिला-परिषद

में गांधीजी ने अपने राम-राज्य-संबंधी विचारों का पुनरावर्तन किया। कहा—यदि सीताजी की तरह सतियां देश में होंगी तभी देश में राम-राज्य की स्थापना होगी। जबतक हिन्दुस्तान की स्त्रियां सार्वजनिक जीवन में भाग न लेंगी तबतक उसका उद्धार नहीं हो सकता। सार्वजनिक जीवन में भाग वही ले सकती है जो तन और मनसे पवित्र है, जिनके तन और मन एक ही दिशा में—शुद्ध दिशा में जा रहे हों। जबतक ऐसी स्त्रियां हिन्दुस्तान के सार्वजनिक जीवन को पवित्र न करें तबतक राम-राज्य अथवा स्वराज्य असंभव है। अगर स्वराज्य संभव हो तो भी वह स्वराज्य मेरेलिए किसी काम का नहीं जिसमें स्त्रियों का पूरा पूरा हिस्सा न हो। ऐसी पवित्र हृदय और मन रखनेवाली सती सदा साष्टांग नमस्कार करने लायक है। मैं चाहता हूं कि ऐसी स्त्रियां सार्वजनिक जीवन में हाथ बटावें। सार्वजनिक जीवन में हिस्सा लेने का अर्थ यह नहीं है कि सभाओं में आया करें बल्कि यह है कि पवित्रता के चिह्न स्वरूप खादी पहन कर भारत के स्त्री-पुरुषों की सेवा करें। हमारे लिए राजा-महाराजाओं की सेवा तो क्या होगी? महाराजा सा० के पास अगर जायं तो शायद द्वारपाल हमें उनतक पहुंचने भी न दें। और हमारे लिए करोड़ पति की भी सेवा क्या होगी? हिन्दुस्तान की सेवा का अर्थ है गरीबों की सेवा। दृश्य ईश्वर क्या है? गरीब की सेवा। यही हमारे सार्वजनिक जीवन का अर्थ है। सर्वसाधारण की सेवा करना हो तो ईश्वर का नाम

लेकर गरीबों में जाकर चरखा कातो। दान उसीका नाम है जिससे कंगाल को सुख हो। हर किसी को दान देने में स्वच्छन्दता का दोष लगता है। जिसे ईश्वर ने दो हाथ, दो पांव और तन्दुरुस्ती बख्शी है उसे दान देना, उन्हें कंगाल बनाने का पेशा है। मन की पवित्रता की पहली निशानी है इनके अन्दर जाकर खादी का काम करना। दूसरी निशानी है अंत्यज-सेवा करना। सेवा के लिए उनसे स्पर्श करना। रामचन्द्रजी ने क्या अन्त्यज का तिरस्कार किया था? जिस शबरी के जूठे बेर उन्होंने खाये थे और जिस निषाद से वे मिले थे वे दोनों अस्पृश्य थे। तीसरी बात है मुसलमानों के साथ मित्रता। ये तीन बात जब आप करेंगी तब कहा जायगा कि आप सार्वजनिक जीवन में हाथ बंटा रही हैं और आप चिरस्मरणीय हो जायंगी"।

क्षत्रिय बारिया सभा

इस सभा में शराब न पीने, कन्याविक्रय न करने और स्त्रियों का अपहरण न करने के प्रस्ताव इन लोगों ने स्वयं ही किये। धाराला अपनेको धाराला कहने में बदनामी समझते हैं और क्षत्रिय कहलवाते हैं। इसीलिए गांधीजी ने उनके क्षत्रियत्व के लक्षण—अपलायन, रंक, शरणागत और स्त्री की रक्षा तथा वचन-पालन—समझाये। वचनभंग के संबंध में बोलते हुए उन्होंने कहा—

"वचनभंग करने का अर्थ है, पीछे हटना, पीठ दिखाना। सो अगर यहां हाथ ऊंचा उठा कर आप अपना वचन भूल जाओगे तो क्षत्रिय न रहोगे और आपको शर्मिंदा होना पड़ेगा—आप ही को नहीं मुझे भी होना पड़ेगा। शर्मिंदा होने की अपेक्षा भी यह बात मुझे बहुत खलेगी। आपके अन्दर जो रविशंकर काम कर रहे हैं उन्हें आप अगर चोरी न करने का वचन दे कर फिर भी चोरी करो तो वे क्या करेंगे? सरकार आपको सजा देगी पर रविशंकर खुद भूख-उपवास सह कर कष्ट उठावेंगे और इस तरह आपको जनावेंगे कि वचन भंग करने की अपेक्षा तो इस तरह आप मुझे मरने दो यह बेहतर है। इन्हीं रविशंकर के सामने आपने वचन दिया है। अब वचन तोड़ोगे तो मानों इनसे उपवास कराना आपको कुबूल है। मुझ भी रविशंकर के पीछे चलना याद है। मैं मारना नहीं जानता, पर मरना जरूर जानता हूं। और आप यह भी न समझना कि रविशंकर अकेले हैं—इनकी तो बड़ी फसल पकेगी। इतनी चेतावनी देने के बाद आपसे पूछता हूं कि जो प्रतिज्ञा आप लोगों ने की है वह आप को मंजूर है? यह नाटक नहीं है। मैं नाटक करना जानता भी नहीं। और न कोई जाति नाटक दिखा कर उन्नति ही कर पाई है। हम पढ़े-लिखे लोगों ने आपलोगों के सामने नाटक दिखा दिखा कर आपलोगों को बिगाड़ा है। सो अब बहुत सोच-विचार कर हाथ ऊंचा करना।" सब लोगों ने हाथ उठाये।

अन्त्यज परिषद्

अंत्यजों को संबोधन कर के गांधीजी ने जो भाषण किया उसका कुछ अंश अंत्यज भाइयों के लिए देना जरूरी है—

"जब मैं उन लोगों से दलील करता हूं जो आपसे छूते नहीं हैं, तब वे मुझसे कहते हैं कि अन्त्यज बहुत गन्दे रहते हैं, शराब पीते हैं, मांस खाते हैं। उन्हें जवाब देता हूं कि ब्राह्मणों, वैश्यों और दूसरी जातियों में भी ऐसे लोग होते हैं, फिर भी उनके बच्चे मदरसों में जाते हैं, जा सकते हैं, फिर यह उल्टा न्याय कैसा? परन्तु उनके साथ ऐसी वकालात पेश करते हुए भी आपसे तो यही कहूंगा कि आपके खिलाफ जो जो बातें कही जाती हैं उनसे आप अपनेको बचा लो, जिससे फिर उन्हें भी कुछ भी कहना बाकी न रह जाय। अपना काम करने के बाद रोज आपको नहाना जरूर चाहिए। भंगी का काम मैंने बहुत किया है, आपके रावजी भाई ने भी किया है। इसमें बदनामी जरा भी नहीं है, यह तो पवित्र काम है। जो शख्स गन्दगी हटाता है वह तो पवित्र काम करता है। आप यदि चमड़ा साफ करो तो कर चुकने बाद नहाया करो। भले आदमी हमेशा दतौन करते हैं, दांत साफ रखते हैं, और नहा धोकर शरीर साफ रखते हैं। आप इतना सब करना और हाथ में माला लेकर राम-नाम जपना। माला न हो तो उंगलियों पर राम-नाम जपना। इस राम-नाम लेने से आपके व्यसन छूट जायंगे, आप स्वच्छ हो जाओगे। और सब आपकी पूजा करेंगे। सुबह उठकर राम-नाम लेने से और सोते समय राम-नाम लेने से दिन अच्छी तरह बीतेगा और रात को बुरे सपने भी न आवेंगे। किसी की जूठन न लेना, सड़ा और खराब खाना न लेना, मेवा मिठाई भी यदि जूठन मिले तो मुंह फेर लेना और खुद हाथ से बनाई रोटी खाना। आपका जन्म जूठन खाने के लिए नहीं हुआ है। आपके भी आंख है, नाक है, कान है। पूरे पूरे मनुष्य हैं, सो आप मनुष्यत्व की रक्षा करना सीखो।

"आपको बहुतेरे लोग कहने आवेंगे कि तुमारा काम गंदा है, तुमको मदरसे जाने की, मंदिर जाने की छुट्टी नहीं मिल सकती तो उनसे कहना कि हम अपने हिन्दू भाइयों से सब हिसाब समझ लेंगे। भाई-भाई या बाप-बेटे यदि लड़ें तो जिस तरह उसमें कोई बीच में नहीं पड़ते उसी तरह आप भी हमारे बीच न पड़िए—यह जवाब उन्हें देना और अपने धर्म पर आरूढ़ रहना। मैं खुद जात-बाहर हूं, मेरे जैसे कितने ही जात-बाहर हैं, तो इससे क्या मैं अपना धर्म छोड़ दूं? कितने ईसाई मित्र मुझसे कहते हैं कि तुम ईसाई हो जाओ। मैं उनसे कहता हूं मुझे अपने धर्म में कोई हानि नहीं मालूम होती, क्यों मैं उसे छोड़ दूं? मैं भले ही जात-बाहर रहूं, पर यदि मैं पवित्र होऊं, स्वच्छ होऊं तो मुझे किस बात का दुःख हो? यदि कोई हिन्दू इसलिए कि मैं अंत्यजों से छूता हूं, मुझे पीटे तो क्या मैं हिन्दू न रहूंगा? हिन्दूपन मेरे अपने लिए है, मेरी आत्मा के लिए है। ईसाई और मुसल्मान दोनों से आप यह बात कहना और हिन्दू-धर्म में दृढ़ रहना। अंत्यज लोग शतरंज की मोहरें या बाजी नहीं है कि जो चाहे उनसे खेला करें। मैं जो आपका भाई-बहन कहता हुआ आपके पास आता हूं—सो मेरी गरज से—इसमें मेरा स्वार्थ है कि मेरे पूर्वजों ने आपके साथ जो पाप किया है उसे मैं धो डालूं। पर आपके प्रति मैंने जो कुछ पाप किया हो उससे आपको क्या? इससे आप किसलिए धर्म का त्याग करें? प्रायश्चित्त तो मुझे करना है। आप राम-नाम क्यों छोड़ें? राम का यह न्याय है कि जो राम का सेवक है, राम का दास है, उसे वह दुःख दिया ही करता है और इसतरह उसकी आजमाइश करता है। मैं चाहता हूं आप इस आजमाइश में पूरे उतरें। अन्त को आपसे कहना है कि मन में दया रखना क्योंकि हम सब दुनियां की मुहब्बत पर जीते हैं। और अन्त में चरखा चलाओ, और खादी बुन कर खादी ही पहनो।"

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

एजंटों को

अब 'य० इं०' में लिखे गांधीजी के लेख 'हि० नवजीवन' में उसी दिन छप कर प्रकाशित हो जाते हैं। एजंटों को 'हिन्दी नवजीवन' के प्रचार में यह एक नया सुभीता हुआ है।

कोहाटी हिन्दू

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रति का	„ -)।
विदेशों के लिए	„ ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक २७

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, फाल्गुन वदी ४, संवत् १९८१ गुरुवार, ५ फरवरी, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

देहली में मुलाकातें

सर्वदल-परिषद्-नियुक्त समिति की बैठक के साथ ही देहली में गांधीजी के सभापतित्व में गोरक्षा-समिति की भी बैठक हुई। गांधीजी ने एक अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल की योजना तयार की है, जो कि सबको पसंद हुई है। पण्डित मालवीयजी की राय आ जाने पर वह सर्वसाधारण के सामने चर्चा के लिए पेश होगी।

इन समितियों की बैठकों के कारण गांधीजी घर पर शायद ही रह पाते थे। फिर भी मुलाकात करनेवालों की तो खासी भीड़ कमी रहती थी। आज-कल अमेरिकन यात्रियों का जमघट खूब रहता है। फिर आज-कल देहली में धारासभा का सत्र शुरू है। अनायास गांधीजी से मिलने का अवसर कौन गवाने लगा? केवल अमेरिकन ही नहीं, बल्कि एक दो आस्ट्रेलियन, चार पांच अंगरेज (जिनमें लार्ड कर्जन के दामाद भी थे, जो कि मजदूर दल के हैं) और एक स्त्री भी थे।

श्री मोसली ने मजदूर-दल की बहुतेरी बातें की और कहा कि हिन्दुस्तान के प्रति उनकी कितनी सहानुभूति है। परन्तु गांधीजी ने उनसे कहा कि हिन्दुस्तान मजदूर-दल पर आशा नहीं बांधेगा, क्योंकि बात यह है कि जब मजदूर-दल अधिकारारूढ होगा तब भारत के हित-साधन की अपेक्षा अपने अधिकार पर बने रहने की उसे विशेष चिन्ता बनी रहेगी। श्री मोसली ने गांधीजी से पूछा 'गरीब-अमीर का भेद मिटा देने के ध्येय के संबंध में आपकी क्या राय है?' उन्होंने जवाब दिया "मैं यह खयाल नहीं करता कि सब किस्म के भेद मिट जायंगे और मनुष्यमात्र की स्थिति समान हो जायगी। ऐसी समानता में कुछ लाभ भी नहीं। मैं तो असमानता और विविधता के रहते हुए भी बन्धुत्व स्थापित करना चाहता हूं। यह नहीं कि समानता लाई जा सकती हो तो वह मुझे अप्रिय होगी; पर मुझे वह अकल्प्य मालूम होती है। मैं तो यह चाहता हूं कि राजा और रंक में प्रेम हो, मजदूर और मालिक में प्रेम हो, राजा और प्रजा में प्रेम हो। मुझे धन का द्वेष नहीं, धनके दुरुपयोग का द्वेष है। सत्ता का द्वेष नहीं, सत्ता के दुरुपयोग का द्वेष है। मैं सिर्फ इतना ही करने की कोशिश कर रहा हूं कि मजदूर और श्रमजीवी को अपनी स्वतन्त्रता का बोध हो जाय।

'हिन्दू-मुसलमान-सवाल से आप उकताओ नहीं न गये?'

'नहीं, जरा नहीं। आज चाहे हमें सफलता न मिले पर हम सफल हुए बिना नहीं रह सकते।

'ब्रिटेन दोनों का एक नहीं करता?'

'इच्छा से नहीं, अनिच्छा से।'

'तो क्या जो भूल हमने की है। उसका प्रायश्चित्त हम न कर सकेंगे

'करेंगे तो। पर अभी नहीं। इसमें भी हमें आपको मदद करनी होगी। यह कहने से कि हमारे साथ आपको न्याय करना चाहिए, आप माननेवाले नहीं हैं। हमारी ताकत और लियाकत आपकी नजरों में गहरी पैठनी चाहिए। आज आपके यहां इन्साफ के लिए लडनेवाले कहां है? एक भी नहीं। ब्राइट और मेकले आज एक भी नहीं दिखाई देते। इसलिए अब हमीको कष्ट लेना होगा।'

कितनी ही बहनें भी आई थीं। पर मौनवार था, सो खाली मिल कर चली गईं। एक महिला 'सेटरडे रिव्यू' की संवाददात्री थीं। उनकी बातचीत बडी रंगतदार रही। उनका खयाल था कि अस्पृश्यता और ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगडे मिटना असंभव है।

'ये झगडे और अछूतपन कभी मिटेगा?।'

'क्यों नहीं? बिल्कुल निर्मूल हो जायंगे। मुझे इसमें रत्ती भर संदेह नहीं'।

'ब्रिटिश यदि हिन्दुस्तान को छोड कर चले जायं—और भारतीयों को तो पार्लियामेंटरी स्वराज्य दरकार है, सेना तो अपनी बनानी नहीं है—तो फिर बाहरी हमले रोकने के लिए आप सेना खडी कर सकेंगे?'

'आपकी दोनों बातें गलत हैं। हिन्दुस्तानियों को फौज की जरूरत जरूर है और वे अपनी फौज भी जरूर खडी कर सकेंगे। आज तो उन्हें कहीं जिम्मेदारी की जगहें भी मिलती हैं?'

'वे खुद ही आगे नहीं बढते हैं?'

'उन्हें बडी बडी जगहें तो कहीं नहीं मिलती। हिन्दुस्तानी आज कहीं कमान्डर-इन-चीफ हो सकते हैं? कोई भूला-भटका कैप्टन हो जाय तो बहुत समझिए। सिविल सर्विस को ही देखिए न। उसमें भी कितनी हद बांध दी है?'

'क्या हिन्दुस्तानी हाईकोर्ट के जज नहीं होते?'

'होते हैं। परन्तु हाईकोर्ट के जज की जिम्मेवारी एक कलेक्टर के बराबर नहीं होती। कलेक्टर तो सरकार के बराबर हुकूमत चला सकता है। जज को क्या सत्ता होती है?'

ये महाशया तो सरकार की तरफदारी करने लगीं। 'ब्रिटिश लोग शान्त होते हैं। हिन्दुस्तानी फरासीसियों की तरह जरा ही देर में अशांत हो जाते हैं। इससे सेना में उन्हें बड़ी जगहें नहीं दी जाती हैं इ० इ०।' गांधीजी उनके खुलासे पर हंसते रहे। तब उन्होंने एक और हंसने लायक बात कही—

'स्वराज्य मिल जाने के बाद हिन्दुस्तान फिर से बालवध और सती की प्रथा शुरू न करेगा?'

'इस हास्यास्पद सवाल के पूछने की अपेक्षा तो आप अपना पहला सवाल ही जारी रखती तो अच्छा था। आप पूछ सकती हैं—'आप अपनी रक्षा कर सकेंगे?'

'हां, हां, यह सवाल तो है ही। आप सीमा प्रान्त पर शान्ति किस तरह रख सकेंगे?'

'सीमा प्रान्त पर भी और देश में भी, सब जगह शान्ति रख लेंगे। सीमा-प्रान्त पर तो ख्वामख्वाह का उपद्रव मचा रक्खा है। वहां जो लड़ाइयां होती हैं वे उपजाई हुई होती हैं। यह मेरा नहीं पर एक कुशल ब्रिटिश अधिकारी का मत है। उन्होंने लिखित किया है कि सीमा-प्रान्त पर की गई एक भी चढ़ाई का समर्थन नहीं किया जा सकता। ये लड़ाइयां और चढ़ाइयां सिर्फ ब्रिटिश सिपाहियों को लड़ाइयों के लिए हमेशा तैयार रखने के लिए की जाती हैं।'

'यह मानने लायक नहीं मालूम होता। सीमा-प्रान्त के लोग हमेशा लूट-मार करते रहते हैं।'

'पर ये लड़ाइयां लूट-मार बन्द करने के लिए नहीं होती हैं। यदि सत्ता हमारे हाथ में हो, हमें अपना निपटारा कर लेने दिया जाता हो तो हम उन लोगों के साथ तुरन्त सुलह कर लें। वे आखिर करेंगे क्या? वे राज्य तो कायम करना चाहते ही नहीं?'

'क्यों, मुगलों ने नहीं कायम किया? उसीतरह उत्तर से दूसरे लोग आ सकते हैं। उत्तर की पहाड़ी टोलियां मैदान में आ कर रहने के लिए लालायित रहती हैं।'

'कुछ नहीं रहती, और फर्ज कीजिए कि रहती भी हों तो इससे क्या बनता बिगड़ता है? और अगर हम हार जायं और मुगल जैसे लोग आकर अपना डेरा जमावें तो इसमें भी क्या बुराई? आज से बुरी हालत में हम मुगलों के जमाने में न थे। मुगल हमारे घर के अंदर नहीं घुस गये थे, हमारे देहात में नहीं पैठ गये थे, हमारे चरखे का सत्यानाश उन्होंने नहीं किया था, शराब और अफीम का रोजगार कर के उन्होंने हमें भ्रष्ट नहीं किया था।'

'जहांगीर अफीमची नहीं था?'

'होगा, पर इससे क्या। आज की तरह व्यापार नहीं होता था, अफीम और शराब के कर से आमदनी नहीं पैदा की जाती थी। आज तो यह सब बाकायदा हो रहा है। अनेक नक्शे, शराब की दुकान के नक्शे, शराब बिक्री के अंक, वगैरह तमाम साधनों के जरिये यही बात हो रही है कि इसका व्यापार किस तरह बढ़ाया जाय। मुगलों में व्यवस्था-शक्ति थी, न हो सो बात नहीं। पर जब व्यवस्था-शक्ति का योग विनाशक-शक्ति के साथ हो जाता है तब सत्यानाश क्यों न हो? आज यही हालत है। यह बात नहीं कि मुगल हमारे साथ प्रेम रखते थे, या हमारे हितैषी थे, पर उनके जुल्म ब्रिटिशों के जुल्मों के आगे कुछ नहीं।'

'पर अफीम का व्यापार दूसरे लोग करेंगे, फिर हिन्दुस्तान ही क्यों न करे?'

'दुनिया दुराचार से आमदनी पैदा करती है या करेगी इसलिए हिन्दुस्तान को भी करनी चाहिए?'

'अफीम का रोजगार तो हिन्दुस्तान का पुराना रोजगार है न?'

'हमारी आदत चाहे पुरानी हो, पर व्यापार नहीं। हो सकता है कि ब्रिटिशों ने हमें यह आदत न लगाई हो, परन्तु उसने इस दुर्व्यसन को शास्त्र का रूप जरूर दिया है। अभी ज्यादा क्या कहूं—आपके सामने कहते हुए संकोच होता है—वेश्याचार के भी कानून बनाये गये हैं। फौज के लिए वेश्याओं की तजवीज की जाती है। इससे बढ़ कर कोई बदनामी की बात हो सकती है?'

ये देवीजी तो इसकी भी सफाई देने लगीं। 'इसतरह सिपाहियों की विषय-वासना तृप्त करने का कोई साधन न रक्खा जाय तो बीमारियां बढ़ती हैं और सेना में खराबी पैदा होती है।' पर शिष्टता के खयाल से उनकी इस पूरी दलील को यहां नहीं देता हूं। गांधीजी ने चकित हो कर कहा—

'ताज्जुब होता है कि आप एक स्त्री हो कर स्त्रीत्व पर होनेवाले इस असह्य अत्याचार की सफाई दे रही हैं! आपके तो रोंगटे खड़े हो जाने चाहिए!'

'नहीं मैं तो एक पक्ष की बात आपके सामने पेश कर रही हूं।'

'क्या एक पक्ष की बात करती हैं! जहां आपका खून उबल उठना चाहिए था, वहां आप एक पक्ष की तरफ से बातें कर रही हैं! पहले तो मनुष्य को पशु बना देना और फिर उसकी पशु-वृत्ति को तृप्त करने के साधन पहुंचाना? मैं यही नहीं समझ सकता कि देश के बचाव के नाम पर क्यों युवकों को निकम्मा रख कर उन्हें महज शरीर बढ़ाने का प्रोत्साहन दिया जाता है? आपको—एक स्त्री को तो—इसका घोर विरोध करना चाहिए था—सो आपको, उल्टा उसकी सफाई देते हुए देख कर मैं हैरान हूं।'

(जरा खिसियाई) 'मैं सफाई नहीं दे रही हूं, मैं तो अपना खुलासा पेश कर रही हूं।'

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

सच्ची शिक्षा

डाक्टर सुमन्त महेता का नीचे लिखा पत्र मुझे इस बार की डाक में मिला—

"मैं गुजरात विद्यापीठ की नियामक सभा में तथा कार्यवाहक मंडल में था। दूसरे कामों में लग जाने से उनमें से हट गया हूं।

बंबई-विश्वविद्यालय जिस तरह की शिक्षा देता है उसी तरह की शिक्षा देने के लिए हमारा महाविद्यालय नहीं खड़ा हुआ है। फिर भी जान में या अनजान में हम उसकी नकल कर बैठे हैं।

महाविद्यालय में राष्ट्रीय सैनिक अथवा समाज-सेवक तैयार करना चाहिए।

सैनिक—राजनैतिक कार्य के लिए।

समाज-सेवक—दूसरे तमाम कामों के लिए।

(राजनैतिक और सामाजिक काम में कोई पक्की दीवार नहीं है, यह कुबूल करना होगा)

खादी-काम के लिए हमारे शिक्षित लोग जो देहात में पड़ाव डाल कर बैठ गये हैं, यह मेरी दृष्टि में बड़े से बड़ा काम हुआ है। जो सेवक ऐसी छावनियों में जायंगे उन्हें महाविद्यालय की विचारात्मक (थियारिटिकल) शिक्षा की सचमुच ही आवश्यकता नहीं है। उनको—

(१) खादी—कातना बुनना और बेचना

(२) सांसारिक रीतरिवाजों में होनेवाले खर्चे

(३) महमोल मेहलो—हर तरह की

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन बदी ४, संवत् १९८१

कोहाटी हिन्दू

मैं जानता हूं कि पाठक इस सप्ताह के य. इं. के पन्नों में, कोहाट की पिछले सितम्बर की शोकमय घटना के विषय में मौ० शौकतअली के और मेरे निर्णयों को खोजेंगे। पर खेद है कि जिज्ञासुओं को उसे देख कर निराश होना पड़ेगा। क्योंकि मौ० शौकतअली मेरे साथ नहीं हैं और उन्हें दिखाये बिना इस विषय में कोई बात छापना उचित न होगा। फिर भी मैं पाठकों से इतना तो कहीं देता हूं कि मैंने जो रायें कायम की हैं उनपर पं० मोतीलालजी, पं० मालवीयजी और हकीम साहब अजमलखान, डा० अनसारी और अलीभाइयों से भी चर्चा कर ली है। साबरमती जाते हुए रास्ते में मैंने उन्हें अभी लिख कर खतम किया है। तुरन्त ही वे मौ० शौकतअली को भेजी जायगी और उन्हें मौ० शौकतअली की पुष्टि अथवा कमी-बेशी के साथ प्रकाशित करने की आशा रखता हूं। परन्तु हमारे निर्णयों को छोड़ कर, मैं हिन्दुओं को फिर यही सलाह देता हूं कि यदि मैं उनकी जगह होता तो अबतक बिना सरकार के दखल दिये मुसलमानों से इज्जत के साथ सुलह न हो, मैं वहां न जाता। यह इस मौके पर मुमकिन नहीं है; क्योंकि बदकिस्मती से मुस्लिम कमिटी के लोग, जो कि कोहाट के मुसल्मानों की रहनुमाई कर रहे हैं, न तो हमसे मिलने आये और न आना जरूरी समझा। हां, मैं देखता हूं कि हिन्दुओं की हालत नाजुक है। वे अपनी मिल्कियत को गवांना नहीं चाहते। मौलाना साहब और मैं दोनों सुलह कराने में कामयाब न हुए। हम तो कोहाट के खास खास मुसल्मानों को बातचीत के लिए भी बुलाने में समर्थ न हो सके। और न मैं यही कह सकता हूं कि हम आगे भी जल्दी सफल हो सकेंगे। ऐसी हालत में हिन्दू लोग जो मुनासिब समझें करें। हमारे नाकामयाब होते हुए भी मैं तो उन्हें सिर्फ एक ही रास्ता बता सकता हूं—जबतक मुसल्मान आपको इज्जत और गौरव के साथ न ले जाय, कोहाट न लौटो, पर मैं जानता हूं कि यह सलाह दे कर सिवा उन लोगों के जो कि अपने पैरों पर खड़े रह सकते हैं और जिन्हें किसीकी सलाह की जरूरत नहीं है, मैंने औरों का कष्ट कुछ ज्यादह कम नहीं किया है। और कोहाट के आश्रितों की हालत भी ऐसी अच्छी नहीं है। मैंने अपने विचार पण्डित मालवीयजी तक पहुंचा दिये हैं। वही शुरूआत से उनके पथ-दर्शक रहे हैं और उन्हें उन्हींकी सलाह के अनुसार चलना चाहिए। लालाजी पिण्डी आये थे, पर बद-किस्मती से वे बीमार हो गये। मेरी अपनी राय जो बहुत विचार के बाद मैंने कायम की है, अपने वक्तव्य में दे दी है जो कि मौ० शौकतअली के आसपास पहुंच गया होगा। मगर यह बात तो मैं पहले ही से कुबूल कर लेता हूं कि उससे उन्हें कुछ भी तसल्ली न मिलेगी। मुझे तो अब एक टूटी नाव ही समझिए। वह भरोसा करने लायक नहीं।

परन्तु इस बारे में कि वे जबतक कोहाट के बाहर हैं क्या करें, मैं उन्हें निःसंकोच सलाह दे सकता हूं। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हट्टे-कट्टे और मजबूत हाथ पैर रखनेवाले लोगों का दान की रकमों पर बसर करना अपने सत्व को गवांना है। उन्हें न कि वे खुद अथवा वहांके लोग की मदद से कुछ न कुछ काम अपने लिए ढूंढ लें। मैंने उन्हें धुनकने कातने और बुनने का काम सुझाया है। पर वे कोई भी अपनी पसंद का अथवा जो उन्हें दिया जाय काम ले सकते हैं। मेरे कहने का भाव यह है कि किसी भी स्त्री पुरुष को जो काम करने की ताकत रखता है, दान पर पेट न भरना चाहिए। एक सुव्यवस्थित राज्य में काम करने की इच्छा रखनेवाले हरएक शख्स के लिए काफी काम हमेशा होना चाहिए। आश्रित लोगों को, जबतक कि राष्ट्र उनका भरण-पोषण कर रहा है अपनी एक एक मिनट का अच्छा हिसाब देना चाहिए। 'निकम्मा आदमी शैतान को निमन्त्रण देता है' यह महज लड़कों की कहावत नहीं है। इसमें काफी सत्यांश है और उसकी गवाही हर शख्स दे सकता है। इसमें न तो गरीब अमीर का, न ऊंच-नीच का भेद-भाव है। सबपर एक सी मुसीबत छाई है—सब मुसीबत के मारे साथी हैं। और धनी और खुशहाल लोगों को तो खुद आगे बढ़ कर अच्छी तरह मिहनत करके मिसाल पेश करनी चाहिए, फिर चाहे वे खाना दाना न भी लेते हों। यदि एक राष्ट्र के लोग मुसीबत के दिनों में ऐसा काम करना जानते हों जिससे उन्हें सहारा मिले तो इससे कितना भारी लाभ होगा? यदि ये आश्रित लोग धुनकना, बुनना या कातना जानते तो इनकी जिन्दगी इस हालत से कहीं बेहतर और ऊंची रही होती। उस हालत में आश्रितों का यह पड़ाव एक मधु-मक्खियों का छत्ता हो बन गया होता जिसमें वे जितने दिन तक चाहते रह पाते। यदि ये लोग इसी समय न जाने का निश्चय करें, तो अब भी वक्त नहीं गया है। सूखा आटा-दाल देना गलती है। हां, व्यवस्थापक लोगों के लिए ऐसा करने में आसानी है, पर इससे आश्रित लोगों में बड़ी बेतरतीबी फैलती है और इसमें चीजें बहुत बरबाद होती हैं। इन्हें चाहिए कि वे सिपाहियों की तरह संयम और नियम-पालन अख्त्यार करें—नियम से उठें, नियम से नहावें-धोवें, नियम से ईश्वर-भजन करें, नियम से खाना खावें, नियम से काम करें और नियम से सोवें। कोई वजह नहीं मालूम होती कि क्यों उनके अन्दर रामायण का अथवा और किसी धर्म पुस्तक का पाठ आदि न हो। इन सबके लिए विचार करने की, चिन्ता रखने की, ध्यान देने की और तत्परता रखने की बड़ी जरूरत है। ऐसा करने पर यह मुसीबत एक आनन्दमय घटना के रूप में बदली जा सकती है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

होशियार रहना

गंजाम जिला समिति ने एक व्यापारी का लिखा एक पोस्ट कार्ड जिसमें बाजार में बेचने के लिए २००० गज की आंटियों का भाव पूछा है, मेरे पास भेजा है। ऐसे खुले हुए व्यापार पर ऐतराज करना मुमकिन नहीं है। लेकिन उन लोगों को जो कातना नहीं चाहते और सूत खरीद कर अपना चन्दा देना चाहते हैं, बाजार से सूत खरीदने से सावधान रहना चाहिए। उन्हें अपना हिस्सा अपने कुटुम्ब में कतवा लेना चाहिए। यदि यह मुमकिन न हो तो उन्हें एक विश्वासपात्र कातनेवाला रखना चाहिए और उससे सूत लेना चाहिए। अकोला के जो महासभावादी कातना नहीं चाहते थे उन्होंने इस मुश्किल को श्री. मशरूवाला को, जो हाथ-कताई में बड़ा विश्वास रखते हैं, जितना सूत चाहिए उतना देने पर राजी कर के, हल कर लिया है। इससे सूत की तादाद और किस्म दोनों के संबंध में विश्वास रहेगा। किसी भी प्रान्त को दूसरे प्रान्त से सूत न मंगाना चाहिए।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

महाराज मैसोर

मैसोर के महाराजा साहब ने चरखा कातना शुरू किया है। जिन लोगों ने कताई को धर्म मान लिया है उन्हें यह समाचार प्रिय मालूम हुए बिना न रहेगा। संवाददाता यह भी सूचित करते हैं कि सर प्रभाशंकर पट्टणी के कातना शुरू करने के बाद का यह परिणाम है। हम सब उदाहरणों से हमें फूल न जाना चाहिए। फिर भी इससे यह तो सूचित होता ही है कि चरखा कातने में कितना और कैसा सामर्थ्य है। फिर बड़े आदमियों की मिसाल का असर सर्व-साधारण पर भी पड़ता है। मैं मैसोर महाराजा साहब को धन्यवाद देता हूं और आशा रखता हूं कि वे अपने आरम्भ किये में को मरण-पर्यंत न छोड़ेंगे। यह आरंभ उनके और प्रजाजन दोनों के लिए कल्याणकारी है। उसका परिणाम आज भले ही कम दिखाई दे। परन्तु मुझे इस विषय में जरा भी सन्देह नहीं कि अन्त में वह एक विशाल वृक्ष के रूप में सुशोभित हो जायगा, सूत-कताई महाराजा और प्रजा दोनों का जोड़नेवाली सुनहली जंजीर हो जायगी। इससे इस नियम का पुनरुद्धार होगा कि राजाओं को उपयोगी और प्रजा-पोषक उद्यम करना चाहिए और यह ज्ञान कि रक से रंक प्रजा के उद्यम के लिए भी महाराजा के महल में स्थान है, हमेशा प्रजाजन को प्रोत्साहित करता रहेगा एवं यह बात सिद्ध होगी कि राजा और रंक के दरम्यान वस्तुतः जाति-भेद नहीं है। थोड़े दिनों के उद्यम से ऐसे नतीजे नहीं निकला करते। उसके लिए निरंतर, नियमित और श्रद्धामय उद्यम की आवश्यकता है।

ऐसा ही चाहिए

हल्याल शहर कर्णाटक में है। वहांके तालुका समिति के मंत्री लिखते हैं—

"यहां म्युनिसिपालटी में राष्ट्रीय पक्ष के लोगों की बहुमति है। इसलिए वह रचनात्मक कार्य सफल बनाने के लिए पूरी मदद कर रहा है। म्युनिसिपल शालाओं में चरखा चलाना अनिवार्य कर दिया गया है। म्युनिसिपालटी के नौकरों को खादी के कपड़े दिये गये हैं। अस्पृश्य लोगों के सन्तानों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रस्ताव हुआ है। दूसरे हिन्दू बालकों के साथ ही उनको पढ़ाया जाता है। सार्वजनिक तालाब में से उन्हें पानी भरने में कोई रुकावट नहीं है। पूज्य देशभक्त गंगाधरराव देशपांडे को यहां अभिनन्दन पत्र दिया गया था। सभासदों के प्रयत्न से यहां हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर, सबमें एकता है और किसी भी प्रकार का लड़ाई झगड़ा नहीं है। भविष्य में नशीली चीजों के त्याग के लि बड़ी मिहनत से काम लेने का निश्चय हुआ है। और इसी प्रकार प्रत्येक कार्य में जिससे देश का कल्याण होता हो वे मदद करते हैं।"

यह म्युनिसिपल्टी धन्यवाद की पात्र है। यदि पूर्वोक्त कार्य के अलावा वहां शहर-सफाई पर पूरा ध्यान दिया जाता हो, तालाब साफ रहता हो, उसमें मवेशी पानी पीते और नहाते न हों, उसीमें स्त्री-पुरुष नहाते-धोते न हों, बच्चों को लिए साफ और सस्ता दूध मिलता हो—तो यह म्युनिसिपल्टी आदर्श म्युनिसिपल्टी कही जायगी। इसका यदि सब जगह अनुकरण हो तो यह स्पष्ट है कि बहुत से प्रश्न इससे हल हो जायंगे और सार्वजनिक जीवन बहुत कुछ आगे बढ़ जायगा।

अनुकरणीय

पालीताना से एक महाशय एक पत्र लिखते हैं, उसमें से जरूरी अंश नीचे देता हूं—

"मैं पालीताना रियासत का निवासी हूं। राज्य कारोबार में २५ साल से नौकर हूं। अपने फुरसत के समय मैंने सूत कातना शुरू किया। तकला अच्छा तरह सीख लेने पर अब चरखा कातना भी जान लिया है। इसके अलावा बुनाई भी सीख ली है।

अपनी धर्मपत्नी को भी कातना बुनना सिखाया। मेरे घर में मेरे छोटे बच्चे भी कातने हैं। यहां मठिया रुई मिलती है। उससे ऊंचे नंबर का सूत नहीं निकलता। इससे मैंने दिरवणी नामक कपास बोया। उसके तीन पौधे तैयार हुए हैं। देव कपास को भी बोने और तैयार करने का प्रयोग किया है। अभी तीन पौधे एक एक साल के हुए हैं। इनके उपरांत ऊन कात कर भी देख लिया है। ऊन मैं बहुत अच्छा कात लेता हूं। एक बुनने वाले को भी उत्साहित कर के तैयार किया है। अभी हम ऊन के ही कपड़े पहनते हैं और जो बच जाते हैं तो बेचना भी हूं। नौकरी के काम से छुट्टी पाकर रात को दो दो तीन तीन घण्टे तक सूत कातने में मेरा बड़ा मन लगता है। चरखा कातते हुए मुझे बड़ा ही आनन्द आता है। थकावट तो मालूम ही नहीं होती। मेरा अनुभव होता जाता है कि चरखे में दैवीक शक्ति है।

"इरादा हुआ कि जब जब मुफस्सिल में दौरे पर जाना हूं तब तब चरखा साथ रक्खूं। परन्तु यहां का बड़ा चरखा सफर में नहीं आ सकता। सो 'जीवन चक्र' मगा कर साथ रखता हूं। वह गाड़ी के सफर में साथ रक्खा जा सकता है। जब घोड़े पर जाता हूं तब तकला साथ रखता हूं। अब ऐसा छोटा चरखा मगा रहा हूं जो घोड़े पर रह सके। मुफस्सिल में वक्त मिलते ही फौरन कातना शुरू कर देता हूं। किसानों से मेरा बहुत साबका पड़ता है। उनको कताई के फायदे समझाता हूं और खुद कात कर दिखलाता हूं। सेवा करने का यह मुझे बड़ा अच्छा मौका है। कपास की जुदी जुदी किस्में बुवा कर उसे अच्छा बनाने की कोशिश किसानों के मार्फत करता हूं। कताई में दिन पर दिन सुधार होता जाता है। ऊन रबारी, भरवाड लोगों से अच्छी कीमत दे कर खरीद करता हूं। उसको धोने के लिए खुद महनत कर के उन्हें बताता हूं। उन्हें यह भी कात कर दिखाता हूं और समझाता हूं कि महीन ऊन किस तरह कातना चाहिए। वे लोग अगर चाहें तो थोड़ी कीमत में बहुतसा बाहर जानेवाला ऊन रोक सकते हैं। इस तरह ज्यादह पैसा कमा सकते हैं।

"नौकरी के साथ ही साथ ऐसा काम करने में राज्य की ओर से रुकावट नहीं डाली जाती, बल्कि प्रोत्साहन मिलता है। श्रीमान् ठाकुर साहब तथा दिवान साहब कते और बुने ऊन का नमूना देख कर खुश हुए हैं।"

इसी तरह यदि दूसरे राजकर्मचारी भी करें तो कितना सुधार हो सकता है? इससे राजा और प्रजा दोन की सेवा हो जाती है। और उसके साथ खुद हमें भी लाभ होता है। कातते कातते आखिर ये दम्पती अपने तमाम कपड़े अपने ही काते कपास और ऊन के बना लेंगे। कालीपरज में कपड़ों का सालाना खर्च फी इसम १०) पड़ता है। इन महाशय के यहां तो ज्यादह होना चाहिए। उसमें से वे बहुत-कुछ बचा लेंगे और साथ ही एक हुनर भी सीख लेंगे, गरीबों की दुआ लेंगे और रुई तथा ऊन की किस्में तथा उन्हें अच्छा बनाने की विधियां जान लेंगे। काठियावाड में इन दिनों चरखे आदि का काम ठीक हो रहा है। ऐसे समय में मैं चाहता हूं कि छोटे बड़े राजकर्मचारी, जिन्हें जनता के अन्दर बहुत काम पड़ता है वे उन्हें खादी और चरखे की तालीम इन सज्जन की तरह दें। ये सज्जन घोड़े पर चरखा रखना चाहते हैं। दूसरों के मनमें संभव है कि यह इच्छा पैदा हो। इसका अच्छा

रास्ता यही है कि हर गांव में चरखे पहुंचा दिये जायं। क्या काठियावाड में और क्या अन्यत्र सब जगह ऐसे देहात मिलने ही न चाहिए कि जहां चरखा मिल ही न सके। जहां न हो वहां दाखिल करना चाहिए। फिर 'रयत से मांग कर कर्मचारी उसपर सूत कात सकते हैं। हरएक चोरा में दो-तीन चरखे हों जिसपर पटेल भी सूत काते, गरीब रिआया और सरकारी कर्मचारी भी जब जांय कात लिया करें। फिर भी जबतक ऐसा न हो तबतक छोटा सा चरखा घोडे पर ले जाने की तजवीज तो बढिया हुई है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

बिहार का अवाज

बिहार के एक संवाददाता के पत्र से मैं नीचे लिखी बातें प्रकाशित करता हूं—

'गत २५ जनवरी को बिहार प्रा० समिति की बैठक हुई थी। सदस्यों ने बहु-संख्या में खुद कात कर सूत देनेवालों में नाम लिखाया था। भिन्न भिन्न प्रान्तों के कार्यकर्ताओं ने ३१ मार्च के पहले ३८०० खुद कातनेवाले सदस्य प्राप्त करने का बीडा उठाया। इस साल भर में कम से कम १२,००० खुद कातनेवाले सदस्य बना लेने का कार्यक्रम बनाया गया है। यह उम्मीद की जाती है कि उन सदस्यों को जो रुई अपने घर से लगाने की ताकत नहीं रखते हैं, रुई देने के लिए बतौर दान के काफी कपास मिल जायगा। मैंने देखा है कि सूत और खादी में अच्छी तरक्की हुई है और खादी-मण्डल के द्वारा जो सब काम एक-सूत्र से हो रहा है उससे काम अच्छा और ठीक तरह से होने का यकीन हो गया है। नीचे लिखे उत्पादक केन्द्र हैं, जिनमें तैयार हुई खादी का मासिक औसत भी दिया गया है—

पण्डौल	३०००
मगाल	१५००
हाजीपुर	५००

यहां तीन भण्डार हैं, जहां से खादी बिकती है—

मुजफ्फरपुर	२५००
हाजीपुर	५००
पटना	२०००

और इस तरह आप देखेंगे कि पैदावार बिक्री बराबर होती है। पर यह सारी पैदावार और सारी बिक्री के अंक नहीं हैं। ऐसे कितने ही लोग हैं जो खुद ही अपना सूत कात लेते हैं और कपडा बुनवा लेते हैं। इस तरह काते सूत और बुनी खादी का नाप बतानेवाले अंक मेरे पास नहीं हैं, तो भी मेरे ख्याल में सैकडों लोग ऐसे होंगे। गांधी-आश्रम चरखा-कताई का नमूना-रूप केन्द्र है। बारह बारह साल के लडकों को बडी खूबी के साथ काम करते हुए देख कर मैं चकित हो गया। वे सिर्फ कातते और बुनते ही नहीं हैं, बल्कि वे मजदूरी दे कर सूत कतवाते भी हैं, उसकी जांच करते हैं, मजदूरी देते हैं और सूत जुलाहों के यहां ले जाते हैं। वे यह सब काम कुशलतापूर्वक और एक तरीके के साथ करते हैं। उनकी खादी १९२२ से जरूर बढिया हो गई है। आश्रम के अधीन नीचे लिखे उत्पादक केन्द्र काम कर रहे हैं—

मधुहारी	७००
मालकछक	६००
मधुपुर	५००

नीचे लिखे बिक्री भण्डार हैं—

मधुहारी	१५००
भागलपुर	११००
मालकछक	५००
जुमाई	५००

प्रान्तिक समिति की कोशिश है कि इस साल कम से कम ५ लाख रुपये की खादी पैदा करे। अभी मासिक पैदावार १३००० की है। ५ लाख का खादी पैदा करने के लिए मासिक पैदावार इससे तिगुनी होनी चाहिए। राजेन्द्र बाबू इस बारे में खूब उत्साह से काम कर रहे हैं। बिहार में कुदरती सहूलियतें भारी हैं। सो कोई ताज्जुब नहीं कि यह कार्यक्रम सफल हो जाय। यहां लोग आपके पधारने की राह बडी उत्सुकता से देख रहे हैं। यदि आप आ सकें तो निःसंदेह काम जोर से आगे बढ जायगा।"

मैं आशा करता हूं कि अन्य प्रान्त भी अपना अपना कार्यक्रम बना लेने में समय न गवावेंगे। जितनी जल्दी हो सके बिहार जाने की आशा मैं कर रहा हूं। पर मेरा जाना-आना मेरे बस का नहीं रहा है। जहां कर्तव्य ले जाता है वहीं मुझे जाना पडता है। इसलिए पहले से वचन दे रखना फजूल है।

कानपुर में

डा० मुहम्मद लिखते हैं "इसी २ ता. को कानपुर में एक झगडा हो गया। कानपुर में महासभा की आगामी बैठक होनेवाली है। इसलिए मुनासिब है कि इसकी असलियत आपको मालूम हो जाय। और अगर इसकी ताईद यहां की महासभा समिति के सभापति डा. मुरारीलालजी की तरफ से भी हो जाय तो बेहतर हो कि आप उसे यं० इं० में प्रकाशित कर दें। अंगरेजी अखबारों में इसका जो ब्यौरा छपा है वह बिलकुल भ्रम पैदा करनेवाला है। आशा है आप इसकी असलियत जान कर उसे प्रकाशित करेंगे।

इन दिनों स्वामी दयानन्द का वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा है। भजन-मण्डलियों के सहित शहर में जलूस घूमते रहते हैं। २ फरवरी को एक मण्डली मेस्टन रोड से जो कि एक चौडी सडक है, प्रधान कार्यालय की ओर आ रही थी। वह एक भजन गा रही थी जो कि बहुत ही आपत्तिजनक था। आपके मुलाहिजे के लिए उसका एक कडी दर्ज किये देता हूं।*

एक पिछले मौके पर भी उन्होंने एक ऐसा ही भजन गाया था। पर इस बार जब वे सडक का एक बडा हिस्सा तय कर चुके थे कुछ नौजवान मुसल्मानों ने उनकी ध्वजायें छीन लीं और हमला किया। उन लोगों ने भी जवाब में प्रहार किया। पर शुरुवात की थी मुसल्मान युवकों ने। तुरन्त ही आर्यसमाज के नेता वहां आ पहुंचे, क्योंकि उनका दफ्तर नजदीक ही था। भजन की बात उनसे कही गई पर उन्होंने अफसोस जाहिर किया और यह बात तय पाई कि अब आगे चुने हुए भजन ही गाये जायंगे और वह तमाम मण्डलियों का जुलूस शहर में घूमा। समाजियों के अनुरोध पर कुछ (एक या ज्यादह, मैं ठीक नहीं कह सकता) मुसल्मान जलूस के साथ रहे और सारा काम शान्ति-पूर्वक समाप्त हुआ। सारा किस्सा यही है।

अब इस शहर के हिन्दू-मुस्लिम ताल्लुकात के बारे में भी दो शब्द लिखे देता हूं। जब कि सारे उत्तर भारत में तनाजा छा रहा था, डा० मुरारीलाल तथा कुछ मुसल्मानों ने अपने मन में यह अहद कर लिया था कि कानपुर में तो ये शर्मनाक वाकयात हरगिज न होने पावें। एक एकता-मण्डल कायम किया गया था, उसके द्वारा थोडा काम हुआ। ज्यादह काम तो उन कुछ कार्यकर्ताओं ने किया जिन्होंने झगडे के किसी कारण के पैदा होते ही तुरन्त उसे अपने हाथ में ले लिया। नतीजा यह हुआ कि शहर सब तरह से बच रहा, हालां कि कुछ शरारती कुछ न कुछ अपनी करामात बताते रहे, और उनके भजनों या व्याख्यानों के बदौलत शान्ति में खोला

---

* नहीं छापा।

बहुत खलल पड़ता रहा। अभी महासभा को १० महीने हैं और इस दर्म्यान यहां कोई दुर्घटना न होनी चाहिए, जिससे कि हमारी राष्ट्रीय सभा सचमुच ही राष्ट्रीय हो। मैं आशा करता हूं कि आप इस शहर के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को ऐसी प्रेरणा करेंगे कि जिससे इस शहर के जीवन में ऐसी घटनाओं का होना असंभव हो जाय।"

मैंने इसकी ताईद के लिए डा. मुरारीलाल को नहीं लिखा, क्योंकि डा० अबदुलसमाद का वक्तव्य खुद ही निष्पक्ष और निर्दोष मालूम होता है। यदि डा० मुरारीलाल का वक्तव्य इससे भिन्न होगा तो उसे मैं खुशी से प्रकाशित करूंगा। झगड़े तो अच्छे अच्छे व्यवस्थित समाज में भी हो जाते हैं पर झगड़े के बाद दोनों तरफ के लोगों ने जिस सद्भाव से काम लिया वह सराहनीय है। अब रही कुछ आर्य-समाजियों के इल्जाम की बात, सो मैं नहीं कह सकता, वे कहांतक इसे कुबूल करेंगे। मैं आशा करता हूं कि कानपुर के हर समाज के लोग अधिक से अधिक संयम रखने का और उपद्रवी लोगों को अपने काबू में रखने का भरसक प्रयत्न करेंगे एवं हमेशा अपनेसे भिन्न धर्म मत या राजनैतिक विचार रखनेवाले प्रतिस्पर्धियों के प्रति उदारता रखने के लिए सदा तैयार रहेंगे।

एक चुपचाप कार्यकर्ता

चटगांव से एक सज्जन एक चुपचाप कार्यकर्ता के बारे इस तरह लिखते हैं—

"श्रीयुत कालीशंकर चक्रवर्ती चटगांव के एक चुपचाप और अथक कार्यकर्ता हैं। उन्होंने हाल ही में चरखे का प्रत्यक्ष प्रयोग दिखाना शुरू किया है। उन्हें शब्दों की लड़ाई में विश्वास नहीं है। वे रोज सुबह अपना बढ़ा चरखा लेकर घर घर जाते हैं। वहीं बैठकर चरखा कातते हुए उन्हें सिखाते भी हैं और सूत उनसे मांग लेते हैं। मुमकिन है कि कुछ लोगों को यह बात निरर्थक मालूम हो, परन्तु चरखे की मधुर तान और उसके साथ ही प्रातःकाल में भजन की धुन चरखे पर श्रद्धा करनेवालों के भी मन को हरण कर लेती है। वे चरखे की फरमायश करते हैं और सूत भेजने का वादा करते हैं। कुछ ऐसे लोग भी जो चरखे का मजाक उड़ाते थे इसके द्वारा चरखे के वशीभूत होते जा रहे हैं। कालीशंकर बाबू की इस व्यवस्थित तत्परता से सफलता की बहुत आशा है। उन्होंने दूसरे लोगों के सामने एक ऐसी मिसाल पेश कर दी है जिसका अनुसरण कर के लोग चाहें तो अपना और देश का हित साधन कर सकते हैं।"

मैं कार्यकर्ताओं का ध्यान इसकी ओर दिलाता हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कोरी बातों से काम कर के दिखा देना कहीं ज्यादह अच्छा होता है।

वायकोम

वायकोम सत्याग्रह-आश्रम की नीचे लिखी बातें लोगों में दिलचस्पी पैदा किये बिना नहीं रह सकतीं—

"मुझे आशा है कि कताई की स्पर्द्धा वाला हमारा तार आपको मिल गया होगा। दो स्वयंसेवकों ने ८ नवम्बर को—एक ने ५७८ गज दूसरे ने ५०९ गज सूत—काता था। हमारा बुनाई का काम अभी जैसा चाहिए वैसा नहीं हो रहा है, क्योंकि कुछ लड़के जो बुनाई का काम जानते थे छुट्टी पर चले गये हैं। विनोबा जी की सूचना के अनुसार हम लोगों ने अपनी संख्या घटा कर सिर्फ ५० रक्खी है। लेकिन इससे बड़ी तकलीफ होती है। क्योंकि हवा खराब है और इसलिए यहां रहनेवाले स्वयंसेवक ६ घण्टे सत्याग्रह करने के लिए समर्थ नहीं होते। इसलिए हमें दूसरे दस या पन्द्रह स्वयंसेवक रखना जरूरी हो गया है ताकि सब मिला कर हमारी शक्ति ६० स्वयंसेवकों की कायम रहे। मुझे आशा है आप इसका आवश्यक होना स्वीकार करेंगे।

"२४ घण्टे में ८ घण्टे नींद के, ६ घण्टे सत्याग्रह के, २ घण्टे कातने के, एक घण्टा हिन्दी का, २ घण्टे आश्रम के काम के, (झाड़ बुहारा करना, धोना इत्यादि) २ घण्टे नहाने धोने, खाने पीने इत्यादि, शारीरिक आवश्यकताओं के लिए, एक घण्टा वाचनालय का और २ घण्टे शाम को प्रार्थना और सभा के लिए रहते हैं। सभा में आमतौर पर अच्छे अच्छे विषयों पर प्रवचन होता है। यह प्रवचन या तो मैं करता हूं या प्रसिद्ध प्रसिद्ध मिहमान लोग जो अकसर आश्रम में आते हैं।"

"नारायण गुरु की आज्ञा पाकर अब हमारे कोषाध्यक्ष सत्याग्रह युद्ध के स्मरणार्थ एक शाला बांधने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप किस तरह यहां जल्दी आवेंगे यह सोचने हो में बहुतेरे लोग व्यस्त रहते हैं। मैं आशा करता हूं कि ईश्वर आपको यहां जल्दी आने के लिए तन्दुरुस्ती और समय दोनों दे।

वायकोम के सत्याग्रही जिस तरह विचारपूर्वक ध्यान दे कर सबका इन्तजाम कर रहे हैं इससे सफलता का पूरा पूरा यकीन होता है। इसमें अधिक समय लगता हुआ दिखाई दे सकता है लेकिन मेरा यह बुद्धिपूर्वक विश्वास है कि यह जल्दी से भी जल्दी पहुंचने का रास्ता है। अछूतपन के खिलाफ लड़ना एक धार्मिक युद्ध है। यह एक सच्चा रास्ता है। यह युद्ध मनुष्यत्व के सन्मान को स्वीकार कराने के लिए है। यह युद्ध हिन्दू-धर्म के एक महान सुधार के लिए है। धर्मान्ध लोगों के किले पर यह धावा है। इसमें जीत वे पावेंगे, जो यकीनन मिलेगी, उस धैर्य और त्याग के साथ ही है जो हिन्दू-युवकों का यह मण्डल भक्ति-पूर्वक दिखा रहा है। प्रतीक्षा करना उनके लिए अपनी आत्मशुद्धि करने का रास्ता है। यदि वे इसमें बराबर लगे रहें तो वे भावी भारतवर्ष के बनानेवालों में गिने जायंगे।

उन सत्याग्रहियों को जो यह चाहते हैं कि मैं वायकोम जाऊं मैं सिर्फ यकीन दिला सकता हूं कि मैं उनके वहां पहुंचने के लिए उत्सुक हूं। मैं मौका देख रहा हूं। मुझे समय देने के लिए जब इतने निमंत्रण मिल रहे हैं तब उनमें से पसन्द करना मुश्किल मालूम होता है। मेरा दिल और प्रार्थना उनके साथ है। यह कौन कह सकता है कि वे मेरी उनके दरम्यान शारीरिक उपस्थिति से अधिक नहीं हैं।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

ग्राहकों को सूचना

जिन ग्राहकों की मीयाद इस महीने के अन्त में पूरी होती है उनके पते की चिट पर हासिल के लिए महीने के आखीर में मीयाद पूरी होने की सूचना की छाप लगा दी जाती है। ग्राहकों को चाहिए कि जिस महीने के अन्त में उनका चन्दा पूरा होता है उस महीने में मनीऑर्डर द्वारा चन्दा पहले ही भेज दें।

यह छाप महीने के अन्त तक, अर्थात चार सप्ताह तक, बराबर पते की चिट पर लगाई जायगी और यदि नये साल का चन्दा महीना खतम होने के पहले न मिलेगा तो बिना किसी सूचना के पत्र बंद कर दिया जायगा।

चन्दा भेजने के वक्त मनीऑर्डर के कूपन में अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखना चाहिए।

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन" अहमदाबाद

दिसंबर का सूत

	प्रान्त	प्रतिनिधि	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
१	अजमेर	१	४	५	९,०००	१	०
२	आन्ध्र	२२६	१९३	४१९	९ लाख	०	०
३	आसाम	१९	५४	७३	०॥ लाख	४१	१
४	बिहार	६५	१७४	२३९	४॥ लाख	२	४
५	बंगाल	११८	४६९	५८७	१२॥ लाख	५६	१७
६	बरार	५	२५	३०	०॥ लाख	६	०
७	बंबई	२३	९७	१२०	३ लाख	३२	४
८	बर्मा	१	४६	४७	१ लाख	१०	०
९	मध्य प्रांत (हिन्दी)	२०	३६	५६	०॥ लाख	४	०
१०	मध्य प्रांत (मराठी)	४२	४७	८९	१॥ लाख	१७	३
११	देहली	२	३३	३५	०॥। लाख	०	०
१२	गुजरात	८८	११६७	१२५५	३० लाख	१३५	५
१३	कर्णाटक	०	२	२	५,०००	०	०
१४	केरल	०	१	१	२, ००	०	०
१५	महाराष्ट्र	६९	१२७	१९६	३॥। लाख	२९	२
१६	पंजाब	१०	१२	२२	०॥ लाख	१	१
१७	सिंध	३६	४९	८५	१। लाख	०	०
१८	तामिल नाड	७१	४८४	५५५	११॥। लाख	२	११
१९	संयुक्त प्रांत	६९	६५	१३४	२ लाख	८	५
२०	उत्कल	२५	३०	५५	१। लाख	६	२
	कुल	८९०	३११५	४०८५	८५ लाख	४३०	७५

समयानुकूल अंक

जब कि हिन्दू-मुसलमान का सवाल पर देश का ध्यान लगा हुआ है नीचे लिखे अंकों का ब्योरा पाठकों के लिए उपयोगी होंगे। ये १९२१ की मनुष्य-गणना के विवरण से लिये गये है—

प्रांत		हिन्दू	सिक्ख	जैन	बौद्ध	मुसल्मान	ईसाई	कौमी धर्म	दूसरे
हिन्दुस्तान (समस्त)	...	६८.४१	१.०३	.३७	३.६६	२१.७४	१.५०	३.०९	२.०
बंगाल	...	४३.२७	...	.०३	.५७	५३.९९	.३१	१.८१	.०९
बिहार और उड़ीसा	...	८२.८२	.०१	.०१	...	१०.८५	.७६	५.५३	.०१
बंबइ . .	...	७६.५७	.०४	१.११	.०१	१९.७४	१.३७	.६४	.५२
मध्य प्रांत और बरार	...	८३.५३	.०१	.४९	...	४.०५	.३०	११.६०	.०२
पंजाब... ...	...	३०.८४	११.०९	.१७	.०१	५५.३३	१.५९	...	.९७
मद्रास... ...	...	८८.६४	...	.०६	...	६.७१	३.२२	१.३७	...
संयुक्त प्रांत ...	..	८४.६४	.०३	.१५	...	१४.२८	.४४	...	.४६
आसाम ...	...	५४.३३	.०१	.०५	.१७	२८.९६	१.६८	१४.७९	.०१
बलुचिस्तान ...	...	८.६९	१.८२	...	.०४	८७.३१	१.५९	...	.५५
ब्रह्मदेश ...	...	३.६८	.०४	.०१	८५.०६	३.८०	१.९५	५.३४	.१२
देहली ...	...	६४.१७	.५७	.९६	...	२९.०४	२.७७	...	२.५३
सीमाका प्रांत ...	...	६.६६	१.२५	...	...	९१.६२	.४७	...	...

मो० क० गांधी

हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न

वार्षिक मूल्य [illegible]
छः मास का [illegible]
एक प्रति का [illegible]
विदेशों के लिए [illegible]

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक २८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, फाल्गुन बदी ११, संवत् १९८१ गुरुवार, ९ फरवरी, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

पहली मार्च को याद रक्खो

पाठक इस बात को भूले न होंगे, कि बेलगांव में महासभा की बैठक के बाद ही कुछ कार्यकर्ताओं ने १ मार्च के पहले स्वयं कातनेवाले तथा अन्य सदस्यों की संख्या भेजने का वादा किया था। वह दिन अब नजदीक आ रहा है। मेरे सामने उन सज्जनों की नामावली मौजूद है जिन्होंने ऐसा वादा किया था। मैं आशा करता हूं, वे अपने वचन का पूरापूरा पालन करेंगे। लोगों की जानकारी के लिए मैं यह बता देना चाहता हूं कि उस समय उपस्थित जनों ने सारे देश के लिए ६८०३ सदस्य बनाने का वादा किया था। फिर भी उस समय सब प्रान्तों के कार्यकर्ता मौजूद नहीं थे। पर, उदाहरण के लिए, बिहार और गुजरात ने बेलगांव के वादे से अधिक संख्या दर्ज करने का निश्चय किया है। यदि भिन्न भिन्न प्रान्तों के मन्त्री कृपा करके स्वयं कातनेवाले तथा अन्य सदस्यों की संख्या इस मास के अन्त तक यंगइन्डिया के नाम तार के जर्ये भेज दें तो बड़ी अच्छी बात हो। कार्यकर्ता लोग सब जगह स्वेच्छापूर्वक कातनेवाले सदस्य प्राप्त करने के काम को चार आना देनेवाले सदस्यों की अपेक्षा मुश्किल पा रहे हैं। मेरे नजदीक कताई के मताधिकार की कीमत उसकी कठिनाई में ही है। इस कठिनाई का कारण योग्यता की कमी नहीं बल्कि निश्चय और एकाग्रता की कमी है। क्योंकि यह बात ध्यान में रहे कि इस कठिनाई का अनुभव सिर्फ चरखे में अविश्वास रखनेवाले लोगों को ही नहीं हो रहा है बल्कि विश्वास रखनेवाले लोगों को भी हो रहा है। वे सहसा वादे कर लेते हैं और यदि अधिक नहीं तो उतनी ही जल्दी तोड भी डालते हैं, जैसा कि दिसम्बर के सूत के अंकों से मालूम होता है। इसलिए मैं आशा करता हूं कि जिन सज्जनों ने वादे किये हैं वे अब इसके लिए अविराम प्रयत्न करेंगे।

बंगाल के अछूत

बंगाल से एक सज्जन पत्र लिख कर पूछते हैं—

(१) बंगाल में अछूतों को कुंवें से पानी नहीं लेने देते और जिस जगह पीने का पानी रक्खा हो वहां उन्हें जाने भी नहीं देते। इस बुराई को दूर करने के लिए क्या करना चाहिए? यदि हम उनके लिए अलग कुवें खुदवावें और अलग शालायें स्थापित करें तो इसके माने इस बुराई के लिए छूट देना होगा।

(२) बंगाल के अछूतों का झुकाव इस बात की तरफ है कि ऊंची जातिवाले उनके हाथ का पानी पीयें। लेकिन वे खुद अपने से नीची जातिवालों के हाथ का पानी लेने से इन्कार करते हैं। उनकी इस गलती को सुधारने के लिए क्या करना चाहिए?

(३) बंगाल की हिन्दू-महासभा और आमतौर पर हिन्दू लोग लोगों से यह कहते हैं कि अछूतों के हाथ का पानी पाने का विचार आपको पसंद नहीं है।

मेरे उत्तर ये हैं—

(१) इस बुराई को दूर करने का रास्ता तो है अछूतों के हाथ का पानी पीना। मैं यह नहीं खयाल करता कि उनके लिए अलग कुवें खुदवाने से यह बुराई कायम रहेगी। अछूतपन के परिणामों को दूर करने में बहुत समय लगेगा। इस डर से कि सार्वजनिक कुवों का उन्हें उपयोग न करने दिया जायगा, अछूतों को अलग कुवें बनवा देने से जो मदद मिलती हो उसे रोक रखना ठीक न होगा। मेरा विश्वास तो यह है कि उनके लिए यदि हम अच्छे कुवें बनावेंगे तो बहुत से लोग उनका इस्तेमाल करेंगे। ऊंची जातिवाले हिन्दू उनके प्रति अपने कर्तव्य का खयाल करके उनके संबंध में अपने भ्रमों को दूर करते रहेंगे और इसके साथ ही साथ अछूतों में [illegible] सुधार होता रहना चाहिए।

(२) जब ऊंचे कहलाने वाले हिन्दू अछूतों को छूना शुरू कर देंगे तब अछूतों में भी अछूत-पन कुदरती तौरपर ही नष्ट हो जायगा। अछूतों में भी जो सबसे नीचे दरजे के हैं उन्हीं से हमारा कार्य शुरू होना चाहिए।

(३) मैं यह नहीं जानता कि बंगाल की महासभा मेरे नाम से क्या कहती है। मेरी स्थिति तो बिल्कुल साफ है। अछूतों को शूद्रों में गिनना चाहिए और उनके साथ वैसा ही व्यवहार रखना चाहिए जैसा कि हम शूद्रों के साथ रखते हैं और चूंकि हम शूद्रों के हाथ का पानी पीते हैं, हमें अछूतों के हाथ का पानी पीने में भी न झिझकना चाहिए।

देगी। यह बात नहीं कि सभी गांवों की यह हालत हो। यद्यपि वे एक दूसरे के बहुत नजदीक हैं, हर एक के लिए अपना अलहदा सवाल है और हर एक की जुदी खासियत है। जिन गांवों का मैंने जिक्र किया है उनके लिए आशा का यदि कोई साधन है तो वह एक-मात्र चरखा ही है। उसे न तो मेवेशी चर सकते हैं, न बाढ़ा बहा सकता है। कुदरत के निष्ठुर उत्पात से बचने का, तथा मनुष्य के उपद्रवों से भी कुछ रक्षा करने का यही साधन है।

जो देशप्रेमी युवक ग्राम्य-जीवन की कठिनाइयों का खयाल नहीं करते, और जो चुपचाप तथा निरन्तर के परिश्रम से जो कि बहुत भारी तो नहीं जाता है, फिर भी अपनी एक-रूपता के कारण काफी भारी है, आनन्द प्राप्त कर सकते हैं, उनके लिए काम का पहाड़ पड़ा हुआ है। जीवनदायी उद्योग की एकविधता को कद कर पाने के लिए काफी निश्चय और एकाग्रता की जरूरत है। संगीत का नया विद्यार्थी उसके आरंभिक पाठों को कष्टदायक पाता है; पर ज्यों ही वह इस कला में प्रवीण हो जाता है, उसको एकविधता उसके लिए आनन्ददायिनी हो जाती है। यही बात ग्राम—कार्यकर्ताओं पर घटती है। ज्यों ही वे शहर—जीवन के नशे की उत्तेजना से बरी हो जायंगे और अपने काम में लग जायंगे, शारीरिक श्रम की एकविधता उन्हें बल और आशा प्रदान करेगी; क्योंकि उसमें उत्पादक शक्ति है। सूर्य—मण्डल के अचूक और नियम-पूर्वक परिभ्रमण को देखकर किसका जी ऊब उठा है? काल के बराबर पुरातन होने पर भी वह नित नये आश्चर्य और स्तुति को उत्तेजना देता है। और उसकी सम—गति और कार्य-विधि में गड़बड़ होने से सारी मनुष्यजाति का सर्वनाश हो समझिए। यही बात ग्राम—सूर्य-मण्डल पर भी घटती है। जिसका कि मध्यबिन्दु है चरखा। (य० इ०)

दो मत

एक महाशय लिखते हैं,—"खादी पहननेवाले आपको धूनते हैं, आपको खुश करने के लिए आपके सामने खादी पहन लेते हैं। कितने ही लोग आपको खुश रखने के लिए कातते हैं। पर न तो उन्हें खादी में विश्वास होता है न चरखे में। आप क्यों सिधाई में आकर मुफ्त में अपना और दूसरों का समय बरबाद करते हैं?" यह उनके पत्र का भावार्थ है।

यदि मैं किसीसे कहूं कि शराब न पीओ और वह सदा के लिए नहीं पर थोड़े समय के लिए उसे छोड़ दे अथवा शराब न पीने के लाभों का कायल न होते हुए भी वह मेरे खातिर, या मुझे खुश करने के लिए शराब छोड़ दे तो मुझे उसको अंगीकार करना चाहिए या नहीं? इस तरह थोड़े समय के लिए छोड़ देना फायदायक हो सकता है? यदि इसमें लाभ हो तो इस तरह सूत कातने और खादी पहनने में भी लाभ हो सकता है। अच्छा काम थोड़े समय के लिए अथवा शर्म के मारे करने से भी लाभ तो होता है। आज तो काम मुरौवत में होता पर कल ही खुद अपने लिए हो सकता है। यही सत्कर्म की बलिहारी है। कुकर्म ही, न तो शर्माशर्मी, न डर से, न क्षण के लिए हो सकते हैं।

परन्तु एक ओर जहां चरखे को सन्देह की दृष्टि से देखनेवाले हैं तहां दूसरी ओर श्रद्धा के साथ उसे चलानेवाले भी हैं। एक नमूना लीजिए—

'चरखे को और लोग चाहे कितने ही छोड़ दें, पर मैं उसे जिन्दगी भर नहीं छोड़ सकता। यह सुभग घर्षणा में अपने हृदय और बुद्धि की सुनता हूं। यहां भी चरखा तो साथ ही रखता हूं। यहां के लोग खादी पहनते हैं। सारे सिरोही इलाके में खादी का अच्छा प्रचार है। बम्बई अथवा दूसरी ऐसी ही नगरियों के मार्फत जो अड़चना यहां आती है उसे छोड़ दें तो साफ दिखाई देता है कि यहां खादी का काफी इस्तेमाल होता है। कितने ही वर्षों से मेरे 'जीवन चक्र' के घूमने के साथ कितनी ही बहनें मेरे मुकाम पर आती हैं और मुझे कातते हुए देख कर विस्मित होती हैं। जान बूझ कर हलके दिल से जब मैं उनके आश्चर्य-चकित होने का कारण पूछता हूं और वे निष्कपट भाव से कहती हैं 'आप चरखा क्यों कातते हैं? यह तो औरतों का काम है।' मैं उनकी समझ में आने लायक सीधी-सादी भाषा में अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें इसका रहस्य समझाता हूं।

खेती में स्त्री-पुरुष दोनों काम करते हैं। अर्थात् अनाज पैदा करने में स्त्री-पुरुष दोनों अपना अपना हिस्सा देते हैं। उसी तरह कपड़ा तैयार करने में भी दोनों की जरूरत है। कपास पकाना काम हमारा है। और उसके बाद उसे लोढ़ना, धुनकना, कातना, आंटी बनाना आदि काम आपका है। आपके सूत को बुन कर कपड़े बना देना काम हमारा है। आज तो आपने भी अपना काम छोड़ दिया है और हम भी प्रमादी हो गये हैं। इससे अधिक पराधीन हो गये हैं। आज विवाह जैसे शुभ अवसर पर कपड़े के लिए हमें कहां कहां दौड़ना पड़ता है? और यदि दुकानदार के पास कपड़ा न हो तो हमारी अवस्था कैसी असहाय हो जाती है? कैसे दीन-वदन दिखाई देते हैं? इसका अर्थ यह है कि हमें अपना कपड़ा तैयार करना चाहिए। जब हम जेवनारें करते हैं तब पकान्न बम्बई के किसी हलवाई के यहां से क्यों नहीं लाते? खुद अपने ही घर उन्हें तैयार कराते हैं और निमंत्रित जनों को भोजन कराते हैं। अपनी गरीब की झोपड़ी हमें मुबारक रहे। दूसरों की हवेलियां हमारे काम की नहीं। इस भावना का पोषण करनेवाले आपसे ज्यादह क्या कहूं? जबसे आपने सूत कातना छोड़ दिया तभीसे यह दशा उपस्थित हुई है। आप कहेंगी कि हमें समय नहीं मिलता। जब गप—शप मारने का तो अवकाश मिलता है तब यह दलील बिलकुल लचर है कि काम करने के लिए वक्त नहीं मिलता। यदि आपको बारीक कपड़े चाहिए तो बारीक कातो। मुझे पतली रोटी की जरूरत हो तो मैं रोटी पतली बनाऊंगा और मोटी रोटी खाना हुआ तो उसके लिए वैसा ही आटा गूंधूंगा और मोटी रोटी तैयार करूंगा। आप मेरा १२-१४ नंबर का सूत देख कर आश्चर्य क्यों करती हैं? इससे तो बीस गुना बढ़िया बारीक सूत कातनेवाले हिन्दुस्तान में मौजूद हैं। आपको रंगीन कपड़े चाहिए तो खादी भी रंगी जा सकती है। आप उसे रंगा लें और जैसा जी चाहे उसे पहनो ओढ़ो, लेकिन पहनो अपना ही कपड़ा। यह तो आप समझ ही सकते हैं कि इससे अपना पैसा बच रहता है।

यदि घर में औरतें रसोई नहीं बना सकतीं अथवा वे रसोई नहीं बनाती तो क्या पुरुष भूखे रहेंगे? यदि आप इससे इन्कार करती हैं तो जब आपमें से बहुतों ने चरखे एक कोने में रख दिये हैं तो मुझ जैसों को क्या करना चाहिए?"

यह पत्र जरा लंबा है लेकिन उसमें चरखा-भक्त के शुद्ध उद्गार होने के कारण उसे यहां देने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होता। इस प्रकार काम करनेवाले जहां तहां सेवा कर रहे हैं; इसका हमें खयाल तक नहीं है।

कार्यकर्ताओं को तो तटस्थ रहना चाहिए। पहले अभिप्राय को पढ़ कर निराश न होना चाहिए और दूसरे से फूल न जाना चाहिए। रास्ता लंबा है, बीच में नदियां हैं जिन पर पुल नहीं हैं, जंगल हैं; लेकिन फिर भी चरखा—रूपी ध्रुव पर दृष्टि रख कर अथक अविराम मंजिल तय करना होगी। (नवजीवन) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन बदी ११, संवत् १९८१

हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं :—

"आपने यं. इ. में एक पत्र-लेखक की इस पुकार को स्थान दिया है कि तालीम के बारे में मुसल्मान लोग बहुत पिछड़े हुए हैं। पर अब मैं आपके सामने एक और ऐसी पुकार पेश करना चाहता हू जो कि तालीमवाली पुकार से भी ज्यादह बेतुकी है। वह यह कि 'हिन्दुस्तान में मुसल्मानों की संख्या कम है।' कितनी ही बार यह बात कही गई है और कितनी ही बार राजनैतिक बातों में यह दलील चुपचाप मान ली गई है। पर क्या दर असल उ[illegible] अल्प-संख्या है? अगर उनके सिर्फ एक ही फिरके, सुन्नी [illegible] को ले ले तो क्या वह हिन्दुओं के किसी भी एक फिरके [illegible] संख्या में बढ कर नहीं है? बल्कि भारत के ईसाई, पारसी, सिक्ख, जैन, यहूदी और बुद्ध किसी भी धर्मवालों से बढ कर नहीं है? और क्या यह बात सच नहीं है कि हिन्दू लोग कितनी ही जातियों और फिरकों में बँटे हुए हैं जो कि सामाजिक बातों में उतने ही एक दूसरे से दूर हैं जितने कि मुसल्मान गैर-मुसल्मान से? अच्छा तो फिर अछूतों का क्या होगा? क्या उनकी तादाद 'मुस्लिम अल्पसंख्या' के बराबर नहीं है? हिन्दुस्तान के मुस्लिम जब पृथक और विशेष व्यवहार, रक्षा और गैरंटी चाहते हैं तब अछूतों का दावा कितना मजबूत होगा? वे तो सदियों से दलित-पीड़ित होते आये हैं। उनकी अवस्था से तो किसी भी मुस्लिम या स्पृश्य लो[illegible] की अल्पसंख्या के 'भविष्य की आशंका' की तुलना [illegible] हो [illegible]कती। साक्ष्य के तौर पर वायकोम सत्याग्रह, पालघाट का झगड़ा, और बम्बई के 'टूक टूक कर देंगे' की प्रतिज्ञा करनेवालों को लीजिए। उन आदिम जातियों का तो यहां मैं जिक्र ही नहीं करता हू जिनकी कि गिनती हिन्दुओं में की जाती है। तब क्या सचमुच अकेले मुसल्मानों की ही अल्प-संख्या है?"

यह पत्र गरमागर्मी से भरा हुआ है, इसलिए इसे छापा है। फिर भी मेरी, एक निष्पक्ष निरीक्षक की, दृष्टि में लेखक की यह दलील कमजोर है जिसके कि द्वारा वे यह दिखलाना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में मुसल्मानों की अल्पसंख्या नहीं है। लेखक इस बात को भूल [illegible]ते हैं कि दावा तो सारे मुसल्मानों का सारे हिन्दुओं के खिलाफ है। लेखक दही और मही दोनों नहीं खा सकते। यद्यपि हिन्दुओं के आपस में बहुत कुछ दलादली है, तथापि वे अकेले मुसल्मानों का ही [illegible] [illegible] अ-हिन्दुओं का कम-ज्यादह एक हो कर मुकाबला कर रहे हैं जि[illegible] [illegible] मान भी यद्यपि आपस में अनेक दलों में विभक्त हैं तो भी कुदरती तौर पर तमाम गैर-मुस्लिमों का मुकाबला एकादल से कर रहे हैं। हकीकत को आंखों के ओट कर के या अपनी तजवीजों के मुआफिक उसको बैठा कर हम कभी इस सवाल को हल नहीं कर सकते। हकीकत यह है कि मुसल्मान सात करोड़ हैं और हिन्दू बाइस करोड़। हिन्दुओं ने इस बात को कभी नामंजूर नहीं किया। अब हम यह भी देखें कि मामला दर असल क्या है? अल्पसंख्यक लोग बहुसंख्यक लोगों से हमेशा महज इसलिए नहीं डरते कि उनकी बहुसंख्या है। मुसल्मान हिन्दुओं की बहुसंख्या से इसलिए डरते हैं कि उनका कहना है, हिन्दुओं ने हमेशा ही हमारे साथ इन्साफ नहीं किया है, हमारे मजहबी जजबात की इज्जत नहीं की है और उनका कहना है कि हिन्दू लोग तालीम और धन-दौलत में हमसे बढे चढे हैं। ये बातें ऐसी ही हैं या नहीं इस सवाल से हमें यहां कोई मतलब नहीं। हमारे लिए इतना ही काफी है कि मुसल्मान इन बातों पर विश्वास रखते हैं और हिन्दुओं की बहुसंख्या से डरते हैं। मुसल्मान लोग इस डर का इलाज कुछ अंश में पृथक् निर्वाचन और विशेष प्रतिनिधित्व के द्वारा—कुछ बातों में तो अपनी संख्या से भी ज्यादह—करना चाहते हैं। हिन्दू लोग मुसल्मानों की अल्प-संख्या को तो मानते हैं पर उनके इन्साफ न करने के इल्जाम से इन्कार करते हैं। इसलिए इसकी तसदीक करने की जरूरत है। मैंने हिन्दुओं को इस कथन का खंडन करते नहीं देखा है कि वे [illegible]म और धनदौलत में मुसल्मानों से बढ कर हैं।

इधर हिन्दू भी मुसल्मानों से डरते हैं। उनका कहना है कि जब कभी मुसल्मानों के हाथ में हुकूमत आई है उन्होंने हिन्दुओं पर बड़ी बड़ी ज्यादतियां की हैं और कहते हैं कि हालां कि हमारी बहु-संख्या है तो भी मुट्ठीभर मुसल्मानों के हमले हमारे छक्के छुड़ा देते हैं। हिन्दुओं के सामने उन पुराने तजरिबों का खतरा हमेशा खड़ा रहता है, और अग्रगण्य मुसल्मानों की नेक-नीयती के होते हुए भी वे मानते हैं कि मुसल्मान जनता किसी भी मुसल्मान गुंडे का साथ दिये बिना न रहेगी। इसलिए हिन्दू मुसल्मानों की कमजोरी के उज्र को नामंजूर करते हैं और लखनऊ के ठहराव के तत्व को व्यापक करने के विचार को दिल में स्थान देने से इन्कार करते हैं। यहां भी यह सवाल नहीं उठता कि हिन्दुओं का यह डर कहांतक ठीक है। हमें यही मान कर चलना होगा कि यह वस्तुस्थिति है। किसी भी जाति या नेता की नीयत को बुरा बताना अनुचित होगा। मालवीयजी या मियाँ फजलीहुसैन पर अविश्वास करना मानों इस प्रश्न के निपटारे को स्थगित करना है। दोनों अपने दिल के विचारों को ईमानदारी के साथ पेश करते हैं। ऐसी हालत में अक्लमन्दी इसी बात में है कि तमाम छोटे बड़े सवालों को एक ओर रख दें और स्थिति जैसी कुछ है उसका मुकाबला करें और न कि अपनी कल्पना के अनुसार चाही हुई स्थिति का।

इसलिए मेरी राय में लेखक ने, चाहे अनजान में ही हो, अपने पक्ष को जरूरत से ज्यादह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। हां, उनका यह कहना सच है कि खुद हिन्दू ही परस्पर विरोधी दलों में विभक्त हैं। उनमें ऐसे दल हैं जो अपने लिए अलग अलग व्यवहार का दावा ले कर खड़े होते हैं। उनका यह कहना भी ठीक है कि पृथक् प्रतिनिधित्व के लिए मुसल्मानों की अपेक्षा अछूतों का पक्ष कहीं मजबूत है। लेखक ने मुसल्मानों की अल्पसंख्या की हकीकत के विरोध में आवाज नहीं उठाई है बल्कि जातिगत प्रतिनिधित्व और पृथक् निर्वाचन के विरोध में उठाई है। उन्होंने यह दिखलाया है कि लखनऊ के ठहराव के सिद्धांत का विस्तार करने से असंख्य उपजातियों और दूसरी जातियों के लिए जातिगत प्रतिनिधित्व का सवाल खड़ा हुए बिना न रहेगा। ऐसा करना स्वराज्य के शीघ्र आगमन को अनिश्चित समय तक स्थगित करना है। लखनऊ ठहराव के सिद्धान्त का विस्तार करना या उसको कायम तक रखना भयावह है। और मुसल्मानों के दुःख-दर्दों पर ध्यान न देना भी, मानों उन्हें हम महसूस ही न करते हों, स्वराज्य को मुलतवी [illegible]ना है। ऐसी हालत में स्वराज्य के प्रेमी तबतक दम नहीं ले

सकते जबतक कि इस सवाल का ऐसा निपटारा न हो जाय जैसे एक ओर मुसल्मानों की आशंका दूर हो जाय और दूसरी ओर स्वराज्य के लिए भी खतरा न रह जाय।

ऐसा निपटारा असंभव नहीं है। एक तो यही सुन लीजिए—

मेरी राय में मुसल्मानों के इस दावे को कि बंगाल और पंजाब में उनकी बहुमति उनकी संख्या के अनुसार रहे, माने बिना नहीं रह सकते। उत्तर या उत्तर-पश्चिम के डर के कारण इस दावे को रोक नहीं सकते। हिन्दू अगर स्वराज्य चाहते हों तो उन्हें जोखिम के झोंके के सामने सिर देना चाहिए। जबतक हम बाहरी दुनिया से डरते रहेंगे तबतक हमें स्वराज्य का ख्याल छोड़ देना होगा। पर स्वराज्य तो हमें लेना ही है, इसलिए मैं मुसल्मानों के न्यायोचित दावों का विचार करते समय हिन्दुओं के डर की दलील को खारिज करता हूं। अपनी भावी सहीसलामती को खतरे में डाल कर भी हमें इन्साफ पर कायम रहने की हिंमत होनी चाहिए।

मुसल्मान जो पृथक् निर्वाचन चाहते हैं वह पृथक् निर्वाचन के लिए नहीं बल्कि इसलिए कि वे धारासभा-मंडल में तथा दूसरे निर्वाचित मंडलों में खुद अपने सच्चे प्रतिनिधि भेजना चाहते हैं। यह तो कानून के जरिये अनिवार्य करने की अपेक्षा खानगी तौर पर तजवीज कर लेने से अच्छी तरह हो सकता है। खानगी तौर पर हुई तजवीज में घटा-बढ़ी की गुंजाइश रहती है। मगर कानूनी कार्रवाई के ज्यादह सख्त हो जाने की संभावना रहती है। खानगी तजवीज निरंतर दोनों दल के पारस्परिक आदर और विश्वास की परख करती रहेगी। पर कानूनी कार्रवाई ऐसे आदर और विश्वास की आवश्यकता का मौका ही नहीं आने देती। खानगी तजवीज के मानी हैं, घरेलू झगड़े का घरेलू निपटारा और दोनों के दुश्मन अर्थात् विदेशी हुकूमत का सच्ची तरह से मिल कर मुकाबला। पर कहते हैं कि जो खानगी तजवीज मैं सुझा रहा हूं उस मुताबिक काम करने में कानून बाधक होता है। यदि ऐसा है तो हमें उस कानूनी विघ्न को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए, न कि नई पैदा करने या जोड़ने की। इसलिए मेरी तजवीज यह है कि पृथक् निर्वाचन का ख्याल छोड़ दिया जाय और इलके-विशेष में दोनों की संयुक्त सम्मति से चाहे हुए और तय शुदा तादाद में मुस्लिम तथा दूसरे उम्मीदवारों के चुनाव की सूरत पैदा की जाय। मुस्लिम उम्मीदवार पहले से प्रसिद्ध मुस्लिम संस्थाओं के द्वारा नामजद किये जायं। इस मौके पर नियत से अधिक तादाद में प्रतिनिधि रखने के सवाल में पड़ने की जरूरत नहीं। जबकि खानगी ठहराव के उसूल को सब लोग कुबूल कर लेंगे तब इसके रास्ते की तमाम दिक्कतें पर विचार कर लिया जायगा।

हां, इसमें कोई शक नहीं कि मेरे इस प्रस्ताव में पहले से यह बात गृहीत कर ली जाती है कि इस सवाल में लगे हुए तमाम लोग स्वराज्य को ध्यान में रख कर इसको हल करने की कोशिश सच्चे और साफ दिल से चाहते हैं। यदि जातिगत प्रभुता हमारा मकसद हो तो हर तरह की खानगी तजवीज बेकार होगी। पर अगर स्वराज्य ही हम सब का लक्ष्य हो और दोनों पक्ष के लोग महज राष्ट्रीय दृष्टि-बिन्दु से ही उसे हल करना चाहें तो फिर उसके बेकार होने के अंदेशे की मुतलक जरूरत नहीं। उल्टा हर फरीक नेकनीयती के साथ उसके अनुसार चलने में अपना हित समझेगा।

फिर भी कानून के द्वारा अगर कुछ करना है तो वह यह कि मताधिकार न्यायोचित हो जिससे कि हर जाति के लोग यदि चाहें तो अपनी तादाद के लिहाज से मतदाताओं में नाम दर्ज करा सके। मतदाताओं की सूची ऐसी होनी चाहिए जिससे संख्या के लिहाज से प्रतिनिधि पहुंच सकें। पर इसके लिए वर्तमान मताधिकार की कार्य-नीति की छान-बीन करना होगी। मेरी नजर में तो वर्तमान मताधिकार किसी भी स्वराज्य योजना में स्थान पाने योग्य नहीं है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

विज्ञापनबाजी से अनर्थ

आज मैं हिन्दी-संसार का ध्यान एक ऐसे विषय की ओर खींचना चाहता हूं जिसपर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया है और जिन्होंने दिया है वे उसके पूरे अनर्थ और भयंकरता को या तो उसके असली रूप में देख नहीं पाये हैं या दिखा नहीं पाये हैं। वह है विज्ञापनबाजी से होनेवाला अनर्थ। विज्ञापनबाजी हमारे देश में एक नई चीज है, एक नई आफत है। अंगरेजी राज्य और पश्चिमी संस्कृति से जो जो बुरी चीजें हमने ग्रहण की हैं उनमें एक यह भी है। यह एक सामान्य नियम है कि विजित या गुलाम देश अपने मालिक की ऊपरी और बुरी बातों को जितना जल्दी अपना लेता है उतना उसकी अच्छी बातों को नहीं। पर देश के सौभाग्य से अब हमें आत्म-ज्ञान होता जा रहा है और हमारा सारासार-विवेक भी जाग्रत हो रहा है। अतएव मुझे आशा है कि पाठक इसे गौर से पढ़ेंगे, इसपर विचार करेंगे और यदि इसमें उन्हें कुछ सार दिखाई दे तो इसके लिए यथोचित आन्दोलन भी करेंगे।

विज्ञापनबाजी के दो हिस्से हैं—एक विज्ञापन छपाना और दूसरा विज्ञापन छापना। पहले हिस्से में ज्यादहतर दुकनदार लोग आते हैं, दूसरे में ज्यादहतर अखबारवाले। कितने ही अखबारवाले भी अपनी दुकानें रखते हैं या यों कहें कि कितने ही दुकनदार भी अपने अखबार—फिर वे मासिक हों, या साप्ताहिक हों, या दैनिक हों,—रखते हैं। कितने ही—प्रायः सब—अखबारवाले अपने अखबार को चलाने के लिए, बतौर एक सहायक साधन के, दुकानें रखते हैं, कितने ही दुकनदार अपनी दुकान चलाने के लिए अखबार निकालते हैं। दोनों तरह के अखबारवालों में एक बड़ा हिस्सा पुस्तक-प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं का है और एक बहुत छोटा हिस्सा दवाइयां बेचनेवालों का है। पुस्तक-प्रकाशन और पत्र-संचालन दोनों से जहां-तक संबंध है, ये दोनों संस्थायें एक दूसरे की पूरक हैं और यद्यपि इन कामों को करनेवाले कुछ व्यक्ति हमें धनाढ्य होते हुए दिखाई देते हैं तो भी इन संस्थाओं का प्रेरक हेतु साहित्य-सेवा ही है। हिन्दी के पुस्तक-प्रकाशक विशेष कर वे जिनके पास अपना छापखाना है, और पत्र भी हैं, बहुतांश में अपने छापेखाने की बदौलत ही धन एकत्र कर पाये हैं। पर वे इने गिने हैं। अधिकांश पत्र-संचालक तो बेचारे ज्यों त्यों कर के अपनी संस्थायें चलाते हैं-बहुतेरे तो कर्ज पर या धनी मित्रों की सहायता पर जीते रहते हैं और कितने ही तो अकाल ही में चल देते हैं! अस्तु।

मैं यह मानता हूं कि विज्ञापन एक जरूरी चीज है-प्रचारक और व्यापारी दोनों के लिए। पर साथ ही बहुत विचार के उपरान्त मेरा यह मत भी दृढ़ हुआ है कि विज्ञापन-बाजी ने हमारे देश में इस समय जो स्वरूप धारण किया है, वह महा अनर्थकारी है। उसका बहुत ही दुरुपयोग हो रहा है। उससे देश की भारी अ-सेवा हो रही है। इस कुप्रवृत्ति के प्रवाह को रोकने की सख्त जरूरत है। क्यों और किस तरह? आगे पढ़िये।

आजकल हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में छपनेवाले विज्ञापनों में हम मुख्यतः चार किस्म की चीजें देखते हैं—(१) साहित्य-कला-संबंधी, यथा पुस्तक, पत्र, चित्र, आदि (२) दवाओं के—विशेष कर, वीर्यवर्द्धक कामोद्दीपक दवाओं के (३) ऐश आराम या मनोरंजन की

चीजों के, जैसे खुशबूदार तेल, इत्र, हार्मोनियम, सरकस, खेल-तमाशे आदि के और (४) स्टेशनरी आदि जैसे कागज, स्याही, कसरत और मर्दानी खेलों की चीज आदि। विज्ञापन छपवानेवालों की दलील इन दो में से कोई एक हुआ करती है। (१) प्रचार के लिए या (२) रोजगार के लिए। छापनेवालों अर्थात् पत्र-संचालकों की (छापखाना भी विज्ञापन छापता है पर यहां मैं अखबारों का ही जिक्र करूंगा; क्योंकि यही विज्ञापनबाजी के जबरदस्त अखाड़े बन रहे हैं और दूसरे सेवा करने का दावा अखबार जितना करते हैं उतना छापखाने नहीं) दलील होती है पत्र को चलाने के लिए-जीवित रखने के लिए। प्रचार के लिए विज्ञापनों का छपाना और छापना खूब समझ में आ सकता है। पर उसके लिए न तो छपानेवाले को छपाई देने की जरूरत होनी चाहिए, न छापनेवाले को लेने की। 'सेवा' ही जब दोनों का दावा और हेतु है तब छपाई दे कर और ले कर 'सेवा' को महंगा क्यों बनाना चाहिए? मेरी राय में जिन बातों या चीजों के प्रचार की जरूरत देश-सेवा या समाज-सेवा के लिए है उनके लिए विज्ञापन की छपाई देना और लेना दोनों यदि अनीति-युक्त नहीं, तो अनुचित जरूर है। साहित्य और कला-संबंधी तथा अन्य ऐसी ही चीजों और बातों के विज्ञापनों की छपाई देना और लेना दोनों बन्द होना चाहिए। प्रचारक पत्र संपादक से निवेदन करें और संपादक या संचालक जिस वस्तु या बात को देश के हित के लिए आवश्यक समझें उसका विज्ञापन, एक या अधिक बार, जैसा वे उचित समझें, बिना छपाई लिए छाप दें। इससे एक तो प्रचारक संस्था को बचत होगी और दूसरे पत्र का नैतिक आधार मजबूत होगा। फलतः उसके ग्राहक भी बढ़ेंगे और उसकी घटी निकल जायगी।

अब रोजगार के लिए जो लोग विज्ञापन छपाते हैं और पत्र की पेट-पूर्ति के लिए जो विज्ञापन छापते हैं, उन्हें लीजिए। खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, तनदुरुस्ती रखने, ज्ञान बढ़ाने आदि के लिए आवश्यक चीजों के नीति-नियम के अनुकूल व्यापार के लिए स्थान है, न हो सो बात नहीं। पर इनकी तलाश में तो ग्राहक खुद ही रहता है। जब आज के से विज्ञापन के साधन न थे तब भी लोग जरूरी चीजों को पा लेते थे और व्यापारी का माल पड़ा न रहता था। फिर भी यदि विज्ञापन आवश्यक ही हो तो उनमें वस्तु के यथार्थ वर्णन और दर दाम तथा पते के उल्लेख के अतिरिक्त ग्राहक को फुसलानेवाली बातें न होनी चाहिए। और जो अखबार उन्हें छापें वे इतनी बातों पर ध्यान रक्खें (१) विज्ञापन गंदा या हानिकारक चीज का तो नहीं है (२) ग्राहक फुसलाये तो नहीं जाते हैं (३) चीजों के दर दाम ज्यादह तो नहीं रक्खे हैं और (४) वे खुद भी विज्ञापन की छपाई, कागज और छपाई आदि के खर्च से ज्यादह तो नहीं ले रहे हैं। बल्कि सबसे अच्छा तरीका तो यह होगा कि अखबार दो भागों में बट जायं (१) सेवक और (२) विज्ञापक। 'सेवक' पत्रों में विज्ञापन कतई न रहें—जो छपें वे केवल देश-सेवक-प्रचारक संस्थाओं की तरफ से भेजे हुए हों और मुफ्त में छपें। 'विज्ञापक' पत्र देश सेवा संस्थाओं के विज्ञापन मुफ्त में छापें और दूसरे अच्छे और उचित विज्ञापन दाम ले कर छापें। 'सेवक' पत्र राष्ट्र की चीज हों और वे समाज के आश्रय के पात्र समझे जायं: समाज उनके भरण-पोषण के लिए अपनेको बाध्य समझे। 'विज्ञापक' पत्र अन्य व्यापारियों की तरह समाज की सहायता पर जीवित रहने में अपमान समझें। आज 'सेवा' और 'रोजगार' की खिचड़ी हो रही है। फल यह होता है कि एक ओर बहुत बार 'सेवा' के नाम पर रोजगार होता है और दूसरी ओर रोजगार का साथ होने से 'सेवा' की गति कुण्ठित होती है। पाखण्ड बढ़ता है और सेवा पंगु होती है।

आज पत्र इस खयाल से विज्ञापन छापते हैं कि पत्र जीवित रहें या कीमत कम रख सकें जिससे वह अधिक लोगों तक पहुंचे, ग्राहकों को लाभ हो। पर इस मोह में वे ऐसी ऐसी बातों के लुभावने विज्ञापन उनके सामने रखते हैं जिनके वशीभूत होकर वे अखबार के मूल्य से भी ज्यादह रुपया बरबाद कर देते हैं और अपनी शारीरिक और नैतिक हानि भी कर बैठते हैं। इस प्रकार वे 'सेवा' और लाभ के हेतु से अ-सेवा और हानि करने के ही साधनीभूत होते हैं। 'काम-कला-रहस्य' जैसी पुस्तकों और अनेक प्रकार की और वीर्यवर्द्धक दवाइयों, तेलों आदि के विज्ञापनों से लाभ के बजाय हानि ही सिद्ध होती है। फिर कितने ही विज्ञापनों का ढंग और भाषा भी रुचि को भ्रष्ट करनेवाली होती है। खास करके वीर्यवर्द्धक दवाइयों के सामने तथा और जगह भी स्त्रियों के—विशेष कर सुन्दरियों के—भड़कीले चित्र देना तो मानों उन्हें अपने व्यापार का साधन बनाना है। हमारी माताओं और बहनों का यह कम अपमान नहीं है।

अब इस कुप्रवृत्ति के रुकने और रोकने की आवश्यकता अपने आप सिद्ध होती है। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इसको अपने हाथ में ले तो बहुत काम हो सकता है। हमारे संपादक बन्धु स्वयं भी इसके महत्व को समझ कर इस अनर्थ को रोक सकते हैं। संभव है कि बहुतेरे संपादक इस बुराई को दूर करना चाहते हों, पर लाचार रहते हों। उनके नजदीक यह पत्र के जीवन-मरण का सवाल हो। मैं उनकी कठिनाइयों को महसूस कर सकता हूं। पर इसका उपाय यही है कि एक तो वे शुद्ध जीवन को ही सच्चा जीवन समझें। और दूसरे इस बात पर श्रद्धा रक्खें कि यदि हम समाज की शुद्ध सेवा करते हैं तो हमारे पत्र के पेट की चिन्ता हमें न होनी चाहिए। हमारी यह श्रद्धा समाज के दिल में यह भाव जाग्रत और प्रज्वलित करेगी कि 'सेवक' की सेवा करना उसके भरण-पोषण की चिन्ता रखना हमारा काम है, धर्म है। पत्रकार इस बात को भूल जाते हैं कि विज्ञापन की आमदनी का सहारा ले कर एक तो वे उसके पोषण की जिम्मेवारी अपने सिर ले लेते हैं और दूसरे समाज को उसकी तरफ से उदासीन बना देते हैं। या तो हम 'सेवक' रहें या 'व्यापारी'। 'सेवक' समाज की सेवा करता है, 'व्यापारी' अपनी। जो सेवा पाता है वह सेवक का ख्याल रखता है और उसे रखना चाहिए। न रखना अपने कर्तव्य से चूकना है, अपनेको सेवा का अनधिकारी साबित करना है। अखबारों ने देश की बहुत सेवा की है, अब भी करते हैं; यदि वे इस बुराई से बच जायं तो उनके द्वारा बहुत शुद्ध और सच्ची सेवा होगी और वे संसार में पत्र-संपादन का बहुत उज्वल नमूना पेश करेंगे।

हरिभाऊ उपाध्याय

हिन्दू धर्म के तीन सूत्र

पादरा (बड़ौदा-राज्य) की ओर से अर्पित अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा—

"आपके प्रदर्शित प्रेम और अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देने के पहले मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूं। यदि मैं यह न कहूं तो मानों आपके प्रति मैं अपराध ही करूंगा। आप जो इतनी रात गये इतनी ज्यादह तादाद में यहां एकत्र हुए हैं यह देख कर मुझे बहुत आनन्द होता है, पर साथ ही मुझे दुःख भी होता है। इस सभा के व्यवस्थापकों ने जो व्यवस्था की है वह जान बूझ कर की है या अनजान में सो मैं नहीं जानता। पर हर सभा-स्थान में आनेवाले लोग अब मेरी खासियतें जान गये हैं। इनमें एक यह है कि यदि किसी भी जगह में मैं अछूतों

के लिए अलग विभाग करूं तो मुझे भारी चोट पहुंचे और कुछ भी बोलना मेरे लिए असंभव हो जाय। पर आपने (अपने अभिनन्दन में) कहा है और दूसरे लोग भी कहते हैं कि अहिंसा मेरे जीवन का परम सूत्र है। अहिंसा को मैं अपने जीवन में गूंथ रहा हूं। यदि यह बात सच हो तो मुझसे यह नहीं हो सकता कि मैं आपके दिल को चोट पहुंचाना चाहूं। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप बिना सोचे-समझे कुछ करें। रोष में भी मैं आपसे कुछ कराना नहीं चाहता। मैं जो कुछ आपसे करा सकता हूं वह आपके हृदय और बुद्धि को ही रिझा कर करा सकता हूं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि यदि आप अस्पृश्यों को हिन्दू-धर्म का कलंक मानते हों तो आप इस विषय में सहमत हों कि जो यह बांस की टट्टी हमें अन्त्यज भाइयों से जुदा कर रही है, वह निर्मूल हो जाय।"

ये शब्द मुंह में से निकल ही रहे थे कि कुछ लोग सभा से उठ कर शान्ति के साथ बांस की टट्टी के बंद छोड़ने लगे। यह देख कर गांधीजी कहने लगे—

"मैं यह नहीं कहता कि आप टट्टी को अभी तोड़ डालें या सभा में गड़बड़ कर के आप कोई काम करें। मैं तो आपकी संमति लेना चाहता हूं। क्या आप चाहते हैं कि यह टट्टी न रहे और हमारे अन्त्यज भाई-बहन हमारे साथ आकर बैठें? (बहुतेरे हाथ ऊपर उठे, सिर्फ एक हाथ खिलाफ उठा।) टट्टी टूटी, अन्त्यज सब के साथ आकर बैठ गये।

"आपने मुझे अभिनन्दन-पत्र तो दिया ही है। आपने जिस चौकठे में मढ़ा कर कागज पर अथवा खादी पर छाप कर जो अभिनन्दन-पत्र दिया उसका कोई मूल्य मेरे नजदीक नहीं, अथवा उतना ही है जितना आप खुद अपने आचरण के द्वारा आंक दें। पर अभी आपने इस टट्टी को तोड़ कर जो अभिनन्दन मेरा किया है वह हमेशा के लिए मेरे हृदय में अंकित रहेगा। ऐसा ही अभिनन्दन-पत्र मैं अपने हिन्दू-भाई बहनों से चाहता हूं। आप यदि मुझे थोड़ा-बहुत सूत लाकर दे देंगे, मेरे सामने तरह तरह के फल फूल मेवे ला कर रख देंगे, या अन्त्यज बालिका के हाथ से कुंकुम-तिलक करावेंगे (यहां कराया गया था) तो इससे मुझे खुशी नहीं हो सकती। ये चीजें तो मुझे सब जगह मिल जायंगी; पर अभी आपने जो चीज दी है उसके लिए तो प्रेम की जंजीर दरकार है। और मैं इस प्रेम की जंजीर के सिवा आपसे और कुछ नहीं चाहता। क्योंकि प्रेम अहिंसा का अंग है। अहिंसा का समावेश प्रेम में हो जाता है।

"सनातनी भाई शायद यह मानते हों कि मैं हिन्दू संसार के दिल पर आघात पहुंचाना चाहता हूं। मैं खुद अपनेको सनातनी गिनाता हूं। मैं जानता हूं कि मेरा दावा बहुत कम भाई-बहन कुबूल करते होंगे—पर मेरा यह दावा है और रहेगा और मैं तो कई बार कह चुका हूं कि आज नहीं तो मेरी मृत्यु के बाद समाज जरूर इस बात को कुबूल करेगा कि गांधी सनातनी हिन्दू था। 'सनातनी' के मानी हैं 'प्राचीन'। मेरे भाव प्राचीन हैं—अर्थात् ये भाव मुझे प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों में दिखाई देते हैं और उन्हें मैं अपने जीवन-रूप बनाने की कोशिश कर रहा हूं। इसी कारण मैं मानता हूं कि मेरा सनातनी होने का दावा बिल्कुल ठीक है। बना बना कर शास्त्रों की कथा कहनेवालों को मैं सनातनी नहीं कहता। सनातनी तो वही है जिसके रगोरेशे में हिन्दू-धर्म व्याप्त हो। इस हिन्दू-धर्म का वर्णन शंकर भगवान् ने एक ही वाक्य में कर दिया है 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'। दूसरे ऋषियों ने कहा है 'सत्य से बढ़ कर दूसरा धर्म नहीं।' और तीसरे ने कहा कि हिन्दू-धर्म का अर्थ है अहिंसा। इन तीन में से आप चाहे किसी सूत्र को ले लीजिए, उसमें आपको हिन्दू-धर्म का रहस्य मिल जायगा। ये तीन सूत्र क्या हैं? मानों हिन्दू-धर्म-शास्त्र को दुह दुह कर निकाला उनका नवनीत ही है। इस धर्म का अनुयायी, सनातन-धर्म का दावा करनेवाला मैं किसी भी शख्स के दिल को चोट पहुंचाना न चाहूंगा। मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूं कि आप अन्त्यजों से स्पर्श करें। क्योंकि अन्त्यज मनुष्य हैं। और चाहता हूं कि उनकी सेवा हो; क्योंकि वे सेवा के लायक हैं। माता जो सेवा बालक की करती है वही सेवा वे समाज की करते हैं। उनको अछूत मानना, उनका तिरस्कार करना मानों अपना मनुष्यत्व गवांना है। हिन्दुस्तान आज संसार में अछूत बन गया है। इसका कारण यह है कि वह अनेक कोटि अर्थात् असंख्य लोगों को अस्पृश्य मानता चला आया है। और इसका फल यह हुआ है कि हमारा सत्संग करनेवाले मुसलमान भी संसार में अस्पृश्य हो गये हैं। ऐसा उलटा परिणाम क्यों पैदा हुआ? इसका एक ही जवाब है। 'जैसा करोगे वैसा पाओगे' यह ईश्वर का न्याय है। संसार के द्वारा ईश्वर हमें इस न्याय की शिक्षा दे रहा है। यह कठिन समस्या नहीं है, सीधा न्याय है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" भगवान् कृष्ण ने कहा है कि तुम जिसतरह मुझे भजोगे उसीतरह मैं तुम्हें भजूंगा। इसलिए यदि आप उस बात को समझ लेंगे जो मैं आपसे चाहता हूं तो आपको कष्ट न उठाना पड़ेगा। मैं आपको पीड़ा देना नहीं चाहता। मैं आपसे जरूरत से ज्यादह बात कराना नहीं चाहता। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप अन्त्यजों के साथ रोटी-बेटी-व्यवहार करें। यह तो आपकी इच्छा की बात है। परन्तु अन्त्यज को अस्पृश्य मानना इच्छा का विषय नहीं। जिसका स्पर्श करना चाहिए उसे अस्पृश्य मानना और जो अस्पृश्य हैं उनका स्पर्श करना, इच्छा का विषय नहीं है। यदि आप अन्त्यज भाइयों के दुःखों को महसूस न कर सकें तो फिर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' किस तरह कह सकते हैं? उपनिषद् के रचयिता एक भी पाखण्डी न थे। उन्होंने जगत को ब्रह्ममय कहा है। अतएव हम यदि अन्त्यज के दुःख से दुःखी न होंगे तो हम अपनेको जानवर से भी बदतर साबित करेंगे। हमारा धर्म पुकार पुकार कर कह रहा है कि जो जीव जानवर के अन्दर है वही हम सब लोगों के अन्दर है। और आज हमने उस धर्म की गर्दन मरोड़ दी है। मैं तो दया-भाव से, प्रेम-भाव से, भ्रातृभाव से कहिए तो भ्रातृभाव से अस्पृश्यता का नाश करना चाहता हूं। यदि ऐसा करेंगे तो हिन्दू-धर्म की शोभा बढ़ जायगी। इसमें हिन्दू धर्म की रक्षा भी आ जाती है। हेतु यह नहीं है कि अन्त्यजों का मुसलमान बनना या ईसाई होना रुकेगा। किसी भी धर्म का आधार उसके अनुयायियों की संख्या पर अवलंबित नहीं रहता। इस खयाल से बढ़ कर कि धर्म-बल का आधार संख्या है, एक भी पाखण्ड नहीं। यदि एक भी शख्स सच्चा हिन्दू रहे तो हिन्दू-धर्म का नाश नहीं हो सकता, पर यदि करोड़ों हिन्दू पाखण्डी बन कर रहे तो उनसे हिन्दू-धर्म सुरक्षित नहीं, उसका विनाश ही निश्चित समझिए। मैंने जो यह कहा कि हिन्दू-धर्म सुरक्षित रहेगा उसका भाव यह है कि उस समय हम प्रायश्चित्त कर चुकेंगे, अनेक युगों का चढ़ा हुआ ऋण अदा कर चुकेंगे, और इस नादारी से छूट चुकेंगे।

"अस्पृश्यता में घृणा-भाव स्पष्ट-रूप से है। कोई यदि कहे कि अस्पृश्यता को मैं प्रेम-भाव से मानता हूं तो मैं इस बात को कभी न मानूंगा। मुझे तो उसके अन्दर कहीं प्रेम-भाव प्रतीत नहीं होता। यदि प्रेम हो तो हम उन्हें जूठन नहीं खिलावेंगे। प्रेम हो तो हम उसीतरह उन्हें पूजेंगे जिस तरह मातापिता को

पूजते हैं। प्रेम हो तो हम उनके लिए अपनेसे अच्छे कुवें, अच्छे मदरसे बना देंगे, उन्हें मन्दिरों में आने देंगे। ये सब प्रेम के चिह्न हैं। प्रेम अगणित सूर्यों से मिल कर बना है। एक छोटा सा सूर्य जब छिप नहीं रहता तब प्रेम क्यों छिपा रहने लगा ? किसी माता को कहीं यह कहना पड़ता है कि मैं अपने बच्चे को चाहती हूं। जिस बच्चे को बोलना नहीं आता वह माता की आंख के सामने देखता है और जब आंख से आंख मिल जाती है तब हम देखते हैं कि वे किसी अलौकिक चीज को देख रहे हैं।

"इतना कहने के बाद मैं समझता हूं कि कोई यह न मानेंगे कि दक्षिण अफ्रिका से आया एक सुधारक हिन्दू अपना सुधार हिन्दू-धर्म में घुसा देना चाहता है। मैं कह सकता हूं कि सुधार की अभिलाषा मुझे नहीं। मैं तो स्वार्थी आदमी हूं और खुद ही अपने आनन्द में मगन रहता हूं। मैं तो अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहता हूं। इसलिए मैं तटस्थ, निश्चिन्त बन कर बैठा हूं। पर मैं चाहता हूं कि जिस आनन्द का अनुभव मैं कर रहा हूं उसका उपभोग आप भी करें। इसीलिए मैं आपसे कहता हूं अन्त्यजों का स्पर्श करके, उनकी सेवा करके जो आनन्द प्राप्त होता है उसका उपभोग आप कीजिए।"

विद्यार्थियों के बारे में

एक भाई लिखते हैं :—

"गुजरात महाविद्यालय के और आपके दूसरे व्याख्यानों को पढ़ने पर भी जो बात सच है उसका खयाल दूर नहीं होता। विद्यार्थियों ने असहयोग कर के अपना फर्ज अदा किया है, किसी पर उपकार नहीं किया; फिर भी इस बात पर से नजर न हटानी चाहिए कि किसी भी शख्स से उन्हें अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी है।

आजकल असहयोग मुल्तवी कर देने पर और हलचल का जोश कम हो जाने के कारण, समाज की नजरों में स्नातकों की इज्जत और उनका रुतबा कुछ भी नहीं है, और यदि है तो बहुत ही कम। भावनाओं में कितने ही तल्लीन क्यों न हो जायं सबको पेट की फिक्र तो करना ही पड़ती है। और यह तो आप जानते ही हैं कि हमारे विद्यार्थियों को अपने कुटुम्ब का भी पालन करना होता है।

यह तो आप मानते हैं कि आजीविका विद्या का फल होना चाहिए लेकिन आज तो उसमें भी बड़ी मुश्किलें हैं।

असहयोग मुल्तवी रख कर सब कोई अपना मूल व्यवहार फिर से शुरू कर सकते हैं, लेकिन विद्यार्थी इच्छा होने पर भी ऐसा नहीं कर सकते हैं।

असहयोग करने से, उन वकीलों को जिन्हें पहले मुकदमे न मिलते थे, प्रसिद्धि हो जाने के कारण अब अच्छी कमाई हो रही है। विद्यार्थियों की तरफ तो कोई देखता भी नहीं। उल्टा उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

आप १५ ता. को राजकोट पधारेंगे। देशी-राजाओं को तो काबिल लोगों से ही काम है। बम्बई यूनिवर्सिटी का ही स्नातक रक्खा जाय, ऐसा उन्हें कोई बन्धन हो तो मैं नहीं जानता। क्या आप देशी राज्यों को यह सलाह नहीं दे सकते कि विद्यापीठ के स्नातकों को भी वे अपने यहां रक्खें ? मेरा खयाल है, आप और नहीं तो राजकोट और भावनगर की प्रजा-प्रतिनिधि-सभा में इसके बारे में प्रस्ताव पास करा सकते हैं और राज्य-कर्ता की सम्मति भी प्राप्त कर सकते हैं। आप राजकोट राष्ट्रीय-शाला की नींव डालने जाते हैं तो यह प्रसंग इस काम के लिए भी खूब अनुकूल है। यदि राजा लोग विद्यापीठ को परोक्ष सहायता पहुंचावें तो भी इसमें कोई शक नहीं कि यह प्रश्न बड़ा सरल हो जाय।"

विद्यार्थियों के त्याग का उल्लेख तो मैंने अनेक बार किया है। यह नियम है—और इसका कुछ अपवाद भी नहीं—कि जो स्वयं अपने त्याग का उल्लेख करता है उसके त्याग का उल्लेख दुनिया नहीं करती। जिस त्याग का त्याग करनेवाले को स्वयं ही उल्लेख करना पड़ता है वह त्याग नहीं है। आत्म-त्याग स्वयंप्रकाश्य होता है। विद्यार्थी अपने त्याग की कीमत करने के बजाय खुद उसने जो कुछ प्राप्त किया है उसीका हिसाब क्यों न करे ?

जो यह नहीं जानता कि राष्ट्रीय शिक्षा प्राप्त करना ही उसकी कीमत है, वह कुछ भी नहीं जानता। स्नातक को यह मानने की कुछ भी आवश्यकता नहीं कि आजकल स्नातकों का भाव घट गया है। इस प्रकार स्नातक अपना भाव क्यों घटावें ? राष्ट्रीय विद्यापीठ के स्नातकों में आत्म-विश्वास होने की मैं आशा रखता हूं। वह दीन याचक न बने, वह ईश्वर पर विश्वास रक्खे। स्नातक अपने लिए देशी राज्यों से मेरे पास भिक्षा मगाना क्यों चाहेंगे ? स्नातक अपने ज्ञान और चरित्रबल पर मंहगे क्यों न हों ? ऐसा समय आ सकता है जब राष्ट्रीय स्नातकों की ही मांग हो। ऐसा समय लाना स्नातकों के ही ऊपर आधार रखता है। कांच के ढेर में पड़ा हुआ हीरा बिना परखाये नहीं रहता। राष्ट्रीय स्नातकों के बारे में भी यही बात हो सकती है। मैं तो काठियावाड में, अपने व्याख्यानों में स्नातकों के बारे में एक शब्द भी बोलना नहीं चाहता। मैं तो काठियावाड में खादी और चरखे के प्रचार के लालच से जाता हूं, राज्याधिकारियों को खादी-प्रेमी बनाने जाता हूं, नरेशों को उनके धर्म के प्रति ध्यान देने की विनय करने के लिए जाता हूं। यदि खादी की और चरखे की प्रतिष्ठा बढ़ी तो स्नातकों की भी प्रतिष्ठा बढ़ी मान लेना। क्योंकि जो चरखा-शास्त्र को घोल कर पी नहीं गया है वह राष्ट्रीय स्नातक नहीं है। जैसे अधिकारी-वर्ग को अंगरेजी जाननेवाले कुशल मंत्री की आवश्यकता होती थी उसी प्रकार उन्हें कुशल चरखा-शास्त्री की आवश्यकता हो, ऐसा ही वायुमण्डल पैदा करने के लालच से मैं काठियावाड जा रहा हूं।

अब लेखक की दो तीन भूलें सुधारने की इजाजत चाहता हूं। असहयोगी विद्यार्थी दूसरों की तरह असहयोग मुल्तवी नहीं रख सकते, यह मानना गलत है। शर्म और दुःख की बात तो यह है कि हजारों विद्यार्थी असहयोग करने के बाद फिर से सहयोगी बने हैं। और यह अब भी हो रहा है। शर्म और दुःख की बात तो यह है कि कितने ही असहयोगी कहलानेवाले विद्यार्थियों ने राष्ट्रीय-प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेने पर भी फिर से सरकारी परीक्षायें दी हैं। इससे उल्टा, कितने ही वकीलों की सनद अदालतों ने छीन ली है और वे मजबूरन् असहयोगी जैसे बन गये हैं। और कितने ही सरकारी नौकर जो अपनी नौकरी छोड़ बैठे हैं उनकी दशा तो बड़ी दीन कही जा सकती है। लेकिन उनमें से कितने ही लोगों को वह ऐसी नहीं मालूम होती, वे तो उसमें बादशाही मानते हैं। क्योंकि सरकारी नौकरी होने पर वे पराधीन थे और अब नौकरी छूट जाने पर स्वाधीन हैं, स्वतंत्र हैं और इसलिए वे अपनेको बड़भागी मानते हैं।

इसलिए जो विद्यार्थी हतोत्साह हो गये हैं उन्हें मैं कहता हूं कि उन्हें हतोत्साह होने का कोई कारण नहीं है। इतना ही नहीं इससे तो वे आगे ही बढ़ेंगे। हां, उसमें एक शर्त है। असहयोगी विद्यार्थी के बारे में यह माना जाता है कि वह प्रामाणिक, निर्भय, संयमी, उद्यमी और देशसेवक होता है। ऐसे विद्यार्थी को कभी भी निराश होने का कारण नहीं होता। उन्हीं पर देश का उद्धार निर्भर है। स्वतन्त्रतादेवी का सुवर्णमन्दिर उन्हींपर बंधेगा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

फिर मनाई

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)।
विदेशों के लिए	,, ६)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक २९

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, फाल्गुन सुदी ७, संवत् १९८१ गुरुवार, २६ फरवरी, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

१ फरवरी

सर्वदल-परिषद्-समिति की तरफ से मुकर्रर की गई समिति की बैठक देहली में २८ फरवरी को फिर होगी। किसी भी समिति के जिम्मे इससे ज्यादह [illegible] काम नहीं हो सकता। इस समिति ने अपने को दो हिस्सों [illegible] किया है। एक को स्वराज्य-योजना का मसविदा तयार करने का काम सौंपा गया है और दूसरा को हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की योजना तयार करने का। स्वराज्य-समिति की प्रमुख डा० बेसन्ट थीं और उन्होंने अपनी रिपोर्ट समिति के सामने विचार के लिए पेश भी कर दी है। समिति की बैठक इसलिए मुल्तवी कर दी गई थी कि उस समय हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के प्रश्न का समझौता हो न सका और जो सदस्य हाजिर थे उन्होंने चाहा कि उन्हें भी सदस्य हाजिर न थे उनसे, और जो लोग सदस्य तो नहीं हैं लेकिन इस कार्य में मदद कर सकते हैं उनसे मशवरा करने का अवकाश मिले। यह आशा की जाती है कि जो लोग आ सकते हैं वे समिति की इस बैठक में जरूर ही आवेंगे। लाला लाजपतराय ने मुझे तार किया है कि इस बैठक को मार्च के तीसरे हफ्ते के बाद किसी भी तारीख तक मुल्तवी रक्खा जाय। कुछ सदस्यों ने उन्हें खबर दी है कि वे उस बैठक में हाजिर न रह सकेंगे। मैंने उन्हें खबर दी है कि समिति से पूछे विना मैं इस बैठक को मुल्तवी नहीं कर सकता। यदि जरूरत मालूम होगी तो समिति की बैठक होने पर वह स्वयं उसे मुल्तवी कर देगी। हर शख्स ने अबतक यह निश्चय तो कर ही लिया होगा कि अब क्या करना चाहिए। इस बैठक में शायद इस प्रश्न पर अब कोई नया प्रकाश नहीं डाला जायगा। सिर्फ विचार करने का सवाल तो यही होगा कि आखिरी बैठक में देहली में जो दोनों तरफ से सिरे की बातें की गई थी उसके बीच में कोई रास्ता निकल सकता है या नहीं। इससे एक दूसरा सवाल भी पैदा होता है—दोनों दल इस प्रश्न का तत्काल निपटारा करना चाहते हैं या नहीं? स्वराज्य की योजना भी बड़े महत्व का प्रश्न है। सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम सवाल ही सब तरह की प्रगति को रोक रहा है। मैं आशा करता हूं कि जो लोग आ सकें वे जरूर ही आवेंगे और इस प्रश्न के हल करने में मदद करेंगे। लालाजी की सूचना के अनुसार यदि बैठक मुल्तवी न रक्खी जाय और वह इस प्रश्न का विचार करना ही पसंद करे तो जो सदस्य हाजिर न हो सकें उन्हें मैं अपनी राय समिति को लिख भेजने की सलाह देता हूं।

'संगसारी'

अहमदिया फिर्के के दो मनुष्यों को अफगानिस्तान में संगसारी की सजा दी गई है। संगसारी का मतलब है पत्थर मारते मारते मार डालना। इस विषय में महासभा के सभापति के तार पर मेरे नाम एक बड़ा लम्बा तार आया है। इससे पहले नियामतुल्लाखान को भी यही भीषण दण्ड दिया जा चुका है। उस समय मैंने जान-बूझ कर इस बारे में कुछ टीका-टिप्पणी नहीं की थी। पर अब तो मुझसे खास तौर प्रार्थना की गई है कि मैं इसपर अपनी राय दूं। ऐसी अवस्था में मैं इस दुर्घटना की उपेक्षा नहीं कर सकता। मैंने सुना है कि कुरान में खास खास मौकों के लिए संगसारी की सजा का हुक्म दिया गया है। मगर इस मामले पर वह आयद नहीं हो सकता। परन्तु एक पाप-भीरु (खुदा-तरस) मनुष्य की हैसियत से मैं यह आपत्ति उठाये बिना नहीं रह सकता कि किसी भी मौके पर ऐसे कृत्य का करना कहां तक नीतिसंगत है? पैगम्बर साहब के जमाने में जो कुछ जायज भी जा माना गया हो, मगर महज कुरान में जिक्र होने की बिना पर इस रूप में दी जानेवाली सजा का समर्थन किसी तरह नहीं किया जा सकता। इस तर्क-युग में हर धर्म की हर विधि का, यदि सार्वत्रिक-रूप में उसकी स्वीकृति चाही जाती हो तो तर्क और सामान्य न्याय की कठिन कसौटी पर कसना ही होगा। भूल अपवाद होने का दावा नहीं कर सकती—फिर वह भले ही सारी दुनिया के धर्म शास्त्र के द्वारा अनुमोदित हो। उस फिरके के प्रति मैं उसकी इस मुसीबत में अपनी हमदर्दी जाहिर करता हूं। और यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि मैं इस मामले के गुण-दोष पर कोई राय नहीं दे सकता। मुझे यह मानने की जरूरत नहीं मालूम होती कि लोगों के सामने उसपर राय कायम करने के लायक सामग्री मौजूद है। सजा का यह तरीका मनुष्य की अन्तरात्मा में गहरे घाव कर देता है। कैसे भी भयंकर अपराध के लिए ऐसी भीषण यन्त्रणा की युक्तता को स्वीकार करने के लिए हृदय और बुद्धि दोनों तैयार नहीं होते।

टेढ़े प्रश्न

'एक हितचिंतक' नीचे लिखी सतरें मेरे चिन्तन के लिए भेजते हैं—

"बाइबिल को लोग ५६६ भाषाओं में पढ़ सकते हैं। पर उपनिषदों और गीता को कितनी भाषाओं में पढ़ सकते हैं?

पादरी लोगों ने कितने कुष्ठालय खोले हैं और कितनी संस्थायें दलित-पीड़ित लोगों के लिए खोल रक्खी हैं?

आपने कितने खोले हैं?"

ऐसे टेढ़े प्रश्न मुझसे आम तौर पर हमेशा पूछे जाते हैं, 'एक हितचिंतक' को जवाब देने की जरूरत है। पादरियों के उत्साह, उमंग और त्याग के प्रति मेरे मन में बड़ा आदर-भाव है। पर मैं उन्हें यह बताने में कभी न हिचका हूँ कि आपको ये दोनों चीजें अक्सर अस्थानीय हुआ करती हैं। दुनिया की हरएक जबान में अगर बाइबिल का तरजुमा हो जाय तो इससे क्या? पेटंट दवाओं का विज्ञापन बहुतेरी भाषाओं में किया जाता है, इसलिए क्या उनकी महत्ता उपनिषदों से बढ़ सकती है? कोई गलती अपने बहुलप्रचार के कारण सत्य का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती, और न सत्य इसलिए कि उसपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ती, मिथ्या हो सकता है। जिन दिनों बाइबिल का उपदेश पूर्वकालीन ईसाई उपदेशकों के द्वारा दिया जाता था तब उसका सामर्थ्य आज से कहीं अधिक था। अगर 'एक हितचिंतक' यह समझते हों कि उपनिषदों की अपेक्षा बाइबिल का अधिक भाषा में अनुवाद होना उसकी श्रेष्ठता की कसौटी है तो कहना होगा कि उनको पता नहीं है कि सत्य किसतरह अपना काम करता है। सत्य का फल तभी हो सकता है जब तदनुसार आचरण किया जाय। परंतु यदि मेरा उत्तर पाने से 'एक हितचिंतक' को कुछ संतोष हो सकता है तो मैं उनसे खुशी के साथ कहूंगा कि, हां, बाइबिल की अपेक्षा उपनिषदों और गीता का अनुवाद बहुत कम भाषाओं में हुआ है। मुझे कभी इस बात की जिज्ञासा न हुई कि उनके अनुवाद कितनी भाषाओं में हुए हैं।

अब, दूसरे सवाल के बारे में भी, मुझे यह कुबूल करना चाहिए कि पादरियों ने कुष्ठ-चिकित्सालय तथा अन्य संस्थायें बहुतेरी खोली हैं। मैंने एक भी नहीं। फिर भी मेरी स्थिति अचल है। ऐसी बातों में मैं पादरियों अथवा और किसी लोगों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर रहा हूं। मैं तो जिस तरह ईश्वर राह दिखाता है नम्रभाव से मनुष्यजाति की सेवा करने की कोशिश कर रहा हूं। कुष्ठालय इत्यादि खोलना मनुष्य-जाति की सेवा का एक साधन है और सो भी शायद सर्वोत्तम नहीं। परतु ऐसी उच्च सेवाओं की भी उच्चता उस अवस्था में बहुत-कुछ घट जाती है जबकि धर्मान्तर करना उनका प्रेरक हेतु होता है। वही सेवा सर्वोच्च होती है जो केवल सेवा के लिए ही की जाती है। हां, यहां कोई मेरे आशय को गलत न समझ ले। जो पादरी निःस्वार्थ भाव से ऐसे कुष्ठालय में सेवा करते हैं वे मेरे आदर के अधिकारी हैं। यह कुबूल करते हुए मुझे बहुत शर्म मालूम होती है कि हिन्दूगण ऐसे निष्ठुर हो गये हैं कि दुनिया की बात तो दूर, अपने देश के ही दलित—पतित लोगों की भी वे बहुत कम परवा करते हैं।

एक वहम

बंगाल के एक जमींदार ने हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, अस्पृश्यता और स्वराज्य के विषय में चर्चा करते हुए मुझे एक बड़ी लम्बी चिट्ठी भेजी है। चिट्ठी इतनी लम्बी है कि प्रकाशित नहीं की जा सकती और उसमें कोई नई बात भी नहीं कही गई है। फिर भी नमूने के तौरपर उसमें से एक वाक्य यहां पर दिये देता हूं—

"पांचसौ बरस हुए, हिन्दुओं का और मुसलमानों का संबंध दुश्मनों का सा रहा है। ब्रिटिशों का राज्य होने के बाद एक नीति के तौरपर हिन्दू-मुसलमान उस जातिगत द्वेष को भूल जाने पर मजबूर किये गये थे और अब उन दोनों जातियों में वैसी कटुता और दुश्मनी नहीं रही। लेकिन इन दोनों जातियों के स्वभाव का स्थायी-भेद अब भी मौजूद है। मेरा विश्वास है कि हिन्दू-मुसलमानों का वर्तमान सु-संबंध ब्रिटिश राज्य के कारण ही है और नवीन हिन्दू-धर्म की उदारता के कारण नहीं"

मैं इसे सिर्फ एक वहम मानता हूं। मुसलमानों के राज्य में दोनों जातियां आपस में सुलह-शान्ति के साथ रहती थीं। यह स्मरण रखना चाहिए कि मुसलमानों के राज्य-काल के पहले भी कितने ही हिन्दुओं ने इस्लाम को अंगीकार किया था। मेरा यह विश्वास है कि यदि ब्रिटिश राज्य यहां न होता तो भी जिस प्रकार यहां ईसाई लोग होते ही, उसी प्रकार मुसलमानों का राज्य यदि न हुआ होता तो भी यहां मुसलमान तो जरूर ही होते। मेरा विश्वास है कि ब्रिटिशों की इस "भेद उत्पन्न करके राज्य करने" की नीति ने हमारे भेदों को और भी बढ़ा दिया है। और जब तक, इस नीति के होते हुए भी, हम यह न समझ जायं कि हमें एक हो जाना चाहिए तबतक वह हमारे भेदों को बढ़ाती ही रहेगी। लेकिन यह तबतक मुमकिन नहीं जबतक हम अधिकार और जगहों के लिए झगड़ते रहेंगे। आरंभ हिन्दुओं को ही करना चाहिए। (यं. इं.)

उत्कल में खादी

उत्कल अर्थात् उड़ीसा के [illegible] में श्री शं[illegible]लाल बैंकर कलकत्ते से लिखते हैं—

"१९२२ में उत्कल को ६० [illegible] कर्ज के तौर पर दिया गया था। इससे कोई ४० के[illegible] गये थे। परन्तु काम नवीन था। क्योंकि उसकी विशेष जानकारी न थी। और कितने ही कार्यकर्ता बिना नीति-रीति और देख-भाल के काम करते रहे। ऐसा मालूम होता है कि दो चार कार्यकर्ताओं ने तो बेईमानी भी की है। इस तरह काम करते हुए कुछ रुपये डूब गये, कुछ रुक गये और जब रुपये की तंगी होने लगी तब केन्द्र बंद होने लगे। पिछले साल अधिकांश में समेट लेने का ही काम हुआ। दी हुई रकम में से पांच एक हजार नकद, कोई पन्द्रह हजार की रुई-सूत खादी वगैरह माल मौजूद है। इसके अलावा कोई ९ हजार मकान वगैरह में लगे हैं। और चालीस हजार से ज्यादह रकम लेनी है। लेनी रकम में से कोई १५ हजार वसूल हो सकती है और आपकी सलाह के अनुसार यदि कानूनी कार्रवाई की गई तो वह वसूल हो जायगी। बाकी रकम नहीं आ सकती। ऐसी हालत में वहांके कार्यकर्ता नवीन काम का विचार करते हुए डरते हैं। परन्तु वहांके खादी के काम के अनुकूल परिस्थिति को देखते हुए मैं समझता हूं कि किसी भी तरह वहां काम जरूर शुरू होना चाहिए। वहांका सूत और कपड़ा आस-पास के प्रान्तों के मुकाबले अच्छा मालूम होता है। और अब अगर चिन्ता के साथ काम किया जाय तो अच्छे नतीजे की आशा की जा सकती है। कार्यकर्ताओं में से भी अब दगाबाज लोग निकल गये हैं। और जो हैं उनमें इतना सामर्थ्य नहीं कि अपनी हिम्मत के बल पर साहस कर के काम सिर पर लें। पर वे बताया काम अच्छी तरह कर सकेंगे। इसलिए नये सिरे से खादी तैयार करने के काम की सलाह दी है। और जो तजवीज बनाई है वह अगर मंजूर हो जायगी तो उत्कल में एक साल में कोई ६० हजार की खादी तैयार हो सकेगी। एक बार यदि इतना काम संतोषजनक रीति से हो सका तो फिर आगे उसे बढ़ाने में कठिनाई न होगी।

मताधिकार का काम इससे ज्यादह मुश्किल मालूम होता है। इस प्रान्त में रुई की सुविधा बहुत कम है। 'रुई उगाहने का' कार्यक्रम यहां संभवनीय नहीं मालूम होता। इसलिए रुई एकत्र कर रखनी पड़ेगी। परन्तु इसके अलावा काम करनेवालों की भी कठिनाई है। ऐसा मालूम होता है कि काम करनेवाले मिल तो जायंगे। पर इनकी गुजर के लिए कुछ प्रबन्ध हो तब। १५) महीने से ज्यादह न देना पड़ेगा। परन्तु १०-१५ लोगों के लिए इतनी रकम एकत्र कर लेने की भी ताकत नहीं मालूम होती। यदि इतनी सुविधा हो सके तो हर जिले से ५०० खुद कातने वाले और दूसरे मिल कर कोई २००० सदस्य एक दो महीने में मिल जायंगे। इस मामले में जो कुछ भरसक हो सकता है, करने की तजवीज करता हूं।

यहां (कलकत्ते में) लगभग सारा दिन सतीश बाबू के साथ था। आपकी सलाह के अनुसार देशबन्धु दास ने इन्हें खादीमण्डल में नियुक्त किया है। और उन्होंने भरसक सहायता देने का वचन दिया है, यही नहीं बल्कि सबसे अच्छी तरह कोशिश भी कर रहे हैं।"

उत्कल के बराबर कंगाल प्रान्त दूसरा नहीं। उसमें खादी का काम तो सबसे ज्यादह हो सकना चाहिए। परन्तु इस पत्र से मालूम होता है कि वहां सबसे कम हो रहा है। इसका कारण प्रसिद्ध है। जहां लोगों को खाने-पीने की सांसत है वहां काम करने की शक्ति और उत्साह लोप हो जाता है। यदि वहां कार्यकर्ता मिल जायंगे तो यह धारणा की जा सकती है कि उत्कल सबसे आगे बढ़ जायगा।

हम क्या करें!

जेतपुर (काठियावाड़) निवासी दो भाइयों ने मुझे जेतपुर मुकाम पर नीचे लिखा हुआ पत्र भेजा था—

आपका चरखे का सिद्धान्त हमें हृदय से स्वीकृत है। परन्तु वर्तमान समय ही ऐसा विकट हो गया है कि आजीविका के लिए बंधे नियमों का महान् और विकराल पहाड़ मार्ग में बाधा डालता है। इससे निश्चित स्थान पर पहुंचने में असफल हो तो या अ यें? अनुभव से तो केवल इतना ही देख सके हैं कि सचा रा तो भूल गये हैं और दांव-पेंच, प्रपंच, दगा इत्यादि के जरिये रुप पैदा करना और गृह-संसार चलाना रूढ़ हो गया है। यदि में सफल न हों तो नौकरी के लिए भीख मांगनी पड़ती है। इससे हद -बल घट गया और यही सबब है कि निश्चित लक्ष्य चूक जाता है। से हल देने में हमारी मुश्किलें ये हैं: खेती करने से सब बाल हल हो सकती हैं; किन्तु पराधीनता में पले हुए होने के कारण शरीर ल सब नष्ट हो गया है; यहांतक कि अब जिन्दगी भर सामर्थ्य और हिम्मत नहीं हो सकती।

किसानों की संख्या बहुत है। वे अपना काम चला लेते हैं। लेकिन उन्हें ज्ञान प्राप्त करने के साधन ही नहीं मिलते। इसलिए आज तो वे भी अधोगति को प्राप्त होते जा रहे हैं। उनके बाद, हम जैसे अंधदग्ध मनुष्यों की संख्या अधिक है। उनके लिए क्या मार्ग होगा? हम यह किस प्रकार जान सकते हैं? यदि कभी आपके सत्य सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने की कोशिश करते हैं तो हम जैसे शक्तिहीन मनुष्यों को हर प्रकार के साधनों को प्राप्त करने के लिए दूसरों की मदद लेने की जरूरत रहती है। यदि ऐसी मदद प्राप्त करना चाहते हैं तो निःस्वार्थ मदद करनेवाले बहुत कम मिलते हैं। नमन करने जाते हैं तो सिर ही खो देना पड़ता है। ऐसा भी अनुभव हुआ है। अब हमें कोई सरल मार्ग दिखाई नहीं देता। हम आशा करते हैं कि आप हमें जरूर ही सरल मार्ग बतावेंगे।"

यह वर्णन यथार्थ है। ऐसे निर्बल वायुमण्डल में से बिना मानसिक बल प्राप्त किये कोई निकल नहीं सकता। ये भाई जिस वर्ग के हैं उसे आलस्यरूपी महारोग ने घेर रक्खा है। चालाकी से द्रव्य प्राप्त करने की आदत पड़ जाने के कारण उन्हें मिहनत करके कमाना अच्छा नहीं मालूम होता। आवश्यकतायें बढ़ गई हैं। मिहनत करके जो कुछ मिलता है उससे पूरा नहीं होता। विवाह, मरण इत्यादि के अनिम खर्च इतने बढ़ गये हैं कि वे बिना कर्ज लिये या बेजा तौरपर कमाये चल नहीं सकते। खेती करने लायक शरीर नहीं रह गये और उसके लिए पूंजी और आवश्यक जानकारी भी नहीं रही। इसलिए अब चरखा ही बाकी रह जाता है। यहां चरखे के मानी सिर्फ कातना नहीं समझना चाहिए, बल्कि रुई पर होनेवाली समस्त क्रियायें समझनी चाहिए। यही एक पेशा है जिसमें पूंजी और शारीरिक समृद्धि दोनों की कम जरूरत है यदि हम झूठ आडम्बर से बचते रहें और सादी रहनसहन रक्खें तथा आलस्य का त्याग करें तो इसके द्वारा आजीविका भी मिल रहेगी। पूर्वोक्त दोनों भाई, यदि कुछ मानसिक बल प्राप्त करें तो थोड़े ही प्रयत्न से कातने और बुनने का काम सीख सकते हैं और वे बुनाई के काम से ही अपनी आजीविका प्राप्त कर सकते हैं। अभी लोगों को खादी का शौक नहीं लगा है इसलिए बुनाई के जरिये आमदनी कम होती है। लेकिन जब खादी का अच्छा प्रचार होगा तब इनमें से अधिकतर लोग बुनने का काम करेंगे या खादी के नियुक्त व्यापार के द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त करेंगे। यदि इन भाइयों के नजदीक कुछ सामान्य पुरुषार्थ की भी गुंजाइश हो तो उन्हें खादी के किसी विद्यालय में भरती हो जाना चाहिए। काठियावाड़ में ऐसी संस्था मढ़ड़ा में है। अब तो काठियावाड़ राजकीय परिषद् ने चरखे के प्रचार के कार्य को अपना प्रधान कार्य बना लिया है। इसलिए उसके मंत्री के साथ सलाह करके उन्हें अपना मार्ग ढूंढ लेना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि एक कमावे और दूसरे लोग बैठ कर खावें ह न्धे में नहीं हो सकता।

एक भाई की कठिनाई

एक सज्जन लिखते हैं कि मैं एक बहन - खादी पहनने के लिए समझाने गया था। उन्होंने जवाब दिया—"यदि मैं खादी पहनने लगूं मेरे पति मिल के कपड़े पहननेवाली स्त्री पर मोहित हो कर चरित्रभ्रष्ट न हो जायंगे?" ऐसे जवाब की आशा मैं किसी पवित्र बाई से नहीं रख सकता। पर अब यह सवाल पूछा हो गया है तब उसका विचार कर लेना उचित है। अपनी पत्नी के सादगी का अवलंबन करने पर अथवा स्वधर्म-पालन करने पर यदि किसी पति के चरित्रभ्रष्ट होने की संभावना हो तो उसके विषय में पवित्र स्त्री को निश्चित रहना चाहिए। जिस पुरुष की पवित्रता किसी और की पत्नी के लिबास को देख कर भंग हो सकती हो उसकी पवित्रता में कुछ सार होने की संभावना नहीं। लिबास के फेरफार से जो पति भ्रष्ट हो सकता है वह क्या स्वच्छता स्त्री को देख कर अपवित्र नहीं हो सकता?

पर मेरा अनुभव इन बाई की बात से उलटा है। मैं ऐसे सैकड़ों पतियों को जानता हूं जो अपनी पत्नियों के खादी पहनने से प्रसन्न हुए हैं। उनके घर का खर्च कम हुआ है और खादी धारण करनेवाली अपनी पत्नी के प्रति उनका प्रेम बढ़ा है। यह भी हो सकता है कि इन बहन को वास्तव में खादी पहनना ही नहीं था और इसलिए अनजान में ऐसा अनुचित विचार उनके मन में उठ आया। ऐसी बहनों से तो मेरी यह प्रार्थना है कि उन्हें दृढतापूर्वक खादी पहननी चाहिए और समझना चाहिए कि शृंगार लिबास में नहीं, बल्कि पवित्रता में है और लिबास शृंगार के लिए नहीं है बल्कि सर्दीगर्मी से शरीर की रक्षा करने और बदन ढकने के लिए है। (नवजीवन) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन सुदी ४, संवत् १९८१

फिर मनाई

वाइसराय सा० के प्राइवेट सेक्रेटरी और मेरे दरम्यान तार के जरिये जो लिखापढ़ी हुई है उसे मैं नीचे देता हूं—

मेरा तार

ता. ९-२-२५

"मार्च के आरंभ में मुझे और मेरे साथी को कोहाट जाने की इजाजत अब वाइसराय साहब दे सकेंगे ?"

वाइसराय के मंत्री का उत्तर

ता. १३-२-२५

"श्रीमान् वाइसराय ने मुझे फरमाया है कि मैं आपको आपके तार के लिए और तार करने की शिष्टता के लिए धन्यवाद दूं। आपके इच्छानुसार आपको इजाजत देने में श्रीमान् को बड़ी खुशी होती। लेकिन उनका ध्यान कोहाटी हिन्दुओं को यंग इंडिया में दी गई आपकी इस सलाह की ओर गया है कि सरकार की मध्यस्थता के बिना ही जबतक मुसल्मान लोग उनके साथ बाइज्जत सुलेह न करें तबतक वे कोहाट वापस न जायं। इस लेख से वे सिर्फ यही तात्पर्य निकाल सकते हैं कि यदि आप कोहाट गये तो वे ख्याल करते हैं कि आपके प्रभाव का झुकाव हाल ही हुए उस समझौते को तोड़ने की ओर ही रहेगा जिसे कि वाइसराय साहब बड़ा महत्वपूर्ण मानते हैं और जिसके द्वारा वे मानते हैं कि परस्पर स्थायी समझौता हो जायगा। अतएव वाइसराय सा० को यह यकीन है कि आप खुद ही इस बात को ठीक ठीक समझ सकेंगे कि आपकी इच्छा के अनुकूल होना उनके लिए कितना असंभव है।"

मेरा दूसरा तार

१९-२-२५

"तार के लिए धन्यवाद। आपके तार में 'यं०इं०' के जिस लेख का उल्लेख है उसमें मैंने आदर्श सुझाया है। परन्तु जो मुकदमे उठा लिये गये हैं उनमें मैं बिलकुल दखल देना नहीं चाहता। सच्ची शान्ति स्थापित करना मेरा उद्देश है और मैं मानता हूं कि सरकार की मध्यस्थता के अथवा सच विचार करें तो गैर-सरकारी और स्वयंस्फूर्त प्रयत्न के बिना वह प्रायः असंभव है। जिस दरजे तक सरकारी यत्न के द्वारा पक्की सुलह होती होगी उस दरजे तक तो मेरी और मेरे साथियों की मध्यस्थता उसमें सहायक ही हो सकती है। उत्तर साबरमती दीजिएगा।"

इसका उत्तर

२२-२-२५

"आप के तार के लिए श्रीमान् वाइसराय सा० धन्यवाद देने को आज्ञा करते हैं। जो सुलह आज बड़ी कठिनाई के साथ हुई है वह दोनों जातियों के गैर-सरकारी लोगों की अपने आप मिली सहायता के फल-स्वरूप ही हो पाई है। निश्चय ही वह दोनों जातियों में हुआ ठहराव है। और यदि उनकी शर्तों में कुछ भी गड़बड़ की जाय तो सारा ठहराव छिन्न-भिन्न हो जायगा। और फिर इस ठहराव के आधार पर ही श्रीमान् वाइसराय सा० अत्यन्त आत्मपरीक्षा के बाद मुकदमे उठा लेने पर राजी हुए हैं। ऐसी हालत में, यद्यपि वाइसराय सा० भी समझते हैं कि आप शान्ति-रक्षा करना ही चाहते हैं, तथापि वे समझते हैं कि यदि आप वहां जायंगे तो फिर से सारा मामला नये सिरे से खोलना पड़ेगा। इस कारण निहायत अफसोस के साथ उन्हें अपने पहले निश्चय पर ही कायम रहना पड़ता है।"

यह बात बिलकुल सच है कि मेरे कोहाट जाने से वहांके हिन्दू-मुसल्मानों के समझौते का मामला जहांतक वह मूलतः ही खराब होगा, फिर से खुले बिना न रहेगा। पर वह समझौता दबाव का फल है; क्योंकि मुकद्दमें चलाने की धमकी तो दोनों फरीक के सिर पर खड़ी ही थी। यह ठहराव दोनों के स्वेच्छापूर्वक नहीं हुआ है जिससे कि दोनों का पसंद हो। हिन्दू और मुसल्मान दोनों ने, जो कि रावलपिण्डी में मौ० शौकतअली से और मुझसे मिले थे, ऐसा ही कहा था। परन्तु मेरे कोहाट जाने से चाहे कुछ भी नतीजा निकले या न निकले, उससे दोनों फरीक की अनबन में बढ़ती तो हरगिज नहीं हो सकती। ऐसी हालत में यदि मुझे अपने मुसल्मान-मित्रों के साथ कोहाट जाने दिया जाता तो शान्ति-स्थापना का ध्येय जिसका कि दावा मेरे बराबर ही वाइसराय सा० भी करते हैं, बहुत अंशों तक सिद्ध हुआ होता। उस समय जब कि कोहाट में आग धधक रही थी, मेरा न जाने दिया जाना कुछ कुछ समझ में आ पाता था, परन्तु इस समय की मनाई समझ में नहीं आती। कितने ही मित्रों ने मुझे सूचित किया कि बिना इजाजत लिये अथवा खबर किये ही मुझे कोहाट पहुंच कर मुमानियती हुक्म की जोखिम सिर पर ले लेना चाहिए था। पर यह मैं उसी हालत में कर सकता था जब किसी भी हुक्म का अनादर कर के जेल जाने की जोखिम उठाने की इच्छा मुझे होती। पर मैं मानता हूं कि देश में आज ऐसी किसी कार्रवाई के योग्य वायुमण्डल नहीं है। इसलिए मैं इस जोखिम को सिर नहीं ले सकता। मुझे आशा है कि जिस सावधानी के साथ मैं सविनय भंग के किसी भी कदम से दूर रहता रहा हूं, उसको जरूर सरकार करेगी। और इस सावधानी में भी मेरा हेतु यह है कि जहांतक हो सके ऐसा कोई भी काम न किया जाय जिससे लोग अप्रत्यक्ष-रूप से भी हिंसा में प्रवृत्त हो सकें। पर हां, ऐसा समय आये बिना न रहेगा जब कि अघटित परिणामों का लेशमात्र विचार किये बिना सविनय-भंग करना मेरा धर्म हो जायगा। मैं नहीं जानता कि वह समय कब आ सकेगा, या आवेगा। पर मैं इतना जरूर मानता हूं कि वह आ सकता है। जब वह वक्त आ जायगा तब मुझे आशा है मेरे मित्र मुझे पीठ दिखाते न देखेंगे। तबतक वे मुझे निबाह लें।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

गिदवाणीजी छूटे

आचार्य गिदवाणी नाभा जेल से रिहा कर दिये गये हैं।

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेलवे से।

राजकोट का आतिथ्य

राजकोट के ठाकुर साहब ने भावनगर में ही गांधीजी को राजकोट आने का निमंत्रण दिया था। गांधीजी ने उसे यह कह कर स्वीकार भी किया था कि मेरी खादी की झोली भर सके तो आऊंगा। गांधीजी के प्रति ठाकुर साहब का अत्यन्त आदर-भाव, स्थान स्थान पर उनका खूब स्वागत-सत्कार करने की उत्कण्ठा देख कर उनके प्रति बड़ा आदर-भाव पैदा होता था। गांधीजी के स्वागत-सत्कार के लिए उन्होंने अनेक प्रसंगों की तजवीज की थी। प्रत्येक प्रसंग पर समय और तंत्र-निष्ठा का पालन ठाकुर साहब ने गांधीजी की तरह ही निश्चय-पूर्वक किया। यह देख कर गांधीजी भी दंग रह गये।

प्रजा-प्रतिनिधि-मण्डल की ओर से अभिनंदन-पत्र देते हुए ठाकुर साहब ने गांधीजी की बड़ी स्तुति की। यही नहीं, बल्कि महासभा के कार्य-क्रम की भी स्तुति की और उसे उत्तेजन देने का वचन दिया। अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए गांधीजी ने जो भाषण किया उसका सार इस प्रकार है—

"आज सुबह दरबारगढ में प्रवेश करते ही मुझे पहले की एक पवित्र घटना की याद हो आई। पिछले ठाकुर साहब से एक बार रो कर हम दो भाइयों ने अपना काम बना लिया था। आज भी मैं रो कर अपना काम ले लेना चाहता हूं। शास्त्रीजी ने आशीर्वाद करते हुए कहा कि कीर्ति तो कुंवारी है। वह कुंवारी ही रहे तो अच्छा। यदि कहीं उसने मेरे साथ शादी की तो मैं कहीं का न रहूंगा। इसलिए मुझे कीर्ति की चाह नहीं। मैं तो दूसरी एक दो बातें चाहता हूं और उनके लिए मुझे रोना ही पड़ेगा। अभिनन्दन-पत्र में मेरी बहुत स्तुति की गई है। श्रीमान् ठाकुर साहब ने भी बहुत-कुछ कहा है। पर इससे मैं धोखे में नहीं आ सकता। मैं यह नहीं मान लूंगा कि मैं इन सबके लायक हूं। ठाकुर सा० ने मुझे अपने दाहिने हाथ बैठाया—पर इससे मैं यह नहीं मान सकता कि मैं राजा हो गया। मैं राजा नहीं होना चाहता मैं तो रैयत हूं और रैयत ही रहना चाहता हूं। हां, ठाकुर साहब ने जो विनय प्रदर्शित किया है उसका स्याग मैं नहीं कर सकता। मैं अपनी हद छोड़ कर नहीं जाऊंगा—पागल न बनूंगा।

अभिनन्दन-पत्र में अहिंसा और सत्य को जो मेरा जीवन-मंत्र कहा गया है वह बिल्कुल ठीक है। यदि ये दोनों मेरे जीवन से चले जायं तो मुर्दा हो जाऊं और शेष जीवन व्यतीत करना मेरे लिए मुश्किल हो जाय। पर जिन दो साधनों—खादी और अस्पृश्यता-निवारण—के द्वारा मैं सत्य और अहिंसा का पालन करना चाहता हूं उसका उल्लेख अभिनन्दन-पत्र में न देख कर मुझे आश्चर्य होता है। इन दो बातों की साधना में जो सामर्थ्य है वह हिन्दू-मुस्लिम एकता में भी नहीं। बल्कि इन दो में से एक की भी साधना किये बिना हिन्दू-मुसल्मान-ऐक्य भी असंभव है। एक मुसल्मान-मित्र ने मुझसे कहा कि आप जबतक यह मानते रहेंगे कि हिन्दू-धर्म में अछूतपन के लिए स्थान है तबतक हिन्दू-मुसल्मान-ऐक्य किस तरह हो सकता है? ये भाई पवित्र मुसल्मान हैं। मुसल्मान को अपवित्र माननेवाले लोग भी हैं; पर मैं समझता हूं कि वे अधर्म करते हैं। गीताजी और हिन्दूधर्म-शास्त्र हमें शिक्षा देते हैं कि हिन्दू और मुसल्मान अलग अलग दो खण्डित विभाग नहीं हो सकते। हिन्दू-धर्म को मैं गंगोत्री कहता हूं। उसकी अनेक शाखें हैं। पर उसका मूल एक ही है। और मूल की तरह सुख भी एक ही है।

ढेड, भंगी जन्मतः हों तो इससे क्या? चाण्डाल नाम की कोई जाति नहीं, ढेड कोई जाति है? यह शब्द धर्मशास्त्र में है? ढेड का अर्थ कपड़ा बुननेवाला, भंगी का अर्थ है पाखाना साफ करनेवाला। पर मैं तो आज ही भंगी हूं। बच्चा यदि मैला कर दे तो मैं उसे साफ कर डालूं मेरी माता भी भंगी थी। उसके हाथ हमारा मैला साफ कर कर के घिस गये थे। आपकी माता भी यदि सीता की तरह सती होगी, पतिव्रता होगी तो उन्होंने भी बच्चों का मैला साफ किया होगा। सती सीता प्रातःस्मरणीय थीं। पर उन्होंने भी बहुत मैला साफ किया था और वे भी भंगी बनी थीं। जिस तरह इन माताओं का त्याग नहीं किया जा सकता उसी तरह भंगी का भी त्याग कैसे किया जा सकता है? सो यदि हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता जैसी कोई मान्हित वस्तु हो तो मैं हिन्दू कहलाने में अभिमान न मानूं। शास्त्रियों का भी उल्लंघन कर कहूंगा कि हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता के लिए स्थान नहीं है और निरंतर कहता रहूंगा कि नहीं है।

जब आज का कार्यक्रम मैंने देखा कि शास्त्री लोग मुझे आशीर्वचन देंगे तो यह देख कर मुझे हर्ष भी हुआ और खेद भी हुआ। खुशी इस बात से हुई कि मेरे अस्पृश्यता-निवारण-संबंधी काम के लिए भी मुझे शास्त्रियों का और उनके आशीर्वाद मिलेंगे। खेद इस बात से कि राजा की आज्ञा से मजबूर हो कर शास्त्री लोग कुछ भी बवाल करें तो उसका क्या मूल्य? सब लोग इस बात को जानते हैं कि ठाकुर साहब [illegible]। परन्तु भूल तो प्राणीमात्र से होती है और यदि मुझे ठाकुर साहब की भूल मालूम हो तो मैं राजकोट का नागरिक होने के कारण, प्रजा के अधिकार का उपयोग करते हुए ठाकुर साहब से कहूंगा कि आप भूल कर रहे हैं। मैं अपने जमाने के शास्त्रियों को हुजूर मानता हूं। कितनी ही बार उन्हें बक्स को देख कर भी [illegible] पड़ती थीं। मैंने सोचा कि ठाकुर साहब ने हुक्म दिया होगा कि [illegible] शास्त्रियों से आशीर्वाद दिलाया [illegible] नहीं तो [illegible] आशीर्वाद देने लगे? इस तरह मिले आशीर्वाद का क्या लाभ? मैं तो यह चाहता हूं कि शास्त्री लोगों में यह तेज हो कि यदि मुझे हिन्दू न मानते हों, चाण्डाल मानते हों तो चाण्डाल कहें। मैं तो शास्त्रियों का भ्रम मिटाना चाहता हूं। उनसे कहना चाहता हूं कि जो अहिंसा-धर्म का पालन करता है वह किसीको अस्पृश्य नहीं मानता। इस कारण मुझे दुःख होता है कि शास्त्री लोगों के द्वारा आशीर्वाद दिलाते हुए भी मेरी अन्त्यज-सेवा का उल्लेख अभिनन्दन-पत्र में नहीं है। इसके बारे में मैं जरूर ठाकुर साहब से फरयाद करूंगा—नौकर राज्य लूंगा- उनसे कहूंगा कि जो अमिय-दृष्टि आप प्रजा के दूसरे भागों पर रखते हैं वही अन्त्यजों पर भी रखिए। तो आपका यह छोटा-सा राज्य, नन्हासा होते हुए भी सारी पृथ्वी का शोभित करेगा और राम-राज्य होगा। वाल्मीकि कवि ने कहा है कि श्री रामचन्द्र ने कुत्ते के साथ भी इन्साफ किया था और तुलसीदास ने कहा है कि राम ने चाण्डाल कहानेवाले के साथ मित्रता की, भरत निषाद-राज के पीछे पागल हो गये, उनके चरण धोये। आप उन्हीं भरत के वंशज हैं, गरीब का न भूलियेगा; रात को घूम कर प्रजा के दुःखों को देखेंगा, अन्त्यजों के प्रतिनिधि बन कर आपसे यह मांग लेता हूं कि आप पूछियेगा कि पाठशालाओं में अन्त्यजों का स्थान है या नहीं, यदि हो तो अन्त्यजों को प्रवेश उनमें कराइएगा और यदि ऐसा करने से वे [illegible] तो उन्हें खाली रहने दीजिएगा।

यहां मैंने [illegible] को देखा। मेरे मन में यह भाव उठा कि स्काउट्स का यूनिफार्म भी खादी का नहीं? इनको खादी की वरदी मिले तो मेरे अन्त्यज भाइयों का कुछ काम चले, [illegible] प्रजा का कुछ काम चले। आपने

मेरा बहुत सम्मान किया। पर मेरी भिक्षा मेरे बताये अमोघ रास्ते के लिए है। आप मुझे खादी दीजिए। सब लोग खादी पहनें, प्रजा-प्रतिनिधि मण्डल में खादी के प्रस्ताव कराइए। आपने तो मुझे सुवर्णजटित अभिनन्दन-पत्र दिया। इसके लिए मैं तिजोरी कहांसे लाऊं? और यदि तिजोरी मांगू तो उसके लिए स्थान भी मांगना पड़े, और रक्षक कहां से लाऊं? मेरा रक्षक तो राम है। सो ऐसे अभिनन्दनपत्रों को रखनेवाले जमनालाल बजाज जैसे धनवान् पुरुष हैं, जोकि मेरे पुत्र बन कर बैठे हैं। मेरे यहां तो केवल खादी को स्थान है। और खादी मैं हर किसीसे मांगूंगा। मैंने तो लार्ड रीडिंग से भी कहा कि मैं चाहता हूं कि आप और आपके दरबान खादी-भूषित हों। यही शब्द मैं आपसे और आपकी प्रजा के प्रतिनिधियों से कहता हूं। और इस कारण मुझे यह बात खटकती है जो आपने अभिनन्दन-पत्र में मेरे दो मुख्य कार्यों का उल्लेख नहीं किया है।

ठाकुर साहब की सच्ची शादी तो प्रजा के साथ होगी। और उस शादी के लिए मेरी मांग है खादी और अन्त्यजोद्धार। प्रजा तो कुमारिका है। उसका कुवांरापन यदि दूर करना चाहते हो तो उससे विवाह कीजिए, उसे सुखी बनाइए, उसका निरीक्षण कीजिए, रात को घूम घूम कर उसके दुःखों और दुखदर्द को जानिए। राम ने धोबी की उड़ती हुई बात सुन कर सीता को छोड़ दिया। आप भी प्रजामत को जान कर उसके अनुसार चलने का यत्न कीजिए। राजा की तलवार संहार करने का चिन्ह नहीं है। यह तो इस बात का सूचक-रूप है कि राजा का धर्म है तलवार की धार पर चलना। खादी हमेशा याद दिलाती है कि खांडे की धार पर चलिए, सीधे रास्ते जाइए। टेढ़े रास्ते न जाइएगा। इसका अर्थ कि राजकोट में एक भी आदमी व्यभिचारी न हो, एक भी शख्स शराब पीनेवाला न हो, हरएक स्त्री माता का स्थान लेनेवाली हो।

मुझे अपने पिताजी का स्मरण हो रहा है। मेरे पिताजी में ऐबें थीं, पर गुण भी बड़े बड़े थे। भूतपूर्व ठाकुर साहब में भी ऐबें थीं, गुण भी थे। उनके तमाम गुण आपमें आवें। ऐबों को कोशिश करके दूर करना आपका धर्म है। दुर्बलता की जगह सबलता, मैल की जगह पवित्रता, को स्थान दिलाना आपका धर्म है। इसलिए गरीबों पर दया रखिएगा, उन्हें खिला कर खाइएगा। आपकी तलवार आपके अपने गले के लिए है। प्रजा को आप कहिएगा कि यदि अधिकार की मर्यादा से च्युत होऊं तो यह तलवार मेरी गर्दन पर चलाना। मैंने इस दरबारगढ़ में नमक खाया है। इसलिए यदि आज आपसे कुछ न कहूं तो बेवफा कहाऊंगा। सारी पृथ्वी यदि मेरा आदर करे तो भी मैं फूलूंगा नहीं आपका दिया मान मुझे बहुत प्यारा है। क्योंकि मैं राजकोट में छोटे से बड़ा हुआ, अनेक लड़कों के साथ यहां खेला, असंख्य स्त्रियों ने मुझे खिलाया और आशीर्वाद दिया। परन्तु यदि असंख्य स्त्रियां मुझे आशीष दें और और मेरी माता न दे तो मुझे वह किस तरह अच्छा मालूम हो? मुझे दूध की जगह शराब मिले, कंद चाहूं तो सिगरेट मिले, तो वह किस काम के? मैं तो स्त्रियां, गरीबों और अन्त्यजों के दुःख का निवारण करना चाहता हूं। अन्त्यजों के साथ मैं अन्त्यज हो गया हूं। स्त्रियों से मैं कहता हूं कि मैं आपके लिए स्त्री हो गया हूं। आपकी पवित्रता की रक्षा के लिए मैं पृथ्वी पर पर्यटन कर रहा हूं। मैं यहां बतौर एक कंगाल के आया हूं। संसार में मुझे जिस मानादर के बल पर हूं उसी एक प्रजा-जन की हैसियत से आया हूं। मुझे यदि आप खबर देंगे कि राज्य में इतने चरखे चलने लगे हैं, इतनी खादी आ गई है तो मुझे बड़ी खुशी होगी। यदि मुझे खबर होगी कि रानी साहिबा भी खादी पहनती हैं और सारे राज्य में, दरबार के कोने कोने में खादी व्याप्त हो गई है तो मैं नंगे पैर आ कर आपको प्रणाम करूंगा। आपका भला हो और ईश्वर आपको प्रजा का कल्याण करने में समर्थ करें।"

—o—

ब्रह्मचर्य

भादरण मुकाम पर एक अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए लोगों के अनुरोध से गांधीजी ने ब्रह्मचर्य पर लंबा प्रवचन किया। उसका सार यहां दिया जाता है—

आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य के विषय पर कुछ कहूं। कितने ही विषय ऐसे हैं कि जिनपर मैं 'नवजीवन' में प्रसंगोपात्त ही लिखता हूं। और उनपर व्याख्यान तो शायद ही देता हूं। क्यों कि यह विषय ही ऐसा है कि कह कर नहीं समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्य के विषय में सुनना चाहते हैं। 'समस्त इन्द्रियों का संयम, यह विस्तृत व्याख्या जिस ब्रह्मचर्य की है उसके विषय में नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्य को भी शास्त्रकारों ने बड़ा कठिन बताया है। यह बात ९९ फी सदी सच है, १ फी सदी इसमें कमी है। इसका पालन इसलिए कठिन मालूम होता है कि हम दूसरी इन्द्रियों को संयम में नहीं रखते। उनमें मुख्य है रसनेन्द्रिय। जो अपनी जिह्वा को कब्जे में रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणिशास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि पशु जिस दरजे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उस दरजे तक मनुष्य नहीं करता। यह सच है। इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जिह्वेन्द्रिय पर पूरा पूरा निग्रह रखते हैं—इच्छा पूर्वक नहीं, स्वभावतः ही। केवल चारे पर अपनी गुजर करते हैं—सो भी महज पेट भरने लायक ही खाते हैं। वे जिन्दगी के लिए खाते हैं, खाने के लिए जीते नहीं हैं। पर हम तो इसके बिलकुल विपरीत करते हैं। मां बच्चे को तरह तरह के सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालक के साथ प्रेम दिखाने का यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन चीजों में स्वाद डालते नहीं बल्कि ले लेते हैं। स्वाद तो रहता है भूख में। भूख के वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूखे आदमी को लड्डू भी फीके और अस्वादु मालूम होंगे। पर हम तो अनेक चीजों को खा खा कर पेट को ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता। जो आंखें हमें ईश्वर ने देखने के लिए दी हैं उनको हम मलिन करते हैं और देखने की वस्तुओं को देखना नहीं सीखते। 'माता को क्यों गायत्री न पढ़ना चाहिए और बालकों को वह क्यों गायत्री न सिखावे?' इसकी छानबीन करने की अपेक्षा उसके तत्व—सूर्योपासना—को समझ कर सूर्योपासना करावें तो क्या अच्छा हो। सूर्य की उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों कर सकते हैं। यह तो मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया। इस उपासना के मानी क्या हैं? अपना सिर ऊंचा रख कर, सूर्य-नारायण के दर्शन करके, आंख की शुद्धि करना। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने कहा कि सूर्योदय में जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है, वह और कहीं नहीं दिखाई दे सकती। ईश्वर के जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता, और आकाश से बढ़ कर भव्य रंग-भूमि कहीं नहीं मिल सकती। पर कौन माता आज बालक की आंखें धो कर उसे आकाश दर्शन कराती है? बल्कि माता के भावों में तो अनेक प्रपंच रहते हैं। बड़े बड़े घरों में जो शिक्षा मिलती है उसके फल-स्वरूप तो

लड़का शायद बड़ा अधिकारी होगा, पर इस बात का कौन विचार करता है कि घर में आने-जाने वालों से जो शिक्षा बच्चों को मिलती है उससे कितनी बातें वह ग्रहण कर लेता है। मा-बाप हमारे शरीर को ढकते हैं, सजाते हैं, पर इससे कहीं शोभा बढ़ सकती है? कपड़े बदन को ढकने के लिए हैं, सर्दी-गर्मी से रक्षा करने के लिए हैं, सजाने के लिए नहीं। जाड़े से ठिठुरते हुए लड़के को जब हम अंगीठी के पास धकेलेंगे, अथवा मुहल्ले में खेलने-कूदने भेज देंगे, अथवा खेत में काम पर छोड़ देंगे, तभी उसका शरीर वज्र की तरह होगा। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है उसका शरीर वज्र की तरह जरूर होना चाहिए। हम तो बच्चों के शरीर का नाश कर डालते हैं। हम उसे जो घर में रख कर गरमाना चाहते हैं उससे तो उसकी चमड़ी में इस तरह की गर्मी आती है जिसे हम छाजन की उपमा दे सकते हैं। हमने शरीर को दुलरा कर उसे बिगाड़ डाला है।

यह तो हुई कपड़े की बात। फिर घर में तरह तरह की बातें करके हम उनके मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। उसकी शादी की बातें किया करते हैं, और इसी किस्म की चीजें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज जंगली ही क्यों न हो गये। मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनों के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो रहती है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना इसतरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। ऐसी उसकी लीला गहन है। यदि ब्रह्मचर्य के रास्ते से वे सब विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनिया के साथ शारीरिक मुकाबला करना चाहते हैं। उसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर बल प्राप्त करने के लिए हर किस्म के उपायों से काम लेना—हर तरह की चीजें खाना, शारीरिक मुकाबले करना, गोमांस खाना, इत्यादि। मेरे लड़कपन में मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो अंगरेजों की तरह हट्टे-कट्टे हम न हो सकेंगे। जापान को भी जब दूसरे देश के साथ मुकाबला करने का समय आया तब वहां गो-मांस भक्षण को स्थान मिला। सो यदि आसुरी प्रकार से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीजों का सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मुझे अपने पर दया आती है। इस अभिनन्दन-पत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने इस अभिनन्दन-पत्र का मजमून तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किस चीज का नाम है। और जिसके बालबच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी बुखार आता है, न कभी सिर दर्द करता है, न कभी खांसी होती है न कभी अपेंडिसाइटिस होता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि नारंगी का बीज आंत में रह जाने से भी अपेंडिसाइटिस होता है। परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और निरोगी होता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते। जब आंतें शिथिल पड़ जाती हैं तब वे ऐसी चीजों को अपने आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आंतें शिथिल हो गई होंगी। इसीसे मैं ऐसी कोई चीज हजम न कर सका हूंगा। बच्चे ऐसी अनेक चीजें खा जाते हैं। माता इसका कहां ध्यान रखती है? पर उसकी आंत में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है।

इसलिए मैं चाहता हूं कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोपण कर के कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का तेज तो मुझसे अनेकगुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हां, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूं। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभव की कुछ बूंदें पेश की हैं, जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताती हैं। ब्रह्मचारी रहने का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूं, अपनी बहन का स्पर्श न करूं। पर ब्रह्मचारी होने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो जिस तरह कि कागज का स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य तीन कौड़ी का है। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर का स्पर्श कर के कर सकते हैं उसीका अनुभव जब हम किसी भारी सुन्दरी युवती का स्पर्श कर के कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक ऐसे ब्रह्मचर्य को प्राप्त करें, तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं बना सकते, मुझ जैसा अधूरा भी क्यों न हो पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम संन्यासाश्रम से भी बढ़ कर है। पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है और संन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी असहाय अवस्था हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुकरण करके तो आप पांचसौ वर्षों तक भी पठानों का मुकाबला न कर सकेंगे। दैवी मार्ग का अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानों का मुकाबला हो सकता है। क्योंकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षण में हो सकता है। पर शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी मार्ग का अनुकरण तभी हमसे होगा जब हमारे पल्ले पूर्वजन्म का पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेंगे।

श्री भरूचा का रोज़नामचा

श्री भरूचा के कार्य का कुल ब्योरा इस प्रकार है—

"पूर्व खानदेश में श्री दास्ताने और डेव के साथ मैं घूम रहा हूं। मेरा रोजनामचा इस प्रकार है—

१३-२-२५ भुसावल—खादी ३५०) की, खासकर वकीलों को बेची। और १२ मन रुई इकट्ठा की।

१४-२-२५ जामनेर—१६। मन रुई इकट्ठा की।

१५-२-२५ चालीसगांव—३००) की खादी वकीलों को बेची और ४५०) की कपड़े के व्यापारियों को। १ मन रुई इकट्ठा की।

१६-२-२५ पाचोरा—१२ मन रुई इकट्ठा की और शेन्दुरनी में पक्की ५ मन रुई इकट्ठा की।

१७-२-२५ आज हम लोग यावल में हैं। श्री दास्ताने खानदेश में तीन दिन अर्थात् २३ तारीख तक रहना चाहते हैं।

दूसरे कार्यकर्ताओं को उत्साह दिलाने के लिए मैंने श्री भरूचा के पत्र का यह अंश यहां उद्धृत किया है। व्यापारी की तरह लगातार कोशिश किये बिना रुई और खादी के प्रचार में सफलता मिलना संभव नहीं। मेरा अनुभव तो यह है कि जहां कहीं भी काम किया जाता है वहां से अनुकूल जवाब तो फौरन् ही मिलता है। (यं॰ इं॰)

सत्याग्रही की कसौटी

वाइकोम से एक सत्याग्रही अपने पत्र में लिखते हैं—"त्रावणकोर की धारासभा ने २१ खिलाफ २२ मत से दूरितों के खिलाफ प्रस्ताव पास किया है। खुद अन्त्यजों के एक प्रतिनिधि ने भी सरकार के हक में राय दी थी। अब लोग 'सीधे प्रहार' की भी हिमायत करने लगे हैं और जबरदस्ती मन्दिरों में घुस जाने की सूचना दे रहे हैं। सत्याग्रह छावनी में चेचक का प्रकोप बुरी तरह हो रहा है। केन्द्र प्रान्तिक समिति का उत्साह मंद पड़ता जा रहा है। हर बात के लिए हमें आपकी अमूल्य सहायता और सलाह का आधार रहता है। हमारा खजाना अब खुटता चला। आपके पधारने से हमें अनमोल मदद मिलेगी।"

यह पत्र अच्छा है; क्योंकि इसमें साफ साफ बातें हैं। यदि इसमें वर्णित समाचार सच हों तो मैं त्रावणकोर सरकार को मुबारकबादी नहीं दे सकता। पर असली हालत मुझे मालूम नहीं है। इसलिए जबतक मैं जाकर सच्ची हालत न जान लूं तबतक इसपर अपनी राय कायम करना मुल्तवी रखता हूं। मैं जितना जल्दी हो सके वाइकोम जाने के लिए आतुर हूं और आशा रखता हूं कि इसमें विलंब न होगा।

इस बीच सत्याग्रही निराश तो हो ही नहीं सकते। निराशा के सामने वे दब तो हरगिज नहीं सकते। मैंने जो कुछ तामिल भाषा सीखी है उसमें से एक कहावत मुझे अबतक याद है उसका भाव है 'गरीब का रखवाला ईश्वर है।' इस सत्य के प्रति विश्वास ही सत्याग्रह के महान् सिद्धान्त का मूल है। इसके प्रमाणभूत उदाहरणों से अकेले हिन्दू-धर्म का ही साहित्य नहीं बल्कि दूसरे तमाम धर्मों का साहित्य भरा पड़ा है। त्रावणकोर-दरबार ने भले ही सत्याग्रहियों के साथ विश्वासघात किया हो—मैं भी विश्वासघात करूं तो इसमें क्या? ईश्वर ऐसा न करेगा—यदि उसपर उन्हें श्रद्धा हो। यदि मेरे भरोसे रहते हों तो उन्हें जान लेना चाहिए कि वे सड़े बांस का भरोसा कर रहे हैं। इतने फासले पर बैठे हुए मैं उनका भला-बुरा करने में असमर्थ हूं। मैं चाहे उनके आंसू पोंछ सकूं; पर कष्ट सहन करने का सौभाग्य तो उन्हींका है। और यदि उनका कष्ट-सहन शुद्ध होगा तो उसके द्वारा उन्हें विजय मिले बिना नहीं रह सकती। ईश्वर अपने भक्तों को अन्त तक कसौटी पर चढ़ाता है पर उनकी सहनशक्ति की हद से बाहर हरगिज नहीं। जिस तपश्चर्या का आदेश वह करता है उससे बच निकलने की शक्ति भी वह दे रखता है। वाइकोम के सत्याग्रहियों का सत्याग्रह ऐसा प्रयोगात्मक नहीं है कि कुछ समय में सफल न हो तो अथवा एक हदतक कष्ट सह लेने के उपरान्त उसे छोड़ बैठें। सत्याग्रह के लिए काल-मर्यादा नहीं होती। उसी प्रकार कष्ट सहने की भी मर्यादा नहीं होती। इसीलिए सत्याग्रह में पराजय के लिए जगह ही नहीं है। जिस बात को लोग सत्याग्रहियों की हार मानते हों वह उनका विजय का उदय-चिह्न क्यों न हो—प्रसूति के पहले की वेदना क्यों न हो?

वाइकोम के सत्याग्रहियों का युद्ध स्वराज्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है। युगों से प्रचलित अपराध और अन्याय का मुकाबला वे कर रहे हैं। सनातनधर्मी, वहम, रूढी और दलील उसके पृष्ठपोषक हैं। यह एक ऐसा पुण्य-युद्ध है जो साक्षरता के नाम पर प्रचलित अज्ञान और धर्म के नाम पर प्रवर्तित अधर्म के खिलाफ शुरू किया जाता है। यदि उनके युद्ध में रक्तपात को स्थान न होगा तो कठिन से कठिन परिस्थिति में भी उन्हें धीरज ही रखना उचित है। आग की धधकती ज्वालाओं के मुकाबले में भी उन्हें अटल रहना होगा।

हो सकता है कि प्रान्तिक समिति उन्हें कुछ भी मदद न दे। उन्हें किसी किस्म की आर्थिक सहायता न मिले। उन्हें लंघन भी करना पड़े। फिर भी इन भयंकर कसौटियों में उनकी श्रद्धा देदीप्यमान दिखाई देनी चाहिए।

सत्याग्रही जो कर रहे हैं वही 'सीधा प्रहार' है। परन्तु प्रतिपक्षियों पर वे बिगड़ नहीं सकते। वे अज्ञान हैं। वे सब दगाबाज नहीं हैं जिस तरह कि सभी सत्याग्रही भी साफ-पाक नहीं होते हैं। जिसे वे अपने धर्म पर आक्रमण समझते हैं उसका मुकाबला कर के वे अपनी रक्षा कर रहे हैं। वाइकोम का सत्याग्रह कष्टसहन की दलील है। क्रोध-रहित, द्वेष-रहित कष्ट-सहन के उदीयमान सूर्य के सामने कठोर से कठोर हृदय पिघले बिना नहीं रह सकता, घोर से घोर अज्ञान दूर हुए बिना नहीं रह सकता।

सत्याग्रह छावनी में शीतला के प्रकोप की बात सुन कर मैं चौंक उठा हूं। यह रोग गंदगी से उत्पन्न होता है और तन्दुरुस्ती-सम्बधी मामूली उपायों से दूर हो सकता है। चेचक के रोगियों को दूसरों से अलग रख कर उसके प्रकोप का कारण खोजना चाहिए। छावनी में सफाई तो पूरी पूरी रहती है न? डाक्टरों के पास चेचक की कोई दवा नहीं रहती। जल-चिकित्सा ही उसका उत्तम इलाज है। सूक्ष्म आहार अथवा अनाहार सबसे अच्छा रास्ता है। पर सबसे बढ़कर महत्व की बात तो यह है कि रोगी अथवा दूसरे लोग दोनों में से कोई भी हिम्मत न हारें। रोगियों की पीड़ा भी उनके कष्ट-सहन की विधि का एक अंग है। सैनिकों की छावनियां रोग से बिल्कुल अछूती नहीं होतीं। यहांतक कि, कहते हैं, गोलियां खा कर मरनेवाले सैनिकों की अपेक्षा रोग से मर जानेवाले सैनिक ही ज्यादह होते हैं। रुपये-पैसे की चिन्ता वे बिल्कुल न करें। उनकी अखण्ड श्रद्धा उन्हें आवश्यक आर्थिक सहायता दिला देगी। मैंने अबतक एक भी काम ऐसा नहीं देखा है जो धन के अभाव से अन्त तक न पहुंचा हो।

(य० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

सच हो तो अमानुष

शि० गु० प्र० समिति की ओर से मुझे नीचे लिखा तार मिला है—

"नाभा से हाल ही बड़े अमानुषी अत्याचारों की खबरें आई हैं। कैदियों को केश, दाढी पकड कर खींचा गया है और ऐसी मार मारी गई है कि वे बेहोश हो गये हैं। उनसे पानी में गोते लगवाये गये हैं। बदन के भिन्न भिन्न हिस्से लोहे के लाल गरम सीकचों से दागे गये हैं और सिर नीचे और पांव ऊपर बांध कर लटका दिये गये हैं, जिससे कितने ही लोग मर भी चुके हैं। बहुतों की हालत चिन्त्य हो रही है। कितनों ही को सख्त जख्म पहुंचे हैं। कुछ जत्थों को तो ता. १३-१४ को खाना-पीना ही नहीं दिया गया। बड़ी सनसनी फैल रही है। हालत निहायत गंभीर है। तुरन्त कुछ उपाय करना जरूरी है।"

मैं इस तार को छाप तो देता हूं—पर अफसोस! तुरन्त उपाय क्या किया जा सकता है? हां लोगों की हमदर्दी का तो कैदी लोग बिल्कुल यकीन रक्खें। मुझे इस बात में भी कोई शक नहीं कि बड़ी धारासभा में प्रश्न तर भी होंगे; पर इससे उन दुखियों को क्या तसल्ली मिलेगी! मैं तो सिर्फ यही आशा कर सकता हूं कि यह चित्र अतिरंजित होगा और कर्मचारी लोग आरोपित अमानुषता के अपराधी न होंगे। मैं विश्वास करता हूं कि नाभा के राज्याधिकारी इन भयंकर इल्जामों का खुलासा पेश करेंगे, जो कि जेल के कर्मचारियों पर लगाये गये हैं और निष्पक्ष तौर पर उनकी तहकीकात करायेंगे।

(यं. इं.)

महासभा और ईश्वर

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का [illegible]
एक प्रति का [illegible]
विदेशों के लिए [illegible]

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक [illegible]

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, फाल्गुन सुदी १०, संवत् १९८१ गुरुवार, ५ मार्च, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

महासभा के नये सदस्य

१ मार्च तक हुए सदस्यों का लेखा, जिसकी सूचना 'यं. इं.' दफ्तर में पहुंची है, इस प्रकार है—

अ ३०८३ } कुल ६६४४
ब १६५७ } (इनमें वे सदस्य भी शामिल हैं जिनके 'वर्ग' की सूचना नहीं मिली है)

यह तादाद सब प्रान्तों की सही तादाद नहीं है। क्योंकि कुछ प्रान्तों ने अभी अपना ब्योरा भेजा ही नहीं है और कुछ प्रान्तों ने केवल उतने ही जिलों के अंक भिजवाये हैं जितने की सूचना उन्हें १ मार्च तक मिल पाई थी।

संख्या क्रम के अनुसार प्रान्तों की नामावलि

		अ	ब	कुल	
१.	गुजरात	१६४९	७८	१७२७	अभी और अंक मिलने की आशा है
२.	बंगाल	२०४	९६२	१२१६	"३२ जिलोंमें से सिर्फ १६ ही जिलों के अंक हैं"
३.	करनाटक	४००	२००	६००	"कुल तादाद पीछे से भेजी जायगी।"
४.	पंजाब	तफसील नहीं		५७५	"और ब्योरा मिलने की आशा है"
५.	बिहार	४१८	१४६	५६४	"बहुतेरे जिलों से ब्योरा अभी मिला नहीं है।"
६.	मध्यप्रान्त (हिन्दी)	तफसील नहीं			
७.	युक्तप्रान्त	तफसील नहीं		४००	"जिलों से अधूरा ब्योरा मिला है।"
८.	बंबई	२३१	१३३	३६४	
९.	आन्ध्र	तफसील नहीं		२८५	"जिलों से ब्योरा नहीं आया। २० ता. तक आजाने की उमीद है"
१०.	सिन्ध	तफसील नहीं		१३२	
११.	उत्कल	७३	३३	१०६	
१२.	महाराष्ट्र	२७	६९	९६	
१३.	मध्यप्रान्त (मराठी)	२९	२१	५०	नागपुर नगर के ही अंक हैं।
१४.	अजमेर	२	१५	१७	
१५.	बरार	तफसील नहीं		१२	"अमरावती जिले के अंक हैं। और तरक्की की आशा है। ब्योरा २० ता० तक मिल जायगा"
		३०८३	१६५७	६६४४	

अब जिन प्रान्तों की ओर से खबर नहीं मिली है वे ये हैं—

१ तामिलनाड २ बर्मा ३ केरल ४ देहली ५ सीमाप्रान्त

"अ" से मतलब उन सदस्यों से है जिन्होंने खुद सूत कात कर भेजा है। "ब" से मतलब उन सदस्यों से है जिन्होंने दूसरे से कता कर सूत भेजा है।

प्रत्येक प्रान्त की रिपोर्ट उसके सामने लिखी गई है। जहांतक मुमकिन हो सका मूल रिपोर्ट के तार की भाषा ही कायम रक्खी गई है। यह रिपोर्ट कुछ आखिरी रिपोर्ट नहीं है। मराठी मध्य प्रान्त के अंक ५० केवल नागपुर नगर के ही अंक है। इसी प्रकार बरार के अंक केवल अमरावती जिले के अंक हैं। खास कर बंगाल और बिहार तो आधे से ज्यादह जिलों के अंक अभी नहीं प्राप्त कर सके हैं। शायद आगामी सप्ताह पूरी रिपोर्ट यदि जरूरत हुई तो तार से मिल जायगी।

टिप्पणियां

फरीदपुर परिषद्

मेरे पास तार पर तार आ रहे हैं कि मैं बंगाल प्रान्तीय-परिषद् में उपस्थित होऊं। पर अत्यन्त खेद है कि मैं उसमें शरीक न हो पाऊंगा। मैं खुद वहां जाने के लिए लालायित था, इसलिए मेरा खेद और भी बढ जाता है। मैंने फरीदपुर के मित्रों को चेता दिया है कि मेरे भरोसे न रहें। मैंने उनसे कह दिया है कि आजकल मेरा आना-जाना अनिश्चित रहता है। मेरी दशा ईर्ष्या करने योग्य नहीं है। बिहार, बर्मा, उडीसा, आन्ध्र तथा कितनी ही दूसरी जगहों से मुझे बुलौवा आया है। मैं सब जगह जाना पसन्द करूंगा। पर मैं सब जगह एक ही साथ नहीं जा सकता। इसीलिए मुझे यह निर्णय करना होगा कि कहां पहुंच कर मैं ज्यादह से ज्यादह सेवा कर सकूंगा। मैं महसूस करता हूं कि अभी फिलहाल मेरा स्थान वाइकम के वीर सत्याग्रहियों के नजदीक है। यह बडा पुराना वादा है। वे छोटी से छोटी बात में सत्याग्रह-सिद्धान्त का पालन करना चाहते हैं। उनकी तादाद थोडी है। वे हर भारी विघ्न-बाधाओं के रहते हुए भी लडाई लड रहे हैं। अबतक मैंने उनके बाहर से आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता लेने में दखल दिया है। अब यह उचित है कि मैं बतौर एक सत्याग्रह के विशेषज्ञ के उनके पास जाऊं, उन्हें राह दिखाऊं और उनकी तमाम दिक्कतों में उनको हिम्मत बंधाऊं। आशा है, दूसरे प्रांतों के मित्र मेरे या उनके इस मिलाप के सौभाग्य पर जिससे कि हम बहुत दिनों से वंचित थे— नाक भौंह न सिकोडेंगे।

एक बात और। मैं समझता हूं कि वाइकोम जा कर तो मैं इन सत्याग्रहियों की कुछ सहायता कर सकूंगा; पर मुझे यकीन है कि अन्य प्रान्तों में सिवा दरस-परस के और किसी उपयोग में न आ सकूंगा। उनके लिए मेरा नुस्खा बहुत आसान है। अपने स्थानीय झगडों को मिटा दीजिए—वे चाहे हिन्दू-मुसल्मानों में हों, चाहे ब्राह्मणों-अब्राह्मणों में हों। जितना आपसे हो सके उतना चरखा कातिए, हर मौके पर खादी पहनिए और महासभा के लिए जितने आपसे हो सके सूत कातनेवाले सदस्य बनाइए। इसके साथ ही ऐसे सदस्य भी बनाइए जो खुद २००० गज हर माह न कातेंगे लेकिन दूसरे का कता सूत देंगे। अपने जिले या प्रान्त के दलित-पीडित भाइयों की जिस तरह हो सके मदद कीजिए। अपने मुकाम को शराब और अफीम की बदी से बरी कर दीजिए; और फिर आगे की कार्रवाई के लिए मुझे बुलाइए। अगर हम यह चाहते हों कि अगले साल आशा के युग का उदय हो तो हमें चाहिए कि इस शान्ति के वर्ष में हम अपनी तमाम शक्ति राष्ट्र के इस रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति में लगावें। सरकार चाहे कुछ भी करे या न करे और बंगाल आर्डिनन्स भी भले ही रहे, हमें अपना कदम न रोकना चाहिए। यदि हम चाहते हों कि यह आर्डिनन्स रद हो जाय तो उसके लिए हमें काफी बल इकट्ठा करना चाहिए। इसका मेरे नजदीक एक ही उपाय है—हम अपनी पूरी शक्ति के साथ रचनात्मक कार्यक्रम में लग जायं।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या

अखबारों में छपे वक्तव्य से पाठकों को मालूम होगा कि सर्व-दल-परिषद् नियुक्त उप-समिति इस महा समस्या का कुछ निपटारा करने में समर्थ न हो पाई है। लेकिन मैं कुछ न कर सकता था। शायद यह अच्छा ही हुआ जो कुछ निपटारा न हो पाया। ऐसे निपटारे के अनुकूल वायुमण्डल अभी नहीं है। हर फरीक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देखता है। ऐसी हालत में दोनों की एक सामान्य भित्ति पर कोई काम नहीं किया जा सकता। हर फरीक अपने से जितना कम हो सके छोडना चाहता है। और न दो में से किसीके भी दिल में ऐसे निपटारे की सच्ची उत्कण्ठा किसीको दिखाई देती है। फिर भी निराशा का कोई कारण नहीं है। हो सकता है कि इस असफलता के ही आधार पर आगे की सफलता की बुनियाद पडे—बशर्ते कि वे लोग जो एक-दूसरे पर विश्वास रख सकते हैं और जिन्हें एक-दूसरे का डर नहीं है अपने अकीदः पर बराबर अटल रहें और निपटारे के लिए उद्योग करते रहें। कोई निपटारा राष्ट्रीय तभी होगा जब वह सरकार पर अवलम्बित न रहता हो अर्थात् वह स्वयं कार्य-क्षम हो और उसकी कार्य-पूर्ति सरकार की सदिच्छा पर अवलम्बित न हो।

मेरा अपराध

मौ० जफरअली खान ने पंजाब खिलाफत समिति के सभापति की हैसियत से एक खत मुझे भेजा है जिसे मैं खुशी के साथ छाप रहा हूं:—

"ता. २६ माह हाल के यंग इन्डिया में काबुल की संगसारी के विषय में आपने जो अपना वक्तव्य प्रकाशित किया है उसे मैंने दुःख और आश्चर्य के साथ पढा। आप फरमाते हैं कि 'महज इस बिना पर कि इसका जिक्र कुरान में है इस सजा का समर्थन नहीं किया जा सकता।' इसके सिवा आपने यह भी कहा है 'इस तर्कयुग में हर धर्म के हर विधि को, यदि सार्वत्रिक-रूप में उसकी स्वीकृति चाही जाती हो तो तर्क और सामान्य न्याय की कसौटी पर कसना ही होगा।' अखीर में आप जोर के साथ फरमाते हैं कि 'भूल अपवाद होने का दावा नहीं कर सकती— फिर वह भले ही सारी दुनिया के धर्मशास्त्र के द्वारा अनुमोदित हो।'

"मैंने हमेशा आपकी महत्ता के आगे सर झुकाया है और आपको बराबर उन थोडे आदमियों में मानता आ रहा हूं जोकि आधुनिक इतिहास का निर्माण कर रहे हैं; पर अगर मैं यह बात आप पर रोशन न करूं, कि कुरान के अपने अनुयायियों के जीवन को अपने ढंग पर नियमित बनाने के हक को चुनौती दे कर आपने अपने प्रति आदर रखने वाले लाखों मुसलमानों का विश्वास उनके रहनुमा होने की अपनी शक्ति से हिला दिया है, तो मैं एक मुसलमान की हैसियत से अपने कर्तव्य से च्युत होऊंगा।

"आप इस बात पर अपनी राय जाहिर करने के लिए तो पूरी तरह आजाद हैं कि धर्मपतित लोग शरीयत के मुताबिक संगसारी की सजा पा सकते हैं या नहीं। परन्तु यह मानना कि यदि कुरान भी ऐसी सजा की ताईद करती हो तो वह मलामत के काबिल है यह इस किस्म की विचार-सरणी है जो मुसलमानों को नहीं जंच सकती।

'भूल आखिर एक सापेक्ष चीज है और मुसल्मानों के यहां उसका अपना अलग अर्थ है। उनके नजदीक कुरान एक अटल कानून है जो कि क्षुद्र मानवजाति की सदा परिवर्तनशील व्यवहार नीति और समयजाति की सीमा से परे है। ईश्वर अच्छा करता यदि भारत के नेता की हैसियत से प्रवर्तित आपकी बहुविध कार्यमाला में कुराने शरीफ की शिक्षाओं की प्रतिकूल आलोचना करने का नाजुक काम और न शामिल हुआ होता।"

मौलाना साहब ने मेरी उस टिप्पणी पर, ऐसा अर्थ चढाया है

जो कि उनपर नहीं घटता है। मैंने 'कुरान शरीफ के उपदेशों के विपरीत (या और किसी तरह की) आलोचना' नहीं की है। लेकिन हां, मैंने उपदेशकों की अर्थात् उसके भाष्यकारों की आलोचना पहिले से यह समझकर की है कि वे इस सजा की कुछ सफाई देंगे। मुझे भी कुरान और इस्लाम की तारीख का इतना इल्म जरूर है जिसके अर्थ मैं जानता हूं कि कुरान के ऐसे कितने ही भाष्यकार हैं जिन्होंने अपने पूर्व कल्पित विचारों के अनुकूल उसका अर्थ घटाया है। इसमें मेरा उद्देश यह था कि ऐसे किसी अर्थ का मानने के विषय में चेतावनी दे दूं। लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूं कि खुद कुरान की शिक्षायें भी आलोचना से बरी नहीं रह सकतीं। आलोचना से तो हरएक सच्चे धर्मग्रन्थ को लाभ ही होता है। आखिर अपने तर्क-बल के अतिरिक्त हमारे पास और कोई रहनुमा नहीं है जो हमें बतावे कि कौन चीज अपौरुषेय (इल्हामी) है और कौन चीज नहीं। शुरू में जिन मुसलमानों ने इस्लाम को अख्त्यार किया उन्होंने इसलिए नहीं किया कि वे इसे इल्हामी समझते थे बल्कि इसलिए कि वह उनकी ताजी बुद्धि को जंच गया। हां, मौलाना साहब का यह कहना ठीक है कि भूल एक सापेक्ष शब्द है। लेकिन हकीकत में देखा जाय तो कुछ बातें तो ऐसी हैं जिन्हें सब लोग मानते हैं। मैं मानता हूं के यज्ञयागों के द्वारा प्राण लेना ऐसी ही भूल है। मौलाना साहब की बताई मेरी उन तीन बातों में मैंने सिर्फ अर्थ लगाने की तीन विधियों का जिक्र किया है जिनके खिलाफ कोई उजर नहीं उठा सकता है। हर हालत में मैं तो उन्हींका पाबन्द हूं। और अगर मुझे इस बात को जाहिर करने की पूरी आजादी है कि 'आया इस्लाम की शरीयत के मुताबिक धर्मपतित लोग संगसारी की सजा के काबिल हैं या नहीं' तब मैं इस बात पर भी क्यों न अपनी राय जाहिर करूं कि शरीयत के मुताबिक संगसारी की सजा भी दी जा सकती या नहीं। मौलाना साहब ने इस्लाम संबंधी गैर-मुस्लिम की आलोचना को बरदाश्त न करने की वृत्ति जाहिर की है। मैं उन्हें सूचित करता हूं कि खुद अपने प्राण की तरह प्रिय वस्तु की भी आलोचना का बरदाश्त न करना सार्वजनिक-सामुदायिक जीवन-वृद्धि का साधक नहीं है। और यदि कोई आलोचना बेजा भी हो तो उसे निश्चय ही इस्लाम को डरने की कोई आवश्यकता नहीं। इसलिए मैं मौलाना साहब को सूचित करता हूं कि काबुल की इस दुर्घटना में जिन जबरदस्त प्रश्नों का समावेश होता है उनपर मेरी आलोचना के प्रकाश में विशद दृष्टि से चिंतन करना उचित है।

सिलहट की पुकार

सिलहट जिले में दौरा करने के लिए निमंत्रण देते हुए उसके समर्थन में नीचे लिखी करुण प्रार्थना की गई है।–

यद्यपि हमारे वर्तमान काल को देखकर आपको तकलीफ देना ठीक नहीं मालूम होता लेकिन हमारा भूतकाल तो आपकी सहानुभूति प्राप्त किये बिना नहीं रह सकता। हमारी तो कुछ अजीब हालत है। राजनैतिक दृष्टि से तो हम लोग आसाम सरकार की हुकूमत में है लेकिन भाषा में, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक सभी बातों में हमारा बंगाल से ही घनिष्ठ और अभिन्न संबन्ध है। हमारी जिला समिति बंगाल प्रान्तिक समिति के मातहत है।

जब असहयोग पुरजोश में था उन दिनों में आसाम प्रांत को ही जिसमें हमारा जिला भी शामिल है, पंजाब के बाद नौकरशाही के कोप का सबसे अधिक सहन करना पड़ा था।

हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों में यह जिला चाय के बागों के मजदूरों के चले जाने के, मैमी भाग में कुराव के टुकड़े किये जाने के और अंत में चांदीपाट की दुर्घटना के कारण मशहूर हुआ है।

"कानून और व्यवस्था" ने इस जिले के करीब करीब २६ लाख निवासियों से करीब करीब २ लाख से भी अधिक रुपया महसूल के तौरपर वसूल किया है।

लगभग २०० राष्ट्रीय कार्यकर्ता यहां कैद किये गये थे।

इस अमर्यादित सख्ती ने महासभा के कार्यों को बड़ी हानि पहुंचाई है। बहुत से लोग तो अपने कामों को संभालने के लिए वापिस चले गये और इसीलिए आज हमारी संख्या में बड़ी कमी दिखाई देती है।

दस राष्ट्रीय शालाओं में से आज सिर्फ एक ही शाला मुश्किल से चल रही है। करीब २०००० चरखे चल रहे हैं लेकिन कुछ थोड़े ही को छोड़ कर सब विदेशी सूत इस्तेमाल कर रहे हैं। हमारे जिले से साल दर साल विदेशी व्यवपतियों के द्वारा काफी सूत बाहर भेज दिया जाता है।"

सिलहट का भूतकालीन इतिहास बड़ा अच्छा था। लेकिन कोई राष्ट्र सिर्फ अपने भूतकाल पर ही जिन्दा नहीं रह सकता। गौरव और प्रकाशवान् भूतकाल, वर्तमानकाल को प्रेरणा दे सकता है, उसे प्रेरणा देना ही चाहिए, लेकिन भविष्य का निर्णय तो हमारे वर्तमान कार्य से ही होगा। इसलिए सिलहट जिले के लोगों को जाग्रत हो जाना चाहिए और जहांतक उनके जिले से ताल्लुक है उन्हें रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाना चाहिए। यह विचार बड़ा ही दुःखद है कि देशभर में लोग सजा पा कर अपंग हो गये हैं। यदि हम दुःख सहन करने का रहस्य समझे होते तो उससे अपंग होने के बजाय हमारे अन्दर नया जोश आना चाहिए था जैसा कि आम तौर पर उससे हुआ भी है। उनके जिले से जो रुई बाहर जाती है उसे रोकना और अपने ही जिलों में कते हुए सूत के कपड़े बुनने के लिए जुलाहों को राजी करना, यह सिलहट के लोगों की ताकत के बाहर न होना चाहिए। तभी वे मुझे उनके जिले की मुलाकात करने के लिए कहने के हकदार होंगे, उसके पहले नहीं।

हमारी मजबूरी

लखनऊ में ता २२ फरवरी को शहर के मध्य विभाग में पुलिस स्टेशन के पास रात के दस बजे एक बड़ी हिम्मत का डाका पड़ा था। उसके वर्णन का एक लम्बा तार मुझे मिला है। तार में लिखा है कि साहूकार लोग अपनेको सहीसलामत नहीं समझते और अभीतक डाकू लोग तो पकड़े ही नहीं गये। तार का उद्देश तो बेशक यही है कि उससे प्रजा की सहानुभूति प्राप्त हो और दुनिया में जो सरकार सबसे अधिक खर्चीली है और फिर भी जो जानोमाल की रक्षा तक नहीं कर सकती उसपर आक्षेप किये जायं। लखनऊ के नागरिकों यह सहानुभुति तो मिलेगी ही। सरकार पर आक्षेप भी भले किये जा सकते हैं। लेकिन अधिक महत्व का प्रश्न तो यह है कि जब डाकू आये, साहूकार लोग क्या कर रहे थे? तार से मालूम होता है कि आत्मरक्षा के लिए उन्होंने कमोबेशी-सफलता पूर्वक प्रयत्न किया था। जो लोग मालदार हैं उनमें आत्मरक्षा के लिए अधिक शक्ति नहीं होती। डाकेजनी की लाचार पुकार जब मेरे कानों को सुनाई देती है तब मैं सरकार की रक्षा करने की शक्ति के अभाव का उतना विचार नहीं करता जितना कि लूटे गये लोगों की कमजोरी का विचार करता हूं। कानून में आत्म-रक्षा करने का हक दिया गया है। आत्म-रक्षा करने वाले की हिम्मत ही मनुष्य का गौरव है। यदि लोग जान, माल और इज्जत की रक्षा के लिए अधिकारियों का मुंह न ताकेंगे और आत्मा-रक्षा का आधार स्वयं अपने ऊपर ही रक्खेंगे तो यह स्वराज्य के लिए बड़ी भारी शिक्षा होगी।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन सुदी १०, संवत् १९८१

महासभा और ईश्वर

एक मित्र लिखते हैं—

"आपका खुलासा जानने के लिए मैं एक विषय पर आपसे निवेदन करना चाहता था और वह विषय है 'ईश्वर' शब्द। एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता के तौर पर, 'यंग इंडिया' के एक अभी ताजे ही अंक में लिखे गये इस वाक्य के खिलाफ कि "मैं इसे (राम-नाम को) उन पाठकों को भेंट करता हूं जिनकी कि दृष्टि अधिक विद्वत्ता के कारण मंद नहीं हो गई है और जिनकी श्रद्धा अभी नष्ट नहीं हो पाई है। विद्वत्ता जीवन के कितने ही विभागों में से हमें सफलतापूर्वक निकाल ले जाती है लेकिन, भय और लालच के अवसर पर वह कुछ काम नहीं आती, उस अवसर पर तो केवल श्रद्धा से ही रक्षा होती है" (य. इं. २२-१-२५ पृ. २७) मुझे कुछ कहना नहीं है, क्योंकि आपने इसमें अपना व्यक्तिगत विश्वास जाहिर किया है और मैं यह भी जानता हूं कि मौके मौके पर उन लोगों की तारीफ में जो अंतःकरण से ईश्वर को नहीं मानते हैं, कुछ शब्द उनके लायक कहने में आप चूके नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर नीतिधर्म का यह वाक्य लीजिए— "हमें ऐसे बहुतेरे आदमी मिलते हैं जो अपनी धार्मिकता का अपनेतईं अभिमान रखते हैं और बुरे से बुरे अनीति के कार्य करते हैं। दूसरी तरफ ऐसे भी शख्स देखे गये हैं जैसे कि स्वर्गीय मि. ब्रेडला जो कि बड़े नीतिमान् और सद्गुणी होने पर भी अपनेको नास्तिक कहलाने में ही अभिमान मानते थे।"

"भय और लालच के अवसर पर जिससे रक्षा होती है" उस राम नाम के प्रति श्रद्धा रखने के संबंध में तो मैं केवल राष्ट्रधर्मी फ्रेन्सीस्को फेरर का नाम याद दिलाता हूं जो स्पेन में उन लोगों के हाथ शहीद हो गया जिन्हें ईसा-मसीह के नामपर—उनके राम नाम पर विश्वास था। मैं धार्मिक युद्धों के बारे में, परधर्मियों को जलाने और उनके हाथ-पैर तोड़ डालने के बारे में और बलिदान के तौर पर पशुओं और कभी कभी तो मनुष्यों को भी पीड़ा देने और उनकी हत्या करने के बारे में अधिक नहीं कहता; यह सब उसके नाम पर और उसका अधिक सम्मान करने के लिए किया गया था। खैर, यह तो दूसरी ही बात हुई।

एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता की हैसियत से मैं आपको यह याद दिलाता हूं कि जब आपने यह कहा था कि केवल ईश्वर से डरनेवाले ही सच्चे असहयोगी बन सकते हैं तब श्री— ने (अपने एक राष्ट्रीय मित्र की तरफ से) उसका विरोध किया था और आपने उस समय उन्हें यह यकीन दिलाया था कि राष्ट्रीय कार्य के इस कार्यक्रम पर अमल करने के लिए मनुष्य को अपने धार्मिक विश्वासों को व्यक्त करना कोई जरूरी नहीं है (देखिए यं० इं० ५ मई १९२१, पृ० १३८)। महासभा के स्वयंसेवकों को जो प्रतिज्ञा करनी पड़ती है उसकी शुरूआत ही "ईश्वर को साक्षी रखकर" इस वाक्य से होती है। इसलिए अब वह पहले की दलील अधिक जोर के साथ पेश की जा सकती है। आप तो जानते ही होंगे कि बौद्ध (जैसे कि बर्मा के—और अब हिन्दुस्तानी और आपके मित्र प्रो० धर्मानंद कोसम्बी) और जैन और दूसरे हिन्दुस्तानी जो इस पुराने संप्रदाय को नहीं मानते हैं, उनका धर्म अज्ञेयवादी है। यदि वे चाहें तो भी क्या यह संभव हो सकता है कि वे उस प्रतिज्ञापत्र पर जिसका आरंभ ही उसके नाम से होता है जिसे वे नहीं मानते हैं, अंतःकरण पूर्वक दस्तखत कर के महासभा के स्वयंसेवक बन सकेंगे? यदि नहीं, तो क्या उन्हें सिर्फ उनके धार्मिक विश्वास के कारण ही बाहर रहने देना ठीक होगा? ऐसे शख्सों को सुभीता कर देने के लिए क्या मैं यह सूचना कर सकता हूं कि ईश्वर के नाम से प्रतिज्ञा करने के बजाय (कुछ लोग जो ईश्वर को मानते हैं वे भी उसका तो विरोध करते हैं) उन्हें अंतरात्मा को साक्षी रखकर प्रतिज्ञा करने दिया जाय अथवा जो कोई भी स्वयंसेवक होना चाहें उन सबको बिना किसी भेद के ईश्वर के नाम के बिना ही प्रतिज्ञा लेने का नियम कर दिया जाय।

मैंने आपसे यह निवेदन इसीलिए किया है कि आप इस प्रतिज्ञापत्र के रचयिता हैं और आप महासभा के प्रमुख भी हैं। १९२२ में आपकी ऐतिहासिक गिरफ्तारी होने के पहले मैंने यह निवेदन आपके पास भेजा था। लेकिन उस समय उसपर ध्यान देने का शायद आपको समय न मिल सका होगा।"

जहांतक अंतःकरण के उज्र से संबंध है यदि जरूरत हुई तो महासभा के प्रतिज्ञा-पत्र में से, जिसे कि तैयार करने का मुझे अभिमान है, ईश्वर का नाम निकाल दिया जा सकता है। यदि यह उज्र उसी समय पेश किया गया होता तो मैं फौरन् स्वीकार कर लेता। हिन्दुस्थान जैसे स्थान में ऐसे उज्र के लिए मैं जरा भी तैयार न था। यद्यपि शास्त्रों में चार्वाक मत भी बयान किया गया है तथापि मैं यह नहीं जानता कि उसके माननेवाले भी हैं। मैं यह नहीं मानता कि बौद्ध और जैन लोग अज्ञेयवादी या नास्तिक हैं। वे अज्ञेयवादी तो हरगिज नहीं हो सकते। जो लोग आत्मा को शरीर से भिन्न मानते हैं और शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उसकी स्वतंत्र हस्ती रहना स्वीकार करते हैं वे नास्तिक नहीं कहे जा सकते। हम सब ईश्वर की जुदी जुदी व्याख्यायें करते हैं। हम सब यदि ईश्वर की व्याख्यायें अपनी मरजी के मुताबिक करें तो उसकी उतनी ही व्याख्यायें होंगी जितने कि स्त्री या पुरुष होंगे। लेकिन इन जुदी जुदी व्याख्याओं के मूल में भी एक किस्म की अभ्रान्त सादृश्य होगा, क्योंकि मूल तो सबका एक ही है। ईश्वर तो वह अनिर्वचनीय (ला-कलाम) वस्तु है कि जिसका हम सब अनुभव तो करते हैं लेकिन जिसे हम जानते नहीं। बेशक चार्ल्स ब्रेडला ने अपनेको नास्तिक कहा है, लेकिन बहुतेरे ईसाइयों ने उन्हें ऐसा नहीं माना है। मुझसे अपनेको ईसाई कहनेवाले बहुत से लोगों के मुकाबले में उन्हें ब्रेडला में अपनेतईं अधिक समानता मालूम हुई थी। भारतवर्ष के उस भले मित्र की अन्त्येष्टि क्रिया के समय मौजूद रहने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय मैंने बहुत से पादरियों को वहां देखा। उनके जनाजे के साथ कुछ मुसलमान और बहुतेरे हिन्दू भी थे। ये सब ईश्वर को माननेवाले थे। ब्रेडला ने वैसे ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार किया था जैसा कि वे जानते थे कि उसका वर्णन किया जाता है। उस समय जो धार्मीय विचार प्रचलित थे उसके तथा आचार और विचार के भयंकर भेद के खिलाफ उनका शांतिपूर्ण और तेज विरोध था। मेरा ईश्वर तो मेरा सत्य और प्रेम है। नीति और सदाचार ईश्वर है। निर्भयता ईश्वर है। ईश्वर जीवन और प्रकाश का मूल है। और फिर भी वह इन सबसे परे है। ईश्वर अंतरात्मा ही है। वह तो नास्तिकों की नास्तिकता भी है। क्योंकि वह अपने अमर्यादित प्रेम से उन्हें भी जिन्दा रहने देता है। वह

हृदय को देखनेवाला है। वह बुद्धि और वाणी से परे है। हम स्वयं जितना अपनेको जानते हैं उससे कहीं अधिक वह हमें और हमारे दिलों को जानता है। जैसा हम कहते हैं वैसा ही वह हमें नहीं समझता। क्योंकि वह जानता है कि जो हम जबान से कहते हैं अक्सर वही हमारा भाव नहीं होता और यह कुछ लोग तो जानकर करते हैं तो कुछ अनजान में। ईश्वर उन लोगों के लिए एक व्यक्ति ही है जो उसे व्यक्ति-रूप में हाजिर देखना चाहते हैं। जो उसका स्पर्श करना चाहते हैं उनके लिए वह शरीर धारण करता है। वह पवित्र से पवित्र तत्व है। जिन्हें उसमें श्रद्धा है उन्हींके लिए उसका अस्तित्व है। सब लोगों के लिए वह सभी चीज है। वह हम में व्याप्त है और फिर भी हम से परे है। "ईश्वर" शब्द महासभा के प्रतिज्ञापत्र से निकाल दिया जा सकता है, लेकिन खुद ईश्वर को तो कोई कहीं से नहीं निकाल सकता। ईश्वर के नाम पर की गई प्रतिज्ञा और केवल प्रतिज्ञा यदि एक वस्तु नहीं है तो फिर प्रतिज्ञा होगी क्या चीज? अंतरात्मा तो निश्चय ही ईश्वर शब्द का ही एक खींचतानी अर्थ है। उसके नाम पर भयंकर अनीतियुक्त काम किये गये हैं और अमानुष अत्याचार भी हुए हैं लेकिन इससे कुछ उसका अस्तित्व नहीं मिट सकता। वह बड़ा सहनशील है, वह बड़ा धैर्यवान् है, लेकिन वह बड़ा भयंकर भी है। उसका व्यक्तित्व इस दुनिया में और भविष्य की दुनिया में भी सबसे अधिक काम करानेवाली ताकत है। जैसा हम अपने पड़ोसी —मनुष्य और पशु—दोनों के साथ बर्ताव करते हैं वैसा ही बर्ताव वह हमारे साथ भी करता है। उसके सामने अज्ञान की दलील नहीं चल सकती। लेकिन यह सब होने पर भी वह बड़ा रहमदिल है क्योंकि वह हमें पश्चात्ताप करने के लिए मौका देता है। दुनिया में सबसे बड़ा प्रजातंत्र-वादी वही है; क्योंकि वह बुरे-भले को पसंद करने के लिए हमें स्वतंत्र छोड़ देता है। वह सब से बड़ा जालिम है, क्योंकि वह अक्सर हमारे मुंह तक आये हुए कौर को छीन लेता है और इच्छा स्वातंत्र्य की ओट में हमें इतनी कम छूट देता है कि हमारी मजबूरी के कारण उससे सिर्फ उसीको आनंद मिलता है। यह सब हिन्दू-धर्म के अनुसार उसकी लीला है, उसकी माया है। हम कुछ नहीं हैं, सिर्फ वही है और अगर हम हों तो हमें सदा उसके गुणों का गान करना चाहिए और उसकी इच्छा के अनुसार चलना चाहिए। आइए, उसकी वंशी के नाद पर हम नाचें। सब अच्छा ही होगा।

लेखक ने मेरी एक पुस्तिका 'नीति-धर्म' का भी जिक्र किया है। तो पाठकों का ध्यान इस बात की ओर खींचना जरूरी है कि लेखक ने जिसका उल्लेख किया है वह अंगरेजी पुस्तक है। मूल पुस्तक गुजराती में लिखी गई है। और गुजराती पुस्तिका की भूमिका में यह बात साफ तौर पर कही गई है कि यह मौलिक पुस्तक नहीं है। बल्कि एक अमेरिका में प्रकाशित 'नैतिक-धर्म' नामक पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। यह अनुवाद यरवडा जेल में मेरी नजरों से गुजरा और मुझे यह देखकर अफसोस हुआ कि उसमें मूल पुस्तक का कहीं उल्लेख नहीं है। मुझे मालूम हुआ है कि खुद अनुवादक ने भी गुजराती नहीं बल्कि उसके हिन्दी अनुवाद का अनुवाद किया है। इस तरह अंगरेजी अनुवाद को एक 'ग्रामिकी ग्रामाफ्म' ही समझिए। उस मूल अमेरिकन पुस्तक के प्रति यह खुलासा देना मुझे जरूरी था। और खुशी की बात है कि इस पत्र-लेखक ने मुझे उसकी याद दिला कर उसके ऋण को अदा करने का अवसर दिया।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

कांटों में फूल

खद्दर के संबंध में जब कि बंबई के खिलाफ बड़ी शिकायतें हो रही हैं उस समय यदि यह मालूम हो कि सिंध का एक मंडल चुपचाप खादी का अच्छा प्रचार कर रहा है तो यह बड़ी ही खुशी की बात है। मेरे सामने एक पत्र पड़ा है उसमें लिखा है कि इस महीने में २००) से ज्यादह की खादी की बनियानें स्कूलों और काम र-संघ में और कुछ भावनगर भी भेजी हैं। इसमें रोजाना मामूली बिक्री के दाम और जोड़ दीजिए। सेवासदन में एक नया वर्ग इस शर्त पर खोला जा रहा है कि उसमें वही बच्चे दाखिल किये जावेंगे जो कातना सीख लेने के बाद रोजाना कुछ कातना स्वीकार करेंगे। उन्हें माहवार २००० गज सूत देना होगा। इसका असर मौजूदा वर्गों पर भी पड़ा है। कुछ वर्गों की लड़कियां कातना शुरू करनेवाली हैं।' एक-दूसरे मित्र ठीक कहते हैं कि 'यह नहीं कि लोगों में सहानुभूति नहीं है। नेताओं में, कार्यकर्ताओं में ही उसका अभाव है। वे इस धर्मसूत्र के प्रचार के लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं। अभी खादी का चाव लोगों में इतना नहीं बढ़ा है कि वे स्वयं खादी प्राप्त करने का प्रयत्न करें लेकिन यदि उनके दरवाजों पर खादी ले कर जाय तो वे उसे खुशी से खरीद लेते हैं। सचमुच फसल तो ऐसी ही है लेकिन काम करनेवाले बहुत थोड़े हैं। हरएक कार्यकर्ता यह निश्चय क्यों न कर ले कि वह हर महीने में एक मुकर्रर तादाद में खादी बेचेगा। मैं यह जानता हूँ कि खादी बनाने में हमने काफी प्रगति करली है और हर तरह के शौकीन लोगों की रुचि के अनुरूप भी खादी तैयार कर ली है। मुझे एक रोज एक धनी दुल्हन का जामा दिखाया गया था। वह सब खादी का बना हुआ था और उसमें सोने चांदी का जरी का काम किया गया था। आभूषणों की दृष्टि से उसमें कुछ नहीं था। जैसा चाहें वैसी खादी की साड़ियां बन सकती हैं। पाणिग्रहण के समय ओढ़ने के लिए आवश्यक अच्छा रंगीन दुशाला भी खादी का ही बनाया गया था। इसलिए कोई यह बहाना नहीं निकाल सकता कि जैसी चाहिए वैसी बारीक और रंगीन खादी नहीं मिलती है इसलिए वह खादी नहीं पहनता है। क्या हिन्दुस्तान के सब कार्यकर्ता जिन बहनों के कार्य के प्रति मैंने उनका ध्यान दिलाया है उनके कार्य पर गौर करेंगे और उनका अनुकरण करेंगे?

(यं. इं.) मो० क० गांधी

जन्मभूमि-दर्शन

पोरबंदर पुण्यतीर्थ है। उसके दर्शन करने के लिए हृदय लालायित हो रहा था। बापूजी के पुराने घर के दर्शन किये। उस घर में बापूजी का जन्मस्थान भी दिखाया गया। उस कमरे का घोर अंधकार देखकर मन में स्वाभाविक यही ख्याल होता था कि परमात्मा ने घोर अंधकार दूर करने के लिए ही बापूजी को क्यों न भेजा हो? इस घोर अंधकार-युक्त कमरे में जन्म लेने के कारण ही मानों घोर अंधकार-युक्त झोपड़ों की दरिद्रता का खयाल उन्हें एक निमिष मात्र में हो जाता है और वे उस एक क्षण के लिए भी नहीं भूलते। उस अंधेरे कमरे को देख कर कुछ नवीन आशा का अनुभव हुआ, नवीन प्रकाश दिखाई दिया। पोरबंदर में दोपहर को दो बजे एक सार्वजनिक सभा रक्खी गई थी। उसमें जो व्याख्यान दिया उसके एक एक शब्द में जन्मभूमि—पोरबंदर और भारतभूमि—का प्रेम अवर्णनीय माधुर्य प्रगट करता हुआ सुनाई देता था। पोरबंदर-निवासियों ने अभिनन्दन-पत्र तो दिया लेकिन, उसे चाँदी के बक्स में रख कर नहीं दिया। उन्होंने बक्स की कीमत का—अर्थात् २०१) रुपये का एक चेक उन्हें अर्पण कर दिया। गांधीजी ने इसी छोटी-सी बात को लेकर अपने व्याख्यान की भव्य जमीन बना ली। उन्होंने अपने व्याख्यान का आरंभ करते हुए कहा:—

"पोरबंदर की प्रजा की तरफ से मुझे यह अभिनन्दन-पत्र दीवान साहब के हाथों दिलाया गया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। और चांदी की या संदल की बक्स में रख कर अभिनन्दन-पत्र देने के बजाय आपने मुझे २०१) रुपये का चेक देने में जिस विवेक का परिचय दिया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। यदि पोरबंदर के नागरिक ही मेरी अभिलाषाओं को न समझें और उसे पूरा न करें तो फिर इस पृथ्वी तल पर मैं इसकी कहां आशा रक्खूंगा? अनेक बार मैंने यह कहा है कि चांदी वगैरह रखने के लिए मेरे पास साधन नहीं है। ऐसे साधन रखना उपाधि है। ऐसी वस्तुओं के त्याग से ही मैं अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकता हूं। और इसीलिए मैं हिन्दुस्तान से कहता हूं कि जिसे सत्याग्रह का पालन करना है उसे निर्धन बनने के लिए और हर समय मृत्यु से भेंट करने के लिए तैयार रहना चाहिए। चांदी का बक्स रखने के लिए मेरे पास स्थान कहां? इसलिए उसके बजाय आपने मुझे जो चेक दिया उससे तो मुझे आनंद ही होता है। लेकिन, एक तरफ जहां मैं आपको धन्यवाद देता हूं तहां दूसरी तरफ मुझे अपनी कृपणता पर दया आती है। मेरी भूख बहुत बड़ी है। इस कागज के टुकड़े से मेरा पेट नहीं भर सकता, २०१) मेरे लिए काफी नहीं हो सकते। मैं यह इसलिए कहता हूं कि मैं आपको यह यकीन दिला सकता हूं कि जितना भी आपसे लूंगा उससे दुगुना या उससे भी अधिक आप मुझसे बदले में पा सकेंगे। क्योंकि मेरे पास ऐसा एक भी पैसा नहीं आता जिसमें से रुपयों का वृक्ष पैदा न हो—ब्याज से नहीं लेकिन उसके उपयोग से, ब्याज लेकर जीने से तो मरना हो बेहतर है—एक पैसे में से जितना भी रस लूटा जा सकता है उतना रस मैं लूटूंगा। हिन्दुस्तान की पवित्रता की रक्षा करने में, हिन्दुस्तान के नग्न स्त्री-पुरुषों को ढकने में ही उसका उपयोग होगा। हिसाब एक एक पाई का रहेगा। अ जतक मुझे एक भी शख्स ऐसा नहीं मिला जिसे मैं कहूं कि आपने मुझे बहुत दिया है। इसलिए मेरे बड़ा मित्र तो मुझसे दूर भागते हैं। वर्ना उमर हाजी आमद जोहरी तो आज यहां होने ही चाहिए। वे कहते हैं कि तुम जब मिलते हो लूटने की ही बातें करते हो। इस प्रकार आज के कठिन काल में मेरे साथ मित्रता रखना भी भयंकर है। आज के कठिन समय जो भाई हिन्दू हो कर अपने रुपये भंगियों को लुटवाना चाहता हो, जो भाई देश के स्वातन्त्र्य के लिए अपनी तमाम शक्ति, या अपना सब धन, खर्च करने के लिए तैयार हो, वही मेरी मित्रता कर सकता है। राजकोट के ठाकुर साहब ने मुझपर प्रेम की वर्षा की थी, उसमें मैं डूब-सा गया था। लेकिन मैं कांप रहा था और अपने हृदय से पूछ रहा था कि इस राजा की मित्रता कबतक रख सकोगे? मेरे पिता जिस राज्य में दीवान थे उस राजा के हाथ से अभिनन्दनपत्र लेना मुझे क्यों न अच्छा मालूम हो? आज जो महाराणा सा० हैं उनके पितामह के राज्य में मेरे पितामह दीवान थे, उनके भी पिता के राज्य में मेरे पितामह दीवान थे। राजा साहब के पिता मेरे मित्र थे, मेरे मवक्किल थे। मैंने उनका अन्न खाया है—इसलिए महाराजा साहब का निमन्त्रण मुझे क्यों न पसंद हो? लेकिन सबकी मित्रता निबाहना मुश्किल है। मैं अंगरेजों की मित्रता न निबाह सका। मुझे तो इस संसार में केवल एक ही की मित्रता निबाहना बहुत जरूरी मालूम होता है। और वह ईश्वर की मित्रता है। ईश्वर का अर्थ है अपनी अन्तरात्मा। उसका नाद यदि सुनाई पड़े और मुझे मालूम हो कि सारी दुनिया की मित्रता छोड़ देनी चाहिए तो मैं उसके लिए तैयार हूं। आप लोगों की मित्रता का मैं भूखा हूं। आपके तमाम रुपये-पैसे ले जाऊंगा। और फिर भी मुझे तृप्ति न होगी। आपसे तो मैं मांगता ही रहूंगा और जब आप मुझे देश निकाला दे देंगे तब मैं ईश्वर के घर में अपनी जगह कर लूंगा। मैं आज हिन्दुस्तान में ही रुका हुआ पड़ा हूं। जबतक हिन्दुस्तान में दुःख का दावानल सुलग रहा है तबतक मुझे कहीं भी जाना पसंद न होगा। दक्षिण आफ्रिका में मुझे स्थान मिल सकता है लेकिन आज तो मुझे वहां जाना भी पसंद नहीं है क्योंकि यहां की अग्नि बुझाने पर ही वहां की अग्नि बुझ सकती है। मैं सब राजाओं से प्रार्थना करता हूं कि वे इस अग्नि के बुझाने के काम में मदद करें, और यदि उसमें मैं पोरबन्दर से अधिक से अधिक आशा रक्खूं तो बुराई क्या है?

प्रजा की तरफ से भी मैं ऐसी ही आशा रक्खे बैठा हूं। मैं आपका सबका सहयोग चाहता हूं। शायद इसका परिणाम यह भी हो कि हम अंगरेजों से भी सहयोग करने लगें। इसका यह मतलब नहीं कि हम लोग अंगरेजों के पास दौड़ जायं। वे हमारे पास ही दौड़ते आवेंगे। वे मुझसे कहते हैं कि तुम तो भले हो; लेकिन तुम्हारे साथी लोग तो बदमाश हैं, कोई कोई तुम्हें धक्का देगा। लेकिन मैं तो मनुष्य-स्वभाव में विश्वास रखता हूं। प्रत्येक मनुष्य के आत्मा है और प्रत्येक आत्मा की शक्ति मेरी आत्मा के बराबर ही है। आप मेरी शक्ति को देख सकते हैं क्योंकि मैंने अपनी आत्मा को प्रार्थना कर के, ढोल बजा कर और उसके समक्ष नाच कर भी जाग्रत रक्खा है। आपकी आत्मा शायद उतनी जाग्रत न होगी लेकिन हम स्वभाव में तो एक से ही हैं। राजा-प्रजा, हिन्दू-मुसलमान लड़ते रहते हैं लेकिन यदि ईश्वर की मदद न हो तो वे एक तृण भी नहीं हिला सकते। प्रजा यदि यह माने कि हम बलवान् होकर राजा को सतावेंगे और राजा माने कि मैं बलवान होकर प्रजा को पीस डालूंगा, हिन्दू यदि माने कि सात करोड़ मुसलमानों को पीस डालना कोई मुश्किल नहीं है और मुसलमान माने कि बाईस करोड़ तरकारी भाजी हिन्दुओं को हम पीस डालेंगे तो राजा-प्रजा, हिन्दू-मुसलमान सभी मूर्ख हैं। यह खुदा का कलाम है, वेद का वाक्य है। बाइबिल में लिखा है कि

मनुष्यमात्र एक दूसरे का मित्र-भाई है। हरएक धर्म पुकार पुकार कर कहता है कि प्रेम की ग्रन्थि से ही जगत् बंधा हुआ है। विद्वान् लोग यह सिखाते हैं कि यदि प्रेम-बंधन न हो तो पृथ्वी का एक एक परमाणु अलग अलग हो जाय और पानी में भी यदि स्नेह न हो तो उसका एक एक बिन्दु अलग अलग हो जाय। इसी प्रकार यदि मनुष्य मनुष्य के बीच प्रेम न होगा तो हम मृतप्राय ही होंगे। यदि हम स्वराज्य चाहते हों, रामराज्य चाहते हों तो हम सबको प्रेम की ग्रन्थि से बंध जाना चाहिए।

यह प्रेम की ग्रन्थि क्या है? हाथ से कते हुए सूत की ग्रन्थि। सूत परदेशी होगा तो वह लोहे की बेड़ियां हो जायंगी। आपके देहातों के साथ, ग्वालों के साथ, बरडा के मेरों के साथ आपकी एकसूत्रता होनी चाहिए। उसके बजाय यदि वह लंकाशायर और अहमदाबाद के साथ हो तो उससे पोरबन्दर का क्या लाभ? प्रजा की सच्ची मांग तो यह है कि हमारी मिहनत का उपयोग करो हमें खाली रखकर भूखों न मारो। राणावाव के पत्थरों के बजाय आप इटली से पत्थर मंगावें तो कैसे काम चलेगा? यदि आप अपने ही देहातों में बने मिट्टी के जलपात्र और अपनी गाय और भैंसों का घी छोड़ कर कलकत्ते से मंगावें तो कैसे निबाह होगा। यदि आप अपनी ही चीजों का उपयोग न करेंगे और उन्हें दूसरी जगहों से मंगावेंगे तो मैं कहूंगा कि आप बेड़ियों से जकड़े हुए हैं। जबसे मुझे यह शुद्ध स्वदेशी का मंत्र उपलब्ध हुआ है जबसे मैं यह समझा हूं कि गरीब से भी गरीब के साथ मेरी एकसूत्रता होनी चाहिए, तभीसे मैं मुक्त हो गया हूं और मेरा आनन्द मुझसे लूट लेने में न राना साहब शक्तिमान् हैं, न लार्ड रीडिंग न सम्राट् जार्ज।

बहनों से कहूंगा कि आपके दर्शनों से मैं तभी पावन होऊंगा जबकि आप खादी से विभूषित होंगी। आप मन्दिरों में जाकर धर्म की रक्षा करना चाहती हो। लेकिन जो कातती हैं उनका तो हृदय ही मन्दिर बन जाता है। इसीलिए मैं आपसे पूछता हूं कि जब मैं हिमालय के चमत्कारों की बातें करूंगा तभी क्या आप मेरी बातें सुनेंगी? और जब मैं कहूंगा कि चूल्हे के साथ चरखा भी रक्खो तो क्या यह कहोगी कि बूढे की अक्ल गुम हो गई है? मैं पागल नहीं हूं, मैं समझदार हूं। मैं पुकार पुकार कर अपना अनुभव ही कह रहा हूं।

मुझे एक शख्स ने पूछा था कि तुम पोरबन्दर का अभिनन्दन पत्र लेकर क्या करोगे? पहले यही तो जान लो कि यहां के खादी पहनने वाले कैसे हैं? लेकिन यह पूछने के बदले कि पोरबन्दर में खादी पहननेवाले कैसे लोग हैं, मैं यही पूछता हूं कि यहां खादी पहननेवाले कहां हैं? आप महीन कपड़े पहना चाहती हो? करोड़ाधिपतियों ने मुझे यह सुनाया है कि करोड़ाधिपतियों को भी हमेशा बारीक कपड़ा खरीदना मुश्किल मालूम होता है। लेकिन जिस प्रकार घर में आप बारीक सेव बनाती हैं उसी प्रकार यदि बारीक कातो तो बारीक कपड़े पहन सकोगी।

जबतक इस सूत का इलाज न करेंगे तबतक प्रेम की गांठ न बंधेगी। यदि समस्त जगत् को आप प्रेम-गांठ से बांध लेना चाहते हो तो दूसरा उपाय ही नहीं है। हिन्दू-मुसलमान-प्रश्न के लिए भी दूसरा उपाय नहीं है। भाई शेब कुरैशी भी मेरे साथ राजकोट आये थे। उन्हें वहांके मुसलमानों ने कहा कि गांधी आपको धोखा देता है, खादी का प्रचार कर के, विलायती कपड़ों का व्यापार करनेवाले मुसलमानों को भिखारी बनाना चाहता है। लेकिन शेब कुछ सुननेवाले थोड़े ही थे? वे जानते हैं कि परदेशी कपड़ों का व्यापार करनेवाले मुट्ठीभर मुसलमानों की तरफ मैं बुरी नजर नहीं कर सकता। वे खुद खादी के भक्त हैं और वे यह भी जानते हैं कि जितनी सेवा मैं इस्लाम की कर रहा हूं उतनी खादी की और देश की नहीं कर सकता हूं। मुसलमान भाइयों को समझना चाहिए कि उनकी जन्मभूमि यही है और उसे स्वतंत्र किये बिना इस्लाम के स्वतंत्र होने की आशा नहीं।

मेरी काठियावाड़ की यह शायद आखिरी मुलाकात हो सकती है। शायद मेरी जिंदगी अब बहुत कम वर्षों के लिए हो। मैंने बड़ी मुश्किल से महासभा का प्रधान-स्थान स्वीकार किया है। अब सिर्फ दस महीने बाकी हैं। मैं आप लोगों के पास इसीलिए आया हूं कि यदि आप मुझे विशेषतः अपना भाई समझते हों—यद्यपि मैं तो जीवमात्र का भाई हूं—तो मेरी इस प्रार्थना को समझ लेना और रोज आधे घण्टे के लिए चरखा कातना। उससे आपका कुछ न बिगड़ेगा और देश की दरिद्रता दूर होगी। आप मुझसे कितना दुःख उठाना चाहते हैं? यदि आप लोग अस्पृश्यता दूर न कर सकेंगे तो धर्म का नाश होगा। सच्चा वैष्णव धर्म तो वही है कि जिसमें पोषक शक्ति अधिक से अधिक हो। आज तो वैष्णव-धर्म के नाम से अंत्यजों का नाश हो रहा है। हिन्दू-धर्म का रहस्य अस्पृश्यता नहीं है। मेरी त्रिवेणी अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य और खादी है। राजा और गरीब सभी भाई-बहनों से पास मैं यही मांग रहा हूं।"

अंत में अस्पृश्यता-निवारण के विषय में कुछ कह कर मद्य-पान-निषेध पर वे कुछ विस्तार से बोले—

"शराब की बदी का नाश होना ही चाहिए और वह प्रजा के प्रयत्नों से ही होना चाहिए। इसमें मुझे कुछ भी शंका नहीं है कि प्रजा प्रयत्नों से ही यह बदी दूर होगी। कुछ मूर्ख मनुष्यों ने जबरदस्ती से काम लेना शुरू न किया होता तो आज यह बुराई हिन्दुस्तान से कभी की नष्ट हो गई होती। मैंने सुना है कि पोरबंदर में कुछ मल्लाहों ने शराब छोड़ दी है। मैंने यह भी सुना है कि राणा साहब उसमें सम्मत हैं और मदद करने के लिए भी तैयार हैं। हम लोग जबतक शराब की गुलामी से न छूटेंगे तबतक स्वतंत्र नहीं हो सकते। स्वतंत्रता के लिए योरप के उपाय हमारे काम नहीं आ सकते। वहांके लोग और आबोहवा, और हमारे लोग और आबोहवा में जमीन-आस्मान का अंतर है। वहां के लोग दया का त्याग कर सकते हैं हम नहीं कर सकते। विदेशों के मुसलमान मुझसे कहते हैं कि यहांके मुसलमानों के शरीर उनके मुकाबले में कमजोर हैं। यह अच्छा है या बुरा, यह केवल हिन्दू-मुसलमान और अल्लाह ही कह सकते हैं। लेकिन मेरा खयाल तो यह है कि वे कमजोर हैं इस लिए उन्हें कुछ भी बिगड़ न होगा। दयालु बनने के मानी यह नहीं कि मनुष्य डरपोक बन जाय, लाठी का त्याग कर दे। लेकिन उसके मानी हैं लाठी होने पर भी उसका इस्तेमाल न करना। लाठी का इस्तेमाल करनेवाले से जो लाठी का इस्तेमाल नहीं करता लेकिन सीना निकाल कर दुश्मन के सामने आता है वही अधिक बलवान है। पहलवान का मंत्र, क्षात्रधर्म का रहस्य अपने स्थान का त्याग न करना, पीठ न दिखाना है और इस गुण को प्राप्त करने के लिए नशे की चीजों का त्याग आवश्यक है। इसलिए मैं चाहता हूं कि पोरबंदर की प्रजा शराब का सर्वथा त्याग कर दे। राजकोट में यह बदी बहुत फैल रही है। सिविल स्टेशन के दुकानदार के साथ स्पर्द्धा हो रही है। और इसलिए वहां शराब सोडा के दाम बिकती है। लेकिन जिन्हें इतनी सस्ती शराब मिल रही है वे खून के आंसू बहा रहे हैं। मजदूरी करनेवालों की औरतें मुझसे कहती हैं "आप ठाकुर साहब से इसके बाद

(शेष पृष्ठ २४२ स्तम्भ २ के नीचे)

काठियावाड के संस्मरण

प्रजा-प्रतिनिधिमंडल

ता. १५ से २१ तक के काठियावाड के संस्मरण मेरे दिल में हमेशा ताजे बने रहेंगे। राजकोट के ठाकुर सा० की स्वतंत्रता पर मैं मुग्ध हो गया। प्रजाप्रतिनिधि-मंडल की उपयोगिता के बारे में मुझे कुछ शक था, लेकिन उसकी एक बैठक में तीन घण्टे बैठने के बाद मेरा वह शक भी जाता रहा। यह तो भविष्य की बात है कि यह मंडल आखिर कितना उपयोगी साबित होगा। लेकिन यह कह सकते हैं कि जो कुछ है वह आज भी उपयोगी है। उसे अधिक उपयोगी बनाने का दारोमदार प्रतिनिधियों पर ही है। प्रतिनिधियों को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता है और वे उसका पूर्ण उपयोग करते हुए भी देखे गये। किसीको भी यह खयाल न होता था कि श्री. ठाकुर सा० को क्या पसंद होगा। प्रतिनिधि उन विचारों को भी, जो ठाकुर सा०को अप्रिय मालूम हो सकते थे, प्रकट करते थे।

सब कामकाज गुजराती में होने के कारण बड़ी शोभा देता था। अंग्रेजी व्याख्यानों में जो कृत्रिमता, आडंबर इत्यादि पाये जाते हैं, यहां वे देखने को भी न मिलते थे। कुछ व्याख्यान तो बड़े प्रभावपूर्ण और अच्छे कहे जा सकते हैं। व्याख्यान लंबे न थे और सामान्य तौर पर सब लोग वही बातें कहते थे जो जरूरी थी। यह मंडल अपनी दलील करने की शक्ति में, मर्यादा की रक्षा करने में, और बाकायदा काम करने में, किसी भी दूसरे प्रतिनिधिमंडल से कम है, यह मैं हरगिज न कहूंगा।

मद्यपान-निषेध

इस मंडल में मद्यपान-निषेध पर ही मुख्यतः चर्चा हुई थी। प्रतिनिधिमंडल ने यह प्रस्ताव किया कि राज्य की तरफ से शराब की दुकानें और शराब का बनना बन्द कर दिया जाय। प्रतिनिधि लोग यह जानते थे कि ठाकुर साहब का अभिप्राय इसके विरुद्ध है। यह प्रस्ताव तो दूसरी बार पेश किया गया था।

विचार-दोष

श्री ठाकुर सा० ने स्वयं प्रतिनिधियों के सामने अपनी दलील पेश की थी। इसलिए उनके विचार जाने जा सकते थे। उनकी दलील यह थी कि यदि शराब की दुकानें बन्द कर दी जायं तो व्यक्तिस्वातंत्र्य को हानि पहुंचेगी। मेरा खयाल है कि इसमें बड़ा भारी विचारदोष है। यह समझना मुश्किल है कि यदि राज्य की तरफ से शराब की दुकानें बन्द कर दी जायं तो इससे व्यक्ति-स्वातंत्र्य की क्या हानि होगी? प्रजा की मांग यह न थी कि शराब का पीना जुर्म माना जाय। लेकिन उनकी मांग तो यह थी कि राज्य में शराब का बनना और बेचना बन्द कर दिया जाय। व्यक्ति या समाज जिस चीज को दोषयुक्त मानता है उसे बनाना या बेचना समाज या व्यक्ति पर लाजिमी नहीं। शराब से होनेवाली हानि को तो सब कोई जानते हैं। जिस प्रकार चोरी करने का स्वातंत्र्य नहीं मिल सकता उसी प्रकार शराब बनाने और बेचने का स्वातंत्र्य भी नहीं मिल सकता। जो लोग बिना शराब के नहीं रह सकते वे चाहें तो उस हद को छोड दें। व्यक्तिस्वातंत्र्य के पूजक देशों में भी ऐसी रोकटोक के दृष्टांत बहुत पाये जाते हैं। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता दोनों एक नहीं हो सकते। किसी भी व्यक्ति को स्वच्छंद हो कर काम करने का अधिकार नहीं हो सकता। जहां ऐसा अधिकार होता है वहां स्वतंत्रतादेवी का निवास होना संभवनीय नहीं। प्रत्येक मनुष्य को उतनी ही स्वतंत्रता के उपभोग करने का अधिकार है जिससे कि किसी दूसरे को नुकसान न हो। नीतिशास्त्र का अंगरेजी में एक वचन है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी चीजों का ऐसा उपयोग करना चाहिए कि जिससे किसी दूसरे को हानि न हो। मुझे अधिकार है कि मैं अपनी सारी जमीन खोद डालूं। लेकिन उसे यहांतक नहीं खोदना चाहिए कि मेरे पडौसी के घर की नींव ही कमजोर हो जाय।

प्रजा का कोई हिस्सा यदि शराब पीता हो तो उसका नतीजा केवल पीनेवाले को ही नहीं भुगतना पडता बल्कि उसके बालबच्चों को, उसके पडौसियों को भी सहना पडता है। अमेरिका ने शराब की दुकानें और शराब बनाने के कारखाने बन्द कर दिये। इससे वहां व्यक्तिस्वातंत्र्य का लोप नहीं हो गया। इस समय जब शराब के व्यापार के विरुद्ध सारी दुनिया में हलचल हो रही है, यदि राजकोट-नरेश शराब के लिए व्यक्तिस्वातंत्र्य की दलील पेश करें तो यह बडे दुःख की बात है।

प्रजामत

यदि यह मान भी लें कि शराब के व्यापार को बन्द करने से व्यक्तिस्वातंत्र्य की हानि होती है तो भी यह सिद्धान्त तो सर्वमान्य है कि जहां स्पष्टतया प्रजा का एक ही मत हो वहां राजा का धर्म है कि उसीका वशवर्ती होकर रहे। प्रजा-प्रतिनिधिमंडल में ऐसा कोई भी न था जो शराब के व्यापार को बन्द करना न चाहता हो। ऐसे भी प्रमाण मौजूद हैं कि स्वयं शराब पीनेवाले ही उसे बन्द कराना चाहते हैं। उनके कुटुम्ब का नाश हो रहा है। ऐसे विषयों में भी यदि राजकोट के ठाकुर साहब प्रजामत का आदर न करें तो यह बडे खेद की बात है। जिस नरेश ने प्रजा-प्रतिनिधि-मंडल बनाने में प्रथम कदम बढाया है उनसे मैं यह जरूर आशा रखता हूं कि वे शराब के लिए दूषित सिद्धान्तों के कायल हो कर प्रजा-मत का तिरस्कार न करेंगे और शराब के व्यापार को बन्द कर के गरीबों की दुआ लेंगे।

नियमितता

राजकोट के ठाकुर साहब नियमितता के पुजारी हैं। सब काम नियमित समय पर करते हैं और स्वयं दिये हुए और मुकर्रर किये हुए समयों पर बडे गौर से अमल करते हैं और दूसरों से भी कराते हैं। वे "डिसिप्लिन" संयमन के भी पुजारी हैं। वे मानते हैं कि हमारा बडा भारी दोष संयमन का अभाव है। इसमें बहुत कुछ सत्यांश है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। नियम और संयमन के अभाव के कारण ही प्रजा अपनी शुभेच्छाओं को पूरा नहीं कर सकती है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

(पृष्ठ २४१ से आगे)

में कुछ न कहेंगे? इस बुराई ने हमारे घर का सत्यानाश कर दिया है। हमारे घर बरबाद हो रहे हैं। हमारे पति व्यभिचारी हो गये हैं और हमारे घर में दरिद्रता फैल रही है।" इन गरीब स्त्रियों से यदि आशीर्वाद लेना हो तो हम सबको कटिबद्ध होना पडेगा और राजा को कहना होगा कि वह इस दुःख से रैयत को बचावे। इससे कुछ आमदनी होती हो तो भी क्या? और इससे कुछ क्षणिक आनंद मिलता हो तो भी क्या? यदि यह बुराई फैलेगी तो देश की स्थिति ऐसी भयंकर हो जायगी कि उसका जड-बमूल नाश हो जायगा। किसीको भी उसके नाश करने का प्रयत्न न करना होगा। ईश्वर आप लोगों का कल्याण करे, मेरे दीन वचनों को सुनने और समझने की शक्ति वह आपको दे और इससे सारे जगत् का भी कल्याण हो।" म० ह० दे०

स्वदेशी और राष्ट्रीय धर्म

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,,)
विदेशों के लिए ,,)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ३१

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, चैत्र बदी २, संवत् १९८१ गुरुवार, १९ मार्च, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

काठियावाड के संस्मरण

(२)

दूसरे राज्य

जो लोकप्रियता मैंने राजकोट के ठाकुर सा० के संबंध में अनुभव की वही पोरबंदर, वांकानेर और वढवाण के नरेश के संबंध में भी की। हरएक अपनी प्रजा का हित चाहते हुए दिखाई दिये। मेरे दिल पर यह छाप पड़ी कि सब राजा प्रजा को संतुष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं। पर मैं एक बात कहे बिना नहीं रह सकता। हर राज्य में न्यूनाधिक परिमाण में राज्य का खर्च आमदनी से बहुत बढ़ा हुआ दिखाई दिया। मुझे निश्चय है कि जबतक राजा अपने खर्च पर अंकुश नहीं रखते तबतक वे अपना रक्षकत्व सिद्ध नहीं करते। राजा प्रजा की श्रमप्राप्त आमदनी में से हिस्सा लेता है और उसके बदले में वह उसकी सेवा करता है। जिसकी सेवा के बिना प्रजा का काम नहीं चल सकता वह सरदार बनता है; और वह जबतक वफादार रहता है तबतक सच्चा सरदार रहता है। राजा की वफादारी में दो गुण होने चाहिए—एक तो प्रजा को सुख देना, उसकी स्वतन्त्रता और नीति-सदाचार की रक्षा करना और दूसरा प्रजा से मिले धन का सदुपयोग करना। यदि राजा अपने लिए अनुचित खर्च करता है तो वह उस द्रव्य का सदुपयोग नहीं करता। प्रजा की अपेक्षा कुछ दरजे वह भले ही ज्यादह खर्च करे, भले ही आमोद-प्रमोद करना चाहे तो कुछ करे पर उसकी एक हद अवश्य होनी चाहिए। मैं तटस्थ रह कर यह भलीभांति देख रहा हूं कि प्रजा-जागृति के इस युग में मर्यादा की पूरी पूरी आवश्यकता है। एक भी ऐसी संस्था जो अपनी लोकप्रियता सिद्ध न कर सकती हो, अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकती। एक सप्ताह में काठियावाड के चार राज्यों का जितना निरीक्षण हो सकता है उतने के द्वारा काठियावाड राजनैतिक परिषद् में किये मेरे राज्यतंत्र के समर्थन की पुष्टि मिली है। पर उसके साथ ही मैं उस तंत्र की कमजोरियों को भी देख पाया हूं। राजाओं के एक शुभैषी की हैसियत से मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि यदि वे पूर्वोक्त बातों में स्वेच्छापूर्वक सुधार कर देंगे तो अपने राजापन को अधिक सुशोभित करेंगे। वही सत्ताधीश सच्चा है जो अपनी सत्ता की मर्यादा खुद ही बांध लेता है। ईश्वर ने अपनी सत्ता को नियमित कर लिया है, दुरुपयोग करने की शक्ति होते हुए भी उसने उसका त्याग कर दिया है। शरीर को जीवित रखने का सामर्थ्य रहते हुए जो उसका त्याग करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है। शुद्धतम ब्रह्मचारी स्वेच्छा से अपनी शक्ति का संग्रह करता हुआ ऐसी पराकाष्ठा को पहुंच जाता है कि अन्त को क्लीब की तरह हो जाता है। यह स्थिति अवर्णनीय है, यह स्थिति गुणातीत की है। वह जड की तरह होते हुए भी शुद्ध निर्विकार चैतन्य है। इसीसे अंगरेजी में कहावत है कि राजा से दोष होता ही नहीं। भागवतकार कहते हैं कि तेजस्वी को दोष नहीं होता। तुलसीदास ने अपनी मधुरी हिन्दी में कहा है—'समरथ को नहिं दोष गुसांई'। इस काल में इन तीनों वचनों का अनर्थ हो रहा है। अर्थात् यह कि बलवान् के दोष करते हुए भी यह मानना और मानना चाहिए कि वह दोष नहीं करता। सत्य बात उससे उलटी है। बलवान् वही है जो अपने बल का दुरुपयोग नहीं करता, अपनी इच्छा से वह बल के दुरुपयोग का त्याग कर देता है—वह इस हद तक कि वह दुरुपयोग करने के लिए अशक्त हो जाता है। हमारे नरेश ऐसे क्यों न हों? क्या ऐसा होना उनकी शक्ति के बाहर है?

राष्ट्रीय पाठशाला

दो राष्ट्रीय पाठशालाओं के खुलने की क्रिया का साक्षी मैं था। एक राजकोट की। वह खोली गई थी श्रीमान् ठाकुर साहब के ही हाथों—मैं तो उपस्थित मात्र था। दूसरी वढवाण की। उसके खोलने की क्रिया मेरे हाथों हुई। दोनों पर काले बादल मँडराये थे। दोनों के लिए अछूतों का सवाल बाधक हुआ। दोनों अब उसकी मर्यादा को लांघ गई हैं। फिर भी अभी वे निःशंक नहीं हुई। निःशंक हो जाने से शिक्षकों की शक्ति का नाप मालूम हो जायगा। यदि शिक्षक विवेक, शान्ति और मर्यादा तथा तितिक्षापूर्वक अपना कार्य करते रहे तो अन्त्यजों को अपनाते हुए भी लोगों के विरोध-पात्र न होंगे और शालाओं में इतर वर्णों के बालक अवश्य आ जावेंगे। शालाओं की राष्ट्रीयता अध्यापकों के चारित्र्य बल पर, उनके देश-प्रेम पर, उनके त्याग-भाव

है। उसका जितना भी उपयोग हम कर सकें, हमें कर लेना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि प्रजा सोती हो और राजा जगता हो। हमीं लापरवाह रहें तो फिर देवचंदभाई कैसे सावधान रह सकेंगे? देवचंदभाई चरखे का शास्त्र तो समझते हैं लेकिन चारों तरफ वायुमण्डल में शिथिलता होने के कारण उन्होंने उसका सुधार नहीं किया है, उसे सजाया नहीं है। यदि उन्हें केवल चरखे की ही साधना करना हो तो उनके चरखे की यह अपूर्णता असह्य थी। पोरबंदर में कुछ कम असंतोष रहा, वांकानेर में तो उतना ही असंतोष हुआ। इस अपूर्णता को देखकर मुझे काठियावाड में चरखे की प्रगति का नाप मिल गया है। चरखे का जो आदर होना चाहिए अभी उसका वैसा आदर नहीं होता है। चरखे को लोग सहन कर लेते हैं लेकिन उसका स्वागत नहीं करते हैं। वह अभी अभ्यागत है, माननीय अतिथि नहीं बना है। और जबतक उसका अतिथि जैसा स्वागत न होगा, काठियावाड की भूख न मिटेगी।

चरखे की अपूर्णता के बारे में मैंने जो इतना विस्तार से लिखा है उसमें कुछ मतलब है। चरखे का दोष निकलना बड़ा सहल है मेरी सूचना यह है:—

(१) मंत्री चरखों की गिनती करावें।

(२) चरखा को जांच करने के लिए एक या अधिक निपुण कारीगर मुकर्रर किये जायं।

(३) चरखा के मालिकों को अपने अपने चरखे की शिकायत करने के लिए निमंत्रित किया जाय।

(४) चलते हुए चरखों के तकवे, तैयार दिये जाय। बड़े तकवों को बदल दें और तकवे के दूसरों में भी उसके लिए आवश्यक तहोबदल करें। जांच करनेवाला चरखे के मालिकों को उसमें किये गये सुधारों को समझावें।

(५) जांच करनेवाला जिस जिस गांव में जाय उस उस गांव में वह एक स्थानिक निरीक्षक तैयार करे और उसका नाम दर्ज कर ले।

(६) वह इसका भी हिसाब रक्खे कि किस चरखे से कितना सूत निकलता है और उस पर कबतक काम होता है।

इस प्रकार व्यवस्थित काम करने से थोड़े ही समय में चरखे में और उससे उत्पन्न होनेवाले सूत में बड़ा सुधार होगा। मैंने अनुभव किया है कि जब मैं अपने चरखे पर आधे घण्टे में १०० गज सूत आसानी से कात सकता हूं तब इन चरखों पर तो मैं शायद ही ५० गज सूत निकाल सकता हूंगा। और अच्छे चरखे पर कातने का जो आनंद मिलता है वह मुझे राजकोट के सिवा और कहीं भी न मिला। इस वर्ष के अन्त तक काठियावाड में खादी की नींव पक्की हो जाय—इतना ही नहीं बल्कि खादी की साड़ियां भी बनाई जा सकें, इतना बारीक काम हमें करना चाहिए। मैंने देखा है कि श्री यशोदा बहन ने अपने पति श्री डाह्याभाई के लिए हाथकते सूत की धोती बुनवाई थी। वे धोती आन्ध्र की बारीक धोती के साथ तुलना में आ सकती थीं। सैंकड़ो भाई-बहन इतना बारीक सूत क्यों न कातें?

राजनीति

परिषद् के समय ऐसे विचार किये गये थे कि प्रजा चरखा चलावे और खादी पहने और मैं राजकीय मामलों को देखूं। इसका अर्थ तो मैंने समझाया है लेकिन फिर भी उसे स्पष्ट करने की आवश्यकता मालूम होती है। उसका अर्थ यह है यदि प्रजा जाग्रत रहेगी और अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेगी तो मैं भी जाग्रत रहूंगा और अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूंगा। प्रजा यदि जाग्रत रहे तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके सफल हो सकती है क्योंकि सफलता प्राप्त करना उसके हाथ की बात है। लेकिन मैं तो जाग्रत रहने पर भी, अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने पर भी, संभव है कि सफल न होऊं; क्यों कि मेरा सफल होना न होना दूसरों के हाथ की बात है। प्रजा के प्रतिज्ञा-पालन पर मेरी सफलता का दारोमदार है। बड़े दुःख की बात तो यह है कि आज भी सूत का राजनीति से क्या संबंध है, यह समझाना पड़ता है। सूत कातने में प्रजा की संघशक्ति प्रतीत होती है। मुझे विश्वास है कि उस शक्ति का अदृश्य प्रभाव सर्वत्र पड़ेगा। यह हो या न भी हो, लेकिन यह आवश्यक है कि प्रजा मेरी प्रतिज्ञा को समझ ले। यह नहीं कि मैं कुछ कर सकूंगा ही। जिसे मैं उत्तम मार्ग समझता हूं वह मैंने प्रजा को दिखा दिया है। केवल हलचल करने से ही प्रजा कुछ नहीं प्राप्त कर सकती। राजाओं की स्थिति भी समझ लेनी चाहिए। निंदा करने से या टीका करने से ही कुछ नहीं बनता। यह स्थिति समझ लेने के लिए ही मैंने परिषद् को राजनैतिक प्रस्ताव न करने की सलाह दी थी। प्रमुख की हैसियत से मुझसे जितना भी बन पड़े, मैंने इसकी जांच करने की प्रतिज्ञा की थी। उसका पालन करने के लिए मेरा प्रयत्न तो हो ही रहा है। मैं निश्चिंत हो कर न बैठा हूं और न बैठूंगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि जिसे दर्द है वह अपने दर्द का इलाज ही न करे। मेरा मतलब तो सिर्फ इतना ही था कि पूर्वोक्त सहायता ही परिषद् की तरफ से मिले। यह समझ लेना चाहिए कि न्याय प्राप्त करने के लिए किसी भी सत्य और शान्त उपाय का व्यक्तिगत प्रयोग किया जाय तो उसमें मेरी तरफ से कोई रोकटोक न होगी। परिषद् से जितनी भी मदद हो सकेगी वह करेगी। आज वह मदद इस रूप में प्रकट हो रही है कि जिन जिन राज्यों के बारे में शिकायतें हो रही हैं उनके संबंध में मैं अपनी विनय, अनुनय करने की शक्ति का उपयोग करूं। फल का आधार तो वस्तु और पात्र की शुद्धता और प्रजा के प्रतिज्ञा-पालन पर है। प्रजा को भी अपनी कार्यदक्षता की छाप डालनी चाहिए। प्रजा यदि रचनात्मक कार्य करेगी और स्वमान की रक्षा करेगी तो उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा। आज तो जिस प्रकार दूसरे भागों में है उसी प्रकार काठियावाड में भी प्रजा आत्म-विश्वास खो बैठी है। लेकिन मेरा अनुभव मुझसे कहता है कि दर असल स्थिति तो यह है कि काठियावाड के बहुतेरे राज्यों में प्रजा जितनी चाहे प्रगति कर सकती है। ब्रिटिश विभाग में प्रजा को जो सुविधायें नहीं हैं वे काठियावाड के राज्यों में हैं। उन सुविधाओं से प्रजा रचनात्मक कार्य कर के ही लाभ उठा सकती है।

१ अप्रेल

काठियावाड की तरफ से मुझे इतना लालच मिला है कि मैंने अप्रेल में फिर काठियावाड जाने की सुविधा कर रक्खी है। बोटाद की अंत्यज शाला, अमरेली खादी-कार्यालय का काम और मढडा का आश्रम देखने के लिए मुझे जाना तो था ही। लेकिन उस समय मैं वहां न जा सका। अप्रेल में मुझे कहां कहां जाना चाहिए इसका विचार वे लोग जो मुझे कहीं भी ले जाना चाहते हो देवचंदभाई और अमरेली कार्यालय के साथ कर लें। मैं चाहता हूं कि जहां खादी का लालच न हो वहां मुझे ले जाने का कोई भी लोभ न रक्खे। अप्रेल में, सभासदों की एक बड़ी संख्या को मैं आशा रक्खूंगा और यह भी आशा रक्खूंगा कि लिखी हुई रुई इकट्ठा कर ली जायगी, दूसरी लिख ली जायगी और जिन केन्द्रों के खोले जाने के बारे में राजकोट में विचार हुआ है वे सब केन्द्र काम करने लगेंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र बदी २, संवत् १९८१

स्वदेशी और राष्ट्रीय धर्म

नीचे लिखा पत्र बहुत दिनों से मेरी फाइल में रक्खा हुआ था—

"निःसन्देह आपने मों० रोमां रोलां की 'महात्मा गांधी' नामक पुस्तक पढ़ी ही होगी। उसके पृष्ठ १३६ पर लिखा है— 'यह राष्ट्रीय धर्म—अत्यन्त संकुचित और निरी देश-भक्ति, नहीं तो और क्या है? घरमें बैठे रहो, तमाम दरवाजे बन्द कर लो, किसी चीज में परिवर्तन न करो, हर बात पर कौंवे के ज्यों जहां के तहां चिपक रहो! कोई चीज बाहर न भेजो, कोई चीज खरीदो नहीं, देह और आत्मा को शुद्ध और उन्नत बनाते रहो! यही मध्ययुगीन साधुओं की ही शिक्षा है! और यह वह रवीन्द्र गांधी अपना नाम इस पुस्तक के साथ जुड़ने देते हैं।(द० बा० कालेलकर के 'स्वदेश धर्म' की भूमिका के तौर पर), ये वचन आपके एक बड़े भाष्यकर्ता के लिखे हुए हैं। इसलिए इनपर आपका उत्तर मिलना जरूरी है। यं. इ. के २७ वें अंक में एण्ड्रयूज साहब के एक के लेख के नीचे आपकी एक टिप्पणी इस आशय की प्रकाशित हुई है कि भारत की स्वदेशी अशुद्ध या जातिद्वेष युक्त-नहीं हो सकती। क्या आप किसी अगले अंक में इस आशय को पल्लवित कर के इस अद्भुत पुस्तक के रचयिता और उसके असंख्य पाठकों का यह भय दूर न करेंगे?"

जहांतक श्री कालेलकर की पुस्तिका से संबंध है हालत इस तरह है। वह गुजराती पुस्तिका का अंगरेजी अनुवाद है जो रोमां रोलां महाशय ने देखा। मैंने प्रस्तावना मूल पुस्तक के लिए लिखी थी। श्री कालेलकर मेरे बड़े कीमती साथी हैं। इसलिए मैंने पुस्तक को और से देखे बिना ही ५-६ सतरें प्रस्तावना के तौर पर लिख दीं। मैंने सिर्फ उसके कुछ वाक्य इधर-उधर से देख लिये थे। मैं स्वदेश-संबंधी उनके विचारों को जानता था। इस कारण मुझे अपनेको उनके साथ शामिल करने में दिक्कत न थी। लेकिन एंड्रयूज साहब के कहने पर मैने अंगरेजी अनुवाद को पढ़ा और मैं कबूल करता हूं कि उसके प्रतिपादन में कहीं कहीं संकीर्णता आ गई है। मैंने श्री कालेलकर से भी उसकी चर्चा की और वे इस बात को मानते हैं कि हां, अनुवाद में संकीर्णता दिखाई देती है, पर उसके लिए वे जिम्मेवार नहीं हैं। जहांतक मेरे विचारों से संबंध है, मेरे यं० इं० के लेख इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर देते हैं कि मेरी स्वदेशी, और इस कारण श्री कालेलकर की स्वदेशी वैसा संकुचित नहीं है जैसा कि उस पुस्तिका से खयाल हो सकता है।

यह तो पुस्तिका की बात हुई।

मेरी स्वदेशी की व्याख्या तो सुप्रसिद्ध है। मैं अपने नजदीकी पड़ौसी को हानि पहुंचा कर दूरवर्ती पड़ोसी की सेवा न करूंगा। इसमें कीना या दण्ड की बात जरा भी नहीं है। वह संकुचित भी किसी मानी में नहीं है; क्योंकि मुझे अपनी वृद्धि के लिए जिन जिन चीजों की जरूरत होती है वे सब मैं दुनिया के हर हिस्से से खरीदता हूं। मैं किसीसे भी ऐसी किसी चीज के लेने से इन्कार करूंगा—फिर वह कितनी ही नफीस और खूबसूरत हो—जो मेरी या उन लोगों की उन्नति में जिनका स्थान कुदरत ने इस तरह निर्माण किया है कि मुझे सबसे पहले उनकी खबर रखनी चाहिए, बाधा डालती हो। मैं उपयोगी और स्वास्थ्यदायी साहित्य दुनिया के हर हिस्से से खरीदता हूं। मैं नश्तर लगाने के औजार इंग्लैंड से, पिन और पेन्सिल आस्ट्रिया से और घड़ियां स्विटजरलैंड से मंगाता हूं। पर मैं उम्दा से उम्दा कपास का एक इंच कपड़ा भी इंग्लैंड से या जापान से या दुनिया के और किसी हिस्से से न लूंगा—क्योंकि उससे भारत के लाखों वासियों को हानि पहुंचती है। भारत के लाखों कंगाल और जरूरतमन्द लोगों के द्वारा काते—बुने कपड़ों को न लेकर विदेशी कपड़े का खरीदना मैं पाप मानता हूं—फिर वह चाहे भारत के हाथ-कते कपड़े से बढ़िया ही क्यों न हो। इसतरह स्वदेशी का मध्यबिन्दु प्रधानतः हाथ की खादी है और उसकी परिधि उन तमाम चीजों तक पहुंचती है जो हिन्दुस्तान में पैदा होती है या की जा सकती है। मेरा राष्ट्रीय धर्म भी उतना ही विशाल है जितनी कि मेरी स्वदेशी है। मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूं कि जिससे सारे संसार को लाभ हो। मैं भारत का उत्थान दूसरे राष्ट्रों के विनाश पर नहीं चाहता। सो यदि भारतवर्ष सशक्त और सुयोग्य होगा तो वह दुनिया को अपनी कला और स्वास्थ्यदायी मसालों का खजाना भेजता रहेगा और अफीम या नशीली चीजें भेजने से इन्कार करेगा—भलेही उनके व्यापार के बदौलत उसका आर्थिक लाभ होने की संभावना हो।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

जन्म-मर्यादा

निहायत झिझक और अनिच्छा के साथ मैं इस विषय में कुछ लिखने के लिए प्रवृत्त हुआ हूं। जबसे मैं भारतवर्ष को लौटा हूं तभी से लोग कृत्रिम साधनों के द्वारा सन्तति की संख्या मर्यादित करने के प्रश्न पर मुझसे लिखा कर रहे हैं। मैं खानगी तौर पर ही अबतक उनको जवाब देता रहा हूं। आम तौर पर कभी मैंने उसकी चर्चा नहीं की। आज से कोई तीस साल पहले जब मैं इंग्लैंड में पढ़ता था तब इस विषय की ओर मेरा ध्यान गया था। उस समय वहां एक संयमवादी और एक डाक्टर के दरम्यान बड़ा वाद-विवाद चल रहा था। संयमवादी कुदरती साधनों के सिवा किसी दूसरे साधनों को मानने के लिए तैयार न था और डाक्टर कृत्रिम साधनों का हामी था। उसी समय में मैं कुछ समय तक कृत्रिम साधनों की ओर प्रवृत्त हो कर फिर उनका कट्टर विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूं कि कुछ हिन्दी पत्रों में कृत्रिम साधनों का वर्णन बड़े भद्दे ढंग से और खुले तौर पर किया गया है। जिसे देखकर सुरुचि को बड़ा आघात पहुंचता है। और मैं देखता हूं कि एक लेखक ने तो मेरा भी नाम बेधड़क जन्म-मर्यादा के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने के हामियों में लिख मारा है। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं पड़ता जबकि मैंने कृत्रिम साधनों के उपयोग के पक्ष में कोई बात कही या लिखी हो। मैं देखता हूं कि दो और प्रसिद्ध पुरुषों के नाम इसके समर्थकों में दिये गये हैं। बिना उनके मालिकों से पूछ ताछ किये मुझे उनका नाम प्रकट करने में संकोच होता है।

सन्तति के जन्म को मर्यादित करने की आवश्यकता के बारे में दो मत हो ही नहीं सकते। परन्तु इसका एक ही उपाय है आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य, जो कि युगों से हमें प्राप्त है। यह रामबाण और सर्वोपरि उपाय है और जो उसका सेवन करते हैं उन्हें लाभ ही लाभ होता है। डाक्टर लोगों का मानव-जाति पर बड़ा उपकार होगा, यदि वे जन्म-मर्यादा के लिए कृत्रिम साधनों की तजवीज करने की जगह आत्मसंयम के साधन निर्माण करें। स्त्री-पुरुष के मिलाप का हेतु आनन्द-भोग नहीं बल्कि सन्तानोत्पत्ति है।

और जब कि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा नहीं है तब संभोग करना बिल्कुल अपराध है, गुनाह है।

कृत्रिम साधनों की सलाह देना मानों बुराई का हौसला बढ़ाना है। उससे पुरुष और स्त्री उच्छृंखल हो जाते हैं। और इन कृत्रिम साधनों को जो सभ्य रूप दिया जा रहा है उससे तो, संयम के ह्रास की गति बढ़े बिना न रहेगी जो कि लोकमत के कारण रहने वाले। कृत्रिम साधनों के अवलंबन का कुफल हुआ नपुंसकता और क्षीणवीर्यता। यह दवा मर्ज से भी ज्यादह बदतर साबित हुए बिना न रहेगी। अपने कर्म के फल को भोगने से हुम दबाना पाप है, अनीति-पूर्ण है। जो शख्स जरूरत से ज्यादह खा लेता है उसके लिए यह अच्छा है कि उसके पेट में दर्द हो और उसे लंघन करना पड़े। जबान को काबू में रख कर अनाप-शनाप खा लेना और फिर बलवर्द्धक या दूसरी दवाइयाँ खाकर उसके नतीजे से बचना बुरा है। पशु की तरह विषय-भोग में गर्क रह कर फिर अपने इस कृत्य के फल से बचना और भी बुरा है प्रकृति बड़ी कठोर शासक है। वह अपने कानून-भंग का पूरा बदला बिना आगा पीछा देखे चुकाती है। नैतिक संयम के द्वारा ही हमें नैतिक फल मिल सकता है। दूसरे तमाम प्रकार के संयम-साधन अपने हेतु के ही विनाशक सिद्ध होंगे। कृत्रिम साधनों के समर्थन के मूल में यह युक्ति या धारणा गर्भित रहती है कि भोग-विलास जीवन की एक आवश्यक चीज है इससे बढ़कर हेत्वाभास—गलत तर्क हो ही नहीं सकता। अतएव जो लोग जन्म-मर्यादा के लिए उत्सुक हैं, उन्हें चाहिए कि वे प्राचीन लोगों के बताये जायज उपायों को ही विशद करें, और इस बात की कोशिश करें कि उनका जीर्णोद्धार किस तरह हो। उनके सामने दुनियादारी काम का पहाड़ खड़ा हुआ है। बाल-विवाह लोक-संख्या की वृद्धि का एक बड़ा सफल कारण है। हमारी वर्तमान जीवन-विधि भी बेरोक प्रजोत्पत्ति के दोष का बड़ा कारण है। यदि इन कारणों की छानबीन करके उनको दूर करने का उपाय किया जाय तो नैतिक दृष्टि से समाज बहुत ऊंचा उठ जायगा। यदि हमारे इन जल्दबाज और अति उत्साही लोगों ने उनकी ओर ध्यान न दिया और यदि कृत्रिम साधनों का ही दौर-दौरा चारों ओर हो गया तो सिवा नैतिक अधःपात के दूसरा कोई नतीजा न निकलेगा जो समाज पहले ही विविध कारणों से निःसत्व हो रहा है, इन कृत्रिम साधनों के प्रयोग से और भी अधिक निःसत्व हो जायगा। इसलिए वे शख्स जो कि हलके दिल से कृत्रिम साधनों का प्रचार करते हैं वे नये सिरे से इस विषय का अध्ययन-मनन करें, अपनी हानिकर कारवाइयों से बाज आवें और क्या विवाहित और क्या अविवाहित दोनों में ब्रह्मचर्य को निष्ठा जाग्रत करें। जन्म-मर्यादा का यही उच्च और सीधा तरीका है।

(य० इ०) मोहनदास करमचन्द गांधी

दिया सूत खरीदना

एक जिला समिति के मन्त्री लिखते हैं कि कुछ सूत कातने वाले अपने सूत के इतने शौकीन हो गये हैं कि वे फिर अपना सूत खरीद कर अपने लिए उसीके कपड़े बुनवाना चाहते हैं। वे मुझसे पूछते हैं कि जिन लोगों ने अपना सूत बतौर सदस्य होने की फीस के भेजा है वे पूर्वोक्त उद्देश से फिर अपना सूत खरीदें या नहीं? सच्चा आदर्श तो यही है कि लोग अपने कपड़ों के लिए फुरसत के वक्त में सूत कात लिया करें। कपड़े के विषय में स्वावलंबी होने का यही सबसे अच्छा और सुगम उपाय है। इसलिए मैं तमाम महासभा-समितियों के मन्त्रियों को सलाह दूंगा कि वे जरूर सूत देनेवालों को अपना सूत खरीद लेने के लिए उत्साहित करें; पर इसका यकीन कर लें कि वे फिर उसीको अपनी फीस के तौर पर जमा न करावें। (य० इ०) मो० क० गांधी

टिप्पणियाँ

और सदस्य

इस सप्ताह में कुछ और सदस्यों के अंक प्राप्त हुए हैं। पिछले सप्ताह कुल तादाद ६६४४ थी। अब वह ७८५१ हो गई है। पिछले सप्ताह से इस सप्ताह में सिर्फ पांच सूबों में तरक्की दिखाई देती है। इस सप्ताह के मिलाकर उनके अंक इस प्रकार हैं—

	अ	ब	कुल
१—गुजरात	१८४७	८०	१९२७
२—संयुक्तप्रान्त	१२९	२५४	१०९४
	(बिना ब्यौरे के अंक भी शामिल हैं)		
३—बिहार	४१८	१४६	७३७
	(बिना ब्यौरे के अंक भी शामिल हैं)		
४—महाराष्ट्र	४८	१२३	१७१
५—सिन्ध	तफसील नहीं		१६८
६—ब्रह्मदेश	२६	३	२९

सभासदों की सूची

पिछले सप्ताह सभासदों की जो सूची प्रकाशित की गई थी उसमें बहुत सी बातें जो होना चाहिए थी नहीं हैं। कः प्रान्तों ने तो अपनी सूची ही नहीं भेजी। उनमें से बहुतों ने तो उसका वर्गीकरण ही नहीं किया है। कुछ सप्ताह पहले मैं ने जो पत्र प्रकाशित किया था उससे यह आशा होती थी कि बरार कम से कम सूत देनेवाले सभासद देने में तो बड़ी बहादुरी दिखावेगा। लेकिन मुझे अफसोस है कि वह तो सबसे नीचे ही नजर आता है। यदि अजमेर चाहे तो आसानी से एक हजार कातनेवाले दे सकता है। लेकिन उसने तो दो कातनेवाले और १५ सूत देने-वाले से ही आरंभ किया है। मैं आशा करता हूं कि बंगाल, आंध्र, करनाटक, बिहार और तामिल नाड जहां कातने के अच्छे केन्द्र हैं, गुजरात को हरा देंगे। उनकी कातने की प्राचीन ख्याति भी ऐसी है कि आजतक उसका स्मरण बना हुआ है।

"संगसारी" कुरान में नहीं है

मैं डाक्टर महम्मदअली, सदर अहमदिया अंजुमन इशाअते इस्लाम का नीचे लिखा तार बड़ी खुशी के साथ प्रकाशित करता हूं:—

"कैसे भी गुनाह के लिए कुरान संगसारी की इजाजत नहीं देती है। आपकी टिप्पणी से इस्लाम और नबी के साथ अन्याय होता है और उससे इस्लाम के खिलाफ दुनिया में बहुत कुछ गलतफहमी होने का अंदेशा है। मैं कहता हूं कि यकीनन् यह आपकी सोची हुई पुख्ता राय नहीं है। आपने यों ही सुनकर यह लिख दिया है। इस विषय पर कुरान के मेरे अंगरेजी तर्जुमे को आप देखेंगे तो आपको यकीन होगा कि जिन्होंने आपको यह खबर दी है वे गलती पर हैं। इसलिए आपसे यह प्रार्थना है कि आप इसपर विचार करें और इस गलतफहमी को दूर कर दें।"

डा० महम्मदअली मेरी टीका को ठीक ठीक नहीं समझ सके हैं। मैं यह जानता था कि कुछ लोग किसी किसी मौके पर "संगसारी" की सजा को "कुरान" में लिखी हुई मान कर जा समझते हैं। मैंने इस बात पर कि "कुरान" या "हदीस" में ऐसी सजा लिखी है या नहीं, अपनी राय जाहिर नहीं की है लेकिन सिर्फ इतना ही कहा कि यदि कुरान शरीफ में भी ऐसी सजा लिखी हो तो भी उसपर कोई आधार नहीं रक्खा जा सकता। मुझे बड़ी खुशी है कि

डा० महम्मदअली मुझे इस बात का यकीन दिलाते हैं कि "कुरान" में संगसारी के लिए इजाजत नहीं दी गई है । मैं यह जानना चाहता हूं कि काबुल में किस आधार से यह सजा दी गई और हिन्दुस्तान में मुसलमानों के एक वर्ग ने किस आधार पर उसका समर्थन किया । मैं यह चाहता हूं कि सब मुसल्मान एक हो कर संगसारी की सजा की निंदा करें । यदि यह हो सका तो फिर ऐसी सजा का इस्लामी दुनिया में दुबारा कहीं भी होना नामुमकिन हो जायगा ।

मैं राज-काजी ?

एक अंगरेज मित्र ने ऐंड्यूज साहब को एक पत्र भेजा है जिसे उन्होंने मुझे भेज दिया है । उनकी समस्या यह है—

"हाल ही के एक लेख में गांधीजी के द्वारा छूत और अछूत के दरम्यान बेटी-व्यवहार होने का निषेध देखकर मुझे ताज्जुब हुआ । यही सवाल मुझे इसकी कसौटी मालूम होती है । यह बात नहीं कि मैं चाहता हूं कि गांधी व्यक्तियों के परस्पर संबंध से आगे बढ़कर एक जाति के साथ दूसरी जाति के विवाह करने की हिमायत करें । और यह बात तो मर्कनन् है कि जहां स्त्री पुरुष पूरे पूरे एक-दिल हैं वहां उत्तम मातृक संबंध और उत्तम सन्तति पाई जाती है । क्या यही लक्ष्य गांधीजी का भारत में नहीं है ? और जिस अंश में वे इस लक्ष्य तक पहुंचेंगे उस अंश में भिन्न भिन्न जातियों में अन्तर्विवाह, इफेसस में हुए यहूदियों और यूनानियों के दर्म्यान विवाह की तरह, कुदरती न हो जायंगे ?

मैं जानता हूं कि "गांधीजी" एक राजकाजी हैं और मैं जान सकता हूं कि लोगों की नाराजी से बचने के लिए उन्होंने यह बात लिख दी होगी । लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि उनके ऐसे वक्तव्य के राजनैतिक महत्व के कारण उनके प्रधान लक्ष्य को हानि पहुंचे बिना न रहेगी । यदि ब्राह्मण लोग भंगियों को, महज जाति की बिना पर, बराबरी के अधिकार देने से इन्कार करें तो केनिया के योरपियन किसानों से यह कैसे उम्मीद की जा सकती है कि वे हिन्दुस्तानी दुकानदारों से यथोचित व्यवहार करें ?"

मैंने कई बार जाति-भेद और अन्तर्विवाह के संबंध में अपने विचार प्रकाशित किये हैं—मेरे नजदीक विवाह मित्रता की कसौटी नहीं है, पति-पत्नी की जाति की बात तो ठीक खुद उनकी मित्रता की भी आवश्यक कसौटी नहीं है । मैं अपनी आंखों के सामने उस जमाने का चित्र नहीं खड़ा कर सकता जब कि सारी मनुष्य-जाति का धर्म एक ही हो जाय । ऐसी अवस्था में धार्मिक भेद आम तौरपर रहेंगे ही । लोग अपने ही अपने धर्म में विवाह करेंगे । उसी तरह देश-मर्यादा भी रहेगी । जाति-मर्यादा उसी सिद्धान्त का व्यापक रूप है । यह एक प्रकार की सामाजिक सुविधा है । किसी अंगरेज कुलीन व्यक्ति का लड़का आम तौरपर किसी पंसारी की लड़की से शादी नहीं करता । आम तौर पर उसके कुल की बिना पर ही उससे संबंध न किया जायगा । मैं अछूतपन के खिलाफ इसलिए हूं कि उसकी बदौलत सेवा-क्षेत्र संकुचित होता है । विवाह एक प्रकार सुख-साधन है, जिसे स्त्री-पुरुष अपने लिए चाहा करते हैं । और यदि ऐसे जीवन के सिलसिले में आराम की परिधि संकुचित कर दी जाय या चुनाव से काम लिया जाय तो मुझे इस बात में को[illegible] नहीं दिखाई देती । यदि कोई केनिया का बाशिन्दा मेरा [illegible] केवल इसी बिना पर बरदाश्त नहीं कर सकता [illegible] अपनी [illegible] की शादी उसके साथ नहीं करता या उसकी [illegible] पाणिग्रहण अपने लड़के के साथ नहीं होने देता, तो मुझे इस बात पर खेद न होगा, और मैं केनिया से निकाल दिये जाने में सन्तोष मानूंगा, बजाय इसके कि ऐसे असंगत शरीर-बंधन का ठहराव करने पर मजबूर होऊं । मैं तो यह भी कहूंगा कि केनियावासी तो मुझे ऐसे संबंध का खयाल तक न करने देंगे । और यदि मैं ऐसा कोई दावा खड़ा [illegible] भी तो वह उसे अपने स्थान से मुझे हटाने का एक और [illegible] रण समझेगा । यद्यपि यह विषय मेरी दृष्टि में बहुत साफ है और यद्यपि विवाह सारी दुनिया में जाति, धंधा इत्यादि मर्यादाओं से बंधा हुआ है, तथापि ऐंड्यूज साहब के मित्र को संभव है, मेरे उत्तरों से संतोष न हो । पर मैं उन्हें यह आश्वासन दे सकता हूं कि मैंने किसीकी नाराजी के खयाल से सवाल को डांवाडोल नहीं किया है । लेखक ने राजकाजी शब्द का प्रयोग जिस संकुचित अर्थ में किया है उसमें मैं राजकाजी नहीं हूं । मैंने वही बात लिखी है जिसको कि मैं मानता हूं । मैंने किसी राजनैतिक लाभ के लिए सिद्धान्त को छोड़ा नहीं है । यदि मैं अन्तर्विवाह संबंधी हिन्दू-धर्म के संयम-विधान को न मानूं तो शायद मैं उन लोगों में ज्यादह लोकप्रियता प्राप्त कर लूंगा जिनमें मैं आता जाता हूं । और मेरा मुख्य लक्ष्य क्या है ? मनुष्य-मात्र के साथ समान व्यवहार । और समान-व्यवहार का अर्थ है सेवा की समानता । सेवा के कर्तव्य से किसीको वञ्चित नहीं रख सकते । विवाह संबंध में गुण-शील की समानता होनी चाहिए । यदि कोई स्त्री किसी लाल रंग के पुरुष से विवाह करने से इनकार कर दे तो यह कोई गुनाह न होगा । पर अगर वह उसके लाल रंग के कारण उसकी सेवा करने के अपने कर्तव्य की उपेक्षा करेगी तो वह पापभागिनी होगी । विवाह अपनी रुचि का विषय है । सेवा एक ऐसा आवश्यक कर्म है जिससे विमुख नहीं हो सकते ।

एक नमूना-रूप जवाब

"एक प्रसिद्ध भारतीय कार्यकर्ता ने एक प्रसिद्ध अंगरेज को मुलाकात के लिए एक पत्र लिखा था । उस अंगरेज ने उसका जो जवाब दिया था वह नीचे दिया जाता है—

"आपके पत्र के जवाब में मुझे अफसोस है कि मैं आपसे मिल न सकूंगा । इसका कारण तो सिर्फ यही है कि मेरी राय में भारतीय प्रश्न की आज जो हालत है उसको देखते हुए मेरे साथ आपकी मुलाकात से कुछ फायदा न हो सकेगा । मैं भारतीय जनता के नेताओं के कार्यों को और उनके इरादे को न समझ सकता हूं और न उनसे सहानुभूति रख सकता हूं । आप लोगों को जिस जाति के लोगों से काम लेना है उनके स्वभाव को अवश्य जान लेना चाहिए । ब्रिटिश सरकार के द्वारा बहुत-कुछ दिया गया है । उसका क्या आप पूरा पूरा उपयोग नहीं कर सकते ? मताधिकार की शक्ति को व्यवस्थित कर के और उत्तम लोगों का चुनाव और उनके कार्यों की समालोचना कर के यह संभव है कि आप लोग वर्षों के बाद यह साबित कर दिखावें कि आप नागरिकता की भारी और गंभीर जवाबदेही के लायक हैं और बड़े से बड़े कर्तव्य का पालन कर सकते हैं । मुझे यकीन है कि राजकीय योग्यता का यह प्रमाण मिलने पर आपके भावी राजकीय विकास के लिए मेरे बड़े से बड़े देश-भाई आपका साथ देंगे और आपको उनकी तरफ से कुछ उत्तम सहानुभूति प्राप्त होगी । यदि अंगरेजी राजकीय दलों के साथ सौदा करने में आपका विश्वास हो तो उसका नतीजा बड़ा निराशाजनक होगा ।"

यह पसंद करना मुश्किल है कि लेखक की उद्धतता देख कर अफसोस करना चाहिए या अपने विचार को प्रकट करने में उसकी सचाई को देख कर उसकी कद्र करनी चाहिए । उसने तो अपने मन

में यही निश्चय कर लिया है कि अपने उस मुलाकात करनेवाले से उसे कुछ भी सीखना नहीं है । उसे तो केवल देना ही देना है । ऐसे अंगरेज को कौन सन्तोष पहुंचावेगा जो अपनेको चारों तरफ से बन्द रखता है और यह समझने के लिए इन्कार ही करता है कि दलीलें करने की कैसी भी शक्ति क्यों न हो उससे हम नागरिकता की बड़ी जवाबदेही के लायक नहीं हो सकते ? ऐसे अंगरेज को यह कौन साबित कर दिखावेगा कि नागरिकता की जवाबदेही के लिए प्रथम यह आवश्यक है कि आत्म-रक्षा करने की ताकत हो और वह ताकत बहस करने की कला सीख लेने से नहीं मिल सकती ? उसे यह कौन दिखा सकेगा कि खुद उसकी ही जाति ने अपने देश की रक्षा करने की ताकत का विकास करके ही स्वराज्य की शिक्षा हासिल की है और अंगरेजों को स्वराज्य मिल चुकने के बाद ही जैसी कि आज है उन्हें बहस करने की ताकत प्राप्त हुई है । इस लेखक को और उसके हमख्यालों को यह कौन समझा सकेगा कि हम भारतीय लोग यह ख्याल नहीं करते हैं कि न्याय के तौर पर हमें बहुत कुछ दे दिया गया है बल्कि जो कुछ थोड़ा हम लोगों को दिया गया है वह बहुत ही कम है और वह परिस्थिति के दबाव के कारण ही दिया गया है । अन्त में उन्हें यह कौन समझा सकेगा कि हम लोग अंगरेजों के राजनैतिक दलों के साथ सौदा करने में अधिक विश्वास नहीं रखते हैं बल्कि हम तो हमारी ताकत पर ही अधिक विश्वास रखते हैं । अंगरेजों का ऐसा अज्ञान और सब तरह से अलग रहने का उनका प्रयत्न बड़े ही दुःख का विषय है । आखिरी बात से तो हमें एक सबक भी मिलता है । जिन्हें हम जानते नहीं उनके साथ मुलाकात करने का प्रयत्न कर के हमें अपना अपमान नहीं करा लेना चाहिए । हमारा बर्ताव ही सारी दुनिया के साथ हमारे संबंध को उचित रूप देगा ।

एक क्रांतिकारी महाशय !

मुझे अंदेशा है कि आपकी इस सलाह का पालन करना कि मैं सार्वजनिक जीवन से हट जाऊं, उतना आसान नहीं है जितना कि उसका देना । मेरा दावा है कि मैं भारत का और उसके द्वारा मानव-जाति का सेवक हूं । मैं हमेशा ही उस सेवा को अपनी मरजी के मुताबिक नहीं कर सकता । अगर मैंने अपनी बढ़ती का जमाना देखा है तो मुझे घटती के जमाने का भी मुकाबला करना चाहिए । जबतक मुझे यह प्रतीत होता है कि मेरी जरूरत है तबतक मुझे अपना समर-क्षेत्र छोड़ना न होगा । जब मेरा काम खतम हो जायगा और मैं एक असमर्थ या जीर्ण सिपाही रह जाऊंगा तब लोग मुझे खुद ही उठाकर ताक पर रख देंगे । तबतक मैं क्रान्तिकारी हलचलों के जहर को मारने का हर उपाय अपनी शक्तिभर करने के लिए बाध्य हूं । ऐसे समय जब कि रोगी को अंगूर का ताजा रस पिलाने की जरूरत है यदि कोई डाक्टर संखिये की भस्म उसे खिलाता हो तो, फिर उसका उद्देश चाहे कितना ही अच्छा हो और वह कितना ही आत्मत्यागी हो, उसे नमस्कार ही करना चाहिए । मैं क्रान्तिकारियों से कहता हूं कि आप अपने हाथों अपनी घात न करो और अपने साथ अनिच्छुक लोगों को अपना शिकार न बनाओ—उन्हें उसमें न खींचो । हिन्दुस्तान की मुक्ति का रास्ता यूरप का स्वीकृत रास्ता नहीं है । हिन्दुस्तान कलकत्ता या बंबई नहीं है । हिन्दुस्तान का निवास तो अपने सात लाख देहात में है । यदि क्रान्तिकारीयों का संख्या बहुतेरी है तो आप अपने को देहात में फैला दें और अपने लाखों देशबन्धुओं की अंधेरी काल-कोठरियों में प्रकाश की किरणें पहुंचावें । अंगरेज अधिकारियों के तथा उनके अन्य सहायक लोगों के खून की उत्तेजक और अतृप्त पिपासा की अपेक्षा यह काम आपकी महत्त्वाकांक्षा और देश प्रेम के अधिक योग्य होगा । उनका प्राणहनन करने की अपेक्षा उनके मनोभाव को बदलना कहीं उच्च, कहीं उदात्त है ।

एक बहन की भावना (यं. इं.)

भाई विठ्ठलदास जेराजाणी लिखते हैं—

'एक घटना यहां हुई थी जिससे यह मालूम होता है कि अपने हाथ के काते सूत के कपड़े कितने प्रिय होते हैं । भण्डार की तो भगवान् ने लाज ही रख ली ।

'एक महाराष्ट्रीय बहन अपने हाथ से काते सूत की दो साड़ियां रंगने के लिए हमारे खादी-भण्डार में दे गई । देते समय उन्होंने हमें चेता कर कह दिया था कि 'देखना कहीं गुम न हो जायं, खूब संभाल कर रखना ।' इस विश्वास पर कि भण्डार में गुम न होंगी वे अपनी साड़ियां दे गई । रंग कर साड़ियां आईं; पर कहीं खो गई । अब हम असमंजस में पड़े कि वह आवेंगी तो क्या जवाब देंगे । निश्चित दिन वे साड़ियां लेने आईं । जब उन्हें यह बात विदित की गई तब उनके चेहरे की रेखायें बदलने लगीं । पर उन्हें हमने कहा, उसके बदले ऊंची से ऊंची आन्ध्र की खादी हम आपको देते हैं । पर उस बाई ने जरा झुंझला कर जवाब दिया, दस महीने तक मिहनत कर के मैंने सूत काता था । वह किसी भी अंक का हो । उसके बजाय आपकी महीन खादी से मेरा दिल कैसे भर सकता है ? इतने शब्द निकलते ही उनकी आंखों से आंसू बहने लगे उनके उस भाव का वर्णन मैं लिख कर नहीं कर सकता ।'

'अब उन्हें मनाने के लिए हम तरह तरह की खादी बताने लगे । उन्होंने दो साड़ियों के बदले एक साड़ी रख ली; पर जाते समय कह गई कि मैं इसको पहनूंगी नहीं । एक माह तक रख छोड़ूंगी । तबतक मेरी कती खादी मिल जाय तो मुझे जरूर पहुंचा देना ।

'उनके जाने के बाद ही एक दूसरी महाराष्ट्र बाई आईं । वे हमारे यहां से खादी खरीद कर के गई थीं । उनके बण्डल में वे साड़ियां भूल से बंध गई थीं । उन्होंने ला कर हमें वापिस की । हमारी खुशी का ठिकाना न रहा । उन्हें उन बाई के यहां भिजवाया तो खबर मिली कि उन बाई को इतना दुःख हुआ था कि उन्होंने खाना भी न खाया था । अपनी साड़ियां मिलते ही आनन्दित होकर खाना खाया ।"

यह रस तो अनुभवगम्य है । जिसने खुद अपने हाथ से कते सूत का कपड़ा बुन-बुना कर पहना है वही इस बहन की आंख से झरनेवाले मोती की कीमत समझ सकता है । एक शख्स का दुमाल अपने हाथ का कता खो गया था । जब तक वह न मिला तबतक उसकी विकलता कम न हुई । हम दियासलाई या पिन की कुछ कीमत नहीं समझते; पर यदि ये चीजें खुद हमारे हाथों से बनी हों तो ? जो मिठास और भाव अपने हाथ से पकाई रसोई में है वही हाथ से कती-बुनी खादी में है ।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है । पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०-३-० रक्खी गई है । डाकखर्च खरीदार को देना होगा । ०-४-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन् रवाना कर दी जायगी । वी. पी. का नियम नहीं है ।

व्यवस्थापक

हिन्दी-नवजीवन

राष्ट्रीय शाला का आदर्श

काठियावाड़ की यात्रा में गांधीजी ने वढवाण के बालमन्दिर का उद्घाटन किया। चांदी के ताले को चांदी की कुंजी से खोला। साथ ही एक पुस्तकालय की नींव भी रक्खी। वहां आपने अपना भाषण चाँदी के ताले-कुंजी से ही शुरू किया—

'ये चांदी की चीजें मुझे अपने साथ ले जानी हैं। इनका अर्थ है। इस देश में अनेक प्रकार के काम हो रहे हैं। किसे पता उनके अन्दर कितना सत्य, कितनी कुरबानी, कितना भाव है? मैं सिर्फ इतना जानता हूं कि बहुत थोड़ी संस्थाओं में आत्मा और जीवन है। एक अंगरेज कवि ने स्वर्ग का वर्णन करते हुए कहा है—पीटर स्वर्ग के दरवाजे पर बैठा है और उसकी चाबी सोने की नहीं, बल्कि लोहे की है। इसका खुलासा करते हुए दूसरा कवि कहता है—स्वर्ग का दरवाजा खलना सहल काम नहीं है, वह सोने की चाबी से नहीं खुल सकता; क्योंकि सोना कमजोर होता है। लोहा एक सख्त से सख्त धातु है। इसलिए वह लोहे से ही खुल सकती है। जो चीज बहुत मुश्किल होती है उसके लिए हम कहते हैं लोहे के चने चबाना। सो ऐसी संस्थाओं की सुव्यवस्था लोहे के चने चबाने के बराबर है। पुस्तकालय को बनाने के लिए चांदी के औजार काम नहीं आते लोहे के ही चाहिए और उसे बन्द करने में चांदी का ताला काम नहीं दे सकता, लोहे का ही होना चाहिए। अर्थात् हमने इस क्रिया के करते हुए आरंभ कृत्रिमता से ही किया है। मैंने तो सिर्फ थोड़ी सी मट्टी डालकर पत्थर रख दिया, इसे बांधने का सारा काम तो बढ़ई ही करेंगे और मन्दिर का उद्घाटन तो शिक्षक ही करेंगे। पुस्तकालय का अर्थ पुस्तकों का मकान या पुस्तकें नहीं और न केवल उसमें आनेवाले और किताबें पढ़ने वाले लोग हैं। यदि ऐसा ही हो तो किताब बेचनेवाले अनेक लोग पुस्तकालय होने चाहिए। बालमन्दिर क्या धन के बल पर चल रहा है? वह चल तभी सकेगा जब चलाने वाले पक्के होंगे और उसमें आत्मा होगी। साधारण तौर पर ऐसी संस्थाओं का उद्घाटन करने की क्रिया मुझे अच्छी नहीं मालूम होती; क्योंकि इन्हें खोलकर मैं क्या करूंगा? पर इस संस्था को खोलना जो मैंने कुबूल किया है उसका कारण यह है कि इसमें काम करनेवाले लोगों पर मुझे विश्वास है। वर्ना आप न समझना कि मेरे हाथों खोलने की क्रिया होने से कुछ भला होगा। मैं तो उड़ता पंछी हूं। आज यहां तो कल अहमदाबाद और परसों देहली। फिर भी मेरा नाम लेकर जितना भला किया जा सकता है उतना करने से मैं ना नहीं कहता। इस मन्दिर की हस्ती का आधार न तो मकानों पर है, न बालकों पर है, और न लाखों अशर्फियों पर, यदि कोई दे। उलटा ये अशर्फियां तो बाधक भी हो सकती हैं। मैंने खुद अपने अनुभव से देखा है कि जब जब बहुत आर्थिक सहायता मिली है तभी तब मेरे कामों में विघ्न आये हैं। दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह जब चल रहा था तब ज्यों ही यहां से रुपये-पैसे की वर्षा होने लगी त्योंही, मेरे कार्यों की शक्ति न जाने कहां चली गई थी—उसी तरह जिस तरह कि युधिष्ठिर के 'नरो वा कुंजरो वा' कहा था और उसके रथ का पहिया जमीन में धंस गया था। ईश्वर ने सबके लिए २४ घण्टे का ही इन्तजाम किया है। और ८ घण्टे की मजदूरी से २४ घण्टे के लिए जरूरी चीजें मिल जाती हैं। इतने ही पर सबको सन्तुष्ट रहना चाहिए। इस कारण मैं बिल्कुल नहीं चाहता कि इस संस्था की आर्थिक अवस्था अच्छी हो। इस संस्था के पास धन सिर्फ इतना ही हो कि जिससे काम करनेवाले यहां प्राण धारण कर के रह सकें और जरूरत हो तो उसे त्याग भी कर दे।'

जिस संस्था के पास बहुत धन हो और कुछ कार्यकर्ता भी मिल जायं उसे तो मैं 'मशरूम' (कुकरमुत्ता) कहूंगा। वह चार दिन रह कर नष्ट हो जायगी। मेरे इस कथन का तात्पर्य यह है कि जो भाई यहां आये हैं और जिन्होंने इस संस्था के लिए अपने प्राणों की आहुति देने की प्रतिज्ञा की है उन्हें चाहिए कि वे परमात्मा पर भरोसा रख कर बैठ जायं और जब ऐसा मालूम हो कि अब तो डूबने में कसर नहीं है तब भी श्रद्धा रख कर काम करते रहें। नहीं तो आप निश्चित रूप से याद रखना कि आप हिन्दुस्तान के शापभागी होंगे। यह भव्य बढ़िया भवन हमें शोभा न देगा। ऐसे मकान तो राजा-महाराजाओं को शोभा देते हैं—हिन्दुस्तान की इस गरीबी में तो बिलकुल नहीं देते—यदि हम जनता को इसका मावजा न दें, जबतक यह मावजा संस्था के संचालक जनता को न दे दें तबतक यह मकान उन्हें खाने को न दौड़ता हो तो। जिस तरह जनक राजा महलों में रहते हुए भी त्यागी माने गये उसीतरह यदि फूलचन्द भाई और उनके साथी त्यागी रह कर इसमें रहें तो फिर हर्ज नहीं कि यह संस्था कायम हुई और उसकी नींव मेरे हाथों डाली गई। पर यदि त्याग-भाव उड़ गया और यहां भोग को प्रधानता दी गई तो इसका नाश निश्चित समझना। राष्ट्रीय शाला वही है कि जिसके द्वारा हम स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे, वही कि जिसके शिक्षक तमाम नियमों का पालन करते हों, त्याग-भाव रखते हों, कठिन जीवन व्यतीत करते हों।'

'स्थानिक लोगों ने इस संस्था से संबंध हटा लिया, यह देख कर मुझे दुःख होता है। जिस संस्था को जहांतक चलाने की जरूरत हो तहांतक उसके लिए धन स्थानिक लोगों से मिलना चाहिए और संचालकों को भी स्थानिक लोगों को अपने कार्य से प्रसन्न रखना चाहिए। हम जैसे स्वराज्य-वादी जन-सेवकों की स्थिति विषम है। क्योंकि वे सुधारक भी हैं। सुधारक की स्थिति विचित्र हो जाती है। क्योंकि वह वायु मण्डल में प्रवेश नहीं कर सकता और बाहर से जो कुछ प्राण ले ला हो ले लेता है।

'राष्ट्रीय शाला का अर्थ है राष्ट्र के जीवन की पोषक शाला। राष्ट्रीय का अर्थ यही नहीं कि केवल सरकार से संबंध छोड़ दें—राष्ट्रीय संस्था की बुनियाद तो है चारित्र्य। यदि लड़कों का ढेर लगा हो और पढ़ कर उन्हें जीविका मिलने लगे तो उससे वह राष्ट्रीय नहीं हो सकती। आजीविका मिले भले ही, परन्तु शिक्षण का यह हेतु नहीं है कि आजीविका पैदा करने की कला सिखावे। उसका हेतु तो है बालकों की आत्मा को जाग्रत करना, उसे प्रकाशित करना, बालक के शरीर, बुद्धि और आत्मा को विकसित करना। राष्ट्रीय शालाओं की हस्ती इसीलिए है कि केवल परीक्षा कर के कृत्रिम शिक्षा-माप से हम मुक्त हो जायं। विद्यापीठ की स्थापना इसीलिए हुई है। और इसीलिए मैं मां-बापों से कहता हूं कि ऐसी शालाओं को सहायता दीजिए और शिक्षकों से कहता हूं कि आप अपने ध्येय पर दृढ रहना, तपश्चर्या करना और अपने चरित्र-बल पर बालकों को आकर्षित करते रहना। ऐसा होने पर ही मेरा यहां आना और इस भवन का खोलना सार्थक कहलावेगा।"

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

कोई ऐसा मार्गदर्शक मिले तो अच्छा हो जो मेरी श्रद्धा बैठा दे। साधुसंतों पर एकदम श्रद्धा नहीं बैठती'। जिसका जीवन ऐसे गोरखधन्धे से निकल नहीं पाता है वह भला देहात में समाज की क्या सेवा करके संतोष पहुंचा सकता है?"

इस पत्र के लेखक निर्मल-हृदय हैं। वे ज्ञान की शोध में हैं। पर ज्यों ज्यों वे ज्ञान को खोजते हैं त्यों त्यों वह उनसे दूर भागता हुआ दिखाई देता है। जो चीज बुद्धि के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकती उसके लिए वे बुद्धि का प्रयोग कर रहे हैं। जिस चीज के लिए वे अकल लड़ा रहे हैं उसके फल के लिए वे व्यर्थ ही प्रयत्न कर रहे हैं। कर्म के फल की आशा न रखने का अर्थ यह नहीं कि फल मिलेगा नहीं। आशा न रखने का अर्थ यही है कि कोई कर्म निष्फल नहीं जाता, और संसार की विचित्र रचना में ऐसी गूंथन है कि यही पहचान नहीं पड़ती कि तना कौनसा है और शाखा कौनसी है। तो फिर जो अनेक मनुष्यों के अनेक कर्म के समुदाय का फल है उसमें यह कौन जान सकता है कि एक व्यक्ति के कर्म का फल कौनसा है? यह जानने का हमें अधिकार भी क्या है? एक राजा के सिपाही को भी अपने किये कर्म का फल जानने का अधिकार नहीं होता तो फिर हमें जो कि इस संसार के सिपाही हैं अपने कर्म के फल को जानकर क्या करना है? क्या यही ज्ञान काफी नहीं है कि कर्म का फल अवश्य मिलता है?

पर इन लेखक को न तो राम-नाम में श्रद्धा है, न ईश्वर में श्रद्धा है। मैं उनसे सिफारिश करता हूं कि वे करोड़ों के अनुभव पर श्रद्धा रक्खें। संसार ईश्वर की हस्ती पर कायम है। राम-नाम ईश्वर का एक नाम है। राम-नाम से घृणा हो तो वे शौक से ईश्वर के नाम से या अपने रचे किसी नाम से पूजें। अजामिल के उदाहरण को गप मानने का कोई कारण नहीं। सवाल यह नहीं है कि अजामिल हुआ था या नहीं; पर यह है कि ईश्वर का नाम लेता हुआ वह पार हो गया या नहीं। पौराणिकों ने मनुष्य-जाति के अनुभवों का वर्णन किया है। उनकी अवहेलना करना इतिहास की अवहेलना करना है। माया के साथ युद्ध तो बना ही हुआ है। अजामिल जैसों ने युद्ध करते हुए नारायण-नाम का जप किया है। मीराबाई सोते-बैठते, खाते-पीते, गिरिधर का नाम जपती थी। युद्ध के बदले यह नाम नहीं है बल्कि युद्ध करते हुए उस नाम को ले कर युद्ध को पवित्र बनाने की विधि है। राम-नाम, द्वादश मंत्र जपनेवाले माया के साथ युद्ध करते हुए थकते नहीं, बल्कि माया को थका देते हैं। इसीसे कवि ने गाया है—

'माया सब को मोहित करती हरिजन से वह हारी रे।'

राम रावण का दृष्टान्त तो शाश्वत है। इससे सन्तोष न होने का अर्थ इतना ही है कि असन्तुष्ट होनेवाले ने राम-रावण को ऐतिहासिक पात्र मान लिये हैं। ऐतिहासिक राम-रावण तो चले गये। परन्तु मायावी रावण आज भी मौजूद है और जिनके हृदय में राम का निवास है वे रामभक्त आज भी रावण का संहार कर रहे हैं।

जो बात मृत्यु के बाद ही जानी जाती है उसको आज जान लेने का लोभ रखना कितना जबरदस्त मोह है? पांच साल का बच्चा पचासवें साल में क्या हो जायगा, यह जानने का लोभ रक्खे तो क्या हालत होगी? परन्तु जिसतरह ज्ञानी बालक औरों के अनुभव से अपने संबंध में कुछ अनुमान कर सकता है उसीतरह हम भी औरों के अनुभव से मृत्यु के बाद की स्थिति का कुछ अनुमान कर के सन्तुष्ट रह सकते हैं।

अथवा मृत्यु के बाद क्या होगा, यह जानने से क्या काम? सुकृत का फल मीठा और दुष्कृत का कड़वा होता है, यही विश्वास क्या बस नहीं? अच्छे से अच्छे कृत्य का फल मोक्ष है, यह व्याख्या मोक्ष की मैं पूर्वोक्त लेखक को सूचित करता हूं।

लेखक मूर्ति का स्थूल अर्थ कर के भुलावे में डालनेवाली उपमा ले कर खुद ही भुलावे में पड़ गये हैं। मूर्ति परमेश्वर नहीं है। बल्कि मूर्ति में परमेश्वर का आरोपण कर के लोग उसमें तल्लीन होते हैं। लकड़ी के मनुष्य बनाकर मनुष्य का काम लकड़ी के पुतलों से हम नहीं ले सकते। परन्तु चित्र के द्वारा अपने मा-बाप की स्मृति ताजा रखने के लिए चित्रों का प्रयोग करके लाखों सुपुत्र और सुपुत्री क्या बुरा करते हैं? परमेश्वर सर्वव्यापक है। नर्मदा के एक पत्थर में भी उसका आरोपण कर के परमेश्वर की भक्ति हो सकती है।

अन्त में लेखक यदि यह मानते हों कि देहात में रहकर चरखे के द्वारा देहातियों की सेवा करने में उन्हें संतोष होगा तो उन्हें तुरन्त देहात में चले जाने की तैयारी करनी चाहिए।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

राजपूताने में खादी-कार्य

श्री शंकरलाल बैंकर श्री जमनालालजी के साथ हाल ही राजपूताने में भ्रमण कर के आये हैं। उन्होंने वहां के खादी-काम के संबंध में नीचे लिखा विवरण गांधीजी को भेजा है—

राजपूताना में खादी-काम के लिए असाधारण अनुकूलता है। हमारे आन्दोलन की शुरूआत के साल में इस प्रान्त में खादी-काम के लिए महासमिति के तरफ से २५ हजार रुपया मंजूर हुआ था। इनमें से पहले पहल कोई ६ हजार रुपये इस प्रान्त की समिति को खादी-काम के लिए दिये गये थे। इस रकम से अजमेर में श्री गौरीशंकर भार्गव के द्वारा खादी भण्डार खोला गया था। परन्तु उसका काम सन्तोषजनक न दिखाई देने से वह बन्द किया गया। इस भण्डार के संबंध में इस समय राजपूताने में जो बातचीत हुई उससे जाना जाता है कि इसके कामकाज के संबंध में कार्यों में कुशंकायें फैल रही हैं। इसके विषय में तहकीकात करके जितनी हो सके हकीकत जानने की तजवीज हो रही है।

इस भण्डार के बाद १९२३ में वहांकी समिति की तरफ से एक खादी का कारखाना शुरू किया गया था। उसकी देखभाल अजमेर के वैदिक प्रेसवाले श्री. मथुराप्रसाद शिवहारे के जिम्मे थी। इस कारखाने का काम भी सन्तोषजनक न मालूम होने से वह भी थोड़े ही समय में बंद कर दिया गया। इस कारखाने में कोई ५ हजार की रकम लगाई गई थी। इसमें से बचे ४२०८) फिर प्राप्त कर लिये गये हैं।

१९२४ में अखिल भारत खादी-मण्डल के खादी-काम को अपने हाथ में ले लेने के बाद श्री जमनालालजी ने इस प्रान्त के नेता तथा कार्यकर्ताओं के साथ सलाह-मशवरा कर के इस प्रान्त के लिए एक खादी-मण्डल स्थापित किया था। और महासमिति के द्वारा मंजूर २५,०००) की रकम में से बचे १९,०००) में से *इस मण्डल को अबतक दस हजार रु. दिये गये* हैं। इस मण्डल के काम का केन्द्र ब्यावर है और श्री नृसिंहदास तथा श्री. मूलचंद उसके मुख्य कार्यकर्ता हैं।

राजपूताना में खादी की उत्पत्ति का मुख्य केन्द्र तो है जयपुर। जयपुर के आसपास के गांवों में सैकड़ों चरखे चलते हैं। और सूत के द्वारा वहांके जुलाहे शुद्ध तथा मिश्र खादी बुनते हैं। खादी हर रविवार को जयपुर के बाजार में बेची जाती है। जुलाहे अपने बने कपड़ों के थान बाजार में ले आते हैं और जयपुर के

व्यापारी उन्हें खरीद लेते हैं। इनमें लगानहुनर मिश्र खादी होती है। परन्तु शुद्ध खादी की मांग के मुताबिक शुद्ध खादी के थान भी आया करते हैं। अभी हर-हफ्ते कम से कम ६००) से ८००) का माल आता होगा। जयपुर में खास करके खादी का काम करनेवाले दो ही व्यापारी हैं। एक का नाम श्री कपूरचन्द और दूसरे का श्री केसरचन्द। ये सजन बाजार में आई खादी जितनी हो सकती है, खरीद लेते हैं। सत्ताईस इंच अर्ज के १२ अंक तक के खादी के थान का भाव खादी की किस्म के अनुसार साढे तीन से साढे चार रु० तक होता है। एक थान में आम तौर पर चौदह गज खादी होती है। वे महाशय जो खादी खरीदते हैं वह अधिकांश में और प्रान्तों को जाती है। जयपुर में उसका खप नहीं के बराबर मालूम होता है। श्री कपूरचन्द ने पिछले साल में कोई २५) हजार की खादी बेची थी। उन्हें उसमें कुछ मुनाफा भी हुआ था। जयपुर की खादी अधिकांश में १२ अंक के भीतर के सूत की और २७ इंच अथवा उससे कम अर्ज की होती है।

जयपुर के अलावा खादी का एक और विश्वासपात्र केन्द्र बोरावड माना जाता है। यह जोधपुर राज्य में है। यहां एक होशियार और साहसी जुलाहा, वहांके ठाकुर साहब की मदद से खादी का कारखाना चलाता है। जुलाहा भाई खुद अछूत जाति के हैं। बुनाई में निपुण माने जाते हैं। इनके कारखाने में अभी १८ करघे [illegible] हैं। उन्होंने इन करघों के लिए १२ से ३८) तक वेतन के [illegible] रक्खे हैं। करघों के लिए सूत आसपास के गांवों की [illegible] से [illegible] लेते हैं। इसकी मदद से कोई २००-३०० चरखे चलते होंगे। पहले तो ये मिल तथा मिल सूत का कपड़ा बुनते थे। परन्तु पिछली महासभा में जाने के बाद [illegible] प्रभाव से अब महज शुद्ध खादी का ही काम करने का निश्चय किया है। कुछ खादी-मण्डल के कार्यकर्ताओं के प्रयास का भी यह फल है। इस कारखाने की मौजूदा शक्ति को देखते हुए मालूम होता है कि हर माह हजार रुपये की खादी बन सकती है। इस कारखाने की खादी कुछ महगी पड़ती है। परन्तु उसमें बड़े अर्ज की खादी बुनी जाती है तथा बुनावट मजबूत और निर्दोष होती है इससे खादी की पैदावार से मांग ज्यादह है।

खादी-मण्डल फिलहाल जयपुर, बोरावड से खादी खरीद करता है और राजपूताना तथा दूसरे प्रान्तों में बेचता है। जयपुर में बनने वाली खादी का अर्ज कम होता है और धोतीजोड़े तथा बड़े अर्ज की खादी की मांग ज्यादह है। इससे ब्यावर में शुरुवात में बड़े अर्ज के करघे खड़े करके जुलाहों से बड़े अर्ज की खादी बुनाने की जरूरत दिखाई दी थी। इन करघों के लिए सूत बहुत-कुछ ब्यावर में ही कतवाना शुरू किया था। परन्तु जयपुर के गांवों से महीन और कुछ सस्ता सूत मिलने से ब्यावर में कतवाने की जरूरत नहीं मालूम होती। आजतक मंडल की तरफ से कोई १८) हजार की खादी बिकी होगी। उसमें से कोई आधी बिक्री राजपूताना में हुई होगी।

इस मण्डल के कार्यकर्ताओं के लिए खादी-काम नवीन होने पर भी शुरुआत में वे भरसक जानकारी प्राप्त कर के विचार-पूर्वक अच्छी तरह काम करने का प्रयत्न करते थे। परन्तु पीछे आकर उनमें मत-भेद उत्पन्न हुआ और उससे काम में भी फर्क पड़ने लगा। धीरे धीरे यह विरोध यहांतक बढ गया कि यह डर हुआ [illegible] वहां का काम बैठ जायगा। अन्त को श्री जमनालालजी को [illegible] वहां जाने की जरूरत मालूम हुई। उन्होंने वहां के नेता तथा [illegible] ओं के साथ खूब चर्चा कर ली है। मतभेद के कारण तथा [illegible] जान लिये हैं। वहां के काम की अनुकूलतायें तथा [illegible] ति उन्होंने देख ली है। सबतरह से विचार करते हुए उन्हें यह मालूम होता है कि अ० भा० खादी मण्डल की तरफ से वहां के काम की व्यवस्था होने पर ही सन्तोषजनक रीति से काम हो सकता है। और इसीतरह हमारे इच्छित परिमाण में खादी की उत्पत्ति तथा प्रचार हो सकता है। उन्होंने अपने विचार वहांके नेता तथा कार्यकर्ताओं के सामने पेश किये हैं। और ऐसा मालूम होता है कि वे भी बहुत करके उनकी सलाह के अनुसार ही काम करेंगे। यदि ऐसा हो तो पूंजी की असुविधा भी दूर हो जायगी और वहां काम की अनुकूलता तो हई है, इसलिए वहांके कार्यकर्ताओं की सहायता मिलने से अच्छा काम हो सकेगा।

खादी के काम के सिलसिले में कार्यकर्ताओं का विरोध दूर कर देने के उपरान्त श्री० जमनालालजी ने खादी के प्रचार के लिए आवश्यक वायुमण्डल तैयार करने का भी प्रयत्न शुरू किया है। राजपूताना में शुद्ध खादी भी बहुत-कुछ पैदा हो सकती है। परन्तु यहां उसकी बिक्री आसानी से हो जाने योग्य वायुमण्डल नहीं और इस कारण जो कुछ भी खादी आज पैदा होती है वह भी अधिकांश में और प्रान्तों को ही भेजनी पड़ती है। जबतक यह हालत है तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि खादी का कुछ खास काम हुआ है। खादी के संबंध में सच्चा काम तो तभी हुआ माना जायगा जब जितनी खादी वहां उत्पन्न होती है, या हो सकती है, उतनी तुरन्त वहीं खप जाय। यह बात वे वहां सब लोगों को समझाने की कोशिश कर रहे हैं।

ब्यावर में तो हम सिर्फ एक ही दिन रहे। वहां हमारा दिन झगड़े की बातें सुनने में ही गया। परन्तु जयपुर में हमें काम के लिए कुछ समय मिला। वे वहां के कुछ प्रतिष्ठित लोगों से मिले और उनकी सहायता प्राप्त करने की तजवीज की। उन सबने भी एकत्र हो कर उनके साथ खूब चर्चा की। और जब उन्हें यह निश्चय हो गया कि यह काम निर्दोष है, करने लायक है, इससे गरीबों का दुःख दूर होगा, इसलिए धर्म-रूप है, तब उन्होंने जितनी हो सके सहायता देना स्वीकार किया है। इससे यह आशा होती है कि जयपुर में खादी का प्रचार बढेगा। इस अवस्था में जयपुर के खादी के व्यापारी श्री कपूरचंद जयपुर में ही कम से कम हर साल पांच हजार की बिक्री करने का जिम्मा लेने को तैयार हुए हैं। आज तो एक हजार की भी न होती होगी। जयपुर के अलावा राजपूताना के दूसरे शहरों में तथा उन जगहों में जहांके रहनेवालों पर कुछ असर हो सकता है, जाकर खादी-प्रचार करने का कार्यक्रम जमनालालजी ने तैयार किया है। इस मास की २५ ता. को फतेहपुर में अग्रवाल महासभा की बैठक होनेवाली है। उस मौके पर राजपूताना के तथा अन्य स्थानों के प्रतिष्ठित अग्रवालों के आने की संभावना है। जमनालालजी खुद भी वहां जायंगे और उन्हें आशा है कि वे इस अवसर पर खादी के लिए जितना हो सके प्रबंध कर लेंगे। श्री जमनालालजी को राजपूताने के विषय में खास ममत्व है और उन्होंने वहां पूरा पूरा प्रयत्न करने का निश्चय किया है। सो यदि वहांके प्रतिष्ठित सज्जनों और समिति के कार्यकर्ताओं की ओर से पूरी सहायता मिले तो बहुत अच्छा नतीजा निकलने की आशा रक्खी जा सकती है। छोटे अर्ज की और मोटी खादी तो आज बहुत पैदा होती है। समिति के कार्यकर्ता और खास कर के श्री विश्वेश्वर बिरला जयपुर के गांवों में सूत सुधारने तथा बड़े अर्ज का कपड़ा बुनवाने की कोशिश कर रहे हैं। उसी प्रकार श्री जमनालालजी ने खुद शहरों में तथा महत्व के स्थानों में खादीप्रचार तथा खादी-संगठन का काम करना शुरू किया है। इन सब कार्यकर्ताओं का प्रयास सफल हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, यदि राजपूताना अपनी ही खादी से स्वाधीन होने लगे।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र वदी ९, संवत् १९८१

कठिन समस्या

आंध्र के एक पत्रलेखक अपनी मुश्किलों की ओर इस प्रकार ध्यान खींचते हैं:—

"गत सप्ताह के 'यंग इंडिया में' एक बंगाली सज्जन के अस्पृश्यता-विषयक पत्र के जवाब में आपने कहा है 'जब कि शूद्रों के हाथ का पानी हम पीते हैं तब अस्पृश्यों के हाथ से भी पानी लेने में हमें झिझकना न चाहिए।' "हम" से मतलब उच्च वर्ण के हिन्दुओं से है। मैं उत्तर हिन्दुस्तान में प्रचलित रिवाजों को नहीं जानता। लेकिन क्या आप यह जानते हैं कि आंध्र देश में और हिन्दुस्तान के इससे भी अधिक दक्षिण के दूसरे विभागों में केवल यही नहीं कि ब्राह्मण लोग अब्राह्मणों (दूसरे तीन वर्णों) के हाथ का पानी ही नहीं पीते बल्कि जो लोग अधिक कट्टर सनातनी हैं वे तो उन्हें सर्वथा अस्पृश्य भी मानते हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार भी रखते हैं।

आपने अक्सर यह बात कही है कि आप जातिगत उच्च नीच भाव को दूर करने के लिए रोटीव्यवहार रखने की आवश्यकता का प्रचार करना नहीं चाहते हैं। एक मर्तबा आपने इस बात को साबित करने के लिए मालवीयजी का उदाहरण भी पेश किया था और कहा था कि आपमें परस्पर आदर और सद्भाव होने पर भी यदि मालवीयजी आपके हाथ का पानी या दूसरी कोई चीज पीने या खाने से इन्कार कर दें तो आपके ख्याल से यह आपका तिरस्कार न होगा। मैं इसको मान लेता हूं। लेकिन आप यह नहीं जानते कि इस प्रान्त के ब्राह्मण १०० गज के फासले से भी यदि कोई अब्राह्मण उनका खाना देख ले तो उसे न खायंगे। खाना छूने की बात तो दूर रही, क्या मैं आपको यह बताऊं कि रास्ते में यदि कोई शूद्र एक या दो लफ्ज बोल दे तो उतने से ही भोजन करते हुए ब्राह्मण को गुस्सा आ जायगा और फिर वह दिन भर कुछ न खायगा। यदि यह तिरस्कार नहीं तो फिर क्या हो सकता है? क्या यह ब्राह्मणों की अकड़ नहीं है? क्या आप इस विषय पर प्रकाश डालेंगे? मैं स्वयं एक ब्राह्मण-युवक हूं और इसलिए अपने अनुभव से ही ये बातें लिख रहा हूं।"

अस्पृश्यता बहुमुखी राक्षस है। यह धर्म और नीति की दृष्टि से बड़ा ही गंभीर प्रश्न है। मेरी दृष्टि में रोटीव्यवहार एक सामाजिक प्रश्न है। वर्तमान अस्पृश्यता की ओट में मनुष्य-जाति के एक अंश के प्रति तिरस्कार-भाव अवश्य छिपा हुआ है। समाज के मर्म-स्थलों में यह एक प्रकार का घुन लगा हुआ है, मनुष्यत्व के हकों का यह इन्कार है। रोटी-व्यवहार और अस्पृश्यता समान नहीं हो सकते। समाज-सुधारकों से मेरी प्रार्थना है कि वे इन दोनों को एक न कर दें। यदि वे ऐसा करेंगे तो वे अस्पृश्यों और दलितों के हित को हानि पहुंचावेंगे। इस ब्राह्मण पत्रलेखक की कठिनाई सच्ची कठिनाई है। इससे प्रतीत होता है कि यह बुराई कितनी गहरी पैठ गई है। ब्राह्मण शब्द तो नम्रता, अपने आपको भूल जाना, त्याग, पवित्रता, हिम्मत, क्षमा, और सत्य-ज्ञान का पर्यायवाची होना चाहिए। लेकिन आज तो यह पवित्र-भूमि ब्राह्मण अब्राह्मण के विभागों से दुःखी हो रही है। बहुतेरी बातों में ब्राह्मणों ने अपनी महत्ता को नष्ट कर दिया है। उन्होंने अपनी ऐसी महत्ता का कभी दावा नहीं किया था; लेकिन निःसंशय उनकी सेवा के कारण उस का सेहरा उन्हीं के सिर बंधा था। ब्राह्मण कल जिसका आज दावा नहीं कर सकते हैं उसीको प्राप्त करने के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं और इससे हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों में अब्राह्मणों को उनके प्रति ईर्ष्या हुई है। हिन्दू-धर्म और देश के सद्भाग्य से पत्रलेखक जैसे ब्राह्मण भी मौजूद हैं जो इस बुरी प्रवृत्ति के खिलाफ अपनी पूरी ताकत के साथ लड़ रहे हैं और जो अब्राह्मणों की त्याग-भाव से बराबर सेवा कर रहे हैं। यह उनके उच्च भूतकाल के अनुकूल है। जहां कहीं देखो अस्पृश्यता के खिलाफ आज ब्राह्मण लोग आगे आ कर लड़ रहे हैं और अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए वे शास्त्रों का आधार भी पेश कर रहे हैं। पत्र-लेखक ने दक्षिण के जिन ब्राह्मणों का वर्णन किया है उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे समय के प्रवाह को देखें और ऊंच-नीच के गलत ख्याल को छोड़ दें और वे इस वहम को भी छोड़ दें जिससे कि उन्हें अब्राह्मण को देख कर पाप की गन्ध आती है और उनकी आवाज सुन कर उनका खाना अपवित्र हो जाता है। ब्राह्मण ने ही ब्रह्म को सर्वत्र देखने की शिक्षा संसार को दी है। बेशक, तब फिर अपवित्रता कहीं बाहर से नहीं आ सकती। वह अन्दर ही होती है। आज ब्राह्मण यह संदेश फिर सुन दें कि अछूतपन का ख्याल बुरा ख्याल है। उसने संसार को यह शिक्षा दी है "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः" मनुष्य स्वयं ही अपना उद्धारक है और अपना शत्रु और नाशक भी वही है।

इस आंध्र पत्र-लेखक की बातों से अ-ब्राह्मणों को क्षुब्ध न होना चाहिए। इस पत्र-लेखक के जैसे कितने ही ब्राह्मण उनकी तरफ से अस्पृश्यता के खिलाफ इसीतरह लड़ेंगे जिसतरह कि वे खुद लड़ रहे हैं। कुछ थोड़े लोगों के पापों के कारण ब्राह्मणों की सारी जाति को ही, धिक्कारना न चाहिए। मुझे डर है कि यह वृत्ति बढ़ रही है। वे इतने उदार बनें कि जो लोग उनके प्रति बुरा व्यवहार करते हैं उनसे अच्छे व्यवहार की आशा ही न करें। कोई राहगीर यदि मेरी तरफ दृष्टि न करे अथवा वह मेरे स्पर्श से मेरी उपस्थिति से या मेरी आवाज से नापाक हो जाय तो उससे मैं अपना अपमान नहीं समझूंगा। इतना ही काफी है कि उसके कहने से मैं अपने रास्ते से न हटूंगा या वह सुन लेगा इस डर से बोलना बन्द न करूंगा। जो अपनेको उच्च मानता है उसके अज्ञान और वहम पर मुझे दया आ सकती है लेकिन मैं उसपर क्रोध और उसका तिरस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि यदि मेरा तिरस्कार किया जायेगा तो मुझे बुरा मालूम होगा। संयम खो देने से तो अ-ब्राह्मण लोग अपना मुद्दा ही खो बैठेंगे। सबसे महत्व की बात तो यह है कि सीमा से अधिक आगे बढ़ कर वे अपने ब्राह्मण बन्धुओं को दिक्कत में न डाल दें। ब्राह्मण तो हिन्दू-धर्म और मनुष्य समाज का उत्तम पुष्प-अंग है। ऐसा एक भी काम मैं न करूंगा जिससे उसे मुरझाना पड़े। मैं यह जानता हूं कि वह अपनी रक्षा करने के लिए समर्थ है। उसने अबतक बहुत से तूफानों को देख लिया है। लेकिन अ-ब्राह्मणों के बारे में यह न कहा जाना चाहिए कि उन्होंने इस पुष्प की सुगन्ध और कांति को लूट लेने का प्रयत्न किया है। मैं नहीं चाहता कि ब्राह्मणों के सर्वनाश पर अ-ब्राह्मण लोग उन्नति करें। मैं तो यह चाहता हूं कि वे उस उच्च स्थान को पहुंच जाय जिस को अबतक ब्राह्मण लोग पहुँचे हुए थे। ब्राह्मण जन्म से होते हैं लेकिन ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं होता। यह तो वह गुण है जिसको कि एक छोटे से छोटा आदमी भी अपना विकास कर के प्राप्त कर सकता है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

सत्याग्रही का कर्तव्य

वाइकोम के सत्याग्रहाश्रम में एक रोज मैंने वहांके लोगों से जो बातचीत की उसका प्रायः शब्दशः विवरण नीचे दिया जाता है। आश्रम में इस समय कई ५० स्वयंसेवक हैं। वे वाइकोम के मन्दिर के चारों दरवाजों के सामने जहां रोक की जगह या तो खड़े रहते हैं या हाथ-पांव पसार कर बैठ जाते हैं। वे एक बार में छः घण्टे तक वहां रहते हैं और सूत कातते हैं। वे दो टुकड़ियों में भेजे जाते हैं। मैं सर्वसाधारण के तथा विशेष करके सत्याग्रहियों के लाभार्थ उसे प्रकाशित करता हूं—

खेद है कि मैं आपसे पूरी पूरी और सन्तोषजनक बातचीत किये बिना ही जा रहा हूं। पर मैं देखता हूं कि इससे अधिक करने की गुंजाइश नहीं है। मेरे कार्यक्रम की व्यवस्था जिन लोगों के जिम्मे है उनका खयाल है कि इस काम के लिए मुझे वाइकोम के अलावा और मुकामों पर भी जाना चाहिए। मैंने उनकी सलाह को मान लिया है; पर पिछले अनुभवों ने मुझे यह निश्चय करा दिया है कि इस हलचल की सफलता बाहरी लोगों की सहायता की अपेक्षा आप ही लोगों पर ज्यादह अवलंबित है। यदि आपके अंदर कुछ दम नहीं है, या ज्यादह दम नहीं है तो मुझ जैसे लोगों की उड़ती हुई मुलाकात से मिलनेवाला उत्साह आपको काम न देगा। लेकिन अगर मैं यहां न आया होता और यहां लोगों में उत्साह न बढ़ा होता और यदि खुद आप अपनेतईं सच्चे दृढ़ बने रहे होते तो किसी बात की कमी न रहती। तो भी आप के कार्य में उसके योग्य प्रोत्साहन जरूर मिल रहता। हां, यदि मैं यहां कुछ ज्यादह समय रह पाता तो ज्यादह फायदा होता। पर जो मित्र यहां मेरा कार्यक्रम तय करते हैं उनकी सलाह के अनुसार मैं ऐसा न कर सकूंगा।

पर मैं जितना संक्षेप में हो सके, आपसे यह कहना चाहता हू कि मैं आपसे क्या क्या उम्मीदें रखता हूं। मैं आपसे कहूंगा कि आप इस कार्यक्रम के राजनैतिक स्वरूप को भूल जाइए। इस युद्ध के राजनैतिक नतीजे तो हैं, पर आप लोगों से उनका कुछ ताल्लुक नहीं। यदि आप ऐसा न करेंगे तो आप इसके सच्चे नतीजों से दूर रहेंगे और साथ ही राजनैतिक फल से भी विमुख रहेंगे। और जब लड़ाई का सच्चा रंग जमेगा तब आप लोग कच्चे साबित होंगे। इसलिए मैं इस लड़ाई का सच्चा स्वरूप आप लोगों के सामने प्रकट करना चाहता हूं, भले ही उससे आप लोगों के दिल धड़क उठें। हिन्दुओं के लिए यह एक गहरी धार्मिक लड़ाई है। हम कोशिश कर रहे हैं कि हिन्दूधर्म के सिर से यह जबरदस्त कलंक मिट जाय। जिस दूषित धारणा से हमें लड़ना है वह युगों से चली आ रही है। मन्दिर के आसपास की जिस सड़क को हम दूरितों के लिए खुलवाना चाहते हैं वह तो बड़ी लड़ाई में एक छोटी-सी लड़ाई है। यदि हमारी लड़ाई का अन्त सड़क के खुले हो जाने के साथ ही हो जाता तो आप यकीन मानिए, मैं इस झगड़े में न पड़ा होता। सो यदि आप यह मानते हों कि वाइकोम मन्दिर की सड़कें दूरितों के लिए खुल जाने से इस लड़ाई का अन्त हो जायगा तो आप गलती कर रहे हैं। सड़कें तो जरूर खुलनी चाहिए—वे खुले बिना न रहेंगी। पर वह तो अन्त का आरंभ होगा। अन्त तो होगा ट्रावणकोर में ऐसी तमाम सड़कों का दूरितों के लिए खुलवाना और यही नहीं बल्कि हम तो यह भी उम्मीद रखते हैं कि हमारी कोशिशों का परिणाम होगा अछूतों और दूरितों की हालत का सुधरना। इसके लिए घोर बलिदान की आवश्यकता होगी। क्योंकि हमारा लक्ष्य यह नहीं है कि कोई काम प्रतिपक्षी के प्रति हिंसा का प्रयोग करके किया जाय। ऐसा करना मानों हिंसा या जबरदस्ती के द्वारा उन्हें अपने मत में मिलाना है। और यदि हम धार्मिक मामलों में जबरदस्ती से काम लेंगे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम अपना घात आप कर बैठेंगे। हमें इस युद्ध का संचालन बिलकुल अहिंसा के कड़े से कड़े नियम के अनुसार अर्थात् खुद कष्ट-सहन करके करना चाहिए। यही सत्याग्रह का अर्थ है। अब सवाल यह है कि हमारे इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए रास्ते में आपको जिन जिन तकलीफों का सामना करना पड़े या आपको दी जायं, उन सबको सहन करने की ताकत आपमें है या नहीं। जब कि आप कष्ट-सहन कर रहे हों तब भी आपके दिलों में प्रतिपक्षी के प्रति जरा भी बुरा भाव—कटुता न हो। और मैं आपसे कह देता हूं कि यह कोई यांत्रिक कार्य नहीं है। बल्कि इसके विपरीत मैं चाहता हूं कि आप प्रतिपक्षी को अपने भाई की तरह प्यार करें और ऐसा करने का उपाय यह है कि उन्हें अपने हेतु की प्रामाणिकता का उतना ही श्रेय दीजिए जितना कि आप खुद अपने लिए दावा करते हैं। मैं जानता हूं कि यह काम मुश्किल है। मैं कबूल करता हूं कि जब कि मैं उन सज्जनों से जो दूरितों को मन्दिर की सड़कों से अलग रखने के अपने अधिकार पर जोर दे रहे थे, बातचीत कर रहा था तब मेरे लिए यह काम मुश्किल हो गया था। हां, मुझे कबूल करना चाहिए कि उनकी बातों में स्वार्थीपन था। तब मैं उन्हें हेतु की प्रामाणिकता का श्रेय कैसे दे सकता हूं? मैं कल और आज भी इस बात का विचार कर रहा था और मैंने जो किया वह यह : मैंने अपने दिल से पूछा—किस बात में उनका स्वार्थीपन या स्वार्थ था? हां, यह सच है कि वे अपना काम बना लेना चाहते हैं। पर हम भी तो अपना काम करना चाहते हैं। सिर्फ इतना ही कि हम अपने मकसद को शुद्ध और इसलिए स्वार्थ-रहित मानते हैं। पर इसका निश्चय कौन करे कि स्वार्थ-हीनता कहां खतम हो जाती है और स्वार्थीपन कहां से शुरू हो जाता है। स्वार्थहीनता स्वार्थीपन का शुद्ध से शुद्ध रूप भी हो सकता है। यह बात मैं महज दलील के लिए नहीं कह रहा हूं। पर यह मैं दर-असल महसूस कर रहा हूं। मैं उनके मन की स्थिति का विचार उनकी दृष्टि से कर रहा हूं, मेरी दृष्टि से नहीं। यदि वे हिन्दू न होते तो वे कल की तरह बातचीत नहीं करते। और ज्यों ही हम उन बातों पर उसीतरह विचार करने लगेंगे जिस तरह हमारे प्रतिपक्षी उनपर करते हैं तो हम उनके साथ न्याय कर सकेंगे। मैं जानता हूं कि इसके लिए मन की अलिप्त अवस्था होनी चाहिए, और इस अवस्था में पहुंचना बहुत मुश्किल है। फिर भी एक सत्याग्रही के लिए यह बिलकुल आवश्यक है। यदि हम अपनेको प्रतिपक्षियों के स्थान पर बैठा कर उनके दृष्टिबिन्दु को समझें तो दुनिया की ३/४ तकलीफें और गलतफहमियां कम हो जायं। तब हम अपने प्रतिपक्षी के साथ जल्दी सहमत हो जायंगे और हमें उदारतापूर्वक धन्यवाद देंगे।

हमारे मामले में उनके साथ जल्दी रजामन्द हो जाने का सवाल ही नहीं है। क्योंकि हमारे उनके आदर्श मूलतः भिन्न हैं। पर हम उनके साथ उदारता से पेश आ सकते हैं और यह विश्वास रख सकते हैं कि वे जो कहते हैं वही सचमुच चाहते भी हैं। वे दूरितों के लिए अपनी सड़कें खुली करना नहीं चाहते। अब यह उनका स्वार्थ है या अज्ञान है जो उनसे ऐसा कहलवाता है। हम बलके यह मानते हैं कि उनका यह कहना ठीक नहीं है। इसलिए हमारा काम यह है कि हम उन्हें दिखावें कि आप गलती पर हैं और हम यह खुद अपने कष्ट-सहन के बल पर कर सकते हैं। मैंने देखा है

कि जहां दूषित धारणायें बहुत पुरानी और कल्पित धार्मिक प्रमाणों पर स्थित होती हैं वहां कोरी बुद्धि को समझाने से काम नहीं चलता। कष्ट-सहन के द्वारा युक्ति-वाद को पुष्ट और दृढ़ करना पड़ता है। और कष्टसहन ग्रहण-शक्ति की आंखें खोल देता है। इसलिए हमारे कार्यों में किसी प्रकार की जबरदस्ती का लेश-मात्र न होना चाहिए। हमें आतुर न हो जाना चाहिए और हमें अपने स्वीकृत साधनों पर अमर श्रद्धा होनी चाहिए। फिलहाल जिन साधनों को हमने ग्रहण किया है वे ये हैं—हम उन चार रुकावटों तक जाते हैं और जब वहां रोक दिये जाते हैं तो वहीं बैठकर दिन भर चरखा कातते हैं। तो हमें विश्वास होना चाहिए कि इसके द्वारा उनके अन्तर खुल जायंगे। मैं जानता हूं कि यह मुश्किल और धीमी विधि है। पर यदि आप सत्याग्रह के गुण में विश्वास करते हैं तो आप इस धीमी यंत्रणा और कष्ट-सहन में आनन्द मानेंगे और इसलिए कि आपको हररोज कड़ाके की धूप में बैठना पड़ता है, उसको आप तकलीफ न महसूस करेंगे। यदि आपको अपने अंगीकृत कार्य और उसके साधनों पर और ईश्वर पर भरोसा हो तो यह कड़ी धूप आपके लिए शीतल छांह हो जायगी। कभी थक कर न कहना चाहिए कबतक सहेंगे? और न कभी झुंझलाओ। हिन्दूधर्म के इस पाप के लिए आपकी तरफ से यह एक छोटा-सा प्रायश्चित्त है।

मैं आपको इस लड़ाई के सैनिक मानता हू। आपके लिए यह संभव नहीं कि आप अपने दिल में दलीलें कर लें। आप इस आश्रम में इसलिए आये हैं कि आपको उसकी व्यवस्था पर विश्वास है। इसका मतलब यह नहीं कि आपका मुझपर विश्वास है; क्यों कि मैं व्यवस्थापक नहीं हूं। मैं तो जहांतक आदर्श और सामान्य सूचनाओं से संबंध है इस आन्दोलन का संचालन कर रहा हूं। इसलिए आपका विश्वास उन लोगों पर होना चाहिए जो यहां अभी व्यवस्थापक हैं। आश्रम में आने के पहले आना न आना आपके अधीन था; पर आश्रम में आने के बाद पूछना, 'क्यों?' आपका काम नहीं है। यदि हम चाहते हों कि एक शक्तिशाली राष्ट्र बन जायं तो आपको उचित है कि आप उन तमाम हिदायतों की पाबन्दी करें जो समय समय पर आपको दी जायं। यही एक मात्र विधि है जिसके अनुसार राजनैतिक या धार्मिक जीवन निर्माण हो सकता है। जरूर आपने अपने दिल में कुछ सिद्धान्तों का निश्चय कर लिया होगा और उनके वशवर्ती हो कर ही आप इस युद्ध में सम्मिलित हुए होंगे। जो लोग आश्रम में रहते हैं वे सत्याग्रह में उतना ही हिस्सा ले रहे हैं जितना कि वे जो रुकावट की जगह जाकर सत्याग्रह करते हैं। किसी लड़ाई के संबंध में हर एक काम उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि दूसरा काम है और इसलिए आश्रम की आरोग्य-व्यवस्था का काम भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि रुकावट की जगह बैठकर चरखा कातना। और यदि इस जगह टट्टियों का या हाते को झाड़ना चरखा कातने से ज्यादह अरुचिकर हो तो यह और भी अधिक महत्वपूर्ण और लाभदायी समझा जाना चाहिए। फजूल गपशप में एक भी मिनिट न खोना चाहिए बल्कि हमें अपने काम में मशगूल रहना चाहिए और यदि हर शख्स इसी भाव से काम करेगा तो आप देखेंगे कि खुद उसी काम में कितना आनन्द मिलता है। आश्रम की एक एक चीज को आप अपनी समझें। गैर की नहीं कि जी चाहे उस तरह बरबाद कर दें। आप न तो एक दाना चावल, न एक टुकड़ा कागज न एक मिनिट समय व्यर्थ गवावें। वह हमारा नहीं है। वह राष्ट्र का है, हम तो उसके रक्षक-मात्र हैं।

मैं जानता हूं कि यह सब आपको मुश्किल और सख्त मालूम होगा। मेरा वर्णन चाहे सख्त हो पर दूसरे तरीके से पेश करना मेरे लिए असंभव था। क्योंकि यह मानना कि यह आसान काम है, आपको और खुद अपनेको धोखा देना है।

हमारे धर्म में बहुत सी भ्रष्टता आ गई है। बहैसियत एक राष्ट्र के हम आलसी हो गये हैं, समय का खयाल हम भूल गये हैं। हमारे कार्यों में स्वार्थपरता प्रधान रहती है। हमारे बड़े से बड़े लोगों में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष है। हम एक दूसरे के प्रति अनुदार हैं। और यदि मैं इन तमाम बातों पर आपका ध्यान न दिलाता तो हमारे लिए इन दोषों से बरी होना संभवनीय न होगा। सत्याग्रह क्या है? सत्य की अविरत शोध और उस तक पहुंचने का निश्चय। मैं यही आशा करता हूं कि आप लोग अपने कार्यों का महत्व समझ लेंगे। और यदि आप समझ लेंगे तो आपका पथ सुगम हो जायगा। क्योंकि आप कठिनाइयों में आनन्द मानेंगे और जब कि और तमाम लोग निराश हो जायंगे तब भी आप आशा पूर्ण हृदय से मुसकुराते रहेंगे। धार्मिक ग्रन्थों में जो दृष्टान्त ऋषियों और कवियों ने दिये हैं उन्हें मैं मानता हूं। मैं इस कथा पर शब्दशः विश्वास करता हूं कि सुधन्वा हुआ था और जब वह खौलते हुए तेल के कड़ाह में डुबोया गया तब भी हंसता रहा। क्योंकि उसके लिए अपने प्रभु को भुला देना खौलते हुए तेल में रहने की अपेक्षा ज्यादह कष्टदायी था। और यदि उस सुधन्वा की श्रद्धा का कुछ भी लेश इस लड़ाई के अन्दर होगा तो यहां भी थोड़े परिमाण में वैसा ही अनुभव हो सकता है।

अहिंसा का मर्म

एक सज्जन नीचे लिखे सवाल करते हैं—

१ क्या यह बात सच है कि विदेशी चीनी में हड्डियां तथा खून आदि अपवित्र चीजें डाली जाती हैं?

२ अहिंसा व्रत का पालन करनेवाला मनुष्य विदेशी शक्कर खा सकता है?

३ जो लोग अहिंसा की दृष्टि से खादी पहनते हैं वे स्वराज्य के मिलने के बाद भी खादी पहनेंगे?

४ खादी पहनना अहिंसा का सवाल है या राजनैतिक सवाल है? हिंसा की दृष्टि से देखें तो मिल के कपड़े में अधिक हिंसा है या विलायती कपड़े में, हालां कि दोनों के यंत्र एकसे होते हैं?

५ अहिंसा व्रत का पालन करनेवाला चाय पी सकता है? यदि न पीना चाहिए तो उसमें हिंसा किसतरह होती है?

ऐसे सवालों का जवाब देते हुए मुझे संकोच होता है। क्यों कि ऐसे सवाल अज्ञान-सूचक हैं। कितने ही पाठक ऐसे सवाल किया करते हैं इसलिए उनका निर्णय कर डालना उचित मालूम होता है। पर इन सवालों के जवाब के निमित्त मैं अहिंसा-तत्व को भी जिसतरह कि मैं समझता हूं, विशद करना चाहता हूं।

विदेशी चीनी के अन्दर हड्डियां आदि नहीं रहते; पर हां; ऐसा सुना है कि उनका उपयोग चीनी साफ करने में किया जाता है। यह मानने का कोई कारण नहीं कि ऐसा प्रयोग देशी चीनी के लिए नहीं होता है।

इस कारण अहिंसा की दृष्टि से शायद दोनों प्रकार की शक्कर त्याज्य हैं अथवा यदि लेना ही हो तो शक्कर की बनावट की जांच करना उचित है। इसलिए विदेशी शक्कर का त्याग स्वदेशी के उत्तेजन के लिए ही करना उचित है। पर शक्कर मात्र के त्याग के लिए अहिंसा की एक सूक्ष्म दृष्टि है। प्रत्येक प्रक्रिया में हिंसा है। अतएव प्रत्येक खाद्य पदार्थ पर जितनी कम प्रक्रिया हो

उतना ही अच्छा है। कच्चा चूसना सबसे उत्तम है; गुड़ उससे कम और चीनी उससे भी कम। परन्तु सर्व-साधारण के लिए इस सूक्ष्मता के अन्दर पड़ने को मैं बिल्कुल जरूरत नहीं समझता।

खादी पहननेवाला अहिंसा और स्वराज्य दोनों दृष्टि से स्वराज्य मिलने के बाद भी खादी ही पहनेगा। स्वराज्य जिन साधनों के बल पर मिलेगा उन्हीं साधनों के बल पर वह कायम रह सकेगा। जो राष्ट्र अपनी जरूरियात के लिए विदेशों पर इसार रखता है वह परतंत्र होता है अथवा औरों को गुलाम बनाता है।

खादी पहनने में अहिंसा, राजकाज और अर्थशास्त्र तीनों का समावेश हो जाता है। पूर्वोक्त नियम के अनुसार खादी पर प्रक्रियायें कम होती हैं इसलिए उसमें हिंसा कम है।

इसके अतिरिक्त विदेशी या स्वदेशी मिल के कपड़े का मुकाबला करते हुए, दोनों में एक ही प्रकार के यंत्रों के रहते हुए भी, स्वदेशी मिल के कपड़े पहनने में कम हिंसा है। क्योंकि ऐसा करते हुए प्रेम-भाव हमारे हृदय में अपने पड़ोसी-भाइयों के प्रति रहता है। परन्तु विदेशी कपड़े का इस्तेमाल करने में प्रेम का अभाव रहता है। यही नहीं, बल्कि बिल्कुल स्वच्छंदता, स्वार्थ या अपनी ही सुविधा का खयाल रहता है और परमार्थ का, प्रेम का अर्थात् अहिंसा का अभाव रहता है।

अहिंसा-व्रत का पालनेवाला चाय पी भी सकता है और न भी पी सकता है। चाय में भी प्राण है। वह निरुपयोगी वस्तु है। इस कारण उसके लेने से होनेवाली हिंसा अनिवार्य नहीं है। अतएव उसका त्याग इष्ट है। जहां जहां चाय के बगीचे हैं, वहां वहां गिरमिटिया लोगों से मजूरी कराई जाती है। गिरमिटिया लोगों के दुःखों से हिन्दुस्तान वाकिफ है। जिस पदार्थ की बनावट मजदूरों के लिए कष्टदायी होती है वह भी अहिंसा की दृष्टि से त्याज्य है। व्यवहार में हम इतनी बारीक बातों का खयाल नहीं करते। इस कारण जिसतरह दूसरी चीजों को अहिंसा की दृष्टि से निर्दोष समझते हैं उसीतरह चाय को भी मान सकते हैं। वैद्यक की दृष्टि से चाय में गुण की अपेक्षा दोष अधिक हैं, खास कर जब वह उबाली जाती है।

इन प्रश्नों से यह जाना जाता है कि अहिंसा की बातें करनेवाले अहिंसा को कितना कम पहचानते हैं। अहिंसा एक मानसिक स्थिति है। जिसने इस स्थिति को नहीं समझा है वह चाहे कितनी ही चीजों का त्याग दे तो भी उसे उसका फल शायद ही मिलता हो। रोगी रोग के लिए बहुतेरी चीजों से परहेज करता है। इससे उसके इस त्याग का फल रोग दूर करने के अतिरिक्त नहीं मिलता। दुष्काल-पीड़ित को यदि भोजन न मिले तो इससे उसे उपवास का फल नहीं मिलता। जिसका मन संयमी नहीं है उसकी कृति में चाहे भले ही संयम दिखाई दे; पर वह संयम नहीं है। खाद्य-अखाद्य के विषय में अहिंसा का समावेश नहीं होता। अहिंसा क्षत्रिय का गुण है। कायर उसका पालन नहीं कर सकता। दया तो शूरवीर ही दिखा सकते हैं। जिस कार्य में जिस अंश तक दया है उस कार्य में उसी अंश तक अहिंसा हो सकती है। इसलिए दया में ज्ञान की आवश्यकता है। अंध प्रेम को अहिंसा नहीं कहते। अंध प्रेम के अधीन हो कर जो माता अपने बालक को अनेक तरह से दुलराती है वह अहिंसा नहीं बल्कि अज्ञानजात हिंसा है। मैं चाहता हूं कि खाने-पीने की मर्यादाओं को महत्व न दे कर कम उसका पालन करते हुए भी अहिंसा के विराट रूप को, उसकी सूक्ष्मता को, उसके मर्म को समझें। रसों के वश वर्ती हो कर मांस खानेवाला पश्चिम का कोई साधु पुरुष रस के अधीन हो कर मांस को छोड़ने वाले पाखण्डी क्रूर मनुष्य से कोटिगुना अधिक अहिंसक है। मुझसे प्रश्न पूछनेवाले खुद अपने को कहें करें-मैं विदेशी शकर, विदेशी कपड़े और चाय को छोड़ता तो हूं, पर यदि मैं अपने पड़ोसी पर दया न करता होऊं; गैरों के लड़कों को अपने लड़के के बराबर न मानता होऊं, अपने व्यवसाय में मैं सचाई का पाबन्द न रहता होऊं, अपने नौकर-चाकरों को मैं अपना कुटुम्बी न मानकर उनके साथ प्रेम-भाव न रखता होऊं तो मेरी खाने-पीने की मर्यादा का कुछ मूल्य नहीं। मेरी यह मर्यादा केवल आडम्बर है। नरसिंह मेहता का पवित्र वचन है 'ज्यां लगी आतमा तत्व चीन्यो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' आत्म-तत्व को पहचानने के मानी हैं अहिंसामय होना। अहिंसामय होने का अर्थ है विरोधी के प्रति भी प्रेमभाव रखना, अपकारी का भी उपकार करना, अवगुणों का बदला गुण के द्वारा देना और ऐसा करते हुए यह मानना कि यह तो मेरा कर्तव्य है कोई बहीखात नहीं कर रहा हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

महासभा के सदस्य

अबतक जो विवरण मिला है उसके अनुसार नये सदस्यों की संख्या ९१२४ तक पहुंची है।

दुनिया में कैसे रहें?

एण्ड्रूज साहब का एक लेख यं. इ. में पढ़ कर एक सज्जन ने नीचे लिखा प्रश्न एण्ड्रूज साहब से पूछा। उन्होंने कुछ महीने पहले मुझे उत्तर के लिए यह दिया था—

"मेरा जन्म और लालन-पालन देहात में हुआ है। मेरे पिता 'अहिंसा परमो धर्मः' का उच्चार अपने मित्रों के साथ धार्मिक वाद-विवाद के समय किया करते थे। जैसा कि आपने कहा है यह अद्वैत-तत्व से फलित होनेवाला उसका सहायक तत्व है। सार-रूप में मैं उसे स्वीकार करता हूं। इसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूं कि अद्वैतम् की परिसमाप्ति आध्यात्मिक जीवन की एकता में ही नहीं हो जाती है। जैसा कि आप भी मानते हुए दिखाई देते हैं, अखिल विश्व के भूतमात्र के प्रति, बिना किसी अपवाद के आत्मभाव ही अद्वैतम् है।

ज्यों ही मनुष्य अहिंसा को अपना मार्गदर्शक बनाने की अवस्था में पहुंच जाता है त्यों ही उसकी प्रगति निश्चित हो जाती है। उस अवस्था में तमाम भेद-भाव विलीन हो जाते हैं। जब हम सब में एकता का अनुभव करने लगते हैं तब हम किसी भी वस्तु का संहार किसतरह कर सकते हैं, जो कि हमारा ही एक अंग है?

यही सन्देह उठने लगता है। क्या अहिंसा के भाव को व्यवहार में ठेठ उसके अन्त तक—आखिरी मर्यादा तक निबाहना होगा यदि ऐसा करना पड़े तो क्या उस अवस्था में वह एक मनुष्य रह जायगा?

मेरे पिता "अहिंसा परमोधर्मः" का उच्चारण जब तब किया करते थे। परन्तु जब हमारे घर की भैंस दूध देते समय एक जगह खड़ी नहीं रहती थी तब डण्डे से मार कर उसे सीधी कर देते थे। अपने बच्चों के दूध के लिए क्या उनका ऐसा करना ठीक था?

हिन्दू लोग राम के अवतार को धर्म का अवतार कहते हैं। राम ने रावण को मारा था। क्या राम ने यह बुरा किया? राम ने बालि का वध किया। जब बालि ने उसका विरोध किया। तब उन्होंने उत्तर दिया—

> अनुज वधू भगिनी सुतनारी ।
> सुनु सठ ये कन्या सम चारी ॥
> इन्हें कुदृष्टि बिलोकहिं जोई ।
> ताहि बधे कछु पाप न होई ॥

देखिए, यहां उन्हीं धर्म के अवतार के मुंह में 'हन्ते को हनिए पातक ना भनिए' का सिद्धान्त ठूंस दिया गया है ।

और नीचे उतर कर हम भगवान् कृष्ण के समय में आवें । भगवद्गीता को लीजिए, अर्जुन अपने सगे-संबंधियों का वध करने के लिए तैयार नहीं होता है । भगवान् कृष्ण उसे युद्ध करके उनका नाश करने का आग्रह करते हैं और अहिंसा-सिद्धान्त पीछे छिप जाता है ।

ऐसी अवस्था में यह पूछना पड़ता है कि अहिंसा के आचार की कोई मर्यादा भी है ? एक स्त्री पर अत्याचार हो रहा है । क्या उसे उस नराधम को मार कर उसके पंजे से अपनेको छुड़ाना उचित नहीं है ? क्या उसे अहिंसा का पालन करना चाहिए ?

मछली पकड़ना हिंसा है । साक के लिए वनस्पतियों को उखाड़ना हिंसा है । जन्तुनाशक द्रव्य पानी में डालना हिंसा है । अब बताइए, दुनिया में कैसे रहें ?

एक ब्राह्मण "

यदि लेखक के पिता ने उस अनिच्छुक भैंस को न दुहा होता तो दुनिया की कुछ हानि न हुई होती । तुलसीदास ने राम के मुंह में कितनी ही बातें डाली हैं । जिनका मतलब मैं नहीं समझता । बालि-संबंधी सारा प्रसंग ही ऐसा है । तुलसीदास ने राम के मुंह से कहलाई इन पंक्तियों के शब्दार्थ के अनुसार चलने से यदि कोई फांसी पर न चढ़ेगा तो बड़ी मुसीबत में जरूर फंस जायगा । रामायण और महाभारत में हर महान् व्यक्ति के संबंध में जो कुछ कहा गया है उसको मैं शब्दशः नहीं ग्रहण करता हूं और न मैं इन ग्रन्थों को ऐतिहासिक संग्रह मानता हूं । इनमें भिन्न भिन्न रूपों में आवश्यक सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है । और न मैं राम तथा कृष्ण को अस्खलनशील—कभी गलती न करनेवाले मानता हूं, जैसा कि इन दो महाकाव्यों में उनका चरित्र-चित्रण मिलता है । वे अपने अपने युग के विचारों और आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं । केवल अस्खलनशील व्यक्ति ही अस्खलनशील पुरुषों के चरित्र का यथार्थ चित्रण कर सकता है । ऐसी अवस्था में उनका आशय मात्र हमारे लिए पथ-प्रदर्शक का काम दे सकता है । उनके अक्षर अक्षर का अनुकरण करने से हमारा दम घुटने लगेगा और सब तरह की उन्नति रुक जायगी । जहांतक गीता से संबंध है, मैं उसे कोई ऐतिहासिक संवाद नहीं मानता । आध्यात्मिक सिद्धान्त समझाने के लिए उसमें भौतिक उदाहरण दिये गये हैं । चचेरे भाइयों के दरम्यान हुए युद्ध का नहीं बल्कि मनुष्य की सत्-प्रवृत्ति और असत्-प्रवृत्ति में होनेवाले युद्ध का वर्णन उसमें है । मैं 'एक ब्राह्मण' महाशय से कहता हूं कि वे इन उदाहरणों को छोड़कर अहिंसा के सिद्धान्त का पर्यालोचन करें । "अहिंसा परमो धर्मः" जीवन का एक उच्चतम सिद्धान्त है । उसके पालन से यदि जरा भी हम च्युत हों तो उसे हमारा पतन समझना चाहिए । भूमिति की सरल रेखा चाहे तख्ते पर चाहे न खींची जा सकती हो । परन्तु उस कार्य की असंभवता के कारण वह व्याख्या नहीं बदली जा सकती ।

यदि इस कसौटी पर कसें तो एक पौधे को उखाड़ना भी बुरा है । और किसी खूबसूरत गुलाब के फूल को तोड़ते हुए किसे वेदना नहीं होती ? किसी घास-पात को तोड़ते समय हमें वेदना नहीं होती इससे क्यों सिद्धान्त में बाधा पड़ सकती है ? इससे यही सूचित होता है कि हमें पता नहीं है कि प्रकृति में घास-पात का क्या स्थान है । अतएव किसी भी प्रकार की हानि पहुंचाना अहिंसा सिद्धान्त का उल्लंघन करना है । अहिंसा के पूर्ण पालन की अवस्था में अवश्य ही जीवन की स्थिति असंभव हो जाती है । अतएव हम सब मर जायं तो परवा नहीं, सत्य को कायम रहने देना चाहिए । प्राचीन ऋषिमुनियों ने इस सिद्धान्त को आखिरी मर्यादा तक पहुंचाया है और यह कह दिया है कि भौतिक जीवन एक दोष है, एक जंजाल है । मोक्ष देहादि के परे की ऐसी अदेह—सूक्ष्म अवस्था है जहां न खाना है न पीना और इसीलिए जहां न दूध दुहने की आवश्यकता है और न घास-पात तक को तोड़ने की । संभव है कि इस तत्व को समझना या ग्रहण करना कठिन हो, संभव है कि पूर्णतः उसके अनुकूल जीवन व्यतीत करना असंभव हो, और है भी । फिर भी मुझको इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि सत्य यही है और इसलिए भलाई इसी बात में है कि हम अपने जीवन को अपनी पूरी शक्तिभर उसके अनुकूल बनावें । यथार्थ ज्ञान का हो जाना मानों आधी लड़ाई को जीत लेना है । इस भव्य सिद्धान्त का हम जितना ही पालन अपने जीवन में करते हैं उतना ही वह जीवन रहने और प्रेम करने लायक होता है । क्योंकि उस अवस्था में बजाय खुद सदा शरीर के वश में रहने के हम अपने शरीर को अपने वश में रखते हैं ।

अवध के किसान

फैजाबाद से श्री. मणिलाल डाक्टर ने नीचे लिखा मजमून छपने के लिए भेजा है ।

"हजारों किसानों के अनुरोध पर मैं गया से फैजाबाद बुलाया गया हूं ।

बिहार में—चंपारन में—मेरी आंखें खुल गई । भारतवर्ष खेतों पर काम करनेवालों के लिए सुखदायी देश नहीं है । कोई आश्चर्य की बात नहीं है जो आसाम, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद, बर्मा तथा दूरवर्ती उपनिवेशों में आकर्षित हो कर मजदूर चले जाते हैं । अवध की हालत तो और भी ज्यादह खराब दिखाई देती है । यहां यही आवाज सुनाई देती है कि "एक बार इस विदेशी हुकूमत के जूए से हमारा कंधा हलका हो जाय तो मजदूरों को उनका अभीष्ट मिल जायगा ।" मुझे अपने दिल में यकीन नहीं होता कि ब्रिटिश सरकार के बाद आनेवाले हाकिमों से मजदूरों और किसानों के साथ इन्साफ होगा ।

फिर भी मैं जिसतरह काम करना चाहता हूं वह यह है । मजदूरों और किसानों को चाहिए कि वे किसीतरह अपनेको न तो हिन्दुस्तान के पूंजीवालों के और न अंगरेजी सरकार के हाथों की कठपुतली बनावें । उन्हें खुद अपने हितों पर ध्यान रखना चाहिए और उनके अनुकूल उन्हें सहयोग या असहयोग करना चाहिए ।

हां, इसमें कोई शक नहीं कि चरखा उनमें अवश्य चलना चाहिए और साल में फुरसत के दिनों में मामले-मुकदमे करने की बनिस्बत घर में चरखा कातना चाहिए । क्योंकि भारत में सिर्फ चार महीने बारिश होती है ।

भारतवर्ष अच्छा देश है । परन्तु क्या देशी और क्या विदेशी—मानव-प्राणियों ने मिल कर उसे नरक बना डाला है ! ! ! कबतक हे प्रभो ! कबतक यह दशा रहेगी ?"

मैं आशा करता हूं कि श्री. मणीलाल डाक्टर किसानों के घर घर में चरखा चला पावेंगे और ऐसा करते हुए किसानों की आर्थिक स्थिति का खूब मनन कर लेंगे । जिसतरह कि डा० मेनन ने कुछ समय पहले दक्षिण के कुछ गांवों का अध्ययन करके उसे प्रकाशित किया है उसीतरह हिन्दुस्तान के गांवों के जुदे जुदे नमूनों को ठीक ठीक और धैर्य-पूर्वक अध्ययन करने की जरूरत है ।

कोहाट की जांच

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, [illegible])

संपादक—मोहनदास करमचंद गांधी

वर्ष ४] [अंक [illegible]

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, चैत्र सुदी २, संवत् १९८१ गुरुवार, २६ मार्च, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

कोहाट की जांच

कोहाट की दुर्घटना के संबंध में मैं अपना और मौलाना शौकतअली का वक्तव्य अब प्रकाशित कर सका हूं। इससे पहले उसे प्रकाशित करना संभव न था क्योंकि मैं और मौलाना दोनों सफर में रहते थे और हमेशा दोनों एक जगह नहीं ठहरते थे। मैं यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि इस अवसर पर इन वक्तव्यों को प्रकाशित करने से कोई बड़ा लाभ होगा, सिवा इसके कि इससे मेरा वादा पूरा होगा, जो मुझे किसी न किसी तरह पूरा करना चाहिए था। लेकिन इनके प्रकाशित हो जाने से प्रकारान्तर से एक फायदा जरूर होगा। हम लोगों ने बड़ा गवाहों पर से जो अनुमान निकाले हैं उनमें बड़ा वास्तविक भेद है। गवाहों की गवाही पर विश्वास रखने के हमारे परिमाण में भी भेद है। जब हमने इस मतभेद को महसूस किया तो हमें बड़ा दुःख हुआ और इस मतभेद को जितना भी हो सके दूर करने की कोशिश की। हमारे इस मतभेद को हमने हकीम साहब और डा० अन्सारी के सामने पेश किया और उनसे मदद मांगी। सद्भाग्य से उस समय जब हम उसपर विचार करते थे, पंडित मोतीलालजी भी वहां मौजूद थे। इस वादविवाद में हमें कोई बात ऐसी न मिली जो हमारी दृष्टि में वास्तविक परिवर्तन करे। यह बहस दिल्ली में हुई थी। हमने फिर यह निश्चय किया कि कुछ दिनों हम दोनों साथ साथ सफर करें और अपने रुख का इस दौर में परीक्षा करें कि हम अपने वक्तव्यों को फिर बदल सकते हैं या नहीं। कुछ बातों को बदल देने के सिवा हमारा मतभेद दूर नहीं हो सका है। हम लोगों ने हकीम साहब की इस सूचना पर भी विचार किया कि हमारा वक्तव्य प्रकाशित ही न किया जाय। कुछ अंश तक पंडित मोतीलालजी ने भी इसका समर्थन किया था। लेकिन हम, कम से कम मैं तो इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जनता, जो मुझे और अली भाइयों को कुछ सार्वजनिक प्रश्नों पर हमेशा एक मानती थी उसे यह भी जान लेना चाहिए कि कुछ प्रश्नों पर हममें भी मतभेद हो सकता है। लेकिन हमें एक दूसरे के प्रति यह शंका नहीं हो सकती कि हममें से कोई जानबूझ पक्षपात करता है या सत्य प्रमाणों को तोड़ मरोड़ कर उसमें अपना मतलब निकालता है। और हमारे परस्पर के प्रेम में भी कोई बाधा नहीं आ सकती है। हम यदि खुले तौर से अपने मतभेदों का स्वीकार कर लेंगे तो उससे जनता को आपस में सहनशील बनने का सबक भी मिलेगा। जनसमाज से मैं यह कह देना चाहता हूं कि इस मतभेद को दूर करने के प्रयत्न में मैंने या मौलाना साहब ने कोई बात उठा नहीं रक्खी है। लेकिन अपनी राय को छिपाने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। हमारे असल वक्तव्य में हमने कुछ रद्दोबदल की है लेकिन दो में से एक ने भी किसी बात में अपने निश्चित मत का त्याग नहीं किया है। हम दोनों ने कुछ जगहों में किसीको बुरा न मालूम हो इसलिए भाषा को कुछ मुलायम बनाई है लेकिन इसके सिवा असल वक्तव्यों का कुछ भी वास्तविक रूपान्तर नहीं किया गया है।

मो० क० गांधी

गांधीजी का वक्तव्य

मौलाना शौकतअली और मैं कोहाट के हिन्दू आश्रितों को और उन मुसल्मानों को मिलने के लिए, जिन्हें मौलाना ने पत्र लिख कर बुलाये थे और जो रावलपिंडी आनेवाले थे, ता. ४ को रावलपिंडी पहुंचे। एक दिन बाद लाला लाजपतराय भी आ पहुंचे। लेकिन दुर्भाग्य से वे बुखार लेकर ही आये थे और जबतक हम लोग रावलपिंडी रहे उन्हें बिछौने में ही रहना पड़ा।

जिन मुसल्मानों की हमने गवाही ली उनमें मौलवी अहमद गुल और पीर साहब कमाल मुख्य थे। हिन्दुओं ने तो उसके पहले ही अपना लिखा और छपा हुआ वक्तव्य प्रकाशित कर दिया था। उन्हें उससे अधिक कुछ नहीं कहना था। कोहाट में जो मुस्लिम कार्यवाहक समिति काम कर रही है वह न आना ही चाहती थी और न आयी। उसने मौलाना साहब को इस मतलब का तार भेजा कि "हिन्दू और मुसल्मानों में समाधान हो गया है। हमारी राय में इस सवाल को फिर छेड़ना उचित नहीं है। इसलिए यदि मुसल्मान लोग अपने प्रतिनिधि रावलपिंडी न भेजें तो उन्हें आप क्षमा करेंगे।"

मौलवी अहमद गुल और जो दूसरे सज्जन रावलपिंडी आये थे वे इस कार्यवाहक समिति के सदस्य थे। लेकिन उन्होंने कहा कि वे खिलाफत कमिटि के सदस्य की हैसियत से आये थे, इस कार्यवाहक समिति के सदस्य की हैसियत से नहीं।

ऐसी हालत में प्रत्यक्ष स्थान का पूरा निरीक्षण किये बिना और दूसरे भी बहुत से गवाहों की गवाही लिये बिना, सभी बातों का निश्चित परिणाम निकालना बड़ा ही मुश्किल है। हमलोग यह न कर सके। हम कोहाट न जा सके और न हमारा यह इरादा ही था कि छोटी छोटी बातों पर ध्यान दे कर गड़े मुर्दे उखाड़ें। हमारा मकसद तो यह था कि यदि मुमकिन हुआ तो दोनों दलों में ऐक्य स्थापित कर दें। इसलिए हम लोगों ने मुख्य मुख्य बातों को ही जितना बन सका स्पष्ट करने की कोशिश की।

मौलाना साहब के साथ सब बातों का मशवरा किये बिना ही मैं यह लिख रहा हूं इसलिए इसमें सिर्फ मैंने अपना ही निर्णय प्रकाशित किया है। मौलाना चाहें तो उसका समर्थन करें या अपना वक्तव्य अलग ही प्रकाशित करावें।

ता. ९ सितंबर और उसके बाद जो घटनायें हुईं उसके कई कारण थे। उनमें एक यह भी था कि हिन्दू पुरुष और विवाहित स्त्रियों को मुसल्मान लोग जबरदस्ती से धर्मान्तर [illegible] धर्मान्तर नहीं कर सकते। इससे मैं हिन्दू लोग बिगड़े और उन्होंने उसके [illegible] जो कारवाई की उससे मुसल्मान लोग उनसे भी ज्यादह बिगड़ उठे। कोहाट के हिन्दू दयापात्रियों को निकाल देने का पराक्रम (मुसल्मान भाइयों) का इरादा दूसरा कारण था। और तीसरा कारण यह अफवाह थी कि सरदार माखनसिंगजी के पुत्र ने किसी विवाहित मुसल्मान लड़की का हरण किया था। उसे सुन कर मुसल्मान कौम बड़ी बिगड़ी हुई थी।

इन सब कारणों का एकत्र परिणाम यह हुआ कि दोनों कौमों में बड़ा वैमनस्य और कटुता फैल गई। जिस कारण से यह आग भड़क उठी वह कारण तो रावलपिण्डी में प्रकाशित की गई और कोहाट में दाखिल की गई श्री जीवनदास की उस [illegible] पत्रिका की एक कविता थी। उसमें श्रीकृष्ण और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की तारीफ में कितने ही भजन और कवितायें छपी हुई थीं। लेकिन उसमें एक बड़ी अपमानकारक कविता भी थी, जो मुसल्मानों के दिलों को निस्सन्देह दुखानेवाली समझी जा सकती है। श्री जीवनदास उसके रचयिता न थे। उन्होंने मुसल्मानों को चिढ़ाने के लिए उसे कोहाट में दाखिल नहीं किया था। जब सनातन धर्मसभा का इस बात पर ध्यान दिलाया गया उसने उस कविता के लिए लिख कर माफी मांगी और बची हुई प्रतों में से उसे निकलवा दिया। उससे मुसल्मानों को संतोष हो जाना चाहिए था लेकिन उन्हें संतोष न हुआ। बची हुई प्रतियां मुसल्मानों के ख्याल के मुताबिक ५०० से कुछ अधिक और हिन्दुओं के ख्याल के मुताबिक ९०० से कुछ अधिक टाउन हाल में लाई गईं और डिप्टी कमिश्नर और मुसल्मानों की एक बड़ी भीड़ के सामने सार्वजनिक तौरपर जला दी गईं। पत्रिका के पुट्ठे पर श्रीकृष्ण की तस्वीर भी थी। श्री जीवनदास को गिरफ्तार किया गया। यह घटना ३ सितंबर १९२४ को हुई। ११ तारीख को वे अदालत में पेश किये जानेवाले थे। हिन्दुओं ने अदालत छोड कर आपस में ही मित्रभाव से निपटारा कर लेने की कोशिश की। इसके लिए पेशावर से खिलाफतवालों का एक शिष्ट-मण्डल भी आया था। मुसल्मान शरीयत के मुताबिक जीवनदास का इन्साफ करना चाहते थे। हिन्दुओं ने इससे इन्कार किया लेकिन खिलाफतवालों के निर्णय को कुबूल करने के लिए वे राजी हो गये। लेकिन सब कोशिशें बेकार गईं इसलिए हिन्दुओं ने श्री जीवनदास को छोड देने के लिए अरजी की। ता. ८ सितंबर को जमानत ले कर और इस शर्त पर कि वे कोहाट छोड कर चले जायंगे उन्हें छोड दिया गया। उन्होंने तो कोहाट एकदम छोड दिया। लेकिन इस प्रकार उनके मुकदमे से बच जाने के कारण मुसल्मानों का क्रोध भड़क उठा। ता. ८ सितंबर की रात में उनकी एक सभा हुई। उसमें बड़ा जोश फैला हुआ था, और बड़े जोशीले व्याख्यान हुए थे। उसमें यह निर्णय हुआ कि वे सब मिलकर डिप्टी कमिश्नर के पास जायं और जीवनदास को फिर गिरफ्तार करने के लिए और सनातन धर्म सभा के कुछ और सदस्यों को भी गिरफ्तार करने के लिए कहें। यदि डिप्टी कमिश्नर उनकी बातें न सुनें तो हिन्दुओं से पूरापूरा बदला लेने की धमकी भी दी गई थी। सुबह इन लोगों में आकर शामिल होने के लिए आसपास के गांवों को संदेश भेजे गये थे। दूसरे दिन, पीर कमाल साहब के कहने के मुताबिक, गुस्से से भरे हुए कोई दो हजार मुसल्मान टाउन हाल की तरफ रवाना हुए। डिप्टी कमिश्नर ने उनसे प्रार्थना की कि उनमें से कुछ थोड़े लोग आ कर उनसे मिलें। लेकिन उन्होंने न माना और उन्हें मजबूरन बाहर आ कर इतनी बड़ी भीड़ का सामना करना पड़ा। उनकी मांगों का उन्होंने स्वीकार कर लिया। और अपने विजय पर खुश होती हुई भीड़ हटने लगी।

अगले हफ्ते में ही हिन्दू लोग डर के मारे घबड़ा गये थे। उन्होंने ६ सितंबर को एक पत्र लिख कर मुसल्मानों में फैले हुए जोश की डिप्टी कमिश्नर को खबर दी थी। लेकिन उनकी हिफाजत के लिए डिप्टी कमिश्नर ने कुछ भी तैयारी नहीं की। ८ तारीख को रात में जो सभा हुई थी उसकी उन्हें खबर थी। इसलिए उन्होंने ९ तारीख की सुबह को अपना भय अधिकारियों पर प्रकट करने के लिए कितने ही तार भेजे और भी,

जीवनदास को फिर गिरफ्तार न करने के लिए अर्ज की। अधिकारियों ने फिर भी कुछ ध्यान न दिया। टाउन हाल से वापस आ कर भीड़ ने क्या किया इसपर बड़ा ही मतभेद है। मुसल्मान कहते हैं कि हिन्दुओं ने ही पहली गोली चलाई थी। उससे एक मुसल्मान लड़का मर गया और दूसरे को चोट लगी। इससे उस भीड़ का गुस्सा भड़क उठा और उसका नतीजा यह हुआ कि उस रोज लूट, घरों का जलाना इत्यादि ज्यादतियां हुईं। हिन्दुओं का कहना है कि मुसल्मानों ने ही पहली गोली चलाई थी और हिन्दुओं ने बाद को आत्मरक्षा करने के लिए गोलियां चलाई थीं। वे कहते हैं कि यह लूटना, आग लगाना इत्यादि कार्य पहले ही से निश्चित और निर्धारित किया हुआ था और इसी प्रकार पहले से ही निश्चित किये हुए इशारे पाने पर ही सब काम किया गया था।

इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता है इसलिए मैं कोई निश्चित निर्णय नहीं दे सकता हूं। मुसल्मानों का कहना है कि यदि हिन्दुओं ने पहले गोली न चलाई होती तो कुछ भी नुकसान न होता। मैं इसे नहीं मान सकता। मेरा ख्याल तो यह है कि हिन्दुओं ने गोलियां चलाई होतीं या न भी चलाई होतीं तो भी कुछ नुकसान तो जरूर ही होना था। किसीने भी पहले गोली क्यों न चलाई हो, मैं यह निश्चय मानता हूं कि हिन्दुओं ने गोली छोड़ी उसके पहले ही सरदार माखनसिंग जी का बाग भीड़ के लोगों ने उजाड़ दिया था और उनके मकान में आग लगा दी थी। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुओं ने कुछ मौकों पर गोलियां जरूर चलाई थीं। उनसे कुछ मुसल्मान मारे गये और कुछ ज्यादह जख्मी हुए थे। मेरा ख्याल यह है कि अपनी विजय पर इतराती हुई जब वह भीड़ चारों तरफ बिखरने लगी तब जाते जाते उसने हिन्दुओं के घरों और दुकानों के सामने कुछ उत्पात जरूर ही किये होंगे। जैसा कि मैं ऊपर कह गया हूं हिन्दू घबड़ा रहे थे और उन्हें हरदम आफत के आने का डर लगा हुआ था। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं यदि वे उनके उपद्रवों को देखकर कांप उठे हों और उनमें से किसीने गोली चला कर उन्हें भगा देना चाहा हो। लेकिन मुसल्मानों का गुस्सा तो इससे जरूर ही बढ़ा क्योंकि उन्हें हिन्दुओं की तरफ से होनेवाले मुकाबले का जरा भी ख्याल ही न था। पीर साहब कहते हैं कि सीमा प्रान्त के मुसल्मान अपने को 'नायक' (रक्षक) और हिन्दुओं को 'हमसाया' (आश्रित) मानते हैं। इसलिए हिन्दुओं ने जितना अधिक दृढ़ होकर मुकाबला किया उतना ही उस भीड़ का क्रोध अधिक बढ़ता गया।

इसलिए इस घटना के लिए कौन कितना जिम्मेवार है इसका निर्णय करते समय मेरी दृष्टि में पहले गोली किसने चलाई इस प्रश्न का कुछ अधिक महत्व नहीं है। बेशक, यदि हिन्दुओं ने आत्म-रक्षा के लिए भी उनका सामना न किया होता अथवा उन्होंने पहले गोली चलाई न होती-यदि चलाई हो तो—तो मुसल्मानों का उपद्रव जल्दी ही शान्त हो गया होता। लेकिन जिनके पास हथियार थे और जो उनका थोड़ाबहुत उपयोग करना भी जानते थे उन हिन्दुओं से यह आशा नहीं रक्खी जा सकती थी। मुसल्मान गवाहों को ९ तारीख को मारे गये या जख्मी हुए हिन्दुओं की संख्या के संबंध में शंका है। लेकिन मैं यह निश्चय मानता हूं कि उस रोज मुसल्मानों के हाथ बहुत से हिन्दू मारे गये थे या जख्मी हुए थे। हताहतों की कुल-संख्या देना मुश्किल है। मुझे यहां इस बात के लिखने में बड़ी खुशी होती है कि कुछ मुसल्मानों ने हिन्दुओं के दोस्त बन कर उन्हें आश्रय दिया था।

यह तो आम तौर पर स्वीकार कर लिया गया है कि ता. १० सितंबर को मुसल्मानों के क्रोध की कुछ सीमा न थी। बेशक, हिन्दुओं के हाथ से मारे गये मुसल्मानों के मृत्यु के समाचार बहुत बढ़ा कर फैलाये गये थे और आसपास के गांवों में रहनेवाले देहाती मुसल्मान दिवालों में छेद करके या दूसरे रास्तों से शहर में दाखिल हुए। सारे शहर में कत्ल और लूट शुरू हो गई। सरहद की पुलिस भी इसमें शामिल हुई और अधिकारी लोग जो इसे रोक सकते थे, देखते ही खड़े रहे। यदि हिन्दुओं को उनकी जगहों में न रोका जाता या छावनी में उन्हें न पहुंचा दिया जाता तो उनमें से शायद ही कोई बच सकता था। इस बात पर बड़ा जोर दिया जाता है कि मुसल्मानों का भी नुकसान हुआ है और देहाती मुसल्मानों ने तो जब एक मरतबा लूटना शुरू किया फिर वे यह नहीं देखते थे कि यह हिन्दू है या मुसल्मान। हालांकि यह बात सच है, फिर भी मैं यह कहूंगा कि हिन्दुओं के बराबर प्रमाण में मुसल्मानों को कुछ भी नुकसान पहुंचा हो। और मुझे मानपूर्वक यह भी कह देना चाहिए कि खिलाफत के कुछ स्वयंसेवकों ने, जिनका कर्तव्य ऐसे समय में हिन्दुओं को अपना भाई मानकर उनकी रक्षा करना था, अपना फर्ज अदा नहीं किया। वे सिर्फ लूट ही में शामिल नहीं हुए बल्कि उभाड़ने के लिए की गई कोशिशों में भी शामिल थे।

लेकिन सबसे ज्यादह बुरी बात तो अभी कहना ही बाकी है। झगड़े के दिनों में मन्दिरों को भी, जिसमें एक गुरुद्वारा भी शामिल था नुकसान पहुंचाया गया था और मूर्तियां तोड़ दी गई थीं। बहुत से जबरदस्ती धर्मान्तर किये गये थे या कहने भर को ही धर्मान्तर किये गये थे अर्थात् अपनी जान बचाने के लिए कुछ लोगों ने धर्मान्तर किया था। दो हिन्दुओं को सिर्फ इसलिए बुरी तरह से कत्ल किया गया था क्योंकि वे (एक निश्चय ही, दूसरा अनुमान से) इस्लाम का स्वीकार करना नहीं चाहते थे। ऐसे धर्मान्तर का एक मुसल्मान गवाह इस प्रकार वर्णन करता है। हिन्दू मुसल्मानों के पास आये और उन्होंने अपनी शिखा कटा दीं और जनेऊ तोड़ डालने के लिए उनसे कहा। आश्रय जिन मुसल्मानों के पास वे आश्रय पाने के लिए गये उन्होंने उनसे कहा "यदि तुम अपने को मुसल्मान जाहिर करो और हिन्दू धर्म के चिह्न निकाल फेंक दो तो तुम्हारी रक्षा हो सकती है।" यदि हिन्दुओं के कहने पर विश्वास किया जाय तो सच तो, इससे भी अधिक भयंकर है। इस मुसल्मान मित्र को न्याय करने के लिए मुझे यहां यह कह देना चाहिए कि वे ऐसे धर्मान्तर के कार्य का नहीं होना स्वीकार ही नहीं करते हैं। इसके सौम्य रूप में भी यदि इसका विचार किया जाय तो यह हिन्दू-मुसल्मान दोनों को नीचा दिखानेवाला काम है। मुसल्मानों ने यदि उन नामर्द हिन्दुओं को हिम्मत दी होती और हिन्दू रहने पर भी और हिन्दू-धर्म के चिह्न पास रखने पर भी उनकी रक्षा की होती तो मैं उनकी बड़ी तारीफ करता। हिन्दुओं ने भी यदि, सिर्फ जिन्दा रहने के लिए बाह्याचार में भी अपने धर्म का इन्कार करने के बजाय मर जाना अधिक पसंद किया होता तो कोहाट की प्रजा, सिर्फ हिन्दू ही नहीं सारी मानव जाति, उन्हें वीर और शहीद समझ कर उनका आदर करती।

मुझे अब सरकार के बारे में भी कुछ कहना चाहिए। मुझे कहना चाहिए कि स्थानिक अधिकारियों ने अपने कर्तव्य के प्रति हृदयहीन उदासीनता, अयोग्यता और कमजोरी दिखाई है।

उस अपमानकारक कविता के निकाल देने के बाद पत्रिका का जलाना भूल थी ।

श्री जीवनदास को पकड़ना ठीक था लेकिन उन्हें ११ तारीख के पहले छोड़ देना एक भूल हुई । छोड़ देने के बाद उन्हें फिर पकड़ना एक जुर्म था ।

मिलकर को [illegible] हुई और फिर ९ ता. को पहुंचाई गई हिन्दुओं की इस चेतावनी पर कि उनके जान व माल खतरे में हैं उनका ध्यान न देना जुर्म था ।

आखिर जब दंगा हुआ उस समय उनकी रक्षा न करना भी बड़ा जुर्म था ।

आश्रितों को वहांसे हटाने के बाद उन्हें खाना न देना और उन्हें रावलपिंडी पहुंचाने के बाद उनको उन्हीं के साधनों के भरोसे छोड़ देना एक अमानुष कार्य था ।

भारत सरकार ने इस मामले की, और इससे संबंध रखनेवाले अधिकारियों के व्यवहार की जांच करने के लिए एक निष्पक्ष कमिशन नियुक्त नहीं किया इसमें उसने अपने कर्तव्य के प्रति बड़ी लापरवाही दिखाई है ।

अब रही भविष्य की बात । मुझे अफसोस है कि वह अधिक अच्छा नहीं दिखाई देता । यह बड़े ही दुःख की बात है कि मुस्लिम कार्यवाहक समिति ने हमारी जांच के समय अपना प्रतिनिधि नहीं भेजा । जिस समाधान का जिक्र किया गया है वह समाधान दोनों के खिलाफ मुकदमें चलाने की धमकी दे कर किया गया है । यह समझ में नहीं आता कि ऐसी बलवती सरकार ऐसी सुलह में कैसे शामिल हुई । यदि देहाती मुसल्मान फिर दंगा मचावेंगे इस डर से सरकार मुकदमें चलाना नहीं चाहती थी तो उसे यह बात साफ साफ कह देनी चाहिए थी और फिर मुकदमें उठा लेने थे । और बाद को दोनों कौमों में बाइज्जत सुलह व मैत्री कराने का उसे प्रयत्न करना चाहिए था ।

यह सुलह के मूल में ही दोष है । क्योंकि इसमें खोया हुआ और नष्टप्राय माल वापस दिलाने का कोई यकीन नहीं दिलाया गया है । और वह इसलिए भी बुरी है, क्योंकि श्री जीवनदास पर, जो इसके व्यर्थ ही शिकार हो रहे हैं अब भी मुकदमा चलाया जानेवाला है ।

इसलिए यदि सचमुच दिलों की सफाई करना है और सच्ची सुलह करना है तो यह आवश्यक है कि मुसल्मान हिन्दू-आश्रितों को निमंत्रण दें और उन्हें उनकी हिफाजत के लिए यकीन दिलावें और उनके मन्दिर और गुरुद्वारों को फिर से बनाने में मदद करने का वचन दें ।

लेकिन सबसे महत्व की जमानत तो उन्हें इस बात की देनी होगी कि जबरदस्ती किसीका भी धर्मान्तर नहीं किया जावेगा और दोनो कौमें ऐसे धर्मान्तरों को कुबूल भी न रक्खेगी । सिर्फ वही धर्मान्तर कुबूल रक्खा जायगा जिसके साक्षी दोनों कौम के अगुआ रहेंगे और जिसका धर्मान्तर हो रहा हो वह यह समझता हो कि वह क्या कर रहा है । मैं स्वयं तो यही पसंद करूंगा कि धर्मान्तर और शुद्धि सब बन्द कर दिये जाय । किसी भी व्यक्ति के धर्म का संबंध स्वयं उसीके साथ होता है । बालिग उम्र के स्त्री या पुरुष जब या जितनी दफा चाहें अपना धर्म बदल सकते हैं । यदि मेरा बस चलता तो मैं सिवा इसके कि मनुष्य अपने चारित्र से दूसरे पर असर डाले, और सब प्रकार के प्रचार कार्य बन्द कर देता । धर्मान्तर का संबंध हृदय और विवेकबुद्धि के साथ है, और चारित्र ही से उसपर असर डाला जा सकता है । सीमा प्रान्त पर किसी सच्चे धर्मान्तर के होने का ख्याल भी मैं नहीं कर सकता हूं । हिन्दूलोग वहां सिर्फ व्यापार की गरज से रहते हैं, संख्या में बहुत ही अल्प हैं और हथियार चलाने की वैसी शिक्षा भी उन्हें प्राप्त नहीं है, फिर भी वे ऐसे बहुसंख्यक लोगों के साथ रहते हैं जो शारीरिक शक्ति में और हथियार चलाने में उनसे कहीं बढ़ कर हैं । ऐसी परिस्थिति में दुर्बल हृदय के मनुष्य को सांसारिक लाभ के लिए भी इस्लाम को अंगीकार करने का मोह अनिवार्य होता है ।

ऐसी जमानत उनकी तरफ से मिले या न मिले, हृदय का सच्चा परिवर्तन संभव हो या न हो, मुझे तो जो रास्ता लेना चाहिए वह स्पष्ट ही दिखाई देता है । जबतक यह परदेशी सत्ता कायम रहेगी उसके साथ कहीं न कहीं संबंध रखना भी अनिवार्य होगा । लेकिन जहां मुमकिन हो वहां हमें सब प्रकार का ऐच्छिक संबंध त्याग कर देना चाहिए यही एक रास्ता है जिससे कि हम लोग स्वतंत्रता का [illegible] कर सकते हैं और उसका विकास कर सकते हैं । जब रियासत के बहुत बड़ी संख्या में लोग स्वतंत्रता का अनुभव करने लगेंगे तब वे स्वराज के लिए तैयार हो जायंगे । स्वराज्य की परिभाषा करके के अनुकूल ही मैं ऐसे सवालों का जवाब दे सकूंगा । इसलिए मैं भविष्य के राष्ट्रीय लाभ की नींव पर व्यक्तिगत लाभों का बलिदान देना चाहता हूं । यदि मुसल्मान हिन्दुओं के पास मित्रभाव से जाने के लिए इन्कार करें और कोहाट के हिन्दुओं को सब कुछ खो कर नुकसान उठाना पड़े तो भी मैं तो यही कहूंगा कि जबतक उनमें और मुसल्मानों में पूरी पूरी सुलह न हो जायें और जबतक वे यह महसूस न करें कि वे उनके साथ ब्रिटिश सरकार की बन्दूकों की मदद के बिना ही शान्ति के साथ रह सकेंगे तबतक, उन्हें कोहाट वापस लौटने का विचार भी न करना चाहिए । लेकिन मैं यह जानता हूं कि यह तो आदर्श की बात हुई और इसलिए यह संभव नहीं कि वे उसके अनुसार चल सकें । फिर भी मैं दूसरी सलाह नहीं दे सकता । मैं तो सिर्फ यही एक व्यावहारिक सलाह दे सकता हूं । यदि वे इसकी कदर नहीं कर सकते तो उन्हें अपने ही ख्याल के अनुसार काम करना चाहिए । वे ही अपनी शक्ति का अच्छी तरह नाप निकाल सकेंगे । वे देशभक्त या देशसेवक की हैसियत से तो कोहाट गये न थे और न वे अब देशसेवक की हैसियत से वहां वापस लौटना चाहते हैं । वे तो अपने माल का फिर कब्जा लेने के लिए ही वहां जाना चाहते हैं । इसलिए वे वही काम करें जो उन्हें लाभदायी और कारआमद मालूम हो । उन्हें सिर्फ दो बातें एक साथ नहीं करना चाहिए, अर्थात् मेरी सलाह पर अमल करना और साथ ही साथ सरकार से सुलह की शर्तों के लिए लिखापढ़ी भी करना । मैं जानता हूं कि वे असहयोगी नहीं हैं । उन्होंने ब्रिटिशों की मदद पर हमेशा भरोसा रक्खा है । मैं तो उन्हें परिणाम पर ध्यान देने को कहता हूं और अपना रास्ता पसंद करने का भार उन्हीं पर छोड़ देता हूं ।

मुसल्मानों के लिए भी मेरी सलाह तो वैसी ही सरल है ।

जबरदस्ती किये गये या ऐसे ही नाम मात्र के धर्मान्तर होने से हिन्दुओं को क्लेश हो और कुछ व्यक्तियां अपनी खोयी हुई विवाहित स्त्रियों को वापस लाने का प्रयत्न करें तो इसमें मुसल्मानों के नाराज होने की कोई बात नहीं है ।

मैं यह जानता हूं कि सरदार माखनसिंह का पुत्र अदालत से खी-हरण के दोष से निर्दोष होकर छूट गया, फिर भी बहुत से मुसलमान उसे निर्दोष नहीं मानते हैं। लेकिन यदि यह मान भी लें कि उसने यह कुसूर किया था तो भी उसके, एक के दोष के कारण सारी जाति पर उसका ऐसा भयंकर वैर लेना उचित नहीं है।

उस पत्रिका को, जिसमें वह अपमान करनेवाली कविता छपी थी मंगाना और मांग कर कोहाट जैसी जगह में उसे मंगाना दरअसल बुरा था। परन्तु सनातन धर्म सभा ने तहरीरी माफी मांग कर उसका प्रायश्चित कर लिया था। लेकिन मुसलमानों को उससे संतोष न हुआ और उन्होंने उस पत्रिका को श्रीकृष्ण की तस्वीर के साथ ही, जला देने पर सभा को मजबूर किया। उसके बाद जो कुछ भी उन्होंने किया वह सब आवश्यकता से बहुत ही अधिक था। मैं यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि पहले गोली किसने चलाई थी। लेकिन यदि यह मान भी लें कि हिन्दुओं ने ही पहले गोली चलाई थी तो उन्होंने डर कर, गभड़ा कर आत्म-रक्षा के निमित्त ही गोली चलाई थी। इसलिए यदि इसे उचित नहीं कह सकते तो यह क्षम्य तो अवश्य ही था। इसलिए जितनी भी ज्यादतियां की गई थीं सब अनुचित और अनावश्यक थीं। इस हालत में मुसलमानों का स्पष्ट कर्तव्य है कि वे जिस कदर बन पड़े हिन्दुओं की इस नुकसान की भरपाई कर दें। इसकी कोई वजह नहीं दिखाई देती कि वे हिन्दुओं के खिलाफ सरकार की मदद और हिफाजत पर भरोसा रख कर रहें। यदि हिन्दू चाहें तो भी उन्हें कुछ नुकसान नहीं पहुंचा सकते। लेकिन यहां फिर मेरी बात निर्मूल हो जाती है। मुझे अबतक कोहाट के उन मुसलमानों से परिचय करने का भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है जो मुसलमान जनता के सलाहकार हैं। इसलिए इस बात को तो वे ही अच्छी तरह जान सकेंगे कि मुसलमानों के लिए और हिन्दुस्तान के लिए लाभदायी क्या होगा।

यदि दोनों पक्ष सरकार की दरम्यानी चाहते हैं तो मेरी सेवा बिलकुल ही बेकार होगी क्योंकि मुझे ऐसी दरम्यानी की आवश्यकता में विश्वास ही नहीं है। और सरकार के साथ समाधानी के लिए जो बातचीत की जायगी उसमें मैं किसी प्रकार से भी भाग न ले सकूंगा। यह सच है कि मुसलमानों से अच्छा व्यवहार पाने और मांगने का हिन्दुओं को हक है। लेकिन दोनों कौमों को मिलकर सरकार से अपनी रक्षा करनी चाहिए क्योंकि एक कौम को दूसरी के खिलाफ कर देना ही उसकी नीति है। सीमाप्रान्त की हुकूमत खुद मुख्तार है। अधिकारी की इच्छा ही वहां कानून है। इस हालत में दोनों कौमों को हाथ से हाथ मिलाकर राजकाज में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए और उसमें अभिमान लेना चाहिए। लेकिन जबतक दोनों कौम एक दूसरे का विश्वास न करें और ऐसा प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की आकांक्षा कौम में व्याप्त न हो जाय तबतक वह होना संभव नहीं।

मो० क० गांधी

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०-३-० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०-३-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन् रवाना कर दी जायगी। वी. पी. का नियम नहीं है।

व्यवस्थापक
हिन्दी-नवजीवन

मौलाना शौकतअली का वक्तव्य

कोहाट के कमनसीब मामले के बारे में जब मैंने पहले पहल सुना तबसे, देहली में ऐक्य परिषद हुई और महात्माजी ने २१ रोज का उपवास किया उस दरम्यान और रावलपिंडी में हिन्दू मुसलमान, दोनों के साथ जो आखिर दिन बिताया, तबतक इस मामले पर मैं बराबर दिल से गौर करता चला आया हूं। इस हालत में जितनी भी जांच मुझसे बन पड़ी मैंने की है और उसपर से मैंने कुछ अपनी राय भी कायम की है। यद्यपि मेरी राय सामान्य तौरपर महात्माजी की राय से मिलती जुलती है फिर भी कुछ अंशों में वह उनकी राय के खिलाफ है, और क्योंकि कुछ बातों पर मैंने बड़ा जोर दिया है, यही बेहतर है कि मैं अपनी रिपोर्ट अलग पेश करूं। यह दिखाने के लिए कि मैंने अपनी यह राय कैसे कायम की है छोटी छोटी बातों के जिक्र करने की और लंबा चौड़ा बयान पेश करने की कोई जरूरत नहीं दिखाई देती है।

(१) यह तो सब कोई जानता है कि जहां कहीं हिन्दू मुसलमान आपस में लड़े हैं या लड़ रहे हैं वहां जाने के लिए मैंने हमेशा इन्कार किया है। मेरी राय में ऐसी जगहों में रहनेवाले हिन्दू-मुसलमानों ने बाहर के हिन्दू-मुसलमान, जो आपस में भ्रातृ भाव के साथ अमन से रहना चाहते हैं उनकी मदद और सहयोग प्राप्त करने का सारा हक गुमा दिया है। हरएक पक्ष इत्तफाक करना तो नहीं चाहता लेकिन अपने मददगारों को ही ढूंढता फिरता है। दंगे करानेवाले दोनों दल के गुण्डे दूसरों को भी अपना सा बनाना चाहते हैं।

एक घटना के हो जाने पर फिर उसकी कितनी भी जांच क्यों न की जाय उसका नतीजा कुछ भी नहीं होता। बड़ी होशियारी के साथ वे अपना मामला पेश करते हैं और हमारी दखल कुछ काम नहीं आती। प्रत्येक दल अपने विपक्षियों का ही दोष निकालता है और उसके खिलाफ यदि इन्साफ किया जाय तो वह उसे कुबूल नहीं करता। बहुत से मामलों में तो दोनों पक्षों का ही दोष होता है। और किसका कितना और कैसा दोष है यह दिखाना यद्यपि मुश्किल है—करीब करीब असंभव है—फिर भी यदि ऐसा प्रयत्न किया जाय तो उससे कुछ फायदा नहीं होता। सच पूछो तो इससे गड़े मुर्दे फिर उखाड़े जाते हैं और अखबार और व्याख्यानों के जरिये वे फिर बार बार लड़ा करते हैं।

यह कोहाट के मामले में—सिर्फ इसीमें मैंने भाग लिया है—मुझे यह स्पष्ट तौर से साबित कर दिखाया है कि मेरा यह ख्याल सही था। शुरूआत में निष्पक्ष हिन्दू और मुसलमान मित्रों के जरिये मैंने जो कुछ सुना था उससे मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अखबारवालों के एक विभाग ने इस मामले को जितना एकतरफा बना दिया है उतना एकतरफा यह नहीं है। कोहाट में उस समय जो लोग मौजूद थे उनसे अधिक परिचय होने के बाद और उसके मुताल्लिक अधिक बातें जानने के बाद मेरी यह राय और भी पुख्ता (दृढ) हो गई है। मैं दूसरी जगहों के बारे में कुछ नहीं कह सकता लेकिन कोहाट में तो यदि मुसलमान बहुत सी बातों के लिए जिम्मेवार हैं तो हिन्दुओं को भी तो बहुत सी बातों के लिए जवाब देना होगा। नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना जरूरी है।

(अ) पंजाब और संयुक्त प्रान्त में कौम कौम के बीच जो द्वेष और कटुता फैली हुई है उसका कोहाट पर भी असर पड़ा था

और वहां रहनेवाले हिन्दू-मुसल्मानों का आपस में पहले जैसा अच्छा रिश्ता न रहा था। सब बातों को सुनने पर यह बात तो सच साबित होती है कि वहां भी हिन्दू-मुसल्मान दोनों असंयत हो कर आपस में गालीगलौज कर रहे थे।

(ख) सीमा प्रान्त के जाहिल और कम शिक्षा पाये हुए खानों को अपनी इज्जत और मरतबे का बड़ा ख्याल रहता है। और वे अपनी मूर्खता और गलतियों के कारण बरबाद हो गये हैं फिर भी ऊपर ऊपर वे बड़ा ठाठ दिखाते हैं। हिन्दुओं का अब वहां उनकी मितव्ययिता और व्यापार-कुशलता के कारण खासा वजन पड़ता है। उन्होंने ठीकठीक धन इकट्ठा कर लिया है और कभी कभी वे अपना श्रीमन्ताई की अकड़ भी दिखाते हैं। दोनों कौमों का वह पुराना रिश्ता अब बदल रहा था और अधिकारीगण यद्यपि हिन्दुओं का ताकात बढ़ने देना नहीं चाहते थे फिर भी मुसल्मानों को कमजोर बनाने के लिए वे इस स्थिति का लाभ उठा रहे थे। उस प्रान्त में सरकार को मुसल्मानों से ही खतरा था हिन्दुओं से नहीं। कोहाट में अकेले मुसल्मानों ने ही तर्के-मवालात (असहयोग) शुरू किया था और उन्हींको इसकेलिए सहन भी करना पड़ा था। इसलिए, इस प्रान्त के लिए तो सरकार के अधिकारी लोग ही अधिक खतरनाक हैं और हिन्दू-मुसल्मानों को इनसे अपनी रक्षा करनी चाहिए।

(ग) जब इस प्रकार दोनों कौम में एक दूसरे के प्रति द्वेष फैला हुआ था उस समय वह पत्रिका कोहाट में आयी जिसकी कि एक कविता में काबा और पाक पैगम्बर की बेइज्जती की गई थी। वह पत्रिका कोहाट सनातन धर्मसभा के मंत्री, जीवनदास के लिए खास छापी गई थी। यह कहना न होगा कि कोहाट के मुसल्मान तो क्या, किसी भी जगह के मुसल्मानों पर उसका कैसा खतरनाक असर हो सकता है। इस संबंध में मुझे एक बात याद आती है। "इन्डियन डेली न्यूस" के एक लेख पर कलकत्ता के और सारे हिन्दुस्तान के मुसल्मान गुस्से से जल उठे थे। वह उसके पेरिस के एक संवाददाता का पत्र था। उसमें उसने लिखा था "अफ्रीका के अरब जिन्हें लड़ाई के बहुत गटर साफ करने का काम सौंपा गया था वे मक्के को उतने ही प्यार और इज्जत की नजर से देखते थे जितनी कि इन्सान के साथ वे अपने पैगम्बर की कब्र को देखते हैं"। इसपर मुसल्मानों ने आग बबूला हो कर सारे हिन्दुस्तान का विरोध जाहिर करने के लिए कलकत्ते में एक सभा की। सरकार ने वह सभा रोक दी और जलूस बना कर आनेवाले मुसल्मानों पर गोलियां चलाईं, जिससे बहुत से मुसल्मान मारे गये और बहुत से जख्मी हुए। उससमय मुसल्मानों के दिलों में क्या हो रहा था उसका मैं खूब अन्दाज लगा सकता हूं। ऐसे लेख छिपाये नहीं छिपते। इसलिए इसमें मैं मौलवी अहमद गुल का दोष नहीं निकाल सकता।

(घ) हिन्दुओं का पक्ष पूरा है और उन्होंने बड़ी होशयारी से उसे तैयार किया है। कोहाट में बहुत से अच्छी शिक्षा पाये हिन्दू हैं, उनमें कुछ बेरीस्टर और वकील भी हैं। इसके अलावा हिन्दू जाति के दूसरे भी समर्थ और प्रसिद्ध हिन्दुओं की उन्हें मदद मिलती है। लेकिन मुसल्मानों का पक्ष हमें पूरा नहीं मालूम हुआ है। वे दो हिस्सों में बंटे हुए हैं। पहले वे दोनों असहयोगी थे लेकिन अब वे अलग अलग एक दूसरे के विरोधी हो गये हैं। उनका एक होना संभव नहीं था और उन्हें बाहर के मुसल्मानों की भी सलाह और मदद नहीं मिली थी। मेरे बुलाने पर वे लोग आये इसलिए मैं उनका शुक्रगुजार हूं। दूसरे सरकारी मण्डल की तरह जिसे मुसल्मानों की प्रतिनिधि कार्यवाहक समिति कहते हैं—वे भी इन्कार कर सकते थे। लेकिन वे आये और उन्होंने अपनी गवाही दी। सैयद पीर जेलानी और मौलवी अहमद गुल की गवाही में वास्तविक फर्क कुछ ज्यादह न था। उन दोनों ने इस बात का इन्कार किया कि ता. ९ सितम्बर को हिन्दुओं के खिलाफ जेहाद शुरू करने की या सामान्य तौर पर उनपर हमला करने की कोई तैयारी की गई थी। श्री जीवनदास को यकायक छोड़ देने पर—जिसका किसी को भी ख्याल न था—मुसल्मानों ने ता. ८ की रात को डिप्टी कमिश्नर के पास जाने का निश्चय किया। डिप्टी कमिश्नर की दोमुखी नीति पर उन्हें निश्चय ही बड़ा क्रोध हुआ था। वे मुसल्मानों से एक बात कहते थे तो हिन्दुओं से दूसरी ही बात कहते थे।

(ङ) हिन्दुओं को सैयद पीर कमाल जेलानी से कोई शिकायत न थी। वे खिलाफत समिति के मंत्री मौलवी अहमद गुल का दोष निकालते थे। दोनों तरफ के ब्यान से यह साबित होता है कि २५ अगस्त १९२४ तक उनका व्यवहार अच्छा था। उस पत्रिका का मामला हो जाने के बाद वे अपने को संभाल न सके, और सरकार तरफ चले गये। मौजूदा बिगड़ी हुई हालत में जातिगत द्वेष के कारण बहुत से पुराने और कसे हुए हिन्दू-मुसल्मान कार्यकर्ता भी तो पंजाब और दूसरे प्रान्तों में अपने को संभाल नहीं सके हैं। मौलाना अहमद गुल भी सामान्य मुस्लिम जनता की सार्वजनिक राय के सामने टिक न सके। वे डर गये और हिन्दू-मुसल्मान इत्तफाक में उन्हें कुछ भी यकीन न रहा। यदि वे चाहते तो वे या दूसरा कोई हिम्मतवान नेता इस झगड़े को रोक सकता था लेकिन उस समय ऐसा शख्स कोई भी न मिला। दिवान अनन्तराम ने हम लोगों से कहा कि वे बड़े बीमार थे और इसलिए कुछ काम न आ सके वरना यह कमनसीब घटना होने ही न पाती। हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों का जो मुझे ज्ञान है उसपर से मैं मौलवी अहमद गुल जैसी स्थिति के आदमी से कुछ ज्यादह उम्मीद नहीं रख सकता था। फिर भी यदि वे जनता को अपने हाथ में नहीं रख सकते थे तो उन्हें स्वयं अलग रहना चाहिए था, अधिकारियों के पक्ष में न जाना चाहिए था। लेकिन इसके साथ ही उनके बारे में हिन्दुओं ने जो कुछ भी कहा है उन सबको मैं स्वीकार भी नहीं कर सकता हूं।

हमे हमारे ही ख्याल के मुताबिक कोहाट के मामले पर विचार नहीं करना चाहिए। वह अन्याय होगा। वहां की हालत वैसी नहीं जैसी कि हमारी है। खाली माफी मांग लेने पर कुछ लोगों को संतोष हो सकता था, फिर पुस्तकें जलाने की कोई जरूरत न थी। लेकिन कोहाट के मुसल्मानों को उनकी तहरीरी माफी से और पत्रिका के जलाने से भी संतोष न हुआ। कोहाट में दोनों कौमों में सची सुलह करानेवाला एक एक भी आदमी होता तो सब बात मित्रभाव से शान्ति के साथ तय हो जाती। पेशावर के खिलाफत के शिष्ट-मण्डल ने, जिसके श्री. हाजी जानमहम्मद, अमीरचंद बम्बाल, सैयद लाल बादशाह और अली गुल सदस्य थे, सुलह कराने के लिए भरसक कोशिश की लेकिन नतीजा कुछ भी न हुआ।

मैं हिन्दुओं की इस कल्पना पर विश्वास नहीं रखता कि ९ सितंबर का दिन जेहाद के लिए मुकर्रर किया गया था और उसके

लिए पहले ही से निमंत्रण भेजे गये थे । सीमा प्रान्त के देहाती पठान अकेला जानते हैं लेकिन वे व्यर्थ ही अपनी जान गंवाने के लिए उत्सुक नहीं रहते । यदि दरअसल वे हिन्दुओं को कत्ल करना चाहते थे तो दिन का प्रकाश उनके अनुकूल न था और उनके विरोधियों को मुकर्रर तारीख भी मालूम नहीं हो सकती था । उस समय उन्होंने यकायक हमला करने का ही प्रबन्ध किया होता । अलावा इसके ९ सितंबर अर्थात पहले दिन की लडाई दोनों तरफ से करीब करीब बराबर रही थी । दोनों तरफ के ब्यान से यही मालूम होता है कि यदि ज्यादह नहीं तो जितने हिन्दू मारे गये या जख्मी हुए उतने ही मुसल्मान भी मारे गये और जख्मी हुए थे । मैं मुसल्मानों की इस कल्पना पर भी, जो रोवली में मेरे सामने रक्खी गई थी, विश्वास नहीं रखता कि हिन्दू मुसल्मानों को सबक सीखाने के लिए उनपर हमला करने की तैयारी कर रहे थे । यह कहा जाता था कि हथियारों से सजकर और आड में रह कर यदि वे लडेंगे तो एकही अकस्मात किए गए हमले से यह दिखा देंगे कि वे मुसल्मानों से शक्ति में कहीं अधिक हैं । फिर आगे जब पुलिस और फौज आ जायगी मामले का निपटारा करने के लिए उसे कानून की अदालत पर छोड दिया जायेगा । कोहाट के मुसल्मानों ने तो यह स्पष्ट कह दिया है कि ऐसा होना मुमकिन नहीं है ।

मेरी राय मे ९ तारीख को जो लडाई हुई और गोली चली वह अकस्मात ही हुई थी । इसके लिए पहले से तैयारी नहीं की गई थी । ता. ८ सितंबर को जीवनदास को अचानक छोड देने पर हिन्दुओं के उस गर्ममिजाज लोगों के वर्ग को बडी खुशी हुई होगी और उन्होंने अपनी मुस्लिमों पर विजय जताने के लिए खुले तौरपर वह खुशी जाहिर की होगी । लेकिन दूसरे ही दिन सुबह जब डिप्टी कमिश्नर ने मुसल्मानों की सरगरमी देखी उन्हें जीवनदास को छोड देने में जो भूल हुई थी वह मालूम हुई और जीवनदास और दूसरे सनातन धर्म सभा के सदस्यों को पकडने के लिए उन्होंने हुक्म जारी किया । तब मुसल्मानो को अपने विजय पर खुशी जाहिर करने की बारी आई और इसपर लडाई छिड गई ।

(घ) पहले किसने गोली चलाई ? मुसल्मान कहते हैं कि बाजार में सरदार माखनसिंग के मकान के पास एक मुसल्मान लडका और एक दूसरा आदमी मरा पाया गया था । हिन्दू कहते हैं कि पहले 'पठाणों 'ने तीन 'फेर' किये थे जिससे एक हिन्दू औरत मर गई और एक दूसरा शख्स जख्मी हुआ । वे इसके आगे यह भी कहते हैं कि ये तीन 'फेर' पहले से ही निश्चित किया हुआ हमला करने के लिए मुसल्मानों को इशारा था । मैं इस आखिरी बात को नहीं मानता क्योंकि वह हिन्दुओं की एक कल्पना मात्र है और उसका एक भी प्रमाण मुझे नहीं मिला है ।

८ सितंबर की रात को मुसल्मानों ने एक बडी और गुस्से से भरी हुई सभा में यह निश्चय किया था कि वे दूसरे दिन सुबह कमिश्नर के पास अपनी मांग पेश करने के लिए जायंगे । लेकिन यदि डिप्टी कमिश्नर ने उनके खिलाफ फैसला किया तो फिर वे यह भी देख लेंगे कि वे इस बारे में दूसरा क्या कर सकते हैं । डिप्टी कमिश्नर ने उनकी मांग को पूरा स्वीकार कर लिया था । सिर्फ जीवनदास ही नहीं बल्कि दूसरे सनातनधर्म सभा के सदस्य भी गिरफ्तार किये गये थे । भीड ने जो मांगा था वह उसे मिल गया और इसलिए वह बडा खुश हो रही थी । उनके खयाल से उनके धर्म के मान और इज्जत की रक्षा हो गई थी । इसलिए अब उन्हें हिन्दुओं के कत्ल करने से कोई मतलब न था । मेरा तो यही दृढ विश्वास है कि ९ तारीख का गोली चलना, मकान जलाना इत्यादि सब काम इत्तफाक से ही हुआ था । वहां दारु तो ढेर की ढेर जमा हुई थी । उसमें इत्तफाकन बत्ती लग गई और एकदम आग भडक उठी । न मुसल्मानों का न हिन्दुओं का ही ऐसा कुछ इरादा था । और मुसल्मानो की तो उनकी जीत हुई थी इसलिए स्वाभाविक तौरपर यह इच्छा हो ही नहीं सकती थी ।

(च) हिन्दू और मुसल्मान दोनों से यह सुन कर मुझे बडी खुशी होती है कि वे इस प्रश्न को फिर उठाना नहीं चाहते क्यों कि इससे कुछ भी लाभ न होगा । हमसे दोनों दलों के लोगों ने यह बार बार कहा है और मेरा ख्याल है कि किसीपर दोष लगाये बिना वाहयात और मित्रतायुक्त सुलह अब भी हो सकती है । मुसल्मान कहते हैं कि ता. १० सितंबर को वे यह हर्गिज नहीं चाहते थे कि हिन्दू कोहाट छोड कर चले जायं और न उन्होंने उन्हें कोहाट छोडने के लिए मजबूर ही किया था । पुलिस, सरहद की पुलिस और तमाम ब्रिटिश अधिकारी वहां मौजूद थे और ता. १० की लूट और लडाई के लिए वे ही जिम्मेवार थे । यदि वे चाहते सब बन्द करा सकते थे लेकिन वे इसे बन्द कराना नहीं चाहते थे । 'सीमा प्रान्त पर हिन्दू-मुसल्मानों की यह लडाई उनके लिए ईश्वर प्रेरित लडाई थी, ताकि उससे सीमाप्रान्त के मुसल्मान और पंजाब के और सारे हिन्दुस्तान के हिन्दुओं में वैमनस्य अधिक बढ जाय और वे दुनिया में यह ऐलान कर सकें कि हिन्दू और मुसल्मान अब खुले तौर पर लड रहे हैं और सुलह शान्ति की रक्षा के लिए तो ब्रिटिश सरकार के मजबूत हाथों की ही जरूरत होगी ।

(छ) मुसल्मानों की यह शिकायत है कि प्रभावशाली हिन्दू नेताओं की मदद से हिन्दुओं ने ब्रिटिश सरकार को उनके साथ कुछ खास रियायतें करने के लिए मजबूर किया है । भविष्य में अब पुलिस में आधे हिन्दू रहेंगे । मुसल्मान स्त्री या पुरुष हिन्दुओं के महोल्ले में हो कर न जा सकेंगे । कूचाबन्दी की जायगी । अधिकारियों में एक तिहाई हिन्दू अधिकारी रहेंगे । ऐसी ही कुछ और रियायतें उन्हें मिली हैं । उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुओं की मदद से सरकार ९७ फी सैकडा मुसल्मानों की बस्ती की आजादी छीन लेना चाहती है । सैयद पीर कमाल जिलानी और दूसरे तीन शख्सों के पास से सरकार ने ८०,००० के मुचलके मांगे हैं और यह केवल इसलिए कि पीर साहब और उनके दोस्त कोहाट की मुस्लिम कार्यवाहक समिति को मुसल्मानों की प्रतिनिधि समिति नहीं मानते । सीमा प्रान्त के मुसल्मानों की हालत गुलामों से कुछ ही ज्यादह अच्छी होगी । और हिन्दुस्तान के दूसरे विभागों के समान अधिकार प्राप्त करने में उन्हें राष्ट्रीय हिन्दुस्तान की मदद दरकार है । उन्हें प्रतिनिधित्ववाली और चुनाव से पसंद किये गये सदस्यों की संस्थायें जैसे धारासभा, म्युनिसिपल्टि, जिला बोर्ड और युनिवर्सीटि इत्यादि सब कुछ चाहिए । उनकी शिक्षा के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया जाता है और उनकी जहालत तो दिल दहलानेवाली है । कोहाट में, पेशावर में और तमाम सीमा प्रान्त की म्युनिसिपल्टि में सरकार-नियुक्त सदस्य होते हैं और ९७ फी सैकडा मुसल्मानों की बस्ती को उतना ही प्रतिनिधित्व मिलता है जितना कि ३ प्रति सैकडा हिन्दुओं को मिलता है अर्थात् सरकार की तरफ से ५० फी सैकडा प्रत्येक कौम के सदस्य चुने जाते हैं ।

(ख) मेरी राय में बाइज्जत सुलह करना मुमकिन है और दोनों कौमें यह चाहती भी हैं। तमाम देश को इन बहादुर लोगों को स्वतन्त्र करने के लिए अपनी आवाज उठानी चाहिए और अहाताल से और जगला तौरपर काम करने के तरीकों से जो उन्हें और सारे देश को नुकसान करनेवाला है उनकी रक्षा करने के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दुस्तान के मुसलमानों का इस बातपर ध्यान न देना दरअसल एक जुर्म है।

दंगे के दिनों में जिन लोगों का कहने भर को ही धर्मान्तर हुआ है उनके संबंध में मेरी स्थिति स्पष्ट है। जबरदस्ती धर्मान्तर करने के काम को मैं नफरत की निगाह से देखता हूं। यह इस्लाम के तत्व के खिलाफ है। यदि ऐसे धर्मान्तर हुए हों तो उनकी सब तरह से निन्दा होनी चाहिए। लेकिन ऐसे धर्मान्तर होने के संतोषकारक प्रमाण मुझे नहीं मिले हैं। मालूम होता है यह हुआ होगा कि कुछ हिन्दू अपनी जान बचाने के लिए अपने मुसलमान मित्रों के पास गये और उन्हें अपनी चोटी काट डालने को और दूसरे हिन्दू धर्म के बाह्य चिह्न निकाल डालने को कहा होगा। मुसलमान गवाहों ने सही तौर पर उनका धर्मान्तर होना स्वीकार नहीं किया है। बहुत से मुसलमानों ने अपने हिन्दू पड़ोसी को बचाने के लिए झूठमूठ भीड़ के लोगों से यह भी कह दिया था कि वे मुसलमान हो गये हैं।

ऐसे धर्मान्तरों को सीमा प्रान्त में भी धर्मान्तर नहीं माना गया है और वे वास्तविक धर्मान्तर हैं भी नहीं। सैयद पीर कमाल जीलानी और मौलवी अहमद गुल दोनों ने यह कहा था कि धर्मान्तर करने की सच्ची इच्छा होने पर भी जबतक अमन के दिनों में और किसी प्रकार का खतरा न हो उस समय फिर वह दुहराई न जाय तबतक उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

बेगुनाह और बिना हथियार वाले दो शख्स कत्ल कर दिये गये थे। पीर साहब को इसकी जो खबर मिली उसपर से यह मालूम होता है कि वे इस्लाम कुबूल नहीं करते थे इसलिए उन्हें कत्ल किया गया था। यह बड़े ही दुःख की बात थी और इस काम के करनेवालों की जितनी भी निंदा की जाय थोड़ी है। विवाहित स्त्रियों और दूसरों के धर्मान्तर के सामान्य प्रश्न के संबंध में अधिकारी मुस्लिम उलेमा और दूसरे नेताओं से ही निर्णय करा लेना चाहिए। मुझे इसमें अपनी राय देने की जरूरत नहीं है। लेकिन इसका तो सब लोग स्वीकार करते हैं कि इस दंगे के दिनों में विवाहित या दूसरी किसी भी स्त्री ने जान कर या जबरदस्ती से इस्लाम को अंगीकार नहीं किया है। कोहाट के मुसलमानों से, जिनकी संख्या बहुत बड़ी है, मेरी अर्ज है कि वे अपने हिन्दू भाइयों से मेल कर लें। मैं हिन्दू भाइयों से भी यही अर्ज करूंगा कि वे भी अपने मुसलमान पड़ोसियों का साथ दें और उन्हें यह दिखा दें कि वे उन्हें अपने सच्चे मित्र और पड़ोसी मानते हैं।

जैसा कि मैं पहले कह गया हूं यह एकतरफा मामला न था। मैं हिन्दू और मुसलमान दोनों का कुसूर निकालता हूं। फिर भी मुसलमान होने के कारण मैं मुसलमानों का ही अधिक दोष निकालूंगा। वे संख्या में और ताकत में भी हिन्दुओं से अधिक हैं। उन्हें कितने ही क्यों न चिढ़ाये गये हों उन्हें तो सब्र रखना चाहिए था और सब बरदाश्त कर लेना चाहिए था। मुझे अफसोस है कि उन्होंने इस कमबख्त लड़ाई के जोश में आकर ऐसा नहीं किया।

आखिर मुझे यह कहना चाहिए कि इस मामले में महात्माजी और मेरे जैसे निष्पक्ष शख्सों के फैसले में भी जब इतना फर्क पड़ता है तो फिर दूसरे लोग इससे अधिक क्या कर सकेंगे। इसलिए हमें तो काजी बनने के बजाय सिर्फ सुलह के सिपाही बनना चाहिए।

शौकतअली

महासभा के नये सदस्य

अबतक मिले अंकों का ब्यौरा

		अ	ब	कुल
१	गुजरात	२०९५	१०१	२१९६
२	संयुक्त प्रान्त	१०४७	३५०	१३९६*
३	बंगाल	७५८	४६७	१२२६
४	बिहार	६०५	२४५	८५०
५	तामिलनाड	४७२	४६४	९३६
६	आंध्र	५००	२२०	७२०
७	पंजाब	तफसील नहीं		६३३ *
८	करनाटक	२८३	४५१	७३४
९	मध्यप्रान्त (हिन्दी)	तफसील नहीं		५०० *
१०	महाराष्ट्र	२३०	२३८	४६८
११	बंबई	२३१	१२३	३५४
१२	सिंध	७५	२०१	२७६
१३	देहली	८३	६२	१४५
१४	आसाम	११३	१	११४
१५	उत्कल	७३	३३	१०६
१६	मध्यप्रान्त (मराठी)	२९	२१	५०
१७	बर्मा	२६	३	२९
१८	अजमेर	२	१५	१७
१९	बरार	तफसील नहीं		१२
		७३९८	३११७	१०३०२

* इसमें वे सदस्य भी शामिल हैं जिनके वर्ग की सूचना नहीं मिली है।

२१ मार्च के 'हिन्दू' में आंध्र और तामिलनाड के क्रमशः १२०० और १००० अंक लिखे पाये गये हैं। लेकिन अबतक हमें इनकी खबर नहीं मिली है इसलिए वे यहां नहीं दिये गये हैं। सब प्रान्तों से प्रार्थना की जाती है वे बराबर अपनी रिपोर्ट भेजते रहें।

क्षमा-याचना

कोहाट संबंधी गांधीजी और मौलाना शौकतअली के बयान कुछ देर से मिले इसलिए अनुवाद कर उन्हें छापने में इस अंक को एक दिन का विलंब हुआ है। आशा है पाठक इसके लिए हमें क्षमा करेंगे।

—उपसंपादक

सुवर्ण-बाग

[illegible] का ... ४)
एक प्रति का ... -)॥
विदेशों के लिए ... ५)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक [illegible]

मुद्रक-प्रकाशक
वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, चैत्र सुदी ९, संवत् १९८१
गुरुवार, २ अप्रैल, १९२५ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

आगामी सप्ताह

६ अप्रैल और १३ अप्रैल को कहीं भूल सकते हैं। सन १९१९ की ६ अप्रैल को प्रजा में नवजीवन का संचार हुआ। १३ अप्रैल की प्रजा ने नरमेध किया और उसमें सैकड़ों बलिदान हो गये। यह सच है कि बलिदान जबरदस्ती और अनायास हुआ था फिरभी वह बलिदान तो था ही। जलियांवाला बाग की कत्ल में हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों का खून एक हुआ था। जन्म से जो अलग अलग मालूम होते हैं वे मृत्यु के समय एक हो गये थे। हिन्दू-मुसल्मान लड़ेंगे भिडेंगे, मरेंगेमारेंगे लेकिन ऐसे झगड़े तो भुला दिये जावेंगे। पर जलियांवाला बाग का माजरा कहीं भुला दिया जा सकता है ? वह तो जबतक हिन्दुस्तान है सदा ताजा ही बना रहेगा।

लेकिन तब से साबरमती में से कितना ही पानी बह गया है। राष्ट्र ने भी बहुत सी धूपछांह देख ली हैं। आज हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य एक स्वप्न सा दिखाई दे रहा है। मैं देखता हूं कि आज दोनों लड़ने की तैयारियां कर रहे हैं। हरएक कौम का दावा है कि वह सिर्फ आत्मरक्षा के लिए ही तैयारी कर रही है। अंशतः दोनों कौमें सच्ची भी हैं। यदि वे यह मानें कि उन्हें लड़ना ही चाहिए तो वे बहादुरी से लड़ें और पुलिस और अदालत की तरफ से जो रक्षा उन्हें मिल सकती है उससे नफरत करें।

यदि वे यह कर सकेंगे तो १३ अप्रैल से हमें जो सबक मिला है वह व्यर्थ न होगा। यदि हमें गुलाम नहीं बने रहना है तो हमें ब्रिटिश बन्दूकों पर और अदालत के अनिश्चित न्याय पर भरोसा रखना भी छोड़ देना होगा। स्वराज के लिए उत्तम शिक्षा तो यही है कि ऐन मौके पर भी इन दोनों पर विश्वास न रक्खा जाय। सर अब्दुर रहमान की मंसूखी, नमक पर कर लगाना, आर्डिनन्स बिल का पास कराना, इन सब कामों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ब्रिटिश राज्यकर्तागण तो हमारा विरोध होने पर भी हम पर राज्य करना चाहते हैं। सच बात तो यह है कि वे अपने कार्यों के [illegible] मुमकिन हो स[illegible] हमसे यह कहते हैं [illegible] मदद के बि[illegible] करेंगे। क्या हम [illegible] हिम्म[illegible] उनकी मदद [illegible] कर [illegible]

हमने यह तो देख लिया है कि जब हम लड़ते झगड़ते नहीं हैं, तब तो हम उनकी मदद के बिना ही बचा लेते हैं। कुछ और अधिक हिम्मत करें तो लड़ने झगड़ने पर भी हम उनकी मदद के बिना बचा ले सकेंगे। सिर को बचाने के लिए पेट पर चलने के बजाय तो टूटे सिर पर पट्टी बांध कर सीधा खड़ा रहना ही अधिक अच्छा है। सरकार की दखल के बिना यदि हम लड़ लेंगे तो भी उसमें से मैं देख सकता हूं कि हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य हो सकेगा। लेकिन यदि ब्रिटिश सिपाहियों की छाया में रह कर हम लड़ेंगे और अदालत में झूठी कसमें खा कर गवाही देंगे तो मैं सच्चे ऐक्य से निराश हो जाऊंगा। हमें स्वराज हासिल करने के पहले मर्द मनुष्य बनना चाहिए।

इस साल हम लोगों को क्या करना चाहिए ? हड़ताल के दिन चले गये। अब उसकी कुछ भी कीमत नहीं रही है और अब प्रजा में उतना उत्साह भी नहीं है। जबतक हिन्दू-मुसलमान के दिलों में परस्पर वैमनस्य बना रहेगा तबतक ऐसी हड़ताल हमें कुछ भी शोभा न देगी। लेकिन जो लोग देश-सेवा को धर्म का अंग मानते हैं, शांत और शुद्ध साधनों द्वारा स्वराज प्राप्त करना चाहते हैं वे उस रोज आधा उपवास अथवा रोजा अवश्य रक्खें। वे उस रोज ध्यानमग्न होकर ईश्वर की आराधना करें और अपनी चित्तशुद्धि करें। उन्हें महासभा के वर्तमान कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

ये तीन कार्य मुख्य हैं लेकिन वे तीनों एक साथ न हो सकेंगे। इसलिए मेरी तो यह सूचना है कि कातनेवालों को इस सप्ताह में अधिक कातना चाहिए, जिन्होंने अबतक विदेशी कपड़ों का त्याग नहीं किया है उन्हें उसका त्याग करना चाहिए और दूसरों को उसका त्याग करने के लिए समझाना चाहिए। अलावा इसके उस सप्ताह में खादी का विशेष प्रचार करना चाहिए, यहांतक कि महासभा के किसी भी खादी भंडार में खादी पड़ी न रहे। सब लोगों को एक दूसरे के प्रति अपने अपने दिल साफ कर देना चाहिए और प्रत्येक हिन्दू को इस सप्ताह के दरम्यान कुछ न कुछ [illegible] जिनसे कुछभी न बन पड़े वे आखिर [illegible] सेवा के लिए [illegible] कुछ धन अवश्य दें।

[illegible] कोई [illegible] कि [illegible] इसके कार्य से स्वराज का क्या काम [illegible] तो प्रश्नकर्ता ने पूरा विचार नहीं किया है। विचार करने

पर मालूम होगा कि आज इसके सिवा स्वराज के लिए दूसरा कोई कार्य नहीं है। इतने ही कार्य के करने से स्वराज शायद न भी मिले लेकिन इसपर अमल किये बिना तो स्वराज नहीं मिलेगा, नहीं मिलेगा और नहीं मिलेगा। यदि कोई अश्रद्धालु विनोद करने के लिए कहे तीन बार 'नहीं' लिखने से क्या सिद्ध हुआ? तो उसके लिए यह उत्तर है कि तीनबार 'नहीं' लिख कर मैं साधन की योग्यता सिद्ध करना नहीं चाहता हूं लेकिन 'नहीं' को इस प्रकार तिगुना कर मैं अपनी दृढ श्रद्धा और निश्चय प्रकट करता हूं।

सच पूछो तो उपरोक्त तीन चीजों की आवश्यकता के संबंध में ऐसा प्रश्न होना ही न चाहिए। इस सप्ताह में और उसमें उत्पन्न ज्ञान और उत्साह के कारण सन् १९१९ में इन तीनों वस्तुओं ने तीव्र रूप धारण किया था और वे महासभा के आवश्यक अंग बने थे। उन दिनों में ही तो स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और अस्पृश्यतानिवारण की प्रतिज्ञा ली गई थी। उसके बाद फौरन ही यह बात समझ ली गई कि स्वदेशी के पालन में स्वदेशी का अर्थ चरखा और खादी होता है, और चरखे के प्रचार के लिए नियम बनाये गये। इसलिए जिसे हम स्वराज-प्रवृत्ति का आवश्यक अंग मानते हैं उसके संबंध में आज शंका कैसे हो सकती है?

लेकिन उस समय यदि भूल हुई हो तो? तो हमें उसे जरूर सुधारनी चाहिए। लेकिन महासभा ने उसे भूल नहीं माना है। यही नहीं उसने तो उसे उत्तेजन देने का प्रस्ताव भी किया है, इसलिए भूल की है यह कहने का अवकाश ही नहीं है।

अब रही एक बात। असहयोग गया, सविनयभंग गया, अब खादी इत्यादि को क्या करें? नहीं नाचनेवाले के लिए आंगन टेढा होता है, ऐसी ही कुछ यह दलील है। उपरोक्त वस्तुओं के बिना सविनयभंग करना असंभव है यह यदि हम समझ गये हों तो फिर यह दलील ही कैसे हो सकती है? मैं कहूं कि खादी इ० त्रिवेणी-संगम के बिना सविनय-भंग नहीं हो सकता और प्रश्न कहे कि सविनयभंग के बिना खादी इ० नहीं हो सकते तो तेली के बैल का सा अपना हाल होगा। लेकिन जो स्त्री या पुरुष ऐसी दलील में गोल नहीं फिरा करते और सूत के तार पर सीधी गति करते हैं वे ही आगे बढ सकेंगे और उस रास्ते पर चलते हुए अपना मार्ग कभी न भूलेंगे। क्योंकि सूत का तार उनका मार्गदर्शक है। उन्हें आसपास चारों ओर देखने की जरूरत नहीं रहती। इसलिए उन्हें मार्ग भूल जाने का भी डर नहीं है।

यदि उन्होंने हिन्दू-मुसल्मान ऐक्यादि का पाथेय साथ लिया होगा तो उन्हें भूख इत्यादि का दुःख होना संभव नहीं है। लेकिन यदि यह पाथेय साथ न होगा तो उपवास अर्थात उसके लिए तपश्चर्या करके उसका पाथेय तैयार करना होगा।

रास्ता तय करते हुए उन्हें मद्यपान-निषेधादि विहार दृष्टि-गोचर होंगे। उनमें वे रमण करेंगे। मद्यपीडितों का दुःख भी वे उन्हें सूत के तार का सरल मार्ग दिखा कर दूर करेंगे और प्रायश्चित करके शुद्ध बने हुए भूतकाल के मद्यपी को वे अपना साथी बनावेंगे।

रास्ते में उन्हें जीवित जैसे लेकिन मृतक के समान अस्थि-कंकाल मिलेंगे। वे उनके सूत के तार को देख कर नाच उठेंगे और उन्हें चक्र को चलाते देख कर चक्र चलाने के लिए दौडेंगे और अपने अस्थि-कंकाल में रुधिरादि भर कर, [illegible] के पाश से बच कर, स्वराजयज्ञ में अपना हिस्सा देंगे। आगामी सप्ताह में ऐसा शुभ स्वराजयज्ञ करने के लिए मेरी प्रत्येक भाई बहन से प्रार्थना है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

'संगसारी' की सजा

अहमदिया पंथ के कुछ आदमियों को जो संगसारी की सजा मिली थी उसपर मैंने एक छोटी सी टिप्पणी लिखी थी। उसपर से मुझे बहुत से पत्र मिले हैं। मैं उन सब पत्रों को तो प्रकाशित नहीं कर सकता हूं लेकिन जितने से उन पत्रों का मर्म पाठकों की समझ में आजाय उतना ही यहां देना काफी होगा। इस विषय में मौलाना अफज़अलीखां के पत्र का सार यह है—

"महासभा के प्रमुख की हैसियत से और अपनी तरफ देख कर भी अच्छा होता कि आप यह न लिखते। कुरान में किसी भी गुन्हा के लिए संगसारी की सजा नहीं फरमायी गई है। इस प्रकार जो कुरान में नहीं है आपने मान लिया है। लेकिन आपका यह कहना तो इससे भी अधिक काबिले ऐतराज है कि आपके नीति के ख्याल से जो बात अग्राह्य हो वह कुरान में या दुनिया के दूसरे सब शास्त्रों में भी क्यों न हो उसे अमानुष कार्य मान कर सबको उसकी निन्दा करनी चाहिए। कुरान में व्यभिचार के लिए फटके लगाने की और चोरी करनेवालों के अंग-विच्छेद करने की सजा फरमायी गई है। क्योंकि ये सजायें अन्तरात्मा को आघात पहुंचानेवाली है इसलिए उसका यही अर्थ निकलता है, कि कुरान जिसे इस्लामी कानून का आधार माना जाता है, उसे एक गलतियों का खजाना ही मान लेना चाहिए। इस्लाम के किसी हितशत्रु ने ऐसी टीका की होती तो मैं उसकी कुछ भी परवाह न करता। लेकिन आपकी बात और है। आप महासभा के प्रमुख हैं इसलिए तीस करोड प्रजा आपकी तरफ से अपनी मान्यताओं के प्रति आदर की आशा रखती है। महात्मा गांधी के नाम से और खिलाफत की मदद करने के कारण आज करोडों मुसल्मान आपको अपना मार्गदर्शक और सच्चा मित्र मानते हैं। ऐसी हालत में यह बडे ही ताज्जुब की बात है कि शरीयत में जिस सजा का उल्लेख किया गया है उसकी आप इस प्रकार निन्दा करें। मुसल्मान मजहबी बातों में बडा ही नाजुक दिल रखते हैं। वे आपकी ऐसी बातों को अपनी मजहबी बातों में व्यर्थ ही हस्तक्षेप करना मानेंगे। आप खुद जो चाहें मानने के लिए स्वतंत्र हैं लेकिन इस प्रकार आपका अपना अभिप्राय जाहिर करना कि जो इस्लाम के स्मृतिकारों के जैसा मालूम होता है, आपकी हालत को बडी नाजुक बना देता है। इस्लामी आलम में आपकी जो इज्जत है उसे रक्षित रखने के ख्याल से ही मैं आपको यह लिख रहा हूं। कुरान शरीफ, पैगम्बरसाहब का व्यवहार और इस्लामी आलम का एकमत अभिप्राय, यह तीनों मिलकर शरीअत बनाती है। कोई भी सच्चा मुसल्मान उसके हुक्म के खिलाफ कुछ भी न कर सकेगा। शरीयत के मुताबिक यह स्पष्ट है कि मुर्तिदों को मौत की सजा होनी चाहिए। कुरान शरीफ में इस बारे में कुछ नहीं लिखा है फिर भी इस्लाम के उपरोक्त दूसरे दो अर्थों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।"

श्री सफदर सियालकोट से इस प्रकार लिखते हैं।

"आप सच कहते हैं कि कुरान में 'रजम' (पत्थर मारकर प्राण लेने) की सजा कहीं भी नहीं फरमायी गई है। कुरान में यह शब्द सिर्फ दो मरतबा आता है (सुरा हुद आयत: ९१, सुरा [illegible] आयत: [illegible])। उसमें पुरानी प्रथा का उल्लेख है कुरान की आज्ञा नहीं है। [illegible] यह कहना बिलकुल सही है कि आज की दुनिया की नैतिक [illegible] में यह जंगली [illegible] असह्य है। और यह कह कर आप कुरान की शिक्षा के खिलाफ या मुसल्मानों के दिलों को दुखाने लायक कोई बात नहीं कहते हैं। [illegible] कर है कि मौ०

जफरअली खां का 'रजम' को इस्लामी शरीयत मानना सही नहीं है। कुरान इस बारे में कुछ नहीं कहती है और सब तल्माओं का अभिप्राय भी एक नहीं है।"

वोकिंग के मुस्लिम मिशन के नेता ख्वाजा कमालुद्दीन लिखते हैं:—

"कुरान इस दुनिया में मुर्तिदों को किसी भी प्रकार की सजा नहीं फरमाती है। उसमें मजहबी बातों के लिए अंतरात्मा की संपूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है और जबरदस्ती की मना की गई है। खुद पैगम्बर साहब के जमाने में भी मुर्तिदों के अनेक दृष्टांत पाये गये हैं। लेकिन कहीं भी इस कारण उन्हें सजा नहीं दी गई थी। किसी भी प्रकार का व्यवहार या परंपरा कुरान से अधिक नहीं हो सकती है। स्वयं पैगम्बर साहब ने कहा था कि मेरे नाम पर बहुत सी बातें चलेंगी लेकिन यदि वे कुरान के मुताबिक हों तो उन्हें मेरी मानना वरना वे मेरी नहीं हैं यही मान लेना। पैगम्बर साहब के व्यवहार में से सत्य को ढूंढ निकालने की यही एक कुंजी है।"

मुझे यह जान कर बडी खुशी होती है कि 'कुरान' में संगसारी की सजा नहीं है। यह मैंने नहीं कहा था कि निश्चय ही 'कुरान' में ऐसी सजा लिखी है। मैंने कहा था "मैंने सुना है कि संगसारी इत्यादि" लेकिन मौलाना जफरअलीखां यद्यपि यह कहते हैं कि 'कुरान' में ऐसी सजा नहीं लिखी है फिर भी वे बडे उत्साह के साथ उसका समर्थन करते हैं और इस्लाम में उसका स्थान है यह साबित करने के लिए दलीलें पेश करते हैं। चाहे पैगम्बर के व्यवहार से किसी कार्य का समर्थन किया जाता हो या इस्लामी दुनिया के सामुदायिक निर्णय से किया जाता हो, लेकिन जबतक वह इस्लाम का एक अंग माना जाता है तबतक मेरे जैसे बाहर के आदमी के लिए तो उसमें कोई फर्क नहीं हो सकता है। मैं अपने मुसल्मान मित्रों से यह चाहता हूं कि वे, ऐसे कार्यों की जिसे संसार के बुद्धिमान पुरुष दयाधर्म के खिलाफ मानते हैं, किसी भी प्रकार की हिचपिचाहट के बिना निन्दा करेंगे, फिर चाहे उसका मूल कहीं भी क्यों न हो। इसलिए मुझे यह देखकर बडी खुशी होती है कि मौलाना सफदर और ख्वाजा कमालुद्दीन संगसारी की सजा की सब प्रकार से निन्दा करते हैं और मुर्तिदों को मौत की सजा देने के कार्य की भी निन्दा करते हैं। मैं तो यह चाहता हूं कि वे मेरे साथ यह भी कहें कि यदि संगसारी की सजा पैगम्बर के व्यवहार से अथवा इस्लामी दुनिया के सामुदायिक निर्णय से साबित भी हो सके तो भी वह उनके मनुष्यत्व के ख्याल के खिलाफ होने के कारण वे उसका समर्थन न कर सकेंगे। मैं मौलानासाहब को 'इस्लामी दुनिया में मेरी इज्जत' के बारे में चिन्ता करने से बरी किये देता हूं। इस्लाम के नाम से जिन कार्यों का समर्थन किया जाता है उनके बारे में यदि मैं अपनी प्रामाणिक राय जाहिर करूं और वह इज्जत नष्ट हो जाय तो फिर वह एक दिन की खरीद के लायक भी नहीं है। लेकिन सच बात तो यह है कि मुझे इज्जत की दरकार नहीं है। यह तो राजा महाराजा के दरबार की वस्तु है। मैं तो जैसा हिन्दुओं का सेवक हूं वैसा ही मुसल्मान, पारसी, यहूदी, इत्यादि का भी सेवक हूं। सेवक को तो प्रेम की दरकार होती है, इज्जत की नहीं। और जबतक मैं निष्ठावान् सेवक बना रहूंगा तबतक वह प्रेम तो मुझे मिलेगा ही। मैं मौलाना से मेरी इज्जत के बजाय इस्लाम की इज्जत की चिन्ता करने के लिए कहूंगा और उसमें मैं उनका हाथ भी बटाऊंगा। मेरी राय में तो जिस कार्य का किसी प्रकार भी समर्थन नहीं हो सकता है उसका समर्थन करके उन्होंने अनजान में ही उसकी इज्जत को बहुत कुछ घटा दिया है। कितनी भी दलीलें क्यों न की जाय, किसी भी दोष के लिए संगसारी की सजा देने के कार्य का समर्थन नहीं हो सकता है और धर्मत्याग के गुन्हा के लिए तो संगसारी करके या किसी दूसरे प्रकार से भी मौत की सजा देने का समर्थन नहीं किया जा सकता है।

मेरी स्थिति तो बिल्कुल स्पष्ट है। इस्लाम के संबंध में लिखते समय मैं उसकी इज्जत का उतना ही ख्याल रखता हूं जितना कि मैं हिन्दूधर्म की इज्जत का ख्याल रखता हूं। दोनों का अर्थ करने की मेरी पद्धति भी एक है। शास्त्र में यह बात लिखी है यह प्रमाण लेकर मैं हिन्दूधर्म की किसी भी बात का समर्थन नहीं करता हूं। उसी प्रकार 'कुरान' में लिखी होने के कारण किसी भी बात का समर्थन मैं नहीं कर सकता। सब बातों की विवेक दृष्टि से आलोचना होनी चाहिए। लोगों की विवेकबुद्धि को इस्लाम जंचता है तभी वह उन्हें पसंद आता है। और कालान्तर में यह मालूम हो जायगा कि दूसरे किसी तरीके से उसकी आलोचना करने पर बडी मुश्किलें पेश आयंगी। बेशक संसार में ऐसे पदार्थ भी हैं जो बुद्धि से परे हैं। यह बात नहीं कि हम बुद्धि की कसौटी पर उनकी परीक्षा करना नहीं चाहते हैं लेकिन वे स्वयं ही उसकी मर्यादा में नहीं आते हैं। वे अपने सहज रूप के कारण ही बुद्धि को थका देते हैं। ईश्वर के अस्तित्व का रहस्य ऐसा ही है। वह बुद्धि के खिलाफ नहीं है, उसके परे है। लेकिन ईमान रखने की और कसम खाने की बात जैसे बुद्धि से परे नहीं हो सकती है वैसे ही संगसारी भी बुद्धि से परे नहीं हो सकती है। धर्मत्याग का व्यापक अर्थ लिया जाय तो उसके माने "अपने धर्म का त्याग होता है"। क्या यह बहुत बडा गुन्हा है कि इसकी सजा मौत होनी चाहिए? यदि है, तो हिन्दू जो मुसल्मान हो गया है वह फिर यदि हिन्दूधर्म में आ जाय तो उसका यह कार्य वैसा ही एक गुन्हा होगा जिसकी कि बहुत बडी सजा होनी चाहिए। मौलाना साहब सूचना करते हैं कि मैं महासभा का प्रमुख हूं और मुसल्मानों का दोस्त हूं इसलिए मुझे इस्लाम के किसी भी कार्य पर टीका नहीं करनी चाहिए और 'कुरान' के बारे में कुछ न कहना चाहिए। लेकिन मुझे डर है मैं इसका स्वीकार न कर सकूंगा। यदि मैं इस बहस पर अपना निर्णय दबा दूं और उसे प्रकट न करूं तो मैं इन दोनों प्रकार के मान के लिए नालायक साबित हूंगा। यह संगसारी का मामला ऐसा है कि इसके साथ तमाम प्रजाकीय कार्यकर्ताओं का संबंध है। यह मामला सामाजिक नीति और सामान्य मनुष्यत्व के साथ संबंध रखता है, जो तमाम सत्य-धर्मों का आधार है।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सिक्खों का बलिदान

अकालियों की स्थिति अब भी अनिश्चित मालूम होती है। सेन्ट्रल सिक्ख लीग के प्रमुख की हैसियत से सरदार मंगलसिंहजी ने जो ब्यौरा प्रकाशित किया है उसमें सिक्खों के बलिदान का हिसाब इस प्रकार दिया गया है:-"३०,००० पकडे गये, ४०० मारे गये या मर गये, २००० जख्मी हुए, पेंशन याफ्ता फौजी सिपाहियों के बन्द किये गये पेन्शनों का हिसाब लगा कर कुल १५ लाख रुपयों का जुरमाना वसूल किया गया।"

यदि यह अंक साबित किये जा सकते हैं तो इसपर से सिक्खों के शौर्य और बलिदान की जितनी भी तारीफ की जाय थोडी है। और इससे उस सरकार का जो उनके दुःखों के प्रति इतनी बेदरकार रही है अपयश भी उतना ही होगा। (यं. इं.)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र सुदी ९, संवत १९८१

अखिल भारतीय गोरक्षा मंडळ

पाठकों को यह याद होगा कि बेलगांव में जो अनेक परिषदें हुई थीं उनमें एक गो-रक्षा परिषद् भी थी। अनिच्छा होते हुए भी प्रेम के वश होकर मैंने उसका प्रमुख-पद स्वीकार किया था। मेरी यह मान्यता है कि इस युग में हिन्दू-धर्म के माननेवालों का गो-रक्षा एक आवश्यक कर्तव्य है। मेरी यह भी नम्र मान्यता है कि अपने तरीकों से मैं इस कार्य को वर्षों से करता चला आया हूं। इस बात को तो सारा हिन्दुस्तान जानता है कि मैं जो जानबूझ कर मुसल्मानों की मैत्री चाहता हूं उसका गोरक्षा भी एक प्रबल कारण है। लेकिन मुसल्मानों के हाथ से गाय को बचाना मेरी दृष्टि में गो-रक्षा का सबसे बड़ा अंग नहीं है। उसका सबसे बड़ा अंग तो हिन्दुओं से गाय की रक्षा कराना ही है। गो-रक्षा की मेरी व्याख्या में गाय बैलों पर किये जानेवाले जुल्मों से उनकी रक्षा करना भी शामिल है।

लेकिन इस महान् रक्षा के कार्य में मैंने अभीतक सीधा कार्य बहुत ही कम किया है। ऐसा कार्य करने की योग्यता प्राप्त करने के लिए मैंने तपश्चर्या की है लेकिन वैसी योग्यता अभी प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए प्रमुख बनने में मुझे संकोच होता था, फिर भी प्रमुख बना। परिषद् में एक यह भी प्रस्ताव पास हुआ था कि एक स्थायी मण्डल स्थापित किया जाय।

इस कार्य में भी तो मुझे योग देना जरूरी था। इसलिए गत जनवरी मास के आखिरी सप्ताह में परिषद्-नियुक्त समिति की बैठक हुई। उसमें अखिल-भारतवर्षीय गो-रक्षा-मण्डल स्थापित करने का निश्चय हुआ। उसके संगठन के नियम बनाये गये और उसे समिति ने मंजूर किये। यह मंडल इस हद तक पहुंचा इसका मुख्य कारण वाई के प्रख्यात गो-सेवक चोंडे महाराज हैं। उन्हींकी इच्छा और साहस से मैं खींचा चला जा रहा हूं। दादासाहब करंदीकर, लाला लाजपतराय, बाबू भगवानदास, श्री केलकर, डाक्टर मुंजे, स्वामी श्रद्धानन्द इत्यादि इस समिति के सदस्य हैं। परन्तु भारत भूषण मालवीयजी के बिना इस मंडल के अस्तित्व को मैं असंभव मानता हूं। इसलिए मैंने यह सूचना की कि उसे जाहिर करने के पहले उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेना आवश्यक है। सबने इसका स्वीकार किया और उन्हें उसके विधि-विधान को दिखाने का काम मेरे जिम्मे हुआ। उन्हें वह दिखाया गया और उन्होंने उसे पसंद किया है।

लेकिन इसे प्रकाशित करने में मुझे संकोच होता है क्योंकि उसका प्रमुख-पद अभीतक मेरे पास ही है। मूल संस्थापकों की इच्छा उसे मेरे ही पास रखने की है। मुझे अपनी योग्यता के बारे में हमेशा शंका बनी रहती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक इस महान् कार्य में अगुआ गिने जानेवाले हिन्दुओं की सम्मति न होगी तबतक इसमें शोभास्पद प्रगति न हो सकेगी। मुझे अपने दिल में हमेशा यह भय बना रहता है कि कहीं मेरे अस्पृश्यता विषयक विचारों के कारण मेरा प्रमुख होना इसके लिए हानिकारक साबित न हो। मैंने अपनी इस भीति को चोंडे बुवा के सामने प्रकाशित की। उनका मानना यह है कि मेरे अस्पृश्यता विषयक विचारों को इस कार्य से कुछ भी संबंध नहीं है और यदि है यह मानकर कोई उससे अलग भी रहे तो यह जोखिम उठाकर भी इस कार्य को आगे बढ़ाना धर्म है।

यह धर्म है या नहीं मैं नहीं जानता। लेकिन समिति ने जिस विधिविधान का स्वीकार किया है उसे मैं प्रजा के समक्ष रखता हूं।

द्रौपदी के सहायक! मेरी सहाय करना। तू ही मुझ अनाथ का नाथ बनना। यह तू ही जानता है कि मुझे गोरक्षा से कितना प्रेम है। यदि यह प्रेम शुद्ध हो तो तू इस अयोग्य सेवक को योग्य बना लेना। तेरी डाली हुई अनेक उपाधियों को मैं अपने सिर लिए बैठा हूं। उसमें यदि यह एक और बढ़ानी हो तो बढ़ा देना। मेरी शर्म को तू ही ढंक सकता है।

पाठक, मेरा दर्द तुम नहीं समझोगे। प्रातः काल में मैं यह लिख रहा हूं और लिखते हुए मेरी कलम कांप रही है। चक्षु आर्द्र हो रहे हैं। कल ही कन्या कुमारी के दर्शन कर आया हूं। जो विचार हृदय में उमड़ रहे हैं उन्हें यदि समय मिला तो तुम्हारे सामने रक्खूंगा। जिस प्रकार एक बालक खूब खाना चाहता है लेकिन खाने की शक्ति न होने के कारण आंख से आंसू बहाता है; मेरी स्थिति कुछ वैसी ही है। मैं बड़ा ही लोभी हूं। मैं धर्म का विजय देखने और दिखाने के लिए बड़ा अधीर हो रहा हूं। उसके लिए आवश्यक कार्य करने की मुझे बड़ी अभिलाषा रहती है। मुझे हिन्द-स्वराज्य भी इसीलिए चाहिए। गोरक्षा, चरखा, हिन्दू-मुसल्मान-ऐक्य, अस्पृश्यता-निवारण, और मद्यपान-निषेध सब इसीलिए चाहिए। इसमें से मैं क्या करूं और क्या न करूं? इसी प्रकार इस क्षुब्ध समुद्र में मेरी नैया डोल रही है।

एक समय समुद्र में एक बड़ा भयंकर तूफान आया था। सब यात्री व्याकुल हो गये थे। सबने नरसिंह मेहता के स्वामी की शरण ली। मुसल्मान अल्लाह पुकारने लगे। हिन्दुओं ने राम राम कहना शुरू किया। पारसी भी अपना पाठ करने लगे। मैंने सभीके चेहरों पर उदासीनता देखी। तूफान बन्द हो गया और सबके सब खुश हो गये। खुश होने पर ईश्वर को भी भूल गये और ऐसे ही दिखने लगे जैसे कभी तूफान आया ही न था।

मेरी स्थिति बड़ी विचित्र है। मैं तो सदा तूफान ही में रहता हूं और इसलिए सीतापति को नहीं भूल सकता। लेकिन जब कभी बहुत बड़े तूफान का अनुभव करता हूं तब तो मैं मेरे उन साथियों से भी अधिक घबड़ा जाता हूं और "पाहिमाम् पाहिमाम्" पुकार उठता हूं। इतनी प्रस्तावना लिखने के बाद मैं गोमाता का स्मरण करके, परमात्मा का ध्यान करके, इस मण्डल के विधिविधान को प्रजा के समक्ष पेश करता हूं।

उद्देश

हिन्दू-जाति का धर्म गो-रक्षा होते हुए भी हिन्दू गो-रक्षा-पालन में शिथिल हो गये हैं और भारत की गायें और उनकी प्रजा दुर्बल होती जाती है और गो-वध बढ़ता जाता है, इसलिए गोरक्षा धर्म का भलीभांति पालन करने के लिए यह अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा-मंडल स्थापित किया जाता है।

इस मंडल का उद्देश सर्व धार्मिक प्रकारों से गोरक्षा करना होगा।

गोरक्षा का अर्थ गौ और उसकी प्रजा को निर्दयता से और वध से बचाना है। जिन जातियों में गो-वध अधर्म नहीं माना जाता है या गो-वध की आवश्यकता मानी जाती है उनपर किसी प्रकार जबरदस्ती करना इस मण्डल की नीति से विरुद्ध होगा।

साधन

निम्न लिखित साधनों के द्वारा मण्डल अपना उद्देश सफल करने की कोशिश करेगा ।

१ गाय बैल इत्यादि को जो कोई कष्ट देते हों तो उन्हें प्रेमभाव से समझाना और समझाने के लिए लेख लिखना, प्रचारक भेजना, व्याख्यान देना इत्यादि ।

२ जिनके गाय बैल बीमार या अशक्त हो जायं और उनका पालन करने के लिए वे असमर्थ हों तो उनसे जानवरों को ले लेना ।

३ मौजूदा पिंजरापोलें और गौशालाओं की व्यवस्था का निरीक्षण करना, उनकी सुव्यवस्था का प्रबन्ध करने में व्यवस्थापकों को सहाय देना, नई पिंजरापोलें और गौशालायें नियत करना, गौशाला और पिंजरापोलों के मार्फत या दूसरे रास्तों से आदर्श पशु रखना और अच्छी गौवें रखकर सस्ते दूध का प्रचार करना ।

४ मृत जानवरों के लिये चमारखाना रखना और उसके मार्फत दुर्बल जानवरों का हिन्दुस्तान के बाहर भेजा जाना रोकना ।

५ चारित्रवान् गो-सेवकों को शिष्यवृत्ति देकर गो-सेवा के लिए तैयार करना ।

६ गोचरादि का नाश होता जाता है इसलिए उसके कारणों का शोध करना और उससे जो हानि लाभ होते हों उसकी तलाश करना ।

७ बैलों को खस्सी करने की आवश्यकता है या नहीं इसका शोध करना, क्योंकि खस्सी करने की क्रिया में निर्दयता है । और खस्सी करना आवश्यक और उपयुक्त माना जाय तो उस क्रिया के करने का कोई निर्दोष उपाय है या नहीं उसकी तलाश करना । आवश्यक हो तो इस क्रिया को सुधारणा करने के उपाय लेना ।

८ मण्डल के कार्यों के लिए द्रव्य इकट्ठा करना और,

९ गोरक्षा के लिए दूसरे साधन जो आवश्यक या योग्य माने जायं उनका उपयोग करना ।

सदस्य

अठारह वर्ष की उम्र के ऊपर के जो कोई स्त्री या पुरुष इस मंडल के उद्देश का स्वीकार करे और

१ प्रतिवर्ष ५ रुपया दे

२ या प्रतिमास इतने समय तक चरखा कांते कि जिससे प्रतिमास २००० गज सूत इस मंडल को दे सके

३ या इस मण्डल के लिए हमेशा एक घण्टा मण्डल का पसंद किया हुआ कार्य करे, वह मण्डल का सदस्य माना जायगा । जो सदस्य माहवार २००० गज सूत कातेगा उसको मण्डल की तरफ से रुई दी जायगी ।

व्यवस्था

इस मण्डल का सभापति वह होगा जो सदस्यों की बहुमति से चुना जायगा । सभापति का प्रतिवर्ष चुनाव होगा । इस मण्डल के मंत्री और खजानची का चुनाव सभापति करेगा ।

सदस्यों में से ५ सदस्यों की एक समिति होगी जिसका नाम कार्यवाहक समिति रक्खा जायगा ।

सदस्यों की सामान्य सभा कम से कम प्रतिवर्ष एक मरतबा होगी और उसकी जिम्मेवारी सभापति के ऊपर रहेगी ।

खजानची मण्डल के हिसाब के लिए जिम्मेवार रहेंगे । एक हजार रुपये से ज्यादह जितना भी रुपया होगा खजानची की पसंद की हुई बैंक में रक्खा जायगा ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

सुवर्ण-बाग

त्रावणकोर एक प्रान्त नहीं है बल्कि एक बड़े शहर के समान है । उसके नागरिक बंबई की तरह बड़े बड़े मकानों में एक दूसरे की भींत से भींत सटा कर नहीं रहते है लेकिन छोटे घास के छप्परवाले सुन्दर मकानों में एक एक माइल या उससे कुछ कम दूर अपने अपने खेतों से या बागीचों से घिरे हुए रहते हैं । मलबार या उसके आसपास केरल प्रान्त के बाहर ऐसी स्थिति कहीं भी मेरे देखने में नहीं आयी । त्रावणकोर एक सुन्दर बागीचा या वाडी है । उसमें नारियल के, केले के, काली मिरच के और आम के पेड दिखाई देते हैं । लेकिन नारियल के वृक्ष और सबको ढँक देते हैं । इन कुंजों में से हो कर मुसाफिर अपना रास्ता तय करता है । दो रास्ते से सफर हो सकती है एक नहरों और खाडियों के रास्ते से और दूसरे मोटर के रास्ते से । रेलगाडी भी है लेकिन वह बहुत ही कम हिस्से में पहुंचती है । खाडी के रास्ते का दृश्य बडा ही भव्य है । दोनों किनारे तो दिखाई देते हैं लेकिन दोनों किनारों पर जहांतक दृष्टि पहुंच सकती है, बारहो महिना एक बडा बागिचा ही दिखाई देता है । मैंने सुवर्णबाग के नाम से इसका वर्णन किया है । सूर्य के अस्त होने के पहले यदि मनुष्य खाडी के रास्ते से धीरे धीरे चला जाय और इस बागीचे के तरफ देखे तो यही मालूम होगा कि मानों पेडों पर कुंदन के ही पत्ते लगे हों । उन पत्तों में से सूर्य झांकता हुआ मालूम होता है । वह सोने के चलते हुए पहाड के समान दिखाई देता है । उसे देख कर और ईश्वर की लीला की स्तुति करते हुए मनुष्य थकता ही नहीं । उसे चित्रकार चित्रित भी नहीं कर सकता है । जो दृश्य क्षण क्षण में बदलता है और क्षण क्षण में सौन्दर्य में बढता जाता है उसे कौन चित्रित कर सकता है ? इस कृति के सामने मनुष्य की कृति तुच्छ मालूम होती है । और इस दृश्य को लाखों मनुष्य बिना पैसे देख सकते हैं ।

त्रावणकोर और आसाम के दृश्य देखने बाद मुझे यह महसूस होने लगा है कि सृष्टि सौन्दर्य देखने के लिए तो हिन्दुस्तानियों को हिन्द के बाहर जाने की कोई जरूरत ही नहीं है । और हवा के लिए तो हिमालय, नीलगिरी, आबु इत्यादि पहाड हिन्दुस्तान में पडे हुए है । ऐसे सुन्दर देश में जहांपर जिसे जैसी आबहवा चाहिए वैसी यदि मिल सकती है तो फिर मनुष्यों को संतोष क्यों न होता होगा ! अथवा स्वर्गस्थ मलबारी की भाषा में कहें तो मनुष्य जबतक अपने घर के, गली के, शहर के और देश के इतिहास भूगोल के सौन्दर्य का अवलोकन नहीं कर लेता है तबतक वह दूसरे देशों की किसी भी चीज को जानने और देखने के लिए कैसे शक्तिमान हो सकेगा ? उसके पास तबतक तुलना करने के लिए कोई माप ही नहीं हो सकता है और इसलिए वह देख कर भी कुछ नहीं देख सकता है । दरजी, मोची इत्यादि, जबतक उनके पास गज नहीं रहता है तबतक वे माप नहीं ले सकते हैं । उसी प्रकार सृष्टि सौन्दर्य इत्यादि के शौकीन भी जबतक उन्हें अपने देश की खबर न हो तबतक वह दूसरे देशों को देख कर भी नहीं देख सकते हैं । उनके ख्याल से तो सुन्दर अर्थात आंख और मुंह खुला रख कर कुछ देखना हैं और दूसरों ने जो उन देशों के बारे में लिखा है उसे बोल जाना है ।

जैसा त्रावणकोर राज्य का प्राकृतिक सौन्दर्य है वैसा ही सौन्दर्य मुझे उसके राज्य का भी मालूम हुआ । 'धर्म ही हमारी शक्ति है' यह उसका सूत्र है । वहांके रास्ते जैसे रास्ते

मैंने हिन्दुस्तान में कहीं भी नहीं देखे है । राज्य में अन्धाधुन्धी चलती मुझे न दिखाई दी । कितने ही वर्ष हो गये प्रजा को राजा की तरफ से कुछ भी दुःख नहीं पहुंचा है । राज्यतंत्र में राजा नियम के बाहर जाकर कुछ नहीं करता है । त्रावणकोर के राजा की उत्पत्ति ब्राह्मण-क्षत्री के विवाह से ही होती है । स्वर्गस्थ महाराजा धर्मचुस्त और विद्वान माने जाते थे । कितने ही वर्ष हुए त्रावणकोर में धारासभा भी है । वहां हिन्दू, मुसल्मान और ईसाई की बस्ती ही अधिक है । छयालीस लाख की बस्ती में करीब करीब आधी ईसाइयों की बस्ती है । सबको बिना किसी पक्षपात के नोकरी इत्यादि मिलती हुई दिखाई दी । प्रजा अपने विचार बिना किसी रुकावट के प्रकट कर सकते हैं । त्रावणकोर में जितना शिक्षा का प्रचार है उतना शायद ही दूसरी जगह होगा । जैसा लडकों में उसका प्रचार है वैसा ही लडकियों में भी है । राज्य की आमदनी में से एक अच्छा हिस्सा शिक्षा के लिए खर्च किया जाता है । त्रावणकोर में बिना पढे लिखे स्त्री पुरुष का मिलना मुश्किल है । उसकी राजधानी त्रिवेन्द्रम में कन्याओं के लिए एक खास कालेज है । सब शालाओं में और खाने में अस्पृश्यों को दाखिल होने में कोइ रुकावट नहीं है । इतना ही नहीं बल्कि उनके लिए दरसाल एक खास रकम खर्च की जाती है ।

महारानी

बडी महारानी जो बाल महाराजा की तरफ से राज्य चला रही हैं, और छोटी महारानी जिनके बाल महाराजा पुत्र हैं उनके दोनों के मुझे दर्शन हुए । दोनों को मिलकर मैं उनकी भव्य सादगी पर मुग्ध हो गया । दोनों ने केवल श्वेतवस्त्र धारण किये थे । आभूषण में एक बारीक मंगलमाल के सिवा और मैं कुछ न देख सका । न कुछ कान में था और न नाक में । और न मैंने उनके हाथ में हीरा या मोती का छल्ला ही देखा । एक मध्यमवर्ग की स्त्री में भी इतनी सादगी मैंने नहीं देखी है । जैसा उनका पोशाक था वैसी ही सादी उनके घर की सजावट थी । हमारे धनाढयों के मकान की सजावट के साथ यदि इन महारानियों के घर की सजावट का मुकाबला करें तो मुझे अपने धनाढयों पर दया आवेगी । हम क्यों इतने मोह में पडे हैं ?

दोनों महारानियों में मैंने आडम्बर न देखा । बाल महाराजा मुझे अत्यंत सरल स्वभाव के मालूम हुए । उनके पोशाक में बिना काछ की धोती के और कुरते के मैंने और कुछ भी न देखा । महाराजा का कोई खास चिह्न हो तो वह भी मैंने नहीं देखा । इन तीनों ने मेरे मन का हरण कर लिया । संभव है अधिक अनुभव होने पर मुझे मेरे इस वर्णन में दोष दिखाई दे । मैंने दूसरों से इसके बारे में पूछा भी । लेकिन मुझसे किसीने यह न कहा कि मुझपर जो छाप पडी है वह गलत है । मेरे कहने का यह आशय नहीं कि इतनी सादगी होने पर, सामान्य राजदरबार में जो खटपटें होती हैं वह वहां नहीं हैं । है या नहीं मैं नहीं जानता । दोष देखने का तो मेरा धर्म ही नहीं है । मैं तो गुणों का शोधक और पूजारी हूं । जहां मैं उन्हें देखता हू वे मुझे चकित और चकित कर देते हैं । मुझे गुणों का गान करना पसंद है । इस संसार में ऐसा कोई नहीं जिसमें दोष न हों । जब वे मुझे दिखाई देते हैं मैं उनका उल्लेख करता हूं और दुःखी होता हूं और दुखित हृदय से कभी कभी प्रसंग होने पर मैं उनका वर्णन भी करता हूं ।

जिसे ईश्वर ने कुछ रुपये दिये हैं उनसे मैं त्रावणकोर कोचीन की यात्रा करने की सिफारिश करता हू ।

रैयत की सादगी

जैसा राजा वैसी ही प्रजा होती है । राजा प्रजा के पोशाक में जितना साम्य मैंने यहां देखा उतना साम्य मैंने कहीं नहीं देखा था । रैयतवर्ग और राज्यवर्ग का पोशाक करीब करीब एक ही दिखाई दिया । जहां मैंने फर्क देखा वहां फर्क रैयत में था । कितने ही अधिक पढे हुए अंगरेजी पोशाक पहननेवाले और कुछ रेशमी साडी पहननेवाली औरतें मिलती हैं । लेकिन सामान्य तौरपर मलबारियों का पोशाक बिना काछ की धोती और कुरता होता है । औरतों के पोशाक में धोती तो पुरुषों की सी होती है लेकिन ऊपर के भाग को वे पछेडी से ढंक लेती हैं । उन्होंने अब कुरता और चोली भी पहनना शुरू किया है ।

इस देश में खादी का आसानी से प्रचार हो सकता है क्योंकि औरतों को न रंग चाहिए न किनारी चाहिए और न उन्हें अपने इस तरफ जैसी होती हैं वैसी लम्बी साडी या लम्बे घाघरे ही चाहिए । यह होने पर भी केलिको और नेनसुख ने सत्यानाश कर डाला है । इस हलचल के बाद ही वहां खादी का प्रवेश हुआ है । लेकिन फिर भी उस देश में कातने और बुननेवाले असंख्य हैं । कन्याकुमारी के पास नागरकोइल नामक एक गांव है वहां प्रतिसप्ताह हाट बैठती है और उसमें हाथकता सूत बिकता है ।

वायकोम सत्याग्रह

ऐसे मुल्क में जहां शिक्षा का इतना प्रचार है, जहां राजतंत्र अच्छा चल रहा है और जहां प्रजा को बहुत से हक मिले हैं वहां अस्पृश्यता ऐसे भयंकर रूप में क्यों कर रहती होगी ? इस पुराने रिवाज की यह बलिहारी है । अज्ञान को भी जब प्राचीनता की रक्षा मिलती है तब वह ज्ञान के नाम से पहचाना जाता है । यहां मैं ऐसे लोगों से भी मिला जो यह शुद्ध भाव से मानते हैं कि मन्दिरों के आसपास के रास्तों पर से ईसाई तो जा सकते हैं लेकिन अस्पृश्य नहीं जा सकता अर्थात् अस्पृश्य जाति का कोई वकील बेरीस्टर भी नहीं जा सकता है । यहां अस्पृश्यों के एक स्वामी हैं । वे सध्या स्नान इत्यादि करते हैं और अच्छी संस्कृत जानते हैं । उन्होंने संन्यासी का वेष धारण किया है । उनके हजारों शिष्य हैं । उनके पास हजारों एकड जमीन है । उन्होंने अद्वैताश्रम की स्थापना की है । यह स्वामीजी भी उन रास्ते से नहीं जा सकते हैं । यह मन्दिर भी कैसे होते हैं ! उनके आसपास ६ फीट से भी ज्यादह ऊंची दिवालें होती हैं । उनके आसपास सडकें होती हैं । उनपर से गाडी भी जा सकती है । लेकिन उनपर से कोई अस्पृश्य नहीं जा सकता । ऐसे अंधकार को, ऐसे अन्याय को दूर करने के लिए वायकोम में सत्याग्रह चल रहा है । जो इसका विरोध करते हैं उन चुस्त सनातनियों से भी मैं विनयपूर्वक मिला । उन्होंने उसके समर्थन में अनेक दलीलें पेश की लेकिन उनमें वजूद कुछ भी न था । आखिर मैंने तीन सूचनायें की जिसमें से वे किसीको भी कुबूल रख सकते थे और यदि उसका परिणाम सत्याग्रहियों के खिलाफ हुआ तो सत्याग्रह बन्द करने का भी मैंने स्वीकार कर लिया था । लेकिन ये सूचनायें भी वे कुबूल करने के लिए तैयार न हुए ।

इस प्रकार यह लडाई आज तो यहांपर अटक रही है । राज्यवर्ग के लोग मेरी सूचनाओं को पसंद करते हैं इसलिए मैं आशा रखता हूं कि थोडे ही दिनों में इस युद्ध का शुभ परिणाम दिखाई देगा । लेकिन सत्याग्रहियों के सच्चे और विनययुक्त आग्रह पर ही सब आधार रहेगा । मेरी अचल श्रद्धा यह है कि यदि वे उन मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करेंगे जिनका कि उन्होंने स्वेच्छा से स्वीकार किया है, तो उसका शुभ परिणाम आये बिना न रहेगा ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

कन्याकुमारी के दर्शन

काश्मीर से कन्याकुमारी और करांची से आसाम यह हिन्दुस्तान की सीमा है। वहीं पर हिन्दुस्तान की चारों दिशाओं का अन्त होता है। ऊपर की तरफ हिन्दुकुश का पर्वत-शिखर हिन्दमाता को सुशोभित और सुरक्षित रखता है। नीचे की तरफ अरब का समुद्र और बंगाल का उपसागर अपने शुद्ध जल से हिन्दमाता का पादप्रक्षालन करते हैं। कन्याकुमारी अर्थात शंकर के समान अवधूत परन्तु साक्षात हेमस्वरूप विभूति के साथ विवाह करने के लिए तपश्चर्या करती हुई पार्वती। हिन्दुस्तान का यह एक छोर है इसलिए तीन दिशाओं में तो हमें समुद्र ही समुद्र दिखाई पड़ता है। दो प्रकार के जल यहां मिलते हैं इसलिए दो रंग का भी कुछ आभास होता है। दक्षिण के तरफ मुख करके हम देखें तो एक ही स्थान पर खड़े रहकर बायें और दायें तरफ सूर्य के उदय और अस्त को, दोनों को हम देख सकते हैं। यह दृश्य देखने का हमें समय न था। लेकिन हम हमारी कल्पना में तो सूर्य को प्रातःकाल में ताराओं को निस्तेज कर बंगाल के महोदधि में स्नान करके उदय होते हुए और शाम को सुवर्णमय आकाश में से नीचे उतर कर पश्चिम के रत्नाकर में शयन करने के लिये जाते हुए देख सकते हैं। वहां रहनेवाले दरबारी अतिथिगृह के रक्षक ने तो आखिर सूर्यास्त के भव्य दृश्य को देखने के लिए भी हमें रुक जाने की बड़ी लालच दिखाई। लेकिन हम घोड़े चढ़ कर—नहीं मोटर पर चढ़ कर—आये थे तो कैसे रुक सकते थे? मैंने तो हिन्दमाता के पादप्रक्षालन से पवित्र हुए समुद्र के मोजों से अपने पैरों को पवित्र करके ही संतोष माना।

कैसी अद्भुत ऋषि की रचना और कैसा अद्भुत पौराणिकों का रस! यहां, जहां हिन्दुस्तान की सीमा है और जो अपनी दुनिया का एक छोर है वहीं पर ऋषियों ने कन्याकुमारी के मन्दिर की स्थापना की है और पौराणिकों ने उसमें रंग भर कर उसे सजाया है। वहां मुझे सृष्टिसौन्दर्य का रस लूटने की अभिलाषा न रही—यद्यपि वहां तो उस रस के कूंडे के कूंडे के लुटाये जा रहे थे। मुझे तो वहां धर्म के रहस्य का अमृतपान करने को मिला। जैसे ही मैंने वहांके सुन्दर घाट पर पैर रख कर समुद्र में उन्हें भिजाये ही थे कि मेरे साथवालों में से किसीने कहा कि सामने उस टेकड़ी पर जा कर विवेकानंद समाधिस्थ हुआ करते थे। यह बात सच हो या न भी हो लेकिन यह सर्वथा शक्य था। अच्छा तैरनेवाला वहांतक तैर कर जा सकता है। उस टेकडीरुपी द्वीप पर अपार शान्ति ही होनी चाहिए। समुद्र के उछलते हुए मोजों का मंद और मधुर वीणागान तो समाधि को पुष्ट करता है। इसलिए मेरी धर्मजिज्ञासा अधिक तीव्र हो गई। सीढ़ियों के नजदीक ही एक चबुतरा बना हुआ है। उसपर करीब एक सौ आदमी आसानी से बैठ सकते हैं। मुझे वहां बैठ कर गीताजी का पाठ करने की इच्छा हुई। लेकिन आखिर को मैंने उस पवित्र इच्छा को भी दबा दिया और गीता के गानेवाले की मूर्ति को हृदय में स्थान दे कर मैं शान्त हो रहा।

इस प्रकार पवित्र हो कर हम मन्दिर में गये। मैं तो अस्पृश्यता-निवारण की हिमायत करनेवाला था और मैं अपनी पहचान भंगी के नाम से देता था, इसलिए उसमें मेरा प्रवेश हो सकेगा या नहीं इसपर मुझे कुछ शंका थी। मैंने मन्दिर के अधिकारी से कह दिया कि उसकी दृष्टि में जहां मुझे जाने का अधिकार न हो वहां वह मुझे न ले जाय। मैं उसके प्रतिबंध का आदर करूंगा। उन्होंने कहा कि देवी के दर्शन तो साढेपांच बजे के बाद ही हो सकते हैं और आप लोग तो चार बजे आये हैं। लेकिन और जो कुछ है मैं आपको सब दिखा दूंगा। आपको सिर्फ देवी विराजती है वहीं ठेठ जाने के लिए प्रतिबंध होगा। लेकिन यह प्रतिबंध तो विलायत जा कर वापस आये हुए सब लोगों के लिए है। मैंने कहा 'मैं इस प्रतिबंध का खुशी से पालन करूंगा'। इतनी बातचीत होने पर वह अधिकारी मुझे अन्दर ले गया और उसके अंदर होनेवाली प्रदक्षिणा मुझसे करवायी।

उस समय मुझे मूर्तिपूजक हिन्दू के अज्ञान पर दया न आयी बल्कि उसके ज्ञान की मुझे विशेष प्रतीति मिली। मूर्तिपूजा का मार्ग दिखा कर उसने एक ईश्वर के अनेक ईश्वर नहीं बनाये हैं लेकिन उसने जगत को यह वस्तु ढूंढ कर दिखा दी है कि मनुष्य एक ईश्वर की उसके अनेकानेक रूपों द्वारा पूजा कर सकते हैं और वे उसकी ऐसी ही पूजा किया करेंगे। ईसाई और मुसल्मान अपने को मूर्तिपूजक भले ही न माने लेकिन अपनी कल्पना की पूजा करनेवाले भी तो मूर्तिपूजक ही हैं। मस्जिद और गिरजाघर भी एक प्रकार की मूर्तिपूजा है। वहीं जाकर मैं अधिक पवित्र हो सकूंगा इस कल्पना में भी मूर्तिपूजा है। और उसमें कोई दोष नहीं है। कुरान में या बाईबिल में ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है इस कल्पना में भी मूर्तिपूजा है और वह निर्दोष है। हिन्दू उससे भी आगे बढ कर यह कहते हैं कि जिसे जो रूप पसंद आवे उसी रूप से वह ईश्वर की पूजा करे। पत्थर या सोने चांदी की मूर्ति में ईश्वर को मान कर उसका ध्यान कर के जो मनुष्य अपनी चित्तशुद्धि करेगा उसको भी मोक्ष प्राप्त करने का संपूर्ण अधिकार होगा। यह सब प्रदक्षिणा करते समय मुझे अधिक स्पष्ट दिखाई दिया।

लेकिन वहां भी मुझे सुख में दुःख तो था ही। ठेठ तक मुझे नहीं जाने देते थे उसका कारण तो यह था कि मैं विलायत हो आया था। लेकिन अस्पृश्यों को तो उनके जन्म के कारण वहां जाने की मनाई थी। यह कैसे सहा जा सकता है? क्या कन्याकुमारी अपवित्र हो जायंगी। क्या पुरातन काल से ऐसा ही होता चला आता होगा। अंतरनाद सुनाई दिया कि ऐसा हो ही नहीं सकता। और ऐसा ही होता चला आता हो तो भी, पुरातन होने पर भी वह पाप है। पाप पुरातन होने से पाप मिट कर पुण्य नहीं बनता। इसलिए मेरे दिल में यह बात और भी अधिक दृढ हुई कि इस कलंक को दूर करने के लिए महायज्ञ करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

बंगाल

२ मई को फरिदपुर में होनेवाली बंगाल प्रान्तिक परिषद् में हाजिर होने की मैं आशा रखता हूं। मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि खद्दर, चरखा और अस्पृश्यता-निवारण का कार्य करने की लालच ही मुझे वहां खींचे लिये जा रही है। यही लालच मुझे बंगाल के दूसरे भागों में भी ले जायगी। जो लोग मुझे दूसरे भागों की मुलाकात करने के लिए ले जाना चाहते हों वे इस यात्रा की व्यवस्था करनेवालों के साथ पत्रव्यवहार करें। देशबन्धु दास इस यात्रा की व्यवस्था करनेवालों में से एक जरूर ही होंगे। लेकिन मुझे अभी आचार्य राय का तार मिला है। उसमें वे लिखते हैं कि देशबन्धु दास पटना में हैं और वे (डा. राय) यह चाहते हैं कि मैं उनके खादी के मुख्य मुख्य स्थानों की मुलाकात करने के कार्य को अपने कार्यक्रम में स्थान दूं। इस लिये मैं आशा करता हूं कि मेरी इस यात्रा के संबंध में जिन्हें कुछ लोभ हो वे डा. पी. सी राय के साथ पत्र व्यवहार करेंगे। (यं. इं.)

टिप्पणियां

मिल की पूनियां

मैंने सुना है कि बहुत सी जगहो में मिल की पूनियां कातने में इस्तैमाल की जाती है। मुझे यह कहने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं मालूम होती है कि मिल की पूनियां बड़े मोटे कते हुए सूत के समान होती है और उनका उपयोग करने से तो जिस उद्देश से कातना शुरू किया गया है वह, अर्थात् हिन्दुस्तान के ७०० देहातों में कताई दाखिल करने का उद्देश ही पूरा नहीं होता है। इन देहातों में मिलों की पूनियां भेजना असंभव और निरुपयोगी भी है। बंबई से गाड़ी में भर कर मिल की पूनियां पंजाब भेजी जाय तो यह इलाज रोग से भी अधिक हानिकारक होगा। धुनकने का धंधा अभी मिट नहीं गया है। धुनकने का काम करने वाले लोग तो सब जगह पाये जा सकते हैं। शहर और देहात में दोनों जगह इस धंधे में आमदनी हो सकती है। इसलिए युवकवर्ग इस धंधे को एक व्यवसाय के तौरपर भी सीख सकते हैं। लेकिन यह बात तो हरगिज न होनी चाहिए कि अपने नाम के योग्य किसी भी महासभा समिति में धुनकने का काम करने या सीखने के लिए सुभीता न मिल सके। महासभा के दफ्तरों में ईमानदार क्लर्क की या एक हिसाब रखनेवाले की जितनी जरूरत होती है उतनी ही जरूरत एक अच्छे धुनके की भी होती है।

दो प्रश्न

मेरी दक्षिण की यात्रा में मुझे यह बात मालूम हुई कि महासभा की कुछ समितियां सदस्यता के चंदे के तौर पर सूत के बजाय रुपये भी ले रही हैं। मैंने यह भी सुना कि यह रिवाज करीब करीब सार्वत्रिक हो गया है। एक सदस्य और मंत्रदाता की हैसियत से मुझे यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती है कि यह कार्रवाई खिलाफ कानून है। यह बात दरअसल खिलाफ कानून है या नहीं इसका महासमिति निर्णय करेगी। ऐसे मामलों में मुझे प्रमुख की हैसियत से एकबारगी अपना निर्णय दे देने की इच्छा नहीं है। लेकिन एक सामान्य बुद्धि के मनुष्य की तरह सामान्य बुद्धि के मनुष्यों के लिए लिखते समय मैं महासभा के सदस्यों को यह बात याद दिलाना चाहता हूं कि सूत के बदले में रुपयों के रूप में चन्दा देने के सवाल पर बहस की गई है और उसे नामंजूर किया गया है। चन्दे के तौर पर सूत देने का नियम रखने में जो ख्याल रक्खा गया है वह यह है कि हरएक शख्स जो महासभा में दाखिल होना चाहे वह स्वयं ही खराब और अच्छे सूत की पहचान करना सीख ले और उसे खरीद करने की तकलीफ भी स्वयं उठावे। महासभा की किताबों में तो सिर्फ सूत मिलने का ही उल्लेख रहना चाहिए। उसमें रुपयों के रूप में किसीका भी चन्दा जमा नहीं करना चाहिए। रुपयों के रूप में चन्दा लेना नियम का भंग करना है। मैं तो एक कदम आगे बढ़ कर यह भी कहूंगा कि हमारे समझौते पर तात्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो महासभा-समितियों को सिर्फ खुद कातनेवाले सदस्य प्राप्त करने की ही कोशिश करनी चाहिए। जो खुद कातना नहीं चाहते है वे अपना चन्दा (सूत) तो किसी तरह भेज सकते हैं लेकिन समितियों को तो खुद कातनेवालों को ही सदस्य बनाने की भरसक कोशिश करनी चाहिए। इसलिए मेरी राय में तो समितियों का यह फर्ज है कि वे चन्दे का सब रुपया वापस कर दें। जो सूत खरीदना चाहें, उन्हें हाथकता सूत पूरा पाने की खानगी संस्थाओं की व्यवस्था करनी चाहिए। जबतक इन मर्यादाओं की रक्षा नहीं की जायगी तबतक हम यह नहीं कह सकेंगे कि सदस्यता की इस नयी शर्त की पूरी पूरी आजमाइश की गई है। ऐसे खुद कातनेवाले कुछ सौ सदस्य भी यदि महासभा में रहेंगे जिन्हें किसी बाहरी उत्साह की आवश्यकता नहीं है लेकिन जो सिर्फ महासभा के सदस्य हैं इस अभिमानि से ही उत्साहित होकर कातते है तो तबतक खुद मुझे तो उसकी कुछ भी परवाह न होगी। इसलिए मैं आशा करता हूं कि वे समितियां जिन्होंने सूत के बजाय रुपये लिए हैं सब रुपये लौटा देंगी और सदस्यों को यदि वे सदस्य रहना चाहें तो हाथकता सूत भेजने की सलाह देंगी। यदि इससे वे सदस्य नाराज हो जायं तो उन्हें हक है कि वे महासमिति का निर्णय प्राप्त करें।

और दूसरा प्रश्न तो अभी सिर्फ मैं बंबई पहुंचने पर ही जान सका हूं। मैंने सुना कि कुछ सज्जन ऐसे हैं जो सब खादी के कपड़े पहने बिना ही महासभा-समिति की बैठक में बराबर शामिल हो रहे हैं। मेरी राय में ऐसे शख्सों को जबतक वे हाथकती और हाथबुनी खादी नहीं पहनते हैं समिति की बैठक में शामिल होने का कोई हक नहीं हैं। इस दशा में वे न कुछ बोल सकते हैं और न अपना मत ही दे सकते हैं।

मेरी जबाबदेही

अखबारों में मेरे व्याख्यानों की रिपोर्टें छपती हैं उसके संबंध में मुझसे कितने ही प्रश्न किये जाते हैं। ऐसे प्रश्नों का जवाब देना मुझे अशक्य मालूम होता है। मैं अखबार नहीं पढ़ता क्योंकि मैं उन्हें पढ़ नहीं सकता हूं। बहुतसा समय तो सफर ही में बीत जाता है। इसलिए मेरी डाक भी मुझे बहुत देर से मिलती है। और सफर करते हुए व्याख्यान भी खासे देने पड़ते हैं। ऐसी दयापात्र स्थिति में मैं किसको जवाब दूं और किसको न दूं यह एक सवाल है। अपने देश में व्याख्यानों का रिपोर्ट ले सकें ऐसे शार्टहेण्ड जाननेवाले लेखक भी बहुत कम मिलते हैं। इसलिए मैंने अखबारों में मेरे व्याख्यानों की जितनी भी रिपोर्टें पढ़ी हैं उनमें से शायद ही कोई मुझे पसंद आयी होगी। एक शब्द के फर्क से भी अर्थ का अनर्थ हो सकता है। इसलिए मेरी सब सज्जनों से यह प्रार्थना है कि यदि वे मेरे व्याख्यान अखबारों में पढ़ें और वे उन्हें मेरे प्रसिद्ध विचारों के विरुद्ध मालूम हों तो वे यही मान लें कि मैंने ऐसा कहा ही न होगा। जितना भी संग्रह करने योग्य है, सब "नवजीवन" में देने का प्रयत्न किया जाता है। इसके अलावा जो कुछ मैं कहता हूं स्थान विशेष के श्रोताओं को उद्देश कर कर कहता हूं। इसलिए उसको लिपिबद्ध कर उसका संग्रह न किया जाय तो उससे मुझे कुछ भी दुःख न होगा। लेकिन जिन्हें मेरे विचार प्रिय हैं उन्हें भी तो उसमे कोई दुःख का कारण नहीं है। जुदे जुदे प्रकार से सजाये गये वही विचार उन्हें मिले तो भी क्या और न मिले तो भी क्या? आज जिस बात की अधिक आवश्यकता है वह तो यह है कि जो कुछ भी सुना हो या पढ़ा हो उसे अच्छी तरह हजम कर लिया जाय और उसके मुताबिक व्यवहार रक्खा जाय। ज्यादह पढ़ने से संभव है कि लाभ के बदले हानि भी हो।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०-३-० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०-४-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन् रवाना कर दी जायगी। वी. पी. का नियम नहीं है।

व्यवस्थापक

हिन्दी-नवजीवन

क्रान्तिकारी के प्रश्न

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २
एक प्रति का ,, -)
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ३५

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, चैत्र सुदी १५, संवत् १९८१ गुरुवार, ९ अप्रैल, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

दो संवाद

बहुतेरे विद्यार्थी मुझसे तरह तरह की बातें पूछते हैं। कितने ही तो मुझे खब दिक भी करते हैं। कितने ही शान्तभाव से कुछ पूछ कर चले जाते है। दोनों तरह के संवाद इधर कुछ दिनों में हुए हैं। वे पढने योग्य हैं।

संवाद पहला

ट्रेन की बात है। मदरास से लौट रहा था। थका हुआ था। बचा हुआ काम लिख कर पूरा कर रहा था। इतने में ट्रेन एक स्टेशन पर खड़ी हुई। एक विद्यार्थी इजाजत ले कर डिब्बे में आया हाल ही उसने अपनी पढाई खतम की थी। अन्दर आकर मुझसे पूछा—

'आप वाइकोम से आते हैं?'

'जी हां।'

'वाइकोम में क्या हुआ?'

मुझे यह सवाल ठीक न मालूम हुआ। मैंने पूछा—'आप कहां रहते हैं?'

'मलाबार में'

उसके हाथ में दो अखबार थे। मैंने पूछा—'आप अखबार पढते हैं?'

'मुझे सफर करना पडता है। कैसे पढ सकता हूं?'

'आपके हाथ में 'हिन्दू' जो है। उसमें वाइकोम के समाचार मिलेंगे।'

'पर मैं तो आपसे जानना चाहता हूं।'

'आपकी तरह यदि सब लोग मुझसे पूछें और सभीको जवाब देना पडे तो मुझे और काम करने का समय ही न रहे। आपने इसका विचार किया है?'

'पर मुझे तो आप खबर दे सकते हैं।'

'आप यं. इं. पढते हैं?'

'नहीं, मुझे तो पढने का समय ही नहीं मिलता। मैं 'टाईम्स' पढता हूं। क्योंकि मुझे वह मिल सकता है।'

'तो मैं आपको अपना समय नहीं दे सकता। आप न 'हिन्दू' पढते हैं न 'यं० इं०' तो इस तरह दस मिनिट में अचानक हुई भेट में मैं हाल आपको सुनाऊं? मुझे माफ कीजिए।'

'तो आप मुझे कुछ हाल न सुनाइएगा।

'मुझे माफ कीजिए। आप खादी तक तो पहनते नहीं। मुझे फजूल दिक करते हैं।'

'पर आपका कर्तव्य है कि आप मुझे खबर [illegible]

'आपका फर्ज है कि खादी पहनें।'

'मेरे पास रुपया नहीं।'

'आपने सोने के बटन पहने हैं। मुझे दे दीजिए, मैं आपको खादी पहुंचवा दूंगा।

'बटन तो मैंने अपने शौक के लिए पहने हैं। मैं क्यों दूं?'

तो अब मुझे माफ कीजिए।'

'यदि इस तरह मैं खादी न पहनूं तो क्या आप मुझे हाल न सुनाइएगा?'

'आप शौक से ऐसा मानिए, पर अब कृपया मेरा पीछा छोडिए।'

'आप यों ही कहिए न, आप मुझे खबर सुनाना नहीं चाहते?'

'अच्छा ऐसा ही सही।'

'पर आपके इस व्यवहार को मैं अखबारों में प्रकाशित करूंगा।'

'शौक से कीजिए; पर अब आप मुझे अपना काम करने दीजिए।'

'मुझसे जितना होता है उतना करता हूं। मैंने मलाबार फंड के लिए सौ-एक रुपये भी एकत्र किये थे'.

'इतना होने पर भी गरीब लोगों की बुनी खादी पहनने को आपका जी नहीं चाहता।'

'जब कि वहां लोग भूखों मरते हैं तब आपको कातने की सूझती है, यह बात मैं कहां नहीं जानता हूं?'

'इसकी चर्चा हम यहां न छेडें।'

'तो मै जाऊं ही।'

'हां, जरूर।'

मुझे अंदेशा है कि इस भाई को मैं समझा न सका कि जिस बात को वे आसानी से अखबारों में पढ सकते थे उसके लिए मुझसे सवाल पूछ कर उन्हें मेरा अर्थात् देश का समय न लेना चाहिए। उनके चले जाने के बाद मेरे मन में ये भाव उठे कि यदि उनके साथ गंभीरता से पेश आने के बदले मैंने विनोद भाव से काम लिया होता तो मैं उन्हें खुश कर सका होता। हां, मेरा

समय अवश्य ज्यादह जाता । किन्तु मुझे डर है कि अपनी गंभीरता से तथा उससे उत्पन्न कठोरता से मैंने एक सेवक गंवा दिया । अहो ! अहिंसाधर्म कितना कठिन है ! चाहे किसी काम में हों; पर हमें सावधान रहना चाहिए । हमारी बातें सुननेवाले या हमें देखनेवाले के हृदय में प्रवेश करने का प्रयत्न प्रतिक्षण होना चाहिए । अहिंसाधर्म का पालन करनेवाले के लिए समय क्या चीज है, सुविधा कौन वस्तु है ? सुविधा हो या न हो, समय हो या न हो । अहिंसावादी तो दास है, सेवक है, सेवा के लिए वह संसार के हाथ बिक चुका है । मैंने अपना समय बचाया, अपनी सुविधा का ख्याल किया, मैं शिक्षक बनने गया और शिक्षा देते हुए शिष्य को गवां दिया ! कैसा मैं शिक्षक ? विवेकहीन मनुष्य पशु के बराबर है । तुलसीदास ने तथा तमाम संतों ने यही गाया है ।

दूसरा संवाद

जिसका मैं शिक्षक बनने गया वह मेरा शिक्षक हुआ था । उससे सावधान हो कर मैं दूसरे सेवक को गवांना न चाहता था । मैं बहुत सावधान था । यह विद्यार्थी पंजाबी था । पंजाबी जितने मिले हैं सब विनयी ही मिले हैं । इस विद्यार्थी के विनय के सीमा न थी । इसलिए मुझे अपनी सावधानता का उपयोग ही न करना पड़ा ।

'कोई पांच साल से मैं आपके दर्शन करने की कोशिश कर रहा था । आज मनोरथ पूरा हुआ ।'

'भले आये । कुछ खास पूछना है ?'

'यदि इजाजत हो तो एक-दो बातें अपने चिन्तन के लिए पूछना चाहता हूं ।'

'शौक से पूछो ।'

'क्या आप मानते हैं कि मैं चरखे के द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त कर सकता हूं ?'

'नहीं । मैंने आप जैसों के लिए आजीविका के साधन के तौर पर चरखे की सिफारिश नहीं की है । आप जैसों के लिए तो चरखा बतौर एक यज्ञ के है ।'

'तब मुझे क्या करना चाहिए ?'

'यदि मैं आपको समझा सकूं तो मैं यह जरूर कहूंगा कि आप निर्वाह के लिए धुनकने और बुनने का काम करें । इसे आप सीख भी आसानी से सकते हैं ।'

'पर उससे मैं अपने कुटुम्ब की गुजर कर सकूंगा ?'

'हां, यदि सब लोग उस काम में हाथ बटावें ।'

'यह मुझ जैसे के कुटुम्ब के लिए असंभव है । आप देखते ही हैं कि मैं खादी पहनता हूं । कातता भी हूं । मैं उसका कायल भी हूं । पर अपने कुटुंबियों को उसके प्रति विश्वास कैसे पैदा करा सकता हूं ? और विश्वास हो भी जाय तो वे इस काम को करने के लिए तैयार न होंगे ।'

'आपकी इस कठिनाई को मैं अच्छी तरह समझ सकता हूं । फिर भी आप और मुझ जैसे अनेक लोगों को अपना रहन-सहन बदलना होगा । नहीं तो हमारे देश के सात लाख देहात के लिए सिवा निराशा के और कुछ भी न दिखाई देगा ।'

'मैं इस नीति को समझता हूं; पर उसके ग्रहण करने की शक्ति आज नहीं । ऐसा आशीर्वाद कीजिए कि वह मुझे आ जाय । परन्तु तबतक मुझे क्या करना चाहिए ?'

'इसकी खोज करना काम है आपका और आपके घर वालों का । मैंने अपना आदर्श आपके सामने रख दिया है ।'

'मैं यदि 'पाटरी' (कुम्हारगिरी) सीखूं तो ?'

'वह है तो उपयोगी । उससे आपको आजीविका मिलेगी और यदि पूंजी होगी और कारखाना खड़ा करोगे तो उससे औरों की भी गुजर चलेगी । पर आप कुबूल करेंगे कि उसमें आपको कितने ही मजदूरों का दुरुपयोग करना पड़ेगा । क्योंकि उन्हें कम दाम देकर अपने लिए ज्यादह रुपया रखना पड़ेगा ।'

'हां, यह सच है । पर मैं ठहरा एक शहर में रहनेवाला आदमी । फिलहाल तो ऐसा प्रतीत होता है कि मैं और कुछ न कर सकूंगा । फिर भी आपकी बात को मैं कभी न भूलूंगा । आपकी आशीष तो है न ?'

'हां, हरएक शुभ कार्य में हरएक विद्यार्थी को मेरी आशीर्वाद हई है ।'

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

राजस्थान में खादी-कार्य की सुविधा

भाई श्री शंकरलाल बैंकर यह बात अपने पत्र में प्रकट कर ही चुके हैं कि राजस्थान में खादी पैदा होने की कितनी आशा है । इस सप्ताह मुझे उनके तथा भाई श्री मगनलाल गांधी के साथ खादी उत्पत्ति के एक केन्द्र में खादी-उत्पत्ति के प्रत्यक्ष कार्य को देखने तथा कार्यकर्ताओं से मिलने का सु-अवसर मिला । उस केन्द्र का नाम है अमरसर । यह जयपुर-राज्य के अन्तर्गत है । जयपुर झुंझनू लाइन पर गोविंदगढ स्टेशन से कोई १६ मील है । ऊंट या बैल-गाड़ी पर जाना पड़ता है । हम लोग ऊंट पर गये थे । अमरसर के आस-पास अजीतगढ, मनोहरपुर, चौमू, गोविन्दगढ, वैराट, सामोद आदि गांवों में कोई १० हजार चरखे और कोई १ हजार करघे आज भी चलते हैं । इनमें फिलहाल कोई २०० करघे मुश्किल से तानी बानी दोनों में हाथ-कता सूत बुनते होंगे । बाकी में या तो एक सूत हाथ और एक मिल का अथवा दोनों मिल के लगाते हैं । ये अंक अमरसर के आसपास के ही हैं । यों तो जयपुर-राज्य के सारे ढुंढाड इलाके में कताई-बुनाई का काम बहुत होता है । हम लोग दो-तीन दिन रहे । उसमें सारे इलाके के अंक न प्राप्त हो सके । हम सिर्फ मलिकपुर, गोविंदगढ और अमरसर का ही दौरा कर पाये ।

मलिकपुर गोविंदगढ से कोई एक मील है । गांव में कोई २०० घर होंगे । कोई दस-बारह घर बलाइयों के हैं, जो बुनने का काम करते हैं । बलाई एक अछूत जाति है । । मगर इस तरफ मद्रास तो दूर, काठियावाड और गुजरात की तरह भी अस्पृश्यता का राज्य नहीं है । यहां इन्हें अर्ध-अछूत समझिए । हम एक बलाई के घर गये । बूढा और उसकी बुढिया सिर्फ दो प्राणी थे । छोटे से अंधेरे घर के एक कोने में करघा लगा हुआ था । हम पांच आदमियों के बैठने लायक जगह भी उसके घर में न थी । दम घुटने लगता था । बूढे की कमर में कच्छ और सिर पर फटी पगड़ी के सिवा कुछ न था । पेट अन्दर धंसा हुआ था । करघे पर तानी मिल के सूत की थी । तानी का अर्ज कोई २७ इंच था । करघे के ऊपर एक मिल की ओढनी और मिल के सूत की धोती लटक रही थी । बुढिया के बदन पर भी मिल की ओढनी थी । कोई दो घंटे तक बूढे और उसकी बुढिया तथा एक और बलाइन के साथ बड़ी मनोरंजक, बोधप्रद और शिक्षाप्रद बातचीत हुई । तरह तरह के कोई १०० प्रश्न पूछे गये होंगे । उनके उत्तर में जो जानकारी हमें मिली, उनके जिन भावों, धारणाओं और कठिनाइयों तथा अन्त को उनकी जिस प्रतीति का परिचय मिला उसका असर मेरे दिल पर बड़ा गहरा हुआ । वह सारी बातचीत यहां देना असंभव है ।

मेरी ज़िन्दगी में उस दृश्य के देखने का यह पहला दिन था। सादगी, सरलता, भोलापन, सचाई का परिचय उनके उत्तर से पद पद पर मिलता था। हर सवाल को वे समझते थे, समझने की कोशिश करते थे और उसका सीधा-सही जवाब देते थे। उनकी बातचीत का सार इस प्रकार है—

स०—सूत कहां से खरीदते हो ?

ज०—गोविंदगढ़ या जयपुर से।

स०—वहां सूत तैयार होता है ?

ज०—नहीं; सुनते हैं, वहां के बनिये ब्यावर, अहमदाबाद, बंबई आदि के कारखानों से लाते हैं।

स०—तो इस सूत का पैसा कहां जाता है ?

ज०—कारखानों में।

स०—वे इस रुपये से ज्यादह सूत और कपड़ा बनाते हैं, इससे तुम्हारा फायदा है या नुकसान ?

ज०—फायदा काहे का ? (गर्दन पर उंगली फेर कर) हमारी तो गर्दन कट गई—सारा धंधा डूब गया !

इस समय बूढ़े के चेहरे पर विषाद की एक गहरी छाया दीख पड़ी।

स०—तो फिर तुम कारखाने का सूत क्यों लगाते हो ?

ज०—क्या करें, रिवाज ही ऐसा पड़ गया है।

स०—पर जिस सूत से तुम्हारे धन्धे की जड़ कटती है, तुम्हारे बालबच्चों की रोजी जाती है उसका बरतना कहांतक ठीक है ?

ज०—बिल्कुल ठीक नहीं।

स०—तो फिर आज से कल-कारखाने का सूत छोड़ दोगे न ?

ज०—हां, क्यों नहीं; पर चरखे का सूत अच्छा मिलता नहीं और मेरे पास रुपया भी वैसी नहीं।

स०—अच्छा इसकी सुविधा की कोशिश की जायगी; पर समझते हो न, इससे तुम्हारा क्या फायदा होगा ?

ज०—हां, महाराज! हमारा धन्धा फिर सजीवन हो जायगा।

इस समय बूढ़े का चेहरा ऐसा खिल गया था मानों डूबते को किनारा दिखाई दिया हो।

एक मोर्चा सर करने के बाद सवालों की दिशा बदली। "तुम्हारे पास कुछ धन है ?" बूढ़ा इस अजीब और अनोखे सवाल पर चकराया उसने चौंक कर कहा—'धन, महाराज ! (सिर पीट कर) माथे है माथे ! (अर्थात् उल्टा सिर पर कर्ज है।)

स०—तो फिर इस भोली और ओढ़नी का रुपया कारखाने में क्यों भेजते हो ?

ज०—मूरखता है महाराज। हमारे पास बड़े अंज का सांचा नहीं है।

स०—उसका तो इन्तजाम हो सकता है, पर सोचने की बात है कि तुम्हारा धन्धा डूबते हुए भी, तुम खुद कपड़ा बुनते हुए भी, कितने ही शहरों के फेशनेबल लोग तो तुम्हारे धन्धे के उद्धार के लिए मलमल छोड़ कर रेजी पहनते हैं और तुम कारखाने का पहनते हो, यह कैसी उल्टी बात है ?

ज०—हां, महाराज ! अब मै न कारखाने का सूत बुनूंगा न पहनूंगा। यह तो हमारे ही फायदे की बात है।

अब बुढ़िया से और दूसरी बलाइन से बातें होने लगीं। क्यों कारखाने के सूत की ओढ़नी छोड़ कर चरखे की कती और अपने घर की बुनी रेजी पहनोगी न ?

ज०—अकेली के पहनने से क्या होता है ? सब पहनें तब न ?

स०—सब लोग कोई बुरा काम करते हों और हमें मालूम हो जाय कि यह बुरा काम है तो क्या हम औरों के छोड़ने की राह देखेंगे ? दूसरे लोग गैर होकर तुम्हारे बाल-बच्चों की रोजी के लिए खादी पहनते हैं और तुम मां होकर इस बच्चे का पेट काटती हो। घर की रोटी छोड़कर बनिये से रोटी खरीदना उचित है ?

ज०—नहीं महाराज। अच्छा, अब से न पहनेंगी। पर जो कपड़ा हमारे पास है उसको क्या करें ?

यही सवाल एक दूसरे बलाई ने भी किया जो वहां खड़ा हुआ बड़े चाव से बातें सुन रहा था।

'कोई बुरी चीज घर में हो तो यह मालूम होने पर कि वह बुरी चीज है, क्या करोगे ? यह कहोगे कि अच्छा, इतनी खतम हो जाने पर फिर न बरतेंगे ?'

यकीन हो जाने की प्रफुल्लता उनके चेहरों पर छिटक उठी। बड़े आनन्द के स्वर में दोनों ने कहा—

'हां, महाराज समझ गये—आज से प्रतिज्ञा करते हैं कि न कारखाने का कपड़ा पहनेंगे, न बुनेंगे।'

'देखो, थोड़े दिन बाद फिर हम यहां आवेंगे। तब हम तुमको खादी पहने हुए देखेंगे।'

'जरूर, जरूर !'

इस बातचीत ने यह असर मेरे दिल पर छोड़ा कि जिस समस्या को समझने और समझाने के लिए बड़े बड़े अर्थशास्त्री दिमाग छीलते रहते हैं वह कितनी सरल और सीधी है और वे लोग उसे किस तरह इशारे में समझ लेते हैं जिनकी जीविका विदेशी और मिल के कपड़ों ने छीन ली है। यदि हमें यह देखना हो कि कपड़े और सूत के बड़े बड़े कल-कारखानों ने देश के निर्धन लोगों को किस तरह तबाह किया है, तो इसका दृश्य लाइब्रेरियों में और अर्थशास्त्रियों के दिमाग में नहीं बल्कि इन दीन-हीन जुलाहों और कातनेवालियों के निराधार दुर्जीवन के एक एक परमाणु में भलीभांति दिखाई दे सकता है। (अपूर्ण)

जयपुर
२-४-२५ हरिभाऊ उपाध्याय

पति का कर्तव्य

एक महाशय प्रश्न करते हैं—यदि संयम-धर्म के पालन में पत्नी की सहायता न हो तो पति को क्या करना चाहिए ? मेरा अनुभव तो यह कहता है कि संयम के पालन में एक को दूसरे की अनुमति की जरूरत नहीं। भोग के लिए दोनों की रजामन्दी होनी चाहिए। त्याग तो प्रत्येक का खास क्षेत्र है। परन्तु ऐसी बातों के लिए विवेक की बहुत आवश्यकता रहती है। संयम सच्चा संयम होना चाहिए। पुरुष को अपने मन की खूब जांच कर लेनी चाहिए। विवेक और शुद्ध प्रेम से पति पत्नी को अपने कार्य में सम्मत रख सकता है। हां, यह संभवनीय है कि पति ने जितना ज्ञान प्राप्त किया है उतना पत्नी ने न किया हो। अतएव पति का धर्म है कि पत्नी को भी वह अपने ज्ञान में भागी बनावे। इस तरह जहां घर-संसार विवेक-पूर्वक चलता हो वहां संयम के पालन में कठिनाई नहीं पड़ती। मेरा यह अभिप्राय है कि सयम के पालन में स्त्री ही आगे रहती है। पति ही उसे उससे रोका करता है। इस कारण यह प्रश्न मुझे बेतुका मालूम होता है। फिर भी यह समझ कर कि जवाब देना उचित है, कुछ संकोच के साथ दिया है। (न० जी०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र सुदी १५, संवत् १९८१

क्रान्तिकारी के प्रश्न

पिछले किसी अंक में मैंने एक क्रान्तिकारी महाशय को उत्तर देने की कोशिश की थी। उन्होंने मेरे उत्तर से उत्पन्न होनेवाले कितने ही प्रश्न पूछे हैं और उनका जवाब मांगा है। मुझे उनका आह्वान खुशी के साथ मंजूर है। ऐसा मालूम होता है कि वे भी मेरी तरह अधिक प्रकाश की खोज में हैं। उनकी दलीलों का ढंग भी अच्छा और बहुत-कुछ विकार रहित है। जबतक वे शान्त चित्त से विचार करना चाहेंगे तबतक मैं इस चर्चा को जारी रक्खूंगा। उनका पहला सवाल यह है—

"क्या आप वाकई यह मानते हैं कि भारत के क्रान्तिकारी स्वराजियों, विनीत तथा राष्ट्रीय दलवालों से कम स्वार्थत्यागी, कम उच्चहृदय और कम देश-भक्त हैं? क्या आप किसी स्वराजी, या विनीत आदि दलवालों में से कुछ नाम ऐसे पेश करेंगे जो अपनी मातृभूमि के लिए शहीद हो चुके हों? आप और दलों के साथ तो समझौता करने को हमेशा तैयार रहते हैं; पर हमारे दल से दूर भागते हैं और उनके भावों को 'जहर' बताते हैं। उन्हें आप क्यों नहीं 'गुमराह देशभक्त' और 'जहरीले सांप' कहते?"

मैं भारत के क्रान्तिकारियों को और लोगों की अपेक्षा कम स्वार्थत्यागी, कम उच्चहृदय या कम देश-भक्त नहीं मानता। पर मैं यह बात बड़े आदर के साथ जरूर कहूंगा कि उनका यह त्याग, उच्चहृदयता और प्रेम केवल व्यर्थ प्रयास ही नहीं है बल्कि अज्ञान-मूलक और विपथगामी भी है और उसके बदौलत दूसरी तमाम हलचलों की अपेक्षा अधिक हानि देश को पहुंची है। क्योंकि क्रान्तिकारियों ने देश की प्रगति का कदम रोक दिया है। प्रतिपक्षी के प्राणों की उच्छृंखल अवहेलना ने ऐसे दमन का आवाहन किया है है जिससे उनकी युद्ध-रीति में शरीक न होनेवाले लोग पहले से ज्यादह भीरु हो गये हैं। दमन केवल उन्हीं लोगों को फायदा पहुंचाता है जो उसके लिए अपनेको तैयार कर लेते हैं। परन्तु क्रान्तिकारियों की हल-चलों के बदौलत होनेवाले दमन के लिए जनता तैयार नहीं है। उनकी हलचलें जिस सरकार को मटियामेट कर देना चाहती हैं उसीके हाथ दमन के लिए मजबूत बना देती है। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यदि चौरीचौरा में वह हत्याकाण्ड न हुआ होता तो बारडोली में जो प्रयोग किया जा रहा था उसके बदौलत स्वराज्य की स्थापना तो गई होती। ऐसी हालत में यह क्या कोई आश्चर्य की बात है जो मैं क्रान्तिकारियों को गुमराह और इसलिए खतरनाक देशभक्त कहता हूं? मैं अपने उस लड़के को जरूर गुमराह और खतरनाक परिचारक कहूंगा जो अपने अज्ञान या अंध प्रेम के कारण उन वैद्यों से प्राण की बाजी लगा कर लड़ा हो, जिनकी चिकित्सा प्रणाली से निस्सन्देह मुझे हानि पहुंची है परन्तु जिससे मैं अपनी इच्छा या योग्यता के अभाव में बच नहीं सकता था। इसका फल यह होगा कि मैं अपने शरीफ लड़के को गवा दूंगा और वैद्यों की नाराजगी अपने सिर लूंगा यही नहीं बल्कि वैद्य इस बात के शुबह पर कि मेरा भी हाथ अपने बेटे की कार्रवाइयों में होगा, मुझे सजा देना चाहेंगे, और उनकी वह हानिकर चिकित्सा जो जारी रहेगी सो तो अलग ही। यदि उस पुत्र ने उन वैद्यों को उनकी गलती या मुझे अपनी कमजोरी—यह कि उनकी दवा लेता हूं—का कायल करने की कोशिश की होती तो संभव है कि वैद्यों ने अपने तरीके में सुधार किया होता, या मैंने उनका इलाज छोड़ दिया होता या कम से कम उनके रोष से तो जरूर बच गया होता। हां, मैं जरूर दूसरे दलवालों से समझौते करता हूं; क्योंकि यद्यपि मैं उनसे सहमत नहीं होता तथापि मैं उनकी हलचलों को वैसी निश्चयात्मक हानिकर नहीं समझता जैसी कि क्रान्तिकारियों की हलचल को समझता हूं। मैंने क्रान्तिकारियों को 'जहरीला सांप' [illegible] नहीं कहा है। परन्तु जिस तरह कि पूर्वोक्त उदाहरण [illegible] अपने गुमराह पुत्र की कुरबानी की मैं तारीफ नहीं करूंगा [illegible]सी तरह मैं क्रान्तिकारियों के आत्मत्याग पर भी चिल्ल-पों [illegible] मचाऊंगा। मुझे इस बात का निश्चय है कि जो लोग बिना अच्छी तरह विचारे या मिथ्या भावुकता से दबे-छुपे या खुले आम क्रान्तिकारियों की या उनके आत्मत्याग की प्रशंसा करते हैं वे उनकी और अपने प्रिय कार्य की हानि ही करते हैं। लेखक ने चाहा है कि मैं अ-क्रान्तिकारी दलवालों में से ऐसे देशभक्तों का नामोल्लेख करूं जिन्होंने देश के लिए अपना प्राण-त्याग कर दिया है। इस पंक्तियों को लिखते समय मुझे दो पूरे उदाहरण याद पड़ते हैं। गोखले और तिलक ने अपने देश के लिए प्राण दिये। उन्होंने अपनी तन्दुरुस्ती का प्रायः कुछ भी ख्याल न रखते हुए देश की सेवा की जिससे वे आवश्यकता से बहुत पहले ही सुरपुर को चल बसे। फांसी के तख्ते पर ही मरने में कोई खास बहादुरी नहीं है। रोगोत्पादक स्थानों में कड़ी मिहनत और मशक्कत करनेवाले एक आदमी के जीवन से ऐसी इस मौत कहीं आसान है। मुझे इसी बात पर पूरा सन्तोष है कि स्वराजियों तथा दूसरे दलवालों में ऐसे लोग भी हैं जिन्हें यदि यकीन हो जाय कि हमारी मृत्यु से देश का उद्धार हो जायगा तो वे उसी क्षण अपने प्राण दे देंगे। मैं अपने इन क्रान्तिकारी मित्र से कहता हूं कि फांसी पर चढ़ कर मरने से देश की सेवा तभी होती है जब कि चढ़नेवाला 'निर्दोष निष्कलंक' हो।

"क्या यह कहने से कि भारत का रास्ता योरप का अंगीकृत मार्ग नहीं है, आपका यह अभिप्राय है कि भारत में पहले युद्ध-रीति और सेना-संगठन था ही नहीं। सत्कार्य के लिए युद्ध क्या भारत के भाव के विरुद्ध है? 'विनाशाय च दुष्कृताम्' क्या योरप से आया वचन है? क्या योरप की अच्छी चीज भी आप न लेंगे?"

मैं यह नहीं कहता कि योरप के संपर्क में आने के पहले भारत में सेना, युद्धरीति आदि न थे। पर मैं यह जरूर कहता हूं कि वह भारतीय जीवन की साधारण अवस्था हरगिज न थी। जनता योरप के खिलाफ युद्ध-वृत्ति से अछूती थी। मैं इन पत्रों में पहले ही कह चुका हूं कि मैं गीता का मामूली प्रचलित अर्थ से बिलकुल भिन्न ही अर्थ करता हूं, जिससे कि लेखक ने वह प्रसिद्ध वचन उद्धृत किया है। मैं उसे शारीरिक युद्धों का वर्णन या प्रतिपादन नहीं मानता। और हर हालत में पूर्वोक्त श्लोक के अनुसार तो वह सर्वज्ञ ईश्वर ही दुष्टों के विनाश के लिए पृथ्वी पर अवतार लेता है। और यदि मैं हर क्रान्तिकारी को सर्वज्ञ ईश्वर या अवतार न मानूं तो मुझे इसकी माफी मिलनी चाहिए। मैं योरप की हर चीज को हर समय के लिए बुरा नहीं कहता। पर हां, मैं अच्छे काम के भी लिए की गई गुप्त हत्याओं को तथा अन्यायपूर्ण साधनों को सदा सर्वदा के लिए जरूर बुरा कहता हूं।

"क्रान्तिकारी इस भौगोलिक बात को जानते हैं कि भारतवर्ष कलकत्ता और बंबई नहीं है। पर हम यह भी मानते हैं कि मुट्ठीभर सूतकार मिलकर भारत राष्ट्र नहीं हो जाता है। हम देहात में जा रहे हैं और सफलता प्राप्त कर रहे हैं। क्या आप नहीं खयाल करते कि किसी शैतानियत या नीचता के प्रतिकार के लिए आपके अहिंसा-प्रचार के गलत अर्थ से उत्पन्न क्रियाशून्यता या सैद्धान्तिक भीरुता की अपेक्षा गुप्त षड्यन्त्र कहीं बेहतर है? अहिंसा कमजोर और असहाय का सिद्धान्त नहीं, बलवान् का है। हम देश में ऐसे लोग पैदा करना चाहते हैं जो किसी भी अवसर पर मृत्यु से न डरें—जो नेक काम करें और मरें। क्या मैजिनी की तरह आप मानते हैं कि शहीदों के खून का भोजन मिलने से कल्पना और भाव जल्दी परिपक्व होते हैं?"

कलकत्ता और रेलवे के बाहर के गांवों की भौगोलिक भिन्नता का ही ज्ञान काफी नहीं है। यदि क्रांतिकारी इन दोनों की रचना का भेद जानते होते तो मेरी तरह सूतकार हो जाते। मैं यह स्वीकार कर लेता हूं कि थोड़े सूतकारों से जो हमारे पास हैं भारत राष्ट्र नहीं बनता है पर मेरा यह दावा है कि पहले की तरह सारे हिन्दुस्तान का सूत कातने लगना सम्भवनीय है और जहां तक सहानुभूति से ताल्लुक है, लाखों लोगों की सहानुभूति इस हलचल के साथ है, हालां कि क्रान्तिकारियों के साथ वे कभी न रहेंगे। मुझे क्रांतिकारियों के इस दावे पर शक है कि देहात में उन्हें सफलता मिल रही है। पर यदि वाकई यह बात सच है तो मुझे इस पर खेद है। मैं उनकी कोशिशों को तोड़ने में कोई बात न उठा रक्खूंगा। किसी शैतानियत के मुकाबले में मशक्क षड्यन्त्र रचना मानों शैतान को शैतान से भिड़ा देना है। पर चूंकि एक ही शैतान मेरेलिए बहुतेरे शैतान के बराबर है इसलिए मैं उसकी संख्या वृद्धि न होने दूंगा। मेरी हलचल क्रियाशून्य है या पूर्ण क्रिया-मय है, यह तो शायद अभी मालूम होना बाकी है। तबतक यदि एक गज की जगह दो गज सूत कता तो उससे उतना ही लाभ होगा। भीरुता फिर वह चाहे सैद्धान्तिक हो या और तरह की हो, मैं उससे घृणा करता हूं। यदि कोई मुझे यह समझा दे कि क्रान्तिकारियों की हलचल से भीरुता दूर हो गई है तो इससे मेरी घृणा गुप्त साधनों की तरफ बहुत कम हो सकती—सिद्धान्त की दृष्टि से मैं उनका विरोध क्यों न करता रहूं। लेकिन यह बात तो कोई सरसरी नजर से देखनेवाला भी जान सकता है अहिंसात्मक हलचल के कारण देहात के लोगों में वह साहस और दृढ़ता आ गई है जो कुछ ही साल पहले उनमें न थी। हाँ, मैं मानता हूं कि अहिंसा सबल का शस्त्र है। मैं यह भी मानता हूं कि अक्सर लोग भीरुता को भी गलती से अहिंसा मान लेते हैं।

ये क्रान्तिकारी महाशय जब यह कहते हैं कि क्रान्तिकारी वह है जो नेक काम करता है और उसके लिए मरता है, तब वे उसी बात को गृहीत कर लेते हैं जिसे उन्हें साबित करना है। और इसी बात पर तो मैं आपत्ति उठा रहा हूं। मेरी राय में तो क्रान्तिकारी बुरा करता है और बुरा करते हुए मरता है। मैं वध, हत्या या भय-प्रदर्शन को किसी भी हालत में अच्छा नहीं मानता। हां, मैं यह बात मानता हूं कि शहीदों के खून के भोजन से कल्पना और भाव बहुत जल्दी परिपक्व हो जाते हैं। परन्तु जो शख्स सेवा करते हुए जंगल के बुखार से धीरे धीरे मरता है उसका भी खून उसी तरह निश्चय पूर्वक बहता है जिस तरह कि फांसी पर चढ़नेवाले का। और यदि फांसी चढ़ कर मरनेवाला दूसरे के खून से बरी न हो तो उसमें वे भाव ही न थे जो परिपक्व होने योग्य हों।

"आपका एक ऐतराज यह है कि क्रान्तिकारियों के दल से जनता को बहुत कम लाभ होगा। अर्थात् हम को ज्यादह लाभ होगा। सो क्या हम निष्काम कर्म की भावना से भरे क्रान्तिकारी इस क्षुद्र जीवन के लाभ के लिए अपनी मातृभूमि के साथ विश्वासघात करेंगे? हम अभी नहीं, पर तैयारी हो जाने पर जरूर जनता को अपने साथ खींचेंगे। हम जानते हैं कि वे अपनेको शिवाजी, रणजीत, प्रताप और गोविंदसिंह के वंशज सिद्ध करेंगे।"

मैं न तो यह कहता ही हूं और न मेरा यह आशय ही है कि यदि जनता को लाभ न होगा तो क्रान्तिकारी लाभ उठावेंगे। बल्कि इसके विपरीत सामान्यतः क्रान्तिकारी को कभी लाभ नहीं होता। यदि क्रान्तिकारी जनता को अपनी ओर 'खींच' नहीं बल्कि आकर्षित कर सके, तो वे देखेंगे कि यह खूनी आन्दोलन बिल्कुल अनावश्यक है। शिवाजी, रणजीतसिंह, प्रताप और गोविन्दसिंह के वंशजों का नाम लेना तो बड़ा सुहावना और उत्साहदायी मालूम होता है किन्तु क्या यह सच है? क्या सचमुच हम उन शूरवीर पुरुषों के वंशज उसी अर्थ में हैं जिस अर्थ में लेखक ने उसे समझा है? हम तो उनके देश-भाई हैं। उनके वंशज तो हैं क्षत्रिय लोग-फौजी जातियां। आगे चलकर चाहे भले ही हम जाति व्यवस्था को तोड़ डालें पर आज तो वह मौजूद है और इसलिए लेखक की यह शिकायत मेरी राय में मानी नहीं जा सकती।

"अन्त में मैं ये सवाल और आपसे पूछता हूं—गुरु गोविंदसिंह सत्कार्य के लिए युद्ध करना ठीक समझते थे—इसलिए क्या वे गुमराह देशभक्त थे? वाशिंगटन, गैरीबाल्डी और लेनिन के बारे में आप क्या कहेंगे? कमाल पाशा और डी वेलेरा के निस्बत आप क्या ख्याल करते हैं? क्या आप शिवाजी और प्रताप को सदुद्देश रखनेवाले और आत्मत्यागी वैद्य कहेंगे जिन्होंने कि अंगूर का रस देने की जगह संखिया दिया? क्या आप कृष्ण को यूरोपियन बना कहेंगे, इसलिए कि वे 'दुष्कृतों के विनाश' के कायल थे?"

यह एक कठिन बल्कि कुछ विषम प्रश्न है। पर मैं इसका भी जवाब देता हूं। पहली बात तो यह कि गुरु गोविंदसिंह तथा दूसरे उल्लिखित व्यक्ति गुप्त हत्याकाण्ड के कायल न थे। दूसरे, वे लोग अपने काम और अपने आदमियों को खूब जानते थे। पक्षान्तर में आधुनिक क्रान्तिकारी नहीं जानता कि मेरा काम क्या है? उसके पास न आदमी हैं, न वायुमण्डल है, जो कि पूर्वोक्त देशभक्तों के पास थे। यद्यपि मेरे विचार जीवन-विषयक मेरे सिद्धान्तों से निकले हैं फिर भी मैंने उन्हें इसके सहारे देश के सामने नहीं रक्खा है। मैं तो सिर्फ समयोपयोगिता के लिहाज से ही क्रान्तिकारियों का विरोध कर रहा हूं। इसलिए उनकी कार्रवाइयों की तुलना गुरु गोविंदसिंह या वाशिंगटन या गैरीबाल्डी या लेनिन से करना बहुत भ्रमोत्पादक और भयावह होगा। परन्तु अहिंसा-सिद्धान्त की कसौटी के अनुसार तो यह कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं होता कि यदि मैं उनका समकालीन होता और उन उन व्यक्तियों के देशों में होता तो बहुत संभव था कि मैं उन सबको गुमराह देशभक्त कहता—हालां कि वे विजयी और वीर योद्धा थे। पर वर्तमान स्थिति में मुझे उनके विषय में कोई फैसला न करना चाहिए। जहांतक कि इतिहास का संबंध वीर पुरुषों की हकीकतों के ब्योरे से है, मैं इतिहास की स्थूल और [illegible] बातों को मानता हूं और उनसे अपने [illegible]

पर सबक लेता हूं । इतिहास की वे व्यापक बातें जहांतक जीवन के उच्च नियमों के विरुद्ध हैं वहांतक मैं उनको अपने आचरण में दुहराना नहीं चाहता । परन्तु इतिहास के द्वारा उपलब्ध अल्प सामग्री के आधार पर मै किसी व्यक्ति के विषय मैं निर्णय नहीं करता । मृत आत्मा के तो गुणों का ही गान करना चाहिए । कमालपाशा और डी वेलेरा के संबंध में भी मैं निर्णय नहीं कर सकता । पर वे, जहांतक युद्ध-संबंधी उनके विश्वास से संबंध है, मुझ जैसे एक दृढ अहिंसा-धर्मी के जीवन में पथदर्शक नहीं हो सकते । कृष्ण को मैं शायद इन लेखक से भी ज्यादह मानता हु । पर मेरा कृष्ण है जगन्नायक, अखिल विश्व का उत्पादक, संरक्षक और विनाशक । वह संहार भी कर सकता है क्योंकि वह उत्पत्ति करता है । पर यहां मैं कोई दार्शनिक या धार्मिक युक्ति नहीं पेश करना चाहता । मैं इस योग्य नहीं हू कि अपने जीवन-तत्त्व की शिक्षा दे सकू । मै शायद ही अपने अंगीकृत सिद्धान्त के पालन के योग्य हू । मै तो एक नकुछ प्रयत्नशील व्यक्ति हू जो कि मन, वचन और कर्म में पूर्णत: शुभ, पूर्णत: सत्य और अहिंसा परायण होने के लिए लालायित है पर जो अपने आदर्श तक पहुचने में सदा असफल होता रहता है । मैं मानता हू और अपने क्रान्तिकारी मित्र को यकीन दिलाता हूं कि यह चढाई बडी कष्टमय है पर यह कष्ट मेरे लिए एक निश्चयात्मक आनन्द ही हो गया है । एक एक सीढी ऊपर चढते हुए मैं अपनेको अधिकाधिक सशक्त और अगली सीढी पर कदम रखने के योग्य पाता हूं । पर यह तमाम कष्ट और आनन्द मेरे अपने लिए है । क्रान्तिकारी लोग चाहें तो मेरे सारे सिद्धान्त को शौक से नामंजूर करें । मैं उन्हें एक साथी के तौरपर अपने अनुभव पेश करता हू जैसा कि मैंने अली-भाइयों को तथा दूसरे कितने ही मित्रों को किया है और उसमें सफलता-लाभ भी किया है । वे मुस्तफा कमालपाशा और शायद डी वेलेरा और लेनिन के कार्यों पर उनका अभिनन्दन कर सकते हैं, पर वे मेरी तरह जानते हैं कि भारतवर्ष तुर्कस्तान, आयर्लैंड या रूस की तरह नहीं है और कम से कम देश के जीवन की वर्तमान अवस्था में क्रान्तिकारी आन्दोलन आत्मघात के समान है; क्योंकि हमारा देश इतना विशाल है, इतना मतभेदों से भरा हुआ है और यहां की जनता इतनी दरिद्रता से भरीपूरी और भयभीत है कि जिसकी हद नहीं ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

पिता-पुत्र-भेद

पिता धनवान् है और भोगी है । पुत्र त्यागी है, सादा जीवन बिताना चाहता है । पिता रोकता है । पुत्र को क्या करना चाहिए ? मेरी अल्पमति के अनुसार मैं समझता हू कि पुत्र अपने त्याग-भाव को न छोडे । विनय के साथ पिता को समझावे । मै मानता हूं कि जहां पुत्र में विवेक और दृढता होते हैं तहां पिता बाधक नहीं होते । पुत्र बहुत बार उद्धत हो कर त्याग को स्वच्छंदता का रूप दे कर पिता को खिजलाता है । ऐसे त्याग को मैं त्याग नहीं कहता । शुद्ध त्याग में इतनी नम्रता होती है कि पिता को वह दिखाई भी नहीं देता । त्याग को बडा स्वरूप देने की आवश्यकता नहीं होती । स्वाभाविक त्याग प्रवेश करने के पहले बाजे नहीं बजाता । वह अदृश्य रूप से आता है और किसीको खबर तक नहीं पडने देता । वह त्याग शोभित होता है और कायम रहता है । वह त्याग किसीको भारभूत नहीं होता और संक्रामक साबित होता है ।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

कुछ आक्षेपों पर विचार

'जनन-मर्यादा'-संबन्धी मेरे लेख को पढकर, जैसा कि ख्याल था, कुछ लोगो ने कृत्रिम साधनों के पक्ष में बडे जोरों के साथ चिट्ठियां मुझे लिखी है । उनमें से सिर्फ तीन पत्र बतौर नमूने के मैंने चुन लिये हैं । एक और पत्र भी है पर वह बहुतांश में धर्मशास्त्र से संबंध रखता है सो उसे छोड देता हूं । एक पत्रप्रेषक लिखते है—

"मै मानता हूं कि ब्रह्मचर्य ही सब से बडा और अच्छा उपाय है । लेकिन यह संयम का विषय है, जन्म-मर्यादा का नहीं । इसपर हम दो दृष्टियों से विचार कर सकते हैं—एक व्यक्ति की और दूसरी समाज की । कामविकार को मारना व्यक्ति का फर्ज है, लेकिन इसमें वह जन्म-मर्यादा का विचार नहीं करता । सन्यासी मोक्ष प्राप्त करने की कोशिश करता है जन्ममर्यादा की नहीं । लेकिन यह गृहस्थों का प्रश्न है । एक मनुष्य कितने बच्चों को पाल सकता है यह सवाल है । आप मनुष्य-स्वभाव को तो जानते ही हैं । कितने मनुष्य प्रजोत्पत्ति की आवश्यकता पूरी हो जाने के बाद संभोग सुख को छोड देने के लिए तैयार रहेंगे ? स्मृतिकारों की तरह आप संयम में रह कर संभोगेच्छा पूरी करने की इजाजत तो देंगे ही । लेकिन इससे जन्ममर्यादा का सवाल हल न होगा क्योंकि योग्य प्रजा अयोग्यप्रजा से अधिक शीघ्र बढती है ।

सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से कितने मनुष्य संभोग करते हैं ? आप कहते हैं सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के बिना संभोग करना पाप है । यह संन्यासी के लिए ही ठीक है । आप यह कहते हैं कि कृत्रिम साधनों का प्रयोग बुराई को बढाता है । उससे स्त्री-पुरुष उच्छृंखल हो जाते हैं । यदि यह सच हो तो आप यह बडा भारी दोष लगाते है । संभोगेच्छा को संयम में रखने के लिए सार्वजनिक अभिप्राय इतना जोरदार कभी नहीं हुआ था । लोग कहते है कि ईश्वर की इच्छा से सन्तान होती है, जिसने दांत दिये है वह दूध भी देगा । और अधिक सन्तति होना मर्दानगी समझी जाती है । क्या निश्चय ही कृत्रिम साधनों के प्रयोग से शरीर और मन निर्बल हो जाते है ? लेकिन आप तो किसी प्रकार भी उसका उपयोग करने देना नहीं चाहते । क्योंकि अपने कर्म के फल से मुह छिपाना बुरा है और अनीति भी है । इसमें आप यह मान लेते हैं कि ऐसी भूख को थोडा भी बुझाना अनीति है । यदि डर संयम का कारण हो तो उससे नैतिक परिणाम अच्छा न होगा । मातापिता के पाप के भागी सन्तति किस नियम से होनी चाहिए ? बनावटी दांत, आंख इत्यादि के इस्तेमाल को कोई कुदरत के खिलाफ नहीं समझता है । वही कुदरत के खिलाफ है जिससे हमारी भलाई नहीं होती । मै यह नहीं मानता कि मनुष्य स्वभाव से ही बुरा है । हमें स्त्रियों को भी न भूल जाना चाहिए । उनकी आवश्यकताओं पर हमने बहुत दिनों तक ध्यान नहीं दिया है । वे प्रजोत्पत्ति के लिए जमीन के तौर पर अपने शरीर का इस्तेमाल करने से पुरुष को इजाजत नहीं देतीं । कुछ रोग भी ऐसे हैं जिन्हें मज्जातंतुओं के निर्बल हो जाने की जोखिम उठा कर भी दूर करना चाहिए ।"

पहले ही मैं यह बात साफ किये देता हू कि मैंने वह लेख न तो संन्यासियों के लिए और न एक संन्यासी की हैसियत से लिखा था । मैं प्रचलित अर्थ के अनुसार संन्यासी होने का दावा भी नहीं करता । मैंने जो कुछ लिखा है अपने आज तक के अखंडित निजी अभ्यास के बल पर लिखा है, जिसमें २५

साल के बीच कहीं कहीं नियम-भंग हुआ है । यही नहीं, मेरे उन मित्रों का अनुभव भी इसमें शामिल है जिन्होंने इस प्रयोग में बरसों मेरा साथ दिया है जिसके कि बदौलत कुछ परिणाम निश्चित किये जा सकते हैं । प्रयोग में क्या युवक और क्या बूढे दोनों प्रकार के स्त्री पुरुष सम्मलित हैं । मेरा दावा है कि यह प्रयोग कुछ अंश तक तो वैज्ञानिक दृष्टि से भी यथावत् था । यद्यपि उसका आधार बिल्कुल नैतिक था, तथापि उसका उद्गम जनन-मर्यादा की अभिलाषा से हुआ था । इस प्रयोजन के लिए खुद मेरा ही एक विलक्षण उदाहरण था । उसके पश्चात् विचार करने पर उससे भारी भारी नैतिक परिणाम निकले-पर निकले वे बिल्कुल स्वाभाविक क्रम से । मैं यह दावा करता हूं कि यदि विचार और विवेक से काम लिया जाय तो बिना ज्यादह कठिनाई के संयम का पालन करना बिल्कुल सम्भवनीय है । और यह मुझ अकेले का ही दावा नहीं बल्कि जर्मन तथा दूसरे प्राकृतिक चिकित्सकों का भी है । उनका तो कहना है कि जल तथा मिट्टी के प्रयोग से स्नायुयें संकुचित होती है और सादे तथा विशेष कर फल-भोजन से स्नायुओं का वेग शमन होता है, एवं विषय विकार को मनुष्य आसानी से जीत सकता है, पर साथ ही उससे स्नायु पुष्ट और बलवान् भी होती है । राजयोगियों का कहना है कि केवल यथाविधि प्राणायाम करने से भी यही लाभ होता है । न तो पश्चिमी और न पूर्वी प्राचीन विधियां अकेले संन्यासियों के लिए है, बल्कि इसके विपरीत खास कर गृहस्थों के लिए हैं । यदि यह कहा जाय कि जन-संख्या की अतिवृद्धि के कारण कृत्रिम साधनों के द्वारा जनन-मर्यादा की आवश्यकता है तो मुझे इस बात में पूरा शक है । यह बात अबतक साबित ही नहीं की गई है । मेरी राय में तो यदि धरती का प्रबंध समुचित कर दिया जाय, कृषि की दशा सुधारी जाय और एक सहायक धन्धे की तजवीज कर दी जाय तो हमारा यह देश अपनी जन-संख्या से दूने लोगों का भरण-पोषण कर सकता है । मैंने तो देश की मौजूदा राजनैतिक अवस्था की दृष्टि से ही जनन-मर्यादा चाहनेवालों का साथ दिया है ।

मैं जरूर यह बात कहता हूं कि मनुष्य की सन्तानोत्पत्ति की अभिलाषा पूरी हो जाने पर उसका काम विकार अवश्य शमन होना चाहिए । आत्म-संयम के उपाय लोकप्रिय और फलदायी किये जा सकते हैं । शिक्षित लोगों ने कभी उसकी आजमाइश ही नहीं की । संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा को धन्यवाद है कि उसकी बदौलत अभी शिक्षित लोगों को उसका भार मालूम नहीं हुआ है । जिन्होंने मालूम किया है उन्होंने उसके अन्तर्गत नैतिक सवालों पर विचार नहीं किया है । ब्रह्मचर्य पर कुछ इधर-उधर व्याख्यानों के अलावा सन्तानोत्पत्ति को मर्यादित करने के उद्देश से आत्म-संयम के प्रचार के लिए कोई भी व्यवस्थित प्रयत्न नहीं किया गया है । बल्कि उसके प्रतिकूल यह अन्ध विश्वास कि बृहत् कुटुंब का होना एक शुभ लक्षण है, और इसलिए वह वाञ्छनीय है, अब भी प्रचलित है । धर्मोपदेशक आम तौर पर यह उपदेश नहीं देते कि प्रसंग उपस्थित होने पर सन्तानोत्पत्ति को परिमित करना भी उतनी ही धार्मिक क्रिया है जितना कि प्रसंग-विशेष पर सन्तानवृद्धि करना हो सकता है ।

मुझे भय है कि कृत्रिम साधनों के हिमायती लोग इस बात को गृहीत मान कर चलते हैं कि विषय-विकार की तृप्ति जीवन के लिए एक आवश्यक और इसलिए स्वयं ही वाञ्छनीय वस्तु है । अबला-जाति के लिए जो चिन्ता प्रदर्शित की गई है वह तो अत्यन्त करुणाजनक है । मेरी राय में तो कृत्रिम साधनों के द्वारा जनन-मर्यादा की पुष्टि के लिए नारी-जाति को सामने खड़ा करना उनका अपमान करना है । एक तो यों ही मनुष्य ने अपनी विषय-तृप्ति के लिए उसका काफी अधःपात कर डाला है और अब ये कृत्रिम साधन, उनके हिमायतियों के सदुद्देश के रहते हुए भी, उन्हे और गिराये बिना न रहेंगे । हां, मैं जानता हूं कि आजकल ऐसी स्त्रियां भी हैं जो खुद ही इन साधनों की हिमायत करती हैं । पर मुझे इस बात में कोई शक नहीं कि स्त्रियों की एक बहुत बड़ी तादाद इन साधनों को अपने गौरव के खिलाफ समझ कर उनका निरादर करेंगी । यदि पुरुष सचमुच स्त्री-जाति का हित चाहता है तो उसे चाहिए कि वह खुद ही अपने मन को वश में रक्खे । स्त्रियां पुरुषों को नहीं ललचातीं । सच पूछिए तो पुरुष ही खुद ज्यादती करता है और इसलिए वही सच्चा अपराधी और ललचानेवाला है ।

मैं कृत्रिम साधनों के हामियों से आग्रह करता हूं कि इसके नतीजों पर गौर करें । इन साधनों के ज्यादह उपयोग का फल होगा विवाह-बंधन का नाश और मनमाने प्रेम-संबंध की बढ़ती । यदि मनुष्य के लिए विषय-विकार की तृप्ति आवश्यक ही हो जाय तो फिर फर्ज कीजिए यदि वह बहुत काल तक अपने घर से दूर हो, या दीर्घ काल तक युद्ध में लगा रहे, या वह विधुर हो जाय या उसकी पत्नी ऐसी बीमार हो जाय कि कृत्रिम साधनों का प्रयोग करते हुए भी उसकी विषय-तृप्ति के अयोग्य हो तो ऐसी अवस्था में उसे क्या करना होगा ?

लेकिन दूसरे लेखक कहते है—

"जन्म-मर्यादा संबंधी आपके लेख में आप यह कहते हैं कि कृत्रिम-साधन बिल्कुल हानिकारक है । लेकिन आप उसी बात को मान लेते हैं जिसे कि सिद्ध करना है । जन्म-मर्यादा सम्मेलन (लंदन १९२२) में यह प्रस्ताव १६४ विरुद्ध ३ मत से स्वीकार कर लिया गया था कि गर्भ को न ठहरने देने के स्वास्थ्यकर उपाय नीति, न्याय और शरीर-विज्ञान की दृष्टि से गर्भपात से बिल्कुल ही भिन्न है और ऐसे उत्तम उपाय हानिकारक या वंध्यत्व के उत्पादक हों यह बात किसी प्रमाण से साबित नहीं हो पाई है । मेरे ख्याल से ऐसी संस्था का अभिप्राय कलम के एक झटके से रद्द नहीं किया जा सकता । आप लिखते हैं बाह्य साधनों का उपयोग करने से तो शरीर और मन निर्बल हो जाना चाहिए । क्यों हो जाना चाहिए ? मैं कहता हू कि योग्य उपायों के इस्तेमाल से निर्बलता नहीं आती । हां ! हानिकारक उपायों से जरूर आती है और इसीलिए पुख्त उम्र के लोगों को इसके योग्य उचित उपाय सिखाना आवश्यक है । संयम के आपके उपाय भी तो कृत्रिम साधन ही होंगे । आप कहते हैं, संभोग करना आनंद के लिए नहीं बनाया गया है । किसने नहीं बनाया है ? ईश्वर ने ? तो संभोग की इच्छा किसलिए बनाई गई । कुदरत के कानून में कार्यों का फल अनिवार्य है । लेकिन आपकी यह दलील, जबतक आप यह साबित न करें कि कृत्रिम साधन हानिकारक है, किसी काम की नहीं है । कार्यों के अच्छे बुरे होने की पहचान उसके परिणाम से होती है । ब्रह्मचर्य के लाभों का वर्णन करने में बड़ी अतिशयोक्ति की गई है । बहुत से डाक्टर २२ साल की या ऐसी ही कुछ उम्र के बाद उसे हानिकारक मानते हैं । यह आपके धार्मिक आग्रह का परिणाम है कि आप प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना संभोग को पाप मानते हैं । इससे सबपर आप पाप का आरोपण करते हैं । शरीरविज्ञान यह नहीं कहता । ऐसे आग्रहों के सामने विज्ञान को कम महत्व देने के दिन अब चले गये हैं ।'

लेखक शायद अपना समाधान नहीं चाहते । मैंने यतो ह दिखलाने के लिए कि यदि हम विवाह-बंधन की पवित्रता को कायम रखना चाहते हैं तो भोग नहीं बल्कि आत्म-संयम ही जीवन का धर्म समझा जाना चाहिए, काफी उदाहरण दे दिये हैं ।

जिस बात को सिद्ध करना है उसीको मैंने गृहीत नहीं किया है। क्यों कि मैं तो यही कहता हूं कि कृत्रिम साधन चाहे कितने ही उचित क्यों न हों पर वे हानिकर ही हैं। वे खुद चाहे हानिकर न हों पर वे इस तरह हानिकर जरूर हैं कि उनके द्वारा विषय-विकार की क्षुधा उद्दीप्त होती है और ज्यों ज्यों उसका सेवन किया जाता है त्यों त्यों बढती जाती है। जिसके मन को यह मानने की आदत पड गई है कि विषय-भोग केवल विधि-विहित ही नहीं बल्कि वांछनीय भी है, वह भोग के ही भोजन में सदा रत रहेगा और अन्त को इतना निर्बल हो जायगा कि उसकी तमाम संकल्प शक्ति नष्ट हो जायगी। मैं पुनः पुनः कहता हूं कि प्रत्येक बार किये गये विषय-भोग से मनुष्य की वह अनमोल शक्ति कम होती है जो क्या पुरुष और क्या स्त्री दोनों के शरीर, मन और आत्मा को सशक्त रखने के लिए बहुत आवश्यक है। इससे पहले मैंने इस विवाद में आत्मा शब्द को जान बूझ कर छोड दिया था; क्योंकि पत्र-लेखक उसके अस्तित्व का खयाल करते हुए नहीं दिखाई देते और इस बहस में मुझे सिर्फ उनकी दलीलों का जवाब देना था। भारतवर्ष में एक तो यों ही विवाहित लोगों की संख्या बहुत है। फिर वह निःसत्व भी काफी हो चुका है। यदि और किसी कारण से नहीं तो उसकी गई हुई जीवनी शक्ति को वापिस लाने के ही लिए उसे कृत्रिम साधनों के द्वारा विषय-भोग की नहीं बल्कि पूर्ण संयम की शिक्षा की जरूरत है। हमारे अखबारों को देखिए। किस तरह दवाइयों के अनीतिमूलक विज्ञापन उन्हें कुरूप बना रहे हैं! कृत्रिम साधनों के हिमायती उन्हें अपने लिए चेतावनी समझें। कोई लज्जा या झूठे संकोच का भाव मुझे इसकी चर्चा से नहीं रोक रहा है; बल्कि यह ज्ञान कि इस देश के जीवन शक्ति से हीन और निर्बल युवक विषयभोग के पक्ष में पेश की गई सदोष युक्तियों के शिकार कितनी आसानी से हो जाते हैं, मुझसे संयम करा रहा है।

अब शायद इस बात की जरूरत नहीं रह गई है कि दूसरे पत्र-लेखक के उपस्थित किये डाक्टरी प्रमाणपत्रों का जवाब दूं। मेरे पक्ष से उनका कोई संबंध नहीं। मैं इस बात की न तो पुष्टि ही करता हूं और न उससे इनकार ही करता हूं कि उचित कृत्रिम साधनों से अवयवों को हानि पहुंचती है या वन्ध्यापन होता है। डाक्टर लोग चाहे कितनी ही उत्कृष्टता के साथ व्यूह-रचना क्यों न करें, उनके बदौलत उन सैकडों नौजवानों के जीवन का सत्यानाश असिद्ध नहीं हो सकता, जो और तो ठीक खुद उन्हीं की पत्नियों के साथ अति भोग-विलास के बदौलत हुआ है और जिसे मैंने खुद देखा है।

पहले लेखक की दी हुई कृत्रिम दांत की उपमा फबती हुई नहीं जान पडती। हाँ, बनावटी दांत जरूर ही मनुष्य कृत और अस्वाभाविक होते हैं; पर उनसे कम से कम एक आवश्यक प्रयोजन की पूर्ति तो हो सकती है। पर इसके खिलाफ विषय-भोग के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग उस भोजन की तरह है जो भूख बुझाने के लिए नहीं बल्कि स्वादेन्द्रिय को तृप्त करने के लिए किया जाता है। केवल जिह्वा के आनन्द के लिए भोजन करना उसी तरह पाप है जिस तरह कि विषय-भोग के लिए भोग-विलास करना।

इस आखिरी पत्र में एक नई ही बात मिलती है—

"यह प्रश्न संसार के सब राज्यों को चिन्तित कर रहा है। मैं आपके 'जन्म-मर्यादा' संबंधी लेख के बारे में लिख रहा हूं। आप निस्सन्देह यह तो जानते ही होंगे कि अमेरिका इसके प्रचार के खिलाफ है। आपने यह भी सुना होगा कि जापान ने इसकी खुले आम इजाजत दे दी है। इसका कारण सबको विदित है। उन्हें प्रजोत्पत्ति रोकनी थी। इसके लिए मनुष्य-स्वभाव का भी उन्हें विचार करना था। आपका नुस्खा आदर्श हो सकता है, लेकिन क्या वह व्यावहारिक भी है? क्या मनुष्य भोग-आनन्द को छोड सकते हैं? थोडे मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं लेकिन क्या जनता में इसके संबंध में की गई किसी हलचल से कुछ मतलब हल हो सकता है? भारतवर्ष में तो इसके लिए सामुदायिक हलचल की ही आवश्यकता है।"

मुझे अमेरिका और जापान की ये बातें मालूम न थीं। पता नहीं, जापान क्यों कृत्रिम साधनों का पक्ष ले रहा है। यदि लेखक की बात सही है और यदि सचमुच जापान में कृत्रिम साधन एक आम चीज हो रही है तो मैं साहस के साथ कहता हूं कि यह उत्कृष्ट राष्ट्र अपने नैतिक सत्यानाश की ओर दौडा जा रहा है।

हो सकता है कि मेरा ख्याल बिलकुल गलत हो। संभव है मेरे निर्णय गलती सामग्री के आधार पर निकले हों। लेकिन कृत्रिम साधनों के हामियों को धीरज रखने की जरूरत है। आधुनिक उदाहरणों के अतिरिक्त उनके पक्ष में कुछ भी सामग्री नहीं है। निश्चय ही एक ऐसे निग्रह साधन के विषय में जो कि यों देखने में ही मनुष्य-जाति के नैतिक भावों के नजदीक ऐसे घृणास्पद है, किसी भी अंश तक निश्चय के साथ कुछ भविष्य कथन करना बडी जल्दबाजी होगी। नौजवानों के साथ खिलवाड करना तो बहुत आसान है; परन्तु ऐसे छिछोरपन के दुष्परिणामों को मिटाना टेढी खीर होगा।

(य. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दुओं की ज्यादती

एक मुसलमान पत्र-लेखक मेरे "दूसरे की निजी जमीन पर मस्जिद बनाने" वाले लेख के बारे में मुलायम शब्दों में मुझे उलहना देते हुए हिन्दुओं की वैसे ही मान ली गई जबरदस्ती के आधार-रहित उदाहरण देते हैं। फिर भी वे एक उदाहरण का सच्चा आधार भी पेश करते हैं। मैंने उन्हें अपने दूसरे उदाहरणों का भी समर्थन करने के लिए निमन्त्रित किया है और उनसे वादा किया है कि यदि वे उनका समर्थन कर सकेंगे तो मैं उन सबको प्रकाशित कर दूंगा और उनकी जांच भी करूंगा। मैं सिर्फ उसी बात को पेश करता हूं जिसको लेखक ने प्रमाण के द्वारा पुष्ट किया है।

"लोहानी के मुसलमान अपनी पुरानी कच्ची मस्जिद की जगह पक्की मस्जिद बांधना चाहते हैं। हिन्दू लोग मुसलमानों के इस हक को शायद कुबूल करना नहीं चाहते। हमारे उन भाइयों ने अपने हकदार देशवासियों के खिलाफ उसी बहिष्कार के शस्त्रों का प्रयोग किया है जिसका कि प्रयोग उन्हें विदेशी ज्यादतियों के खिलाफ करना सिखाया गया है। नमाज और आजान सब बन्द कर दी है।"

लोहानी के हिन्दुओं ने यदि वैसा ही किया है जैसा कि ऊपर कहा गया है तो निश्चय ही ज्यादती करने का अपराध उन्होंने किया है। मैं उन्हें अपने पक्ष का बयान प्रकाशित करने के लिए और यदि उनके खिलाफ कही गई बात सच हो तो बिना विलंब इसका निपटारा करने के लिए निमन्त्रण देता हूं। जो लोग खुद न्याय चाहते हैं उन्हें, अपने हाथ पाक साफ रखना चाहिए।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

मेरी स्थिति

वार्षिक
छः मास का
एक प्रति का
विदेशों के लिए

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ३६

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, वैशाख बदी ८, संवत् १९८२ गुरु वार, १६ अप्रैल, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

महासभा के सदस्य

महासभा के सदस्यों की संख्या १२,४०० तक पहुच गई है। अबकी बार बंगाल गुजरात की प्रायः बराबरी पर आ पहुंचा है।

प्रान्तीय मन्त्रियों से

मैं आशा करता हूं कि महासभा के हर प्रान्तीय मन्त्री महा-मन्त्री तथा यं. इं. के दफ्तर को हरहफ्ते सदस्यों का ब्योरा भेजते रहेंगे जिससे कि यह मालूम हो कि उनके प्रान्त में मताधिकार संबंधी काम किस तरह हो रहा है। महासभा की संस्थाओं के लिए इस नये मताधिकार को असफल कर देना बहुत ही आसान बात है। पर उनसे आशा तो यह की जाती है कि वे उसे सफल बनाने में तनमन से जुट जायगे। महज सदस्यों के नाम लिख लेना ही उनके कर्तव्य की इतीश्री या मुख्य भाग नहीं है। सदस्य बनाने के क्रम को जारी रखने के लिए निरन्तर ध्यान देने और संगठन को दिन पर दिन सुधारने की जरूरत रहती है। उन लोगो के लिए जो अबतक महासभा के हाथ में कुछ रुपये या कुछ आने फेंक दिया करते थे, प्रतिदिन राष्ट्र का विचार करना और कम से कम आध घण्टा ही क्यों न हो, उसके लिए परिश्रम करना, आसान बात नहीं है। ऐसे सूतकार यदि दस हजार भी हों तो वे हमारे राष्ट्रीय जीवन में क्रान्ति पैदा कर देंगे और देश के लाखों दरिद्रों की निस्तेज आंखों में रोशनी डाल देंगे। ये दस हजार सूतकार हर अर्थ में स्वेच्छापूर्वक कातनेवाले होने चाहिए—वे अधभूखे सूतकार नहीं जो अपनी रोजी के लिए चरखा कातते हों, बल्कि वे जो अपना आध घण्टा राष्ट्र को मुफ्त देते हों। ऐसे लोग भी बिना बेजा दबाव के कातते हों। परन्तु सच्चा खादी-वायुमण्डल जो—भाषण का नहीं बल्कि कार्य का, लाचारी का नहीं बल्कि स्वावलंबन का वायुमण्डल … हजार सूतकारों के बदौलत स्थापित होगा जो मध्यमवर्ग के होंगे और जो महासभा के अधीन संगठन का काम करेंगे।

अखिल भारतीय गोरक्षण सभा

अ०भा० गोरक्षण-सभा का चिरस्थायी संगठन करने का काम एक कदम और आगे बढा है। पाठकों ने देखा ही होगा कि सर्वसाधारण की एक सभा करने की विज्ञप्ति प्रकाशित हो चुकी है। उसका उद्देश्य होगा उस संगठन पर विचार करना और विचारोपरान्त यदि वांछनीय मालूम हो तो उसे स्वीकृत करना। पाठकों ने पिछली एक संख्या में उस संगठन को पढा होगा। सभा बंबई (माधव बाग) में होगी। यह स्थान ऐसे शुभ कार्य के लिए बहुत प्रसिद्ध है। सभा २८ अप्रैल को होगी। मैं आशा करता हूं कि हर शख्स जो उस संगठन को और उसमें बताये गोरक्षा के साधनों को पसन्द करता हो उसमें आवेगा ये कमसे कम प्रतीकार के मार्ग पर तैयार किये गये हैं। गोरक्षा के लिए न तो जोरदार और न उत्साह-पूर्ण अपील ही अहिन्दुओं से की जायगी, बल्कि खुद हिन्दू-धर्म में ही जो दोष और जो भ्रष्टता घुस गई है उसे दूर करने की कोशिश की जायगी। यह संगठन गोरक्षा के आर्थिक पहलू पर जोर देता है और सफल होने पर शहरों को बहुत शुद्ध और सस्ता दूध थोडे ही समय में मिलने लगेगा। इसमें उन संस्थाओं के साथ चमडे के कारखानों को जोडने की गुंजायश रक्खी गई है जो या तो इस संगठन के द्वारा खोली जायं या संलग्न की जाय। मैं तमाम छोटे और बडे राजा-महाराजाओं का भी ध्यान जिनकी कि नजर इन सतरों पर पड जाय, इस बात की ओर दिलाता हूं कि वे इस संगठन को देखकर उसपर विचार करें और यदि उन्हें यह जंचे कि यह हमारे स्वीकार करने लायक है, तो सभा में उपस्थित होकर उसकी शोभा को बढावें और जो सज्जन अनिवार्य कारणों से न पधार सकें वे अपनी सहानुभूति का संदेशा या अपनी तरफ का चन्दा नकद या अन्य रूप में देकर व्यवस्थापकों को अनुगृहीत करें।

पत्र-लेखकों से

मेरे नाम दुनिया के तमाम हिस्सों से आये पत्र का ढेर लगा हुआ है जिसके कि ओर मुझे खुद ध्यान देने की जरूरत है। जिन पत्रों आदि की यथोचित कारंवाई मेरे सहायकों के द्वारा दिन दिन ऐसी होती है वह तो जल्दी और ठीक हो जाती है। पर खुद मुझे पढने और जवाब देने की जरूरत होती है जिसे समय से मेरी सफर इस साल बहुत बढ गई है। यं० इं० और न०जी० के लिए लेखादि लिखने के बाद जो थोडा समय मिलता है उसीमें उनपर ध्यान दिया जा सकता है। फल यह हुआ है कि पत्रों का इतना ढेर लग गया है कि उनके उत्तर आदि देना

मेरी शक्ति के बाहर हो गया है । अब भी चार से छः महीने और यात्रा का कार्यक्रम निश्चित हो चुका है । अतएव यदि मैं अपने पत्र-प्रेषकों को समय पर उत्तर न दे पाऊं, या बिल्कुल न दे सकूं तो वे मुझे कृपया क्षमा करेंगे और यह समझेंगे कि देरी या उत्तर न मिलने का कारण मेरी इच्छा या शिष्टता का अभाव नहीं है ।

यं. इं. और नवजीवन के लिए जो पत्रादि भेजते हैं उनपर भी ये बहुत घटित होते हैं । उनके लिए मैं उससे अधिक समय देना पसंद करूंगा जितना दे रहा हूं । पर मैं निरुपाय हूं । मुझे कभी कभी तो महत्वपूर्ण पत्रों को यों ही रक्खे रहने देना पड़ता है । इतनी ज्यादह लिखा-पढ़ी आधुनिक जीवन का एक दोष है । और मुझ जैसे महत्वाकांक्षी लोगों पर तो वह दुहरा उलट पड़ता है । मेरे कुछ परमप्रिय मित्रों ने तो मुझे सलाह दी है कि मैं अपने कुछ कामों को ताक पर रख दूं और आराम करूं । पर मैं रोज अपनी हानि पर इस कहावत की सत्यता का अनुभव कर रहा हूं कि मनुष्य परिस्थिति का पुतला है । यद्यपि इसमें अर्धसत्य है तथापि यह अर्धसत्य ही मुझसे यह क्षमा-याचना कराने के लिए काफी है । पर मैं उन्हें यह कह देना चाहता हूं कि मैं अपना सुधार करने की कोशिश कर रहा हूं और पत्रों के लिए अधिक समय देने का आग्रह कर रहा हूं । सप्ताह में एक से अधिक दिन मुझे उपवास करने का भार फिर अपने ऊपर लादना होगा । बंगाल के मित्रों से मैं अनुरोध करूंगा कि वे इसमें आगे कदम बढ़ावें ।

बंगाल-यात्रा

यह लंबी क्षमा-याचना मुझे बंगाल-यात्रा पर ले आती है । मेरे सामने जो तार पड़े हुए हैं वे कहते हैं कि कोई पांच सप्ताह का कार्यक्रम वहां रक्खा गया है । आशा है कि कार्यकर्ता सोमवार को न भूले होंगे । आमतौर पर ये दिन मौन के हैं और इन दिनों दूसरा काम-काज बंद रहता है । पर मैं चाहता हूं कि संभव हो तो व्यवस्थापक लोग बुधवार को भी बतौर मौनवार के रख छोड़ें जिससे कि मैं हर सप्ताह लेख इत्यादि समय पर लिख कर भेज सकूं । मैं अपना चरखा अपने साथ यात्रा में ले जाया करता था । अब मैंने वह तजवीज बदल दी है । अब जो लोग मेरे खान-पान का प्रबन्ध करेंगे उन्हीं को एक अच्छे चलते हुए चरखे का भी इन्तजाम करना होगा । इस नयी व्यवस्था के द्वारा मुझे जगह जगह के चरखों की जांच भी करने का अवसर मिल जायगा । और चूंकि मेरे यजमान मेरे लिए अच्छे से अच्छा चरखा रखते हैं इससे मुझे यह अंदाज करने का अवसर मिल जाता है कि उस स्थान में सूत कैसा कतता है । क्योंकि अब मैं देखूंगा कि वहां का अच्छे से अच्छा चरखा भी ऐसा ही वैसा है तो मैं जान जाऊंगा कि यहां सूत की पैदायश भी ऐसी ही वैसी होती है । इसलिए मैं आशा करता हूं कि हर जगह मेरे लिए एक उत्तम चरखा और उसे कातने के लिए समय की व्यवस्था रहेगी । तीसरी बात यह कि ऐसी हिदायतें निकलनी चाहिए कि लोग जमा हों तो शोरगुल न करें और प्लेट-फार्म पर जाने के लिए रास्ता छोड़ दिया करें । इन भीड़-भड़क्के से निकलने में अक्सर समय का बहुत दुर्व्यय होता है । स्वयंसेवकों का जंजीर बना कर खड़े रहना इस बात का सूचक है कि लोग नियमित अनुशीलन नहीं करते हैं । यदि व्यवस्थापकों ने सविस्तर हिदायतें लिख कर पहले से बांट दी हों और सभा का काम शुरू होने के पहले जबानी भी उन्हें सूचित कर दिया जाय तो भीड़ में सुव्यवस्था हो सकती है । यह भी हिदायत दे दी जानी चाहिए कि लोग मेरे चरण न छुएं । मुझे ऐसे अभिवादन की कोई अभिलाषा नहीं है । मुझे उन लोगों से जो मेरा आदर करना चाहते हैं जिस अभिवादन की जरूरत है वह यह कि वे मेरे जिस काम को पसंद करते हों उसका अनुसरण करें । यदि वे छाती तान कर सीधे खड़े रहें और यदि वे चाहें तो सलाम करें या प्रणाम करें तो काफी है । यदि मेरा बस चले तो मैं तो उसे भी मना करता हूं । प्रेम तो आंखों में ही आसानी से झलक आता है । इससे अधिक हावभाव की कोई आवश्यकता नहीं । पर हां, मैं जरूर यह देखने के लिए लालायित हूं कि बंगाल में मुझे खादीधारी लोग ही मिलें । पर ऐसा एक भी शख्स निकाला न जाय जो खादी न पहना हो । जो लोग खादी के कायल नहीं हैं वे विदेशी या मिलकते सूत का या मिल-बुना कपड़ा पहन कर शौक से आवें । परन्तु मैं समझता हूं कि बहुतांश में लोगों का खादी पर विश्वास है । अतएव उन्हें तो उसके अनुसार व्यवहार करना ही चाहिए । उन्हें खादी पहन कर अपने विश्वास को सिद्ध कर दिखाना चाहिए । अन्त में मुझे आशा है कि सब दल के लोग सभाओं में एकत्र होंगे । हर दल, सम्प्रदाय और जाति के लोगों को---अंगरेजों तक को--देखना मुझे प्रिय होगा । मैं इतना और सूचित कर देना चाहता हूं कि यदि व्यवस्थापक लोग बड़ी बड़ी सभाओं में व्याख्यान देने की अपेक्षा खानगी (गुप्त नहीं) बातचीत करने की व्यवस्था करेंगे तो अच्छा होगा । वह समारोह भी आवश्यक है; पर उसके लिए बहुत थोड़ा समय रखना चाहिए । विद्यार्थियों से तो मैं मिलूंगा ही । स्त्रियों की सभायें तो आजकल सर्वत्र होती ही हैं और मैं चाहता हूं कि हर जगह अछूतों की भी सभायें रक्खी जायं और यदि इधर की तरह बंगाल में उनके मुहल्ले अलहदा हों तो उनमें मैं जाना भी चाहता हूं । एक शब्द में कहूं तो यह यात्रा एक कार्योपयोगी यात्रा हो और शान्ति और सद्भाव इसका कार्य हो ।

काठियावाड़ में खादी

काठियावाड़ राजकीय परिषद् की कार्य-समिति ने खादी-प्रचार के संबंध में एक महत्वपूर्ण निर्णय किया है । उसने यह निश्चय किया है कि काठियावाड़ के भिन्न भिन्न स्थानों से कपास एकत्र की जाय और सूतकारों को बांट कर उसका सूत कतवाया जाय । ३०० मन कपास मिलने का वादा पहले ही मिल चुका है । अब उसने ८०० मन कपास या उसकी कीमत १९,२००) और इकट्ठा करना तय किया है । इस कपास का सूत कताकर खादी बनवाई जायगी । काठियावाड़ एक दरिद्र प्रदेश है । वहां बारिश बहुत थोड़ी होती है । कहीं कहीं तो अकाल आये दिन पड़ते ही रहते हैं । हजारों औरतें अपनी आय बढ़ाने के लिए कातने लगेंगी । अछूत लोगों में हजारों जुलाहे भी वहां हैं । उनका पुश्तैनी पेशा डूब जाने से अब वे बंबई या दूसरे शहरों में मैला उठाने का काम करके अपनी गुजर बसर कर रहे हैं । अभी खादी उतनी सस्ती नहीं है जितनी कि होनी चाहिए । इसलिए समिति ने यह भी निश्चय किया है कि ऐसे कुटुंब खोजें जो अपने कपड़ों के लिए सूत कातना कुबूल करें । पूनी उन्हें सस्ते दामों में दी जाय और उनका सूत सस्ते दामों में [illegible] दिया जाय । ऐसे कुटुम्बों [illegible] के लिए परिषद् ने ६ आना पौंड के भाव से पूनियां देने की तजवीज की है । एक साल में १० पौंड से ज्यादह पूनी किसी कुटुंब को न दी जायगी । बुनाई का भी सिर्फ आधा खर्च उनसे लिया जायगा । इसतरह उन्हें खरीदी से कोई ½ रकम अधिक पड़ेगी अर्थात् काठियावाड़ की मामूली दर ९ आना गज की अपेक्षा सिर्फ १½ गज खादी उन्हें पड़ेगी । इस

तरह यदि वे खुद कातना और अपने सूत का कपड़ा बनवाना कुबूल करें तो ५० फी सदी रिआयत उनके साथ हुई। दूसरे शब्दों में कहें तो इन १९०००) कीमत के कपास से कम से कम २७५० कुटुंब (एक मर्द, एक औरत, एक बच्चा) के लायक कपड़ा तैयार करने की तजवीज हुई है। कपास के खादी रूप में परिणत होने तक नीचे लिखी रकम मजदूरी के रूप में दी जायगी या बच रहेगी—

लोढाई	८०० मन की	१०००)
धुनकाई	,,	४०००)
कताई	७०० मन की	७०००)
बुनाई	६७५ ,,	६७५०)
	कुल	१८,७५०)

धुनकाई मे कपास ८०० से ७०० मन और कताई में ६७५ मन रह जायगा। खादी की लंबाई होगी ६७५०० गज और अर्ज होगा ३० इंच। कोई आठ नंबर का सूत होगा। इस प्रयोग के द्वारा बहुत महत्त्वपूर्ण आर्थिक परिणामों के निकलने की संभावना है। ध्यान रहे कि कपास हाथ से लोढ़ा जायगा। मैं उसके परिणाम की सूचना समय समय पर देता रहूंगा। यहां मुझे यह बात जरूर कहनी चाहिए कि यह प्रयोग यहां इसीलिए पूर्ण होने की संभावना है कि काठियावाड में तीन सुव्यवस्थित खादी-केन्द्र हैं जिनमें सधे और सीखे हुए कार्यकर्ता हैं। रुपया अभी जुटाना बाकी है। दो महीने में जुट जायगा। आशा है कि काठियावाडी धन या परिश्रम के रूप में सहायक होंगे।

खादी कार्यकर्ता की कठिनाइयां

श्री आदिनारायण चेट्टियरने जिनके कि जिम्मे तामिल नाड में महासभा के सदस्य बनाने का काम है, मुझसे कितने ही सवाल किये हैं और उनका उत्तर चाहा है। पहला प्रश्न यह है—

"अब से क्या आप 'क' दरजे के सदस्यों को भरती करने की प्रवृत्ति कम करना चाहते हैं या बिल्कुल ही बंद कर देना चाहते हैं?"

मुझे कोई हक नहीं है कि मैं 'क' दरजे के अर्थात् वे जो सूत खरीद कर देते हैं, सदस्यों की भरती की प्रवृत्ति को कम करूं। मौजूदा संगठन के अनुसार उन्हें भी सदस्य होने का उतना हक हासिल है जितना कि 'अ' दरजे के अर्थात् खुद कातनेवाले लोगों को है। पर मैं ऐसे लोगों को भरती के लिए उत्साहित नहीं करना चाहता। यदि भरती का काम मेरे जिम्मे होता तो मैं सिर्फ 'अ' दरजे के सदस्यों की भरती में ही अपनी सारी शक्ति लगाता और दूसरे दरजों के जो सदस्य खुद भरती होने आते उन्हें खुशी से भरती कर लेता।

दूसरा प्रश्न इस तरह है—

"कितनी ही स्त्रियां अपनी रोजी के लिए सूत कातती हैं। क्या आपकी राय में वे 'अ' दरजे में सदस्य हो सकती हैं यदि उन्हें यह समझा दिया जाय कि महासभा में शरीक होने पर उन्हें अपने आध घण्टे की मजदूरी राष्ट्र के भिक्षा-पात्र में देनी पड़ेगी? मेरा प्रस्ताव है कि २००० गज सूत कातने लायक रुई उन्हें महासभा से दी जाय।"

हां, जरूर मैं ऐसी बहनों को सदस्य बनाऊंगा, यदि वे यह समझती हों कि महासभा क्या है और खादी पहनती हों।

तीसरा सवाल—

"हाथ कताई तथा बेलगांव के प्रस्ताव के अनुसार सूतकातों की भरती के लिए वैतनिक प्रचारक रक्खे जायं या नहीं?"

जहां रुपया हो वहां जरूर वैतनिक प्रचारक रक्खे जायं; पर चन्दा कपास के रूप में मांगा जाय।

अब चौथा सवाल लीजिए—

"कुछ लोग चरखा और कपास उधार मांगते हैं। मेरा अनुभव है कि यह उधारी अन्त को 'मुफ्त' में परिणत हो जाती है। पर कुछ लोग तो दर-असल गरीब हैं। आपकी सलाह है कि उनकी प्रार्थना स्वीकार की जाय? यदि हां, तो किन शर्तों पर?"

जहां जहां जरूरत हो, चरखे वगैरह जरूर उधार दिये जायं, पर यह इत्मीनान कर लिया जाय कि वे वापस मिल जायंगे। चरखे किश्तों में रुपया वसूल करने की शर्त पर देने की भी तजवीज की जा सकती है। (यं॰ इं॰)

युगधर्म

पालीताना में मुनि श्री कर्पूरविजयजी गांधीजी से मिलने आये थे। उनसे जो बातचीत हुई थी वह इस प्रकार है। एक जैन व्यक्ति *लालनजी भी वहां उस समय बैठे थे, उन्होंने मुनजी से पूछा* "साधुओं को चरखा चलाने में कोई दोष है क्या?"

मुनिजी—"दोष तो है। अहिंसा का आत्यंतिक पालन करने वाले अप्रमत्त और जाग्रत रहनेवाले मुनि चरखा नहीं चला सकते हैं। लेकिन जो ऐसा दावा नहीं करते हैं वे चला सकते हैं?"

गां॰— "अर्थात लालनजी यदि ऐसा दावा न करते हों तो क्या वे चरखा चला सकते हैं? मैं यह नहीं समझ सकता कि इसमें अहिंसा-धर्म का त्याग कहां होता है। गृहस्थ की तरह साधु स्वार्थ के लिए कुछ भी न करे, यह बात तो समझ में आ सकती है। लेकिन परमार्थ के लिए तो उसे चरखा भी चलाना चाहिए। एक उदाहरण लीजिए। साधु रात को बाहर नहीं निकल सकते। लेकिन मान लो कि रात में पड़ौसी का घर जलने लगे तो क्या साधु घर में बैठा रहेगा और पड़ोसी को पानी की कुछ भी मदद न करेगा? यह अहिंसा का पालन नहीं है। मैं तो इसे हिंसा मानता हूं। इसी प्रकार दुष्काल के अवसर पर भी यदि अकाल पीड़ितों को कोई खास काम करने पर ही खाना मिल सकता है तो उस काम को कर दिखाना भी धर्म होगा। पानी के बिना यदि लोग छटपटाते हों और कुदाली लेकर खोदने की किसीकी इच्छा ही न हो तो साधु को कुदाली लेकर खोदने का बोध उन्हें देना चाहिए। खोदो कहने से कुछ काम न होगा। आप पानी का एक बूंद भी पीना न चाहते हों फिर भी यदि कुदाली ले कर तैयार हो जाओ और पानी निकाल कर लोगों को पिलाने के बाद ही आराम लो तो यह अहिंसा होगी। आपको पानी पीने की इच्छा मुतलक न हो फिर भी सबको पानी पिला कर पीओगे तो कुछ दोष न होगा। इस प्रकार साधु परमार्थ दृष्टि से अनेक कार्य कर सकते हैं, इस प्रकार कार्य करना उनका धर्म हो जाता है। इसी प्रकार आज हिन्दुस्तान में लोग अन्न को तरस रहे हैं। चरखा चलाने से गरीबों को रोटी मिल सकती है। इसलिए प्रत्येक निरुद्यमी मनुष्य को कातने में लगा देना धर्म हो जाता है। *लेकिन ऐसे समय में यदि साधु न कातें और सिर्फ कातने का उपदेश* ही करें तो काम कैसे चलेगा? जिस काम को वे करना नहीं चाहते हैं उसे लोग क्यों करेंगे? इसलिए साधुओं का तो यह धर्म है कि वे चुपचाप चरखा लेकर बैठ जायं और उसे चलाया ही करें। कोई यदि उनके पास आवे और उपदेश मांगे तो जवाब ही न दें। एक बार पूछे, दो बार पूछे, तीन बार पूछे, तो भी उत्तर न दें और आखिर को मौन तोड़ कर कहे कि यह करने के सिवा मुझे दूसरा कुछ भी उपदेश देना नहीं है। इसलिए अप्रमत्त जाग्रत साधु का यही धर्म है।

(शेष पृष्ठ २९० पर)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख वदी ८, संवत् १९८२

मेरी स्थिति

अभीतक मैंने महासमिति की कोई बैठक नहीं की है। पर अभी बंबई में पहली बार मैंने इस बात की शिकायत सुनी। एक पत्र-प्रतिनिधि ने मुझसे इस बात पर सवाल किया और उसे वे अत्यन्त महत्व देते हुए दिखाई दिये। उनके इस आन्दोलन को कुछ मिनिट तक तो मैं न समझ पाया; क्योंकि मुझे बिल्कुल पता नहीं कि इस विषय पर पत्रों में कुछ चर्चा हो रही है। मुझे लगातार सफर में रहना पड़ता है। इससे अखबारी दुनिया से मेरा ताल्लुक टूट ही गया है। उस दिन मदरास में जब शास्त्रीजी ने सर अब्दुर्रहमान के हक के मन्सूख किये जाने की बात कही तब जाकर, उस घटना के कई दिन बाद, मुझे उसका हाल मालूम हुआ। पर मुझे ऐसी प्रचलित घटनाओं के भारी अज्ञान पर अफसोस नहीं होता। क्यों कि मैं जानता हूं कि मैं उनपर कुछ असर डालने के लिए निरुपयोगी हूं। ऐसी बुराइयों की कोई तत्काल फल देने वाली दवा मेरे पास नहीं है। इसलिए प्रचलित घटनाओं संबंधी मेरे अज्ञान से कुछ बनता बिगड़ता नहीं है। मुझे तो अपनेको ऐसे कार्यकर्ताओं की तैयारी में लगाना है जो कार्यदक्ष हों, अहिंसापरायण हों, आत्म-त्यागी हों, जो चरखा और खादी पर तथा हिन्दू मुस्लिम-एकता पर और यदि वे हिन्दू हों तो अस्पृश्यता-निवारण पर भी विश्वास रखते हों। कमसे कम इस साल के लिए तो राष्ट्र का कार्यक्रम यही है, दूसरा नहीं।

मुझे अब निरे राजनैतिक कार्यक्रम की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं मालूम होती जिसे कि महासभा ने स्वराज्यदल को सौंप दिया है जो कि महासभा का एक अंग है। एक समय की बगल करनेवाले की हैसियत से मैं एक बेवकूफ आदमी हूंगा, अगर उन बातों के लिए अपना सिर खपाऊं जिन्हें मैंने खूब सोच समझ कर और पूरे विश्वास के साथ उन लोगों को सौंप दिया है जिन्होंने कि खुद ही अपने लिए उस क्षेत्र को चुन लिया है और जोकि अधिक नहीं तो कमसे कम उतने ही समर्थ हैं जितना कि मैं खुद हूं। मेरे लिए तो इतना ही काफी है कि मैं दूर से आदर-पूर्वक यह निहारूं कि किस तरह बड़ी धारा-सभा में पण्डित मोतीलाल नेहरू जवांमर्दी के साथ कोशिश कर रहे हैं, किस तरह देशबन्धुदास अपनी तन्दुरुस्ती गंवाकर भी शान शौकत के साथ इस सर्वशक्तिमान सरकार से भिड़ गये और जहां जहां सरकार ने उनसे मुठभेड़ की उन्होंने उसे पछाड़ा, किस तरह मध्यप्रांत के स्वराजी अपनी एकदिली का परिचय दे रहे हैं और किस प्रकार श्री जयकर शिष्टता के साथ चुपचाप सरकार के घर में अपना कदम आगे ही बढ़ा रहे हैं। मैं उनके काम पर महासभा के एक पदाधिकारी की हैसियत से या ऐसे-वैसे ध्यान देकर इन महान् कार्यकर्ताओं का अपमान न करूंगा। अपनी ईश्वर-प्रार्थना के द्वारा और देश को भीतर से तैयार करने के अनवरत उद्योग के द्वारा मैं उनकी सहायता कर रहा हूं। मैंने महासभा के अन्दर फूट कहीं नहीं सुनी। मैं फूट से अपना कोई ताल्लुक न रक्खूंगा। कार्य-समिति में ऐसे सज्जनों का बहुमत है जो बहीस में मेरे मतों को नहीं मानते हैं। उनका काम है मुझे सीधा रखना। इस साल में एक भी ऐसा काम नहीं करना चाहता जिसकी पुष्टि मेरे ये बहुमूल्य साथी न करें। मैं उन लोगों से लिखा-पढ़ी कर रहा हूं कि कार्य-समिति की कोई बैठक करना जरूरी है या नहीं। मैं नहीं चाहता कि उनका समय बिला-जरूरत खर्च कराऊं। महासमिति की बैठक का आयोजन भी मैं इसी कारण से नहीं कर रहा हूं। जब कोई नई बातें बतानी हों, या नया कार्यक्रम रचना हो तभी महासमिति की बैठक की जा सकती है। हमें न तो नई बातें बतानी हैं, न नया कार्यक्रम रचना है। कोई ४०० सदस्यों को दूर दूर से बुलाना खेल नहीं है। उनमें से अधिकांश तो दरिद्र ही हैं और सब अपने अपने कामों में लगे हुए होंगे या होने चाहिए। इसलिए मैंने जानबूझ कर ही महासमिति की बैठक नहीं करवाई है। पर अगर बहुतेरे सदस्य यह चाहते हों कि बैठक हो और यदि वे उसका प्रयोजन मुझे लिख भेजें तो मैं जरूर बिना विलम्ब बैठक करा दूंगा।

पर हर प्रान्त के लिए जो सबसे जरूरी बात है वह है खुद अपना संगठन करना। उनकी कमिटियां बार बार हों। हर प्रान्त को काम के लिए तो प्रान्तिक स्वतन्त्रता दी है। हर प्रान्त ईमानदारी और परिश्रम के साथ नये मताधिकार के लिए काम करें। मगर कुछ लोगों का ऐसा खयाल भी देखा जाता है कि यह मताधिकार असफल हुए बिना न रहेगा। सो मैं निराशावादियों और भयभाषियों को सूचित करता हूं कि कताई की हलचल की जड़ मजबूत हो रही है, कमजोर नहीं। सारे देश में कार्यकर्ता चुपचाप, निश्चयपूर्वक काम कर रहे हैं और उसका असर भी हो रहा है। खादी की उत्पत्ति और किस्म में बहुत सुधार हो गया है। खादी को सस्ता और ज्यादह टिकाऊ बनाने के कितने ही अच्छे अच्छे प्रयोग हो रहे हैं। तिरुपुर शायद सबसे आगे है। लेकिन तिरुपुर तो एक नमूना-मात्र है। गुजरात में भी प्रयोग अभी शुरू हुआ है। उसमें अनेक शक्तियां गर्भित हैं। खादी की कीमत को ९ आना से घटा कर ३ आना गज कर देने और साथ ही उसकी किस्म सुधारने की कोशिश हो रही है। नये मताधिकार का प्रत्यक्ष असर तो पहले ही बहुत-कुछ हो चुका है। प्रत्यक्ष परिणाम उन लोगों की क्षमता और अखण्डता पर अवलंबित है जो उसके लिए काम कर रहे हैं। उन्हें मेरी सलाह है—

१—सिर्फ उन्हीं लोगों को खोजो जो कातें और उनमें लोगों को भरती कर लो जो अपनी तरफ का सूत लाते हों।

२—परन्तु स्वयं कातनेवालों से भी अलिप्त रहो। उनकी मिन्नत-आरजू न करो। यह मताधिकार एक सौभाग्य की बात है। उन्हीं लोगों का मूल्य होगा जो इस सौभाग्य का मूल्य समझेंगे और उसे कायम रखने के लिए काम करेंगे।

३—थोड़े ही सदस्य यदि हों तो जबतक कि वे सच्चे हों निराश न होओ।

४—रुपया लेकर उसके बदले में सूत देने के चक्कर में न पड़ो। जो सदस्य बनना चाहते हैं उन्हीं पर सूत लाने का भार पड़ने दो। हां, उनके लिए चाहो तो सूत के भण्डार खोलो। प्रान्तीय खादी-मण्डल इस काम को करें।

अब यहां मैं अपनी स्थिति स्पष्ट किये देता हूं। मैं इस त्रिविध कार्यक्रम को अपना चुका हूं। मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता को सता सता कर उसे जीवन नहीं दे सकता। सो उसके लिए मुझे कोई बाहरी उपाय करने की जरूरत नहीं। एक हिन्दू की हैसियत से मैं उन तमाम मुसल्मानों की सेवा करूंगा जो करने देंगे। मैं उन लोगों को सलाह दूंगा जो मेरी सलाह चाहेंगे। औरों के लिए, मैं उस बात की चिन्ता करना छोड़ देता हूं जिसे मैं बना

नहीं सकता । लेकिन मेरे दिल में यह सजीव विश्वास है कि वह बने बिना न रहेगी । चाहे कुछ घमासान लड़ाइयों के बाद ही क्यों न हो वह सिद्ध जरूर होगी और यदि लड़ने की उमंग रखनेवाले लोग यहां है तो दुनिया में किसीकी ताकत नहीं जो उन्हें रोक सके ।

अछूतपन बिना मिटे न रहेगा । संभव है यह कुछ समय ले, पर जो तरक्की उसने की है वह बिल्कुल अद्भुत है । अभी वह विचार-संसार में ही अधिक है । पर कृति में भी उसका असर चारों ओर दिखाई देता है । उस दिन मांगरोल (काठियावाड) में अछूतों को अपने साथ बैठाने के खिलाफ एक भी औरत ने हाथ ऊंचा न उठाया । और जब वे दरअसल उनके साथ बैठ गये तब किसी ने चूं तक न किया । वह दृश्य भव्य था । ऐसा यह एक ही उदाहरण नहीं है । पर हाँ, इस चित्र का कृष्ण पक्ष भी है । हिन्दुओं को इस सुधार के लिए अविरत परिश्रम करना होगा । जितने ही अधिक कार्यकर्ता होंगे उतना ही पक्का नतीजा निकलेगा ।

परन्तु सबसे बढ़कर उत्साहदायी परिणाम तो कताई में दिखाई देंगे । देहात में उसका प्रसार हो रहा है । मैं साहस के साथ कहता हूं कि देहात की पुनर्रचना का यह सबसे अधिक कारगर तरीका है । हजारों स्त्रियां कातने की राह देख रही हैं । उन्हें अपने खाने-पीने के लिए कुछ पैसे दरकार हैं । हाँ, ऐसे गांव भी हैं जिन्हें किसी सहायक पेशे की जरूरत नहीं । फिल हाल मैं उन्हें हाथ न लगाऊंगा । जिस तरह कि मैं मताधिकार के लिए स्वयं कातनेवालों की मिन्नत न करूंगा उसी तरह मैं पैसे के लिए कातनेवालों की भी खुशामद न करूंगा । यदि उन्हें गरज हों तो कातें वर्ना नहीं । कार्यकर्ता के रास्ते में सबसे बड़ी दिक्कत है स्त्री-पुरुषों को उन्हें किसी न किसी काम की जरूरत रहते हुए भी कातने या दूसरा काम करने के लिए राजी करना । वे या तो भीख मांगकर पेट भरते हैं, या भूखों मरजाने पर सन्तुष्ट रहते हैं । हिन्दुस्तान में लाखों लोग ऐसे हैं जिनके लिए जीवन में कुछ रस नहीं रह गया है । हम खुद कात कर ही उनके हृदयतक पहुंच सकते हैं । मेरा तो मन कताई का वायुमण्डल बनाने में ही लगा हुआ है । जब बहुतेरे लोग किसी एक काम को करते हैं तब उसके द्वारा एक सूक्ष्म और अदृश्य परिणाम होता है जो आसपास फैल जाता है और संक्रामक सिद्ध होता है । मैं ऐसा ही वायुमण्डल चाहता हूं जिससे कि पूर्वोक्त काहिल लोग चरखा कातने के लिए खिंचते चले आवें । वे तभी खिंचेंगे जब वे देखेंगे कि जिन लोगों को चरखा कातने की आवश्यकता नहीं है वे लोग भी चरखा कात रहे हैं । इसीलिए इस नये मताधिकार की उत्पत्ति हुई है । परन्तु यदि महासभा के कार्यकर्ता इस कार्य में हाथ बटाना न चाहते हों तो वे शौक से अगले साल कार्यक्रम को बदल दें । मैं अगले साल भी निश्चय-पूर्वक लड़ाई से [illegible] रहूंगा । यदि कुछ थोड़े से लोग भी सदस्य बनने के लिए सूत कातेंगे तब भी मैं इस मताधिकार पर अटल रहूंगा । पर मैं येन केन प्रकारेण महासभा पर अपना अधिकार कायम रखना नहीं चाहता । मैं तो सिर्फ अपनी मर्यादितता बताये देता हूं । मैं सुधारों के अनुसार बिना किसी शक्ति के काम नहीं कर सकता । वह शक्ति आ सकती है लोगों को हिंसा या अहिंसा के लिए सुसंगठित करने से । मैं उन्हें सिर्फ अहिंसा के ही मार्ग पर संगठित कर सकता हूं, या फिर मुझे असफल समझिए । पर अभीतक असफलता का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता । चारों ओर सफलता की ही आशायें हैं । अहिंसा के मार्ग पर लोगों को संगठित करने के मानी हैं देहात के लोगों को ऐसा काम दिया जाय जिससे उन्हें दो पैसे की आमदनी हो, उनकी कुछ बुरी आदतें छुड़वाने के लिए उन्हें राजी करें, और अछूतपन को मिटाकर अछूतों के मन में हिन्दू-धर्म का अभिमान पैदा करते हुए तथा हिन्दुओं, मुसल्मानों और दूसरों के दिल में सब लोगों के सामान्य लक्ष्य के प्रति विश्वास पैदा करते हुए तथा उसके लिए सच्चे दिल से काम करते हुए उनमें एक राष्ट्रीयता का भाव जाग्रत कर दें । जबतक ये तीनों बातें पूरी न हो जायं तबतक राजनैतिक ढंग पर किसी काम को करने की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं हो रही है । जितना जल्दी हो सके स्वराज्य स्थापित करने के लिए मैं उतना ही उत्सुक हूं जितना कि हमारे बड़े से बड़े लोग हैं । हमपर होनेवाले अन्यायों को मिटाने के लिए मैं उतना ही अधीर और आतुर हूं जितना कि कोई सरगर्म से सरगर्म देशभक्त हो । पर मैं राष्ट्र की मर्यादितता को देख रहा हूं । उन्हें दूर करने के लिए मुझे अपनी ही सूझ-बूझ के अनुसार काम करना होगा । हो सकता है, यह एक लंबा और जी उबा देनेवाला रास्ता हो । पर मैं जानता हूं कि यही सबसे छोटा रास्ता साबित होगा । पर सब क्यों एक ही किस्म के विचार रखने लगे और रखते भी नहीं हैं ? यदि देश में ऐसी भारी बहुजन-संख्या हो जो इसी साल में महासभा की कार्य-प्रणाली और मताधिकार में परिवर्तन चाहते हों तो वे ऐसा कर सकते हैं, यदि वे यकीन दिलावें कि महासमिति में सब सदस्य उपस्थित होंगे और उनकी भारी बहुमति उनके पक्ष में होगी । यद्यपि ऐसा करना महासभा के संगठन के अनुकूल न होगा, फिर भी महासमिति की भारी बहुमति यदि संगठन को भी बदलना चाहे तो मैं उसके रास्ते में बाधक न होऊंगा । महासमिति ऐसा तीव्र उपाय कर सकती है यदि उसकी जरूरत दिखलाई जा सके और भारी बहुमति उसे चाहती हो । पर यदि ऐसे परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है तो हम सब लोगों को उचित है कि महासभा के स्वराज्य-दल सम्बन्धी काम में किसी प्रकार, किसी रूप में हस्तक्षेप न करते हुए हम अपना ध्यान नये मताधिकार की ओर लगावें । महासभा का हर सदस्य चरखे के लिए ईमानदारी के साथ आध घण्टा रोज दे और जिन लोगों की रुचि उसमें है वे पूरा समय उसके संगठन में लगावें, यह देश-कार्य के लिए उनसे कोई जबरदस्त मांग नहीं की गई है ।

(य. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है । पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०-३-० रक्खी गई है । डाकखर्च खरीदार को देना होगा । ०-५-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन् रवाना कर दी जायगी । वी. पी. का नियम नहीं है ।

व्यवस्थापक

हिन्दी-नवजीवन

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायगी ।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा ।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा ।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल्वे से ।

राजस्थान में खादी-कार्य की सुविधा

२

शाम को गोविंदगढ के बलाइयों का मुहल्ला देखने को हम लोग निकले। बलाई लोग काम से वापिस नहीं लौटे थे। कुछ लोगों के लडकों ने उनके बुने थान ला ला कर दिखाये। बुनाई अच्छी थी। सूत प्रायः एक हाथ का एक मिल का। दो-एक बलाइयों के घर तो हमें इतने साफ-सुथरे मिले कि कितने ही छूत माने जानेवाले लोगों के यहां भी उतनी सफाई न रहती होगी। राज्य की ओर से तो नहीं, पर एक खानगी अन्त्यज-रात्रि-पाठशाला वहां देखी, जिसमें कुछ सहायता एक ईसाई पादरी देते हैं। इसमें भंगी चमार-बलाई सबके लडके-लडकी आते हैं। गांववाले मास्टर साहब से इस बात के लिए नाराज थे कि वे अन्त्यजों को पढाते हैं।

रात को कोई १० बजे हम कुछ व्यापारियों से उनके घर जाकर मिले। बातचीत आरम्भ होते ही हम लोगों के दिल पर यह असर हुआ कि यह वायुमण्डल ही दूसरा है। हाथ का सूत बुनने में बुननेवालों का तो उद्धार है पर व्यापारियों को उसकी क्या चिन्ता? उन्हें तो अपने मुनाफे से और इसलिए गाहक जो चीज मांगे उसे रखने और देने से मतलब। मलिकपुर के बलाइयों ने हमारी बातें इस तरह सुनी मानो रोगी वैद्य की बात सुनता हो। इन व्यापारियों ने इस तरह सुनी जैसे मुलजिम पुलिस के सिपाहियों की। बातें थीं खादीसंबंधी उनके कर्तव्याकर्तव्य की। ऐसा मालूम होता था मानों वे हमसे बातें करना चाहते थे, हमारा समागम तो उन्हें अप्रिय नहीं था, पर वे इस विषय से अपनेको दूर रखना चाहते थे, उनके उत्तर और उत्तर का ढंग मानों यह कहते थे कि साहब और कुछ बातें कीजिए, इनसे हमारा कोई हित-संबंध नहीं। अन्त को जब खुद उन्हींके खादी पहनने और खादी ही बेचने की बात आई तब तो उनके जवाब मानों हमें अपने घर जाने की सिफारिश करते थे। मेरे मन में पद पद पर मलिकपुर के बलाइयों और इन महाजनों की मनःस्थिति पर तुलना हो रही थी और मैं उत्पादक और विक्रेता के इस मनोभेद पर चकित और दुःखित हो रहा था। उत्पादक लोग देश का बल होते हैं, केवल अपने नफे के लिए चीजें बेचनेवाले ये मध्यस्थ दलाल उत्पादकों और ग्राहकों के लिए 'अमरबेल'* साबित होते हैं!

अमरसर श्री विश्वेश्वर बिरला की खादी छावनी है। उनके मार्फत १८ करघे चल रहे हैं जिनमें दोनों सूत हाथ के बुने जाते हैं। यह कोई १५०० घर की बस्ती है जिसमें १५० करघे और ५०० चरखे चलते हैं। बिरलाजी के घर के आसपास चलते हुए चरखों ने हमारा स्वागत किया। बिरलाजी के पहले यहां कोई शुद्ध खादी न बुनता था। २० इंच के करघे ज्यादह हैं। बडे अर्ज के बहुत ही कम।

अमरसर में दो-तीन बार घर के कई बलाई एकत्र हुए थे। हमारे वहां पहुचने से तो सोने के समय तक हम एक तरह से बलाइयों से घिरे ही रहे। कुछ बलाई तो इतने साफ-सुथरे नजर आये कि उन्हें अछूत समझना ही मुश्किल मालूम होता था। ऐसे बलाई वही थे जो बिरलाजी के सम्पर्क में आ चुके थे।

उनके बुने तरह तरह की खादी के नमूने हमने देखे। बुनावट बढिया और खादी सस्ती। ४५ इंच के अर्ज की ८ गज की धोती वहां ३॥=) में पडती है। १६ गज २९ इंची अर्ज के १४ नं. के सूत की खादी का थान ६॥) में पडता है। यदि वहांकी उपजी खादी वहीं आसपास बिकती रहे तो मिल का कपडा उसका मुकाबला नहीं कर सकता। बिरलाजी के पास रुपया कम है। इसीसे वे ज्यादह करघों से शुद्ध और इससे भी अच्छी खादी बनवा नहीं पाते हैं। उन्होने खादी की बुनावट में उन्नति भी कराई है। खादी-मण्डल उन्हें ज्यादह रुपया देने की व्यवस्था कर रहा है। ऐसा हो जाने पर निश्चय ही ज्यादह करघों पर शुद्ध खादी बनने लगेगी।

अबतक बिरलाजी को खादी पैदा करना और बेचना दोनों काम करना पडते थे। इससे उनकी शक्ति और रुपया दोनों बट जाते थे। अब खादी-मण्डल यह इन्तजाम कर रहा है कि बिरलाजी सिर्फ पैदावार का काम करें और हर आठवें रोज उनका बना माल मध्यवर्ती खादी-भण्डार नकद रुपया दे कर खरीद ले। इससे वे थोडे रुपये में भी ज्यादह माल तैयार करा सकेंगे और उनकी सारी शक्ति एक ही अर्थात् उपज के काम में लगेगी। राजस्थान में शुद्ध खादी तैयार कराने की ही ज्यादह जरूरत है। हम जहां जहां बुननेवालों से मिले उन्हें माल पडा रहने की शिकायत बिल्कुल नहीं थी। उनकी कठिनाइयां सिर्फ तीन थीं। १—हाथ का सूत अच्छा नहीं मिलता, २—पणी हाथ के सूत के लायक उनके पास नहीं। ३—लंबे अर्ज के करघे नहीं। इनमें खादी-मण्डल को सिर्फ पहली कठिनाई को दूर करने का भार अपने ऊपर लेना होगा। दूसरी दोनों कठिनाइयां तो सिर्फ आर्थिक सहायता दे कर दूर की जा सकती हैं।

जयपुर के आस-पास कपास अच्छी पैदा होती है। मजदूरी हर किस्म की सस्ती है। इससे कपास और खादी स्वभावतः सस्ती पडती है। पिंजारे तो हैं; पर कातनेवालियों की शिकायत है कि धुनकाई अच्छी नहीं होती—पूनी अच्छी नहीं मिलती। इसका प्रबंध भी खादी-मण्डल को करना होगा।

यहां भी बलाइयों से उसी तरह बातचीत हुई जिस तरह मलिकपुर में हुई थी। प्रायः सब लोगों को यह बात तुरंत जंच जाती थी कि कारखाने के सूत को बुनने और कारखाने का कपडा पहनने से उनका धन्धा किस तरह मटियामेट हो रहा है और हो जायगा। जब उन्होंने हाथकता सूत अच्छा न मिलने की शिकायत की तब उनसे पूछा गया कि पहले तो हाथकता सूत बहुत मिलता था, वही सूत आप लोग बुनते थे, फिर वह कतना बन्द क्यों हो गया? एक बूढे ने उत्तर दिया—"महाराज, हमी लोगों के बदौलत वह बन्द हुआ। जब हम चीण का (कारखाने का) सूत बुनने लगे तब कातनेवाली अपने आप बंद हो गई।" अहा! इस उत्तर में कितनी यथार्थता और कितनी सचाई थी! इस उत्तर ने अपने आप उन लोगों के मन में यह भाव जाग्रत कर दिया कि हमने खुद ही अपने पैरों पर कुल्हाडी मार ली है। तब उन्हें यह समझाने की जरूरत ही न रह गई कि अब यदि तुम फिर हाथ का कता जैसा मिले वैसा सूत बुनने लगोगे तो अपने आप ज्यादह और अच्छा सूत कतने लगेगा। वे खुद ही समझ गये कि अच्छा सूत कतवाना हमारे ही हाथ में है। फिर भी उन्हें खादी-मण्डल की तरफ से सहयोग मिलने का आश्वासन दिये जाने पर तो उनके उत्साह और आनन्द की सीमा न रही। प्रायः सब लोग इस बात को महसूस कर के और प्रतिज्ञा कर के गये हैं

*वह बेल जो अक्सर पेडों पर ऊपर ही ऊपर छा जाती है। वह उन्हींका रस पीकर जीती रहती है और पेड को पनपने

पहनेंगे । उन्होंने अपनी बिरादरी में भी इस विचार का फैलाव करने का अभिवचन दिया । उनकी पंचायत तो है । पर उसमें नवजीवन का संचार करने की जरूरत है । भाई शंकरलाल बेंकर बहुत ठीक कहते हैं कि यदि हम सारे देश में सिर्फ जुलाहों का एक वृहत् संगठन कर सकें और उनको यह समझा सकें कि शुद्ध खादी बुनना किस तरह उनके धन्धे का बीमा कर देने के बराबर है तो खादी की जड भारत में फिर आसानी से जम सकती है, और अकेला राजपूताना ही बेशुमार खादी भारत को दे सकता है ।

हरिभाऊ उपाध्याय

टिप्पणियां

खादी न पहननेवाले

महासभा के मताधिकार में महासभा के काम के समय तथा ऐसे दूसरे अवसरों पर खादी पहनना अनिवार्य है । ऐसा होते हुए भी खबर मिली है कि कहीं कहीं सभ्य खादी नहीं पहनते । मेरी दृष्टि से तो यह महासभा के कानून के खिलाफ है । यदि हम खुद ही अपने बनाये कानूनों का पालन न करेंगे तो मेरी समझ में नहीं आता कि हम स्वराज्य किस तरह प्राप्त कर सकेंगे ? शायद कोई यह दलील पेश करे कि महासभा के उन कानूनों को जो हमें प्रिय नहीं है, न मानना ही उचित है । पर यह कहना बेजा है; क्योंकि यदि हर शख्स उस धारा की अवहेलना करने लगे जो उसे अच्छी न मालूम होती हो तो फिर सब लोग किसी भी एक धारा का पालन नहीं कर सकते और फलतः संगठन का अर्थात् तंत्र का नाश ही संभवनीय है । धाराओं की रचना होने के पहले जितना चाहे विरोध किया जा सकता है, पर उसके पास होने के बाद उसका भंग करना मानो अंधाधुन्धी का प्रवेश कराना है । इसपर कोई यह मैं ख्याल करे कि मेरी यह युक्ति सविनय भंग के खिलाफ जा रही है । क्योंकि सविनय भंग तो तभी हो सकता है जबकि भंग न करना अनीति हो । यहां तो अनीति को स्थान ही नहीं है । खादी पहनना अनीति का विषय नहीं । ऐसी दलील मैंने आज तक नहीं सुनी कि खादी पहनना अनीति-मूलक है । तब यह सवाल उठता है कि यदि कोई सभ्य खादी न पहन कर सभा में भाग ले तो क्या हो ? तो सभापति उन्हें विनयपूर्वक सभा-स्थान छोड देने के लिए कह सकते है । यदि सभ्य उसका निरादर करें तो वे उन्हें सभा में बोलने की मनाही कर सकते है । उनके मत की गिन्ती हरगिज न होनी चाहिए । यह अभिप्राय मैं महासभा के सभापति की हैसियत से दे रहा हूं या खानगी तौरपर ? सभापति की हैसियत से अभिप्राय देने का कोई इरादा ही मैं नहीं रखता । यदि कायदे के निर्णय करने का समय आवे तो मैं उसे करना नहीं चाहता । मैं तो निर्णय का भार कार्य-समिति पर ही सौंपना चाहता हूं । मताधिकार में परिवर्तन मैंने ही सूचित किया है, नियमों की रचना भी मैंने ही की है, इसलिए सभापति की हैसियत से फैसला करना मैं उचित नहीं समझता । कार्य-समिति के द्वारा ही उसका निर्णय होना उचित है । पर मुझे आशा है कि ऐसी सीधी सी बात में कोई महाशय कार्य-समिति से बाकायदा निर्णय न चाहेंगे । (नवजीवन)

चरखे पर पट्टणीजी

काठियावाड की एक सभा में सर पट्टणीजी भी आये थे उन्होंने कहा - "चरखे में क्या मजा आता है यह यदि समझाना हो तो मैं यहां एकत्रित सब लोगों से कहता हूं कि आपको हल चलाने में जो मजा आता है वही मजा चरखे में भी आता है । दोपहर को बारह बजे हों, किसान हल चलाता हो और उस समय उसका फल रोडे में अटक जाय और किसी प्रकार से भी वह बाहर न निकले और आखिर बडी मुश्किल से हल चले तो उस समय हल चलाने में क्या मजा है, आप न समझ सकोगे । लेकिन वर्षा हो, बहुत सा अनाज पके और जब अनाज खलिहानों से लाकर घर में भरा जाता हो तब उसमें जो मजा आता है वही मजा चरखे में भी आता है । पहले तो मुझे भी ऐसा ही मालूम हुआ था। चरखा किसी प्रकार चलता ही न था, बार बार सूत टूट जाता था। फिर भी यदि मैं न कातता तो मुझे उपवास करना पडता । मैंने ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी इसलिए या तो उपवास करना पडे या प्रतिज्ञा भंग हो तो जीवन निष्फल हो जाय । इस प्रकार करते करते हाथ बैठ गया । और अब मेरा चरखा जहां मैं सोता हूं वहीं रहता है । वृद्धावस्था और कार्य की उपाधि के कारण यदि रात को नींद नहीं आती है तो बिछौने में लोटता नहीं पडा रहता हूं बल्कि फौरन् उठकर दिया जलाता हूं और कातने बैठता हूं । दो दो घण्टा कातता हूं फिरभी थकावट नहीं मालूम होती और आप जिस प्रकार हलको चलाते चलाते गाते है उसी प्रकार मैं भी चरखे से सूत निकालता हूं और गाता जाता हूं । इससे अनायास ही ईश्वर का नाम लिया जाता है । सब झंझटें सहज ही में दूर हो जाती हैं । कहते हैं कि जिन्हें रुपयों की जरूरत नहीं उन्हें चरखा चलाने की जरूरत नहीं । मैं कहता हूं कि उसीको कातने की ज्यादह जरूरत है । बडे बडे कामों की चिन्ता भुलाने के लिए उन्हें इसकी जरूरत है । महात्माजी ने चरखे के जैसे गुण गाये हैं वैसे गुण मैं नहीं गा सकता । मैं तो इतना ही जानता हूं कि आप लोग कपास बोते है, बैल को मारते हैं, रुई उत्पन्न करते है और फिर उसे विदेश भेज देते हैं और विदेशी कपडे पहनते हैं । यह जुल्म है । मैं विलायत जा रहा हूं । लेकिन मैं जैसा यहां हूं वैसा ही वहां भी रहूंगा । मैं कातूंगा और आप लोग न कातोगे तो यह लज्जा की बात है.। केवल यही बात नहीं कि मैं अकेला कातने लगा हूं । मेरे साथ मेरी पत्नी भी कातने लगी है और ४० स्त्रियों को इकट्ठा करके वह उनसे कताती भी है । बहुयें भी कातती हैं । रात के बारह बजे मुझे झूठ बोलने का शौक नहीं हो सकता । इसलिए देखो, कातना शुरू कर देना । नहीं तो मैं वापस आकर आप लोगों से हिसाब लूंगा ।"

सेवक का धर्म

मढडा (काठियावाड) में व्याख्यान देते हुए गांधीजी ने सेवक का धर्म इस प्रकार समझाया था—

कार्यपरायणता में मैंने अटल विश्वास की भी कल्पना की है । योद्धा कभी थकता ही नहीं । वह लडते लडते ही मरना चाहता है । उसका यह विश्वास होता है, कि यदि विजय न मिली तो मर कर भी मैं विजय प्राप्त करूंगा । तपश्चर्या करते हुए यदि प्राण छूट जायं और सारा आश्रम मटियामेट हो जाय तो भी यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि गांधी का बताया हुआ आत्म-विश्वास का मन्त्र सच्चा है और अभीष्ट-सिद्धि तो दूसरे जन्म में भी हुए रहेगी ।

बहुत मरतबा तो जब हम थक जाते है और सब लोग हम से रूठे हुए मालूम होते है, उस समय अकस्मात् रुपयों की वर्षा होती है । मैं अपने जीवन के ऐसे बहुत से कडुवे और मीठे अनुभव उदाहरण के तौर पर पेश कर सकता हूं । एक वर्ष में ही स्वराज्य हासिल करने की जब मैंने बात की तब ईश्वर ने मुझे पछाड दिया । उसने मुझसे कहा ' ऐसी मीयाद देनेवाला तू कौन है ' यह सच है कि मैंने शर्त रख कर मीयाद दी थी । लेकिन शर्त करने पर भी मुझे यह तो समझना चाहिए था कि हिन्दुस्तान की शक्ति कितनी है । इस शक्ति का अंदाज लगाने में मैंने भूल की । यह दोष तो मेरा ही

है दूसरे का नहीं कहा जा सकता। फिर भी १९२०-२१ के साल में जो विश्वास और श्रद्धा मुझमें थी उससे कहीं अधिक आज है। उसीके द्वारा मैं सुख और शान्ति प्राप्त कर रहा हूं। मेरी शांति और सुख में जिन्हें भाग लेना हो वे मुझसे सी श्रद्धा प्राप्त करें। आपने मुझे शान्ति का सरदार कहा है लेकिन मेरे मित्र शास्त्री और सरकार मुझे अशान्ति का सरदार मानते हैं। अहिंसा मेरा मंत्र है लेकिन मेरे नाम से यदि बहुत से लोग खून करें और गालीगलाज करें तो मेरी अहिंसा का क्या अर्थ होगा? मैं देखता हूं कि जिस बात को मैं कहता और करता आया हूं उसका ऐसा प्रतिबिंब पड़ता है कि देखने में फिर उसका स्वरूप विचित्र मालूम होने लगता है। इसलिए मैं अपने दिल से पूछता हूं कि मेरी अहिंसा कैसी होगी? ऐसे विघ्न आने पर भी मैं अपने अहिंसा के मंत्र को कैसा जड़ की तरह पकड़ कर बैठा हूं। दूसरे क्या कहते हैं इसका विचार किये बिना ही काम करते रहना मुझे याद है, इसलिए पागल कहलाने के भय के बिना ही मैं अपना काम करता रहता हूं।

मोक्ष प्राप्त करने के लिए कितने धैर्य की आवश्यकता है इसका वर्णन करते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि एक तिनके से समुद्र खाली करने के लिए जितने धैर्य की आवश्यकता है उससे भी अधिक धैर्य होने पर मोक्ष प्राप्त कर सकोगे। यहांपर पंडित लालन और शिवजीभाई मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा से बैठे हैं। उन्हें उससे भी अधिक धैर्य रखना चाहिए। यदि वे यह चाहते हों कि रुपयों की वर्षा हो तो मैं उनसे कहूंगा कि रुपया तो हाथ का मैल है। सद्भाव आत्मा का एक उत्तम गुण है और उसे प्राप्त करना मुश्किल है। अब शिवजीभाई और लालन को यह मालूम हो कि लोग रुपये नहीं देते हैं तो उन्हें यह मानना चाहिए कि उनकी दृढ़ता में, आत्म-दर्शन में कुछ न्यूनता है। उन्हें आत्मदर्शन हुआ है यह न मान कर यह मानना चाहिए कि उन्हें सिर्फ आत्मा का भास ही हुआ है। थोड़े से ब्रह्मचर्य के पालन से हम अभिमान करने लगें, थोड़े से अपरिग्रह के पालन से हम संसार को उपदेश देने के लिए निकल पड़ें तो बड़ा अनर्थ होगा। मुझे तो ब्रह्मचर्य की व्याख्या और विस्तार क्षण क्षण पर बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। मैं ऐसा पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूं कि आज मैं उसकी व्याख्या कर सकूं। सत्य की व्याख्या के बारे में भी यही कहा जा सकता है। मैं अभी उतना सत्यशील नहीं बना हूं कि उसकी पूर्ण व्याख्या कर सकूं। अहिंसा भी ऐसी ही वस्तु है। जिस शास्त्रकार ने इस वस्तु को ढूढा है उसे 'स' कारात्मक शब्द ही न मिला। क्योंकि उसने कहा है कि इस गुण की कोई सीमा ही नहीं है। इसलिए उसने अहिंसा शब्द का प्रयोग किया। 'नेति नेति' पुकारनेवालों के जैसी ही उसकी हालत हुई थी। किसी वस्तु की साधना करनेवाले को पहले यह बात को समझ कर फिर साधना करनी चाहिए।"

अनुकरणीय

'विज्ञापन-बाजी से अनर्थ' नामक मेरे लेख की ओर बहुतेरे सज्जनों का ध्यान गया है, जिनसे कि उसका संबंध आता है। मुझे यह प्रकट करते हुए खुशी होती है कि 'प्रताप' पर ऋण-भार होते हुए भी और 'प्रभा' के घाटे में चलते हुए भी श्री गणेश शंकरजी विद्यार्थी लिखते हैं कि 'मैं दवाइयों के भद्दे विज्ञापनों के निकाल देने का निश्चय पहले ही कर चुका हूं। जिन लोगों के इस प्रकार के विज्ञापनों के लिए हम लोग वचनबद्ध हैं, उनका समय—जो बहुत थोड़ा है—समाप्त हो जाने पर, आप प्रताप के विज्ञापनी कालमों को अधिक गंदा न पावेंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपकी शिकायत बहुत बड़े अंश में सदा के लिए दूर हो जायगी।' इसी प्रकार 'तरुण राजस्थान' के संपादक महाशय ने भी आपत्तिजनक विज्ञापन निकाल डालने का वचन मुझे दिया है। 'तरुण' भी घटी में ही चल रहा है। 'हिन्दू-संसार' के संपादक महोदय ने भी ऐसा ही आश्वासन दिया है। ये सब सज्जन पाठकों के धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे आशा है, कि हिन्दी के अन्य प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिका भी पूर्वोक्त पत्रों का अनुकरण कर के शुद्ध सेवा के यश के भागी बनेंगे। जो पत्र-पत्रिका स्वावलंबी हो गये हैं, या जिन्हें थोड़ी घटी उठानी पड़ रही है उन्हें तो सबसे पहले इसके लिए आगे कदम बढ़ाना चाहिए। जितना ही वे विज्ञापनों की आमदनी से मुंह मोड़ेंगे अथवा गंदे, भद्दे और विलासिता बढ़ानेवाले विज्ञापनों को निकाल देंगे उतना ही वे अपनेको समाज के अधिक आदर-पात्र बनावेंगे, उतना ही अधिक वे समाज के मन में यह प्रेरणा करेंगे कि ऐसे पत्रों को अपनाना और जीवित रखना हमारा कर्तव्य है। जो समाज के लिए कुछ भी त्याग करता है समाज उसकी जरूर कद्र करता है। भद्दे विज्ञापनों को निकाल देना तो पत्रों की आत्म-शुद्धि के लिए भी आवश्यक है। जबतक पत्र-पत्रिका स्वयं ही शुद्ध नहीं है तबतक वे समाज को शुद्धता की प्रेरणा कैसे कर सकते हैं? पाठकों को भी चाहिए कि वे भद्दे और विलासिता-वर्धक विज्ञापनों को स्थान देनेवाले पत्र-पत्रिकाओं को चेतावनी दे दें और दाम अधिक दे कर भी केवल उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं को अपने घर में आने दें जो उनके सामने श्रेष्ठ और निर्मल सामग्री पेश करते हों—जो उनके जीवन को उच्च और पवित्र बनाने में सहायक होते हों। सस्ते परन्तु बुरे विज्ञापनों से युक्त पत्र-पत्रिका अन्त को केवल महंगे ही नहीं, बल्कि जीवन के लिए हानिकर भी साबित हुए बिना न रहेंगे। ह० उ०

(पृष्ठ २८५ से आगे)

ऐकान्तिक अहिंसा की बात मुझे स्वीकार है। लेकिन वह ऐकान्तिक अहिंसा कैसी होनी चाहिए? आज तो साधु गृहस्थ की तरह खाते हैं, पीते हैं, कपड़े पहनते हैं और गृहस्थों ने जो उनके लिए अपासरे बनवाये हैं उनमें रहते हैं। तो उन्हें राष्ट्र के जीवन में भी भाग लेना चाहिए। आज जिस काम के करने में राष्ट्र की बड़ी से बड़ी सेवा होगी उस काम के करने में उन्हें भाग लेना ही चाहिए।

मुनिजीः—तो यह आपत्तिधर्म हुआ!

गां०—नहीं, आपत्तिधर्म नहीं लेकिन युगधर्म। आज युगधर्म है कातना और जबतक मुनि अपनी जीवनयात्रा के लिए समाज पर आधार रखता है उसे युगधर्म का प्रचार अपने आचार-द्वारा करना चाहिए। आज तो आपलोग लोगों के पैदा किये हुए चावल, उनका तैयार किया हुआ भात खाते हैं और उनके पैदा किये हुए कपड़े पहनते हैं। जो मुनि अनायास ही कहीं पड़ा हुआ अन्न खाता है, कपड़ों की कुछ परवाह नहीं करता और समाज का सम्पर्क छोड़कर किसी अगम्य, अगोचर गुफा में पड़ा रहता है उसकी बात निराली है। वह भले ही युगधर्म का पालन न करे। लेकिन समाज में रहनेवाले और उसके आधार पर जीनेवाले संन्यासियों को भी मैं तो यही कहूंगा। श्रावणकोर में मैं थीयाओं के गुरु, जो संन्यासी हैं उनसे यह कह आया हूं कि उनके पास जो खादी पहन कर न आवे उसे वे अपना शिष्य न बनावें, इससे उनके पास भीड़ भी कम होगी। आप लोगों से भी मैं यही चाहता हूं।"

मुनिजी—'इस विषय में मैंने इतना सूक्ष्म विचार नहीं किया है। विचार करके फिर आपसे चर्चा करूंगा।'

अभीतक लक्षण नहीं

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥
विदेशों के लिए „ ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ५७

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, वैशाख बदी ३०, संवत् १९८२ गुरुवार, २३ अप्रैल, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी.

टिप्पणियां

फिर बंगाल

मैं बंगाल-यात्रा की ओर बड़ी आशा-पूर्ण दृष्टि से देख रहा हूं। बंगाल की कल्पना-शक्ति तो उत्कृष्ट है। बंगाली युवक कुशाग्र बुद्धि होते हैं। वे आत्मत्यागी भी होते हैं। बंगाल के हर प्रान्त से जो पत्र मुझे मिले हैं वे बड़े लुभावने हैं। क्या अच्छा हो यदि मेरा स्वास्थ्य इस लायक हो कि मैं इस सफर की सारी मिहनत को बरदाश्त कर पाऊं। काठियावाड की सफर में मुझे फसली बुखार ने आ घेरा। वह चला गया है पर फिर भी उसने मुझे बहुत कमजोर बना दिया है। अभी रवाना होने के लिए ९ दिन बाकी है। इनमें मैं फिर शक्ति प्राप्त कर लेने की आशा रखता हूं। परन्तु बंगाल-यात्रा के व्यवस्थापकों को मैं सूचित कर देना चाहता हूं कि वे ऐसा कार्यक्रम रक्खें जिससे मुझे रोज जितनी हो सके कम मिहनत पडे। मैं फिर एक बार कहता हूं कि यह यात्रा यदि सब तरह कार्योपयोगी होगी तो मुझे अच्छा मालूम होगा। लोग कहते हैं बंगालियों में कामकाजीपन नहीं है। उन्हें चाहिए कि वे इस इल्जाम को झूठ साबित कर दें। यदि कुशाग्र बुद्धि और कल्पना-शक्ति के साथ कामकाजीपन की आदत का संयोग हो जाय तो सफलता उसके बायें हाथ का खेल है। भगवान् करें, बंगाल में वह संगम मुझे दिखाई दे। मैं उम्मीद करता हूं कि बंगाल में हर जगह अंकों-सहित पूरी पूरी जानकारी मिलेगी। अभिनन्दन-पत्रों में यदि मेरे गुण-गान की अपेक्षा अपने जिले या कस्बे के देश-कार्यों का सच्चा वर्णन हो तो इससे मुझे कितनी जानकारी हो जायगी? जैसे—हर अभिनन्दन-पत्र में स्वयं कातनेवाले तथा अन्य सदस्यों की संख्या निर्दिष्ट की जा सकती है, हर चरखे पर औसतन कितना सूत कतता है, कितने अंक का कतता है, हर माह कितना सूत और खादी तैयार होती है, हाथ-कते तथा दूसरे सूत का कपडा बुननेवाले करघे कितने हैं, हर जगह कितने खादी-भण्डार हैं और उनमें कितनी बिक्री होती है, आदि बातें लिखी जा सकती हैं। राष्ट्रीय-पाठशालाओं तथा महाविद्यालयों की और उनमें पढने वाले लडके-लडकियों की संख्या भी उसमें दर्ज की जा सकती है। अछूतों में क्या क्या काम हो रहा है, सुसंगठित रूप से उनके अन्दर काम करने के पहले उनकी हालत क्या थी और अब क्या है, इसका उल्लेख भी कर सकते हैं। उसमें हिन्दू-मुसल्मान-संबंध की दशा का और अन्त में शराब तथा अफीम की तिजारत का वर्णन भी किया जा सकता है। यदि अब इन तमाम बातों का समावेश अभिनन्दन-पत्र में करने का समय न रह गया हो तो अच्छा हो कि अलहदा कागज पर ही यह ब्यौरा मुझे दिया जाय। एक बात और कह दूं? मुझे बडे बडे कीमती कास्केट और फ्रेम में अभिनन्दन-पत्र न दिये जायं। यह बुरा है। सिर्फ हाथ के बने कागज या एक खादी के टुकडे पर हाथ से लिख कर दे दिये जायं तो अच्छा। मुझे इससे सन्तोष होगा। बंगाल को यह कहने की जरूरत नहीं कि बिना बहुत रुपया लगाये या बहुत लंबा-चौडा बनाये भी वह अभिनन्दन पत्र को कला-सुन्दर बना सकता है। ट्रावनकोर में कई जगह वह छोटे कोमल ताडपत्रों पर लिखकर दिये गये थे। सारे भारत की तरह मैं बंगाल के भी हृदय का परिज्ञान कर लेना चाहता हूं। और जहां हृदय हृदय से बातें करना चाहता हो वहां बेशकीमती चीजें और लच्छेदार बातें सहायक नहीं उल्टा बाधक ही होती है। मैं कामों का भूखा हूं, शब्दों का नहीं। भारी सोने या चांदी की चीजों की अपेक्षा ठोस खादी-कार्य मुझे बहुत प्रिय है।

सिक्खों की दुःखकथा

सिक्खों के दुःखों का अन्त अभी नहीं आया है। अमृतसर का एक तार कहता है—

"शि०गु०प्र० समिति को दिल दहलानेवाली खबर मिली है कि नाभा कैंप जेल में दूसरे शहीदी जत्थे के लोग पीटे गये हैं और उनके दाढी और केश उखाड लिये गये हैं। १६ अप्रैल को इसलिए उन्हें पीटा गया कि वे माफी मांग लें। कुछ उखाडी गई डाढी और केश भी समिति को मिले हैं। नाभा में कोई ११४ लोगों पर ऐसी मार पडी है। इनमें सात की हालत गंभीर है, दो के सिर, आठ के चेहरे, दस के हाथ, सात की जांघ, आठ की पिंडली, आठ के गुह्य स्थान, पांच की पीठ पर गहरी चोट लगी है और कोई ५१ के साधारण। कृपा करके नाभा कैंप जेल की मुलाकात का इन्तजाम शीघ्र कीजिए।"

यह वर्णन या तो सही होगा या गलत। यदि यह सच हो तो इसके लिए एक निष्पक्ष तहकीकात की जरूरत है। सरकार इस मामले में तटस्थ नहीं रह सकती। क्योंकि उसीका एक

अफसर राज्य का कारोबार कर रहा है। सिक्ख भाइयों से मैं इतना ही कह सकता हूं कि हर अन्याय की औषधि होती है। और यदि ये बातें सच साबित हुईं तो यह अन्याय भी बहुत समय तक बिना इलाज के नहीं रह सकता। एक पत्रकार तथा महासभा के सभापति का हैसियत से मैं पाठकों से कहता हूं कि मैं निरुपाय हूं। आज मैं सिर्फ इस बात को छाप कर सिक्खों के प्रति अपनी हमदर्दी भर जाहिर कर सकता हूं। हां, मैं जानता हूं कि ईश्वर ने चाहा तो मेरी यह लाचारी अधिक दिनों तक न रहेगी। एक एक निर्दोष व्यक्ति को जो जो घाव लगे हैं उन्हें हर महासभावादी और हर पत्रकार के बदन पर लगे घाव समझिए। और ये घाव क्या है? वे फरियादी दूत हैं जो अपनी कथा पृथिवी के चारों कोने में ले जाते हैं और आकाश-मार्ग में होकर न्याय के उस शुभ्र और महान् सिंहासन तक जा पहुंचते हैं।

सूतकारों को इनाम

मेरठ से मिला यह पत्र प्रकाशित करते हुए मुझे खुशी होती है—

'मेरठ जिला-समिति ने जिला बोर्ड मेरठ को ७५) इसलिए दिये थे कि उनमें से १०), ६) और ४) के तीन इनाम सर्वोत्तम हाथकते सूत पर और २५) १५) और १०) के तीन इनाम उन सूतकारों को दिये जाय जो कि नौचन्दी मेले की कताई-बाजी में सर्वोत्तम हों। तदनुसार २४ मार्च को यह बाजी मेले के दरबार-मण्डप में हुई। ३२ सज्जनों ने अपने नाम भेजे थे। उनमें से २१ हाजिर हो पाये। मण्डप चारों ओर दर्शकों से भर गया था। लाला लाजपतराय और लाला रामप्रसाद, लाहौर, भी पधारे थे। देहली के लाला शंकरलाल,—बाबू कीर्ति चौधरी, श्रीनाथसिंह और श्री महम्मद असलम साहब एम्. एल्. ए. परीक्षक थे। नीचे लिखे सज्जनों ने पारितोषिक पाया –

चौधरी रघुवीर नारायणसिंह, ३५६ गज, १९ अंक का सूत काता। पहला इनाम पाया।

पण्डित हरगोविंद भार्गव, मेरठ, ३१० गज १? अंक का काता। दूसरा इनाम मिला।

पण्डित गौरीशंकर शर्मा, मेरठ, ३०० गज १६ अंक का काता और तीसरा इनाम पाया।

साबरमती आश्रम के श्री दीवानचन्द शर्मा ने ४५० गज २८ अंक का काता। पर वे बाजी में शरीक न हुए थे। चौधरी रघुवीर नारायणसिंह ने उन्हें अपनी ओर से ५) का खास इनाम दिया।

देहली में खादी

एक संवाददाता अपने पत्र में लिखते हैं कि पिछले सत्याग्रह-सप्ताह में देहली में कुछ कार्य-कर्ताओं ने खादी घर घर जा कर बेची थी। जब काम शुरू किया तो उन्हें दिल में बड़ी दहशत और अंदेशा था। क्योंकि देहली में इन दिनों हिन्दू मुसलमान में फूट फैली हुई है और उन्हें यकीन न था कि लोग हमारी बात भी पूछेंगे। पर यह देखकर आनन्द और आश्चर्य हुआ कि उनकी फेरी और भजन की लोगों ने कदर की। लोगों ने बड़ी खुशी के साथ खादी खरीदी और फेरीवालों को रोजाना अपनी खादी बेच लेने में जरा दिक्कत न हुई। इस घटना से हमें सबक लेने की ??? है। यदि ये सब बातें सच हों तो मानना पड़ेगा कि सर्व-साधारण लोग अब भी मजबूत हैं। पर मुझे इस विवरण पर सन्देह करने की कोई जरूरत नहीं मालूम होती। क्या वहां के कार्यकर्ता अब से और अधिक विश्वास और व्यवस्था के साथ महासभा के सदस्य बनाने का प्रयत्न करेंगे? यदि देहली अपनी आज की हालत से उठ कर फिर तीन साल पुरानी हालत पर पहुंच जाय तो हकीम साहब को उनकी मेहमानिवाजी में इससे बढ़कर और क्या सम्मान होगा? (सं० ६०)

मो० क० गांधी

अन्त्यजों की ना समझी

जिस प्रकार सौराष्ट्र में अन्त्यजों के प्रति निर्दयता का मुझे विशेष अनुभव हुआ उसी प्रकार अन्त्यजों की ना-समझी का भी खासा अनुभव हुआ। धमा, हडाला और मांगरोल के अन्त्यजों के साथ बातचीत करने पर मालूम हुआ कि वे मरे हुए ढोरों का मांस खाते हैं। इस मांस को वे भूल के नाम से पुकारते हैं। इस बुरी आदत को छोड़ने के लिए मैंने उन्हें बहुत समझाया लेकिन उन्होंने जवाब दिया कि बहुत दिनों से यह रिवाज चला आ रहा है और इसलिए वह छूट नहीं सकता। उन्हें बहुत समझाया लेकिन वे एक के दो न हुए। उन्होंने यह तो स्वीकार कर लिया कि हमें इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन छोड़ने की ताकत नहीं है यह कहकर वे स्थिर हो रहे। हिन्दू-समाज को बहुत समझाने पर भी मुर्दार मांस खाने वालों के प्रति उनकी घृणा निकालना बहुत ही मुश्किल होगा। शायद उनकी इस बुरी आदत को वे सहन कर लेंगे लेकिन प्रेम से वे उन्हें गले न लगायेंगे। कुछ भी हो परिणाम क्यों न हो, अन्त्यजों को यह बुरी आदत छोड़ने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। उन्हें और उनके साधुओं को चाहिए कि एक बड़ी हलचल करके भी इस बहुत ही गंदी आदत को दूर कर दें। एक अन्त्यज ने अपनी कमजोरी का बयान करते हुए सफाई के साथ कहा 'यदि हमको मरे हुए ढोर उठाने को ही न कहा जाय तो हम उसे खाना छोड़ दें।' मैंने कहा "दरबार साहब यदि ऐसा कायदा बनावें कि कोई चमार मरे हुए ढोर को न उठावे तो क्या तुमको यह स्वीकार है?"

"हम लोगों को यह स्वीकार है।"

"तो फिर आजीविका कहां से प्राप्त करोगे?"

"कुछ भी करेंगे। बुनाई करेंगे लेकिन आपके पास कोई शिकायत न करेंगे।"

मैं जो समझता था कि चमार के धन्धे का अभ्यास करना चाहिए और उसमें जो बुराइयां हैं उन्हें दूर करना चाहिए उससे अधिक इस सवाल-जवाब से मैं कुछ न समझ सका।

अन्त्यजों में दूसरी बुराई यह है कि ढेढ चमार को नहीं छूता और चमार भंगी से नहीं छूता है। इस प्रकार अस्पृश्यता ने उनमें भी प्रवेश किया है। इसका अर्थ तो यह होगा कि चमार ढेढ, भंगी इत्यादि के लिए अलग अलग कुएं, अलग अलग शालायें बनानी होंगी। छः करोड़ माने जानेवाले अन्त्यजों के विभागों को सन्तुष्ट रखना बड़ा मुश्किल होगा। इसका तो केवल यही उपाय है कि उनमें जो सबसे हलकी कौम गिनी जाती है उसीके लिए या उसकी सुविधा जहां हो सकती है वहीं कार्य करना चाहिए। इससे और सब बातें अपने आप साफ हो जायंगी।

इन दोषों के लिए उच्च वर्ण के माने जानेवाले हिन्दू लोग ही जिम्मेवार हैं। उन्होंने अन्त्यजों का सर्वथा त्याग किया था और आगे बढ़ने के संयोग के अभाव में वे बहुत ही गिर गये। उन्हें सहारा दे कर खड़ा करने में ही हमारी उन्नति होगी। खुद नीचे उतरे बिना मैं किसीको नहीं उठा सकता। उन्हें बढ़ाने से हिन्दू-जाति ऊपर चढ़ेगी। (न०जी०)

मो० क० गांधी

ढसा में गांधीजी

श्री महादेव भाई अपने काठियावाड के पत्र में लिखते हैं—
'ढसा को आज कौन नहीं जानता ? गांधीजी वहां गये तो, पर वहां के लोगों से उन्हें सन्तोष न हुआ। क्या दरबार गोपालदास भाई के चले जाने से वे तेजोहीन हो गये ? उन्होंने गांधीजी से प्रार्थना की कि हम बडे दुख में हैं, हमारे दरबार को फिर दिला दीजिए। गांधीजी ने जवाब दिया, आप लोगों ने दरबार को वापिस बुलाने लायक कुछ नहीं किया, मैं क्या करूं ? आप दरबार के पीछे हो लिये थे ? राम के पीछे तो सारी अयोध्या पागल होकर चल पडी थी। आप लोगों ने क्या किया ?"

सार्वजनिक सभा में आपने कहा—"दरबार साहब को सरकार ने पदच्युत किया क्योंकि उन्होंने काम की सेवा की। पर क्या वे पदभ्रष्ट हो सकते हैं ? ढसा का राज्य गया तो उन्हें बोरसद का राज्य मिल गया। आज सारा गुजरात उन्हें जानता है, आज वे बोरसद के लोगों के हृदय पर राज्य कर रहे हैं। बहुतेरे लोगों ने भारत के स्वराज्य-यज्ञ में बहुत-कुछ बलिदान किया, पर राजाओं में तो अकेले यही निकले। क्या उन्होंने ढसा का राज्य खो दिया है ? वह तो तभी जा सकता है जब आप उन्हें निकाल दो और कहो कि चले जाओ, हमारे हृदय में आपके लिए स्थान नहीं। पर मुझे तो डर है कि आपही ने उन्हें पदभ्रष्ट किया है। जो वचन आपने उन्हें दिया था वह आपने तोड डाला। आपलोगों ने वचन दिया था कि हम विदेशी सूत न बुनेंगे। शराब-मांस को न छूएंगे। उन्होंने अपने वचन का पालन न किया। पृथ्वी चाहे रसातल को चली जाय, पर दिया हुआ वचन कहीं टल सकता है ? फिर जो राजा को दिया वचन तोडे उसको तो नरक उतर जाय। पर आज न तो वचन के लिए बिक जाने वाले हरिश्चन्द्र रहे, न अर्जुन जैसे का दुख दूर करने वाले राजा ही रहे। अन्त्यजों ने भी अपना वचन तोड डाला और आपने भी तोड डाला। आपको यदि सचमुच दरबार साहब की जरूरत हो तो आपके ऐसे हाल हो सकते हैं ? कितनी बहनों ने खादी पहनी ? कितनी बहनें कातती हैं ? सरकार भले ही दरबार का स्वामित्व छीन ले; पर आप तो ढसा में बैठे हुए, उन्हीं का हुकम मानो, सरकार का यदि लगान देते जाओ, पर दूसरे हुकम दरबार के ही माना तो दरबार पदभ्रष्ट हो सकते हैं ? राम जब वनवास को निकले थे तब सारी प्रजा उनके साथ जाने के लिये चल पडी, उन्होंने तपस्या की। भरत जैसे भाई ने नन्दिग्राम में तप किया और रामचन्द्रजी की चरणपादुका सिंहासन पर रखकर उन्हीं का ध्यान किया। बताओ आपने क्या किया ? यदि बोरसद से हुकम निकले और आप उसको पालें तो दरबार फिर आपको मिल जाय। तो सुनो

मेरी प्रतिज्ञा

हर पुरुष और स्त्री खादी पहनेंगे, चरखा चलावेंगे, अन्त्यज हाथ-कता सूत बुनें और लाभ पावेंगे, अन्त्यज पनघटों पर न भिडेंगे, उन्हें पानी आदि की सुविधा करेंगे, इस प्रतिज्ञा का पालन करते मैं इसका करने फिर मुझसे पूछो कि तारा दरबार कहां है ? आपके दरबार आवें या न आवें, पर मैं तो हिन्दुस्तान के स्वराज्य-संग्राम को छोडकर आपके पास चला आऊंगा और आपके साथ तपश्चर्या करूंगा।

"आप बैठे बैठे क्या देख रहे हैं ? आपने एक बार आ कर मुझसे दरबार सा० के प्रेम की बातें की थीं, वे सब कहां चली गई ? आप कहते हो, काठी लोग हमारे खेतों में जानवर छोड देते हैं। क्या दरबार ने आपसे यह नहीं कहा था कि अपने खेतों की हिफाजत रखना। ब्रिटिश सरकार भी इस बात की इजाजत देती है कि आपके खेत का नुकसान करनेवाले चोर-डाकू और जानवरों को मार-पीट कर निकाल दो। आप ऐसे अपंग क्यों हो गये ? आपने किस तरह सभी प्रतिज्ञायें तोड डालीं ?

"पर खैर जो हुआ सो हुआ। आज भी क्या आप यहां से मुझे वहां से लौटने को तैयार हो ? आपने तो दरबार को पगडी और जर्क बर्क पोशाक पहने देखा था। आज तो वे खादी का मोटा कुरता पहनते हैं, टोपी तो रखते ही नहीं और छोटी-सी धोती भी कमर को बांध लेते हैं। बताओ, आप क्या करना चाहते हो ? आपने अपनी पगडी उतार दी ? क्यों, क्या पगडी उतार देने से जवांमर्दी चली जायगी ? आपने ऐसा कौनसा काम किया है जिसके लिए मैं आपको इस लायक समझूं कि दरबार को फिर बुलवाऊं। फिर भी आज एक वर्ष के लिए प्रतिज्ञा करो। अत्यन्त शराब और गोश्त का न छुये, विदेशी कपडे यदि जलाओ नहीं तो बांध कर रख दो और यदि इसतरह एक साल बीतने पर भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करे फिर से अपने ये कपडे पहनने लगना। आप हर एक के घर में चरखा जरूर चलना चाहिए। पूरे कपडे न मिलें तो लंगोटी ही सही, नहीं तो खादी का टुकडा ही कमर पर बांध लेना, अन्त्यज से मिलना, जो पानी ईश्वर ने आपको दिया है वह उन्हें भी लेने देना, नहीं तो यह समझना कि पृथ्वी रसातल को चली जायगी, जिन गढ़ों से आप पानी पीने के लिए तैयार न हो उसमें से उन्हें पिलाने की बात न करना।

"इतनी सीधी और आपके ही मतलब की बातें करो। और फिर यदि दरबार न आवें तो मुझे लिखना। मैं असहयोगी हूं—फिर भी सरकार से प्रार्थना करूंगा कि ढसा को उसके दरबार वापस दे दीजिए। और इतने पर फिर भी अगर वे न मिलें तो आपके साथ रह कर तपस्या करूंगा। ईश्वर आपको अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का सामर्थ्य दे। मुझे अपनी प्रतिज्ञा पालन करने का बल दे। तो अब मैंने अपना दुख आपके सामने रख डाला और अपनी आशा भी आपको सुना दी। अब जो करना हो सो करना।'

बाढ-पीडितों के लिए चरखा

बाढ के कारण जिन लोगों को अपना सर्वस्व खो देना पडा है उन्हें मदद करने का कार्य मलबार में तो आज भी चल रहा है। उसमें मेरी तरफ से जो रुपये भेजे गये थे उनका उपयोग चरखे के द्वारा मदद करने में हो रहा है। वहां की औरतों को इसकी जानकारी न होने के कारण उन्हें सब सिखाना पडता है। पंजाब में तो इससे उल्टा हुआ है। वहां भी कितने ही जिलों में बडा नुकसान हुआ था। ऐसे लोगों के लिए चरखा एक रक्षा का वस्तु हो गई है। पहले पहल तो उन्हें मदद के तौर पर आटा दिया जाता था। लेकिन बाद में स्त्रियों को चरखा कतवाने की सूझी। प्रत्येक घर में चरखा तो था ही। बहनें कातना भी जानती थीं। उन्हें बाजार भाव से अधिक मजदूरी देने का निश्चय हुआ। यह कार्य अब अच्छी तरह चल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थशास्त्र जाननेवाले के हाथ में यदि यह काम होता तो आज जो नुकसान उठाना पडता है वह नुकसान न होता। यदि खादी का सार्वजनिक उठाव हो तो दुखी लोगों को चरखे से मदद करने का काम बडा आसान हो जाय।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख वदी ३०, संवत् १९८२

अभीतक लक्षण नहीं

दक्षिण-यात्रा के समय मुझे कितने ही अभिनंदन पत्र दिये गये थे। एक में नीचे लिखा वाक्य था—

"यद्यपि आपने बारडोली में कदम रोक दिया है, तथापि हमें यह आशा लगी हुई है कि आप निकट भविष्य में हमें उस समर क्षेत्र में ले जायगे जहां कि हम सब स्वराज्य-संग्राम में जूझते हुए अपने मत-भेदों को भूल जायंगे। उस युद्ध में हमारा हथियार होगा वही शुद्ध, स्वच्छ शान्तिमय सामूहिक भंग जिसके बिना उस राष्ट्र से जो कि महा लालची है और हमें स्वराज्य नहीं देना चाहता, और जिसका कि साम्राज्यवाद और कुछ नहीं मनमानी लूट है, स्वराज्य लेना असंभव-सा है।"

इसमें बारडोली वाले निर्णय पर कुछ निराशा प्रकट की गई है। हां, बहुतेरे लोग उस समय भी ऐसा मानते थे और अब भी मानते है कि बारडोली का निर्णय एक भारी से भारी राजनैतिक भूल थी और उसने यह दिखला दिया कि मैं किस तरह राजनैतिक नेता होने के अ-योग्य हूं। परन्तु मेरी राय में बारडोली का निर्णय क्या था, मेरी ओर से देश की भारी से भारी सेवा थी। उससे मेरी राजनैतिक निर्णय-शक्ति का अभाव नहीं सूचित होता, उलटा राजनैतिक दूरदृष्टि की प्रचुरता ही प्रदर्शित होती है। तब से अबतक जो जो सबक हमने सीखे हैं वे सीखने के बहुत योग्य थे। यदि हम उस समय कोई सस्ती विजय प्राप्त कर लेते तो वह हमें अन्त में बहुत महंगी पडती और ब्रिटिश साम्राज्य-सत्ता ने नवीन उत्साह के साथ अपनी जड को और मजबूत बना लिया होता। यह बात नहीं कि अब भी वह काफी मजबूत नहीं है। पर उस अवस्था में वह मजबूती बहुत ज्यादह कारगर होती। हां, इसपर यह कहा जा सकता है कि ये सब दलीलें सम्भावनाओं के आधार पर की गई हैं। लेकिन मेरे नजदीक तो वह सभावना निश्चितता के ही करीब पहुंच जाती है। जो हो; लेकिन बारडोली का यह निर्णय मुझे उस दिन के लिए आशावान बनाता है जब कि निकट भविष्य में किसी लडाई की भारी संभावना हो। अब जो लडाई छिडेगी वह अन्त तक चलेगी—फैसला करने पर ही बन्द होगी।

पर आज मुझे यह बात कबूल करना पडती है कि भारत-वर्ष के क्षितिज पर आज कोई ऐसा लक्षण नहीं दिखाई देता जिससे शीघ्र ही सामुदायिक सविनय भंग की आशा मन में उदय हो सके। ऐसे संग्राम का संगठन करने के योग्य काफी कार्यकर्ता एक भी काम के लिए नहीं मिल रहे हैं। उसके लिए जरूरत है जनता से गहरा संबंध जोडने की—अबतक हम अपनी इस शक्ति का जो कुछ परिचय दे पाये हैं उससे कहीं अधिक संबंध जोडने की। अबतक हमने जनता की सेवा की और उसके साथ एकजीव हो जाने की जो इच्छा अनुभव की है उससे कहीं अधिक भारी, कहीं अधिक उत्साह और उमंग-युक्त, कहीं अधिक लगातार सेवा और उनके साथ एक-रूपता की जरूरत है। हमें उनके साथ एक-रस हो जाना चाहिए—एकात्मता का अनुभव होना चाहिए—तभी जा कर हम उनका अनुशासन सफलतापूर्वक कर सकते हैं और उन्हें शान्तिमय विजय के द्वार तक ले जा सकते हैं। हां, इसमें कोई शक नहीं कि जब हम उस अवस्था को प्राप्त हो जायंगे तब सामूहिक भंग की आवश्यकता शायद ही रहे। पर यह विश्वास तो हमारे अन्दर जरूर ही होना चाहिए। आज तो कम से कम मुझे ऐसा विश्वास जरा भी नहीं है। आज की हालत मे सामूहिक भंग करने की कोशिश का आवश्यक परिणाम होगा बुरी तरह जगहजगह बेतरतीब मार-काट का फूट निकलना, जिसे कि सरकार उसीदम दबा देगी। परंतु सविनय भंग में तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी तरह के हिंसा-कृत्य या उसके दरगुजर करने की गुंजाइश ही नहीं है। इसके लिए आवश्यक गंभीर निश्चय का शान्त और स्थिर वायुमण्डल तैयार करने के लिए ही इस चरखा-हलचल की सृष्टि हुई है। उत्तम कोटि की समाज-सेवा का प्रतीक ही इसे समझिए। हम राष्ट्रीय सेवकों को जनता के साथ एक-सूत्र में बांधने की शृंखला ही इसे कहिए। लोगों के अन्दर ज्ञान-पूर्वक परस्पर सहयोग पैदा करनेवाला—ऐसे पैमाने पर कि जिसे दुनिया ने अबतक न देखा हो—अग्रदूत ही इसे जानिए। यदि चरखा-कार्यक्रम असफल हो तो समझ लीजिए कि फिर जनता को चारों ओर निराशा और फाकेकशी के सिवा कुछ दिखाई न देगा। चरखा तथा उसके साथों से बढकर ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसके बल पर जनता इतनी जल्दी अपने पैरों के बल खडी हो सकती हो। उसकी गति किसीके रोके नहीं रुक सकती। निर्दोषता की तो इसे साक्षात् मूर्ति ही समझिए। जनता की दरिद्रता का वह भूषण है—उसके द्वारा उसकी दरिद्रता के बुरे अंग विगलित हो जाते हैं। और चरखा अपना कदम आगे भी बढा रहा है—अलबत्ते उस तेजी के साथ नहीं जितनी कि हमारी प्रयोजन-पूर्ति के लिए आवश्यक है। जितनी कि विदेशी कपडे को देश से हटाने के लिए जरूरी है।

पर निराशा का तो कोई कारण ही नहीं। देखिएगा, ऐसे तमाम संकटों, आपत्तियों, तूफानों और बादलों को चीर कर यह चरखा साबित कदम आगे निकल आवेगा। और मेरे पास तो भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम में जूझने के लिए सत्य और अहिंसा के सिवा दूसरे कोई शस्त्रास्त्र नहीं है। इसलिए मैं तो चरखे पर ही अडा रहूंगा। सो आज यद्यपि सामुदायिक भंग व्यावहारिक दृष्टि से असंभव है तथापि व्यक्तिगत भंग तो किसी भी दिन किया जा सकता है। पर उसके लिए भी अभी समय नहीं आया। अभी तो क्षितिज पर बहुतेरे काले और डरावने बादल छाये हुए हैं जो कि भीतर से ही हमें घेर लेने की धमकी दे रहे हैं। जो लोग चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर हर तरह से अटल विश्वास रखते है, उनकी ऐसी परीक्षा अभी होना बाकी है जिससे यह अच्छी तरह मालूम हो जाय कि कौन कैसा है।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

वायकम

पाठक यह सुनकर खुश होंगे कि ट्रावनकोर दरबार ने श्री केरूर नाम्बुद्रीपाद को छोड दिया है और श्री रामस्वामी नायकर के नाम जो प्रवेश-निषेध का हुक्म निकाला था उसे वापस ले लिया है। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि ट्रावनकोर दरबार मेरे और पुलिस कमिश्नर के बीच हुए ठहराव पर पूरा पूरा अमलदरामद कर रहे हैं। मैं ट्रावनकोर दरबार को धन्यवाद देता हूं कि वे इस पुरातन दोष का सुधार करने के लिए बडे अच्छे भाव से काम ले रहे हैं। मैं आशा करता हूं कि बहुत शीघ्र ही अछूतों के लिए मन्दिरों की सडकें भी खुल जायंगी। मुझे सत्याग्रहियों को तो यह बात बताने की शायद ही जरूरत हो कि उनकी तरफ से इस ठहराव के पालन में पूरा पूरा ध्यान रक्खा जाना चाहिए।

अभागिनी बहनें

दक्षिण-यात्रा में मुझे जितने अभिनन्दन-पत्र मिले उन सबमें अत्यन्त हृदयस्पर्शी था वह जो देवदासियों की ओर से दिया गया था। देवदासी को वेश्या शब्द का सौम्य पर्याय ही समझिए। वह अभिनन्दन-पत्र उन लोगों ने तैयार और समर्पण किया था जो उसी जाति से संबंध रखते थे जिसमें से कि ये हमारी अभागिनी बहनें देवदासी बनाई जाती हैं। जो शिष्ट-मण्डल मुझे अभिनन्दन-पत्र देने आया था उससे मुझे यह मालूम हुआ कि उन लोगों में सुधार तो हो रहा है पर उसकी गति मन्द है। उस शिष्ट-मण्डल के मुखिया ने मुझसे कहा कि लोगों का ध्यान इस सुधार की तरफ नहीं है। पहले पहल कोकनाडा में मुझे यह आघात पहुंचा। और उस मुकाम के लोगों से मैंने इस विषय पर अपने विचार साफ शब्दों में प्रकट किये। दूसरी चोट पहुंची मुझे बरीसाल में जहां कि इन बदकिस्मत बहनों का एक दल मुझसे मिलने आया था। उनका नाम चाहे देवदासी हो, चाहे और कुछ, समस्या एक ही है। यह अत्यन्त लज्जा, परिताप और ग्लानि की बात है कि पुरुषों की विषय-तृप्ति के लिए कितनी ही बहनों को अपना सतीत्व बेच देना पड़ता है। पुरुष ने, विधिविधान के विधाता पुरुष ने, इस अबला कही जानेवाली जाति को बरबस जो पतन की राह दिखाई है उसके लिए उसे भीषण दण्ड का भागी होना पड़ेगा। जब स्त्री-जाति हम पुरुषों के जाल से मुक्त हो कर अपनी आवाज बुलन्द करेगी और जब वह अपने लिए बनाये पुरुष के विधि-विधानों के खिलाफ बगावत का झण्डा खड़ा करेगी तब उसका वह बलवा-शान्तिमय बलवा किसीतरह कम कारगर न होगा। भारत के पुरुषो, आओ! अपनी इन हजारों बहनों की तकदीर पर विचार करो। अरे ये बहनें तुम्हारे ही अधर्म और अनीतिमूलक भोग-विलास के लिए ऐसी शर्मनाक जिन्दगी बसर कर रही हैं! और सबसे बढ़ कर करुणता तो यह है कि इन घातक और संक्रामक पापागार पर मंडरानेवाले अधिकांश लोग होते हैं विवाहित, और इसलिए वे दुहेरे पाप के अधिकारी होते हैं। वे अपनी धर्मपत्नियों के प्रति भी पापाचार करते हैं, क्योंकि उनके साथ बेवफा न होने के लिए वे प्रतिज्ञाबद्ध हैं और अपनी इन बहनों के प्रति भी पाप-भागी होते हैं; क्योंकि उनके सतीत्व की रक्षा करने के लिए वे उतने ही बाध्य हैं जितने कि अपनी सगी बहन के लिए। यदि हम, भारतवर्ष के पुरुष, स्वयं अपने ही गौरव का खयाल करने लगें तो यह पाप एक दिन भी यहां नहीं ठहर सकता।

यदि हमारे अधिकांश गण्य-मान्य लोग इस पाप में न फंसे होते तो इस तरह का दुराचार, भूखे आदमी के द्वारा चुराये गये केले के या एक दरिद्र गिरहकट लड़के के अपराध से कहीं भारी अपराध माना जाता। समाज के लिए ज्यादह बुरी और ज्यादह हानिकर बात क्या है — रुपये पैसे का चुराया जाना या एक महिला के सतीत्व का चुराया जाना? परन्तु इसपर किसीको यह न कहना चाहिए कि वेश्या तो खुद अपने सतीत्व की बिक्री में शामिल रहती है, पर एक धनी मनुष्य जिसकी जेब गिरहकट काट लेते हैं, उस अपराध में भागी नहीं होता। तो मैं पूछता हूं कौन ज्यादह बुरा है—एक गरीब छोकड़ा जो जेब काट लेता है या एक बदमाश दुराचारी जो अपने शिकार को नशा पिलाकर उसके दस्तखत करा उसकी सारी जायदाद हड़प कर लेता है? क्या पुरुष अपनी गंदी चालों और हिकमत अमली से पहले रमणियों की उस सद्वृत्ति को नष्ट करके फिर उसे अपने पाप की भागिनी नहीं बनाता है? या क्या कुछ स्त्रियां जैसे कि पंचमों की, पतित जीवन व्यतीत करने के ही लिए पैदा हुई हैं। मैं युवा पुरुषों से फिर वह विवाहित हों या अविवाहित, कहता हूं कि मेरे इस कथन के भावार्थ पर जरा विचार करो। इस सामाजिक रोग, इस नैतिक कुष्ठ के संबंध में मैंने जितना कुछ सुना है, वह सब मैं नहीं लिख सकता। वे अपनी कल्पना के बल पर शेष सब जान लें और जो लोग इस अपराध के अपराधी हैं वे उससे शरम और भय खा कर बाज आवें। और हर शुद्ध व्यक्ति को उचित है कि वह अपने सहवासी को इस पाप से शुद्ध करने का अपनी पूरी शक्ति भर प्रयत्न करे। मैं जानता हूं कि यह दूसरी बात लिखने की अपेक्षा करना बहुत कठिन है। विषय बड़ा नाजुक है। पर इसी कारण ज्यादह उस बात की आवश्यकता है कि तमाम विचारशील लोग इसकी ओर ध्यान दें। इन अभागिनी भगिनियों के सुधार का काम केवल वही लोग करें जो इसके लिए विशेष रूप से योग्य हों। मेरी यह सूचना उन लोगों के अन्दर काम करने से संबंध रखती है जो इन पापागारों में जा कर पापाचार करते हैं।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

खादी-कार्यकर्ता के गुण

खादी-कार्यक्रम का संबंध देश के हर व्यक्ति से है। किसान कपास पैदा करता है, ओटनेवालियां उसे ओटती हैं, पिंजारे धुनक कर पूनी बनाते हैं, कातनेवालियां सूत कातती हैं, जुलाहे कपड़ा बुनते हैं, रंगरेज रंगते हैं, छीपे छापते हैं, धोबी धोते हैं, दरजी सीते हैं, व्यवसायी कपास की खरीदी तथा बिक्री करते हैं और अमीर से गरीब तक स्त्री-पुरुष बालक-बूढ़े सब उसे पहनते हैं। कपड़े के अतिरिक्त अन्न ही एक ऐसी चीज है जिसका इतना घनिष्ठ और व्यापक संबंध देश के प्रत्येक व्यक्ति से आता है। अन्न के संबंध में अभी हम ईश्वर-कृपा से परमुखापेक्षी नहीं हुए हैं। कपड़े के लिए हम कारखानों के—फिर वे देशी हों या विलायती—गुलाम हो रहे हैं। हमारी राजनैतिक गुलामी का मूल, बहुत हद तक, यह कारखानों की गुलामी ही है। इसीलिए खादी-कार्यक्रम का आज इतना महत्व है और इसीलिए गांधीजी तथा उनके अनुयायी आज खादी-प्रचार और खादी उत्पत्ति को स्वराज्य से भी ज्यादह महत्व दे रहे हैं। इसीलिए यह कहा जाता है कि चरखे के बिना स्वराज्य असंभव है। चरखा हमें केवल देश के प्रत्येक व्यक्ति के पास नहीं ले जाता, उनसे हमारा संबंध ही नहीं जोड़ता, बल्कि हमें यह अवसर भी देता है कि किस तरह हम उन्हें देश के काम में प्रवृत्त करें, किसतरह हम उनके काम आवें और किस तरह हम उनसे काम लें। जब एक आदमी को भिन्न भिन्न प्रकार और धन्धे के अनेक आदमियों से संबंध और व्यवहार रखना पड़ता है तब व्यवहारकुशलता के साथ ही संयम, विवेक, सहिष्णुता, उदारता आदि गुणों की वृद्धि होती है; दूसरे शब्दों में कहें तो सत्ता के बिना शासन-कला के ज्ञान की वृद्धि होती है। काम लेने और काम करने की क्षमता या गुण जबतक हमारे अन्दर उदय न होगा तबतक न तो हम स्वराज्य के किले को सर करने के लिए समुचित व्यूह-रचना ही कर सकते हैं और न स्वराज्य प्राप्त होने पर उसका संचालन ही कर सकते हैं। स्वराज्य-प्राप्ति और स्वराज्य-संचालन के मानी ही हैं मनुष्य मनुष्य के साथ किस तरह रहे, मनुष्य किस तरह दूसरे मनुष्य के काम आवे। और इस बात की तालीम आज हमें खादीसंगठन के द्वारा जितनी मिल सकती है उतनी और किसी बात से नहीं।

जो काम जितना ही अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण होता है उतने ही अधिक योग्य और गुणी कार्यकर्ताओं की अपेक्षा उसके लिए रहती है। खादी-संगठन वर्तमान तमाम संगठन-कार्यों से भिन्न प्रकार का है। अकेले प्रचारक की योग्यता रखनेवाले व्यक्ति इसमें सफलता—लाभ नहीं कर सकते। मेरी समझ में नीचे लिखे गुण हर खादी-कार्यकर्ता में अवश्य होने चाहिए—

पहली बात यह कि हर कार्यकर्ता खादी के काम को अपने घर का काम समझे। होना तो यह चाहिए कि देश के काम की चिन्ता हमें अपने घरू काम से ज्यादह हो। घरू काम के लिए हम स्वयं अपने प्रति जिम्मेवार हैं-घर के ८-१० व्यक्तियों के प्रति जिम्मेवार हैं; पर देश के कार्य के लिए तो ३० करोड़ जनता के प्रति जिम्मेवार हैं। अपने घर के कामों में हम जिस तरह छोटी छोटी बातों पर बारीकी के साथ ध्यान रखते हैं उससे कहीं अधिक ध्यान हमारा खादी के काम में रहना चाहिए। जब हमारे घरू काम में अड़चनें आती हैं, समय पर रुपया या आदमी या अन्य सहायता न मिलने पर जिस तरह हम उसे सफल बनाने के लिए नाना प्रकार से अकल लड़ा कर तरकीबें निकालते हैं उससे अधिक बुद्धि हमारी खादी-काम में खर्च होनी चाहिए। जब हमारे घरू काम में नुकसान पड़ने लगता हो, हमारी चीज पड़ी रहती हो, खराब हो रही हो, तब हम जिस चिन्ता के साथ अपने को नुकसानी और बरबादी से बचाने की कोशिश करते हैं उससे कहीं अधिक उद्योग हमें देश-कार्य के लिए करना चाहिए। जब तक हम खादी-कार्य को कम से कम उसी चाव और चिन्ता के साथ न करेंगे जिसके साथ अपना निजी कारोबार करते हैं तब तक न तो हम सच्चे कार्यकर्ता ही हैं और न हम अपने कार्य में सफलता के मुस्तहक ही हैं। जबतक वही रसक, वही कलक, वही धुन, वही लगन, वही चाव, वही उमंग, वही बेचैनी और वही चिन्ता हमारे मन में न होगी जो कि हमारे निजी काम के करने में होती है तबतक हम अपनेको खादी कार्य-कर्ता नहीं कह सकते, स्वराज्य के सिपाही नहीं कह सकते।

दूसरा गुण होना चाहिए-व्यवसायीपन। अभी हमारे अन्दर प्रचारक-पन तो बहुत है, व्यवसायी-पन कम है। खादी-संगठन का संबंध व्यवसाय से ही अधिक है। खरीद करना, बेचना, औरों से काम लेना-इसमें व्यवसाय और व्यवस्था दोनों के गुण दरकार होते हैं और बड़ते हैं। साधारण व्यवसायी अपने लाभ और मुनाफे के लिए जिस तरह इस बात की बेहद चिन्ता रखता है और उद्योग करता है कि माल सस्ता पड़े, उम्दा बने और ग्राहक खुश रहें, इसीतरह बल्कि उससे भी अधिक चिन्ता और कोशिश एक देश-सेवक व्यवसायी को खादी के लिए होनी चाहिए। देश-सेवक व्यवसायी साधारण व्यवसायी से ऊंचा और श्रेष्ठ होता है, इसीलिए उसकी जिम्मेवारी और कर्तव्य का ख्याल भी ज्यादह और पुख्ता होना चाहिए। साधारण व्यवसायी अपने मुनाफे के लिए जान देता है, देश-सेवी व्यवसायी देश के हित के लिए जान लड़ावेगा। जब हम यह समझ लेते हैं कि हम तो खादी के प्रचारक हैं, व्यवसायी नहीं, तब अज्ञान-रूप से हम इस बात के लिए अपनेको निश्चिन्त बना लेते हैं कि यदि खादी न बिकी, नुकसान हुआ, तो चिन्ता नहीं, आखिर हमारा काम है खादी का प्रचार करना। इससे बुराई यह होती है कि खादी महंगी पड़ती है, उम्दा नहीं बन पाती, बिक्री का बराबर इन्तजाम नहीं हो पाता और फलतः हमारा काम चौपट हो जाता है। हम खादी का रोजगार चाहे न करें, अपने खासी मुनाफे के लिए, और केवल मुनाफे की ही गरज से उसमें न पड़ें; पर हमारे अन्दर खादी के व्यवसायी के वे गुण तो जरूर होने चाहिए जिनके बदौलत चीज सस्ती और उम्दा बने और तुरत बिक जाय। इसमें हमारा हर काम देश-सेवा के भावों से प्रेरित रहेगा, इसलिए न तो हमारे हाथों दूसरे लोगों—यथा कातनेवाले, बुननेवाले, धुनकनेवाले आदि के साथ अन्याय होगा और न अपने ही स्वार्थ का ख्याल प्रधान रहेगा। हम हिसाब-किताब भी सीधा-सही रक्खेंगे और उसके बताने में कभी न झिझकेंगे।

तीसरे शोधक या विचारक के गुण भी हमारे अन्दर होना चाहिए। कौन चीज कहां सस्ती और अच्छी बनती है, बन सकती है, किस चीज में क्या सुधार करने के लिए किन किन साधनों की जरूरत होगी, वे किस तरह प्राप्त होंगे, या बन सकेंगे, आदि बातों पर उसे जब जब मौका पेश आवे विचार और उसकी योजना करनी चाहिए। छोटी से छोटी और बारीक से बारीक बात का विचार उसे करना चाहिए, ज्ञान रखना चाहिए और उसके लिए उद्योग करना चाहिए।

चौथा गुण है परस्पर सहयोग का भाव। यह भाव तबतक उदय नहीं होता जबतक खुदी का बीज दिल में से जल नहीं जाता। जो देश-सेवक हैं, जिसने अपनेको देश के हाथ बेच दिया है, देश-सेवा में ही जिसे प्राणार्पण करना है उसके अन्दर खुदी रह नहीं सकती। सेवक जितना ही बड़ा होता है उतना ही उसे अपनी योग्यता का, अपने बड़प्पन का ख्याल भूलता जाता है। यह बड़प्पन का ख्याल अच्छे से अच्छे कार्यकर्ता को तीन कौड़ी का बना देता है और उसकी इच्छा रहते हुए भी उसके हाथों देश का हित नहीं होता। कार्यकर्ताओं में और देश के भिन्न भिन्न दलों और जातियों में जबतक परस्पर सहयोग करने की लालसा पैदा न होगी तबतक खादी-संगठन में सफलता-लाभ न होगा। यह खादी-संगठन एक तरह से हमें इस सहयोग-वृद्धि में सहायक भी होगा। पर हमारे खादी-कार्यकर्ताओं में परस्पर इस गुण का अभाव रहा तो फिर समुदाय में उसका विकास हमको कैसे दिखाई दे सकता है?

मेरी समझ में इन गुणों की तरफ हमारे खादी कार्यकर्ताओं का सबसे पहले ध्यान जाना चाहिए और जो इनमें से किसीका अभाव अपने अन्दर पावें उन्हें उचित है कि स्वयं अपने तथा देश के हित के लिए वे उनको प्राप्त करने का उद्योग करें। किसी गुण का विकास अपने अन्दर करना कोई मुश्किल बात नहीं है। उसके अभाव पर निरंतर ध्यान रखने, उसे दूर करने की प्रतिज्ञा और दृढ़ता-पूर्वक उसका पालन करने से वह सहज ही प्राप्त हो सकता है। अरे! मनुष्य के लिए, मनस्वी मनुष्य के लिए, संसार में कौन वस्तु दुर्लभ है?

हरिभाऊ उपाध्याय

अन्त्यजों की मुश्किलात

काठियावाड़ के इस प्रवास में मुझे अन्त्यजों के दुःखों का विशेष अनुभव हुआ। उन्हें गांवों के कुओं से पानी नहीं मिलता है। जिसमें जानवरों को पानी पिलाते हैं उसमें से पानी लेने की उन्हें इजाजत है। बहुतसी जगहों में उन्होंने मुझे इस दुःख के बारे में शिकायत की। यह दुःख कुछ कम नहीं है। यह संभवनीय नहीं है कि प्रत्येक गांव में उनके लिए अलग कुएं बनवाये जायं। काठियावाड़ की कठिन भूमि में जहां पानी बहुत गहरा रहता है एक कुंआ बनवाने में तीन हजार रुपये खर्च हो सकते हैं। इस हालत में नये कुएं कितने बन सकते हैं ? पानी पर सबका हक होता है। उससे भी अन्त्यजों को दूर रखना तिरस्कार की हद है। लोग यदि स्पर्श से अपवित्र होते हों तो वे अपने लिए पानी भरने का अलग समय रख सकते हैं। मैं नहीं समझ सकता कि ऐसी कठोरता में धर्म कहां रहता है ? (म॰ गां॰)

मांगरोल का भव्य दृश्य

'मेरी स्थिति' नामक लेख में गांधीजी ने मांगरोल के भव्य दृश्य का जिक्र किया है। श्री महादेव भाई के पत्र में उसकी झलक इस तरह मिलती है—

"परन्तु अभी मांगरोल की सार्वजनिक सभा होना बाकी थी। वह रात को हुई। छोटा गांव; पर डेढ़-हजार आदमी जमा थे। स्वागत का आरम्भ इतना लंबा था कि कितनों ही को सन्देह होने लगा कि इसका अन्त भी होगा या नहीं। गांधीजी का भी धीरज छूटता जा रहा था। इतने ही में वह मंच जिसपर गांधीजी बैठे थे टूट गया। चोट वगैरह किसीको न आई। गांधीजी ने विनोद में कहा 'अच्छा हुआ' यह छोटा-सा भू-कंप हो गया — मानों उनके ये उद्गार अभी आगे होने वाले भू-कम्प की आगाही दे रहे हों। दूर एक किनारे अन्त्यज लड़कियां गांधीजी का स्वागत-गान गाने के लिए खड़ी की गई थीं। वे शुरू करना ही चाहती थीं कि गांधीजी ने कहा—

'मनुष्य के धीरज की आखिर हद होती है। मेरा भी धीरज अब जाता रहा। जब मैंने देखा कि अन्त्यज बालिकाओं को वहीं दूर रह कर गाना पड़ेगा तब मुझसे नहीं रहा जा सकता। आप लोगों ने देखा होगा कि हर पांच पांच मिनिट पर मेरी नजर उन दूर बैठाये अन्त्यजों की ओर जा रही थी। मुझे यह गवारा नहीं हो सकता कि अन्त्यज वहां बैठें। यदि अन्त्यज-लड़कियां वहां खड़े खड़े गावें तो मुझे महासभा-समिति की ओर से मिला अभिनन्दन-पत्र आडम्बर-मात्र साबित हो। मैं कह चुका हूं कि मैं ढेढ हूं, अन्त्यज हूं, भंगी हूं। इन विशेषणों का प्रयोग मैं अपने लिए कर के अपनेको धन्य मानता हूं, अपनी आत्मा को प्रसन्न करता हूं। जब मुझसे पूछा गया कि तुम्हारा पेशा क्या है तब मैंने जवाब दिया किसान और जुलाहा; परन्तु मदरास म्युनिसिपल कारपोरेशन के अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में मैंने और आगे बढ़ कर कहा—मैं भंगी हूं। ऐसी अवस्था में जिन्हें मैं अपना मानता हूं उन्हें आप दूर रक्खें और मुझे अपनी गोद में रखना चाहें, यह कैसे हो सकता है! मेरी स्तुति में तो आप गीता के श्लोक गावें और उन्हें मैं अपनेसे दूर रक्खूं, यह कैसे हो सकता है? पर आपने मेरी जो स्तुति की है वह यदि सच हो, जो मेरा गुण वर्णन आपने किया है वह यदि सच हो तो हम लोग जहां बैठे हुए हैं वहां उन बालिकाओं को बैठाना चाहिए। हां, इससे आप लोगों के दिल को चोट पहुंचेगी, आप कहेंगे कि यह कहां से रंग में भंग करने आ गया? तो जिसतरह उन्हें दूर देख कर मेरे दिल को आघात पहुंचा उसीतरह उन्हें यहां पा कर यदि आपके दिल को चोट पहुंचती हो तो मुझे कह दीजिए। अबतक हम प्रस्ताव तो बराबर करते जाते हैं। आपके स्वागत-समारोह में मेहराबों पर अस्पृश्यता-निवारण-सूचक सूत्र भी मैंने पढ़े। सो या तो वह आडम्बर-मात्र है या इससे आपकी कमजोरी सूचित होती है। आज के इस अवसर पर मेरा यह काम है कि मैं आपकी वह कमजोरी दूर कर दूं। इसीलिए कहता हूं कि आप अपने दिये उस अभिनन्दन-पत्र को वापस ले लीजिए, या मुझे इन ढेढों के पास जा कर बैठने दीजिए। यदि आप सच्चे दिल से यह चाहते हों कि अन्त्यज-भाई-बहन आपके साथ आ कर बैठें तो ऐसा कह दीजिएगा। मेरा धर्म है अहिंसा, और आपका भी वही धर्म है। अहिंसा का सिद्धान्त हर धर्म में है। हां, उसकी पालन-विधि के परिमाण में अलबत्ते भेद है। सो मैं आपको दुःख पहुंचाना किसी तरह नहीं चाहता। यदि मेरे मुलाहिजे से ढेढों को यहां आने देंगे तो इससे मेरा अहिंसा-धर्म लुप्त होगा। मेरे मुलाहिजे से नहीं, बल्कि हजार बार यदि आपको गरज हो कि मैंने जो धर्म की रक्षा करने की बात आपसे कही है वह सच है और उसे मानना चाहिए, तो अंत्यजों को आने दीजिएगा। आप यदि उनके यहां आने के खिलाफ भी हाथ ऊंचे उठाइएगा तो मुझे दुःख न होगा। 'अरे जीव! हिन्दू-धर्म को लोग कब और किस तरह समझेंगे?' यह कह कर मैं लंबी सांस छोड़ूंगा। अतएव जिसकी जैसी इच्छा हो निडर हो कर बे-मुलाहिजे हाथ उठावें।

हाथ ऊंचे उठे। हजार से ऊपर हाथ ढेढों को अन्दर बुलाने के पक्ष में थे। २५-३० लोग खिलाफ थे। यह बात खास तौर पर जाननेलायक थी कि इन मुखालिफ लोगों में स्त्रियों का एक भी हाथ न था। तब गांधीजी फिर कहने लगे—

'मेरे लिए अब धर्म-संकट आ खड़ा हुआ है। जब कि अंत्यजों को अलग रखनेवालों की संख्या बहुत थोड़ी है, मैं उनसे विनयपूर्वक सिफारिश करता हूं कि वे सभा से अलग हो जावें। यदि वे मेरे विनय को न समझें और उन्हें दुःख मालूम हो तो बेहतर है कि मैं ही अन्त्यजों में जा बैठूं।'

इन वचनों के निकलते ही जिस ब्राह्मण ने आरंभ में गांधीजी की स्तुति-गान किया था वे बोले—मैं ब्राह्मण हूं और अपने जैसे विचार रखनेवाले सब लोगों की तरफ से कहता हूं कि यह बात ऐसी है कि हम सबको दुःख हो। सो मैं आपसे कहता हूं कि आप ही अन्त्यजों में जा कर बैठ जाइए।'

तब गांधीजी बोले—'अवसर नाजुक उपस्थित हो गया है। हम यहां सभा के न्याय के अनुसार व्यवहार नहीं कर सकते। बेहतर है कि मैं ही अन्त्यजों में आकर बैठ जाऊं।'

तब एक सज्जन दुःख के साथ कहने लगे—'भारी बहु संख्या ने आपके पक्ष में राय दी है। ऐसी हालत में आपको वहां जाने देना थूक कर चाटना है।'

तब गांधीजी ने कहा—"आपको दुःख न होना चाहिए आपने कुछ पहले से तो विज्ञप्ति निकाली ही न थी कि अन्त्यज शामिल किये जायंगे। आपने तो सबको अलहदा बैठने दिया और यदि मैं न बोला होता तो वे वहीं बैठे रहते। इसलिए मैं समझता हूं कि ऐसे समय सभा के हक पर अमल करना, उन लोगों को दुःख पहुंचाना है। और मुझे तो जरा भी दुःख नहीं होता, उल्टा उससे आपकी मर्यादा की रक्षा होती है। आपका काम आसान हो जाता है। यह कह कर गांधीजी उठे और अन्त्यजों में जा कर बैठने वाले थे कि एक और सज्जन उठे और उन्होंने संजीदगी के साथ उन ब्राह्मण विरोधी से कहा—'देखना, गांधीजी गये तो उनके पीछे हम सब लोग जायंगे। सो आप तो यों भी अलहदा ही रहेंगे। ऐसी अवस्था में आप ही हट जायं तो क्या बुराई है?'

वे ब्राह्मण समझे और दो-तीन भाइयों के साथ अलहदा चले गये। शेष लोग जिन्होंने अन्त्यजों के खिलाफ हाथ उठाये वे यह कह कर बैठ रहे कि घर जा कर नहा लेंगे और क्या? "अन्त्यज बालिकायें अन्दर आईं और स्वागत गीत गाया।

अन्त में गांधीजी का भाषण हुआ। अन्त्यजों के प्रश्न पर आपने कहा—

'अन्त्यजों के सवाल ने यहां अचानक ही बड़ा रूप धारण कर लिया। इसमें यहां जो दो भाग हो गये उसे मैं शुभ मुहूर्त मानता हूं। जो भाई विवेक-पूर्वक यहांसे चले गये उन्हें मैं धन्यवाद देता हूं। यह कह कर कि 'घर जा कर नहा लेंगे'

जो सज्जन यहां बैठे रहे उन्हे भी मैं धन्यवाद देता हूं। आप लोगों ने यदि मुझे यहां आने दिया होता तो अच्छा होता। पर जो हुआ सो भी कुछ बुरा नहीं। यह सभा का हक है और यदि मैं आपपर दबाव डालता तो भी अहिंसा का लोप होता। जो लोग मेरे साथ सहमत हैं उनपर भी मैं इतना अंकुश नहीं लगा सकता। इसलिए मैं उन लोगों के आग्रह को जिन्होने मेरा पक्ष लिया था, समझ गया और यह समझ कर बैठ रहा कि जो हुआ सो ठीक हुआ।

अब मेरा विरोध करनेवालो से दो शब्द कहना चाहता हूं। इतने सालों से इस बात की चर्चा हो रही है फिरभी आप लोग नहीं चेतते। यह कितनी दुर्दशा है!। यदि कोई ढेड इसी सभा में बैठा होता तो आपको कोई आपत्ति न होती; पर इस सवाल को उठाने से यह आपत्ति खडी हुई। (एक शख्स ने यहां एक विरोध किया। कहा-स्वयंसेवकों ने अन्त्यजों को भीतर बैठाया था।) किसी स्वयंसेवक ने अन्त्यज को अन्त्यज समझ कर बैठाया होता तो ठीक था, परन्तु अन्त्यज नहीं, यह कहकर बैठाया हो तो उन्होने दगा किया है। उन्होंने मुझे धोखा दिया है और जो लोग अस्पृश्यता को धर्म मानते है उन्हें भी धोखा दिया है। हम किसी से जबरदस्ती धर्म का पालन नहीं करा सकते। धर्म में जबरदस्ती नहीं हो सकती। यदि हो तो वह अधर्म हो जाता है। यदि किसी स्वयंसेवक ने ऐसा किया हो तो उसे पश्चात्ताप करके माफी मांगनी चाहिए।

मैंने जो बात कही थी उसे ये बीच में दखल डालनेवाले महाशय नहीं समझे। आप ट्रेन में, दफ्तरों में, मिलों में तथा दूसरी संस्थाओं में जहां हम अन्त्यजों को छूते हैं वहां उनका बहिष्कार नहीं करते हैं। मिलों में तो अन्त्यजों से काम लेते हैं, बहिष्कार की तो बात दूर रही। फिर भी जो लोग यह मानते हैं कि अस्पृश्यता पाप है और उसको दूर कर देना चाहिए, उन्हें बेवकूफ मानना, अपनी आंख पर पट्टी चढा लेना—यह न तो मनुष्यता है, न व्यावहारिकता है, न बुद्धिमत्ता है। मैं आपसे कहता हूं कि आप कुछ व्यवहार-कुशल बनिए। वैष्णव लोग प्रेम का दावा करते हैं। यहां अन्त्यजों के प्रति वैष्णवों ने कौनसा प्रेम प्रदर्शित किया है? कितने ही अन्त्यजों से मैं रास्ते में मिला था। उन्होंने कहा-'हमें कुओं पर पानी नहीं भरने दिया जाता। हमें गड्ढों में से पानी भरना पडता है?' इसे दया कहते हैं! जिससे पशु पानी पीते हैं, हम कभी नहीं पीते, उनमें से लोगों को पानी पीने पर मजबूर करना क्या दया है? यह तो निरी निर्दयता है, अधर्म है, पाप है, राक्षसता है। यह भाव न तो वैष्णव धर्म में है, न भागवत में है। यदि यह साबित हो कि ऐसी बात इन ग्रन्थों में लिखी है तो मुझे ऐसे वैष्णव धर्म की जरूरत नहीं, इस हिन्दू-धर्म की गरज नहीं। जिस अन्त्यज को हमारी ही तरह पांच इन्द्रियां हैं, जो हमारी ही तरह पाप करता है, पुण्य करता है, उसे ईश्वर-निर्मित पानी पीने की भी मुमानियत! वह मांसाहार करता है! वह तो बेचारा सरे दस्त मांसाहार करता है। जो लोग चुपके चुपके मांसाहार करते हैं, उनका हम क्या इलाज करते हैं? हम कन्या-विक्रय करके गोहत्या का पातक करते हैं और अस्पृश्यता-धर्म का पालन करते है! इन 'धर्म'-पालने वालों के मन में दया नहीं, रगो-रेशे में पाखण्ड है, निर्दयता है। मनुस्मृति शौच का नियम इतना ही बताती है कि रजस्वला को तबतक न छूना चाहिए जबतक वह रजस्वला हो, चाण्डाल को तब तक न छूना चाहिए जबतक वह अपना काम करता हो। बहुत से बहुत हुआ तो सूतकी, चाण्डाल, रजस्वला को छू कर नहा लें—यह शास्त्राज्ञा है। फिर यह ऐसा जुल्म किसलिए? ढेड-भंगी का चारों ओर से बहिष्कार क्यों? फिर भी—ऐसा करते हुए भी हम नरसिंह मेहता के वंशज होने का दावा करते हैं, नवकार मन्त्र जपने का स्वांग करते हैं! जबतक आपका हृदय कोमल नहीं हुआ तबतक आपका कोई दावा काम नहीं आ सकता। मुझे यदि सारा हिन्दुस्तान कहे कि मैं झूठा हिन्दू हूं, तो भी मैं कहूंगा कि मैं सच्चा हिन्दू हूं, अस्पृश्यता को जो लोग धर्म मानते हैं वे हैं झूठे। मरते मरते भी मैं इस बात को पाप कहता हुआ मरूंगा। मैं तो चाहता हूं कि हिन्दू-धर्म में से क्रूरता चली जाय, अस्पृश्यता निकल जाय, व्यभिचार छूट जाय, पाप नष्ट हो जाय। यह इच्छा बनी हुई है और उसीको प्रदर्शित करता रहता हूं। जब विचार-मात्र से मैं यह कर सकूंगा तब हिमालय की गोद में जा बैठूंगा। पर आज तो मेरा जीवन प्रवृत्तिमय है। और इतनी प्रवृत्ति होते हुए भी मुझे जरा अशांति नहीं, मैं शांति से जा कर सो जाऊंगा। आपका धर्म तराजू पर तोला जा रहा है। आपको पता नहीं कि संसार के कोने कोने में पारसी, ईसाई मुसल्मान जानना चाहते हैं कि कौनसा धर्म सच्चा है, किसमें अधिक दया है, प्रेम है, किसमें एक ईश्वर की पूजा है। ऐसे समय में यदि आप यह माने कि हिन्दू-धर्म को गंदले गड्ढे में रख कर हम उसकी रक्षा करेंगे तो वह व्यर्थ है, आपके ये तिलक-कण्ठी, ये मन्दिर सब मिथ्या है, जबतक कि आपका हृदय प्रेम से—मानव-मात्र के प्रति प्रेम से सिक्त न हो। इसीसे बहनों ने अन्त्यजों को यहां बुलाने के खिलाफ हाथ ऊंचे न उठाये। यह दिखाता है कि हमारे अन्दर सतीत्व अभी बाकी रहा है। हिन्दुस्तान में मैंने हर जगह देखा है कि सीधे रास्ते चलनेवाली हमारी बहनें ही हैं। पर आप क्यों नहीं समझते? (यहां फिर उन विघ्नकर्ता ने कुछ सवाल पूछ कर गांधीजी को रोका, तब गांधीजी उन्हें संबोधन कर के बोलने लगे) ये सज्जन मानते हैं कि मैं अज्ञान की बातें कर रहा हूं। मैं मानता हूं कि ये अज्ञान की बातें कर रहे हैं। अब इसका इन्साफ कौन करे? हमारी मृत्यु के बाद ही इसका इन्साफ हो सकता है। मैं कुबूल करता हूं कि मैं अपूर्ण आदमी हूं। सत्य की जो व्याख्या मैं करता हूं उसके अनुसार सत्य का पालन मुझसे नहीं होता। नहीं तो मुझे क्यों इतनी दलील करनी पडे? यदि मेरे अन्दर पूर्णरूप से अहिंसा व्याप्त हो तो इन भाई के अन्दर वैर-भाव हो सकता है? इन्हें क्रोध आ सकता है? (इसपर वे महाशय बोले—मुझे गुस्सा नहीं आया, मैं तो शान्ति के साथ बोल रहा हूं।) भाई, मैं तो कहना चाहता था कि मेरी अहिंसा अधूरी है, क्योंकि आपको गुस्सा आ गया है। पर यदि आपकी बात सच हो कि आपको गुस्सा नहीं आया तो यह सिद्ध होता है कि मेरे अन्दर थोडी-बहुत अहिंसा है और मैं मानता हूं कि थोडी अहिंसा मेरे अन्दर जरूर है। मैं जो कह रहा हूं वे प्रेम के बिन्दु हैं। सौ टच का सोना है। (यहां फिर उस शख्स ने खलल डाला। तब गांधीजी ने कहा—यहां कोई भी मर्यादा छोड कर न बोले और मेरे हक में राय देनेवालों का दुहेरा कर्तव्य है कि वे इस भाई की हालत को बरदाश्त करें।) इतनी बातें जो मैंने कीं सो मेरे पक्ष में मत देने वालों को शान्त करने तथा विरोधियों को कुछ समझाने के लिए। पर यह कहीं एक रात में हो सकता है? मैं तो इतना ही कहूंगा, जबतक हम अपने हृदय को आईने की तरह स्वच्छ न करेंगे तबतक स्वराज्य नहीं मिल सकता।"

गुण और संख्या

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ३८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, वैशाख सुदी ७, संवत् १९८२ गुरुवार, ३० अप्रैल, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी.

टिप्पणियां

ईर्ष्या के योग्य

बारडोली तहसील की एक राष्ट्रीय पाठशाला के एक शिक्षक लिखते हैं कि पिछले चार महीनों में मैंने कोई ७ मन कपास के टेंडुए चुने, उनकी कपास को लोढा, धुनका, और १८ पौंड रुई का सूत काता जिसकी लंबाई हुई ३ लाख गज। पढाई का काम करते हुए भी चार महीने तक लगातार इतना काम करना भारी बात है। वे कहते हैं कि शेष दिनों में मैं इससे भी अधिक और अच्छा सूत कातूंगा। इस उद्योग का अर्थ और फल तो अमरेली के एक कार्यकर्ता की भेजी रिपोर्ट से बडी अच्छी तरह मालूम होता है। उन्होंने एक साठ बरस के बूढे की बात लिखी है। वह चार मील पैदल अपने लिए पूनियां लेने गया था। उसके मनोभाव सुनिए—'आपलोगों ने हमको यह एक वरदान ही दिया है। लगातार तीन साल हमारे खराब निकले। हमारे पास कोई काम न था। और बिना काम के गुजर कैसे हो? अब मुझे यह काम मिल गया है। अब मैं आराम से रहूंगा।' पूर्वोक्त शिक्षक के पास काम न था सो बात नहीं। उन्हें इस मामूली मिहनत की कोई जरूरत न थी। परन्तु उनकी यह मिहनत और उदाहरण अन्त को उन लोगों को जो कि काहिल बने बैठे हैं, काम की प्रेरणा किये बिना न रहेगी और वे इस धनोत्पादक आवश्यक और राष्ट्रीय उद्योग में अपनेको लगाये बिना न रहेंगे। इस बूढे के उदाहरण को एक नमूना ही समझिए। ऐसे हजारों-लाखों स्त्री-पुरुष काम के अभाव में भूखों मर रहे हैं। बहुत लोग तो, जैसे कि उडीसा में, काम करने की अवस्था को ही पार कर गये हैं और काहिली उनकी एक आदत ही बन बैठी है। इस आलस्य को दूर करने का उपाय सिवा चरखे के और कोई नहीं है। इस देश के लाखों दुःखी घरों में सुख के प्रवेश करने का यही एक साधन है।

मेरी धन-दौलत

लोग मुझसे तरह तरह की अजीब बातें पूछते हैं। ऐसी ही कुछ बातें गन्तूर जिले से एक सज्जन पूछते हैं। सुनिए—लोग कहते हैं कि गांधीजी जैसा कहते हैं वैसा करते नहीं हैं। वे लोगों को उपदेश करते हैं दरिद्र बनो, पर खुद जायदाद जुटा कर रखते हैं। वे औरों को गरीब बनाना चाहते हैं, पर खुद गरीब नहीं है। वे औरों से कहते हैं सादा और कम खर्च का जीवन व्यतीत करो—पर वे खुद बहुत खर्च करते हैं। सो इन सवालों का जवाब दीजिए—अपनी गुजर-बसर के तथा सफर के खर्च के लिए आप गुजरात प्रान्तिक समिति या महासमिति से कुछ लेते हैं या नहीं? यदि लेते हों तो कितनी रकम? यदि नहीं, जब कि आपके कुछ धन-दौलत नहीं है जैसा कि लोग समझते हैं कि नहीं है, तो फिर अपनी लम्बी लम्बी सफरों का तथा खाने और कपडे का खर्च किस तरह चलाते हैं? उनके खत में और भी ऐसी ही बातें हैं। मैंने उनमें से मुख्य मुख्य बातें चुन ली हैं।

मेरा जरूर यह दावा है कि मैं जैसा कहता हूं वैसा ही करने की कोशिश करता हूं। लेकिन हां, मैं कुबूल करता हूं, कि मेरा खर्च-वर्च उतना कम नहीं है जितना कि मैं चाहता हूं। बीमारी के बाद से मेरा खाना खर्च यथेष्ट से ज्यादह बढ गया है। मैं उसे गरीब आदमी का खाना किसी तरह नहीं कह सकता। मेरे सफर में भी बीमारी के पहले से अब ज्यादह खर्च होता है; अब मैं लंबी लंबी सफरें तीसरे दरजे में नहीं कर सकता। और न अब मैं बिना किसी साथी के, पहले की तरह, अकेला ही जाता-आता हूं। ये सब सादगी और दरिद्रता के चिन्ह नहीं, बल्कि उसके विपरीत हैं। मैं महासमिति या गुजरात प्रान्तिक समिति से कुछ नहीं लेता। मेरे मित्रगण मेरी यात्रा का तथा खाने-कपडे का खर्च चलाते हैं। अकसर यात्रा में रेल्वे किराया वे लोग दे देते हैं जो मुझे निमंत्रित करते हैं और जो सज्जन मुझे अपने घर ठहराते हैं वे सब मेरी सब जरूरतों पर ध्यान रखते हैं—इतना अधिक कि वह मुझे जंजाल मालूम होने लगते हैं। यात्रा में लोग मुझे मेरी जरूरत से बहुत ज्यादह खादी दे देते हैं। जो बच जाती है वह उन लोगों को दे दी जाती है जिन को उसकी जरूरत होती है। वह आश्रम के खादी-भण्डार में रख दी जाती है। वह भण्डार लोक-हित के लिए ही चल रहा है। मेरे पास कोई धन-दौलत और जायदाद नहीं। फिर भी मैं समझता हूं कि मैं दुनिया में सबसे बडा धनी आदमी हूं। क्योंकि मुझे कभी रुपये पैसे की कमी न रही—न खुद अपने लिए, न अपने सार्वजनिक कामों के लिए। परमात्मा ने हमेशा समय पर मुझे मदद भेज दी है। ऐसे कई मौके मुझे याद पडते हैं जब कि एक एक पैसा मेरे सार्वजनिक कामों में खर्च हो चुका था। पर उस समय

ऐसी जगह से रुपया आ पहुंचा जिसकी मुझे कोई आशा न थी। इन आकस्मिक सहायताओं ने मुझे बहुत नम्र बना दिया है और मेरे हृदय में ईश्वर के तथा उसकी कृपालुता के प्रति ऐसी अचल श्रद्धा दे दी है कि यदि कभी मेरे जीवन में अत्यन्त मुश्किल का दिन आया तो वह उस समय भी टिक रहेगी। ऐसी अवस्था में संसार चाहे तो शौक से मेरे अपरिग्रह पर कहकहा लगा सकता है। मेरे लिए तो यह अपरिग्रह एक लाभ ही हो बैठा है। क्या बात हो, यदि लोग मेरे इस सन्तोष में मेरा मुकाबला करें। मेरा यह अत्यन्त समृद्ध खजाना है। इसलिए शायद यह कहना ठीक ही है कि यद्यपि मैं दरिद्रता का उपदेश देता हूं तो भी मैं धनवान् हूं।

सहभोज

एक महाशय लिखते हैं—

"मान लीजिए कि कोई सद्भाववाले मनुष्य, सब वर्गों में सद्भाव पैदा करने के लिए आंतर्वर्गीय, आंतर्जातीय और आंतर्राष्ट्रीय भोज का निमन्त्रण दें और उसमें शाकाहार और अ-मादक वस्तुओं का ही उपयोग किया जाय तो क्या यदि कोई हिन्दू आपकी जाति का हो या कुटुम्बी हो— इस भोजन में निमन्त्रण मिलनेपर (और बेशक जबरदस्ती नहीं) शामिल हो और आपसे राय मांगी जाय तो सनातन धर्म की दृष्टि से आपको ऐतराज होगा? उसी प्रकार आप ही किसी सनातन (या मर्यादा) धर्म की दृष्टि रखनेवाले ब्राह्मण को निर्जन स्थान में थका हुआ भूखा, और प्यासा (वह कहें कि मूर्छित हो जाने की तैयारी पर हो) पा कर यदि कोई चाण्डाल, मुसल्मान या ईसाई स्वच्छ चांवल का खाना और पानी दे तो उसे वह स्वीकार करना चाहिए या नहीं? संक्षेप में प्रश्न यह है एक सार्वजनिक भोज दे कर अपनी सदिच्छा का प्रकट करना और एक अस्पृश्य का स्पृश्य हिन्दू को खाना देना एवं उसका स्वीकार करना आपके सनातन वर्णाश्रम और मर्यादा-धर्म के अनुकूल है या नहीं?"

यदि कोई ब्राह्मण संकट में है और यदि वह चाहे कि मेरा शरीर कायम रहे, तो किसी का भी दिया स्वच्छ भोजन कर लेगा। मैं न तो सहभोज की हिमायत करूंगा, न उसपर ऐतराज ही। क्योंकि ऐसे कार्यों से मित्रता या सद्भाव की वृद्धि अवश्य ही होता हो सो बात नहीं। आज हिन्दू और मुसल्मान के सहभोज की तजवीज की जा सकती है; पर मैं साहस के साथ कहता हूं कि ऐसे भोज से इन दोनों जातियों में एकता न हो सकेगी, क्योंकि ऐसे भोज के अभाव के ही कारण ये एक-दूसरे से दूर नहीं है। मैं ऐसे जानी दुश्मनों को जानता हूं जो एक-साथ खाना खाते हैं, गप-शप उड़ाते हैं और फिर भी दुश्मन बने हुए हैं। लेखक दोनों विभाजक रेखा कहां खींचेंगे? वे शाकाहार और अ-मादक वस्तुओं के भोजन तक ही क्यों ठहरते हैं? जो शख्स मांस खाना अच्छा समझता है और शराब चखना एक निर्दोष और आनन्ददायी तफरीह समझता है उसे तो अपने गो-मांस के टुकड़े और शराब प्याले का सारी दुनिया के साथ देन-लेन और खान-पान करने में सिवा सद्भाव की वृद्धि के और कुछ न दिखाई देगा। लेखक-महाशय के प्रश्न में गर्भित दलील के आधार पर कोई विभाजक-रेखा नहीं हो सकती। इसलिए मैं अन्तर्भोज को सद्भाव की वृद्धि करने में सहायक नहीं मानता। मैं खुद तो इन खान-पान के बंधनों को नहीं मानता हूं और मैं ऐसा खाना जो कि अभक्ष्य और निषिद्ध न हो, साफ-सुथरा हो हर शख्स के हाथ का खाता हूं, पर जो लोग इन बंधनों को मानते हैं उनके मनोभावों का लिहाज भी जरूर रखता हूं और न मैं इसलिए अपने पीठ पर 'उदारता' की और दूसरे के मुंह पर 'संकुचितता' की मुहर ही लगाता हूं। यों जाहिरा तौर पर मेरे उदार और व्यावहारिक होते हुए हो सकता है कि मैं संकुचित और स्वार्थी होऊं और मेरे दूसरे मित्र जाहिरा तौर पर संकुचित दिखाई देते हुए भी उदार और निस्वार्थ हों। सो इसका गुण और दोष हेतु पर अवलंबित रहता है। सद्भाव की वृद्धि करने के साधन के तौर पर अन्तर्भोज के उदाहरण से मेरी राय में सद्भाव की वृद्धि की गति कुण्ठित होगी; क्योंकि उसके द्वारा एक तो मिथ्या प्रश्न खड़े होंगे और दूसरे मिथ्या आशायें भी उत्पन्न होंगी। मैं जिस बात को दूर करने का उद्योग कर रहा हूं वह है श्रेष्ठता या उच्चता की धारणा। आरोग्य की तथा आध्यात्मिक दृष्टि से इन बंधनों का महत्व है। परन्तु उनके पालन न करने से मनुष्य रसातल को नहीं चला जा सकता, जिस तरह कि उनके पालन करने से वह सातवें आसमान पर नहीं चढ़ सकता। यह भी हो सकता है कि खान-पान के बंधनों का पालन बड़े नियम-पूर्वक करने वाला मनुष्य अधम, पापी और समाज मे न रहने के योग्य हो और एक सहभोजी तथा सर्वभक्षी मनुष्य सदा पाप-भीरु हो और उसको संगति करना एक सौभाग्य की बात हो।

रामनाम

काठियावाड में एक स्थानपर भाषण में गांधीजी ने राम-नाम के संबंध में नीचे लिखे उद्गार और स्वानुभव प्रकट किये—

"अमरुभाई की पहचान आज मुझसे पहले-पहल हुई। इन्होंने मुझसे कहा—'हम लोग पापी हो गये हैं, हम कन्याओं को बेचते हैं, अन्त्यजों को अस्पृश्य मानते हैं। इस पाप से हम किस तरह बच सकते हैं? केवल राम-नाम से। इसलिए आप जहां जायं वहां सबको राम-नाम का मंत्र दें।' अमरुभाई रामायण के पीछे पागल हैं। इसलिए, मैं समझता हूं, उन्होंने यह बात सुझाई है। मैं भी रामायण के पीछे पागल हूं, पर मैं तो खादी-दीवाना भी हूं। और दो दीवानेपन एक साथ नहीं हो सकते। इसलिए मैं तो अपनेको खादी-दीवाना ही कहता हूं। ये सब जगह राम-नाम चाहते हैं। यदि केवल हिन्दू-धर्मियों की बात होती तो भी मैं उनकी सूचना पर कुछ अमल कर सकता; पर मेरे श्रोताओं में तो ईसाई भी होते हैं, पारसी भी होते हैं, मुसल्मान भी होते हैं। यहां मैं राम-नाम किस तरह जपाऊं? हम पापों का प्रायश्चित्त तो तपश्चर्या के द्वारा कर सकते हैं। पाप का प्रक्षालन गायत्री के जप से हो सकता है। पर उसके लिए मैं अवकाश नहीं देखता। इन तमाम महा जंजालों से छूटने का रामबाण उपाय तुलसीदास ने बताया—रामनाम। अमरुभाई भी कहते है कि रामनाम का जप कराते जाओ। इसके लिए रुचि होनी चाहिए, शुद्धि चाहिए, योग्यता चाहिए। डरते डरते मैंने अन्त्यज-भाइयों और काली परज के लोगों को यह मंत्र बताया। परन्तु उजली परज से मैं इसकी बात कैसे करूं? अन्त्यज और काली परज के लोग तो बेचारे मानते हैं कि हम पतित हैं। सो वे तो मेरा कहा मान सकते हैं। हां, मैं उनसे जरूर कहता हूं कि तुमको शराब पीने की इच्छा हो तो राम-नाम जपना। पर आप लोगों से किस तरह कहूं? परन्तु अमरुभाई के कहने से आपके सामने इसे पेश करता हूं।"

राम-नाम के प्रताप से पत्थर तैरने लगे, रामनाम के बल से वानर-सेना ने रावण के छक्के छुड़ा दिये, राम-नाम के सहारे हनूमान् ने पर्वत उठा लिया और राक्षसों के घर अनेक वर्ष रहने पर भी सीता अपने सतीत्व को बचा सकी। भरत ने चौदह साल तक प्राण धारण कर रक्खा; क्योंकि उनके कंठ से राम-नाम

के सिवा दूसरा कोई शब्द न निकलता था। इसलिए तुलसीदास ने कहा कि कलिकाल का मल धो डालने के लिए राम-नाम जपो।

इस तरह प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रकार के मनुष्य राम नाम लेकर पवित्र होते हैं। परन्तु पावन होने के लिए राम-नाम हृदय से लेना चाहिए, जीभ और हृदय को एक-रस कर के राम-नाम लेना चाहिए। मैं अपना अनुभव सुनाता हूं। मैं संसार में यदि व्यभिचारी होने से बचा हूं तो राम-नाम के बदौलत। मैंने दावे तो बड़े बड़े किये हैं, परन्तु यदि मेरे पास राम-नाम न होता तो तीन स्त्रियों को मैं बहन कहने के लायक न रहा होता। जब जब मुझपर विकट प्रसंग आये हैं, मैंने राम-नाम लिया है और मैं बच गया हूं। अनेक संकटों से राम-नाम ने मेरी रक्षा की है। अपने इक्कीस दिन के उपवास में राम-नाम ने ही मुझे शान्ति प्रदान की है और मुझे जिलाया है। इसतरह राम-नाम के गीत गाने के लिए यदि कोई मुझसे कहे तो मैं सारी रात गाया करूं। सो यदि आप अपनेको दुःखी और पतित मानते हों—और हम सब पतित हैं—तो सुबह, शाम और सोते समय राम-नाम का रटन करो और पवित्र होओ।"

मैले कपड़े

इस बार गुजरात की यात्रा में मैंने राष्ट्रीय-पाठशालाओं में बहुतेरे विद्यार्थियों को देखा। उनमें कितने ही अनघड़ और मैले थे। किसी किसी की टोपी तो पसीने से इतनी मैली हो गई थी और इतनी बू करती थी कि उसे छूना भी कठिन था। कितने ही लड़कों की पोशाक भी विचित्र थी। किसीने अपने बदन पर इतने सारे कपड़ों का बोझ लाद लिया था जो इस मौसिम में सहन नहीं हो सकता। कोई लड़का पतलून पहन कर आया तो उसके बटन नहीं लगाये थे। किसी किसी के कपड़े फटे हुए थे। मैं समझता हूं कि जिसतरह छूत की बीमारीवाले बालकों को मदरसे आने की मुमानियत होनी चाहिए उसीतरह जिन बालकों के शरीर या कपड़े मैले हों, फटे हुए हों, उन्हें भी मदरसे आने की बन्दी होनी चाहिए। इसपर यदि कोई यह कहे कि ऐसा करने पर बालक सुघड़ता और सफाई कहां और कब सीख पावेगा तो इसका इलाज सहल है। जो लड़का ऐसी हालत में आवे उसे पहले तो पाठशाला की नहाने की जगह भेजकर नहलाना चाहिए, उसके कपड़े उसीके हाथ में धुलवाना चाहिए और जबतक कपड़े न सूखें उसे मदरसे से कपड़े देने चाहिए। अपने कपड़े सूखने पर वह उन्हें पहन ले और मदरसे के कपड़े धो, सुखा, तहाकर लौटा दे। यदि ऐसा करने में खर्च ज्यादह होने की संभावना हो तो बालक को चिट्ठी दे कर उसके घर भेजना चाहिए और जब साफ-सुथरा हो कर आवे तो फिर आने दिया जाय। बाहरी सफाई और सुघड़ता यह पहला पाठ होना चाहिए। सब लड़कों को पाठशाला के लिए एक ही किस्म की पोशाक पहनाना मुश्किल हो तो भी जिसतरह और जो जी चाहे कपड़े पहन कर आना तो बरदाश्त नहीं हो सकता।

साफ-सुथरे कपड़े की तरह कवायद भी होनी चाहिए। बालकों को चलना, बैठना, उठना और हजारों का दल बनाकर जाना आना आना चाहिए। कोई लड़का कमर झुका कर बैठता है तो कोई पैर तान कर, कोई अंगड़ाई ही लेता रहता है तो कोई बैठे बैठे रोया करता है। और एक साथ चलने की तो बात ही दूर है। इन बातों की शिक्षा भी बालकों को आरंभ से ही मिलनी चाहिए। इससे बालक भी सुशोभित होंगे, अपनी पाठशाला को भी सुशोभित करेंगे और उनके अन्दर एक तरह का उत्साह पैदा होगा। फिर कवायद जाननेवाले बालकों को हजारों की संख्या में जहां चाहें तहां बिना गोलमाल के घुमा-फिरा सकते हैं। मुझे इस समय एक-दो पाठशालायें ऐसी याद आती हैं कि जहां सीटी बजाने के बाद तीन मिनिट में सौ सौ लड़के बिना शोरगुल किये हाजर हो गये थे और अपना काम पूरा होने पर उतने ही मिनिट में फिर अपने अपने दरजों में चले गये—मानों दरजों से बाहर निकले ही न हों?

पोशाक में तो मेरी समझ में एक आधा जांघिया (निकर) अथवा धोती और कुरता तथा टोपी खादी के बस हैं। और जब वे धुले हुए होते हैं तब हजारों बालकों का उस पहनाव में दृश्य बड़ा सुन्दर मालूम होता है। कितने ही लड़के इतने कपड़ों के अलावा वास्कट तथा आधा या पूरा कोट पहन कर आते हैं। ऐसे लड़के और लड़कों में साफ अलग दिखाई पड़ते हैं। उन्हें इस दयनीय दशा से मुक्त करना चाहिए।

मैं जानता हूं कि स्वच्छता, सुघड़ता और कवायद आदि में ही बालकों की सारी शिक्षा का समावेश नहीं होता। उन्हें चारित्र्य-बल मिलना चाहिए, अक्षर-ज्ञान मिलना चाहिए। परन्तु बच्चों की शिक्षा के एक भी अंग के संबंध में हम लापरवाही नहीं कर सकते। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों अंग हमें संभालने चाहिए। इनमें से जो अंग अधूरा रहेगा वही बालक को भविष्य में दुःखद होगा और जब उसे इन त्रुटियों का ज्ञान होगा तब वह उसे बहुत खलेगा। यही नहीं, बल्कि समाज पर भी उसका असर बहुत बुरा होगा। आज भी तो हम अपनी शिक्षा की न्यूनता का फल भोग रहे हैं। हमारे अन्दर गंदगी इतनी ज्यादह है कि उसके कारण हम छूत की बीमारियों को निर्मूल नहीं कर सकते। शहरों में स्वच्छतापूर्वक जीवन व्यतीत करना प्रायः असंभव हो गया है। हम सुघड़ता के मूल तत्वों को भी नहीं जानते और जो जानते हैं वे उनका पालन नहीं करते।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी) । कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल्वे से।

व्यवस्थापक—हिन्दी-नवजीवन

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०-३-० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०-४-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन् रवाना कर दी जायगी। वी. पी. का नियम नहीं है।

व्यवस्थापक
हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी ७, संवत् [illegible]

गुण बनाम संख्या

इन दिनों देश में महासभा के सदस्यों की संख्या पर निरुत्साह की ध्वनि सुनाई पड़ती है। शिकायत यह की जाती है कि महासभा के सदस्यों की इतनी कम संख्या पहले कभी न हुई थी। यदि मताधिकार वही रहता तब तो यह शिकायत करना वाजिब था कि लोगों ने कम ध्यान दिया है। और यदि महासभा के प्रभाव की नाप सदस्यों की संख्या के द्वारा करनी हो तब भी यह शिकायत उचित थी। हां, इस बात में भिन्न मत हो सकते हैं कि महासभा के प्रभाव का अनुमान किस बात से किया जाय। मेरे नजदीक उसकी नाप एक ही है। मैं तो गुण ही को सबसे अधिक महत्त्व देता हूं—मैं संख्या का प्रायः कुछ ख्याल नहीं करता—खास कर हमारे देश के संबंध में तो और भी ज्यादह। आज हमारे अन्दर सन्देह, भिन्न-भाव, हित-विरोध, अन्धविश्वास, भय, अविश्वास, आदि दोष विद्यमान हैं। ऐसी अवस्था में संख्या-बल में न केवल सुरक्षितता का अभाव है बल्कि खतरे का अन्देशा भी हो सकता है। कौन नहीं जानता कि इन पिछले चार सालों से यह संख्या-बल हमें किस तरह बहुधा परेशान कर रहा है? हां, उस अवस्था में संख्या-बल एक दुर्दमनीय शक्ति हो सकती है जब कि सब लोग एक आदमी की तरह पूरी पाबन्दी के साथ काम करें। पर जब कि कोई आदमी किधर खींचता हो और कोई किधर या कोई यह भी नहीं जानता हो कि किधर खींचना चाहिए, तो उस हालत में संख्या-बल को एक विनाशक शक्ति ही समझिए।

मैं इस बात का पूरा कायल हो चुका हूं कि जबतक हमारे अन्दर एकदिली, यथोचित काम करने की क्षमता, सोच-समझ कर किया सहयोग और जो कुछ चाहा जाय उसके लिए 'हां' कहने की तैयारी, ये गुण उदय न होंगे तबतक संख्या की कमी में ही हमारी भलाई है। सौ कुपूतों से एक सुपूत अच्छा होता है। सौ कौरवों के लिए पांच पाण्डव काफी हुए थे। कितनी ही बार चुने हुए कुछ सौ आदमियों की नियमबद्ध सेना ने असंख्य बेतरतीब लोगों के जमघट के धुर्रे उड़ा दिये हैं। सदस्य चाहे थोड़े हों पर वे महासभा की शर्तों का पूरा पालन करनेवाले हों तो अपने काम का अच्छा हिसाब दे सकते हैं। पक्षान्तर में नाम-मात्र के होनेवाले १० लाख भी सदस्य किसी मसरफ के नहीं हो सकते।

इससे कोई यह ख्याल न करें कि मैं यह जताना चाहता हूं कि अब जो सदस्य हमारे रजिस्टर में दर्ज हैं वे पक्के हैं या कम से कम पहलेवालों से पक्के हैं। इसकी तसदीक तो हम साल के अन्त में ही कर सकते हैं।

पर मैं जो बात आपको जंचाना चाहता हूं वह यह कि हम अपनी आवश्यकता को समझ लें। हम सचमुच चरखे के स्थायी महत्त्व को मानते हैं या नहीं? यदि हां, तो फिर हमारा काम है कि हम उसके पीछे पड़ जायं—परवा नहीं, हमारी तादाद कम हो या ज्यादह। स्वराज्य के लिए हम अस्पृश्यता-निवारण की आवश्यकता के कायल हैं या नहीं? यदि हां, तो फिर हम एक इंच नहीं झुक सकते—भले ही हम पर पहाड़ उमड़ पड़े। हमारा इस बात पर विश्वास है या नहीं कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता स्वराज्य-प्राप्ति के लिए परम आवश्यक है? यदि हां, तो फिर हमें उसे प्राप्त करने के लिए बहुत-कुछ गवांना होगा। हम बराय नाम की एकता से सन्तुष्ट न होंगे—हमें या तो सच्ची एकता स्थापित करनी होगी या यों ही रहेंगे।

पर कुछ मित्र कहते हैं—'इसमें राजनैतिक बात तो कोई नहीं। इसमें सरकार से दो दो हाथ करने की तो कोई बात नहीं।' इसपर मेरा कहना है कि जबतक हम इन बातों को हासिल न कर लें तबतक हम सरकार से काबिल और कारगर तौर पर मुठभेड़ नहीं कर सकते। इसपर कुछ लोग कहते हैं—'पर स्वराज्य प्राप्त करने तक तो हम इनमें से किसी भी बात को न पा सकेंगे।' तो मेरा उत्तर है—सरकार के खुले या छिपे विरोध या औदासीन्य के होते हुए भी इन बातों के प्राप्त करने की क्षमता और योग्यता पैदा किये बिना हमारा काम नहीं चल सकता। मेरे नजदीक तो इन बातों की प्राप्ति मानों पूरा नहीं तो आधा स्वराज्य प्राप्त कर लेना है।

तब, वे पूछते हैं, स्वराजियों के कार्यक्रम का क्या होगा? हमारी भीतरी शक्ति बढ़ाने के इस कार्यक्रम के साथ साथ वह भी जरूर चलता रहे। स्वराजी महासभा के एक अभिन्न अंग हैं। वे सुयोग्य हैं, वे सदा जागरूक हैं, वे समय की आवश्यकता के अनुसार अपनी नीति-रीति बदलते रहेंगे। जिन लोगों की रुचि उसकी तरफ हो वे उस कार्यक्रम के अनुसार भी काम करें। पर वे भीतरी काम को न भूल जायं। यदि १२ हजार, नहीं तो ६ ही हजार स्त्री-पुरुष रचनात्मक कार्यक्रम में जोरशोर से काम करने लगें, हालत तुरन्त बदल जायगी। अपनी तमाम यात्राओं में मैंने बड़े दुःख के साथ देखा कि अच्छे साहसी, ईमानदार, स्वार्थत्यागी, स्वावलम्बी तथा स्वयं अपनी आत्मा और अपने काम पर विश्वास रखनेवाले कार्यकर्ता की बड़ी कमी है। फसल तो निश्चय ही तैयार है, पर काटनेवाले मजदूर हो बहुत थोड़े हैं।

मदरास की बात है। श्रीयुत श्रीनिवास आयंगार तथा मैं एक सभा में गये थे। लोग उत्साह से उमड़ रहे थे। दूसरी सभा में जाने के लिए रवाना हुए। परन्तु मेरे ये 'कदरदां' लोग मुझे एक गली में ले जाने का आग्रह कर रहे थे, जिसे कि कार्यक्रम में स्थान न था। मैंने कहा समय नहीं है। श्री आयंगार ने मेरी तन्दुरुस्ती की दलील पेश की। पर यह सब निष्फल हुआ। हम —क्या जबरदस्ती से कह—रोके जा रहे थे। हम दोनों ने उस समय इस बात को अनुभव किया कि ये लोग हमारे कार्य के साधक नहीं स्पष्टतः बाधक हैं। और यदि मैं कानून अपने हाथ में न लेता, आगे बढ़ने से इन्कार न कर देता और सचमुच मोटर से उतर न जाता और लोगों से यह न कहता कि मेरे शरीर को चाहो तो उठाकर ले जाओ, तो बात न बनती। संख्याबल के खतरे का यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। लोगों का उद्देश अच्छा था; पर उन्हें ज्ञान और विचार न था। संसार में ऐसी कितनी ही मातायें हैं जिन्होंने सदुद्देश और सद्भाव से अपने बच्चों को अंटसंट दवाइयां पिला पिला कर भगवान के घर पहुंचा दिया है।

हमें आज की हालत में उत्तेजना—जोश की जरूरत नहीं, बल्कि शान्ति के साथ चुपचाप रचनात्मक काम करने की है। हां, यह सच है कि वह श्रम-साध्य है, बहुत भारी है। पर वह हमारी शक्ति के बाहर नहीं। इसके लिए ज्यादह समय की जरूरत नहीं, यदि हमारी उन्नति में बाधक कोई बात है तो वह है हमारी

अनिश्चितता । काम करने का हमारा इरादा नहीं होता, फिर भी हम कोरी जबानी हां कर देते हैं । यही सबसे ज्यादह सता रही है। इसीलिए मैं तो गुण और अकेले गुण की बात करता हूं । ऐसी अवस्था में जबतक महासमिति की बैठक के लिए मांग न पेश हो, मैं उसका आयोजन न करूंगा । मौजूदा कार्यक्रम इसीलिए तैयार किया गया है कि वे गुण हममें आवें, और जबतक वह मौजूद है मैं तो हरएक महासभा के कार्यकर्ता को यही सलाह दूंगा वे अपनी सारी शक्ति उसीकी सफलता में लगावें जिससे कि यदि संभव हो तो साल के अखीर में हमारे पास आवश्यक गुणों से युक्त स्त्री-पुरुषों का एक पक्का दल बन जाय, फिर उसकी संख्या कम हो तो चिन्ता नहीं ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

'क्रान्तिकारी बनने के उम्मीदवार' से—

माफ कीजिए, मैं आपका पत्र न छाप सका । यदि वह छापने योग्य होता तो मैं उसे जरूर छापता । यह बात नहीं कि आपका पत्र कुरुचि-पूर्ण था या हिंसा-भाव से युक्त था । बल्कि इसके विपरीत आपने अपने पक्ष को शान्ति के साथ ठीक ठीक उपस्थित करने का प्रयत्न किया है; परन्तु दलीलें आपने उस तरह पेश की हैं जो लचर मालूम होती हैं और कायल नहीं कर पातीं । आपके कहने का आशय यह है कि क्रान्तिकारी जब किसीका खून करता है तो वह हिंसा नहीं करता, क्योंकि वह तो अपने प्रतिपक्षी के अर्थात उसकी आत्मा के हित के लिए ही ऐसा करता है—जैसे कि एक सर्जन रोगी के हित के लिए उसके शरीर में नश्तर लगा कर चीर-फाड़ करता है । आपका कहना है कि प्रतिपक्षी का शरीर खराब होता है जो कि उसकी आत्मा को बिगाड़ता है और इसलिए वह जितनी ही जल्दी नष्ट हो जाय अच्छा है ।

पर आपकी यह सर्जनवाली उपमा फबती नहीं । क्योंकि सर्जन तो सिर्फ शरीर से काम रखता है । वह शरीर के लाभ के लिए शरीर पर नश्तर लगाता है । उसके विज्ञान में आत्मा के लिए जगह नहीं है । कौन कह सकता है कि सर्जनों ने आत्मा को हानि पहुंचा कर कितने शरीर की रक्षा की है ? परन्तु क्रान्तिकारी तो शरीर का नाश इसलिए करता है कि वह उसके द्वारा प्रतिपक्षी की आत्मा का हित मानता है । सो एक तो मैं अबतक किसी ऐसे क्रान्तिकारी को नहीं जानता जिसने कभी अपने प्रतिपक्षी की आत्मा का विचार किया हो । उनका एक-मात्र उद्देश यह रहता है कि हमारे देश का लाभ हो—फिर प्रतिपक्षी का शरीर और आत्मा दोनों नष्ट हो जाय तो परवा नहीं । दूसरे, आप कर्म-सिद्धान्त के कायल हैं । सो जबरदस्ती प्राणघात का फल होगा उसी किस्म के दूसरे शरीर का निर्माण । क्योंकि जो शख्स जिस तरह मरता है वह अपनी लालसा के अनुसार ही शरीर ग्रहण करता है । मेरी समझ में किसी बुराई या अपराध के मौजूद रहने का यही कारण है । जितना ही अधिक हम दण्ड देते हैं उतना ही अधिक वे बढ़ते हैं। उनका रूप-रंग भले ही बदल जाय, पर भीतरी वस्तु वही होगी । प्रतिपक्षी की आत्मा की सेवा करने का उपाय है उसकी आत्मा को जाग्रत करना । उसका नाश तो नहीं परन्तु उसको जाग्रत करने के योग्य उपायों का उसपर असर होता है । आत्मा आत्मा पर असर किये बिना नहीं रहती । और अहिंसा आत्मा का ही एक गुण है । इसलिए आत्मा को जाग्रत करने का फलदायी साधन है अकेली अहिंसा ही । और क्या अपने प्रतिपक्षी को 'सजा' देने की बात करना मानों स्वयं अपनेको अस्खलनशील—कभी भूल न करनेवाला—मानने की अहन्ता को अपनाना नहीं है? हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि वे भी हमें समाज के लिए उतना ही हानिकर समझते हैं जितना कि हम उन्हें समझते हैं । श्रीकृष्ण के नाम को बीच में घसीटना फजूल है। या तो हम उन्हें साक्षात ईश्वर मानें या न मानें । यदि हां, तो फिर वह हमारे लिए सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान—'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' हैं । ऐसा व्यक्ति अवश्य संहार कर सकता है । पर हम तो ठहरे न-कुछ मर्त्य लोग हमेशा भूलें करते रहते हैं और अपने विचार और राय बदलते रहते हैं ; हम यदि कृष्ण की—गीता के प्रेरक की नकल करने लगे तो दुःख हमारे हिस्से आये बिना न रहेगा । आपको यह भी याद रखना चाहिए कि मध्ययुग के ईसाई कहलानेवाले लोग भी ठीक वैसे ही विचार रखते थे जैसे कि आपकी समझ में क्रान्तिकारी लोग रखते हैं। उन्होंने हिरेटिक्स लोगों को उनकी आत्मा के हित के ख्याल से भस्म कर डाला । आज हम उन अज्ञान ईसाइयों की मूर्खता और ज्यादतियों पर हँसते हैं। अब हम जानते हैं कि वे अपराधी लोग सही थे और उनके धार्मिक न्यायदाता गलती पर थे ।

खुशी की बात है कि आप चरखा कात रहे हैं । उसकी मौन गति में आपके चित्त को शान्ति मिलेगी और स्वाधीनता, जिसे कि आप इतना चाहते हैं, आपके अन्दाज से भी ज्यादह नजदीक आ जायगी । उन ओछे मित्रों का कुछ ख्याल न कीजिए जो आपके लिए खराब पूनियां छोड़ कर चले गये हैं । यदि आपकी जगह मैं होता तो मैं उन पूनियों को फिर तैयार करता आप धुनाई न जानते होंगे । यदि न जानते हों, तो आप किसी नजदीकी पिंजारे या अन्य धुनकने के ज्ञाता से उसे सीख लें । यह बड़ी बढ़िया कला है । जो धुनकना नहीं जानता वह कच्चा सूतकार होता है । आप इस बात से न घबराइए कि अहिंसा की रीति बहुत धीमी, और देर से सफल होनेवाली क्रिया है। यह तो इतनी तेज दौड़ती है कि दुनिया ने आज तक न देखी होगी; क्योंकि वह अचूक है, निश्चयपूर्वक फलदायिनी है । आप देखेंगे कि यह उन क्रान्तिकारियों पर अपना रंग जमा देगी, जिन्हें कि आप समझते हैं कि मैं ठीक समझ नहीं पाया हूं । किसीकी गलती बताना उसे 'ठीक खयाल नहीं करना' नहीं है । मैं इतनी जगह क्रान्तिकारियों के लिए इसी हेतु से दे रहा हूं कि मैं उनकी अथक कार्य-शक्ति को सीधे और सही रास्ते में लगाना चाहता हूं ।

(यं. इं.) मोहनदास करमचन्द गांधी

बिहारियों से—

मेरी आगामी बंगाल-यात्रा ने बिहार में बड़ी बड़ी आशायें उत्पन्न कर दी हैं । अभी से लोग मुझे सूचनायें दे रहे हैं कि जब बिहार आइए तो हमारे यहां जरूर आइए । उन्हें अलहदा अलहदा जवाब देने के बनिस्बत मैं इसीके द्वारा उन्हें यह खबर कर देना चाहता हूं कि अभी मेरी बिहार-यात्रा की कोई तिथि निश्चित नहीं हुई है । यदि बंगाल-यात्रा के बाद मेरी तन्दुरुस्ती ठीक रही (मैं यह इसलिए कहता हूं कि इस फसली बुखार के बाद मैं अभीतक पहले की तरह सशक्त नहीं हो पाया हूं) तो मैं बिहारी मित्रों की इच्छा-पूर्ति की चेष्टा करूंगा । परन्तु जबतक बंगाल-यात्रा बहुत-कुछ तय नहीं हो जाती तबतक कोई तारीख मुकर्रर नहीं की जा सकती । और हर हालत में यह अच्छा होगा कि जो मित्र बिहार में मुझे अपने अपने स्थानों में ले जाना चाहते हैं वे राजेन्द्र बाबू से लिखा-पढ़ी करें । मेरे कार्यक्रम का भार उन्हींके जिम्मे रहेगा । और मौन-दिन आदि संबंधी मेरी शर्तें वही होंगी जो कि बंगाल-यात्रा के लिए हैं ।

युक्त-प्रान्त में खादी

भाई शंकरलाल बैंकर लिखते हैं—

हिन्दुस्तान के अन्य प्रान्तों की तरह इस प्रान्त में भी खादी-काम के लिए अच्छी अनुकूलता है और वहां आज भी कितनी ही जगह कुछ कुछ अच्छा काम हो रहा है। फिर भी प्रान्त के विस्तार पर ध्यान देते हुए काम कम ही मालूम होता है। कुछ अंश में संगठन और कुछ अंश में धन के अभाव से इस प्रान्त में सन्तोषजनक काम न हो सका। वहां के काम के विकास के लिए कुछ समय पहले वहां के खादी-मण्डल की ओर से वहां के काम देखने का निमन्त्रण मिला था। उसके अनुसार हम अभी वहां काम देखने के लिए गये थे। वहां के काम की मौजूदा हालत तथा भविष्य के लिए योजना के संबंध में नीचे लिखी बातें जानने लायक हैं।

इस प्रान्त में खादी-काम के लिए प्रान्तिक समिति की तरफ से हर साल खादी-मण्डल नियुक्त होता है। इस मण्डल के अध्यक्ष डा. मुरारीलाल तथा मंत्री श्री रामस्वरूप गुप्त हैं। पण्डित जवाहरलाल, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा सैयद महमद आदि सभासद हैं, इस मण्डल का दफ्तर कानपुर में है। इसके अधीन अभी दो खादी-भण्डार चल रहे हैं। एक प्रयाग में और दूसरा कानपुर में। प्रयाग के भण्डार में वहां की समिति ने ५,०००) से ऊपर रकम लगाई है। इसके अलावा अ० भा० खा० भण्डार ने ५०००) कर्ज दिये हैं। कानपुर के खादी-भण्डार की पूंजी २५००) की है और उसके लिए भी अ० भा० खा० मण्डल ने २५००) कर्ज दिये हैं। इन भण्डारों में अभी मासिक बिक्री इस प्रकार होती है—

कानपुर २,४००)
प्रयाग १,३००)

इन भण्डारों के लिए जहांतक हो सके अपने ही प्रान्त की बनी खादी खरीदने का स्वागत-योग्य नियम रक्खा गया है। इससे इस प्रान्त में उत्पन्न होनेवाली खादी को प्रोत्साहन मिलता रहता है। इन भण्डारों की मौजूदा हालत से उनके मण्डल तथा नेताओं को सन्तोष नहीं है। इन दोनों शहरों के अलावा प्रान्त के तमाम शहरों में वे भण्डार खोलना चाहते हैं। परन्तु धन के अभाव से वे आगे काम नहीं बढ़ा सकते। इसके लिए सेठ जमनालालजी ने तथा पण्डित जवाहरलालजी ने कानपुर में कुछ सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की थी। उसके फलस्वरूप संभव है भविष्य में कोई योजना हो जाय। अभी तो उनके तथा पं. जवाहरलालजी के प्रयास से कानपुर के एक प्रसिद्ध अग्रवाल व्यापारी सेठ रामस्वरूप नेवटिया ने दूसरे दो तीन व्यापारियों के साथ मिल कर १००००) की पूंजी से एक खादी-भण्डार खोलने की तजवीज की है। और इसके लिए उन्होंने अ० भा० खादी-मण्डल से भी सहायता चाही है। यदि यह योजना सफल हो तो थोड़े समय में कानपुर में खादी के लिए एक अच्छा भण्डार स्थापित हो जायगा। इस योजना के संबंध में बातचीत करते हुए, ऐसी विस्तृत योजना बनाने की बात भी सुझाई गई थी कि जिससे प्रान्त के दूसरे शहरों में भी भण्डार खोले जा सकें। पर यह तय हुआ कि इस योजना का फल देखने के बाद उसपर विचार करेंगे।

खादी की पैदायश के संबंध में वहां के खादी-मण्डल की ओर से सीधे कोई खास काम नहीं होता। बहुतांश में यह काम खानगी संस्थाओं तथा व्यापारियों की मार्फत होता है। परन्तु खादी-मण्डल के मन्त्री इन संस्थाओं इत्यादि के साथ खत-किताबत ... कभी कभी वहां जा कर उनके काम से वाकिफ रहते हैं तथा उनकी जरूरतें आदि को जान कर, कपास, रुपया आदि के संबंध में अच्छी सलाह तथा भरसक सहायता दिलाने का प्रयत्न करते हैं। इसके अलावा वे इस उद्योग से संबंध रखनेवाली तमाम बातों का अध्ययन करते हैं और कानपुर में 'रुद्र' नामक हिंदी-पत्र में लेख आदि के द्वारा ठीक सहायता कर रहे हैं।

बड़े पैमाने पर केवल खादी की ही उत्पत्ति तथा बिकरी आदि का काम करनेवालों में बनारस आश्रम का स्थान सब से पहला है। इस संस्था के मार्फत कोई १० विद्यार्थी काम करते हैं। उनमें कितने ही पहले हिन्दू विश्व विद्यालय में पढ़ते थे। परन्तु असहयोग कर के काशी विद्यापीठ में भरती हुए और वहां आचार्य कृपलानी के समागम में आकर उनकी प्रेरणा से उन्होंने खादी काम शुरू किया। इनको इस काम के लिए महासभा की कार्य-समिति की ओर से १५०००) मिले हैं। इसके अलावा इस संस्था के कार्यकर्ताओं के खर्च के लिए अलहदा इन्तजाम है। इस संस्था की तरफ से फिलहाल तीन जगह काम हो रहा है। एक अकबरपुर (फैजाबाद) दूसरा रानीगंज (बलिया) और तीसरा सैदपुर (बलिया)

अकबरपुर—इस जगह कातनेवालियों को रुई देकर बदले में या रुपया देकर सूत खरीद लिया जाता है और फिर वह जुलाहों से बुनवाया जाता है। सूत का अंक साधारणतः ८ से १२ तक होता है। सूत वहीं के जुलाहों से बुनाया जाता है। इस तरह अभी वे हर माह कोई १५००) की खादी तैयार कराते हैं। धीरे धीरे बढ़ाकर साल के अन्त में २५००) तक ले जाना चाहते हैं। खादी की बुनाई में भी पिछले दो सालों में अभिनन्दनीय परिवर्तन हुआ है। वहां ऊंचे अंक का कपड़ा ठीक अरज में बुना जाता है। और बुनाई में भी सुधार होता हुआ दिखाई देता है। यदि वहांकी पैदायश २५००) तक पहुंच जायगी तो इस स्थान का खर्च इस खादी में से ही निकलने लगेगा। सेठ जमनालालजी आचार्य कृपलानी के साथ यहां गये थे और उन्हें यहां के काम से सन्तोष हुआ था।

रानीगंज और सैदपुर : रानीगंज में काम शुरू हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ है। वहां अभी वे सूत ही तैयार कराते हैं। प्रति मास ६००) से ८००) का सूत आता होगा। यह सूत सैदपुर भेज कर बुनाया जाता है। रानीगंज में भी जुलाहे तो हैं, पर अभी उनके द्वारा बुनवाने की तजवीज न हो पाई है।

अपनी पैदा की खादी को बेचने के लिए इस संस्था की ओर से बनारस में एक भण्डार खुला हुआ है। उसमें मासिक बिकरी कोई ७००) की होती है। रेशम का आश्रम के मुख्य केन्द्र बनारस में दूसरे भण्डार तथा व्यापारी आदि ले जाते हैं। इस संस्था की तरफ से तैयार हुई खादी के बिकने में कोई दिक्कत नहीं होगी।

इस संस्था के कार्यकर्ताओं की संख्या देखते हुए उनका काम कम मालूम होता है। पूंजी भी उनके पास काफी है। खादी काम के लिए महासभा की कार्य-समिति की तरफ से मिले १५०००) के अलावा गुजरात प्रान्तिक समिति की ओर से भी ५५००) ऋण मिला है। फिर उनके लिए कपास जमा करने की व्यवस्था भी अ० भा० खा० मण्डल ने की है। सो आर्थिक कष्ट उन्हें किसी प्रकार का नहीं है। खोज करने पर उनके काम की कमी का कारण यह मालूम होता है कि जो जगहें उन्होंने काम करने के लिए पसंद की हैं वहां बड़े पैमाने पर काम करने की काफी अनुकूलता नहीं है। अकबरपुर में यदि वे अपनी धारणा के अनुसार काम कर सकें तो हर साल १५,०००) का माल तैयार हो सकता है। रानीगंज में काम शुरू करने के पहले उन्होंने बनारस के

नजदीक बराहा आदि गांवों में काम किया था। परन्तु वहां काफी सूत न मिलने से उन गांवों को छोड देना पडा। रानीगंज में कोई दो महीने से शुरू हुआ है। वहां सूत ठीक परिमाण से मिलता हुआ दिखाई देता है। फिर भी सूत १०००–१५००) से अधिक का नहीं आ सकता। अर्थात् साल भर में ८०००) की खादी–उत्पत्ति मानी जा सकती है। इस संस्था की पूंजी तथा कार्य–कर्त्ताओं की शक्ति का विचार करते हुए इससे प्रायः दूना काम होना चाहिए। और उनके लिए ऐसी अनुकूल जगह खोज निकालने की जरूरत है जिससे उनकी शक्ति का पूरा उपयोग हो सके। इस सिलसिले में इस संस्था के विद्यार्थियों के साथ पं० जवाहरलालजी तथा आचार्य कृपलानीजी ने बातचीत की थी। उसके फलस्वरूप विस्तृत रूप में काम करने योग्य अनुकूल स्थान खोज कर वहां काम शुरू करने का निर्णय हुआ था। श्री कृपलानीजी के गुजरात विद्यापीठ में आ जाने के बाद विद्यार्थियों को सलाह और सहायता देनेवाला कोई न रह गया था। इससे भी कठिनाइयां उपस्थित होती थीं। परन्तु अब पं० जवाहरलालजी ने उन्हें पूरी पूरी सहायता देने का वचन दिया है और विद्यार्थियों ने भी उनकी सहायता से पूरा लाभ उठा कर उनकी रहनुमाई में ही काम करने का निश्चय किया है। अतएव यह आशा की जा सकती है कि इस साल काम सन्तोषजनक दिखाई देगा।

गांधी–आश्रम के इन स्थानों के अलावा और भी एक–दो जगह खादी का काम ठीक ठीक होता हुआ मालूम होता है। कासगंज स्टोर के मालिक तथा महोबा में श्री शंकरलाल जैन खादी का काम ठीक मात्रा में कर रहे हैं। ये दोनों महाशय पहले खादी का ही काम करते थे। पर अब वे कुछ समय से खादी के साथ दूसरे कपडों का भी काम करते हैं। दोनों से अनुरोध किया गया है कि वे दूसरे कपडे को छोडकर सिर्फ खादी का ही काम करें। वे इसपर विचार कर रहे हैं। यदि वे इसके अनुकूल निर्णय कर सके तो उनके द्वारा ठीक मात्रा में खादी तैयार कराई जा सकती है। इन दो जगहों के अतिरिक्त चौरगांव में भी वहां की महासभा–समिति के मंत्री के प्रयत्न से खादी बनती है। वहां का काम देखने पर यदि ठीक ढंग से चलता मालूम हुआ तो उन्हें उचित सहायता देने की तजवीज हो सकेगी।

युक्त–प्रान्त के खादी–मण्डल की इच्छा है कि वहां खादी–उत्पत्ति विशेष मात्रा में करने की व्यवस्था होनी चाहिए। और इस विषय में भी इस बार कुछ पूछताछ की गई थी। युक्त–प्रान्त के बहुतेरे जिलों में खादी–काम के लिए थोडी–बहुत अनुकूलता हुई है। परन्तु इनमें से एक–दो ऐसे स्थान लें जहां विशेष अनुकूलता हो और जहां बडे पैमाने पर खादी–काम हो सके और वहां अ० भा० खादी–मण्डल की तरफ से काम शुरू हो तो अच्छा। इस सम्बन्ध में भी चर्चा हुई थी। बुंदेलखण्ड का नाम सुझाया गया था और इसलिए बांदा जा कर वहां कुछ पूछताछ की गई थी। उससे इतना तो मालूम हुआ कि इस भाग में खादी ठीक मात्रा में उत्पन्न हो सकती है। परन्तु विशेष ब्योरे की आवश्यकता मालूम होने से वहांके एक सज्जन श्री लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री के साथ गांधी–आश्रम के एक अनुभवी विद्यार्थी श्री राजाराम को वहां जा कर खोज करने का भार सौंपा गया है। इसीतरह गोरखपुर में भाटपार रानी तथा उसके आसपास के देहात में भी खादी–काम के लिए कितनी अनुकूलता है इसकी जांच करने का काम वहांके खादी–प्रेमी श्री महावीरप्रसाद पोद्दार ने अपने जिम्मे ले लिया है। यदि वहां काम शुरू किया जाय तो इन्होंने आर्थिक सहायता देने का भी वचन दिया है। इस जांच के फल–स्वरूप यदि अनुकूल क्षेत्र मिल जायगा तो वहां बडे पैमाने पर काम करने की तजवीज हो सकेगी।

युक्त–प्रान्त की इस यात्रा में यह आशा थी कि श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन तथा पण्डित जवाहरलाल नेहरू दोनों का साथ होगा; परन्तु पुरुषोत्तमदासजी को हिन्दू–महासभा के काम के लिए कलकत्ता जाना था—सो वे हमारे साथ न आ सके। फिर भी उन्होंने भविष्य में इसके लिए भरसक सहायता देना स्वीकार किया है। पं० जवाहरलाल तो सारे सफर में हमारे साथ रहे और उन्होंने सब तरह से खूब सहायता दी। खादी–सम्बन्धी उनके प्रभावशाली भाषणों तथा चर्चाओं से ऐसा मालूम हुआ कि वे अन्य राजनैतिक बातोंके–सदृश ही खादी में दिलचस्पी लेते हैं। आगे भी आपने खादी मण्डल को पूरी पूरी सहायता देने का वचन दिया है। इनकी सहायता से आशा है कि संयुक्त–प्रान्त में खादी–काम सन्तोषजनक रीति से आगे बढ सकेगा।

मनोरंजक संवाद

गांधीजी जहां कहीं जाते हैं लोगों से चर्चा करते हैं। उनकी चर्चा के प्रधान विषय सिर्फ दो ही होते हैं–अछूतपन और खादी। एक दो स्थानिक विषय भी रहा करते हैं। यहां मैं भडौच की बात करता हूं। इन विषय पर लोगों के साथ संभाषण करने की तजवीज की गई थी। यहांकी चर्चा खास तौर पर रंगतदार रही। इसलिए नहीं कि लोग आवेश में आ कर सवाल करते थे; पर इसलिए कि वहां उनकी बातें कुछ अजीब और गैरमामूली थीं। एक और कारण भी था। अस्पृश्यता–निवारण–संबंधी कार्यक्रम पर आपत्ति उठानेवाले लोग अक्सर पुराने कट्टर रहा करते हैं। यहां एक नवयुवक थे, दाढीमूंछ सफाचट, योरपियन लिबास, ऐसा मालूम होता था, हाल ही योरप से लौटे हैं। उनकी दलील अनिश्चित होती थी और उनसे कुछ नतीजा न निकलता था। इससे सारी बातचीत बडी रोचक हो गई।

उन्होंने सबसे पहला सवाल पूछा—

'अछूतपन के लिए कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता?'

'आपका मतलब साफ समझ में नहीं आता। जरा साफ कीजिए। क्या आपका यह मतलब है कि मैं इस सवाल को हल करने का कोई दूसरा या बेहतर तरीका ढूढ निकालूं?'

'जी हां, यही।'

'आप कोई खास तरीका सुझाना चाहते हैं?'

'जी हां। मेरी राय में मौजूदा मैला उठाने का तरीका मिटा देना चाहिए।'

'आपका यह अभिप्राय है कि भंगी से यह काम न लिया जाय?'

'जी हां।'

'और हर शख्स अपने अपने हाथों से साफ कर लें। यही न? मैं इससे बिल्कुल सहमत हूं। अच्छा हो हम बेचारे भंगी का पिण्ड इससे छुडा दें और खुद करने लग जायं।'

'जी नहीं, मेरी मन्शा यह नहीं कि ऐसा जबरदस्त रद्दोबदल कर दें। मैं सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि उसकी जगह और अच्छा तरीका जारी करें—जैसा कि विलायत में 'फ्लश–सिस्टम' है। नल से पानी गिरा और मैला बह गया। इसीसे तो वहां अछूतपन नहीं है।'

इसपर कुछ लोग हंसने लगे।

गांधीजी—'पर भाई योरप में तो इस सिस्टम के आने के पहले भी अछूतपन न था।'

'न हीं; पर मुझे तो यही सबसे छोटा रास्ता मालूम होता है। बस हर नगर, कस्बे और गांव में फ्लश-सिस्टम चला दीजिए।'

'पर देहात में न तो पैखाने ही हैं और न भंगी ही है। फिर भी वहां अछूतपन तो मौजूद ही है। ढेड (जुलाहा) जिसका संबंध पैखाना उठाने से उतना ही है जितना कि आपका या मेरा है, वहां भंगी के बराबर ही अछूत माना जाता है। और मैं समझता हूं कि आपको यह मालूम ही होगा कि हालां कि देहात में न पैखाने हैं न भंगी हैं फिर भी अछूतपन का जोर वहीं सबसे ज्यादह है।'

अब उनके पास कोई जवाब न रह गया। और लोगों के कहकहे में वे भी शामिल हो गये। अबतक तो उन्होंने बातें इस तरह से कीं मानों वे अछूतों के पैरोकार हैं। पर आगे के सवालों ने उनकी कलई खोल दी।

'पर क्या आप यह नहीं मानते कि जहां अछूतपन हटा कि अछूत लोग रोटी-बेटी-व्यवहार के बंधनों को तोडने का शोर मचावेंगे?'

'मैं नहीं समझता।'

'पर मैं जरूर ऐसा मानता हूं। देखिए, मैं इंग्लैंड गया था, वहां नई नई आदतें पड गईं, ठाट-बाट से रहने लगा अब घर लौटा तो उन पुरानी आदतों पर नहीं जा सकता जब कि जरूरतें कम थीं और ठाठ-बाट से रहने की लालसा न थी। अब दिनपर दिन ज्यादह ठाठ-बाट से रहने की इच्छा होती है।'

'इसी तरह—?'

'इसी तरह जहां आपने अछूतों को छूतों में शामिल किया नहीं कि उन्होंने आगे पांव फैलाये नहीं।'

'फैलाने दो।' कहते ही लोग खिलखिला कर हँस पडे।

'पर इससे गोलमाल न होगा?'

'बिल्कुल नहीं। वे ज्यादह मांगेंगे, पर आप देंगे नहीं। जिसतरह कि सरकार ने कुछ शासन-सुधार किया।' अब वह और नहीं देती क्योंकि वह ज्यादह नहीं देना चाहती।

'मैं निश्चय के साथ कहता हूं कि वे रोटी-बेटी व्यवहार के लिए जोर देंगे।'

'अच्छा तो' अब गांधीजी अपनी हँसी को न रोक सके—'अबतक आपकी बारी रही—अब उनकी ही सही।'

तब एक मित्र ने उनसे कहा—'अच्छा अब और कुछ पूछना है? यदि नहीं तो खादी-संबंधी अपनी शंकायें ही दूर करा लो'

'खादी के मामले में मुझे जरा भी शक नहीं। इसमें गांधीजी का कहना अकाट्य है।'

आगत लोगों में से एक ने आवाज कसा-'इसीलिए आप खादी नहीं पहनते!'

इस तरह उनकी बारी पूरी हुई और अब दूसरे महाशय आगे बढे।

'इस खादी ने तो देश का तबाह कर डाला है।'

'कैसे?'

'हमारी स्त्रियां सुनहली किनारी और सोने-चांदी के बेल-बूटे वाली साडियां चाहती हैं जो कि ६०-७५) तक पडती हैं।'

'सो यह तो खादी का कुसूर नहीं, आपकी औरतों का, बल्कि नहीं खुद आपका ही कुसूर है। उन्हें ऐसी साडी न खरीदिए—बस झगडा मिटा।'

'नहीं, यह असंभव है। आपने यह चाल चलाई है। वे क्यों लिये बिना मानेंगी? तब उनके कपडे के संदूक उसके बिना सूने न रहेंगे? ये कहने को तो खादी की ही साडियां हैं पर दर असल रेशमी से भी महंगी है।' सब लोग बेतहाशा हंस पडे और गांधीजी भी कहकहा लगाने लगे।

उन्होंने कहा—'क्या यह सच है? क्या श्रीमती ... ... भी वैसी ही फजूल खर्च है जैसी कि आप और स्त्रियों को बताते हैं?'

'ओहो, वह तो मेरी भतीजी है, वह तो अपवाद है।'

'और श्रीमती ... ...?'

'उन्हें भी अपवाद ही समझिए।'

'मैं आपके यहांकी ज्यादह स्त्रियों को नहीं जानता। पर मुझे उनसे खुद बातें कर के जानना होगा कि आपका इल्जाम कहांतक सही है। पर फर्ज कीजिए कि वे बेशकीमती कपडा चाहती हों तो इससे क्या मुजायका? उनका रुपया जाता तो आखिर हमारे ही देश के गरीब लोगों के घर न? यदि सूत बहुत महीन होगा तो सूतकार को ज्यादह पैसा मिलेगा। और तमाम कलाबत्तू का और सलमे-सितारे का काम बंबई जैसे शहरों की गरीब औरतें करती हैं। हर हालत में वह मिल के कपडे से तो उतना कम ही विदेशी है।'

इससे वे छिड कर बोले—

'आप तो शेयर-होल्डरों को क्यों नुकसान पहुंचाते हैं?'

'ना, मैं न तो शेयर-होल्डरों को नुकसान पहुंचाता हूं, न सहायता करता हूं। क्योंकि उन्हें मेरी सहायता दरकार नहीं। मेरा खादी-कार्यक्रम का तो, आप यकीन मानिए, कि मिलों की मौजूदा विषम और विकट स्थिति से कोई ताल्लुक नहीं है। इसने मिलों को तो छुआ तक नहीं है। मेरी या महासभा की आवाज तो सिर्फ कुछ लाख लोगों तक ही पहुंचती है और शेष लोग तो मिल का कपडा पहनने के लिए आजाद हैं और वे पहनते भी हैं। और सच पूछिए तो कुछ मेरे मिल-मालिक मित्रों ने भी मुझे यह यकीन कराया है कि खादी ने मिल के उद्योग को हानि के बदले लाभ पहुंचाया है। मैं चाहता हूं कि आप इस आन्दोलन के आशय को समझ लें। मिलों का फायदा पाने वाले शेअर-होल्डर होते हैं। मिलों का कपडा खरीद कर तो आप धनी लोगों की तिजोरियां भरते हैं। शेअर-होल्डर तो बहुत थोडा अंश पाता है और यहांतक कि जो शख्स उसमें मेहनत-मजदूरी करता है वह भी आपके दिये हर चार आने पर एक पाई से ज्यादह नहीं पाता। पर यदि आप खादी खरीदेंगे तो उसका सारा रुपया गरीब जुलाहों और कातनेवालों को मिलेगा, बीच के दलालों के हाथ शायद ही कुछ रकम लगती हो। इस तरह हमारी दिन दिन बढनेवाली दरिद्रता की समस्या अपने आप हल हो जाती है।

श्री जयकर का चरखा

पाठकों को यह पढ कर खुशी होगी कि बंबई के बैरिस्टर श्री जयकर नियम-पूर्वक सूत कातने लगे हैं। उन्होंने अपने सूत की दूसरी किश्त मुझे भेजी है और अब एक अच्छा चरखा मांगा है। अभी जो चरखा उनके पास है वह बहुत खराब है। फिर भी वे उसपर नियम-पूर्वक कात रहे हैं। श्री जयकर को मैं मुबारकबादी देता हूं। उनका यह निश्चय हमेशा के लिए कायम रहे।
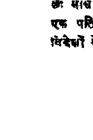
फिर और

वार्षिक
छः मास का
एक प्रति का
विदेशों के लिए

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक १८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, वैशाख सुदी १४, संवत् १९८१ गुरुवार, ७ मई, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

अखिल भारतीय गोरक्षिणी सभा

गत २८ मार्च को बंबई—माधवबाग में इस सभा के संघटन को स्वीकार करने के लिए एक भारी सभा हुई थी। श्री रामानुजाचार्य ने आ कर सभा के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की थी और आशीर्वाद किया था। दूसरे धर्माचार्यों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। मौ० शौकतअली खास तौर पर तशरीफ लाये थे। संघटन को उपस्थित करते हुए गांधीजी ने नीचे लिखा व्याख्यान दिया

सिर पर आ पड़ी

अपनी जिन्दगी में मैंने बहुत से काम अपने सिर लिये हैं; परन्तु मुझे नहीं याद पड़ता कि किसी काम के अंगीकार करते समय मुझे वैसा भय और रोमांच हुआ हो जैसा कि आज के काम के लिए हो रहा है। आम तौर पर मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैं खतरों और जोखिमों को सिर लेते हिचकता नहीं हूं। मैंने अपनी जिन्दगी में ऐसे ऐसे काम भी किये हैं जो भयंकर थे। पर गोरक्षा में मैं लड़कपन से ही दिलचस्पी रखता हूं और ३० साल से उसका अध्ययन करता आया हूं। इसके संबंध में मैंने थोड़ा-बहुत लिखा भी है। फिर भी मैंने यह नहीं माना कि मैं गोरक्षा के काम में कूद पड़ने की शक्ति रखता हूं। और आज भी मैं ऐसा नहीं मानता। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं यह काम करना नहीं जानता। जानता तो हूं; परन्तु यह केवल बुद्धि के प्रयोग से नहीं होता। इसके लिए बहुत संयम और तपश्चर्या की आवश्यकता है। आज जो संयम और तपश्चर्या मेरे पास है उससे अधिक की आवश्यकता इसके लिए है। मैं चाहता हूं कि वह मुझ में हो। पर बात यह है कि मेरा भाग्य ही ऐसा है कि मैंने आजतक जिन जिन कामों को अंगीकार किया है वे सब बिना मेरे खोजे मेरे सिर आ पड़े हैं। जबसे मैं यहां विलायत से आया तभी से मैं इसका अनुभव कर रहा हूं। मैं जानता ही न था कि बेलगांव में गोरक्षिणी-परिषद का सभापति मुझे बनना होगा। वहां के कार्यकर्ताओं के प्रेम के अधीन होकर ही मैंने उसे ग्रहण किया था। उस समय मुझे सपने में भी यह खयाल न आया था कि स्थायी संस्था बनाना भी मेरे ही भाग्य में बदा होगा। परन्तु वहांके कार्यकर्ताओं ने जो तमाम बातों की व्यवस्था कर रक्खी थी। इसलिए इसमें मुझे सहज [illegible] पड़ा और कार्यकारिणी समिति नियुक्त हुई। उसकी [illegible] देहली में करनी पड़ी। वहां बहुत-कुछ चर्चा हुई। चर्चा के [illegible] भी मेरे मन में आया कि यह महाभारत काम कहां अपने [illegible] रहा हूं। पर [illegible] महाराज मुझे कहां छोड़ने वाले थे? वे तो पीछे ही पड़ गये—तब मैंने सोचा कि मुझसे जो-कुछ गो-सेवा हो सकती है उतनी कर देनी चाहिए। सो मैंने यह संघटन बनाया और उसे वहां उपस्थित नेताओं के सम्मुख उपस्थित किया। इन समस्त नेताओं ने—लालाजी, मालवीयजी, स्वामी श्रद्धानंदजी, डा. मुंजे, आदि ने उसे पढ़ा और पसन्द किया। उस समय भी मैं रुका। मैंने विचार किया कि अभी इतने थोड़े लोगों से नहीं, बल्कि देहली में सार्वजनिक सभा कर के यह संघटन सर्व-साधारण से स्वीकार कराना चाहिए। सो वह देहली की सभा आज यहां हो रही है; क्योंकि इस समय मैं देहली न जा सकता था और मुझे अपने कार्य के अनुकूल हो कर चलना पड़ता है। इसलिए हम यहां एकत्र हुए हैं। तमाम अग्रगण्य नेताओं ने इस संघटन को देखा है। यही नहीं, बल्कि माधवबाग में थोड़े सभ्यों की काम-चलाऊ समिति ने भी उसे साधारण फेर-फार के बाद स्वीकार किया है, बहुत विचार-पूर्वक खूब छानबीन के बाद एक-दो सुधार करके स्वीकार किया है।

महाभारत काम

आज मैं जिस काम के लिए आपकी सम्मति और सहायता चाहता हूं वह महाभारत काम है। मैं कई बार कह चुका हूं कि स्वराज्य का काम इससे सहल है। क्योंकि यह धार्मिक कार्य है, और यदि धार्मिक भूल हो तो मैं उसे महापाप मानता हूं। स्वराज्य के काम में मैंने भूलें कीं, उनके लिए पश्चात्ताप किया, उन्हें सुधार लिया और मैं पार हो गया। परन्तु इसमें यदि भूल हो तो उसका सुधार कठिन होगा। गो-माता की सेवा ऐसी ही विकट है। ढेड को यदि दुःख हो तो वह कह सकता है, ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़े में अब्राह्मण को दुःख हो तो वह कह सकता है, हिन्दू-मुसलमान भी अपना दुःख कह सकते हैं और एक-दूसरे का सिर फोड़ सकते हैं। परन्तु गो-माता तो गूंगी है, बोलती नहीं, वह

माता नहीं। उसपर जितना बोझ डाल दोगे उतना उठा लेगी, उसे आस्ट्रेलिया भेज दो तो वहां चली जायगी, अपने स्वार्थ के लिए हम उसके बच्चों को आरी से गोदे तो वे भी सह लेते हैं, धूप में बोझ लाद कर चलावें तो चलते हैं। उसकी सेवा करनी महाभारत काम है। परन्तु यह कार्य-भार मैंने केवल कर्तव्य-भाव से ग्रहण किया है।

मेरी शक्ति की मर्यादा

परन्तु इसमें मेरी शक्ति एक मर्यादा रखती है। पहली है व्यावहारिक मर्यादा। मैं इस काम के लिए घर घर जा कर रुपया न ला सकूंगा। मैं चंदा वसूल करना जानता हूं, जब जब मैंने धन मांगा, भारतवर्ष ने अत्यन्त उदारता से मुझे दिया है। पर इस समय मेरे पास इतना समय और शक्ति नहीं कि घर घर जा सकूं। इसलिए द्रव्य एकत्र कर के ईमानदारी के साथ उसके विनियोग करने का जिम्मा आपका है। ऐसे धर्म-कार्य में यदि हम असत्य, पाखण्ड, को स्थान देंगे तो यह भयंकर हो जायगा। हम काम बुरा करेंगे तो गाय कहीं हमें सींग मारने न आवेगी, और इस युग में इस बात की तो किसीको परवा ही नहीं है कि भविष्य में अपने काम का फल हमें क्या भोगना पड़ेगा, अगले जन्म में क्या भोगना पड़ेगा? इसलिए दंभ और पाखण्ड को जितना दूर रख सकें उतना ही रखिएगा। यह सब आपको करना है। यह मेरी मर्यादा है।

गोरक्षा का अर्थ

बेलगांव वाले अपने भाषण में मैंने गो-रक्षा का पूरा अर्थ बताया था। गाय की रक्षा का अर्थ केवल गाय नाम के पशु की रक्षा नहीं, बल्कि जीव-मात्र की, प्राणिमात्र की रक्षा है। प्राणिमात्र में मनुष्य तो आही जाते हैं। सो गाय की रक्षा के लिए मुसल्मानों या अंगरेजों को मारना अधर्म है। जिस जगह में यह कह रहा हूं उसका मुझे ख्याल है, पर फिर भी मैं कहता हूं कि मैं सनातनी हिन्दुओं के धर्म रखने का दावा करता हूं और वह धर्म मुझे सिखाता है कि गाय को बचाने के लिए मैं अंगरेज या मुसल्मान का वध नहीं कर सकता। गोरक्षा का अर्थ है प्राणि मात्र की रक्षा। परन्तु पामर मनुष्य की शक्ति के बाहर की यह बात है कि वह प्राणिमात्र की रक्षा कर सके। इसलिए इस संघटन में केवल स्थूल गाय की ही रक्षा का उद्देश बताया गया है। यदि हम इतना भी कर सके तो बहुत समझिए। और इतना कर चुकने पर तो हम बहुत-कुछ कर लेंगे। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' यह सिद्धान्त व्यवहार में अक्षरशः सत्य है। एक अंगरेज ऋषि ने कहा है—और मैं मानता हूं कि अंगरेजों में भी ऋषि हुए हैं—कि मनुष्य खुद अपनेको ही पहचान ले तो बस है। इसलिए यदि हम विवेक, विचार और बुद्धि तथा हृदय से अपना काम करेंगे तो सफलता हमारे हाथ है। गाय की रक्षा का अर्थ यह नहीं कि हम उन्हें कसाई के हाथों से बचावें; बल्कि हम खुद ही जो उसका संहार कर रहे हैं उससे उसे बचावें। गो-रक्षा की सारी कल्पना में इसी बात का विचार रहा है कि हिन्दुओं का स्वयं अपने प्रति क्या कर्तव्य है।

गोरक्षा का अर्थशास्त्र

यदि हम गो-रक्षा का अर्थशास्त्र समझे होते तो आज हम जितनी गायों की हत्या होने देते हैं उतनी न होने देते। इस देश में फी आदमी गाय का औसत जितना कम है उतना दूसरे किसी देश में नहीं। हमारे भारतवर्ष में गाय जितना कम दूध देती है उतना और कहीं की गायें नहीं देती। हमारे यहां गायें जितनी दुबली-पतली मिलती हैं उतनी और कहीं नहीं। इन बातों में जरा भी अत्युक्ति नहीं, यह वस्तुस्थिति है। मैं आपके दिल को उभाड़ने के लिए यह बात नहीं कह रहा हूं। मुझे निश्चय है कि जितना अत्याचार हिन्दुओं के द्वारा होता है उतना दूसरी जगह कहीं नहीं होता। इसलिए उसकी रक्षा करने की जिम्मेवारी भी हिन्दुओं पर ही होनी चाहिए। मैं खिलाफत के संग्राम में जो शरीक हुआ था सो मुसल्मानों की सेवा करने के लिए—उनका पाद चुंबन करने के लिए—क्योंकि उनके द्वारा मुझे गाय की रक्षा भी निश्चयपूर्वक करनी है। हमारे देश में गायें इस बुरी तरह दुही जाती हैं कि दूध का आखिरी बूंद भी निकल आता है। इसका फल यह होता है कि तीन साल में ही गाय दूध देना बंद कर देती है और फिर वह कसाई के घर चली जाती है। चौंडे महाराज जैसे कुछ गो-सेवक ऐसी गाय को बचाते हैं, पर यह तो समुद्र को चुल्लू से उलीचने में सन्तोष मानने के बराबर है।

संघटन की कुंजी

इस संघटन को समझने के लिए आपके सामने दो बातें पेश करता हूं। पहली तो यह कि हमें दूध पहुंचाने और चमड़े के उद्योग पर पूरा पूरा कब्जा करना चाहिए। यह बात आपको बहुत व्यावहारिक मालूम होगी। परन्तु वह बात धर्म नहीं जिसमें व्यवहार न हो। जनकराजा के जीवन से हमें यही शिक्षा मिलती है कि जिस धर्म को व्यवहार का रूप न दे सकें वह धर्म नहीं, शायद अधर्म ही हो। इसलिए मैं आपके सामने व्यावहारिक रूप में यह धार्मिक प्रश्न उपस्थित कर रहा हूं। दूध निकालने की प्रथा को हमें अपने हाथ में लेना होगा। इसमें कानून बनाने की आवश्यकता नहीं। हमारे लिए इतना ही काफी है कि हम शुद्ध से शुद्ध घी और दूध देने का प्रस्ताव करें। पर मरे जानवरों का हम क्या करें? उसका चमड़ा उतार कर उसका उपयोग करें। आप कहेंगे यह विलायत हो कर आया है, इसलिए ऐसी बातें करता है, पर यह बात नहीं। मेरी इस सूचना में हमारे चमारों की भी रक्षा हो जाती है। हमारे चमार क्या करते हैं? मरे ढोरों की इस तरह नोच-खाच करते हैं कि हमसे देखा नहीं जाता। चमारों ने ही यह बात मुझसे कही है। और जब कि हमारी जिन्दगी इस तरह नोच-खाच में ही जाती है तब हम स्वाभाविक तौर पर उसे खाते हैं, यह उनकी सफाई थी। मैंने उन्हें उस मांस को खाने से मना किया। किसीने कहा पुरानी आदत पड़ गई है, कैसे छूट सकती है? किसीने कहा, हमारा पेशा छुड़वाइए तो यह छूटे। कुछ लोगों ने कहा, छोड़ने की कोशिश करेंगे, पर है मुश्किल। यह सब देख कर मैं समझता हूं कि चमारखाने का व्यवसाय हमें अपने हाथ में लेना पड़ेगा। मैं तो गाय का इस हद तक पूजक हूं कि जब मैंने दक्षिण आफ्रिका में सुना कि गाय को दुहने में कितनी जबरदस्ती की जाती है तभी से मैंने गाय और भैंस का दूध पीना छोड़ दिया। पर वही मैं यह मानता हूं कि मरे जानवर के चमड़े का उपयोग करना अधर्म नहीं है। आज हमारे यहां जीवित गाय का चमड़ा, चरबी और मांस लेनेवाले मौजूद हैं। ऐसे ऐसे वैष्णव मौजूद हैं जो 'बीफ टी' (गोमांस की चाय) पीते हैं। जब मैं उनसे पूछता हूं कि आप 'लीबेग' का 'गोमांस-सत्व' क्यों खाते हैं? तब वे मुझसे कहते हैं कि विश्वामित्र ने भी गो-मांस खाया था। विश्वामित्र ने तो धर्म-संकट के समय गोमांस सिर्फ अपने हाथ में लिया था, खाया न था। वे डाक्टर की सलाह की बातें करते हैं। आस्ट्रेलिया में अपनी गायें भेज कर हम इन चीजों को खाने लगे हैं। इससे यदि बचना हो तो हमें चमड़े का संग्रह करना, उसे

बनाना सीखना पड़ेगा। यहां से हम गोमांस तक बाहर भेजते हैं। गो-मांस को सुखा कर बर्मा भेजते हैं। क्योंकि बरमी लोग गाय का वध नहीं करते, पर खाते अलबत्ते हैं! इसलिए मुझे चमार-खाने की बात संघटन में डालनी पड़ी है। हमारे चमारों को जब तक चमड़े को सुधारने की शास्त्र-पद्धति हम न सिखावेंगे तबतक वे मुरदार मांस बराबर खाते रहेंगे।

इसके अलावा जो बातें निर्विवाद हैं उनकी चर्चा मैं यहां नहीं करता। हमारा तात्कालिक काम है अच्छी दूधशालायें खड़ी करना। इसमें यदि मुझे वैष्णव महाराजों, रामानुजाचार्य आदि की मदद मिले तो मुसल्मानों की मदद तो मेरी जेब में है। (तालियां) इसमें ताली बजाने की कोई बात नहीं है, क्योंकि आज आपकी मदद मेरी जेब में नहीं है।

इस प्रकार मेरा उद्देश है—शुद्ध दूध देना, अच्छे बैलों की मार्फत खेती करवाना, और आपको जूते पहनाना। दूधशालाओं के काम में मैं सरकारी कर्मचारियों की भी सहायता लेना चाहता हूं। क्योंकि इन लोगों के पास इस कार्य में निष्णात लोग हैं और वे लोग गाय को कष्ट दिये बिना अधिक दूध लेने के तरीके जानते हैं।

खजानची की जगह मुझे ऐसे आदमी की जरूरत है जो हर कहीं से रुपये ले आये, उसका हिसाब रक्खे और न हो तो खुद भी अपने घर से लाकर रख दे। सर पुरुषोत्तम दास के साथ मैं बात-चीत कर रहा हूं। पर जब वे कुबूल करें तब सही। मन्त्री भी आदर्श होना चाहिए। वह ब्रह्मचारी हो। देशी भाषायें जानता हो और अंगरेजी का ज्ञाता हो। सब जगह जा कर सबसे मिल सके, बोल सके, ऐसा होना चाहिए। पवित्र काम के लिए पवित्र ब्रह्मचारी की बहुत आवश्यकता है, हालां कि आज ऐसा शुद्ध ब्रह्मचारी मिलना कठिन है। ब्रह्मचारी तो हमारे पास हैं। पर वे रोष करनेवाले है, पांचों इन्द्रियों पर कब्जा रखनेवाले नहीं। हमें तो चाहिए पांचों इन्द्रियों पर कब्जा रखनेवाले ब्रह्मचारी। यदि ऐसा न मिले तो कोई भी शुद्ध सदाचारी हिन्दू काम दे सकता है। मुझे तो मदद देनेवाले मुसल्मान भी हैं। पर उनके नाम मैं नहीं देता; क्योंकि यह काम ही विशेष करके हिन्दुओं का है। इसलिए मै उन्हींकी सेवा विशेष-रूप से चाहता हूं।

अन्त में मैं यह कहता हूं कि यह संस्था प्रेम से भरी हुई है और मै आशा रक्खूंगा कि इसमें किसीके प्रति विरोध तो दूर विरोधाभास भी न होना चाहिए और ईश्वर से यह प्रार्थना करता हुआ कि वह हमें इस सेवा के करने का बल दे, अपना भाषण समाप्त करता हूं।"

संघटन पर रायें ली गईं तो ३-४ शख्स ने विरोध में हाथ उठाये। हजारों की सम्मति से वह पास हुआ। उसके बाद मौ० शौकतअली साहब ने मुख्तसिर तकरीर की थी—'ऐसा कोई हिन्दू न होगा जिसके दिल में गो-माता के प्रति प्रेम न हो। हमें उनके पड़ोसी, उनके भाई बनकर रहना है, इसलिए मुझे कोशिश करनी चाहिए कि मैं अपने भाई के दिल को न दुखाऊं और गाय के बचाने का कोई रास्ता ढूंढ निकालूं। हम गाय को माता नहीं मानते। परन्तु पवित्र तो जरूर मानते हैं। इसलिए हमें ऐसी तजवीज अख्त्यार करनी चाहिए जिससे २४ करोड़ हिन्दुओं के दिल न दुखें। सच पूछिए तो तमाम हिन्दुओं के दुखों का, मुसल्मानों के दुःखों का, हिन्दुस्तान के दुःखों का इलाज है स्वराज्य और उसका रास्ता है एकता। आज मुसल्मान खिलाफत का दुखड़ा रोते हैं, हिन्दू गाय का दुखड़ा रोते हैं; पर मुसल्मान न इस्लाम के लिए कुछ करते हैं, न हिन्दू गाय के लिए। खुदा हमें समझ दें, सब्र दें; हिम्मत दें। आज देश में काले बादल छाये हुए हैं, पर खुदा करेंगे तो, एक साल से ज्यादह यह रंग न रहेगा। हम वह दिन ऐसा देखेंगे कि जब हिन्दुस्तान में स्वराज्य होगा, इस्लाम आजाद होगा और गाय आजाद होगी।'

डा० मुंजे ने कहा—अंगरेजी फौज के लिए जितना गो-मांस इस्तेमाल किया जाता है उसका सौवां हिस्सा मुसल्मान नहीं इस्तेमाल करते। और गाय को हम मुसल्मानों से लड़कर नहीं बचा सकते। अपनी गोरक्षा के द्वारा हम उसे अंगरेज और मुसल्मान दोनों से बचा सकेंगे।

दूसरे दिन, २९ अप्रैल को, कार्यसमिति की बैठक हुई थी। उसमें श्री रेवाशंकर जगजीवन जवेरी (जवेरीबाजार, बंबई) काम-चलाऊ खजांची और श्री वनमालीदास अमुलखराय (३० हनुमान बिल्डिंग, होमजी स्ट्रीट, सरकस रोड, बंबई) कामचलाऊ मंत्री चुने गये। समस्त सभ्योंने संघटन की रू से तीन मास के अंदर कुछ कुछ सदस्य बनाने के वचन भी दिये थे।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

'दुखी दिल से'

एक काठियावाड़ी लिखते है—

"आपने फिर काठियावाड़ मे रुपया मांगने की शुरूआत की है। पर आप शायद यह न जानते होंगे कि आपको ये रुपये लोग किस भाव से देते है। शरमा-शरमी और दुखी दिल से लोग रुपया देते हैं। आप एकही—व्यापारी-वर्ग को फुसला कर रुपया लेते हैं और वह भी आपकी इच्छा के अनुसार गरीबों में नहीं बांटे जाते। यदि ऐसा होता तो फिर ७५-८०) मासिक सेवा करनेवाले ले सकते हैं?'

मै कैसे समझूं कि जो शख्स हंसी-खुशी से रुपया देता है और औरों से दिखाता है वह दुखी दिल से देता है? लेखक को सब के दिल की खबर कैसे पड़ी? व्यापारी-वर्ग को फुसलाने की बात ही क्या है! यदि उनसे रुपया न मिले और न लिया जाय तो फिर किससे मिले? देश की आर्थिक स्थिति यदि व्यापारी-वर्ग के हाथों न सुधरे तो फिर किस के हाथों सुधरेगी? भले व्यापारी इस बात को कुबूल करते हैं कि देश की स्थिति व्यापारियों के हाथों बिगड़ी है। और इसलिए कुछ लोग तो प्रायश्चित्त के तौर पर भी रुपया देते हैं। फिर खादी का गरीबों में प्रचार करने का प्रयोग तो अभी होनेवाला है। फिर यह कैसे कह सकते हैं कि गरीबों में रुपया नहीं फैलता? परिषद के सूत्र-संचालक निस्वार्थ आदमी है। यह मेरा निश्चित मत है। मैं मानता हूं कि उनके हाथों तथा उनकी निगरानी में जो देन-लेन होगा वह ध्यानपूर्वक और ईमानदारी के साथ ही होगा। वे जान-बूझ कर भूल तो कभी करेंगे ही नहीं। फिर 'यदि ऐसा होता हो कहीं ७५-८०) मासिक सेवा करनेवाले ले सकते हैं?' इसका गरीबों में धन का उपयोग होना है या नहीं, इससे कोई संबंध नहीं। लाखों रुपयों का देन-लेन यदि वैतनिक आदमी करे तो क्या आश्चर्य है? इसके अलावा सेवा करने वाले को ७५) काठियावाड़ में मिलते हैं या कितने इसकी खबर मुझे नहीं। हां, मैं यह जानता हूं कि कहीं कहीं सेवकों को इतने रुपये दिये जाते हैं। सो उनका द्वेष किस लिए? सेवक धनवान् नहीं होते। जो अपना सारा समय लोक-कार्य में देता है उसे वेतन लेने का अधिकार है। हां, पूछा सिर्फ यही सवाल जा सकता है कि जो मिलता है कि उतनी उसकी जरूरत है या नहीं? वही शख्स दूसरी जगह इतना पा सकता है या नहीं? और अन्त को वह ईमानदार है या नहीं और लोगों को उसकी सेवा की जरूरत है या नहीं? इन सबका जवाब सन्तोषजनक हो तो सेवा करनेवाले को दरमाह ७५) मिलता है, यह उसका गुनाह नहीं है। देश को तो हजारों सेवक दरकार होंगे।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी १४, संवत् १९८२

प्रत्यक्ष प्रमाण

कलकत्ते आते हुए यह लेख लिख रहा हूं। यह यात्रा क्या, खासी कर्नाटी ही है। जेल से छूटने के बाद पहले ही बार मैं मध्यप्रान्त से गुजरा हूं। लोग हर स्टेशन पर इस तरह भीड़ करते थे कि परेशानी होती थी। थके-मांदे आदमी के लिए आराम मिलना मुश्किल था। खादी का परित्याग दूर दिखाई देता था। बहुत थोड़ी खादी टोपियों के अलावा मुझे हर जगह प्रायः हर सिर पर विदेशी काली टोपियां दिखाई देती हैं, जिन्हें देखकर चित्त उद्विग्न हो जाता है। एक मित्र ने बड़े दुःख के साथ मुझसे कहा कि हजार में मुश्किल से एक आदमी होगा जो खादी का आदी हो। इस बात का प्रत्यक्ष दृश्य मैं रास्ते भर देख रहा हूं। हजार में भी उन एक खादी पहननेवाले को धन्य है जो कि तमाम विघ्न बाधाओं के मुकाबले में भी अपने विश्वास पर डटे रहे हैं। खादी के प्रति यह विद्रोह यदि नहीं तो उदासीनता अवश्य है। इसे देखकर खादी के प्रति मेरी श्रद्धा तो और भी बढ़ती जाती है।

नागपुर में तो इस दुखदायी सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। यह वही नागपुर है जिसने कलकत्ते के असहयोग प्रस्ताव को पुनः मान्य रक्खा था। यह प्रान्त का केन्द्र है। स्टेशन पर बड़ी भीड़ थी। महासभा के अधिकारियों ने तो स्टेशन के बाहर एक सभा का भी आयोजन किया था। धूप खूब कड़ी थी। कोलाहल भयंकर था। किसीका शब्द किसीके कान पर न पड़ता था, और न कोई किसीकी सुनता ही था। स्वयंसेवक तो थे, परन्तु नियम-निष्ठा का पता न था। मेरे जाने के लिए कोई रास्ता नहीं रक्खा गया था। मैंने जोर देकर कहा-यदि इस आध घण्टे में जबतक ट्रेन खड़ी है, मुझे सभा-स्थान तक पहुंचाना हो तो रास्ता बनाओ। रास्ता मुश्किल से बनाया गया। मैं किसी तरह, बहुत संभलते हुए, उसमें से गुजरा। सभा-मञ्च पर पहुंचने में पांच मिनिट लगे। यदि चारों ओर यह भीड़-भड़क्का न होता तो मैं आधे मिनट में पहुंच जाता। अपना पैगाम सुनाने में मुझे एक मिनिट से ज्यादह न लगा। आने में जाने से भी ज्यादह समय लगा; क्योंकि अब तो हजारों लोग मतवाले-से हो गये थे। प्रेम की उन्मत्तता अब अपना पूरा बल प्रकट कर रही थी। '—की जय' के शोर से आकाश भर उठा था। उस कोलाहल और धूल को सह सकने लायक मेरी हालत न रही थी। मेरा दम घुट रहा था। मेरे हृदय से भीतर ही भीतर उस अगाधियंता के प्रति यह प्रार्थना निकल रही थी-भगवन, इस प्रेम से मुझे मुक्त कर! मैं सही-सलामत ट्रेन पर पहुंचा। देरी इतनी हो रही थी कि तबीयत झुंझलाती थी। मैं ट्रेन के दरवाजे पर खड़ा रहा-इस आशा और इच्छा से कि यदि लोग एक क्षण के लिए गुल-गपाड़ा बंद कर दें तो मैं उनसे कुछ बातचीत करूं। महासभा के अधिकारियों ने कोशिश की, एक ढोल-ढोलवाले अकाली ने भीड़ को चुप करने की कोशिश की। पर सब व्यर्थ हुआ। वे मेरा व्याख्यान सुनने न आये थे। वे मेरा दर्शन करने आये थे। और उसे वे बड़े स्वाद और आनन्द के साथ प्राप्त कर रहे थे, पर उनका हर्ष मेरी व्यथा थी। जबान पर तो मेरा नाम और सिर पर काली टोपियां! कैसा भीषण विरोध! कितनी असत्यता! उस भीड़ को साथ लेकर मैं स्वराज्य की लड़ाई न लड़ सका होता। फिर भी, मैं जानता हूं कि मौलाना शौकतअली कहेंगे-जबतक यह प्रेम आपके लिए है तबतक आशा है-भले ही वह प्रेम अन्धा हो। मुझे ऐसा यकीन नहीं है और इसलिए मेरा हृदय वेदना से भरा हुआ था।

आखिरकार लोग मेरी बात सुनने को तैयार हुए। मैंने काली टोपियां उतार देने को कहा। लोगों ने इसका उत्तर दिया तो तुरन्त पर वह उदार न था। उस उतने बड़े विशाल जन-समुदाय में से, मैं नहीं समझता कि, १०० से अधिक लोगों ने अपनी टोपियां फेंकी होंगी। उनमें से चार उनके मालिकों ने नहीं फेंकी थी। उन्होंने वापस चाही और वे दे दी गईं। इस दृश्य से दो शिक्षायें मिलीं—यदि संगठन ठीक ठीक हो तो लोगों से विदेशी या मिल का कपड़ा छुड़वाया जा सकता है। दूसरा यह कि, ऐसे लोग भी वहां थे जो अब भी औरों की टोपियां निकाल कर फेंकते हैं। इस कार्रवाई को दबाव का श्रीगणेश ही समझना चाहिए। लेकिन और बातों की तरह खादी में भी जरा भी दबाव से काम न लेना चाहिए। जो लोग उन्हें पहनते हैं वे खुद ही उन्हें या तो स्वेच्छा से फेंके, या मुतलक नहीं।

परन्तु स्थिति पर सबसे अधिक प्रकाश डालनेवाली बातें तो मुझे कुछ कागजात से मालूम हुईं जो कि मुझे वहां के कामकाजी अधिकारियों ने दिये थे। ये कागज वहां के महासभा के कार्य की सच्ची सीधी और बिना रंगी कहानी कहते हैं। एक कागज में प्रा० स० के कामों की खबरें हैं। पिछले मार्च में उसके सदस्यों की संख्या २०४ थी: जिनमें से ११४ स्वयं कातनेवाले थे और ९० ने औरों का कता सूत दिया था। अप्रैल में सदस्यों की संख्या घटकर १३२ तक पहुंच गई जिनमें स्वयं कातनेवाले ८० और दूसरे ५२ रह गये। इस तरह एक ही माह में दोनों प्रकार के लोगों में इतनी कमी हो गई। अब देखना चाहिए आगे क्या होता है! समिति की रिपोर्ट है कि प्रान्त में ४ राष्ट्रीय-पाठशालायें हैं और ५,०००) का दान स्व० हरिशंकर व्यास के ट्रस्टियों की ओर से अछूतों के लिए मिला है। अछूतोद्धार के लिए एक योजना तैयार करने के लिए एक उप-समिति बनाई गई है। कागज में पण्डित मोतीलाल नेहरू और मौ० अबुल कलाम आजाद को धन्यवाद दिया गया है कि उनकी कोशिशों से अब वहां 'हिन्दू-मुसल्मान बहुत शान्ति और मिलाप के साथ रहते हैं।'

दूसरे कागज में नागपुर नगर महासभा-समिति के कामों का ब्योरा है। उसमें लिखा है कि अगस्त १९२४ में १,१३३ सदस्य थे। मार्च १९२५ में संख्या इस प्रकार थी—

अ	ब	कुल
३७	७०	१०७

अप्रैल में इतनी रह गई—

अ	ब	कुल
२९	३०	५९

सिर्फ एक ही महीने में नागा करनेवालों की संख्या ४८ रही!

कुल चरखों की संख्या 'कोई' ४० है। सूत कोई ६०—७० हजार गज हर माह निकलता है। सूत का अंक कोई १०—१४ होगा। हाथ-कते सूत का इस्तेमाल एक भी करघा नहीं करता।

एक खादी-भण्डार है जिसमें कोई ५००) की खादी प्रति मास बिकती है।

ब्योरे में लिखा है कि 'अफीम और शराब के बारे में कोई बात नहीं बताई जा सकती।' और फिर इस असाधारण संक्षिप्त और इसके विवरण का अंश इस प्रकार होता है—

"पूर्वोक्त अंकों से कताई-मताधिकार का भविष्य अच्छी तरह मालूम हो जाता है। खुद कातनेवाले सदस्य अधिकांश में अपरिवर्तनवादी है। 'ब' श्रेणी के सदस्य अधिकांश में स्वराज्य-दल के हैं। एक भी स्वराजी स्वयं सूत नहीं कातता है। इस नगर में महासमिति के ५ सदस्यों में सिर्फ १ स्वयं कातते हैं; एक ने खरीदा सूत नियम-पूर्वक भेजा है; दो ने नागा किये हैं और एक ने मार्च का भी सूत नहीं दिया है और इसलिए महासभा के सदस्य नहीं है। कुछ प्रान्तीय समितियों के सदस्यों ने भी नागा किया है उनमें से कुछ तो प्रान्तीय समिति में जिम्मेवारी के पदों पर है। इससे जाना जायगा कि यह मताधिकार कहांतक चल सकेगा। अपरिवर्तन-वादियों की संख्या, जिनकी कि श्रद्धा कताई और खादी पर है, दिन पर दिन कम हो रही है और वह इने गिने रह गये हैं। नागपुर के स्वराजी तो इस मताधिकार को फेंक देने के लिए उत्सुक है और यही हाल स्वतन्त्र दल का है जिसके कि हाथ में इन दिनों प्रान्तिक समिति है।

आशा की किरण—आम तौरपर लोग उन लोगों को प्रेम और आदर की निगाह से देखते हैं जो नियमपूर्वक कातते हैं और जिन्होंने महासभा के काम के लिए अपने सारे भविष्य को छोड दिया है।

काम की ढिलाई के कुछ कारण—

(अ) मताधिकार में विश्वास रखनेवाले कार्यकर्ताओं में संगठन का अभाव

(आ) बडे बडे महासभा के नेताओं के दिल में इस मताधिकार के प्रति सहानुभूति का अभाव और मताधिकार के प्रवर्तक तमाम विघ्न-बाधाओं के रहते हुए भी मताधिकार पर अटल रहने की मजबूती की कमी। यहांतक कि अपरिवर्तनवादी भी इस बात को मानने लगे हैं कि यह मताधिकार तो आगामी महासभा में बदल ही दिया जानेवाला है और इससे उनका धीरज-पूर्वक और फलदायी काम करने का तमाम उत्साह नष्ट हो गया है।

खिलाफ प्रचार—अधिकांश महासभा के तथा दूसरे सार्वजनिक कार्यकर्ता इस मताधिकार के दोष बताते रहते है और अन्यान्य बातों पर जोर देते रहते है और बडी सावधानी से उसके पक्ष में कुछ कहने से बचते रहते है। और उसके खिलाफ कुछ कहा-सुना नहीं जा सकता इस डर से कि वाद-विवाद छिडेगा जिससे वायुमण्डल बिगड जायगा और जिसमें कि महात्मा गांधी की तरफ से समर्थन मिलने की कोई आशा नहीं।

मुझे इसमें एक मुलायम फटकार बताई गई है—कहा गया है 'कि हर तरह की विघ्न-बाधाओं के रहते हुए इस मताधिकार को कायम रखने की मजबूती मुझमें नहीं है।' पर इस रिपोर्ट के रचयिता से मैं कहता हूं कि मै अपने लिए तो इस मताधिकार पर हर हालत में कायम रहूंगा। पर यदि मेरे अन्दर प्रजासत्ता के भावों की एक चिनगारी भी होगी तो मै महासभा के लिए उसे कायम नहीं रख सकता। वह काम है महासभा के सदस्यों का। उसकी जिम्मेवारी संयुक्त और अलग अलग होनी चाहिए। पर जो लोग इस मताधिकार के—राष्ट्र के लिए चरखा कातने के कायल है वे ठण्डे और उदासीन लोगों के मुकाबले में और ज्यादह क्यों दृढ नहीं रहते? और फर्ज कीजिए कि महासभा अगले साल इस मताधिकार को बदल भी दे, तो उसमें विश्वास रखनेवाले लोग क्या करेंगे? क्या वे चरखा कातना छोड देंगे? या वे खुद अपने लिए ही कातेंगे पर दूसरे के लिए भी कातेंगे?

हां, रिपोर्ट के लेखकों का यह कहना ठीक है कि मैं उस झगडे और चर्चा का समर्थन न करूंगा 'जिससे कि बुरा वायुमण्डल तैयार हो।' पर यदि कोई ठण्डा या उदासीन है, तो इसका उपाय यह नहीं है कि उसके खिलाफ या उसके सबंध में कुछ कहें या लिखें, बल्कि यह कि हम अपने रास्ते चले जायं और जिस बात को हम मानते हैं उसका संगठन करें। जो लोग कताई को मानते है उन्हें उसका संगठन करने से कौन रोक सकता है? रिपोर्ट के लेखकों को मैं बताये देता हूं कि देश में ऐसे खामोश काम करनेवाले पैदा हो गये है जो कारगर तौर पर बिना आडंबर के खादी और चरखे का पैगाम देश में फैला रहे है।

अभी दो और कागजों का जिक्र करना बाकी है जो कि नागपुर मे मुझे दिये गये थे। तीसरा कागज है तिलक विद्यालय की रपोर्ट। यह संस्था १९२१ में १००० विद्यार्थियों और ८० से ऊपर शिक्षकों को ले कर खडी हुई थी। यह भारी संख्या घट कर १९२३-२४ में १५० रह गई। जुलाई १९२४ में वह ५५ तक पहुंच गई। अब वह ८५ है और उसमें ८ शिक्षक है। कताई निकाल दी गई थी, अब वह फिर जारी की गई है। बढईगीरी, जिल्द बंधाई, सिलाई आदि सिखाई जाती है। मासिक खर्च २५५) है। आमदनी फीस को मिला कर १८०) है। स्व० हरिशंकर व्यास बैतूल की सम्मति से दान के रूप में उसे ५,०००) मानों आकाश से टपक पडे थे।

कहते हैं उसमें धार्मिक और शारीरिक शिक्षा भी दी जाती है।

अपने शास्त्रीय विभाग के लिए १०००) बतौर पूंजी के और पाठशाला को छः साल तक चलाने के लिए १०,०००) उसे चाहिए।

इस विद्यालय के भाग्य की कथा वैसी ही है जैसी कि देश के प्रायः और राष्ट्रीय शिक्षालयों की है। विवरण पढने से यद्यपि कथा अनुत्साह बढानेवाली मालूम होती है फिर भी हतोत्साह होने का कोई कारण नहीं है। यदि शिक्षक लोग निश्चयी, सुयोग्य और आत्मत्यागी हैं तो वे अपनी छोटी-सी संस्था को राष्ट्रीय दृष्टि से उपयोगी और कारगर बना सकते है। संस्था की कोई कीमत नहीं यदि वह आवश्यक शर्तों को पूरा न करती हो। जो कुछ हो, यदि नागपुर तिलक-विद्यालय के शिक्षकों के अन्दर निश्चय-शक्ति हो तो वे महासभा की शर्तों का पालन कर सकते है और मै समझता हूं कि उसे आर्थिक सहायता की कमी न रहेगी। मै ऐसी किसी संस्था को नहीं जानता जो धन के अभाव में टूटी हो। मैं ऐसी कितनी ही संस्थाओं को जानता हूं जो शिक्षकों के अंदर आवश्यक गुणों के अभाव से भंग गई है।

मैंने अत्यन्त आशापूर्ण कागज का तो अभी जिक्र ही नहीं किया है। यह उन लोगों की नामावलि है जिन्होंने मुझे भेंट करने के लिए सूत काता है। यह सदस्यता के चंदे के सूत के अलावा था। उसमें ४१ नाम है जिनमें २ संस्थाओं के है। इसलिए ५१ से अधिक व्यक्ति कातने वाले है। उसमें मारवाडी भी है, महाराष्ट्र भी है। ४ पारसी भी हैं। एक मुसल्मान और ४ स्त्रियां है। नामावलि मे सूत का अंक, वजन, गज सब दिया गया है। कुल सूत की लंबाई ७७,३९७४ गज है, अंक ९१ से ६ तक है। सूत की जांच अभी मैंने नहीं की है; पर यदि यह सारा बुनने लायक है, तो यह इतना है कि जिसपर नाज हो सके। और यदि वे तमाम सदस्य चरखे पर सजीव श्रद्धा रखते हों तो मुझे उचित समय में सफलता से निराश होने का कोई कारण नहीं।

(यं. इं.)

मोहनदास करमचन्द गांधी

फिर और

उन क्रान्तिकारी महाशय ने फिर पत्र लिखा है। पर अब की मुझे कहना होगा कि इसके मजमून में पहले की तरह उन्होंने धीरज से काम नहीं लिया। इसमें उन्होंने बहुत-सी असम्बद्ध बातें लिख डाली हैं और अपनी दलीलों में अकारण विस्तार से काम लिया है। जहांतक मैं देखता हूं उनकी दलीलों का खजाना खुट गया है और कोई नई बात कहने को नहीं रह गई है। पर यदि वे फिर लिखना चाहें तो बेहतर हो कि वे अपने पत्र को और भी सावधानी के साथ लिखें और विचारों को छान डालें। अब की उनका यह काम मैंने किया है। पर वे तो प्रकाश पाने के उत्सुक हैं। इसीलिए उन्हें चाहिए कि वे मेरे लेखों को ध्यान पूर्वक पढ़ें। फिर वे शान्त चित्त से उनपर विचार करें और तब साफ तौर पर और संक्षेप में लिख भेजें। यदि वे सिर्फ प्रश्न ही पूछना चाहते हैं तो सिर्फ प्रश्न ही लिख कर भेज दें—दलीलें देने या मुझे उनका कायल करने की कोशिश न करें। क्रान्तिकारी-हलचल के संबंध में मैं सब-कुछ जानने की डींग नहीं हांकता; पर उसके संबंध में मुझे बहुत-कुछ विचार और निरीक्षण करना तथा लिखना पड़ा है। अतएव मेरे लिए पत्र-लेखक के पास नई बातें बहुत ही कम हो सकती हैं। अतएव जहां कि मैं उनकी बात पर खुले दिल से विचार करूंगा तहां मैं उनसे यह भी अनुरोध करूंगा कि कृपया राष्ट्र के एक कार्यव्यस्त सेवक को और क्रान्तिकारियों के एक सच्चे मित्र को उन सब बातों के पढ़ने के परिश्रम से बचाइए, जिनके पढ़ने की जरूरत उसके लिए नहीं है। हां, मैं क्रान्तिकारियों की बातों से वाकिफ रहने के लिए जरूर उत्सुक हूं और यह मैं इन्हीं पत्रों के द्वारा ही कर सकता हूं। उनके लिए मेरे हृदय के एक मुलायम कोने में जगह है; क्योंकि उनके और मेरे बीच एक चीज सामान्य है और वह है कष्ट-सहन की क्षमता। पर चूंकि मैं उन्हें बड़ी नम्रता के साथ गलती पर तथा गुमराह मान रहा हूं, मेरी अभिलाषा है कि मैं उन्हें उनकी गलती से छुड़ाऊं या ऐसा करते हुए खुद अपनी गलती को दुरुस्त करूं।

मेरे क्रान्तिकारी मित्र का पहला प्रश्न है—

"क्रान्तिकारियों ने देश की प्रगति को पीछे हटा दिया है"। आपने खुद ही बंग-भंग के सिलसिले में लिखा था—'बंग-भंग के बाद लोगों ने देखा कि हमारी प्रार्थना के पीछे बल भी होना चाहिए और हमें कष्ट-सहन की क्षमता होनी चाहिए। इसी भावको बंग-भंग का मुख्य फल समझना चाहिए। × × × जिस बात को लोग कांपते हुए और चुपके चुपके कहते थे उसीको वे खुले आम लिखने लगे। × × अंगरेजों का मुंह देखते ही लोग भागते थे, सो यह भय लोगों को न रह गया। वे किसी गोलमाल या जेल जाने से भी न डरने लगे। 'देश के कुछ सर्वोत्तम पुत्र' आज देश के बाहर निकले हुए हैं।" वह आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन ही था और वे 'सर्वोत्तम पुत्र' अधिकांश में क्रान्तिकारी या अर्ध-क्रान्तिकारी थे। तब कैसे ये अज्ञान और गुमराह लोग देश की भीरुता कम कर पाये? क्या इसलिए कि क्रान्तिकारी आपके विचित्र अहिंसा-सिद्धान्त को नहीं समझ पाते, आप उन्हें अज्ञान कहेंगे?

हिन्द-स्वराज्य में प्रदर्शित विचारों में जिन्हें कि लेखक ने उद्धृत किया है तथा मेरे अब प्रकाशित इन विचारों में कोई भेद नहीं है। जिन लोगों ने बंग-भंग का आन्दोलन उठाया था, फिर वे कोई ही और कैसे ही हों, निस्सन्देह अंगरेज लोगों के डर को भगा दिया था। यह देश की स्पष्ट सेवा थी। परन्तु वीरता और आत्मत्याग को किसीका संहार करने की जरूरत नहीं रहती। क्रान्तिकारी महाशय याद रक्खें कि हिन्द-स्वराज्य लिखा गया था एक क्रान्तिकारी की ही दलीलों और साधनों के जवाब में। यह पुस्तक इस अभिप्राय से लिखी गई थी कि क्रान्तिकारियों को उस चीज से जो उनके पास है अगणित श्रेष्ठ चीज दी जाय, जिसमें उनकी तमाम वीरता और आत्म-त्याग के भाव भी रहें। मैं क्रान्तिकारियों को केवल इसलिए अज्ञान नहीं कहता कि वे मेरे साधनों को नहीं समझते या उनकी कदर नहीं करते; पर इसलिए कि वे तो मुझे युद्ध-कला के ज्ञाता भी नहीं मालूम होते। जिन जिन वीरों का उल्लेख उन्होंने किया है वे युद्ध-कला का ज्ञान रखते थे और उनके पास अपने आदमी भी थे।

दूसरा प्रश्न यह है—

जब कि टैरेन्स मैक्स्विनी ने ७१ उपवास कर के प्राण छोड़ दिये तब क्या वह निर्दोष और साफ-पाक था? वह आखीरतक गुप्त षड्यन्त्रों, खूनों और भय-प्रदर्शन का हामी रहा और अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वतन्त्रता के सिद्धान्त' में लिखित विचारों का प्रतिपादन करता रहा। यदि आप मैक्स्विनी को निर्दोष और साफपाक कह सकते हैं तो क्या गोपीमोहन साहा के लिए भी इन शब्दों का प्रयोग करने को तैयार होंगे?

खेद है कि मैं मैक्स्विनी का जीवन-चरित इतना नहीं जानता कि कोई राय दे सकूं। पर यदि उसने गुप्त षड्यन्त्र, खून और भय प्रदर्शन की हिमायत की हो तो उसके साधनों पर भी वही आक्षेप किये जा सकते हैं जो कि इन पृष्ठों में किये गये हैं। मैंने उन्हें कभी निर्दोष और साफ-पाक नहीं माना है। जब उसके उपवास की बात प्रकाशित हुई थी तभी मैंने उसपर अपनी यह राय दी थी कि मेरी दृष्टि से उसकी यह गलती था। मैं हर प्रकार के उपवास का समर्थन नहीं करता।

तीसरा सवाल यों है—

आप वर्ण-व्यवस्था को मानते हैं। इसलिए यह स्वयंसिद्ध है कि आप क्षत्रियों को भी अन्य वर्णों की ही तरह उपयोगी मानते हैं। इस निःक्षत्रिय युग में, भारत वर्ष में, क्रान्तिकारी लोग अपने को क्षत्रिय कहलाने का दावा करते हैं। 'क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः' मैं भारत को आज बड़े से बड़े क्षत की अवस्था में देखता हूं और इसलिए आज देश को क्षत्रियों की अत्यन्त आवश्यकता है। मनु ने क्षत्रियों के लिए चार साधनों की व्यवस्था की है— साम, दान, दण्ड, भेद। इस सिलसिले में मैं स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थ से कुछ वचन उद्धृत करता हूं— "तमाम महान आचार्यों ने कहा है 'न पापे प्रतिपापः स्यात्,' सिखा दी है कि अप्रतिकार सर्वोच्च नैतिक आदर्श है। हम सब जानते हैं कि यदि संसार की वर्तमान अवस्था में लोग इस सिद्धान्त का पालन करने लगें, तो समाज का विनाश हो जायगा, हिंस्र और दुरात्मा लोग हमारे धन-जन और प्राणको हरण कर लेंगे, देश तहस-नहस हो जायगा।" उसीके आगे वे कहते हैं— आपमें से कुछ लोगों ने तो गीता को पढ़ा होगा और (पश्चिम के) बहुतों को पहले अध्याय में यह देख कर ताज्जुब हुआ होगा कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को, जब कि वह अपने प्रति द्वियों में अपने आप्तों और संबंधियों को देखता है और अप्रतिकार को एक प्रेम का सर्वोच्च आदर्श बताकर मोह को प्राप्त हो जाता है और युद्ध से इन्कार कर देता है तब उसे पाखण्डी और भीरु कहा है। इससे हम एक बड़ी शिक्षा ले सकते हैं—तमाम बातों में दोनों सिरे एकसे होते हैं; आत्यन्तिक भाव और आत्यन्तिक अभाव दोनों हमेशा एक-से होते हैं; जब कि

प्रकाश की लहरें बहुत मंद होती हैं तब हम उन्हें नहीं देख सकते और जब वे बहुत तेज होती हैं तब भी हम नहीं देख सकते। यही बात शब्द पर घटती है। जब वह बहुत धीमा होता है तब भी हम उसे नहीं सुन सकते और जब बहुत ऊंचा होता है तब भी नहीं सुन सकते। इसी तरह प्रकृति प्रतिकार और अप्रतिकार का शेष-फल है। × × × सबसे पहले हमें इस बात की चिन्ता करनी चाहिए कि हमारे पास प्रतिकार की शक्ति है भी या नहीं। पर जब कि वह हमारे पास हो और फिर हम उसका प्रयोग न करें तो वह हमारा काम प्रेम का काम होगा; परन्तु यदि हम मुकाबला नहीं कर सकते और फिर भी हम यह दिखावें या अपनेतईं मान लें कि हम तो उच्च प्रेम-भाव से प्रेरित होते हैं, तो हम नीति की दृष्टि से जो बात श्रेष्ठ है उसके ठीक विपरीत आचरण करेंगे। अर्जुन अपने सामने सबल सेना को देखकर डर गया, उसके 'प्रेम' ने उसके देश और राजा के प्रति उसके कर्तव्य को भुला दिया। इसीलिए श्रीकृष्ण ने उसे पाखण्डी कहा—'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। इसीलिए उठो और युद्ध करो।' अब सिवा कुछ प्रश्नों के मैं और कुछ नहीं कहना चाहता। क्या आप समझते हैं कि आपके ये पूरे पक्के शान्तिमय कहलाने वाले शिष्य इस विदेशी नौकरशाही का मुकाबला शरीर-बल के द्वारा कर सकते हैं? यदि हां, तो किस तरह? यदि नहीं तो फिर आपकी यह अहिंसा सबल का शस्त्र किस तरह है? इन प्रश्नों का असंदिग्ध उत्तर दीजिए जिससे कि कोई उसका जुदा अर्थ न लगा पावें।

इसके साथ ही मैं इतने प्रश्न और आपसे पूछ लेना हूं, क्या आपके स्वराज्य में सेना को स्थान है? क्या आपकी स्वराज्य-सरकार फौज रक्खेगी? यदि हां, तो क्या वह लड़ेगी, या वह अपने प्रति-पक्षी के मुकाबले में सत्याग्रह करेगी?

हां, मेरे जीवन-सिद्धान्तों में क्षत्रियों के लिए जरूर स्थान है पर मैंने उनका लक्षण गीता से प्राप्त किया है। जो समर से अर्थात् खतरे से पलायन नहीं करता वह क्षत्रिय है। ज्यों ज्यों संसार प्रगति करता जाता है त्यों त्यों पुराने शब्द नया मूल्य ग्रहण करते जाते हैं। मनु तथा अन्य स्मृतिकारों ने आचार के शाश्वत—सर्वकालीन सिद्धान्त नहीं निर्धारित किये हैं। उन्होंने जीवन के कुछ शाश्वत सिद्धान्तों का निरूपण किया और बहुत-कुछ उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार अपने समय के लिए आचार-नियमों की सृष्टि की। मैं तो स्वर्ग में प्रवेश पाने के लिए भी घूस और छल-कपट के साधनों को अपनाने के लिए असमर्थ हूं, फिर भारत की स्वतन्त्रता की तो बात ही दूर है। क्योंकि यदि ऐसे साधनों से स्वतन्त्रता या स्वर्ग मिला तो न वह आजादी आजादी होगी, न वह स्वर्ग स्वर्ग होगा।

स्वामी विवेकानन्द के जो वचन उद्धृत किये गये हैं उनकी तसदीक मैंने नहीं कर ली है। उनमें न तो वह नवीनता है न वह संक्षिप्तता है जो कि उस महापुरुष के अधिकांश ग्रन्थों में पाई जाती है। पर वे चाहे उनके ग्रन्थों से लिये गये हों या न हों, उनसे मुझे सन्तोष नहीं हो रहा है। यदि बहु-संख्यक लोग अ-प्रतिकार के सिद्धान्त का पालन करने लगें तो संसार की दशा वह न रहे जो आज है। जिन व्यक्तियों ने उसका पालन किया है उन्होंने गंवाया कुछ भी नहीं है। हिंसाकारी और दुष्टात्माओं ने उन्हें कत्ल नहीं कर डाला है। बल्कि इसके विपरीत अहिंसा और सौजन्य के समक्ष उनकी हिंसता और दुष्टता दोनों दूर हो गई हैं।

गीता का मेरा अपना अर्थ मैं पहले ही प्रकट कर चुका हूं। उसमें पुण्य और पाप के शाश्वत युद्ध का वर्णन है। और, जब कि पुण्य और पाप की विभाजक रेखा बहुत सूक्ष्म हो जाती है, और जब कि कर्तव्य का निर्णय इतना कठिन हो तब अर्जुन की तरह किसे मोह प्राप्त नहीं होता?

फिर भी मैं इस बात का हृदय से समर्थन करता हूं कि सच्चा अहिंसा-परायण वही है जो कि प्रहार करने की क्षमता रखते हुए भी अहिंसात्मक बना रहता है। इसलिए मैं यह जरूर दावा करता हूं कि मेरा शिष्य (और मेरा शिष्य सिर्फ एक ही है—मैं) जरूर प्रहार करने की काबलियत रखता है। हां, यह मैं मानता हूं कि वह इसमें प्रवीण नहीं है और शायद कारगर तौर पर प्रहार न भी कर सके। पर उसे ऐसा करने की जरा भी अभिलाषा नहीं है। मेरे जीवन में मुझे अपने प्रतिपक्षियों को गोली से उड़ा देने के और शहीदों के सिंहासन पर बैठने के कितने ही मौके मिले थे; पर मेरे दिल ने उनमें से किसी पर गोली झाड़ना न चाहा। क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि वे मेरा संहार कर डालें, फिर भले ही मेरे साधनों को वे कितने ही ना-पसंद क्यों न करते हों। मैं चाहता था कि वे मुझे अपनी गलती समझा दें और मैं उन्हें उनकी गलती समझाने की कोशिश कर रहा था। 'आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्।'

अफसोस! आज के मेरे स्वराज्य में सैनिकों के लिये स्थान है। मेरे ये क्रान्तिकारी मित्र इस बात को जान लें कि मैंने ब्रिटिश लोगों के द्वारा इस सारे देश के निःशस्त्रीकरण को और तज्जात पौरुष-नाश को ब्रिटिशों का महा जघन्य अपराध बताया है। मैं देश को सार्वत्रिक अहिंसा का उपदेश करने की क्षमता नहीं रखता। इसलिए मैं अहिंसा का संकुचित रूप में उपदेश करता हूं। वह देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उद्देश तक और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को शान्तिमय साधनों से नियमित करने के उद्देश तक परिमित है।

परन्तु यहां मेरी अक्षमता का कोई गलत अर्थ न समझें—उसे अहिंसा-सिद्धान्त की अक्षमता न समझ लें। वह मुझे अपनी बुद्धि में ज्वलन्त दिखाई देता है। मेरा हृदय उसपर मुग्ध है। परन्तु अभी मैं अपने जीवन में उसको इतना नहीं उतार सका हूं जितना कि अहिंसा के सार्वत्रिक और सफल प्रचार के लिए आवश्यक है। इस महान् कार्य के लिए आवश्यक प्रगति अभी मेरी नहीं हो पाई है। अभी मेरे अन्दर क्रोध मौजूद है—अब भी मेरे अन्दर द्वैत-भाव बना हुआ है। मैं उन्हें अपने अधीन रखता हूं, परन्तु अहिंसा के सार्वत्रिक और सफल प्रचार के लिए मुझे विकारों से पूर्ण रहित हो जाने की आवश्यकता है। मेरी स्थिति ऐसी हो जानी चाहिए कि कोई पाप मुझसे न बन पड़े। इसलिए क्रान्तिकारी लोग मेरे साथ और मेरेलिए ईश्वर से प्रार्थना करें कि मैं शीघ्र ही उस अवस्था को पहुंच जाऊं। परन्तु तबतक वे मेरे साथ एक कदम बढ़ें जो कि मुझे सूर्य-प्रकाश के सदृश स्पष्ट दिखाई पड़ता है; अर्थात्—भारत की स्वाधीनता बिल्कुल शान्तिमय उपायों से प्राप्त करना। और फिर आप और मैं ऐसी पुलिस-सेना रक्खेंगे जो कि शिक्षित, बुद्धिमान और नियम-पालक होगी, जो कि देश के अन्दर शान्ति की रक्षा करेगी और बाहरी आक्रमणकारियों से लड़ेगी—यदि तबतक मैं या और कोई हमें इन दोनों बातों की व्यवस्था करने का बेहतर तरीका न बता दे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

गो-रक्षा

हम एक कदम आगे बढे हैं। बम्बईवाली सभा ने माधव बाग में उस संगठन का बहुमत से स्वीकार किया है जोकि 'हिन्दी-नवजीवन' में प्रकाशित हो चुका था। उसमें चार लोगों ने खिलाफ हाथ उठाये थे। एक सज्जन ने उसके एक नियम का विरोध करना चाहा था। मैं उन्हें इजाजत न दे सका। मैं सिर्फ इतनी ही सिफारिश कर सका कि यदि सिद्धान्त का विरोध हो तो उन्हें सारे संघटन का विरोध करना चाहिए, यदि सिद्धान्त का भेद न हो तो उन्हें संघटन मन्जूर करना चाहिए। इस तरह की सभाओं में दूसरे प्रकार से काम हो ही नहीं सकता। मैं चाहता हूं कि इस निर्णय का कारण सब लोग समझ लें। यह सभा इसलिए थी कि एक संस्था का श्रीगणेश किया जाय। बिना सार्वजनिक सभा किये भी उसका श्रीगणेश हो सकता था। क्योंकि यह संघटन गो-परिषद् की नियुक्त की हुई समिति ने बनाया था और वह समिति उसे स्वीकार कर के तुरन्त अ० भा० गोरक्षण सभा का श्रीगणेश कर सकती थी। परन्तु ऐसा न करते हुए उसे अधिक महत्व देने के उद्देश से संघटन का स्वीकार करने के लिए यह सार्वजनिक सभा की गई थी। ऐसी सभा में किसी नियम-विशेष के प्रति विरोध नहीं प्रदर्शित किया जा सकता। पर हां, जो ऐसी संस्था को न चाहता हो अथवा जिसे यह संघटन न पसन्द हो तो वह सारी संस्था या सारे संघटन के खिलाफ अपनी राय जाहिर करने का हक रखता है और सभापति की हैसियत से यह हक उन विरोध करनेवाले महाशय को दिया भी था।

मेरा भाषण अन्यत्र दिया गया है। उसकी ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मेरे लिए गोरक्षा मेरा सर्वस्व है। मेरा यह मत है कि गोरक्षा जैसे महत्व-पूर्ण प्रश्न पर हमने पुख्ता विचार नहीं किया है। गोरक्षा के नाम पर प्रचलित अधर्म किस तरह रोका जा सकता है? जब मैं यह विचार करने लगता हूं तब मेरा मति कुण्ठित होने लगता है। गोरक्षा के नाम पर लाखों रुपया हिन्दू लोग देते हैं और उनकी रक्षा तो होती नहीं। जहां गोरक्षा धर्म माना जाता है वहीं गाय की कम से कम रक्षा होती है—न गाय का वध बन्द होता है, न गाय पर होनेवाले अत्याचार। वध के लिए गाय को बेचने वाले भी हिन्दू और उसपर अत्याचार करनेवाले भी हिन्दू। रक्षा के अनेक उपाय तजवीज किये जाय और उनमें से एक भी फलीभूत न हो, एक भी ऐसा नहीं जो सफल होने लायक हो, यह हालत क्या है?

इस अ० भा० संस्था को उसका विचार करना होगा। पर विचार करेगा कौन? सभापति, या मन्त्री, या समिति? इस विचार के लिए अध्ययन की आवश्यकता है। गाय की क्या दशा है? बैल की कैसी हालत है? उनकी संख्या कितनी है? वे सचमुच भारतवर्ष में भाररूप हैं या उनका उपयोग होता है? वध के कारण क्या है? दुर्बलता के कारण क्या है? ऐसे अनेक प्रश्नों का विचार करना होगा।

इतना समय कौन दे? ऐसी दिलचस्पी कौन ले? बिना दिलचस्पी के काम किस तरह हो सकता है? इसीलिए मैंने कहा था कि गोरक्षा के लिए तपश्चर्या, संयम, अध्ययन इत्यादि की आवश्यकता है। इसलिए जो लोग, मां सदस्य होना चाहते हों उनसे मैं केवल धन की ही आशा नहीं रखता हूं, बल्कि विचार और अध्ययन की भी आशा रक्खूंगा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

'मूर्ति-पूजक' और 'भंजक'

अपने एक भाषण में मैंने प्रसंगोपात्त कहा था कि मैं मूर्ति-पूजक हूं पर मैं मूर्तिभंजक भी हूं। मेरा वह भाषण यदि पूरा छापा गया होता तो इसका अर्थ अच्छी तरह समझ में आने लायक था। मैंने भाषण की रिपोर्ट देखी नहीं है। एक सज्जन उनको उद्धृत करके लिखते हैं—

"मुझ जैसे लोग कि जिनकी श्रद्धा मूर्तिपूजा से उठ गई है, पर फिर भी कितनी ही बार मूर्ति-पूजा के रूप को, (जिस तरह कि मृत पिता के चित्र या मृत मित्र के पत्र को) आदर की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें आप इन शब्दों का अर्थ समझा कर यदि मार्ग-सूचक होंगे तो बड़ा उपकार होगा।"

यहां मूर्ति शब्द के अर्थ जुदे जुदे हैं। मूर्ति का अर्थ यदि बुत लिया जाय तो मैं मूर्तिभंजक हूं। मूर्ति का अर्थ यदि ध्यान करने अथवा मान प्रदर्शित करने या स्मृति कराने का साधन लिया जाय तो मैं मूर्ति पूजक हूं। मूर्ति का अर्थ केवल आकृति ही नहीं। जो एक पुस्तक की भी पूजा आंखें मूंद कर करते हैं वे मूर्तिपूजक अथवा बुतपरस्त हैं। बुद्धि का प्रयोग किये बिना, सारासार विवेक के बिना, अर्थ की छान-बीन किये बिना, वेद में जो कुछ लिखा है सबको मानना मूर्तिपूजा है और इस लिए बुत परस्ती है। जिस मूर्ति को देखकर तुलसीदास पुलकित-गात्र होते, ईश्वरमय बनते-राममय बनते उसका पूजन करने से वे शुद्ध मूर्तिपूजक थे और इसलिए वन्दनीय तथा अनुकरणीय हैं।

जितने वहम हैं—अन्ध विश्वास हैं, सब बुतपरस्ती अथवा निन्द्य मूर्तिपूजा है। जो हर तरह के रिवाज को धर्म मानते हैं वे निन्द्य मूर्तिपूजक हैं। अतएव ऐसी जगह मैं मूर्तिभंजक हूं। मैं शास्त्र के प्रश्न देकर असत्य को सत्य, कठोरता को दया, वैरभाव को प्रेम बताकर नहीं दिखा सकता; इसलिए और इस तरह मैं मूर्तिभंजक हूं। दुनियवी या क्षेपक श्लोक बताकर अथवा धमकी देकर अस्पृश्यों का तिरस्कार या त्याग या उसकी अस्पृश्यता मुझे कोई नहीं सिखा सकता, इसलिए मैं अपनेको मूर्तिभंजक मानता हूं। मां-बाप की अनीति को भी अनीति के रूप में देख सकता हूं और इस देश पर अथाह प्रेम होते हुए मैं इस के भी दोष खोल कर बता सकता हूं और इसलिए मैं मूर्तिभंजक हूं।

मेरे दिल में वेदादि के प्रति पूरापूरा और स्वाभाविक तौरपर आदरभाव है। मैं पाषाण में भी परमेश्वर को देख सकता हूं। साधु पुरुषों की प्रतिमाओं के प्रति मेरा मस्तक अपने आप झुकता है, इसलिए मैं अपने को मूर्तिपूजक मानता हूं।

इसका अर्थ यह कि गुण-दोष बाह्य कार्य की अपेक्षा आन्तरिक भाव में विशेष रूप से होता है। किसी भी कार्य की परीक्षा कर्ता के भाव से होती है। उसी माता का सविकार स्पर्श पुत्र को नरकवास प्राप्त कराता है, उसी माता का निर्विकार स्पर्श पुत्र को स्वर्ग पहुंचाता है। द्वेषभाव से चलाई छुरी प्राण लेती है, प्रेम-भाव से लगाई छुरी प्राण लाती है। बिल्ली के वही दांत चूहे के लिए घातक होते हैं पर अपने बच्चों के रक्षक होते हैं।

दोष मूर्ति में नहीं है दोष ज्ञान-हीन पूजा में है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ० ३ ० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०-४-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी। वी. पी. का नियम नहीं है। व्यवस्थापक- -हिन्दी-नवजीवन

बंगाल के संस्मरण

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का [illegible]
एक प्रति का [illegible]
विदेशों के लिए [illegible]

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४०

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, वैशाख सुदी ६, संवत् १९८१ गुरुवार, १४ मई, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

अन्त्यज साधु नंद

[नंद की यह कथा दक्षिण के साहित्य से भाई महादेव ने सार-रूप में ली है। मैं चाहता हूं कि सब इसे अनुराग के साथ पढ़ें। किसीको यह समझने की जरूरत नहीं कि यह कथा कपोल-कल्पना मात्र है। हां, संभव है उसमें अत्युक्ति आ गई हो। परन्तु नंद नामक एक साधुचरित अन्त्यज छः सौ साल पहले दक्षिण में हुआ था। उसने अपने चारित्र्य-बल के द्वारा मन्दिर में जाने का अधिकार प्राप्त किया; और आज भी उसकी पूजा हिन्दुओं के यहां अवतारी पुरुषों में होती है [illegible] इसपर तो सन्देह किया ही नहीं जा सकता। नंद की यह पवित्र कथा हमें शिक्षा देती है कि यद्यपि जन्म कर्म का फल है [illegible] पुरुषार्थ नामक वस्तु विधाता ने हमारे लिए रख ही छोड़ी है, और नंद जैसा अन्त्यज चारित्र्य-बल पर इसी जन्म में पवित्र [illegible] और पवित्र माना [illegible] ब्राह्मणों ने प्रेम के साथ उसे अपनाया। यदि नंद इसी जन्म में पवित्र हो सका तो हमें यह [illegible] चारा नहीं कि सब लोगों में यही शक्ति है। इसलिए हर अन्त्यज को पूजा के लिए हमारे मन्दिरों में प्रवेश करने का अधि[illegible] होना चाहिए।

मैं आशा रखता हूं कि कोई यह उज्र पेश न करेंगे कि नंद ने तो अग्नि-प्रवेश किया था और ऐसा कर के अन्त्यज लोग शौक से मन्दिरों में जावें। अग्नि-प्रवेश की बात काव्य है। यदि सच मानें तो भी वह हुआ नंद की इच्छा से। बहुतेरे ब्राह्मण तो नंद को स्नान-मात्र कराकर मन्दिर में दर्शन करने देने के लिए तैयार थे। इस कथा से हमें यही सार ग्रहण करना चाहिए कि अन्त्यज अपने पुरुषार्थ से इसी जन्म में पवित्र हो सकता है। अर्थात् जिस शर्त पर दूसरे हिन्दू मन्दिर में जा सकते हैं उसी शर्त पर अन्त्यज को भी मन्दिर में जाने की आजादी होनी चाहिए।

यह तो हुई हिन्दू कहलाने वालों से।

अन्त्यजों को तो नंद की कथा प्रोत्साहन देने वाली है, उन्हें पावन करने वाली है। मैं चाहता हूं कि हर अन्त्यज के घर में इसका पाठ हो। पर केवल पढ़ कर ही वे सन्तुष्ट न हो जायं। जो बात नंद ने की है उसे प्रत्येक अन्त्यज कर सकता है। नंद की पवित्रता प्रत्येक अन्त्यज में दिखाई दे। उसका धीरज, उसकी क्षमा, उसका सत्य, उसकी दृढ़ता भी उनमें आवे। नंद सत्याग्रह की मूर्ति था। नंद ने नास्तिकों को आस्तिक बनाया। प्रत्येक अन्त्यज नंद का आख्यान पढ़कर अपने दोषों को दूर करने के लिए उत्सुक और समर्थ हो।

मो० क० गांधी]

१

इस बार दक्षिण-यात्रा में जगह जगह नंद साधु की कथा सुनी — पहले तो श्री राजगोपालाचार्य की जबानी और फिर औरों के मुंह से। स्थान स्थान पर प्रचलित कथाओं का दोहन करके श्री माधवय्या ने एक पुस्तक लिखी है। उसीके आधार पर यह वृत्तान्त यहां दे रहा हूं।

नंद के जन्म का समय निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कहते हैं, छः सौ साल पहले तंजावर जिले के आदनूर गांव में अन्त्यज माता-पिता के घर उसका जन्म हुआ। उसके माता-पिता की जाति थी 'पराया'। 'पराई' का अर्थ है ढोल और 'पराया' यानी ढोल बजानेवाली अस्पृश्यों की जाति। अस्पृश्यों की यह एक अन्त्यज नीच जाति मानी जाती है।

इनके मुहल्लों की, घर की और जीवन की कथा क्या कहें? जैसा भंगी और चमारों का जीवन होता है वैसा ही इनका समझिए। जितना घिनौनापन यहां देखा जाता है उतना ही वहां भी समझ लीजिए। भंगी चमार जिस तरह मुरदार मांस खाते हैं उसी तरह पराया भी खाते हैं और शराब पी कर अपने दुखी जीवन का दुख भूलते हैं। पराया तो गो-मांस भी खाते हैं, इससे वे और भी हीन माने जाते हैं।

नन्द पढ़ा-लिखा तो कहां से हो! और लड़कों की तरह वह पशु चराता था। परन्तु एक दो बातें उसमें अ-साधारण थीं। बालपन में मृत्तिका की देवी-देवताओं की मूर्ति बना कर, उनकी पूजा करने का शौक उसे था। और उसके सगे-संबन्धी जब अपने देवों को प्रसन्न करने के लिए बकरों या मुर्गों का बलिदान करते

तब उनकी कातर चीत्कारों से नन्द का हृदय फटने लगता और उसकी आंखों से आंसू बहने लगते । वह मांस खाता था। परन्तु पशु को कटता हुआ वह अपनी आंखों न देख सकता था ।

नन्द ने एक नन्हासा मेमना पाल रक्खा था । नन्द जहां जाता वहीं वह भी जाता । नन्द उसे कोमल पत्तियां खिलाता, पानी पिलाता और नचाता । एक बार नन्द को बासी गो-मांस खाना पड़ा इससे उसे जोर का बुखार आया । जितने दिनों तक नन्द बिछौने में पड़ा रहा उतने दिनों तक वह मेमना उसके पास बैठे बैठे में में करता रहा । अन्त को नन्द चंगा हुआ । उसकी मा ने गांव की कटेरी नामक देवी से मनौती मनाई थी कि नन्द चंगा हो जायगा तो माता को बकरा चढाऊंगी । जिस दिन यह मनौती की उसी दिन से नन्द अच्छा होने लगा । इससे माता का विश्वास मिन्नत पर दृढ हो गया । नन्द के चंगा होने पर बकरा चढाने का सवाल खड़ा हुआ । बकरे खरीदने के लिए रुपया घर में था नहीं और नन्द के मेमने को चढावें किस तरह ? पर इधर मनौती पूरी न हो और माता रुष्ट हो जाय तो ? इसलिए सुबह नन्द के उठने के पहले ही माता-पिता उस मेमने को ले जा कर देवी को चढा आये। नन्द की जिन्दगी में उसे यह पहला भयंकर आघात पहुंचा । कई दिनों तक नन्द अपने प्यारे मेमने के लिए रोया करता। एक दिन उसने अपना शोक-भार हलका करने के लिए अपनी मां से कितनी ही बातें पूंछी । नन्द के मां-बाप एक ब्राह्मण के खेत में मजूरी करने जाया करते । नन्द ने पूछा—

'क्यों अम्मा, हमारे ब्राह्मण मालिक का लड़का जब बीमार पड़ता होगा तब वे लोग क्या करते होंगे ? बकरा काटते होंगे ?'

'नहीं नहीं, वे तो दवा-दरपन करते हैं अथवा मन्दिरों में प्रार्थना करते हैं । वे कहीं बकरे काटते हैं ! वे बहुत हुआ तो नारियल चढाते हैं !'

'तब फिर हम किसलिए बकरे और मुरगे चढाते हैं !'

'बेटा, उनके देव जुदे हैं, हमारे देव जुदे हैं । हमारे देव तो भयंकर होते हैं। खून लिये बिना वे तृप्त नहीं होते।'

'पर हम भी ब्राह्मण की तरह मंदिरों में जा कर प्रार्थना करें तो !'

'पागल तो नहीं हुआ ? हम कहीं मंदिरों में जा सकते हैं ? हम भला उनकी तरह प्रार्थना कैसे कर सकते हैं ! हम गोमांस खाते हैं, मुरदार मांस खाते हैं, शराब पीते हैं । अरे, हम तो उनके मकान के पास तक नहीं जा सकते, फिर मन्दिर की तो बात ही दूर है ।'

नन्द की शंका का समाधान न हुआ, पर उसने अपने मन के साथ इतना निश्चय जरूर कर लिया कि अब अगर बीमार पड़ा तो माता-पिता को खबर ही न करूंगा और यदि हो सके तो ब्राह्मणों के देव की प्रार्थना करूंगा । पर उसकी मां के वचन कि 'हमारा जीवन ऐसा बदतर है, हम ऐसे पापी हैं, हम ब्राह्मणों के देव की प्रार्थना किसतरह करें ?' उसके दिल से हिलते न थे। नन्द जानता था कि खेत पर जिस कुए से उसका मालिक पानी लेता था उससे वे नहीं ले पाते थे, गंदले तालाब से पानी लाना पड़ता था । मालिक का लड़का भी कैसा साफ-सुथरा और सुहावना मालूम होता था ? नन्द को याद आया कि मेरे मां-बाप तो शराब-ताड़ी पी कर घर में लड़ते भी हैं, मालिक-मालकिन तो ऐसे साफ-सुथरे नजर आते हैं कि कभी लड़ते-झगड़ते न होंगे । उसके मन में यही विचार घुटता रहता था कि हम इतने गंदे रहते हैं इसीसे ब्राह्मणों के देव हमारी प्रार्थना क्यों सुनने लगे ? अन्त को उसने निश्चय किया कि ताड़ी-शराब न पीऊंगा— मांस न खाऊंगा । पर यदि मांस न खाय तो किसी दिन भूखा रहना पड़ता, और दूसरा कुछ खानेको न मिलता । इसीलिए उसने इतनी छूट रक्खी कि मांस तभी खाऊंगा जब और कुछ खाने को न मिलेगा । इस संकल्प के बाद भी नंद विचार तो करता ही रहता—'ब्राह्मणलोग बाहर से इतने साफ-सुथरे और सुघड़ नजर आते हैं, क्या उनका खून और हड्डियां भी हम से अलग किस्म की होंगी ? अलहदा रंग की होंगी ? ये ब्राह्मण क्यों जन्मे और हम पराया क्यों जन्मे ? ताड़ी-मांस छोड़ने के बाद भी क्या देवताओं का प्रीति-पात्र बनने और ब्राह्मण जैसा होनेके लिए, जैसा कि अम्मा कहती है, हजारों जन्म की जरूरत होती होगी ? अम्मा कहती है, ब्राह्मणों के कर्म कैसे, और हमारे कर्म कैसे ? तो हम ऐसे कर्म किस तरह कर सकते हैं ?'

एक दिन नंद ढोर चरा रहा था । वहां से कुछ दूर कुछ ब्राह्मण-बालक गुल्ली-डण्डा खेल रहे थे । इनमें एक नंद के मालिक का लड़का भी था। एक बार गुल्ली नंद के पास आ कर पड़ी । पर नन्द जानता था कि मैं इसे छू नहीं सकता । मालिक का लड़का दौड़ता हुआ आया। नंद ने उसे गुल्ली दिखाई। लड़का उसे ले कर दौड़ा । और दौड़ते हुए गिर पड़ा। पत्थर से उसका घुटना छिल गया। खून बहने लगा। नन्द उसके पास दौड़ गया। लड़का उठ नहीं सकता था । पर नन्द मदद कैसे कर सकता था ? मालिक के बेटे ने नोकर के बेटे से कहा—'भाग यहां से कुत्ते ! मेरे पास क्यों आया है ! मुझे छूना चाहता है !' यह कह कर उसने एक पत्थर नन्द पर फेंका । पत्थर नन्द की कनपुटी पर लगा। खून निकलने लगा और वह गश खा कर गिर पड़ा। दूसरे लड़के आ कर उस मालिक के लड़के को उठा ले गये; पर नन्द को कौन उठा ले जाता ? थोड़ी देर में कनपुटी को हाथ से दबा कर तालाब पर गया, मुंह धोया और घर चला गया । नन्द ने यह पहली बार मनुष्य का खून देखा । ब्राह्मण और पराया दोनों के खून में तो फर्क था ही नहीं, पर पशु के खून में भी फरक न मालूम हुआ । और जिस तरह पशु चीख मारते हैं उसी तरह ब्राह्मण के बालक ने भी चीख मारी थी ! तब फिर ब्राह्मण के कर्म और पराया के कर्म में फर्क क्या रहा ? और मैं तो प्रेम और दया से मालिक के लड़के की ओर दौड़ता हुआ गया; पर उसने तो उल्टा निर्दय हो कर पत्थर मारा, यह क्या बात है ? ब्राह्मण के लड़के इतने बे-रहम होते होंगे ? और ऐसे ब्राह्मणों की प्रार्थना तो देव सुनता है और पराया की नहीं ? यह नई विचारश्रेणी नन्दको असमंजस में डालने लगी ।

२

नंद अब बड़ा हुआ और, जितनी बातें वह समझता था उनका प्रचार करने लगा । बीमार हों तो पशु का बलिदान हरगिज न करने देना, ताड़ी शराब न पीना, मांस न खाना । ये बातें अपने साथियों से कहने लगा । इसी अरसे में आधनूर के पराया लोग काली देवी को भैंसा चढ़ाकर खूब मांस खाकर आये । भैंसा था बीमार, इससे बीमारी हुई और कितने ही मर गये। अब रोग फैला और बहुतेरे लोग मरने लगे । इस सपाटे में नंद का बाप भी आ गया । शोक में डूब जाने की अपेक्षा नंद ने सेवा-संघ खड़ा किया और घर घर जाकर सेवा-शुश्रूषा करने, शव को श्मशान में ले जाकर दाह—कर्म आदि करने की तजवीज करने लगा। पर इस सेवा से प्रसन्न होने के बदले गांव के बूढ़े-बड़े उलटा बिगड़े। वे कहने लगे-यह नंद बकरे और भैंसे नहीं काटने देता है । इसीसे देवी इतनी नाराज हुई है ।

परन्तु इतने ही में नंद भी बीमारी के चपेट में आ गया। बूढ़े बड़े खुश हुए। उससे कहने लगे—देवी को भरपेट बलिदान

दे कर खुश कर। उसकी माँ भी कहने लगी 'तेरे बाप भी तेरे पाप के बदौलत चल बसे और तू भी जायगा। जिद न कर, मिन्नत मनाने दे।' पर नंद का निश्चय निश्चल था। वह कहता—'बकरा काट कर ही यदि जी सकते हों तो जीने के बदले मरजाना क्या बुरा है? नंद के साथी भी चिंतित हुए। नंद मर जायगा तो फिर पीछे काम किस तरह चलेगा? और कुछ नहीं तो भविष्य में काम करने के लिए ही नंद को जीना चाहिए। इस तरह वे आपस में बातें करने लगे। नंद ने उन्हें समझाया कि ईश्वर हमारी परीक्षा कर रहा है। मरते दम तक जब निश्चय न छोड़ें तभी हम मनुष्य हैं, तभी हमारे निश्चय का मूल्य है। तुम सब मेरे लिए ईश्वर से प्रार्थना करो, बस मैं जी जाऊंगा। तुम लोगों की प्रार्थना से यदि मैं जी गया तो तुम सिद्ध कर सकोगे कि बकरों के बलिदान से नहीं, बल्कि तुम्हारी प्रार्थना के बल पर जी उठा हूं।

अब उन लोगों को हिम्मत आई। वे शिव शिव पुकारने लगे और प्रार्थना करने लगे। दूसरी ओर बड़े-बूढ़े भी अपनी करतूत कर रहे थे। वे नंद की मा को समझाने लगे। वह बेचारी भोली-भाली, उनके चक्कर में आगई, कहने लगी रुपये तो घर में हैं नहीं, हां, कुछ बरतन हैं, सो ले जाओ और बकरे खरीद लाओ। नहीं तो मेरा बच्चा मर जायगा।

नंद ने एक रात बिछौने पर पड़े पड़े भजन किया। एक क्षण भी नींद न लिये बिना किये उस भजन के फलरूप उसे पासके शिवपकर मंदिर के देव आकर उसके मस्तक पर हाथ रक्खे हुए दिखाई दिये। नंद के आनन्द का ठिकाना न रहा। सुबह वह भला चंगा हो गया, और दो ही दिनमें घूमने-फिरने लगा। उसके साथियों ने हरहर महादेव के हर्षनाद से सारा गांव गुंजा मारा।

(अपूर्ण)

जाति 'बंधन'

जातियों को मैंने इस बात के लिए मान्य किया है कि वे संयम की वृद्धि में सहायक हैं। परन्तु आजकल जातियां संयम-रूप नहीं बल्कि बंधन-रूप दिखाई देती हैं। संयम मनुष्य को सुशोभित करता है और स्वतन्त्र बनाता है। बंधन एक तरह की बेड़ी है। आजकल जाति का जो अर्थ होता है वह कुछ वाञ्छनीय और शास्त्रीय नहीं। जिस अर्थ में आज उसका प्रयोग होता है उस अर्थ में शास्त्र जाति-शब्द को नहीं पहचानता। हां, वर्ण हैं, पर वे चार ही हैं। लेकिन अब तो इन अगणित जातियों में भी तड़ पड़ गये हैं और बेटी-व्यवहार बंद होता हुआ दिखाई देता है। ये लक्षण उन्नति के नहीं, अवनति के हैं।

ये विचार नीचे लिखे पत्र को पढ़ कर पैदा हो रहे हैं—

"आप जहां एक ओर सब जातियों को एकत्र करने का उपदेश करते हैं, तहां हमारी जाति में साधारण सभापति जैसे पद की बात में जाति-भाइयों का मत-भेद इस हद तक पहुंच गया है कि जाति-सभा में कुश्तम-कुश्ता करने तक की नौबत आ जाती है।"

हमारी जाति लाड कहलाती है। उसमें खंभाती, आम्री, दमणी, पेटलादी और सुरती तथा अन्य लाड बन्धुओं का समावेश होता है। बेटी-व्यवहार पहली चार श्रेणियों में है। पिछले ३० से ३० वर्ष में सभापति का चुनाव पहली ४ श्रेणियों में ही होता आया है और होता है। इस साल जाति-सभा में एक ऐसा प्रस्ताव पूर्वोक्त ४ श्रेणियों की तरफ से लाया गया था कि सभा-पति तथा मंत्री होने का हक सिर्फ उन्हीं लोगों को है जो बेटी-व्यवहार तथा बंबई की लाड-जाति कि सर्वोपरि सत्ता को मानते हैं इसपर सूरत के लाड-भाइयों को बड़ा बुरा मालूम हुआ और कोई २५०-३०० लोगों ने दस्तखत कर के कमिटी को अपना वक्तव्य भेजा था। परन्तु कमिटी अभीतक किसी बात का निर्णय न कर सकी। फिलहाल तो वायुमण्डल इतना खराब हो गया है कि यदि जाति में तड़ पड़ जायं और अदालत में भी मामला जाय तो आश्चर्य नहीं।"

यह खबर यदि सच हो तो दुःखद है। फिर अध्यक्ष-पद और मन्त्रि-पद के लिए झगड़ा किस बात का? सुरती, आम्री, दमणी, इत्यादि भेद किसलिए? लाड-युवक-मंडल की सभा में जब मैं गया था तब मेरे दिल पर अच्छी छाप पड़ी थी। सभापति-पद सेवा के लिए होता है मान के लिए बिलकुल नहीं। मन्त्री तो समाज का नौकर होता है। इस स्थान के लिए यदि स्पर्धा हो भी तो वह मीठी होनी चाहिए। वणिकमात्र को मिलकर एक जाति क्यों न हो? ऐसा धर्म कहीं नहीं समझा गया कि वणिकजाति में कन्या का लेन-देन नहीं हो सकता। मैं उपजातियों को जो कुछ हद तक मानता हूं उसका कारण केवल समाज की सुविधा है। पर जब पूर्वोक्त घटनाओं का अनुभव होता है तब यही विचार उठता है कि जान-बूझ कर ऐसे बंधनों को तोड़ कर उनसे मुक्ति प्राप्त करें और करावें।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

बाल की खाल निकालना

उस दिन एक महासभावादी मुझसे मिले थे—पर उनके बदन के सब कपड़े खादी के न थे। मैं उनको बड़े आदर की दृष्टि से देखता हूं और वे तो तत्त्वनिष्ठा के बड़े कायल भी हैं। मैंने तो समझा था कि वे सब कपड़े खादी के ही पहने हुए थे। पर जो लोग उन्हींके नगर में रहते थे वे उनको ज्यादह जानते बूझते थे। वे मुझसे कहने लगे, 'साहब, जरा इनको समझाइए कि वे महासभा के प्रस्ताव का तो पालन करें।' उन महाशय ने साफ शब्दों में स्वीकार किया कि मेरे बदन पर सब कपड़े खादी के नहीं हैं—पर यह उज्र पेश किया कि इस समय मैं आपसे मिलने आया हूं—महासभा के काम के लिए नहीं आया हूं। यह बाल की खाल खींचना था। खासकर एक तत्त्वनिष्ठ मनुष्य के मुंह से ऐसी बात सुनने के लिए मैं तैयार न था। उनके साथ मेरा कोई खानगी ताल्लुक न था। वे मुझसे सार्वजनिक मामलों में बातें करने आये थे और इसलिए मैंने कहा—मुझसे मिलने के लिए आना महासभा का या सार्वजनिक कार्य नहीं तो और क्या है? पर उन सज्जन ने, इसके खिलाफ, कहा—नहीं मैं तो आपसे मिलने के लिए आया हूं महासभा के काम पर नहीं। तब मैंने उनसे कहा कि ऐसे बाल की खाल निकालने से ही स्वराज्य के आने में देरी हो रही है। मेरी राय में महासभा का प्रस्ताव अपवाद रूप में महासभा के सदस्य को यह छुट्टी देता है कि वह अवस्था-विशेष में खादी न पहनने पर भी महासभा का सदस्य बना रह सकता है। उसके द्वारा कोई [illegible] खादी पहनने के बंधन से मुक्त नहीं हो सकता। [illegible] के लोग खादी न पहनने के पक्ष में ऐसे सूक्ष्म भेद प्रभेद खोजने लगेंगे तो जन-साधारण के लिए खादी पहनने को तैयार होना असंभव होगा जबतक कि खादी विदेशी मलमल से ज्यादह सस्ती न हो जाय और आसानी से न मिल सके। व उम्मीद तो यह रखते हैं कि हमारे नेता लोग पूरी दौड़ दौड़ें जिससे कि उन्हें चौथाई दौड़ दौड़ने की हिम्मत आ जाय।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी ६, संवत १९८२

बंगाल के संस्मरण

देशबन्धु का महल

फरीदपुर से लौटकर सोमवार को ये संस्मरण मैं लिख रहा हूं। देशबन्धु दास के पुराने महल की छत पर बैठा हुआ हूं। बंगाल में आये आज मुझे चार रोज हुए हैं। परन्तु इस महल में मेरे दिल को पहले-पहल जो चोट लगी वह अभीतक मुझे छोड नहीं रही है। मैं जानता था कि यह मकान देशबन्धु ने सार्वजनिक काम के लिए दे दिया है। मुझे पता था कि उनके सिर पर कर्ज था। पर उसके साथ ही मुझे इस बात का भी ज्ञान था कि वे यदि वकालत करें तो थोडे ही समय में वह कर्ज अदा करके अपने महल पर कब्जा कर सकते हैं। पर उन्हें वकालत तो करनी थी नहीं, या यों कहें कि वे तो बिना फीस लिये देश की वकालत करना चाहते थे। इसलिए महल के सदृश मकान को दे डालने का ही निश्चय उन्होंने किया और उसका कब्जा ट्रस्टियों को दे दिया। उनकी इच्छा थी कि इस यात्रा में मैं कलकत्ते में तो उन्हींके इसी पुराने मकान में ठहरूं। इसीसे यहां आ कर रहा हूं।

परन्तु जानना बात एक है, और देखना बात दूसरी है। घर में प्रवेश करते समय मेरा हृदय रो उठा। आंखें छलछला उठीं। इस महल के मालिक के बिना और उनकी मालिकी के बिना वह मुझे जेलखाना मालूम हुआ। उसमें रहना मुश्किल हो गया। और अभीतक इस भाव का प्रभाव मुझपर बना हुआ है।

मैं जानता हूं कि यह मोह है। मकान का कब्जा दे कर देशबन्धु ने अपने सिर से एक बोझ कम किया है। उस मकान से जिसमें ये दम्पति न जाने कहां खो जाय, उन्हें क्या लाभ?

यदि वे मन में लावें तो झोंपडी को राजमहल बना सकते हैं। दोनों ने स्वेच्छा से उसे त्यागा है। इसपर खेद किसलिए? यह तो हुई ज्ञान की बात। यह ज्ञान यदि मुझे न हो तो मुझे आज से ही महल बनाने का उद्यम शुरू करना पडे।

परन्तु देहाध्यास कहीं जाता है? संसार कहीं दास की तरह करता है? दुनिया तो यदि महल हो तो उसे चाहती है। पर इस पुरुष ने उसका त्याग कर दिया। धन्य है इसे! मेरे आंसू प्रेम के हैं। चोट भी यह प्रेम ही लगाता है। और स्वार्थ क्यों न हो? यदि देशबन्धु के साथ मेरा कुछ भी संबंध न होता, इस मकान में उनके राज्य करने की बात मैंने न सुनी होती तो यह आघात न पहुंचता। बहुतेरे महल ऐसे हैं, जिनके मालिक उन्हें छोडकर दुनिया से ही चले गये हैं। परन्तु उनमें प्रवेश करते हुए आंखों से आंसू नहीं गिरे। इसलिए यह रोना स्वार्थ-मूलक भी है।

चित्तरंजन दास ने महल को परित्याग भले ही किया हो; पर उनकी सेवा की कीमत बढ गई है।

दीवाने बंगाली

बंगाली लोग दीवाने हैं। जिसतरह दास दीवाने हैं उसीतरह प्रफुल्लचन्द्र राय भी दीवाने हैं। जब वे मंच पर व्याख्यान देते हैं तब मानों नाचते हैं। कोई नहीं मान सकता कि वे ज्ञानी हैं। हाथ पछाडते हैं, पैर पछाडते हैं। जैसा जी चाहता है अपनी भूल जाते हैं। अपने विचार के आवेश में ही मग्न होते हैं। इस बात की शायद ही परवा हो कि लोग हंसेंगे, या क्या कहेंगे। जबतक उनकी बातें न सुनें, उनकी आंख से अपनी आंख न मिलावें तबतक उनकी महत्ता का कुछ भी पता हम नहीं लगा सकते। मुझे याद है कि जब मैं कलकत्ते में गोखले के साथ रहता था और आचार्य राय उनके पडोसी थे, तब एक समय हम तीनों स्टेशन पर गये थे। मेरे पास तो अपने तीसरे दरजे का टिकट था। ये दोनों मुझे पहुंचाने आये थे। तीसरे दरजे के मुसाफिरों को पहुंचानेवाले तो भिखारी ही हो सकते हैं। परन्तु गोखले का भरा हुआ चेहरा, रेशमी पगडी रेशमी किनारी की धोती, उनके लिए टिकट-बाबू की दृष्टि में काफी थी। परन्तु यह दुबला पतला ब्रह्मचारी, मैलासा कुरता पहना हुआ, भिखारी जैसा दिखाई देनेवाला। इसे बिना टिकट कौन अन्दर जाने देने लगा? मेरी याद के मुताबिक वे बिना टिकट के बाहर खडे रहे। और मेरे लगातार भरे डब्बे में किसी तरह घुसने पर मेरी हठधर्मी की टीका करते हुए गोखले अपने साथी से जा मिले। आचार्य राय क्यों बहुसंख्यक विद्यार्थियों के हृदय में साम्राज्य करते हैं? वे भी त्यागी हैं। और अब तो हो गये हैं खादी--दीवाने। शिक्षा-विभाग की एक बंगालिन अधिकारी से यह कहते हुए उन्हें जरा संकोच न हुआ — 'आप खादी न पहनें तो किस काम की?' ऐसा न करें तो उनके खुलना के भिखारियों की बनाई खादी को कौन खरीदेगा?

उसी रात को हम फरीदपुर रवाना हुए। भाई शंकरलाल ने मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सतीश बाबू को बहुत डरा रखा था। वे मेरे लिए क्या क्या न करते? वे भी तो इन्हीं दीवानों के दल के हीं न? छोटी से छोटी बातों की पूछताछ कर रखी थी। मेरी पीठ को आराम देने के लिए जहां बैठूं वहां एक पीढिया तैयार रहती थी। यह भी खादी और बे-कीमत। यह तो बरदाश्त हो सकता है। पर स्टेशन पर जो पहुंचते हैं तो मेरे और मेरे साथियों के लिए पहले दरजे का सलून तैयार। इसमें फरीदपुर के स्वागत-मण्डल का भी हिस्सा था। अभी हाल ही एक ने 'य. इं.' में पूछा था — आप अमीर हैं या गरीब? मानों बंगाल इसका जवाब ही न दे रहा हो? मैंने पूछा — दूसरा दरजा मेरे आराम के लिए काफी न समझा गया, इसलिए क्या इस पहले दरजे की तजवीज हुई? जवाब मिला — 'पर हमने तो दूसरे दरजे का किराया दे कर पहला दरजा हासिल किया है।' किन्तु इससे कहीं मुझे सन्तोष हो सकता है? मेरे सूत्र के अनुसार तो अनुचित वस्तु कोई मुफ्त भी दे तो हम उसे नहीं इस्तमाल कर सकते। यदि कोई मूर्ख या दीवाना मुझे हीरे की माला मुफ्त पहनावे तो मुझे उसे पहनना चाहिए? मेरे साथ रहनेवाले मेरे साथी जो लेखक का काम करते हैं और समय पर पाखाना भी साफ करते हैं— क्या वे भी मुझ जैसे ही नाजुक-बदन? ऐसे कि उनके लिए भी दूसरे दरजे के भाव से पहला दरजा लें? फिर यह काम रेलवे-विभाग की मेहरबानी के बिना नहीं हो सकता। ऐसा निजी एहसान हम क्या सकते हैं? इसमें मुझे प्रेम का पागलपन और अतिशयता ही दिखाई दी।

अब इसका उपाय करना मेरी तरफ रहा। हरि करें सो सही।

परन्तु यह पागलपन एकतर्फा न था। हम फरीदपुर जाने के लिए रात को रवाना हुए। मैंने समझा था कि रास्ते में मुझे खूब शान्ति मिलेगी और मैं अपनी नींद की भूख को तृप्त कर सकूंगा। पर यह होनहार न था। 'आलो, आलो' तथा दूसरे शोरगुल से नींद मुश्किल से ही आ पाई। गाडी भी प्रायः हर

की पुकार। मैंने तो निश्चय कर रक्खा था कि रात को 'दर्शन' बंद। सो मैं पड़ रहा। पर नतीजा क्या? मेरे साथी भी लोगों को बहुत समझाते थे। ज्यों ज्यों वे समझाते थे त्यों त्यों लोग और ज्यादह उमड़ते थे। 'वन्देमातरम,' 'महात्मा गांधी की जय' 'आलो आलो' का घोष एक के बाद एक ऊंचा चढ़ता जाता था। 'आलो' कहते हैं बत्ती को। डब्बे की बत्ती बुझा दी गई थी। लोग बत्ती जलवा कर अन्त को मुझे सोता हुआ ही देख लेना चाहते थे। इस तरह लगभग फरीदपुर पहुंचने तक हर स्टेशन पर दर्शन हुई। मैं प्रार्थना कर रहा था—'हे ईश्वर! इस प्रेम से मुझे छुड़ा।'

फरीदपुर पहुंचने पर वहां तो भीड़ बहुत ही थी। पर वहां का प्रबंध सब मिलाकर अच्छा था। स्वागत-मण्डल के अध्यक्ष बाबू सुरेन्द्र विश्वास ने लोगों को समझा-बुझा रक्खा था कि शुल-गपाड़ा न मचावें और भीड़ में धुसधक्का न करें। और उतरने की जगह ही मोटर तैयार रक्खी थी, जिससे बिना दिक्कत नगर में पहुंच गये।

नुमाइश

ठहरने के मुकाम पर पहुंचने के पहले नुमाइश को खोलने की क्रिया मेरे हाथों होनेवाली थी। नुमाइश में सरकारी कृषि विभाग से अनाज के बीज आदि की मदद ली गई थी। परन्तु मुख्य भाग था खादी का ही। विश्वास बाबू का निश्चय था कि हाथ कते सूत, ऊन या रेशम के सिवा कोई कपड़ा प्रदर्शिनी में न लाया जाय। इससे उसमें खादी-विभाग को खूब सहायता मिली। लोगों का ध्यान उसकी तरफ ज्यादह से ज्यादह गया और मिल के कपड़े के साथ मुकाबला करने की जरूरत न रही। खादी में महीन कपड़ा भी बहुत दिखाई दिया। महीन सूत का ढेर भी खूब था। दो जने कुरसी पर बैठकर कातते थे। दोनों को सूत लपेटने की क्रिया अलहदा न करनी पड़ती थी। जैसे जैसे सूत निकलता था वैसे ही सिरे पर लिपटता जाता था। इस चरखे से फी घण्टा ज्यादह सूत निकलता हुआ तो न दिखाई दिया; पर एक क्रिया कम करनी पड़ती थी। और चक्र पांव से चलता था, इसमें दोनों हाथ खाली रहते थे।

सिरामपुर के सरकारी कारखाने से करघे आये थे। उसमें भी शर्त यह थी कि ताना-बाना दोनों में हाथ का ही सूत काम में लाया जाय। और पूछताछ से मालूम हुआ कि आजकल विद्यार्थियों को हाथ से कातने की क्रिया भी सिखाई जाती है। अच्छा करघे बहुत थे और उन सब में हाथ कते सूत की तानी लगाई गई थी। इस विभाग में सन और ऊन भी हाथ से काता जाता था। चमड़े रंगना, कमाना आदि क्रियायें भी वहां दिखाई जाती थीं।

कताई की बाजी में अनेक स्त्री-पुरुष शरीक थे। अर्थात दोनों विभाग जुदे जुदे रक्खे थे। लगभग सब महीन ही सूत कातते थे। मेरे दिल पर तो यह छाप पड़ी है कि यदि बंगाल उत्साह-पूर्वक काम करे तो खादी में प्रथम पद पर पहुंच जायगा। बंगाल में खादी न पहनने की हठ ठाननेवाले कम लोग देखे जाते हैं। कला बहुत है। मध्यम वर्ग की बहुतेरी स्त्रियां सुन्दर और भावपूर्वक कातती हैं। स्वागत-मण्डल के अध्यक्ष के घर में, जहां कि मैं ठहराया गया था, उनकी धर्मपत्नी के कते सूत का कपड़ा पहना जाता है। उन्होंने अपने आंगन में देव-कपास बोया है और रुई को धुनके बिना ही सूत कातती हैं। मेरे लिए पूनियां तो इन्हीं भली बाई ने बनाई। पूनियां बहुत बढ़िया थीं। जरूरत के अनुसार कपास को हाथ से उतार कर रखती जाती है और बात की बात में पूनियों का ढेर लगा देती है। बंगाल में स्वराज्यवादी ठीक तादाद में चरखा कातते हुए दिखाई देते हैं। विश्वास बाबू खुद स्वराज्यवादी हैं। उन्होंने सार्वजनिक सभा में अपना काता सूत भेजा था। फरीदपुर में तो बहुतेरे लोग खादीधारी दिखाई दिये। स्त्रियों की एक खास सभा की गई थी। उसमें भी और जगह से ज्यादह स्त्रियां खादी-भूषित थीं। हां, यह बात सच है कि कितनी ही बहनों और पुरुषों ने खादी सिर्फ इसी अवसर के लिए पहनी थी।

यह तो मैंने फरीदपुर की जो छाप मुझपर पड़ी वही लिखा है। मैं यह दौरा खादी के ही निमित्त कर रहा हूं। इसलिए अभी तो मुझे बहुत अनुभव होंगे। इन तमाम अनुभवों का नतीजा क्या होगा—सो तो पाठकों को अन्त में ही मालूम होगा। प्रदर्शिनी में फीस बिल्कुल न रक्खी गई थी। हजारों आदमियों ने उससे लाभ उठाया है। दूसरे दिन फरीदपुर छोड़ने के पहले खादी की भिन्न भिन्न क्रियायें करनेवालों को इनाम बांटा गया था। पदक तथा इनाम प्राप्त करनेवालों में स्त्रियों और पुरुषों की संख्या, संभव है, बराबर हो। पदक पानेवालों में तीन मुसल्मान थे।

परिषद में

देशबन्धु का शरीर बहुत ही दुर्बल दिखाई दिया। आवाज बैठ गई है। कमजोरी बहुत है। सच कहें तो अभी तबीयत ऐसे कामों के योग्य नहीं हो पाई है। अभी तो डाक्टरों ने उन्हें सलाह दी है कि वे शक्ति प्राप्त करने के लिए या तो योरप या दारजिलिंग जावें। पर वहां तो वे मजबूर हो जाने की अवस्था में ही जाना चाहते हैं।

परिषद के लिए खास तौर पर खादी का मण्डप बनाया गया था। उसमें सादगी बहुत थी। बैठक फर्श पर ही रक्खी गई थी। एक भी कुरसी न दिखाई देती थी। मण्डप बनाने का काम नदू बनानेवाले के जिम्मे किया गया था। उन्होंने शुद्ध खादी का कहकर बनाया है। पर हम सबको पूरा शक है कि वह सचमुच खादी का ही था या नहीं। मैं जांच कर रहा हूं। पर असल बात यह है कि व्यवस्थापकों ने शुद्ध खादी का ही मण्डप बनवाना चाहा और माना कि वह खादी का ही था।

देशबन्धु का भाषण संक्षिप्त और दिलचस्प था। प्रत्येक वाक्य में अहिंसा की ध्वनि थी। उन्होंने उस भाषण में साफ तौर पर बताया कि हिन्दुस्तान का उद्धार अहिंसामय संग्राम से ही हो सकता है। इस भाषण के नीचे यदि कोई मुझसे सही करने के लिए कहे तो मुझे शायद ही कोई वाक्य या शब्द बदलने की जरूरत हो।

उनके भाषण के अनुसार ही प्रस्तावों का होना स्वाभाविक था। इसमें विषय-समिति में खासा झगड़ा भी हुआ। अन्त में देशबन्धु को इस्तीफा देना कहने तक की नौबत आ गई थी, पर अन्त को उनके प्रभाव की जय हुई और परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव निर्विघ्न पास हुए।

अंजुमन की सभा

मुसल्मान भाइयों ने अलहदा सभा रक्खी थी। हम दोनों को निमंत्रण दिया गया था। उसमें देशबन्धु, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती वासन्ती देवी और मैं वहां गया था। फरीदपुर में कुछ कटुता फैल रही है। उसके लिए मैंने पंच से फैसला कराने की सलाह दे कर मुसल्मानों से कहा कि आप परिषद् में शरीक होइए। फलतः कोई १०० सज्जन रविवार शाम को परिषद् में आये थे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

'पहले दरजे का लांछन'

गुजरात समझता है कि वह और प्रान्तों की अपेक्षा मेरे शरीर की ज्यादह चिन्ता रख सकता है। पर बंगाल की धारणा उसके खिलाफ है। बंगाल कहता है—'आपको पहले दरजे के सलून में घूमना होगा।' सतीशबाबू कहते हैं, फरीदपुर की स्वागत-समिति इससे लिए जिम्मेवार है। उनके दूसरे कारण ये थे कि रात में गाडी बदलने की दिक्कत से बचने के लिए पूरा डब्बा कर लेना बेहतर था और पूरे डब्बे में पहले दरजे का हिस्सा जरूर ही रहता है; फिर रेलवे-कम्पनी ने उदारतापूर्वक पहले दरजे की बैठकों का किराया दूसरे दरजे के बराबर ही लिया। पाठक इस बात को जान लें कि एक डब्बे का किराया दूसरे दरजे के किराये से कम से कम १०गुना होता है। यह कहा गया कि इस सब की जरूरत थी मेरी तन्दुरुस्ती की हिफाजत के लिए, जिससे कि व्यवस्थापकों की किसी कमी या ज्यादती से मेरी तन्दुरुस्ती को किसी तरह धक्का न लगने पावे।

लेकिन मेरा ख्याल तो यह है कि यदि मैं इस तरह गादी-गदेलों में लोट-पोट होता रहा तो मेरी इस यात्रा से कुछ ज्यादह लाभ नहीं हो सकता। या तो मुझे जहांतक हो सके इसतरह रहना और घूमना-फिरना चाहिए जिस तरह कि हमारे लाखों गरीब भाई-बहन रहते हैं या फिर लोक-हित के लिए यात्रा करना बंद कर देना चाहिए। मुझे इस बात का कामिल यकीन है कि मैं दूने-पहले तो ठीक, बल्कि दसगुने पहले दरजे में घूम कर लाखों लोगों को अपना पैगाम उससे अधिक नहीं सुना सकता जितना कि वाइसराय अपने अलंघ्य शिमला-शैल पर रहते हुए लाखों भारतवासियों के हृदय पर अपना अधिकार कर सकते हैं। अकेला दूसरा दरजा तो करीब करीब सहन हो सकता है। गरीब-गुरबा मुझे शान-बान के साथ पहले दरजे में सवार देख कर अपने गिरोह का आदमी नहीं मान सकते। इसलिए जब जब वे उसके नजदीक आते हैं भयभीत होकर झांकते रहते हैं। मैं भी उन्हें एक अजीब नजर से देखता हुआ मालूम होता हूं। हां मेरे शरीर को चाहे ज्यादह आराम मिला हो, परन्तु मेरी आत्मा तो विकल थी। मुझे यकीन हो चुका है कि जबतक हम गरीबों के साथ तकलीफ उठाना न सीखेंगे तबतक हम उनके हृदयों में प्रवेश नहीं कर सकते। जबसे मैंने तीसरे दरजे में सफर के लायक अपनेको न माना, या मैं लायक न रह गया तब से गरीब-गुरबा की सेवा करने की अपनी आधी उपयोगिता मैं ने गवां दी। यदि मैंने तीसरे दरजे में यात्रा न की होती तो कभी मैंने अपनेको गरीब न महसूस किया होता — उन्हींका एक आदमी न माना होता। अपने तमाम अनुभवों में मैं अपने तीसरे दरजे के सफर को निहायत कीमती मानता हूं। इसलिए मैं महसूस करता हूं कि मेरे लिए दूसरा दरजा हद है — इसके आगे न जाना चाहिए। मित्रलोग इससे आगे मुझे न ले जावें — न ललचावें, यदि वे चाहते हों कि भ्रमण के द्वारा मुझसे देश की सेवा हो। जब कि मैं दूसरे दरजे के सफर के भी लायक न रह जाऊं तो मुझे यात्राओं के द्वारा सेवा करना बंद कर देना चाहिए। परमेश्वर सीधे नोटिस नहीं देता। वह हमें इशारा करता है और जो लोग चाहें वे उसे समझ सकते हैं। स्वागत-समिति की इस तजवीज में इस समय तो मैं बहुत गड़बड़ नहीं कर रहा हूं; पर अब से मैं अपने मित्रों को नोटिस दे रखता हूं कि वे अपने प्रेम की अतिशयता से मेरा गला न दबावें। हां, वे मेरे स्वास्थ्य का ध्यान रक्खें, सावधानी से काम लें — पर बहुत मात्रा न बढने पावे। और कुछ बातें तो उन्हें ईश्वर पर भी छोड़ देना चाहिए। यदि ईश्वर की इच्छा होगी कि मैं यात्रा न करूं तो किसी तरह की हमारी सावधानी काम नहीं आ सकती और यदि वह चाहेगा कि मैं भ्रमण कर के कुछ सेवा करूं तो हमारे सावधान न रहते हुए भी मेरा बाल बांका नहीं हो सकता। मैं उन्हें यह भी यकीन दिलाना चाहता हूं कि मैं खुद ही अपने शरीर की बहुत कुछ चिन्ता रखता हूं — आवश्यक शारीरिक जरूरतों की मैं उपेक्षा नहीं करता। मैं यह बात भी बडी कृतज्ञता के साथ कह देना चाहता हूं कि किसी भी प्रान्त ने — यहांतक कि गुजरात ने भी मेरे साथ बंगाल से अधिक प्रेम नहीं प्रदर्शित किया है। यह मेरे लिए बडी सौभाग्य की बात है कि किसी प्रान्त में मैं अपनेको पराया न महसूस कर पाया — बंगाल में तो और भी नहीं।

'चरखा-यज्ञ'

फरीदपुर की प्रदर्शिनी की तरह मिरजापुर पार्क (कलकत्ता) में भी खादी-प्रतिष्ठान की तरफ से एक चरखा-यज्ञ की व्यवस्था की गई थी। एक प्रसिद्ध जमींदार राय यतीन्द्रनाथ चौधुरी और एक नामी स्त्री-कवि श्रीमती कामनी राय, ने उसमें योग दिया था। पण्डित श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, प्रा० समिति के मन्त्री सतकौड़ीबाबू भी उसमें शामिल हुए थे। और तो क्या, खुद आचार्य राय भी शरीक थे। वे कोडियारह अंक का अच्छा, बराबर सूत कातते हैं। वे कहते हैं चरखा दिन दिन मेरे हृदय में घर करता जाता है और कातते हुए मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। मैं नहीं समझता कि भारत के दूसरे किसी प्रान्त में उच्च मध्यम वर्ग के इतने स्त्री-पुरुषों का ऐसी प्रदर्शिनी में भाग लेना और ऐसी चतुराई और कारीगिरी के साथ सूत कातना मुमकिन होगा। यहां मैं यह बात भी कह देता हूं कि बहुतेरे स्वराजी भी खुद नियम-पूर्वक और उमंग से कातते हैं। विश्वास बाबू की धर्मपत्नी की कताई का वर्णन मैं अन्यत्र कर ही चुका हूं। परन्तु मुझसे कहा गया है कि अपनी इस यात्रा में अभी मैं बंगाल के खादी-काम के और बढ़िया नमूने देखूंगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि बंगाल चाहे तो वह और अनेक बातों की तरह खादी में भी सबसे आगे बढ़ जायगा। उसके पास बुद्धि है, तरल कल्पना-शक्ति है, कविता-शक्ति है, उसका आत्म-त्याग भी महान है, उसमें आवश्यक कारीगिरी भी है, उसके पास साधन-सामग्री भी है। क्या वह इन सब गुणों के साथ खादी-काम करने की इच्छा का भी योग करेगा? परमात्मा वह उसे दें।

'अन्दर कुछ नहीं'

कितने ही लोगों ने मुझसे पूछा 'आखिर देशबन्धु के इस घोषणा पत्र की अन्दरूनी बात है क्या?' मैंने उन पूछनेवालों की तरफ से यही बात उनसे पूछी। उनका उत्तर था जोरदार और अपनी विशेषता लिए हुए — 'जितना उसके बाहर है उतना ही अन्दर है।' मेरे घोषणा-पत्र और मेरा भाषण योरपियन मित्रों की चुनौती के जवाब में था। मैंने बार बार उनसे कहा कि मैं हिंसा से घृणा करता हूं। मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तान को आजादी अहिंसा के ही द्वारा मिल सकती है। उन्होंने मुझसे कहा कि यही बात आप सर्वसाधारण में जोर के साथ और असंदिग्ध भाषा में कह दीजिए। मुझे इसपर न तो कोई आपत्ति थी, न कोई हिच-किचाहट ही। मेरी घोषणा और भाषण का सारा इतिहास यही है। उनमें मैंने दोनों की— क्रान्तिकारियों के हिंसाभाव की और सरकार के दमन की, जो कि हिंसा का ही दूसरा नाम है, निंदा की है। मैंने उसमें वे बातें भी पेश कर दी हैं जिनपर कि एक आत्माभिमानी

मनुष्य के तौर पर मैं सहयोग कर सकता हूं। कोई भी समझदार आदमी शान्त चित्त से उसपर विचार करें और यदि उनमें उसे दोष दिखाई दें तो वह मुझे बतावें। अब आगे की कारवाई करना काम है योरपियनों का और सरकार का।' यही देशबन्धु का आशय था जैसे कि मैंने उन्हें समझा है। उनकी भाषा को उपस्थित करने में मैं समर्थ न हो पाया हूं — मैंने तो सिर्फ उनके भावों को — विचारों को ही प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। उनका भाषण बड़ा ही संक्षिप्त, रोचक और संयत है। उसमें जान-बूझकर इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि किसीका दिल न दुखने पावे। हिंसाकाण्ड की जो निन्दा उन्होंने की है वह मीन-मेख से परे है। मेरी राय में उन्होंने उस खाई पर जो कि अंगरेजों से हमें जुदा रख रही है, सुनहला पुल बना दिया है। अब यह उनका काम है, कि वे चाहें तो उसका उपयोग करें।

बारकपुर के ऋषि

बारकपुर जा कर मुझे सर सुरेन्द्रनाथ बैनरजी के दर्शन करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैंने सुना था कि उनकी तबीयत अलील है और उनके हट्टेकट्टे फौलादी बदन पर बुढ़ापे का असर होता जा रहा है। सो मैं उनके दर्शनों के लिए उत्सुक था। यद्यपि वे मेरे कुछ कामों को पसन्द न करते हों तो भी मेरे हृदय में उनके प्रति जो आदर-भाव है वह किसी कदर कम नहीं हुआ है। उन्हें मैं आधुनिक बंगाल का निर्माता और भारतीय राजनीति का महारथी मानता हूं। मुझे वह समय याद है जब भारत के सुशिक्षित लोग उनके मुंह के वचन सुनने के लिए उत्कंठित रहते थे। इसलिए बड़े ही हर्ष के साथ मैं बारकपुर की तीर्थयात्रा को गया। सर सुरेन्द्र का आलीशान महल गंगा के किनारे पर है। चारों ओर सुंदरता छाई हुई है। शान्ति का तो वहां राज्य ही समझिए। जन-संकुलित, कोलाहल कलुषित कलकत्ते में अपने दैनिक कार्य-श्रम से फारिग हो कर अपने इस शान्ति-सदन में लौटना, उन्हें कितना सुखदायी होता होगा? मैंने तो सोचा था कि वे बिछौने पर थके-मांदे लेटे हुए मिलेंगे — पर क्या देखता हूं कि मैं अपनी बैठक से उठ कर सीधे खड़े और अपने अतिथि का अभिनन्दन करते हुए पुरुष के सामने खड़ा हूं — और बोलते भी थे वे मुझसे एक युवक के उल्लास के साथ हमारी बातचीत में उन्होंने कहा कि मेरी स्मरण-शक्ति अभी तक ज्यों की त्यों ताजा बनी हुई है। मैं अपने लड़कपन के दृश्यों को अब भी चित्रित कर सकता हूं। उनके जो पूर्व-संस्मरण अभी प्रकाशित हुए हैं वे इन्हीं दो बरसों में लिखे गये हैं। उन्होंने उसकी सुन्दर हस्त-लिखित प्रतियां मुझे उचित अभिमान के साथ दिखाई। वे विधिपूर्वक स्पष्ट, बड़े और स्थिर हरफों में लिखी हुई थीं। सर सुरेन्द्रनाथ की उम्र अभी ७७ साल की है परन्तु मालवीयजी की तरह उन्हें अपने ऊपर बड़ी श्रद्धा है। वे कहते हैं— अभी मैं ९१ साल तक जाऊंगा और मुझे आशा है कि तबतक मेरी कार्य-शक्ति बराबर कायम रहेगी। जब मैंने उनसे पूछा कि आजकल आप पढ़ते क्या हैं; तो उन्होंने जवाब दिया कि अपने पूर्व-संस्मरण को दोहरा रहा हूं; क्योंकि इसी साल उनका दूसरा संस्करण निकलने वाला है। वे अपने आसपास की तमाम बातों में जिन्दादिली के साथ दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने मुझसे यह वादा करा लिया है कि बंगाल छोड़ने के पहले मैं उनसे फिर एक बार मिलूं। उन्होंने कहा कि यदि आपको बारकपुर आने का समय न मिले तो खुद मैं ही आपसे मिलने आये बिना न रहूंगा। मैंने जवाब दिया— 'नहीं, मैं आपको आने की तकलीफ न दूंगा, मैं लौटती बार फिर जरूर आपसे मिलूंगा।' सर सुरेन्द्रनाथ की इस जीवन-शक्ति का मूल है उनका अटल नियमित जीवन। कोई बात उन्हें रात में कलकत्ता नहीं ठहरा सकती। कह सकते हैं कि वे बारकपुर की आखिरी गाड़ी प्रायः कभी नहीं चूके। वे कहते थे कड़े परिश्रम की तरह यह नियमित जीवन भी भारत की सेवा के लिए उतना ही आवश्यक है।

महल से झोंपड़ी में

ईश्वर को धन्यवाद है कि गरीब लोग मेरा साथ नहीं छोड़ते। इन महान पुरुष के महल में भी वे मेरी खोज में आ पहुंचे। उनमें एक नम्र बिहारी मुहर्रिर था। वह मुझे अपने घर में ले जाना चाहता था। वहां छः चरखे चलते थे और वह गरीबों को खादी बेचता था। उसके अनुरोध को न मानना मेरे लिए अशक्य था। वाटर वर्क्स के कुली लैन में उसका घर था। हम गये। उसने मुझे चरखे दिखाये। बिहार से मंगाई खादी का भण्डार भी दिखाया। मैंने पूछा— 'तुम यहीं की बनी खादी क्यों नहीं लेते?' उसने कहा— 'मैं बिहार की बची हुई खादी बेंचने में मदद कर रहा हूं। मैं इसमें मुनाफा नहीं लेता। उस खादी का खर्च कुली लोग अपनी जेब से फी रुपया एक पैसा देकर चलाते हैं। वह कोई २५००) की खादी कुलियों में बेचता है जो कि बिहार और संयुक्तप्रान्त से यहां आते हैं। चरखे और खादी की इतनी पहुंच का ख्याल हमें न था। मैं जहां कहीं जाता हूं, देखता हूं कि ऐसे ऐसे अज्ञात, स्वयं-नियुक्त प्रामाणिक युवक इस महान् और गौरवपूर्ण कार्य में जोकि सफल हुए बिना नहीं रह सकता हाथ बटा रहे हैं और आराम और सहूलियत के साथ उनसे जितना हो सकता है जनता को मजदूरी का साधन देकर देश की घोर दरिद्रता की समस्या हल करने में अपने लायक योग दे रहे हैं।

मुझे देवता न बनाइए

डूंगरगढ़ स्टेशन पर एक मुस्लिम मित्र ने कहा कि मुझे देवता पद पर बिठाने की कारवाई, और सो भी गोंड लोगों में, बाजिआज जारी है। कई बार ऐसी बुतपरस्ती पर मैं अपनी घोर व्यथा और जबरदस्त ना-पसंदी जाहिर कर चुका हूं। मैं तो एक मामूली मर्त्य प्राणी हूं और मानवी शरीर में पाई जानेवाली तमाम कम कमजोरियां मुझमें है। मुझे निरर्थक देवता-पद पर प्रतिष्ठित करने की अपेक्षा तो गोंड लोगों को मेरे सीधे-सादे पैगाम का मतलब समझाया जाय जो बहुत अच्छा होगा। मुझे देवता बनाने से न तो गोंड लोगों को ही लाभ होगा, न मुझे ही; उल्टा उनके सदृश सीधे-सादे सरल लोगों का वहमी स्वभाव बढेगा। इस मामले में मैं हर महासभावादी की सहायता चाहता हूं कि गोंडों को इस भूल से सावधान कर दे और धोखे में न आने दें।

अछूत

कलकत्ता जाते हुए रास्ते में एक स्टेशन पर कितने ही अछूतों को जमा देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने मुझे अपने हाथों का कता-बुना खादी का थान भेट किया। कार्यकर्ताओं ने मुझसे कहा कि ठोस और मजबूत काम तो वास्तव में इन अछूतों के द्वारा हो रहा है। वे शराब और मुरदार मांस खाना छोड रहे हैं और खादी को अपना रहे हैं। यदि मुझसे कोई यह नहीं कहता कि उस झरसिंगढ स्टेशन पर मिलने वाले वे लोग अछूत हैं तो मैं उन्हें और लोगों में पहचान ही न पाता।

खादी

मैं यह सुनकर दंग रह गया कि रायगढ़ (मध्यप्रान्त) में एक भी चरखा नहीं चल रहा है। जो लोग मुझसे मिलने आये

थे उन्होंने मुझसे कहा कि हम तो मुफस्सिल के लोगों का लाया कपड़ा पहने हुए हैं। उन्होंने बताया कि गांव के लोगों में तो खादी बहुत प्रिय हो गई है और यदि उनके अन्दर काम में ज्यादह अनुराग लिया जाय तो वह आसानी से घर घर पहुंच सकती है और करघे के लिए छत्तीसगढ सहित मध्यप्रान्त के लोग खास तौरपर अनुकूल हैं, बस जरूरत है सिर्फ संगठन की।

(यं इं) मो० क० गांधी

अकाल में मदद

अकाल के समय मे चरखा क्या काम कर सकता है इसकी एक मिसाल पंजाब से इस तरह मिली है—

"कस्बा कोटअद्दू जिला मुजफ्फरगढ की एक तहसील है और शेरशाह-कुन्दियां लाइन पर एक रेल्वे स्टेशन भी है। इस कस्बे की आबादी ५००० नफरी और एक हजार घर हैं। रुई इस इलाके में पैदा होती है। मगर जब तुगयानी आ जावे तो कपास की फसल खराब हो जाती है। चुनांचे इस साल तुगयानी के बाइस इस इलाके में कपास बहुत कम पैदा हुई है। यहां पिंजारे आम तौरपर मिल सकते हैं। खास कोटअद्दू में चार पिंजारे हैं। निरख पिंजाई ०-२-६ फी सेर (८० तोले) है। तकरीबन हर घर में कम से कम एक चरखा मौजूद है। पहले तो यहां खजूर के पत्तों की पच्छयां वगैरह बहुत आला बनता थी और चरखा बहुत कम चलता था। मगर इस साल पच्छयों की मांग बहुत कम है। इसलिए चरखा चल रहा है। यहां तकरीबन ३० जुलाहे हैं जो बाजार से मिल का सूत खरीद कर उसका कपड़ा बुन कर बेचते हैं और लोगों के घर के कते हुए सूत का कपड़ा भी उनको बुन देते हैं। बुनवाई १८½ गज से २८ गज तक फी रुपया है। आम तौर पर ६०० तार का कपड़ा १८" में बुन देते हैं। यहां डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की तरफ से एक हाईस्कूल है।

सिंध नदी के चढाव के कारण यहां मुजफ्फरगढ-कांग्रेस-रिलीफ कमिटी की ओर से रिलीफ सेंटर खोला गया। पहले तो वह कनक गेहूं और आटे की सूरत में रिलीफ देते रहे हैं। मगर जनवरी १९२५ में आटा और कनक की सूरत में रिलीफ देने की जरूरत नहीं, ऐसा समझ कर तरीका रिलीफ बदल दिया गया। और कपास दे कर सूत कतवाने का तरीका जारी किया गया। आम तौर पर कताई का भाव ०-५-० से ०-६-० फी सेर (८० तोले) है मगर रिलीफ सेंटर की तरफ से उनको ०-९-० फी सेर दिया जा रहा है। यानी उनको ०-३-० फी सेर बतौर रिलीफ दिया जा रहा है। मगर नुक्स यह है कि हर किस्म के सूत के लिए ०-९-० फी सेर दिये जाते हैं, हालां कि सूत की किस्म के मुताबिक कताई कमोबेश दी जानी चाहिए थी। इसतरह से कई बहनों की हक तलफी होती है और कई बहनें हक से ज्यादह ले जाती हैं।

कपास मुलतान से खरीद की जाती रही है और सूत स्थानीय दुकानदारों और जुलाहों के पास बेचा जाता है। सूत की फरोख्त के लिए उनको और मंडी की जरूरत है, मुस्तकिल ग्राहक होना चाहिए।

६ से १२ अंक का सूत काता जाता है। व्यवस्थापक को हिदायत की गई कि वह बारीक सूत कतवाने की कोशिश करें; क्योंकि सूत आमतौर पर जल्दी फरोख्त हो सकता है और यह भी उनको कहा गया कि कताई देते वक्त सूत की किस्म का खयाल जरूर रखना चाहिए।

आज कल नीचे लिखी जगहों पर रिलीफ सेंटर की तरफ से चरखे चल रहे हैं:

(१) कोटअद्दू (२) महमूदकोट (३) सनावा (४) दायरादीनपनाह
१०० ८ २६ २२
(५) गुजरात (६) मुधारी (७) अहसानपुर कुल १८८ चर्खे।
१० १० १२

अब काम बढाने का इरादा है। पिछले दो मास की औसत पैदावर ३२ मन मासिक है।

अबतक तकरीबन ३० घाटा हुआ है। घाटे की वजह भी साफ है।

लागत फी सेर १-१-० कपास = १-१-९
पिंजाई = ०-२-६
कताई = ०-९-०
कुल १-१३-३

और औसतन् वह १-१२-६ फी सेर फरोख्त करते रहे हैं। यानी एक सेर पीछे ०-०-९ का घाटा और ४ मन १८ सेर ८ छटांक के पीछे ९-० के करीब घाटा हुआ। बाकी मुतफर्रिक खर्च और सफर खर्च है। व्यवस्थापक का गुजारा अभी तक कैश बुक में जमा खर्च नहीं हुआ। इसलिए घाटे का ठीक अंदाजा लगाया जावे तो ३०+५५ (गुजारा दर २५) =८५ हुआ। यह कोई तीन माह की घटी है।

इस सूरत में यह सेंटर स्वावलंबी हो सकता है कि ०-५-० से ०-९-० फी सेर तक कताई ८ से १५ अंक के सूत तक दी जावे और सूत बारीक और ज्यादा मिकदार में कतवाने की कोशिश की जावे।

अहसानपुर में चर्खाजात बनाये जाते हैं। कीमत ३-८-० से ५-०-० है।

एक काबिल अफसोस बात यह है कि जब से सूत की कताई का काम शुरू हुआ है किसी जिम्मेवार साहिब ने यहां हिसाब-किताब की पड़ताल नहीं की।"

अ० भा० खा० मण्डल को मिली रपोर्ट से पूर्वोक्त पत्र मैंने लिया है। उसके संबंध में जानने योग्य बात तो यह है कि जहां लोगों को पहले अनाज दिया जाता था वहां अब उनसे काम लेकर पैसे दिये जाते हैं। यह भी हम देखते हैं। काम लेने से काम करने वाले को काम सीखना पड़ता है — यदि व्यवस्थापक को सूत की किस्म के विषय मे चिन्ता हो तो सब को जो बिना सूत की किस्म देखे दाम दिये जाते हैं वे न दिये जाय, अकारण फजूल खर्च न हो और गरीबों के साथ जो अभी अन्याय होता है वह न होने पावे। फिर ऐसे कामों में हिसाब-किताब तो साफ जरूर रखना चाहिए। पर देखते हैं यह नहीं रहता। इसका कारण अप्रमाणिकता नहीं मालूम होता; बल्कि ज्ञान का अभाव और व्यवस्था-विभाग की लापरवाही मालूम होती है। दो पैसे ज्यादह देकर भी काम साफ रक्खा जाय तो ऐसे काम बहुतांश में स्वावलंबी हुए बिना नहीं रह सकते।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३५८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०-३-० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०-४-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी। वी. पी. का नियम नहीं है।

व्यवस्थापक—हिन्दी-नवजीवन

'किनारे पर'

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)
विदेशों के लिए „)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४१

मुद्रक–प्रकाशक
वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, वैशाख सुदी १४, संवत् १९८२
गुरुवार, २१ मई, १९२५ ई०

मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय,
[illegible]पुर सरकीगरा की वाडी

रामनाम महिमा

एक सज्जन पूछते हैं—

'आपने एक बार काठियावाड की यात्रा में किसी जगह कहा था कि मैं जो तीन बहनों से बच गया सो केवल ईश्वर-नाम के भरोसे। इस सिलसिले में 'सौराष्ट्र' ने कुछ ऐसी बातें लिखी है जो समझ में नहीं आतीं। कुछ इस आशय का लिखा है कि आप मानसिक पापवृत्ति से न बच पाये। इसका अधिक खुलासा करेंगे तो कृपा होगी।"

पत्र-लेखक से मेरा परिचय नहीं है। जब मैं बंबई से रवाना हुआ तब उन्होंने यह पत्र अपने भाई के हाथ मुझे पहुंचाया। यह उनकी तीव्र जिज्ञासा का सूचक है। ऐसे प्रश्नों की चर्चा सर्व-साधारण के सामने आम तौर पर नहीं की जा सकती। यदि सर्व-साधारण जन मनुष्य के खानगी जीवन में गहरे पैठने का रिवाज डालें तो स्पष्ट बात है कि उसका फल बुरा आये बिना न रहे।

पर इस उचित अथवा अनुचित जिज्ञासा से मैं नहीं बच सकता। मुझे बचने का अधिकार नहीं। इच्छा भी नहीं। मेरा खानगी जीवन सार्वजनिक हो गया है। दुनिया में मेरे लिए एक भी ऐसी बात नहीं है जिसे मैं खानगी रख सकूं। मेरे प्रयोग आध्यात्मिक हैं। कितने ही नये हैं। उन प्रयोगों का आधार आत्म निरीक्षण पर बहुत है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' इस सूत्र के अनुसार मैंने प्रयोग किये हैं। इसमें ऐसी धारणा समाविष्ट है कि जो बात मेरे विषय में संभवनीय है वही औरों के विषय में भी होगी। इसलिए मुझे कितने ही गुह्य प्रश्नों के भी उत्तर देने की जरूरत पड जाती है।

फिर पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए रामनाम की महिमा बताने का भी अवसर मुझे अनायास मिलता है। उसे मैं कैसे खो सकता हूं?

तो अब सुनिए, किस तरह मैं तीनों प्रसंगों पर ईश्वरकृपा से बच गया। तीनों प्रसंग वार-वधुओं से संबंध रखते हैं। दो के पास भिन्न भिन्न अवसर पर मुझे मित्र लोग ले गये थे। पहले अवसर पर मैं झूठी शरम का मारा वहां जा फसा और यदि ईश्वर ने न बचाया होता तो जरूर मेरा पतन हो जाता। इस मौके पर जिस घर में मैं ले जाया गया था, वहां उस स्त्री ने ही मेरा तिरस्कार किया। मैं यह बिल्कुल नहीं जानता कि ऐसे अवसरों पर किस तरह, क्या बोलना चाहिए, किस तरह बरतना चाहिए। इसके पहले ऐसी स्त्रियों के पास तक बैठने में मैं लांछन मानता था। [illegible] इस घर में दाखिल होते समय भी मेरा [illegible] मकान में जाने के बाद उसके चेहरे की तरफ भी मैं न देख सका। मुझे पता नहीं, उसका चेहरा था भी कैसा? ऐसे मूढ को वह चपला क्यों न निकाल बाहर करती? उसने मुझे दो-चार बातें सुनाकर रवाना कर दिया। उस समय तो मैंने यह न समझा कि ईश्वर ने बचाया। मैं तो खिन्न होकर दबे पांव वहां से लौटा। मैं शरमिंदा हुआ और अपनी मूढता पर मुझे दुःख भी हुआ। मुझे आभास हुआ मानों मुझमें कुछ राम नहीं है। पीछे मैंने जाना कि मेरी मूढता ही मेरी ढाल थी। ईश्वर ने मुझे बेवकूफ बनाकर उबार लिया। नहीं तो मैं जोकि बुरा काम करने के लिए गंदे घर में घुसा था, कैसे बच सकता था?

दूसरा प्रसंग इससे भी भयंकर था। यहां मेरी बुद्धि पहले अवसर की तरह निर्दोष न थी, हालांकि मैं सावधान ज्यादह था। फिर मेरी पूजनीया माताजी की दिलाई प्रतिज्ञा-रूपी ढाल भी मेरे पास थी। पर इस अवसर पर प्रदेश था विलायत। मैं भर-जवानी में था। दो मित्र एक घर में रहते थे। थोडे ही दिनों के लिए उस गांव में गये थे। मकान-मालकिन आधी [illegible] जैसी थी। उसके साथ हम दोनों ताश खेलने लगे। [illegible] मैं समय मिल जाने पर ताश खेला करता था। [illegible] बेटा भी निर्दोष-भाव से ताश खेल सकते [illegible] समय भी हमने ताश का खेल रिवाज [illegible] आरम्भ तो बिल्कुल निर्दोष था [illegible] मकान-मालकिन अपना शरीर [illegible] पर ज्यों ज्यों खेल [illegible] उस बाई ने विषय [illegible] था। उन्होंने [illegible]

[illegible] छूत [illegible] ही देता। [illegible] सभा में रहने से [illegible] लाभ तो नहीं है। [illegible] भाइयों को नाहक दुःख होगा, [illegible] थ सहानुभूति दिखाने को भी [illegible] सभ्य रहकर जितना काम हो सके [illegible] अगले साल यदि उन्हें यह भी दरकार न [illegible] तो फिर हम कताई-मण्डल कायम करेंगे; पर [illegible] तो होगा इस वर्ष के कार्य का परिपक्व फल। अच्छा [illegible] लीजिए कि महासभा में रहने से कुछ लाभ नहीं है, तो हानि [illegible] नहीं है।"

तमतमाया। उसमें व्यभिचार का भाव भर गया था। मैं अधीर हो रहा था।

पर जिसे राम रक्खे उसे कौन चक्खे? राम उस समय मेरे मुंह में तो न था, पर वह मेरे हृदय का स्वामी था। मेरे मुख में तो विषयोत्तेजक भाषा थी। इन सज्जन मित्र ने मेरा रंग-ढंग देखा। हम एक-दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे। उन्हें ऐसे कठिन प्रसगों की स्मृति थी जब कि मैं अपने ही इरादे से पवित्र रह सका था। पर इस मित्र ने देखा कि इस समय मेरी बुद्धि बिगड़ गई है। उन्होंने देखा कि यदि इस रंगत मे रात ज्यादह जायगी तो उसकी तरह मैं भी पतित हुए बिना न रहूंगा।

विषयी मनुष्यों में भी सु-वासनायें होती हैं, इस बात का परिचय मुझे इस मित्र के द्वारा पहले-पहल मिला। मेरी दीन दशा देख कर उन्हें दुःख हुआ। मैं उनसे उम्र मे छोटा था। उनके द्वारा राम ने मेरी सहायता की। उन्होंने प्रेम-बाण छोडे-'मोनिया' (यह मोहनदास का दुलार का नाम है। मेरे माता, पिता, तथा हमारे कुटुम्ब के सबसे बडे चचेरे भाई, मुझे इसी नाम से पुकारते थे। इस नाम से पुकारनेवाले चौथे ये मित्र मेरे धर्म-भाई साबित हुए) मोनिया, होशियार रहना' मैं तो गिर चुका हूं, तुम जानते ही हो। पर तुम्हें न गिरने दूंगा। अपनी मां के पास की प्रतिज्ञा याद करो। यह काम तुम्हारा नहीं। भागो यहांसे। जाओ अपने बिछौने पर। हटो, ताश रख दो''

मैंने कुछ जवाब दिया या नहीं, यह याद नहीं पडता। मैंने ताश रख दी। जरा दुःख हुआ। लज्जित हुआ, छाती धड़कने लगी। उठ खड़ा हुआ। अपना बिस्तर संभाला।

मैं जगा। रामनाम शुरू हुआ। मन में कहने लगा कौन बचा, किसने बचाया, धन्य प्रतिज्ञा! धन्य माता! धन्य मित्र! धन्य राम! मेरे लिए तो यह चमत्कार ही था। यदि मेरे मित्र ने मुझपर राम-बाण न चलाये होते तो मैं आज कहां होता?

राम-बाण वाग्यां रे होय ते जाणे
प्रेम-बाण वाग्यां रे होय ते जाणे

मेरे लिए तो यह अवसर ईश्वर-साक्षात्कार का था।

अब यदि मुझे सारा संसार कहे कि ईश्वर नहीं, राम नहीं तो मैं उसे झूठा कहूंगा। यदि उस भयंकर रात को मेरा पतन हो गया होता तो आज मैं सत्याग्रह की लड़ाइयां न लडा होता, तो मैं अस्पृश्यता के मैल को न धोता होता, मैं चरखे की पवित्र ध्वनि न उच्चार करता होता, तो आज मैं अपनेको करोडों स्त्रियों के ... कर के पावन होने का अधिकारी न ...
जैसे किसी बालक के ...

दुकानदारों ...
फरोखत के लि...
होना चाहिए।

६ से १२ अंक का ...
हिदायत की गई कि वह ...
करें; क्योंकि सूत आमतौर पर ज...
यह भी उनको कहा गया कि कताई ...
खयाल जरूर रखना चाहिए।

आज कल नीचे लिखी जगहों पर रिलीफ ...
चरखे चल रहे हैं:

समझता था। हम एक वेश्या के घर के सामने आकर खडे हो गये। तब मैंने समझा कि बन्दर देखने जाने का अर्थ क्या है। तीन स्त्रियां हमारे पास खडी की गई। मैं तो स्तम्भित हो गया। शर्म के मारे न कुछ बोल सका, न भाग सका। मुझे विषयेच्छा तो जरा भी न थी। वे दो तो कमरे में दाखिल हो गये। तीसरी बाई मुझे अपने कमरे मे ले गई। मैं विचार ही कर रहा था कि क्या करूं इतने में दोनों बाहर आये। मैं नहीं कह सकता उस औरत ने मेरे संबंध में क्या ख्याल किया होगा। वह मेरे सामने हंस रही थी। मेरे दिल पर उसका कुछ असर न हुआ। हम दोनों की भाषा भिन्न थी। सो मेरे बोलने का काम तो वहां था ही नहीं। उन मित्रों ने मुझे पुकारा तो मैं बाहर निकल आया। कुछ शरमाया तो जरूर। उन्होंने अब मुझे ऐसी बातों में बेवकूफ समझ लिया। उन्होंने अपने आपस में मेरी दिल्लगी भी उडाई। मुझपर रहम तो जरूर खाया। उस दिन से मैं कप्तान के नजदीक दुनिया के बुद्धुओं में शामिल हुआ। फिर उसने मुझे बन्दर देखने का न्योता न दिया। यदि मैं अधिक समय वहां रहता अथवा उस बाई की भाषा मैं जानता होता तो मैं नहीं कह सकता, मेरी क्या हालत होती? पर मैं इतना तो जान सका कि उस दिन भी मैं अपने पुरुषार्थ के बल न बचा था-बल्कि ईश्वर ने ही मुझे ऐसी बातों में मूढ रखकर बचाया।

इस भाषण के समय मुझे तीन ही प्रसंग याद आये थे। पाठक यह न समझें कि और प्रसंग मुझपर न बीते थे; मैं यह तो जरूर कहना चाहता हूं कि हर अवसर पर मैं राम-नाम के बल पर बचा हूं। ईश्वर खाली हाथ जानेवाले निर्बल को ही बल देता है।

जब लग गजबल अपनों बरत्यों
थेक सर्यो नहिं काम
निर्बल ह्वाय बल राम पुकार्यो
आये आधे नाम

तब यह रामनाम है क्या चीज? क्या तोते की तरह रटना? हरगिज नहीं। यदि ऐसा हो तो हम सबका बेडा रामनाम रट कर पार हो जाय। रामनाम उच्चारण तो हृदय से ही होना चाहिए। फिर उसका उच्चारण शुद्ध न हो तो हर्ज नहीं। हृदय की तोतली बोली ईश्वर के दरबार में कुबूल होती है। हृदय भले ही 'मरा मरा' पुकारता रहे — फिर भी हृदय से निकली पुकार जमा के सीगे में जमा होगी। पर यदि मुख रामनाम का शुद्ध उच्चारण करता होगा, और हृदय का स्वामी होगा रावण, तो वह शुद्ध उच्चार भी नामे के सीगे में दर्ज होगा।

'मुख में राम बगल में छुरी' वाले बगला भगत के लिए रामनाम-महिमा तुलसीदास ने नहीं गाई। उनके सीधे पासे भी उलटे पडेंगे और जिसने हृदय मे राम को स्थान दिया है उनके उलटे पासे भी सीधे पडेंगे। 'बिगरी' का सुधारने वाला राम ही है और इसीसे भक्त सूरदास ने गाया—

बिगरी कौन सुधारे?
राम बिन बिगरी कौन सुधारे रे
बनी बनी के सब कोई साथी
बिगरी के नहिं कोई रे

इसलिए पाठक खूब समझ लें कि रामनाम हृदय का बोल है। जहां वाचा और मन में एकता नहीं वहां वाचा केवल मिथ्यात्व है, ... है, शब्दजाल है। ऐसे उच्चारण से चाहे संसार भले धोखा खा जाय पर वह अन्तर्यामी राम कहीं खा सकता है? सीता की दी हुई माला के मनके हनुमान् ने फोड डाले — क्योंकि वे

देखना चाहते थे कि अन्दर रामनाम है या नहीं? अपनेको समझदार समझनेवाले सुभटों ने उनसे पूछा — 'सीताजी की मणिमाला का ऐसा अनादर?' हनुमान् ने जवाब दिया 'यदि उसके अन्दर राम-नाम न होगा तो वह सीताजी का दिया होने पर भी यह हार मेरे लिए भार-भूत होगा।' तब उन समझदार सुभटों ने मुंह बनाकर पूछा — 'तो क्या तुम्हारे भीतर रामनाम है।' हनुमान् ने छुरी से तुरत अपना हृदय चीर कर दिखाया और कहा — 'देखो अंदर रामनाम के सिवा अगर और कुछ हो तो कहना।' सुभट लज्जित हुए। हनुमान पर पुष्पवृष्टि हुई और उस दिन से रामकथा के समय हनुमान् का आवाहन आरंभ हुआ।

हो सकता है यह कथा-काव्य या नाटक कार की रचना हो पर कि उसका सार अनन्त काल के लिए सच्चा है। जो हृदय में है वही सच है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

कार्यकर्ताओं के प्रश्न

बंगाल के दौरे में एक जगह गांधीजी से कार्यकर्ताओं ने दो सवाल किये थे — (१) अनेक कार्यकर्ताओं में निराशा पैदा हो गई है। क्योंकि देहात की ओर से यथोचित जवाब नहीं मिलता। यह श्रद्धा कि चरखे से ही स्वराज्य मिलेगा, बहुत कम लोगों को है। क्या आप यह समझा सकेंगे कि चरखे से ही स्वराज्य मिलेगा? (२) महासभा में रहने से लाभ क्या? हम लोग महासभा से अलग हो कर अपना कताई-मण्डल कायम करें और सूत कातते रहें तो हममें कौन बुराई है?

इन दो सवालों के जवाब में गांधीजी ने प्रवचन किया —

'पहली बात तो यह कि मैंने यह नहीं कहा कि कातने से ही स्वराज्य मिलेगा, हालां कि मैं यह बात मानता हूं। हां, मैंने यह बात जरूर बार बार कही है कि काते बिना स्वराज्य न मिल सकेगा। पर मैं तो दोनों बातों को साबित कर देने के लिए तैयार हूं। कातने के मानी क्या है? कताई को घर घर में फैला देना। कातने का अर्थ है लुढाई, धुनाई और कताई की तमाम क्रियाओं को कर जानना और कते सूत को बुनवा लेना। इन सब बातों को खुद करने और करोडों आदमियों से कराने में कितने भगीरथ प्रयत्न की जरूरत है. यह भगीरथ प्रयत्न क्या है, सारे देश में एक सजीव तंत्र ही खडा कर देना है। जिस तरह बडे जहाजों के कप्तान का हुक्म जहाज का एक एक आदमी मानता है और न माने तो उसे गोली चलाने का अधिकार होता है वैसी तंत्र-व्यवस्था बांध देना क्या ऐसा-वैसा काम है? और करोडों लोग यदि कातने लग जायं तो अस्पृश्यता का सवाल अपने आप हल हो जाता है, हिन्दू-मुसलमान का भी फैसला हो जाता है। अस्पृश्यता का फैसला किस तरह होगा? अस्पृश्य लोग आज खादी काम में जो कुछ हाथ बँटाते हैं वह मेरी खातिर। मद्रास में अस्पृश्यों ने मुझसे कहा कि जब लोग हमें अछूत मानते हैं तब उनकी मजूरी करने की क्या गरज हमें पडी है? उनके लिए हम क्यों खादी बुनें? फिर भी वे मेरे खातिर बुनते हैं। जब अछूतपन उड जायगा तब वे अपनी मरजी से खुशी खुशी उसमें अनुराग लेने लगेंगे। और वे दिलचस्पी लेने लगेंगे तो अछूतपन भी दूर हो जायगा। और हिन्दू-मुसलमान एकत्र हो कर जबतक काम न करें तबतक क्या खादी की गाथा हो सकती है? इस तरह समस्त जातियों को कताई में लगाने के लिए आप लोगों को ऐसी (पूर्व बंगाल जैसी) नम जमीन में जीवन बिताना पडेगा।

'पर आप कहेंगे, कातने का अर्थ स्वराज्य किस तरह?' मैं कहता हूं कि जब आप कताई को घर घर में फैला देंगे तो महासभा के इन तीन महाप्रश्नों का निराकरण हो जायगा। और यह होने पर बाकी क्या रहेगा? इन तीन बातों के हो जाने पर हम अपनी चाही शर्तें मांग सकेंगे। इसके बाद अगरेजों को चला जाना हो तो चले जायं। रहना हो तो हमारी शर्तों पर रहें। आप कहेंगे कि जिन अंगरेजों के साथ इतना युद्ध किया, जिन्होंने इस बुरी तरह हमें सताया, उनके साथ आप सहयोग करेंगे? मैं कहता हूं कि हां, जरूर करूंगा क्योंकि मैं तो दुश्मन को भी दोस्त बनाना चाहता हूं।

'अब यह बात समझ लेने के लिए कि कताई के अर्थ ही स्वराज्य मिल सकता है, आपको एक बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। वह यह कि आप किन साधनों से स्वराज्य लेना चाहते हैं? यदि हिंसा के द्वारा चाहते हों तो आपको कातने का विचार छोड देना चाहिए। पर यह बात मैं प्रत्यक्ष देख सकता हूं कि आप हिंसा के बल पर अंगरेजों से नहीं जीत सकते। आज बाजी के तमाम पासे उनके पास है, सिर्फ एक मेरे हाथ है और वह है अहिंसा। इसी पासे से हम उन्हें जीत सकते हैं। यदि आप इस बात को स्वीकार करेंगे तो काते बिना दूसरा चारा नहीं। क्योंकि आप समझ लेंगे कि अहिंसात्मक साधनों का केन्द्र चरखा ही है। उसीके आस पास तमाम वस्तुयें घूम रही है।

'वायुमण्डल खराब नहीं हुआ। सरकार को झगडे चाहिए और उसे विघ्न सन्तोषी लोग मिल ही जाते हैं। पर आप तो यही कहेंगे कि चाहे कितने ही विघ्न आवें हम तो कातने पर ही कटिबद्ध रहेंगे। सब लोग चाहे कातना छोड दे तो क्या इससे आप लोग छोड सकेंगे? सब लोग यदि ब्रह्मचर्य छोड दें तो क्या इससे आपभी छोड देंगे?

'इस तरह के जो सच्चे कातनेवाले हैं वे समय आने पर जरूर आगे आ जायंगे। यदि न कातनेवाले ३ करोड सभ्य होंगे तो उनसे मैं काम न ले सकूंगा, पर यदि ३०० जन भी सच्चे होंगे तो उनसे मैं देश को जगा सकूंगा। आप यह पूछेंगे कि समय आने पर ये लोग किस तरह आगे आ जायगे तो मैं न कह सकूंगा। इतना ही कह सकता हूं कि ईश्वर उन्हें आगे कर देगा। ईश्वर पर मेरा इतना विश्वास है कि मैं उसीपर आधार रखकर बैठा हूं कि मौका आनेपर वह सबको जाग्रत कर देगा। ट्रान्सवाल में क्या हुआ था? आखिर तक किसीसे न कहा गया था। पर जब कुलियों ने देखा कि हम सब जेल में जा बैठे हैं, तो वे भी निकल पडे। हरबतसिंह तो मुक्त था, उसे कर देने की जरूरत न थी। पर उसका भी दिल मचला, वह भी जेल गया और वहां जाकर मर गया। खानों को जेल बनाना पडा, उसमें उन्हें रखना पडा, अनेक दुख भोगे। मुझे कुछ खयाल थोडा ही था कि इतना सब होगा? पर ईश्वर श्रद्धा की बात ऐसी है। इसलिए जब लोग मुझसे पूछते हैं कि सविनयभंग कब करेंगे तो मैं उन्हें कुछ जवाब नहीं देता। मैं कहता हूं, जब ईश्वर मौका देगा।

अब मैं उस सवाल पर आता हूं कि महासभा में रहने से क्या लाभ? मैं कबूल करता हूं कि बहुत लाभ तो नहीं है। पर यदि हम उसमें न रहे तो स्वराजियों को नाहक दुःख होगा, यह अर्थ होगा कि हम उनके साथ सहानुभूति दिखाने को भी तैयार नहीं। इस साल तो सभ्य रहकर जितना काम हो सके किये ही छुटकारा। अगले साल यदि उन्हें यह भी दरकार न हो तो देख लेंगे। तो फिर हम कताई-मण्डल कायम करेंगे; पर वह मण्डल तो होगा इस वर्ष के कार्य का परिपक्व फल। अच्छा मान लीजिए कि महासभा में रहने से कुछ लाभ नहीं है, तो हानि भी कुछ नहीं है।"

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी १४, संवत् १९८२

'किनारे पर'

एक पत्र लेखक कुछ प्रश्न पूछ कर अन्त में लिखते हैं—

"मैं आशा करता हूं कि आप इन विषयों पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे और जबतक मैं वाही-तबाही न पूछने लगूं, मेरे साथ चर्चा जारी रक्खेंगे। मैं आपका अनुयायी हूं, आपके नेतृत्व में जेल जा चुका हूं। जब कि मैं आपके बहुत नजदीक था और बहुत मौका भी था तब भी मैंने आपसे कोई बात-चीत नहीं की, क्योंकि मैं आपका समय बरबाद करना नहीं चाहता था। मैंने आपके चरण-स्पर्श तक नहीं किये। पर अब आपके युक्ति-वाद और राजनैतिक विचारों में मेरा विश्वास हिल रहा है। मैं कोई क्रान्तिवादी नहीं हूं, पर मैं उसके किनारे पर हूं। यदि आप इन प्रश्नों का जवाब सन्तोषजनक देंगे तो आप मुझे बचा लेंगे।"

अब मैं क्रमशः उनके सवालों को लेता हूं—

"अहिंसा क्या है? चित्त की एक वृत्ति है या प्राण का नाश न करना, है? यदि यह दूसरी बात हो तो क्या यह संभवनीय है कि हम इसके अन्त तक जा कर इसका पालन कर सकें। क्योंकि हम अपने भोजन इत्यादि में रोज असंख्य प्राणियों की हिंसा करते हैं और उस अवस्था में हम वनस्पति को भी नहीं छू सकते।"

अहिंसा चित्त की एक वृत्ति भी है और तज्जन्य कर्म भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वनस्पति में भी प्राण है परन्तु वनस्पति का उपयोग किये बिना हम नहीं रह सकते। यह जीव के नाश से तो किसी तरह कम नहीं है। सिर्फ उसे क्षम्य मानना चाहिए।

"यदि हम जीव-हिंसा से बच नहीं सकते, तो इसके यह मानी नहीं कि हम बिना आगा-पीछा सोचे उसकी हिंसा करते ही रहें; पर उस हालत में, आवश्यकता साबित होने पर, सिद्धान्त की दृष्टि से उसपर आपत्ति नहीं की जा सकती। कार्य-साधकता की दृष्टि से भले ही आक्षेपार्ह हो।"

ऐसे अवसर पर भी जहां कि हिंसा की आवश्यकता सिद्ध होती हो, सिद्धान्त की दृष्टि से हिंसा का समर्थन नहीं कर सकते। कार्य-साधकता की ही दृष्टि से उसका बचाव किया जा सकता है।

"यदि अहिंसा का अर्थ है प्राण का नाश न करना, तो फिर किसी शख्स को अपना प्राण देने के लिए किस तरह कह सकते हैं—ऐसे काम के भी लिए जो कि कितना ही पवित्र और धार्मिक हो? क्या यह खुद उसकी अपने प्रति हिंसा न होगी?"

हां, मैं किसी आदमी से बराबर यह कह सकता हूं कि किसी काम के लिए अपनी जान दे दो, पर अपनेको हिंसा का दोषी न बनाओ। क्योंकि अहिंसा का अर्थ है— औरों को तकलीफ न देना।

"अपने प्राण से प्यार करना मनुष्य-स्वभाव है। जब कि एक आदमी अपने देश या समाज की आवश्यकता के लिए अपनी जान देता है तो आवश्यकता पड़ने पर वह औरों की जान कुरबान क्यों नहीं कर सकता? हमें सिर्फ इतना ही साबित करना होगा कि उसकी जरूरत थी। सो यह भी कार्य-साधकता का ही सवाल है।"

जो अपनी जान से मुहब्बत करेगा वह उसे खोवेगा। जो अपनी जान को गवांवेगा वह उसे पावेगा। आवश्यकता की बिना पर दूसरे की जान को कुरबान करने का समर्थन नहीं कर सकते; क्योंकि आवश्यकता को साबित करना असंभव है। हमें खुद उसमें काजी न बनना चाहिए। बल्कि वही एक-मात्र काजी होंगे जिनकी जान लेना हम चाहते हैं। अहिंसा के पक्ष में एक अच्छा कारण यह है कि हमारा निर्णय गलत भी हो सकता है। मध्ययुग के उन ईसाई लोगों का यह अटल विश्वास था कि हमारा कार्य धर्म्य है, पर अब हम जानते हैं कि वे बिलकुल गलती पर थे।

"कुरबानी और खून में क्या भेद है?"

कुरबानी के मानी है खुद कष्ट सहना, जिससे कि दूसरे को लाभ पहुंचे। खून के मानी है दूसरे को तकलीफ देना — मार डालना जिसमें कि खूनी या जिसकी तरफ से खून किया गया है उसे लाभ हो।

"क्या जो डाक्टर आपको नश्तर लगाता है वह आपको कुछ समय के लिए तकलीफ पहुंचाने के कारण निन्द्य योग्य है? पर क्या हम उसकी चित्त की वृत्ति अर्थात् बीमार को लाभ पहुंचाने के हेतु पर ध्यान रख कर उसके हिंसात्मक कार्य पर ध्यान न दे, उसकी और भी अधिक प्रशंसा नहीं करते हैं?"

यह हिंसा शब्द का अप-प्रयोग है। हिंसा का अर्थ है किसीको बिना उसकी रजामंदी के या बिना उसे किसी तरह का लाभ पहुंचाये, चोट पहुंचाना। मेरी बाबत तो सर्जन मेरे ही हित के लिए, मेरी लिखित रजामन्दी से मुझे कुछ समय के लिए तकलीफ पहुंचाता है। पर एक क्रान्तिकारी अपने शिकार को उसको भले के लिए नहीं लूटता है, भले के लिए नहीं वध करता है,— उसे तो वह चोट पहुंचाने के ही काबिल समझता है — बल्कि समाज के कल्पित हित के लिए

"क्या और बलों की तरह शारीरिक बल भी जीवन का प्रबल अंश नहीं है? जिस प्रकार अहिंसा का आश्रय भीरु लोग अपनी भीरुता को छिपाने के लिए ले सकते हैं उसी तरह हिंसा का भी दुरुपयोग पशु और जालिम कर सकते हैं। इससे यह साबित नहीं होता कि हिंसा खुद कोई बुरी चीज है।"

शारीरिक बल निस्सन्देह जीवन का प्रबल अंश है। हां, जालिमों ने जरूर ही हिंसा का दुरुपयोग किया है। परन्तु हिंसा का जो लक्षण मैंने किया है उसमें तो उसका सदुपयोग कल्पनातीत है। इससे पहले वाले सवाल के जवाब में उसकी परिभाषा को देखिए।

"पागलों तथा भयंकर अपराधियों को तो, जो कि समाज को हानि पहुंचाते हैं, आप जेल में भेजेंगे। तो क्या आप हमें सभ्य अपराधियों को जो कि सरकारी अफसरों के रूप में काम कर रहे हैं, मारने के बजाय गिरफ्तार करने तथा हिमालय की किसी गुहा में ले जाकर कैद रखने की इजाजत देंगे?"

मैं नहीं कह सकता कि पागलों और मुजरिमों को फिर वे भयंकर हों या नहीं, जेल में रखना अर्थात् सजा देना, ठीक है। पागल तो अब भी इस तरह नहीं रक्खे जाते हैं। पर हम तेजी से उस समय के नजदीक पहुंच रहे हैं जब कि मुजरिमों को भी सजा के लिए नहीं बल्कि सुधार के लिए संयम में रखना पड़े। पर हां, मैं उस संघ में खुशी से शामिल होऊंगा जो कि जान में या अनजान में भारत का खून चूसने वाले वायसराय, हरएक सिविलियन अंगरेज अथवा हिन्दुस्तानी को जेल भेजने के लिए कायम होगा; पर शर्त यह कि एक तो उसमें उनके आराम की पूरी गुंजाइश रहे, दूसरे ऐसी तजवीज मेरे सामने पेश हो जो हर तरह काम में आने लायक हो। और मैं तो उस अवस्था में भी उसमें शरीक होने के लिए तैयार हूं जब कि बंदोबास मेरे हिंसा के लक्षण में भी आ जाता हो।

"कौनसी बात अधिक अमानुष और भयंकर है? बल्कि कौन अधिक हिंसात्मक है? ३३ करोड़ आदमियों को तकलीफ होने दें, सड़ और मिट जाने दें या कुछ हजार लोगों का वध होने दें? आप किस बात को ज्यादह अच्छा समझेंगे? अधःपात होते होते ३३ करोड़ जनता का धीरे धीरे विलय को प्राप्त हो जाना या कुछ सौ लोगों का संहार हो जाना? हां, यह जरूर साबित करना होगा कि कुछ सौ लोगों के वध से ३३ करोड़ का अधःपात रुक जायगा। पर तब यह तफसील का सवाल रहेगा, सिद्धान्त का नहीं। यह कार्य-साधक है या नहीं, इसकी चर्चा फिर करेंगे। पर अगर यह साबित हो जाय कि कुछ लोगों के संहार से ३३ करोड़ लोगों का अधःपात रोक सकते हैं, तो क्या आप हिंसा पर सिद्धान्त की दृष्टि से एतराज करेंगे?"

कोई सिद्धान्त सिद्धान्त नहीं है यदि वह सब तरह अच्छा न हो। मैं अहिंसा की दुहाई इसलिए देता हूं कि मैं जानता हूं अकेले उसीके बल पर मनुष्य-जाति सर्वश्रेष्ठ श्रेय को पहुंचती है—अगले जन्म में ही नहीं, इस जन्म में भी। मैं हिंसा पर आक्षेप इसलिए करता हूं कि जब उससे हित होता हुआ दिखाई देता है तब वह तो अस्थायी होता है; पर उससे जो बुराई होती है वह स्थायी होती है। मैं नहीं मानता कि एक भी अंगरेज का खून करने से भारतवर्ष को जरा भी लाभ होगा। यदि किसी एक शख्स ने तमाम अंगरेजों को कल ही मार डालना सम्भवनीय बना लिया तो लाखों लोग, आज की तरह ही, उससे दूर रहेंगे। मौजूदा हालत के लिए अंगरेजों की बनिस्बत हमारी जिम्मेवारी ज्यादह है। यदि हम सिर्फ अच्छा ही अच्छा करते रहे तो अंगरेज बुरा करने के लिए अशक्त हो जायंगे। इसीलिए मैं आन्तरिक सुधार पर इतना जोर दे रहा हूं।

परन्तु क्रान्तिकारी के सामने तो मैंने अहिंसा को नीति के सर्वोच्च आधार पर पेश नहीं किया है बल्कि कार्य-साधकता की नीची बिना पर किया है। मैं कहता हूं कि क्रान्तिकारी तरीके भारतवर्ष में सफल नहीं हो सकते। यदि खुल्लमखुल्ला लड़ाई मुमकिन हो तो मैं शायद मान सकूं कि हम हिंसा-पथ को ग्रहण करें जैसा कि दूसरे देशों ने किया है और कम से कम उन गुणों को ही प्राप्त करें जो कि रण-क्षेत्र में जाने से उदय होते हैं। पर युद्ध-कांड के द्वारा भारत के स्वराज्य की प्राप्ति को तो हम, जहां तक नजर पहुंचती है, किसी समय में असंभव देखते हैं। युद्ध के द्वारा हमें चाहे अंगरेजी शासन की जगह दूसरा शासन मिल जाय, पर आत्म-शासन—जनता की दृष्टि से आत्म शासन नहीं। स्वराज्य की तीर्थ-यात्रा बड़ी कठिन, बड़ी कष्टप्रद चढ़ाई है। उसके मानी हैं देहातियों की सेवा करने के ही उद्देश से देहात में प्रवेश करना—दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है राष्ट्रीय शिक्षा—जनता की शिक्षा। इसका अर्थ है जनता के अन्दर राष्ट्रीय चैतन्य और जागृति उत्पन्न करना। वह कोई जादूगर के आम की तरह अचानक नहीं टपक पड़ेगा। वह तो वट-वृक्ष की तरह प्रायः बे-मालूम बढ़ेगा। खूनी क्रान्ति कभी चमत्कार नहीं दिखा सकती। इस मामले में जल्दी मचाना निस्सन्देह बरबादी करना है। चरखे की क्रांति ही, जहांतक कल्पना दौड़ती है, सबसे द्रुत क्रांति है।

"जब कि जीवन के परम स्वार्थ का सवाल खड़ा होता है तब क्या तर्क और युक्ति को ताक पर नहीं रख दी जाती है? क्या यह वस्तुस्थिति नहीं है कि कुछ स्वार्थी, जालिम और आग्रही लोग तर्क और युक्ति की बात को नहीं सुनते हैं और हुकूमत करते तथा सताते रहते हैं और एक जन-समाज के साथ अन्याय करते रहते हैं। आग्रही कौरवों तथा पांडवों में शान्ति-पूर्वक मेल कराने में भगवान् श्रीकृष्ण भी सफल न हो सके, महाभारत चाहे उपन्यास हो, बेचारा कृष्ण चाहे आध्यात्मिकता में बढ़ा-चढ़ा न हो; पर खुद आप भी तो अपने उन न्यायाधीश को इस्तीफा देने के लिए और अपने को सजा न देने के लिए न समझा सके। हालां कि औरों की तरह वह भी आपको निरपराध मानता था। ऐसी बातों में आत्म-यज्ञ के द्वारा समझाने से कहांतक सफलता मिल सकती है?"

यह बात दुःखपूर्ण, पर सच, है कि जहां स्वार्थ का सम्बन्ध आता है, तर्क और युक्ति को लोग ताक पर रख देते हैं। जालिम, हां बेशक, बड़ा आग्रही होता है। अंगरेज जालिम को तो आग्रह का अवतार ही समझिए। पर वह राहसमुखी राक्षस है। वह नहीं चाहता कि उसका वध हो। उसीके शस्त्रों से वह परास्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि हमारे पास उसने ऐसा कोई शस्त्र रहने ही नहीं दिया है। मेरे पास एक हथियार है, जो उसके कारखाने में नहीं बनता और उसे वह हरण भी नहीं कर सकता। उसने अबतक जितने शस्त्रास्त्र पैदा किये हैं उनमें यह बढ़कर है। वह क्या है? अहिंसा, और चरखा है उसका प्रतीक। इसीलिए मैंने उसे देश के सम्मुख पूरे विश्वास के साथ उपस्थित किया है। कृष्ण जो कुछ करना चाहते थे उसमें, महाभारतकार कहते हैं, वे असफल न हुए। वे सर्वशक्तिमान थे। उन्हें अपने उस पद से उतार कर घसीटना फजूल है। पर यदि उनके विषय में हम उन्हें निरा मर्त्य मनुष्य समझ कर, विचार करें तो उनका पलड़ा ऊंचा उठ जायगा और उन्हें पीछे की तरफ आसन मिलेगा। महाभारत, जैसा कि आमतौर पर कहते हैं, न तो उपन्यास है और न इतिहास है। वह मानव-आत्मा का इतिहास है, जिसमें ईश्वर कृष्ण के रूप में मुख्य पात्र—नायक है। उस महाकाव्य में ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें मेरी अल्प बुद्धि अवगाहन नहीं कर पाती। उसमें कितनी बातें ऐसी हैं जो स्पष्टतः क्षेपक हैं। वह चुना हुआ खजाना नहीं है। वह तो एक खान है, जिसके खोदने की जरूरत है, जिसमें गहरे पैठने की जरूरत है, तब कंकड़-पत्थर निकालने पर हीरे हाथ आते हैं। इसलिए मैं व्रतधारी क्रान्तिवादियों, या उसके उम्मीदवारों अथवा उसके किनारे खड़े, मित्रों से आग्रह करता हूं कि वे अपना पैर पृथिवी-माता पर ही जमा रक्खें और हिमालय के शिखरों पर उड़ानें न मारें, जहां कि कवि अर्जुन तथा दूसरे वीरों को ले गये हैं। हर हालत में मैं तो उसपर चढ़ने की कोशिश करने से भी इन्कार करूंगा। मेरे लिए भारतवर्ष का मैदान ही काफी है।

अच्छा तो अब मैदान में उतर कर, प्रश्नकर्ता इस बात को समझ ले कि मैं अदालत इसलिए नहीं गया था कि न्यायाधीश को समझाऊं कि मैं निरपराध हूं; बल्कि मैं गया था अपनेको पूरा अपराधी कुबूल करने के लिए, ज्यादह से ज्यादह सजा मांगने के लिए। क्योंकि मैंने तो जान-बूझ कर मनुष्य-कृत कानून को तोड़ा था। न्यायाधीश मुझे निरपराध नहीं मान सकता था, नहीं माना भी। जेल जाने में कोई ज्यादह कुरबानी न थी। सच्ची कुरबानी का लोहा इससे कहीं मजबूत होता है। मेरे ये मित्र अहिंसा के फलितार्थ को समझ लें। यह मतान्तर की एक विधि है। मुझे इस बात का यकीन हो चुका है, और यह कहने के लिए क्षमा किया जाऊं, कि मेरी दृढ़ अटल अहिंसा ने हिंसा की कितनी ही धमकियों और कृतियों की अपेक्षा ज्यादह अंगरेजों को अपने विचार का कायल किया है। मैं कहता हूं कि जिस दिन ज्ञानयुक्त अहिंसा भारत में आम चीज हो जायगी, स्वराज्य हमारे सामने होगा।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

'उत्तर की ओर चले चलेंगे, और सुबह होने पर रास्ता पूछ लेंगे।'

'पर, इस तरह कहीं जा सकते हैं? हम रात को तो इसलिए आ सके कि काम-काज से छुट्टी थी। सुबह होते ही तो हमको अपने काम पर जाना है। हम कुछ मालिक नहीं, गुलाम हैं। हम अपना काम छोड़ेंगे तो यह ईश्वर को भी मंजूर न होगा।'

नंद रुका; इस तरह ईश्वर का नाम सुना तो तुरत खड़ा रह गया, और कहा — 'हां, चलो गुलाम तो हैं ही। मालिक से छुट्टी लेकर चिदंबरम् चलेंगे।' (अपूर्ण)

टिप्पणियां

कातनेवालों से

मैं कितनी ही बार लिख चुका हूं कि कातने का मतलब ज्यों त्यों करके तार निकालना नहीं। जैसे-वैसे आटे को किसी तरह पानी में मिलाकर टेढा-मेढा रोट आग पर कच्चा-पक्का कर लेना रोटी पकाना नहीं कहा जा सकता और उसे रोटी समझ कर यदि खावेंगे तो बदहजमी होगी। इसी तरह ऐसी वैसी रुई को भली-बुरी तरह धुनक कर मोटे-पतले तार खींचने का नाम नहीं कह सकते। सूत तो उसीको कह सकते हैं जो आसानी से बुना जा सके। इस बारे में मिल के सूत को अपने लिए नमूना मानना चाहिए। जबतक हाथ ऐसा सूत न कातने लगे तबतक उसे हमारी खामी समझनी चाहिए। उस तक पहुंचना तो ठीक, यह अनुभव-सिद्ध है कि हम उससे भी आगे बढ सकते हैं। अच्छे मिल के सूत से हाथका अच्छा सूत हमेशा बढकर होता है। उसके बने कपडे में जो मुलायमी होती है वह मिल के कपडे में कभी नहीं आती। परन्तु जबतक हम उस हद तक नहीं पहुंच सकते तबतक खादी के खिलाफ शिकायतें हमारे पास आती ही रहेंगी और बुननेवाले को भी खादी बुनने में कठिनाई बनी रहेगी।

हाल में अ० भा० खादी-मण्डल के नाम एक कार्यकर्ता का पत्र आया है। उसपर ये विचार लिखने पडे हैं। कताई-मताधिकार के पहले महासभा के तमाम पदाधिकारियों को अ० भा० खादी मण्डल के पास सूत भेजना पडता था। उस सूत की खादी बुनाने में जो जो तजरिबे हुए हैं वे बडे कीमती हैं। पूर्वोक्त रिपोर्ट इसी तजरिबे का फल है। उसमें वे कार्यकर्ता लिखते हैं, सूत इतना कच्चा कमजोर था कि बुननेवाले नहीं बुन सकते। फिर सूत की फालकियों की नाप सब का बराबर नहीं है और वह इस तरह लपेटा गया है कि कोकडे बनाने में बहुत समय देना पडता है। ये दोनों खामियां दूर होना जरूरी हैं। पदाधिकारी लोग तो इस बारे में खूब सावधानी रख सकते थे। पर उन्होंने चिन्ता ही नहीं रक्खी मालूम होती। फलतः या तो सूत की बुनाई बंद रखनी पडेगी या उसे ऐसे-वैसे काम में लगाना पडेगा।

खैर जो होना था सो हुआ।

अब तो कताई मताधिकार में शामिल हो गई है। इससे कातने वालों संख्या बढनी चाहिए। इसलिए पूर्वोक्त अनुभव से हर कातनेवाले का लाभ उठाना चाहिए।

हरएक कातनेवाला इन दो बातों को याद रक्खे—

१—बलदार और एकसा सूत हो

२—सूत चार फुट की फालकी पर उतारा जाय और हर १०० गज पर आंटी लगाई जाय।

ये दो गुण जिसमें न हो वह सूत माने जाने लायक नहीं। अधिक सावधानी रखनेवाले रुई की किस्म को समझें, ठीक ठीक धुनके या धुनकावें और उससे जिस अंक का सूत निकल सकता सकता हो वह कातें तथा हरवक्त सूत को निकालने के पहले उसे फुकारें। इतना करने पर कहना चाहिए कि उसने अपने तथा देश के साथ पूरा इन्साफ किया। यदि हम आम तौरपर २० अंक का सूत कातने लगें तो खादी की कीमत बहुत कम हो सकती है और मिलों का विरोध बन्द हो सकता है।

मताधिकारी यदि अपने धर्म को समझ लें तो हमें सबसे अच्छा सूत रुई के दाम में मिल सकता है। यदि हम इतना कर सकें तो खादी-संबन्धी तमाम मुश्किलें अपने आप दूर हो जायंगी। मताधिकारियों का प्रामाणिक परिश्रम खादी की रक्षा है, सहायता है राज्याश्रय है। मताधिकारी गण इतनी प्रार्थना सुनेंगे?

(नवजीवन) मो० क० गांधी

अभिनन्दन पत्र देनेवाले ध्यान दें

मैं बार बार यह कह चुका हूं कि मुझे दिये जानेवाले अभिनन्दन-पत्र पर जब चौखटा लगा हुआ होता है या जब वे कीमती करण्डक में रक्खे जाते हैं तब यात्रा में उनको रखना मुश्किल हो जाता है। फिर भी मुझे भारी भारी चौखटे और कभी कभी कीमती करण्डक लोग देते ही रहते हैं। जहांतक बेश कीमती से मतलब है कलकत्ता कार्पोरेशन इसमें सबसे ज्यादह गुनहगार है। जब मुझे वहां अभिनन्दन पत्र दिया गया तब उसकी रक्षा के सुवर्ण-तश्त में दिया गया था। उनकी फरमायश का तबक तैयार न हो पाया था। अब इस यात्रा में देशबन्धु ने मेरे हाथों में एक बड़ा बढ़िया सुवर्ण-पत्र रक्खा जिसपर कि तमाम अभिनन्दन-पत्र खुदा हुआ था। ज्यों ही वह मुझे दिया गया मैं हैरान हुआ कि इसे रक्खूंगा कहां? और यही हालत उनकी भी थी, हालां कि वह लिया गया था उनके उसी पुराने महल में। जब वे जाने लगे तो वे महादेव देसाई को अलहदा बुलाकर कह गये कि सुवर्ण-पत्र हिफाजत की जगह रखना। सौभाग्य से बाबू सतीश मुकर्जी मेरे पास थे। मैं उनसे उस सुवर्ण-पत्र की बात पहले कह चुका था और उन्होंने उसे अपने जिम्मे ले लिया। यह पत्र भी वहीं जायगा जहां और मेरी कीमती भेट की चीजें गई हैं। जिन मित्रों को मैंने ये सब चीजें सौंपी हैं वे अभी इस बात का फैसला नहीं कर पाये हैं कि उन्हें बेच डालें या किसी अजायब घर में रख दें। क्या अच्छा हो, यदि वे लोग जो मुझे अभिनन्दन-पत्र देना चाहते हों यह जानकर कि मैं बेश कीमती चीजों को नहीं रख सकता, ऐसे ही अभिनन्दन-पत्र दिया करें जिनमें कम खर्च लगे। और चौखटे? उनको तो यात्रा में उठाये फिरने में बहुत ही असुविधा होती है। बहुतेरे मित्रों ने तो इस हालत को जान लिया है और अब वे खादी पर छपे अभिनन्दन-पत्र देने लगे हैं। मेरी समझ में यह सब से ज्यादह सीधा सादा और उत्तम तरीका है। खादी तो मैं अपने साथ जितनी हो, ले जा सकता हूं। जितने भी अभिनंदन-पत्र उसपर छपेंगे उतना ही खादी का फैलाव होगा। पर अगर खादी अभिनंदन-पत्र के साथ भी करण्डक देना जरूरी हो तो मैं फरीदपुर के उदाहरण की ओर उनका ध्यान दिलाता हूं। म्युनिसिपल्टी और औवरसिव-मिशन ने बांस की नलियों में अभिनंदन-पत्र दिये थे। एक नली निरलकारी था और दूसरी पर चटाई चढाई हुई थी और सिरों पर चांदी। पर चांदी भी आसानी से उड़ा दी जा सकती थी। सादी से सादी चीज भी अगर उसे कला का स्पर्श होने से सुन्दर हो सकती है और उसमें हम अपने आसपास के जीवन का अनुकरण कर सकते हैं। हिन्दुस्तान का ग्राम जीवन यद्यपि छिन्न-भिन्न हो गया है, तथापि अब भी उसमें इतनी कला और कविता मौजूद है

कि हम उसका अनुकरण कर सकते हैं। ट्रावनकोर में तो उन्होंने ताड़ के पत्तों से खूब काम लिया था। हां, यह तो मैं तमाम अभिनंदन पत्रों के लिए कहूंगा कि उनमें सादगी हो—कला-युक्त सादगी हो। पर अपनेलिए तो खास तौरपर जोर देना चाहता हूं; क्यों कि न तो इसमें मुझे सुविधा है और न मुझे अभिलाषा ही है कि कीमती और भारी करण्डक और चौखटे अपने पास रक्खूं।

मेरठ में कताई

चौधरी रघुवर नारायणसिंह मेरठ से लिखते हैं कि मैंने बेलगाम में ५०० नये सदस्य बनाने का वादा किया था, पर मैं अपने छोटे भाई की भारी बीमारी और अन्त को मृत्यु के कारण मीयाद के अन्दर उसे पूरा न कर सका। पर अब स्वराजी वकील बा० ज्योतिप्रसाद तथा दूसरे मित्रों की सहायता से ६४७ सदस्य बना पाया हूं जिनमें २०० खुद कातनेवाले हैं। हां, यह तो जितना कुछ हुआ ठीक है पर मैं चौधरीजी को याद दिलाता हूं कि उन्होंने तो ५०० खुद कातनेवाले सदस्य बनाने का वादा किया था। आशा है कि वे तथा उनके साथी इस बात को ध्यान में रखकर तबतक दम न लेंगे जबतक उतनी संख्या पूरी न हो जाय। चौधरीजी यह भी लिखते हैं कि हम यहां मर्दों-औरतों की कताई की बाजियां भी रखते रहते हैं और लोग उनमें खूब हिस्सा लेते हैं। सब मिलाकर वे कहते हैं, कि यद्यपि तरक्की धीरे धीरे हो रही है पर वह मजबूत होती जा रही है। कताई और धुनाई सिखाने की भी तजवीज उन्होंने की है।

एक महाशय की दुविधा

"मैं 'यं. इं' में प्रदर्शित आपके विचारों पर कुछ समय से मनन करता हूं। मुझे उनमें एक भारी असंगति दिखाई देती है। एक ओर तो आप मनुष्य के सामने सन्यासी का आदर्श रखते हैं जिसके मानी होते हैं दुनियवी चीजों का त्याग और ईश्वर-भक्ति। पर दूसरी ओर आप भारत के स्वराज्य के लिए प्रयत्नशील हैं, जिसकी कि आवश्यकता सन्यासी के लिए नहीं है। समझ में नहीं आता इन दोनों बातों की संगति कैसे लगावें? एक सन्यासी को अपने देश की राजनैतिक हालत की चिन्ता क्यों करनी चाहिए? बल्कि अगर वह अपना ध्यान स्वराज्य जैसी क्षुद्र बातों पर लगायेगा तो वह सच्चा सन्यासी नहीं है, क्योंकि उसका अनुराग दुनियवी लाभ में बना हुआ है। अतएव सन्यासी को अपने लिए स्वराज्य की कोई आवश्यकता नहीं है। पर अगर वह दूसरे के लिए प्राप्त करता हो तब भी वह गलती करता है। क्योंकि उसका मनोविकास पूरा नहीं हो पाया है। तो फिर लोगों को मिथ्या आदर्श की ओर ले जाने से क्या लाभ है?"

यह है लेखक की समस्या। मुझे पता नहीं कि मैंने 'मनुष्य के सामने सन्यासी का आदर्श रक्खा है। मैंने तो भारतवर्ष के सामने स्वराज्य का आदर्श रक्खा है। हां, ऐसा करते हुए मैंने सादगी का उपदेश जरूर किया है। मैंने सदाचार का भी उपदेश दिया है। परन्तु सादगी, सदाचार और ऐसा गुण अकेले सन्यासियों की सम्पत्ति या सौभाग्य नहीं है। फिर मैं यह जरा देर के लिए नहीं मानता कि सन्यासी एकान्तवासी हो जिसे दुनियां की कुछ फिक्र न हो। बल्कि सन्यासी तो वह है जो अपनेलिए किसी बात की चिन्ता न करता हो, चौबीसों घण्टे औरों की फिकर करता हो। वह तमाम स्वार्थ-भाव से मुक्त हो जाता है। पर वह निस्वार्थ कामों में लगा रहता है, जिस तरह कि ईश्वर निस्वार्थ भाव से लगा रहता है, सोता तक नहीं, इसलिए एक सन्यासी तभी सच्चा त्यागी-विरक्त कहा जायगा जब वह अपने लिए नहीं (क्यों कि उसे तो वह प्राप्त ही है।) बल्कि औरों के लिए स्वराज्य की चिंता करे। उसे अपने लिए कोई दुनियवी महत्वाकांक्षा नहीं रहती है। पर इसके यह मानी नहीं है कि वह औरों को दुनिया में अपना स्थान जानने में मदद न दे। यदि प्राचीनकाल के सन्यासी समाज के राजनैतिक जीवन में दिमाग लड़ाते हुए नहीं देखे जाते हैं तो उसका कारण यह है कि उस काल की समाज-रचना भिन्न प्रकार की थी। पर आज तो राजनीति जीवन की प्रत्येक बात पर शासन करती है। हम चाहें या न चाहें, सैकड़ों बातों में हमारा साबका राज्य से पड़ता है। सन्यासी के नैतिक जीवन पर राज्य का असर पड़ता है। इसलिए समाज का सब से बड़ा हितैषी होने के कारण संन्यासी का ताल्लुक राजा-प्रजा के संबंध से हुए बिना नहीं रह सकता—अर्थात् उसे प्रजा को स्वराज्य का रास्ता दिखाये बिना चारा नहीं। इस तरह से विचार करने पर स्वराज्य किसी के लिए गलत आदर्श नहीं है। लोकमान्य ने इससे बढ़कर सत्य बात कभी नहीं कही है, जब कि उन्होंने हममें से अत्यन्त हीन मनुष्य को भी मंत्र दिया — स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। संन्यासी तो स्वयं स्वराज्य-प्राप्त होता है इसलिए वही सब से योग्य पुरुष होता है उसका रास्ता दिखाने के लिए। सन्यासी दुनिया में रहता है पर वह दुनियादार नहीं होता। जीवन के तमाम महत्वपूर्ण कार्यों में उसका आचरण साधारण मनुष्यों के जैसा होता है, सिर्फ उसकी दृष्टि जुदी होती है। हम जिन बातों को राग के साथ करते हैं उन्हें वह विराग के साथ करता है। विराग प्राप्त करना हम सब लोगों के लिए ईश्वरी प्रसाद है। निश्चय ही हर शख्स के लिए यह एक उत्तम उर्ध्व आकांक्षा है।

(यं इं) मो० क० गांधी

महासभाके सदस्य

१६ मई तक महासमिति के दफ्तर में सदस्यों की संख्या १५३५५ तक पहुंचने की खबर है।

		अ-वर्ग	ब-वर्ग	कुल-
१	अजमेर	२	१५	१७
२	आंध्र	०	०	१९६५
३	आसाम	११३	१	११४
४	बिहार	७१८	२६१	९७९
५	बंगाल	३५४	१९१९	२२७३
६	बरार	६	२०	२६
७	ब्रह्मदेश	३३	२८	६१
८	मध्यप्रान्त(हिन्दी)	०	०	५००
९	,, (मराठी)	८०	५२	९३२
१०	बम्बई	२४२	२०१	१४३
११	देहली	२४३	६४७	८९०
१२	गुजरात	२०९५	१०१	२१८६
१३	करनाटक	३७६	३४४	७२०
१४	केरल	—	—	—
१५	महाराष्ट्र	४०८	२९२	७००
१६	पंजाब	५०	७१४	८०४
१७	सिन्ध	१०७	२३४	३४१
१८	तामिलनाड	—	—	—
१९	संयुक्तप्रान्त	२३७	८६७	१४८४
२०	उत्कल	०	०	३१०
		५२६४	५१९६	१५३५५

ग्राम-प्रवेश

[illegible]
एक प्रति का [illegible]
विदेशों के लिए [illegible]

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४१

मुद्रक-प्रकाशक
वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, जेठ सुदी १२, संवत् १९८२
गुरुवार, ४ जून, १९२५ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बाढ-संकट-निवारण

यह मेरे लिए ना-मुमकिन था कि मैं बंगाल तो आता पर वहां के बाढ-पीडित प्रदेशों को और उनमें किये आचार्य राय की संकट-निवारण-समिति के काम को न देखता। मेरे लिए यह एक तीर्थ-यात्रा थी। क्योंकि एक तो आचार्य राय से मेरा समागम सेट १९०१ से है और दूसरे, उन्होंने बडी सफलता के साथ यह दिखा दिया है कि चरखा किस तरह संकट निवारण के लिए उपयोगी चीज है और भावी संकट के समय किस तरह बतौर एक बीमा के है। यदि देहात के लोगों को यह बता दिया जाय कि बाढ और अकाल के मौके पर किन तरीकों से काम किया जाय, और साथ ही वे खेती के अलावा एक ऐसे पेशे की भी आदत डाल लें — क्योंकि खेती तो बाढ या अकाल के समय असम्भव हो जाती है — तो बहुतेरा समय, धन और परिश्रम जो कि आम तौर पर ऐसे वक्त पर दरकार होता है, बच सकता है। पर जब कि ऐसे मौकों पर लोगों को दान और चन्दे पर जीवित रहना सिखाया जाता है तो एक तो वे आत्म-सम्मान से हीन हो जाते हैं और दूसरे अपने अंगों का उपयोग करना भूल जाते हैं। तब सत्वहीनता उनके अन्दर प्रवेश करती है और अन्त को वे लोग महज नीची श्रेणी के पशुओं की हालत को पहुंच जाते हैं। पशु अपने जीवन में कम से कम आनन्द का अनुभव तो करते हैं; परन्तु उन मनुष्यों को तो जीते हुए मरे के समान समझिए। ऐसी अवस्था में मैं जितना हो सके खुद अपनी आंखों से यह देखना चाहता था कि इस चरखा-दीवाने रसायनाचार्य ने बाढ-पीडित प्रदेशों में क्या काम किया है।

मैं पहले बोगरा और वहां से तलोरा गया, जहां कि आचार्य राय को मैंने उनके असली रंग में देखा। 'यह कुटिया मुझे उस आलीशान 'सायन्स कालेज' से ज्यादह कीमती है। यहां मैं और सब जगह से ज्यादह शान्ति और समाधान पाता हूं। और चरखा तो मुझपर अपना रंग दिन पर दिन जमाता जा रहा है। पुस्तकों के अध्ययन से थके दिमाग को यहां खूब आराम मिलता है।' तलोरा एक छोटा-सा गांव है जहां कि संकट-निवारण-समिति का एक केन्द्र है। समिति ने कोई २० बीघा जमीन खरीदी है और बांस की झोपडियां बना कर उनपर छप्पर डाले हैं। आसपास का कुदरती दृश्य बडा रमणीय है। पूर्व बंगाल में फसली बुखार की फसल खूब रहती है। अपने नियमों के उल्लंघन का यह दण्ड कुदरत लोगों को दे रही है। परन्तु पूर्व बंगाल में लक्ष्मी ऐसी छाई हुई है और उससे उसकी शोभा ऐसी बढ गई है कि उसका मुकाबला करना मुश्किल है। मनुष्य उस भूमि को बुखार वाली तो बना पाया है पर उसके प्राकृतिक सौंदर्य को नष्ट नहीं कर पाया है।

इस विश्रान्तिदायक स्थान में मैंने संकट-निवारण-संबंधी कामों की सारी कथा सुनी। यहां जो अभिनन्दन-पत्र मुझे दिया गया उसमें एक भी स्तुतिवाचक शब्द न था। उसके बदले [illegible] किये फुलस्केप पन्ने वस्तुस्थिति और अंकों के विवरण से भरे थे। पाठकों के लाभ के लिए [illegible]

सितंबर १९२२ में राजशाही और बोगरा जिलों में जबरदस्त बाढ आई। उत्तरी बंगाल की कोई ४००० वर्ग मील जमीन [illegible] उसने नुकसान पहुंचाया। नुकसान कोई १ करोड का आंका [illegible] था। पहली कठिनाई तो पाई गई थी संकट-निवारण का प्रबंध करने की और उसके निमित्त काम करनेवाले अनेक दलों को एक सूत्र में बांधने की। जिन्हें संकट-निवारण के कामों का जरा भी ज्ञान है वे जानते हैं कि खाली सेवा करने की इच्छा या रुपये से ही काम नहीं चल सकता। उसके लिए ज्ञान और योग्यता की भी जरूरत है जिसका कि अभाव पाया जाता है। यथोचित कार्य-प्रणाली के द्वारा दो बुराइयां रोकी गई — एक तो एक ही जगह दुबारा काम का करना और दूसरे अज्ञानयुक्त व्यवस्था। सारा बाढ-पीडित प्रदेश ५० केन्द्रों में बांट दिया गया था। इस विशाल संगठन के अध्यक्ष और कोई नहीं श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस थे, जोकि आज मण्डाले के किले में सम्राट् महोदय के मिहमान हैं। डा० इन्द्रनारायण सेनगुप्त उनके सहायक थे। इस समिति ने २५,६०६) का अनाज और ५५,१००) के कपडे बांटे। इसके अलावा ८०,००० कपडे के टुकडे ७५,००० पुराने कुरते और जाकट बांटे गये सो अलग ही। उसने १,२०४) का भूसा और ५२ वागन (waggon) घास भी बांटा, जो कि उसे दान में मिला था। उसकी देख-भाल में १०,००० झोंपडियां बनाई गई थीं। सामान गांववालों के दरवाजे पहुंचाया गया था। मजदूरी खर्च भी उन्हें दिया गया था। जब एक बार दी रकम खर्च हो जाती थी और उसकी जांच हो कर

रपोट मिल जाती थी तब फिर मजदूरी खर्च दे दिया जाता था। निगरानी इतनी कडी थी कि सिर्फ तीन बार क्रमश: — १,५००), ३५०) और २००) गबन हुए। फौरन् ही पता लगाया गया और रकम वापस हासिल की गई। झोंपडियों को बनवाई में १,१२,७५५) खर्च हुए। यदि कालिकापुर में जमीन की रक्षा करनी हो तो बांध बांधने की बहुत ही जरूरत थी। सच पूछिए तो यह काम है जिला बोर्ड का। पर वह उसका बोझ उठाने में असमर्थ थी। सो इस समिति ने कोई एक मील लंबा बांध बांधा जिससे ६,००० बीघा जमीन की हिफाजत हुई। उसमें ५,७७५) खर्च हुआ। फिर धीरे धीरे जब काम जम गया, समिति ने गांववालों को कुछ काम देने की तजवीज की। उसका मिहनताना उन्हें खाने और कपडे के रूप में दिया गया। उन्हें धान कूटने का काम दिया गया। कुछ धान बाढ-पीडित कुटुम्ब को दे दिया जाता था वे कूट कर चांवल नियत केन्द्र को ले आते थे। हर कुटुम्ब को यह अख्त्यार दे दिया गया था कि वह नियत मिकदार में चांवल अपने खाने के लिए रख ले। इस काम के १४ केन्द्र थे। इन केन्द्रों से · महीने तक २०,००० पेट को खाना मिला। ५०,००० मन धान में से २७,४०० मन चावल मिला। नागा किसीने नहीं किया। इस काम में ४३,०००) खर्च हुए। खाने और कपडे के अलावा दवा-दरपन की भी काफी मदद पहुंचाई गई थी।

परन्तु इतने ही पर समिति की आकांक्षा पूरी न हुई। उसने कुछ स्थायी काम कर के उस रकम के योग्य अपनेको बनाना चाहा जो कि उसे सर्व-साधारण की ओर से उदारता-पूर्वक मिली थी। उसने लोगों को ऐसे कष्ट के समय मे स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बनाना चाहा। यहां मैं अभिनन्दन-पत्र की भाषा में ही इस बात की तफसील देता हूं कि किस तरह उनके अन्दर चरखे का प्रवेश किया गया—

"जब बारिश हुई तो धान कूटना मुश्किल हो गया। पर पीडितों को प्राय: सभी केन्द्रों में सहायता की तो जरूरत थी ही। अच्छी फसल के मौके पर भी ऐसे मुकाम थे जहां ध्यान देने की जरूरत थी। उन्हें न तो उस समय जमीन जोतना होती है, न फसल काटना होती है। और औरतों के लिए तो उसकी और भी ज्यादह जरूरत होती है। और हमारे उस रकबे में ऐसे लोग कम न थे। तब चरखा प्रवेश करने की बात सोची गई और कुछ केन्द्रों में वह धीरे धीरे दाखिल किया गया। सबसे पहले खमरगांव में चरखा शुरू किया गया जहां बूढी औरतों को अब भी चरखा-कताई के दिन याद थे। पर १९२३ के मध्य के पहले जबतक कि चरखा प्रचार के लिए भगीरथ प्रयत्न न किया गया, बहुत तरक्की न हो पाई। परन्तु पिछले तमाम कामों से कार्यकर्त्ताओं को कताई का संगठन करना बहुत मुश्किल मालूम हुआ। उनके लिए यह अग्नि-परीक्षा ही थी। अबतक तो उत्कण्ठा थी लोगों को, परन्तु अब उनके अन्दर उसे पैदा करना पडता था। कताई-काम तभी जारी हो सकता था जब कि काम करनेवाले खुद निपुण सूतकार हों। बहुतेरे कार्यकर्ता जिन्होंने अबतक काम बडी खुशी के साथ किया था, इस कसौटी पर पूरे न उतरे। १९२३ के उत्तरार्द्ध में रघुरामपुर नामक केन्द्र में कुछ चुने हुए कार्यकर्त्ताओं को चरखे की अमली तालीम दी गई। इस समय तक अबतक ५ के तमाम केन्द्र शुरु हो चुके थे—१९२४ में खुले तीन केन्द्र को छोड कर। तीन केन्द्र अबतक बंद हुए हैं — स्थानिक लोगों की सहानुभूति के अभाव से। १९२३ में शुरुआत के पांच महीनों में ९ केन्द्रों में ६१ मन सूत निकला, उससे १०,००० गज कपडा तैयार हुआ और उस साल में कुल खादी बिकी ४,६७६) की हुई।

१९२४ में ९ केन्द्रों में ३१० मन सूत हुआ, ९६,३०० गज कपडा बुनाई केन्द्रों में तैयार हुआ और ७६,२२५) की कुल खादी उस साल बिकी।

इस वक्त १० कताई केन्द्रों और ३ बुनाई केन्द्रों के द्वारा खादी-काम हो रहा है। ११९ गांवों में कार्यकर्त्ता काम कर रहे हैं। २,९८७ चरखे इतने ही लोगों में बांटे गये है। कातनेवालों में मुसल्मानों की संख्या बहुत ज्यादह है, हिन्दुओं की तादाद इस प्रदेश में बहुत ही कम है कुल कातनेवालों के १/६ भी वे न होंगे।

३ कताई केन्द्रों में २०० वस्त्रकार है जिनमें सिर्फ १२ हिन्दू है। १०४ वस्त्रकार केवल शुद्ध खादी बुनते हैं और उनकी आमदनी ११० से १५०) साल होती है। फोयजान बीबी नामक एक कातनेवाली की ज्यादह से ज्यादह आमदनी ७-१३-३ और एक जुलाहा युस्मत की ३१) एक माह में हुई है।

तलोरा केन्द्र में निमाइदीघी नाम का एक गांव है। अभी वहां १३० चरखे चल रहे हैं पिछले साल के छः महीने में उस गांव की कुल आमदनी १२२ चरखों के द्वारा १,२४८) हुई अर्थात् १-११की सूतकार फी माह पडी। तिलकपुर केन्द्र के अन्तर्गत दयोल नाम . गांव में ११ जुलाहों ने छ, महीने में १,१७४) पैदा किये अर्थात १८) फी जुलाहा माहवार पडे। एक देहाती के लिए अवश्य ही यह अच्छी आमदनी है।

चरखा अकाल का बीमा

अतराई के आस पास के प्रदेश की अपेक्षा बोगडा के लोगों की दिक्कतें कम न थीं। बाढ के बाद में सख्त सूखा पडा—कहान्‌ और भूपर्चाचया धानों में कोई ६० फी सदी फसल मारी गई, संकट निवारक कार्य तुरन्त ही शुरु किये गये। बोगडा जिला के मजिस्ट्रेट को संकट-निवारण के लिए चरखा अच्छा जचा और उन्होंने यह काम हमारी निगरानी पर छोड दिया। हमने अपने तलोरा, चम्पापुर, दुर्गापुर और तिलकपुर केन्द्र से यह काम शुरू किया।

	गांव	चरखे	कताई	बुनाई	धुलाई	कुल
तलोरा	३३	४२८	८,३८४	८,५११	४३५	९३९८
चपापुर	२८	३१८	३,७५७	—	—	३७९७
दुर्गापुर	१८	१३५	१,४१५	—	—	१,६१५
तिलकपुर (बुनाई)	८	६७ करघे		२८१०		२८१०

इस तरह इन चार केन्द्रों से ७ महीने में मार्च से १९२४ सितम्बर तक कताई बुनाई धुलाई में कुल १७,४२०) दिया गया। इससे यह जाना जायगा कि चरखा कितना काम दे सकता है, अकेले अकाल के ही समय नहीं बल्कि बेकारी के मौसम में भी उससे आमदनी में बढती की जा सकती है।

ये केन्द्र या तो समिति की अपनी जमीन में या जमीदारों से किराये मिली जमीन में खोले गये थे। हमारी जमीन का कुल रकबा ४३ बीघा है जिनमें २५ बीघा अकेले अतराई में है। हर केन्द्र में औसतन् ३ छप्पर है — एक काम करने वालों के रहने के लिए, दूसरा रसोई-घर और तीसरा सामान-घर। हरएक केन्द्र कोई २५ से ३० वर्ग मील के अन्दर १० से ३० गांवों में काम करता है। गांवों का एक हलका बना लिया गया है और एक कार्यकर्ता के जिम्मे एक हलका कर दिया गया है। वह एक सप्ताह में १०० चरखों को देखता है और १६ से २० सूतकारों के काम को देखने की उससे उम्मीद की जाती है। ज्यों ही एक सूतकार कताई में कुछ निपुण हुआ त्योंही उसे एक सप्ताह के लिए पूनियां दी

जाती है और ठीक आठवें दिन कार्यकर्ता वहां पहुंच जाता है, सून ले लेता है, और पूनिया दे देता है, फी तोला १ पैसा १० अंक के सूत के हिसाब से मजदूरी दे देता है। तमाम सूत लेबल लगाकर, मुख्य कार्यालय में भेज दिया जाता है जहां उसका मेल मिलाया जाता है, अंकों के हिसाब से विभक्त किया जाता है और बुनाई-केन्द्र में भेज दिया जाता है। मुख्य कार्यालय के आदेश के अनुसार बुनाई-केन्द्र के लोग उसे बुनवा लेते हैं और फिर कपड़ा मुख्य कार्यालय को भेज दिया जाता है वहां से वह धुल कर तह्य कर, कलकत्ते बिक्री के लिए भेज दिया जाता है।

इस समय हमारे यहां ६२ कार्यकर्ता हैं। प्रायः सब कताई तथा उससे संबन्ध रखने वाली क्रियाओं में खासे निपुण हैं। उनमें से ४८ तो फी घण्टा ४०० गज या इससे अधिक १५ अंक का सूत कात सकते हैं। अधिक गति का हाल तो पहले ही बताया जा चुका है। उसमान काजी ने २० अंक का ८२० गज और मीजान अमानिक ने २० अंक का ७९० गज काता है।"

यद्यपि ये परिणाम बहुत बढ़िया हैं फिर भी अभी और जो जो हो सकता है उसके मुकाबले में कुछ नहीं है। एक ऐसी अवस्था आजायगी जब कि रुई लोगों के दरवाजे ले जाने की जरूरत न रहेगी, बल्कि वे खुद ही रुई लेकर मामूली तौर सूत बेचा करेंगे, जैसा कि वे बंगाल के फेनी जिले में तथा पंजाब, राजपूताना और दूसरी जगह के कितने ही गांवों में करते हैं। चरखे का संगठन मुझे इतना कामिल नजर आता है कि मुझे उस काम में पूर्वोक्त दिशा में तरक्की करने के मार्ग में किसी दिक्कत का अन्देशा नहीं मालूम होता।

इस प्रयोग के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम-एकता की सच्ची प्रगति भी दिखाई देती है। एक मुख्यतः हिन्दू लोगों का संगठन मुख्यतः मुस्लिम लोगों की बस्ती की इमदाद कर रहा है — महज उनकी माली हालत दुरुस्त करने के लिए। उसमें मुसलमान कार्यकर्ता भी हैं जिन्हें कभी यह ख्याल नहीं होने दिया जाता कि वे हिन्दू-कार्यकर्ता से किसी तरह कम हैं। और महज अपनी लियाकत के बदौलत उनमें से दो सूतकार सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त किये हुए हैं। मुझे ३२ स्वयंसेवकों को सूत कातते हुए देखने का अवसर मिला था। सब फी घण्टा ४०० गज से ज्यादह गति से कात रहे थे; परन्तु मुसलमान सूतकारों ने ७२० गज के हिसाब से काता। मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि इन स्वयंसेवकों को बाजार दर के हिसाब से कताई दी जाती है। सतीश बाबू ने जिनकी योजना-शक्ति के बदौलत यह सारा संगठन हुआ है मुझसे कहा है कि तजरिबे से पाया गया है कि पूरा समय काम करनेवाले स्वयंसेवकों को, यदि हम उनसे पूरी नियम-निष्ठा चाहते हों तो पूरा मिहनताना देना बेहतर होता है। हर स्वयंसेवकों को वे २५) मासिक के हिसाब से मिहनताना देते हैं।

(यं. इं.) मोहनदास करमचन्द गांधी

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं —

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायगी।
२. एजंटों को प्रति कापी) । कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेलवे से।

व्यवस्थापक—हिन्दी-नवजीवन

एंग्लोइंडियन

डा० मोरेनो से मैंने कहा है कि अन्य भारतीयों की तरह एंग्लोइंडियन लोगों-अधगोरों-को भी सूत कातना और खादी पहनना चाहिए। कुछ लेखकों ने इस सूचना को हंसकर उड़ा दिया है। हंसी में टाल देना है तो बड़ा आसान, पर मुझे अपनी दवा पर कामिल यकीन है और मैं जानता हूं कि यह हंसी शीघ्र ही खासी हमदर्दी के रूप में बदल जायगी। अधगोरे भाइयों के प्रति मेरे दिल में कोई दुर्भाव नहीं है। मेरी स्वराज्य-कल्पना में उनके लिए भी उतना ही स्थान है जितना कि किसी भी भारत में पैदा हुए या भारत को अपनी भूमि बना लेनेवाले शख्स को है। इसलिए आरम्भ में चाहे भले ही कुछ लोग कुछ समय के लिए मेरी बात का गलत अर्थ लगावें पर मैं जानता हूं कि अन्त को उनकी गलतफहमी न रहेगी। मैं हिन्दुस्तानियों और अधगोरों में कोई तमीज करना नहीं चाहता, पर मैंने अधगोरे गरीब लोगों को भी देखा है। उनसे भी मिला हूं। उन्हें आराम से रहने के लिए दूसरे गरीब हिन्दुस्तानियों की तरह रहने की जरूरत है। उन्हें उनके दुःखसुख में शरीक होना चाहिए और जहां तक हो सके उनके जैसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। और खादी तो सब लोगों के लिए सामान्य हो सकती है, फिर क्यों वे औरों के साथ चरखा भी न कातें? देश के गरीबों और अपने दरम्यान हमदर्दी के इस दृश्य और सर्व-व्यापी बन्धन को स्वीकार करने में शरम की कोई बात नहीं है। अपनी जन्मभूमि के दीन-दरिद्र लोगों के साथ अपनेको तद्रूप करने में अधगोरे भाई क्यों पीछे रहें? मामूली हिन्दुस्तानी से अपनेको बड़ा और ऊंचा समझने की झूठी शिक्षा उन्हें दी गई है जिसने उन्हें दर असल अपने ही घर में विदेशी बना रक्खा है। और अंगरेजों के साथ तो वे अपनेको मिला नहीं सकते। किसी दूसरे देश को अपना घर समझना उनके लिए नामुमकिन है। यदि वे किसी उपनिवेश में जाने की कोशिश करें तो वहां उनके नसीब में वही दुर्गत और वही लाचारी बदी होगी जो कि एक मामूली हिन्दुस्तानी बाशिन्दे को बदी होती है। इसलिए मैंने बड़ी नम्रता और शुद्ध हृदय से कहा है कि उन्हें अपने जीवन सम्बन्धी विचार बदलने चाहिए। उन्हें वैसा ही होना चाहिए, जैसा कि वास्तव में वे हैं अर्थात् भारत के लाखों लोगों की तरह। तब जा कर, जब कि उनकी स्थिति सम-समान हो जायगी, वे अपने माता-पिता दोनों के सद्गुणों को ग्रहण कर पावेंगे और खुद अपनी, अपने देश की तथा अपने योरपियन माता या पिता की भारी सेवा कर पावेंगे। उस अवस्था में, अपनी उचित स्थिति को प्राप्त करने के बाद, अंगरेजों से वे जो कुछ कहेंगे उसका असर उनपर होगा और अपने जाती तजरिबे से वे ताकत के साथ उनसे बातें कर सकेंगे। मैंने डाक्टर मोरेनो से यह नहीं कहा, नहीं कहता कि गरीब अधगोरे भाई चरखा कातकर उसपर गुजर करें। पर इस बात का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि राष्ट्रीय दृष्टि से उनके बड़े से बड़े लोग क्यों न कातें? हां, मुझे यह बात कहते हुए जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती कि उनमें जो लोग अजहद गरीब हैं वे बुनाई जरूर सीख लें। यह एक सहायक धन्धा है और जो लोग इसे सीख सकें वे ईमानदारी की रोटी खाने के लिए इसे सीख लें। क्योंकि अच्छे और कुशल जुलाहे ४०) से ५०) मासिक तक पैदा कर सकते हैं।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, जेठ सुदी १२, संवत् १९८२

खादी प्रतिष्ठान

बाढ़ और अकाल के संकट को दूर करने के लिए चरखा कैसा काम दे सकता है इसका वर्णन मैंने अन्यत्र किया है। वह प्रयोग एक स्वतन्त्र चीज है। परन्तु उससे जो अनुभव आचार्य राय तथा उनके दहने हाथ सतीश बाबू ने प्राप्त किया है उसका खातमा इस प्रयोग तक ही नहीं हो जाता है। वे दोनों रसायन-शास्त्री हैं। उनके वैज्ञानिक दिमाग उन्हें मजबूर करते हैं कि वे इस बात को विशद कर दिखावें कि बंगाल के किसानों को बतौर एक सहायक धन्धे के चरखा और खादी किस तरह उपयोगी हो सकते हैं। एक छोटे से प्रयोग से बढ़ते बढ़ते वह एक बड़ी संस्था – खादी प्रतिष्ठान – के रूप में परिणत हो गई है। बंगाल के कितने ही हिस्सों में उसकी शाखें फैल गई हैं, और भी खोलने की कोशिश हो रही है। उसका उद्देश है पुस्तक आदि के प्रकाशन के द्वारा, मैजिक लैंटर्न के प्रयोग सहित व्याख्यानों आदि के द्वारा खादी और चरखे को लोकप्रिय बनाना। अधिक स्थायी बनाने के लिए उसे एक सार्वजनिक ट्रस्ट का रूप दे दिया गया है। मेरे सामने ट्रस्ट का दस्तावेज और उसका लेखा मौजूद है। मैं इन बातों का जिक्र यहां इसलिए करता हूं कि मैंने पबना की एक सभा में एक सज्जन से वादा किया था कि मैं यं.इं में प्रतिष्ठान के काम का जिक्र करूंगा। खादी प्रतिष्ठान के चरखे को मैंने बंगाल में सर्वोत्तम देखा। उसमें और सुधार करने की कोशिश भी दिन पर दिन होती जा रही है। सो मैं उसके व्यवहार की सिफारिश करता था। इसपर एक महाशय ने खादी प्रतिष्ठान की खादी के महंगे होने की शिकायत की। और मैंने उनसे वादा किया था कि मैं इस शिकायत की निस्बत लिखूंगा। एक मानी में यह इलजाम सच कहा जा सकता है। वे चाहते हैं कि खादी बड़े से बड़े पैमाने पर तैयार हो और चरखा घर घर में चले। ट्रस्ट के संस्थापक खादी को स्वावलम्बी और सूत को अच्छा बनाना चाहते हैं। इसलिए उन केन्द्रों में भी उसी व्यवस्था के अनुसार काम करना चाहिए जो कि खादी-पैदावार के अनुकूल नहीं है। इस तरह वह तमाम खादी को इकट्ठा कर के सब पर औसतन् कीमत लगाते हैं। सो इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि केवल वही खादीप्रतिष्ठान से सस्ती खादी बेच सकते हैं जो अनुकूल केन्द्रों में काम करते हों। अभी हाल तो यह बात दिक्कत तलब नहीं है; क्योंकि जो कुछ थोड़े केन्द्र अभी शुद्ध खादी तैयार करते हैं उनके ग्राहक ऐसे बने-बनाये हैं कि जो कीमत आदि की परवा नहीं करते। प्रतिष्ठान तो अब भी घटी उठाकर खादी बेच रहा है; पर वह घाटे को कम से कम करने की कोशिश कर रहा है। वह हमेशा ही दान के बल पर नहीं चलाया जा सकता। प्रतिष्ठान के द्वारा बेची जानेवाली खादी की कीमत कम करने की कोशिश हर तरह से की जा रही है, इस बात की दिलजमई मुझे हो गई है। और यह बात हर शख्स नहीं जान सकता कि प्रतिष्ठान में किसीका कोई निजी स्वार्थ नहीं है। उसके मुख्य पात्र तो अपने घर का खा कर उसमें काम करते हैं। उन्होंने प्रतिष्ठान को अपना जीवन अर्पण कर दिया है। वे उससे एक पाई नहीं लेते। अबतक मैंने खादी पैदावार के ५ और सुसंगठित केन्द्रों का निरीक्षण किया है। वे ये हैं– अभय आश्रम, कोमिल्ला; डा० प्रफुल्ल घोष का आश्रम, मलिकाण्डा, प्रवर्तक संघ, चटगांव; सत्संग आश्रम, पबना; द्वारन्दो खादी आश्रम। इस आखिरी आश्रम को मैं खुद नहीं देख पाया, पर उसके मुख्य कार्यकर्ता लोगों से हुगली में मिला हूं उनकी खादी देखी है और उनके काम का हाल सुना है। प्रवर्तक संघ अबतक आधी-खादी अर्थात् मिश्र खादी भी तैयार करता रहा है। पर अब जहांतक चटगांव से संबंध है उसने केवल शुद्ध खादी ही रखने का निश्चय कर लिया है। एक जगह तो उन्होंने पहले ही से प्रयोग शुरू कर दिया है परन्तु व्यवस्थापकों ने आखिरी निर्णय, सारे चटगांव जिले के लिए, मेरी यात्रा के समय किया है। उनके कलकत्ता भण्डार में तथा मुख्य कार्यालय चन्द्रनगर में अब भी आधी-खादी है। पर वे जितनी जल्दी हो सके इस आधी-खादी को निकाल डालना चाहते हैं। वे इस सिद्धान्त को कुबूल करते हैं कि आधी-खादी से खादी आन्दोलन को लाभ नहीं है। ये सब संस्थायें अच्छा काम कर रही हैं। महासभा की संस्थाओं के द्वारा भी कहीं कहीं कुछ काम हो रहा है। मैं तो इन तमाम संस्थाओं के काम को, नाम से चाहे नहीं पर भावरूप में, महासभा का ही काम मानता हूं। यदि किसी बात की जरूरत है तो इस बात की कि तमाम बिखरी हुई शक्तियां एक सूत्र में बंध जाय जिससे समय, बुद्धि, शक्ति, और रुपया कम खर्च हो और काम ज्यादा निकले। इन संस्थाओं के अध्यक्ष आपस में मिलें, अपनी योजनाओं का परस्पर मुकाबला करें और एक संयुक्त कार्यक्रम बनावें। और यह काम समय पर ही हो जाना चाहिए। सवाल यही है कि इसमें जल्दी की जा सकती है या नहीं। खादी-प्रतिष्ठान को एक लाभ यह है कि उसके पास ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपने को चरखे का पैगाम पहुंचाने के लिए समर्पित कर दिया है। उसके पास बड़े व्यवस्था-पटु लोग हैं। एक विख्यात व्यक्ति का नाम उसके साथ है। इसलिए उसके पास विस्तार के लिए असीम गुंजाइश है। इसीलिए मैं आम तौरपर सारे भारत का और खासतौर पर बंगाल का ध्यान उसकी ओर दिलाता हूं। मैं समालोचकों को निमंत्रण करता हूं कि वे उसकी जांच-पड़ताल करें और जो कमियां दिखाई दें उनको प्रकट करें। और सहानुभूति रखने वालों को मेरा निमंत्रण है कि वे उसके हिसाब-किताब को देखें— जो कि खुली पुस्तक है—और उसकी सहायता करें। जो लोग उदासीन हैं उन्हें मैं दावत देता हूं कि वे अपनी उदासीनता छोड़ें, उसके काम-काज को देखें और या तो उसका विरोध करें या सहायता दें। एक विज्ञानवेत्ता की हैसियत से आचार्य राय की कीर्ति सारे संसार में व्याप्त है। परन्तु उनके लाखों देशवासी उन्हें न तो उनके बनाये उम्दा साबुन के बदौलत और न उनके तैयार किये कितने ही नवयुवक बंगाली विद्वानों के बदौलत जानेंगे। पर वे उन्हें जानेंगे उस प्रकाश और सुख के बदौलत जो कि उनका खादी-काम लाखों लोगों के टूटे-फूटे झोपड़ों में पहुंचा सकता है। परमात्मा करें यह संस्था उस विशाल वटवृक्ष की तरह हो, जो उन तमाम छोटी छोटी संस्थाओं की वह आश्रयदाता हो जाय जिन्हें कि उससे सहायता और रहनुमाई मिले। रासायनिक कारखाने निश्चय ही महान् हैं। पर खादी प्रतिष्ठान उनसे भी बढ़ कर है। क्योंकि इसकी जड़ देश की भूमि में है। कहीं बाहर से लाकर उसकी कलम नहीं लगाई गई है। उसकी परवरिश के लिए और भी एहतियात की जरूरत है। जब उसके कार्यकर्ता अपने सर्वोत्तम गुणों और शक्तियों को जाग्रत कर के उसमें लगावेंगे

तभी वह एक विशाल राष्ट्रीय संस्था बनेगी। परमात्मा करें वह उन तमाम आशाओं को पूरा करे जिनको जन्म देता हुआ वह मुझे दिखाई देता है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

ग्राम-प्रवेश

जहां देखता हूं वहीं सुख से दुःख ज्यादह दिखाई देता है। जहां देखता हूं वहां इस दुःख का कारण खुद हमीं दिखाई देते हैं।

बंगाल के कितने ही अभिनन्दन-पत्रों में फसली बुखार, काला अजार आदि बीमारियों की कथा तो रहती ही है। बंगाल के कार्यकर्ताओं ने मेरे अनुरोध को बड़ी अच्छी तरह स्वीकार किया है। मैंने चाहा था कि अभिनन्दन-पत्रों में मेरी स्तुति की जगह वे अपनी स्थिति का वर्णन दें। देखता हूं कि बहुतेरे अभिनन्दन-पत्रों में निर्मल भाव से उसकी स्वीकृति की गई है। इससे मुझे बहुतेरी जानकारी मिल जाती है। किसी किसी जगह आबादी की तादाद कम होती जाती है, क्योंकि अनेक प्रकार की बीमारियों से लोग मरते जाते हैं। शारीरिक व्याधियों के साथ फसल को नुकसान पहुंचानेवाला एक उपद्रव खड़ा हुआ है। वह एक पानी का पौधा है। उसे पानी का 'हायेसिंथ' कहते हैं। ऐसा नाम सुना नहीं। कहते हैं, कोई आदमी अनजान में इसे पश्चिम से ले आया है। आया कहीं से हो, पर पद्मा नदी में मीलों तक फैला हुआ मिलता है। *यह अनाज की फसल को नष्ट कर देता है।* जिस जिस हिस्से में यह जहरीला पौधा देखा जाता है वहां नदी किनारे के खेतों की धान की फसल लगभग नष्ट हो जाती है। सरकार ने उसे निर्मूल करने के उपाय तो किये हैं, पर एक का भी उपयोग सफल हुआ नहीं दिखाई देता।

ऐसे विविध तापों से पीड़ित प्रदेश की सहायता कौन कर सकता है? किस तरह कर सकता है? देहात की पीर को अनुभव किये बिना इसके उपाय होही नहीं सकते। आज के ग्राम्य जीवन में जो अज्ञान है उसमें जब ज्ञान का प्रवेश होगा तभी हालत सुधर सकती है। लोगों को आरोग्य के नियमों का ज्ञान नहीं। एक ही तालाब में नहाते हैं, मल साफ करते हैं, बरतन धोते हैं। उसी तलाव में मवेशी पानी पीते हैं और मनुष्य भी पीते हैं! सभी हर जगह है। उसे दूर कर के पानी निकाल डालने का उपाय किसीको नहीं सूझता, और सूझता भी हो तो कोई उसे अपना काम नहीं समझता। सो करेगा कौन?

लोग इतने कंगाल हैं कि उन्हें खाने के लिए अच्छा और पौष्टिक भोजन यथेष्ट नहीं मिलता। फिर दवा के खर्च का तो पूछना ही क्या? आबहवा बदलना तो ग्रामीण लोगों के लिए होता ही नहीं।

कुछ रीति-रवाज तो इतने खराब हैं कि उनसे शरीर और आत्मा दोनों का हनन होता है। अति कोमल वय की बालिका का विवाह हो जाता है! तेरह वर्ष की बालिका बालक की माता हो जाती है!!! सात वर्ष की लड़की विधवा हो जाती है!! कितनी ही तो अपने पति को पहचानती भी नहीं। पति किस चीज को कहते हैं, इसकी खबर सात साल की बालिका को क्या हो सकती है?

इसके इलाज के लिए सरकार से मिन्नत करें? इन कु-प्रथाओं की दवा स्वराज्य मिलने पर होगी, या इनकी दवा हुए बिना स्वराज्य ही न मिलेगा?

इसका एक अमली उपाय है। शिक्षित लोगों को सेवा-भाव से नम्रतापूर्वक देहात में प्रवेश कर के लोगों की हालत जाननी चाहिए। ऐसा करते हुए बहुतेरे बीमार पड़ेंगे; कितने ही मर भी जावेंगे। जब हम यह सब सहन करना सीखेंगे तभी इसका उपाय हमें मिलेगा। तभी लोग इस उपाय को पहचानेंगे और उसका स्वागत करेंगे। लोगों की बुद्धि को समझाना यदि असंभव नहीं तो कठिन जरूर मालूम होता है। लोग तो अपने हृदय के द्वारा समझेंगे। हृदय के द्वारा केवल वही लोग बोल सकेंगे जिन्होंने सेवा से, प्रेम से, त्याग से लोगों का मन हरण किया होगा। संसार के और विशेष कर के भारतवर्ष के इतिहास के एक एक पन्ने में आम तौर पर लिखा हुआ है कि जो लोग भावना-प्रधान होते हैं उनके सामने बुद्धि काम नहीं करती। क्या यह तो न्याय न हो कि पहले हृदय और फिर बुद्धि? हृदय की सत्ता से अ-सहकृत बुद्धि बेकार तो न हो? रावण की बुद्धि सहृदय न होने से बहुत मायावी होने पर भी बेकार गई और राम की बुद्धि हृदय के संस्कारों से पवित्र होने के कारण सहज ही अजेय रही।

देशबन्धु कहते हैं कि देहात को सुसंगठित किये बिना स्वराज्य नहीं। और लोग भी यही बात कहते हैं। बंगाल का अनुभव मुझे तो यही शिक्षा देता है कि हम जबतक देहात में प्रवेश न करेंगे तबतक हिन्दुस्तान की हालत को न जान सकेंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

निराधार अभियोग

मैंने यह अभियोग सुना है कि बंगाल में महासभावालों ने अर्थात् स्वराजियों ने चरखे को मार डाला है। यह अभियोग निराधार है। पहले तो चरखा बंगाल में मरा नहीं है। दूसरे चरखा-हलचल को जो कुछ रुकावट मिली होगी उसके कारण स्वराजी लोग उतने ही हैं जितने कि और दूसरे दल हैं। मैं तो उलटा यह कबूल करता हूं कि चरखा-प्रदर्शनों को सफल बनाने में हर जगह स्वराजियों ने सहयोग दिया है। उन्होंने उनकी व्यवस्था करने में तथा चरखा कातने में योग दिया है। कुछ स्वराजी तो अपने सारे परिवार-सहित उसमें उत्साह दिखाते हैं। फरीदपुरवाले बिश्राम बाबू की निस्बत मैं पहले ही लिख चुका हूं। उनकी धर्मपत्नी और बच्चे सब चरखा कातते हैं। वे अपने घर के कपड़ों के लिए सूत कातते हैं। श्री वसन्तकुमार मुजमदार की धर्मपत्नी भी चरखे के प्रति बड़ा उत्साह रखती हैं। उन्होंने कुमिल्ला में एक भारी प्रदर्शन की व्यवस्था की थी। दिनाजपुर के जोगेन बाबू खुद नियमित रूप से कातते हैं और उनके परिवार को सफाई के साथ कातते हुए देखना एक विशेष प्रकार के आनन्द का अनुभव करना था। दिनाजपुर का प्रदर्शन सर्वोत्तम रहा था। मैं और भी ऐसी मिसालें दे सकता हूं। पर हां, यह बात सच है कि स्वराजियों को चरखे पर उतनी श्रद्धा नहीं है जितनी कि, कहिए, मेरी है। और यह बात उन्होंने छिपा भी नहीं रखी है। यदि रचनात्मक कार्यक्रम पर उनका पूरा पक्का विश्वास होता तो वे धारासभाओं में जाते ही नहीं। उनकी स्थिति बहुत सरल है। वे रचनात्मक कार्यक्रम को और चरखे को भी मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि उसके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। पर साथ ही वे यह भी मानते हैं कि धारासभाओं तथा दूसरी तमाम प्रातिनिधिक और अर्द्ध प्रातिनिधिक संस्थाओं पर भी कब्जा कर लेना चाहिए जिनके कि द्वारा सरकार पर दबाव डाला जा सकता है। उनकी स्थिति प्रामाणिक है और उसके निस्बत कोई शिकायत नहीं हो सकती। और कमसे कम मेरी राय में तो बंगाल के स्वराजी अपने विश्वास के अनुसार काम कर रहे हैं। (यं० इं०)

टिप्पणियां

नीति-भ्रष्टता

स्वराजियों पर नीति-भ्रष्टता का भी एक इल्जाम लगाया जाता है । उसका भी विचार यहां कर लेना ठीक होगा । कुछ प्रसिद्ध समाज-सेवकों ने आकर मुझसे कहा और मुझे चेताया कि देखना स्वराजियों के हाथ की कठपुतली न हो जाना और मुझसे आग्रह किया कि आप बंगाल के राजनैतिक जीवन को निर्मल बनाने में अपना प्रभाव लगाइए । मैंने उनसे कहा—मुझे इन इल्जामों पर विश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता । पर यदि आप नामठाम और सबूत दें तो मैं खुशीसे उनकी तहकीकात करूंगा और यदि उन्हें सच पाऊंगा तो बिला हिचक के खुल्लम खुल्ला उनकी मलामत करूंगा । मैंने उनसे यह भी कहा कि मैंने पहले भी ये इल्जाम सुने थे और मैंने देशबन्धु दास का ध्यान उनकी ओर खींचा था । उन्होंने मुझे यकीन दिलाया कि उनमें सत्यांश नहीं है और कहा कि यदि आपको खबर देनेवाले लोग बुराई और बुराई करनेवालों के नाम ठाम बतावेंगे तो मैं जरूर उनकी तहकीकात कराऊंगा । उन महाशय ने मुझसे कहा कि यह विश्वास एक आम बात हो गई है और कानूनी सबूत देना हमेशा आसान नहीं होता है । तब मैंने कहा ऐसी अवस्था में तो हमें इसी सुवर्ण-सूत्र का पालन करना चाहिए कि जबतक इल्जाम साबित न हो हम उसे न मानें, नहीं तो सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का सु-नाम कायम रहना मुश्किल होगा ।

इस बातचीत के बाद मैं इन अभियोगों की सब बातें भूल गया था । पर कांदपुर में हरदयाल बाबू ने इन इल्जामों को बड़े जोर के साथ उपस्थित किया । पर मैंने उनकी बातों पर गंभीरता पूर्वक विचार नहीं किया, न वे ही उम्मीद रखते थे । यद्यपि मैं और हरदयाल बाबू एक ही सम्प्रदाय के अन्दर हैं तथापि देश-सेवकों और सार्वजनिक कार्यों की ओर देखने का मेरा और उनका तरीका जुदा जुदा है । मेरे असहयोग के मूल में, थोड़े भी निमित्त पर बुरे से बुरे प्रतिपक्षी से सहयोग करने की तैयारी रहती है । मैं एक अधूरा मर्त्य मनुष्य हूं, हमेशा ईश्वर के अनुग्रह पर अवलंबित रहता हूं । मेरे नजदीक कोई आदमी ऐसा नहीं जिसका सुधार न हो सके । हरदयाल बाबू के असहयोग के मूल में भीषण अविश्वास और सहयोग की ओर परावृत्त होने की अ-प्रवृत्ति है । उन्हें बड़े बड़े लक्षणों की आवश्यकता है जहां मेरे लिए कुछ उद्गार ही काफी होते हैं ।

पर फिर यह इल्जाम मेरे सामने एक ऐसे शख्स के द्वारा उपस्थित हुआ, जहां से इसकी कोई उम्मीद न थी । मेरे कान खड़े हो गये और मैंने संजीदगी अख्त्यार की । मैंने साधारण पूछ-ताछ शुरू की । पर मेरे कलकत्ता पहुंचने पर स्वराज्य-दल के मुख्य 'व्हिप' बाबू नालिनी सरकार, बाबू निर्मलचन्द्र, बाबू किरण शंकर राय और बाबू हीरेन्द्रनाथ दासगुप्त ने मेरी चिन्ता कम की । उन्होंने स्वराज्य-दल की तमाम कार्रवाइयों के संबंध में मेरे पूछे सवालों के जवाब देना स्वीकार किया । तब मैंने उन तमाम इल्जामों का जिक्र किया जो उनपर लगाये गये थे । उन्होंने जो बातें मुझसे कहीं उनसे मुझे पूरा सन्तोष हुआ । उन्होंने तो यह भी कहा कि आप और भी तहकीकात कीजिए,—हमारे कागजात की भी जांच कर लीजिए । पर मैंने कहा, जबतक इन आरोपों के सम्बन्ध में और ज्यादह प्रमाण न पेश किये जायं तबतक कागजों की जांच करना अनावश्यक है । फिलहाल तो इल्जाम ही इल्जाम है, उनका [illegible] कि सच लेने और नीति-

मैं उन लोगों से प्रार्थना करता हूं जो कि जल्दी से दोषारोप कर बैठते हैं, कि वे अपने प्रतिपक्षियों के संबंध में जो बातें कहीं जाय उनपर बिना हिचकिचाये विश्वास न कर लें । क्या हम नहीं जानते कि खुद सरकार के लोगही उसकी बदनामी नहीं करते फिरते हैं ? क्या हम नहीं जानते कि रानडे और गोखले तक के पीछे खुफिया पुलिस पड़ी रहती थी । क्या वे नहीं जानते कि सर फेरोजशाह मेहता और यहांतक कि सर सुरेन्द्रनाथ बेनरजी तक पर लांछन लगाये जा चुके हैं ? और तो ठीक भारत के पितामह — दादाभाई नौरोजी — तक को लोग नहीं छोड़ते थे । लन्दन में एक साहब ने मुझसे उनके बारे में ऐसी ऐसी बातें कहीं कि आखिर मुझे खुद उस महान् पुरुष के पास जाना पड़ा था । मैं बहुत डरते हुए और कांपते हुए गया । मैं उनके चरणों में जा कर बैठा और मुझे वह अवसर याद है जब कि मैंने उनकी सौम्य मूर्ति की ओर देखते हुए बड़े संकोच से पूछा कि यह बात कहांतक सही है । ब्रिक्सटन में वे अपने दफ्तर में गोखड़े पर बैठे हुए थे । मैं उस दृश्य को कभी न भूलूंगा । मैं इस भाव को ले कर वापस आया कि वह आरोप बिल्कुल मिथ्या लांछन था । अलीभाइयों पर भी तो लोग 'स्वार्थ-साधुता और विश्वास-घात' का इल्जाम लगाते हैं । यदि इन्हें मैं मानने लगूं तो मेरा क्या हाल हो ? पर मैं तो जानता हूं कि अली-भाई विश्वासघात और नीति-भ्रष्टता से परे हैं । अभी जो मत-भिन्नता हमारे अन्दर है वही हममें फूट डालने के लिए काफी है । तब फिर हम अपने प्रतिपक्षियों के खिलाफ लगाये गये निराधार इल्जाम को झट् से मान कर क्यों उन्हें और बढ़ावें ? प्रामाणिक मत-भिन्नता बिल्कुल न्यायोचित होती है । तब हमें अपने प्रतिपक्षियों को भी उतना ही देशभक्त और सदुद्देश रखने वाला मानना चाहिए जितना कि खुद अपनेको मानते हैं और उनकी इज्जत करते हैं । एक सज्जन ने तो जिन्होंने कि स्वराजियों की नीति-भ्रष्टता की बातें मुझसे कहीं यह भी स्पष्ट रूप से कहा कि यह सब होते हुए भी बंगाल में चित्तरंजन दास के सिवा कोई नेता नहीं है । देश में सेवा के इतने क्षेत्र हैं कि हर शख्स के लिए काफी गुंजायश है । पर जब कि सब लोग सेवा ही करना चाहते हैं तब ईर्ष्या-द्वेष की गुंजाइश कैसे रह सकती है ? मैं तो विश्वास रखने का कायल हूं । विश्वास से विश्वास पैदा होता है और सन्देह एक सड़ी गलीज चीज है जिससे बदबू पैदा होती है । जिसने विश्वास किया है उसने दुनिया में अबतक कुछ भी नहीं खोया है । पर सन्देह-ग्रस्त मनुष्य न अपने काम का रहता है न दुनिया के काम का । अतएव जिन लोगों ने अहिंसा को अपना धर्म माना है वे चेत जाय और अपने प्रतिपक्षियों को शक की नजर से न देखें । संशय को हिंसा का ही भाईबन्द समझिए । अहिंसा तो विश्वास किये बिना रही नहीं सकती । सो जबतक कि मेरे सामने पूरा पूरा सबूत न हो मुझे किसीके भी खिलाफ कही हुई बातों को मानने से इन्कार करना पड़ेगा और मेरे सम्मान्य साथियों के खिलाफ कही गई बातों के लिए और भी ज्यादह । पर हरदयाल बाबू कहेंगे 'तब क्या आप चाहते हैं कि हम अपना आंखों देखे और कानों सुने सबूत को न मानें ?' मैं कहता हूं हां भी और नहीं भी । मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं जिनकी आंखें और कान उन्हें धोखा देते हैं । वे सिर्फ उन्हीं बातों को देखते और सुनते हैं जिन्हें वे देखना और सुनना चाहते हैं । उनसे मैं कहता हूं कि उस अवस्था में आप अपनी आंखों और कानों पर भी विश्वास न करें जब कि उनके खिलाफ निष्पक्ष प्रमाण आपके सामने मौजूद हों । जो लोग कि

पर साबित नहीं कर सकते उन्हें चाहिए कि वे अपने ही विश्वासों पर दृढ रहें, भले ही सारी दुनिया उनके खिलाफ हो जाय। सिर्फ उनसे मैं इतना ही आग्रह करूंगा कि वे जरा उन लोगों के प्रति सहिष्णुता अख्त्यार करें जो कि सच्चो बात को जानने के उत्सुक होते हुए भी उसे उस तरह देखने में सफल नहीं हो पाते जिस तरह कि और देख पाते हैं। स्वराजियों पर जो नीति-भ्रष्टता का आरोप किया जाता है उसकी निस्बत अभीतक मुझे यकीन नहीं हो पाया है। और जो लोग कि इसके खिलाफ विश्वास रखते हैं उन्हें चाहिए कि वे जबतक मुझे कायल कर लेते मेरे साथ सबर रक्खें।

हकीम साहब

मार्सेल्स से हकीम साहब ने नीचे लिखा उर्दू खत मुझे भेजा है—

"बम्बई से १० एप्रिल को सवार हो कर आज २२ एप्रिल को मार्सेल्स पहुंचा। रास्ते में मेरी तन्दुरुस्ती किसी तरह अच्छी रही।

चलते वक्त आपसे न मिलने का अफसोस है। बहुत दिल चाहता था कि रवानगी से पहले आपसे मिलने का मौका मिलता। अब खुदा को मंजूर है तो सफर से वापसी पर यह खुशी हासिल होगी। उस वक्त मुझे बहुत शरम आवेगी, जब मुझसे इस सफर में कोई शख्स हिन्दुस्तान का हाल दरयाफ्त करेगा। इसलिए कि मेरा जवाब इसके सिवा और क्या हो सकता है कि आजकल हिन्दुस्तान बहुत पस्त हालत में है और उसकी दो बहादुर मगर बदकिस्मत कौमें हिन्दू और मुसल्मान आपस में खूब दिल खोल कर लड़ रही हैं। काश कि वह भाई जो इस खाको को खमीर (चौका) कर रहे हैं हिन्दुस्तान और एशिया पर बल्कि खुद अपनी अपनी कौमों पर रहम करें और अपनी कोशिशों का रुख नेकी की तरफ फेर कर बेजान कांग्रेस में जान डालें।

डाक्टर अनसारी साहब अच्छे हैं-और इस सफर से खुश मालूम होते हैं। उनका मुहब्बतभरा सलाम आप कबूल कीजिए।

मेरी तरफ से अपने सब साथियों को बराह मेहरबानी पूछ लीजिए और उन्हें मेरी मुहब्बत भिजवा दीजिए।"

जो लोग हकीम साहब की नेकदिली से वाकिफ हैं वे जरूर हमारे आपस के झगड़ों पर उनकी तरह ही दुःखित होंगे।

सिन्ध की बेदिली

एक गुजराती महाशय लिखते हैं कि मैंने कराची में कुछ गुजराती लोगों के बदन पर खादी देखी। श्री रणछोड़दास की देख-भाल में कताई सिखाने का भी सम्बन्ध है। पर खुद सिन्धियों के अन्दर नहीं या बहुत कम खादी मैंने देखी। वे आगे चलकर लिखते हैं कि हैदराबाद में इने-गिने महासभावादियों के सिवा किसी भी सिन्धी के बदन पर खादी नहीं दिखाई देती। यह आनन्द और आश्चर्य करने लायक बात है। क्योंकि सिन्ध में उम्दा और नेकनीयत खादी-भक्त हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि हिन्दू आमिल लोगों में तो लोग इतने अधिक पढ़-लिख गये हैं और उन्होंने योरपियन तौर-तरीके को इतना अपना लिया है कि चरखे के सीधे-सादे पैगाम पर उनका विश्वास नहीं जमता। और भाईबन्द लोग तो अपने विदेशी रेशम के व्यापार में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें खादी का ख्याल करने की फुरसत ही कहां होगी, तथा वहां के मुसल्मानों को तो राष्ट्रीय भावना अभी छू तक नहीं गई है कि जिससे वे हिन्दुस्तान से संबंध रखनेवाली किसी बात की कद्र करें। सिन्ध के ऐसे खादी के प्रति-कूल वायुमण्डल में भी जो कुछ लोग खादी और कताई का आग्रह रख रहे हैं उन्हें धन्य है। मैं इस बात में जरा भी शक नहीं रखता कि यदि उनकी श्रद्धा इस अग्नि-परीक्षा से पार हो गई तो वह उन और 'सभ्य' आमिलों पर, अपने ही काम में मगन भाइबन्दों पर और राष्ट्रीय भाव से हीन मुसल्मानों पर अपना असर डाले बिना न रहेगी।

चरखे से फांसी पसंद

बंगाल में एक जगह विद्यार्थियों से बातें हो रही थीं। एक ने कहा—'आप जानते हैं, हम चरखा क्यों नहीं कातते? चरखे में न जोश है न गरमी। हमारी शिक्षा ने हमें ऐसे कामों के लिए अयोग्य बना दिया है। हम बहुतेरे लोग चरखा कातने से प्राण उत्सर्ग कर देना बेहतर समझते हैं। फांसी पर चढ कर मर जाना तो हम खुशी खुशी कबूल कर लेंगे; पर चरखा कातना हमारे लिए ना-मुमकिन है। हमें कुछ भारी-भव्य चीज दीजिए। हम लोग पराक्रम के, शौर्य-वीर्य के प्रेमी हैं। और चरखे में इसका पता तक नहीं।' मैंने उस पराक्रम-प्रेमी मित्र से कहा—जितना आप समझते हैं उससे कहीं ज्यादह पराक्रम चरखे में है। और आप इसके लिए बंगाल पर इल्जाम क्यों मढते हैं, जिसने कि वसु और राय जैसों को जन्म दिया है, जिन्हें कौन पराक्रमी न कहेगा — इस मानी में कि वे अव्यावहारिक और स्वार्थी माने जाते हैं। मैंने उन्हें बताया कि जो चरखा न कातने के लिए कोई न कोई बहाना निकाल लेते हैं वे सचमुच देश के प्रेमी नहीं हैं। यदि किसी पिता का बच्चा मौत से बच सकता हो तो क्या वह वैद्यों की बताई हास्यास्पद बातें भी नहीं कर गुजरता? मैं और मेरा श्रोतृवर्ग इस बात को तो मानते थे कि भारतवर्ष के लाखों लोग मौत के मुंह में फंसे हुए हैं और चरखा ही उनकी भीषण दरिद्रता की समस्या को हल कर सकता है। और मेरी बंगाल-यात्रा में तो एक आश्चर्यजनक और आनन्ददायक अनुभव यह हुआ कि वहां किसी भी दल की तरफ से कताई का प्रतिकार नहीं किया गया। मुझसे जो जो लोग मिलने के लिए आते उनसे मैं कहता कि यदि चरखे को आप न मानते हों तो उसका विरोध कीजिए। पर तीन आदमियों के अलावा किसीने विरोध न किया। और वे तीन आदमी भी खादी पहने हुए थे। बड़े बड़े जमींदारों, वकील-बैरिस्टरों और पहाड़ी सन्तालों को एक साथ बैठ कर चरखा कातते हुए देखना बड़े हर्ष का विषय था। ऐसी अवस्था में वह पराक्रम का आक्षेप निराधार था। यह दुःख की बात है कि मामूली विद्यार्थियों में परीक्षा को छोड कर और बातों के लिए निश्चय और कार्यलीनता का अभाव पाया जाता है। परीक्षा पास हो जाने के प्रशंसापत्र की अपेक्षा देश का सच्चा प्रेम ही उनकी कार्यलीनता का अधिक प्रेरक होना चाहिए। भूमिति के कठिन साध्यों को हल करने में या अंकगणित के लंबे लंबे जोड़ और गुणाकार करने में जितना पराक्रम है उतना ही चरखे में भी है। और यदि बंगाली विद्यार्थी अपनी परीक्षाओं के लिए पराक्रम या शौर्य की दलील नहीं पेश कर सकते तो चरखे के लिए उसे पेश करने का तो और भी कम कारण है; क्योंकि चरखा राष्ट्र के पोषण के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि परीक्षा किसी व्यक्ति के पोषण के लिए हो सकती है।

'चीन से भूमध्य-समुद्र तक'

एक बड़े अच्छे पुराने मुसल्मान मित्र मुझे मैमनसिंग में मिले और कुदरती तौरपर ही हमारी उनसे खद्दर के संबंध में बातचीत होने लगी। मैंने कहा आपने खादी नहीं पहनी है और फिर विनय के साथ पूछा-आपको खादी पर विश्वास है या नहीं?

उन्होंने कहा हां, मैं खादी को मानता हूं। मैंने खादी की अपनी व्याख्या उन्हें समझाई। लेकिन उससे कुछ भी फायदा न हुआ। मित्र ने कहा कि आप समझ सकते हैं मैं स्वदेशी का संकुचित अर्थ नहीं करता हूं। चीन से भूमध्य-समुद्र तक के देशों में बना हुआ कपड़ा मेरे लिए खद्दर है। मैंने उन्हें यह व्यर्थ ही समझाने की कोशिश की कि उनका पहला फर्ज हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों के प्रति है जिनसे कि उन्हें अपनी आजीविका प्राप्त होती है। हिन्दुस्तान अपने लिए तमाम कपड़ा तैयार करने में समर्थ है और करोड़ों लोग खेती के साथ कोई सहायक उद्योग न होने के कारण भूखों मर रहे हैं। पर वर्डस्वर्थ की लूसी की तरह वे तो संपूर्ण आत्म-संतोष के साथ अपनी ही बात पर जमे रहे। उन्होंने पहले ही अपना एक ख्याल बना लिया था। और इसीलिए किसी भी दलील का उनपर असर न होसका। यदि मैंने यह कहा होता कि अंगरेजी उपनिवेशों ने यद्यपि वे उसी जाति के और धर्म के लोग थे, फिर भी दूसरे उपनिवेशों से और इंग्लैंड से भी अपने व्यापार की रक्षा बड़े बड़े कर लगा कर की थी और प्रत्येक मनुष्य का यह स्वभावतः प्रथम कर्तव्य है कि वह दूर रहनेवाले मनुष्य की अपेक्षा अपने पड़ोसी ही की प्रथम सेवा करे तो भी परिणाम वही होता। लेकिन मुझे समय भी न था। दूसरी मुलाकात का निश्चय करके हम लोग जुदा हुए। उन्होंने मानों अपनी बात पर जोर देने के लिए और फिरभी यह दिखाने के लिए कि मतभेद होने पर भी हम लोग मित्र थे हंसते हुए मेरे कार्य को आगे बढ़ाने के लिए कुछ रुपये मेरे हाथ में रक्खे। लेकिन वे चीन से भूमध्य समुद्र तक की बात तो दुहराते ही गये। यदि उन्हें यह पढ़ने का मौका मिले तो मैं उन्हें कहना चाहता हूं कि यदि उनके इस सिद्धान्त के अनुसार सब चलें तो कुछ सहस्र मुसलमान बहनें आज जो बंगाल में कात कर अपने पति की आमदनी में कुछ हिस्सा देती हैं वे भी अपनी थोड़ी आमदनी में यह आवश्यक हिस्सा न दे सकेंगी। (ग० ५०)

बंगाल में कताई

बंगाल की यात्रा का पहला भाग निर्विघ्न पूरा हुआ। निर्विघ्न इसलिए लिखना पड़ता है कि कितने ही मित्रों को शक था कि मेरा स्वास्थ्य इस परिश्रम को सहन कर सकेगा या नहीं। बंगाल में मैंने जो कुछ देखा है वह तो मेरी धारणा से अधिक मालूम हुआ है। वहां बड़े बड़े जमींदार सकुटुंब कातते हैं। वहां मैंने जमींदारों, वकील-बैरिस्टरों, अस्पृश्यों और हिन्दू-मुसलमान को भरी सभा में एक साथ बैठ कर कातते हुए दीनाजपुर में तथा और जगह देखा। यहां मैंने ऐसे सैकड़ों स्त्री-पुरुषों को जो खा-पी कर सुखी हैं, बढ़िया सूत कातते हुए देखा। ये सब लोग हमेशा नहीं कातते हैं। मुझे तो इतनी ही बात सन्तोष दे रही है कि इतने स्त्री-पुरुष अच्छी तरह से कातना जानते हैं और प्रसंगोपात कात लेते हैं। कताई से इतना परिचय मैंने भारत में और कहीं नहीं देखा। दूसरी जगह जिस बात को स्त्री-पुरुष प्रयास के साथ सीखते हैं उसे मैंने यहां स्वाभाविक देखा। जिस तरह विवाह इत्यादि के लिए अलहदा पोशाक होती है; जिस तरह घर की और दफ्तर की जुदी जुदी पोशाक होती है उसी तरह बहुतों ने खादी को भी अपनी पोशाक में स्थान दिया है। यह हाल बहुतांश में हिन्दुस्तान में अन्यत्र नहीं देखा जाता।

यहां मैंने खादी का विरोधी वातावरण बिल्कुल नहीं देखा। अपरिवर्तनवादी और स्वराज्यवादी दोनों खादी का कम-ज्यादह उपयोग करते हैं। चरखे की निरुपयोगिता सूचित करने वाले मैंने सिर्फ तीन ही आदमी यहां देखे। वे भी प्रथम पंक्ति के न थे। यहां नरम गरम सब दल के लोग खादी का थोड़ा-बहुत उपयोग करते हैं।

यहां की पूनियों का मुकाबला कोई प्रान्त नहीं कर सकता। पूनियों में कीटी मुल्क नहीं होती। बहुतेरी जगह तो देवकपास को जाति की कपास का सूत काता जाता है। उसे धुनकने की भी जरूरत नहीं होती, न ओटने की ही होती है। ऊपर से ही रुई अंगुलियों के द्वारा निकल आती है। और उसके रेशों को जमा कर के पूनियां बना ली जाती हैं एवं महीन से महीन सूत काता जाता है। दूसरी कपास जो पहाड़ पर होती है, वह बहुत हलके दरजे की है। उसके रेशे बहुत छोटे होते हैं। वह सुहावनी भी नहीं होती। उसे धुनकना पड़ता है; पर उसमें भी कीटी तो नहीं होती। उसकी तांत हलके किस्म की होती है पर साफ धुनकने की आदत पड़ रही है, इससे कोई खराब धुनकता ही नहीं। बाजार में जो सूत दिखाई देता है उसमें भी कीटी नहीं होती। दस से कम अंक का सूत शायद ही कहीं दिखाई दे।

देशीराज्य

"आप देशी राज्यों की हस्ती चाहते हैं। पर सच पूछिए तो एक तन्त्री हुकूमत से जुल्म हुए बिना नहीं रह सकता। सत्ता शराब के नशे की तरह है। फिर कोई राजा अच्छा निकलता है तो उसका पुत्र खराब। वही राजा एक दिन अच्छा और दूसरे दिन बुरा साबित होता है। ऐसी अवस्था में क्या राजाओं का अस्तित्व वांछनीय है?"

एक सज्जन यह सवाल करते हैं। लेखक की बात में बहुत-कुछ सत्यांश है। पर इस सवाल की एक दूसरी बाजू भी है। जिस प्रजा में सत्त्व होता है उसका राजा अन्यायी नहीं हो सकता। सत्त्वहीन प्रजा के लिए राजा हो तो क्या और प्रजा-सत्ता हो तो क्या? जिसे सत्ता के उपयोग करने का शऊर नहीं है उसके पास सत्ता रह कैसे सकती है? इसीलिए मैंने कहा है कि जैसी प्रजा होती है वैसा राजा होता है। जहां जहां मैंने अन्याय होता हुआ देखा है वहां वहां प्रजा का दोष अर्थात प्रजा की कमजोरी भी देखी है। प्रजासत्ताक राज्य में भी अन्याय देखा है। पृथिवी में आज ऐसे प्रजासत्ताक राज्य मौजूद हैं जहां मनमानी अंधाधुंधी चल रही है और जहां हरएक हाकिम राजा बन कर बैठ गया है।

मैंने यह नहीं चाहा है कि निरंकुश राज्य कायम रहें। अंकुश कैसा और कितना होना चाहिए इसका विचार राजा और प्रजा को कर लेना चाहिए। जहां प्रजा जाग्रत है वहां अन्याय असंभव होता है। जहां प्रजा निद्रित है वहां राज्यतन्त्र कैसा भी हो अन्याय नहीं रुक सकता। देशी राज्य निर्मल और पूरी तरह न्यायवान् हो सकते हैं। उसके लिए हमारे पास रामराज्य का उदाहरण मौजूद है। आजकल के देशी राज्यों में जो अपूर्णता दिखाई देती है वह एक ओर प्रजा की अपूर्णता और दूसरी ओर अंगरेजी राज्यतंत्र की अपूर्णता की द्योतक है। इससे देशी राज्यों की अंधाधुंधी पर आश्चर्य नहीं हो सकता। परन्तु इस तरह दोनों अपूर्णताओं का असर होते हुए भी जो कितने ही देशी राज्यों का राज्यकार्य चमक उठता है, क्या यह देशी राज्य की नीतिमत्ता का सूचक नहीं है? मेरे इस लिखने और कहने का आशय सिर्फ इतना ही है कि यह ख्याल ठीक नहीं है कि देशी राज्यों में कोई बात संग्रह करने योग्य नहीं है, सब का नाश ही कर देना उचित है। देशी राज्यों में सुधार के लिए पूरी गुंजाइश है और उनमें सुधार होने से वे आदर्श राज्य बन सकते हैं। मेरे कहने का यह आशय हरगिज नहीं है कि जिस हालत में वे आज हैं उसीमें वे बने रहें। (नवजीवन) मो० क० गांधी

धर्म कि अत्याचार

वार्षिक मूल्य ४)
छमास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४४

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, जेठ बदी ५, संवत् १९८१ गुरुवार, ११ जून, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बंगाल में

बंगाल को मैं नहीं छोड सकता; बंगाल मुझे नहीं छोडता। एक महीना तो बीत गया और अभी एक महीना और बिताना पडेगा। दरम्यान आसाम में भी गये बिना काम न चलेगा। श्री फूकन ने मुझे लिखा है 'आसाम ने कुछ अधिक नहीं किया है फिर भी खादी के संबंध में वह क्या कर सकता है यह दिखाने का मौका आपको उसे देना ही पडेगा। कुछ नहीं तो आखिर एक सप्ताह का समय तो उसे अवश्य ही दीजिएगा।' यह सब न लिखा होता तो भी जरा से निमंत्रण पर ही मैं तो वहां चला जाता। क्यों कि मुझे आसाम से आशा तो है ही। दूसरे आसाम इतना दूर है कि बार बार वहां जाना नहीं बन सकता है। लेकिन आसाम जाने के कारणों में सबसे अधिक महत्व का कारण तो यह है कि १९२१ में आसाम ने जितना सहन किया है उतना शायद ही किसी दूसरे प्रान्त ने सहन किया होगा। आसाम का कुसूर यह था कि उसने अफीम बंध कर दिया। इसके लिए सैकडों नवयुवकों को जेल भुगतना पडी और दूसरे अनेक कष्ट सहन करने पडे। उसका परिणाम यह हुआ कि लोगों को अतिशय भय लगने लगा और वे इस लायक न रहे कि सर ऊंचा कर सकें। इस प्रान्त में आने के लिए तो मुझे कुछ भी खींचातानी करने की जरूरत न थी। मैंने फौरन ही श्री फूकन के आमंत्रण का स्वीकार कर लिया। अब मुझे १५ तारीख तक आसाम पहुंच जाना चाहिए। वहां करीब करीब दो सप्ताह लगेंगे। फिर वापस आ कर बंगाल का बाकी बचा सफर पूरा करूंगा। फिर भी बंगाल का कितना हिस्सा तो रह ही जायगा।

बंगाल नहीं छोडा जाता क्योंकि बंगाल के विषय में मुझे बडी आशा बंधी है। जैसे जैसे मैं बंगालियों के संबंध में आता जा रहा हूं वैसे वैसे मैं उनकी सरलता और उनके त्याग पर मुग्ध होता जा रहा हूं। जहां जाता हूं वहां त्यागी युवक मुझे दिखाई पडते हैं। उन्हें देश-सेवा करने की बडी आकांक्षा लगी रहती है। वे यही इच्छा करते हैं कि यह सेवा किस प्रकार की जाय। कितना ही ऐसा काम होता है कि उसका उल्लेख भी नहीं होता है और न कभी होगा। क्यों कि उनका रसमय वर्णन नहीं किया जा सकता है। सरल जीवन खुद रसिक तो है लेकिन जैसा वह रसिक है वैसा ही उसका वर्णन निरस होता है। शुद्ध शान्ति में ही सबसे बढकर आनंद है। इस शान्ति का, इस आनंद का नित्यनूतन वर्णन क्यों कर किया जा सकता है? जो शख्स एक गांव में बालकों को ले कर बैठ जाता है और नित्य उन्हें पिता का सा प्रेम करके पढाता है उसके आनंद का, उसकी शान्ति का कौन वर्णन कर सकेगा? उसके आनंद की तुलना भी कौन कर सकेगा? और उसके आनंद को छीन भी कौन सकता है। उसका नित्य वृद्धि होती जाती है क्यों कि पढाने में ही उस शिक्षक को उसका फल मिल जाता है। उसको इस बात की फिक्र नहीं होती कि उसके पास एक बालक है या अनेक। उसको तो केवल पढाने की ही चिन्ता लगी रहती है। और यह कार्य तो उसीके हाथ में है। इसलिए वह अपने आनंद का स्वयं ही कर्ताहर्ता बन जाता है। मेरे ऊपर कुछ ऐसी ही छाप पडी कि इस प्रकार के सेवक बंगाल में अधिक दिखाई पडते हैं। ये सब युवक बहुत से स्थानों पर फैले हुए हैं और उनका एक दूसरे के साथ बहुत कम संबंध रहता है। सभी अपने अपने काम में तन्मय बने हुए दिखाई पडते हैं। ऐसे कार्यकर्ताओं के दर्शन करने के अनेक प्रसंग मुझे मिल रहे हैं और जैसे जैसे ये प्रसंग आते जाते हैं वैसे वैसे मैं इस प्रान्त को छोडने के लिए कम अधीर बनता जाता हूं। ऐसे ही सेवकों में मैं स्वराज का बीज देख रहा हूं। भारतवर्ष की आशा उन्हीं में लगी हुई है। वे बोलते नहीं हैं उनका काम ही बोल रहा है।

हाथकी भाषा

ऐसे कार्यकर्ताओं को देखकर ही एक सभा में 'हाथकी भाषा' इस शब्द का प्रयोग हो गया। यह सभा कलकत्ते में हुई थी। मैं बराबर नियमित समय पर पहुंच गया था। उसमें बहुत से स्त्री-पुरुष तो अभी आ ही रहे थे। सभा का कार्य संगीत से शुरू होनेवाला था। संगीताचार्य अभी आये नहीं थे। इसलिए मेरे भाषण को होने में कुछ विलंब था। मैंने अपनी तकली निकाली। मेरी तकली मेरे साथ ही रहती है और फुरसत मिलने पर उसे चलाकर थोडा कात लेता हूं। तकली चलाने में मैं सबसे मन्द साबित हुआ हूं। अबतक जैसा चाहिए वैसा मेरा हाथ नहीं बैठा है। अभी तक कोई यह नहीं बता सका है कि 'भूल' कहां हो रही है। टोकने में नहीं तकली से हारनेवाला थोडे ही हूं। हम दोनों में युद्ध तो चलता ही रहता है। जैसा भी हो मैं उसपर

से सूत तो निकालता ही हूं इसलिए तकली चलाने में मैंने उस समय का उपयोग किया। मेरे पास जितनी भी पूनियां थीं सब खतम हो गईं लेकिन मेरे बोलने में अभी देर थी। इसलिए इस दरम्यान में क्या बोलना चाहिए यह सोच लिया और प्रेक्षकों को कुछ इस प्रकार कहा:—

'अब मुझे भाषण देने की जरूरत ही कहां रही है? सामान्य प्रकार के भाषण जीभ से किये जाते हैं और कानों से सुने जाते हैं। लेकिन मैंने अपना भाषण हाथ से किया है और यदि आपने अपनी आंखों का उपयोग किया हो तो आंखों से सुना होगा। जीभ से किये गये भाषण में अक्सर हृदय और वाणी का मेल नहीं होता है।। दिल में एक होती है तो वाणी से दूसरी ही बात बोली जाती है। हाथ के भाषण में ऐसे दोष को स्थान नहीं है क्योंकि मन के साथ उसका संबंध नहीं है। उसे तो देखकर आप जो चाहें उसका अर्थ निकाल सकते हैं। हाथसे सूत निकल रहा हो तो वह वृथा न होगा। मैंने जीभ से तो बहुत सुनाया है है और आपने भी कानों से बहुत सुना है। लेकिन बंगाल ने मुझे हाथों से भाषण करना सिखाया है। फरीदपुर के विद्यार्थियों ने प्रथम पाठ पढ़ाया। उसे मैं भूला नहीं हूं। उसके बाद मैं में बहुतेरी सभाओं में चरखा चलाता हूं और कहीं कहीं तो चलाते हुए मुंह से भी बोलता जाता हूं। और इस प्रकार हाथ और जीभ का मेल कर दिखाता हूं। मैं देख रहा हूं कि अब केवल मौन का जमाना आ रहा है। हाथ की भाषा ही सच्ची भाषा गिनी जायगी। गूंगे और निरक्षर भी इस भाषा को बोल सकेंगे। और बहरे यदि देखते होंगे तो सुन सकेंगे।

मेरे सूत के तार निकालने का अर्थ सिर्फ यही नहीं है कि केवल सूत ही निकाला जाय। सूत कातकर मैंने आपको यह दिखाया है कि यद्यपि मेरा शरीर तो आप लोगों के कब्जे में है फिर भी मेरा हृदय तो बंगाल के गांवों के झोपडों ही में रहता है। कात कर मैंने उनके साथ अनुसंधान किया है क्योंकि मैं यह जानता हूं कि करोडों भूखों मरते कंगाल हिन्दुस्तानियों की जीवन रेखा यह सूत का तार ही है। उनके लिए यदि हम लोग चरखा न चलावेंगे तो उनकी हड्डियों पर चरबी न चढ सकेगी। वस्त्र होने पर भी वे वस्त्रहीन रहेंगे और उद्यम होने पर भी उद्यमहीन रहेंगे। उन्हें तो अन्नपूर्णा समझ कर चरखे को चलाना चाहिए और हमें उनको यथार्थ मार्ग दिखाने के लिए शांति देने के लिए और खादी सस्ती करने के लिए, यज्ञ समझकर चलाना चाहिए। वे जितने भी घंटे खाली रहें चरखा चलावें और हम उनके लिए अर्थात यज्ञार्थ भले ही सिर्फ आधा घंटा ही चलावें। लेकिन यदि हम चरखा ही नहीं चलावेंगे तो चरखे के दोषों को कौन दूर करेगा, चरखा शास्त्र कौन बनावेगा और चरखे की शक्ति का माप कौन निकालेगा।' उसका नाश हम लोगों के हाथ से ही हुआ है इसलिए उसका मण्डन भी हम लोगों के हाथ से ही होना चाहिए। यह सब अर्थ और बहुत से दूसरे भी अर्थ मैंने जो हाथ से भाषण किया है उसमें हैं। गरीब किसानों से हम लोगों ने बहुत कुछ लिया है इसलिए धर्म इसीमें है कि चरखा चलाकर उन्हें उसमें से कुछ वापस करें।

शान्तिनिकेतन

लेकिन बंगाल में मेरे लिए कुछ एक ही स्थान छोडे हैं। अनेक पडे हैं। यह सब मैं शान्तिनिकेतन में ही सोमवार के दिन लिख रहा हूं। शांतिनिकेतन वासी मुझे बडी शांति दे रहे हैं। बहनें मधुर गीत सुनाती हैं। कविश्री के साथ घण्टों पेट भरकर बातचीत की। अब मैं उन्हें कुछ अधिक समझ सका हूं और यह कह सकता हूं कि वे मुझे भी कुछ अधिक समझने लगे हैं। उन्होंने मुझपर अपना प्रेम बताने में कोई कसर नहीं रक्खी। उनके बडे भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर जो 'बडे दादा' के नाम से पहचाने जाते हैं उनका तो पिता का जैसा पुत्र के प्रति प्रेम होता है वैसा ही मुझपर प्रेम है। वे मेरे दोष देखने के लिए साफ इन्कार करते हैं। उनके खयाल से तो मैंने कोई गलती ही नहीं की। मेरा असहयोग मेरा चरखा, मेरा सनातनीपन, हिन्दू-मुसलमान ऐक्य की मेरी कल्पना, अस्पृश्यता का मेरा विरोध सब यथायोग्य है, और इसीमें स्वराज्य है यह मेरी मान्यता उनकी भी मान्यता है। पुत्र पर मोहित पिता उसके दोष नहीं देखता है उसी प्रकार बडे दादा भी मेरे दोष देखना नहीं चाहते हैं। उनके मोह और प्रेम का तो भला मैं यहां पर उल्लेख ही कर सकता हूं उसका वर्णन मुझसे हो ही नहीं सकता। उस प्रेम के योग्य बनने का मैं प्रयत्न कर रहा हूं। उनकी उम्र ८० से भी ज्यादह है। लेकिन छोटी से छोटी बात की वे खबर रखते हैं। उन्हें यह भी खबर है कि हिन्दुस्तान में आज क्या चल रहा है। वे दूसरों से पढाकर सुनते हैं और यह सब खबरें प्राप्त करते हैं। दोनों भाइयों को वेदादि का गहरा अभ्यास है। दोनों संस्कृत जानते हैं। दोनों की बातचीत में उपनिषद् और गीता के मंत्र और श्लोक बराबर सुनाई देते हैं।

शांतिनिकेतन में चरखे के पुजारी भी पडे हुए हैं। कुछ तो नियमपूर्वक चरखा चलाते हैं और कुछ लोग अनियमित रूप से। बहुत से खादी पहनते हैं। मुझे तो यह आशा है कि इस जगद्विख्यात संस्था में चरखे को और भी अधिक अच्छा स्थान प्राप्त होगा।

नन्हीसी बाला

इस बात का तो थोडे ही गुजरातियों को पता होगा कि यहांपर भी कितने ही गुजराती बालक रहते हैं। उनमें से कुछ बालकों का तो कुटुम्ब भी यहीं रहता है। ऐसा ही एक भाटिया कुटुम्ब यहां रहता था। उसमें एक बाला का जन्म हुआ। उसकी मा बहुत बीमार हो गई और पागल बन गई। इसलिए गुरुदेव की पुत्रवधू ने उसे गोद ले लिया था और अब उसका वहीं पालन हो रहा है। यह कोई २॥ वर्ष की होगी। गुरुदेव की वह बडी लाडिली है। सब लोग उसे उनकी पोत्री ही जानते हैं। गुरुदेव अभी आराम कर रहे हैं। हृदय का दर्द होने के कारण डाक्टरों ने उन्हें घूमने फिरने की मना कर दी है। और ऐसा मानसिक काम करने की भी कि जिससे उन्हें श्रम पहुंचे मनाकर दी है इसलिए दिनमें वे तीन चार दफा इस बाला के साथ विनोद करते हैं और उसे अनेक प्रकार की कथायें सुनाते हैं। यदि उसको वे कथा कहानियां न सुनावें तो वह रूठ जाती है। इसी तरह वह अभी मुझसे भी नाराज हो गई है। मेरे पाससे फूल का हार लेने को तो वह तैयार हो जाती है लेकिन मेरे पास आने के लिए वह साफ इन्कार करती है। मानों उसके कहानियों के समय पर मैं गुरुदेव के साथ बातचीत करता हूं उसका बदला वह क्यों न लेती हो! बालक और राजा की नाराजी का कौन पहुंच सकता है! राजा यदि नाराज हो जाय तो मेरा जैसा सत्याग्रही शायद उसे पहुंच भी जाय लेकिन बालक की नाराजी के सामने तो मेरा मैजस्वी (?) सत्याग्रह भी निस्तेज प्रतीत होता है। दरम्यान सोमवार आ पहुंचा है। इसलिए नन्हींसी को जीत लिये बिना ही मुझे शांतिनिकेतन छोडना होगा। अपनी इस हारके दुःख की कहानी मैं किसको सुनाऊं?

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

आयुर्वेद

कविराज गणनाथ सेन लिखते हैं:—

"मैं इस बातपर आपका ध्यान दिलाता हूं कि अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय की नींव रखते समय आपने जो भाषण दिया था उसका कलकत्ते के वैद्यों ने और अन्य समाज ने भी बड़ा ही विपरीत अर्थ किया है। क्या आपको यह सूचना कर सकता हूं कि आप बराय महरबानी इस बात को स्पष्ट कर दें कि आयुर्वेद और उसको दिल से माननेवालों पर आक्षेप करने का आपका मतलब नहीं था। आपने तो उस वर्ग पर आक्षेप किये हैं जो लोगों को धोखा देकर इससे आजीविका प्राप्त कर रहे हैं। मुझे तो यह अत्यन्त आवश्यक मालूम होता है क्योंकि करीब करीब तमाम बंगाली अखबारों ने उस भाषण का अनर्थ किया है और उसका विरोध न करने के कारण वे हम लोगों को दोष दे रहे हैं।"

मैं बड़ी खुशी के साथ उनकी प्रार्थना का स्वीकार करता हूं। ज्यादातर तो इसलिए कि मुझे इससे आयुर्वेद संबंधी अपने विचारों को प्रकट करने का मौका मिलता है।

मुझे शुरूआत में ही यह कह देना चाहिए कि तीब्बी कालेज खुला रखने की क्रिया करने के लिए जिस कारण से मैंने आनाकानी की थी उसी कारण से मैंने उस क्रिया के करने में भी, जिसका के जिक्र किया गया है, आनाकानी की थी। वह कारण है मेरे दवाओं संबंधी साधारण विचार, जो मैंने हिन्द-स्वराज में प्रकट किये हैं। १७ वर्ष के अनुभव के बाद भी आज उसमें कोई यथार्थ भेद नहीं पड़ा है। यदि आज मैं उस पुस्तक को फिर लिखूं तो यह मुमकिन है कि मैं उन्हीं विचारों को कुछ जुदी ही भाषा में लिखूंगा। लेकिन जिस तरह मैं अपने दिली दोस्त हकीम साहब को इन्कार न कर सका उसी तरह मैं मेरी इस यात्रा के नियामकों को भी इनकार न कर सका। परन्तु मैंने उनसे यह कह दिया था कि मेरा भाषण उन्हें प्रतिकूल सा मालूम होगा। यदि मैं उस हलचल के सर्वथा विरुद्ध होता तो कुछ भी क्यों न होता मैं इस इज्जत को स्वीकार करने से साफ इनकार ही कर देता। लेकिन जो शर्तें मैंने उस समय सभा में जाहिर की थीं उन शर्तों पर मैं ऐसे समारंभों के भी अनुकूल हो सकता हूं। मुझे आशा है कि जिस कालेज की मैंने नींव रक्खी है और जिसके संस्थापक ने जो स्वयं एक कविराज हैं एक बड़ी भारी रकम उसके लिए दी है वह सब दर्द को दूर करने में अपना हिस्सा अवश्य देगी। वह आयुर्वेद का प्रत्यक्ष अभ्यास, संशोधन और नयी शोधें भी करेगी और इस प्रकार इस मुल्क में जो सबसे ज्यादह गरीब हैं उन्हें मामूली देशी दवाओं का ज्ञान प्राप्त करने का सुभीता कर देगी और लोगों को रोग दूर करने के उपाय सीखाने के बजाय रोगों को रोकने के उपाय सीखावेगी।

मेरा जो सामान्य तौरपर इस धंधे से विरोध है उसका कारण यह है कि उसमें आत्मा के प्रति कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है और इस शरीर जैसे नाजुक यंत्र को सुधारने का प्रयत्न करने में जो श्रम किया जाता है वह कुछ नहीं जैसी वस्तु के लिए ही किया जाता है। इस प्रकार आत्मा का ही इनकार करने से यह धंधा मनुष्यों को दया के पात्र बना देता है और मनुष्य के गौरव और आत्म-संयम को घटाने में मदद करता है। सधन्यवाद मैं इस बात का उल्लेख कर सकता हूं कि पश्चिम के देशों में धीरे धीरे ऐसे विचारों के लोग पैदा हो रहे हैं जो रोगग्रस्त शरीर को अच्छा करने के अपने प्रयत्न में आत्मा का भी विचार करते हैं और इसलिए वे दवाओं पर उतना आधार नहीं रखते हैं जितना कि वे आरोग्यप्रद महान शक्तिशाली कुदरत पर रखते हैं। आयुर्वेद के विद्वानों से मेरा विरोध इसलिए है कि उनमें से बहुत से या उनका बहुत बड़ा भारी हिस्सा तो नीमहकीम ही होता है। वे जितना जानते हैं उससे कहीं अधिक जानने का दावा करते हैं। वे अपनेको इस बात का दावा करते हैं कि वे सब किस्म के रोगों को बिना किसी शक व शुबह के दूर कर सकते हैं। इन लोगों में नम्रता नहीं होती। वे आयुर्वेद का अभ्यास नहीं करते हैं और उसके रहस्यों का ज्ञान नहीं प्राप्त करते हैं। इन रहस्यों को आज कोई नहीं जानता है। वे छिपे हुए हैं। वे कहते हैं कि आयुर्वेद में सब कुछ है लेकिन यह बात नहीं है। यह कह कर मात्र वे उसे एक दिन ब दिन प्रगति करनेवाली यशस्वी पद्धति बनाने के बजाय उसे केवल एक स्थिर पद्धति बना रहे हैं। मुझे एक भी ऐसी महत्व की शोध का पता नहीं है जो आयुर्वेद जाननेवाले वैद्यों ने की हो और जो, पाश्चात्य डाक्टर और सर्जनलोग जिन शोधों के लिए अभिमान कर रहे हैं उनकी चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली सूची के सामने रक्खी जा सकती हो। आयुर्वेद जाननेवाले साधारणतया नाड़ी देख कर रोग पहचानते हैं। मैं बहुत से ऐसे वैद्यों को जानता हूं जो इस बात का दावा करते हैं कि वे रोगी की नाड़ी देख कर ही यह जान सकते हैं कि उसे 'अपेंडिसायटिस' का व्याधि हुआ है या नहीं। यह तो आज कोई नहीं कह सकता है कि पुराने जमाने में कभी नाड़ीविज्ञान इतना बढ़ा हुआ होगा कि उस जमाने के वैद्य नाड़ी देख कर ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध रोगों को पहचान लेते होंगे। लेकिन यह तो निश्चित ही है कि आज यह दावा साबित नहीं किया जा सकता है। आज तो आयुर्वेद जाननेवाले सिर्फ इतना ही दावा कर सकते हैं कि उन्हें कुछ ऐसी वनस्पति और धातु से बनी दवाओं का ज्ञान है जो बड़ी सामर्थ्यवान होती हैं। और उनमें से कुछ यदि रोगी को दी जाय तो बड़ा फायदा पहुंचाती है। वे सिर्फ अनुमान ही करते हैं और इससे वे गरीब रोगियों को नुकसान पहुंचाते हैं। दवाओं के वे विज्ञापन जो पशुवृत्तियों को भड़काते हैं असामर्थ्य के साथ अनीति को भी जोड़ देते हैं और जो उनका उपयोग करते हैं वे समाज के लिए दरअसल भयंकर साबित होते हैं। जहांतक मुझे मालूम है आयुर्वेदाचार्यों का ऐसा कोई मण्डल नहीं है जो इस अनीति के प्रवाह को जिससे कि हिन्दुस्तानियों का मनुष्यत्व नष्ट हो रहा है और बहुत से वृद्ध सिर्फ अपनी कामपिपासा तृप्त करने के लिए राक्षस बन कर जी रहे हैं, उसे रोकने का या उसका विरोध करने का किसी भी प्रकार से प्रयत्न कर रहा हो। बेशक मैं जानता हूं कि ऐसे वैद्यों का वैद्य-मण्डलों में बड़ा ही सम्मान होता है। इसलिए जब कभी मुझे मौका मिलता है मैं यही सत्य वैद्यों को या हकीमों को समझाने का प्रयत्न करता हूं और हमेशा सत्य, नम्रता, और बड़े धैर्य के साथ खोज करने के गुणों को धारण करने के लिए उन्हें समझाता हूं। मैं जितनी भी बातें पुरानी और अच्छी हैं उन्हें चाहता हूं। मैं यह मानता हूं कि एक समय था कि जब आयुर्वेद या यूनानी दवाओं का स्कैम बड़ा अच्छा था और वे प्रगति कर रही थीं। एक ऐसा भी समय था कि जब मैं वैद्यों में बड़ा विश्वास रखता था और उन्हें मदद करता था। लेकिन अनुभव ने मेरे भ्रम को दूर कर दिया है। बहुतेरे वैद्यों का अज्ञान और धृष्टता देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। ऐसा गौरवपूर्ण धन्धा बिगड़कर मात्र रुपये कमाने का धंधा बन गया है यह जानकर तो मुझे बड़ा ही कष्ट होता है। मैं व्यक्तियों को दोष देने के लिए यह नहीं लिख रहा हूं। मैंने सिर्फ आयुर्वेदाचार्यों की चिकित्साप्रणालि को देखकर इतने दीर्घ समय के बाद उसकी जो मुझ पर छाप पड़ी है उसीको यहां लिख दिया है। यह कहना

कि उनके पाश्चात्य डाक्टर भाइयों की नकल करके उन्होंने यह सीखा है, कोई उत्तर नहीं हो सकता। बुद्धिमान् मनुष्य जो वस्तु बुरी है उसका अनुकरण नहीं करता है परन्तु जो चीज अच्छी है उसीका अनुकरण करता है। हमारे कविराज, वैद्य और हकीम उस वैज्ञानिक पद्धति का अनुकरण करें जो कि आज पश्चिम के डाक्टरों में दिखाई दे रही है। वे उनकी नम्रता को भी ग्रहण करें। वे देशी दवाओं को ढूंढ निकालने के प्रयत्न में आर्थिक कष्ट सहन करें और बिलकुल गरीब बन जायें। पाश्चात्य शास्त्र का जो भाग हमारे शास्त्रों में नहीं है उसको वे स्वतंत्रता स्वीकार कर लें और उसे अपना लें। लेकिन पाश्चात्य वैज्ञानिकों की धर्महीनता से उन्हें बचते रहना चाहिए। वे शरीर को तन्दुरुस्त रखने लिए विज्ञान के नाम पर छोटे प्राणियों को बड़ी ही तकलीफ देते हैं जो 'विविसेक्शन' के नाम से पहचानी जाती है। कुछ लोग शायद यह कहेंगे कि आयुर्वेद में भी यह है। यदि यह सच है तो मुझे बड़ा ही अफसोस होगा। चार वेदों की आज्ञा से भी भ्रष्ट वस्तु पवित्र नहीं हो सकती है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, जेठ वदी ५, संवत् १९८२

धर्म कि अत्याचार

गुजरात में लाड वणिक ज्ञाति में जो झगड़ा चल रहा है उसके संबंध में एक बड़ा लंबा पत्र मुझे मिला है। लेखक का प्रयत्न बड़ा निर्मल है। उन्होंने मुझे झगड़े से सम्बन्ध रखनेवाली बहुतसी खबरें दी हैं और यह भी लिखा है कि समझौते के लिए जितने भी प्रयत्न किये जा सकते थे किये गये हैं। उनकी बात का मैं स्वीकार करने के लिए तैयार हूं। लेकिन मेरा इरादा यह नहीं कि मैं लाड ज्ञाति के विषय में कुछ लिखूं या सूचित करूं। मैं तो सिर्फ उसपर से जो विचार मुझे आये हैं वही हिन्दूसमाज के सामने पेश करता हूं।

एक तरफ से तो हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिए 'संगठन' का काम हो रहा है और दूसरी तरफ से हिन्दू-धर्म में जो दुर्बलतायें — कमजोरियां हैं वे उसे अन्दर ही अन्दर से कुतर कर कमजोर बना रही हैं। जिस प्रकार लकड़ी का एक मोटा टुकड़ा, चाहे उसे ऊपर से मढ़ लो या रोगान लगा कर रक्खो, फिरभी यदि उसके अन्दर कोई कीड़ा हो जो उसके गर्भ को खाये डालता हो तो उसका नाश अवश्यंभावी है। उसी प्रकार हिन्दू-जाति के गर्भ में घुसा हुआ कीड़ा उसे खा रहा है। यदि उसका नाश न होगा तो हम हिन्दूधर्म की बाहर से चाहे कितनी भी रक्षा क्यों न करें उसका केवल नाश ही होना संभवनीय है।

वर्णबंधन के नाम से वर्ण का संकर हो गया है और हो रहा है। वर्ण की मर्यादा नष्ट हो गई, उसका अतिरेक ही बाकी रहा है। धर्म की रक्षा के लिए वर्णबंधन रक्खा गया था। वही आज यम बन कर उसीका नाश कर रहा है। वर्ण तो केवल चार ही हैं। लेकिन आज तो उसके बदले असंख्य और अगणित वर्ण बन गये हैं। वर्ण तो मिट गये लेकिन उसके बजाय जाति के अहाते खिंच गये हैं। जिस प्रकार आवारा और लावारिस ढोरों को दब्बे में बंद कर दिये जाते हैं उसी प्रकार हमलोग भी लावारिस बन कर इन अहातों में कैद हो कैदी बने हुए हैं। वर्ण प्रजा के पोषक थे, ज्ञाति प्रजा को नष्ट करनेवाली बनी है। हिन्दू-प्रजा की या हिन्दुस्तान की सेवा करने के बजाय हम अपने अहातों की, अपनी बेड़ी की रक्षा करने में ही मशगूल रहते हैं और उससे जो मशाल पैदा होती है उसका निर्णय करने में ही अपने समय, बुद्धि और धन को खर्च करते हैं। जब शत्रु की शक्तियां वे हमें का नाश करने के लिए सामने खड़ी हैं उस समय बेअकल मक्खियां एक रुपये के भर का फैसला करने के लिए पंचायतें कर रही हैं। जहां विशालता का भेद ही नाश करने योग्य है तहां बीसा बड़े या दसा बड़े यह सवाल ही कहां रहता है। जहां समस्त हिन्दुस्तान के वणिकों को एक कौम बन जाना चाहिए वहां दसा–बिसा, मोढ–लाड इत्यादि भेद और उनके झगड़ों के लिए अवकाश ही कैसे हो सकता है।

वर्ण कर्मानुसार थे। लेकिन आज ज्ञाति तो केवल रोटीबेटी व्यवहार पर ही आधार रखती है। जबतक मैं रोटीबेटी व्यवहार की मर्यादा की रक्षा करता हूं तबतक मैं कलाल की दुकान करूं, या शमशेर बहादुर बनूं या परदेश से डब्बे में बंध गोमांस मंगा कर बेचूं तो भी क्या? यह सब करने पर भी मैं वणिक ज्ञाति में गिना जा सकता हूं। मैं एक पत्नीव्रत का पालन करूं या अनेक सुंदरियों के साथ लीला करूं लेकिन उसकी चिन्ता मेरी ज्ञाति को नहीं करनी पड़ती। यही नहीं उतना करने पर भी मैं जाति का पटेल बन कर रह सकता हूं। उसके लिए नयी रसमें भी बना सकता हूं और जाति से इनाम भी प्राप्त कर सकता हूं। मैं कहां खातापीता हूं या मैं अपने पुत्रादि का विवाह कहां करता हूं इसीकी चौकीदारी मेरी ज्ञाति करती है। लेकिन उसे मेरे आचरण या चारित्र का निरीक्षण करने की जरूरत नहीं मालूम होती। आज तो मैं विलायत हो आया हूं इसलिए कन्याकुमारी के गर्भागार में नहीं जा सकता। लेकिन मैं खुले खुले व्यभिचार करता होऊं तो भी उस गर्भागार में जाने से मुझे कोई न रोक सकेगा।

इस चित्र में कहीं भी अतिशयोक्ति नहीं की गई है। यह धर्म नहीं है; यह तो अधर्म की परिसीमा है। इससे वर्ण की रक्षा न होगी उसका नाश होगा। वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने का मैं प्रयत्न करता हूं लेकिन यदि यह अधम दूर न होगा तो मैं उसकी रक्षा करने में समर्थ न हो सकूंगा। इससे तो वर्ण के नाम से वर्ण का अतिरेक ही पहचाना जाता है और इस अतिरेक का नाश होने के बजाय वर्ण का ही नाश हो जाने का भय रहता है।

अब यह देखें कि ऐसी असह्य जातियों की रक्षा किस प्रकार होती है। अहिंसा प्रधान धर्म हिंसा से जाति की रक्षा करता है। जिसने जाति के कृत्रिम बन्धनों को तोड़ डाला है उन्हें समझाने का, उन्हें उनकी 'भूल' बताने का तो प्रयत्न होता ही नहीं। परन्तु उसका फौरन ही बहिष्कार कर दिया जाता है। बहिष्कार करना अर्थात् सब प्रकार से उसको सताना। उसका भोजन बंध, उसके साथ बेटी-व्यवहार बंध और उसका स्मशान व्यवहार भी बंध कर दिया जाता है। और यह सजा बहिष्कृत व्यक्ति के लड़के बच्चों पर भी उतरती है। इसका नाम है प्यूटी पर फौज भेजना और यदि इस जमाने की भाषा में कहें तो डायरशाही। ऐसे अत्याचारों से सो हजार दो हजार मनुष्यों की जातियां टिकने के बजाय नष्ट ही हो जायंगी। और इनका नाश ही इष्ट है। लेकिन जोरोजुल्म करने से जो नाश होगा वह हानिकारक होगा। यदि उनका इच्छापूर्वक नाश किया जायगा तभी उससे समाज को पुष्टि मिलेगी।

सबसे अच्छा उपाय तो यह कि छोटी छोटी ज्ञातियों के महाजन मिलकर एक ज्ञाति बन जायं और यह बडी ज्ञाति दूसरे संघो के साथ मिलकर चारो वर्णों में से एक में अपना स्थान प्राप्त कर लें।

लेकिन आज की शिथिलता की हालत में तो तत्काल ऐसा सुधार होना करीब करीब नामुमकिन सा मालूम होगा।

धर्म का पालन करना जितना कठिन है उतना ही आसान है। जिस प्रकार हरएक संघ (ज्ञाति) धर्म की शुद्धि कर सकता है उसी प्रकार हरएक व्यक्ति भी कर सकता है।

व्यक्तियों को चाहिए कि वे निर्भय बनकर जिन्हें वे धर्म मानते हों उसपर अमल करें और यदि उन्हें बहिष्कृत किया जाय तो उन्हें कुछ भी फिक न करनी चाहिए। ज्ञाति की तीनों प्रकार की सजाओं का विनय पूर्वक सत्कार करके उसे बंधन मुक्त मानना चाहिए। ज्ञाति भोजन करने में कोई लाभ नहीं है और न करने में तो बहुत बार लाभ ही होता है। मृत्यु के समय के भोजन को मैं पाप मानता हूं। पुत्रादि के लिए कन्या और कन्या के लिए यदि वर उसी ज्ञाति में से न मिले तो यह कोई चिन्ता का विषय नहीं है। क्योंकि जिसको सजा की गई है उसके लिए वह सजा नहीं है क्योंकि वह ऐसी छोटी छोटी अंतर्ज्ञातियों के अस्तित्व को ही नहीं मानता है। कन्या और लडका यदि लायक हैं तो दूसरे सुधारकों में से लायक जोडी मिलने में कोई मुश्किल न होगी। लेकिन यदि ऐसी जोडी मिलना मुश्किल हो तो भी उसे सहन करना ही धर्म है। चारित्र्यवान और संयमी पर ऐसी उपाधियां कुछ अधिक असर नहीं करती है। वह उन्हें उपाधि ही नहीं मानता। वह तो प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है। किसीको मृत्यु के समय भी ज्ञाति की तरफ से यदि सहाय न मिले तो उसमें भी दुःख मानने की बात क्या हो सकती है? दूसरे मदद करनेवाले मिल जायगे। गाडी के विषय में तो मैं लिख चुका हूं। उसका उपयोग करने से थोडी ही मदद दरकार होगी। और जिसको उतनी भी मदद न मिल सके वह मजदूर रख सकता है। जिसके पास मजदूरी देने के भी पैसे नहीं है इतना जो दीन है और जो ईश्वर पर आधार रखता है उसे तो यही विश्वास रखना चाहिए कि परमात्मा चाहे जहां से भी मदद भेज देगा। सजा का भय छोड देना ही सत्याग्रह है। जिस प्रकार सरकार के साथ लडने में सत्याग्रह का शस्त्र सुवर्ण-शस्त्र है उसी प्रकार ज्ञाति सरकार के साथ लडने में भी वह है। क्योंकि दर्द एक ही है इसीलिए दोनों की दवा भी एक ही है। सत्याग्रह जुल्म का औषध है। हिन्दू-धर्म का — धर्ममात्र का — रक्षण केवल सत्याग्रह से ही हो सकता है।

मैं प्रत्येक धर्म-प्रेमी को बडे विनय के साथ यह सलाह देता हूं कि वे ज्ञाति विषयक नाना प्रकार के झगडों में न पडें और अपने कर्तव्य में दृढ रहें। यह कर्तव्य है अपने धर्म का और देश का रक्षण करना।छोटी छोटी ज्ञातियों का अयोग्य रक्षण करने से धर्म का रक्षण न होगा, लेकिन धार्मिक व्यवहार से ही उसका रक्षण हो सकेगा। धर्म का रक्षण अर्थात् हिन्दूमात्र का रक्षण। स्वयं चारित्र्यवान् बनने से ही हिन्दूमात्र का रक्षण होगा। चारित्र्यवान् बनने के मानी हैं; सत्य, ब्रह्मचर्य अहिंसादि व्रतों का पालन करना और निर्भय बनना — अर्थात् मनुष्यमात्र का भय त्याग करना, ईश्वर पर श्रद्धा रखना, उससे डरना, वह हमारे सब कामों का, सब विचारों का साक्षी है यह मानकर बुरे विचार करने से डरना, जीवमात्र की सहाय करना, दूसरे धर्म के मनुष्य को भी मित्र मानना और परोपकार करने में ही कालक्षेप करना इत्यादि। छोटी छोटी ज्ञातियों का अस्तित्व तो तभी क्षन्तव्य माना जा सकता है जब कि उनके सब काम साधारण तौर पर धर्म और देश के पोषक हों। जो ज्ञाति सारे विश्व का उपयोग अपने ही लिए करती है उसका नाश होगा। जो ज्ञाति संसार के कल्याण के लिए अपना खुद का उपयोग होने देती है या करती है वह भले ही जिन्दा रहे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

क्या पुरुषों का काम नहीं?

एक प्रोफेसर साहब इस प्रकार लिखते हैं—

'स्वयं मुझे तो चरखे में और खादी में पूर्ण विश्वास है। मैं यह खूब अच्छी तरह समझ सकता हूं कि खास खास वर्ग के लोग और आम लोगों में खद्दर के सिवा और कोई दूसरा सामान्य बंधन हो ही नहीं सकता। और किसी सामान्य बन्धन के बिना और एकत्व का अनुभव किये बिना कोई भी देश किसी भी प्राप्तव्य वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकता है, हिन्दुस्तान तो कर ही नहीं सकता। इसके अलावा मैं यह भी अच्छी तरह समझ सकता हूं कि काफी तादाद में खादी पैदा हो जाने पर तो उसका यही परिणाम होगा कि विदेशी कपडा आना बन्द हो जायगा। यदि हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता प्राप्त करनी है तो उसे खादी का कार्यक्रम पूरे तौरपर सफल करना चाहिए।

लेकिन मेरी राय यह है कि आपने गलत सिरे से काम करना शुरू किया है। सशक्त मनुष्यों को स्त्रीयों की तरह कातते बैठने को कहना बहुतेरे मनुष्यों को विचित्र मालूम होता है। मैं इस ख्याल को अच्छी तरह समझ सकता हूं कि आजकल हम लोग औरतों से किसी प्रकार भी बढकर नहीं है। फिर भी यह बात सच है कि हम लोग उस कार्य को करना स्वीकार नहीं कर सकते हैं जिसका कि सैकडो वर्ष हुए स्त्रीयों के साथ ही संबंध रहा है। यदि मुझको कम से कम यह विश्वास दिलाया जा सके कि भारत-वर्ष की औरतों ने कातने को अपना लिया है और फिर भी पुरुषों को उसमें कुछ मदद करने की जरूरत है तो मैं अपने इस ख्याल को छोड देने के लिए राजी हो जाऊंगा। बारीक विदेशी साडियां पहन कर औरतें तो इठलाती हुई फिरें और पुरुषों को कातने के लिए कहा जाय यह तो घोडे के आगे गाडी रखने के बराबर ही होगा। अलावा इसके, विदेशी कपडों के सवाल की जिम्मेवारी पुरुषों पर उतनी नहीं है जितनी कि स्त्रीयों पर है और इसलिए मेरा यह ख्याल है कि खद्दर और चरखे का उपयोग करने के लिए स्त्रीयों के बजाय पुरुषों पर दबाव डालना गलत सिरे से काम शुरू करना है।

मेरी नम्र राय है कि आपको पुरुषों को तो उनकी अनेक प्रकार की राजकीय प्रवृत्ति में ही लगे रहने देना चाहिए था और अपना संदेशा इस देश की स्त्रीयों को ही सुनाना चाहिए था। अब आपके चरखे और खादी के महान कार्यक्रम को आप स्त्रीयों के क्षेत्र में ही मर्यादित कर दें और पुरुषों को तो दूसरे पुरुषोचित हथियारों से ही स्वतंत्रता की लडाई लडने दें।"

यह पत्र कुछ लंबा था लेकिन मैंने सार खींच लिया है पर उसकी भाषा नहीं बदली है। यह तो स्पष्ट है कि ये विद्वान प्रोफेसर हिन्दुस्तान की स्त्रीयों की हालत को नहीं जानते हैं। अगर वे जानते होते तो उन्हें यह भी खबर होती कि साधारण तौर पर पुरुषों को अपना भाषण स्त्रीयों को सुनाने का अधिकार या मौका नहीं मिलता है। बेशक मेरे सद्भाग्य से कुछ अंशतक मैं उन्हें अपना वक्तव्य सुनाने में समर्थ हो सका हूं। लेकिन मुझे

अनेक सुभीतायें मिलने पर भी मेरा संदेशा जितना पुरुषों के पास पहुंच सका है उतना उनके पास नहीं पहुंच सका है। उन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि स्त्रियां पुरुषों की इजाजत लिए बिना कुछ भी नहीं कर सकती हैं। मैं ऐसे बहुत से उदाहरण पेश कर सकता हूं कि जिसमें पुरुषों ने स्त्रियों को चरखा और खादी ग्रहण करने से रोका है। तीसरे यह कि जो चीजें पुरुष कर सकते हैं वे स्त्रियां नहीं कर सकतीं। यदि कातने की हलचल सिर्फ औरतों ही में मर्यादित रही होती तो गत चार वर्षों में चरखे में जो सुधार हुए हैं और जिस प्रकार आज वह हलचल संगठित हो सकी है वैसा होना नामुमकिन था। चौथे किसी भी काम के बारे में यह स्त्रियों का है या पुरुषों का ही है यह कहना अनुभव के विरुद्ध है। खाना पकाना मुख्यतः स्त्रियों का ही काम है। लेकिन जो सिपाही खाना नहीं पका सकता है वह किसी भी काम का नहीं। लड़ाई की छावनियों में खाना पकाने का जितना भी काम है सब पुरुषलोग ही करते हैं। घरमें तो स्वभावतः स्त्रियां ही खाना पकाती हैं लेकिन बहुत बड़े पैमाने पर व्यवस्थित तौर से खाना पकाने का काम तो सारे संसार में पुरुषलोग ही करते आये हैं। लड़ाई में लड़ना मुख्यतः पुरुषों का ही काम है लेकिन इस्लाम के शुरुआत के युद्धों में आरब स्त्रियां अपने पतियों के साथ खड़ी रहकर बहादुरों की तरह लड़ी थीं। गदर के जमाने में झांसी की रानी ने अपनी बहादुरी के लिए नाम पाया और वह तो बहुत ही थोड़े पुरुष कर सके थे। और आज यूरोप में हम स्त्रियों को वकील, डाक्टर और मुन्तजीम बनकर बड़ा अच्छा काम करती हुई देख रहे हैं। मुहर्रिरों का धंधा तो शार्टहेन्ड और टाइपराइटर जाननेवाली औरतों ने करीब करीब अपने ही कब्जे में कर लिया है। कातना पुरुषों का काम क्यों नहीं है? क्या जो काम हिन्दुस्तान की आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है (और प्रोफेसर के मतानुसार चरखा ऐसा है) वह पुरुषों के लिए काफी पुरुषोचित नहीं है? क्या प्रोफेसर यह नहीं जानते कि पहले पहल जिसने कातने का चरखा ढूंढ निकाला था वह पुरुष ही था। यदि उसने उसकी खोज न की होती तो आज मनुष्यों का इतिहास कुछ जुदे प्रकार से ही लिखा गया होता। सिलाई और सूई का दूसरा काम तो स्त्रियों का ही काम है लेकिन संसार के जितने भी प्रसिद्ध और अच्छे दरजी हैं वे सब पुरुष ही हैं। और सिलाई का मशीन ढूंढ निकालनेवाला भी पुरुष ही था। यदि सींगर ने सूई से नफरत की होती तो आज वह मनुष्य समाज के लिए कुछ भी न छोड़ गया होता। यदि औरतों के साथ साथ गुजरे हुए जमाने में पुरुषों ने भी कताई पर ध्यान दिया होता तो कंपनी सरकार के दबाने पर हमने आज जो कताई का काम छोड़ दिया है वैसा उसे कभी न छोड़ा होता। राजनीतिज्ञ लोग जितना भी चाहे शुद्ध राजनीति का काम करने में अपने को लगा सकते हैं। लेकिन यदि करोड़ों के एकत्रित प्रयत्न से हमें अपना कपड़ा आप तैयार करना है तो राजनीतिज्ञ कवि—पंडित—सभीको फिर वह स्त्री हो या पुरुष हो, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी या यहूदी हो, उसे देश के लिए धर्म भावना के साथ आधा घण्टा अवश्य ही कातना चाहिए। मनुष्य का धर्म किसी एक वर्ग का या केवल स्त्रियों का या पुरुषों का ही अधिकार नहीं है। वह तो सभीका अधिकार है, नहीं, फर्ज है। हिन्दुस्तान के मनुष्यों का धर्म उन सब लोगों से जो अपने को हिन्दुस्तानी कहलाते हैं इस बात की अपेक्षा रखता है कि वे कम से कम आधा घण्टा अवश्य ही कातें।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

बुरी फटकार

एक वकील मित्र लिखते हैं—

"१४–५–२६ के यंग इण्डिया में १७० वें सफे पर 'बुननेवालों की शिकायत' इस शिर्षक के लेख में इस प्रकार लिखा हुआ पाया गया है।

'यह शिकायत कातनेवाले सभ्यों की बड़ी भारी उदासीनता का सबूत है। लेकिन दिल लगाये बिना कातना अपने को और राष्ट्र को दोनों को धोखा देना है।'

मैंने आपको २८–३–२५ को एक चिट्ठी लिखी थी और मेरा काता हुआ २०० वार सूत नमूने के तौर पर भेजा था। उसमें मैंने आपसे प्रार्थना की थी आप उसकी उसके ज्ञाताओं से परीक्षा करावें और उसमें यदि कोई दोष हों तो मुझे लिख भेजें। लेकिन अबतक मुझे उसका उत्तर नहीं मिला है। उस पत्र में मुझे जो भय था वह मैंने साफ शब्दों में लिख दिया था। और यंग इण्डिया की उपरोक्त टिप्पणी से यह मालूम भी होता है कि मेरा भय साधार था।

मैंने उस पत्र में यह भी लिखा था कि हरएक कातनेवाला यह नहीं जान सकता कि उसके काते हुए सूत में क्या दोष हैं। और इसलिए कुछ ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि उन्हें उनके सूत के दोष बताये जा सकें और वे यह समझ जाय कि किस जगह उसे सुधारने की जरूरत है। मैं आपके इस कथन से सहमत नहीं हो सकता हूं कि हरएक कातनेवाला जो अच्छा नहीं कात सकता है वह बिना दिल लगाये और उदासीन हो कर ही कातता है और इस प्रकार वह अपनेको और राष्ट्र को धोखा देता है। जो सूत कातनेवाले कातते हैं उसके अच्छे या बुरे होने पर से कातनेवालों की सचाई का माप निकालना उन्हें अन्याय करना है। कातने का पूरा ज्ञान न होने के कारण भी सूत में दोष रह सकते हैं। मैं तो यह भी कह सकता हूं कि सभासद नियमपूर्वक कात कर अपना सूत का चन्दा देते हैं इसीसे यह बात साबित हो जाती है कि वे सच्चे और दिल लगा कर काम करनेवाले हैं। क्योंकि उनपर कोई जबरदस्ती तो की ही नहीं जाती है। वे जितना भी काम करते हैं सब स्वेच्छा से और अपना कर्तव्य समझ कर ही करते हैं। इसलिए यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि वे दिल लगा कर काम नहीं करते हैं। लेकिन उसके खिलाफ वे तो स्वभावतः ही उत्तम और बड़ा उपयोगी सूत भेजने के लिए आतुर होते हैं। मेरा यह ख्याल है कि यह कहना कि वे अकारण ही कातने का यश लेते हैं और इसलिए उसमें दोष रहते हैं, बहुत ही बुरी फटकार है।

मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगा यदि आप हम लोगों को (सिर्फ कातनेवालों को) कोई उपाय दिखा देंगे कि जिससे हम यह जान सकें कि हमारा सूत जैसा होना चाहिए वैसा कता है या नहीं।"

इस मित्र का यह मानना कि बुननेवाले और कताई के पूर्ण ज्ञाता न होने के कारण वे सूत का अच्छा या बुरा होना पहचान नहीं सकते हैं, यदि सच होता तो मेरी फटकार बड़ी सख्त गिनी जा सकती है। लेकिन सच बात तो यह है कि सूत का बुनाई के योग्य होना या न होना पहचानना बड़ा सीधा काम है। देखते ही यह बात मालूम हो जाती है कि सूत सब जगह से बराबर है या नहीं या गेंठदार है। और हाथ से जरा खिंचने पर यह मालूम हो जायगा कि वह अच्छा बलदार है या नहीं। इसलिए साधारणतया सूत की जात पहचानने के लिए किसीको

जुलाहा बनने की जरूरत नहीं है। इसके अलावा जिसको इस बात का अधिक ख्याल है वह जुलाहे के पास जा कर भी अपने सूत की परीक्षा करा सकता है। हजारों कातनेवाले जो आज अच्छा सूत कात रहे हैं वे जुलाहे नहीं हैं और बिना कुछ अधिक कठिनाई के वे अच्छे और बुरे सूत को पहचान सकते हैं। यह हो सकता है कि इस पत्र के लेखक ने जो सूत भेजा है वह आश्रम में पहुंचा होगा। लेकिन मैं तो बराबर सफर में रहा हूं इसलिए वह मुझे नहीं मिला है। लेकिन अब उन्हें मेरी उपरोक्त सूचना को ही मान लेना चाहिए। जेल में हमें मिल-कते सूत का दो बार का एक नमूना दिया जाता था और उस नमूने के मुआफिक कातने को कहा जाता था। जो शख्स इस प्रकार सूचनाओं से समझ नहीं सकते हैं वे मिल-कते सूत का जिस नंबर का कातना चाहें उसी नंबर का एक नमूना ले लें और उसी नम्बर का और जाति का सूत कातने का प्रयत्न करें। अब शायद यह बात साफ हो गई है कि मैंने सभासदों को दोष क्यों दिया था। लेकिन मेरी इच्छा किसी भी कातनेवाले को अन्याय करने की न थी यह दिखाने के लिए भी मुझे फौरन ही इस बातका स्वीकार कर लेना चाहिए कि इस वकील मित्र के जैसे बहुत से ऐसे भी होंगे कि जिन्होंने बुरा सूत इसलिए भेजा क्योंकि उनको कुछ इसका अधिक ज्ञान नहीं था। लेकिन वे बहुत तो न होंगे क्योंकि इन पत्रों में बार बार चेतावनियां और सूचनायें प्रकाशित की गई हैं और अ०भा०खा० मण्डल ने भी जब सूत उसके पास भेजा जाता था तब अलग सूचनायें प्रकाशित की थी।

(य. इं.) मो० क० गांधी

ब्रह्मदेश का चर्खा

यहां जो चित्र दिया गया है वह ब्रह्मदेश के चर्खे का है। रंगून के पास के एक गांव में रहने वाले एक गुजराती मित्र ने ऐसा एक चर्खा हमें भेट दिया था। जिन्होंने बौद्ध मंदिरों के चित्र देखे हैं उनको यह चित्र देखते ही इसमें ब्रह्मदेश की छाया सी नजर आवेगी। यह बहुत हलका और सुडौल है। इसके चक्र के आरे मजबूत बांस की चीपों के बने हुये हैं। आरों के ऊपर चारों ओर गोल पट्टा भी छोटी २ बांस की चीपें हो जड़कर बनाया हुवा है। इसका चक्र का व्यास १५ इंच है। पटली की लंबाई २½ फुट है। चक्र की ऊंचाई के परिमाण में चर्खे की लंबाई बिल्कुल ठीक मालूम होती है। चक्र के ऊपर गाय के सींग की सी एक आकृति दोनों पिछले खंभों के ऊपर जड़ी हुई है। अगले खंभों की चोटियां स्तूपों के शिखरों के जैसी और उलाऊ व नोकीली है इससे चर्खा बड़ा खूबसूरत लगता है।
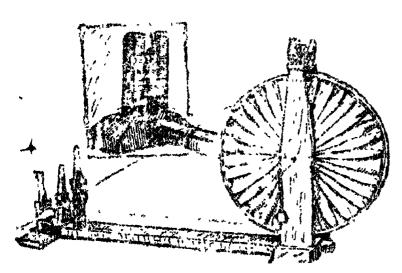
इस चर्खेमें खास खूबी यह है कि तकला अगले खंभों के बाहिर होने के बदले अंदर की तरफ रहता है। अगले खंभों के सूराखों में चमरखों की जगह रस्सी के नाकू अंदर की ओर पिरोये हुये हैं। पिछाड़ी मोड़ीमें एक गांठ होने के कारण ये नाकू खिंच नहीं आते। इन दोनों नाकुओं में रहनेवाले तकले पर जब माल चढ़ती है तो वह चक्कर की तरफ खिंचकर मजबूती से अधर लटकता हुवा तकला इतना हलका घूमता है और किसी भी प्रकार का कर्कश शब्द न निकालते हुए इतनी मधुर ध्वनि सुनाता है कि कातनेवाले का उसपर से उठ उठने को दिल नहीं करता। इन रस्सी के चमरखों से एक विशेष लाभ यह है कि तकला कातते समय आगे पीछे झलता हुआ रहते हुए भी थर्राता नहीं है। और इससे सूत को झटका बिल्कुल नहीं लगता। जिस प्रकार स्प्रिंगवाली गाड़ी की गद्दी पर बैठा हुवा आदमी गाड़ी को झटके लगते हुये भी खुद झटकों से सुरक्षित रहता है वैसे ही स्प्रिंग का काम देनेवाले इन रस्सी के चमरखों में रहनेवाले इस चर्खे के तकले का सूत झटकों से बचा हुआ लगातार निकला करता है और टूटतो बहुत कम है। खूबी यह है कि तकले में थोड़ा सा बांक हो तो भी उसका असर सूत पर बहुत कम पड़ता है। और यदि तकला बिल्कुल सीधा हो तब तो कातने में अपूर्व आनन्द आता है।

रस्सी की जगह धनुष में से टूटे हुए तांत के टुकड़े लगाये जाय तो वह बहुत टिकतो है और उसपर तकला कुछ विशेष सरलता से फिरता है। तांत का टुकड़ा तकले के दबाव से रस्सी के टुकड़े की तरह दब कर पोला न हो जाने से तकले को घर्षण कम पड़ता है और उस हद तक हलके पन में बढवारी होती है। इन चमरखों में तेल नहीं डालना पड़ता ऐसा तो नहीं है। तेल से घूमने में सरलता बढ़ती है और रस्सी या तांत के टुकड़े का आयुष्य भी बढ़ता है।

जिस मित्र ने यह चर्खा भेट किया था उन्होंने यह चर्खा एक बर्मी स्त्री के पास से ८) रुपये में खरीदा था। दिखने में बहुत पुराना मालूम होता है लेकिन तो भी उसका कोई भी अंग जीर्ण हुवा नहीं दिखता। यह चर्खा इस बात की साक्षी देता है कि ब्रह्मदेशीय चर्खे के बनानेवाले कैसे रसिया होंगे और कातनेवाली स्त्रियां कैसी रसीली होंगी।

तकले की इस प्रकार की व्यवस्था हर किसी चर्खे में हो सकती है यह भी इस चर्खे के ऊपर के एक छोटे चित्र से मालूम हो सकता है। सिर्फ चर्खा जरा लंबा अवश्य होना चाहिए। लंबाई कम हो ऐसे चर्खों में यह व्यवस्था नहीं हो सकती ऐसा नहीं है। उसमें तकला सिर्फ चक्र के बहुत ही नजदीक आ जावेगा, इससे माल तकले पर जितनी जगह पर लगनी चाहिये उससे कम जगह पर लिपटेगी और इससे तकले पर माल का जितना काबू रहना चाहिए उतना नहीं रहेगा। चर्खे की लंबाई २ फुट हो तो बिल्कुल काफी होगा। तकले के मोटे पतले पने के अनुसार रस्सी या तांत के टुकड़े भी मोटे पतले लगाना जरूरी है। जिस चर्खे की लंबाई कम हो उसमें यह व्यवस्था करने का एक उपाय है। वह यह कि चमरखे लगाने के सूराखों में जरूरत के अनुसार लंबा बांस की चीपें चमरखों की तरह लगा दी जाय और इन बांस की दोनों चीपों में सूराख कर के उनमें रस्सी के नाकू नीचे की ओर लटकते हुए पिरो लिये जाय। इन नाकुओंमें तकला डाल कर चलाने से आवश्यक लंबाई प्राप्त हो

कातनेवाले पाठक इस व्यवस्था का प्रयोग अवश्य करेंगे ऐसी आशा है। बिना खर्च के यह व्यवस्था हो सकती है और इस व्यवस्था से कातने मे सूत टूटता बहुत कम होने से ज्यादा मजबूत निकलता है। इसमें सूत स्वाभाविकतया कुछ बारीक निकलता है। यह लाभ भी कुछ कम नहीं है। तकले की नोंक पर थर्राहट बिल्कुल नहीं लगने से तार को टूटने से बचाने की सभाल कातनेवाले को बहुत कम लेनी पड़ती है और इससे पूनी मे से ज्यादा रेशे छोड़कर मोटा तार निकालने की जरूरत न रहने से पतला तार बिना कठिनता के निकाला जा सकता है।

मगनलाल खु० गांधी

अभय आश्रम

१९२० मे कलकत्ते में असहयोग की नींव डालकर गांधीजी दो चार दिन के लिए शान्तिनिकेतन गये थे। उस समय तीन या चार युवक एक आश्रम या मण्डल की योजना लेकर आये थे। उनमें एक तो कलकत्ते की वैद्यकीय कालेज की उपाधि प्राप्त किए हुए और लड़ाई में काम करके वापस आकर असहयोग के कारण अपनी जगह से इस्तिफा देकर निवृत्त बने हुए डाक्टर थे। उनके साथ कोई दो तीन युवक और थे। वे कलकत्ता यूनीवर्सिटी के एम. ए. और एम.एस.सी थे। गांधीजी ने उनसे बड़ा जिरह की। पहले तो आश्रम जैसी संस्था खोलने में जो मुश्किलें आती हैं उनका जिक्र किया, ब्रह्मचर्य पर आधार रखनेवाला आश्रम निकालने की आवश्यकता और उसमें जो मुश्किलें होती हैं उनका भी जिक्र किया। और बहुत कुछ चेता करके ही उन्हें आश्रम निकालने की इजाजत दी थी। 'आश्रम का नाम क्या रक्खोगे?' इसके उत्तर में उन्होंने अनेक नाम दिये थे। एक नाम अब भी याद है। एक भाई ने पूछा था "सवितास्रम नाम रक्खें तो कैसा?" गांधीजी को यह सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ था। उसका हेतु पूछने पर उन्होंने कहा कि "सविता ही सारी सृष्टि का आधार है वही उसको टिका रहा है। सविता सर्व प्रकार के अंधकार का नाश करता है हमारा आश्रम देश को सवितारूप हो।" इसमें जो गगनगामी मनोरथ है वह गांधीजी को पसंद था लेकिन यह मनोरथ नाम मे नहीं परन्तु काम मे प्रकट करने की उन्होंने सलाह दी थी। बाद जब १९२१ में फिर कलकत्ते मे मिले तब एक भाई उसका 'अभय आश्रम' नाम लेकर आये थे और गांधीजी ने उसे कुबूल रक्खा था। यह आश्रम शुरूआत में ढाके मे था और अब कुमिल्ला मे है। आश्रम के प्रथम सभ्यों में तीन डाक्टर थे। पहले के सभ्यों मे से बहुत से अब नहीं रहे। शायद इसका कारण यह हो सकता है कि अभय आश्रम ने जितनी निर्भयता प्राप्त की है उतना विनय या प्रेम प्राप्त नहीं किया होगा। वरना दीक्षाबद्ध ब्रह्मचारी दीक्षा छोड़कर चले क्यों जाय?

फिर भी आज जितने हैं—अठारा तो हैं—उतने बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। और बंगाल के त्याग के उदाहरण स्वरूप यह आश्रम आज मौजूद है। जो लोग बाहर निकल गये हैं वे भी देश का स्वतंत्र काम कर रहे हैं। आश्रम में जो डाक्टर हैं वे कुमिल्ला में काम करते हैं और अपनी सब कमाई आश्रम को ही देते हैं। इसीमें से आश्रम के दूसरे खर्च चलते हैं। आश्रम के साथ एक अस्पताल निकालने का भी उनका विचार है। आश्रम का उद्देश खादी पैदा करना है इसलिए खादी का ही काम मुख्य है। इसके अलावा एक शिक्षामंदिर भी है। उसमे आसपास के गावों के बालक शिक्षा पा रहे हैं। थोड़ी खेती भी होती है। बंगाल मे खादी के पुनरुद्धार का आरम्भ करनेवाले भाई प्रफुल्ल घोष अभय आश्रम के ही हैं। प्रतिवर्ष २० हजार की खादी आश्रम उत्पन्न करता है।

गांधीजी का सत्कार करते हुए आश्रमवासीओं ने एक अभिनन्दन पत्र दिया था। उसके साथ आश्रम के सभ्यों के काते हुए सूत का एक धोती जोड़ा भी था। इस अभिनन्दन पत्र के जवाब मे गांधीजी ने इस प्रकार भाषण किया था।

'इस अभिनन्दनपत्र के लिए आप को धन्यवाद दू तो यह केवल शिष्टाचार ही होगा। क्यों कि आप लोगों ने भी तो इस बात का स्वीकार किया है कि इस आश्रम की हस्ती मे मेरा भी कुछ हाथ है। जब मै बंगाल आने की तैयारी कर रहा था उस समय आपके जैसे युवकों को मिलने की और आप लोगों का काम देखने की मुझे बड़ी इच्छा थी। ऐसे नवयुवकों के स्वार्थ-त्याग का मुझे पूरा पता है। मै यह जानता हू कि जबतक ऐसे बहुत से स्वार्थत्यागी भारत में न होंगे तबतक स्वतंत्रता की आशा नहीं है। प्रत्येक नौजवान के लिए त्याग ही भोग होना चाहिए। त्याग को मैंने कभी दुःख की अवस्था नहीं मानी है। जो मनुष्य त्याग को दुःख मानता है उसका त्याग बहुत दिनों तक नहीं टिक सकता है। इसलिए जब मुझे अपने प्रवास में त्याग के बड़े बड़े दृष्टांत दिखाई पड़ते हैं, और ५००—१००० रुपया मासिक वेतन छोड़ कर थोड़े ही रुपये ले कर अपनी आजीविका प्राप्त करते हुए युवकों को मै देखता हू तब मुझे कोई दुःख नहीं होता है। लेकिन मै तो यह महसूस करता हू कि ऐसे नवयुवकों ने कुछ भी नहीं खोया है क्योंकि वे ध्येय प्राप्त करने के बंधन में से छूट गये हैं।

लेकिन मै एक और वस्तु पर जोर देना चाहता हूं। जब हम लोग सेवा के लिए किसी वस्तु का त्याग करते हैं तब हम किसी न किसी वस्तु का ग्रहण भी करते हैं। यह मै जानता हूं कि नवयुवक लोग यह मानते हैं कि उन्होंने किसी वस्तु का त्याग किया कि उन्हें सब कुछ प्राप्त हो गया। लेकिन इस ख्याल में बड़ी भूल होती है। त्याग के साथ कर्तव्य का भी भान होना चाहिए। तभी जीवन संतोषपूर्ण हो सकता है। अर्थात् अपनी सब प्रवृत्तियां विवेकदृष्टि से ही होनी चाहिए। मेरे ख्याल से तो आज हिन्दुस्तान की सेवा करने के लिए जितने भी युवक तैयार हों उनकी दृष्टि के सामने एक ही आदर्श रहना चाहिए। करोड़ों निरुद्यमी को किस प्रकार उद्यमी बनाये जायं? और चरखा ही उसका एक मात्र साधन है यह स्वीकार करना होगा। जिस युवक में काम करने की शक्ति है, सेवा और स्वार्थ त्याग की जिसने दीक्षा ली है उसे तो जो-प्रवृत्ति कठिन से कठिन है, व्यापक से व्यापक है और सबसे अधिक फलदायी है उसीमें प्रवृत्त होना चाहिए।"

(नवजीवन) **महादेव हरिभाई देसाई**

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी) ॥ कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल्वे से।

व्यवस्थापक—हिन्दी-नवजीवन

चित्तरंजन दास

वार्षिक मूल्य ४)
६ मास का २)
एक प्रति -)
विदेशों के लिए [illegible])

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४६

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, आषाढ सुदी ४, संवत् १९८२ गुरुवार, २५ जून, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

एक और रंगरूट

मेरी प्रेमिकाओं की फौज दिन ब दिन बढ रही है । बेशक उन सबमें रानी तो गुलनार ही है । जब जब और जितनी दफा मुझे निमंत्रण मिलने पर सरकार के मिहमान बनकर जाना पड़ा है तब तब और उतनी ही मरतबा वह मेरी गैरहाजरी में सर्व सत्तात्मक कुर्सी पर अपना अधिकार जमाती है। लेकिन छोटे छोटे तारे [illegible] अभी उनमें जो एक और भरती हुई है वह है बर्दवान की रानीबाला। वह शायद दस वर्ष की है । मुझे उसकी उम्र पूछने की हिम्मत ही न हुई । मैं उसके साथ मुआफिक के मामूल खेल रहा था और उसके छः भारी सोने के कड़ों पर तिरछी नजर डालता जाता था। मैं धीरे धीरे उसे यह समझा ही रहा था कि उसकी कोमल कलाई पर ये भारी कड़े बड़े ही वजनदार मालूम होते होंगे कि-' उसने उन कड़ों पर अपना हाथ रख दिया। उसके नाना 'सर्वेंट' के बहादुर सम्पादक बोल उठे "हां, महात्माजी को ये कड़े दे दो" मुझे ख्याल हुआ कि किसी दूसरे ही पर बोझ डालकर यह उदारता प्रकट की जा रही है । लेकिन श्याम बाबू बोले "आप मेरी लड़की और दामाद को पहचानते नहीं हैं । मेरी लड़की यह सुनकर कि रानीबाला ने आपको कड़े दे दिये हैं बड़ी प्रसन्न होगी । और मेरे दामाद तो उनके बिना अच्छी तरह चला सकेंगे। वे बड़े उदार दिल के आदमी हैं । वे गरीबों की बड़ी मदद करते हैं ।" वे बोलते जाते थे और रानीबाला को कड़े उतारने में उत्साहित और मदद करते जाते थे । मुझे यह कबूल कर लेना चाहिए कि मैं कुछ चकराया जरूर । मैं तो सिर्फ विनोद ही कर रहा था । जब कभी मैं छोटी लड़कियों को देखता हूं तो मैं उनसे सदा ऐसा ही विनोद करता हूं और विनोद ही विनोद में उनके दिल में बहुत गहने पहनने का तिरस्कार उत्पन्न करता हूं, और गरीबों के लिए अपने गहने त्याग देने की इच्छा पैदा करता हूं । मैंने कड़े वापस करने का प्रयत्न किया । लेकिन श्याम बाबू ने तो यह कह कर बात बीच में ही काट डाली कि उनकी लड़की कड़े वापस लेने के कार्य को अशुभ मानेगी । मैंने अपनी एक शर्त उन्हें सुनाई कि लड़की ने मुझे जो कड़े दे दिये हैं उनके बदले में वह दूसरे कड़े न मांगेगी । यदि उसे पसंद हो तो वह शंख की बनी सुंदर सफेद चूडियां पहन सकती है । लड़की और उसके नाना दोनों ने मेरी यह शर्त स्वीकार कर ली । यह दान उस कुटुंब के लिए शुभ शकुन था या नहीं, मैं नहीं जानता लेकिन गरीबों के और मेरे लिए तो वह बड़ा अच्छा शुगन साबित हुआ । क्योंकि इसका दूसरों पर भी अच्छा असर हुआ । और बर्दवान में जिस स्त्रियों की सभा में मैंने व्याख्यान दिया उसमें से १२ कड़े और [illegible] काम की बालियां बिना मांगे ही मिल गई । यह कहने की तो कोई आवश्यकता नहीं है । बंगाल में चरखा और खादी के प्रचार के काम में उनका उपयोग किया जायगा, मैं जितनी भी छोटी लड़कियां हैं उनपर और उनके मातापिता, और उनके बूढ दादादादी या नानीनानी पर यह जाहिर करता हूं कि जो मुझसे रानीबाला की शर्त पर प्रेम करना चाहती हैं उन सबको फिर वे कितनी भी हों मैं अपनी प्रेमिका बनाने के लिए तैयार हूं । इस ख्याल से कि उन्होंने अपने कीमती गहने गरीबों की सेवा के लिए दे दिये हैं वे अधिक सुंदर साबित होंगी । हिन्दुस्तान की छोटी छोटी लड़कियों को यह कथन हमेशा याद रखना चाहिए कि "वही सुंदर है जो सुंदर काम करता है" ।

अन्याय अभीष्ट नहीं

"आप कहते हैं कि मेरे सन्देश की ओर मैं शिक्षित भारतवासियों को आकर्षित न कर सका । यह कह कर क्या आप भारत के शिक्षित समुदाय के साथ अन्याय नहीं करते ? आपके दाहने हाथ राजगोपालाचार्य को ही देखिए, औरों की बात तो दूर, जो कि निःस्वार्थ हैं, शिक्षित हैं, देश के कोने कोने में बिखरे हुए हैं और जिनका नाम तक आप 'य. इं.' में नहीं देते । वे न होते तो आपको कार्य [illegible] होती ? ग्रामप्रवेश की बात करना तो ठीक है; परन्तु यह भी आप उन्हींकी मदद से कर रहे हैं" ।

इस प्रश्न से एक मिथ्या विषय उपस्थित होता है । यह तो दरिया में खसखस है । जो मुट्ठीभर शिक्षित लोग चुपचाप सेवा कर रहे हैं और चरखे का पैगाम पहुंचा रहे हैं वे वास्तव में अपने और देश के लिए भूषण हैं । उनके बिना मैं बिल्कुल असहाय हूं । परन्तु वे शिक्षित समुदाय के उससे अधिक प्रतिनिधि नहीं हैं

जितना कि मैं हूं। एक वर्ग के रूप में शिक्षित भारतवासी चर्खे से दूर खड़े हैं; इसलिए नहीं कि वे चाहते नहीं हैं बल्कि इसलिए कि वे कायल नहीं हो पाये हैं। जब मैंने यह बात लिखी तब मेरे ध्यान में श्री शास्त्री, जिना, चिंतामणी, सप्रू आदि समस्त लोग थे, जो कि हमारे देश के प्रसिद्ध शिक्षित व्यक्ति हैं। छोटे बड़े लोग चाहे यों मुझे चाहते हों, पर मेरे विचारों और कार्य-प्रणाली से भयभीत हैं। कुछ लोग तो कभी कभी सरगर्मी के साथ मुझे अपना ढंग सुधारने की सूचना करते हैं जिससे कि वे मेरे साथ मिल कर काम कर सकें। और न मैंने उस अंश को बतौर शिकायत के ही लिखा। मैंने तो सिर्फ वस्तुस्थिति को प्रकट किया— इस उद्देश से कि अपनी मर्यादितता बता दूं और यह भी दिखला दूं कि उनकी भी आवश्यकता राष्ट्रीय उत्थान में उतनी ही है जितनी की चर्खे के बड़े से बड़े प्रतिनिधि की है। मैं यह भी मानता हूं कि महासभा का नेतृत्व उन्हींका है और महज राय की गिनती के आधार पर यह प्रश्न उनके सिर न मढ़ा जाना चाहिए। बल्कि उलटा मुझे धीरज रख कर देखना चाहिए, जब तक कि मैं उन्हें भारत के राजनैतिक उद्धार के लिए भी चर्खा और खादी की अत्यंत आवश्यकता का कायल उन्हें न कर लूं।

तीन सवाल

एक सज्जन ने बरीसाल में मुझसे तीन सवाल पूछे थे जिनका उत्तर नीचे देता हूं—

१. क्या हमारी 'पतित बहनें' जिला या प्रान्तीय परिषदों तथा अन्य प्रातिनिधिक मण्डलों के लिए प्रतिनिधि चुनी जा सकती हैं? यदि नहीं तो फिर ऐसी प्रतिनिधि बरीसाल से फरीदपुर और जेसोर की परिषदों में कैसे भेजे जा सके?

महासभा के मौजूदा संघटन-विधान के अनुसार एक चरित्र-हीन पुरुष भी महासभा का प्रतिनिधि बनने का अधिकार रखता है, यदि कोई सदस्य उसे चुननेवाले मिल जाय। परन्तु जो सदस्य 'पतित बहनों' को, उन्हें जानते हुए भी और उनके अपने गंदे धन्धे को जारी रखते हुए भी, चुनते हैं वे मेरे नजदीक अधिक विचार करने लायक नहीं हैं।

२. यदि कोई एक व्यक्ति या सुसंगठित मण्डल महासभा के रुपये खा जाय या बही-खाते आदि के कागजात और जिला-समिति के रुपये तथा अन्य सम्पत्ति नयी चुनी कार्य समिति को, जिसे कि ब०प्रा० समिति मान्य कर चुकी है, न दे तो रुपये-पैसे वसूल करने तथा कितावें और महासभा की अन्य सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए क्या कार्रवाई करना चाहिए?

यद्यपि मैं अबतक एक दृढ़ असहयोगी हूं, तो भी मैं यदि मेरी मिन्नत खुशामद से काम न निकला तो उसपर दिवानी या फौजदारी दावा करने में न हिचकूंगा — फिर वह चाहे मेरा पिता हो या पुत्र हो। महासभा का विधान और प्रस्ताव उसके उद्देश को मटियामेट करने के लिए नहीं बनाये गये हैं।

३ आपके पास इस बात की क्या वजूहात है कि जो हिन्दुस्तानी और योरोपियन, जिनमें सरकारी उच्च अधिकारी भी शामिल हैं, अब तक आपके उच्च कार्य के विरोधी रहे हैं और अबभी हैं और जो आपकी पिछली बंगाल-यात्रा के समय उन कार्यों में शरीक न होते थे जहां कि आप जाते थे, अब आपके स्वागत में इतना उत्साह दिखाते हैं? क्या इसका यह कारण है कि अब उन लोगों ने अहिंसात्मक असहयोग के उच्च भाव को अपना लिया है या इससे यह साबित होता है कि आपकी देश के बड़े से बड़े राजनैतिक नेता के तौरपर शक्ति यदि बिल्कुल नष्ट नहीं हो गई है तो कम जरूर होती जा रही है?

मुझे पता नहीं कि सरकार ने मेरे पिछले बंगाल के दौरे में क्या क्या बाधायें डालीं। परन्तु अब इस यात्रा में जब कि देश के सबसे बड़े राजनैतिक नेता के तौरपर मेरी शक्ति यदि नष्ट नहीं हो गई है तो कम जरूर होती जाती है' यदि सरकारी कर्मचारी मेरे स्वागत में उत्साह दिखा रहे हैं—तो पत्र लेखक यह अनुमान निकालने के लिए आजाद हैं। पर मैं समझता हूं कि पत्र लेखक अधिकारियों के संबन्ध में यह मानने की गलती न करेंगे कि वे उनकी धारणा के अनुसार मुझे समझ रहे हैं। क्योंकि एक सत्याग्रही की शक्ति उस 'फिनिक्स' पक्षी की तरह है जो कि अपनी राख में से फिर पैदा होने की क्षमता रखता है।

(य० इं०) मो० क० गांधी

(पृष्ठ २७० से आगे)

सांसारिक संग्राम में विजय पाने के लिए योरप ने पिछले युद्ध में जो कि स्वयं ही एक नाशमान् वस्तु है कितने ही करोड़ लोगों का बलिदान कर दिया तब यदि आध्यात्मिक युद्ध में करोड़ों लोगों को इसके प्रयत्न में मिट जाना पड़े जिससे कि संसार के सामने एक पूर्ण उदाहरण रह जाय तो क्या आश्चर्य है? यह हमारे अधीन है कि हम असीम नम्रता के साथ इस बात का उद्योग करें।

इन उच्च गुणों की प्राप्ति ही उनके लिए किये परिश्रम का पुरस्कार है। जो उसपर व्यापार चलाता है वह अपनी आत्मा का नाश करता है। सद्गुण कोई व्यापार करने की चीज नहीं है। मेरा सत्य, मेरी अहिंसा, मेरा ब्रह्मचर्य ये मेरे और मेरे कर्त्ता से संबंध रखनेवाले विषय हैं। वे बिकरी की चीज नहीं है। जो युवक इनकी तिजारत करने का साहस करेगा वह अपना ही नाश कर बैठेगा। संसार के पास कोई बांट ऐसा नहीं है, कोई साधन नहीं है जिससे कि इन बातों की तौल की जा सके। छान-बीन और विश्लेषण की यहां गुजर नहीं। इसलिए हम कार्यकर्त्ताओं को चाहिए कि हम उन्हें केवल अपने शुद्धिकरण के लिए प्राप्त करें। हम दुनिया से कह दें कि वह हमारे कार्यों से हमारी पहचान करे। जो संस्था या आश्रम लोगों से सहायता पाने का दावा करता हो उसका लक्ष्य भौतिक-सांसारिक होना चाहिए जैसे—कोई अस्पताल, कोई पाठशाला, कोई कताई और खादी-विभाग। सर्व-साधारण को इन कामों की योग्यता परखने का अधिकार है और यदि वे उन्हें पसंद करें तो उनकी सहायता करें। शर्तें स्पष्ट हैं। व्यवस्थापकों में नेकनीयती और योग्यता होनी चाहिए। वह प्रामाणिक मनुष्य जो शिक्षा-शास्त्र से अपरिचित हो शिक्षक के रूप में लोगों से सहायता पाने का दावा नहीं कर सकता। सार्वजनिक संस्थाओं का हिसाब-किताब ठीक-ठीक रक्खा जाना चाहिए जिससे कि लोग जब चाहें तब देख-भाल सकें। इन शर्तों की पूर्ति संचालकों को करनी चाहिए। उनकी सच्चरित्रता लोगों के आदर और आश्रय के लिए भार रूप न होनी चाहिए।

(यं. इं.) मोहनदास करमचन्द गांधी

देशबन्धु के गुण

देशबन्धु के अवसान के शोक समाचार मिलने के बाद गांधीजी का पहला भाषण खुलना में इस प्रकार हुआ—

"आप लोगों ने आचार्य राय से सुन लिया कि हम लोगों पर कैसा भीषण वज्र-प्रहार हुआ है। परन्तु मैं जानता हूं कि अगर हम सच्चे देशसेवक हैं तो कितना ही बड़ा वज्र-प्रहार हो, हमारे दिल को तोड़ नहीं सकता। आज सवेरे यह शोकसमाचार सुना तो मेरे सामने दो परस्पर-विरुद्ध कर्तव्य आ खड़े हुए। मेरा कर्तव्य था कि पहले जो गाड़ी मिले उसीसे मैं कलकत्ते चला जाता। पर मेरा यह भी कर्तव्य था कि आपके निर्धारित कार्यक्रम को पूरा करूं। मेरी सेवावृत्ति ने यही प्रेरणा की कि यहां का कार्य पूरा किया जाय। यद्यपि मैं दूर दूर से आये हुए लोगों से मिलने के लिए ठहर गया हूं तथापि उनके सामने महासभा के कार्य की विवेचना न कर के स्वर्गीय देशबन्धु का ही स्मरण करूंगा। मुझे विश्वास है कि कलकत्ते दौड़ जाने की अपेक्षा यहां का काम पूरा करने से उनकी आत्मा अधिक प्रसन्न होगी।

देशबन्धु दास एक महान पुरुष थे। (यहां गांधीजी रो पड़े और एक दो मिनट तक कुछ बोल न सके) मैं गत छः वर्षों से उन्हें जानता हूं। कुछ ही दिन पहले जब मैं दार्जिलिंग में उनसे बिदा हुआ था तब मैंने एक मित्र से कहा था कि जितनी ही घनिष्ठता उनसे बढ़ती है उतना ही उनके प्रति मेरा प्रेम बढ़ता जाता है। मैंने दार्जिलिंग में देखा कि उनके मन में भारत की भलाई के सिवा और कोई विचार न था। वे भारत की स्वाधीनता का ही सपना देखते थे, उसीका विचार करते थे और उसीकी बातचीत करते थे और कुछ नहीं। दार्जिलिंग में मेरे बिदा होते समय भी उन्होंने मुझसे कहा था कि आप बिछुड़े हुए दलों को एक करने के लिए बंगाल में अधिक समय तक ठहरिए, ताकि सब लोगों की शक्ति एक काम के लिए संयुक्त हो जाय। मेरी बंगाल-यात्रा में उनसे मतभेद रखनेवालों ने और उनपर बे-तरह नुक्ताचीनी करनेवालों ने भी बिना हिचकिचाहट के इस बात को स्वीकार किया है कि बंगाल में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो उनका स्थान ले सके। वे निर्भीक थे, वीर थे। बंगाल में नवयुवकों के प्रति उनका निस्सीम स्नेह था। किसी नवयुवक ने मुझे ऐसा नहीं कहा कि देशबन्धु से सहायता मांगने पर कभी किसीकी प्रार्थना खाली गई। उन्होंने लाखों रुपया पैदा किया और लाखों रुपया बंगाल के नवयुवकों में बांट दिया। उनका त्याग अनुपम था, और उनकी महान् बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता की बात मैं क्या कह सकता हूं? दार्जिलिंग में उन्होंने मुझसे अनेक बार कहा कि भारत की स्वाधीनता अहिंसा और सत्य पर निर्भर है।

भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों को जानना चाहिए कि उनका हृदय हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं जानता था। मैं भारत के सब अंगरेजों से कहता हूं कि उनके प्रति उनके मन में बुरा भाव न था। उनकी अपनी मातृभूमि के प्रति यही प्रतिज्ञा थी — 'मैं जीऊंगा तो स्वराज्य के लिए, और मरूंगा तो स्वराज्य के लिए।' हम उनकी स्मृति को कायम रखने के लिए क्या करें? आंसू बहाना सहज है; परन्तु आंसू हमारी या उनके स्वजनपरिजनों की सहायता नहीं कर सकता। अगर हममें से हर कोई—हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई उस काम को करने की प्रतिज्ञा करें जिसमें वे रहते थे, मरते थे और जिसे वे करते थे तो समझा जायगा कि हमने कुछ किया। हम सब ईश्वर को मानते हैं। हमें जानना चाहिए कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है। देशबन्धु का शरीर नष्ट हो गया परन्तु उनकी आत्मा कभी नष्ट न होगी। न केवल उनकी आत्मा बल्कि उनका नाम भी—जिन्होंने इतनी बड़ी सेवा और त्याग किया है—अमर रहेगा और जो कोई जवान या बूढ़ा उनके आदर्श पर जरा भी चलेगा वह उनके यादगार बनाये रखने में मदद देगा। हम सबमें उनके जैसी बुद्धिमत्ता नहीं है; पर हम उस भाव को अपनेमें ला सकते हैं जिससे वे देश की सेवा करते थे।

देशबन्धु ने पटने और दार्जिलिंग में चरखा कातने की कोशिश की थी। मैंने उनको चरखे का सबक दिया था और उन्होंने मुझसे वादा किया था कि मैं कातना सीखने की कोशिश करूंगा और जबतक शरीर रहेगा तबतक कातूंगा। उन्होंने अपने दार्जिलिंग के निवासस्थान को 'चरखाक्लब' बना दिया था। उनकी नेक पत्नी ने वादा किया था कि बीमारी की हालत छोड़ कर मैं रोज आध घण्टे तक स्वयं चरखा चलाऊंगी और उनकी लड़की, बहन और बहन की लड़की तो बराबर ही चरखा कातती थीं।

देशबन्धु मुझसे अक्सर कहा करते—"मैं समझता हूं कि धारासभा में जाना जरूरी है मगर चरखा कातना भी उतना ही जरूरी है। न सिर्फ जरूरी है, बल्कि बिना चरखे के धारासभा के काम को कारगर बनाना असम्भव है।' उन्होंने जब से खादी की पोशाक पहनना शुरू किया तबसे मरण दिवस तक पहनते आये।

मेरे लिए यह कहने की बात नहीं है कि उन्होंने हिन्दू मुसलमानों में मेल करने के लिए कितना बड़ा काम किया था। अछूतों से वे कितना प्रेम रखते थे। इसके विषय में सिर्फ वही एक बात कहूंगा जो मैंने बरीसाल में कल रात को एक नामशूद्र नेता से सुनी थी उस नेता ने कहा-मुझे पहली आर्थिक सहायता देशबन्धु ने दी और पीछे डाक्टर राय ने। आप सब लोग धारासभाओं में नहीं जा सकते। परन्तु उन तीन कामों को कर सकते हैं जो उनको प्रिय थे। मैं अपनेको भारत का भक्तिपूर्वक सेवा करने वाला मानता हूं। मैं आम तौर पर घोषणा करता हूं कि मैं अपने सिद्धान्त पर अटल रहकर आगे से संभव हुआ तो देशबन्धु दास के अनुयायियों को उनके धारासभा-कार्य में पहले से अधिक सहायता दूंगा। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह उनके काम को जरर पहुंचाने वाला काम करने से मुझे बचाये रक्खे। हमारा धारासभा सम्बन्धी मतभेद बना हुआ था और है। फिर भी हमारा हृदय एक हो गया था। राजनैतिक साधनों में सदा मतभेद बना रहेगा। परन्तु उसके कारण हम लोगों को एक-दूसरे से अलग न हो जाना चाहिए या परस्पर शत्रु न बन जाना चाहिए। जो स्वदेशप्रेम मुझे एक काम के लिए प्रेरित करता था वही उनको कुछ दूसरा काम करने को उत्साहित करता था। और ऐसा पवित्र मत-भेद देश के काम का बाधक नहीं हो सकता। साधन-संबन्धी मतभेद नहीं बल्कि हृदय की मलिनता ही अनर्थकारी है। दार्जिलिंग में रहते समय मैं देखता था कि देशबन्धु के दिल में उनके राजनैतिक विरोधियों के प्रति नम्रता प्रति दिन बढ़ती जाती थी। मैं उन पवित्र बातों का वर्णन यहां न करूंगा। देशबन्धु देशसेवकों में एक रत्न थे। उनकी सेवा और त्याग बे-जोड़ था। ईश्वर करें उनकी याद हमें सदा बनी रहे और उनका आदर्श हमारे सदुद्योग में सहायक हो। हमारा मार्ग लम्बा और दुर्गम है। हमको उसमें आत्मनिर्भरता के सिवा और कोई सहारा नहीं देगा। स्वावलम्बन ही देशबन्धु का मुख्य सूत्र था। वह हमें सदा अनुप्राणित करता रहे। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे।"

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ सुदी ४, संवत् १९८२

चितरंजन दास

मनुष्यों में से एक दिग्गज-पुरुष उठ गया! बंगाल आज एक विधवा की तरह हो गया है। कुछ सप्ताह पहले देशबन्धु की समालोचना करनेवाले एक सज्जन ने कहा था 'यद्यपि मैं उनके दोष बताता हूं, फिर भी यह सच है, मैं आपके सामने मानता हूं कि उनकी जगह पर बैठने लायक दूसरा कोई शख्स नहीं है। जब कि मैंने खुलना की सभा में, जहां कि मैंने पहले पहल यह दिल दहलानेवाली दुर्वार्ता सुनी, इस प्रसंग का जिक्र किया — आचार्य राय ने छूटते ही कहा — 'यह बिल्कुल सच है। यदि मैं यह कह सकूं कि रवीन्द्रनाथ के बाद कवि का स्थान कौन लेगा तो यह भी कह सकूंगा कि देश-बन्धु के बाद नेता का स्थान कौन ले सकता है। बंगाल में कोई आदमी ऐसा नहीं है जो देशबन्धु के नजदीक भी कहीं पहुंच पाता हो।' वे कई लड़ाइयों के विजयी वीर थे। उनकी उदारता एक दोष की हद तक बढ़ी हुई थी। वकालत में उन्होंने लाखों रुपये पैदा किये, पर कभी उन्हें जोड़ कर वे धनी न बने। यहांतक कि अपना घर महल भी दे डाला।

१९१९ में, पंजाब महासभा-जांच-समिति के सिलसिले में पहले-पहल मेरा प्रत्यक्ष परिचय उनसे हुआ। मैं उनके प्रति संशय और भय के भाव ले कर उनसे मिलने गया था। दूर से ही मैंने उनकी धुआंधार वकालत और उससे भी अधिक धुआंधार वक्तृत्व का हाल सुना था। वे अपनी मोटरकार लेकर सपत्नीक सपरिवार आये थे और एक राजा की शान-बान के साथ रहते थे। मेरा पहला अनुभव तो कुछ अच्छा न रहा। हम हण्टर-कमिटी की तहकीकात में गवाहियां दिलाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए बैठे थे। मैंने उनके अन्दर तमाम कानूनी बारीकियों को तथा गवाह को जिरह में तोड़ कर फौजी कानून के राज्य का बहुतेरी शरारतों की कलई खोलने की वकीलोचित तीव्र इच्छा देखी। मेरा प्रयोजन कुछ भिन्न था। मैंने अपना कथन उन्हें सुनाया। दूसरी मुलाकात में मेरे दिल को तसल्ली हुई और मेरा संशय दूर दूर हो गया। उनको मैंने जो कुछ कहा उसे उन्होंने उत्सुकता के साथ सुना। भारतवर्ष में पहली ही बार बहुतेरे देश-सेवकों के घनिष्ठ समागम में आने का अवसर मुझे मिला था। तबतक मैंने महासभा के किसी काम में कभी कोई हिस्सा न लिया था। वे मुझे जानते थे — एक दक्षिण आफ्रिका का योद्धा है। पर मेरे तमाम साथियों ने मुझे अपने घर का सा बना लिया — और देश के इस विख्यात सेवक का नंबर इसमें सबसे आगे था। मैं उस समिति का अध्यक्ष माना जाता था। 'जिन बातों में हमारा मत-भेद होगा उनमें मैं अपना कथन आपके सामने उपस्थित कर दूंगा, फिर जो फैसला आप करेंगे उसे मैं मान लूंगा। इसका यकीन मैं आपको दिलाता हूं।' उनके इस स्वयंस्फूर्त आश्वासन के पहले ही हममें इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि मुझे अपने मन का संशय उनपर प्रकट करने का साहस हो गया। फिर जब उनकी ओर से यह आश्वासन मिल गया तब मुझे ऐसे मित्रनिष्ठ साथी पर अभिमान तो हुआ, किन्तु साथ ही मुझे कुछ संकोच भी मालूम हुआ। क्योंकि मैं जानता था कि मैं तो भारत की राजनीति में एक नौसिखिया था और शायद ही ऐसे पूर्ण विश्वास का अधिकारी था। परन्तु तंत्र-निष्ठा छोटे-बड़े के भेद को नहीं जानती। वह राजा जो कि तंत्र निष्ठा के मूल्य को जानता है, अपने खिदमतगार की भी बात उस मामले में मानता है जिसका पूरा भार उसपर छोड़ देता है। इस जगह मेरा स्थान एक खिदमतगार के जैसा था। और मैं इस बात का उल्लेख कृतज्ञता और अभिमान के साथ करता हूं कि मुझे जितने मित्रनिष्ठ साथी वहां मिले थे, उनमें कोई इतना मित्रनिष्ठ न था जितना चितरंजन दास थे।

अमृतसर धारासभा में तंत्रनिष्ठा का अधिकार मुझे नहीं मिल सकता था। वहां हम परस्पर योद्धा थे, हर शख्स को अपनी अपनी योग्यता के अनुसार राष्ट्र-हित संबंधी अपने दृष्टि की रक्षा करनी थी। जहां तर्क अथवा अपने पक्ष की आवश्यकता के अलावा किसीकी बात मान लेने का सवाल न था। महासभा के मंच पर पहली लड़ाई लड़ना मेरे लिए एक पूरे आनन्द और तृप्ति का विषय था। बड़े सभ्य, उसी तरह न झुकनेवाले, महान् मालवीय जी बलाबल को समान रखने की कोशिश कर रहे थे। कभी एक के पास जाते थे, कभी दूसरे के पास। महासभा के अध्यक्ष पंडित मोतीलालजी ने सोचा कि खेल खतम हो गया। मेरी तो लोकमान्य और देशबन्धु से खासी जम रही थी। सुधार-संबंधी प्रस्ताव का एक ही सूत्र उन दोनों ने बना रक्खा था। हम एक दूसरे को समझा देना चाहते थे, पर कोई किसीका कायल न होता था। बहुतों ने तो सोचा था कि अब कोई चारा नहीं और इसका अन्त बुरा होगा। अलीभाई, जिन्हें मैं जानता था, और चाहता था, पर आज की तरह जिनसे मेरा परिचय न था, देशबन्धु के प्रस्ताव के पक्ष में मुझे समझाने लगे। महम्मद अली ने अपनी लुभावनी नम्रता से कहा 'जांच समिति में आपने जो महान कार्य किया है, उसे नष्ट न कीजिए।' पर वह मुझे न पटा। तब जयरामदास, वह ठंडे दिमागवाला सिन्धी आया, और उसने एक चिट में समझौते की सूचना और उसकी हिमायत लिख कर मुझे पहुंचाई। मैं शायद ही उन्हें जानता था। पर उनकी आंखों और चेहरे में कोई ऐसी बात थी जिसने मुझे लुभा लिया। मैंने उस सूचना को पढ़ा। वह अच्छी थी। मैंने उसे देशबन्धु को दिया। उन्होंने जवाब दिया — 'ठीक है, बशर्ते कि हमारे पक्ष के लोग उसे मान लें।' यहां ध्यान दीजिए उनकी पक्षनिष्ठा पर। अपने पक्ष के लोगों का समाधान किये बिना वे नहीं रहना चाहते थे। यही एक रहस्य है लोगों के हृदय पर उनके आश्चर्यजनक अधिकार का। वह सब लोगों को पसन्द हुई। लोकमान्य अपनी गरुड़ के सदृश तीखी आंखों से वहां जो कुछ हो रहा था सब देख रहे थे। व्याख्यान मंच से पण्डित मालवीयजी की गंगा के सदृश वाग्धारा बह रही थी — उनकी एक आंख सभामंच की ओर देख रही थी जहां कि हम साधारण लोग बैठ कर राष्ट्र के भाग्य का निर्णय कर रहे थे। लोकमान्य ने कहा — 'मुझे देखने की जरूरत नहीं। यदि दास ने उसे पसन्द कर लिया है तो मेरे लिए वह काफी है।' मालवीयजी ने उसे वहां से सुना, कागज मेरे हाथ से छीन लिया और घोर करतलध्वनि में घोषित कर दिया कि समझौता हो गया। मैंने इस घटना का सविस्तर वर्णन इसलिए किया है कि उसमें देशबन्धु की महत्ता और निर्विवाद नेतृत्व, कार्य-विषयक दृढ़ता, निर्णय-संबंधी समझदारी और पक्षनिष्ठा के कारणों का संग्रह आ जाता है।

अब और आगे बढ़िए। हम जुहू, अहमदाबाद, देहली और दार्जिलिंग को पहुंचते हैं। जुहू में वे और पण्डित मोतीलालजी मुझे अपने पक्ष में मिलाने के लिए आये। दोनों जुड़े भाई हो गये थे। हमारे दृष्टि-बिन्दु जुदे जुदे थे। पर उन्हें यह गवारा न होता था कि मेरे साथ मतभेद रहे। यदि उनके बस का होता तो वे ५० मील चले आते जहां मैं सिर्फ २५ मील चाहता। परन्तु वे अपने एक अत्यन्त प्रिय मित्र के सामने भी एक इंच न झुकना चाहते थे, जहां कि देश-हित जोखिम में था। हमने एक किस्म का समझौता कर लिया। हमारा मन तो न भरा; पर हम निराश न हुए। हम एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिए तुले हुए थे। फिर हम अहमदाबाद में मिले। देशबन्धु अपने पूरे रंग में थे और एक चतुर खिलाड़ी की तरह सब रंगढंग देखते थे। उन्होंने मुझे एक शान की शिकस्त दी। उनके जैसे मित्र के हाथों ऐसी कितनी शिकस्त मैं न खाऊंगा! — पर अफसोस! वह शरीर अब दुनिया में नहीं रहा! कोई यह ख्याल न करें कि साहाबाले प्रस्ताव के बदौलत हम एक-दूसरे के शत्रु हो गये थे। हम एक दूसरे को गलती पर समझ रहे थे। पर वह मतभेद स्नेहियों का मतभेद था। वफादार पति और पत्नी अपने पवित्र मतभेदों के दृश्यों को याद करें—किस तरह वे अपने मतभेदों के कारण कष्ट सहते हैं, जिससे कि उनके पुनर्मिलन का सुख अति बढ़ जाय। यही हमारी हालत थी। सो हमें फिर देहली में उस भीषण अकड़ वाले शिष्ट पण्डित और मधुर दास से, जिनका कि बाहरी स्वरूप किसी सरसरी तौर पर देखनेवाले को अशिष्ट मालूम हो सकता है, मिलना होगा। मेरे उनके ठहराव का ढांचा वहीं तैयार हुआ और पसंद हुआ। वह एक अटूट प्रेम-बन्धन था जिसपर कि अब एक दल ने उनकी मृत्यु की मुहर लगा दी है।

अब दार्जिलिंग को फिलहाल यहां मुल्तवी करता हूं। वे अक्सर आध्यात्मिकता की बातें करते थे और कहते थे कि धर्म के विषय में आपका मेरा कोई मतभेद नहीं है। पर यद्यपि उन्होंने कहा नहीं तथापि उनका भाव यह रहा हो कि मैं इतना दृष्टि-हीन हूं कि मुझे हमारे विश्वासों की एकात्मता नहीं दिखाई देती। मैं मानता हूं कि उनका ख्याल ठीक था। उन बहुमूल्य पांच दिनों में मैंने उनका हर कार्य धर्म-मय देखा और न केवल वे महान थे, बल्कि नेक भी थे, उनकी नेकी बढ़ती जा रही थी। पर इन पांच दिनों के बहुमोल अनुभवों को मुझे किसी अगले दिन के लिए रख छोड़ना चाहिए। जब कि क्रूर दैव ने लोकमान्य को हमसे छीन लिया तब मैं अकेला असहाय रह गया। अभीतक मेरी वह चोट गई नहीं है — क्योंकि अबतक मुझे उनके प्रिय शिष्यों की आराधना करनी पड़ती है। पर देशबन्धु के वियोग ने तो मुझे और भी बुरी हालत में छोड़ दिया है। जब कि लोकमान्य हमसे जुदा हुए देश आशा और उमंग से भरा हुआ था, हिन्दू मुसल्मान हमेशा के लिए एक होते हुए दिखाई दिये थे, हम युद्ध का शंख फूंकने की तैयारी में थे। पर अब?

(१० जून—यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०-३-० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०-४-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी। वी. पी. का नियम नहीं है।

व्यवस्थापक

हिन्दी-नवजीवन

देशबन्धु चिरायु रहें

कलकत्ते ने कल दिखला दिया है कि देशबन्धु दास का बंगाल पर, नहीं सारे भारतवर्ष के हृदय पर कितना अधिकार था। कलकत्ता बंबई की तरह पचरंगी प्रजा का नगर है। इसमें हर प्रान्त के लोग बसते हैं और इन तमाम प्रान्तों के लोग, बंगालियों की तरह ही अपने दिल से उस जुलूस में योग दे रहे थे। देश के कोने कोने से तारों की जो झड़ी लग रही है उससे भी यही बात और ओर के साथ प्रगट होती है कि सारे देश भर में वे कितने लोक-प्रिय थे।

जिन लोगों का हृदय कृतज्ञता से भर रहा है उनके संबंध में इससे भिन्न अनुभव नहीं हो सकता था। और देशबन्धु इस सारे कृतज्ञता-ज्ञापन के पात्र भी थे। उनका त्याग महान था। उनकी उदारता की सीमा न थी। उनकी मुट्ठी सदा सबके लिए खुली रहती थी। दान देने में वे कभी आगा-पीछा न सोचते थे। उस दिन जब कि मैंने बड़े मीठे भाव से कहा—'अच्छा होता आप दान देने में अधिक विचार से काम लेते।' उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया— 'पर मैं नहीं समझता कि अपने अविचार के कारण मेरी कुछ हानि हुई है।' अमीर और गरीब सबके लिए उनका रसोई-घर खुला था। उनका हृदय हरएक की मुसीबत के समय उसके पास दौड़ जाता था। सारे बंगाल भर में ऐसा कौन नवयुवक है जो किसी न किसी रूप में देशबन्धु का उपकार-बद्ध नहीं है? उनकी बे-जोड़ कानूनी प्रतिभा भी सदा गरीबों की सेवा के लिए हाजिर रहती थी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होंने यदि सबकी नहीं तो बहुतेरे राजनैतिक कैदियों की पैरवी बिना एक कौड़ी लिए की है। पंजाब की जांच के समय जब वे पंजाब गये थे तो अपना सारा खर्च अपनी जेब से किया था। उन दिनों अपने साथ वे एक राजा की तरह लवाजमा ले गये थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि पंजाब की उस यात्रा में उनके ५०,०००) खर्च हुए थे। जो उनके दरवाजे आता उसीके लिए उनकी उदारता का हाथ आगे बढ़ जाता था। उनके इसी गुण ने उन्हें हजारों नवयुवकों के दिल का राजा बना दिया था।

जैसे ही वे उदार थे वैसे ही निर्भीक भी थे। अमृतसर में उनकी धुआंधार वक्तृताओं ने मेरा दम बन्द कर दिया था। वे अपने देश की मुक्ति तुरन्त चाहते थे। वे एक विशेषण को हटाने या बदलने के लिए तैयार न थे। इसलिए नहीं कि वे जिद्दी थे, बल्कि इसीलिए कि वे अपने देश को बहुत चाहते थे। उन्होंने विशाल शक्तियों को अपने कब्जे में रक्खा। अपने अदम्य उत्साह और अध्यवसाय के द्वारा उन्होंने अपने दल को प्रबल बनाया। परन्तु यह भीषण शक्तिप्रवाह उनकी जान ले बैठा। उनका यह बलिदान स्वेच्छापूर्वक था। वह उच्च था—उदात्त था।

फरीदपुर में तो उनकी भारी विजय हुई। उनके वहां के उद्गार उनकी अत्यन्त समझदारी और राजनीतिज्ञता के नमूना थे। वे विचार-पूर्ण और असंदिग्ध थे और (जैसा कि मुझे उन्होंने कहा था) उनके अपने लिए तो उन्होंने अहिंसा को एक मात्र नीति और इसलिए भारत-वर्ष का राजनैतिक धर्म (Creed) स्वीकार किया था।

पंडित मोतीलाल नेहरु तथा महाराष्ट्र के लग्ननिष्ठ सैनिकों से मेल करके उन्होंने शून्य से स्वराज्य-दल को एक महान् और वर्धमान् दल बना लिया और ऐसा कर के उन्होंने अपने निश्चय-बल, मौलिकता, साधन-बहुलता और किसी वस्तु को अच्छा मान लेने के बाद फिर परिणाम की चिन्ता न करने के गुणों का परिचय

दिया। और आज हम स्वराज्य-दल को एक एकत्र और सु-तन्त्रनिष्ठ संगठन के रूप में देखते हैं। धारासभा-प्रवेश के संबंध में मेरा मतभेद था और है। पर मैंने सरकार को तंग करने और लगातार उसकी स्थिति को विषम बनाने के संबंध में धारासभा की उपयोगिता से कभी इन्कार नहीं किया। धारा-सभा में इस दल ने जो काम किया उसकी महत्ता से कोई इन्कार नहीं कर सकता और उसका श्रेय मुख्यतः देशबन्धु को ही है। मैंने अपनी आँखें खुली रखकर उनके साथ ठहराव किया था। तब से मैंने जो कुछ हो सकी उस दल को सहायता दी है। अब उनके स्वर्गवास के कारण, उसके नेता के चले जाने के बाद, मेरा यह दुहेरा कर्तव्य हो गया है कि उस दल के साथ रहूं। यदि मैं उसकी सहायता न कर पाया तो मैं उसकी प्रगति में तो किसी तरह बाधक न हूंगा।

मैं फिर उनके फरीदपुर वाले भाषण पर आता हूं। स्थानापन्न बड़े लाट साहब ने श्रीमती वासन्ती देवी दास के नाम जो शोक-सन्देश भेजा है उसके गुण को सब मानेगा। एंग्लोइंडियन पत्रों ने स्वर्गीय देशबन्धु की स्मृति में जो उनका यशोगान किया है उसका उल्लेख मैं कृतज्ञता-पूर्वक करता हूं। मालूम होता है कि फरीदपुरवाले भाषण की पारदर्शिनी निर्मल-हृदयता ने अंगरेजों के दिल पर अच्छा असर किया है। मुझे इस बात की चिन्ता लग रही है कि कहीं उनके स्वर्गवास के कारण इस शिष्टाचार-प्रदर्शन के साथ ही उसका अन्त न हो जाय। फरीदपुरवाले भाषण के मूल में एक महान उद्देश था। एंग्लोइंडियन मित्रों ने चाहा था कि देशबन्धु अपनी स्थिति को स्पष्ट कर दें और अपनी तरफ से आगे कदम बढ़ावें। इसीके उत्तर में उस महान देशभक्त ने वह भाषण किया था और अपनी स्थिति स्पष्ट की थी। पर क्रूर काल ने उस उद्गार के कर्ता को हमसे छीन लिया। परन्तु उन अंगरेजों को जो अब भी देशबन्धु की नीयत पर शक रखते हों मैं यकीन दिलाना चाहता हूं कि जबतक मैं दार्जिलिंग में रहा, मेरे दिल पर जो बात सब से ज्यादह जोर के साथ अंकित हुई वह थी देशबन्धु के उन वचनों के निर्मल भाव। क्या इस सारगर्भ भाषण का सदुपयोग हमारे घावों को भरने और अविश्वास को मिटाने में किया जा सकता है? मैं एक मामूली बात सुझाता हूं। सरकार देशबन्धु चितरंजन दास की स्मृति में, जो कि अब हमारे साथ अपने पक्ष की पैरवी करने के लिए दुनिया में नहीं हैं उन तमाम राजनैतिक कैदियों को छोड़ दे जिनके कि संबंध में उनका कहना था कि वे निर्दोष हैं। मैं निरपराधता की बिना पर उन्हें छोड़ने नहीं कहता। हो सकता है कि सरकार के पास उनके अपराध के लिए अच्छे से अच्छे सबूत हों। मैं तो सिर्फ उस मृत आत्मा के गुण की स्मृति में और बिना पहले से कोई मुआमला बनाये उन्हें छोड़ देने के लिए कहता हूं। यदि सरकार भारतीय लोक-मत के अनुरंजन के लिए कुछ भी करना चाहती है तो इससे बढ़कर अनुकूल अवसर न मिलेगा और राजनैतिक कैदियों के छुटकारे से बढ़कर अनुकूल वायुमंडल बनाने का अच्छा मंगलाचरण न होगा। मैं प्रायः सारे बंगाल का दौरा कर चुका हूं मैंने देखा कि इस बात से लोगों के दिल में चोट पहुंची है — इनमें सभी लोग आवश्यक-रूप से स्वराजी नहीं हैं। परमात्मा करें वह आग जिसने कि कल देशबन्धु के नश्वर शरीर को भस्म कर डाला हमारे नश्वर अविश्वास, संदेह और डर को भस्मसात् कर डाले। फिर यदि सरकार चाहे तो वह भारतवासियों की मांग की पूर्ति के सर्वोत्तम उपायों पर विचार करने के लिए एक संमेलन कर सकती है।

पर यदि सरकार अपने जिम्मे का काम करेगी तो हमें भी अपनी तरफ का काम करना होगा। हमें यह दिखा देना होगा। कि हमारी नौका एक आदमी के भरोसे पर नहीं चल रही है। श्री विन्सेंट चर्चिल के शब्दों में, जोकि उन्होंने युद्ध के समय में कहे 'हम कह सकना चाहिए, सब काम ज्यों का त्यों चलता रहे।' स्वराज्य-दल की पुनर्रचना तुरन्त होनी चाहिए। पंजाब के हिन्दू और मुसलमान भी इस दैवी कोप-प्रहार को देख कर अपने लड़ाई झगड़े भूलते हुए दिखाई देते हैं। क्या दोनों पक्ष के लोग इतनी दृढ़ता और समझदारी का परिचय देंगे कि अपने लड़ाई-झगड़ों का अन्त कर लें? देशबन्धु हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रेमी थे। उस पर उनका विश्वास भी था। उन्होंने अत्यन्त विकट परिस्थिति में हिन्दू और मुसलमानों को एक बनाये रक्खा। क्या उनकी चिताग्नि हमारे अनैक्य को न जला सकेगी? शायद इसके पहले तमाम दलों के एक संस्था के अन्तर्गत होने की आवश्यकता हो। देशबन्धु इसके लिए बड़े उत्सुक थे। वे अपने प्रतिपक्षियों के लिए बहुत बुरा-भला कहा करते थे। परन्तु दार्जिलिंग में मैंने देशबन्धु के मुंह से उनके किसी भी राजनैतिक प्रतिपक्षी के प्रति एक भी कठोर शब्द निकलते न देखा। उन्होंने मुझसे कहा कि सब दलों के एक करने में आप भरसक सहायता दीजिए। सो अब हम शिक्षित भारतवासियों का कर्तव्य है कि देशबन्धु के इस विचार को कार्यरूप में परिणत करें और उनके जीवन की इस एक महाकांक्षा को पूरा करें — यदि हम फिलहाल स्वराज्य की सीढ़ी पर ठेठ ऊपर तक न पहुंच सकें तो तुरन्त उसकी कुछ सीढ़ियां चढ़ कर ही सही। तभी हम अपने हृदयतल से पुकार सकते हैं —'देशबन्धु स्वर्गवासी हुए, देशबन्धु चिरायु रहें।'

(फारवर्ड) मोहनदास करमचन्द गांधी

सरदार जोगेन्द्रसिंह का पत्र

[सरदार जोगेन्द्रसिंह का एक लंबा पत्र गत में छपा है। उसका सार और गांधीजी का उत्तर नीचे दिया जाता है—उपसंपादक]

"जिस विषय को आप दिन-रात सोच रहे हैं उसके बारे में आपको कुछ लिखने में मुझे संकोच होता है। मुझे गांवों का कुछ अनुभव है और इसी दावे के कारण यह लिख रहा हूं। मैं आपसे लाहौर में मिला था और चरखा और बिजली से चलनेवाले यंत्रों के विषय में आपसे मेरी बहस भी हुई थी। मेरे विचार आपके विचार से भिन्न थे।

परमात्मा ने आपको एक संदेश लोगों को पहुंचाने के लिए सौंपा है। वह संदेश शुभेच्छा के आधार पर रचनात्मक का सन्देश है जिससे कि महान शान्ति स्थापित होगी। आप अपना संदेश सुनाते रहें। कुछ काल में वह मनुष्यों के हृदय तक पहुंच जायगा। मातृभूमि के प्रति आपका प्रेम आपको अपने सिद्धान्तों को अति आवश्यक समस्याओं पर लागू करने के लिए निमंत्रण देता है। सत्य की शोध में अटल बने रहने के परिणाम दूसरों को समझौता और समाधान की नीति की आजमाइश करने का मौका देने के लिए आपको राजी कर लेने का ही अधिक प्रयत्न हुआ है। वे लोगों को रोटी के टुकड़े आपस में राजीखुशी बांट लेने को कह कर एकत्र करना चाहते हैं और, धारासभा के काम में लगातार रुकावट डालकर स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं। प्रारम्भ से ही उनके प्रयत्न असफल हो रहे हैं। लेकिन आप तो अपने ही पक्ष पर चलें; क्योंकि आपका यह धर्म नहीं है। इस बात को आप साबित कर दिखावें कि सहयोग सार-रूप में

सहयोग है और फौज की शक्ति से भी अधिक शक्तिशाली है। जब आपने झंडे पर चरखा को स्थान दिया तब आपने उसे छोटे बड़े राष्ट्रों की आर्थिक स्वतन्त्रता का चिन्ह बना दिया है। यह चरखा भले ही व्यवहार के लिए ऐसा चिन्ह बना रहे। लेकिन हमें बिजली को कपड़े बुनने और पानी खींचने के लिए गावों में काम में लाकर उनका नवीन रूपान्तर करना चाहिए। क्योंकि उनपर वर्तमानयुग का असर हुए बिना न रहेगा।

आपने सबसे अधिक महत्व का काम जो अपने हाथ में लिया है वह हिन्दु मुस्लिम ऐक्य का प्रश्न है। मुझे यकीन है कि आप इस हृदय और बुद्धि के ऐक्य-कार्य में अंग्रेजों को दूर न कर देंगे।

[सरदार जोगेन्द्रसिंह का यह पत्र, जो कि उन्होंने अपने हृदयस्तल से लिखा है, मैं बड़ी खुशी के साथ छाप रहा हूं। मैं उनकी सलाह को मूल्यवान मानता हूं। सरदारजी ने जिस बातचीत का जिक किया है उसकी ज्यों की त्यों स्मृति मुझे है। वे स्वराजियों के साथ ठहराव के औचित्य पर आपत्ति करते हैं। इस ठहराव को अब नौ महीने हो चुके। परन्तु मुझे उसपर अफसोस होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। मैंने किसी सिद्धान्त को कुरबान नहीं किया है। महासभा किसी एक आदमी की चीज नहीं है। वह प्रजा-सत्तात्मक संस्था है और मेरी राय में उसका मताधिकार इतना व्यापक और इतना बुद्धियुक्त है जितना कि दुनिया में अबतक कहीं न दिखाई दिया हो। क्योंकि वह शारीरिक श्रम के गौरव को नियम के द्वारा स्वीकृत करता है। मैं चाहता हूं कि यही एक-मात्र कसौटी होती। असत्य और हिंसा को छोड़ कर उसमें सब प्रकार के मत वालों का समावेश होता है। स्वराजी लोगों को रायों की लड़ाई के अर्थ अपनी बात को स्थापित करने का पूरा अधिकार है। मैं उसके लिए तैयार न था; क्योंकि मैंने देखा है कि इस तरह रायें लेने से लोगों में नीति-भ्रष्टता फैलती है — उस अवस्था में तो और भी, जब कि मतदाता स्वतन्त्र-रूप से निर्णय करने के आदी न हों। एक विचारवान् आदमी की तरह मैं स्वराजी लोगों की बढ़ती हुई शक्ति को माने बिना न रह सकता था। वे रचनात्मक कार्यक्रम को प्रधान स्थान देने के लिए रजामन्द थे। इससे अधिक उम्मीद उनसे न की जा सकती थी। यदि मैंने रायों के जरिये फैसला करने पर उन्हें मजबूर किया होता तो उन्होंने धारासभा-प्रवेश को राष्ट्रीय कार्यक्रम बना लिया होता। यही नहीं बल्कि लड़ाई के आवेश में उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम को ही धता बता दी होती या उसे एक न-गण्य स्थान दे दिया होता। यह तो हुई सिद्धान्त की बात।

व्यवहार में तो यह ठहराव अधिकांश में परिवर्तनवादी और अपरिवर्तन-वादी लोगों का मनमुटाव दूर करने के लिए किया गया था। इसके द्वारा दोनों दल के लोग मेल-मिलाप और सहिष्णुता के साथ संयुक्त कार्यक्रम के अनुसार काम करने लगे हैं। दक्षिण में मैंने इस ठहराव के लाभों को अनुभव किया। बंगाल में भी उन्हें देख रहा हूं। मैं इस राय से सहमत नहीं कि स्वराजी असफल हुए हैं। चुनाव की धूम के समय दिये अभिवचनों को मैं बहुत महत्व नहीं देता। यह एक मानी हुई बात है कि शादी के समय की गई प्रतिज्ञाओं की तरह चुनाव के समय दिये गये वचनों को संजीदगी के साथ न ग्रहण करना चाहिए। यदि हम एक बार इस बात को कबूल कर लें तो फिर स्वराजियों को अपने धारा-सभा में किये काम पर शर्मिन्दा होने की कोई वजह नहीं। उन्होंने धारासभाओं में निर्भीकता के साथ अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने सरकार को बार बार हराया है। उन्होंने यह दिखला दिया है कि सरकार पर स्वयं उसके बनाये मतदाताओं का भी विश्वास नहीं है, उन्होंने उस तत्वनिष्ठा और एकत्र बल का परिचय दिया है जिससे कि आजतक धारासभा के सदस्य अनजान थे और सबसे बढ़कर (कम से कम मेरे लिए, उन्होंने उन किलों में खादी का प्रवेश करा दिया है और अपने रोजाना राष्ट्रीय लिबास में वहां जाते हुए डरे नहीं हैं, हालांकि एक जमाने में ऐसा करते हुए डरते थे, या शरमाते थे' उन्हें हम सिर्फ घर पर ही पहनते थे। क्या स्वराजियों की कार्रवाइयों ने सरकार को चौंका नहीं दिया है? हां, यह सच है कि उसने लोकमत की परवा नहीं की है। यह सच है कि उसके खिलाफ राय होते हुए भी उसने अपना ही चाहा किया है। पर स्वराजी इसका कुछ इलाज न कर सकते थे। यदि उनके पास शक्ति होती तो वे सरकार के तख्त को उलट देते और उसके मत का अनादर कर देते। वह शक्ति आना अभी बाकी है। वह धीरे धीरे परन्तु निश्चय-पूर्वक आ रही है। सरकार जानती है कि वह सदा-सर्वदा लोकमत के खिलाफ जाने की जुरत नहीं कर सकती। स्वाराजियों ने उसे उसकी स्थिति की कमजोरी का भान पहलेसे अधिक करा दिया है मेरा उनके साथ राजनैतिक मतभेद है। परन्तु उनकी दिलेरी, तत्वनिष्ठा, देशभक्ति को मैं आदर-भाव से देखता हूं। और अपने सिद्धान्त पर अटल रहते हुए मुझे उस दल को सशक्त बनाने और सहायता देने के लिए मुझसे जो कुछ हो सके, करना चाहिए। मैं महासभा का मुखिया तभी तक हूं जब तक वे मुझे वहां रखना चाहें। जहां मैं उन्हें सहायता नहीं दे सकता वहां मुझे उनके काम में बाधा डालने से तो निश्चय-पूर्वक इनकार करना चाहिए।

खुद मेरे नजदीक तो अहिंसात्मक असहयोग एक धर्म है। मैं सरदारजी के इस कथन का हृदय से समर्थन करता हूं कि 'असहयोग सारूप में सहयोग ही है और सेना-बल से भी अधिक प्रबल है।' और यदि मैं भारत के अधिकांश शिक्षित समुदाय को अपने मत का बना सकूं तो स्वराज्य बिना कुछ और उद्योग के मिल सकता है। मेरा यह विश्वास दिन पर दिन दृढ होता जा रहा है कि अहिंसा के बिना भारत को—नहीं—सारी दुनिया को शान्ति-सुख नहीं मिल सकता। इसलिए मेरे नजदीक चरखा एक सादगी और आर्थिक स्वाधीनता का प्रतीक नहीं है, बल्कि शान्ति का भी प्रतीक है। क्योंकि यदि हम हिन्दु, मुसल्मान, सिक्ख, ईसाई, पारसी, यहूदी सब मिलकर भारत में चरखा घर घर फैला दें तो हम न केवल सच्ची एकता को सिद्ध कर सकेंगे और विदेशी कपड़े को देश से हटा सकेंगे, बल्कि हम आत्म-विश्वास और संगठन-योग्यता को भी प्राप्त कर सकेंगे, जिसके कि बदौलत स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए हिंसा बिलकुल अनावश्यक हो जाती है। इसलिए मेरी दृष्टि में चरखे की सफलता का अर्थ है अहिंसा की विजय— ऐसी विजय जोकि सारी दुनिया के सामने एक पदार्थ-पाठ हो जाय।

सरदारजी सलाह देते हैं कि चरखे के साथ ही गांवों में बिजली भी दाखिल की जाय। मुझे अन्देशा है कि वे पंजाब के सिर्फ कुछ ही गावों को जानते हैं। यदि वे मेरी तरह भारत के जीवन का ज्ञान रखते होते तो वे इस निश्चय के साथ बिजली की बात न लिखते। भारत की मौजूदा स्थिति में हमारे देहात में घर घर बिजली पहुंचाना बिलकुल असंभव बात है। हो सकता है कि वह समय भी आवे। पर वह तबतक नहीं आ सकता जबतक चरखा घर घर में अपना घर न कर ले। इसलिए मुझे दूसरे गौण या मिथ्या प्रश्नों और आशाओं को पैदा कर के लोगों के मन को दुविधा से बचाने की चिन्ता बनी रहती है।

यदि चरखे का प्रयोजन सरदारजी के कथन या भाव के जितना ही हो तो भी हमें उसीके और अकेले उसीके प्रचार में अपनी सारी शक्ति लगानी चाहिए जबतक कि हमें इसमें सफलता न प्राप्त हो जाय। और जिस समय हम उसके द्वारा देहातियों का जीवन रहने लायक बना देंगे और बेकारी के मौसिम के लिए उन्हें एक प्रतिष्ठित और लाभकारक पेशा तजवीज कर चुकेंगे, उस समय उनके जीवन को खुशहाल बनानेवाली और तमाम चीजें अपने आप चली आवेंगी। मैं सरदारजी को यकीन दिलाता हूं कि मैं सारी यन्त्रकला का विरोधी नहीं हूं। यों तो खुद चरखा भी एक यन्त्रकला ही है। पर हां मैं उन तमाम यन्त्रकलाओं का जानी दुश्मन हूं, जो कि गरीबों को लूटने के लिए तजवीज की गई हों।

सरदारजी इस डर को अपने हृदय में जरा भी स्थान न दें कि एकता के प्रान्त से अंगरेज लोग अलग रख दिये जायंगे। क्योंकि उसमें वे सब लोग समाविष्ट हैं जो अपनेको भारतवासी कहलाना पसंद करते हों—फिर वे चाहे यहां जन्मे हों, चाहे उन्होंने उसे अपनी भूमि मान लिया हो। उसमें तमाम जातियों, पंथों का समावेश किया जाता है। और न यह एकता किसी राष्ट्र या व्यक्ति—यहां तक के किसी डायर के भी अहित-भाव से ही की जा रही है। क्यों कि वह लोगों के विचारों में परिवर्तन करना चाहती है, उन्हें मिटा देना नहीं चाहती।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

(यह देशबन्धु के स्वर्गवास के पहले लिखा गया था। उपसंपादक)

नम्रता की आवश्यकता

बंगाल में कार्यकर्ताओं से बातचीत करते हुए एक नवयुवक से मेरा साबका पड़ा जिसने कहा कि लोग मुझे इसलिए भी मानें कि मैं ब्रह्मचारी हूं। उसने यह बात इस तरह कही और ऐसे यकीन के साथ कही कि मैं देखता रह गया। मैंने मन में कहा कि यह उन विषयों की बातें करता है जिनका ज्ञान इसे बहुत थोड़ा है। उसके साथियों ने उसकी बात का खण्डन किया। और जब मैंने उससे जिरह करना शुरू की तब तो खुद उसने भी कुबूल किया कि हां, मेरा दावा नहीं टिक सकता। जो शख्स शारीरिक पाप चाहे न करता हो पर मानसिक पाप ही करता हो वह ब्रह्मचारी नहीं। जो व्यक्ति परम रूपवती रमणी को देखकर अविचल नहीं रह सकता वह ब्रह्मचारी नहीं। जो केवल आवश्यकता के वशीभूत हो कर अपने शरीर को अपने वश में रखता है, वह करता तो अच्छा बात है पर वह ब्रह्मचारी नहीं। हमें अनुचित अप्रासंगिक प्रयोग करके पवित्र शब्दों का मान घटाना न चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचर्य का फल तो अद्‌भुत होता है और वह तो पहचाना भी जा सकता है। इस गुण का पालन करना कठिन है। प्रयत्न तो बहुतेरे लोग करते हैं, पर सफल विरले ही हो पाते हैं। जो लोग गेरुए कपडे पहन कर संन्यासियों के वेष में देश में घूमते-रहते हैं वे अक्सर बाजार के मामूली आदमी से ज्यादह ब्रह्मचारी नहीं होते। फर्क इतना ही है कि मामूली आदमी अक्सर उसकी डींग नहीं हांकता और इसलिए बेहतर होता है। वह इस बात पर सन्तुष्ट रहता है कि परमात्मा मेरी आजमाइश को, मेरे प्रलोभनों को तथा मेरे विजयोत्साह और भगीरथ प्रयत्न के होते हुए भी हो जाने वाले पतन को जानता है। यदि दुनिया उसके पतन को देखे और उससे उसे तोले तो भी वह सन्तुष्ट रहता है। अपनी सफलता को वह कंजूस के धन की तरह छिपाकर रखता है। वह इतना विनयी होता है कि उसे प्रकट नहीं करता। ऐसा मनुष्य उद्धार की आशा रख सकता है। परन्तु वह आधा संन्यासी जो कि संयम का ककहरा भी नहीं जानता, यह आशा नहीं रख सकता। वे सार्वजनिक कार्य-कर्ता जो कि संन्यासी का वेष नहीं बनाते पर जो अपने त्याग और ब्रह्मचर्य का ढिंढोरा पीटते फिरते हैं और दोनों को सस्ता बनाते हैं तथा अपने को तथा अपने सेवा-कार्य को बदनाम करते हैं, उनसे खतरा समझिए।

जब कि मैंने अपने साबरमतीवाले आश्रम के लिए नियम बनाये तो उन्हें मित्रों के पास सलाह और समालोचना के लिए भेजा। एक प्रति स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जी को भी भेजी थी। उस प्रति की पहुंच लिखते हुए उन्होंने सलाह दी कि नियमों में उल्लिखित व्रतों में नम्रता का भी एक व्रत होना चाहिए। अपने पत्र में उन्होंने कहा था कि आजकल के नवयुवकों में नम्रता का अभाव पाया जाता है। मैंने उनसे कहा कि मैं आपकी सलाह के मूल्य को तो मानता हूं और नम्रता की आवश्यकता को भी सोलहों आना मानता हूं, पर एक व्रत में उसको स्थान देना उसे उसके गौरव को कम कर देना है। यह बात तो हमें गृहीत ही करके चलना चाहिए कि जो लोग अहिंसा, ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे वे अवश्य ही नम्र रहेंगे। नम्रता-हीन सत्य एक उद्धत हास्य-चित्र होगा। जो सत्य का पालन करना चाहता है वह जानता है कि वह कितनी कठिन बात है। दुनिया उसकी विजय पर तो तालियां बजायेगी, पर वह उसके पतन का हाल बहुत कम जानती है। सत्य-परायण मनुष्य बड़ा आत्म-ताडन करनेवाला होता है। उसे नम्र बनने की आवश्यकता है। जो शख्स सारे संसार के साथ यहां तक कि उसके भी साथ जो उसे अपना शत्रु कहता हो प्रेम करना चाहता है वह जानता है कि केवल अपने बल पर ऐसा करना किस तरह असंभव है। जब तक वह अपनेको एक क्षुद्र रजकण न समझने लगेगा तबतक वह अहिंसा के तत्व को नहीं ग्रहण कर सकता। जिस प्रकार उसके प्रेम की मात्रा बढती जाती है उसी प्रकार यदि उसकी नम्रता की मात्रा न बढी तो वह किसी काम का नहीं। जो मनुष्य अपनी आंखों में तेज लाना चाहता है, जो स्त्री-मात्र को अपनी सगी माता या बहन मानता है उसे तो रजकण से भी क्षुद्र होना पडेगा। उसे एक खाई के किनारे खडा समझिए। जरा ही मुंह इधर-उधर हुआ कि गिरा। वह अपने मन से भी अपने गुणों की कानाफूंसी करने का साहस नहीं कर सकता। क्योंकि वह नहीं जानता कि इसी अगले क्षण में क्या होने वाला है। उसके लिए 'अभिमान विनाश के पहले जाता है और मगरूरी पतन के पहले।' गीता में सच कहा है—

> विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
> रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

और जबतक मनुष्य के मन में अहंभाव मौजूद है तबतक उसे ईश्वर से दर्शन नहीं हो सकते। यदि वह ईश्वर में मिलना चाहता हो तो उसे शून्यवत् हो जाना चाहिए। इस संघर्ष-पूर्ण जगत् में कौन कहने का साहस कर सकता है — 'मैंने विजय प्राप्त की।' हम नहीं, ईश्वर हमें विजय प्राप्त कराता है।

हमें इन गुणों का मूल्य ऐसा कम न कर देना चाहिए कि जिससे हम सब उनका दावा कर सकें। जो बात भौतिक विषय में सत्य है वही आध्यात्मिक विषय में भी सत्य है। यदि एक

(शेष पृष्ठ ३६४ पर)

एक प्रति [illegible]
विदेशों के लिए [illegible])

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक [illegible]

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, आषाढ बदी १२, संवत् १९८२ गुरुवार, १८ जून, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

देशबन्धु का अवसान

जब कि हृदय गहरी चोट से व्यथित होता है तब कलम की गति कुण्ठित हो जाती है। मैं यहां इस तरह शोकमय वायुमंडल में हूं कि तार-द्वारा पाठकों के लिए अधिक कुछ भेजने में असमर्थ हूं। अभी दार्जिलिंग में उस महान् देशभक्त के साथ ५ रोज तक मेरा समागम रहा। उसने हम एक-दूसरे को पहले से अधिक एक-दूसरे के नजदीक कर दिया। मैंने केवल यही अनुभव नहीं किया कि देशबन्धु कितने महान् थे, बल्कि यह भी अनुभव किया कि वे कितने भले थे। भारत का एक लाल चला गया! हमें चाहिए कि हम स्वराज्य प्राप्त कर के उसे पुनः प्राप्त करें।

कलकत्ता—जून १७

मो० क० गांधी

मेरा कर्तव्य

एक सज्जन लिखते हैं :—

"आप मनुष्यों के प्रति तो अपना फर्ज अदा कर रहे हैं। लेकिन क्या आप यह नहीं देख सकते कि आज आप जिस प्रांत में भ्रमण कर रहे हैं उसमें पशु और दूसरे जीव जन्तुओं के प्रति भी आपका कुछ कर्तव्य है? बंगाल में जीवों की हिंसा बेहद होती है। इस विषय में यदि आप गहरे उतरेंगे तो आपको यह भूमि अनार्य-सी प्रतीत होगी। जब आप गुजरात में भ्रमण कर रहे थे उस समय मैंने यह पढ़ा था कि बैलों को आर भोंक कर चलाते हुए देख कर आप गाड़ी से नीचे उतर गये थे। तो क्या आप बंगाल में छुरी चलानेवालों को कुछ भी उपदेश न देंगे? आपके उपदेश से बहुत लाभ होगा। इस कार्य के लिए आपको अलग समय न देना होगा। बल्कि इससे एक पंथ और दो काज होंगे।"

एक तो लेखक ने इस प्रकार लिखने में वैसी सामान्य भूल की है जैसी कि बहुत से मनुष्य करते हैं। यह मानना कि उपदेश करने से इसका बहुत बड़ा परिणाम होगा हमारा मोह है, और यह इसमें भी दिखाई दे रहा है। अनन्त काल से यही अनुभव हो रहा है कि उपदेश का परिणाम बहुत ही अल्प होता है। सैकड़ों साधु आज उपदेश कर रहे हैं। सैकड़ों ब्राह्मण नित्य गीता भागवतादि का पाठ कर रहे हैं। लेकिन यह कहा जा सकता है कि उसका कुछ भी असर नहीं होता है। हां किसी उपदेशक का कुछ असर होता हुआ हम देखते अवश्य हैं लेकिन वह असर उसके उपदेश का नहीं होता बल्कि उसके कार्य का होता है। और जितना आचरण वह कर सकता है उससे अधिक वह उपदेश करे तो उसका कुछ भी असर नहीं होता। यह सत्य की खूबी है। उसे माया के आच्छादन से कितना ही ढांकिए वह नहीं ढंक सकता। यदि हिमालय पर चढ़ने की मेरी शक्ति नहीं है और फिर भी मैं हिमालय पर चढ़ने के लिए दूसरों को उपदेश दूं तो उसका कुछ भी असर न होगा। लेकिन यदि चुपचाप उसपर चढ़कर उन्हें दिखाऊं तो मेरे पीछे सैकड़ों लोग उसपर चढ़ जावेंगे। मनुष्य की करनी ही सच्चा उपदेश है।

दूसरे, मनुष्य में उपदेश करने की योग्यता भी होनी चाहिए। मैं पशुहिंसा नहीं करता हूं। फिर भी मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि पशुहिंसा रोकने की योग्यता मुझ में नहीं है। मैं यह जानता हूं कि पशुओं के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है। लेकिन दूसरों को वह बताने में मैं असमर्थ हूं। उसके लिए तो मुझमें बहुत अधिक पवित्रता, बहुत अधिक दयाभाव और बहुत ही अधिक संयम होना चाहिए। उसके बगैर मुझे बहुत सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। और उस ज्ञान के बिना मुझे आवश्यक भाषा भी प्राप्त नहीं हो सकती।

बिना ऐसा ज्ञान प्राप्त किये आत्मविश्वास नहीं होता। पशु-हिंसा का त्याग कराने की मुझमें शक्ति है, यह आत्मविश्वास मुझे नहीं है। लेकिन मैं तो ईश्वर को माननेवाला हूं। पशु-सेवा की वृत्ति मुझ में बड़ी तीव्र है। मनुष्य तो अपना दुःख बता सकता है और उसे दूर करने का प्रयत्न भी कर सकता है। पशुओं में यह शक्ति नहीं। इसलिए उनके प्रति हमारा दुहेरा फर्ज है। लेकिन यह सब जानने पर भी, उसके लिए शक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए भी, मुझे उनकी सेवा करने की शक्ति न होने के कारण बड़ी लज्जा मालूम होती है। लेकिन उसके लिए मैं ईश्वर को दोष देता हूं। उसने मुझे शक्ति क्यों नहीं दी? इसके लिए मैं उसके साथ हमेशा झगड़ा करता हूं और हमेशा उससे प्रार्थना भी करता हूं। लेकिन ईश्वर तो स्वेच्छाचारी है। वह किसीका भी कहना नहीं सुनता है तो मेरा क्यों सुनने लगा? ऐसा भले ही हो कि वह मेरी बात औरों से जल्दी सुन लें। लेकिन जब वह मुझे शक्ति देगा तब मैं, इन सज्जन को विश्वास दिलाता हूं कि, उनके कहने की राह नहीं देखूंगा। दरम्यान मेरी तपश्चर्या तो बराबर जारी ही रहेगी। जिस कार्य में आज मैं मशगूल हो रहा हूं उससे भी अधिक, पशुमात्र की सेवा करने की शक्ति, मुझे क्यों न प्राप्त हो? मेरा विश्वास है कि मैं कंजूस नहीं हूं। मैं अपनी सब शक्तियों को कृष्णार्पण कर चुका हूं। इसलिए यदि मुझे पशुहिंसा को रोकने की शक्ति प्राप्त होगी तो मैं उसे भी संग्रह कर के न रक्खूंगा।

लेकिन इस दरम्यान जो अपरिहार्य है उसे तो सहन ही करना चाहिए। इस संसार में तो अनेक स्थानों पर निर्दोष मनुष्यों पर जुल्म हो रहे हैं, उन्हें रोकने का हम कहां दावा करते हैं? यह हमारी शक्ति के बाहर है यह मान कर, और जगत् का कल्याण चाहते हुए हम चुप रहते हैं। अशक्ति के कारण ही स्वदेशाभिमान को हम एक अलग गुण मान कर उसे बढ़ा रहे हैं। लेकिन जो स्वदेशाभिमान धार्मिक है उससे जगत का अकल्याण नहीं होता। संसार का अकल्याण करते हुए अपने देश का भला करना मिथ्या स्वदेशाभिमान है। लेकिन स्वदेश की धार्मिक सेवा में जिस प्रकार संसार भर की सेवा का समावेश हो जाता है उसी प्रकार मेरी मनुष्य-सेवा में वैसी पशु-सेवा का भी समावेश हो जाता है। यह मेरी धारणा है; क्योंकि मनुष्य-सेवा और पशु-सेवा में कोई विरोध नहीं है।

आज हमारे देश में एक प्रकार का धर्माडंबर फैला हुआ है। जो काम हम लोगों से नहीं हो सकते या जिस काम के करने का कुछ अर्थ नहीं ऐसे दया के केवल दिखाऊ काम हम करते हैं और जो दया के कार्य हम कर सकते हैं उन्हें नहीं करते। धीरा भगत की भाषा में कहें तो हम लोग निहाई की चोरी करते हैं और सुई का दान करने का ढोंग करते हैं। गीता की भाषा में कहें तो स्वधर्म का, जो हमारे लिए सुलभ है, थोड़ा-सा भी पालन करना छोड़ कर हम परधर्म के पालन के बड़े बड़े विचार करते हैं और 'इतोभ्रष्टस्ततोभ्रष्टः' हो जाते हैं। ऐसी भूलों से हमें बच जाना चाहिए। यह कहने के लिए ही मैंने पूर्वोक्त सूचना का जवाब देना और पशुहिंसा रोकने के श्रेष्ठ धर्म के पालन करने के कार्य को मैं क्यों नहीं करता हूं यह दिखाने का प्रयत्न करना उचित समझा है।

हम लोग जगत् के कर्ता नहीं हैं। हम लोग सर्वशक्तिमान भी नहीं हैं। हम लोगों में जो शक्ति है उसका यदि हम सदुपयोग करें तो वह शक्ति आप ही बढ़ेगी और इस प्रकार इस शक्ति के बढ़ने पर यदि हम प्रामाणिक होंगे तो उसका हम अवश्य ही उपयोग करेंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

म्युनिसिपल स्कूलों में चरखा

[प्रयाग के म्युनिसिपल स्कूलों में चरखे की प्रगति किस प्रकार हो रही है उसका हाल नीचे लिखे विवरण से भली भांति मालूम होता है। संपादक]

म्युनिसिपल पाठशालाओं में चरखे की जो प्रगति इन कुछ ही महीनों में हुई है वह काफी उत्साहदायक है। अकेले जनवरी १९२५ में हमारे स्कूलों के लड़कों ने २५ दिनों में ७ मन ८ सेर सूत काता। तबतक महीन सूत कतवाने के लिए

कोई खास कोशिश नहीं की गई थी और आमतौर पर १०-१२ अंक तक का सूत बतौर नाप के माना जाता था। उस समय तक सारे सूत का आधा तो ६ से १० अंक और आधा ११-१२ अंक तक का था। कहीं कहीं कुछ १४-२० अंक का भी दिखाई देता था। उसके बाद स्कूलों को ऐसी हिदायतें दी गईं कि वे सूत की किस्म सुधारें और वजन की जगह लंबाई में अपना मासिक सूत दें। इससे तुरन्त ही अच्छी तरक्की दिखाई दी और सूत और अच्छा निकलने लगा।

पिछले साल हमें कपास की तंगी और दिक्कत रही। सो इस साल हमने इतनी कपास एकत्र कर ली है कि साल के ज्यादह हिस्से तक चल सके। धुनाई का प्रबन्ध पाठशालाओं में हो गया है और अब लड़के अपने मतलब की रुई धुनक लेते हैं। फिर भी अभी कुछ रुई बाहर धुनकाना पड़ती है।

अब हमारे अधिकांश शिक्षक और शिक्षिका कताई, धुनाई और चरखे की मरम्मत करने तथा अपने दरजों के कपास और सूत का हिसाब रखने की खासी तालीम पा चुके हैं। वे अपने लड़कों के काम की देख भाल करते हैं और इस बात पर नजर रखते हैं कि सूत की फालकियां अच्छी बनें और वह सभाल कर रक्खा जाय। कड़ी निगरानी के फल-स्वरूप अब हम कपास की नुकसानी को ३६ फी सदी से ६ फी सदी तक ले आये हैं।

हमारी कन्या-पाठशालाओं ने इस समय तक कताई में बड़ी उमग और आश्चर्यजनक तरक्की कर दिखाई है। हमारी नई शिक्षिकाओं ने इस विषय में कोई बात उठा नहीं रक्खी। सिर्फ एक ही पाठशाला में १० चरखों पर २५ दिन में २८ सेर अच्छा सूत निकला।

अब हमारे सामने सवाल यह है कि हम सूत को किस तरह काम में लावें। हम कुछ ऐसी संस्था से बातचीत कर रहे हैं जो या तो इस सूत को खरीद ले या कपड़ा बुनकर दे दें। हमें आशा है कि हम शीघ्र ही इस सूत को काम में ले सकेंगे। शिक्षा-समिति शीघ्र ही एक बुनाई-पाठशाला खोलना चाहती है जहां कि कुछ सूत काम में आया करेगा।

अभी हमारे स्कूलों में ३३४ चरखे हैं। इनमें आधे से ज्यादह काम देने लायक नहीं होते हैं, हमेशा मरम्मत-तलब रहते हैं। इस तरह ३४०० लड़कों में से ⅔ से अधिक लड़के रोज पूरे ४५ मिनिट तक नहीं कात पाते हैं। कताई के घण्टे में जब कि सारे दरजे के लड़कों को सूत कातना चाहिए तब ६-७ लड़के कातते हैं, दो-तीन धुनकने में या दूसरी सहायता देने में लग जाते हैं और शेष लड़के या तो बैठ रहते हैं या और किसी विषय को पढते रहते हैं। इस तरह दरजे के सब विद्यार्थी कभी चरखा नहीं कात पाते हैं।

मरम्मत में देरी होने से लगातार करीब आधे चरखे बेकार रहते हैं। इससे अवश्य ही सूत कम निकलता है। इस कारण हमारे तमाम चरखों के द्वारा जहां १६ मन सूत हर मास आसानी से तैयार किया जा सकता है तहां मरम्मत की उपेक्षा से आधा सूत निकल पाता है। हमारे शिक्षक लोग अभी चरखे को ठीक रखने और उसकी जल्दी मरम्मत करलेने में काफी उद्योग नहीं कर पाये हैं। फिर भी हालत दुरुस्त करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी जाती है।

हमारे मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है जगह की कमी। अधिकतर मदरसे किराये के मकानों में हैं जहां कि चरखे रखने के लिए काफी जगह नहीं मिलती। अब ऐसी कोशिश की जा रही है कि मदरसे ऐसी जगहों में रहें जहां कताई बहुत आसानी से की जा सके। इसकी सुविधा हो जाने पर कताई की कई गुना तरक्की के लिए गुंजाइश हो जायगी।

हमारी दिक्कतों और रुकावटों के रहते हुए भी कताई का नतीजा इतना अच्छा हुआ है कि बोर्ड ने बजट की आय की मद में सूत की बिक्री से आने वाली एक अच्छी रकम दर्ज की है। शुरू में काम जितना आसान दिखाई देता है उतना वह वास्तव में था नहीं। उसमें अनेक भारी कठिनाइयां पेश आईं और आ रही हैं।

हमें बहुत उम्मीद है कि यदि हमें अपनी इस कोशिश में कि तमाम चरखे नियमित रूप से चलें, सफलता मिली तो हम कम से कम १० मन सूत १० से १३ अंक का हर माह कता सकेंगे। कपास की कीमत को छोड़कर केवल इतने सूत के द्वारा कोई ५ हजार रुपये साल की बचत होने की आशा की जाती है। यदि हमारे पास काफी जगह हो और कम से कम आज से तिगुने चरखे हों तो सूत भी आसानी से तिगुना निकलने लगे, जिससे कम से कम १५ हजार रु० साल असल मुनाफा रहेगा—यह रकम हमारे वर्तमान शिक्षा-व्यय की १५ फी सदी होगी। ये संख्यायें बहुत आशा पूर्ण दिखाई देंगी; परन्तु यदि हमारे संग्रह और हिसाब पर कोई एक ही नजर डाले तो उसे, फिर वह कैसा ही शंकाशील हो, यकीन हुए बिना न रहेगा।

एक बात का उल्लेख खास तौर पर करने की आवश्यकता है। कताई के साथ ही इस बात की भी पूरी चिन्ता रक्खी गई थी कि दूसरी पढाई में किसी तरह का नुकसान न पहुंचे। हमारे तजरिबे ने हमें दिखा दिया है कि चरखे के प्रवेश से मदरसों का हर बात में — मामूली ढंग, नियम-पालन, पढाई-काम आदि में — आम तौर पर तरक्की हुई है। कुमारी जे. ए. एम्-सी. रैड्डी, सरकारी शिक्षाविभाग की निरीक्षिका, ने अपने पिछले दौरे के समय लड़कियों के मदरसे के कताई-काम को सराहा है और इस बात का खास तौर पर उल्लेख किया है कि यह काम दूसरी पढाई के साथ साथ हो रहा है और उससे किसी किस्म की पढाई में बाधा नहीं पहुंचती — यही नहीं, उलटा उससे लड़कियों को दिमागी काम करने के बाद अच्छी तफरीह मिलती है।

बंगाल में हिन्दी

हिन्दी के कुछ प्रेमी इस बात पर सन्तुष्ट नहीं हैं कि मैं बंगाल में केवल लोगों से हिन्दी बोलने पर जोर देता रहूं और जब तब सभाओं में उसकी हिमायत करता रहूं। बंगाल-साहित्य-परिषद् की सभा में कुछ चुने हुए लोग थे। पर उसमें भी अंगरेजी के विद्वानों की अनुमति ले कर मैंने हिन्दी में ही अपना भाषण किया। किन्तु हिन्दी के ये प्रेमी तो मुझ से यह भी चाहते हैं कि मैं बंगाल में हिन्दी पढाने का तथा हिन्दी-प्रचार का भी उद्योग करूं जैसा कि मेरे द्वारा मद्रास प्रान्त में हुआ है। पर मुझे दुःख है कि मैं उनकी इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकता। मेरी साधन-सामग्री अब खतम होने को आ गई है। फिर कलकत्ते में हिन्दी जानने वालों की एक भारी तादाद है। उस महलों के नगर में हिन्दी के अखबार भी हैं। इसलिए कलकत्ते के हिन्दी-प्रेमियों को चाहिए कि वे उसका भार उठा लें। उनके पास धन और विद्वज्जन दोनों हैं। बंगाल के तमाम मुख्य मुख्य केन्द्रों में वे हिन्दी पढाई का प्रबंध कर सकते हैं। अवश्य ही ऐसी किसी हलचल से मेरी सहानुभूति होगी। परन्तु इसका संगठन स्थानीय उत्साही लोगों के ही द्वारा होना चाहिए। यदि दक्षिण और बंगाल हिन्दी को अपनाने के लिए तैयार किये जा सकें तो सारे भारत के लिए एक-भाषा का प्रश्न आसानी से हल हो जायगा। किसी जगह मैंने इस कठिनाई को अनुभव नहीं किया कि मेरी टूटी-फूटी हिन्दी को समझने में लोगों को दिक्कत होती है। (यं० इं०)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ़ बदी १२, संवत् १९८२

क्या हम तैयार हैं ?

श्री भरूचा ने खुल्लमखुल्ला मुझसे प्रार्थना की है कि मैं फिर से सर्वदल परिषद् को निमन्त्रित करूं; क्योंकि उनकी सम्मति में यह समय उसके मुआफिक है। देशबन्धु दास ने 'मरहठा' की एक प्रति मुझे दी जिसमें भी, मैंने देखा, कि ऐसी ही प्रार्थना की गई है। मुझे मालूम है कि सरोजनी देवी के भी विचार ऐसे ही हैं। पर इस संबंध में मेरी हालत बहुत-कुछ वैसी ही है जैसी कि महासमिति की बैठक के संबंध में है। यदि मुझे श्री जिना, सर मुहम्मद शफी, पण्डित मदन मोहन मालवीयजी, लाला लाजपतराय श्री श्रीनाथ शास्त्री, सर सुरेन्द्रनाथ, कट्टर ब्राह्मणों के नेता, श्री चिन्तामणि, डा० परांजपे आदि जैसों की ओर से सूचना मिले तो मैं अवश्य बड़ी खुशी के साथ परिषद् को निमन्त्रण दूंगा। मेरी निजी राय तो यह है कि एकता के लिए आज भी हम उससे ज्यादह तैयार नहीं हैं जितने कि देहली में थे। यदि एकता को हम स्वराज्य के लिए चाहते हैं तो हम हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न पर लड़ पड़ेंगे। यदि एकता को हम इसलिए चाहते हैं कि महासभा के अन्दर तमाम दल आ जावें तो नई तजवीजें करने या उनपर विचार करने का काम पहले महासमिति का है। क्योंकि जबतक महासभा के मौजूदा लोग आपस में अभिलषित प्रयोजन के लिए एक नहीं हो पाये हैं तबतक सब दलों की साधारण परिषद् निष्फल हुए बिना न रहेगी। यदि अकेला कताई-मताधिकार ही इसके रास्ते में बाधक होता हो तो उसका तरीका और भी आसान है। जिन लोगों ने पहले मिलकर इस मताधिकार को तय किया है वे ही पहले इसके परिवर्तन के प्रश्न पर विचार करें। वे लोग कौन हैं?— स्वराज्य-दल — उसके टुके-टुकें अवश्य नहीं — और मैं। मताधिकार-संबंधी ठहराव स्वराज्य-दल और मेरे बीच हुआ था। मैं तो किसी दल का प्रतिनिधि न था, पर फिर भी मुझ जैसे विचार रखनेवाले लोगों का, जिनकी संख्या अनिश्चित है, प्रतिनिधि था। मैं स्वराज्य-दल की रजामन्दी के बिना कोई काम करना नहीं चाहता। सो यदि वह दल मताधिकार में परिवर्तन करना चाहता हो तो वह अब भी जहांतक मुझसे ताल्लुक है, ऐसा कर सकती है — सिर्फ उसके कहने की देर है। और जब वह दल अपना मन निश्चित कर लेगा तब उसकी पूर्ति के लिए महासमिति की बैठक की जा सकती है। म महासभा के अन्दर अपनेको कोई चीज नहीं समझता। मैं मानता हूं कि आज देश का शिक्षित समुदाय मेरा तथा दूसरी बातों में मेरे साथ नहीं है। भारतवासियों के शिक्षित-समाज ने ही महासभा को जन्म दिया था और उन्हींकी प्रधानता उसमें रहनी चाहिए। तथा उसकी नीति की बागडोर भी उन्हींके हाथों में होनी चाहिए। मेरा दिल कहता है कि मैं जन-साधारण का प्रतिनिधि हूं—भले ही अधकचरा होऊं। पर मैं महासभा पर अ-प्रत्यक्ष रूप से अपने विचारों का असर डालना चाहता हूं अर्थात् रायों की गिनती कर के नहीं, बल्कि दलीलों और वस्तुस्थिति को सदस्यों के सामने रखकर। क्योंकि रायें तो संभव है इस विषय के गुण-दोष-विचार के बिना भी मिल जांय। जबतक कि जनता खुद अपने लिए सोचने लायक न हो जाय तबतक उन लोगों के कहने पर वह चलेगी जिनका प्रभाव उस समय उसपर होगा। ऐसी अवस्था में उनकी रायों का इस्तैमाल अनुचित होगा। ऐसी हालत में यदि स्वराज-दल जो कि जरूर शिक्षित समाज के एक भारी हिस्से का प्रतिनिधित्व रखता है, कताई मताधिकार को उड़ा देना चाहता हो, तो वह आज भी ऐसा कर सकता है। और मेरी तरफ से उसका कोई विरोध न होगा। पर उस अवस्था में मुझसे महासभा के पथदर्शक बने रहने की उम्मीद रखना बेजा होगा। फिलहाल मैं त्रिविध रचनात्मक कार्यक्रम के अलावा दूसरे किसी काम के अयोग्य हूं। मेरे नजदीक उसकी सफलता ही स्वराज्य है और उसके बिना स्वराज्य एक असंभावना है। ऐसी अवस्था में मुझे जरूर उन लोगों के लिए जगह कर देनी चाहिए जो कि विशाल दृष्टि रखने वाले कहे जाते हैं।

सुना है कि श्री देशमुख ने कहा है कि यदि मैं अपने विचारों को न बदल सकूं तो मुझे महासभा से हट जाना चाहिए। मैंने उनका सितारे वाला भाषण पढ़ा नहीं है; पर यदि उन्होंने ऐसा कहा है तो उन्हें ऐसा कहने का पूरा हक था। मैं भी किसी व्यक्ति के लिए ऐसा ही कहूंगा यदि मेरी यह धारणा हो कि उसके कार्यों से देश की हानि है। क्या तमाम असहयोगियों ने धारासभा के सदस्यों से इस्तीफा देने का आग्रह नहीं किया था? हो सकता है कि श्री देशमुख का विचार भ्रमपूर्ण हो, पर उनके एक सार्वजनिक कार्यकर्ता को सुधारने के अधिकार पर कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता, न उन्होंने कोई नई या अजीब बात ही कही। और दरहकीकत ऐसा एक समय था जब कि मैं संजीदगी के साथ महासभा से हट जाने का विचार करता था; पर अन्त को मैंने देखा कि उससे कुछ नतीजा न निकलेगा। मैं मौलाना महम्मदअली की इस बात से सहमत हूं कि कोई सार्वजनिक सेवक अपने ट्रस्ट को तबतक नहीं छोड़ सकता जब तक वह उसमें विश्वास रखता हो। हां, लोग चाहें तो उसे हटा दें। यदि आप जल्दी करके समय से पहले महासभा से हट जांयगे तो आप अपने ही राजनैतिक प्रतिपक्षियों पर तथा देश पर बेजा बोझ डालेंगे। अपने पैगाम पर आपका विश्वास होते हुए भी आप तभी महासभा छोड़ें जबकि आपकी लोकप्रियता नष्ट हो जाय। और ऐसी अवस्था में भी यह निर्णय करना कि रहें या अलग हो जायें, बड़ा ही नाजुक विषय होता है। बात यह है कि किसी के कहने से उस सेवा कार्य से अलहदा हो जाना जो कि स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया गया हो ऐसी आसान बात नहीं है जैसी कि दिखाई देती है। परन्तु श्री देशमुख ने हिम्मत करके लोगों के लिए इस सवाल पर विचार करने का रास्ता साफ कर दिया है। जो लोग चाहते हैं कि मैं यह क्षेत्र छोड़ दूं उन्हें कमसे कम मेरे उन साधनों और विचारों के खिलाफ, जिन्हें वे बुरा समझते हों, लोकमत तैयार करना चाहिए। मेरा महात्मापन बुरे सिक्के को चलाने का परवाना तो है नहीं।

पर मेरे लिए चरखा बुरा सिक्का नहीं है। सारी दुनिया के मुकाबले में उसका बचाव करने की श्रद्धा मेरे अन्दर है। मैं सब लोगों के लिए आजादी चाहता हूं। मैं उसका विचार अहिंसा की ही भाषा में कर सकता हूं। यदि हमें आजादी बिल्कुल अहिंसात्मक साधनों से ही प्राप्त करना है तो हम उसे केवल चरखे के ही द्वारा प्राप्त कर सकते हैं जिसके कि अन्दर हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतपन-निवारण और दूसरी कितनी ही चीजें शामिल हैं जिनके नामोल्लेख की यहां आवश्यकता नहीं। मेरी

राय में महासभा यदि इस मताधिकार को हटावेगी तो भीषण भूल करेगी। परन्तु प्रजा-सत्ता के अन्दर मेरा विश्वास किसी लायक न होगा यदि उसके अन्दर भीषण भूल कर बैठने के अधिकार को जगह न हो। मैं तो चरखे के अन्दर सजीव श्रद्धा और उसके फल-स्वरूप सक्रिय सहयोग चाहता हूं। कोरी जबानी 'हां, हां' से किसीको लाभ नहीं हो सकता। और इस विषय के परिणाम का विचार करते समय मेरे व्यक्तित्व को ख्याल से बिलकुल हटा देना चाहिए। हमारी इस महान् प्राचीन धर्म-धरा में विकास के लिए कोई शख्स अपरिहार्य नहीं है। सैकडों गांधियों का नामोनिशां मिट जाय तो हर्ज नहीं, पर भारतवर्ष जीता-जागता और फलता-फूलता रहे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

एक घरेलू प्रकरण

लायलपुर के एक वकील ने 'यंग इण्डिया' के संपादक के नाम नीचे लिखा पत्र लिखा है—

"कोई तीन चार साल पहले कलकत्ते में 'आल इण्डिया स्टोअर्स लिमिटेड' नाम की एक कंपनी खोली गई थी। उसके डायरेक्टर थे-श्री हरिलाल मो० गांधी। रावलपिंडी में उस कंपनी के एक प्रतिनिधि ने यह मशहूर किया था कि वे महात्मा गांधी के लडके हैं। मेरे एक मवक्किल ने उन प्रतिनिधि को कुछ रुपये दिये और वे उस कंपनी के शेअर होल्डर हो गये। मैंने तथा मेरे उन मवक्किल ने कंपनी के मशहूर किये पते पर-२२ अमरतल्ला स्ट्रीट कलकत्ता को, पत्र लिखे। मेरे मवक्किल को अंदेशा है कि शायद यह कंपनी बनावटी थी और उनका रुपया डूब गया। अब आपकी (महात्माजीकी) कीर्ति तथा इस दरिद्र देश के आर्थिक कल्याण के नाम पर मैं आशा करता हूं, चाहता हूं और परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि मेरे मवक्किल का यह भय गलत साबित हो। डॉकघर ने हमारे तमाम पत्र डेड लेटर आफिस की मार्फत वापिस कर दिये हैं। इसलिए मेरे मवक्किल के इस शुबह के लिए कि वह कंपनी डूब गई, कुछ वजह जरूर मालूम होती है। क्या यह सच बात है कि महात्माजी के लडके उस कंपनी के डायरेक्टर थे और क्या यह भी सच है कि ऐसी किसी कम्पनी की हस्ती है और यदि है तो वह कहां है?

कृपया इस कष्ट के लिए मुझे क्षमा कीजिए। मेरे मवक्किल एक मुसलमान सज्जन हैं और महात्माजी के प्रति अपने आदर-भाव के कारण वे उस कंपनी के शेयर होल्डर हुए थे। वे इन बातों की तसदीक कर लेना चाहते हैं। इसीलिए यह तकलीफ आपको दी गई।"

यदि इस खत में कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का समावेश न होता तो मैं खानगी में इसका जवाब दे कर खामोश हो रहता- हालां कि यह पत्र छापने के उद्देश से भेजा गया है। इसे प्रकाशित करना इस खयाल से भी आवश्यक है कि बहुत संभव है कि बहुतेरे हिस्सेदार इन वकील साहब के मवक्किल की तरह अपने भाव रखते हों। उन्हें भी उतना समाधान मिल जाना चाहिए जितना कदर कि मैं उन्हें पहुंचा सकता हूं। हां, मैं अवश्य ही हरिलाल मो० गांधी का पिता हूं। वह मेरा सबसे बडा लडका है, कोई ३६ से ज्यादह उम्र है, और ४ बच्चों का पिता है, सबसे बडी सन्तान १९ साल की है। कोई १५ साल पहले से उसके और मेरे विचार भिन्न भिन्न हैं। इसलिए वह मुझसे अलहदा रहता है और १९१५ से न तो मैं उसे सहायता करता हूं न मेरे द्वारा उसे सहायता पहुंचती है। मेरा यह प्रायः नियम रहा है कि मैं अपने बच्चों को १६ साल की अवस्था के बाद अपना मित्र और बराबरी का मानने लगता हूं। मेरे बाहरी जीवन में जो जबरदस्त परिवर्तन समय समय पर हुए उनका असर मेरे नजदीक रहनेवालों पर, खास कर मेरे सन्तानों पर, हुए बिना नहीं रह सकता था। हरिलाल इन तमाम परिवर्तनों को देखता था, उसकी उम्र भी इतनी थी कि वह उनको समझ सकता था, इससे कुदरती तौर पर वह पश्चिमी रंग-ढंग से प्रभावित हुआ, जो कि एक जमाने में मेरे जीवन में रह चुका है। उसके व्यापार-सम्बंधी कार्यों का मुझसे कोई सम्बन्ध न था। यदि मैं अपना प्रभाव उसपर डाल पाता तो वह आज मेरे कामों में मदद देता हुआ और साथ ही खासी अपनी रोजी कमाता हुआ पाया जाता। पर उसने अलहदा और स्वतन्त्र रास्ता अख्त्यार किया और ऐसा न करने का उसे हक था। वह महत्वाकांक्षी था और अब भी है। वह धनी बनना चाहता है सो भी आसानी से। और बहुत कर के उसे मेरे निस्बत यह शिकायत भी है कि जब कि मेरे पास अनुकूलता थी तब भी मैंने उसे तथा मेरे अन्य पुत्रों को उन बातों से विमुख रक्खा जिनके द्वारा मनुष्य धन को और धन से प्राप्त कीर्ति को पा सकता है। उसने इस पत्र में उल्लिखित स्टोअर्स को मेरी किसी किस्म की सहायता के बिना शुरू किया था। मैंने अपना नाम स्टोरवालों को नहीं दिया था। मैंने न तो खानगी तौर पर न जाहिरा तौर पर किसीसे उसके व्यवसाय को अपनाने की सिफारिश की। जिन लोगों ने उसे सहायता दी उन्होंने उसके काम के गुण-दोष को देख कर ही दी। हां, इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसके बेटेपन ने उसे सहायता पहुंचाई हो। जबतक कि यह दुनिया कायम है, उसके वर्णाश्रम का विरोध करते हुए भी, वह आनुवंशिकता का लिहाज किये बिना नहीं रह सकती। बहुतों ने अपने मन में यह समझा होगा कि वह गांधी का लडका है इसलिए गांधी की ही तरह भला, सीधा और रुपये-पैसे के मामले में अपने बाप की ही तरह सावधान और विश्वसनीय होगा। उनके साथ मेरी हमदर्दी है, पर इससे अधिक कुछ नहीं। उन कार्यों के सिवा जो कि मेरे साथ किये जाते हैं, या जिन्हें मैं अपने नाम पर करने की इजाजत देता हूं या जिनके लिए अपनी तरफ से प्रमाण-पत्र देता हूं, किसी शख्स के कामों की नैतिक या दूसरे प्रकार की जिम्मेवारियों को मैं अपने सिर पर नहीं ले सकता, फिर वे मेरे कितने ही आप्त और इष्ट क्यों न हों। मेरे सिर पर यों अपनी ही जिम्मेवारियां बहुत भारी हैं। मेरे हृदय के अन्दर जो शाश्वत द्वंद्वयुद्ध होता रहता है और जो कभी नहीं जानता कि अस्थायी सुलह भी क्या चीज है उसकी तकलीफों और दुःखों को अकेला मैं ही जानता हूं। पाठक विश्वास करें कि इसमें मेरी तमाम शक्ति खर्च जाती है और यदि इस संग्राम में जीतने का बल मैं अपने में अधिक पाता हूं तो इसका कारण यह है कि मैं बहुत जागरूक रहता हूं। मैं पाठकों से यह भी कह देता हूं कि मेरी स्वराज्य हलचल का भी सम्बन्ध उस द्वंद्व-युद्ध से है। मेरी आत्मा को अत्यन्त सन्तोष है कि मैं इस स्वराज्य-कार्य में लगा हुआ हूं। इसपर एक मित्र ने कहा कि यह तो आपकी दुहेरी छनी हुई स्वार्थपरता है। मैंने तुरन्त उनकी बात को मान लिया।

मैं हरिलाल के कारोबार को नहीं जानता। वह कभी कभी मुझसे मिलता है, पर मैं कभी उसके कारोबार की भीतरी बातों में नहीं पडता। मुझे यह भी मालूम नहीं कि वह अपनी कंपनी का एक डायरेक्टर है। मुझे यह भी पता नहीं कि इस समय उसके कारोबार का क्या हाल है — हां, इतना मालूम है कि हालत अच्छी नहीं है। यदि वह नेकनीयत है तो तमाम लेनदारों का रुपया पूरा चुकता किये बिना दम न लेगा — फिर उसका स्टोअर

चाहे लिमिटेड हो या अन-लिमिटेड । मैं तो प्रामाणिक व्यवसाय इसीको कहता हू । पर हो सकता है कि उसके विचार जुदे हों और वह दिवाले के कानून का सहारा ले । मेरी तरफ से सर्व-साधारण को इतना ही यकीन दिला देना काफी है कि किसी भी टेढी बात का समर्थन मेरी ओर से कभी नहीं हो सकता । मेरे नजदीक सत्याग्रहधर्म, प्रेम-धर्म एक शाश्वत सिद्धान्त है। मैं तमाम अच्छी बातों के साथ सहयोग करता हू । मैं तमाम बुरी बातों के साथ असहयोग करने की इच्छा रखता हूं फिर उनका संबध मेरी पत्नी के साथ हो, लडके के साथ हो, या खुद मेरे ही साथ हो । मैं इन दो में से किसीकी भी ढाल बनना नहीं चाहता मैं चाहता हू कि दुनिया हमारे तमाम दोषों और बुरी बातों को जान ले । और जहांतक शिष्टता के साथ हो सकता है मैं, दुनिया को कौटुम्बिक रहस्य मानी जानेवाली अपनी तमाम बातें बता देता हूं । मैं उन्हें छिपाने की जरा भी कोशिश नहीं करता; क्योंकि मैं जानता हू कि उनके छिपाव से हमारी हानि ही होगी ।

हरिलाल के जीवन में बहुतेरी ऐसी बातें है जिन्हें मैं ना-पसद करता हूं । वह उन्हें जानता है । पर उसके इन दोषों के रहते हुए भी मैं उसे प्यार करता हू । पिता का हृदय है । ज्यों ही वह उसमें प्रवेश पाना चाहेगा, उसे स्थान मिल जायगा । फिलहाल तो उसने अपने लिए उसका द्वार बद कर रक्खा है । अभी उसे और जंगल-झाडी में भटकना है । मानवी पिता के संरक्षण की भी एक निश्चित मर्यादा होती है । पर दैवी पिता का द्वार उसके लिए सदा खुला हुआ है । वह उसे खोजेगा तो जरूर स्थान पावेगा ।

ये वकील साहब तथा उनके मवक्किल इस बात को जान लें कि यदि एक वयस्क पुत्र की गलतियों से, जिनके कि लिए मैंने कभी उसको उत्साहित नहीं किया, मेरी कीर्ति में कलक लगता हो तो फिर वह कायम रखने योग्य ही नहीं है । 'इस दरिद्र देश का आर्थिक कल्याण' तो ऐसी निजी कम्पनियों के डूब जाने पर भी भलीभांति सुरक्षित रहेगा, यदि महासभा के सभापति और उसकी भिन्न भिन्न समितियों के सदस्य अपने ट्रस्ट के प्रति सच्चे बने रहें और एक पैसे का भी दुरुपयोग न करें । मुझे उन मुवक्किल पर तरस आता है जो कि मेरे सन्मान के खातिर एक कंपनी के हिस्सेदार हो गये, जिसके नियम और संगठन को पढने की उन्होंने कभी चिन्ता न की । इन मवक्किल के इस उदाहरण को देख कर वे लोग होशियार हो जाय जो कि बडे नामों को देख कर अपना कारोबार चलाते हैं । मनुष्य अच्छे हो सकते है— पर यह कोई जरूरी नहीं है कि उनके सन्तान भी अच्छे ही हों । मनुष्य कुछ बातों में अच्छे हो सकते हैं, पर सभी बातों में आवश्यक रूप से अच्छे नहीं हो सकते । एक मनुष्य जो एक बात पर प्रमाण माना जा सकता है, हर बात पर नहीं माना जा सकता । हरएक को अपना सौदा ठोंक-पीटकर करना चाहिए ।

(यं. इं.) मोहनदास करमचन्द गांधी

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है । पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०-३-० रक्खी गई है । डाकखर्च खरीदार को देना होगा । ०-४-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी । वी. पी. का नियम नहीं है ।

व्यवस्थापक
हिन्दी-नवजीवन

शान्ति-निकेतन में

'नवजीवन' में श्री महादेव भाई लिखते है—

'शान्तिकेतन के संबंध में कुछ तो गांधीजी खुदही लिख चुके हैं । जब से गांधीजी कलकत्ते आये तभी से उनका मन हुआ करता था कि कब 'बडा दादा' से जाकर मिलेंगे । पर जब सुना कि बडा दादा की तबियत कुछ अलील रहा करती है तब तो उन्होंने जाने का निश्चय ही कर लिया । कविवर का भी आग्रह था । रात को शान्ति-निकेतन पहुंचे और दूसरे दिन सुबह ही बडा दादा के दर्शन किये । अति प्राचीन बडा दादा जब देखिए तभी नित्य नवीन मालूम होते हैं । इस समय उनके आनन्द और उल्लास का ठिकाना न था । गांधीजी को जेल हो जाने के बाद शायद उन्होंने उनसे मिलने की आशा न की हो, पर अब तो गांधीजी उनके दरवाजे पर खडे थे । उनका हृदय इतना गद्गद् हो रहा था कि आवाज मुंह से स्पष्ट न निकलती थी । ज्यों त्यों करके उन्होंने कहा—'मेरा हृदय गद्गद् हो रहा है, मुझसे बोला नहीं जाता ।' गांधीजी ने कहा—'पर मैं जानता हू, आप क्या कहना चाहते हैं । तब जरा रहकर बोले—'आपकी विजय के विषय में मुझे जराभी सन्देह नहीं । मैं यह जानता हूं कि आपका वज्र के सदृश हृदय कभी विचलित नहीं होता । ऐसा मालूम होता है मानों आज मुझे नवीन जन्म मिला । अबतक गांधीजी कुरसी पर बैठे थे, पर वहां बैठना उन्हें अनुचित मालूम हुआ । उतर कर उनके चरणों के पास बैठ गये, जिस तरह कि ३५ साल पहले स्वर्गीय दादाभाई के चरणों के पास जाकर बैठते थे । आशीर्वाद की वृष्टि हो रही थी । आशीर्वाद करने का अधिकार उन्हें था, पर वे यह जंचाने की कोशिश कर रहे थे कि उन्हें यह अधिकार न था । पर आशा रोके न रुकती थी । फिर कहने लगे 'यं. इं.' के लेख, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य विषयक विचार, अस्पृश्यता किसी बात में मेरा मतभेद नहीं है । पर उनकी इस बातचीत में थकावट मालूम होती थी, इसलिए उस दिन तो उनसे बिदा ली । बिदा करते करते भी बोले—

विपत्संपदिवा भाति मृत्युरप्यमृतायते ।
शून्यमापूर्णतामेति भगवज्जनसंगमात् ॥

अर्थात्—भगवज्जन के संग से विपत्ति सम्पत्ति हो जाती है, मृत्यु अमृत-रूप हो जाता है, शून्य पूर्णता को प्राप्त हो जाता है । गांधीजी के जाने पर मुझसे कहने लगे—'आंखों से दिखाई नहीं पडता । इससे गांधीजी को अच्छी तरह देख न सका ।' मैंने कहा—'आपको बाहरी शरीर देखने की अब क्या आवश्यकता है ? आपको तो अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो गई है । 'तस्मिन्दृष्टे परावरे' किस बात की कमी हो सकती है ?' तब बडी नम्रता से कहने लगे—'पर उनके दर्शन न हुए; इसी बात ख्याल बना रहता है ।' इन थोडे दिनों में तीन वयोवृद्ध सत्पुरुषों के दर्शन हुए—आचार्य राय, सर सुरेन्द्र और बडा दादा । पर तीनों में सागर के बराबर फासला है । डा० राय बूढे होते हुए बालक नहीं हो गये हैं । बूढे होते हुए भी बालक बने हुए हैं । उनके तो कंधे पर चढ कर बैठने को जी चाहता है । बडा दादा बूढे होते हुए भी ज्ञान के द्वारा बालक बन गये हैं । उनके चरण में लोटने को जी चाहता है । सर सुरेन्द्र न तो बालक बने हैं, न रहे हैं । उनसे जरा दूर खडे रह कर ही प्रणाम कर सकते हैं । जरा देर में बडा दादा ने अपना बाल-स्वरूप प्रकट किया । मुझसे कहने लगे 'भगवज्जन संगमात्' यह पाठ मेरा बदला हुआ है । मूल तो है 'विद्वज्जन समागमात् ।'

यह कह कर हंस पडे । मैंने कहा—' विद्वज्जन का अर्थ ब्रह्मविद् नहीं ?' ' हां, ब्रह्मविद् ही; पर आज विद्वान् का अर्थ समझता कौन है ? विद्वान् का अर्थ है किताबी पण्डित । उसे देख कर कहीं मृत्युमय जीवन अमृत हो सकता है ?' फिर खिलखिला कर हंस पडे ।

इसके बाद गांधीजी कविवर से मिले । कविवर बहुत समय तक विदेशों में रह कर आये हैं, और अगस्त में फिर विलायत जावेंगे । अतएव वे गांधीजी से बहुतेरी बातें समझ लेना चाहते थे । वर्णाश्रम-धर्म की आवश्यकता, अस्पृश्यता, खादी और स्वराज्य की व्याख्या इत्यादि के विषय में गांधीजी के साथ उन्होंने बडी देर तक बातचीत की । ये बातें खानगी थीं और कविवर की इच्छा है कि कोई उन्हें प्रकाशित न करे ।

परन्तु बडा दादा के पास कोई बात खानगी न थी । शाम को फिर बडा दादा के पास लोग जमा हुए । उन्हें आंखों से दिखाई नहीं देता । अतएव उनके पास एक आदमी है या अनेक, इसकी क्या परवा ? शाम को बडा दादा लंबी बातचीत के लिए तैयार थे । उनकी आवाज भी अधिक स्पष्ट थी । निरवधि प्रेम की निर्मल धारा बहती थी । उन्हें कौन रोक सकता था ? 'हमारे शास्त्रों में लिखा है कि ज्ञान की पहली सीढी है श्रद्धा । फिर वीर्य, फिर स्मृति, फिर बुद्धि और तत्पश्चात् प्रज्ञा । परन्तु श्रद्धा के बिना तो प्रज्ञा की सीढी पर चढ ही नहीं सकते । गीताजी में भी कहा है कि श्रद्धावान को ही ज्ञान मिलता है । और प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा ये श्रद्धा के तीन भाग किये हैं । यह जान लेने पर सारे संसार का मुकाबला कर सकते हैं 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन' 'आप आनन्द और ब्रह्म को जानने की दशा में हैं; इसलिए आप भय जैसी किसी चीज को नहीं जानते ।' इस वचन का उच्चारण उन्होंने कई बार किया । फिर कहने लगे—' आपमें मेरी अचल श्रद्धा है । आपकी एक भी बात के विषय में मुझे जरा सन्देह नहीं । ईश्वर-विषयक श्रद्धा के बाद दूसरा नंबर आपके ही प्रति मेरी श्रद्धा का है ।' अब गांधीजी से न रहा गया । हंसते हंसते उन्हें रोकने के लिए बोले 'बस, अब यहीं तक बस नहीं ? अभी और आगे बढेंगे ?'

फिर प्रवाह आगे चला — ' देश की दशा को देख कर कितने ही वर्षों से मैं सोचा करता था कि क्या कोई कर्णधार न मिलेगा ? मुझे चिन्ता रहा करती थी कि किसी कर्णधार को देखे बिना ही यहां से कूच कर जाना होगा । परन्तु ईश्वर परम कृपालु है । आप आये और आपका मेरा समागम भी हुआ । आपकी विजय निश्चित है । समस्त अविद्या ज्ञान के सामने नष्ट हो जाती है । अविद्या का अर्थ है वर्तमान साम्राज्यवाद, आधुनिक तमाम वाद ही कहिए न ! सत्य का बम गिरा नहीं कि इनके टुकडे टुकडे हुए नहीं । यह आप निश्चित जानिए । आपपर चाहे कितनी ही टीका-टिप्पणियां हों, लोग श्रद्धा न करें, कोलाहल और हत्याकाण्ड हों, तो भी मेरी यह श्रद्धा है कि आप अविचल रहेंगे । सत्य और अहिंसा उस चमत्कारी पंखी ' फिनिक्स ' की तरह हजारों बार आग में गिरते हुए भी नित्य नवीन और सजीवन होते रहेंगे । यह पंखी कभी हार कर बैठनेवाला नहीं है । और आपका किया काम क्या कभी व्यर्थ जायगा ? बुद्ध भगवान् का किया काम क्या वृथा गया है ? हिन्दुस्तान में बहुतेरे बौद्ध भले ही न हों, परन्तु बुद्ध भगवान् के मन्त्र तो हमारे जीवन के साथ बुने हुए हैं ।'

इसके बाद महाराष्ट्री राजनीतिज्ञों की, हिंसावादियों की बात चलाई और आवेश के साथ कहने लगे — ' ये लोग अंगरेजों को अंगरेजों की रीति से हराना चाहते हैं । अंगरेज कहीं इस तरह हार सकते हैं ? आपने आ कर नये हथियार निर्माण किये । सत्य आपका शस्त्र है इनका नहीं; अहिंसा आपका शस्त्र है, इनका नहीं; चरखा भी आपही का शस्त्र है । इन शस्त्रों के मुकाबले में ये कुछ नहीं कर सकते । आज सारा दिन मैं यही विचार कर रहा था कि जब आप आवेंगे तो आपसे क्या बात करूंगा ? आपको आपका ही लिखा और कहा सुनाऊंगा ! शास्त्र के वचन सुनाने का भी मुझे क्या अधिकार ? उनका उद्धरण भी आप ही कर सकते हैं । फिर भी मन रोके नहीं रुकता । मैंने ईश्वर से खूब प्रार्थना की और सोचा क्या कहूं । तब ईश्वर ने जो प्रकाश दिया वही आपके सामने पेश करता हूं । आपकी श्रद्धा अविचल है । मेरे कहने से उसमें क्या विशेषता होगी ? पर फिर एक बार कहे बिना नहीं रहा जाता — ' आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन ' ' आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कदाचन '

पता नहीं चलता था कि यह धारा कहां तक चलती रहेगी । गांधीजी भी घबडाये । एण्ड्रूज सा० को इशारा किया । उन्होंने भी कहा कि हां अब प्रवाह रोकना चाहिए ।

गांधीजी ने पूछा — ' आपको थकावट नहीं मालूम होती ?' बडा दादा कहते हैं — नहीं, दूसरी बातों से जितनी थकावट मालूम होती है उतनी तो हरगिज नहीं । ' इसपर सब लोग हंस पडे । फिर कहने लगे — ' आज मेरे आनन्द की सीमा नहीं है । इसलिए इतना बोल रहा हूं । आपने मेरा अंधकार हटा दिया है । आपके जाने के बाद फिर क्या होगा ? मैं चाहता हूं कि इन दो तीन दिनों का स्मरण मुझे इस संसार-अरण्य के शेष विकट पथ में बल और धीरज दे ।'

दूसरे दिन तो कैंट और पश्चिमी तत्त्वज्ञानियों और ईसाई धर्म-शास्त्र की बातों में उतरे । ' हमें पाल के वचन मानने चाहिए या ईसा-मसीह के ? यदि ईसा केही वचन मानें तो फिर पाल की टीका पढने की क्या आवश्यकता ? कैंट बुद्धि का भी मंथन करने गया । शंकराचार्य ने कहा है कि ईंधन से आग को हराने का प्रयत्न करने गया । और आस्तिक होने के लिए उसे नीति का मूल खोजना पडा । किसलिए यह इतना झगडा ? बाइबिल में कहा है — ' दाहने गाल पर कोई थप्पड मारे तो तुम बायां भी उसके सामने कर दो ।' क्या इसका शब्दार्थ ही ईसामसीह को अभिप्रेत होगा ? उस समय के यहूदी इतने जड थे कि उन्हें इसी रीति से समझा सकते थे । पर हमारे शास्त्रों ने कहा—

न पापे प्रतिपापः स्यात्

और इतने ही में सारी नीति और व्यवहार का सार निचोड कर रख दिया ।

अन्तिम बिदाई का दिन तो पवित्र स्मृति से पूर्ण था । इन संस्मरणों को कागज पर लिखने का दिल नहीं होता । ' शान्ति-निकेतन को छोडते हुए अपार दुःख होता है ' गांधीजी ने कहा— बडा दादा को दुःख न होता हो सो बात नहीं, पर हृदय को कडा करके बोले ' आपके लिए तो संसार शांतिनिकेतन रूप है । यह तो एक छोटा-सा शांतिनिकेतन है ।'

बीच बीच में कविवर के साथ बातें होती रहती थीं । चरखे पर उनकी श्रद्धा अधिक बैठी हुई मुझे दिखाई दी । खादी के संबंध में खूब बारीकी के साथ सवाल मुझसे पूछे । मैंने कहा— बंगाल में चरखे ने अपनी जड जमा ली है । बंगालियों के लिए तैरना जितना स्वाभाविक है उतना ही कातना भी है ।' आनन्द और आश्चर्य के साथ कहने लगे—'गांधीजी ने भी मुझसे यही

बात कही। बंगालियों में मंगोल रुधिर है इसलिए कला उन्हें सहज सिद्ध है।' स्वास्थ्य खराब रहते हुए भी वे शांतिकेतन में लडकों को दो घंटा पढाते हैं। मैं बंगाली दरजे में जाकर बैठ गया। उस दिन मेरे आने के कारण अथवा और किसी कारण से जो कवितायें वहां पढाई गईं उनमें मानों बडा दादा की भविष्य वाणी की ध्वनि सुनाई देती थी। बडा दादा ने अमर पक्षी फिनिक्स के साथ गांधीजी के संदेश की तुलना की थी। कवि ने अपनी कविता में आत्मत्यागी पक्षी को किसी भी विघ्न-बाधा की परवा न करते हुए सागर पार जाने का आग्रह रखने वाला कल्पित किया है। उसका भाव यह है-भयानक दृश्य है। देश-देशान्तर में अन्धकार व्याप्त है, भय और निराशा जहां तहां दिखाई देते हैं, वन की मधुर मर्मरध्वनि नहीं बल्कि सागर अजगर की तरह गर्जन कर रहा है। न तो कोई घोंसला है, न पेड की डाली। मरण अधीर होकर गगनव्यापी हिलोरों मे उछल रहा है; फिरभी ओ मेरे पक्षी, निर्भय रह कर, अन्ध-श्रद्धा के वशीभूत न हो, उस पार जाने का निश्चय रखते हुए कभी पंख को बन्द न करना। इस प्रकार कवि का यह संदेश और बडा दादा की आशीष ले कर गांधीजी शांति-निकेतन से विदा हुए।

शान्तिनिकेतन तथा विश्व-भारती के शिक्षकों और छुट्टियों के होते हुए भी वहां ठहर रहे विद्यार्थियों से गांधीजी ने खूब बातें कीं। 'मैं न तो आपसे यह कहता हूं कि आप अपनी कविता छोड दीजिए, न यही कहता हूं कि साहित्य या संगीत छोड दीजिए। मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूं कि आप अपने इन तमाम कामों को करते हुए भी सिर्फ आध घण्टा चरखे के लिए दे दीजिए। अबतक किसीने यह दलील नहीं पेश की कि आध घण्टा भी समय नहीं मिल सकता। चरखा हमारी प्रान्तीयता को मिटानेवाला है। आज उत्तरी हिन्दुस्तान का आदमी बंगाल में आ कर अपना परिचय हिन्दुस्तानी कहकर देता है। बंगाली दूसरे प्रान्तों में अपनेको परदेशी मानते हैं। दक्षिणी लोग उत्तर में आ कर परदेशी बनते हैं। चरखा ही एक-मात्र ऐसा साधन है कि जिससे यह भान होता है कि हम सब एक देश के पुत्र-पुत्री हैं। हमने आजतक कुछ करके नहीं बताया है — कुछ कर के हम बता दें। विदेशी कपडे का बहिष्कार एक ऐसी चीज है कि जिसके लिए सब एक-सा प्रयत्न कर सकते हैं, सब एक-सा हिस्सा दे सकते हैं। अस्पृश्यता तो अकेले हिन्दुओं को ही दुःख देती है; मुसल्मानों के झगडे समय न पा कर मिट जायगे — पर खादी के बिना सारा देश दरिद्रता में पडा पडा सडता रहेगा। मध्य आफ्रिका में निद्रा-रोग है,— लोग महीनों तक बेहोश पडे रहते हैं और अन्त को मर जाते हैं — हमारे देश की इस निद्रामय बीमारी की दवा सिवा चरखे के और नहीं है।' इ०इ० मैंने सुना कि कितने ही लोगों पर इन बातों का बहुत प्रभाव पडा और ऐसी बातें चल रही हैं कि बहुतेरे लोग चरखा मंगाकर नियमित रूप से कातेंगे। इस प्रकार शान्ति-निकेतन जाने का दूसरा फल भी अच्छा निकला।'

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजन्सी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डाक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डाक से भेजी जायं या रेल्वे से।

टिप्पणियां

दार्जिलिंग में चरखा

यदि देशबन्धु दास दार्जिलिंग में न होते तो मैं शायद ही वहां जाने का इरादा करता—हालां कि वहां के बरफीले पहाडों की कतार बडी सुहावनी और लुभावनी है। मैंने तो खयाल किया था कि दार्जिलिंग के आमोद-प्रिय लोगों को चरखे का सन्देश सुनाना खासी मूर्खता होगी। पर मेरा यह डर बिलकुल गलत निकला। एक स्त्रियों की सभा में मुझे व्याख्यान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने चरखे के पैगाम को हमदर्दी के साथ सुना। स्वर्गीय व्योमेश बनर्जी की पुत्री, श्रीमती ब्लेअर, वहांकी नव शिक्षित स्त्रियों को चरखा सिखाने का प्रबन्ध करनेवाली थीं। पादरियों की एक छोटी सभा में भी मुझे अपना पैगाम पहुंचाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसका हाल हो सका तो आगे लिखूंगा। न मैंने यही खयाल किया था कि मुझे कितने ही नेपाली, भूटिया तथा अन्य लोगों से मिलने का सु-अवसर मिलेगा। उन्होंने उस सन्देश मे सबसे ज्यादा अनुराग प्रकट किया। पर मुझे सबसे ज्यादह हर्ष तो हुआ श्रीमती बासन्ती देवी को चरखा कातना सीखते हुए देखकर और रोज, बीमारी को छोडकर, आध घण्टा चरखा कातने का व्रत लेते हुए देखकर। उनकी लडकी तो पहले से जानती है। पर बासन्ती देवी ने ध्यान न दिया था। अब उन्होंने उसे अंगीकार किया है। और उसके साथ तकली को भी अपनाया है। तकली तो उन्होंने १० ही मिनिट में सीख ली। श्रीमती ऊर्मिलादेवी तथा उनके लडकेबाले तो कुछ समय पहले ही से नियमित रूप से कातते हैं। और खुद देशबन्धु दास ने भी तकली चलाना सीखने का उद्योग किया। परन्तु वे सरकार को बार बार पराजित करने और अपने मवक्किलों को जिताने से अधिक मुश्किल चरखे को पाते हैं। अपने पति की तरफ से श्रीमती बासन्ती देवी ने कहा—'ये अपने संदूक की ताली भी मुश्किल से घुमा पाते हैं — मैं उसमें हमेशा मदद करती हूं। अब आप समझ सकते हैं कि चरखा कातना इनके लिए क्यों इतना कठिन है।' परन्तु देशबन्धु ने मुझे यकीन दिलाया है कि मैं जरूर चरखा सीखने का आग्रह रक्खूंगा। पटना में उन्होंने कुछ सीखा भी था। परन्तु उनकी बीमारी से रुक गया। उन्होंने मुझ से कहा कि चरखे का मैं पूरी तरह कायल हूं और मैं हर तरह से उसकी सहायता करना चाहता हूं। आमोद-प्रिय दार्जिलिंग में कलकत्ते के मेजर के सारे घर के लोगों को चरखा चलाते हुए तथा चरखे का वायुमण्डल उत्पन्न करते हुए देख कर मुझे बहुत हर्ष हुआ। यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि ये सब लोग खादी पहने हुए थे। देशबन्धु के लिए खादी कोई उत्सव के समय पहनने की चीज नहीं है। वे तो सदा सर्वदा खादी पहनते हैं। वे मुझसे कहते थे कि यदि अब मैं चाहूं तो मेरे लिए मिल का या विदेशी कपडा पहनना कठिन होगा।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

[इसके बाद अचानक अत्यन्त शोक-जनक समाचार मिले कि दार्जिलिंग में मंगलवार को शाम के ५॥ बजे हृदय की गति रुक जाने से एकाएक देशबन्धु दास का स्वर्गवास हो गया!!

देशबन्धु का शव दाह-कर्म के लिए दार्जिलिंग से कलकत्ते लाया गया है। गांधीजी अन्त्येष्टि-क्रिया में सम्मिलित होने के लिए खुलना से कलकत्ते पहुंच गये हैं। उपसंपादक]

मेरी अ-क्षमता

वार्षिक मूल्य ४)
छ मास का „ २)
एक प्रति ।
विदेशों के लिए ७)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४७

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, आषाढ सुदी १०, संवत् १९८२ गुरुवार, २ जुलाई, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

कुछ संस्मरण

इस अंक मे लिखने के लिए और क्या बात लिखना सूझेगी?

पहाड जैसे देशबन्धु उठ गये, तो अखबार उन्हींकी बातो से भरे हुए हैं। देशबन्धु की छोटी से छोटी बात अखबार वाले बडी उत्सुकता के साथ छाप रहे हैं। 'सर्वेंट' ने विशेष अंक निकाला है। 'बसुमती' बंगाल का सब से बडा समाचार-पत्र है। यह विशेष अंक की तैयारी कर रहा है। हजार से ज्यादह शोक-सूचक तार श्रीमती बासंती देवी दास के पास आये हैं और भूदूर देशों से आ ही रहे हैं। जगह जगह सभायें हुई हैं। कोई भी गांव जहां महासभा का झण्डा फहराता हो, शायद ही खाली होगा जहां सभा न हुई हो।

कलकत्ता १८ ता० को पागल हो गया था। अंक-शास्त्री कहते हैं कि २ लाख से कम आदमी इकट्ठा न हुए थे। रास्तों पर खडे, तार के खंभों पर चढे, ट्राम की छत पर खडे, झरोखों मे राह देखते हुए बैठे स्त्री-पुरुष इससे जुदे हैं।

साथ भजन कीर्तन तो था ही। पुष्पों की वृष्टि हो रही थी। शव ढका हुआ था; परन्तु उसपर फूलों के हार का पहाड बिछ गया था।

रथी के जुलूस के आगे स्वंसेवक फुलवाडी ले कर चल रहे थे। उसमें फूलों से सुसज्जित चरखा था। जुलूस स्टेशन से ७-३० चल कर स्मशान में ३ बजे पहुंचा। ४-३० बजे अग्नि संस्कार शुरू हुआ।

स्मशान-घाट पर भीड उमडी पडती थी। पीछेसे जो भीड उमडती थी उसे रोकना अति कठिन था। और मै समझता हू कि यदि मुझे हट्टे कट्टे लोगों ने अपने कन्धे पर बिठाकर इस उमडती हुई भीड के सामने न उठा रक्खा होता तो भयंकर दुर्घटना हो जाती। दो सशक्त आदमियों ने मुझे अपने कन्धे पर बिठा रक्खा और उस हालत में मैं लोगों को रोक रहा था और उनसे बैठ जाने की प्रार्थना कर रहा था। लोग जबतक मुझे देखते थे तबतक तो मानते थे, पर मै जहां अशांति की आशंका होती उस ओर गया कि मेरी पीठ फिरते ही लोग तुरन्त उठ खडे हो जाते थे। सब लोग दीवाने होगये थे। हजारों आंखें रथी की ओर लगी हुई थीं। जब दाहकर्म शुरू हुआ तब तो लोग धीरज खो बैठे। सब बरबस खडे हो गये और चिता की ओर खिंच पडे। यदि एक भी क्षण का विलंब हो तो सबके चिता पर गिर पडने का अंदेशा था। अब क्या करें? मैंने लोगों से कहा—'अब काम पूरा हुआ सब अपने अपने घर जावें।' और मुझे उठानेवाले भाइयों से कहा 'अब मुझे इस भीड से हटा ले चलो।' लोगों को मै पुकार पुकार कर और इशारे से कहता चला कि मेरे पीछे आओ। इसका असर बहुत अच्छा हुआ, वह हजारों की भीड वापस लौटी और दुर्घटना होती बची।

चिता चन्दन की लकडी की बनाई गई थी।

लोग ऐसे मालूम होते थे मानों वन-भोजन को आये हों। गंभीरता तो सब के चहरे पर थी, पर ऐसा नहीं मालूम होता था कि वे शोक-भार से दब गये है। कुटुम्बियों का और मेरा शोक स्वार्थ-पूर्ण मालूम होता था। हमारे तत्व-ज्ञान का अन्त आ गया; लोगों का कायम रहा। क्योंकि वे तटस्थ थे। उनके [illegible] का भाव तो पूरा पूरा था। उनकी पूजा निःस्वार्थ थी। वे तो भारत-पुत्र को, अपने बन्धु को, प्रमाण-पत्र देने के लिए आये थे। वे अपनी आंखों से और चेष्टा से ऐसा कहते हुए दिखाई देते थे—'तुमने बडा काम किया; तुम्हारे जैसे हजारों हों।'

देशबन्धु जैसे भव्य थे वैसे ही भले थे। दार्जिलिंग में इसका बडा अनुभव मुझे हुआ। उन्होंने धर्म-संबन्धी बातें कीं। जिसकी छाप उनके दिल पर गहरी बैठी उनकी बातें कीं। वे धर्म का अनुभव-ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। 'दूसरे देश में जो कुछ हो, पर इस देश का उद्धार तो शान्ति-मार्ग से ही हो सकता है। मैं यहां के नवयुवकों को दिखला दूंगा कि हम शांति के रास्ते स्वराज्य प्राप्त कर सकते है।' 'यदि हम भले हो जायगे तो अंगरेजों को भला बना लेंगे।' 'इस अन्धकार और दम्भ में मुझे सत्य के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। दूसरे की हमें आवश्यकता भी नहीं।' 'मै तमाम दलों में मेल कराना चाहता हू। बाधा सिर्फ इतनी ही है कि हमारे लोग भीरु हैं। उनको एकत्र करने के प्रयत्न में होता क्या है कि हमें भीरु बनना पडता है। तुम जरूर सबको मिलाने कोशिश की करना और लिखना। पत्र-संपादकों को समझाना कि मेरी और स्वराज्य दल की खामख्वाह निन्दा करने मे क्या लाभ? मैने यदि भूल की हो तो मुझे बतावें। मैं यदि उन्हें सन्तुष्ट न करूं तो फिर शौक से पेट भर के मेरी निन्दा करें।' 'तुम्हारे चरखे का रहस्य मै दिन दिन अधिक समझता जाता हूं। मेरा कन्धा यदि दर्द न करता हो और इसमें

मेरी गति कुण्ठित न हो तो मैं तुरन्त सीख लूं। एक बार सीखने पर फिर नियम-पूर्वक कातने में मेरा जी न ऊबेगा। पर सीखते हुए जी उकता उठता है। देखो न, तार टूटते ही जाते हैं।' 'पर आप ऐसा किस तरह कह सकते हैं? स्वराज्य के लिए आप क्या नहीं कर सकते?' 'हां, हां, यह तो ठीक ही है। मैं कहां सीखने से नाहीं करता हूं? मैं तो अपनी कठिनाई बताता हूं। पूछो न वासन्तीदेवी से कि ऐसे काम में मैं कितना मन्द-बुद्धि हूं?' वासन्ती देवी ने उनकी मदद की 'ये सच कहते हैं। अपना कलमदान खोलना हो तो ताला लगाने मुझे आना पड़ता है।' मैंने कहा 'यह तो आपकी चालाकी है। इस तरह आपने देशबन्धु को अपंग बना रक्खा जिससे उन्हें सदा आपकी खुशामद करनी पड़े और आपपर सहारा रखना पड़े।' हँसी से कमरा गूंज उठा। देशबन्धु मध्यस्थ हुए। 'एक महीने बाद मेरी परीक्षा लेना। उस समय मैं रश्मियां निकालता न मिलूंगा।' मैंने कहा—'ठीक है आपके लिए सतीश बाबू शिक्षक भी भेज देंगे। आप जब पास हो जायंगे तो समझिएगा कि स्वराज्य नजदीक आ गया।' ऐसे सब विनोदों का वर्णन करने लगूं तो खातमा नहीं हो सकता।

कितने ही संस्मरण तो ऐसे हैं जिनका वर्णन मैं कर ही नहीं सकता।

मैं जिस प्रेम का अनुभव वहां कर रहा था उसकी कुछ झलक यदि यहां न दिखाऊं तो मैं कृतघ्न माना जाऊंगा। वे छोटी छोटी-सी बात की संभाल रखते थे। मेवे खुद कलकत्ते से मँगवाते। दार्जिलिंग में बकरी या बकरी का दूध मिलना मुश्किल पड़ता है। इसलिए ठेठ तलहटी से पांच बकरियां मंगाकर रक्खीं। मेरी जरूरत की एक एक चीज का इन्तजाम किये बगैर न रहते थे। हमारे कमरे के दरम्यान सिर्फ एक दीवार थी। सुबह होते ही काम-काज से फारिग हो मेरी राह देखते बैठते। चारपाई पर बैठे थे, चारपाई अभी नहीं छूटी थी। पल्थी मारकर बैठने की मेरी आदत से वाकिफ थे। सो कुरसी पर नहीं बैठने देते थे। खटिया पर ही अपने सामने मुझे बैठाते। गद्दे पर भी कुछ खास तौर पर बिछवाते और तकिया भी लगवाते। मुझसे दिल्लगी किये बिना न रहा गया—'यह दृश्य तो मुझे चालीस बरस पहले की याद दिलाता है। जब मेरी शादी हुई थी तब हम दुलहे-दुलहिन इस तरह बैठे थे। अब यहां पाणिग्रहण की ही कसर है!' मेरे कहने की देर थी कि देशबन्धु के कहकहे से सारा घर गूंज उठा। देशबन्धु जब हंसते तो उनकी आवाज दूर तक पहुंचे बिना न रहती।

देशबन्धु का हृदय दिन पर दिन कोमल होता जाता था। धर्म के अनुसार मांस-मछली खाने में उन्हें कोई विधि-निषेध न था। फिर भी जब असहयोग शुरू हुआ तब मांसाहार मद्यपान और चुरट तीनों चीजें उन्होंने छोड़ दी थीं। पीछे आकर फिर इन्होंने अपना जोर जमाया था। परन्तु उनका झुकाव इनको छोड़ने की ओर ही रहता था। अभी कुछ दिनों से राधास्वामी-संप्रदाय के एक साधु से उनका समागम हुआ। तब से निरामिष भोजन की उत्सुकता बढ़ गई थी। सो जब से वे दार्जिलिंग गये निरामिष भोजन शुरू किया था और मेरे रहने तक घर में मांस-मछली न आने दिया। मुझसे अनेक बार कहा— यदि मुझसे हो सका तो अब से मैं मांस-मछली को छुऊंगा तक नहीं। मुझे वे पसंद भी नहीं और मैं समझता हूं कि इससे हमारी आध्यात्मिक उन्नति में रुकावट पहुंचती है। मेरे गुरु ने मुझसे खास तौरपर कहा है कि आत्मा के खातिर तुम्हें मांसाहार अवश्य छोड़ देना चाहिए।

(न० जी०) मोहनदास करमचंद गांधी

श्रीमती वासंती देवी

कुछ वर्ष पूर्व मैंने स्वर्गीया रमाबाई रानडे के दर्शन का वर्णन किया था। मैंने आदर्श विधवा के रूप में उनका परिचय दिया था।

इस समय मेरे भाग्य में एक महान् वीर की विधवा के वैधव्य के आरंभ का चित्र उपस्थित करना बदा है।

वासंती देवी के साथ मेरा परिचय १९१९ से है। गाढ परिचय १९२१ में हुआ। उनकी सरलता, चातुरी और उनके अतिथि-सत्कार की बहुतेरी बातें मैंने सुनी थीं। उनका अनुभव भी ठीक ठीक हुआ था। जिस प्रकार दार्जिलिंग में देशबन्धु के साथ मेरा संबंध घनिष्ठ हुआ उसी तरह वासंती देवी के साथ भी हुआ। उनके वैधव्य में तो परिचय बहुत ही बढ़ गया है। जब से वे दार्जिलिंग से शव को ले कर कलकत्ते आई हैं तब से मैं, कह सकते हैं, कि उनके साथ ही रहा हूं। वैधव्य के बाद पहली मुलाकात उनके दामाद के घर हुई। उनके आस-पास बहुतेरी बहनें बैठी थीं। पूर्वाश्रम में तो जब मैं उनके कमरे में जाता तो खुद वही सामने आतीं और मुझे बुलातीं। वैधव्य में मुझे क्या बुलातीं? पुतली की तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनों में से मुझे उन्हें पहचानना था। एक मिनट तक तो मैं खोजता ही रहा। मांग में सिंदूर, ललाट पर कुंकुम, मुंह में पान, हाथ में चूड़ियां, और साड़ी पर लैस, हँस-मुख चेहरा — इनमें से एक भी चिह्न मैं न देखूं तो वासन्ती देवी को किस तरह पहचानूं? जहां मैंने अनुमान किया था कि वे होंगी वहां जा कर बैठ गया और गौर से मुख-मुद्रा देखी। देखना असह्य हो गया। चेहरा तो पहचान में आया। रुदन रोकना असंभव हो गया। छाती को पत्थर बना कर आश्वासन देना तो दूर ही रहा।

उनके मुख पर सदा-शोभित हास्य आज कहां था? मैंने उन्हें सान्त्वना देने, रिझाने और बातचीत कराने की अनेक कोशिशें कीं। बहुत समय के बाद मुझे कुछ सफलता हुई।

देवी जरा हँसीं।

मुझे हिम्मत हुई और मैं बोला —

'आप रो नहीं सकतीं। आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे मोना (बड़ी लड़की) को बड़ी मुश्किल से चुपकी रक्खा है। बेबी (छोटी लड़की) की हालत तो आप जानती ही हैं। सुजाता (पुत्रवधू) फूट फूट कर रोती थी, सो बड़े प्रयास से शान्त हुई है। आप दया रखिएगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।'

वीरांगना ने दृढता-पूर्वक जवाब दिया:

'मैं नहीं रोऊंगी। मुझे रोना आता ही नहीं।'

मैं इसका मर्म समझा, मुझे संतोष हुआ।

रोने से दु:ख का भार हलका हो जाता है। इस विधवा बहन को तो भार हलका नहीं करना था, उठाना था; फिर रोती कैसे?

अब मैं कैसे कह सकता हूं — 'लो चलो, हम भाई-बहन पेट भर कर रो लें और दुःख कम कर लें?'

हिन्दू विधवा दुःख की प्रतिमा है। उसने संसार के दुःख का भार अपने सिर ले लिया है। उसने दुःख को सुख बना डाला है। दुःख को धर्म बना डाला है।

वासन्ती देवी सब तरह के भोजन करती थीं। १९२० तक के समय में उनके यहां छप्पन भोग होते थे और सैकड़ों लोग भोजन करते थे। पान के बिना वे एक मिनिट नहीं रह सकती थीं। पान की डिबिया पास ही पड़ी रहती थी।

अब शृंगार-भाव का त्याग, पान का त्याग, मिष्टान्नों का त्याग, मांसमत्स्य का त्याग। केवल पति का ध्यान, परमात्मा का ध्यान।

कितनी ही बहनों से मैं प्रार्थना करता रहता हूं कि अपना शृंगार कम कर दीजिए। बहुतेरी बहनों से कहता हूं कि व्यसनों को छोड दीजिए। विरली ही छोडती है। परन्तु विधवा? जिस समय हिन्दू स्त्री विधवा होती है उसी समय उसके व्यसन और शृंगार सांप की केंचुल की तरह छूट जाते हैं। उसे न तो किसीके प्रोत्साहन की आवश्यकता है, न किसीकी सहायता की। रिवाज, तुम क्या नहीं कर सकते?

इस दुःख को सहन करना धर्म है या अधर्म? और धर्मों में मैं तो ऐसा नहीं देखा जाता। हिन्दू-धर्मशास्त्रियों ने भूल तो न की हो। वासन्ती देवी को देख कर मुझे तो इसमें भूल नहीं दिखाई देती, बल्कि धर्म की शुद्ध भावना दिखाई देती है। वैधव्य हिन्दू-धर्म का शृंगार है। धर्म का भूषण वैराग्य है, वैभव नहीं। दुनिया भले ही और कुछ कहे तो कहती रहे।

परन्तु हिन्दू-शास्त्र किस वैधव्य की स्तुति और स्वागत करता है? पन्द्रह वर्ष की मुग्धा के वैधव्य का नहीं, जो कि विवाह का अर्थ भी नहीं जानती। बाल-विधवाओं के लिए वैधव्य धर्म नहीं, अधर्म है। वासन्ती देवी को मदन खुद आ कर ललचावे तो वह भस्म हो जाय। वासन्ती देवी के शिव की तरह तीसरी आंख है। परन्तु पन्द्रह वर्ष की बालिका वैधव्य की शोभा को क्या समझ सकती है? उसके लिए तो वह अत्याचार ही है। बाल-विधवाओं की वृद्धि में मुझे हिन्दू-धर्म की अवनति दिखाई देती है। वासन्ती देवी जैसी के वैधव्य में मैं शुद्ध धर्म का पोषण देखता हूं। वैधव्य सब तरह, सब जगह, सब समय अनिवार्य सिद्धान्त नहीं है। वह उस स्त्री के लिए धर्म है जो उसकी रक्षा करती है।

रिवाज के कुवे में तैरना अच्छा है। उसमें डूबना आत्म-हत्या है।

जो बात स्त्री के संबंध में वही बात पुरुष के संबंध में होनी चाहिए। राम ने यह कर दिखाया। सती सीता का त्याग भी वे सह सके। अपने ही किये त्याग से खुद ही जले। जब से सीता गई तब से रामचन्द्र का तेज घट गया। सीता के देह का तो त्याग उन्होंने किया; पर उसे अपने हृदय की स्वामिनी बना लिया। उस दिन से उन्हें न तो शृंगार भाया न दूसरा वैभव। कर्तव्य समझ कर तटस्थता के साथ राज्य-कार्य करते हुए शान्त रहे।

जिस बात को आज वासन्ती देवी सह रही हैं, जिस में से वे अपने विलास को हटा सकती हैं वे बातें जब तक पुरुष न करेंगे तबतक हिन्दू-धर्म अधूरा है। 'एक को गुड और दूसरे को जहर' यह उलटा न्याय ईश्वर के दरबार में नहीं हो सकता। परन्तु आज हिन्दू पुरुषों ने इस ईश्वरी कानून को उलट दिया है। स्त्री के लिए वैधव्य कायम रक्खा है और अपने लिए स्मशान-भूमि में ही दूसरे विवाह की योजना करने का अधिकार!

वासन्ती देवी ने अब तक किसीके देखते आंसू की एक बूंद तक नहीं गिराई है। फिर भी उनके चेहरे पर तेज तो आ ही नहीं रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है मानों अभी बीमारी से उठी हों। यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोडा समय बाहर निकल कर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटर में तो बैठीं। पर बोलने क्यों लगीं? मैंने कितनी ही बातें चलाईं — वे सुनती रहीं। पर खुद उसमें जराय मात्र शरीक हुईं। हवाखुरी की तो, पर पछताईं। सारी रात नींद न आई। 'जो बात मेरे पति को अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनी ने की। यह क्या शोक है?' ऐसे विचारों में रात गई। भोंबल (उनका लडका) मुझे यह खबर दे गया। आज मेरा मौनवार है। मैंने कागज पर लिखा है — 'यह पागलपन हमें माताजी के सिर से निकालना होगा। हमारे प्रियतम को प्रिय लगनेवाली बहुतेरी बातें हमें उसके वियोग के बाद करनी पडती हैं। माताजी विलास के लिए मोटर में नहीं बैठी थीं, केवल आरोग्य के लिए बैठी थीं। उन्हें स्वच्छ हवा की बहुत जरूरत थी। हमें उनका बल बढाकर उनके शरीर की रक्षा करनी होगी। पिताजी के काम को चमकाने और बढाने के लिए हमें उनके शरीर की आवश्यकता है। यह माताजी से कहना।'

'माताजी ने तो मुझसे कहा था यह बात ही आपसे न कही जाय। पर मुझसे न रहा गया। अभी तो यही उचित मालूम होता है कि आप उन्हें मोटर में बैठने के लिए न कहें।' भोंबल ने कहा।

बेचारा भोंबल! किसी का लौटाया न लौटनेवाला लडका आज बकरी जैसा बन कर बैठा है! उसका कल्याण हो।

पर इस साध्वी विधवा का क्या? वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेल के कडाह में मटकता था और मुझ जैसे दूर रह कर देखनेवाले उसके दुःख की कल्पना कर के कांपते थे। सती स्त्रियो, अपने दुःख को तुम संभाल कर रखना! वह दुःख नहीं, सुख है। तुम्हारा नाम ले कर बहुतेरे पार उतर गये हैं और उतरेंगे।

वासन्ती देवी की जय हो।

(नवजीवन) मोहनदास क० गांधी

'एक क्रान्तिकारी' की तरफ से

श्रीमती वासन्ती देवी ने मुझे एक गुमनाम पत्र ला कर दिया है जो कि उन्हें 'एक क्रान्तिकारी' ने भेजा है। उससे मैं यह अंश देता हूं —

"देशबन्धु की मृत्यु क्या हुई एक महाभव्य पुरुष उठ गया। मैं उन्हें श्रीअरविंद घोष के मुकदमे के जमाने से जानता हूं और उन्हें आदर की दृष्टि से देखता हूं। वे यद्यपि हम क्रान्तिकारियों से राजनैतिक बातों में सहमत न थे तथापि हमेशा हमें अपने हृदय में स्थान देते थे। वे एक भाई की तरह हमसे प्रेम करते थे और हमें सन्मार्ग बताते थे। आज उनकी मृत्यु से हमारे शोक का पार नहीं है। वे हमेशा हमारी सहायता करते थे और हमारे प्राण सदा उनकी सेवा के लिए तैयार रहते थे। और आपको भी यह यकीन दिलाने की शायद ही आवश्यकता हो कि हमारी सेवायें-प्राण तक आपके हुक्म पर न्योछावर हैं।"

जिस अंश को मैंने छोड दिया है उसमें लेखक ने फिर से सहानुभूति का आश्वासन दिया है। यह पत्र देशबन्धु के क्रान्ति-कारी-हलचल-संबंधी विचारों का स्वयंस्फूर्त प्रमाण है। तरुण बंगाल के हृदय पर उनके अधिकार कारण यह है कि उनके दोषों के रहते हुए भी वे उनकी चिन्ता एक पिता की तरह रखते थे। वे उन्हें इसलिए प्रेम नहीं करते थे कि वे उनके साधनों को पसन्द करते थे, बल्कि इसलिए कि वे उन्हें उनसे छुडाना चाहते थे। क्या वे लोग जो कि उनके जीते जी उनकी बात न मानते थे, उनकी आत्मा की आवाज पर कान करेंगे, जो कि कहती है कि — 'भारत की मुक्ति का मार्ग हिंसा नहीं है।' क्या वे अपने विचारों की अपेक्षा उनके परिपक्व विचार पर विश्वास करेंगे?

(यं. इं.) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ़ सुदी ११, संवत् १९८२

दीर्घायु देशबन्धु

जब लोकमान्य गये तब मुझे बबई में होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। देशबन्धु के देह का जब अग्नि-संस्कार हुआ तब भी दैव ने मुझपर कृपा की, अथवा मानो पेथाल। तबतक रुक रहे जब तक मेरी यात्रा का शुरू हुआ एक भाग पूरा न हो गया, क्योंकि यदि अग्नि-संस्कार एक दिन पहले होता तो जो दृश्य मैंने कलकत्ते में देखा वह न देख पाता।

जिस तरह लोकमान्य के अवसान के समय बबई पागल हो गई थी उसी तरह देशबन्धु के समय कलकत्ता पागल हो गया था। उस समय जिस तरह अगणित स्त्री-पुरुष दर्शन करने, आंसू बहाने, प्रेमवृष्टि करने उमड़ पड़े थे उसी तरह इस समय भी हुआ। उस समय की तरह अब भी एक भी जाति या पंथ ऐसा न था जिसके लोग जमा न हुए हों। स्टेशन पर जब गाड़ी आई तब एक इंच जगह खाली न रही थी। लोकमान्य के मृत देह को कन्धा लगाने के लिए जिस तरह लोग एक-दूसरे के आगे बढ़ रहे थे उसी तरह इस समय भी अधीर थे।

दोनों समय प्रजासत्ताक राज्य हो गया था। लोग पुलिस के अधीन न थे; बल्कि पुलिस स्वेच्छा से लोगों के अधीन हो गई थी। सरकारी अमल जान-बूझ कर मुल्तवी रक्खा गया था, लोगों का अमल चल रहा था। उन दिनों लोगों ने अपना चाहा किया। जिस बात को देशबन्धु जीते जी करना चाहते थे उसे लोगों ने उनके परलोक जाने के समय कर दिखाया।

इस घटना में क्या कम पदार्थ-पाठ है? प्रेम-पाश क्या नहीं कर सकता? लोगों ने उस दिन भूख, प्यास, गरमी सब को भुला दिया था। उस कष्ट को सहने के लिए उनसे प्रार्थना नहीं करनी पड़ी थी।

छत्रपति के देहान्त के समय इस तरह जनता का समुद्र नहीं उमड़ पड़ता। सन्यासी भगवाधारी लोगों के देहान्त पर लोग ध्यान नहीं देते, अखबार लेख नहीं लिखते, न तार ही भेजे जाते हैं, परन्तु किस धर्म के अनुसार यहां छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक, हिन्दू-मुसलमान बिना बुलाये पलक मारते में एकत्र हो गये? वह राष्ट्रधर्म है। जो शख्स इस धर्म का अवलंबन करता है लोग आज उसीको धार्मिक मानने के लिए तैयार हैं। जो मनुष्य इस एक धर्म का पालन करता है उसके दोष भी वे भूल जाने के लिए तैयार हैं। इसके अन्दर रहस्य है। लोग बेवकूफी से ऐसा नहीं करते हैं। निर्दोष एक ईश्वर है। मनुष्य-मात्र के हाथों दोष हो सकता है। पर मनुष्य भी यदि पूरी तरह स्व-धर्म का पालन करे तो उसके दोष छिप जाते हैं और अन्त को स्व-धर्म का पालन करते हुए दोष क्षय होने लगते हैं।

राष्ट्र-धर्म ही आजकल धर्म हो गया है। क्योंकि उसके बिना अन्य धर्मों का पालन ही असंभव हो गया है। आज राजसत्ता सब जगह लोगों के एक एक अंग में व्याप्त हो रही है। जहां राजसत्ता लोकसत्ता है वहां लोग कुल मिलाकर सुखी हैं। जहां राजसत्ता प्रजा के प्रतिकूल है वहां लोग दुखी हैं, निःसत्व हैं। वहां वे धर्म के नाम पर अधर्म का आचरण करते हैं। क्योंकि भय के अधीन रहनेवाले मनुष्य से धर्माचरण हो ही नहीं सकता इस भय से मुक्त होना अर्थात् आत्म-दर्शन करने का पहला पाठ सीखना यही राष्ट्रधर्म है। राष्ट्र-प्रेमी हमें क्या शिक्षा दे रहे हैं? तुम चक्रवर्ती से भी मत डरो। तुम मनुष्य हो। मनुष्य का धर्म है एक-मात्र ईश्वर से डरना। उसे न तो पंचम जार्ज डरा सकते हैं न उनके एलची। लोकमान्य ने राजदण्ड का भय सर्वथा त्याग दिया था। इस कारण लोग और धर्मशास्त्री भी उन्हें पूजते थे; क्यों कि उनसे उन्हें जीवन मिलता था। देशबन्धु ने भी राजसत्ता का डर बिल्कुल छोड़ दिया था। उनके नजदीक वायसराय और दरबान दोनों एक जैसे थे। उन्होंने अन्तःचक्षु से देख लिया था कि अन्त को जाकर दोनों के अन्दर कुछ भेद नहीं है। जिस प्रकार वायसराय का डर नामर्दी है उसी तरह दरबान को डराना भी नामर्दी है। इसके अन्दर सूक्ष्म आत्म-दर्शन है। यही राष्ट्र-धर्म है। इस कारण लोग जान-अनजान में, अनिच्छा से भी, राष्ट्र-धर्म के पालन करनेवाले को पूजते हैं। लोकमान्य ब्राह्मण थे। उनका धर्म-ग्रन्थों का ज्ञान पण्डितों का मद उतारनेवाला था। परन्तु उनकी पूजा का कारण उनका वह ज्ञान न था। देशबन्धु तो ब्राह्मण न थे। वैद्यवर्ग के थे। परन्तु लोगों को उनके वर्ण की पर्वाह न थी। देशबन्धु को संस्कृत का ज्ञान न था। उन्होंने धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया था। सिर्फ उन्होंने राष्ट्र-धर्म का पालन किया था। उन्होंने निर्भयता सिद्ध कर ली थी। इस कारण शास्त्रज्ञ लोग भी झुकते थे। और ऐसे दिन उन्होंने लोगों के साथ अपने आंसू बहाये जिसे कोई भुला नहीं सकता। राष्ट्रधर्म का अर्थ है-व्यापक प्रेम। वह विश्व-प्रेम नहीं है; पर उसका बड़ा अंश है। वह प्रेम का धवलगिरि नहीं, परन्तु प्रेम का दार्जिलिंग है। वहां से धवलगिरि की सुवर्ण-कान्ति दिखाई देती है, और देखनेवाला मन में सोचता है- यदि प्रेम का दार्जिलिंग इतना सुहावना है तो यह प्रेम का धवलगिरि जो यहां से मेरे सामने जगमगा रहा है कितना सुहावना होगा? राष्ट्रप्रेम विश्वप्रेम का विरोधी नहीं, बल्कि उसका नमूना है। राष्ट्रप्रेम अन्त में मनुष्य को विश्वप्रेम के शिखर पर ले जाता है। इसलिए लोग राष्ट्र-प्रेमी की बलैया लेते हैं। लोगों ने कुटुम्ब-प्रेम का स्वाद तो चख रक्खा है। इसलिए उससे वे मोहाधीन नहीं होते। ग्राम-प्रेम को वे कुछ ही समझते हैं। परन्तु राष्ट्र-प्रेम को तो लोकमान्य या देशबन्धु ही समझते हैं। और लोग खुद भी ऐसा होना चाहते हैं, इसलिए उन्हें पूजते हैं।

देशबन्धु की उदारता दीवानी थी। लाखों रुपये कमाये और खर्चे। किसीको उन्होंने रुपया देने से इन्कार न किया। कर्ज करके भी रुपया दिया। गरीबों के मामले मुफ्त लड़े। कहते हैं कि श्रीयुत अरविन्द घोष के मुकदमे में ९ महीने खराब हुए, अपनी गांठ के रुपये खर्चे, खुद एक पाई न ली। इस उदारता में राष्ट्र प्रेम था।

मुझसे भी लड़े। पर क्या मुझे दुख देने या नीचा दिखाने के लिए? लड़े भी देश सेवा के लिए, उसीके सिलसिले में। जो वायसराय से नहीं डरता वो क्या मुझसे डरता? उनकी विचार-श्रेणी थी 'यदि सगे भाई का भी काम मुझे राष्ट्र-प्रगति के खिलाफ दिखाई दे तो मैं उसका भी विरोध करूंगा।' यही सबकी विचार-श्रेणी होनी चाहिए। हमारा विरोध सगे भाई के विरोध की तरह था। दो में से एक भी एक-दूसरे से जुदा होना नहीं चाहते थे। चाहते तो वह राष्ट्र-प्रेम की न्यूनता होती। इस कारण जुदा होते हुए भी हम नजदीक आ रहे थे। यह हमारे हृदय की परीक्षा थी। देशबन्धु इस कसौटी में पास हुए। मुझे होना बाकी है। जो प्रेम देशबन्धु के साथ मेरा था वही और साथियों के साथ निबाहना

है । यदि उसमें मैं निष्फल साबित होऊं तो मुझे परीक्षा में पास हुआ न समझिए ।

देशबन्धु की पिछले तीन-चार मास की प्रगति अद्भुत थी। उनकी नम्रता का अनुभव मुझे जो फरीदपुर से होने लगा सो विस्तार ही पाता गया । फरीदपुर का भाषण बिना विचारे नहीं लिखा गया था । वह विचारों की परिपक्वता का सुन्दर पुष्प है । उसमें भी मैंने प्रगति होती हुई देखी है । दार्जिलिंग में हद हो गई। इन पांच दिनों के संस्मरण का वर्णन करते हुए मैं थकता ही नहीं । उस समय इनके हर कार्य में, हर बात में, प्रेम ही प्रेम टपकता था । उनका आशावाद तीव्र होता जाता था । वे अपने प्रतिपक्षियों पर कटाक्ष कर सकते थे; परन्तु इन पांच दिनों में मुझे उसका कुछ भी अनुभव न हुआ । उल्टा उन्होंने जो बहुतों के संबंध में बातें कीं उनमें मैंने एक भी कडवी बात न सुनी। सर सुरेन्द्रनाथ का तो विरोध वे बराबर करते थे। फिरभी उसमें मिठास ही दिखाई दी । उनके हृदय पर भी वे विजय प्राप्त करना चाहते थे । मुझसे यही काम लेना चाहते थे । उनकी सिफारिश थी कि जितनों को मिला सको मिलाने की कोशिश करना ।

अब आगे लडाई किस प्रकार लडे, स्वराज्य-दल को क्या करना चाहिए, चरखे का क्या स्थान है, इत्यादि बातें भी पेट भर के हुई । हमने बंगाल के कार्य के लिए योजना भी तैयार की। उसपर शायद अमल भी हो; पर अमलदार कहां है ?

मैंने अपने दिल को हलका करके दार्जिलिंग छोडा था। मैं निर्भय हो गया था। अपना मार्ग, स्वराज्य का मार्ग, मुझे निश्चित दिखाई दे रहा था । अब दृष्टि-मर्यादा पर बादल घिर गये है। लोकमान्य के जाते समय मैं चिन्ताकुल हो गया था । एक से प्रार्थना करने की जगह अनेक से प्रार्थना करने की अवस्था हो गई थी। लोकमान्य से अपना दुखडा रो कर मैं उसे दूर करा सकता था। उसकी जगह मुझे अनेक के सामने दुःख रोने की बारी आई, फिर भी मैं जानता था कि वे उसे दूर नहीं कर सकते थे । मुझे उनके आंसू पोंछने का समय आ गया ।

देशबन्धु के चले जाने से मैं अधिक विपत्ति में पडा हूं । देशबन्धु क्या थे, सारा बंगाल थे । उनकी सही मुझे मिली कि चलती हुण्डी मेरे हाथ आई । यहांतक तो दोनों के वियोग का दुःख बराबर है । परन्तु लोकमान्य के जाने के समय रास्ता सीधा था । लोगों के मन में नई आशाएं थीं । अपनी शक्ति उन्हें आजमानी थी । नये प्रयोग करने थे । हिन्दू-मुसलमान एक हो गये मालूम होते थे ।

पर अब ! अब तो ऊपर आकाश और नीचे धरती । नये प्रयोग मेरे पास नहीं । हिन्दू-मुसलमान तो लडने की तैयारियां कर रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि धर्म के नाम पर राष्ट्र-धर्म को खो बैठे हैं । ब्राह्मण और अब्राह्मण भी लड रहे हैं । सरकार मान बैठी है कि अब मैं हिन्दुस्तान में मनचाहा कर सकती हूं । ऐसा प्रतीत होता है कि सविनय-भंग तो मानों दूर चला गया हो, ऐसे समय एक मामूली योद्धा का भी गमन खलता है । दश हाथवाले दास का गमन तो असह्य हो गया है ।

फिर भी मैं ठहरा आस्तिक, इससे हिम्मत नहीं हारा हूं । ईश्वर जो जी चाहे खेल खेले । उसका दुःख क्या और सुख क्या ? जो बातें अपने अधिकार में नहीं हैं वे यों बनें तो क्या और त्यों बनें तो क्या? मुझे अपने कर्तव्य का ज्ञान है। भले ही वह गलत हो । जबतक वह मुझे सच मालूम होता है तबतक यदि मैं उसपर चलूं तो मैं अपनी जिम्मेवारी से मुक्त हुआ । ऐसे तत्वज्ञान का सहारा ले कर मैं आश्वासन प्राप्त कर रहा हूं । मेरा स्वार्थ देशबन्धु के वियोग को भूलने ही नहीं देता ।

परन्तु देशबन्धु के लिए मृत्यु ही कहां है ? देशबन्धु दास का देह गया है । गुण तो मौजूद हैं । उन गुणों को यदि हम अपने अन्दर उदय करें तो देशबन्धु हम सबके अन्दर जीवित ही हैं । जिस मनुष्य ने इस संसार की सेवा की है वह मरता नहीं । राम और कृष्ण गये यह बात भी मिथ्या है । राम-कृष्ण अपने असंख्य पुजारियों के हृदय में जी रहे हैं । इसी तरह हरिश्चन्द्रादि । हरिश्चन्द्र का अर्थ उनका शरीर नहीं उनका सत्य है । वे सत्य के अनेक पुजारियों के अन्दर जीवित हैं । यही बात देशबन्धु की है । देशबन्धु का क्षणिक देह गया; उनका सेवा-भाव, उनकी उदारता, उनका देश-प्रेम, उनकी निडरता कहीं गई है ? थोडे या बहुत अंश में ये गुण समाज में बढते ही जायंगे ।

इसलिए देशबन्धु मरते हुए भी जीवित हैं । जबतक हिन्दुस्तान है तबतक देशबन्धु भी हई है । इसीसे कहते हैं 'देशबन्धु चिरजीवी' ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

मेरी अ-क्षमता

यदि मैं सहायता के अभिलाषी हर व्यक्ति को उसके इच्छानुसार सन्तुष्ट कर पाता तो इससे मेरे अभिमान को बडी ही तसल्ली होती । पर मेरी अगणतीत अक्षमता का यह नमूना लीजिए— 'यदि आप मुसलमानों से गो-वध बन्द करा के गो-रक्षा नहीं कर सकते तो फिर आपका नेतापन और महात्मापन किस मर्ज की दवा है ? जरा देखिए, अलवर के अत्याचारों के संबंध में आप किस तरह जान-बूझकर चुप हैं । और पण्डित मालवीयजी को जो निजाम सरकार ने अपनी रियासत में आने से रोक दिया है उसके संबंध में आपकी चुप्पी तो बस दण्डनीय-सी है। पण्डित मालवीयजी को आप अपना आदरणीय बडा भाई मानते हैं। उन्हें पहले दरजे का लोक-सेवक कहते हैं और खुद आपही ने उन्हें मुसलमानों के प्रति किसी प्रकार का मत्सर या वैर-भाव रखने के दोष से बरी किया है।' एक नहीं अनेक लोगों ने यह दलील पेश की है । इसमें पहली फटकार अन्त को मिली और वह 'आग धधकाने वाली आखिरी लकडी' ही साबित हुई । मेरे सामने एक तार पडा है जिसमें कहा गया है कि मैं मुसलमानों से अनुरोध करूं कि वे आगामी बकरीद पर गाय की कुर्बानी न करें । मैंने सोचा कि यह समय है कि मैं कम से कम अपनी खामोशी की कैफियत तो दे दूं । पण्डितजी-संबधी इल्जाम को तो मैं हजम कर जाने को तैयार था, हालां कि उसके लगाने वाले मेरे एक प्रिय मित्र हैं । उन्हें मेरी कीर्ति को धक्का पहुचाने का बडा डर था । उन्होंने सोचा इससे मुझे लोग मुसल्मानों से डर जाने का दोषी ठहरावेंगे और क्या क्या न कहेंगे । परन्तु मैं अपने इस विचार पर दृढ रहा कि पण्डितजी के प्रवेश-निषेध पर अपने पत्रों में कुछ न लिखूं । मुझे इस बात का जरा भी डर न था कि पण्डितजी की इससे गलतफहमी होगी । और मैं जानता था कि पण्डितजी को मेरी रक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है । दुनियवी शक्ति के द्वारा की गई तमाम निषेध-आज्ञाओं को वे पार कर जायगे । उनका तत्वज्ञान उनका जीवट है । मैंने कितने ही कठिन अवसरों पर उन्हें बहुत नजदीक से देखा है । वे ज्यों के त्यों अविचल रहे । वे अपने काम को जानते हैं और उसे करते हुए न अनुकूल समय में फूल उठते हैं न प्रतिकूल समय में विचलित होते हैं । इसलिए जब मैंने उस निषेध-आज्ञा को सुना तो पेट भर कर हँसा । राजाओं के ढंग अनोखे होते हैं । मैं जानता था कि

मेरे 'यंग इंडिया' में कुछ लिखने से श्रीमान निजाम अपने फरमान को वापस न करेंगे। यदि मेरी उनसे जान-पहचान होती तो मैं हैदराबाद के नवाब साहब को सीधा पत्र लिखता और उनसे विनय-पूर्वक कहता कि पण्डित जी के रोकने से आपकी रियासत का कोई फायदा नहीं हो सकता और इस्लाम का तो और भी नहीं। मैं तो उन्हें यह भी सलाह देता कि यदि पण्डितजी हैदराबाद जावें तो उनको अपना मिहमान बनाइएगा। और हजरत पैगम्बर तथा उनके साथियों के जीवन से ऐसी मिसालें पेश करता। परन्तु मुझे उनसे परिचय का सौभाग्य प्राप्त नहीं। और मैं जानता था कि पत्रों में लिखी बात शायद उनके कान तक भी न पहुच पावे। ऐसी अवस्था में सिवा मौजूदा मन-मुटाव को बढाने के उससे और कुछ हासिल न होता। और यदि मैं उस मनमुटाव को घटा नहीं सकता तो उसे बढाना भी नहीं चाहता था, सो मैंने चुप रहना ही उचित समझा। और इस समय जो मैं लिख रहा हूं उसका उद्देश उन हिन्दुओं को, जो कि मेरी बात सुनना चाहते हों, यह सलाह देना है कि वे इस घटना पर चिढ न उठें और इसे इस्लाम या मुसल्मानों के खिलाफ शिकायत करने का साधन न बनावें। इस निषेध-आज्ञा का जिम्मेवार निजाम साहब मुसल्मान-पन नहीं है। मनमानी कार्रवाई स्वेच्छाचार का एक गुण है— फिर वह हिन्दू हो या मुसल्मान। देशी राज्यों को नष्ट करने का प्रयत्न न करते हुए हमें उनकी मनमानी तरंगों को रोकने का उपाय अवश्य सोचना चाहिए। वह यह है कि प्रबुद्ध और प्रबल लोक-मत तैयार किया जाय। जिस तरह ब्रिटिश भारत में यह कार्य आरम्भ हुआ है उसी तरह वहां भी होना चाहिए। वहां देशी-राज्यों से स्वभावतः ज्यादह आजादी है; क्योंकि वहां का शासन-कार्य सीधा पार्लियामेंट के द्वारा होता है, देशी-राज्यों की तरह सम्राट् के माण्डलिकों के द्वारा नहीं। इस कारण वे ब्रिटिश प्रणाली के दोष तो अपने यहां ले लेते हैं; पर सीधा ब्रिटिश शासन अपने लिए जो खिडकियां रख लेता है उसे वे नहीं ले पाते। इसलिए भारत के देशी-राज्यों में सुव्यवस्था का आधार रहता है ज्यादह नर राजा के चरित्र और लहर पर— बनिस्बत शासन-विधान के या यों कहें कि देशी-राज्यों की सरकार के नियम-विधानों के। इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि देशी-राज्यों में सच्चा सुधार तभी हो सकता है जब कि ब्रिटिश भारत में लोगों को सुव्यवस्थित शक्ति के द्वारा प्राप्त आजादी के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के ठण्डे नियंत्रण में कम से कम दस्तन्दाजी तो हो। पर इसलिए यह आवश्यक नहीं कि सब पत्रवाले अपना मुंह बंद कर लें। राज्यों के दोषों का उल्लेख पत्र-संपादन का एक आवश्यक अंग है और वह लोक-मत उत्पन्न करने का एक साधन है। पर हां, मेरा क्षेत्र बहुत मर्यादित है। मैंने पत्रों का सम्पादन-भार पत्र-संचालन के लिए नहीं ग्रहण किया है, बल्कि जिसे मैंने अपने जीवन-कार्य समझा है उसकी सहायता के लिए। मेरा जीवन-कार्य है — अत्यन्त संयत उपदेश और संयमपूर्ण जीवन के द्वारा सत्याग्रह के अद्भुत अस्त्र का व्यवहार सिखाना, जो कि सीधा सत्य और अहिंसा से फलित होनेवाला सिद्धान्त है। मैं यह प्रत्यक्ष दिखलाने के लिए उत्सुक हूं, नहीं अधीर हूं कि अहिंसा के सिवा जीवन की कितनी ही बुराइयों की कोई दवा नहीं है। यह एक ऐसा प्रबल द्रावक रस है कि जिसमें वज्र-तिवज्र हृदय भी पानी-पानी हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिए मुझे अपनी श्रद्धा की रक्षा के लिए क्रोध या मत्सर से प्रेरित हो कर कुछ न लिखना चाहिए। मुझे यों ही कोई बात न लिखनी चाहिए। मुझे केवल लोगों के मनोविकारों को उद्धत करने के लिए कुछ न लिखना चाहिए। पाठकों को इस बात की कल्पना नहीं हो सकती कि हर सप्ताह विषयों और शब्दों के चुनाव में मुझे कितना संयम से काम लेना पडता है। यह मेरे लिए खासी तालीम है। इसके द्वारा मुझे अपने अन्तःकरण में झांकने और अपनी कमजोरियों को देखने का अवसर मिलता है। अक्सर मेरा मिथ्याभिमान मुझे तेज बात लिखने की ओर क्रोध का विशेषण लगाने की प्रेरणा करता है। यह एक भयंकर अग्नि-परीक्षा है, पर साथ ही इन गन्दगियों को दूर करने का बढिया बुहारा भी है। पाठक यं. इं. के पृष्ठों को सु-लिखित देखते हैं, और रोमां रोलां के साथ शायद कहना भी चाहते हों कि 'वाह! बूढा क्या ही बढिया आदमी होगा।' अच्छा तो दुनिया इस बात को जान ले कि यह बढियापन बडी चिन्ता और प्रार्थना के साथ लाया गया है। और यदि इसे कुछ लोगों ने, जिन की रायों को मैं अपने हृदय में रखता हूं, स्वीकार किया है तो पाठक इस बात को समझ रक्खें कि जब यह बढियापन बिल्कुल एक स्वाभाविक वस्तु हो जायगी अर्थात् जब मैं किसी भी बुराई के लिए अक्षम हो जाऊंगा और जब किसी तरह की कठोरता या मगरूरी, फिर वह क्षण-भर के ही लिए क्यों न हो, मेरे विचार-संसार में न रह जायगी, तब और तभी मेरी अहिंसा दुनिया के तमाम लोगों के हृदयों को द्रवित कर देगी। मैंने अपने या पाठकों के सामने कोई असंभव आदर्श या अग्नि-परीक्षा नहीं रख दी है। यह तो मनुष्य का विशेषाधिकार और जन्मसिद्ध अधिकार है। हमने उस स्वर्ग को खो दिया है; पर उसे फिर प्राप्त कर सकते हैं। यदि इसमें बहुत समय लगता है तो वह तो सारे मन्वन्तर का एक अणु-मात्र है। गीता में भगवान् कृष्ण ने यह कह कर कि हमारे करोडों दिन ब्रह्मा के सिर्फ एक दिन के बराबर है, इसी बात को प्रकट किया है। इसलिए हमें चाहिए कि हम अधीर न हों और अपनी कमजोरी के कारण यह न ख्याल करें कि अहिंसा दिमाग की गरमी का चिन्ह है। नहीं — यह बात नहीं है।

पर अब मुझे यह लेख जल्दी समाप्त करना चाहिए। अब पाठक समझ गये होंगे कि मैं क्यों अलवर के विषय में चुप था। मेरे पास इतना ब्योरा नहीं है कि कुछ लिखूं। मेरी बात या लेख, पर निजाम साहब की तरह अलवर महाराज भी तिरस्कार के साथ हंस सकते हैं। अबतक जो बातें प्रकाशित हुई हैं वे यदि सच हैं तो वे उसे दुहेरी छली बायरवाही ही समझना चाहिए। पर मैं जानता हूं कि फिलहाल मेरे पास इसकी कोई दवा नहीं है। इन भीषण आरोपों के संबंध में कम से कम उत्तम खुली जांच कराने के निमित्त पत्र वाले जो उद्योग कर रहे हैं उसे मैं आदर की दृष्टि से देख रहा हूं। मैं पण्डितजी की राज-नीति-पूर्ण कार्रवाई को भी धीरे धीरे कदम बढाते देख रहा हू। तब फिर मेरे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? जो सज्जन मेरे पास नुस्खे के लिए आते हैं वे इस बात को जान लें कि मैं कोई अमोघ कविराज नहीं हूं और न मेरे पास भारी औषध-भण्डार ही है। मैं तो एक टटोलते हुए जानेवाला विशेषज्ञ हूं और मेरी छोटीसी जेब में मुश्किल से दो रसायन हैं जो कि एक दूसरे से भिन्न नहीं को सकतीं। और वह विशेषज्ञ फिलहाल इन बुराइयों को दूर करने की अपनी अक्षमता को स्वीकार करता है।

और गो-प्रेमियों को तो मैंने पहले ही कह दिया है कि अब मैं हिन्दुओं और मुसल्मानों पर अपना प्रभाव रखने का कोई दावा नहीं करता जैसा कि कुछ समय पहले करता था। जबतक मैं उसे पुन: प्राप्त न कर लूं गो-माता अपने इस बच्चे को माफ कर देगी। उसके प्राण के साथ ही मेरा प्राण भी जबमी होता है। वह जानती

है कि मैं उसके साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। पर यदि उसके दूसरे भक्त नहीं समझते हैं तो वह अवश्य मेरी अक्षमता को समझती है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

देशबन्धु

गत ९ जून को जब दार्जिलिंग छोड़ा तब किसे खबर थी कि १६ को देशबन्धु के देहान्त का तार मिलेगा? हर सोमवार को उन्हें बुखार आता, परन्तु मंगलवार को वह अदृश्य हो जाता। हमारे दार्जिलिंग जाने के अगले सोमवार को भी ज्वर आया था और मामूल की तरह उतर गया था। हम वहां रहे उन दिनों में तो देशबन्धु हमारे साथ घूमने निकलते। शनिवार को उन पादरिन बहनों की सभा में गांधीजी का भाषण हुआ। उसमें वे भी गये थे। रास्ते में एक ऊंची टेकड़ी पड़ती थी। उसपर वे आराम से चढ़ गये थे। लौटते समय गांधीजी एक तरफ गये देशबन्धु और हम दूसरी तरफ। 'रिक्षा' साथ ही थी–यदि थकावट मालूम हो तो बैठ जायं। एक ऊंची चढ़ाई आई। वे रिक्षा में बैठे, पर क्या देखते हैं कि एक बड़ा-सा पत्थर रास्ता रोके पड़ा है। दोनो तरफ जाने का रास्ता न था। अब क्या करें? निश्चय किया कि रिक्षा को पत्थर के ऊपर से अधर में उठा उस पार ले जावें। 'रिक्षा' वाले भूतियों ने इनकार कर दिया। तब देशबन्धु ने कहा, चलो हम दोनो भी मदद करेंगे। तब वे तैयार हुए। हमने बड़ी मुश्किल से रिक्षा को उठाकर दूसरे पार रक्खा। इतने बल का परिचय देनेवाले और उसके बाद दो मील चलनेवाले देशबन्धु का देहान्त आठ ही दिन में हो जायगा–यह ख्याल किसे स्वप्न में भी आया होगा!

हम मंगलवार को विदा होने वाले थे। सोमवार रात को उन्हें हाथ-पिण्ड भारी मालूम होने लगा और बुखार आया। बुखार आने पर उनका देह तड़पने लगता। गांधीजी उनका बदन दबाने लगे। कुछ देर के बाद मैंने अनुरोध किया कि अब मुझे दबाने दीजिए। तब देशबन्धु हंसते हंसते कहते हैं–"हां, अब मुझे परीक्षा करनी पड़ेगी कि देखें कौन बढ़ जाता है। मैं समझता हूं अपरिवर्तन-वादियों में सबसे बढ़िया पैर और बदन दबाने वाले हैं मणिलाल कोठारी। हजरत कहते हैं–'मेरे प्राण ले लीजिए, वोट नहीं!'" ज्वर तो जोर से चढ़ रही थी परन्तु श्री मणिलाल का पक्षनिष्ठा का जिक्र करके खूब हंसे और सबको खूब हंसाया। शरीर में असह्य वेदना होती; परन्तु आस-पास वालों को हंसकर और हंसाकर उसे भुला देते। मंगलवार को यह जोर फिर आकर चला गया था। गांधीजी बिछौने में सामने ही थे। गांधीजी को देखकर बहुतेरे लोग उनके छोटे से कमरे में आते। उनपर वे बिगड़ते जरा नहीं–हंसते हंसते उन्हें अपने पास आने देते और गांधीजी से कहते 'ये भक्त आये हैं। दीजिए न बेचारों को पुण्य।' उस सुबह गांधीजी के बहाने बहुतेरे रुपये आये। देशबन्धु कहते हैं–'मेरे दरवाजे आकर आपने कमाये हैं। मुझे कमीशन मिलना चाहिए।'

गांधीजी–'आपका कमीशन यह फूलों का ढेर।' 'आखिर बनिये न!' यह कह कर देशबन्धु ने फिर अपने अट्टहास्य से घर गुंजा दिया। किसे सपने में भी पता था कि आठ ही दिन में यह अट्टहास्य हिमालय की शांति में मिल जायगा, और लाखों की प्रेम पुष्पांजलि ले कर कैलास को सिधारेगा? खिदिरपुर में उनके चेहरे पर बीमारी दिखाई देती थी। [illegible] में उनके चेहरे पर लाल नजर आती [illegible] उनकी बहन जो दो महीने से उनके साथ थी उनके स्वास्थ्य के विषय में निश्चिंत होकर कलकत्ते लौट आई थीं। पर इस हफ्ता बुखार उनको सोमवार के बदले रविवार को आया। और बड़े जोर का आया। सोमवार को न उतरा। सोमवार को वे अपने गुरु के पास जाने की बातें करने लगे। 'मुझे अपने गुरु के पास पबना न ले जाओगे?' उन्हें मानों पहले से अगाही हो चुकी थी। बारबार कहते थे मुझे भोला बुलाता है। भोला देशबन्धु का एक छोटा भाई था। और दार्जिलिंग में कोई २० साल पहले गुजरा था। सारा दिन गुरु के १, ४ मंत्र का रटन करते रहे। इस रटन का अर्थ तो उनके स्वजन उनके देहान्त के बाद ही समझे। मंगलवार सुबह यह रटन बन्द हुआ। शरीर ठण्डा पड़ता गया, वाचा भी बन्द हो गई, तब सब घबड़ाये, डाक्टरों के लिए तार दिये, पांच बजे लीला समाप्त हो गई। दूसरे दिन दार्जिलिंग से उनकी शव-यात्रा निकली। गवर्नर ने रेल्वे कंपनी को हुक्म दिया कि शव को ले जाने का पूरा पूरा इन्तजाम रक्खा जाय। सैकड़ों अधिकारी और मित्र एकत्र हुए। आचार्य जगदीशचन्द्र बसु पागल की तरह रोये। परन्तु तपस्विनी बासंती देवी ने अपने शोक को अपने हृदय में दबा रक्खा, हृदय को वज्र बना लिया और दार्जिलिंग छोड़ने के पहले बच्चों को इकट्ठा करके ईश्वरोपासना की–

> तुमि बन्धु, तुमि नाथ, निशिदिन तुमि आमार;
> तुमि सुख, तुमि शांति, तुमि हे अमृतपाथार[1]
> तुमि तो आनंद लोक, जुड़ाओ[2] प्राण, नाशो शोक,
> तापहरण तोमार चरण, असीम शरण दीन जनार।[3]

देशबन्धु हमेशा अपने सिरहाने राधास्वामी मत की एक पुस्तक रखते थे। मैंने एक बार एकान्त में भजन करते हुए भी देखा था। उनकी सरलता के दर्शन तो मुझे दार्जिलिंग ही में हुए। इससे पहले उनसे बहुत देर तक बातें करने का अवसर न मिला था। कितनी ही बार उनके सिंह-सदृश प्रतापी मुख के सामने जाकर बातें करने की हिम्मत भी न होती थी। परन्तु दार्जिलिंग में तो उन्होंने अपने बिछौने के पास बुलाकर मुझसे बहुतेरी बातें कीं 'कहो तो भला कहां कहां हो आये! गांधीजी का स्वागत-सत्कार सब जगह अच्छी तरह से हुआ न? ढाका में दोनों दल वालों के झगड़े के कारण उनकी आव-भगत अच्छी नहीं हुई यह मुझे मालूम हो गया है! मैं सब बातों की तलाश रखता हूं। पबना में हमारे गुरु से मिले थे? गांधीजी के साथ उनकी कुछ बातें हुईं?'

'नहीं, वे तो मौन ही रहे।'

'तभी गांधीजी पर कोई छाप न पड़ी। परन्तु इस मौन ही में सारी बात-चीत थी। मैं कहता हूं, किस तरह उनके समागम में आया। कीर्तन में जाने का मुझे शौक है। जेल से छूटने के बाद एक बार मैं पबना गया। इन गुरु के आश्रम में कीर्तन सुनने गया। एक दो दिन तक तो उन्होंने बात तक न की। एक दिन बातें हुईं। यही कहो न कि उन्होंने मेरे हृदय पर 'सर्च-लाईट' डाली। अन्तर्यामी की तरह वे मुझे जान गये और उनकी तरफ अद्भुत आकर्षण मेरा हुआ। दूसरे दिन मैंने मंत्र दीक्षा ली। मैंने पहले राधास्वामी मत के विषय में सुन रक्खा था, पर उसका कुछ असर मेरे दिल पर न हुआ था। उनको देखकर मेरी अन्तर्दृष्टि खुल गई।

बंगाल के युवकों के त्याग की बात निकली। खुद ही इस त्याग को उन्होंने पराकाष्ठा को पहुंचा दिया था, इसलिए उन्हें मानों

---

१ अमृत-सागर २ शान्त करो ३ दीन-जन के।

यह मामूली बात मालूम हुई और कहने लगे — 'हां, त्याग तो है; परन्तु सब लोग अलग अलग दिशाओं में प्रयत्न करते है, सबको एक दूसरे के प्रति अविश्वास और ईर्ष्या है, इसका क्या इलाज ? मै समझता हु यह अविश्वास हिंसा-नीति का ही फल है । महात्माजी बंगाल में ही रह कर सबको एकत्र करें तो क्या अच्छा हो ! महात्माजी और मै सब से मिलें, सबको एक लक्ष्य के लिए एकाग्र करें ।' अहिंसा-नीति की तात्विक स्वीकृति उनके एक एक वाक्य से टपकती थी ।

फिर बंगाल के अनेक लोगों के सबध में बातें कीं — आश्चर्य-जनक निर्मल भाव से बातें कीं । गांधीजी को दो दिन रहना था । उन्होंने तथा वासंती देवी ने अनेक तार भेज कर उनका कार्यक्रम बदलवाया और उन्हे तीन दिन ज्यादह वहां रक्खा । तब गांधीजी ने उनसे कहा कि बंगाल में खादी की बुनियाद को पुख्ता कर दीजिए । और यह तय पाया कि इसके लिए देशबन्धु और सतीश बाबू मिलकर योजना करें । गांधीजी ने पूछा — सतीश बाबू के रहने का प्रबन्ध कहां करें ? — तुरंत उत्तर मिला — 'हमारे ही यहां' गांधीजी — 'फिर तो भीड हो जायगी । एक इंच जगह खाली नहीं रही है ।' 'भीड कैसी ? मै एक कमरा कहिए तो खाली कराये देता हूं । नहीं तो हम सब के साथ वेभी रहेंगे ।' शाम को सतीश बाबू को जरा सरदी मालूम होती थी । वे नीचे बैठे थे । उन्हें अपना गरम कोट चाहिए था । देशबन्धु खुद ही ऊपर गये, मुझसे कोट तलाश करा के खुद ही वहां ले गये । रात को मुझसे कहते हैं — 'हमारे पास पलग ज्यादह नहीं है, मेरा यह पलंग सतीश बाबू के कमरे में पहुंचा दो । मै तो जमीन पर भी सो सकता हूं ।' सारा दिन बिछौने पर कटता था; फिर भी मिहमान के लिए अपना पलंग पहुचाने की कितनी उत्सुकता ! परन्तु यह अतिथि-सत्कार उनके लिए प्रकृति-सिद्ध था । आतिथ्य की बातें करते हुए एक दिन गांधीजी से कहा — कोई मिहमान हमारे दरवाजे से लौट नहीं सकता । मेरे एक बडदादा का किस्सा सुनने लायक है । उनका हुक्म था कि चौबीसों घण्टे दरवाजा खुला रहे और चौबीसों घण्टे आनेवालों का आगत-स्वागत होना चाहिए । मेरी दादी को बहुत बार सोने तक का समय न मिलता था । कभी कभी उनका जी ऊब उठता । एक बार हमारे दादा इस बात की परीक्षा करने के लिए कि उनके हुक्म की पाबन्दी बराबर होती है या नहीं, परगांव चले गये । कोई दो बजे रात को साधु के वेश में घर आये और वहां ठहरना चाहा । दादी बेचारी को उसी समय सोने की फुरसत मिली थी । उसने कहा — 'दो बजे भी मुए मिहमान !' 'मुआ' शब्द सुनते ही बूढे को जो गुस्सा चढा तो ५ साल तक घर न आये ! हमारे पूर्वजों का अतिथि-सत्कार ऐसा था ! उनके बाप-दादों की उदारता भी असीम थी । खुद जिस तरह लाखों कमाये, लाखों खर्चे फिर भी दो लाख का कर्ज सिर पर रख गये इसी तरह उनके पिता भी ६७ हजार कर्ज छोड गये थे । पिता का कर्ज किस तरह चुकाया, इसका इतिहास बडा प्रेम-शौर्य-अंकित है । १८९३ ईसवी में विलायत से आकर वकालत शुरू की । कठिनाइयों की हद न थी । पिता का ऋण था ६७ हजार का । पिता तो दिवालिया हो चुके थे । पितृभक्त पुत्र १५ साल तक बडी कसरतों से काम चला कर रुपया जोडता रहा । और एक दिन बाबू सुरेन्द्रनाथ मल्लिक को चिठ्ठी लिखी कि आपके स्व० पिताजी ने मेरे स्व० पिता को जो कर्ज दिया था उसे मै आज ईश्वर-कृपा से उतारने में समर्थ हो रहा हूं ।' सुरेन्द्र मल्लिक अवाक् रह गये । कर्ज की मीयाद तो रही न थी । किसीने उनसे तकाजा भी नहीं किया था । सर लारेन्स जेकिन्स उस समय कलकत्ता हाईकोर्ट के जज थे । और कहते हैं कि हाईकोर्ट मे उन्होंने इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए कहा था कि 'इतिहास में ऐसे उदाहरण विरले ही है ।' किसी बात में उनके पास मध्य मार्ग न था । वे हर बात में सिरे पर पहुंचते थे । इस तरह पितृभक्ति की पराकाष्ठा दिखाई, वैभव-काल में राजा को चकित करने वाली शान से रहे और अन्त को गोपीचन्द की तरह निमिष-मात्र में सारे वैभव का त्याग कर दिया ।

लाखों पुजारियों के 'हरि बोलो' 'हरि बोलो' की धुन में उनकी शवयात्रा बुधवार को निकली । शव के आगे फुलवाडी में चरखा जा रहा था और आस-पास फूलों के मोटे अक्षरों में लिखा था — 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।' यही मंत्र मानों उस दिन उनके क्षणिक शरीर को पंचमहाभूत मे मिलाने वाली अग्नि ने सबके हृदय में अंकित कर दिया था ।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

अखिल भारत-स्मारक

मुझ से कहा गया है कि जिस तरह मैंने बंगाल के मित्रों की सलाह से अखिल बंगाल-देशबन्धु-स्मारक का श्रीगणेश किया है उसी तरह अखिल भारत-स्मारक की भी योजना कीजिए । मैं पाठकों को यकीन दिलाता हूं कि यह बात मेरे ध्यान के बाहर बिलकुल नहीं रही है । मै अपने उन मित्रों से जो यहां हैं सलाह-मशवरा कर रहा हूं । पर अभीतक हम कोई सूत्र तैयार नहीं कर पाये हैं । अखिल बंगाल-स्मारक के निर्णय में कोई कठिनाई न थी । देशबन्धु ट्रस्टडीड ने हमारे लिए ध्रुव-तारा का काम दे दिया । परन्तु अखिल-भारत-स्मारक इतनी आसान बात नहीं है । देरी अनिवार्य है । संभव है कि इस अंक के प्रकाशित होने तक किसी निर्णय पर पहुंच जायं । इसमें रत्ती भर शक नहीं कि देशबन्धु का अखिल-भारत-स्मारक अवश्य होना चाहिए । देश के हर कोने कोने से जो शोक-सन्देश आये हैं वे देशबन्धु की सार्वत्रिक लोकप्रियता के सार्वत्रिक प्रमाण हैं ।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

ाग-शास्त्र'

वार्षिक मूल्य ४)
छ मास का ,, २)
एक प्रति का ,,)
विदेशों के लिए ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, आषाढ बदी ४, संवत् १९८२ गुरुवार, ९ जुलाई, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

देशबन्धु की महायात्रा

शास्त्रों में कहा है कि जिस प्रकार गृहस्थ अपने गृह के जीर्ण होने पर नये गृह में प्रवेश करता है उसी प्रकार देहस्थ आत्मा एक देह के जीर्ण होने पर उसका त्याग करता है दूसरा नया तैयार करती है और उसमें रहती है। पुराना टूटा-फूटा मकान भी जिस तरह सहवास के कारण छोडना अच्छा नहीं लगता उसी तरह जीव को भी इस देह का सहवास होने के कारण उसे छोडना अच्छा नहीं लगता। फिर भले ही पैर फूल कर खम्भे बन गये हों, [illegible] हड्डियां भर रह गई हों, अथवा गला रुंधाता हो। फिर भी नया घर बन जाने पर पुराने को हम भूल जाते हैं। उसी प्रकार जीव को नया घर मिल जाने पर पुराने घर की याद तक नहीं रहती। ऐसी यह मृत्यु और जन्म का फल है। इस स्थिति में भय और शोक के लिए कारण ही कहां है? मौत को मौत न समझते हुए महायात्रा समझना अधिक मौजूं है।

इस यात्रा में यदि हमें देशबन्धु की आत्मा को शान्ति दिलाना हो तो हमारे पास एक ही इलाज है। उनके तमाम सद्गुणों को हम अपने अन्दर पैदा करें। कितने ही सद्गुण तो अवश्य पैदा कर सकते हैं। उनके सदृश अंगरेजी चाहे हमें न आ सके, उनकी तरह वकील हम सब न हो सकें, धारासभा में जाने की शक्ति उनके सदृश हमारे पास न हो, पर हमारे अन्दर उनके जैसा देश-प्रेम तो हो सकता है। उनके बराबर उदारता हम सीख सकते हैं। उनके बराबर धन हम चाहें न दे सकें, परन्तु जो यथाशक्ति देते हैं उन्होंने बहुत-कुछ दे दिया। विधवा के एक तांबे के छल्ले की कीमत महाराज के करोडों में से दिये हजार की कीमत से ज्यादह है। देशबन्धु ने खादी पहनने के बाद फिर खानगी में या बाहर उसका त्याग नहीं किया। क्या हम खादी पहनेंगे? देशबन्धु ने महीन खादी कभी न चाही। उन्होंने तो मोटी खादी को ही पसंद किया था। देशबन्धु ने कातने का प्रयत्न किया। जिन्होंने कुछ नहीं किया क्या वे अब करेंगे? (नवजीवन) मो० क० गांधी

एक खामोश कार्यकर्ता

आचार्य सुशील रुद्र का देहान्त गत ३० जून को हो गया। वे मेरे एक आदरणीय मित्र और खामोश समाज-सेवी थे। उनकी मृत्यु से मुझे जो दुःख हुआ है उसमें पाठक मेरा साथ दें। भारत की मुख्य बीमारी है राजनैतिक गुलामी। इसलिए वह उन्हींको मानता है जो [illegible] से दूर करने के लिए खुले आम सरकार से लडाई लडते हैं, [illegible] कि अपनी जल और थल सेना तथा धन-बल और कूट-नीति के द्वारा अपनी मजबूत मोर्चाबंदी कर ली है। इससे स्वभावतः उसे उन कार्यकर्ताओं का पता नहीं रहता जो निःस्वार्थ होते हैं, जो जीवन के दूसरे विभागों में जो कि राज-नीति से कम उपयोगी नहीं होते हैं, अपनेको खपा देते हैं। सेंट स्टीफन्स कालेज, देहली, के प्रिन्सिपाल सुशील-कुमार रुद्र ऐसे ही विनीत कार्यकर्ता थे। वे पहले दरजे के शिक्षा-शास्त्री थे। प्रिन्सिपाल के नाते वे चारों ओर लोकप्रिय हो गये थे। उनके और उनके विद्यार्थियों के दरम्यान एक किस्म का आध्यात्मिक संबंध था। यद्यपि वे ईसाई थे, तथापि वे अपने हृदय में हिन्दू-धर्म और इस्लाम के लिए भी जगह रखते थे। इन्हें वे बडे आदर की दृष्टि से देखते थे। उनका ईसाई धर्म औरों से फटक कर अलग रहने वाला न था, जो अकेले ईसामसीह को दुनिया का तारनहार न मानता हो उसके सर्वनाश की दुहाई देने वाला था। अपने धर्म पर दृढ रहते हुए भी वे औरों का सहन करते थे। वे राजनीति के बडे तेज और चिन्ताशील स्वाध्यायी थे। अग्रगामी कहे जानेवाले लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति की कवायद जहां वे न दिखाते थे तहां उसे वे छिपाते भी न थे। जबसे—१९१५ से—मैं अफ्रीका से लौटा मैं जब कभी देहली जाता उन्हींका अतिथि होता। रौलट कानून के सिलसिले में जब तक मैंने सत्याग्रह नहीं छेडा तब तक यह कार्य निर्विघ्न जारी रहा। ऊंचे हलकों में उनके कितने ही अंगरेज मित्र थे। एक पूरे अंगरेजी मिशन से उनका संबंध था। अपने कालेज के वे पहले ही हिन्दुस्तानी प्रिन्सिपाल थे। इसलिए मेरे दिल ने कहा कि मेरा उनके साथ समागम रहने और उनके घर में ठहरने से शायद लोगों को यह गलत खयाल हो कि मेरा उनका मतैक्य है और उनके साथियों को अनावश्यक संकट का सामना करना पडे। इसलिए मैंने दूसरी जगह ठहरना चाहा। उनका जवाब अपने ढंग का था—'मेरा धर्म लोगों के अनुमान से अधिक गहरा है। मेरे कुछ मत तो मेरे जीवन के घनिष्ठ अंग हैं। वे गहरे और दीर्घ काल के मनन और प्रार्थना के बाद निश्चित हुए हैं। मेरे [illegible] मित्र उन्हें जानते हैं। यदि अपने सम्माननीय मित्र और अतिथि के रूप में मैं आपको अपने घर में रक्खूं तो वे इसका

गलत अर्थ नहीं कर सकते । और यदि कभी मुझे इन दो बातों में से कि अंगरेजों के अन्दर जो कुछ मेरा प्रभाव है वह चला जाय या आप किसी एक को चुनना पडे तो मैं जानता हूं कि, मैं किस चीज को पसंद करूंगा । आप मेरे घर को नहीं छोड सकते ।' तब मैंने कहा–'लेकिन मुझसे तो हर किस्म के लोग मिलने के लिए आते हैं । आप अपने मकान को सराय तो बना नहीं सकते ।' उन्होंने उत्तर दिया–'सच पूछो तो मुझे यह सब अच्छा मालूम होता है । आपके मित्रों का आना-जाना मुझे पसंद है । यह देख कर मुझे आनन्द होता है कि आपको अपने मकान में ठहरा कर मेरे हाथों कुछ देश-सेवा हो रही है ।' पाठकों को शायद मालूम न हो कि खिलाफत के दावे को प्रत्यक्ष रूप देने के लिए जो पत्र मैंने वाइसराय को लिखा था उसका विचार और मसविदा प्रिन्सिपाल रुद्र के मकान मे तैयार हुआ था । वे तथा चार्ली एण्डरूज उसमें सुधार सुझाने वाले थे । उन्हींके घर की छांह में बैठ कर असहयोग की कल्पना उत्पन्न और प्रवर्तित हुई । मौलानाओं, दूसरे मुसल्मानों तथा अन्य मित्रों और मेरे बीच जो खानगी सलाह-मशवरा हुआ उसकी कारंवाई को वे बडी दिलचस्पी के साथ चुपचाप देखते थे । उनके तमाम कार्य धर्म-भाव से प्रेरित होते थे । ऐसी हालत में दुनियवी सत्ता छिन जाने का कोई डर न था —तथापि वही धर्म-भाव उन्हें सांसारिक सत्ता के अस्तित्व और उपयोग तथा मित्रता के मूल्य को समझने में सहायक होता था । जिस धार्मिक भाव से मनुष्य को विचार और आचार के सुंदर मेल का यथार्थ ज्ञान होता है उसकी सत्यता को उन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया था । आचार्य रुद्र ने अपनी ओर इतने उच्च-चरित्र लोगों को आकर्षित किया था जिनके कि सहवास की इच्छा किसीको हो सकती है । बहुत लोग नहीं जानते हैं कि श्री सी. एफ. एन्ड्रयूज हमें प्रिन्सिपाल रुद्र के ही बदौलत प्राप्त हुए हैं । वे जुडे भाई जैसे थे । उनका स्नेह आदर्श मित्रता के अध्ययन का विषय था । प्रिन्सिपाल रुद्र अपने पीछे दो लडके और एक लडकी को छोड गये है । सब वयस्क हैं और अपने काम में लगे हुए हैं । वे जानते हैं कि उनके शोक में उनके उच्च हृदय पिता के कितने ही मित्र शरीक हैं ।

दो दिक्कतें

एक प्रसिद्ध व्यक्ति ने हम दोनों के एक दोस्त के मार्फत नीचे लिखे सवाल मुझे भिजवाये हैं कि मैं यं० इं० में उनका जवाब दूं—

१. आप मानते हैं कि अछूतपन अकेले हिन्दू-धर्म पर ही नहीं बल्कि सारी आदम-जाद पर एक धब्बा है । तब फिर आप उसके सुधारकों का दायरा सिर्फ हिन्दुओं तक ही महदूद क्यों रखते हैं ? हिन्दुओं की तरह मुसल्मान भी उसके सुधारक क्यों न बनें ?

२. आप मुतवातिर हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर जोर देते हैं । पर क्या आप मेहरबानी कर के यह बतावेंगे कि अपने इस्लाम या मुसल्मानों के लिए प्रत्यक्ष काम क्या किया है ?

पहले सवाल के बारे में तो, यद्यपि अछूतपन का पाप अकेले हिन्दू-समाज पर ही कलंक नहीं है सारी मनुष्य-जाति पर है, तो भी यह एक ऐसा सवाल है जिसे हिन्दू-धर्म से संबंध रखने वाले अन्य सवालों की तरह खुद हिन्दुओं को ही हल करना चाहिए । मिसाल के तौर पर वेश्यागामियों के सवाल को ही लीजिए । उनकी हस्ती कोई ऐसी-वैसी बुराई नहीं है । वह भी मनुष्य-जाति पर एक लांछन है । पर कोई अहिन्दू उनके लिए आगे कदम बढाने का इरादा नहीं करता—उस आशय में जिस आशय में कि हिन्दू कर रहे हैं । कारण स्पष्ट है । इन बुराइयों की दूरी भीतरी सुधार के द्वारा होनी चाहिए — बाहर से जबरदस्ती लाद कर नहीं । और यह काम अकेले हिन्दू ही कर सकते हैं । हां, मुसल्मान, ईसाई तथा अन्य अहिन्दू सज्जन हिन्दू-धर्म की और बुराइयों की तरह उसपर भी टीका-टिप्पणी शौक से करें । वे सुधारकों को अपनी नैतिक सहायता भी दे सकते हैं । परन्तु यदि वे इससे आगे बढना चाहेंगे तो अपने ऊपर हिन्दू-धर्म के लिए कुछ बंदिशें बांधने का इल्जाम मोल लिये बिना वे ऐसा न कर सकेंगे ।

दूसरे इल्जाम के संबध में, मुझे सिर्फ उसका उल्लेख करके ही सब्र रखना होगा । औचित्य का भंग किये बिना मैं उसका उत्तर नहीं दे सकता । यदि मुझे मुसल्मानों के नजदीक यह साबित करना हो कि मैंने एकता के लिए प्रत्यक्ष क्या काम किया है तो इससे यही पाया जाता है कि मैंने कुछ नहीं किया है । और इसलिए मुझे इस प्रश्न से उत्पन्न होने वाले धिक्कार को शिरोधार्य किये बिना चारा नहीं जबतक कि मेरी नेकनीयती अपने आप साबित न हो जाय । पर सर्व-साधारण मुसल्मानों के साथ इन्साफ करने के लिए मुझे इतना जरूर कहना चाहिए कि यह पहली दफा मुझसे अपनी सेवा का प्रमाण-पत्र तलब किया गया है । फिर भी मैं कहता हूं कि वे लोग भी सेवा ही करते हैं जो कि सब्र रखकर इन्तजार करते हैं और खुदा से दुआ करते हैं । और यदि बहुसंख्यक मुसल्मान इन प्रसिद्ध पुरुष की तरह मेरी सेवा के रजिस्टर की जांच करना चाहते हैं तो मैं उनसे कहता हूं कि आप इसमें क्यों अपना सिर खपाते हैं ? मेरे इसी आश्वासन पर सन्तुष्ट रहिए कि यदि मैं सक्रिय रूप से उनकी सेवा नहीं कर रहा हूं तो कम से कम एक तरफ खडा रह कर देख रहा हूं, इन्तजार कर रहा हूं और ईश्वर से प्रार्थना कर रहा हूं ।

कताई-प्रस्ताव

अहमदाबाद वाली महासमिति का कताई—प्रस्ताव पाठक भूले न होंगे । उसके अनुसार जो सूत अ० भा० खादी-मण्डल को प्राप्त हुआ है उसके उपयोग का नीचे लिखा ब्योरा मुझे उक्त मण्डल की तरफ से मिला है—

	मन	सेर	तोला
सूत जो आया	१७१	१०	१६
सूत जो बुना गया	७८	३९	३९
बाकी रहा	९२	१०	१७
सूत जो बुन लिया गया है या बुना जा रहा है	७५	८	९
सूत जो बेचा गया	३	३१	३०
	७८	३९	३९

कोई १० मन सूत जो बच रहा है आश्रम में काम में ले लिया जायगा । क्योंकि वह इस लायक नहीं है कि आसानी से बुना जा सके । और आश्रम में भी उसका अधिकांश तो दरी और निवार बुनने के काम में आयेगा । कुछ बहुत महीन सूत भी है जो उम्दा बुनाई के लिए रक्खा गया है । आशा तो यह की गई थी कि अबतक सारा सूत बुन जायगा; परन्तु एक तो सूत हलके दरजे का था और दूसरे कोकडे अच्छी तरह खोले न गये थे । इस कारण से देर हुई । बाकी रहे सूत को काम में ले लेने की कोशिशें जारी हैं ।

जो खादी बुन कर तैयार हुई है उसका अर्ज कोई ३० इंच है और वह नियाहतीन और जाकेट के लिए बहुत अच्छी है। उसे मामूली दर पर आश्रम में ही बेचने की तजवीज की है। थोड़े माल को बाहर भेजने से योंही खर्च पड़ता। ३० इंच अर्ज की खादी ।≈)॥ गज और ४५ से ५० इंच की ।।।-) से १) गज तक बेची जाती है। बड़े अर्ज की खादी के सिर्फ ८ थान है। बहुत ही महीन और आला दरजे का सूत नुमाइशों में भेजने के लिए रक्खा गया है और वह बेलगांव तथा बंबई की प्रदर्शिनियों में भेजा भी गया था।

इस छोटे से ब्योरे में हमारे लिए सबक है। जितना माल तैयार होना चाहिए था, या हो सकता था उसके मुकाबले में यह माल कुछ नहीं है। परन्तु इस प्रयत्न से यह जरूर जाना जाता है कि तफसील की बातों में थोड़ा भी ध्यान छूट जाने से हर बात में तरक्की को कितनी रुकावट पहुंचती है। संगठन एक यन्त्र की तरह है। यन्त्र में एक भी कील ढीली पड़ जाय तो सारा कारखाना ढीला हो जाता है और गिर भी पड़ता है। उसी तरह संगठन में जरा भी ढिलाई होने से उसके काम और नतीजे में बुराई पैदा हो जाती है। जो लोग कताई-मताधिर का काम कर रहे हैं उनको इस तीन महीने के प्रयोग से शिक्षा लेनी चाहिए। खादी की कीमत इसी कारण से कम न हो सकी कि माल की तादाद बहुत कम थी। और यह निर्णय करना कठिन था कि सस्तेपन का लाभ किसको मिलना चाहिए। कातनेवाले सावधान हो जाय। आप इस विवरण से समझ सकते हैं कि विदेशी कपड़े को देश में न आने देने और सारे देश के योग्य खादी तैयार करने का दारोमदार आपके ही ऊपर है।

राष्ट्रीयता बनाम अन्तर्राष्ट्रीयता

दार्जिलिंग में एक महाशय ने एक परिचारिका की कथा मुझे सुनाई कि उसने औरों को हानि पहुंचा कर अपने राष्ट्र की सेवा न करना मुनासिब समझा। मैंने तुरंत जान लिया कि यह कथा मुझे खुश करने के लिए कही गई थी। मैंने सौम्य भाव से उन्हें बताया कि यद्यपि आप मेरे लेखों और कार्यों को समझने का दावा करते हैं फिर भी आप उनको समझ नहीं पाये हैं। मैंने उनसे यह भी कहा कि मेरी देश-भक्ति संकुचित नहीं है और उसमें केवल भारत का ही नहीं सारी दुनिया का कल्याण समाविष्ट है। मैंने उनसे और यह भी कहा कि मैं एक विनीत मनुष्य हूं। मैं अपनी मर्यादाओं को जानता हूं, इसीलिए मैं खुद अपने देश की सेवा पर ही सन्तुष्ट हूं — हां, मैं इस बात की चिन्ता जरूर रखता हूं कि मेरे हाथ से किसी भी दूसरे देश को कुछ हानि न पहुंचे। मेरी समझ में किसी व्यक्ति के लिए राष्ट्रीय बने बिना अन्तर्राष्ट्रीय बनना असंभव है। अन्तर्राष्ट्रीयता उसी अवस्था में संभवनीय है जब कि राष्ट्रीयता एक वास्तविक वस्तु हो जाय अर्थात् जब कि भिन्न भिन्न देशों के लोग सुसंगठित हो जायं और एक आदमी की तरह सारा काम कर सकें। राष्ट्रीयता बुरी बात नहीं है, बुरी बात तो है संकुचितता, स्वार्थ-साधुता, तथा औरों से फटक कर रहने की वृत्ति, जो कि आधुनिक राष्ट्रों की अहमत है। हर राष्ट्र दूसरे को हानि पहुंचा कर अपना फायदा करना चाहता है, दूसरे को तबाह कर के अपनेको आबाद करना चाहता है। मेरा ख्याल है कि भारत के राष्ट्र-धर्म ने एक जुदा ही रास्ता दिखाया है। वह सारी मनुष्य-जाति के लाभ और सेवा के लिए अपनेको सुसंगठित करना चाहता है, अपना पूर्ण आत्म-कथन करना चाहता है। मेरी अपनी राष्ट्रीयता और देशभक्ति के विषय में तो मुझे कोई सन्देह नहीं है। ईश्वर ने मुझे भारतवर्ष के लोगों में जन्म दिया है, इसलिए यदि मैं उनकी सेवा में गफलत करूं तो मैं उसका अपराधी हूंगा। यदि मैं यह नहीं जान पाया कि उनकी सेवा कैसे करूं तो मैं यह कभी नहीं जान सकता कि मनुष्य-जाति की सेवा किस तरह करूं। और जबतक मैं अपने देश की सेवा करने में किसी दूसरे राष्ट्र को नुकसान नहीं पहुंचाता तबतक मैं कुपथगामी नहीं हो सकता। (यं. इं.) मो० क० गांधी

द० आफ्रिका के सत्याग्रह से शिक्षा

गांधीजी 'नवजीवन' में दक्षिण-आफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास क्रमशः लिख रहे हैं। पूर्वार्द्ध समाप्त हो चुका और अब उत्तरार्द्ध शुरू किया है। हिन्दी पाठकों के लिए पूर्वार्द्ध सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर की ओर से प्रकाशित करने की और लागत-मात्र के मूल्य पर देने की व्यवस्था की गई है और वह १ अगस्त के लगभग प्रकाशित भी हो जायगा। इसलिए 'हिन्दीनवजीवन' में उसका अनुवाद नहीं दिया गया है। उत्तरार्द्ध भी पुस्तकाकार प्रकाशित करने की तजवीज की जायगी। परन्तु उत्तरार्द्ध को आरंभ करते समय गांधीजी ने दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह से मिलने वाली शिक्षा और प्रेरणा का उल्लेख 'नवजीवन' के एक लेख में किया है। उसका वह अंश नीचे दिया जाता है—

"इस इतिहास की स्मृति से मैं देखता हूं कि हमारी वर्तमान स्थिति में एक भी बात ऐसी नहीं है जिसका अनुभव छोटे पैमाने पर दक्षिण आफ्रिका में मुझे न हुआ हो। आरंभ में वही उत्साह, वही एकता, वही आग्रह; मध्य में वही निराशा, वही अरुचि, पारस्परिक झगड़े और द्वेषादि, ऐसा होते हुए भी मुट्ठीभर लोगों में अविचल श्रद्धा, दृढ़ता, त्याग, सहिष्णुता और अनेक प्रकार की जानी और बे-जानी हुई मुसीबतें। भारत के स्वराज्य-संग्राम का अन्तिम काल बाकी है। इस अन्तिम काल की जिस स्थिति का अनुभव मैंने दक्षिण आफ्रिका में किया है उसीकी आशा मैं यहां भी रखता हूं। दक्षिण आफ्रिका की लड़ाई का अन्तिम काल पाठक अब देखेंगे। उसमें किस तरह बिना मांगे मदद मिली, लोगों में किस तरह अनायास उत्साह आया और अन्त को किस तरह भारतवासियों की सोलहों आना विजय हुई, ये बातें पाठक आगे के प्रकरणों में देखेंगे।

और यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार आफ्रिका में हुआ वहीं यहां पर भी होगा; क्योंकि तपश्चर्या पर, सत्य पर, अहिंसा पर, मेरी अत्यंत श्रद्धा है। मैं अक्षरशः मानता हूं कि सत्य का सेवन करने वाले के सामने सारे विश्व की समृद्धि आकर खड़ी हो जाती है और वह ईश्वर का साक्षात्कार करता है। 'अहिंसा के सान्निध्य में वैर-भाव नहीं रह सकता,' इस वचन के भी एक एक अक्षर को मैं सत्य मानता हूं। कष्ट सहन करने वालों के लिए कोई बात असंभव नहीं होती, इस सूत्र का मैं उपासक हूं। इन तीनों बातों का मेल मैं कितने ही सेवकों में देख रहा हूं। मेरा यह निरपवाद अनुभव है कि उनकी साधना निष्फल नहीं जा सकती।"

आश्रम भजनावली

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ़ बदी ४, संवत १९८२

'त्याग-शास्त्र'

कलकत्ते की सभा में मैंने कहा था कि 'देशबन्धु ने मुसल्मानों के संबंध में त्याग-शास्त्र को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया था। मेरे इन उद्गारों पर आपत्ति की गई है। इस आपत्ति का कारण यह है कि मेरे त्याग शब्द का आशय यह समझा गया है कि देशबन्धु ने मुसल्मानों पर बड़ा अनुग्रह किया है जिसके लायक वे न थे। आक्षेपकर्ता ने अपनी यह राय बना ली है कि हिन्दू-लोग मुसल्मानों के साथ बहुत-कुछ वैसा ही बरताव करते हैं जैसा कि अंगरेज लोग हम सबके साथ करते हैं—अर्थात् पहले तो हमसे सब कुछ छीन लिया और अब उसे अनुग्रह के नाम पर भिक्षा के रूप में देते हैं।

मैंने उस दिन सभा में जो कहा था उसका मुझे ज्ञान है। मैंने अपने उस भाषण की रिपोर्ट नहीं पढ़ी है, तो भी उस सभा में मैंने जो कुछ कहा है उसपर मैं दृढ़ हूं। मैं साहस के साथ कहता हूं कि बिना पारस्परिक त्याग के इस छिन्नभिन्न देश के लिए कोई आशा नहीं है। हमें चाहिए कि हम हद दरजे तक अपने दिल को छुई-मुई न बना लें, कल्पना-शक्ति से हाथ न धो लें। त्याग—किसी के लिए कुछ छोड़ देने—का अर्थ अनुग्रह करना नहीं। प्रेम जिस न्याय को प्रदान करता है वह है त्याग और कानून जिस न्याय को प्रदान करता है वह है सजा। प्रेमी की दी हुई वस्तु न्याय की मर्यादा को लांघ जाती है। और फिर भी हमेशा उससे कम होती है जितनी कि वह देना चाहता है। क्योंकि वह इस बात के लिए उत्सुक रहता है कि और दूं और अफसोस करता है कि अब ज्यादह नहीं है। यह कहना कि हिन्दू लोग अंगरेजों की तरह बर्तते हैं उनकी मानहानि करना है। हिन्दू यदि चाहें भी तो ऐसा नहीं कर सकते और मैं यह कहता हूं खिदरपुर के मजदूरों की पशुता के होते हुए भी। क्या हिन्दू और क्या मुसल्मान, दोनों, एक ही नाव में बैठे हुए हैं। दोनों गिरे हुए हैं। और वे प्रेमियों की हालत में हैं—उन्हें देना होगा—वे चाहें या न चाहें। इसलिए हरएक हिन्दू और मुसल्मान का कार्य एक दूसरे के प्रति त्याग की भावना से होना चाहिए, न कि इन्साफ की भावना से। वे अपने कार्यों को सोने के कांटे में तौल कर उसपर दूसरे से विचार नहीं करा सकते। हमेशा एक को अपनेको दूसरे का देनदार समझना होगा। इन्साफ के नाते से तो क्यों किसी मुसल्मान को रोज मेरी आंखों के सामने एक गाय न मारनी चाहिए? पर मेरे साथ उसका जो प्रेम है वह उसे ऐसा नहीं करने देता और यहांतक कि वह तो अपनी हद से आगे बढ़ कर मेरी मुहब्बत के खातिर गो-मांस भी खाने से बाज आता है और फिर भी समझता है कि मैंने सिर्फ वह काम किया है जो कि करना उचित था। इन्साफ तो मुझे इजाजत देता है कि मैं महम्मदअली के कान में जा कर, जब कि वे नमाज पढ़ रहे हों, बाजे बजाऊं और गाना गाऊं; पर मैं अपनी हद से आगे बढ़ कर उनके जजबात का ख्याल करता हूं और फिर भी समझता हूं कि यह मैंने मौलाना साहब पर कोई महरबानी नहीं की है। बल्कि इसके प्रतिकूल यदि मैं खास कर उनके निमाज के समय अपने घण्टा-घोष के न्याय्य हक का प्रयोग करूं तो मैं एक घृणित आदमी माना जाऊंगा। यदि देशबन्धु ने कुछ जगहों पर मुसल्मानों को नियत न किया होता तो न्याय को सन्तोष हो गया होता; पर उन्होंने अपनी हद से आगे बढ़कर मुसल्मानों की इच्छा का विचार किया और उनके मनोभावों को समाधान पहुंचाया। उनको समाधान पहुंचाने का जो कोमलभाव देशबन्धु के दिल में था वही उनकी मृत्यु को जल्दी ले आने का कारण है। क्योंकि मैं जानता हूं कि जब उन्होंने देखा कि अनधिकृत जमीन पर गाड़े गये मुर्दों को न गाड़ने देने पर न्याय उन्हें मजबूर कर रहा है तब उनके दिल को कितना धक्का लगा था और वे मुसल्मानों के भावों को जरा भी धक्का पहुंचने देना न चाहते थे—फिर भले ही वह युक्तिसंगत न भी हो। यह सब वे हद से बाहर जाकर कर रहे थे—अपनी हद से नहीं, बल्कि दुनिया की हद से। और फिरभी उन्होंने कभी खयाल न किया कि मुसल्मानों के भावों का इतनी कोमलता के साथ विचार कर के मैं उनके साथ कोई मेहरबानी या एहसान कर रहा हूं। प्रेम कभी दावा नहीं करता वह तो हमेशा देता है। प्रेम हमेशा कष्ट सहता है। न कभी झुंझलाता है, न बदला लेता है।

इसलिए यह न्याय और कोरे न्याय की बातें एक दिल का उफान है विचार-हीन, क्रोधयुक्त और अज्ञान-पूर्ण उफान है—फिर वह चाहे हिन्दुओं की तरफ से हो चाहे मुसल्मानों की तरफ से। जब तक हिन्दू और मुसल्मान इन्साफ के गीत गाते रहेंगे तब तक वे कभी एक दूसरे के नजदीक नहीं आ सकते। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' यह न्याय का और महज न्याय का आखिरी वचन है। अंगरेजों ने जिस चीज को विजय के द्वारा हासिल किया है उसे एक इंच भी वे क्यों छोड़ दें? और क्यों हिन्दुस्तानी लोग जब उनके हाथ में राज्य की बागडोर आ जाय, अंगरेजों से वे तमाम चीजें न छीन लें जो उनके बापदादों ने उनसे छीन ली हैं? फिर भी जब कि हम आपस में निपटारा करने बैठेंगे, और किसी दिन हमें बैठना ही होगा, तो इस न्याय के नाम से पुकारी जानेवाली तुला पर नाप-जोख न करेंगे। बल्कि हमें 'त्याग' का यह भड़कानेवाला अंश, जिसे कि दूसरे शब्दों में प्रेम, सौहार्द या भ्रातृभाव कहते हैं, अपने मद्देनजर रखना पड़ेगा। और यही बात करनी होगी हम हिन्दुओं और मुसल्मानों को भी जब कि हम एक-दूसरे का सिर काफी फोड़ चुकेंगे, निर्दोषों का काफी खून बहा चुकेंगे और अपनी बेवकूफी को समझ लेंगे। तब यह तराजू की और बांट की बात हमारी नजरों से गिर जायगी और हम समझेंगे कि न तो बदला निकालना, न न्याय, मित्रता का नियम है, बल्कि त्याग, अकेला त्याग, उसका नियम है। तब हिन्दू गो-कुशी को अपनी आंखों के सामने बरदाश्त करना सीख जायंगे। और मुसल्मानों को मालूम होगा कि हिन्दुओं का दिल दुखाने के लिए गो-कुशी करना इस्लाम की शरीयत के खिलाफ है। जब वह सुदिन आवेगा तब दोनों एक दूसरे के गुण ही देखेंगे, हमारे दोष हमारे दृष्टि-पथ को न रोकेंगे। वह दिन बहुत दूर हो, चाहे बहुत नजदीक, मेरा दिल कहता है कि वह जल्दी आ रहा है। मैं तो सिर्फ उसी दिन के लिए काम करता, दूसरे के लिए नहीं।

मेरे लिए, सावधानी के तौर पर, यह कहने की शायद ही आवश्यकता होगी कि मेरे त्याग का अर्थ सिद्धान्त का त्याग नहीं है। मैंने उस सभा में इस बात को साफ कर दिया था और फिर यहां उस बात पर जोर देता हूं। पर अभी हम जिस बात के लिए लड़ रहे हैं वह सिद्धान्त किसी हालत में नहीं है; बल्कि मिथ्याभिमान और पूर्व संचित कलुषित विचार है। हम बूंद के लिए मरते हैं और समुद्र को खो देते हैं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

आग्रह में यदि भूल हो तो उसका दुःख खुद उसीको भोगना पडेगा, और वह यथार्थ है। जिसके साथ सत्याग्रह किया गया हो उसे यदि दुःख हो तो उसका जिम्मेवार सत्याग्रही नहीं हो सकता। सत्याग्रही का यह उद्देश ही नहीं होता कि प्रतिपक्षी को दुःख दे। प्रतिपक्षी यदि अपने आप दुःख मान ले या दुखी हो तो सत्याग्रही को उसकी चिन्ता न करनी चाहिए। मैं यदि शुद्ध भाव से उपवास करूं और उससे मेरे साथियों को दुःख हो तो उसे मुझे सहन कर लेना लाजिमी है।

इस उदाहरण में कहा गया है कि 'बाप ने गुस्से में आकर...' सो सत्याग्रही को गुस्सा आता नहीं, अनिच्छा से आ जाय तो जब तक चला न जाय तबतक वह गुस्सा पैदा करने वाले के खिलाफ वह कोई कार्रवाई नहीं करता। फिर बहुत विचार करने के बाद भी यदि मां-बाप का काम दोषयुक्त मालूम हो तो अवश्य उसे सुधारे और ऐसा करते हुए---सोलहों आना विनय का पालन करते हुए-भी यदि मां-बाप आत्मघात करे तो सत्याग्रही निःशंक रहे। मां-बाप यदि अज्ञान के अधीन होकर खुदकुशी करें तो उसके लिए जिम्मेवार वे खुद हैं। मां-बाप जब खुद ही आप होकर दुःख मोल लेते हैं तो उसके लिए बेटा जिम्मेवार कैसे हो सकता है? मां-बाप जब बेटे को पापाचरण के लिए कहते हैं और लडका उसके अनुसार नहीं करता है और इसके फलस्वरूप मां-बाप आत्महत्या करें तो लडके का क्या दोष? प्रह्लाद राम-नाम जपता था। इससे हिरण्यकशिपु नाराज हुआ और अन्त को नाश को प्राप्त हुआ। इसकी जिम्मेवारी प्रह्लाद पर नहीं। राम ने पिता के वचन का पालन किया। उससे दशरथ की मृत्यु हुई। उसका दोष राम के सिर नहीं। प्रजा दुःख-सागर में डूब रही थी, फिर भी राम ने अपना हृदय कठिन करके अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। सत्यवती को बेहद रोते हुए भी भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इसमें याद रखने लायक बात यह है कि सत्याग्रही का धर्म किसीका सिखाया नहीं सीखा जा सकता। वह स्वयं स्फुरित होना चाहिए। राम ने गुरु जनों से पूछ कर वनवास स्वीकार नहीं किया। यह कहने वाले धर्माचार्य मिल जाते कि वनवास को जाना पाप है, न जाना पाप नहीं। फिरभी उन्होंने वन जाने के धर्म का पालन करके अपना नाम अमर किया। हमारे इस दुखी देश में कायरता इस हद तक बढ गई है कि बात बात पर लोग मरने की और अन्नजल-त्याग की धमकियां देते हैं। ऐसी धमकियों की परवाह नहीं की जा सकती। भले ही हम यह क्यों न जानते हों कि धमकी के सच हो जाने की संभावना है। सत्याग्रही उपवास और दुराग्रही उपवास का भेद मैं "नवजीवन" में बहुत बार बता चुका हूं।

वही मित्र नीचे लिखे अनुसार दूसरा उदाहरण पेश करते हैं।

"एक दंपती सुख--पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बाई को विदेशी कपडों से बडा प्रेम है। पति को उससे बडी घिन है। बात यहां तक बढ गई कि पत्नी कहती है मुझे ५००) के विदेशी कपडे न ला दोगे तो मैं प्राण दे दूंगी। अब दंपति को क्या करना चाहिए? बाई किसी तरह समझाई नहीं समझती। वह कहती है कि मेरी इतनी बात भी आप न मानेंगे।"

पति का धर्म है कि वह मर्यादा के अनुसार और यथा शक्ति पत्नी के रहने, खाने और पहनने का प्रबन्ध करे। धनिक अवस्था में पति जो ऐश-आराम करा सका हो वह गरीब होने पर नहीं करा सकता। मूर्छित अवस्था में यदि पति नाच-रंग, आमोद-प्रमोद करे-करावे, शराब पीये-पिलावे, विदेशी वस्तुयें पहने-पहनावें तो ज्ञान हो जाने पर वह खुद सुधार करे और करावे। यहां विवेक के लिए स्थान है। दुनियां में यह सामान्य व्यवहार देखा जाता है कि पत्नी को पति के विचार के अनुकूल रहना चाहिए। परन्तु पति पत्नी पर अथवा पिता अपनी सन्तति पर बलात्कार नहीं कर सकते। जब खुद खादी पहने तब यदि अपनी पत्नी को अथवा बालिग पुत्र को जबरदस्ती खादी पहनावे तो यह पाप है। परन्तु खुद विदेशी वस्त्र खरीदकर लाने के लिए बाध्य नहीं है। जवान पुत्र तो यदि न बनता हो तो अलग हो सकते हैं।

परन्तु पत्नी का प्रश्न नाजुक है। पत्नी एकाएक अलग नहीं हो सकती। अपनी जीविका प्राप्त करने की शक्ति उसमें नहीं होती। अतएव ऐसे प्रसंग की कल्पना मैं कर सकता हूं जब कि पत्नी न समझे तो उसके लिए विदेशी वस्त्र खरीदने का धर्म प्राप्त हो। विदेशी वस्त्र का त्याग धर्मान्तर करने के बराबर है। पति जितनी बार धर्मान्तर करे उतनी बार पत्नी को भी धर्मान्तर करना चाहिए यह नियम नहीं, न होना चाहिए। पति को उचित है कि वह पत्नी का और पत्नी को उचित है कि वह पति का विधर्म सहन करें। इसलिए यहां पति-पत्नी के लिए विदेशी वस्त्र खरीद दे तो वह धमकी से डरकर नहीं बल्कि यह समझ कर कि पत्नी पर बलात्कार नहीं किया जा सकता। फर्ज कीजिए कि पत्नी केवल खुद ही विदेशी कपडा पहनना नहीं चाहती, बल्कि यह भी चाहती है कि पति भी पहने और यदि पति उसकी बात न माने तो वह मरने की धमकी देती है तो पति को चाहिए कि उसकी धमकी को हरगिज न माने।

तीसरा उदाहरण इस तरह है—

"एक पिता पुत्र से कहते हैं कि मेरे जीते जी तू अछूत से न छू। अछूतों के मुहल्ले में न जा। नहीं तो मैं अपनी जान दे दूंगा। पुत्र बेचारे को क्या करना चाहिए? 'वज्रादपि कठोराणि' की तरह हृदय करके पिता को मरने दे?"

मेरे मन में इस बात पर जरा भी संदेह नहीं है कि पिता को अपार दुःख होता हो तो भी पुत्र को उचित है कि अछूतपन को छोड दे। यहां भी उस चेतावनी को याद रखना चाहिए जो मैं ऊपर कह चुका हूं। मुझ जैसे के लेखों को पढकर अस्पृश्यता को महापाप मानने वाले के लिए यह वज्र वाक्य नहीं लिखा गया है। पर उनके लिए जिन्हें खुद ही यह सिद्ध हो गया है कि अस्पृश्यता एक महापाप है। इसका यह अर्थ हुआ कि जबतक अकेली बुद्धि हमारी इस बात की कायल हो पाई है तबतक पिता की आज्ञा के पालन से, जो कि हृदय का गुण है, मुंह नहीं मोडा जा सकता। यदि किसीके कहने से प्रह्लाद ने राम नाम जपा होता तो उसका धर्म था कि पिता के मना करने पर उसका जप छोड देता।

चौथा और आखिरी दृष्टान्त यह है—

"एक सुखी दंपती के चार पुत्र हुए। चारों मर गये। अन्त को पति ने ब्रह्मचर्य रखने का निश्चय किया। पत्नी ने एक पुत्र और होने की इच्छा प्रदर्शित की, पति को अपनी अभिलाषा पूर्ण करने प्रार्थना की। दोनों हो तो गये हैं निर्विकार; परन्तु बाई को सन्तान की वासना रह गई है। पति को इसमें दोनों का अ-कल्याण दिखाई देता है। परन्तु यह वासना इतनी तीव्र है कि पति यदि उसकी इच्छा का पालन न करे तो वह शरीर छोड देगी। हमेशा उदास रहती है, आंसू बहाती है, शरीर को सुखा रही है। इस स्थिति से बचने के लिए पति को क्या करना चाहिए? सब प्रयत्न कर चुकने के बाद यह भावना रखकर सन्तोष धारण करे कि ईश्वर कभी न कभी उसे (पत्नी को) सद्बुद्धि देगा, या पत्नी के शरीर को क्षीण होता हुआ देखे और

उसके साथ अपना भी शरीर सुखावे ? यदि कहीं पत्नी मर गई तो उसकी हत्या का पातक-भागी पति होगा या नहीं ?"

मैं यह नहीं मानता कि पति-पत्नी का यह धर्म है कि एक के विकार के अधीन होकर दूसरा भी विकार के वशीभूत हो। एक के विकाराधीन होने पर वह दूसरे को भी विकार में सम्मिलित करे तो वह बलात्कार है। पति या पत्नी को बलात्कार का अधिकार नहीं है। विकार आग की तरह है। वह मनुष्य को घास की तरह जलाता है। घास के ढेर में एक तिनके को सुलगा दीजिए, बस सारा ढेर सुलग जायगा। हरएक तिनके को अलहदा अलहदा जलाने का कष्ट हमें नहीं उठाना पड़ता। एक के मन में विकार उत्पन्न हुआ तो उसका स्पर्श दूसरे को होता है। दंपती में एक के विकार उत्पन्न होने पर जो दूसरा निर्विकार रह सकता हो उसे मैं हजार बार प्रणिपात करता हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

सुलह का अवसर

कलकत्ते के श्री बी. सी. चैटरजी नामक एक सज्जन ने गांधीजी को एक पत्र लिखा है, जिसमें उन्होंने कहा है कि देशबन्धु का आशय फरीदपुर वाले भाषण में यह था कि यदि सरकार मुडीमैन कमिटी के अल्पमत वाले सदस्यों की राय मान ले तो वे सहयोग के लिए तैयार हैं। वे गांधीजी से बड़ी सरगर्मी के साथ अपील करते हैं कि यदि आप इस समय देशबन्धु की इस स्थिति को ग्रहण कर लें तो आपके व्यक्तित्व में एक युगान्तर हो जायगा और देश के सब दलों के लोग आपके झण्डे के नीचे आ जायगे। गांधीजी ने यं. इ. में इसका उत्तर इस प्रकार दिया है—

"फरीदपुर के सन्देश का जैसा आशय श्री चैटरजी ने समझा है वैसा मैं नहीं समझता। देशबन्धु ने इस हद तक अपनी स्थिति को साफ कर दिया था कि मैं १९२९ तक पूर्ण दायित्व-युक्त स्वराज्य के लिए इन्तजार करने को तैयार हूं; पर शर्त यह है कि सरकार के द्वारा एक सम्मान-पूर्ण समझौता पेश किया जाय, जिससे कि लोक-प्रतिनिधियों के लिए सुधार के अनुसार कार्य करना सम्भव हो जाय। वे शर्तें क्या हों, इसका निर्णय सर्व-दल-परिषद में सब मिल कर सुहृदभाव से चर्चा कर के करें। देशबन्धु के लिए यह असंभव था कि पहले ही से बिना ठीक ठीक जाने ही कि मुडीमैन कमिटी के अल्पमत वालों की सिफारिशें क्या हैं उन्हें मंजूर कर लेते। मेरा मत तो बिल्कुल सीधा-सादा है। सुधारों से मेरा तो संबंध है मेरे स्वीकृत और अधिकृत हस्तकों—स्वराजियों—के द्वारा। उन्होंने इस विषय में विशेषज्ञता प्राप्त की है और वे इसमें जो कुछ करेंगे वह मुझे मंजूर होगा। मैं फिलहाल तो ब्रिटिश सरकार के सामने सिवा अपनी कमजोरी के और कुछ नहीं पेश कर सकता। अपनी इस कमजोरी की हालत में तो मैं इस बात का इन्तजार भर कर सकता हूं कि इंगलैंड सच्चे दिल से अपने मुंह से 'हां' करे। जब वह ऐसा करेगा तो मैं अपनी तरफ से बिना शर्त के लड़ाई खतम कर दूंगा। पर इस कमजोरी की हालत में भी मैं अपने अन्दर इतनी ताकत जरूर पाता हूं कि मुझे पता है कि क्या बात हमारे लिए जीवनदायी है और क्या नहीं है, किसे स्वीकार करना चाहिए और किसे अस्वीकार। मैं अपनी तरफ से इनकार नहीं कर सकता। मैं तबतक किसी सार वस्तु की उम्मीद नहीं कर सकता जबतक मेरा निरीह देश शक्तिशाली नहीं हो जाता। इसलिए मुझे तो शक्ति एकत्र करना होगी। और चूंकि मैंने अपने साधनों में हिंसा को स्थान नहीं दिया है मेरा सहारा है चरखे या उसके जैसी वस्तु पर, देशबन्धु के अधिक व्यापक शब्दों में कहें तो देहात के पुनः संगठन पर, और यदि तथा जब आवश्यक हो सविनयभंग पर।

अब देश के भिन्न भिन्न दलों की एकता को लें, तो मुझे डर है कि स्वराजियों और नरमदलवालों के मत-भेद कुछ बातों में आमूलाग्र हैं। कुछ हालतों में सुधार होजाने के बाद सुधारों को कोरा स्वीकृत करलेने से मतभेद आवश्यक-रूप से नष्ट नहीं हो जाता। यदि मैं इस भेद को अपनी धारणा के अनुसार एक वाक्य में कहूं तो वह यह है-यदि सरकार लोगों की युक्ति-संगत मांग को स्वीकार न करे तो स्वराजी लोग एक नियत समय के बाद उसपर प्रहार करने की आशा रखते हैं और नरम दलवाले सरकार को समझा-बुझाकर जो कुछ मिल सके वही पाने की उम्मीद करते हैं। इसलिए नरम दल के लोग स्वराजियों के साथ एक हदतक ही चल सकते हैं। पर हो सकता है कि मैं गलती पर होऊं-शायद मैं हू भी। प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक डिकन्स के पात्र बारकिस की तरह मैं तो सदा रजामन्द हूं।"

भीषण नैतिक पतन

बंगाल के दौरे में एक सज्जन ने गांधीजी को एक पत्र दिया जिसमें उन्होंने वेश्यागमन, मद्यपान, नाटक-सिनेमा, गंदे विज्ञापन आदि के द्वारा होनेवाले बंगाल के भीषण नैतिक पतन का भयंकर चित्र खींचा है और अंत में गांधीजी से पूछा है कि (१) कामलिप्सा बढानेवाले नाटक-सिनेमा देखने के लिए महासभा के सदस्य या स्वयंसेवक को जाना चाहिए या नहीं ? (२) ऐसे नाटक-गृहों में सार्वजनिक सभायें हों या नहीं ? (३) भारतीय राष्ट्रधर्मवादी पत्रों को नाचने-गानेवाली वेश्याओं या उनके द्वारा संचालित नाटकों आदि के तथा शराब और नशीली-चीजों के विज्ञापन छापने चाहिए या नहीं ? (४) क्या तमाम विद्यार्थियों और महासभा के कार्यकर्ताओं को तम्बाकू और शराब पीने से बिल्कुल परहेज न रखना चाहिए ? (५) क्या तमाम म्युनिसिपल्टियों और स्थानिक बोर्डों को मद्यपान, वेश्यागमन को मिटाने के लिए अजहद कोशिश न करनी चाहिए तथा इन सामाजिक दोषों को दूर करने के लिए जोरोशोर से प्रचार न करना चाहिए ? गांधीजी ने इसपर अपने विचार इस तरह यं० इं० में प्रकाशित किये हैं—

"'पाठक (अन्यत्र प्रकाशित दूसरे लेख से) इस बात को जान जायंगे कि पतित बहनों को उनके दोष से छुड़ाने के प्रयत्न का परिणाम किस तरह स्पष्टतः पाप का परवाना देने के रूप में हो गया है। मैं जानता था कि वेश्यावृत्ति एक महा-भीषण और बढ़ते जानेवाला दोष है। दोष में भी गुण देखने की और कला अथवा दूसरी किसी मिथ्या भावना के पवित्र नाम पर बुराई को जायज मानने की प्रवृत्ति ने इस अधःपातकारी पाप-विलास को एक प्रकार के सूक्ष्म आदर-भाव से सज्जित कर दिया है और वही इस नैतिक कुष्ठ के लिए जिम्मेवार है। सरसरी तौर पर देखने वाला भी इसे जान सकता है। नास्तिकता के या बरायनाम की आस्तिकता के इस युग में, आमोद-प्रमोद और भोग-विलास की वृद्धि के इस युग में, जो कि प्रायः रोम के अधःपात की ही याद दिलाता है, जब कि वह यों देखने में अपनी बढ़ती की परम सीमा पर पहुंच गया था, किसी उपाय की योजना करना आसान नहीं है। कानून बनाकर उसका निवारण नहीं कर सकते। लंदन इस दोष से खौल रहा है। पैरिस तो इस पाप के लिए प्रसिद्ध ही है। वहां तो यह एक फैशन ही बन गया है। यदि कानून के द्वारा यह रुक सकता होता तो इन महा सुसंगठित राष्ट्रों ने अपनी राजधानियों को इस पापाचार से मुक्त कर दिया होता।

इस महा-पाप-कर्म का निवारण मुझ जैसे सुधारक के लेखों से एक अच्छे अंश में नहीं हो सकता। एक तो इंग्लैंड का राजनैतिक आधिपत्य ही काफी बुरा है। फिर सांस्कृतिक आधिपत्य तो अनंत गुना हानिकर है। क्योंकि एक ओर जहां हम उसके राजनैतिक आधिपत्य से नाखुश है और इसलिए उसका प्रतिकार करने का प्रयत्न करते हैं तहां दूसरी ओर हम उसके सांस्कृतिक आधिपत्य को बुलाते हैं—अपनी महामूढता के वश इस बात को नहीं समझते कि जब सांस्कृतिक आधिपत्य पूर्णता को पहुंच जायगा तब राजनैतिक आधिपत्य हमारे प्रतिकार की कुछ न चलने देगा। मेरे कहने का कोई गलत अर्थ न करें। मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि अंग्रेजी राज्य से पहले भारतवर्ष में वेश्या-वृत्ति थी ही नहीं; पर मैं यह जरूर कहता हूं कि वह आज की तरह प्रबल न थी। वह ऊंची श्रेणी के इनेगिने लोगों तक परिमित थी। अब तो वह बड़े वेग के साथ मध्यम श्रेणी के युवकों के जीवन को नष्ट कर रही है। मेरी आशा के आधार देश के नवयुवक ही हैं। इस पाप-कर्म के शिकार होजाने वाले युवक स्वभावतः पाप-निष्ठ नहीं होते। वे तो अविचार-पूर्वक और असहाय हो कर उसमें फंस जाते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि इससे स्वयं उनको तथा समाज को कितनी हानि हुई है। उन्हें यह भी समझना चाहिए कि एक-मात्र कठिन संयम और नियम-पूर्ण जीवन ही उनको तथा देश को सर्वनाश से बचा सकता है। और इन सबसे बढकर, जबतक वे ईश्वर को अपनी दृष्टि के सामने न रक्खेंगे और इस मोह-जाल से अपनेको दूर रखने के लिए उससे सहायता की प्रार्थना न करेंगे तबतक कोरे सूखे संयम और नियम-पालन से उन्हें विशेष लाभ नहीं हो सकता। गीता में योगेश्वर ने ठीक ही कहा है:—

> विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
> रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

यह ईश्वर-साक्षात्कार क्या है? यह अनुभव करना कि उसका आसन हमारे हृदय में है। यह अनुभव हमें उसी तरह हो जिसतरह कि बालक बिना प्रत्यक्ष प्रमाण के माता के वात्सल्य का अनुभव करता है। क्या बालक माता के प्रेम के अस्तित्व में युक्ति और प्रमाण खोजता है? तर्क-वितर्क करता है? क्या वह उसे दूसरे को सिद्ध कर के बता सकता है? वह तो निःशंक हो कर कहता है—'वह अवश्य है'। यही स्थिति ईश्वर के अस्तित्व के विषय में हो जानी चाहिए। ईश्वर तर्क से परे है। पर उसकी प्रतीति अवश्य होती है। हमे चाहिए कि हम तुलसीदास, चैतन्य, रामदास *तथा अन्य आध्यात्मिक पुरुषों के अनुभव को मता न बतावें, जिस* तरह कि हम सांसारिक पुरुषों के अनुभव को नहीं बताते हैं।

पत्र-लेखक ने पूछा है कि महासभा के लोग नाटक-सिनेमा देखना आदि बहुतेरी बातें करें या नहीं? मैं पहले ही कह चुका हूं *कि नियम-विधान कर के हम मनुष्य को सन्मार्ग पर नहीं ला सकते। यदि उन्हें समझाने की शक्ति मेरे पास होती तो मैं अवश्य वेश्याओं का नाटकों में अभिनय करना बंद कर* देता। मैं लोगों को तम्बाकू और शराब पीने से रोक लेता। मैं जरूर ही तमाम चरित्र-नाशक विज्ञापनों को जो कि हमारे नामांकित पत्र-पत्रिकाओं के कलेवर को कलंकित करते हैं, रोक देता। और मैं बहुत निश्चयपूर्वक तमाम अश्लील साहित्य और चित्र जो कि हमारे कुछ मासिक-पत्रों को गंदा करते हैं, बंद कर देता। पर, अफसोस! मुझमें यह समझाने की शक्ति नहीं। परन्तु इन बातों को राज्य अथवा महासभा के द्वारा रोकने का फल शायद असली बुराई से अधिक बुरा हो। जरूरत है ज्ञानयुक्त, विवेकयुक्त, गुणकारी और शुद्ध लोकमत की। ऐसा कोई कानून नहीं है कि स्त्री-वर से पैखाने का या अंतःपुर से घुड़साल का काम न लिया जाय। परन्तु लोकमत अर्थात परिमार्जित लोक-रुचि ऐसी कृति को सहन न करेगी। हां, कभी कभी लोकमत को बनाना बड़ा कठिन होता है पर वही एकमात्र रामबाण दवा है।

राष्ट्रीय शिक्षालय काशी-विद्यापीठ बनारस

बनारस के मशहूर देशभक्त श्री शिवप्रसाद गुप्त ने राष्ट्रीय शिक्षा के लिए १० लाख रुपया दान दे कर अभी एक ट्रस्ट रजिस्ट्री कराया है, जिसकी आमदनी जो ५ हजार रुपये मासिक होती है बनारस के काशी विद्यापीठ को दी जाती है जो कि एक ऐसी संस्था है जहां देश के बच्चों को प्रेम-पूर्वक सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा ऊंचे से ऊंचे पैमाने तक मातृभाषा में दी जाती है, जिसे पाकर वे बच्चे सदाचारी, विद्वान, देशभक्त और स्वतन्त्र जीविका पैदा करने वाले आजाद नागरिक बन सकें। इस संस्था को असहयोग आन्दोलन में श्री महात्मा गांधी ने १० फरवरी सन् १९२१ को खोला था और उन्हीके उसूलों को लेकर वहां काम हो रहा है।

विद्यापीठ में चार विभाग है। १ पाठशाला विभाग, २-विद्यालय विभाग, ३-प्रकाशन विभाग, ४-शिल्प विभाग।

पाठशाला विभाग—इस विभाग में छटे क्लास से लेकर साधारण स्कूलों के इन्ट्रेन्स के पैमाने तक शिक्षा दी जाती है। लेकिन हिन्दी, इतिहास, स्वास्थ्यरक्षा, समाज-शास्त्र और आम राजनैतिक जानकारी इन विषयों की पढाई का प्रबन्ध बहुत अच्छा और मुनासिब किया गया है।

विद्यालय विभाग—पाठशाला की पढाई समाप्त कर लेने पर विद्यार्थी विद्यालय में भरती किये जाते हैं, यहां चार वर्ष का कोर्स है। नीचे लिखे विषय पढाये जाते हैं:-

१. हिन्दी २. इतिहास, अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, और कानून ३ गणित और ज्योतिष ४ दर्शनशास्त्र ५. संस्कृत।

पहले वर्ष में विद्यार्थी को तुलनात्मक, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी और ऊपर के विषयों मे से कोई एक विषय पढना होता है और शेष तीन वर्षों में उसके लिए इस एक विषय की विशेष (गहरी) पढाई और अंग्रेजी रहती है।

शिल्प विभाग—पाठशाला की पढाई के साथ कोई एक शिल्प सीखना जरूरी है। शिल्पों में लकड़ी का काम, बेंत का काम और बुनाई के काम सिखाये जाते है। पूरा ध्यान इस समय हम लोग लकड़ी के काम पर दे रहे हैं। आशा की जाती है कि काम सीखने पर महनत करने से ४०) या ५०) रुपया मासिक कमा लेना कुछ मुश्किल बात न होगी।

हिन्दी मिडिल पास और इन्ट्रेन्स पासों के लिए अच्छा मौका है

कि वे बेकार पड़े रहने के बजाय काशी विद्यापीठ बनारस *आकर इस लकड़ी के काम को सीख ले और गुलामी से बचकर* आजाद तरीके से जीवन निर्वाह करें।

विद्यापीठ में खर्च और रहने का प्रबन्ध

मामूली तौर से आठ या नौ रुपये महावारी में एक विद्यार्थी का गुजर हो सकती है। अगर वह अपने आप या किसी और विद्यार्थी के साथ शामिल हो कर रोटी बना लिया करे, कोई फीस नहीं ली जाती। कुछ योग्य विद्यार्थियों को वजीफा भी दिया जाता है।

विद्यापीठ का पता और खुलने की तारीख

हर साल की पहली जुलाई को विद्यापीठ के विभाग खुल जाते हैं। जिन विद्यार्थियों को भरती होना हो वे मन्त्री शिक्षाविभाग काशी विद्यापीठ से पत्र व्यवहार करें।

संयोजक शिल्प-समिति, काशी-विद्यापीठ

सत्य पर कायम रहो

वार्षिक मूल्य ४)
छमास का २)
एक प्रति का -)।
विदेशों के लिए ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ४८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, श्रावण वदी ११, संवत् १९८२ गुरुवार, १६ जुलाई, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

दार्जिलिंग के संस्मरण

मैंने पाठकों से एक तरह से वादा ही किया था कि मैं उन पांच दिनों के पवित्र संस्मरण, जो कि देशबन्धु के साथ मैंने दार्जिलिंग में बिताये, उनके सामने उपस्थित करूंगा। उनको मैंने अपने जीवन में अत्यन्त बहुमूल्य बताया है। ज्यों ज्यों समय बीतता है उनकी बहुमूल्यता बढ़ती जाती है। इसका कारण भी मुझे पाठकों को बता देना चाहिए। यद्यपि मैं अब से पहले देशबन्धु के घर में रह चुका था, तथापि वे मुलाकातें बिलकुल राजनैतिक थीं। हम दोनों अपने अपने अंगीकृत कामों में डूबे रहते थे। पर दार्जिलिंग में हालत और थी। वहां देशबन्धु मेरे थे। वे वहां आराम के लिए गये थे पर मैं तो सिर्फ उन्हींके साथ हृदय की बातें करने गया था। आराम के लिए दार्जिलिंग जाना तो मेरा एक निमित्त-मात्र था। यदि देशबन्धु वहां न होते तो धवलगिरि का आकर्षण होते हुए भी मैं वहां न जाता। अपनी एक पेंसिल से लिखी चिट में—इन दिनों उन्होंने मुझे पेंसिल से चिट लिखना शुरू किया था—उन्होंने लिखा था—'याद रखना, तुम मेरे इलाके में हो। मैं स्वागत-समिति का सभापति हूं। तुमको अपने दौरे में दार्जिलिंग भी रखना होगा। यह मेरा हुक्म है।' अहा! क्या अच्छा होता, यदि मैं उनकी इन प्यारी चिटों को संभाल कर रखता, पर अफसोस! वे उसी रास्ते चली गईं जिस रास्ते मेरे ऐसे सैकड़ों कागज चले गये हैं। मैंने उत्तर दिया—यहां कार्य-समिति की बैठक होने वाली है। उन्होंने तार किया: 'तो समिति यहीं होने दो न। स्थान का प्रबन्ध मैं करूंगा। अ० भा० स० सदस्यों के आने-जाने का व्यय दूंगा। मैं मलकानी को ऐसा तार दे रहा हूं।' मैं कार्य-समिति को तो दार्जिलिंग न ले जा सका, पर मैंने यह वादा किया कि समिति की बैठक के बाद जितना जल्दी हो सकेगा आऊंगा। और सो मैं गया। मैं सिर्फ दो दिन के लिए गया था। उन्होंने पांच दिन अपने साथ रक्खा। वासन्तीदेवी से श्री फूकन को कहलवा कर आसाम का दौरा और कुछ तीन दिन के लिए बंगाल का दौरा मुल्तवी कराया। मैं इन सब बातों को यह दिखलाने के लिए लिख रहा हूं कि हम दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए कितने उत्सुक थे। पर अब पता है, जैसा कि अब जाहिर हुआ है, देशबन्धु की दिन दिन नजदीक आनेवाली दीर्घनिद्रा हमें एक दूसरे के हृदय के निकट आने के लिए तैयार कर रही थी।

वे रोग-शय्या पर तो न थे, आराम हो चले थे। उनके शरीर की बहुत संभाल रखने की आवश्यकता थी। पर वे मेरे तथा मेरे साथियों के आराम के लिए छोटी से छोटी बात पर ध्यान देते थे। उनके अतिथि-सत्कार का तो पूछना ही क्या? दरिया-दिल ठहरे! उन्होंने नीचे तराई से पांच बकरियां मंगा कर रक्खी थीं। उन्होंने कभी एक भी जून मेरे दूध का नागा न होने दिया। वासन्ती देवी के बहनोचित सत्कार का तो अनुभव मुझे पहले से था; पर दार्जिलिंग में तो मेरी देख-भाल खुद देशबन्धु ने अपने जिम्मे ली थी। और न उसमें मुझे किसी किस्म की बनावट ही मालूम होती थी। अतिथि-सत्कार तो उनके कुल का विरद ही था। उन्होंने कई अपने मुक्त-हस्त अतिथि-सत्कार की कथायें सुनाई थीं। दार्जिलिंग में मुझे उनके अपरिचित जनों अथवा राजनैतिक प्रतिपक्षियों के प्रति आदर-भाव का परिचय मिला। उन्हींके कहने से खादी प्रतिष्ठान वाले सतीश बाबू वहां बुलाये गये—इसलिए कि उनके साथ वे बंगाल में हाथ-कताई और खादी का काम करने का जो तजवीज हम सोच चुके थे उसके संबंध में विचार करें। सतीशबाबू को उन्होंने अपने ही घर में आग्रह के साथ ठहराया। कहा 'मुझे पता है कि सतीशबाबू समझते हैं, मेरा खयाल उनके निस्बत अच्छा नहीं है। उनसे मेरा परिचय भी नहीं है। आप जानते ही हैं, मैं अपने और मित्रों की चिन्ता नहीं करता। उनकी गलत-फहमी नहीं हो सकती। सतीशबाबू को हम जरूर इसी घर में ठहरावें।'

उन्होंने बंगाल के भिन्न भिन्न राजनैतिक दलों की भी बातें निकालीं और एक मौके पर मैंने स्वराज्य-दल पर लगाये जाने वाले घूस के तथा नाजायज तरीके अख्त्यार करने के इल्जाम का जिक्र किया। मैंने उनसे यह भी कहा था कि सर सुरेन्द्रनाथ ने मुझे बंगाल से बिदा होने के पहले एक बार फिर मिल जाने का न्योता दे रक्खा है। उन्होंने कहा—'जरूर जाओ, और उनसे ये सब बातें कहना जो तुम्हारे-मेरे बीच हुई हैं। कहना कि घूस आदि के तमाम आरोपों से मैं जोर के साथ इन्कार करता हूं। अगर स्वराज्य-दल के जिम्मे एक भी ऐसा इल्जाम लग जाय तो मैं सार्वजनिक जीवन से हट जाने के लिए तैयार हूं। बात यह है कि बंगाल का राजनैतिक जीवन पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और छिपे वार करने की प्रवृत्ति से भरा हुआ है। स्वराज्य-दल को यह

एकाएक उन्नति और सफलता कुछ लोगों के लिए असह्य हो गई है। इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम इन तमाम इल्जामों की तहकीकात करो और अपनी निश्चित राय दो। मैं तुमको यकीन दिलाता हूं कि बेईमानी पर मेरा उतना ही विश्वास है जितना कि तुम्हारा है। मैं जानता हूं कि हमारा देश अप्रामाणिक साधनों से आजाद नहीं हो सकता। यदि तुम तमाम दल वालों को एकत्र कर दो या कम से कम आपसका मनमुटाव ही हटा दो तो देश की भारी सेवा करोगे। तुम श्याम बाबू और सुरेश बाबू से खास तौर पर कहना। यदि उन्हें किसी बात का सन्देह हो या अविश्वास हो तो वे मुझसे आकर क्यों नहीं कहते' हमारे विचार चाहें जुदे जुदे हों पर इसके लिए हमें एक-दूसरे को गालियां देने की आवश्यकता नहीं है।' मैंने बीच ही मे कहा—'फारवर्ड के भी खिलाफ शिकायत है। उनके निस्बत? मैं तो अखबारों को पढ़ता नहीं हूं; पर मैंने 'फारवर्ड' की निस्बत भी ऐसी शिकायतें सुनी हैं।' 'हां, 'फारवर्ड' का अपराध हो सकता है। तुम जानते ही हो कि मैं उस तरह फारवर्ड में नहीं लिखता हूं, या उसकी देख-भाल करता हूं जिस तरह कि तुम 'यं०इं०' की करते हो। पर अगर ऐसी बातें लोग मेरी नजरों में लावेंगे तो मैं जरूर खुशी से उनकी तहकीकात करूंगा और शिकायत रफा कर दूंगा। मैं समझता हूं कि तुम फारवर्ड को हमेशा अपने बचाव में लिखते हुए देखोगे; पर हां बचाव में भी आदमी अपनी मर्यादा को उल्लंघन कर सकता है। तुम जानते ही हो, इन दिनों मैं 'फारवर्ड' की एक अत्युक्ति के मामले की खोज कर रहा हूं। जो बातें मेरे सामने पेश हुई हैं वे यदि सच है तो वह अत्युक्ति अक्षम्य है। यकीन मानो, मैंने बड़ी कड़ी चिट्ठी इस सबंध मे लिखी है। यहांतक कि मैंने ... को भी बुलाया है।' इस तरह बातों का सिलसिला चलता रहा। मैंने उसके दरम्यान देखा कि प्रतिपक्षी के साथ न्याय करने के लिए तथा प्रतिष्ठा के साथ तमाम दल वालों की एकता के लिए देशबन्धु ध्यान से बड़ी चिन्ता रखते थे।

मैंने पूछा—'सब दलों की परिषद या जैसा कि श्री केलकर की सूचना है, महासमिति की बैठक करने के संबंध में आपकी क्या राय है?' उन्होंने जवाब दिया—'फिलहाल मैं ये सब नहीं चाहता। महासमिति की बैठक फजूल है। क्योंकि हम स्वराजियों को यह खेल खेलना ही होगा। हमें नये मताधिकार को पूरा पूरा मौका अवश्य देना चाहिए। मैं तुमसे कहता हूं, चरखे के संबंध में मेरा मत तुम्हारे ही जैसा होता जा रहा है। मुझे डर है कि हम स्वराजियों ने सब जगह इस ... को नहीं ... है। बंगाल में तो, तुम कहते ही हो, किसी दल ने तुम्हारा विरोध नहीं किया। पर अगर मैं बिछौने पर न पड़ा होता तो मैं चरखे की जबरदस्त सफलता कर के दिखा देता। मैं कहता हूं, मैं दिलोजान से चरखे का प्रचार करना चाहता हूं और मैं इसके संगठन के लिए तुम्हारी मदद भी चाहता था। पर तुम देखते ही हो मैं किस तरह बे-बस हो रहा हूं। इस साल तो मताधिकार में परिवर्तन हो ही नहीं सकता। उल्टा हम सब लोगों को उसे पूरा मौका देना चाहिए। मैं इसके लिए महाराष्ट्रीय मित्रों को लिखने वाला हूं।'

और प्रस्तावित सर्व-दल-परिषद के संबंध मे उन्होंने कहा—'इसी वक्त हम यह परिषद न करें। मैं लार्ड बर्कनहेड से किसी भारी चीज की आशा रखता हूं। वह एक मजबूत विचारों का आदमी है और मैं ऐसे आदमी को पसंद करता हूं। वह ऐसा बुरा नहीं है जैसा कि उसके भाषणों से मालूम होता है। यदि हम परिषद् की आयोजना करेंगे तो हमें मौजूदा हालत पर कुछ जरूर कहना होगा। मैं नहीं चाहता कि हम अपनी मांगों को उससे कहीं अधिक बढ़ कर जिसना कि अभी देने के लिए वह तैयार हो, उसे उलझन में डाल दें। मैं नहीं चाहता कि हमारी मांगों को हम कम बता कर उसे निराश कर दें। अभी हमें ठहर कर देखना चाहिए। इससे हमारा कुछ नुकसान न होगा। यदि उसका वक्तव्य सन्तोषजनक न होगा तो उस समय सब दलों की परिषद करना और सब का मिल कर एक रास्ता निश्चित करना ठीक होगा।' मुझे परिषद् न करने का यह एक नवीन कारण मालूम हुआ और यह मैंने उनसे कहा भी। मैंने कहा जब तक आप या मोतीलालजी न चाहेंगे या सब दलों के प्रतिनिधियों की ओर से उसकी मांग न की जायगी तबतक मैं उसका आयोजन न करूंगा। पर मैं यह बात आपसे कबूल करता हूं कि मुझे वैसा विश्वास नहीं है जैसा कि आपको हो रहा है। हिन्दू-मुसल्मानों के अनबन को देखिए—बढ़ता ही जा रहा है। ब्राह्मणों और अब्राह्मणों के झगड़े का ख्याल कीजिए। बंगाल के राजनैतिक दलों को देखिए। यह साफ जाहिर हो रहा है कि जितने कमजोर हम आज हैं उतने कभी न थे। और क्या आप मेरी इस बात से सहमत नहीं होते कि अंगरेज लोगों ने कमजोरों के हक में कभी कुछ नहीं दिया है? मैं समझता हूं कि इंग्लैंड से किसी भारी चीज की उम्मीद रखने के पहले हमें अपनेको इतना बलवान बना लेना चाहिए कि किसीके रोके न रुक सकें।' देशबन्धु आतुरता से बोले—'तुम तो किसी तार्किक की तरह बात कर रहे हो। मैं तुमसे वह कह रहा हूं जो मेरा दिल कहता है। भीतर ही भीतर मेरे दिल में यह प्रेरणा हो रही है कि हमें कोई भारी चीज मिलने वाली है।' इसपर मैंने आगे बहस न चलाई। ऐसी श्रद्धा के सामने मैंने अपना सिर झुका दिया। मैंने उनसे कहा कि अंगरेजों के शील के प्रति मेरे हृदय में बड़ा आदर-भाव है। उनके अन्दर मेरे ऐसे ऐसे मित्र हैं कि जिसका अन्दाज नहीं किया जा सकता। पर मैंने देखा कि अंगरेजों पर उनकी श्रद्धा मुझसे भी अधिक थी। अंगरेज लोग जान लें कि देशबन्धु की मृत्यु के द्वारा उन्होंने अपना कैसा भारी दोस्त खो दिया है।

चर्खा और खादी की चर्चा में ही हमारा अधिक समय जाता था। खास तौर पर देहात के पुनः संगठन के सिलसिले में। इसके लिए उन्होंने कोई डेढ़ लाख रुपया भी जुटा रक्खा था। मैंने उनसे कहा कि आपकी योजना इतनी भारी है कि एकाएक अमल में नहीं लाई जा सकती। प्रताप बाबू का तैयार किया ढांचा मैंने देखा है और मुझे वह बिलकुल पसंद नहीं है। वह बिलकुल अव्यवहार्य मालूम होता है। देशबन्धु उसे न देख पाये थे। उन्होंने भी कहा कि हां, वह योजना नहीं चल सकती। और सच पूछिए तो प्रताप बाबू ने भी उसके न चल सकने की बात को मान लिया। मैंने देशबन्धु से कहा कि ग्राम-संबन्धी तमाम कामों का मध्यबिन्दु चरखे को बनाना चाहिए। उसके आसपास तमाम बातें घूमनी रहें और ज्यों ही चरखे के पैर जम जायं त्यों ही उनकी शुरुवात कर दी जाय। मैंने यह भी सुझाया कि यह ग्राम-संगठन का काम राजनैतिक धांधली से मुक्त रहे और एक ऐसे लोगों की समिति के जिम्मे कर दिया जाय जो उसके विशेषज्ञ हों। उसे स्थायी रूप से अधिकार दे दिये जायं। उसका एकमात्र काम रहे ग्राम-सेवा करना। मैंने सूचना की कि सतीश बाबू से कहा जाय कि वे ऐसी समिति बनावें और महासभा की तरफ से इस काम का जिम्मा ले लें। मैंने अपने कथन का सार-मात्र यहां दिया है। देशबन्धु न केवल उससे सहमत ही हुए, बल्कि उन्होंने उन बातों को नोट भी कर लिया। वे तुरन्त ही उसके अनुसार काम

करने के लिए उत्सुक थे । उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे दार्जिलिंग में रहते ही सतीश बाबू से उनके सम्बन्ध में बातचीत कर लेना चाहता हूं । और फिर महासभा की समिति में इसके लिए आवश्यक प्रस्ताव करने को हिदायतें दे दूंगा । तब तुरन्त सतीश बाबू बुलाये गये । वे आये । पहले तो हम तीनों ने साथ बैठ कर सलाह-मशवरा किया, फिर मैं दूसरे काम में लग गया और देशबन्धु अकेले सतीश बाबू से बात करते रहे । तय हुआ कि सतीश बाबू संस्था के पहले सदस्य हों । सतकौड़ी बाबू दूसरे और दोनों मिल कर एक तीसरे सदस्य को चुन लें । आत्म-कोष का एक हिस्सा तुरन्त उनके हवाले कर दिया जाय और मैं डालपईगुरी में मिलने वाली थैली का एक अंश उसमें दूं । यदि आवश्यक हो तो संस्था लोक हितकारिणी संस्थाओं के कानून के अनुसार रजिस्टर करा ली जाय जिससे कि उसकी बुनियाद मजबूत हो जाय । देशबन्धु इस काम के लिए उस कागज को देखनेवाले भी थे । देशबन्धु ने प्रताप बाबू से इस भारी चर्चा और इस निर्णय का जिक्र किया है और उन्हें इसके अनुसार काम करने की सूचनायें भी दे दी हैं ।

यह भी चर्खे के प्रति और उसके द्वारा ग्राम-संगठन करने की उनकी धुन । 'यदि लार्ड बरकनहेड हमें निराश कर दें तो मैं नहीं जानता कि हम धारासभाओं में क्या करेंगे, पर मैं यह अवश्य जानता हूं कि हमें आपके चर्खे के कार्यक्रम को जरूर आगे बढ़ाना चाहिए और अपने गांवों का संगठन करना चाहिए । हमें अपने राष्ट्र को फिर उद्यमशील बना देना चाहिए । हमें धारासभाओं के लिए शक्ति उत्पन्न करना चाहिए । मुझे बंगाल के नवयुवकों की सम्हाल करनी चाहिए । मुझे यदि सम्भव हो तो सरकार की सहायता से और आवश्यक हो तो उसके बिना यह प्रत्यक्ष दिखा देना चाहिए कि बिना हिंसा के स्वराज्य प्राप्त हो सकता है । हमारे देश के उद्धार के लिए अहिंसा जितना तुम्हारा धर्म है उतना ही मेरा अन्तिम धर्म हो गया है । अहिंसा के बिना सविनय भंग नहीं हो सकता । और सविनय भंग की शक्ति के बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता । सच पूछा जाय तो हमें सविनय भंग शायद कभी न करना पड़े, पर हमें उसकी योग्यता अवश्य आ जानी चाहिए । अपने अधीर नौजवानों के लिए मुझे काम जरूर खोजना चाहिए । मैं तुम्हारी इस बात से सहमत हूं कि यदि हम उनकी चिन्ता न करेंगे तो उनके पथच्युत हो जाने का डर है । मेरे गुरु से मैंने अपने तमाम कार्यों में सत्य का मूल्य सीख लिया है । तुम कम से कम कुछ दिन उनके साथ रहो तो अच्छा । तुम्हारी और मेरी आवश्यकतायें भिन्न भिन्न हैं । पर उन्होंने मुझे वह बल प्रदान किया है जो मुझमें पहले न था । मैं पहले जिन बातों को अस्पष्ट रूप से देखता था, वे अब मुझे साफ साफ दिखाई देती हैं ।'

पर अब इस बातचीत को मैं आगे नहीं ले जा सकता । मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि यह बातचीत अन्त को आध्यात्मिक चर्चा अथवा सम्भाषण में परिणत हो गई । उनके मुंह से इन बातों की धारा चल रही थी कि आजकल वे क्या कर रहे हैं और सशक्त हो जाने के बाद क्या करना चाहते हैं । उस संभाषण से मुझे उनकी गम्भीर धार्मिक प्रकृति का आन्तरिक ज्ञान हुआ, जो कि मुझे पहले न था । मुझे पता न था कि कितने ही नामी नामी बंगालियों की तरह यह उनकी भी जबरदस्त धुन थी । अबसे कोई चार साल पहले जब उन्होंने गंगा किनारे एक कुटी बनाकर रहने की बात मुझसे की, और सासून अस्पताल में भी उन्होंने उसे दुहराया था, तब मैं अपने दिल में हंसा और उनसे दिल्लगी में कहा--जब आप कुटी बनावेंगे तो मेरा भी उसमें हिस्सा रहेगा । पर दार्जिलिंग में मैंने अपनी इस गलती को देखा । अपनी राजनैतिक बातों की अपेक्षा अपनी कुटी की लगन उन्हें बहुत ज्यादह लगी हुई थी । राजनीति में तो वे परिस्थिति से मजबूर हो कर पड़े थे ।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[ये संस्मरण ८ जुलाई को बाकुड़ा में लिखे गये थे । कलकत्ते में लार्ड बरकनहेड का भाषण ९ तारीख को छपा और उसी दिन मैंने उसे अवलोकन किया । ये पंक्तियां १० तारीख को लिख रहा हूं । अब मैंने उनके भाषण को गौर से पढ़ लिया है । उससे इन संस्मरणों का मूल्य और भी बढ़ जाता है । मैं कह सकता हूं कि लार्ड बरकनहेड के इस भाषण से देशबन्धु को कितनी चोट पहुंची होती । किसी न किसी तरह उन्होंने अपना यह खयाल बना लिया था कि लार्ड बरकनहेड कोई भारी बात कर दिखाने वाले हैं । मेरी नाकिस राय में यह भाषण जबरदस्त निराशाजनक है । इस कारण से नहीं कि उसके द्वारा हमें कुछ मिला नहीं है, बल्कि इस बात से कि उसमें भारत-मंत्री ने बिलकुल अंटसंट बातें कह डाली हैं । उनकी हरएक मुख्य मुख्य बात का देश के हर दल वालों ने खंडन किया है । सबसे भारी दुःख की बात तो यह है कि शायद वे उन सब बातों पर जो कि उन्होंने कही हैं, विश्वास भी करते हैं । अंगरेज लोगों में आत्म-वंचना करने की गजब की शक्ति होती है । हां, इसमें कोई शक नहीं कि इससे वे कितनी ही दिक्कत-तलब हालतों में से निकल जाते हैं; पर उससे दुनियां को, जिसके कि एक बड़े भाग पर उसकी हुकूमत है, अपरिमित हानि पहुंचती है । वे अपना भ्रमपूर्ण विश्वास बना लेते हैं कि हम यह सब बिलकुल यदि नहीं तो मुख्यतः दुनिया के लाभों के लिए करते हैं । यदि हो सका तो मैं इस अनोखे अभिनय की समीक्षा अगली संख्या में करने की चेष्टा करूंगा । इस बीच हमारा कुछ कर्तव्य उस मृत आत्मा के प्रति है जिसने अंगरेजों को भारतवर्ष के सबंध में पहले से अधिक विचार करने पर मजबूर किया है । अगर वे जीवित होते तो इस समय क्या करते ? निरुत्साह होने का कोई कारण नहीं, गुस्सा करने के लिए तो और भी कम । लार्ड बरकनहेड से कुछ उम्मीद रखने की कोई कारण-सामग्री हमारे सामने न थी । भारतवर्ष में अंगरेजी शासन की प्रशंसा में उन्होंने जो कुछ कहा है वह कोई नई बात नहीं है । कोई परिश्रमी उपसम्पादक यदि अपने कतरनों की किताब लेकर बैठ जाय तो वह लार्ड बरकनहेड के ख्यातनामा पूर्वाधिकारियों के भाषणों से ऐसी ही बातें प्रायः इन्हीं शब्दों में ला कर रख देगा । यह भाषण क्या है, हमें अपने घर को सुव्यवस्थित बनाने की नोटिस है । मैं तो अपनी तरफ से इसके लिए उन्हें धन्यवाद देता हूं । मेरे सामने देशबन्धु का नुस्खा भी मौजूद है । मैंने पाठकों के सामने भी उसे पेश कर दिया है ।

(य० इं०) मो० क० गांधी]

आश्रम भजनावली

चौथी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है । पृष्ठ संख्या ३६८ होते हुए भी कीमत सिर्फ ०--३--० रक्खी गई है । डाकखर्च खरीदार को देना होगा । ०--४--० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी । वी. पी. का नियम नहीं है ।

व्यवस्थापक

हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण बदी ११, संवत् १९८२

शंका–निवारण

आजकल मुझे देशबन्धु–स्मारक के लिए द्रव्य इकट्ठा करने कई सज्जनों के यहां जाना पड़ता है। ऐसे धनिक महाशयों में श्री साधुराम तुलारामजी हैं। उनके यहां से चन्दा तो अच्छा मिला ही; परन्तु वहां कुछ धर्म की चर्चा भी हुई। चर्चा में अस्पृश्यता का विषय भी था। किसी महाशय ने मुझसे कहा कि अखबारों में ऐसी खबर छपी है कि मैं कहता हूं कि जिनको हम अस्पृश्य मानते हैं उनसे रोटी–बेटी–व्यवहार भी होना चाहिए। इस शंका का निवारण उन भाइयों को जिन्होंने प्रश्न किया था आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। और उन्होंने मुझसे कहा कि जो बात आपने यहां कही है उसका सारांश आप हि०न०जी० में दे दीजिए। मैंने उनकी सलाह को मान लिया। उसका सारांश मैं यहां देता हूं।

प्रथम तो जनता को मालूम होना चाहिए कि मैं अखबार नहीं पढ़ता हूं; और यदि पढ़ भी लेता हूं तो जितनी भर गलतियां मेरे नाम पर छपती हैं सबको दुरुस्त करना मैं असंभव समझता हूं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य जिसको कुछ भी शंका हो मुझसे पूछ लें कि मैंने क्या कहा था। इसी अस्पृश्यता के विषय में यदि किसीने ऐसा छाप दिया है कि मैं अस्पृश्य भाइयों के साथ रोटी–बेटी व्यवहार चाहता हूं, या मैं उसको उत्तेजना देता हूं तो वह भूल करता है। मैंने हजारों बार स्पष्टतया कह दिया है कि अस्पृश्यता–नाश का यह अर्थ कभी नहीं है कि रोटी–बेटी–व्यवहार की मर्यादा तोड़ दी जाय। रोटी–बेटी–व्यवहार किसके साथ किया जाय और किसके साथ नहीं, यह एक अलग बात है। उसका निर्णय करने की कोई आवश्यकता मुझे इस समय प्रतीत नहीं होती। मेरा तो यह भी विश्वास है कि दोनों प्रश्नों को साथ मिलाने से जिस सुधार को हम आवश्यक मानते हैं वह भी रुक जायगा। अस्पृश्यता को दूर करना प्रत्येक हिन्दू–धर्मावलम्बी का कर्तव्य है। इसके साथ किसी भी दूसरे विषय को मिला कर हम उसे हानि पहुंचावेंगे।

हां, जल–ग्रहण करने के विषय में मुझे कुछ कहना है। यदि हम शूद्र के हाथ से स्वच्छ जल ग्रहण करें और करते हैं और करना चाहिए तो हम अस्पृश्य के हाथ से भी स्वीकार करें। मेरे नजदीक चार वर्ण हैं। अस्पृश्य जैसा कोई पांचवां वर्ण नहीं है। इसलिए हम अस्पृश्यता को मिटा कर अस्पृश्य माने जाने वाले हिन्दुओं का दुःख दूर करें, हिन्दू धर्म की शुद्धि करें और हम शुद्ध बनें। दूसरे शब्दों में इसी बात को कहूं तो किसी धर्म में निन्दा और घृणा के लिए स्थान नहीं है। अस्पृश्यता के अन्दर घृणा–भाव है। इस घृणा–भाव को हम मिटा दें। हिन्दू–धर्म सेवा–धर्म है। अस्पृश्य कहे जाने वाले लोगों को हम सेवा से क्यों वंचित रखें?

मोहनदास गांधी

सत्य पर कायम रहो

बकरीद के दिन खिदिरपुर में जो हिन्दू–मुसल्मानों का दंगा हुआ उसका हाल सुनने को उत्सुक मैंने पाठकों को नहीं डाला, हाल कि मैं दंगे के कुछ घण्टे बाद खुद मौके पर पहुंच गया था। पर हां, स्टीमर से वापस लौटते ही एसोशियेटेड प्रेस के प्रतिनिधि से मैंने उसका वर्णन किया था। उसमें मैंने विचार के बाद अपनी यह राय दी थी कि हिन्दू कुलियों का सारा दोष था। इस बात को पढ़ कर कुछ हिन्दू सज्जन मुझ पर बड़े बिगड़े हैं और इस बात पर कि मैंने हिन्दुओं का दोष बताया, मुझे बहुत बुरा भला कहा है। चिट्ठियों में मुझे खूब गालियां दी गई हैं और उनका स्वर और हद क्षोभोत्पादक भी है। यहां तक कि एक ने तो मुझे मुसल्मान नाम भी प्रदान कर दिया है! मैं इन पत्रों का उल्लेख यहां यह दिखलाने के लिए करता हूं कि हमारे कुछ लोग अपने मजहब के अन्धाधुंध जोश में किस हद तक पहुंच गये हैं। हम इस बात का देखना और सुनना ही नहीं चाहते कि हमारे अंदर भी, हमारा भी कुछ दोष है। जब किसी धर्म–विशेष के बहुसंख्यक अनुयायियों की यह रोजमर्रा की हालत हो जाती है तब समझ लेना चाहिए कि वह धर्म डूब रहा है; क्योंकि असत्य की नींव पर स्थित कोई बात अधिक समय तक नहीं टिक सकती।

मैं तो यह कहने का साहस करता हूं कि मैंने बिना किसी रू–रिआयत के हिन्दू कुलियों के दोष को प्रकट कर के हिन्दू–धर्म की सेवा ही की है। मेरी इस स्पष्टोक्ति पर खुद कुलियों ने भी अपनी नाराजगी न प्रकट की। बल्कि उलटा वे तो उसके लिए कृतज्ञ होते हुए दिखाई दिये। उनके दिल में पश्चात्ताप की प्रेरणा हुई, उन्होंने अपने कुसूर को कुबूल किया और सच्चे दिल से उसके लिए मुआफी मांगी।

अच्छा तो अब मैंने खुद जो कुछ अपनी आंखों से देखा और अपने दिल में अनुभव किया उसे न कहता तो क्या करता? क्या मैं गुनहगार लोगों को छिपाने के लिए झूठ बोलता? जब कि आधी रात को हर वक्त हर जगह जा पहुंचने वाले संवाददाता मेरे पास पहुंचे तो क्या मैं बातचीत करने से इन्कार कर देता? उस समय भी जब कि कहने का प्रसंग था, यदि मैं सच सच कहने में आगा–पीछा करता तो मेरा अपनेको हिन्दू कहलाने का अधिकार नष्ट हो गया होता, मैं महासभा के सभापति–पद के अयोग्य अपनेको साबित करता और एक सत्याग्रही के तौर पर अपने नाम को धब्बा लगवाता। हिन्दुओं को चाहिए कि वे खुद उस इलजाम के अपराधी अपनेको न बनावें जोकि वे बिना झिझके मुसल्मानों पर लगाते हैं — अर्थात् यह कि पहले तो बुरा काम करना और फिर झूठ बोल कर उसे छिपाना।

एक पत्र–लेखक कहते हैं कि जब कि देहली में हिन्दुओं ने आपका सहायता चाही तब तो आपने कह दिया, क्या करूं,

निरुपाय हूं, कुछ बस नहीं है: जब लखनऊ में आपको बुलाया गया तो आपने टाल-टूल कर दिया और अब जब कि हिन्दुओं पर छीः थूः करने का मौका आया तो फौरन आप मौके पर जा धमके और उनके संबध में बिना विचारे राय कायम कर डाली! सो पाठक इस बात को जान लें कि मैं हिन्दुओं की तरफ से, एक हिन्दू के द्वारा निमंत्रण मिलने पर, तथा श्री सेनगुप्त के बुलाये जाने पर, वहां गया था। मेरी बेबसी के रहते हुए भी जब कि खास लड़ाई ही हो रही हो और खास कर जब कि किसी भी एक पक्ष की तरफ से मुझे बुलौवा आवे तो मुझे अवश्य उनकी सहायता के लिए वहां पहुंच जाना चाहिए। मैं अपनी लाचारी तो उस हालत में प्रकट करता हूं जब कि एक पक्ष के लोग मुझे किसी झगड़े को निपटाने के लिए या उसे रोकने के लिए बुलाते हैं। क्योंकि कुछ किस्म के हिन्दू और मुसल्मानों पर अब मेरा प्रभाव नहीं रह गया है। मैं समझता हूं कि इन दोनों हालतों का अन्तर इतना साफ है कि उसे खोल कर बतलाने की आवश्यकता नहीं।

परन्तु पत्र-लेखक कहते हैं और हिन्दुओं के एक शिष्ट-मण्डल ने भी, जो कि मुझसे मिलने आया था, कहा कि आपने जो हिन्दुओं को बुरी तरह फटकारा है उससे मुसल्मानों को निर्दोष लोगों पर हमला करने का बड़ा उत्साह मिल गया है और मुसल्मान गुण्डों को बाजार में हिन्दू दुकानों को लूटने का मौका मिल गया है। सो यदि मेरे हिन्दुओं के कु-कृत्यों की निन्दा-फटकार करने का फल यह हो कि मुसल्मान लोग कु-कृत्य करने लगें, तो इससे मुझे बड़ा रंज होगा। पर इतना होते हुए भी मैं उचित काम करने से पीछे न हटूंगा। और हिन्दू लोग मुसल्मानों के हमले से डरें क्यों? यदि हिन्दू लोग मेरे अहिंसात्मक और त्यागात्मक उपाय का अवलम्बन न कर सकें, और मैं मानता हूं कि धन-दौलत रखनेवाले व्यापारियों के लिए वह मुश्किल है, तो हिन्दुओं के लिए अवश्य ही यह ठीक होगा कि अपनी आत्मरक्षा का हर तरह से उपाय करें। हम चाहें हिन्दू हों या मुसल्मान, जबतक अपनी भीरुता न छोड़ेंगे और आत्म-रक्षा करने की विद्या न सीख लेंगे तबतक हम मनुष्य नहीं कहला सकते। जो लोग खुद अपनी रक्षा करना नहीं सीखते, लेकिन औरों के द्वारा कराना पसंद करते हैं उनके सिर पर जो निश्चित खतरा हमेशा मंडराता रहता है उसे लुक छिप कर किसी तरह नहीं टाल सकते। खिदरपुर के हिन्दुओं की जो भर्त्सना मैंने की है उसमें उन लोगों की भर्त्सना अवश्य ही नहीं है जो कि अपनेपर होने वाले आक्रमणों से अपनी रक्षा करते हैं। यदि हिन्दू लोगों ने खुद हो कर मार-पीट करने के बजाय, आत्म-रक्षा के लिए हर तरह के संकट का मुकाबला किया होता और उसमें प्राण भी दे दिये होते तो मैंने उनकी वीरता की तारीफ की होती। परन्तु खिदरपुर में, जहांतक मुझे पता है, उनकी तादाद बहुत ही भारी थी और खुद हो कर उन्होंने हाथ चलाया था। मुसल्मानों की ओर से मार-पीट का कोई कारण नहीं दिया गया था। जिस तरह कि मैंने गुलबर्गा और कोहाट में किये मुसल्मानों के कु-कृत्यों को, जो कि मेरी राय में बिल्कुल अनावश्यक थे, बिला हिचक धिक्कारा था, इसी प्रकार मैं उत्तेजना का कारण मिले बिना की गई मार-पीट को जरूर बिला झिझके बुरा कहूंगा। एक वार पर दो वार करने को भी मैं समझ सकता हूं; परन्तु बिना किसी किस्म की उत्तेजना, या खास मौके के लिए पैदा की गई उत्तेजना के, की गई खून-खराबी के हक में मैं अपनी राय कैसे बना सकता हूं?

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

कुछ प्रसंग

(१)

मैमनसिंह में गांधीजी महाराजा के महल में ठहराये गये थे। महल में ठहरते हुए गांधीजी को त्रास होता है। ट्रावनकोर के महाराजा के अतिथि-गृह में प्रवेश करते हुए वे ठिठकते थे। वहां तथा मैमनसिंह में भी उन्होंने इसका कारण बताया—'मुझे आप लोग ऐसे मकानों में ठहराते हैं जिसमें मुझे भी पसोपेश होता है और लोगों को भी होता है। मुझसे तो मुझ जैसे ऐरी-गैरी लोग भी मिलना चाहते हैं। महलों में कालीन का फर्श खराब हो इससे तो बहतर हो कि मैं मामूली घरों में ठहरूं। और दूसरा डर तो यह है कि गरीब लोग आपके महलों से चौंक कर शायद मिलने भी न आवें।' महाराजा ने कहा—'इस महल के सब दरवाजे सबह से शाम तक खुले रहेंगे। और किसी आने-जाने वाले की रोक-टोक न होगी।' दूसरे दिन गांधीजी का स्वास्थ्य कुछ खराब रहा। इधर मेह जोर का बरस रहा था। सभा तो हो ही कैसे सकती थी? इसलिए यह तय किया गया कि जिला बोर्ड की तरफ से अभिनन्दन-पत्र बंगले ही में दिया जाय। पर ऐसा करने से लोगों से किस तरह मिल सकते थे? महाराज ने तजवीज की कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, आपको तकलीफ तो होगी, पर एक काम किया जाय तो हो सकता है। आप बरामदे में एक सोफा पर लेटे रहिए और लोग आपके दर्शन करते हुए एक दरवाजे से होकर दूसरे दरवाजे से चले जांय। गांधीजी ने कहा 'पानी तो इस तरह बरस रहा है। लोग होंगे तब न?' लोगों का क्या पूछिए, हजारों की भीड़—छाते सहित और छाते-रहित-खड़ी थी। गांधीजी ने इस तजवीज को पसंद किया। सोफा बरामदे में पहुंचाया गया और उसपर चरखा रक्खा गया। दोपहर के तीन बजे से ले कर शाम के छः बजे तक महाराजा के बंगले में हजारों आदमी गांधीजी का दर्शन करते हुए गये। कितने ही लोग चौतरे की सीढ़ियां चढ़ कर चरखे को स्पर्श कर जाते थे और कितने ही सोफा को। क्योंकि सब लोग जानते थे कि गांधीजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। कुछ समय तक तो गांधीजी कातते रहे; पर फिर लेट जाना पड़ा। हजारों लोगों के मजमे में और जोर की बारिश में भला आराम तो क्या मिल सकता था? पर शाम तक वे इसी तरह लेटे रहे। शाम को बदन टूटने लगा। महाराजा ने तथा अन्य मित्रों ने कहा—'आज आपको बड़ी तकलीफ हुई।' गांधीजी उत्तर देते हैं—'तकलीफ तो आज सचमुच की रही। पर चरखे के लिए जितने नाच आप नचावेंगे उतने नाचने के लिए तैयार हूं। इतना करते हुए भी यदि लोग मेरे खादी के पैगाम को कबूल कर लें तो मुझे यह भी मंजूर है।'

(२)

एक दूसरे स्थान पर सभा का समय हो गया था। एक दो बार समय न मिलने से गांधीजी खाना न खा सके थे। इसलिए उस दिन सतीश बाबू ने सभा के समय की खबर न दी। पांच सात मिनिट की देर हो गई। भोजन कर के गाड़ी में बैठे। घड़ी की ओर देख कर पूछा, सभा के बजे है' यह जानकर कि सभा का समय हो गया, बिगड़े। सतीश बाबू ने कैफियत पेश की—'आपके भोजन के समय को खयाल में रखकर सभा का समय न रक्खें तो फिर क्या करें?, गांधीजी बोले 'मुझे चाहे भूखों मार डालो, पर समय को न भूखों मारो।' ये तमाम सभायें एक ही बात के लिए हैं और उस बात की सिद्धि के लिए समय की भी पूरी पाबन्दी रखना चाहिए।'

(३)

' दिनाजपुर में चरखा-प्रदर्शन बड़ा बढ़िया था। स्त्रियों की सभा भी खूब थी। परन्तु सभा की कुछ अव्यवस्था रही। रात को ट्रेन में बैठते समय स्वागत-सभापति ने कहा-'कुछ अव्यवस्था हुई है, उसके लिए माफी चाहता हूं।' गांधीजी ने कहा-- चरखे के काम को पूर्णता तक पहुंचाओगे तो जो कुछ करोगे सब माफ कर दूंगा।' चरखे तथा चरखा कातने वाले के प्रति उनके पक्षपात की यह पराकाष्ठा है। पर इससे कोई यह न समझे कि बस एक चरखा कात ले तो सब पाप माफ! इस बात को स्पष्ट करने का अवसर बरीसाल में आया था। बरीसाल में गांधीजी १९२१ में पतित बहनों से मिले थे, और एक-दो कार्यकर्ताओं को उनके उद्धार का काम भी बता आये थे। उसके बाद तो महासभा के कार्यकर्ताओं में दो दल हो गये-अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी के झगड़े चले। इन झगड़ों ने बरीसाल में जितना दूषित स्वरूप धारण किया है उतना और कहीं नहीं। कार्यकर्ताओं ने तो व्रत धारण किया था पतित बहनों की सेवा के लिए; पर उसके बजाय राजनैतिक बातों में उनसे लाभ उठाया जाने लगा, वे महासभा की सदस्य हुईं; प्रतिनिधि भी बनकर गईं और उनकी रायों से काम भी लिया जाने लगा। जिस दिन गांधीजी वहां गये उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि गांधीजी हमारे मुहल्ले में आवें, हम गांधीजी को अभिनन्दन-पत्र समर्पित करें और एक सज्जन उसका खूब समर्थन भी करने लगे। गांधीजी ने पहले तो अपने रोष को शमन करके इतना ही कहा-'उन्हें कहलवा दीजिए कि मुझसे मिलना चाहती हों तो यहां आवें। मैं उनके यहां मिलने नहीं आ सकता।' पर वे मतलब नहीं समझे। वे उनकी तरफ से वकालत करने लगे 'आपने तो उपदेश दिया था इन बेचारी अभागिनियों की सेवा करने का। और आज आप उन्हें अपने दर्शनों से भी वंचित रखते हैं। आपको तो वे अभिनन्दन पत्र भी अर्पित करना चाहती हैं।' गांधीजी इसे न सह सके- 'मेरे कहने का यदि ऐसा अनर्थ होता हो तो मुझे डूब मरना होगा। मैंने आपको इनकी सेवा करने के लिए कहा था। इन्होंने अपना पेशा तो छोड़ा ही नहीं। और जिन्होंने अबतक अपना व्यवसाय छोड़ा नहीं है उनका उपयोग आप आज राज-काज में करते हैं? यदि कोई चरखा कातती हो तो क्या हुआ? इनका सूत मेरे लिए बेकार है। चरखा कहीं पाप का ढक्कन हो सकता है? और मैं इनका अभिनन्दन-पत्र स्वीकार करूं? उनके धन्धे को 'मान्य' धन्धा बनाऊं? इसपर इन्हें शर्म होनी चाहिए। ये लोग अपना पेशा बिलकुल छोड़ दें, यही उनकी सेवा की पहली सीढ़ी है। जबतक वे अपना पेशा नहीं छोड़ती तबतक उनके द्वारा सेवा होना असंभव है। और मेरे पास आते हुए उन्हें संकोच होता है? १९२१ में संकोच हुआ था? मुझे मान-पत्र देकर वे खुद मान और सत्ता प्राप्त करना चाहती हैं यह कभी नहीं हो सकता।' इससे पहले दो बार पतित बहनों का प्रश्न खड़ा हुआ था। वह इस समय याद आ रहा है। बेलगांव में तिलक-स्वराज्य-कोष का चंदा लेने के लिए एक मंदिर में स्त्रियों की एक सभा की गई थी। दो पतित बहनें बड़े संकोच से मन्दिर के पास आकर स्वयंसेवक की झोली में (४०-५०) डाल गई थीं। इस प्रसंग के थोड़े दिन पहले बम्बई में एक मित्र ने एक प्रसिद्ध गाने वाली से स्वराज्य-कोष के लिए बहुतेरी रकम मिलने की संभावना बताई थी। गांधीजी ने उसपर साफ इनकार कर दिया था। 'यह तो, मानों उनके पेशे की कदर करना है। हां, अगर वह धन्धा छोड़कर भले ही वे लाखों रुपया देकर प्रायश्चित करें।' इसलिए बेलगांव में यह सवाल उठा था कि वे रुपये लिये जांय या नहीं? गांधीजी ने कहा-- यह रुपया इन बाइयों ने प्रसिद्धि के लिए नहीं, बल्कि प्रायश्चित के आंसुओं के साथ दिया है, इसलिए ले सकते हैं। उन्हें सभा में आने की भी हिम्मत न हुई-इसीसे यह जाना जाता है कि इसका उन्हें अभिमान नहीं हो सकता। देशबन्धु स्मारक के लिए यहां गांधीजी से पूछा गया था कि यदि पतित बहनों के मुहल्ले में चंदा लेने जायें तो बहुतेरा रुपया मिल सकता है। पर गांधीजी ने साफ इनकार कर दिया।

(४)

ढाका में शाम को एक ७० साल का बूढ़ा गांधीजी के सामने आ कर खड़ा हुआ। ३०--४० मील से आया था। और दर्शन के लिए रो रहा था। गांधीजी के सामने आते ही उसने कहा-मेरे सिर पर हाथ रख दीजिए। गांधीजी ने बिना कुछ पूछे-ताछे सिर पर हाथ रख दिया, इस खयाल से कि वह जल्दी बिदा हो जायगा। पर हाथ रखने की ही देर थी कि वह तो बड़े आवेश में आ कर गांधीजी के चरणों में लोटने लगा और रोने लगा। कुछ समझ में नहीं आता था कि बात क्या है। उसके गले में गांधीजी और बा (श्रीमती गांधी) की तस्वीर लटक रही थी। जब उसके हृदय का उफान निकल गया तब कहा-मैं नामशूद्र हूं। मुझपर आपकी इतनी कृपा! दस साल पहले मेरे पैर रह गये थे। बीसों दवायें की, पर बिछौने से न उठा जाता था। भगवान् से मौत की प्रार्थना करता रहता था। फिर आपका नाम लेने लगा और अब चलने-फिरने लगा हूं। कोई दवा-दरपन नहीं किया। यह कह कर फिर पैरों में लोटने लगा। गांधीजी ने उसे मना कर के कहा 'भाई, भगवान् का भजन करो। उसने तुम्हें चंगा किया है। गांधी के पास किसीको चंगा करने की करामात नहीं।' परन्तु वह किसीकी क्यों सुनने लगा? अन्त को गांधीजी ने कहा-'भाई अब जाओ, और मेरा कहना मानो तो गले से यह तस्वीर निकाल डालो।' उसने तस्वीर निकाल कर हाथ में ले ली और चला गया। मैं समझता हूं कि वह ऐसा निश्चय मन में करता हुआ गया होगा कि जिस गांधी महाराज ने मेरा लकवा दूर कर दिया वही यह गांधी होगा, जिसकी तस्वीर मैं गले में लटकाये फिरता हूं वह नहीं। परन्तु जिस शख्स को गांधीजी समझा न सकें उसके तो सिर पर वो हाथ भी रख दें, परन्तु समझदार लोगों का क्या करें? दार्जिलिंग आते समय एक वकील हमारे साथ थे। रास्ते में एक स्टेशन पर उतरे। वापस चढ़ते ही थे कि गाड़ी चली और वे पटरी से फिसल कर नीचे गिर पड़े। उनके लड़के ने उन्हें गिरते देखा और सांकल खींच कर गाड़ी खड़ी रखी। उन्हें किसी किस्म की चोट वगैरह न आई थी। दूसरे स्टेशन पर आ कर गांधीजी के पैर छूने लगे और कहने लगे-- आज आप इस गाड़ी में थे इसीसे मैं बच गया, नहीं तो मर जाता' यह कह कर दुर्घटना का किस्सा सुनाने लगे। गांधीजी ने कहा-- 'और यह क्यों न कहें कि मैं इस गाड़ी में था इसीसे यह दुर्घटना हुई? मैं न होता तो शायद दुर्घटना होती ही नहीं।' मैं नहीं कह सकता, इस मजाक का रहस्य वे समझे या नहीं। पर यह मैंने देखा है कि बहुतेरे लोग नहीं समझते हैं। जब देशबन्धु की रथी को कन्धा लगा कर गांधीजी जा रहे थे तब भी भीड़ में लोग उनके चरण-स्पर्श करने के लिए छट-पटा रहे थे। चरण-स्पर्श तो असंभव था, इसलिए केवल शरीर-स्पर्श कर के ही पावन हो जाना चाहते थे। उन्हें प्रसंग का भी खयाल न था। विवेक और विचार दोनों को छोड़ कर वे काम कर रहे थे। 'यह अन्धता देख कर तो नास्तिक हो जाने की

जी चाहता है ? गांधीजी ने झुंझला कर एक मित्र से कहा — 'इस वहम को कि चरण-स्पर्श से मनुष्य पवित्र हो जाता है, और जन्म सिद्ध हो जाता है किस तरह दूर करें ? इस वहम का जरा भी समर्थन न कर के विवेकवान् लोग इसे दूर कर सकते हैं। मेरा जीवन यदि पसन्द हो तो मेरा काम करो और उसे कर के मेरे प्रति अपना आदर प्रकट करो। यह तो असह्य है।'

(५)

एक बहन आदर्श भक्त देखने को मिली। उम्र तो कम थी; पर उसकी समझदारी का ठिकाना न था। अनेक बहनों के साथ उसने गांधीजी के दर्शन किये। सबने चरण-स्पर्श किया, पर उसने नहीं। दूसरी बहनों को कुछ नसीहत देने तथा अपने इस व्यवहार से यदि गलतफहमी होती हो तो उसे न होने देने के खयाल से उसने गांधीजी से कहा —'मैंने आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए चरण-स्पर्श नहीं किया है। आपने अनेक बार 'हिन्दीनवजीवन' में लिखा है।' सुन कर गांधीजी को बड़ा आनन्द हुआ। दूसरे दिन वह बहन और बहनों के साथ फिर आई। वे बहनें अपने नोट-बुक में गांधीजी से कुछ लिखवा लेना चाहती थीं। 'ऐसा कुछ उपदेश लिख कर दे जाइए कि भूल होते समय इसे देखें तो भूल न हो। चरखे के संबंध में कुछ ऐसा लिख दीजिए कि यदि चरखा कातने का खयाल न रहे तो रहने लग जाय'। गांधीजी कहते हैं — 'तुम लोगों के लिए यह पागलपन कहां से सवार हुआ है। यह तो कलकत्ते जैसे शहरों में कुछ स्त्रियों पर जो पागलपन सवार है उसीका अनुकरण है।' पर वे बहनें इस बात को समझने के लिए तैयार न थीं। कल वाली उस समझदार बहन ने गांधीजी को सहारा दिया — 'चलो, चलो, समझने की बात है। लिखा हुआ उपदेश के दिन के लिए ! नवजीवन तो पढ़ती ही हैं। परन्तु नवजीवन की भी क्या जरूरत ? मैं तो सच कहती हूं, चरखे को देख कर ही मेरा दिल चाहता है कि कातूं। भंगी और दीन-दुखी को देख कर ही मुझे गांधीजी का उपदेश मिल जाता है। गरीबों की करुणा-पूर्ण आंखों से ही गांधीजी का संदेश टपकता है।' वे बहनें कुछ खिसियाई, मान गईं और लौट गईं।

(६)

इस प्रकार ऐसे दृश्य देखने को मिलते रहते हैं जिनसे बहनों की तरफ कुदरती तौर पर पक्षपात होता है। बहन अपर्णा देवी बड़ा उम्दा सूत कातती हैं। सभी इस बात को जानते हैं। जब हम यहां कलकत्ते आये वे १५१ से १७१ अंक तक का सूत गांधीजी को देने के लिए आई। हर महीने अपनी स्वर्गीया माता के निमित्त २००० गज सूत गांधीजी को भेजती हैं। गांधीजी ने कहा — अब सारा सूत एक ही अंक का कातने की कोशिश करो न, जिससे कि इस सूत का एक-सा बढ़िया कपड़ा बुना जाय। ठीक एक महीने बाद इस बहन ने १८६ अंक की पांचसौ पांचसौ की चार कालकियां गांधीजी के सामने रख कर उन्हें छका दिया। यह बहन तो बेचारी आधुनिक शिक्षा-दीक्षा से वंचित, संस्कृत के अध्ययन में अनुराग रखनेवाली, भोली-भाली, श्रद्धामयी है परन्तु फरीदपुर में एक जबरदस्त आधुनिक बहन मिली थी। सरकारी फार्म देखने का निमन्त्रण था। और वहां सरकारी कर्मचारी भी एकत्र हुए थे। वे बहन भी वहां आई थीं। गांधीजी अपनी तकली चला रहे थे। पहले तो उस बाई ने तकली की दिल्लगी उड़ाई, गांधीजी की सादगी का भी मजाक उड़ाया। एक ओर बातें हो रही थीं, दूसरी ओर गांधीजी की तकली भी चल रही थी। गांधीजी तो दौरा जज और कलेक्टर को भी समझा रहे थे कि आप-लोग मुकदमों की सुनवाई करते समय भी तकली कात सकते हैं। और सेशन्स जज ने तो कहा भी — मैं कुबूल करता हूं कि वकीलों की जी उबा देने वाली लम्बी लम्बी तकरीरें सुनने की बनिस्बत तो यदि तकली चलाया करें तो जरूर आनन्द मिल सकता है।' तब तो उस बहन का भी दिल पिघल गया। जाते जाते उन्होंने बतौर एक खिलौने के गांधीजी से तकली मांगी। गांधीजी ने कहा — घर जा कर भेज देंगे, और घर आये। मुझसे कहा — मेरी तकली उन्हें भेज दो। मैंने कहा — बापूजी, आप यह तकली फजूल भिजवाते हैं। उसकी मेज पर यों ही पड़ी रहेगी। और औरों के सामने आपका मजाक उड़ाने में उससे मदद ली जायगी।' गांधीजी हंसे — 'कुछ हर्ज नहीं। इसमें हमारा क्या नुकसान है ?' २०-२५ दिन बाद यही बाई बरीसाल में मिली। सरकारी पाठशालाओं की निरीक्षिका थी। मैं क्या देखता हूं कि वह अपनी तकली और उसपर अपना काता बढ़िया सूत ले कर आई। यही नहीं, वह और बहनों को कातने के लिए ललचा रही थी। गांधीजी को अपनी कातने-धुनकने के ज्ञान की शक्ति का प्रत्यक्ष परिचय दे कर कहा — मैंने कन्याशालाओं में इसके प्रवेश करने का निश्चय किया है। शुरूआत में मैं ६० तकलियां बनवाने वाली हूं। गांधीजी ने कहा — 'हां, सो तो ठीक; पर अब तुम खादी पहनने लगो।' उसने सरल भाव से कहा — 'आप जोगी हैं। पर मैं आपकी तरह सादा रहन-सहन वाली नहीं। मुझे महीन कपड़ा पसंद है। और रुपया मेरे पास बहुत है नहीं। यदि २०) में महीन साड़ी दिलाते हो तो मैं खुशी से खादी की साड़ी पहनूंगी।'

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

बल-पूर्वक संयम

एक बाल विधवा ने गांधीजी के नाम एक बड़ा ही करुणा-जनक पत्र भेजा है जिसमें उसने इस बात का हृदय-द्रावक चित्र खींचा है कि बालविधवाओं की कैसी अनुकम्पनीय दुर्दशा है, किस तरह कुटुम्ब में उनके साथ दुर्व्यवहार होता है, किस तरह उनसे बल-पूर्वक संयम रखाया जाता है, जिससे कुलीन विधवायें दुराचार में प्रवृत्त हो जाती हैं। गांधीजी ने उसपर नीचे लिखे विचार 'नवजीवन' में प्रकाशित किये हैं —

"ऐसे पत्र मेरे नाम बराबर आते रहते हैं। यही नहीं बल्कि मैं जहां जहां जाता हूं वहां वहां बाल विधवाओं की दशा को देखा करता हूं। असंख्य बहनों के समागम में आता हूं। उससे उनके दुःख को समझ सकता हूं। पुरुष उनके दुःख में जितना अधिक से अधिक हाथ बटा सकता है, उतना बटाने के लिए मैं अपनेको स्त्री-सम बना रहा हूं—अर्थात् बनाने के लिए प्रयत्न करता हूं। कितनी ही बहनों के मां के स्थान की पूर्ति करने की कोशिश करता हूं। इस कारण इस बहन के दुःख को मैं पूरा पूरा समझता हूं।

मेरा यह दृढ मत होता जाता है कि दुनिया में बाल विधवा जैसी कोई प्रकृति-विरुद्ध वस्तु होनी ही न चाहिए। वैधव्य कोई धर्म नहीं; धर्म तो संयम है। बल-प्रयोग और संयम ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं — एक के बदौलत मनुष्य की अधोगति होती है और दूसरे से उन्नति। बल पूर्वक पालन कराया गया वैधव्य पाप है, स्वेच्छा से पालित वैधव्य धर्म है, आत्मा की शोभा है, समाज की पवित्रता की ढाल है। यह कहना कि पन्द्रह साल की बालिका समझ-बूझ कर वैधव्य का पालन करती है, अपनी उद्धतता

और अज्ञान को प्रकट करना है । पन्द्रह वर्ष की बालिका क्या जान सकती है कि वैधव्य की वेदना क्या चीज है ? माता-पिता का धर्म है कि उसके विवाह के लिए हर तरह की सहूलियतें कर दें । कुरीति के अधीन होना पामरता है । उसका विरोध करना पुरुषार्थ है ।

युवती विधवाओं को मैं क्या सलाह दूं ? इसका विचार करते समय मुझे अपनी अक्षमता का पता लग जाता है । उन्हें विवाह करने की सलाह देना तो आसान है पर वे विवाह किसके साथ करें ? पति की खोज कौन करे ? गैर-बिरादरी में शादी कर लें ? पति खोजने से कहीं मिलते भी हैं ? क्या विज्ञापन देकर विवाह करें ? विवाह कोई सौदा है ? जहां लोकमत खिलाफ अथवा उदासीन है वहां बाल-विधवाओं के लिए पति की खोज करना लगभग असंभव है । और यदि सुयोग्य पति न मिले तो हर किसी के साथ बंध जाने की सलाह मैं कैसे दूं ?

इसलिए मैं तो इन बाल-विधवाओं के माता-पिताओं तथा पालकों से ही प्रार्थना कर सकता हूं । परन्तु 'नवजीवन' उनके हाथों में कहां पहुंचता है ? इन लोगों तक 'नवजीवन' की पहुंच अधिकांश में नहीं होती । ऐसा धर्म-संकट उपस्थित है ।

परन्तु विधवाओं को मैं इतनी सलाह तो जरूर दे सकता हूं कि वे शांति के साथ अपने दुःख को सहन करें । वे अपने पुरुष या स्त्री पालक के सामने अपने हृदय को खोलें और अपनी तमाम इच्छायें उन तक पहुंचावें । यदि वे न मानें या न समझें तो निश्चिन्त रहें । और यदि योग्य पति मिल जाय तो शादी कर लें । ऐसा पति पाने के लिए जिस तरह दमयन्ती, सावित्री, पार्वती ने तपश्चर्या की उसी तरह वे भी इस युग के अनुकूल, इस युग में होने लायक तपस्या करें । वह तप क्या है—अभ्यास । विधवा के लिए अभ्यास—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—से बढ़कर दूसरी वस्तु मन को स्थिर करने वाली नहीं । वे अपना एक एक क्षण चरखे को देकर शारीरिक तप करें; अक्षर-ज्ञान प्राप्त करके मानसिक तप और आत्म शुद्धि करके, आत्मा को पहचान करके आध्यात्मिक तप करें । इन तीन कार्यों में उन्हें उनके पालक नहीं रोक सकते । और यदि रोकें भी तो वह निरर्थक है । इन बातों का अधिकार हर शख्स को है । यदि वह अधिकार न दिया जाय तो विधवा अवश्य सत्याग्रह करें ।

मैं जानता हूं कि यह उपाय भी कठिन है । पर बात यह है कि सदुपाय दिखाई कठिन देते हैं, पर वास्तव में कठिन होते नहीं हैं । यह भगवद् वाक्य है ।

विधवाओं के पालक यदि न समझेंगे तो पछतावेंगे । क्योंकि हर जगह मैं दुराचार को देख रहा हूं । विधवा को जबरदस्ती रोकने में न तो उसकी, न कुटुम्ब की, न धर्म की रक्षा हो सकती है । मैं अपनी आंखों के सामने इन तीनों का नाश होता हुआ देख रहा हूं ।

पुरुष वर्ग जिसके कि आश्रय में बाल विधवायें हैं, समझ जाय ।"

लिए नहीं था जो लोग नम्रतापूर्वक अपनी हानि का विचार किये बिना वैज्ञानिक रीति से खोज कर रहे हैं । उनकी संख्या उंगलियों पर गिनने लायक है । मैं उनकी वृद्धि देखना चाहता हूँ ।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

टिप्पणियां

गुरुद्वारा कानून

अकाली-आन्दोलन की शुभ समाप्ति पर सिक्ख और पंजाब सरकार दोनों बधाई के पात्र हैं । देश के सैकड़ों बड़े से बड़े वीरों के आत्म-बलिदान की जरूरत इसके लिए हुई थी । हजारों वीर अकालिओं को इसके लिए जेल जाना पड़ा है । जेल में उन्हें क्या क्या दुःख भोगना पड़ा उसकी कथा से पाठक परिचित ही हैं । ऐसी अद्भुत कुरबानी वृथा नहीं जा सकती थी । आइए अब हम आशा करें कि गुरुद्वारों का सुधार अब बिला खटखटा स्थिरता के साथ होता रहेगा । सरकार ने अकाली कैदियों को भी छोड़ दिया है और अखण्ड पथ-संबंधी शर्तों की सख्ती भी उठा ली है । इसके लिए भी वह बधाई की पात्र है । मैं देखता हूं सरकार ने अखण्ड पथ तथा कैदियों की रिहाई पर जो शर्तें लगाई हैं उनसे कुछ असन्तोष हो रहा है । अभी मेरे लिए इसके संबंध में कोई राय देना मुश्किल है । इस टिप्पणी को लिखते समय (११-७-२५) में सिर्फ एक छोटा-सा तार ही पढ़ पाया हूं । परन्तु यदि ये शर्तें तेजोभंग करने वाली न हों और सिर्फ बतौर सावधानी के या सरकार की शान रखने के लिए लगाई गई हों तो मैं आशा करता हूं कि अकाली मित्र उनपर अनावश्यक आपत्ति खड़ी न करेंगे । उनका मुख्य उद्देश था गुरुद्वारों का सुधार । वह पूरा पूरा सिद्ध हो गया है । दूसरी बातों को मैं यदि ऐसी-वैसी नहीं तो गौण मानता हूं । ऐसी हालत में अच्छा होगा कि अकाली लोग सरकार की लगाई कैदियों की रिहाई की तथा अखण्ड पथ के दर्शन करने संबंधी शर्तों का अर्थ बहुत खींच कर न लगावें ।

वैद्यों की शिकायत

मेरे वैद्यों और हकीमों की आलोचना करने पर वैद्यों के दिल पर बहुत चोट पहुंची है । वे मुझपर मस्तिष्क की दुर्बलता का दोष लगाते हैं और अपने प्रति मुझे अहिंसक नहीं मानते । मुझे खेद है कि मेरे कारण उनके दिल को इतनी चोट पहुंची । परन्तु मैं अपराध स्वीकार नहीं करता । मैंने आयुर्वेद पर कटाक्ष नहीं किया है । कटाक्ष उनपर किया है जो वैद्य बनने का पाखण्ड रचते हैं । मैंने उनको दोष दिया है । देशी दवाओं और वनस्पतियों की जांच पड़ताल के प्रस्ताव का समर्थन करने और कुछ वर्षों के अख्तियार किये हुए ढंग की निंदा करने में कोई विरोध नहीं है । यहांतक कि मेरे कलकत्ते में आयुर्वेदिक कालेज की नींव डालने और कविराजों को चेतावनी देने में भी कोई विरोध नहीं है । पूने के वैद्य मेरे मित्रभाव से किये हुए आक्षेप को अस्वीकार कर सकते हैं । इसपर मुझे खेद होगा; परन्तु इस अस्वीकृति से मेरा निश्चय नहीं बदलेगा; क्योंकि वह अनुभव युक्त है । मैंने जो कुछ कहा है उसके लिए मेरे पास बहुत से प्रमाण हैं । मैं प्राचीन और उच्च बातों को पसन्द करता हूं परन्तु मैं उनकी नकल बहुत नापसंद करता हूं, और मैं इस बात को मानने से नम्रतापूर्वक इनकार करता हूँ कि प्राचीन पुस्तकों में जिस विषय पर जो कुछ लिखा है वही उस । अन्त है, उसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता । प्राचीन वस्तुओं के समझदार उत्तराधिकारी की हैसियत से मैं यह चाहता हूँ कि अपनी विरासत का बढ़ाऊं । प्रतिवादियों को जानना चाहिए कि कुछ कविराजों ने मेरे कटाक्ष को पसंद किया है और वे उसपर विचार कर रहे हैं । यह कहने की जरूरत नहीं कि यह आक्षेप उनके

धोखादेह भाषण

वार्षिक मूल्य ४)
६ मास का ,, २)
एक प्रति का -)।
विदेशों के लिए ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ५०

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, श्रावण सुदी ३, संवत् १९८२ गुरुवार, २३ जुलाई, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

अखिल भारत स्मारक

हम नीचे दस्तखत करनेवाले लोगों की यह राय है कि देशबन्धु चित्तरंजन दास की स्मृति के लिए अखिल-बंगाल स्मारक की तरह अखिल-भारत-स्मारक की भी उतनी ही आवश्यकता है। जिस तरह वे अखिल-बंगाल के पुरुष थे उसी तरह अखिल-भारत के भी थे। जिस तरह हम जानते थे कि अखिल-बंगाल स्मारक के लिए वे हमसे क्या कराना चाहते, उसी तरह हम यह भी जानते हैं कि अखिल-भारत स्मारक के लिए भी वे क्या कराना चाहते। कोई एक साल पहले उन्होंने अपना विचार स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया था और फरीदपुर वाले भाषण में उसे दुहराया भी था। भारत के पुनरुज्जीवन और शान्तिपूर्ण निर्माणात्मक विधि से स्वराज्य प्राप्त करने के लिए देहात का पुनः संगठन करना उनके हृदय को बड़ा प्रिय था। हम जानते हैं कि वे मानते थे कि इस काम का [illegible] का [illegible] और [illegible] कर के तथा घर घर खादी-प्रचार कर के। यही ग्राम-संगठन की मध्यवर्ती वस्तु हो। यही एक-मात्र ऐसा काम है जो कि सारे देश के लिए सर्व-सामान्य हो सकता है और फिर [illegible] थोडे से थोडे खर्च में कर सकते हो। यही एक-मात्र ऐसा काम है जिससे तुरन्त फल दिखाई देने की आशा है, फिर वह चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो? देश के तमाम लोग फिर वे चाहे अमीर हों या गरीब, बूढे हों या जवान, पुरुष हों या स्त्री, यदि चाहे तो खुद इसमें सहायता दे सकते हैं और इसमें लग सकते हैं। शहर के लोगों को देहातियों से एक-रस बनाने का तथा शिक्षित लोगों को उनसे परिचय प्राप्त कराने का इससे बढकर उपयोगी तरीका दूसरा नहीं है। यही एक ऐसा काम है जो कि भारत के तमाम प्रान्तों और पन्थों के लिए सामान्य हो सकता है और बडे से बडा आर्थिक फल उत्पन्न करता है। और अन्त को, यद्यपि इसका राजनैतिक पक्ष भी है, तथापि यह स्वभावतः इतनी स्पष्ट रूप से आर्थिक और सामाजिक वस्तु है कि इसे उन सब लोगों की, बिना दल-संबन्धी भेद-भाव के, सहायता मिलनी चाहिए, जो कि चरखे को एक महान आर्थिक अंग और ग्राम-संगठन का एक अंग मानते हों। ऐसी अवस्था में हम चरखे और खादी के सार्वत्रिक प्रचार से बढ कर उनका समुचित स्मारक नहीं तजवीज कर सकते और इसलिए हम इस काम के निमित्त चन्दे की प्रार्थना करते हैं। हम इस स्मारक के लिए आवश्यक रकम की तादाद नियत नहीं कर रहे हैं; क्योंकि इसमें तो जितनी रकम मिलेगी सब की सब काम आ सकती है। सर्व-साधारण की ओर से जो चन्दा इसके लिए मिलेगा वह इस बात का सूचक होगा कि उनका कितना आदर-भाव देशबन्धु के प्रति है, उस महान देशभक्त के स्मारक के लिए वे कितने उत्सुक हैं, इस स्मारक के रूप की उपयोगिता को वे कितना मानते हैं, तथा उन लोगों पर उनका कितना विश्वास है जो कि इस कोष के कर्ता-धर्ता होंगे। वे लोग ये हैं— मो० क० गांधी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, मौलाना शौकतअली, आचार्य प्रफुलचन्द्र राय, श्रीमती सरोजिनी देवी, श्रीयुत जमनालाल बजाज और पण्डित जवाहरलाल नेहरू। इन्हें और लोगों को भी शामिल करने का अधिकार रहेगा। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने ट्रस्टियों की तरफ से अवैतनिक मन्त्री का और श्री जमनालाल बजाज ने खजांची का काम करना स्वीकार किया है। चन्दा या तो जमनालालजी बजाज के नाम ३९५ कालबादेवी बंबई के पते पर या पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नाम १०७ हिवेट रोड, प्रयाग के पते पर भेजा जाय। चन्दा-दाताओं की सूची हर हफ्ते पत्रों में प्रकाशित की जायगी।

मो० क० गांधी	सरोजिनी नायडु	श्यामसुन्दर चक्रवर्ती
मोतीलाल नेहरू,	जे. एम. सेनगुप्त	सतीशचन्द्र दासगुप्त
रवीन्द्रनाथ ठाकुर	नीलरतन सरकार	बिधानचन्द्र राय
अबुल कलाम आजाद	सी. एफ्. एण्ड्रयूज	शरचन्द्र बोस
प्रफुल्लचन्द्र राय	वल्लभभाई पटेल	नलिनी रंजन सरकार
जमनालाल बजाज	बी. एफ्. भरूचा	सत्यानन्द बोस

(देश के तमाम मुख्य मुख्य नेताओं के दस्तखत मिलने की आशा है)

लार्ड बरकनहेड को उत्तर

स्वराज्य-कौंसिल तथा कार्य-समिति की बैठक और महासमिति के वहां मौजूदा सदस्यों के साथ आपसी सलाह-मशवरे के बाद गांधीजी ने नीचे लिखा पत्र पण्डित मोतीलाल जी के नाम भेजा—

कलकत्ता, १९ जुलाई

प्रिय पण्डितजी,

इन कुछ दिनों से मैं यह सोच रहा हू कि देशबन्धु की यादगार में और लार्ड बरकनहेड के भाषण से उत्पन्न स्थिति पर मैं अपने अकेले की तरफ से कौन-सा काम करूं और मैं इस परिणाम पर पहुचा हू कि मैं स्वराज्य-दल को पिछले साल के ठहराव के बन्धन से मुक्त कर दूं। इस कार्य का फल यह होगा कि अब आगे महासभा के मुख्यतः कताई-संघ रहने की आवश्यकता नहीं। मैं मानता हूं कि उस भाषण से उत्पन्न परिस्थिति में स्वराज्य-दल की सत्ता और प्रभाव बढाने की आवश्यकता है। और यदि मैं अपने बस भर उस दल को मजबूत बनाने के लिए एक भी काम से विमुख रहूंगा तो मैं अपने कर्तव्य से च्युत होऊंगा। यह तभी हो सकता है जब महासभा मुख्यतः राजनैतिक संस्था हो जाय। मौजूदा ठहराव के अनुसार महासभा का कार्य रचनात्मक कार्यक्रम तक ही परिमित है। मैं समझता हूं कि अब परिवर्तित दशा में जो कि देश के सामने हैं, इस कैद के कायम रहने की आवश्यकता नहीं। इसलिए मैं खुद ही आपको इस बंधन से मुक्त नहीं करता बल्कि मैं आगामी महासमिति से भी कहना चाहता हूं कि वह भी ऐसा ही करे और महासभा की सारी सत्ता आपके हवाले कर दे जिससे कि आप उसमें ऐसे राजनैतिक प्रस्ताव ला सकें जिन्हें आप देश-हित के लिए आवश्यक समझें। और जिन जिन मामलों में मैं अपनी अन्तरात्मा को सामने रखकर आपकी और स्वराज्य-दल की सेवा कर सकता हू उन उनमें मुझे सदा आप ही का समझिएगा।

आपका स्नेहांकित
मो० क० गांधी

पंडितजी का उत्तर

कलकत्ता,
२१ जुलाई

प्रिय महात्माजी

स्वराज्य-दल के महान् नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास की असामयिक मृत्यु से होने वाली हानि पर, जिसकी कि पूर्ति नहीं हो सकती, आपने जो सहायता उसे उदारता-पूर्वक दी है उसके लिए स्वराज्यदल आपका अत्यन्त ऋणी है। और अब तो आपने अपने १९ जुलाई के पत्र में जिस शरीफाना देन का जिक्र किया है, उसके द्वारा उस ऋण को और दुगुना कर दिया है। मैं समझता हू कि आपके इस ऋण को अदा करने का यही एक-मात्र रास्ता है कि आपकी उस देन को विनय-पूर्वक स्वीकार कर लू और आपकी सहायता से उस स्थिति का मुकाबला, फरीदपुर वाले देशबन्धु के आखिरी ऐलान को सामने रखकर, करने का यत्न करू जो कि लार्ड बरकनहेड के भाषण से उत्पन्न हुई है।

ऐसा जान पडता है कि लार्ड बरकनहेड ने देशबन्धु दास के सम्मान-पूर्ण सहयोग को दुरदुरा दिया है, और यह बात स्पष्ट कर दी है कि हमारी इस आजादी के संग्राम मे हमें अभी और कितने ही अनावश्यक विघ्नों और बहुतेरे गलत खबरें पानेवाले विरोधियों का सामना करना बाकी है। इसलिए इस मौके पर हमारा यही स्पष्ट कर्तव्य है कि हम अपने लिए निश्चित मार्ग पर आगे बढते चले जांय और देश को इस गैर-जिम्मेदार और गुस्ताख हुकूमत को खासी कारगर चुनौती देने के लिए तैयार करें। फरीदपुरवाले उस भव्य भाषण के शब्दों में—'हमारी लडाई जारी रहेगी, पर होगी वह साफ-पाक' हम इस बात को न भूलेंगे कि 'जब कि निपटारे का समय आवेगा और जोकि आये बिना रह नहीं सकता, हम सन्धि-परिषद् में उद्धत बनकर नहीं बल्कि समुचित नम्रता के साथ प्रवेश करेंगे जिससे कि लोग कहें कि विफलता के दिनों की अपेक्षा सफलता के समय में हमने ज्यादहः बडप्पन दिखाया'। अब आपने महासभा की सारी संयुक्त शक्ति हमारे हाथ में दे कर देशबन्धु के उस संदेश को पूरा करने का अवसर दे दिया है। *ऐसे मंगलाचरण को देख कर हमें इसके परिणाम के विषय में कोई* संदेह नहीं रह सकता — अर्थात् वही जो कि प्रायः हर देश और हर समय में ऐसे मौकों पर हुआ है — पशु-बल पर न्याय और स्वत्व की विजय।

जिस ठहराव के बंधनों से आपने स्वराज्य-दल को उदारता-पूर्वक मुक्त कर दिया है उसके संबंध में मैं दो शब्द कहना चाहता हूं। आप जानते ही हैं कि देशबन्धु और मैं दोनों यह नहीं चाहते थे कि इस साल के भीतर वह बदला जाय। हम चाहते थे कि इसकी आजमाइश के लिए आपको पूरा और अच्छा मौका दिया जाय और हम खुद भी इसे हर तरह से सफल बनाने के लिए आपको सहायता देना चाहते थे। परन्तु अस्वास्थ्य तथा दूसरे पहले से निश्चित जरूरी कामों ने हम दोनों को उतनी सहायता न करने दी जितनी कि हमने चाही थी, पर हां, मैं आपकी इस बात से पूर्णतः सहमत हू कि इन हाल की घटनाओं के कारण ऐसी नई स्थिति उत्पन्न हो गई है कि इस हालत में महासभा अपनेको मुख्यतः राजनैतिक संस्था बनाकर तुरन्त स्थिति के अनुकूल बना ले। इसलिए मैं आपकी इस देन का स्वागत करता हूं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि महासभा रचनात्मक कार्यक्रम को किसी भी तरह से छोड दे। हमारी तमाम कोशिशें बेकार होंगी यदि उनके पीछे देश की सुसंगठित शक्ति न होगी।

अब हम धारासभाओं के अन्दर तथा बाहर देश में अपना काम करने के लिए पूरे विश्वास के साथ आगे बढेंगे और यदि देश की संगठित शक्ति को लेकर लडने का मौका किसी समय आया, तो मुझे आपको यह यकीन दिलाने की आवश्यकता नहीं है, कि स्वराज्य-दल उस कार्य में आपको तहे दिल से मदद देगा।

आपका स्नेहांकित
मोतीलाल नेहरू

(पृष्ठ ३९७ से आगे)

की शक्ति रखनेवाले हरेक समझ सकेंगे। इसलिए होड की परीक्षा मे आखिरी बताये हुए गणित के नियम का और उसके सिवा ऊपर सूचित की हुई दृष्टि-परीक्षा का उपयोग किया जावेगा तो परीक्षा ठीक विधियुक्त हुई मानी जायगी।

कातने की परीक्षा की विधि के बारे में बहुत दफा सूचनायें मांगी जाती है, और इसकी शर्तें आजकल जगह जगह होती रहती हैं। इसलिए आशा है कि यह चर्चा उपयोगी होगी।

अ० भा० खादी-समाचार विभाग. साबरमती. २४-७-२५ — मगनलाल खु० गांधी

कातने की शर्तों में परीक्षा की विधि

बारडोली कीं कालीपरज में चर्खा-प्रचार का जो काम हो रहा है उसके संबध मे वहां के एक खादी कार्यकर्ता लिखते है:—

" वेडछी कार्यालय (संवाददाता जहां काम करते है उस गांव का नाम) से आसपास के सब मिल कर ४१ गांवों मे चर्खे पहुचे हैं, कुल ४०० चर्खे पहुच चुके है । ३२५ चर्खों के दाम नकद वसूल हो गये हैं । ७५ के बाकी रहे हैं । सो अगली फसल के पीछे मिल जावेंगे । आज तक सब मिला कर, लोगों का अपने ही लिए कांता करीब ६ मन पक्का सूत कार्यालय को बुनने के लिए मिला है । एक गांव ऐसा उत्साही है कि चर्खे पहुचने को अभी मुश्किल से ३ ही महीने बीते होंगे तो भी वहां के प्रायः हरेक कातनेवाले ने एकैक थान के लायक सूत कातकर बुनने के लिए कार्यालय को भेज दिया है ।

" एक महीने पहले आसपास के ४५ गांवों की कातने की स्थानिक होडों में अच्छे निकले हुए कातनेवालों की एक बडी होड वेडछी में रक्खी गई थी । उसमें ३१ गांवों के लोग शामिल हुए थे । सब मिल कर २५६ लोग थे । इन ३१ गांवों में से सिर्फ ४ गांवों को छोडकर जहां कातने की तालीम हालही मे शुरू हुई है, सब गांवों का सूत उम्दा था । १५ से २० अंक का सूत कातनेवालों की संख्या अच्छे तादाद में थी । होड मे शामिल होनेवालों में से आधी संख्या स्त्रियों व लडकियों की थी । आधे मर्द थे । होड खतम होने पर सभा की गई थी । सभापति श्री वल्लभभाई थे । अच्छे से अच्छे कातनेवालों को इनाम बांटे गये थे । पहला इनाम पानेवाले ने १,१५७ गज काता था । वह ७॥ अंक का सूत था । दूसरा इनाम लेनेवाले ने १८ अंक का ७१२ गज और तीसरा इनाम पानेवाले ने ९४५ गज काता था । उसका अंक ११ था । होड ३ घंटे चली थी । तीनों जनों के सूत बलदार और सफाईदार थे । "

जिस जगह पृथक् बरस पहले कातने की कुछ भी जानकारी न थी वहां इतना प्रचार और कातने की इतनी अच्छी तालीम ये दोनों बातें वहां की प्रजा के सरल स्वभाव का तथा वहांके उन कार्यकर्ताओं की कार्यतत्परता का सबूत है । जहां कातने का जानकारी थी वहां सूत सुधारने में अभी तक काफी सफलता नहीं मिली है । लेकिन इन कालीपरज के लोगों में जहां कातने की कुछ भी जानकारी न थी और जो अशिक्षित हैं इतना अच्छा परिणाम निकला । सो बिल्कुल अनजान को सिखाना आसान रहा और थोडा बहुत जाननेवाले को सिखाना मुश्किल ' खादी की सारी हलचल के बारे में कहें तो उसमें भी यही हुआ कि जो अर्थशास्त्र कुछ भी नहीं जानते थे सच्चा अर्थशास्त्र आसानी से समझ जाते हैं मगर जो अर्थशास्त्र के ज्ञाता माने जाते है उनसे सच्चा अर्थशास्त्र अबतक दूर ही रहा है ।

खैर, अब परीक्षा की विधि की चर्चा सुनिए । पिछले साल मद्रास में वहां के कातनेवालों की होड हुई थी । उसके योजक व परीक्षक श्री० सी. बी. रंगमचेट्टी नामक एक खादी कार्य के उत्साही महाशय थे । उनकी पद्धति यह थी कि साधारणतया जो सूत अच्छा हो उसकी लम्बाई तथा अंक का गुणाकार करने से जिसकी संख्या बडी हो वह पहले नंबर और जिसकी दूसरे नंबर हो वह दूसरे नंबर समझा जाय । इस रीति से वेडछी की होड की परीक्षा की जाय तो जीतनेवालों की संख्यायें क्रमशः इस प्रकार होंगी:—

	गज		अंक	
१.	११५७	×	७½	= ८६७८
२.	७१२	×	१८	= १२८१६
३.	९४५	×	११	= १०३९५

इन संख्याओं को देखते हुए दूसरे नंबर आनेवाले को पहला स्थान, तीसरे को दूसरा और पहले को तीसरा मिलेगा ।

इस प्रकार की परीक्षा में परीक्षक ने एक नियम पर चलने का प्रयत्न किया है, परन्तु इसमें एक बात छूट जाती है कि अंक की संख्या की बढती के परिमाण में कातने की तेजी बढती नहीं है; बल्कि उस संख्या के वर्गमूल के परिमाण में तेजी बढती है । वेडछी की परीक्षा जिस पद्धति से की गई है उससे लम्बाई पर विशेष ध्यान दिया गया मालूम होता है और लम्बाई को अंक के साथ साथ रख कर चुनाव करने की कोशिश की गई है ।

सफाई की दृष्टि से सब सूत सरीखे ही हैं, ऐसा मान लिया जाय तो गणित के नीचे लिखे नियम का आसरा लेने से परीक्षा यथार्थ हुई कही जा सकेगी:—

" सूत की लम्बाई के साथ, उस अंक के प्रत्येक इंच में गणित के अनुसार जितनी ऐंठन निकलती है उसका गुणाकार किया जाय । "

ऐसा करने से कातनेवाले के वेग का अचूक परिमाण मिल सकेगा । मिल-कते सूतों में फी इंच ऐंठन की तादाद जानने के लिए विधि यह है कि उस अंक के वर्गमूल का चार से गुणाकार किया जाय । जो जवाब आवेगा वह उस अंक के सूत मे एक इंच के अन्दर की ऐंठन की संख्या होगी । हाथ के कते हुए सूत मे यही तादाद बनी रहती हो सो बात नहीं । परन्तु हाथ के कते वे सूत कि जो परीक्षा के लिए पसंद किये गये हों, यदि मान लिया जाय कि, देखने में एक-सी ऐंठनवाले हैं, तो होड के परिणाम इस प्रकार निकलेंगे:—

	गज		अंक		
१.	११५७	×	(√७॥ × ४ =)	११	१२७२७
२.	७१२	×	(√१८ × ४ =)	१७	१२१०४
३.	९४५	×	(√११ × ४ =)	१३	१२२८५

वर्गमूल के साथ चार का गुणाकार करने में अंश छोड दिये गये हैं ।

इस विधि से पहले नंबर वाला पहले नंबर ही रहेगा, तीसरा दूसरे नंबर, और दूसरा तीसरे नंबर ।

यानी इस रीति से वेडछी व मद्रास के फैसले से एक अलग ही फैसला होता है ।

इसके सिवा भी सूत में देखने की दूसरी बातें होती हैं । सूत परिमाण में सरीखे व गोल होने चाहिए । और आंटियों के तारों में मोटे पतले सूतों का फर्क कम से कम होना चाहिए । यह फर्क सूत जितना मोटा होगा उतना अधिक नजर पडेगा । बारीक सूत में फर्क का परिमाण अधिक हो तो भी नजर कम पडता है । इसलिए मोटे सूत मे यदि फर्क कम नजर में आवे तो समझना चाहिए कि उसमें कातने वाले की अधिक कला है । परीक्षक ने यदि शास्त्रीय दृष्टि से गणित का सहारा लिया हो तो भी इतनी बात तो अपनी आंखो से ही जांचनी पडेगी । वह जांच ठीक होती है कि नहीं यह तो निरीक्षण करने

(शेष पृष्ठ ३९६ पर)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण सुदी ३, संवत् १९८२

कताई-मताधिकार

गत १७ जुलाई को स्वराजियों का तथा और लोगों का आपस में सलाह-मशवरा हुआ। उपस्थित जनों में सब विचारों के लोग थे। सब लोगों को और मुझको भी यह जचा कि मताधिकार में परिवर्तन कर देना आवश्यक है और महासभा के मताधिकार में खुद-कताई बतौर आजमायश के नहीं, बल्कि धन के दूसरे रूप के तौर पर सदा के लिए रक्खी जाय। इसका अर्थ यह हुआ कि मजदूरों के प्रतिनिधियों को सीधे महासभा में पहुंचने का अधिकार स्वीकृत कर लिया गया। सब लोग इस बात पर सहमत हुए कि मताधिकार में औरों का कता सूत लेना बंद कर दिया जाय। इसके द्वारा चालाकी और बेइमानी की बढती हुई है। खुद-काता सूत या धन कितना दिया जाय यह अभी विचाराधीन है। इसपर भिन्न भिन्न रायें थीं। बहुत भारी तादाद ने इस बात को पसन्द किया कि खादी का पहनना मताधिकार का स्थायी अंग माना जाय। यह मेरी राय में एक निश्चित लाभ हुआ है। तीसरी बात जो सर्व-सम्मति से तय हुई वह यह कि एक अखिल-भारत सूतकार-मण्डल कायम किया जाय। वह महासभा का एक अभिन्न अंग रहे। उसे इस बात का पूरा अधिकार दे दिया जाय कि वह महासभा के कताई-काम का संचालन करे और महासभा के हस्तक के तौर पर कताई के रूप में मिलनेवाली वस्तु को प्राप्त करे और उसकी जांच करे। यदि ये सिफारिशें मंजूर हो गईं तो इनका फल यह होगा कि स्वराजी महासभा का कार्य-सञ्चालन करेंगे और अखिल भारत सूतकार-मण्डल स्वराज-दल का स्थान ग्रहण करेगा।

इन प्रस्तावों पर विचार करने के लिए महा-समिति की बैठक १ अक्टूबर को होगी। इस बैठक के लिए सदस्यों की आजादी पर किसी किस्म की कैद न रहेगी। यहांतक कि वे लोग भी जो कि इस आपस के मशवरे में शरीक थे अपनी यहां की राय से बंधे न रहेंगे। यदि आगे और विचार करने पर उनकी राय बदल जाय तो वे इन प्रस्तावों के खिलाफ अपनी राय देने के लिए आजाद रहेंगे। महासमिति के सदस्य उनमें सुधार की सूचना करने और अपनी इच्छा के अनुसार आलोचना करने के लिए भी स्वतन्त्र रहेंगे। हर शख्स एक महासभावादी की हैसियत से नहीं, बल्कि अपनेको एक हिन्दुस्तानी समझ कर, बिना किसी दल या पक्ष के लिहाज के अपनी राय देंगे। पं० मोतीलालजी के नाम मेरे पत्र से पाठक देखेंगे कि मैंने स्वराज्य-दल को अपने पिछले साल के ठहराव के बंधन से मुक्त कर देना अपना कर्तव्य समझा है। महासमिति में उपस्थित होनेवाले प्रस्तावों पर गुण-दोष की दृष्टि से ही विचार किया जाना चाहिए। मैं नहीं चाहता कि कोई भी सदस्य फिर वह स्वराजी हो या अपरिवर्तनवादी मुझे खुश करने के लिए अपनी राय दे। हम प्रजातन्त्रात्मक संगठन का विकास करने में प्रयत्नशील हैं। मनुष्य को अपनी अन्तरात्मा को खुश करने की आवश्यकता है, किसी और व्यक्ति को नहीं—चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो। मेरे नजदीक न कोई परिवर्तन-वादी है और न अपरिवर्तनवादी। वे लोग जो कि धारासभाओं में जाने के हामी हैं तथा वे लोग जो कि उसके खिलाफ हैं, दोनों एक-सी देश की सेवा करते हैं, यदि उनका कार्य या अकार्य देशप्रेम से प्रेरित हो। और मैं तो उन लोगों से जिनकी अन्तरात्मा मना न करती हो यह भी कहूंगा कि तुरन्त स्वराज्य-दल में शरीक हो जायं और उसको मजबूत बनावें।

मैं आशा करता हूं कि महासमिति का हर सदस्य अगली महासमिति की बैठक में उपस्थित होगा और उसकी कार्रवाई में शरीक हो कर अपनी राय जाहिर करेगा। मैं खुद अपनी तरफ से यह नहीं चाहता कि किसी सवाल का निपटारा कसरत राय के जोर पर हो। जो कुछ तय हो वह प्रायः पूरे एक-मत से हो।

यह तजवीज क्या है, महासभा के संगठन में भारी परिवर्तन है। मामूल के मुआफिक महासमिति को उसमें दखल देने की जरूरत नहीं। पर ऐसा समय भी आता है जब कि ऐसा न करना वफादारी के खिलाफ हो जाना है। यदि देश की भारी संख्या उसमें परिवर्तन करना चाहती है और जिसके लिए कि समय खोना ठीक नहीं है तो महासमिति के लिए निहायत मुनासिब होगा कि वह उस परिवर्तन को कर दे और अपने इस परिवर्तन के फल की जिम्मेवारी को ले ले एवं यदि महासभा इसपर उसको भला-बुरा कहे तो उसको भी अंगीकार कर ले। जब कोई कारिन्दा अपने मालिक के हित के लिए काम करता है तब हमेशा उसे इस बातका हक होता है कि अपने सर्वनाश को दांव पर लगा कर वह अपने मालिक के मन की बात को पहले से अन्दाज कर के उसके अनुसार काम कर डाले। ऐसी अवस्था में मैं यह बेखटके कहता हूं कि यदि महासमिति के सदस्यों की बहुत भारी तादाद पूर्वोक्त परिवर्तन करना चाहती हो तो उनके लिए यह अनुचित होगा कि वे राष्ट्र का तीन महीने का कीमती समय अपनी हिचकिचाहट में व्यर्थ खोवें। कानपुर की महासभा इस बात की लंबी चर्चा से जिसका फैसला महासमिति ही भलीभांति कर सकती है, मुक्त रहनी चाहिए। दूसरे बड़े बड़े प्रश्नों के निपटारे के लिए उसका समय बचा रहने देना चाहिए।

और यह बात भी ध्यान में रहे कि मेरी पूर्वोक्त तजवीज के अनुसार मुख्यतः महासभा राजनैतिक संस्था हो जायगी, उस अर्थ में जिसमें कि मामूली तौर पर राजनैतिक शब्द प्रचलित है। स्वराजी लोग बजाय उसके राजनैतिक हस्तक के खुद महासभा ही बन जायगे जैसा कि उन्हें बन जाना चाहिए। यही महासमिति की ओर से लार्ड बर्कनहेड को छोटा से छोटा जवाब है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

लड़के सब ब्रह्मचारी

मेरे अभिमान के कारण कहिए, या अज्ञान के कारण अथवा दोनों के कारण कहिए, मैं यह खयाल करता था कि अपने तमाम लड़के-लड़कियों को ब्रह्मचारी रखने का प्रयत्न करने वाला मैं ही हूंगा अथवा मेरे कुछ साथी ही होंगे। पर मेरा अभिमान चूर होगया है, मेरा अज्ञान दूर होगया है। मेरे साथ जो स्वयंसेवक यहां हैं उनमें एक यहां की प्रान्तिक समिति के मंत्री का भतीजा है। वह खुद ब्रह्मचारी है। यही नहीं, बल्कि उसके तमाम भाइयों को ब्रह्मचारी रखने का इरादा उसके पिता ने किया है। लड़के यदि खुद विवाह करना चाहें तो उनके लिए योग्य कन्या खोजने को तैयार हैं; पर वे उनपर जब्र करना नहीं चाहते। अपने लड़कों को वे अभी ऐसी ही तालीम दे रहे हैं कि जिससे वे ब्रह्मचारी ही बनकर रहें। उनके तमाम पुत्र जवान हैं। और अपने काम-धन्धे में लगे हुए हैं। अब तक स्वेच्छा से ब्रह्मचारी हैं। मैं देखता हूं कि बंगाल में इसी तरह कन्याओं को भी तालीम दी जाती है। उसकी मात्रा यद्यपि कम है तथापि यत्न अवश्य हो रहा है। यह प्रयत्न पश्चिमी सुधार के प्रवेश का फल नहीं है, बल्कि ऐसी चेष्टा करने वाले माता-पिता केवल धार्मिक भाव से आकर्षित हो कर ऐसा कर रहे हैं। (नवजीवन)

धोखादेह भाषण

लार्ड बरकनहेड का ऐलान दो मानों में धोखादेह है। दुबारा पढ़ने पर वह उतना कठोर नहीं मालूम होता जितना कि पहली मर्तबा पढ़ने पर मालूम हुआ। परन्तु दूसरी मर्तबा वह उससे कहीं अधिक निराश करता है जितना कि पहली मर्तबा किया था। उसकी कठोरता अनिश्चित है। भारत-मंत्री खुद कुछ न कर सकते थे। उन्होंने वही कहा है जो कुछ उन्होंने महसूस किया है या उन्हें महसूस कराया गया है। परन्तु उनके अभिवचनों से, जब उन्हें ध्यान से देखते हैं, यह छाप पड़ती है कि उनका दिल इस बात को जानता है कि मुझे कभी उनके पूर्ण करने के लिए न कहा जायगा। अच्छा, हम उसीको लें जो कि सब से अधिक प्रलोभनकारी है। उसका भाव यह है—'तुम अपनी तरफ से संगठन तैयार कर के पेश करो और हम उसपर विचार करेंगे।' सो क्या हमें यह ३५ साल का अनुभव नहीं है कि हमने ऐसे प्रार्थनापत्र भेजे हैं जिन्हें हमने कामिल समझा है और वे 'गौर से विचार करने के बाद अस्वीकार कर दिये गये हैं?' ऐसा अनुभव होने पर हमने १९२० में भिक्षा-नीति को छोड़ दिया और अपने ही परिश्रम के बल पर रहने का निश्चय किया—फिर भले ही उस कोशिश में हमारा सर्व-नाश क्यों न हो जाय। लार्ड बरकनहेड साहब हमसे 'मुन्शीपन' नहीं चाहते हैं। वे तो हमें 'तलवार-बहादुरी' के लिए न्योता देते हैं—यह अच्छी तरह जानते हुए कि इस निमंत्रण को कोई स्वीकार न करेगा—नहीं कर सकता। खुद उस भाषण में ही इसका सबूत मौजूद है। मुडीमन कमिटी के अल्पमत की रिपोर्ट उनके सामने मौजूद ही थी। वह भी डा० सप्रू और श्री जिनाह जैसे दो निहायत होशियार वकीलों की, जिन्होंने कि कभी असहयोग करने का कुसूर नहीं किया है, और इनमें से एक तो वाइसराय की कौन्सिल के ला मेंबर भी रह चुके हैं। उन्हें तथा उनके साथी को यह जवाब मिला है कि तुम्हें अपने काम की सूझ-बूझ न थी। तब क्या उस संगठन विधान पर जिसे पण्डित मोतीलाल नेहरू तैयार करें और मान लीजिए माननीय शास्त्रीजी और मियां फजलीहुसेन उसकी पुष्टि करें अधिक अनुकूल विचार होने की सम्भावना है? तब क्या लार्ड बरकनहेड की यह तैयारी गाफिल लोगों को फंसाने का जाल नहीं है? फर्ज कीजिए कि मौजूदा हालत की जरूरत रफा करने के लिए एक प्रामाणिक संघटन तैयार किया जाय तो क्या उसे बेहूदा न कह डालेंगे और उसके बजाय बहुत ही कम वस्तु न दी जायगी? मैं जब कोई २५ साल का भी न हुआ हूंगा तब मुझे यह मानना सिखाया गया था कि यदि हम ८आने पर सन्तुष्ट रहना चाहते हों तो हमें १६ आने की मांग पेश करनी चाहिए। मैंने कभी उस सबक को नहीं सीखा; क्योंकि मेरा यह मत था कि जितने की जरूरत हो उतना ही मांगे और न मिले तो उसके लिए लड़ें। पर हां, यह बात मेरे ध्यान में आये बिना न रही कि पूर्वोक्त व्यावहारिक सलाह में बहुत-कुछ सत्यांश था।

यदि शक्ति और बल—फिर वह हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक—साथ हो तो बेहूदा से बेहूदा संघटन पर भी तुरन्त विचार करना पड़ेगा—खास कर ब्रिटिश लोगों को जो कि अबतक कम से कम एक प्रकार के बल का तो मूल्य जानते हैं।

भारत की वह अथक सेविका डा० बेसेंट एक बिल तो इंग्लैंड ले ही गई हैं। उसपर कितने ही प्रसिद्ध भारतवासियों के दस्तखत हो चुके हैं, और यदि कुछ और लोगों ने उसपर दस्तखत नहीं किये हैं तो उसका कारण यह नहीं है कि वे उससे सन्तुष्ट न होंगे, बल्कि यह कि वे जानते हैं कि रद्दी की टोकरी में डाले जाने के सिवा दूसरी कोई गति उसकी न होगी। उसपर दस्तखत इसलिए नहीं किये गये हैं कि दस्तखत न करनेवाले राष्ट्र के उस अपमान में भागी नहीं होना चाहते जो कि उसके एकबारगी रद किये जाने में गर्भित रहेगा। जरा लार्ड बरकनहेड कहें तो कि मैं उस युक्ति-संगत संघटन को मंजूर कर लूंगा, जिसे कि भारत के लोकमत को बहुतांश में प्रदर्शित करने वाला कोई एक या एकाधिक दल तैयार करेगा, और वे देखेंगे कि एक सप्ताह में वह संघटन बन कर तैयार है। वे सार्वजनिक रूप से डा० बेसेंट को यह आश्वासन दे दें कि यदि पण्डित मोतीलाल नेहरू आदि के दस्तखत करा के लाओ तो उसके स्वीकृत होने की पूरी पूरी सम्भावना है तो मैं इस बात को अपने जिम्मे लेता हूं कि उनके दस्तखत उसपर करा के ला दूंगा। पर बात यह है कि लार्ड बरकन हेड की इस बात में सचाई की गंध नहीं है।

पर यह भारत-मन्त्री का कुसूर नहीं है जो उसमें सचाई नहीं दिखाई देती। हम अभीतक किसी बात का मतालबा करने के लिए तैयार ही नहीं हैं। इसलिए आप ही यह ब्रिटिश सरकार का काम है कि वह दे और हमारा काम है कि अगर वह हमें फिलहाल काफी न नजर आवे तो उसे नामंजूर कर दें। हमारे लिए तो वही एक चीज ऐसी है जिसे कि नये कमान्डर-इन-चीफ साहब ने अप्राप्य कहा है—वही चीज है जिसके लिए हम जीना, लड़ना और मरना चाहते हैं। किसीका जन्म-जात हक कभी अप्राप्य नहीं हो सकता और लोकमान्य ने हमें बताया है कि हमारा जन्मसिद्ध हक है स्वराज्य। स्वराज्य का लक्षण यह है—खुद अपना शासन करना—यद्यपि कुछ समय के लिए हमारा शासन बुरा ही हो। हम क्या अंगरेज और क्या हिन्दुस्तानी, इस समय भारी चक्कर में हैं। लार्ड बरकनहेड समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार हम भारतीयों के कल्याण की ट्रस्टी है। हम मानते हैं कि उसने हमें अपने स्वार्थ के लिए गुलामी में जकड़ रक्खा है। ट्रस्टी कभी अपने प्रतिपालित की आमदनी का ७५ फी सदी अपने महनताने के तौर पर नहीं वसूल करता। लार्ड बरकनहेड कहते हैं कि भारत में ९ मजहब और १३० भाषायें हैं, वह एक राष्ट्र कैसे हो सकता है? हमारी धारणा है कि तमाम व्यावहारिक बातों के लिए और बाहरी लोगों से अपनी रक्षा करने के लिए हम जरूर एक राष्ट्र हैं। वे समझते हैं कि असहयोग एक भयंकर गलती थी। हमारे बहुसंख्यक लोग मानते हैं कि उसीने इस सोते हुए राष्ट्र को घोर निद्रा से जगाया, इसीके बदौलत राष्ट्र को एक ऐसी शक्ति मिली है जिसका नाश नहीं हो सकता। स्वराज्य-दल उसी बल का सीधा फल है। वे कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान-झगड़ों में ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ 'साफ-पाक रक्खे हैं।' पर प्रायः हर भारतवासी का यह निश्चित विश्वास है कि ब्रिटिश सरकार ही हमारे अधिकांश झगड़ों के लिए जिम्मेवार है। वे मानते हैं कि हमें उनके साथ जरूर सहयोग करना चाहिए। हम कहते हैं कि जब वे भारत का हित करना चाहेंगे या जब उनका हृदय-परिवर्तन होगा, वे हमारे साथ सहयोग करेंगे। वे कहते हैं कि कोई गुणी नेता सुधारों का उपयोग करने के लिए उठ खड़ा न हुआ। हम कहते हैं, श्री शास्त्रीजी और चिन्तामणिजी औरों को जाने दीजिए, सुधारों को सफल बनाने के लिए काफी गुणी पुरुष थे; परन्तु दुनिया के तमाम सद्भाव के रखते हुए भी उन्होंने अनुभव किया कि वे

ऐसा नहीं कर सकते । देशबन्धु ने इससे निकलने का एक रास्ता निकाला है । वह अब भी हमारे सामने है ।

पर उनकी बात को उसी भाव से सुनने की कोई आशा है भी जिस भाव में उन्होंने उसे पेश किया है ? अंगरेजों को और हमको एक-दूसरे की बात उलटी नजर आती है । तब भला कहीं किसी ऐसी बात के पैदा होने की सूरत है जहां हम दोनों मिल सकें ? हां, है ।

अभी हम दोनों कौमों की हालत अस्वाभाविक है—एक शासक है, दूसरा शासित । हम भारतवासियों को यह ख्याल करना छोड़ देना चाहिए कि हम शासित हैं । यह हम तभी कर सकते हैं जब हमारे पास किसी किस्म का बल हो । हम मानते हुए दिखाई देते थे कि १९२१ में वह बल हमारे पास था । इसीसे हमने सोचा था कि स्वराज्य एक साल मे दिखाई दे देगा । पर अब तो किसीको भविष्यवाणी करने का साहस नहीं हो सकता । अतएव, आइए, अब हम फिर शक्ति संग्रह करें—सत्याग्रह की शान्तिमय शक्ति एकत्र करें और हम एक दूसरे के बराबर हो जायंगे । यह कोई धमकी नहीं है, कोई भय नहीं है । यह तो अटल वस्तु-स्थिति है । और यदि इन दिनों मे हमारे 'शासकों' की कार्रवाइयों की आलोचना नियमित रूप से नहीं करता हूं तो इसका कारण यह नहीं है कि सत्याग्रह की ज्वाला मेरे अन्दर बुझ गई है । बल्कि, बात यह है कि मैं वाणी, लेखनी और विचार मे परिमित व्ययी हूं । जिस दिन मै तैयार हो जाऊंगा खुले खुले बातें करूंगा । मैंने लार्ड बरकनहेड के इन उद्गारों की आलोचना करने की धृष्टता केवल खास कर बंगाल के और आम तौर पर भारत के वियोग-व्यथित लोगों को यह कहने के लिए की है कि लार्ड बरकेनहेड के भाषण की अनिश्चितता मुझे भी उसी तरह चुभ रही है जिस तरह कि उनको, और पण्डित मोतीलालजी जहां एक ओर बड़ी धारासभा में लड़ेंगे और देशबन्धु की जगह स्वराज्य-दल के अग्रणी होंगे, तहां मै अपनी तरफ से सत्याग्रह के लिए वायु-मण्डल तैयार करने में कोई कोर-कसर न रखूंगा । इसी काम के लिए मै और बातों से अधिक योग्य हूं । गीता के गायक ने नहीं कहा है ?—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।

(य० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

---

५. आप जानते ही हैं कि हमारी अधगोरी-जाति में इन दिनों दो किस्म की प्रवृत्तियां हैं — कुछ लोग तो योरपियनों की झुक रहे हैं और कुछ हिन्दुस्तानियों की ओर । आप सारी अधगोरी-जाति को (अ) अपने लाभ के लिए (२) तथा भारत के लाभ के लिए क्या सलाह देते हैं ?

मुझे इस दुःखदायी प्रवृत्ति के अस्तित्व का पता है । मेरी राय मे तो अधगोरे भाइयों के लिए एक ही गौरवपूर्ण प्रवृत्ति हो सकती है और वह यह कि वे अपना भाग्य उन लोगों के साथ जोड़ लें जिनके अन्दर वे पैदा हुए है और जिनके अन्दर उन्हें रहना और जीवन बिताना है । अंगरेजों का पुछल्ला बन कर रहने का उनका निरर्थक प्रयत्न उनकी स्थिति के स्थायी रूप ग्रहण करने की तथा उसकी उन्नति की गति को पीछे ही हटाता है । योरपियन बनने की आकांक्षा अस्वाभाविक है । अपने भारतीय माता या पिता की तरफ तथा भारतीय स्थिति की तरफ झुकना उनके लिए अत्यंत स्वाभाविक और गौरवपूर्ण स्थिति है । और स्वाभाविक और गौरवपूर्ण बात का करना उनके तथा उनकी मातृभूमि, भारतवर्ष, दोनों के लिए हर मानी में लाभदायक होगा ।

(यं. इं) **मोहनदास करमचंद गांधी**

अध-गोरे भाइयों के लिए

डाक्टर मोरेनो ने मुझे नीचे लिखे प्रश्न उत्तर के लिए दिये हैं—

१—अधगोरों की वर्तमान विपत्ति शोचनीय है और ज्यों ज्यों दिन जाते हैं त्यों त्यों ज्यादह खराब होती जा रही है । जो लोग बेकार हैं वे दान नहीं चाहते, काम चाहते हैं । मेरी समझ में औद्योगिक काम-धन्धे उन्हें सबसे ज्यादह मुआफिक होंगे । आप क्या उपाय बताते हैं ?

खुशी की बात है कि बेकार लोग दान नहीं चाहते । पर यह कहने के लिए मै माफी चाहूंगा कि बेकार लोग हाथ बुनाई को एक औद्योगिक धन्धा पा सकेंगे । पर मैं यह खुल्लमखुल्ला कुबूल करता हूं कि अध-गोरे भाई अपनी मौजूदा तालीम के कारण बुनाई के योग्य नहीं रहे हैं—जब तक कि उनमें असाधारण दृढ़ संकल्प न हो । अनुमानित बात पर सलाह देना मुश्किल है । उत्साही और उपकारशील अधगोरे भाइयों का काम है कि वे बेकार लोगों की गिनती करें और फिर इस बात पर विचार करें कि उनके लिए कौनसा धन्धा मुआफिक होगा और तब उसकी तालीम उन्हें दें ।

२—अधगोरी जैसी जाति को कताई और चरखे के संबध में आपकी विचार-प्रणाली के अनुकूल बनाने के लिए बहुत समय तक बहुत सरगर्म प्रचार-कार्य करने की आवश्यकता है । पर यदि वे लोग अपनी प्रवृत्ति आपके तैयार किये कार्यक्रम की विरोधक न प्रदर्शित करें तो यह आपकी इच्छा पूर्ति के लिए बस होगा ?

हां, मै इस बात मे सहमत हूं कि एक विधि के तौर पर भी कताई को पसन्द करने के लिए अध-गोरे भाइयों के समुदाय को कुछ समय लग सकता है; परन्तु खादी पहनने में तो देरी करने का कोई कारण ही नहीं है । खादी की बनी जाकेट उतना ही काम देती है जितना कि विदेशी कपड़े की बनी जाकट, और बिछौने की चादरें तो मामूली मिल-बनी चादरों से छूने मे कहीं अच्छी होती है । अध गोरे भाइयों को खादी पहनने को ललचाने के लिए यदि किसी बात की आवश्यकता है तो वह है जनता के साथ आत्मीय भाव को अनुभव करना । मेरी राय में राष्ट्रीय धर्म के सच्चे भाव की पहली सीढ़ी यही है ।

३—अधगोरी जाति भारतवर्ष की एक छोटी जाति है । आपके तमाम दलों के सम्मेलन के कार्यक्रम में इसे आप किस तरह शामिल कीजियेगा ?

जो व्यवहार दूसरी छोटी जातियों के साथ किया जायगा ठीक वही अधगोरी जाति के साथ किया जायगा ।

४—आप भारत में भविष्य मे एक संयुक्त महासभा बनाना चाहते हैं । तो फिर आप इन बातों को ध्यान मे रखते हुए अधगोरे प्रतिनिधियों को किस तरह शामिल करेंगे ?—(अ) आपका कताई-मताधिकार (आ) अबतक अधगोरों का महासभा में शामिल न किया जाना ।

हाल ही जो परिवर्तन तजवीज हुआ है उसके अनुसार सूत को रद्द कर के रुपया लिया जायगा । यदि अबतक अध-गोरे भाई महासभा मे शरीक नहीं हुए है तो इसका बड़ा कारण है उनकी अनिच्छा ही । यदि इससे यह सूचित किया जाता हो कि महासभा उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए खास तौर पर उद्योग करे तो मै इतना ही कह सकता हूं उन लोगों के संबंध में ऐसा करना मुश्किल है जो कि अपनेको हिन्दुस्तानियों से श्रेष्ठ और विदेशी समझते हैं, जैसा कि अबतक अध-गोरे भाई करते आये हैं ।

उद्धार कब हो ?

एक 'सेवक' लिखते हैं—

'एक जगह पढ़ा था कि मनुष्य की तरह जन समाज को भी कर्म के अनुसार अच्छा या बुरा फल मिलता है। जब समाज में असत्य, अन्याय, अनीति और दुराचार की मात्रा बढ़ जाती है तब उसके फलस्वरूप अकाल, अतिवृष्टि, भू-कम्प, आदि दर्शन देते हैं। सेवक कर्म-फल को मानता है। इसलिए स्वराज्य में भी उसकी श्रद्धा कैसे रहेगी ? समाज के कर्म ही खोटे हैं तो फल अच्छा कहां से मिलेगा ?

"हमारे देश की आन्तरिक स्थिति, हमारे नरेशों की स्थिति, को ही न देखिए न ! जिस पवित्र भारत-माता के ललाट पर श्रीरामचन्द्र, वीर विक्रम, छत्रवीर शिवाजी और प्रताप जैसे अपने उज्ज्वल चरित्र के द्वारा सुनहला तिलक लगाते थे उसीपर आज राजेन्द्र नामधारी अन्याय, अनीति, जुल्म और हत्याकाण्ड का कलंकित, काला और अमंगल तिलक लगा रहे हैं !

"इसके बाद यदि आप देश का वातावरण और सामान्य सामाजिक व्यवहार देखेंगे तो मालूम होगा कि यह दुर्भागी देश तो दुर्भाग्य के रास्ते दौड़ा जा रहा है। और मैं मानता हूं कि कु-पथ-गामी को सन्मार्ग दिखाना भर ही हमारा धर्म है। हाथ पकड़ कर खींचना हमारा धर्म नहीं। उसी प्रकार प्रलयकाल को बुलाने वाले, दुर्भाग्य-देवी का दरवाजा खटखटाने वाले हमारे वर्तमान नरेन्द्र जबतक अपने अत्याचार से इस भारत-भूमि को हत्याकांड की भूमि न बनावेंगे, उनके बेहद त्रास से कलंकित भूमि को उनकी निर्दोष प्रजा के निर्मल रक्त से न धोवेंगे, अपनी पाप-बुद्धि को अपनी निरीह प्रजा की चिता की गरम ज्वालाओं और जलते हुए हृदय से निकलने वाली गरम हाय-उसांस से जलाकर भस्मीभूत न कर देगा तबतक इस देश की, इन नरेशों की, इस राष्ट्र की शुद्धि या नवजीवन असंभव है। यदि होगा तो वह बेकार और हानिकर साबित होगा।

"आज अपना हृदय खोलकर सच सच कहने दीजिए, कि मेरी तो श्रद्धा हमारे देशी राजाओं का वर्तमान इतिहास देखते हुए उनकी अपेक्षा ब्रिटिश सरकार में अधिक है। देशी राज्यों से कुछ तो अच्छा न्याय, कुछ तो अधिक आजादी यह सरकार देती है। आपकी विश्वास और श्रद्धा जो कुछ हो; परन्तु जबतक एक बलवन् भाई अपने निर्बल भाई को पीड़ित करता है, जुल्म कर के सताता है तबतक उस निर्बल को किसीके आश्रय की जरूरत जरूर होगी, या फिर वह उस जुल्मी भाई के हाथों अपना सर्वनाश करा ले।

"सेवक आपका, आपके आत्मबल का, आपकी अटल श्रद्धा का प्रशंसक है। आपके बराबर श्रद्धा तो हमें नहीं रह सकती। इसीसे शायद इस समय स्वराज्य के प्रति श्रद्धा लोप हो रही होगी। परन्तु इस समय भी इतनी श्रद्धा तो है कि यदि आप इस अश्रद्धा का समाधान करें तो वह ठीक ही होगा। अतएव आशा है कि आप इस अश्रद्धा का समाधान करेंगे।"

इसमें से मैंने वह भाग निकाल डाला है जिसमें 'सेवक' ने देशी राज्यों के संबंध में सविस्तर बातें लिखी थीं।

श्रद्धा किसीकी दी नहीं दी जाती। इसलिए 'सेवक' को अपनी चाही श्रद्धा खुद ही प्राप्त या अनुभव करनी होगी। पर मैं उनका विचार-दोष बता सकता हूं। राष्ट्र के कार्य-फल का अर्थ है उसके समस्त कर्म के योग का परिणाम। फिर स्वराज्य का अर्थ यहां संकुचित किया गया है। स्वराज्य का अर्थ है राजतन्त्र अंगरेजों के हाथ से जनता के हाथ में आ जाय। अतएव यहां तो दोनों का सामाजिक अथवा राजनैतिक कर्म-फल निकालना होगा। सामाजिक नीति में हमारी संघशक्ति, सामाजिक निर्भयता इत्यादि गुणों का समावेश होता है। ये गुण जब प्रजा में आते हैं तब हम अपना तन्त्र अपने हाथ में ले सकते हैं। फिर यहां तो स्वराज्य का अर्थ 'ब्रिटिश भारत की स्वाधीनता' इतना ही है। उसका असर देशी-राज्यों पर बेहद होगा, इसमें कोई शक नहीं। फिर भी देशी राज्यों का प्रश्न अलग रहेगा और ब्रिटिश हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के बाद अपने आप हल होगा। बहुतांश में तो वह ब्रिटिश भारत की स्वतन्त्रता के बाद अपने आप हल हो जायगा। देशी राज्य-नीति चाहे कितनी ही खराब हो फिर भी यदि ब्रिटिश भारत में शक्ति हो तो वह आज स्वाधीन हो सकती है। इसलिए कर्म-फल निकालने में हमें ब्रिटिश भारत की प्रजा के कर्म का हिसाब लगाना होगा। उस हिसाब में यदि देशी राज्यों को जोड़ेंगे तो फल गलत निकलेगा। वास्तव में तो देशी-राज्य भी अंगरेजी सत्ता के अधीन रहते हैं। वे उस सत्ता के प्रति जबाब देह हैं भी और नहीं भी। कर देने और उस सत्ता के प्रति वफादार रहने से जहांतक संबंध है तहीं तक वे उसके नजदीक जवाबदेह हैं। और प्रजा के और उनके संबंधों से जहां तक तल्लुक है वे लगभग स्वतन्त्र हैं। और प्रजा के नजदीक तो वे जवाबदेह बिल्कुल नहीं हैं। इससे उनके आस-पास के वायुमण्डल में दोष ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती है। अथवा दूसरी भाषा में कहें तो उन्हें अन्यायी बनाने के अनेक प्रलोभन रहते हैं। वे जो कुछ न्याय करते हैं उसका भी कारण है उनकी बची-खुची स्वतन्त्र नीति। खूबी तो यह है कि देशी राज्य बिलकुल निरंकुश होते हुए भी और अंगरेजी सत्ता के अनीति के अनुकूल होते हुए भी अब तक जो कुछ है उस नीति-सदाचार की रक्षा कर रहे हैं। यह स्थिति हिन्दुस्तान की प्राचीन सभ्यता की भव्यता की द्योतक है।

मैं देशी राज्यों का बचाव नहीं कर रहा हूं। मैं तो केवल वस्तुस्थिति को पहचान कर 'सेवक' के विचार-दोष दिखा कर उसकी निराशा दूर करने की कोशिश कर रहा हूं। देशी-राज्य चाहे कितने ही खराब हों पर यदि ब्रिटिश सत्ता के अधीन रहने वाले करोड़ों भारतवासी अपने योग्य सामाजिक गुणों को प्रदर्शित कर दें तो स्वाधीन तन्त्र प्राप्त कर सकते हैं। इन गुणों की प्राप्ति में चाहें तो देशी-राज्य बहुत मदद कर सकते हैं। पर यदि वे न करें, मुखालिफत करें, तो भी राष्ट्र उन गुणों को प्राप्त कर सकता है।

ये गुण क्या हैं, इसका विचार हम समय समय पर कर चुके हैं—चरखा-खादी, हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य, अस्पृश्यता-निवारण। इन गुणों की आवश्यकता शान्ति के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के लिए है। यदि तलवार-बल से स्वराज्य प्राप्त करना हो तो फिर इनमें से किसीकी जरूरत नहीं। पर फिर वह स्वतन्त्रता जनता की न होगी, एक बाहु-बलवाले की होगी। जनता तो कढ़ाई से निकल कर चूल्हे में गिरेगी। गेहूं-वर्णी डायर श्वेत-वर्णी डायर से अधिक ग्राह्य न होगा। तो तो फिर देशी-राज्य की जिस स्थिति पर 'सेवक' आंसू बहा रहे हैं वही सारे भारत की होगी; क्योंकि जो संघ तलवार के जरिये अंगरेजों से सत्ता छीनेगा वह कहीं प्रजा के प्रति जवाबदेह रहेगा ? असि, तलवार, शमशीर, 'सोड' सब एक ही वस्तु के वाचक हैं।

देशी राज्यों से अंगरेजी राज्य जरूर नरम मालूम होगा। यही तो अंगरेजी राज्य की खूबी है। अंगरेजी राज्य को तो

दल-विशेष को प्रसन्न रख के ही अपना काम चलाना पड़ता है। इसीसे मध्यम वर्ग के लोगों को निरंतर अन्याय सहन नहीं करना पड़ता। अंगरेजी अन्याय का क्षेत्र बड़ा है। इससे उसकी मात्रा बहुत होते हुए भी व्यक्तिशः कम मालूम होता है और सहवास के कारण उसे हम जान भी नहीं पाते। दक्षिण अमेरिका के गुलामों को सहवास से गुलामी इतनी मीठी लगती थी कि जब वे गुलामी से मुक्त किये गये तब कितने ही लोग रोने लगे। कहां जावें, क्या करें, किस तरह रोजी कमावें, ये महाप्रश्न उनके सामने आ खड़े हुए। यही हालत हम बहुतेरों की है। अंगरेजी राजनीति की सूक्ष्म परन्तु जहरीली मार हमें जान नहीं पड़ती। क्षय के रोगियों को वैद्य के सचेत करते हुए भी, गाल की लाली भुलावे में डाल देती है। वे नहीं जानते कि यह लाली असली नहीं नकली है। अपने पैर के पीलेपन पर उनकी नजर नहीं जाती।

मैं फिर पाठकों को सावधान करता हूं। मैं देशी राज्यों की हिमायत नहीं करता हूं। मैं भारत की दुर्दशा का वर्णन कर रहा हूं। देशी राज्य भले ही खराब हों, पर उस खराबी की ढाल अंगरेजी राज्य है। उथला विचार करने से अंगरेजी राज्य भले ही देशी राज्यों से अच्छा मालूम हो, पर वास्तव में वह देशी राज्यों से अच्छा नहीं है। अंगरेजी राज्य-पद्धति प्रजा के शरीर का, मन का, आत्मा का नाश करती है। देशी-राज्य मुख्यतः शरीर का नाश करता है। यदि अंगरेजी राज्य जा कर प्रजा-राज्य हो तो मैं देशी-राज्य के सुधार को हस्तामलकवत् मानता हूं। अंगरेजी राज्य यदि श्वेतवर्णियों के बाहु-बल के राज्य की जगह गेहुंवर्णियों के बाहु-बल का राज्य हो तो उससे न तो प्रजा को कुछ लाभ होगा, न राज्यों का सुधार। इन दोनों उदाहरणों का मेल शांति-पूर्वक विचार करने वाला हर स्त्री-पुरुष अपने आप मिला सकता है।

वायु-मण्डल के डांवाडोल रहते हुए भी मैं चरखे की और खादी-प्रगति को स्पष्ट-रूप में देख रहा हूं। अस्पृश्यता दूर होती ही जा रही है और हिन्दू-मुसल्मान राजी-खुशी से नहीं तो लड़-मर कर ठिकाने जरूर आ जायंगे। इस कारण स्वराज्य की शक्यता के विषय में मेरी श्रद्धा अविचल है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-भाषियों से निवेदन

प्रिय भाइयो,

आज आपसे एक निवेदन करना पड़ता है। मेरे साग्रह अनुरोध से पू० महात्माजी ने 'नवजीवन' को हिन्दी में प्रकाशित करना मंजूर किया है। आप यह जानते ही होंगे कि उसमें 'यं० इं०' और 'नवजीवन' दोनों के महात्माजी-लिखित लेखों का चुना हुआ संग्रह रहता है। कभी कभी अवकाश और आवश्यकता के अनुसार वे खुद हिन्दी में भी लिखते हैं। 'हिन्दी-नवजीवन' प्रकाशित कराने में मेरा उद्देश केवल यही था कि हिन्दी-भाषी भाई-बहन महात्माजी के पवित्र विचारों और सन्देशों से लाभ उठावें, जिनसे कि अंगरेजी और गुजराती भाषी तो उठा रहे थे पर हिन्दी-भाषी नियमित और अधिकारी-रूप से न उठा पाते थे। पर ऐसा मालूम होता है कि हिन्दी-प्रेमी उसके साथ काफी सहयोग नहीं कर रहे हैं। आप जान कर दुःखी होंगे कि वह घाटे में चल रहा है। यदि महात्माजी के बार बार लिखते हुए भी आप लोगों को अबतक किसी तरह यह न मालूम हो पाया हो तो मैं मालूम किये देता हूं कि महात्माजी दो विशेष सिद्धान्तों का पालन करते हुए अपने पत्रों को चलाना चाहते हैं। एक तो यह कि पत्र के इतने ग्राहक हों कि उसका खर्च निकल जाय और घटी न उठाना पड़े। दूसरे यह कि विज्ञापन ले कर आमदनी न की जाय। वे विज्ञापन की आमदनी को नाजायज मानते हैं। 'हिन्दी-नवजीवन' को चलाने के लिए विशेष रूप से सहायता देनेवालों की कमी महात्माजी के लिए नहीं है। पर महात्माजी को यह मंजूर नहीं है। वे पाठकों के ही बल पर उसे चलाना चाहते हैं। क्योंकि उन्हींके लाभ के लिए वह निकाला गया है। और इसीलिए मुझ जैसे को आपके समक्ष यह अपील ले कर उपस्थित होना पड़ा है। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि करोड़ों हिन्दी-भाषियों के रहते हुए, महात्माजी के प्रेमियों और भक्तों के होते हुए, मुझे यह कभी कयास न हुआ था कि यह अपील लेकर आपके दरवाजे मुझे हाजर होना पड़ेगा।

भाइयो, महात्माजी जैसी विभूति युगों में संसार में आती है। सारा संसार आज महात्माजी के संदेश का प्यासा हो रहा है और विश्व के महान् विचारक उनके सन्देश को पा कर, उनके पत्रों को पढ़ कर, अपनेको धन्य मानते हैं। भारत के तो वे कर्णधार ही हैं। हिन्दी का उन्होंने अपरिमित सेवा की है और आज भी कर रहे हैं। हिन्दी को महासभा के मंच पर, राष्ट्र-भाषा के सिंहासन पर प्रत्यक्ष रूप से प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हींको प्राप्त है। मदरास में हिन्दी-प्रचार, अहिन्दी-भाषियों में हिन्दी का आदर बढ़ाना, यह उन्हींकी हिन्दी-सेवा है। उनके विचार और सन्देश अनमोल हैं। उनको पढ़ कर मुझे जो शान्ति लाभ होता है, जो उत्साह मिलता है, जो सन्मार्ग दिखाई पड़ता है, उसका आनन्द कह कर नहीं बताया जा सकता। सचमुच हम बड़भागी हैं जो उनके समय में रह रहे हैं और उनकी अप्रिय वाणी और प्रसन्न लेखनी का प्रसाद हमारे लिए इतना सुलभ है। हम बड़े मन्दभागी होंगे, अपनेको महात्माजी के अयोग्य साबित करेंगे, यदि यह सुलभ साधन हमारी क्षुद्रबुद्धि, उपेक्षा, उदासीनता, अज्ञान, या नाकदरदानी के कारण हमारे लिए दुर्लभ हो जायगा। अबतक चाहे हिन्दी-भाषी इससे किसी कारण उदासीन रहे हों; पर उनकी देशभक्ति, धर्म-भाव और सेवा-शक्ति का जो कुछ परिचय मुझे है उससे मैं यह आशा किये बिना नहीं रह सकता कि जिस किसी हिन्दी-भाई बहन के हाथ में मेरी यह अपील पड़ जायगी वे तुरन्त 'हिन्दी-नवजीवन' की ग्राहकश्रेणी में अपना नाम लिखा लेंगे और 'हिन्दी-नवजीवन' को चिरकाल तक हिन्दी-संसार की सेवा करने देंगे। मैं दावे के साथ कहता हूं कि यदि आप 'हिन्दी-नवजीवन' को प्रेम से पढ़ेंगे और उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करेंगे तो आप अन्त को देखेंगे कि आपने अपना जीवन सुधार लिया, अपने और अपने देश के उद्धार की कुंजी आपके हाथ लग गई। इति।

वर्धा
श्रावण शु. १० जमनालाल बजाज

महासभा और राजनैतिक दल

वार्षिक मूल्य ४)
छमाही का „ २)
एक प्रति का ,-)।
विदेशों के लिए ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ५१

मुद्रक-प्रकाशक	अहमदाबाद, श्रावण सुदी ९, संवत् १९८२	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
वेणीलाल छगनलाल बूच	गुरुवार, ३० जुलाई, १९२५ ई०	सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

मृत्यु का रहस्य

देशबन्धु के श्राद्ध के अवसर पर कलकत्ते में गांधीजी से गीता पर प्रवचन करने के लिए कहा गया था। उसका अनुवाद 'नवजीवन' से यहां दिया जाता है—

"गीता मेरे लिए सावृत मार्गदर्शिका है। अपने हर कार्य के लिए मैं गीता में से आधार खोजता हूं और यदि नहीं मिलता है तो उस कार्य को करते हुए रुक जाता हूं या अनिश्चित रहता हूं। इसलिए जब मैंने हिचकिचाहट के साथ कुछ कहना स्वीकार किया तब विचारा कि मृत्यु और जन्म के रहस्य पर कुछ कहूं। जब जब मेरे कुटुम्बियों की या स्नेहियों की मृत्यु का अवसर आया है तब तब मैंने गीता को ही याद किया है। और यह बात गीता में ही मिलती है कि मृत्यु के लिए शोक न करना चाहिए। मेरी आंखों से यदि कभी किसी समय आंसू निकले हैं तो वे अनिच्छा से और उसका कारण है मेरी निर्बलता। जब मैंने देशबन्धु की मृत्यु के समाचार सुने तो स्तम्भित हो गया और मेरी आंख से आंसू बह निकले। अब मैं इस बात पर विचार करता हूं तो मुझे यह निर्बलता का ही परिणाम मालूम होता है। आज हम गीताजी से कुछ आश्वासन प्राप्त करें।

मैंने बहुत बार कहा है कि गीताजी एक महारूपक है। मैं नहीं समझता कि इसमें दो पक्षों के युद्ध का वर्णन है और जब मैंने जेल में महाभारत पढ़ी तब मेरी यह धारणा और मजबूत हो गई। महाभारत खुद ही मुझे तो एक महाधर्मग्रन्थ मालूम होती है। उसमें ऐतिहासिक घटनायें तो है; पर वह इतिहास नहीं है। सर्प-सत्र जैसी कथा को पढ़ कर यदि शब्दार्थ करने लगें तो कैसे सन्तोष हो सकता है? तब तो वहम से हमारा दम घुटने लगेगा। कवि खुद ही ढिंढोरा पीट कर कहता है कि मैं इतिहासकार नहीं हूं। परन्तु गीताजी में तो हमारे हृदय के अन्दर प्रचलित युद्ध का वर्णन है और उस युद्ध का वर्णन करने के लिए लेखक कितनी ही स्थूल ऐतिहासिक घटनाओं का उपयोग करता है; पर उसका उद्देश तो है हमारे हृदय के अन्दर प्रकाश डाल कर हममें उसका संशोधन करवाना। जब दूसरे अध्याय के अन्त में आप आते हैं तब ऐसी शंका उठ रहती कि ऐतिहासिक युद्ध की बात चल रही है, असम्भव हो जाता है। अर्जुन का स्थितप्रज्ञ के लक्षण जानने की इच्छा प्रकट करना और युद्ध में प्रवृत्त अर्जुन को भगवान् का उन लक्षणों को कहने लगना विचित्र मालूम होता है।

पर मेरा विषय तो है मृत्यु का रहस्य। यदि आप यह मानने में मुझसे सहमत हों कि गीता एक रूपक है तो गीता के अनुसार मृत्यु का रहस्य भी समझ सकेंगे।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

इस श्लोक में सारा रहस्य भरा हुआ है। अनेक श्लोकों में फिर फिर कर कहा है कि शरीर 'असत्' है। 'असत्' का अर्थ 'माया' नहीं, ऐसी वस्तु नहीं जो कभी किसी रूप में उत्पन्न न हुई हो, बल्कि उसका अर्थ है क्षणिक, नाशवान् परिवर्तनशील। फिर भी हम अपने जीवन का सारा व्यवहार यह मान कर ही करते हैं मानों हमारा शरीर शाश्वत है। हम शरीर को पूजते हैं, शरीर के पीछे पड़े रहते हैं। यह सब हिन्दू-धर्म के खिलाफ है। हिन्दूधर्म में यदि कोई बात चांदनी की तरह स्पष्ट कही गई हो तो वह है शरीर की और दृश्य पदार्थों की असत्ता। फिर भी हम जितने मृत्यु से डरते हैं, रोते-पीटते हैं, उतने शायद ही कोई करते हों। महाभारत में तो उल्टा यह कहा है कि रुदन से मृत आत्मा को सन्ताप होता है। और गीता इसीलिए लिखी गई है कि लोग मृत्यु को कोई भीषण वस्तु न मानें। मनुष्य का शरीर काम करते करते थकता है। अनेक शरीर तो मृत्यु के द्वारा दुःख से मुक्त होते हैं। मैं ज्यों ज्यों देशबन्धु के दिन-रात कार्य-मय जीवन पर अधिकाधिक विचार करता हूं त्यों त्यों मुझे प्रतीत होता है कि वे आज जीवित हैं। जब उनका शरीर था तब वे जीवित न थे, आज सोलहों आना जीवित हैं। हमने तो अपने स्वार्थ के कारण मान लिया कि उनका शरीर ही महत्व की वस्तु थी। वह हमें सिखाती है और मैं प्रतिदिन इस पाठ को समझता जाता हूं कि—अशाश्वत वस्तु के लिए की गई सारी चिन्ता व्यर्थ है, व्यर्थ कालक्षेप है।

'असत् का भाव' इसका अर्थ है अस्तित्व का न होना। और जो सत् है उसका नाश कभी नहीं हो सकता। शेक्सपिअर

जाने वाली सादगी और सख्ती बरदाश्त करने के नाकाबिल हैं तो हर हालत में, मुझे आशा है कि, यह बात साफ हो जाती है कि क्यों अखिल भारत देशबन्धु स्मारक उस स्वरूप को नहीं ग्रहण कर सकता जिससे दुखी लोगों की सहायता की जा सके, या महासभा के कार्यकर्ताओं को वेतन दिया जा सके। हाँ, अप्रत्यक्ष रूप से इस स्मारक के द्वारा दोनों बातों के होने का खयाल कर सकते हैं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण सुदी ९, संवत् १९८२

महासभा और राजनैतिक दल

श्री सत्यानन्द बोस का नीचे लिखा पत्र मैं खुशी के साथ छाप रहा हूं। बोस महाशय एक भारी महासभावादी हैं और मेरा उनसे परिचय तभी से है जब मैं दक्षिणी अफ्रिका में था। उन्होंने मेरे स्वर्गीय मित्र सोराबजी अडाजन को सहायता पहुंचाई थी।

"आपके इस प्रस्ताव के सिलसिले में कि महासभा का कारोबार स्वराज्य-दल के जिम्मे कर दिया जाय, लोगों के मन में कुछ आशंका पैदा हुई है।

यह कहा जाता है कि अब से महासभा स्वराज्य-दल की संस्था की दुम हो जायगी और देश के सार्वजनिक जीवन में उसका वह प्रधानपद न रह जायगा। पिछले साल आपका जो ठहराव उसके साथ हुआ है उसमें कहा गया है कि स्वराज्यदल बड़ी धारासभा में तथा प्रान्तीय धारासभा-मण्डल में महासभा की तरफ से काम करेगा। इससे यह सन्देह और भी मजबूत हो जाता है।

हाँ, निस्सन्देह, आपने उस ठहराव को रद कर दिया है। पर यह सन्देह होता है कि एक नये ठहराव के द्वारा स्वराज्य-दल को खुले शब्दों में महासभा के कार्य-संचालन और नियंत्रण करने का अधिकार दे दिया जायगा।

मैं खुद तो इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि आप या पण्डित मोतीलाल नेहरू ऐसा करना चाहते होंगे।

यह बात निर्विवाद है कि क्या महासभा और क्या उसके बाहर स्वराज्य-दल का बहुमत है। इसलिए अभी तो अंशतः महासभा पर उसीका कब्जा होगा। परन्तु यह बात उस ठहराव की बात से भिन्न है जिसके कि द्वारा उस दल को और बातों और विचारों का लिहाज किये बिना ही, प्रधानपद मिल जाता है।

ब्रिटिश पार्लियामेंट की तरह महासभा होनी चाहिए। पार्लियामेंट में हर दल के लोग रहते हैं और जिनका बहुमत होता है उनका कब्जा और देखरेख उसके कामों पर रहती है। यह चुनाव के फल-स्वरूप होता है, उसके अतिरिक्त किसी ठहराव के द्वारा नहीं। हमारी राष्ट्रीय महासभा में भी इसी विधान की पाबंदी होनी चाहिए।

मेरा अनुरोध है कि आप अपनी स्थिति को स्पष्ट कर दें। अ-स्वराजियों में यह इच्छा प्रबल हो रही है कि महासभा में आ जावें। आशा है, उनके रास्ते में किसी किस्म की रुकावट न डाली जायगी।

पिछले समय की तरह महासभा सबसे प्रधान राष्ट्रीय संस्था रहनी चाहिए—फिर कुछ समय के लिए चाहे किसी दल के हाथ में उसकी बागडोर हो।"

"पुनश्च

कागज पर लिखे ठहराव कृत्रिम होते हैं और उनका फल मत-भेद और फूट ही होता है। हाँ, ठहराव को बदल भी सकते हैं। पर मैं कहता हूं ठहराव की जरूरत ही क्या है?"

मैं नहीं समझता कि पण्डित मोतीलाल नेहरू के नाम लिखे मेरे पत्र में ऐसी कोई बात है जिससे सत्यानन्द बाबू के पत्र में प्रदर्शित आशंका हो सकती हो। मेरे उस पत्र का आशय सिर्फ इतना ही है कि बेलगांव में महासभा के बिलकुल राजनैतिक कामों में मेरे बदौलत जो रुकावट डाली गई थी वह हट जाय।

खुद मेरी तो वही राय बनी हुई है जो कि पिछले साल थी। अर्थात यह कि यदि भारत का शिक्षित-समुदाय अपनी सारी शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम में एकत्र कर दे और उसे अपना प्रधान कार्य बना ले तो हम स्वराज्य के बहुत नजदीक पहुंच जायगे। पर मैं कुबूल करता हूं, कि मैं उन्हें यह बात जंचाने में सफल न हो पाया। ऐसी हालत में मुझे यह उचित नहीं कि मुझ जैसे अकेले आदमी के द्वारा, जिसने कि अपने आपको जनता के समर्पित कर दिया है और जिसका आमूलाग्र मत-भेद शिक्षित-समाज के साथ है, महासभा का कार्य-संचालन हो और मैं शिक्षित समाज के द्वारा महासभा के विकास और मार्गदर्शन में बाधक होऊं। मैं अब भी उनपर अपने विचारों का असर डालना चाहता हू। परन्तु महासभा का अग्रणी बनकर नहीं, बल्कि इसके विपरीत जहां तक संभव हो चुपचाप उनके हृदय पर अपना असर डालूंगा, जैसा कि १९१५ और १९१९ के बीच करता था। शिक्षित समाज के द्वारा देश की जो महान् सेवा विकट अवसर पर हुई है उसको मैं मानता हू। उनकी अपनी एक कार्य-प्रणाली है। राष्ट्रीय जीवन में उसका अपना एक स्थान है। मैं इस बात की तरफ से अपनी आंखें नहीं मूंद सकता कि स्वराज्यदल के नियम-बद्ध प्रतिकार ने अपना सिक्का हमारे शासकों के दिलपर जमा दिया है, फिर और लोग इसके विपरीत जो कुछ राय रखते हों। इस कार्य की मैं सबसे अच्छी सहायता इसी तरह कर सकता हूं कि मैं उसके रास्ते से अपनेको हटा लूं और अपनी सारी शक्ति एकमात्र रचनात्मक कार्य में लगा दू। जहांतक शिक्षित समाज मुझे करने देगा इसे मैं महासभा की सहायता से और उसीके नाम पर करूंगा।

मैं इस बात को मानता हूं कि महासभा की गति का संचालन करनेवाले शिक्षित लोग हैं न कि मैं या वे जिन्होंने फिलहाल राजनैतिक दृष्टि से विचार करना बंद कर रक्खा है। मेरी राय में हमारे राष्ट्रीय विकास में दोनों के लिए स्थान है और हर दल अपने अपने दायरे में रहते हुए एक दूसरे के कार्य का पूरक हो सकता है और सहायता कर सकता है। चरखे और खादी पर मेरी श्रद्धा ज्यों की त्यों है। यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसमें देश के बहुत से बहुत आगे बढ़े हुए नौजवानों की सारी शक्ति लग सकती है। यह एक ऐसा प्रयत्न है जिसके लिए एक नहीं सौ नहीं बल्कि हजारों स्त्री-पुरुषों के एकाग्र-चित्त की आवश्यकता है। मैं चरखे और खादी की आवश्यकता और उपयोगिता की बहस और झगडे में अपना वक्त नहीं लगाना चाहता। अब यह

समय आ गया है कि खादी के लिए मैंने जो जो बातें कही हैं वे कर के दिखा दी जायें और ऐसा करने में मैं उन सब लोगों के सहयोग और सद्भाव को चाहता हूं जो कि इस कार्य में देना चाहेंगे। और यह तभी हो सकता है जब कि मैं चरखे को महासभा के राजनैतिक अखाड़े से छुटा लूं। अतएव चरखा और खादी महासभा में अपने उस स्थान पर कायम रहेंगे जो कि राजनैतिक वृत्ति के लोग खुशी के साथ उसे देंगे। ऐसी अवस्था में यदि आगामी महासमिति ने मेरी सलाह को मान लिया तो राजनैतिक प्रचार की रुकावट बिल्कुल दूर हो जायगी और फलतः स्वराज्य-दल अपनी पृथक संस्था के द्वारा नहीं बल्कि खुद महासभा के द्वारा ही अपना काम करेगा और यह वह किसी नये ठहराव के बदौलत नहीं, बल्कि उसके और मेरे बीच मौजूदा ठहराव के तोड़ दिये जाने के बदौलत, और उसके फल-स्वरूप महासभा के विधान और महासभा के उस प्रस्ताव में सुधार हो कर जिसके कि बल पर वह ठहराव कायम हुआ था। उस ठहराव ने असहयोग को स्थगित कर के तमाम राजनैतिक दलों के लिए महासभा का दरवाजा खोल दिया था। उस ठहराव के तोड़ दिये जाने से अब वह दरवाजा और ज्यादह खुल जायगा। क्योंकि अब राजनैतिक वृत्ति के लोग रचनात्मक कार्यक्रम तक ही महासभा के मर्यादित रहने की बाधा से वंचित हो जायंगे। स्वराज-दल में शामिल होने से वे हिचकते थे और उनकी राय में महासभा के अन्दर उनकी शक्ति और बुद्धि के लिए काफी अवकाश न था। पर अब जब कि वह रुकावट दूर हो गई है वे चाहें तो दिल खोल कर महासभा में शरीक हो सकते हैं और महासभा के मंच से जिन चाहे राजनैतिक प्रस्तावों को उपस्थित कर सकते हैं और स्वराजियों से दो दो हाथ कर के उनपर तथा देश पर अपने मतों का प्रभाव डाल सकेंगे।

अब अनिवार्य कताई-मताधिकार उनकी गति को न रोक सकेगा। एक ही बाधा उनके रास्ते में हो सकती है और वह है खादी को अपना आवश्यक राष्ट्रीय लिबास बनाना। पर संभव है कि महासमिति मताधिकार के खादी-अंश को भी रद्द कर दे। यदि ऐसा अवसर आ भी जाय तो मैं उसके रास्ते में बाधक न होऊंगा— हां, इसमें कोई शक नहीं कि इससे मुझे बहुत दुःख होगा। क्योंकि उस अवस्था में शिक्षित भारतवासी उस एकमात्र दृश्य और प्रत्यक्ष बंधन को भी तोड़ डालेंगे जो कि उन्हें आज जनता से बांध रखता है। इसलिए मैं आशा रक्खूंगा कि महासमिति खादी को महासभा के मताधिकार में चिरस्थायी स्थान देगी। क्या हम घरेलू उद्योग-धंधे और इन्हीं कारीगरी को प्रोत्साहन देना नहीं चाहते हैं? क्या हम उन लाखों बहनों को जो बेकार रहती हैं चरखे के द्वारा कुछ पैसे की आमदनी कराना नहीं चाहते हैं? और मैं समझता हूं कि श्रम के साथ ही हाथ कताई तो महासभा के मताधिकार में कायम रहेगी। मैं समझता हूं कि इसपर तो किसी तरह की आपत्ति नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में यदि मेरे प्रस्तावों को महासमिति मंजूर कर लेगी तो हर शिक्षित भारतवासी के लिए महासभा में सम्मिलित होना और एक ऐसा संयुक्त राष्ट्रीय राजनैतिक कार्यक्रम बनाना शक्य हो जायगा जो कि देशबन्धु की मृत्यु और लार्ड बरकनहेड के भाषण से उत्पन्न स्थिति का मुकाबला करने के लिए आवश्यक होगा।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

टिप्पणियां

अखिल-भारत-सूतकार-मण्डल

जब कि महासभा मुख्यतः राजनैतिक संस्था बन जायगी और फिर भी वह किसी न किसी रूप में जनता का प्रतिनिधित्व रखना चाहेगी तो भारत में सूतकार-मंडल स्थापित किये बिना काम न चलेगा। वह मताधिकार के कताई-संबंधी अंश को नियमित और विकसित करेगा तथा कताई-सदस्यों के दिये सूत को ग्रहण करेगा। और एकमात्र हाथ-कताई और खादी पर अपनी शक्ति केन्द्रित करेगा।

यह मण्डल, यदि उसकी स्थापना हुई, तो बिल्कुल एक व्यवसायिक तत्व पर चलने वाला कारोबार होगा। वह एक स्थायी मण्डल होना चाहिए और महासभा की राजनीति के चढ़ाव-उतार का उसपर किसी तरह कुछ असर न होना चाहिए। इसलिए उसका कार्याधिकारी-मण्डल भी काफी स्थायी होना चाहिए। उसे खादी-सेवा-मण्डल भी कायम करना होगा। वह दूर दूर के देहात में चरखे का सन्देश ले जाकर ग्राम-संगठन का प्रतिनिधि होगा और उसे विकासित करेगा तथा पहलीबार देहातियों में धन को उनसे खींच ले जाने की बजाय, बांटेगा। इसके द्वारा हम शांति के साथ देहात में प्रवेश करेंगे और कुछ समय के बाद वास्तविक राष्ट्रीय जीवन वहां से वह निकलेगा। यह एक ऐसा जबरदस्त सहयोग-प्रयत्न होना चाहिए जिसे कि दुनिया अभीतक न देख पाई हो। यदि इसमें एक अच्छी तादाद में बुद्धि का प्रयोग किया गया, साधारण त्याग से काम लिया गया, मामूली ईमानदारी का अवलंबन किया गया और धनवानों और मध्यवित्त के लोगों की तरफ से साधारण सहायता दी गई तो इसकी सफलता निश्चित है। देखना चाहिए, भारत का भविष्य क्या कहता है।

चीन की दुर्गत

मैं आशा करता हूं कि पाठकों ने कैंटन (चीन) की राष्ट्रीय सरकार के पर-राष्ट्र-विभाग के अधिकारी का भेजा वह लंबा तार अन्य पत्रों में पढ़ ही लिया होगा। और यह तो स्पष्ट ही है कि वह तार दुनिया के कई हिस्सों में भेजा गया है।

मैं नहीं कह सकता कि चीन को उसकी इस विपत्ति में भारतवर्ष क्या सहायता दे सकता है। यहां तो हमें खुद ही सहायता की आवश्यकता है। यदि अपने घर के काम-काज में हमारी कुछ चलती-हलती होती तो हम भारतीय सिपाहियों की बंदूकों से चीन के निर्दोष विद्यार्थियों तथा अन्य लोगों को खरगोश की तरह भूने जाने के इस तेजोनाशक और अपनेको गिराने वाले दृश्य को—यदि तार में वर्णित कथा को सच मानें तो—कभी सहन न कर सकते थे। ऐसी हालत में हम तो सिर्फ परमात्मा से यही प्रार्थना कर सकते हैं कि वह उन्हें इन तमाम विपत्तियों से छुड़ावे। परन्तु चीन की स्थिति हमें इस बात की याद दिलाती है कि हमारी यह गुलामी अकेले हमीको हानि नहीं पहुंचा रही है, हमारे पड़ोसी को भी पहुंचा रही है। इससे यह बात भी बड़े जोर के साथ प्रत्यक्ष होती है कि भारतवर्ष केवल उसके अकेले की लूट के लिए ही पराधीनता में नहीं रक्खा जा रहा है बल्कि वह तो ग्रेटब्रिटेन को महान् और प्राचीन चीन को लूटने में भी समर्थ बनाता है।

यदि किसी जिम्मेवार चीनवासी के हाथ में ये पंक्तियां पहुंच जायं, तो मैं उसका ध्यान उन साधनों और उपायों की ओर दिलाना चाहता हूं जिनका उपयोग हम यहां भारत में कर रहे हैं वे हैं अहिंसा और सत्य। चीनी इस बात को समझ रक्खें कि

होगी ! परन्तु परिणाम तो हम देख ही रहे है कि बहुतेरे कामों में बायें हाथ का उपयोग नहीं किया जाता, इससे वह बे-काम हो गया है और हमेशा दाहने से कमजोर भी रहता है ।

जापान में यह बात नहीं । वहां लड़कपन से ही दोनों हाथों से एक-सा काम लेना सिखाया जाता है । इससे जापानियों के शरीर की उपयोगिता हमारे शरीर से बढ़ जाती है ।

ये विचार मैं अपने वर्तमान अनुभव के फलस्वरूप पाठकों के लाभार्थ उपस्थित करता हू । जापान की इस बात को पढ़े कोई २० साल से अधिक हो गया । जब से मैंने यह बात सुनी तभीसे बायें हाथ से लिखना शुरू किया और थोडी बहुत आदत डाल ली थी । यह मानकर कि अवकाश नहीं है, दहने के बराबर तेजी से लिखने का महावरा न डाला । इसपर इस समय अफसोस हो रहा है । मेरा दहना हाथ मेरी इच्छा के अनुसार लिखने का काम नहीं देता । बहुत लिखने से वह दर्द करने लगता है । और अभी यह लोभ मुझे बना हुआ है कि जहां तक हो सके अपने हाथ से लिखने की शक्ति को कायम रक्खू । इस कारण अब फिर मैंने बायें हाथ से लिखना शुरू किया है । अब मुझे इतना समय तो है नहीं कि मैं अब कुछ बायें ही हाथ से लिखूं और दहने हाथ की तेजी उसमें ला दू । फिरभी वह कठिन समय में मुझे मदद दे रहा है । इस कारण अपना यह अनुभव मैं पाठकों के सामने पेश करता हू । जिन्हें अवकाश और उत्साह हो वे बायें हाथ को भी तालीम दें । समय बीतने पर उसकी उपयोगिता हरएक पर साबित हो जायगी । केवल लिखने का ही नहीं दूसरी क्रियाओं का अभ्यास भी बायें हाथ कर लेना चाहिए । क्या हम कितनों ही का यह अनुभव देखते नहीं देखते है कि जब किसी चोट आदि के कारण दहना हाथ काम नहीं देता तब बायें से खाना खाना भी मुश्किल हो जाता है? इस लेख का सार कोई यह तो हरगिज न निकालें कि वे बायें हाथ को तालीम देने के पीछे पागल हो जायं । साधारण तौर पर बायें हाथ को जितना अभ्यास कराया जा सकता है उतना ही कराने की सलाह इस टिप्पणी के द्वारा मैं दे रहा हू । शिक्षकों के लिए यह वांछनीय मालूम होता है कि वे इस सूचना से बालकों को लाभ पहुंचावें ।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

विज्ञापनों का नियंत्रण

२० जुलाई के 'प्रताप' में उसके देश-भक्त संपादक ने अपने पाठकों को यह आश्वासन दिया है कि इस पत्र में ऐसे विज्ञापन न छापे जायगे जो मन में कु-प्रवृत्ति उत्पन्न करे और जिनसे लोग ठगे जाय या उनके ठगे जाने की संभावना हो । बाजीकरण औषधियों के विज्ञापन प्रताप में न छापे जायंगे । शिलाजीत मकरध्वज आदि शास्त्रीय औषधियों के संबंध में भी इस बात का सदा विचार रक्खा जायगा कि उनका वर्णन अश्लीलता की सीमा तक न पहुँचने पावे ।' इस निश्चय के कारण प्रताप के कुछ विज्ञापन-दाता उससे नाराज हो गये है और उन्होंने अपने विज्ञापन और रुपया भी वापस मगा लिया है । अन्त में वे कहते है कि 'इस प्रकार विज्ञापनों के नियंत्रण की बुनियाद डाल कर हम समाचार-पत्रों में विज्ञापन-संबंधी जो दूषण है उसे कम करने का प्रयत्न कर रहे हैं । हमारी प्रार्थना है कि इस काम में पत्र के पाठक और विज्ञापन-दाता हमें सहायता देने की कृपा करें ।'

प्रताप-संपादक इस शुभ संकल्प के लिए अपने पाठकों के धन्यवाद के पात्र है । इस निश्चय के द्वारा उन्होंने अपने पाठकों की बड़ी सेवा की है । उनके सामने से उन्होंने वह प्रलोभन-सामग्री, जहांतक उनसे हो सका, हटा लेने की कोशिश की है जिसके ब-दौलत उनके धन और जीवन दोनों के बरबाद होने की संभावना रहा करती है । हिन्दी-पत्र-संचालकों के सामने भी उन्होंने पाठकों की सेवा का यह स्वागत-योग्य नमूना पेश किया है । गंदे और धोखा देनेवाले विज्ञापनों की हानियां इतनी स्पष्ट हैं, और प्रत्येक पत्र-संचालक उनसे इतना परिचित होता है, कि यदि वह जरा ही अपने पाठकों के हित का अधिक विचार करे तो उन विज्ञापनों से अपने पत्र को कलंकित करना कभी गवारा न करे । परन्तु पत्रों में विज्ञापनों का लेना एक ऐसा मामूल पड़ गया है कि पत्रकारों की दृष्टि सहसा उसके कृष्ण-पक्ष की ओर नहीं जाती । कुछ लोग तो अपने पत्रों की दूनी-चौगुनी ग्राहक संख्या बता कर भी विज्ञापन-दाताओं से विज्ञापन झटकने में बुराई नहीं समझते । वे पत्र के पोषण के मोह में चौगुनी झूठ का आश्रय लेते है तो उनके विज्ञापन-दाता आठ गुना झूटी बातें लिख कर उनके ग्राहकों से विज्ञापन की रकम खसोट लेते हैं । दोनों की इस छीना-झपटी में मरण है बेचारे पाठकों का । अधिकांश पत्र इस विज्ञापन की बीमारी के मरीज होते है -- इसलिए पाठकों को इस विषय में उनका हानि-लाभ भला वे कैसे दिखा सकते है ? पर सभी पत्रकार इस श्रेणी के नहीं होते है । प्रताप-संपादक की इस घोषणा को इस बात का मंगलाचरण समझना चाहिए । हमें विश्वास करना चाहिए कि 'प्रताप-संपादक' ही अकेले इस क्षेत्र के वीर न रहेंगे । हिन्दी में ऐसे पत्र-पत्रिका भी हैं जो बिल्कुल विज्ञापन नहीं लेते, या नाम-मात्र के लिए लेते है, फिर भी किसी न किसी तरह जी ही रहे हैं । अनीतियुक्त जीवन से क्या दुर्जीवन-दरिद्र जीवन अच्छा नहीं है ? हिन्दी में ऐसे प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिका भी है जिनपर मेरी दृष्टि है और जो मैं समझता हू कि यदि चाहें तो इस विषय में अग्रणी हो कर पाठकों का बड़ा हित-साधन कर सकते है ।

'प्रताप' के सुरुचि और सुविचारवान् संपादक से मेरा एक निवेदन है । वे समय समय पर इस कुप्रथा पर अपने विचार प्रकाशित कर के इस नियंत्रण की आवश्यकता का प्रतिपादन भी करते रहें । मैंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति के पास एक इस आशय का प्रस्ताव भेजा है कि पत्र-संचालकों से अनुरोध किया जाय कि वे गंदे और चरित्रनाशक विज्ञापनों को अपने पत्रों में स्थान न दिया करें । स्थायी-समिति ने वृन्दावन-सम्मेलन के लिए उस प्रस्ताव को भेज दिया है । यदि 'प्रताप' के तथा अन्य देश-हितेच्छु पत्रों के संपादक इस विचार का समर्थन करें तो इस विषय में हम बहुत प्रगति कर सकते हैं ।

मैं प्रताप-संपादक को यकीन दिलाना चाहता हूं कि 'विज्ञापन बाजों से अनर्थ' नामक लेख मैंने बहुतेरे पत्र-पत्रिकाओं में छपे विज्ञापनों को ध्यान में रख कर लिखा था-अकेले 'प्रताप' की ओर मेरा संकेत हरगिज न था । ये 'प्रताप' के शुभ संस्कार है जिन्होंने उसे सब से पहले इस विषय में जाग्रत और शुद्ध किया और सार्वजनिक-रूप से इस नियंत्रण का बीड़ा उससे उठवाया है । ह० उ०

अखिल-भारत-देशबन्धु-स्मारक

इसकी अपील पर गतांक में प्रकाशित नामों के अलावा नीचे लिखे सज्जनों के दस्तखत और आये हैं—

मौ० महम्मदअली, पं. मदनमोहन मालवीय, श्री सी. राजगोपालाचार्य, श्री गंगाधरराव देशपाण्डे, श्री कोंडा वेंकटप्पय्या, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, श्री एस. श्रीनिवास आयंगर, श्री रंगस्वामी आयंगर, डा० वरदाराजुलु नायडू, श्री अब्बास तैयबजी, श्री ई० वी० रामस्वामी नायकर, सेठ गोविंददास, श्री जयरामदास दौलतराम, श्री टी. प्रकाशम्, श्री वी. वी. दास्ताने ।

मैं अंगरेजो से द्वेष करता हूं?

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ४] [अंक ५१

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, भाद्रपद बदी २, संवत् १९८१ गुरुवार, ६ अगस्त, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

क्या यह विसंगति है?

नीचे लिखा पत्र कलकत्ते के "स्टेट्समन' को भेजा गया था, जो कि उसके ? अगस्त के अंक में प्रकाशित हुआ है। सर्व-साधारण की जानकारी के लिए उसका अनुवाद यहां दिया जाता है।

"आज के 'स्टेट्समन' में 'सिविल रेजिस्टन्स' नामक जो लेख निकला है उसके उत्तर में मैं यह पत्र भेज रहा हूं। आशा है, आप इसे स्थान देने की कृपा प्रदर्शित करेंगे। आपको मेरी इस अभिलाषा में कि देश में सविनय भंग का वायुमण्डल तैयार करूं और योरपियन एसोसियेशन वाले उस भाषण के इन वचनों में कि 'मैं सहयोग के लिए मर रहा हूं' विसंगति दिखाई देती है। योरपियन एसोसियेशन में मैंने वह भाषण २४ जुलाई को किया था। गुरुवार के य. इं. के लिए मैं उससे पहले के शनिवार को लेख लिखता हूं। यं० इं के जिस लेख में सविनय भंग का उल्लेख हुआ है, और जिसे आपने उद्धृत किया है वह २३ जुलाई को प्रकाशित हुआ है। अतएव वह लेख उसके पहले के शनिवार को अर्थात् १९ जुलाई को लिखा गया था। मैंने ये तारीखें इस लिए दी हैं कि आपको यह ज्ञात हो जाय कि सविनय भंग का ख्याल योरपियन एसोसियेशन वाले भाषण के बाद नहीं पैदा हुआ था।

मुझे सविनय भंग और सहयोग की इच्छा में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती। आपको याद होगा कि योरपियन एसोसियेशन में मैंने एक पुरानी कहानी के सिलसिले में वे वचन कहे थे। असहयोग के दौर-दौरे के जमाने में एक अंगरेज ने ताना मारते हुए कहा था कि यद्यपि आप असहयोग असहयोग पुकारते हैं फिर भी आप सहयोग के लिए मर रहे हैं। मैंने ओरों के साथ उनसे कहा — हां, यह बिल्कुल ठीक है। और मैं कहता हूं कि आज भी मैं उसी जगह मौजूद हूं। अन्याय का सविनय प्रतिकार मेरे नजदीक कोई नया सिद्धान्त या नया कार्य नहीं है, यह तो मेरा आ-जीवन सिद्धान्त और आ-जीवन आचरण रहा है और है। देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने का अर्थ है अहिंसा के लिए तैयार करना। देश को अहिंसा के लिए तैयार करने का अर्थ है उसे रचनात्मक कार्यों के लिए संगठित करना। और रचनात्मक कार्य और चरखा दोनों मेरे लिए पर्यायवाची शब्द हैं। यह साफ जाहिर होता है कि आप मानते हैं कि मुझे असहयोग या सत्याग्रह पर पछतावा हुआ है। पर यह बात हरगिज नहीं है। मैं अब भी अटल असहयोगी हूं। यदि मैं भारत के शिक्षित वर्ग को अपने साथ रख सकूं तो मैं आज पूरा पूरा असहयोग घोषित कर दूं। पर मैं ठहरा असली आदमी। जो हकीकत मेरी आंखों के सामने है उसे मैं देखता हूं। मैं अपने कुछ अत्यन्त आदरणीय साथियों को यह बात जंचाने में सफल नहीं हुआ हूं कि हमने १९२० में जो एक प्रकार का असहयोग शुरू किया था वह वर्तमान अवस्था में भी देश का हित-साधन कर सकता है। [illegible] उन साथियों को फिर से कायल कर सकूं तो मैं जरूर ही महासभा से कहूं कि फिर से लड़ाई का शंख फूंक दो।

मैं अपनी इस कमजोरी की हालत में खुद अपनी तरफ से सरकार से सहयोग करने की इच्छा नहीं रखता, वह तो एक गुलाम का सहयोग होगा। मैं अपनी कमजोरी को तसलीम करता हूं। और इसलिए केवल सहयोग की इच्छा पर ही सन्तुष्ट रहता हूं। अपनी शक्ति को संग्रह करके उस इच्छा को पूर्ण करना चाहता हूं। यदि मैं हिंसात्मक साधनों का कायल होता तो मैं इस बात को छिपा न रखता और उसका जो कुछ नतीजा होता उसे भोग लेता। मैं देश को पुकार पुकार कह देता और असंदिग्ध भाषा में कह देता कि इस देश के लिए तबतक आजादी या सम्मानपूर्ण सहयोग का रास्ता खुला नहीं है जबतक यह अंगरेजी संगीन को हिन्दुस्तानी संगीन का स्वाद न चखा दे। पर बात यह है कि मैं तो तलवार के पंथ का अनुयायी ही नहीं। मैं तो उल्टा इससे आगे बढ़ कर यह भी मानता हूं कि दुर्भाग्य से हो या सद्भाग्य से, तलवार भारतवर्ष में कदापि सफल नहीं हो सकती। सो इसके लिए एक दूसरे शस्त्र की आवश्यकता है, और वह है सत्याग्रह।

आपकी राय में वह हिंसा की ही तरह खतरनाक है, और यदि यही सरकार की भी राय हो, तो उसे मुझे दबाना होगा; क्योंकि मेरे जेल से छूटने के बाद एक क्षण मैंने इस कोशिश के सिवा नहीं बिताया है कि मैं अपनेको या देश को सत्याग्रह के लिए योग्य बनाऊं। मैं आपको अत्यन्त नम्रतापूर्वक सूचित करता हूं कि यदि मैं सिर्फ अपने क्रान्तिकारी मित्रों का पूर्ण सहयोग उनसे अपनी कार्रवाइयों को पूरा पूरा बन्द करा के प्राप्त कर सकूं और यदि मैं आम तौर पर अहिंसा का वायुमण्डल

उत्पन्न कर सकूं तो मैं आज ही सामुदायिक सत्याग्रह की घोषणा कर दूं और इस तरह सम्मानपूर्ण सहयोग के लिए रास्ता तैयार कर दूं। हां, मैं मानता हूं कि १९२१ में मैं ऐसा न कर पाया और जब मैंने देखा कि चौरी-चौरा ने मुझे दगा दे दिया तो सत्याग्रह की घोषणा के चौबीस घण्टे के अन्दर मुल्तवी करने में मैंने किसी तरह आगा-पीछा न किया और उसके बाद उसके फलस्वरूप देश में जो सर्व-सामान्य निरुत्साह फैला उसको अंगीकार करने में न झिझका।

और मैं जो हिन्दू-मुस्लिम-एकता, चरखा और खादी पर इतना जोर दे रहा हूं कि लोग तंग आ जायं, वह इसलिए कि सत्याग्रह के लिए आवश्यक अहिंसा की स्थिति का इत्मीनान कर लूं। मैं कुबूल करता हूं कि मैंने इस बात की आशा छोड दी है कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता बहुत नजदीक भविष्य में हो जायगी। हां, अछूतपन धीरे धीरे परन्तु निश्चय के साथ जा रहा है और चरखा भी धीरे धीरे परन्तु निश्चय के साथ रास्ता तय कर रहा है। परन्तु इस बीच देश की मनमानी लूट तो कदम तेजी के साथ आगे ही बढाती जा रही है। इसलिए मैं किसी न किसी तरह के अ-व्यर्थ व्यक्तिगत सत्याग्रह की तजवीज सोच रहा हूं जिससे कि यदि इस दरिद्र देश को कुछ आराम न मिले तो कमसे उन लोगों को तो जिन्होंने कि अहिंसा को अपना सिद्धान्त मान लिया है, यह तसल्ली हो कि हमने अपनी तरफ से देश को उन बेडियों से छुडाने में जो कि सारी कौम को निःसत्व बना रही हैं अपनी तरफ से कोई बात उठा न रक्खी।

मैं फिर यह कुबूल करता हूं कि अभी मेरे पास इसकी कोई तैयार तजवीज नहीं है; क्योंकि यदि होती तो मैं उसे आपसे या देश से छिपा कर न रखता। पर हां, मैं अपने मन की सारी गति-विधि आपके सामने रख रहा हूं। झूठे बहाने बना कर अंगरेजों का सद्भाव कायम रखने या प्राप्त करने की इच्छा मुझे नहीं है। जिस तरह कि सरकार भारत के राजकाजियों के सामने शर्तें पेश करते समय अपने अस्तित्व और स्थिरता के इत्मीनान के लिए किसी किस्म के एहतियात या तैयारी की कोशिश में कमी नहीं करती उसी तरह मैं चाहता हूं कि मेरा देश भी उन शस्त्रों से सज्जित होने में कसर न रक्खे जिनका कि प्रयोग वह उस समय शुरू कर दे जब कि सरकार उसकी इच्छा का सम्मान न करे।

आप जानते ही होंगे (क्योंकि अब वह पत्र-व्यवहार प्रकाशित हो चुका है) कि देशबन्धु ने डा० बेसेण्ट के बिल वाले घोषणा-पत्र पर दस्तखत नहीं किये हैं। उसका एक कारण यह था कि उसमें उस शक्ति या बल का समावेश न था जो कि उसके अस्वीकृत किये जाने की अवस्था में काम में लाई जा सके। वह बल था सत्याग्रह। क्या आप यह पसन्द करेंगे कि जब देश का सारा पौरुष नष्ट हो जाय और हिंसात्मक या अहिंसात्मक किसी तरह के प्रतिकार के लिए वह किसी काम का न रहे तब कहीं जा कर ब्रिटिश सरकार सुलह की शर्तें पेश करे या स्वराज्य-दल या किसी दूसरे दल के प्रस्ताव पर विचार करे? यदि यही बात है तो मैं आपको यकीन दिलाता हूं कोई भी आत्माभिमानी भारतवासी ऐसी नीचा गिरानेवाली शर्तों को स्वेच्छा से कुबूल न करेगा।

१४८ रसा रोड } भवदीय
३१ जुलाई } मो० क० गांधी

महासभा में सविनय भंग

'नवजीवन' में हम कई बार देख गये हैं कि सविनय भंग केवल उसीके खिलाफ नहीं कर सकते जिसे हम अपना शत्रु मानते हों अथवा जो हमें अपना शत्रु मानता हो बल्कि जिन्हें हम अपना मित्र अथवा बडा समझते हों उनके खिलाफ भी हो सकता है। महासभा के संबंध में यह बताने का समय आ गया है। इस अंक में दूसरी जगह महासभा के विधान में किये जाने वाले आवश्यक सुधार दिये गये हैं। परन्तु आम तौर पर महासमिति को सुधार करने का अधिकार नहीं। ये सुधार विधान में परिवर्तन कर के ही किये जा सकते हैं। इन्हें महासभा को ही करने का अधिकार है। महासमिति को जो अधिकार दिये गये हैं उनमें इसका समावेश नहीं होता। इसके लिए महासमिति को अपनी असाधारण सत्ता का उपयोग करना पडेगा। इस असाधारण सत्ता का दूसरा नाम कानून का सविनय भंग लिया जा सकता है। ऐसे भंग करने का अधिकार सब को और सब संस्थाओं को मौका पडने पर है; यही नहीं बल्कि वह उनका धर्म हो जाता है। यदि हम मेरे सूचित सुधारों की आवश्यकता मानते हों तो वह धर्म इस समय प्राप्त हुआ है। महासभा की बैठक में तो इस बात की चर्चा होनी ही चाहिए। दूसरे का काता सूत मोल ले कर देने का नियम अवश्य बंद होना चाहिए। क्योंकि इस शर्त से कुछ भी लाभ न हुआ; बल्कि उल्टा दम्भ और असत्य की बढती हुई है। यदि महासमिति यह आवश्यक परिवर्तन न करे तो वह धर्मभ्रष्ट मानी जायगी; क्योंकि देश के दो-चार मास व्यर्थ जायंगे। यदि देशबन्धु का अवसान न हुआ होता, लार्ड बरकनहेड का भाषण न हुआ होता, तो शायद इस विषय में मत-भेद के लिए जगह रहती, पर अब जगह नहीं। सम्भव है कि महासमिति के कुछ सदस्य तात्कालिक आवश्यकता को स्वीकार न करें। तो उन्हें सविनय भंग करने का अधिकार नहीं। और इसीलिए मैंने अपनी यह राय प्रकट कर दी है कि महासमिति ऐसा परिवर्तन तभी कर सकती है जब यदि पूर्ण सर्वानुमत नहीं तो लगभग पूर्ण एकमत अवश्य हो।

ऐसा परिवर्तन करने में उसकी आवश्यकता मात्र सविनय भंग का पूरा कारण नहीं है। जिसके खिलाफ सविनय भंग किया जाता हो उसे भी इस भंग से लाभ अवश्य पहुंचना चाहिए। यहां तो इस शर्त का पूरा पूरा पालन होता है; क्योंकि महज महासभा के लाभ के ही लिए इन परिवर्तनों की आवश्यकता है। दूसरी शर्त यह है कि भंग करने वाले के मन में द्वेष-भाव न होना चाहिए। यह शर्त तो 'सविनय' शब्द के ही अन्दर है। क्योंकि 'विनय' द्वेष का विरोधी है। और जहां महासभा का भला चाहा गया है वहां द्वेष कहां से हो सकता है? यह लेख मैं इसलिए नहीं लिखता हूं कि मैं किसी से बरबस् उसकी इच्छा के खिलाफ कहलवाऊं कि महासमिति को विधान में परिवर्तन करना ही चाहिए। इसमें भी सब अपने अपने स्वतंत्र विचारों का उपयोग करें। इस प्रकार विधान में परिवर्तन करने से जो अधिक हानि देखते हैं — वे यदि परिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार करते हों तो भी — उनका फर्ज है कि महासमिति के द्वारा परिवर्तन करने का विरोध करें। सविनय भंग किसीके कहने से नहीं होता — न होना चाहिए। खुद ही किसीको जब यह बात अनुकूल मालूम हो तभी होना चाहिए। तभी वह जेबा दे सकता है, तभी वह हो सकता है। क्योंकि जो बात हमें पचती नहीं उसे करने की शक्ति भी हमारे अन्दर नहीं होती और सविनय भंग की सफलता का आधार तो केवल स्वशक्ति पर है।

इस लेख का मुख्य हेतु यह दिखाना है कि सविनय भंग किस परिस्थिति में हो सकता है। मैं अपनेको सविनय भंग का शास्त्री मानता हूं। मैं मानता हूं कि उसका आविष्कार भी मैंने स्वतंत्र-रूप से किया है और यह अपना धर्म मानता हूं कि उसकी प्रामाणिकता, उसकी मर्यादा, आदि समय समय पर दिखाता रहूं। परिवर्तन हो या न हो, इसके विषय में मैं बिलकुल तटस्थ हूं। यही नहीं बल्कि यदि सब लोग अपने अपने स्वतंत्र विचारों का उपयोग न करें तो मैं इस परिवर्तन को हानिकारक समझता हूं। जो अपनेको मेरा 'अनुयायी' मानते हैं उनपर ये विचार विशेष रूप से घटते हैं। मुझे अधभक्ति पसंद नहीं। मैं उसे सख्त नापसंद करता हूं। अन्धभक्ति से स्वराज्य नहीं मिल सकता। और मिले भी तो रह नहीं सकता। इसलिए मैं अपने 'अनुयायियों' की भी बुद्धि को अपने साथ रख कर उनसे काम लेना चाहता हूं। यदि हम बुद्धि-पूर्वक पूर्वोक्त परिवर्तन करेंगे और प्रामाणिकता-पूर्वक उनपर अमल करेंगे तो उससे बहुत अच्छे परिणाम उत्पन्न होने की मैं आशा रखता हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

दादाभाई शताब्दि

दादाभाई नौरोजी की सवीं जयन्ती आगामी ४ सितंबर को पड़ती है। श्री भरूचा ने समय पर ही उसकी याद हमें दिला दी है। हम दादाभाई को भारत का पितामह कहते थे। दादाभाई ने अपना सारा जीवन भारत के अर्पण कर दिया था। दादाभाई ने भारत की सेवा को एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्हींसे हमें मिला है। वे भारत के गरीबों के मित्र थे। भारत की दरिद्रता का दर्शन पहले पहल दादाभाई ने ही हमें कराया था। उनके तैयार किये अंकों को आजतक कोई गलत साबित न कर पाया। दादाभाई हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमें भेद-भाव न रखते थे। उनकी दृष्टि से वे सब भारत की सन्तान थे। और इसलिए सब समान-रूप से उनकी सेवा के पात्र थे। उनका यह स्वभाव उनकी दो पंक्तियों में सोलहों आना दृष्टि पड़ता है।

इस महान् भारत-सेवक की शताब्दि हम किस तरह मनावें? सभायें तो होंगी ही; वह भी अकेले शहरों में नहीं, बल्कि देहात में भी, जहां जहां तक महासभा की आवाज पहुंची है वहां सब जगह। वहां करेंगे क्या? उनकी स्तुति! यदि यही करना हो तो फिर भाट-चारणों को बुलाकर उनकी कल्पना-शक्ति का तथा उनकी वाणी के प्रवाह का उपयोग करके क्यों न बैठ रहें? पर यदि हम उनके गुणों का अनुकरण करना चाहते हों तो हमें उनकी छान-बीन करनी होगी और अपनी अनुकरण-क्षमता की नाप निकालनी होगी।

दादाभाई ने भारत की दरिद्रता देखी। उन्होंने हमें सिखाया कि 'स्वराज्य' उसकी औषधि है। परन्तु स्वराज्य प्राप्त करने की कुंजी तलाश करने का काम वह हमारे जिम्मे छोड गये। दादाभाई की पूजा का मुख्य कारण दादाभाई की देशभक्ति थी और उस भक्ति में वे बड़े लीन हो गये थे।

हम जानते हैं कि स्वराज्य प्राप्त करने का सबसे बड़ा साधन चरखा है। भारत की दरिद्रता का कारण है भारत के किसानों का साल में छः या चार मास तक बेकार रहना। और यदि यह अनिवार्य बेकारी ऐच्छिक हो जाय अर्थात् काहिली हमारा स्वभाव बन बैठे तो फिर इस देश की मुक्ति का कोई ठिकाना नहीं। यही नहीं, बल्कि सर्वनाश इसका निश्चित भविष्य है। उस काहिली को भगाने का एक ही उपाय है—चरखा। अतएव चरखा-कार्य को प्रोत्साहित करने वाला हरएक कार्य दादाभाई के गुणों का अनुकरण है।

चरखे का अर्थ है खादी; चरखे का अर्थ है विदेशी कपड़े का बहिष्कार; चरखे का अर्थ है गरीबों के झोंपड़ों में ६० करोड़ रुपयों का प्रवेश।

अखिल-भारत-देशबन्धु स्मारक के लिए भी चरखा ही तजवीज हुआ है। अतएव इस कोष के लिए उस दिन द्रव्य एकत्र करना मानों दादाभाई की जयन्ती ही मनाना है। इसलिए उस दिन एकत्र हो कर लोग विदेशी कपड़ों का सर्वथा त्याग करें, सिर्फ हाथ कते सूत की खादी पहनें निरंतर कम से कम आधा घंटा सूत कातने का निश्चय दृढ करें और खादी-प्रचार के लिए धन एकत्र करें। कपास पैदा करने वाले अपनी जरूरत का कपास घर में रख लें।

परन्तु जिसे चरखे का नाम ही पसन्द न हो वह क्या करे? उसके लिए मैं क्या उपाय बताऊं? जिसे स्वराज्य का नाम तक न सुहाता हो उसे मैं शताब्दी मनाने का क्या उपाय सुझाऊं? उसे अपने लिए खुद ही कोई उपाय खोज लेना चाहिए। मेरी सूचना सार्वजनिक है। यही हो भी सकता है। दादाभाई के अन्य गुणों की खोज करके कोई उनका अनुकरण करना चाहे तो जुदी बात है। वैसे दूसरे तरीके से जयंती मनाने का उसे हक है। अथवा फर्ज कीजिए शहरों में स्वराज्यवादी दल कोई खास बात करना चाहें तो वह अवश्य करे। मैं तो सिर्फ वही बात बता सकता हूं जिसे क्या शहराती और क्या देहाती, क्या वृद्ध और क्या बालक, क्या स्त्री और क्या पुरुष, क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सब कर सकते हों।

यदि हम लोग मेरी तजवीज के अनुसार ही दादाभाई जयन्ती मनाना चाहते हों तो हमें आज से ही तैयारी करनी चाहिए। आज से हम उसके लिए चरखा चलाने लग जायें। आज ही से हम उसके निमित्त खादी उत्पन्न करें और ऐसी सभायें स्थान स्थान पर करें जो हमें तथा देश को शोभा दें।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

पाठकों से—

'हिन्दी-नवजीवन' का यह ५२ वां अंक आपके हाथ में है। इस अंक से उसका चौथा वर्ष समाप्त होता है। अगले सप्ताह में जन्माष्टमी भी है। इसलिए 'हिन्दी नवजीवन' एक सप्ताह विश्राम लेना चाहता है। अपने चार वर्ष के जीवन में पहली बार यह इच्छा 'हिन्दी नवजीवन' को हुई है। आशा है, पाठक उसके इस विचार की कदर करेंगे।

पांचवें वर्ष का पहला अंक आगामी २० अगस्त को प्रकाशित होगा।

उप-संपादक

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, भाद्रपद बदी २, संवत् १९८२

मैं अंगरेजों से द्वेष करता हूं?

जुलाई १९२५ के यं. इं. में 'त्यागशास्त्र' नामक मेरा लेख प्रकाशित हुआ है। उसके नीचे लिखे वाक्यों के काले अक्षरों वाले वचनों पर कुछ आदरणीय अंगरेज मित्रों ने आपत्ति की है—

"मैं साहस के साथ कहता हूं कि बिना पारस्परिक त्याग के इस छिन्न-भिन्न देश के लिए कोई आशा नहीं है। हमें चाहिए कि हम हद दरजे तक अपने दिल को छुई-मुई न बना लें, कल्पना-शक्ति से हाथ न धोलें। त्याग—किसी के लिए कुछ छोड़ देने—का अर्थ अनुग्रह करना नहीं। प्रेम जिस त्याग को प्रदान करता है वह है त्याग और कानून जिस न्याय को प्रदान करता है वह है सजा। प्रेमी की दी हुई वस्तु न्याय की मर्यादा को लांघ जाती है। और फिर भी हमेशा उससे कम होती है जितना कि वह देना चाहता है। क्योंकि वह इस बात के लिए उत्सुक रहता है कि और दूं और अफसोस करता है कि अब ज्यादह नहीं है। **यह कहना कि हिन्दू लोग अंगरेजों की तरह बर्तते हैं उनकी मानहानि करना है। हिन्दू यदि चाहें भी तो ऐसा नहीं कर सकते,** और यह मैं कहता हूं खिदिरपुर के मजदूरों की पशुता के होते हुए भी। क्या हिन्दू और क्या मुसल्मान, दोनो, एक ही नाव में बैठे हुए हैं। दोनों गिरे हुए हैं। और वे प्रेमियों की हालत में हैं — उन्हें होना होगा — वे चाहें या न चाहें।"

वे मित्र समझते हैं कि इन वचनों को लिख कर मैंने अंगरेजों के साथ भारी अन्याय किया है। क्योंकि वे कहते हैं कि इसमें जो निन्दा गर्भित है वह तमाम अंगरेजों पर घटाई गई है। मुझे दुःख है यदि इन वचनों से किसी तरह ऐसा अर्थ निकल सकता हो। मेरा यह आशय हरगिज न था। मैं उन मित्रों को यकीन दिलाता हूं कि मेरा भाव यह न था। सन्दर्भ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मेरे उद्गार सारे अंगरेज समाज पर नहीं घट सकते। उदाहरण के लिए वे सी० एफ० एण्ड्रयूज पर नहीं घट सकते जिन्होंने कि भारत-वासियों के लिए अपनेको खपा दिया है।

मुसलमानों का इल्जाम यह था कि हिन्दू लोग मुसल्मानों को उसी तरह दबाते और गुलामी में रखते हैं जिस तरह कि अंगरेजों ने हिन्दू और मुसल्मान दोनों को रख छोड़ा है—इसमें जरूर उनका आशय अधिकांश हिन्दुओं और अंगरेजों से था। ऊपर उद्धृत वाक्यों में मैंने यह दिखलाने की कोशिश की थी कि हिन्दू यदि मुसल्मानों को दबाना चाहें भी तो उनके पास शक्ति नहीं है। यदि मेरी यह उक्ति सिर्फ उन अंगरेजों के लिए हो जो कि हिन्दुस्तान में रहते हैं तो उन्हें उसपर आपत्ति नहीं है, इसलिए नहीं कि वे इस दरजे तक भी मेरी राय की पुष्टि करते हैं; बल्कि इसलिए कि उससे उनको धक्का नहीं लगता; क्योंकि वे बरसों से मेरी इस राय को जानते हैं। पर उन्हें धक्का इसलिए पहुंचा कि उन्होंने समझा कि मैंने धिक्कार में तमाम अंगरेजों को और उन मित्रों को भी शामिल कर लिया है जो कि सचाई के साथ अपनी पूरी शक्ति भर भारत की सेवा करने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने समझा कि यह अंश द्वेष और क्रोध से प्रेरित होकर लिखा गया है। पर सच बात तो यह है कि उस वाक्यांश के लिखते समय न तो मेरे दिल में द्वेष-भाव था न रोष ही था। और यदि उस अंश से यह अर्थ निकलता हो, जिसे मैं अब भी मानता हूं कि नहीं निकलता है, तो मैं सिवा इसके क्या कहूं कि मैं अंगरेजी भाषा लिखना नहीं जानता, क्योंकि वह मेरी मातृभाषा नहीं और उसकी बारीकियों और उलझनों पर मेरा काबू नहीं हो पाया है। मैं मानता हूं कि मुझसे दुनिया में किसीका द्वेष नहीं हो सकता। बरसों के संयम और साधना के फल-स्वरूप मैंने कोई ४० साल से किसीसे द्वेष रखना छोड़ दिया है। मैं जानता हूं कि यह एक भारी दावा है। फिर भी मैं इसे पूरी नम्रता के साथ पेश करता हूं। पर हां, बुराई से, वह जहां कहीं हो, मैं द्वेष अवश्य करता हूं। मैं उस शासन-प्रणाली से द्वेष करता हूं जिसे अंगरेजों ने भारतवर्ष में स्थापित किया है। अंगरेज-वर्ग जो भारत में अपनेको बड़ा लगाते हैं, उनके इस ढंग से मैं द्वेष करता हूं। [illegible] की जो बेतहशा लूट हो रही है उससे मैं द्वेष करता हूं। जिस तरह कि मैं तहे दिल से हिन्दुओं की अछूतपन की घृणित प्रथा से द्वेष करता हूं। परन्तु मैं उन अंगरेजों से द्वेष नहीं करता जो यहां बड़े बने हुए हैं जिस तरह कि ऊंचे बने बैठे हिन्दुओं से द्वेष नहीं रखता। मैं हर तरह के प्रेम-पूर्ण साधनों से ही उनका सुधार करना चाहता हूं। मेरे असहयोग का मूल द्वेष नहीं, प्रेम है। मेरा व्यक्तिगत धर्म मुझे जोर के साथ मना करता है किसीसे द्वेष न करो। अपनी एक पाठ्य पुस्तक से मैंने यह सरल परन्तु भव्य सिद्धान्त सीखा था, जब कि मेरी उम्र १२ साल की थी। और वह विश्वास अबतक बना हुआ है। वह दिन दिन मुझपर अपना रंग जमाता जा रहा है। मुझ पर उसकी धुन सवार है। अतएव मैं उन हर अंगरेज भाई को यकीन दिलाता हूं जिनकी कि गलतफहमी इन मित्रों तरह हुई हो, कि मैं कभी अंगरेजों से द्वेष रखने का अपराधी न होऊंगा फिर भले ही १९२१ की तरह मुझे उनसे उग्रता के साथ क्यों न लड़ना पड़े। वह लड़ाई होगी शांतिमय, वह लड़ाई होगी स्वच्छ, वह लड़ाई होगी सत्यमय।

मेरा प्रेम परिमित नहीं है। मैं अंगरेजों से द्वेष रखते हुए हिन्दुओं और मुसल्मानों से प्रेम नहीं कर सकता क्योंकि यदि मैं सिर्फ हिन्दुओं और मुसल्मानों से प्रेम करूं — इसलिए कि उनका रंग-ढंग मुझे यों खुश करता है, तो मैं उनसे उसी क्षण द्वेष करने लगूंगा जिस क्षण उनके तौर-तरीक मुझे नाराज कर देंगे, और यह किसी भी समय हो सकता है। जो प्रेम आपके प्रेम-पात्र लोगों की भलाई पर अवलंबित रहता है वह किराये की चीज होती है। सच्चा प्रेम तो वह है जो अपने आपको खपा देता है और फिर भी नहीं चाहता कि उसका कोई खयाल करे। वह एक आदर्श हिन्दू पत्नी, जैसे सीता, के प्रेम की तरह होता है।

राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा की। फिर भी राम के साथ उसका प्रेम कम न हुआ और सीता का उससे कल्याण ही हुआ। क्योंकि सीता जानती थी कि वे क्या कर रही हैं। उसका आत्म-यज्ञ बल-मूलक था, अशक्ति-मूलक नहीं। प्रेम संसार में प्रबल से प्रबल शक्ति है। और फिर भी उसके ऐसा नम्र कोई नहीं है।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

शैतान का जाल

एक परम खादी-प्रेमी के पत्र से नीचे लिखा अंश उद्धृत करता हूं। पाठक उसे दिलचस्पी के साथ पढ़ेंगे—

"मेरा खादी पर विश्वास है। खादी का उद्दिष्ट कार्य मुझे आईने की तरह स्पष्ट दिखाई देता है। वह जीवन को सादा और इसलिए शुद्ध बनाती है। वह सेवा के सूत्र के द्वारा हमें गरीब लोगों के साथ बांधती है। दरिद्रता की, जो कि भारतवर्ष के शरीर और आत्मा का विनाश कर रही है एक-मात्र रामबाण दवा यही है। कम से कम जहां तक करोड़ों निरक्षरों से संबंध है, शरीर को छोड़ कर आत्मा का प्रश्न ही नहीं है। पहुंचे हुए पुरुष और योग के उपासक चाहे आत्मा की बातें करें; परन्तु करोड़ों लोगों के लिए तो शरीर को छोड़ कर आत्मा की बातें करना उनकी दिल्लगी उड़ाना है— और अन्त को चरखा उन तमाम सामाजिक अत्याचारों का निरोधक है जो कि आज योरप में खूब और जोश के साथ फैल रहे हैं। चरखा जनता और शिक्षित वर्ग को नजदीक लाता है और जबतक भारतवर्ष उसे अपनाता रहेगा बोल्शेविज्म तथा उसके सदृश हिंसात्मक प्रवृत्ति असंभव रहेगी। ये बातें मुझे चरखे की परम आवश्यकता का कायल करती हैं। पर इसमें सिर्फ एक ही मुश्किल है। क्या यह चल सकता है? सफल हो सकेगा? क्या हम फिर चरखे को हर घर में उसकी अपनी पुरानी पवित्र जगह पर प्रतिष्ठित कर सकेंगे? अब क्या हम बहुत पिछड़ नहीं गये हैं? आपके जेल जाने के पहले मैं इसपर कभी सवाल न उठाता। तब आशा के लिए जगह थी। पर अब वह आशा नहीं है। इसके अलावा बर्ट्रेंड रसेल (योरप के विख्यात विचारक और लेखक) कहते हैं कि उद्योग-वाद— कलकारखाने — प्राकृतिक शक्ति की तरह है और भारत भी उसमें गर्क हुए बिना न रहेगा—हम चाहें या न चाहें। ये लोग सिर्फ इतना ही कहते हैं कि हमें इस उद्योग-वाद को अपने ढंग पर हल करना होगा। उनकी बात सच है। उद्योग-वाद की बाढ़ सारी दुनिया में आ गई है और बाढ़ के बाद वे अपने अपने ढंग से उसका उपाय सोच रहे हैं। योरप को ही लीजिए। मैं नहीं मानता कि योरप विनाश को प्राप्त हो जायगा। मेरा मानव-प्रकृति में बहुत अधिक विश्वास है और वह आगे-पीछे उसका उपाय खोज निकालेगी। क्या भारतवर्ष यदि चाहे भी तो उद्योग-वाद से अपनेको अलहदा रख सकता है या उसके पंजे से अपनेको मुक्त कर सकता है?"

ये खादी-प्रेमी अनिच्छा — पूर्वक और बे-रोक जिस दलील को मानने पर मजबूर हुए हैं वह शैतान की पुरानी तरकीब है। वह हमेशा आधी दूर तक हमारे साथ चलता है और फिर एकाएक चुपके से सुझाता है कि कि अब आगे चलने में कुछ लाभ नहीं और हमें दिखाता है कि किस तरह अब आगे बढ़ना असंभव है। यह असंभावना वास्तव में ऊपर से दिखाई देती है। वह सद्गुण का जयजयकार करता है; पर तुरन्त ही कहता है, पर मनुष्य के बस की बात नहीं कि उसे प्राप्त करे।

जो कठिनाई इन मित्र के सामने पेश हुई है वह सुधारक के एक एक कदम पर आती है। क्या असत्य और दम्भ हमारे समाज में अपना घर नहीं कर बैठे हैं? फिर भी जो लोग मानते हैं 'सत्यमेव जयते नानृतम्' वे उसीका आग्रह करते हैं — इस पूर्ण आशा से कि अवश्य सफलता होगी। सुधारक कभी समय को अपने प्रतिकूल नहीं जाने देता, क्योंकि वह इस पुराने शत्रु की बात नहीं मानता। हां, अवश्य ही उद्योग-वाद एक प्राकृतिक बल की तरह है। पर यह मनुष्य का काम है कि वह प्रकृति पर अपनी प्रभुता जमावे और उसकी शक्तियों पर विजय प्राप्त करे। उसका गौरव चाहता है कि वह पर्वतप्राय विघ्नों के मुकाबले में दृढ़ संकल्प से काम ले। हमारा दैनिक जीवन ऐसी ही विजयों का दृश्य है। कृषिकार तो इससे भलीभांति परिचित होता है।

एक छोटी अल्प संख्या के द्वारा बहु-संख्या के नियन्त्रण के अतिरिक्त उद्योगवाद और क्या है? उसमें कोई बात आकर्षक नहीं है और न उसमें कोई बात अनिवार्य ही है। यदि बहु-संख्या सिर्फ अल्प-संख्या की लल्लो-चप्पो पर 'नाहीं' कह दे तो अल्प-संख्या कुछ बिगाड़ नहीं सकती।

मानव-प्रकृति में विश्वास रखना अच्छी बात है। मैं इसी विश्वास पर जीवित हूं। पर यह विश्वास इतिहास की हकीकत की ओर से मेरी आंखें नहीं मूंद सकता। वह यह कि जहां कि अन्त में सब तरह मंगल ही होता है वहां व्यक्ति और व्यक्ति-समाज जिन्हें कि राष्ट्र कहते हैं, इससे पहले नष्ट हो चुके हैं; रोम, यूनान, बेबिलान, मिसर तथा अन्य राष्ट्र इस बात का सजीव प्रमाण हैं कि इससे पहले राष्ट्र अपने कुकृत्यों के बदौलत नष्ट हो चुके हैं। हां, यह आशा की जा सकती है कि योरप के पास उम्दा और वैज्ञानिक बुद्धि है, इसलिए वह इस स्पष्ट बात को समझ लेगा और अपने कदम पीछे हटा लेगा तथा इस सत्यनाश-कारी उद्योगवाद के चंगुल से अपना रास्ता खोज लेगा। यह कोई आवश्यक बात नहीं कि वह पुरानी पूरी सादगी को ही पुनः ग्रहण करे। पर ऐसी कोई व्यवस्था अवश्य कभी होगी जिसमें ग्राम्य जीवन की प्रधानता रहेगी और जिनमें पाशविक तथा भौतिक बल आध्यात्मिक बल के अधीन रहेगा।

अन्त को, हमें मिथ्या तुलनाओं के जाल में न फंस जाना चाहिए। योरपियन लेखकों के पास अनुभव और ठीक ठीक वाकफियत का अभाव होता है। इससे उनका मार्ग तंग होता है। जब वे योरप के उदाहरणों से, जो कि भारतवर्ष की अवस्था पर पूरी तरह नहीं घटते, किसी सामान्य सिद्धान्त की स्थापना करते हैं, वे एक हद से आगे हमें मार्ग नहीं दिखला सकते। क्योंकि योरप में भारत की दशा की सूचक कोई बात नहीं है — रूस की दशा— द्योतक भी नहीं है। ऐसी अवस्था में जो बात योरप के विषय में सच हो सकती है वह सब तरह भारत के विषय में सच नहीं हो सकती। हम यह भी जानते हैं कि हर राष्ट्र अपनी अपनी विशेषतायें, अपना अपना व्यक्तित्व रखता है। भारतवर्ष भी अपनी विशेषता रखता है; और यदि हमें उसके अनेक रोगों की दवा खोजनी हो तो हमें उसकी प्रकृति की तमाम विलक्षणताओं को ध्यान में रखकर दवा तजवीज करनी होगी। मेरा दावा है कि भारतवर्ष को उद्योग-मय—कल कारखाने — मय बनाना, उसी अर्थ में जिस अर्थ में कि आज योरप उद्योग-मय है, असम्भव बात के लिए प्रयत्न करना है। भारतवर्ष अबतक कितने ही तूफानों की झपट को देख चुका है। हां, यह सच है कि हर चपेट ने अपना अमिट चिन्ह उसपर छोड़ दिया है। फिरभी वह अबतक अपने व्यक्तित्व को बिना डगमगाये कायम

रख रहा है। भारतवर्ष दुनिया के उन थोडे राष्ट्रों में है जिन्होंने कि दुनिया की कितनी ही सभ्यताओं के पतन को देखा है पर खुद ज्यों के त्यों बने हुए है। भारत-भूमि पृथिवी के उन थोडे राष्ट्रों में है जिन्होंने कि अपनी कुछ पुरातन संस्थायें कायम रख छोडी हैं— हालां कि ईश्वर अन्धविश्वास और प्रमाद की गर्द चढ गई है। पर उसने अब तक अपने प्रमाद और अन्धविश्वास को निकाल डालने के अपने स्वभावगत सामर्थ्य का परिचय दिया है। उसके करोडों सन्तान के सामने जो आर्थिक समस्या उपस्थित है उसे हल करने के उसके सामर्थ्य पर मेरी श्रद्धा कभी उतनी उज्वल न थी जितनी कि आज है, खास कर बंगाल की स्थिति का निरीक्षण करने के बाद।

(यं. इ.) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

साम्राज्य के अछूत

कहीं हम साम्राज्य-व्यवस्था में अपने दरजे को और अपने लायक स्थान को भूल न जायं, इसलिए हमें लगातार कभी इंग्लैंड से, कभी दक्षिण आफ्रिका से या ऐसे ही किसी दूसरे मुकाम से इस बात की यादद्दिहानी होती रहती है कि हम क्या है। भारत मन्त्री हमें 'ब्रिटिशों की तीखी तलवार' की याद दिलाते हैं। श्रीमान् सम्राट के सेनापति अपनी निश्चित राय देते है कि हम जिस बात को अपना लक्ष्य बना रहे है वह 'अप्राप्य' है। इधर दक्षिण आफ्रिका के यूनियन मिनिस्टर श्री मैलन हमे कहते है कि योरपियनों और हिन्दुस्तानियों में समानता हो ही नहीं सकती। और वे वहां के भारतीय निवासियों को जड-मूल से न उखाड फेंकेंगे तो ऐसा पीस डालेंगे कि वे दक्षिण आफ्रिका से भाग जायेंगे और उनकी हालत ऐसी कर छोडेंगे कि वे फिर समानता का नाम न लेंगे। शहर का कोना उनके रहने की जगह है और मिहनत-मजदूरी उनका उचित कार्य-क्षेत्र। अर्थात् हम दुनिया की दलित जाति बन कर रहें। परन्तु हम बुराई का सामाजिक करना मानों हमसे न छूट पाता है। 'अछूत दरख्वास्त न भेजे' यह स्थायी पट्टी लगी हुई है साम्राज्य के हरएक सेक्रटरियेट में। सवाल यह है कि अब करें क्या? सर फीरोजशाह मेहता ने तो मेरा दक्षिण आफ्रिका जाना भी पसन्द नहीं किया था। उन्होंने कहा था कि जबतक कि भारत मे हमारी सुस्थिति नहीं हो जाती तबतक दक्षिण आफ्रिका में कुछ नहीं हो सकता। लोकमान्य ने भी इसीसे मिलती-जुलती बात कही थी—'पहले स्वराज्य प्राप्त कर लो—फिर और बातें अपने आप आ जायंगी।' यह उनका ध्रु—पद था। परन्तु स्वराज्य है भारत-वर्ष की शक्ति के योग का फल। पर आजकल भीतरी और बाहरी दोनों कोशिशों की धूम है। यह एक दीर्घकालिक वेदना है; परन्तु बिना श्रम-रूपी आवश्यक कष्ट के सहन किये पुनर्जन्म नहीं हो सकता। इस अनिवार्य आनन्ददायी, जीवन-पोषक संयम-साधना के बिना, यद्यपि वह अग्नि-परीक्षा है, हमारा काम नहीं चल सकता। दक्षिण आफ्रिकावासी हमारे देशबन्धुओं को बिना एक कदम पीछे हटे सर्वश्रेष्ठ उपाय करना चाहिए। यदि उनके अन्दर वह पुरानी युद्ध-शक्ति है, वह एकदिली है और यदि वे समझते हों कि समय आ पहुंचा है तो वे अवश्य कष्ट-सहन का भार अंगीकार करें। खुद उन्हींको अपनी योग्यता का तथा युद्ध पढने के योग्य प्रसंग का निर्णय करना चाहिए। वे यह तो जान ही रक्खें कि भारत का लोकमत उनके साथ है। पर वे इस बात को भी समझ लेंगे कि यह लोकमत ऐसा है जो उन्हें सहायता देने की शक्ति नहीं रखता है। इसलिए उन्हें खुद अपनी ही शक्ति पर, बरदाश्त करने की अपनी क्षमता पर तथा अपने पक्ष की न्याय्यता पर आधार रखना चाहिए।

देश सेवकों के भरण-पोषण का प्रश्न

देश-सेवा में दुख उठाने वाले एक सेवक का हाल सुनिए—

"क्या आप एक देश के लिए दुख भोगने वाले के निर्धन और क्षुधा-प्रपीडित परिवार की कुछ सहायता करेंगे? आप हमारे पूज्य नेता स्व० देशबन्धु दास के स्मारक के लिए लाखों रुपये आसानी से एकत्र कर सकते हैं पर आप मेरे कुटुम्ब वालों के भरण-पोषण तथा देहात मे चरखा-प्रचार के लिए कमसे कम ५०००) देकर मेरे दरिद्र परिवार की सहायता नहीं कर सकते। यदि आप पूज्य .... (यहां कुछ नाम दिये हुए हैं) को दो शब्द मेरे लिए कह देंगे तो मुझे निश्चय है कि ५०००) नहीं तो २०००) अवश्य मिल जायंगे। आपने मुझे लिखा है कि कपडा बुनना सीख लो। उसमें १५) महीना मिलेगा। मैं बुनना नहीं जानता। आपका सूत्र है 'काम नहीं तो खाना नहीं।' क्या आप मुझे ऐसा काम देंगे जिससे मुझे कमसे कम १००) मासिक मिले? क्या आप मुझे डेप्युटी मेयर या चीफ एक्जेक्युटिव आफिसर से कह कर कारपोरेशन में कोई अच्छी जगह नहीं दिला सकते?"

इसमें हमारे नवयुवकों की मनोवृत्ति पूरी पूरी प्रदर्शित होती है। हजारों नवयुवकों को ३०) मासिक पर गुजर करना है। पर ये दुखी देश-सेवक १००) मासिक या २०००) एक मुश्त चाहते हैं। दोनों प्रस्तावों में कोई संबंध नहीं है। परन्तु वे बडे विश्वास के साथ और इस आशा से कि मंजूर हो जायंगे पेश किये गये हैं। ऐसी आकांक्षा को पूर्ण करना असंभव है। कलकत्ता कारपोरेशन बेकारों के लिए नौकरी खोजने का साधन नहीं बनाया जा सकता। वास्तव में देखा जाय तो सरकारी महकमों में और खानगी दफ्तरों में जरूरत से ज्यादह नौकर भरती हैं। इसलिए इसका उपाय यह है कि एक तो हम देश की दरिद्रता के अनुसार अपनी आकांक्षाओं को कम करें और दूसरे नौकरी के लिए नये क्षेत्र खोजें। कृत्रिम जरूरतें कम कर दें, कुप्रथाओं को नमस्कार कर लें। यह रवाज कि घर का एक ही आदमी कमावे, हालां कि दूसरे लोग कुछ न कुछ काम करने लायक हों, मिटा देना चाहिए। तब ३०) महीने पर काम चलाना संभवनीय हो जायगा। बंगाल के कितने ही नवयुवकों ने अपने विचारों को नये रूप में ढाल लिया है और वे ३०) में गुजर कर रहे हैं जहां कि पहले ४००-५००) मासिक तक कमाते थे। ऐसा नया साधन जो कि सैकडों युवकों और युवतियों को काम दे सकता है एक सुसंगठित-खादी-सेवा-संघ ही हो सकता है। मैं आशा करता हूं कि मेरा नियोजित अ० भा० सूतकार-मण्डल शीघ्र ही स्थापित हो जायगा। मैं यह भी आशा कर रहा हूं कि अ० भा० देशबन्धु स्मारक में भी लोगों की ओर से यथेष्ट द्रव्य मिलेगा। अतएव ये तमाम प्रामाणिक स्त्री-पुरुष जो नौकरी की तलाश में हों धुनकाई, कताई और हो सके तो बुनाई भी सीखकर उस्ताद हो जायं। उनसे यह नहीं कहा जायगा कि चरखा कात कर और कपडा बुन कर पेट भर लो, बल्कि उन्हें खादी की उत्पत्ति और बिक्री के काम में लगाया जायगा। परन्तु इस संगठन को इस बात की जरूरत होगी कि उसके कार्यकर्ता कताई और बुनाई में प्रवीण हों और उन्हें कपास के अच्छे बुनने लायक सूत के रूप में परिणत होने तक की तमाम विधियों का यथावत् ज्ञान हो। (यं. इं.) मो० क० गांधी

अखिल भारत देशबन्धु-स्मारक

इस स्मारक के चन्दे की अपील पर अभी दस्तखत आ ही रहे हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ के दस्तखत मिलने से मुझे स्वभावतः आनन्द हुआ है। पाठकों को भी हो। मैंने उन्हें खास तौर पर कहलवाया था कि अपील में निदर्शित मर्यादित श्रद्धा यदि चरखे पर आपकी हो तो ही दस्तखत कीजिएगा। जब मेरे मन में यह बात स्पष्ट रूप से जमी कि अखिल भारत स्मारक चरखा और खादी-संबंधी ही होना चाहिए तब यह विचार मैंने पहले पहल कविवर पर ही प्रकट किया था। इस अपील में उन लोगों की सही लेने का इरादा किया ही नहीं गया है जिन्हें चरखा और खादी पर श्रद्धा न हो या जो स्मारक के संबंध में उसकी योग्यता के कायल न हों। अपील पर केवल खादी और चरखे पर श्रद्धा रखनेवालों की सही लेने का निश्चय किया गया था— केवल यही नहीं, बल्कि यह भी निश्चय था कि यदि देशबन्धु के खास अनुयायी इस तरह के स्मारक को नापसंद करें तो इस स्मारक को चरखा-खादी का रूप न दिया जाय। जिन जिन लोगों के इस अपील पर सही करने की संभावना थी वे यदि बिना संकोच के सही न करें तो भी इस प्रकार का स्मारक बनाने का आग्रह न रक्खा गया था। मैं जानता हूं कि चरखे और खादी की उपयोगिता के संबंध में मत-भेद है। और बहुतेरे लोग इस बात को भी एकाएक स्वीकार न करेंगे कि देशबन्धु जैसे महान् नेता के स्मारक को ऐकान्तिक स्थान दिया जाय। परन्तु मुझे तो देशबन्धु के प्रति उनके मित्र और साथी की हैसियत से अपने धर्म का पालन करना था और यदि अखिल-बंगाल-स्मारक के संबंध में मैं स्वतंत्र-रूप से विचार कर सकता होता तो मैं अवश्य अस्पताल को पसन्द न करता। मैंने कभी बहुतेरे अस्पतालों की आवश्यकता को स्वीकार नहीं किया है। पर मैंने इस बात का खयाल तक अपने दिमाग में न आने दिया कि यदि मैं स्वतन्त्र होऊं तो क्या करूं। देशबन्धु का बनाया ट्रस्ट मेरे सामने था-वह मेरे लिए सब तरह मार्गदर्शक था और मुझे यह अपना धर्म दिखाई दिया कि यदि उनके अनुयायी पसंद करें तो वही उनके स्मारक का हेतु बनाया जाय, और उसीके लिए दस लाख रुपये एकत्र करने को अब मैं बंगाल में ठहरा हुआ हूं। ट्रस्ट तो एक साल पहले हो गया था, हालां कि मैं यह जानता हूं कि उसमें प्रदर्शित विचार देशबन्धु के मरण तक कायम थे। क्योंकि मकान पर जो कर्ज था उसके लिए रुपया एकत्र करने में उन्होंने मेरी सहायता चाही थी। चरखे और खादी संबंधी उनके अन्तकाल के विचारों को जितना मैं जानता हूं उतना उनकी धर्मपत्नी के सिवा शायद और कोई न जानता होगा, यह कह सकते हैं। अपील प्रकाशित करने के पहले मैंने श्रीमती वासन्ती देवी के विचारों को जान लिया था। उसी प्रकार देशबन्धु के परम सखा और उनके साथी पंडित मोतीलालजी के भी विचार मैंने जान लिये थे। और फिर देशबन्धु के बंगाल के अनुयायियों के भी जान लिये थे। इतनों के विचार जान लेने के बाद ही अपील तैयार करने का निश्चय किया। हां, मैं यह अवश्य कुबूल करता हूं कि इस स्मारक का कार्य मुझे खास तौर पर अनुकूल है। परन्तु पाठक कदाचित् मुश्किल से मानेंगे कि यद्यपि यह स्मारक-कार्य मुझे विशेष रूप से अनुकूल है तथापि इसकी सफलता के संबंध में मैं तटस्थ हो रहा हूं। हां, अखिल बंगाल-स्मारक के विषय में यह नहीं कह सकते। उसे सफल बनाने के लिए मैं अथाह परिश्रम कर रहा हूं। यह भेद-भाव सकारण है। चरखे की शक्ति के संबंध में मत-भेद है। पर उसके प्रति मेरी श्रद्धा अनन्त है। ऐसा स्मारक खींचातानी से नहीं हो सकता। यदि चरखे में शक्ति हो और सचमुच चरखे पर भारतवर्ष की श्रद्धा हो तभी मैं देशबन्धु के नाम पर अक्षय्य द्रव्य की इच्छा करता हूं। इस कारण जितना संतोष मुझे कविवर की सही से हुआ है उतना ही भारत-भूषण पंडित मालवीयाजी की सही से हुआ है। मैंने श्री जवाहरलाल नेहरू को सूचित किया है कि वे और सहियां मंगवावें।

आशा है कि 'हिन्दीनवजीवन' के पाठक और खादी-प्रेमी किसीके वसूल करने की राह देखे बिना अपना हिस्सा भेज देंगे।

जात-पांत की स्थिति

कलकत्ते में मारवाड़ी भाइयों का सम्मेलन था। वहां मुझे लिवा ले गये थे। वहां विषय था जाति-सुधार और उससे संबंध रखने वाले प्रश्नों की चर्चा ही वहां हो रही थी। ऐसी जगह मैं कैसा भाषण करता? जाति-सुधार के संबंध में कुछ कहने की जगह मैंने बहिष्कार के ही सिद्धांत पर मुख्यतः कहा। मैं जानता था कि बहिष्कार ने उनके अन्दर भयंकर रूप धारण कर लिया था और आपस में जहर फैल गया था। वह भाषण हिंदू-मात्र पर चरितार्थ होता है। इसलिए उसका सार यहां देता हूं।

बहिष्कार का शस्त्र जब शुद्ध मनुष्यों के द्वारा प्रयुक्त होता है तब उसका सदुपयोग होता है। नहीं तो वह निरी हिंसा का रूप धारण करके प्रयोगकर्ता का तथा शायद उसका भी जिसपर प्रयोग किया गया हो, नाश कर बैठता है।

आज-कल हम बहिष्कार करने के लायक नहीं रहे हैं। क्या यदि कोई पिता अपनी दस साल की विधवा लड़की का पुनर्विवाह करे तो इस कारण उस लड़की को, उससे विवाह करने वाले को, जाति-बाहर करना पुण्य है? क्या जो लोग दुराचार करते हैं, खुल्लमखुल्ला व्यभिचार करते हैं, मांस-मिट्टी खाते और शराब पीते हैं, उनका कोई बहिष्कार करता है? जो लोग विचार के द्वारा व्यभिचार करते हैं उनकी कुछ पूछ-तांछ होती है? मतलब यह कि जब तक खुद हमारी शुद्धि नहीं हुई है तब तक कौन किसका बहिष्कार करने लायक है? कोई नहीं।

बहिष्कार का परिणाम यह होता है कि नई नई जातियां पैदा होती हैं। आज जिन्हें हम 'तड़' कहते हैं कल वही जातियां हो जायगी। इस लिए इस युग में जहां जातियां संकर हो रही हैं वहां बहिष्कार सर्वथा अनिष्ट है।

वर्णाश्रम धर्म है; अनेक जातियां धर्म नहीं। वर्णाश्रम की रक्षा इष्ट है। इसलिए सुधारकों को प्रोत्साहन देना चाहिए। किसी तरह भी इस तरह के सुधार रोके नहीं रुक सकते। क्यों कि हिन्दू-धर्म में बहुत-कुछ मैल घुस गया है और अब चारों ओर जागृति हो गई है।

समझदारी तो इस बात में है कि सुधारों को धर्म का रूप दिया जाय। परन्तु जहां सुधार अप्रिय मालूम हो वहां भी बहिष्कार तो अनिष्ट ही है।

मारवाड़ी जाति में बुद्धि है, साहस है। उसने भारतवर्ष का उपकार किया है और अपकार भी किया है। मित्र के नाते मेरा धर्म है कि अपकार की बात भी कह सुनाऊं। ईश्वर उसमें से उसे बचावे और उसका कल्याण करे।

जिनका बहिष्कार किया जाय उनको चाहिए कि मर्यादा में रह कर विवेक के द्वारा बढ़े हुए जहर को कम करें और अपनी नीति पर अटल रहें। यह कह कर बहिष्कार का प्रकरण पूरा किया।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

मेरे प्रस्ताव का अर्थ

बेलगाव [illegible] को [illegible] करते हुए [illegible] पत्र गांधीजी ने पं० मोतीलालजी को लिखा है उसका अर्थ उन्होंने 'नवजीवन' के एक लेख में इस प्रकार बताया है—

"मेरी सलाह को मानने का अर्थ इतना ही हुआ कि जिन जिन प्रान्तो में स्वराजियों की संख्या अधिक होगी उन उन प्रान्तों में वे प्रान्तिक समिति के द्वारा राजनैतिक विषयों से संबंध रखने वाले इच्छित प्रस्ताव उपस्थित कर सकेंगे और उनकी चर्चा कर सकेंगे। जहां समिति में गुजरात की तरह बहुतेरे अपरिवर्तनवादी होंगे वहां इस परिवर्तन का बहुत असर न होगा। पर ऐसी जगह भी मैं स्वराज्य-दल को जितना हो सके बलवान् बनाना पसन्द करूंगा। जिस दल का असर अंग्रेज अधिकारी पर पड़ता है, ऐसा हम जानते हैं उसका सदुपयोग करना हमारा धर्म है। इस दल में बहुतेरे स्वार्थ-त्यागी स्त्री-पुरुष हैं। उनके मन में पूरी पूरी देश की कसक है। ऐसे स्त्री-पुरुष चाहे किसी दल में हों, वन्दनीय हैं। सबको अपने स्वतन्त्र विचार रखने का अधिकार है। यह स्वतन्त्रता संग्रह करने योग्य है।

महासभा का द्वार जबरन् किसीके लिए बन्द नहीं किये जा सकते। जबतक हम शिक्षितवर्ग में खादी और चरखे के सामर्थ्य पर विश्वास न उत्पन्न कर सकेंगे तबतक चरखे को प्रधान-पद नहीं मिल सकता। मेरे शर्माशर्मी या मुझे महासभा में रखने के लिए चरखे को स्थान मिलना मैं निरर्थक मानता हूं। चरखे को वहां स्थान मिलना तभी शोभा दे सकता है जब शिक्षित दल उसका कायल हो अथवा चरखावादी को स्थान देना चाहता हो। स्वराज्य-दल के सभ्यों की सभा में तो किसीने चरखे को हटाने का विचार नहीं किया। वे यदि हटाना चाहते तो भी मैं 'हां' करने के लिए तैयार हो गया था; पर वे लोग इस बात को सुनने तक के लिए तैयार न थे। उन्हें इसी बात पर पूरा सन्तोष था कि जो लोग न कातें वे रुपया दें। खादी लिबास की आवश्यकता को निकाल डालने के लिए भी वे तैयार न थे। यदि इस हद तक भी स्वराजियों का यह स्वतन्त्र विचार हो तो मैं इसे खादी की बहुत उन्नति मानता हूं।

स्वराजी और अपरिवर्तनवादी नाम ही मिट जाना चाहिए। धारासभा में जानेवालों की संख्या हमेशा बहुत छोटी रहेगी। उसमें सब लोग नहीं जा सकते। मैं उनके विरोध करने का इस समय कोई कारण नहीं देखता। यदि धारासभा में न जाने वाले सविनय भंग का वायुमण्डल उपस्थित कर सकें तो जानेवाले अपने आप वहां से निकल आवेंगे अथवा धारासभा में रहकर यथाशक्ति मदद करेंगे। या यदि सविनय भंग छिड़ने का वे मुखालिफत करेंगे तो उसका विरोध करना पड़ेगा। पर यह बात मेरे खयाल के बाहर है कि स्वराजी सविनय भंग का विरोध करेंगे।

जो लोग सविनय भंग का रहस्य समझ गये हैं वे तो चरखे का ही स्तवन चौबीसों घण्टे करेंगे। इस कारण मैंने यह सूचना दी है कि जो स्थान आज स्वराज्य-दल को है वह अब चरखे को मिले अर्थात् महासभा की छत्रछाया में एक चरखा संघ स्थापित हो कि जिसका कार्य हो केवल चरखा और खादी का प्रचार करना। मताधिकार का सूत भी वह संघ एकत्र करे और अपने पास रक्खे। यह संघ अपने विधि-विधान की रचना स्वतन्त्र रूप से करे। इस तरह यदि कार्य हो तो दोनों दल-बल एक दूसरे के साथ टक्कर खाये बिना चलेंगे और एक दूसरे के सहायक होंगे।"

भोजन या उपहास?

पिछले सप्ताह मैं पुरी गया था। मैं गरीबों का दास माना जाता हूं, इसलिए पुरी के महाजनों ने मेरे निमित्त कंगालों को खाना खिलाया था। उनके भोजन का समय वही रक्खा गया था जो मेरी गाड़ी पहुंचने का समय था। रास्ते के दोनों ओर कंगाल भोजन कर रहे थे। उनके बीच से मुझे मोटर में बिठा कर ले गये। मैं शर्मिन्दा हुआ। अविनय का भय यदि न होता तो मैं वहीं उतर पड़ता और भाग खड़ा होता। भोजन करने वाले कंगालों के मध्य मोटर में विराजमान् उनका यह उद्धत दास खूब रहा! इस संबंध में पुरी की सभा में मैंने अपने हृदय का दुख प्रदर्शित किया। यही दृश्य मैंने कलकत्ते के एक पुराने धनिक कुटुम्ब के यहां देखा। मुझे वहां देशबन्धु-स्मारक के लिए चन्दा लेने लिवा ले गये थे। इस कुटुम्ब का महल 'मारबल पैलेस' के नाम से विख्यात है। वह है भी केवल संगमर्मर का बना हुआ। हवेली भव्य और देखने लायक है। इस महल के आंगन में हमेशा गरीबों के लिए सदावर्त रहता है। वहां गरीबों को खाना खिलाया जाता है। यह दानशीलता मुझे दिखाने के निर्दोष भाव से तथा मुझे आनन्दित करने के शुभ हेतु से उनके भोजन के समय ही मालिकों ने मुझे बुलाया था। मैंने बिना विचारे 'हां' कह दिया था। पर वहां का दृश्य देख कर पुरी से भी अधिक दुखी हुआ। भोजन करने वालों के बीच से मुझे मोटर में तो न लिवा ले गये, पर मेरे पीछे जहां जाता हूं एक भारी भीड़ रहती है। सारी भीड़ उन भोजन करते हुए कंगालों के बीच से घुसी। बेचारे भोजन करने वालों को उनके पांव का स्पर्श तो होता ही था। जरा देर तो बेचारों का खाना भी बन्द रहा। उनकी आत्मा ने यदि मुझे आशीष दी हो तो धन्य है उनकी ममता और उदारता को! कहां गंदवाला आंगन और कहां बरफ की तरह उजला ऊंचा महल! मुझे तो ऐसा मालूम हुआ मानों यह महल उन गरीबों का उपहास कर रहा है और उनके बीच में ऐसी लापरवाही के साथ जाने वाले से धनिकों के सिवाय मेरे हृदय को उस उपहास में हाथ बटाने वाले दिखाई दिये।

इस तरह लोगों को भोजन कराना कोई पुण्य है? मुझे तो यह शुद्ध से शुद्ध भाव रहते हुए भी अविचार और अज्ञान के कारण होने वाला पाप ही दिखाई दिया। ऐसे सदावर्त देश में जगह जगह हैं। इससे कंगाली, काहिली, पाखण्ड, चोरी इत्यादि बढ़ते हैं। क्योंकि बिना मिहनत खाना मिलने से मिहनत न करने की टेव वाले आदमी काहिल बन जाते हैं और फिर कंगाल बनते हैं। 'बेकार क्या न करता?' इस न्याय के अनुसार ऐसे कंगाल चोरी इत्यादि सीखते हैं। दूसरे खुद अपने साथ अत्याचार करते हैं सो तो जुदे ही। इन सदावर्तों का अन्त मैं तो बुरा ही देखता हूं। धनवान् लोगों को अपने दान के भाजनों का विचार करना उचित है। यह दिखाने की आवश्यकता नहीं कि हर तरह के दान से पुण्य नहीं होता है। हां, लंगड़े लूले और रोगी आदमियों के लिए अवश्य सदावर्त उचित है। उन्हें भोजन कराने में विवेक से काम लेना चाहिए। हजारों के देखते हुए अपाहज को भी भोजन न कराना चाहिए। उन्हें जिमाने की जगह एकान्त, शांत और अच्छी होनी चाहिए। वास्तव में तो ऐसों के लिए खास आश्रम होने चाहिए। हिन्दुस्तान में ऐसे इके-दुके आश्रम हैं। अपाहज लोगों को जिमाने की इच्छा रखने वाले उदार-चरित लोगों को या तो अच्छे आश्रमों को अपना दान देना चाहिए अथवा जहां न हों वहां आवश्यकतानुसार ऐसे आश्रम स्थापित करना चाहिए।

अपाहज गरीबों के लिए कोई न कोई धन्धा खोजना चाहिए। लाखों का उपकार जिससे हो सकता हो ऐसा साधन तो एक मात्र चरखा ही है।

(नवजीवन)

सत्याग्रह की विजय

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, [illegible]

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ५२

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, श्रावण सुदि ४, संवत् १९८ गुरुवार, १२ अगस्त, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा

भाग २

अध्याय १३

कुलीपने का अनुभव

ट्रान्सवाल और ऑरेन्ज फ्रीस्टेट के हिन्दुस्तानियों की स्थिति का पूरा वर्णन देने का यह स्थान नहीं है। उनकी पूरी हालत जानने की जिन्हें इच्छा हो उन्हें मेरा "दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास" पढ़ना चाहिए। परन्तु उनकी स्थिति की मोटी २ बातें दे देना यहां आवश्यक है।

ऑरेन्ज फ्री स्टेट में तो सन् १८८८ में—या उससे भी पहले—एक कानून पास कर के हिन्दुस्तानियों का सारा हक छीन लिया गया था। केवल होटल के वेटर या मजदूर बन कर रहने वाले हिन्दुस्तानियों को ही छोड़ दिया गया था। वहां जो हिन्दुस्तानी व्यापारी थे उनको नाम मात्र का हरजाना दे कर वहां से निकाल बाहर किया गया था। इन व्यापारियों ने इसके विरुद्ध अर्जियां भी दी थीं, परन्तु नक्कारखाने में तूती की कौन सुनता है?

ट्रान्सवाल में १८८५ में एक सख्त कायदा बना। १८८६ में कुछ सुधार भी हुए। उनके अनुसार निश्चय हुआ कि उस देश में प्रवेश करने के साथ ही हर एक हिन्दुस्तानी को ३ पाउन्ड का कर देना पड़ेगा। वे अगर जमीन भी खरीदना चाहें तो अपने लिए खास नियत स्थान में से ही उसे खरीद सकते थे, हर जगह से नहीं। इस जमीन के ऊपर भी उनको पूरा २ स्वत्व न मिलता था। उनको मताधिकार भी नहीं प्राप्त था। यह कानून खास एशियावासियों के लिए था। इसके अनुसार सड़क के किनारे की पगडन्डी तक पर चलने का हिन्दुस्तानियों को हक न था। रात को नौ बजे के बाद बिना परवाना लिये कोई बाहर नहीं निकल सकता था। इस अन्तिम कानून का प्रयोग हिन्दुस्तानियों पर थोड़ा बहुत ही होता था। जो अरब कहला पाते थे वे बतौर मेहरबानी, इस कानून के बाहर गिने जाते थे। इतनी मेहरबानी करना पुलिस के हाथ में था!

मुझे देखना पड़ा कि मुझ पर कहां तक ये दोनों नियम लागू हो सकेंगे। मिस्टर कोट्स के साथ में रात को घूमने निकलता था। घर जाते २ दस बज जाते थे। इस बीच में यदि पुलिस पकड़े तो? इसका भय जितना मुझे नहीं था उससे कहीं अधिक स्वयं कोट्स को था। क्योंकि अपने हबशियों को तो वही परवाना दे सकते थे। लेकिन मुझे वे परवाना क्योंकर दे सकते थे? सेठ को सिर्फ अपने नौकर ही को परवाना देने का अधिकार था। यदि मैं मांगता और कोट्स उसे देने को तैयार भी हो जाते तौभी वे दे नहीं सकते थे, क्योंकि वह तो दगाबाजी होता।

कोट्स के एक मित्र (उनका नाम मैं भूल गया हूं) मुझे वहां के सरकारी वकील डाक्टर क्राउजे के पास ले गये। हम दोनों एक ही 'इन' (पाठशाला) के बैरिस्टर निकले। रात को नौ बजे के बाद बाहर निकलने के लिए मुझे परवाना लेना पड़ता है, उन्हें यह बात असह्य मालूम हुई। उन्होंने मुझे एक उपाय बताया। परवाना देने के बदले उन्होंने मुझे अपनी तरफ से एक पत्र दिया। उसमें लिखा था कि 'यह आदमी जहां और जिस समय जाना चाहे वहां और उस समय बिना पुलिस की छेड़ छाड़ के जा सकते हैं।' इस कागज को मैं हमेशा अपने साथ ही ले कर बाहर निकला करता था। उसका उपयोग मुझे कभी नहीं करना पड़ा था। उसका काम नहीं पड़ा — यह एक संयोग ही था।

डा० क्राउजे ने मुझे अपने घर पर आने का निमन्त्रण दिया। बल्कि अब यों भी कहा जा सकता है कि हमारे उनके बीच में मित्रता हो गयी। कभी २ मैं उनके यहां जाता भी था। उनकी मारफत उनसे भी अधिक प्रसिद्ध उनके भाई से मेरा परिचय हो गया। वे पहले जोहान्सबर्ग में 'पब्लिक प्रोसेक्युटर' रह चुके थे। बोअर लड़ाई के समय, जोहान्सबर्ग के एक अंग्रेज अफसर को मरवा डालने का षड्यन्त्र रचने का अभियोग उन पर चल चुका था और तदुपरान्त उन्हें उसमें सात वर्ष के जेल की सजा भी हुई थी। उनकी वकालत की सनद भी छीन ली गयी थी। जेल से छूटने के बाद यह महाशय क्राउजे, ट्रान्सवाल की कचहरी में सम्मान के साथ भर्ती हुए। वहीं उन्होंने अपना धन्धा फिर शुरू किया। इस सम्बन्ध का उपयोग मैं आगे चल कर अपने सार्वजनिक जीवन में कर सका था। और उससे मेरे कितने वैसे ही कामों में मुझे सुविधा भी हो सकी थी।

पगडंडी पर चलने के नियम का नतीजा मेरे लिए कुछ खतरनाक हुआ। मैं हमेशा ही प्रेसिडेन्ट स्ट्रीट से हो कर एक मैदान में घूमने जाया करता था। इस मुहल्ले में प्रेसिडेन्ट क्रूगर का घर था। इस घर में कुछ भी आडम्बर का नामोनिशान न था। इसके इर्द गिर्द चहारदीवारी तक न थी। उसके पास के और मकानों में तथा इसमें कुछ भी फर्क नहीं मालूम होता था। प्रिटोरिया में और सब लखपतियों के घर, इस घर की बनिस्बत अधिक सुन्दर और बागों से घिरे हुए थे। प्रेसिडेन्ट की सादगी मशहूर थी। यह घर किसी अफसर का है—इसका पता केवल एक सिपाही को सामने घूमते देख कर ही लग सकता था। इस सिपाही के पास से हो कर मैं बराबर ही जाता था, परन्तु मुझसे वह कुछ नहीं बोलता था। समय समय पर सिपाही पहरा बदलते थे। एक दिन एक सिपाही ने मुझे चिताये बिना,— यह भी कहे बिना कि *पगडंडी पर से नीचे उतर जाओ,* मुझे धक्का दिया और लात मार कर उतार दिया। मैं अचम्भे में आ गया और सोच में पड़ गया। सिपाही से मेरे लात मारने का कारण पूछने के पहले ही मि० कोट्स ने, जो उस रास्ते से घोड़े पर जा रहे थे, मुझे पुकार कर कहा:

"*गांधी, मैंने सब देखा है। यदि तुम मुकदमा चलाओगे तो* मैं गवाही दूंगा। मुझे इसका बहुत अफसोस है कि तुम्हारे ऊपर इस प्रकार की चोट की गयी।"

मैंने कहा—"इसमें अफसोस करने की कोई बात नहीं है। वह सिपाही बेचारा क्या जाने? उसके लिए तो सभी काले आदमी काले ही हैं। वह हबशियों को पगडंडी से इसी प्रकार उतारता होगा, इसलिए उसने मुझे भी धक्के लगा दिये। मैंने यह नियम कर लिया है कि जो अन्याय मुझे खुद ही भुगतना पड़े उसके लिए मैं अदालत में न जाऊंगा। इसके लिए मुझे मुकदमा नहीं लड़ना है।"

"*यह तो तुमने अपने स्वभाव के ही माफिक बात कही* है परन्तु फिर भी विचार कर देखो। इस आदमी को कुछ न कुछ शिक्षा तो देनी ही चाहिए।" इतना कह कर उन्होंने उस *सिपाही से बातें की और उसे डांटा। मैं सब बातें नहीं समझ* सका। सिपाही डच था और उसके साथ डच में ही बातें हुईं। सिपाही ने मुझसे माफी मांगी। माफी तो मैं दे ही चुका था।

उसके बाद से मैंने वह रास्ता ही छोड़ दिया। दूसरे सिपाही को इस घटना की खबर क्योंकर होगी? मैं क्यों नाहक लात खाने के लिए फिर वहां जाता? इसलिए मैंने घूमने जाने के लिए दूसरा ही कूचा पसन्द किया।

इस घटना से हिन्दुस्तानियों की मेरे प्रति सहानुभूति और भी बढ़ गयी। उनके साथ मैंने बातें की कि ब्रिटिश एजन्ट से इस कानून के विषय में बातें कर के, बतौर नमूने के ऐसा मुकदमा क्यों न चलाया जाय।

इस प्रकार पढ़, सुन और स्वयं अनुभव कर के हिन्दुस्तानियों के ऊपर होने वाले अत्याचारों की मैंने काफी जानकारी हासिल की। मैंने देखा कि अपने स्वाभिमान का ख्याल रखने वाले हिन्दुस्तानियों का दक्षिण आफ्रिका जैसे देश में रहना उचित नहीं है। यह हालत क्योंकर बदल सकती है, इस बात की चिंता में ज्यादह मन लगाने लगा। परन्तु अब तक तो मेरा मुख्य कर्तव्य था दादा अब्दुल्ला के मुकदमे की ही फिकर रखना।

(नवजीवन)　　　　मोहनदास करमचंद गांधी

पुराना रोग

अस्पृश्यता के समर्थक, यह दलील पेश कर के कि यह प्रथा बहुत दिनों से चली आती है इसका समर्थन करते हैं। सचमुच में तो इसे दलील ही कैसे कह सकते हैं, यही कहना कठिन है। यह ठीक है कि अपने पूर्वजों से हमें जो प्रथा विरासत में मिली है उसकी रक्षा करना हमारा धर्म है। परन्तु इस रक्षण में, उस उत्तराधिकार को बढ़ाना, उस में सुधार करना, इत्यादि कितनी और बातें भी आ जाती हैं। पुराने घर का अच्छा मालूम होना स्वाभाविक है। परन्तु पुराना घर भला भी मालूम होवे तो इससे क्या? क्या उस घर के चूहे के बिलों को भी सुन्दर मानना पड़ेगा। पेट का लड़का प्यारा होता है इसलिए क्या किसी को पेट का रोग भी प्यारा होता है? और यह रोग पुराना है इसलिए *क्या इसका इलाज भी नहीं करना होगा? जीर्णोद्धार को रोकने* वाली इस जीर्ण भक्ति को क्या कहा जायगा? स्वयं उपनिषदों के लेखक ऋषियों ने भी कहा है—"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।" हमारे जो सुचरित होवें उन्हीं का तुम अनुकरण करो, दूसरों का नहीं। उनकी तो ऐसी ही आज्ञा है। उनकी इस आज्ञा का नितान्त भंग कर विवेक बुद्धि को एक किनारे कर, और ऐसा करना ही शास्त्राज्ञा का पालन करना है, ऐसा मानना आत्मवंचना नहीं है तो और क्या है?

इसके अलावा भी जब शैतान शास्त्र के प्रमाण पेश करता है तो आत्मवंचना की पराकाष्ठा हो जाती है। कहते हैं कि अस्पृश्यता का आदि शंकराचार्य ने समर्थन किया था। अद्वैत के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना ही जिनके जीवन का एक मात्र कार्य था उन्होंने इस अमगल भेदाभेद करी भ्रम को सहारा दिया! यदि सन्तों का प्रमाण देना है तो उनके जीवन के उत्तर भाग में से देना चाहिए, पूर्वचरित में से नहीं। शंकराचार्य के चरित में चाण्डाल की जो बात है, वह उनके उनके जीवन के पूर्व भाग में ही है। यदि इसी आधार पर अस्पृश्यता को मान्य मानना है तो वाल्मीकि के पूर्वचरित के आधार पर ब्रह्महत्या को भी उचित मानना होगा तथा और भी बहुत सी बातें उचित ठहरेंगी। इसका कारण यह है कि जो सन्त है, साधु हैं, वे साधुत्व के पद पर पहुंचने के पहले तो साधु नहीं थे। उस समय के उनके जीवन-चरित में बहुत बुरी बातें भी मिलेंगी। यह कहावत भी है कि ऋषियों का कुल नहीं पूछना चाहिए। यदि देखना ही है तो उनका उत्तरचरित देखिये और वह भी विवेक दृष्टि से। केवल पूर्वचरित देखने से क्या लाभ होगा?

शंकराचार्य के चरित में चाण्डाल की जो बात आती है, वह यह है—आचार्य एक समय काशी जा रहे थे। रास्ते में एक चाण्डाल मिला। उसे उन्होंने दूर ही रहने को कहा। इस पर चाण्डाल ने उन्हें कहा "महाराज, अपने अन्नमय शरीर से मेरे अन्नमय शरीर को आप दूर करना चाहते हैं या अपने चैतन्य से मेरे चैतन्य को दूर करना चाहते हैं?" देह की बात हो तो वह तो पंचभूतों में से ही उत्पन्न हुई है न? आत्मा तो सब की एक ही है और अत्यन्त शुद्ध है। इस दशा में यह परस्पर का भेद क्यों? यह प्रश्न उस चाण्डाल ने किया था। केवल इतना कह कर ही वह चाण्डाल चुप नहीं रह गया। उसने शंकराचार्य को और भी बहुत कुछ सुनाया। "गंगाजल में चंद्रमा की जो छाया पड़ती है, उसमें और मेरे तालाब के पानी में जो पड़ती है, उसमें क्या कोई अन्तर है? सोने के कलश में जो आकाश है

और मिट्टी के घड़े में जो आकाश है, इन में कुछ फर्क है क्या? सब में आत्मा तो एक ही है न? तब, यह ब्राह्मण है और यह अंत्यज है यह भेद आपने कहां से निकाला?"

—विप्रोऽयं श्वपचोऽयमित्यपि महान् कोऽयं विभेदभ्रमः'

इतना सुनना था कि आचार्य के कान ही नहीं परन्तु आंखें भी खुल गयीं और नम्रभाव से चाण्डाल को नमस्कार कर के आचार्य बोले :—

चांडालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरु रित्येषा मनीषा मम

"आप जो कोई मनुष्य हों, चाण्डाल हों या ब्राह्मण होवें, मेरे गुरु के समान हैं।"

अब इस बात से पाठकों को जो नतीजा निकालना हो वे निकाल लेवें।

मनु ने भी कहा है कि जिस मार्ग से बाप गये, दादा गये, उस मार्ग से आप भी जाना चाहिए—परन्तु यदि वह सन्मार्ग हो तब। यही उनकी आज्ञा है। यह उनका श्लोक है:—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् 'सतां मार्गं' तेन गच्छन् नरिष्यति॥

('महाराष्ट्र धर्म'से) "विनोबा"

सात समुद्र पार का न्याय

यदि विजित जाति के मन पर अधिकार नहीं कर लिया, यदि विजित लोग अपनी दासता की शृंखला को प्यार न करने लगें और विजेताओं को अपना उपकारी न समझने लगें तो केवल शस्त्रों के बल पर पायी हुई विजय का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। भारतवर्ष के भिन्न २ स्थानों के किले, अंग्रेजी ताकत की हमें बराबर याद दिलाते रहते हैं। सर हरिसिंह गौड़ के इस बहुत ही नम्र प्रस्ताव—कि सब से बड़ा न्यायालय दिल्ली में ही ला कर रखा जाय—के सम्बन्ध में हमारे प्रमुख वकीलों की जो सम्मति इण्डियन डेली मेल में छपी है, अगर उसी को हम अपने शिक्षितों के दिमाग का नमूना मान लें तो कहना पड़ेगा कि इन किलों के आधार पर अंग्रेजी राज्य नहीं बना है बल्कि हमारे शिक्षित पुरुषों के दिमागों पर उसने जो यह चुपचाप विजय पायी है उस पर बना है! इन मशहूर वकीलों का खयाल है कि यहां से छ हजार मील दूर की प्रिवीकाउन्सिल के फैसलों पर लोगों की अधिक श्रद्धा होगी और वहां अधिक निष्पक्षता से न्याय हो सकता है। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि इस आश्चर्यजनक सम्मति का आधार सत्य पर नहीं है। परन्तु दूर का बाजा सुहावना होता है। प्रिवीकाउन्सिल वाले भी आखिर मनुष्य ही हैं। राजनीतिक पक्षपात की गन्ध उनमें भी पायी गयी है। हमारी रीति रस्मों के मुकद्दमों के सम्बन्ध में उनके फैसले प्रायः सत्य की तोड़ मरोड़ ही होते हैं। इसका कारण उनकी विपरीतता नहीं है परन्तु नश्वर मनुष्य सब कुछ तो नहीं जान सकता है। कानून का बहुत अधिक ज्ञान क्यों न होवे परन्तु मुकामी रस्मोरिवाज से जिन्हें वाकफियत न हो; उनकी बनिस्बत कम पढ़ा लिखा वकील भी जिसे मुकामी रीतिरस्मों से पूरी वाकफियत हो, रीतिरस्म के सवाल वाले मुकद्दमों पर की गवाहियों की ज्यादे अच्छी तरह से जांच कर सकेगा। ये प्रमुख वकील यह भी कहते हैं कि दिल्ली में अन्तिम न्यायालय ला कर रख देने से ही खर्च में कुछ कमी न हो जायगी। यदि उनका यह मतलब है कि धनी इंग्लैंड में जो फीस ली जाती है, वही गरीब हिंदुस्तान में भी ली जाय तो उनकी देश-भक्ति के लिए यह कुछ शोभा की बात नहीं है। एक स्काटलैण्डवासी मित्र ने मुझसे कहा था कि सम्भवतः अंग्रेज लोग ही अपने शौक और जरूरियात में दुनिया भर में सब से अधिक खर्चीले होंगे। उन्होंने कहा था कि स्कौटलैंड के अस्पताल, इंग्लैंड के अस्पतालों से किसी बात में कम न होते हुए भी उनकी अपेक्षा बहुत ही कम खर्च में चलाये जाते हैं। या फीस बढ़ जाने के साथ २ कानूनी बहस की कीमत भी बढ़ जाती है क्या?

इस प्रस्ताव के विरोध में जो तीसरी दलील पेश की गयी है वह यह है कि हिंदुस्तानी जजों की व्हाइट हॉल में बैठने वाले जजों के बराबर इज्जत नहीं होगी। यदि प्रसिद्ध वकील लोग इस दलील को पेश न करते तो, यह हँसी में उड़ जाती। फैसलों की इज्जत क्या जजों की निष्पक्षता पर निर्भर है या कचहरी के मुकाम या जजों की जाति या चमड़े के रंग पर? यदि सचमुच में मुकाम या जजों के जन्म या वर्ण पर ही उनके फैसले की प्रामाणिकता निर्भर हो, तो क्या अब तक भी वह समय नहीं आ गया है कि इस भ्रम को मिटाने के लिए ही दिल्ली में अन्तिम न्यायालय लाया जाय और हिंदुस्तानी जजों को ही नियुक्त किया जाय? या इस दलील में, ऐसा पहले से ही मान लिया गया है कि हिन्दुस्तानी जजों में पक्षपात होता है। कभी २ बेचारे गरीबों की बात हम सुनते हैं कि अज्ञान के वश हो कर वे यूरोपियन कलक्टर को ही चाहते हैं। परन्तु अनुभवी वकीलोंसे तो कुछ अधिक बुद्धिमानी और निर्भयता की आशा जरूर ही की जा सकती है।

मेरी नम्र सम्मति में यद्यपि इन तीन दलीलों में से एक में भी कुछ सार नहीं है, तथापि हमें केवल इसलिए अपना आखिरी न्यायालय दिल्ली में ही रखना चाहिए कि हमारा स्वाभिमान इसी में है। दूसरों के फेफड़े चाहे लाख अच्छे होवें परन्तु हम जिस प्रकार उनसे सांस नहीं ले सकते उसी प्रकार इंग्लैंड से मँगनी या मोल ले कर न्याय नहीं ले सकते हैं। हमें तो जो कुछ हमारे अपने ही जज कर दिखावें, उसी पर अभिमान करना होगा। सारे संसार में यह देखा जाता है कि जूरियों का किया हुआ न्याय कभी २ गलत ही होता है। परन्तु इसलिए सभी जगह सब कोई इस कठिनाई को खुशी से स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार प्रजा में स्वतन्त्रता के भाव का प्रसार होता है और अपनी बराबरी वालों के ही द्वारा न्याय पाने की स्वाभाविक अभिलाषा की पूर्ति होती है। वकीलों के मण्डल में भावना की इज्जत कुछ कम होती है परन्तु भावना ही संसार पर शासन करती है। जब भावना सर्वप्रधान होती है तो अर्थशास्त्र तथा और बातों को कौन पूछता है? भावना का नियमन सम्भव है और होना चाहिए। न तो इसका नाश सम्भव ही है और न करना ही चाहिए। यदि देश की भक्ति करना कोई पाप नहीं है तो अन्तिम न्यायालय को दिल्ली में ही ला रखना कुछ पाप नहीं है। जैसे स्वराज के स्थान पर सुराज से नहीं चल सकता है वैसे ही विदेशी सुन्याय हमारे अपने घर के न्याय का काम नहीं दे सकता।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण सुदि ४, संवत् १९८३

सत्याग्रह की विजय

पं० मालवीय जी की विजय, राष्ट्रीय जीत है। आज हम में अनेकता और अनीति भले ही घुस गयी हों परन्तु पण्डितजी ने दिखला दिया है कि अभी भी हम में मजबूत से मजबूत साम्राज्य की ताकत की अवज्ञा करने का साहस बाकी है। हिन्दुस्तान के एक सब से पुराने, सब से अधिक सम्मानित, और सुप्रसिद्ध नेता के विरुद्ध हलके मन से ऐसी नोटिस निकालना, मगरूरी के साथ अपनी ताकत को दिखलाना है। अभी थोडी देर के लिए यदि हम मान भी लेवें कि मालवीय जी के कलकत्ते जाने में सरकार का डरना उचित ही था, जब कि वह शान्ति स्थापन के लिए प्रयत्नवान् हो तौभी यही कहना पडेगा कि हिन्दुस्तानी लोगों में, मालवीयजी के ऐसे प्रतिष्ठित पुरुष के साथ ऐसा वर्ताव करना अनुचित ही है। यदि वहां के स्थानापन्न गवर्नर मालवीय जी को एक खास पत्र लिख देते या उन्हें बुलाते और सब बातें बतला कर उन्हें समझा देते कि इस समय आपको कलकत्ते से दूर ही रहना चाहिए क्योंकि इसी से शान्ति हो सकेगी और शान्ति के लिए जितनी मुझे चिंता है, उतनी ही आपको भी है तो, गवर्नर साहब के लिए यह कोई तनज्जुली की बात नहीं होती। अपने सभी भाषणों मे पण्डित जी ने शान्ति की आवश्यकता पर जोर दिया है। परन्तु सरकार तो जनता की इच्छा को इस उपेक्षा से देखती है कि इस शिष्ट व्यवहार का वह विचार भी नहीं कर सकती। उसे उमीद थी कि मालवीय जी और डाक्टर मुंजे इस हुक्म को बड़ी ही आजिजी से मान लेंगे। सरकार को स्पष्ट विश्वास था कि असहयोग मर गया, सविनय अवज्ञा इससे भी पहले मर गयी और बारडोली में उसे ठिक ठिकाने से गाड भी दिया गया, और सविनय अवज्ञा के सम्बन्ध में कांग्रेस के प्रस्ताव केवल कोरी धमकियां भर ही हैं। बेशक सरकार को अब अपनी भूल मालूम हो गयी है।

पण्डित जी का पत्र आत्मसंयम के साथ दृढता का नमूना है। पत्र लिखने के बाद वही काम करना, मैजिस्ट्रेट के साथ मुलाकात करने से इनकार करना, कलकत्ते में उनका विजय प्रवेश, अपने पहले के कार्यक्रम के अनुसार शान्त भाव से सब काम करते जाना मानों कुछ हुआ ही नहीं है, लोगों को यह सलाह देना कि दिमाग ठंडा रखो, कोई दिखावा मत करो, इत्यादि बातें, सही सत्याग्रह का नमूना हैं। यह उमेद की जा सकती है कि सरकार अब यह बात समझ जायगी कि सत्याग्रह के सिद्धान्त का इस देश में नाश नहीं होगा और जब कभी जरूरत पडेगी, उसे करने को अनेक आदमी तैयार हो जावेंगे।

हिन्दू और मुसलमान, दोनों की ही यह भूल होगी, यदि वे समझें कि मालवीयजी और डाक्टर मुंजे पर नोटिस दे कर सरकार ने हिन्दुओं के विपक्ष में या मुसलमानों के पक्ष में कोई काम किया है। सरकार की चक्की में, जो कुछ आता है सभी पीसने का सामान समझा जाता है। सरकार को यदि अपनी जरूरत [illegible] जिस प्रकार एक प्रमुख हिन्दू पर उसने नोटिस दी है उसी प्रकार कल्ह एक वैसे ही प्रमुख मुसलमान पर भी उसकी वही नजरे इनायत पडेगी। सरकार के इस कथन से कि सचमुच में वह शान्ति चाहती है, कोई धोखा नहीं खायगा। मैं तो यह कहने का भी साहस करूंगा कि तलवार के बल पर हिन्दुस्तान को ब्रिटिश राज में रखने की इच्छा के साथ २ हिन्दू मुसलमानों में मेल की सच्ची कामना रह नहीं सकती। जब अंगरेज अफसर इन दो दलों में मेल के लिए कोशिश करने लगेंगे तब वे हमारी रजामन्दी से ही यहां रह सकेंगे। हिन्दुस्तान का शासन भेद-नीति से ही होता है, आखिर इस बात का तो पता, यदि मैं भूलता नहीं हूं तो, किसी हिन्दुस्तानी ने नहीं बल्कि एक अंगरेज ने ही पहले पहल लगाया था। या तो ऐलन ओकटेवियन ह्यूम ने या जौर्ज यूल ने ही हमें सिखाया था कि साम्राज्य का आधार भेद-नीति पर ही है। हमें इस पर न तो आश्चर्य करना चाहिए और न इसे कुछ बुरा ही मानना चाहिए। रोम की बादशाही ने भी और कुछ दूसरा नहीं किया था। बोअरों के साथ इन अंग्रेजों ने ही कुछ दूसरा व्यवहार नहीं किया। कुछ लोगों पर विशेष दयादृष्टि रख कर बोअरों में भेद उत्पन्न करने की कोशिश की गयी। भारत सरकार का आधार ही अविश्वास पर है। अविश्वास करने से कुछ लोगों की तरफदारी करनी ही पडेगी और तरफदारी करने से भिन्नता उत्पन्न होगी ही। ऐसे स्पष्ट वक्ता अंगरेज भी कितने हैं जिन्होंने यह बात स्वीकार कर ली है। भारतीय इतिहास का कोई भी गम्भीर पाठक, वायसराय या गवर्नरों के शान्ति के सम्बन्ध के हाल के कथनों को मान नहीं सकता। मैं यह मानने को तैयार हूं कि वायसराय महोदय ने जो कुछ कहा है सच्चे दिल से कहा है। सरकार की नीति को भेद नीति कहने के लिए यह कुछ जरूरी नहीं है कि बड़े २ सरकारी अफसरों को भी बेईमान कहना ही पडे। सम्भवतः यह भेद नीति हमेशः जानबूझ कर ही काम में नहीं लायी जाती है। हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों, अब्राह्मणों के विरुद्ध ब्राह्मणों, दोनों के ही विरुद्ध सिक्खों, तीनों के विरुद्ध गुर्खों को रखने का खेल जब से अंग्रेजी राज्य शुरू हुआ है, हो रहा है और तबतक होता ही रहेगा जब तक सरकार को यह विश्वास रहेगा कि उसका हित प्रजा के हित के विरुद्ध है या उसकी स्थिति प्रजा की इच्छा के विरुद्ध है। इस लिए राष्ट्रीय उन्नति के लिए स्वराज का होना परमावश्यक है। इसी लिए श्रीमती बिसेन्ट ने भी बहुत जोर दे कर कहा है कि स्वराज के बिना हिन्दु-मुसलिम ऐक्य भी असंभव ही है। दुर्भाग्यवशात: इसका तो हम लोगों को रोज ही प्रमाण मिलता जाता है कि हिन्दु-मुसलिम ऐक्य के बिना स्वराज भी वैसाही असंभव है। खैर, मैं तो यह सब होने पर भी इतना आशावादी हूं कि विश्वास करता हूं कि हमारे उलटे प्रयत्नों के होते हुए भी एकता होगी ही क्योंकि मैं लोकमान्य के इस आदर्श वाक्य में पूरा और पक्का विश्वास करता हूं कि — "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लूंगा ही"। जहां मनुष्य की कोशिश बेकार हो जाती है, वहां ईश्वर की कृपा फलीभूत होती है क्योंकि उसके दरबार में "भेद-नीति" का प्रचार नहीं है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खतम हो गयी है। अब जितने आर्डर मिलते हैं, दर्ज कर लिए जाते हैं। आर्डर भेजनेवालों को, जब तक छठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तब तक, धैर्य रखना होगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

अनीति की राह पर

(६)

विवाह के पहले और बाद भी ब्रह्मचर्य के लाभ, और सफलता को लिख कर, आजीवन ब्रह्मचर्य कहां तक संभव है और उसका क्या महत्त्व है, अब इस विषय पर लेखक लिखते हैं:

"कामवासना की गुलामी से मुक्ति पाने वाले वीरों में सबसे पहले उन युवक युवतियों का नाम लिया जायगा जिन्होंने किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए आजीवन अविवाहित रह कर ब्रह्मचर्य पालन का निश्चय कर लिया है। उनके इस दृढ निश्चय के अलग २ कारण होते हैं। कोई असहाय माता-पिता की सेवा को अपना कर्तव्य मानता है, तो कोई अपने मातृ-पितृ-हीन छोटे भाई-बहनों के लिए स्वयं माता-पिता का स्थान ग्रहण करता है तो कोई ज्ञानार्जन में ही जीवन बिताना चाहता है, तो कोई रोगियों या गरीबों की सेवा तो कोई धर्म या जाति या शिक्षा की सेवा में ही जीवन लगा देना चाहता है। इस निश्चय के पालने में किसी को तो अपने मनोविकारों से भयानक युद्ध करना पड़ता है तो किसी के लिए कभी २ भाग्यवशतः पहले से ही रास्ता बहुत साफ हुआ रहता है। वे अपने मन में अपने सम्मुख या परमात्मा के सम्मुख प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि जो ध्येय उन्होंने चुन लिया वह चुन लिया और अब फिर विवाह की बात करना व्यभिचार होगा। प्रसिद्ध चित्रकार माइकेल एंजेलो से किसी ने कहा कि तुम विवाह कर लो तो उसने जवाब दिया कि 'चित्रकारी ही मेरी ऐसी पत्नी है जो सौत का रहना बरदाश्त नहीं करेगी।'"

अपने यूरोपीय मित्रों के अनुभव से मैं, महाशय ब्यूरो के बतलाये हुए प्रायः सभी प्रकार के मनुष्यों का उदाहरण दे कर उनकी इस बात का समर्थन कर सकता हू कि बहुत मित्रों ने आजीवन-ब्रह्मचर्य का पालन किया है। हिन्दुस्तान को छोड़ कर और किसी भी देश में बचपन से ही विवाह की बातें बालकों नहीं सुनायी जाती हैं। यहां तो माता-पिता की एक ही अभिलाषा रहती है, लड़के का विवाह कर देना और उसकी आजीविका का उचित प्रबन्ध कर देना। पहली बात से तो असमय में ही बुद्धि और शरीर का ह्रास हो जाता है और दूसरी बात से आलस्य आ घेरता और कभी २ दूसरे की कमाई पर जीने की आदत लग जाती है। ब्रह्मचर्य और स्वेच्छा से लिये हुए दारिद्र्य व्रत की हम अत्यधिक प्रशंसा करते हैं। बस, ये काम तो केवल योगियों और महात्माओं से ही सम्भव है और यह भी कहते हैं कि योगी और महात्मा असाधारण पुरुष होते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि जिस समाज की ऐसी गिरी हालत होवे उसमें सच्चे योगी और महात्मा का होना असम्भव है। इस सिद्धान्त के अनुसार कि सदाचार की चाल यदि कछुवे की चाल के समान धीमी और अबाध है तो दुराचार खरहे की तरह दौड़ता है, हमारे पास पश्चिम के देशों से व्यभिचार का सौदा बिजली की चाल से दौड़ा आता है और अपनी मनोमोहिनी चमकदमक में हमारी आंखों को चकमका देता है और हम सत्य को भूल जाते हैं। क्षण क्षण में पश्चिम से तार के द्वारा जो वस्तु पहुंचती है और प्रतिदिन परदेशी माल से लदे हुए जो जहाज पहुंचते हैं, उनमें हो कर जो जगमगाहट आती है उसे देख कर हमें ब्रह्मचर्य व्रत लेने में शर्म तक आने लगती है और निर्धनता के व्रत को हम पाप कहने को तैयार हो जाते हैं। परन्तु आज हिन्दुस्तान में हमें जो पश्चिम का दर्शन हो रहा है, पश्चिम ठीक वैसा ही नहीं है। जिस प्रकार दक्षिण आफ्रिका के गोरे वहां के रहने वाले थोड़े से हिन्दुस्तानियों के आधार पर ही सभी हिन्दुस्तानियों के चरित्र का अनुमान करने में भूल करते हैं उसी प्रकार हम भी इन थोड़े से नमूनों पर सारे पश्चिम का अन्दाजा लगाने में अन्याय करते हैं। जो लोग इस भ्रम का परदा हटा कर भीतर देख सकते हैं, वे देखेंगे कि पश्चिम में भी वीर्य और पवित्रता का एक छोटा सा परन्तु अटूट झरना है। यूरोप की इस महा मरुभूमि में भी ऐसे झरने हैं जहां जो कोई चाहे जीवन का पवित्र से पवित्र जल पी कर सन्तुष्ट हो सकता है। ब्रह्मचर्य और स्वेच्छापूर्वक निर्धनता के व्रत, - वहां - कितने लोग लेते हैं और फिर कभी भूल कर भी इसके लिए गर्व नहीं करते, कुछ शोर नहीं करते। वे यह सब कुछ नम्रता के साथ किसी स्वजन की या स्वदेश की सेवा के लिए करते हैं। हम लोग धर्म की बातें इस प्रकार करते हैं मानों धर्म में और व्यवहार में कोई सम्पर्क नहीं हो और यह धर्म केवल हिमालय के एकान्तवासी योगियों के लिए ही हो। जिस धर्म का हमारे दैनिक आचार-व्यवहार पर कुछ असर न पड़े वह धर्म एक हवाई खयाल के सिवाय और कुछ नहीं है। वे नवजवान पुरुष और स्त्रियां, जिनके लिए यह पत्र प्रति सप्ताह लिखा जाता है, समझ लेवें कि अपने पास के वातावरण को शुद्ध बनाना और अपनी कमजोरी को दूर करना तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना उनका कर्तव्य है और यह भी जान लेना चाहिए कि यह काम उतना कठिन नहीं है जितना कि वे सुनते आये हैं।

देखना चाहिए कि लेखक अब और क्या कहते हैं। उनका कहना है कि हम यह मान भी लें कि विवाह करना आवश्यक ही है तौभी न तो सब कोई विवाह कर ही सकते हैं और न सब के लिए इसे आवश्यक और उचित ही कहा जायगा। इसके अलावा कुछ लोग ऐसे भी तो होते हैं कि जिन्हें ब्रह्मचर्य पालन के सिवा दूसरा रास्ता ही नहीं रह जाता है:—(१) अपने रोजगार या गरीबी के कारण लाचार जिन्हें विवाह करने से रुकना पड़ता है (२) जिन्हें अपने योग्य वर या कन्या मिलती ही नहीं है (३) अन्त में वे लोग जिन्हें कोई ऐसा रोग हो जिसके सन्तान में भी हो जाने का भय हो या वे जिन्हें किसी और कारण से विवाह का विचार ही बिलकुल छोड़ देना पड़ता हो। किसी उत्तम कार्य या उद्देश्य के लिए, सशक्त और सम्पन्न स्त्री पुरुषों के ब्रह्मचर्य-व्रत से उन लोगों को भी जो लाचार ब्रह्मचारी बने रहते हैं, अपने व्रत के पालन में सहारा मिलता है। स्वेच्छा-पूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत को जिसने धारण किया है उसे तो उसका यह ब्रह्मचारी का जीवन अपूर्ण नहीं मालूम होता बल्कि इसे ही वह ऊंचा और परमानन्द से भरा हुआ जीवन मानता है। अविवाहित और विवाहित दोनों प्रकार के ब्रह्मचारियों को उनके व्रत पालन में उससे उत्साह मिलता है। उनका वह पथप्रदर्शक बनता है।

महाशय फोर्स्टर का मत ग्रन्थकर्ता देते हैं:—"ब्रह्मचर्य व्रत विवाह संस्था का बड़ा भारी सहायक है क्योंकि यह तो विषयेच्छा और विकारों से मनुष्य की मुक्ति का सिद्ध स्वरूप है। विवाहित स्त्री पुरुष इसे देख कर यह समझते हैं कि वे परस्पर एक दूसरे की विषयेच्छा की पूर्ति के केवल साधन ही नहीं हैं। बल्कि विषयवासना के रहते हुए भी वे स्वतंत्र और मुक्त आत्मा हैं। ब्रह्मचर्य का मजाक उड़ानेवाले लोग यह नहीं जानते कि उसका मजाक उड़ा कर के वे व्यभिचार और बहु विवाह का समर्थन करते हैं। यदि विषयेच्छा की तृप्ति करना परमावश्यक है, यह मान लिया

जाय तो फिर विवाहित स्त्री पुरुषों से किस प्रकार पवित्र जीवन की आशा की जा सकती है! वे भूल जाते हैं कि रोगवश या किसी और कारण से कभी २ दम्पति में से एक की अशक्तता से दूसरे के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य हो जाता है। केवल एक इसी कारण से ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा हम स्वीकार करते हैं, उतने ही ऊंचे पर एक पत्नीव्रत के आदर्श को चढ़ाते हैं।"

(नं० इ०) मोहनदास करमचंद गांधी

'ऋद्धिसिद्धि की जननी' गायमाता

(३)

अनादेयं तृणं जग्ध्वा स्रवन्त्यनुदिनं पयः ।
तुष्टिदं देवतादीनां धेनु पूज्या कथं नहि ॥

अर्थात् मनुष्य के काम न आने वाली घास को खा कर देवताओं तक के लिए नित्य तुष्टिदायक दूध देनेवाली गौ पूज्य क्यों न समझी जावे?

[मि. हेन अब बछड़ों को पालने पोसने की पद्धति का जिक्र करते हैं। सा० दे०]

यदि उत्तम गाय चाहिए तो अच्छा तरीका यही है कि उसे बचपन से ही खुद पाले।

अच्छी गायों में से अच्छी से अच्छी छांट ले। अच्छी गाय की पहिचान उसके दूध तोलने तथा मक्खन की मिकदार मालूम करने से हो सकती है। अच्छी नस्ल के सांड से उसे गाभिन कराना चाहिए। यदि हम इतना करें तो अच्छे गोपाल कहे जा सकते हैं और हमारी गायें इतनी अच्छी बन सकती हैं कि जिन पर हमको अभिमान हो सकता है। साथ ही साथ हमारा उनके साथ कुटुम्बियों के मानिंद परिचय हो जाता है।

बछड़े के जन्म से कुछ काल पूर्व से ही प्रारम्भ कीजिये

बछड़े के जन्म के लिए स्वच्छ घास का मैदान उत्तम है। और गोशाला के एक भाग में जहां घास बिछी हो और जो बिल्कुल रोगाणुरहित कर दिया गया हो, बछड़े का जन्म होना चाहिए।

बछड़े के जन्म के बाद शुरू के कुछ दिन बहुत महत्त्व के होते हैं।

अगर जन्म के बाद शुरू के कुछ दिनों तक बछड़े की पूरी सँभाल न की जावे तो बछड़ा पेट की व्याधि से पीड़ित होता है, वह पनपता नहीं है और उसके हाथ पैर ऐंठ जाते हैं तथा पेट फूल जाता है। नाभि के द्वारा बीमारी को प्रवेश होने से रोकने के लिए यह आवश्यक है कि बछड़े के पैदा होते ही उसकी 'नार' के उपर या तो आयोडीन या कोई दूसरी रोगाणुनाशक दवा लगा दी जाय। कुछ घंटे बाद नार के ऊपर आयोडीन लगाना और उसको सुखाने के लिए फिटकरी का सफूफ या बोरिक पाउडर बुरकना ही उचित है।

अगर बछिया पैदा हो तो उसका थन देखना चाहिए। एक दिन की बछिया को देख कर यह बतला देवें कि आगे चल कर यह कैसी गाय निकलेगी — यह काम तो परीक्षक लोग ही कर सकते हैं। अगर बछिया के स्तन बड़े २ तथा अलग अलग हों और होशियारी के साथ उसकी सेवा की जाय तो सम्भव है कि वह अच्छी गाय निकले। और फिर, यदि चार के अलावा और कोई थन हो जिससे आगे चल कर दुहने में अड़चन पड़ने का भय हो तो जब तक बछिया एकाध दिन की ही हो तभी उस विशेष थन को काट कर उसकी जगह पर कोई रोगनाशक दवा लगा देनी चाहिए।

यदि गाय तन्दुरुस्त हो तो जन्म के चार दिन बाद तक बछड़े को उसकी मां के पास ही रहने देना ठीक होगा क्योंकि इन दिनों में उसके लिए बार २ दूध पीना जरूरी है। ऐसा करने में गाय को भी लाभ है और बछड़े को भी — क्योंकि व्यायी हुई गाय का पहले पांच दिनों का दूध पीने के लायक नहीं होता है। व्याने के दो तीन दिन बाद तक गाय को यदि पूरे तौर पर न दुहा जाय तो उसे बुखार नहीं आता है। इतना ही काफी है कि बच्चा चारों थनों से दूध पीता रहे।

बछड़े का दूध पीना सीखना

बछड़े को उसकी मां के पास से हटा कर एक स्वच्छ सूखे और उजेले स्थान पर रखना चाहिए। सुबह के वक्त उसे घुमा फिरा कर शाम को सब से पहले बाल्टी में से दूध पिलाना चाहिए। उसे भूख लगी ही होगी—बस, तुरन्त पीना सीख जायगा। पहले एक दो दिन यदि साधारण तौर पर भूखा होगा तो दूध पीना ठीक तरह सीखेगा। और अगर एक वक्त भी ज्यादा पी जायगा तो उसे दस्त आने लगेंगे। उसके लिए ताजा और धार ही का गरम दूध (करीब २० तोले) बिल्कुल स्वच्छ बाल्टी में डालना चाहिए। दूध डालने वाले के हाथ भी बिल्कुल साफ होने चाहिए। बछड़े को भड़कने वाला न बना देना चाहिए। धीरे धीरे उसे एक कोने में ले जा उसके पास खड़े रह कर उसके मुंह में दो अंगुलियां डालना चाहिए। जब वह अंगुली चाटने लगे तब उसके नथुने नीचे किये हुए ही उसे दूध के सामने ले जाना चाहिए। दूध जब चखेगा तब आप ही पीने लगेगा।

पहली बार दो सेर से अधिक दूध न देना चाहिए। जब बछड़ा दूध पीना सीख जाय तब उसे ४ से ६ सेर तक जैसा उसका शरीर हो—देना चाहिए। और ज्यों ज्यों बछड़ा बड़ा होता जाय त्यों त्यों उसका दूध भी बढ़ाते जाना चाहिए।

कितने ही अच्छे ग्वाले शुरू के तीन चार अठवारों तक बछड़े को प्रति दिन तीन बार दूध पिलाते हैं और तीनों समयों के बीच में समान अन्तर रखते हैं। यदि उसे तीनों वक्त गर्म दूध दिया जा सके तो यह ढंग बहुत ही अच्छा होगा। यदि दो पहर को दूध गरम करने की सुविधा न हो और यदि ठंढा दूध देना पड़े तो दो बार ही देना अच्छा है।

दिन में दो बार दूध पाने से बछड़ा बड़ा अच्छा निकल सकता है। सेपेरेटर (दूध में से मलाई उतारने का यंत्र) लगाने से दूध में जो फेन उठता है वह बछड़े को न देना चाहिए, क्योंकि फेन से बछड़े को अफरा लगने लगता है।

आज सबेरे छ: बजे और कल आठ बजे — इस प्रकार से नहीं बल्कि नियमित रूप से बछड़े को दूध पिलाना चाहिए। अनियमितता से मांदगी आती है।

बछिया या बछड़े को अगर ठीक तौर से दूध न दिया जायगा तो फिर वह अच्छी गाय या अच्छा बैल न हो सकेगा।

बछड़े के लिए एक छोटी सी नांद बना कर उसमें थोड़ी घास डाल देनी चाहिए। उसके उठने बैठने की जगह उजेली और सूखी होनी चाहिए। पानी से तर या नम जगह में रखने से बछड़ा बढ़ नहीं सकता है।

जितनी खबरदारी ग्राहकों को दूध बांटने के लिए बासन धोने उसे तपाने या धूप दिखाने के लिये जरूरी है उतनी ही होशियारी बछड़े को दूध पिलाने के बर्तन को साफ रखने के बारे में रखना चाहिए। नहीं तो अच्छे गाय या बैल की आशा न रखनी चाहिए।

मलाई निकाले हुए दूध का कब से देना चाहिए?

तीन अठवारों तक बछडे को बिना मलाई उतारा हुआ दूध देना चाहिए — उसके बाद क्रमशः मलाई उतारा हुआ दूध पिलाना शुरू कर देना चाहिए और थोडा थोडा कर के अन्त में [illegible] मलाई रहित दूध पर ही उसको रखना चाहिए। दुबले या [illegible] बछडे की बनिस्बत बडे और मजबूत बछडे को एक आध हफ्ते पहले ही से बिना मलाई के दूध पर रक्खा जा सकता है।

दूध अगर काफी हो तो जब तक बछडा सवा महीने का न हो जाय तबतक वह ७-८ सेर दूध रोज पीता रहता है। डेढ से दो मास तक का होने के बाद बछडे को दही या मठा दिया जा सकता है। लेकिन यह तबदीली धीरे २ ही करनी चाहिए।

दूध दही या ठंडे गर्म दूध देने में एकाएक फेरफार न करना चाहिए। एकाएक फेरफार करने या बहुत खिला देने से बछडा मांदा पड जाता है। अगर कभी गर्म और कभी ठंडा दूध दिया जायगा और उसे अस्वच्छ स्थान में रक्खा जायगा तो डेढ दो मास का हो चुकने पर भी उसके बीमार पडने की संभावना है बछडा चाहे जितना बडा क्यों न हो जाये लेकिन उसे कण्ठ तक दूध कभी न पी लेने देना चाहिए।

सेपरेटर से ताजा, गर्म मलाई उतरा दूध चाहे जिस उम्र का बछडा क्यों हो—सब के लिए अच्छा होता है।

बछडे को नाज, चारा या घास देना

दो या दो से अधिक बछडे अगर एक स्थान पर हों तो उनके दूध पीने या अनाज खाने के समय उनको जुदा रखने के लिए उनके सामने एक खंभा खडा कर देना चाहिए ताकि वे नांद को उलट न दें और एक दूसरे की नांद में चारा नहीं खा सकें। जब बछडा दो सप्ताह का हो जाय तब उसे अनाज देना शुरू कर देना चाहिए। दूध देने के बाद सूखा नाज अलग से देना चाहिए दूध के साथ नहीं।

मकई भूसा और थोडी खली देना चाहिए। पहले मकई को दल कर और फिर साबित ही देना चाहिए। मकई की जगह जौ या और किसी दूसरे नाज से भी काम चल सकता है। जब बछडा दो माह का हो जाय तब से दिन में उसके लिए पावभर नाज काफी है। उसके बाद आध सेर देना चाहिए। दूध अगर खूब न हो तो नाज थोडा अधिक देना चाहिए। तीन अठवारों या एक मास का होने पर उसे हरा ताजा चारा दिया जा सकता है। परन्तु यह चारा सडा हुआ न हो और स्वच्छ हो। शुरू में इस प्रकार की घास थोडी देनी चाहिए। और धीरे २ बढानी चाहिए। साथ ही साथ थोडी सूखी घास और अनाज भी दिया जा सकता है।

दूध बन्द करने का समय

बछडे को अच्छी तरह अगर पालना मंजूर हो और अगर मजबूत गाय बैल तैयार करना हो तो छः या आठ मास तक दूध जारी रखना चाहिए।

किस प्रकार चरे?

शरद् ऋतु या शीतकाल के पैदा हुए बछडे को अगली गर्मी में चरने भेजना चाहिए। वसंत या ग्रीष्म ऋतु में पैदा हुए बछडे को तीन महीने तक तो गोशाला में रखना ही चाहिए। बछडे को चरागाह में हरा घास और काफी छाया तथा पानी चाहिए। गर्मी अगर अधिक हो या मक्खियां बहुत हों तो बछडे को बडी तकलीफ होती है। उसे मक्खियों से बचाने के लिए उसके खूंटे के पास टाट का परदा डाल देना चाहिए।

दूध बन्द कर देने के बाद

जब तक बछडे दूध पीते रहते हैं तब तक वे अच्छी हालत में रहते हैं और बाद को उनकी पूरी तौर पर ताक न की जाने के कारण वे दुबले पड जाते तथा सूख जाते हैं। इसलिए दूध धीरे २ बन्द करना चाहिए। आज बालटी भर दूध दिया — कल बिलकुल नहीं — ऐसा नहीं करना चाहिए।

गर्मी के दिनों में पानी और छाया वाले चरागाह में उसे चरने भेजना चाहिए। वहां पर पानी की कुंडी रखनी चाहिए। पहली गर्मियों में उसे रोज थोडा २ अनाज देना चाहिए। जाडों में अच्छी देखभाल रखना चाहिए और सूखी घास ताजा हरा घास और थोडा नाज उसे देना चाहिए। जब वह आठ महीने का हो जाय तो दाना बिना भी काम चल सकता है।

गाभिन करवाने का समय

हृष्टपुष्ट बछिया, १४ महीने से २० महीने की उमर में गाभिन हो सकती है।

बछडे को चलना सिखाना

छोटे बछडे को जो कि हांके २ दौड सके चलना हांकना सिखाना चाहिए। उसे सीधा चलना सिखाना चाहिए। गाय को घर में बन्द कर देने पर भी बछडा शान्तिपूर्वक आप के पीछे २ दौड कर चला आवे — यह कोई कम सन्तोष की बात नहीं है।

पानी और नमक देना

जब बछडा तीन चार दिनों का हो तभी से उसके पास पानी और नमक रक्खा रहना चाहिए। जब वह खूब दूध पीता हो तब भी उसे पानी तो चाहिए ही। नमक मिला हुआ पानी जब जिस समय लेना चाहे तब उसी समय वह ले सके — इसकी भी व्यवस्था रखनी चाहिए।

(नवजीवन) वालजी गोविन्दजी देसाई

क्या अहिंसा की भी कोई हद है?

एक सज्जन ने, अपना पूरा नाम पता दे कर एक लम्बा पत्र भेजा है। उसका कुछ भाग नीचे दिया जाता है।

"आप शायद जानते होंगे कि मद्रास में इस समय कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के साथ क्या हो रहा है। गत दो दिनों में जस्टिस पार्टीवालों ने उनके साथ दुर्जनता की हद कर दी है। कांग्रेस के उमेदवार श्रीयुत . . . के लिए श्रीयुत . . . के साथ श्रीयुत . . . मतदाताओं से पैरवी कर रहे थे। जस्टिस पार्टी का एक दल इन के पीछे पीछे लगा फिरता था। जब ये लोग जस्टिस पार्टी के उमेदवार के घर के पास पहुंचे तब जस्टिस पार्टीवालों ने कांग्रेस कार्य-कर्ताओं को अचानक घेर लिया और [illegible] के और [illegible] के मुंह पर थूक दिया। आप ही इस बात को सब से अधिक जानते हैं कि मुंह पर थूकना कैसी बेइज्जती है। क्या साम्प्रदायिकता ने सार्वजनिक जीवन और काम को इतना नीचे गिरा दिया है! आप के पास यह बात लिखने का मतलब यही है कि आप अपने अहिंसातत्व का खुलासा, ऐसे गंभीर अपमान की स्थिति में कांग्रेसवादियों का क्या कर्तव्य है, इस संबंध में करें। श्रीयुत . . . पर मार भी पडी है। हम यह बात मानते हैं कि जहां तक सरकार से संबंध है, अपने कामों में हमारे लिए अहिंसा का पालन समयानुकूल है। परन्तु क्या हम अपने उन भ्रान्त और निष्ठुर भाइयों से भी उसी अहिंसा का व्यवहार करें जो शान्त कांग्रेस कार्यकर्ताओं को भी मारना पीटना, उन पर थूकना और मैला फेंकना शुरू करते हैं? मैं आप को यह भी बतला दूं कि कांग्रेस के प्रेमी बहुत हैं और ये भाडे के गुंडे उंगलियों पर गिन लिये जा सकते हैं और यदि हम लोग जोर जब्र से काम लें तो बात की बात में यह गुंडाशाही बिलकुल बन्द कर दे सकते हैं। परन्तु हम लोग एक ऐसी संस्था के सदस्य हैं जिसका मूल सिद्धान्त है अहिंसा।

उनका यह सिद्धांत दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है और कांग्रेस वालों के लिए शायद किसी दिन अपने नौजवानों को हिंसा के मार्ग से रोकना असंभव हो जायगा। इस लिए मैं आप से पूछता हूं कि व्यक्तिगत रूप से अत्याचार से अपना बचाव करना क्या अहिंसा तत्व के विरुद्ध है? और फिर किन शर्तों पर यह संभव है? जस्टिस पार्टी की गुंडेशाही से हमारी अहिंसकता की कड़ी जांच हो रही है। इसलिए, इस नाजुक मौके पर, आप की सलाह से हम मद्रासवालों को बड़ा लाभ होगा। आप अपनी राय जितना शीघ्र संभव हो प्रकाशित कर देवें। इस प्रार्थना का एक कारण यह है कि हम सुनते हैं कि जस्टिस पार्टीवाले गुंडेशाही का प्रयोग कर के देखना चाहते हैं कि इसमें उन्हें कितनी सफलता मिल सकती है जिससे फिर वे इसे राजनैतिक युद्ध का यथानियम अङ्ग बना कर के, आगामी नवंबर मास में, असेंबली और कौन्सिल के चुनाव के समय इससे काम ले सकें।"

आदमियों और स्थानों का नाम मैंने जानबूझ कर हटा दिये हैं क्योंकि उनसे मुझे यहां कोई काम नहीं है। प्रसंगोचित अहिंसा का जमाना बहुत दिन हुए बीत गया। जो मन में अहिंसक नहीं रह सकते हैं, उन्हें, पत्र-लेखक की बतलायी हुई स्थिति में भी अहिंसक बने रहने के लिए कोई बाध्य नहीं करता है। अहिंसा, कांग्रेस का मन्तव्य है सही परन्तु आज अहिंसक बने रहने के लिए किसी को कांग्रेस के मन्तव्य की पर्वा नहीं है। हर कांग्रेसवादी जो अहिंसक है, वह इसलिए अहिंसक है कि वह कभी दूसरा हो नहीं सकता। इसलिए मेरी जोरदार सलाह है कि किसी कांग्रेसवादी को मेरे पास या किसी दूसरे कांग्रेसवादी के पास, अहिंसा के प्रश्न पर सलाह लेने जाने की जरूरत नहीं है। सब किसी को अपनी ही जिम्मेवारी पर काम करना होगा और अपनी बुद्धि और विश्वास के अनुसार कांग्रेस के मन्तव्य का अर्थ लगाना होगा। मैंने प्रायः देखा है कि, उन्हीं निर्बल मनुष्यों ने, जो अपनी कायरता के कारण अपनी या अपने आश्रितों की इज्जत की रक्षा नहीं कर सके हैं, कांग्रेस के मन्तव्य की या मेरी सलाह की आड़ ली है। मैं यहां बेतिया के निकट की एक घटना याद करता हूं। उस समय असहयोग जोर पर था। कुछ गांववाले लूटे गये थे। लुटेरों के हाथ में अपनी स्त्रियों और बच्चों, और घर में के सामान को छोड़ कर वे भाग गये। अपना सार इस तरह छोड़ कर भाग जाने की कायरता के लिए जब मैंने उनकी भर्त्सना की तो उन्होंने निर्लज्जता से अहिंसा की दुहाई दी। मैंने सार्वजनिक रूप से उनके इस व्यवहार की निन्दा की और कहा कि मेरी अहिंसा के अनुसार उनकी हिंसा भी जायज है जो अहिंसा की शक्ति नहीं रख सकते हों और जिनकी रक्षा में स्त्रियां और बच्चे हों। कायरता को छिपाने की आड़ अहिंसा नहीं है, बल्कि वीरों का यह सब से बड़ा गुण है। अहिंसा के पालन में, तलवार चलाने से कहीं अधिक वीरता की जरूरत है। कायरता और अहिंसा का कुछ मेल है ही नहीं। तलवार को छोड़ कर अहिंसा ग्रहण करना संभव है। कभी २ तो सहज भी है। इस लिए, अहिंसा के अंदर यह बात पहले से ही मान ली जाती है कि उसे माननेवाले में चोट करने की ताकत भी होगी ही। बदला लेने की प्रवृत्ति पर जान बूझ कर लगाया हुआ यह लगाम है। परन्तु निष्क्रिय हो कर औरतों के ऐसे असहाय बन कर आत्म समर्पण करने से तो बदला लेना ही कहीं अच्छा है। क्षमा उससे भी बड़ी चीज है। बदला लेना भी कमजोरी ही है। बदला लेने की इच्छा, इस भय से उत्पन्न होती है कि शायद कोई हानि -वास्तविक या काल्पनिक— होगी। जब कुत्ता डरता है तभी भूंकता और काटता है। उस आदमी को, जिसे संसार में किसी से भय नहीं है, उस आदमी पर क्रोध करना भी एक जंजाल ही मालूम होगा जो उसे हानि पहुंचाने की विफल चेष्टा कर रहा हो। छोटे लड़के सूर्य पर धूल फेंकते हैं परन्तु वह तो उनसे बदला नहीं लेता। इस से उनकी अपनी ही हानि होती है।

मुझे इसका पता नहीं कि जस्टिस पार्टीवालों के दुष्कृत्यों का बयान जो पत्र-लेखक ने किया है, ठीक ही है। शायद, इस फरयाद का एक और रूप भी होगा। लेकिन, सभी बातें सच्ची मान लेने पर, मैं तो उन लोगों को बधाई ही दूंगा जिनके ऊपर थूका गया है, मैला फेंका गया है या मार पड़ी है। यदि अपमान सह कर मन में भी बदला लेने के भाव न लाने का उनमें साहस था तो इससे उनको कोई हानि नहीं पहुंची है। परन्तु यह उनकी भूल कही जायगी, यदि उन्होंने क्षुब्ध होते हुए भी केवल हवा की रुख देख कर ही बदला न लिया था। स्वाभिमान का भाव सभी प्रसंगों को भूल जाता है। मुझे यह समझ में नहीं आता कि ये कांग्रेसवाले, जो उन गुंडों से गिनती में इतने अधिक थे, उन्हें सजा ही कौन सी दे सकते थे? क्या वे भी मैले का जवाब मैले से, थूक का थूक से और गाली का गाली से देते? या इस बहुसंख्यक दल के स्वाभिमान की रक्षा उन थोड़े से गुंडों की उपेक्षा करने में ही होती? असहयोग की जिस समय तूती थी, उस समय की बात मैं जानता हूं कि जो गुंडे सभाओं में गड़बड़ करना चाहते थे उनके साथ क्या व्यवहार होता था। उन्हें स्वयंसेवक पकड़ कर बैठाये रहते मगर कुछ चोट नहीं पहुंचाते थे और यदि वे शोर करते तो उनके गुल गपाड़े की उपेक्षा ही की जाती थी। मैं जानता हूं कि उस जमाने में भी बहुत बार अहिंसा का नियम तोड़ा जाता था और जो लोग सभाओं में विघ्न करते थे या विरोध में कुछ बोलते थे, उन्हें जबर्दस्त बहुसंख्या शोर कर के बैठा देती थी या कभी २ तो उन्हें बलात्कार बैठा दिया जाता था। इसमें उस बहुसंख्या का और उस आन्दोलन का अपमान ही है। उस आन्दोलन को वे इस प्रकार बिना सोचे हुए धब्बा देते और अर्थ का अनर्थ करते थे। इस लिए मैं, इस कांग्रेसवादी पत्र-लेखक से तथा उन कांग्रेसवादियों से जिनके ये प्रतिनिधि हैं, यह कहना चाहता हूं कि यदि जस्टिस पार्टी या किसी और पार्टी को यदि उन्हें अपनी ओर कर लेना मंजूर हो तो उनके साथ नम्रता का ही व्यवहार करना होगा, वे भले ही उद्दण्डता दिखलावें। यदि सभी विरोधियों को दबाना ही इष्ट है तो फिर दोनों ओर से जबरदस्ती का व्यवहार ही उचित दवा है। उससे स्वराज के निकट हम पहुंच सकेंगे कि नहीं, यह एक दूसरा ही सवाल है।

जहां विश्वास ही नहीं हो, वहां मेरी इस सलाह बेकार है। इसलिए सभी कांग्रेसवादियों को सभी तर्क वितर्कों पर विचार कर लेना चाहिए और तब एक निश्चय कर के उसी के अनुसार काम करना चाहिए। इसका क्या नतीजा होगा, इसकी कुछ भी पर्वा नहीं करनी चाहिए। इसमें भूल होना संभव है, परन्तु तब भी उनका आचरण ठीक ही कहा जायगा। अज्ञानवश की हुई हजारों भूलें, उस बिल्कुल सही और शुद्ध काम से अच्छी हैं जिसके पीछे विश्वास का आधार न होवे। वह सफेदपोश की की हुई चोरी होगी। सब से बड़ी बात तो यह है कि यदि हमें देश के साथ सच्चे बन कर रहना है और उसे उसके अभीष्ट स्थान पर पहुंचाना ही इष्ट है तो हमें अपने आप के साथ भी सत्य का ही व्यवहार करना होगा। अहिंसा के विषय में —मैं नहीं कर सकता—ऐसे वाक्यों का व्यवहार नहीं होना चाहिए। यह कोई पोशाक नहीं है कि जब चाही पहन ली और जब चाही उतार भी दी। इसका स्थान हमारे हृदयों में है और हमें अपने जीवन के साथ इसका अटूट सम्बन्ध जोड़ना होगा।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

अस्पृश्यता रूपी रावण

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ५१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, श्रावण वदी ११, संवत् १९८३ गुरुवार, ५ अगस्त, १९२६ ई० { मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा

भाग २

अध्याय १२

हिन्दुस्तानियों का परिचय

क्रिस्तानों के संपर्क के सम्बन्ध में और अधिक कहने के पहले उस समय के और अनुभवों की भी खबर देनी तो आवश्यक है।

नेटाल में जो स्थान सेठ अब्दुल्ला का था, प्रिटोरिया में भी वही स्थान हाजी महंमद का था। उनकी सहायता के बिना वहां एक भी सार्वजनिक काम नहीं चल सकता था। उनसे तो मैंने पहले सप्ताह में ही जान पहचान कर ली। मैंने उनसे कहा कि प्रिटोरिया के सभी हिन्दुस्तानियों से मैं परिचय प्राप्त करना चाहता हूं। वहां के हिन्दुस्तानियों की हालत जानने के काम में मैंने उनकी मदद मांगी। उन्होंने खुशी से मदद देना कबूल किया।

मेरा पहला काम हुआ हिन्दुस्तानियों की एक सभा करना और उनके सामने उनकी सच्ची हालत की तसवीर खींचना। सेठ हाजी महंमद हाजी जुसब ने जिनके नाम मुझे परिचयपत्र मिला था यह सभा की। उसमें मुख्यतः मेमन व्यापारी ही आये थे। थोड़े हिन्दू भी थे। प्रिटोरिया में हिन्दुओं की संख्या भी बहुत कम थी।

मेरे जीवन में यह पहला ही भाषण गिना जा सकता है। तैयारी तो मैंने ठीक की थी। मेरे भाषण का विषय था सत्य। व्यापारियों से मैं सुनता आया था कि व्यापार में सत्य बोलने से नहीं चलता। मैं यह बात तब नहीं मानता था। आज भी नहीं मानता हूं। व्यापार में और सत्य में नहीं पटती है, ऐसा कहने वाले अभी भी मेरे कितने व्यापारी मित्र पड़े हुए हैं। वे व्यापार को व्यवहार कहते हैं, और सत्य को धर्म, और यों कहा करते हैं कि व्यवहार एक चीज है और धर्म दूसरी। व्यवहार में शुद्ध सत्य कभी नहीं चलता है। इसमें तो उनका ख्याल है कि यथाशक्ति ही सत्य पाला जा सकता है। मैंने भाषण में मैंने इस बात का भली भांति विरोध किया। और व्यापारियों को बतलाया कि इस बारे में तुम्हारा फर्ज दुगना हो जाता है। उनको समझाया कि परदेश में आने पर तुम्हारी जवाबदेही भी बढ़ जाती है, क्योंकि तुम थोड़े से आदमियों की चालचलन के ऊपर ही तो हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमियों की चालचलन का यहां अन्दाजा लगाया जाता है।

अंग्रेजों की अपेक्षा उनका रहन-सहन मैंने गन्दा देखा था। इसकी ओर भी मैंने उनका ध्यान खींचा।

इस बात पर भी जोर दिया कि उन्हें हिन्दू, मुसल्मान, पारसी, क्रिस्तान या गुजराती, पंजाबी, मदरासी, सिंधी, कच्छी इत्यादि का भेद भूल जाना चाहिए।

मैंने वहां एक समिति भी स्थापित की और कहा कि इसके द्वारा हिन्दुस्तानियों की कठिनाइयों का उपाय अफसरों को अर्जियां भेज कर होना चाहिए। मैंने यह भी कहा कि मेरा जो समय बचेगा मैं इस सभा के काम में बिना कुछ वेतन लिये ही दूंगा।

मैंने देखा कि मेरी बातों का सभा में ठीक असर हुआ।

इस बात की चर्चा होने लगी। कितनों ने मेरे सामने सब बातें रखना स्वीकार किया। मेरी भी हिम्मत बढ़ चली। मैंने देखा कि इस सभा में अंग्रेजी के जाननेवाले थोड़े ही हैं। इस परदेश में अंग्रेजी का ज्ञान हो जाय तो बहुत अच्छा यह सोच कर मैंने उन लोगों को जिन्हें फुरसत हो अंग्रेजी सीखने की सलाह दी। मैंने यह भी कहा कि बड़ी उमर में भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है और इसके उदाहरण भी दिये। यदि कुछ लोग मिल कर कोई श्रेणी खोल लें तो उसका या कुछ इक्के दुक्के ही अगर अंग्रेजी सीखनेवाले मिल जांय तो उन्हें भी सिखाने का भार मैंने अपने सिर लिया। कोई श्रेणी तो नहीं बन सकी परन्तु तीन आदमी इस शर्त पर राजी हुए कि मैं उनके घर जा कर उन्हें सिखाऊं। उनमें दो मुसल्मान थे। एक हजाम, और दूसरा क्लर्क और तीसरा था एक छोटा हिन्दू दुकानदार।

सब को मैं अनुकूल हुआ । मेरी अपनी पढ़ाने की शक्ति में तो मुझे जरा भी अविश्वास तो था ही नहीं । मेरे विद्यार्थी भले ही कह दें कि वे थक गये हैं परन्तु मैं तो थकनेवाला नहीं था । कभी कभी तो मैं उनके यहां ऐसे समय भी पहुंच जाता था कि वे तैयार ही न होते थे । परन्तु मैंने हिम्मत न हारी । उनमें से किसी को अंग्रेजी का कोई गहरा अभ्यास तो करना नहीं था । कोई आठ महीनों में ही, अंग्रेजी बोलने चालने में उनमें से दो की खासी योग्यता हो गयी । दो को हिसाब लिखने का और थोड़ा बहुत चिट्ठी पत्री भी लिख लेने का ज्ञान हो गया । हजाम ने तो अपने गाहकों के साथ बोलने भर सीख लिया और दो आदमियों ने भी इतना सीख लिया कि मजे में वे खासी आमदनी कर सकें ।

सभा के इस काम से मेरे मन में सतोष हुआ । अब प्रति मास या प्रति सप्ताह इसकी बैठकें करने का निश्चय हुआ । यह बैठकें प्रायः नियमित रूपसे हुआ करती थीं और उनमें परस्पर विचार विनिमय हुआ करता था । इसका फल यह हुआ कि प्रिटोरिया में एक भी हिन्दुस्तानी न रह गया जिस को मैं नहीं जानता या जिसकी सभी हालत मुझ से छिपी हो । वहां के हिन्दुस्तानियों के परिचय का यह फल हुआ कि प्रिटोरिया के ब्रिटिश एजेन्ट से मिलने की मेरी इच्छा हुई । मैं मि० जेकब्ज डिवेट से मिला । उनको हिन्दुस्तानियों के प्रति सहानुभूति थी । उनका प्रभाव जरा कम था । तो भी उन्होंने मुझे कहा कि— "मुझ से जो हो सकेगी सहायता दूंगा और जब कभी जरूरत हो मुझ से मिलना।" रेलवे वालों से भी मैंने खत किताबत की और उनको बतलाया कि उन्हीं के कानून के अनुसार हिन्दुस्तानियों की कहीं रोक नहीं हो सकती । परिणाम में मुझ को उनका एक पत्र मिला कि अगर ठीक २ कपड़े पहने हुए हों तो हिन्दुस्तानियों को भी ऊंचे दरजे के टिकट दिये जायेंगे । इससे पूरा समाधान तो न हुआ क्योंकि किसने ठीक २ कपड़े पहने हैं इसका निश्चय तो आखिर स्टेशन मास्टर ही को न करना था !

ब्रिटिश एजेन्ट ने मुझे और भी कितने कागज पढ़ने के लिए दिये जो कि उनको हिन्दुस्तानियों से मिले थे । ऐसे कागज तैयब सेठ ने भी मुझे कुछ दिये थे । उनमें मैंने यह भी देखा कि ऑरेन्ज फ्री स्टेट से किस निर्दयता से हिन्दुस्तानियों को निकाल बाहर किया जा रहा था । मतलब यह है कि ट्रान्सवाल और फ्री स्टेट के हिन्दुस्तानियों की भी आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का पूरा अध्ययन प्रिटोरिया में ही मैं कर सका । इस ज्ञान का मुझे पूरा उपयोग करना होगा, इसकी तो उस समय मुझे बिलकुल ही खबर न थी । मेरा तो निश्चय था एक वर्ष के बाद या जभी मेरा मुकदमा खतम हो जाय देश लौट जाना ।

परन्तु भगवान के मन में तो दूसरी ही बात थी ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खतम हो गई है । अब जितने आर्डर मिलते है, दर्ज कर लिए जाते हैं । आर्डर भेजनेवालों को, जब तक छठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तब तक, धैर्य रखना होगा ।

व्यवस्थापक,
हिन्दी-नवजीवन

पशुवध

उसके कारण और उपाय

(८)

मि० आइमा ट्वीड "काउकीपिंग इन इण्डिया" नामक पुस्तक में लिखते हैं:—

बिसुकी गायों को कसाई या शहर के व्यापारी के हाथ कभी न देना चाहिए, बल्कि गांव के ऐसे लोगों के हाथ देना चाहिए जिनके पास चारे का साधन हो और जो गायों की संभाल कर सकते हों ।

अच्छी गाय सुलभ नहीं है । और यदि अच्छी गाय किसी के हाथ जाय तो उसे ले ही लेना चाहिए फिर चाहे कितना ही मूल्य क्यों न देना पड़े । भविष्य में वह उसका बदला पूरी तौर पर चुका देगी । भली चंगी दुधार गाय कसाई को देना दुखप्रद तो है ही साथ ही साथ इससे देश की भी हानि है और यह अपराध है ।

किसी को अच्छी गाय बेचना हो तो उसका विज्ञापन निकालना चाहिए । सामान्य रूप से कसाई उस गाय के लिए जितना मूल्य देता है उतना मूल्य देनेवाले बहुत से मिल जायेंगे और इस प्रकार गाय बच जायगी ।

मैंने इस विषय में बहुत से लोगों से बातचीत की है और उन सब लोगों ने यही कहा कि कसाई लोगों को हम अच्छी गाय न देंगे । परन्तु उनमें से बहुत कम लोगों ने अपना वचन पाला । कसाई उनको बिसुकी गाय के लिये अधिक से अधिक ६०) देता है— जब कि वह आम तौर पर ३०) या ४०) की होती है । जो कुछ कसाई दे रहा था; उससे १०) अधिक लेने के लिए मैंने उनसे बार बार कहा परन्तु उन्होंने मुझ से दूनी कीमत मांगी और अन्त में जो दाम मैं देने को तैयार था उससे कम दामों में ही उसे कसाई के हाथ बेच डाला ।

उसी पुस्तक में दूसरे स्थान पर मि. ट्वीड ने यह सिद्ध किया है कि गाय को दूसरे वर्ष रखने में पहले वर्ष की अपेक्षा तिगुना लाभ होता है ।

बिसुकी गाय का यदि बेच दिया जाय तो

जमा		उधार	
दूध की उपज ३०० दिन की जब कि वह रोज ६ सेर दूध दे और दूध का भाव ४ सेर का हो	४५०)	गाय का मूल्य	२४०)
१० महीने के बछड़े की कीमत	४०)	दस महीने के चारे का दाम	२५०)
कसाई के हाथ गाय बेचने से	६०)		
कुल	५५०)	कुल	४९०)

कुल आमद ५५०) कुल खर्च ४९०) नफा ६०)

और दूसरे बार गाभिन होने तक रक्खें तो —

जमा		उधार	
दूध और बछड़े की कीमत (उपर्युक्तानुसार)	४५०)	गायकी बिक्री का मूल्य और चारे की कीमत (उपरोक्तानुसार)	४९०)
गाय के ब्याने के पश्चात् उसकी कीमत	२८०)	बिसुकने के बाद चार महीने का चारा	३२)

कुल आमद ७३०) कुल खर्च ५२२) नफा २०८)

उसके उपरान्त वह कहता है—व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए; कसाई को गाय देना हमें लाभदायक नहीं है। कितने दुग्धालय आजकल बैठते जा रहे हैं इसका कारण यह है कि वे बछड़े को मरने देते हैं और गाय को कसाई के हाथ बेच डालते हैं। इसका कारण है व्यवस्था का अभाव तथा सब काम नौकरों पर डाल देना।

अन्त में वह लिखता है:

"पहले तो ग्वाला गाय को सीधे कसाई के हाथ बेंच देता था; परन्तु आजकल व्यापारी को देता है। और यह व्यापारी उसे कसाई के हाथ बेंच देता है। व्यापारी दुधार गाय को ग्वाले के हाथ बेच देता है और उसके दाम में बिसुकी गाय ले कर उसे कसाई के हाथ बेंच देता है। ग्वाला कहता है कि मैं गाय या बछड़ा कोई भी कसाई को नहीं देता, बल्कि देश में भेज देता हूं। यह सरासर झूठ बात है। गाय देश को तो नहीं भेजी जाती या तो वह कसाईखाने जाती है और या कटने के लिए रंगून या सिंगापुर जाती है।

"सरकार को या म्युनिसिपैलिटी को अच्छी गाय का वध रोकवाना चाहिये।"

लेफ्टिनेण्ट कर्नल मटम ने इलाहाबाद वाले "पायनियर" में तीन वर्ष पूर्व यह लेख लिखा था कि दूध के बारे में जो स्थिति है वह बड़ी ही गंभीर है। इस देश में कोई छः करोड़ गाय भैंसे होंगी, परन्तु इनमें से बहुत ही कम उतना दूध देती हैं जितना कि लोगों के लिये काफी होता है। अधिकांश गायें तो अपने बच्चों का भी मुश्किल से पेट भर सकती हैं इससे यह साफ जाहिर होता है कि शहरों में दूध की अत्यन्त कमी रहती है। यही दशा शोचनीय है। लेकिन भविष्य में उससे भी भयंकर स्थिति का उत्पन्न हो जाना सम्भव है। बस, इसी बात की चिन्ता है।

पन्द्रह बीस वर्ष पहले दूध सस्ता और काफी मिलता था परन्तु आज तो हजारों बच्चे ऐसे होंगे कि जिन के लिए उनके मां बाप 'दूध दूध' पुकारते हैं। दूध के धंधे में जरा भी व्यवस्था हो तो भी ठीक लाभ होता रहे। मुंह मांगा दाम देने को ग्राहक तैयार रहता है लेकिन तिस पर भी ठीक २ दूध नहीं पाता। कमी तो इतनी है कि इसके कारण दूध में बड़ा ही मिश्रण किया जाता है जिसके सबब से दूध का मूल्य साथ भाव भी बेहद बढ़ गया है। अगर खपत ज्यादा हो जाय और भाव बढ़ जाय तब तो आमद ज्यादा होना चाहिए। लेकिन पूरा नहीं पड़ता है। इसका कारण यह है कि चौपाये पैदा करनेवाले प्रदेशों में से जितने चाहिये उतने जानवर मिलते नहीं हैं।

पन्द्रह बीस वर्ष पूर्व शहरों की आवश्यकता पूरी करने के लिए ढोर मुख्यतः पंजाब में मिलते थे। अमृतसर में साहीवाल गायें काफी तादाद में बिका करती थीं और हरियाने से भी बहुत सी गायें मामूली भाव पर आती भी हैं। लोगों के ये दोनों रास्ते अब सूख गये हैं। सिंध में भी गायें हैं, लेकिन काफी नहीं हैं फलतः आजकल शहरों में भैंसे आने लगी हैं। लेकिन अच्छी भैंसें तो आती ही नहीं हैं। सन् १९११ ही में मैंने रोहतक हिसार और फाजील के इर्द गिर्द के भागों से तीन महीनों में १५०० दुधार भैंसे १००) औसत की दर से मोल ली थीं। आज उतनी ही कोशिश से मुश्किल से कहीं ५००-६०० भैंसे मिल सकती हैं दाम तो १००) के बजाय २००) या ३००) देना पड़े।

हिन्दुस्तान के शहरों में ढोरों की छीछालेदर हो रही है। ऐसी दुर्दशा संसार के किसी देश में नहीं है। इस कारण स्थिति गंभीर हो गयी है।

यदि ढोर बहुतायत से पैदा हों तो उनकी यह खराबी न हो। लेकिन उनकी तो पैदाइश ही कम है। जिन देशों में ढोर बहुत होते हैं वे हैं तो खूब, लेकिन दूध देनेवाले पशु दिन पर दिन घटते जाते हैं। अच्छे पशु शहर में खिंच आते हैं और वहां वे काट डाले जाते हैं। दुर्बल ढोर बच जाते हैं और उन्हीं की सन्तान बढ़ती जाती है।"

(नवजीवन) वालजी गोविन्दजी देसाई

जून के अंक

जून मास में खादी की उत्पत्ति और बिक्री के अंक नीचे दिये जाते हैं।

प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्री
अजमेर	२,११०)	४,६६३)
आन्ध्र	१६,३२३)	२२,०१८)
बिहार	१४,२०४)	८,०२७)
बंगाल	४०,४५२)	३४,३९८)
बम्बई	...	२३,३४४)
बर्मा	...	१,५९३)
मध्यप्रान्त (हिन्दी)	...	१२५)
दिल्ली	१,३२४)	१,८५८)
करनाटक	३,१३०)	६,०१९)
दक्षिण महाराष्ट्र	.	८१)
मध्य ,,	..	३,१५१)
उत्तर ,,	२,०१०)	५,२३०)
पंजाब	८,९८८)	५,६०९)
तामिलनाड	३९,७५८)	६३,१२४)
संयुक्तप्रान्त	६,११५)	८,५३१)
उत्कल	१,९३९)	२,३७६)
कुल	१,८१,२९३)	१,९८,८५७)

इन्हीं प्रान्तों के मई के अंक ये थे।

प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्री
अजमेर	१,१५०)	२,६६०)
आन्ध्र	१५,९६८)	२६,५७९)
बिहार	२१,६०८)	११,५३०)
बंगाल	३८,९११)	३० ५६६)
बम्बई	...	२०,६५०)
बर्मा	...	१,३५७)
मध्यप्रान्त हिन्दी	...	९८५)
दिल्ली	१,२१२)	१,६४७)
करनाटक	३,१९६)	५,०४०)
दक्षिण महाराष्ट्र	...	३९४)
मध्य ,,	...	३,१९९)
उत्तर ,,	१,६१५)	६,०९४)
पंजाब	५,५१७)	५,६२१)
तामिलनाड	४०,०४३)	६६,०६४)
संयुक्तप्रान्त	५,५४४)	१४,३६४)
उत्कल	३,००१)	१,८४८)
	१४६७२७)	२१४२६१)

मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण बदी १२, संवत् १९८३

अस्पृश्यता रूपी रावण

किसी विद्वान पंडितजी ने दक्षिण के देशी भाषा के पत्रों में एक लेख लिखा है। अछूतपने के समर्थन में उनकी जो दलीलें हैं उनका सारांश, एक मित्र यों लिखते हैं।

(१) आदि शंकराचार्य ने किसी चाण्डाल को दूर हटाया था और जब त्रिशंकु को चाण्डाल हो जाने का शाप मिला था तो सब कोई उससे बचे २ दूर ही रहते थे। ये बातें यह सिद्ध करती हैं कि अछूतपने की पैदायश हाल की नहीं है।

(२) आर्यजाति में चाण्डालों को जाति-बहिष्कृत गिनते थे।

(३) स्वयं अछूत भी तो इस अछूतपने के दोष से बरी (मुक्त) नहीं हैं।

(४) अछूतों को अछूत तो हम इस लिए मानते हैं कि वे जानवर मारते हैं और उन्हें हाड़, मांस, लहू, पायखाना पेशाब तथा और और तरह की गन्दगियों से बराबर ही काम पड़ता रहता है।

(५) अछूतों को भी उसी प्रकार से अलग रखना होगा जिस प्रकार कत्लगाहों या कसाईखानों, शराब-ताड़ी की दुकानों और वेश्यालयों को दूर रखा जाता है या रखा जाना चाहिए।

(६) उनके लिए तो यही काफी है कि परलोक के हक तो उन्हें प्राप्त हैं।

(७) गान्धी ऐसे कोई आदमी भले ही उन्हें छू सकें पर वे तो उपवास भी कर सकते हैं। हम लोगों को न तो उपवास ही करना है और न उन्हें छूने की ही जरूरत।

(८) मनुष्य की उन्नति के लिए अछूतपने का माना जाना अत्यन्त ही आवश्यक है।

(९) मनुष्य के पास कुछ विद्युत् शक्ति रहती है। यह शक्ति दूध के सदृश है। इसमें यदि बुरी चीजें मिला दो तो सम्भवतः यह शक्ति जाती रहेगी। इसलिए यदि कहीं प्याज और कस्तूरी का एक साथ मिला कर रखना संभव होवे तो वहीं हम ब्राह्मण और अछूत को भी एकत्र मिला सकते हैं।

पत्र-लेखक ने इन्हीं मुख्य २ बातों का सारांश दिया है। अछूतपना हजार सिरों वाला रावण है। इस लिए जब कभी यह अपना सिर उठावे तभी हमें उसे कुचल देना होगा। हमारी आज की स्थिति का उन कथाओं से क्या लगाव है, यदि यह बात हमें मालूम न होवे तो पुराण की कुछ कथायें तो बहुत ही खतरनाक बन जायेंगी। शास्त्रों में कही हुई यदि हरेक छोटी सी बात के अनुसार हम अपना जीवन बनावें या उसमें वर्णित पात्रों का ठीक २ हम अनुकरण करने लगें तो वे शास्त्र ही हमारे लिए प्राण-घातक जाल सिद्ध होंगे। उनसे तो हमें केवल मुख्य २ सिद्धान्त की बातें स्पष्ट करने या उन्हें ठीक २ समझने में सहायता मिलती है। यदि किसी धार्मिक ग्रंथ में लिखा है कि किसी प्रसिद्ध पुरुष ने कोई पाप किया था तो क्या हमें भी पाप करने की आज्ञा उस ग्रंथ से मिल गयी? यदि हमें केवल एक बार ही कह दिया गया, कि केवल सत्य को ही इस संसार में बसता है और सत्य परमेश्वर के तुल्य है, तो हमारे लिए इतना ही बहुत है। यह कहना अनुपयुक्त होगा कि युधिष्ठिर को भी झूठ बोलना पड़ा था। बल्कि उसकी अपेक्षा उपयुक्त बात यह होगी कि जब वे झूठ बोले, उन्हें उसी समय उसी क्षण, कष्ट झेलना पड़ा था और उनकी प्रसिद्धि और बड़े नाम सजा पाने के समय उनके कुछ भी काम न आये। इसी प्रकार हमारा यह कहना भी बे-मौके होगा कि आदि शंकराचार्य ने अपने पास से किसी चाण्डाल को दूर हटा दिया था। हमें तो केवल यही जानना यथेष्ट होगा कि जिस धर्म में यह सिखाया जाता है कि प्राणिमात्र के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा अपने साथ करते हो अर्थात् प्राणि-मात्र को अपने ही समान समझो, उस धर्म को एक जीव के प्रति भी निष्ठुर व्यवहार असह्य है, बिलकुल निर्दोष मनुष्यों के एक पूरे समाज की तो बात ही दूर है। इसके अलावे हमें वे सब बातें मालूम भी तो नहीं हैं कि जिनसे हम जानें कि आदि शंकर ने क्या किया था और क्या नहीं किया था। यहां चाण्डाल शब्द का जिस अर्थ में व्यवहार हुआ है उसका तो हमें और भी कम ज्ञान है। यह तो सभी मानते हैं कि इसके अनेक अर्थ हैं जिन में एक अर्थ है पापी। परन्तु यदि सभी पापियों को अछूत माना जाय तो यह भी भय होगा है कि हम सब कोई, हमारे पंडितजी भी नहीं बच सकेंगे, वे भी, अछूत बन जायेंगे। अछूतपने की प्राचीनता को किसी ने कभी इनकार नहीं किया है। परन्तु यदि इसे दोष मानें तो फिर प्राचीनता के नाम पर इसका समर्थन नहीं किया जा सकता।

आर्यजाति ने अछूतों को यदि जाति-बहिष्कृत माना था तो उनके लिए यह कोई शोभा की बात तो नहीं है। और यदि आर्यजाति ने अपने विकास के किसी काल में कुछ लोगों के समाज को बतौर सजा के जातिच्युत माना था तो अब फिर कोई कारण नहीं है कि वह सजा उन लोगों के वंशजों पर भी लागू होवे और इसका विचार भी न किया जाय कि किस दोष के लिए, उनके पूर्वजों को सजा दी गयी थी।

अछूतों में भी अछूतपने का होना तो केवल यही सिद्ध करता है कि पाप को हम बंद कर के नहीं रख सकते हैं बल्कि उसका जहर सर्वत्र ही फैल जाता है। इस अछूतपने का अछूतों में भी पाया जाना तो इसका एक और कारण है कि सभ्य हिन्दू समाज को इस महाव्याधि को शीघ्र से शीघ्र नष्ट कर देना चाहिए।

यदि अछूतों का अछूतपन इस कारण है कि वे जानवर मारते हैं और उन्हें मांस लहू हाड़ तथा पायखाना पेशाब और और गन्दगियों से काम पड़ता है तो सभी डाक्टरों और दाइयों (परिचारिकाओं) को अछूत बन जाना चाहिए और इसी प्रकार किस्तानों, मुसलमानों और बड़ी २ ऊंची जाति के नामवाले हिन्दुओं को भी जो खाने के लिए या बलि देने के लिए जानवरों को मारते हैं, अछूत बन जाना चाहिए।

इस दलील से तो घोर द्वेष की गन्ध आती है कि चूंकि कसाईखानों, ताड़ी की दुकानों और वेश्यालयों को अलग रखा जाता है इसीलिए अछूतों को भी अलग रखना चाहिए। कसाईखानों और शराब की दुकानों को अलग रखा जाता है और रखना चाहिए ही परन्तु कसाइयों और कलालों को तो कोई अलग नहीं करता है। वेश्याओं को अलग रखना चाहिए क्योंकि उनका पेशा घृणित है और समाज की उन्नति के लिए बाधा स्वरूप है। परन्तु इधर अछूतों का पेशा तो न केवल इष्ट ही है बल्कि समाज के हित के लिए परमावश्यक है।

यह कहना तो गुस्ताखी की हद है कि अछूतों को परलोक के हक तो प्राप्त हैं। यदि परलोक के अधिकार भी छीन लेना अपने ही हाथ में होता तो बहुत कुछ संभव है कि अछूतपने की राक्षसी प्रथा के समर्थक उनको वहां भी अलग ही छांट देते।

यह कहना तो लोगों की आंखों में धूल झोंकना है कि गान्धी अछूतों को छू सकता है और और लोग नहीं मानों अछूतों को छूना या उनकी सेवा करना इतने बड़े दोष हैं कि जिस के लिए वैसे ही आदमियों की जरूरत है जो अछूत रूपी रोगाणुओं से अपने को बचा लेने की विशेष शक्ति रखते होवें। मुसलमानों, क्रिस्तानों को तथा और लोगों को जो अछूतपने को नहीं मानते हैं, कौन सी नरकयातना ही आयगी यह तो भगवान् ही जानें।

शारीरिक गुप्तकत्व की दलील को तो उचित से अधिक दूर तक खींचा गया है। ऊंची जाति के सब आदमी न तो कस्तूरी के ऐसे सुगन्धवाले हैं और न अछूत ही प्याज के ऐसे दुर्गन्ध करते हैं। ऐसे हजारों अछूत हैं जो कभी भी ऊंची जाति के नामवालों से हजार गुने अच्छे हैं।

यह देख कर कष्ट होता है कि अछूतपने के विरुद्ध ५ बरसों के लगातार प्रचार के बाद भी आज कितने पढ़े लिखे विद्वान् मनुष्य निकले हैं जो इस अनीति मूलक और दूषित रिवाज का समर्थन करते हैं। विद्वानों में भी अस्पृश्यता के भाव का रहना, अस्पृश्यता को कोई प्रतिष्ठा नहीं दिला देता है बल्कि इससे तो हम निराश हो जाते हैं कि चारित्र्य और समझदारी की केवल शिक्षा से ही कुछ वृद्धि हो सकती है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

बलात्कार वैधव्य

सर गंगाराम ने हिन्दुस्तान में और अलग अलग प्रान्तों में विधवाओं की संख्या के अंक प्रकाशित किये हैं। ये अंक काम के हैं और प्रत्येक सुधारक के हाथ में रहने चाहिए।

सर गंगाराम के मतानुसार सुधार का जो क्रम है उससे तो बहुत कम आदमी सहमत होंगे। वे यह क्रम देते हैं:—

पहले सामाजिक सुधार

पीछे आर्थिक सुधार

अन्त में स्वराज या राजनीतिक उद्धार।

पहले जमाने के सर गंगाराम के ऐसे ही और उत्साही समाज-सुधारकों का बिल्कुल हूबहू ऐसा ही मत नहीं था। रानडे, गोखले, भन्डारकर ने स्वराज को समाज-सुधार के समान महत्व दिया था। लोकमान्य तिलक भी समाज-सुधार में किसी से कम उत्साही नहीं थे। परन्तु उन्होंने या उनके पहले के लोगों ने सभी प्रकार के सुधारों का साथ २ होना उचित और आवश्यक माना था। सच पूछो तो लोकमान्य और गोखले तो राजनीतिक सुधार को और सभी सुधारों से अधिक आवश्यक मानते थे। उनका मत था कि हमारी राजनीतिक गुलामी ने हमें और किसी काम के लायक ही नहीं रख छोड़ा है।

बात यह है कि राजनीतिक उद्धार का अर्थ होता है सार्वजनिक चेतनता की जागृति। राष्ट्रीय प्रगति के और सभी अंगों पर इसका प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता। सभी सुधारों का अर्थ जागृति ही है। एक बार जाग्रत हो जाने पर केवल एक विभाग में सुधार कर के ही राष्ट्र का चुप बैठना असम्भव है। इसलिए सभी आन्दोलनों को चलना ही चाहिए और साथ २ चलना चाहिए

सुधारों के क्रम को ले कर सर गंगाराम से झगड़ने की जरूरत तो किसी को है नहीं। राजनीतिक या आर्थिक उद्धार के लिए उनके बतलाये हुए उपाय को चाहे भले ही न मानें परन्तु सामाजिक सुधार में सर गंगाराम के उत्साह की तो प्रशंसा ही करनी पड़ेगी। जो अंक उन्होंने दिये हैं वे सचमुच ही भयंकर हैं। वे पूछते हैं कि इन अंकों को देख कर, जिनसे बाल्य-विवाह और बलात्कार वैधव्य से फैली हुई दुर्दशा का पता लगता है, कौन नहीं रो देगा? १९२१ ई० की मनुष्य गणना के अनुसार उस साल के हिन्दू विधवाओं की संख्या के ये अंक हैं:

५ वर्ष तक की विधवायें	११,८९२
५-१० ,, ,,	८५,०३७
१०-१५ ,, ,,	२३२,१४७
	३२९,०७६

पिछली दो मनुष्य गणनाओं के भी अंक दिये गये हैं। उन दो गणनाओं की संख्याओं से यह संख्या कुछ बड़ी ही है। दूसरी जाति की विधवाओं की भी संख्या दी हुई है। उससे तो इसका और भी अधिक पता चलता है कि हिन्दू बाल-विधवाओं पर कितना अत्याचार किया गया है। धर्म के नाम पर हम गोरक्षा के लिए शोर करते हैं परन्तु मनुष्य रूप में इन बाल-विधवा रूपी गायों की हम रक्षा नहीं करते। धर्म के लिए हम जबरदस्ती भी करेंगे परन्तु धर्म के ही नाम पर हम ३ लाख ऐसी बाल-विधवाओं को बलात्कार वैधव्य देते हैं जिन्होंने विवाह-संस्कार का अर्थ भी नहीं समझा है। छोटी बच्चियों को जबरन विधवा बना देना ऐसा पाप है जिसका कड़वा फल हम बराबर चख रहे हैं। हमारी आत्मा यदि कुण्ठित न होती तो १५ वर्ष से पहले हम विवाह ही नहीं होने देते, वैधव्य की तो बात ही दूर है और यह कह देते कि इन तीन लाख लड़कियों का तो कभी भी धार्मिक रीति से विवाह हुआ ही नहीं। इस प्रकार के वैधव्य का विधान किसी भी शास्त्र में नहीं है। जिस महिला ने अपने पति के प्रेम का अनुभव कर लिया है और तब स्वेच्छा से वैधव्य स्वीकार किया है उसके वैधव्य से उसका जीवन पवित्र होता है और चमक उठता है, उसका घर पावन बन जाता है और धर्म की भी उन्नति होती है। धर्म या रिवाज का जबरन दिया हुआ वैधव्य असह्य हो जाता है और तब गुप्त पाप से अपवित्रता फैलती है और धर्म की अवनति होती है।

और जब हम देखते हैं कि ५० वर्ष के या उससे भी अधिक उमर के बूढ़े और रोगी मनुष्य छोटी बच्चियों से विवाह करते हैं या बहुधा करारी कर के उन्हें खरीदते हैं, तब भी क्या हमें यह वैधव्य असह्य नहीं मालूम होता? जब तक हमारे यहां हजारों विधवायें पड़ी हुई हैं, हम दल-दल में बैठे हुए हैं, जो न जाने कब धंस जाय। यदि हमें पवित्र बनना है, यदि हमें हिन्दू-धर्म की रक्षा करनी है तो बलात्कार वैधव्य रूपी इस विष से मुक्त होना ही होगा। जिनके यहां बाल-विधवायें हैं, वे पूरी हिम्मत कर के अपनी बाल-विधवाओं का—पुनर्विवाह नहीं बल्कि अच्छी तरह से ठिकाने से—विवाह कर दें। पुनर्विवाह तो यह नहीं है क्योंकि पहले उनका कभी सच्चा विवाह हुआ ही नहीं था।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

बालिका हत्या

नवजीवन के एक पाठक लिखते हैं:—

"अगले सोमवार, आषाढ़ सुदि ९ मी के दिन १२ वर्ष की एक निर्दोष बालिका की वृद्ध विवाह की वेदी पर बलि होने वाली है। वर महाराज नागर ब्राह्मण हैं। उमर ५५ वर्ष की होगी! साल में ३६५ दिन दवा के भरोसे जीते हैं। उनके लड़के लड़कियां भी है। लड़की बेचारी के माबाप की है। क्या आप इस विवाह को रोक नहीं सकते? क्या उस बुड्ढे को आप कुछ नसीहत नहीं दे सकते? या किसी भी प्रकार, इस बालिका-हत्या को क्या आप रोक नहीं सकते?"

उन्होंने नाम और पता सब कुछ लिखा है। तो भी मैं इस विवाह को रोकने में असमर्थ हूं। पत्र पिछले सप्ताह में ही मुझे मिला। वर को या लड़की को या उनके किसी सम्बन्धी को मैं जानता नहीं। उनके गांव में कभी गया नहीं। इसे मेरी भीरुता कहो या विवेकबुद्धि परन्तु इस मामले में पड़ने की मेरी हिम्मत नहीं होती है। पत्र की सब बातें सही मानने पर तो मन में अवश्य ही ऐसी इच्छा हुई कि मैं स्वयं उस गांव में जाऊं और इस बूढ़े की जान-पहचान वालों से मिलूं या लड़की के ही सम्बन्धियों से मिल कर उन्हें समझाऊं। परन्तु इतना पुरुषार्थ मैं नहीं कर सका। तब सोचा कि नाम गांव छोड़ कर और सब बातें लिख दूं और आगे कभी कोई अगर ऐसा विकराल काम करते समय मेरा लिखा देख कर रुक जाय तो उसीमें सन्तोष मानूं।

विषयासक्ति के सिवाय, इस शादी का और क्या दूसरा कारण हो सकता है? धर्म तो यों कहता है कि मनुष्य के लिए एक ही विवाह ठीक है। स्त्री अगर बच्ची भी हो मगर विधवा हो जाय तो ऊंची जातियों में तो उसे जन्म भर विधवा ही रहना होगा। परन्तु बूढ़ी उमर में भी पुरुष, छोटी बालिका से विवाह कर सकता है! यह कैसी असह्य और दुःखजनक स्थिति है!! जाति-व्यवस्था का समर्थन यदि किसी बात से हो सके तो वह यही है कि वह ऐसे अत्याचारों को रोक सके।

जाति के यदि बड़े बूढ़े या युवक वर्ग हिम्मत करें तो ऐसी दयाजनक स्थिति न होगी और न देखने में आवेगी। दुर्भाग्य से बड़े लोग तो अपना धर्म भूल गये हैं। अपनी जाति की नैतिक प्रतिष्ठा के रक्षक होने के बदले वे तो प्रायः उसके भक्षक ही देखने में आते हैं। उनकी दृष्टि सेवा-भाव या परमार्थ के बदले स्वार्थ की हो गयी है। जहां स्वार्थ न होता है, और शुभेच्छा भी होती है वहां उनकी हिम्मत ही नहीं होती। परन्तु भिन्न २ जातियों की और हिन्दुस्तान की सारी आशा युवक वर्ग पर ही लगी हुई है। यदि युवक अपने धर्म को समझें और उसीके अनुसार चलें तो वे बहुत काम कर सकते हैं और बेजोड़ विवाह को तो वे असम्भव कर दे सकते हैं। उसमें लोकमत को जगा देने के अलावा और कुछ भी करना बाकी नहीं रह जाता है। लोकमत बन जाने पर उसके विरुद्ध जाने की वृद्ध पुरुषों की हिम्मत नहीं हो सकेगी। और अपनी लड़कियों का इस प्रकार पानी में फेंकने की पिताओं को भी हिम्मत नहीं होगी।

वृद्ध और बाल्य-विवाह करने वाले जब धर्म-रक्षा, गो-रक्षा, और अहिंसा की बातें करते हैं तो हँसी आती है। बात की बात में करने लायक सुधारों को ताक पर रख कर स्वराज्य इत्यादि की बड़ी २ बातें करना, आकाश-कुसुम तोड़ने के समान है। जिनमें स्वराज्य लेने का जोश आ गया है, उनमें साधारण सामाजिक सुधार कर लेने की योग्यता तो उससे पहले ही आ जानी चाहिए। स्वराज्य लेने की शक्ति तन्दुरुस्ती की निशानी है और जिसका एक भी अंग रोगी होवे उसे तन्दुरुस्त नहीं कहते हैं। प्रत्येक नवयुवक को, और प्रत्येक देशहितचिंतक को यह बात याद रखने की आवश्यकता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

प्रतिज्ञा का रहस्य

एक विद्यार्थी लिखते हैं—

"हम जिस काम को कर सकते हैं और करने की इच्छा भी करते हैं परन्तु फिर भी कर नहीं पाते और जब उस कार्य के करने का समय आता है तो मन की कमजोरी से या तो हमें अपनी प्रतिज्ञा स्मरण ही नहीं रहती या स्मरण रहने पर भी हम उसकी अवहेलना कर देते हैं। ऐसा उपाय बताइये कि हम उस कार्य करने के लिए बाधित हो जांय और अवश्य करें।"

ऐसा प्रश्न किसके मन में उत्पन्न न होता होगा? परन्तु प्रश्न में गलतफहमी भी है। प्रतिज्ञा मनुष्य की उन्नति करती है इसका केवल एक मात्र कारण यह है कि प्रतिज्ञा करते हुए भी उसके भंग होने की गुंजाइश होती है। प्रतिज्ञा कर चुकने के बाद अगर उसके भंग होने की गुंजाइश न हो तो पुरुषार्थ के लिए कोई स्थान न रहे। संकल्प तो संकल्पकर्ता रूपी नाविक के लिए दीप रूपी है। दीप की ओर लक्ष्य रक्खें तो अनेक तूफानों में से गुजरते हुए भी मनुष्य उबर सकता है। परन्तु जिस प्रकार यह दीपक यद्यपि तूफान को शान्त नहीं कर सकता है—तो भी वह उस तूफान के बीच से उसके सुरक्षित रूप से निकल जाने की शक्ति प्रदान करता है उसी प्रकार मनुष्य का संकल्प हृदय रूपी समुद्र में उछाल मारती हुई तरंगों से बचाने-वाली प्रचण्ड शक्ति है। ऐसी हालत में संकल्पकर्ता का पतन कभी न हो—इसका उपाय आज तक न ढूंढ़ मिला है और न वह मिलने वाला ही है। यही बात उचित भी है। यदि ऐसा न हो तो जो सत्य और यमनियमादि की महत्ता है वह जाती रहेगी। सामान्य ज्ञान प्राप्त करने में अथवा लाख दसलाख रुपया एकत्रित करने में मनुष्य भारी प्रयत्न करता है, उत्तर ध्रुव जैसी साधारण वस्तु का दर्शन करने के लिये अनेक मनुष्य अपनी जान-माल को जोखम में डालने में भय नहीं खाते हैं तो राग द्वेष इत्यादि रूपी महा शत्रुओं को जीतने के लिए उपर्युक्त प्रयत्नों की अपेक्षा सहस्रगुना प्रयत्न करना पड़े तो उसमें आश्चर्य और क्षोभ क्यों हो? इस प्रकार की अमर विजय प्राप्त करने के प्रयत्न करने में ही सफलता है। प्रयत्न ही विजय है। यदि उत्तर ध्रुव का दर्शन न हुआ तो सब प्रयत्न व्यर्थ ही माना जाता है किन्तु जब तक शरीर में प्राण रहे तब तक राग-द्वेष इत्यादि को जीतने में जितना प्रयत्न किया जाय उतना हमारी प्रगति का ही सूचक है। ऐसी वस्तु के लिए स्वल्प प्रयत्न भी निष्फल नहीं होता है—ऐसा भगवान का वचन है।

इसलिये मैं इस विद्यार्थी को तो इतना ही आश्वासन दे सकता हूं कि उनको प्रयत्न करते हुये हर्गिज निराश न होना चाहिए। और न संकल्प को छोड़ना चाहिए—बल्कि 'अशक्य' शब्द को अपने शब्द-कोष से पृथक कर देना चाहिए। संकल्प का स्मरण यदि भूल जाय तो प्रायश्चित करना चाहिए उसका पूरा ख्याल रखना चाहिए कि जहां भूले वहीं से फिर चले या मन में दृढ़ विश्वास रक्खे कि अन्त में जीत तो उसीकी होगी। आज

तक किसी भी ज्ञानी ने इस प्रकार का अनुभव नहीं बतलाया है कि असत्य की कभी विजय हुई है। बरन् सब ने एक-मत हो कर अपना यह अनुभव पुकार २ कर बतलाया है कि अन्त में सत्य ही की जय होती है। उस अनुभव का स्मरण करते हुए तथा शुभ काम करते हुए जरा भी संकोच न करना चाहिए और शुभ संकल्प करते हुए किसीको डरना भी न चाहिए। प. रामभजदत्त चौधरी एक कविता लिख कर छोड़ गये हैं। उसका एक पद यह है:—

"कधि नहिं हारना भावें साडी जान जावे"

मोहनदास करमचंद गांधी

अनीति की राह पर

(५)

ब्रह्मचर्य से होने वाले शारीरिक लाभों का विचार हो चुका। अब लेखक इसके नैतिक और मानसिक लाभों पर प्रो॰ मोन्टेगजा का अभिप्राय व्यक्त करते हैं:—

ब्रह्मचर्य से तुरत ही होने वाले लाभों का अनुभव सभी कर सकते हैं—नवयुवक तो विशेष कर के। ब्रह्मचर्य से तुरत ही स्मरण-शक्ति स्थिर और संग्राहक, बुद्धि उर्वरा, और इच्छा-शक्ति जबर्दस्त हो जाती है। मनुष्य के सारे जीवन में वह परिवर्त्तन आ जाता है जिसका अनुभव स्वेच्छाचारियों को कभी हो नहीं सकता। ब्रह्मचारी नवयुवकों की प्रफुल्लता, चित्त की शान्ति और चमक और उधर इन्द्रियों के दासों की अशान्ति बेचैनी और घबड़ाहट में आकाश पाताल का अंतर होता है। भला इन्द्रिय-संयम से भी कोई रोग होता हुआ सा कभी सुना गया है? परन्तु इन्द्रियों के असंयम से होने वाले रोगों को कौन नहीं जानता? शरीर तो नष्ट ही जाता है। उससे भी बुरा होता है मन और बुद्धि का बिगड़ जाना। स्वार्थ का प्रचार, इन्द्रियों की उद्दाम प्रवृत्ति, चारित्र्य की अवनति ही तो सर्वत्र सुनने में आती है।

इतना होने पर भी वे लोग जो योगनाश को आवश्यक मानते हैं कहते हैं कि इस पर रोक लगा कर तुम हमारे इस अधिकार पर कि हम अपने शरीर का मन-माना व्यवहार करें रोक लगाते हो। इसका भी उत्तर लेखक ने इस प्रकार दिया है कि समाज की उन्नति के लिये यह रोक आवश्यक है।

उनका कहना है—समाज-शास्त्री के सामने कर्मों के परस्पर आघात प्रतिघात का ही नाम जीवन है। इन कर्मों का परस्पर कुछ ऐसा अनिश्चित और अज्ञात सम्बन्ध है कि कोई एक भी ऐसा कर्म हो नहीं सकता जिसको हम अकेला कह सकें। उसका प्रभाव सर्वत्र पड़ेगा ही। हमारे छिपे से छिपे कर्मों का, विचारों का, मनोभावों का ऐसा गहरा और दूर तक प्रभाव पड़ सकता है कि उसका अन्दाजा लगाना भी हमारे लिये असम्भव हो जावे। यह कोई ऊपर से हमारा ओढ़ा हुआ नियम नहीं है। यह मनुष्य का स्वभाव है—प्रकृति है। मनुष्य के सभी कामों के इस अखण्ड सम्बन्ध का विचार न कर के कभी २ कोई समाज कुछ विषयों में व्यक्ति को स्वाधीन बना देना चाहता है। उस स्वाधीनता को स्वीकार करने से ही व्यक्ति अपने को छोटा बना लेता है—अपना महत्व खो देता है।

इसके बाद लेखक ने यह दिखलाया है कि जब हमें सब जगह सड़क पर थूकने तक का अधिकार नहीं है तो भला वीर्य रूप इस महा शक्ति को मन-माना खर्च करने का अधिकार हमें कहां से मिल सकता है? क्या यह काम ऐसा है जो ऊपर के बतलाये हुए समस्त कामों के पारस्परिक अखंड सम्बन्ध से अलग है? बल्कि सच पूछो तो इसकी गुरुता के कारण तो इसका प्रभाव और भी गहरा हो जाता है। देखो अभी एक नवयुवक और लड़की ने यह सम्बन्ध किया है। उसमें वे समझते हैं कि वे स्वतन्त्र हैं—उस काम से और किसीको कुछ मतलब नहीं—वह केवल उन दोनों का ही है। वे अपनी स्वतन्त्रता के भुलावे में पड़ कर यह समझते हैं कि इस काम से समाज को न तो कोई सम्बन्ध है और न समाज का उस पर कुछ नियन्त्रण ही है। यह बच्चों का लड़कपन है। वह नहीं जानता कि हमारे गुह्य और व्यक्तिगत कर्मों का अत्यन्त दूर के कामों पर भी भयानक असर पड़ता है। इस प्रकार समाज को तुम नष्ट करना चाहते हो। चाहे तुम चाहो या न चाहो परन्तु जब तुम केवल आनन्द के लिये अल्प स्थायी या अनुत्पादक ही सही परन्तु यौन सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार दिखलाते हो तो तुम समाज के भीतर भेद और भिन्नता के बीज डालते हो। हमारे स्वार्थ या स्वच्छन्दता से हमारी सामाजिक स्थिति बिगड़ी हुई तो है ही परन्तु अभी भी सभी समाजों में ऐसा ही समझा जाता है कि उत्पादिका शक्ति के व्यवहार सुख में जो जिम्मेदारी आ पड़ती है उसे सब कोई खुशी २ उठावेंगे। इस जिम्मेदारी को भूल जाने से ही आज पूंजी और श्रम, मजदूरी और विरासत, कर और सैनिक-सेवा, प्रतिनिधित्व के अधिकार इत्यादि पेचीले सवालों का जन्म हुआ है। इस भार को अस्वीकार करने से एक बार में ही वह व्यक्ति समाज के सारे संगठन को हिला देता है। और इस प्रकार दूसरे का बोझा भारी कर आप हलका होना चाहता है, इसलिए वह किसी चोर डाकू या लुटेरे से कम नहीं कहा जा सकता। अपनी इस शारीरिक शक्ति के सुव्यवहार के लिये भी समाज के सामने हम वैसे ही जिम्मेदार हैं जैसे अपनी और शक्तियों के लिए। हमारा समाज इस विषय में निरक्ष है और इसलिये उसे हमारी अपनी समझदारी पर ही उसके उचित उपयोग का भार रखना पड़ा है, इस कारण इसकी जिम्मेदारी तो और भी कुछ बड़ी ही रहनी चाहिए।

स्वाधीनता बाहर से तो सुख सी मालूम होती है परन्तु सचमुच में वह तो एक भार सी है। इसका अनुभव तुम्हें पहली बार में ही हो जाता है। तुम समझते हो कि मन और विवेक दोनों में एकता है परन्तु दोनों में तुम्हारी ही शक्ति है और दोनों में बहुत भेद देखने में आया करता है। उस समय किसकी मानोगे? तुम्हारी विवेक बुद्धि से जो उत्पन्न होता है वह या तुम्हारी नीची से नीची इन्द्रिय-लालसा से? यदि विवेक की इन्द्रिय-लालसा के ऊपर विजय होने में ही समाज की उन्नति है तब तो तुम्हें इन दोनों में से एक बात चुन लेने में कोई कठिनाई नहीं होगी। परन्तु तुम यह भी कह सकते हो कि मैं शरीर और आत्मा दोनों का साथ २ पारस्परिक विकास चाहता हूं। ठीक। परन्तु यह भी याद रखो कि आत्मा के कुछ भी विकास के लिए कुछ न कुछ तो संयम तुम्हें करना ही होगा। पहले इन विलास के भावों को नष्ट कर दो तो पीछे तुम जो चाहोगे हो सकोगे।

महाशय गैबरियल सीलेस भी कहते हैं कि हम बार बार कहते फिरते हैं हमें स्वतन्त्रता चाहिए—हम स्वतन्त्र होंगे। परन्तु यह स्वतन्त्रता कर्त्तव्य की कैसी कठोर बेड़ी बन जाती है यह हम नहीं जानते। हमें यह नहीं मालूम कि हमारी इस नकली स्वतन्त्रता का अर्थ है इन्द्रियों की गुलामी जिससे हमें न तो कभी कष्ट का अनुभव होता है और न हम कभी इसलिए उसका विरोध ही करते हैं।

संयम में शान्ति है और असंयम तो अशान्ति रूप महाशत्रु का घर है। कामेच्छायें तो कभी भी कष्टदायी हो सकती हैं परन्तु युवावस्था में तो यह महाव्याधि हमारी बुद्धि को बिलकुल बिगाड़ दे सकती है। जिस नवयुवक का किसी स्त्री से पहले पहल संबंध होता है वह नहीं जानता कि वह अपने नैतिक मानसिक और शारीरिक जीवन के अस्तित्व के साथ खेल रहा है। उसे यह भी नहीं मालूम कि उसके इस कार्य की याद उसे बार २ आकर सतायेगी और उसे अपनी इन्द्रियों की बड़ी बुरी गुलामी करनी पड़ेगी। कौन नहीं जानता कि एक से एक अच्छे लड़के, जिन से आगे बहुत कुछ आशा की जा सकती थी, चौपट हो गये और उनके पतन का आरम उनके पहली बार के नैतिक पतन से ही हुआ था।

मनुष्य का जीवन तो उस बरतन के समान है जिस में तुम यदि पहली बूंद मे ही मैला छोड़ देते हो तो फिर लाख पानी डालते रहो सभी का सभी गंदा होता जायगा।

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध शरीर शास्त्री महाशय केन्ड्रिक ने भी तो कहा है कि कामेच्छा की सन्तुष्टि केवल नैतिक दोष भर ही नहीं है। उससे शरीर को भी हानि पहुंचती है। यदि इस इच्छा के सम्मुख तुम झुकने लगो तो वह तुम्हारे ऊपर और भी अत्याचार करने लगेगी और यदि तुम्हारा मन सदोष है तो तुम उसकी बातें सुनोगे और उसका बल बढ़ाते जाओगे। ध्यान रखो कि प्रत्येक बार का नया काम, तुम्हारी गुलामी की जंजीर की एक नयी कड़ी बन जावेगी।

फिर तो इसे तोड़ने की तुम्हें शक्ति नहीं रहेगी और इस प्रकार तुम्हारा जीवन, एक अज्ञान जनित अभ्यास के कारण नष्ट हो जायगा। इसका सब से अच्छा उपाय है ऊंचे विचारों को पैदा करना और सभी कामों में संयम से काम लेना।

महाशय ब्युरो ने इसके बाद डाक्टर फ़िन्क का मत दिया है कि कामेच्छा के ऊपर मन और इच्छा का पूरा अधिकार है क्यों कि यह कोई आवश्यकता नहीं है, हाजत नहीं है। यह तो केवल एक इच्छा भर है जिस का पालन हम जानबूझ कर अपनी राजी से ही करते हैं न कि स्वभाव से।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

भिखारी साधु

लोग ऐसा कहा करते हैं कि 'भिखारी साधु' शब्द में विरोध का आभास होना संभव है। लेकिन आजकल तो साधु वही कहलाते हैं जो गेरुआ वस्त्र पहनते हों—चाहे उनका हृदय भी गेरुआ हो या न हो स्वच्छ हो या मैला हो। साधु शब्द का सच्चा अर्थ तो यह है कि जिसका हृदय साधु या पवित्र हो। परन्तु ऐसे सच्चे साधु तो हम को शायद ही मिलते हैं। अगवा वस्त्रधारी असाधु साधु भीख मांगता तक नजर आता है। इसलिए इस प्रकार की भीख मांगनेवालों के लिये 'भिखारी साधु' शब्द का प्रयोग किया गया है। उन्हीं के विषय में एक भाई लिखते हैं:

"आप चरखे की प्रवृत्ति से अनेक बातें सिद्ध करने की इच्छा रखते हैं। सभी धर्म के लोगों में से क्या छोटे क्या बड़े भेद मिटाने का साधन आप चरखे को समझते हैं और यह सब ठीक है लेकिन आज शक्ति होते हुए भी बहुत भिखमंगे केवल प्रमाद वश हिंदुस्तान में बढ़ रहे है उनको आप चरखा क्यों नहीं बताते है? कोई ऐसी संस्था क्यों न खोलते हैं कि जिसमें जो भिखारी आवे वह कुछ उद्योग कर के अन्न पा सके? ऐसी कोई संस्था होगी तो दान देने की शक्तिवाले लोग भिखारियों को चिट्ठी दे कर उसी संस्था में भेज देंगे और उन्हें वहां उद्यम और अन्न मिलेगा।' यह बात तो सुन्दर है पर उस पर अमल कौन करेगा? गरीब लोगों में चरखे का प्रवेश करने मे जितनी कठिनाई है उससे अधिक कठिनाई भिखारी साधुओं में चरखा फैलाने में है। क्योंकि उसमें धर्मभावना बदलने की बात आ जाती है। ये धनवान लोग यह समझते है कि मांगनेवालों की झोली में थोड़ा बहुत जो कुछ पैसे डाल दिये-बस उतना परोपकार हो गया। पुण्य हुआ। उनको कौन समझावे कि ऐसा करने में उपकार के बदले अपकार और धर्म के स्थान पर अधर्म होता है। पाखंड बढ़ता है। छप्पनलाख नामधारी साधुओं में सेवाभाव जाग्रत हो जाय वे उद्यम कर के ही रोटी खावें, तो हिन्दुस्तान के स्वयंसेवकों का एक जबरदस्त लश्कर बना तैयार मानो। गेरुआ वस्त्रधारी लोगों को यह बात समझाना लगभग दुःसाध्य है। उनमें भी तीन प्रकार के लोग हैं। उनका एक बहुत बड़ा भाग पाखंडी और केवल आलसी बन मालपुआ खाने की इच्छा रखता है। दूसरा भाग कुछ अज्ञ है और यह माननेवाला है कि भगवाभक्ष और परिश्रम ये दोनों बातें आपस में मेल नहीं खातीं। तीसरा भाग जो कि बहुत छोटा है—वह सच्चे त्यागियों का है परन्तु ये लोग बहुत समय से यही समझते चले आये हैं कि संन्यासी से परोपकार के लिये भी उद्योग नहीं हो सकता। यदि यह तीसरा, छोटा भाग उद्योग का मूल्य समझ जावे तो भूतकाल में चाहे जो भी हुआ हो—"इस युग मे तो संन्यासी को उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये उद्योग करना आवश्यक है"—यदि यह बात यह छोटा वर्ग समझ जाय तो मान लो कि दूसरे दोनों खण्ड भी सुधर जावेंगे। परन्तु इस वर्ग को ऐसा समझाना बहुत कठिन है। कार्य धैर्य से तथा उस वर्ग की अनुभव प्राप्ति के साथ होगा। इसका अर्थ तो यह हुआ कि जब हिन्दुस्तान में चरखे का करीब करीब साम्राज्य हो जावेगा तब यह वर्ग इसकी शरण जावेगा।

चरखे के साम्राज्य के अर्थ हैं हृदयसाम्राज्य और हृदयसाम्राज्य के अर्थ हैं धर्मवृद्धि। धर्मवृद्धि होने पर यह छोटा संन्यासी वर्ग उसे बिना पहिचाने रहेगा ही नहीं।

जितनी कठिनाई संन्यासी वर्ग को समझाने में रही है लगभग उतनी ही धनिक लोगों को समझाने में रही है। धनिक लोग यदि अपना धर्म समझ जांय, आलस्य को उत्तेजना न दें और उन भिखारियों को अन्न न दे कर उद्यम ही दें तो चरखे का साम्राज्य आज ही स्थापित हो जाय। परन्तु धनिक लोगों से ऐसी आशा क्यों कर रक्खी जा सकती है? धनिक लोग औरों के मुकाबले में साधारणतया आलसी रहा करते हैं और आलस्य को उत्तेजना तो देते ही हैं। उनसे जाने या अनजाने आलसी भिक्षुओं को उत्तेजना मिल जाती है। इसलिए लेखक ने सूचना तो अच्छी ही की है, परन्तु इस पर अमल करना बहुत कठिन है— इस बात पर उसने विचार नहीं किया। ऐसा कहने के यह आशय नहीं है कि हम प्रयत्न न करें बल्कि प्रयत्न करते ही रहना चाहिए। यदि एक भी धनवान व्यक्ति, समझबूझ कर आलसी लोगों को दान देना बन्द कर दे — यदि एक ही साधु जो अपंग नहीं है उद्यम के बिना भोजन न करने का संकल्प कर के तो इतना हिन्दुस्तान का लाभ ही है। इसलिए जहां २ इस प्रकार का प्रयत्न हो सकता है वहां वहां करना ही उचित है। हां; कठिनाई को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए जिससे तात्कालिक फल न मिलने से निराशा न होने पावे और अपने साधन को हम निरर्थक न समझ लें।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

शास्त्राज्ञा बनाम बुद्धि

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ५०

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, श्रावण बदी ५, संवत् १९८५। गुरुवार, २५ जुलाई, १९२९ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

लगन का पुरस्कार

डांडेवा (पश्चिम खानदेश) के एक राष्ट्रीय विद्यालय के प्रधानाध्यापक लिखते हैं:—

"मैं यहां इस विद्यालय का प्रधानाध्यापक हूं। इस विद्यालय में मातृभाषा की ६ ठी श्रेणी तक की पढ़ाई होती है। उन दिनों जब कि असहयोग जोरों पर था, यह संस्था फलती फूलती हालत में थी, परन्तु लहर उतर गई। आन्दोलन के संचालनकर्ता लोगों के दिल पर से उस पर से विश्वास जाता रहा। किसी जमाने में इसमें १५० विद्यार्थी और ६ शिक्षक थे—अब ८५ विद्यार्थी तथा ३ शिक्षक हैं। इन विद्यार्थियों में भी — आधि से अधिक तो नन्हे बच्चे या १० वर्ष से नीची उम्र वाले बालक हैं।

पुराने प्रधानाध्यापक ने इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर मुझे जनवरी सन् १९२६ में इस संस्था को चलाने के लिये बुलाया गया। मैं गुजरात विद्यापीठ का ग्रेज्युयेट हूं। जब मैं यहां आया, तब मैंने किसी भी विद्यार्थी को खादी पहनते हुये नहीं देखा, कोई चरखे चलते हुये नहीं पाये और न किसी भी शिक्षक को अ० भा० चरखा–संघ का सदस्य ही पाया। मैंने यह भी देखा कि विद्यालय की प्रबन्धकारिणी–समिति में केवल व्यापारी लोग ही भरे हुये थे और कोई शिक्षा–विशेषज्ञ न था और वे सदस्य न तो इस संस्था के कामों में कोई उत्साह दिखाते थे और न साधारणतया राष्ट्रीय आन्दोलन में ही। वे विद्यालय को इस लिये चला रहे हैं कि प्रतिष्ठा में बट्टा न लगने पावे। मैं इस उदासीनता को दूर करने का उपाय बराबर कर रहा हूं और मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे इस काम में मुझे मार्ग दिखावें। मैंने समझा कि पहले पहल कातना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिये और खादी एवं स्वदेशी की महत्ता विद्यार्थियों को खूब समझा देनी चाहिये। मैंने चर्खा चलवाना शुरू किया, लेकिन असफल रहा। चर्खे बहुत कम तथा असन्तोषजनक थे। देखभाल मुश्किल थी। अहमदाबाद के (मजदूरों के) स्कूलों में तकली द्वारा सूत कातने की खबर ने मेरी आशा बढ़ाई। मैंने अपने विद्यालय में तकली से सूत निकलवाने की बात निश्चय कर ली। मैंने तकली पर कभी नहीं काता था। मैंने उसे सीख लिया। और अब मैं तकली पर १२५ गज फी घण्टे की रफ्तार से काफी अच्छा सूत कात लेता हूं। खुद सीख चुकने के बाद मैंने यहीं के मालपुर निवासी श्री० आप्ते से तकलियां तैयार करवा लीं और अभी एक माह हुआ, उनको विद्यालय में दाखिल कर दिया। २८ तकलियां चल रही हैं। मुझे प्रसन्नता है कि यह काम तरक्की पकड़ रहा है। जो कुछ मैं कर पाया हूं, उसका कुछ हाल यह है:—

वे सब अट्ठाइसों लड़के विद्यालय लगने पर प्रार्थना के बाद बड़े कमरे में एकत्रित होते हैं और वे आधे घंटे तक सूत कातते हैं। (इस आधे घण्टे में वे सूत लपेट भी लेते हैं) दैनिक काम की सूची रखी जाती है। पहले सप्ताह के अन्त में औसत से प्रत्येक लड़के की गति आधे घंटे में २० गज थी। दूसरे सप्ताह में २३ गज तक पहुंची—तीसरे में २७ और अब ३० गज की है। यानी वे ६० गज फी घंटे के हिसाब से कातते हैं और इसी समय के अन्दर सूत को लपेट भी लेते हैं। इस प्रकार काता हुआ अधिकांश सूत सन्तोषजनक है। शेष क्रमशः अच्छा हो रहा है। ५ विद्यार्थी तो १०० गज फी घंटे के हिसाब से कातते हैं, ५, ८० के हिसाब से और ६, ४० के। केवल ३ ही लड़के ऐसे हैं जो १ घंटे में ४० गज से कम कात पाते हैं!

दो विद्यार्थी शुद्ध खादी मार्च से पहिनने लगे और वे अखिल भारत चरखा संघ के उत्साहपूर्ण सदस्य हो गये हैं। तीन और खादी पहिनने लगे हैं। और उनका काता हुआ सूत अगले माह से साबरमती पहुंचने लगेगा। तीनों अध्यापकगण (मैं भी शामिल हूं) तकली के द्वारा कातते हैं।

विद्यालय के बाहर भी हमने तकली फैलायी है और अब ५ अखिल–भारत–चरखा–संघ के 'अ' दर्जे के सदस्य हो गये हैं। इनमें से एक तो निरंतर तकली का सूत संघ को भेजता रहता है। उनमें से एक व्यापारी है और एक आयुर्वेदिक चिकित्सक। तीनों कहते हैं कि चरखा चलाने के लिये हम को अवकाश न मिलता था। और चूंकि अब हमारी जेबों में तकली पड़ी रहती है, इसलिये महीने में १००० गज सूत भेजना कोई कठिन बात न होगी।"

इस रिपोर्ट से साफ पता चलता है कि लगन क्या क्या कर सकती है। १५० लड़कों के साथ यह विद्यालय केवल इसीलिये

राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता था कि सरकार की छाया में नहीं था। किसी विद्यालय को, राष्ट्रीय कहलाने के लिये, कांग्रेस के द्वारा दी हुई परिभाषा के अनुसार होना चाहिये। इसके अनुसार, अन्य बातों के साथ, उसमें कताई भी होनी चाहिये और बालकों तथा बालिकाओं को खादी जरूर पहिनना चाहिये। मातृ-भाषा के अतिरिक्त, पाठशाला में उन्हें हिन्दी लेना चाहिये। परन्तु अनेक ऐसे विद्यालय, जो कि यद्यपि कांग्रेस की इन शर्तों के अनुसार नहीं चलते हैं --राष्ट्रीय कहे जाते हैं! इसलिये अपने विद्यालय में खादी और कताई को दाखिल करने के उपलक्ष में प्रधानाध्यापक महोदय हमारी मुबारिकबादी के पात्र हैं। मैं आशा करता हूं कि इस विद्यालय का बोर्ड इन प्रधानाध्यापक के प्रयत्न को सहारा देगा। और प्रधानाध्यापक जी को यह जान लेना चाहिये कि यदि वे कताई का काम सफल होते देखना चाहते हैं, तो उनके विद्यालय में लड़कों द्वारा रुई की धुनाई का काम दाखिल होना निहायत जरूरी है। जबतक वे कताई के पहले वाले सब प्रयोग न जानते हों, तब तक वे सच्चे कतैये नहीं कहे जा सकते।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

अनीति की राह पर

(४)

भ्रष्टाचार तथा कृत्रिम साधनों के द्वारा उसकी वृद्धि एवं उसके भयंकर परिणामों की चर्चा कर चुकने के बाद लेखक उनके निवारण करने वाले उपायों का निरीक्षण करता है। मैं उस हिस्से को छोड़े देता हूं जिस में कायदे कानून, उनकी जरूरत तथा उनके सर्वथा अशक्य होने का जिक्र है। आगे चल कर वह लोकमत को शिक्षित करने के द्वारा विवाहित पुरुषों के लिये ब्रह्मचर्य धर्म-स्वरुप अख्त्यार करने की आवश्यकता पर विचार करता है। वह उस बड़े मनुष्य-समुदाय के विवाह करने के कर्तव्य पर भी विचार करता है, जो कि सदा के लिये अपनी पशु-वृत्ति को दमन नहीं कर सकते, परन्तु जिन्हें एक बार विवाह कर लेने के बाद यह समझ लेना चाहिये कि हम दम्पति आपस में एक दूसरे के साथ वफादारी का बर्ताव रक्खेंगे और विषयभोग में अतिशयता न करेंगे। वह शुद्धाचार के विरुद्ध इस दलील की परीक्षा करता है कि यह उपदेश "पुरुष या स्त्री की प्राकृतिक वृत्ति के विरुद्ध एवं उसकी तन्दुरुस्ती में फरक डालने वाला है और यह उपदेश किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता, उसके सुख से रहने तथा अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने के हक पर असह्य आक्रमण है।

लेखक इस सिद्धान्त का विरोध करता है कि जननेन्द्रिय भी अन्य इन्द्रियों की भांति अपना भोग चाहती है। उसका कथन है कि यदि ऐसा होता तो हम सङ्कल्प-बल की उस निर्विवाद शक्ति को कैसे बता सकते, जो कि उस पर पूर्ण अंकुश रखती है? इच्छा का जाग्रत होना, जिसे कि कट्टर यहूदी एक लिङ्ग-सम्बन्धी आवश्यकता बतलाते हैं, उन अगणित उत्तेजनाओं का फल है, जिन्हें हमारी सभ्यता युवकों और युवतियों के सामने उनके सामान्य रूप से बालिग होने के कुछ वर्ष पहले ही प्रस्तुत कर देती है। मैं यहां डाक्टरों की एक बहुमूल्य सम्मति भी जरूर देना चाहता हूं, जो कि ब्यारो की पुस्तक में इस मत के प्रतिपादन में दी गई है कि आत्म-निग्रह न केवल हानिरहित है, बल्कि स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिये अत्यावश्यक तथा नितान्त संभव भी है।

ट्यूबिनन विश्वविद्यालय के अस्टर्लन का कथन है कि काम-वासना इतनी प्रबल नहीं होती कि विवेक या नैतिक बल से रोकी या पूर्णतया दमन न की जा सके। किसी युवा या युवती को उचित अवस्था पाने के पूर्व तक संयम से रहना सीखना चाहिये। उसे जान लेना चाहिये कि उसका हृष्ट पुष्ट शरीर तथा उसकी दिन पर दिन बढ़ती हुई स्फूर्ति उसके आत्मत्याग का पुरस्कार होगी।

"यह बात जितनी बार कही जावे, थोड़ी है कि नैतिक तथा शरीर-सम्बन्धी संयम और पूर्ण ब्रह्मचर्य का एक साथ रहना भली प्रकार सम्भव है और यह भी कि विषयभोग न तो उपरोक्त एक भी पहलू से और न धर्म की दृष्टि से न्यायसंगत है।

लन्दन के रायल कालेज के प्रोफेसर मि० सर लायनल बिली कहते हैं कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और शरीफ से शरीफ पुरुषों के उदाहरण ने यह अनेक बार सिद्ध कर दिया है कि बड़े से बड़े विकार भी सच्चे और मजबूत दिल से तथा रहन-सहन और पेशे के बारे में उचित सावधानी रखने से रोके जा सकते हैं। जब कभी संयम का पालन कृत्रिम साधनों से ही नहीं, बल्कि उसे स्वेच्छा से आदत में दाखिल कर के किया गया है, तब तब उसने नुकसान नहीं पहुंचाया। संक्षेप में अविवाहित रहना अति दुष्कर नहीं है, लेकिन तभी जब कि वह किसी मनोवृत्ति का स्थूल रूप हो। पवित्रता के अर्थ कोरे विषय-निग्रह के ही नहीं हैं, बल्कि विचारों में शुचिता तथा उस शक्ति के भी हैं, जो कि अटल विश्वास का ही परिणाम है।

तत्ववेत्ता फोरल कहता है कि व्यायाम से प्रत्येक प्रकार का शारीरिक बल बढ़ता और मजबूत होता है --- उसके विपरीत, किसी प्रकार की अकर्मण्यता उसके उत्तेजित करने वाले कारणों के प्रभाव को दबा देती है।

"विषय-सम्बन्धी सभी उत्तेजक बातें इच्छा को अधिक प्रबल कर देती हैं। उन बातों से बचने का फल यह होता है कि वे मन्द हो जाती हैं और इस प्रकार इच्छा धीरे धीरे कम हो जाती है। युवक लोग यह समझते हैं कि विषय-निग्रह असाधारण एवं असंभव है। लोग वे जो संयम से स्वयं रहते हैं, सिद्ध करते हैं कि पवित्रता का जीवन बिना तन्दुरुस्ती बिगाड़े रहा जा सकता है।

एक दूसरा विद्वान कहता है कि कि मैं २५ या ३० वर्ष तथा उससे भी अधिक आयु वाले लोगों को, जिन्होंने पूर्ण संयम रक्खा है, और उन लोगों को भी जिन्होंने अपने विवाह के पूर्व उसे कायम रक्खा है, जानता हूं। ऐसे पुरुषों की कमी नहीं है; हां, यह जरूर है कि वे अपना ढिंढोरा नहीं पीटते हैं।

मेरे पास बहुत से विद्यार्थियों के ऐसे अनेक खानगी पत्र आये हैं, जिन्होंने इस बारे में आपत्ति की है कि मैंने उस बात पर काफी जोर नहीं दिया है कि विषयसंयम सुसाध्य है।

डा० एक्टन का कथन है कि विवाह के पूर्व युवकों को पूर्ण संयम से रहना चाहिये और वे रह भी सकते हैं।

सर जेम्स पैगट की धारणा है कि पवित्रता, जैसे कि आत्मा को क्षति नहीं पहुंचाती, उसी प्रकार शरीर को भी नहीं---और संयम सब से उत्तम आचरण है।

डा० पेरियर कहते हैं कि पूर्ण संयम के बारे में यह कल्पना करना कि वह खतरनाक है---- बिल्कुल झूठा ख्याल है और उसको निर्मूल करने की चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि यह बच्चों ही के मन में नहीं घर करता है, बल्कि उनके माता पिताओं के भी। नवयुवकों के लिये ब्रह्मचर्य शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक--तीनों दृष्टियों से, उनकी रक्षा करने वाली चीज है।

मि० ई० क्लार्क कहते हैं कि संयम से कोई नुकसान नहीं पहुंचता --- और न वह बढ़त को रोकता है, वरन् बल बढ़ाता और बुद्धि तीव्र करता है। असंयम से आत्म-शासन जाता रहता

है, आलस्य बढ़ता और काया कुंठित एवं पतित होती जाती है और शरीर ऐसे रोगों का शिकार बन जाता है, जो कि पुश्त-दर-पुश्त असर करते हैं। यह कहना कि असंयम नवयुवकों के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है — केवल भूल ही नहीं है, बल्कि कठोरता भी है। यह झूठ भी है और हानिकारक भी।

डा० सरब्लैड ने लिखा है कि असंयम के दुष्परिणाम तो निर्विवाद और सर्वविदित हैं, परन्तु संयम के दुष्परिणाम कपोल-कल्पित मात्र हैं। उपरोक्त दो बातों में पहली बात का अनुमोदन तो बड़े २ विद्वान करते हैं, लेकिन दूसरी बात अपने सिद्ध करने वालों की प्रतीक्षा अब तक कर रही है।

डाक्टर मौंटेगजा अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य के द्वारा उत्पादित रोग मैंने नहीं देखे। आम तौर पर सभी लोग और विशेष रुप से नवयुवक गण ब्रह्मचर्य के तात्कालिक लाभों का अनुभव कर सकते हैं।

डाक्टर ड्यूबाय इस बात का पुष्टिकरण करते हुए कहते हैं कि उन आदमियों की बनिस्बत, जो कि पशु-वृत्ति के चंगुल से बचना जानते हैं, वे लोग नामर्दी के अधिक शिकार होते हैं, जो कि विषय-शमन के लिए अपनी लगाम बिल्कुल ढीली किये रहते हैं। उनके इस वाक्य का समर्थन डाक्टर फीरी पूरे तौर पर करते हैं और फरमाते हैं कि जो लोग शारीरिक संयम के योग्य हैं, वे अपने स्वास्थ्य के बारे में किसी प्रकार का भय न किये हुए ऐसा कर सकते हैं। और न स्वास्थ्य विषय-भोग की इच्छा को शान्त करने के ऊपर निर्भर ही रहता है।

प्रोफेसर एल्फ्रेड फोर्नियर लिखते हैं "कुछ लोगों ने, युवकों के आत्म-संयम के खतरों के बारे में भद्दी और गाम्भीर्यहीन बातें कही हैं।" परन्तु मैं विश्वास दिलाता हूं कि यदि इन विपत्तियों का अस्तित्व कहीं है, तो मैं उनसे बिल्कुल अनभिज्ञ हूं। और यद्यपि अपने पेशे में उनके बारे में जानकारी पैदा करने का पूरा मौका रखता था, तो भी एक चिकित्सक की हैसियत से उन के अस्तित्व का मेरे पास प्रमाण नहीं है।

इसके अतिरिक्त, शरीर-शास्त्र के ज्ञाता होने की हैसियत से मैं तो यह कहूंगा कि २१ वर्ष या उसके लगभग अवस्था के पहले सच्ची वीर्य-पुष्टता आती ही नहीं है और विषय-भोग की आवश्यकता उसके पहले उठती हुई प्रतीत नहीं होती— और आम तौर पर उस हालत में जब कि उचित काल से पूर्व ही कुत्सित उत्तेजनाओं ने उस कुवासना को उत्तेजित न किया हो। विषयमान प्रायः बुरे रास्ते पर किये हुए लालन-पालन का फल है।

खैर कुछ भी हो, यह बात तो निश्चित ही है कि इस प्रकार का खतरा, स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार चलने की अपेक्षा उसको रोकने में बहुत कम है। मेरा आशय आप समझ ही गये होंगे।

"अन्त में,—इन विश्वस्त प्रमाणों के पश्चात् हम उस प्रस्ताव का उद्धरण यहां करना चाहते हैं, जो कि सन् १९०२ ई० में ब्रसेल्स नगर में एक कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर १०२ सदस्यों की उपस्थिति में, जिसमें कि संसार भर के विशेषज्ञ आये हुए थे, स्वीकृत* हुआ था। वह यह है कि नवयुवकों को यह शिक्षा सर्वोपरि देना चाहिए कि ब्रह्मचर्य वह चीज है, जो कि न केवल हानिप्रद ही नहीं है, बल्कि जिसकी सिफारिश शरीर-रक्षा-सम्बन्धी उद्देशों को दृष्टिपथ में रख कर करनी चाहिए।"

कुछ वर्ष पूर्व एक ईसाई विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विभाग के सभी आचार्यों ने सर्व-सम्मति से यह घोषित किया था कि "हम सब लोगों के अनुभव में यह आया है कि यह कहना कि ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होगा, निराधार है। हमारी जानकारी में, इस प्रकार के जीवन से कोई हानि होती है—यह नहीं आया है।"

ब्यूरो आगे चल कर लिखता है कि अच्छा, मामले की सुनवाई हो गई और सुनीति-वेत्ता और समाज-शास्त्र-धुरंधर भी वही खुली हुई बात कह सकते हैं, जो कि रस्किन ने लिखी है—कि भोजन या व्यायाम की तरह विषय-भोग की इच्छा थोड़ी सी अनिवार्य तृप्ति की दरकार नहीं रखती है। यह एक सच बात है कि दो-चार असाधारण व्यक्तियों की बात छोड़ कर पुरुष या स्त्री बिना किसी बड़ी उथल-पुथल के—यहां तक, बिना किसी पीड़ापूर्ण असुविधा के अनुभव किये हुए ब्रह्मचर्य-मय जीवन रह सकता है। यह कहा गया है—और यह जितना कहा जाय उतना ही कम है, क्योंकि साधारण शारीरिक दशा में संयम के कारण कभी भी कोई रोग नहीं उत्पन्न होता है, और सामान्य शारीरिक दशा वाले लोग अधिकांश हैं। यह भी सच कहा गया है कि बहुत सी बीमारियां जिनको कि सब लोग जानते हैं और जो बड़ी ही खतरनाक होती हैं, असंयम से उत्पन्न होती हैं। प्रकृति ने सादी से सादी और पक्की से पक्की विधि से भोजन के द्वारा उत्पादित, आवश्यकता से अधिक शक्ति का उचित प्रबन्ध कर दिया है, जिसे कि हम मासिक-धर्म या अनायास स्खलन के रूप में पाते हैं।

"डा० वीरी इसलिए यह ठीक कहते हैं कि यह प्रश्न वास्तविक आवश्यकता या प्रकृति का नहीं है।" "यह सभी जानते हैं कि अगर भूख की तृप्ति न हो और श्वास की गति बन्द हो जाय, तो क्या दुष्परिणाम होगा। लेकिन कोई भी लेखक यह नहीं लिखता कि अस्थायी या स्थायी संयम के फल स्वरुप कौन सा हलका या भारी—रोग पैदा हो गया। अपने नैतिक जीवन में हम ब्रह्मचर्य से रहने वाले लोगों को देखते हैं जो कि न तो चारित्र्य-बल में किसी से न्यून हैं, न कम स्फूर्तिवान हैं, न कम बलवान हैं, और न यदि वे विवाह करें, तो सन्तान पैदा करने में ही कम योग्य हैं। वह आवश्यकता, जो कि इस प्रकार परिस्थितियों के अनुसार बदल सकती है, वह अभिरुचि जो तृप्ति के अभाव पर शान्त बनी रहती है, न तो आवश्यकता कही जा सकती है और न प्रकृति ही।"

"स्त्री पुरुष का सम्बन्ध यह हरगिज नहीं है कि बढ़ती हुई उम्र की शारीरिक आवश्यकता पूरी की जावे—वरन् उसके बिल्कुल विपरीत। शरीर की साधारण बढ़त के लिए यह परमावश्यक है कि पूर्ण संयम का पालन किया जाय, और जो ऐसा नहीं करते, वे अपने स्वास्थ्य को गहरी क्षति पहुंचाते हैं। सयानी उम्र होने पर बहुत सा फेरफार हो जाता है—शरीर के भिन्न २ अंगों के कार्य-सम्पादन में भारी उलट फेर होने लगता है और सामान्य उन्नति भी होने लगती है।

युवावस्था को प्राप्त बालक को अपनी समस्त शक्ति चाहिए, क्योंकि इस काल में प्रायः बीमारी को रोकने की शक्ति कम होती है, रोग और मृत्यु का इस अवस्था में, छुटपन की अपेक्षा आधिक्य रहता है। सामान्य बढ़त में या आवयविक विकास अथवा और किसी प्रकार के शारीरिक रद्दोबदल में, जिसके अन्त में बालक पुरुषत्व को प्राप्त होता है, प्रकृति को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। उस अवसर पर विषय-भोग में अतिशयता करना आपत्तिजनक है और विशेषतया जननेन्द्रिय का अकाल उपयोग।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण बदी ५ संवत् १९८३

शास्त्राज्ञा बनाम बुद्धि

वह शिक्षक, जिन्होंने अपने शिष्यों को चरखा चलाना इसलिये सिखाया था कि महात्माजी की आज्ञा है, लिखते हैं:

"२४ जून सन् १९२६ के 'यंग इन्डिया' में 'महात्माजी का हुक्म' शीर्षक आपका लेख पढ़ कर निम्न-लिखित शंकायें मेरे मन में उत्पन्न हुईं:

आप विवेक को बहुत प्राधान्य देते हैं। क्या आपने 'यंग इन्डिया' अथवा 'नवजीवन' में यह भी नहीं लिखा था कि विवेक इंग्लैंड के राजा की तरह इन्द्रिय रूपी अपने मंत्रियों के हाथ में खिलौना होते हैं? क्या आदमी प्रायः उसी दिशा में तर्क नहीं करता, जिस दिशा में उसकी इंद्रियां उसे ले जाती हैं? तब फिर आप बुद्धि को पथ-प्रदर्शक कैसे करार दे सकते हैं? क्या आप ने यह नहीं कहा है कि तर्क, विश्वास के बाद आता है? इसलिये यदि किसी व्यक्ति में कातने की रुचि नहीं है, तो उसे न कातने के पक्ष में दलायल भी मिल जावेंगे। छोटे बच्चों की विचारशक्ति पर अधिक जोर डालना कहां तक वाञ्छनीय है? उस महान् सुधारक रूसो ने कहा था कि बचपन बुद्धि की सुषुप्तावस्था है। इसलिये वे बाल्यकाल में अच्छी आदतों को महेज सिखाने के पक्ष में थे। और निस्सन्देह, लड़कों को किसी महात्मा के हुक्म के बमूजिब काम करना सिखाना—और फिर खास तौर पर तब, जब कि उस महात्मा के उपदेश में शारीरिक श्रम के लिये स्थान हो—तो एक सुटेव का ही डलवाना है। जब बच्चे बड़े होंगे, तब वे कातने के पक्ष में बहुत सी बातें ढूंढ निकालेंगे। लेकिन तब तक के लिए क्या अन्ध वीरोपासना का भाव (जैसा कि आप उसे कहना चाहते हैं) उनमें जाग्रत करना ठीक न होगा? क्या हम लोगों ने आजकल बुद्धि को एक खिलवाड़ सा नहीं बना रक्खा है? छोटी छोटी सी बातों के लिए हम लम्बी चौड़ी दलीलें ढूंढने में माथापच्ची करते हैं और तब भी सन्तुष्ट नहीं होते। बुद्धि का बेशक एक स्थान है, परन्तु जो स्थान आज कल हम लोगों ने उसे दे रक्खा है, उससे कहीं नीचा।

जब तक कि किसी व्यक्ति को पक्के तौर पर यह न याद हो कि वह पहले अमुक सम्बन्ध में वह क्या कह चुका है और किस परिस्थिति में, तब तक अपने ही विरुद्ध वाक्य उद्धृत करना ठीक नहीं है।"

जो जो बातें उक्त सज्जन मेरे द्वारा लिखित बतलाते हैं, वे बेशक मैंने किसी न किसी समय लिखी हैं—परन्तु बिलकुल दूसरी ही परिस्थिति में। जब कि कोई बात कारण सहित बिलकुल अच्छी तरह से बतलाना सम्भव है, यहां तक कि बच्चे भी खूब अच्छी तरह से उसे समझ सकते हों, तो किसी विद्वान के नाम पर उसे बतलाने और तदनुसार कार्य करने की शिक्षा देने का कोई कारण नहीं है। अक्सर करके तो यह विधि अनात्मक हुआ करती है। हरएक व्यक्ति अपनी रुचि और अरुचि रखता है। और जब कि कोई व्यक्ति 'वीर' में श्रद्धा रखने लगे, तब वह अपने विवेक को विदा कर देता है और उसका वह खिलवाड़ बना लेता है। उसी को मैं अन्ध वीरोपासना कहता हूं। वीरोपासना एक उत्तम गुण है। कोई भी राष्ट्र या व्यक्ति बिना आदर्श के उन्नति नहीं कर सकता है। उसके लिये 'वीर' प्रकाशद और उत्साह वर्धक हुआ करता है। वह भाव को कार्य में परिणत करना सम्भव करता है और शायद बिना उसके, लोग अपनी कमजोरी के कारण कार्य करने पर उद्यत न होते। वह हम को निराशा की दलदल से बचाता है; उसके कृत्यों का स्मरण हम में असीम त्याग करने का बल भरता है। परन्तु यह कदापि न होना चाहिये कि वह विवेक को नष्ट कर दे और हमारी बुद्धि को पंगु बना दे। हम में से उत्कृष्ट से उत्कृष्ट आत्माओं के कथनों तथा कार्यों तक को हमें अच्छी तरह कसौटी पर कस लेना चाहिये, क्योंकि वे 'वीर' आखिर मनुष्य और नाशवान् हैं। वह भी ठीक उसी तरह गलती कर सकते हैं जैसी कि हम में से अधम से अधम। उनकी उत्तमता तो उनके निर्णय तथा काम करने की उनकी शक्ति में है। इसलिये जब वे गलती करते हैं, तब परिणाम बड़ा भयंकर होता है। वे उस व्यक्ति या राष्ट्र का नाश मार देते हैं जो कि अन्ध वीरोपासना करने की आदत में हैं और बिना सोचे समझे तथा बिना शंका तक किये उसकी सब बातों को मान लेते हैं। इसलिये वीरोपासना के प्रति अंधभक्ति विवेक की अन्धभक्ति से ज्यादा खराब है। सच बात तो यह है कि विवेक की अन्धभक्ति कोई चीज है ही नहीं। परन्तु उक्त शिक्षक की, विवेक-सम्बन्धी चेतावनी से एक लाभ हुआ है: यह देखते हुये कि अधिकांश रूप से विवेक व्यवहार का एक मात्र पथ-प्रदर्शक है, यह आवश्यक है कि उसके मंत्री आज्ञाकारी एवं शुद्ध हों। इसलिये इन्द्रियों को कठोर संयम द्वारा वश में कर लेना चाहिये, ताकि विवेक का आज्ञापालन वे खुशी से किया करें, न कि यह कि उलटे, विवेक को उनका निस्सहाय गुलाम होना पड़े।

माना, कि बच्चों की विवेक-शक्ति सुषुप्तावस्था में होती है, परन्तु एक सचेत शिक्षक उसे प्रेम से जाग्रत कर सकता तथा उसे शिक्षित बना सकता है। वह बच्चों में संयम की टेव डाल सकता है, ताकि उनकी बुद्धि उनकी इन्द्रियों के वशीभूत न हो कर, बचपने से ही उनकी पथप्रदर्शक बन जावे। बच्चों से किसी वीर के उपदेश के अनुसार चलने को कहना कोई संयम न हुआ। उससे किसी आदत का बीजारोपण नहीं होता। वे बच्चे, जो कि किसी काम को बिना सोचे समझे ही करना सिखाये जाते हैं, काहिल हो जाते हैं। और यदि दैवात् कहीं दूसरा शिक्षक उन बच्चों के चित्त रूपी सिंहासन से उस वीर रूपी राजा को च्युत करता है, जिसको पहला शिक्षक वहां आसीन कर गया था, तब तो आगे वे अपने भावी जीवन में किसी काम के न रहें। और यदि शुरू से ही, जो कुछ उनको बतलाया जाय, अच्छी तरह समझाया जाय और उसके बाद उनके सामने उन पुरुषों के उदाहरण पेश किये जाय, जिन्होंने महान् काम किये हैं ताकि उनके संकल्प में प्राबल्य आवे या विवेक को पुष्टि हो, तो सम्भव है कि वे शक्तिशाली और चारित्र्यवान नागरिक बनें और कठिन अवसरों पर डट रह कर अपना मुख उज्वल करें।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खतम हो गई है। अब जितने आर्डर मिलते हैं, दर्ज कर लिए जाते हैं। आर्डर भेजनेवालों को, जब तक छठीं आवृत्ति प्रकाशित न हो तब तक, धैर्य रखना होगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा

भाग २

अध्याय ११

क्रिस्तानी सम्बन्ध

दूसरे दिन एक बजे मैं मि० बेकर की प्रार्थना समाज में गया। वहाँ मिस हैरिस, मिस गेब, मि० कोट्स आदि लोगों की जान पहिचान हुई, सब ने घुटनों के बल बैठ कर प्रार्थना की—मैंने भी उनका अनुकरण किया। प्रार्थना में—जिसके मन में जो आता वही ईश्वर से मांगता — 'हमारा दिन शान्ति से व्यतीत हो, ईश्वर हमारे हृदय के द्वार खोले — इत्यादि प्रार्थनायें तो की ही जाती थीं।" मेरे लिए भी प्रार्थना की गई। "हमारे बीच में जो नया भाई आया है, उसको तू सन्मार्ग दिखा; जो शान्ति तूने मुझे दी है, उसे भी वे प्रदान कर—जिस ईसा ने हमको मुक्त किया है, वह उसे भी मुक्ति प्रदान करे। यह सब हम ईसा के नाम पर तुमसे मांगते हैं।" इस प्रार्थना में भजन-कीर्तन कुछ भी न था—सिर्फ ईश्वर से, विशेष भाव से, याचना करना तथा अपने २ घर जाना— बस। सब का यह दोपहर का भोजन करने का समय होता। इसलिए सब खाने के लिए चले जाया करते। प्रार्थना में पांच मिनट से अधिक शायद ही लगते होंगे।

मिस हैरिस और मिस गेब — दोनों परिपक्व अवस्था की कुमारियां थीं—मि० कोट्स क्वेकर थे। ये दोनों महिलें साथ ही रहती थीं। उन्होंने मुझे अपने यहां प्रत्येक रविवार को चाय पीने का न्यौता दे रक्खा था। मि० कोट्स और मेरा जब इतवार को मुलाकात होती, तब मैं उन्हें अपनी दिनचर्या सुनाया करता था। और कौन सी पुस्तकें मैंने पढ़ीं—उनका मेरे चित्त पर क्या असर हुआ—इत्यादि २ के बारे में हम लोग आपस में चर्चा करते थे। वे बहिनें अपने रोचक अनुभव सुनातीं और अपनी परम शान्ति की बातें करती थीं।

मि० कोट्स एक बड़े साफ दिल के कट्टर क्वेकर युवक थे—उनके साथ मेरा सम्बन्ध अब गाढ़ा हो गया। हम लोग अनेक बार साथ २ टहलने जाते और वह कभी २ मुझे अपने क्रिस्तानी मित्रों के यहां ले जाते।

मि० कोट्स ने मेरी अलमारी पुस्तकों से भर दी—ज्यों ज्यों वह मुझे जानते पहिचानते जाते थे, त्यों त्यों वह मुझे अपनी पसन्द की पुस्तकें पढ़ने के लिए दिया करते थे। मैंने भी केवल श्रद्धा के कारण ही उन पुस्तकों को पढ़ना कुबूल कर लिया था। और इन पुस्तकों के बारे में हम वार्तालाप भी किया करते।

ऐसी पुस्तकें सन् १८९३ में मैंने बहुत सी पढ़ीं। उन सब के नाम आज तो मुझे याद नहीं है, लेकिन उनमें "सिटीटेम्पल" वाले डा० पार्कर की टीका, पियर्सन की "मैनी इनफेलिबल प्रूफ्स" और "बटलर्स एनालोजी" जरूर थीं। इनमें से कुछ को तो कहीं कहीं मैं समझ न सकता था और वे कहीं कहीं पसन्द पड़ती थीं और कहीं कहीं नहीं भी। मैं अपनी राय मि० कोट्स से साफ २ कह दिया करता था। "मैनी इनफेलिबल प्रूफ्स" का भावार्थ "बाइबिल में उल्लिखित धर्म के समर्थन का अकाट्य प्रमाण" था। इस पुस्तक का मेरे चित्त पर कुछ भी असर न हुआ। पार्कर की टीका नीति-पोषक कही जा सकती है, लेकिन क्रिस्तानी धर्म के प्रचलित मत के बारे में शंकाशील मनुष्य को उससे लाभ होना सम्भव न था। "बटलर्स एनालोजी" बहुत ही गंभीर और कठिन प्रतीत हुई। पूरे तौर पर समझने के लिए उसे पांच, छः बार पढ़ना जरूरी है। ऐसा मालूम होता था कि वह पुस्तक नास्तिक को आस्तिक बनाने के लिए रची गई थी। उसमें लिखित ईश्वर के अस्तित्व के समर्थन में दी हुई दलीलों का मेरे लिए कोई उपयोग न था, क्योंकि वह समय मेरी नास्तिकता का न था। लेकिन ईसा के अद्वितीय अवतार होने के बारे में, तथा मनुष्य और ईश्वर के बीच संधि करानेवाले होने के बारे में दी दलीलें दी गई थीं। उनका भी असर मेरे ऊपर न पड़ा।

लेकिन मि० कोट्स आसानी से हार मानने वाले पुरुष न थे—और उनके प्रेम की भी सीमा न थी; उन्होंने मेरे गले में वैष्णव की कण्ठी देखी, उनको यह वहम मालूम हुआ—तथा उससे उनको खेद भी हुआ। वे बोले:—वहम आपको शोभा नहीं देता—लाइये, इस कण्ठी को तोड़ डालूं।

मैंने कहा—यह कण्ठी टूट नहीं सकती। यह तो माताजी की प्रसादी है।

उन्होंने उत्तर दिया — क्या तुम उसको मानते हो?

इसका गूढार्थ तो मैं नहीं जानता। हां, मैं यह नहीं मानता हूं कि यदि मैं इसे न पहनूं तो मेरा कोई अनिष्ट होगा। परन्तु जो माला मुझे मेरी माता ने प्रेम-पूर्वक पहिनाई है, जिसके पहिनाने में उन्होंने मेरा हित समझा है, उसको अकारण ही मैं छोड़ नहीं सकता। कल यदि यह जीर्ण होने पर खण्डित हो जायगी, तो दूसरी माला पहिनने का लोभ मेरे मन में न होगा। लेकिन यह कण्ठी नहीं टूट सकती है।

मि० कोट्स मेरे तर्क की कदर न कर सके, क्योंकि उनको तो मेरे धर्म के विषय में विश्वास ही न था। वह तो मुझे अज्ञान-कूप से निकालने की आशा रखते थे। "अन्य धर्मों में चाहे कुछ सत्य क्यों न हो, परन्तु पूर्ण सत्य के रूप क्रिस्ती-धर्म को स्वीकार किये बिना मुझे मोक्ष मिल ही नहीं सकती और ईसा के माध्यस्थ्य के बिना पाप नहीं धुलते, तथा सब पुण्य-कार्य निरर्थक हैं"—यह वे मुझे बतलाना चाहते थे। मि० कोट्स ने जिस प्रकार पुस्तकों का परिचय कराया, उसी प्रकार उन्होंने उनका, जिनको कि धर्म में वे दृढ क्रिस्ती मानते थे, भी परिचय मुझ से कराया। उन क्रिस्तियों में 'प्लीमथ ब्रदरन' संप्रदाय का एक कुटुम्ब था।

मि० कोट्स के कराये हुए अनेक परिचय मुझे अच्छे लगे। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वे सब लोग ईश्वर से डरनेवाले थे। परन्तु इस कुटुम्ब में मेरे साथ ऐसी आश्चर्य-कारक बातें करने वाला मुझे एक व्यक्ति मिला, कि "हमारे धर्म की विशेषता आप नहीं समझ सकते—आपकी बोल-चाल से मैं देखता हूं कि आपको हमेशा अपनी भूलों पर ही विचार करना पड़ता है। उनको दूर करने का प्रयत्न और असफल होने पर पश्चाताप या प्रायश्चित्त करना पड़ता है—इस क्रियाकांड से आप किस प्रकार छुटकारा पा सकते हैं? आपको शान्ति तो मिल ही नहीं सकती। हम लोग पापी हैं, यह तो आप स्वीकार करते ही हैं। अब आप देखिये हमारे मत की परिपूर्णता को। हम सब का प्रयत्न व्यर्थ तो है, लेकिन मुक्ति तो हमको चाहिए—पाप का बोझा हम नहीं उठा सकते हैं; तब उसे ईसा के ऊपर छोड़ देना चाहिए। वह तो ईश्वर का एक मात्र निष्पाप पुत्र है। उसका वरदान है कि देखो, जो मुझे मानता है उसके पाप धुल जाते हैं। यह ईश्वर की अगाध उदारता है। हम लोगों ने ईसा की मुक्ति की योजना को स्वीकार किया है, हम अपने पापों में लिप्त नहीं होते हैं। इस जगत में पाप के बिना कोई कैसे रह सकता है? इसीलिए ही सारे संसार के पाप का प्रायश्चित्त ईसा ने एक साथ ही कर लिया था। जो उसके महा-बलिदान को मानता है, उसी को ही

शान्ति मिल सकती है। भला, कहां आपकी अशान्ति और कहां मेरी शान्ति!"

यह दलील मेरी समझ में न समाई। मैंने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—"यदि यही सर्वमान्य क्रिस्ती-धर्म है, तो वह मुझे नहीं चाहिए। मैं पाप के परिणाम से मुक्ति नहीं होना चाहता, मैं तो पाप-वृत्ति में से, अथवा पाप-कर्मों से, मुक्त होना चाहता हूं। जब तक वह मुझे न मिलेगी, तब तक मेरी अशान्ति मुझे प्रिय लगती रहेगी।"

प्लीमथ ब्रदर ने उत्तर दिया: "मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपकी चेष्टा व्यर्थ है—मेरे कहने पर जरा विचार तो करना।"

इस भाई ने जो कुछ कहा, वही अपने व्यवहार से बतलाया—जान-बूझ कर अनीति करने का प्रयोग दिखलाया।

परन्तु यह बात तो इस परिचय के पहले ही जान सका था कि सभी क्रिस्तियों की ऐसी मान्यता नहीं हुआ करती। कोट्स स्वयं ही पाप से डरनेवाला आदमी था। उसका हृदय निर्मल था—और वह हृदय-शुद्धि की शक्यता को मानता था। वे बहिनें भी उन्हीं की तरह थीं। मेरे हाथ में आई हुई पुस्तकों में से कुछ भक्तिपूर्ण थीं। इसलिए यद्यपि कोट्स को मेरे इस प्लीमथ ब्रदर के अनुभव से घबराहट हुई, तो भी मैंने उसको शान्त किया और उसको इत्मीनान दिलाया कि एक प्लीमथ ब्रदर के अनुचित मत के कारण मैं क्रिस्ती-धर्म को किसी प्रकार की शंकात्मक दृष्टि से नहीं देख सकता। मेरी निजी कठिनाइयां तो इंजील और उसके रूढ़ अर्थ के बारे में थीं।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

राष्ट्रीयता और ईसाई मत

यूनियन क्रिश्चियन कालेज आलवाई (ट्रावनकोर) के मिस्टर मैलकम मैगरिज का दिया हुआ भाषण मेरे पास प्रकाशनार्थ भेजा गया है और वह संक्षेप में नीचे दिया जाता है: यह भाषण लाभदायक है, क्योंकि इससे यह प्रकट होता है कि ईसाई मत के मानने वाले हिन्दुस्तानियों में राष्ट्रीय जाग्रति हो रही है। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह काम इतने दिनों रुका क्यों रहा? यह बात हमारी समझ में बिल्कुल नहीं आती कि कोई भी धार्मिक पुरुष अपने निकटस्थ पड़ोसियों के मनोरथ से सहानुभूति रक्खे बिना किस प्रकार रह सकता है!

अन्तर-राष्ट्रीयता में राष्ट्रीयता का भाव विद्यमान है—लेकिन वह राष्ट्रीयता नहीं जो कि संकीर्ण, स्वार्थमय या लोभपूर्ण है और जो प्रायः "राष्ट्रीयता" के नाम से पुकारी जाती है—बल्कि वह राष्ट्रीयता जो कि, अपनी उन्नति और स्वतन्त्रता के प्राप्त करने पर दृढ़ रहते हुये, दूसरे राष्ट्रों को नुकसान पहुंचाने द्वारा उनको हासिल करने से परहेज करेगी। **मो० क० गांधी**

"लोग यह बराबर कहा करते हैं कि ईसाई को राष्ट्रीय अन्याय सहन कर लेने चाहिए—खास तौर पर तब जब कि वे अन्याय पूर्वीय देशों में किये जाते हों। इसका कारण यह है कि चूंकि बेल्जियम देश का राजा राष्ट्रीयता का बड़ा भारी पोषक था, इसलिए उसकी दूसरी ही बात थी। ईसाई मत की प्रचार-संबंधिनी संस्थाओं के लिए यह नियम है कि कोई भी प्रचारक राजनीति में भाग न ले। इसके अर्थ तो यह हैं कि उन लोगों को यह मान लेना चाहिए कि इस देश में ब्रिटिश शासन परमात्मा की निर्मित की हुई एक स्वाभाविक स्थिति है। लेकिन मेरे अनुभव में तो यह आया है कि इस देश में हमारा 'ईसाई' नाम सार्थक होना तब ही सम्भव हो सकेगा, जब कि हिन्दुस्तान आजाद हो जावेगा। इसका कारण यह है कि केवल स्वतन्त्र पुरुष ही ईसा मसीह के रूप को समझ सकते हैं और तब भला कहीं उसकी बताई राह पर चल सकते हैं। लेकिन, ब्रिटिश शासन इस देश में महज नकल करने वाले गुलाम पैदा कर रहा है,—ऐसे लोग जो कि न केवल परतन्त्र हैं, बल्कि जो कि अपनी दासता को प्रसन्नता के साथ अंगीकार किये हुए हैं; इसलिए उस शासन-पद्धति को स्वीकार करना ईसाई मत के प्रतिकूल होगा।

ईसा स्वतंत्रता के अवतार थे—पवन की सदृश स्वच्छ और चेतनदायी थे। उनका भारतवर्ष के प्रति यह संदेश है:—प्रत्येक मनुष्य को अपने को स्वतन्त्र समझना चाहिये। जब तुम अपने २ मन में स्वतंत्र हो जाओगे, तब तुम स्वराज पा जाओगे।" यदि हम ईसा के इस कथन को मानेंगे तो हम अपनी बेड़ियां बिल्कुल काट गिरावेंगे।

ईसा स्वयं पराश्रित जाति में से थे और यही हाल उनके शिष्यों का भी था; उनके "साहिब" तो रोमन लोग थे। उन्होंने रोमन राज्य के प्रश्न एक बार ही में हाथ डाला था—यह भी उन्होंने तब किया था, जब कि उनके विरोधी लोगों ने आकर उनसे यह प्रश्न पूछा था कि क्या सीजर को कर देना न्यायसंगत है? वे यह चाल चल कर उन्हें फांसना चाहते थे, लेकिन ईसा ने यह कह कर उन्हें चक्कर में डाल दिया कि सीजर को वे चीजें दे दो जिनके वह योग्य है। इसके अर्थ यह नहीं है कि उनको कर देना चाहिये था। सब ही सरकारों का—चाहे वे भली हों या बुरी—कर लेना हक नहीं है।

शायद ईसा के राष्ट्रवादी होने में किसी को सन्देह हो, क्योंकि वे किसी गुलाम देश के लिये, राष्ट्रवादी का क्या कर्तव्य है, इस पर निश्चय रूप से कोई सन्देश नहीं दे गये हैं। लेकिन यह बात भी तो है कि वे संसार के स्थूल संगठन से सम्बन्ध रखने वाली किसी चीज पर कोई निश्चयात्मक उपदेश नहीं दे गये हैं। उन्होंने कब कहा था कि वेश्यागमन मत करो, उन्होंने कब कहा था कि नाम मात्र का वेतन दे कर बच्चों से प्रति सप्ताह १५ घंटे काम लेना अनीति-पूर्ण है, उन्होंने यह नहीं कहा था कि किसी जनरल डायर की आज्ञा पर हम को पेट के बल न रेंगना चाहिये। और न उन्होंने यह ही कहा था कि मिलाधीश लोगों के लिये यह पाप है कि जब कि बेचारे उद्योग धंधा करने वाले लोग अत्यन्त गरीबी से निर्वाह करें, वे स्वयं बड़े २ मुनाफे कमावें। उन्होंने तो गुलामी की प्रथा तक का खुल्लमखुल्ला विरोध नहीं किया था। इतना होते हुये भी हम में ऐसे लोग, निश्चय ही, बहुत कम होंगे जो कहेंगे कि चूंकि ईसा ने इनके बारे में कुछ कहा नहीं था, इसलिए ये ठीक हैं। उन्होंने तो हम को बड़े २ सामान्य सिद्धान्त दे दिये थे उन सिद्धान्तों के अनुसरण करने का कार्य हम लोगों पर छोड़ रक्खा था। उनका तो यह सन्देश था कि एक दूसरे के साथ प्रेम करो और आर्थिक चिन्ताओं का बोझा अपने सर पर न रक्खो।

उन्होंने कहा था कि यदि कोई आदमी तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे—तो तुम, उसके प्रति दूसरा गाल भी कर दो, ताकि वह उसमें भी मार ले। निस्सन्देह वे ऐसे सिद्धान्तों को छोड़ गये हैं कि जिन पर अमल करने से यह मानव-जीवन मनोहर, परिष्कृत और सुखमय हो सकता है। लेकिन उनका तात्पर्य यही था कि हम लोग उन सिद्धान्तों पर चलें और उनके अनुसार चलने के द्वारा ही इस देश के शासन में अपनी तावेदारी से उबरें। तथा हमको ईसा के बतलाये हुये मार्ग पर चलने के लिये बन्धनमुक्त होने के अभिप्राय से उस शासन का विरोध करना चाहिये।

क्रिस्ती-धर्म-संघ ने ईसा के इन सिद्धान्तों के प्रति एक विचित्र सी वृत्ति कर रक्खी है, उसने इनको उपदेश के निमित्त अंगीकार कर लिया है, लेकिन उसने इस बात पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि समाज के वर्तमान संगठन के कारण उन सिद्धान्तों पर अमल करना नितान्त असम्भव है।

हमारे पादरी लोग उपदेश देते हैं कि एक दूसरे के साथ प्रेम करो; और तुरन्त ही नवयुवकों से प्रेरणा करते हैं कि जाओ और जर्मन लोगों के ऊपर जहरीली गैस छोड़ो! हमारे पादरी कहते हैं कि आपस में प्रेम करो और फिर वे ही आतुर हो कर ब्रिटिश साम्राज्य का साथ देने पर भाषण देते हैं। हालांकि उनको यह बात जाननी चाहिए आज का ब्रिटिश साम्राज्य जब तक दुनिया में है, तब तक इस व्यापारी दुनिया में शान्ति कहां? हमारे पादरी कहते हैं कि प्रेम रक्खो और तुरन्त वे ही बड़े सन्तोष से, किसी अत्यन्त प्रतिष्ठित क्रिस्ती के साथ बैठ कर भोजन करते हैं; और यही प्रतिष्ठित महाशय अपने "शेयरों" पर करारा मुनाफा खा कर मौज उड़ाते हैं, जिसके फल-स्वरूप रङ्गूनों में कुटुम्ब-व्यभिचार फैलता है, मैंचेस्टर में लोग भूखों मरते हैं, और संसार के सभी औद्योगिक मुल्कों में मद्यपान तथा पतन होने लगता है।

और फिर, जिसे कि लोग व्यापार के नाम से पुकारते हैं, वह अधिकांश लूट है। लेकिन हमारा क्रिस्ती संघ ऐसी लूट मचाने वालों को आशीर्वाद देता है और कभी कभी तो वह इस प्रकार के व्यापार से भोग होता है! जब कि मेरे देशवासी यह कहने लगते हैं — और मैं स्वयं भी भूतकाल में कह चुका हूं — कि पूर्व भ्रष्ट है, परन्तु पश्चिमी देश नहीं, तब मुझे हंसी आती है। हिन्दुस्तान में आदमी अपनी बेची हुई चीज पर न्यायविरुद्ध कमीशन पाता है, जिस पर कि हम ईसाई लोग उसे धिक्कारते हैं, और पश्चिम में बेचने वाले आपस में मिल कर बेचारे जरूरतमंद खरीदार से "न्यायपूर्वक" करारा मुनाफा कसते हैं और इस प्रकार धनी होने वाले वे सौदागर लोग गिरजाघरों के संरक्षक बनाये जाते हैं! ट्रावनकोर में कम वेतन पाने वाला पुलिस का सिपाही रिश्वत लेता है और हम कैसे सात्विक रोष के साथ उससे पेश आते हैं! एक बड़ा प्रतिष्ठित पुरुष और गिरजाघर में सिर्फ जाने वाला एक बड़ा ड्यूक उस कोयले से, जो कि खदानों के भीतर से मजदूरों के कठिन परिश्रम से निकाला जाता है, लाखों रुपये बतौर किराये के प्रति साल लेता है, हालांकि वह यह बात जानता है कि खदान में काम करने वालों को मजदूरी इतनी कम मिलती है कि वे प्रायः भूखों मरा करते हैं। और यही साहब हाउस आफ लार्ड्स में (दीवान खास में) शान से बैठ कर हम पर शासन करने में योग देते हैं!

तो क्या ईसा एक मूर्ख पुरुष थे? क्या उन्होंने अपना सारा जीवन अव्यवहार्य शिक्षा देने में लगाया था? हरगिज नहीं। वह तो यह कहा करते थे कि "जैसा तुम दूसरों से व्यवहार अपने प्रति कराना चाहते हो, वैसा ही उनके साथ तुम किया करो" — और वे हम से यह आशा करते थे कि हम लोग अपने जीवन में यह मौलिक हेरफार कर लेंगे। ऐसा करने की शक्ति भी ईश्वर की कृपा से हम को उन्होंने दी थी। परन्तु इस सत्य को हम केवल जिह्वा से ही उच्चारण करते हैं और अपने व्यवहार में, हम उस सरकार का साथ देते हैं जो कि मनुष्यों को गुलाम बना रही है! हम तो यहां तक कहना चाहते हैं कि हमारा यह काम नहीं है कि हम इसमें दस्तदाजी करें; हमारा काम महज, व्यक्तियों को अपने दीन में मिलाना है। अब हम साहसपूर्वक इस बात का निरीक्षण करना चाहते हैं कि ईसा ने कौन २ से उपाय हमारे मार्ग की अड़चनें मिटाने के लिये बतलाये थे। और यदि हम ऐसी बातें पावें जैसी कि पूंजीपतियों की संसार भर में सर्वोपरिता, या ब्रिटेन की हिन्दुस्तान पर सर्वोपरिता, तो हम को तन मन और आत्मा से उनका विरोध तब तक करते रहना चाहिये, जब तक कि वह सर्वोपरिता नष्ट न हो जाय या सत्य के प्रबल तेज में भस्म न हो जाय, क्योंकि वह अनृत रूप है। मैंने अभी कहा है कि ईसा के उपदेशों का पालन करने लिये यह आवश्यक है कि हम आर्थिक तथा राजनैतिक रूप से स्वतन्त्र हों। मैंने यह भी कहा है कि हम एक ही ईश्वर की सन्तान होने के कारण दूसरों के सामने समानता का अनुभव करते हुये पुरुषों की भांति मस्तक ऊंचा कर के तथा आत्मविश्वास के साथ संसार की ओर देख सकें। नम्रता से ईसा का उद्देश दाम्भिक नम्रता नहीं था, बल्कि उनका आशय यह था कि अपनी योग्यता और सफलताओं के बारे में हम को, यह जानते हुये, नम्र होना चाहिये कि वे तो ईश्वर ने ही प्रदान की हैं और वे उसी की सेवा के लिये हैं। उनका अभिप्राय यह था कि हम लोगों में इतनी नम्रता आ जानी चाहिये कि हम गरीब से गरीब मेहतर के साथ भी बन्धुत्व मानने लगें — सो भी अपना बड़प्पन दिखाते हुये नहीं, बल्कि स्वाभाविक रूप से—उस प्रकार जिस प्रकार कि हम अपने नजदीकी रिश्तेदार को मानते हैं। साथ साथ हममें इतनी वीरता भी होनी चाहिये कि हम बड़े से बड़े साहिबों या धनी से धनी राजाओं से भी बराबरी का दावा कर सकें।

जब हम अपनी व्यक्तिगत हैसियत से कोई पाप करते हैं, तब हम में से अधिकांश लोगों के आत्मा में ग्लानि पैदा होती है—या यों कह लें कि अनृत का विचार हमें सताने लगता है, तब फिर किसी क्रूर सरकार के अत्याचार पर अथवा बड़े भारी असत्य पर—हम क्यों न चिंतित हों? मुझ से किसी होटल में "साहब" लोगों का ठसक से भरा हुआ बर्ताव नहीं देखा जाता; मैं किसी योरोपियन की बातचीत को, जब कि वह भोजन करते समय जाति-अभिमान के साथ करता है, बिना बड़े क्षोभ के, बिना यह ख्याल किये हुये, नहीं सुन सकता हूं कि मैं उस असत् के द्वारा पहुंचाये हुये आघात को मिटाने के लिये कितना कम प्रयत्न कर रहा हूं! जब मुझे यह इतना बुरा लगता है, तब भला वे लोग, जो कि यहीं की मिट्टी और धूप में पले हैं, इसी भूमि में उत्पन्न हुआ नाज खाया है और इसी देश के खेतों में पसीना गिराया है, कितना बुरा न मानते होंगे?

लेकिन इस मामले में तुम खुद परम दोषी हो। ब्रिटिश राज की भांति स्वयं तुम्हारी संस्थायें भी प्रेम तथा सौन्दर्य के राज्य को रोक रही हैं: एक उदाहरण तो अधर्म-पूर्ण जाति-प्रथा तथा अस्पृश्यता का ही है, जिसके कारण एक मनुष्य अपने भाई के साथ भोजन करने से इंकार करता है और एक आदमी अपने भाई को अस्पृश्य मानता है! ईसा के नाम पर बनाये हुये गिरजाघर भी ऐसे हैं जहां अस्पृश्य लोग नहीं घुसने पाते हैं! ये बातें भी दुनिया को बरबाद कर रही हैं। हमें को चाहिये कि हम केवल इन बातों के बारे में ईश्वर से प्रार्थना ही न करें—क्योंकि यह सुगम है, इनकी चर्चा ही न करें—क्योंकि यह भी बहुत आसान है—बल्कि निरन्तर काम करें। हम घंटे बजाते और गिरजाघरों में जाते हैं, भजन—प्रार्थना करते हैं, गाते हैं, लेकिन साथ ही साथ हम उन संस्थाओं को भी मदद देते रहते हैं या अप्रकट रूप से उनको स्वीकार किये रहते हैं, जिनके कारण वह सत्य अपमानित होता है—जिसके लिये ईसा जिये और मरे।

जो भारतवासी यह कहता है कि हम अमुक जाति के—अपने झगड़े मिटा नहीं सकते — अपने मुल्क पर शासन नहीं कर सकते, पक्षपातरहित और अभ्रष्ट न्याय-व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकते, ऐसा व्यक्ति कीड़े मकोड़े की तरह है और ईसा उस पर लानत पुकारता है।

एक हिन्दुस्तानी अपने दासपने से न केवल अपने को ईश्वर का साक्षात्कार करने से वंचित रखता है, बल्कि अपने "साहब" को भी।

सब मनुष्य एक रूप हैं — मुझे तो यह आश्चर्यजनक मालूम होता है कि लोग अपने को ऐसा नहीं मानते!

इस देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो कि यह समझते हैं कि वे पश्चिम से आये हुये उनसे अधिक गुलाबी आदमियों से कम अच्छे हैं। इसी तरह वे यह भी मानते हैं कि वे उन लोगों से अधिक अच्छे हैं जो कि उनसे काले हैं। कैसी मूर्खता है!

(यं० इं०)

टिप्पणियां

कताई का प्रचार

श्रीयुत वरदाचारी लिखते हैं—

"पारसाल 'यंग इंडिया' में शायद इसी मास में कनूर और उसके कतैयों का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ था। उसका शीर्षक था 'गांव का प्रयोग'। तब से जो उन्नति हुई है वह सराहनीय है। अब प्रयोग-श्रेणी से कहीं अच्छी हालत है। कनूर की देखा देखी आसपास के सभी कम्मा गांवों में कताई का प्रचार हो गया है और यदि आप उनसे उनका सूत देखने को मांगें, तो प्रत्येक घर वाले बड़े अभिमान के साथ अपना सूत झट दिखला देंगे। स्वयं कातना, जो कि अन्य सब प्रकार के कातने से बढ़कर है, सैंकड़ों घरों में मजबूत जड़ पकड़ गया है। यह महज एक जाति-विशेष आन्दोलन नहीं है (यद्यपि यह सच है कि इस प्रकार का कातना जातीय आधार पर ही फैल सकता है) क्योंकि गौंडर लोग अपने कम्मा भाइयों के इस काम में अनुकरण करने में पिछड़े नहीं हैं। गौंडर लोगों के कई खास घरों ने तो इसे दृढ़ता से अपना रक्खा है। और एक से अधिक गौंडर गांवों (जैसे कि वेळापंपळायम, जो कि कनूर से ५ मील दूर है) में आसानी से १०–१२ घर ऐसे जरूर मिलेंगे, जो हाथ का कता बुना वस्त्र पहिनते हैं।

एक मामूली दर्शक भी इस बढ़ते हुये अन्तर को प्रतीत कर सकता है। कोई ऐसा घर नहीं है, जिसके घर पर चरखा चलता है—लेकिन जिसमें कम से कम १० सेर स्वच्छ और सुन्दर सूत तैयार न हो। कपास की पहली फसल सब चुन ली जाती और बेच दी जाती है। लेकिन प्रत्येक घर के लिये, फसल उतारते समय कातने के वास्ते थोड़ी कपास अलग कर ली जाती है। उसकी उंटाई, धुनाई और कताई सब घर में ही की जाती है। कते हुये सूत में तनिक भी कीरी, पत्ती, बिनौला या मैलापन नहीं रहने पाता और वह दूध के माफिक सफेद दीखता है। गत वर्ष के अनुभव भी उपयोगी थे, क्योंकि इस साल महीन और अधिक सूत काता जाने लगा है। उनका सूत २० अंक का एकसा होता है। कुछ ऐसे भी घर हैं जिनमें ३० अंक का और उससे भी महीन—सूत कतता है। गत वर्ष स्त्रियां यह शिकायत किया करती थीं कि जो साड़ियां हम लोगों ने बनाई थीं, वे बड़ी मोटी और भारी थीं और इसलिये इस साल इन्होंने पहले से महीन सूत काता है। इस साल १८ हाथ की साड़ी का वजन डेढ़ पौंड से कम होता है और इसके फैशन बन जाने में विलम्ब न लगेगा। २५ या ३० अंक के सूत की धोतियां बनती हैं और ग्रामीण फैशन जिसमें कि धीरे २ पुनर्निर्माण हो रहा है, सन्तुष्ट हो जाता है। जुलाहा भी पर्याप्त मजदूरी पा जाता है और सब से बढ़ कर तो उसे कार्य की स्वच्छन्दता मिल जाती है। वह स्थानीय सूत की बुनाई जरा ज्यादा लेता है, लेकिन जिन घरों में सूत काता जाता है, उनको कुछ ज्यादा बुनवाई देना अखरता नहीं। सर्वत्र सन्तुष्टता का राज्य है और एक नया वायुमण्डल धीरे धीरे बन रहा है। कनूर में रंगरेजी तथा छीपीगीरी-सम्बन्धी सुविधाओं के फल स्वरूप बड़ा ही लाभ पहुंचा है। अपने काते सूत की रंगी छपी साड़ी सिर्फ इसी साल बनाई गई और इसका बनाया जाना अवश्य फैलेगा। कुछ जुलाहिनों ने भी इसे अपना लिया है। उन्नति चारों ओर दिखाई पड़ रही है। कनूर 'टानिक' का काम कर रहा है। और वह हम लोगों में से बड़े से बड़े शंकाशील लोगों का नैराश्य दूर कर सकता है।

क्यों कातते हैं?

एक वकील मित्र, जिनको कि मैंने उनके सूत के एकसांपन पर बधाई दी थी—यद्यपि वे नये कतैये हैं—लिखते हैं:—

मैं आपको इस भ्रम में नहीं डालना चाहता हूं कि मैंने किसी देशभक्ति के ख्याल से या मनुष्य-प्रेम के भाव से प्रेरित हो कर चरखा चलाना शुरू किया है। सन् १९२४ में अमुक मनुष्य को कातते हुये देख कर मैंने एक बिल्कुल ऊपरी उद्देश से कातना शुरू किया था। मुझे दुःख है कि मैं उस उद्देश की पूर्ति में असफल रहा। और मेरी यह दृढ़ धारणा हो गई कि चाहे जितने दिन तक मैं क्यों न कातता रहूं—भविष्य में मेरी वह उद्देशपूर्ति होना सम्भव नहीं। लेकिन जिस दिन से मैंने कातना शुरू किया उस दिन से मेरी रुचि उसके प्रति बढ़ गई है।

मैंने देखा कि कातना तो चिंतित चित्त के लिये सचमुच शान्तिदायक है और इसलिये मैंने उसे जारी रक्खा तथा जारी रक्खूंगा भी। चूंकि मैं उद्देशहीन हो कर कल के पुर्जे की तरह कातना पसन्द नहीं करता, इसलिये मैं आप को यह कष्ट दे रहा हूं ताकि मेरा सूत अच्छा होने लगे। क्या मैं यह भी लिख दूं कि मैंने आप के चरखा-सम्बन्धी उपदेश को हमेशा व्यवहार्य एवं सस्ते रूप से गरीब निस्सहाय देशवासियों को उनकी वर्तमान शोचनीय अवस्था से उबारनेवाला माना है?

परिश्रमशील कताई

एक पत्र प्रेषक यह लिखते हैं कि पचोरा (महाराष्ट्र) में एक व्यापारी की स्त्री ने नौ महीनों में ३४ पौंड सूत काता—तब जब कि वह रोज घर का सब काम-काज करने के अतिरिक्त ५ घंटे रोज कातती थी। जो सूत उसने काता था, वह ७, ८ अंक का था (रुई को उसके पति ने धुनक दिया था।) उस व्यापारी का कपड़े का सालाना खर्च १५०) था, लेकिन जब से घर में चरखा चलने लगा, तबसे वस्त्र का वार्षिक व्यय केवल ५० रुपया रह गया। इसका कारण, जैसा कि प्रत्यक्ष है, जरूरत से ज्यादा कपड़ों से पिंड छुड़ा लेना है।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी

राउण्डटेबल कान्फ्रेंस

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ॥ २)
एक प्रति का ॥ -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ४९

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, आषाढ सुदी १२, संवत् १९८२ गुरुवार, २२ जुलाई, १९२६ ई० } मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

मेवाड में खादी

भाई जेठालाल और जीवनदास बम्बई से चलकर रानेरा पहुंचे। वहां कपास चुनने से ले कर सूत बुनने तक सब कार्य सीख कर उन्होंने गंभीरता से प्रारम्भ किया। तब वे खादी-कार्य के लिये अनुकूल क्षेत्र ढूंढने निकले। घूमते घामते वे राजपूताने के मेवाड राज्य में पहुंचे। यह देश उन्हें बहुत ही पसन्द आया। आज वहां वे स-कुटुम्ब निवास कर रहे हैं।

राजपूताने में चरखा कोई नयी चीज नहीं है। अकेला राजपूताना ही यदि चाहे तो सारे देश को वस्त्र से ढंक सकता है। भाई जेठालाल ने खादी उत्पन्न कराने में लगी हुई लागत के जो अंक दिये हैं, यदि उसी के अनुसार राजपूताने में खादी की उत्पत्ति में प्रगति होती रहे, तो उस देश में इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले माल के सामने अपने वैसे ही माल की खपत कराने में जैसा कि मिलें बना रही हैं, उन्हें निराश होना पडेगा। इस उद्देश की सिद्धि के लिए कार्यपद्धति कैसी होनी चाहिए — भाई जेठालाल के निम्न-लिखित विवरण से मालूम हो सकेगा:

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

"चारों ओर से जंगलों और पहाडियों से घिरा हुआ, शहर से और रेल्वे स्टेशनों से १५-२० कोस दूर उपरमाल-बिजोलिया की यह ६० गांवों की बस्ती है।

इस कारण यह स्थान पाश्चात्य प्रभाव और शहरों के वायुमण्डल से प्रायः सुरक्षित है। और उसके सुफलों में एक यह भी है कि कताई यहां अब भी जीवितावस्था में है।

परन्तु चरखा कुछ शिथिलावस्था को अवश्य प्राप्त हो गया था। अर्थात् धुनकों के लोभ और आलस्य के कारण पोनियां नहीं होती थीं और पोनियों के इस दोष के कारण तथा कातने वालियों की लापरवाही और अज्ञता के कारण सूत भी बुरा कतने लगा और इससे फिर कपडे का तो भद्दा होना लाजिमी ही था।

एक तरफ इस प्रकार कपडा खराब होता जाता था और दूसरे तरफ विलायती तथा मिलों में तैयार किया हुआ कपडा उस पर चढाई करने के लिए तैयार था। इसलिए हाथ से काते और बुने कपडे की दुर्दशा पर दो आंसू डालनेवाला भी कोई न था! धोती साडियां और साफों इत्यादि के जरिये मिलों का कपडा धीरे धीरे अपने पैर जमा रहा था। सूत अधिक भद्दा कतने लगा था, इसलिए कुरतों और लहंगों के कपडे में भी मिल के सूत का उपयोग होना बहुत कुछ आरंभ हो चुका था। तीन अंक के भद्दे सूत के कपडे तीन चार महीने में फट जाते थे, फिर भी लोगों में यह अन्ध-विश्वास पैठा हुआ था कि किसानों के लिये तो वही कपडा अधिक टिकाऊ और मजबूत है। यदि उनकी धारणा यह न होती तो उन्होंने भी चरखे को कभी का बिदा कर दिया होता।

ऐसे समय में पथिक जी ने यहां कार्य किया था और वे लोगों के विश्वासपात्र बन गये थे। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से चरखे का पुनरुद्धार करना चाहा। विदेशी और मिल के कपडे की होली भी जलाई गई थी। परन्तु पथिकजी का प्रधान कार्य तो दूसरा ही था और इसलिए उन्हें इस काम के लिए बहुत ही कम अवकाश था। परिणाम यह हुआ कि चरखे की शोचनीय अवस्था तो वैसी ही बनी रही, परन्तु उसकी मरणासन्न दशा में कुछ जीवन अवश्य आ गया।

कुरते लहंगे इत्यादि उसी कपडे से बनाये जाते थे और कहीं कहीं साडियां भी इसी भद्दे, मोटे कपडे की २२-२४ पन्हे की — सीव पाट कर के — बनायी जाने लगीं।

यह उन्नति पंचायत के सुसंगठन के कारण हो सकी थी — परन्तु यह भी छिप नहीं सकता था — खादी महंगी पडती थी। और उसके दाम से बाबा और मिल का मोटा कपडा चल निकला। यहां आने पर सोचा कि आवश्यकतानुसार कपडा यहां कैसे तैयार कर सकते हैं? हम, लोगों को उनके घर जा जा कर खादी की विशेषतायें समझाते थे और घर में काती जाने के लिये कपास संग्रह करने की आवश्यकता समझाने का भी भरसक प्रयत्न करते थे। हमारा यह अनुमान है कि इससे कपास ओटने की कोई सौ चाखियां चली होंगी।

इसके बाद हमारा दूसरा प्रधान कार्य धुनाई में सुधार करना था। स्थानिक धुनिये लोग रुई अच्छी धुन देने के लिए राजी न हुए। इसलिए हम नये धुनिये तैयार करते थे और लोगों को भी धुनना सिखाते थे। बांस के धनुष बना कर और बड़ी धुनकी से धुनने का काम सिखाना और बारीक सूत कातना कितना आसान है — यह दिखाने के लिए हमने गांवों में भी भ्रमण किया।

आज तीन गांवों में बड़ी धुनकी और चार गांवों में बांस के छोटे धनुष दाखिल हो गये हैं। धुनाई सीखने के लिए तो बहुत से गांवों के लोग तैयार थे, परन्तु हम को समय का अभाव था। बहुतेरे घर तो ऐसे हैं कि जो कताई और धुनाई — दोनों ही काम यदि घर में करें तो वे काफी कपड़ा तैयार नहीं कर सकते थे। इसलिए जो लोग अपनी इच्छा से सीखने के लिए आते थे, उन्हें सिखाने का प्रबन्ध था।

परन्तु इतने से भी धुनाई पर अच्छा प्रभाव पड़ा। लोग भी अच्छी और बुरी धुनाई में अन्तर समझने लगे और धुनके लोग भी रुई अच्छी धुन देने लगे।

कताई

यहां विशेषतः तीन अंक का भद्दा सूत काता जाता था और सूत देकर उसके बराबर वजन का, कोई भी कपड़े का थान, तौल कर, जुलाहे को उसकी बुनाई देकर वे ले लिया करते थे। अपना ही सूत बुन जाने पर अपने काम में न आ सकता था — इसलिए अच्छा सूत कातने पर कोई ध्यान न देता था। उन्हें तो हर तरह के सूत के बदले में कपड़ा मिल जाता था। सूत बुरा कातने का यह भी एक प्रधान कारण था। सूत में सुधार करने में इस पुराने रिवाज के कारण बड़ी अड़चनें सामने आईं।

हमें लोगों को यह समझाना पड़ा कि जिसका काता सूत होगा, उसीको वह मिलेगा। उनके कच्चे तथा कमजोर तकुओं के बदले पक्के तकुए बनवाकर दिये गये। उसकी व्यवस्थित और बारीक पूनी बनाना गांवों में जा कर लोगों को सिखाया। पूनी कैसे पकड़नी चाहिये—यह भी घर घर जा कर बतलाना पड़ा। पंचायत होने के कारण सब गांव एकअंग हो रहे थे और इसलिए हम जो काम एक जगह करते थे, वह दूसरे गांवों में भी करने पड़ते थे। प्रथम उत्साहपूर्ण बस्तियों ने सूत को सुधारने का प्रयत्न करना आरंभ किया। मोटे और बुरे सूत के कपड़े प्रेम से नहीं, परन्तु पंचायत के दबाव से पहनने वाले लोगों को अपना सूत सुधारने में अच्छी सफलता मिली। अब ३ अंक के सूत से ले कर वे ८–१० और १५ अंक तक का सूत कातने लगे हैं।

बुनाई

अपना सूत अपनी इच्छा के अनुसार, उचित बुनवाई दे कर, बुनवाया जाय और वह कपड़ा अपने ही को मिले — इसके बारे में जो ज्ञान होना चाहिए था, वह वहां के किसानों में न था। इसलिए जब तक प्रचलित रिवाज बन्द न हो, तब तक हमें यह कार्य करते रहना आवश्यक था। बुन जाने के उपरांत अपना २ सूत अपने २ पास आया करे—यह सोच कर सब लोग अपनी २ सूत की गठरियों पर नम्बर डाल कर हमारे पास रख जाते थे हम उन्हें जुलाहों से बुनवा कर उन्हें लोगों को दे देते थे।

ऐसा करने का कारण यह था कि पथिकजी के समय में पैदा की हुई खादी की हलचल के बाद से जुलाहों ने बुनाई का भाव बहुत कुछ चढ़ा रक्खा था। प्रचार–कार्य करते समय कपड़ा मोल लेने के बनिस्बत उसे बुनवा लेने में कितनी बचत होती है — यह तो जब कि बुनाई की दर उचित हो, तभी दिखाया जा सकता है।

इसलिए हमने इस स्थान के जुलाहों को उचित बुनाई पर काम करने के लिए प्रेरित किया। पहले भी लोगों ने बुनाई की दर घटाने के लिए थोड़ा बहुत प्रयत्न किया था, परन्तु उसका कुछ भी परिणाम न हुआ। इस समय भी बुननेवालों को हमारा यह प्रयत्न पूर्वानुसार ही प्रतीत हुआ। उन्होंने उचित भाव (ताने के ६०० तार १ आने में) पर काम करने की हमारी बात को स्वीकार न किया। इससे हमें अन्त में बाहर जा कर बेथून से (यहां से कोई २० कोस दूर) जुलाहों को लाने का प्रयत्न करना पड़ा। हमारा दिया हुआ निर्ख उन्हें स्वीकार था, इसलिए वहां से तीन कुटुम्ब यहां चले आये।

जब बाहर से इतने जुलाहे आ गये, तब स्थानीय जुलाहों ने भी उस निर्ख को कुबूल कर लिया।

करीब एक महीने तक हमारे द्वारा बुनाई का काम करा चुकने के बाद मोटे सूत की बुनाई का हिसाब लोग समझने लग गये। यह बात उन्हें एक सहती सभा कर के और गांवों में जा कर समझाई गई थी।

अब तक मोटा और बारीक सूत बुनने के लिए ८–१० ही जुलाहे तैयार हुए हैं। यहां जब तक अधिक जुलाहे तैयार न होंगे, तब तक तो धोती और साड़ियां उन्हें हमारे मारफत ही बुनाना पड़ेंगी।

× × × ×

उपरमाल की कुल आबादी ११००० है। यहां अब तक जो कार्य हो सका है, वह सब पंचायत के जरिये हुआ है, तथा पंचायत की छाया में रह कर ही किया जा सकता था।

आबादी के प्रधान हिस्से इस प्रकार हैं.—

(१) ४००० धाकड़ — प्रधानतः इन्हीं लोगों में काम हुआ है।

(२) २००० भील १५–२० दिन बाद इन लोगों के बीच में कार्य आरम्भ किया जावेगा।

(३) २५०० कराड़ बलाई, गूजर। इनमें अभी अधूरा ही काम हुआ है। पूरा कार्य करने का १५–२० दिनों के बाद प्रयत्न करेंगे। हमारा ख्याल है कि धाकड़ों की देखादेखी इन लोगों में भी शीघ्र ही पूर्ण प्रचार हो सकेगा।

(४) { ३५० नाई, खाती कोली / ५०० हजूरी मुसलमान / १७५० ब्राह्मण बनिये / १५०० और अन्य लोग } इन लोगों में कार्य करने के लिए उत्पत्ति और प्रचार विभाग दोनों के खोलने की आवश्यकता है। इसलिए प्रथम तो उत्पत्ति–विभाग खोलने की आवश्यकता अनिवार्य प्रतीत होती है।

परन्तु स्थानीय मनुष्यों की सहायता के बिना जल्दी कपड़ा बुनवाना संभव न था। साधुजी अभी हाल ही में जेल से मुक्त हुए हैं और हम लोगों ने उनका हृदय से स्वागत किया है। हमारा अनुमान है कि मजदूरी पर कातनेवाली कोई २०० स्त्रियां तैयार हो सकेंगी। व्यवस्था का संचालन व्यय भी उसमें से निकल सकेगा; — यह बात नीचे दिये हुये अंकों से मालूम हो जायगी।

६४ तोले के सेर का भाव	४ अंक	६ अंक	८ अंक	१० अंक
रुई	०=॥	०।=॥	०=।	०।=॥
धुनाई	=)	=)	=)	=)
कताई	=।	=॥।	≡॥	० ०॥
नुकसान	-।	-।	-॥	-॥
एक सेर सूत का भाव	०॥।	०॥।०॥	०॥।-।	०॥।=॥

मिल के भाव से तो यह कहं अधिक सस्ता पड़ता है।

बुनाई	०।	०।-॥	०॥	०॥=
व्यवस्था-व्यय	-)	-)	-।	-।
	१-)	१=)	१।=॥।	१।-॥।
	(४ गज २२" का पनहा)	(५ गज २४" का पनहा)	(४ गज ३६" का पनहा)	(५ गज ३८" का पनहा)

जितना माल तैयार होता है सब नगद बिक जाना नितान्त संभव है।

उपरमाल के साथ मांडलगढ़, सिंगोली, बूंदी, बेगु, कोटा, आंतरी इत्यादि ६०० गांव वैवाहिक सम्बन्ध के कारण आपस में मिले हुए हैं। यहां का प्रचार तथा उत्पत्ति का कार्य स्थिर होने पर उसका असर सब जगह फैलेगा। हम यथावकाश वहां जावेंगे प्रचार कार्य की व्यवस्था में कुछ त्रुटियां होंगी तो उसके सम्बन्ध में थोड़ी बहुत सूचनायें भी देते रहेंगे।

हां, हमें यह अवश्य कह देना चाहिए कि दूसरे किसी स्थान पर हम अब तक नये ही बने रहते। यहां हमको पं॰ ...न की तथा श्री माणिकलालजी, साधुजी और कन्हैयालालजी इत्यादि की सहायता प्राप्त थी—तब ही हमसे जो कुछ भी बन पड़ा है, हम कर सके हैं।"

(नवजीवन)

३०० वर्ष पूर्व पिंजरापोल

कलकत्ता विश्वविद्यालय वाले प्रोफेसर भण्डारकर ने अशोक के ऊपर व्याख्यान देते हुए कहा था कि पिंजरापोल का सबसे पुराना हाल उस पिंजरापोल का वर्णन है जिसके लेखक हेमिल्टन थे और जो कि सूरत शहर में १८ वीं शताब्दी के अन्त तक थे। इसी प्रकार मेरे मित्र सेठ मूलजी भीमजी बरद ने इस बात की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है कि खम्भात पिंजरा-पोल का परम सुन्दर वर्णन, जैसा कि वह ३०० वर्ष से कुछ पहले था, उन पत्रों में पाया जाता है कि जो साइनर पेत्रो डेलावेली नामक इटैली निवासी यात्री ने अपने मित्र मेरेस शिपानो के नाम लिखे थे। और इन पत्रों में उसकी हिंदुस्तान-यात्रा का वर्णन था। अंग्रेजी में उसका अनुवाद सन् १६६५ ई॰ में प्रकाशित हुआ था। हमारे राष्ट्रीय जीवन का यह वर्णन आश्चर्यजनक भलक्षावद्भुता का इतना रोचक प्रमाण हमारे सामने रखता है कि उसे यहां सविस्तार उद्धृत करने में मुझे कोई हर्ज नहीं मालूम होता। "जिस दिन हमलोग वहां पहुंचे, उसी दिन भोजन और कुछ देर आराम कर लेने के पश्चात् हमलोग एक प्रसिद्ध पिंजरापोल को देखने के लिए किसीके साथ गये। यह सब तरह की चिड़ियों का शफाखाना था; जो चिड़ियां बीमार, लंगड़ी, साथियों से बिछुड़ी हुई या अन्य किसी प्रकार से आश्रय-हीना होती हैं, वहां ध्यान से रक्खी और पाली जाती हैं तथा वे लोग जो इन चिड़ियों की देखभाल रखते हैं सार्वजनिक भिक्षा-दान पर निर्भर रहते हैं। इस अस्पताल की इमारत छोटी है और बहुत सी चिड़ियों के लिए सिर्फ एक कमरा काफी होता है जिस पर भी मैंने उस अस्पताल को तरह २ की आश्रयार्थिनी चिड़ियों से भरा हुआ पाया। उसमें मुर्गियां, मुर्गे, कबूतर, मोर बतक और छोटे पक्षी — सभी थे, जो कि लंगड़े, बीमार साथीहीन होने के कारण यहां रक्खे जाते हैं। लेकिन जब वे अच्छे हो जाते हैं, तब जंगली पक्षी तो उड़ा दिये जाते हैं और पालतू पक्षी घर में रखने के लिए किसी धार्मिक सज्जन को दे दिये जाते हैं। इस अस्पताल में जो सबसे विचित्र बात हम लोगों ने देखी वह छोटे २ कुछ चूहे थे — ये बेचारे बिन मां बाप के या अनाथ होने के कारण यहां पोषणार्थ रक्खे गये थे। एक वयोवृद्ध, पुरुष जो चश्मा लगाये हुए था और जिसके कि सफेद दाढ़ी थी उन चूहों को रुई के भीतर रक्खे हुए बड़े हर्ष के साथ उनकी देखभाल करता था, वह उन्हें एक पर के सहारे दूध पिलाता था, क्योंकि वे इतने छोटे बच्चे थे कि वे और कुछ खा न सकते थे। और जैसा कि उसने हमलोगों से कहा, वह चाहता था कि जब ये चूहे बड़े हो जायंगे तब वह उन्हें छोड़ देगा।

दूसरे दिन सबेरे हमलोगों ने दूसरा स्थल देखा जिसमें कि बकरी, भेड़, भेड़े, मोर, मुर्गे इत्यादि पशु देखे जो कि आश्रयहीन, लंगड़े या बीमार थे। ये सब एक बड़े सहन में, जहां कि खूब शान्ति रहती थी, रक्खे जाते थे। उसी इमारत के छोटे २ कमरों में इन पशुओं की देखभाल रखनेवाले स्त्री-पुरुष रहते थे। इस अस्पताल से बहुत दूरी पर एक दूसरा मकान बना हुआ था जिसमें कि गाय तथा बछड़े रक्खे गये थे। इनमें से कुछ की टांगे टूटी हुई थीं, कुछ बहुत कमजोर या दुबले हो गये थे — इन सब की यहां दवाई की जाती थी। जंगली जानवरों के बीच में एक मुसलमान चोर भी था जिसके, उसे पकड़ते समय दोनों हाथ काट डाले गये थे। लेकिन दयार्द्र सज्जन, यह सोच कर कि कहीं उसकी मृत्यु दुर्दशा के साथ न हो, और यह सोच कर कि वह अब अपनी रोजी तो कमा न सकेगा, उसे अपने घर ले गये और उन्होंने उसे बिल्कुल सीधे पशुओं के बीच रखा। शहर के फाटक के बाहर भी हमलोगों ने गायों, बछड़ों तथा बकरियों का एक बड़ा गिरोह देखा जो कि जनता के पैसे पर खास इसी काम के लिए रक्खे गये गड़रियों के द्वारा चरने के वास्ते, भेजे गये थे। इनमें वे गायें और बछड़े थे, जिनकी दशा सम्हल चुकी थी, या यह झुण्ड चरानेवाले की गैरहाजिरी में इधर-उधर न भटक जाने के भय से एकत्रित हुआ था और मुसलमानों से, उन्हें रुपया दे कर छुड़ाये हुए पशु थे नहीं तो वे मुसलमान लोग गायों और बछड़ों को छोड़ कर उन्हें हलाल कर के खा जाते। और इस प्रकार वे रक्खे जाते हैं और जब पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाते हैं तब किसी ऐसे नागरिकों को सौंप देते थे जो कि उन्हें यों ही पालने में समर्थ थे। मैंने जिबह होते बच जाते हुए पशुओं में से गायों और बछेड़ों को इसलिए निकाल दिया ता कि खम्भात शहर में गायों, बछड़ों या बैलों को कोई हलाल नहीं करते थे। हिंदू-समाज के कुलीन लोगों के प्रयत्न से जो कि सुल्तान को इस मद में बहुत सा रुपया देते थे, इसकी मना ही थी — यदि कोई मुसलमान या अन्य कोई शख्स उन्हें काटता हुआ पाया जाता, तो उसे सख्त सजा दी जाती — और कभी २ मृत्यु-दण्ड भी मिल जाता था।

(यं॰ इं॰)

वालजी गोविंदजी देसाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ सुदी १२, संवत् १९८३

वह राउण्ड-टेबल कान्फ्रेंस

आखिर, यह घोषणा निकाली गई है कि दक्षिण अफ्रीका के भारतवासियों की स्थिति के बारे में होने वाली कान्फेंस केपटाउन में होगी और यह भी सूचित किया गया है कि दक्षिण अफ्रिका से एक कमीशन हिन्दुस्तान का लोकमत समझने के लिये यहां आनेवाला है। उस कमीशन के सदस्य मिस्टर मलान, जो कि आजकल गृहसचिव हैं और मि० डकन जो कि भूतपूर्व मन्त्री हैं, होंगे। यह सब अच्छा ही है।

यह उत्तम है कि यह कान्फेंस दक्षिण अफ्रिका में होने जा रही है। वहां की यूनियन गवर्मेंट, चूंकि उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार है, इसलिए उसे अपने प्रत्येक काम में लोकमत का इतना बल होना चाहिए कि जितना भारतीय सरकार ने कभी मालूम करने की जरूरत नहीं समझी है। और फिर, भारतवर्ष में हिंदवासियों की मांगों के बारे में लोकमत पैदा करने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि वह यहां मौजूद ही है। दक्षिण ऐफ्रिका में भारतीयों की स्वत्वरक्षा की औचित्यपूर्णता के सम्बन्ध में यूरोपीय लोकमत को सुधारने के लिये जो कुछ किया जाय, थोड़ा ही थोड़ा है। इसलिये यदि यूनियन सरकार नेकनियती से काम लेगी और यदि हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों को विवेक के साथ चुना जायगा, तो उसमें जो प्रस्ताव पास होंगे उनको अलग रख कर भी यह कहा जा सकता है कि यह कान्फेंस योरोपीय मत को ठीक दिशा में ले जाने का काम कर सकती है।

और यह भी शुभ है कि दक्षिण अफ्रिका से एक कमीशन हिन्दुस्तान आने वाला है। उस कमीशन को, तब तो वे बातें मालूम होंगी जो कि केवल खुद आने से ही मालूम की जा सकती हैं। पुस्तकें या समाचारपत्र चाहे जितने ही क्यों न पढ़े जाय, और प्रतिनिधियों से मुलाकातें चाहे जितनी क्यों न की जावें, उतनी जानकारी हरगिज नहीं प्राप्त हो सकती है जितनी कि अमुक जगह में जा कर और वहां के लोगों को स्वयं देख कर की जा सकती है।

यह बात भी अच्छी है कि इस कमीशन में ऐसे अग्रगण्य लोग हैं जो इस मामले का अध्ययन किये हुए माने जाते हैं। हमारा केस इतना न्यायपूर्ण है कि जितना ही इसके अन्दर पैठा जायेगा, उतना ही हमारा हित है। इस सम्बन्ध में चाहे जितनी छानबीन क्यों न की जावे, चाहे जितना ढिंढोरा क्यों न पीटा जावे, हमारा कोई नुकसान नहीं। समझौते के मार्ग में सब से बड़ी कठिनाई तो यही है कि भारतीय प्रश्न के बारे में नेक से नेक दक्षिण-अफ्रिका-निवासी भी अनभिज्ञ है। उनको तो केवल इतना मालूम है कि स्वार्थी गोरे व्यापारियों की मांगें क्या हैं। वे हिन्दवासियों के पक्ष की बात तो जरा भी नहीं जानते। यदि इस कान्फ्रेंस के फलस्वरुप इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार होने लगेगा, तो यह भय कि हिन्दुस्तानी लोग ऐफ्रिका में आ कर भर जावेंगे या यह कि जो भारतवासी वहां पहले से ही बसे हुये हैं वे हावी करने लगेंगे, क्षण भर में जाता रहेगा।

लेकिन इस कान्फ्रेंस के बारे में सब शुभ ही शुभ चिह्न नहीं हैं — जनरल हर्टजोग के भाषण चिन्ताजनक हुये हैं। यदि वहीं के निवासियों (हबशियों) के साथ इन्साफ न किया गया तो मुझे यह सम्भव नहीं मालूम होता कि हिन्दुस्तानियों के साथ न्याय बर्ता जायगा। दोनों जातियों के सम्बन्ध में उनकी मनोवृत्ति तो एक ही है — बल्कि निस्सन्देह हिन्दुस्तानियों के बारे में कहीं ज्यादा खराब। कहा जाता है कि हबशी लोग तो गोरों की कृपा-दृष्टि पर कुछ हक रखते हैं — हिन्दुस्तानी लोग तो महज बाहर से आ आ कर घुस आये हैं। लोग यह तो भुला ही देते हैं कि पहलेपहल तो हिन्दुस्तानी लोग ही गोरों के निमित्त मेहनत का काम करने के लिये दक्षिण आफ्रिका जाने को फुसलाये गये थे, और उनसे यह वादा भी किया गया था कि वहां तुम लोग सुविधा के साथ सदा के लिए रह सकोगे। लेकिन अब प्रश्न यह नहीं है कि उनको क्या २ वचन दिये गये थे, बल्कि यह कि इस समय वहां के हिन्दुस्तान-निवासियों के प्रति गोरों की वृत्ति क्या है।

और चूंकि गोरों का हिन्दुस्तानियों के प्रति अधिक द्वेष है, इसलिये यदि हबशियों के साथ अन्याय किया गया तो हिन्दुस्तानियों के साथ इन्साफ किये जाने की आशा न करनी चाहिये। इसी बात को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि वहां के निवासियों के साथ न्याय करने की इच्छा स्वार्थ पर आधारित है और यदि हम जरा नीचे तह में पैठेंगे तो हमको मालूम होगा कि दूसरे के हक छीन कर एक के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। "सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु" यह वाक्य जब ऋषियों ने उचारा था तब उन्होंने एक मूल तत्त्व को अनायास ही समझ लिया था।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा

भाग २

अध्याय १०

प्रिटोरिया में प्रथम दिवस

प्रिटोरिया स्टेशन पर दादा अब्दुल्ला के वकील की ओर से आये हुए किसी आदमी से मिलने की आशा मैंने कर रक्खी थी। मैं यह जानता था कि कोई भारतीय तो मेरा स्वागत करने के लिए आया ही न होगा। किसी भारतीय के यहां न जाने के लिए मैं भी वचनबद्ध था। वकील ने स्टेशन पर कोई आदमी न भेजा था। बाद को मैं यह समझ गया कि मेरे वहां पहुँचने का वह दिन रविवार था, इस कारण यदि वे किसी को भेजते भी, तो उन्हें बड़ी असुविधा होती। मैं घबड़ा गया — सोचा अब कहां जाना चाहिए? इसी का विचार करता रहा। मुझे भय था कि किसी भी होटल में मुझे स्थान न मिलेगा। सन् १८९३ का प्रिटोरिया स्टेशन सन् १९१४ के प्रिटोरिया स्टेशन से भिन्न था। बत्तियां मन्द मन्द जल रही थीं। मुसाफिर भी बहुत नहीं थे। सब मुसाफिरों को मैंने निकल जाने दिया और यह सोचा कि टिकट-कलेक्टर को उनसे कुछ फुरसत मिलने पर मैं अपना टिकट दूंगा और यदि वह कोई छोटा सा होटल या मकान बतावेगा तो वहीं चला जाऊंगा अथवा रात यहीं स्टेशन पर बिता दूंगा। मुझे उससे यह पूछने के बारे में कोई बड़ा उत्साह न था, क्योंकि अपमानित होने का डर लगा हुआ था।

स्टेशन खाली हो गया। मैंने टिकट-कलेक्टर को अपना टिकट दिया और उससे प्रश्न करना शुरू किया। उसने बड़े विनय से मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया, परन्तु मैंने यह समझ लिया कि वह मुझे अधिक मदद नहीं पहुँचा सकता है। उसके पास एक

अमेरिका का निवासी खड़ा हुआ था। उसने मुझसे बातचीत करना आरम्भ किया।

"मैं समझता हूं कि आप यहां एक बिलकुल अनजान आदमी हैं और न यहां कोई आपका मित्र ही है। मेरे साथ चलिए। मैं आपको एक छोटे से होटल में ले चलूंगा। उसका मालिक अमेरिकन है और उससे मेरा खासा परिचय है। मेरे ख्याल से वह आपको अपने यहां जगह देगा।"

मुझे कुछ सन्देह तो हुआ, परन्तु मैंने उसे धन्यवाद दे कर उसके साथ जाना स्वीकार कर लिया। वे मुझे जोन्स्टन के 'फेमिली होटल' में ले गये। उन्होंने जोन्स्टन को एक तरफ ले जा कर उससे कुछ बातचीत की। मि० जोन्स्टन ने मुझे अपने यहां एक रात रहने देना स्वीकार किया, सो भी इस शर्त पर कि मेरे ठहरने के कमरे में ही मुझे खाना भेज दिया जायगा।

मि० जोन्स्टन ने कहा:—

"मैं आपको इस बात का यकीन दिलाता हूं कि मैं काले-गोरे के भेद को बिलकुल ही नहीं मानता, परन्तु मेरे ग्राहक सब गोरे हैं। अतएव, यदि मैं आपको भोज गृह में भोजन कराऊंगा तो मेरे ग्राहक चिढ़ेंगे और शायद चले भी जायं।

मैंने जवाब दिया:—"आप मुझे एक रात यहां रहने देते हैं, यह भी तो आपका मुझ पर उपकार ही है। इस देश की स्थिति से अब मैं कुछ कुछ वाकिफ होने लगा हूं। मैं आपकी कठिनाई को भी समझ सकता हूं। आप भले ही मुझे यहीं खाना भेजें। कल तो मुझे यह आशा है ही कि मैं अपना दूसरा बन्दोबस्त कर लूंगा।

मुझे एक कमरा मिला। मैं उसमें जा कर बैठा। एकान्त मिलने पर खाना आने की राह देखता हुआ मैं अपने विचारों में डूब गया। इस होटल में बहुत मुसाफिर नहीं रहते थे। कुछ समय के बाद खाना लिये हुये आते वेटर को देखने के बदले मैंने मि० जोन्स्टन को आते हुए देखा। उन्होंने कहा: "मैंने जो आपको यहीं खाना परोसने की बात कही थी; उसमें मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई। मैंने अपने ग्राहकों से आपके विषय में बातचीत की और उनसे पूछा भी। उन्होंने कहा कि भोजन-गृह में आपके खाना खाने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि वे यहां चाहे जितने दिन रहें, हमको कोई एतराज नहीं। इसलिए अब यदि आप भोजनगृह में खाना चाहें तो चल सकते हैं और जितने दिन चाहें, आप यहां ठहर भी सकते हैं।"

मैंने उन्हें फिर धन्यवाद दिया और भोजनगृह में जा कर निश्चिन्त हो भोजन किया।

दूसरे दिन सुबह को वकील के घर गया। उनका नाम था ए० डब्ल्यु० बेकर। जा कर उनसे मिला। अब्दुल्ला सेठ ने उनका मुझसे कुछ जिक्र किया था; इसलिए हमारी प्रथम मुलाकात पर मुझे कुछ भी आश्चर्य न हुआ। वे मुझसे बड़े प्रेम के साथ मिले और उन्होंने मुझसे कुछ मेरी बात भी पूछी — जो मैंने उन्हें बतला दी। उन्होंने कहा: 'बैरिस्टर के तौर पर तो आपका यहां कुछ भी उपयोग नहीं किया जा सकता है। इस मामले में हमने अच्छे से अच्छे बैरिस्टरों को कर लिया है। केस बड़ा लम्बा और उलझा हुआ है। मुझे आवश्यक समाचार और जानकारी आप से प्राप्त हो, बस यही काम मैं आप से ले सकूंगा। व मुझे अपने मवक्किल के साथ पत्र-व्यवहार करना अब मुझे सुगम हो जायगा; और यह भी लाभ ही है कि उनके पास से जो जानकारी मंगानी की आवश्यकता होगी वह आपके जरिये मंगा सकूंगा। आपके लिए अब तक मैंने मकान तो नहीं ढूंढा है, क्योंकि आपसे मिल लेने के बाद ढूंढने का मैंने विचार किया था। यहां रंग-द्वेष बहुत ही अधिक है, इसलिए यहां घर ढूंढना कोई आसान काम नहीं। परन्तु एक स्त्री को मैं जानता हूं। वह गरीब है, भठियारे की पत्नी है। मैं ख्याल करता हूं कि वह आपको अपने यहां ठहरने देगी। इससे उसको भी कुछ मदद मिलेगी। चलिए, उसके यहां चलें।"

यह कह कर वे मुझे उसके घर ले गये। उस स्त्री के साथ मि० बेकर ने एकान्त में थोड़ी देर तक बातचीत की और तब उस स्त्री ने मुझे अपने यहां रहने देना स्वीकार किया। और प्रति सप्ताह ३५ शिलिंग किराया तै हुआ।

मि० बेकर वकील थे और वे बड़े धर्मिष्ठ पादरी थे। आज भी वे जीवित हैं और अब केवल पादरी का ही काम करते हैं— वकालत का धंधा छोड़ दिया है। रुपये पैसे से सुखी हैं। उन्होंने अब तक भी मेरे साथ पत्र-व्यवहार कायम रक्खा है। उनके पत्रों का विषय एक ही होता है। जुदे जुदे रूप से ईसाई धर्म की उत्तमता दिखाने के लिए वे उन पत्रों द्वारा अपने विचार प्रकट किया करते हैं और इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि ईसामसीह को ईश्वर का एक मात्र पुत्र और तारनहार माने बिना परम शान्ति कभी न मिल सकेगी।

प्रथम मुलाकात के समय ही मि० बेकर ने मेरी धर्म-सम्बन्धी स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। मैंने उन्हें यह बता दिया था कि मैं जन्म के लिहाज से हिन्दू हूं; तो भी उस धर्म का मुझे अधिक ज्ञान नहीं है। दूसरे धर्मों का ज्ञान तो बहुत ही कम है। मैं कहां हूं, क्या मानता हूं और मुझे क्या मानना चाहिए— इत्यादि मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं अपने धर्म का गहरा निरीक्षण करना चाहता हूं। यथाशक्ति दूसरे धर्मों को भी अध्ययन करने का मेरा विचार है।

यह सुन कर मि० बेकर बड़े ही खुश हुए और मुझसे बोले: "मैं स्वयं 'साउथ आफ्रिका जनरल मिशन' का एक डिरेक्टर हूं। मैंने अपने खर्च से एक गिरजाघर बनवाया है। उसमें समय समय पर मैं धर्म-विषय पर व्याख्यान देता हूं। मैं रंग-भेद को नहीं मानता। मेरे साथ काम करने वाले अन्य मित्र भी हैं। हमलोग हमेशा एक बजे चन्द मिनटों के लिए एकत्रित होते हैं, और आत्मा की शान्ति तथा प्रकाश पाने के लिए प्रार्थना करते हैं। यदि आप उसमें आवेंगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी। वहां मैं आपका अपने साथियों से भी परिचय कराऊंगा। आप से मिल कर वे सब बड़े खुश होंगे और मुझे विश्वास है कि आपको भी उनका समागम बड़ा प्रिय लगेगा। मैं आपको कुछ धर्मपुस्तकें भी पढ़ने को दूंगा। परन्तु सच्ची पुस्तक तो इंजील ही है। उसे पढ़ने के लिए मैं आपसे खास सिफारिश करता हूं।"

मैंने मि० बेकर को धन्यवाद दिया और, जहां तक बन पड़ेगा, उनकी मण्डली में एक बजे प्रार्थना के लिए जाया करना भी स्वीकार किया।

"तो आप कल एक बजे यहीं आवें, हम लोग प्रार्थना-मन्दिर साथ साथ चलेंगे।"

बहुत विचार करने की मुझे फुरसत न थी। मैं मि० जोन्स्टन के पास गया और बिल चुका आया। तब नये घर में गया, वहां भोजन किया। उस घर की गृहिणी बड़ी भली स्त्री थी। उसने मेरे लिए निरामिष भोजन तैयार किया था। इस कुटुम्ब में हिलमिल जाने में मुझे देर न लगी। खाना खा कर दादा अब्दुल्ला ने अपने

जिस मित्र के नाम मुझे चिट्ठी दी थी, उनसे मिलने के लिए गया। उनका परिचय किया। उनसे भारतीयों के कष्ट की और भी अधिक बातें मालूम हुईं। उन्होंने मुझे अपने यहां टिकाने का बडा आग्रह किया। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और मेरे लिए जो व्यवस्था की गई थी, उसे कह सुनाया। उन्होंने मुझसे बडे ही आग्रहपूर्वक कहा कि आपको जिस चीज की जरूरत हो मंगवा लीजिएगा।

संध्या हुई। व्यालू करके मैं अपने कमरे में जा कर विचार-सागर में गोते लगाने लगा। तुरत तो मैंने अपने लिए कोई काम न देखा। हां, दादा अब्दुल्ला सेठ को समाचार लिख दिये। मि० बेकर की मित्रता का क्या अर्थ हो सकता है? उनके धर्मबन्धुओं से मैं क्या प्राप्त कर सकूंगा? मुझे ईसाई धर्म का अभ्यास कहां तक करना चाहिए? हिंदू-धर्म का साहित्य कहां से प्राप्त हो? उसे जाने बिना ही ईसाई धर्म का स्वरूप मैं क्योंकर जान सकता हूं? ये प्रश्न मेरे मन में उठने लगे। एक ही निश्चय कर सका। मुझे जो अध्ययन प्राप्त हो, निष्पक्ष हो कर उसे करना चाहिए और परमात्मा उस समय जो सूझ दे, उसी के अनुसार मि० बेकर के समुदाय को जवाब दे देना चाहिए। जब तक मैं अपना धर्म पूरा २ न समझ लूं, मुझे दूसरे धर्मों के स्वीकार करने का विचार भी न करना चाहिए। इस प्रकार विचार करते करते मैं निद्रावश हो गया।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अनीति की राह पर

(१)

विवाहित पुरुषों का, आत्मसंयम द्वारा सन्ताननिग्रह करना एक बात है और संभोग के साथ २ तथा उस संभोग के परिणाम से बचानेवाले साधनों की सहायता से सन्ताननिग्रह करना बिल्कुल दूसरी। पहली सूरत में मनुष्यों का लाभ ही लाभ है और दूसरी सूरत में नुकसान के अलावा और कुछ नहीं। ब्योरो ने अंकों और मानचित्रों की सहायता से यह दिखाया है कि पाशविक वृत्तियों की लगाम ढीली करने और फिर संभोग के स्वाभाविक परिणामों से बचने के अभिप्राय से गर्भाधान रोकने के कृत्रिम साधनों के बढते हुये प्रयोग का फल यही हुआ है कि न केवल पेरिस में, बल्कि समस्त फ्रांस में, मृत्यु-संख्या की अपेक्षा जन्म-संख्या में बहुत कमी हो गई है। ८८ जिलों में से, जिनमें कि फ्रांस विभाजित है, ६८ में पैदाइश की औसत फौत की औसत से कम है और वहां प्रत्येक १०० जन्मों के पीछे १६८ मृत्युयें होती हैं। उसके बाद टार्नगरो नामक एक जिले में प्रत्येक १०० जन्मों के पीछे १५६ मृत्युयें होती हैं। उन १० जिलों में, जिनमें कि कहीं २, औसत से, मृत्युओं की अपेक्षा जन्म अधिक होते हैं यह अन्तर बहुत ही थोडा है। ऐसे केवल दस ही जिले हैं जहां कि जन्म और मृत्यु की संख्या में खासा फरक है। अल्प से अल्प मृत्यु संख्या, जिसका कि जन्म-संख्या के साथ ७२:१०० का सम्बन्ध है, मोरबिहान और पासडिकेले में पायी जाती है। ब्योरो यह प्रदर्शित करता है कि आबादी कम होती जाने का यह क्रम जिसे कि वह आत्महत्या कहता है, अभी तक थामा नहीं गया है।

तदुपरान्त ब्योरो फ्रांस के प्रान्तों की दशा का, प्रत्येक अंग ले कर, निरीक्षण करता है और सन् १९१४ ई. में लिखे हुये एक ग्रन्थ से नारमैंडी के बारे में निम्न-लिखित वाक्य उद्धृत करता है: "नारमैंडी में गत ५० वर्षों में ३ लाख जन कम हो गये हैं — इसका अर्थ यह है कि उतनी आबादी कम हो गई है जितनी कि समस्त ओर्ने जिले की है। प्रत्येक बीस वर्ष में फ्रांस की जन-संख्या इतनी घट जाती है जितनी कि उसके एक सूबे की होती है। और चूंकि उसमें केवल पांच ही सूबे हैं, इसलिये सौ वर्षों में तो उसके हरेभरे खेत फ्रांस निवासियों से खाली ही हो जायगे — मैं यहां "फ्रांसनिवासी" शब्द का जानबूझ कर प्रयोग कर रहा हूं, क्योंकि दूसरे लोग अवश्य ही उसमें आ कर बस जायगे — और यदि ऐसा न हुआ तो वह शोचनीय स्थिति होगी। जर्मन लोग केन के आसपास वाली लोहे की खदानें चला रहे हैं और हमारे देखते ही देखते चीनी (यह उनका पहला ही अवसर है) धर्मजीवी लोगों ने उस स्थान में पदार्पण किया है, जहां से कि विजेता विलियम ने इंग्लैंड के लिये प्रस्थान किया था।" ब्योरो उक्त वाक्य पर टिप्पणी स्वरूप लिखता है कि अन्य अनेक प्रान्त इससे अच्छी दशा में नहीं हैं। वह आगे चल कर यह दिखलाने का प्रयत्न करता है कि जनसंख्या में इस ह्रास के फलस्वरूप राष्ट्र की सैनिक शक्ति का पतन हुआ है। उसकी यह धारणा है कि फ्रांस से लोग जो आजकल कम बाहर जाने लगे हैं, सो भी इसी का परिणाम है। तदुपरान्त वह फ्रांस के आन्तरिक विकास, उस देश के व्यापार, उसकी भाषा और सभ्यता के अवसान का भी यही कारण बतलाता है।

इसके अनन्तर ब्योरो पूछता है कि क्या फ्रांसीसी लोग, जिन्होंने प्राचीन विषय-संयम को त्याग दिया है, मानसिक सुख, आर्थिक उत्कर्ष, शारीरिक स्वास्थ्य तथा संस्कृति प्राप्त करने में पहले की अपेक्षा अधिक उन्नतिशील हो गये हैं? वह उत्तर में कहता है कि स्वास्थ्य-वर्णन के विषय में दो चार शब्द ही पर्याप्त होंगे। सभी दलीलों का, नियमबद्ध रूप से, उत्तर देने की हमारी इच्छा चाहे जितनी प्रबल क्यों न हो, फिर भी यह कहना कि निरंकुश विषय-भोग से कभी शारीरिक स्वास्थ्य सुधरना सम्भव है—ठीक नहीं। चारों ओर से युवकों तथा पुरुषों दोनों की क्षीण शक्ति की चर्चा सुनाई देती है। युद्ध के पहले सैनिक-विभाग के अधिकारियों को कई बार रंगरूटों की शारीरिक योग्यता की शर्तें ढीली करनी पडी थीं और सारे राष्ट्र भर में सहन-शक्ति में बहुत कमी आ गई है। निस्सन्देह यह ख्याल करना अन्यायसंगत होगा कि असंयम ने ही यह हीनावस्था उत्पन्न की है, परन्तु हां, उसका इस मामले में बडा हाथ जरूर है। साथ ही साथ मद्यपान, अस्वच्छ रहन-सहन इत्यादि भी तो इसके जिम्मेदार हैं। और यदि हम ख्यालपूर्वक सोचेंगे, तो यह बात हमारी समझ में आसानी से आ जायगी कि यह भ्रष्टाचार और उसकी पोषिका भावनायें इन अन्य बलाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। गुप्त-अंग-सम्बन्धी रोगों के भयंकर प्रसार ने जन-साधारण के स्वास्थ्य को बडी भारी क्षति पहुंचाई है। कुछ लोग इस विचार के पोषक हैं (जैसे कि माल्थस) कि सब समाज में जिसमें जन्म-मर्यादा का ख्याल रक्खा जाता है, उसी अनुपात से सम्पत्ति बढती जाती है कि जिस अनुपात से जन्मवृद्धि पर वह अंकुश रखता है। लेकिन ब्योरो इस विचार के लोगों की बात नहीं मानता। वह अपने इस विधान का समर्थन जर्मन और फ्रांस की हालतों को लेकर करता है— बात यह है कि जर्मनी में जहां औसत से, मृत्युयें जन्मों की अपेक्षा कम होती हैं, आर्थिक उत्कर्ष बढता जाता है और फ्रांस में, जहां कि जन्म की संख्या मौतों की तादाद की बनिस्बत कम है, धन का अभाव बढता जा रहा है। उसका कथन है कि जर्मनी के व्यापार का आश्चर्यजनक फैलाव वहां के मजदूर लोगों के बलिदान से ठीक वैसे ही हुआ है जैसे कि अन्य देशों में—जर्मन मजदूरों का कोई अधिक बलिदान नहीं हुआ

है । वह रोशीनोल के एक वाक्य को उद्धृत करता है:—" जर्मनी में जिस समय उसकी आबादी केवल ४१,०००,००० थी, लोग भूखों मर गये । जब से उसकी आबादी ६८,०००,००० हुई है, तब से वह दिन पर दिन धनवान होता जा रहा है " उसका यह भी कथन है कि ये लोग (जो कि किसी भी प्रकार से संयमी नहीं हैं) सेविंग बैंकों में प्रति वर्ष रुपया जमा करने में समर्थ हुये । और सन् १९११ ई० में यह रुपया बाइस अरब फ्रैंक (फ्रांस का सिक्का) हो गया था, लेकिन सन् १८९५ ई० में उनका केवल ८ अरब जमा था—यानी प्रतिवर्ष उनके हिसाब में साढ़े आठ करोड़ अधिक जमा होते गये ।

ब्योरो ने इस बात को जरूर कुबूल किया है कि जर्मनी की यह सब आश्चर्यजनक उन्नति केवल इसी कारण नहीं हुई है कि जन्म की संख्या मृत्युसंख्या से अधिक है । उसका यह आग्रह है — और वह ठीक है — कि अन्य प्रकार की सुविधाओं के होते हुये यह तो बिलकुल स्वाभाविक ही है कि जन्म-संख्या के बढ़ने के फलस्वरूप राष्ट्रीय उन्नति भी हो । वास्तव में जो बात वह सिद्ध करना चाहता है, वह यह है कि जन्म-संख्या के बढ़ते जाने से आर्थिक तथा नैतिक उन्नति का रुकना लाजिमी नहीं है । जहाँ तक जन्म-प्रतिशत से सम्बन्ध है, वहाँ तक हम हिन्दुस्तानी लोग फ्रांस की स्थिति में हरगिज नहीं हैं । परन्तु यह कहा जा सकता है कि जर्मनी की तरह हिन्दुस्तान में जन्म-प्रतिशत का बढ़ते जाना हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिये सहायक नहीं है । परन्तु मैं ब्योरो के अंकों, उसके सतर्क विचारों तथा निष्कर्षों को दृष्टि-पथ में रखते हुये हिन्दुस्तान की परिस्थिति पर फिर कभी विचार करूंगा ।

जर्मन परिस्थितियों पर, जहाँ कि जन्म-प्रतिशत का आधिक्य है, विचार करने के अनन्तर ब्योरो कहता है: " क्या हमको यह नहीं ज्ञात है कि योरप में फ्रांस चतुर्थ स्थान पर है और राष्ट्रीय सम्पत्ति के लिहाज से तृतीय स्थान वाले देश से बहुत नीचे है ! फ्रांस राष्ट्र की अपनी सालाना आमदनी ढाई हजार करोड़ फ्रैंक की है और जर्मन लोगों की पांच हजार करोड़ फ्रैंक है । हमारे राष्ट्र ने तीस वर्षों में—यानी १८७९ से १९१४ तक—चार हजार करोड़ फ्रैंक की कमी सही है । देश के समस्त विभागों में क्षेत्रों में काम करने वाले आदमियों की कमी है और किन्हीं २ जिलों में तो पुराने आदमियों को छोड़ कर कोई भी आदमी नहीं दिखाई देते । वह और आगे लिखता है कि भ्रष्टाचार और प्रयत्न-युक्त बंध्यत्व के अर्थ यह हैं कि समाज की स्वाभाविक शक्तियां क्षीण हो जावें और सामाजिक जीवन में वृद्ध पुरुषों का निश्शंक प्राधान्य रहे । फ्रांस में केवल प्रति सहस्र १७० बच्चे तथा युवक मिला कर हैं, जब कि जर्मनी में २२० और इंग्लैंड में २१० हैं । युवा पुरुषों की अपेक्षा वृद्ध पुरुषों का अनुपात उचित परिमाण से बढ़ा हुआ है और अन्य लोगों में भी, जिन्होंने अपने भ्रष्टाचार से जवानी में ही बुढ़ापा बुला लिया है, नैतिक रूप से कलुषित जाति की सब प्रकार की कापुरुषता विद्यमान है ।

लेखक यह भी कहता है कि हम लोग जानते हैं कि फ्रांसीसी लोगों का अधिकांश अपने शासक वर्ग की इस शिथिल नीति के प्रति उदासीन है; क्योंकि वे यह मानते हैं कि लोगों को — आदमी की खानगी जिन्दगी कैसी है, कैसी नहीं — इसके जानने की क्या गरज पड़ी है ? वह कियोपोल्ड मोनो का यह निम्न-लिखित कथन बड़े खेद के साथ उद्धृत करता है:

"अत्याचारियों पर गन्दी गालियों की बौछार करने तथा उनके द्वारा पीड़ित लोगों के बन्धन काटने के लिए युद्ध करना सराहनीय अवश्य है, लेकिन क्या किया जावे उन लोगों के बारे में जो कि भय के कारण—या तो लालच से—अपने आत्मा की रक्षा नहीं कर सके हैं — उन लोगों के बारे में जिनका साहस पीठ ठोंके जाने या त्योरी बदलने पर बढ़ घट सकता है — उन आदमियों के बारे में, जो कि शर्म और लिहाज को ताक पर रख कर उलटे अपने कृत्यों पर प्रसन्न होते हुए उस शपथ को तोड़ते हैं, जो कि उन्होंने अपनी यौवनावस्था में खुशी और संजीदगी के साथ अपनी पत्नी से की थी—तथा उन आदमियों बारे में जो कि अपनी गृहस्थी को अपने निरंकुश स्वार्थ का शिकार बना कर उसको दुःखमय बनाते हैं ? ऐसे मनुष्य भला त्राण-दाता क्यों कर हो सकते हैं ? "

लेखक और आगे कहता है:

" इस प्रकार से, चाहे जिधर हम दृष्टि डाल कर देखें, हम को एक तो यह मालूम होगा कि हमारे नैतिक असंयम के कारण व्यक्ति, गृह तथा समाज को भारी चोट पहुंची है और दूसरे यह कि हमने अपने माथे बड़ी भारी आफत मोल ले रक्खी है । हमारे युवकों के व्यभिचार ने, गन्दी पुस्तकों तथा तसवीरों ने, धन के अभिप्राय से विवाह करनेने मिथ्याभिमान विलासिता तथा तलाक ने, कृत्रिम बंध्यत्व और गर्भपात ने राष्ट्र को अपंग कर दिया है तथा उसको बहुत मार दी है । क्योंकि अपनी शक्ति को संचित नहीं रख सका है और बच्चों की जन्म-संख्या की कमी के साथ २ क्षीण और दुर्बल सन्तान उत्पन्न होने लगी है ।" "यदि पैदाइश कम हों तो बच्चे अच्छे होंगे " यह उक्ति किसी कारण से उन लोगों को प्रिय लगा करती थी, जिन्होंने कि अपने को वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के स्थूल भाव में परिमित मान कर यह समझ रक्खा था कि वे मनुष्यों के उत्पादन को भेड़-बकरी की उत्पत्ति की भांति मान सकते हैं । जैसा कि आगस्ट कोम्ट ने बड़े तीव्र कटाक्ष से कहा है कि वे सामाजिक दोषों के नकली चिकित्सक यद्यपि वे व्यक्तियों तथा समाज के मानस की गूढ़ जटिलता को समझने में सर्वथा असमर्थ हैं, लेकिन यदि वे पशुओं के सईस होते तो अच्छा होता ।

"सच तो यह है कि उन तमाम मनोवृत्तियों में, जो कि आदमी ग्रहण करता है, उन सब निर्णयों में जिन पर वह पहुंचता है, उन सब आदतों में जो कि वह बनाता है, कोई ऐसी नहीं है जो कि मनुष्य की शख्सी और जमाअती जिन्दगी पर उतना असर डालती हो जितना कि विषयभोग के साथ सम्बन्ध रखने वाली वृत्ति, निर्णय इत्यादि डालते हैं । चाहे वह उनकी रोकथाम करे चाहे वह स्वयं उनके प्रवाह में बहने लग जाय, उसके कृत्यों की प्रतिध्वनि सामाजिक जीवन के कोने २ में भी सुनाई पड़ेगी, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि गुप्त से गुप्त कार्य भी अपना असर डाले बिना नहीं रह सकता । इसी रहस्य के ही बल पर हम अपने को किसी प्रकार की अनीति करते समय इस भुलावे में डाल लेते हैं कि हमारे कुकृत्य का कोई दुष्परिणाम न होगा ।

अब रही अपने सम्बन्ध की बात—सो अपने विषय में पहले तो हम निर्द्वन्द्व हो बैठते हैं, (क्योंकि हमारे कृत्यों का हेतु हमारी ही इच्छा रही है) परन्तु जब हम समाज के विषय में ख्याल दौड़ाते हैं, तब उसे अपने से इतना उच्च समझते हैं कि वह हमारे कुकृत्यों की ओर देखेगा भी नहीं; और फिर ऊपर से हम गुप्त रीति से इस बात की भी आशा रखते हैं कि दूसरों में पवित्र और सदाचारी रहने की बुद्धि रहेगी । सबसे भद्दी बात तो यह है कि इस प्रकार का पोच विचार उस समय, जब कि

हमारा व्यवहार केवल असाधारण और अपवाद स्वरूप होता है प्रायः बच निकल जाता है और फिर सफलता के मद में आ कर हम अपना व्यवहार वैसा ही कायम रखते हैं और जब मौका लगता है, तब हम उसे न्यायसंगत ठहराते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि यही हमारी सब से बड़ी सजा है।

लेकिन कोई दिन ऐसा आता है जब कि इस व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाला उदाहरण अन्य प्रकार से हमें हमको धर्म-च्युत करने का कारण बनता है — हमारे प्रत्येक कुकृत्य का यह परिणाम होता है कि हमारा सदाचार के प्रति वह प्रेम अधिक दुर्गम और साहसयुक्त बन जाता है जिसे हम 'दूसरों' में विद्यमान समझते आये हैं। फल यह होता है कि हमारा पड़ोसी धोखा खाते २ ऊब कर हमारी नकल करने के लिये उतावला हो उठता है। बस, उसी दिन से अधःपतन प्रारम्भ हो जाता है और प्रत्येक मनुष्य तुरन्त अपने कुकृत्यों के परिणामों का अनुमान कर पाता है और वह यह भी जान सकता है कि उसका उत्तर-दायित्व कहां तक है।

"वह गुप्त कार्य अपनी उस कन्दरा से निकल पड़ा है कि जिसमें हम उसे बन्द समझते थे। एक प्रकार की नैतिक स्फूर्ति से अपने निराले ढंग से सम्पन्न होने पर वह समस्त खण्डों में फैल चुका है। सबको एक के कारण सहना पड़ता है, "और 'इक जल मछली सब जल गन्दा' वाली कहावत चरितार्थ होती है। और प्रत्येक कृत्य का इस प्रकार सामाजिक जीवन के दूर कोने कोने में भी असर प्रतीत होता है कि जैसे किसी जलाशय में (उसमें पत्थर फेंकने से) मण्डल समस्त धरातल में क्रमशः फैल जाते हैं।

अनीति तुरन्त ही जाति के रस-स्रोतों को सुखा देती है। वह पुरुष को शीघ्र क्षीण कर डालती है और वह पुरुष का नैतिक और शारीरिक सार चूस लेती है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

एक महान हृदय

समाचारपत्रों से हमको विदित हुआ है कि कुमारी एमिली हाबहाउस की मृत्यु हो गई है। वह एक बहुत शरीफ और बड़ी बहादुर स्त्री थीं। वे पुरस्कार का कभी न ख्याल करते हुए सेवा किया करती थीं। उनकी सेवा ईश्वरार्पण की हुई मानव-समाज की सेवा थी। वे शरीफ अंग्रेजी कुल में उत्पन्न हुई थीं। वे अपने देश के प्रति प्रेम रखती थीं। और इसी कारण वे उसके द्वारा किये गये किसी अन्याय को सहन नहीं कर सकती थीं। उन्होंने बोर-युद्ध के घोर अत्याचार को समझ लिया था। उन्होंने विचार किया कि उस युद्ध के सुलगाने में इंग्लैंड का सरासर कुसूर है। उन्होंने ऐसे समय में उस युद्ध की निंदा अत्यन्त कड़ी भाषा में की थी, जब कि इंग्लैण्ड उसके पीछे दीवाना हो रहा था। वे दक्षिण आफ्रिका गईं और वहां उनकी आत्मा ने उन शिबिर-कारागारों के खड़े किये जाने तथा उनमें पराजित बोरों के बालबच्चों को जबर्दस्ती ला कर रखने की पशुता का घोर विरोध किया, जिन शिबिर-कारागारों को लार्ड किचनर ने युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक ठहराया था। यह उसी समय की बात है जब कि विलियम स्टेड ने अंग्रेजों की पराजय के लिए ईश्वर-प्रार्थना करवाई थी। एमिली हाबहाउस, यद्यपि वे दुर्बल थीं; शारीरिक असुविधाओं का कुछ भी न ख्याल कर के दक्षिण आफ्रिका फिर गईं और वहां उन्होंने अपने प्रति अपमान तथा उससे भी गये गुजरे बर्ताव का आह्वान किया। वे वहां कैद कर ली गईं और वापिस लौटा दी गईं। उन्होंने इन सब को एक सच्ची बहादुर स्त्री की भांति सहन किया। उन्होंने बोर-जाति की स्त्रियों के दिल मजबूत किये और उनसे कहा कि आशा को कदापि न त्यागो। उन्होंने उनसे यह भी कहा कि यद्यपि इंग्लैंड मद में चूर है, तथापि इंग्लैंड के अनेक पुरुषों तथा स्त्रियों में बोर लोगों के प्रति सहानुभूति है और किसी न किसी दिन उनकी बात सुनी जायगी। और यही हुआ। सर हेनरी कैम्पबेल बैनरमैन जनसाधारण-चुनाव में बड़े बहुमत से लिबरल (उदार) दल के नेता चुने गये और उन बोर-लोगों के नुकसान की पूर्ति यथासम्भव की गई, जिन्होंने युद्ध में क्षति उठाई थी। युद्ध के समाप्त हो जाने पर — उस अवसर पर जब कि दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह जारी था — मुझे मिस हाबहाउस से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जो जान पहिचान हुई थी, वह क्रमशः जीवन पर्यन्त की मैत्री बन गई। हिंदुस्तानियों तथा दक्षिण आफ्रिका की सरकार के बीच सन् १९११ ई० वाले समझौते में उनका भाग कोई मामूली भाग न था। वे जनरल बोथा की मेहमान थीं। उस समय जनरल बोथा ने कई बार मुलाकात विषयक मेरे प्रस्तावों पर टाला बाला बताया था, उन्होंने हर मरतबा 'गृहसचिव' के सामने अपनी बात पेश करने को कहा था, परन्तु मिस हाबहाउस ने जनरल बोथा के साथ यह आग्रह किया कि वे मुझ से अवश्य मिलें। इसलिए उन्होंने 'केपटाउन' (एक शहर) में जनरल साहब के निवास-स्थान पर जनरल तथा उनकी पत्नी, स्वयं वे तथा मैं — इनके बीच में वार्तालाप के निमित्त एकत्रित होने का प्रबन्ध कराया। उनका नाम बोर लोगों में एक ऐसा नाम था जिसके लेने मात्र से उन लोगों में विश्वास का सिक्का जम जाता था। और उन्होंने अपने सारे प्रभाव को हिन्दुस्तानी मामले में लगा कर मेरा मार्ग सरल बना दिया था। जब मैं हिन्दुस्तान में आया — (और जब कि) रालेट ऐक्ट का आन्दोलन चल रहा था — उन्होंने मुझे यह लिखा कि मुझे यदि फांसी के तख्ते पर नहीं, तो कारागार में अपना जीवन अन्त करना पड़ेगा, और मैं इस बात से निश्चित नहीं हूं। उनमें इस त्याग की शक्ति पूर्ण रूप से मौजूद थी। यह तो उनकी अटल धारणा थी ही कि कोई भी आन्दोलन, बिना उसके पोषक के बलिदान के सफल नहीं हुआ करता। अभी पारसाल ही उन्होंने मुझे लिखा था कि मैं दक्षिण अफ्रीका-निवासी भारतवासियों के पक्ष में अपने मित्र जनरल हार्टजोग से खूब लिखा पढ़ी कर रही हूं। उन्होंने मुझे यह भी लिखा था कि आप उनके (जनरल के) प्रति कुपित न हों और आप उनसे जो आशा रखते हों, उसका ख्याल मुझे है।

हिन्दुस्तान की स्त्रियों को चाहिये कि वे इस अंग्रेज महिला को याद रखें। उन्होंने कभी विवाह नहीं किया। उनका जीवन स्फटिक की भांति स्वच्छ था। उन्होंने अपने को ईश्वर-सेवा के लिये अर्पित कर रक्खा था। उनका स्वास्थ्य तो बिलकुल गया बीता था — उनको लकवे की बीमारी थी। परन्तु उनके उस दुर्बल और रोगग्रसित शरीर में वह आत्मा दीप्यमान थी जो कि राजाओं और शाहंशाहों के असंख्य बल को भी ललकार सकती थी। वे किसी मनुष्य से डरती न थीं, क्योंकि उनको केवल ईश्वर का भय था।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

कातने का अर्थ

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ४८

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, आषाढ सुदी ५, संवत् १९८६ गुरुवार, ११ जुलाई, १९२९ ई० { मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय ९

और भी अधिक कष्ट

चार्ल्सटाउन में सुबह को ट्रेन पहुंचती थी। चार्ल्सटाउन से जोहान्सबर्ग जाने के लिए उस समय रेल न थी। परन्तु घोडे की सिकरम में जाना पडता था और स्टेन्डरटन में एक रात रहना पडता था। मेरे पास सिकरम का टिकट था और एक दिन का विलम्ब हो जाने के कारण वह रद भी नहीं हो गया था। सेठ अब्दुल्ला ने सिकरमवाले को तार दे दिया था। परन्तु उसे तो केवल बहाना बनाना था। मुझे अनजान मनुष्य समझ कर उसने कहाः "तुम्हारा टिकट तो अब रद हो गया है।" इसका मैंने उचित जवाब दिया। परन्तु मेरा टिकट रद हो गया है यह कहने से उसका अभिप्राय तो दूसरा ही था। मुसाफिर सब सिकरम के अन्दर ही बैठते थे। परन्तु मैं तो कुली था और अनजान था। इसलिए सिकरमवाले का उद्देश यह था कि जहां तक हो सके मुझे गोरों के पास न बैठने दिया जाय। सिकरम में बाहर की तरफ हांकनेवाले के दांये-बांये दो जगह थीं। उनमें से एक पर सिकरम की कम्पनी का एक गोरा अधिकारी बैठता था। वह अन्दर बैठ गया और मुझे हांकनेवाले के साथ बिठा दिया। मैं यह समझ गया कि यह बेशक अन्याय है, अनादर है। परन्तु इस घूंट को निगल जाना ही मैंने उचित समझा। यह तो हो ही नहीं सकता था कि मैं जबरदस्ती अन्दर बैठ जाता। यदि मैं इसपर झगडने बैठता तो सिकरम निकल जाती और एक दिन का और भी विलम्ब होता। और फिर भी परमात्मा ही जानें कि दूसरे दिन और क्या गुजरती? इस प्रकार सोच समझ कर बुद्धिमान मनुष्य की तरह मैं बाहर ही बैठ गया परन्तु दिल में बडा ही दुःख हो रहा था। तीन बजे सिकरम पारडीकोप पहुंचा। अब उस गोरे अधिकारी को जहां मैं बैठा था वहां बैठने की इच्छा हुई, उसे सिगरेट पीने की इच्छा हुई थी और शायद कुछ हवा भी खानी होगी। उसने एक मैला सा टाट जो वहां पडा था हांकनेवाले से लिया और पैर रखने के तख्ते पर उसे बिछा कर मुझ से कहाः "सामी, तुम यहां बैठो, मुझे हांकनेवाले के पास बैठना है," इस अपमान को सहन करने में मैं असमर्थ था। इसलिए मैंने डरते डरते उससे कहा "आपने मुझे यहां बिठाया, यह अपमान तो मैंने सहन कर लिया। मेरी जगह तो अन्दर होनी चाहिए थी परन्तु आप अन्दर बैठे और मुझे यहां बैठाया। अब आपकी इच्छा बाहर बैठने की है और आपको सिगरेट पीना है इसलिए आप मुझे अपने पैरों के पास बैठाना चाहते हैं। मैं अन्दर जाने के लिए तैयार हूं परन्तु मैं आपके पैरों के पास बैठने को तैयार नहीं।"

अपनी यह बात मैं पूरी भी न कर सका था कि इतने में मुझ पर थप्पडों की मार पडने लगी और उस गोरे ने मेरा हाथ पकड कर मुझे उतार देने का प्रयत्न किया। मैंने बैठक के नजदीक के पीतल के सीकचों को बडी मजबूती से पकड लिया और यह निश्चय कर लिया कि हाथ टूट जाय तो भी उन्हें मैं न छोडूंगा। मुझ पर जो बीत रही थी वह सब मुसाफिर देख रहे थे। वह मुझे गालियां दे रहा था, खींच रहा था और मारता भी जाता था परन्तु मैं चुप था। वह बलवान और मैं बलहीन था। मुसाफिरों में से कुछ लोगों को मुझ पर दया आई और उनमें से किसी किसी ने यह भी कहाः "रे मनुष्य, इस बेचारे को वहां बैठने दो, उसे फिजूल मत मारो। वह सच कहता है, यदि वहां नहीं तो उसे यहां बैठने दो'। लेकिन वह बोला 'कभी नहीं,' फिर भी वह थोडा सा सकुचा गया। उसने मुझे मारना बन्द कर दिया, मेरा हाथ छोड दिया, मगर दो चार गालियां अधिक दीं। उसने दूसरी तरफ एक हॉटेन्टॉट नौकर बैठा था उसे पैरों के पास बैठाया और आप उसकी जगह पर बाहर बैठा, मुसाफिर लोग अन्दर बैठे, सीटी हुई और सीकरम चलने लगी। मेरा दिल धडक रहा था और मुझे सन्देह हो रहा था कि मैं जिन्दा अपने स्थान पर पहुंच सकूंगा या नहीं। वह गोरा मेरी तरफ आंखे निकाल कर घूर रहा था और कहता था। 'स्टान्डरटन पहुंचने दो, फिर तुम्हारी खबर लूंगा।' मैं चुपचाप बैठा रहा और परमात्मा से अपनी रक्षा की प्रार्थना करता रहा।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ़ सुदी ५, संवत् १९८३

कातने का अर्थ

एक महाशय ने ज्यों त्यों कता हुआ, मैला और बुरी तरह लपेटा हुआ सूत भेजा है। उसकी लंबाई का माप भी स्वयं नहीं निकाला और लिखते हैं कि: "चरखासंघ में आप बहुत से कातनेवालों को चाहते हैं इसलिए मैं भी कातना चाहता हूं। अपना सूत भेज रहा हूं। जितने गज हो लिखियेगा। कम होगा तो और भेज कर पूरा कर दूंगा। यहां पोनियां मिलने में बड़ी मुश्किल पड़ती है। आप ही पोनियां भेज दिया करें तो अच्छा हो।

मान लो कि हमारे इस मुल्क में लोग रोटियां बना कर न खाते हों, परन्तु जापान से छोटी छोटी रोटियां मंगा कर खाते हों। मान लो कि मेरे जैसा कोई दूरदर्शी इसमें हिन्दुस्तान का नाश ही देख रहा हो और हम सब रोटी बेलना, बनाना और पकाना भूल गये हों और वह रोटी-यज्ञ बतावे और हम सब से इस यज्ञ के लिए रोटियां मांगे और कोई हिन्द का सेवक प्रेम की उमंग में आ कर किसी से आटे की लोई मांग कर त्रिकोणाकार, कच्ची पक्की, कहीं थोड़ी जली हुई, कहीं रास्ते में कच्ची होने के कारण फफूंद लगी हुई रोटी भेजे और उसके साथ पत्र लिखे: "रोटी-यज्ञ का आपका आह्वान सुन कर मैंने भी उसमें अपना हिस्सा देना निश्चय किया है। आज कुछ भेज रहा हूं। उसका तौल निकाल कर मुझे लीखिएगा। कम होगी तो पूरी कर दूंगा। यहां आटे की लोइयां प्राप्त करने की सुविधा नहीं है। क्या आप मुझे लोइयां भेज सकेंगे?" यदि कोई रोटी यज्ञार्थी यह लिखे तो रोटीसंघ को आनन्द ले सब इस यज्ञार्थी के यज्ञ पर हंसेंगे और कहेंगे कि ऐसे भाई को हिन्दुस्तान के प्रति प्रेम है परन्तु उसे कार्यरूप में प्रकट करने की उसे युक्ति ज्ञात नहीं है। रोटीयज्ञ के सम्बन्ध में जो यह लिखा है उसका उचित होना तो सब को स्वीकार होगा। परन्तु चरखे के यज्ञार्थी भाई ने जो काम किया है वह ठीक उस काल्पनिक रोटी-यज्ञार्थी के जैसा ही है, इसको सब शीघ्र स्वीकार न करेंगे। यह पड़ी हुई आदत से उत्पन्न अज्ञान का चिह्न है। चरखे के विषय में हम सब कुछ भूल गये हैं और जैसे रोटी बनाने की कला को यदि हम भूल जायं तो भूखों मरेंगे यह फौरन सब के समझ में आ जाता है परन्तु चरखे के अभाव से हम आज भूखों मर रहे हैं यह आसानी से सब की समझ में नहीं आता। सच बात तो यह है: कातने से मतलब यह नहीं कि ज्यों त्यों कर के खेल करते हुए जब कभी चाहें सूत के जैसे तैसे तार निकाले जायं। परन्तु कातने से यह मतलब है कि कातने के पहिले की आवश्यक सब क्रियायें सीख ली जावें और स्वस्थचित्त हो कर अच्छा समान कता हुआ सूत नियमपूर्वक आसनबद्ध हो कर काता जावे। उसे साफ कर लेना चाहिए, उसकी लम्बाई मालूम करनी चाहिए, उस का वजन भी मालूम करना चाहिए, उसकी अच्छी लच्छियां बनानी चाहिए और यदि कहीं भेजना हो तो उसे अच्छी तरह बांध कर उस पर कपास की जात, सूत का अंक, लंबाई और वजन की चिट्ठी भी लगा देनी चाहिए। और यज्ञ करनेवाले का नाम पता इत्यादि अच्छे सुवाच्य अक्षरों में लिख कर उसके साथ बांध देना चाहिए। इतना करने पर उस दिन का चरखा यज्ञ पूरा हुआ गिना जा सकेगा। कातने के पहिले कपास ओटने की और धुनने की क्रियायें आवश्यक होती हैं। चरखा-यज्ञ की रोटी-यज्ञ के साथ तुलना की जाय तो कपास ओटना अर्थात गेहूं पीसना तो जहां कहीं हो सहन किया जा सकता है। परन्तु आटा गूंध कर लोई बनाना रुई धुनने के बराबर है। आटे की लोइयां बनाने की क्रिया दूसरी जगह नहीं की जा सकती, वह तो जहां रोटी बेली जाती है और सेंकी जाती है वहीं होनी चाहिए। उसी प्रकार रुई धुनने की क्रिया भी वहीं की जानी चाहिए कि जहां कातने का काम होता है। केवल इतनी ही स्वतंत्रता दी जा सकती है कि एक कुनबे के लोगों में से एक भाई या बहन आटा गूंध कर तैयार करे, उसकी लोइयां बनावे और दूसरे सब लोग रोटियां बेलें और सेंकें। इससे अधिक स्वतंत्रता ली जाय तो रोटियां बिगड़ जायंगी और यज्ञ भी दूषित हो जायगा। उसी तरह सुविधा के लिए धुनने का काम भी जहां कातने का काम होता है वहीं किसी एक ही मनुष्य द्वारा किया जाय, परन्तु इससे अधिक स्वतंत्रता लेने में तो सूत खराब होगा और चरखा-यज्ञ भी दूषित होगा। धुनकने की क्रिया बड़ी ही सरल है। धुनकने का हथियार बड़ी आसानी से तैयार किया जा सकता है और आसानी से प्राप्त भी हो सकता है। जहां बांस मिलना सहज है वहां घर में काम लायक धुनकी फौरन बना ली जा सकती है। परन्तु जिसे चरखा-यज्ञ की लगनी नहीं लगी वह भले ही धुनी हुई रुई लेना ले। लेकिन हरएक कातने-वाले को धुनने की क्रिया तो सीख ही लेनी चाहिए। यह कहने की तो शायद ही कोई आवश्यकता होगी कि धुनने की क्रिया में धुनी हुई रुई से पोनियां बनाने का काम भी शामिल होता है। धुन कर तैयार की गई रुई गूंधे हुए आटे का पिंड है और पोनियां उससे तैयार की गई लोइयां हैं। मैं समझता हूं कि उपरोक्त लेखक के जैसे ही भाव जिन भाई बहनों के हैं वे कातने का अर्थ अब समझ गये होंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

मनुष्यता से पहिले पशुता

२४ जून की यंग इन्डिया में जो 'स्वाभाविक क्या है?' शीर्षक लेख निकला है उसके संबन्ध में एक डाक्टर महाशय लिखते हैं कि:—

"अमल में ही हिंसात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में हिंसा का उपयोग बन्द करना असंभव है और मैं तो समझता हूं कि ऐसी अवस्था में इसे रोकने का प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए। यह तो बिलकुल मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध है। मनुष्य भी तो पशु ही है। उसमें मनुष्यता से पहिले पशुता रहती है। आस्ट्रेलियावासियों के जंगली पूर्वजों का ही उदाहरण ले लीजिए। कला, साहित्य, इत्यादि से उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं था। जानवरों को मार कर खाते थे और संकेतों से बातचित करते थे। हममें अभी तक पशुता भरी है। नैतिक आचरणों का तो केवल दिखावटी दुपट्टा ओढ़ रक्खा है। मनुष्य स्वभाव से ही परमात्मा को पाना समझ नहीं सकता है। न स्वभाव से ही मनुष्य परमात्मा की आराधना कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसी अवस्था में पाला जाय कि धर्म, ज्ञान, या रामनाम की भनक उसके कान में भी न पड़े तो ईश्वर आराधना का उसे कभी ख्याल भी न आयगा। लाखों और करोड़ों मनुष्य संसार में कभी किसी मन्दिर, गिरजा या मसजिद में कदम तक नहीं रखते। ईश्वराराधना तो एक आदर्श

की बात है । बुराई भलाई या नीति अनीति से और परमात्मा से कोई सम्बन्ध नहीं । नीति की आवश्यकता तो समाज और संगठित जीवन के लिये पड़ती है कोई परमात्मा उमंग में आ कर थोड़े ही नीति से रहने की आज्ञा भेज देता है । परमात्मा ने मनुष्य नहीं बनाया । मनुष्य ने परमात्मा बनाया है । यदि आप बानर से अपना सम्बन्ध मान लें तो इससे आपके नीतिशास्त्र पर क्या असर पड़ता है ? खाना-पीना और विषय-भोग करना तो मनुष्य के लिए बिलकुल स्वाभाविक ही है । हां, इन सब की सीमा अवश्य है परन्तु यह सब सीमायें शरीररक्षा और स्वास्थ्य के कारण रक्खी गई हैं और कुछ रीतिरसम के कारण बन्ध गई हैं । आप विषयभोग से बिलकुल मुंह फेर लेने का उपदेश कैसे दे सकते हैं ? आप यह नहीं सोचते कि विषयभोग से प्रवृत्ति भी तब ही दूर हो सकती है जब कि हमारी इच्छायें खूब पूरी हो जावें । आप कहते हैं कि मनुष्य प्रकृति से अहिंसात्मक है हिंसात्मक नहीं । परन्तु यदि आपका ब्रिटिश माल का बहिष्कार ही पूरा हो जाता तो आपने इंग्लैंड के मजदूरों पर कितनी हिंसा की होती ! क्योंकि किसी का सर छुरे से फोड़ डालना ही तो हिंसा नहीं है उसको भूखों मारना भी तो हिंसा ही है । आपकी 'आत्मशक्ति' अथवा प्रेमशक्ति केवल मन के लड्डू हैं । । अहिंसा सभ्यता का तकाजा है । मनुष्य की प्रकृति नहीं ।"

मैंने डाक्टर साहब के पत्र को संक्षिप्त कर लिया है । जिस पूर्ण विश्वास से उन्होंने लिखा है उसे देख कर तो मेरे होश उड़ जाते हैं । परन्तु हमारे डाक्टर महोदय जिन्होंने विलायत में शिक्षा पाई है और जो बहुत दिनों से डाक्टरी कर रहे हैं वही बातें कहते हैं जो कि प्रायः पढ़े लिखे लोग विचारा और कहा करते हैं । परन्तु मेरी समझ में उनकी बातें नहीं आती । आइये ! उनके तर्क को जरा कसौटी पर कसें । वह कहते हैं कि जनता में अहिंसा का भाव नहीं आ सकता । हम देखते हैं कि संसार के सारे कार्य प्रतिदिन प्रेम से हो चलते हैं । अगर मनुष्य प्रकृति से ही हिंसात्मक हो तो संसार क्षणभर में ही नष्ट हो जाय । बिना पुलिस या और किसी दबाव के ही लोग शान्ति से रहते हैं । जब बुरे लोग आ कर जनता में अस्वाभाविक विचार फैला कर उसका दिमाग खराब कर देते हैं तभी जनता हिंसा की तरफ चल पड़ती है अन्यथा नहीं । परन्तु फिर भी सारी हत्या कर करा कर फिर लोग हिंसावृत्ति को भूल जाते हैं और अपने प्राकृतिक शान्त भाव से काम में लग जाते हैं । जब तक बुरे लोग उन्हें उकसाते रहते हैं तब ही तक उनमें हिंसा का भाव जागृत रहता है ।

अभी तक तो हमने यही सीखा है कि किसी प्राणी का जातिभेद दूसरों से केवल उसके गुणों पर निर्भर रहता है । इसलिए यदि हम यह कहें कि घोड़ा पहिले 'पशु' है और फिर 'घोड़ा' तो यह ठीक न होगा । यह तो ठीक है कि घोड़े में और अन्य पशुओं में कुछ समानता है परन्तु घोड़ा अपने 'घोड़ेपन' को छोड़ कर पशु नहीं रह सकता । अपनी विशेषता छूट जाने पर वह अपनी पशुत्व की सामान्य अवस्था भी स्थिर नहीं रख सकता । इसी प्रकार यदि मनुष्य अपनी मनुष्य अवस्था को छोड़ दे, पूंछ उगा ले, चारों हाथ पैरों पर चलने लग जाय और अपने हाथों और अपनी बुद्धि को प्रयोग में न लावे तो वह केवल मनुष्य ही कहलाने का अधिकारी नहीं रहेगा बल्कि पशु भी कहलाने का अधिकारी नहीं रहेगा । बैल, गधा, भेड़ या बकरी वह किसी में सम्मिलित नहीं हो सकेगा । इसलिए डाक्टर साहब से कहता हूं कि मनुष्य उसी समय तक पशु कहला सकता है जब तक उसमें मनुष्यता है ।

आस्ट्रेलिया के हबशियों का उदाहरण भी यहां ठीक नहीं बैठता । पशु पशु ही है हबशी फिर भी मनुष्य हैं । हबशी में उन सब सद्गुणों के विकास की सम्भावना है जो मनुष्य में होते हैं परन्तु पशु में उन गुणों का विकास सम्भव नहीं है । और फिर आस्ट्रेलिया के हबशियों के उदाहरण की आवश्यकता ही क्या है । हमारे पूर्वज स्वयं इनसे कुछ अधिक अच्छे नहीं थे । मैं डाक्टर साहब की यह बात अक्षरशः मान लेता हूं कि सभ्य पुकारे जानेवाले राष्ट्रों में भी अभी तक लोग वहशियों की तरह ही बर्ताव करते हैं । डाक्टर साहब भी यह तो मानते हैं कि यद्यपि हमारे पुरखा जंगली थे परन्तु कम से कम हम सभ्य लोगों को तो पशु सृष्टि से भिन्न रखना ही पड़ेगा । पशु का पाशविक व्यवहार करना स्वाभाविक है परन्तु हम तो इस विशेषण को अवश्य पसन्द नहीं करेंगे । डाक्टर साहब क्षमा मांग कर बहुत हिचकते हुये मुझसे कहते हैं कि यदि मैं बानर से अपना दूर का सम्बन्ध मान लूं तो इससे मेरे नीतिशास्त्र पर क्या असर पड़ता है ?' मैं जिस नीति पर चलता हूं वह नीति बानर, घोड़ा और भेड़ ही नहीं शेर चीता और सांप बिच्छू सब से नाता और सम्बन्ध रखने की मुझे न केवल इजाजत देती है, आज्ञा करती है; चाहे यह मेरे नातेदार मुझे अपना सम्बन्धी न समझे हों । जिन नीति के कठिन सिद्धान्तों को मैं स्वयं मानता हूं तथा जिनको मानना मैं हर व्यक्ति का कर्तव्य समझता हूं उनके अनुसार यह एकतरफा नातेदारी निबाहने का धर्म आवश्यक है । यह सब कर्तव्य हम पर इसीलिये है कि केवल मनुष्य ही परमात्मा के स्वरूप के अनुसार बनाया गया है । हममें से बहुत से अपने इस स्वरूप को चाहे न पहिचानें परन्तु इससे इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं पड़ता कि हम उस लाभ को न उठा सकें जो हमें अपना वास्तविक स्वरूप पहिचानने से होता है जिस प्रकार भेड़ों में पला हुआ शेर अपना स्वरूप भूल कर नहीं पहिचानता और इसीलिये उसे उसका लाभ भी नहीं मिलता । परन्तु फिर भी उसका स्वरूप शेर का स्वरूप ही है और जिस समय वह अपना स्वरूप पहिचान लेता है उसी समय से वह भेड़ों का राजा हो जाता है परन्तु कोई भेड़ कितना भी प्रयत्न करें वह शेर कभी नहीं हो सकती । यह साबित करने के लिये कि मनुष्य परमात्मा के स्वरूप के अनुसार बना है इस बात की आवश्यकता नहीं है कि हर मनुष्य में हम परमात्मा का स्वरूप दिखा दें यदि हम एक में भी परमात्मा का स्वरूप दिखा दें तो हमारी बात सिद्ध हो गई । और क्या इस बात से कोई इनकार करेगा कि जो जो धार्मिक गुरु व नेता हुये हैं उनमें परमात्मा का स्वरूप नहीं था ? परन्तु हां हमारे डाक्टर साहब तो यह कहते हैं कि मनुष्य को परमात्मा का ज्ञान अथवा प्राप्त होना अस्वाभाविक है और इसीलिये वह कहते हैं कि मनुष्य ने अपने स्वरूप के अनुसार परमात्मा बनाया है । इसके उत्तर में मैं इतना ही कह सकता हूं कि अभी तक संसार में भ्रमण करनेवालों की जो साक्षी है वह सब इसके विरुद्ध है । प्रतिदिन इसी बात पर अधिक जोर दिया जा रहा है कि किसी बेढंग से बेढंग स्वरूप में क्यों न हो परन्तु ईश्वराराधना ही मनुष्य को पशु से पृथक् करती है । इसी गुण के कारण वह परमात्मा की सृष्टि में राज्य करता है । इससे कोई मतलब नहीं कि करोड़ों मनुष्य कभी मन्दिर गिरजा और मसजिद में कदम नहीं रखते । ईश्वराराधना के लिये वहां जाना न स्वाभाविक ही है न आवश्यक । भूत पलीत और पत्थर पूजनेवाले भी अपने से महान शक्ति ही की पूजा

करते हैं। आराधना का यह ढंग अवश्य ही बहुत बेढंगा और बुरा है परन्तु फिर भी है यह भी ईश्वराराधना ही। मिट्टी से सना हुआ सोना सोना ही है। तच कर और साफ हो कर चमक उठता है और फिर हर एक उसको पहिचान लेता है कि सोना है। परन्तु कितना ही तचाइये और साफ कीजिये लोहा सोना नहीं बन सकता। हां ईश्वराराधना का सुन्दर ढंग निकाल ले। अवश्य मनुष्य के प्रयत्न का फल है। बेढंगी ईश्वराराधना आदम के समय से चली आती है और ऐसी ही स्वभाविक है जैसी कि रोटी खाना या पानी पीना। बिना खाये तो मनुष्य दिनों जीवित रह जाता है परन्तु बिना ईश्वराराधना किये एक पल भी जीवित नहीं रहता। चाहे कोई मनुष्य यह बात न माने जिस प्रकार कि कोई बेसमझ आदमी अपने शरीर में फेफड़ों का होना अथवा रक्त का प्रवाह न माने।

डाक्टर साहब विषयभोग और खानेपीने की आवश्यकताओं को एक ही श्रेणी में रखते हैं। यदि उन्होंने मेरा लेख ध्यान से पढ़ा होता तो वह दवाला देते समय ऐसी विचारों की गड़बड़ न दिखाते। जो कुछ मैंने कहा है और जो अब मैं फिर दुहराता हूं वह यह है कि केवल स्वाद या आनन्द के लिये खाना मनुष्य के लिये स्वाभाविक नहीं है। जीवित रहने के लिये खाना स्वाभाविक है; इसी प्रकार विषयभोग भी आनन्द के लिये नहीं केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये ही स्वाभाविक है।

मैं तो मरने दम तक विषयभोग से दूर रहने ही का प्रचार करूंगा। यह पहिले डाक्टर महाशय हैं जो कहते हैं कि विषयभोग से तबतक प्रवृत्ति नहीं हट सकती 'जबतक कि खूब इच्छाओं की पूर्ति न हो जाय।' अन्य डाक्टरों ने तो मुझे यही बताया है कि खूब इच्छाओं की पूर्ति करने से विषयभोग से प्रवृत्ति तो नहीं हटती बल्कि नाश कर डालनेवाली नपुंसकता आ जाती है। विषय-भोग से बिलकुल प्रवृत्ति हटाने के लिये बहुत प्रयत्न की आवश्यकता है। परन्तु फिर लाभ भी तो बहुत मिलता है। यदि हम अपना जीवन विज्ञान आदि की खोज में बिता सकते हैं जो केवल सृष्टि के एक अंश का हमें ज्ञान कराता है तो फिर क्या हम अपने जीवन की गुत्थी सुलझाने के लिये अपने आत्मज्ञान और ईश्वर के ज्ञान के लिये अपना जीवन आत्मसंयम के लिये नहीं दे सकते।

जो आत्मनिग्रह के मार्ग पर कुछ दूर चल चुका है उसे यह बताने की तो आवश्यकता ही नहीं रहती कि अहिंसा (प्रेम) न कि हिंसा (द्वेष) से ही मनुष्यमात्र अथवा यों कहिये कि संसार बंधा हुआ है। कुछ उदाहरण दे कर डाक्टर साहब मेरी हिंसा सिद्ध करना चाहते हैं। परन्तु इससे केवल उनकी मेरे लेखों से अनभिज्ञता प्रकट होती है। यह कोई जरूरी बात नहीं कि सब लोग मेरे लेख पढ़ते ही रहा करें परन्तु हां कम से कम वह लोग तो पढ़ लिया करें जो मुझ पर आक्षेप करने का साहस करते हैं। मैंने केवल विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने को कहा है। इसमें ब्रिटिश मजदूरों के प्रति हिंसा कैसे हो जाती है? हम उनका बनाया कपड़ा नहीं पहिनते, अपना बनाया स्वयं पहिनते हैं। हमने कोई ठेका ले लिया है कि उन्हीं का बनाया कपड़ा पहिनते रहेंगे। हमारे उनके बनाये कपड़े के न पहिनने से ही यदि वे भूखों मरने लग जांय तो इसमें हमारा क्या दोष? हिंसा तो उलटी वही करते हैं। ब्रिटिश मजदूरों का बनाया हुआ और उन्हीं के नाम पर विदेशी कपड़ा भारत के सिर जबरदस्ती मढ़ा जाता है। यदि कोई शराबी शराब पीना छोड़ देता है तो क्या वह शराब की दुकानवाले के प्रति हिंसा करता है? वह तो अपना और उसका दोनों का भला करता है। भारत भी जिस रोज विदेशी कपड़े का व्यवहार छोड़ देगा अपना और विदेशियों का दोनों का भला करेगा। विदेशी कारीगर भूखों नहीं मरेंगे। उन्हें दूसरे उपयोगी धन्धे मिल जायंगे। यदि वे स्वयं ही भारत के लिये कपड़ा बनाना बन्द कर दें तो संसार के एक बड़े उपयोगी आन्दोलन में वे सहायक होंगे।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

मुमुक्षु जमनालालजी

(२)

बछराजजी ४½ लाख रुपया छोड़ गये थे परन्तु जमनालालजी ने अपनी व्यापारदक्षता से जो उन्होंने किसी विद्यालय में पढ़ कर नहीं परन्तु अनुभव से प्राप्त की थी उससे चौबीस लाख कमाये। और इन चौबीस लाख कमाने में असत्य से जितने दूर वह रहे उतना कदाचित् ही कोई दूर रहा होगा। सज्जन वणिक के सम्बन्ध में शामल भट्ट का छप्पय जमनालालजी को देख कर हर मनुष्य को याद आ जाता है:—

> वणिक तेहनुं नाम, जेह जूठुं नव बोले
> वणिक तेहनुं नाम, तोल ओछुं नव तोले,
> वणिक तेहनुं नाम, बापे बोल्युं ते पाळे,
> वणिक तेहनुं नाम, व्याज सहित धन वाळे.
> विवेक तोल ए वणिकनुं—
> वणिक माहि गुण वश, रंग भडे नहि भने,
> चोरी नारी जन जुठ अकार आवे नहि मने,
> अपर्वे अन्य अभिमान, मान तान तो न गणे,
> निंदा नीच स्वभाव न्हुं कोईनुं न भणे.
> माळा कोई एक दे धणी, पछी वाळी नव जाणीओ
> मुठ नव बंधे परकी मेवार पळे ते वाणीओ.

जिस विवेक से उन्होंने धन कमाया उसी विवेक से उन्होंने अपने धन का दान किया। लाखों रुपया दे कर के 'सर' हो सकते थे। प्रवाह के अनुसार युनिवर्सिटी में स्कोलरशिप दे कर और सरकार को सरकारी संस्थाओं के स्थापनार्थ धन दे कर वे मान पा सकते थे। परंतु असहयोगी होने के पहिले ही से उनमें सच्ची विवेकबुद्धि से व्यवहार चलाने का स्वभाव था। हां यह बात ठीक है कि असहयोग ने उनका क्षेत्र बढ़ा दिया। उन्होंने कुल अपने ११ लाख रुपये के दान में से केवल असहयोग में ही करीब छ लाख रुपये का दान दिया होगा। परंतु असहयोग से पहिले के भी आपके दान बहुत विवेकपूर्ण रहे हैं। सर जगदीशचन्द्र बोस की विज्ञानशाला के लिये ३५,०००) दिया और काशी विश्व-विद्यालय के पुस्तकालय के लिये ५१,०००) का दान दिया। इसी से उनके विवेक और दूरदर्शिता का पता लग जाता है। ११ लाख रुपये के दान में से केवल दो लाख के करीब, उन्होंने अपनी समाज के लिये दिया। शेष आठ या नव लाख रुपया कुल देश और धर्म के लिये दिया। केवल मुसलमानों को ही २१ हजार का दान दिया।

असहयोगी होने से पहिले ही आप बड़ी निर्भयता का व्यवहार करते रहे हैं। गवर्नर ने एक बार आप को दरबार में बुलाया और इस अवसर पर एक विशेष पोशाक ही पहिन कर आने की आप को सूचना मिली। आपने वह पोशाक पहिनने से इन्कार कर दिया। आखिरकार आप से कहा गया कि आप जिस तरह चाहें आवें। गवरनर को पार्टी देने के समय भी आपने कलक्टर को साफ कहला भेजा कि अंडे, मांस या शराब न दिया जाय।

भारतसचिव मिस्टर मोंटेग्यु जिस समय भारतवर्ष में आये थे तब दरभंगा के महाराजा सनातनधर्मिओं का एक डेप्युटेशन उनके पास ले जाना चाहते थे। जमनालालजी ने उनको लिखा कि यदि आप लोग भारतसचिव के सामने यह मांग रक्खें कि लश्कर के लिए जो गोवध होता है वह बन्द हो जाय तो मैं डेप्युटेशन में शामिल हो सकता हूं। महाराजा दरभंगा ने यह बात स्वीकार नहीं की और इसलिये आप डेप्युटेशन में सम्मिलित नहीं हुये। बर्दवान के महाराजा ने जमींदारों के डेप्युटेशन में सम्मिलित होने का आपको न्यौता भेजा परन्तु इसको खुशामदियों का डेप्युटेशन समझ कर आप उसमें सम्मिलित नहीं हुये। रेलमें सफर करते समय भी 'टौमियों' से न डर कर उन्हें डांट दिया करते थे और एक असभ्य यूरोपीयन के तो एक दफा लात मारने को भी तैयार हो गये थे। यह सब आपकी असहयोग के पहिले की निडरता के नमुने है।

सेवाद्वारा मोक्ष पाने की इच्छा आप की पहले ही से थी। एक ब्रह्मचारी संन्यासी का सत्संग कई वर्षों से आप करते आये हैं और अब भी आप उनकी सेवा करते हैं। अब भी अक्सर हर शुभ कार्य में आप उनका आशिर्वाद मांग कर ही हाथ डालते हैं। उनमें निर्भयता, वीरता धर्मबुद्धि और सेवाभाव तो पहिले ही से मौजूद था परन्तु गान्धीजी के सत्संग से वह और विस्तृत हो गया है—संसार के प्रत्येक व्यवहार में हर काम को वे धर्म की तराजू में तोल लेते हैं। असहयोगी होने पर नये नये सिद्धान्तों के पालन करने का भार बढा और उनकी सत्यनिष्ठा ने उनके सन्मुख कई एक नयी नयी समस्यायें खडी कर दीं। टाटा कम्पनी मुलशी पेटावालों पर अत्याचार कर रही है तो फिर उस कंपनी के शेयर मैं कैसे रख सकता हूं? कलकत्ता के व्यापार के कारण बार बार अदालत में जाना पडता है तब फिर वहां का काम बन्द ही क्यों न कर दूं? मैं अस्पृश्यता में विश्वास नहीं रखता हूं यह लोगों को किस तरह बताऊं? बहुत से रीतिरिवाजों को मैं बुरा समझता हूं तो फिर लडकी के विवाह में ही उनको तिलांजली क्यों न दे दूं? आप गरीब से गरीब के साथ एक सा व्यवहार करते है और भरसक गरीबी से रहने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे ही बहुत से प्रश्नों को उन्होंने स्वयं कष्ट सहन कर के हल किया। ऐसे प्रयत्नों के कई एक वर्णन इस जीवनपरिचय में आये हैं। और ऐसे सैंकडों प्रसंग उनके भविष्य जीवनचरित्र में लिखे जा सकते हैं। एक छोटी सी बात है परन्तु यहां बिना लिखे जी नहीं मानता। खादी का व्रत खद्दर पहिनने से है; परन्तु जो चरखासंघ के सभ्य हैं, और रात दिन खद्दर का प्रचार करते हैं, वह दूसरे कामों के लिए भी खद्दर को छोड कर और दूसरे कपडे का उपयोग किस प्रकार कर सकते है? वर्धा में एक नया ही प्रश्न खडा हुआ। घरमें ५०-१०० निवाड के पलंग थे। वैसे घर में श्रीमती जानकीबाई और बालक सभी नखशिख खद्दर पहिनते थे और सूत भी कातते थे परन्तु उनको किसी को इस निवाड का कभी ख्याल नहीं आया। जमनालालजी ने कहा कि यह मिल के सूत की निवाडवाले पलगों को काम में लाने की क्या जरूरत है? व्यवहार कुशल जानकीदेवी ने कहा कि: 'आप के लिए हाथों से काते हुये सूत की निवाड का पलंग बनाया जाता है, परन्तु घरमें बहुत से पलगों की निवाड है उसको व्यर्थ नष्ट न कीजिये। परन्तु जमनालालजी ने निश्चय कर लिया था कि घरमें मिल के सूत की निवाडवाले पलंग नहीं रक्खेंगे।

इस पुस्तक का परिचय मैं अधिक लम्बा बनाना नहीं चाहता हूं। इसी प्रकार के बहुत से उदाहरण जो पुस्तक में नहीं आये हैं दिये जा सकते हैं परन्तु उनके लिए यहां स्थान नहीं। उनकी असहयोग प्रवृत्ति आज संसार को विदित है। राय-बहादुरी और ओनरैरी मेजिस्ट्रेटी को तिलांजली दे कर देश के जमाली बन कर महासभा की कार्यकारिणी समिति में काम किया। अपना व्यापार-धन्धा कम कर के तीन वर्ष तक देश में भ्रमण किया। नागपूर सत्याग्रह का संचालन करते हुए स्वयं जेल में गये। हिंदु-मुसलमानों के झगडे में मुसलमानों को बचाने में स्वयं जख्मी हुए। खद्दर के काम का व्रत धारण किया और गोरक्षा का प्रश्न हाथ में लिया। गोरक्षा और खद्दर का वाणिज्य—इन दोनों वैश्य के धन्धे को उत्साहपूर्वक उठा लेने के लिए मारवाडी समाज से आग्रह किया—यह सब बातें सब समाचारपत्र पढनेवाले अच्छी तरह जानते हैं। इन सब बातों का इस पुस्तक में वर्णन आ गया है परन्तु उनके जीवन की सारी जटिल समस्याओं अथवा अपनी धर्मपत्नी के प्रति व्यवहार की सारी कहानी तो उनके विस्तृत जीवन-चरित्र में ही लिखी जा सकती है। परन्तु भविष्य में जमनालालजी क्या करेंगे यह जानने के लिए यह छोटी सी पुस्तक भी लाभदायक हो सकती है। हमारी सब की यही प्रार्थना है कि जिस ध्येय के लिए जमनालालजी ने अपना जीवन समर्पण किया है उसमें उन्हें दिन प्रतिदिन सफलता हो।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

एक महान देशभक्त

श्री उमर सुभानीजी की बडी अचानक और अकाल मृत्यु हो गई। हमारे बीच से एक महान देशभक्त और कार्यकर्ता उठ गया। एक समय बम्बई में श्री उमर सुभानी की तूती बोलती थी। बम्बई का कोई सार्वजनिक कार्य उमर सुभानी के दिन बिगडने से पहिले ऐसा न होता था जिसमें उनका हाथ न हो। फिर भी वह कभी सामने मन्च पर नहीं आते थे। मंच को तय्यार कर देते थे। बम्बई के सौदागरों में वे बहुत प्रिय थे। उनकी नजर प्रायः बहुत तीक्ष्ण और बेलाग होती थी। उनकी उदारता दोष की हद तक पहुंच जाती थी। पात्र-कुपात्र सब ही को वह दान दिया करते थे। प्रत्येक सार्वजनिक कार्य के लिए उनकी थैली का मुंह खुला रहता था। जैसा उन्होंने कमाया वैसा ही खर्च भी किया। उमर सुभानी हर काम की हद कर देते थे। उन्होंने आढत के काम में भी हद कर दी और इसीसे उनपर तबाही आ गई। एक महीने में ही उन्होंने अपनी आमदनी को दुगना कर लिया और दूसरे ही महीने में दिवाला पीट लिया। उन्होंने अपनी हानि को तो बहादुरी से सह लिया परन्तु उनके अभिमान ने उन्हें सार्वजनिक कार्यों से हटा लिया क्योंकि अब उनपर इन कामों में लाखों रुपया खर्च करने को नहीं था। वह माध्यमिक रास्ते पर चलना जानते ही नहीं थे। यदि चन्दे की फिहरिस्त में सबसे पहिले वह नहीं रह सकते तो बस फिर वह उस फिहरिस्त की तरफ मुंह मोड कर भी न देखेंगे। इसीलिए गरीब होते ही वह सार्वजनिक कार्यों से हाथ खैंच कर बैठ गये। जहां कहीं और जब कभी कोई सार्वजनिक कार्य होगा उमर सुभानी का नाम बिना याद आये न रहेगा और न उनकी देश की सेवा ही कोई भूल सकता है। उनका जीवन हर अमीर नौजवान के लिए आदर्श और आगाही दोनों है। उनका जोशभरा देशभक्ति का कार्य आदर्श योग्य है। उनका जीवन हमें बतलाता है कि रुपया रख कर भी एक मनुष्य काबिल हो सकता है और उस रुपये की सार्वजनिक कार्यों की भेट कर सकता है। उनका जीवन अमीर नौजवानों को जो बडे २ काम करने की धुन में रहते है आगाही भी देता है।

उमर सुभानी कोई निर्बुद्ध सौदागर नहीं था। जिस समय उनको हानि हुई उस समय और भी बहुत से सौदागरों को हानि हुई थी। उन्होंने जो बहुत सी रुई भर ली थी उसको हम मूर्खता नहीं कह सकते। वह बम्बई के सौदागरों में अच्छा स्थान रखते थे फिर भी उन्होंने इस प्रकार और काम के ध्यान से रुपया क्यों लगाया? परन्तु वह तो देशभक्त की हैसियत से होसला बढ़ाये रखना अपना कर्तव्य समझते थे। उनका जीवन और उनका नाम जनता की जागीर था और उन्हें बहुत सोच-समझ कर काम करना चाहिए था। मैं समझता हूं कि काम बिगड़ जाने के बाद सबलोग अक्लमन्दी की बातें बताया करते हैं परन्तु मैं उनके दोष ढूंढने के अभिप्राय से कुछ नहीं कह रहा हूं। मैं तो चाहता हूं कि हम सब इस देशभक्त के जीवन से शिक्षा लें। आनेवाली सन्तान को किसी काम के बिगड़ जाने से शिक्षा लेनी ही चाहिए। दूसरों की गलतियों से भी हमें कुछ सीखना ही चाहिए। हम सब को उमर सुभानी की तरह अपने हृदय में देशप्रेम रखना चाहिए। हम सबको दान देने में उमर सुभानी होना चाहिए। हम सबको उमर सुभानी की तरह धार्मिक द्वेष से दूर रहना चाहिए। परन्तु हम सबको उमर सुभानी की तरह बेपरवाह और असावधान होने से बचना चाहिये। यही इस देशभक्त ने हम सबके लिए वसीयत छोडी है और हम सबको उस वसीयत से लाभ उठाना चाहिए।

मेरी उनके वृद्ध पिता और उनके परिवार के साथ अत्यन्त सहानुभूति है और मैं उनके साथ उनके शोक में सम्मिलित हूं।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

बिहार में खादी प्रदर्शनियां

बिहार में होनेवाली खादी-प्रदर्शनियों की मेरे पास एक लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट आई है। इस वर्ष दिल्ली में अग्रवाल महासभा ने एक ऐसी ही प्रदर्शनी की थी, उसको देख कर राजेन्द्र बाबू के दिल में विचार उठा कि बिहार में भी ऐसी खादी-प्रदर्शनियां की जावें तो बड़ा लाभ हो। प्रथम प्रदर्शनी जो बिहार में हुई उसका प्रारंभिक संस्कार कलकत्ते के खादी-प्रतिष्ठान के बाबू सतीशचन्द्र दासगुप्त ने किया। इसमें खूब सफलता हुई और इस कारण ऐसी प्रदर्शनियां बिहार के और स्थानों में भी की गई। पहिली प्रदर्शनी गंगा के किनारे बिहार विद्यापीठ की जमीन पर पटना से करीब तीन मील की दूरी पर हुई। दूसरी बिहार नवयुवक मण्डल ने की और उसका प्रारम्भिक संस्कार सिंध प्रदेश के साधु वस्वानी ने किया। तीसरी आरा और चौथी मुजफ्फरपुर में हुई और मौलवी मुहम्मद शफी ने उसका उद्घाटन किया। पांचवीं छपरा में हुई और मौलाना मजहरुल हक ने उसका उद्घाटन किया। छठी छपरा के निकट मैरनिया नामी एक छोटे से गांव में हुई और अन्तिम सातवीं गया में हुई। गरमी बहुत पड़ रही थी परन्तु फिर भी गया में सबसे ज्यादह भीड़ हुई। लगभग ७००० मनुष्य आये और उनमें बहुत सी स्त्रियां भी थीं। कम से कम उपस्थिति २००० की रही।

इन प्रदर्शनियों में कांग्रेसवाले, कांग्रेस से बाहरवाले, सरकारी कर्मचारी, जमींदार, वकील, छोटे बड़े सौदागर और कहीं २ तो योरपियन भी आते हैं। मैरनिया में अधिकतर ग्रामवासी ही आये। खादी की औसत बिक्री करीब १०००) की हर प्रदर्शनी में रही। सबसे अधिक २०००) की गया में और सबसे कम ४००) की मैरनिया में बिकी। इन प्रदर्शनियों में हिंदू-मुस्लिम या दलबन्दी के द्वेष के कहीं चिन्ह भी नहीं दीखते थे।

काम इस प्रकार आरम्भ किया जाता है कि पहिले किसी जगह जा कर वहां के मुख्य २ लोगों से मिलते हैं और उनसे एक खादी प्रदर्शनी खोलने की प्रार्थना करते हैं। किसी विशेष पुरुष के हाथों उसका उद्घाटन कराते हैं। खास २ लोगों को निमन्त्रण भेज कर बुलाते हैं। प्रदर्शनी का खूब विज्ञापन करते हैं। शाम को प्रदर्शनी के स्थान पर मैजिक लालटेन से व्याख्यान दे कर खादी आन्दोलन लोगों को समझाते हैं। भीड़ें की भीड़ें इन व्याख्यानों को सुनने के लिए आती हैं। प्रदर्शनी समाप्त हो जाने पर जिस नगर में प्रदर्शनी होती है वहां घूम २ कर खादी बेचते हैं। आगे भी और ऐसी ही प्रदर्शनियां खोलने का इरादा है और ८००००) का जो माल इकट्ठा हो गया है उसे बेच डालने की वहां के कार्यकर्ता आशा रखते हैं। बड़े २ प्रतिष्ठित लोग खादी बेचने में भाग लेते हैं।

मई के अंक

नीचे दिये गये अंकों में तीन और प्रान्तों के अंक भी शामिल हैं। जुदे जुदे प्रान्तों के जनवरी से पांच महीने के खादी की उत्पत्ति के अंक इस प्रकार हैं।

	मई		जनवरी से पांच महीने के अंक	
प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्री	उत्पत्ति	बिक्री
अजमेर	११५०)	२६६४)	५४८४)	८१४०)
आन्ध्र	१५,९९८)	२६५७९)	४४४०१)	१०२९९४)
बिहार	२१३२८)	११५३०)	९८५६९)	८२४८७)
बंगाल	३८२११)	३०५६६)	१६९८०४)	१२७३९७)
बम्बई	...	२७६५०)	...	१५९४१६)
बर्मा	...	१३५७)	...	९६३३)
दिल्ली	१२४९)	६४७)	५४०९)	७८९८)
गुजरात	९३८६)	६४९६)	३८७१९)	५३६२३)
करनाटक	३४५६)	५०४०)	१४५४०)	२६२८२)
दक्षिण महाराष्ट्र	...	३२७)	...	६२५७)
मध्य महाराष्ट्र	..	३१२९)	४२६)	१७०६४)
उत्तर महाराष्ट्र	१९,१५)	९०९४)	५४६३)	३४९२२)
पंजाब	५५१७)	५६२१)	४४३५६)	४१८७८)
तामिलनाड	४००४९)	६६०६४)	२७९७८५)	२९१८८६)
संयुक्तप्रान्त	५५४४)	१४३६४)	२८४६१)	६०८५५)
उत्कल	३००१)	१८४८)	१५९९४)	९०२०)*१
मध्यभारत (हिन्दी)	...	२८५)	...	२८५)*२
केरल	...	...	१४९५)	६१०२)*३
कुल	१४६७२७)	२१४३६१)	७५२१९८)	१०९३५७४)

* १ अप्रेल के अंक नहीं मिले

* २ गत मास के अंक नहीं मिले

* ३ मई के अंक नहीं मिले

(यं. इं.) मो० क० गांधी

त्याग की सीमा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ४७

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, आषाढ वदी १५, संवत् १९८३ गुरुवार, ८ जुलाई, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय ८

प्रीटोरिया के रास्ते में

डरबन के वासी ईसाई लोगों से मेरा परिचय शीघ्र ही हो गया। डरबन की अदालत का दुभाषिया मी. पाल कैथेलिक संप्रदाय का था। उनसे परिचय हुआ वैसे ही प्रोटेस्टन्ट संप्रदाय के मी. सुभान गोड फ्रे जो एक शिक्षक थे उनसे भी मेरा परिचय हुआ। मरहूम मी. गोड फ्रे के पुत्र जेम्स गोड फ्रे दक्षिण आफ्रिका के हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधियों में से एक थे जो गत वर्ष हिन्दुस्तान में आये थे। इन्हीं दिनों मरहूम पारसी रुस्तमजी से भी मेरी पहिचान हुई। और ठीक उसी समय मरहूम आदमजी मीयाखान से भी परिचय हुआ। ये सब भाई बगैर कुछ कार्य के एक-दूसरे से मिलते न थे। हम देखेंगे कि वे भविष्य में मिलनेवाले हैं।

इसी तरह मैं लोगों से जान-पहिचान बढ़ा रहा था। इतने ही में दादा अब्दुला की कम्पनी के वकील के तरफ से एक खत मिला। वकील ने लिखा कि मुकदमे के लिए तय्यारियां होनी चाहिए और अब्दुला सेठ को प्रीटोरिया जाना चाहिए अथवा किसी और शख्स को भेजना चाहिए।

सेठ ने यह खत मुझको सुनाया और पूछा, 'क्या प्रीटोरिया जाओगे?' मैंने उत्तर दिया, 'यदि मुझको मुकदमा समझाया जाय तो मैं बतला सकूंगा।' अबतक मुझे कुछ पता नहीं था कि वहां जा कर क्या करना होगा। सेठ ने अपने कर्मचारियों को मुकदमा मुझको समझाने का हुक्म दिया।

मैंने देखा कि मुझे श्रीगणेशाय से आरम्भ करना होगा। जब मैं झंजीबार में था तब अदालत की कार्रवाई देखने के लिए एक दिन चला गया था। एक पारसी वकील गवाहों से जिरह कर रहा था और जमा-खर्च के प्रश्न पूछता था। मैं तो जमा-खर्च के बारे में कुछ भी न जानता था। बही खाते का काम न स्कूल में सीखा था न विलायत में।

मैंने समझ लिया कि मामला हिसाब-किताब पर निर्भर है। जब जो हिसाब-किताब समझता है वही मुकदमा समझ और समझा सकेगा। कर्मचारी जब जमा-खर्च की बातें करते थे तो मैं बड़ा घबराता था। पी. नोट का अर्थ मैं नहीं जानता था। शब्द-कोष में यह शब्द ही नहीं था। अपनी अज्ञानता मैंने कर्मचारी को बताई तब उसने मुझे बतलाया कि पी. नोट का अर्थ प्रोमिजरी नोट है। हिसाब-किताब की एक पुस्तक मोल ले कर पढ़ डाली। इससे कुछ आत्मविश्वास हुआ कि अब मामला समझ सकूंगा। मैंने यह भी देखा कि यद्यपि अब्दुला सेठ हिसाब लिखना नहीं जानते थे परन्तु उन्हें व्यवहारिक ज्ञान इतना हो गया था कि हिसाब-किताब की गुत्थियाँ शीघ्र ही सुलझा देते थे। मैंने उनसे कहा कि मैं प्रीटोरिया जाने के लिए तय्यार हूं।

सेठ ने पूछा "कहां ठहरोगे।"

मैंने उत्तर दिया "आप जिस जगह कहेंगे वहीं।"

"मैं अपने वकील को लिखूंगा वही आपके रहने का प्रबन्ध कर देगा। प्रीटोरिया में मेरे मेमन दोस्त हैं उनको भी मैं अवश्य लिखूंगा किन्तु आपका वहां ठहरना अनुचित होगा। प्रीटोरिया में मुद्दालेह का प्रभाव बहुत ही है। आपको जो कुछ खास २ खत मैं लिखूंगा वह यदि उन लोगों को पढ़ने को मिल गये तो हमारे मुकदमे के लिए यह बात हानिकारक होगी। इसलिए उनसे अधिक सम्बन्ध रखना उचित न होगा।

मैंने कहा: 'आपके वकील जिस जगह मुझको रखेंगे वहीं मैं ठहरूंगा। अथवा मैं कोई अलग मकान ढूंढ लूंगा। आप निश्चिंत रहिये। आपकी एक भी गुप्त बात प्रगट न होगी। परन्तु मैं सबसे मिल-जुल कर रहूंगा। मैं आपके प्रतिद्वन्दी से मित्रता करना चाहता हूं। यदि हो सका तो मैं इस मुकदमे में समझौता करने का भी प्रयत्न करूंगा क्योंकि आखिरकार सेठ तय्यबजी भी आपके रिश्तेदार ही हैं।

प्रतिद्वन्दी स्वर्गवासी तय्यब हाजीखान मुहम्मद अब्दुला सेठ के नजदीक के रिश्तेदार थे।

मैंने देखा अब्दुला सेठ कुछ चौंक उठे, परन्तु डरबन में मेरे पहुंचने के छ सात दिन के पश्चात यह बात हुई थी। हम एक दूसरे को समझने लगे थे। मैं अब कोरा सफेद हाथी ही न रहा था सेठ बोले "हां...आं...आं, यदि समझौता हो सके तब तो बहुत ही अच्छा होगा। लेकिन आप यह भी समझ लीजिये कि हम लोग आपस में रिश्तेदार हैं और इसलिए एक दूसरे को खूब पहिचानते हैं। तय्यब सेठ सहज में माननेवाले नहीं हैं। मिलनेजुलने से वह हमारी बातें जान सकते हैं और फिर पीछे हम को फंसा सकते हैं। इसलिए जो कुछ किया जाय बड़ी सावधानी से किया जाय।"

मै बोला: 'आप बेफिक्र रहिये। मुकद्दमे की बातें मैं न तयब सेठ से, न किसी और ही से करना चाहता हूं। मैं तो उनसे इतना ही कहूंगा कि आपस में बैठ कर आप लोग समझौता कर लें और वकीलों का घर भरने से बच जायं।'

सातवें आठवें दिन मैंने डरबन छोड़ा। पहले दरजे की टिकट मेरे लीए खरीदी गई। बिछौना पाने के लिए पांच शिलिंग की और टिकट लेनी पड़ती थी। अब्दुला सेठ ने उसका टिकट लेने का भी आग्रह किया किन्तु मैंने हठ से, पांच शिलिंग बचाने के इरादे से बिछौने के लिए टिकट लेने से सेठ को रोक लिया। सेठ ने मुझसे कहा कि देखिये यह हिंदुस्थान नहीं है। यह मुल्क कुछ और चीज है। खुदा की महरबानी है, आप कंजूस न बनें। आवश्यक आराम का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये।

मैंने सेठ के प्रति कृतज्ञता प्रगट की और उनसे बेफिक्र रहने को कहा। ट्रेन नेटाल की राजधानी मेरित्सबर्ग नव बजे पहुंची। यहीं बिछौना दिया जाता था। किसी कर्मचारी ने आ कर मुझसे पूछा "आप को बिछौना चाहिये?" मैंने कहा 'मेरे पास बिछौना है।'

वह चला गया। इतने में एक मुसाफिर आया उसने मुझे घूर कर ताका और मुझ को भारतीय देख कर घबराया। बाहर निकल कर चला गया और दो एक कर्मचारियों को बुला लाया। उनमें से किसीने मुझसे कुछ न कहा। आखिरकार एक और कोई अधिकारी आया वह बोला "बाहर आ जाओ, तुम्हारे लिए आखिर का डब्बा है।

मैंने कहा: "मेरे पास पहिले दरेजे का टिकट है।" वह बोला: "कुछ परवाह नहीं। मैं तुमसे कहता हू कि तुम्हें आखिर के डब्बे में जाना होगा।" मैंने कहा कि 'मैं कहता हूं मुझको डरबन से ही इस डब्बे में बिठाया गया है और मै इसी में अपना सफर खतम करना चाहता हूं। अधिकारी ने कहा "यह नहीं होगा। तुम्हें उतरना पड़ेगा, अगर इन्कार करोगे तो सिपाही को उतारना पड़ेगा।" मैंने कहा 'तब तो फिर सिपाही ही को बुलाइये अपने आप तो मैं उतरता नहीं। सिपाही आया उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझ को धक्का दे कर बाहर निकाल दिया। मेरा असबाब भी निकाल लिया। मैंने दूसरे डब्बे में जाने से इन्कार कर दिया। ट्रेन रवाना हो गई। मैं वेटिंग रूम में गया, मेरा दस्तीझोला मेरे साथ था। बाकी और असबाब मैंने नहीं छुआ। रेलवालों ने कहीं रख दिया।

समय शरदऋतु का था। दक्षिण आफ्रिका के ऊंचे प्रदेशों में जाड़ा बहुत सख्त होता है। मेरित्सबर्ग ऊंचाई पर था। ठन्ड बहुत पड़ रही थी। मेरा ओवरकोट मेरे असबाब के साथ था। असबाब मांगने की मुझ में हिम्मत न थी। जाड़ा बहुत लग रहा था। कमरे में बत्ती न थी। आधीरात को एक मुसाफिर आया उसने मुझसे कुछ बातें करनी चाही। किन्तु मैं बातें करना नहीं चाहता था।

मैंने अब अपना कर्तव्य सोचा। क्या मै अपने अधिकारों के लिए लड़ूं या वापस चला जाऊं? अथवा जितना अपमान हो उसको सहूं और प्रीटोरीया पहुंचूं और मुकदमा खतम करने के बाद अपने देशमें को लौट जाऊं? मुकदमा छोड़ कर भाग जाना बुरा होगा। मुझको जो दुःख हुआ वो एक बाह्य दर्द था परन्तु वह एक गहरी व्याधि का लक्षण था और वह व्याधि रंगद्वेष था। मैंने सोचा कि इस रंगद्वेष को मिटाने की यदि मुझ मैं कुछ शक्ति है तो मुझे उसका उपयोग करना चाहिये और उस प्रयत्न में दुःख सहने को तत्पर रहना चाहिये। और रंगद्वेष दूर करने को जिस २ इलाज की आवश्यकता हो वह सब करना चाहिये।

ऐसा निश्चय करके दूसरी ट्रेनसे किसी तरह आगे बढ़ने का इरादा कर लिया।

सुबह को मैंने जनरल मेनेजर को एक लम्बा तार भेज कर शिकायत की। दादा अब्दुला को भी तार दिया। अब्दुला सेठ जनरल मेनेजर से मिले। उन्होंने अपने कर्मचारियों का पक्ष लिया। किन्तु साथ साथ यह भी किया की स्टेशन मास्टर को भी आज्ञा भेज दी कि मुझ को अच्छी तरह अपने स्थान पर पहुंचा दिया जाय। अब्दुला सेठ ने मेरित्सबर्ग के हिंदी व्यापारियों को तार दे दिया कि वे मुझको मिलें और मेरा स्वागत करें। और ऐसे ही तार उन्होंने दूसरी जगह भी भेज दिये। मेरित्सबर्ग के सौदागर मुझसे मिले। उन्होंने अपने दुखों का वर्णन सुनाया और मुझसे कहा कि जो कुछ आप पर हुआ है इससे हम लोगों को कुछ भी आश्चर्य नहीं होता। पहिले या दूसरे दरजे में जो हिन्दुस्तानी सफर करते हैं उनको रेल के कर्मचारी और मुसाफिर तंग करते ही हैं। ऐसी बातें सुनते २ दिन गुजर गया। रात आई, ट्रेन का समय हुआ। मेरे लिए जगह तय्यार थी। बिछौना पाने के लिए जिस टिकट को मैंने लेने से इन्कार कर दिया था वही टिकट अब ली।

ट्रेन मुझ को चार्ल्सटाउन ले चली।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अनाथों का नाथ

चरखे के खिलाफ अनेक दलीलों में से एक यह भी है कि यदि गांव गांव में या विशेष २ गांवों में कपड़े के मिल हो जायं तो हिन्दुस्तान में आवश्यक कपड़ा सहज ही उत्पन्न हो सकता है।

अमदावाद मिलों से भरा हुआ है। नडियाद में भी एक मिल है। वहां की कातनेवालियों की स्थिति आपने जान ही ली है। अब पेटलाद की कातनेवालियों का भी हाल सुनिये।

पेटलाद में दो मिलें हैं। दो कपड़ा रंगने के कारखाने हैं। बहुत से गांवों के बीच में यह गांव बसा हुआ है। तब भी विदेशी कपड़ा इस जिले में बहुत आता है। स्थानीय मिलों के होने पर भी उसकी आमद बन्द नहीं होती और न उसका इस्तेमाल कम होता है।

कपड़ा बनाने के साधनों में मिल एक है। मिलों के राक्षसी यंत्रों में नौजवानों के जीवन नष्ट कर के ढेर कपड़ा तय्यार किया जाता है। परन्तु जो कपड़ा इस देश में घर में बैठे २ खेतों की रखवाली करते हुए और घूमते फिरते उत्पन्न हो सकता है और जो इस देश की फुरसत की आमदनी हो सकती है, जो वक्त बेवक्त में काम आवे और जिससे किसानों के घर भरे रहें और जो सात वर्ष के बच्चे से ले कर सौ वर्ष का बुड्ढा भी बना सके ऐसा कपड़ा हमारे सीधे सादे साधन चरखा और तकली द्वारा ही बन सकता है, इस चरखा और तकली के अभाव से आज हमलोगों में आलस्य घुस गया है और ठलुआपन हमारा नाश कर रहा है। एक तरफ तो हम विलास और व्यसनों के शिकार हो रहे हैं और दूसरी तरफ रोटियों के लाले पड़ रहे हैं। देखिये पेटलाद की कातनेवालियों के आजकल के कुछ उदाहरण आपके सामने रखते हैं।

एक बहिन ने जिसकी उम्र करीब ७० वर्ष की होगी कहा:—"मेरा चरखा कातने के सिवाय और दूसरा कोई काम नहीं है चरखे की आमदनी के सिवाय मेरी और कोई दूसरी आमदनी

नहीं है। चरखे से जो कुछ मिल रहता है उसीसे मेरा गुजारा चलता है। चरखा न चले तो मैं भूखों मरूं। मेरे एक लड़का था। उसके मर जाने के बाद मैंने मजदूरी कर के कुछ दिन गुजारा किया। अब मजदूरी करने की सामर्थ्य नहीं है इसलिए चरखे का ही आश्रय है। उससे मेरा पूरा गुजारा तो नहीं होता है। सारे दिन कातने का काम करती हूं तब भी महीने में २) से २॥) ही पैदा कर पाती हूं। यदि चरखा बन्द हो जावे तो मैं आज ही भूखों मरने लगूं। अल्लाह के सिवाय मेरा कोई दूसरा सहारा नहीं है। घर भी गिराऊ हो रहा है। उसकी मरम्मत किस तरह कराऊं? कैसे नाली लगवाऊं?"

यही बातें करते २ वृद्धा का कण्ठ रुंध गया और आंखों में से आंसू बहने लगे।

दूसरी स्त्री ने जिसकी उम्र करीब ४० वर्ष होगी कहा—'मेरे एक लड़का है। वह पान की दुकान करता है। वह साधारण गुजारे के लिए कमा लेता है। मैं चरखा चलाती हूं उससे जो कुछ मिलता है उससे सरकारी लोन लेकर आती हूं और जो कुछ बच जाता है वह अपनी लड़की को दे देती हूं। यदि चरखा बन्द न रक्खूं तो डेढ़ रुपया महीना कमा लेती हूं।'

तीसरी स्त्री ने जिसकी उम्र करीब ६० वर्ष की होगी कहा कि, 'मेरा लड़का अहमदनगर में शिक्षक है, कुटुम्ब बड़ा है, लड़कियों का खर्च अधिक है। कातने से एक डेढ़ रुपया मासिक कमा लेती हूं। उससे नमक, मिट्टी का तेल इत्यादि लाती हूं। अच्छे के दिन काम बन्द रखना पड़ता है। अन्धेरे बहुत आते हैं। कई महीने बैठा रहना पड़ता है। मेरी जैसी बुढ्ढी बैठ कर क्या करे? जो थोड़ा बहुत उद्यम हो जाय अच्छा ही है। आलस में दिन नहीं कटता। कातने से जी में उमंग रहती है। और कुछ पैसे भी मिल रहते हैं। फिर क्यों न कातूं?'

चौथी स्त्री ने जिसकी उम्र करीब ५५ वर्ष की होगी कहा: 'मैं और मेरी दो लड़कियां सब मिला कर घर में तीन जीव हैं। मासिक खर्च अन्दाजन आठ रुपये होता है। यह मैं चरखा चला-कर और मेरी लड़कियां बटन बना कर पैदा करती हैं। नाते रिश्ते में जब किसीकी मृत्यु हो जाती है या किसीका ब्याह होता है तब सवा महीने तक कातना बन्द रखना पड़ता है। बटन बनाने में या मजदूरी करने में या और कोई दूसरा काम करने में यह रुकावट नहीं आती है। चरखा चलाने में ही यह अड़चन पड़ती है। जिस महीने में चरखा बन्द रखना पड़ता है उसमें गुजारा चलाना कठिन हो जाता है। चरखा बन्द रखने को कोई कहता तो नहीं है परन्तु स्वयं ही बन्द रखना पड़ता है। हम मुहल्ले से बाहर नहीं जा सकती हैं इसलिए दूसरा कुछ धन्धा या रोजगार नहीं कर सकती। कतानेवालों का भला होवे कि जिनसे हमको रोजगार मिलता है। खुदा की मिहरबानी से आजकल हमारा इसी चरखे से गुजारा हो रहा है। खुदा उनकी रोजी में बरकत देवें और हमारा धन्धा सदैव चले, बस यही हमारी दुआ है।

पांचवीं स्त्री ने जिसकी उम्र करीब ६० वर्ष की होगी कहा कि, 'मैं और मेरी लड़की मिल कर घर में हम दो प्राणी हैं। मेरे पास डेढ़ दो बीघे जमीन थी। उसे बेच कर मैंने लड़की की शादी की। लड़की विधवा हो गई और घर में बैठी है। हम दोनों मिल कर दो दिन में एक सेर सूत कात लेते हैं। उसकी पांच से साढ़ेपांच आने तक मजदूरी मिल जाती है। उसीसे हम अपना गुजारा चलाती हैं। अच्छे के दिनों खाने की मुश्किल पड़ जाती है। हम घर से बाहर नहीं निकलतीं परन्तु अब पेट के लिए पोनियां इत्यादि लेने के लिए बाहर चली जाती हैं। यदि कतवाने का काम बन्द हो जावे तो हमें रोटी मिलना बड़ी मुश्किल हो जाय। एक वर्ष से पहिले कताने का काम नहीं होता था तब हम इधर उधर भटक कर अनिश्चित स्थिति में पेट भरते थे। अब चरखा चलने लगा है। इसलिए पेट भरने की चिंता नहीं है।

छठी स्त्री की उम्र वह सौ वर्ष बताती थी परन्तु कम से कम ८० वर्ष तो होगी ही। उनसे यों बातचीत हुई:

कतानेवाला—क्यों माजी, सूत कात लिया?

माजी—क्या करूं? बुखार आता है, जी घबराता है। दो दिन तक पड़ी रही। परन्तु खाने को कुछ नहीं था इसलिए कल उठ कर जितना बना उतना काता है, अब आध सेर पोनी मेरे पास पड़ी होगी।

प्रश्न—माजी, बुखार होने पर भी आप क्यों चली आईं? किसी को भेज दिया होता?

माजी—क्या करूं? घर में अल्लाह के सिवा और कोई नहीं है। मुहल्ले में मुझ गरीब की कौन सुने?

प्रश्न—यह लोग सूत लेने के लिए जाते तब दे देतीं।

माजी—खाने को भी तो चाहिए। इस पैसे से बाजरा लाऊंगी तब खाना बनेगा। यह लोग देने और लेने के लिए आते तो हैं परन्तु जब हमारा कातना खत्म हो जाय तब ही तो नहीं पहुंच सकते। वे तो आठ दिन में एक ही दफे आते हैं। इसलिए मैंने सोचा कि खुद मैं ही आ कर दे जाऊं और पैसे ले जाऊं।

प्रश्न—यह लोग जब कतवाते नहीं थे तब क्या खाती थीं?

माजी—यह बात मत पूछो, धूल फांक के रहती थी।

'क्यों भाई, इस दफे एक पैसा कम दिया? बाजरा किस तरह ला के खाऊंगी?' बुढ़िया के इन शब्दों ने कतानेवाले का दिल पिघला दिया। 'अब दूसरी दफे ऐसा मत कातना' इतना ही कह कर बुढ़िया के हाथों में पैसा दे दिया। पैसा गांठ में बांध पोनी की गठरी छाती से दबा वृद्धा प्रसन्न हो आशिर्वाद देती उमंग से लकड़ी टेकती टेकती घर की ओर चली गई।

पेटलाद में ऐसी ही १९५ औरतें आज कांतने का काम कर रही हैं।

(नवजीवन) लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

अकबर के समय में गोधन

अबुलफज़ल लिखते हैं:

"सारे हिंदुस्थान में गाय पवित्र मानी जाती है और सन्मान पाती है। साम्राज्य के हरएक भाग में जात जात के पशु हैं, परन्तु उनमें गुजरात के उत्तम हैं। गुजरात के बैल एक दिन और एक रात में ८० कोस का सफर करते हैं और तेज घोड़े से भी आगे निकल जाते हैं......किसी समय बैल की जोड़ १०० मुहर में बिकती है। परन्तु साधारण दाम १०–२० मुहर है... बहुत सी गायें दिन में आधा मन दूध देती हैं। गाय के साधारण तौर पर १० रुपया दाम है। सुल्तानचन्द के पास एक जोड़ी बैल की थी उसका उन्होंने ५०००) रुपया दिया था।"

अकबर के समय में दूध २५ दिरम में एक मन मिलता था। ४० दिरम का—१ रुपया और मन ५५¾ सेर के बराबर था। इस हिसाब से १ रुपया का ८९ सेर दूध हुआ। एक मन घी के १०५ दिरम होते थे। इस हिसाब से भी एक रुपये का २१ सेर से ज्यादा हुआ।

वा० दे०

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ़ बदी १४, संवत् १९८३

त्याग की सीमा

एक राष्ट्रीय महाविद्यालय के भूतपूर्व आचार्य लिखते हैं:—

"आप का आत्मत्याग शीर्षक लेख पढ़ कर हृदय पर चोट लगती है। जिन्होंने अपना सब कुछ देश पर वार रक्खा है और जो सदा सब कुछ देश पर निछावर कर देने को तत्पर रहते हैं उन्हीं से तो आप और त्याग की आशा रखते हैं परन्तु अपने उन चेलों को, जो आप के अनुयायी होने का बहाना करके जातीय आन्दोलन से अपना निजी फायदा उठाते हैं, आप कभी नहीं फटकारते। यदि आप ऐसे अमीर आदमियों को जुटा लें जो प्रत्येक कमसेकम छः सच्चे ग्राम संगठन का कार्य करनेवालों का खर्चा उठाने का आप से वायदा करें तो यह अधिक देशसेवा होगी।"

उनके बहुत लम्बे पत्र में से मैंने यह छोटासा ही भाग लिया है। मैं तो यह मानता हूं कि त्याग की कोई सीमा नहीं है। त्याग यदि सोचविचार और हिसाब लगा कर सौदे की भांति किया जाता है तो वह त्याग नहीं है। दूसरे देशों में लोगों ने स्वतन्त्रता के लिए जो जो त्याग किये हैं उससे अधिक तो मैंने कुछ नहीं मांगा है। हमारे देशमें ऐसे अपूर्व आत्मत्याग के अगणित उदाहरण हैं। त्याग विश्वास से होता है और आज हमारे देशवासियों में विश्वास है नहीं।

बहानेबाज चेलों से क्या कहें। उनसे तो कोई आशा ही नहीं। संसार का यह नियम है कि त्यागी ही त्याग करते हैं, किसी के दबाव या कहने सुनने से नहीं बल्कि स्वेच्छा से उनको तो त्याग करने ही में आनन्द आता है। सब कुछ त्याग कर चुकने पर भी उनको यही पछतावा रहता है कि हाय! हम कुछ और त्याग न कर सके।

मुझे अभी तक एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिला है कि कोई सच्चा, मिहनती और बुद्धिमान कार्यकर्ता काम न मिलने से भूखों मर रहा हो। कठिनाई तो तब आ पड़ती है जब कि कोई कार्यकर्ता शर्तें रखता है अथवा उसकी आवश्यकतायें ऐसी होती हैं कि यदि वह चालन-व्यवहार की परवाह न कर के भावुकता को छोड़ दे तो उन आवश्यकताओं का नाम निशान ही मिट जाय। थोड़े ही से अमीर आदमी कितने ही सामाजिक आन्दोलन चला रहे हैं। मेरा निजी अनुभव है कि यदि किसी अच्छे काम में सच्चे और योग्य आदमी लग जाते हैं तो फिर रुपया तो आ ही जाता है। दिन प्रति दिन गांवों में कार्य करनेवाले नौजवानों की संख्या बढ़ रही है परन्तु फिर भी अभी इस गुने कार्यकर्ताओं की और आवश्यकता है। कार्य और रुपये की कोई कमी नहीं है। हां, ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता भी है जो देश की दशा के अनुसार अपने गुजारे के लिए थोड़ा वेतन ले कर काम कर सकें। मेरी देखभाल में ही खादी, अछूतोद्धार, राष्ट्रीय शिक्षा, गोपालन और चमड़े इत्यादि के कई काम होते हैं और उसी में बहुत से कार्यकर्ता स्थान पा सकते हैं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

मुमुक्षु जमनालालजी

(१)

एक लेखक ने कहा है कि मानवजाति के दो विभाग हो सकते हैं — रोगी और निरोगी। जो रोगी है उनका विकास नहीं होता है, दिन प्रति दिन क्षय ही होता है। आत्मा और शरीर दोनों का क्षय। जो निरोगी है उनका दिन प्रति दिन विकास होता है, देह का एक खास मर्यादा के अनुसार और आत्मा का मुक्ति मिलने पर्यन्त। उनकी कथा सदा लाभदायक ही होती है। इस लेखक ने जिसको निरोगी वर्ग में रक्खा है गांधीजी उसको आत्मार्थी या मुमुक्षु कहते हैं। श्री जमनालालजी के जीवन-चरित्र के लेखक ने जब गांधीजी से पूछा कि उनका जीवनचरित्र लिख सकते हैं कि नहीं, तब गांधीजी ने उत्तर दिया कि सामान्य नियम तो यही है कि जीवित मनुष्यों की जीवनी लिखना उचित नहीं समझा जाता है परन्तु मुमुक्षु की जीवनी तो लिख सकते हैं, क्योंकि उसमें से कुछ न कुछ नीति की शिक्षा मिलती है और श्री जमनालालजी को मैं मुमुक्षु या आत्मार्थी मानता हूं।

यह आज्ञा मांगनेवाले श्री. रामनरेश त्रिपाठी थे। उन्होंने सोचा कि अग्रवाल महासभा की इस वर्ष की बैठक के जमनालालजी प्रमुख हैं और इस अवसर पर जमनालालजी का जीवन परिचय मारवाड़ी भाइयों को करा देना अच्छा होगा। यह अवसर अच्छा था। और समयानुसार किया गया यह कार्य अवश्य प्रशंसनीय है। त्रिपाठीजी को जमनालालजी का ठीक २ परिचय है और उन्होंने जितना हाल इकट्ठा किया है वह सब सप्रमाण है और परिश्रम से इकट्ठा किया है। तब भी इस* पुस्तक को जीवन-चरित्र का बड़ा नाम नहीं दे सकते हैं। जमनालालजी की अवस्था ३७ वर्ष की है। कम में कम ४०-५० वर्ष की लोक-सेवा तो उनकी राह देख ही रही है। और अबतक के थोड़े से जीवन में भी जितनी लोक सेवा अथवा लोक-सेवा द्वारा जो मोक्ष साधन उन्होंने किया है इतना अधिक है कि इस थोड़े से परिचय मे उसकी केवल भूमिका मात्र ही आ सकती है। इनका पूरा २ इतिहास यदि लिखने लगें तो सौ पृष्ठों की पुस्तक कम से कम ५०० पृष्ठों की तो बन ही जाय। उदाहरणार्थ इनकी मारवाड़ी कौम की सेवा ही ले लीजिए। यदि उसीका उल्लेख करने लग जाय तो मारवाड़ी कौम की १० वर्ष पीछे की दशा और आज की दशा का सारा इतिहास ही बताना पड़ेगा। उन्होंने महासभा की सेवा किस प्रकार से शुरू की, किस क्रम से उन्होंने अपना सेवा का छोटा क्षेत्र विस्तृत कर दिया इसका सारा रोचक इतिहास देना पड़ेगा।

परन्तु जमनालालजी के जीवन की दृष्टि से ऐसे छोटे परिचय की भी आवश्यकता है। उसका कारण स्पष्ट है। जमनालालजी के जीवन का आरम्भ से ले कर अब तक जो शान्त और स्थिर प्रवाह रहा है उसने भावी जीवन की भी झलक मिलती है। जिस सिद्धान्त को उन्होंने आज अपना लिया है उसको कार्य में परिणित करने का प्रयत्न तो वह खूब करेंगे, परन्तु उन सिद्धान्तों से हटने का मौका कदाचित ही आवेगा; इसलिए यह छोटा सा परिचय भी अनुचित नहीं है। जमनालालजी का जीवन दूसरे पुरुषों के समान बदलता नहीं रहा है। एक समय विलासी और व्यसनी रहने के बाद पीछे फिर यकायक संयमी

* सेठ जमनालाल बजाज — लेखक: रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक: हिंदी मंदिर, प्रयाग; कीं. रु. १-०-०

बन गये हों और जीवन बिलकुल बदल गया हो ऐसा जमनालालजी के विषय में कोई नहीं कह सकता। उनके जीवन ने किसी भी समय पर यकायक पलटा नहीं खाया। उन्हें ईश्वर ने धर्मवृत्ति जन्म से ही दी थी। इस धर्मवृत्ति का दिन प्रति दिन अधिकाधिक विकास होता गया। जो दैवी संपत्ति मोक्ष देनेवाली होती है उस दैवी संपत्ति के बहुत से लक्षण उनमें थोडे बहुत अंश में सदा ही से दिखाई देते थे। अवसर आने पर और भी अधिक प्रकट होने लगे और वे उनमें विशेष रूप से दृढ होने लगे।

यह बात कुछ विस्तार से मैं इसलिये लिखता हूं कि कोई ऐसा न समझे कि असहयोग में जमनालालजी १९२१ में शामिल हुए तब से ही वे प्रसिद्ध हो गये। अथवा असहयोग में आ जाना ही उनके जीवन की बडी घटना है। यह बात तो इस छोटे से परिचय में भी बडी अच्छी रीति से बतलाई गई है। १९२१ पर्यंत का यानी जमनालालजी का ३०–३२ वर्ष की आयु तक का इतिहास भी बहुत रोचक है और बडा शिक्षाप्रद है। बचपन में गरीब मा बाप के यहां सीकर नाम की रियासत में एक बगैर कुवावाले निर्जल गांव में बचपन गुजारा। बडी मुश्किल से बछराज सेठ ने उनको गोद लिया। लडका गोद देने पर उनके मात–पिता ने जनकल्याण के लिये यह सौदा किया और बछराज सेठ ने यह बालक लेने के बदले में गांव में एक बडा पक्का कुआं बनवा दिया। तब से यह बालक बछराज सेठ का हुआ और वर्धा चला गया। बचपन में रोज इनको एक रुपया दुकान से मिलता था। इसी में से बचा २ कर इन्होंने जो धन इकट्ठा किया उसमें से १०० रुपये का उन्होंने सोलह वर्ष की छोटी उम्र में ही एक छापाखाने को दान दिया। उन्होंने एकदफः कहा था कि यह सौ देने में मेरी छाती ऐसी फुली कि वैसी कभी फिर लाख देने में भी नहीं फुली"। इस समय भी भोग विलास में इनकी रुचि न थी। सत्तरह वर्ष की छोटी उम्र में किये हुए उनके एक ही कार्य में दैवी संपत्ति के करीब २ सब लक्षण — अभय, अहिंसा, सत्य, शान्ति तेज, क्षमा और धृति — मौजूद थे, यानी जमनालालजी का उसी एक प्रसंग में पूरा पूरा दर्शन होता है। उनके यह नये पिता बडे क्रोधी थे। जरा २ बात में उनका मिजाज बिगड जाता था और हर किसी आदमीका अपमान कर बैठते थे। एक दिन इन्होंने जमनालालजी का भी वैसा ही अपमान किया और अपनी दी हुई धन दौलत के छीन लेने की धमकी दी और बडे कठोर वचन कहे। इस पर इन्होंने पिता को जो पत्र लिखा वह वैसा का वैसा उद्धृत करने योग्य है और उसमें ऊपर कहे गये सब लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। पत्र मारवाडी भाषा में है इसलिये मारवाडी में ही देते हैं।

"सिद्ध श्री वर्धा शुभस्थान पूज्य श्री बच्छराजजी रामधनदाससूं लिखी चि. जमना का पांवाधोक बांचीजो। अठे उठे श्री लक्ष्मीनारायणजी महाराज सदा सहाय छे। उपरंच समाचार एक बांचीजो। आपकी तबीयत आज दिन हमारे ऊपर निहायत नाराज होय गई सो कुछ हरकत नहीं। श्री ठाकुरजी की मरजी और गोद का लियोडा था जद आप इस तरह कह्यो। सो आपको कुछ भी कसूर नहीं, जिको हमांने गोद दियो जिनेको कसूर छे। बाकी आप कयो कि तुम नालिश करो सो ठीक। बाकी हमारो आपके ऊपर कुछ कर्जो छे नहीं। आपको कमायडो पीसो छे। आपकी खुशी आवे सो करो। हमारो कुछ आप ऊपर अधिकार छे नहीं। हमां आपसौं आज मिती ताई तो हमारे बारे में अथवा जो हमारे ताई जो खर्च हुयो सो हुयो, बाकी आज दिनसूं आप कनेसूं एक छदाम कोडी हमां लेवांगा नहीं, अथवा मंगावांगा नहीं। आप आपके मनमां कोई रीत का विचार करजो मतना। आपकी तरफ हमारो कोई रीत का हक आजदिन मों रह्यो छे नहीं और श्री लक्ष्मीनारायणजीसूं अर्ज ये है कि आपको शरीर ठीक राखे और आपनो हाल बीस पचीस बरस तक कायम राखें। और हमां जठे जावांगा, बठेसूं थांके ताई इस माफिक ठाकुरजी से विनंति करैंगा। और म्हारेसूं जो कुछ कसूर काम ताई हुयो सो सब माफ करजो। और आपके मनमें होकि यह पीसाका साथी है, पीसा के ताई सेवा करे छे सो हमारे मनमां तो आपका पीसा की बिलकुल छे नहीं, और श्री ठाकुरजी करेंगा तो आपके पीसे की हमारे मनमां आगे भी आवेगी नहीं। कारण हमारो तगदीर हमारे साथ छे और पीसो हमारे पास होकर हमां काई करैंगा? म्हाने तो पीसा नजीक रहने की बिलकुल परवा छे नहीं। आपकी दया से श्री ठाकुरजी का भजनसुमरन जो कुछ होवेगा सो करैंगा सो इस जनममांही भी सुख पावेगा और अगला जनममांही भी सुख पावेगा। और आप आपके चित्तमां प्रसन्नता राखियो कोई रीतको फिकर करजो मतना, सब झूठा नाता छे। कोई कोई को पोतो नहीं, और कोई कोई को दादो नहीं सब आप आपका सुख का साथी छे। सब झूठो पसारो छे। आप हाल ताई मायाजालमांही फंस रह्या छो, हमां आजदिन आपके उपदेशसूं मायाजालसूं छूट गयां छां। आगे श्री भगवान संसारसूं बचावेगा। और आपके मनमां इस तरह बिलकुल समझजो मतना कि हमारे ऊपर नालिश फरियाद करेगा। हमां हमारे राजीखुशी सों टिकट लगा कर सही कर दीनी छे कि आपके ऊपर अथवा आपकी स्टेट पीसा रुपया गहना गांठा और कोइ भी सामान उपर आजसे बिलकुल हक रह्यो नहिं सो जाणजो और हमारे हाथ को कोइ का करजो छे नहिं। कोइने भी एक भी पीसो देनो छे नहि सो जाणजो। और समाचार छे नहिं, और समाचार तो बहुत छे परंतु हमारे से लेखो जावे नहिं। संवत १९६४ मिती वैसाख वदी २, मंगलवार।

एक आने का टिकट

पूज्य श्री १०५ दादाजी १०५ बच्छराजजी
सूं जमनाका पांवाधोक बांचीजो

घणों घणों मानसेसो आपकी तरफ हमारो कोई रीति को लेनदेन रह्यो नहीं। श्रीठाकुरजी के मंदरको काम बराबर चलाजो और आपरा दान धरम बनेसो सब करता जाइजो और ब्राह्मण साधू ने गाली बीलकुल दीजो मतना और कोईने भी हाथका उत्तर देइजो, मुंहको उत्तर दीजो मतना। ज्यादा काई लिखां? इतना मांहि समज लीजो। और हमां आपकी चीजां साथे ल्यांगा नहिं, सो सर्व अठेइ आपका छोड गया छां। खाली आंग उपर कपडा पहरिया छां."

इस पत्र का असर क्या हुआ होगा यह बताना कुछ कठिन नहीं है। सेठ बछराजजी का कण्ठ रुंध गया और वह बम्बई जा कर बडे प्रेम से जमनालालजी को मना लाये। गया हुआ रत्न फिर पा लिया। **"म्हाने तो पीसा नजीक रहने की बिलकुल परवा छे नहीं"** — यह वचन 'अर्थमनर्थं भावय नित्यं' समझ के चलनेवाले का वचन है, और इस बात को समझनेवाले का जीवन कैसा बनेगा इसकी आज कल्पना करना मुश्किल है।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

पशुवध

उसके कारण और उपाय

(७)

हम पिछले प्रकरण में यह देख चुके हैं कि बड़े शहरों में पशुओं की कैसी बुरी हालत होती है। इसका महत्व इतना है कि इसके बारे में जो कुछ भी प्रमाण मैं प्राप्त कर सकता हूं उनका पूरा संग्रह कर देने का मैंने निश्चय कर लिया है जिससे सरकार तथा प्रजा का महान पातक साफ साफ मालूम हो जाय। सरकार से हमें कुछ कहना ही नहीं क्योंकि वह जनक राजा की तरह — परंतु उनकी योग्यता के बिना ही — कह रही है कि 'मिथिला नगरी जल जाय तो भी मेरा क्या बिगड़ता है' परन्तु देश के अमूल्य धन का नाश होते हुए प्रत्यक्ष देखनेवाले हमारे लिए यह लज्जा की बात है।

मद्रास की पशु सम्बन्धी रिपोर्ट में मि. सेम्पसन लिखते हैं: एक वर्ष में मद्रास में कम से कम ५००० दूध देनेवाली गौएं आती हैं। जब उनका दूध सूख जाता है तब उनमें से अधिकांश कसाई के हाथों बेची जाती हैं और बछड़े भूखों मर जाते हैं। इस तरह उत्तम दुधारु गायों के वंश का क्षय हो जाता है।

इलाके के और दूसरे शहरों के बनिस्बत मद्रास में ज्यादा दुधारु गायें खींची जाती है। दुःख की बात है कि ओंगोल की गाय— जो उत्तम मानी जाती हैं — जब मद्रास लायी जाती हैं तब उनके बछड़े बहुत छोटे होते हैं यानी उनकी दूध देने की शक्ति पूरी तरह से विकसित नहीं होती है। यदि वे ही जब कम दूध देने लगती है तब कसाई के हाथों बेची जाने से रोक दी जाय और उन्हें लेकर चराई जाय तो आजकल देहातों से जो गायें शहर में खींची चली आती हैं वह रुक जायगा। मि. राबर्टसन ने मद्रास के एक ग्वाले से निकम्मी मानी गई एक गाय मोल ली। थोड़े ही दिनों में वह सब से अधिक दूध देनेवाली गाय साबित हुई। कौन जाने इस तरह कितने हजार अच्छी गायें युवावस्था के पहले ही निकम्मी समझी जा कर कसाई के हाथों नष्ट हो जाती होंगी! म्युनिसिपालिटी मैले पानी की खेती के साथ इस काम को कर सकती है। शहर को दूध पूरा करने के लिए दुग्धालय भी खोल सकती है और बछड़ों को पाल कर शहर के काम में उनका उपयोग कर सकती है। इससे खानगी काम करनेवालों को कुछ हानि हो सकती है परन्तु आमलोगों की तन्दुरुस्ती खानगी लोगों की हानि की अपेक्षा महत्व की है। ऐसे प्रयत्न के सफल होने से मद्रास के बनिस्बत छोटे शहर की म्युनिसिपालिटियां भी इसका अनुकरण कर सकती हैं और ऐसे दुग्धालयों में गायों की सन्तान-अभिवृद्धि के साथ दूध का परिमाण बढ़ाने का काम भी हाथ में लिया जा सकता है।

मेजर मीवर और कोचकी लिखी हुई दुग्धालय से संबन्ध रखनेवाली जो किताब सरकार की तरफ से प्रकाशित की गई है उसमें लिखा है:

"बहुत करके कोसी जिले से प्रतिवर्ष कई हजार दुधारु गायें कलकत्ते आती है। जाड़े के अंत में जब गौएं दूध देना बन्द कर देती है और दूध की खपत भी कम होती है तब ग्वाले लोग ऐसी गायों को कसाई के हाथों बेच देते हैं क्योंकि चारे की कमी और चारे की महंगी के कारण गरमी के दिनों में गायों को खिलाना उनको बहुत भारी हो जाता है। और भी एक बात है। यहां के जलवायु के असर से चराने से भी गाय गाभ नहीं धरती। गायों को इस तरह निकम्मी कर देने से वे घटती जाती है और उनकी कीमत भी बढ़ जाती है। इससे यह साफ जाहिर होता है कि दूर के अच्छी गायवाले प्रदेशों से गायों को लाना छोड़ कर जहां २ हो सके वहां स्थानीय गायों को पालने की बड़ी जरूरत है। यह बात ठीक है कि स्थानीय गाय कम दूध देती है इसलिए उनकी सन्तानों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता परंतु सुधार के बारे में प्रथम उद्योग करने के लिए तो इसी पर उचित ध्यान देना चाहिए। जैसे सरकार अपनी ऊंची जात की घोड़ियों को उत्तम घोड़े ही दिखाने की पद्धति रखती है वैसे ही गायों के लिए भी होना चाहिये।"

कलकत्ता कारपोरेशन के प्रमुख के निबंध से नीचे का अंश लिया गया है: —

"कलकत्ते के ग्वाले देश की उत्तम गायों का सत्यानाश करते हैं। अच्छी गाय दुर्लभ हो रही हैं और कीमत भी बढ़ती ही जाती है। गाय को जब दूसरा बच्चा होनेवाला होता है तब वह कलकत्ते भेजी जाती है। वहां उन पर ऐसा जुल्म किया जाता है कि वे छः आठ मास दूध देती हैं इतने में वे पूरे तौर पर बांझ न बन गयी हों तो भी दो तीन सालतक गाभ न धर सके ऐसी दुबली हो जाती है और कसाई के घरों में पहुंचती हैं। इसका परिणाम यह होता है ८, १० वर्ष उपकारी जीवन बिताने की जगह वे गाय दो वर्ष दुधारु रहती हैं और दो ही बछड़े देती हैं जिनमें एक तो अवश्य कसाई के हाथ लगता है। यह अत्याचार देश की उत्तम गायों पर निरंतर होता रहता है।"

कलकत्ता कारपोरेशन ने दूध के बारे में विचार करने के लिये एक खास समिति बनाई थी जिसके अध्यक्ष मि. पेड्रन थे और ३ यूरोपियन, १ मुसलमान तथा १ हिन्दू सदस्य थे। समिति की रिपोर्ट में उन्होंने लिखा है: —"ग्वाले कसाई को गाय बेचते हैं इसके कई कारण हैं। एक तो उसके पास जगह की कमी है, और उसमें अमुक संख्या तक की ही गायें रखी जा सकती हैं और उतनी ही गाय वे रखते हैं। जब गाय का दूध देना बंद होता है तब उसे कसाई को बेचते हैं और दुधारु गाय लाते हैं। ग्वाले के पास पूंजी भी कम ही होती है, इसलिये जब दुधारु गाय लेता है तब उसे दूधसूखी गाय को बेचना पड़ता है। ऐसे ही कारणों से वे बछड़ों को भी पाल नहीं सकते इसलिए उन्हें भी कसाईखाने में बेच देते हैं। इस देश की गाय बहुत दुधारु नहीं होती और बछड़े के बिना दूध नहीं देती इसलिए ग्वाले फूक कर दूध निकालने की वह नीच क्रिया करते हैं कि जिससे गाय को बड़ी वेदना होती है, इतना ही नहीं बल्कि वह सदा के लिए न हो तो भी अधिक समय तक बांझ बन जाती है। इससे जो गाय सूख जाती है उसको बेचने में ग्वाले को लाभ है यद्यपि दूसरे तरफ से जो गाय कई बछड़े और बहुत दूध देती उनके इस तरह कतल हो जाने से गायों की सन्तान दिनप्रतिदिन बिगड़ती जाती है और देशमें यों ही जो दूध कम और खराब मिलता है उस पर इसका बुरा असर पड़ता है। उत्तम गाय प्रति वर्ष शहरों में खींच ली जाती हैं इससे उनका अभाव बढ़ता जाता है।"

दुग्धालय के कार्यकर्ता (डेरी एक्सपेर्ट) मि. स्मिथ ने कलकत्ते के पिंजरापोलवाले को जो खत लिखा था उसमें वे लिखते हैं:

'बड़े शहरों में जवान गाय और भैंस के कतल को रोकना सबसे प्रथम और सब से अधिक आवश्यक काम है। ... ...

पिछले १५ वर्ष में इस तरह ४ बड़े शहरों में १,५०,००० जवान गाय भैंस का वध हुआ। इसको रोकने के लिए व्यापारी

ढंग से दूध पूरा करने की व्यवस्था करनी चाहिये। जहां गाय अपनी पूरी कीमत[illegible] दिला सकें वहां उनको रख कर दूध उत्पन्न करना चाहिये। दूध को जंतुरहित (पेस्चराइज्ड) और ठंडा कर के शहरों में लाना चाहिये। बर्तन बिलकुल साफ और बंद होने चाहिये।"

शहर में दूध उत्पन्न होता हो तो वह अच्छा कैसे हो सकता है? बड़ी बस्तीवाले गलीकूचों में अच्छा और स्वच्छ दूध उत्पन्न नहीं हो सकता है इतना ही नहीं परंतु वहां जमीन बहुत ही महंगी होती है, वहां महसूल, मजदूरी वगैरह का खर्च देहातों से कई गुना ज्यादा होता है वहां गाय रखकर दूध उत्पन्न करें तो वह महंगा ही मिल सकता है। दयाधर्मी व्यापारी लोग इस प्रश्न को हाथ में लें और देहातों में स्वाभाविक परिस्थिति के बीच में दूध उत्पन्न करें और उसे बड़े शहरों में ले जा कर बेचने की व्यवस्था करें तो शहर के ग्वाले उनके साथ बराबरी नहीं कर सकेंगे और इसलिए दूध कम दाम पर बेचेंगे और जैसे लंडन, कोपनहेगन, न्यूयार्क, वगैरह शहरों में हुआ है वैसे ही यहां भी शहरों से ग्वालों को निकाला जा सकेगा।

इस प्रकार यदि हो तो गाय की रक्षा तो होगी ही इसके साथ २ सस्ता और स्वच्छ दूध मिल सकने के कारण मनुष्यों की भी रक्षा होगी।

कलकत्ते का पिंजरापोल २,००० बूढ़े पशुओं को और कुछ वर्ष जिन्दा रखने के लिये १,२०,००० रुपये खर्च करता है। पिंजरापोल के आश्रयदातागण १० वर्ष की मदद के जितनी पूंजी केवल इकट्ठा कर दुग्धालय खोलें तो प्रतिवर्ष २,००० जवान गायों की हत्या होती हुई रुक जायगी और कलकत्तावासियों को सस्ता, साफ और स्वच्छ दूध भी मिलेगा और पूंजीवाले भी अच्छा व्याज पा सकेंगे।

(नवजीवन) वालजी गोविंदजी देसाई

अनीति के राह पर

कृत्रिम उपायों से सन्तानवृद्धि रोकने के सम्बन्ध में जो लेख देशी समाचार पत्रों में निकलते हैं कृपालु मित्र उनको पत्रों में से काट २ कर मेरे पास भेजते रहते हैं। नौजवानों से उनके चारित्र के सम्बन्ध में पत्रव्यवहार भी मेरा बहुत होता रहता है। परन्तु वह सब समस्यायें जो इस पत्रव्यवहार से उठती हैं मैं इन पृष्ठों में हल नहीं कर सकता। यहां तो कुछ ही की समालोचना हो सकती है। अमेरिकन मित्र मेरे पास इस सम्बन्ध का साहित्य भेजते हैं और कुछ तो मुझसे इस कारण नाराज भी हैं क्योंकि मैं कृत्रिम उपायों का विरोध करता हूं। उन्हें दुःख है कि मैं ऐसा बड़ा बड़ा सुधारक होते हुए भी सन्तानोत्पत्तिनियमन के सम्बन्ध में पुराने विचार रखता हूं। और फिर मैं यह भी देखता हूं कि कृत्रिम उपायों के तरफदारों में सब देशों के कुछ बड़े २ विचारवान पुरुष भी हैं।

यह सब देख कर मैंने विचारा कि अवश्य कुछ न कुछ विशेष बात ही कृत्रिम उपायों के पक्ष में होगी और इसलिए मुझे इस पर अधिक विचार करना चाहिए। मैं इस समस्या पर विचार कर ही रहा था और इस प्रश्न पर साहित्य पढ़ने के सोच ही में था कि मुझे एक अंगरेजी पुस्तक पढ़ने को मिली। इस पुस्तक में इसी प्रश्न पर विचार किया गया है और मुझे प्रतीत होता है कि बहुत सुन्दर रूप से विचार किया गया है।

मूल पुस्तक फ्रान्सीसी भाषा में है और उसके लेखक हैं पाल ब्यूरो। किताब का जो नाम फ्रेन्च भाषा में है उसका शब्दार्थ है 'अनाचार'।

पुस्तक पढ़ कर मैंने यह सोचा कि लेखक के विचारों पर अपनी सम्मति देने से पहिले मुझे उचित है कि इन उपायों के पोषक जो मुख्य मुख्य ग्रन्थ हैं उन सब को पढ़ लूं। इसलिए मैंने सरवेन्ट ऑव इन्डिया सोसाइटी से जो कुछ इस विषय पर साहित्य मिल सका मंगा कर पढ़ा। काका कालेलकर ने जो इस विषय का अध्ययन कर रहे हैं मुझे एक पुस्तक दी और एक मित्र ने 'दी प्रेक्टीशनर' का एक विशेषांक मेरे पास भेज दिया जिसमें इस विषय पर विख्यात डाक्टरों ने अपनी सम्मतियां प्रकट की हैं।

मेरा इस विषय पर साहित्य इकट्ठा करने का केवल यही प्रयोजन था कि जहांतक कि प्राकृत व्यक्ति की शक्ति में है ब्यूरो के सिद्धान्तों की जांच कर ली जाय। अकसर देखा जाता है कि चाहे आचार्य ही किसी प्रश्न पर विचार क्यों न कर रहे हों प्रश्नों के दो पहलू रहते ही हैं और दोनों पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसीलिए मैं पाठकों के सम्मुख ब्यूरो की यह पुस्तक रखने से पहिले कृत्रिम उपायों के पक्षवालों की सारी युक्तियां सुन लेना चाहता था। बहुत सोच विचार कर मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि कम से कम भारतवर्ष के लिए तो कृत्रिम उपायों की कोई आवश्यकता नहीं है। जो भारतवर्ष में इन उपायों का प्रचार करना चाहते हैं वह या तो इस देश की यथार्थ दशा का ज्ञान नहीं रखते या जानबूझ कर उसकी परवाह नहीं करते। और फिर यदि यह सिद्ध हो जावे कि इन उपायों का काम में लाया जाना पाश्चात्य देशों के लिए भी हानिकारक है तब तो फिर भारतवर्ष की दशा पर विचार करने की आवश्यकता भी नहीं रहती।

आइये! देखें ब्यूरो क्या कहते हैं। उसने फ्रान्स की दशा ही पर विचार किया है। परन्तु यह भी हमारे मतलब के लिए बहुत काफी है। फ्रान्स संसार के सब से अगुआ देशों में गिना जाता है और जब यह उपाय वहीं सफल न हुए तो फिर और कहां हो सकते हैं?

असफलता क्या है? इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न रायें हो सकती हैं। इसलिए अच्छा है कि 'असफल' शब्द से जो मेरा अर्थ है उसकी व्याख्या कर दूं। यदि यह बात सिद्ध कर दी जावे कि इन उपायों के कारण लोगों के नैतिक आचार भ्रष्ट हो गये, व्यभिचार बढ़ गया और कृत्रिमसंततिनियमन केवल अपनी स्वास्थ्यरक्षा अथवा गृहस्थियों की आर्थिक दशा ठीक रखने के लिए ही नहीं किया गया बल्कि अपनी कुचेष्टाओं की पूर्ति के लिए किया गया तो इन उपायों का असफल रहना सिद्ध मान लेना चाहिए। यह तो है कम से कम सिद्धान्त की बात। उत्कृष्ट नैतिक सिद्धान्त तो कृत्रिमसन्ताननिग्रह अथवा दम्भ को स्थान ही नहीं देता। उसके अनुसार तो विषयभोग केवल सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से ही करना चाहिए जैसे कि भोजन केवल शरीर रक्षा के लिए ही करना चाहिए। एक तीसरे श्रेणि के मनुष्य भी हैं। उनका कहना है कि 'नैतिक आचारविचार सब फिजूल है और यदि नैतिक आचार कोई वस्तु है भी तो यह आवश्यकता नहीं है कि संयम से रहा जाय। खूब विषयभोग करो, विषयभोग ही जीवन का उद्देश है। बस इतना ध्यान रहे कि विषयभोग से स्वास्थ्य न बिगड़ जाय जिससे कि हमारा उद्देश जो विषयभोग है उसी की प्राप्ति में अड़चन पड़ जाय।' ऐसे लोगों के लिए मैं समझता हूं ब्यूरो ने यह पुस्तक नहीं लिखी है क्योंकि उनकी पुस्तक के अन्त में डौमर्ग के यह शब्द आये हैं: 'भविष्य सचरित जातियों के लिए है।'

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में मोंशियो ब्योरो ने ऐसी सच्ची २ बातें हमारे सामने रक्खी हैं कि जिन्हें पढ़ कर हमारा हृदय कांप उठता है। कैसी २ संस्थायें फ्रान्स में उठ खड़ी हुई हैं कि जो लोगों की केवल पशुवृत्ति को पूरा करने का काम करती है। सब से बड़ा दावा जो कृत्रिम उपायों के पक्षपाती करते हैं वह यह है कि छुक छिप कर गर्भपात न होंगे और भ्रणहत्या बच जायगी। परन्तु उनका यह दावा भी गलत साबित होता है। ब्योरो लिखता है कि यद्यपि फ्रान्स में पिछले २५ वर्षों से गर्भस्थिति न होने के उपाय लगातार काम में लाये गये परन्तु फिर भी गर्भपातों के जुर्मों की संख्या कम न हुई। ब्योरो कहता है कि गर्भपात बढ़ गये। उसका विचार है कि २७५००० से ३२५००० तक के करीब गर्भपात प्रतिवर्ष होते हैं। अफसोस तो यह है कि लोग अब ऐसी बातें सुन कर उतने दुःखी नहीं होते जैसे पहिले होते थे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

गारियाधार में खादीकार्य

गारियाधार में भाई शंभुशंकर परिषद की तरफ से काम कर रहे हैं उनका कार्य जानने योग्य है। गारियाधार के आसपास के ४१ गांवों में ११०० कुटुम्बों में कपास का संग्रह करवाया और उनको खादी बुनने तक की सारी आवश्यक चीजों का सुभीता कर दिया। कपास का संग्रह १००० मन के करीब हुआ। उसमें से ८०० मन हाथ से ओंटा हुआ था। यहां धुनाई पर महसूल लगता है परन्तु जो धुन कर रूई की पोनी भी स्वयं ही बना लेते है उन्हें यह महसूल नहीं देना पड़ता है। इन कुटुम्बों में से ११२ कुटुम्बों ने परिषद की शर्तों के अनुसार मदद ली अर्थात् बुनाई और धुनाई में आधा हिस्सा पाया। इसमें आजतक केवल १६४ रुपये खर्च हुए हैं। इस जिले में अकाल था इसलिए सस्ती पोनी भी काम में लाई गई। करीब ५० कुटुम्बों में आठ मन पोनी हुई और वह छ आने सेर के हिसाब से बिकी। इसमें मुख्यतः स्त्रियों के ही वस्त्र हुए है। हमने हिसाब लगाया है कि इसमें ५० रुपये से अधिक लगाने की आवश्यकता न रहेगी। इससे अधिक उत्पत्ति के लिए अकाल के कारण कपास की और खरीद की गई और सूत कतवाया गया। आजतक २९५ मन कार्यालय में ही ओंटा गया। उनकी पोनी बनाई गई और अब उसका भी कताना बुनवाना हो रहा है। ओंटाई का खर्च ११०) रुपये हुआ। कपास में ९३॥। मन रूई निकली और १९० मन बिनौला। सूत ४ से ८ अंक तक निकलता है। उसका दाम प्रति अंक पांच पाई दी जाती है। धुनाई और पोनी बनवाने का दाम २॥।) मन दिया जाता है और बुनाई का ८) मन। खादी का अर्ज २४ से २७ इंच है। एक मन खादी की लम्बाई ११० से ११५ गज तक होती है। जो खादी तैयार होती है उसे भाई शंभुशंकर अपने क्षेत्र में ही बेचने का प्रयत्न करते हैं। इस तरह उन्होंने ९६२ गज खद्दर सत्तरह आने के छः हाथ के हिसाब से बेचा है — इस हिसाब से गज के पांच आने हुए। हमेशा एक मन सूत बुना जाता है। इसके अतिरिक्त अमरेली खादी कार्यालय के लिए भी इसी स्थान में खादी बुनी जाती है। यह चौड़ाई में ३० इंच होती है। इस कार्यालय का काम बहुत थोड़े खर्च से ही चलता है और उसका खास कारण भाई शंभुशंकरजी का कातनेवालों, धुननेवालों और बुननेवालों इत्यादि के साथ का सहवास और निकट परिचय है। मेरे हाथ में जितने खादी कार्यालयों के अंक आते हैं मैं उन्हें छापता रहता हूं। इससे मेरा अभिप्राय यह है कि सब कार्यालय एक-दूसरे से शिक्षा लें और सब में आपस में स्वस्थ और काम बढ़ानेवाली होड़ हो। यह क्षेत्र इतना बड़ा है कि उसमें हजारों सेवक अपना बलिदान दे सकते हैं और हजारों अपनी आजीविका कमा सकते है। जिनको इस कार्य से प्रेम हो जाय, और जो यह समझते हैं कि ग्रामीण जीवन इससे काव्यमय बन सकता है वे इस कार्य में असीम आनन्द उठा सकते हैं।

रजस्वला क्या करे?

एक विधवा बहिन लिखती है कि, "मुझसे ऐसा कहा गया है कि रजस्वला स्त्री को पुस्तक, कागज, पेन्सिल, स्लेट इत्यादि वस्तुओं को छूना नहीं चाहिए। क्या आप भी यह बात मानते हैं?"

ऐसा प्रश्न छुआछुत के कलंक से कलंकित भारतवर्ष में ही उठ सकता है। रजस्वला स्त्री के लिये छुआछुत सम्बन्धी बहुत से नियम है परन्तु वह आरोग्यता और नीति की दृष्टि से रक्खे गये है। इस समय स्त्री बहुत मिहनत करने के अयोग्य होती है। इस समय वह सबसे अलग रहे यह अत्यन्तावश्यक है। सधवा को पति का संग इस समय त्याज्य है। उसे शान्ति भाव से रहना चाहिए। परन्तु इस समय अच्छी २ पुस्तकों का पढ़ना और पढ़ने-लिखने का अभ्यास करना इत्यादि अनुचित नहीं है। बल्कि मेरी समझ में ऐसा करना योग्य और आवश्यक है। बैठे बैठे आराम से करने के और भी बहुत से गृह-कार्य हो सकते हैं जो रजस्वला स्त्री सुखपूर्वक कर सकती है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

मई मास के अंक

अभी तक जो अंक हमें खादी की पैदावार तथा बिक्री के सम्बन्ध में भिन्न २ प्रान्तों से मिले है वह इस प्रकार हैं:—

प्रान्त	पैदावार	बिक्री
अजमेर	११५०)	२६६४)
आन्ध्र	१५९६८)	२६२७५)
बंगाल	३८२११)	३०७६६)
बम्बई		१७६५०)
बर्मा		१३५७)
सी. पी. (हिन्दी)		२८५)
दिल्ली	१२४९)	१६७७)
करनाटक	३४५६)	५०४०)
दक्षिण महाराष्ट्र		३२७)
मध्य महाराष्ट्र		३१२९)
उत्तर महाराष्ट्र	११९७)	९०९४)
पंजाब	५५१७)	५६९९)
तामिलनाड	४००४९)	६६०६४)
संयुक्तप्रान्त		
कुल	११२०५२)	१९४३८७)

(यं. इं.) मो० क० गांधी

वर्णभेद और स्वदेशी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ४६

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, आषाढ़ बदी ६, संवत् १९८३ गुरुवार, १ जुलाई, १९२६ ई० { मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय ७

अनुभवों के कुछ नमूने ।

नेटाल का बन्दरगाह डरबन के नाम से भी मशहूर है । मुझे लेने के लिए सेठ अब्दुल्लाह आये थे । जब जहाज धक्के पर पहुंचा तब नेटाल के बाशिन्दे अपने २ दोस्तों को लेने के लिए आये । तभी मैं ताड़ गया कि यहां हिन्दियों का आदर अधिक नहीं है । सेठ अब्दुल्लाह को पहचाननेवाले उनके साथ जिस तरह का सलूक करते थे उसमें मुझे एक किस्म की हीनता नजर आती थी जो मेरे दिल में चुभती थी । मगर वे इसके आदी हो गये थे । मेरी तरफ नजर डालनेवाले मुझे बड़ी कुतूहल से निहार रहे थे । मैं अपनी पोशाक के सबब कुछ अंश में दूसरे हिन्दियों में से तर आता था । मैं उस वक्त फ्राक कोट वगैरह पहने था, और सर पर बंगाली ढंग की पगड़ी थी ।

मुझे घर ले गये । अब्दुल्लाह सेठ ने अपने पासवाले कमरे में मुझे उतारा । न वे मुझे समझते और न मैं उन्हें समझता । उन्हें उनके भाई का लिखा हुआ खत दिया । वह पढ़ कर और घबड़ाये । उनको यह मालूम हुआ मानों उनके भाई ने दरवाजे पर एक श्वेत-हस्ती बांध दिया । मेरी रहनसहन उन्हें साहबों की सी खर्चीली मालूम हुई । उस वक्त मेरे लायक कोई खास काम न था । उनका मुकद्दमा तो ट्रान्सवाल में चलता था । मुझे वहां झट भेज कर करें तो क्या करें ? और फिर मेरी होशियारी और प्रामाणिकता का किस हद तक यकीन करते ? प्रीटोरिया में वे खुद मेरे साथ तो रह नहीं सकते थे । प्रतिवादी वहीं था । इस हालत में उसका गैर मुनासिब असर अगर मुझ पर पड़े तो ? अगर इस मुकद्दमें का काम मुझे न सौंपे तो दूसरे काम तो उनके मुनीम मुझ से हर हालत में अधिक अच्छा कर सकते थे । अगर मुनीम भूल करें तो उन्हें धमकी दी जा सकती थी । लेकिन मैं करूं तो ? बस मेरे लिए दो काम थे मुकद्दमे का या मुनीमी का । इसके सिवाय तीसरा काम न था । इसलिए अगर मुकद्दमा का काम मुझे न सौंपा जाय तो मुझे घर बैठे खिलाना रहा ।

अब्दुल्लाह सेठ को अक्षर-ज्ञान बहुत कम था, मगर अनुभव-ज्ञान खूब था । उनकी जेहन तेज थी । और इसका उन्हें इल्म भी था । अंग्रेजी का ज्ञान उन्हें महावरे से हो गया था । बातचीत के लायक-अंग्रेजी का ज्ञान उन्होंने महावरे से हासिल कर लिया था लेकिन अंग्रेजी के मार्फत वे अपना सारा काम चला लेते थे । बैंक के मैनेजर और योरोप के व्यापारियों के साथ सौदा कर सकते थे और वकीलों को अपना मुकद्दमा वगैरह भी समझा सकते थे ।

हिन्दियों में उनका खूब मान था । उनकी आढ़त दूसरी सब हिन्दी आढ़तों में बड़ी थी । अथवा बड़ी में से एक तो थी ही । स्वभाव वहमीला था ।

उन्हें दीन-इस्लाम का अभिमान था । तत्त्वज्ञान की बातों का शौक रखते थे । हालांकि अर्बी न जानते थे, मगर कुरान-शरीफ और आमतौर पर इस्लाम धर्म के साहित्य से अच्छी जानकारी रखते थे । मिसालें तो उनकी जबान पर नाचती थीं । उनके सहवास से मुझे इस्लाम का व्यवहारिक ज्ञान खूब हुआ । जब हम एक दूसरे को समझने लगे तब वे मेरे साथ खूब धर्म चर्चा करते थे ।

दो तीन दिन के बाद मुझे डरबन की कचहरी दिखलाने के लिए ले गये । वहां बहुतों के साथ मेरा परिचय कराया और अदालत में मुझे अपने वकील के साथ बैठाया । मैजिस्ट्रेट मेरी तरफ देखा करता था । उसने मुझे अपनी पगड़ी उतारने के लिए कहा । मैंने इन्कार किया और अदालत छोड़ कर चला गया ।

मेरी किस्मत में तो यहां भी मुझे लड़ाई बदी थी ।

पगड़ी उतारने का भेद अब्दुल्लाह सेठ ने मुझे समझाया । जो मुसलमानी पोशाक में हो वह अपनी मुसलमानी पगड़ी पहन सकता था । मगर दूसरे हिन्दुस्तानियों को अदालत में दाखिल होते ही पगड़ी उतारनी पड़ती थी ।

इस बारीक भेद को समझाने के लिये मुझे कुछ गहरा उतरना पड़ेगा ।

मैं इन दो तीन दिनों में ही समझ गया था कि हिन्दी लोग अपना २ गिरोह बना कर बैठ गये थे । एक हिस्सा मुसलमान सौदागरों का था । वे अपने को अरब के नाम से पुकारते थे । दूसरा हिस्सा हिन्दू और पारसी मुनीमों का था । हिन्दू मुनीम

बीच में लटकते ही रह गये थे। कोई "अरब" में घुस जाते थे। पारसी लोगों ने अपने को परशियन के नाम से मशहूर किया। व्यापार से बाहर इन तीनों का आपस में घटते बढ़ते प्रमाण में संबंध था सही। एक चौथा और बड़ा दल तामील, तेलुगु और उत्तर हिन्दुस्तान के गिरमिटिया और गिरमिटमुक्त हिन्दियों का था। गिरमिटिया से मतलब उन लोगों से है जो गरीब हिन्दी पांच साल का करार—एग्रीमेन्ट कर के मजदूरी करने के लिये उस वक्त नेटाल आते थे। एग्रीमेन्ट का बिगड़ा हुआ रूप गिरमिट, और उस पर से गिरमिटिया हुआ। इस समूह के साथ दूसरे लोगों का संबंध सिर्फ काम के लिए था। इन गिरमिटियों को अंग्रेज लोग "कुली" के नाम से पुकारते थे। और चूंकि इनकी संख्या सब से ज्यादा थी इसलिए दूसरे हिन्दियों को भी लोग कुली कहते थे। 'कुली' के बदले सामी भी कहते थे। तामीलनाम के अन्त में सामी शब्द का उपयोग करते हैं। सामी यानी स्वामी। स्वामी का अर्थ तो मालिक है इस से कोई २ हिन्दी इस शब्द से चिढ़ जाते थे। और अगर किसी में कुछ हिम्मत हुई तो उस अंग्रेज से कहता—आप मुझे सामी कहते है पर आप को मालूम है कि इसके माने मालिक के होते है? मैं आप का मालिक नहीं हूं। ऐसा सुन कर कोई २ अंग्रेज शरमाता और कोई खीझता और खूब गाली देता और कोई कोई तो मार भी बैठते थे। क्योंकि उसकी समझ में तो 'सामी' शब्द निन्दक था। उसका अर्थ मालिक करना गोया उसका अपमान करना था।

इसलिए मैं 'कुली' बैरिस्टर और बैपारी लोग कुली बैपारी कहलाये। कुली का असल अर्थ मजदूर तो मिट सा गया। बैपारी लोग इस शब्द से गुस्सा करते और कहते कि मैं कुली नहीं हूं। मैं तो अरब या बैपारी हू। अगर कोई जरा विनयी अंग्रेज हुआ तो माफी मांगता। इस हालत में पगड़ी पहनने का सवाल कुछ बड़ा हो चला। पगड़ी उतारनी यानी मानभंग का सहन करना था। मैंने विचार किया कि हिन्दुस्तानी पगड़ी को बिदा करूं और अंग्रेजी टोपी को अपनाऊं जिससे उसे उतारने का मानभंग सहन न करना पड़े और इस झंझट से बच जाऊं।

अब्दुल्लाह सेठ को यह ख्याल पसंद न आया। उन्होंने कहा कि अगर इस मौके पर इस किस्म का फेरफार करोगे तो उनका अनर्थ होगा। दूसरे जो देशी टोपी ही पहनना चाहते होंगे उनकी बुरी हालत होगी और आपको तो देशी पगड़ी ही शुभ देगी। अगर आप अंग्रेजी टोपी पहनेंगे तो आपकी गिनती 'वेटर' में होगी।

इस बात में दुन्यवी होशियारी थी, देशाभिमान था और कुछ तंगदिली भी थी। संसारी चतुरता तो साफ जाहिर है। देशाभिमान के बिना पगड़ी का इतना आग्रह मुमकिन न था। गिरमिटिया हिन्दी में हिन्दू मुसलमान और ईसाई ऐसे तीन हिस्से थे। ईसाई वे गिरमिटिया थे जो हिन्दी ईसाई हो चुके थे और उनकी औलाद।

उनकी संख्या १८९३ में भी काफी थी। वे सब अंग्रेजी लिबास ही पहनते थे। उनमें से काफी तादाद होटल में नौकरी कर के अपना निर्वाह चलाते। इस दल को ख्याल में रख कर अब्दुल्लाह सेठ ने अंग्रेजी टोपी की टीका की थी। उनके होटल में बतौर वेटर के रहने का संकेत भी उस में था। आज भी यह भेद बहुतों के दिलों में कायम है।

अब्दुल्लाह सेठ की दलील मुझे पसन्द आई। मैंने पगड़ी के किस्से के मुताबिक अपना तथा पगड़ी का बचाव करते हुए अखबारों में एक पत्र प्रकाशित कराया। खूब चर्चा हुई। 'बिन बुलाया महमान' (अनवेलकम विजिटर) इस शीर्षक से मैं अखबारों में मशहूर हुआ। और अनिच्छा से तीन चार दिन के भीतर २ दक्षिण आफ्रिका में मशहूर हो गई।

किसीने मेरा पक्ष लिया और किसी ने मेरी ढीठता की खूब निन्दा की।

मेरी पगड़ी लगभग आखिर तक बनी रही। कब बिदा हुई इसका किस्सा आखिर के भाग में पढ़ेंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अकबर की उदारता

जब हिन्दू मुसल्मान आपस में लड़ रहे हैं और क्षमा और शम का नाम तक भूल गये हैं तब ऐसे समय में हिन्दू-मुसल्मानों की परस्पर सहिष्णुता और उदारता के स्मरणों का यदि हम यहां कुछ विचार करेंगे तो वह अनुचित नहीं गिना जावेगा। मुसल्मान बादशाहों में अकबर सहिष्णुता का — उदारता का नमूना था।

अकबर के पुस्तकालय में कितनी ही अच्छी पुस्तकें होंगी! जब उसकी मृत्यु के बाद उसके आगरा के किले के अन्दर के खजाने की फिहरिस्त तैयार की गई तो ऐसी पुस्तकों की संख्या जो सभी हस्तलिखित थी, जिनकी सुन्दर जिल्दें बंधी हुई थी और जिनमें बहुतेरों में सुन्दर चित्र भी थे, २४,००० थी, जिनमें ४००० तो फैजी की जमा की हुई पुस्तकों में से उसके मरने के बाद मंगवा ली गई थी और जिनकी कीमत ६४६३८३१), प्रत्येक पुस्तक की कीमत २७०) थी। उस पुस्तकालय के "कई विभाग थे और प्रत्येक विभाग में पुस्तकों की कीमत और जिस विषय की पुस्तकें थी उस विषय के महत्व के अनुसार कई और विभाग थे। गद्य, पद्य, हिन्दी, फारसी, ग्रीक, कश्मीरी, अरबी सभी के अलग २ विभाग थे।

विद्या के साथ अकबर का प्रेम इतना अधिक और उदार था कि उसकी आज्ञा के अनुसार उसके दरबार के विद्वानों ने संस्कृत के बहुत ग्रन्थों का फारसी उल्था किया। अब्दुलकादिर बदाऊनी जो अत्यन्त कट्टर मुसल्मान थे, दो और विद्वानों के साथ महाभारत के उल्था करने में लगे थे। वह अपनी राम कहानी यों लिखते हैं:— "मेरा भाग्य ऐसा है कि मैं ऐसे काम में लगाया गया हूं। तथापि मैं अपने को यही सान्त्वना देता हूं कि जो भाग्य में बदा है वही होता है।" अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त अथर्ववेद, हरिवंश और लीलावती का उल्था फैजी ने किया। तारीक का उल्था मुकम्मलखां गुजराती ने और राजतरंगिणी तथा नलाख्यान का अनुवाद भी फैजी ने किया।

संगीत का दृढ़ पोषक होने के अतिरिक्त अकबर संगीत में स्वयं बड़ा गुणी था और उसने २०० से अधिक नये रागों को चलाया जो अबुलफजल के शब्दों में सुननेवालों को आनन्दित कर देते थे।

बादशाह घर पर और सफर में बराबर गंगाजल पिया करते, "कुछ विश्वासपात्र मनुष्य गंगा के किनारे नियुक्त हैं जो नदी से पानी भर कर बरतनों के मुंह को बन्द कर के मुहर लगा देते हैं, जब दरबार आगरा या फतहपुर में होता है तब पानी सोरों से लाया जाता है; आजकल जब बादशाह पंजाब में हैं तब जल हरिद्वार से लाया जाता है। रसोई घर के लिए जमुना का अथवा पंजाब का जल कुछ गंगाजल मिला कर काम में लाया जाता है।"

चौबीस घंटों में वे केवल एकबार खाया करते थे और हमेशा कुछ भूख रहते ही खाना छोड़ देते थे। यह याद रखने योग्य बात है कि अबुलफजल जो यह सब बातें लिखा करता

था स्वयं प्रायः ३० पौण्ड प्रतिदिन भोजन करता था। "पहले दर्वेशों का भाग अलग कर दिया जाता है तब बादशाह दूध और दही के साथ भोजन आरम्भ करते हैं। जब वे खा चुकते हैं तब प्रार्थना करते हैं।"

पर सब से बड़ी बात यह है कि अकबर एक दयालु पुरुष था। अबुलफजल कहता है:—

"बादशाह मांस से बहुत अरुचि रखते हैं और वे प्रायः कहा करते हैं—'ईश्वर ने मनुष्य के लिए बहुत प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाये हैं पर मनुष्य अपने अज्ञान और पेटूपन से जीते जन्तुओं का नाश करता है और अपने पेट को जानवरों की कबर बना देता है। यदि मैं राजा नहीं होता तो मैं तुरन्त मांस खाना छोड़ देता और मेरी इच्छा है कि इसे आहिस्ता २ छोड़ दूं।' कुछ दिनों तक उन्होंने शुक्रवार को मांस खाना छोड़ दिया था, तब रविवार को और फिर चन्द्र अथवा सूर्य ग्रहण के दिन। और ऐसे दिनों में भी जो दो मांस छोड़नेवाले दिनों के बीच में पड़ जाता। और फिर रजब महीने के सोमवार को और तीर परब के महीने में और फरवरदिन के पूरे महीने में और अपने जन्म के पूरे महीने में जो अबान का महीना था। फिर जब यह हुक्म हुआ कि मांस-भंजन इतने दिनों तक जारी रहे जितने वर्षों की बादशाह की उमर हुई तब अजार महीने के भी कुछ दिन इसमें जोड़ दिये जाते और अब तो सारा महीना ही "सूफियाना" (मांस नहीं खाने का दिन) रहा है। अपनी धर्मनिष्ठा के कारण इन दिनों को वे प्रत्येक वर्ष बढ़ाते ही जा रहे हैं और किसी वर्ष में पांच दिन से कम नहीं बढ़ाते।

अकबर ने गोवध एकदम बन्द कर दिया था। और दूसरे जानवरों का भी वध इतने दिनों बन्द रहता जो पूजा के दिनों को (भादन के अन्तिम छः दिन) मिलाकर प्रायः आधा वर्ष हो जाता था। हीरविजयसूरी के कहने से उसने कैदियों को और पिंजड़े में बन्द चिड़ियों को छुड़वा दिया, शिकार खेलना छोड़ दिया जिसको वह बहुत ही पसन्द किया करता था और केवल मछली मारना जारी रखा। यह विशेष कर जानने योग्य बात है कि अकबर ने तीर्थयात्रियों से सब प्रकार के कर लेना बन्द कर दिया और कहा करते कि "जब सब रीति से की हुई पूजा एक ही के लिए है तब भक्त की किसी रीति की पूजा में बाधा डालना, उसे अपने बनानेवाले से मिलने में अड़चन डालना, पाप है।" यह वही सिद्धान्त है जो इस श्लोक में दिया हुआ है:—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

अकबर ने जवानी के पहले विवाह बन्द कर दिया और विधवाओं को पुनर्विवाह की इजाजत दी। वह इस बात पर जोर देता था कि विवाह के लिए वर-कन्या और उनके पिता-माता की सम्मति आवश्यक है। वह अपनी प्रजा को धर्म संबन्धी पूरी स्वतन्त्रता देता था। "यदि कोई हिंदू बचपन में अथवा किसी अन्य प्रकार से अपनी इच्छा के प्रतिकूल मुसलमान बना लिया गया हो तो उसे स्वतन्त्रता थी कि यदि वह चाहे तो अपने पूर्वजों के धर्म में फिर चला जाय।" "किसी आदमी के साथ उसके धर्म के कारण हस्तक्षेप नहीं किया जाता और प्रत्येक मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुसार वह जो धर्म चाहे रखने की स्वतन्त्रता थी।"

उसकी कुछ सूक्तियों के साथ मैं इसे खतम करूंगा:—

"यह मेरा धर्म है कि सब मनुष्यों के साथ मैं सद्भाव रखूं। यदि वह ईश्वर के बताये पथ पर चलते हों तो मेरा हस्तक्षेप ही आपत्तिजनक होगा। और यदि ऐसा न हो तो उन्हें अज्ञान का रोग है और वे दया के पात्र हैं।"

"उदारता और दया सुख और दीर्घ जीवन के साधन हैं। ऐसी भेड़ियां जो एक या दो बच्चे प्रति वर्ष पैदा करती हैं बहुत हैं पर कुत्ते जो बहुत कामातुर हैं कम ही हैं।"

"किसी ज्ञानी पुरुष से गिद्ध के दीर्घजीवन और बाज के लघु-जीवन का कारण पूछा गया तो उसने उत्तर दिया कि गिद्ध किसी को हानि नहीं पहुंचाता और बाज दूसरों का शिकार किया करता है।"—

(नवजीवन) वालजी गोविंदजी देसाई

गोशाला के व्यवस्थापकों को

थोड़े रोज पहले अखिल भारतीय गोरक्षण मंडल के मन्त्री ने मुख्य २ गोशाला और पींजरापोल के व्यवस्थापकों को एक प्रश्नावली के साथ पत्र भेजा था। बहुत कम लोगोंने उसका उत्तर दिया है। प्रश्नावली हमारे पास तैयार है। जो चाहें वे गोरक्षण मंडल के मन्त्री, साबरमती के पते पर लिख कर मंगा सकते हैं। श्री जोंडे महाराज ने महाराष्ट्र की गोशालाओं को देख कर विस्तृत विवरण मंडल को भेजने का भार उठा लिया है। मैं उम्मीद करता हूं कि वहां के व्यवस्थापक लोग उनको जरूरी बातें बता कर पूरा विवरण भी उन्हें देंगे। मुझे यह कहने की तो कोई जरूरत नहीं है कि अखिल भारतीय गोरक्षण मंडल उन गोशालाओं पर किसी प्रकार का अधिकार जमाने की तनिक भी इच्छा नहीं रखता है। मंडल की यही इच्छा है कि वह सपूर्ण विवरण मिला कर खाना पूरी के साथ प्रकाशित कर सब ट्रस्टी और व्यवस्थापकों के पास भेजे और उनको मुनासिब सलाह दे कर मददगार बने। यदि उनकी इच्छा हो तो वे मंडल से सबन्ध जोड़ सकते हैं, उससे सलाह भी ले सकते हैं। इसके साथ २ गौशिक्षा विशारदों की शीघ्र ही सेवा प्राप्त करने की मंडल जो आशा रखता है उससे भी लाभ उठा सकते हैं। परन्तु वे गोशालाएं तथा पिंजरापोल संबन्ध जोड़ें या न जोड़ें मंडल यह अपना कर्तव्य समझता है कि उनके पास गोरक्षा सम्बन्धी जो कुछ खबर या विवरण आवें उन्हें इन गोशालाओं को वह पहुंचावें। यह लिखने की जरूरत नहीं है कि यदि ये १५०० गोशालाएं अपने प्रयत्न के फल को इकट्ठा करें और अपनी व्यवस्था को कार्यसाधक बनावें तो आज जितने जानवर बचते हैं इससे बहुत ही ज्यादा बच सकेंगे। यह सच है कि मंडल के साथ संबन्ध रखनेवाली संस्थाओं पर कुछ जवाबदारी आवेगी। अपने हित और व्यवस्था के लिये बनाये हुए नियमों का पालन करना होगा और अपनी आय का एक हिस्सा अ. भा. गो. मंडल को देना पड़ेगा। परन्तु वे मंडल के साथ सम्बन्ध जोड़ें या न जोड़ें यह उनकी खुशी की बात है। उनका विवरण प्राप्त करने के उद्देश्य से ही यह टिप्पणी लिखी गई है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खतम हो गई है। अब जितने आर्डर मिलते हैं दर्ज कर लिए जाते हैं। आर्डर भेजनेवालों को जबतक छठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तबतक धैर्य रखना होगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ बदी ६, संवत् १९८३

वर्णभेद और स्वदेशी

मि॰ स्पेन्डर यों लिखते हैं:

"गांधी चाहते हैं कि योरोप के माल का बहिष्कार करें: दक्खिन आफ्रिका निवासी एक कदम आगे बढ़ कर चाहते हैं कि हिन्दुस्थानियों का बहिष्कार करें। स्वदेशी और वर्णभेद का कानून एक ही भाव के दो पहलू हैं। दोनों का मूल कारण वह निराशात्मक भाव है जिसके अनुसार पूरब और पश्चिम एक दूसरे के जीवन की विशेषताओं को नष्ट किये बिना हिलमिल नहीं सकते। गांधी एक साधु पुरुष हैं, दया से भरे हुए हैं। और मैं उनकी इस व्याख्या को सुनता रहा जब उन्होंने बड़े उत्साह से यह बताया कि वर्तमान परिस्थिति को हिंसात्मक अथवा बल-प्रयोग की रीति से तोड़ने में उन्हें कोई सहानुभूति नहीं है। तो भी जब वे यह बयान करने लगे कि पश्चिमीय व्यवसायबुद्धि ने हिन्दुस्थान के गांवों को किस प्रकार नष्ट भ्रष्ट कर दिया है तो मेरी यह धारणा हुई कि यदि वे भारत के राजा होते और उनका पूरा अधिकार होता तो योरोपवासियों के हिन्दुस्थान में दाखिल होने और वहां बसने के संबंध में वही नियम बनाते जो उन नियमों से ज्यादा फरक नहीं रखते होते जो आज दक्खिन आफ्रिकावासी हिन्दुस्थानियों के खिलाफ बनाने का प्रयत्न कर रहे रहे हैं। मैं गांधीजी की सच्ची प्रतिष्ठा करता हूं और यह मैं अवश्य मानता हूं कि वह उन दोनों प्रकार की अनुदारता को बहुत नापसंद करते हैं। तथापि यह सच मानना ही पड़ेगा कि स्वदेशी और वर्णनियम दोनों एक ही आध्यात्मिक कुल के संतान हैं।"

मि॰ स्पेन्डर के लेख का यह अंश उस भाव का एक आश्चर्यकारक उदाहरण है जिसे टॉलस्टाय "जादू" कहा करते थे। भारत में अंगरेज अफसरों की निर्धारित विचार पद्धति के जादूभरे प्रभाव में पड़ कर मि॰ स्पेन्डर दक्खिन आफ्रिका के काले कानून और भारत के खद्दरवाले स्वदेशी में कुछ अन्तर नहीं देख सकते हैं। मि॰ स्पेन्डर एक सच्चे उदार दल के आदमी हैं। भारतीय अभिलाषाओं के साथ उनको सहानुभूति भी है। पर वह अपने चारों ओर के उपस्थित वायुमंडल के प्रभाव से बाहर नहीं निकल सकते हैं। जो उनके विषय में सच है वह हम सब के विषय में भी कहा जा सकता है। इसीलिए असहयोग की आवश्यकता पड़ती है। जब हमारे चारों तरफ का वायुमंडल खराब हो जाता है, तब हमें उस वायुमंडल से अलग हो जाना चाहिए — कम से कम जहां तक हमारा सम्बन्ध उसके साथ हमारी इच्छा से हो, वह तो अवश्य तोड़ देना चाहिए।

पर चाहे मि॰ स्पेन्डर के भाव वायुमंडल के जादूभरे असर के प्रभाव से हों अथवा वह उनके स्वतंत्र विचार हों, हम उन पर विचार करें। वर्णविभेद का कानून मनुष्यों के विरुद्ध है। किसी कार्य्य वस्तु के विरुद्ध नहीं है। स्वदेशी केवल वस्तुओं के विरुद्ध है। वर्णविभेदी कानून बिना विचार किये ही मनुष्य की जाति अथवा रंग का विरोध करता है। स्वदेशी में ऐसा कोई भाव नहीं है। वर्णविभेदी कानून के पक्षपाती अपनी इच्छा को बल-पूर्वक भी आवश्यकता पड़ने पर पूर्ण कर लेंगे। स्वदेशी हर प्रकार के बलप्रयोग का — मानसिक बलप्रयोग का भी तिरस्कार करता है। वर्णविभेदी कानून में कुछ भी बुद्धि नहीं है। खद्दर के रूप में स्वदेशी एक वैज्ञानिक सूत्र है जिसको विवेकबुद्धि प्रत्येक पग पर पुष्ट करती है। वर्णविभेद के अनुसार प्रत्येक भारतवासी चाहे वह कितना ही शिक्षित क्यों न हो और चाहे वह रहनसहन में पूरा पश्चिमीय मनुष्य जैसा क्यों न हो गया हो तो भी दक्खिन आफ्रिकानिवासियों के विचार में वह वहां रहने देने योग्य नहीं है। वर्णविभेदी कानून का उद्देश ही हिंसा है क्योंकि वह चाहता है कि वहां के आदिम निवासियों को और एशिया के नवागत लोगों को बराबर अशिक्षित मजदूर ही बना रखे और उस स्थिति से वह कभी ऊपर न निकलने पावे। वर्णविभेद सभ्यता के नाम में और सभ्यता की रक्षा के नाम में वही करना चाहता है — और उससे भी अधिक विषम रीति से — जो हिन्दुओं ने हिन्दू धर्म के नाम में उन लोगों के साथ किया है जिनको वे अछूत कहते हैं। पर यह जानने योग्य बात है कि अछूतपन — चाहे इसके विरुद्ध जो कुछ कहा जाय — बहुत वेग के साथ हिन्दुस्थान से उठता जा रहा है। जो लोग अछूतपन हटाने में लगे हैं वही लोग बड़े उत्साह के साथ चरखे को भी सर्वव्यापी बनाने का प्रचार कर रहे हैं। अछूतपन को बुरा मान लिया गया है। पर वर्णविभेद दक्खिन आफ्रिका में धर्म का दर्जा पाता जा रहा है। वर्णविभेदी कानून बेगुनाह स्त्रियों और पुरुषों को बिना किसी कारण के नुकसान पहुंचाते हैं और उनका धन हर लेते हैं। स्वदेशी एक प्राणी को भी नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता। यह इस देश के सबसे अधिक दुखिया लोगों का वह वापस करना चाहता है जो उनसे जबर्दस्ती छीन लिया गया है। वर्णविभेदी कानून दूसरों को अलग करना चाहता है। स्वदेशी में इस प्रकार किसी को अलग करने का भाव नहीं है। स्वदेशी उस सिद्धान्त के साथ सहानुभूति नहीं रखता है कि पूरब और पश्चिम कभी मील नहीं सकते। स्वदेशी सभी विदेशी अथवा योरोपीय वस्तुओं का बहिष्कार नहीं करता। न वह सभी कलों के द्वारा बने हुए माल का ही बहिष्कार चाहता है। न वह देश में बनी सभी वस्तुओं को ही चाहता है। स्वदेशी ऐसी सभी विदेशी वस्तुओं की आमद का स्वागत करता है जिनको हिन्दुस्तान में तैयार नहीं कर सकते अथवा नहीं करना चाहते और जिनसे हिन्दुस्तान के लोगों को लाभ है। उदाहरणार्थ सभी सुन्दर साहित्य की विदेशी पुस्तकों को, विदेशी घड़ियों का विदेशी सुई, सिलाई के विदेशी कल, विदेशी आलपीन को वह ले लेता है। पर स्वदेशी सभी मादक वस्तुओं का चाहे वह भारत में भी बनी हों — वर्जन करता है। स्वदेशी सभी विदेशी कपड़े का और भारत के पुतलीघरों में भी प्रस्तुत कपड़ों का बहिष्कार कर के चरखा-खद्दर पर ही ध्यान जमाता है। इसका बहुत सीधा काफी सन्तोषजनक और नैतिक कारण यह है कि चरखे के नाश से भारत के करोड़ों आदमियों के एक-मात्र न्यूनता पूरक धन्धे का नाश हो रहा है जिसका स्थान कोई दूसरा धन्धा नहीं ले सका है। इसलिए स्वदेशी जिसका रूप खद्दर और चरखा है भारत के करोड़ों दरिद्र आदमियों के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पर वर्णविभेद का कानून उन चन्द योरोपवासियों की लोभपूर्ति के लिए है जो एक ऐसे देश के धन को चूस रहे हैं जो उनका अपना नहीं है पर दक्खिन आफ्रिका के आदिम निवासियों का है। अतः जहां तक मैं समझ सकता हूं वर्णविभेदी कानून का कोई भी नैतिक आधार नहीं है। दक्खिन आफ्रिका से नवागत एसियावासियों का निकाल दिया जाना

अथवा नाश कर दिया जाना किसी प्रकार आवश्यक नहीं है न यह प्रमाणित किया जा सकता है कि ऐसा करना दक्खिन आफ्रिका के योरोपवासियों के जीवन के लिए जरूरी है । दक्खिन आफ्रिका के आदिम निवासियों को पददलित करने का तो नैतिक प्रमाण इससे भी कमजोर है । इसलिए मि० स्पेन्डर जैसे अनुभवी विद्वान का इस प्रकार खद्दररूपी स्वदेशी को और वर्णाधिभेदी कानून को एक श्रेणी में रखना आश्चर्यजनक और दुःखद है । वे दोनों एक जाति के नहीं हैं—एक आध्यात्मिक जाति की तो बात ही नहीं है, ये दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न चिजें हैं—वह वैसे ही एक-दूसरे से दूर है जैसे उत्तर और दक्खिन ध्रुव एक-दूसरे से अलग है ।

मि० स्पेन्डर अनुमान करते हैं कि यदि मैं भारत का निरंकुश अधिकार-युक्त राजा होता तो क्या करता । मुझे ऐसा अनुमान करने का शायद कुछ अधिक अधिकार है । यदि मैं भारत का राजा होता तो मैं पृथ्वी के सभी मनुष्यों के साथ बिना धर्म वर्ण और जाति का भेद किये हुए मैत्री करता क्योंकि मैं दावा रखता हूं कि समस्त मानव-जाति एक ईश्वर की सन्तान है जिसके प्रत्येक व्यक्ति को उसमें से बड़े से बड़े के समान मुक्ति-साधन का अधिकार प्राप्त है । भारत पर कब्जा रखने के लिए जो सेना रखी गयी है उसे मैं प्रायः एकबारगी हटा देता । केवल इतनी पुलिस रखता जितनी यहां के नागरिकों की चोरों और डाकुओं से रक्षा करने के लिए आवश्यक हो । मैं सीमा प्रान्त वासियों को घूस नहीं देता जैसे उन्हें आज घूस दी जा रही है । पर मैं उनके साथ मैत्री करता और इस उद्देश से उनके पास सुधारकों को भेजता जो उनको अच्छे धन्धे सिखलाने के साधन खोज निकालते । भारत में रहनेवाले प्रत्येक योरोपवासी और उनके सबसे सुन्दर सारे उद्योगों की रक्षा का मैं पूरा प्रबन्ध करता । सब विदेशी कपड़े की आमद पर मैं इतना कर बैठाता कि वह भारत के अन्दर न आ सके और शासन के अधीन खद्दर को ला कर ऐसी व्यवस्था करता कि प्रत्येक ग्रामवासी को जो सूत न कातना चाहे यह विश्वास हो जाय कि उसके चरखे से निकला माल बिक जायगा । मैं मादक द्रव्यों की आमद एकबारगी रोक देता और हर भट्ठी को जहां शराब चुलायी जाती है बन्द कर देता—इतनी ही शराब और अफीम तैयार होने देता जितनी की दवा के लिए आवश्यक प्रमाणित होती । हर प्रकार की धार्मिक पूजा की जो मनुष्य मात्र के नैतिक संस्कार के विरुद्ध नहीं पूरी रक्षा करता । जिनको हम अछूत समझते हैं उनको प्रत्येक सार्वजनिक मन्दिर में, पाठशाला में जहां दूसरे हिन्दू जा सकते हैं जाने की स्वतंत्रता दे देता । हिन्दुओं और मुसलमानों के अगुओं को मैं बुलवाता उनकी जेबों की तलाशी ले कर जो कुछ उनके पास खाने की वस्तु और घातक हथियार होवें उनसे छीन कर उनको एक घर में मैं बन्द कर देता और उसके दरवाजे को उस समय तक नहीं खोलता जब तक वह आपस के झगड़ों को तय नहीं कर लेते । उनके अतिरिक्त बहुतेरी और बातें हैं जिनको मैं यदि भारत का राजा होता तो करता । पर मेरे राजा होने की संभावना बहुत कम है । जो मैंने ऊपर कहा है वह उन चीजों का यथेष्ट उदाहरण है जो एक ऐसा आदमी जिसे लोग गलत तरीके से ख्याली पुलाव पकानेवाला आदमी कहते हैं पर जो अपने को एक सिद्धहस्त काम करनेवाला समझता है करता यदि उसका अधिकार होता ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

अन्य देशों में चर्खा

मद्युरान्टोर के श्रीयुत बालाजीराव ने Peoples of All Nations नामक पुस्तक में से अन्य जातियों में पुराने चर्खे का स्थान सम्बन्धी सूचनायें एकत्र कर के उसे छाप कर बांटा है । मैं उसीको थोड़ा संक्षेप करके उद्धृत करता हूं:—

अबिसीनिया:—अबिसीनिया के धनी-लोग मैनचेस्टर का सूती कपड़ा और यार्कशायर का ऊनी कपड़ा पसन्द करते हैं । पर वहां का गृहस्थ तो सभी कारखानों से मुकाबला कर सकता है । वह स्वयं अपने खेतों में रुई पैदा करता है—उसे साफ करता है, कातता है और अपने पुराने करघे पर कपड़ा बुन लेता है । वहां के बने हुए नरम सुन्दर और गर्म कपड़े का ही शम्मा बनता है जो वहां की जातीय पोशाक है ।

बेल्जियम:—बूढ़े लोग किसी न किसी अच्छे धन्धे में लगे रहते हैं । घर की सुव्यवस्था करने ही में बेल्जियम की स्त्रियां अपनी बड़ाई मानती हैं । प्रायः प्रत्येक झोपड़े में चर्खा है । सबसे गृहस्थ लोग अपने खेतों में उपजाये हुए और घर पर साफ किये हुए पाट को कात कर सूत बना लेते हैं ।

बलगेरिया:—टिर्नोवो में बाजार के दिन बल्गेरिया के लोगों की मितव्ययता और अध्यवसाय को आप देख सकते हैं । शाक खरीदनेवाले ग्राहक के इन्तजार में बैठी हुई स्त्रियां सूत कातती रहती हैं ।

जेकोस्लावेकिया:—कपड़ा बनाने की सब विधियों का—अर्थात साफ करना, कातना, बुनना और धोना, प्रायः सभी ग्राम गृहस्थों के घरों में ही होते हैं और यह सब घरवाले ही कर लेते हैं ।

चीन:—गरीबों के कपड़े के पांच हिस्सों में चार हिस्से घर में ही तैयार होते हैं । सूत कातना और बुनना आज भी स्त्रियों का काम है क्योंकि कलों ने चीनियों की कपड़े बनाने की पुरानी वृत्ति का स्थान अभी तक नहीं ले लिया है ।

एकवेडर:—सूत कातने का सामान स्त्रियों के साथ साथ वे जहां जाती हैं जाता है और जब वे किसी दूसरे काम में नहीं लगी रहती हैं तब उनकी तेज अंगुलियां सूत कातने और गूंठने में ही लगी रहती हैं । कल की तरह यों कातने में लगे रहने से उनके किसी दूसरे काम में हर्ज नहीं पड़ता है । बहुत ही सादे करघों पर बहुत सुन्दर सूती और ऊनी कपड़े तैयार किये जाते हैं जिनसे तरह तरह की गर्म पोशाकें बनती हैं ।

फिचुआ स्त्रियें जहां जाती हैं डंडा और तकली साथ ले जाती हैं—डंडा एक मोटी लकड़ी का बना रहता है और तकली एक बेंत के टुकड़े को आलू में गूथ कर बना ली जाती है — और जहां उनके हाथों को फुर्सत मिलती है कि वे सूत कातने लग जाती हैं ।

इक्वेडर के बने हुए देशी कपड़े सामान और कारीगरी दोनों के लिहाज से बहुत अच्छे होते हैं ।

इंगलैण्ड भी:—विल्टशायर के गांव में चर्खों की सुन्दर घनघनाहट सुनाती है । सालिसबरी के समतल के एक कोने में विन्टरस्लो एक गांव है जो वहां के रहनेवालों के हाथों से कते और बुने कपड़े के लिए मशहूर है । वह कपड़ा वहां के भेड़ों से निकले हुए सबसे बारीक ऊन का बनता है । इस काम को हैमिल्टन की डचेज ने आरम्भ किया था और गांववाले इसे बड़े उत्साह के साथ करते हैं । छोटी से छोटी लड़कियों को भी यह पाठशाला में सिखला दिया जाता है और वह घर पर अपना अपना सूत कातती हैं ।

एस्थोनिया:—एस्थोनिया की स्त्रियों का चरखा चलाना एक कहावत सी हो गयी है। ओसेलद्वीप में जहां बहुत सर्द हवा बहती है ऊनी कपड़े की बहुत जरूरत रहती है। गर्मी के दिनों में वहां की सुन्दर स्त्रियां अपने झोंपड़े के बाहर धूप में बैठ कर ऊन का सूत कातती हुई देखी जाती हैं। अपने और कुटुम्ब के लिए गर्म कपड़े वे तैयार कर लेती हैं।

फ्रान्स:—ब्रिटानी के बाहर गांव की बूढ़ी स्त्रियां तकली चलाती रहती हैं और केल्टिक भाषा में चरखा सम्बन्धी गीत अपनी दर्द-भरी आवाज में गाती रहती हैं। ब्रिटेनी में आजतक हाथ से सूत काता जाता है और वहां की स्त्रियां अपने देश के कपड़े पर उचित गर्व करती हैं। घर में काता हुआ और बहुत सावधानी से धोया गया वह कपड़ा बहुत टिकता है और बहुत झोंपड़ों में ऐसा कपड़ा बहुत जमा किया जाता है। उनकी अनोखी टोपियों को सर पर और सुन्दर कपड़े देह पर पहनती हुई और तकली हाथ में लेती हुई वहां की स्त्रियां पुरानी दुनिया की मितव्ययता और अध्यवसाय के मानों चित्र सी जान पड़ती हैं। टेडीनाग और हुड़ी और टकली ले कर अपनी गांव की बूढ़ी स्त्रियां परियों की कहानियों के तिलस्म के किले के बाहर की डाइनों की तरह दीखती हैं।

ग्रीस:—"चमत्कार शक्ति की रुकावट को मिटा देता है।" दृश्य—डेल्फी पर्वत के नजदीक का एक रास्ता—और कुछ नहीं तो उनके नयापन में ग्रीक स्त्रियों का वह दृश्य जब वह गधे पर सवार हो कर भी अपनी पूनी और तकली से सूत निकालती है अपना जोड़ नहीं रखता। पर ऊपर की चढ़ाई में अपने घोड़ों के कदमों के ठीक बैठने में और उनकी अङ्ग-चालन करने की आदत में उनका ऐसा विश्वास है कि दोपहर के सुनहरे घंटों को वह एक ऐसे धन्धे में लगाती हैं जिसके लिए ग्रीस की स्त्रियां बहुत दिनों से मशहूर हैं।

"जहां घर ही कारखाना है"—जब लंकाशायर का माल इतने मुल्कों में मिलने लगा है यह एक आश्चर्य की बात है कि कोई आदमी ताना तानने और कपड़े बुनने के नाजुक हुनर के सीखने और अभ्यास में बहुत समय लगावे। तथापि ग्रीस में यह एक जीता-जागता धन्धा है और जो माल तैयार होता है वह अनुमान से कहीं अधिक उपयोगी होता है।

हंगेरी:—हाथ में पूनी और तकली के साथ नंगे पैर हंगेरी की लड़कियां वहां की हरी पहाड़ियों पर फिरा करती हैं। उनकी अंगुलियां कभी बेकार नहीं रहतीं। सादे तरीके से हंगेरी ने बहुत पुराने धन्धों को इस प्रकार बचा रखा है।

आयरलैंड:—गांवों में पुराना चरखा अभी भी उपयोग में आता है। इन्हीं सादे चरखों पर वहां का देशी हाथ का कता हुआ कपड़ा बनता था जिसे देख कर आज के कारखानेवालों को भी लज्जा आनी चाहिए।

पेलेस्टाइन:—उस रंगबिरंगे जमायत में जो जेरुसलेम में जमा होती है पगड़ीवाला बूढ़ा सरदार भेड़ी की खाल का कोट पहने हुए और चुपचाप डोरा ऐंठते हुए देखने योग्य है।

पेराग्वे:—लेंगुआ के आदमी केवल एक कम्बल अपने कमर में लपेटते हैं। ऊन स्त्रियों द्वारा घर ही पर काता और बुना जाता है और कभी कभी बहुत बारीक होता है। रंगे हुए नमूने भी मिलते हैं। सफेद और काले तो प्राकृतिक रंग के ही; लाल कोचीनियल रंग से बनता है; पीला और खाकी पेड़ों की छाल से बनते हैं। लेंगुआ की स्त्रियां प्रायः घर के काते हुए सूत के घाघरा बनाती हुई देखी जाती हैं।

पेरू:—पेरू के कोला प्रदेश की स्त्रियां चाहे जो कुछ करती हों— जैसे बच्चों की देखभाल करना अथवा अपने भेड़ों और बकरियों की चरवाही करना — पर साथ साथ वे सूत भी कातती रहती हैं। मोटे ऊन की एक गोली ले कर एक छोटी तकली से जिसे वे बराबर नचाती रहती हैं वे सूत निकालती हैं। पहाड़ों के सुदूर प्रदेशों में जहां कपड़े की दूसरी आमद नहीं है वहां की स्त्रियां इस प्रकार सूत बनाती हैं जिससे उनके प्रायः सभी कपड़े बनते हैं।

पोलैण्ड—वारसा जिले के गृहस्थों के घरों में चरखा और करघे को एक महत्व का स्थान है। घर में बने कपड़े पहनने में वे पक्के हैं और बहुत कम अपने कपड़े को बदलते हैं।

रूमेनिया—रूमेनिया की गोशालाओं की लड़कियां दो काम एक साथ करती हैं। अपनी काम में लगी हुई अंगुलियों से सर्व-व्यापी तकली को चलाती हैं और साथ ही गोधूली के समय गौओं को हांक कर घर लाती हैं। रूमेनिया की गृहस्थ स्त्रियां अपनी प्राचीन रीतियों की भक्त हैं; आज भी चरखा चलाना वहां के विशेष धन्धों में है। बेकारी के समय भी शायद ही कोई बिना पूनी के देख पड़ती है।

स्कॉटलैण्ड:— सुन्दर काम जब अच्छी तरह से अंजाम पाता है तो उससे आनन्द और लाभ दोनों मिलते हैं। नरमी और टिकाऊपन के लिए हैरिस ट्वीड जो हाथ से कात और बुन और रंग कर हेब्रिडीज में तैयार किया जाता है दुनियाभर में मशहूर है। शुरू में झोंपड़ों के करघों से निकल कर दुनिया के बाजार में पहुंचना और वहां भी एक नफा देनेवाला काम समझा जाना बहुत मुश्किल से हो सकता है पर ऊन के हेब्रिडीज में यह होता है और हैरिस ट्वीड का धन्धा वहां के गरीबों के लिए एक न्यामत है। हारवार्ड में लोगों को धन्धा देने के लिए ऊन धुनने के दो कारखाने बनाये गये हैं और एक भण्डार खोला गया है। जहां हैरिस ट्वीड जिसे इन्होंने घर पर बुन और रंग कर तैयार किया है ले लिया जाता है। लताओं से छायी हुई ओसरियों के बाहर बैठी हुई शेटलैण्ड की शांत स्त्रियां नरम और गरम ऊन को धुनती और कातती हैं, जिसके लिए वह दूर का टापू मशहूर है।

सर्बिया:— युगो स्लेविया में सूत कातना और बुनना तथा घर के दूसरे धन्धे विशेष कर जाड़े में किये जाते हैं जब गृहस्थ स्त्रियों के लिए बाहर का काम नहीं रहता है। सरबिया में बहुत पुराने धन्धे चलते हैं पर स्त्रियां जितना सूत कातना पसन्द करती हैं उतना और कुछ नहीं।"

यदि ऊपर के उद्धृत वाक्यों को हम प्रमाण मान लें तो केवल ऐसे आदमी चरखे की शक्ति का इनकार कर सकते हैं जिनके दिमाग में गलत ख्याल भरा हुआ है। सब से अधिक यह गलत ख्याल बैठा हुआ है कि चरखा कातनेवालों को बहुत कम मजदूरी मिलती है। यदि हम अपने को भूल जाय और भूख से मरते हुए उन करोड़ों लोगों के स्थान में अपने को मान कर विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि जिसे हम बहुत कम समझते हैं वह उन गरीबों के लिए विपुल धन है। यह भी मालूम हो जायगा कि जहां लाखों की बात है, वे केवल कुछ पैसे ही अपनी रोजाना की आमदनी में जोड़ सकते हैं जो देखने से कुछ पैसे मात्र हैं। हद से हद यह साल में ४०) हो सकते हैं अर्थात् रोजाना सात पैसे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

"महात्माजी का हुक्म"

एक अध्यापक लिखते हैं:—

"मेरी पाठशाला में लड़कों का एक छोटा गिरोह है जो नियमित रूप से कई महीनों से स्वराज्य को १००० गज अपने हाथों का कता हुआ सूत भेजा करता है और वे इस तुच्छ सेवा को आप के प्रति अपने प्रेम के कारण ही करते हैं। यदि उनसे चर्खा चलाने का कोई कारण पूछता हूं तो वे उत्तर देते हैं कि 'यह महात्माजी का हुक्म है। इसे मानना ही पड़ता है।' मैं समझता हूं कि लड़कों में इस प्रकार की प्रवृत्ति को हर तरह से प्रोत्साहन देना चाहिए। गुलामी के भाव में और इस प्रकार की वीरपूजा अथवा निःशंक आज्ञापालन में बहुत अन्तर है। इन लड़कों की बड़ी लालसा है कि उनको अपने हाथों लिखा हुआ आप का संदेश मिले जिससे वे उत्साहित हो सकें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत होगी।"

मैं नहीं कह सकता कि जो मनोवृत्ति इस पत्र से झलकती है वह सद्बुद्धि है अथवा अन्धभक्ति। मैं ऐसे अवसरों को समझ सकता हूं जब किसी आज्ञा के पालन करने के कारणों की जरूरत पर तर्क वितर्क न कर के उसे मान लेना ही आवश्यक हो। यह सिपाही के लिए अत्यन्त आवश्यक गुण है, कोई जाति उस समय तक विशेष उन्नति नहीं कर सकती जब तक उसकी जनता में बहुतायत से यह गुण वर्तमान न हो। पर इस प्रकार के आज्ञापालन के अवसर सुसंगठित समाज में बहुत कम होते हैं और होना चाहिए। पाठशाला में बच्चों के लिए सब से बुरी बात जो हो सकती है वह यह है कि जो कुछ अध्यापक कहें उसे उन्हें आंख बंद कर के मानना ही पड़ेगा। बात यह है कि यदि अपने अधीन के लड़के और लड़कियों की तर्क शक्ति को अध्यापक तेज करना चाहता है तो उसको चाहिए कि उनकी बुद्धि को हमेशा काम में लगाता रहे और उन्हें स्वतन्त्र रूप से विचार करने का मौका देवे। जब बुद्धि का काम खतम हो जाता है तब श्रद्धा का काम आरम्भ होता है। पर दुनिया में इस प्रकार के बहुत कम काम होते हैं जिनके कारण हम बुद्धि द्वारा नहीं निकाल सकते। यदि किसी स्थान में कुआं का जल गन्दा हो और वहां के विद्यार्थियों को गर्म और साफ किया हुआ जल पीना पड़े और उनसे इस प्रकार के जल पीने का कारण पूछा जाय और वे कहें कि किसी महात्मा का हुक्म है इसलिए हम ऐसा जल पीते हैं तो कोई शिक्षक इस उत्तर को पसन्द नहीं कर सकता। और यदि यह उत्तर इस कल्पित अवस्था में गलत है तो चर्खा चलाने के सम्बन्ध में भी लड़कों का यह उत्तर बिलकुल गलत है। जब मैं अपनी महात्माई की गद्दी से उतार दिया जाऊंगा — जैसा मैं जानता हूं कि बहुतेरे घरों में उतार दिया गया हूं (बहुतेरे पत्रप्रेषकों ने कृपा कर मेरे प्रति अपनी श्रद्धा घट जाने की सूचना मुझे भी दे दी है)—तब मुझे भय है कि चर्खा भी उसके साथ ही साथ नष्ट हो जायगा। सच बात यह है कि कार्य मनुष्य से कहीं बड़ा होता है। सचमुच चर्खा मुझ से अधिक महत्व का है। मुझे बड़ा दुःख होगा यदि मेरी किसी भारी गलती से अथवा मुझ से लोगों के रंज हो जाने से लोगों का मेरे प्रति सद्भाव कम हो जाय और इस कारण चर्खे को भी नुकसान पहुंचे। इसलिए बहुत अच्छा हो यदि लड़कों को उन सब विषयों पर स्वतंत्र विचार करने का मौका दिया जाय जिन पर वे इस प्रकार विचार कर सकते हैं। चर्खा एक ऐसा विषय है जिस पर उनको स्वतंत्र विचार करना चाहिए। मेरे विचार में इसके साथ भारत की जनता की भलाई का सवाल मिला हुआ है। इसलिए छात्रों को यहां की जनता की गहरी दरिद्रता को जानना चाहिए। उनको ऐसे गावों को अपनी आंखों देखना चाहिए जो तितिर बितिर होते जा रहे हैं। उनको भारत की कितनी आबादी है जानना चाहिए। उनको यह जानना चाहिए कि यह कितना बड़ा देश है और यहां के करोड़ों निवासियों की थोड़ी आमदनी में हम थोड़ी बढ़ती किस प्रकार कर सकते हैं। उनको देश के गरीबों और पददलितों के साथ अपने को मिला देने को सीखना चाहिए। उनको यह सीखना चाहिए कि जो कुछ गरीब से गरीब आदमी को नहीं मिल सकता है वह जहां तक हो सके वे अपने लिए भी न लेवें। तभी वे चर्खा चलाने के गुण को समझ सकेंगे। तभी उनकी श्रद्धा प्रत्येक प्रकार के हमले को जिसमें मेरे सम्बन्ध में विचार परिवर्तन भी है — बर्दाश्त कर सकेगी। चर्खा का आदर्श इतना बड़ा और महान है कि उसे किसी एक व्यक्ति के प्रति सद्भाव पर निर्भर नहीं रखा जा सकता है। यह ऐसा विषय है जिस पर विज्ञान और अर्थशास्त्र की युक्तियों द्वारा भी विचार किया जा सकता है।

मैं जानता हूं कि हमलोगों के बीच इस प्रकार की अन्धभक्ति बहुत है और मैं आशा करता हूं कि राष्ट्रीय पाठशालाओं के शिक्षक लोग मेरी इस चेतावनी पर ध्यान रखेंगे और अपने विद्यार्थियों को इस आलस्य से, कि वे किसी काम को केवल किसी ऐसे मनुष्य के करने के कारण ही किया करें जिसे लोग बड़ा समझते हों, बचाने का प्रयत्न करेंगे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

"आप ही के लाभ के लिए"

शास्त्रों में परोपकार मनुष्य-जीवन का मुख्य धर्म माना गया है। परोपकार करने से मनुष्य पुण्य प्राप्त करता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने भविष्य के सुख के लिए परोपकार करना चाहिए यह हमारी भावना है। आज-कल के जमाने में और नयी तरह के परोपकारी लोगों की भरमार हो गयी है; वे लोग अखबारों में इश्तेहार दे कर समझा रहे हैं कि "हमारा काम आपके ही लाभ के लिए है, आप सिर्फ पैसा दे कर लाभ लूटें," लाभ की इच्छा रखनेवाले नगद रुपया दे कर भविष्य में लाभ मिलने की आशा रखे रहें। पूर्व-काल के परोपकारी जन स्वय परोपकार पहले करते थे और उसके लाभ की आशा भविष्य पर छोड़ते थे परन्तु वर्तमान समय के परोपकारी लोग नगद रुपया लेते हैं और लोगों को विश्वास दिलाते हैं कि सबको अपने २ नसीब के मुताबिक लाभ मिलेगा। असल लुटेरे लूटने आते। वे हमलोगों को यही समझाते कि "आपके पास धन का बोझ बहुत हो गया है उसे हलका करने के लिए ही हम आये हैं।" इन लुटेरों में और उपर्युक्त परोपकारी जन्तुओं में क्या फरक है यह मैं समझ नहीं सकता। अथवा यह भी सम्भव है कि जैसे इस सुधार के जमाने में हमलोगों की और सब भावनाएं बदलती जाती हैं उसी तरह परोपकार की भावना भी बदलती जाती होगी।

"आप ही के लाभ के लिए" जीनेवाले परोपकारियों के कुछ नमूने देखें तो बड़ा आनन्द होगा।

सबसे पहले अखबार हैं। हमने आपके ही लाभ के लिए अखबार निकाले हैं। खूब ग्राहक बनिए और इश्तेहार दीजिए आपकी ही भलाई होगी।

हमारे जहाजों में मुसाफरी कीजिए और माल चढ़ाइए। आपको फायदा मिलेगा।

हमारी कम्पनी में बीमा कराइये तो आप सुखी होंगे।

हमारे पास आ कर अपना भविष्य देख लीजिये, आना पाई तक की बात बतायगे। हम को नगद नारायण चढ़ा कर आप भी खूब कमाइये।

हमारी दवाई खाइये। धातुपुष्टि होगी, ताकत बढ़ेगी, बुखार बिलकुल नहीं आवेगा, खांसी आप के पास फटकने नहीं पावेगी, लोहू सुधरेगा, फोड़ा नहीं होगा, कबजियत नहीं होगी, कड़ी भूख लगेगी। सारांश आप को कोई रोग नहीं होगा।

हमारे होटल में खाइये, घर की रसोई को भूल जायगे।

हमारा चश्मा पहने तो आप की आंखे तेज हो जायंगी, आप अच्छी तरह देख सकेंगे।

हमारे सिगरेट पीजिये, स्वर्ग आप के नजदीक आ जायगा।

हमारी शराब पीवें तो स्वर्ग पृथ्वी पर ही उतर आयगा।

वकील, डाक्टर, इंजिनीयर तथा यंत्र बेचनेवाले भी सब आप ही के लिए दिन रात माथापच्ची कर रहे हैं। आप के धन के भार को हलका करने की चिंता से निवृत्त ही नहीं होते।

अखबार पढ़ पढ़ के थक गये लेकिन कोई लाभ नहीं देखते। रोजमरोज टंटे-झगड़े ही बढ़ते हैं। जहाजों में मुसाफरी कर के भी थके पर हमारी मुसाफरी पूरी ही नहीं होती। बीमा कर २ के थके लेकिन झंझट कम नहीं होता। शाकिमर काम किया तो भी कोई लाभ नहीं दिख पड़ता। दवाई लेने पर भी उसकी जरूरत कम नहीं होती। चश्मा पहनने लगे तो चश्मा की जरूरत ही बढ़ती जाती है। सिगरेट पीने लगे उससे आज ऐसी हालत हुई है कि उसके बिना चैन नहीं है। शराब पी तब और उसके बगैर पृथ्वी नरक के बराबर लगती है। होटलों में खाने से जीभ की लालसा बढ़ी और सादे रोटी दाल से घृणा होने लगी। डाक्टरों की वृद्धि के साथ रोग भी बढ़ने लगे और तन्दुरुस्ती बिगड़ी। वकीलों की संख्या जरूर बढ़ी पर लोगों में ऐक्य मिट गया और टंटे-फिसाद भी बढ़ गये। इंजिनीयरों की वृद्धि के साथ २ आकस्मिक घटनायें भी खूब होने लगी। यंत्रों की बहुलता से काम घटा नहीं पर बढ़ गया है, आराम कम हुआ और महगी बढ़ी।

अखबार और स्टीमरवाले लखपति हो गये। बीमा कपनीवाले मालदार बन बैठे। दवाई बेचनेवाले और बनानेवाले भी लाखों रुपये कमा चुके। सिगरेटवाले, डाक्टर, वकील, इंजिनीयर और यन्त्रवाले अमीर और राजा हो गये हैं पर इन सब से लाभ लेनेवाले महान दुःख में पड़ कर आर्तनाद कर रहे हैं। 'आप के ही लाभ के लिए' चिल्लानेवाले खुद आप का लोहू चूस कर आप का सत्यानाश कर रहे हैं।

इससे बचने के लिए कोई उपाय है? दूसरों का जितना आश्रय लिया जाय उतना दुःख ही बढ़ता है। पराधीन मनुष्य स्वप्न में भी सुख नहीं पा सकता। यदि प्रत्येक मनुष्य खेती करे, पशुओं को पाले और अपने घर में कातने बुनने का काम खुद करे और दूसरों से भी करा सके तो वह पूर्ण स्वतंत्र और सुखी हो सकेगा। ऊपर के तीनों काम हरएक आदमी एकदम न कर सके तो भी हर एक किसान अपने काम के साथ कातने बुनने का काम जरूर कर सकता है। वैसे ही दूसरे लोग अपने कार्य के साथ कात और बुन भी सकते हैं। बड़े शहरों में रहनेवाले अपनी फुरसत में सूत कात कर सूत के बारे में स्वावलंबी बन सकते हैं। इसके सिवाय सादा जीवन, सादा खुराक, साफ हवा-पानी, कसरत, ईश्वर-भजन और शांत स्वभाव, इन बातों पर भी ध्यान दें तो वे सुख और स्वर्ग को इसी पृथ्वी पर सहज ही पायंगे।

दूसरे लोग नहीं करते, हम अकेले क्या कर सकेंगे? इस विचार से कोई रुक न जाय। जो करेंगे वे सुख पायंगे। दूसरे लोग भी खुद करेंगे। यह मुफ्त की सलाह भी 'आप के ही लाभ के लिए' है। लेखक पैसा नहीं मांगता है इतना ही फरक है।

(नवजीवन) प०

अ० भा० गोरक्षा मंडल का आय-व्यय का ब्यौरा

१९२९ के ३० अप्रेल तक का अ० भा० गोरक्षा मण्डल का आय-व्यय का ब्यौरा नीचे दिया गया है।

आय	रु. आ. पा.	व्यय	रु. आ. पा.
चन्दा, दान या भेट की रकम	६,१००,-१५-०	मण्डल का आरम्भिक खर्च	१३६—७-०
चन्दे में और दान या भेट में मिले सूत की बिक्री से	२६-९-६	अवैतनिक कोषाध्यक्ष का खर्च	८-१०-९
ब्याज	२७-३-०	मन्त्री का	१३१६—०-०
		सफर खर्च	६० -८-१
		पुस्तक वगैरा	२० -१५-६
		छपाई का खर्च	२१—०-०
		डाक खर्च	१२-४-६
		कागज इत्यादि स्टेशनरी खर्च	३—७-३
		सेंट्रल बैंक में डीपोजीट	३७३६-११-०
		सत्याग्रह आश्रम में	७०५-१४-०
		कोषाध्यक्ष के पास	१-१२-९
		मंत्री के पास	१०३-१०-०
	६१५४-८-६		६१५४-८-६

यह ध्यान देने योग्य बात है कि सूत के बेचने से बहुत थोड़े दाम मिले हैं क्योंकि बहुतेरा सूत तो बहुत ही खराब था। यदि चन्दा देनेवाले अपने सूत का सुधार करेंगे तो बिना किसी विशेष तकलीफ और खर्च के वे अपनी दी हुई रकम को स्वयं ही बढ़ा सकेंगे।

मान्य कौन करे?

यह प्रश्न पूछा गया है कि गोशालाओं को मान्य करने की अखिल भारत गोरक्षा मण्डल की शर्तें क्या हैं? समिति ने अभी तक उसके लिए कोई नियम नहीं बनाये हैं परन्तु मैं चौंडे महाराज की इस सूचना का स्वीकार करता हूं कि जो मण्डल मान्य होना चाहे वह अपनी आय से १) प्रति सैकड़ा मण्डल को दे। मान्य करने के समय उसे अपना सम्पूर्ण ब्यौरा देना होगा उसे मण्डल का उद्देश स्वीकार करना होगा और मण्डल को गोशाला और उसके हिसाब-किताब की जांच करने देना होगा। ऐसी मानी गई संस्था या मण्डल को मण्डल के कुशल ज्ञाताओं की सलाह प्राप्त करने का और उसके अधिकार में जो साहित्य हो उसका मुफ्त उपयोग करने का और उसकी शक्ति में हो ऐसी दूसरी मदद या सलाह प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होगा। अ० भा० गोरक्षा मण्डल की समिति की मंजूरी पर ही इन नियमों का आधार रहेगा। समिति के सामने ये नियम पेश किये जायं उसके पहले यदि कोई सूचनायें प्राप्त होंगी तो मैं उनका स्वागत करूंगा।

आत्म-त्याग

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ४५

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, ज्येष्ठ सुदी १४, संवत् १९८३ गुरुवार, २४ जून, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

वाचकवृंद को

मुझे हमेशा दुःख रहा है कि मैं हिंदी नवजीवन में कुछ नहीं लिख सकता हूं, न उसे देख सकता हूं। श्री हरिभाऊ उपाध्याय के खादी कार्य में नियोजित होने के पश्चात् हिंदी नवजीवन की भाषा के बारे में मेरे पास बहुत फरियादें आई हैं। कोई कहते हैं 'भाषा बिगड़ गई है, क्योंकि [illegible] बहुत से आते हैं और उसमें गुजराती का ध्वनि रहता है।' कोई कहते हैं 'अर्थ का अनर्थ भी होता है।' ये सब बातें सम्भवित हैं। अनुवादक अपना कार्य बड़े प्रेम से और उद्यम से करते हैं तथापि गुजराती होने के कारण उनकी भाषा में त्रुटियां होने का पूरा संभव है। मैं कोई हिंदी-प्रेमी सज्जन की खोज में रहता हूं, ऐसा सज्जन मिलने से त्रुटियां दूर होने की आशा रखता हूं। परन्तु साथ २ यह भी कहना अनुचित नहीं होगा कि हिंदी नवजीवन आखिर अनुवाद के रूप में ही प्रगट होता है। अर्थहानि कहीं भी न होने पाय ऐसी कोशिश मैं अवश्य करूंगा। किन्तु सच तो यही है कि हिंदी में नवजीवन प्रगट करने की योग्यता मैं नहीं रखता हूं, न मुझे निरीक्षण करने का समय है, न मुझ में हिंदी का आवश्यक ज्ञान है। केवल मित्रों के प्रेम के वश हो कर और मेरे विचारों से हिंदी भाषा जाननेवाले भी अनजान न रहें ऐसे मोह के कारण मैंने हिंदी नवजीवन प्रगट करने का स्वीकार किया है। वाचकवृंद की सहाय से ही यह कार्य चल सकता है। दो प्रकार की मदद वे दे सकते हैं। एक तो त्रुटियों को बता कर और दूसरी जब त्रुटियां असह्य होने पाय तब नवजीवन लेना बन्द कर के। नवजीवन अर्थ-लाभ की दृष्टि से नहीं निकलता है। प्रगट करने में केवल पारमार्थिक दृष्टि ही सामने रखी गई है। यदि भाषा के या तो दूसरे किसी दोष के कारण नवजीवन से सेवा न हो सके तब उसको बन्द करना कर्तव्य हो जायगा।

इस अंक में जो अनुवाद छापे गये हैं सब उन्हीं अनुवादकों से हुए हैं जिनकी हिन्दी मातृभाषा है।

नवजीवन प्रेमी इस अंक के दोषों को बताकर मुझे कृतार्थ करें।

मो० क० गांधी

मरणोत्तर भोज

मृत्यु होने पर जो भोज दिया जाता है उसे मैंने जंगली माना है। इस विषय पर एक सज्जन इस प्रकार अपने विचार बताते हैं:

"आप सनातनी हिन्दू होने का दावा करते हैं, आप गीताजी व रामायण के पुजारी हैं, फिर भी यह समझ में नहीं आता कि आप मौत के बाद जो भोजनादि दिया जाता है उसे जंगली क्यों कर कहते हैं। शास्त्र तो कहते हैं कि मरण के पीछे ब्राह्मणों को खिलाने से प्रेत की सद्गति होती है, उन्हें सांत्वन मिलता है। इस बात में हम किसको सच मानें?"

मैं कई बार लिख चुका हूं कि जो कुछ संस्कृत में लिखा जाता है वह सब ही को धर्मवाक्य नहीं माना जा सकता है। उसी प्रकार धर्मशास्त्र के नाम पर चलनेवाले मनुस्मृति आदि प्रमाण ग्रन्थों में जो आज हम पढ़ते हैं वह सब मूलकर्ता की कृति है, न भी हो तो, वह सब आज अक्षरशः प्रमाण रूप है ऐसा नहीं मानना चाहिए। मैं खुद तो कतई नहीं मानता। अमुक सिद्धान्त सनातन हैं; उन सिद्धान्तों को माननेवाला सनातनी कहा जायेगा। मगर सिद्धान्तों के ऊपर से जो जो आचार जिस जिस युग के लिए घड़े गये हों वे सब अन्य युग में भी चले ही होने चाहिए, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। स्थल, काल और संजोगों को ले कर आचार बदला करता है। पहले जमाने में मरण के बाद दिये जानेवाले भोज में चाहे कुछ अर्थ भले ही हो, इस जमाने में हमारी बुद्धि उसे नहीं समझ सकती। जिस विषय में बुद्धि का प्रयोग किया जा सकता है वहां केवल श्रद्धा से हम नहीं चल सकते हैं। जो बातें बुद्धि से पर हैं उन्हीं के लिए श्रद्धा का उपयोग है। इस विषय में तो हम बुद्धि से देख सकते हैं कि मरण के पीछे भोज देने में धर्म नहीं है। अनुभव से हम जान सकते हैं कि दूसरे धर्मों में इस वस्तु को स्थान नहीं है। ऐसे भोज देने के लिए हिन्दूधर्म में संस्कृत श्लोकों के सिवाय हमारे पास और भी दूसरे सबल प्रमाण होने ही चाहिए। हिन्दूधर्मशास्त्र के अथवा यों कह सकते हैं कि सर्वधर्मशास्त्रों के सिद्धान्तों के साथ भी, ऐसे भोजनों का मेल जरा भी नहीं खाता।

ऐसे भोजनों से होनेवाली हानियां हमें स्पष्ट नजर आती है। ऐसे प्रत्यक्ष सबूत के सामने संस्कृत श्लोक क्या काम दे सकते हैं? मरण के पीछे के भोज को बुद्धि भी कबूल नहीं करती, हृदय भी कबूल नहीं करता और न सभ्य देशों का अनुभव कबूल करता है। ऐसे भोजनों को जंगली मनाने के लिए इससे ज्यादा सबल कारण मेरे पास नहीं है। और किसी के पास से आशा भी नहीं रखी जा सकती। प्राचीन सब बुरा ही है ऐसा माननेवाले, और उसे अच्छा माननेवाले दोनों भूल करते हैं। प्राचीन हो या अर्वाचीन, सब बातें बुद्धि की ऐरन के ऊपर कसी जानी चाहिए। जो बातें उस पर नहीं चढ़ सकती उनका सर्वथा त्याग करना चाहिए।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

मदिरासुर की मोहिनी।

(१)

चक्रपुर में बकासुर नामक एक राक्षस रहता था। हर रोज अपनी इच्छा के मुताबिक नगरवासियों को मार कर चट कर जाया करता था। उसका अत्याचार कम और मर्यादित करने के लिए चक्रपुर के मुखियों ने उसके साथ एक करार किया। उस शर्त के मुताबिक गांव वालों को हररोज एक गाडीभर के खाना बकासुर के वास्ते भेजना पडता था। गाडी के दो बैल और गाडीवान भी उसकी भोजन-सामग्री में शामिल थे। बस इस तरह होते २ सभी चक्रपुरवासी बकासुर के आहार बने। यह कहानी महाभारत की है।

शराब अगर कलियुग का बकासुर नहीं तो और क्या है? मद्रास हाता के गरीब लोग ताडी और शराब में जितना खर्च कर डालते हैं उतने में एक जिले के लिए १००० बोरे चावल मिल सकते हैं। यानी हरएक जिले पीछे एक बकासुर तैनात है और उसके लिए हर रोज १००० बोरे चावल हमें तय्यार रखना ही चाहिए। गांव के गरीब स्त्री, मर्द और बच्चे, कुछ न कुछ अपने भोजन में से बकासुर के लिए बलिदान करते हैं। महाभारत का बकासुर तो सिर्फ एक बार प्राण ले लेता था और संतोष मानता था पर यह मदिरासुर इतने से तसल्ली नहीं पाता है। वह लेता २ कर क्रूरता से प्राण हरता है। प्रजा के पेट पर पैर जमा कर गला घोंट कर गृहस्थ धर्म, सदाचार धर्म से भ्रष्ट कर के आखिर में शरीरधन का नाश करता है और इस तरह उसकी आत्मा का नाश करता है। इस नये बकासुर के पंजे से छुडानेवाला कुन्तिपुत्र कहां है?

(२)

महाभारत में थोडी बात छूट गई है, उसे हम पूरी कर ले। कुन्तिपुत्र ने कहा: "मैं बकासुर को मार कर नगरवासियों को छुडाऊंगा? पर लोगों ने इसका विरोध किया।

उन्होंने कहा: 'यह राक्षस बडा बलवान है। इसका वध करना नामुमकिन है एक बार उसे छेडा नहीं कि उसने उत्पात मचाया नहीं। और फिर न जाने उसके जुल्म की हद कहां तक जायेगी। फिजूल सांप के बिल में हाथ क्यों डालें? और माना कि हमने इसे मार डाला तो क्या दूसरे राक्षसों की कमी है जो इसकी जगह न लें? हमारा मुल्क ऐसे राक्षसों से भरा है। एक मरा नहीं कि दूसरा आया नहीं और कौन कह सकता है कि पहले से दूसरा बढ चढ कर न होगा?'

आज कल संपूर्ण मदिरा-बहिष्कार के खिलाफ विरोध करने वालों की तरह ही उन चक्रपुरवासियों का विरोध था। 'लोग छिप छिपा कर ताडी उतारेंगे, दारू चुआयेंगे। दारू छोडना तो सोलह आना नामुमकिन है। परदेशी आयेगा उसे अब कैसे अटकायेंगे? जैसा चलता है चलने दो। क्यों उबर में बीज फेंकते हो।'

(३)

एक चक्रपुरवासी बडा दलीलबाज था। उसने फिर अक्ल आजमाई। बडी होशियारी से बोला: 'माना कि बकासुर बडा अत्याचारी और फिसादी है। मगर उसको पेट भरने के लिए एक गाडी चावल, दो बैल और एक गाडीवान, बस इतना ही देना पडता है न? पर उससे फायदा कितना पहुंचता है। जरा उस पर भी तो गौर कीजिए। उसका मलस्थान पहाड इतना है। उससे हमारी खेती की खाद की हाजत पूरी होती है। अगर इस राक्षस का नाश करेंगे तो याद रखिये हमें खाद से हाथ धोना पडेगा। इसलिए उसको नाबूद करने के पहिले हजार बार विचार लेना चाहिए"।

आजकल सम्पूर्ण दारूनिषेध के विरुद्ध हमारे राजनीति-धुरंधर-गण इस किस्म की दलील पेश करते हैं। इनका कहना है कि: 'करोडों रुपये की आमदनी हमें शराब के महसूल में से होती है, अगर यह सोता बंद हो जाय तो लडकों को तालीम किस के बल देंगे'?

यह मिसाल जंगली है, मुझे कबूल है कि इसमें से बदबू आती है। पर अगर हम एक पलडे पर शराब से होते हुए कुलनाश, सदाचारनाश, स्त्रियों का आंसु बहना और ऐसे अनेक अत्याचार रक्खें और दूसरे पर पाप से लिपटा हुआ कहीं का कुछ फायदा रक्खें—इसकी तुलना के लिए और क्या मिसाल मिल सकती है भला?

(४)

एक दूसरी भी कहानी है। बेश्या का व्यापार करनेवाला केलीराज बहुत जमाना पहले काशीराजा को लडाई में हरा कर और वृत्रवर्मा नामक असुर को राज्य का प्रतिनिधि बना कर गया था। उसे प्रजापालन करना आता न था। शहर में महामारी की बीमारी फैली हुई थी, और लाखों आदमी बलिदान दिये जाते थे। गंगा के किनारे मुर्दों का ढेर लग गया, और लाखों औरतें विधवा हो गई। उस वक्त के रस्म के मुताबिक बेवाएं अपने बाल कटवा डालती थीं और इस बाल का भी गज लगता था।

राजा ने इन बालों को जमा करवा के तिजारत करना शुरु किया। जब उसको मालूम पडा कि महामारी ने शहर में घर जमा लिया है तब उसने बाल बेचने के हक को नीलाम करा कर राज्य की आमदनी बढाने का मुनासिब बन्दोबस्त किया।

इस बीच में काशी के वैद्यमंडल की एक बडी सभा हुई और उसमें इस महामारी को दूर करने के लिए उपाय सोचने का प्रस्ताव पास किया। उसके मुताबिक वैद्यमंडल पहाडों और जंगलों में निकल पडे। एक दवा हाथ लगी। वह लेकर वृत्रवर्मा की सेवा में हाजिर हुए और बोले: "महाराज! अगर इस दवा को हरएक नगरवासी को दी जाय तो रोग शर्तिया नष्ट हो जाय। कृपा कर के इसको बंटाने की तजवीज करें"। राजा को यह बात गले न उतरी। उसने अपने वजीरों को बुलवा कर पूछा 'अगर रोग इस नगर में से नाबूद हो जायगा तो बाल कहां से मिलेंगे?

और अगर भीख न मिलेगी तो उसकी आमदनी से हमें हाथ धोना पड़ेगा। फिर राज्य का खर्च कैसे चलेगा ? राज्य के खर्च का कोई दूसरा जरिया खोज कर भले ही इसे नाश करने की योजना करो। लेकिन पहिले ही से इस साधन को ले कर चलते हुए राज्यतंत्र को बंद कर देने की बात मत करो'।

वजीरों ने कहा: "सत्य वचन महाराज"।

आजकल शराब से जो आमदनी होती है उसे देश व्यापार की आमदनी कहें या बकासुर का मुख ? ये दोनों मिसाल मुझे दुरुस्त मालूम होती हैं। श्मशान जाते समय पति की जुदाई के दुःख से विधवाओं की आकाशभेदी चिल्लाहट, कुंभकर्ण के ऊपर कुछ भी असर पैदा न कर सकी ! यह आमदनी बंद हो जायेगी तो ? यही विचार उसे सता रहा था ! आजकल शराब से पैदा होनेवाली आमदनी औरतों के आंसु और लोहू में से आती है। अति-शयता न होगी अगर यों कहें कि यह आंसू और लोहू से बनी हुई रकम है।

(५)

एक बुढ़ी स्त्री रस्सा बिन कुवें में से पानी खींचती थी, लेकिन डोल में पानी किसी भी तरह आता ही न था। डोल में छेद था। वह बुढ़िया छेद न देख सकी और फिक्र में पड़ी। "इसमें पानी क्यों नहीं आता है ?" पास में कुआ खोदनेवाला खड़ा था, वह बोल उठा: "क्यों बुढ़ी यह तुम्हारा कुवा है ? मैं कुवा खोदनेवाला हूं। अगर तुम्हारी मर्जी हो तो मैं कुवा खोदने के लिए तय्यार हूं। कुवा खूब खोदने से पानी ऊपर आयेगा। अभी पानी बहुत नीचा है। डोल डुबती ही नहीं है !" भिखारी बुढ़िया के पास रुपये भला कहां से हों ! और कुवे में भी घर के ऊपर घर जमा था। केवल उसने असली उपाय के बदले कुवा खोदने का ही उपाय बताया। आज सरकार कहती है कि शराब-ताड़ी की महसूल बन्द हो उसके पहले कोई दूसरा महसूल लगाना चाहिए। डोल में जो बड़ी भोंक है उसे कोई बतलाता ही नहीं है — बड़ा लश्करी खर्च, बेशुमार उपाधियां, हमारी व्यर्थ ओहदे भोगनेवाले अमलदार मुंह बांये बैठे हैं, ऐसी हालत में इन्हें बन्द करें या महसूल रूपी कुवा अधिक गहरा खोदें ? मुंह ही क्यों न बन्द करें ?

मंत्रियों ने कहा: "यह क्या बिना जाने-बूझे बकवाद करता है ? तुम लिखते हो कि 'लश्करी खर्च बन्द करो, लश्करी खर्च !' लश्करी खर्च भला कैसे बन्द हो ? आजकल का राज्यतंत्र तुम नहीं समझते हो। फौज के बिना तन्त्र चल ही नहीं सकता है। देश की हिफाजत के बारे में सरकार जानती है या तुम ? राज्य सरकार को चलाना है न कि तुम्हें। और इस खर्च के लिए दूसरा सीधा और सरल साधन कहां से मिले ? इसलिए शराब पिलानेवाली इस आमदनी में दखल न दें !"

कोई कहता है: "ऐसी नापाक आमदनी में हाथ न डालो। आप जैसे सज्जनों को भी ऐसी नापाक आमदनी में से तनख्वाह न लेनी चाहिए, ऐसे राज्य की नौकरी न करनी चाहिए।" लेकिन मंत्रियों को यह बात भला कब कबूल हो सकती है ? मंत्रियों को उस छेदवाली डोल के लिए परवस्ती करना है इसलिए वे किसकी सुनें ? उन्हें अपनी जगह कायम रखनी है, छेद कायम रखना है और महसूल का कुवा ज्यादा गहरा खोदना है।

(नवजीवन) च० राजगोपालाचार्य

गोरक्षा

जबरदस्ती कर के गाय का पालन करना धर्म का फरमान हमें नहीं मालूम होता है।

ब्राह्मण अपने तप के बल से, क्षत्रिय राजा दिलीप की नाईं अपनी कुर्बानी कर के, गाय का रक्षण करें। लेकिन गौरक्षा का कर्तव्य धर्मशास्त्रों ने वैश्यकर्म ही बताया है।

'वैश्यकर्म स्वभावजम्।'

आज की हालत में सिर्फ वैश्य लोग ही गाय का रक्षण करें ऐसा नहीं कहा जा सकता है। लेकिन पशुओं का पालन वैश्य-रीति से ही करना चाहिए ऐसा ऊपर के वचन का अर्थ है। सारा समाज गाय और बैल का एक जातीय ट्रस्ट करे और गौओं को अपने ताबे में ले कर उनका रक्षण करें यही एक धर्म्य मार्ग है।

गौरक्षा दूसरों का काम नहीं है सिर्फ वैश्यों का ही है। वे जहां तक गौरक्षा करें वहां तक दूसरे उसमें न पड़े ऐसा मनु भगवान ने अपनी स्मृति में साफ २ कहा है। आज इसका अर्थ हम यों करें कि वैश्य-रीति से गौरक्षा हो सके वहां तक दूसरे साधनों का उपयोग हरगिज न करें।

वैश्य की बुद्धि से गौरक्षा हो सकती है। यह रहा मनु भगवान का वचन:

प्रजापति र्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून्

[अ. ९ श्लो. ३२७]

विधाता ने पशुओं को पैदा कर के उनका रक्षण करने के लिए वैश्यों को सुपुर्द किया है। इसलिए वैश्य को

वार्तायां नित्य युक्तः स्यात् पशूनां चैव रक्षणे

९. ३२६.

वैश्य को खेती, गोरक्षा और व्यापार में हमेशा मशगूल रहना चाहिए और खास कर पशुओं के पालन में। दूसरी रीति से निर्वाह और धनप्राप्ति उत्तम होती हो तो भी वैश्य को गो-पालन से इनकार न होना चाहिए। और जहां तक वैश्य पशु-रक्षण में तय्यार हो वहां तक दूसरों को उसमें हाथ नहीं डालना चाहिए।

न च वैश्यस्य कामः स्यात् "न रक्षेयं पशून्" इति।
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन॥ ९. ३२८

(खेती वगैरह में अच्छी आमदनी होती हो तो भी) वैश्य को यह न समझना चाहिए कि मैं पशु-पालन न करूं। अर्थात् पशुरक्षण जरूर करना ही चाहिए। और जहां तक वैश्य इस काम को पूरा करने की इच्छा रखता हो वहां तक दूसरों को इसमें नहीं पड़ना चाहिए।

इसके बाद मनु भगवान ने वैश्य गण को कौन कौन सी विद्या जाननी चाहिए इसका महत्व बतलाया है। आज के युग में भी वे विद्यायें महत्व की गिनी जायंगी। उसमें "पशूनां परिवर्धनं" (cattle breeding) को स्थान है। इसका अर्थ टीकाकार ने यों दिया है।

अस्मिन् देशे, काले, अनेन च तृण-उदक-यवादिना
पशवो वर्धन्ते, अनेन क्षीयन्ते इति एतद् अपि जानीयात्।

पशु-पालन के लिए अमुक स्थल अमुक ऋतु और अमुक किस्म का घास पानी और अनाज वगैरह अनुकूल हो तभी पशु पुष्ट होते हैं, सुधरते हैं, और बढ़ते हैं। और ऐसे ही अमुक संयोग में पशु कमजोर हो जाते हैं और विनाश को प्राप्त होते हैं — ये सब जानना चाहिए।

(नवजीवन) का०

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, ज्येष्ठ सुदी १४, संवत् १९८२

आत्म-त्याग

मुझे बहुत से नौजवान पत्र द्वारा सूचित करते हैं कि उन पर कुटुम्बनिर्वाह का बोझा इतना ज्यादा पड़ा हुवा होता है कि देश-सेवा के कार्य में से जो वेतन उन्हें मिलता है वह उनकी जरूरतों के लिए बिलकुल काफी नहीं होता उनमें से एक महाशय कहते हैं कि मुझे तो अब यह काम छोड़ कर रुपया उधार लेकर या भीख मांग करके यूरोप जाना पड़ेगा जिससे कि कमाई ज्यादा करना सीख सकूं; दूसरे महाशय किसी पूरे वेतनवाली नौकरी की तलाश में हैं; तीसरे कुछ पूंजी चाहते हैं कि जिससे ज्यादा कमाई करने के लिये कुछ व्यापार खड़ा हो सके। इनमें से हरेक नौजवान संगीन, सच्चरित्र व आत्मत्यागी हैं। किन्तु एक उल्टा प्रवाह चल पड़ा है। कुटुंब की आवश्यकतायें बढ़ गई हैं। खद्दर या राष्ट्रीय-शिक्षा के कार्य में से उनका पूरा नहीं होता है। वेतन अधिक मांग कर ये लोग देशसेवा के कार्य पर भारहर होना पसन्द नहीं करते। परन्तु ऐसा विचार करने से अगर सभी ऐसा करने लगे तो नतीजा यह होगा कि या तो देशसेवा का कार्य ही बिलकुल बन्द हो जायगा, क्योंकि वह तो ऐसे ही स्त्री-पुरुषों के परिश्रम पर निर्भर रहा करता है, या, ऐसा हो सकता है कि सब के वेतन खूब बढ़ाये जायं तो उसका भी नतीजा तो वैसा ही खराब होगा।

असहयोग का निर्माण इसी बुनियाद पर हुवा था कि हमारी जरूरतें हमारी परिस्थिति के मुकाबले में हद से ज्यादा बढ़ सी गयी हुई मालूम हुई थीं। आशय यह होने ही से यह स्पष्ट है कि असहयोग कोई व्यक्तियों के साथ नहीं, वरन् उस मनोदशा के साथ होना चाहिये था कि जिस पर वह तंत्र कायम है जो नागपाश की तरह हमें अपने घेरे में बांधे हुए है और जिससे हमारा सर्वनाश होता चला जा रहा है। इस तंत्र ने उसमें फंसे हुए हम लोगों के रहनसहन का ढंग इतना बढ़ा चढ़ा दिया था कि वह देश की आम हालत के बिलकुल प्रतिकूल था। हिन्दुस्तान दूसरे देशों के ऊपर जीनेवाला देश था नहीं, इसलिए हमारे यहां के बीच के दर्जे के लोगों का जीवन अधिक खर्चीला हो जाने से कंगाल दर्जे के लोग तो बिलकुल मारे गये क्योंकि उनके कार्य के दलाल तो ये बीच के दर्जेवाले लोग ही थे। इसलिए छोटे २ कस्बे तो इस जीवननिर्वाह में खर्च रहने के सामर्थ्य के अभाव से ही मिटते चले जा रहे थे। सन् १९२० में यह बात साफ २ नजर आने लग गई थी। इसमें अटकाव डालनेवाला आन्दोलन अभी आरंभ की हालत में है। जल्दी की किसी कार्रवाई से हमें उसके विकास को रोक न देना चाहिए।

हमारी जरूरतों की इस कृत्रिम बढ़ती से हमें विशेष नुकसान इस वजह से हुवा कि जिस पाश्चात्य प्रथा से हमारी जरूरतें बढ़ी हैं वह हमारे यहां की पुराने जमाने से चली आनेवाली संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा के अनुकूल नहीं है। कुटुम्ब-प्रथा निर्जीव हो चली इसलिए उसके दोष ज्यादा साफ २ नजर आने लगे और उसके फायदों का लोप हो गया। इस तरह एक विपत्ति के साथ दूसरी आ मिली।

देश की ऐसी दशा में इतने आत्मत्याग की आवश्यकता है कि जो उसके लिए पर्याप्त हो। बाहरी के बनिस्बत भीतरी सुधार की ज्यादा जरूरत है। भीतर अगर घुन लगा हुआ हो तो उसपर बनाया हुआ बिलकुल दोषहीन राजविधान भी सफेद कब्र सा होगा।

इसलिए हमें आत्मशुद्धि की क्रिया पूरी २ करनी होगी। आत्मत्याग की भावना बढ़ानी पड़ेगी। आत्मत्याग बहुत किया जा चुका है सही, मगर देश की दशा को देखते हुए वह कुछ भी नहीं है। परिवार के सशक्त स्त्री या पुरुष अगर काम करना न चाहें तो उनका पालनपोषण करने की हिम्मत हम नहीं कर सकते। निरर्थक व मिथ्या बड़प्पनवाले रीतिरिवाजों, जाति-भोजनों, या विवाह आदि के बड़े २ खर्चों के वास्ते एक पैसा भी खर्च करने को निकाल नहीं सकते। कोई विवाह या मौत हुई कि बेचारे परिवार के संचालक के ऊपर एक अनावश्यक और भयंकर बोझा आ पड़ता है। ऐसे कार्यों को आत्मत्याग मानने से इनकार करना चाहिए। बल्कि इन्हें तो अनिष्ट समझ कर हिंमत और दृढ़ता से हमें इनका विरोध करना चाहिए।

शिक्षा-प्रणाली भी तो हमारे लिए बेहद महंगी है। करोड़ों को जब पेटभर अनाज भी नहीं मिलता है, जब कि लाखों आदमी भूख के मारे मरते चले जा रहे हैं ऐसे वक्त हम अपने परिवारवालों को ऐसी भारी महंगी शिक्षा दिलाने का क्यों कर विचार कर सकते हैं? मानसिक विकास तो कठिन अनुभव से ही होगा, मदरसे या कालिज में पढ़ने से ही हो गया नहीं है। जब हममें से कुछ लोग खुद अपने और अपनी संतान के लिए ऊंचे दर्जे की मानी जानेवाली शिक्षा ग्रहण करने का त्याग करेंगे तभी सच्ची ऊंचे दर्जे की शिक्षा पाने व देने का उपाय हमारे हाथ लगेगा। क्या ऐसा कोई मार्ग नहीं है या नहीं हो सकता है कि जिससे हरेक लड़का अपना खर्च खुद निकाल सके? ऐसा कोई मार्ग चाहे न हो, किन्तु हमारे सामने प्रस्तुत प्रश्न यह नहीं है कि ऐसा मार्ग कोई है या नहीं। इसमें अलबत्ता कोई शक नहीं है कि जब हम इस महंगी शिक्षा-प्रणाली का त्याग करेंगे तभी, अगर ऊंचे दर्जे की शिक्षा पाने की अभिलाषा इस वस्तु मात्र भी जाये तो, हमें अपनी परिस्थिति के लायक उसे प्राप्त करने का मार्ग मिल सकेगा। ऐसे किसी भी प्रसंग पर काम आनेवाला महा मन्त्र यह है कि जो वस्तु करोड़ों आदमियों को न मिल सकती हो उसका हम खुद भी त्याग करें इस तरह का त्याग करने की योग्यता सहसा तो हममें नहीं आ सकती। पहले हमें ऐसा मानसिक झुकाव पैदा करना पड़ेगा कि जिससे करोड़ों को न प्राप्त हो सके वैसी चीजें और वैसी सुविधायें लेने की इच्छा ही हमें न हो। और उसके बाद हमें शीघ्र ही हमारे रहन-सहन के ढंग उसी मार्ग के अनुकूल बना डालना चाहिए।

ऐसे आत्मत्यागी व निश्चयी कार्यकर्ताओं की एक बड़ी भारी सेना की सेवा के बिना आमलोगों की तरक्की मुझे असम्भव दिखती है। और उस तरक्की के सिवा स्वराज्य जैसी कोई चीज नहीं। गरीबों की सेवा के हितार्थ अपना सर्वस्व त्याग करनेवाले कार्यकर्ताओं की संख्या जितनी बढ़ती जावेगी उतने ही दर्जे तक हमने स्वराज की ओर विशेष कूच की ऐसा मानना चाहिए।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खतम हो गई है। अब जितने आर्डर मिलते हैं दर्ज कर लिए जाते हैं। आर्डर भेजनेवालों को जबतक छट्ठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तबतक धैर्य रखना होगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय ६

नेटाल पहुंचा

विलायत जाते समय जो वियोग-दुःख हुआ था वह दक्षिण आफ्रिका जाते न हुआ। मा तो चल बसीं थीं। मैंने दुनिया का और मुसाफिरी का कुछ अनुभव लिया था। राजकोट व बम्बई के बीच में आनाजाना तो होता ही था। इसलिए इस बारी सिर्फ पत्नी की जुदाई का रंज था। विलायत से आने पर एक दूसरा बालक पैदा हुआ। हमारे प्रेम में अबतक विकार तो था ही पर उसमें निर्मलता आने लगी थी। विलायत से आने के बाद हम बहुत कम वक्त साथ रहे। खुद, कैसा ही क्यों न होऊं, पर मैं पत्नी का शिक्षक बना था। और उसमें कुछ सुधारणा भी करा सका था, उसको निभाने के लिए हमें साथ रहने की जरूरत जचती थी। मगर आफ्रिका मुझे खींच रहा था, उसने जुदाई को सहने लायक बना दिया। "एक साल के बाद हम मिलेंगे ही न" ऐसा कह, दिलासा दे कर मैं राजकोट छोड़ बम्बई पहुंचा।

बम्बई आने पर दादा अबदुल्ला के बम्बईवाले एजन्ट के मार्फत मुझे टिकेट कटानी थी। पर जहाज में कोई केबिन खाली न मिली। अगर इस मौके को चूकता तो फिर मुझे एक माह तक बम्बई में हवा खानी पड़ती। एजेन्ट ने कहा कि भाई, हमने तो बड़ी मिहनत की मगर टिकेट मिल न सकी। हां, अगर आप डेक में जाना चाहें तो भले ही। खाने की तजवीज तो सलून में हो सकती है। उन दिनों में पहले दर्जे में ही मुसाफिरी किया करता था। डेक का उतारू हो कर भला कहीं बेरिस्टर जाता है? मैंने डेक में जाने से इन्कार किया। एजेन्ट के ऊपर शक आया। पहिले दर्जे की टिकेट मिल ही नहीं सकती यह न मान सका। एजेन्ट की इजाजत ले कर खुद टिकेट हासिल करने की कोशिश की। जहाज पर पहुंचा। वहां उसके अफसर से मिला। मैंने उससे पूछा तो उसने मुझे निखालस भाव से जवाब दिया। "हमारे यहां इतनी भीड़ शायद ही कभी होती है। लेकिन मोजांबिक के गवरनर जनरल इस जहाज से जाते हैं इसलिए सब जगह भर गई है।"

"तो क्या आप मेरे लिए किसी भी तरह से जगह नहीं बना सकते?"

अफसर ने मेरी तरफ देखा। उसने हंस कर कहा—"एक उपाय है। मेरी केबिन में एक जगह खाली रहती है। उसमें हम उतारुओं को नहीं लेते हैं पर आपको अपनी केबिन में जगह देने के लिए तैयार हूं।" मैं खुश हुआ। अफसर का एहसान माना। सेठ से बात कर के टिकेट खरीदी गयी। १८९३ के अप्रेल महीने में मैं दक्षिण आफ्रिका में अपनी किस्मत आजमाने के लिए हौसिला के साथ रवाना हुआ।

पहला बन्दरगाह लामु था। वहां पहुंचने में कोई तेरह दिन लगे। रास्ते में केप्टन के साथ खासी मुहब्बत जमी। उसे शतरंज खेलने का शौक था। मगर वह नवसिखा था। उसे अपने से ठीक खेलाड़ी की गरज थी इसलिए मुझे न्यौता दिया। मैंने शतरंज का खेल कभी देखा न था। पर मैंने खेलाड़ियों से सुना था कि वह एक ऐसा खेल है कि जिसमें अक्ल का काफी काम पड़ता है। केप्टन ने मुझे सिखाने का वादा किया। मैं उसे एक अच्छा चेला मिला। क्योंकि मुझमें धीरज थी। मैं तो हारा ही करता था। और इधर उस्ताद महाशय को सिखाने का शौक बढ़ता जाता था। मुझे शतरंज का खेल पसन्द पड़ा। लेकिन मेरा शौक जहाज से आगे न बढ़ा। राजा रानी वगैरह कैसे चलायें जायं इसके सिवाय थोड़ा आगे न बढ़ा।

लामु बन्दरगाह आया। वहां जहाज तीन चार घण्टा ठहरनेवाला था। मैं बन्दर देखने नीचे उतरा। कप्तान भी गये थे। उन्होंने मुझे कह रक्खा था कि "यहां की खाड़ी दगाखोर है। आप जल्दी वापस लौटियेगा।"

गांव तो बिल्कुल छोटा था। वहां के डाकखाने में गया और वहां हिन्दी नौकरों को देख कर राजी हुआ। उनके साथ बातें कीं। हबशियों से मिला। उनकी रहनी-करनी में रस लगा। दूसरे कितने ही डेक के उतारु थे उनसे जान पहचान की। वे रसोई कर के शान्ति से खाने के लिए नीचे उतरे थे। मैं उनकी नाव में बैठा। खाड़ी में भरती काफी थी। मेरी नाव में भार भी काफी था। बहाव इतना था कि जहाज की सीढ़ी के साथ नाव की डोरी बंधती ही न थी। नाव सीढ़ी के पास आ कर सरक जाती। जहाज की रवानगी की पहली सीटी हुई। मैं घबराया। कप्तान ऊपर से देख रहा था। उसने ५ मिनिट जहाज रोकने का हुक्म दिया। पास ही एक मछुवा था। एक मित्र ने उसे दस रुपये पर भाड़ा किया और मछुवे ने मुझे उस नाव में से उठा लिया। जहाज की सीढ़ी उठ गई थी। रस्सी के जरिये मुझे ऊपर खींच लिया और जहाज चलता हुआ। दूसरे उतारु रह गये। कप्तान की चेतावनी का रहस्य अब समझा।

लामु से मोम्बासा और वहां से झांझीबार पहुंचा। झांझीबार में तो अधिक रुकना था। आठ या दस दिन। वहां से नया जहाज लेना था।

कप्तान के प्रेम का पार न था। इस प्रेम ने मेरे लिए एक नया रंग पकड़ा। उसने मुझे अपने साथ सैर करने के लिए न्यौता दिया। एक अंग्रेज मित्र को भी साथ ले लिया था। हम तीनों कप्तान के मछुवा में उतरे। इस सैर का मर्म मैं बिल्कुल समझ न सका था। कप्तान को क्या खबर कि ऐसे विषयों में मैं निरा अजान आदमी होऊंगा। हम हबशी औरतों के मुहल्ले में पहुंचे। एक दलाल हमें वहां ले गया। हममें से हरेक एक एक कोठरी में बन्द हुआ। लेकिन मैं तो मारे शर्म के कमरे में बन्द ही रहा। वह औरत बिचारी क्या समझी होगी वही जाने। जैसा गया था वैसा ही बाहर निकल आया। कप्तान मेरा भोलापन समझ गया। पहले तो मुझे बहुत ही शरम लगी। पर यह काम मैं किसी तरह से पसन्द कर सकूं ऐसा न था। इससे शरम उतरी। उस बहिन को देख कर मेरे मन में विकार का लेश भी पैदा न हुआ इसलिए मैंने दिल से ईश्वर को धन्यवाद दिया। मुझे अपनी कमजोरी पर नफरत आई। उस कमरे में न घुसने की मैं हिंमत क्यों न बता सका?

यह मेरी जिन्दगी में इस किस्म की तीसरी कसौटी थी। कितने ही नवजवान पवित्र होते हुए भी ऐसी झूठी शरम से गुनाह कर बैठते होंगे। मैं बच गया उसमें मेरा अपना पुरुषार्थ कोई न था। अगर मैंने कोठरी में घुसने से साफ इन्कार किया होता तो बेशक वह पुरुषार्थ गिना जाता। मेरे बचने के लिए एहसान सिर्फ ईश्वर का ही मान सकते हैं। इस बनाव से ईश्वर पर मेरा विश्वास बढ़ा और झूठी शरम छोड़ने की हिंमत भी कुछ आई।

झांझीबार में एक हफ्ता बिताना था, इसलिए शहर में एक मकान भाड़ा पर ले कर रहा। शहर खूब देखा-भाला और भटका। वहां की हरियाली का ख्याल सिर्फ मलाबार में ही आ सकता है। वहां के बुलन्द पेड़ और बड़े बड़े फल देख कर मैं हैरान था।

झांझीबार से मौझांबिक और वहां से आखिर में मई माह के लगभग नेटाल पहुंचा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

नैपाल में यज्ञचक्र

अगर चरखा यज्ञ का साधन हो, इस युग का और देश का सब जाति, और सब वर्णों के वास्ते यज्ञ (कुरबानी) हो तो उसे यज्ञचक्र कहने में कोई दोष नहीं है। यह नाम, नीचे का खत पढ़ते समय सहज कलम पर आ गया। इस पत्र का लेखक एक नैपाली आश्रमवासी है। आश्रम में दाखिल होने के लिए उसे बहुत तपश्चर्या करनी पड़ी थी। उसने चर्खाशास्त्र का अच्छा अभ्यास कर के नैपाल में आ कर वहां के गरीबों में उसका प्रचार करने का इरादा किया। उसे वहां पहुंचे हुए अब करीब तीन माह हुए होंगे। इस बीच में उसने जो काम किया है उसके बारे में उसने मुझे एक खत लिखा है। वह यह है:

" मुझे आशा है कि आप सब आश्रमवासी परमात्मा की कृपा से आनन्द में होंगे। आप लोगों के आशीर्वाद से मेरा आनन्द दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है। क्योंकि मुझे प्रतिदिन चर्खा के काम में सफलता मिलती जा रही है। मेरे आने के बाद परम-कृपालु महाराजा के साथ चर्खा के विषय में आज चौथी बार मुलाकात हुई। यहां पर तैयार किया हुआ " श्री चन्द्र कामधेनु चर्खा " और १७-१८ नंबर वाले दो चर्खे और एक बड़ी व एक मध्यम धुनकी के साथ आठ आदमियों के साथ श्री महाराजा साहब की सेवा में प्रदर्शन कराने के लिए हाजिर हुआ था। विद्यार्थियों के सब काम अतिशय श्रद्धापूर्वक देखने के बाद उन्होंने खूब तारीफ की। इसी सुअवसर पर गोर्खा (नैपाल राज्य का एक गांव) से लाये हुए एक ८३ बरस के पूज्य वयोवृद्ध सज्जन के हाथ से कते हुए सूत से बना खादी का एक थान श्री महाराजा के करकमलों में रख कर प्रार्थना की: ' महाराजा साहेब ! ८३ साल के बूढे आदमी के पास से भला आप कुछ काम ले सकते हैं ? ' महाराजा बोले ' कुछ नहीं। ' फिर मैंने अर्ज किया, ' ऐसे अशक्त बूढों को भी सशक्त बनानेवाला दुनिया में मात्र एक चर्खा है। जिसके मुकाबिले की दूसरी कोई चीज नहीं है। इससे साबित होता है कि सूत कातना और कपड़ा बुनना कितना सरल और कुदरती वस्तु है। क्या ऐसे साधारण और आवश्यक कार्य को हम सब न करेंगे ? ऐसी खादी ले कर गली २ में भटकना हमारा कर्तव्य नहीं है ? ऐसे काम को आगे बढ़ाने के लिये क्या सरकार और रियाया को मिल कर उपाय न सोचना चाहिए ? ' इन शब्दों का महाराजा के कोमल हृदय पर बहुत बड़ा असर पड़ा। उन्होंने आदरपूर्वक कहा: ' जो कुछ तुम कहते हो सब दुरुस्त है। इसमें जरा भी शक नहीं है। मैं तुमको कहता हूं कि तुम बिल्कुल निश्चिंत हो कर जितना तुम से हो सके इस काम को आगे बढ़ाओ "
इतना कह कर श्री राजगुरु की तरफ इशारा कर के फिर फरमाया— " तुलसी मेहेर जो कहता है उसमें कुछ भी शक नहीं है। इसके काम में सरकार और प्रजा की तरफ से जितनी मदद चाहिए उतनी देनी चाहिए। इसके बाद आप विशेष चर्चा करें " ऐसा कह कर मुझे बिदा किया। श्रीमान राजगुरु के साथ विशेष चर्चा करने के बाद उन्होंने मुझसे कहा—" सब से पहले इस बारे में तुम्हारा चेला मैं बनूंगा " कहते हुए चर्खा चलाने लगे।

मेरी सूचना के मुताबिक चर्खा प्रचार के वास्ते मुझे २० रुपये माहवारी मिलते हैं और १०० चर्खा तथा १०० मध्यम धुनकी के लिये ७५० रुपये मिले हैं। और हुक्म हुआ है कि जरूरत के मुताबिक आगे खर्च मिला करेगा। मैं तो जितना सम्हाल सकूंगा उतना ही काम उठाऊंगा।...... छोटे बड़े सब इस काम में अनुकूल होने लगे हैं। ११॥ बजे रात को यह खत लिख रहा हूं। लिखते हुवे मुझे बहुत खुशी होती है कि महाराजा साहब ने यहां के जेल के कारखाने के नाम पर हुक्म भेजा है कि लाम मेरे लिये चर्खे के गुण का बाना और तानावाला शुद्ध स्वदेशी अमुक ढंग का वस्त्र तय्यार करे। इसलिए कातना और धुनना सिखाने के लिए मैं जेल के कारखाना में जाता हूं। सबेरे के वक्त में एक वर्ग खोला है। जब कुछ लोग कातने और धुनने में निपुण हो जायंगे तब श्री महाराजा साहब से निवेदन करनेवाला हूं कि वे एक वस्त्रविद्यालय खोलें। फिर तो परमात्मा की इच्छा।

चर्खे का नाम श्री चन्द्रकामधेनु और वस्त्रविद्यालय का नाम श्री चन्द्रवस्त्रविद्यालय रखने का कारण यह है कि महाराजा का नाम श्री चन्द्रशमशेरजंग बहादुर है।

मैंने घर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा है। पवित्र बाग्मती के तट पर एक धर्मशाला में गुजारा कर रहा हूं।"

हरेक चर्खा प्रेमी को बतौर दृष्टांत यह काम है। इस खादी-सेवक में त्याग है, नियम है, अपने शास्त्र का ज्ञान है, विवेक है, नम्रता है। ये गुण जिसमें हों उसे दूसरी सफलता सहज प्राप्त होती है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

पशुवध

उसके कारण और उपाय

(६)

अब, बड़े शहरों में पशुओं पर जो जुल्म होता है और जिसके कि कारण वे अन्त में कसाई के पास पहुंच जाते हैं उसे देखें।

सन् १९१९ में बंबई के दूध देनेवाले पशुओं के तबेलों के बाबत लिखे हुए अहवाल में डॉ० (अब सर) हेरॉल्डमेन लिखते हैं:

" अगर बहुत सारे जानवर इकट्ठे रखे जायें, जोकि पेट तक भी गोबर इकट्ठा पड़ा रहे, सभी बस्तों में तंग जगह में बहुत से जानवरों की भीड़ होने से अवश्य दुर्गंध निकले, और शहर की धूल व शायद रोग के जन्तुवोंवाली हवा में दूध जमा किया जाय तो इन सब बातों से नतीजा अवश्य यह होगा कि अच्छा दूध बनेगा ही नहीं, आसपास के लोगों को क्लेश होगा और पशुओं के तबेलों में मक्खियां तो होंगी ही, इसलिए उनके जरिये रोग भी फैलेगा। "

पशुओं की हालत अप्राकृतिक व दयाजनक होती है। वे निरोगी या सुखी नहीं रह सकते। और तिस पर भी उनसे जहां तक बने अधिक दूध पाने के लिए उन पर तरह तरह के जुल्म किये जाते हैं इससे वे बांझ हो जाते हैं और कसाई के सिवा उनका कोई ग्राहक नहीं बनता।

लाहौर के स्वास्थ्य विभाग के अफसर डॉ० स्युवेल ने सन् १९१४ में अ० भा० आरोग्य परिषद में व्याख्यान देते हुए कहा था: " बन पर जोर पड़ कर ज्यादा दूध निकले इस वास्ते पशु

के पिछले भाग में उसकी पूछ रखते हैं। यह मैंने खुद अपनी आंखों देखा है।"

कलकत्ते के जीवदया मंडल के सभासद मैत्र बाबू लिखते हैं: "कलकत्ते के दूधवाले गाय की योनि में फूंक मारते हैं, और उसमें उसकी पूछ, आदमी का हाथ या ४ सूत व्यासवाला व १८ सूत लंबा बांस का पूला रखते हैं। यह बहुत ही घातकी कार्य है। इससे पशु बिगड़ उठते हैं, आरोपियों के वकीलों ने दलील की कि इस क्रिया में क्रूरता नहीं है। किन्तु न्यायाधीशों ने यह बात नहीं मानी। जहां यह फूंक क्रिया की जाती है वहां उसका इस प्रकार असर होता हुआ मैंने देखा है, कि जिसको सुन कर किसी भी मनुष्य को कल्पना हो सकती है कि जानवर को इससे कितना असह्य दुःख होता होगा:—(१) पशु इस तरह कराहते हैं कि पास खड़े आदमी को उस पर दया आये बिना न रहेगी, (२) पीठ झुक जाती है; (३) आंखें फट जाती हैं; (४) कंप हुआ करता है; (५) ऐसे पशुओं की पूंछ के पास कोई आदमी जावे तो वे चमकते हैं।

"कलकत्ता शहर व आसपास के कस्बों में ३०० तबेलों के अन्दर करीब १०,००० गायें हैं। इनमें से ५,००० गायें रोज फूंकी जाती हैं। आखिरी १५ महीनों में रक्षक विभाग ने ४५ केस पकड़े गये थे"।

डॉ० मोरीनो ने कलकत्ता पार्लियामेंट के सामने जो निबंध पढ़ा था उसमें वे लिखते हैं: "पीरी नामक रंग बनाने के लिये बहुतेरे लोग गायको सिर्फ आम के पत्ते खिला कर रखते हैं, दूसरा कुछ भी खाने या पीने को पानी तक नहीं देते और बस गाय का पेशाब बाजार में खूब दाम लेकर बेचते हैं"। बेचारी गाय भूख से तड़प २ कर मर जाती है।

ऐसा हाल पढ़ सुन कर अवश्य ऐसी कल्पना हो सकती है कि हिन्दुस्तान में मनुष्य नहीं बल्कि मनुष्य देहधारी राक्षस ही बसते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस तरह तबेले में दिनों तक तड़प २ कर मरने के बनिस्बत कसाई के हाथ से एकबारगी कट कर मर जाना पशु ज्यादा पसंद करेंगे। और तबेले के मालिक लोग, जो कि हिन्दू होते हैं, तबेलों की अपेक्षा कतलखाने रखें तो कम पाप के भागी होंगे।

यह तो हुई शहर के ऊंचे दर्जे के पशुओं की बात लेकिन उनके बच्चों की क्या हालत होती है? कहीं दूधवाले बछड़ों को कसाई को बेच देते हैं, कहीं खुले मैदान में धूप ठंड व बारिश में उन्हें भूखों मारते हैं। अपनी मां का दूध तो बेचारों को मिले ही कहां से? और उनके लिए तबेले में किराये पर जगह कौन रखे? बंबई की म्युनीसीपालिटी बछड़े को जीता न आवे तो तो उसका मुर्दा उठाने के आठ आने और आवे तो तो डेढ़ रुपया लिया करती है इसलिए बंबई के दूधवाले बछड़ों का, जीता आने के पहले ही, काम खतम कर डालते हैं। हरसाल करीब २०,००० बछड़े, पाड़ों के मुर्दे कूड़े में जाते हैं।

गुजरात के प्रसिद्ध दवाप्रचारक श्री. आत्मशंकर अमीदास ने एक पत्रिका में वनस्पति के दूध के लिए सिफारिश करते हुए टाइम्स आफ इन्डिया में छपा हुआ निम्नलिखित पत्र उद्धृत किया है:—

"तबेले लोग बहुतेरे बछड़ों को, दूध के बिना निभ ही न सकें इतनी उम्र होते हुए भी, रास्तों में भूखों मर जाने के वास्ते छोड़ देते हैं और वे थकावट के मारे गिर कर ट्राम, मोटर या गाड़ियों के नीचे दब करके मर जाते हैं।

रात को इनको तबेले में से बाहर निकाल देते हैं और यह केवल इसलिए कि उन्हें सब का सब दूध बेचने के वास्ते चाहिए। बड़े घोर पापों में से यह एक पाप कहने में जरा भी अत्युक्ति न होगी।"

श्री० कैरथ लिखते हैं:—"भैंस, पाड़े के बिना भी दूध देती है इसलिए पाड़े बुरे लगते हैं और वे भूखों मारे जाते हैं। चार पांच महीनों के पाड़े जन्मते समय जितने होते हैं उनसे वजन में जरा भी बढ़े हुए नहीं होते। पशुमात्र में पाड़ों की सबसे कम संभाल रक्खी जाती है। पाड़े धूप बर्दाश्त नहीं कर सकते यह सब कोई जानता है। और जहां धूप सबसे ज्यादा पड़ती हो वहीं ये बांधे जाते हैं। ऐसा मालूम होता है मानों यम के इनका जीव लेने ही बैठे हों।"

पंजाब के कृषि-विभाग के मुखिया श्री० हमिल्टन कहते हैं:— "पाड़े ज्यादातर छोटेपन से बड़े होते ही नहीं, किन्तु छोटपन में ही अपनी उम्र पूरी कर डालते हैं।"

श्री० रीडक लिखते हैं—"इस देश के दूधवाले बछड़े-पाड़ों को इसलिए मार डालते हैं कि उनके पालनपोषण का बोझा न उठाना पड़े। यह राक्षसी कार्य है। बम्बई में कूड़े में से बछड़े पाड़ों के मुर्दे रोज गाड़ियां भर २ कर ले जाते हुये नजर आते हैं। ऊंचे दर्जे के पशुओं का इस प्रकार नाश होना यह देश का बड़ा दुर्भाग्य है और बड़ी लज्जास्पद बात है। संसार के दूसरे किसी सभ्य देश में ऐसा नहीं किया जा सकता।"

३४ वर्ष पहले सरकार ने विलायत से श्री० डा० वोल्कर को हिन्दुस्तान की कृषि में सुधार करने के लिए उनसे सूचनायें लेने के वास्ते बुलाये थे। वे लिखते हैं:—"मैंने इस देश में भैंसें बहुत देखी किन्तु पाड़े बहुत ही थोड़े; इसलिए छोटे पाड़ों का क्या होता है यह पूछने की मुझे बार २ इच्छा हुई।"

"गुजरात में पाड़े को दूध देते ही नहीं इसलिए वह भूख से मर जाता है। कहीं उसे जंगल में भगा देते हैं जहां बाघ-भेड़िया उसे फाड़ खाते हैं। बंगाल में इसे जंगल में बांध आते हैं। वहां वह भूख से मर जाता है, या जंगली जानवर आ कर उसे खा जाते हैं। लोग इतने निर्दय होते हुए भी अगर कोई जानवर अत्यन्त दुःखी हो तो भी उसे जान से मारने नहीं देते।"

पूना के कृषि विद्यालय के अध्यापक श्री० भाईलाल शंकरलाल पटेल के लिखने के अनुसार सन १९१५-१६ व १९१९-२० के दरमियान सन १९१७-१८ के अकाल के कारण बम्बई इलाके में सांड-बैलों की संख्या ४ फी सदी, गाय की १६ फी सदी और बछड़े पाड़ों की १७ फी सदी घट गई। कुल पशुओं में सरासरी ११ फी सदी कमी हुई। इससे मालूम होता है कि हमलोग चाहे 'गाय माता गाय माता' किया करें, परन्तु अकाल आया कि हमलोग पहले पहले उसको गाय की ही बलि चढ़ाते हैं। क्योंकि गाय के बिना हमारा काम चल सकता है। गायें जितनी मरती हैं उसके मुकाबले में तो पाड़े भी कम मरते हैं। गायों से आधी भैंसें मरती हैं और गाय से चौथाई हिस्सा बैल मरते हैं। बैल की रक्षा होती है क्योंकि उसके बदले हल में कौन जुते? भैंस की भी रक्षा होती है क्योंकि वह खूब दूध देती है और उसके दूध में से मक्खन ज्यादा निकलता है। नमीवाले प्रदेश में पाड़ा खेती में काम आता है इसलिए उसकी भी रक्षा हो जाती है। लेकिन बिचारी गाय न ज्यादा दूध देती है, और न उसके दूध में से मक्खन बहुत निकलता है इसलिए उसका बुरा हाल होता है। तिसपर भी हमलोग गोरक्षक कहलाते हैं। लेकिन नतीजा यह होता चला आ रहा है कि गाय की दिनों-दिन दशा बिगड़ती चली जाती है।

(नवजीवन) वालजी गोविंदजी देसाई

युद्ध हत्या है

मैं सैपर की लिखी छोटी छोटी कहानियों की एक पुस्तक पढ़ रहा था। अचानक मेरी दृष्टि एक लेख पर पड़ी जो मुझे बहुत ही सुन्दर जंचा। शायद टाल्सटाय की लेखनी ही से युद्ध सम्बन्धी ऐसे वर्णन का लिखा जाना सम्भव था। निस्सन्देह यह सैपर का आंखों देखा वर्णन है। उसे मैं ज्यों का त्यों उद्धृत करता हूं। वह लिखता है:

"सबेरे ही सबेरे एक दिन हम लोग दौड़ कर खाई की दीवार पर जा चढ़े। सब काम ठीक होता गया। अपनी शिकार हमने बहुत थोड़ी जाने गवां कर ही पा ली। बैनट सबसे पहिली पंक्ति में गया था और जब मैं खाई में कूदा तो पहिले पहिल मैंने उसीको देखा। एक तरफ कोने में एक जरमन की लाश पड़ी थी। बैनट मुझसे वहां कोई ६० मिनट पहिले पहुंच गया था और उसे यों चुपचाप खड़े और अपने लाभ के लिए कुछ न करते देख कर मुझे बड़ा क्रोध हुआ। मैं उसे फटकारने के लिए उसकी तरफ बढ़ा और तब मैंने उसका चेहरा देखा। बाप रे बाप ऐसी आकृति इससे पहिले या पीछे आजतक मैंने किसीके चेहरे पर नहीं देखी। पहिले मैंने सोचा कि शायद वह बुरी तरह डर गया है परन्तु फिर तुरन्त ही मैं समझ गया कि यह बात नहीं है। वह बिल्कुल स्थिर खड़ा था और टकटकी लगाये उस मृत जरमन की लाश को देख रहा था। उसके चेहरे की दशा एक बम्ब लग जाने वाले मनुष्य की सी हो रही थी। दाहिने हाथ में उसके रिवाल्वर था मगर हाथ जकड़ सा गया था।

मैंने उसे पुकारा तो उसने बड़ी कठिनता से मुंह मोड़ कर मेरी तरफ देखा, मानों लाश की तरफ से आंखें हटाने में उसे बड़ी मिहनत करनी पड़ी हो। फिर उसने मुझे बड़ी शुष्क और क्रूर दृष्टि से घूर कर कहा 'मैंने इस जरमन को मार डाला;' उसके होंठ चलते तो थे मगर जकड़ से रहे थे, मानों वह बड़ा भयानक कोई सपना देख रहा हो। उसने फिर कहा 'मैंने मार डाला।'

मैंने उससे कहा, 'अजी' तुम अपना काम करो। कुछ देर तक तो वह मेरी बात ही न समझ सका। फिर मुंह फेर कर धीरे धीरे चलता बना। मैंने एक दो बार फिर जा कर उसे देखा तो वह अपने आदमियों के साथ घोर परिश्रम कर के रेत के बोरे हटा रहा था। मगर उसकी आंखों की अजब आकृति हो रही थी। एक मनुष्य को वध कर डालने का भयावना भाव उसके चेहरे से टपक रहा था।

पीछे उसने मुझसे इस संबन्ध में बातचित की तो कहा:

'मैंने उस आदमी को — वही जिसको मैंने मार डाला — देखा। वह बड़ा घबराया हुआ किंकर्तव्य विमूढ़ सा हो रहा था और उसका जबड़ा लटक रहा था। मेरे हाथ में रिवाल्वर था। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ मेरे मन में एक बड़ा ही अपवित्र विचार आया परन्तु इस विचार ने मुझे बिलकुल विवश कर दिया। मुझसे कहा कि, 'तुम इस मनुष्य को मार सकते हो।' मैंने मार डाला। मैंने अपना रिवाल्वर उसके मुंह पर ताना और उसने मेरी ओर देखा। वह पहिले बिलकुल न हिला। मैं उसकी आंखें देख रहा था। उनपर एक परदा सा पड़ गया था मानों वह ऊंघ रहा हो। फिर वह एकदम हिला। और मैंने उसके हिलते ही उसपर वार कर दिया। पीछे से मेरी समझ में आया मैंने ...मैंने...कर डाला।"

उसने मुझसे कहा कि "लड़ाई शुरू होने से पहिले मेरा विचार पादरी बनने का था। मैं ईसा के दयालुता और प्रेम के सन्देश का प्रचार करना चाहता था। मैं चाहता था कि दूसरों के लिए एक सहायक बनूं ऐसा मित्र जिससे लोग संकट के समय कुछ आशा रख सकें और जिससे मनुष्य के प्रति ईश्वर के अगाध प्रेम का लोग कुछ पाठ पढ़ सकें। तबतक लड़ाई छिड़ गई। मैंने सोचा कि ऐसे समय पर और सब काम रोके जा सकते हैं परन्तु लड़ाई का काम नहीं रोका जा सकता। मैंने सोचा कि मेरा सबसे प्रथम कर्तव्य लड़ाई के लिए तय्यारी करना है। और अब... हे मेरे परमात्मा!...जबतक मैं जीवित हूं तबतक मेरी आंखों के सामने उस मृतक के चेहरे की तस्वीर नाचती रहेगी।" ऐसी ही बहुत सी बातें इसी संबन्ध में वह कहता रहा और मैं सुनता रहा।

उसको यह समझाने का प्रयत्न करना कि हमको लड़ाई जीतना आवश्यक है व्यर्थ था। यह तो वह मेरी भांति खूब समझता था और यही तो उसको कठिनाई थी। वह व्यक्तिगत दृष्टि से विचार कर रहा था न कि जनसाधारण की दृष्टि से। वह इस जरमन को एक व्यक्ति की दृष्टि से देख रहा था। यही उसकी गलती थी। युद्ध के मैदान में इन विचारों का क्या काम। अगर दूसरा मनुष्य — हमारा शत्रु हथियार टेक देता है तब तो बस ठीक है हम उस व्यक्ति के दिल भर के गुण गा सकते हैं। परन्तु यदि वह हथियार नहीं टेकता तब तो फिर हमको उसे मारना ही पड़ता है। लड़ कर उसकी जान ले लेना या अपनी जान गवां देना, कितना ही विचार कर देखिये इसके सिवाय और कोई चारा नहीं।

जब मैंने यह बातें बैनट से कही तो उसने कहा "हां मेरी बुद्धि तो यही कहती है कि आप सत्य कहते हैं परन्तु मेरी आत्मा के सामने एक जरमन विधवा, कुछ अनाथ बच्चे और एक जरमन घर का चित्र रक्खा हुआ है और फिर मेरे सामने उसकी वही झपती हुई आंखें और घबराया हुआ चेहरा आ जाता है। वह बेचारी उसकी बाट देख रही होगी ... बाट ... हाय! ... मैंने क्या ... कर डाला।"

टाल्सटाय के विख्यात ग्रन्थ 'युद्ध और शान्ति' में ऐसे बहुत से वर्णन आये हैं जिन्होंने मुझे रोमांच कर दिया है। परन्तु मैं समझता हूं कि सैपर का वर्णित आंखों देखी यह घटना भी टाल्सटाय के युद्ध के चित्रों के साथ रक्खी जा सकती है। इससे अधिक मैं इसकी और क्या प्रशंसा करूं।

जब कभी ऐसी कोई कहानी सुन कर मन में प्रश्न और समस्यायें उठती हैं तो बस एक ही उत्तर मिलता है जिसमें सत्य की झलक रहती है "किसी दूसरे को मारना असम्भव है। परन्तु अपनी जान दे देना — अपने प्राण दूसरों पर निछावर कर देना सदा सम्भव है"।

"संसार में इससे अधिक कोई प्रेम निबाहने की रीति नहीं कि अपने मित्रों पर अपना जीवन वार दो"। मित्रों ही पर नहीं शत्रुओं पर भी, क्योंकि कहा है कि 'जो तो कूं कांटा बुवै ताहि बोय तू फूल' अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो। जो तुम्हारे साथ बुराई करें उसके साथ भी तुम भलाई करो। जो तुम्हें सतावे तुम उनके लिए प्रार्थना करो।"

जो इस प्रेमयुद्ध में कुशल है वह कायर या कमजोर नहीं हो सकता। वह ईश्वरीय मार्ग पर चलता है। उसके लिए किसी की जान लेना उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार झूठ बोलना, चोरी करना अथवा विषयी होना। वह तो इन तमाम बातों के ऊपर उठ चुका है।

(यं० इं०) सी. एफ. एन्ड्रूज

मुफ्त भरोसा

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ४३

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, ज्येष्ठ बदी ३०, संवत् १९८३ गुरुवार, १० जून, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय ४

प्रथम आघात

बम्बई से निराश हो कर मैं राजकोट गया। वहां एक अलग आफिस खोली। कुछ गाड़ी चली भी। अर्जियां लिखने का काम मिलने लगा और प्रतिमास ३००) औसत आमदनी होने लगी। यह जो अर्जी लिखने का काम मिलने लगा था उसका कारण मेरी कार्यकुशलता नहीं परन्तु सिफारिश थी। बड़े भाई के साथ साझे में काम करनेवाले वकील की वकालत अच्छी चलती थी। उनके पास यदि कोई बड़ी महत्व की अरजी होती अथवा जिसे वे बड़े महत्व की समझते उसे तो वे किसी बड़े बारीस्टर के पास ही भेज देते थे। उनके गरीब मवक्किलों की अरजी लिखने का काम मुझे मिलता था।

बम्बई में कमीशन न देने का मेरा आग्रह यहां टूटा गिना जा सकता है। इन दो स्थितियों का भेद मुझे समझाया गया था। वह इस प्रकार था। बम्बई में तो केवल दलाल को कमीशन देने की बात थी परन्तु यहां तो कमीशन वकील को देना होता था; मुझे यह समझाया गया कि जिस प्रकार बम्बई में उसी प्रकार यहां पर भी सब बारीस्टर, बिना किसी अपवाद के सैंकड़े पीछे अमुक रुपया कमीशन देते हैं। मेरे भाई की इन दलीलों का मेरे पास कोई उत्तर न था। "तुम यह तो देखते ही हो कि मैं एक दूसरे वकील का साझेदार हूं। हमलोगों के पास जो मुकदमें आते हैं उनमें से जो तुम्हें दिये जा सकते हों उन्हें तुम्हारे सुपुर्द करने की तो हमारी वृत्ति होगी ही है परन्तु यदि तुम अपनी फीस में से मेरे साझेदार को कुछ हिस्सा न दो तो मेरी कैसी बेढब स्थिति हो? हमलोग तो एक साथ रहते हैं इसलिए तुम्हारी फीस का लाभ मुझे मिलेगा ही परन्तु साझेदार को क्या मिलेगा? परन्तु यदि वे उस मुकदमें को किसी दूसरे को दे दे तो उन्हें अपना हिस्सा तो मिलेगा न? इस दलील से मैं उनकी बातों में आ गया और मुझे यह खयाल हुआ कि यदि मुझे बारीस्टरी करनी है तो ऐसे मुकदमों में कमीशन न देने का आग्रह मुझे छोड़ देना चाहिए। मैं पिघल गया। मैंने अपने मन को समझाया और यदि स्पष्ट शब्दों में कहूं तो उसकी प्रवञ्चना की। परन्तु इसके सिवा और दूसरे किसी भी मुकदमें में मैंने कोई कमीशन दिया हो ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता है।

यद्यपि इससे मेरा आर्थिक काम तो चलने लगा था परन्तु इन्हीं दिनों में मुझे प्रथम आघात हुआ। ब्रिटिश अधिकारी क्या होता है यह अबतक तो मैं कानों से ही सुनता था। अपनी आंखों से उसे देखने का अवसर मुझे अब प्राप्त हुआ।

मेरे बड़े भाई पोरबन्दर के भूतपूर्व राणासाहब को गद्दी मिली उसके पहले उनके मन्त्री और सलाहकार थे। उनपर यह आक्षेप लग रहा था कि उस दरम्यान उन्होंने उन्हें कोई गलत सलाह दी थी। यह शिकायत उस समय के पोलिटिकल एजण्ट तक पहुंच गई थी और उनका उनके प्रति बुरा खयाल हो गया था। इस अधिकारी को मैं विलायत से जानता था। यह भी कहा जा सकता है कि वहां उन्होंने मुझसे अच्छी मैत्री की थी। भाई ने सोचा कि इस परिचय का लाभ उठा कर मैं पोलिटिकल एजण्ट को कुछ कहूं और उनपर जो बुरा असर पड़ा है उसे दूर करने का प्रयत्न करूं। मुझे यह बात जरा भी पसन्द न थी। विलायत के कुछ नहीं जैसे परिचय का मुझे लाभ नहीं उठाना चाहिए। यदि मेरे भाई ने कोई दूषित कार्य किया ही था तो फिर सिफारिश की जरूरत ही क्या थी! यदि उन्होंने ऐसा कोई कार्य किया ही न था तो उन्हें नियमपूर्वक अरजी कर के, अथवा अपनी निर्दोषिता पर विश्वास रख कर निर्भय हो बैठे रहना चाहिए। यह दलील भाई को ठीक नहीं मालूम हुई। "तुम काठियावाड़ को नहीं जानते हो। जीवन के विषय में भी तुम्हें अब और आगे ज्ञान होगा। यहां तो सिफारिश से ही सब कुछ होता है। तुम्हारे जैसा मेरा भाई हो और जब तुम्हारे परिचित अधिकारी से कुछ थोड़ी सी सिफारिश करने का समय आवे तब तुम टालमटोल करो तो यह उचित नहीं है।"

मैं भाई से इसके लिए फिर इन्कार न कर सका। मेरी इच्छा के विरुद्ध मैं पोलिटिकल एजन्ट के पास गया। मुझे उस अधिकारी के पास जाने का कोई अधिकार न था। उनके पास जाने में मेरे स्वमान का भंग होता था और इसका मुझे ज्ञान भी था। मैंने मुलाकात का समय मांगा। मुझे समय दिया गया और मैं गया। पुराने परिचय की याद दिलाई, परन्तु मैंने फौरन् ही यह ताड़ लिया कि विलायत और काठियावाड़ में भेद था; अपने अधिकार की कुरसी पर बैठे हुए अधिकारी में और छुट्टी पर गये हुए अधिकारी में भी भेद था। अधिकारी ने परिचय का स्वीकार किया और उसके साथ ही वे अधिक अकड़ कर बैठे। मैंने उनके इस अकड़पन में यह देखा कि मानो वे यह पूछ रहे थे कि "तुम उस परिचय का लाभ उठाने के लिए तो नहीं आये हो न? उनकी आंखों में भी मैंने यही बात पायी और यह समझने पर भी मैंने अपनी कथा का आरंभ किया। साहब अधीर हो उठे "तुम्हारे भाई बड़े खटपटी हैं, मैं तुम्हारी बात अधिक सुनना नहीं चाहता हूं। मुझे समय नहीं है। यदि तुम्हारे भाई को कुछ कहना है तो वे बाजाप्ता अर्जी करें।" यही उत्तर बस था और यथार्थ था। परन्तु स्वार्थ अन्धा होता है। मैं तो अपनी कथा सुनाये जा रहा था। साहब उठ खड़े हुए और कहा "अब तुम्हें जाना चाहिए।"

मैंने कहा: "परन्तु आप मेरी बात तो पूरी सुन लें।"

साहब गुस्से हो गये उन्होंने अपने चपरासी से कहा "चपरासी, इसे दरवाजा बताओ"।

'हुजूर' कहता हुआ चपरासी दौड़ आया। मैं तो अब भी कुछ न कुछ बक रहा था। चपरासी ने मुझे हाथ लगाया और दरवाजे के बाहर निकाल दिया।

साहब गये, चपरासी भी गया। मैं भी चलने लगा। मुझे बड़ा दुःख और क्रोध हुआ था। मैंने एक चिट्ठी लिखी। "आपने मेरा अपमान किया है, चपरासी के जरिये मुझ पर आक्रमण किया है। यदि आप माफी न मांगेंगे तो मैं आप पर आगे बाजाप्ता कार्रवाई करूंगा।" मैंने यह चिट्ठी भेजी। साहब का सवार उसका उत्तर दे गया। उसका मतलब यह था।

"आपने मेरे साथ असभ्य बर्ताव किया था। आपको जाने के लिए कहा गया था फिर भी आप नहीं गये इसलिए मैंने अवश्य चपरासी को आपको दरवाजा दिखाने के लिए कहा था और चपरासी के कहने पर आप नहीं गये इसलिए उसने तुम्हें दरवाजे के बाहर निकालने के लिए आवश्यक बल का प्रयोग किया था। आपको जो कार्रवाई करनी हो उसे करने के लिए आप स्वतंत्र हैं।"

यह उत्तर जेब में डाल कर और अपनासा मुह ले कर मैं घर पहुंचा। भाई से सब बातें कहीं। उन्हें बड़ा दुःख हुआ परन्तु वे मुझे क्या सान्त्वन दे सकते थे? वकील मित्रों को भी यह कथा सुनाई। मुझे मुकदमा दाखिल करना थोड़े ही आता था? इस समय सर फिरोजशाह महेता अपने किसी मुकदमे के लिए राजकोट आये हुए थे। उन्हें मेरे जैसा नया बारीस्टर तो मिल ही कैसे सकता था? परन्तु उन्हें बुलानेवाले वकील के जरिये अपने इस मामले के सब कागजपत्र भेज कर मैंने उनकी सलाह मांगी। "गांधी से कहो कि ऐसी बातों का तो सभी वकील बारीस्टरों ने अनुभव होगा। तुम अभी नये हो, अब तक विलायत का नशा नहीं उतरा है। तुम ब्रिटिश अधिकारी को नहीं पहचानते हो। यदि तुम्हें सुख से रहना हो और दो पैसा कमाना हो तो तुम इस चिट्ठी को फाड़ डालो, अपना अपमान भूल जाओ। मुकदमा दायर करने से तुम्हें एक पैसा भी नहीं मिलनेवाला है और तुम्हीं बरबाद हो जाओगे। जीवन का अनुभव तो तुम्हें अब मिलेगा।"

मुझे यह उपदेश जहर सा कड़वा मालूम हुआ। परन्तु इस कड़ु घूंट को गले से नीचे उतारे बिना काम नहीं चल सकता था। परन्तु मैं उस अपमान को भूला न सका। मैंने उसका सदुपयोग किया। "फिर कभी मैं अपने को ऐसी स्थिति में न पाऊंगा इस प्रकार किसी की भी सिफारिश न करूंगा" इस नियम का मैंने कभी भंग नहीं किया। इस आघात के कारण मेरे जीवन का रुख ही बदल गया।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अहिंसा की गुत्थी

एक भाई लिखते हैं:

'मानों कि मैं संसारी हूं। बड़ा ख्याल रखने पर भी खटिया में खटमल हो गये हैं। उन्हें उठा कर रखने में भी कितने ही मर जाते हैं। घड़े के पानी में भी जीव पड़ गये हैं और उस पानी को फेंक देने पर भी उन छोटे छोटे जीवों की हिंसा होती है। घर में मकड़ी ने जाले बनाये हैं उन्हें साफ करने में भी हिंसा होती है। मान लो कि मैं एक व्यापारी हूं। माल की पेटी में जीव पड़ गये हैं। यदि उन जीवों को मैं दूर न करूं तो माल का नुकसान होता है। मैं बाहर घूमने के लिए जाता हूं तो उस क्रिया में भी पैरों के नीचे थोड़े बहुत जीव आ जाते हैं। बत्ती जलाता हूं तो वहां भी यही मुश्किल होती है। सिंहादि के विषय में पूछना ही क्या है? ऐसे दूसरे अनेक दृष्टांत मैं दे सकता हूं। क्या आप उनका खुलासा कर सकेंगे? ऐसी स्थिति में अहिंसा धर्म का पालन कैसे किया जाय?"

इस प्रकार के प्रश्न बार बार उठते हैं। ऐसे प्रश्नों को तुच्छ समझ कर दूर कर देने से भी काम नहीं चल सकता है। पूर्व और पश्चिम के गूढ़ रहस्ययुक्त ग्रंथों में भी ऐसे प्रश्नों की तो चर्चा की गई है। मेरी अल्पमति के अनुसार तो इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है क्योंकि सभी का मूल एक ही में समाया हुआ है। ऊपर कही गई सभी क्रियाओं में अवश्य हिंसा है क्योंकि क्रियामात्र हिंसामय है और इसलिए सदोष है। भेद है तो सिर्फ कम व बेशी परिमाण का ही है। देह का और आत्मा का सम्बन्ध ही हिंसा के आधार पर रचा गया है। पापमात्र हिंसा है और पाप का सर्वथा क्षय होना ही देह-मुक्ति प्राप्त करना है। इसलिए देहधारी मनुष्य अहिंसा के आदर्श को दृष्टि के समीप रख कर जितना दूर जा सके उतना दूर जाय। परन्तु अधिक से अधिक दूर जाने पर भी कुछ हिंसा का होना तो अनिवार्य ही होगा, जैसे श्वासोच्छ्वास लेना अथवा खाना इत्यादि में। अनाज के प्रत्येक कण में जीव है। इसलिए यदि हम मांसाहार के बदले अन्नाहार करते हैं तो उससे हम हिंसा से मुक्त नहीं गिने जा सकते हैं परन्तु अन्नाहार में होनेवाली हिंसा को अनिवार्य समझ कर उसका आहार करते हैं और इसीलिए तो भोग के लिए आहार सर्वथा त्याज्य है। जीवित रहने के लिए खाना चाहिए और आत्मा की पहचान करने के लिए जीवित रहना चाहिए। इस पुरुषार्थ की साधना के लिए जो हिंसा अनिवार्य हो उसे हमें लाचार हो कर करनी चाहिए। अब, हम यह समझ सकेंगे कि सम्पूर्ण ख्याल रखने पर भी पानी में पड़े सूक्ष्म

चोर, खटमल इत्यादि के सम्बन्ध में जो बात हमें अपरिहार्य मालूम होती हो उसे हमें करना होगा। मैं यह मानता हूं कि ऐसा कोई दिव्य नियम नहीं हो सकता है कि अमुक स्थिति में प्रत्येक मनुष्य एक ही प्रकार की चाल चले, दूसरी नहीं। अहिंसा हृदय का गुण है। हिंसा अहिंसा का निर्णय मनुष्य की भावना के आधार से हो सकता है। इसलिए हरएक मनुष्य जो अहिंसा-धर्म को अपना कर्तव्य मानता हो उपरोक्त सिद्धांत के अनुसार अपने कार्य की व्यवस्था कर ले। मैं यह जानता हूं कि ऐसा उत्तर देने में एक दोष है। इससे मनुष्य अपनी इच्छा से चाहे जितनी हिंसा कर के अपने मन की प्रवञ्चना करेगा, संसार को ठगेगा और अनिवार्यता का बहाना निकाल कर हिंसा का बचाव करेगा। परन्तु ऐसे लोगों के लिए यह लेख नहीं लिखा गया है। परन्तु यह उनके लिए है जो अहिंसा का आदर करते हैं परन्तु जिनके सामने समय समय पर धर्म-संकट उपस्थित होता है। ऐसे मनुष्य अनिवार्य हिंसा भी बड़े संकोच के साथ करेंगे और अपनी प्रवृत्तिमात्र के विस्तार को कम करेंगे, बढ़ावेंगे नहीं; यहां तक कि वे अपनी एक भी शक्ति का स्वार्थ-दृष्टि से उपयोग नहीं करेंगे; वे केवल समाजसेवा के भाव से ही ईश्वरार्पण कर के अपनी सब शक्तियों का उपयोग करेंगे। सत अर्थात अहिंसक, अर्थात दयालु मनुष्य की सब विभूतियां परोपकार के लिए ही होती है। जहां अहंकार है वहां हिंसा अवश्य है। प्रत्येक कार्य को करते समय मन में यह प्रश्न कर लेना चाहिए कि यहां "मैं (अहंकार) हूं या नहीं? जहां मैं (अहंकार) नहीं है वहां हिंसा नहीं है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

प्रार्थना किसे कहते है?

एक डाक्टरी डीग्री प्राप्त किये हुए महाशय प्रश्न करते हैं

"प्रार्थना का सबसे उत्तम प्रकार क्या हो सकता है? उसमें कितना समय लगाना चाहिए? मेरी राय में तो न्याय करना ही उत्तम प्रकार की प्रार्थना है और जो मनुष्य सबको न्याय करने के लिए सच्चे दिल से तैयार होता है उसे दूसरी प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। कुछ लोग तो संध्या करने में बहुत सा समय लगा देते है परन्तु सैकड़े पीछे ९५ मनुष्य तो उस समय जो कुछ भी वे बोलते हैं उसका अर्थ भी नहीं समझते है। मेरी राय में तो अपनी मातृभाषा में ही प्रार्थना करनी चाहिए। उसका ही आत्मा पर उत्तम असर पड़ सकता है। मैं तो यह भी कहता हूं कि सच्ची प्रार्थना यदि एक मिनट के लिए भी की गई हो तो वह भी काफी होगी। ईश्वर को पाप न करने का अभिवचन देना ही काफी है।"

प्रार्थना के माने है धर्मभावना और आदरपूर्वक ईश्वर से कुछ मांगना। परन्तु किसी भक्तिभावपूर्ण कार्य को व्यक्त करने के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। लेखक के मन में जो बात है उसके लिए भक्ति शब्द का प्रयोग करना ही अधिक अच्छा है। परन्तु उसकी व्याख्या का विचार छोड़ कर हम इसीका ही विचार करें कि करोड़ों हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, और दूसरे लोग रोजाना अपने स्रष्टा की भक्ति करने के लिए निश्चित किये हुए समय में क्या करते हैं? मुझे तो यह मालूम होता है कि वह तो स्रष्टा के साथ एक होने की हृदय की उत्कटेच्छा को प्रकट करना है और उसके आशीर्वाद के लिए याचना करना है। इसमें मन की वृत्ति और भावों को ही महत्व होता है शब्दों को नहीं और अक्सर पुराने जमाने से जो शब्द रचना चली आती है उसका भी असर होता है, जो मातृभाषा में उसका अनुवाद करने पर सर्वथा नष्ट हो जाता है। गुजराती में गायत्री का अनुवाद कर उसका पाठ करने पर उसका वह असर न होगा जो कि असल गायत्री से होता है। राम शब्द के उच्चार से लाखों करोड़ों हिन्दुओं पर फौरन असर होगा और 'गाड' शब्द का अर्थ समझने पर भी उसका उन पर कोई असर न होगा। चिरकाल के प्रयोग से और उनके उपयोग के साथ संयोजित पवित्रता से शब्दों को शक्ति प्राप्त होती है। इसलिए सब से अधिक प्रचलित मन्त्र और श्लोकों की संस्कृत भाषा रखने के लिए बहुत सी दलीलें दी जा सकती है। परन्तु उनका अर्थ अच्छी तरह समझ लेना चाहिए यह बात तो बिना कहे ही मान ली जानी चाहिए। ऐसी भक्ति-युक्त क्रियायें किस समय करनी चाहिए इसका कोई निश्चित नियम नहीं हो सकता है। इसका आधार जुदी जुदी व्यक्तियों के स्वभाव पर ही होता है। मनुष्य के जीवन में ये क्षण बड़े ही कीमती होते हैं। ये क्रियायें हमें नम्र और शान्त बनाने के लिए होती हैं और उससे हम इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि उसकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है, और हम तो "उस प्रजापति के हाथ में मिट्टी के पिंड हैं।" ये पलें ऐसी है कि इसमें मनुष्य अपने भूतकाल का निरीक्षण करता है, अपनी दुर्बलता का स्वीकार करता है और क्षमा याचना करते हुए अच्छा बनने की और अच्छा कार्य करने की शक्ति के लिए प्रार्थना करता है। कुछ लोगों को इसके लिए एक मिनट भी बस होता है तो कुछ लोगों को २४ घण्टे भी काफी नहीं हो सकते है। उन लोगों के लिए जो ईश्वर के अस्तित्व को अपने में अनुभव करते है केवल मिहनत या मजदूरी करना भी प्रार्थना हो सकती है। उनका जीवन ही सतत प्रार्थना और भक्ति के कार्यों से बना होता है। परन्तु वे लोग जो केवल पापकर्म ही करते है, प्रार्थना में जितना भी समय लगावेंगे उतना ही कम होगा। यदि उनमें धैर्य और श्रद्धा होगी और पवित्र बनने की इच्छा होगी तो वे तबतक प्रार्थना करेंगे जबतक की उन्हें अपने में ईश्वर की पवित्र उपस्थिति का निर्णयात्मक अनुभव न होगा। हम साधारण वर्ग के मनुष्यों के लिए तो इन दो सिरे के मार्गों के मध्य का एक और मार्ग भी होना चाहिए। हम ऐसे उन्नत नहीं हो गये है कि यह कह सकें कि हमारे सब कर्म ईश्वरार्पण ही है और शायद इतने गिरे हुए भी नहीं है कि केवल स्वार्थी जीवन ही बिताते हों। इसलिए सभी धर्मों ने सामान्य भक्ति-भाव प्रदर्शित करने के लिए अलग समय मुकर्रर किया है। दुर्भाग्य से इन दिनों यह प्रार्थनायें जहां दांभिक नहीं होती है वहां यान्त्रिक और औपचारिक हो गई हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि इन प्रार्थनाओं के समय वृत्ति भी शुद्ध और सच्ची हो।

निश्चयात्मक वैयक्तिक प्रार्थना जो ईश्वर से कुछ मांगने के लिए की गई हो वह तो अपनी ही भाषा में होनी चाहिए। इस प्रार्थना से कि ईश्वर हमें हरएक जीव के प्रति न्यायपूर्वक व्यवहार रखने की शक्ति दे और कोई बात बढ़ कर नहीं हो सकती है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावलि

पांचवी आवृत्ति खतम हो गई है। अब जितने आर्डर मिलते है दर्ज कर लिए जाते है। आर्डर भेजनेवालों को जबतक छट्ठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तबतक धैर्य रखना होगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, ज्येष्ठ बदी ३०, संवत् १९८३

मुफ्त भरोसा

भारत सरकार ने एक कोम्युनिक निकाल कर जनता को यह समाचार दिये हैं कि यूनियन सरकार ने उसे इस बात का यकीन दिलाया है कि यूनियन सरकार का ट्रेवल्स विरुद्ध हिन्स्टिक स्मीथ के मामले में बड़ी (सुप्रीम) अदालत के ट्रान्सवाल प्रान्तिक विभाग के निर्णय के पहले जो स्थिति थी उससे इन कानूनों की मर्यादाओं को बढ़ाने का उसका अभी कोई इरादा नहीं है। उस मामले में यह निर्णय हुआ था कि खानों में काम करनेवाले और दूसरे कार्यों से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ नियम जो १९११ से दक्षिण आफ्रिका में और कुछ प्रान्तों में तो इससे भी कई साल पहले से लागू किये जा रहे थे कानून के स्वीकृत शब्दों के अनुसार नियम से विरुद्ध थे।

कोम्युनिक में आगे यह भी लिखा हुआ है कि "भारत सरकार को इस बात का भी यकीन दिलाया जाता है कि यदि भविष्य में कभी इन कानूनों की मर्यादा को बढ़ाने का विचार भी होगा तो यूनियन के सब दलों को, जिनका इस मामले से सम्बन्ध होगा जिन्हें उसमें दिलचस्पी होगी, अपना पक्ष पेश करने का सब प्रकार से उचित मौका दिया जावेगा।"

मैं इस प्रकार से दिये गये इन दोनों विश्वासों को आंखों में धूल डालने का प्रयत्न मानता हूं। क्योंकि यूनियन सरकार, यूनियन की सभा में किये गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए इस बात को जो उसने आज भारत सरकार से कही है कई बार कह चुकी है। अर्थात उपरोक्त निर्णय के पहले जो स्थिति थी उससे उस कानून की मर्यादा को बढ़ाने का उसका अभी कोई इरादा नहीं है। परन्तु नये बिल का असर तो उससे यूनियन सरकार को जो शक्ति मिलती है उसमें है। वह बिल दक्षिण आफ्रिका के मूल निवासी और प्रवासी भारतीयों के सिर पर दोधारी तलवार की तरह लटक रहा है। क्योंकि जिस प्रकार वह आफ्रिका के मूल निवासियों को लागू किया जा सकता है ठीक उसी तरह भारतीयों को भी लागू किया जा सकता है। इसलिए यह बिल भारतीयों के लिए उतना ही अपमानजनक है जितना कि कुछ कानून संभव हो सकता है। सिर्फ भारतीयों के भौतिक स्वार्थों को उससे उतनी हानि नहीं पहुंचती है जितनी कि 'एशियाटिक' बिल से होती है, जिस पर कि समिति में विचार होनेवाला है। 'रंगद्वेष' कानून से यूनियन सरकार की मानसिकवृत्ति का पता चल जाता है और 'टाइम्स आफ इण्डिया' का संवाददाता बहुत ठीक कहता है कि "यूनियन सरकार ने 'गोलमेज़' के प्रस्ताव को जो स्वीकार किया है उसमें उसने केवल बाह्य विनय ही दिखाया है। इसका यह अर्थ नहीं करना चाहिए कि यूनियन सरकार की दृष्टि में कोई परिवर्तन हुआ है।" और इस अनुमान को अभी मिले हुए इन समाचारों से पुष्टि मिलती है कि जनरल हर्टज़ोग ने वहां के मूलनिवासियों के प्रति अपनी नीति का दिग्दर्शन कराते हुए इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि वे वहां के मूलनिवासियों का और रंगवाले लोगों को प्रतिनिधित्व का मर्यादित अधिकार देने के लिए तो तैयार हैं परन्तु भारतीयों को तो वे प्रतिनिधित्व का कोई अधिकार ही न देंगे। टाइम्स आफ इण्डिया का संवाददाता इसका यह परिणाम निकालता है, और यह सही है, कि जनरल हर्टज़ोग की दृष्टि में भारतीय तो वहां के मूल निवासी से भी गिरा हुआ है। सच बात तो यह है कि जबतक दक्षिण आफ्रिका से वह निकाल नहीं दिया जा सकता है तबतक एक आवश्यक अनिष्ट के रूप में ही वे उसे सहन करते हैं। यूनियन सरकार के जुदे जुदे कार्यों से रंगद्वेषी कानून को अलहदा नहीं किया जा सकता है। वह उसकी निश्चित नीति का एक अंग ही है और हमें उससे उसकी कुंजी भी प्राप्त हो जाती है।

यूनियन सरकार ने जो दूसरा विश्वास दिलाया है उसकी भी कुछ कीमत नहीं है। वह यह कहती है कि यदि उस कानून की मर्यादा बढ़ाई जावेगी तो यूनियन के सब दलों को जिन्हें उससे सम्बन्ध या दिलचस्पी हो अपना पक्ष पेश करने के लिए सब प्रकार से उचित मौका दिया जावेगा, परन्तु इससे क्या वह हमें कोई नया अधिकार दे देती है? खास कर जब कि हमें इस बात का ज्ञान है कि भारतियों के प्रतिनिधित्व के पीछे मतदाताओं का कोई बल नहीं होता है। और यदि कोम्युनिक में विवरण के तौर पर जिस वाक्य का प्रयोग किया गया है उसका यह अर्थ हो कि यूनियन के बाहर के दल अर्थात भारत सरकार और साम्राज्य सरकार के प्रतिनिधित्व का स्वीकार न किया जावेगा तो निःसन्देह यह विश्वास दिलाना निरर्थक ही नहीं बुरा है क्योंकि इसमें कोई रियायत का नहीं परन्तु एक हदबन्दी का ही ऐलान किया गया है।

(य० इं०)　　　　मोहनदास करमचंद गांधी

कताई में सहयोग

एक प्रिय मित्र ने उनको और उनके दूसरे मित्रों को खटकते हुए इस प्रश्न को उत्तर देने के लिए मेरे पास भेजा है।

"क्या कताई में सहयोग है? क्या उससे लोग पूर्ण वैयक्तिक और स्वार्थी नहीं हो जाते और क्या वे चूहों की तरह एक दूसरे से अलग अलग नहीं रहते हैं?"

मैं इसका सर्वथा संक्षिप्त और सब से अधिक निर्णयात्मक उत्तर तो यही दे सकता हूं कि "आप जा कर खुद ही एक सुव्यवस्थित कताई के केन्द्र को देख आइए और स्वयं ही इसकी परीक्षा कर लीजिए। आपको तब यह मालूम होगा कि कताई का कार्य सहयोग के बिना सफल ही नहीं हो सकता है।"

परन्तु, यह उत्तर संक्षिप्त होने पर भी मैं यह जानता हूं कि उन लोगों के लिए (और उनका संख्या ही अधिक है) जो ऐसी मुलाकात के लिए न जावेंगे और उसके लिए समय भी न निकालेंगे, यह निरर्थक ही होगा। इसलिए मुझे ऐसे एक केन्द्र का जितना भी सुन्दर हो सके अच्छा वर्णन कर के उन्हें इस बात का विश्वास कराने का प्रयत्न करना चाहिए। दो साल पहले पटना में एक सहयोगी दरबार के सामने व्याख्यान देते हुए मैंने कहा था कि हाथकताई के द्वारा मैं संसार में आज तक जैसा नहीं हुआ है वैसा एक सहयोगी संगठन स्थापित करना चाहता हूं। मेरा यह दावा कोई गलत नहीं है। उसमें महत्वाकांक्षा हो सकती है। पर वह इसलिए गलत नहीं है क्योंकि यदि कताई लोग इसमें सहयोग न करें तो हाथकताई का जो उद्देश है वह सफल ही नहीं हो सकता है।

उसका उद्देश आलस्य और दरिद्रता को दूर करना है। भारत की दरिद्रता मुख्यतः उसके आलस्य का परिणाम है। हरकोई इस बात का तो स्वीकार करेगा ही कि यह उद्देश महान है। इसलिए प्रयत्न भी उतना ही महान होना चाहिए।

उसमें आरंभ से ही सहयोग की आवश्यकता है। यदि कताई मनुष्य को आत्मावलंबी बनाती है तो उससे पद पद पर एक

(४) मिदनापुर जिला

मिदनापुर, खड़गपुर और तामलुक में कत्लगाहें हैं । कुल वध गायबैल ४,०००, भैंस २,३४०, भेड़े ९,१२५, बकरे ३०,२०० ।

(५) बोगुड़ा जिला

नियमित कत्लगाह नहीं है । इसलिए उसके अंक भी नहीं मिल सकते हैं ।

(६) खुलना जिला

कत्लगाह नहीं है । बकरी ईद जैसे अवसरों पर ही गोवध होता है और बकरों का तो हरएक गांव में हिन्दू लोग भोग देते हैं और मुसलमान कुरबानी करते हैं । लगभग ५,७३० बकरे कत्ल होते होंगे ।

(७) कलकत्ता

पांच कत्लगाहें हैं (१) टांगड़ा, (२) हिन्दू, (३) लेन्सडाउन, (४) हालसी बागान । कुल कत्ल: गायबैल १,११,१५१, भैंस ७,२८६; बछड़े १०,५२८; बकरे २,०७,९४०; भेड़े १,०४,१७७; १६,२०८ सुअरों का वधस्थान (५) अलहदा है ।

कलकत्ता म्युनिसिपल्टि के नियम के अनुसार किसी का ढोर मर जाय तो उसे तीन घण्टे में धाप्पा पहुंचाना चाहिए । धाप्पा पहुंचाने पर शव पर से चमड़ा उतारने के लिए अथवा दूसरी क्रियायें करने के लिए मेसर्स था वालेस एण्ड कंपनी ने सम्पूर्ण व्यवस्था कर रक्खी है । हड्डियों से तेल निकाल लिया जाता है फिर उन्हें शक्कर धोने के कारखानों में या चाय के बागीचों में भेज दिया जाता है । ढोग मारकीट से हड्डियां इकट्ठा करने का ठेका म्युनिसिपल्टि के तरफ से मेसर्स कालेण्डर एण्ड कंपनी को मिला है । खुर और सींग के भी ठेकेदार होते हैं; सींगों का अक्सर कटक में चांदी सोने के तारों के काम में उपयोग होता है और खुरियां था वालेस एण्ड कम्पनी के धाप्पावाले कारखाने को भेजी जाती है । कत्लगाहों से आंतें लेने का ठेका ए. मेयर ने लिया है और खून कालेण्डर एण्ड कम्पनी ले जाती है और उसे गरम कर के उसकी बुकनी तैयार करती है ।

(८) चटग्राम का पहाड़ी प्रदेश

लोग बौद्ध हैं इसलिए क्वचित ही पशुवध होता है । लोगों को पशुओं के शव को छूने में भी आपत्ति होती है । नियमित कत्लगाह यहां नहीं है । यहां के अंक नहीं मिलते हैं ।

(९) बांकुड़ा जिला

बांकुड़ा शहर में और विष्णुपुर में कत्लगाहें हैं जहां अनुक्रम से रोजाना ७–८ ढोर और २–३ बकरे कत्ल होते हैं । कुल कत्ल गायबैल १,०१५, भैंस १५०, बकरे ५,८००, भेड़ें १२५ । बांकुड़ा में सींग से कंघियां बनाने का भी कुछ उद्योग होता है ।

(१०) माल्दा जिला

हाटतोला के अंगरेजी बाजार में दो कत्लगाहें है, वहां २,००० बकरे और १०० गायों को कत्ल किया जाता है । दूसरे चार स्थानों को मिला कर दूसरे भी उतने ही जानवर कटते हैं ।

(११) चटग्राम जिला

तेरह कत्लगाहें हैं । कुल कत्ल: गायबैल २१,१५१; भैंस ५०, बकरे १८,६०० । रामग्राम में गोवध ६००० । फटिकछड़ी और सातकानिया में लगभग तीन तीन हजार के । कोकस बाजार में २,००० । सदर और पटिया में १,५००–१,५०० । रणगुनिया तथा चांदखली में हजार हजार । बवालखली और आन-आरा में ३००–६०० । सीताकुंड, मीरेरसराइ और हाटाजरी में अनुक्रम से ३००, २५० और १२० । हिन्दुओं के भोग का और मुसलमानों की कुरबानी का इस हिसाब में समावेश नहीं होता है ।

(१२) मुर्शिदाबाद जिला

पांच कत्लगाहें हैं । कुल कत्ल: गायबैल ८,३००; बकरे ७,७००; सालार में गोवध ४,०००; मुर्शिदाबाद में १,८००; बरहामपुर तथा भरतपुर में हजार हजार; ताल्डिपुर में ५०० । बक्रेश्वर के मन्दिर में ३०० बकरे कत्ल होते हैं । कत्लगाहों के हिसाब में देवालय को भी गिनाना पड़ता है यह कलियुग का ही प्रभाव है ।

बीरभूम से एक जाति के लोग आते हैं वे सदा फिरते रहते हैं । वे सींग से कंघियां और एक प्रकार का ब्रेस बनाते हैं ।

(१३) बाकरगंज जिला

नियमित कत्लगाह नहीं है । गोवध १२,०००; भैंस ४००; बकरे २६,००० ।

(१४) माइमेनसिंह जिला

म्युनिसिपल और बाजीहरा के, इस प्रकार के दो कत्लगाह हैं । गोवध ४००; बकरे ३६,००० । वाद्ययन्त्रों के तार बनाने में आंतों का उपयोग किया जाता है ।

(१५) दिनाजपुर जिला

दिनाजपुर शहर के कत्लगाहों में १,८०० बकरे का वध हुआ था । दूसरे अंक नहीं मिले हैं ।

(१६) दार्जिलिंग जिला

कुल कत्ल: गायबैल १३,०३४; भैंस ७,९९८; बकरे ३,७१९; भेड़े ३,०००, सुअर ६,४०८ । सदर में ७,५१० बैलों की कत्ल होती है । कर्सियांग में ३,२२५; कालिम्पोंग में १,५४०, सिलिगुड़ी में ७५० ।

दार्जिलिंग में हड्डियां अधिक होने के कारण वहां म्युनिसिपल्टि ने हड्डियां पीसने का कारखाना खोला है । जो ढोर फैल्टेंक रोग के कारण नहीं मरे होते हैं उनका मांस भुटिआ और लेप्चा लोग खाते हैं ।

(१७) बर्धमान जिला

कुल कत्ल: गाय–बैल २३,८५५; बकरे ३०,५००, भेड़ें २५,६१८ । आसनसोल में ११,४६५ गायबैलों की कत्ल होती है । सदर में ८,४००; कटवा २,५००; कलना ६२० ।

(१८) हावड़ा जिला

कुल १३ कत्लगाहें हैं । कुल कत्ल: गाय ३,०५०, भैंस ४००, बकरे ३०,५१० और भेड़ें ४,५५०; शहर के कसाईयों में १,६०० गायें कटती हैं; बांट्रा में ७५०, मुनशीरहाट ४००; पंचारा २०० डुकोला १०० ।

(१९) फरीदपुर जिला

नियमित चलनेवाला कत्लगाह नहीं । बकरे ८,००० कटते हैं ।

(२०) हुगली जिला

कत्लगाहें: पांडुआ में, बोड़ची में और हुगली–चिनसुरा म्युनिसिपल्टी का । कुल कत्ल गायबैल ७,८६४ (सदर ४,५००; श्रीरामपुर ३,३६४); बकरे ३०,००० । भेड़ें १२,३०२ कटती हैं ।

(२१) नदिया जिला

कुल कत्ल गायबैल ७५०, बकरे ५०,०००; भेड़ें १,१ [illegible] । कृष्णनगर में ५०० गाय, और शान्तिपुर में ५० गाय कटती हैं ।

(२२) नवाखाली जिला

कुल कत्ल गायबैल ६,०००; भैंस २५०; बकरे १२,०००; भेड़ें १०० टिकारचार में २,००० और चांदपुर में ८,००० गायें कटती हैं । ब्राह्मणबाड़िया के अंक नहीं मिलते हैं ।

(२४) ढाका जिला

ढाका शहर में दो कत्लगाहें हैं (१) नारायणपुर और (२) [illegible] । कुल कत्ल: गायबैल १०,८००; बकरे ३५,००० और भेड़ें ५,००० । गांवों के अंक अप्राप्य हैं ।

(२५) २४ परगना

कुल कत्ल गायबैल १९,९५०; भैंस २,०००; बकरे ४०,५००; भेड़ें ८००; सुअर ३,००० । सोनापाणा में ५२,००० पशु कटते हैं, बैरकपुर में २,००० । बाराबात में ५०० और डायमण्ड हार्बर में ४५० गायें कटती हैं । बजबज और कलहारी के मार्गाव (ढोरों के अस्थिस्थान) कलकत्ते के मेसर्स डा बालेस कम्पनी को किराये पर दिये जाते हैं । सींग और खुरी पशुखाद के कारखानों में जाती हैं । खून मेसर्स कालेण्डर कम्पनी इकट्ठा करती है । आंतें सामान्यतया सरकारी कारखाने में जाती हैं, डा० ल० मि० मेयर के कारखाने में ।

(२६) बीरभूत जिला

कुल कत्ल, गायबैल ८,३०५; बकरे ८,९२६; भेड़ें २३०

(२७) जलपाईगुडी जिला

कुल कत्ल गायबैल ३,५१८; बकरे २,८६३; और भेड़ें ३६; भैंस १,०३०; और सुअर १,८०० ।

(२८) रंगपुर

कुल कत्ल गायबैल १३,२००, बकरे ७,५००; भेड़ें ५०० । कुड़ीग्राम में १३,००० और लिलकामणी में २०० गायें कटती हैं । दूसरे छोटे विभागों के अंक अप्राप्य हैं ।

× × × ×

इसपर से तो सिद्धान्त रूप में यही परिणाम निकाला जा सकता है कि जबतक हम मृत ढोरों का चर्म मान कर पूरा पूरा उपयोग न करेंगे और उससे उत्पन्न धन को गोरक्षा में नहीं लगायेंगे तबतक गोरक्षा होना असंभव है ।

(नवजीवन) वालजी गोविन्दजी देसाई

टिप्पणियां

एक शिकायत

एक भाई लिखते हैः

"मैं चरखासंघ का सभासद हूं । आज तक किस वर्ग के कितने सभासद हुए, सहायक कितने हुए, आर्थिक सहायता कितनी मिली, इत्यादि बातें जानने की मेरी इच्छा है । ऐसी अफवाह फैली हुई है कि चरखासंघ को जितनी आमदनी होती है उसके अतिरिक्त उसका खर्च अधिक है । सूत देनेवाले गरीबों के लिए देते हैं इसलिए सस्ती खादी किस कीमत की और कितनी उत्पन्न हुई और कितनी बिकी यह जानने की भी मेरी इच्छा है । यदि कार्यालय सस्ती खादी नहीं बेच सकता है और कार्यालय के तरफ से बुनी गई खादी गरीबों के हाथ में न जा कर कार्यकर्ता ही उसे आपस में बांट लेते हैं तो उसके अतिरिक्त यदि प्रत्येक सभासद अपना सूत आप बुनवा ले और उसमें से कुछ गुप्तदान करे तो यह क्या बुरा है ?"

यदि शिकायत करनेवाले महाशय 'नवजीवन' ध्यानपूर्वक पढ़ते होते तो उन्हें यह शिकायत करने का कोई कारण न रहता । इस शिकायत का उत्तर शिकायत करनेवाले महाशय ने 'नवजीवन' में मांगा है । 'यंग इण्डिया' में प्रत्येक सभासद के नाम के साथ उसका चन्दा और भेंट आदि का स्वीकार किया जाता है और 'नवजीवन' में उसका सार दिया जाता है । उस परसे ही सब को यह पता लग सकता है कि चरखासंघ के कितने सभासद हैं । चरखासंघ के कारोबार से सम्बन्ध रखनेवाले समाचार भी समय समय पर 'नवजीवन' में प्रकाशित किये जाते हैं । फिर भी इस स्थान पर मौका पा खुलासा कर देना मैं उचित मानता हूं । कार्यालय में अभी उतना सूत प्राप्त नहीं हुआ है कि सीधे ही खादी सस्ती की जा सके । परन्तु प्रकारान्तर से उस सूत का इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि सारे हिन्दुस्तान में मजदूरी दे कर जो सूत कताया जाता था उसके गुणों में बड़ा सुधार हुआ है । यह यज्ञार्थ मिलनेवाला सूत दूसरे सूतों की परीक्षा करने में और उन पर नजर रखने में बड़ा उपयोगी साबित हुआ है । परन्तु चरखासंघ को परिमाण में इतना कम सूत प्राप्त हुआ है कि उससे बनी हुई खादी बहुत ही कम लोगों को पहुंच सकती है इसलिए उसमें दूसरी खादी मिलानी पड़ी है । परन्तु कार्यालय के कार्यकर्ताओं में उसका एक भी टुकड़ा नहीं बांटा गया है । कार्यकर्ता उन्हें जितनी चाहिए उतनी खादी खरीद कर लेते हैं और कुछ लोग तो अपने कते सूत की खादी बुनवा लेते हैं । यदि यज्ञार्थ कातनेवाले अपना सूत आप बुनवा कर उसका गुप्त दान करेंगे तो उससे उस उद्देश को हानि पहुंचेगी जो संघशक्ति से सफल हो सकता है, अथवा वह निष्फल ही होगा, और सूत को सुधारने का काम जो आज हो रहा है वह भी रुक जायगा । कार्यालय का खर्च उसकी आमदनी से अधिक नहीं है । यदि ऐसा होता तो मैं चरखासंघ को बन्द करता या उसमें से निकल जाता । परन्तु मुझे इस बात का स्वीकार करना चाहिए कि जितना सूत आता है उससे कार्यालय का खर्च पूरा नहीं होता है । कार्यालय का खर्च भेंट की जो दूसरी रकमें मिलती हैं उससे चलता है । परन्तु यदि चरखासंघ के सभासद आज जो चार हजार हैं वे बढ़ कर चार करोड़ हो जायं तो कार्यालय का खर्च उसमें से निकल सकता है । सैकड़ों नवयुवक कार्यालय के द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त कर सकते हैं, यही नहीं खादी की कीमत पर भी उसका प्रौढ़ और सीधा असर पड़ सकता है ।

ऐसे कहीं गोरक्षा हो सकती है ?

एक गोसेवक लिखते हैंः

"मैंने एक गोशाला की मुलाकात ली थी । उसमें ४५० ढोर हैं । खर्च प्रति वर्ष २०–२५ हजार है और आमदनी १५–२० हजार । अन्तिम तीन वर्षों में आमदनी से खर्च ११ हजार अधिक रहा है । ४५० ढोरों में दूध देनेवाली सिर्फ दस गायें हैं । छोटी बछियाओं को पालपोस कर बड़ी करते हैं और जब दूध देने लायक होती हैं तो गांव के लोग उनका दाम दिये बिना ही उन्हें ले जाते हैं । अर्थात दाम देनेवालों के खर्च से बछिया बड़ी होती है और जब दूध देने लायक होती है तब वहां के स्थानिक लोगों को मिल जाती है और उन स्थानिक लोगों से गोशाला को तो कुछ भी नहीं मिला होता है ।"

यह बड़ी ही दुःखप्रद कथा है । और बहुतेरी गोशालाओं में इसी प्रकार काम चलता होगा । १५०० गोशालाओं का होना यह कोई छोटी मोटी बात नहीं है । इतनी गोशालाएं यदि सुव्यवस्थित तौर पर चलती हों, उसका एकतंत्र हो तो उनके जरिये हजारहा जानवरों का निर्वाह हो सकता है, करोड़ों का धन बच सकता है और गोरक्षा की कुंजी हमारे हाथ लग सकती है । उपरोक्त गोशाला में ११ हजार का तोटा नहीं पड़ना चाहिए । एक भी बछिया का दान नहीं किया जा सकता है । यदि यही गोशाला आदर्श दुग्धालय बने तो उसी गांव को उसके जरिये सस्ता घी और दूध मिल सकता है; और उसके साथ ही साथ चर्मालय भी चलता हो तो लोगों को जूते इत्यादि चमड़े की आवश्यक वस्तुयें भी प्राप्त हो सकती हैं । आज तो रुपये के रुपये खर्च होते हैं और एक भी गाय कसाईखाने में जाने से नहीं बचती है । अर्थात गोशालाओं का कार्य बड़ा संकुचित हो गया है । गोशाला वह स्थान रह गया है जहां पंगु ढोरों की ज्यों त्यों रक्षा की जाती है ।

हमें यदि कोई व्यापार करना हो तो हम उसके लिए रुपये दे कर के भी कुशल मनुष्यों को रखते हैं। नुकसान होता हो तो उसके कारणों की परीक्षा करते हैं। नित्य नये सुधार करते हैं और जबतक उसमें नुकसान दिखाई देता है तबतक निश्चिंत हो कर नहीं बैठते। गोशाला का उद्देश कोई छोटा-मोटा व्यापार करना नहीं है परन्तु गोरक्षा का महान धर्म पालन करना है। परन्तु यह कार्य हम अनुभवहीन मनुष्यों के द्वारा उसके फ़ुरसद के समय में कराते हैं। इस प्रकार काम करनेवाले मनुष्य भी आत्म-प्रवञ्चना कर के यह मान लेते हैं कि वे सेवाधर्म का पालन करते हैं, दान करनेवाले गोरक्षा होती है यह मान कर अपने मन का छल करते हैं और इस धर्म के बहाने लाखों रुपयों का निरर्थक खर्च होता है। यदि संवाददाता ने निम्न लिखित बातें भी लिखी होतीं तो इस गोशाला का अधिक अच्छा निरीक्षण किया जा सकता था।

(१) पंगु और दुर्बल ढोरों की संख्या।
(२) दूध देनेवाली गाय, भैंसों की संख्या।
(३) रोजाना दूध का परिमाण।
(४) बछड़े—नर और मादा की संख्या।
(५) बैल और पाडों की संख्या।
(६) जमीन का क्षेत्रफल।
(७) गोशाला गांव में है या गांव बाहर।
(८) ढोरों की मृत्यु संख्या।
(९) मृत ढोरों की व्यवस्था।

धर्म के नाम अधर्म

अमरेली के अन्त्यज मन्दिर के लिए श्री रामेश्वर बिरला ने ढाई हजार रुपये दिये थे। उसका एक अच्छा मन्दिर बना। उसमें श्री लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने की क्रिया की गई और वह मन्दिर खोला गया। उसके सम्बन्ध में जो रिपोर्ट मेरे पास आई है उसमें निम्न लिखित बातें भी हैं।

"क्रिया करानेवाले आचार्य पर ब्राह्मणों ने बहुत जुल्म किया, यद्यपि यजमान कोई अन्त्यजवर्ग का न था। इस अन्त्यजों के मन्दिर में क्रिया कराते समय अन्त्यजों को अलग बिठाया गया था। दक्षिणा भी अन्त्यजों के तरफ़ से नहीं दी गई थी। मन्दिर के रुपये भी अन्त्यज के न थे। इसलिए यह मन्दिर अन्त्यजों के लिए था यही आचार्य का अपराध था। इस अपराध के लिए उन्हें मूंछ मुंडवानी पड़ी और प्रायश्चित करना पड़ा।"

इस प्रकार अपना स्वमान भूल जानेवाले आचार्य को मैं धन्यवाद नहीं दे सकता हूं। यदि प्राणप्रतिष्ठा कराने की क्रिया धर्म का काम था तो यह प्रायश्चित प्रायश्चित नहीं परन्तु पाप ही कहा जा सकता है। आचार्य का बहिष्कार भी होता तो उससे उनकी क्या हानि होती? ज्ञाति-बहिष्कार के भूत से आज जरा भी डरने की आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने हिम्मत के साथ अपना बहिष्कार होने दिया है उन्हें कुछ भी नुकसान नहीं हुआ है। यही नहीं वे ते ऐसे झूठे बन्धन से मुक्त हुए हैं। प्रीतमदास कहते हैं।

> रे समज्या विना नव नीसरीए
> रे रणमध्ये जइने नव डरीए
> रे प्रथम चढे शूरो थइने
> रे भागे पाछो रणमां जइने
> तें शु जीवे मूंढ मुख लइने?

[बिना समझे-बूझे आगे नहीं बढ़ना चाहिए। रण-मैदान में जाने के बाद डरना नहीं चाहिए। जो प्रथम तो शूर बन कर निकल पड़ता है परन्तु रण में आ कर पीछे भागने लगता है वह अपना बुरा सा मुंह ले कर क्या जीएगा।]

ऐसे समय पर यह वचन कितना उचित मालूम होता है। मुझे यह आशा न थी कि अमरेली जैसे प्रगतिवान शहर में ब्राह्मण-लोग इतना अज्ञान—ऐसी धर्मांधता दिखावेंगे।

इस प्रकार यद्यपि अमरेली के कुछ ब्राह्मणों ने हिंदु-धर्म की विडम्बना की तो दूसरों ने उसको शोभा भी दी है। क्योंकि प्राणप्रतिष्ठा के समय पर सब वर्ण के हिन्दू एकत्रित हुए थे। उनमें ब्राह्मण, वैश्य, लुहार, बढ़ई इत्यादि सब थे। अधिकारी वर्ग भी था। अंत्यजों के सिवा दूसरे लोग भी अन्त्यजमन्दिर का उपयोग करते हुए देखे जाते हैं। कुछ ब्राह्मणों ने तो भागवत इत्यादि पढ़ने का भी स्वीकार किया है। अब इस बहिष्कार का उनपर कैसा असर होता है यह देखना चाहिए।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

भारत सेवा समिति

समिति ने, आगसे हुई अपनी हानि के सम्बन्ध में जो नोट प्रकाशित की है उसमें छपखाने में काम करनेवालों नोकरों ने स्वेच्छा से जो त्याग किया है उससे बढ़ कर दिल पर असर करनेवाली और कोई बात नहीं है। समिति के प्रति उसके नोकरों को कितना विचार है उसका यह एक प्रमाण है। यदि वे इस हानि को अपनी ही हानि न मानते होते तो वे आठ घण्टे के बदले दस घण्टे काम करने का और अपना बोनस छोड़ देने का स्वार्थहीन और उत्तम प्रस्ताव ही न करते, प्रिन्टर (मुद्रक) ने तो ६ महीने तक बिना वेतन के ही काम करने का वचन दिया है। समिति और उसके नोकरों में, जिसे पूंजी और मजदूरी भी कह सकते हैं, मित्रता का यह भाव होने के कारण वे दोनों धन्यवाद के पात्र हैं। समिति को जो भयंकर हानि हुई है उसकी, ऐसे भावों का व्यक्त होना कोई कम क्षतिपूर्ति नहीं है।

कीमती हस्तलिखित पुस्तकों की, जिसमें प्रो. गोखले का जीवन चरित्र भी था और ज्ञानप्रकाश की ८० वर्षों की पुरानी फाईलों की हानि ऐसी हानि है कि जो कभी पूरी नहीं की जा सकती है। परन्तु केवल इसी प्रकार तो कुदरत हमें आघात पहुंचा कर इस बात का स्मरण दिलाती है कि परमात्मा के सिवा इस संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं रहता है और इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि हम आदर और नम्रता के साथ परिणाम का विचार किये बिना हो उसकी इच्छा को पूरा करें।

समिति के सभासद अब बिना विलंब के ही अपनी हलचलों का पुनः आरंभ करने का अनुकूलोचित प्रयत्न कर रहे हैं। प्रश्न यह कि उसमें जनता कैसे मदद करेगी? भारत के बहुत से प्रान्तों से नये वचन मिले हैं। यह आशा की जाती है कि किसी प्रकार की गड़बड़ और विलंब के बिना ही ये वचन कार्यरूप में परिणत होंगे। समिति के राजनैतिक विचारों से चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो उसके सभासदों की प्रामाणिकता और उनके स्वार्थहीन प्रयत्नों से कोई इन्कार नहीं कर सकता है उनकी देशभक्ति से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता है। अपनी महान सामाजिक हलचलों के कारण भी वह एक ही है, और उसकी राजनैतिक हलचलों से उनका भी कोई कम महत्व नहीं है। मैं आशा करता हूं कि यंग इण्डिया के पाठक भी समिति की प्रार्थना के उत्तर में अपना अपना चन्दा भेज कर समिति की सेवा की कदर करेंगे और जहां वे समिति के राजनैतिक विचारों से मतभेद रखते हों वहां सहनशीलता दिखावेंगे।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हाँ यदि कोई व्यापार करना हो तो हम उसके लिए रुपये दे कर के भी कुशल मनुष्यों को रखते हैं। नुकसान होता हो तो उसके कारणों की परीक्षा करते हैं। नित्य नये सुधार करते हैं और जबतक उसमें नुकसान दिखाई देता है तबतक निश्चिंत हो कर नहीं बैठते। गोशाला का उद्देश कोई छोटा-मोटा व्यापार करना नहीं है परन्तु गोरक्षा का महान धर्म पालन करना है। परन्तु यह कार्य हम अनुभवहीन मनुष्यों के द्वारा उसके फुरसद के समय में कराते हैं। इस प्रकार काम करनेवाले मनुष्य भी आत्म-प्रवञ्चना कर के यह मान लेते हैं कि वे सेवाधर्म का पालन करते हैं, दान करनेवाले गोरक्षा होती है यह मान कर अपने मन का छल करते हैं और इस धर्म के बहाने लाखों रुपयों का निरर्थक खर्च होता है। यदि संवाददाता ने निम्न लिखित बातें भी लिखी होतीं तो इस गोशाला का अधिक अच्छा निरीक्षण किया जा सकता था।

(१) पंगु और दुर्बल ढोरों की संख्या।
(२) दूध देनेवाली गाय, भैंसों की संख्या।
(३) गोशाला दूध का परिमाण।
(४) बछड़े—नर और मादा की संख्या।
(५) बैल और पाड़ों की संख्या।
(६) जमीन का क्षेत्रफल।
(७) गोशाला गांव में है या गांव बाहर।
(८) ढोरों की मृत्यु संख्या।
(९) मृत ढोरों की व्यवस्था।

धर्म के नाम अधर्म

अमरेली के अन्त्यज मन्दिर के लिए श्री रामेश्वर बिरला ने ढाई हजार रुपये दिये थे। उसका एक अच्छा मन्दिर बना। उसमें श्री लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने की क्रिया की गई और वह मन्दिर खोला गया। उसके सम्बन्ध में जो रिपोर्ट मेरे पास आई है उसमें निम्न लिखित बातें भी हैं।

"क्रिया करानेवाले आचार्य पर ब्राह्मणों ने बहुत जुल्म किया, यद्यपि यजमान कोई अन्त्यजवर्ग का न था। इस अन्त्यजों के मन्दिर में क्रिया कराते समय अन्त्यजों को अलग बिठाया गया था। दक्षिणा भी अन्त्यजों के तरफ से नहीं दी गई थी। मन्दिर के रुपये भी अन्त्यज के न थे। इसलिए यह मन्दिर अन्त्यजों के लिए था यही आचार्य का अपराध था। इस अपराध के लिए उन्हें मूछ मुंडवानी पड़ी और प्रायश्चित करना पड़ा।"

इस प्रकार अपना स्वमान भूल जानेवाले आचार्य को मैं धन्यवाद नहीं दे सकता हूं। यदि प्राणप्रतिष्ठा कराने की क्रिया धर्म का काम था तो यह प्रायश्चित प्रायश्चित नहीं परन्तु पाप ही कहा जा सकता है। आचार्य का बहिष्कार भी होता तो उससे उनकी क्या हानि होती? ज्ञाति-बहिष्कार के भूत से आज डरा करने की आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने हिम्मत के साथ अपना बहिष्कार होने दिया है उन्हें कुछ भी नुकसान नहीं हुआ है। यही नहीं वे तो ऐसे झूठे बन्धन से मुक्त हुए हैं। अखाभगत कहते हैं।

> रे समज्या विना नव नीसरीए
> रे रणमध्ये जइने नव डरीए
> रे प्रथम चढे शूरो थइने
> रे भागे पाछो रणमां जइने
> ते शुं जीवे मुंडुं मुख लइने?

[बिना समझे-बूझे आगे नहीं बढ़ना चाहिए। रण-मैदान में आने के बाद डरना नहीं चाहिए। जो प्रथम तो शूर बन कर निकल पड़ता है परन्तु रण में आ कर पीछे भागने लगता है वह अपना बुरा सा मुख ले कर क्या जीएगा।]

ऐसे समय पर यह वचन कितना उचित मालूम होता है। मुझे यह आशा न थी कि अमरेली जैसे प्रगतिवान शहर में ब्राह्मण-लोग इतना अज्ञान—ऐसी धर्मांधता दिखावेंगे।

इस प्रकार यद्यपि अमरेली के कुछ ब्राह्मणों ने हिंदु-धर्म की विडम्बना की तो दूसरों ने उसको शोभा भी दी है। क्योंकि प्राणप्रतिष्ठा के समय पर सब वर्ण के हिन्दू एकत्रित हुए थे। उनमें ब्राह्मण, वैश्य, लुहार, बढ़ई इत्यादि सब थे। अधिकारी वर्ग भी था। अन्त्यजों के सिवा दूसरे लोग भी अन्त्यजमन्दिर का उपयोग करते हुए देखे जाते हैं। कुछ ब्राह्मणों ने तो भागवत इत्यादि पढ़ने का भी स्वीकार किया है। अब इस बहिष्कार का उनपर कैसा असर होता है यह देखना चाहिए।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

भारत सेवा समिति

समिति ने, आगसे हुई अपनी हानि के सम्बन्ध में जो नोट प्रकाशित की है उसमें छपखाने में काम करनेवाले नोकरों ने स्वेच्छा से जो त्याग किया है उससे बढ़ कर दिल पर असर करनेवाली और कोई बात नहीं है। समिति के प्रति उसके नोकरों को कितना विचार है उसका यह एक प्रमाण है। यदि वे इस हानि को अपनी ही हानि न मानते होते तो वे आठ घण्टे के बदले दस घण्टे काम करने का और अपना बोनस छोड़ देने का स्वार्थहीन और उत्तम प्रस्ताव ही न करते, प्रिन्टर (मुद्रक) ने तो ६ महीने तक बिना वेतन के ही काम करने का वचन दिया है। समिति और उसके नोकरों में, जिसे पूंजी और मजदूरी भी कह सकते हैं, मित्रता का यह भाव होने के कारण वे दोनों धन्यवाद के पात्र हैं। समिति को जो भयंकर हानि हुई है उसकी, ऐसे भावों का व्यक्त होना कोई कम क्षतिपूर्ति नहीं है।

कीमती हस्तलिखित पुस्तकों की, जिसमें श्री. गोखले का जीवन चरित्र भी था और ज्ञानप्रकाश की ८० वर्षों की पुरानी फाइलों की हानि ऐसी हानि है कि जो कभी पूरी नहीं की जा सकती है। परन्तु केवल इसी प्रकार तो कुदरत हमें आघात पहुंचा कर इस बात का स्मरण दिलाती है कि परमात्मा के सिवा इस संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं रहता है और इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि हम आदर और नम्रता के साथ परिणाम का विचार किये बिना ही उसकी इच्छा को पूरा करें।

समिति के सभासद अब बिना विलंब के ही अपनी हलचलों का पुनः आरम्भ करने का समुचित प्रयत्न कर रहे हैं। प्रश्न यह है कि उसमें जनता कैसे मदद करेगी? भारत के बहुत से प्रान्तों से उसे वचन मिले हैं। यह आशा की जाती है कि किसी प्रकार की गड़बड़ और विलंब के बिना ही वे वचन कार्यरूप में परिणत होंगे। समिति के राजनैतिक विचारों से चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो उसके सभासदों की प्रामाणिकता और उनके स्वार्थहीन प्रयत्नों से कोई इन्कार नहीं कर सकता है उनकी देशभक्ति से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता है। अपनी महान समाजिक हलचलों के कारण भी वह एक ही है, और उसकी राजनैतिक हलचलों से उनका भी कोई कम महत्व नहीं है। मैं आशा करता हूं कि यंग इण्डिया के पाठक भी समिति की प्रार्थना के उत्तर में अपना अपना चन्दा भेज कर समिति की सेवा की कदर करेंगे और वहां वे समिति के राजनैतिक विचारों से मतभेद रखते हों वहां सहनशीलता दिखावेंगे।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

कुटिल कानून

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ ―)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ४१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद	अहमदाबाद, ज्येष्ठ बदी ७ संवत् १९८२ गुरुवार, ३ जुन १९२६ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय ३

मेरा पहला मुकद्दमा

बम्बई में एक तरफ कानून का अध्ययन शुरू हुआ था और दूसरी तरफ भोजन के प्रयोग। उसमें मेरे साथ वीरचन्द गांधी भी शामिल थे। और मेरे लिए मवक्किल ढूंढने का बड़े भाई का प्रयत्न भी चल रहा था।

कानून पढ़ने का काम बहुत ही मंद गति से चल रहा था। सिविल प्रोसीजर कोड कैसे भी समझ में नहीं आता था। गवाही के कानूनों में ठीक प्रगति हो रही थी। वीरचन्द गांधी सोलीसीटर बनने की तैयारी कर रहे थे इसलिए वे वकीलों की बहुत सी बातें सुनाते थे। "फिरोजशाह की होशियारी का कारण उनका कानून का अगाध ज्ञान है। 'एविडन्स एक्ट' तो मानो उनकी जबान पर ही है। बत्तीसवीं दफे से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक मुकद्दमे का उन्हें ज्ञान है, बद्रुद्दीन तो ऐसे बाहोश हैं कि उनके सामने जज साहब भी चौंधिया जाते हैं। उनकी दलील करने की शक्ति बड़ी ही आश्चर्यकारी है।"

और ज्यों ज्यों मैं ऐसे महान और प्रसिद्ध वकीलों की बातें सुनता था त्यों त्यों मैं अधिक घबराता जाता था।

पांच सात साल तक बारीस्टर कोर्ट में बैठा बैठा गरदन फोड़ा करे तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसलिए मैंने सोली-सीटर बनने का सोचा। तीन साल के बाद तुम अपना खर्च भी निकाल सको तो यह प्रगति बहुत अच्छी कही जा सकती है।

प्रतिमास खर्च बढ़ रहा था। बारीस्टर का बोर्ड आंगन में लटकाना और घर में बारीस्टरी के लिए तैयारी करनी; मेरा मन किसी भी प्रकार इसका मेल नहीं मिला सकता था। इसलिए मेरा चित्त बड़ा व्याकुल था और इस हालत में मेरी यह पढ़ाई हो रही थी। 'एविडन्स एक्ट' में कुछ दिलचस्पी मालूम हुई। मेन का हिन्दू-ला बड़ी ही दिलचस्पी के साथ पढ़ा। परन्तु उससे मुकद्दमा चलाने की हिम्मत प्राप्त न हुई। मेरा दुःख मैं किसको जा कर सुनाता? ससुराल में गई हुई नयी बहू के जैसी मेरी स्थिति हुई थी।

इतने में ममीबाई का मुकद्दमा मेरे भाग्य से मुझे मिला। स्मालकाज कोर्ट में जाना था। 'दलाल को कमीशन देना होगा।' मैंने इससे साफ इन्कार कर दिया।

"परन्तु फौजदारी अदालत के काम में मशहूर वे—प्रतिमास तीन चार हजार रुपये कमानेवाले भी तो कमीशन देते हैं।"

"मुझे कहां उनके जैसा बनना है? प्रतिमास मुझे ३००) मिलें तो भी बस होगा। पिताजी को कहां अधिक मिलते थे?"

"लेकिन वह जमाना तो गुजर गया। बम्बई का खर्च अधिक है, तुम्हें कुछ व्यवहार भी तो देखना चाहिए।"

मैं एक का दो न हुआ। कमीशन कुछ भी न दिया। परन्तु ममीबाई का मुकद्दमा तो मुझे मिला ही। मुकद्दमा बड़ा आसान था। मुझे फीस के ३०) मिले थे। मुकद्दमा ऐसा नहीं था कि वह एक दिन से अधिक चल सके।

स्मालकाज कोर्ट में पहले पहल ही गया था। मैं तो मुद्दालेह की तरफ से वकील था इसलिए मुझे जिरह करनी चाहिए थी। मैं खड़ा तो हुआ परन्तु मेरे पैर कांप रहे थे और सर घूम रहा था। मुझे तो यही मालूम हो रहा था कि मानों अदालत घूम रही थी। सवाल पूछने की कोई बात ही नहीं सूझ पड़ती थी। जज साहब हंसे होंगे। वकीलों को तो इससे बड़ा आनन्द मिला होगा। परन्तु मेरे चक्षु इनमें से कुछ भी नहीं देख सकते थे।

मैं बैठ गया। दलाल से कहा "मैं यह मुकद्दमा नहीं चला सकूंगा। इसे पटेल को दे दो और मुझे दी गई रकम वापिस ले लो।" उसी एक दिन के लिए ५१) दे कर पटेल बुलाये गये। उनके लिए तो यह खेल था।

मैं वहां से भागा। मुझे यह भी स्मरण नहीं है कि मेरा मवक्किल जीता या हारा। मुझे बड़ी शरम मालूम हुई। पूरी हिम्मत न आवे तबतक मुकद्दमा ही न लेने का मैंने निश्चय किया और जबतक दक्षिण आफ्रिका न गया तबतक तो मैं फिर अदालत में ही नहीं गया था। इस निश्चय में कोई शक्ति नहीं थी। हारने

के लिए अपना मुकदमा मुझे देने की किसे फुरसत होगी? इसलिए बिना इस निश्चय के भी मुझे अदालत में जाने का कोई कष्ट न देता।

परन्तु अभी एक दूसरा मुकदमा बम्बई में प्राप्त होनेवाला था। यह मुकदमा अरजी लिखने का था। एक गरीब मुसल्मान की जमीन पोरबन्दर में जप्त की गई थी। मेरे पिताजी के नाम को जान कर वह उनके वकील पुत्र के पास आया था। मुझे तो उसका मुकदमा पंगु मालूम हुआ था परन्तु मैंने अरजी लिख देना स्वीकार कर लिया। उसकी छपाई का खर्च वह मवक्किल देनेवाला था। मैंने अरजी लिखी और उसे मित्रवर्ग को पढने के लिए दी। वह अरजी पास हुई और मुझे यह विश्वास हुआ कि मैं अरजी लिखने के लायक तो हूं — और वैसा था।

परन्तु मेरा उद्योग बढने लगा। यदि मुफ्त अरजियां लिख देने का काम करता तो अरजियां लिखने को मिल सकती थी। परन्तु उससे घर के बच्चे खिलौने से थोडे ही खेल सकते थे?

मैंने सोचा कि मैं शिक्षक का काम कर सकूंगा। मेरा अंगरेजी का ज्ञान अच्छा था। इसलिए मैंने यह सोचा कि यदि कोई शाला में मेट्रीक (प्रवेशिका) के वर्ग में अंगरेजी सीखाने का कोई काम मिले तो वह करना चाहिए। उससे कुछ पेट तो भरेगा!

मैंने समाचारपत्रों में विज्ञापन देखना शुरू किया। "चाहिए, एक अंगरेजी शिक्षक, रोज एक घण्टा, वेतन ७५)" यह एक प्रसिद्ध हाइस्कूल का विज्ञापन था। मैंने अरजी की, मुझे खुद जा कर मिल आने की आज्ञा हुई। मैं बडे उत्साह के साथ गया। परन्तु जब आचार्य को यह मालूम हुआ कि मैं बी. ए. पास नहीं हूं तब उसने 'बडे शोक के साथ' मुझे बिदा कर दिया। "परन्तु मैंने लण्डन की मेट्रीक्युलेशन परीक्षा पास की है। लेटिन मेरी दूसरी भाषा थी।"

"यह तो सच है, परन्तु यहां तो ग्रेज्युएट की आवश्यकता है।"

मैं लाचार हो गया! मेरे सब प्रयत्न निष्फल हुए। बडे भाई को भी अब चिन्ता होने लगी। हम दोनों ने अब यह सोचा कि बम्बई में रह कर कालक्षेप करना निरर्थक है मुझे राजकोट ही में स्थिर हो कर रहना चाहिए। बडे भाई भी एक छोटे से वकील थे। वे मुझे कुछ न कुछ अरजी लिखने का या ऐसा कोई काम दे सकते थे। और राजकोट में घर का खर्च तो था ही। इसलिए बम्बई का खर्च निकाल देने से बहुत कुछ बचत हो सकती थी। मुझे यह सूचना पसंद आई और बम्बई का घर कुल ६ महीने रहने के बाद उठा दिया गया।

जबतक मैं बम्बई में रहा तबतक रोजाना मैं हाईकोर्ट में जाता था। परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि वहां मैंने कुछ सीखा भी था। सीखने जितनी मुझ में बुद्धि ही न थी। कितनी ही मरतबा जब मुकदमा कुछ भी समझ में नहीं आता था और उसमें दिलचस्पी नहीं मालूम होती थी तब मुझे नींद आने लगती थी। दूसरे भी इस प्रकार नींद लेनेवाले मित्र मिल गये थे, इससे मेरा लज्जा का बोझ हलका हो गया था। मैं यह भी समझने लगा था कि हाईकोर्ट में बैठे बैठे नींद लेने को भी फैशन में शुमार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है। इससे तो लज्जा का कोई कारण ही नहीं रहा।

इस जमाने में भी बम्बई में यदि मेरे जैसे बेकार बारीस्टर हों तो उनके लिए मैं यहां पर अपने एक छोटे से अनुभव का उल्लेख करता हूं।

मकान गीरगाम में रक्खा था फिर भी मैं शायद ही कभी गाडीभाडा खर्च करता था। ट्राम में भी शायद ही कभी बैठता था। गीरगाम से नियमपूर्वक बहुधा पैदल ही जाता था। उसमें ठीक ४५ मिनट लगते थे। और मैं लौटते वक्त भी पैदल ही आता था। दिन में धूप लगती थी परन्तु उसे सहन करने की शक्ति प्राप्त कर ली थी। इससे मैंने ठीक रकम की और यद्यपि मेरे साथी लोग कभी कभी बीमार हो जाते थे परन्तु मुझे तो यह याद नहीं पडता कि बम्बई में मैं कभी एक दिन के लिए भी बीमार पडा होऊं। जब मैं कमाने लगा तब भी इस प्रकार पैदल आफीस जाने की आदत को मैंने कायम रक्खा था और उसका लाभ आज भी मैं उठा रहा हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

असहयोग और राष्ट्रीय शिक्षा

'नवजीवन' के एक पाठक इस प्रकार लिखते हैं।

"अभी कुछ समय से 'नवजीवन' में 'शिक्षा' के विषय पर बहुत ही कम लिखा हुआ होता है और इसलिए लोगों के दिलों में यह खयाल दृढ हो गया है कि आपने 'शिक्षा' से सम्बन्ध रखनेवाली असहयोग की नीति का त्याग किया है और विद्यापीठ में अब शिक्षा की दृष्टि से कोई काम नहीं हो रहा है।

महाविद्यालय के लिए उचित सुधारों की सूचना करने के लिए नियुक्त किये हुए कमिशन के अध्यक्ष बनने के लिए श्री आनन्दशंकर ध्रुव को पसंद किया गया इसलिए कुछ लोगों का यह कहना है कि काशी के सरकार से सम्बन्ध रखनेवाले विद्यापीठ के आचार्य गुजरात के असहयोगी विद्यापीठ के काम करनेवाले मण्डल के अध्यक्ष बने इससे यह साबित होता है कि असहयोगी और स्वयं गांधीजी भी असहयोग को छोड कर पीछे हट रहे हैं। इस दलील का समर्थन करते हुए कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि असहयोग के सब अंग अब ढीले से पड गये हैं और बडे बडे नेता भी उनकी श्रद्धा कम हो जाने के कारण एक के बाद एक उसका त्याग कर रहे हैं। इसलिए विद्यापीठ जैसी संस्था को चला कर राष्ट्र-धन को बरबाद करने में और 'शिक्षा' विभाग में काम करनेवाले गुजरातियों को उसमें लगाये रखने से व्यर्थ नुकसान ही होता है। और यह भी तो कहा जाता है कि अब थोडे ही समय में सरकार के तरफ से गुजरात के लिए एक नया विद्यापीठ खोला जानेवाला है और गुजरात में 'शिक्षा' के विषय में दिलचस्पी रखनेवाले इस नयी विद्यापीठ के साथ सहयोग कर के उसमें जो सुधार वे कराना चाहते हों करा सकते हैं। इसलिए यदि स्वतंत्र विचार के और शिक्षा के क्षेत्र में काम करनेवाले गुजराती असहयोग की हलचल में व्यर्थ पडे रहेंगे तो गुजरात के नये सरकारी विद्यापीठ में अच्छे योग्य मनुष्य काफी तादाद में न मिल सकेंगे और जो थोडे बहुत मनुष्य उस संस्था में काम करने के लिए बाहर आवेंगे वे हमारी परिस्थिति के अनुकूल शिक्षा के उचित आदर्श को स्थापित कर सकेंगे या नहीं इसमें सन्देह है। इसलिए यह आवश्यक मालूम होता है कि जहांतक शिक्षा से सम्बन्ध है असहयोग को छोड कर राष्ट्र की आवश्यकताओं को सरकारी और दूसरी संस्थाओं में दाखिल करना चाहिए। इन दलीलों का उत्तर देंगे?"

असहयोग के किसी भी अंग के विषय में मैं जरा भी ढीला नहीं हुआ हूं। शिक्षा के सम्बन्ध में १९२०-२१ में मेरे जो विचार थे आज भी हैं और यदि मुझमें विद्यार्थियों को और उनके अभिभावकों को समझाने की शक्ति होती तो आज एक भी

विद्यार्थी सरकारी शाला में नहीं रह सकता था । 'नवजीवन' में बार बार इस विषय की चर्चा नहीं की जाती है तो उसका कारण यह है कि अब व्याख्यानों से और लेखों से समझा कर शालाओं का त्याग कराना कर्तव्य नहीं रहा है । अब तो जो शालायें असहयोग पर कायम है उनका पोषण करना ही कर्तव्य है । मुझे बड़े दुःख के साथ इस बात का स्वीकार करना चाहिए कि असहयोगी शिक्षा की प्रवृत्ति में खादी की तरह कोई प्रगति नहीं हो रही है । संख्या की दृष्टि से तो उसमें भाटा आ रहा है । प्रसंगानुसार उसका उल्लेख करने में भी मुझे कोई संकोच नहीं होता है परन्तु हमेशा उसका उल्लेख करने की तो कोई आवश्यकता नहीं होती । परन्तु उसमें ऐसा भाटा आने पर भी मुझे कोई भय नहीं हो रहा है । यदि हम अपनी श्रद्धा को न छोड़ेंगे तो इस भाटे के बाद ज्वार का आना भी निश्चित ही है। आज जो शाला और विद्यालय असहयोग पर दृढ़ हैं वे उस पर शुद्ध भाव से दृढ़ बने रहें और असहयोग के तत्त्वों को जरा भी ढीला न होने दें तो परिणाम में कुशल ही होगा । यह मेरा दृढ़ विश्वास है । मैं यह जानता हूं कि प्रोप्रायटरी हाईस्कूल पर बादल मंडरा रहे हैं । उसे छोड़ कर कितने ही शिक्षक और विद्यार्थी भी चल दिये हैं । लेकिन उससे हुआ क्या ? अब असहयोग का कार्य कोई टेक्नीकेलिटी से नहीं करना है और न कोई पालिसी (नीति) अथवा युक्ति के वश हो कर ही करना है । जो लोग दृढ़ असहयोगी हैं वे अपने आत्मविश्वास के बल पर ही आधार रखते हैं । यह संभव है कि उन्हें और भी अधिक कठिन समय में से गुजरना होगा । परन्तु यदि ऐसा हो तो जिस प्रकार सोने की परीक्षा अग्नि में जलने पर अधिकाधिक होती जाती है उसी प्रकार असहयोगियों की भी भले ही परीक्षा हो । आखिर तक जो दृढ़ रहेंगे वे ही सच्चे असहयोगी गिने जायेंगे, फिर चाहे वह एक हो या अनेक, परन्तु उन्हीं के द्वारा स्वराज प्राप्त किया जा सकेगा । सरदार शार्दूलसिंग ने पंजाब में व्याख्यान देते हुए अभी जो कहा है वह सच है । शेर और बकरी में सहयोग हो ही नहीं सकता है । सहयोग यदि अपने समान वर्ग के मनुष्यों से किया जाय तो वह शोभा दे सकता है । वर्तमान स्थिति में सरकार के साथ लोगों के किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को सहयोग मानना उस शब्द का दुरुपयोग करना है । जब हम शक्ति प्राप्त करेंगे और अपनी शर्तों का उनसे पालन करा सकेंगे तब आप ही सहयोग हो जायगा और वह शोभा भी देगा ।

परन्तु असहयोग के सम्बन्ध में आज भी गलतफहमी होती है इससे यह सूचित होता है कि हम अब भी असहयोग के स्वरूप को जान नहीं सके हैं । हमारा असहयोग राक्षसी, अशान्त विनय से हीन अथवा द्वेषयुक्त नहीं है । शान्त असहयोग में किसी के भी प्रति तिरस्कार के लिए स्थान नहीं होता है । आनन्दशंकर भाई के ज्ञान का या शक्ति का उपयोग विद्यापीठ के कार्य के लिए किया जाय तो उसमें असहयोग को जरा भी हानि नहीं पहुंचती है । उन्हें विद्यापीठ के कमिशन का अध्यक्ष बना कर हमने सरकार के साथ किसी भी प्रकार से सहयोग नहीं किया है । बात तो यह है कि उन्हें अध्यक्ष बनने का निमन्त्रण दे कर विद्यापीठ आज आदर का विषय बना है यही नहीं उसने असहयोग का शुद्ध स्वरूप सिद्ध किया है । क्योंकि शान्त असहयोगी को किसी भी व्यक्ति के प्रति कोई तिरस्कार ही नहीं हो सकता है । वाइसराय में भी मनुष्य के जो गुण हों उनका उपयोग — यदि उसमें उनकी उपाधि का उपयोग न हो तो — हमें अवश्य करना चाहिए । यदि हम ऐसा न करें तो असहयोगी की हैसियत से मूर्ख ही गिने जावेंगे ।

विद्यापीठ जैसी संस्था चला कर हम राष्ट्र के धन का दुरुपयोग नहीं करते हैं परन्तु सदुपयोग करते हैं । जो असहयोग को पाप समझते हैं उनकी दृष्टि का यहां कोई विचार नहीं हो रहा है । विद्यापीठ को दान देनेवाले असहयोग के सिद्धान्तों का स्वीकार करनेवाले लोग ही हैं । उनके धन का शिक्षा के इस महान प्रयोग में उपयोग हो रहा है यह कोई व्यर्थ व्यय नहीं हो रहा है । हां, इतना अवश्य होना चाहिए कि ज्यों ज्यों संख्या में कमी होती जाय त्यों त्यों शिक्षकों के और विद्यार्थियों के चारित्र्यबल में वृद्धि होनी चाहिए । तभी राष्ट्र के धन का अच्छा उपयोग हुआ गिना जा सकेगा । सरकार के तरफ से खोला जानेवाला विद्यापीठ यदि हमारे अध्यापकों को खींच ले जायगा तो मैं यह समझूंगा कि वे असहयोग के उपासक न थे । सरकार के तरफ से निकलनेवाला विद्यापीठ हमें हमारे कर्तव्य के प्रति अधिक दृढ़ और सचेत बनावें । उसमें धनलाभ या मानलाभ भले ही हो परन्तु मैं यह जानता हूं कि वह स्वराज्य का मार्ग नहीं है । यहां भले ही गरीबी हो, भले ही निंदा हो, फिर भी यहां तो पद पद पर हम स्वराज को नजदीक ला रहे हैं और मैं अपने इस विश्वास का त्याग नहीं कर सकता हूं ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अप्रेल के अंक

अप्रेल के महीने के खादी की उत्पत्ति और बिक्री के अंक नीचे दिये गये हैं:

प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्री
अजमेर	१२०५)	३२१७)
आन्ध्र	९,४६५)	१९,५५२)
बिहार	२०,९१७)	१५,६९८)
बम्बई		४४,४९८)
बरमा		३,००९)
देहली	८०१)	१,८६८)
करनाटक	२,५९३)	८,४३६)
केरल	३१७)	१,३०८)
उत्तर महाराष्ट्र	१,५४९)	९,१३४)
मध्य महाराष्ट्र	२५६)	७,९५५)
दक्षिण महाराष्ट्र		२,११२)
पंजाब	५,७००)	१४,६२५)
तामिलनाड	४३,९७३)	६२,२५७)
संयुक्त प्रान्त	५,७५८)	१४,९३९)
कुल	९२,५४२)	२०९,०८८)

आंध्र के अंक अपूर्ण हैं और कुछ अंशों में कर्णाटक के अंक भी अपूर्ण हैं । बम्बई के अंकों में अ. भा. खादी भण्डार, चरखासंघ भण्डार और सेन्डहर्स्ट रोड की खादी की दूकान के ही अंक हैं । मैं यह चाहता हूं कि हम सब प्रान्तों के सम्पूर्ण अंक देने में समर्थ हों ।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, ज्येष्ठ वदी ७, संवत् १९८२

कुटिल कानून

दक्षिण आफ्रिका के रंगद्वेषी कानून पर लार्ड बर्कनहेड ने अपनी राय जाहिर की है। उन्होंने उसे आशिर्वाद दिया है। मैं तो अपनी इस राय पर अब भी दृढ हूं कि जातिद्वेष के कानूनों में जुदे जुदे लोगों के लिए जुदे जुदे स्थान सुरक्षित रखने के कानून के बनिस्बत, जिस पर कि आगामी समिति में विचार होनेवाला है, यह कानून अधिक बुरा है। यह सम्भव है कि अभी थोडे समय के लिए अथवा कभी भी उसका एशिया-निवासियों के विरुद्ध प्रयोग न हो। यह भी सम्भव है कि वहां के मूल निवासियों के विरुद्ध भी बहुत सख्ती से उस पर अमल न किया जाय। परन्तु इस कानून पर जो आपत्ति उठाई गई है वह उसके मूल सिद्धान्त के कारण और उससे जो अनेक प्रकार की बुराइयां सम्भव हो सकती है उनके कारण उठाई गई है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उससे दक्षिण आफ्रिका के भारतीय-निवासियों में खलबली मच गई है और श्री एण्ड्रयुज ने उसके सम्बन्ध में ऐसे सख्त शब्दों का प्रयोग किया है। उस बिल के खिलाफ वहां के भारतीय-निवासियों को अपने सम्पूर्ण उत्साह के साथ बराबर हलचल करते रहना चाहिए और आगामी विचार समिति में अपना पक्ष पेश करने की पूरी तैयारी करनी चाहिए। वे अपना पक्ष कैसे भी क्यों न पेश करें वे इस रंगद्वेषी कानून के प्रति इशारा किये बिना नहीं रह सकते है क्योंकि इस एक कानून से दूसरे का भी अन्दाज लगाया जा सकता है। रंगद्वेषी कानून तो वहां के मूलनिवासी और भारतीय-निवासियों के सम्बन्ध में यूनियन सरकार की कुटिल नीति का द्योतक है। और रंगद्वेषी कानून के सम्बन्ध में सरकार की जो नीति हो उसके अनुसार ही जुदे जुदे लोगों के लिए जुदे जुदे स्थान सुरक्षित रखने के बिल पर हमें विचार करना चाहिए। उसको मुलतवी कर देने के यह मानी नहीं कि उस नीति में कोई परिवर्तन हुआ है। अधिक से अधिक उसका सिर्फ यही अर्थ हो सकता है कि वह पीडा कुछ दिनों के लिए मुलतवी कर दी गई है। इसलिए जिन्हें इस विकट प्रश्न से दिलचस्पी हो उन्हें चाहिए कि वे पूर्ण सावधान रहें। अबतक जितना कार्य किया गया है सब विनाशात्मक है। अधिक कठिन रचनात्मक कार्य का तो अब आरम्भ हुआ है। परन्तु भारत सरकार की नीति पर बहुत कुछ आधार रहता है। अबतक वहां के भारतीय-निवासी दुर्बल हैं तबतक तो स्थिति सब उसी के अधिकार में है। जब वे समर्थ होंगे तब वे अपना भविष्य आप बना सकेंगे।

लेकिन मुझे इस बात का उल्लेख करते हुए बडा दुख होता है कि श्री सैयद रजाअली का यह ख्याल है कि भारत में रंगद्वेषी कानून का कोई विरोध नहीं होना चाहिए। यद्यपि वे आरंभ में यह कहते है कि वह कानून भारतीयों के खिलाफ नहीं बना है फिर भी उन्हें इस बात का तो स्वीकार करना ही पडता है कि इस बिल से सरकार को वह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि जिससे यदि उसे आवश्यक मालूम हो तो भारतीयों के विरुद्ध भी वह उसका उपयोग कर सके। तब उन्हें श्री एण्ड्रयुज के उसका विरोध करने पर क्यों आश्चर्य होता है? सैयद साहब को यह भी मालूम होना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिका के भारतीय-निवासियों में इस बिल के कारण बडी खलबली मच गई है। अभी ही मिले हुए एक तार में दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों की महासभा के मन्त्री लिखते हैं:

"विश्वास है कि आपने रंगद्वेषी कानून का दृढ विरोध किया होगा क्योंकि उसे अबतक शाही मंजूरी नहीं मिली है।"

यदि यह आशा रक्खी जाय कि श्री एण्ड्रयुज हम भारतीयों के तरफ से अपनी आवाज उठावें तो वे इस मनुष्यत्व से हीन कानून पर जो कि दक्षिण आफ्रिका के मूल निवासियों के लिए खास कर बनाया गया है अवश्य ही आपत्ति उठावेंगे। संसार के एक नागरिक की हैसियत से वे हमलोगों में शामिल हुए हैं, हमारे किसी खास गुण के कारण नहीं। परन्तु उनके इस प्रकार दखल करने का कारण यहां कोई चर्चा का विषय नहीं है। चर्चास्पद विषय जो सैयद साहब ने उठाया है वह यह है कि हमें उस बिल का विरोध करना चाहिए या नहीं। हमलोगों ने उसका सदा विरोध ही किया है। दक्षिण आफ्रिका के प्रवासी भारतियों ने भी उसका विरोध किया है और अब विचार समिति का जो निश्चय हुआ है उससे भी, उसका विरोध न करने के लिए हम बाध्य नहीं हुए हैं। उसका विरोध न करने की कोई गर्भित शर्त भी नहीं थी — और हो भी नहीं सकती है। इन दो कानूनों का भेद हम दिखा सकते हैं जैसा कि हमने किया भी है। रंगद्वेषी कानून हमलोगों के लिए परिणाम में उतना भयंकर नहीं है जितना कि वर्णानुसार स्थान सुरक्षित रखने का कानून और इसीलिए भारतीय प्रतिनिधि मण्डल ने और जनता ने उस पर ही अधिक जोर दिया था। परन्तु दूसरा कानून मुलतवी किया गया है इसलिए हम पहले कानून का विरोध करना नहीं छोड सकते हैं।

इस चर्चा में जनरल हर्टजोग की प्रामाणिकता और शुभेच्छा का विचार करना उचित नहीं है। जनरल हर्टजोग दक्षिण आफ्रिका के कोई सर्वशक्तिमान राजा नहीं है। वे उसके सदा के नेता नहीं हो सकते हैं। आज जो स्थिति जनरल स्मट्स की है वह कल उनकी भी हो सकती है। सरकार के ऐसी इकरार का ही कुछ मूल्य हो सकता है, यद्यपि हमने तो खुद अपनी हानि उठा कर के इस बात का भी अनुभव किया है कि यदि मौके पर आवश्यकता हुई तो ऐसी इकरार भी कूडा समझ कर फेंक दिया जा सकता है। जिस कानून का विरोध करना हमारा कर्तव्य है, उसका विरोध करने से आगामी समिति को कोई भय नहीं हो सकता है। समिति का वायुमण्डल निश्चित रूप से शान्त बनाये रखने के लिए जो करना आवश्यक है वह यह है कि हमें अतिशयोक्ति नहीं करनी चाहिए, किसी पर व्यर्थ दोष नहीं लगाना चाहिए, कितना ही दुःखद विषय क्यों न हो उसकी चर्चा करते समय कठोर भाषा का प्रयोग न करना चाहिए। इससे भी आगे और कुछ जाना तो स्वतन्त्र और स्वाभ्य टीका करने के और निर्णय करने के अपने अधिकार का त्याग कर देना है। यह करने में जो चीज हाथ को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा उसके मुकाबले में उसकी कीमत ही कहीं अधिक होगी।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खतम हो गई है। अब जितने आर्डर मिलते हैं दर्ज कर लिए जाते हैं। आर्डर भेजनेवालों को जबतक छट्ठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तबतक धैर्य रखना होगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

‘ रिद्धिसिद्धि की जननी ’ गायमाता

(३)

[इतना उपोद्घात लिख कर मि० हेड्न विषय के मध्य में प्रवेश करते हैं: हे० ना०]

हमारे घर के आंगन में एक ही गाय हो, अथवा खेत पर तीन चार गायें हों, अथवा बीस या चालीस गायों का धन हो, परन्तु हमें अधिक से अधिक और अच्छे से अच्छा दूध और मक्खन मिलना चाहिए और उसके लिए हमारे पास अच्छी आलिशान गायें होनी चाहिए, गायों को अच्छा खाना देना चाहिए, उनकी अच्छी हिफाजत करनी चाहिए और दूध वगैरे की उत्तम व्यवस्था करनी चाहिए ।

अच्छी आलिशान गायें कैसे प्राप्त हों ?

गौओं को प्राप्त करने के दो मार्ग हैं । (१) खरीद कर लेनी; पड़ोसी से भी गाय खरीद करने में मन में सन्देह रहता है (२) पाल-पोस कर तैयार करनी, हमारी आंखों के सामने उनका जन्म हो और हम उन्हें पाल-पोस कर बड़ी करें तो उसके सम्बन्ध की हरएक बात का हमें ज्ञान होगा ।

जिसे गोकुल (डेरी) की स्थापना करनी हो और अपने पास एक भी गाय न हो उसे प्रथम तो गायें खरीद ही करनी होंगी । परन्तु हमेशा खरीद पर आधार रखनेवालों को शायद ही कोई लाभ होता है । सामान्यतया अच्छी गायें तो बिकने को ही नहीं आती हैं । उत्तम गाय प्राप्त करने का उत्तम और सस्ता मार्ग यही है कि हम उसे पाल-पोस कर बड़ी करें ।

गोकुल (डेरी) की स्थापना करने के लिए गायें लें तो जो उत्तम से उत्तम गायें मिले वही खरीदें ।

दुर्बल गाय की ७५ डालर या उससे भी कम कीमत देने के बनिस्बत अच्छी गाय के १५० डालर देना कहीं अधिक अच्छा है । अच्छी गाय के दूध और बछड़ा-बछड़ियों से पहले वर्ष में ही कीमत का फर्क वसूल हो जायगा । और इसके अलावा वह आगे भी बराबर लाभ पहुंचाती रहेगी । परन्तु दुर्बल गाय को जितना अधिक पास रक्खेंगे उतनी ही अधिक दरिद्रता उससे हमें प्राप्त होगी । हमारे पास यदि सामान्य गायें हों और हम अच्छी गायें न ले सकते हों तो जैसी भी गायें हमारे पास हों हमें उनकी हिफाजत करनी चाहिए । उससे वे अपनी शक्ति के अनुसार हमें लाभ पहुंचावेंगी और उसे अच्छा सांढ दिखावेंगे तो उनकी बछिया अपनी माता से अधिक अच्छी होगी; इस प्रकार हमें आरम्भ करना चाहिए ।

दुर्बल और कम दूधवाली गायों से गोकुल की स्थापना करें तो अच्छी गायों का धन बनाने के लिए बहुत समय बीत जायगा और बड़ी धीरज रखना होगी । परन्तु अच्छे सांढ के सतत उपयोग करने से चाहे कैसी दुर्बल गायों से भी, गायों का अच्छा धन तैयार किया जा सकता है । एक गाय साल में ३,८७० सेर दूध और १९३ सेर मक्खन देती थी परन्तु उसकी बछिया की बछिया गाय बन कर ११,८०४ सेर दूध और ४८३ सेर मक्खन देने लगी थी । जब गायें अच्छी नहीं होती हैं तब अच्छे आलिशान सांढ का मूल्य लगभग ½ गायों के धन के बराबर होता है ।

अच्छी बुरी गाय कैसे पहचानी जाय ?

गाय की परीक्षा दो तरह से होती है: (१) उसका दूध तौलना चाहिए, बल्कि दूध के उसे रोज लिख लेना चाहिए, उसके दूध में मक्खन कितना है उसका हिसाब रखना चाहिए और कितना खाना खाती है उसका भी हिसाब रखना चाहिए । अर्थात खाने के हिसाब से वह दूध देती है या नहीं यह देखना चाहिए । इस प्रकार पूरी जांच हो सकती है ।

बहुत सी गायों के विषय में ऐसी बातों का सम्पूर्ण उल्लेख नहीं होता है इसलिए अच्छी गायें ढूंढ निकालने के लिए दूसरे प्रकार का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है ।

(२) गाय की परीक्षा करनी चाहिए उसकी अमुक आकृति और लक्षण पर से वह अच्छी है या नहीं उसका निर्णय करना चाहिए । आकृति और देखने में कितने ही शुभ चिह्न होते हैं, जो हमेशा अधिक दूध देनेवाली गायों में ही पाये जाते हैं ।

[यह संभव है कि अमेरिका में जो सुचिह्न गिना जा सकता है वह यहां कभी कुचिह्न भी गिना जा सकता है । फिर भी तुलना के लिए अमेरिकन सुचिह्नों का उपयोग किया जा सकता है ।]

सुलक्षणी गाय कौन होगी ?

कभी कभी बहुत ही थोड़े सुचिह्नवाली गाय बहुत दूध देनेवाली होती है और लगभग सभी सुचिह्न रखनेवाली गाय बहुत कम दूध देती है । परन्तु नीचे बताये गये सुचिह्न अक्सर बहुतेरी अच्छा दूध देनेवाली गायों में होते हैं, इसलिए गाय खरीदने के समय जितने भी हो सके सुचिह्न प्राप्त करने चाहिए । यद्यपि अन्त में गायों का मूल्य ठहराने में निश्चयात्मक साधन एक ही है और वह दूध और उसके खाने के तोल का हिसाब है ।

अच्छी गाय का साधारणतया अच्छा खूबसूरत सिर तथा गरदन और प्रकाशमान आंखें होती हैं । उसका पेट बड़ा होता है, और इसलिए वह खाना बहुत खा सकती है । उसका कमर का ढांचा चौड़ा होता है और थन बड़ा होता है ।

गाय की आंखें जड़ हों, सर की आकृति का कोई ठिकाना न हो, गरदन मोटी हो, शरीर दुबला पतला हो, थन छोटा हो, खड़ी पीठ हो, कमर का ढांचा सँकड़ा हो और अगले पीछले पैर आपस में मिल से गये हों तो उसे दुर्बल गाय समझना चाहिए ।

अच्छी गाय की आंखों में प्रकाश होता है, नाक चौड़ा और उसके छेद बड़े होते हैं । उससे वह अच्छी तरह से हवा ले सकती है, मुंह बड़ा होता है जो सामान्यतया अधिक आहार का सूचक है, जबड़ा मजबूत होता है, उससे वह खाना अच्छी तरह से चबा कर उसका दूध बनाती है । कान और चमड़ा मखमल सा मुलायम होता है और कान के अंदर पीला मोम सा पदार्थ होता है ।

दुर्बल गाय की आंखें मंद, नाक पतला, नाक के छेद छोटे, मुंह छोटा, और जबड़ा दुर्बल होता है । बड़ा बेडौल सिर कम दूध के होने का सूचक है, यद्यपि कभी कभी तो अच्छा दूध देनेवाली गाय का सिर भी बड़ा और बेडौल होता है ।

गाय के पैर खूब अलग अलग होने चाहिए ताकि बीच में मजबूत छाती के लिए काफी जगह हो । अगले पैर मिले हुए हों तो छाती और हृदय के लिए जितनी चाहिए उतनी जगह नहीं रहती है ।

अच्छी गाय के शरीर का घेरा बड़ा होता है उसकी पसलियें बाहर के तरफ निकली हुई होती है और पेट बड़ा होता है । दुर्बल गाय का घेरा छोटा, पसलियां चौड़ी और पेट छोटा होता है । अच्छी गाय की गरदन खूबसूरत, कुछ पतली और ऊपर के तरफ जरा झुकी हुई होती है । जिसकी मोटी बेडौल गरदन हो वह संभव है कि निराशा उत्पन्न करे ।

गाय की पीठ कंधे से ले कर पूंछ के मूल तक सीधी होनी चाहिए और बड़ा पेट उसमें रह सके उतनी लंबी होनी चाहिए। किसी अच्छी गाय को नीचे झुकी हुई पीठ होती है परन्तु वह निर्बलता की सूचक है। पीठ की ऊर्ध्वरेखा एक बाजू से देखने मे सीधी और लंबी होनी चाहिए। पीठ छोटी और ऊंची होती है तो साधारणतया थन भी अच्छे नहीं होते हैं।

कितनी ही अच्छी गायों को कंधे के ऊपर का भाग नुकीला होता है। परन्तु यह हिस्सा गोल होने के कारण ही गाय को नहीं निकाल दी जा सकती है।

बहुतसी अच्छी गायों के पीठ की हड्डियां बाहर निकली हुई और अलग अलग और कटिप्रदेश समान और विशाल होता है। पसलियों में इतना अन्तर रहता है कि उसके बीच में दो तीन अंगलियां तक रक्खी जा सकती हैं। चमड़ा मुलायम होना चाहिए। चमड़ा कठोर हो तो उससे शरीर में लहू की गति बराबर नहीं होती है अथवा कोई बीमारी है यह अनुमान किया जा सकता है।

अच्छी गाय का कमर का ढांचा चौड़ा होता है और पीठ की अन्तिम हड्डी के बीच में भी खूब जगह रहती है। रान और पिछले पैर ठीक अलग अलग होने चाहिए जिसमें बड़े थनों के लिए अवकाश रहता है।

थन बड़ा, चिकना और आगे झुका हुआ होना चाहिए उसका नीचे का भाग समानरूप से लटकता रहना चाहिए और वह ठीक रान की ओर ऊंचे की तरफ जाना चाहिए। झुका हुआ थन साफ नहीं रहता है और उससे उसको नुकसान होना भी सम्भव हो सकता है। अच्छी गायों को भी कभी ऐसा थन होता है परन्तु वह अच्छा नहीं है।

आंचल एक दूसरे से समान अन्तर पर और आसानी से दूहे जा सके इतने बड़े होने चाहिए। ऐसा न हो कि दो आंचल बड़े और दो छोटे हो। छोटे आंचल दूहने मे बड़ी तकलीफ देते हैं। बुरी आकृतिवाले और नुकीले आंचलों में बहुत दूध नहीं रह सकता है। थन के सिरे पर बड़ी और बाहर दिखाई देनेवाली नस होनी चाहिए। इसमें हो कर जो लहू बहता है उस पर दूध के परिमाण का आधार होता है। गाय को दुह कर के उसका थन और आंचल कैसे हैं यह मालूम कर लेना चाहिए।

सब गायें यदि एक ही प्रकार की हो तब तो ठीक है, गायों का थन दिखने में भी अच्छा मालूम होगा। बछड़े बछिया भी एक से होंगे, हम उनकी ज्यादा फिक्र करेंगे, अधिक हिफाजत करेंगे और उनसे अधिक लाभ उठावेंगे।

उम्र मालूम करने के लिए दांत देखने चाहिए। बछिया को दो वर्ष पूरे होते ही उसके दूध के दो दांत टूट जाते हैं और उसके बदले दो स्थायी दांत आते हैं। तीन वर्ष पूरे होने पर दूसरे दो बड़े दांत आते हैं इस प्रकार एक एक वर्ष के बाद दो दो दांत अधिक आते जाते हैं। पांच वर्ष पूरे होने पर सब बड़े दांत आ जाते हैं। उसके बाद दांत धीरे धीरे छोटे और कीलों के से होते जाते हैं।

अति सुकुमार और नाजुक गाय अच्छी नहीं होती। वह बेडौल तो न होनी चाहिए परन्तु मजबूत, हृष्टपुष्ट और बहुत सा खाना खा कर उसका दूध बनाने के लिए शक्तिशाली होनी चाहिए।

पशुवध

उसके कारण और उपाय

(३)

पहले और दूसरे अध्याय मे चमड़े, लहू, सींग और हड्डियां इत्यादि चीजों पर विचार किया गया है। चरबी का उपयोग और दुरुपयोग इतना महत्व रखता है कि उसका विचार इस अध्याय में करना आवश्यक है। अन्त में सुखाये गये मांस के व्यापार का भी थोड़ा सा विचार करेंगे।

चरबी से साबुन, मोमबत्ती और ग्लीसरीन बनाया जाता है। नीतिहीन व्यापारी अच्छी चरबी को घी के साथ मिला देते हैं। हलके प्रकार की चरबी का गाड़ियां भर भर के मिलों में कपड़ों पर चढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है। कुछ मिल मालिक तो चरबी के बदले निर्दोष वस्तुओं का भी उपयोग करते हैं। जैन वैष्णव, हिन्दू नामधारी हरएक मिलमालिक उनका अनुकरण करेगे? क्या हम उनसे यह आशा भी नहीं रख सकते हैं? १९१६-१७ में टेलो, स्टीयरिन इत्यादि १०,००० मन पदार्थ मिलों को भेजे गये थे।

पंजाब सरकार ने १९१० में उस प्रान्त के ढोर और दूध के व्यापार के विषय पर अपना एक बयान प्रकाशित किया है, उसमें लिखा गया है कि "पं. में बहुत कुछ मिलावट होती है और देहली के पास की कुछ जगहों में तो घी, चरबी और दूसरे पदार्थ मिलाने का और उन्हें नियमित रूप से बाहर भेजने का व्यापार हो रहा है।"

पंजाब प्रान्त के ढोरों के सम्बन्ध में मि. [illegible] लिखी है। उसमें वे कहते हैं: "सामान्य तौर पर यह कहा जाता है कि छोटा व्यापारी जब घी इकट्ठा करता है तब वह उसका चार डिब्बे से छः डिब्बा घी बनाता है। इसी लिए वह घी में कुसुम्बी का तेल और पशुओं की चरबी का मिलाव करता है। व्यापारी माला लोगों से यह चरबी खरीदते हैं। माला लोग ढोर के मृत शरीर से उसे प्राप्त करते हैं। यह कहा जाता है कि जितनी मरतबा घी एक के हाथ से दूसरे व्यापारी के हाथ में जाता है उतनी ही मरतबा उसके चार डिब्बों के ६ डिब्बे घी होता है और जब यह हाल है तब शुद्ध घी की बात निकलने पर सारे प्रान्त के लोग उसके लिए बड़ी लम्बी शिकायत करे तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हरएक जिले में घी की मिलावट और उसके महंगे होने की लोगों की शिकायत होती है...... साउथ इण्डियन रेल्वे के जनरल ट्राफिक मेनेजर उस रेल्वे की हद में सब जगहों में इसकी जांच करा कर कहते हैं कि करीब करीब सारी लाईन पर प्रसंगानुसार एक गांव से दूसरे गांव को थोड़ी थोड़ी चरबी भेजी जाती है और [illegible] कमाने इत्यादि काम में भी उपयोग किया जाता है परन्तु वे यह भी कहते है कि उसका एक उपयोग घी में मिलावट करने में भी होता है।

उसका भाव जुदे जुदे विभागों में प्रति पौंड दो [illegible] पाई से ले कर पांच आने तक का होता है।

दूध का उपयोग जैसे जैसे बढता जाता है वैसे [illegible] घी में अधिक मिलावट होती जायगी। एक विस (१ सेर [illegible] छटांक) घी बनाने के लिए जितना गाय का दूध होना आवश्यक है उतना दूध यदि ताजा ही बेच डाला जाय तो उसके [illegible]॥) उत्पन्न होंगे। इतने दूध का मक्खन बनाने पर छास के [illegible] ५॥) का मक्खन तैयार होगा और आज सब जगह घी की महंगाई की

शिकायत हो रही है उस समय भी एक डिब्बे घी का २॥) से अधिक कुछ नहीं मिलता है ।

घी बनानेवाले जिलों में आज भी बहुत सा अच्छा घी प्राप्त हो सकता है परन्तु व्यापार की वर्तमान दशा में वह बड़े बड़े बाजारों में नहीं पहुंच सकता है, और अच्छे और बुरे घी का भाव एक है । यह देखते हुए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । जितनी ज्यादह मांग है उतना घी पहुंचाना हो तो घी में मिलावट का होना अनिवार्य है और सबलोग यदि इतनी ही बात समझ लें तो बहुत अच्छा हो क्योंकि ऐसा होने पर सहयोगी मण्डल और ऐसी दूसरी संस्थायें, आज घी में बिना नियम के, अनेक गन्दी चीजें मिलाई जाती हैं उसके बदले शुद्ध घी अथवा कोई हितकारक वनस्पति के तेल का उसमें मिश्रण कर के उसे बेचने का प्रबन्ध कर सकती हैं ।"

हमारे पूर्वज घी को आयुष्य की उपमा देते थे (आयु वै घृतम्) और घी दूध का प्रश्न हमारे यहां तो जीवन-मरण का प्रश्न है इसलिए हम पाठकों से यह प्रार्थना है कि वे १९१९ में [illegible] में भरी गई दूसरी अ० भा० आरोग्य परिषद के समक्ष रख गये "खाद्य पदार्थों में मिलावट" विषयक डा० नायर के निबन्ध से उद्धृत किये गये निम्न लिखित विभाग को बड़े धैर्य के साथ पढ़ें:

"[illegible] फेरीवाले मिलावट किये हुए घी का व्यापार करते हैं । वे हमेशा सर पर एक बरतन में मिलावट किया हुआ घी रखते हैं और हाथ में टीन के डिब्बे में नमूने [illegible] और इस प्रकार वे लोगों को दगा देते हैं । सामान्य तौर पर दोपहर को दस से तीन बजे के दरम्यान जब पुलिस [illegible] पर नहीं होता है वे दिखाई देते हैं ।

[illegible] चरबी, मुंगफली, और कुसुम्बी का तेल, केले और आलू की मिलावट की जाती है ।

[illegible] और उसके आसपास रहनेवाले चमार ढोरों को और खास [illegible] को मार कर उसकी चरबी व्यापारियों को बेचते हैं । चमार को इस में बड़ा लाभ होता है । ४० का पशु खरीदा हो तो उसकी चरबी, चमड़ा इत्यादि बेच कर वह ५०) कमाता है । इसलिए लोग पशुओं को कतल करने के लिए और व्यापारियों को चरबी देने के लिए सदा ही तत्पर रहते हैं । यह कहा जाता है कि एक भैंस से तीन डिब्बे चरबी निकलती है । इस प्रकार व्यापारी चमारों से चरबी खरीद कर अपनी दूकान में [illegible] के डिब्बे के पास उसका संग्रह करते हैं । [illegible] खुराक की जांच करनेवाले अधिकारी कहते हैं कि [illegible], कमलापुरम इत्यादि स्थानों में घी की दूकानों में उन्होंने चरबी के डिब्बे देखे हैं । कडपा जिले में जहां जहां घी बनता है वहां वहां कसाई की दुकानें अथवा चमड़े की आढ़त होती है । उससे जब चाहे तब व्यापारियों को चरबी मिलती है ।

कडपा में दो प्रकार का घी मिलता है । एक पतला और दूसरा गाढ़ा । पहले प्रकार के डिब्बे में ऊपर का भाग प्रवाही और नीचे का जमा हुआ होता है । प्रवाही पदार्थ कुसुम्बी का [illegible] होता है । और जमे हुए घी में चरबी और घी का मिश्रण होता है इसलिए प्रत्येक दुकान में यदि घी देखना चाहें तो व्यापारी डिब्बे में चम्मच चला कर नीचे से जमा हुआ घी निकाल कर दिखायेगा । दूसरे प्रकार के घी में चरबी और घी की ही मिलावट होती है । पहले प्रकार का घी दूसरे प्रकार के घी से कुछ महंगा होता है क्योंकि उसमें चरबी कम होती है और घी अधिक होता है ।"

सर जोन वुड्रोफ कलकत्ते में जब एक गोरक्षा-मण्डल के अध्यक्ष थे तब उन्होंने ईस्ट इन्डियन रेलवे के एजन्ट को खर्च के १००) दे कर जगह जगह से हावड़ा स्टेशन पर आनेवाले सुकाये गये मांस के अंक प्राप्त किये थे । १९१७ में १,५०,००० मन, १९१९ में १,७५,००० और १९२० में २,००,००० मन सुकाया गया मांस हावड़ा आया था । दो ढोरों की कतल करने पर १ मन सुकाया हुआ मांस प्राप्त होता है । इस हिसाब से २,००,००० मन मांस के लिए ४,००,००० ढोर की कतल करना चाहिए । ब्रह्मदेश के महसूल विभाग के अधिकारी से कलकत्ते की एक दूसरी गौरक्षण संस्थाने निम्न लिखित अंक हंडरवेट (५६ सेर) में प्राप्त किये थे ।

१९१७-१८	१९१८-१९	१९१९-२०
१,१९,३५२	१,५२,१८५	१,५७,०६२

१,५०,००० हंडरवेट = २,१०,००० मन । सुकाये हुए मांस के लिए कहा जाता है कि प्रतिवर्ष ४५ लाख ढोरों को कतल किया जाता है । १९१५-१६ में साढ़ेबाईस लाख रुपये का सूकाया हुआ मांस हिन्दुस्तान से ब्रह्मदेश भेजा गया था ।

(नवजीवन) वालजी गोविन्दजी देसाई

टिप्पणियां

अच्छा और बुरा

बरहामपुर म्युनिसिपल काउन्सील के उपाध्यक्ष अ० भा० चरखा-संघ को अपने पत्र में लिखते हैं:

"सिर्फ लड़कों की शालाओं में ५४ चरखे दाखिल किये गये हैं । प्रतिमास १० तोला सूत काता जाता है । कताई के शिक्षक को मासिक १५) वेतन दिया जाता है । हरएक शाला में प्रतिदिन ४० मिनट का एक घण्टा कताई के लिए दिया जाता है ।"

बरहामपुर म्युनिसिपल काउन्सील के अधिकार में लड़कों की शालाओं में चरखे को स्थान मिला है यह अच्छा ही हुआ है परन्तु यह बात बुरी है कि इतने चरखे होने पर भी इतना कम सूत काता जाता है । एक लड़का आधे घण्टे में आसानी से १० अंक का आधा तोला सूत कात सकता है । इससे ५४ चरखे से प्रतिदिन २६ तोला सूत तैयार हो सकता है । और एक महीने के २५ काम के दिनों में उस हिसाब से ६५० तोला सूत तैयार होगा । कताई का वह शिक्षक जो ५४ चरखे से प्रतिमास १० तोला सूत प्राप्त कर के ही सन्तोष मान लेता है, राष्ट्रीय धन में से प्रतिमास १५) वेतन पाने के योग्य नहीं है । मैं यह आशा करता हूं कि इन भेजे गये अंकों में कहीं भूल हुई होगी । क्योंकि एक चरखे के लिए भी तो १० तोला सूत बहुत ही कम मिकदार है । चरखे कोई शोभा के साधन तो हैं नहीं । वे तो धनोत्पादक यन्त्र हैं । और उसके मालिक का यह काम है कि वह उन्हें सुस्त न पड़े रहने दे । हरएक कताई के शिक्षक को इसमें अपनी इज्जत समझनी चाहिए कि जितना वेतन उसे दिया जाता है उसके मुकाबले में काफी सूत की उत्पत्ति का यकीन दिला कर के वह अपनी रोजी कमावें । और यह वह आसानी से कर सकता है यदि उसके पास एक बड़ा वर्ग हो और लड़कों के लिए रुई धुनकने का और पूनियां बनाने के काम में उसे कोई आपत्ति न हो । कताई की कला में लड़कों की दिलचस्पी बढ़ाने का और उसकी शिक्षा देने का यही उत्तम मार्ग है । यह स्मरण रखना चाहिए कि कताई में बिनौले निकालने और पूनियां बनाने का काम भी शामिल होता है । पूनियां बनाना और बिनौले निकालने का काम ऐसा है कि उससे कताई के बनिस्बत एक दिन में अधिक आमदनी होती है ।

अ० भा० गोरक्षा मण्डल

मन्त्री उनको प्राप्त निम्न लिखित सूत का स्वीकार करते हैं:

नं	सभासद का चन्दा		गज
	गुजरात ८-१-२०		
३५	मगनभाई डाह्याभाई	आविन्द्रा	२,०००
३६	मीराबहन	साबरमती	८,०००
३७	शंकरभाई भीखाभाई	स्यादला	१२,०००
	सिंध १		
३८	सेवकराम करमचन्द	पुराना सक्खर	२,०००
	आंध्र २		
३९	के. वी. नरसिंहराव	येर्नोल	२४,०००
४०	पी. यस. शास्त्री	मछताल	१७,०००
	बर्मा		
४१	मगनलालजी पुरुषोत्तम	प्रोम	१०,०००

नं ४, ६, ८, ९, ३२ और ३३ ने अनुक्रम से अपने अंक बढ़ा कर कुल २१,०००, २४,०००, १२,४००, ११,०००, २४,००० और २४,००० गज तक पहुंचा दिये हैं।

भेट

नाम	स्थान	गज
श्री अमृतलाल लल्लुभाई	अहमदाबाद	१,०००
,, छिम्मतलाल जमनादास	,,	१,०००
,, अमृतलाल जमनादास	,,	२,०००
,, बाबाभाई डाह्याभाई पटेल	सोजीत्रा	३,०००
,, गोविन्दलाल महीपतलाल ठाकोर	राजकोट	१,०००
,, एस. रामोला	बम्बई	१,०००
,, अब्दुलमजीद खैर	बरहामपुर	१,०००
,, बी. राघवैया	नेलोर	१,०००
,, राजाराम एम. गोन्दाह	मदुरा	१,०००
,, वी. सीताराम शास्त्री	गुन्टूर	५,०००
,, जी. वी. सुब्रह्मण्यम	,,	१,१२०
,, वी. गणपतिराव	,,	२,५००
,, वी. नरसिंहम्	,,	५००
,, वी. आप्पाराव	,,	६,०००
,, एस. वी. कृष्णैयागम	,,	१५,०००
,, सोनीराम पोद्दार	रंगून	लम्बाई नहीं मालूम
,, कैलासम सुब्रह्मण्यम्	कोयम्बेटूर	लम्बाई नहीं मालूम
,, ए. एन. सुब्बाराव	बेंगलोर	लम्बाई नहीं मालूम

नकद चन्दा और भेट की रकम कुल रु. ६१००-१५-० होते हैं और चन्दे में या भेट के तौर पर मिले हुए सूत की बिक्री से रु. २६-६-० मिले हैं। जो लोग भेट के तौर पर हाथकता सूत भेजते हैं उन्हें कृपा कर इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वे यदि उतनी ही मिहनत, जितनी कि वे करते हैं, अधिक ध्यान दे कर और कुशलतापूर्वक करेंगे तो वे अपने चन्दे की या भेट की कीमत दूनी बढ़ा सकेंगे। जो सूत मिला है वह बड़ी ही उदासीनता के साथ काता गया है। कुछ तो ऐसा है कि बाजार में उसकी कुछ भी कीमत उत्पन्न नहीं हो सकती है क्योंकि उससे खादी तैयार ही नहीं की जा सकती। उसका तो रस्सियां बनाने में या बहुत हुआ तो दरियां बनाने के काम में ही उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उदासीनता के साथ काते गये सूत की कीमत नाममात्र ही होगी। इसलिए जो लोग अ० भा० गोरक्षा-मण्डल को चन्दा या भेट के रूप में सूत भेजते हैं उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि कताई में वे जितनी भी उदासीनता दिखावेंगे, गौओं हक में उतना ही नुकसान होगा।

साधनवान बनो,

सत्याग्रहाश्रम के व्यवस्थापक मुझसे कहते हैं कि उनके पास तकली मंगानेवालों के इतने अधिक पत्र आये हैं कि वे उन सब को तकली भेजने में असमर्थ हैं। इतने लोग तकली मंगाते हैं यह बड़ा आरोग्यसूचक है। परन्तु यदि कताई एक कला है, और वह है, तो उसे मनुष्य को साधनसम्पन्न बनाना चाहिए। एक ही केन्द्र लाखों तकलियां बना कर नहीं दे सकता है। मुख्य केन्द्र से स्वतंत्र होना ही तो कताई का गुण है। जहांतक मुमकिन हो सके शीघ्र ही, किसी भी बात में किसी केन्द्र पर किसी को आधार न रखना पड़े ऐसी स्थिति उत्पन्न करना ही चरखासंघ का उद्देश है। आश्रम में तकलियां उन लोगों के लिए तैयार की जाती हैं जिनको कि उसका प्रयत्न करने के लिए प्रेरणा की आवश्यकता है। परन्तु यह ऐसा साधन है कि उसे हर शख्स हर जगह पर बना सकता है और उसे बनाना चाहिए। एक उत्तम तकली बनाने के लिए इतनी चीजों की आवश्यकता है: एक सूखी बांस की लकड़ी का टुकड़ा, टूटी हुई स्लेट-पट्टी का एक टुकड़ा, चाकू, छोटी सी हथोड़ी, रेती और यदि संभव हो तो एक कम्पास। बांस की लकड़ी से आधे घण्टे में एक तकली तैयार हो सकती है और वह फौलाद की तकली जैसा ही अच्छा काम देती है। जो इस कला को हस्तगत करे उसे उसकी युक्तियां भी जाननी चाहिए। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि कताई यह गरीबों की कला है, वह उनको शान्ति देनेवाली है और इसलिए उसके साधन भी गरीबों को आसानी से प्राप्त होने चाहिए। इसलिए हरएक लड़के और लड़की को अपनी तकली आप बना लेनी चाहिए। उन्हें अपने लिए तकली बनाने में आनन्द आवेगा और अपने हाथ से बनायी तकली पर कातने में तो और भी अधिक आनन्द आवेगा।

भारत सेवा समिति

पूना की भारत सेवा समिति (सर्वेंट आफ इण्डिया सोसायटी) के तरफ से मुझे प्रकाशनार्थ निम्न लिखित समाचार मिला है:

"कल दोपहर को पूना में कौवे वाड़े में आग लगी थी और उसमें आर्यभूषण और ज्ञानप्रकाश मुद्रणालय जिसमें ज्ञानप्रकाश और 'सर्वेन्ट आफ इण्डिया' छपते थे सर्वथा जल कर भस्म हो गये। वे दोनों पत्र भारत सेवा समिति के थे। और उसे इस आग से जो भयकर हानि हुई है उसके बाद जबतक वह अपनी स्थिति का विचार कर के उनके प्रकाशन के लिए फिर शक्तिशाली न होगी तबतक कुछ सप्ताहों के लिए उनका प्रकाशित होना संभव नहीं है। इसलिए हम आपके पत्र के जरिये अपने ग्राहकों से इस अनिवार्य बाधा के लिए क्षमा की याचना करते हैं।"

मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि ग्राहकगण दोनों पत्रिकाओं के प्रकाशन में जो अनिवार्य बाधा उपस्थित हुई है उसे अवश्य ही क्षमा करेंगे, यही नहीं, दोनों प्रेसों के नष्ट हो जाने से समिति को जो हानि हुई है अथवा यों कहो कि जनसमाज को जो हानि हुई है उसमें उसको ग्राहकों की और मेरे जैसे असंख्य मित्रों की सम्पूर्ण सहानुभूति भी प्राप्त होगी। मुझे आशा है कि 'सर्वेन्ट आफ इण्डिया', और 'ज्ञानप्रकाश' का प्रकाशन फिर से शीघ्र आरम्भ होगा।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में भी मुझे कुछ सुधार करने थे। बडे भाई के बच्चे थे और मैं भी अपना एक बालक छोड कर विलायत गया था। अब उसकी उम्र कोई चार वर्ष की हुई होगी। इन बालकों को व्यायाम कराना, उन्हें मजबूत बनाना और अपने ही सहवास में रखने का मैंने पहले ही से सोच रक्खा था। इसमें बडे भाई की सहानुभूति भी थी। इसमें मुझे थोडे बहुत अंशों में सफलता भी प्राप्त हुई। बालकों का समागम मुझे बडा ही प्रिय मालूम होता था और उनके साथ विनोद करने की आदत तो आज भी कायम है। मुझे तभी से यह प्रतीत होने लगा है कि बालकों का शिक्षक बन कर मैं शिक्षक को शोभा दे ऐसा अच्छा काम कर सकूंगा।

यह बात भी स्पष्ट मालूम होती थी कि भोजन के विषय में भी सुधार करने चाहिए। घर में चाय और काफी को स्थान प्राप्त हो चुका था। बडे भाई ने यह सोचा था कि भाई विलायत से लौटे उसके पहले विलायत की कुछ हवा तो घर में अवश्य ही प्रवेश करनी चाहिए। इसलिए चीनी के बरतन, चाय इत्यादि वस्तुओं का, जो पहले घर में इसलिए रखी जाती थीं कि दवा में या किसी सुधरे हुए महमान के लिए उनका उपयोग हो, अब आम तौर पर घर में सब के लिए उपयोग होने लगा। ऐसे वायुमण्डल में मैं अपने 'सुधार' ले कर आया। ओटमील पोरीज (राब) दाखिल की गई और चाय और काफी के बदले कोको दाखिल हुआ। परन्तु यह नाम मात्र का परिवर्तन था, इसमें सिर्फ यही हुआ कि चाय और काफी में कोको और शामिल हुआ। बूट और मोजे तो पहले ही से घर किये बैठे थे और मैंने पटलून के साथ घर को पावन किया!

इस प्रकार खर्च बढा था। नूतनता भी बढी थी। घर में मानों सफेद हाथी बांधा गया था। लेकिन इस खर्च के लिए रुपये कहां से आते? राजकोट में एकदम वकालत आरंभ कर देने में तो केवल हंसी होती। राजकोट में पास हुए वकीलों के सामने खडे होने के लिए जितना चाहिए उतना मुझे ज्ञान न था और उनसे दस गुनी फीस लेने का मैं दावा करता था! कौन मूर्ख मवक्किल मुझे अपना वकील बनाता? और यदि ऐसा कोई मूर्ख मिल भी जाते तो भी क्या मुझे मेरे अज्ञान में उद्धताई और दगा को जोड कर मेरे ऊपर संसार का करजा और अधिक बढाना चाहिए?

मेरे मित्रवर्ग ने मुझे यह सलाह दी कि मैं कुछ समय के लिए बम्बई जाऊं, वहां हाईकोर्ट का अनुभव प्राप्त करूं और हिन्दुस्तान के कानूनों का अभ्यास करूं। और वहां यदि कुछ वकालत हो सके तो मुझे वह भी करने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं बम्बई के लिए रवाना हुआ।

बम्बई आ कर मैंने अपना घर जमाया। एक रसोई बनानेवाले को रखा। वह भी मेरे ही जैसा था। ब्राह्मण था, मैंने उसे अपना नोकर समझ कर नहीं रखा था। यह ब्राह्मण नहाता था, परन्तु धोता न था। धोती मैली, जनेऊ मैला; और उसे शास्त्र का कुछ भी ज्ञान न था। मैं अधिक अच्छा रसोई बनानेवाला लाता भी तो कहां से लाता?

"क्यों रविशंकर, तुम्हें रसोई करना तो नहीं आता है, परन्तु संध्या इत्यादि के बारे में क्या कहते हो?"

"भाई साहब क्या कहें, सन्ध्यातर्पण सब हल, कुदाली और फावडे में ही समा जाता है। हम तो ऐसे ही बामन हैं। आप जैसे निभाते हैं और हमारा निभ जाता है, नहीं तो आखिर खेती तो है ही।"

मैं समझ गया, मुझे रविशंकर का शिक्षक बनना पडेगा। समय तो बहुत था। कुछ रसोई रविशंकर बनाता था तो कुछ मैं। विलायत के निरामिष खाद्य के प्रयोग यहां आरंभ किये। एक स्टव खरीद कर लिया। मैं कोई पंक्तिभेद तो रखता ही न था और रविशंकर को भी उसके लिए कोई आग्रह न था। इसलिए हमलोगों में अच्छा मेल हो सका था। केवल एक ही शर्त — अथवा यह कहो कि मुश्किल थी। रविशंकर ने मैल की दोस्ती त्याग करने के और रसोई साफ रखने के शपथ लिये थे।

परन्तु, बम्बई में मैं चार पांच महीने से अधिक नहीं रह सकता था, क्योंकि खर्च बढता जाता था और आमदनी कुछ भी नहीं थी।

इस प्रकार मैंने संसार में प्रवेश किया। बारीस्टरी मुझे बडी ही कठिन मालूम होने लगी। आडम्बर बहुत था और ज्ञान बहुत कम। उत्तरदायित्व का ख्याल मुझे कुचल रहा था।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

'रिद्धिसिद्धि की जननी' गायमाता

गाय को यह विशेषण किसी हिन्दू ने नहीं परन्तु मि. राल्फ हेइन नामक एक अमेरिकन ने दिया है। उन्होंने 'गो–पालन' के विषय पर एक छोटा सा पुस्तक लिखा है। अमेरिकन विद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिखाया है कि बहुत अल्प लेकर बहुत अधिक देनेवाली गाय के समान उपकारी पशु और दूसरा कोई नहीं है। इससे अमरिका में ज्यों ज्यों मनुष्यों की संख्या बढती जाती है त्यों त्यों दूसरे पशुओं की — हरएक की संख्या तो कम होती जाती है परन्तु गायों की संख्या तो बराबर बढ रही है।

मि. हेइन के पुस्तक के मुखपृष्ठ पर ये शब्द लिखे हुए हैं:—

"गाय मनुष्य जाति के लिए आशीर्वाद रूप है। उसके बिना किसी भी राष्ट्र में ऊंचे प्रकार की संस्कृति का विकास नहीं हो सका है। संसार में मनुष्य के लिए सब से उत्तम खुराक वह पैदा करती है। और वह आरोग्यजनक और शक्तिदायक खुराक वह घास और रूखेसूखे पौधों से बनाती है। वह अपने बच्चों के लिए और अपने पालक के कुटुम्ब के लिए काफी खुराक उत्पन्न करती है, यही नहीं, वह अधिक भी देती है, जिसे उसका पालक बेचता भी है। उसके बिना खेती स्थायी और हरी भरी नहीं होती है और न लोग रोगमुक्त और सुखी ही होते हैं। जहां लोग गायें रखते हैं और उनकी हिफाजत करते हैं वहां संस्कृति का विकास होता है, जमीन फलद्रुप बनती है, कुटुम्ब सुखी होते हैं और कर्ज घट जाता है। सत्य ही गाय रिद्धिसिद्धि की जननी है।"

इससे बढ कर कोई हिन्दू गाय का महिम्नः स्तोत्र और क्या लिखेगा! वृद्ध चाणक्य के एक श्लोक में सात मातायें गिनायी गई हैं:

> आद्या माता गुरोःपत्नी ब्राह्मणी राजपत्निका।
> धेनुर्धात्री तथा पृथ्वी सप्तैता मातरः स्मृताः॥

इसी प्रकार मि. होर्ड नामक एक अमरिकन ने गाय को मनुष्य जाति की पालक माता की उपमा दी है।

लेकिन मि. हेइन आगे चल कर क्या कहते हैं यह हम देखें।

'गाय को प्रत्येक देश की कृषि में स्थान है?'

"जहां जहां गाय को उसका उचित स्थान प्राप्त हुआ है और मनुष्य ने अपना कर्तव्य किया है वहां वहां उत्तम से उत्तम प्रकार की कृषि देखने में आती है। किसान लोग खेत पर रहते हैं और कम से फसल तैयार करते हैं।

खेत पर अनाज की गंजी, सूखे घास की गंजी और हरे घास की खान भी दिखाई देगी। खेत की फसल से पूरी आमदनी होती है और उससे दिन प्रति दिन आमदनी बढ़ती जाती है।

घरों में सुख के साधन दिखाई देते हैं।

लोग बुद्धिशाली, कसरत करनेवाले और कर्ज से मुक्त पाये जाते हैं और बारहों मास चलनेवाले व्यवसाय के कारण उनके तन-मन हमेशा जागृत बने रहते हैं।

कृषि अच्छी होती है और लोग नागरिक धर्म को भी अच्छी तरह समझ लेते हैं।

सुव्यवस्थित गोकुल (डेरी) में उत्तम प्रकार से कृषि होती है, अच्छे से अच्छी फसल आती है और सब से अधिक स्थायी आमदनी होती है।

गाय के कारण पहाड़ियों पर और सख्त जमीन में घास उगता है और लोग वहां निवास कर सुखी होते हैं।

मलाई की एक गाड़ी का मूल्य कोई १,१२५ डालर (साढ़े तीन हजार रुपये से भी अधिक) होता है और वह जमीन का रस केवल सात डालर (— करीब २१) के जितना ले जाता है।

गाय को प्रत्येक देश में उचित स्थान नहीं दिया गया है।

हमारे दक्षिण विभाग में अधिक गायों की आवश्यकता है।

बहुत दिनों तक जिन्होंने दूध के बिना काम चलाया है उन्हें दूध पहुंचाने के लिए गायों की आवश्यकता है।

मांस और शरीर के आरोग्य को रखनेवाले खुराक के अभाव के कारण दुःखी होनेवाले बच्चों को दूध और मक्खन पहुंचाने के लिए गायों की आवश्यकता है।

जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए और उसके रस को कायम रखने के लिए भी गायों की आवश्यकता है।

हमलोगों के इस देश में भी जो सुधरा हुआ गिना जाता है, हजारों बच्चे, संसार में सब से उत्तम और संपूर्ण खुराक दूध के न मिलने के कारण, नाटे, रोगी, शरीर के दुर्बल, खराब दांतवाले और अल्पमति देखे जाते हैं।

वर्ष में एक महीने के लिए जब कि मौसम होती है तब रुई की फसल बड़ी अच्छी मालूम होती है, परन्तु शेष ग्यारह महीने के लिए भी उस पर आधार रखने से तो वह दगा देती है। परन्तु मलाई तो प्रति सप्ताह, सब ऋतुओं में, बारहों महीने बेची जा सकती है, व्यापारी का हिसाब उससे चुकाया जा सकता है और जेब में रुपये खनकते रहते हैं।

दक्षिण विभाग के लोगों में एक ही फसल उत्पन्न करने के कारण वे रसहीन हो निरर्थक पड़े रहते हैं वहां घास उत्पन्न किया जाय तो अब भी उसकी अच्छी चरी बनायी जा सकती है।

हमारे गेहूं उत्पन्न करनेवाले पश्चिम विभाग में अधिक गायों की आवश्यकता है।

बहुत से खेतों में गरमी के दिनों में एक फसल आती है और जाड़े के आलस्य में कितने ही महीने निकल जाते हैं। इस स्थिति को दूर करने के लिए भी गायों की आवश्यकता है।

दूसरे स्थानों से डिब्बों में भर भर कर जो धी बहुत मंगाया जाता है उसके बदले घर बैठे बहुत सा दूध और मक्खन प्राप्त करने के लिए भी गायों की आवश्यकता है।

खेतों पर के घरों को सच्चे गृह बनाने के लिए गायों की आवश्यकता है।

जहां तक अधिक घास न उत्पन्न किया जाय, गंजी और खानों में वह भरा न जाय तबतक गेहूं का प्रदेश एक फसल के कारण हमेशा दुःखी बना रहेगा।

हमारे मक्का के प्रदेश में अधिक गायों की आवश्यकता है।

आज मक्का के सांठे व्यर्थ सड़ रहे हैं। उसको काम में लाने के लिए गायों की आवश्यकता है।

जमीन किराये लेनेवाला उसका मालिक बन जाय इसके लिए भी गायों की आवश्यकता है।

अनाज उत्पन्न करनेवाले किसान जाड़े के दिन आलस्य में बिताते हैं उसे फायदाकारी काम देने के लिए भी गायों की आवश्यकता है।

प्रतिवर्ष जमीन का रस बहुत कुछ चुराया जाता है उसे रोकने के लिए भी गायों की आवश्यकता है।

प्रति वर्ष मक्का के खेतों से गाड़ियां भर भर कर अनाज लिया जाता है, परन्तु उसका रस कायम रखने के लिए उसमें थोड़ा सा भी खाद नहीं डाला जाता।

हमलोगों को गाय रखनेवालों की अधिक आवश्यकता है और फसल लेनेवालों की कम।

मक्का के प्रदेश में लाखों डालर की कीमत का घास जल जाता है और हल के काम में उससे बाधा उत्पन्न होती है। एक दिन संस्कृति के स्तंभ रूप घास की खानों में से गायें इन सांठों को खायंगी।

जहां मनुष्य रहते हैं, खेत बोया जाता है, और घास उगता है वहां हमें अच्छी तरह से हिफाजत से रखी गयी गायों की बड़ी आवश्यकता है।"

(नवजीवन) वालजी गोविन्दजी देसाई

ऊंच या नीच

एक महाशय लिखते हैं: "बुद्धि में मनुष्य संसार के दूसरे सब प्राणियों से उत्तम गिना जाता है फिर भी वह अपने स्वार्थ के लिए दूसरे प्राणियों को कष्ट देता है। तो क्या वह दूसरे प्राणियों से उत्तम गिना जा सकता है?" यह प्रश्न कठिन है। परन्तु अहिंसा की दृष्टि से तो उसका एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि जो मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए अन्य जीवों को दुःख पहुंचाता है वह नीच बनता है। मनुष्य नम्रता और उच्चता की मिलावट से बना है। उसकी उच्चता उसकी नम्रता की शक्ति में ही होती है। यदि उसमें नम्र बनने शक्ति नहीं है तो वह उच्च हुआ नहीं गिना जा सकता है। फिर तो पुरुषार्थ के लिए कोई अवकाश ही नहीं होता है। इसीलिए तो यह कहा गया है कि जो मनुष्य अपने लिए किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुंचाता है और परमार्थ के लिए स्वयं कष्ट उठाने के लिए तैयार रहता है वही मार्गदर्शन करने के योग्य बनता है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्त खतम हो गई है। अब जितने आर्डर मिलते हैं दर्ज कर लिए जाते हैं। आर्डर भेजनेवालों को जबतक छट्ठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तबतक धैर्य रखना होगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी १५, संवत् १९८२

उसका रहस्य

महाबलेश्वर से लौटते समय कुछ असहयोगी मित्र मेरी घात लगाये बैठे थे। उनसे मुलाकात करना तो पहले से ही मुकर्रर किया हुआ था। अकस्मात गवर्नर साहब की मुलाकात को महाबलेश्वर जाते समय मैंने सिर्फ कुछ बीमारों को देखने तक ही अपना कार्यक्रम मर्यादित कर रखा था। और इसलिए पूना स्टेशन पर आने के पहले मैंने प्राफेसर त्रिवेदी के घर अपने एक युवक मित्र मनु को देखने जाने का प्रबंध किया था। ये मित्र पूना के सासून अस्पताल में १९२४ में मेरे लिए दया के दूतों में से एक थे। इसी मुलाकात के समय को मुझे मनु और असहयोगी मित्रों में बांट देना पड़ा था। इसमें असहयोगियों को ही बहुत बड़ा हिस्सा मिला था। मनु ने तो कुछ ही मिनटों में मुझे मुक्त कर दिया। बीमार की हैसियत से मुझे उसकी बड़ी ईर्ष्या हुई। क्योंकि शय्यावश हुए आज उसे ६ महीने से भी अधिक हो गया था फिर भी मैंने उसे खुशमिजाज और अपनी उस हालत में भी सन्तोष माननेवाला पाया। इसलिए असहयोगी मित्रों के साथ बातचीत करने के लिए उसे छोड़ देने में मुझे कुछ भी दुःख न हुआ।

मेरा इस प्रश्न से ही उन्होंने स्वागत किया था "आप गवर्नर के पास जा कर अपने को असहयोगी कैसे कह सकते हैं?

"आप का कष्ट मैं जानता था" मैंने कहा "मैं आप के प्रश्नों का सम्पूर्णतया उत्तर दूंगा, परन्तु एक शर्त है; मैं जो कहूं उसमें से एक बात भी आप को प्रकाशित न करनी चाहिए। यदि मुझे उचित मालूम होगा तो मैं स्वयं ही इस विषय पर यंग इंडिया में कुछ लिखूंगा।"

"जी हां, हम उसकी कोई भी बात प्रकाशित न करेंगे। यदि आप यंग इंडिया में हमारे प्रश्नों का उत्तर देंगे तो हम उससे ही संतोष मान लेंगे।" प्रश्न पूछनेवाले ने कहा "यह बात नहीं कि आप के इस कार्य की उपयुक्तता के सम्बन्ध में मुझे कोई सन्देह है परन्तु मैं ऐसे बहुसंख्यक असहयोगियों का एक प्रतिनिधि हूं कि जिन्हें आप अपने अचिंतित कार्यों से व्याकुल कर देते हैं।"

"अच्छा तब आप अपने सब प्रश्न मुझे कह जाइए। मैं उनका उत्तर देने का प्रयत्न करूंगा। परन्तु मैं इस बात का भी स्वीकार कर लेता हूं कि यह व्यर्थ समय गंवाना ही होगा। क्योंकि मुझे इस बात की प्रतीति हो गई है कि अब खुलासा पेश करने का और समझाने का समय बीत चुका है। असहयोगियों को यह सहज ही समझ लेना चाहिए कि मैं हमारे अपने नियमों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता हूं। और यदि मैं कभी — क्योंकि मुझसे भी गलती हो सकती है — तो उन्हें मेरा त्याग करना चाहिए और अपने विश्वास पर उन्हें दृढ रहना चाहिए। मेरी तरफ से ही उन्हें असहयोग का सिद्धान्त क्यों न मिला हो परन्तु यदि वे उसे पूरी तरह समझ गये हों, वह सिद्धान्त उनके एक के अणु अणु से मिल गया हो तो उनके विश्वास का आधार मेरे विश्वास पर नहीं रहना चाहिए। वह तो मेरी, मेरी दुर्बलता और गलतियों से स्वतंत्र ही रहना चाहिए। यदि मैं दगाबाज साबित होऊं, और मुलायम शब्दों में कहूं तो, यदि मैं अपनी राय बदल दूं तो उनमें मेरा दोष बताने का और अपने विश्वास पर दृढ रहने का सामर्थ्य होना चाहिए। इसीलिए मैं यह कहता हूं कि हमारी बातचीत हमारे राष्ट्रीय समय को व्यर्थ गंवाना ही होगी। अच्छा काम असहयोगियों को अपने कर्तव्य का ज्ञान होता है। वे उसे ही पूरा करें। लेकिन अब आप अपने प्रश्न कह सुनाइये।"

"बम्बई से यह समाचार मिले हैं कि आप बिना निमन्त्रण के ही गवर्नर के पास गये थे। अर्थात आपने ही उन्हें आपकी बातों को सुनने के लिए मजबूर किया था। यदि यह बात सच है तो यह बिना प्रतियोगिता के ही शुद्ध सहयोग नहीं हुआ? हमें आश्चर्य होता है कि आपको गवर्नर से ऐसा क्या काम हो सकता था?"

"मेरा इरादा तो यह है कि जब मुझमें शक्ति हो तब तो मैं अपने शत्रु को मेरी बात सुनने के लिए मजबूर करने का प्रयत्न भी कर सकता हूं। मैंने दक्षिण आफ्रिका में ऐसा किया भी था। जब मैं युद्ध के लिए तैयार था तब मैंने जनरल स्मट्स के साथ कई मुलाकातें करने का प्रयत्न किया था। यदि उस महान ऐतिहासिक प्रयोग का आरम्भ करना पड़ा तो उससे वहां के भारतीय निवासियों को जो अवर्णनीय कष्ट भोगने पड़ेंगे उनको रोकने के लिए मैंने उनसे प्रार्थना भी की थी। यह सही है कि अपनी जिद में आ कर उन्होंने मेरी एक बात भी न सुनी, परन्तु उससे मेरी कुछ भी हानि न हुई। मेरी नम्रता के कारण मुझे और भी अधिक शक्ति प्राप्त हुई थी। यदि स्वतन्त्रता के लिए सच्चा युद्ध करने के लिए हम काफी शक्तिशाली बन जायंगे तो मैं भारत में भी यही करूंगा। यह याद रखना चाहिए कि हमारा यह अहिंसात्मक युद्ध है। इसमें नम्रता का होना तो पहले से ही गृहीत कर लिया जाता है। यह तो सत्य का युद्ध है और सत्य के ज्ञान से ही हमें दृढता प्राप्त होनी चाहिए। हम-लोग मनुष्यों के प्राण लेने के लिए रण में बाहर नहीं निकले हैं। हमारा कोई शत्रु नहीं है। इस पृथ्वी में किसी भी मनुष्य के प्रति हमें द्वेष नहीं है। हम तो स्वयं कष्ट उठा कर उन्हें अपने पक्ष में लेना चाहते हैं। स्वार्थी से स्वार्थी और कठोर से कठोर हृदय के अंग्रेज में भी परिवर्तन कराने में भी मुझे कोई निराशा नहीं मालूम होती है इसलिए उससे मुलाकात करने का मुझे कोई भी मौका क्यों न मिले मैं तो उसका स्वागत ही करता हूं।"

इसका मुझे जरा सा पृथक्करण करने दो। अहिंसात्मक असहयोग का अर्थ है जिस तन्त्र के साथ हमने असहयोग किया है उसके लाभों का त्याग। इसलिए हम इस तन्त्र के अनुसार प्राप्त, शाला, अदालत, उपाधि धारासभा और बड़े बड़े ओहदों के लाभों का त्याग करते हैं। हमारे असहयोग का सबसे अधिक स्थायी और खर्चीला भाग तो विदेशी कपड़ों का बहिष्कार है क्योंकि वह इस दुष्ट तन्त्र का जो हमें कुचल रहा है मूलाधार है। यह संभव है कि असहयोग के दूसरे कार्य भी सोचे जा सकते हैं। परन्तु हमारी दुर्बलता या शक्ति के अभाव के कारण हमलोगों ने सिर्फ इतने ही कार्यों पर अपनी मर्यादा बांध की है। इसलिए यदि मैं किसी अधिकारी के पास उपरोक्त लाभों को प्राप्त करने के इरादे से जाऊं तो यह कहा जा सकेगा कि मैं सहयोग करता हूं। परन्तु यदि मैं छोटे से छोटे अधिकारी के पास भी उसको खादी के प्रति श्रद्धावान बनाने के लिए, अथवा सरकारी शालाओं में अपने बच्चों को न भेजने के लिए समझाने के लिए जाऊंगा तो उससे तो मैं अपना फर्ज ही अदा करूंगा। यदि मैं ऐसी कोई

निश्चित और सीधे निश्चय के साथ उसके पास न जाऊं तो मैं असफल होऊंगा ।

अब इस मुद्दे पर आवें । मैं गवर्नर के पास उन्हीं की प्रेरणा से गया था । उन्होंने मुझे गवर्नर की हैसियत से न तो पत्र ही लिखा था और न गवर्नर के अधिकार से सम्बन्ध रखनेवाले किसी कार्य के लिए बुलाया ही था । उन्होंने मुझे महाबलेश्वर में खेती के विषय पर चर्चा करने के लिए बुलाया था । कुछ समय पहले जैसा कि मैंने नवजीवन में लिखा था, मैंने उनसे कहा कि रायल कमीशन के साथ मैं किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रख सकता हूं; मैं अब भी अपने असहयोग के विचारों पर दृढ़ हूं और साधारण तौर पर मुझे कमीशनों पर कोई श्रद्धा नहीं है । मैंने उनको यह भी लिखा था कि जब वे महाबलेश्वर की पहाड़ी से उतर कर बम्बई आवेंगे तब उनसे मिलना मुझे अनुकूल होगा । गवर्नर साहब ने मुझे लिखा कि जून के महीने में मुझसे मिलना उनके भी अनुकूल होगा । परन्तु बाद को उन्होंने अपना विचार बदला और मुझे यह सन्देशा भेजा कि यदि "आप मुझसे मिलने के लिए महाबलेश्वर आओ तो यह बहुत ही अनुकूल हो ।" मुझे वहां जाने में कोई हिचकिचाहट न थी । हम लोगों में दो मरतबा बहुत देर तक और बड़ी दिलचस्प बातें हुई । और आप यह अनुमान कर सकते हैं (और वह सही होगा) कि हमारी बातचीत का केन्द्र चरखा ही था । वही मुख्य बात थी । और ढोरों के भयंकर प्रश्न पर चर्चा किये बिना मैं कृषि पर कोई चर्चा ही नहीं कर सकता हूं ।

उस अपरिवर्तनवादी मित्र के साथ मेरी जो बातचीत हुई थी उसका संक्षिप्त सार मैंने यहां दिया है । कहीं कहीं मैंने अपने उत्तर का यहां कुछ विस्तार भी किया है क्योंकि उससे साधारण पाठक भी उसे अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

दूसरे भी कितने ही प्रश्नों पर विचार किया गया था । उसमें से एक या दो प्रश्नों का मुझे यहां स्पष्टीकरण करना चाहिए । मुझसे उस समझौते पर अपना अभिप्राय जाहिर करने के लिए कहा गया था परन्तु मैंने एक शब्द भी जाहिर करने के लिए कहने से इन्कार कर दिया । विवाद में उतर कर मैं वर्तमान कटुता को और भी अधिक नहीं बढ़ाना चाहता हूं । मैं एक भी बात ऐसी नहीं कह सकता हूं कि जो दोनों पक्षों में मेल करा सके । वे सब मेरे सहयोगी कार्यकर्ता हैं, वे सब स्वदेशभक्त हैं । यह सिर्फ घरेलू झगड़ा है । मेरे जैसे देश के एक नम्र सेवक को तो यही उचित है कि जहां वाणि कुछ भी नहीं कर सकती है वहां मौन धारण कर के बैठा रहे । इसलिए अभी तो मैं प्रार्थना करना और समय की राह देखना ही अधिक पसंद करता हूं । मुझसे यह कहा गया कि मेरे नाम से गलत समाचार फैलाये जाते हैं । मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि मैंने जान-बूझ कर समझौते के साहित्य को नहीं पढ़ा है । मेरे सारे जीवन में मेरे नाम से फैलायी गई अनेक गलतफहमियों का मैं तो आदी हो गया हूं । यह तो सभी सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के भाग्य में लिखा होता है । उसकी तो बड़ी दरकार न करनी चाहिए । यदि सभी गलतफहमियों का उत्तर दिया जायगा और उनका स्पष्टीकरण किया जायगा तो उससे जीवन दो भारस्वरूप हो जायगा । मेरा तो यह नियम है कि जबतक कि उद्देश की रक्षा के लिए वह आवश्यक न हो तबतक किसी भी गलतफहमी का मैं स्पष्टीकरण नहीं करता हूं । इस नियम के कारण मेरा बहुत सा समय और चिन्ता बच जाती है ।

परन्तु जब सब लोग अधिकार की जगहों का स्वीकार करेंगे तब हमें क्या करना चाहिए और आगामी चुनाव के समय हमारा क्या कर्तव्य होगा ?" यह अन्तिम प्रश्न था ।

मेरा उत्तर था:

"जब सब दलों के लोग अधिकार के स्थानों का स्वीकार करना निश्चय कर लेंगे तब जिनके अन्तःकरण उसके खिलाफ होंगे वे मत ही न देंगे । आगामी चुनाव के समय भी जिनका अन्तःकरण उसके खिलाफ है उसमें अपना मत न देंगे । दूसरे तो स्वाभाविक तौर पर महासभा के मार्ग का ही अनुसरण करेंगे और जैसा महासभा कहेगी वैसा ही मत देंगे । इस प्रश्न में मैंने महासभावादी की व्याख्या दी है । जो मनुष्य यह कहता है कि मैं महासभावादी हूं वह नहीं परन्तु जो महासभा की इच्छा के अनुसार चलता है वही महासभावादी है ।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

पशुवध

उसके कारण और उपाय

(२)

१९१४-१५ में लगभग तेरह करोड़ रुपये की कीमत के गाय के चमड़े संख्या में १ करोड़ और ४४ लाख, लगभग पौने दो करोड़ रुपये की कीमत के भैंस के चमड़े संख्या में सोलह लाख से भी कुछ अधिक और ९० लाख रुपये की कीमत के बकिया-बछियों के चमड़े, संख्या में कोई २८ लाख से भी अधिक विदेशों में भेजे गये थे । यह कहा जाता है कि संसार में चमड़े की जितनी मांग है उसका एकतिहाई हिस्सा यह कमनसीब हिन्दुस्तान ही पूरा करता है । संसार को चमड़े की ऐसी तीव्र भूख है कि उसे कैसे भी सन्तोष नहीं होता है और उसके अनेक पशु बलि हो जाते हैं ।

१८९९-१९०० में बाहर भेजे जानेवाले चमड़े का भाव एक हंडरवेट (डेढ मन में कुछ कम) पर ४०॥) था, वह १९१३-१४ में बढ कर ७३॥) हो गया था । कलकत्ते में १८९७ में दस सेर चमड़े की कीमत रु. ८-३-१ थी लेकिन १९०६ में उसकी कीमत रु. १६-०-१० हो गई ।

पंजाब में खेती के विभाग के अधिकारी मि. हेमिल्टन ने १९१६ में 'बोर्ड आफ अग्रीकल्चर' के समक्ष व्याख्यान देते हुए यह कहा था: "चमड़ा, मांस, हड्डियां, खून और चरबी के भाव बढ रहे हैं इसलिए जैसे जैसे दिन गुजरते जाते हैं मृत भैंस का मूल्य जीवित भैंस के मूल्य के बराबर होता जा रहा है ।"

हाट में जा कर पैंतीस रुपये में खरीदी हुई दो भैंसों के कत्ल से कितना लाभ हो सकता है उसके अंक विजागापट्टम के एक माला ने मि. हेम्पसन को दिये थे, वे नीचे दिये जाते हैं:

	रु. आ. पा.		रु. आ. पा.
चमड़े २	१६-०-०	से	२०-०-०
चरबी ३-४ मन (स्थानिक)			
५) मन के भाव से	१५-०-०	से	२०-०-०
सींग आधा मन (स्थानिक)	२-०-०	से	२-८-८
हड्डियां	०-४-०	से	०-९-०
	३३-८-०	से	४३-०-०

मि. हेम्पसन कहते हैं इसके अलावा मांस के दाम जो मिलेंगे वह अलग ही होंगे ।

दूसरे सब कारणों के बनिस्बत चमड़े के बाजार का कत्ल पर अधिक प्रभाव पड़ता है, उससे कम प्रभाव, सुखाया गया मांस

(जिसे बिल्टांग कहते हैं), चरबी, हड्डियां और लहू इत्यादि वस्तुओं के भाव का पड़ता है ।

कत्लगाहों में लहू को पका कर उसकी बुकनी सी तैयार की जाती है, उसका आसाम में चाय या काफी के खेतों में खाद के तौर पर उपयोग किया जाता है और जो बाकी बचता है वह विदेशों को भेजा जाता है । १९२२ में २२४०० मन लहू की बुकनी सिलोन को भेजी गई थी । लहू की बुकनी योरप में भी भेजी जाती है और वहां आल्युमन के क्षारों को और पोटाश्यम सायनाइड को बनाने में उसका उपयोग किया जाता है।

पशुओं के पैरों को पका कर उसमें से तेल निकाला जाता है और वह घड़ियों में और दूसरे यंत्रों में लगाया जाता है ।

चमड़े के छोटे छोटे टुकड़े, पुराने जूते, हड्डियां और आंते इत्यादि से सरेस बनाया जाता है ।

सींग से बटन, छड़ी, छुरी और छत्री की बेंट, गलास, भांति भांति के चम्मच, इत्यादि बनाये जाते हैं । सींग के कारखानों में उसका जो बुरादा तैयार होता है उसका खाद बनाया जाता है । १९१२-१३ के लगभग पचीस लाख रुपये की कीमत की हड्डियां कोई १४०००० मन के करीब विदेशों को भेजी गई थीं । मि. (अब 'सर') अतुल चेटरजी ने संयुक्त प्रान्त के हुन्नर उद्योग के विषय में एक पुस्तक लिखी है । उसमें वे कहते हैं: " कंघियां बनाने में भैंस के सींगों का ही उपयोग किया जाता है, गाय का सींग बड़ा सख्त होता है इसलिए उसमें उसका उपयोग नहीं करते हैं । कत्लगाहवाले कसाइयों से सींग लेते हैं, उसकी नोक काट लेते है और ये नोकें योरप भेजी जाती हैं । वहां उससे छुरी या छत्री की बेंटें, बटन इत्यादि बनाये जाते हैं " जर्मनी में अपने घरों में सादे ओजारों से ही काम करनेवाले कारीगर सींग से कागज काटने की छुरी, चम्मच, इत्यादि कई चीजें बनाते हैं । उसका एक छोटे से छोटा टुकड़ा भी वे व्यर्थ नहीं जाने देते । दूसरे किसी भी काम में न आ सके ऐसा जो भाग बच जाता है उसका खाद बनाया जाता है " (लाल्मा लतीफी कृत इन्डस्ट्रियल पंजाब पृ. १२३-४)

खुरों से भी बटन, छुरी और चाकुओं के बेंट इत्यादि बनाये जाते हैं और उसका खाद भी तैयार किया जाता है ।

हड्डियों से बटन इत्यादि तो बनते ही हैं, उसके अलावा उसमें सैकड़े में ५० हिस्सा फास्फेट, १२ हिस्सा चरबी और २५ हिस्सा सरेस की जाति के पदार्थ भी होते हैं । इसलिए उसके फास्फेट से खाद बनाया जाता है, चरबी से साबुन, मोमबत्ती और ग्लीसरीन बनाया जाता है, और सरेस की जाति के पदार्थ से जिलेटिन और ग्लू तैयार किया जाता है । मुरब्बा तैयार करने में और दवा की गोलियां एक दूसरे के साथ चिपक न जाय और स्वादरहित बनें इसलिए उसमें जिलेटिन का उपयोग किया जाता है । ग्लू कपड़े को लगाया जाता है और उससे छपखाने में रोलर भरे जाते हैं । हड्डियों को पीस कर उनके आटे से खाद तैयार किया जाता है । हड्डियों का शोधन करने पर उसमें से ६१ प्रति सैकड़ा हड्डियों का कोयला निकलता है और वह बड़ा रंगनाशक होता है । कच्ची शक्कर को शुद्ध करने में उसका उपयोग किया जाता है । हड्डियों से ६ प्रति सैकड़ा ढोलतार प्राप्त किया जाता है । उसपर फिर रासायनिक क्रिया करने पर उससे हड्डियों का तेल जिसका प्रवाही अग्नि (लिक्विड फ्युअल) के तौर पर उपयोग किया जाता है निकलता है, और काला वार्निश बनाने में उपयोगी हड्डियों का तार निकलता है; हड्डियों से २० प्रति सैकड़ा उसका वायु तैयार होता है, उसका यंत्र चलाने में उपयोग होता है और ९९ प्रति सैकड़ा अमोनियाकल लिकर निकलता जिससे एमोनियम सल्फेट नामक क्षार तैयार किया जाता है ।

१९२१ में ब्रिटिश हिन्दुस्तान में हड्डियां पीसने की १९ मिलें थीं, ४ बम्बई प्रान्त में, ८ बंगाल में, ३ मद्रास में, २ मध्य-प्रान्त में और एक ब्रह्मदेश में और एक संयुक्त प्रान्त में । १९२१-२२ में इस प्रकार उसका निकास हुआ था:—

	मन
कुचली हुई हड्डियां	१,०८,९७६०
हड्डियों के टुकड़े	५८५०
हड्डियों की बुकनी	१,३९,६५३०
	२,४९,२१४०

इसकी कीमत ९२ लाख रुपये से भी अधिक थी । १९१२-१३ में ३,०८,६१९० मन हड्डियां भेजी गई थीं ।" पशुओं के पैरों की हड्डियां छुरी और चाकुओं के बेंट बनाने के लिए इंग्लैंड भेजी जाती हैं । वहां उसके एक टन के ४० पौंड ६००) उत्पन्न होते हैं । जांघ की हड्डियां बड़ी कीमती होती हैं । प्रति टन ८० पौंड-१२००) रुपये के भाव से बिकती है और उससे दांतों के ब्रश के बेंट बनाये जाते हैं । अगले-पैरों की हड्डियों का भाव प्रति टन ३० पौंड है और उससे कालर-बटन; छत्री के बेंट और गहने बनाये जाते हैं । छत्री के बेंट बहुधा भेड़ों के पैरों की हड्डियों से बनाये जाते हैं । शोर्ट कृत मेन्युअल आफ केटल एण्ड शीप पृ० ५)

(नवजीवन) वालजी गोविंदजी देसाई

टिप्पणियां

त्रिमासिक अंक

बहुतेरे प्रान्तों के तरफ से अखिल भारतीय चरखा संघ को जनवरी से मार्च १९२६ तक के खादी की उत्पत्ति और बिक्री के अंक प्राप्त हुए हैं । उन्हें मैं नीचे दे रहा हूं ।

प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्री
अजमेर	३१२९)	६६५९)
आंध्र	१८९६८)	५६८६३)
बिहार	५६३१७)	५५२५९)
बंगाल	९६९१२)	९२३५६)
बम्बई		१०३३०८)
बरमा		५२६७)
देहली	३३५८)	४३८३)
गुजरात	१९६३८)	१००७५)
करनाटक	८४९१)	१२८०६)
केरल	११७८)	४३९४)
दक्षिण महाराष्ट्र		३०३८)
मध्य-महाराष्ट्र	१७०)	६३८०)
उत्तर महाराष्ट्र	११९९)	१६६९०)
पंजाब	३३१३९)	२१२३२)
तामिलनाड	१९५७६३)	१६३५६५)
संयुक्त प्रान्त	१७१५९)	३१५९२)
उत्कल	१२२९३)	७१७२)
कुल	४६८५२४)	६१७७०३)

आंध्र प्रान्त के अंकों से वहां जितना कार्य किया गया है उसका पूरा पूरा पता नहीं लग सकता है । कितनी ही मरतबा याद दिलाने पर भी उस प्रान्त की सम्पूर्ण रिपोर्ट प्राप्त नहीं हो सकी है । *करनाटक के अंक भी बहुत अंशो में असम्पूर्ण है ।* गत वर्ष के इन्हीं तीन महीनों के अंक नीचे लिखे प्रान्तों के ही

तुलना के लिए प्राप्त हो सके हैं और उस पर से यह मालूम हो सकेगा कि बम्बई के सिवा सभी प्रान्तों के इस वर्ष के अंक बढे हुए हैं।

उत्पत्ति

प्रान्त	१९२५	१९२६
बिहार	३५९८०)	५६३१७)
बंगाल	३१०४३)	९६९२१)
पंजाब	११५३४)	३३१३९)
तामिलनाड	८३७०७)	१९५७६३)
संयुक्त प्रान्त	७०१३)	१७१५९)
उत्कल	९३९)	१२२९३)

बिक्री

प्रान्त	१९२५	१९२६
बिहार	५४४६९)	५५२५९)
बंगाल	३३३२८)	९२३५६)
बम्बई	१२६०८६)	१०१३०८)
बरमा	६४२०)	५२६७)
पंजाब	२१९११)	२१२३२)
तामिलनाड	१२०८६४)	१६३५६५)
संयुक्त प्रान्त	१४९७२)	३१५५९)
उत्कल	८५९५)	७१७२)

पंजाब के अंकों में गत वर्ष की बिक्री के अंक जो अधिक दिखाई देते हैं वे केवल देखने में ही अधिक हैं क्यों कि गत वर्ष के अंकों में एक शाखा से दूसरी शाखा को भेजी गई खादी के अंक भी शामिल हैं परन्तु इस वर्ष के अंक तो शुद्ध बिक्री के ही अंक हैं। बरमा और उत्कल के बिक्री के अंकों में कुछ कमी हुई दिखाई देगी।

हरएक प्रान्त के ये अंक कुछ घटा कर ही लिखे गये हैं बढ़ा कर नहीं, खास कर आंध्र देश के सम्बन्ध में तो यह बात विशेष कर कही जा सकती है। मैं फिर एक मरतबा हरएक प्रान्त के कार्यकर्ताओं से प्रार्थना करता हूं कि वे अपनी अपनी रिपोर्टें समय पर शीघ्र ही भेज दिया करें। यदि चरखासंघ को, भारत के हरएक गांव से सम्बन्ध रखनेवाली एक व्यवस्थित संस्था बनाना है तो उसको उसके कार्यकर्ताओं के तरफ से व्यवस्थित और बुद्धियुक्त सहयोग अवश्य ही प्राप्त होना चाहिए।

कताई कला है ?

मद्रास के शिक्षाविभाग की एक निरीक्षिका ने ब्राह्मण लड़कियों के चरखा कातने के विरुद्ध आज्ञा निकाली है। इस महिला के इस विचार के कारण उन पर बड़ी टीकायें हो रही हैं। यह दलील की जाती है कि यदि चरखा अब्राह्मण बालिकाओं के लिए उपयोगी है तो ब्राह्मण बालिकाओं के लिए क्यों उपयोगी नहीं ? यदि जातिभेद के आग्रह को छोड़ दिया जाय तो यह प्रश्न बहुत अच्छा और उचित ही है। और निरीक्षिका मालूम होता है कि यह नहीं जानती कि ब्राह्मण बालिकाओं ने ही उत्तम से उत्तम सूत काता है और बहुत से ब्राह्मण कुटुम्बों में अनेक के लिए सूत कातने का रिवाज तो आज भी मौजूद है।

निरीक्षिका की टीका पर से एक दूसरा प्रश्न भी उठता है। क्या कताई एक कला है ? क्या यह ऐसी एक ही प्रकार की साधारण क्रिया नहीं है कि उसके करने से बच्चे जरा सी देर में थक जायेंगे और ऊब जायेंगे ? अबतक जितने भी प्रमाण मिले हैं यह साबित करते हैं कि कताई एक बड़ी सुन्दर कला है और उसकी क्रिया बड़ी आनन्ददायक है। जुदे जुदे अंक के सूत कातने के लिए केवल यंत्र की तरह सूत खींचने से ही काम नहीं चलता है। जो लोग कला के तौर पर कताई को करते हैं वे यह जानते हैं कि जिस अंक का सूत कातना हो उस अंक के सूत को आंख और अंगुलियां जब बराबर मालूम करती जाती हैं तब उन्हें क्या आनंद मिलता है। कला में कला बनने के लिए शान्ति उत्पन्न करने की शक्ति होनी चाहिए। एक साल पहले मैंने सर प्रभाशंकर पट्टणी का प्रमाणपत्र प्रकाशित किया था और यह दिखाया था कि दिनभर के थका देनेवाले काम को पूरा कर के जब वे चरखा कातते थे तब उनके ज्ञानतंतुओं को कितनी शान्ति मिलती थी और रात को उन्हें कैसी गाढ़ निद्रा आती थी। एक मित्र के पत्र से मैं नीचे की सतरें उद्धृत कर के दे रहा हूं। उसने अपने थकित मज्जातन्तुओं के लिए कताई से शान्ति प्राप्त की थी।

"अब......मैं अपने कमरे में दौड़ गया और अंधेरे में अपने हृदय की पीड़ा के साथ, जो मुझे सर से चोटी तक जला रही थी युद्ध करता रहा। कुछ देर तक मैं प्रार्थना और प्रयत्न करता रहा और बाद को चरखा चलाना आरम्भ किया और उसमें मैंने जादू की सी शक्ति पायी। उसकी नियमित गति से मुझे शीघ्र ही स्थिरता प्राप्त हो गई और उससे होनेवाली सेवा के विचार से मैं ईश्वर के अधिक नजदीक पहुंच गया।"

यह एक या दो कातनेवालों का ही अनुभव नहीं है परन्तु असंख्य कातनेवालों का यही अनुभव है। यह कहने की तो कोई उपयोगिता नहीं मालूम होती है कि सबको ही कताई आनन्ददायक प्रतीत होगी, क्योंकि अनेक मनुष्यों का वह आनन्द है। चित्रकारी का एक सुन्दर कला होना स्वीकार किया गया है परन्तु सब उसे सीख नहीं सकते हैं।

स्वदेशभक्ति बनाम अर्थवाद

ये दोनों निस्सन्देह एक-दूसरे के विरोधी हैं अथवा अबतक वे वैसे थे। परन्तु अर्थ, अर्थवाद से बिल्कुल ही भिन्न है और अर्थवान इन दोनों से भिन्न है। किसी भी प्रकार के साहस का आरम्भ करने के लिए अर्थ-पूंजी की आवश्यकता होती है। मजदूरी भी एक प्रकार का अर्थ-पूंजी कही जा सकती है। परन्तु उसके संकुचित अर्थ में भी धन चाहे कितना ही कम क्यों न हो, मजदूरों के साहस के कामों के लिए भी उसकी आवश्यकता होती है। इसलिए स्वदेश-भक्ति और अर्थ-पूंजी में कोई विरोध नहीं है। एक अर्थवान या पूंजीपति स्वदेश-भक्त हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। बिहार के सहयोगी मण्डलों के रजिस्ट्रार खान बहादुर श्री मोहोयुद्दिन अहमद साहब ने पूंजीपतियों को स्वदेश-भक्ति का एक मार्ग दिखाया है। 'टाइम्स आफ इन्डिया' लिखता है "मोतीहारी की सेन्ट्रल कोआपरेटीव बेन्क को खुला करने के उत्सव पर, खान बहादुर ने अपने व्याख्यान में हानिकारक और उपयोगी अर्थवाद का भेद बताया था। उन्होंने कहा था कि हुन्नरउद्योग की हलचल के दो विभाग किये जा सकते हैं एक तो वह जिसका लाभ सब पूंजीपति ले जाते हैं और दूसरा वह जिसका सहयोग की पद्धति से भारत को ९० प्रति सैकड़ा आबादी के काम के लिए आरम्भ होता है। जिस उद्योग का आधार कृषि से उत्पन्न, जैसे रुई, शक्कर, तिल, गेहूं इत्यादि पदार्थों पर होता है उसे सहयोग के आधार पर ही आरम्भ करना चाहिए ताकि उसके उत्पादक अपनी मिहनत का अच्छा बदला प्राप्त कर सकें। सब प्रकार के खान और लोहे के काम, चमड़ा और दूसरे महान उद्योग पूंजीपतियों के लिए छोड़ देने चाहिए ताकि वे भी किसानों को चूसने के और इस प्रकार भारत के धन के मूल को ही निचोड़ लेने के बदले देश के धन को अधिक बढ़ाने के लिए अपने धन का उपयोग कर सकें।" यदि पूंजीपति खान बहादुर की सलाह के अनुसार चलेंगे और अपने को और जनसमुदाय को लाभप्रद हों ऐसे कामों में ही अपने धन के उपयोग को मर्यादित

कर रक्खेंगे तो भारत की दरिद्रता शीघ्र ही भूतकाल का विषय बन जायगी। खान बहादुर की राय के अनुसार "जूट मिल, शक्कर की मिलें और कपड़े की मिलें सब किसानों को चूसने के लिए है और इस प्रकार चूसे गये ये लोग गुलामों की तरह काम करने के लिए कारखानों में और पुतली घरों में जाने को मजबूर हो जाते हैं। बंगाल की जूट की मिलों के मालिकों ने लड़ाई के जमाने में जब माल का बाहर भेजा जाना बन्द था बंगाल के जूट उत्पन्न करनेवाले लोगों का जरा भी विचार नहीं किया था......उसका परिणाम यह हुआ कि जूट उत्पन्न करनेवाले लोग बेचारे दरिद्र हो गये और जूट की मिलों के मालिकों को १०० प्रति सैकड़ा नफा मिला।"

(यं० इं०) मो० क० गांधी

गोरक्षा मण्डल

भाई जीवराज नेणशी लिखते हैं:

"आपने 'नवजीवन' में गोरक्षा के विषय पर लिखा है, और भाई वालजी गोविन्दजी की लेखमाला भी प्रकाशित हो रही है। और आपने अखिल भारत गो-मण्डल की भी स्थापना की है। भारत में आज जो पींजरापोलें और गोशालायें है उनमें से कितनों का तो सार्वजनिक चन्दों से ही निभाव होता है और कितनों का धर्मार्थ, मंदिर, साधु इत्यादि के मारफत सार्वजनिक धन से ही निभाव होता है। लेकिन उनमें व्यवस्था की बड़ी त्रुटि होती है। पंगु ढोरों की रक्षा करने के अलावा उनका दूसरा कोई उद्देश नहीं होता है। इस प्रकार सैकड़ों वर्ष हुए सार्वजनिक द्रव्य का खर्च किया जा रहा है फिर भी परिणाम में उससे कोई लाभ नहीं होता है क्योंकि उससे न तो ढोरों की जात ही सुधरती है और न कत्लगाहें बन्द होती है। यही नहीं, दिन ब दिन अब दूध अधिक महंगा और अशुद्ध मिलने लगा है। बम्बई शहर में पींजरापोल, गोरक्षण-मण्डल, जीवदया, प्राणीरक्षक-मण्डल इत्यादि अनेक मण्डल है। धर्म के नाम पर ये प्रतिमास लाखों रुपया खर्च करते हैं फिर भी उसका परिणाम तो शून्य ही होता है। मेरा ख्याल है कि जहां तक हो सके इन मण्डलों का एक सामान्य उद्देश रहना चाहिए और वह तन्दुरुस्त ढोरों को रख कर लोगों को शुद्ध दूध पहुंचाना चाहिए और उससे जो आमदनी हो उसमें पंगु ढोरों को निभाना चाहिए। इससे भैंसों के तबेले में या उसके जैसे दूसरे स्थानों में आनेवाले ढोर कम हो जायंगे और ढोरों के निकम्मे हो जाने पर भी उनका कसाइयों के हाथ बेचा जाना बन्द हो जायगा और तभी तो कत्लगाहें बन्द हो सकेंगी। इसके लिए जिन मुख्य शहरों में ऐसे अनेक मण्डल हों वहां उनका एक सम्मेलन कर के एक मुख्य मण्डल बनाना चाहिए और वह उस शहर को सस्ता और शुद्ध दूध काफी तादाद में पहुंचाने की योजना तैयार कर के म्युनिसिपलिटि की मदद ले कर अच्छी संख्या में तन्दुरस्त ढोरों को रखने का प्रबंध करें। मुझे तो यही बात सब से प्रथम आवश्यक मालूम होती है। इस विषय में मैं आप का अभिप्राय जानना चाहता हूं।"

यह सूचना कोई नयी नहीं है। अ० भा० गोरक्षा मण्डल इसी उद्देश से स्थापित किया गया है। परन्तु जैसे जैसे मैं इस विषय का अनुभव करता जा रहा हूं वैसे वैसे मुझे इन मण्डलों को और संस्थाओं को एकत्रित करने में और उन्हें एक नियम में लाने की कठिनाई का अनुभव हो रहा है। जितने भी मण्डलों के नाम और पते मिले, उनसे उनकी रिपोर्ट मांगी गई हैं परन्तु वह बहुत ही थोड़े मण्डलों ने हमें भेजी है। यह नहीं कि वे अपनी रिपोर्ट भेजना नहीं चाहते है परन्तु आलस्य, लापरवाही, अथवा शरम के कारण ही वे नहीं भेजते हैं। उन्हें अपनी अव्यवस्था के कारण लज्जा मालूम होती है। क्योंकि मैंने ऐसी संस्था देखी है कि जहां व्यवस्था या हिसाब कुछ भी ठीक नहीं था। कुछ स्थानों में तो व्यवस्थापक ही ऐसे अनपढ़ लोग होते है कि उनमें सब बातों को इकट्ठा करने की शक्ति ही नहीं होती। यह सुना जाता है कि हिन्दुस्थान में १५०० गोशालायें हैं। इतनी ही गोशालायें सुव्यवस्थित हो कर डेरियां बन जाय तो इस देश में गोरक्षा का प्रश्न बड़ा सरल हो जाय; मुझे इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं। परन्तु यह कार्य हो कैसे? बिल्ली के गले में घंटा जा कर कौन बांधे? मैं तो इतना ही कहता हूं कि सभी संस्थाओं में फिर से प्राणप्रतिष्ठा करने की आवश्यकता है। आदर्श दुग्धालय और चर्मालय न निकले तबतक उनके नियम बनाने भी कठिन है। अ० भा० गोरक्षा मण्डल ने इस कार्य का त्याग नहीं किया है। दुग्धालय की योजना मि० हेरल्डमेन के द्वारा तैयार कराने का प्रयत्न किया जा रहा है और चर्मालय के लिए भी योजना तैयार करने का प्रयत्न हो रहा है। गोरक्षा की दृष्टि से ऐसे प्रयोग करने का कार्य नया है इसलिए योजना शीघ्र तैयार नहीं की जा सकती है। भाई वालजी देसाई और मि. गेल्टी के लेख इस बात को सिद्ध कर रहे है कि ढोरों की हिफाजत करने में भारतवर्ष सबसे गया बीता देश है। हमें यहां दुग्धालय और चर्मालय के विद्वान शास्त्री शीघ्र कैसे प्राप्त हो सकते है?

'वेजीटेबल घी'

आजकल नाम का दुरुपयोग बहुत हो रहा है। हाथकते सूत से हाथ से बुने हुए कपड़े को ही खादी का नाम दिया जा सकता है, परन्तु मिलवाले अपने यहां बुने गये मोटे कपड़े को भी खादी का नाम दे रहे है। और कोई कोई 'अर्धखादी' नाम की योजना कर के मिल के सूत से हाथ से बुने कपड़े को भी खादी नाम दे कर लोगों को फंसाते है। घी के सम्बन्ध में भी आज यही बात हो रही है। घी तो केवल दूध से बना हुआ पदार्थ है। परन्तु आज 'वेजिटेबल घी' भी निकला है। कोपरे के तेल को 'वेजिटेबल घी' का नाम देने से वह घी नहीं बन सकता है, उसमें घी के गुण नहीं हो सकते हैं। आजकल विदेशों से ऐसा कृत्रिम घी बहुत आ रहा है। वह अच्छी तरह बन्द किया होता है और दिखने में घी के समान होता है इसलिए भोले लोग उसे खरीदते है। और घी के नाम से चरबी भी बिकती है अथवा घी में चरबी मिलायी जाती है इसलिए घी से डर कर भी कितने ही लोग इस वेजिटेबल घी का उपयोग करते हैं।

घी के समान जिस में गुण हो ऐसा कोई वनस्पति का पदार्थ मिले तो मैं उसका उपयोग करूंगा और प्रचार भी करूंगा। घी के उपयोग में मुझे दोष दिखाई देता है परन्तु मैं उसके गुणों का अनादर नहीं कर सकता हूं। घी का स्थान ग्रहण कर सके ऐसा पदार्थ अबतक वनस्पति से नहीं निकाला जा सका है। इसलिए जो पदार्थ वेजिटेबल घी के नाम से बेचा जाता है वह दोनों प्रकार से त्याज्य है, एक तो यह कि वह घी नहीं है और दूसरा यह उसमें घी के गुण नहीं है। तीसरी हानि उससे यह है कि बहुत से विदेशी पदार्थों का आज हम उपयोग करते है उसमें अपने अज्ञान के कारण एक और पदार्थ बढ़ता है और उससे जो नुकसान होता है वह हमें ही सहन करना होता है। इसलिए वेजिटेबल घी का उपयोग करनेवालों को सावधान हो कर उसका त्याग करना चाहिए।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

अज्ञानावरण

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ४०

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, वैशाख सुदी ९, संवत् १९८२ गुरुवार, २० मई, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय १

रायचन्दभाई

गत अध्याय में मैंने यह लिखा था कि बम्बई के पास समुद्र में तूफान सा था। जून और जौलाई में हिन्दमहासागर के लिए यह कोई आश्चर्य की बात न थी। सब बीमार थे। अकेला मैं ही मजे में था। तूफान देखने के लिए डेक पर खड़ा रहता था, भींग भी जाता था। सुबह का खाना खाने के समय मुसाफिरों में हम एक या दो ही होते थे। तश्तरी को पैरों पर धर कर हमें बड़ी होशियारी से ओट की राब खानी पड़ती थी; ऐसा न करने पर राब के पैरों पर ढुल जाने का भय रहता था, ऐसी उस समय की स्थिति थी।

मेरे विचार में तो यह बाह्य तूफान मेरे अन्तर के तूफान का सूचक मात्र था। परन्तु बाहर ऐसा तूफान होने पर भी मैं शान्त रह सका था और यही बात, मालूम होता है अन्तर के तूफान के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। जाति का प्रश्न तो था ही। अपने धन्धे के सम्बन्ध में मुझे जो चिंता थी उसे तो मैं पहले ही लिख चुका हूं। और मैं तो सुधारक था इसलिए मैंने कुछ सुधार करने के भी विचार कर रक्खे थे, मुझे उनकी भी फिक्र थी और दूसरी भी अनेक अकल्पित चिन्तायें उत्पन्न हुई थीं।

माता के दर्शन करने के लिए मैं बड़ा अधीर हो गया था। जब हम बन्दरगाह पर पहुंचे तब मेरे बड़े भाई वहां हाजिर थे। उन्होंने डा० महेता और उनके बड़े भाई से पहचान कर ली थी। डा० महेता का आग्रह था कि मैं उन्हींके यहां जा कर ठहरूं। इसलिए वे मुझे अपने यहां लिवा ले गये। इस प्रकार विलायत में हमलोगों में जो सम्बन्ध हुआ था वह देश में आ कर भी कायम रहा और दोनों कुटुम्बों में व्याप्त हो गया।

माता के स्वर्गवास के सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं जानता था। घर पहुंचने पर मुझे यह समाचार सुनाये गये और स्नान कराया गया। यह समाचार मुझे विलायत में पहुंचाये जा सकते थे परन्तु मेरे दिल को अधिक चोट न पहुंचे इस कारण बड़े भाई ने यही निश्चय किया कि जबतक मैं बम्बई न पहुंच जाऊं तबतक मुझे यह समाचार ही न दिये जायं। मैं अपने दुःख पर परदा डालना चाहता हूं। पिता के मृत्यु से मेरे दिल को जो चोट पहुंची थी उसके बनिस्बत माता की मृत्यु के यह समाचार पाने से मेरे दिल को अधिक चोट लगी थी। मेरी कई सोची हुई मुरादें बरबाद हो गईं। परन्तु मुझे इस बात का स्मरण है कि इस मृत्यु के समाचार को सुन कर भी मैं चिल्ला कर न रोया था, आंसुओं को भी शायद रोक सका था और मैंने उसी तरह व्यवहार करना शुरू कर दिया था मानों माता की मृत्यु ही नहीं हुई।

डा० महेता ने अपने यहां जिन शख्सों के साथ मेरा परिचय कराया उनमें एक परिचय के सम्बन्ध में यहां कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। उनके भाई रेवाशंकर जगजीवन के साथ तो जीवन भर के लिए मित्रता हो गई; परन्तु मैं जिनके सम्बन्ध मे यहां कुछ उल्लेख करना चाहता हूं वे तो कवि रायचन्द अथवा राजचन्द्र हैं। वे डाक्टर के बड़े भाई के दामाद होते थे और रेवाशंकर जगजीवन की पेढ़ी के भागीदार और कर्ताहर्ता थे। उस समय उनकी उम्र २५ वर्ष से कुछ अधिक न थी। परन्तु मैं उनकी उस प्रथम मुलाकात में ही यह देख सका था कि वे चारित्रवान और ज्ञानी थे। शतावधानी गिने जाते थे। शतावधान की परीक्षा करने के लिए डा० महेता ने मुझे सूचना की। मैंने अपने भाषाज्ञान का भण्डार खाली किया और कवि ने भी मैंने जिस क्रम से जिस प्रकार शब्दों को कहा था उसी क्रम में उसी प्रकार सब शब्द कह सुनाये। मुझे उनकी इस शक्ति की ईर्षा हुई परन्तु मैं उस पर मुग्ध न हुआ। जिस पर मैं मुग्ध हुआ था उसका तो मुझे पीछे से परिचय हुआ। वह उनका विशाल शास्त्रज्ञान, उनका शुद्ध चारित्र और आत्मदर्शन करने की उनकी तीव्र जिज्ञासा थी। पीछे से मुझे यह मालूम हुआ कि वे आत्मदर्शन करने के लिए ही अपना जीवन बीता रहे थे।

गुजराती कवि मुक्तानन्द की यह उक्ति

> हसतां रमतां प्रगट हरि देखुं रे
> मारुं जीव्युं सफल तब लेखुं रे
> मुक्तानन्द नो नाथ विहारी रे
> ओधा जीवनदोरी अमारी रे

उनके कण्ठस्थ तो थी ही परन्तु वह उनके हृदय में भी अंकित थी।

वे हजारों रुपये का व्यापार करते थे, हीरा, मोती और जवाहीरों की परीक्षा करते थे और व्यापार संबंधी कूट प्रश्नों का निर्णय भी करते थे परन्तु फिर भी यह उनका विषय न था। उनका विषय — उनका पुरुषार्थ — तो आत्मज्ञान-हरिदर्शन — प्राप्त करना था। उनकी पेढी पर कोई दूसरी चीज हो या न हो परन्तु कोई धर्मपुस्तक और उनका अपना रोजनामचा तो अवश्य ही होता था। व्यापार की बात पूरी हुई कि वे उस धर्मपुस्तक को खोल कर बैठते थे या अपना रोजनामचा खोल लेते थे। उनके लेखों का जो संग्रह प्रकाशित हुआ है उसका बहुत सा भाग तो इसी रोजनामचे से लिया गया है। जो मनुष्य लाखों रुपयों के सोदे की बात पूरी कर के फौरन ही आत्मज्ञान की गूढ बातें लिखने बैठ जाता है उसकी जात व्यापारी की नहीं परन्तु शुद्ध ज्ञानी की ही होती है। एक मरतबा ही नहीं परन्तु अनेक बार मुझे उनका ऐसा अनुभव हुआ था। मैंने उन्हें मूर्छित अवस्था में कभी भी न पाया था। मेरे प्रति उन्हें कुछ भी स्वार्थ न था। मैं उनके अति निकट सम्बन्ध में रहा हूं। मैं उस समय भिखारी बारीस्टर था। परन्तु जब मैं उनकी दूकान पर जाता था तब वे मेरे साथ धर्मवार्ता के सिवा दूसरी कोई बात न करते थे। यद्यपि उस समय मुझे अपनी दिशा का कुछ भी ज्ञान न था और सामान्य तौर पर यह भी नहीं कहा जा सकता था कि मुझे धर्मवार्ता में कोई दिलचस्पी थी, फिर भी रायचन्दभाई की धर्मवार्ता में मेरा दिल लगता था। उसके बाद मुझे बहुत से धर्माचार्यों से मिलने का प्रसंग प्राप्त हुआ है, हरएक धर्म के आचार्य से मुलाकात करने का मैंने प्रयत्न किया है परन्तु रायचन्दभाई की मुझ पर जो छाप पडी है वैसी छाप मुझ पर किसी की भी नहीं पड सकी है। उनके बहुत से वचन तो दिल के पार हो जाते थे। उनकी बुद्धि और प्रामाणिकता के प्रति मुझे बड़ा आदर था। मैं यह जानता था कि वे जान-बूझ कर मुझे गलत रास्ते पर न ले जायगे और अपने मन में जो होगा वही कहेंगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाई के समय उन्हींका आश्रय ग्रहण करता था।

रायचन्दभाई के प्रति मुझे इतना आदर होने पर भी मैं उन्हें अपना धर्मगुरु बना कर अपने हृदय में स्थान नहीं दे सका हूं। उसकी तो मैं आज भी शोध कर रहा हूं।

हिन्दूधर्म में गुरुपद को जो महत्व दिया गया है उसे मैं मानता हूं। 'बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता है' इस वाक्य में बहुत कुछ सत्य है। अक्षरज्ञान देनेवाले अपूर्ण शिक्षक से भी काम चलाया जा सकता है परन्तु आत्मदर्शन करानेवाले अपूर्ण शिक्षक से काम नहीं चलाया जा सकता। गुरुपद तो सम्पूर्ण ज्ञानी को ही दिया जा सकता है, गुरु की शोध में ही सफलता है, क्योंकि शिष्य की योग्यता के अनुसार ही उसे गुरु मिलता है। योग्यता प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण प्रयत्न करने का प्रत्येक साधक को अधिकार है, वही उसका धर्म हो सकता है। इस प्रयत्न का फल ईश्वराधीन है।

अर्थात, यद्यपि मैं रायचन्दभाई को अपने हृदय का स्वामी नहीं बना सका था फिर भी समय समय पर मुझे उनका किस प्रकार आश्रय मिलता रहा यह हम आगे चल कर देखेंगे। यहां इतना ही कहना काफी होगा कि मेरे जीवन पर गहरी छाप डालनेवाले आधुनिक मनुष्य तीन हैं। रायचन्दभाई ने अपने जीवित संसर्ग से, टाल्स्टाय ने अपने 'किंग्डम आफ हेवन इज विधिन यू — स्वर्ग का राज्य तुम्हारे हृदय में है' इस पुस्तक से और रस्किन ने 'अन टु धिस लास्ट — सर्वोदय' नामक पुस्तक से मुझे चकित कर दिया था। परन्तु इन प्रसंगों का अपने अपने स्थान पर फिर वर्णन किया जायगा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

भिन्न दृष्टिकोण

चाहे कितनी और कैसी भी इच्छा क्यों न हो भारतीयों में और योरपीयनों में एक वर्ग के तौर पर हृदय का सम्बन्ध नहीं हो सकता है और उसका निर्णयात्मक कारण यह है कि हमारे दृष्टिकोण ही भिन्न भिन्न है। हम यह कहते हैं कि दिये गये सुधार अपूर्ण हैं, शिक्षित वर्ग जनसमुदाय का योग्य प्रतिनिधि है और हमारी भाषा और धर्म जुदे जुदे होने पर भी हम एक राष्ट्र है। इस बात को अभी सिद्ध करने से कुछ भी लाभ न होगा। यही कहना काफी होगा कि शिक्षित भारत का ऊपर लिखी इस मत पर प्रामाणिकता के साथ विश्वास है।

परन्तु योरपीयन लोग जिस बात को प्रामाणिकता के साथ मानते हैं वह योरपीयन एसोसिएशन की तरफ से भारत के योरपी को लिखी गई इस पत्रिका में स्पष्ट और थोडे शब्दों में दी गई है:

'सुधार की योजना एक राजनैतिक प्रयोग है। अनुभव या तर्क से भी, किसी भी कारण से इस प्रयोग को उचित ठहराना मुश्किल है। इस योजना का उद्देश है भारत सरकार और प्रान्तिक सरकारों के लिए स्वराज्य — स्वायत्तशासन के मार्ग को तैयार करना। उस पर सब से पहली टीका यह हो सकती है कि किसी भी प्रकार का प्रजातंत्र क्यों न हो उसमें पढे लोगों के तरफ से मत देनेवालों का होना आवश्यक है। प्रान्तिक धारासभाओं के लिए मत देनेवाले प्रति सैकडा दो ही मनुष्य होते है और बडी धारासभा के लिए तो ·३५ प्रति सैकडा मनुष्य मत देनेवाले हैं। धारासभा या बडी धारासभा जिन लोगों की प्रतिनिधि है वह तो भारत के जनसमुदाय का बहुत ही छोटा सा हिस्सा है और सिर्फ जनसमुदाय ही प्रजातंत्र का दावा कर सकता है। वे किसी भी प्रकार से लोगों के प्रतिनिधि नहीं हैं। वे एक छोटे से बुद्धिमान वर्ग के लोग हैं और उनका काम बहुतांश में किसान मजदूर आदि लोगों के जनसमुदाय के लाभ के विरुद्ध है। इस देश की आबादी का बहुत बड़ा और मुख्य हिस्सा इन्हीं किसान, मजदूर आदि लोगों का बना है। इस शिक्षित वर्ग का स्पष्ट उद्देश तो जिसे वे नोकरशाही कहते है उसको बदल कर कुछ थोडे देशी अमीरों का ही तंत्र जमाना है। दूसरी टीका (जो स्पष्ट है) यह है कि लोगोंने कभी अपने प्रतिनिधियों की सरकार-प्रजातंत्र नहीं मांगा है। यह भी तो इन्हीं शिक्षित वर्ग के लोगों ने ही सूचित किया था। पूर्वीय लोगों की मनोवृत्ति के अनुसार तो उन्हें ऐसा तंत्र नहीं मालूम होता है। परन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि इन २ प्रति सैकडा मनुष्यों ने एक आवाज से प्रजातंत्र मांगा है तो क्या यह स्वराज्य की लोकप्रिय मांग कही जा सकेगी। तीसरी टीका, तो एक सत्य

बात का उल्लेख करना है, परन्तु उस पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता और वह यह कि भारत में एक राष्ट्र जैसी कोई चीज ही नहीं है। भारत का कोई भी मनुष्य अपने को भारतीय नहीं कहता है। वे अपने अपने देश के नाम से, अपनी पहचान कराते है। योरप के बनिस्बत भारत में भाषा और जाति की भिन्नतायें अधिक हैं और इसके साथ साथ जातिभेद और हिन्दू और मुसलमानों की एक दूसरे के दिल में जमी हुई दुश्मनी का भी विचार करना चाहिए। आज तक कभी किसी ने योरप के लिए गंभीर हो कर स्वराज की योजना पेश नहीं की है, इसलिए भारत के लिए स्वराज्य प्राप्ति की योजना तैयार करना तो और भी अधिक पागलपन गिना जावेंगे। यह टीका बेशक मुख्यतः बड़ी धारासभा को ही लागू होती है और प्रान्तिक धारासभाओं को अंशतः लागू होती है। योरपीयन एसोसियेशन ने सुधारों के प्रयोग का एक प्रयोग के तौर पर समर्थन किया था और वह इसलिए नहीं कि वह यह मानता था कि उसकी रचना किसी उचित सिद्धान्त के आधार पर की हुई है या उसके सफल होने की कोई वास्तविक आशा है परन्तु इसलिए कि राज्यभक्त नागरिकों की हैसियत से, पार्लियामेंट ने जिस नियम का स्वीकार किया है उसका उन्हें समर्थन करना चाहिए और उसे कार्य में परिणत करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वह प्रयोग उचित आजमाईश हो जाने पर असफल हो तो एसोसियेशन सरकार को उचित कार्यवाही करने पर अवश्य जोर देगी।"

जैसा कि इस पत्रिका से प्रकट होता है यदि दोनों ही विचार से और भावों से एक दूसरे के विरुद्ध हों और उनमें जमीन आस्मान का भेद हो तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वे दोनों एक सामान्य कार्य में दिल खोल कर स्वतन्त्रता के साथ मित्र के तौर पर मिल सकें। केवल नाम मात्र के सम्बन्ध या सहयोग से तो दोनों की अवनति ही होगी क्योंकि वे मिलेंगे भी तो मन में मल और परस्पर अविश्वास रख कर ही एक दूसरे से मिलेंगे। यह स्थिति बड़ी दुःखदायक है परन्तु सची है। इस कष्ट को दूर करने के लिए पहले यह आवश्यक है कि उसके सचे होने का हमें ज्ञान हो। ऐक्य चाहने योग्य है, ऐक्य होना ही चाहिए परन्तु वह तभी होगा जब हम एक सा विचार करने लगेंगे। और वह तभी होगा जब कि हम भारतीय लोग हमारी सचाई दिखावेंगे और एक राष्ट्रीयता के अपने विश्वास को सिद्ध करेंगे और एकराष्ट्र के तौर पर काम कर के और जनसमुदाय के लिए कष्ट उठा कर उनके प्रतिनिधि बनने की अपनी शक्ति को सिद्ध करेंगे।

आस्ट्रेलिया में भारतवासी

आस्ट्रेलियानिवासी एक भारतवासी अपने एक पत्र में लिखते हैं।

"यहां आस्ट्रेलिया मे हमें कुछ भी काम नहीं मिलता है। ब्रिटिशों की तरह हम से भी वही कर लिया जाता है परन्तु उन्हें जैसा उसमें से कुछ हिस्सा वापिस लौटाया जाता है वैसा हमें नहीं मिलता है। चाहे किसी तरह से भी दें हमें तो पूरी रकम ही देनी होती है। जब काम या नौकरी पाने के लिए प्रयत्न करते हैं तो उत्तर मिलता है कि 'काले लोगों को कोई नौकरी या काम नहीं दिया जा सकता है' केवल आस्ट्रेलियनों को और दूसरी गोरी जाति के लोगों को ही नौकरी दी जाती है। हमारी थोड़ी सी जमीन भी तो हमें दूसरे के नाम पर चलानी होती है और वह हमारा ट्रस्टी बन कर उसको अपने अधिकार में रखता है। वह प्रमाणिक हुआ तो ठीक, नहीं तो आपकी जमीन आप के हाथ से गई समझियेगा, यह कहा जाता है कि इस देश में सब जाति के लोगों के प्रति वही न्याय्य व्यवहार किया जाता है। परन्तु हम गरीब भारतवासियों के प्रति नहीं। ब्रिटिश लोग हमें कोई नियमित काम और मजदूरी दे उसके बदले हमें भूखों मरना पड़ता है। किसी भी धंधे में आप कैसे भी होशियार क्यों न हो, आप आस्ट्रेलिया में उत्तम से उत्तम इंजीनीयर भी क्यों न हो, आप की हालत कोई अच्छी न होगी। रंगवाले लोगों के लिए काम ही नहीं होता।

जब श्री शास्त्री आस्ट्रेलिया आये थे तब उन्हें तो उस मौके पर दिखाने के लिए तैयार किया हुआ विभाग ही दिखाया गया था। उनसे उन्होंने हमें जो कठिनाइयां झेलनी पड़ती है उनका जिक्र तक न किया। वे जब लौटे उनपर ऐसी ही छाप पड़ी थी कि यहां सब कुछ ठीक ही ठीक है। पर्थ शहर में वे जिन भारतीयों से मिले वे बहुधा शराब की बोतले उठानेवाले थे और उनमें कुछ खानसामे भी थे। उन्होंने पक्की और सख्त मिहनत करनेवाले लोगों को देखा ही न था। वे मुल्क के अंदर तो गये ही नहीं। तो फिर वे लोगों के तरफ से कैसे बोल सकते थे? वे भारतीयों के सम्बन्ध में यहां से अपने मन में गलत छाप ले कर ही लौटे थे। यदि हम थोड़ी शाकभाजी तैयार न करें और उनकी फेरी न करें तो हम इस देश में भूखों मर जायं क्योंकि आस्ट्रेलियनों के तरफ से हमें कुछ भी मदद नहीं मिलती है।"

इस लेखक को खान में नौकरी पाने की अपनी अरजी के जवाब में खदान-विभाग के रजीस्ट्रार के तरफ से जो पत्र मिला है उसकी उसने असल नकल ही मेरे पास भेज दी है। उसमें से मैं नीचे की बातें नकल कर के दे रहा हूं:—

'आपके गत मास की ३१ वीं तारीख के पत्र के उत्तर में मैं आपको यह बात सूचित करना चाहता हूं कि भारतवासियों को खान में काम करनेवाले लोगों के अधिकार देने में हम असमर्थ हैं।"

यह पत्र अपनी आंखे खोल देगा। यह ख्याल किया जाता था कि आस्ट्रेलिया में उन लोगों के प्रति जो वहां कायम निवास कर चुके है जातिभेद के कोई भाव नहीं है। परन्तु लेखक के इस पत्र से, उसका खदानविभाग के पत्र से समर्थन होने पर अब सन्देह के लिए कोई अवकाश ही नहीं रहता है।

पंजाब के तुलनात्मक अंक

इस सप्ताह को मैं पंजाब के खादी की बिक्री और उत्पत्ति के तुलनात्मक अंक दे सका हूं।

उत्पत्ति

	१९२२-२३	१९२३-२४	१९२४-२५	१९२५-२६
अक्तूबर		३,३०३)	४,६०९)	५,६८१)
नवम्बर		३,७८९)	३,६२३)	५,५४७)
दिसम्बर		२,५५१)	९,०२६)	७,०७०)
जनवरी		३,१४०)	१,८७६)	८,९९७)
फरवरी		५,३६२)	४,७०४)	१३,६१४)
मार्च		१४,०९०)	६,७९६)	१०,५२८)
		३२,२३५)	२३,६३४)	५१,४३७)
अप्रेल		६,१९१)	५,०९६)	
मई		७,९३०)	६,४४६)	
जून	१,२४८)	६,०६१)	७,२४२)	
जोलाई	४,०१४)	४,१७५)	६,७६७)	
अगस्त	७,५५०)	३,४४०)	७,९३१)	
सितम्बर	४,२८५)	२,१६२)	८,७०६)	

बिक्री

	१९२२-२३	१९२३-२४	१९२४-२५	१९२५-२६
अक्तूबर		१,१९८)	३,४७९)	८,९२१)
नवम्बर		१,४८१)	६,०९६)	७,२४०)
दिसम्बर		२,५३४)	४,७०२)	७,६६७)
जनवरी		२,८९१)	७,१२७)	८,२१३)
फरवरी		१,८८१)	३,७६४)	९,४१४)
मार्च		४,६५५)	४,१८३)	६,४७५)
		१४,६४६)	२९,५५१)	४५,०६०)
अप्रेल		३,१६३)	५,५७९)	
मे		३,१७८)	४,९९७)	
जून	१,६४१)	५,४८०)	६,२६२)	
जोलाई	२,९९१)	२,९९३)	२,४२५)	
अगस्त	४,२२४)	७६१)	७,५१२)	
सितम्बर	४,०७७)	४०८)	६,१७९)	

इन अंकों में अभय आश्रम की तरह प्रगति नहीं दिखाई देती है फिर भी १९२३-२४ या १९२४-२५ की तुलना में उस उस महीनों के अंक दुगुने हैं। यह कोई पंजाब में खादी की अवनति का चिह्न नहीं हो सकता है।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी २, संवत् १९८२

अज्ञानावरण

एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है कि जब सत्य का समर्थन करना हो तो उसे प्रकट करने में जो परिश्रम होता है उससे कहीं अधिक परिश्रम अज्ञानजनित भ्रम को दूर करने में करना होता है। सत्य तो स्वयंसिद्ध है इसलिए अज्ञानजनित अन्धकार को दूर किया नहीं कि सत्य स्वयं दिखाई देने लगता है। चरखे की सीधी-सादी हलचल के विषय में भी ऐसा ही भ्रम फैला हुआ है। जितना बोझ वह उठा सकता है उससे कहीं अधिक बोझ चरखे पर रखा जाता है और जब वह बोझ उससे नहीं उठता है तब उसपर दोष लगाये जाते हैं, और दर असल में तो वह दोष उस बोझ रखनेवाले का ही होता है। यह क्यों होता है? एक खादी-प्रेमी के लिखे हुए नीचे दिये गये वाक्यों से यह जाना जा सकेगा। उसका केवल सार ही दिया गया है:

(१) अब आप चरखे को कामधेनु मनवाने का प्रयत्न करते हैं इसलिए हमें उसपर तिरस्कार होने लगा है। और इसीलिए हम पढ़ेलिखे आपका और चरखे का त्याग करते हैं।

(२) *छोटे छोटे गांवों में शायद चरखा चलाया जा सकता* है और ऐसा आप करें तो आपकी कोई टीका न करेगा और आपको उसमें शायद उत्तेजन भी मिलेगा।

(३) यदि आप यह मनाना चाहें कि चरखे से मोक्ष प्राप्त होगा तो यह प्रयत्न केवल हास्यजनक होगा। आप बड़े हैं इसलिए शायद कुछ भोले लोग इसको सहन कर लेंगे परन्तु हम पढ़ेलिखे लोग तो अब इसे कभी भी सहन न करेंगे क्योंकि आपने मर्यादा का त्याग किया है। और जबसे आपने लेख- सन्यास लिया है तबसे तो जिसे ब्रह्मचर्य का पालन करना हो उसे भी आप चरखा बताते हैं, बंगाल में कैद में पड़े हुए निरपराधी देशभक्तों को छुड़ाने के लिए भी आप चरखा ही बताते हैं; हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति का सुधार करने के लिए भी आप चरखा बताते हैं और भाला-बरछी चलानेवाले बांके सिपाही को भी आप चरखा बताते हैं। आपका यह उन्माद आप क्यों नहीं समझते हैं यही आश्चर्य की बात है!

(४) हिन्दुस्तान यदि साठ करोड़ का कपड़ा न खरीदे तो उससे ब्रिटन का क्या बिगड़ेगा? क्या उससे ब्रिटिशलोग राज्याधिकार छोड़ देंगे? चरखे की प्रवृत्ति से बढ़ कर दूसरी कोई राजनैतिक प्रवृत्ति नहीं है, यह कहने में आप कैसी भयंकर भूल कर रहे हैं?

(५) *चरखे से रोटी मिल सकती है यह भी आपको अभी* सिद्ध करना बाकी है। चरखे की प्रवृत्ति से अवश्य ही हानि हुई है। देखो न, खादी की कितनी दुकानें उठ गईं?

(६) मालूम होता है आप यह भी कहते हैं कि चरखे के उद्योग के विकास के लिए दूसरे उद्योगों को भी छोड़ देना चाहिए।"

जितनी आपत्तियां मैं उसमें से चुन ले सकता था उतनी चुन कर मैंने यहां अपनी भाषा में दी हैं। परन्तु इससे जहां तक मेरा ख्याल है मैंने लेखक को कोई अन्याय नहीं किया है। यदि अन्याय किया ही हो तो उसकी कटुता तो उसमें से निकाल देने का अथवा कम करने का ही अन्याय किया है। चिढ़े हुए देशभक्तों को बड़े गिने जानेवाले मनुष्यों के प्रति कठोर वचन कहने का अधिकार है। एक तरफ देश की गरीबी को देख कर और दूसरी तरफ उस स्थिति को सुधारने में अपने को लाचार पा कर वे बड़े गिने जानेवालों के प्रति कठोर वचनों का प्रयोग कर के अपना क्रोध बहुत कुछ अंशों में शान्त कर सकते हैं। मेरा धर्म उस क्रोध का विज्ञापन देना नहीं है परन्तु उस क्रोध से उत्पन्न हुए सम्मोह को, किसी भी उपाय से, यदि वह दूर हो सकता हो तो दूर कर देना ही हो सकता है। इसीलिए मैंने भाषा को जितनी भी हो सके मुलायम बनाने का प्रयत्न किया है।

अब उनके ६ मुद्दों की परीक्षा करें।

(१) मैंने चरखे को कामधेनु मनवाने का कोई प्रयत्न नहीं किया है परन्तु मैंने उसे अपने लिए कामधेनु अवश्य माना है। हिन्दुस्तान में करोड़ों हिन्दू आज यह कर रहे हैं। थोड़ी सी मिट्टी लेकर, उसकी गोली बना कर, उसमें ईश्वर का आरोपण करके उसको वे अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं और उसे अपनी कामधेनु बनाते हैं। परन्तु उस मिट्टी के ढोके को पूजने के लिए वे अपने पड़ोसी को भी नहीं कहते हैं। अपनी पूजाविधि खतम हो जाने पर उस परमात्मामय मिट्टी को वे नदी के अर्पण कर देते हैं। मैं उन करोड़ों में से एक हूं, इसलिए यदि चरखे को अपनी कामधेनु बनाऊं तो उससे पढ़ेलिखों को तिरस्कार क्यों होना चाहिए? क्या उनसे मैं सामान्य सहिष्णुता की भी आशा नहीं रख सकता हूं? परन्तु सभी पढ़ेलिखे लोगों ने अभी मेरा त्याग नहीं किया है। कुछ लोगों को उसके प्रति तिरस्कार हुआ है इसलिए सब को ही हुआ है यह मानना या मनवाना भी अनुचित है। परन्तु थोड़ी देर के लिए यह *मान भी लो कि सभी पढ़ेलिखे लोगों ने मेरा त्याग किया* है तो भी यदि मेरी श्रद्धा अटल होगी तो वह ऐसे समय में और भी अधिक तेजस्वी बन जायगी और प्रकाशमान होगी।

सन १९०८ की साल में 'किल्डोनन केसल' जहाज पर हिन्द-स्वराज लिखते समय जब मैंने चरखे के प्रति अपनी श्रद्धा जाहिर की तब तो मैं अकेला ही था। जिस परमात्मा ने उस समय मेरी कलम पर चरखा चलाया था वह क्या उस श्रद्धा की परीक्षा के समय मेरा साथ छोड देगा?

(२) छोटे छोटे गांवों में चलाने के लिए ही चरखा है। आज वह वहीं चल रहा है। मैं जो उसे उत्तेजन देने के लिए भिक्षा मांग रहा हूं वह गांवों में उसके पुनरुद्धार के लिए ही मांग रहा हूं। शिक्षित वर्ग से प्रार्थना करने की मुझे आवश्यकता है। गांवों में लोगों को मेलेरिया इत्यादि रोगों से बचने का कोई ज्ञान नहीं है। यदि हम उन्हें वह ज्ञान देना चाहें तो हमलोगों को–शिक्षितवर्ग और मध्यमवर्ग के अनेक मनुष्यों को–उन रोगों को नष्ट करने के नियम जानना और उनका पालना करना होगा। उसके बाद वे गांवों में जा कर ग्रामवासियों को शिक्षा दे सकेंगे। इसी प्रकार जब हम चरखे का शास्त्र अच्छी तरह सीख लेंगे और हमेशा चरखा चलायेंगे तभी हम ग्रामवासियों को चरखा चलाना सीखा सकेंगे और उनकी उसमें जो अश्रद्धा है उसे अपने व्यवहार से दूर कर सकेंगे। और यदि हमलोग इन चरखों से उत्पन्न होनेवाली खादी का उपयोग न करेंगे तो चरखा न चल सकेगा और यह तो ऐसी बात है कि सब कोई उसे आसानी से समझ सकते हैं। इसलिए मैं शहर में रहनेवालों से तो यज्ञार्थ चरखा चलाने की ही प्रार्थना करता हूं। गांवों में रहनेवाले आजीविका के लिए चरखा चलावेंगे। ऐसी सरल और सीधी बात की टीका कैसे की जा सकती है? जो चरखे के हार्द को समझता है उसे तो टीका करने का कोई भी कारण नहीं है।

(३) चरखे को मैं अपने लिए मोक्ष का द्वार मानता हूं। दूसरों के लिए तो मैं इतना ही कहता हूं कि वह हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए और स्वराज्य प्राप्त करने के लिए एक प्रबंध मात्र है। जो ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है उसको मैं चरखा चलाने के लिए कहता हूं, यह कोई हास्यजनक बात नहीं है परन्तु यह मेरा एक अनुभव का वचन है। जिसे विकारमात्र का त्याग करना है उसे शान्ति की आवश्यकता है। उसका क्षोभ दूर हो जाना चाहिए। चरखाप्रवृत्ति एक ऐसी ठंडी और शान्त प्रवृत्ति है कि भावुकता के साथ चरखा चलानेवालों के विकार उससे शान्त हो गये हैं। चरखे पर बैठ कर मैं अपने क्रोध को शान्त कर सका हूं और दूसरे ऐसे अनेक ब्रह्मचारियों के ऐसे ही अनुभवों को भी मैं पेश कर सकता हूं। ऐसे अनुभव कहनेवालों को मूर्ख मान कर उनकी हंसी करना आसान है परन्तु वह है बडा महंगा। क्योंकि हंसनेवाला अपने विकार के वश हो कर अपने विकारों को दबा कर वीर्यवान बनने के एक सुन्दर शस्त्र को खो बैठता है। इसे पढनेवाले प्रत्येक नवयुवक और युवती से मैं यदि वे चरखे के विरुद्ध भ्रम में न पडे हुए हों तो, उसकी आजमाइश करने की सिफारिश करूंगा। वे यह देखेंगे कि चरखे पर बैठने के बाद कुछ ही समय में उनके विकार कम होने लगेंगे। मेरे कहने का आशय यह नहीं कि कातने से शान्त हुए विकार कातना बन्द कर देने के बाद भी २४ घण्टे तक वैसे ही शान्त बने रहेंगे। विकार का वेग तो वायु से भी अधिक चंचल है। उसे शान्त करने के लिए धैर्य का होना आवश्यक है। और धैर्य का विकास करने के लिए चरखा एक बडा जबरदस्त साधन हो सकता है। कदाच कोई यह कहेगा कि चरखे का यदि यही उपयोग है तो उसके बदले में उससे अधिक काव्यमय माला फिराने का काम करने के लिए ही क्यों नहीं कहता हूं? मेरा उत्तर तो यह है कि चरखे में दूसरे भी सामर्थ्य हैं। हिमालय की गुफा में रहनेवाले और वहां उत्पन्न होनेवाले वृक्ष या पौधों के कंदमूल पर ही निर्वाह करनेवाले किसी अवधूत के सामने मैंने चरखा नहीं रखा है। परन्तु मैंने तो अपने जैसे असंख्य प्राकृत मनुष्यों के सामने, जो संसार में रहते हैं, देश की सेवा करना चाहते हैं और देशसेवा करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं, यह चरखा पेश किया है।

और कैद में पडे हुए निरपराधी बंगालियों को छुडाने के लिए मैं जो चरखे को पेश कर रहा हूं उसे हंसी में उडा देने का तो यह मतलब हो सकता है कि हम अपनी शक्ति से इन कैदियों को छुडाने के लिए जरा भी प्रयत्न करना नहीं चाहते हैं। यहां पर चरखे का अर्थ परदेशी कपडे का बहिष्कार होता है। यह कैसी शक्ति है और उसके बिना किसी दूसरी शक्ति का विकास करने में हम असमर्थ हैं यह हम आगे के मुद्दे की परीक्षा करते समय देखेंगे। और इसीलिए मैं भाले–बरछी चलानेवाले बांके सिपाही को भी जो चरखा देना चाहता हूं वह मेरे पागलपन की निशानी नहीं है परन्तु वह मेरे ज्ञान की निशानी है। और वह ज्ञान किताबों का ज्ञान नहीं है परन्तु अनुभव का प्रसाद है।

(४) हिन्दुस्तान साठ करोड का कपडा न खरीदे तो उससे ब्रिटन का क्या बिगडेगा, यह विचार करना यहां उचित नहीं है। उससे हमारा क्या लाभ होगा, यही विचार करना हमारा धर्म है। खादी के अर्थ साठ करोड का विदेशी कपडा हम न खरीदेंगे तो उसका अर्थ यह होगा कि उतने रुपये तीस करोड हिन्दुस्तानियों के घरों में बच रहेंगे अर्थात इतनी आमदनी बढेगी। उससे हिन्दुस्तान का वह उद्योग बढेगा कि जिससे इतने रुपये उत्पन्न हो सकेंगे। और खादी के जरिये इतने रुपये बचाने का मतलब यह होगा कि करोडों का संगठन होगा, करोडों लोगों की शक्ति का संग्रह होगा और करोडों देशसेवक ओतप्रोत हो जायंगे। ऐसे महान कार्य को अच्छी तरह पार उतारने के मानी हैं हमलोगों को अपनी शक्ति का पूरा पूरा ज्ञान होगा। जबतक बडी सूक्ष्म उलझन की बातों को भी सुलझाने का हमें ज्ञान न होगा, एक एक पाई का हिसाब रखना न सीख लेंगे, गांवों में रहना न सीखेंगे, मार्ग में आनेवाली अनेक खाइयों को दूर न कर सकेंगे, अनेक पहाडों को तोड कर दूर न कर सकेंगे तबतक यह होना असम्भव है। चरखा और खादी तो इस शक्ति की उत्पत्ति के लिए निमित्त मात्र है। थोडा सा धैर्य रख कर चरखा और खादी का रहस्य और उसका फलितार्थ जबतक हम अपनी कल्पनाशक्ति का उपयोग कर के समझेंगे नहीं तबतक हमें यदि चरखे के प्रति तिरस्कार हो तो यह समझ में भी आ सकता है। परन्तु जब उसके रहस्य को हम समझेंगे तब तो फिर चरखा हमारे हाथ से कभी भी दूर न होगा। ब्रिटिश जनता बडी चालाक है, उसके अधिकारी चतुर और समझदार हैं, और यह मैं जानता हूं इसीलिए तो मैंने लोगों के सामने चरखा पेश किया है। ब्रिटिश जनता को हम अपने वाक्चातुर्य से न ठग सकेंगे, समाचारपत्रों में प्रकाशित हम अपनी कलम की शक्ति से भी उसे न हरा सकेंगे। हमारी धमकियों की तो वह आदी हो गई है। हमारे बाहुबल का उसके हवाई जहाजों से गिरनेवाले गोलों के सामने कुछ भी हिसाब नहीं है। परन्तु वे लोग धैर्य, उद्यम, निश्चय और योजनाशक्ति इत्यादि को समझते हैं और उसका आदर भी करते हैं। उसका सबसे बडा उद्योग कपडा है। उस कपडे के बहिष्कार के साथ ही उसे हमारी शक्ति का ज्ञान हो जायगा। अपने अभिमान को तुष्ट करने के लिए वे हिन्दुस्तान पर कब्जा

नहीं किये हुए हैं। केवल शस्त्रबल से ही नहीं परन्तु अपने कौशल्य से ही वे हमलोगों को अपने वश में रखते हैं। हिन्दुस्तान में वे लोग व्यापार के लिए ही राज्य करते हैं। जब हमारी स्वतन्त्र इच्छा पर ही उनके व्यापार का आधार रहेगा तब उनका राज्य भी वैसा ही हमारी इच्छा पर आधार रखनेवाला होगा। आज तो उनका व्यापार और राज्य दोनों हमारी अपनी इच्छा के विरुद्ध हैं। दो में से एक भी चीज जो हमारी इच्छा के अनुकूल होग तो दूसरी भी आसानी से उसके अनुकूल हो सकेगी। परन्तु जबतक व्यापार हमारी इच्छा के अनुकूल न होगा तबतक राज्य भी उसके अनुकूल न होगा और यह बात बड़ी आसानी से समझ में आ सकती है।

चरखे से अधिक अच्छी दूसरी राजनैतिक हलचल यदि मेरे हाथ लगे तो मैं चरखे को फौरन ही पदभ्रष्ट कर दूं। मुझे अबतक ऐसी हलचल का ज्ञान नहीं हुआ है और न किसीने मुझे बताई है, यदि ऐसी कोई हलचल हो तो उसे जानने के लिए मैं बड़ा ही उत्सुक हूं।

(५) चरखे से रोटी मिल सकती है यह बात अब नवजीवन के पाठकों के सामने सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। खादी कार्यालय के अंकों से ही यह बात साबित हो जाती है कि हजारों गरीब औरतें उसके जर्ये अपनी आजीविका प्राप्त कर रही हैं। किसी ने भी अबतक इस बात से इन्कार नहीं किया है कि चरखे से दिन में कम से कम एक आना पैसा हो सकता है और इस देश में करोड़ों ऐसे गरीब लोग पड़े हुए हैं कि जिन्हें एक पैसा भी नहीं मिलता है। जहां यह स्थिति है वहां चरखा और रोटी में कैसा निकट सम्बन्ध है यह सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

चरखे की प्रवृत्ति से देश को नुकसान हुआ है यह कहनेवालों को नुकसान सिद्ध करना चाहिए। यह प्रवृत्ति ही ऐसी है कि उसमें प्रयत्न का कभी नाश नहीं होता है, उसमें विघ्न नहीं हो सकता है और उसका अल्पमात्र भी पालन करने से वह बड़े से बड़े भय से हमारी रक्षा करता है। खादी की कुछ दुकानें उत्पन्न हुई और उनका नाश हुआ तो उससे क्या हुआ? ऐसा तो हरएक व्यापार में हुआ करता है। दुकान करने में जो खर्च हुआ था वह देश में ही रहा है और उससे जो अनुभव मिला उससे हम आगे बढ़े हैं। यदि कुछ दुकानें उठ गई हैं तो कुछ अधिक व्यवस्थित तौर पर स्थापित भी हुई हैं और ऐसे बहुत से उदाहरण भी मिल सकेंगे। जिन्हें ऐसे उदाहरण इकट्ठे करने हों उन्हें नवजीवन के पीछले पृष्ठों को देखना चाहिए।

(६) चरखे के उद्योग के लिए किसी भी पोषक उद्योग को छोड़ देने की मैंने कभी कल्पना तक नहीं की है तो फिर मैं उसके लिए सिफारिश कैसे कर सकता हूं? हिन्दुस्तान में करोड़ों लोग निरुद्यमी रहते हैं, इसी एक बात पर तो चरखे की प्रवृत्ति का आरंभ किया गया है। मुझे इस बात का स्वीकार करना चाहिए कि यदि भारतवर्ष में ऐसे निरुद्यमी लोग नहीं हैं तो फिर इस देश में चरखे को कोई स्थान ही नहीं हो सकता है। हिन्दुस्तान के गांवों की स्थिति का जिन्हें ज्ञान है वे सब यह जानते हैं कि आज भारत निरुद्यमियों से भरा हुआ है और पामाल हो गया है। यज्ञार्थ चरखा चलाने के लिए जो मैं मध्यम वर्ग के लोगों को कहता हूं वह भी उनके बचे हुए समय के लिए ही। चरखे की प्रवृत्ति किसी उद्योग की नाशक प्रवृत्ति नहीं है वह प्रवृत्ति तो पोषक है, और इसलिए मैंने उसे अन्नपूर्णा की उपमा दी है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

पुरुषार्थ के दो चित्र

२

गतांक में पुरुषार्थ का पाश्चात्य चित्र दिया गया था अब इस अंक में एक आधुनिक तरुण हिन्दी का चित्र दे रहा हूं। यदि दोनों चित्रों का कुछ थोड़े ही शब्दों में वर्णन करना हो तो मैं कहूंगा कि पाश्चात्य चित्र तो अधिक से अधिक पाश्चात्य 'यज्ञ' (ब्रेड-लेबर) के सिद्धान्त का नमूना है, और यहां का चित्र 'गीता' के 'यज्ञ' का नमूना है। बोन्डारेफ और टालस्टाय ने ईसामसीह के 'पसीना बहा कर रोटी प्राप्त करने के' उपदेश के अनुसार 'ब्रेड-लेबर' का सिद्धान्त बनाया — अमुक शरीरश्रम किये बिना मनुष्य अपने लिए रोटी प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता है। परन्तु हमारे यहां तो गीताजी में यज्ञ का इससे भी विशाल अर्थ किया गया है। केवल अपनी रोटी कमाने के लिए ही शरीरश्रम नहीं परन्तु दूसरों के लिए शरीरश्रम करने को ही यज्ञ का नाम दिया गया है। इसी को पुण्यकार्य माना गया है। आज मैं पुरुषार्थ का जो उदाहरण देना चाहता हूं उसे किसलिए ऊंचे प्रकार का यज्ञ गिना गया है यह तो पाठक आसानी से समझ सकेंगे। गतांक में दिये गये उस चित्र में मोटर शोफर ने अपना धंधा करते हुए वकालात की पढ़ाई की, हजारों फ्रांक कमाये और अपने कुटुम्ब को मदद की। यह तो उसके जीवन के प्रसंग हैं। किसी कल्पना-कार ने तो शायद उसे बारीस्टर एडवोकेट बनाया होता और उसे पुस्तकों का लेखक और भाषणकर्ता भी बनाया होता; और इस प्रकार उसे सफल जीवन के आदर्श के रूप में भी पेश किया होता। परन्तु इस दूसरे पुरुषार्थ के चित्र में पुरुषार्थी को हजारों रुपये कमाने की कोई अभिलाषा न थी, वकील एडवोकेट बनने का कोई मनोरथ न था। उसे तो परोपकार-प्रवृत्ति को पराकाष्ठा को पहुंचा कर उस दिशा में कहां तक पहुंच सकते हैं यही दिखाना था। उसे कुछ हजार रुपये कमा कर न कहीं भेजने थे, न उसे नाटक ही देखने थे और न उसे हवा खाने के लिए महाबलेश्वर या काश्मीर ही जाना था। उसे तो हिन्दुस्तान के गरीबों के लिए हजारों लाखों गज सूत कात कर महासभा को देने का ही एकमात्र मनोरथ था।

बराड के श्री झवेरभाई पटेल ने एक वर्ष तक सतत कात कर जब अपना महायज्ञ पूरा किया तब अनेक विचार उत्पन्न हुए थे, अनेक प्रश्न खड़े हुए थे। कुछ घण्टों में इंग्लीश चेनल तैर कर पार कर जानेवालों को अथवा अमुक प्रकार के वेग से हवाई जहाज में उड़नेवालों को जिस प्रकार योरप में समाचारपत्रों के संवाददाता घेर लेते हैं उसी प्रकार भाई झवेरभाई को भी उनके यज्ञ के विषय में एक समाचारपत्र से सम्बन्ध रखनेवाले की हैसियत से कुछ प्रश्न करने का मुझे भी ख्याल हुआ था। परन्तु केवल कुतूहल के वश होने के बदले इस यज्ञ से सम्बन्ध रखनेवाली बातें लोगों को उपकारक होंगी यह निश्चय कर के मैंने उन्हें कुछ प्रश्न लिख कर भेज दिये। उन्होंने उन प्रश्नों का बड़े विस्तार से उत्तर दिया है। और उसीको मैं प्रश्नोत्तर के रूप में यहां पेश कर रहा हूं।

'आपको इस यज्ञ का कैसे विचार आया?'

'१९२४ के दिसम्बर के महीने में जब महासभा हुई थी तब पाठशाला में तीन दिन की छुट्टी रक्खी गई थी। उन दिनों में जब मैंने कातने का प्रयोग शुरू किया तो रोजाना करीब करीब १००० गज सूत काता गया था। एक महीना पूरा करने का विचार किया। एक महीने के बाद एक वर्ष का यज्ञ करने का विचार हुआ।'

'एक वर्ष तक आप इस यज्ञ को अबाधित रूप से करते रहे यह देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। आपने इस यज्ञ को करते हुए अपनी रहनसहन को किस प्रकार व्यवस्थित की थी। क्या वर्ष में कभी इसमें कोई विघ्न न आया? इन सब बातों का यदि आप वर्णन करेंगे तो इससे बहुतेरे लोगों का उपकार होगा।

'अबाधित' तो नहीं कह सकता हूं। पौष सुदी १,१९८१ से आरंभ कर पौष बदी अमास तक १३ महीने यज्ञ चलाया था। एक महीना अधिक गिना है क्योंकि पहले महीने को तो प्रयोग का महीना ही गिना गया था। कामकाज के लिए प्रतिमास एकाध दिन के लिए गांव छोड़ कर जाना होता था। मैंने तो इसका भी हिसाब रखा था, पौष के महीने में २ दिन, माघ में १ दिन फाल्गुन में १ दिन, बारडोली गया था; चैत्र में ६ दिन मैं अपने गांव गया था; वैशाख में १ दिन, ज्येष्ठ के महीने में ४ दिन बारडोली गया था; आषाढ में ३ दिन धान बोने में गये, श्रावण में दो दिन, भाद्रपद में ३ दिन, आश्विन में १ दिन बारडोली और ११ दिन भावनगर; मार्गशीर्ष में १ दिन रायम और २ दिन बारडोली और पौष मास में ३ दिन बारडोली और १ दिन सूरत गया था? इस प्रकार ४४ दिन मेरी इच्छानुसार मैं कात नहीं सका था। हां, कुछ घण्टे कातता अवश्य था — जहां चरखा मिल जाता था वहां अवश्य कात लेता था — जब मैं मेरे गांव गया था तब मैंने चार दिन में १३ हजार गज सूत काता था — और भावनगर मोंटीसोरी सम्मेलन में गया था तब सफर में और भावनगर में तकली पर ४। हजार गज सूत काता था। पांच दिन खेती को देने पड़े थे, वे खेती के श्रम में, धान बोना, धान काट लेना इत्यादि काम में गये। उस समय बहुत कम कात सका था।'

आपने बड़ा ठीक हिसाब रक्खा है। इतने नियमित परिश्रम के दिनों में क्या कभी आप बीमार भी हुए थे? सब से पहले यही पूछ लेता हूं।

'१३ महीने में सिर्फ आषाढ के महीने में तीन दिन बुखार आया था परन्तु बुखार होने पर भी रोजाना तीन घण्टे तो अवश्य कातता था।'

'परन्तु यह तो केवल आप की कातने की प्रवृत्ति की ही बात हुई। आपका कातने का औसत् रोजाना का ३ से ४ हजार गज सूत का होना है अर्थात् यह कुछ नहीं तो रोजाना १० घण्टे कातने का श्रम होता है परन्तु इसके अलावा दूसरा भी कुछ श्रम करना पड़ता होगा। क्या उसका भी कुछ हाल सुनावेंगे?'

'बड़ी खुशी से। मेरी शाला तो थी ही। खेती के काम में कुछ दिन लगे थे यह तो ऊपर लिख ही चुका हूं। और मैंने जितना सूत काता था उसके लिए सब आरम्भिक प्रवृत्ति भी मैंने ही की थी अर्थात् कपास चुनना, उसे साफ करना, बिनौले निकालना और धुनकना आदि। जाड़ों के दिनों में शाला का समय सुबह को ८ से ११ तक और दोपहर को २ बजे से ५ बजे तक होता था और गरमी के दिनों में सुबह को ७॥ से १०॥ और दोपहर को एक महीने के लिए २॥ से ५॥ तक और तीन महीनों के लिए ३। से ५॥ तक — वर्षा के दिनों में ७॥ से १०॥ और २॥ से ५॥ का समय होता था। गरमी की छुट्टियां नहीं दी जाती क्योंकि गांवों में रहनेवाले लोग छुट्टियों की उपयोगिता को नहीं समझते हैं, अर्थात् ३५ त्यौहारों की छुट्टियां, सोमवार को सारे दिन की छुट्टी और शुक्रवार को आधे दिन की छुट्टी होती थी। बाकी के सब दिनों में ६ घण्टे तो शाला में ही जाते थे।

'कताई के औसत दस घण्टे और ६ घण्टे शाला के इस प्रकार आपके १६ घण्टे तो पूरे हो गये। अब निद्रा, बाहर आना जाना, खानापीना, आराम, पढनालिखना इत्यादि के लिए समय ही कहां रहा, यह कुछ कल्पना में ही नहीं आता है। और इसके अलावा कपास चुनना, बिनौले निकालना, रुई धुनकना इत्यादि काम तो आप गिना गये हैं। यह तो मनुष्य की बुद्धि को चक्कर में डालनेवाली बात हुई।'

नहीं, इसमें ऐसी कोई असाधारण बात नहीं है। जिस दिन दूसरे काम करने को होते थे उस दिन कम काता जाता था। निद्रा में मेरा कितना समय जाता था यह मैं अभी आपको कहता हूं। परन्तु उसके पहले कपास चुनने का और दूसरा हिसाब दिये देता हूं।

जिस दिन शाला में सारे दिन की छुट्टी होती थी उस दिन कपास चुनने का काम करता था। सुबह ५ बजे बाहर निकल जाता था। ६ बजे खेत में हाजिर हो जाता था और दोपहर को १२ बजे आधामन (कच्चा) कपास चुन कर लौट आता था। जब कपास अच्छा खिला हुआ होता था तब अधिक चुना जा सकता था। परन्तु किसी दिन यदि कम खिला हुआ हो तो कम चुना जाता था। अर्थात् ६ मन कपास चुनने के लिए १२ दिन जाना होता था और उसमें दिन में सात या आठ घण्टे लगते थे। घण्टे में करीब करीब ५ सेर (कच्चा) कपास चुना जा सकता है, अच्छा खिला हुआ हो तो आठ सेर (कच्चा) चुना जा सकता है।

माघ और फाल्गुन मास में ७ मन (कच्चा) कपास चुना और बिनौले निकाले। जिस दिन कपास चुनने का और बिनौले निकालने का काम होता था उस दिन बहुत कम काता जाता था। जैसे माघ के महीने में जब कुछ दिन तो दिन में ५॥ हजार गज सूत कातता था तब १० १२ दिन के लिए तो दिन में डेढ दो हजार गज सूत कात कर ही संतोष करना होता था। फाल्गुन के महीने में कुछ दिन तो केवल ५०० गज सूत ही कात सका था और उस महीने का कुल सूत सिर्फ ५०००० गज होता है।

शाला का समय सुबह का और दोपहर का होने के कारण, बीच के समय में धुनकने की बड़ी सुविधा होती थी। तीन चार घण्टे धुनकने का काम करता था; शुक्रवार, सोमवार या त्यौहार के दिन ७ या ८ घण्टे धुनकने का काम करता था। माघ, फाल्गुन और चैत में यह काम पूरा कर लिया था। बड़ी तांत का ही उपयोग करता था। माघ में १३ सेर, फाल्गुन में २१॥ सेर चैत्र में ५८ सेर और वैशाख में ४॥ सेर इस प्रकार कुछ ९७। सेर (कच्चा) रुई धुनक ली थी। पूनीयां मेरी साली बहन दीवाली बहन बना देती थी यह मुझे यहां कह देना चाहिए। सवा मन कपास भी उन्होंने चुना था।

जब कपास चुनने का और धुनकने का काम होता था तब कातने का काम कम होता था परन्तु दूसरे महीने में जब सिर्फ कातने का और शाला का ही काम चलता था तब कातने का अंक भी ठीक ठीक बढ गया था; जैसे वैशाख में १ लाख ११ हजार, ज्येष्ठ में १ लाख ५ हजार, श्रावण में १ लाख ५ हजार, दूसरे पौष में १ लाख ५ हजार गज कात सका था। सालभर के अंक इस प्रकार हैं:

	काता गज	अंक	कपास चुना– बिनौले निकाले	रुई धुनकली
पौष	८७,०००			
माघ	८४,५००	२१	३ मन १५ सेर×	१३ सेर

× इसमें कच्चे सेर का ही तौल किया गया है।

फाल्गुन	५०,५००	२१॥	३ मन ३१। सेर	२१॥। सेर
चैत्र	४८,१२५	१५		१८ सेर
वैशाख	१,११,५००	१६		४॥ सेर
ज्येष्ठ	१,०५,५००	१६		
आषाढ	८०,०००	६		
श्रावण	१,०५,५००	१६		
भाद्रपद	८१,०००*	१६	* (+ महीन ४५०० गज)	
आश्विन	९९,०००*	२१	* (+ महीन ३५०० गज)	
कार्तिक	७५,०००	२०		
मार्गशीर्ष	७८,७००	२०		
पौष	१,०५,५००	२०		

कुल ११ लाख १० हजार ८२५ गज काता ८ लाख गज सूत महासभा को समर्पण कर दिया, ३ लाख १० हजार ८२५ गज अपने पास रक्खा। १२००० गज सूत की माल बनाईं।'

'आपने तो गजब किया है आप इतने विस्तार से अपने समय का हिसाब दे सकते हैं तो आपको और भी कुछ पूछने का दिल होता है। खानेपीने का और आराम का कहीं कुछ ख्याल रक्खा भी था?

"जी हां, बिना भोजन किये कहीं काम हो सकता है? पौष, माघ, फाल्गुन और चैत्र के महीनों में जब मेरी पत्नी घर नहीं थी तब चार महीने तक केवल दूध और रोटी दिन में तीन मरतबा खाता था। दीवाली बहन के साथ पीसने का समय ठहराया हुआ था। कभी कभी जब वे पूनियां तैयार करती होती थी तब मैं अकेला ही पीसता था। घण्टे में ५ सेर (कच्चा) पीसता था। बाकी के ८ महीनों में सुबह को दूध (सेरभर) अथवा रोटी (गेहूं की या बाजरे की) शाम की बची हुई हो तो, दोपहर को दालभात शाक इत्यादि और शाम को दूध और बाजरे की रोटी। जब शाम को दाल या कुछ ऐसा ही पदार्थ होता था तब मैं दूध न लेता था। शाम को हमेशा जितनी भूख होती थी उससे अर्ध भोजन करता था। उससे मुझे स्वप्नरहित निद्रा आसानी से प्राप्त हो सकती थी। सुबह को कसरत करना भी नहीं छोड़ा था। रोजाना मुगदल के पांच छ दाव १०० दण्ड और २०० बैठक करता था। धुनकने का और कपास चुनने का काम जब होता था तब कसरत करना बन्द होता था। प्रतिमास ३६ घण्टे के दो उपवास करता था। शरीर की कुछ अस्वस्थता सी मालूम होती थी तो ४८ घण्टे का उपवास भी करता था। ऐसे उपवास दो ही मरतबा किये थे। और यह तो मैं ऊपर लिख ही चुका हूं कि आषाढ महीने में थोड़ा सा बुखार आ गया था।

आपने कसरत को भी नहीं छोड़ा है, और पीसना भी नहीं भूले हो, यह तो और भी अधिक आश्चर्य की बात है! सुबह जल्दी ही उठते होंगे!

"कुछ भी आश्चर्य नहीं है। मेरा जीवन बड़ा ही उग्र और स्वच्छन्दी — बड़ा नटखट — था। परन्तु असहयोग के बाद मैं कुछ ठिकाने पर आ गया हूं, बिलकुल ही बदल गया हूं। मेरी दिनचर्या को यदि मैं थोड़े में कहूं तो ४ से ४॥ बजे तक मैं सुबह उठ बैठता था और ९ बजे सो जाता था। सुबह को नहा-धो कर १००० गज सूत कातने के बाद ही मैं शाला को जाता था। दोपहर को जब धुनकने का काम होता था तो धुनकता था अथवा १५०० गज सूत कात लेता था और शाम को शाला से लौट कर १००० गज सूत कातता था। ६ घण्टे शाला के, ७ घण्टे निद्रा के, ०॥ घण्टा कसरत, ८ घण्टे चरखा कातने के (धुनकना इत्यादि सब इसी में आ जाता है) २। घण्टे नहाना धोना, खाना पीना, प्रार्थना इत्यादि के होते थे। त्यौहार के दिनों में १२ घण्टे कातता था। बाकी के समय माल बनाता था या कुछ पढ़ता था। माल एक महीने के लिए इकट्ठी दस पंद्रह बना कर रखता था। छड़ी के बीचवाले के १२ तकुवे बना रखे थे और उनमें से तीन चार तैयार रखता था। कातने का सामान्य वेग ४०० गज था परन्तु कभी कभी जब साधन अच्छे होते थे ५०० से ५५० गज का वेग भी होता था। परन्तु सारे वर्ष का औसत वेग ४०० से ४५० गज का गिना जा सकता है। गांधीजी की जयंति के दिन २० घण्टे तक सतत काता था, उस दिन ८००० गज सूत काता गया था।

'अब तो पूछने का शायद ही कुछ बाकी रह जाता है इतना कर के आप पढ़ने का भी समय निकाल लेते थे यह बात विश्वास करने योग्य नहीं है।'

"मैंने पढ़ने का बहुत लोभ नहीं किया है परन्तु 'ज्ञानप्रचार' 'दक्षिणामूर्ति', 'पाटीदार', 'नवजीवन', और 'नवयुग' इत्यादि पढ़ता था। एक सहयोगी शिक्षक छः मास तक मेरे साथ रहे थे उनसे गीताजी और 'शिक्षणशास्त्र के मूलतत्त्व' पढ़वाता था और उस पर विचार करता था।

'इस यज्ञ का आप के जीवन पर कैसा असर हुआ है?'

इस वर्ष में जितनी एकाग्रता, शान्ति और आग्रह बढ़ा सका हूं उतना मैं अपने सारे जीवन में भी नहीं बढ़ा सका था। समस्त जीवन को नियमित बनाना मेरे लिए स्वाभाविक बात हो गई है।

जीवन में कितने ही क्षण व्यर्थ जाते होंगे, उनका मुझे प्रतिक्षण ख्याल रखना पड़ता था इसलिए अब ऐसा ख्याल हमेशा कायम रहने लगा है।'

'भाई, आप का जीवन धन्य है। इस पर से बहुतों को जानने सीखने लायक बातें प्राप्त होंगी। यदि आप इजाजत दें तो मैं इसे प्रकाशित कर दूं। बिना समयपत्रक के आप इतनी बातें क्यों कर कह सकते हैं?'

'आप इसे भले ही प्रकाशित करें। ईश्वर प्रीत्यर्थ जो हुआ सो हुआ; दूसरों को भले ही उससे लाभ हो। समयपत्रक तो था ही। तेरह महीने के हर एक दिन के काम के पत्रक की एक नकल आप को भेजूंगा।'

यह पत्रक मेरे पास है उसे प्रकाशित करने का तो बड़ा जी चाहता है परन्तु स्थानाभाव के कारण उसे यहां नहीं दे रहा हूं। ऊपर लिखी गई बातों में पत्रक की सब बातें आ गई हैं। यह "ईश्वरार्पण जीवन नहीं तो और क्या कहा जा सकता है! 'यत्करोषि यदश्नासि . . . तत्कुरुष्व मदर्पणं' इस श्लोक का इस पर से किसे स्मरण न होगा? इस वर्ष भर के परिश्रम के कारण जवेरभाई के घर में हजारों रुपये इकट्ठे नहीं हुए हैं परन्तु ११,१०८२५ गज सूत तैयार हुआ है (७ मन कपास चुनने और उसके बिनौले निकालने और ९७ सेर रुई धुनने के परिणाम में); उसमें ८ लाख गज सूत 'दरिद्रनारायण' के प्रीत्यर्थ महासभा को अर्पण किया गया था। यह तो उसकी स्थूल बात हुई। उसका सूक्ष्म मर्म तो जैसे उस पर अधिक विचार करते हैं वैसे ही वह अधिक गहरा मालूम होता है?

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खतम हो गई है। अब जितने आर्डर मिलते हैं दर्ज कर लिए जाते हैं। आर्डर भेजनेवालों को जबतक छट्ठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तबतक धैर्य रखना होगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

बस, स्थिर रहेंगे !

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १९

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, वैशाख सुदी २, संवत् १९८२ १३ गुरुवार, मई, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

पुरुषार्थ के दो चित्र

१

मैं जो पुरुषार्थ के दो चित्र यहां देना चाहता हूं उनमें एक पाश्चात्य है और दूसरा यहां का है। दोनों में खूबी है। दोनों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है परन्तु फिर भी दोनों में जमीन आस्मान का भेद है। दोनों ही सच्चे चित्र हैं। कल्पना का रंग कहीं भी नहीं चढाया गया है। पहिला चित्र पेरीस के विद्यापीठ के कानून के एक अध्यापक का खींचा हुआ है। उन्हीं के शब्दों में मैं उसे यहां दे रहा हूं।

"नहीं साहब, माफ करो, मैं बक्षीस नहीं ले सकता हूं। गत वर्ष मैं आपके वर्गों में आता था और आगामी मास की पहली तारीख को राज्यविधायक कानूनों की परीक्षा मुझे आप ही के समक्ष देनी है।"

ये एक शोफर—मोटर हांकनेवाले—के शब्द थे। उसकी गाडी में बैठ कर मैं घर आया था। मैं उसे बक्षिस देने लगा तो उसका यह जवाब मिला। मैंने जरा गौर से देखा तो वह शोफर की टोपी पहने हुए था तो भी मेरा विद्यार्थी प्रतीत हुआ। उस चंचल युवक का चेहेरा आकर्षक था और उसे यह कहने में कि वह मेरा विद्यार्थी है बडा ही आनन्द होता हुआ दिखाई देता था। उसके सौजन्य के बदले में मैंने उसे दूसरे दिन अपने यहां भोजन के लिए आने का निमन्त्रण दिया।

'मुझे जरा जल्दी जाना होगा' उसने बडे विनय के साथ मुझसे कहा, "क्योंकि मुझे अपने काम पर जाना होगा"।

दूसरे दिन वह मेरे यहां भोजन करने के लिए आया और हमने बातचीत करना शुरू की। जो बातचीत हुई वह मैं यहां ज्यों की त्यों दे रहा हूं:

"मुझे वकील बनना है, कानून सीखने में मुझे बडी दिलचस्पी है। परन्तु मैं एक गरीब अफसर का लडका हूं। मेरे पिता के हम पांच पुत्र हैं। उनमें सब से बडा मैं हूं। उसे पढाने का उनके पास कोई साधन नहीं है। मैं अध्ययन करने के लिए घर छोड कर पेरीस में कैसे रह सकता था? मेरी माता की करकसर और गृहव्यवस्था ऐसी अच्छी थी कि उसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। फिर भी वह ज्यों त्यों कर के घर का निभाव करती थी। तो फिर मैं पढने के लिए अपने मातापिता से मदद कैसे प्राप्त कर सकता था? मेट्रिक (प्रवेशिका परीक्षा पास) होने के बाद मैंने अपने एक रिश्तेदार से मोटर चलाना सीखा और शोफर का परवाना प्राप्त किया। एक दिन मोटर चलाते हुए मेरा, अपने जीवन का प्रश्न यकायक हल हो गया। मुझे यह विचार आया: "पेरीस में कानून की कालेज में जाना चाहिए। शोफर की नोकरी तो मिलेगी ही, उससे खर्च चला लेंगे।" बस मुझे यह कुंजी मिल गई।"

"परन्तु तुम्हारे इस प्रकार मोटर हांकने से पढने का और वर्ग में आने का तुम्हें समय कैसे मिलता है?"

"मैं आपको अपना समयपत्रक ही सुनाता हूं। मैं प्रतिदिन रात को १० से ७ बजे तक मोटर हांकता हूं। आप यह न मानें कि मैं उससे बहुत थक जाता हूं, मात्र नियमित भोजन और नियमित नींद लेनी चाहिए। ७ बजे मेरा काम पूरा होता है कि मैं अपने कमरे पर चला जाता हूं, कपडे बदलता हूं और नजदीक के एक छोटे से होटल में अच्छी तरह खाना खा लेता हूं और बराबर ८॥ बजे 'ला स्कूल' में पहुंच जाता हूं। वहां मैं बडी ताजगी और उत्साह के साथ सीखने के लिए तैयार रहता हूं। मैं अपने वर्ग में हमेशा समय के पहले हाजिर होता हूं इससे मुझे हमेशा बैठने की अच्छी जगह मिलती है और मैं अच्छी तरह 'नोट्स' ले सकता हूं। तीन वर्गों के अध्यापकों के व्याख्यानों को सुन कर दोपहर को १२ बजे मैं घर लौट जाता हूं, बडे उत्साह से भोजन करता हूं और सो जाता हूं और बराबर ८ बजे उठता हूं।"

"परन्तु परीक्षा के लिए कैसे तैयारी करते हो?"

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इस साल मुझे बडा दौडधूप करनी पडी थी। परन्तु मेरी स्मरणशक्ति अच्छी है—क्योंकि मैं हरएक काम दिल लगा कर करता हूं और मेरे 'नोट्स'

में कोई कसर नहीं होती है। रोजाना के और आखिर तक के सब नोट्स तैयार होते हैं। उससे मुझे बड़ी मदद मिलती है। मोंत मार्त्रे और ऐसी दूसरी कितनी ही जगहों पर कई बार अधिक ठहरना होता है। ऐसे समय पर मैं किसी बिजली की बत्ती के पास चला जाता हूं और मेरे नोट्स या दूसरी किताबें पढ़ता हूं। सत्र खतम होने के एक महीने पहले से मैं परीक्षा के लिए मोटर हांकना बन्द कर देता हूं और पुस्तक ले कर पढ़ना आरम्भ कर देता हूं। परन्तु कानून की परीक्षा बड़ी कठिन होती है। जोलाई में मैं अनुत्तीर्ण हुआ था परन्तु उस दिन फिर जो परीक्षा दी तो उसमें उत्तीर्ण हो गया। अब दूसरे वर्ष की तैयारी कर रहा हूं और मेरा मोटर हांकना भी ज्यों का त्यों कायम रखना चाहता हूं।"

"तो दोनों कामों में तुम्हें पूरी सफलता मिलती है?"

"हां, कुबेर के समान मेरे पास धन इकट्ठा हुआ है। क्या आप यह मानेंगे? १९२४ के नवम्बर की पहली तारीख से १९२५ के नवम्बर की पहली तारीख तक मुझे १७००० फ्रांक मिले हैं।"

"कानून के प्रोफेसरों से भी अधिक!"

"हां, यदि परीक्षा के लिए ढाई महीने तक काम बन्द न किया होता और थोड़ी छुट्टी न मनाई होती तो इससे भी अधिक फ्रांक पैदा किये होते। मुझे नाटक में जाना बहुत पसन्द है और विगत गर्मी के दिनों में फ्रान्सवा के नये नाटक और मोलीयेर और मसेट के नाटक देखने को मेरा दिल चला था। प्रोफेसर साहब आपने वह भव्य 'फेन्टेसियो' का नाटक देखा है? वह अद्भुत है। फ्रेने और बर्टिन तो कमाल करते हैं।"

"हां, मैंने देखा है। तुम जो कहते हो सच है। १७००० फ्रांक में तो तुम राजा की तरह रहते होगे।"

"नहीं, राजा की तरह तो नहीं क्योंकि मैं जन्म से ही करकसर करना सिखा हूं और मैं अपने से गरीब विद्यार्थियों के बनिस्बत अधिक सुखी दिखना भी नहीं चाहता हूं। मैं बिलकुल उन्हीं की तरह महीने में ७०० फ्रांक से काम चलाता हूं।"

"अर्थात ८,५०० फ्रांक तुम बचा सकते हो?"

नहीं, मैं प्रतिमास ५०० फ्रांक घर भेजता हूं। मेरे पिता के बनिस्बत मेरी आमदनी अधिक है और उन्हें तीन बालकों को पालना और पढ़ाना होता है। इसलिए मुझे कुछ तो घर भेजना ही चाहिए। गत अक्तूबर में मेरे पास २००० फ्रांक बचे हुए थे उससे मैंने सरकारी बोंड खरीदे थे। अर्थात देश को मैंने उसकी लोन (करजा) दी था। जबतक सरकार को उसकी आवश्यकता है तबतक मुझे उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। और आप यह तो जानते ही हैं कि मुझे कुछ भी टेक्स नहीं देना होता है। इन्कमटैक्सवालों ने मुझे मालूम होता है छोड़ दिया है।"

"और क्या इसी प्रकार काम चलता रहेगा?"

"बेशक! परन्तु मुझे परीक्षा में फेल नहीं होना है इसलिए १५ मई से दो महीने तक मुझे अपना काम बन्द रखना चाहिए। तबतक मुझे अपना वर्ग और काम दोनों बराबर चलाते रहना चाहिए। परन्तु १५ मई के बाद मैं मत्का और अपनी किताबें भली। यदि मैं पास हो जाऊंगा तो मैंने अपने मन में एक छोटी सी बात तय कर रखी है — अगस्त में दो सप्ताह के लिए इटली का सफर करना है। फ्लोरेन्स देखने की मेरी इच्छा है।"

"मुझे बड़ा आश्चर्य है तुम यह सब कैसे कर सकते हो?"

इसमें क्या बड़ी बात है? यह मेरा १९२६ का बजट है ९॥ महीने में मासिक १७०० फ्रांक के हिसाब से १६,१५० फ्रांक की आमदनी होगी १२ महीने के खर्च के ८,४०० फ्रांक और ६००० घर भेजूंगा। मेरी इटली की मुसाफरी में १७५० फ्रांक खर्च होंगे। मेरे लिए इतना खर्च बहुत काफी होगा क्योंकि मुझे कोई प्रथम वर्ग के और सोने की सुविधावाले डब्बे में बैठने की आवश्यकता तो है नहीं। परन्तु मेरा ख्याल है कि आगामी 'लोन' मैं न ले सकूंगा।"

साढ़े आठ बजे और हमारी बातचीत का अन्त हुआ क्योंकि उस शोफर मित्र को कपड़े बदल कर नोकरी पर जाना था।

मैं तो दिग्मूढ सा बन गया। एक शोफर बालिस न ले, कानून का अध्ययन करे, सरकारी बोंड ले, उत्तम नाटकों में दिलचस्पी ले, फ्लोरेन्स देखने को जाय और प्रतिमास अपने पिता को एक अच्छी सी रकम भेजे!"

आगामी अंक में अपने यहां के पुरुषार्थी जीवन का चित्र दूंगा।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

ग्राहकों से निवेदन है कि वे नीचे लिखे नियमों पर ध्यान देने की कृपा करेंगे:

(१) जिनका चन्दा वी. पी. से वसूल करना होगा उन्हें उनके वी. पी. के दाम आफिस में जमा हो जाने पर ही पत्र भेजना शुरू किया जावेगा।

(२ वी. पी. छुड़ा लेने के बाद ग्राहक फौरन ही अंकों के न मिलने की शिकायत के पत्र लिखना शुरू कर देते हैं परन्तु उनके वी. पी. छुड़ा लेने के बाद उसकी रकम हमें यहां मिलने में सामान्यतया दस दिन लग जाते हैं और कभी कभी तो इससे भी अधिक समय लगता है। इसलिए १५ दिन तक उन्हें राह देखनी चाहिए और जब १५ दिन तक राह देखने पर भी 'नवजीवन' का कोई भी अंक उन्हें न मिले तभी उन्हें शिकायत करनी चाहिए। ऐसी शिकायत का पत्र लिखते समय उन्हें अपना वी. पी. नंबर जो उनके वी. पी. के कूपन में होता है अवश्य लिखना चाहिए।

(३) उत्तर पाने के लिए जवाबी कार्ड अथवा एक आने का टिकट भेजना चाहिए।

(४) जो हिन्दी नवजीवन के ग्राहक नहीं हैं उनसे पिछले सब अंकों की कीमत ०—२—६ प्रति अंक हिसाब से ली जावेगी। ग्राहकों को यदि कोई पिछला अंक चाहिए और वे उसी महीने में जिस महीने का कि वह अंक है हमें लिखेंगे तो उन्हें वह अंक ०—१—६ (डाकखर्च के साथ) में दिया जा सकेगा। महीना बीत जाने पर उन्हें भी प्रति अंक ०—२—६ ही देने होंगे।

(५) ग्राहकों का चन्दा जिस महीने में हमारे यहां आता है उस महीने की पहली तारीख से अथवा उसके आगामी महीने की पहली तारीख से ही उन्हें ग्राहक बनाया जा सकेगा। उसी महीने की पहली तारीख से जो लोग ग्राहक बनना चाहेंगे उन्हें उस महीने के जितने पिछले अंक मिल सकेंगे उतने ही अंक दिये जा सकेंगे।

व्यवस्थापक,
हिन्दी-नवजीवन

स्वतंत्र मजदूर दल और भारत

भारत की स्थिति के सम्बन्ध में विलायत के स्वतंत्र मजदूर दल को अपनी राय देने के लिए नियुक्त की हुई समिति की लिखी हुई रिपोर्ट नयी समर्थ है। ब्रिटिश राजतन्त्र पर वह एक प्रकार से सख्त टीका है। उसमें नाम मात्र के सुधारों के सम्बन्ध में जो बातें लिखी है उनमें सिविल सर्विस, जातीय भेदभाव, न्यायविभाग और नाममात्र के भारतीय नौका सैन्य के संबन्ध में भी कुछ बात कही गयी हैं।

शिक्षा के विषय में जो बातें कही गयी है वे यहां उद्धृत करने योग्य हैः

"भारत की नौकरशाही का, उसको कुछ बातों में सफलता मिली है इस कारण बचाव किया जाता है। फौजी और टैक्स वसूल करने के यन्त्र के तौर पर और एक जगह से दूसरी जगह माल ले जाने में और नहरों के काम में उसका काम बड़ा अच्छा और व्यवस्थित होता है, परन्तु उससे अधिक महत्त्व के, जीवन के आदर्श को ऊंचा बनाने के काम में उसे कुछ भी सफलता नहीं मिली है।

शिक्षा के कार्य में उसकी असफलता तो इसीसे साबित हो जाती है कि ब्रिटिश राज्यकाल को आज १२० साल गुजरे हैं फिर भी ७.२ प्रति सैकड़ा मनुष्य ही कोई एक भाषा पढ़ सकते हैं।

ब्रिटेन में मुफ्त और सार्वजनिक शिक्षा देने का आरम्भ १८७० और १८८१ के दरम्यान के वर्षों में हुआ था। कोई बारह साल में स्कूल में बच्चों की हाजरी ४३.३ प्रति सैकड़ा से बढ़ कर १०० प्रति सैकड़ा हो गई थी। १८७२ में जापान में स्कूल जाने लायक बच्चों में २८ प्रति सैकड़ा बच्चे स्कूल में जाते थे परन्तु २४ वर्षों में वह बढ़ कर ९२ प्रति सैकड़ा हो गये और २८ वर्षों में सौ के सौ बच्चे स्कूल जाने लगे थे। स्वीडन के देशी राज्य में शिक्षा मुफ्त दी जाती है और ९३ प्रति सैकड़ा स्कूल जाने लायक बच्चे स्कूल जाते है, ट्रावनकोर में, एक दूसरे देशी राज्य में ८१.१ प्रति सैकड़ा लड़के और ३३.२ प्रति सैकड़ा लड़कियें पाठशाला को जाती हैं और मायसोर में ४०.८ प्रति सैकड़ा लड़कों का और ९.७ प्रति सैकड़ा लड़कियों का परिमाण है। जब बड़ौदा पाठशाला में जाने योग्य बच्चों पर प्रति बच्चा ६½ पेंस खर्च करता है तो ब्रिटिश भारत में केवल ३ पेंस ही खर्च होता है। ब्रिटिश भारत में शिक्षा विभाग खोलने के बाद कोई ५० वर्ष में स्कूल जाने लायक बच्चों में से केवल २०.४ प्रति सैकड़ा बच्चें ही पाठशाला को जाने लगे थे। बम्बई में १९२४ में स्कूल जाने लायक लड़कियों में केवल २ प्रति सैकड़ा लड़कियां ही पाठशाला को जाती थी।

भारत की सामान्य गरीबी के सम्बन्ध में रिपोर्ट में लिखा हैः

"चाहे शहर के निवासियों को देखो या गांव के निवासियों को, देखनेवाले को प्रथम सब जगह व्याप्त गरीबी की पीड़ाजनक स्थिति को देख कर बड़ी चोट लगेगी। सर विलियम हंटर जैसे एंग्लोइन्डियन की 'अधिकारयुक्त' गणना के हिसाब से कोई चार करोड़ मनुष्य दिन में एक ही मरतबा खा कर जीवन बीताते हैं। सर चार्ल्स इलियट की एक और गिनती के हिसाब से भारत के खेती करनेवाले लोगों में से आधे लोग, जिन्हें मि० जी. के. गोखले ने सात करोड़ के लगभग माना था हमेशा भूखे रहते है। वर्ष में कभी उन्हें, एक मरतबा भी पेट भर कर खाना नहीं मिलता है — इसमें पेट भर कर खाने की यह खुराक भारतीय कैदियों को जो खुराक दी जाती है उससे कुछ अधिक नहीं गिनी गयी है।

प्रोफेसर गील्बर्ट स्लेटर, जिनको भारत और ब्रिटेन के मजदूरों की स्थिति का पूरा पूरा ज्ञान था, भारत के किसानों की गरीबी के विषय में लिखते हैं "प्रति मनुष्य उनकी आमदनी का उचित अंदाज लगाया जाय तो आजकल वह प्रति दिन प्रति मनुष्य ४½ पेन्स के करीब होगा। धनवान और रंक सभी लोगों का एकत्र विचार कर के यह कहा जा सकता है कि जितनी आमदनी होती है उसका ⅓ (अर्थात १½ पेंस प्रतिदिन) तो सिर्फ भारतीय खुराक की दृष्टि से चावल, ज्वारी और गेहूं इत्यादि अनाज में ही खर्च हो जाने चाहिए। औसत् दर्जे के मनुष्यों की यह हालत है या ऐसी ही कुछ हालत है। इस पर से गरीब लोगों की हालत का विचार किया जा सकता है। मद्रास के शहर के मध्य में रहनेवाले अस्पृश्यों के महल्ले के हरएक कुटुम्ब की जांच की गई थी तो उससे उनकी आमदनी का औसत् प्रति मनुष्य २½ पेन्स के करीब पाया गया था उसमें से चावल की आवश्यकता को पूरा करने के बाद सिर्फ आधा पेन्स ही बच रहता है। और अभी हाल ही में गोदावरी के जिलाके पर की गई जांच के अनुसार तो वहां प्रति मनुष्य प्रतिदिन १ पेन्स का आमदनी पायी जाती है। इन लोगों के और उनकी जाति के लोगों के सम्बन्ध में जिनकी कि मिहनत पर दक्षिण भारत के चावल के खेतों की खेती का मुख्य आधार रहता है, यह कहा जा सकता है कि सामान्य तौर पर उनकी अनाज और रुपयों में जितनी आमदनी होती है उससे बड़ी मुश्किल से वे अपने कुटुम्ब का पीढी दर पीढी अपनी संख्या को कायम रखने के लिए जीवन-निर्वाह कर सकते हैं और उससे जितने अधिक बच्चे होते है सब मर जाते है। वे हमेशा ही भूखे रहतें हैं। वे बचे हुए समय में अपने झोंपड़े बनाते हैं, लकड़ियां बटोरते हैं, कपड़ा बहुत ही कम पहनते है और धूप में खूब रहते हैं इसीलिए उनका जीवन निभ सकता है।"

खेती की स्थिति का वर्णन जिस विभाग में किया गया है उसमें से नीचे लिखी बात मैं उद्धृत कर के दे रहा हूं।

"१९२१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में भारतीय सिविल सर्विस के सदस्य मि. डबल्यू एच थोम्पसन के मतानुसार भारत में एक एक कुटुम्ब के पास औसतन् २.१५ एकड़ जमीन होती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह जमीन भी उसके कुटुम्ब के मनुष्यों में विभाजित की जाती है। ऐसे असंख्य जमीन जोतनेवाले और उनके सी आसामियों के अलावा ऐसे चार करोड़ मजदूर और हैं कि जिनके पास जमीन नहीं होती और वे आज यहां तो कल वहां खेती की मजदूरी करते हैं। इन मजदूरों को साल में ६ महीने तो कुछ भी काम नहीं होता है। बंगाल में तो जमीन के ऐसे छोटे छोटे टुकड़े हो गये है कि किसानों को पूरा काम ही नहीं मिलता है और ऐसा भी कोई दूसरा काम नहीं है कि जिसको वे उसे छोड़ कर करने लगें। मद्रास में मि. कलेवर्ट ने अभी अभी यह बात साबित की है कि औसत दर्जे का किसान जितना काम करता है वह काम बारह महीने में १२० दिन की पूरी मजदूरी से अधिक नहीं है।"

इस विभाग में औद्योगिक परिस्थिति के मुताल्लिक बड़ी दिलचस्प बातें कही गयी हैं परन्तु बाकी की दिलचस्प बातों को जानने के लिए मैं पाठकों को उस रिपोर्ट को ही पढ़ जाने के लिए कहूंगा। वह विलायत के स्वतंत्र मजदूर दल के द्वारा प्रकाशित की गई है। उसका मूल्य ६ पेन्स है और १४ ग्रेट जार्ज स्ट्रीट लण्डन एस डबल्यू के पते पर लिखने से मिल सकती है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

शुक्रवार, वैशाख सुदी २, संवत् १९८२

बस, स्थिर रहेंगे !

पुराने ख्याल जो मन में रह हो गये हैं बड़ी मुश्किल से दूर होते हैं । नीच गिनी जानेवाली जातियों पर हिन्दुओं ने जो अत्याचार किया है, जो अन्याय किया है उसका कट्टर से कट्टर हिन्दूसमाज भी स्वीकार करता है । फिर भी ऐसे लोग हैं जो और बातों में उदार होने पर भी इस मामले में दुराग्रह से ऐसे अन्धे हो गये हैं कि वे इन नीच गिने जानेवाले अपने देश-वासियों के प्रति किये गये अपने व्यवहार मे कोई अन्याय ही नहीं देखते है । एक महाशय यों लिखते है ।

"मैं आप का एक बड़ा नम्र अनुयायी हू । परन्तु मैं आप का प्रत्येक कर्म का अनुयायी होने का दावा नहीं करता । मैं बड़े दुःख के साथ इस बात का स्वीकार करता हूं कि अस्पृश्यता के विषय में मेरे दिल को आपकी तरह कोई चोट नहीं पहुंचती है । जो लोग यह कहते हैं कि अस्पृश्यों पर अत्याचार किया जाता है, उन्हें दबाया जाता है उनसे मैं एकमत नहीं हो सकता हूं । मैं आपके समक्ष यह बात पेश करना अपना फर्ज समझता हूं कि ये अस्पृश्य कहे जानेवाले लोग पहले स्वतंत्रता का उपभोग करते थे और अच्छी हालत में थे । यदि मैं पंचमाओं के भूतकाल और उनके वर्तमानकाल के प्रति दृष्टिक्षेप करूं तो मैं उनको उनकी जागृति के लिए मुबारकबादी नहीं दे सकता हूं क्योंकि उससे तो वे कहीं के भी नहीं रहे हैं । नाममात्र की शिक्षा और नोकरी के टुकड़ों की तृष्णा का ही वे अनुकरण कर रहे हैं और इससे वे और भी अधिक अस्पृश्य बन गये हैं । जो मनुष्य शारीरिक श्रम के कामों को छोड़ कर नोकरी या कोई अधिकार की जगह लेता है वह चूल्हे में से निकल कर भट्ठी में ही जा कर गिरता है । यही हम लोगों का, ब्राह्मणों का दुःखद अनुभव है । मुझे उन दिनों का स्मरण है जब कि पचमा को कुटुम्ब का ही एक मनुष्य समझा जाता था और प्रतिमास उसकी आजीविका और कपड़ों की व्यवस्था की जाती थी । परंतु अब ये सब बातें भूतकाल की बातें हो गई हैं । बहुत से अस्पृश्य विदेशियों की गुलामी करने के लिए दूसरे देशों में चले गये हैं; अथवा० वे १५) की शाही तनख्वाह पा कर फौज की नोकरी करने के लिए नोकरशाही के आह्वान में ही हथियार बन गये है । मुझे भय है कि उन्हें दूसरी जातियों के समान बनाने का, उनकी उन्नति करने का आप का कार्य असफल ही होगा । स्वय मेरा ख्याल तो यह है कि समाज में उनकी उन्नति करने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है परन्तु यह कार्य कोई जादू की तरह एक ही दिन में नहीं किया जा सकता है । उन्हें शिक्षा देने के लिए, उनके आर्थिक कष्टों को दूर करने के लिए, शराबखोरी, गोहत्या और मिट्टी खाने की बदी को, जो उनमें सदियों का पुराना रिवाज हो गया है और इसीके कारण हर एक गांव में उन्हें अलग एक वाड़े में रहना पड़ता है, दूर करने के लिए हमें करोड़ों रुपये खर्च करने होंगे । यदि यह न किया जायगा और दूसरी जाति के लोगों से अस्पृश्यों का आलिंगन करने को कहा जायगा तो उससे समाज की अवनति होगी और जहां तक मेरा ख्याल है आप भी उसे पसंद न करेंगे ।"

अस्पृश्यों को न छूने में ही अवनति है ! मनुष्य यदि शराब पीता है, गोहत्या करता है और मिट्टी खाता है तो क्या हुआ ? वह बेशक बुराई करता है परन्तु वह उनसे जो कि छिपे हुए और अधिक भयंकर पाप करते है, अधिक पापी नहीं है । इसलिए वह अस्पृश्य नहीं गिना जाना चाहिए क्योंकि गुप्त पाप करनेवाले पापी को समाज अस्पृश्य नहीं गिनता है । पापी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए परन्तु उन पर तो दया करनी चाहिए और उनको अपने पापों से मुक्ति प्राप्त करने में मदद करनी चाहिए । हिन्दुओं में अस्पृश्यता का होना अहिंसा के उसी सिद्धान्त का इन्कार करना है जिस पर कि हमें अभिमान है । अस्पृश्यों में जिन बुराइयों के होने के विषय में लेखक शिकायत करते हैं उसकी जिम्मेदारी भी हमारे ही सिर पर है । उनको उस मार्ग से विमुख करने के लिए हमने क्या प्रयत्न किये है ! हमारे कुटुम्ब की किसी व्यक्ति को सुधारने के लिए हम क्या बहुत से रुपये खर्च नहीं करते हैं । क्या अस्पृश्य लोग हिन्दू समाज रूपी महान कुटुम्ब का एक अंग नहीं है । निःसन्देह हिन्दू धर्म तो हमें यह उपदेश देता है कि सारी मनुष्य जाति को हम एक अविभक्त कुटुम्ब समझें और हम में से प्रत्येक मनुष्य हरएक मनुष्य की की हुई बुराई के लिए अपने को जिम्मेवार समझे । परन्तु यदि यह संभव नहीं कि इस महान सिद्धान्त पर उसकी विशालता के कारण अमल किया जा सके तो हमें कम से कम यह तो समझना चाहिए कि अस्पृश्यों को हम हिन्दू कहते हैं इसलिए वे और हम एक ही है ।

और क्या मिट्टी खाना अधिक बुरा है या मिट्टी का विचार करना ? हम रोजाना करोड़ों अस्पृश्य विचार करते हैं, उन्हें अपने मन में स्थान देते हैं और उनका पोषण करते हैं । हमें उन्हें दूर कर देना चाहिए क्योंकि वे ही सच्चे अस्पृश्य है, तिरस्करणीय है और दूर कर देने के योग्य है । हमें प्रेम से अपने अस्पृश्य भाइयों का आलिंगन कर के उनके प्रति किये गये अन्याय का प्रायश्चित्त करना चाहिए । अस्पृश्यों की सेवा करने के कर्तव्य के सम्बन्ध में लेखक ने कोई शंका नहीं उठाई है । यदि उन्हें देखने से ही हमें बुरा मालूम हो और हम अपवित्र हो जाते हों तो हम उनकी कैसे सेवा कर सकेंगे ?

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

राष्ट्रीय सप्ताह में खादी

चरखासंघ को राष्ट्रीय सप्ताह में किये गये काम की कुछ रिपोर्टें मिली हैं । उसके अनुसार बाबू शिवप्रसाद गुप्ता ने, जिन्होंने कि खादी बेचने के लिए काशी में स्वयंसेवकों की व्यवस्था की थी कोई २०००) की खादी बेची है । अलहाबाद में १२००), गाजीपुर में १६०) से कुछ अधिक और कान्हा में १०००) की खादी बिकी है । पंजाब में तो इस सप्ताह में बड़ा ही उत्साह दिखाया गया था । कोई ११०००) की खादी बेच दी गई थी । बहुत से नेता खादी की फेरी लगाते थे । तामिलनाडु में उसके सब भण्डारों को मिला कर कोई १८,६२२-११-११ की खादी बिकी थी ।

मैं चाहता हूं कि भारत के सभी केन्द्र अपने रिपोर्ट भेजेंगे । अंकों के विषय में कोई आश्चर्य करने की बात नहीं है । परन्तु इससे यह बात साबित होती है कि यदि सिर्फ मुख्य कार्यकर्ता और नेता, स्त्री और पुरुष दोनों, अपने अपने केन्द्रों में उत्साह के साथ काम करेंगे तो जितनी भी खादी उस प्रान्त में पैदा होगी बिना किसी कठिनाई के बिक जायगी । ग्राहकों की कमी के कारण अच्छी खादी की उत्पत्ति पर अंकुश रखने की कोई आवश्यकता नहीं है । खादी उत्पन्न करने में होशियारी और लगातार प्रयत्न करने की आवश्यकता है । बिक्री के लिए प्रभाव और मांग कर लेने की योग्यता होनी चाहिए । इसलिए प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्वयंसेवक ही कुछ समय देंगे तो यह कार्य आसानी से हो सकेगा ।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय २३

मेरी पामरता

बारीस्टर कहलाना तो आसान था परन्तु बारीस्टरी करना बड़ा ही कठिन मालूम हुआ। कानून की किताबें पढ़ीं परन्तु वकालात करना न सीख सका। कानून की किताबों में मैंने कुछ धर्म-सिद्धान्त पढ़े थे, वे मुझे बहुत ही अच्छे मालूम हुए। परन्तु मैं यह न समझ सका कि उसका वकालात में कैसे उपयोग किया जा सकेगा। "तुम्हारे पास जो कुछ हो उसका इस प्रकार उपयोग करो कि उससे दूसरे की जायदाद को कोई नुकसान न पहुंचे।" यह तो धर्मवचन है। परन्तु वकालात करते समय अपने मवक्किलों के मुकद्दमों में उसका कैसे उपयोग किया जा सकता है यही मेरी समझ में न आता था। जिन मुकद्दमों में इस सिद्धान्त का उपयोग किया गया था उन्हें भी मैंने पढ़ा परन्तु उससे भी इस सिद्धान्त का उपयोग करने की युक्ति मुझे प्राप्त न हुई।

और मैंने जो कानून की किताबें पढ़ी थीं उनमें हिन्दुस्तान के कानूनों का तो नामोनिशान भी न था। मैं यह भी नहीं जानता था कि हिन्दूशास्त्र और इस्लामी कानून कैसे होंगे। दावा-अरजी तैयार करना भी नहीं सीखा था। मैं खूब घबड़ा गया। फिरोजशा महेता का नाम सुना था। वे अदालतों में सिंह की तरह गर्जना करते थे। वे विलायत में यह क्यों कर सीखे होंगे? उनके जैसी योग्यता तो इस जन्म में कभी भी प्राप्त न होगी परन्तु मुझे एक वकील की हैसियत से आजीविका प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होने के बारे में भी बड़ा सन्देह हुआ।

जिस समय मैं कानूनों का अध्ययन कर रहा था उस समय भी यही विचार होता था। मैंने दो एक मित्रों को अपनी यह कठिनाई कह सुनाई। उन्होंने दादाभाई से सलाह लेने की मुझे सूचना की। मैं आगे यह लिख ही चुका हूं कि उनके नाम पर मेरे पास एक सिफारिश की चिट्ठी थी। मैंने उस चिट्ठी का देर से उपयोग किया। ऐसे महान पुरुष से मुलाकात करने का मुझे क्या अधिकार था? उनका जब कोई व्याख्यान होता था तब मैं उसे सुनने के लिए जाता था और एक कोने में बैठे अपनी आंखों और कानों को तृप्त करके लौट आता था। उन्होंने विद्यार्थियों के समागम में आने के लिए एक मण्डल स्थापित किया था। उसमें मैं हमेशा हाजिर रहता था। विद्यार्थियों का जो उन्हें ध्यान रहता था और विद्यार्थियों को उनके प्रति जो आदर होता था उसे देख कर मुझे बड़ा आनंद होता था। आखिर मैंने उन्हें वह सिफारिश की चिट्ठी देने की हिम्मत की और उनसे मिला भी। उन्होंने मुझसे कहा था: "तुम्हें यदि मुझसे कुछ बातचीत करनी हो और मेरी सलाह लेनी हो तो मुझसे मिलना।" परन्तु मैंने उन्हें कभी यह तकलीफ न दी। बड़ी गंभीर आवश्यकता के बिना ही उनका समय लेने में मुझे पाप मालूम होता था। इसलिए उस मित्र की राय के मुताबिक दादाभाई के समक्ष अपनी कठिनाई पेश करने की मेरी हिम्मत ही न हुई।

उसी मित्र ने अथवा किसी दूसरे ने (स्मरण नहीं है) मि. फ्रेडरिक पिंकट से मिलने की मुझे सूचना की। मि. पिंकट कान्सरवेटिव पक्ष के थे। परन्तु हिन्दुस्तानियों के प्रति उनको निर्मल और निःस्वार्थ प्रेम था। बहुत से विद्यार्थी उनसे सलाह लेते थे। मैंने उन्हें चिट्ठी लिख कर मुलाकात के लिए समय मांगा। उन्होंने समय दिया और मैं उनसे मिला। मैं उस मुलाकात को कभी भी नहीं भुला सका हूं। मित्र की तरह वे मुझसे मिले थे। मेरी निराशा की बात को उन्होंने हंस कर उड़ा दी। "क्या तुम यह मानते हो कि सब को फिरोजशा महेता बनने की जरूरत है? फिरोजशा या बदरुद्दीन तो एक या दो ही हो सकते हैं। तुम यह निश्चय मान लेना कि सामान्य वकील बनने के लिए बहुत बड़ी योग्यता की कोई आवश्यकता नहीं है। सामान्य प्रामाणिकता और उद्योग के होने से ही मनुष्य सुख से वकालात का धंधा कर सकता है। सभी मुकद्दमें कुछ उलझे हुए नहीं होते। अच्छा, तुम्हारी साधारण पढ़ाई कैसी है?

जब मैंने अपनी पढ़ी हुई किताबों के नाम दिये तब मैंने देखा कि वे कुछ निराश हुए थे। परन्तु वह निराशा क्षणिक थी। फौरन ही उनके चेहरे पर हास्य की रेखायें दिखाई देने लगीं और वे बोले।

"अब मैं तुम्हारा दर्द समझ गया। तुम्हारी सामान्य पढ़ाई ही बहुत थोड़ी हुई है। तुम्हें संसार का ज्ञान नहीं है और वकील का उसके बिना काम ही नहीं चल सकता है। तुमने तो हिन्दुस्तान का इतिहास तक नहीं पढ़ा है। वकील को मनुष्य-स्वभाव का ज्ञान होना चाहिए। उसे मनुष्य को देख कर उसके चेहरे पर से ही उसे पहचानना आना चाहिए। और प्रत्येक हिन्दुस्तानी को हिन्दुस्तान के इतिहास का ज्ञान भी तो होना चाहिए न? वकालात के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु तुम्हें उसका ज्ञान अवश्य होना चाहिए। मालूम होता है कि तुमने तो के और मेलेसन का १८५७ का गदर का पुस्तक भी नहीं पढ़ा है। उसे तो अभी ही पढ़ लेना और मनुष्य की पहचान के लिए मैं दो पुस्तकों के नाम देता हूं उसे भी पढ़ना।" यह कह कर उन्होंने लेवेटर और शेमलपेनिक के मुखसामुद्रिकविद्या (फिजियोनामी) के पुस्तकों के नाम लिख दिये।

मैंने इन बुजुर्ग मित्र का बड़ा ही उपकार माना। उनके समक्ष मेरी भीति क्षण भर के लिए तो दूर हो गई थी परन्तु ज्यों ही मैं बाहर निकला कि मेरी घबराहट फिर बढ़ने लगी। 'चेहरे पर से मनुष्य को पहचान लेना' इस वाक्य को रटता हुआ और उन दो पुस्तकों का विचार करता हुआ घर पहुंचा। दूसरे ही दिन लेवेटर का पुस्तक खरीदा; शेमलपेनिक का पुस्तक उस दुकान पर न मिला। लेवेटर का पुस्तक पढ़ा परन्तु वह तो स्नेल से भी अधिक कठिन मालूम हुआ। उसमें दिलचस्पी भी नहीं सी मालूम हुई। शेक्सपीअर के चेहरे का अध्ययन किया परन्तु लण्डन के रास्तों पर चलनेवाले शेक्सपीअरों को पहचानने की शक्ति प्राप्त न हुई।

लेवेटर में से मुझे कुछ भी ज्ञान न मिला। मि. पिंकट की सलाह का सीधा उपयोग तो मेरे लिए बहुत ही थोड़ा हुआ परन्तु उनके प्रेम का बहुत उपयोग हुआ। उनका मुस्कुराता हुआ उदार मुख मुझे याद रह गया। उनके वचनों पर मैंने श्रद्धा रक्खी कि वकालात करने के लिए फिरोजशा महेता की योग्यता, स्मरण शक्ति, इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। प्रामाणिकता और उद्योग से ही काम चल सकेगा। और इन दो गुणों की तो मेरे पास ठीक ठीक पूंजी भी थी इसलिए मेरे दिल में, गहरे में कुछ आशा भी बंधी।

के और मेलेसन का पुस्तक तो मैं विलायत में पढ़ ही न सका। परन्तु उसे समय मिलने पर प्रथम पढ़ने का निश्चय किया था। यह मुराद दक्षिण आफ्रिका में पूरी हुई।

इस प्रकार निराशा में जरा सा आशा का मिश्रण करके 'आसाम' स्टीमर में मैं बम्बई आया। उस समय मेरे पैर कांप रहे थे। बंदरगाह पर समुद्र में तूफान था, लांच में उतरना पड़ता था।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ढोरों का प्रश्न

कुछ महीने पहले पंजाब के कलक्टर मि० ए. गलेटी ने मुझे स्टेट्समेन में छपे अपने लेख की पुनः मुद्रित की हुई एक पत्रिका भेजी थी। उसमें उन्होंने अपने इटली के अनुभव के आधार पर ये राय जाहिर की थीं: (१) भारत की कृषि का आधार अच्छे ढोरों पर है (२) भारत के ढोरों की रखवाली अच्छी नहीं होती है इसलिए वे और अनाजों के बनिस्बत उतरते के दर्जे के होते हैं (३) साधारण चराऊ घास पर आधार रखने के बजाय ढोरों के लिए उत्तम खाद्य उत्पन्न करने से ही वे सुधर सकते हैं और (४) एक के बाद एक इस प्रकार फसल लेने के तरीके से अनाज के साथ साथ ढोरों के लिए चारा भी तैयार किया जा सकता है और उससे अनाज में भी कोई कमी नहीं होगा।

इटली की परिस्थिति को यहां लागू करने में मुझे कुछ कठिनाई मालूम हुई थी क्योंकि इनलोगों के पास बहुत थोड़ी जमीन होती है, इतनी कम कि वह कोई दो एकड़ के करीब या उससे भी कम होती है। मैंने अपनी कठिनाइयां उनके सामने पेश की। उन्होंने उसका इस प्रकार उत्तर दिया है:

"२६ फरवरी के आपके पत्र के लिए, जो मुझे आज मेरी एजन्सी की पहाड़ियों में मेरे केम्प में मिला है, मैं आपको बड़ा ही धन्यवाद देता हूं। मैं अपने अनुभव से आपकी कठिनाइयों का उत्तर दूंगा।"

थोड़ी जमीनः मेरे पिता के पास ११ खेत थे सबसे बड़ा ४८ हेक्टेयर का और छोटा १.७ हेक्टेयर का, अर्थात् वे अनुक्रम से १२० एकड़ और ४ एकड़ के थे। चार एकड़ के खेत पर से भी बारी बारी से उसी प्रकार फसल ली जाती थी जिस प्रकार की १२० एकड़ के खेत पर से ली जाती थी, एक एकड़ में गेहूं, एक एकड़ में मका और २ एकड़ में घास बारी बारी से बोया जाता था और आपको उत्तर देने के लिए मैं इसी बात को पेश करता हूं। थोड़ी जमीन में भी बारी बारी से फसल ली जा सकती है और ली जानी चाहिए। हमारे छोटे किसान के पास एक ही जोड़ बैल थे परन्तु वह उसे बड़े ध्यान से खिलाता पिलाता था। उसी चार एकड़ सूखी जमीन पर वह अपनी स्त्री और दो तीन बच्चों के साथ गुजारा कर सकता था। वह स्थूल रूप से आराम में भी रहता था क्योंकि मेरे पिता कहा करते थे कि उसका छोटा सा खेत एक बगीचा था, उसका एक एक इंच उसके अपने पसीने से फलद्रूप बना था क्योंकि वही तो उत्तम से उत्तम खाद है। उसका रहाई घर का एक छोटा सा बगीचा भी था, उसके खेत में आलिव के वृक्ष थे और उन पर अंगूर की बेलें चढ़ी हुई थीं, उसमें अंजीर और चेरी के वृक्ष भी थे। उसकी स्त्री जाड़े में उसके लिए कातती थी और कपड़े बुनती थी और गरमी के दिनों में रेशम के कीड़े पालती थी। उसने कुछ मधुमक्खिकाओं के छत्ते भी पाल रक्खे थे और मौसम खुल जाने पर वह अपने गाड़ी बैलों को किराये पर भी ले जाता था। उसने भेड़, सूअर और पक्षियों को पाल रक्खा था।

१२० एकड़ के खेत को ४ भाइयों का एक अविभक्त कुटुम्ब उनकी स्त्रियें, बच्चे और बूढ़ों के साथ जोतता था। सब मिला कर वे कोई ४० से ५० मनुष्य होंगे। वह खेत उससे ३० गुना बड़ा था परन्तु एक के बदले उसमें ३० बैलों की जोड़ का उपयोग नहीं किया जाता था। उसके पास बैलों की आठ जोड़ थी। वे उसे न ३० गुना खाद ही देते थे न उसमें ३० गुना पसीना ही बहाते थे। उसमें पैदावार भी ३० गुना नहीं होती थी। न गेहूं, न मका या घास, न हाथकता सूत न कपड़े वे ३० गुना पैदा कर सकते थे। कोई ७० साल तक की इन खेतों की हरएक की पैदावारी का मुझे ज्ञान है। हम सब चीजों का पूरा पूरा और ठीक ठीक हिसाब रखते थे क्योंकि अण्डे, फल और कपड़ों से ले कर सभी चीजों में हमारा आधा हिस्सा होता था और आसामी का आधा, (हमारे आधे हिस्से में से हमें बड़े बड़े टेक्स देने होते थे, मकान की मरम्मत करानी होती थी और ढोर, औजार और रसायनिक खाद की आधी कीमतें भी देनी होती थी।) मेरे पिता की मृत्यु हो जाने पर मुझे उन्हें बेच देना पड़ा और मैंने उनकी कीमत निकालने के लिए हरएक खेत से हमें जो शुद्ध आमदनी होती थी उसको २५ गुना कर दिया। मुझे याद है कि मैंने १२० एकड़ खेत की कीमत ६०००० लायर ठहराई थी और ४ एकड़ खेत की ६०००। अर्थात् छोटे खेत पर हमें १२० एकड़ के खेत के बनिस्बत एकड़ पर ३ गुना अधिक उत्पन्न होता था। कीमत के इन अंकों का अर्थ यह है कि खेत के मालिक को २४०० और २४० लायर की शुद्ध आमदनी होती थी। आसामी का हिस्सा तो इसके दुगुने से भी अधिक होता है क्योंकि उन्हें टेक्स और मरम्मत इत्यादि में कोई खर्च नहीं करना पड़ता। इसलिए ४ एकड़ के खेत पर काम करनेवाला आसामी अपने खेत से ६०० लायर पैदा करता था और रेशम के कीड़े, गाड़ीबैल के किराये का और कताई और बुनाई का नफा अलाहदा होता था। शायद उसकी आमदनी ९०० लायर थी जो ६००) साल के बराबर होती है अर्थात् ५०) मासिक होते हैं। वह जमीन समुद्र की सतह से १००० फीट ऊंची साधारण जमीन थी। और वह इसीलिए कीमती बनी थी क्योंकि मनुष्य और जानवर की मिहनत ने उसे वैसी बनायी थी।

आपके भारत में भी जिनके पास थोड़ी जमीन है वे उस जमीन से अपना और अपने अच्छे जानवरों का पसीना बहावें, वे रेशम के कीड़े पालें, गाड़ी किराये पर ले जाय, रसोई घर के लिए बाग बनावें, फल के वृक्ष बोवें और कातें बुनें और अपनी आधी जमीन अपने ढोरों के घास के लिए सुरक्षित रखे। उससे किसान उन्नति कर सकेगा और उसके ढोर भी पुष्ट होंगे। यदि जमीन ४ एकड़ से भी कम हो और वहां बड़ी घटी हुई हो तो अधभूखे ढोरों को रखने में वह गलती करेगा। हल के बजाय जापानियों की तरह उसे अपने हाथ से गेंती से ही अपना खेत साफ कर लेना चाहिए।

मेरा सारा मतलब यह है कि यदि वह ढोर रखे भी तो वह उन्हें अपने बच्चों की तरह रखे और इस बात पर ध्यान रखे कि उन्हें रोजाना उनकी पूरी खुराक मिल जाती है या नहीं। यह तभी होगा जब कि वे अपनी कम से कम आधी जमीन घास उगाने के लिए रख छोड़ेंगे। दू जमीन रखे तो और भी अच्छा हो। और जब वह उस जमीन में फिर अनाज बोवेगा तो ३ गुना अनाज पैदा होगा और इस प्रकार कम जमीन बोने के कारण अनाज की पैदावारी में कोई कमी न होगी बल्कि उसमें मतर्य वृद्धि ही होगी।

बारी बारी से फसल लेने के मार्ग में भारत की गरीबी के कारण कोई बाधा नहीं उपस्थित होती है। बारी बारी से फसल लेने में स्थिर फसल के बनिस्बत कोई अधिक खर्च नहीं होता है। जावा में जाम्बोक के जरिये डच सरकार ने बारी बारी से धान की फसल लेना लोगों पर अनिवार्य कर दिया। उसने

राज्यकाल में जावा की मर्दुमशुमारी २० लाख से ३ करोड़ के लगभग हो गई है और उसीके साथ उसी परिमाण से चावल और शक्कर के खेत भी बढ़ गये हैं। यह परिवर्तन कोई पूंजी लगा कर नहीं किया गया था परन्तु एक बुद्धिमान सरकार ने शक्ति का प्रयोग कर के किया था। भारत में विचार करने के लिए और लोगों को काम में लगाने के लिए आलोक का प्रयोग करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। हम जबरदस्ती नहीं करना चाहते हैं परन्तु उनमें विश्वास उत्पन्न करना चाहते हैं। यहां मेरा आशा तो यह है कि नेतावर्ग के लोगों को दूसरे लोगों को इस विषय में समझाना चाहिए और आपको, नेता वर्ग के आध्यात्मिक नेता को तो सबसे प्रथम इस को हाथ लगाना चाहिए। आपकी सहायता से बहुत कुछ हो सकेगा। दस करोड़ ढोर आपसे मूक प्रार्थना कर रहे हैं।"

भारत के करोड़ों ढोरों की यह प्रार्थना केवल मुझसे ही नहीं है परन्तु ऐसे सभी भारतवासियों से है जो खुद विचार कर सकते हों, और शायद हिन्दुओं से विशेष कर है क्योंकि वे गो-रक्षक होने का दावा करते हैं। मुझे आशा है कि भारत में होनेवाले पशुवध पर श्री वालजी देसाई ने बड़े ध्यानपूर्वक जो लेख तैयार किये हैं उन्हे पाठक अवश्य ही पढ़ते होंगे। भारत के नगरों में ढोरों का जो हाल हो रहा है उसका उसमें तादृश वर्णन किया गया है। मि. गलेटी कृषि के ढोरों की स्थिति का वर्णन करते हैं और उनकी स्थिति सुधारने के लिए उपाय भी विस्तार से बताते हैं। ढोरों की जात सुधारने का और उनको रक्षा करने का प्रश्न जैसा धार्मिक दृष्टि से प्रथम महत्व का प्रश्न है वैसा ही वह आर्थिक दृष्टि से भी है। मि. गलेटी के बताये गये उपाय भारत की आज की परिस्थिति में लागू किये जा सकते हैं या नहीं यह मैं नहीं जानता। स्वयं खेती करनेवाले ही इसका अधिकारयुक्त उत्तर दे सकते हैं। परन्तु एक कठिनाई तो स्पष्ट है। करोड़ों किसान ऐसे अज्ञान हैं कि वे नये और क्रान्तिकारी उपायों का स्वीकार ही न कर सकेंगे। मि. गलेटी के उपायों का सर्व उपाय होना मान भी लिया जाय तो भी उस पर अमल करने के लिए भारतवासियों के एक बहुत बड़े हिस्से को कृषिविषयक शिक्षा देने के कार्य पर ही हमें आधार रखना होगा। परन्तु जो लोग कृषि के सम्बन्ध में कुछ थोड़ा भी जानते हैं और जिनके पास थोड़ी सी भी जमीन है उन्हें मि. गलेटी के उपायों को आजमाना चाहिए और उसके परिणामों को प्रकाशित करना चाहिए। इसके लिए मैं मि. गलेटी की भेजी हुई पत्रिका से उपयोगी अवतरणों को नीचे दे रहा हूं।

"हम लोम्बार्डी में धान के खेतों को भी और चरागाहों को भी सींचते हैं। अब भी हमारे यहां जोतने के लिए मजबूत बैल और महीने में १००० सेर दूध देनेवाली गायें हैं। हम उनके लिए अपने हाथों घास बोते हैं और बारी बारी से उनके लिए आधी जमीन तो हम घास उगाने के लिए ही रख छोड़ते हैं।

जब पहले पहल धान बोना शुरू किया गया था और एक ही खेत में हर साल धान बोया जाता था उस समय गरमी के दिनों में, जब कि धान का मौसम होता है, ढोरों को पहाड़ियों पर हांक कर ले जाना होता था। परन्तु हर साल एक खेत में धान का बोना तो बहुत दिनों से बन्द कर दिया गया है। इटली की इस विषय की एक पुस्तक में लिखा है कि जिन खेतों में घास या जौ के साथ बारी बारी से धान बोया जाता है उनमें, हर साल एक ही जमीन में धान ही बोये जानेवाले खेतों के बनिस्बत अधिक धान पैदा होता है। और उनकी ताकती के कारण उनका धान पदा करना भी अधिक होती है।

जब धान तीन साल में एक साल और पांच साल में दो साल बोया जाता है तब धान का खेत तीन या पांच हिस्सों में बंट जाता है और प्रति साल १/३ या २/५ हिस्सा खेत का दूसरी फसल उगाने के लिए काम में लिया जाता है और बहुतायत से उसमें उत्तम प्रकार का घास और जौ ही, जिसका कि इटली में ढोरों को खिलाने में ही उपयोग किया जाता है, बोये जाते हैं। इससे धान के खेत के एक बड़े हिस्से का ढोरों के लिए चारा उत्पन्न करने में ही उपयोग किया जाता है और इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि लोम्बार्डी के हल जोतनेवाले बैल भारत के छोटे भूखों मरनेवाले बैलों के बनिस्बत वजन में चारगुने और कितने संतुष्ट और मोटे ताजे होते हैं। और लोम्बार्डी की औसत दर्जे की गाय भारत की गायों के मुकाबले में कितना गुना अधिक और अच्छा दूध देती है यह मुझे डर है कि मैं नहीं कह सकूंगा। कुछ दिन पहले जब मैं मिलान के नजदीक आये हुए केव स्टेविलिनी के धान के खेत पर गया था उस समय वह मुझे अपनी गाय दिखाने के लिए ही अधिक आतुर दिखाई दिया था और उसने कहा था कि धान के बनिस्बत उससे उसे कहीं अधिक आमदनी होती थी। वह मिलान शहर को अपना दूध, मक्खन, मलाई और पनीर आदि भेजता है। बंगाल के धान के खेतों के कृषक के पास कलकत्ते के बाजार में भेजने के लिए न दूध होता है न मलाई, न मक्खन और न घी। गाय से उत्पन्न इन शुद्ध पदार्थों की लोग उन्हें खुशी से अच्छी कीमत दे सकते हैं। केव स्टेविलिनी की गायों को केवल उत्तम घास और अनाज ही नहीं मिलता था परन्तु उनके रहने के लिए भी महल से बाड़े बनाये गये थे और दूध निकालने के और सफाई के नये से नये तरीकों का उपयोग किया जाता था। जहां गाय कीमती समझी जाती है वहां उसके लिए घास और अनाज बोया जाता है उसको रखने के लिए महल से गो-गृह बनाये जाते हैं। यहां तो केवल यह सूखे आदर की ही वस्तु है उन्हें ऐसी जमीनों में छोड़ दिया जाता है जिसे गलत तौर पर भारत का चरागाह कहा जाता है और उन्हें भूखों मरने दिया जाता है। भारत को ऐसी अत्याचार और रोग की उत्पत्ति की जगहों को दूर कर देना चाहिए और हरएक भारतीय को अपनी जमीन का दो तिहाई हिस्सा या २/५ हिस्सा ढोरों के लिए घास उगाने को रख छोड़ना चाहिए।

मैं इस बात का यकीन दिलाता हूं कि इससे उसे कुछ भी नुकसान न होगा। शहरों के नजदीक की जगहों में दूध की धान के बनिस्बत अधिक कीमत होती है और वह अच्छा खुराक भी है परन्तु इस बात को एक ओर छोड़ दें तो भी बारी बारी से बोया गया और खाद पड़ा हुआ धान, खादरहित और एक ही जगह में बोये गये धान के बनिस्बत दुगुना या तिगुना उत्पन्न होता है। धान उत्पन्न करने के लिए गंगा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी के सिंधाड़ों के मुकाबले में धान उत्पन्न करने के लिए लोम्बार्डी की जमीन और आबहवा मेरे ख्याल में कोई अच्छी नहीं है और न शायद वह उसके बराबर ही है। जब लोम्बार्डी में काफी गरमी पड़ती है तब यह मौसम इतने थोड़े दिन के लिए रहता है कि एक वर्ष की फसल इकट्ठी करने में किसानों बड़ी मुश्किल पड़ती है। परन्तु उत्पन्न कितना होता है! उत्तर इटली के औसत उत्पन्न के सरकारी अंकों के अनुसार १ हेक्टेयर में ४५ क्वीन्टल अर्थात्

धान होता है । इस हिसाब से एक एकड़ में करीब दो टन उत्पन्न होता है । भारत के बहुत से विभागों में उत्पत्ति के सरकारी अंक प्रति एकड़ १५०० पौंड से कहीं नीचे हैं । स्वयं मेरे बंगाल के जिले में जहां १० लाख एकड़ जमीन बोली जाती है, और जहां धान के सिवा और कुछ भी नहीं दिखाई देता है वहां भी १२०० पौंड धान प्रति एकड़ उत्पन्न होता है । यदि हम उसे घटा कर ४००००० एकड़ अच्छी खाद डाली हुई और साफ की हुई जमीन में ही दूसरी फसलों के साथ बारी बारी से धान बोवें और प्रति एकड़ १२०० पौंड के बदले ४००० पौंड फसल उत्पन्न करें, जैसा कि इटली में किया जाता है, तो ४००,००० एकड़ जमीन से ही १०००००० एकड़ के बनिस्बत एकतिहाई धान अधिक उत्पन्न होगा और ६००००० एकड़ जमीन बची रहेगी, जिसमें हम ढोरों के लिए घास, जौ और मनुष्यों के लिए मका और गेहूं उत्पन्न कर सकेंगे ।

यदि कोई भारतीय प्रवासी वेर्चेला को जाय — वह स्थान स्वयं ही देखने योग्य है — तो वह उस नदी के मुख के पास धान की उत्पत्ति का भी अध्ययन करें । वह उत्तम ढोरों का और अच्छे चरागाहों का देश है । वहां उन्हें फसल में उत्तम प्रकार का घास ही घास दिखाई देगा । धान उसका ऐसा कोई मूल्य है इसलिए नहीं बोया जाता है परन्तु जमीन को साफ करने के लिए उपयोगी उत्तम फसल वही एक है इसलिए उसको बोया जाता है । वहां साधारण नियम यह है कि दो साल धान बोया जाता है तो २ से पांच साल तक घास या जौ बोये जाते हैं अर्थात् जमीन के ⅘ हिस्से में घास होता है और ⅕ में धान । भारत की स्थिति ही करीब करीब वहां भी दोहराई जा रही है । नमीवाली चौड़ी जमीन बंगाल की जमीन के जैसी ही है । धान बोने पर कोई अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है और न बहुत खाद ही डाला जाता है और न अधिक धान पैदा करने का प्रयत्न ही किया जाता है । वहां भी आबादी अधिक है मनुष्यों को खाना तो चाहिए और मनुष्य के लिए खुराक उत्पन्न करने में बहुत सी जमीन का उपयोग किया जाता है फिर भी वहां ढोर ऐसे हैं कि उसके सामने भारत के ढोर शरमा जावेंगे ।

भारतीय अपने ढोरों के प्रति निर्दय नहीं होता है परन्तु वह बड़ा निठुर होता है । वह अपनी जमीन में से एक इंच भी उन्हें नहीं देना चाहता । वह तो अपने ही लिए सारी जमीन चाहता है । वह थोड़ों को ही खिला सकता है और बाकी को यों ही बढ़ने देता है और उन्हें खुराक के लिए सार्वजनिक चरागाहों पर ही छोड़ देता है जहां उन्हें भूखों मरना पड़ता है । वह इस बात का विचार तक नहीं करता है कि गरमी के दिनों में जब सार्वजनिक चरागाहों में या पहाड़ियों पर घास का पत्ता भी नहीं होता है और वह सूखे घास को गंजियों में जमा नहीं रखता है तो उसके ढोर खायगे क्या ? भारत में पुआल ढोरों की पथारी के योग्य ही होता है खाने के योग्य नहीं । भारतीय प्रवासी यूरोप में जा कर देखें । हरएक खेत के चारों और पुआल के साथ सूखे घास की गंजियां भी होंगी ।

इटली का कृषक भारतीय कृषकों की तरह अपने भाई के साथ एक ही कुटुम्ब में रहता है और अपने भाई पर उसे बड़ा प्रेम होता है । यदि उसका भाई मर जाय तो उसे बड़ा शोक होगा परन्तु यदि उसका बैल मर जायगा तो उसे उससे भी अधिक शोक होगा । उस देश में जहां बैल घर का मुख्य स्तंभ है वहां ढोरों का इतना आदर होता है यद्यपि गाय कोई धार्मिक आदर की वस्तु नहीं मानी जाती है । यदि इटली में गये हुए भारतीय प्रवासी को उस देश के प्रति जिसको 'बरजील' भी चाहते थे इटली के कृषक के क्या भाव है उसका अनुभव होगा तो वह भारत में जा कर ढोरों की रक्षा करने के लिए एक मण्डल स्थापित करेगा; मुसलमानों से हिन्दुओं की पवित्र गाय को बचाने लिए नहीं परन्तु पूर्व की निर्दयता और अज्ञान जनित निठुरता से ढोरों की रक्षा करने के लिए ।

(यं० इं०)　　　　मोहनदास करमचंद गांधी

मार्च के कुछ अधिक अंक

कुछ केन्द्रों के मार्च के महीने के खादी की उत्पत्ति और बिक्री के अंक नीचे दिये गये हैं । मुझे आशा है कि जो लोग अब तक अपने अंक नियमित नहीं भेज रहे हैं वे अब नियमित भेजना शुरू करेंगे ।

प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्री
अजमेर	१२३३)	१०२१)
आंध्र	५९३५)	१७३६३)
बिहार	२०,५४८)	१७४६५)
बंगाल	३१,६६०)	३४,५५८)
उत्तर महाराष्ट्र	९८४)	४३२०)
	६०,३६९)	७४,७२७)

हमेशा की तरह आंध्र के अंक अपूर्ण हैं । बंगाल के अंकों में खादी प्रतिष्ठान, अभय आश्रम और आरामबाग खादी केन्द्र के अंक हैं । "

अभयआश्रम के अधिकारियों ने अपने अधिकार की खादी के उत्पत्ति और बिक्री के नीचे लिखे तुलनात्मक अंक भेजे हैं ।

उत्पत्ति

समय	१९२३–२४	१९२४–२५	१९२५–२६
अक्तूबर से दिसम्बर	१२१०)	८८२५)	३०,७४६)
जनवरी से मार्च	२११०)	९१४०)	२९,८३१)
अप्रैल से जून	३४९४)	१५,९६९)	
जोलाई से सितम्बर	६५७४)	३२,५२४)	

बिक्री

समय	१९२३–२४	१९२४–२५	१९२५–२६
अक्तूबर से दिसम्बर	८१७)	५७३१)	२८०१२)
जनवरी से मार्च	१९६८)	१०,७९०)	२४१४०)
अप्रैल से जून	३०१८)	१३,४१७)	
जोलाई से सितम्बर	७०१२)	१८,६७८)	

इससे यह मालूम हो जायगा कि अभय आश्रम के १९२३–२४ के तीन मास के उत्पत्ति के अंकों के बनिस्बत १९२५–२६ के उत्पत्ति के अंक १५ गुने हैं । यह बड़ी ध्यान देने योग्य है । भारत के सभी मुख्य केन्द्रों से मैं ऐसे तुलनात्मक अंक भेजने के लिए प्रार्थना करूंगा । यदि अभय आश्रम की तरह उनमें भी प्रगति ही दिखाई देगी तो उन लोगों के लिए कि जो लोग यह कहते हैं कि पिछले पांच वर्षों में खादी की प्रगति होने के बदले उसकी अवनति ही हुई है यह एक सम्पूर्ण उत्तर होगा । अभय आश्रम के ऐसे प्रगतिसूचक अंकों से खादी के कार्यकर्ताओं को अधिक प्रयत्न करने के लिए उत्साह मिलना चाहिए । क्योंकि उनके सामने लाखों की खादी पैदा करने का काम ही नहीं है परंतु उन्हें तो करोड़ों रुपयों की खादी उत्पन्न करनी चाहिए ।

(यं० इं०)　　　　मो० क० गांधी

अमेरिका से

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३८

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, वैशाख वदी ९, संवत् १९८१ ६ गुरुवार, मई, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय २२

बारिस्टर तो हुए लेकिन अब ?

परन्तु जिस काम के लिए अर्थात बारिस्टर बनने के लिए मैं विलायत गया था उसका क्या हुआ ? मैंने अब तक उसका वर्णन करना मुलतवी रखा था । लेकिन अब उसके सम्बन्ध में कुछ लिखने का समय आ पहुंचा है ।

बारिस्टर बनने के लिए दो बातें आवश्यक थीं । एक तो 'टर्म भरनी' अर्थात सत्रों में आवश्यक उपस्थिति का होना और दूसरी कानून की परीक्षा में उत्तीर्ण होना । वर्ष में चार सत्र होते थे । वैसे बारह सत्रों में हाजिर रहना चाहिए । सत्र में हाजिर रहने के मानी है उसके "भोजों में उपस्थित रहना" । हरएक सत्र में २४ भोज होते थे, उनमें छः में अवश्य ही हाजिर रहना चाहिए । भोज में आने से यह मतलब नहीं कि वहां कुछ खाना ही चाहिए । परन्तु निश्चित समय पर उसमें हाजिर हो जाना चाहिए और जबतक वह चलता रहे वहीं उपस्थित रहना चाहिए । सामान्य तौर पर तो सभी विद्यार्थी उसमें खाते हैं और पीते भी हैं । खाना अच्छा होता था और पीने में ऊंचे दर्जे की शराब होती थी । अवश्य उसका दाम देना पड़ता था वह ढाई या तीन शिलिंग के करीब आता था अर्थात दो तीन रुपये खर्च होते थे । यह कीमत वहां बहुत ही कम गिनी जाती थी क्योंकि बाहर किसी भोजनालय में भोजन करनेवाले को तो सिर्फ शराब पीने के लिए ही उतने दाम देने पड़ते थे । भोजन के खर्च के बनिस्बत शराब पीनेवाले को शराब के ही दाम अधिक लगते हैं । हिन्दुस्तान में यदि हम 'सुधरे' हुए न हों तो हमें यह बड़ा ही आश्चर्यकारक मालूम होगा । विलायत जाने पर मुझे तो यह देख कर दिल को बड़ी चोट लगी । मैं यही नहीं समझ सकता था कि शराब के पीछे इतने रुपये खर्च करने का लोगों का जी कैसे चलता है, पीछे से मैं उसे समझने लगा ! मैं तो ऐसे भोजों में अक्सर कुछ भी नहीं खाता था क्योंकि मेरे उपयोग के लिए तो वहां केवल रोटी, उबाले हुए आलू या गोभी ही मिल सकती थी । आरंभ में तो उसे खाने की रुचि ही नहीं हुई और इसीलिए मैं नहीं खाता था परन्तु उसके बाद जब मुझे उसमें कुछ स्वाद मालूम हुआ तब तो मुझे दूसरी वस्तुएं प्राप्त करने की भी शक्ति प्राप्त हो चुकी थी ।

विद्यार्थियों के लिए एक प्रकार का खाना होता था और बेन्चरों (विद्यामंदिर के अध्यापकों) के लिए दूसरे प्रकार का और अच्छा खाना होता था । मेरे साथ एक पारसी विद्यार्थी भी थे । वे भी निरामिषभोजी बने थे । हम दोनों ने मिल कर बेन्चरों के भोजन के पदार्थों में से निरामिषभोजियों के लिए उपयोगी पदार्थ प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की । यह प्रार्थना मन्जूर रक्खी गई और हमें बेन्चरों के टेबल पर से फलादि और दूसरे शाक भी मिलने लगे ।

शराब का तो मैं स्पर्श भी नहीं करता था । चार विद्यार्थियों को शराब की दो बातल दी जाती थी इसलिए ऐसे चार चार विद्यार्थियों के मण्डलों में मेरी बड़ी मांग होती थी, क्योंकि मैं शराब नहीं पीता था इसलिए उन्हें तीनों को ही दो बोतल शराब पीने को जो मिलती न थी ? और इन सत्रों में एक बड़ी रात (ग्रांड नाइट) होती थी । उस दिन पोर्ट, शेरी के अलावा शेम्पेन भी मिलती थी । शेम्पेन का मजा कुछ और ही गिना जाता है । इसलिए इस बड़ी रात को मेरी अधिक कीमत आंकी जाती थी और उस रात को हाजिर रहने के लिए मुझे निमंत्रण भी दिया जाता था ।

इस खानेपीने का बारीस्टरी से क्या सम्बन्ध हो सकता है यह मैं तब भी न समझ सका था और न आज भी समझ सका हूं । ऐसा एक समय अवश्य था कि जब ऐसे भोजों में बहुत ही थोड़े विद्यार्थी होते थे और उनमें और बेन्चरों में वार्तालाप होता था और व्याख्यान भी दिये जाते थे । इससे उन्हें व्यवहार-ज्ञान प्राप्त हो सकता था, अच्छी या बुरी एक प्रकार की सभ्यता भी वे सीख सकते थे और व्याख्यान करने की उनकी शक्ति का भी विकास कर सकते थे । हमारे समय में तो यह सब होना असम्भव था । बेन्चर तो दूर अस्पृश्य हो कर ही बैठते थे । इस पुराने रिवाज का बाद में कुछ भी अर्थ नहीं रहा था तो भी प्राचीनता प्रेमी — धीरे — इंग्लैंड में वह अभी बना हुआ है ।

. बारीस्टर विनोद में [illegible] के नाम से ही पहचाने जाते थे। सभी यह जानते थे कि उसकी परीक्षा का कुछ भी मूल्य नहीं था। मेरे समय में दो परीक्षायें होती थीं: रोमन ला की और इंग्लैंड के कानूनों की। यह परीक्षा दो मरतबे में दी जाती थी। परीक्षा के लिए पुस्तक मुकर्रर किये हुए थे परन्तु उन्हें तो शायद ही कोई पढ़ता होगा। रोमन ला के लिए तो छोटे छोटे 'नोट्स' लिखे हुए मिलते थे। उसे १५ दिन में पढ़ कर पास होनेवालों को भी मैंने देखा है। इंग्लैंड के कानूनों के विषय में भी यही बात होती थी। उनके 'नोट्स' दो तीन महीने में पढ़ कर पास होनेवाले विद्यार्थियों को भी मैंने देखा है। परीक्षा के प्रश्न आसान होते थे और परीक्षक भी उदार होते थे। रोमन ला में ९५ से ९९ प्रति सैकड़ा विद्यार्थी पास होते थे और अंतिम परीक्षा में ७५ अथवा उससे भी कुछ अधिक। इसलिए अनुत्तीर्ण होने का बहुत ही कम भय रहता था। और परीक्षा भी वर्ष में एक नहीं परन्तु चार बार होती थी। ऐसी सुविधाजनक परीक्षा का किसी को भी बोझ नहीं लग सकता है।

परन्तु मैंने तो उसे बोझ रुप ही बना दिया था। मैंने यह ख्याल किया कि मुझे असल पुस्तकें भी सब पढ़नी चाहिए। उन्हें न पढ़ना मुझे धोखा देना प्रतीत हुआ। इसलिए असल पुस्तकें खरीद लीं और उसमें ठीक खर्च भी किया। रोमन ला को लेटीन में पढ़ जाने का निश्चय किया। विलायत की मेट्रीक्युलेशन में मैंने लेटीन पढ़ी थी उसका यहां अच्छा उपयोग हुआ। यह मिहनत कुछ व्यर्थ न हुई। दक्षिण आफ्रिका में रोमन डच ला प्रमाण-भूत गिना जाता है। उसे समझने में मुझे जस्टीनियन का अध्ययन बड़ा ही उपयोगी प्रतीत हुआ।

इंग्लैंड के कानूनों का अध्ययन मैं नव महीने में ठीक ठीक मिहनत कर के पूरा कर सका था। क्यों कि ब्रूम के 'कोमन ला' का बड़ा परन्तु रसमय पुस्तक पढ़ने में ही बहुत समय लगा था। स्नेल की इक्विटी में दिल तो लगा परन्तु उसे समझने में बड़ी ही मुश्किल मालूम हुई। व्हाइट और ट्युडर के मुख्य मुकदमों को जो पढ़ने के थे पढ़ने में मुझे बड़ी दिलचस्पी मालूम हुई और उससे ज्ञान भी मिला। विलियम्स और एडवर्ड्स का स्थायी मिलकत सम्बन्धी पुस्तक और गुडिव का अस्थायी मिलकत सम्बन्धी पुस्तक को मैंने बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ सका था। विलियम्स का पुस्तक तो मुझे उपन्यास के जैसा ही मजेदार मालूम हुआ। उसे पढ़ने में मुझे जरा भी अरुचि न हुई। कानूनी पुस्तकों में हिन्दुस्तान आने के बाद मैं उतनी ही दिलचस्पी के साथ मेइन का 'हिन्दू ला' पढ़ सका था। परन्तु हिन्दुस्तान के कानूनों की बात करने के लिए यह स्थान नहीं है।

परीक्षायें पास की। १८९१ की १० वीं जून को मैं बारीस्टर हुआ। ग्यारवीं तारीख को इंग्लैंड की हाइकार्ट में ढाई शिलिंग दे कर मेरा नाम रजीस्टर कराया। मैं बारह जून को हिन्दुस्तान लौट जाने के लिए रवाना हुआ।

परन्तु मेरी निराशा और भीति का कुछ ठिकाना न था। कानून तो मैंने पढ़ा था परन्तु मेरे दिल में मुझे यही प्रतीत हुआ कि मैं वकालात कर सकूं ऐसा मैंने अबतक कुछ भी नहीं सीखा है।

इस व्यथा का वर्णन करने के लिए एक दूसरे ही अध्याय की आवश्यकता होगी।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

समाचार कैसे मिले

डरबन छोड़ने के पहले मैंने नित्य उद्यत रहनेवाले, कांग्रेस के मन्त्री श्री अब्दुल काजी से यह प्रार्थना की थी कि यदि संभव हो सके तो केप टाउन में 'सिलेक्ट कमिटि' जैसे ही अपनी रिपोर्ट पेश करे कि वे मुझे आर. एम. एस. काराग्युला के जहाज पर उसके समाचार भेजें। यह स्मरण रखना चाहिए कि रिपोर्ट में पहली अप्रेल के बजाय २३ अप्रेल तक विलम्ब हुआ था और इसमें भी अभी कुछ सन्देह था कि उस तारीख को भी रिपोर्ट तैयार होगी कि नहीं। फिर भी डा० मलान उसे प्रकाशित करने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे थे और २१ अप्रेल को समाचार पाने की उत्सुक आशा रक्खी जा सकती थी।

२३ अप्रेल को मुझे समाचार मिलने में एक कठिनाई तो यह थी कि उस दिन मुझे मध्य सागर में होना चाहिए था और वहां कराची और मोम्बासा से दोनों तरफ से मुझे रेडियोग्राम मिलना मुश्किल था। अप्रेल २३ की दोपहर को मैंने जा कर पूछा कि मोम्बासा से कुछ समाचार मिल सकता है या नहीं। उसका सम्बन्ध टूट गया था परन्तु वहां उसका काम करनेवाले ने मुझ से कहा कि उस रात को ही यदि वायुमण्डल ठीक रहा तो वे कराची से सम्बन्ध जोड़ सकेंगे।

२३ अप्रेल को सारा दिन जहाज बड़े जोरों से हिलता रहा, यहां तक कि मैं लिखने का कुछ भी काम नहीं कर सकता था। जैसे ही अंधेरा बढ़ा कि आकाश में चांदनी खिल गई। मैंने अरब के समुद्र में से अरब के तरफ दृष्टि डाली। उसका किनारा अब कुछ दूर न था। जहाज पर मुसलमान आगवाले और कोयला झोंकनेवालों ने अपनी शाम की नमाज पढ़ ली थी। वे अब शाम को वजू कर के नमाज पढ़ानेवाले के पीछे एक के बाद एक कतार में खड़े रह कर नमाज पढ़ते थे तब बड़े आदर और भय के साथ मैं उन्हें देखा करता था। अरब देश इतना नजदीक था कि उस समय, जब से इस्लाम के नबी ने शाम की नमाज का नियम बनाया था तब से जिन लाखों करोड़ों लोगों ने ईश्वर पर श्रद्धा रख कर उस धर्म में जीवन बिताया था और उसी श्रद्धा में मृत्यु को प्राप्त हुए थे उनके लिए इस्लाम धर्म का जो तमाम अर्थ हो सकता था उसका मुझे स्पष्टतया विचार आया और अरब के समुद्र पर जहाज पर ही इन आगवालों को नमाज पढ़ते हुए देख कर मुझे यही प्रतीत हुआ कि इस नमाज में युगानुयुग से उन्हीं की श्रद्धा का प्रतिबिंब पड़ रहा है। चारों तरफ फैला हुआ विशाल समुद्र यही कह रहा था कि 'अल्ला हो अकबर' 'ईश्वर महान है'।

उस संध्या को मैं बहुत देर तक जहाज पर एक तरफ खड़ा रहा और जल के ऊपर हिलोरें लेती हुई चांदनी को देखता रहा। मैं ईश्वर और उसके अजर अमर होने के विषय में और मनुष्य की श्रद्धा के सिवा और सब बातों में उसकी क्षुद्रता पर विचार करता रहा। मनुष्य अपनी श्रद्धा से ही अमर बनता है।

मैं सोने के लिए गया परन्तु घण्टे दो घण्टे तक तो मुझे नींद ही नहीं आई। मैं जागता हुआ पड़ा रहा और केप टाउन के दृश्यों का और उन सीधे सादे लाखों आफ्रिकावासियों का विचार करता रहा। भारतीयों की तरह उनका भाग्य भी तुला में वैसे ही लटक रहा है। जहाज का कमरा बड़ा गरम मालूम होता था। आखिर मुझे थोड़ी सी तन्द्रा आ गई कि मेरे कमरे के द्वार को किसीने सहसा खटखटाया और मैंने आंखें खोलीं तो एक सन्देशवाहक को तार लिए हुए खड़ा देखा। मैंने बड़ी आतुरता

के साथ दस्तखत कर दिये और तार दे दिया। मेरा दिमाग तेजी से काम कर रहा था क्योंकि मैं यह जानता था कि उसमें हमारे भाग्य का निर्णय होगा। वह डरबन से कराची हो कर आया था। कराची की बेतार की तार बर्की की आफिस ने स्टीमर पर वह तार पहुंचाया था।

उसमें यह शब्द लिखे हुए थे: परिषद का निर्णय आने तक बिल सरकारी तौर से मुलतवी कर दिया गया है 'यह समाचार ऐसे थे कि मुझे उनके सच होने का विश्वास ही नहीं हो सकता था फिर भी मेरे मुंह से ये शब्द निकल पड़े "ईश्वर को धन्यवाद है" और तकिये पर सर रख कर सोने की तैयारी की कि इतने में मुझे यह स्मरण हुआ कि जवाब का तार अभी भेजा जा सकता है। मैं सीढ़ी चढ़ कर बेतार की तारबर्की की आफिस के पास गया। जहाज पर चांदनी का प्रकाश पड़ रहा था और उसे देख कर एक भजन के इन शब्दों का मुझे स्मरण हुआ।

"आकाश ईश्वर के प्रभाव को प्रकाशित करता है और पञ्चभूत उसकी कारीगरी को प्रगट करता है।"

फिर मैंने समुद्र की सतह पर जिस तरफ कि हमलोग सफर कर रहे थे उस तरफ देखा और जवाब का मुझे फिर स्मरण हो आया। और जब मैं उस आफिस में गया मैंने अपने उत्तर के शब्दों की रचना कर ली थी। मैंने उन्हें इस प्रकार लिखा: 'परमात्मा महान है, उसे धन्यवाद हो'

(य. इं.) सी० एफ० एण्ड्रूज

बंगाल में चरखा

'बंगाल में चरखा' के विषय पर पत्र लिखते हुए बाबू हरदयाल नाग लिखते हैं:

"पश्चिम के पोशाक की सभ्यता के भक्त बने रहना और इसलिए वस्तुस्थिति में लेंकेशायर के भक्त बनना यह एक भारत की राजनीति में भयंकर घुन लगा हुआ है। और उसका सबसे बड़ा चिह्न खादी से डरने का रोग है। साधारण स्थिति के लोगों के एक बहुत बड़े हिस्से को यह बीमारी लगी हुई है। सद्भाग्य से यह रोग भद्रलोगों के वर्ग में ही मर्यादित है। महासभा के सभासदों के लिए जब खादी पहनना अनिवार्य कर दिया गया तो खादी पहनने के विरुद्ध अन्तरात्मा के नाम पर आपत्तियां उठायी जा रही हैं। यह कहा जा रहा है कि "ऐसे भी कुछ लोग हैं कि जो खादी पहनना अनिवार्य बना देने के नियम को एक प्रकार का अत्याचार ही मानते हैं और जबतक यह नियम बना रहेगा तबतक वे महासभा में अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध न शामिल ही हो सकते हैं और न उसमें रह ही सकते हैं" जब एक देश दूसरे देश को उसे चूसने के लिए जीत लेता है तब मुल्क के जीतने के बाद सामान्यतया विजयी देश के बल से उसे लूट का व्यापार करने के लिए आवश्यक संस्कारों की विजय भी प्राप्त करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए फैशनेबल कपड़ों का शौक बढ़ाना लेंकेशायर के कपड़े के व्यापार के लिए आवश्यक है, वह उसके साथ ही रह सकता है। संस्कारों की विजय गुलाम प्रजा के मन पर अनजान ही में एक ऐसा भाव उत्पन्न कर देती है कि उसके कारण उसे अपने विदेशी मालिकों के रिवाज, आदतें, व्यवहार, बर्ताव, जीवन और पोशाक का बड़ा शौक लग जाता है और देश की चीजों के प्रति विदेश से आई हुई घृणा नहीं तो अरुचि के कारण वह भाव सुरक्षित रहता है। महासभा के सभासदों को खादी का पहनना अनिवार्य होने के खिलाफ अन्तरात्मा के नाम पर जो आपत्ति उठायी जाती है वह केवल इसी अनजान ही में घर किये हुए भाव के कारण ही उठायी जाती है। एक समय ऐसा था कि जब साधारण श्रेणि के लोगों को अपने कपड़ों के लिए चरखे पर ही आधार रखना पड़ता था, अच्छे महीन और शोभा के कपड़ों के लिए भी। परन्तु अब चरखे के प्रति उनकी मनोवृत्ति बदल गई है और लेंकेशायर के कपड़ों को वे चाहने लगे हैं। भारत को जीत लेने के कारण बाद में उसके संस्कारों पर भी जो विजय उसे सहज ही में प्राप्त हुई है उसके कारण ही इस मनोवृत्ति में यह परिवर्तन हुआ है। इस उल्टी मनोवृत्ति को चरखे के काम में फिर बदल देने की आवश्यकता है। अवश्य इस मार्ग में बाधायें बहुत हैं। इन बाधाओं को दूर करना होगा। सब से पहले आर्थिक कठिनाई ही पेश की जाती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जब चरखा केवल भारत की कपड़ों की आवश्यकताओं को ही पूरा नहीं करता था परन्तु सारे संसार की आवश्यकताओं को भी पूरा करता था तब वह भारत की आर्थिक महत्ता का आधार-स्तंभ था और वह झोंपड़ों में रहनेवाले गरीबों की आर्थिक समस्या का भी आधारस्तंभ था। महीन सूत निकालने में आजतक चरखे से कोई भी यन्त्र नहीं बढ़ सका है। महीन खादी उत्पन्न करने की कठिनाई अधिकतर काल्पनिक कठिनाई है सच्ची नहीं। यह तो केवल समय की बात है। एक मरतबा जिस चरखे से संसार में सबसे उत्तम कपड़ा तैयार किया जा सकता था वह आज भी यदि उसकी कारीगरी का विकास होने का उसे समय दिया जाय तो महीन कपड़ा तैयार करने में असफल न होगा। चरखे का पुनरुद्धार करने में जितनी कठिनाइयां मालूम होती हैं उनमें विदेशी संस्कारों से उत्पन्न यह विरोधी भाव ही सबसे अधिक मुश्किल है।

कताई और बुनाई के बड़े बड़े यंत्र बेशक धनवानों की प्राप्त की हुई सब से बड़ी सिद्धि है परन्तु यह सिद्धि मजदूर वर्ग के लोगों का बहुत बड़ा बलिदान देने पर ही प्राप्त हो सकी है। कपड़े के इस गृह उद्योग का नाश कर के धनवानों ने झोंपड़ों में रहनेवाले मजदूरों को केवल कपड़ों के लिए ही उन पर आधार रखने को मजबूर नहीं किया है परन्तु उन्हें खाना और जीवन की दूसरी आवश्यकताओं के लिए भी उन पर ही आधार रखने के लिए मजबूर कर दिया है। भारत की स्थिति तो और भी अधिक बुरी है क्योंकि भारत पर विदेशी धनिक लोग राज्य कर रहे हैं। भारत के झोंपड़ों में रहनेवाले मजदूर कपड़े, खुराक और रहने के लिए मकान प्राप्त करने को बड़ी ही मिहनत करते हैं परन्तु शरीर को ढंकने के लिए कपड़े के दाम देने पर उनके पास पेट भरने के लिए और रहने के लिए छोटी सी झोंपड़ी बनाने के लिए बहुत ही थोड़े पैसे बाकी बचते हैं। अर्थात् वे जो मजदूरी पाते हैं उसे फटी हुई थैली में रखने के लिए ही पाते हैं और उनके पास कुछ भी नहीं बचता है। वेही, जो खुराक उत्पन्न करते हैं और मकान बनाते हैं खुराक और मकान के बिना बड़े दुःख उठाते हैं और उनको लूटनेवाले विदेशी बड़ा चैन उड़ाते हैं। इस आर्थिक लूट में बहुत से साधारण श्रेणि के लोग विदेशी लुटेरों की ही मदद करते हैं और इसमें वे प्रकृति के नियम के विरुद्ध अपराध करते हैं। साधारण श्रेणि के मनुष्यों को यह याद रखना चाहिए कि किसान और मजदूरी करनेवाले को ही उनका खाना और जीवन की दूसरी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, उनके लिए मकान बनाते हैं और जीवन के सभी क्षेत्रों में उनकी मदद करते हैं। इस सेवा के बदले में उन्हें वे क्या [illegible] लौटाते हैं? अब बहुत दिनों तक यह नहीं चल सकेगा कि वे उ[illegible] चूसने में मदद करें और फिर भी निर्दोष बने रहें। उन्हें अप[illegible]

रक्षा और भलाई के लिए भी ऐसे लूटनेवालों को मदद करने से रुक जाना चाहिए और अपने सच्चे हितैषियों की, इन झोंपड़ों में रहनेवाले लोगों की उन्हें मदद करनी चाहिए। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि प्रकृति का उनसे इस पाप का बदला लेने का दिन कभी का भर चुका है और इसलिए उन्हें उनकी सेवाओं के बदले में अपनी तरफ से कुछ न कुछ मदद अवश्य ही करनी चाहिए। आज तो सिर्फ वे चरखा ही चला सकते हैं। वही उन्हें उनकी भौतिक और नैतिक उन्नति करने में बहुत कुछ मदद करेगा। साधारण श्रेणि के लोगों को गरीबों को चूसनेवाले उन धनवानों के साथ सहयोग करने के बजाय उनसे चूसे गये इन गरीबों के साथ ही चरखा चला कर सहयोग करना चाहिए।

(य. इं.)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख बदी ९, संवत् १९८२

अमेरिका से

एक महाशय ने कुछ समय पहले अमेरिका से पत्र लिख कर मुझ से कितने ही प्रश्न पूछे थे और मैंने यं. इण्डिया में उसके उत्तर भी दिये थे। अब उन्होंने और भी कुछ प्रश्न पूछे हैं। पहला प्रश्न यह है:

"जिस वस्तु पर आपका प्रेम है उसे ही यदि वह न बचा सके तो निर्भय और बहादुर मनोवृत्ति का उपयोग ही क्या हो सकता है? यह माना कि आपको मृत्यु का जरा भी डर नहीं है। परन्तु यदि आप आखिर तक अहिंसात्मक ही बने रहना चाहेंगे तो उसमें ऐसी क्या बात है कि जो लुटेरों को आपकी प्रिय वस्तु लूट लेने से, उसे आपके हाथ से छीन लेने से रोक सकती है? जो लुटेरों का शिकार बना है वह यदि हिंसात्मक प्रतिकार न करेगा तो उसे लूट लेना लुटेरे के लिए बड़ा ही आसान काम हो जायगा। लूट तो बराबर हो रही है और जबतक ऐसे शिकार जो आसानी से लूट लिए जा सकते हैं, संसार में मिलते रहेंगे तब तक वह बराबर बनी भी रहेगी। प्रतिकार करें या न करें शक्तिशाली निर्बल को लूटेगा ही। निर्बल होना ही पाप है। निर्बलता को किसी भी उपाय से दूर करने के लिए तैयार न होना भी एक अपराध ही है।"

लेखक यह भूल जाते हैं कि प्रतिकार हमेशा सफल नहीं होता है। डाकू यदि अधिक ताकतवर हुआ तो वह सब रक्षा करनेवालों को हरा देगा और उसका प्रतिकार करने से उसके क्रोध की आग में घी पड़ जायगा और उस प्रज्वलित आग का वह अभागी शिकार ही बलि बन जायगा। इससे तो उसके तरफ से प्रतिकार करने से उसकी हालत और भी अधिक बुरी होगी। सच है कि रक्षक को अपनेतईं भरसक रक्षा करने की कोशिश करने का संतोष मिलेगा। परन्तु अहिंसात्मक रक्षक को भी यही संतोष प्राप्त हो सकेगा। क्योंकि उसकी रक्षा करने के प्रयत्न में वह अपनी जान दे देगा। इससे भी अधिक उसे इस बात का भी संतोष होगा कि अपनी दलीलों से उसने डाकू के दिल को मुलायम बनाने का भी प्रयत्न किया। लेखक ने इस बात को मान लिया है कि अहिंसात्मक रक्षक तो उस डाके का शान्त क्रियाहीन और लाचार प्रेक्षक ही होता है और इसलिए उनको यह कठिनाई मालूम होती है। परन्तु सच बात तो यह है कि चाहे कैसी भी योजना क्यों न हो, प्रेम पशुबल की अपेक्षा अधिक क्रियात्मक और शक्तिशाली होता है। जिसमें प्रेम नहीं होता और फिर भी जो शान्त क्रियाहीन खड़ा रहता है वह कायर है। वह न पशु है न मनुष्य ही है। उसने तो अपने को रक्षक बनने के लिए अयोग्य ही साबित किया है।

यह स्पष्ट है कि लेखक ने मेरी तरह शान्त प्रतिकार की महान् शक्ति का शत्रुओं पर जो असर होता है उसका अनुभव नहीं किया है। शान्त प्रतिकार एक इच्छाशक्ति का दूसरी इच्छाशक्ति के प्रति प्रतिकार है। यह प्रतिकार तभी संभव हो सकता है जब कि उसे पशुबल के आधार से मुक्ति मिल जाय। पशुबल पर आधार रखने में तो यह बात पहले से ही ग्रहित कर ली जाती है कि जब यह शक्ति खतम हो जायगी तो उसे प्रतिस्पर्द्धि के वश होना पड़ेगा। क्या लेखक यह जानते हैं कि एक स्त्री भी निश्चयात्मक इच्छाशक्ति होने पर अपने पर जुल्म करनेवाले का चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो सफलतापूर्वक प्रतिकार कर सकती है।

मैं यह स्वीकार करता हूं कि शक्तिशाली दुर्बल को लूट लेना और निर्बल होना एक पाप ही है। परन्तु यह तो मनुष्य की आत्मा के लिए कहा गया है शरीर के लिए नहीं। यदि शरीर के लिए ही यह कहा गया होता तो हम निर्बल होने के पाप से कभी भी मुक्त नहीं हो सकते हैं। परन्तु आत्मा की शक्ति, उसके खिलाफ सारी दुनिया हथियार ले कर क्यों न खड़ी हो जाय वह उसकी कुछ भी परवा नहीं करती है। यह शक्ति शरीर में दुर्बल से भी दुर्बल मनुष्य को भी प्राप्त हो सकती है। दुर्बल इच्छाशक्ति का जुलू शरीर में राक्षस जैसा बल रखने पर भी एक छोटे से गोरे बच्चे के वश हो जाता है। हट शरीर के गुण्डे को शरीर से दुर्बल अपनी माता के सामने लाचार बनते हुए किसने नहीं देखा है। प्रेम पुत्र में रहे हुए पशु को जीत लेता है। माता और पुत्र में जो प्रेम होता है वह प्रयोग में सर्वव्यापी है और उसके दोनों तरफ होने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं ही पुरस्कार रूप है। बहुत सी माताओं ने अपने गलत मार्ग पर जानेवाले सपूत बच्चों को अपने प्रेम के कारण ही सुधार दिया है। प्रेम की दुर्बलता से मुक्त होने की हमें तैयारी करनी चाहिए। उसमें सफलता होने की आशा है। क्योंकि प्रेम करने में स्पर्द्धा का होना आरोग्यवर्धक है। संसार पशुबल का उपयोग करने में सबल बनने का युगों से प्रयत्न कर रहा है। परन्तु उसमें बड़ी बुरी तरह से असफलता मिली है। पशुबल उपयोग करने में स्पर्द्धा करना अपने आप अपनी जाति की आत्महत्या कर लेना है।

लेखक लिखते हैं।

"ब्रिटिश अधिकारी वर्गों में भी उतना ही आत्मबल है जितना कि आप में है परन्तु उनके पास फौजी बल भी है और इसके अलावा मनुष्य स्वभाव का उन्हें व्यावहारिक ज्ञान है, और उसका परिणाम स्पष्ट है।"

जहां फौजीबल होता है वहां आत्मबल नहीं रहता है। अन्य उत्पन्न करने की वृत्ति, निर्बलों को चूसने की वृत्ति, अनीति मूलक काम, देह के सुखों की कभी शान्त न होनेवाली तृष्णा जहां होती है वहां आत्मबल कभी नहीं होता। इसलिए ब्रिटिश अधिकारीगण यदि आत्मबल से सर्वथा हीन नहीं है तो उनका आत्मबल उनके पशुबल से दबा हुआ अवश्य है। इसके बाद लेखक एक सनातन समस्या उपस्थित करते हैं:

"संसार में कुछ लोग बड़े लालची हैं और वे बड़ी बुराई कर रहे हैं। उनके हाथ में शक्ति—अधिकार है। वे शासक

हो सकते हैं परन्तु फिर भी वे बड़ी हानि कर रहे हैं । इसलिए अब इससे काम न चलेगा कि हम हाथ बांध कर खड़े देखा करें और वे अपना शैतान का सा काम करते रहें । अहिंसा का भक्ति ले कर के भी हमें उनके हाथ से अधिकार छीन लेना चाहिए ताकि वे कुछ अधिक हानि न पहुंचा सकें । ”

इतिहास हमें यह शिक्षा देता है कि जिन्होंने निःसन्देह प्रामाणिक हेतुओं के साथ ऐसे लोभी मनुष्यों के विरुद्ध पशुबल का उपयोग कर के उन्हें हटा दिया है वे भी अपना समय आने पर उन हारे हुए लोगों के उस रोग के भोग हो गये हैं । यदि गुलामों के नायक बनने के बनिस्बत गुलाम बनना ही अधिक अच्छा है और यदि यह कोई पोथी में के वचन नहीं है तो गुलामों के नायकों को उनकी जितनी भी बुराई हो सके हम उन्हें करने देंगे और हम युद्ध की पाशविक खींचातानी से जो हमारे स्वभाव के प्रतिकूल है, अब ऊब गये हैं इसलिए ऐसे लोभी चूसनेवालों के पशुबल का आत्मबल से सामना करने के जो साधन संभव हो सकते हैं उन्हें ही ढूंढने का प्रयत्न करेंगे ।

परन्तु लेखक को तो प्रयोग के आरंभ में ही यह कठिनाई मालूम होने लगी है:

“ महात्माजी, आप इस बात का स्वीकार करते हैं कि भारत के लोगों ने आपके धर्म का अनुसरण नहीं किया है । मालूम होता है कि उसका कारण भी आपको मालूम नहीं है । बात यह है कि साधारण मनुष्य सब महात्मा नहीं होते । यह बात इतिहास से सिद्ध है और उसमें सन्देह करने का कोई अवकाश ही नहीं है । भारत में और दूसरी जगहों में थोड़े महात्मा लोग हुए हैं परन्तु वे अपवाद रूप हैं और अपवाद नियम का ही समर्थन करता है । आपको ऐसे अपवादों के आधार पर अपने कार्यों का निर्माण नहीं करना चाहिए । ”

यह बड़े विस्मय की बात है कि हम अपने आपको कैसे भ्रम में डाल देते हैं । हम यह ख्याल करते हैं कि हम इस नाशवन्त शरीर को अमर बना सकते हैं और आत्मा की गुप्त शक्ति को व्यक्त करना असंभव समझते हैं । यदि मुझ में इन शक्तियों में से एक भी शक्ति हुई तो मैं यह दिखाने के प्रयत्न में ही लगा हुआ हूं कि मेरा शरीर उतना ही निर्बल और नाशवन्त है जितना कि हमारे में से किसी दूसरे मनुष्य का है और मुझ में ऐसी कोई विशेष शक्ति कभी थी ही नहीं और न आज है । मैं तो दूसरे मनुष्य प्राणियों की तरह गलती करनेवाला एक सादा व्यक्ति होने का ही दावा करता हूं । फिर भी मैं इस बात का स्वीकार करता हूं कि मेरे में इतना मनुष्यत्व अवश्य है कि मैं अपनी गलतियों का स्वीकार कर लेता हूं और उस गलत मार्ग को छोड़ देता हूं । मैं इस बात का भी स्वीकार करता हूं कि मुझे ईश्वर पर और उसकी भलाई पर अटल श्रद्धा है और सत्य और प्रेम के लिए मेरे में अक्षय उत्साह है । परन्तु क्या यह गुण प्रत्येक मनुष्य में छिपे हुए नहीं हैं ? यदि हमें प्रगति करना है तो हमें इतिहास को नहीं दोहराना चाहिए परन्तु नये इतिहास की रचना करनी चाहिए । हमारे पूर्वज हमारे लिए जो बातें छोड़ गये हैं उनमें हमें कुछ वृद्धि करनी चाहिए । यदि हम इस जगत में भी नयी खोजें कर रहे हैं तो क्या हमें आध्यात्मिक क्षेत्र में हारने को दिवालिया साबित करना चाहिए ? अपवादों की वृद्धि करके उन्हें ही नियम बना देना क्या असंभव है ? क्या मनुष्य हमेशा प्रथम पशु ही होना चाहिए और फिर मनुष्य ?

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

काठियावाड में खादी का कार्य

श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमदास ने राष्ट्रीय सप्ताह में अपनी काठियावाड की यात्रा में तीन खादी के केन्द्रों की मुलाकात की और उन्होंने गांधीजी को उसकी रिपोर्ट भेजी । वह रिपोर्ट गांधीजी की बड़ी लम्बी टिप्पणी के साथ गत सप्ताह के गुजराती ‘ नवजीवन ’ में प्रकाशित किया गया था । उसमें कुछ बातें ऐसी भी हैं कि उनका जानना खादी की प्रगति में दिलचस्पी लेनेवाले सभी कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी है ।

प्रत्येक केन्द्र में श्री लक्ष्मीदास ने केवल यही जांच नहीं की कि वहां कातनेवालों की संख्या कितनी है, कितना सूत और कितनी खादी तैयार होती है, परन्तु बहुत से कातनेवालों की उन्होंने परीक्षा ली, स्वयं उनके सूत की जांच की, उनके सूत के दोष उन्हें बताये और उसको सुधारने लिए उन्हें क्या करना चाहिए यह भी सिखाया । प्रत्येक केन्द्र के अधिकारी कार्यकर्ताओं को कितनी ही उपयोगी सूचनायें की ।

पहली बात जो उन्होंने कही है वह यह है कि जो सूत इन केन्द्रों में आता है वह उसी अंक के मिल के सूत के बनिस्बत हलके दर्जे का होता है और इसलिए उससे जो खादी तैयार होती है वह भी मिल के वैसे ही कपड़े के बनिस्बत हलकी होती है । यह बात नहीं कि इन चार वर्षों में कोई प्रगति ही नहीं हुई है । चार साल पहले २॥ से ४ अंक के सूत की खादी ही तैयार होती थी परन्तु आज ६ से १० अंक के सूत तक की खादी बुनी जाती है । उसका पोत भी पहले के बनिस्बत अच्छा होता है । परन्तु आज भी मिल के उसी अंक के बुने हुए कपड़े की तुलना में खादी ठहर नहीं सकती है । उन्होंने कुछ लच्छियां इकट्ठी की और उनकी जांच की । उनके पास सूत की मजबूती की परीक्षा करने का कोई साधन न था परन्तु सामान्य मजबूती की जांच करने के लिए उन्होंने ४½ अंक के मिल के सूत की लच्छियां मंगाई और उसमें से १६ तार की चार फीट लम्बी एक लच्छी बना कर वह कितना वजन झेल सकती है उसकी परीक्षा की । वह लच्छी २४ पौंड वजन झेल सकी थी परन्तु हाथकते सूत की उसी अंक की लच्छियों पर केवल १० पौंड वजन ही झेला जा सकता था । इसमें केवल कताई का ही दोष न था परन्तु रुई का खराब होना और धुनकों के द्वारा उसकी धुनाई अच्छी न होना ही उसके आरंभिक दोष थे । उन्होंने अपनी धुनकने की तांत अपने साथ रखी थी और उनकी अपनी पूनियां भी उनके साथ थीं । उन्होंने कातनेवालों को अपनी पूनियां दीं और उससे जो सूत काता गया उसके परिणामों की उनके अपने सूत के साथ तुलना करने को उनसे कहा । वे आसानी से यह दिखा सके कि उस धुनके को जो ऐसा खराब धुनकता है धुनाई का एक रुपया देना फिजूल खर्च है । उन्हें कातनेवालों को यह समझाने में सफलता मिली कि वे अपनी एक तांत भी रखें और पूनियां भी स्वयं बना लें । गत सप्ताह ‘ यंग इंडिया ’ में कुछ उत्तम कातनेवालों के सूत की परीक्षा के परिणाम प्रकाशित किये गये थे उसके साथ साथ यदि इन बातों का भी विचार किया जायगा तो यह बहुत ही आवश्यक मालूम होगा कि भारत के खादी के केन्द्रों में प्रत्येक में सूत की परीक्षा करने का एक यंत्र हो और वे समय समय पर इस बात का निश्चय करते रहें कि अमुक दर्जे से हलका सूत तो कहीं नहीं मिल रहा है । इस प्रकार से अमुक दर्जे की खादी बढ़ीतन दे सकेंगे । परन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता तो [illegible]

लक्ष्मीदास ने बड़ा जोर दिया है और जिनका गांधीजी ने समर्थन किया है, अवश्य हों ।

(१) प्रत्येक कार्यकर्ता को अपने कातने के लिए अपनी रुई आप साफ कर लेना चाहिए, उसे धुनक लेना चाहिए और पूनियां भी आप बना लेनी चाहिए ।

(२) बड़ा मजबूत सूत कातना चाहिए ।

(३) हरएक कातनेवालों को रुई साफ करना, धुनकना और अपनी पूनियां आप बना लेना सीखाने का उनमें सामर्थ्य होना चाहिए ।

(४) उन्हें खादी की फेरी करनी चाहिए ।

श्री लक्ष्मीदास ने दूसरी जो महत्व की बात पर प्रकाश डाला है वह यह है कि काठियावाड़ में जिन जिन जगहों में दुष्काल पड़ा है वहां खादी का काम सचा आशीर्वादरूप बन गया है । खादी की जात इतनी अच्छी न होने पर भी उसने वहां घर कर लिया है और उसका एक मात्र सादा कारण यह है जिन जगहों में दूसरा कोई काम नहीं मिल सकता है उन जगहों में वह ईश्वर की देन ही समझी जाती है । भूखों मरते दुष्काल पीड़ित लोगों के प्रति जिन्हें कुछ भी सहानुभूति है उन्हें तो यद्यपि खादी मिल के कपड़ों के साथ तुलना में लाभप्रद नहीं मालूम होती है फिर भी उसी को ही खरीदना चाहिए । वे उन गांवों में भी गये जिनके कि कारण ये केन्द्र चलते हैं । बहुत से कुटुम्बों में उन्होंने मित्र भाव से बड़ी जांच की । उससे यह मालूम हुआ कि कुछ गांवों में औरतें दिन के तीन पैसे से अधिक नहीं कमा सकती हैं और कुछ गांवों में वे एक सप्ताह में बारह आने पैदा करती है और बड़े से बड़ा किसान भी ऐसी कठिन दशा में पड़ा हुआ कि वे अपने घर की औरतों को दिन मे अठारह घण्टे तक चरखा चलाने देता है और घर के दूसरे काम पुरुष वर्ग कर देते हैं । छोटे छोटे लड़के अपनी माताओं के काते हुए सूत की पुटकियां ले कर मीलों दूर इन केन्द्रो में उसे पहुंचा देते हैं और उनकी मातायें घर बैठे कातती रहती है और दूसरे दिन के लिए पूनियां ले कर आते हुए अपने बच्चों की राह देखती हैं । जो लोग इन केन्द्रों में गये हैं या जिन्होंने इन कातनेवालों को देखा है वे प्रामाणिकता के साथ जानबूझ कर तो जिससे भूखों की भूख मिटती है ऐसे कपड़े के सिवा दूसरा कपड़ा पहन ही नहीं सकते हैं । श्री लक्ष्मीदास का खींचा हुआ यह चित्र बड़ा ही असरकारी है और यदि दुष्काल निवारण के साधन के तौर पर खादी की उपयोगिता का यदि कोई और प्रमाण चाहिए तो ऐसे प्रमाण मांगनेवाले को अब यही कहा जा सकता है कि "तुम खुद जाओ और देख लो ।"

यह उचित ही है कि ऐसे मौके पर श्री अब्बास तैयबजी और श्री रामदास गांधी काठियावाड़ में खादी की फेरी करते हुए फिर रहे हैं । जहां वे जाते हैं उनका अच्छा स्वागत किया जाता है । और वृद्ध अब्बास साहेब—यदि कोई उन्हें वृद्ध कहता है तो वे उसे अपमान समझते हैं क्योंकि उनका उत्साह और सामर्थ्य तो २० साल के युवक के लिए भी ईर्ष्या का कारण हो सकता है— अब यह समझते हैं कि उन्हें अपना काम मिल गया है, वे अपने तरीके पर काठियावाड़ के दुष्काल पीड़ित गांवों में आज क्या हो रहा उसका बड़ा असरकारी चित्र खींचते हैं ।

"मेरी सफेद दाढी पर आधार रखने में आपने कोई भूल नहीं की है क्योंकि जब मेरे साथी उसके प्रति इशारा करते थे तब खरीदार कपड़े का पोत भी नहीं देखते थे और उसे खरीद [illegible] दिखाते हैं कि लोगों से यह कहते थे कि यह खादी उत्तम खादी नहीं है और मिल की खादी के साथ तुलना में महंगी भी है परन्तु वह दुष्काल पीड़ित लोगों की बनाई हुई है और उनके दरिद्र पड़ौसी उन्हें जो दे सकते हों उसे खरीदना ही उनका कर्तव्य है सस्ती और अच्छी चीज की तलाश में उन्हें उनको भुला नहीं देना चाहिए ।

(यं० इं०) महादेव हरिभाई देसाई

टिप्पणियां

दूध का जला छाछ फूंक फूंक कर पीता है

अधिकारी वर्ग के तरफ से जनता को इतने कटु अनुभव हुए हैं कि यदि वह किसी मनुष्य को जो अबतक स्वतंत्र रहा हो उनके पास जाते हुए देखती है तो डर जाती है अथवा उसे सन्देह होने लगता है । खेती के सम्बन्ध में जो कमीशन नियुक्त किया गया है उसके सम्बन्ध में कुछ बातचीत करने के लिए बम्बई के गवर्नर मुझे बुला भेजनेवाले है, यह समाचार जब से समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ है तब से उसके सम्बन्ध में चितावनी के और दूसरे बहुत से पत्र मुझे मिलने लगे हैं । एक भाई लिखते हैः "आप गवर्नर के पास जा कर क्या करेंगे ? चेतते रहिएगा । गवर्नर आपको भ्रम में डालेंगे, फंसावेंगे और आखिर दगा देंगे ।" परन्तु यदि हमलोग स्वराज लेने की आशा रखते हों तो इस प्रकार डरने से या वहम लाने से हमारा काम कुछ भी न सुधरेगा हमें अधिकारीवर्ग की बख्शिश नहीं ग्रहण करनी चाहिए, उनकी मिहरबानी से नहीं दबना चाहिए और उनकी नोकरी नहीं करनी चाहिए; यह बातें तो सब तरह से समझ में आ सकती हैं और यह असहयोग है । परन्तु उनकी मुलाकात करने से ही हम ड[illegible] तो यह उचित न होगा । यही नहीं, ऐसा प्रसंग उपस्थित होने प[illegible] उनकी मुलाकात न करना अनुचित ही गिना जावेगा । जो मनुष्य अपना कर्तव्य समझता है वह किससे डरेगा ? अथवा जिसे किसी [illegible] प्रकार का लालच नहीं है अर्थात जिसकी असहयोग में अटल श्र[illegible] है वह क्यों और किससे डरेगा ? और जो मनुष्य शान्ति के म[illegible] से अपना काम करना चाहता है उसे तो सीधे और उचित प्र[illegible] से मुलाकात करने के एक भी प्रसंग को जाने नहीं देना चाहि[illegible] मेरा असहयोग मनुष्यों के साथ नहीं होता है परन्तु उनके कार्यों [illegible] साथ ही हो सकता है । शान्ति का मार्ग अर्थात प्रेम-मार्ग । [illegible] मुझे प्रेम मार्ग से जाना है तो मैं जब कभी मुझे मौका मिले अ[illegible] विरोधियों से अवश्य ही मुलाकात करूंगा । क्योंकि उनके क[illegible] में परिवर्तन कराना ही मेरा धर्म है और वह भी मुझे बलात[illegible] से नहीं परन्तु उन्हें समझा कर उनसे प्रार्थना करके और स्वयं [illegible] उठा कर अर्थात सत्याग्रह करके ही करना चाहिए । इसलिए [illegible] मुझे बुला भेजेंगे तो मैं उनसे मिलना ही अपना धर्म समझूं[illegible] और क्योंकि मैं अपने सिद्धान्तों को समझता हूं, मुझे मेरे क[illegible] का ज्ञान है इसलिए किसी भी प्रकार के प्रलोभन की जा[illegible] फंस जाने का मुझे कोई डर नहीं है । जब मैंने लार्ड रीडिंग [illegible] मुलाकात की थी उस समय भी कुछ मित्रों ने आज के जैसा ही दिखाया था । परन्तु मेरी मान्यता तो यह है कि उस समय लार्ड रीडिंग से मुलाकात की वही उचित था और उससे जगत [illegible] कोई हानि नहीं हुई है । स्वयं मुझ को तो उससे लाभ ही था क्योंकि उससे मैं उन्हें अच्छी तरह पहचान सका था आज मैं यह कह सकता हूं कि सुलेह करने का एक भी मौक[illegible] मुझे मिला उसे मैंने अपने अभिमान या अपनी दुर्बलता के [illegible] जाने नहीं दिया था । इस समय भी यदि मैं गवर्नर से [illegible] कात करूंगा तो मुझे उससे लाभ ही होगा । मैं अपने विच[illegible]

उनके सामने पेश कर सकूंगा, मेरी विचारश्रेणि में यदि कोई त्रुटि हुई तो उसे समझ कर मैं उसे सुधार भी सकूंगा और उनके कृषि सम्बन्धी विचारों को भी जान सकूंगा । मैं स्वयं असहयोगी हूं । मुझे कमीशनों में विश्वास नहीं है । वे यह जानते है कि मैं कमीशनों में अपनी तरफ से कुछ भी मदद नहीं दे सकता हूं, और यह सभी लोग जानते है इसलिए यदि मुझे गवर्नर साहब की मुलाकात करना प्राप्त हो तो उससे किसी को डरने का कुछ भी कारण नहीं है ।

गोसेवकों को

परन्तु जिस प्रकार गवर्नर के साथ मेरी मुलाकात से डरनेवाले लोग हैं उसी प्रकार उससे कुछ लाभ उठाने की लालच रखनेवाले लोग भी हैं । मुझे एक पत्र और एक तार मिला है । उसमें लेखक यह चाहते हैं कि ढोरों को जो परदेश भेजा जाता है और उसकी जो कत्ल होती है उससे कृषि को बड़ी हानि होती है; इस हानि के सम्बन्ध में मैं गवर्नर के साथ बातचीत करूं । इन गोसेवकों को मैं बड़ी नम्रता के साथ यह कहना चाहता हूं कि ऐसी कोई बात गवर्नर के साथ मुझे करने का प्रसंग प्राप्त हो तो भी वे जैसा चाहते हैं वैसी कोई बात मैं न करूंगा । गोसेवकों में मैंने एक बड़ा भारी दोष देखा है और वह यह कि वे इस प्रश्न का परिश्रम कर के शास्त्रीय रीति से कभी अध्ययन ही नहीं करते हैं । भारत के ढोरों का कैसे नाश हो रहा है इसका आजकल श्री वालजी देसाई बड़ी बारीकी के साथ अध्ययन कर रहे हैं । यंग इन्डिया और नवजीवन में उनके लेख नियमित रूप से प्रकाशित हो रहे हैं । उन्हें पढने से भी ढोरों की दयाजनक स्थिति के कुछ कारण मालूम हो सकेंगे । यद्यपि मैं यह मानता हूं कि इस विषय में सरकार बहुत कुछ कार्य कर सकती है फिर भी जनता को अभी बहुत कुछ करना बाकी है । जबतक जनता ही इस विषय के प्रति जागृत न हो, उन्हें उसकी शिक्षा न दी जाय, तबतक सरकार चाहे कैसे भी कानून क्यों न बनावें ढोरों की रक्षा न हो सकेगी । इसमें अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र का बहुत बड़ा प्रश्न समाया हुआ है । ढोरों के विषय में अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रों में क्या कहा गया है इसका मानों हमें विचार करने तक की फुरसत नहीं है, ऐसी हमारी दयाजनक स्थिति है । हमलोग धर्मांधता के कारण धर्म-दृष्टि को खो बैठे हैं और आलस्य के कारण अर्थशास्त्र का अध्ययन करने में हमें अरुचि होती है । गोमाता के नाममात्र का उच्चारण करने से गोमाता की या भारत-माता की कोई सेवा न होगी । उसका रहस्य समझ कर उचित उपाय करने से ही गोमाता और उसके वंश की सेवा और रक्षा हो सकेगी और उसके साथ साथ हमारी अपनी सेवा भी हो सकेगी । मुझे पत्र लिखनेवालों को मैं यह सूचित करना चाहता हूं कि वे इस पत्र में प्रकाशित होनेवाले इसके विषय के लेखों पर विचार करें, उसमें विचार-दोष या कोई दूसरा दोष हो तो वे बतावें और उसमें कोई दोष न हो तो उसके अनुकूल अपना व्यवहार रक्खें ।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

मद्रास सरकार और शराबखोरी

श्री राजगोपालाचार्य ने एक सरकारी हुक्म पर प्रकाश डाला है । वह हुक्म बड़ा ही सादा है फिर भी उसका बड़ा विशाल अर्थ हो सकता है । उस हुक्म की नकल समाचार पत्रों को भेजते समय उस पर श्री राजगोपालाचार्य ने निम्न लिखित टिप्पणी की है ।

" मोन्टफोर्ड सुधार मिलने के बाद हमारे सदा रहनेवाले खर्च में जो अभी वृद्धि हुई है वह नये स्वास्थ्य रक्षक अधिकारी और उनके कर्मचारियों के कारण भी है । हैजा मलेरिया इत्यादि रोगों के सम्बन्ध में लोगों को आवश्यक शिक्षा देने की उनसे आशा रखी जाती है । "

मालूम होता है कि इन कर्मचारियों में से कुछ लोगों ने सरकार से यह पूछा था कि वे शराबखोरी के विरुद्ध भी प्रचार-कार्य करें या नहीं । उसका थोड़े से शब्दों में ही उन्हें जो उत्तर मिला है वह यह है:

" सरकार का ख्याल है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य रक्षक कर्मचारियों को शराबखोरी के विरुद्ध कोई प्रचारकार्य नहीं करना चाहिए । "

यह बात ध्यान देने योग्य है कि शराबखोरी के विरुद्ध प्रचारकार्य को रोकने के लिए कोई कारण नहीं दिया गया है । परन्तु यदि कोई लोकप्रिय सरकार होती तो उससे यही आशा रक्खी जा सकती थी कि वह इन स्वास्थ्य रक्षक अधिकारियों को शराब के शरीर पर होनेवाले बुरे परिणामों के सम्बन्ध में लोगों को पूरे तौर पर समझाने के लिए स्पष्ट सूचनायें देती । वह उन्हें लोगों को यह समझाने के लिए कहती कि मनुष्य के शरीर पर शराबखोरी का कैसा भयंकर परिणाम होता है और जहां शराब ने घर किया है वहां उसने कैसी भयंकर हानि पहुंचायी है उसके चित्र 'मेजिक लेन्टर्न' के द्वारा बताने के लिए भी वह उन्हें बाध्य करती । परन्तु वर्तमान सरकार से ऐसी कोई आशा रखना पागलपन ही है । इस प्रकार तो शराब के दूकानदार से शराब के लिए आनेवाले ग्राहकों को उस मृत्यु के पंजे में न फसने की चितावनी देने की भी आशा रक्खी जा सकती है । भारत में जितनी भी शराब की दुकानें है उनकी क्या सरकार मालिक नहीं है ? २५ करोड़ रुपया टैक्स जो उससे वसूल होता है उसी से तो हम हमारे बच्चों को विद्यापीठ की शिक्षा प्राप्त कराते हैं । इससे सरकार हमारे ऊपर ब्रिटेन की छत्रछाया लादने में समर्थ होती है । जब तक लोग अपने कर्तव्य को न समझेंगे और सरकार की उसकी शराबखोरी के पक्ष की नीति का विरोध करने की शक्ति का विकास न करेंगे तब तक भारत से शराबखोरी का उठ जाना संभव नहीं है ।

आंध्र की शाला में चरखा

पश्चिम गोदावरी जिले के भूमावरम ताल्लुका बोर्ड के द्वारा तैयार किये गये रिपोर्ट से यह अवतरण लिया गया है:

" बोर्ड के शिक्षकों में ता. १९-९-२५ को कताई की शर्त हुई थी । राजकुन्दुरे के गांव में यह शर्त करायी गई थी । ३० शिक्षक उसमें शामिल हुए थे और चार इनाम दिये गये थे । बोर्ड के सभासद और उससे सहानुभूति रखनेवालों ने ये इनाम दिये थे । कातनेवाले अधिक से अधिक २७ अंक के सूत पर पहुंच सके थे । ता. ७-३-२६ को लंककलोदुर नामक गांव में दूसरा शर्त हुई थी । १२ इनाम बांटे गये थे । ताल्लुका बोर्ड के सभासद और उससे सहानुभूति रखनेवालों ने उसका खर्च उठाया था । इस शर्त में ७० शिक्षक शामिल हुए थे । इसमें कातनेवाले अधिक से अधिक ८० अंक का सूत कात सके थे । बोर्ड की शालाओं में विद्यार्थियों को और शिक्षकों से खादी पहनने के लिए दो मरतबा सिफारिश की गई थी । आज बोर्ड के तमाम सभासद खादी पहनते हैं । प्रतिमास ३० पौंड सूत तैयार होता है । खादी की प्रगति के लिए बोर्ड एक निरीक्षक को नियुक्त करने के लिए तैयार है । बोर्ड की ४० शालाओं में आज २०० चरखे चल रहे हैं ।

तिरुवंत म्युनिसिपल काउन्सील की रिपोर्ट में उसकी शालाओं में की गई कताई के नीचे लिखे अंक दिये गये हैं:

"म्युनिसिपल शालाओं में तीन साल पहले कताई दाखिल की गई थी परन्तु १९२४ में ही वह काम नियमित हो सका था। १९२४ के अंत में लड़कों ने इतना सूत काता था कि उससे ५४ वर्ग गज कपड़ा तैयार हो सका था। कताई का औसत वेग घण्टे के १०० गज से अधिक नहीं है और ४ से ३० अंक तक के जुदे जुदे अंक के सूत काते जाते हैं।"

शालाओं में कताई की व्यवस्था करनेवालों का और शिक्षकों का मैं इस बात पर ध्यान खींचना चाहता हूं कि चरखे के बदले तकली दाखिल करने से हरतरह से लाभ ही होता है। शालाओं में सहयोगी कताई के लिए तकली ही अन्त में अधिक अच्छी लाभदायक और विशेष सूत उत्पन्न करनेवाली साबित होगी।

अमेरिका में शराब की बन्दी

अमेरिका में शराब की बन्दी का प्रयोग असफल होने की इतनी अधिक बातें सुनी जाती है कि उसके सफल होने के कुछ प्रमाण मिलने पर अवश्य ही आनंद होगा। एक महाशय ने समाचार पत्र से जो समाचार काट कर भेजा है उससे यह मालूम होता है कि अमेरीका के दक्षिणपूर्व और मध्य-पश्चिम के १२१ हजार कालेज के विद्यार्थियों की प्रतिनिधि सभा 'मिडिल वेस्ट विद्यार्थि परिषद्' के प्रतिनिधियों ने विद्यार्थियों के शराब पीने के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया है।

'लोकोमोटिव इन्जीनियर्स' मासिक के फरवरी के अंक में निम्न लिखित बातें प्रकाशित हुई हैं।

"रेलरोड भ्रातृ-मण्डल और अमेरिका के मजदूरों के संघ के लाखों शान्त सुचेन और मिहनती मजदूर शराब के विरोधी हैं क्योंकि वे यह जानते हैं कि उससे मनुष्य कभी अधिक अच्छे नागरिक, अच्छे कारीगर और भले पति और पिता नहीं बन सकते है।

यदि मजदूर लोग शराबखोरी के त्याग से बची हुई अपनी बचत की रकम को जमा न करते होते तो हमें यह विश्वास नहीं है कि मजदूरों की सहयोगी बेंक का इतना अधिक विकास होना कभी संभव हो सकता था। हमारा यह भी विश्वास है कि अमेरिका की मजदूरों की हलचल की प्रगति का आधार शान्त और निर्मल मस्तिष्क के नेताओं पर ही है, उन पर नहीं जिनका कि मस्तिष्क शराब के कारण भ्रमित सा रहता है। यह बात ध्यान देने लायक है कि ब्रिटिश मजदूर दल के नेता, जिन्होंने कि लड़ाई के बाद आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में काफी प्रगति की है शायद सब के सब शराब को छूते तक नहीं हैं।

युनाईटेड स्टेट्स (अमेरिका) में गत पांच वर्षों में इस हानि को दूर करने के उद्योग में जो प्रगति हुई है उससे उसके आर्थिक इतिहास में बड़ा आश्चर्यकारी परिवर्तन हुआ है।"

मैं पाठकों को यह नहीं मनाना चाहता हूं कि अमेरिका में शराबखोरी की बन्दी का प्रयोग सर्वथा सफल हुआ है। इस महान प्रयोग का मैंने बहुत कुछ साहित्य पढ़ा है और मैं यह जानता हूं कि इस चित्र की दूसरी बाजू भी है। परन्तु दोनों तरफ की अतिशयोक्तियों का सब तरह से स्वीकार कर लेने पर भी इस में कोई सन्देह नहीं है कि शराब की बन्दी उन आश्चर्यकारी लोगों का एक आशीर्वादरूप हो गई है। निश्चयपूर्वक उसके परिणामों को आज ध्यान करना बहुत ही जल्दी होगी। भारत में तो यह समस्या बहुत ही सादी और सीधी है। सिर्फ शराब की दुकानें और शराब बनाने के कारखाने बन्द करने मात्र का ही विलंब है।

सूत इकट्ठा करनेवालों का चिनावनी

अ० भारतीय चरखा संघ को चन्दे में जो सूत मिलता है उसमें से बहुतेरा सूत तो उस उस जगह के स्वेच्छा से सूत इकट्ठा करनेवाले स्वयंसेवकों के द्वारा ही इकट्ठा किया जाता है। उसमें बहुत सा समय, शक्ति और खर्च का बचाव होता है। परन्तु सूत इकट्ठा करनेवाले इन स्वयंसेवकों भी स्वयं अच्छे कातनेवाले होना चाहिए। उन्हें अच्छा और बुरा सूत पहचानना आना चाहिए और जुदे जुदे अंकों के सूतों को भी उन्हें पहचानना चाहिए। यदि ये सूत इकट्ठा करनेवाले स्वयंसेवक सूत की परीक्षा करना जानते हों और सभासदों से चन्दा वसूल करते समय पहले सूत की परीक्षा करने की तकलीफ उठाते हों तो सूत की कीमत बहुत ही जल्दी बढ़ जायगी। उन्हें ऐसे सूत का ही स्वीकार करना चाहिए कि जो एकसा कता हुआ हो और चार फुट लम्बी लच्छियों में बंधा हुआ हो। ऐसी छोटी छोटी बातों पर जितना अधिक ध्यान दिया जायगा, खादी को सस्ती और मजबूत बनाना भी उतना ही अधिक संभव हो सकेगा। कातनेवालों को यह याद रखना चाहिए कि जितना वे अच्छा कातेंगे, संघ का उनका चन्दा भी उतना ही अधिक होगा। सूत के चन्दे की यही खूबी है। यदि चन्दा वसूल करनेवाले और कातनेवाले सभासद बड़े ध्यानपूर्वक अपना अपना कार्य करेंगे तो वे उनके चन्दे का मूल्य दूना बढ़ा सकेंगे और उन्हें न कोई अधिक काम करना पड़ेगा और न कोई अधिक खर्च ही होगा। यदि सूत बुरी तरह से काता जावेगा और उसकी लच्छियां भी बुरी तरह से बनायी जावेगी तो चरखा-संघ के ऊपर वह व्यर्थ का बोझ हो जायगा और वह राष्ट्रीय शक्ति और धन का अपव्यय ही समझा जावेगा।

खादी की व्यवस्थित बिक्री

खादी के प्रचारकार्य से सब दिशाओं में कार्यकर्ताओं की कार्य करने की शक्तियों का जिस प्रकार विकास हो रहा है वह बड़ा ही आश्चर्यकारी है। केवल खादी उत्पन्न करने से ही काम नहीं चलता है। खादी की जात भी धीरे धीरे सुधरनी चाहिए। उत्पत्ति के खर्च को नियम में रखना चाहिए और उत्पत्ति के साथ साथ उसकी बिक्री भी होती रहनी चाहिए। खादी प्रतिष्ठान उसका मार्ग दिखा रहा है। मैंने पहले ही इस बात को लिखा था कि बंगाल में उत्पन्न की गई खादी को वहीं बेच देने के लिए वह कितना प्रयत्न कर रहा है। जनवरी से १७ मार्च तक प्रतिष्ठान के कार्यकर्ताओं ने १४ जिलों के ४१ गांवों में खादी की फेरी कर के कोई २५०००) की खादी बेची थी। कार्यकर्ताओं ने अपनी समस्त बंगाल की यात्रा का एक नकशा तैयार किया है। वे आशा करते हैं कि कुछ ही महीनों में वह यात्रा पूरी करेंगे। इससे वहां की उत्पन्न अधिक न होगी परन्तु वह कम ही पड़ेगी और वे यह कह सकेंगे कि यदि अधिक कातन लगाई जाय तो अधिक खादी पैदा की जा सकेगी और बेची भी जा सकेगी। आदर्श हालत वही होगी जब कि खादी वहीं की वहीं बिक जायगी, यही नहीं बल्कि प्रदेश के मदद के लिए रुपये भी इकट्ठे किये जा सकेंगे। यह आशा रखना ही चाहिए क्योंकि उसकी बिक्री से साधारण श्रेणी के बहुत से लोगों का खादी के साथ सम्बन्ध जुड़ेगा और जब वे खादी में दिलचस्पी लेने लगेंगे तो बिना कठिनाई के ही कामकाज के लिए आवश्यक धन भी मिल रहेगा।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी

दक्षिण आफ्रिका

६ः मास का ,, ३)
एक प्रति का ,, =)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३७

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, वैशाख बदी २, संवत् १९८५ २९, गुरुवार, अप्रेल, १९२६ ई० { मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बंगाल दुष्काल निवारण समिति

[एक महाशय ने मुझे 'वेल्फेर' से उस लेख की कतरन ले कर भेजी है कि जिसमें बंगाल दुष्काल निवारण समिति के कार्य पर टीका की गई है। उस लेख में समिति के रिपोर्ट की समालोचना की गई है। मुझे पत्र लिखनेवाले महाशय लिखते हैं:

"चूंकि दुष्काल के समय में खद्दर के कार्य की उपयोगिता के सम्बन्ध में उसमें गंभीर शंका उठाई गई है मैं आप से डा. पी. सी. राय अथवा खादी प्रतिष्ठान को अंक और छोटी मोटी सब बातें प्रकाशित कर के अपना खुलासा देने की विनति करने की प्रार्थना करता हूं। मुझे यहां यह भी कह देना चाहिए कि मैं हमेशा खादी ही पहनता हूं। मुझे अफसोस है कि मैं खुद नहीं कातता हूं परन्तु मेरे कुटुम्ब की कुछ औरतें अवश्य कातती हैं। मैं यह इसलिए लिख रहा हूं कि मैं आपको यह यकीन दिला सकूं कि खादी के विरुद्ध मुझे कोई पूर्वाग्रह नहीं है।"

परन्तु इस खुलासे की कोई आवश्यकता नहीं थी। श्री रामानन्द चटरजी के मासिक में जो बात प्रकाशित होगी वह स्वभावतः वजनदार और ध्यान देने योग्य होगी। इसलिए मैंने फौरन वह कतरन श्री सतीशचन्द्र दास गुप्ता को भेज दी और उन्होंने भी फौरन ही अपने और डा. पी. सी. राय के दस्तखतों से नीचे लिखा खुलासा भेज दिया। 'वेल्फेर' के लेख को प्रकाशित करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती है। क्योंकि उसमें जो आपत्तियां उठायी गई हैं उसका सार डा. पी. सी. राय के जवाब में आ जाता है। मो० क० गांधी]

'वेल्फेर' के अप्रेल के अंक में बंगाल दुष्कालनिवारण समिति के मुतालिक कुछ बातें कही गई हैं। उसका खुलासा करना आवश्यक है। ग्रामवासियों की कुल आमदनी, उनको उसे बांटने में किया गया खर्च अथवा इस कार्य के करने में जो कुल खर्च हुआ उसका ही मुख्यतः उसमें जिक्र किया गया है।

कुल आमदनी ३८,०००) है १७०००) नहीं। यह आखिरी अदद उस स्थान पर दिया गया है जहां एक खास दुष्काल पीडित स्थान में समिति के किये हुए कार्य का वर्णन किया गया है। इस आमदनी को बांटने में कुल २३,०००) खर्च हुए हैं और यह बात रिपोर्ट के ४ थे सफे पर स्पष्टतया दिखा दी गई है। लेखक ने यह दिखाने के लिए कि खादी के कार्य में ५५,३२३) और इससे भी अधिक रुपये खर्च हुए हैं, अंकों को जुदे जुदे प्रकार से दिखाया है। लेखक कहते हैं कि "बंगाल दुष्कालनिवारण समिति ने कुछ गांव के लोगों को कुल २८,०००) की कमाई कराने के लिए ६२,७९०) खर्च किये हैं। १९२४ में ६२,५९५) जो खर्च हुए उसमें ऐसे खर्च भी शामिल थे, जैसे मुफ्त सहायता पहुंचाने के ८०२१) डाक्टरी सहायकता के ६०२८) झोंपडों की मरम्मत और दूसरे सामान के लिए अनुक्रम से ३४९०) और ६७२६); (रिपोर्ट में जैसा कि बयान किया गया है चरखा का कार्य आरंभ करने के पहले यह खर्च किया गया था और वह अनुत्पादक खर्च था। (चरखे का खर्च ३६०३) (जो उसी साल में लिखा गया है जिसमें कि वह खर्च हुआ है फिर भी समिति की दृष्टि में आज उसका पूरा पूरा मूल्य है) और १२,३९२) खादी और सहायता का काम करने के लिए सामान्य व्यवस्था में एक खास परिमाण से खर्च किया गया था। इस खर्च का इस तरह विभाग किया गया था कि ६० प्रतिशत खादी में ४० प्रतिशत सामान्य और डाक्टरी सहायता में लगाया गया था। जब यह सब खर्च जो ४०,३६०) के करीब होता है, कुल खर्च के अंको में से घटा दिया जाय तो २२,३३५) बाकी बचे हुए खादी में लगाये गये कहे जा सकते हैं और रिपोर्ट में इसी अदद को मोटे हिसाब से २३०००) लिखी गई है और उसीका ऊपर जिक्र किया गया है।

इस सम्बन्ध में लेखक ने खादी–प्रतिष्ठान का भी नाम लिया है। प्रतिष्ठान तो एक बिक्री की आढत मात्र है इसलिए वह खर्च और आमदनी दोनों ही प्रतिष्ठान के नहीं हो सकते हैं और इसलिए इस सम्बन्ध में जो बातें लिखी गई हैं बिलकुल गलत है। प्रतिष्ठान ने ८०,७९९) कमाने के लिए १४३,३६४) खर्च नहीं किये है। रिपोर्ट के ४ थे पृष्ठ पर बिक्री की आढत के तौर पर प्रतिष्ठान का सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है।

रिपोर्ट में सब बातें स्पष्ट कही गई हैं। यह भी प्रश्न किया गया है कि २३०००) का खर्च उचित था या नहीं। यह खर्च

सर्वथा उचित था। समिति एक समय उसके हाथ में जितने थे उतने सब रुपये योंही बांट देने में या झोंपडे बांध देने में खर्च कर सकती थी। परन्तु यह न कर के उसने कुछ रकम कोई उत्पादक कार्य करने के लिए रख छोडी। दान देने के बदले उसने लोगों को काम देने का निर्णय किया। प्रथम तो समिति ने धान कूटने का काम दिया था। समिति को इस काम में ४३०००) खर्च हुआ था। यह १९२३ की बात है। इसके बाद समिति ने कताई और बुनाई की मजदूरी के रूप में उन्हें काम दिया था। समिति ने यह काम सफलतापूर्वक किया। चरखा की सहायता का काम केवल बडा सफल ही नहीं हुआ है परन्तु उसकी हलचल से बंगाल में नये युग का आरम्भ हुआ है। दुष्काल निवारण के काम में जो अनुभव मिला है उससे बंगाल के हाथ कताई के महान उद्योग का पुनरुद्धार हो रहा है। अब बंगाल में माहवार ८०,०००) की खादी उत्पन्न होती है। इसका दो तिहाई गांवों में जाता है। बंगाल के गांवों को जहां कुछ भी नहीं मिलता था वहां अब माहवार २५,०००) मिल रहा है। समिति ने चरखे को सहायता पहुंचाने का साधन बना कर बडा दूरदर्शिता का काम किया है। जिन स्थानों में चरखे का काम हो रहा है वहां के रहनेवाले लोग फसल बिगड जाने पर उसके परिणामों का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। सदा चलनेवाले चरखे से माहवार १) से कुछ कम आमदनी होती है। फिर भी यह रकम इतने बडे विभाग में बंटी जाय तो उससे गरीबों को बडा लाभ होता है। चरखा खूब विशाल परन्तु थोडी थोडी बंटी हुई आमदनी प्राप्त करने का साधन है।

समिति के चरखा कार्य से कुछ लोगों को कार्य करने की शिक्षा भी प्राप्त हुई है और वे खादी के कार्यकर्ताओं के भूषण हैं। इस दुष्कालनिवारण के कार्य से हमें एक ऐसा चरखा भी प्राप्त हुआ है कि जिसके कारण अति वेग से कताई करने का कार्य अति आसान बन गया है। उससे कार्य करने का वह तरीका मालूम हुआ है कि जिससे बंगाल का खादी कार्य ठीक ठीक और उचित रूप से एक केन्द्र के अधिकार में किया जा सके। यदि इन सब बातों का विचार किया जायगा तो खर्च कुछ अधिक नहीं मालूम होगा।

बंगाल दुष्कालनिवारण समिति को बंगाल में ऐसे कार्य को आरंभ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि जिससे बहुत कुछ बातें संभव हो सकती हैं। बंगाल के बहुत से जिलों में अब खादी का कार्य स्वावलंबी हो गया है। दुष्कालनिवारण का कार्य जहां हो रहा है उस विभाग में अब तक वह स्वावलंबी नहीं हो सका है। हमें ऐसी लापरवाही के साथ नष्ट किये गये उद्योग का पुनरुद्धार करने में कुछ कर भी देना होता है। समिति ने उस कर का कुछ भार अपने सिर लिया है।

लेकिन बात तो यह देखनी है कि चरखे को दाखिल करने से गांवों के रहनेवाले दुष्काल का सामना करने के लिए अधिक योग्य हुए हैं या नहीं। अब इस बात का विचार किया जायेगा कि जिस किसी कुटुम्ब में चरखा दाखिल किया गया है उसमें स्त्री-बच्चों ने सब ने चरखा चला कर कुछ आमदनी करना सीख लिया है, तब यह निर्णय करना मुश्किल न होगा कि समिति के कार्य से ऐसे प्राकृतिक दुःखों का सामना करने की लोगों की शक्ति बढ गई है।

पी. सी. राय
सतीशचन्द्र गुप्त

अस्पृश्यता के पंजे में

ट्रावनकोर की अस्पृश्यता और दुरता के संबन्ध में हमने बहुत कुछ सुना है क्यों कि अभी वहां सत्याग्रह किया गया था। कष्ट-सहिष्णुता के दीपक के द्वारा ट्रावनकोर के मैल पर प्रकाश पडा था। परन्तु कोचीन में ट्रावनकोर के बनिस्बत उसका जोर बहुत ही अधिक मालूम होता है। वहां कोचीन की धारासभा में कोचीन की रियासत में अस्पृश्यों के लिए सार्वजनिक रास्तों का उपयोग करने की जो मनाई है, उसे दूर करने के लिए रियासत से विनती करने का प्रस्ताव लाने के लिए बार बार प्रयत्न किये गये परन्तु वैसा प्रस्ताव पेश करने की इजाजत ही न मिली।

ऐसे परिश्रम से न थकनेवाले एक सभासद ने कोचीन की धारासभा में यह प्रश्न पूछा कि सरकार या म्युनिसिपल फंड से रक्षित कितने कुए और तालाब अस्पृश्यों के लिए बन्द रक्खे गये हैं? इसका उत्तर मिला ६१ तालाब और ११३ कुए उनके लिए बन्द रक्खे गये हैं। यदि उन्होंने दूसरा प्रश्न यह जानने के लिए पूछा होता कि ऐसे कितने तालाब और कुए हैं जिनका अस्पृश्य लोग उपयोग कर सकते है तो बडी मजे की बातें मालूम होती।

दूसरा प्रश्न जो पूछा गया वह यह है कि "सार्वजनिक कार्यविभाग के द्वारा बांधे गये और रक्षित कुछ मार्गों का उपयोग करने से अस्पृश्यों को क्या वजह है कि मनाई की गई है?" प्रश्न कर्ता ने अस्पृश्यों के लिए किसी को बुरा न मालूम हो इसलिए अहिन्दू शब्द का प्रयोग किया था। कोचीन सरकार की तरफ से किसी भी प्रकार के लज्जा के भाव के बिना ही ये कारण बताये गये: "ये मन्दिर और महल के नजदीक के मार्ग हैं। भूतकाल के संस्कारों को एकदम नहीं तोडा जा सकता है। चिरकाल से प्रचलित रिवाजों का आदर करना ही होता है।" पाठक 'महल' शब्द के ऊपर ध्यान दें। इससे यह ख्याल किया जा सकता है कि कोई पंचमा खुद आकर अरज करें तो यह संभव नहीं है क्योंकि महल के नजदीक के रास्तों पर ही जब वह नहीं जा सकता है तो महल में तो वह जा ही कैसे सकता है? जिन अधिकारियों ने ऐसा निर्दय उत्तर दिया वे समर्थ, शिक्षित और संस्कारी मनुष्य हैं और जीवन के दूसरे क्षेत्रों में उदार मन के भी हैं परन्तु वे एक क्रूर निर्दय, और अधार्मिक रिवाज को प्राचीनता के नाम पर उचित बताने का प्रयत्न करते हैं।

कानून की किताबों में हमने यह पढा है कि जुर्म और अनीति को प्राचीनता का कोई लाभ नहीं मिल सकता है। प्राचीन होने के कारण वे आदरणीय नहीं हो सकते हैं। परन्तु कोचीन रियासत में तो स्पष्टतः उल्टी ही बात है। अस्पृश्यता का रिवाज, अनीति का है, जंगली और क्रूर है, इससे कौन इन्कार कर सकता है? कोचीन की रियासत का कानून तो इस प्रकार दक्षिण आफ्रिका के कानूनों से भी बहुत बदतर है। दक्षिण आफ्रिका का साधारण नियम गोरी और रंगवाली जातियों की समानता का स्वीकार करने से इन्कार करता है। कोचीन के साधारण नियम का आधार एक खास वर्ग में जन्म होने से मानी गई असमानता पर है। परन्तु कोचीन में जो असमानता है वह दक्षिण आफ्रिका के बनिस्बत कहीं अधिक अमानुषी है क्योंकि दक्षिण आफ्रिका में रंगवाले मनुष्यों के बनिस्बत कोचीन में अस्पृश्यों के मनुष्योचित अधिकार अधिक परिमाण में छीन लिये गये हैं। अस्पृश्यों के प्रति ऐसा लज्जाजनक व्यवहार रखने के कारण मैं केवल अकेले कोचीन पर ही दोष लगाना नहीं चाहता हूं। दुर्भाग्य से भारत के हिन्दुओं के लिए कम या अधिकांश में यह आज भी एक सामान्य बात है। परन्तु

कोचीन में धर्म की मानी हुई आज्ञा के अलावा अस्पृश्यता को राज्य की आज्ञा भी मिली है। इसलिए कोचीन में जनसमाज की इस विषय में राय स्पष्ट होने से भी तब तक कुछ लाभ न होगा जबतक कि वह इतनी दृढ़ न हो जाय कि वह राज्य को इस अंधश्रद्धा दूर करने के लिए मजबूर कर सके।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

खुदा का बन्दा

दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों की महासभा के मंत्री के तरफ से दरबन से दक्षिण आफ्रिका की सरकार का निर्णय प्रकाशित हुआ उसके पहले ही मुझे निम्न लिखित तार मिला था।

"महासभा की बैठक हुई। वह आपको श्री एण्डूयूज को दक्षिण आफ्रिका भेजने के लिए धन्यवाद देती है और आपका उपकार मानती है। उन्होंने दोनों जातियों की परीक्षा कर के उत्साह के साथ बड़ा उदार काम किया और यहां की स्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है। वे चिरायु हों और मनुष्यत्व के पोषक अपने उदार कार्य को सदा करते रहें।"

श्री एण्डूयूज के दक्षिण आफ्रिका के इस उत्साही प्रवास के दरम्यान मुझे जो ऐसे तार प्राप्त हुए थे उन्हें मैंने अबतक जनता के सामने प्रकाशित करने से रोक रक्खा था। परन्तु मैं यह ख्याल करता हूं कि जो परिणाम आया है उसे देखते हुए मैं उपरोक्त तार को प्रकाशित होने से अब नहीं रोक सकता हूं। मैं यह जानता हूं कि इस स्वार्थत्यागी अंग्रेज की सेवा को हम अबतक ठीक ठीक नहीं समझ सके हैं। वे कोई कूटनीतिज्ञ नहीं हैं और इसलिए जो तार वे भेजते हैं उसमें दिन प्रतिदिन के अपने विचारों और भावों को वे जैसे के तैसे प्रकाशित कर देते हैं। इसलिए कभी तो वे बड़े निराश हो जाते हैं और कभी बड़े आशावादी। परन्तु यदि कोई बड़े धैर्य के साथ उनके सब तारों को जो उन्होंने इन कुछ महीनों में भेजे हैं एकत्र करे तो उनमें सब में उसे आशा की वह झलक दिखाई देगी जो कभी भी नहीं भूली जा सकती है, उस समय भी जब शंकाशील हृदयों को आशा का कोई कारण भी न दिखाई देता था। दक्षिण आफ्रिका छोड़ने के समय उन्होंने मुझे जो अन्तिम तार भेजा है उसमें उन्होंने मुझ से आशा न छोड़ने के लिए कहा है क्योंकि वे स्वयं आशावान हैं। यदि उन्हें भारतीय पक्ष के सत्य और न्याययुक्त होने में श्रद्धा है तो उन्हें दक्षिण आफ्रिका के राजनीतिज्ञों में भी श्रद्धा है। श्री एण्डूयूज शुद्ध परोपकारी सज्जन हैं और इसलिए वह हरएक का विश्वास करते हैं। सारा संसार चाहे उन्हें धोखा दे परन्तु फिर भी वे तो यही कहेंगे "जनसमाज तुम में कितने भी दोष क्यों न हो, मैं तो तुम से फिर भी प्रेम करता हूं।" और यह प्रेम उनके मार्ग की सब बाधाओं को दूर करने के लिए उन्हें समर्थ बनाती है और वे लोगों के दिलों में सीधा अपना मार्ग कर लेते हैं। दक्षिण आफ्रिका में जहां दूसरे लोगों को दुत्कार मिलती वहां गोरों को उन्हें सुनना पड़ा। पेडीसन प्रतिनिधि मण्डल के लिए उन्होंने मार्ग तैयार कर दिया था।

पेडीसन प्रतिनिधि मण्डल का जिक्र आने से श्री पेडीसन की प्रशंसा में, प्रतिनिधि मण्डल जब यहां से गया उस समय श्री राम-शीवाकामारी के दिये हुए प्रमाणपत्र के साथ एक और प्रमाणपत्र जो मुझे दक्षिण आफ्रिका से मिला है यहां जोड़ देने का मुझे अवकाश मिला है। दक्षिण आफ्रिका के एक महाशय अपने पत्र में इस प्रकार लिखते हैं। "वह जन्म से अंगरेज हैं और दिखने में भारतीय। सच बात तो यह है कि मैं उनमें और एण्डूयूज में कोई भेद नहीं पाता हूं। यह आश्चर्य की बात है कि उनके जैसी बुद्धि का मनुष्य मद्रास के लेबर कमीश्नर की जगह से अधिक आगे नहीं बढ़ सका है। भारतीयों के प्रति उन्हें बड़ी सहानुभूति है यह उसका कारण हो सकता है या नहीं इसके सम्बन्ध में मैं कुछ अधिक नहीं जानता हूं।" मुझे जितनी खबरें मिली हैं उन सब से यह बात साबित होती है कि प्रतिनिधि मण्डल के सभी सदस्यों ने अपना फर्ज सचाई के साथ और अच्छी तरह अदा किया है परन्तु यह प्रतिनिधि मण्डल भी जितना उसने काम किया है उसका आधा काम भी वह नहीं कर सका होता यदि श्री एण्डूयूज ने आरंभिक कार्य न किया होता और उसके लिए लगातार मिहनत न की होती।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

मार्च के अंक

जुदे जुदे प्रान्त के मार्च महीने के खादी की उत्पत्ति और बिक्री के अंक जो प्राप्त हुए हैं नीचे दिये गये हैं

प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्री
बम्बई		३७६८९)
बरमा		१७१९)
देहली	५२१)	२३५०)
करनाटक	१९२२)	३९२०)
मध्य महाराष्ट्र	१२०)	२८४८)
दक्षिण महाराष्ट्र		२४६८)
पंजाब	१०८९३)	६४७५)
तामिलनाड	५८०९४)	५१५७०)
संयुक्तप्रान्त	३१५९)	११२८)
उत्कल	४३७०)	३४१६)
	७९,०७१)	१,३१,६२०)

करनाटक के अंक अपूर्ण हैं। फरवरी के अंकों की तुलना में दक्षिण महाराष्ट्र, बम्बई और उत्कल के बिक्री के अंकों के सिवा स्थिति में दूसरा कोई उल्लेख योग्य परिवर्तन नहीं हुआ है। दक्षिण महाराष्ट्र, बम्बई और उत्कल के बिक्री के अंकों में फरवरी के अंकों के बनिस्पत कुछ वृद्धि हुई है। दक्षिण महाराष्ट्र में जो वृद्धि दिखाई देती है उसका कारण यह है कि श्री पटवर्धन के द्वारा जो खादी की प्रदर्शिनी की गई थी उसका बिक्री के अंक भी उसमें शामिल हैं।

गत वर्ष के इसी महीने के अंकों के साथ, जहां ऐसे अंक प्राप्त हो सके हैं, तुलना में उत्पत्ति और बिक्री के दोनों अंकों में बहुत कुछ वृद्धि हुई दिखाई देगी। तुलना के लिए उसके अंक नीचे दिये गये हैं:

उत्पत्ति के अंक

प्रान्त	मार्च १९२६	मार्च १९२५
पंजाब	१०८९३)	५८५७)
तामिलनाड	५८०९४)	५२५८२)
उत्कल	४३७०)	१६९)

बिक्री के अंक

प्रान्त	मार्च १९२६	मार्च १९२५
बम्बई	३७६८९)	२९११८)
पंजाब	६४७५)	४९३७)
तामिलनाड	५१५७०)	७०१०९)
उत्कल	३४१६)	१८४०)

तामिलनाड के १९२५ के मार्च के बिक्री के अंक अपवाद रूप है क्योंकि उस समय वहां श्री अब्बास ने खादी की फेरी की थी।

(न० जी०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख बदी २, संवत् १९८२

दक्षिण आफ्रिका

भारत सरकार दक्षिण आफ्रिका में अपनी कूटनीति की विजय पर अपने को हर प्रकार से बधाई दे सकती है। मैंने अन्यत्र यह दिखाया है कि यदि श्री एण्ड्रयूज साहब की असाधारण श्रद्धा और उनका प्रयत्न न होता तो दक्षिण आफ्रिका में कुछ भी नहीं हो सकता था। कुछ भी क्यों न हो यदि भारत सरकार भारत के हकों को पेश करने के अपने कर्तव्य में जरा भी उदासीनता दिखाती तो यूनियन पारलियामेन्ट में (गोरों के लिए) जमीन रक्षा का कानून अवश्य ही पास हो जाता। बिल मुलतवी कर दिया गया और एक विचार समिति में उसका निर्णय करने के लिए दोनों पक्ष राजी हुए हैं यह एक बड़ा लाभ ही हुआ है।

परन्तु इस दूध में भी मक्खी पड़ी हुई है। यूनियन सरकार की यह शर्त कि जो प्रस्ताव हो उसमें "उचित और वैध उपायों से जीवन के पश्चिमी आदर्श की रक्षा करनी होगी" और उसे भारत सरकार का स्वीकार कर लेना किसी न्यायशील निष्पक्ष निर्णय का होना असंभव भी बना दे सकता है। 'जीवन के पश्चिमी आदर्श की रक्षा करने' का क्या अर्थ हो सकता है? और 'उचित और वैध उपायों' का भी क्या अर्थ हो सकता है? 'पश्चिमी आदर्श' की रक्षा करने के माने यह भी हो सकते हैं कि भारतीय गिरमिटिया मजदूरों को जो माहवार ३० शिलिंग मजदूरी पा कर खेती का काम करते हैं यूरोपीयन कारीगरों की तरह ईंट और चूने के बने हुए मकान में जिसमें पांच कमरे हों रहना चाहिए, उन्हें सर से ले कर पैर तक यूरोपीयन पोशाक पहननी चाहिए खाना भी उन्हींका सा खाना चाहिए। और 'उचित और वैध उपायों' का यह भी अर्थ हो सकता है कि जो भारतीय कुली इस 'रक्षा' के असंभव नियम के अनुकूल नहीं रह सकता है उसे वहां से निकाल दिया जाय। अथवा 'उचित और वैध उपायों से पश्चिमी आदर्श की रक्षा' के यह मानी भी हो सकते हैं कि उचित स्वास्थ्यरक्षक और आर्थिक दृष्टि से आवश्यक नियमों को किया जाय कि जो सब को लागू हो सकते हों और जिससे जीवन के उस आदर्श का यकीन हो सके कि जो यूरोपीयन आदर्श के लिए आवश्यक सफाई और स्वास्थ्य के नियम और व्यापार के नियमों के अनुकूल हों। यदि उसका दूसरा ही अर्थ हो सकता है तो भारतियों को उसमें कोई आपत्ति नहीं है और न होनी चाहिए। सामान्य स्वास्थ्यरक्षक और आर्थिक आवश्यकताओं के विरुद्ध कभी कोई आपत्ति नहीं उठायी गई है।

परन्तु अभी जो पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ उससे मैं यह बखूबी जान सकता हूं कि यूनियन सरकार की क्या इच्छा है। वह सरकार सुधार नहीं चाहती है परन्तु भारतीयों को भारत में फिर लौटा देना चाहती है। यदि भारत सरकार इस समिति में इस विषय पर अनुकूल विचार करने के लिए राजी न होती तो वह इस समिति को बनाने के कार्य में कभी भी शामिल न होती। लार्ड रीडिंग ने बड़ी चतुरता के साथ इस कठिनाई को सुलझा दिया। उन्होंने कहा कि स्वेच्छा से भारतीयों के भारत लौट जाने के 'भारतीय रीलीफ कानून' के द्वारा मर्यादित प्रश्न पर विचार करने के सम्बन्ध में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। भारतीयों के भारत लौट जाने की बात पर विचार करना स्वीकार कर लेने के कारण वे अब उसकी निश्चित शर्तें नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने एक नया ही सूत्र बनाया और वह 'जीवन के पश्चिमी आदर्श' के अनुकूल उसका होना। वैसे दिखने में तो यह शर्त कुछ हानिकर नहीं मालूम होती है परन्तु जैसा कि मैं ऊपर बता गया हूं उसमें कितनी ही असंभव बातें समायी जा सकती हैं। इसलिए समिति में दोनों पक्ष की तरफ से कैसे मनुष्य भेजे जावेंगे और भारत सरकार का उसमें क्या बल होगा इसी पर बड़ा आधार रहेगा। अबतक तो उसने जब कभी मतभेद या ऐंचातानी हुई है हमेशा अपना पक्ष छोड़ दिया है और उसे ही गुण मान कर यह दावा किया है कि यूनियन सरकार जितना चाहती थी उतना उसे नहीं दिया गया है। यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कि कोई न्यायाध्यक्ष कहे कि चोर ने जितना माल चुराया था उतना उसके पास उसने नहीं रहने दिया है।

हमें यह कभी नहीं भूल जाना चाहिए कि जब कभी दक्षिण आफ्रिका की सरकार ने किसी उचित कारण के बिना ही दक्षिण आफ्रिका के शान्त नागरिकों की हैसियत से वहां रहनेवाले भारतीयों के उचित हकों को छीनना चाहा भारत सरकार का यह फर्ज था कि वह अपने प्रति लोगों के विश्वास को उचित साबित करने के लिए हरएक युद्ध का ऐसा परिणाम दिखाती कि जिससे हारी बाजी जीत ली जाती। लेकिन बात तो यह है कि १९०७ में यदि भारतीयों ने कानून को अपने ही हाथों में न लिया होता अर्थात उसका भंग न किया होता तो वे सारी बाजी हार जाते और भारत सरकार भी उसमें शामिल होती। क्योंकि १९०७ में भारत और साम्राज्य सरकार ने दोनों ने उस पाशविक 'एशियाटिक कानून' का स्वीकार कर लिया था, उसी कानून का कि जिसका १९०६ में उपनिवेशों के प्रधान लार्ड एलगिन ने अस्वीकार किया था। इसलिए बिल का मुलतवी रखा जाना और समिति का होना वर्तमान युद्ध में तो एक बड़ा लाभ ही है परन्तु यदि भारत सरकार उसको अन्तिम गरमी पा कर मुलायम हो जायगी तो वह लाभ केवल वृथा प्रयत्न ही गिना जावेगा।

यदि इस लाभ को नहीं खोना है तो जनता को हमेशा की तरह अब भी सावधान रहने की बड़ी आवश्यकता है। यह श्वास लेने के लिए अभी जो समय मिला है उसका सम्पूर्ण उपयोग कर लेना चाहिए और इस प्रश्न का पूरा पूरा अध्ययन करना चाहिए और यह बात स्पष्ट दिखा देनी चाहिए कि वहां के भारतीय निवासियों के विरुद्ध सिर्फ यही एक अपराध साबित किया जा सकता है कि उनका जन्म एशिया में हुआ है और उनकी चमड़ी सांवली है। यह कानूनन अपराध है। क्योंकि दक्षिण आफ्रिका की सरकार का विधिविधान स्पष्टतः यह कहता है कि "एक तरफ गोरों में और दूसरी तरफ रंगवाले और एशियानिवासियों में कोई समानता नहीं हो सकती है।" दक्षिण आफ्रिका जन्म से जाति में उतना ही मानता है जितना कि भारत के हमलोग मानते हैं।

अन्त में, पहले जो बात मैंने कही है वही यहां मुझे दोहराना नहीं भूल जाना चाहिए और वह यह कि दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों की मुक्ति अन्त में उन्हीं के हाथों में है। यदि वे अपनी सहायता करेंगे तो भारत सरकार, जनता की राय, यूनियन सरकार और दक्षिण आफ्रिका के गोरे लोग सब

उनकी मदद करेंगे । स्वास्थ्य की दृष्टि से अथवा आर्थिक दृष्टि से उनके खिलाफ शिकायत का जरा सा भी अवकाश हो तो उसे दूर कर देना चाहिए । अनीति की बातों के सिवा उन्हें सब बातें वैसी ही करनी चाहिए जैसे रोम में रोमन लोग करते हैं । उनमें ऐक्य हो और वह बराबर बना रहे । और सब से अधिक महत्व की बात तो यह है कि वे सर्वसाधारण की भलाई के लिए दुःख सहन करने का निश्चय कर लें ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय २१

निर्बल के बल राम

मुझे धर्मशास्त्रों का और दुनिया के धर्मों का कुछ ज्ञान अवश्य हुआ परन्तु ऐसा ज्ञान मनुष्य की रक्षा करने के लिए काफी नहीं होता है । आपत्ति या बाधा उपस्थित होने पर जो बात मनुष्य की रक्षा करती है उसका उस समय उसे न कुछ ख्याल ही होता है और न कुछ ज्ञान । नास्तिक मनुष्य जब इस तरह रक्षा पा जाता है तब वह कहता है कि अकस्मात उसकी रक्षा हो गई । ऐसा प्रसंग आने पर आस्तिक मनुष्य तो यही कहेगा कि ईश्वर ने मेरी रक्षा की । ऐसे समय में, उसका परिणाम आ जाने के बाद वह यह अनुमान करता है कि धर्म का अध्ययन करने से और संयम से ईश्वर हृदय में प्रकट होता है और ऐसा अनुमान करने का उसे अधिकार भी है । परन्तु जब उसकी रक्षा होती है उस समय वह यह नहीं जानता कि उसका संयम उसकी रक्षा करता है या कोई दूसरा ही । जिसे अपने संयमबल का अभिमान होता है उसका संयम मिट्टी में मिल जाता है और यह अनुभव किसे नहीं हुआ है ! ऐसे समय में शास्त्रज्ञान तो केवल थोथा मालूम होता है ।

धर्मज्ञान के मिथ्यात्व का यह अनुभव मुझे विलायत में हुआ । ऐसे भय से पहले मैं जो रक्षा पा चुका था उसका पृथक्करण नहीं किया जा सकता; क्योंकि उस समय मेरी उम्र छोटी गिनी जा सकती थी ।

परन्तु अब तो मेरा वय बीस वर्ष का था और गृहस्थाश्रम का अनुभव भी ठीक ठीक प्राप्त किया था ।

सम्भवतः मेरे विलायत वास के अन्तिम वर्ष में, अर्थात् १८९० की साल में पोर्टस्मथ में निरामिषभोजियों का एक सम्मेलन हुआ था । उसमें जाने के लिए मुझे और मेरे एक भारतीय मित्र को निमन्त्रण दिया गया था । हम दोनों वहां गये । हम दोनों को एक स्त्री के यहां ठहरने की जगह दी गई थी ।

पोर्टस्मथ खलासियों का बन्दर गिना जाता है । वहां नीतिभ्रष्ट औरतों के भी बहुत से घर हैं । वे औरतें वेश्यायें नहीं होतीं और न निर्दोष ही होती हैं । ऐसे ही एक घर में हम लोगों को ठहरने की जगह दी गई थी । मेरा यह आशय नहीं है कि स्वागत मण्डल ने जानबूझ कर ही ऐसे घरों की तलाश की थी । परन्तु पोर्टस्मथ जैसे बन्दरगाह में जहां मुसाफिरों को ठहराया जाता है ऐसे घरों में कौन अच्छे हैं और कौन बुरे यह मालूम करना बड़ा ही मुश्किल काम है ।

रात्रि हुई । हम लोग सभा छोड़ कर घर आये । खाना खा कर ताश खेलने लगे । विलायत में अच्छे घरों में भी मेहमानों के साथ मकान-मालकिन इस प्रकार ताश खेलने बैठती है । ताश खेलते खेलते सब निर्दोष विनोद भी करते जाते हैं । यहां बीभत्स विनोद शुरू हुआ । मेरे मित्र इस कार्य में बड़े कुशल थे, परन्तु यह मैं नहीं जानता था । मुझे भी इस विनोद में मजा आने लगा । मैं भी उसमें शामिल हुआ । विनोद वाणी से अब चेष्टा में होना आरम्भ होनेवाला ही था, ताश अब एक तरफ रक्खी जानेवाली थी कि इतने में मेरे उस भले मित्र के दिल में परमात्मा प्रकट हुए और वे बोले "तुम में यह कलजुग कैसा ? यह तुम्हारा काम नहीं, तुम यहां से भाग जाओ "

मुझे बड़ी शरम मालूम हुई, और मैं सचेत हो गया । उस मित्र का मैंने उपकार माना । माता के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण हुआ । मैं वहां से भागा । मैं कांपता हुआ अपने कमरे में पहुंचा । छाती धड़क रही थी । कातिल के हाथ से बच कर कोई शिकार निकल जाय और जैसी उसकी स्थिति होती है, मेरी स्थिति भी वैसी ही थी ।

मुझे ऐसा कुछ ख्याल है कि परस्त्री को देख कर विकारवश होने का और उसके साथ खेल करने की इच्छा होने का मेरे लिए यह पहला ही प्रसंग था । उस रात को मुझे नींद न आई । अनेक प्रकार के विचारों का मुझ पर आक्रमण होता रहा, जैसे, 'घर छोड़ दूं ? भाग जाऊं ? मैं कहां हूं ? यदि मैं सावधान न रहा तो मेरा क्या हाल होगा ?' आखिर मैंने बहुत चेत कर चलने का निश्चय किया । और यह निश्चय किया कि उस घर को नहीं छोड़ना चाहिए परन्तु पोर्टस्मथ ही छोड़ देना चाहिए । सम्मेलन दो दिन अधिक नहीं रहनेवाला था इसलिए जहांतक मुझे स्मरण है वहांतक मैंने दूसरे ही दिन पोर्टस्मथ छोड़ दिया था । मेरे वे मित्र पोर्टस्मथ में कुछ दिनों के लिए और रहे थे ।

धर्म क्या है ? ईश्वर क्या है ? वह हम लोगों में किस प्रकार काम करता है ? इसके सम्बन्ध में मैं उस समय कुछ भी नहीं जानता था । लौकिक रीति के अनुसार मैं उस समय यही समझा कि ईश्वर ने मेरी रक्षा की । परन्तु मुझे तो सब क्षेत्रों में इसी प्रकार के अनुभव हुए हैं । मैं यह जानता हूं कि 'ईश्वर ने मेरी रक्षा की' इस वाक्य का अर्थ मैं आज बहुत कुछ समझने लगा हूं । परन्तु उसके साथ साथ मैं यह भी जानता हूं कि मैं इस वाक्य का सम्पूर्ण मूल्य भी नहीं आंक सकता हूं । अनुभव से ही यह हो सकता है । परन्तु बहुत से आध्यात्मिक प्रसंगों में, वकीलात के प्रसंगों में, संस्थायें चलाने में, राजकीय प्रसंगों में, मैं यह कह सकता हूं कि ईश्वर ने 'मेरी रक्षा की' है । मैंने यह अनुभव किया है कि जब सब आशायें नष्ट हो जाती हैं, दोनों हाथ ढीले हो जाते हैं, तब कहीं न कहीं से मदद आ पहुंचती है । स्तुति उपासना, प्रार्थना इत्यादि कोई वहम नहीं है, परन्तु हम लोग खाते हैं, पीते हैं, चलते हैं, फिरते हैं; और यह जितना सत्य है उससे भी कहीं अधिक यह सत्य है । और यही सत्य है बाकी सब मिथ्या है यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होती है ।

ऐसी उपासना, ऐसी प्रार्थना यह कोई वाणी का वैभव नहीं । उसका मूल कंठ नहीं परन्तु हृदय है । इसलिए यदि हृदय को निर्मल रखने की अवस्था को पहुंच सकें, वहां रहे हुए सब तारों को सुसंगठित रख सकें, तो उसमें से जो सुर या ध्वनि निकलेगी वह गगनगामी होगी । उसके लिए जिह्वा की आवश्यकता नहीं है । वह तो स्वभाव से ही अद्भुत है । विकाररूपी मल की शुद्धि के लिए हार्दिक उपासना रामबाण औषध है और इस विषय में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है । परन्तु उसके लिए हमें सम्पूर्ण बनना चाहिए ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

प्रगति का अवकाश

चरखासंघ के शिक्षणविभाग के व्यवस्थापक ने मुझे निम्न लिखित नामों की सूची दी है। वे नियमित सूत मेज रहे हैं, उनका सूत २५ अंक के ऊपर का है और उनकी लच्छियां भी अच्छी और साफ होती हैं।

	नाम	स्थान	प्रान्त	मजबूती	अंक
१	श्री. आर. टी. वापमा चेटीयार	कुमकोनम्	तामिलनाड	८०.७	४६
२	,, टी. सी. चेलम	मदुरा	,,	६६.६	,,
३	,, पावलूर नरायन	मूलिया	करनाटक	५८.६	३९
४	,, के. वेंकटाचारी	इरोड	तामिलनाड	५८.३	४२
५	श्रीमती सुशामा		बंगाल	५७.१	९८
६	,, चान्दाबाई सिरकार	मद्रास	तामिलनाड	५५.८	५२
७	श्री. रामराव	इलौर	आंध्र	५४.७	४३
८	,, बी. मलिआह	मसूलीपट्टम	,,	५३.४	८४
९	,, एस. नरायन स्वामी	मदुरा	तामिलनाड	५३.२	५८
१०	,, एस. रामालिंगम्	,,	,,	४६.१	४६
११	,, पी. एम. मीनाक्षीसुन्दरम	,,	,,	४४.६	६४
१२	श्रीमती उषाबाला देवी	खुलना	बंगाल	४३.१	३७
१३	श्री. के. सूर्यनरायन	राजामुन्द्री	आंध्र	४१.८	४१
१४	,, पी. नरायनराव	पोन्नूर	,,	४१.६	५४
१५	,, श्रीशचन्द्र सेन	खुलना	बंगाल	३९.१	४३
१६	,, के. सुब्रह्मण्यम्	कायम्बेटूर	तामिलनाड	३७.५	२८
१७	,, एन. एस. वरदाचारी	तिरुपति	आंध्र	३४.८	८४
१८	,, जोगेश्वर चटरजी	कलकत्ता	बंगाल	३२.८	५१
१९	श्रीमती अपर्णा देवी		,,	३०	११२
२०	श्री. आर. डी. सुब्रह्मण्यम	सलेम	तामिलनाड	२६.७	६१
२१	,, पी. वेंकटरंगाराव	गुण्टूर	आंध्र	२६.६	४०
२२	,, मुरुगन एम. चोका-लिंगम चेटीअर	मेलामिवायपुरी	तामिलनाड	२१.५	९६
२३	,, पुलिन बिहारी पाल	कुलौरा	बंगाल	२२	५३
२४	,, एम. अरुमुगम	कुंभकोनम्	तामिलनाड	२१.८	८३
२५	,, इकण्डा वारियर	त्रिचुर	केरल	२१.३	४७
२६	,, सुब्बाराजू	इलौर	आंध्र	१७.५	१४०
२७	,, छबीलदास जे. पटेल	अहमदाबाद	गुजरात	१७.१	९८

इस सूची में ४६ अंक का सूत कातनेवाले को प्रथमस्थान दिया गया दिखाई देगा। सब से अधिक ऊंचे अंक के सूत का नंबर अन्तिम नाम के पहले आता है। श्रीमती अपर्णा देवी जो एक मरतबा प्रथमस्थान प्राप्त किये हुए थी, उनका ११२ अंक का सूत कातने पर भी इस सूची में १९ वां नंबर आता है। इस सूची के साथ यह सूचना भी दी गई है।

"ये सूत उनकी सफाई और एकसा कते हुए होने के कारण चुन लिये गये हैं। परन्तु इनमें जो सब से उत्तम कता हुआ है वह भी मिल के कते हुए सूत के दर्जे पर नहीं पहुंचा है।"

इसलिए बिना कठिनाई के ये बारीक अंक के सूत चुने नहीं जा सकते हैं। और इसलिए यह सूची दूसरे लोग उनका अनुकरण करें इसके बनिस्बत इन्हीं कातनेवालों को उत्साहित करने के लिए ही अधिकांश में प्रकाशित की गई है। क्योंकि ये कातनेवाले सूत भेजने में अधिक नियमित हैं और वे उस पर अच्छी मिहनत भी करते हैं, इसलिए उन्हें अपने इस काम में अधिक कला का उपयोग करने की विनति की जाती है ताकि वे अबतक जैसा सूत कात सके हैं उसके बनिस्बत अधिक मजबूत तार कातना आरंभ कर सकें।

श्री लक्ष्मीदास अब यह दिखाने का प्रयोग कर रहे हैं कि अच्छी रुई हो और वह अच्छी तरह धुनी गई हो तो उससे अच्छा महीन तार कत सकेगा और वह मिल के कते सूत के उसी अंक के मजबूत से भी मजबूत तार से मजबूती में बढ़ कर होगा। बहुत ही शीघ्र उनके प्रयोगों के परिणाम को प्रकाशित करने की मुझे आशा है। परन्तु इस दरम्यान ये २७ कातनेवाले स्वयं अपने प्रयोग करें और अबतक वे जैसा सूत भेज रहे हैं उसके बनिस्बत अधिक मजबूत सूत भेजें। मैं आशा करता हूं कि उन्हें, इस बात का तो अनुभव हो गया होगा कि तार खींचने में ही बल देते जाना चाहिए, तार खींच लेने के बाद अन्त में नहीं। और सूत उतार लेने के पहले उस पर पानी की छींट मारनी चाहिए और उसे नमी पकड़ने देना चाहिए।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

संख्या नहीं परन्तु गुण चाहिए

कई मरतबा मुझ से यह पूछा गया है कि यदि हमारी संख्या ही इतनी कम है तो फिर हम क्या कर सकते हैं। देखो न, चरखासंघ में कातनेवाले कितने कम हैं? सविनय भंग करनेवाले कितने कम हैं? पक्के असहयोगी कितने थोड़े हैं? और शराब की बन्दी चाहनेवाले भी कितने कम हैं? मुझे अफसोस है कि ये सब बातें बिल्कुल ही सच हैं। परन्तु जब हम उस पर विचार करेंगे तो यह मालूम होगा कि संख्या में धरा ही क्या है। अधिक उपयुक्त प्रश्न तो यह होगा कि देश में सच्चे कातनेवाले कितने हैं, सच्चे असहयोगी कितने हैं और शराब की बन्दी चाहनेवाले सच्चे कार्यकर्ता कितने हैं? आखिर चारित्र्य, निश्चय और हिम्मत के मूल्य का ही लेखा होगा। और मैं यह चाहता हूं कि मैं यह कह सकूं कि हमारे पास ४००० सच्चे कातनेवाले मौजूद हैं। सच्चा कातनेवाला कौन कहा जा सकता है? जो केवल कातता ही है वह सच्चा कातनेवाला नहीं है। यदि यही होता तो ४००० कातनेवाले ही नहीं, हमारे पास ४००००० कातनेवाले मौजूद हैं। केवल कातना ही काफी नहीं है। आवश्यक बात तो यह है कि भारत के दरिद्र लोगों के लिए हमेशा मजबूत और एकसा सूत नियमित रूप से काता जाय। अर्थात् कताई एक परिश्रम का काम ही नहीं होना चाहिए परन्तु आनंद का विषय होना चाहिए। केवल चरखा-संघ के सभासद हो जाने से काम न चलेगा, दूसरों को उसके सभासद बनने के लिए कहना भी आवश्यक है। सच्चा कातनेवाला अपने जीवन में क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। वह सादगी के धर्म को समझता है, शारीरिक मिहनत के गौरव की कीमत करता है और इस बात का स्वीकार करता है कि भारत को सब से बड़ी आवश्यकता स्वावलम्बन की है और इसके लिए करोड़ों लोग सादे से सादे औजारों से अपने घर में जिस काम को कर सकते हों उस काम की उसे आवश्यकता है।

यह कहा जाता है कि फ्रांस में जो क्रान्ति हुई वह हजारों मनुष्यों के कारण नहीं हुई थी परन्तु उसके नेता केवल कारह ही मनुष्य थे, जिन्होंने कि ५५ आदमियों के उत्साह को प्रज्वलित कर दिया था। और शायद इन बारह मनुष्यों में भी एक ही ऐसा मनुष्य था जिसने उसकी सारी रचना की थी। यदि आरम्भ ही ठीक हो तो फिर बाकी सब बातें तो सभी बादी होती हैं। इसलिए हम इस आश्चर्यकारक परिणाम पर पहुंचते हैं, और यह कुछ कम सत्य नहीं है कि किसी भी सुधार के

लिए चाहे आरम्भ में वह कैसा भी असम्भव क्यों न मालूम हो एक ही सच्चा आदमी बस होता है। ऐसे मनुष्य को अक्सर उपहास, तिरस्कार और मृत्यु का ही पुरस्कार मिलता है। परन्तु यद्यपि उसकी तो मृत्यु हो जायगी फिर भी उसका आरम्भ किया हुआ वह सुधार का कार्य तो वैसा ही बना रहेगा और दिन प्रतिदिन उसकी उन्नति होगी। वह अपने खून से उसकी जड़ को पक्की बना देता है। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि कार्यकर्तागण शक्ति का विचार छोड़ कर संख्या का बहुत ही थोड़ा विचार करें और संख्या थोड़ी हो तो भी उनकी शक्ति का ही अधिक विचार करें। फैलाव के बदले गहराई की ही अधिक आवश्यकता है। यदि हम दृढ़ नींव डाल सकेंगे तो भविष्य की प्रजा उसपर दृढ़ मकान की रचना कर सकेगी। परन्तु यदि रेती की नींव ही डाली जावेगी तो भविष्य की प्रजा को नयी नींव डालने के लिए उस रेती को खोद कर निकालने के सिवा दूसरा कोई काम न रहेगा।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

यह सुधार है?

एक लेखक जिन्हें मैं अच्छी तरह पहचानता हूं, इस प्रकार लिखते हैं:

"बार बार मन में यही सवाल होता है कि क्या प्रचलित नीति प्राकृतिक नीति है? आपने नीतिधर्म की पुस्तक लिख कर प्रचलित नीति का समर्थन किया है। क्या यह प्रचलित नीति कुदरती है? मेरा तो यह ख्याल है वह कुदरती नहीं है। क्योंकि वर्तमान नीति के कारण ही मनुष्य विषय में पशु से भी अधम बन गया है। आज की नीति की मर्यादा के कारण सन्तोषकारक विवाह शायद ही कहीं होता होगा; नहीं होता है, यह कहूं तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। जब विवाह का नियम न था उस समय कुदरत के नियमों के अनुसार स्त्रीपुरुषों का समागम होता था और वह समागम सुखरूप होता था। आज नीति के बंधनों के कारण वह समागम एक प्रकार का दुःख हो गया है। इस दुःख में सारा जगत फंसा हुआ है और फंसता जा रहा है।

अब नीति कहेंगे किसे? एक की नीति दूसरे की अनीति होती है। एक एक ही पत्नी के साथ विवाह का होना स्वीकार करता है, दूसरा अनेक पत्नी करने की इजाजत देता है। कोई काका मामा के संतानों के साथ विवाह सम्बन्ध को त्याज्य मानते है तो कोई उसके लिए इजाजत भी देते हैं। तो अब इसमें नीति क्या समझनी चाहिए? मैं तो यह कहता हूं कि विवाह एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है, उसका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। पुराने जमाने के महापुरुषों ने देशकालानुसार नीति की व्यवस्था की थी।

अब इस नीति के कारण जगत की कितनी हानि हुई है इसकी जांच करें।

१. प्रमेह, (सुजाक) उपदंश (गरमी) इत्यादि रोग उत्पन्न हुए। पशुओं में ये रोग नहीं होते हैं क्योंकि उनमें प्राकृतिक समागम होता है।

२. बालहत्यायें करायी। यह लिखने में मेरा हृदय कांप उठता है। केवल इस नीति के नियम के कारण ही तो एक कोमल हृदय की माता क्रूर बन कर अपने बालक का गर्भ में या उसके गर्भ के बाहर आने पर नाश करती है।

३. बालविवाह, वृद्ध पति के साथ छोटी उम्र की लड़कियों का विवाह इत्यादि पसंद न करने योग्य समागमों का होना। ऐसे समागमों के कारण ही आज संसार और उसमें भी विशेष कर भारतवर्ष दुर्बल बना हुआ है।

४. जर, जोरू और जमीन के तीन प्रकार के झगड़ों में भी जोरू के लिए किये गये झगड़ों को प्रथमस्थान प्राप्त है। ये भी वर्तमान नीति के कारण ही होते हैं।

उपरोक्त चार कारणों के सिवा दूसरे कारण भी होंगे। यदि मेरी दलील ठीक है तो क्या प्रचलित नीति में कोई सुधार नहीं किया जाना चाहिए?

ब्रह्मचर्य को आप मानते हैं यह ठीक ही है। परन्तु ब्रह्मचर्य राजीखुशी का होना चाहिए, जबरदस्ती का नहीं। और हिन्दू लोग लाखों विधवाओं से जबरदस्ती ब्रह्मचर्य का पालन कराते हैं। इन विधवाओं के दुःखों को तो आप जानते ही हैं। आप यह भी जानते हैं कि इसी कारण से बालहत्यायें होती हैं। तो आप पुनर्विवाह के लिए एक बड़ी हलचल करें तो क्या बुरा? उसकी आवश्यकता भी कुछ कम नहीं है। आप उसके प्रति जितना चाहिए उतना ध्यान क्यों नहीं दे रहे हैं?"

मैं यह ख्याल करता हूं कि लेखक ने ऊपर जो प्रश्न पूछे हैं, इस विषय पर मुझसे कुछ लिखाने के लिए ही पूछे हैं। क्योंकि ऊपर के लेख में जिस पक्ष का समर्थन किया गया है उसका लेखक स्वयं ही समर्थन करते हों तो इसकी मुझे कभी बू तक नहीं मिली है। परन्तु मैं यह जानता हूं कि उन्होंने जैसे प्रश्न पूछे हैं वैसे प्रश्न आजकल भारतवर्ष में भी हो रहे हैं। उसकी उत्पत्ति पश्चिम में हुई है, और विवाह को पुरानी, जंगली और अनीति की वृद्धि करनेवाली प्रथा माननेवालों की संख्या पश्चिम में कुछ कम नहीं है। शायद वह संख्या भी बढ़ रही होगी। विवाह को जंगली साबित करने के लिए पश्चिम में जो दलीलें की जाती हैं उन सब दलीलों को मैंने नहीं पढ़ा है। परन्तु ऊपर लेखक ने जैसी दलीलें की हैं वैसी ही वे दलीलें हों तो मेरे जैसे पुरातनप्रिय को (अथवा यदि मेरा दावा कुबूल रक्खा जावे तो सनातनी को) उनका खण्डन करने में कोई मुश्किल या पशोपेश न होगा।

मनुष्य की तुलना पशु के साथ करने में ही मूलतः गलती होती है। मनुष्य के लिए जो नीति और आदर्श रक्खे गये हैं वे बहुतांश में पशुनीति से जुदा हैं और उत्तम हैं और यही मनुष्य की विशेषता है। अर्थात कुदरत के नियमों का जो अर्थ पशु-योनि के लिए किया जा सकता है वह मनुष्य-योनि के लिए हमेशा नहीं किया जा सकता है। ईश्वर ने मनुष्य को विवेक-शक्ति दी है। पशु केवल पराधीन है। इसलिए पशु के लिए स्वतन्त्रता अथवा अपनी पसन्दगी जैसी कोई चीज नहीं है। मनुष्य को अपनी पसन्दगी होती है। वह सार-असार का विचार कर सकता है और वह स्वतन्त्र होने से उसे पाप पुण्य भी लगता है। और जहां उसको अपनी पसन्दगी रखी गई है वहां उसे पशु से भी अधम बनने का अवकाश रहता है। उसी प्रकार यदि वह अपने दिव्य स्वभाव के अनुकूल चलें तो वह आगे भी बढ़ सकता है। जंगलियों में भी जंगली दिखनेवाली कौमों में भी थोड़े बहुत अंशों में विवाह का अंकुश होता है। यदि यह कहा जाय कि यह अंकुश रखने में ही जंगलीपन है क्योंकि पशु किसी अंकुश के वश नहीं होते हैं तो उसका परिणाम यह होगा कि स्वच्छंदता ही मनुष्य का नियम बन जायगा। परन्तु यदि सब मनुष्य चौबीस घण्टे तक भी स्वेच्छाचारी बन कर रहें तो सारे जगत का नाश हो जायगा। न कोई किसी की मानेगा

न सुनेगा; स्त्री और पुरुष में मर्यादा का होना अधर्म गिना जायगा। और मनुष्य का विकार तो पशु के बनिस्बत कहीं अधिक होता है। इस विकार की लगाम ढीली कर दी कि उसके वेग से उत्पन्न होनेवाला अग्नि ज्वालामुखी की तरह भभक उठेगा और संसार को एक क्षण-मात्र में भस्म कर देगा। थोड़ा सा विचार करने पर यह मालूम होगा कि मनुष्य इस संसार में दूसरे अनेक प्राणियों पर जो अधिकार प्राप्त किये हुए है वह केवल संयम, त्याग और आत्मबलिदान, यज्ञ और कुरबानी के कारण ही प्राप्त किये हुए है।

उपदंश, प्रमेह इत्यादि का उपद्रव विवाह के नियमों का भंग करने से और मनुष्य पशु न होने पर भी पशु का अनुकरण करने में दोषी बन जाने से ही होता है। विवाह के नियमों का पालन करनेवाले ऐसे एक भी शख्स को मैं नहीं जानता हूं कि जिसे इन भयंकर रोगों का शिकार होना पड़ा हो। जहां जहां ये रोग हुए हैं वहां वहां अधिकांश में विवाहनीति का भंग करने से ही वे हुए हैं अथवा उस नीति का भंग करनेवालों के स्पर्श से ही हुए हैं। वैद्यकशास्त्र से यह बात सिद्ध होती है। बालविवाह और बालहत्या का निर्दय रिवाज इस विवाहनीति के कारण नहीं, परन्तु विवाहनीति के भंग से ही उस रिवाज की उत्पत्ति हुई है। विवाहनीति तो यह कहती है कि जब पुरुष अथवा स्त्री योग्य वय के हों, उन्हें प्रजोत्पत्ति की इच्छा हो, उनका स्वास्थ्य अच्छा हो तभी वे अमुक मर्यादा का पालन करते हुए अपने लिए योग्य पत्नी या पति ढूंढ लें अथवा उनके मातापिता उसका प्रबन्ध कर दें। जो साथी ढूंढा जाय उसमें भी आरोग्य इत्यादि के गुणों का होना आवश्यक है। इस विवाहनीति का पालन करनेवाले मनुष्य, संसार में चाहे कहीं भी जाओ और देखो, सुखी ही दिखाई देंगे। जो बात बालविवाह के सम्बन्ध में है वही वैधव्य के सम्बन्ध में भी है। विवाहनीति के भंग से ही दुःख रूप वैधव्य उत्पन्न होता है। जहां विवाह शुद्ध होता है वहां वैधव्य अथवा विधुरता सहज सुख रूप और शोभा रूप होती है। जहां ज्ञानपूर्वक विवाह सम्बन्ध जोड़ा गया है वहां वह सम्बन्ध केवल दैहिक नहीं होता है, वह आत्मिक हो जाता है और देह छूट जाने पर भी आत्मा का सम्बन्ध भुलाया नहीं जा सकता है। जहां इस सम्बन्ध का ज्ञान होता है वहां पुनर्विवाह असंभव है, अयोग्य है और अधर्म है। जिस विवाह में उपरोक्त नियमों का पालन नहीं होता है उस विवाह के सम्बन्ध को विवाह का नाम नहीं दिया जाना चाहिए। और जहां विवाह नहीं होता है वहां वैधव्य अथवा विधुरता जैसी कोई चीज ही नहीं होती है। यदि हम ऐसे आदर्श विवाह बहुत होते हुए नहीं देखते हैं तो उससे विवाह की प्रथा का नाश करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता है। हां, उसे उत्तम आदर्श के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करने के लिए वह एक सबल कारण अवश्य हो सकता है।

सत्य के नाम से असत्य का प्रचार करनेवालों की संख्या को देख कर यदि कोई सत्य का ही दोष निकालें और उसकी अपूर्णता सिद्ध करने का प्रयत्न करें तो हम उसे अज्ञानी कहेंगे। उसी प्रकार विवाह के भंग के दृष्टान्तों से विवाहनीति की निंदा करने का प्रयत्न भी अज्ञान और अविचार का ही चिह्न है।

लेखक कहते हैं कि विवाहधर्म या नीति कुछ भी नहीं है, वह तो एक रूढ़ि अथवा रिवाज है। और वह भी धर्म और नीति के विरुद्ध है और इसलिए उठा देने के योग्य है। मेरी अल्पमति के अनुसार तो विवाह धर्म की मर्यादा है और उसे यदि उठा दिया जायगा तो संसार में धर्म जैसी कोई चीज ही न रहेगी। धर्म की जड़ ही संयम अथवा मर्यादा है। जो मनुष्य संयम का पालन नहीं करता है वह धर्म को क्या समझेगा? पशु के बनिस्बत मनुष्य में बहुत ही अधिक विकार होता है। दोनों में जो विकार रहे हुए हैं उनकी तुलना ही नहीं की जा सकती है। जो मनुष्य विकारों को अपने वश में नहीं रख सकता है वह मनुष्य ईश्वर को पहचान ही नहीं सकता है। इस सिद्धान्त का समर्थन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मैं इस बात का स्वीकार करता हूं कि जो लोग ईश्वर का अस्तित्व अथवा आत्मा और देह की भिन्नता का स्वीकार नहीं करते हैं उनके लिए विवाह बन्धन की आवश्यकता को सिद्ध करना बड़ा ही मुश्किल काम है। परन्तु जो आत्मा के अस्तित्व का स्वीकार करता है और उसका विकास करना चाहता है उसे यह समझाने की कोई आवश्यकता न होगी कि देह का दमन किये बिना आत्मा की पहचान और उसका विकास असंभव है। देह या तो स्वच्छंद का भाजन होगा अथवा आत्मा की पहचान करने के लिए तीर्थक्षेत्र होगा। यदि वह आत्मा को पहचान करने के लिए तीर्थक्षेत्र है तो स्वेच्छाचार के लिए उसमें कोई स्थान ही नहीं है। देह को प्रति क्षण आत्मा के वश में लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

जमीन, जोरू और जर ये तीनों वहीं झगड़े का कारण होते हैं जहां संयम धर्म का पालन नहीं होता है। विवाह की प्रथा को जितने अंशों में मनुष्य आदर की दृष्टि से देखते हैं उतने अंशों में स्त्री झगड़े का कारण होने से बच जाती है। यदि पशु की तरह प्रत्येक स्त्री पुरुष भी जहां जैसा चाहे वैसा व्यवहार रख सकते होते तो मनुष्यों में बड़ा झगड़ा होता और वे एक दूसरे का नाश करते। इसलिए मेरा तो यह दृढ़ अभिप्राय है कि जिस दुराचार और जिन दोषों का लेखक ने उल्लेख किया है उसका औषध विवाहधर्म का छेदन नहीं है परन्तु विवाहधर्म का सूक्ष्म निरीक्षण और पालन है।

कोई जगह रिश्तेदारों में विवाह सम्बन्ध जोड़ने की स्वतंत्रता होती है और कोई जगह ऐसी स्वतंत्रता नहीं होती। यह सच है यह नीति की भिन्नता है। कोई जगह एकपत्नीव्रत का पालन करना धर्म माना जाता है और कोई जगह एक समय में अनेक पत्नी करने में कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है। यह बात चाहने योग्य है कि ऐसी नीति की भिन्नता न हो परन्तु यह भिन्नता हमारी अपूर्णता का सूचक है, नीति की अनावश्यकता का सूचक कभी नहीं। ज्यों ज्यों हम अधिक अनुभव करते जायंगे त्यों त्यों सब कौमों की और सभी धर्मों के लोगों की नीति में ऐक्य होता जायगा। नीति के अधिकार का स्वीकार करनेवाला जगत तो आज भी एकपत्नीव्रत को आदर की दृष्टि से देखता है। किसी भी धर्म में अनेक पत्नी करना आवश्यक नहीं है। सिर्फ अनेक पत्नी करने की इजाजत ही है। देश और समय को देख अमुक इजाजत दी जाय तो उससे आदर्श कुछ निष्फलता नहीं है और न उसकी कोई भिन्नता ही सिद्ध होती है।

विधवा विवाह के सम्बन्ध में मैं अपने विचारों को अनेकबार प्रकाशित कर चुका हूं। बालविधवा के पुनर्विवाह को मैं इष्ट मानता हूं, यही नहीं, मैं यह भी मानता हूं कि उनकी शादी कर देना उनके मातापिता का कर्तव्य है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अफीम, शराब और शैतान

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३५

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, द्वितीय चैत्र सुदी १०, संवत् १९८२ २२ गुरुवार, अप्रेल, १९२६ ई० { मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

टिप्पणियां

खादी के विरुद्ध

एक महाशय ने गुजराती में मुझे एक पत्र लिखा है उसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है।

"मैं एक लघुलीपिलेखक हूं। एक विज्ञापन के उत्तर में मैंने एक प्रसिद्ध यूरोपियन पेढ़ी में लघुलिपिलेखक की जगह के लिए अरजी की और उसका यह जवाब मिला कि मुझे स्वयं ही व्यवस्थापक के पास जा उपस्थित होना चाहिए। जैसा कि मैं व्यवस्थापक के सामने उपस्थित किया गया कि उसने मेरे कपड़ों की जांच की और उसे शुद्ध खादी पा कर उसने कहा: "आपकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्या आप यह नहीं जानते कि जो लोग खादी के कपड़े पहनते हैं उन्हें यूरोपीयन पेढ़ी पर नोकरी पाने की कोई आशा नहीं रखनी चाहिए।" यह कह कर उन्होंने मुझे वहां से विदा कर दिया और मैं यह आश्चर्य करता ही रह गया कि मेरे कपड़ों में और लघुलीपि में शुद्ध नोट लेने की मेरी शक्ति में क्या सम्बन्ध हो सकता है। अच्छी आराम की नोकरी पाने के लिए खादी के कपड़े छोड़ देने के लालच को दबा देने की मुझ में हिंमत थी इसलिए मैं अपने को धन्यवाद देता हुआ घर लौट आया। मुझे आशा है कि परमात्मा मेरी यह हिंमत हमेशा स्थिर बनाये रखेंगे। यदि मैं बुरी तरह से गभड़ा गया होऊंगा तो भी मैं खादी को न छोड़ुंगा क्योंकि मैं यह जानता हूं कि वह मेरा इस देश के गरीबों के साथ सम्बन्ध जोड़ती है। मैं आपको यह समाचार इसलिए भेज रहा हू कि दूसरे लोगों को भी यह चेतावनी मिल जाय कि यूरोपियन पेढ़ियों में सिवा इसके कि अपमानजनक शर्तों को कुबूल करें, उन्हें कोई नोकरी पाने की आशा [illegible] रखनी चाहिए।"

मैं इस लघुलीपिलेखक युवक को उनके आत्मत्याग के लिए मुबारकबादी देता हूं और उनके साथ मैं भी यह आशा करता हूं कि लघुलीपि लेखक की हैसियत से उनको नोकरी पाने के अपने प्रयत्नों में कितनी ही निराशा क्यों न हो परमात्मा उनकी यह हिंमत दृढ बनाये रक्खेंगे।

खादी के पक्ष में

परन्तु सभी यूरोपीयन पेढ़ियों के मालिक ऐसे एक ही टकसाल के ढले हुए नहीं होते हैं। गत वर्ष जब मैं कलकत्ते में था तब मैं कितने ही यूरोपीयन व्यापारियों से मिला था और उनमें कितने ही प्रधान व्यापारियों को अपने नोकरों को खादी पहनने देने में कोई आपत्ति न थी, यही नहीं, वे खादी की हलचल के प्रति अपनी सहानुभूति भी दिखाते थे और वे उन भावों की कदर भी करते थे जिनके कि कारण भारतीयों को और जो लोग भारत में आकर धन कमाते हैं उनको करोड़ों मिहनत करनेवाले लोगों के हाथ का कता और बुना हुआ कपड़ा पहनना आवश्यक हो जाता है। एक भारतीय कर्मचारी का यह एक पत्र है जिसे मं. ई. के पाठकगण बड़ी खुशी के साथ पढ़ेंगे।

"मैं बम्बई की एक यूरोपीयन पेढ़ी का एक साधारण कर्मचारी हूं। १९१८ मे मैं उसमें दाखिल हुआ। लघुलिपिलेखक होने के कारण मैं अपने यूरोपीयन अधिकारी के सम्बन्ध में हमेशा आता हूं। १९२० में गांधी संस्कृति और असहयोग की हलचल जो देश मे फैल रही थी उसके प्रति मै आकर्षित हुआ और धीरे धीरे परन्तु दृढता के साथ मेरे विचार बदलते गये यहां तक कि १९२१ में मै पक्का असहयोगी बन गया। मेरी परिस्थिति को देखते हुए देश की उन्नति और उसको किये गये अन्याय को दूर करने की मेरी प्यास बुझाने का मुझे एकही मार्ग दिखाई दिया और वह खादी का मार्ग था। दूसरा कोई कार्य न दिखाई दिया। मैं दक्षिण भारत के मेरे गांव से गरीबी के कारण मजबूर हो कर दूसरी जगह धन कमाने के लिए आया था और अभी हाल ही मैंने सन्तोष का जीवन बीताना शुरु किया था अर्थात मुझे जो वेतन मिलता था उसमें से मैं अपना खर्च चला सकता था और अपनी वृद्धावस्था के लिए कुछ बचा भी सकता था। अब मेरे हृदय में महान युद्ध शुरु हुआ। बुद्धि कहती थी कि खादी पहनने से यूरोपीयन अधिकारी नाराज हो जायंगे और तुम नोकरी खो बैठोगे, हृदय देश और गरीबों की याद दिलाता था। उस समय देश का वायुमण्डल आत्मत्याग, हिम्मत और आत्मसम्मान के भावों से भरा हुआ था इस कारण मुझे इसकी बड़ी शरम मालूम हुई कि मुझमें मेरे भूखों मरनेवाले भाई बहनों का बनाया हुआ कपड़ा पहनने की भी हिम्मत न थी। मेरी आत्मा मेरी पशुता के विरुद्ध बलवा करने लगी और एक शुभ दिन को मैंने खादी का कोट पहन लिया। जब आफीस गया मेरा दिल कांप रहा था और मैं यह सोच रहा था कि बिना सांकल के ही गुलाम की तरह बंधे रहने के बजाय मैं यह

जोखिम भी उठाऊंगा। मैं अपनी जगह पर जा कर बैठ गया और कुछ ही मिनटों में मेरे अफसर भी आ पहुंचे। वे मेरी मेज से कोई चार फीट की दूर बैठे होंगे। मैंने डरते डरते उनको सलाम किया। मैं उनके तरफ आंख उठा कर भी नहीं देख सकता था परन्तु तीरछी नजरों से यह देख रहा था कि मेरे बदले हुए कपडों पर उनका ध्यान गया है या नहीं। थोडी देर में उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और मैं लिखता जाता था और उनके भावों को उनके चहेरे पर देखने का प्रयत्न करता था। मैंने सारा दिन इस तरह बेचैनी में काटा और हृदय में अपनी कायरता के खिलाफ युद्ध करता रहा। परन्तु दिन के अन्त में जब मुझे यह मालूम हुआ कि उन्होंने मेरे कपडों पर, जो देखते ही खद्दर के मालूम हो सकते थे कुछ भी ख्याल नहीं किया है तब मुझे कितना आश्चर्य हुआ होगा इसकी आप कल्पना कर सकते हैं। तब मैंने यह ख्याल किया कि मेरे यह अफसर बहुत ही भले हैं और उनको मुझ पर प्रेम होने के कारण वे खादी के लिए मेरे प्रति कोई बुरे भाव नहीं रख सकते हैं। धीरे धीरे मेरी हिम्मत बढ गई और मैंने तमाम कपडे खादी के ही पहनना शुरू किया। इससे मुझे बडा आनंद हुआ। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि मैं अपने राष्ट्रीय पोशाक पर अभिमान करने लगा और तब से मैं इसी राष्ट्रीय पोशाक में हमेशा आफीस को जाता हूं। परन्तु अभी मेरा और भी एक भ्रम दूर होने को बाकी था। मैंने ठीक या गलत तौर पर यह ख्याल किया था कि अधिकारी मेरे कपडों पर इसलिए आपत्ति नहीं करते हैं क्योंकि इस कारण से मुझे निकाल देने में जो बदनामी होगी उसका वे सामना करना नहीं चाहते हैं। परन्तु अब मुझे तरक्की न दे कर ही वे अपनी नाखुशी जाहिर करेंगे। अनुभव से यह मालूम हुआ कि यह ख्याल भी गलत था क्योंकि उन्होंने मुझे तरक्की भी दी। परन्तु मैंने यह सोचा कि मुझे बहुत थोडी तरक्की दी जा रही है, यदि मैंने खादी न पहनी होती तो मुझे कुछ अधिक उत्तेजन दिया जाता। उसके बाद एक बडी जगह खाली हुई। उस जगह पर मैं अच्छी तरह काम कर सकता था परन्तु मुझे संकोच हुआ और मैंने ख्याल किया कि जिस अधिकारी के हाथ में वह जगह थी वह अधिकारी मेरे खादे राष्ट्रीय पोशाक को पसंद न करेंगे। क्योंकि वे स्वयं एक बहुत बडे प्रभावशाली व्यक्ति थे और इसलिए उनकी मुलाकात को भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध लोक आते होंगे और वे अपने सहकारी कर्मचारी के तौर पर गांधी के मनुष्य को रखने में अपनी प्रतिष्ठा की हानि ही समझेंगे। इसलिए उस जगह को पाने की मैंने कोई आशा न रक्खी थी और मुझे इस बात का संतोष था कि जब तक वे मेरे मार्ग में कोई आपत्ति न डालेंगे तब तक गुलामी की शर्त पर मैं तरक्की के पाने के लिए कोई फीक न करूंगा। एक महीना गुजर गया। कुछ बाहर के लोगों को आजमाया गया और आखिर मेरे विस्मय में मुझ से यह कहा गया कि मुझे तरक्की के साथ वह जगह दी गई है। ईश्वर की लीला अगम है। जिस जगह की मैंने कोई आशा नहीं रक्खी थी और जिसके लिए मैंने कोई प्रयत्न नहीं किया था वह जगह मेरा पोशाक खादी का होते हुए भी बेशक यह जान कर कि मैं उस जगह पर अच्छा तरह काम कर सकूंगा मुझे दे दी गई। और ताज्जुब की बात तो यह थी कि वह उच्च अधिकारी भी बडा ही महेरबान और अपने कर्मचारियों से प्रेम रखनेवाला था। खादी के कपडे और हिन्दुस्तानी विचारों के प्रति उन्होंने कभी ख्याल नहीं किया। वे बस यही चाहते थे कि उनका काम हो। जब मुझे वह जगह दी गई तब मेरे सहकर्मचारियों ने सचमुच यही माना था कि मैं अपने खादी के कपडे पहनने का और इस प्रकार अपने साहब की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाने का अविवेक न करूंगा और जब मैंने उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया कि मैंने तो खादी ही पहनने का निश्चय किया है तब भी उन्हें कुछ महीनों तक यह विश्वास नहीं हुआ। आज भी मित्रों का यह प्रश्न, कि युरोपियन अधिकारी मेरे खादी के सादे कपडों को कैसे सहन करते हैं, मेरे लिए कोई असाधारण बात नहीं है। मेरी वर्तमान जगह पर काम करते करते मुझे दो साल हो गई हैं फिर भी मुझे ऐसा एक भी मौका नहीं मिला है जब कि मुझे यह मालूम हुआ हो कि मेरे खादी के कपडों ने मेरे अधिकारी पर कोई बुरा प्रभाव डाला हो। यद्यपि मैं ऐसे दृष्टांतों को जानता हूं कि जिसमें युरोपियन अधिकारियों ने उस समय जब कि वे खादी से भडक जाते थे, खादी के कपडे पहनने के कारण अपने कर्मचारियों को निकाल दिया है और इस बात का भी स्वीकार करते हुए कि किसी विशेष अधिकारी की उदारता के अलावा मेरे मामले में भाग्य का भी कुछ हिस्सा था मुझे तो यही ख्याल होता है कि युरोपियन आफीसों में खादी पहनने में जो भय होता है वह निराधार है और रस्सी को सांप मान कर उससे डरने के बराबर है। मुझे यह भी ख्याल होता है कि यदि भय के कारण मैंने खादी न पहनी होती तो मैंने दोहरा पाप किया होता; प्रथम तो यह कि मैंने अपने देश के प्रति अपना फर्ज अदा न किया होता और दूसरा अपने युरोपियन अधिकारीयों के प्रति मेरा गलत और अनुदार ख्याल बना रहता।"

मैं उस युरोपियन पेढी को उनकी इस विशाल दृष्टि के कारण मुबारकबादी देता हूं, क्योंकि जब असहयोग पुर जोश में था तब बहुत से युरोपियनों ने खादी के पोशाक को हिंसा के उद्देशों के साथ एक कर दिया था। ऐसे समय किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह न रखना उनके लिए बेशक एक बडी बात है।

फरवरी के अंक

खादी की उत्पत्ति और बिक्री के जुदे जुदे प्रान्त के फरवरी महीने अंक इस प्रकार हैं।

प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्रि
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
आंध्र	१,८४५—०—०	१३,११७—०—०
बिहार	१९,०११—०—०	२२,२४१—०—०
बंगाला	२९,१००—०—०	२०,६०४—०—०
बम्बई	०—०—०	२६,०१९—०—०
बरमा	०—०—०	१,७०७—०—०
देहली	६७५—०—०	५०४—०—०
गुजरात	७,०११—०—०	१०,२१५—०—०
करनाटक	१,४९०—०—०	५,१३८—०—०
उत्तर महाराष्ट्र	०—०—०	४,७१०—०—०
मध्य ,,	०—०—०	१,९५०—०—०
दक्षिण ,,	०—०—०	४०६—०—०
पंजाब	१३,६८२—०—०	६,४३४—०—०
तामिलनाड	५५,६१५—०—०	५३,५१९—०—०
संयुक्त प्रान्त	७,३३६—०—०	७,३६५—०—०
उत्कल	४,२२७—०—०	१,५४२—०—०
कुल	१,३७,८९१—०—०	१,८३,११८—०—०

आंध्र के अंक हमेशा की तरह अपूर्ण हैं। सिर्फ १६ भंडारो ने ही प्रांतिक कार्यालय को अपनी रिपोर्ट भेजी है। बंगाल के अंक सिर्फ खादी प्रतिष्ठान के ही अंक है, अभय आश्रम के अंक अभी प्राप्त नहीं हुए हैं। बम्बई के अंक बेन्कहर्स्ट रोड भंडार के अंकों के सिवा सम्पूर्ण है। देहली के अंकों में केवल हापुर के अंक ही दिये गये हैं। पंजाब और तामिलनाड के अंक सम्पूर्ण है और उनके बिक्री के अंकों का फिर से दोबारा कोई अंक न आ जाय इस ख्याल से शोध भी किया गया है। उत्तर महाराष्ट्र के अंकों में केवल जलगांव और वर्धा के भंडारों के ही अंक दिये गये हैं और मध्य महाराष्ट्र में सिर्फ पुना के भंडार के अंक दिये गये हैं।

उत्पत्ति और बिक्री दोनों के लिहाज से फरवरी के अंक करीब करीब जनवरी के अंकों के समान ही है। सिर्फ बम्बई के अंकों में फर्क है। इस महीने में उसके बिक्री के अंक ४१४४८) से घट कर २६०२९) हो गये हैं। परन्तु गत वर्ष के फरवरी महीने के साथ तुलना में, इस साल के अंकों में खास कर उत्पत्ति के अंकों में खास वृद्धि हुई मालूम होती है। मुख्य मुख्य प्रान्तों के खादी के उत्पत्ति के अंक नीचे दिये गये हैं।

	फरवरी १९२६	फरवरी १९२५
बिहार	११,०११)	५,६९७)
बंगाल प्रतिष्ठान	२२,१००)	१५,९९८)
पंजाब	१३,६८२)	४,२२०)
तामिलनाड	५५,९१५)	१३,९२७)
उत्कल	४,१२७)	४४२)
	१,१४,९३५)	५०,२७५

बिक्री में पंजाब और उत्कल के अंक तो गत वर्ष के अंकों के समान ही है, बम्बई के अंक घट गये है परन्तु बंगाल, बिहार और तामिलनाड के अंकों में विशेष प्रगति हुई दिखाई देगी। उसके अंक नीचे दिये गये है।

	फरवरी १९२६	फरवरी १९२५
बिहार	२१,२८१)	१५,६१६)
बंगाल (प्रतिष्ठान)	२०,६०४)	११,८०४)
बम्बई	२६,०२९)	४४,२२०)
पंजाब	६,४३४)	७,१५२)
तामिलनाड	५१,५१२)	३४,८२५)
उत्कल	१,५४२)	१,६४५)
	१,३०,३६१)	१,१५,३५१)

मैं अपनी यह आशा फिर दोहराता हूं कि जिन केन्द्रों ने अभी तक अपनी रिपोर्ट नियमित भेजना आरम्भ नहीं किया है वे अब शिघ्र ही भेजना आरम्भ कर देंगे ताकि चरखा-संघ जहां तक हो सके सही अंकों को प्रकाशित कर सके।

बम्बई के अंकों में जो घटी होती जाती है और दूसरे प्रान्तों के अंकों में जो वृद्धि हो रही है, उसकी बड़े ध्यान-पूर्वक तुलना करनी चाहिए। एक समय था जब सारे हिन्दुस्तान में उत्पन्न हुई खादी की बम्बई ही सबसे बड़ी ग्राहक थी। अब भी इस लिहाज से उसका स्थान ऊंचा है। तामिलनाड से दूसरा नंबर उसीका है। गत वर्ष के अंकों की तुलना में, बम्बई के अंक कुछ भी नहीं है। गत वर्ष में फरवरी महीने के अंक ४४,२२०) थे, इस साल २६,०२९) है, और तामिलनाड के इस साल फरवरी महीने के ५१,५१२) है गत वर्ष में ३४,८२५) थे।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

अन्त्यज सेवक की कठिनाई

एक अन्त्यज सेवक लिखते हैं:

"मैं एक अन्त्यजशाला चला रहा हूं। आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करने की मेरी शक्ति नहीं है इसलिए विवाहित हो कर मर्यादा में रहना ही मुझे उचित मालूम होता है। परन्तु मैं अन्त्यजशाला चलाता हूं इसलिए मुझे भय है कि मेरी ज्ञाति में मुझे कन्या न मिल सकेगी। परन्तु मुझे तो आजीवन अन्त्यजशाला को ही चलाना है और दूसरा कोई काम मुझे नहीं करना है। अब मैं कैसे शादी करूं? दूसरी ज्ञाति में विवाह करूं और विधवा लाऊं तो समाज मुझे दूषित समझेगा। अब मुझे क्या करना चाहिए?"

यह कुछ ऐसीवैसी उलझन नहीं है। इस युवक को उसके निश्चय के लिए जितना भी धन्यवाद दिया जा सके कम होगा। वे यदि अपने निश्चय में दृढ बने रहेंगे औ अपनी इन्द्रियों पर अंकुश रखेंगे तो ईश्वर ही उनकी सहायता करेगा। ऐसे संकटों में से गुजरने से ही तो धर्म की परीक्षा और रक्षा हो सकती है।

लेखक वैश्य जाति के मालूम होते हैं। सद्भाग्य से अन्त्यज सेवक सभी ऊंच वर्णों में हैं। वर्णाश्रम यह धर्म है, वर्तमान असंख्य जातिभेद को होना कोई धर्म नहीं है। यह एक रिवाज है। यह रिवाज कितने ही अंशों में हानिकर प्रतीत हुआ है। रिवाजों में सुधार किये जा सकते है, करने चाहिए। यदि लेखक वैश्य जाति के ही हों और अपनी उपजाति के बाहर जाने की हिम्मत कर सकें तो उन्हें बहुत बड़ा क्षेत्र प्राप्त हो सकेगा। उपजातियों में अर्थात् वैश्य जातियों में अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रादि ज्ञातिओं की उपजातिओं में बेटी-व्यवहार का रिवाज डालने की पूरी आवश्यकता है। अर्थात् वर्णाश्रम की मर्यादा के अनुसार जहां रोटी-व्यवहार की स्वतंत्रता होती है वहां बेटी-व्यवहार की भी स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह अन्त्यजसेवक अपना इतिहास और अपनी शक्ति इत्यादि का ब्योरा अपनी उपजाति के महाजनों के सामने पेश करें। वहां उन्हें कोई मदद न मिले तो उससे निराश न हो कर, बिना क्रोध किये ही गुजरात के वैश्य महाजन के समक्ष अपना वही इतिहास पेश करें और उनसे मदद मांगे। यदि उनमें योग्यता होगी तो मेरा दृढ विश्वास है कि समाज के उचित बन्धनों का उल्लंघन किये बिना ही उन्हें मदद मिल सकेगी।

यह सेवक या ऐसी कठिनाई में फसे सब लोग यह अच्छी तरह याद रक्खें कि यदि वे अन्त्यज-सेवा या ऐसी ही कोई दूसरी सेवा केवल धार्मिक भाव से ही करते हों तो उन्हें कैसा भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े उन्हें कभी असत्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए और न क्रोध करना चाहिए अर्थात हिंसा न करनी चाहिए। यदि वे इस प्रकार सत्य का और मर्यादित अहिंसा का पालन करेंगे तो वे अपनी, अपने धर्म की और अपने सेवा की शोभा को बढावेंगे और बहुत ही थोडा कष्ट उठाने से ही वे संकट का निवारण कर सकेंगे। इसलिए उपरोक्त सेवक को अपना इतिहास किसी प्रकार की अतिशयोक्ति के बिना ही प्रकाशित करना चाहिए।

(नवजीवन.) मोहन क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, द्वितीय चैत्र सुदी १०, संवत् १९८२

अफीम, शराब और शैतान

शराब और अफीम इत्यादि दूसरी नशीली चीजें शैतान के दो हथियार है। उससे वह अपने असहाय गुलामों को मारता है और उन्हें नशे में चूर और मूर्छित कर देता है। जेनेवा में हुई अफीम की दो परिषदों के कार्य पर प्रकाश डालनेवाले 'सर्वे' में प्रकाशित लेख के अनुसार तो उसमें नशे की खाने की चीजों में अफीम जो मुख्य है उसी की जीत हुई है। लेखक कहते हैं: "तमाम आगे बढ़ने के या पीछे हटने के प्रयत्नों में, तलवारें निकालने में और फिर उन्हें म्यान करने में, हार और जीत की अफवाओं में, अफीम और दूसरी नशीली चीजों के व्यापार को उसके जीवन के लिए एक नया ही दस्तावेज कर दिया गया है।' जुदे जुदे राष्ट्रों की विस्मित करनेवाली रिपोर्टों से जो गोलमाल और अव्यवस्थितता उत्पन्न हुई उसमें लेखक कहते हैं: 'वे लोग जो एक या दूसरे मार्ग से नशीली चीजों के व्यापार से लाभ उठाते हैं, उन्हीं को सिर्फ इस बात का ठीक ठीक ज्ञान था कि उन्हें क्या चाहिए था और क्या नहीं। और उन्होंने जो कुछ भी प्राप्त किया उसका उन्हें स्पष्ट ख्याल था और उन्हें उससे सन्तोष भी हुआ है। लेखक आगे और यह भी कहते हैं "खास कर उस बड़े महाभारत युद्ध के समय में तो इसके प्रति बड़ा ही दुर्लक्ष किया गया था। उत्पात के उन पांच वर्षों में जहां तक आंतरराष्ट्रीय हित या कार्य से सम्बन्ध था वहां तक नशीली चीजों के उपयोग को स्वाभाविक मान कर उसके विरुद्ध कोई हलचल नहीं की जाती थी......बेशक लड़ाई ने इस बुराई को बहुत कुछ बढ़ा दिया है। फौजों में मनुष्य की पीड़ा को भूला देने के लिए औषध के तौर पर और भयंकर निराशा, भय, युद्ध के अरुचिकर और एक सा वायुमण्डल से कुछ मानसिक शान्ति पाने के लिए मोरफिया और कोकेन का जो बहुतायत से उपयोग किया जाता था उससे अन्त में बहुतेरे देशों में, ऐसे बहुत से लोग, जो उस नशे की आदत से मुक्त नहीं हो सके थे और अब उसकी आदत छोड़ना जिनके लिए असम्भव है फैल गये। वे अपनी आदत को कायम रखे हुए हैं और उसको फैला भी रहे हैं। क्योंकि इस बुराई के साथ में बड़ी भयंकर बात तो यह होती है कि उससे एक प्रकार की उसका प्रचार करने की अनुचित प्रेरणा होती है ताकि नये नशेबाज तैयार हों और उसका उपयोग बढ़े।"

गत युद्ध का यही सब से बड़ा भयंकर दुष्परिणाम है। यदि उसने करोड़ों लोगों के जीवन नष्ट किये हैं तो उसने आत्मा को नष्ट करने के कार्य को बड़ा वेग भी प्रदान किया है। परन्तु लेखक श्री मेबौट कहते हैं कि इन तेरह सालों में जबसे कि हेग परिषद में आंतरराष्ट्रीय इकरारनामा रजीष्टर हुआ था तबसे "इस महत्व के प्रश्न का रूप बहुत कुछ बदल गया है" मि० मेबौट तो सिर्फ यूरोपियनों की दृष्टि से ही इसका विचार कर सकते हैं। इसलिए वे कहते हैं "यह बदी अब पूर्व की विदेशी बदी, जैसे अफीम खाना, पीना और दूसरे हिंदुस्तान, चीन और दूसरे पूर्वीय देशों के रिवाजों के रूप में नहीं रही है।" अब तो उसका "सभ्य कहलानेवाले देशों की वैज्ञानिक कल से बनायी जानेवाली बड़ी मूल्यवान वस्तुओं से भरी हुई औषधशाला या प्रयोगशाला में तैयार किये गये उसके सत के रूप में, जो बड़ा ही हानिकर है" उपयोग हो रहा है। पुराने जमाने में अफीम और अफीम खाने की पूर्वदेशीय आदत पश्चिम में धीरे धीरे प्रचार को प्राप्त हो रही थी परन्तु अब उसका प्रवाह विरुद्ध दिशा में बह रहा है। लेकिन इतना ही नहीं ये चीजें भी उतनी ही भयंकर हैं और जिन देशों में ये बनायी जाती हैं वहां भी बुरी तरह से फैल रही है और उसकी हद को पार कर के पड़ोस के देशों में भी फैलती हैं। इसलिए मनुष्य-जाति की भलाई के लिए ही यह भयप्रद है। इस शैतान के लिए तो गोरा नशेबाज भी उतना ही उपयोगी है जितना कि काला या पीला......उसके राज्य में सूरज कभी अस्ताचल को नहीं जाता है।

फिर लेखक 'इस बदी के मूल' का ही वर्णन करते हैं। वह मूल अधिक तादाद में उसकी उत्पत्ति का होना है—औषध और विज्ञान की आवश्यकता से कहीं अधिक। औषध और विज्ञान के लिए प्रति मनुष्य इतनी आवश्यकता है:

अफीम ४५० मिलिग्राम (करीब करीब ७ चांवल के बराबर)
कोकेन ७ ,, (,, ·११ ,,)

इस हिसाब से ७४४,०००,००० (दुनिया की १,७४७,०००,००० मानी गई मनुष्य संख्या में से) मनुष्य को पश्चिम के शिक्षित डाक्टरों को उपचार करने के लिए प्राप्त होंगे उनके लिए 'औषध और विज्ञान, के लिए उन चीजों का आवश्यक परिमाण यह होगा।'

औषध के लिए अफीम	१०० टन
मोरफिया	१३६ ,,
कोडीन	८८ ,,
हीरोईन	१५ ,,
दुनिया की कुल आवश्यकता	३३९ टन

ऊपर कोकेन का प्रति मनुष्य जो परिमाण बताया गया है उस हिसाब से उसकी कुल आवश्यकता १२ टन से कुछ अधिक होगी। परन्तु अफीम की कुल पैदाइश कम से कम ८६०० टन है। कोकेन के अंक प्राप्त नहीं हो सकते हैं परन्तु उसकी उत्पत्ति भी १०० टन से कुछ कम नहीं। इस प्रकार दुनिया की उचित आवश्यकता के सब से अधिक उदार अन्दाज के बनिस्बत भी उनकी उत्पत्ति सौ गुना अधिक है।"

लेखक यह दिखाते है कि किसी भी बड़े साम्राज्य ने, अमरिका और ग्रेट ब्रिटन ने भी, इस प्रश्न पर गंभीरता के साथ विचार नहीं किया है। वे हेग परिषद् की ९ वीं शर्त को भंग करने का उन पर अपराध लगाते हैं। वह शर्त है: "इन चीजों की उत्पत्ति को इस प्रकार मर्यादित की जाय कि औषध और विज्ञान के लिए उपयोगी आवश्यक तादाद ही उत्पन्न हो।" लेखक को इस बात का अफसोस है कि ये सभ्य कहलानेवाले राष्ट्र यह नहीं कि केवल अफीम और उससे तैयार की जानेवाली दूसरी चीजों की अत्यधिक उत्पत्ति को ही नहीं रोक सके हैं, परन्तु प्रयोग शालायें जिनकी जांच होती है और जिनको परवाने दिये जाते हैं, उनमें तैयार की जानेवाली बड़ी भयंकर वस्तुओं की अत्यधिक उत्पत्ति को भी उन्होंने नहीं रोका है। यदि उनकी इच्छा होती तो वे यह बड़ी आसानी से कर सकते थे।

महात्मा की प्रेरणा से श्री एण्ड्रूज ने बड़ी मिहनत कर के आसाम की जो अफीम की रिपोर्ट तैयार की थी उसे जिन पाठकों ने पढ़ा है वे यह जानते हैं कि अफीम की आदत से क्या हानि हुई

है। वे यह भी जानते हैं कि इस बढ़नेवाली बुराई को दूर करने में सरकार ने प्रधानतः कुछ भी प्रयत्न नहीं किया था और सुधारकों के उन प्रयत्नों को जिन्होंने कि इसको दूर करने का प्रयत्न किया था उसने कैसे निष्फल कर दिया। राष्ट्रीय सप्ताह के दिनों में व्याख्याताओं को नशीली चीजें और शराब को एकदम बन्द कर देने पर जोर देते हुए सुन कर दिल को बड़ी तसल्ली होती है। यह सुधार तो बहुत दिनों के पहले ही होना चाहिए था। यदि धारासभा में जाना कुछ उपयोगी हो तो चुनाव के लिए शराबखोरी की बन्दी को ही विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। हरएक मतदाता को चाहिए कि वह केवल उसका समर्थन ही न करे परन्तु शराबखोरी की बन्दी के लिए प्रेरणा करे और उसके लिए युद्ध जारी रक्खे। शराबखोरी को बन्द करने का यही एक मार्ग है कि इस अनीति से सरकार को होनेवाली आमदनी के बराबर फौजी खर्च में कमी की जाय। इसलिए शराबखोरी की बन्दी की मांग के साथ साथ फौजी खर्च में कमी करने की मांग भी पेश करनी चाहिए। मत लेने के उपाय से इसके निर्णय में कोई विलम्ब नहीं करना चाहिए। भारत में तो मत लेने का कोई कारण ही नहीं है क्यों कि शराब पीना या नशे की चीजें खाना यहां सब जगह दुर्गुण ही समझा जाता है। पश्चिम की तरह भारत में शराब पीने का कोई रिवाज नहीं है। इसलिए भारत में मत लेने की बात करना इस प्रश्न के साथ खेल करना है।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय २०

धार्मिक परिचय

विलायत में मुझे कोई एक साल ही हुआ होगा कि उतने में मेरा दो थिओसफिस्ट मित्रों से परिचय हो गया। दोनों सगे भाई थे और दोनों ही अविवाहित थे। उन्होंने मुझसे गीताजी का जिक्र किया। वे एडविन आर्नल्ड का गीताजी का अनुवाद पढ़ रहे थे और उन्होंने मुझे संस्कृत में गीताजी पढ़ने के लिए निमन्त्रण दिया। परन्तु मैंने संस्कृत में या प्राकृत में कभी गीताजी पढ़ी न थी इसलिए मुझे बड़ी शरम मालूम हुई। मुझको उनसे यह कहना पड़ा कि "मैंने कभी गीताजी नहीं पढ़ी है लेकिन मैं उसे आपके साथ पढ़ने को तैयार हूं। मेरा संस्कृत का ज्ञान भी कुछ नहीं के बराबर है। मैं उसे केवल यहां तक ही समझ सकूंगा कि अनुवाद में यदि कोई गलती हुई तो वह सुधारी जा सकेगी।" उनके पास सर एडविन आरनल्ड का अनुवाद था। इस अनुवाद के कारण ही सर एडविन आरनल्ड का नाम मैंने सुना था। इन दोनों भाइयों के साथ मैंने गीताजी पढ़ना आरंभ किया। दूसरे अध्याय के अन्तिम श्लोकों में

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

[विषय का जो चिंतन करता रहता है उसका प्रथम तो विषयों में संग उत्पन्न होता है; संग से उस विषय की कामना — यह विषय प्राप्त हो ऐसी वासना — उत्पन्न होती है और उससे (यदि उसमें कोई विघ्न हुआ तो) क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से सम्मोह (अर्थात अविवेक), सम्मोह से स्मृति विभ्रम, स्मृतिविभ्रम से बुद्धिनाश होता है और बुद्धि का नाश होने पर आखिर पुरुष का भी नाश हो जाता है (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमें से किसी भी पुरुषार्थ के योग्य वह नहीं रहता है)]

इन श्लोकों का मुझ पर गहरा असर पड़ा। मेरे कानों में उसकी भनक सदा ही बनी रहती है। उस समय मुझे यह ख्याल हुआ कि भगवद्गीता एक अमूल्य ग्रन्थ है। धीरे धीरे मेरी यह मान्यता दृढ़ होती गई और आज तत्वज्ञान के लिए उसे मैं एक सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूं। निराशा के समय में इस ग्रंथ ने मेरी अमूल्य सहायता की है। उसके करीब करीब सभी अंगरेजी अनुवादों को मैंने पढ़ा है परन्तु एडविन आरनल्ड का अनुवाद ही मुझे श्रेष्ठ मालूम होता है। उसमें मूल ग्रन्थ के भावों की रक्षा की गई है फिर भी वह अनुवाद अनुवाद सा नहीं मालूम होता है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय मैंने भगवद्गीता का ठीक ठीक अध्ययन किया था। उसके बाद कितने ही वर्षों के पीछे वह ग्रन्थ रोजाना मेरे पाठ का विषय बना था।

इन्हीं भाइयों ने आरनल्ड का बुद्ध-चरित्र पढ़ने के लिए भी मुझसे सिफारिश की थी। उसे मैंने भगवद्गीता से भी अधिक दिलचस्पी के साथ पढ़ा। पुस्तक हाथ में लेने के बाद उसे पूरा करने पर ही छोड़ सका था।

ये दोनों भाई मुझे एक मरतबा ब्लेवेटस्की लाज में भी ले गये थे। वहां मुझे उन्होंने मेडम ब्लेवेटस्की और मीसीस बेसन्ट के दर्शन कराये। उस समय मीसीस बेसन्ट थीआसोफिकल सोसायटी में ताजा ही दाखिल हुई थीं। उनके सम्बन्ध में अखबारों में जो चर्चा हो रही थी उसको मैं बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ता था। इन भाइयों ने मुझे इस सोसायटी में दाखिल होने के लिए भी कहा। मैंने बड़े विनय के साथ इससे इन्कार किया और कहा "मुझे धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं है इसलिए मैं किसी भी सम्प्रदाय में दाखिल होना नहीं चाहता हूं।" मुझे कुछ ऐसा भी ख्याल है कि इन्हीं भाइयों के कहने से मैंने मेडम ब्लेवेटस्की की 'की टु थियासाफी' नामक पुस्तक भी पढ़ी थी। उसे पढ़ने से हिंदू-धर्म की पुस्तकें पढ़ने की मुझे बड़ी इच्छा हुई और वह ख्याल जो मिशनरियों के जबानी मैं सुना करता था कि हिंदू-धर्म में केवल वहेम ही वहेम भरे हुए हैं दूर हो गया।

इसी अवसर पर एक निरामिषभोजी वसतीगृह (लोज) में मान्चेस्टर के एक ईसाई सज्जन से मेरी मुलाकात हुई। उन्होंने ईसाई धर्म के सम्बन्ध में मुझसे बातचीत करना शुरू किया। मैंने उनसे अपना राजकोट का वह स्मरण कह सुनाया। उसे सुन कर वे बड़े दुःखी हुए। उन्होंने कहाः "मैं स्वयं निरामिषभोजी हूं—मैं मद्यपान भी नहीं करता हूं। यह सच है कि बहुतेरे ईसाई मांस भक्षण करते हैं, मद्यपान भी करते हैं परन्तु ईसाई धर्म में इन दो में से एक भी चीज को ग्रहण करना कोई फर्ज नहीं है। आप बाइबिल पढ़ें, यही मेरा आप से अनुरोध है।" मैंने उनकी यह सलाह मान ली। बाइबिल भी उन्होंने ही खरीद कर दिया था। मुझे कुछ ऐसा ख्याल है कि ये भाई स्वयं ही बाइबिल बेचते थे। उन्होंने एक बाइबिल जिसमें नकशे, अनुक्रमणिका इत्यादि सब बातें थी मुझे बेचा। मैंने उसे पढ़ना शुरू किया। परन्तु मैं 'तौरेत' को तो पढ़ ही न सका। 'जेनेसीस' सृष्टिरचना के अध्याय के पढ़ने के बाद आगे पढ़ने में मुझे नींद सी आने लगती थी। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि यह कहने के लिए कि मैंने उसे पढ़ा है, बिना दिलचस्पी के और बिना समझे ही बड़े कष्ट के साथ मैंने कुछ दूसरे अध्याय भी पढ़े थे। 'नंबर्स' का अध्याय पढ़ने में तो मुझे बड़ी ही अरुचि मालूम हुई।

परन्तु जब 'इञ्जील' पढना आरंभ किया तब तो जुदा ही असर पडा। 'सरमन आन धी माउन्ट' का बडा अच्छा असर हुआ। वह दिल में भी उतर सका। बुद्धि के द्वारा गीताजी के साथ उसकी तुलना की। "जो तेरा कुरता मांगे उसे अपना कोट भी दे दे और जो तेरे एक गाल पर थप्पड मारे उसके सामने दूसरा गाल धर दे" यह पढ कर तो मुझे बडा ही आनन्द हुआ। शामल भट्ट के छप्पै का स्मरण हुआ। मेरे बालक मन ने गीता 'लाइट आफ एशिया' और ईसा के वचनों को एकत्र किया। त्याग में ही धर्म है यह बात मेरे मन को बडी ही रुचिकर मालूम हुई।

यह पढने के बाद दूसरे धर्माचार्यों के जीवन चरित्र पढने का दिल हुआ। कार्लाइल का 'हीरोज और हीरो वर्शिप' पढने के लिए भी किसी मित्र ने सिफारिश की थी। उसमें पयगम्बर के विषय की सब बातें पढ गया और उससे मुझे उनकी महत्ता, वीरता और तपश्चर्या का कुछ ख्याल हुआ।

इतना परिचय प्राप्त कर लेने के बाद मैं और आगे न बढ सका। परीक्षा के पुस्तकों को पढने में मैं दूसरे पुस्तकों को पढने का कोई समय न निकाल सका। परन्तु मेरे दिल में यह ख्याल दृढ हो गया कि मुझे धार्मिक पुस्तकें पढनी चाहिए और सभी प्रधान धर्मों का परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए।

यदि नास्तिकता के सम्बन्ध में भी कुछ जानकारी प्राप्त न कर लूं तो काम कैसे चले? सब भारतीय ब्रेडला का नाम तो जानते ही थे। ब्रेडला नास्तिक गिना जाता था। इसलिए उनसे सम्बन्ध रखनेवाली भी कोई एक किताब पढी थी। नाम का मुझे स्मरण नहीं है। उसका मुझ पर कुछ असर न हुआ। नास्तिकता का 'सहरा का रेतीला मैदान' मैं पार कर चुका था। मीसीस बेसन्ट की उस समय भी बडी कीर्ति थी। वे नास्तिक मिट कर आस्तिक बनी इस कारण से भी मैं नास्तिकवाद के प्रति उदासीन हो गया। 'मैं थीओसोफीस्ट क्यों हुई?' इसके सम्बन्ध में मीसीस बेसन्ट की एक पत्रिका मैंने पढी थी। इसी अवसर पर ब्रेडला का देहान्त हो गया। वोकिंग में उनकी अन्त्यक्रिया की गई थी। मैं भी उस समय वहां हाजिर था। जहां तक मेरा ख्याल है उस समय एक भी भारतीय वहां गये बिना न रहा होगा। उनका सम्मान करने के लिए कुछ पादरी भी आये थे। लौटते समय हम सब एक जगह रेल के आने की राह देख रहे थे। इस झुंड में किसी पहलवान नास्तिक ने पादरियों में एक के साथ वाद करना शुरू किया। "साहब, आप तो यह कहते हैं न कि ईश्वर है?" उस भले आदमी ने धीरे से यह उत्तर दिया "हां मैं यह कहता जरूर हूं।"

उसने मानो पादरी को हरा रहा हो इस तरह हंस कर जवाब दिया: "पृथ्वी का घेरा २८००० मील है, इसका तो आप स्वीकार करते हैं न?"

"अवश्य"

"तो यह कहिए कि ईश्वर कितना बडा होगा और कहां होगा?"

"यदि हम यह समझें तो वह हम दोनों के हृदय में वास करता है।"

"आपने तो बच्चों को फुसलाने की बात कही" यह कह उस वीर योद्धा ने हम लोगों के प्रति जो चारों ओर थे अपने विजयी नेत्रों से देखा।

पादरी ने नम्रतापूर्वक मौन धारण किया। इस संवाद के कारण नास्तिकवाद के प्रति मेरी अरुचि और भी बढ गई।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

मेरी कामधेनु

मेरे लिए मैंने चरखे को मोक्ष का द्वार कहा है। मैं यह जानता हूं कि इस पर कुछ लोग हंसते हैं। परन्तु जो मनुष्य मिट्टी का एक गोला बना कर उसे पार्थिवेश्वर चिंतामणि जैसा बडा नाम देता है और उसके ऊपर एक ध्यान हो कर परमात्मा के दर्शन करने की शुभ आशा रखता है उसकी, मूर्ति का महिमा न जाननेवाले निंदा भी करते हैं परन्तु उससे ऐसे आत्म-दर्शन के लिए पागल बना हुआ वह अपना ध्यान थोडे ही छोडेगा? और वह अवश्य ही ईश्वर का साक्षात्कार करेगा और उसकी निंदा करनेवाले रह जायगे। उसी प्रकार यदि चरखे के प्रति मेरे भाव शुद्ध होंगे तो मेरे लिए चरखा अवश्य ही मोक्षदायी होगा। रामनाम की धनक सुनते ही जो हिंदू होगा उसके कान उसके प्रति आकर्षित होंगे। जबतक वह धुन चलती रहेगी वह अवश्य ही विकार रहित होगा। इस धुन की अन्य धर्मियों पर यदि असर न हो तो उससे क्या? 'अल्लाहु अकबर' की आवाज सुन कर हिंदुओं पर भले ही उसका कुछ भी असर न हो परन्तु मुसलमान तो अवश्य ही वह आवाज सुन कर सावधान हो जायगा। भावुक अंगरेज 'गाड' का नाम लेते ही अपने क्रोध को दबा कर थोडी देर के लिए तो अवश्य ही विकारों का त्याग कर देगा। क्योंकि जैसी जिसकी भावना होती है वैसा ही उसे फल भी मिलता है।

इसी न्याय से चरखे में कुछ नहीं तो मैंने मनमानी शक्तियों का आरोपण किया है इसलिए मेरे लिए वह अवश्य ही कामधेनु रूप होगा। मैं प्रत्येक तार को कातता हुआ हिन्दुस्तान के कंगालों का चिन्तन करता हूं। हिन्दुस्तान के गरीब लोगों का ईश्वर पर से विश्वास उठ गया है; फिर मध्यम वर्ग अथवा धनिक वर्ग पर वह क्यों होने लगा? जिसके पेट में भूख है, जो उस भूख को मिटाना चाहता है उसका तो पेट ही परमेश्वर है। जो मनुष्य उसको रोटी का साधन कर देगा वह उसका अन्नदाता बनेगा और उसके द्वारा वह शायद ईश्वर का भी दर्शन करेगा। इन मनुष्यों के हाथ पैर स्वस्थ होने पर भी उन्हें केवल अन्नदान देना यह स्वयं दोष में पड कर उन्हें भी दोषित बनाने के बराबर है। उन्हें कुछ मजदूरी मिलनी चाहिए। करोडों की मजदूरी तो केवल चरखा ही हो सकता है और उस चरखे पर मैं भाषणों के द्वारा नहीं परन्तु स्वयं कात कर ही उनकी श्रद्धा जमा सकूंगा। इसलिए कातने की क्रिया का मैं तपश्चर्या अथवा यज्ञ के तौर पर वर्णन करता हूं। और क्योंकि मैं यह मानता हूं कि जहां गरीबों का शुद्ध चिंतन किया जाता है वहां ईश्वर है इसलिए प्रत्येक तार में मैं ईश्वर का दर्शन कर सकता हूं।

आपको किस लिए कातना चाहिए?

यह मैंने अपनी भावना की बात कही और यदि आप भी उसका स्वीकार करेंगे तो फिर और क्या चाहिए? लेकिन शायद यदि आप से उसका स्वीकार न हो सके तो भी आप को कातने के लिए दूसरे बहुत से कारण हैं। उनमें से कुछ मैं यहां दे रहा हूं:

(१) जब आप कातोगे तभी तो आप दूसरों से कता सकोगे।

(२) आप के कातने से और आप के काते हुए सूत को चरखा संघ को देने से अन्त में खादी का भाव सस्ता हो सकेगा।

(३) कातने की कला सीख लोगे तो भविष्य में अथवा तो अभी जब चाहो तब खादीप्रचार के कार्य में सेवा कर सकोगे। क्यों कि अनुभव से यह मालूम हुआ है कि जिन्हें इन क्रियाओं

का कुछ भी ज्ञान नहीं है वे उसमें कुछ भी मदद नहीं कर सकते हैं।

आप कातोगे तो सूत की जात सुधरेगी। उससे कमाई करने के इरादे से कातनेवाले अपनी मजदूरी पाने के लिए बड़े अधीर होंगे इसलिए वे तो जिस अंक का सूत कातते होंगे उसी अंक का सूत ही काता करेंगे। अंकों में सुधार करने का काम शौकक का है या उसका है जिसको कि उसका शौक है और यह भी अनुभव सिद्ध बात है। सेवावृत्ति से कातनेवाले कुछ भी पुरुष यदि एकत्र न हुए होते तो सूत की जाति में जो प्रगति हुई है वह प्रगति होना असंभव था।

(५) आप कातोगे तो चरखे में सुधार करने में आप की बुद्धि का उपयोग हो सकेगा। यह बात भी अनुभव से सिद्ध है। चरखे में आज तक जो सुधार हुआ है और उसकी गति में जो वृद्धि हुई है वह केवल यज्ञ के तौर पर कातनेवाले मालिकों की शक्ति के कारण ही हुई है।

(६) भारतवर्ष की प्राचीन कला का लोप होता जा रहा है। कातने की कला के पुनरुद्धार पर ही बहुतांश में उस कला के पुनरुद्धार का आधार रहता है। कातने में कितनी कला है यह तो यथार्थ उसे कातनेवाला ही जान सकता है। सत्याग्रह सप्ताह में कातनेवाले कातते हुए थकते ही न थे। चरखे के प्रति उनका अच्छा भाव था यह उनके न थकने का एक कारण अवश्य था। परन्तु यदि कातने में कोई कला न होती, उस समय जो आवाज होता है उसमें कोई संगीत न होता, तो २२॥ घण्टे तक स्थिर हो कर आह्लादपूर्वक कुछ युवकों ने जो चरखा काता वह असंभव हो जाता। यहां हमें इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि कातनेवालों का किसी प्रकार का भी लालच न था। कातना उनका एक शुद्ध यज्ञ था।

(७) हमारे देश में मजदूरी करना बड़ा हलका धंधा गिना जाता है। कवियों ने तो यहां तक निर्णय कर दिया है कि सुखी मनुष्य को तो इतना आराम होता है कि उसे कभी चलना नहीं पड़ता है और उसके पैरों के तलुवे में भी बाल निकल आते हैं। जो उत्तम से उत्तम कर्म है और जिस कर्म के साथ प्रजापति ने प्राणीमात्र को उत्पन्न किया है उस कर्म को हम शिष्टाचार बनाना चाहते हैं। जिसे दूसरा कोई काम नहीं मिलता वही पेट के लिए कातता है ऐसा गलत ख्याल न फैल जाय इसके लिए भी आपको कातना चाहिए। आप राजा हो या रंक, आपको यज्ञार्थ अवश्य कातना चाहिए।

किशोर समाज को

आप बालक हो कि बालिका, ऊपर बताये गये सब कारण आपको भी लागू होते हैं। परन्तु आपको कातने के लिए दूसरे भी कुछ विशेष कारण हैं। उनके प्रति मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूं।

(१) यह क्या अच्छा होगा कि आप बचपन ही से गरीबों के लिए मजदूरी करें! क्यों कि कातने की क्रिया बचपन ही से आपकी परोपकार बुद्धि का पोषण करेगी।

(२) आप हमेशा नियमित समय पर कातते रहोगे तो उससे आपके जीवन में नियमपूर्वक कार्य करने की आपको आदत पड़ जायगी। क्योंकि कातने के लिए यदि आपने समय निश्चित किया होगा तो और कामों के लिए भी आप समय निश्चित करोगे। और जो लोग प्रत्येक कार्य के लिए समय निश्चित किये हुए होते हैं वे अनियमित काम करनेवालों के बनिस्बत दूना काम करते हैं, यह सार्वजनिक अनुभव है।

(३) आपकी सफाई बढेगी। क्योंकि सफाई के बिना सूत काता ही नहीं जा सकता है। आपकी पूनियां साफ होनी चाहिए, आपके हाथ साफ होने चाहिए, उसमें पसीना न होना चाहिए, आसपास कहीं धूल इत्यादि न होना चाहिए, कातने के बाद आपको बड़ी सफाई के साथ सूत को फालकी पर चढाना जाना चाहिए, उसे फूंक से साफ करना चाहिए और आखिर उसकी सुन्दर लच्छियां बनाना चाहिए।

(४) आपको यंत्र सुधारने का सामान्य ज्ञान प्राप्त होगा। हिन्दुस्तान में बालकों को सामान्य तौर पर यह ज्ञान नहीं दिया जाता है। आप आलसी बन कर आपके यहां नौकर हो तो उससे अथवा अपने बड़ों से चरखा साफ कराओगे तो आपको यह ज्ञान प्राप्त न होगा। परन्तु जो बालक सूत भेज रहे हैं अथवा सूत भेजेंगे उनका चरखे पर प्रेम है यह मैंने मान लिया है। और जो बड़े प्रेम के साथ चरखा कातता है वह अपने यंत्र के प्रत्येक विभाग पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लेता है। बढ़ई के हथियार बढ़ई ही साफ करता है। जो कातनेवाला अपने चरखे को दुरस्त नहीं कर सकता है, माल नहीं बना सकता है तकुवा ठीक नहीं कर सकता है उसे कातनेवाला ही नहीं कहा जा सकता है अथवा तो यही कहा जा सकता है कि वह कातने की बेगार करता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

विविध प्रश्न

[गांधीजी की डाक से निम्न लिखित प्रश्न लिये गये हैं। प्रश्नों का केवल सार ही दिया गया है। उत्तर गांधीजी के शब्दों में है। म० ह० दे०]

तो करें क्या?

श्री. सरत बोस उलझन में पड़े हुए हैं। वे एक बड़े बेरिस्टर हैं। मांडले के जेल में कैद किये गये श्री सुभाष बोस के भाई हैं। कैदियों को कैसे छुड़ाया जाय? क्या उन्हें दुःखी होते हुए ही देखा करें? सरकार के विरुद्ध क्या कोई हलचल नहीं की जा सकती है? धारासभा में प्रस्ताव ला कर भी क्या किया जा सकता है? इस उलझन को कैसे सुलझावें? श्री सरत बोस को गांधीजी ने निम्न लिखित सन्देशा भेजा है:

उ० भाई मनीलाल कोठारी ने मुझे आपका सन्देशा दिया आपको कुछ चेतनप्रद, कुछ निश्चयात्मक और विपुल के वेग का कुछ दे सकूं तो क्या अच्छा हो! परन्तु आज की हालत में मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं है। सभाएं प्रस्ताव और धारासभा में विरोध तो बहुत कुछ किया गया परन्तु अब तो हमें कुछ ऐसा कार्य करना चाहिए कि जिससे हम अपनी शक्ति का अनुभव कर सकें। इसलिए मुझे तो विदेशी कपड़े के बहिष्कार के सिवा और कुछ भी नहीं सूझता है, और खादी के बिना यह बहिष्कार भी असम्भव है।

इसलिए कैद इत्यादि सब हमारी तकलीफों के लिए मुझे चरखे के सिवा और कोई दूसरा उपाय ही नहीं सूझता है परन्तु लोगों को मैं यह कैसे समझाऊं कि यह उपाय अमोघ है? मेरा तो उसमें अटल विश्वास है। मैं यह भी कह सकता हूं कि मेरा यह विश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस लिए हमलोगों ने इस राष्ट्रीय सप्ताह में सात दिन तक चरखे दिन-रात चलाये थे। और वह भी इतनी श्रद्धा के साथ कि

किसी न किसी दिन हमें उससे ऐसी शक्ति प्राप्त होगी कि जिससे हम हमारा मनोरथ सफल कर सकेंगे ।

हां; चरखे के सिवा भी एक और रास्ता है और वह मार-काट का है । लेकिन वह मेरी शक्ति के बाहर है और इससे भी विशेष महत्व की बात यह है कि मुझे उसमें कोई श्रद्धा नहीं है । और मैं तो व्यवहारकुशल हूं, इसलिए मैं यह जानता हूं कि हमारी मारकाट का सरकार की मारकाट के आगे कुछ भी मूल्य न होगा । इसलिए मैंने तो अपने दूसरे सब साधनों को फूंक कर जला दिया है और केवल चरखे की नाव पर सवार हो कर मैं सागर में उतर पड़ा हूं । आपके समान जो लोग उलझन पड़े हुए हों उन्हें मैं मेरे साथ इस नाव पर सवार होने के लिए निमन्त्रण देता हूं । मेरा यह कहना सच मानियेगा कि यह नाव उस पार ले जाये बिना न रहेगी । परन्तु उसे चलाने के लिए हमारी तमाम शक्ति, व्यवस्थाबल और तालीम की आवश्यकता है ।

जलियांवाला बाग

इस स्मारक के लिए बड़ा चन्दा इकट्ठा किया गया था और उसको आज सात वर्ष भी हो चुके हैं । १९२१ में मुझे एक सिक्ख भाई ने कहा था कि उसमें से कुछ हिस्सा एक शाला के लिए मकान बनवाने के लिए दिया जानेवाला है । साहब ! क्या आप यह बतावेंगे कि उन सब रुपयों का क्या हुआ है ? जलियांवाला बाग की जमीन खरीदी गई है या नहीं ? स्वतन्त्रता का भव्य मंदिर कब तैयार होगा ?

उ० जलियांवाला बाग के लिए जो चन्दा इकट्ठा किया गया था उसके रुपयों से बाग खरीद लिया गया है । जमीन साफ की गई है और बगीचा तैयार किया गया है । मन्दिर नहीं बनाया गया है क्योंकि आजकल हिन्दुस्तान के ग्रह बदल गये हैं । स्वतंत्रता की नींव ही को हम खोद रहे हैं तो फिर उसका भव्य मन्दिर कैसे बनाया जा सकेगा ? मेरा ख्याल है कि इसी विचार से ट्रस्टीलोगों को कोई मन्दिर बनवाने में संकोच हो रहा है ।

जमीन की कीमत दे देने पर बाकी बचे हुए रुपयों का पक्का हिसाब रक्खा जाता है और मन्त्री समय समय पर उस हिसाब को ट्रस्टीयों के पास नियमित भेजते रहते हैं और उसे प्रकाशित भी किया जाता है ।

अहिंसा

छोटे छोटे जीवों को एक दूसरे का आहार करते हुए हम अनेक मरतबा देखते हैं । मेरे यहां एक छिपकली को मैं रोजाना शिकार करती हुई देखता हूं । और बिल्ली को पक्षियों का शिकार करती हुई देखता हूं । क्या मुझे यह देखते रहना चाहिए ? अथवा उसे रोकने के लिए उस दूसरे प्राणी की हिंसा करनी चाहिए ? ऐसी अनेक हिंसायें हुआ करती हैं ; ऐसे समय में हमें क्या करना चाहिए ।

उ० क्या मैंने भी ऐसी हिंसा होती हुई नहीं देखी है ? कई मरतबा मैंने छिपकली को और दूसरे जीवों को शिकार करते हुए देखा है । परन्तु इस 'जीवो जीवस्य जीवनम्' के प्राणी-जगत के कानून को रोकने का मुझे कभी कर्तव्य नहीं मालूम हुआ । ईश्वर के इस अगम्य रहस्य का भेद खोलने का मैं दावा नहीं करता हूं परन्तु ऐसी हिंसा को देख कर ही मुझे यह प्रतीत होता है कि पशु और दूसरे हलकी कोटि के प्राणियों का नियम मानवयोनि का नियम नहीं हो सकता है । मनुष्य को तो निश्चयपूर्वक प्रयत्न कर के अपने अन्दर रहे हुए पशु को जीत लेने का और उसे मार कर आत्मा को जीवित रखने का प्रयत्न करना चाहिए । अपने चारों ओर व्याप्त हिंसा के दावानल से ही अहिंसा का महामन्त्र सीखना चाहिए । अर्थात् मनुष्य यदि अपनी प्रतिष्ठा को समझने लगे और अपना जीवनकार्य समझ ले तो उसे स्वयं हिंसा करने से रुक जाना चाहिए और अपने से हलकी कोटि के अथवा अपने वश में रहनेवाले जीवों को कोई कष्ट न पहुंचाना चाहिए । वह अपने लिए ही यह आदर्श रख सकता है और यदि कुछ नहीं तो अपने से कमजोर अपने भाइयों को तकलीफ देने से भी वह रुक जा सकता है । और यह भी आदर्श है ; क्यों कि सम्पूर्णतया उसका पालन करने के लिए उसे रातदिन सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए । तभी वह किसी न किसी दिन उस आदर्श तक पहुंच सकेगा । मनुष्य इसमें संपूर्ण सफलता तो तभी प्राप्त कर सकता है जब कि वह मोक्ष प्राप्त कर के देह के तमाम बन्धनों से मुक्त हो जाय ।

सिद्धान्त और प्रतिज्ञा

हिन्द-स्वराज में रेलगाड़ी दूध, दवा इत्यादि के सम्बन्ध में आपने कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया है और उनका पालन न करने पर भी आप उन पर कायम हैं तो यह क्या बात है ? आप अपनी दुर्बलता का स्वीकार कर के अपना बचाव करते हैं परन्तु आप का क्या यह नहीं मालूम कि बचाव करनेवाला अपना अपराध स्वीकार करता है ।

उ० हिन्द-स्वराज में प्रदर्शित मेरे विचारों का मैं सर्वांश में पालन न कर सकता होऊं तो इससे मैं यह नहीं ख्याल करता कि उन विचारों को सही कहने में मैं कोई गलती करता हूं । आप जिस कहावत का उल्लेख करते हैं वह मुझ पर लागू नहीं हो सकती है क्यों कि मैं अपने को कभी माफ नहीं करता हूं और मैं सर्वांश में अपने अपराध का स्वीकार करता हूं ।

प्रतिज्ञा लेने के बदले केवल निश्चय ही किया जाय तो क्या यह काफी न होगा ?

उ० प्रतिज्ञा लेने में और निश्चय करने में जहां भेद माना जाता हो वहां प्रतिज्ञा का ही कुछ मूल्य हो सकता है । जो निश्चय धो डाला जा सकता है वह निश्चय ही नहीं गिना जा सकता; उसका कुछ भी मूल्य नहीं है ।

एकाग्रता

आप चित्त को एकाग्र करने का कोई उपाय बतावेंगे ? किसी खास विषय में एकाग्र होने के लिए आप किस उपाय को काम में लाते हैं ?

उ० अभ्यास से ही चित्त एकाग्र होता है । शुभ और इष्ट विषय में लीन होने से एकाग्र बनने का अभ्यास हो सकता है; जैसे, कोई रोगी की सेवा करने में, कोई चरखा चलाने में और कोई खादी के प्रचार में । श्रद्धापूर्वक रामनाम का उच्चारण करने से एकाग्र हो सकते हैं ।

सुधारने का ठेका

एक मुसलमान भाई लिखते हैं:

आप लिखते हैं कि मनुष्य की आत्मा पशु-योनि में भी जाती है । आपकी कहां जायगी ? गाय की योनि में दाखिल होनेवाली आत्मा तो किसी पापी मनुष्य की आत्मा ही होगी । तो क्या गाय की पूजा कर के पापी आत्मा की पूजा करनी चाहिए ? इसका उत्तर दीजिएगा क्योंकि आपने तो जहान को सुधारने का ठेका लिया है ।

उ० आपने तो मुझे डरा ही दिया है । मैंने तो केवल एक ही पुरुष को सुधारने का ठेका लिया है और वह स्वयं अपने को ही । और उसे सुधारने के लिए भी कितनी मुसीबतें झेलनी होती हैं उसको तो केवल मेरा मन ही जानता है । अब क्या मुझे आपके प्रश्नों का उत्तर देना होगा ?

नवजीवन

पं० नेहरु और खादी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३५

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, द्वितीय चैत्र सुदी ३, संवत् १९८२ १५ गुरुवार, अप्रैल, १९२६ ई० } मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

टिप्पणियां

कैसे मदद की जाय ?

लन्दन में रहनेवाले एक भारतीय सज्जन लिखते हैं :

"हर शख्स मुझसे यह पूछता है कि जो लोग अमेरिका, जरमनी, फ्रान्स, इटली अथवा इंग्लैण्ड में रहते हैं वे भारत की किस तरह मदद कर सकते हैं ? वे स्वराज्य के लिए हमारे युद्ध में हमारी कैसे मदद कर सकते हैं ? वे और यह भी पूछते हैं कि भारत संसार को क्या सीखा सकता है ? जो लोग युद्ध कर रहे हैं उनको क्या न लिए उसके पास कोई सन्देश है ? और अगर है तो संसार में शान्ति की स्थापना करने के कार्य में वह क्या हिस्सा दे सकता है ?"

प्रथम प्रश्न का तो आसानी से उत्तर दिया जा सकता है । यदि ईश्वर भी उसी की मदद करता है जो स्वयं अपनी मदद करता है, तो मनुष्य तो अपूर्ण है । जब तक वे स्वयं अपनी मदद न करेंगे तबतक एक दूसरे को वे कैसे मदद कर सकेंगे ? परन्तु कुछ भी क्यों न हो, संसार की एक स्वास्थ्यपूर्ण राय बनाने का भी कुछ अर्थ है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस अभिप्राय का प्रभाव दिन प्रति दिन बढ़ रहा है । श्री पेज की पुस्तक से कुछ संक्षेप करके 'लड़ाई कैसे हुई' के जो अध्याय मैं उद्धृत करके दे रहा हूं उससे यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि लोगों को गलत शिक्षा दे कर कैसा धोखा दिया गया था । लोगों को उनकी अपनी अपनी सरकारों ने लड़ाई के जमाने में झूठी खबरें ही पेट भर कर दी थीं । इसलिए आश्रम की मुलाकात को जो यूरोपियन मित्र आते हैं उन्हें मैं यह कहता हूं कि वे हमारी हलचल का समाचार पत्रों के रिपोर्टों पर से अध्ययन न करें क्योंकि जिसमें उन्हें (समाचार पत्रों को) दिलचस्पी नहीं होती है उसके सम्बन्ध में उन्हें जो खबरें मिलती हैं वे अपूर्ण होती हैं और ठीक नहीं होती। वे उसका मूल लेखों पर से ही अध्ययन करें । मुझे यह कहने में बड़ा अफसोस होता है कि ब्रिटिश सरकार का जाहिरा और छिपा हुआ दोनों विभाग वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में बिल्कुल गलत ही ख्याल फैला रहे हैं । उस गुप्त विभाग के द्वारा, जिसमें बहुत बड़ी बड़ी तनख्वाहें दी जाती हैं और जो बड़ा व्यवस्थित है, जो गलत खबरें फैलायी जाती हैं उसको कोई भी देशप्रेमी समाचार विभाग नहीं पहुंच सकता है । उस गुप्त विभाग की दृष्टि से एशिया के क्या संसार भर के महान कवि भी नहीं बच सके हैं । खुद कुछ यूरोपियन देशों के समझदार और निष्पक्ष प्रतिनिधि ही अपने अपने देश में ब्रिटिश सरकार के द्वारा फैलायी गई झूठी खबरों का प्रतिकार कर सकते हैं । दूसरे प्रश्न का उत्तर देना अधिक कठिन मालूम होता है ।

यदि प्रश्न यह होता कि भारत ने संसार को क्या सिखाया है तो मैं प्रश्नकर्ता को श्री मेक्समूलर की 'भारत हमें क्या सीखा सकता है ?' यह पुस्तक पढ़ने की सिफारिश करता । परन्तु जो प्रश्न पूछा गया है वह भारत के भूतकाल को उद्देश कर नहीं है परन्तु वर्तमान के सम्बन्ध में है । मुझे इस बात का स्पष्ट स्वीकार करना चाहिए कि वर्तमान काल में भारत संसार को कुछ नहीं सीखा सकता है । वह सम्पूर्ण अहिंसा और सत्य के मार्ग से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने की शक्ति का विकास करने का प्रयत्न करता है । कुछ लोग जो इस हलचल में शामिल हैं उन्हें इन साधनों में अमर श्रद्धा है लेकिन एक क्षण में भारत के बाहर रहनेवाले लोगों में यह श्रद्धा उत्पन्न करना सम्भव नहीं । और यह कहना भी सम्भव नहीं कि वह श्रद्धा भारत के शिक्षित वर्ग का सामान्य धन है । परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि भारत अहिंसामय साधनों के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल होगा तो वह उन लोगों को जो उसके लिए लड़ रहे हैं अपना सन्देश सुनावेगा और उससे भी अधिक बात यह है कि तब वह संसार की शान्ति में अपना सबसे बड़ा वह हिस्सा देगा कि जैसा किसी ने अबतक कभी न दिया होगा ।

तकली शिक्षक

इस नाम की एक छोटी सी ८० सफे की पुस्तक चरखा-संघ की तरफ से प्रकाशित हुई है । श्री. रिचार्ड बी. ग्रेग व श्री. मगनलाल खु० गांधी इसके लेखक हैं । इसमें २३ चित्र दिये गये हैं । उनमें इस छोटे से सर्वोपयोगी तथा राष्ट्रीय महत्व रखनेवाले यंत्र की तरह तरह की आकृतियां और कातने की क्रिया की तरह

तरह की हालतें बताई गई हैं। इस पुस्तक में तकली से कातने की तेजी सिलसिलेवार सूचनायें दी गयी हैं कि कोई भी आदमी इस पुस्तक का ध्यानपूर्वक पढ़कर तकली से कातना सीख सकता है। इस पुस्तक में तकली के जुदे जुदे उपयोग भी बताये गये हैं, और यह भी दिखाया गया है कि कुछ मौकों पर चरखे की अपेक्षा तकली ज्यादा काम की चीज है। तकली बनाना भी इस पुस्तक से सीखा जा सकता है। पुस्तक के अन्त में कुछ ऐतिहासिक उल्लेख भी किया गया है कि जिससे मालूम होता है कि इसी यंत्र के जरिये ढाका का वह बारीक से बारीक सूत कतता था कि जिसकी बराबरी आज तक दुनियां में कोई भी कल नहीं कर सकी है। तकली या चरखे से किसी से भी क्यों न काता जाय, सब के लिए उपयोगी ऐसी बहुत सी अच्छी सूचनायें इसमें दी गई हैं। तालीम की दृष्टि से लेखक कहते हैं कि तकली से इतने गुणों का विकास होता है:— "१ धीरज; २ दृढ़ता; ३ एकाग्रता; ४ आत्म-शासन; ५ स्थिरता; ६ छोटी छोटी बारीक बातों का महत्त्व जानना; ७ एक साथ कई काम करने की योग्यता और उनमें से एक में इतनी प्रवीणता कि वह काम तो बिना प्रयास अपने आप हुआ करे; ८ स्पर्श-शक्ति की तीक्ष्णता, निश्चलता, व नेत्रों और स्नायुओं पर काबू; ९ इस बात का अनुभव होना कि चाहे थोड़ी थोड़ी देर बीच बीच में ही क्यों न किया जाय मगर इकट्ठा होने पर उस सारे प्रयत्न का मूल्य कुछ और ही होता है, इसी से वक्त की कीमत मालूम होती है; १० सहकार के लाभ मालूम होते हैं; ११ अपनी मेहनत से थोड़ी सी भी कमाई करने से आत्म-विश्वास बढ़ता है।" और भी बहुत से फायदे बताये गये हैं। राष्ट्रीय कताई के आन्दोलन में जिन्हें रुचि हो, वे इस पुस्तक को मंगा कर पढ़ कर के अपने आप जान सकेंगे। प्रकाशकों ने तकली के कातनेवालों से प्रार्थना की है कि इस विषय पर समालोचना, सलाह या सूचना बिना संकोच भेजी जायें जिससे कि दूसरी आवृत्ति में उनका समावेश कर लिया जाय। कीमत इसकी ६ आने रक्खी गई है। डाक खर्च का १ आना अलग देना होगा।

खादी के मासिक अंक

जनवरी महीने के जितने भी अंक प्राप्त हुए हैं नीचे दिये गये हैं, जिन संस्थाओं ने अबतक अपने अंक नहीं भेजे हैं मुझे आशा है कि वे अब शीघ्र ही अपने अंक भेज देंगे।

	पैदाइश	बिक्री
पहले स्वीकार किये गये	३७,७११)	४२,८७२)
आन्ध्र	१,९१०८)	१,९५०३)
बम्बई		४१,४९२)
बंगाल	३३,१४९)	२९,०३४)
देहली	१,१३०)	६५६)
तामीलनाड	५१,४६७)	६१,७५४)
संयुक्तप्रान्त	९,१५६)	९,९१७)
कुल	१,४१,७११	२,२५,२२८

आंध्र के अंक अपूर्ण हैं, ६१ भण्डारों में केवल २५ भण्डारों ने ही प्रान्तिक कार्यालय को अपनी रिपोर्टें भेजी हैं। बम्बई के अंकों में केवल प्रीन्सेस स्ट्रीट बम्बई के खादी-भण्डार और १४ हाजीशेठ अग्यारी लेन कालबादेवी रोड बम्बई के खादी-भण्डार के और राष्ट्रीय स्त्री-सभा के बीकों के अंक ही दिये गये हैं। सेन्डहर्स्टरोड के खादी-भण्डार के अंक प्राप्त नहीं हुए हैं। बंगाल के अंकों में सिर्फ खादी-प्रतिष्ठान और अभय आश्रम के अंक ही दिये गये हैं। तामीलनाड के अंक सम्पूर्ण हैं। शाखाओं की बिक्री के अंक दुबारा न गिने जावें इसका ख्याल कर के शुद्ध अंक ही दिये गये हैं। संयुक्तप्रान्त के अंकों में केवल बनारस के गांधी-आश्रम के और कानपुर भण्डार के ही अंक हैं। अलाहाबाद भण्डार के अंक प्राप्त नहीं हुए हैं परन्तु उसमें प्रति मास ७००) की औसत बिक्री होती है। देहली के अंकों में सिर्फ श्री चीरंजीलाल प्यारेलाल हापुर के अंक ही दिये गये हैं; स्वराज-आश्रम और श्री विशंभर दयाल खादी-भण्डार के अंक अभी प्राप्त नहीं हो सके हैं।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

गुरुकुल और खादी

श्री जमनालालजी हरिद्वार से लिखते हैं:

"दो दिन गुरुकुल कांगड़ी में रहा। वहां मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। यहां यह ख्याल हुआ कि खादी के वायुमण्डल का अच्छा विस्तार किया जा सकता है। श्री रामदेवजी, देवशर्माजी, सत्यकेतुजी, सेठीजी आदि बहुत से महाशय खादी और चरखे के प्रचार के पक्ष में हैं। बहुत ही थोड़ा प्रयत्न करने से मैं यहां चर्खासंघ के कुछ सभासद बना सका हूं, उनके नामों की सूची इसके साथ है। मुझे आशा है कि दूसरे और भी बहुत से सभासद होंगे... गुरुकुल में आपके सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा और भक्ति का परिमाण अच्छा है...... गुरुकुल कन्या-महाविद्यालय देहली में भी चरखा शुरू कर दिया गया है और दिन प्रतिदिन उसमें प्रगति होने की आशा है।"

जमनालालजी की भेजी हुई सूची में ४० नाम हैं। नाम तो यहां नहीं दिये जा सकते परन्तु उनका पृथक्करण अवश्य ध्यान देने योग्य है। उसमें प्रथम सभासद तो गुरुकुल के आचार्य हैं, पांच उपाध्याय हैं, सात नये स्नातक और वेदालंकार तथा विद्यालंकार उपाधिभूषित हैं। पांच चतुर्दश श्रेणी के, चार द्वादश श्रेणी के और पांच एकादश श्रेणी के ब्रह्मचारी हैं; गुरुकुल में दो बहनें सभासद हुई हैं और देहली में तीन — श्रीमती विद्यावती सेठी (बी. ए.) आचार्या कन्यागुरुकुल और दूसरी दो अध्यापिका, श्रीमती सीतादेवी और श्रीमती चन्द्रवती।

पंजाब के खादी निरीक्षक लिखते हैं:

'आर्यसमाजियों की तरफ से मुलतान छावनी में एक गुरुकुल है। उसमें १४० विद्यार्थी हैं। उसके व्यवस्थापक ने सब विद्यार्थियों को खादी के ही कपड़े देने का निश्चय किया है। पहले देशी मिलों के कपड़े उन्हें दिये जाते थे और उसमें करीब करीब ५८०) खर्च होते थे। परन्तु अब हमलोगों ने उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने का भार अपने सिर लिया है और पहला हप्ता दे भी दिया है, और आनंद की बात तो यह है कि उनके बजट में कोई रकम बढ़ाये बिना ही उनको पूरे कपड़े दिये जा सकेंगे।

मुजफ्फरगढ़ में आर्यसमाजियों का एक अनाथाश्रम है और इसी जिले के एक गांव में गुरुकुल भी है। इन दोनों संस्थाओं को हमारी खादी एजन्सी उनकी आवश्यकतानुसार खादी पहुंचाती है।"

इन सब संस्थाओं को मैं धन्यवाद देता हूं।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

सत्याग्रहाश्रम में राष्ट्रीय सप्ताह

सत्याग्रहाश्रम में राष्ट्रीय सप्ताह जिस कदर मनाया गया वह खास ध्यान देने योग्य है क्योंकि सब लोगों ने इस सप्ताह में वर्ष में सबसे अधिक कार्य और प्रार्थना करने के लिए अनुपम उत्साह के साथ बड़ा प्रयत्न किया था। उसके पहले सप्ताह में ही इस सप्ताह को उत्तम प्रकार से कैसे मनाया जाय इसका विचार कर लिया गया था। यह निर्णय हुआ था कि आश्रम का रोजाना नियमित कार्य बराबर चलते रहना चाहिए, सुबह शाम की साधारण प्रार्थना और शाला के लड़कों की विशेष प्रार्थना मामूली तौर पर होती रहनी चाहिए। ६ और १३ तारीख को सबको उपवास करना चाहिए और सबको (सिवा लड़कों के कि जिनको छुट्टी दी गई थी) अपना अपना कार्य भी करना चाहिए और फिर भी विशेष प्रयत्न कर के इस सप्ताह को स्पष्ट राष्ट्रीय कार्य करना चाहिए। इस उद्देश को ध्यान में रख कर पांच मण्डलों ने अपने अपने विभाग में रात दिन, ६ अप्रैल को सुबह ४ बजे से १३ तारीख की शाम को ७ बजे तक चरखा चलाने का निश्चय किया। बाकी के लोग सब अपना अपना चरखा काते और ता. ६ की सुबह से १३ की शाम तक एक चरखा रात दिन चलावें।

परिणाम का पृथक्करण करने से मालूम होता है कि ईश्वर ने हमारे प्रयत्नों को अनुपम सफलता प्राप्त कराई है। चरखे और करघे एक क्षण भी रुके बिना और कुछ खराब हुए बिना दिन रात चलते रहे और जो लोग उस पर रात को कातते थे उनमें से कोई न बीमार ही हुआ है। एक दिन एक ११ साल के लड़के ने १४ घण्टे तक चरखा चलाया और जब शाम को अपना सूत दिखाया तब विशेष उत्साह फैल गया था। उसने ४४४४ तार अर्थात ५९२५ गज सूत काता था। इससे दूसरों को भी उत्साह मिला और उसका परिणाम यह हुआ कि इस सूची में दूसरे पांच कातनेवाले भी शामिल हो गये। इनमें जिसे सबसे अधिक सफलता मिली उसने ९११९ तार काते थे अर्थात १७ अंक का १२००० गज सूत काता था और उसके लिए उसने २२ घण्टे ३० मिनट चरखा चलाया था।

लेकिन वह लड़का जिसने पहले पहल बड़ी सफलता प्राप्त की थी इस तरह हारनेवाला न था। उसने आखिरी दिन को ७०८० तार काते और इस तरह इस सप्ताह के अधिकाधिक काते गये सूत के अंकों में वह सबसे प्रथम रहा। उसने कुल १७,२४४ तार अर्थात २२,९९२ गज सूत काता था, अर्थात प्रति-दिन ३००० गज की औसत हुई।

यद्यपि मैंने ऊपर यह कहा है कि लड़कों को छुट्टी थी परन्तु वह छुट्टी वहीं तक थी जहां तक कि उसका सम्बन्ध शाला से था। काम के लिहाज से कोई छुट्टी नहीं थी। उस समय जब कि वे कातते नहीं थे उन्हें सारा ही समय रुई साफ करने में और पूनियां बनाने में लगाना होता था और वे बार बार दूसरे बड़े कातनेवाले जैसे कातते थे।

लेकिन अब उसके पृथक्करण की तरफ फिर ध्यान दें। तुलना के लिए इस सप्ताह के अंकों को दूसरे साधारण सप्ताह के अंकों के साथ देता हूं।

	साधारण सप्ताह		विशेष सप्ताह	
	तार	औसत	तार	औसत
पुरुष	१,०२,०४२	२८१	१,८७,४५७	४८०
स्त्रियाँ	५४,१८८	१९५	१,५१,११४	६१८
शाला				
लड़के	५०,६०२	२६४	२,३७,२१०	१०८७
बच्चे	११,१०२	१६०	३५,७०४	३४९
कुल	२,१८,०३४		६,११,४८५	
साधारण औसत				
प्रति मनुष्य		२७१		६४४

आखिरी दिन की कताई के अंक ये हैं:

	तार	औसत	
पुरुष	४४,४९३	८४०	उस दिन का कुल
स्त्रियें	२७,४८८	८८७	१,४३,८९८
शाला			
लड़के	६५,४८५	३३३९	औसत प्रति मनुष्य
बच्चे	६,४३२	५८५	१,१७० तार

करघे पर रात दिन काम करने का परिणाम नीचे दिया गया है। पांच ही पुरुष बारी बारी से उस पर बैठते थे।

काम के कुल घण्टे १८०

कुल मनुष्य ४०

कुल उत्पन्न ११० गज, २१" का अरज

ऊपर जिन अंकों का पृथक्करण किया गया है उनमें से मैं अब कुछ दिलचस्पी बढ़ानेवाले अंक देता हूं।

सप्ताह भर के सब से अधिक कताई के अंक

		तार
पुरुषों में	केशू	१७,१३५
स्त्रियों में	श्री. कृष्णामैया	१०,२००
शाला के लड़कों में	कान्ति	१७,२४४
,, बच्चों में	आनन्दी	७,२८१

आश्रम के सब से अधिक वृद्ध सदस्यों ने अर्थात गांधीजी और कस्तूरबा ने अनुक्रम से कुल ३,८०९ और ४,०२६ तार काते हैं और सब से छोटे सदस्य ने अर्थात सब से अधिक वृद्ध सदस्य की पोती ने ४,३२३ तार काते हैं।

५७ पुरुषों में ३ पुरुषों ने कुल १०००० से अधिक तार काते हैं और तीन पुरुषों ने ५००० से अधिक तार काते हैं। और ३२ स्त्रियों में एक स्त्री ने १०००० से अधिक और ११ स्त्रियों ने ५००० से अधिक तार काते और २९ शाला के लड़कों में ८ लड़कों ने १०००० से अधिक और १४ लड़कों ने ५००० से अधिक तार काते है।

व्यक्तिशः सब से अधिक कताई

	तार	काम के घण्टे
केशू	९११९	२२½
कृष्णा	७,२८१	२२½
सेमा	७,२२५	२१
कान्ति	७८००	२०
केशवलाल	५,१००	१८
नवीन	४,४००	१६

कुल १३३ आश्रमवासियों, में १८ मनुष्यों ने (उपरोक्त ६ कातनेवालों के अलावा) रोजाना दो से तीन हजार तार के हिसाब से सूत काता था।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, द्वितीय चैत्र सुदी ३, संवत १९८२

पंडित नेहरु और खादी

'टाइम्स आफ इंडिया' की दृष्टि में पंडित मोतीलालजी कभी बड़े आदमी नहीं हुए। उनसे जो अभी अभी अपराध हुआ है वह यह है कि उन्होंने प्रयाग में खादी की फेरी की। कुछ साल पहले तो वे अपनी मोटर के बिना शायद ही दिखाई देते थे परन्तु लेखक की अपनी सुन्दर भाषा में 'भारत में भी इस बात का स्वीकार किया जाना चाहिए कि पण्डितजी स्वयं गधे बन रहे हैं'। यह चाहने योग्य है कि बहुतेरे नेता पण्डितजी का अनुकरण करें और 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने पण्डितजी को जो ऐसी विनय (?) से भरी हुई उपाधि दी है उसको प्राप्त करें। जिस समय विरोधियों के तरफ से आप मिल रहा हो उस समय तो साधारणतया आनंद ही मनाना चाहिए परन्तु यदि वे हमारी प्रशंसा करें तो हमें उनसे चेतते रहना चाहिए। ग्रीक लोग जब भेंट या पुरस्कार लाये तभी खास कर रोमन लोग उनसे डरने लगे थे।

महासभा, खादी और महासभा के सभासदों के प्रति अपना तिरस्कार प्रकाशित करने में टाइम्स का लेखक अपने आप कहीं आगे बढ़ गया है। पाठक स्वयं ही इसकी परीक्षा करें। लेखक लिखते हैं:—

महासभा का सम्पूर्ण नाश, महासभा के ध्येय की सम्पूर्ण निष्फलता और महासभा के समर्थकों में एक भी युक्तिपूर्ण राजनैतिक विचार का अभाव अलहाबाद से सम्पूर्ण उत्साह के साथ भेजे गये इस तार से साबित हो जाता है।

लेखक आगे चल कर कहते हैं:

'यदि ब्रिटिश जनता को यह समाचार मिले कि लार्ड बरकनहेड यूनियन जैक का जाकिट पहन कर ट्राफलगार स्क्वेर के सिंह के नीचे खड़े रह कर टोरी दल के नीले फीते या फूल बेच रहे हैं, श्री बाल्डविन पिकेडेली में ब्रिटिश खिलौने बेच कर साम्राज्य के उद्योग की उन्नति कर रहे हैं, श्री रेमसे मेकडोनल्ड मजदूर का जांघिया और मफलर पहन कर लाइमहाउस में कारीगरों को लाल झंडे दे रहे हैं और व्हाइटहाल के कम्यूनिस्टों ने व्हाइटहाल में उनके चिह्न हथौड़े और हंसियों को बेचने के लिए एक दूकान खोली है तो सब लोग इस पर से यही नतीजा निकालेंगे कि उनके नेता सब पागल हो गये हैं।'

इस तार से सहज ही यही अनुमान निकाला जा सकता है कि पण्डित मोतीलालजी और श्री रंगस्वामी आयंगर जैसे खादी की फेरी करनेवाले प्रसिद्ध पुरुष पागल हो गये हैं। लेखक ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह केवल अपमानकारक ही नहीं है परन्तु धोखा देनेवाला भी है। खादी में और ब्रिटिश टोरी के टोरी-दल के फीते बेचने में तुलना ही कैसे सम्भव हो सकती है। चाहे ठीक हो या गलत हो, हमारी भारतीयों की दृष्टि में खादी, शिक्षित और अधिकारसम्पन्न वर्ग और जनसमुदाय में सच्चा सम्बन्ध कराने के लिए एक चिह्न है और उससे जनसमुदाय को जिसे ब्रिटिश सरकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चूसा जाता है उसको अधिकारसम्पन्न वर्ग, जिसके जरिये लाखों मूक किंतु मिहनत करनेवाले लोगों पर वे राज्य करते हैं बदले में कुछ थोड़ा लौटाया जा सकता है। क्योंकि नरम दल के राजनैतिक नेताओं ने खादी और उससे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातों का तिरस्कार करने का रिवाज डाला है इसीसे तो ऐसा अपमान सम्भव हो सका है। यह किसे याद नहीं है कि जब लड़ाई शुरू हुई जवान, बूढ़े, स्त्री पुरुष, बड़े छोटे, अर्थात जो लड़ाई के सैनिक नहीं हुए थे अथवा जिन्हें सैनिक नहीं बनाया जा सकता था उनसे जख्मी सैनिकों के लिए जो जुदे जुदे अस्पतालों में आये थे कपड़े सीने की आशा रक्खी गई थी और स्वयं ही उन सब लोगों ने कपड़े सीये भी थे? उस समय लोग इस छोटी सी सेवा करने के लिए आपस में स्पर्द्धा भी करते थे और जिसे सीना नहीं आता था उसे यदि उसका कोई पड़ौसी सीना सीखा देता तो वह उसका उपकार मानता था। ब्रिटिश प्रजा के ऊपर जो बड़ी भयंकर आफत आई थी उसके विचार से छोटे बड़े का सब ख्याल दूर कर दिया गया था। मैं बड़े साहस के साथ यह कह सकता हूं कि जो लोग साधारणतया सीने का या ऐसा ही दूसरा कोई काम नहीं करते हैं उनको यदि सीने का या ऐसे ही दूसरे सैकड़ों काम करना उस समय आवश्यक समझा जाता था और उसका देशभक्ति में शुमार होता था तो भारतीयों के लिए विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर के खादी पहनना और इस प्रकार कताई के उद्योग को जो अकेला ही ऐसा एक है कि जिसे भारत के लाखों करोड़ों लोग अपना सकते हैं प्राप्त करना हजार-गुना आवश्यक और देशभक्ति का कार्य हो सकता है।

अंगरेजी किताबों में हम यह पढ़ते हैं कि जब किसी हलचल को उसके विरोधी हंसी उड़ाते हैं तब यह कहा जा सकता है कि वह हलचल प्रगति कर रही है। और जब उससे उन विरोधियों का क्रोध भड़कता है तो यह कह सकते हैं उसका आशानुकूल परिणाम हो रहा है। यदि 'टाइम्स आफ इण्डिया' ब्रिटिश प्रजा की राय का प्रतिनिधि कहा जा सकता है तो यह स्पष्ट है कि उसका आशानुकूल परिणाम हुआ है।

उस लेख के लेखक पाठकों को इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि "प्रयाग की प्रजा को भारत के दूसरे विभागों के अनिस्बत महासभा के कफन के कपड़ों की कोई अधिक आवश्यकता नहीं है।" खादी को उन्होंने यह नाम दिया है। यदि यह ठीक है तो खादी के प्रति जो तिरस्कार दिखाया गया है उसे समझना बड़ा ही मुश्किल है। परन्तु महासभा के नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे यह सिद्ध कर दिखावें कि खादी महासभा का कफन का कपड़ा नहीं है परन्तु महासभा को जनसमुदाय के साथ जोड़ने के लिए वह एक दृढ़ सांकल है और इसलिए पहले के अनिस्बत वह अब लोगों की अधिक प्रतिनिधि सभा बनाती है।

परन्तु यूरोपियनों को न्याय करने के लिए मुझे यह कहना चाहिए कि खादी के प्रति जहर उगलने में 'टाइम्स आफ इण्डिया' का लेखक सामान्य यूरोपियन जनता का प्रतिनिधि नहीं है। मैं भारत में ऐसे कुछ यूरोपियनों को जानता हूं कि जो खादी के सन्देश के प्रति श्रद्धा रखते हैं और कुछ तो स्वयं उसका उपयोग भी करते हैं। उसका सन्देश तो यूरोप भी पहुंचा है। खद्दर के सम्बन्ध में पोलेण्ड जैसे दूर देश से एक प्रोफेसर का यह पत्र आया है:

"आप के ख्याल में क्या यह अच्छी बात न होगी कि यूरोप में भारत के मित्रों को भारतीय कपड़ा बेचने का प्रयत्न किया जाय? यदि आप मुझे कुछ हिन्दुस्तान का कपड़ा अंगरेजी सिक्कों में उस पर उसकी कीमत लिख कर भेजेंगे और कपड़े

भेजने के लिए कोई अंगरेजी पता लिख भेजेंगे तो मैं कुछ थोड़ा बहुत प्रयत्न करूंगा। मेरे ख्याल से यद्यपि बिक्री की कोई बड़ी रकम न होगी फिर भी प्रचार के लिए यह बड़ा उपयोगी कार्य होगा। मुझे आशा है कि पोलेण्ड में भी बहुत लोग ऐसे होंगे जो आप के कार्य के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाने के लिए भारतीय कपड़ा पहनने में अभिमान लेंगे और वे बड़े खुशी होंगे। भारत की मुक्ति के लिए संसार की सहानुभूति प्राप्त करने का शायद यह सब से अच्छा उपाय है। मैं स्वयं कातने का भार आसानी से नहीं उठा सकता हूं परन्तु भारतीय कपड़ा, वह अधिक खर्चीला हो तो भी, मैं घर घर जा कर उसकी बिक्री बढ़ाने का कार्यभार अवश्य उठा सकता हूं।"

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

विविध प्रश्न

[गांधीजी की डाक से निम्न लिखित प्रश्न लिये गये हैं प्रश्नों का केवल सार ही दिया गया है। उत्तर गांधीजी के शब्दों में है। म० ह० दे०]

श्राद्ध और मुक्ति

श्राद्ध के सम्बन्ध में आपका क्या अभिप्राय है? श्राद्ध करने से क्या सद्गति होती है? मृत्यु हो जाने के बाद अस्थि किसी तीर्थस्थान में ले जाते हैं; उसका क्या रहस्य होगा? सगर राजा के पुत्रों का भगीरथ ने गंगाजल से उद्धार किया था इसका क्या रहस्य? अजामिल अपने पुत्र का नाम रटते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ था, अर्थात अपने पुत्र के प्रति ममत्व रखने पर भी केवल पुत्र का अकस्मात एक नारायण नाम रखने से ही क्या तिर जा सकते हैं?

उ० श्राद्ध के सम्बन्ध में मैं उदासीन हूं। उसकी कुछ आध्यात्मिक उपयोगिता हो तो भी उसे मैं नहीं जानता। श्राद्ध से मृत मनुष्य की सद्गति होती है यह भी मेरी समझ में नहीं आता है। मृत देह के अस्थि गंगाजी में ले जा कर डालने से एक प्रकार के धार्मिक भावों की वृद्धि होती होगी, इसके अलावा उससे कोई दूसरा लाभ होता हो तो वह मैं नहीं जानता हूं।

मेरा अभिप्राय तो यह है कि सगर राजा की बात एक रूपक है, ऐतिहासिक नहीं। नारायण नाम के उच्चारण के सम्बन्ध में जो बात कही जाती है वह केवल श्रद्धा बढ़ाने के लिए है। मैं इस बात का स्वीकार नहीं कर सकता हूं कि उस मन्त्रोच्चार का अर्थ समझे बिना ही जो मनुष्य अपने पुत्र का नाम नारायण होने के कारण मृत्यु के समय उसका उच्चारण करता है उसे भी मुक्ति मिल जाती है। परन्तु जिसके हृदय में नारायण का वास है और इसलिए जो मनुष्य उस मन्त्र को रटता है उसे मोक्ष अवश्य ही प्राप्त होता है।

विवाहित स्त्रीपुरुषों का धर्म

एक भाई विवाहित स्त्री-पुरुषों के अनियन्त्रित असंयम के प्रति इशारा करते हैं और कुछ लोगों के इस भ्रम को कि जो उसे एक अधिकार मानते हैं या कर्तव्य मानते हैं दूर करने के लिए लिखते हैं। क्या ऋतुस्नान के बाद चौथे दिन गर्भाधान करना आवश्यक है?

उ० जो दम्पति, जैसा कि आप लिखते हैं वैसे ही विषयासक्त हो कर रहते हैं वे स्त्रीपुरुष के धर्म का पालन नहीं करते हैं, वे पशु से भी बदतर हैं, और यह कहने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होता है। बारह तेरह वर्ष की लड़की स्त्रीधर्म का पालन करने में असमर्थ है। उसके साथ विषय-व्यवहार रखनेवाला बड़ा भारी पाप-कर्म करता है।

रजस्वला स्त्री के सम्बन्ध में आप जो बातें लिखते हैं उसे तो मैं जानता ही न था। चार दिन हो जाने पर पुरुष को उसके साथ रहना ही चाहिए ऐसे धर्म का होना मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूं। जब तक स्राव जारी रहता है तब तक उसको उसके पति का स्पर्श त्याज्य मानता हूं। स्राव बंद हो जाने पर दोनों को यदि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो और इसलिए वे संयोग करें तो मैं उसे दोष न मानूंगा।

रजस्वला और प्रसूता

रजस्वला धर्म के पालन करने के क्या मानी हैं? उसका पालन न हो तो क्या हो? प्रसूता को भी क्यों अस्पृश्य रहना चाहिए और कब तक रहना चाहिए?

ऋतुप्राप्ति यह स्त्रियों के लिए मासिक व्याधि है। ऐसे समय रोगी को शान्ति की बड़ी आवश्यकता होती है और कामी पुरुष का संग होना तो उसके लिए बड़ी ही भयंकर बात है।

प्रसूता के सम्बन्ध में भी यही कारण होता है। उसे कम से कम २० दिन का आराम दिया जाता है। इस रिवाज को मैं बड़ा अच्छा रिवाज मानता हूं। सम्बन्धी स्त्री वर्ग में भी कोई उसका स्पर्श नहीं करती है यह अतिशयता है।

शिक्षक के प्रश्न

१. उत्तम शिक्षा किस तरह दी जाय? २. परमश्रेय करने के लिए क्या पढ़ना चाहिए? ३. उत्तम भोजन क्या हो सकता है? ४. चाय पीने से सर में दर्द होता था, इससे चाय छोड़ दी और एक ही मरतबा भोजन करना आरंभ किया। शाम को भूख लगती है फिर भी सुबह को पेट भरा मालूम होता है; इसकी क्या वजह? ५. चित्त को एकाग्र करने के मार्ग क्या है? ६. आपको ही आन्तरिक सन्देश प्राप्त नहीं हुआ है तो फिर मेरे जैसों को यह कैसे मिल सकेगा? ७. परमात्मा का दर्शन करने का उपाय क्या है? ८. प्रवृत्ति से क्या शान्ति प्राप्त हो सकती है?

उ० १. विद्यार्थियों के साथ तन्मय हो कर ही उन्हें उत्तम शिक्षा दी जा सकती है। इसके लिए शिक्षक को जो विषय सिखाना हो उसकी पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए।

२. गीताजी और रामायण यदि विचार के साथ पढ़े जायं तो उससे सब कुछ प्राप्त हो सकेगा।

३. गेहूं, दूध और हरीयाली की खुराक ही खास कर काफी होगी। तेल और मसालों का त्याग करना आवश्यक है।

४. शाम को यदि भूख लगती है तो थोड़ा सा दूध पीओ और वह भी यदि कुछ भारी मालूम हो तो संतरा, द्राक्ष या ऐसा ही कुछ हरा फल खाओ। सुबह शाम खुली हुई हवा में उत्साह-पूर्वक यथाशक्ति घूमना चाहिए।

५. हृदय को पवित्र रखने के लिए और एकाग्र बनने के लिए उपरोक्त पुस्तकों का पठन और मनन करना और जब कभी कोई शुभ-कार्य में न लगे हों उस समय रामनाम का रटना बहुत कुछ मदद करता है।

६. हमें तो प्रयत्न ही करते रहना चाहिए और इस बात की श्रद्धा रखनी चाहिए कि प्रयत्न का फल कभी भी प्राप्त हुए बिना नहीं रहता है।

७. रागद्वेषादि का सर्वांश में क्षय हो जाना ही आत्मदर्शन का एक मात्र उपाय है।

८. शुभ प्रवृत्ति करने से परम शान्ति अवश्य ही प्राप्त की जा सकती है। (नवजीवन)

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १९

असत्य का ज़हर

चालीस साल पहले आज के बनिस्बत बहुत ही थोड़े लोग विलायत जाते थे। उनमें यह रवाज पड़ गया था कि वे विवाहित होने पर भी अपने को अविवाहितों में ही गिनाते थे। उस देश में शाला या कालेज में पढ़नेवाला कोई भी लड़का विवाहित नहीं होता। विवाहित को विद्यार्थीजीवन ही नहीं हो सकता है। हम लोगों में पहले तो विद्यार्थी ब्रह्मचारी ही कहलाता था। इस ज़माने में ही बालविवाह का रवाज पड़ा है। विलायत में, यह कहा जा सकता है कि बालविवाह जैसी कोई चीज ही नहीं है। इससे हिन्दुस्तानी युवकों को अपना विवाहित होना स्वीकार करने में शरम मालूम होती है। विवाह की बात छिपाने का दूसरा कारण यह है कि उससे जिस कुटुम्ब में वे रहते हों उस कुटुम्ब की युवा लड़कियों के साथ घूमना फिरना और खेल करना प्राप्त नहीं हो सकता है। यह खेल बहुधा निर्दोष होता है। मातापिता ऐसी मित्रता पसंद भी करते हैं। युवकों और युवतियों में ऐसे सहवास की वहां आवश्यकता भी मालूम होती है क्योंकि वहां के प्रत्येक युवक को अपनी सहधर्मचारिणी आप ही ढूंढ लेनी होती है। अर्थात जो संबंध विलायत में स्वाभाविक गिना जा सकता है वह सम्बन्ध यदि हिन्दुस्तान के युवकगण वहां जाते ही जोड़ना आरंभ कर दे तो उसका परिणाम भयंकर ही होगा। ऐसे भयंकर परिणाम आये हुए कितनी ही मरतबा सुने हैं। फिर भी इस मोहिनी माया में हमारे युवक फंस गये थे। अंगरेजों के लिए वह चाहे जैसी निर्दोष क्यों न हो, परन्तु हमारे लिए तो वह त्याज्य थी और ऐसी ही सोबत-मैत्री के लिए उन्होंने असत्याचरण को पसंद किया। मैं भी इस जाल में फंसा था। मुझे विवाहित हुए पांच छः साल हो गये थे और एक लड़के का मैं पिता था, फिर भी मुझे अपने को अविवाहित बताने में ज़रा भी हिचकिचाहट न हुई। इस प्रकार अपने को अविवाहित बताने का स्वाद तो मैंने बहुत ही थोड़ा चक्खा था। मेरे लज्जाशील स्वभाव और मेरे मौन ने मेरी बड़ी रक्षा की। यदि मैं ही बातचीत न कर सकूं तो फिर मेरे साथ बातचीत करने की किस लड़की को फुरसत होगी? मेरे साथ घूमने के लिए भी शायद ही कोई लड़की तैयार होती थी।

जैसा मैं लज्जाशील था वैसा ही मैं भीरु भी था। वेंटनर में जिस घर में मैं रहता था वैसे घरों में विवेक के लिए भी घर की लड़कियां मेरे जैसे मुसाफिरों को घूमने के लिए ले जाती थीं। इस विवेक के कारण इस घर की मालकिन की लड़की मुझे वेंटनर के चारों ओर छाई हुई सुन्दर पहाड़ियों पर लिवा ले गई। मेरी चाल कोई धीमी न थी परन्तु लड़की चाल तो मुझसे भी तेज थी इसलिए मैं तो उसके पीछे पीछे घसीटाता हुआ चला जाता था। वह तो रास्ते भर बातें करती जाती थी और मेरे मुंह से तो केवल कभी 'हां' का तो कभी 'ना' का ही सुर निकलता था। यदि कुछ अधिक बोलता तो "कैसा सुन्दर है" यही शब्द निकलते थे। वह तो हवा में उड़ती चलती थी। और मैं कब घर पहुंचूं इसी का विचार करता था। फिर भी 'चलो अब लौटें' यह कहने तक की मेरी हिम्मत न होती थी। इतने ही में हमलोग एक टीले के ऊपर पहुंच गये। लेकिन अब उसपर से उतरें कैसे? ऊंची एड़ी के जूते होने पर भी यह बीस पचीस साल की रमणी बिजली की तरह नीचे उतर गई। परन्तु मैं तो अभी शरमिंदा हो कर उस पर से नीचे कैसे उतरा जाय इसी का विचार कर रहा था। वह नीचे खड़ी खड़ी हंसती थी, मुझे हिम्मत दे रही थी। ऊपर आ कर मुझे हाथ पकड़ कर घसीट ले जाने को भी कह रही थी। लेकिन मैं ऐसा दुर्बल क्यों बनूं? बड़ी मुश्किल से पैर घसीटते हुए और बैठते बैठते मैं नीचे आया। और उसने मज़ाक में 'शाबाश' कह कर मुझे शरमिंदे को और भी अधिक शरमाया। इस प्रकार मेरा मज़ाक उड़ाने का उसे अधिकार था।

लेकिन सब जगह इस प्रकार मैं कैसे रक्षा पा सकता था? ईश्वर की इच्छा थी कि असत्य के ज़हर से मैं रक्षा पाऊं। जैसा वेंटनर है वैसा ही ब्राइटन भी समुद्र किनारे हवा खाने का एक स्थल है। एक मरतबा मैं वहां गया था। जिस होटल में जा कर ठहरा था वहां एक विधवा और साधारण धनिक वृद्धा भी घूमने के लिए आई थी। यह मेरे विलायत के प्रथम वर्ष की बात है — वेंटनर के पहले की। यहां होटल में मिलने-वाली चीजों की सूची में सब नाम फ्रेंच भाषा में लिखे हुए थे। उसे मैं समझ नहीं सकता था। जिस मेज पर वह वृद्धा बैठी हुई थी उसी पर मैं भी बैठा था। वृद्धा ने देखा कि मैं अजनबी हूं और कुछ घबड़ाया हुआ भी हूं। उसने मुझसे बात करना आरम्भ किया। "आप अनजान मालूम होते हो, और कुछ घबड़ाये हुए भी हो। आपने अभी तक कोई खाना क्यों नहीं मंगाया है?" मैं वह सूचि पढ़ रहा था और परोसनेवाले से पूछने ही को था कि उस भली औरत ने यह कहा। मैंने उसका उपकार माना और कहा "मैं इस सूची में कुछ भी नहीं समझता हूं और निरामिषाहारी होने के कारण मुझे यह मालूम करना चाहिए कि इसमें निर्दोष वस्तुयें क्या हैं?"

उस वृद्धा ने कहा: "यदि आप मेरी सहायता का स्वीकार करेंगे तो मैं आपकी मदद करूंगी; यह सूची मैं आपको समझाऊंगी और यह भी बता सकूंगी कि कौनसी चीजें आप खा सकेंगे।"

मैंने आभार सहित उसकी सहायता स्वीकार की। यहां से हमलोगों में नया सम्बन्ध हुआ और वह जबतक मैं विलायत में रहा तबतक और उसके बाद भी बरसों तक बना रहा। उसने मुझे लण्डन का अपना पता दिया और प्रति रविवार को मुझे अपने यहां खाना खाने के लिए आने का भी निमन्त्रण दिया। अपने यहां दूसरे प्रसंगों पर भी वह मुझे बुलाती थी। काम-फुसला कर मेरी शरम दूर करती थी और युवा स्त्रियों से मेरा परिचय कराती थी और उनसे बातचीत करने के लिए ललचाती थी। एक युवती तो उसीके यहां रहती थी। वह उसके साथ मेरी खूब बातें कराती थी। कभी कभी हमें अकेले भी छोड़ देती थी।

प्रथम तो मुझे यह बड़ा कठिन मालूम हुआ। बातें कैसे करूं यही सूझ न पड़ता था। और मैं विनोद भी क्या करता। परन्तु वह युवती मुझे कुशल बना रही थी? मैं कुछ कुशल हुआ भी। प्रत्येक रविवार की राह देखता था और अब उस युवती के साथ बातचीत करना भी मुझे अच्छा मालूम होने लगा था।

वृद्धा भी मुझे लुभा रही थी। उसे हमारे इस सहवास से बड़ी दिलचस्पी थी। उसने तो हम दोनों का भला ही चाहा होगा।

मैंने सोचा "अब मैं क्या करूं? यदि मैंने इस वृद्धा को अपने विवाहित होने की बात कह दी होती तो क्या अच्छा होता? तो फिर वह क्या यह चाहती कि मेरी किसी से शादी हो जाय? लेकिन अब भी विलम्ब नहीं हुआ है। यदि मैं सच कह दूंगा तो अब भी अधिक बड़े संकट से रक्षा पा जाऊंगा।" यह सोच कर

मैंने उसे एक पत्र लिखा। जैसा कुछ भी मुझे स्मरण है मैं उसका सार यहां देता हूं।

"हमलोग, ब्राइटन में मिले तब से आप मुझ पर प्रेम रखती हैं। जिस प्रकार माता अपने बच्चे की फीक्र करती है उसी प्रकार आप मेरी फीक्र करती है; आपका तो यह भी ख्याल है कि मुझे शादी करना चाहिए और इसलिए आप युवतियों के साथ मेरा परिचय कराती है। ऐसा सम्बन्ध बहुत आगे न बढ़ जाय उसके पहले मुझे आपको यह कह देना चाहिए कि मैं आपके इस प्रेम के लायक नहीं हूं। जब मैंने आपके घर आना शुरू किया तभी मुझे यह कह देना चाहिए था कि मैं विवाहित हूं। मैं यह जानता हूं कि हिन्दुस्तान के विद्यार्थी विवाहित होने पर भी अपने विवाह की बात प्रकाशित नहीं करते हैं और मैंने भी इसी रिवाज का अनुकरण किया था। लेकिन अब मैं यह समझ सका हूं कि मुझे अपने विवाह की बात जरा भी न छिपानी चाहिए थी। मुझे तो विशेष में यह भी कह देना चाहिए कि मेरे एक लड़का भी है और बचपन में ही मेरी शादी हो गई थी। इस बात को मैंने आप से छिपाई इसलिए मुझे बड़ा दुःख होता है। सत्य बात कहने की अब ईश्वर ने मुझे हिम्मत दी है इसलिए मुझे बड़ा आनन्द होता है। क्या आप मुझे क्षमा करेंगी? जिस बहन के साथ आपने मेरा परिचय कराया है उसके साथ मैंने कोई अनुचित स्वतंत्रता नहीं ली है इसका मैं आपको यकीन दिलाता हूं। मुझे इस बात का सम्पूर्ण ज्ञान है कि मैं ऐसी कोई स्वतंत्रता नहीं ले सकता हूं। लेकिन आपकी इच्छा तो मुझे किसी के साथ सम्बन्ध जोड़े हुए देखने की हो सकती है। आपके दिल में यह बात आगे न बढ़े इस कारण से भी मुझे आप के सामने सत्य बात प्रकाशित करनी चाहिए?

इस पत्र के मिलने के बाद यदि आप मुझे अपने यहां आने के योग्य न समझेंगी तो उससे मुझे जरा भी बुरा न मालूम होगा। आप के प्रेम के लिए मैं आपका सदा का ऋणी बना हुआ हूं। मैं इस बात का स्वीकार करता हूं कि यदि आप मेरा त्याग न करेंगी तो मैं बड़ा खुश हूंगा। यदि आप मुझे अब भी अपने यहां आने के योग्य समझेंगी तो मैं उसे आपके प्रेम का एक नया चिह्न ही समझूंगा और उस प्रेम के योग्य बनने का प्रयत्न करूंगा।" इस मतलब का पत्र मैंने लिखा था।

पाठक यह समझ सकते हैं कि मैंने ऐसा पत्र कोई एक क्षण में ही न लिखा होगा। क्या मालूम कितने मसविदे तैयार किये होंगे। परन्तु ऐसा पत्र लिख कर मैंने अपने पर से एक बड़ा भारी बोझ दूर किया था।

लौटती ही डाक से उस विधवा मित्र का उत्तर मिला। उसने उसमें लिखा था:

"आपका साफ दिल से लिखा हुआ पत्र मिला। उसे देख कर हम दोनो को बड़ी खुशी हुई और हंसी भी आई। आपके जैसा असत्य तो क्षन्तव्य ही हो सकता है। परन्तु यह अच्छा ही हुआ कि आपने सत्य बात जाहिर कर दी। मेरा निमन्त्रण तो कायम ही रहेगा। आगामी रविवार को हमलोग आप की राह देखेंगे और आपके बालविवाह की बातों को सुनेंगे और आपकी हंसी उड़ाने का आनन्द भी प्राप्त करेंगे। यह निश्चय जानिये कि आपकी और हमारी मित्रता तो वैसी ही बनी रहेगी।"

इस प्रकार मुझ में जो असत्य का जहर दाखिल हो गया था उसे मैंने दूर कर दिया और उसके बाद मेरे विवाह इत्यादि की बातें करने में मुझे कहीं भी संकोच नहीं हुआ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

सिर्फ एक राजकीय कार्यक्रम

अहमदाबाद में राष्ट्रीय सप्ताह के निमित श्री राजगोपालाचार्य ने ६ अप्रेल को तिलक मैदान में जो व्याख्यान दिया था उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है:

"मैं यह जानता हूं कि आजकल सभाओं के प्रति लोगों को अरुचि हो गई है इसलिए यदि मेरे कुछ मित्रों के सिवा और कोई भी न आता तो भी मुझे उससे असन्तोष न होता, परन्तु यहां इतने बड़े मजमें को देख कर मुझे बड़ा आनन्द होता है। और कुछ नहीं तो अभी आप लोग तो ऐसे है कि जो हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने से उकता गये हैं और कुछ काम करना चाहते है।

यह महापर्व

सात वर्ष के पहले इसी दिन को जो विराट सभा आपके यहां और देश के दूसरे स्थलों में हुई थी उसका आपको कुछ स्मरण है? मैं तो उस समय मद्रास में था। हमारे यहां शहर में ऐसी कोई जगह न थी कहां इतनी बड़ी सभा हो सके। मीलों तक फैले हुए समुद्र किनारे को ही हमने उस समय हमारा सभास्थल बनाया था और वहां लाख डेढ़-लाख मनुष्य एकत्रित हुए थे। क्या आप यह जानते हैं कि देश के चारों कोनों में, सब स्थानों में इतने लोग उपवास और प्रार्थना कर के क्यों एकत्रित हुए थे? उस दिन राष्ट्रीय जागृति के उदय का उत्सव हो रहा था — वह जागृति अनेक वर्षों के बाद हमलोगों में पहली ही मरतबा उदय हुई और वह यह कि हमलोग पराधीन राष्ट्र के लोग होने पर भी हम पर राज्य करनेवाली बलवान् शक्ति के विरुद्ध भी हम लड़ सकते हैं। उसके पहले तो हम यही मानते थे कि केवल फौज और फौज में ही लड़ाई हो सकती है लेकिन उस दिन हमलोगों ने इस बात का अनुभव किया कि एक शक्तिशाली सरकार के खिलाफ भी हमलोग बिल्कुल निःशस्त्र होने पर भी लड़ सकते हैं। देश के लिए वह एक महापर्व था। यही नहीं वह सारे संसार के लिए भी एक महापर्व था। क्योंकि उस दिन संसार के कुचल डाले गये सभी लोगों ने, जातियों ने यह देखा कि दारुगोला और फौज न हो तो भी सत्य और अहिंसा के अमोघ शस्त्रों से जालिम के साथ लड़ा जा सकता है। इसलिए ६ अप्रेल का दिन उत्सव मनाने योग्य एक महापर्व है। संभव है किसी प्रजा को एक शस्त्र प्राप्त हो परन्तु वह उसका उपयोग ही न कर सके और उससे अधिक भाग्यशाली राष्ट्र उसका उपयोग करे। इस ६ अप्रेल के शुभ दिन को हमने सारे संसार को एक नया शस्त्र ढूंढ कर दिया, जिसका कि वह आवश्यकता होने पर उपयोग कर सकता है। यदि पाश्चात्य लोगों को उस दिन का पता चले कि जिस दिन दारुगोलों का शोध हुआ तो वे उसको एक महापर्व समझ कर ही उसका उत्सव मनावेंगे। ६ अप्रेल को हमें हमारा दारुगोला प्राप्त हुआ था। लेकिन यह दिन हमारे लिए केवल दारुगोले का ही दिन नहीं है, वह तो एक पवित्र पर्व है क्योंकि उस दिन हमने हमारे आत्मा की शक्ति का नाप निकाला था और इसीलिए तो गांधीजी ६ अप्रेल को हमें एकत्रित होने के लिए कहते हैं।

पहले हमारी स्थिति ऐसी थी कि हमें अपनी हालत के बारे में कोई ज्ञान न था। हमलोगों में कितनी शक्ति भरी हुई है उसका भी हमें कुछ ख्याल न था। उसी दिन हम लोग यह जान सके थे कि हमलोग मर्द हैं, हमलोगों में भी अपार शक्ति है। हमारी इच्छा के बिना हम पर राज्य करने की किसी में

भी शक्ति नहीं। यदि ज्ञान एक शक्ति है और यह वचन सत्य है तो सचमुच ही ६ अप्रेल के दिन हमलोग हमेशा के लिए मुक्त हो गये। हमारे ज्ञान का हम उपयोग नहीं कर सकते हैं इसलिए अथवा उसका उपयोग करने की इच्छा नहीं है इसलिए हमें मुक्ति का साक्षात्कार नहीं होता है।

एक ही कार्यक्रम

जिस पवित्र दिन को खादी और स्वराज की नींव डाली गई उस दिन को मनाने के लिए आज हम विदेशी कपड़े पहन कर इकट्ठे हुए हैं— उसी तरह जिस तरह कि निरामिष भोजन के समर्थक यदि मांस भोजन के द्वारा अपने सिद्धान्तों का उत्सव मनावें अथवा जैसे मद्यनिषेध की सभा का उत्सव शराब बांट कर मनाया जाय! हमलोग ऐसे दिन को यहां इकट्ठे हुए हैं कि जिसकी कल्पना गांधीजी की महान् कल्पनाशक्ति के द्वारा हुई है। इस दिन का यही रहस्य है कि हम अपने स्वदेशी पोशाक को ही पहने हुए हों। हमारे उद्धार की प्रथम सीढ़ी यही है। यदि इस पर अच्छी तरह अमल किया जाय तो यही अन्तिम सीढ़ी भी हो सकती है। लेकिन इस युद्ध को सात वर्ष हुए फिर भी दुःख की बात यह है कि लोग अभी यही नहीं समझ सके हैं कि अकेला एक सम्पूर्ण राजनैतिक कार्यक्रम एक खादी ही है। सरकार को अर्जियां करनी, धारासभा में जा कर व्याख्यान देने, सभायें या महाविद्यालय की पढ़ाई और अखबारों में लेख लिखना कोई कार्यक्रम नहीं है। देश के समक्ष एक खादी ही सम्पूर्ण राजनैतिक कार्यक्रम है। और जो खादी नहीं पहनते हैं वे देश के इस एक ही राजनैतिक कार्यक्रम में सहाय नहीं पहुंचाते हैं, यही नहीं, वे उसके विरोधी भी हैं।

सरकार का अड्डा क्यों कायम है?

आप लोग तो एक बड़े शहर में रहते हैं। आपको यह ख्याल नहीं हो सकता कि हमारे देश में कितना दारिद्र्य है। इस देश में हजारों और लाखों ऐसे गांव हैं जहां मनुष्य को मुश्किल से २॥) मासिक मिलते होंगे। यदि हम उनकी बनाई हुई कुछ गज खादी लेने से भी इन्कार करें तो उनके लिए सहानुभूति के आंसू बहाने का कुछ भी अर्थ नहीं। वे यह खादी इसलिए बनाते हैं कि उसे हम खरीद लें और इस बहाने उन्हें दो पैसे की रोजी दें। खादी अर्थात्, गरीबों की भूख और बेकारी की दवा है और हिन्दुस्तान के स्वराज की चाबी है। आज ब्रिटन हिन्दुस्तान पर अधिकार किये हुए है क्यों कि लेन्केशायर के माल के लिए हिन्दुस्तान ही सब से बड़ा बाजार है। नहीं तो यहां क्या धरा है? यहां हम वहां से आनेवाले कोई कलेक्टर, कमीश्नर, गवर्नर और वायसराय की राह देखते हुए तो नहीं बैठे हैं न? यहां कुछ गरमी भी कम नहीं है। फिर भी वे यहां क्यों चले आते हैं? क्या वे बड़ी बड़ी तनख्वाह का लालच से यहां आते हैं? नहीं, वे तो उनका जो यह बड़ा बाजार है उसे अधिक दृढ़ करने के लिए और उसे कायम रखने के लिए ही आते हैं। उन्होंने अपने देश में बड़े बड़े राक्षस-यंत्र खड़े किये हैं। उन्हें दिनप्रतिदिन भक्ष दे कर खड़े रखने चाहिए। हम लोग विदेशी कपड़े लेकर उस यंत्र-राक्षसों की भूख को सतेज कर रहे हैं और उसका पंजा मजबूत कर रहे हैं। इन लोगों की हालत का, जिन्होंने कि इन सवभक्षी राक्षसों को स्थापित किया है हमें जरा भी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। यदि मान लो कि हमलोग भी वैसे ही बेवकूफ होते और भारतवर्ष के तमाम शहरों में ३० करोड़ मनुष्यों को रोजी देने के लिए ऐसे ही राक्षस खड़े करते तो मैं आपको इस बात का विश्वास दिलाता हूं कि ये राक्षस इतने बड़े हो जाते कि उसके सामने सारी दुनिया ही बदनी हो जाती। उनके लिए बड़े बड़े नौका सैन्य, एरोप्लेन, झेपलीन, जहरी गैस इत्यादि बड़े बड़े साधन इकट्ठे करके हमें रोज नये नये देश जीतना आवश्यक होता। क्या आपको यह स्थिति भयंकर नहीं मालूम होती? नहीं, हमें तो खादी से ही सन्तोष मानना चाहिए। खादी से हम ३० करोड़ की भूख मिटा सकेंगे। हमें दूसरे देश जीतने की कोई आवश्यकता नहीं है हम तो शान्त स्वाभिमानी जीवन बिता कर अपना देश ही संभाल कर बैठें तो यही काफी है। और जब तक ३० करोड़ लोगों को हम प्रामाणिक बाइज्जत रोजी नहीं देते हैं यह शान्त जीवन संभव नहीं और चरखे के उद्योग का जब तक हम पुनरुद्धार न करेंगे तब तक हम उन्हें बेकारी और भूख से न बचा सकेंगे। केवल खेती से काम न चलेगा। गांधीजी ने कई मरतबा यह कहा है कि खेती और चरखा देश के दो फेफड़े हैं। आज हम एक फेफड़े से सांस लेकर जीते हैं। यह न मानना कि आप न कातेंगे तो चल जायगा। ग्रामवासियों को आप ही ने विदेशी कपड़ा पहनना सिखाया है। आज वह भूला कर उन्हें कातना और खादी पहनना भी आप ही को सिखाना होगा।

एक छोटा सा शस्त्र

आपको चरखा कठिन मालूम हो तो यह तकली तो है। प्रत्येक युवक और युवती इस शस्त्र का उपयोग सीख ले तो उसका कितना बड़ा असर होगा? मैं आपको इस बात का यकीन दिलाता हूं कि यदि अहमदाबाद के सभी मनुष्य हाथ में पिस्तौल ले कर निकल पड़ें तो उसका जितना असर होगा उससे भी अधिक इस शान्त निर्दोष शस्त्र का असर होगा। पिस्तौल का निशान तो चूक भी जा सकता है लेकिन तकली का निशाना चूक नहीं सकता। आप यह तो देख ही रहे हैं कि भाई महादेव देसाई कात रहे हैं। जैसा एक एक गज कतता जाता है वैसा ही एक एक गज तार लैंकेशायर से आना कम होता जाता है। हमारे सब युवक और युवतियां इसे अपना लें तो ब्रिटिश सरकार की उसकी अपनी स्थिति के सम्बन्ध में आंख खुल जायगी। आपको यह बात जादू सी मालूम होगी लेकिन मैं यह कहता हूं कि इसी जादू से ब्रिटिश लोग हिन्दुस्तान में आये थे और इसी जादू से वे यहां से चले भी जायंगे।

हि. मु. ऐक्य

यदि कलकत्ते का भयंकर समाचार न मिला होता तो हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के सम्बन्ध में भी कुछ बातें करता लेकिन अब वह निरर्थक है। हम तो पागल बनने का निश्चय किये बैठे हैं इसलिए अब बुद्धिमानी की बातें क्यों सुनेंगे? हिन्दू-लोग मानते हैं कि वे हिन्दू-राज्य की स्थापना कर सकेंगे और मुसल्मान मानते हैं कि वे मुस्लिम-राज्य की नींव डाल सकेंगे। लेकिन यह उनकी भूल है। अमरिकन गोरे लोग हबशियों को दूर नहीं कर सकते हैं तो हिन्दू-मुसल्मान को और मुसल्मान हिन्दू को कैसे दूर कर सकेंगे? शान्त सहकार और संप किये बिना हमारे लिए दूसरा एक भी उपाय नहीं है परन्तु बुद्धिमानी की बात सीखने की भी समय-मर्यादा ईश्वर ने निश्चित कर रखी होगी, उसके पहले हम उसे कैसे सीख सकेंगे? इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार लड़ते हुए हमलोग बुद्धिमान बनेंगे। बिना लड़े ही गांधीजी ने बुद्धिमान बनाने का प्रयत्न किया था लेकिन हमें तो बड़ा नुकसान उठाकर ही बुद्धिमान बनना है इसलिए हम यह क्यों समझेंगे? लेकिन आज यह सब सीखना और करना भले ही असम्भव हो, खादी अवश्य ही सम्भव है इसीलिए तो मैंने यह कहा है कि देश के सामने यही एक राजकीय कार्यक्रम है।

धार्मिक प्रश्न

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३४

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, द्वितीय चैत्र वदी १०, संवत् १९८५ ८ गुरुवार, अप्रैल, १९२९ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

जीवन में संगीत

अहमदाबाद राष्ट्रीय संगीत मण्डल का दूसरा वार्षिकोत्सव सत्याग्रहाश्रम के प्रार्थना स्थान पर गांधीजी के समक्ष हुआ था। उस समय गायनवादन इत्यादि के हो जाने के बाद गांधीजी ने प्रसंगानुकूल निम्न लिखित व्याख्यान दिया था। यह केवल अहमदाबादियों को ही नहीं परन्तु सभी के लिए विचारणीय है:

"हमलोगों में यह एक सुभाषित है कि जिसे संगीत प्रिय नहीं वह या तो योगी है या तो पशु। हम योगी नहीं है, परन्तु जितने अंश में हम संगीत से शून्य है उतने अंश में पशु के समान ही गिने जा सकते हैं। संगीत जानने के मानी जीवन को संगीतमय बना देना है। हमारा जीवन सुरीला नहीं है इसीसे तो आज हमारी दशा दयाजनक बनी है। जहां राष्ट्र का एक सुर न निकलता हो वहां स्वराज कैसे हो सकता है? जहां एक सुर न निकलता हो, जहां सब लोग अपने अपने अलहदा सुर निकालते हों अथवा सब तार टूटे हुए हों वहां अराजकता अथवा कुराज्य ही होगा। हम लोगों में संगीत नहीं है इसलिए स्वराज के साधन हमें प्रिय नहीं मालूम होते। और इस अर्थ में अफलातून का यह कहना सही है कि संगीत की स्थिति देख कर आप समाज की राजकीय स्थिति का वर्णन कर सकते हैं। यदि हम मे संगीत का प्रवेश होगा तो हमें स्वराज भी प्राप्त होगा। जब करोड़ों मनुष्य एकतान हो कर भजन गाने लगेंगे, एक सुर में कितन करेंगे अथवा रामनाम रटेंगे और एक भी आवाज बेसुरा न निकलेगा तभी हमारे जीवन में संगीत उतरा हुआ कहा जायगा। इतनी सी सादी बात भी यदि हम न कर सकेंगे तो स्वराज कैसे प्राप्त कर सकेंगे!

तीन साल हुए अहमदाबाद में एक संगीत का वर्ग चलाया जा रहा है, मुफ्त संगीत की शिक्षा दी जाती है और शिक्षा देनेवाले पण्डितजी भी कोई मामूली नहीं है फिर भी अधिक से अधिक ३२ विद्यार्थी ही आये थे और आज तो केवल १० ही है। और उनमें भी चार विद्यार्थी नियमित आते हैं और इसे हम अच्छी संख्या मानते हैं। यह तो ऐसी बात हुई जैसे 'निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते'। परन्तु हमलोग आशावादी हैं और आशावादी तो इसमें भी आशा के किरण देखेगा। अहमदाबाद की सैकड़ो पोलो (महल्ले) में एक पोल (महल्ले) में भी डा. हरिप्रसाद दुर्गन्ध के बदले सुगंध को पावेंगे तो कहेंगे अब भी आशा है।

जहां दुर्गन्ध है वहां संगीत नहीं हो सकता है। सामान्य तौर पर जिसके कण्ठ से सुरीला आवाज निकलता है उसको सुनने का हमें दिल होता है और उसीको हमलोग संगीत कहते हैं परन्तु यदि संगीत का विशाल अर्थ करेंगे तो हम यह देखेंगे कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में हमलोग संगीत के बिना नहीं चला सकते हैं। संगीत के मानी आज स्वच्छन्द और स्वेच्छाचार हो गया है — किसी चारित्रहीन स्त्री के नाचगान को हम संगीत कहते है और हमारी पवित्र मा-बहेनें तो बेसूरा ही राग आलाप सकती है। वे यदि संगीत सीखें तो शरम की बात समझी जाती है। इस प्रकार संगीत का सत्संग न होने के कारण ही डाक्टर को १० विद्यार्थियों से ही सन्तोष दिखाना पड़ा है।

सच पूछो तो संगीत प्राचीन और पवित्र चीज है। सामवेद की ऋचायें संगीत की खान है। कुरानशरीफ की एक भी आयत बिना सुर के नहीं कही जा सकती है। और ईसाई धर्म में डेवीड के 'साम' (गीत) सुने तो यही मालूम होगा कि सरस्वती ने हाथ धो डाले हैं, मानो हम सामवेद सुनने के लिए ही बैठे है। लेकिन आज गुजरात संगीतहीन और कलाहीन हो गया है। इस दोष से यदि मुक्ति प्राप्त करनी हो तो इस मण्डल को उत्तेजन मिलना चाहिए।

संगीत में हमें हिन्दू-मुसल्मानों का सम्मेलन होता दिखाई देता है। हिन्दू गानेबजानेवाले के साथ बैठ कर मुसल्मान गानेबजानेवाला गाता है और बजाता है। लेकिन वह शुभ दिन कब आवेगा जब कि राष्ट्र के दूसरे अंगों में भी ऐसा ही संगीत जम जायगा? तभी हम राम और रहमान का नाम एक साथ लेने लगेंगे।

आपलोग संगीत की थोडी सी भी सहायता करते हैं इसलिए आपको धन्यवाद है। आपके लड़के लड़कियों को यहां अधिक भेजेंगे तो वे भजन कीर्तन करना सीखेंगे और इतना करेंगे तो भी आप लोगों ने राष्ट्रीय उन्नति की हलचल में अपना कुछ हिस्सा दिया कहा जायगा।

लेकिन इससे भी और आगे बढ़ें। यदि हमें करोड़ों को संगीतमय बनाना है तो हम सब को खादी पहनना होगा और चरखा चलाना होगा। आज खां साहब का संगीत बड़ा ही मधुर था। परन्तु हम जैसों को थोड़ों को ही वह मिल सकता है सब को नहीं। परन्तु चरखे का संगीत जो घर घर में सुनाई दे सकता है उसके सामने यह संगीत बड़ा तुच्छ मालूम होता है। क्योंकि चरखे का संगीत तो कामधेनु है, करोड़ों का पेट भरने का एक साधन है। मेरे लिए वह संगीत सच्चा संगीत है। ईश्वर सबका कल्याण करे, सबको सन्मति दे।

विविध प्रश्न

[गांधीजी की डाक से निम्न लिखित प्रश्न लिये गये हैं प्रश्नों का केवल सार ही दिया गया है। उत्तर गांधीजी के शब्दों में है।]

खादीभवन कहां बनाना चाहिए?

एक जिला समिति के मंत्री लिखते हैः यहां जिला आफिस के लिए एक स्थायी भवन बनाना है। रुपयों के लिए की गई यह अपील आपकी सम्मति प्राप्त करने के लिए भेजता हूं। मेरे प्रान्त के खादी के कार्यकर्तागण अपने को सर्वज्ञ समझते हैं और नादानी कर रहे हैं। इसलिए खादी का काम नहीं होता है। आप खादी बोर्ड से खादीभवन के लिए ५०००) देने का प्रबन्ध करें।

उ० आपका पत्र मिला, अपील भी प्राप्त हुई। आप कहते हैं कि आपके जिले में कुछ भी काम नहीं होता है और कार्यकर्ता अपने को सर्वज्ञ समझते हैं और नादानी करते हैं। ऐसी दशा में भवन बनाने से क्या लाभ? इसमें मेरी सम्मति कैसे मिल सकती है? भवन बनाने से क्या नादानी दूर हो जायगी? क्या उससे सेवाभाव प्राप्त हो सकेगा? भवन तो वहीं बनाना चाहिए जहां सेवकों की संख्या में वृद्धि होती हो, सब नियमों का पालन होता हो, सब सेवकों पर लोगों का विश्वास हो, सब में आपस में विश्वास हो और अच्छी तरह संगठित हो कर रहते हों। मेरी तो आपको यही स्पष्ट सलाह है कि जब तक अच्छी तरह काम करनेवाले सेवक इकट्ठे न हों भवन बनाने का विचार तक न करो।

हवाफेर के लिए पुरी क्यों जाऊं?

एक बहन ने गांधीजी को जगन्नाथपुरी हवाफेर के लिए आने का निमन्त्रण दिया है। गांधीजी ने उन्हें लिखा हैः

समुद्र किनारे ही मुझे यदि हवाफेर के लिए जाना हो तो मैं पुरी क्यों जाऊं? मेरे जन्मस्थान के पास ही एक छोटा सा गांव है वहां क्यों न जाऊं? वहां जो शांति और ग्राम्य जीवन का लाभ मिलेगा वह पुरी में जहां एक तरफ से धनी लोगों के और अधिकारियों के बंगले आले दिखाते हैं और दूसरी तरफ यात्रियों से एक मुट्ठी गंदे चांवल लेने के लिए एक दूसरे पर गिरनेवाले दुष्काल पीड़ित लोग हैं, वहां कैसे मिल सकता है? यह नहीं कि पुरी देख कर उसका एक समय का पवित्र इतिहास ही याद आता है परन्तु उससे आज जो हमारी भयंकर अवनति हुई है उसका भी ख्याल होता है। क्योंकि आज तो वह हमारे स्वातंत्र्य को दबा देने के लिए हमारा वेतन खानेवाले सोल्जरों का आरोग्यभुवन बना हुआ है। इन सब विचारों से मुझे बड़ा कष्ट होता है। जब मैं पुरी में था मित्रों ने मुझे एक बड़े सुन्दर स्थान में ठिकाया था और अगाध प्रेम से स्नान कराया था फिर भी वहां मुझे चैन न पड़ा। वहां के सोल्जरों के बंगलों के, भूखे मरनेवाले लड़कों के और कठोर हृदय के श्रीमन्तों के विचार से मुझे जो मनोवेदना होती थी उसका मैं क्या उपाय कर सकते थे?

एक वकील की हैरानी

चौदह साल पहले मैं वकालात करते थे लेकिन वह चली नहीं। नौकरी की। फिर भी धन प्राप्ति न हुई। उससे बड़े हैरान रहे लेकिन 'निर्बल के बल राम' कहकर शान्ति प्राप्त करते थे। किसी ही कार्य अनुचित मालूम होने पर सेठ की तबीयत के मुताबिक अच्छी तरह काम नहीं हो सकता है इसलिए धनप्राप्ति नहीं होती और उससे धर्म कितना होता है यह भी समझ में नहीं आता है। बच्चे भी हैं। ब्रह्मचर्य पालन करने का विचार होता है परन्तु उसका प्रयत्न करने पर स्वप्नदोष का नया ही उपद्रव उठ खड़ा होता है और यह स्थिति क्या बकरा निकाल कर ऊंट दाखिल करने जैसी नहीं है? और यदि ऐसा ही है तो फिर बकरा ही क्या बुरा? ब्रह्मचर्य के पालन में स्त्री की सम्मति की आवश्यकता है या नहीं?

उ० रामनाम लेकर आनंद में रहो तो इसमें कोई गलती नहीं है। धनप्राप्ति नहीं होती है तो यह कोई दुःख की बात नहीं है। धर्म की रक्षा होती है या नहीं यह आप स्वयं ही जान सकते हैं। आपने बकरा निकाल कर ऊंट दाखिल करने की बात कही वह ठीक नहीं है। विषयभोग करने के बनिस्बत स्वप्नदोष से अधिक दुर्बलता प्राप्त होती है यह मानना बड़ी भूल है। दोनों ही दुर्बलता के कारण हैं; बहुत मरतबा तो विषयभोग से ही अधिक दुर्बलता प्राप्त होती है। परन्तु रिवाज के कारण विषयभोग को हमलोग मालूम नहीं करते हैं और स्वप्नदोष से दिल को चोट पहुंचती है इसलिए उससे जितनी दुर्बलता होती है उससे अधिक दुर्बलता का होना हम मान लेते हैं। यह बात तो आप के ध्यान से बाहर न होगी कि विषयभोग करने पर भी स्वप्न दोष होता है। इसलिए यदि आप ब्रह्मचर्य के मूल्य को स्वीकार करते हों और उसका पालन करने की आपकी इच्छा हो तो सतत प्रयत्न करने पर भी यदि स्वप्नदोष हों तो भी उससे निश्चिंत रह कर आपको उसका पालन करते रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करने पर बहुत दिनों के बाद मन पर अधिकार प्राप्त होगा। कब होगा यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सबके लिए समय की एक ही मर्यादा नहीं होती है। सब को अपनी अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा बहुत समय लगता है। कोई कोई तो जीवन पर्यन्त मन पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते हैं, फिर भी आचार में पालन किये गये ब्रह्मचर्य का अमोघ फल तो उन्हें मिलता ही है और भविष्य में मन को सहज ही में रोक सके ऐसे शरीर के वे मालिक बनते हैं।

मेरा विचार तो यह है कि ब्रह्मचर्य के पालन के लिए पुरुष को स्त्री की और स्त्री को पुरुष की सम्मति की कोई आवश्यकता नहीं है। दोनों एक दूसरे को इस विषय में मदद करें यही इष्ट है। ऐसी सहायता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना भी उचित है, परन्तु ऐसी अनुमति मिले या न मिले जिसकी इच्छा हो वह उसका पालन करे और दोनों उससे लाभ उठावें। संग से दूर रहने के लिए सम्मति की आवश्यकता नहीं है परन्तु संग करने में दोनों की सम्मति की आवश्यकता है। यदि पुरुष अपनी पत्नी की सम्मति प्राप्त किये बिना ही उसका संग करता है तो वह बलात्कार का पाप करता है। उसने ईश्वर के और संसार के दोनों के नियमों का भंग किया है।

नाक कान छिदाना शास्त्रीय विधि है ?

किसी भी लड़की का एक भी अवयव छिदाना आपकी दृष्टि में जंगली कार्य मालूम होता है परन्तु वेदोक्त संस्कार विधि में नाक कान छिदाने के कार्य का आर्यों के एक संस्कार के तौर पर वर्णन किया है । और उसको वेद का आधार भी है । इस प्रकार नाक कान छिदाने से और उसमें सोना चांदी अगर ऊन पहनने से विद्युच्छक्ति प्राप्त होती है और वृषणवृद्धि जैसे रोग नहीं होते हैं ।

उ० नाक कान छिदाने का वेद-विधि होना मैं नहीं जानता परन्तु वह वेद-विधि है यह साबित भी हो जाय तो भी जिस प्रकार आज नरमेध नहीं किया जा सकता है उसी प्रकार मैं यह कहता हूं कि नाक कान भी नहीं छिदाये जाने चाहिए । कान छिदाये हुए ऐसे अनेक पुरुषों को मैं जानता हूं जिन्हें वृषणवृद्धि का रोग हुआ है । और यह भी सब लोग जानते है कि जिनके कान नहीं छिदाये है ऐसे असंख्य पुरुष वृषण-वृद्धि के रोग से मुक्त है । और मैं यह भी जानता हूं कि वृषणवृद्धि बिना कान छिदाये ही अच्छी हो गई है । आपने जिस वैद्य के वाक्य का उल्लेख किया है उसमें लिखा है कि नाक कान छिदाने का रिवाज दाखिल हुआ मालूम होता है । जब हमें तीन व्यक्तियों पर विश्वास होता है और जब उनमें मत-भेद होता है तो उस समय या तो हमें हमारी बुद्धि का उपयोग करना चाहिए और यदि ऐसा न करें तो जिस पर हमें अधिक श्रद्धा हो उसका ही हम अनुसरण करना चाहिए ।

अधम योनि में जन्म

धार्मिक प्रश्नों के लेख में आपने लिखा है कि आत्मा एक ही हो तो अनेक आत्मा के रूप में उसका असंख्य योनियों में भ्रमण करना असंभव नहीं गिना जाना चाहिए । तो क्या एक ही आत्मा मनुष्य के देह से निकल कर पशु-योनि अथवा वनस्पति में जन्म ले सकता है ? आप यह बात स्पष्ट करेंगे ?

उ० मेरी यह मान्यता अवश्य है कि मनुष्य-योनि में जन्म लेने के बाद पशु वनस्पति इत्यादि योनियों में भी आत्मा का पतन हो सकता है ।

प्रेम या धर्म

एक मुसल्मान युवक है । संस्कार-बल से उसे मांसाहार के प्रति बड़ी अरुचि है । स्वाद के बिना ही बहुत दिनों तक मांसाहार किया परन्तु अब उसका त्याग किया है । परन्तु माता जिसका प्रेम अगाध है उसके मांस-त्याग को सहन नहीं कर सकती है और उसे बड़ी चिंता होती है । माता को नाराज करने में बड़ा पाप मालूम होता है — और मांस खाने से आत्मा दुःखी होती है । तो अब क्या करना चाहिए ?

उ० आपको जो धर्मसंकट है उसका आपही निश्चय कर सकते हैं । मांसाहार का त्याग यदि आप को धर्मरूप मालूम होता हो तो दृढ़ता के साथ माता के प्रेम के वश नहीं होना चाहिए और मांसाहारत्याग केवल एक प्रयोग ही हो तो माता को दुःखी करना पाप ही गिना जा सकता है ।

दो प्रेमी की मुश्किल

एक युवक और युवती भिन्न भिन्न वर्ण के है । साथ ही साथ बढ़े हुए हैं और समान शीलव्यसन के हैं । उनमें एक दूसरे के प्रति शुद्ध प्रेम का होना वे मानते हैं । फिर विवाह क्यों न करें ? लेकिन वर्णान्तर बन्धन बाधा रूप होता है उसका क्या करें ? वृद्धों को कैसे संतुष्ट कर सकते है और भावि संतति का क्या हो ? और यदि बहुत दिनों तक इस प्रश्न का निर्णय न हो सका तो अधीरता के कारण अनाचार हो जाने का भय है । इसलिए शीघ्र निर्णय होना आवश्यक है ।

उ० जहां शुद्ध प्रेम होता है वहां अधीरता को स्थान ही नहीं होता है । शुद्ध प्रेम देह का नहीं किन्तु आत्मा का ही संभव हो सकता है । देह का प्रेम विषय ही है । उससे तो वर्ण-बन्धन ही अधिक है । आत्मप्रेम को कोई बन्धन बाधा रूप नहीं होता है । परन्तु उस प्रेम में तपश्चर्या होती है और धैर्य तो इतना होता है कि मृत्युपर्यन्त वियोग रहे तो भी क्या हुआ ? आपका प्रथम कार्य तो यह है कि आप अपनी कठिनाइयों को वृद्धों के सामने पेश करें और वे जो कुछ भी कहें उसे आपको सुनना चाहिए और उस पर विचार करना चाहिए । आखिर जब यम-नियमादि के पालन से आपका अन्तःकरण शुद्ध हो तब उसमें जो आवाज निकले उसका आदर करना ही आपका धर्म है ।

(नवजीवन)

राष्ट्रीय सप्ताह

हमें हमारे अमूल्य समय को नष्ट नहीं करना चाहिए । हम किसी भी धर्म के क्यों न हो इस सप्ताह में जो अब शीघ्र ही आरम्भ हो जायगा हमें खूब गहरा आत्मशोध करना चाहिए । हरएक स्त्री या पुरुष अपने से यह पूछे कि उसने अपनी जन्मभूमि के लिए क्या किया है । सिर्फ व्याख्यान देने से, धारासभा में जाने से, स्वराज पर लेख लिखने से और समाचार पत्रों का सपादन करने से स्वराज्य प्राप्त न होगा; उनसे मदद मिल सकती है, उनमें कुछ तो आवश्यक भी गिने जा सकते है लेकिन वह कौनसा कार्य है कि जिसे बिना अधिक प्रयत्न के हर शख्स कर सकता है और जिससे भारत का धन बढ़े जिससे एकता और सगठन शक्ति बढ़े और हम आपस में यह मालूम करने लगे कि हम सब एक है । इसके उत्तर में बिना हिचकिचाहट के चरखा ही पेश किया जा सकता है । इसीलिए तो मैंने इस सप्ताह में खादी का बड़ा भारी प्रचार करने की सिफारिश की है । यदि आपने अबतक किसी भी प्रकार का खादी का कार्य करना न आरंभ किया हो तो अब भी बहुत विलब नहीं हुआ है । छोटी छोटी चीजों से भी मदद मिलती है । मुख्य केन्द्रों में जैसे तामिलनाड, बिहार, पंजाब, गुजरात, बंगाल इत्यादि स्थानों में बहुत सी खादी पड़ी हुई है । आपको किसी खास प्रान्त का विचार नहीं करना चाहिए । आप कहीं भी क्यों न हो यदि आप खादी नहीं पहनते है तो कुछ रुपये उसमें लगा कर खादी खरीद लीजिए । इससे आप भारत के खादी भंडारों की खादी को कम करने में मदद पहुचा सकेंगे । यदि आपके पास काफी खादी हो और आप और खरीद करना न चाहें और आप कुछ रुपये बचा सकते हों तो उसे चरखा-संघ को दान कर दीजिये । उसका खादी उत्पन्न करने में उपयोग किया जावेगा । यदि आप कुछ समय बचा सके (कौन नहीं बचा सकता है ?) तो आप चरखा चलाने में उसे लगा दीजिए और कता हुआ सूत संघ को भेज दीजिए । यदि आप के ऐसे कोई मित्र हों जिन पर आप का प्रभाव पड़ सकता हो तो आप उन्हें उपरोक्त सब कार्य या उसमें से कुछ कार्य करने के लिए कहें । यह स्मरण रखिये कि खादी के कार्य में कुछ हिस्सा दे कर आप गरीब लोगों के साथ सम्बन्ध जोड़ते है, स्वराज्य के पक्ष को मदद करते है, और देशबन्धु का स्मरण कायम रखने अपना हिस्सा देते है ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, द्वितीय चैत्र बदी १०, संवत् १९८२

शराबखोरी की बन्दी चाहिए ?

पंजाब के आर्थिक विभाग के कमिश्नर मि० किंग ने यह कहा था कि स्थानिक शराबबन्दी का कानून जो एक साल पहले बनाया गया था वह पंजाब में सम्पूर्णतया असफल हुआ है और उसका शराबखोरी को बन्द करने के विरोधी राई का पहाड़ बना रहे हैं। कमिश्नर अपने पक्ष के समर्थन में निम्न लिखित कारण बताते हैं:

करीब करीब २०० म्युनिसिपाल्टी, और जिला बोर्डों में केवल १९ ने इस कानून के अनुसार अधिकार प्राप्त करने की मांग पेश की थी। १९ में केवल ६ म्युनिसिपाल्टियों ने आगे कार्रवाई की। और ६ में भी जब मतदाताओं की राय ली गई तब उसके पक्ष में बहुत थोड़े मत मिले, जैसे रावलपींडी में ७००० मतदाताओं में केवल ६ मतदाताओं ने ही मत दिये थे। लुधियाना में पहली दफा तो एक भी मतदाता नहीं आया। दूसरी तारीख रक्खी गई तो केवल चार ही मनुष्य आये थे। दूसरी चार म्युनिसिपाल्टियों में केवल एक छोटे से टोहाना के कस्बे में १०५२ मतदाताओं में ८०२ मतदाताओं ने शराबखोरी बन्द करने के लिए मत दिये थे। मि० किंग ने इस पर ऐसी दलील दी, जैसी कि दलील करने का उन्हें तब हक हो सकता था जब कि वे भारत और उसकी हालत को न जानते ही होते। वे कहते हैं कि पंजाब में शराबखोरी एकदम बन्द करने की कोई मांग ही नहीं है। भारत के दुर्भाग्य से हालत यह है कि लोग उन वस्तुओं के प्रति भी उदासीन रहते हैं जिनका कि उनसे सामाजिक तौर पर सम्बन्ध है। इस तरह मत लेने का तरीका उनके लिए बिल्कुल ही नया था और शायद वे यह भी न जानते थे कि शराबखोरी की बन्दी के लिए ही मत लिये जा रहे थे। भारत के विषय में जो लोग कुछ भी जानते हैं वे यह जानते हैं और मि किंग को भी यह जानना चाहिए कि भारत के बहुसंख्यक लोग शराब नहीं पीते हैं और नशीली चीजें पीना इस्लाम और हिंदु-धर्म दोनों के खिलाफ हैं। इसलिए जिस दिखावा असफलता के प्रति मि० किंग ने इशारा किया है उससे जो अनुमान निकाला जा सकता है वह यह नहीं कि पंजाब शराबखोरी की बन्दी के खिलाफ है परन्तु वह यह है कि पंजाबी लोग स्वयं नशे से दूर रहनेवाले होने के कारण वे उनके लिए जो कि शराबखोरी के दुष्ट व्यसन से अपनी हानि कर रहे हैं कोई माथापच्ची करना नहीं चाहते हैं। वे यह अनुमान भी निकाल सकते हैं कि म्युनिसिपाल कमिश्नर और लोकलबोर्ड के सभासद इस महत्त्व के सामाजिक कार्य में मतदाताओं के प्रति अपने कर्तव्य पर ध्यान न देने के अपराध के अपराधी हैं। लेकिन इन बातों पर से यह दलील करना कि पंजाब शराब-खोरी की बन्दी के विरुद्ध है अज्ञान और अजनबी लोगों की आंखों में धूल डालना है। दुर्भाग्य से अधिकारियों का यही तरीका होता है। निष्पक्ष दृष्टि से या लोगों की दृष्टि से विचार करने के बदले सरकार का जो पक्ष होता है उसीकी वे वकालात करते रहते हैं अथवा उन तरीकों की वकालात करते हैं जिनका कि सरकार किसी न किसी तरह बचाव किया करती है। यह बात तो अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि हिंदूलोग गाय और उसकी संतति के कत्ल के खिलाफ हैं। मान लो कि पंजाब में जिस तरह शराबखोरी के सम्बन्ध में मत लिये गये थे ठीक उसी तरह इस विषय में भी मत लिये जायं और हिंदूलोग मत न दें तो क्या कोई शख्स जो हिन्दुस्तान की हालत को जानता है उससे यह अनुमान निकालेगा कि हिंदुओं को जिस में गायों की कत्ल होती हो ऐसे कत्लगाहों की आवश्यकता है? सच बात तो यह है कि लोगों में उतनी जाग्रति नहीं है कि वे सामाजिक दोषों को देख कर अधीर हो उठें। निःसन्देह यह बड़े दुःख की बात है। धीरे धीरे इसमें सुधार हो रहा है। परन्तु उन बातों को दबा देना जिनसे कि उन बातों के अभाव में किये गये अनुमान से दूसरा ही अनुमान निकल सकता है बहुत बुरा है जैसा कि मांचेस्टर गार्डियन ने बड़ी नम्र भाषा में लिखा है कि अमरिका और इंग्लैण्ड में जहां भले आदमी भी थोड़ी थोड़ी शराब पीने को बुरा या हानिकारक नहीं समझते हैं, उसके बनिस्बत भी भारत में शराबखोरी की बन्दी का पक्ष बहुत ही कमजोर है।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

चन्द धार्मिक प्रश्न

एक भाई ने चन्द धार्मिक प्रश्न पूछे हैं। ऐसे प्रश्न बहुत मरतबा पूछे जाते हैं। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में हमेशा कुछ न कुछ संकोच बना रहता है। परन्तु ऐसे प्रश्नों पर विचार किया है, निर्णय भी किया है फिर भी उनका उत्तर न देना उचित नहीं मालूम होता। इसलिए नीचे लिखे प्रश्नों का यथामति, यथाशक्ति उत्तर देता हूं।

"प्राचीन समय में होनेवाले यज्ञों के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? उससे हवा की शुद्धि होती है या नहीं? आज ऐसे यज्ञों के लिए स्थान है? कुछ संस्थायें ऐसे यज्ञों का पुनरुद्धार करती है, उससे क्या लाभ होगा?"

यज्ञ शब्द सुन्दर है, शक्तिमान् है। इसलिए जैसे ज्ञान और अनुभव की वृद्धि होती है अथवा युग बदलता है वैसे ही उसके अर्थ का भी विस्तार हो सकता है और वह बदल भी सकता है। यज्ञ का अर्थ पूजन, बलिदान, पारमार्थिक कार्य यह हो सकता है। इस अर्थ में यज्ञ का हमेशा पुनरुद्धार होना ही उचित है। परन्तु यज्ञ के नाम से शास्त्रों में जुदी जुदी क्रियायें बताई गई हैं उनका पुनरुद्धार इष्ट नहीं और न वह सम्भव ही है। कुछ क्रियायें तो हानिकारक भी हैं। उन क्रियाओं का आज जो अर्थ किया जाता है वह अर्थ वैदिक काल में होगा या नहीं इस विषय में भी संदेह बना रहता है। सन्देह को स्थान हो या न हो परन्तु उसकी बहुत सी क्रियायें ऐसी हैं कि उसका हमारी बुद्धि या नीति आज स्वीकार ही नहीं कर सकती है। ब्राह्मण लोग यह कहते हैं कि पहले अश्वमेध होता था। क्या आज वह हो सकता है? कोई यदि अश्वमेध करने बैठे तो वह क्रिया हास्यजनक ही मालूम होगी। यज्ञ से हवा की शुद्धि होती है या नहीं इस विचार के झमेले में पड़ना अनावश्यक है, क्योंकि हवा की शुद्धि जैसा तुच्छ फल प्राप्त होगा कि नहीं, यह विचार धार्मिक क्रिया के सम्बन्ध में किया ही नहीं जा सकता है। हवा की शुद्धि के लिए तो आज भौतिक शास्त्र का आधुनिक ज्ञान हमें बड़ी सहायता कर सकता है। शास्त्र के सिद्धान्त और ही है और उन सिद्धान्तों के ऊपर रचित क्रियायें और ही वस्तु है। सिद्धान्त सब समय सब जगह एक ही होता है। क्रियायें समय समय पर और स्थान विशेष के अनुकूल बदलती रहती है।

" हमलोगों में साधारणतया यह बात कही जाती है कि मनुष्य अवतार बार बार नहीं मिलता है इसलिए ईश्वर का भजन करो। यह मनुष्यजन्म चूकोगे तो फिर लक्षचौरासी सहन करनी होगी। इसमें सत्य क्या है ? कबीर भी एक भजन में कहते हैं:—' कहे कबीर चेत अब हूं नहीं, फिर चौरासी जाई, पाय जन्म शूकर कूकर को भोगेगा दुःख भाई।' इसमें ग्रहण करने योग्य रहस्य क्या है ?

इसे मैं अक्षरशः माननेवाला हूं। बहुत सी योनियों में भ्रमण करने के बाद ही मनुष्य-जन्म मिल सकता है और मोक्ष अथवा द्वन्द्वादि से मुक्ति भी मनुष्य-देह से ही प्राप्त हो सकती है। यदि अन्त में आत्मा एक ही है तो अनेक आत्मा-रुप से उसका असंख्य योनियों में भ्रमण करना असम्भव या आश्चर्यकारक प्रतीत नहीं होना चाहिए। इसको बुद्धि भी स्वीकार करती है और कुछ लोग तो अपने पूर्व-जन्म का स्मरण भी प्राप्त कर सकते हैं।

" प्राणायाम से समाधि तक पहुंचनेवाला योगी और इन्द्रिय-संयमी इन दो मनुष्यों में कौन मनुष्य अपने आत्मा का अधिक कल्याण करता होगा ?

इस प्रश्न में संयम और योग के विरोधी होने की कल्पना की गई है। लेकिन सच बात तो यह है एक दूसरे का कारण है, अथवा एक दूसरे का सहायक है। बिना संयम के समाधि कुंभकर्ण की निद्रा हो जाती है और बिना समाधि के संयम का होना मुश्किल है। यहां समाधि का व्यापक अर्थ लेना चाहिए, हठयोगी की समाधि नहीं। यह नहीं कि हठयोगी की समाधि इन्द्रियसंयम के लिए आवश्यक है। वह समाधि भले ही सहायक हो सकती है परन्तु अभी तो सामान्य समाधि ही इष्ट है। सामान्य समाधि अर्थात् निश्चित की हुई वस्तु के लिए तन्मय हो जाने की शक्ति। यह स्मरण होना चाहिए कि इन्द्रियसंयम के बिना योग की साधना निरर्थक है।

" स्वाश्रयी मनुष्य स्वयं खेती करके अपने लिए अनाज उत्पन्न करे, खेती के लिए आवश्यक औजार हल इत्यादि भी स्वय बनावें, बढ़ई का काम भी खुद करे, कपड़े भी खुद ही बनावे, रहने का मकान भी खुद बनावे, अर्थात अपने लिए जिन चीजों की आवश्यकता हो वह स्वयं ही बना ले, अपनी आवश्यकता के लिए दूसरे को न रोके। स्वाश्रयी यदि ऐसा करे तो क्या वह उचित कहा जायगा या अनुचित ? आपने स्वाश्रय की क्या व्याख्या की है ?

स्वाश्रय के मानी है किसी की भी मदद के बिना सीधे खड़े रहने की शक्ति। इसका मतलब यह नहीं कि दूसरों की सहायता के सम्बन्ध में वह लापरवा हो जाय अथवा उसका त्याग करे अथवा वह दूसरों की मदद ही न चाहे या न मांगे। परन्तु दूसरों की मदद चाहने पर भी, मांगने पर भी यदि वह न मिल सके तो भी जो मनुष्य स्वस्थ रह सकता है, स्वमान की रक्षा कर सकता है वह स्वाश्रयी है। जो किसान दूसरों की मदद मिल सकती हो तो भी स्वयं ही हल जोते, अनाज बोवे, फसल काटे, खेती के औजार तैयार करे, अपने कपड़े आप ही काते, बुने या सीवे, अपने लिए अनाज भी स्वयं तैयार करे और घर भी स्वयं तैयार करे, वह या तो बेवकूफ होगा, अभिमानी होगा अथवा जंगली होगा। स्वाश्रय में शरीरयज्ञ तो आ ही जाता है अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अपनी आजीविका के लिए आवश्यक शारीरिक मिहनत करनी ही चाहिए। इसलिए जो मनुष्य आठ घण्टे खेती का काम करता है उसे जुलाहा, बढ़ई, लुहार इत्यादि कारीगरों की मदद लेने का अधिकार है, उनसे मदद लेने का उनका धर्म है और उसे वह मदद सहज ही में मिल सकती है। और बढ़ई, लुहार आदि कारीगर वर्ग किसान की मिहनत ले कर उससे अनादि प्राप्त कर सकते हैं। जो आंख हाथ की सहायता के बिना ही चला लेने का इरादा रखती है वह स्वाश्रयी नहीं है लेकिन अभिमानी है और जिस प्रकार हमारे शरीर में हमारे अवयव अपने अपने कार्य में स्वाश्रयी है फिर भी एक दूसरे की मदद करने में परोपकारी है और इस प्रकार एक दूसरे की मदद लेने के कारण परावलंबी है; वैसे ही हिन्दुस्तान रूपी शरीर के हमलोग तीस कोटि अवयव हैं। सबको अपने अपने क्षेत्र में स्वाश्रयी बनने का धर्म पालन करना चाहिए और अपने को राष्ट्र का अंग सिद्ध करने के लिए एक दूसरों के साथ मदद का विनिमय भी करना चाहिए। यह होगा तभी तो राष्ट्र का विकास हुआ गिना जा सकेगा और तभी हम राष्ट्रवादी गिने जा सकेंगे।

" आजकल कर्म की क्रिया, संध्या, यज्ञ की क्रिया, ईश्वर प्रार्थना इत्यादि क्रियायें संस्कृत मन्त्रों से कराई जाती हैं। करानेवाला मंत्र बोलता है और करनेवाला उसका रहस्य समझे बिना ही उसमें शामिल होता है। आजकल संस्कृत मातृभाषा नहीं रही है। बहुत से सज्जन लोगों को ईश्वरप्रार्थना, सन्ध्या, यज्ञ इत्यादि संस्कृत के मंत्रों से ही करने को कहते हैं। लोगों को उस भाषा का ज्ञान ही नहीं होता तो फिर वे उसमें एकचित्त कैसे हो सकते हैं ? और संस्कृत बड़ी ही कठिन भाषा है। इसलिए उसके मंत्रों को रटने में और फिर उसके अर्थों को याद करने में मैं मानता हूं कि दुगुनी मिहनत होती है। जिस समय संस्कृत मातृभाषा थी उस समय जनसमाज का सारा ही कामकाज उसीके द्वारा चलता था और यह उचित ही था। परन्तु अब वैसी स्थिति नहीं है। हरएक अपनी अपनी क्रियायें अपनी मातृभाषा के द्वारा करें यह लाभप्रद होगा परन्तु अभी तो उल्टा ही कार्य हो रहा है। जनसमाज में ऊपर गिनाये गये सब कर्म संस्कृत में ही कराये जाते हैं।"

मेरा अभिप्राय यह है कि सभी धार्मिक हिन्दू क्रियाओं में संस्कृत होना ही चाहिए। अनुवाद कैसा भी अच्छा क्यों न हो फिर भी अमुक शब्दों के ध्वनि में जो रहस्य होता है वह अनुवाद में नहीं मिलता है। और हजारों वर्ष तक जो भाषा संस्कारी बनी है और जिसमें अमुक मंत्र बोले जाते हैं उनको प्राकृत में ले जाने में और उतने से ही सन्तोष मान लेने में उनका गांभीर्य कम हो जाता है। परन्तु इस विषय में मेरे मन में कोई सन्देह नहीं है कि जो मंत्र जिसके लिए बोले जाते हों और क्रिया होती हो उनका अर्थ उन्हें उसकी भाषा में अवश्य ही समझाना चाहिए। लेकिन मेरा अभिप्राय यह भी है कि किसी भी हिन्दू की शिक्षा जब तक उसे संस्कृत भाषा के मूलतत्वों का ज्ञान नहीं कराया जाता अपूर्ण ही होती है। बहुत बड़े परिमाण में संस्कृत के ज्ञान के बिना हिन्दू धर्म के अस्तित्व की भी मैं कल्पना नहीं कर सकता हूं। हमलोगों ने अपने शिक्षाक्रम के कारण ही भाषा को कठिन बना दिया है वस्तुतः वह कठिन नहीं है। लेकिन यदि कठिन हो तो भी धर्म का पालन तो उससे भी अधिक कठिन है। इसलिए जिन्हें धर्म का पालन करना है उन्हें उसका पालन करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता हो वे कठिन हों तो भी उन्हें तो वे सरल ही मालूम होने चाहिए।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १८

लज्जाशीलता— मेरी ढाल

निरामिषभोजी मण्डल की कार्यकारी समिति का मैं सभासद चुना गया, और उसमें मैं हमेशा उपस्थित भी रहता था परन्तु बोलने के लिए मेरी जबान ही नहीं चलती थी। डा० ओल्डफील्ड मुझसे कहते "तुम मेरे साथ तो अच्छी बातें करते हो परन्तु समिति में तुम जबान ही नहीं खोलते। तुमको नरमक्खिका की उपमा ही उचित है।" मैं इस विनोद के रहस्य को समझ गया। मक्खियाँ हमेशा मिहनत करती रहती हैं परन्तु नरमक्खिका खाता-पीता है लेकिन काम कुछ भी नहीं करता। समिति में जब दूसरे लोग तो अपनी अपनी राय जाहिर करते थे तब यदि मैं चुपचाप बैठा रहूं तो यह कैसा मालूम हो सकता था। यह बात नहीं कि मेरा बोलने के लिए दिल ही न चलता था। लेकिन बोलना क्या? सभी सभासद मुझसे कुछ न कुछ अधिक जानकारी रखते थे और कभी किसी विषय पर कोई बात कहने योग्य मालूम भी होती तो उसपर मैं कुछ बोलने की हिम्मत करता उसके पहले दूसरा विषय छिड़ जाता था। बहुत दिनों तक इसी तरह चलता रहा लेकिन इतने में ही एक बड़ा गम्भीर विषय समिति में उपस्थित हुआ। उसमें अपनी तरफ से कोई बात न कहनी मुझे अन्याय करने के बराबर प्रतीत हुआ। केवल मत दे कर ही बैठे रहने में मुझे कायरता मालूम हुई। टेम्स आयर्न वर्क्स के मालिक मि० हिल्स मण्डल के अध्यक्ष थे। वे बड़े कट्टर नीतिमान थे। यह भी कहा जा सकता है कि उन्हींके रुपयों से मण्डल का निभाव होता था। समिति के बहुत से सदस्य तो उन्हीं की छाया के नीचे निभते थे। डा० एलिन्सन भी इस समिति में थे। इस समय प्रजोत्पत्ति पर कृत्रिम उपायों से अंकुश रखने की हलचल हो रही थी। डा० एलिन्सन इस हलचल के पृष्ठपोषक थे और मजदूरों में वे उसका प्रचार करते थे। मि० हिल्स को ये उपाय नीति के नाश करनेवाले प्रतीत हुए। उनके ख्याल में निरामिषभोजी मण्डल केवल खुराक में सुधार करने के ही लिए न था परन्तु वह एक नीतिवर्धक मण्डल भी था, और इसलिए उनकी राय में उस मण्डल में डा० एलिन्सन जैसे समाजविघातक विचार रखनेवाले सदस्य नहीं होने चाहिए थे। इसलिए समिति में से डा० एलिन्सन का नाम कमी करने की दरख्वास्त पेश हुई। इस चर्चा में मुझे दिलचस्पी थी। डा० एलिन्सन के कृत्रिम उपायों के विचार मुझे भयंकर मालूम हुए थे और उसके विरुद्ध मि० हिल्स के विचारों को मैं शुद्ध नीति के विचार मानता था। उनके और उनकी उदारता के प्रति मुझे बड़ा आदर था। परन्तु एक निरामिषाहार वर्धक मण्डल एक शुद्ध नीति को न माननेवाले का उसकी अश्रद्धा के कारण बहिष्कार करे यह मुझे स्पष्ट अन्याय मालूम हुआ। मुझे यह ख्याल हुआ कि निरामिषाहारी-मण्डल के वर्ण के विषय के मि० हिल्स के विचार उनके अपने विचार थे। मण्डल के सिद्धान्तों के साथ उन विचारों का कुछ भी सम्बन्ध न था। केवल निरामिषाहार का प्रचार करना ही मण्डल का उद्देश था, दूसरी कोई नीति का नहीं। इसलिए मेरा यह अभिप्राय हुआ कि दूसरी अनेक नीति का अनादर करनेवालों को भी मण्डल में स्थान दिया जा सकता है।

समिति में दूसरे भी कुछ लोग मेरे विचार के थे। लेकिन मुझे अपने विचारों को व्यक्त करने का जोश आया था। लेकिन उन्हें व्यक्त कैसे किया जाय? यह बड़ा विकट प्रश्न था। बोलने की तो मेरी हिम्मत ही न थी। इसलिए मैंने अपने विचार लिख कर उन्हें अध्यक्ष के सम्मुख रखने का निश्चय किया। मैं अपने विचार लिख कर ले गया लेकिन जैसा कि मुझे स्मरण है उसे पढ़ने की भी मेरी हिम्मत न हुई। अध्यक्ष ने किसी दूसरे सदस्य के पास उसे पढ़वाया था। डा० एलिन्सन के पक्ष की हार हुई। इसलिए इस प्रकार के मेरे पहले युद्ध में मैं हारे हुए पक्ष में था। लेकिन मुझे इस बात का यकीन था कि वह सच्चा पक्ष था और इसलिए उससे मुझे पूरा सन्तोष था। मुझे कुछ ऐसा भी ख्याल है कि उसके बाद मैंने उस समिति से इस्तिफा भी दे दिया था।

मेरी लज्जाशीलता विलायत में अन्त तक रही। किसी की मुलाकात के लिए जाता तो वहाँ भी पाँच सात आदमियों को देख कर मेरी जबान बन्द हो जाती थी।

एक समय मैं वेन्टनर गया था। वहाँ मजमूदार भी थे। वहाँ एक निरामिषाहारी का घर था। हम दोनों वहीं रहते थे। इसी बन्दरगाह में 'एथिक्स आफ डायट' के रचयिता भी रहते थे। हम लोग उनसे मिले। निरामिषाहार को उत्तेजन देने के लिए यहाँ एक सभा की गई थी। उसमें कुछ बोलने के लिए हम दोनों को भी निमन्त्रण दिया गया था। हम दोनों ने ही उसका स्वीकार किया। मैंने यह तो जान ही लिया था कि लिखा हुआ व्याख्यान पढ़ने में कोई आपत्ति नहीं। मैंने यह देखा था कि अपने विचारों को सिलसिलेवार और थोड़े में कहने के लिए बहुत से व्याख्यानकर्ता लिखा हुआ व्याख्यान ही पढ़ते थे। लेकिन मेरे में बोलने की हिम्मत ही न थी। मैं अपना व्याख्यान पढ़ने के लिए खड़ा तो हुआ पर उसे पढ़ भी न सका। आँखों से कुछ दिखता ही न था और हाथ पैर काँप उठे थे। मेरा व्याख्यान शायद ही फूल्सकैप के एक पन्ने में लिखा होगा। मजमूदार ने उसे पढ़ सुनाया। मजमूदार का व्याख्यान बड़ा अच्छा हुआ। सुननेवाले उनके वचनों का तालियों के आवाज से स्वागत करते थे। मुझे बड़ी शरम मालूम हुई और बोलने की मेरी अशक्ति के कारण मुझे बड़ा दुःख हुआ।

विलायत में आखिरी बोलने का आखिरी प्रयत्न मुझे विलायत छोड़ने पर करना पड़ा था। विलायत छोड़ने के पहले मैंने निरामिषभोजी मित्रों को हॉबर्न भोजनगृह में भोजन के लिए निमन्त्रित किये थे। मुझे यह ख्याल हुआ कि निरामिष भोजी भोजनगृहों में तो निरामिषाहार मिलता ही है परन्तु जहाँ मांसाहार होता हो ऐसे भोजनगृहों में भी निरामिषाहार का प्रवेश हो तो अच्छा हो। इस ख्याल से इस भोजनगृह के व्यवस्थापक के साथ खास प्रबन्ध करके वहाँ एक भोज देने की व्यवस्था की। यह नया प्रयोग निरामिषाहारियों में प्रशंसा के योग्य समझा गया परन्तु मेरी तो बड़ी फजीहत हुई। भोज मात्र भोग के लिए ही होते हैं परन्तु पश्चिम में तो उसका एक कला के तौर पर विकास किया गया है। ऐसे भोज के समय विशेष सजावट की जाती है, विशेष आडम्बर किया जाता है, बाजे बजते हैं और व्याख्यान दिये जाते हैं। इस छोटे से भोज में भी यह सब आडम्बर किया गया था। मेरे व्याख्यान का समय हुआ। मैं खड़ा हुआ। बहुत विचार के बाद व्याख्यान तैयार कर के गया था। कुछ थोड़े से ही वाक्य तैयार किये थे लेकिन प्रथम वाक्य से आगे ही न बढ़ सका। एडिसन के विषय में पढ़ते हुए मैंने उनकी लज्जाशील प्रकृति के सम्बन्ध में भी कुछ पढ़ा था। यह कहा जाता है कि पार्लमेंट की सभा में उनके प्रथम व्याख्यान के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उन्होंने 'मैं ख्याल करता हूं,' 'मैं ख्याल करता हूं,' 'मैं

ख्याल करता हूं' यह तीन मरतबा कहा परन्तु वह इससे आगे न बढ सके। अंगरेजी शब्द जिसका कि यह अर्थ है उसका दूसरा अर्थ 'गर्भ धारण करना' भी होता है। जब एडिसन आगे कुछ न कह सके तो एक मसखरा सभ्य बोल उठा कि 'इन महाशय ने तीन मरतबा गर्भ धारण किया परन्तु कुछ भी उत्पन्न न कर सके!' मैंने यही कथा सोच ली थी और छोटा सा विनोदपूर्ण व्याख्यान देने का निश्चय किया था। मैंने इसी कहानी से अपने व्याख्यान का आरंभ किया। परन्तु मैं वहीं रुक गया। जो विचार कर रक्खा था सब भूल गया और विनोद और रहस्ययुक्त व्याख्यान देने को गया था वहां मैं स्वयं ही विनोद का पात्र बन गया। 'महाशय, आप लोगों ने मेरे निमंत्रण का स्वीकार किया इसके लिए मैं आप लोगों का उपकार मानता हूं, यह कह कर ही आखिर मुझे बैठ जाना पड़ा।

यही कहा जा सकता है आखिर दक्षिण आफ्रिका में आ कर ही मेरी यह लज्जाशीलता दूर हुई। बिलकुल ही दूर हो गई है यह तो आज भी नहीं कहा जा सकता है। बोलने के पहले कुछ ख्याल तो होता ही है। नये समाज में बोलने में संकोच होता है। यदि बोलने से मुक्ति पा सकूं तो अवश्य ही उससे मुक्ति प्राप्त कर लूं। और यह बात तो आज भी नहीं है कि मण्डल में बैठा होऊं तो कोई विशेष बातचीत कर सकूं अथवा कोई बातचीत करने की मुझे इच्छा ही हो। लेकिन आज मैं यह देख रहा हूं कि मेरी ऐसी लज्जाशील प्रकृति के कारण मेरी फजीहत होने के सिवा और कोई दूसरी हानि नहीं हुई बल्कि उससे कुछ लाभ ही हुआ है। बोलने में जो संकोच मुझे था वह पहले दुःखद प्रतीत होता था परन्तु अब वह सुखद मालूम होता है। सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ कि मैं शब्दों की करकसर करना सीखा। मेरे विचारों पर अंकुश रखने की आदत मुझे सहज ही हो गई। मैं सहज ही में अपने को यह प्रमाण-पत्र दे सकता हूं कि बिना विचारे और तोले मेरी जबान से या कलम से शायद ही कोई शब्द निकलता होगा। मुझे यह याद नहीं पड़ता कि मेरे व्याख्यान या लेख के किसी भी भाग के लिए मुझे शर्मिन्दा होना या पश्चाताप करना पड़ा हो। अनेक प्रसंगों से मैं बच गया हूं और मेरा बहुत सा समय बच गया है यह लाभ तो और अधिक ही है।

अनुभव ने मुझे यह भी सिखाया कि सत्य के उपासक को मौन का सेवन करना ही उचित है। मनुष्य जान में या अनजान में बहुत मरतबा अतिशयोक्ति करता है, अथवा जो कहने योग्य है उसको छिपाता है या दूसरी ही तरह से कहता है। ऐसे संकटों से बचने के लिए भी अल्पभाषी होना आवश्यक है। अल्पभाषी बिना विचारे कुछ भी न कहेगा, वह अपने प्रत्येक शब्द को तोलेगा। बहुत मरतबा तो मनुष्य बोलने के लिए अधीर हो जाता है। किस अध्यक्ष को ऐसी चिट्ठी न मिली होगी कि 'मुझे भी कुछ कहना है!' और उसको जो समय दिया जाता है वह उसके लिए काफी नहीं होता और अधिक बोलने के लिए वह इजाजत मांगता है और आखिर बिना इजाजत के ही बोलता रहता है। इन सब के बोलने से संसार को शायद ही कोई लाभ हुआ मालूम होगा परन्तु उतने समय का क्षय होना स्पष्ट ही दिखाई देगा। इसलिए यद्यपि आरम्भ में मुझे मेरी लज्जाशीलता दुःख देती थी परन्तु आज उसका स्मरण मुझे आनन्द देता है। यह लज्जाशीलता मेरी ढाल है। उससे मुझे परिपक्व होने का लाभ मिला। मुझे उससे मेरी सत्य की उपासना में सहायता मिली।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

शंका निवारण

"आप कहते हैं कि 'पुराने स्वावलम्बी और युद्ध के अभाव से ही अथवा गांवों के तमाम झोंपड़ों में कातने का कार्य करने में अपनी तमाम शक्ति लगा देने के महात्माजी के नये और अच्छे तरीके से ही हमें स्वराज्य प्राप्त हो सकेगा'। केवल शब्दोच्चार से–मन्त्रोच्चार से मोह उत्पन्न करने का यह एक दूसरा उदाहरण है। आपने अथवा इससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे लोगों ने इस सिद्धान्त को बार बार दोहराने के सिवा लोगों को इस बात का विश्वास कराने के लिए कि कातने का कार्यक्रम संभव है, आवश्यक और इष्ट है और वह बड़ा असरकारक होगा, और दूसरे क्या प्रयत्न किये हैं? जिसमें इन प्रश्नों का और शंकाओं का उत्तर दिया गया हो ऐसा स्पष्ट, सरल, और युक्तिपूर्ण इजहार अभी मुझे देखने को प्राप्त नहीं हुआ है (१) वर्तमान कर व लगान इत्यादि के कानूनों को देखते हुए क्या यह संभव है कि रुई आवश्यक परिमाण में देश में संग्रह की जा सकेगी और बाहर भेजने से रोकी जा सकेगी और जिनके हाथों में रहना चाहिए उन्हीं के हाथों में वह रहेगी (२) देश में जो दूसरे उद्योग विकास को प्राप्त हुए हैं उन पर उसका जो असर होगा उसको देखते हुए क्या यह करना इष्ट है और अगर इष्ट है तो कहां तक इष्ट है? (३) क्या वह पुरअसर होगा और यदि हां तो क्या सीधे ही या उसके लिए दूसरे कार्यों की आवश्यकता होगी। यदि दूसरे कार्यों की आवश्यकता हो तो स्वराज्य (उसका जो कुछ भी अर्थ हो) प्राप्त करने के लिए वे कार्य क्या होंगे? मैंने बार बार इस बात का प्रयत्न किया है कि इस हलचल के नेता जाहिरा तौर पर या खानगी बहसों में इसके गुण-दोषों का सम्पूर्ण विचार करें लेकिन अबतक उसका कुछ भी फल नहीं हुआ है। इस सिद्धान्त के मूल उत्पादक पुरुष महात्माजी से प्रश्न करने का भी मुझे एक मरतबा मौका मिला था परन्तु समय इतना मर्यादित था कि केवल यही एक प्रश्न पूछा जा सका कि वह कितना संभवनीय है। उन्होंने तो केवल यह कह कर ही सन्तोष मान लिया कि 'हां, वह संभवनीय है' उस समय दूसरे बहुत से लोग बैठे हुए थे और अधिक महत्व के काम भी करने को थे इसलिए मेरा सन्देह और आशंकायें दूर न की जा सकीं।"

बाबू भगवानदास ने मौलाना महम्मदअली को लिखे हुए पत्र से जिसे मौलाना ने 'कामरेड' में प्रकाशित किया था यह अवतरण लिया गया है। यद्यपि यह एक पुराने अंक में (१८ दिसम्बर के अंक में) छपा था फिर भी मुझे अफसोस के साथ यह लिखना पड़ता है कि मैंने उसे इसी सप्ताह में पढ़ा है। आरम्भ में मुझे यह कह देना चाहिए कि मुझे उस बात-चीत का जिसके कि प्रति बाबू भगवानदास ने इशारा किया है, स्मरण नहीं है। राजनैतिक क्षेत्र में मेरी दृष्टि में चरखे से बढ़ कर और कोई महत्व की चीज नहीं है। मुझे ऐसे बहुत से प्रसंगों का स्मरण है कि जब मैंने दूसरे विषयों को मुलतवी रख कर चरखे को हमारे राजनैतिक और आर्थिक कार्यों का केन्द्र समझ कर उस पर बहस करने के लिए समय निकाला है। जब मुझे बाबू भगवानदास का महमान बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब उन्होंने मुझे जो प्रश्न पूछा था उसका कुछ भी क्यों न हुआ हो, उनके मूल प्रश्न का मुझे उत्तर देना चाहिए। चरखा कितना संभवनीय है यह तो रोजाना अधिकाधिक स्पष्ट दिखाई दे रहा है। बहुत सी बाहरतः असम्भव दिखनेवाली बातों में जैसे हिंदू-मुस्लिम ऐक्य इत्यादि में, चरखा ही अकेला सम्भवनीय दिखाई दे रहा है और तामीलनाड, आन्ध्र, करनाटक,

पंजाब, बिहार और बंगाल में इसकी संस्थायें अधिकाधिक बढ़ रही हैं यही उसका स्पष्ट प्रमाण है। आज यदि ऐसी संस्थायें बहुत बड़ी संख्या में नहीं हैं तो उसका कारण कार्यकर्ताओं की कमी है। उनकी संख्या बहुत ही कम है। चरखे में स्वयं कोई असम्भवनीय बात नहीं है। पहले बड़ी सफलता के साथ उसपर कार्य किया गया था। ऐसे करोड़ों लोग हैं जो उसे चला सकते हैं, जिन्हें उसे चलाने के लिए समय भी मिलता है और जिन्हें ऐसे गृह-उद्योग की आवश्यकता है।

केवल इस एक बात से ही कि इस विशाल देश के ७००००० गांवों के लिए यही एक सब से ज्यादह अनुकूल साधन है यह बात साबित की जा सकती है कि यह कितना चाहने योग्य कार्य है।

निश्चयपूर्वक कोई भी यह बात नहीं कह सकता है कि उसका असरकारक परिणाम आवेगा कि नहीं। यदि कुछ प्रान्तों के अनुभव पर से कुछ अनुमान किया जा सकता है तो निसन्देह यह कह सकते है कि ऐसे परिणाम की बहुत बड़ी संभावना है। और यह बात भी निःसंकोच कही जा सकती है कि इस कार्य के लिए दूसरा कोई उद्योग उतना असरकारक नहीं हो सका है जितना कि चर्खा।

बाबू भगवानदास कर व लगान के कानूनों के प्रतिकूल असर की बात कहते हैं। इससे वे उसकी कठिनाइयों के प्रति ध्यान खींचते हैं, जिस राष्ट्रीय उद्योग ने एक सदी पहले किसानों को स्थायी शक्ति प्रदान की थी उसके पुनरुद्धार की असम्भवनीयता के प्रति नहीं। कर व लगान के कानून अपरिवर्तनशील नहीं हैं। कताई के उद्योग के विकास को जितने अंशों में वे बाधा रूप हैं उतने अंशों में उसमें परिवर्तन करना चाहिए। लेकिन आप यह कहेंगे कि 'स्वराज प्राप्त किये बिना उसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता' तो उसका उत्तर यह है कि इन कानूनों के होते हुए भी जबतक कताई का कार्य व्यवस्थित रूप में नहीं किया जायगा तबतक स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता है क्योंकि स्वराज के लिए लड़ना कठिनाइयों का फिर वे कैसी भी क्यों न हों सामना करना है। खूनखराबा लड़ाई का स्वीकृत परन्तु असली मार्ग है। चरखे का संगठन करना स्वराज्य के लिए लड़ने का नैतिक मार्ग है। शान्ति के साथ जनसमाज का संगठन करने के लिए चरखा ही सब से आसान और कम खर्च का मार्ग है। यदि रुई हजारों मील दूर भेजी जा सकती है और वहां काती जा सकती है और फिर उन्हीं भेजनेवालों को बेचने के लिए लौटायी जा सकती है तो भारत में ही उसकी पैदाइश की जगह से दूसरी जगह थोड़ी दूर ले जाने में बेशक कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। चांवल उत्पन्न करनेवाले प्रान्त से चांवल रहित प्रान्त को चांवल भेजने में कोई कठिनाई नहीं होती है। तो फिर रुई को इस प्रकार भेजने में कठिनाई क्यों होगी? आज भी तो यह हो रहा है। बिहार को वर्धा या कानपुर से रुई मंगानी पड़ती है।

परन्तु बाबू भगवान दासजी कहते हैं कि 'दूसरे उद्योग जिनका कि विकास हो चुका है उन पर इसका जो असर होगा उसे देखते हुए उसका होना इष्ट नहीं है। ये दूसरे उद्योग क्या है? और यदि उन पर उसका प्रतिकूल असर हो भी तो उससे उस उद्योग की प्रगति में जो राष्ट्रीय जीवन के लिए ऐसा महत्व रखता है जैसा कि शरीर के लिए फेफड़ा, क्या कोई रुकावट डालनी चाहिए? क्योंकि शराब बनाने के स्थापित कारखानों को नुकसान होगा इस ख्याल से क्या हमें शराबखोरी को एकदम बन्द कर देने में हिचकिचाना चाहिए? अफीम बोनेवाले को नुकसान पहुंचाने के भय से क्या सुधारक को अफीम न खाने का उपदेश करने से रुक जाना चाहिए? बाबू भगवानदास चम्पारन की प्रजा का उदाहरण पेश करते हैं जो अपनी आजीविका के लिए काफी अनाज भी नहीं रख सकते हैं, उसका कारण यह है कि उनकी सब आवश्यकताओं के लिए उनके पास काफी अनाज ही नहीं होता है। अनिवार्य रूप से नील उत्पन्न करने के बोझ के हट जाने से उन्हें कुछ राहत मिली है। और जबतक उन्हें दूसरा कोई अधिक लाभप्रद उद्योग न मिले तबतक यदि वह कातने में अपना सारा खाली समय (जो बहुत होता है) लगा देगी तो उसकी हालत और भी अच्छी हो जायगी। लेकिन जबतक शिक्षितवर्ग उसका फैशन न डालेंगे और यह न दिखावेंगे कि वह तो दिल के कुतूहल का साधन नहीं है तबतक वे न कातेंगे।

लेकिन बाबू भगवानदास कहते हैं: "यदि कताई का कार्य सहज ही में संभव है, बड़ा इष्ट है और पुरअसर है तो इसकी भी कोई वजह होगी कि ३० करोड़ जनता उसको एकदम क्यों नहीं अपना लेती है? महासभा के सभासद घट कर १००० के करीब ही क्यों रह गये हैं?"

बेशक, वे ऐसी बहुत सी बातें जानते हैं जो संभव हैं, चाहने योग्य हैं और पुरअसर हैं फिर भी इच्छा और प्रयत्न के अभाव के कारण वे नहीं होती हैं। सार्वत्रिक शिक्षा संभव है, चाहने योग्य है और पुरअसर है फिर भी लोग उसका त्वरा के साथ अमल नहीं करते हैं। और लोगों के दिलों में शिक्षा प्राप्त करने की तकलीफ उठाने की आवश्यकता को दृढ़ करने के लिए शिक्षित कार्यकर्ताओं की एक फौज की शक्ति की आवश्यकता होगी। स्वच्छता विषयक सावधानता संभव है चाहने योग्य है और असरकारक है फिर भी गांव में रहनेवाले लोग उनके ध्यान पर यह बात लाने के साथ ही उसे क्यों नहीं ग्रहण कर सकते हैं? इसका उत्तर तो बड़ा ही सीधा है। प्रगति बहुत ही धीरे धीरे होती है, यह पंगु है। उसके महत्व के परिमाण में उसके लिए प्रयत्न व्यवस्था समय और व्यय की आवश्यकता होती है। कताई की इस बड़ी हलचल की शीघ्र प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा तो यह अटका हुआ है कि राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन की योजना में चरखे को जो उत्तम स्थान प्राप्त है उसका स्वीकार करने की जनसमाज के स्वाभाविक नेता—शिक्षितवर्ग की इच्छा ही नहीं है अथवा उसके लिए वे असमर्थ हैं। उनकी सादगी ही उनकी हैरानी का कारण है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

फटी गुदड़ी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३३

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, द्वितीय चैत्र वदी ३, संवत् १९८२ १ गुरुवार, अप्रेल, १९२६ ई० { मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

स्नातकों का अमृत औषधि

बिहार विद्यापीठ के स्नातकों को उपाधि वितरण महोत्सव के समय श्री राजगोपालाचार्य ने व्याख्यान देते हुए कहा थाः

शांत प्रतिकार की शक्ति

जो महान अधिकारसम्पन्न सरकार हम पर निरंकुश अधिकार चला रही है उसके साथ हमारे युद्ध का प्रतिघोष अभी सुनाई देना बन्द नहीं हुआ है। यह सच है कि इस युद्ध में हम लोग हारे हैं परन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि जीत से राष्ट्र का जितना विकास होता है उतना ही हार से भी उसका विकास होता है। हार का हम स्वीकार करते हैं। हम लोगों में संकट सहन करने की काफी शक्ति न थी इसलिए हम लोग हारे। हम पाशव शस्त्रों को ग्रहण करके मैदान में उतरे न थे परन्तु आत्मबल-संकट सहन करने की शक्ति ले कर ही युद्ध में उतरे थे। अभी लड़ाई खतम नहीं हुई है और हम लोगों के हारने का कारण यह न था कि लोकमत का हमारे पक्ष में अभाव था। यदि लोकमत हमारे विरुद्ध होता और हमारी हार होती तो वह हार अकीर्तिकर हार गिनी जाती और सरकार अपनी जीत पर अभिमान कर सकती थी। परन्तु जो सेना बड़ी वीरता के साथ लड़ी और दारुगोला काफी न होने के कारण उसकी हार हुई, उसको कौन कटु वचन कह सकता है? यह दारुगोला तैयार करने के लिए ही अभी हाल तो हमलोग युद्ध में पीछे हटे हैं; अभी युद्ध नहीं छोड़ा है। संकट सहन करने की शक्ति हमारा दारुगोला है। उसे एकत्रित कर के हमें उसका संग्रह करना चाहिए, हिम्मत हारे बिना और अनवरत परिश्रम करके हमें उसका संग्रह करना होगा।

हमारे दारुगोले का महत्वशाली हिस्सा तो राष्ट्रीय-शाला और विद्यालयों का बना हुआ है — इन संस्थाओं में हमें प्राणदायक ईश्वरश्रद्धा, सादा जीवन, और रंक और निरक्षरों के प्रति ज्वलंत प्रेम के साथ साथ विद्या और संस्कृति की शिक्षा प्राप्त करनी होगी। तभी तो हमको इस विद्या से और संस्कृति से संकट सहन करने की और आम-लोगों के पास शान्ति के साथ क्रान्ति कराने की शक्ति प्राप्त होगी। इन दो शक्तिओं के बिना हमें सच्ची और शाश्वत मुक्ति प्राप्त न हो सकेगी। इसलिए जिन्होंने आज विद्यापीठ की उपाधि प्राप्त की है उनसे मैं पूछता हूं; आपने क्या वह सब सीख लिया है कि जो आपको सीखना चाहिए था? क्या आपने सच्चा और उपयोगी ज्ञान सदा प्राप्त करते रहने की योग्यता प्राप्त की है? उच्च आदर्श के ध्येय की रचना की है और वाणी और व्यवहार को सद्विचार और शुद्ध विवेक के आधीन रखना सीखा है? क्या आपने विलास और वैभव का त्याग कर के उन्हें भूलने की, उनसे हेठ कोश दूर रहने की और एक सेवा-धर्म को छोड़ कर दूसरे किसी भी प्रकार के मनोरथ के बिना केवल सादा जीवन व्यतीत करने की तालीम पाई है? क्या आज आपको यह प्रतीत होने लगा है कि, गरीब, दबे हुए और निरक्षर स्त्री-पुरुष चाहे वे किसी भी धर्म और जाति के क्यों न हों, आपके सगे भाई और बहन के समान हैं? उनकी भूख-प्यास, उनकी आधिव्याधि, उनका अज्ञान और दुःख देख कर आपको उतनी ही मर्मवेदना होती है जितनी कि अपने सगे भाई बहनों के दुःखों को देख कर आपको होगी? यदि आप इसके उत्तर में 'हां' कहेंगे तो जो उपाधि आपको दी जा रही है उसके आप सर्वथा योग्य हैं। यदि इसके उत्तर में 'ना' कहोगे तो आपको अभी और शिक्षा प्राप्त करने की और तपश्चर्या की आवश्यकता है। आप यह करने पर ही विद्यापीठ के बालक बन कर बाहर निकल सकोगे। हमेशा की तरह स्नातक बनने पर आप लोगों ने प्रतिज्ञायें की हैं और आपके भविष्य के व्यवहार के सम्बन्ध में आप वचनबद्ध हुए हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल में आप ईश्वर से यह प्रार्थना करना कि वह आपको आपकी प्रतिज्ञा और प्रण का पालन करने का बल दे और प्रतिदिन सोते समय यदि प्रतिज्ञा का भंग हुआ हो तो उसकी माफी मांग लेना। अनेक तकलीफें उठाने पर भी आप अपने ध्येय पर दृढ बने रहे हैं और युद्ध में आपने हमारा साथ दिया है। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि जिस शान्तिमय क्रान्ति के आप सन्तान हैं और जिसका कुछ फल नहीं हुआ है लेकिन जिसके लिए हम उचित अभिमान धारण कर सकते हैं, उस क्रान्ति का यश और आदर आपही लोगों के हाथ में है।

विचारशुद्धि

स्नातको! अपने असत्य वचन और असत्य व्यवहार से आप अपने विद्यापीठ को कलंक न लगाइयेगा। अज्ञान और गरीबी में

कोई लज्जा की बात नहीं है। आपका चारित्र शुद्ध और अच्छा होगा तो आप सब से अधिक शोभास्पद होंगे। इसके लिए तमाम व्यवहार का मूल-विचार को निर्मल रखने का प्रयत्न करना। हमारे विचार क्षणजीवी कहे जाते हैं। फिर भी उसी पर सब से अधिक नजर रखने की आवश्यकता है। हमी लोगों के अंतर में हिंस्र पशु और असुरगण बैठे हुए हैं। वे आन्तरिक सुव्यवस्था और विवेक के राज्य को नष्ट कर देने के लिए सतत प्रयत्न करते हैं। उनके वश कभी नहीं होना चाहिए। हमेशां ही इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि ईश्वर का आसन अक्षय रहे। अन्यथा हमें गिरना होगा। वचन और व्यवहार ही का नहीं परन्तु प्रत्येक विचार का चारित्र पर असर होता है और इस चारित्र के कारण ही मनुष्य एक जन्म में से दूसरा जन्म ग्रहण करता है। प्रत्येक अनिष्ट विचार जहर का अक्षय कूप है, एक में से अनेक अनिष्ट विचार उत्पन्न होते हैं और यह आत्मा के लिए बड़ा कठिन हो जाता है। इस शरीर के काराग्रह में बन्द होने पर भी और कर्म का सिद्धान्त अटल होने पर भी हम मुक्त हैं। हम मे, सब में दैवी अंश रहता है—और उसीमें हमारे उद्धार का उपाय समाया हुआ है—वही हमारा दीपक है। कैसे भी आसुरी विचार क्यों न हों उनके साथ युद्ध करने की और ईश्वर का सिंहासन अटल रखने की शक्ति हम में है। यदि हम इतना कर सकेंगे तो यह शरीर काराग्रह मिट कर मानवजाति और ईश्वर की सेवा करने का उत्तमोत्तम साधन बन जायगा। यह होने पर हम जो आहार करते हैं उससे उच्च प्रकार की सेवा के लिए हमारा शरीर तैयार होगा, हमारा आध्यात्मिक बल बढ़ेगा और रिपुओं का बल घट जायगा।

तामिल भाषा में बुद्ध भगवान के विषय में बड़े अच्छे काव्य बने हुए हैं। अपने ही लिए जीवन का उपयोग करने के बजाय उन्होंने जगत की सेवा के लिए अपने आत्मा का समर्पण कर दिया। कर्म के नियमों के वश हो कर नहीं परन्तु प्राणी-मात्र की सेवा करने की अपनी इच्छा के कारण ही उन्होंने बार बार जन्म ग्रहण किया था। आपका आदर्श भी यही हो। आपके चारों ओर रहनेवाले लोग अधिक शुद्ध, परिश्रमयुक्त, मंगलमय और अच्छा जीवन बीतावे इसके लिए आप भरसक कोशिश करो। स्वयं अपने उदाहरण से उन्हें सीधे मुक्त हो कर रहने का मार्ग दिखाओ।

विचार-शुद्धि पर मैंने जो इतनी बातें कहीं उसका कारण यह है कि संस्कृति का एक अनिवार्य लक्षण आन्तरिक शुद्धि है। लोकापवाद के भय से प्राकृत और अज्ञान लोग भी वचन और व्यवहार में शुद्धि की रक्षा करते हैं परन्तु अन्तःशुद्धि के द्वारा ईश्वर के निवास-स्थान को पवित्र रखने का और विचारों को निर्मल रखने का विशेष अधिकार तो विद्यावान और संस्कारी जनों को ही प्राप्त होता है।

यह विद्यापीठ

जब रिपोर्ट पढ़ी गई तब उसमे हमने यह सुना कि यह विद्यापीठ कुछ श्रद्धावान मनुष्यों के टेक और श्रद्धा के कारण ही निभ रहा है। इसकी कठिनाइयों का कोई शुमार नहीं है। सरकारी महा विद्यालय और विद्यापीठों के साधनों की तड़कभड़क इसमें कैसे हो सकती है? इन सरकारी संस्थाओं का तो बड़े बड़े महाराजाओं की उदारता से निभाव होता है। टैक्स देनेवाले अपनी कमाई में से नियमित रूप से खुले हाथों इसके लिए रुपये देते हैं और बेचारा शराबी भी अपने पापकर्म से ऐसी संस्थाओं को चलाने के लिए रुपये देता है। उसकी तड़कभड़क के आगे हमारी विद्यापीठ ऐसी मालूम होती है जैसे राजा महाराजाओं के पोशाक के सामने फटापुराना कपड़ा। लेकिन हमारा यह फटा-पुराना कपड़ा भी गेरुआ रंग का है। उसका उद्देश नग्न संन्यासी के शरीर को ढांकने का है और अपना यह उद्देश वह सफल भी करता है। यह बड़ा शुद्ध है और इसलिए यह हमें बड़ा प्रिय है। आसपास के लोग हट गये हैं लेकिन श्रद्धावान कुछ थोड़े से मजदूर इस विद्यापीठ को निभा रहे हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस प्रान्त में प्राचीन काल में जनक, चंद्रगुप्त, बुद्ध, अशोक, इत्यादि प्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं। परन्तु प्राचीन जमाने की बात छोड़ दें और अर्वाचीन समय की बात करें तो भी भारत में इसी प्रान्त में इस जमाने के एक महान पुरुष को प्रथम कार्य करना प्राप्त हुआ था। इसी प्रान्त में उसका सामना करने वालों ने पहली मरतबा यह देखा कि यह नया और विचित्र यक्ष कौन है? उन्हें उससे बड़ा आश्चर्य हुआ। विरोध करनेवालों ने उसमें जो सीधापन और गरीबी देखी वह ऐसी थी कि उसकी निर्दोषता को किसी का भी डर न था। उसकी नम्रता को देख कर वे चौंधिया गये और उन्हें कुछ भी सूझ न पड़ा। उसकी भाषा ऐसी थी कि उसका मर्म वे समझ ही नहीं सकते थे—क्योंकि उसकी वाणी में सत्य का ही प्रतिघोष होता था और इस प्रतिघोष से तो लोग अब तक डरते चले आये थे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बिहार में कार्यकर्ताओं की श्रद्धा अटल बनी रही है। यह विद्यापीठ गुलामी का विरोध करने के हमारे प्रयत्नों से उत्पन्न हुआ है। यह नींव ही हमारे लिए बड़ी मूल्यवान है। उसके आगे बड़े बड़े मकानात और साधन सम्पत्ति सब तुच्छ है। हमारी प्राचीन भूमि के पुनः सजीव बने हुए आदर्शों से उसे चेतना-शक्ति प्राप्त होती है। भारत के युगानुयुग पुराने अहिंसा धर्म के ध्वज को यह विद्यापीठ फहरा रहा है। यह विद्यापीठ लोक भाषा को हमारी कला और शास्त्र की पटरानी बनाना चाहता है। उसकी दृष्टि संकुचित नहीं है। सब दिशाओं से ज्ञान और संस्कृति प्राप्त करने के लिए उसके दरवाजे खुले हुए हैं परन्तु यह अपनी जन्मभूमि की भाषा और संस्कृति की अवज्ञा नहीं कर सकता। अपने शिष्यों को जुदे जुदे धंधे की शिक्षा दे उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र बना कर यहां प्राप्त की हुई उनकी स्वतंत्रता की वृत्ति को वह पुष्ट करना चाहता है। उसका प्रयत्न यह है कि उसके शिष्यों की संस्कृति और विद्या सारे देश को फलद्रुप बनानेवाली वर्षा के समान दूसरों को कल्याणकारी साबित हो। शिक्षितवर्ग जिन करोड़ों लोगों की मिहनत और परिश्रम पर जीवित रहता है उनसे ही शिक्षित वर्ग को अज्ञान और अभिमान में मदमस्त बना कर दूर रखने की पद्धति की पोषक शिक्षा से अब हमारा पेट भर गया है। ऐसी शिक्षा से उसे कुछ भी चिरस्थायी और सजीव तत्व प्राप्त नहीं हुआ है और इस शिक्षा के बहाने शिक्षित वर्ग को उनकी सेवा के उचित मूल्य के हिसाब से जितना मिलना चाहिए था उससे उन्हें कहीं अधिक प्राप्त हुआ है और इस प्रकार उन्होंने दूसरों के लिए गलत आदर्श उपस्थित किया है जो कभी भी नहीं निभ सकता है।

श्रम शक्ति

मैं आशा करता हूं कि आप लोगों ने आपकी बुद्धि के साथ आपके हाथों का उपयोग करना भी सीख लिया है। यदि आप

शक्ति का आप उपयोग ही न करेंगे तो उसका ह्रास होना ही संभव है। शारीरिक श्रम बुद्धि को ताकत देनेवाली महान औषधि है। उसके बिना संभव है कि मन रोगी और अनुत्पादक प्रवृत्ति के तरफ ही खिंच जाय। विशेष कर यह बात हमारे नवयुवकों के लिए बिलकुल ही सच है। प्रतिदिन कम से कम एक घण्टे के लिए अवश्य ही कुछ न कुछ हाथकाम करना चाहिए। जहां आपके धन्धे के लिए उसकी आवश्यकता हो वहां उतना और अधिक काम करना चाहिए। अध्यक्ष की हैसियत से मैं आप लोगों को यह दवा लिख देता हूं। आप उसे ले कर यहां से जाना और उसका उपयोग करना। और सब से बढ़ कर देश की महान रचनात्मक और सहयोगी प्रवृत्ति — खादी प्रवृत्ति, चरखा प्रवृत्ति का पोषण करने का आपका कर्तव्य आप कभी भी न भूलें। इसी प्रवृत्ति से गांवों की बेकारी और दरिद्रता से रक्षा की जा सकेगी। इसीमें हमारे स्वराज्य का एक मात्र साधन छिपा हुआ है और इसी से संसार पशुबल के पंजे से बच सकता है।

कैसा स्मारक बनावेंगे ?

यह विद्यापीठ गुजरात विद्यापीठ की तरह १९२० के युद्ध का स्मारक है। फ्रान्स, इंग्लैण्ड, जर्मनी और इटली में अपने नागरिकों के शौर्य का भविष्य की प्रजा को स्मरण दिलाने के लिए कीर्तिस्तंभ बने हुए हैं। तो क्या हम हमारी आध्यात्मिक उन्नति की इस प्रवृत्ति का जिसने समस्त देश को एक कोने से दूसरे कोने तक प्राणवान बना दिया था कुछ भी स्मारक न बनावेंगे? क्या पत्थर का स्तूप बनावेंगे या ईंट या चूने की इमारत खड़ी करेंगे! उसका योग्य स्मारक तो स्वराज ही हो सकता था। लेकिन ईश्वर की इच्छा दूसरी ही थी। जिस राष्ट्र को स्वतंत्र उत्तरदायित्व की अग्नि में उत्तीर्ण हो कर बाहर आने की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है उसे स्वराज देने की ईश्वर की भी कैसे हिम्मत हो सकती है? लेकिन आज स्वराज के बदले, गुजरात, काशी और बिहार के विद्यापीठों से बढ कर हम दूसरे स्मारक और क्या बना सकेंगे?

बिहार के सरकारी पुरुषगण और महिलायें! आप असहयोगी हों या न हों, यदि आप में ऐतिहासिक कल्पनाशक्ति है तो जिस आध्यात्मिक और देशभक्ति की प्रवृत्ति ने देश को एक कोने से दूसरे कोने तक हिला दिया था। उस प्रवृत्ति में यदि आप शामिल नहीं हुए थे फिर भी आपको उसके प्रति आदर की दृष्टि रखनी चाहिए और उचित स्मारक की मांग की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। आपको हर एक को यह चाहिए कि आप इस स्वतंत्र संस्था को उसका उपयोगी कार्य करने दें और भविष्य का राष्ट्र इस ऐतिहासिक धर्मयुद्ध का स्मरण कर के शौर्य का पाठ पढे इसलिए आप इस स्मारक के लिए यथाशक्ति दान दें।

आज असहयोग के प्रचार का प्रश्न नहीं है। विद्यार्थियों को शाला या विद्यालयों को छोडने के लिए आज हम नहीं कह रहे हैं। परन्तु जितनी भी शालायें और विद्यालय नये हों उनके लिए अवकाश अवश्य है। शिक्षा की सच्ची और स्वास्थ्य-कर प्रगति हो इसके लिए स्वतन्त्र अपने ही बल पर चलनेवाली अनेक प्रकार की आदर्श संस्थायें होनी चाहिए। जीवन अर्थात प्रगति। वर्तमान स्थिति में ही सन्तोष मान कर बैठे रहना और कुछ भी प्रगति न करना ही मृत्यु है। वर्तमान सरकारी आदर्श को छोड कर शालाओं के दूसरे नये आदर्श तैयार न होंगे तो शिक्षा का नाश हो जायगा। इसलिए विशाल और उदार मन के सभी शिक्षानुरागियों को इस विद्यापीठ का स्वागत करना चाहिए, उसकी मदद करनी चाहिए, और उसे विपुल बलशाली जीवन निभाने के लिए शक्ति देनी चाहिए।

उदार लोगों से इतनी प्रार्थना कर के और आप स्नातकों के ऊपर जो उत्तरदायित्व है उसका स्मरण दिला कर, और गरीबी कोई कलंक नहीं है लेकिन यदि उसमें अपने भाइयों की सेवा मिली हुई हो तो यह एक गौरव का विषय है इस महान सूत्र की याद दिला कर और संसार के सब लोग यदि आपकी अवज्ञा करें तो आप उसकी कुछ परवा न करना इतनी प्रार्थना कर के मुझे आपने इस अवसर पर बुलाया इसलिए आप सबका उपकार मानता हुआ मैं अब अपने व्याख्यान को खतम करता हूं। यदि सबलोग आपकी अवज्ञा करेंगे तो इसमें आपकी क्या हानि होगी? — एक मनुष्य तो ऐसा है कि जिसकी नजरों में आप बडे प्रिय मालूम हो रहे हो। वह एक ऐतिहासिक मूर्ति है, जिसकी कि संसार एक अविस्मरणीय मूर्ति की तरह पूजा करेगा। वह प्रेममूर्ति है। उसके खातिर भी यदि हम संकट सहन करें और प्राणार्पण करें तो भी यह बुरा नहीं है। अनेक उपाधि वितरण उत्सवों में मैं उपस्थित हुआ हूं लेकिन इस समय मेरे दिल पर जो असर हो रहा है वैसा कभी न हुआ था। जिस कुलनायक ने उपाधि वितरण की और जिन विद्यार्थियों ने उपाधियां ली उनमें मैं सजीव सम्बन्ध का होना देख सका हूं। मुझे यह आशा हुई कि आप लोगों ने जो उपाधि पत्र लिये उसके साथ साथ आपको राजेन्द्रप्रसाद के चारित्र में से भी कुछ न कुछ मिला होगा। यह स्मरण रखना कि आप महात्मा गांधी और श्री राजेन्द्रप्रसाद के आध्यात्मिक कुटुम्ब के बालक हो। उस कुटुम्ब की शोभा की रक्षा करना।

खादी अप्राप्य है

संयुक्त प्रान्त से एक भाई लिखते हैं:

"यहां मेरे अनुभव में वकीलों में खादी की घनी मांग है। मैं कुछ बेचता भी हूं। उनकी शिकायत है कि उनके शहर में कोई खादी-भण्डार नहीं है। उन्होंने मुझसे कहा था कि हम ५,००० रुपये इकट्ठ कर के एक कम्पनी बनाना चाहते हैं।"

मुझे आशा है कि वह कम्पनी बनाई जावेगी। बिहार की यात्रा में मेरे पास भी ऐसी शिकायतें आई थीं। देश में जगह जगह खादी-भण्डार नहीं खोले गये हैं इसका कारण यह है कि अभी खादी की उतनी मांग नहीं है कि भण्डार खोले जा सके। अनुभव से तो यह मालूम हुआ है कि जब ऐसे भण्डार खोले जाते हैं और नियमित प्रचार-कार्य के अभाव में वे स्वावलम्बी नहीं बनते और कुछ दिनों के लिए उन्हें बंद कर देना आवश्यक होता है तब उसमें जितने रुपये लगाये होते हैं वे सब डूब जाते हैं और इस हलचल को कलंक लगता है। इसलिए चरखा-संघ के प्रतिनिधियों के लिए यही उत्तम मार्ग है कि वे खादी-प्रेमियों के परिचय में आवें, खादी के नमूने और किंमत का विज्ञापन दें और समय समय पर जहां बिक्री की संभावना हो वहां फेरी कर आवें। जब उन्हें किसी स्थान के बारे में यह मालूम हो कि वहां खादी की नियमित और काफी बडी मांग है तो वे वहां के स्थानिक धनी लोगों को खादी-भण्डार खोलने की सलाह दें। नियमित प्रचार करना ही उस भण्डार का कार्य होना चाहिए।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, द्वितीय चैत्र बदी १, संवत् १९८१

मेरा राजनैतिक कार्यक्रम

अमरिकन मित्रों की तरफ से १४५ डालर की भेट के साथ प्राप्त हुए इस पत्र का मैं यहां कृतज्ञतापूर्वक प्रकाशित करता हूं :—

"इस पत्र के साथ के पत्र पर दस्तखत करनेवाले कुछ बोस्टोनियनों का एक मण्डल है और दो पश्चिमात्य हैं जो आपके बहुत कायल हैं। आपके काम में मिश्रप से शामिल होने की हमारी इच्छा अपूर्णतया भी व्यक्त करने के लिए जो भेट भेजने की हमने हिम्मत की है उसको आप स्वीकार करें। दान की रकमें छोटी हैं परन्तु हममें से कुछ लोगों के लिए तो यह सच्चा त्याग ही है। आपके कार्यक्रम के उस विभाग में, जिस पर कि हमारा ध्यान सीधा आकर्षित हुआ है अर्थात अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य में इन रुपयों का उपयोग किया जायगा तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। प्रो० हॉकिंग की तरह हॉन सायमन्ड्स और दूसरे दस्तखत करनेवाले भी यह महसूस करते हैं कि हिन्दुस्तान की स्थिति के सम्बन्ध में उन्हें बहुत ही थोड़ी जानकारी प्राप्त है इसलिए आपके राजनैतिक कार्यक्रम को वे पूर्णतया अंगीकार करने लिए तो यद्यपि तैयार नहीं हो सकते हैं फिर भी हम सब आपके उपरोक्त कार्य विभाग में दिल से अपना हिस्सा देना चाहते हैं।

ईश्वर आपके साथ है और वह निश्चय ही भारत को वे अच्छे दिन दिखलायेंगे जिसकी कि आप आकांक्षा करते हैं। क्या आप कभी अमरिका के लिए भी प्रार्थना न करेंगे? उसको भी उसकी मदद की कुछ कम दरकार नहीं है।"

मैंने उनको लिखा है कि उनकी इच्छानुसार इन दोनों प्रवृत्तियों में यह रकम बराबर बांट दी जायगी। परन्तु इस पत्र के प्राप्त होने पर मुझे इस बात का दुःख हुए बिना न रहा कि ऐसी सहानुभूति रखनेवाले और नेकदार अमरिकन मित्र भी इस हलचल को इतना कम समझ रहे हैं। इसलिए जब अमरिकन मित्र मेरी मुलाकात को आते हैं और मुझसे यह पूछते हैं कि हम हिन्दुस्तान की कैसे मदद करें तो मैं उन्हें इस हलचल का ऊपर ऊपर से नहीं समाचार पत्रों के द्वारा नहीं, सैलानी-प्रवासी की तरह उतावली से नहीं परन्तु गंभीर विद्यार्थी की तरह अच्छी तरह देखभाल कर और सब तरफ से, सब दृष्टि से जानकारी प्राप्त कर के उसका अध्ययन करने के लिए कहता हूं। मेरा राजनैतिक कार्यक्रम तो सदा ही सादा है। यदि नेताओं ने अस्पृश्यता निवारण और ऐक्य के साथ चरखे को भी ग्रहण किया होता तो वह सम्पूर्ण हो जाता। दिनप्रतिदिन मेरा यह अभिप्राय दृढ़ हो रहा है कि हम केवल आन्तरिक उपायों से ही अर्थात्, आत्मशुद्धि और स्वावलम्बन से यानी अर्थात सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रह कर ही सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। बेशक उसके मूल में 'सविनय अवज्ञा' का कम अवश्य है। परन्तु उसके लिए मदद की तरफ ताकने की तो आवश्यकता नहीं होती है। उसके लिए मजबूत दिलों की आवश्यकता है जो किसी भी प्रकार के डराने से जरा भी नहीं हिचकते और जो सख्त से सख्त कसौटी के समय ही अपना पूरा जौहर दिखाते हैं। सविनय अवज्ञा कष्टसहन का सबप्रद और पर्यायवाची शब्द है। परन्तु यदि लोग उसके दूसरे विभाग की निर्दोषता का मूल्य नहीं सही समझ सकते हैं तो यही अच्छा है कि मनुष्य उस वस्तु का भयानक स्वरूप भी समझ ले। 'अवज्ञा' करने का प्रत्येक मनुष्य को हक है परन्तु जब वह सविनय होती है अर्थात् प्रेम से होती है तब वह एक धर्म हो जाता है। सुरक्षित बहर धर्माभिमानियों के विरुद्ध अस्पृश्यताविरोध सुधारक सविनय अवज्ञा का अवलम्बन किये हुए हैं। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के विधायकगण उन लोगों का जो लोगों को वर्ग और जातियों में विभक्त करना चाहते हैं अपनी आत्मा का सारा बल लगा प्रतिकार कर रहे हैं। जिस प्रकार उन लोगों का प्रतिकार किया जा रहा है जो कि अस्पृश्यता निवारण के कार्य में तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य में बाधक हैं उसी प्रकार उस राज्ययंत्र का भी जो भारत के मनुष्यत्व को कुचल रहा है प्रतिकार किया जाना चाहिए। इससे रोजाना इस महान देश के करोड़ों लोग पिसे जा रहे हैं। भविष्य के परिणाम का विचार किये बिना ही राज्यकर्तागण नशे की चीजों के सम्बन्ध में वह नीति अख्तियार किये हुए हैं कि यदि वह रोकी न जायगी तो इस भूमि में काम करनेवाले लोगों को वह भ्रष्ट कर देगी और भविष्य की प्रजा का हमारे कारण शर्म मालूम होगी क्योंकि हमलोग इस अनीति की आमदनी का हमारे बच्चों की शिक्षा देने में उपयोग कर रहे हैं। लेकिन ऐसा भयंकर प्रतिकार—धार्मिक कट्टरता का प्रतिकार, ऐक्य के शत्रुओं का प्रतिकार और सरकार का प्रतिकार केवल दृढ़ और आवश्यकता हो तो बड़े लम्बे आत्मशुद्धि और कष्ट सहिष्णुता के मार्ग से ही संभव हो सकता है।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

शालदुशाला या फटी गुदड़ी

"फटे कपड़े पहने हुए तिरस्कृत लोग ही धर्म की दुहाई देते हैं लेकिन मैं उन लोगों को पसन्द करता हूं जो सुवर्ण के जूते पहनते हैं, प्रकाश में रहते हैं और वाहवाही लूटते हैं।" इस प्रकार श्री मतलबी ने अपने व्याख्यान को समाप्त किया और इस विचार की पुष्टि की कि पादरी और व्यापारी दोनों ही प्रामाणिक गिने जा सकते हैं यद्यपि पादरी अपने श्रोताओं की रुचि के अनुसार धर्मशास्त्रों के अर्थों के साथ स्वतन्त्रता लेता है और व्यापारी ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सत्य के साथ स्वतन्त्रता लेता है। श्री. मतलबी के प्रसिद्ध मित्र ससाराजुरागी धनलोभी और दूसरे लोगों ने इसमें उसका समर्थन किया है। श्री मतलबी और उनके मित्रों के व्याख्यानों से भक्तराज और आशान्वित लोभिया गये थे फिर भी अब फटे कपड़े में और तिरस्कृत दशा में धर्म आदि में दृढ़ बने रहे और अपने समस्त बल के साथ उन्होंने उसमें अपने विश्वास की रक्षा की। उनके मानने तो श्रद्धावानों के लक्षण कार्य आदर्श रूप थे। मिथ्यापुरी के निवासियों द्वारा उनको मृत्यु तक का कष्ट पहुंचाया गया था फिर भी वे जरा भी न डिगे थे। इसी प्रकार श्री राजगोपालाचार्य ने बिहार विद्यापीठ के उपाधिदान महोत्सव के समय फटी गुदड़ी में और तिरस्कृत रहनेवाले देशप्रेम का बचाव किया था। उन्होंने कहा :

"यह विद्यापीठ कुछ श्रद्धावान मनुष्यों के टेक और श्रद्धा पर ही टिक रहा है। इसकी कठिनाइयों का कोई शुमार नहीं है। सरकारी महा विद्यालय और विद्यापीठों के साधनों की तड़कभड़क इसमें कैसे हो सकती है? यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनकी तड़कभड़क के आगे हमारी विद्यापीठ ऐसी मालूम होती है

जैसे राजा महाराजाओं के पोशाक के सामने फटा पुराना कपड़ा। लेकिन हमारा फटा पुराना कपड़ा भी गेरुआ रंग का है। उसका उद्देश उस सन्यासी के शरीर को ढांकने का है और अपना यह उद्देश वह सफल भी करता है यह बड़ा शुद्ध है और इसलिए वह हमें बड़ा प्रिय है।"

अवश्य, इस विद्यापीठ के स्नातकों को रेशमी जामे नहीं मिलेंगे, सुवर्ण पादुकायें नहीं दी जावेंगी और कुल नायक के लिए चमकती हुई सोने की जंजीर भी न होगी। उसे तो कातनेवाले और बुननेवालों की परिश्रम से सख्त बनी हुई उंगलियों से कती और बुनी हुई खुरदरी खादी का ही बोझ उठाना होगा और स्नातकों को भी यदि वे अपने विद्यापीठ के सिद्धान्त के अनुकूल सत्य जीवन व्यतीत करना चाहते हों तो उन्हें जनसमुदाय की ऐच्छिक सेवा का बोझ उठा कर ही सन्तोष मानना होगा। वे ऐसी सिविल सर्विस के साथ सम्बन्ध रखनेवाले मनुष्य हैं कि जिन के अन्त में उन्हें पेन्शन में केवल हमेशा बार बार होनेवाला मलेरिया (जूड़ी का बुखार) क्षय और ऐसा ही कोई दूसरा रोग प्राप्त होगा, जो गरीबों की अनवरत सेवा का चिह्न है, वे अमूल्य करोड़ों गरीबों की सेवा का, जिन्हें कि नयी देहली बनाने के लिए, अपनी स्वतंत्रता को दबा देने को सिपाहियों की शिक्षा के लिए और युवक युवतियों को महल जैसे मकानों में इन गरीबों पर राज्य करने की शिक्षा देने के लिए रुपये जुटाने पड़ते हैं।

विद्यापीठ के संचालकों ने इस वार्षिक महोत्सव के समय एक खादी की प्रदर्शिनी की भी व्यवस्था की थी। गत सप्ताह मैंने सतीशबाबु के व्याख्यान से, जिन्होंने कि प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया था कुछ अवतरण दिये थे। इस समय राजगोपालाचार्य के व्याख्यान से कुछ अवतरण दे रहा हूं। भारत के युवकों का उसमें विचार करने योग्य बहुत सी बातें प्राप्त होंगी। शिक्षकों को केवल खाने भर के लिए ही मिले और विद्यार्थी उतने ही रह जायें जितने कि उंगलियों पर गिने जा सके फिर भी इन संस्थाओं को तो निभाना ही चाहिए। सिर्फ विद्यार्थियों को और शिक्षकों को उसके बड़े ही गाढ़ आदर्श के प्रति, —खादी में व्यक्त होनेवाला सत्य और अहिंसा, अस्पृश्यता के कलंक को दूर कर के हिन्दू-धर्म की शुद्धि और जुदे जुदे धर्म और जाति और उपजातियों में हार्दिक ऐक्य के प्रति — प्रामाणिक रहना चाहिए। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा को इन आवश्यकताओं को और आकांक्षाओं को पूरा करना चाहिए। जो राष्ट्रीय विद्यापीठ अपनी संख्या बढ़ाने के लिए इस आदर्श का भंग करता है वह अपनी राष्ट्रीयता को कुछ मूल्य में बेच देता है और इसलिए वह मृत्यु के ही मार्ग है। बिहार विद्यापीठ बड़ी कठिनाइयां होने पर भी इस आदर्श पर दृढ है। मैं उसके प्रयत्नों को जानता हूं। बिहार का देश गरीब है परन्तु इसके माने यह नहीं कि वहां धनवान उदार वर्ग नहीं है या दूसरे प्रान्त से गये हुए मारवाड़ी धनी लोग जो अपने व्यापार से बिहार के धन को बढ़ा रहे हैं, वहां नहीं हैं। उपाधिदान महोत्सव के समय पढ़े गये वार्षिक विवरण में बताये गये विद्यापीठ के हक की वे सब परीक्षा करें और यदि उन्हें यह संतोष हो जाय कि उसका हक साधार है और यदि उनका अभिप्राय यह हो कि उपरोक्त आदर्श इस योग्य है कि उसके लिए मरना या जीना उचित है और युवकों के हृदय में उसको स्थान देने से लाभ ही होगा तो उन्हें उसकी मदद करनी चाहिए।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

प्रदर्शिनी

समय समय पर जुदे जुदे स्थानों में प्रदर्शिनियां भरी जायं तो संभव है कि उसका कुछ अधिक परिणाम हो। यह कहा जाता है कि अभी अभी देहली और काशी में जो प्रदर्शिनियां भरी गईं थी वे ठीक ठीक सफल हुई थी। उसमें अधिक खर्च नहीं होना चाहिए और उसे स्वावलम्बी भी बनाया जा सकता है। देहली में लाला लाजपतराय को और काशी में आनन्द शंकर ध्रुव को प्रदर्शिनियां खोलने के लिए बुलानेमें उन समितियों ने कोई कम लाभ नहीं उठाया है। यदि प्रबन्ध अच्छा हुआ हो तो शिक्षा देने के कार्य में उसका बहुत बड़ा मूल्य है। एकही सामान्य ध्येय के लिए एकत्रित हो कर काम करने के लिए सभी दलों को और वर्गों को उसका निष्पक्ष मंच प्राप्त हो सकता है। मैं एसे एक भी मनुष्य को नहीं जानता हूं कि जो सिद्धान्तरूप से खद्दर के खिलाफ हो।

बेझवाड़ा म्युनिसिपालिटि और खादी

बेझवाड़ा म्युनिसिपालिटि की निम्न लिखित रिपोर्ट बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ी जायगा:

"कोई २७ प्राथमिक शालायें हैं। अब तक ११४ चरखे बांटे गये हैं और वे बराबर चलाये जाते हैं। इस साल के बजेट में १७० चरखे अधिक देने के लिए गुंजाइश रक्खी गई है। सूत माहवार ८०००० से १००००० गज के करीब उतरता है। प्राथमिक शालाओं में १०३ शिक्षक हैं और ५ मुसल्मान स्त्री-शिक्षिकायें हैं। एक मुसल्मान शिक्षक हमेशा खादी ही पहनते हैं। ९० गैरमुस्लिम शिक्षकों में ८० खादी पहनते हैं। म्युनिसिपल आफिस के क्लर्क और नौकर सब खादी ही पहनते हैं और खादी की टोपी देते हैं। टिक्कपेट उच्च प्राथमिक शाला में और कादपेठ उच्चतर प्राथमिक कन्याशाला में बड़ा अच्छा सूत तैयार किया जाता है। इस कन्याशाला की दो शिक्षिकायें प्रति सप्ताह ५० अंक का १०,००० गज सूत तैयार कर के देती हैं। इस प्रकार जो सूत मिलता है वह जमा किया जाता है और जब महात्माजी अब फिर बेझवाड़ा की मुलाकात को आवेंगे उन्हें भेंट किया जावेगा। म्युनिसीपाल अस्पताल, म्युनिसीपाल्टी की आफीसें, शालायें और डाक बंगलों के लिए, टॉवेल, डस्टर, टेबिल-क्लाथ रोगियों के उपयोग के लिए और कन्याशालाओं में सिलाई इत्यादि के काम के लिए खादी ही खरीदी जाती है। इस साल पश्चिम कृष्णा जिले के खादी-भण्डार से कोई ६००) की खादी खरीदी गई थी। प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों को बेची गई खादी के दाम हप्ते हप्ते वसूल करने का प्रबन्ध किया गया है। आरोग्य सप्ताह के दिनों में कताईकी शर्तें हुई थी और ७५ खादी की टोपियां और ४६ गज खादी इनाम में बांटी गई थीं। आगामी मई के महीने में दूसरी शर्त कराई जावेगी और बजेट में उसके खर्च के लिए व्यवस्था रक्खी गई है। कुछ म्युनिसीपालिटि के सभासद, कुछ प्राथमिक शालाओं के शिक्षक और इन्स्पेक्टर खादी के कार्य में बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं।"

यह विवरण बड़ा ही प्रशंसापात्र है। म्युनिसीपालिटि तकली दाखिल करेगी तो वह सूत की तादाद पांच गुना अधिक बढ़ा सकेगी और उससे शिक्षक और विद्यार्थियों के लिए फिर कोई बहाना भी न रह जायगा। तकली के कारण कोई जगह नहीं रोकना पड़ती है और उसमें कोई खर्च भी नहीं होता है और कोई हिस्सा टूट जाने के कारण कोई तकलीफ भी नहीं उठानी पड़ती है।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १७

भोजन के प्रयोग

मैं ज्यों ज्यों जीवन के विषय में गहरा उतरता गया त्यों त्यों मुझे मेरे बाह्य और आन्तरिक आचारों में परिवर्तन करने की आवश्यकता मालूम होने लगी। जिस वेग के साथ मैंने अपने रहनसहन में और खर्च मे परिवर्तन किये थे उतने ही वेग के साथ बल्कि उससे भी अधिक वेग के साथ भोजन में भी परिवर्तन करना आरंभ कर दिया। निरामिष भोजन विषयक अंगरेजी पुस्तकों में मैंने यह देखा कि लेखकों ने बड़ा सूक्ष्म विचार किया था। निरामिष भोजन पर उन्होंने धार्मिक, वैज्ञानिक, व्यवहारिक और वैद्कीय दृष्टि से विचार किया था। नैतिक दृष्टि से उन्होंने यह विचार किया कि मनुष्यों को पशुपक्षियों पर जो साम्राज्य प्राप्त हुआ है वह उन्हें मार कर खाने के लिए नहीं, परन्तु उनकी रक्षा करने के लिए अथवा मनुष्य जैसे एक दूसरे का आपस मे उपयोग करते हैं लेकिन एक दूसरे को खाते नहीं हैं उसी प्रकार पशुपक्षी भी वैसे ही उपयोग के लिए हैं खाने के लिए नहीं। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि खाना भोग करने के लिए नहीं है परन्तु जीवित रहने के लिए है। इस पर कुछ लोगों ने तो केवल मांस का ही नहीं अण्डे का और दूध का भी खाद्य के तौर पर त्याग सूचित किया और उन्होंने स्वयं वैसा किया भी। विज्ञान की दृष्टि से और मनुष्य की आकृति को देख कर कुछ लोगों ने तो यह अनुमान किया कि मनुष्य को खाना पकाने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह वनपके फल खाने के लिए ही बनाया गया है। यदि दूध पीये तो केवल माता का ही दूध पीये। दांत आने पर तो उसे वही खुराक लेनी चाहिए जिसे दांतों से चबाना आवश्यक हो। वैद्कीय दृष्टि से उन्होंने मिरच मसाले का त्याग सूचित किया और व्यवहारिक अर्थात आर्थिक दृष्टि से उन्होंने यह साबित कर दिखाया कि जिस खुराक में सब से कम खर्च होता है वह खुराक तो केवल निरामिष ही हो सकती है। इन चारों दृष्टि बिन्दुओं का मुझ पर असर हुआ और इन चारों दृष्टिवाले मनुष्यों को मैं होटलों मे मिलता भी था। विलायत में उससे सम्बन्ध रखनेवाला एक मण्डल था और एक साप्ताहिक भी चलता था। उस साप्ताहिक का मैं ग्राहक बना और मण्डल का सभासद हुआ। कुछ ही दिनों में मुझे उसकी कमिटि में भी ले लिया गया। यहां मुझे उन लोगों का परिचय हुआ जो निरामिषभोजी लोगों में स्तंभरूप गिने जाते थे। मैंने भोजन के प्रयोगों का आरंभ किया।

घर से मिठाई मसाले इत्यादि चीजें मंगाई थी उन्हें खाना बन्द कर दिया और क्योंकि दिल का रुख फिर गया था इसलिए मसालों का शौक भी कम हो गया था और रिचमण्ड में बिना मसाले के जो भाजी फीकी मालूम होती थी वही अब केवल उबाली हुई भी स्वादिष्ट मालूम होती थी। ऐसे अनेक प्रकार के अनुभवों से मैंने यह सीखा कि स्वाद का स्थान जीभ नहीं है परन्तु मन है।

आर्थिक दृष्टि तो मेरे सामने थी ही। उस समय एक ऐसा भी पंथ था कि जो चा, काफी इत्यादि को हानिकारक मानता था और कोको का ही समर्थन करता था। मैंने यह समझ लिया था कि शरीरव्यापार के लिए जो चीज लेना आवश्यक हो उसीको लेना उचित है, इसलिए मैंने चा और काफी का मुख्यतः त्याग किया और उसका स्थान कोको को दिया। भोजनगृह के दो विभाग थे एक मे जितनी चीजें खाई जाती थी उतने के ही दाम देने होते थे। इसमें एक दफा में एक शिलिंग या दो शिलिंग तक खर्च हो जाते थे। इसमें अच्छी स्थिति के आदमी आते थे। दूसरे विभाग में छः पेनी मे तीन चीजें और एक रोटी का टुकड़ा मिलता था। जिस समय मैंने बहुत करकसर करना शुरू किया उस समय मैं इस छः पेनीवाले विभाग में ही था।

उपरोक्त प्रयोग में दूसरे छोटे छोटे और भी बहुत से प्रयोग किये गये थे। किसी समय स्टार्चवाले खाद्य पदार्थों को त्याग करने का, किसी समय केवल रोटी और फल पर ही गुजारा करने का तो किसी समय पनीर, दूध और अण्डे खाने का ही प्रयोग करता था।

यह अन्तिम प्रयोग उल्लेख योग्य है। वह पंद्रह दिन भी न चल सका। स्टार्चरहित खाद्य का समर्थन करनेवालों ने अण्डे की बड़ी प्रशंसा की थी और यह साबित किया था कि अण्डे मांस नहीं। उसको खाने में यह बात तो अवश्य थी कि किसी जीवित जीव को दुःख न होता था। इस दलील से भुलावे में पड़ कर मैंने माता को दी हुई प्रतिज्ञा के होते हुए भी अण्डे लिए थे। लेकिन मेरी मूर्छा क्षणिक थी। प्रतिज्ञा का नया अर्थ करने का मुझे कुछ भी अधिकार न था। प्रतिज्ञा करानेवाली माता का ही अर्थ लिया जा सकता है और मैं यह जानता था कि मुझसे प्रतिज्ञा करानेवाली माता को अण्डे का ख्याल भी नहीं हो सकता था। इसलिए जैसे ही मुझे प्रतिज्ञा के रहस्य का ख्याल हुआ मैंने अण्डे छोड़ दिये और उस प्रयोग का भी त्याग कर दिया।

यह रहस्य सूक्ष्म और ध्यान देने योग्य है। विलायत में मांस की तीन व्याख्यायें पढ़ी थी। एक में मांस पशुपक्षी का मांस होता था। इसलिए उन व्याख्याकारों की दृष्टि में वह त्याज्य था परन्तु वे मछलियां खाते थे और अण्डे तो उनके मतानुसार खाये ही जा सकते थे। दूसरी व्याख्या के अनुसार जिसे सामान्य मनुष्य जीव नाम से जानते हैं उसका त्याग करना पड़ता था। इसलिए मछली त्याज्य थी परन्तु अण्डे ग्राह्य थे। तीसरी व्याख्या में सामान्यतया जीव माने जानेवाले सभी जीवों का और उनमें से उत्पन्न होनेवाली सभी चीजों का त्याग होता था। इस व्याख्या के अनुसार अण्डे और दूध का त्याग भी अनिवार्य था। इसमें यदि पहली व्याख्या को मान्य रखूं तो मछली भी खायी जा सकती थी। लेकिन मैं यह समझ गया कि मेरे लिए तो माताजी की व्याख्या ही मान्य होनी चाहिए थी। इसलिए यदि मुझे माता के समक्ष ली हुई प्रतिज्ञा का पालन करना है तो मैं किसी भी प्रकार अण्डे नहीं ले सकता था। मैंने अण्डे का त्याग किया। इससे मुझे बड़ी कठिनाई मालूम हुई क्योंकि अधिक स्पष्टिकरण करने पर मालूम हुआ कि निरामिष भोजन के भोजनगृहों में भी बहुत सी चीजों में अण्डा डाला जाता था। अर्थात् मेरे भाग्य में जबतक मैं अच्छी तरह जानकार न बना तबतक मुझे वहां भी परोसनेवालों से पूछताछ करनी पड़ती थी, क्योंकि बहुत से पुडींग में और केक में अण्डे तो होते ही थे। इससे मैं एक प्रकार से एक जंजाल से बच गया क्यों कि मैं थोड़ी और केवल सादी ही चीजें खा सकता था। दूसरी तरफ कुछ चोट भी पहुंची क्यों कि ऐसी बहुत सी चीजों का जिनका जीभ पर स्वाद चढ़ गया था मुझे त्याग करना पड़ा था। परन्तु वह चोट क्षणिक थी। प्रतिज्ञापालन का शुद्ध सूक्ष्म और स्थायी स्वाद मुझे उस क्षणिक स्वाद से अधिक प्रिय मालूम हुआ था।

परन्तु यह परीक्षा तो अभी होने को बाकी ही थी और वह भी एक दूसरे मत के कारण, लेकिन जिसकी राम रक्षा करते हैं उसको कौन मार सकता है।

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले प्रतिज्ञा के अर्थ के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है। मेरी प्रतिज्ञा माता के समक्ष किया हुआ मेरा इकरार था। इकरारनामा चाहे कैसी भी स्पष्ट भाषा में क्यों न लिखा जाय अर्थशास्त्री उसका कुछ का कुछ कर देगा। इसमें सभ्यासभ्य का कोई भेद नहीं होता है। स्वार्थ सभी को अन्धा बना देता है। राजा से ले कर दरिद्र तक भी अपने इकरारों का चाहे जैसा अर्थ कर के अपने को, दुनिया को और ईश्वर को ठगते हैं। इसे ही न्याय-शास्त्री द्वीअर्थी मध्यमपद कहते हैं। उत्तम मार्ग तो यह है कि विरुद्ध पक्ष ने हमारे वचन का जो अर्थ किया हो वही सही माना जाना चाहिए। हमारे मन में जो अर्थ हो वह गलत होता है या अपूर्ण होता है। और वैसा ही एक दूसरा उत्तम मार्ग यह है कि जहां दो अर्थ संभव हो सकते है वहां दुर्बल पक्ष जो अर्थ करे वही सही माना जाना चाहिए। इन दो सुवर्ण मार्गों के त्याग से ही बहुधा बहुत से झगड़े होते हैं और अधर्म होता है। और इस अन्याय की जड़ असत्य है। जिसे सत्य के मार्ग पर ही चलना है उसे यह सुवर्ण मार्ग सहज ही प्राप्त हो जाता है। उसे शास्त्रों की शोध नहीं करनी होती। माता ने मांस शब्द का जो अर्थ माना था और जो अर्थ मैंने उस समय समझा था वही अर्थ मेरे लिए सही था, परन्तु मेरे अधिक अनुभव से और मेरी विद्वत्ता के मद मे जिसे मैंने सीखा हुआ समझा वह नहीं।

अबतक मेरे प्रयोग आरोग्य और आर्थिक दृष्टि से हो रहे थे। विलायत में उसने धार्मिक रुप ग्रहण नहीं किया था। इस दृष्टि से दक्षिण आफ्रिका में मैंने कठिन प्रयोग किये थे। उस पर आगे चल कर विचार करेंगे। लेकिन यह कहा जा सकता है कि उसका बीज विलायत ही में डाला गया था।

जो नया धर्म स्वीकार करता है उसका उस धर्म में जन्म ग्रहण किये हुए मनुष्यों से अधिक उत्साह होता है। निरामिष भोजन विलायत में तो नया ही धर्म था और मेरे लिए भी वह वैसा ही गिना जा सकता था, क्योंकि बुद्धि से आमिष भोजन का समर्थक बनने के बाद ही मैं विलायत गया था। निरामिष भोजन की नीति का मैंने ज्ञानपूर्वक स्वीकार तो विलायत ही में किया था इसलिए यह नये धर्म में प्रवेश करने के समान था। मेरे में नवधर्मी का उत्साह था। इसलिए जिस महल्ले में मैं रहता था वहां मैंने एक निरामिषभोजी मण्डल स्थापित करने का निश्चय किया। यह महल्ला बेज़वाटर का महल्ला था। इस महल्ले में सर एडविन आर्नोल्ड रहते थे। उनको उपाध्यक्ष बनने के लिए निमन्त्रण दिया। वे मण्डल के उपाध्यक्ष बने। डाक्टर ओल्डफील्ड प्रधान हुए और मैं मन्त्री बना। कुछ समय के लिए यह संस्था चली लेकिन कुछ महीने के बाद उसका अंत हो गया, क्योंकि अपने नियमानुसार मैंने वह महल्ला कुछ समय के बाद [illegible] दिया। परन्तु इस थोड़े से और थोड़े समय के अनुभव से [illegible]ओं की रचना करने का और उनको चलाने का मुझे कुछ [illegible] प्राप्त हुआ।

([illegible]जीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

'स्वत्वाधिकार सुरक्षित रक्खो'

एक भाई लिखते हैः

"समाचारपत्रों को आपने अपनी आत्मकथा के अध्यायों को उद्धृत करके छापने की जो इजाजत दी है उससे मालूम होता है कि यंग इंन्डिया और नवजीवन की ग्राहक संख्या पर प्रतिकूल असर होगा। सभी समाचारपत्र व्यापारिक दृष्टि रखते हैं इसलिए वे सब उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे। मेरे ख्याल मे आपको उन्हें यह इजाजत नहीं देनी चाहिए थी। यदि उनको यह इजाजत नहीं दी जावेगी तो जो लोग आत्मकथा पढ़ना चाहेंगे उन्हे यंग इंन्डिया और नवजीवन के ही ग्राहक बनना होगा। उसके बिना वे उसे न पढ सकेंगे। जो ग्राहक न होंगे वे ग्राहक बनेंगे और उसके ग्राहक बनेंगे तो वे उसके दूसरे लेखों को भी पढेंगे। तब फिर आप यह इजाजत दे कर आपके संदेश के प्रचार को बढाने का यह अवसर क्यों खोते है? और शराब और उसके जैसे ही दूसरे अनुचित विज्ञापनों को जैसे कि बुरी दवाइयां, बुरे पुस्तक और उपन्यासों—को फैलाने में अपना हिस्सा क्यों दे रहे हो? मेरे इस अभिप्राय में यंग इन्डिया के बहुत से पाठक सहमत हैं।"

इस सलाह में जो शुभ हेतु है वह मुझे बहुत ही पसंद है। लेकिन उसके उचित होने के सम्बन्ध में मुझे निश्चय नहीं है। मैंने मेरे किसी लेख के स्वत्वाधिकारों को सुरक्षित नहीं रक्खे हैं। आत्मकथा के अध्यायों को प्रकाशित करने के लिए मेरे पास बड़ा प्रलोभन दिखानेवाली मांगे आई हैं और जिस प्रवृत्ति को आज मैं चला रहा हूं उसके लिए संभव है कि ऐसी लालच में मैं पड भी जाऊं। फिर भी यह नहीं हो सकता कि एक को इजाजत दूं और दूसरे को न दूं। जिन साप्ताहिकों को मैं चला रहा हूं उसके लेख सभी लोगों का धन हैं। 'कापीराइट' (प्रकाशन का स्वत्वाधिकार) यह कोई स्वाभाविक वस्तु नहीं है; यह तो आधुनिक सुधारों की पैदाइश है। शायद कुछ अर्थों में वह इष्ट भी गिना जा सकता है। परन्तु समाचारपत्रों को आत्मकथा के अध्यायों को छापने से मना कर के मैं यंगइन्डिया और नवजीवन के ग्राहकों को बढाना नहीं चाहता हूं। इन साप्ताहिकों के द्वारा मैं जो संदेश देना चाहता हूं उसे ऐसी कृत्रिम पुष्टि की कोई आवश्यकता नहीं है, उसका तो अपने ही बल पर प्रचार होना चाहिए। मुझे इस बात का सन्तोष है कि आज जितने मनुष्य इन साप्ताहिकों को खरीदते हैं वे उसमें रहे हुए तत्वों के प्रतिपादन के लिए ही उसे खरीदते है, 'आत्मकथा' जैसे लेखों से जो तात्कालिक कुतूहल उत्पन्न होता है उसके लिए नहीं।

और इन पत्रों में जो कुछ भी मैं लिखता हूं उसको उद्धृत करने के लिए समाचारपत्रों को मनाई करने का हक मैंने छोड दिया है इसलिए जैसे कि उपरोक्त पत्र में कहा गया है मैं यह नहीं ख्याल करता कि विज्ञापनों के फैलाने के समाचारपत्रों के पाप में मैं कोई हिस्सा दे रहा हूं। इन विज्ञापनों के प्रति मुझे बड़ा तिरस्कार है। मैं अवश्य ही यह मानता हूं कि ऐसे अनीति से भरे हुए विज्ञापनों से समाचारपत्रों को चलाना उचित नहीं है। मैं यह भी मानता हूं कि विज्ञापन यदि लेने ही हों तो उस पर समाचार पत्रों के मालिक और संपादकों की तरफ से बडी सख्त चौकीदारी होना आवश्यक है और केवल शुद्ध और पवित्र विज्ञापन ही लिए जाने चाहिए। परन्तु मैं अपने लेखों को उद्धृत करने को मना नहीं करता हूं इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मैं ऐसे

अनीतियुक्त विज्ञापनों के गुन्हे में शामिल हूं। आज अच्छे प्रतिष्ठित गिने जानेवाले समाचारपत्र और मासिकों को भी यह दूषित विज्ञापनों का अनिष्ट लग रहा है। यह अनिष्ट तो समाचारपत्रों के मालिकों की विवेकबुद्धि को शुद्ध कर के ही दूर किया जा सकता है। मेरे जैसे सीखाऊ सम्पादक के प्रभाव से यह शुद्धि नहीं हो सकती है लेकिन जब उनकी विवेकबुद्धि इस बढनेवाले अनिष्ट के प्रति जागृत होगी, अथवा जब राष्ट्र का शुद्ध प्रतिनिधित्वयुक्त और राष्ट्र की नीति पर सदा ध्यान रखनेवाला राज्यतंत्र उस विवेकबुद्धि को जागृत करेगा तभी वह हो सकेगी।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

विविध प्रश्न

[गांधीजी की डाक से निम्न लिखित प्रश्न लिये गये हैं प्रश्नों का केवल सार ही दिया गया है। उत्तर गांधीजी के शब्दों में है।]

कुनैन का नियमित उपयोग करो!

एक मित्र ने गांधीजी को उनकी बीमारी के बाद बड़े आग्रह के साथ लिखा था कि कुनैन नियमित लेते रहो, बहुत दिनों तक कुनैन लेने पर ही मलेरिया के जन्तुओं का नाश होता है। गांधीजी ने उनको लिखा था:

अब मैं कुनैन नहीं लेता हूं। क्या आपको यह यकीन हो गया है कि कुनैन लेने से मनुष्य मलेरिया (जूडी का बुखार) से सदा के लिए मुक्ति पा जाता है अथवा आप ऐसा कोई उदाहरण दे सकते हैं? जब बुखार आती थी मैंने तीन चार दिन के लिए थोडे थोडे डोज खुराक में कुनैन ली थी। अब बुखार चला गया है। डाक्टर ने कुछ इन्जेक्शन भी दिये थे लेकिन मैं यह नहीं जानता कि उससे कितना लाभ होता है। परन्तु कोई लम्बी दलील किये बिना ही मैंने इन्जेक्शन ले लिये था।

कुनैन क्यों ली?

ये दूसरे मित्र हैं जो केवल कुदरती इलाजों का ही समर्थन करते हैं। गांधीजी ने कुनैन ली इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे उनसे इस पर झगडा करते हैं कि ऐसा सुन्दर शरीर आपने कुनैन से क्यों बिगाडा? कुनैन तो अनेक अनर्थों का घर है इ०

उ० कुनैन के जो अनिष्ट परिणाम आप गिनाते हैं वे बहुत बड़ी खुराक में बहुत दिनों तक कुनैन लेने से होते हैं। मैंने तो केवल पांच पांच ग्रेन के डोज में ही कुनैन ली थी और दिन में १० ग्रेन से कभी अधिक कुनैन नहीं ली, और सो भी नींबु का रस, सोडा और पानी मिला कर ली थी। पांच दिन में सब मिला कर ३० ग्रेन से अधिक कुनैन नहीं खाई थी। चार दिन तो केवल पांच पांच ग्रेन कुनैन ही ली थी। इतना कुनैन खाने से मुझे कोई बुरा परिणाम नहीं दिखाई दिया है और बहुत से मित्र और डाक्टर पन्द्रह पन्द्रह ग्रेन कुनैन लेने को कहते थे उन्हें सन्तोष पहुंचा सका यह एक और ही लाभ हुआ।

और इस प्रकार आंखें बन्द करके कुनैन पर आक्रमण नहीं किया जा सकता है, क्योंकि मलेरिया से थोडे समय के लिए बचने के उपाय के तौर पर कुनैन की उपयोगिता तो स्पष्ट ही है। मलेरिया के भयंकर परिणामों से यदि मनुष्य उस समय के लिए बच जाय तो भविष्य में आनेवाले बुरे परिणामों की ओर वह ध्यान नहीं देता है। इसलिए उस पर सीधा ही आक्रमण करना चाहिए और यह सिद्ध करना चाहिए कि कुनैन से कुछ भी लाभ नहीं होता है।

जेल में था उस समय जिस कारण से मैंने आपरेशन कराया था उसी कारण से कुनैन भी ली थी। कैद के दबाव के कारण मैंने आपरेशन करा लिया था, तो कुनैन लेने के समय मित्रों के प्रेम का दबाव कितना बलवान हुआ होगा इसकी आप कल्पना करें। परन्तु यह सच है कि यदि मुझे यह विश्वास न होता कि आपरेशन करने की इजाजत देना मेरी दुर्बलता की ही प्रतिध्वनि है तो मैं आपरेशन भी न कराता। परन्तु यह दुर्बलता जिसे आप कुदरती इलाज कहते हैं उसके प्रति सम्पूर्ण विश्वास की कमी है। और इस इलाज की पद्धति भी सम्पूर्णता को नहीं पहुंची है। प्रयत्न से ही इस दशा को पहुंच सकते हैं। यह जब चाहे वस्त्र की तरह पहनी नहीं जा सकती है, और यह विश्वास कि जगतप्रतिपालक हमारी रक्षा करता है दलील से उत्पन्न नहीं होता, दर्शन ही से होता है।

दूसरा खुलासा

एक दूसरे मित्र को इस विषय में गांधीजी ने लिखा था:

बरमा के मित्र से कहना कि यद्यपि मैंने लोह और संखिया के इन्जेक्शन लिये थे, फिर भी मैं दवा और डाक्टरों के विषय पर मेरे लेख में बताये गये मेरे आग्रह पर दृढ रहना चाहता हूं। आदर्श का स्वीकार एक बात है और उसका पालन करना दूसरी बात है। आज तो मेरे मित्र कहते हैं कि मेरे शरीर पर मेरा कोई हक नहीं है। यह शरीर तो देश का है। उसके हित पर ध्यान देने का मेरे ही जितना दूसरों का भी हक है और वे अपनी सुन्दर दलील से मुझे यह समझाते हैं कि मेरे शरीर की रक्षा के लिए मैं एक दूसरा हूं और उसे झुठलाने का भी मुझे हक है। इसलिए बरमा के मित्र जैसे दूसरे मित्रों को भी मेरे आदर्श में और आचार में विरोध मालूम होता है। इसलिए उनसे कहना कि जब तक वे मेरी तरह महात्मा न बने दवा को न छूने के और डाक्टर को न बुलाने के अपने आग्रह पर दृढ बने रहें और यदि वे इस सीधे और दुर्गम पथ पर दृढ रहेंगे तो आखिर उनका श्रेय होगा। उनको खानगी तौर पर यह भी कहना कि मैंने मित्रों के आग्रह को मान्य रक्खा है परन्तु पांच दिन में केवल ३० ग्रेन कुनैन ही मैंने खाई है और पांच सप्ताह में पांच ही इन्जेक्शन लिये हैं।

चोली पसन्द है तो साडी क्यों नहीं?

एक बहन लिखती है खादी की चोली बडी अच्छी होती है। गरमी के कारण पसीना हो तो उसे वह चूस लेती है और उससे ठंडक रहती है परन्तु मुझे साडी-बाडी पसन्द नहीं क्योंकि मुझे विदेशी कपडे का बडा शौक है।

उ० आपका पत्र मिला। आपको खादी की चोली पसन्द है तो क्या अब आप साडी भी पसन्द न करोगी? स्वदेशी मनुष्यों को विदेशी कपडों का शौक क्यों होता होगा? यदि हमें हमारा देश प्रिय है तो हमें हमारे देश की चीजों का शौक होना चाहिए। हिन्दुस्तान के गरीबों के हाथ से कते और बुने हुए कपडों के प्रति जिन्हें अरुचि हो वे क्या भारतसन्तान कहला सकते हैं?

(नवजीवन)

विविध प्रश्न

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३२

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, प्रथम चैत्र सुदी १२, संवत् १९८२ २५ गुरुवार, मार्च, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १६

परिवर्तन

कोई यह न समझे कि नाच इत्यादि सीखने का मेरा यह समय स्वच्छन्द का समय था। पाठकों ने यह देखा होगा कि उसमें भी कुछ ज्ञान अवश्य था। इस मूर्छा के समय में भी मैं कुछ अंशों में बड़ा चौकन्ना रहता था। एक एक पाई का हिसाब रखता था। खर्च की मर्यादा बांध दी गई थी। यह निश्चय कर रक्खा था कि प्रतिमास १५ पौंड से अधिक खर्च न किया जाय। बस (मोटर) में जाने का खर्च, डाक-खर्च और समाचारपत्रों का खर्च भी हमेशा लिखता था और सोने के पहले मेल मिला लेता था। यह आदत आखिर तक रही और इसलिए मैं यह कह सकता हूं कि सार्वजनिक कार्यों में मेरे हाथों लाखों रुपयों का हिसाब हुआ है, उसमें मैं उचित करकसर कर सका हूं। मेरे हाथ से जितनी भी हलचलें हुई उनमें मैंने कभी कोई कर्ज नहीं लिया परन्तु प्रत्येक हलचल में कुछ न कुछ रुपये जमा पासे में ही बाकी रहे हैं। प्रत्येक नवयुवक यदि उसको मिलनेवाले कुछ थोडे से रुपयों का भी ध्यानपूर्वक हिसाब रक्खेगा तो जिस प्रकार मैंने उससे भविष्य में लाभ उठाया और उससे जनता को भी लाभ मिला उसी प्रकार वह भी लाभ उठायगा और उससे जनता को भी लाभ होगा।

मेरे रहन-सहन पर मेरा अंकुश था इसलिए मैं यह समझ सका था कि मुझे कितना खर्च करना चाहिए। अब मैंने खर्च को आधा कर देने का निश्चय किया। हिसाब की जांच करने पर मालूम हुआ कि मेरा गाडी का खर्च अधिक था। और कुटुम्ब में रहने के कारण प्रति सप्ताह एक रकम तो देनी ही पडती थी। कुटुम्ब के मनुष्यों को किसी दिन बाहर भोजन के लिए ले जाने का भी विवेक दिखाना चाहिए। और जब कभी उनके साथ किसी निमन्त्रण में जाना होता था तो गाडी-भाडे का खर्च भी होता था। साथ में यदि कोई लडकी होती तो उससे गाडी-भाडे का खर्च नहीं लिया जा सकता। और बाहर जाने पर घर खाने के समय पर पहुंच नहीं सकता था। वहां तो रुपये पहले ही दिये जाते थे और बाहर खाने के दाम तो अलग ही देने होते थे। मैंने सोचा कि इस प्रकार जो खर्च होता था वह बचाया जा सकता है। मैंने देखा कि केवल वृथा शर्म के कारण जो खर्च करना पडता था वह भी बचाया जा सकता है।

अबतक कुटुम्बों में रहता था लेकिन अब अपने लिए एक कमरा अलग किराये पर ले कर रहने का ही मैंने निश्चय किया। और काम के हिसाब से और अनुभव प्राप्त करने के लिए जुदे जुदे महल्लों में मकान बदलने का भी निश्चय किया।

मकान ऐसी जगह पसंद किया था कि वहां से पैदल काम की जगह पर मैं आधे घण्टे में ही जा सकता था और गाडी-भाडा बच जाता था। इसके पहले जाने के समय हमेशा गाडीभाडा खर्च करना पडता था और घूमने के लिए अलग समय निकालना पडता था। अब काम पर जाने के समय घूमने की भी व्यवस्था हो गई और इस व्यवस्था से मैं रोजाना आठ दस मील घूम लेता था। खास कर इस एक आदत के कारण ही विलायत में मैं शायद ही कभी बीमार हुआ हूंगा। शरीर ठीक कसा गया था। कुटुम्ब में रहना छोड दिया और दो कमरे किराये पर लिये, एक सोने के लिए और दूसरा बैठक के लिए। यह परिवर्तन का दूसरा काल गिना जा सकता है। अभी तीसरा परिवर्तन और आगे होगा।

इस प्रकार आधा खर्च बच गया। लेकिन समय का क्या? मैं यह जानता था कि बेरीस्टरी की परीक्षा के लिए बहुत पढने की आवश्यकता न थी। इसलिए मुझे दिल में शान्ति थी। मेरी कच्ची अंगरेजी मुझे बड़ा दुःख देती थी। लेली साहेब के वे शब्द 'तुम पहले बी. ए. पास करो, फिर आना' खटक रहे थे। मुझे बेरीस्टर होने के अलावा और कुछ दूसरी पढाई भी करनी चाहिए। आक्सफोर्ड केम्ब्रीज के समाचार प्राप्त किये। कुछ मित्रों को भी मिला। वहां जाने पर खर्च बहुत बढ जाता था और उसका अभ्यासक्रम भी बड़ा लंबा था। मैं तीन साल से अधिक नहीं रह सकता था। एक मित्र ने कहा 'यदि तुम्हें कोई कठिन परीक्षा देनी हो तो तुम लंडन की मेट्रीक्युलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण कर लो। उसमें मिहनत भी ठीक ठीक करनी होगी और तुम्हारा सामान्य ज्ञान भी बढेगा और खर्च तो जरा भी न बढेगा।' यह सूचना मुझे पसंद आयी। परीक्षा के विषयों को देखा तो मैं

समझा गया। लेटीन और एक दूसरी भाषा अनिवार्य विषयों में थी। लेटीन में मैं कैसे तैयार हो सकता था? एक मित्र ने कहा: 'वकीलों को लेटीन का बहुत कुछ उपयोग होता है। लेटीन जाननेवालों को कानून की पुस्तकों को समझना बडा आसान मालूम होता है और रोमन ला की परीक्षा में एक प्रश्न तो केवल लेटीन भाषा में ही होता है। और लेटीन जानने से अंगरेजी पर अच्छा अधिकार हो जाता है।' इन सब दलीलों का मुझ पर असर पडा। कठिन हो या न हो, लेकिन लैटीन तो सीखनी ही होगी। फ्रेंच आरंभ की थी उसे पूरा करना था, इसलिए दूसरी भाषा फ्रेंच लेना निश्चय किया। मेट्रीक्युलेशन का एक खानगी वर्ग चलता था उसमें मैं दाखिल हुआ। छः छः महीने में परीक्षा होती थी। मेरे लिए पांच ही महीने का समय था। यह काम मेरी शक्ति के बाहर का था: उसका परिणाम यह हुआ कि सभ्य बनने के बदले मैं एक बडा परिश्रमी विद्यार्थी बन गया। टाइमटेबिल बनाया। मिनिटों का भी हिसाब रक्खा। लेकिन मेरी बुद्धि या स्मरणशक्ति ऐसी न थी कि मैं दूसरे विषयों के साथ साथ लेटीन और फ्रेंच भी तैयार कर सकू। परीक्षा में बैठा। लेटीन में अनुत्तीर्ण हुआ इससे मुझे दुःख हुआ लेकिन मैं हारा नहीं। लेटीन का रस लग गया था। फ्रेंच अधिक अच्छी होगी और विज्ञान का नया विषय लूंगा यह ख्याल हुआ। रसायन शास्त्र जिसमें अब मैं देखता हूं कि बडा दिल लगना चाहिए था उसमें प्रयोगों के अभाव से मेरा दिल ही न लगता था। देश में भी यह विषय अनिवार्य विषयों में था इसलिए लण्डन की मेट्रीक के लिए भी मैंने यही विषय पसंद किया। इस समय प्रकाश और उष्णता (लाइट और हीट) का विषय लिया। यह सरल विषय समझा जाता था और मुझे भी वैसा ही मालूम हुआ।

फिर परीक्षा देने की तैयारी के साथ ही रहन-सहन को भी अधिक सादा बनाने का प्रयत्न किया। मुझे यह मालूम हुआ कि मेरे कुटुम्ब की गरीबी को देखते हुए उसके अनुकूल मेरा जीवन अब भी सादा नहीं हुआ है। भाई की तंगी का और उनकी उदारता का विचार करने पर मुझे बडा संकोच होता था, जो विद्यार्थी प्रति-मास १५ पौंड या ८ पौंड खर्च करते थे उन्हें तो छात्रवृत्तियां मिलती थी। मुझसे भी अधिक सादगी के साथ रहनेवालों को भी मैं देखता था। ऐसे बहुत से गरीब विद्यार्थियों को भी मैं मिला था। एक विद्यार्थी लण्डन के गरीबों के महल्ले में प्रति-सप्ताह दो शीलिंग किराया देकर एक कमरे में रहते थे और लोकार्ट की सस्ती दुकानों से दो पेनी की रोटी और कोको ले कर उसी पर गुजारा करते थे। उनके साथ स्पर्द्धा में खडे रहने की तो मुझमें शक्ति न थी। लेकिन मैं अवश्य ही दो के बदले एक ही कमरे से चला सकता था और आधी रसोई हाथ से भी पका सकता था। इस प्रकार मैं प्रति मास चार या पांच पौंड में रह सकता था। सादी रहन-सहन से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ पुस्तक भी पढे थे। दो कमरों की जगह को छोड दिया और प्रति-सप्ताह आठ शिलिंग के हिसाब से एक कमरा किराये पर लिया। एक सगडी खरीदी और सुबह का खाना हाथ से पकाना शुरू किया। खाना पकाने में शायद ही बीस मिनिट लगते होंगे। ओटमील की राब और कोको के लिए पानी गरम करने में कितना समय लग सकता था? दोपहर को बाहर खाना खा लेता था और शाम को फिर कोको बना कर उसके साथ रोटी खाता था। इस प्रकार मैं रोजाना एक या सवा शिलिंग में खाना खा लेता था। मेरा यह समय अधिक से अधिक पढने का समय था। सादा जीवन हो जाने के कारण अधिक समय बचता था। मैं दूसरी मरतबा परीक्षा में बैठा और पास हुआ।

पाठक यह न मानें कि सादगी के कारण मेरा जीवन रसहीन बना था। बल्कि इन परिवर्तनों के कारण मेरी आन्तरिक और बाह्य परिस्थिति में ऐक्य हो सका था। कौटुम्बिक स्थिति के साथ जीवन की एकता हुई। जीवन अधिक सत्यमय बना और उससे मेरे आत्मानन्द की कोई सीमा ही न रही।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

विविध प्रश्न

[गांधीजी की डाक से निम्न लिखित प्रश्न लिये गये हैं प्रश्नों का केवल सार ही दिया गया है। उत्तर गांधीजी के शब्दों में है।]

प्रतिज्ञा का भंग हो सकता है?

"यदि कोई मनुष्य मानसिक दुर्बलता के वश हो कर कोई प्रतिज्ञा कर ले और उस प्रतिज्ञा का कुछ दिनों तक पालन करने के बाद उसे यह मालूम हो कि प्रतिज्ञा करने में भूल हुई है तो क्या उस प्रतिज्ञा का त्याग किया जा सकता है?"

उ० प्रतिज्ञा किसी सत्कार्य के लिए ही हमेशा की जाती है। कुकर्म करने की प्रतिज्ञा ही नहीं हो सकती है। यदि अज्ञान के कारण कोई ऐसी प्रतिज्ञा कर भी ले तो उसका भंग करना ही उसका धर्म हो जाता है। मान लो कि कोई मनुष्य व्यभिचार करने की प्रतिज्ञा करता है परन्तु उस मनुष्य की जागृति और शुद्धि इसीमें है कि वह उस प्रतिज्ञा का त्याग करे। उस प्रतिज्ञा का पालन करना पाप है।

फिर शादी करना या देशसेवा?

एक घबराये हुए भाई अपने मन की उलझन को दूर करने के लिए गांधीजी को लिखते हैं। वे डेढ साल से विधुरावस्था में हैं।

"जिस वक्त पत्नी थी यह ख्याल बना रहता था कि यदि यह घर का बंधन न होता तो मैं किसी न किसी देशसेवा में लग जाता। लेकिन अब, जब ईश्वर ने बंधन मुक्त कर दिया है, मैं यह समझ सका हूं कि मैं कैसे भ्रम में फंसा हुआ था। फिर शादी करने के लिए कुटुम्ब के लोग बडा आग्रह कर रहे हैं। अब तक तो मैं दृढ बना हुआ हूं। और इससे रक्षा पाने के लिए सदा ईश्वर की प्रार्थना करता रहता हूं। मैंने अपने हितैषियों से और बडेबूढों से यह कह दिया है कि जब तक मेरे में कमाने की शक्ति नहीं आती तब तक मैं फिर शादी करना नहीं चाहता। लेकिन वे बडे दुःखी हो रहे हैं। आप कोई मार्ग दिखावेंगे?"

उ० कुछ दर्द ही ऐसे होते हैं कि उनका उपाय केवल समय ही दिखा सकता है। परन्तु इस दरम्यान हमें शान्ति रखनी चाहिए। यदि आप का निश्चय अटल है, और जबतक कोई कार्यक्षेत्र पसंद नहीं किया है और कमाने का सामर्थ्य नहीं है तबतक शादी न करने का आपने दृढ निश्चय किया है तो अपने बडे बूढों को और हितैषियों को दृढतापूर्वक बडे विनय के साथ अपना निश्चय कह सुनाइये। वे सुनकर खुश होंगे। यदि आपका मन इतना स्थिर नहीं है, भीतर गहरे में विवाह की इच्छा है तो अपने बडेबूढों का कहना मानना ही उत्तम मार्ग है। धनिक कुटुम्ब के विधुर को पुनर्विवाह से बचना निःसन्देह बडा कठिन है। उससे वही मनुष्य रक्षा पा सकता है जिसे पुनर्विवाह करना और सर पर तलवार का पडना समान ही प्रतीत होता हो।

इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि इस पर एकान्त में बैठ कर शान्त चित्त से विचार करना चाहिए और हृदय से इसका जैसा भी उत्तर मिले उस पर अमल करना चाहिए। मैं तो केवल मार्ग ही दिखा सकता हूं। इसका निश्चय करने के समय मेरी सलाह का या दूसरे किसी की भी सलाह का विचार न करके जो अपना दिल कहे वही निर्भय हो कर करना चाहिए।

नाक कान छिदवाने चाहिए?

'यह ठीक है कि विवाह में अधिक धूमधाम और खर्च नहीं करना चाहिए। यहां पर ऐसा विवाह करने के लिए कितने ही भाई तैयार हुए हैं। उनकी लड़की अभी विवाह के योग्य नहीं हुई है, अभी छोटी है। नाक कान भी नहीं छिदाये हैं। आज पुराने रिवाजों में कुछ अच्छे हैं तो कुछ बुरे, इसका विचार करते हुए यह शंका हुई है कि नाक कान छिदवाना क्या उचित है? क्या इसका आप निराकरण करेंगे?'

उ० किसी भी लड़की का एक भी अवयव छिदवाने में मुझे जंगलीपन मालूम होता है।

उत्तर किसको दें?

एक भाई गांधीजी के अमुक उद्गारों का अनर्थ कर के प्रकाशित किये गये एक हेन्डबिल को भेज कर लिखते हैं कि इसका उत्तर न दोगे तो एक पक्ष को बड़ी हानि होगी।

उ० हेन्डबिल पढ़ा। निःसन्देह वह बड़ा गन्दा है। लेकिन मेरी तो राय यह है कि उस पर कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए। ऐसी बातों का उत्तर देने से उन्हें थोड़ा बहुत महत्व मिल जाता है और कुछ लोग तो केवल प्रकाश में आने के लिए ही ऐसी बातें लिखते हैं। प्रसंगावशात् यदि कोई बात स्पष्ट करने की आवश्यकता मालूम होगी तो मैं कर लूंगा।

एक रोगी को

एक विद्यार्थी हैं। अनेक बुरी आदतों के कारण शरीर दुर्बल हो गया है। दिन प्रति-दिन उनकी शक्ति का क्षय हो रहा है। कोई कहता है कि शादी करो, कोई कहता है कि आराम करो। बुरी आदतें छोड़ने की भी शक्ति नहीं रही है। वह क्या करे?

उ० आपसे मुलाकात किये बिना इसका उत्तर देना आसान नहीं है। किंतु इतनी सूचनायें अवश्य की जा सकती हैं; जिनमें बहुतेरी सूचनाओं पर आप अमल कर सकोगे।

जहां तक हो सके खुली हुई हवा में अधिकाधिक रहने का और सोने का प्रयत्न करो। बड़ा हलका भोजन करो, मात्र शरीर निभाने के योग्य ही, पेट भरने के लिए नहीं। तमाम मसालों को छोड़ दो। यदि कोई दाल खाना आवश्यक हो तो बहुत थोड़ी खाओ। चरबीवाले, तले हुए और दुर्जर खाने बिल्कुल ही छोड़ दो। रोजाना सुबह शाम थोड़ी थोड़ी और हलकी कसरत करो।

केवल सत्संग ही करो। सत्संग अर्थात् अच्छे मनुष्यों का और अच्छे पुस्तकों का संग। अच्छी पुस्तकें अर्थात् पवित्र पुस्तकें।

यदि आपका शरीर बहुत दुर्बल नहीं हुआ है तो रोजाना ठंडे पानी से स्नान करो।

अपने मन को और शरीर को जाग्रतावस्था में सारा ही समय किसी अच्छी प्रवृत्ति में लगाये रक्खो।

जल्दी सो जाओ और रोजाना चार बजे बिछौने का त्याग करो। भगवद्गीता, रामायणादि जिस किसी पुस्तक में आपकी अटल श्रद्धा हो उसका उस समय पाठ करो और उसका मनन करो।

इतना करो और विवाह का विचार ही छोड़ दो। यह मानना कि शुद्ध जीवन बीताने के लिए विवाह करना आवश्यक है बिल्कुल ही गलत ख्याल है।

सूत का चन्दा

दो भाइयों ने 'यंग इंडिया' का चन्दा सूत के रूपमें लेने के लिए प्रार्थना की है। उनको यह उत्तर दिया गया है:

'*यंग इंडिया के चन्दे में हाथकता सूत भेजने की आपकी सूचना अवश्य नयी है। इसके लिए कोई नियम नहीं रक्खा गया है। और यं. इं. आफिस में भी इसके लिए कोई प्रबंध नहीं रक्खा गया है। परन्तु यदि आप ५०००० गज सूत २० अंक का अच्छा कता हुआ भेजेंगे तो यं. इं. के व्यवस्थापक से उसका चन्दे के तौर पर स्वीकार करने की मैं प्रार्थना करूंगा। अर्थात् आश्रम उसे खरीद लेगा और यं. इं. आफीस चंदा जमा कर लेगी। ५०,००० गज सूत कीमत से अधिक अवश्य है परन्तु ठीक पांच रुपये का सूत ही निश्चय कर के लेना नहीं हो सकता है। उसकी परीक्षा करनी चाहिए, उसकी जांच करनी चाहिए तभी उसका स्वीकार किया जा सकता है। यदि सूत भेजने का निश्चय करो तो ५०० गज की लच्छियां बना कर भेजना। क्योंकि गिनने में या परीक्षा करने में कोई कठिनाई मालूम होगी तो यं. इं. के चन्दे में उसका स्वीकार न हो सकेगा। फिर यदि आपकी इच्छा होगी तो उसे आपको लौटा दिया जायगा। लौटाने का खर्च आप के जिम्मे रहेगा।*

(नवजीवन)

चित्तरंजन सेवासदन

देशबन्धु के पुश्तैनी बंगले में जो उन्होंने एक ट्रस्ट को सौंप दिया था, उनके अखिल बंगाल स्मारक के लिए एक अस्पताल खोला जानेवाला था वह अस्पताल अब खोल दिया गया है। स्त्रियों के लिए अस्पताल की स्थापना उसका एक उद्देश था। पाठक यह तो जानते ही हैं कि ट्रस्टियों ने जो १० लाख रुपया इकट्ठा करने की आशा रखी थी उसमें कोई आठ लाख रुपया जमा हो पाया है। ट्रस्टियों में से एक श्री नलिनी रंजन सरकार लिखते हैं:

"अस्पताल की सुविधा के अनुकूल मकान की अब सम्पूर्ण मरम्मत कर दी गई है। अस्पताल के लिए आवश्यक तमाम सामान खरीद लिया गया है। डाक्टर, दाइयां और दूसरे काम करनेवालों को भी नियुक्त कर दिया है और उन्होंने अपना काम भी संभाल लिया है। डा. मीसेज पेटमेन जो एक ऐंग्लो इंडियन रमणी है, और कलकत्ता मेडीकल कालेज की डीग्री लिये हुए हैं और जिसे लंडन की एल. आर. सी. पी. डीग्री भी प्राप्त है, उन्हें प्रधान डाक्टर के पद पर नियुक्त किया है और वे रहेंगी भी वहीं। डा. केदारनाथ जो स्त्रियों के रोगों के विषय में भारत में प्रसिद्ध है और डा. वामनदास मुकरजी जो इस विषय में खास जानकारी रखते हैं और प्रसिद्धि में डा. केदारनाथ से दूसरा नंबर रखते हैं, ये दोनों महाशय इस संस्था के सलाहकार डाक्टर बनने के लिए राजी हो गये हैं। डा. मुकरजी इस संस्था में बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्हें कार्यकारिणी समिति में भी ले लिया गया है। परलोकगत श्री देशबंधु की जन्मतिथि २१ मार्च को यह अस्पताल खुला करने का प्रबंध किया गया है। सर राजेन्द्रनाथ के हाथ में जो चंदे के रुपये हैं उनमें से हमने अब तक एक रुपया भी नहीं लिया है। सर राजेन्द्रनाथ का फंड बंद कर देने के बाद हम लोगों ने इकट्ठे किये हुए २००००) रुपयों से ही यह सब प्रबंध किया जा रहा है।

मि. एन. एन. सरकार और सर निलरतन सरकार को ट्रस्टियों में दाखिल किया गया है और इस संबंध में तमाम आवश्यक लिखापढी कर ली गई है।

चद्दरें, पड़दे, टुवाल, इत्यादि तमाम आवश्यक चीजें खादी प्रतिष्ठान से खादी ले कर ही तैयार की गई हैं। हमलोगों ने इस अस्पताल का चित्तरंजन सेवासदन नाम रक्खा है। इस संस्था को सफल बनाने के लिए हम लोगों से जितना भी होगा हम प्रयत्न करेंगे। हमारे प्रयत्नों में हमें आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है।"

ऐसी शुभ भावनाओं के साथ खोले गये इस अस्पताल की, जिसके कि पास काफी रुपये भी है, दिन प्रति दिन तरक्की ही होनी चाहिए और उससे बंगाल की मध्यम वर्ग की स्त्रियों की आवश्यकतायें पूरी होनी चाहिए। इस अस्पताल से हमें इस बात का स्मरण होता है कि श्री देशबंधु को सामाजिक कार्य भी उतना ही प्रिय था जितना कि राज्यनैतिक। अपनी जायदाद राज्यनैतिक कार्य में दे देने का मार्ग उनके लिए खुला हुआ था परन्तु उन्होंने जानबूझ कर उसे समाजसेवा के समर्पण कर दिया और उसमें भी स्त्रियों की सेवा को अधिक महत्व दिया।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, प्रथम चैत्र सुदी १२, संवत् १९८२

उसकी उलझन

यदि इस पत्र के लेखक ने 'यंगइन्डिया' के पृष्ठों को ढूंढने में जरा तकलीफ उठाई होती तो उन्हें यह लिखने की तकलीफ न करनी पड़ती:

"मुख्य विषय पर आने के पहले मुझे यह कह देना चाहिए कि मैं उनमें से एक हूं जो खादी पहनते हैं लेकिन कभी कातते नहीं। यंगइन्डिया के आपके लेखों में आपने इस बात पर जोर दिया है कि खादी और अस्पृश्यों की मुक्ति से ही भारत को सच्ची मुक्ति मिल सकेगी। खादी के विषय में तो मैं आप से सम्पूर्ण सहमत हूं परन्तु मेरी समझ में यह नहीं आता कि दूसरी बात (अस्पृश्यों की) से हमें हमारे उद्देश में क्यों कर सहायता मिल सकती है। बहुत दिनों से मैं इस बात को सोच रहा हूं कि इसमें हिन्दुओं का कोई कुसूर नहीं है, इसमें स्वयं अस्पृश्यों का ही कुसूर है। मैं धर्मशास्त्रों के श्लोकों को उद्धृत करके आपको तकलीफ देना नहीं चाहता हूं क्योंकि उससे हमारा प्रश्न हल न हो सकेगा। सबसे पहले तो आप केवल यही उपदेश देते थे कि अस्पृश्यों को स्वतंत्रता पूर्वक घूमने फिरने देना चाहिए। फिर आप ने एक दूसरी ही बात कही और वह उनके साथ खाना खाने की। अब आप एक तीसरी और अजीब बात कहते हैं। आप अस्पृश्यों को मन्दिरों में जाने की और वहां ईश्वर की पूजा करने की सलाह देते हैं। यदि कट्टर धर्माभिमानी लोग इसका विरोध करें तो आप उन्हें सत्याग्रह करने की सलाह देते हैं। यदि आप ही जिनको एक महात्मा समझा जाता है और यह ठीक ही समझा जाता है—ऐसी बातों की इजाजत देंगे तो यह बड़े ही आश्चर्य की बात होगी। अस्पृश्य लोग गांव या शहर के बाहर रहते हैं। बहुत दिन हुए उनका जीवन बड़ा कुत्सित बन गया है और आप उन्हें अच्छी शिक्षा या अच्छा आध्यात्मिक भोजन देने के बजाय ऐसे क्रान्तिकारी उपायों से समाज की जड़ ही को उखाड़ देने का प्रयत्न करते हैं। कुदरत के नियमों का उन्होंने हमेशा स्वीकार किया है और वे अपना कार्य बड़ी कुशलतापूर्वक करते रहे हैं। यदि आप जातिभेद को ही उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं तो इसका परिणाम क्या होगा यह केवल ईश्वर ही जानते हैं। आप हिन्दुओं पर यह अपराध लगाते हैं कि वे अस्पृश्यों के प्रति उदासीन रहते हैं। आप यह जानते ही हैं कि बहुतेरे हिन्दुओं का यह ख्याल है कि वे केवल उनके स्पर्श से ही अपवित्र हो जाते हैं। मैं आप का इस बात पर ध्यान दिलाना चाहता हूं कि आखिरी साम्यवादियों की परिषद् में उपस्थित होने से आपने केवल इसलिए इन्कार किया था क्योंकि साम्यवादी दल सरकार और महासभा की दृष्टि में बहिष्कृत समझा जाता है। अर्थात आप को उससे भ्रष्ट हो जाने का भय हुआ। यदि साम्यवादी आक्रमण करें या महासभा के मण्डप में घुस जाय तो आप स्वयंसेवकों को या पुलिस को ही बुला भेजेंगे। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि एक तरफ आप उन लोगों का समर्थन कर रहे हैं जो समाज में हिलने मिलने के लिए सामाजिक दृष्टि से अयोग्य है और जिन्होंने अपने काम के कारण ही इस अधिकार को खो दिया है और दूसरी तरफ आप उनका विरोध कर रहे हैं जो केवल एक राज्यनैतिक प्रतिपक्षी है, यही नहीं, उनके साथ सम्बन्ध रखनेवालों का भी विरोध कर रहे हैं! यदि आप समाज की दृष्टि में जो अस्पृश्य हैं उनके अधिकार का समर्थन कर रहे हैं तो आप को राज्यनैतिक अस्पृश्यों का भी समर्थन करना चाहिए अथवा आपको उन दोनों को ही अपने भाग्य पर छोड़ देना चाहिए। मैं आपको लोगों का नेता मानता हूं, धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से नहीं परन्तु राज्यनैतिक और आर्थिक दृष्टि से। इसलिए मैं आशा करता हूं कि आप मेरे जीवन का यह प्रश्न हल कर देंगे।"

यं. इं. के पिछले पृष्ठों को ढूंढने पर उन्हें यह मालूम होगा कि उन्होंने जो प्रश्न किये हैं उन सब का उत्तर पहले दिया जा चुका है। लेकिन सिद्धान्त की बात यह है कि जितनी दफा भूल की जाय उतनी दफा सत्य भी कहा जाना चाहिए। इसलिए पत्र-लेखक और उनके जैसे विचार रखनेवाले लोगों के लिए मैं उनके प्रश्नों का उत्तर देता हूं।

बेशक, यदि हिन्दू विचारपूर्वक और समझ बूझ कर अपने प्रयत्नों से केवल एक नीति के तौर पर नहीं परन्तु आत्मशुद्धि के लिए अस्पृश्यता के कलंक को दूर कर देंगे तो उनके इस कार्य से, राष्ट्र को एक अच्छा कार्य करने के विचार से नयी शक्ति प्राप्त होगी और उससे स्वराज प्राप्त करने में बड़ी मदद मिलेगी। आज हमलोग असमर्थ हैं क्योंकि हमारे में ऐक्य की शक्ति नहीं है। जब हम पांच या छः करोड़ अस्पृश्यों को अपना समझना सीख लेंगे तभी तो हम एक राष्ट्र बनने का प्रथम पाठ पढ़ेंगे। आत्मशुद्धि के इसी कार्य से शायद हिन्दू-मुसलमानों का प्रश्न भी हल हो जायगा। क्योंकि इसमें भी अस्पृश्यता का भाव जरूर जाने अजाने काम कर रहा है। यदि हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिए अस्पृश्यता की कृत्रिम मर्यादा की आवश्यकता है तो हिन्दू-धर्म बड़ा ही दुर्बल है।

यदि अस्पृश्यता और जाति शब्द पर्यायवाची है तो इन जातियों का जितना जल्दी नाश हो, उनसे सम्बन्ध रखनेवालों को उससे लाभ ही होगा। लेकिन जाति यदि वर्ण का पर्यायवाची है तो मुझे इस बात का सन्तोष है कि यह व्यवस्था समाज के लिए स्वास्थ्यकर

है । वर्तमान जातियां अपनी संकुचितता के साथ अब नष्ट हो रही हैं । असंख्य उपजातियां अब स्वयं इतनी शीघ्रता के साथ नष्ट हो रही हैं कि उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं ।

परन्तु मुझे हजारवीं बार यह दोहराना पड़ता है कि मैंने उनके साथ खाने के लिए कभी नहीं कहा है और न मैंने उन्हें जबरदस्ती मन्दिर में घुसने की सलाह दी है । परन्तु मैंने यह अवश्य कहा है और आज फिर भी कहता हूं कि मन्दिर में प्रवेश करने के हमारे इन देश-वासियों के अधिकार का इन्कार नहीं किया जा सकता है । मन्दिर में प्रवेश करने के लिए सत्याग्रह करने का समय अभी नहीं आया है ।

यह हमारी ही लज्जा की बात है और हमारा ही यह अपराध है कि दलित-वर्ग गांव और शहर के बाहर रहता है और कुत्सित जीवन व्यतीत करता है । जैसे हम हमारी लाचारी के लिए और हमारे में स्फुरणा और मौलिकता के अभाव के लिए अंगरेज अधिकारियों पर उचित दोष लगाते हैं वैसे ही हमें अस्पृश्यों की वर्तमान दशा के लिए उच्च वर्ण के हिन्दुओं का दोष स्वीकार करना चाहिए ।

लेखक, मालूम होता है कि इस बात का स्वीकार करते हैं कि हमारे अज्ञान और वहम के शिकार बने हुए इन लोगों को मौलिक और आध्यात्मिक शिक्षा मिलनी चाहिए । लेकिन जब तक समानता के साथ हमलोग उनके साथ हिले मिलेंगे नहीं यह कैसे हो सकेगा ? उनके बनिस्बत तो निःसन्देह हमीं को आध्यात्मिक शिक्षा की विशेष आवश्यकता है । और जब हम अपने ऊंचे शिखर पर से उतरेंगे और उनके साथ एक होंगे तभी उसका आरंभ होगा ।

लेखक ने साम्यवादियों की अस्पृश्यों के साथ तुलना की है । यह केवल बात को उलझन में डालना है । जन्म से साम्यवादी नहीं बनते हैं और अस्पृश्य तो जन्म से ही होते हैं । साम्यवाद एक प्रकार का आन्तरिक विश्वास है और अस्पृश्यता बाहर से लादी गई एक असुविधा है । रही मेरी बात, महासभा के सप्ताह में मैंने साम्यवादियों को टाल नहीं दिया था । मैं उनसे बराबर मिलता था और यदि समय होता तो मैं शायद उनकी सभा में भी गया होता । महासभा के विधि-विधान को मानने पर साम्यवादी भी महासभा में शामिल हो सकते हैं । मैं अस्पृश्यों के अधिकारों का समर्थन करता हूं क्योंकि मैं यह मानता हूं कि हमने उन्हें बड़ा अन्याय किया है । यदि साम्यवादी की बात भी मुझे ग्राह्य मालूम होगी तो मैं उसका भी समर्थन करूंगा ।

अन्त में यदि लेखक खादी में विश्वास रखते हैं और खादी पहनते भी हैं तो उन्हें कात कर अपना विश्वास सम्पूर्ण जाहिर करना चाहिए और इस प्रकार बहुत थोड़ा भी क्यों न हो उसमें उन्हें अपना हिस्सा देना चाहिए और करोड़ों लोगों के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहिए ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

बंगाल की विशेषता

बहुत सी बातों में बंगाल ने अपना विशेषत्व दिखाया है । खादी के प्रचार में भी उसमें विशेषता है । दूसरे प्रान्तों में खादी ठीक ठीक बुनी जाती है परन्तु उसकी बिक्री के लिए तो उन्हें और प्रान्तों पर ही आधार रखना पड़ता है । परन्तु बंगाल ने तो प्रथम से ही स्वाश्रयी बनने का रिवाज रक्खा है । यह रिवाज केवल एक संस्था में ही नहीं परन्तु बंगाल की सब खादी संस्थाओं में देखा जाता है । बंगाल ने अपने यहां से एक गज खादी भी दूसरी जगह बेचने के लिए नहीं भेजी है ।

बंगाल का यह उदाहरण प्रत्येक खादी-संस्था के लिए विचारणीय है । आज एक भी प्रान्त ऐसा नहीं है जो अपनी आवश्यकता के अनुसार काफी खादी उत्पन्न करता हो और उसे अपने यहां बेच कर जो बचे उसीको बाहर भेजता हो । इस स्थिति पर पहुंचने के लिए तो हमें करोड़ों रुपये की खादी तैयार करनी पड़ेगी ।

हमारा उद्देश खादी को व्यापक बनाना है । इसलिए साधारण तौर पर हमारा यही नियम होना चाहिए कि जहां खादी तैयार की जाय वहीं उसे पहन भी लिया जाय । इसे सफल बनाने के लिए हम जितना अधिक प्रयत्न करेंगे उतना अधिक शीघ्र खादी व्यापक हो जायगी । इसमें केवल वे ही प्रान्त अपवाद गिने जा सकते हैं जहां खादी तैयार करना मुश्किल हो । लेकिन ऐसा प्रान्त शायद ही कोई होगा । खादी के मुख्य स्थान तामिलनाड, आंध्र-देश, पंजाब और बिहार हैं । वहां काम करनेवाली संस्थायें बाहर के निकास पर अधिक आधार रखती हैं । इन सब स्थानों में अभी खादी की जितनी स्थानिक बिक्री होती है उससे अधिक बिक्री होने की आवश्यकता है । दूसरे प्रान्तों को यदि उन प्रान्तों की खादी की आवश्यकता होगी तो वे उसे सहज ही में प्राप्त कर सकेंगे । परन्तु प्रान्तिक संस्थायें तो अपने प्रान्त में ही खादी की बिक्री का प्रयत्न करें । इससे खादी की उत्पत्ति बहुत कुछ बढ़ जायगी और बहुत सा खर्च भी बच जायगा ।

बंगाल यह मार्ग हमें दिखा रहा है । खादी-प्रतिष्ठान ने प्रथम तो निश्चय हो कर अच्छे परिमाण में खादी उत्पन्न की । अब वह जादु की लैन्टर्न इत्यादि के प्रयोगों से उसकी बिक्री का प्रचार कर रहे हैं । खादी का प्रचार करने के लिए जो धन की आवश्यकता होगी वह भी वहीं से प्राप्त कर लेने के लिए प्रयत्न करने का उनका विचार है । उन्होंने स्थानिक धन से ही उसका आरम्भ किया था । इन तीन नियमों को — स्थानिक उत्पत्ति, स्थानिक उपयोग, स्थानिक सहाय — को ध्यान में रख कर खादी की प्रवृत्ति की जाय तो खादी का प्रचार बहुत कुछ [illegible] और खर्च भी जितना हो सके कम किया जा सकेगा । सच पूछो तो इसी में खादी की महत्ता है, इसी में उसका गूढ़ रहस्य समाया हुआ है । जन-समाज को खादी की आवश्यकता है इसी मान्यता पर तो उसके अस्तित्व का आधार है । हमें प्रति-क्षण इस मान्यता को सिद्ध करना चाहिए । और जब धन की स्थानिक सहायता मिलेगी तब लाखों मनुष्यों के एक एक पैसे से भी लाखों रुपयों की मदद मिल सकेगी और इस सहायता में जो बरकत होगी वह एक मनुष्य के शायद एक करोड़ रुपये दे देने पर भी उसमें न होगी ।

इस आदर्श पर पहुंचने में शायद कुछ समय लगेगा । कठिनाई भी मालूम होगी । परन्तु इस आदर्श को भूल जाने से तो खादी स्थान-भ्रष्ट हो जायगी । खादी शुद्ध रंकों की पोषक बने इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उपरोक्त तीनों नियमों का अधिकाधिक पालन किया जाय । इस संक्रान्ति के समय में हमें दूसरे प्रयत्न भी करने होंगे, दूसरों की मदद भी लेनी होगी, प्रान्तों में आपस में सहानुभूति की भी आवश्यकता होगी । लेकिन यदि हम अपनी दिशा ही भूल जायंगे तो जैसी बे-खबर खलासी की दशा होती है वैसी ही खादी-सेवक की भी दशा होगी । बंगाल हमें इसकी याद दिलाता है ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ज्ञाति सुधार

अग्रवाल महासभा के अध्यक्ष श्री जमनालालजी का व्याख्यान पढ़ने और विचार करने के योग्य है। इस व्याख्यान में श्री जमनालालजीने सम्पूर्ण स्वतंत्रता और निर्भयता दिखाई है। मारवाडी समाज यदि जमनालालजी की सूचनाओं के अनुसार कार्य कर सके तो वह जितनी धन कमाने में आगे बढ़ी हुई है उतनी ही आवश्यक सुधारों को करने में भी आगे बढ़ सकेगी। जमनालालजीने जिन सुधारों को करने पर जोर दिया है उन सुधारों की सारे हिन्दुस्तान में और समस्त हिन्दु-समाज में आवश्यकता है। बहिष्कार के शुद्ध शस्त्र का दुरुपयोग, नीतिद्रोह और देशहित विरुद्ध व्यापार, धनवानों में विलासिता, स्त्रीवर्ग में सुधार, बालविवाह, विवाह के खर्च का बोझा, उपजातियों की वृद्धि, बालशिक्षा का अभाव इत्यादि त्रुटियां हिन्दू-समाज में सब जगह कमोबेशी परिमाण में दिखाई देती है। इन त्रुटियों के कारण हम सत्वहीन बन जाते हैं और स्वराज्य के मार्ग में ये रोडा अटकानेवाली हैं। जमनालालजी ने अपने व्याख्यान में इन सब हानिकर रीति रिवाजों पर और अस्पृश्यतानिवारण, खादी और गोरक्षा के उपायों में संशोधन करने पर काफी जोर दिया है। हम सब को यह आशा रखनी चाहिए कि अग्रवाल महासभा में उपस्थित हुए सब सभासद श्री जमनालालजी की सब सूचनाओं पर अमल करेंगे और हिन्दू-जाति का मार्ग सरल कर देंगे।

मो० क० गांधी

(नवजीवन)

श्री अग्रवाल महासभा के अध्यक्ष श्री जमनालालजी के व्याख्यान से कुछ आवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है। इस व्याख्यान का शीर्षक व्यापक रखा गया है क्योंकि अग्रवाल जाति की बुराइयां कमोबेशी परिमाण में और दूसरी जातियों की भी बुराइयां हैं और दूसरी जातियों की बुराइयां अग्रवाल जाति की बुराइयां हैं:

ज्ञाति-बहिष्कार

महासभा का अधिकार नैतिक रहना चाहिए। जबरदस्ती का राज्य असभ्यता का चिह्न है। सभ्य समाज के लिए तो नैतिक शासन ही उपयुक्त है। नैतिक अधिकार का विचार करते हुए सब से पहले मेरा ध्यान जाति बहिष्कार पर जाता है। हर समाज और जाति को अपनी आन्तरिक शुद्धि रखने के लिए बहिष्कार का अधिकार है। लेकिन आज बहिष्कार उसी अवस्था में शुद्ध और उचित हो सकता है कि जब उसकी जड में नीति और सदाचार हों। जो लोग स्वयं सदाचारी हों, निष्पक्ष हों, दूसरों पर जिनका नैतिक प्रभाव हो, लोगों को जिनकी सज्जनता का विश्वास हो, जिनका हृदय प्रेम से भरा हो वेही सच्चा न्याय कर सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर दण्ड भी दे सकते हैं। केवल धन, बडप्पन और हुल्लडबाजी के बल पर दूसरों का फैसला करना दोनों में से किसी के लिए हितकर नहीं होता। लेकिन आजकल होता क्या है? समाज के पंच माने जानेवाले अथवा पगड़ी लोग चाहे जितनी अनीति करें लोग सह लेते हैं; पर कोई सीधा-सादा या गरीब भाई उनके मत के विरुद्ध कुछ भी कर ले तो वे फौरन् धर्म का कोडा ले कर बैठ जाते हैं। ऐसी दशा में जब तब बहिष्कार का अस्त्र उठाना अपने पैर कुल्हाडी मारना है। ऐसे बहिष्कार का नैतिक असर कुछ भी नहीं होता। लोग डरपोक और पाखंडी हो जाते हैं। सत्ताधारी की खुशामद करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। बहिष्कार करते समय दुराचारी और सुधारक का भेद हमें सदा सामने रखना चाहिए। दुराचारी पर समाज का दबाव रहना जरूरी है पर जो लोग अपनी धारणा के अनुसार न्याय और पवित्रता का ख्याल रख कर सदाचार बढ़ाने के लिए देश-काल के अनुसार पुरानी रूढियों में परिवर्तन करना चाहते हैं, समाज को उनकी तो सहायता ही करनी चाहिए। उनके रास्ते में कम से कम कांटे तो न बखेरें।

पर मैं इस बात को मानता हूं कि झटपट परिवर्तन करना उतना आसान नहीं है। समाज का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह ऐसे लोगों को सुधार का अवसर दे जो सदाचार-परायण हैं।

नवयुवकों के लिए यह कहूंगा कि समाज की जड को खोखली कर देनेवाले बुरे रीति-रिवाजों को मिटाने में आप हिचकें नहीं। इसके फल-स्वरूप यदि आपको कुटुम्बियों और समाज का रोष सहन करना पडे तो उसे दृढता, नम्रता और प्रसन्नता से सहन करें। पर उद्दण्डता से दूर रहना चाहिए। यदि हानिकर रूढियों को मिटाने के प्रयत्न का इतिहास देखें तो पता चलेगा कि उन महापुरुषों को भी कठोर दण्ड सहना पड़ा है जिन्होंने उस काल के समाज के दोषों को दूर करने का उद्योग किया था। उदाहरण के लिए श्री आद्यशंकराचार्य, श्री वल्लभाचार्य आदि धर्माचार्य तथा प्रह्लाद मीरांबाई और महर्षि दयानन्द एवं कितने ही सन्तों और भगवद्भक्तों को तथा महात्मा गांधीजी जैसे सत्पुरुषों को भी समाज के बहिष्कार का शिकार होना पड़ा था।

भाइयो, जमाना बदल गया है। ऐसे परिवर्तन-काल में मतभेद होना स्वाभाविक है। परन्तु जहां मतभेद हो वहां अपने अपने विचारों पर दृढ रहते हुए भी एक-दूसरे के मत को सहन करने की शक्ति बढ़ानी चाहिए। किसी काम में एकाएक बहिष्कार कर बैठने की गलती न करनी चाहिए।

जातिय बहिष्कार के सम्बन्ध में आरम्भ ही में इतनी बातें मैं इसलिए कर रहा हूं कि मैं बहुतेरी जगह इसका दुरुपयोग होता हुआ देखता हूं। माहेश्वरी भाइयों में बिडला-परिवार के उस विवाह-प्रकरण को ले कर जो द्वेष और कलह फैल रहा है उसका दृश्य इस समय मेरे सामने है और मैं समझता हूं, आप लोगों के सामने भी होगा। जिस कार्य का हमें स्वागत करना चाहिए था उसीकी बदौलत माहेश्वरी समाज में आज इतना कलह और वैमनस्य फैल गया है। शिक्षा-दीक्षा, व्यापार-व्यवसाय, दान-धर्म, समाज और देश-सेवा आदि बातों में बिडला-परिवार आज केवल माहेश्वरी ही नहीं सारे मारवाडी समाज के भूषण हैं। मेरी राय में देश के लिए भी वह गौरव-स्वरूप हैं। उन्होंने माहेश्वरी समाज की संकुचितता के तोड़ने का जो साहस दिखाया है वह मेरी राय में अभिनन्दन करने योग्य है, न कि निन्दा करने योग्य।

व्यापार का आदर्श

आज अंगरेजों से हमें यही शिकायत है कि वे हमारे देश का धन अपने यहां ले जाते हैं और हमें उसका कुछ फायदा नहीं मिलता। यही बात हमपर भी घट सकती है। इसलिए हमें चाहिए कि जिस प्रान्त, समाज या देश में रह कर हम द्रव्य उपार्जन करते हैं उसके हित का पूरा ध्यान रक्खें और आवश्यकता के समय उत्साहपूर्वक उसकी सेवा के लिए आगे बढ़ें।

यही नहीं, बल्कि हमें व्यापार भी ऐसा ही करना चाहिए जो देश के हित के अनुकूल हो। व्यापार में हमें व्यावहारिक

प्रामाणिकता का भी पालन करना चाहिए। परिश्रम, ईमानदारी और साथ ही होशियारी ये तीनों गुण जिस व्यापारी में होंगे वह कभी व्यापार में हानि नहीं उठा सकता। नेकी और सचाई पर चलते हुए भी यदि किसी व्यापारी को हानि हुई हो या होती हो तो सम्भव है उसका कारण यह हो कि उसके पूर्व-जन्म के हानि करानेवाले संस्कार बहुत प्रबल हों, और भी अधिक हानि के योग्य होते हुए वर्तमान जीवन की शुद्धता के कारण केवल इतनी ही हानि हो कर रह गई हो। कहने का मतलब यह है कि हमारी दिखाई देनेवाली सफलता या विफलता के कारण बड़े गहरे और दूरवर्ती हुआ करते हैं।

मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे अधिकांश भाई इसपर यथेष्ट ध्यान नहीं देते। उदाहरण के लिए विलायती कपड़े के व्यवसाय को ही लीजिए। यह जानते हुए भी कि इसकी बदौलत देश का करोड़ों रुपया विदेश चला जाता है और यहां हमारे लाखों भाई-बहन भूखों मरते हैं हमसे इस व्यापार का मोह नहीं छूटता। यदि हमारे हृदय में देश और देशवासियों के प्रति अपने कर्तव्य की ज्योति जगमगाती तो यह उल्टी गंगा हमारे समाज में न बह पाती।

देशहित के अनुकूल व्यापार करने तथा इन तीन गुणों से युक्त होने से हमें एक और बड़ा लाभ होगा। आज हमारे वैश्य-समाज में तेजस्विता और आत्मसम्मान की भारी कमी दिखाई देती है। भीरुता भी हम में बहुत आ गई है। अति-लोभ तो इसका कारण है ही, पर एक दूसरा कारण यह है कि जन-साधारण की सहानुभूति हम अपने साथ रखने की आवश्यकता नहीं समझते और इसलिए उसकी चेष्टा भी नहीं करते। यदि हम नीति-नियमों के अनुसार अपना व्यापार करें, यदि हम अपने धन का उपयोग समाज और देश के हित में भी करते रहें तो हम केवल लोगों की सहानुभूति ही नहीं बल्कि आदर के भी पात्र होंगे और जितना ही हम समाज और देश में लोकप्रिय होंगे उतना ही कम भय हमें राज्यकर्मचारियों और आततायियों का रहेगा।

खादी

मेरी राय में खादी ही एक ऐसी वस्तु है जिसका व्यापार भी देशहित के अनुकूल है और जिसमें धन लगाना भी परम देशसेवा करना है। आचार्य राय ने बहुत ठीक कहा है कि जिस घर में खादी सदर दरवाजे से प्रवेश करती है उसमें से आडम्बर—फैशन और फजूलखर्ची चोर की तरह पिछले दरवाजे से निकल भागते हैं। चरखे और खादी के द्वारा हमारी गरीब बहनें अपना पेट पालते हुए अपने शील की भी रक्षा कर सकेंगी। मैंने अपनी खादीयात्रा में प्रत्यक्ष भी इसका अनुभव किया है और आप लोगों से भी अनुरोध है कि आप अवकाश निकाल कर खादी पैदा करनेवाले केन्द्रों में जा कर स्वयं इसका अनुभव करें। मेरी राय में आज इन स्थानों का महत्व किसी तीर्थ-स्थान से कम नहीं है। महात्माजी ने खादी-प्रचार के लिए एक चरखा-संघ कायम किया है, यह तो आप में से बहुतेरे जानते होंगे। उसको सहायता दे कर आप खादी के प्रचार में बहुत मदद कर सकते हैं। मेरी आप सब लोगों से प्रार्थना है कि आप खुद खादी पहनिए। जिस तरह अपने घर का भोजन हमें रुचिकर और स्वादिष्ट जान पड़ता है और हम होटल के भोजन की अपेक्षा उसीको पसन्द करते हैं और स्वाभाविक समझते हैं उसी प्रकार घर की बनी खादी हमें प्रिय होनी चाहिए। कम से कम हम अपने गांव, प्रान्त या देश की ही खादी पहनने का संकल्प तो अवश्य करें। इसके अलावा आप स्वयं खादी की उत्पत्ति के कारखाने और बिक्री के भण्डार भी खोलें। चरखा-संघ को हर तरह से मदद दें। कम से कम खादी की संस्थाओं को बिना ब्याज रुपया तो अवश्य दें। राजस्थान खादी के लिए बड़ा अनुकूल क्षेत्र है। ऐसा अनुमान है कि यहां सारे भारत से सस्ती खादी तैयार की जा सकती है। यह हम राजस्थानी व्यापारी तथा कार्यकर्ताओं के लिए लुभावनी वस्तु होनी चाहिए। हमें अपने रुपये और शक्ति दिल खोल कर खादी की उन्नति में यहां लगाना चाहिए। खादी के आचार्य महात्माजी तो रोज ही खादी का गुण गाते हैं उससे अधिक मैं क्या कहूं। मैं तो अपने अनुभव से आपको यही कहना चाहता हूं कि खादी हमारे चरित्र-सुधार के लिए एक महान उपदेशक का काम करती है, देश की दरिद्रता मिटाने के लिए ईश्वरी वरदान का काम करती है, और स्वराज्य को नजदीक लाने के लिए एक महान नेता या सेनापति का काम करती है। वर्तमान भारत की मुक्ति खादी से ही है इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

गोरक्षा

गोरक्षा के लिए महात्मा गांधीजी ने बड़ी अच्छी योजना तैयार की है और अखिल भारत गोरक्षा-मण्डल स्थापित कर के उसको अमल में लाने की भी तजवीज कर रहे हैं। उन्होंने उसपर बहुत ध्यान दिया है, अध्ययन-मनन भी किया है और वे बहुत उद्योग भी कर रहे हैं। देश के कितने ही गो-हितचिंतकों ने उसे पसंद भी किया है। पर खेद है कि हम लोगों का ध्यान अभी इस बात की ओर नहीं गया। गोशालाओं और पींजरापोलों में जितना धन और शक्ति का अपव्यय होता है वह यदि हम महात्माजी की योजना को कार्य-रूप में परिणत करने में लगावें तो थोड़े ही समय में हम गो-रक्षा के प्रश्न को हल होता हुआ देखेंगे। गो-रक्षा का काम विधर्मियों के द्वारा होनेवाले गो-वध के कारण नहीं, बल्कि गो-माता के प्रति हमारी उदासीनता और अन्यायों के कारण रुका हुआ है।

विलासिता और बेकारी

हमारे वैश्य-समाज में इन दिनों एक ओर विलासिता और दूसरी ओर बेकारी बढ़ रही है। विलासिता का मूल है जीवन के आदर्श का अज्ञान या गलत खयाल या उसके प्रति उपेक्षा। सादा खाना, सादा पहनना केवल आरोग्य का ही पहला पाठ नहीं है, मनुष्यता की रक्षा का भी है।

बेकारी के कई कारण हैं। एक तो फजूलखर्ची हमें बरबाद कर देती है। दूसरे ऐश-आराम या मिथ्या सामाजिक रस्म-रिवाज के मोह में बहुतेरा कर्ज सिर कर बैठते हैं, तीसरे सट्टाबाजी। चौथे, हमारी यह इच्छा रहती है कि बिना कमाये ही, बिना मिहनत किये ही हम धनवान हो जायं। इससे हम बिना पूंजी के रोजगार ढूंढते हैं और फलतः बेकारी मोल लेते हैं। इसका सब से अच्छा उपाय यह है कि एक तो हम बेकार भाइयों के बिना मिहनत किये भोजन-वस्त्र पाने के भावों को बढ़ने न दें जिससे कि वैश्य-वर्ग का पतन हो। दूसरे ऐसे कामों में उन्हें लगा दें जिससे इज्जत के साथ दो पैसे कमा सकें। ऐसा काम मुझे इस समय खादी का ही दिखलाई पड़ता है। इसमें थोड़े रुपयों में बहुत आदमियों को काम दे सकते हैं। उनका स्वास्थ्य अच्छा रख सकते हैं, जीवन में सादगी ला सकते हैं और उनके घर भर को उद्योगी बना सकते हैं।

महिलासुधार

आपको स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता और लाभ बतलाने की जरूरत नहीं है। पर शिक्षा का रूप पुस्तकों की अपेक्षा सदाचार

की ओर अधिक रहना चाहिए। यहां मैं तीन बातों की ओर खास तौर पर आपका ध्यान खिंचना चाहता हूं। परदा, पोशाक और गहना। परदा सच पूछिए तो हमारे यहां होता ही नहीं। जो कुछ है वह परदे का उपहास या दुरुपयोग है। जिनसे परदे की आवश्यकता नहीं उनका परदा होता है और जिनसे सावधान रहने की जरूरत हो सकती है, उनसे परदा नहीं होता। लाज आंखों में रहनी चाहिए। परदे के कारण स्त्रियों का केवल स्वास्थ्य ही बरबाद नहीं होता बल्कि उनमें प्रायः नैतिक साहस भी नहीं रह जाता। इससे स्त्री और पुरुष दोनों का सदाचार बहुत बार कलंकित हो जाता है और समाज की नैतिक स्वच्छता में भीतर ही भीतर घुन लगता रहता है। यदि स्त्रियां लाज से आंखें और सिर नीचा कर के बड़े बूढ़ों के सामने बिना घूंघट निकाले आती-जाती रहें तो इसमें कोई बुराई नहीं मालूम होती। उल्टा ऐसी स्त्रियां उन दोषों से बरी दिखाई देती हैं जो परदा-नशीन घरों में अक्सर पाये जाते हैं।

इसी तरह हमारे यहां स्त्रियों का वर्तमान पहनाव भी अस्वाभाविक और बहुत बेतुका है। हमारे वर्तमान पहनाव से तो उल्टा शरीर और लज्जा दोनों को नुकसान पहुंचता है। व्यर्थ का खर्च जो उसमें लगता है सो अलग ही। कलाहीन शृंगार की चकाचौंध केवल असभ्यता का ही चिह्न नहीं है बल्कि वह अनीति की भी पोषक होती है। मेरी राय में खादी साड़ी और नीचे गुजरात के चणिये जैसा हलका लहंगा तथा बदन में पूरा कब्जा स्त्रियों के लिए काफी और सुन्दर पोशाक है।

गहनों से लाभ तो कुछ भी नहीं, सब तरह से हानि ही हानि है। गहनों में केवल धन का अपव्यय ही नहीं होता है बल्कि स्वभाव में ओछापन भी आता है। कलह और द्वेष भी गहनों की बदौलत बढ़ता है। गहनों का उपयोग न शरीररक्षा के लिए है और न लाज ढांकने के लिए। इसलिए गहनों का व्यवहार बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए।

बालविवाह

समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए मेरी यह राय है कि विवाह की स्वाभाविक अवस्था लड़के के लिए २० वर्ष और लड़की के लिए १६ होनी चाहिए। बाल-विवाह के ही कारण हमारी जाति में बाल-विधवाओं की भारी संख्या दिखाई पड़ती है जो कि हमारे लिए लज्जा और दुःख की बात होनी चाहिए। बालविवाह बन्द हो जाने से विधवाविवाह का सवाल अपने आप बहुत कुछ हल हो जायगा। बालविधवाओं की भारी तादाद हो जाने के कारण तथा समाज में उनकी चरित्र-रक्षा के अनुकूल निर्मल वायुमण्डल न होने के कारण आज कितनी ही विधवाओं को दुराचारियों का शिकार हो जाना पड़ता है और इससे आज विधवाविवाह का प्रश्न हिन्दू-समाज के सामने उपस्थित है। परन्तु महासभा का एक ऐसा विधान इस सम्बन्ध में है कि जिसके कारण मैं इस विषय की चर्चा यहां नहीं कर सकता।

उपजातियों में विवाह

रोटी-व्यवहार तो हमारी बहुतेरी जातियों में दिन दिन बढ़ता जा रहा है। पर बेटी-व्यवहार शुरू हो जाने से भी एक तो सारी जाति की एकत्रता बढ़ती जायगी और दूसरे समान गुण और शील रखनेवाले वरों और वधुओं की खोज का क्षेत्र विशाल हो जायगा। इसके अलावा धर्म के अच्छे अच्छे ज्ञाताओं से भी मुझे मालूम हुआ है कि इसमें किसी प्रकार की धार्मिक रुकावट भी नहीं है।

वैवाहिक कुरीतियां

विवाह एक धार्मिक संस्कार है। पर आजकल लोकाचार ने अपने मायावी जकड़े में उसे बुरी तरह जकड़ लिया है। केवल यही नहीं कि उसमें बहुतेरी फजूलखर्ची होती है बल्कि अनेक ऐसी कुरीतियां उसके साथ चल पड़ी हैं कि जिनसे हमारे समाज की प्रगति रुक रही है। विवाह में हमें केवल धार्मिक विधि का ही पालन करना चाहिए और अन्य आडम्बरों से बचना चाहिए।

अस्पृश्यता-निवारण

सन्तोष की बात है कि मद्रास प्रान्त या गुजरात-काठियावाड़ के वैष्णव-समाज की तरह छुआछूत की कुप्रथा का जोर हमारे राजस्थान में नहीं है। फिर भी हमें अपने अछूत भाइयों को एक मनुष्य के सामान्य अधिकारों से वंचित न रखना चाहिए। हमारे देवालयों के द्वार उनके लिए खोल देने चाहिए। हमारे मदर्सों में उनके बच्चों को शिक्षा मिलनी चाहिए। अछूत लोग हमारे समाज की जो सेवा करते हैं वह यदि बन्द कर दी जाय तो समाज की बड़ी हानि हो। उनकी सेवा का बदला हम उन्हें अछूत बना कर देते हैं!

उपसंहार

मैं उत्सुक हूं कि जिन विचारों से मुझे बहुत लाभ हुआ है, मेरे जीवन में कुछ सुधार हुआ है, अपनी त्रुटियों को पहचानने की शक्ति प्राप्त हुई है और भविष्य में अपनी कमजोरी दूर होने की आशा है उनसे समाज का बच्चा बच्चा लाभ उठावे। पर मैं जानता हूं कि मुझे यहां उपदेश देने का अधिकार नहीं है। मैं तो सिर्फ अपने मन के भाव आपके सामने प्रदर्शित करना चाहता हूं। मैं अपने विचार किसीपर लादना नहीं चाहता। महासभा स्वतन्त्र है। यदि उसके बहुसंख्यक सदस्य मेरे विचारों से सहमत हों तो उनके अनुकूल प्रस्ताव आप पास कीजिए और उनपर अमल कीजिए। जबतक महासभा अपने प्रस्तावों में मेरे विचारों को स्वीकार नहीं कर लेगी तबतक वह उनसे बन्धी हुई नहीं है। हां, वे भाई अवश्य नैतिक रूप से बंधे हुए हैं जो चाहे संख्या में कम हों, पर जो इन विचारों को ग्रहण करने योग्य समझते हों। और उनसे मेरा आग्रहपूर्वक निवेदन है कि महासभा अपने विचारों के अनुसार जो कुछ भी प्रस्ताव पास करे, आप अपने विचारों पर दृढ़ रहिए। जिस दिन हम अपने आचार और साथ ही निर्मल प्रेमभाव के द्वारा सभा के अधिकांश प्रतिनिधियों को अपने विचारों की उपयोगिता समझा सकेंगे उसी दिन हमारे विचारों के अनुकूल प्रस्ताव होने में देर न लगेगी। मेरे नजदीक प्रस्तावों से अधिक मूल्य आचार का है। हमारा कर्तव्य सिर्फ इतना ही है कि हम अपने विचारों के अनुसार सचाई के साथ चलें। अब आगे के मार्ग को हम केवल व्याख्यानों, लेखों और प्रस्तावों के द्वारा नहीं तय कर सकते। उसके लिए तो अविचल आचार की जरूरत है। इसलिए अपने युवक भाइयों से कहता हूं कि अधीर और आतुर न बनो, बनना हो तो अपने लिए बनो, औरों के लिए नहीं। कठोर होना हो तो अपने लिए होओ, दूसरों के लिए नहीं। वृद्ध जनों से मेरी प्रार्थना है कि देश और जाति का वर्तमान चाहे आपके हाथ हो, भविष्य निःसन्देह नहीं है। आप इस बात को अनुभव कीजिए। यदि नवयुवकों के विचार और मन्तव्य आपको प्रिय न हों तो उन्हें उनके भविष्य पर छोड़ दीजिए। आप यदि उन्हें आशीर्वाद न दे सकें तो कम से कम अपनी तरफ से उनके रास्ते में कोई बाधा न खड़ी कीजिए। न वे आप पर जब्र करें न आप उन्हें रोकें। यही मेरा सन्देश महासभा के लिए है।

राष्ट्रीय सप्ताह

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रति का	„ -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, प्रथम चैत्र सुदी ५, संवत् १९८२ १८ गुरुवार, मार्च, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १५

सभ्य वेष में

निरामिष भोजन पर मेरी श्रद्धा दिन प्रतिदिन बढती ही गई। साल्ट के पुस्तक के पढने से आहार विषयक पुस्तकों को पढने की मेरी जिज्ञासा तीव्र हो गई। मैंने तो जितने भी पुस्तक मिले, खरीदे और उन्हें पढा। हावर्ड विलीयम्स के 'आहार नीति' नामक पुस्तक में भिन्नलोक युगों के ज्ञानी, अवतार और पयगम्बरों के आहार का और उनपर उनके विचारों का वर्णन किया हुआ है। उन्होंने पाइथागोरास, ईसा इत्यादि का निरामिषभोजी होना सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। डा० मिसिस एना किंग्सफर्ड की 'उत्तम आहार की रीति' नामक पुस्तक भी बडी आकर्षक थी। और डा० एलिन्सन के आरोग्य विषयक लेखों से भी अच्छी मदद मिली। दवा के बदले खुराक में ही उचित परिवर्तन कर के रोगी के अच्छा करने की रीति का वे समर्थन करते हैं। डा० एलिन्सन स्वयं निरामिषभोजी थे और अपने रोगियों को भी वे निरामिष भोजन करने की सलाह देते थे। इन सब पुस्तकों के पढने का यह परिणाम हुआ कि मेरे जीवन में जुदे जुदे प्रकार के भोजन के प्रयोगों ने ही महत्व का स्थान प्राप्त कर लिया। उन प्रयोगों में प्रथम तो आरोग्य की दृष्टि को ही प्रधान स्थान था। परन्तु पीछे से धार्मिक दृष्टि ही सर्वोपरि बन गई।

परन्तु इस दरम्यान मेरे उस मित्र की मेरे विषय की चिन्ता दूर न हुई थी। वे तो प्रेम के वशीभूत हो यह मान बैठे थे कि यदि मैं मांसाहार न करूंगा तो दुबला हो जाऊंगा, यही नहीं मैं वैसा 'भोंदु' ही बना रहूंगा; क्योंकि अंगरेज समाज में मैं हिल-मिल न सकूंगा। उन्हें मेरे निरामिषभोजन विषयक पुस्तकें पढने की खबर थी। उन्हें ऐसा भय हुआ कि ऐसी पुस्तकें पढने से मुझे कहीं चित्तभ्रम न हो जाय, इन प्रयोगों में ही मेरा जीवन व्यर्थ हो जाय, मैं अपना कर्तव्य भूल जाऊं और केवल पोथीपांडे ही बन जाऊं। इसलिए उन्होंने मेरा सुधार करने का एक अन्तिम प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे नाटक में ले जाने के लिए निमन्त्रण दिया। नाटक में जाने के पहले हमलोग हावर्न भोजन-गृह में खाना खानेवाले थे। वह गृह मेरी दृष्टि में महल था। विक्टोरिया होटेल छोडने के बाद ऐसे गृह में जाने का मेरा यह प्रथम अनुभव था। विक्टोरिया होटेल का अनुभव व्यर्थ था क्योंकि वहां तो यही कहा जा सकता है कि मेरे होशहवास ही ठिकाने न थे। सैंकडो मनुष्यों में हम दोनों मित्रों ने एक टेबिल अपने लिए भी ले लिया। मित्र ने प्रथम भोजन की थाली मंगाई। वह 'सुप' (शोरबा) था। मैं घबराया। मित्र को क्या पूछता? मैंने तो परोसनेवाले को (वेइटर) को ही आवाज दी।

मित्र समझ गये और खीझ कर मुझसे पूछने लगे।

'क्या है?'

मैंने धीरे से और कुछ संकोचपूर्वक उत्तर दिया:

'मुझे यह पूछना है कि इसमें मांस है या नहीं?'

'इस गृह में ऐसा जंगलीपन नहीं चल सकता है। यदि तुम्हें अब भी इस विषय में माथापच्ची करनी हो तो तुम बाहर जा कर किसी छोटे से भोजन-गृह में खाना खा लो और फिर बाहर मेरी राह देखना।'

इस निर्णय से मैं बडा खुश हुआ और बाहर जा कर दूसरा भोजन-गृह ढूंढने लगा। पास ही एक निरामिष भोजन-गृह था लेकिन वह बन्द हो चुका था। मेरी समझ में कुछ भी न आया कि अब क्या करना चाहिए। मैं भूखा रहा। हमलोग नाटक में गये। उस मित्र ने उस दृश्य के सम्बन्ध में एक भी शब्द न कहा। मुझे तो बोलने को था ही क्या?

यही हमलोगों में आखिरी मित्र-युद्ध था। हमारा सम्बन्ध न टूटा और न उसमें कोई कटुता ही आ सकी। मैं उनके इन सब प्रयत्नों के मूल में रहा हुआ उनका प्रेम देख सका था। इसलिए विचार और आचार में भिन्नता होने पर भी उनके प्रति मेरा आदर बढ गया।

परन्तु मैंने उनके भय को दूर कर देने का निश्चय किया और सोचा कि मैं जंगली न बना रहूंगा, सभ्य के लक्षणों का विकास करूंगा और दूसरे प्रकारों से समाज में हिलने-मिलने योग्य बन कर अपनी निरामिषता की विचित्रता को छुपाऊंगा।

मैंने सभ्यता के गुणों का विकास करने के लिए अपनी शक्ति के बाहर का और ओछा मार्ग ग्रहण किया।

बम्बई की काट-छांट के कपड़े अच्छे अंग्रेज समाज में शोभा नहीं देंगे इस कारण से आर्मी और नेवी स्टोर में कपड़े तैयार करवाये । उन्नीस शिलिंग की (उस जमाने में तो यह बहुत बड़ी कीमत गिना जाती थी) 'चिमनी' टोपी सर पर दी । इससे भी सन्तोष न आया और बॉन्ड स्ट्रीट में जहां शौकीन लोग अपने कपड़े बनवाते हैं वहां दस पौंड पर पानी फिरा कर शाम के लिए पोशाक तैयार करवाई । और भोले और बादशाही दिल के बड़े भाई को लिख कर दो जेबों में लटकाई जा सके ऐसी खास सोने की एक चेइन तैयार करा के मंगवाई और वह मिली भी । तैयार टाई बैंधा शिष्टाचार नहीं गिना जाता था इसलिए टाई बांधने की कला भी हस्तगत की । देश में तो बाल बनवाने के समय ही आइना देखने को मिलता था लेकिन यहां पर तो बड़े आइने के समक्ष खड़े रह कर टाई को ठीक बांधने की कला को देखने में और बालों की पांथी पाड़ने में कम से कम दस मिनट तो अवश्य ही नष्ट होते थे । बाल मुलायम न थे इसलिए उन्हें ठीक करने में ब्रश (अर्थात् झाडू ही न !) के साथ रोज युद्ध करना पड़ता था । और टोपी देने में तथा टोपी उतारने में मानों पांथी ठीक करने के लिए हाथ तो सर पर जाता ही था । और बिच बिच में जब समाज में बैठे हों तब पांथी के ऊपर हाथ रख कर बाल को ठीक करने की जुदी और सभ्य क्रिया तो होती ही रहती थी ।

लेकिन इतना संवारना भी काफी न था । अकेला सभ्य पोशाक धारण करने से ही थोड़े सभ्य बना जाता है ? सभ्यता के दूसरे कितने ही बाह्य गुणों को भी मालूम कर लिए थे और उसका अभ्यास करना था—जैसे गृहस्थ को नाचना आना चाहिए, उसे फ्रेंच भी अच्छी आनी चाहिए । क्योंकि फ्रेंच इंग्लैण्ड के पड़ोसी फ्रान्स की भाषा है और समस्त यूरोप की राष्ट्र भाषा भी वही है और मुझे यूरोप का प्रवास करने की भी इच्छा थी । और सभ्य पुरुष को उत्तम व्याख्यान देना भी आना चाहिए । मैंने नाच सीखने का निश्चय किया और उसके एक वर्ग में दाखिल भी हो गया । एक सत्र (टर्म) के तीन पौंड दिये । करीब तीन हफ्ताह में ६ सबक ही ले पाया हूंगा । बराबर ताल पर पैर न पड़ता था । पीआनो बजता था लेकिन वह क्या कहता है यही समझ में न आता था । एक, दो, तीन चलते थे लेकिन उसके बीच का अन्तर तो वह बाजा ही बता सकता था और वह समझ में ही न आता था । अब क्या करें ? अब तो बावाजी की बिल्ली का सा किस्सा हुआ । चूहों को दूर रखने के लिए बिल्ली और बिल्ली के लिए गाय, इस प्रकार बावाजी का परिवार बढ़ा था और इसी तरह मेरे लोभ का परिवार भी बढ़ा । खयाल हुआ कि वायोलीन बजाना सीखूं ताकि ताल और सूर का ख्याल आ जाय । वायोलीन खरीदने में तीन पौंड फेंक दिये और उसे सीखने के लिए और कुछ दिया । व्याख्यान करना सीखने के लिए एक तीसरे शिक्षक का घर ढूंढा । उसे एक गिनी तो दी । 'बेल्स स्टैंडर्ड एलोक्युशनिस्ट' खरीदा और उन्होंने पिट का व्याख्यान आरंभ कराया ।

बेल साहब ने मेरे कान में घंट बजाया और मैं जाग्रत हो गया ।

'मुझे इंग्लैण्ड में कहां जीवन बिताना है । मैं अच्छा व्याख्यान देना सीख कर क्या करूंगा ? नाच नाच कर मैं क्यों कर सभ्य बनूंगा । वायोलीन का सीखना तो देश में भी हो सकता है । मैं तो विद्यार्थी हूं । मुझे तो अपने धन्धे से सम्बन्ध रखनेवाली तैयारी ही करनी चाहिए । मेरे सद्व्यवहार से मैं सभ्य गिना जाऊं तो यह ठीक है अन्यथा मुझे उसका लोभ छोड़ना होगा ।'

इन विचारों की धुन में मैंने इसी प्रकार के उद्गारों का एक पत्र व्याख्यान सिखानेवाले शिक्षक को लिख दिया । मैंने उनके पास से दो तीन ही सबक लिए होंगे । नाच-शिक्षिका को भी वैसा ही पत्र लिख दिया था । वायलीन शिक्षिका के घर वायोलिन ले कर गया । उसके चाहे जो कुछ भी दाम आवें उसे बेच डालने का उन्हें अधिकार दे दिया । उनके साथ कुछ मित्र का सम्बन्ध हो गया था इसलिए मैंने उनसे अपने मोह कि बात कही । उन्होंने मेरे नाच इत्यादि के जाल में से निकल जाने की बात को पसन्द किया ।

सभ्य बनने का मेरा पागलपन कोई तीन महीने रहा होगा । पोशाक की टापटीप कई सालों तक रही लेकिन मैं विद्यार्थी बन चुका था ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

म्युनिसिपल शालाओं में कताई

अखिल भारतीय चरखा संघ के सहायक मन्त्री ने जुदी जुदी म्युनिसिपल्टी और जिला बोर्डों को अपने यहां की शालाओं में हाथ-कताई की कैसी प्रगति हो रही है उसका ब्योरा भेजने के लिए जो पत्र लिखा था उसके उत्तर में केवल तीन पत्र ही प्राप्त हुए हैं । उनमें प्रथम अहमदाबाद म्युनिसिपल्टी के स्कूल-बोर्ड के प्रधान का है । उसमें लिखा है कि 'गत वर्ष म्युनिसिपल कन्याशालाओं के लिए कताई के शिक्षक तैयार करने के लिए दो कुशल कातनेवालों को रोका गया था । शिक्षकों को कोई ६ महीने तक शिक्षा दी गई और अब म्युनिसिपल कन्याशालाओं में कताई के विषय को अनिवार्य विषय बना देने का विचार है ।' शाहाबाद जिला बोर्ड के उपप्रधान लिखते हैं कि '१९२५ में प्राथमिक शालाओं में कताई दाखिल की गई थी । खास पसन्द की गई शालाओं के ८ शिक्षकों को इस विषय की खास शिक्षा दी गई थी और हरएक स्कूल को पांच चरखे दिये गये थे । १० से १५ साल तक के जुदी जुदी उम्र के १२१ लड़के आज इसकी शिक्षा पा रहे हैं ।' पत्र में लिखा है कि 'अबतक बहुत ही कम कार्य हुआ है परन्तु अच्छे परिणाम की आशा की जाती है क्योंकि अब कार्य अधिक व्यवस्थित हो गया है । बोर्ड ने मंजूर किये १०००) में से ३१ जनवरी तक २७४) रुपये ही खर्च किये हैं ।' बस्ती के जिला-बोर्ड के पत्र के अनुसार '१५ लड़के बराबर कातते हैं । १५ चरखे चलते हैं । रोजाना १ छटांक (५ तोले) की औसत कताई होती है । केवल दरी बुनवाने में ही उस सूत का उपयोग किया जाता है । दो दरियां बुनी जा चुकी हैं और उनका शालाओं में उपयोग किया जा रहा है । खर्च माहवार २०) का होता है । यह शिक्षक का वेतन है । सामान खरीद में ८१-२-० अबतक खर्च हुए हैं ।'

मैं आशा करता हूं कि दूसरे स्कूल बोर्ड भी यदि उन्होंने अपने विषयों में कताई को भी रक्खा है तो उसकी प्रगति का ब्योरा अवश्य ही लिख भेजेंगे । मैं तो इन पृष्ठों में पहले ही लिख चुका हूं कि शालाओं में कातने के लिए तो तकली का साधन ही अधिक सुविधाजनक और फायदेमन्द है । एक बात तो यह है कि सैकड़ो लड़के लड़कियों के तकली पर कातने के कार्य को शिक्षक निगरानी कर सकते है परन्तु चरखे पर होनेवाली कताई में यह होना असंभव है ।

क्या उसपर अमल होगा ?

पीलाजी में हुई कोंगुवेआला परिषद् ने निम्न लिखित प्रस्ताव पास किया है ।

" यह परिषद् कोंगुवेआला की स्त्रियों को और लड़कियों को यह आग्रह करती है कि वे हाथ-कताई को अपना जाति-उद्योग बनावें और उन्हें सबको खादी के कपड़े ही पहनने चाहिए । और उसका यह भी विश्वास है कि इस देश से दुष्काल को दूर करने का चरखा ही एकमात्र साधन है ।"

मैं परिषद् को इस प्रस्ताव को पास करने के लिए बधाई देता हूं लेकिन जिन्हें हाथ-कताई को अपना जाति-उद्योग समझ कर उसका स्वीकार करने की सलाह दी गई है वे क्या उसका स्वीकार करेंगी ? और क्या जिन्होंने खादी पहनने के लिए मत दिया है वे भी उसका स्वीकार करेंगे ? मैं परिषद् के सभासदों को यह सूचित करना चाहता हूं कि जबतक पुरुषलोग हाथ-कताई को न अपनावेंगे स्त्रियों को कातने के लिए समझाना उन्हें बड़ा ही मुश्किल काम मालूम होगा । यदि चतुर कातनेवाले पुरुषों की काफी संख्या न होगी तो वहां के स्थानिक चरखों में और सूत में आवश्यक सुधार करने में इससे भी अधिक कठिनाई मालूम होगी । प्रस्तावों के बनिस्बत ठोस कार्य पर ही हाथ-कताई का कार्य अधिक आधार रखता है । तमाम रचनात्मक कार्यों में प्रस्तावों की उपयोगिता बड़ी मर्यादित होती है । सिर्फ उससे थोड़ा सा प्रचार होता है । लेकिन सारा आधार तो सिर्फ बुद्धिपूर्वक लगातार किये हुए कार्य पर ही होता है ।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

कुरिवाजों के साम्राज्य में क्या करें ?

एक सज्जन लिखते हैं:

'अभी हमारी जाति में शादियों की धूम मच रही है । जहां बालविवाह होते हों, जहां केवल विदेशी कपड़ों का ही इस्तेमाल किया जाता हो, और जहां रुपये पानी की तरह बहाये जाते हों वहां इन बातों को पाप समझनेवालों को क्या करना चाहिए ?'

अंगरेज सरकार की पद्धति को जो नियम लागू किया गया है वही नियम यहां भी लागू किया जाना चाहिए । यदि लोग सहकार के द्वारा उस पद्धति की रक्षा न करें तो वह पद्धति आधार रहित बन कर आप ही टूट कर गिर जायगी । उसी प्रकार कुरिवाजों के साम्राज्य को तोड़ने की इच्छा रखनेवाला भी यदि असहयोग करे तो वह साम्राज्य भी टूट जायगा । पर सहज ही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि एक मनुष्य ऐसा असहयोग करे भी तो उससे क्या काम होगा ? इसका उत्तर यह है कि जिसने असहयोग किया है वह तो जीत गया, दोषमुक्त हो गया । और उसके सहयोग के अभाव का होना ही उस साम्राज्य की असली हानि गिनी जायगी । मकान की दीवार की एक ईंट गिर जाने से ही वह दीवार गिर नहीं जाती, लेकिन सब यह समझते हैं कि जिस दिनसे उसकी एक ईंट निकल गई है उसी दिन से वह मकान कमजोर होने लगा है । और एक ईंट निकालने में जैसी हिम्मत की आवश्यकता होती है, वैसी हिम्मत दूसरी ईंटें निकालने में नहीं करनी पड़ती है । जगत में एक ही मनुष्य के द्वारा प्रत्येक सुधार का आरम्भ हुआ है । आज तो बाल-विवाह इत्यादि कुरिवाजों के खिलाफ वायुमण्डल भी ठीक तैयार हो गया है । जो लोग उन्हें कुरिवाज मानते हैं वे अमली तौर पर उसका विरोध करें यही विलंब है । यदि आज हम इस विषय पर मत संग्रह करें तो बहुमती तो यही कहेगी कि बाल-विवाह बुरा है, विवाह में आवश्यक खर्च करना बुरा है, विदेशी कपड़े का शृंगार त्याज्य है और बुरा है । इसी प्रकार दूसरे कुरिवाजों के विरुद्ध भी बहुमती प्राप्त की जा सकती है । यह होने पर भी कुरिवाज दूर नहीं हो पाये हैं क्योंकि उनका विरोध करनेवाले स्वयं ही दुर्बल हैं । वे जबान के शूर हैं लेकिन कार्य के कच्चे हैं । यह कायरता तो तभी दूर होगी जब कि कुछ लोग कैसा भी कष्ट सहन क्यों न करें ऐसे प्रसंगों में हाजिर न रहेंगे ।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

सच्ची गोरक्षा

मुंगेर में होनेवाले बंगाल, बिहार और उड़ीसा की गोशाला और प्राणि-रक्षक संस्थाओं के सम्मेलन के मन्त्री को गांधीजी ने जो पत्र लिखा है उसमें गोरक्षा का रहस्य नये ही तरीके पर समझाया गया है । मन्त्री ने गोरक्षा के सम्बन्ध में एक योजना तैयार कर के भेजी थी । उसे प्राणहीन बता कर गोशाला और प्राणि-रक्षक संस्थाओं में किस प्रकार परिवर्तन किया जाय ताकि वे सच्ची गोरक्षक संस्थायें बनें, इस विषय पर गांधीजी ने यों कहा है: 'केवल शहरों में ही गोवध होता है और उसे रोकने का केवल एक ही मार्ग है । वह यह कि पशुओं की खरीद करने में कसाइयों से बाजी मार लेना और यह तो तभी हो सकता है जब कि हम पशुओं की खरीद करने में जितना भी खर्च करें उतना सभी उन्हींसे फिर पैदा कर लें । और यह तभी होगा जब हम दूध की डेरियां चलावेंगे और धार्मिक दृष्टि से मरे हुए ढोरों के चमड़े इत्यादि का व्यापार करेंगे । जिस प्रकार गाय के दूध का स्वीकार कर के हम गोमांस भक्षण से बच गये हैं और यही सबब है कि हम दूध को पवित्र मानते हैं, उसी प्रकार अब गाय और बैल को काल होने से बचाने के लिए मरे हुए ढोरों के चमड़े, हड्डियां, इत्यादि का, उसे धार्मिक और पवित्र समझ कर हमें उपयोग करना होगा । अर्थात हमलोगों के सामने दो बातें होंगी ।

(१) डेरी और चमड़े कमाने के शास्त्र को समझनेवालों की मदद का स्वीकार करना ।

(२) मरे हुए ढोरों का चमड़ा, उनकी हड्डियां इत्यादि के व्यापार को आज लोग अज्ञानवश हो कर जो दूषित समझते हैं, उसे ज्ञान द्वारा निर्दोष ही नहीं बल्कि पुण्य-कार्य समझना ।

यदि यह दृष्टि सही है तो गोशाला और पींजरापोलों को हमें इस प्रकार चलाना चाहिए कि वे डेरी और चर्मालय ही बन जायं । गोरक्षा का कार्य आजकल निरस हो गया है उसका कारण तो यह है कि गोरक्षा के नाम पर लाखों रुपयों का फंड जमा होने पर भी संख्या के हिसाब से हमलोग आज तक सैकड़े पीछे एक भी गाय की रक्षा नहीं कर सके हैं और गोरक्षा शास्त्र के ज्ञान के अभाव के कारण गायें सस्ती हो गई हैं और इससे उनका वध अधिक होता है । (नवजीवन)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार प्रथम चैत्र सुदी ५, संवत् १९८२

राष्ट्रीय सप्ताह

हमारे राष्ट्रीय जीवन में ६ और १३ अप्रेल के दिन चिरस्मरणीय हैं, उनकी स्मृति कभी विलुप्त नहीं हो सकती। ६ अप्रेल के दिन सत्याग्रह का वह अनुपम दृश्य दिखाई दिया था कि जिसमें हिन्दू-मुसलमान और दूसरी जातियों के लोग सभी स्वतंत्रता-पूर्वक शामिल हुए थे। नीच गिने जानेवाले वर्गों की स्वतंत्रता के आरंभ का भी वही दिन है। उसी दिन सच्ची स्वदेशी की हलचल की नींव डाली गई थी। उस दिन सारे देश ने सविनय भंग किया था। सामुदायिक स्वतन्त्रता और सामुदायिक रक्षा का भाव सर्वत्र फैल गया था।

और १३ अप्रील को जलियांवाले की कत्ल हुई, उसमें हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों का खून एक रक्त-धारा हो कर बहा। एक ही दिन में एक मिट्टी का टिला सारे भारत के लिए राज्य-नैतिक यात्रा का स्थान बन गया। और जबतक भारत का अस्तित्व रहेगा तबतक वह वैसा ही बना रहेगा। उस दिन से आज तक कई घटनायें हो चुकी है। १९२१ में आशा का सूर्य मध्याह्न पर पहुंचा था और वह इसलिए कि उसका मध्याह्न होते ही उसके टुकडे टुकडे होते हुए दिखाई दें। तब से तो जीवन का स्रोत क्षीण होता हुआ ही दिखाई देता है। आज हम मध्यरात्री के घोर अंधकार में से ही गुजर रहे हैं। लेकिन शायद अभी हमको इससे भी अधिक घना अंधकार देखना बाकी है।

लेकिन इस पवित्र सप्ताह में अब भी हमारी आशा लगी हुई है। इसलिए यद्यपि हमलोग विभक्त हो गये हैं और सरकार हमारी राष्ट्रीय मांगे चाहे वे कितनी ही आवश्यक और योग्य क्यों न हो, निर्भय हो कर दूर फेंक दे सकती है फिर भी हमें यह राष्ट्रीय सप्ताह मनाना चाहिए।

परन्तु ईश्वर की इस दुनिया में रात कहीं भी सदा नहीं बनी रहती है। हमारी रात्री का भी अन्त होगा। लेकिन हमें इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। अब इस सप्ताह को कैसे मनावे? हडताल से तो नहीं और सविनय भंग कर के भी नहीं। आज हम हिन्दू और अहिन्दुओं के ऐक्य को नहीं मना सकते हैं और न उसका दावा ही कर सकते हैं। क्योंकि हिन्दू मुसलमानों को और मुसलमान हिन्दुओं को अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं और वे आपस की सहनशीलता और सहाय से अपनी शक्ति का संगठन करने के बजाय सरकार की कृपा प्राप्त कर के ही उसका संगठन करने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए इस प्रश्न को तो अपना मार्ग आप कर लेने के लिए यों ही छोड देना चाहिए। अब केवल खादी ही रह जाती है कि जिससे सामुदायिक कार्य किया जा सकता है और जिसमें सामुदायिक भावों को व्यक्त किया जा सकता है। खादी के मंच पर सब लोग हाथ में हाथ मिला कर कार्य कर सकते हैं। उसकी बिक्री की व्यवस्था की जा सकती है। स्वेच्छा से कातने के कार्य को उत्तेजना दी जा सकती है, अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक के लिए रुपये इकट्ठे किये जा सकते हैं। उसका तो एक मात्र उद्देश ही खादी और चरखे की प्रगति और प्रचार करना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय सप्ताह मनाने के और भी कई मार्ग हैं। स्थानिक कार्यकर्तागण जुदे जुदे मार्गों की योजना कर सकते हैं। मैं तो सिर्फ उन्हीं बातों का विचार कर सकता हूं जिनमें कि करोडों लोग शामिल हो सकते हो जिनसे हमें उन सात दिनों का स्मरण होगा और स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग में प्रगति होगी। मेरे विचार में दूसरी एक भी ऐसी बात नहीं आती है जो चरखे की तरह इन तीनों शर्तों को पूरा कर सके। — उससे हम एक काम कर सकते हैं और अच्छी तरह कर सकते हैं — उससे खोया हुआ आत्मविश्वास प्राप्त होगा और उससे वह शक्ति प्राप्त होगी जो अपने सामने सभी बातों से बढ कर होगी। अकेला चरखा ही ऐसा है कि जिस पर सब जाति और धर्म के स्त्री, पुरुष, बालक और बालिकायें काम कर सकती है। धनी और गरीब लोगों में सम्बन्ध जोडने के लिए यही एक साधन है और उसीके द्वारा अधभूखे किसानों के अन्धकार और दरिद्रतापूर्ण गृहो में प्रकाश का किरण डाला जा सकता है। जिन्हें चरखे में विश्वास हो वे इस राष्ट्रीय सप्ताह में खादी को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयत्न करें।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

केवल परिमाण का भेद

ग्लासगो भारतीय संघ के संचालकों ने ग्लासगो में रहनेवाले कुछ भारतीयों पर जो अंकुश रक्खे गये है उस पर प्रकाश डालने के उद्देश से एक पत्र भेजा है। उस पत्र से मैं नीचे का अंश उद्धृत करता हूं:

"१८ मार्च १९२५ को यहां के आन्तर्विभाग के प्रधान ने एक हुक्म निकाला है, जिसकी कि नकल इसके साथ है। उसमें विदेशी खलासियों को रजीस्टर करने की सूचना की गई है। इस वर्ष के जनवरी महीने से ग्लासगो और उसके जिले में इस हुक्म पर अमल किया जा रहा है और आन्तरिक विभाग के अधिकारियों की सूचना अनुसार काम करनेवाले यहां के पुलिस के अधिकारियों ने उन व्यक्तियों को भी, जिनके कि नाम और पते साथ की सूची में दिये हुए है, विदेशी गिन कर दर्ज किया है। वे सब लोग इस देश में तीन से ले कर चौदा साल तक रह चुके है। उनका जन्म भारत में ही हुआ था — अधिकांश में पंजाब में — और इसलिए वे ब्रिटिश रिआया है। बहुत से तो लडाई के समय यहां काम पर लिये गये थे और अब भी उनसे मजदूर की तरह काम लिया जाता है। कुछ फेरी का काम करते है और कहीं कोई खलासी का काम भी करते हैं। वे सब बडे शान्त और नियम का पालन करनेवाले नागरिक है। आन्तरिक विभाग के मंत्री का उनको विदेशी खलासी मान कर ही उन्हें दर्ज करने का इरादा है पर निःसन्देह वे विदेशी नहीं है और बडे मार्के की बात तो यह है कि उनके पुलिस की जो किताब उनको दी गई है उसमें उनके राष्ट्र और जन्मस्थान के नामों की जगह खाली छोड दी गई है। हम भारतीयों का ख्याल है कि आन्त-विभाग के मंत्री का यह कार्य भारतीयों का बहिष्कार करने की सामान्य नीति का, जो अभी अभी विकास को प्राप्त हुई है एक व्यक्त रूप ही है। 'स्काटलैंड के सब से बडे उदार शहर' ग्लासगो में तमाम भारतीयों को वे भारतीय होने के कारण ही कुछ सिनेमाओं में और दूसरी आमोद प्रमोद की जगहों में जाने की इजाजत नहीं होती है। इतिहास में प्रसिद्ध ब्रिटेन के सब से बडे कष्ट के समय, ऐन मौके पर भारतीयों ने उनकी जो मदद की उसके लिए इस देश के लोगों की कृतज्ञता का यह बडा अच्छा सबूत है।"

इस पत्र के साथ आन्तर्विभाग के प्रधान के हस्ताक्षरों से निकला हुआ हुक्म भी नत्थी किया हुआ है। उसको 'रंगवाले विदेशी मवालियों पर' खास अंकुश रखने का हुक्म, यह नाम दिया गया है। इस हुक्म में ६३ मनुष्यों के प्रति इशारा किया गया है। वे शायद एक के सिवा सब मुसल्मान हैं और वह एक नाम भी हिन्दू नाम सा मालूम होता है। उनमें से बहुतांश लोग तो फेरी करनेवाले ही बयान किये गये है, केवल दो ही शख्सों का मवाली होना लिखा गया है। और वे सब खास कर मीरपुर और जलन्धर के जिलों के ही रहनेवाले हैं। वे सब बिना अपवाद के पंजाब के ही रहनेवाले है। यह अनुमान करना बडा ही कठिन है कि उन्हें एशियावासी न कह कर रंगवाले लोग क्यों कहा जा रहा है। और यह कहना उससे भी अधिक कठिन है कि जब वे ब्रिटिश प्रजा है तो फिर उन्हें विदेशी क्यों कहे जा रहे हैं।

इस रजीस्ट्रेशन में जो व्यवहार छिपा हुआ है उसे समझना कोई कठिन बात नहीं है। यह व्यवहार भी दक्षिण आफ्रिका के जैसा ही है। केवल परिमाण में ही भेद है और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रेटब्रिटन में यदि बहुसंख्यक भारतीय जा कर बस जायं तो वे भी भयभीत हो उठेंगे और कानून बनाने लगेंगे। बहुत दिन नहीं हुए कि समाचार पत्रों में यह बात प्रकाशित हुई थी कि लीवरपुल में बिना कोई कारण के ही चीनी धोबियों को बडा सताया गया था। अमरिका में भी हालत कोई अच्छी नहीं है। अभी ही मैंने इस विषय में वहां के एक विद्यार्थी के पत्र को प्रकाशित किया था। अभी ही अमरिका से लौटे हुए एक विद्यार्थी ने मुझसे मुलाकात की थी। वे संस्कारी थे, अच्छी अंगरेजी बोलते थे और बडे विनयी थे। अमरिका में रंगद्वेष जिस प्रकार का है उसका उन्होंने बडा दुःखमय चित्र खींचा था और मुझ पर वे यह छाप डाल कर गये थे कि वहां वह अभी बढ रहा है। इसलिए जो प्रश्न दक्षिण आफ्रिका में उठा हुआ है वह कोई स्थानिक प्रश्न ही नहीं है वह तो सारी दुनिया का बडा भारी प्रश्न है। जब कि एशिया में रहनेवाली जातियां गुलामी में है और वे अपनी भलाई के प्रति उदासीन है तब उनके साथ वैसा व्यवहार करना जैसा कि आज किया जा रहा है बडा ही आसान कार्य है, फिर चाहे वे इंग्लैण्ड में हो अमरिका में हो या आफ्रिका में हो; या चाहे अपने ही घर में, चीन में या भारत में ही हो। लेकिन वे बहुत दिनों तक नींद में न पडे रहेंगे। परन्तु यह आशा रखनी चाहिए कि उनकी जागृति से वर्तमान गुत्थी और भी अधिक उलझ न जाय और जातीय कटुता का भाव जो आज वर्तमान है और अधिक न बढ जाय। परन्तु जब तक दूसरे देशों को चूसने की जो वृत्ति पश्चिम में आज प्रधान रुपसे दिखाई दे रही है वह सच्ची सहाय और सेवा में परिणत न हो जाय और जब तक एशिया या आफ्रिका तकी जातियां यह न समझने लगे कि उनके सहकार के बिना उनको कोई चूस नहीं सकता है और यह समझ कर अपना सहकार खींच न लें तब तक उस दुःखदायी परिणाम को रोकने की कोई आशा नहीं है। अभी हाल ही के उदाहरण को लें। बहादुर पंजाबियों को उन पर जो जातिगत अंकुश रक्खे जाते हैं उन्हें स्वीकार करने के अपमान को सहन नहीं करना चाहिए। उन्हें वहां रहना ही नहीं चाहिए जहां कि वे अस्वागताई प्रवासी समझे जाते हैं। यदि उन्हें वहां रहना ही है तो उन्हें उनके प्रति किये गये अपमानकारक व्यवहार को मंजूर नहीं कर लेना चाहिए। उन्हें उसका भंग कर के कैद की सजा भुगतनी चाहिए। अकसर यह देखा गया है जिनके विरुद्ध कानून बनाये जाते हैं, वे ही चाहे बहुत थोडे अंश में क्यों न हो, उसके लिए उत्तरदायी होते हैं। यदि इन पंजाबियों के मामले में भी यही बात हो तो उन्हें ऐसी हरएक बात को दूर कर देना चाहिए ताकि उनकी तरफ कोई उंगली तक न दिखा सके। मनुष्य, चाहे वह किसी भी रंग का क्यों न हो यदि अपने अधिकार को समझ ले तो फिर चाहे सारी दुनिया उसके खिलाफ क्यों न हो वह बराबर सीधा खडा रह सकता है।

उस पत्र की जिसमें से कि मैंने उपरोक्त अंश उद्धृत किया है जिन्होंने रचना की है उनका मैं इस बात पर ध्यान खींचना चाहता हूं कि यद्यपि उनका पत्र संक्षिप्त है और, और सब तरह से प्रशंसनीय है फिर भी उसमें बेसुरापन मालूम होता है क्योंकि लेखकों ने 'इतिहास में प्रसिद्ध ब्रिटेन के सब से बडे युद्ध के समय ऐन मौके पर भारतीयों ने जो बडी सेवा की' उस पर अधिक जोर दिया गया है। यदि भारत ने युद्ध के समय स्वेच्छा से मदद की थी तो उसके लिए कृतज्ञता की आशा रखना उसका मूल्य घटाना है। क्योंकि वह मदद तो कर्तव्य समझ कर ही दी गई थी 'कर्तव्य तो तभी उपकार हो सकेगा जब उसका बदला बख्शीस समझी जायगी।' लेकिन सच बात तो यह है कि उस समय जो सेवा दी गई थी वह स्वेच्छा से नहीं दी गई थी। शक्ति और भय के कारण ही वह दी गई थी। जब जब इस सेवा का जिक्र किया जाता है तब तब अंगरेज लोग यह उत्तर नहीं देते हैं कि वह तो बेगार के तौर पर वैसे ही ले गई थी जैसे कि अधिकारी वर्ग गांवों में बेगार में मजदूरी कराते है तो यह उनका बुद्धिपूर्वक एक बडा संयम ही है। लडाई के समय जो लोग लडाई में जाने के लिए घर में से निकलने पर मजबूर किये गये थे उन्हें अपनी उस समय की सेवा पर अभिमान करने का कोई कारण नहीं है और ब्रिटिश सरकार से कृतज्ञता की आशा रखने का कारण तो उससे भी कम है। माइकेल ओडायर ही उस कृतज्ञता के पात्र हैं क्योंकि पंजाब के हरएक जिले में से कैसी भी कीमत दे कर के वे अपने रंगरुटों की संख्या पूरी कर सके थे।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

लडाई के दुष्परिणाम

नैतिक हानि

यूरोपीय महायुद्ध के फलस्वरूप जो शारीरिक और आर्थिक हानि हुई उसके अंक आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं किन्तु उसकी नैतिक हानि का परिमाण निकालना उतना आसान नहीं है। फिर भी ऐसे असंख्य प्रमाण मौजूद है जिनसे यह साबित किया जा सकता है कि उससे जो नैतिक हानि हुई वह भी बडी ही भयंकर है।

यह कहा जाता है कि लडाई से सब से प्रथम और बडी से बडी हानि सत्य की हानि हुई है और यह बिल्कुल सच है। दगा और असत्य लडाई के अंग ही बन गए हैं। उसका सत्य के अनुकूल चलना नहीं परन्तु समय के अनुकूल चलना ही राज-मार्ग है। लडाई के दिनों में जर्मनी ने अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए किस प्रकार बडी विशाल योजना पर प्रचारकार्य किया था यह मित्रराज्यों में रहनेवाले सब कोई जानते हैं। यह कहा जाता है कि लोकमत जर्मनी के विरुद्ध होने में यही एक मुख्य कारण था और अमरिका भी इसी कारण से लडाई में उतरा था। और इस विषय में जर्मनी के अपराध के संबन्ध में किसी भी प्रकार के सन्देह का अवकाश भी नहीं है।

लेकिन मित्रराज्यों में रहनेवाली प्रजा जो बात नहीं जानती वह यह है कि जर्मन प्रजा भी, मित्रराज्यों ने अपने तरफ से जो प्रचार कार्य किया था उससे उतनी ही वाकफीयत रखती थी। लडाई के १९१८ मित्रराज्यों के गुप्त विभागों के लोगों के हाथ की दुष्कृत्य

यंत्र की अनर्थ परम्परा

(गतांक से आगे)

और यन्त्रो ने कुदरत को कितना बदसूरत बना दिया है। शहरों का धुंवां, रेल की आवाज, कारखानों का शोर, मोटरगाडी के बुरे आवाज, खानें और कटे हुए जंगलों से बदसूरत बनी हुई जमीन कैसा नाश सूचित करती है ? और यन्त्रों के कारण परिमाण में शहरों की आबादी बढी है और गांवों की आबादी कम हुई है। हिन्दुस्तान में शहर की बस्ती १० प्रति सैकडा है, अमरिका में ४५ प्रति सैकडा और इंग्लैंड और वेल्स में ७८ प्रति सैकडा है !

उससे मनुष्य की उत्पन्न करने की मूल शक्ति का ह्रास होता है और यन्त्र चलानेवाला मनुष्य यंत्र बनता है। और वह यन्त्र बनता है इसलिए उसकी नैतिक और आध्यात्मिक कीमत घट जाती है। और जब कम नफा होता है और काम बन्द हो जाता है तब बुद्धिहीन कामों को करनेवाले कारीगर तो बेचारे मर ही जाते हैं। सबसे पहले उन्हीं को निकाल दिया जाता है उनकी स्वतंत्र मिहनत कर के जीवन निभाने की शक्ति नष्ट हो जाती है, उनके जीवन में भय प्रवेश करता है, और जब वे अत्याचार और भूखों मरने की हालत के विरुद्ध उठ खडे होते हैं तो पुलिस और फौज उनको तकलीफ देती हैं।

श्रमविभाग के कारण एक श्रमजीवी दूसरे से जुदा होता है। मजदूर और सेठ का सम्बन्ध टूट जाता है, जुदी जुदी श्रेणि के लोगों में विरोध उत्पन्न होता है — हडताल, संघ और मण्डलों का विरोध। दासत्व प्रथा बुरी थी परन्तु गुलामों को पूरा खानेपीने को और पहनने को मिलता था। यन्त्रयुग के पहले क्या श्रेणियां न थी, लेकिन उससमय राजा और जमींदार भी किसानों की तरह सादगी के साथ रहते थे, उनका खाना मोटा था, उनके व्यवहार भी गरीबों के जैसे ही थे। उनके साधारण जीवन में संकट और परिश्रम को विशेष स्थान था। उनका बहुत से मनुष्यों पर अधिकार न होता था और जहां उनका अधिकार चलता वहां वह अधिक दयापूर्वक और उत्तरदायित्व के साथ चलाया जाता था। यंत्रों से जो लाभ होता है उससे शक्य व्यक्तियों के लोभ का पोषण करने का प्रयत्न करते हैं और विदेशों में हुकूमत प्राप्त करने का उन्हें लोभ होता है, कच्चा माल पैदा करनेवाले देशों पर अधिकार प्राप्त करने और वहां अपने बाजार बनाने के लिए उन्हें लोभ होता है। आर्थिक साम्राज्यवाद और उसमें से उत्पन्न अज्ञान और अज्ञात अनुत्तरदायी क्रूरता उत्पन्न होती है। और लडाई के दुष्परिणामों को कौन नहीं जानता है ?

मैंने जानबूझ कर तो इस चित्र को अधिक भयंकर नहीं बनाया है ? यन्त्रों के लाभों को मैं भूल गया हूं या सामान्यतया जो दोष दिखाई नहीं देते है उन्हीं पर मैं अधिक जोर दे रहा हूं ?

यह तो आप भूल ही जाते है कि उससे मिहनत की बचत होती है। मैं बचत नहीं देखता हूं। आप मोटर खरीदते हैं तो क्या उससे आपके समय की बचत होती है ? नहीं, आप केवल प्रवृत्ति बढा लेते है, आपके जीवन में कुछ उपाधि ही बढ जाती है। एक कारखानावाला मिहनत बचाने के लिए एक नया यंत्र लाता है। उससे क्या उसके नोकरों को कुछ कम काम करना पडता है ? वह कितनों ही को जवाब दे देता है क्योंकि उनकी मिहनत बच जाती है। बाकी बचे हुओं को शायद अधिक काम करना पडता है, क्योंकि इस नये यन्त्र के द्वारा अधिक काम किया जाना चाहिए ! १५७० साल पर किसी भी यंत्राधीन प्रजा के जीवन में जितना सुख था उतना सुख आज है ? आज क्या श्रम से आत्मा को अधिक आराम और सन्तोष मिलता है ?

कीमत बढ गई है — क्योंकि इस्तेमाल करनेवाले बढते जाते हैं। एक गांव की आवश्यकता को पूरी करने के लिए एक मिल खोलने से कुछ फायदा न होगा। थोडी ही चीज की आवश्यकता हो तो कारखाना सस्ता नहीं महंगा होगा। कारखाने से कीमत तभी घटेगी जब कि उससे दिनरात काम लिया जायगा। यदि लोग छोटे छोटे गांवों में बंट जाय, गांव अपना जीवन स्वतंत्र बना लें तो यंत्र केवल बोझा रूप ही हो जायंगे।

ऊपर जिस इतिहासकार का मैं उल्लेख कर आया हूं वह—फेरेरो —अपनी स्त्री के साथ हुई एक बातचीत का उल्लेख करता है " यंत्र बहुत और शीघ्र उत्पन्न करता है इसलिए क्या उससे मनुष्य के सुख और सुविधे के साधन नहीं बढेंगे ? मैंने यह प्रश्न किया था। इसके उत्तर में मेरी पत्नी ने कहा " यंत्र अधिक उत्पन्न करते हों तो वे खाते भी अधिक है। अर्थात यंत्राधीन सुधारों में हमेशा आवश्यकता से अधिक वस्तु पैदा होती है और उसमें खर्च भी हद से ज्यादह होता है इसलिए हमेशा दरिद्रता ही बनी रहती है। इस विचित्र स्थिति में से बचने का एकही मार्ग है — जिसे सुनने के लिए मनुष्य तैयार नहीं है। ऐसी धर्म-जागृति होनी चाहिए कि जिससे संसार अपनी आवश्यकताओं पर अंकुश रख सके। "

विज्ञान को तिलाञ्जली देनी होगी ? नहीं। बहुतेरा विज्ञान तो कायम ही रहेगा। हमें प्रयोग करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होगी उन्हें हम हाथ से तैयार कर लेंगे अथवा हाथ के बने यन्त्रों से तैयार करेंगे। इन विज्ञानशास्त्रियों ने शोधें कर कर के इन सादे यन्त्रों को अटपटे बना दिये हैं। उन्होंने मूल में सादे यन्त्र उत्पन्न नहीं किये थे। उनकी शोधें शुद्ध विज्ञान के कारण नहीं हुईं, बल्कि रुपयों के लिए हुई है।

मतलब कि यदि बिजली या भाप की शक्ति से चलनेवाले यन्त्रों को तिलाञ्जली दी जाय तो भी चरखा करघा, सीने की मशीन, बेतार का तार, रेडियो, हाथमुद्रा यन्त्र, हल, और खेती के दूसरे साधनों की तो आवश्यकता होगी ही। इसका मूल्य बहुत नहीं होगा। जो चाहे उसे खरीद सकेगा। कुछ धनी लोगों के हाथ में ही उसके होने की आवश्यकता न होगी। इन यन्त्रों से उतना ही उत्पन्न किया जा सकेगा जितने से कि हम लोग आरोग्यतापूर्वक रह सकेंगे। आवश्यकता से अधिक उत्पन्न करने की लालच न रहेगी।

आल्फ्रेड रसेल वालेस ने अपनी ९० वी जन्मतिथि के दिन कहा था " यह हमारी असल में निर्बलता है। जितना हमारा ज्ञान और विज्ञान बढा है उतना हमारे हृदय का विकास नहीं हुआ है। हमारे हाथों में इतना बडा अधिकार आ गया है कि उसका उचित रीति से उपयोग करने की संयमशक्ति हमारे में नहीं है। मनुष्य के कल्याण के निमित्त कुदरत की महान् शक्तियों का उपयोग करने जितना आत्मनिग्रह और सद्बुद्धि हम में नहीं हैं इसलिए हमने उन्हें अपने विनाश के साधन ही बना दिये हैं।

इसमें किसी भी मनुष्य का दोष नहीं है। दोष हमारी वृत्तियों का है। ज्ञान होने पर ही यह वृत्ति दूर हो सकती है। वह किसी का तिरस्कार और द्वेष करने से दूर नहीं होगी। इसीलिए तो मेरा यह मानना है कि गांधीजी यंत्र पर टीका करने में और यन्त्रों के अनर्थों को दूर करने के साधनों की योजना करने में, उन साधनों में, उनकी टीका करनेवालों से अधिकतर सत्य के अधिक निकट है।

एण्ड्रयूज का कष्ट

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३०

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, प्रथम चैत्र वदी १२, संवत् १९८२ ११ गुरुवार, मार्च, १९२६ ई० { मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १४

मेरी पसंदगी

डा. महेता तो सोमवार को मुझसे मिलने के लिए विक्टोरिया होटल में गये थे। वहां उन्हें हमारा नया पता दिया गया इसलिए वे हमें हमारे नये मुकाम पर आकर मिले। मेरी बेवकूफी के कारण मुझे जहाज के 'दाद' हो गई थी। जहाज में खारे पानी से नहाना पड़ता था। उससे साबुन का मेल न हो सकता था। मैंने तो साबुन के इस्तेमाल को सभ्यता का चिह्न माना था। उससे शरीर साफ होने के बदले चिकना होता था। और परिणाम में मुझे 'दाद' हो गई। मैंने डाक्टर को वह दिखाई। उन्होंने उसे जला देने के लिए दवा-एसेटिक एसिड-दी। इस दवा ने मुझे रुलाया था। डा. महेता ने हमारे कमरे, इत्यादि की व्यवस्था देखी और सिर हिला कर कहा। "इस तरह से काम न चलेगा। विलायत में आ कर पढ़ने के बनिस्बत यहां का अनुभव लेना ही अधिक आवश्यक है। इसके लिए किसी कुटुम्ब के साथ रहना ही आवश्यक होगा। लेकिन अभी तो मैंने यह सोचा है कि कुछ अनुभव प्राप्त करने के लिए तुम——के यहां रहो। मैं तुमको वहां ले जाऊंगा।

मैंने उनकी इस सूचना को स्वीकार किया और उनका उपकार माना। मित्र के यहां गया। उनके सत्कार में कोई त्रुटि नहीं थी। उन्होंने मुझे अपने सगे भाई की तरह रक्खा था। उन्होंने मुझे अंगरेजी रीतिरिवाज सीखाये; यह भी कह सकते हैं कि उन्होंने ही मुझे अंगरेजी में बातचीत करने की आदत डाली थी।

मेरे खाने का प्रश्न बहुत बड़ा और गंभीर हो गया था। बिना नमक और मसाले के शाक साग अच्छे न लगते थे। उस गृह की गृहिणी मेरे लिए क्या खाना बनाती? सुबह तो ओटमील की राब बनती थी उससे कुछ पेट भरता भी था लेकिन दोपहर को और शाम को तो मुझे भूखों ही रहना पड़ता था। मित्र मांसाहार करने के लिए रोज मुझे समझाते थे। मैं तो प्रतिज्ञा की बाधा बता कर चुप हो जाता था। उनकी दलीलों का मैं उत्तर नहीं दे सकता था। दोपहर को सिर्फ रोटी, भाजी और मुरब्बे पर ही रहता था। शाम को भी वैसी ही खुराक होती थी। रोटी के तो दो तीन टुकडे ही खाता था। अधिक मांगने में शर्म मालूम होती थी। मुझे खूब खाना खाने की आदत थी। मेदा तेज था और खुराक की भी अच्छी आवश्यकता होती थी। दोपहर को या शाम को दूध तो कभी होता ही न था। मेरी यह हालत देख कर मित्र को एक दिन बडी चीढ हुई। उन्होंने कहा: "यदि तुम मेरे सगे भाई होते तो मैं तुम्हें अवश्य ही लौटा देता। यहां की परिस्थिति को जाने बिना ही निरक्षर मां के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा की किंमत ही क्या हो सकती है? वह प्रतिज्ञा ही नहीं कही जा सकती है। मैं तुमसे यह कहता हूं कि कानून में प्रतिज्ञा के नाम से उसका स्वीकार ही न होगा। ऐसी प्रतिज्ञा को पकड कर बैठना तो केवल एक वहम ही गिना जावेगा। और ऐसे वहम पर दृढ रहने से तुम इस मुल्क में से अपने देश में कुछ भी न ले जा सकोगे। तुम तो कहते हो कि तुमने मांस खाया है, वह तुम्हें अच्छा भी लगा है। जहां उसे खाने की कुछ भी आवश्यकता न थी वहां उसे खाया और जहां उसकी आवश्यकता है वहां उसका त्याग? यह कैसा आश्चर्य है?"

लेकिन मैं एक का दो न हुआ। रोजाना ऐसी दलील हुआ करती थी जैसे जैसे ये मित्र मुझे समझाते जाते थे वैसे वैसे मेरी दृढता और भी बढती जाती थी। रोजाना ईश्वर से अपनी रक्षा करने के लिए प्रार्थना करता था और मुझे वह प्राप्त भी होती थी। मैं यह न जानता था कि ईश्वर क्या वस्तु है? लेकिन उस रंभा की दी हुई श्रद्धा अपना काम कर रही थी।

एक दिन मित्र ने मुझे 'बेन्थम' पढ कर सुनाना शुरू किया। उपयोगितावाद (युटिलिटि) पढा। मैं सुन कर घबडाया। भाषा ऊंचे प्रकार की थी। मैं उसे बडी मुश्किल से समझ सकता था। उसपर उन्होंने विवेचन किया। मैंने उत्तर दिया:

"मैं चाहता हूं कि आप मुझे मुआफ करें। मैं ऐसी बारीक बातें समझ न सकूंगा। मैं स्वीकार करता हूं कि मांस खाना चाहिए। लेकिन मैं अपनी प्रतिज्ञा का बन्धन न तोड सकूंगा। मैं इसके लिए कुछ भी दलीलें न दे सकूंगा। मुझे इस बात का यकीन है कि दलीलों में मैं आपसे न जीत सकूंगा। परन्तु मुझे मूर्ख या हठी मान कर इस विषय में आप मुझे स्वतन्त्र छोड दीजियेगा। मैं आपके प्रेम को समझ सकता हूं, आपके आग्रह

का हेतु भी समझता हूं । मैं आपको अपना परम हितैषी मानता हूं । मैं यह जानता हूं कि आपको दुःख होता है इसीलिए आप इतना आग्रह कर रहे हैं, परन्तु मैं लाचार हूं । मेरी प्रतिज्ञा न टूटेगी ।

मित्र देखते ही रह गये । उन्होंने किताब बन्द कर दी "बस, अब मैं कोई दलील न करूंगा" यह कह कर वे चुप हो रहे । मैं बड़ा खुश हुआ । उसके बाद उन्होंने कभी दलील नहीं की ।

लेकिन मेरे सम्बन्ध में उनकी चिन्ता दूर न हुई । वे बीड़ी पीते थे, और शराब भी पीते थे । उन्होंने मुझे इनमें से एक चीज का भी व्यवहार करने के लिए कभी न कहा था बल्कि वे उसका व्यवहार न करने के लिए ही कहते थे । लेकिन उनकी चिंता तो यह थी कि बिना मांसाहार के मैं दुर्बल हो जाऊंगा और इंग्लैण्ड में निश्चिंत हो कर न रह सकूंगा ।

इस प्रकार मैंने एक महीने के लिए नये सिखाऊ उमेदवार की तरह उमेदवारी की । उस मित्र का मकान रिचमण्ड में था इसलिए सप्ताह भर में एक या दो मरतबा ही इंग्लैण्ड जाना होता था । डा० महेता और श्री दलपतराम शुक्ल ने विचार किया कि अब मुझे किसी न किसी कुटुम्ब में रख देना चाहिए । भाई शुक्ल ने वेस्ट केन्सिंगटन में एक एंग्लोइण्डियन का घर ढूंढ निकाला और मुझे वहां रहने के लिए ले गये । उस घर की गृहिणी विधवा थी । उसे उन्होंने मेरे मांसत्याग की बात भी कह सुनाई । उस वृद्धा ने मेरी देख-भाल करना स्वीकार कर लिया । यहां भी भूखों ही दिन जाते थे । मैंने घर से मिठाई इत्यादि खाना मंगाया था लेकिन वह अभी आ न पाया था । खाना सब फीका मालूम होता था । वृद्धा हमेशा ही पूछ-ताछ करती थी लेकिन वह क्या कर सकती थी? और मैं अब भी वैसा का वैसा लज्जाशील था इसलिए अधिक मांगने में मुझे शर्म मालूम होती थी । वृद्धा की दो लड़कियां थीं । वे आग्रह कर के कुछ अधिक रोटी देती थीं । लेकिन वे बिचारी यह क्या जानें कि उनकी सारी रोटी यदि मैं खा जाऊं तभी तो मेरा पेट कहीं भर सकता था?

लेकिन अब मुझे भी पर लगने शुरू हुए थे । अभी पढ़ाई तो शुरू ही न हुई थी । बड़ा मुश्किल से समाचार पत्र पढ़ने लगा था । यह भाई शुक्ल का प्रताप था । भारत में मैंने कभी समाचारपत्र पढ़े न थे । लेकिन रोजाना पढ़ने से मैं उसके पढ़ने का शौक बढ़ा सका था । 'डेलीन्युस,' 'डेलीटेलीग्राफ' और 'पेलमेल गेझेट' इतने समाचार पत्रों पर नजर डाल जाता था । लेकिन उसमें प्रथम तो शायद ही एकाध घण्टा लगता होगा ।

मैंने तो भ्रमण करना आरंभ किया मुझे निरामिष भोजनगृह ढूंढना था । गृहस्वामिनी ने भी कहा था कि लन्दन शहर में कुछ ऐसे गृह हैं । मैं रोजाना दस या बारह मील चलता था । किसी गरीब भोजनगृह में जा कर पेट भर रोटी खा लेता था लेकिन उससे सन्तोष न होता था । इस प्रकार भटकते भटकते मैं फेरिंग्डन स्ट्रीट में पहुंचा और वहां 'वेजिटेरियन रेस्टरां' यह नाम पढ़ा । मनचाही वस्तु प्राप्त होने पर बालक को जैसा आनन्द होता है वैसा ही मुझे भी आनन्द हुआ । अति हर्षित हो कर जैसे ही मैं उसके अन्दर दाखिल होने लगा वैसे ही मैंने यह देखा कि नजदीक की काच की खिड़की में बिक्री के लिए कुछ पुस्तकें रखी हुई हैं । उसमें मैंने साल्ट का 'निरामिष भोजन की तारीफ' नामक पुस्तक भी देखी । मैंने एक शिलिंग दे कर उसे खरीदा और फिर भोजन करने के लिए बैठा । विलायत में आने के बाद प्रथम यहीं पेट भर कर खाना मिला था । ईश्वर ने मेरी इच्छा पूरी की । मैंने साल्ट का पुस्तक पढ़ा । मुझ पर उसकी अच्छी छाप पड़ी । इस पुस्तक को जिस दिन पढ़ा उस दिन से मैं स्वेच्छापूर्वक निरामिषभोजी अथवा शाकाहारी बना । माता के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा के कारण और भी अधिक आनन्द हुआ । और जिस प्रकार पहले यह मानता था कि सब लोग मांसाहारी बन जायं तो अच्छा हो और केवल सत्य की रक्षा के लिए और फिर प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए मैंने मांस का त्याग किया था और भविष्य में किसी न किसी दिन स्वतन्त्रतापूर्वक खुल्लमखुल्ला मांस खा कर, दूसरों को भी अपने साथ मिला लेने की आशा रखता था उसी प्रकार अब स्वयं शाकाहारी रह कर दूसरों को भी वैसा ही बनाने की मुझे इच्छा हुई ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

लड़ाई के दुष्परिणाम

रुपयों की बरबादी

लड़ाई में कितनी जानें जाया हुईं यह हम देख चुके, अब आर्थिक हानि कितनी हुई यह देखें । आर्थिक हानि के अंक आज ठीक निश्चयपूर्वक प्राप्त किये जा सकते हैं । प्रो० बोगार्ट ने गहरे उतर कर उसका अध्ययन किया है और उसके परिणाम आंतरराष्ट्रीय शान्ति के लिए स्थापित कार्नेगी ट्रस्ट ने प्रकाशित किये हैं । उसीमें से नीचे दिये गये अंक लिए गये हैं:

स्वयं लड़ाई का खर्च

		कुल	मित्रराज्यों को उधार दिये गये रुपये बाद कर के
अमरिका	डालर	३२,०८०,२६६,९६८	२२,६२५,२५२,८४३
ग्रेटब्रिटन	,,	४४,०२९,०११,८६८	३५,३३८,०११,८६८
बाकी ब्रिटिश साम्राज्य	,,	४,४९३,८१३,०५२	४,४९३,८१३,०५२
फ्रान्स	,,	२५,८१२,९८२,८००	२४,२६५,५८२,८००
रशिया	,,	२२,५९३,९५०,०००	२२,५९३,९५०,०००
इटली	,,	१२,४१३,९९८,०००	१२,४१३,९९८,०००
दूसरे मित्रराज्यों	,,	३,९६३,८६७,९१४	३,९६३,८६७,९१४
कुल	,,	१४५,३८७,६९०,६२२	१२५,६९०,४७६,४९७
जर्मनी	,,	४०,१५०,०००,०००	३७,७७५,०००,०००
आस्ट्रीयाहंगरी	,,	२०,६२२,९६०,०००	२०,६२२,९६०,०००
तुर्की और बलगेरिया	,,	२,२४५,२००,०००	२,२४५,२००,०००
कुल	,,	६३,०१८,१६०,०००	६०,६४३,१६०,०००
सब राज्यों का कुल		२०८,४०५,८५१,२२२	१८६,३३३,६३७,०९७

लड़ाई के कारण दूसरा खर्च

दूसरा खर्च गिनने की अमरिकन रीति बड़ी आश्चर्यकारी है । जो प्राणहानि हुई थी उसका हिसाब गत अध्याय में दिया गया है उसी हानि को अब रुपयों में गिनने का प्रयत्न किया गया है ।

प्राणहीन हुए मनुष्यों का मूल्य

सिपाही	डालर	३३,५५१,२७६,२८०
युद्ध में न जाने पर भी मृत मनुष्यों की कीमत	,,	३३,५५१,२७६,२८०

जमीन	,,	२९,९६०,०००,०००
जहाज और उसका माल	,,	६,८००,०००,०००
रुकी हुई उपज की कीमत	,,	४५,०००,०००,०००
लड़ाई के कारण संकट निवारण में	,,	१,०००,०००,०००
न लड़नेवाले देशों का नुकसान	,,	१,७५०,०००,०००
	कुल खर्च	१५१,६१२,५४२,५६०
कुल दूसरा खर्च	डा.	१५१,६१२,५४२,५६०
कुल सीधा खर्च	डा.	१८६,३३३,६३७,०९७
[डालर = २॥)]	डा.	३३७,९४६,१७९,६५७

ये अंक भी इतने भयंकर हैं कि उसका महत्त्व यकायक समझ में आना मुश्किल है। लेकिन ईसा मसीह के जन्म से अब तक के वर्ष गिने जाय और उसके घण्टे बनाये जायं तो प्रति घण्टा १०००० डालर खर्च होगा। लड़ाई के दिनों में एक दिन में २१॥ करोड़ डालर अथवा एक घण्टे में ८० लाख डालर खर्च होते थे। यदि दूसरे शब्दों में कहें तो अमरिका के डेट्रोइट और कलिवलेण्ड प्रान्त की तमाम शालाओं को एक साल चलाने के लिए जितना खर्च होता है उससे भी अधिक एक घण्टे में खर्च हुआ था और केलिफोर्निया जैसी एक बड़ी विद्यापीठ की स्थापना करने में जितने रुपये लगाने की आवश्यकता होती है उतने रुपये खर्च हुए थे। और भी दूसरे हिसाब से गिने तो अमरिका के सब गिरजाघरों ने मिला कर एक साल में जो रकम इकट्ठी की वह भी लड़ाई के तीन दिन के खर्च से कम होती है। अमरिकन और केनेडियन लोगों की तरफ से विदेशी मिशनों को दी गई रकम लड़ाई के पांच घण्टे के खर्च से कम होती है। संसार के सभी ईसाई युवकों के मण्डलों को चलाने के लिए जितने रुपयों की आवश्यकता होती है उतने रुपये लड़ाई के दिनों में केवल ६ घण्टे में खर्च हुए थे। एक दिन के खर्च की रकम में २१५० कारीगरों को प्रति कारीगर एक साल में २५०० डालर के हिसाब से ४० साल तक रोजी दी जा सकती है।

[भारत में यदि प्रति मनुष्य ३०) की वार्षिक आमदनी गिनी जाय तो समस्त देशकी ९ अरब की आमदनी होती है, अर्थात् लड़ाई का कुल खर्च इस देश की ११ साल की आमदनी के बराबर होता है।

अफसोस तो यह है कि इसमें भारत के जुदे अंक नहीं दिये गये है वरना हिन्दुस्तान जैसे गरीब देश से कितने मनुष्यों की खुराक चली गई उसका भी हिसाब निकाला जा सकता था]

योरप के उद्योगतंत्र पर जो इतना असर हुआ उसकी जांच करना भी इस आर्थिक हानि का ही एक विभाग है। हर्बर्ट हुवर के हिसाब से तो योरप की बस्ती ही इतनी है कि यदि विदेशों से माल न आने तो १० करोड़ मनुष्यों को अपने निर्वाह के लिए आयात के बनिस्बत निकास की बदली पर ही अधिक आधार रखना होगा अर्थात् एक अमुक हिसाब से सबका निर्वाह हो सके इसके लिए उद्योगतंत्र को बड़े ही व्यवस्थित तौर पर चलते रहना चाहिए। लड़ाई के पहले योरप के जुदे जुदे देश आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे से स्वतंत्र न थे परन्तु उसके उद्योगतन्त्र के विभाग ही थे। जुदे जुदे देशों के सिक्कों के लिए सुवर्ण का एक माप मुकर्रर था। और समस्त योरप में लेनदेन में स्वतंत्रतापूर्वक व्यवहार होता था। किसी भी सीमा प्रान्त पर कोई रोकटोक या जकात न होती थी। रशिया, आस्ट्रीयाहंगरी और जर्मनी की ३० करोड़ की बस्ती थी और योरप के आर्थिक जीवन में जर्मनी केन्द्रस्थान हो पड़ा था। जर्मनी की बेहबूदी पर ही समस्त योरप की बेहबूदी का आधार रहता था।

इसके बाद जब लड़ाई हुई, योरप का समस्त आर्थिक जीवन अस्तव्यस्त हो गया। बड़े बड़े राष्ट्रों के दरम्यान आयात और निकास बन्ध हो गई। लाखों उत्पादक स्त्री-पुरुष उसमें लगाये गये। वे काम करने से रुक गये और जैसी पहले कभी न हुई थी वैसी विशाल विनाशक प्रवृत्ति में चार वर्ष चली हुई इस लड़ाई के कारण सभी देशों की औद्योगिक और आर्थिक स्थिति पर बड़ा भारी बोझ पड़ा। आखिर रशिया और आस्ट्रीया-हंगरी नष्टप्राय गये और जर्मनी के आर्थिक अधिकार का नाश हो गया। नये राज्य उत्पन्न हुए। योरप की सीमा बहुत कुछ बदल गई। राष्ट्रों की राष्ट्रभावनायें बढ़ कर कुछ ऊंची हुई और अनेक देशों ने जकात से होनेवाली रक्षा का आश्रय लिया। देखते ही देखते टेक्स अनेक गुना बढ़ गये। पहले जो आमदनी होती हुई दिखाई थी लेकिन फिर दुनिया के सभी उद्योग बैठ से गये। असंख्य ग्राहक लोग निर्धन हो गये। उत्पत्ति में बड़ी कमी हुई! रशिया पोलेन्ड इत्यादि देशों पर दुष्काल, प्लेग इत्यादि का आक्रमण हुआ। अमरिकन संकट-निवारण मण्डल और क्वेकरों के प्रयत्नों से ही लाखों लोग जीवित रहे। करोड़ों को बेकार होने के कारण भटकना पड़ा। गत तीन वर्षों से इंग्लैण्ड में कोई २० लाख मनुष्यों को सरकार की तरफ से मदद दी जाती है। और अमरिका में बेकार मनुष्यों की संख्या कोई ५० लाख के करीब थी। गेहूं और रुई का बाजार बन्द हो गया था इसलिए अमरिका के किसान बड़े ही संकट में आ पड़े।

चलते हुए सिक्कों की कीमत में बड़ी ही शिघ्रता के साथ कमी होने लगी। रशिया, जर्मनी, आस्ट्रीया और पोलेन्ड की लगभग ३० करोड़ जनता आज जिसकी कीमत कुछ भी नहीं है वैसे ही सिक्कों से अपना व्यवहार चलाती है। इस लेखक ने अपने योरप के प्रवास में जर्मन मार्कों को एक डालर के एक लाख से ६०० लाख तक बाजार में होते हुए देखे है। एक घण्टे में माल की कीमत दुगुनी या तिगुनी हो जाती थी। आन्तर-राष्ट्रीय व्यवहार भी अस्तव्यस्त हो गया।

इससे शायद हमलों के कारण जितनी तकलीफ हुई थी उससे भी अधिक तकलीफ पैदा हुई होगी और अब भी इस अन्धाधुन्धी का कहीं अन्त नहीं दिखाई देता है। जीवन की मर्यादा का कोई ठिकाना नहीं रहा है और गरीबी और रोग ने देश की प्रवृत्ति १०० साल पीछे हटा दी है। और लाखों निर्दोष मनुष्यों के भाग्य में तो अपनी जिन्दगी से भूखों रहकर या सिर्फ खाने भर को ले कर ही मजदूरी करना पड़ा है। समस्त योरप ही इस दावानल से झुलस रहा है।

हिन्दी-पुस्तकें

लोकमान्य को श्रद्धांजलि	॥)
आश्रमभजनावलि	≈)
जयन्ति अंक	।)

डांक खर्च अलहदा। दाम मनी आर्डर से भेजिए अथवा वी. पी. मंगाइए—

व्यवस्थापक,
हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार प्रथम चैत्र वदी १२, संवत् १९८२

श्री एण्ड्र्यूज का कष्ट

उस उदार हृदय अंगरेज श्री चार्ली एण्ड्र्यूज के पत्र को मेरे साथ पाठक भी पढ़ना पसंद करेंगे । भारत में हो या भारत के बाहर वे हमारी तरफ से लड़ते है और उसमें उनका स्वार्थत्याग और भक्ति इतनी होती है कि उसकी बराबरी करना कठिन है और उसमें उनसे बढ़ जाना तो केवल असम्भव है । उन्हें अक्सर गलत फहमियों के होते हुए काम करना पड़ता है । शायद यह तो हम कभी भी न जान सकेंगे कि दक्षिण आफ्रिका में हमारे देशवासियों को अपनी जरूरत के समय उनकी उपस्थिति से कितनी सांत्वना और शक्ति प्राप्त हुई होगी । केपटाउन से ता. २३ फरवरी का लिखा हुआ उनका यह पत्र है । मैं उसके एक भी शब्द को इधर उधर किये बिना ज्यों का त्यों दे रहा हूं:

"यह तो बहुत ही बड़ी हृदय-पीड़ा है । ऐसी पीड़ा और उसकी आशा और पीस डालनेवाली निराशा, उसकी वृद्धि, और उसका ह्रास मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था, कुछ समय तक तो अब सब द्वार खुले हुए मालूम हुए आकस्मिक क्रान्ति के होने के आसार से ही मालूम होते थे और १९१४ की तरह फिर स्थिति का नरम होना और उसको समझ लेना सम्भव प्रतीत होता था । मैंने जनरल हर्टजोग और मलान के साथ, दोनों के साथ बड़ी देर तक बातचीत की थी । दोनों ही बड़े गम्भीर और जैसा कि मुझे प्रतीत हुआ, हृदय के सच्चे थे । मुझे यह भी मालूम हुआ था कि उनकी मूल स्थिति हिल उठी है और कम से कम बिल बहुत दिनों तक मुल्तवी रक्खा जायेगा । समय तो हमारे पक्ष में है क्योंकि उन्नति की नयी लहर आती दिखाई देती है । सुवर्ण की जगह प्लेटिनम की खोज मिली है और सुवर्ण के बनिस्बत उसका मूल्य अधिक है । ट्रान्सवाल में कोयला भी मिला है और यह करीब करीब उतना ही है जितना कि रुटी की खानों में है । गतवर्ष की फसल मुआफिक मामूल से मुकाबले में दूनी हुई है और थी भी अच्छी इसलिए सब तरह से मजदूरों की कमी दिखाई देती है और पूर्वीय पुर्तुगाल आफ्रिका से बुलाये जानेवाले मजदूरों की संख्या ७५००० से बढ़ा कर अधिक करने के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं । ऐसे समय में हजारों बड़े उद्योगी काम करनेवालों को देश में से निकाल देना बहुत से लोगों को ऐसा मालूम होता है कि अपनी नाक काट कर नकटे बनना है । यह स्पष्ट मालूम होता था कि एशियाटिक बिल को नरम बनाने के लिए इस स्वार्थमय विचार का दृढ होना ही काफी था । और अच्छे मानुषिक भावों का भी प्रचार होता हुआ दिखाई देता था । १९१४ की तरह रविन्द्रनाथ टागोर पर मैंने जो व्याख्यान दिया उसमें भारी भीड़ हुई थी । भावों में यकायक परिवर्तन होता हुआ दिखाई दिया था और मुझसे उसे प्रकाशित करने के लिए, रोण्डेबुश में विद्यापीठ और शालाओं में उसे दोहराने और कहने के लिए भी कहा गया था । समाचारपत्रों ने इस प्रश्न को उठा लिया और उन्होंने यह यकीन दिलाया कि भारतीयों के खिलाफ उनमें कटुता का कोई भाव नहीं है ।

लेकिन अब सब बातें बदल गई हैं । रंगद्वेष बिल के साथ यह परिवर्तन हुआ है । पारलियामेन्ट के दृश्यों से बढ़ कर आध्यात्मिक दृष्टि से नीचा दिखानेवाली और कोई बात नहीं हो सकती है — हरएक पक्ष दूसरे पर दम्भ करने का आक्षेप रखता था । केसवाल और स्मट्स की अन्तिम बहस दोनों तरह से मिथ्या थी । झगड़ों का आरम्भ इस बात से हुआ कि किसका दोष अधिक था । वहां कोई ईश्वर का संदेशवाहक न था कि जो उन्हें यह कह सुनाता कि उनके सम्बन्ध में ईश्वर का ख्याल क्या है ।

एशियाटिक बिल के सम्बन्ध में अब स्थिति फिर वैसी ही हो गई है जैसी कि पहले थी । हमें कुछ दिन या हफ्ते का समय मिल सकता है लेकिन बस और कुछ न होगा ।

उसको पहली ही दफा पढ़े जाने के समय का दृश्य बड़े महत्व का था । स्मट्स, स्मार्ट और कुमोंड चेप्लीन तो हाजिर ही न थे । बाकी लोगों के मतों में ८१ के खिलाफ १०, इस प्रकार का भेद हुआ था। विरुद्ध केवल वे मुट्ठीभर सभासद थे कि जिन्हें *रंगवाले मतदाताओं पर आधार रखना होता है ।*

अब फिर भी हम यह नहीं कह सकते हैं कि क्या होगा । वायसराय ही इसका निर्णय करेंगे । मेरी अपनी राय तो यह है कि हमें यदि ऐसा कोई मौका मिले तो जनता और संसार के समक्ष अपने सिद्धान्तों को जाहिर करने का एक भी मौका न जाने देना चाहिए । बिल के जिन महत्व के सिद्धान्तों के हमलोग सर्वथा विरुद्ध हैं उन पर बहस करने का मौका दिये बिना ही यदि उसको दूसरी मरतबा भी पास कर दिया जाय तो हमें अपनी तरफ से गवाही में एक शब्द भी नहीं कहना चाहिए । जबतक हमलोग साम्राज्य में हैं तबतक हमें शाही कान्फरन्स में ही अन्तिम अपील करनी होगी । लेकिन हर्टजोग और टेलमेन रोस जो अक्तूबर में वहां आनेवाले हैं जनरल स्मट्स की तरह इस सम्बन्ध में कुछ भी बात करने से इन्कार कर देंगे, फिर भी उन सिद्धान्तों का जिनके कि वे प्रतिनिधि हैं, खण्डन करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

कुछ भी हो उसके परिणाम का आधार कूटनीति पर नहीं है । यह चाल चले या वह, उसका कोई बहुत बड़ा परिणाम न होगा । मुख्य बात तो वैसी की वैसी ही रहेगी । यूनियन सरकार भारतीयों को अलग करने का, और उन्हें पहले समुद्र के किनारे पर और फिर देश के बाहर निकाल देने का निश्चय किये बैठी है । जबतक उसकी जाहिरा नीति यही रहेगी और एक के बाद दूसरा बिल तैयार कर के इस नीति पर अमल किया जावेगा तबतक शान्ति और शान्ति की आशा हो ही नहीं सकती है । ब्रिटिश शाही तन्त्र के आधार, 'कानून के बदले न्याय' को सर्वथा दबा दिया जा रहा है । दक्षिण आफ्रिका की कानून की पुस्तक के पन्ने ऐसे नये कानूनों से कलंकित हुए हैं कि जो १८८५ के सुवर्ण कानून के बनिस्बत अधिक दोषमय हैं ।

आज का दक्षिण आफ्रिका विचित्र बना हुआ है । १९१४ में मैंने और आपने जिन उदारतत्वों को यहां देखा था, वे प्रायः आज नष्ट हुए मालूम होते हैं । यहां वहां कुछ थोड़ा विरोध प्रकट किया जाता है लेकिन वह थोड़ी ही देर में बैठ जाता है ।

सिर्फ यही कल्पना करो कि यदि १९१४ में एशियाटिक और रंगद्वेष बिल लाया जाता तो उससे क्या दृश्य उपस्थित होता । केप प्रान्त के तमाम उदार-चेता मनुष्य दूसरी जगहों की उदार शक्तियों के साथ एक हो गये होते । लेकिन अब सच पूछा जाय तो थोड़े से केप-सभासदों के सिवा, जो रंगवाले मतदाताओं के मत से वहां गये थे, किसीने उसका कुछ भी विरोध नहीं किया है । और इन दस सभासदों की भी हंसी उड़ाई गई थी ।

परिणाम क्या आवेगा? क्या परिणाम नहीं आया है? बेशक हमें आखिरतक लड़ना चाहिए और कोई बात उठा न रखनी चाहिए। लेकिन जितना कि संभव है यह बात स्पष्ट है कि आगे और कुछ नहीं है, केवल हमारी हार ही होगी।

मनीलाल खूब अच्छा कार्य कर रहे हैं और किसी के भी बनिस्बत उनके दिल को इससे अधिक चोट पहुंची है।"

मैं श्री एण्ड्रूज की इस अंधकारमय भविष्यवाणी से एक मत नहीं हूं और न मैं यह मानता हूं कि शाही सरकार या भारत सरकार कोई बहादुरी का काम कर रही है। लेकिन मुझे 'सत्यमेवजयते' में, जब वह बहादुर आत्माओं में व्यक्त होता है पूर्ण विश्वास है और मुझे भारतीय प्रवासियों की ऐन मौके पर अपना कर्तव्य पालन करने की इच्छा और शक्ति पर पूरा भरोसा है। विजय प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से कष्ट सहन करने के लिए उन्हें अच्छी तरह तैयार रहना चाहिए। जिन कानूनों के खिलाफ वे लड़ रहे हैं उसमें उनके लिए अनिवार्य और अपमानकारक कष्ट की योजना की गई है। उन्हें अपनी पसंदगी आप कर लेनी चाहिए।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

महासभा के सभासद होनेवालों को

अब महासभा के सभासद होने के लिए चरखा-संघ के प्रार्थनापत्र में सिर्फ 'इच्छा प्रगट कर देने' से या 'अ+म' अथवा 'ब+म' लिख देने से ही काम न चलेगा। महासभा के लिए निराला प्रार्थनापत्र तैयार किया गया है। जिन्हें महासभा के सभासद होना हो वे उसे मंगवा कर के भर कर भेज दें। परन्तु पत्र भेजने पर भी, इसी वर्ष में (अर्थात् सन १९२६ में) २००० गज सूत मिल जाने पर ही महासभा का प्रमाण-पत्र (सर्टीफिकेट) मिल सकेगा, उसके पहले नहीं; जैसे चरखा संघ के 'अ' वर्ग के किसी सभासद ने अक्तूबर से दिसम्बर तक का २००० गज सूत दिया हो तो उनका फरवरी तक का २००० गज सूत जब तक और अधिक नहीं मिलता है तब तक उन्हें महासभा का प्रमाणपत्र नहीं भेजा जावेगा अथवा किसी ने जनवरी तक का भी दे दिया हो तो जब तक फरवरी का १००० गज सूत और उनकी तरफ से नहीं मिलता है वे महासभा के सभासद न बन सकेंगे। इसी तरह जो 'ब' वर्ग के सभासद अक्तूबर १९२५ में या नवम्बर या दिसम्बर में २००० गज सूत दे कर हो चुके हैं, वे भी २००० गज सूत दुबारा भेजने पर ही महासभा के सभासद बन सकेंगे।

चर्खासंघ के सभासदों के लिए

कुछ सभासद लोग अपना सूत, उसकी कीमत दे करके, अपने लिए कपड़ा बुनवाने के वास्ते वापिस मांगा करते हैं। ऐसे लोगों के लिए यह सुभीता किया गया था कि जो लोग एक थान का पूरा सूत भेजें या अपने सूत में दूसरा सूत यहां से मिला कर पूरा थान बुनवाना चाहते हों उन्हें सूत व बुनाई की कीमत ले कर कपड़ा बुन दिया जायगा। परन्तु बहुतों को दूसरा सूत मिलाना पसंद नहीं होता और अपना ही, थान भर के लिए पूरा सूत भेजना भी मुश्किल होता है इसलिए इस योजना से सब को संतोष नहीं हुआ था।

इसलिए अब दूसरा यह प्रबंध किया गया है कि जो लोग अपना सूत खरीदना चाहें उन्हें धो करके (ब्लीच कर के) धुलाई व सूत की कीमत देने पर सूत वापिस मिल सकेगा। धो डालने का हेतु यह है कि एकबार भेजा हुआ सूत दुबारा कोई भेज न सके। इसी कठिनाई के कारण अब तक सूत का वापिस लौटाना बंद रखा गया था। धोने से सूत खराब न होगा बल्कि उजला हो जावेगा और किसी कदर मजबूती भी बढ़ेगी।

इसलिए अब जिन्हें अपना सूत वापिस लेने का आग्रह हो, वे अपने सूत के बंडल पर मोटे व साफ अक्षरों में, "वापिस किया जाय" ऐसा लिख कर भेजें। और साथ ही पत्र लिख कर उसकी सूचना भी दें।

यह भी ज्ञात रहे कि वी. पी. द्वारा सूत वापिस नहीं किया जावेगा। मेरी राय में तो बेहतर यह होगा कि मनीआर्डर द्वारा अमानत के तौर पर पांच रुपये भेज दिये जाय। इससे सूत आने पर जमा होते ही धो कर के वापिस कर दिया जा सकेगा, या अगर भेजनेवालों की इच्छा होगी कि पीछे से और आनेवाला सूत भी इकट्ठा हो जावे तब तक अलग जमा रखा जावे तो वैसा भी किया जा सकेगा।

रुपया भेजने आदि का पता यही—

"शिक्षण विभाग चर्खासंघ, साबरमती"

अमरिका क्यों नहीं जाते?

एक महाशय लिखते हैं:

"आप अमरिका के आमंत्रण का अस्वीकार कर रहे हैं। बेशक मेरे मुकाबले में तो आप ही यह अधिक अच्छी तरह जानते होंगे कि वहां जाने का यह मौका है या नहीं। फिर भी मैं *यह नहीं समझ सकता हूं कि आप अमरिका क्यों न जाय।* आपकी सिर्फ एक और मुख्य दलील तो यह है कि अभी आप अपने ही देश में अपने ही लोगों में सम्पूर्ण सफल नहीं हो पाये हैं। परन्तु ईश्वर ही अकेला सफलता या असफलता का निश्चय कर सकता है। *क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आपने आरंभ की हुई अहिंसा की हलचल के मूल अभी दृढ़ नहीं हो पाये हैं?* सत्य ही सत्य का आधार है। क्या आप मेरे इस अभिप्राय के खिलाफ हैं कि अहिंसा की हलचल का सारे संसार में प्रचार होना चाहिए? क्या सत्य और अहिंसा की दृष्टि से अमरिका और भारतवर्ष आपकी नजरों में समान न होने चाहिए?

इस विषय में मैं एक या दो उदाहरण भी दूंगा। हमारे नबी महम्मद साहब ने जब उन्हें आवश्यकता हुई, अपनी जन्मभूमि मक्का के बाहर रहनेवाले मदीने के अपने अनुयायियों की मदद लेने में जरा भी हिचकिचाहट न दिखाई थी। अभी हाल ही की बात है स्वामी विवेकानन्द ने भी संसार को अपना सन्देश सुनाने के लिए अमरिका को ही अधिक अच्छा क्षेत्र पाया था।

और यदि खादी की हलचल को सफल करने का कार्य ही आपके वहां जाने में बाधा रूप है तो आप यह तो जानते ही होंगे कि आप अमरिका में चन्दा इकट्ठा कर सकते हैं। आप यह शर्त क्यों नहीं कर लेते (कम से कम अपने दिल में) कि आपको अमरिका में खादी के लिए इतने रुपये इकट्ठे करने चाहिए। 'लेन देन' को ही प्रधानता मिलनी चाहिए। खादी की हलचलको यदि काफी रुपयों की मदद मिले तो उसे लोकप्रिय और सफल बनाने में कोई देर न लगेगी।"

अमरिका के निमंत्रण को स्वीकार करने के लिए अनुरोध करनेवाले अनेक पत्र मिले हैं। उनमें यह एक है। मेरी दलील तो बड़ी सीधी सादी है। मुझ में इतना आत्मविश्वास ही नहीं है कि अमरिका जाने का निश्चय कर सकूं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि अहिंसा के आन्दोलन की नींव दृढ़ हो गई है। आखिर उसके सफल होने के सम्बन्ध में भी मुझे कोई सन्देह नहीं है। परन्तु मैं अहिंसा की शक्ति का कोई दृश्य प्रमाण नहीं दे सकता

हूं और अब तक मेरा ख्याल है कि मुझे उसका भारत के संकुचित क्षेत्र में ही प्रचार करते रहना चाहिए।

मेरे मामले में और दिये गये उदाहरणों में कोई समानता नहीं है। लेकिन चाहे जो हो, महम्मद साहब और स्वामी विवेकानंद को उसकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी, परन्तु मुझे वह प्रतीत नहीं होती है।

खादी की हलचल का सफल होना सिर्फ रुपयों पर ही आधार नहीं रखता है। उसे स्थिर और दृढ करने के लिए और कितनी ही बातों का सहयोग होना आवश्यक है। यदि मैं कभी अमरिका गया भी तो मैं इस इरादे से नहीं जाऊंगा कि किसी भारतीय हलचल के लिए जिसके कि साथ मेरा संबंध हो रुपये इकट्ठा करूं। भारत को अपना बोझ आप ही उठाना चाहिए। और यदि अमरिका को उसे मदद करना आवश्यक मालूम हो तो वह 'लेनदेन' के हिसाब से नहीं परन्तु स्वतंत्र तौर पर ही उसकी मदद करेगा। अमरिका की मदद और मेरी मुलाकात दोनों अपने अपने गुणों पर ही स्थित होने चाहिए।

कवि ठाकुर और चरखा

अभय आश्रम के अपने व्याख्यान में जैसा कि कवि ठाकुर ने कहा है उनका शरीर दुर्बल होने पर भी डॉ० सुरेश बेनरजी उन्हें अपने आश्रम में खींच ले गये और यह अच्छा ही हुआ। पाठक यह तो जानते ही हैं कि खादी के विकास के लिए अभय आश्रम की स्थापना की गई थी। यदि किसी भ्रमनाशक सबूत की आवश्यकता हो तो कवि का उसके अभिनन्दन पत्र का स्वीकार करना और खादी की हलचल के साथ इस प्रकार सम्बन्ध रखना, यदि उसका कुछ अर्थ हो सकता है तो इस वहम को कि कवि चरखे और खादी की किसी भी प्रकार की हलचल के सर्वथा खिलाफ है, दूर करने के लिए काफी है। उनके व्याख्यान में जिस का सार 'सर्वेन्ट' में प्रकाशित हुआ है मैंने इस हलचल से सम्बन्ध रखनेवाली नीचे लिखी बातें पायी हैं।

"केवल भाग्यवश उसमें जन्म ग्रहण करनेसे ही देश किसी का नहीं हो जाता है लेकिन अपने जीवन का समर्पण करने से ही वह उसका हो सकता है। जानवरों के शरीर पर तो बाल होते हैं परन्तु मनुष्य को तो कातना और बुनना पड़ता है क्योंकि जनवरों को जो बाल दिये गये हैं वे हमेशा के लिए और सब तरह से तैयार कर के दिये गये हैं। परन्तु मनुष्य को तो अपने पास पड़े हुए साधनों को अपने काम में लाने के लिए उन्हें ठीक करने पड़ते हैं और उन पर मिहनत करनी होती है।"

व्याख्यान में और भी रहस्यपूर्ण बातें कही गई हैं। वे स्वराज्य के लिए काम करनेवालों को बड़ी उपयोगी हैं। कवि यह कहते हैं:

"भारतवर्ष को उसके सच्चे रूप में हम इतने दिनों तक नहीं पहचान सके थे और उसका कारण यह है कि हमने उसे क्षण क्षण कर के अपनी रोजाना की मिहनत से आत्मप्रकट और फल-दायी बना कर उसकी रचना नहीं की है।"

इस प्रकार वे हमें हरएक को व्यक्तिशः यदि हमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो रोजाना मिहनत करने के लिए बाध्य करते हैं। दूसरे ही वाक्य में वे कहते हैं: "हमें किसी बाह्य अकस्मात से स्वराज्य प्राप्त करने का स्वप्न नहीं देखना चाहिए।" कवि कहते हैं "अपनी सेवा से देश में जितने अंशों में हम अपनी आत्मा डाल सकेंगे और उसमें जागृति ला सकेंगे उतने ही अंशों में हमें स्वराज प्राप्त होगा।"

वे ऐक्य प्राप्त करने का उपाय भी बताते हैं: "केवल काम करने से ही हम ऐक्य हासिल कर सकते हैं" अभय आश्रम के निवासीगण यही तो कर रहे हैं। वे कताई कर के हिन्दुओं को, मुसलमानों, और सभी को जिन्हें उसकी आवश्यकता है मदद कर रहे हैं। वे अस्पृश्य लड़के और लड़कियों को अपनी शाला में पढाते हैं और उसमें उन्हें कातना भी सिखाते हैं। अपने अस्पताल से वे जाति और धर्म का लिहाज रक्खे बिना ही सभी को आराम पहुंचाते हैं। उन्हें ऐक्य पर व्याख्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। वे तो सिर्फ उसके अनुकूल ही अपना जीवन बनाये हुए हैं। इस कार्य से कवि को प्रेरणा मिली है और इसलिए वे आगे चल कर कहते हैं:

"जीवन एक सुसंगठित और सजीव वस्तु है। महत्व तो आत्मा का ही है। यह नहीं कि हमारे हाथों में बल नहीं है। बात तो यह है कि हमारा मन जागृत नहीं हुआ है...... इसलिए हमें मानसिक शिथिलता के विरुद्ध ही महान् युद्ध करना होगा। गांव भी एक सजीव हस्ती है। उसके दूसरे विभागों को हानि पहुंचायें बिना तुम उसके किसी भी विभाग का त्याग नहीं कर सकते हो। आज हमें यह अनुभव करना चाहिए कि हमारे देश का आत्मा एक विशाल और अविभक्त आत्मा है और इसलिए हमारे दुःख और दुर्बलतायें भी एक दूसरे से बुनी हुई और एकरूप हैं।

हमारी असफलता को उद्देश कर कवि कहते हैं:

"मनुष्य की रचना, जहां तक वह अपने आपको ही उस कार्य में लगा देता है वहां तक बड़ी सुन्दर होती है। अक्सर हमारे साहसों में हमें असफलता क्यों मिलती है? कारण यह है कि अपने प्रिय कार्य में भी हम विभागशः ध्यान देते हैं। हम-लोग दाहिने हाथ से जो देते हैं वह बायें हाथ से लौटा लेते हैं।

किशोरवय के सभासद के लिए

अ० भा० चरखा संघ के मन्त्री ने किशोरवय के लड़के लड़कियों के लिए जो चरखा संघ के सभासद होना चाहते हों, नीचे लिखा प्रार्थनापत्र तैयार किया है। उन्हें अपना प्रथम सूत अ० भा० चरखा संघ के शिक्षण विभाग सत्याग्रहाश्रम साबरमती को भेजते समय उसपर दस्तखत कर के भेजना चाहिए।

प्रार्थनापत्र

महाशय,

मैं संघ की किशोर शाखा का सभासद होना चाहता हूं मैंने अपने पिता या अभिभावक की आज्ञा ली है। मेरा वय ——— है। मैं हमेशा ही हाथकती और हाथबुनी खादी पहनता हूं और मैं अपने हाथ का अच्छा कता हुआ १००० गज सूत देने का वादा करता हूं और रोजाना आधा घण्टा कातने का मैं सब तरह से प्रयत्न करूंगा। इसके साथ अपना सूत भेज रहा हूं। उसका ब्यौरा इस प्रकार है

घण्टे का समय
लम्बाई, गज — लच्छी की परिधि
वजन, तोला — रुई की जात
अंक
तकली से कता या चरखे से
जिला — प्रान्त (महासभा का)
तारीख — दस्तखत
नाम और पता

हरएक लड़का और लड़की जिसे इस देश के गरीबों के प्रति कुछ भी सहानुभूति है वह इस संघ के सभासद होना अपना कर्तव्य समझेगा।

(सं० इं०)

मो० क० गांधी

यंत्र की अनर्थ परम्परा

[आज डेढ साल हुआ मि. ग्रेग नामक एक अमरिकन आश्रम में रहते हैं। उन्हें अमरिका के कारखानों का बडा अनुभव है और उनका वर्तमान यंत्रयुग का अध्ययन बडा गहरा है। उन्होंने यंत्रों के अनर्थों के सम्बन्ध में एक मित्र को एक महत्वपूर्ण पत्र लिखा था जो 'करन्ट थोट' में अभी प्रकाशित हुआ है। उसका संक्षिप्त सार नीचे दिया गया है।]

बडी विशाल योजना पर चलाये जानेवाले यंत्रों के तात्कालिक परिणामों के सामने हम लोग उसके दुष्परिणामों को भूल जाते हैं क्योंकि वे उनमें स्पष्ट नहीं दिखाई देते हैं। परन्तु ये दुष्परिणाम ही अधिक विचारणीय हैं क्योंकि उसकी तुलना में उसके अच्छे परिणामों की कुछ भी गिनती नहीं हो सकती है।

यंत्रों के कारण पृथ्वी का सार खींच लेना इतना आसान हो गया है कि उसमें करोडों मनुष्यों के रुपये कुछ थोडे से मनुष्यों के हाथ में चले जाते हैं और वे मुट्ठी भर आदमी ही उन पर अधिकार चलाते हैं। बैंक और हुंडी की वर्तमान पद्धति से भी इन चीजों पर कुछ थोडे से ही मनुष्यों का अधिकार हो जाता है। वर्तमान उद्योगों की घटमाल ही ऐसी है कि उसके परिणाम स्वरूप धीरे धीरे आर्थिक अधिकार और भी थोडे मनुष्यों के हाथ में चला जाता है और जब कोई ऐसा कठिन समय आ जाता है उस समय छोटे कारखानेवाले बहुत दिनों तक घाटा उठा कर कारखाना चलाने में असमर्थ होते हैं इसलिए बडे कारखानेवाले उसे अपने अधिकार में ले लेते हैं।

और यन्त्रों का स्वभाव ही तो अपने आप बढने का है। मिल और कारखाने हुए तो उन्हें चलाने के लिए यंत्र बनाने के कारखानों की भी आवश्यकता होती है और उसके द्वारा उत्पन्न हुए माल को ले जाने के लिए रेल और जहाज की भी जरूरत होती है। इन रेलों को चलाने के लिए कोयले की खान आवश्यक होती है और रेल के कारखानों में कोयला पहुंचाने के लिए उसका यंत्र भी होना आवश्यक है। रेल की पटरियों के लिए लोहा और फौलाद के बडे कारखाने भी होने चाहिए, पुल इत्यादि के लिए आवश्यक लोहे के सामान के कारखाने भी चाहिए। इस प्रकार एक यंत्र से उत्पन्न होनेवाली वृद्धि की कोई सीमा नहीं रहती है।

और इसके लिए ढेर के ढेर रुपये होने चाहिए। योरप, अमेरिका, एशिया और आफ्रिका के तमाम हुन्नर उद्योग की कुंजी सच पूछो तो १५०० या उससे भी कम मनुष्यों के हाथ में है। और ऐसे मनुष्यों के हाथ में इतने अधिकार का होना यह उनके लिए और उनके अधिकार में रहनेवाले मनुष्यों के लिए बडा ही भयंकर है। इस अधिकार से जुल्म, मिथ्याभिमान, लोभ, अनुचित स्पर्धा, गुलामी, गरीबी और दूसरी अनेक प्रकार की पराधीनता और अधमता उत्पन्न होती है।

इसके अलावा शक्ति के बल से चलनेवाले यंत्रों को तो बडी शक्ति की आवश्यकता होती है और उसके लिए कोयला, तेल, पानी के पीछे पडना होता है। इसलिए उस जमीन का अधिकार प्राप्त करने के लिए जिसमें कि ये साधन होते हैं बडी स्पर्धा होती है। इससे आर्थिक साम्राज्यवाद पैदा होता है और मजदूरों का बेचारों को बडी हानि होती है।

यंत्रों के बिना वर्तमान हुन्नर उद्योग असंभवनीय हो गया है। पूंजी तो पहले भी थी और आज भी है लेकिन जैसी इस यंत्रयुग में आज यह भयंकर हो गई है वैसी भयंकर यह कभी न थी। जमींदारी भी तो किसानी की तरह उतनी ही पुरानी है लेकिन आज उसके कारण जितना जुल्म होता है उतना पहले कभी न होता था।

और ऐसे यन्त्रों से मनुष्यों की और साधनों की बडी हानि होती है। जंगलों का नाश होता है, कोयले की खाने खाली हो जाती हैं, तेल के कुए खाली हो जाते हैं, जमीन का रस खींच लिया जाता है। जंगलों का नाश होने से वर्षा कम हो गई है, दुष्काल पडता है और पानी की बाढ भी आती है।

अमरिका के एक बडे दैनिक के रविवार के अंक को छापने के लिए जितने कागज की आवश्यकता है उतना कागज बनाने के लिए बडे ऊंचे पेडों से भरा हुई एक एकड जमीन के पेडों का भावा बनाने की आवश्यकता होती है। सौ वर्ष में ब्रिटन की कोयले की खानें खाली हो जायंगी। अमरिका के तेल के कुंए ५० वर्ष में सूख जायेंगे।

और इसके परिणाम स्वरूप जो गरीबी आवेगी उसका कोई जमानों तक जनता की नीति पर बडा भयंकर परिणाम होगा।

कारखानों में होनेवाले अकस्मातों से जितनी प्राणहानि होती है, जितने अपंग होते हैं उतने लडाई में नहीं होते। यंत्रों पर आधार रखनेवाले हुन्नर उद्योग की पैदाइश हमारे शहर हैं—धुंआ, गन्दगी, दूषित हवा और कृत्रिम जीवन से भरे हुए हमारे शहर हैं। और बेकार बने हुए मनुष्यों की कैसी दुर्दशा होती है। कितना दुःख, दारिद्र और असन्तोष होता है।

और उद्योगों को निभाने के लिए विज्ञापनों की आवश्यकता होती है। व्यापार करने के लिए विज्ञापनों की आवश्यकता होती है। विज्ञापनों के सम्बन्ध में ज्ञान रखनेवाले एक विभाग ने विशेष जांच कर के यह कहा है कि केवल ग्रेटब्रिटन में ही प्रति वर्ष १० करोड पौंड विज्ञापनों में खर्च होते हैं। इस नुकसान को ही देखो! इसकी तुलना अगाध कहती है! मैं यह नहीं कहता कि पहले जब सब चीजें हाथ से बनाई जाती थीं उस समय कोई दुःखी न थी। परन्तु यह मैं अवश्य ही मानता हूं कि वह दुःख इतना भयंकर इतना सख्त और सर्वव्यापी न था।

मनुष्यगणना के हिसाब से मालूम होता है इस हुन्नर उद्योग के युग में हरएक देश की मनुष्यसंख्या बहुत कुछ बढ गई है। इसी वृद्धि की भूमि पर अधिक बोझ पडा है, मजदूर बनने के लिए बहुत से मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। एक देश से दूसरे देश में जानेवाले लोग भी बढ गये हैं और उसके कारण बहुत से प्रश्न उत्पन्न हुए हैं। क्या इन सबके कारण यंत्र नहीं हैं?

यंत्रों के कारण मनुष्य परवश हो गया है, उसका काम करने का समय, खाने पीने का समय, सभी यंत्र और रेल के ऊपर ही आधार रखता है। उसका आराम इत्यादि भी यंत्रों के आधार से ही होता है। उनके खान-पान के साधन, उसके हथियार इत्यादि, उसके घरबार, उसके कपडे, उसका आमोद-प्रमोद, इत्यादि सभी वस्तुओं को मनुष्य की इच्छा के नहीं, परन्तु यंत्र के अनुकूल ही होना पडता है, धनवान लोग नौकरों पर आधार रखते हैं। उनमें से स्वावलम्बन की शक्ति का लोप हो जाता है और वे समाज के ऊपर आश्रित हो जाते हैं और उसे चूसते हैं। सरकार रैयत को चूसती है, लडायक वर्ग निर्बल लडायक वर्ग को चूसता है। लोग मानसिक में भी परतंत्र हो जाते हैं। नाटकों में जा कर गाना सुनने की उन्हें रुचि होती है, स्वयं खेलने के बजाय मुट्ठीभर मनुष्यों के खेलों को देख कर ही सन्तोष मान लेते हैं।

ऐसी हालत में रहनेवाले मनुष्यों को यदि सुखी रहना हो तो उन्हें दूसरों के दुःख से ही सुख प्राप्त करना होगा और उस दुःखी के श्रम का स्वयं लाभ उठाने के लिए उसे यह साबित करना पड़ता है कि उससे वह सुखी है। 'टाल्स्टोय' की 'तब क्या करें' यह पुस्तक इस विषय में हमारी आंख खोल देती है।

और अधिकार एक के हाथ में चले जाने से मनुष्य अनुत्तरदायी और लापरवाह बन जाते हैं। मनुष्य की कल्पनाशक्ति भी मन्द हो गई है, वह स्वार्थ ही को देखता है। योरप में बैठा हुआ एक उद्योगपति हुक्म करता है और उस हुक्म के द्वारा दूर मध्य आफ्रिका में बेचारे अनेक हबसियों के भाग्य फिर जाते हैं। उस करोड़पति को उन करोड़ों के कल्याण का विचार तक नहीं होता है। उनके नीचे के अधिकारियों को सभी बातों का अच्छा होना बताना पड़ता है, उद्योगपति को सच्ची स्थिति का कुछ भी ख्याल नहीं होता है। उन्हें कारीगरों के भाव, आशा और सुख-दुःख का कुछ भी ख्याल नहीं होता है। अच्छे से अच्छे मनुष्य की दया और प्रेमभाव भी शायद ही अपने कुटुम्ब के बाहर जाता होगा। अपने कारीगरों की तरह वे भी स्वयं रात-दिन चलनेवाले उस यन्त्र के गुलाम होते हैं।

और उसमें बना होनेवाले मालों का इस्तेमाल करनेवाले भी लापरवाह बनते हैं। फ्रान्स में बैठा मैं अपने 'शोरवे' में कालीमिरच डालता हूं, परन्तु मुझे यह ख्याल थोड़े ही है कि ये कालीमिरच जावा के द्वीप में किसी मजदूर ने, अनेक लात और घूसे खा कर और शायद बुखार या बीमारी में ही इकट्ठे किये होंगे? लेकिन यदि मेरे पड़ोस में ही ये पैदा होते तो क्या मुझे यह मालूम हुए बिना रह सकता था?

और काम करनेवाले कारीगर भी बेफिक्र हो जाते हैं। गावों में अपने पड़ोसी के लिए अनेक प्रकार के नमूने तैयार करनेवाला बढ़ई अपने काम पर बड़ाही ध्यान देगा क्योंकि उसे अपनी इज्जत का ख्याल रहेगा। अपने पड़ोसी के सुख और सुविधा का वह विचार करेगा, वह उसकी अच्छी राय प्राप्त करने के लिए भी फिक्र करेगा। लेकिन यदि वह फर्नीचर के किसी कारखाने में होगा तो उसे किसीके सुख-दुःख की क्या पड़ी है? वह तो अपनी रोजी का ही विचार करेगा। वहां उसकी न कोई प्रशंसा करनेवाला है और न कोई बुराई करनेवाला, इसलिए वह क्या काम करता है उसकी उसे कुछ भी चिन्ता न रहेगी।

और इसके अलावा एक प्रकार का मानसिक अनुत्तरदायित्व भी पैदा होता है। एक स्वतन्त्र बढ़ई का अपने हथियारों के साथ जो सम्बन्ध होता है और अपना साधन देख कर वह जिस प्रकार अपने हथियार का होशियारी और कारीगरी के साथ उपयोग करता है उस प्रकार यंत्र से चलनेवाले हथियारों को चलाने में उसे होशियारी या कारीगरी का उपयोग नहीं करना होता है।

विज्ञापनों से जो भयंकर आर्थिक हानि होती है उसे तो मैं ऊपर लिख चुका हूं लेकिन उसकी अनीति भी उतनी ही भयंकर है। कितना झूठ, कितना दंभ, कितनी भयंकर अप्रामाणिकता! हाथ से किये जानेवाले कामों में प्रामाणिकता को, सत्य को अधिक अवकाश होता था। परन्तु आज यह अवकाश ही नहीं है। यन्त्र सौन्दर्य के शत्रु हैं। भयंकर कृत्रिमता से भरे हुए शहर से जब एक मनुष्य गांव में जाता है तब वह आनंद का श्वास लेता है वही यन्त्र का किया हुआ सत्यानाश दिखाता है। एक इटालियन इतिहासकार लिखते हैं:

"यंत्र को किस अर्थ में हाथ से अधिक अच्छा गिना जाता होगा? उसकी पैदाइश की जाति के लिए नहीं लेकिन थोकबन्द उत्पत्ति के लिए। हाथ तो बहुत थोड़ा माल तैयार कर सकता है और यंत्र से थोकबन्द माल तैयार होता है! परन्तु हाथ की कारीगरी में जो प्राण होता है वह कहीं यंत्र की कारीगरी में थोड़े ही हो सकता है? मनुष्य क्या कभी यंत्रों के द्वारा ग्रीस के उत्तमोत्तम शिल्पकला के नमूने तैयार कर सकेंगे? अथवा योरप के धर्मस्थानों में जो खुदाई का काम देखा जाता है वह क्या यंत्र से उत्पन्न हो सकेगा? लेकिन जल्दी काम करने में किसी भी मनुष्य का हाथ यंत्र को पहुंच सकेगा? अर्थात् यंत्रप्रधान सुधारे के जमाने में मनुष्य को बड़ी ही शीघ्रता का जीवन धारण करना होगा। आज योरप में धनवान से भी धनवान मनुष्य और गरीब से भी गरीब आदमी रुपये जुटाने के काम में मशगूल है। वर्तमान युग में दो जगत् आपस में स्पर्द्धा कर रहे हैं — योरप और अमरिका नहीं, गुण और संख्या। आबादी बढ़ती जायगी और आवश्यकतायें भी बढ़ती ही जायगी और उसी प्रकार उत्पत्ति का आदर्श भी हलका होता जायगा। शीघ्रता और संख्या की आंधी में नीति, सौंदर्य और कला का सत्यानाश हो जायगा।

वही लेखक एक दूसरे स्थान पर यह लिखते हैं कि महान धर्म और महाकला स्वास्थ्य और शान्ति में ही विकसित हो सकते हैं। यंत्र स्वास्थ्य और शान्ति के विनाशक हैं। जैसे जैसे यंत्र का युग आता गया कला और धर्म की अवनति होती गई। (अपूर्ण)

सूत्रयज्ञ

यज्ञ तो कितने ही होते हैं। कुछ परोपकार के लिए तो कुछ स्वार्थ के लिए किये जाते हैं। कुछ लोग तो दूसरे का बलिदान दे कर स्वयं यज्ञ का पुण्यफल प्राप्त करने का वृथा लोभ रखते हैं लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि यज्ञ तो आत्मबलि दे कर अपनी ही मिहनत से किया जा सकता है। वराड के कुमारमन्दिर के आचार्य श्री झवेरभाई ने अभी ऐसाही एक यज्ञ पूरा किया है। वे लिखते हैं:

"मेरा आरंभ किया हुआ यज्ञ पूर्ण हुआ है। एक वर्ष में ११। लाख गज, ७४ पौंड सूत काता है। उसमें ८ लाख गज तो महासभा को अर्पण किया है। बाकी मेरे पास बचा हुआ है। उसे मैंने एक सप्ताह बाद स्वयं करघे पर बुन लेने का विचार किया है। १२ लाख गज काता जा सकता था लेकिन मैंने बारीक कातने का प्रयत्न किया था और इस प्रयत्न में मैं ८३ अंक तक पहुंच सका हूं। मेरी पत्नी ने और मेरी ग्यारह वर्ष की साली ने दोनों ने मिल कर तीन लाख गज सूत काता है।"

बारह महीने में लगभग बारह लाख गज सूत कातना कोई ऐसी वैसी मिहनत नहीं है। एक महीने में एक लाख गज अर्थात् एक दिन में कोई साढ़े तीन हजार गज सूत हुआ। एक घण्टे में यदि चारसौ गज लगातार कात सके तो साढ़े तीन हजार गज सूत कातने में आठ से नव घण्टे लगेंगे। एकनिष्ठ हो कर इतने घण्टे एक साल तक रोजाना चरखे के पीछे लगा देना एक महायज्ञ ही गिना जा सकता है। उपरोक्त पत्र में ही झवेरभाई लिखते हैं: 'मेरी इच्छा तो सिर्फ आत्मा की उन्नति करना और उसके लिए यदि वैभव का त्याग करना पड़े तो त्याग करना है।' झवेरभाई को मैं उनके इस निःस्वार्थ प्रयत्न के लिए धन्यवाद देता हूं और यह चाहता हूं कि वे सदा ही ऐसा यज्ञ करते रहें। इस उदाहरण को दृष्टि समक्ष रख कर हम लोग आधा घण्टा भी देश को कातने के लिए दें तो उससे देश को कितना बड़ा लाभ होगा।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

कलई खुल गई

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २९

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, चैत्र वदी ७, संवत् १९८२ ४ गुरुवार, मार्च, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

आखिर विलायत में

जहाज में मुझे समन्दर तो जरा भी न लगा था। परन्तु ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे मैं गभराने लगा। स्टूअर्ड के साथ बातचीत करने में भी शर्म मालूम होती थी। अंगरेजी में बात करने की तो मुझे आदत ही न थी। सब मुसाफिर सिवा मजमूदार के अंगरेज ही थे। उनके साथ बातचीत करना मुझे न आता था। यदि वे मेरे साथ बातचीत करने का प्रयत्न करते थे तो उनका कहा ही समझ में न आता थी और यदि कुछ समझ भी लेता था तो उसका उत्तर कैसे दिया जाय यही समझ में न आता था। बोलने के पहले प्रत्येक वाक्य को दिल ही दिलमें रचना कर लेनी पड़ती थी। कांटे और चम्मच से खाना खाना न आता था और कौन सी चीज निरामिष है यह पूछने की भी हिम्मत न होती थी। इसलिए मैं खाने के टेबिल पर तो कभी गया ही न था। अपने कमरे में ही खाना खा लेता था, खास कर मेरे साथ जो मिठाई थी उसी पर गुजारा करता था। मजमुदार को तो कोई संकोच न था वे तो सब के साथ हिलमिल गये थे। स्वतन्त्रतापूर्वक डेक पर जाते थे। मैं तो सारा दिन अपने कमरे में ही बैठा रहता था। जब कभी डेक पर बहुत थोड़े मनुष्य होते थे तब मैं वहां थोड़ी देर बैठ कर लौट आता था। मजमुदार सब के साथ हिलमिल जाने के लिए और बिना संकोच बातचीत करने के लिए समझाते थे। वे यह भी कहते थे कि वकील की वाणि खुली हुई होनी चाहिए, वकील के तौर पर अपने अनुभवों का वर्णन करते थे, और कहते थे कि अंगरेजी भाषा अपनी भाषा नहीं है, उसमें गलतियां तो होंगी ही फिर भी बोलने में संकोच नहीं रखना चाहिए। लेकिन मैं अपनी भीरुता का त्याग न कर सकता था।

मुझ पर दया कर के एक भले अंगरेज ने मेरे साथ बातचीत करना शुरू किया। वे मुझसे उम्र में बड़े थे। उन्होंने मैं क्या खाता हूं, कौन हूं, कहां जा रहा हूं इत्यादि सवाल पूछे। वे मुझे खाने के मेज पर जाने के लिए कहते थे। मांस न खाने के मेरे आग्रह को सुन कर वे हंसे और दयाभाव से बोले "यहां (पोर्ट सैद पहुंचने के पहले) तो ठीक ही है लेकिन बिस्के के उपसागर में तुम अपने विचारों को बदलोगे। इंग्लैण्ड में तो इतनी ठंडी पड़ती है कि मांस के बिना गुजारा ही नहीं हो सकता है।" मैंने कहा: "मैंने सुना है कि वहां लोग मांसाहार के बिना रह सकते हैं।"

वे बोले 'यह बात गलत ही समझो। मेरी जान पहिचान का ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो मांसाहार न करता हो। देखो, मैं शराब पीता हूं लेकिन मैं तुम्हें शराब पीने के लिए नहीं कहता हूं। लेकिन मेरे ख्याल में तुम्हें मांसाहार तो करना ही होगा।'

मैंने कहा: 'आपकी इस सलाह के लिए मैं आपका उपकार मानता हूं परन्तु मांस न खाने के लिए मैंने अपनी माता के समक्ष प्रतिज्ञा की है। इसलिए मैं उसे ग्रहण नहीं कर सकता हूं। यदि उसके बिना काम न चलेगा तो मैं हिन्दुस्तान लौट जाऊंगा लेकिन मांस तो कभी भी न खाऊंगा।'

बिस्के का उपसागर भी आ पहुंचा। वहां मुझे न मांस की आवश्यकता मालूम हुई और न मदिरा की। मुझसे मांस न खाने के प्रमाणपत्र इकट्ठे करने के लिए कहा गया था इसलिए मैंने इस अंगरेज मित्र से एक प्रमाणपत्र मांगा। उन्होंने प्रमाणपत्र बड़ी खुशी से दे दिया। उसको मैंने कई दिनों तक खजाने की तरह हिफाजत से रक्खा था। पीछे से मुझे यह मालूम हुआ कि ऐसे प्रमाणपत्र तो मांस खाने पर भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इसलिए उसके प्रति मेरा मोह नष्ट हो गया। यदि मेरे शब्दों पर ही विश्वास न किया जाय तो ऐसे विषयों में प्रमाणपत्र दिखा कर मैं क्या लाभ उठाऊंगा!

सुख से या दुःख से सफर पूरी करके हमलोग साउथम्पटन पहुंच गये। मुझे ऐसा कुछ स्मरण है कि वह शनिवार का दिन था। मैं जहाज पर काले कपड़े पहनता था। मित्रों ने मेरे लिए सफेद फलेनल के कोट-पतलून भी तैयार करवाये थे। मैंने विलायत में जहाज से उतरने के समय यह समझ कर कि सफेद कपड़े अधिक शोभा देंगे यही पहनने का निश्चय किया था। मैं फलेनल के कपड़े पहन कर जहाज से उतरा। सितम्बर के आखिरी दिन थे। ऐसे कपड़े पहननेवाला मैंने अपने को, अकेले को ही पाया। मेरे बक्स और कुंजियां तो ग्रीन्डले कम्पनी के आदमी ले गये थे। जो सब करें वह मुझे भी करना चाहिए इस ख्याल से मैंने अपनी कुंजियां भी दे दी थी।

मेरे पास चार सिफारिश की चिट्ठियां थीं। डाक्टर प्राणजीवन महेता, दलपतराम शुक्ल, प्रिन्स रणजीतसिंहजी और दादाभाई नवरोजजी के नाम वे लिखी हुई थीं। मैंने डा० महेता को साउथम्पटन से तार किया था। जहाज में किसी ने यह सलाह दी थी कि विक्टोरिया होटल में जा कर ठहरना। इसलिए मैं और

मजमुदार उस होटल में गये। मैं तो अपने सफेद कपड़ों की शर्म के मारे ही जमीन में गड़ा जा रहा था। और होटल में जाने पर यह मालूम हुआ कि दूसरे दिन रविवार था और सोमवार तक ग्रीन्डले के यहां से सामान न आ सकेगा। इससे मैं घबड़ाया।

शाम को आठ बजे डा. महेता आये। उन्होंने प्रेममय विनोद किया। मैंने अनजान में ही उनकी रेशम के बालवाली टोपी देखने के लिए उठा ली और उस पर उलटा हाथ फिरा दिया। इससे टोपी के बाल खड़े हो गये। डाक्टर महेता ने यह देखा। उन्होंने मुझे रोका लेकिन गुन्हा तो हो चुका था। उनके रोकने का यही परिणाम हो सकता था कि फिर कभी ऐसा गुन्हा न हो। यहीं से योरप के रीतिरिवाजों का मेरा अध्ययन शुरू हुआ गिना जा सकता है। डाक्टर महेता हंसते जाते थे और बहुत सी बातें समझाते जाते थे। किसी की वस्तु को स्पर्श नहीं करना चाहिए, परिचय होने पर हिन्दुस्तान में जो प्रश्न सहज ही पूछे जा सकते हैं वे यहां नहीं पूछे जा सकते; बातचीत करते समय यहां जोर से नहीं बोलना चाहिए; हिन्दुस्तान में साहब लोगों के साथ बातचीत करते समय 'सर' कहने का रवाज है यह अनावश्यक है। सर तो नोकर अपने मालिक को अथवा अपने से बड़े अधिकारी को कहा करते हैं। आर उन्होंने होटल में रहने के खर्च की भी बात कहा और कहा कि किसी कुटुम्ब के साथ रहने की आवश्यकता होगी। इसका अधिक विचार सोमवार पर मुल्तवी रक्खा गया। कितनी ही सूचनायें दे कर डाक्टर महेता बिदा हुए। हम दोनों को तो यही मालूम हुआ कि होटल में आ कर हम फंस गये हैं। होटल भी महंगा था। माल्टा से एक सिंधी मुसाफिर का साथ हुआ था। उनके साथ मजमुदार बहुत कुछ हिलमिल गये थे। वे सिंधी मुसाफिर लंडन के वाकफगार थे। उन्होंने हमारे लिए दो कमरे तय करने का भार अपने सिर ले लिया। हमने अपनी सम्मति दी और सोमवार को जैसा ही सामान मिला कि होटल का बिल चुका कर हम लोगोंने उन सिंधी भाई के तय किये हुए कमरों में प्रवेश किया। मुझे स्मरण है कि मेरे हिस्से का होटल का बिल लगभग तीन पौंड का था। मैं तो उसे देखते ही चकित हो गया। तीन पौंड देने पर भी भूखा रहा। होटल का खाना कुछ भी अच्छा न लगता था। एक चीज मगाई वह पसंद न आई इसलिए फिर दूसरी मंगाई। दोनों चीजों के दाम तो देने ही चाहिए। बम्बई से साथ में लिए हुए खाने पर ही अब तक मेरी गुजर हो रही थी यह कहूँ तो भी बात ठीक ही होगी। उस कमरे में भी मैं तो बहुत कुछ घबड़ा गया था। देश का स्मरण होता था, माता का प्रेम मूर्त रूप में दिखाई देता था। रात होते ही मेरा रोना भी शुरू होता था। अनेक प्रकार के घर के स्मरणों के आक्रमण से नींद तो आ ही कैसे सकती थी? इस दुःख की कहानी भी तो किसी को सुनायी नहीं जा सकती थी। सुनाने से फायदा भी क्या हो सकता था? मैं स्वयं यह नहीं जानता था कि किन उपायों से मुझे आश्वासन मिलेगा। लोग विचित्र थे, उनकी रहन-सहन विचित्र थी और घर भी विचित्र थे। घरों में रहने के नियम भी वैसे ही थे। क्या बोलने से या क्या करने से नियमों का भंग होगा इसका ख्याल भी बहुत ही कम था और उसके साथ खाने-पीने का परहेज था। और जो पदार्थ खाये जा सकते थे वे शुष्क और स्वादहीन मालूम होते थे इस लिए सब तरफ से मुझे सांकड़ा ही सांकड़ा मालूम होती थी। विलायत में अच्छा न लगता था और देश में भी लौट कर नहीं जा सकता था। विलायत गया था तो अब तीन साल पूरे कर के ही लौटने का मेरा आग्रह था।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

मजूरशालाओं में तकली

दो अढ़ाई महीने हुए श्री राजगोपालाचार्य यहां आये थे उस समय उन्हें श्री शंकरलाल बेंकर अहमदाबाद की मजूरशालाओं में तकली से कातने का जो काम हो रहा है उसका मुआइना करने के लिए ले गये थे। उस समय एक घन्टा कातने की जो शर्त हुई थी उसका परिणाम मैं लिख चुका हूं। वह परिणाम अवश्य ही उल्लेख योग्य था परन्तु अभी श्री विनोबा के समक्ष उन शालाओं के लड़कों में कातने की जो शर्त हुई थी उसका परिणाम तो उससे भी अधिक महत्व का है और जानने लायक है। उस समय मैंने एक घण्टे में अमुक गज के हिसाब से सूत कातनेवालों के विभाग करके उनके परिणाम का उल्लेख किया है। इस समय भी उसीके अनुसार उसका परिणाम दिया जायगा कि जिससे तुलना करने में अनुकूलता हो। पहली शर्त के समय परिणाम यह था।

दर्जा	संख्या	कातनेवाले	१२५ गज से अधिक	१०० गज से अधिक	७५ गज से अधिक	५० गज से अधिक	२५ गज से अधिक	२५ गज से कम
५	११	१०	०	५	२	३	०	०
४	३०	२५	०	९	८	६	५	०
३	५३	४२	१	५	७	१३	१३	१
२	६२	४४	०	९	९	१३	११	२
१	११०	४२	०	०	३	१०	२४	५
बाल	३३३	३०	०	०	२	७	८	३
कुल	५११	१०३	३	२५	३१	५२	६१	११

दो महीने के बाद इन अंकों में यह प्रगति हुई है:

दर्जा	संख्या	कातनेवाले	१२५ गज से अधिक	१०० गज से अधिक	७५ गज से अधिक	५० गज से अधिक	२५ गज से अधिक	२५ गज से कम
५	११	१०	२	२	३	१	२	०
४	२९	२३	१	३	९	८	२	०
३	५३	४४	३	२	१७	१३	८	१
२	६४	५४	२	५	१४	२०	११	२
१	१०७	६८	७	०	४	२५	३३	६
बाल	३१७	६७	०	१	१४	९	३५	११
कुल	५८१	२५९	८	१३	६१	७६	८१	२०

उपरोक्त अङ्कों की तुलना करने पर मालूम होगा कि विद्यार्थियों की संख्या में ७५ की कमती हुई है। लेकिन इससे कोई यह अनुमान न निकाले कि अच्छे कातनेवाले भी घटे हैं। क्योंकि यह कमती करीब करीब बालवर्ग और पहले वर्ग में ही हुई है। ऊपर के दर्जे के अंक करीब करीब समान ही है। पांचवें दर्जे के बालकों में पांच लड़के पहले १०० गज से अधिक कातते थे परन्तु इस समय उनमें दो लड़के तो १२५ गज से अधिक कातने लगे हैं। चौथे वर्ग के अंकों में भी वैसी ही प्रगति हुई मालूम होती है। तीसरे वर्ग के अंकों में १२५ गज से अधिक कातनेवालों की संख्या तो उतनी ही है और १०० गज से अधिक कातनेवाले पांच के बदले तीन ही रह गये हैं परन्तु विशेष उल्लेख योग्य बात यह है कि ७५ गज से अधिक कातनेवालों की संख्या ७ से बढ़ कर १७ हो गई है और दूसरे दर्जे के कातनेवालों में भी अच्छी वृद्धि हुई है। उसमें १२५ गज से अधिक कातनेवाला उस समय कोइ न था परन्तु इस समय दो ऐसे कातनेवाले भी हैं। ७५ गज से अधिक कातनेवाले उस समय ९ थे परन्तु उसके बदले अब १४ हो गये हैं और इससे कम कातनेवालों की संख्या भी सभी वर्गों में बढ़ी हुई मालूम होती है। बालवर्ग में ७५ गज से अधिक कातनेवाले सिर्फ दो ही थे अब उसके बदले १४ हो गये हैं।

पहली शर्त के समय शिक्षकों के अंक प्राप्त न हो सके थे परन्तु इस समय दोनों समय के अंक प्राप्त हुए हैं।

पहली शर्त के समय

अध्यापकों की संख्या	कातने बैठे कुल	१२५ गज से अधिक	१०० गज से अधिक	७५ गज से अधिक	५० गज से अधिक	५० गज से कम
१३	२६	३	४	११	५	३
दूसरी शर्त के समय						
३२	३२	५	३	६	८	१०

१२५ गज से अधिक कातनेवाले दो शिक्षक बढे हैं लेकिन ७५ गज और सौ गज कातनेवाले कम हैं। इससे यह मालूम होता है कि जो लोग कताई में दिलचस्पी ले रहे हैं वे उसमें अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगे हैं और जो लोग पहले से ही शिथिल थे वे अधिकाधिक शिथिल होते जाते हैं।

ये अंक तो शिक्षाप्रद और उत्साहप्रद हैं ही परन्तु इससे भी अधिक उत्साहप्रद अंक तो इस शर्त के अंक नहीं बल्कि रोजाना होनेवाली कताई के अंक जो बड़े ध्यानपूर्वक रक्खे जाते हैं वे हैं। इन अंकों में कभी कभी विद्यार्थी प्रगति करते हुए नहीं परन्तु पीछे हटते हुए भी दिखाई देते हैं परन्तु कुल हिसाब लगाने पर तो प्रगति ही दिखाई देगी और बूंद बूंद करके सरोवर भरने की कहावत चरितार्थ होती हुई मालूम होगी। शिक्षकों को अपने विद्यार्थी के वेग को देखकर सन्तोष नहीं मानना चाहिए लेकिन व्यवस्थापक मण्डल का आग्रह तो यह होना चाहिए कि औसतन् वेग और उत्पन्न में वृद्धि होती है या नहीं इस पर ही अधिक ध्यान दिया जाय। इसलिए औसतन् अंक भी रक्खे गये हैं। जोलाई से दिसम्बर १९२५ तक के अंक ये हैं:

नं.	शाला का नाम	जोलाई १८ दिन संख्या	गज	वजन तोला	१ दिन में १ वि. का काम	अगस्त २० दिन संख्या	गज	वजन तोला	१ दिन में १ वि. का काम	सितम्बर २१ दिन संख्या	गज	वजन तोला	१ दिन में १ वि. का काम
१	अमरपुरा	४९	५३५६	३६॥	६	५०	८०६०	३६	८	५१	१९७००	९५	१८
२	फूटीमसीद	५०	५१५४	१९	६	५२	५४५१	२०	५	५१	११३५३	६०	१५
३	मजबलनपुरा	४३	२१३०९	७४	२७	३५	१८५७५	४९॥	२६	३२	४६७४२	१५५	६९
४	सरसपुर	२८	७३००	४६॥	१४	३३	४६२५	२५	७	३०	८३९०	३८	१२
५	रायखड	५४	५०२६	२१॥	५	६०	५२००	२६॥	४॥	४४	१२५६७	५२	१२
६	खानपुर	५०	७५००	२५	८	४५	६४००	२८	७	४३	११२००	४१	१२
७	पोपटीआवाड	१३	२०००	८॥	९	२०	६७५	५	३॥	९	१०८७	८	६
८	ब्राह्मणीवाड	१४	५००	२	२	१३	५०००	२२	१९	१६	३१०००	५८	३२
	कुल	३०१	५४१४५	२३३	१०	३०८	५३९८६	२१२	८	२७९	१९७०१९	५०७	२९

नं.	शाला का नाम	अक्तूबर १३ दिन संख्या	गज	वजन तोला	१ दिन में १ वि. का काम	नवम्बर २० दिन संख्या	गज	वजन तोला	१ दिन में १ वि. का काम	दिसम्बर १६ दिन संख्या	गज	वजन तोला	१ दिन में १ वि. का काम
१	अमरपुरा	५७	३९५००	२१८॥	५२	८०	३६६००	२१७	२३	७९	२१९००	११२	१७
२	फूटीमसीद	५०	३४०२६	११६	५२	५०	३८६८५	२०१	३८	५०	२८५८२	९४	३५
३	मजबलनपुरा	४१	५०३०९	१८८	९४	४४	५७८८०	२०४	६५	४५	२१५४७	७९	३९
४	सरसपुर	३१	६१६०	२९॥	१५	३३	८२००	४२	१२	३२	७२००	३५	१४
५	रायखड	४६	१८०००	१०७॥	३०	४०	३१०००	१७०	४०	६३	४५७५४	२०५	४५
६	खानपुर	४१	६३७८	२६	१२	४६	१०१००	३४॥	१२	४७	१४८६४	५७	१९
७	पोपटीआवाड	१२	३२१०	३५	२०	१४	१००६१	५३	३८	१४	७३३७	३५	११
८	ब्राह्मणीवाड	२१	३१०००	६७	४७	अमरपुरा की शाला के साथ यह शाला शामिल हो गई है।							
	कुल	२९९	१७०५८३	७९७॥	४५	३०७	१९२५९६	९२१॥	३१	३३०	१४७१८४	६१८	२८

जोलाई और अगस्त ही के अंक लें तो औसत् में दो गज की कमी मालूम होगी परन्तु सितम्बर में तो वह दुगुने से भी अधिक बढ जाती है और अक्तूबर में तो प्रति विद्यार्थी ४५ गज की अच्छी औसत् कताई हुई मालूम होती है। उस महीने में १३ दिन में बालकों ने एक लाख सत्तर हजार गज सूत काता था। फिर नवम्बर और दिसम्बर की औसत् में कमी मालूम होती है फिर भी २८ गज अन्तिम औसत् है और यह ६ महीने पहले की औसत् से लगभग तीन गुनी है। कुछ शालाओं में तो उत्तम प्रगति होती हुई दिखाई देती है। जैसे मजबलनपुरा की शाला, प्रथम दो महीने की २७ और २६ की औसत अक्तूबर में बढ कर ९४ गज तक पहुंच गई थी। सिर्फ आखिरी महीने में उसमें कमी दिखाई देती है।

ये अंक इतने अर्थसूचक हैं और परिणाम ऐसा उत्तम है कि म्युनिसिपल शालाएं और दूसरी शालाएं तकली को दाखिल करने में इतनी देर क्यों लगा रही हैं यह समझ ही में नहीं आ सकता है। जिन शालाओं में चरखा और तकली पर कताई होती है उनसे मेरा आग्रह है कि उनमें हरएक में ऐसे प्रगति पत्रक रक्खे जायं।

मजूरशाला का व्यवस्थापक मंडल तो वर्तमान प्रगति से सन्तोष न मानकर शिक्षक और विद्यार्थियों से अधिकाधिक आशा रख रहा है। इन ६ महीने के परिणाम पर विचार करने के बाद शिक्षकों को सूचना की गई है कि वे कम से कम घण्टे में १०० गज कातने का वेग तो अवश्य ही प्राप्त करें और पांचवें और चौथे वर्ग के प्रत्येक बालक का घण्टे में १०० गज का, तीसरे और दूसरे वर्ग का कम से कम ७५ गज का और प्रथम और बालवर्ग का ५० गज का वेग तो अवश्य ही होना चाहिए और हरएक शाला को कम से कम ५० गज की औसत् तो अवश्य ही प्राप्त करनी चाहिए।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र बदी ५, संवत् १९८१

कलई खुल गई

भारत की १९१९-२० की जेल समिति की रिपोर्ट में राजनैतिक कैदियों के साथ किये जानेवाले व्यवहार के सम्बन्ध में लफ्टनन्ट कर्नल मूलजानी की दी हुई गवाही को प्रकाशित कर के कलकत्ते के 'फोरवर्ड' ने लोगों की बड़ी सेवा की है। उसमें सरकार के वर्तमान तन्त्र की बुराइयों की सारी कलई खोल दी गई है और उसपर स्पष्ट प्रकाश डाला गया है। इससे यह मालूम होता है कि अधिकारियों को अनुचित कार्य करने के लिए किस प्रकार मजबूर किया जाता है और इस तरह वे कैसे भ्रष्ट और आत्मसम्मान की भावना से हीन हो जाते हैं। उस समय कर्नल मूलवानी अलीपुर सेन्ट्रल जेल के सुप्रीन्टेन्डन्ट थे। उनके इजहार में से नीचे का भाग उद्धृत किया जा रहा है:

"....लोगों को यह बखूबी मालूम है कि सरकार अपने अधिकारयुक्त इजहारों में सदा इस बात को साबित कर सकी है कि उनकी शिकायतें निराधार थीं फिर भी मेरे अनुभव में तो उन शिकायतों के लिए सब प्रकार के कारण मौजूद थे। क्रान्तिकारी हलचल का आरम्भ हुआ तभी से कलकत्ते की जेलों में एक या दूसरी कोई न कोई जेल मेरे अधिकार में रही है और शायद भारत के किसी भी जेल-अधिकारी के बनिस्बत राज्यनैतिक कैदियों की कैद से मेरा ही अधिक सम्बन्ध रहा है। और मैं विचारपूर्वक मेरे कथन की गंभीरता को सम्पूर्णतया समझ कर यह कहता हूं कि **इन लोगों को जैसी कैद की सजा भुगतनी पड़ती है वह सिर्फ अमानुषी ही नहीं होती है, परन्तु जान-बूझ कर सरकार को उसकी गलत रिपोर्ट भी भेजी जाती हैं।** इस विषय में मेरे विचार बड़े दृढ़ हैं और मैं यह बड़े संयमपूर्वक लिख रहा हूं क्योंकि मेरा ख्याल है कि इस दुःखमय व्यापार में जो हिस्सा लेने के लिए मैं मजबूर किया गया था वह मेरे लिए एक कलंक था और वह आज भी है; यह कलंक कभी भी नहीं मिटाया जा सकता है। और मैं इससे न्यून और कुछ भी नहीं कह सकता हूं कि जो निर्दय व्यवहार करने की मुझे आज्ञा होती थी और जिसका अमल कराने की मुझसे आशा रक्खी जाती था उससे तो मेरे दिल पर अत्याचार ही किया जाता था। इस विषय में मेरी जबानी विज्ञप्ति का कुछ भी परिणाम न हुआ इसलिए आखिर १९१५ के सितम्बर में उसी एक मार्ग से जो मेरे लिए खुला था सरकार के ध्यान पर यह बात लाने का मैंने निर्णय किया, और मैंने १८१८ के ३ कानून की ६ दफे के मुताबिक दो राज्यनैतिक कैदियों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट पेश की। उसमें मैंने अपनी राय भी जाहिर की था कि उनको जिस तरह बन्द कर के रक्खा जाता है वह इतनी कड़ी सजा है कि उससे संभव है उनकी तन्दुरस्ती को हानि पहुंचे। मैंने यह भी कहा था कि उनकी वह एकान्त कैद प्रिजन्स एक्ट या जेल रेग्युलेशन में बताई किसी भी एकान्त कैद की सजा से, जो किसी भी प्रकार कोर्ट किन से क्यों न हो नहीं होती—अधिक कड़ी है। मैंने यह रिपोर्ट इस हेतु से पेश की थी कि उसमें एक ऐसी परिस्थिति खड़ी हो जाय कि जिसके फलस्वरूप या तो मुझे वहां से हटाना पड़े (जिसकी मुझे उमीद नहीं थी) या उन निर्दय व्यवहारों को कुछ सौम्य कर दिया जाय जिन्हें कि मुझे करना पड़ता था। नतीजा क्या हुआ? मेरा पत्र लौटा दिया गया और कहा गया कि मैं उसपर पुनः विचार करूं। मुझे यह भी याद दिलाई गई कि वह पत्र सिमला भेज दिया जानेवाला है; और संभव है वहां की अधिष्ठात्री देवता इसपर रुद्ररूप धारण करे, यह भी कहा गया कि सजा क्या और किस तरह की दी जाय इस विषय में तो पुलिस की तरफ से ही हुक्म आते हैं, मुझे तो यहां तक सूचित किया गया कि मैं इस तरह रिपोर्ट करूं कि कैदी एकान्त दंड की सजा को भोग रहे हैं, उन्हें व्यायाम करने की इजाजत है, वे प्रसन्न हैं, उनका स्वास्थ्य जरा भी नहीं बिगड़ा या इसी अर्थ के और कई शब्द। अगर मैं इससे सहमत हो जाऊं तो मुझे उस पत्र को अपनी बही में से निकाल देना चाहिए और उसकी जगह पर दूसरा पत्र लिख देना चाहिए।"

ले० कर्नल मूलवानी ने जिस पत्रव्यवहार की ओर संकेत किया है वह 'फॉरवर्ड' में प्रकाशित हो चुका है। जेल के तत्कालीन इन्स्पेक्टर जनरल के उस पत्र के अंश को उद्धृत करने के लोभ को मैं संवरण नहीं कर सकता हूं। ले० क० मूलवानी की वह दोषमूलक रिपोर्ट मिलते ही उन्होंने कर्नल मूलवानी को अपनी रिपोर्ट पर पुनः विचार करने के लिए लिखा और उन्हें अपनी नई रिपोर्ट में जो झूठ बातें लिखनी चाहिए थीं वे भी बताईं। जरा पढ़िए:—

"जरा अपने पत्र पर पुनः विचार कीजिए। स्मरण रहे कि यह पत्र सिमला जानेवाला है और वहां की देवता की क्रोधाग्नि को प्रज्वलित कर देगा? पुलिस की यह आवश्यकता कि इन कैदियों को न केवल अन्य देशी कैदियों से अलग रखना चाहिए बल्कि उन्हें एक दूसरे से भी दूर दूर ही रखना चाहिए हमें बाध्य करती है कि हम उन्हें कितना और किस तरह का एकान्त दण्ड दें। मेरा ख्याल है कि आप इस तरह अपनी रिपोर्ट भेजें कि कैदी एकान्त दण्ड को भोग रहे हैं, उन्हें रोजाना व्यायाम करने की इजाजत है, दोनों प्रसन्न हैं स्वास्थ्य भी खराब नहीं है या इसी अर्थ के और कुछ शब्द लिख सकते हैं।"

इस पत्र के मिलते ही ले० कर्नल मूलवानी ने दुःख के साथ अपने स्वाभिमान के आग्रह को छोड़ दिया और ऐसी रिपोर्ट भेजी जिसे कि वे जानते थे कि सरासर झूठ है। इस रिपोर्ट के बाद यह कैसे हो सकता है कि सरकार द्वारा प्रकाशित या उसकी लीपापोती करनेवाली किसी रिपोर्ट पर हम विश्वास कर लें। फिर यह बात भी नहीं कि यह एक अपवाद मात्र हो। इन रिपोर्टों या बयानों का गढ़ना एक बिलकुल मामूली बात है, और वह प्रत्येक मनुष्य जिसे सरकारी विभागों से कुछ भी संपर्क है इस बात को भलीभांति जानता है। आज तो हर बात का 'सपादन' अधिकारियों द्वारा होता है।

जिन्हें बिना किसी प्रकार की तहकीकात के अनिश्चित समय तक कैद में रक्खा जारहा है, बंगाल के उन बहादुर पुरुषों के रिश्तेदारों को बड़ी मुश्किल से उन कैदियों के विषय में वे बातें मालूम हुई हैं जो आज संसार को बताई जा रही हैं। इनसे यह भी मालूम होता है कि उन्हें कई बातों में कबूल कर दिया जाता है। साधारणतया आरोपों का अस्वीकार ही किया जाता है। जहां पूरा इन्कार करना असम्भव होता है वहां थोड़ा बहुत सत्य कबूल कर लिया जाता है पर वहां भी इन यन्त्रणाओं का दोष कैदियों के सिर ही मढ़ा जाता है। जब श्री. गोस्वामी को धारासभा में इस विषय को बहस के लिए पेश करने में सफलता मिली उनकी

इंसी उड़ाई गई और सरकार के द्वारा उन्हें यह कहा जाता है डे० कौंक मुकर्जी का बयान कमिटि द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया था। सरकार अपने को असत्य की दीवार की ओट में और संगीनों की शक्ति के पीछे सुरक्षित समझती है और शिकायतों की ओर तिरस्कारयुक्त मुद्रा से देखती है। उसे तो अटल विश्वास है कि इन अंगरेजों की सुरक्षितता के लिए, जिनकी कि वह अपने को प्रतिनिधि समझती है, कैदीयों का कैद रहना और उनके साथ दुर्व्यवहार करना आवश्यक है। बंगाल ने इसके प्रति विरोध जाहिर करने के लिए एक दिन की हड़ताल रखने का निश्चय किया है। सत्वहीन लोगों की हड़ताल की सरकार क्या परवा करती है? शक्ति के सिवा, फिर वह समशेर की हो या आत्मा की हो, वह किसी भी दलील को नहीं समझती है। पहली प्रकार की शक्ति को वह जानती है और उसका आदर भी करती है। पर दूसरी को वह नहीं जानती अतएव उससे डरती है। हमारे पास पहली प्रकार की शक्ति नहीं है। पर हमारा ख्याल था कि १९२१ में हमारे पास दूसरे प्रकार की शक्ति थी। पर अब — ?

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

कला का स्वरूप

प्र० आपके तत्वज्ञान में कला का क्या स्थान है? क्या आप यह मानते हैं कि कला साहित्य और संगीत की तरह — हमारी इन्द्रियों को संस्कारी बनाती है, विस्तृत करती है, उनकी पहुंच को बढ़ाती है सृष्टि को अधिक सुन्दर और योग्य बनाती है और इस प्रकार हमारे जीवन को अधिक शान्त और सुखमय बनाती है?

उ० यह संभव है मेरी और आपकी कला की व्याख्या जुदी जुदी हो। मेरे हिसाब से तो जितने अंशों में कला को बाह्यावलंबन होता है उतने ही अंशों में वह कला अपूर्ण होती है। बाह्य साधन जैसे बढ़ते हैं वैसे ही उसमें अधिक कृत्रिमता दाखिल होना संभव है। यह एक दृष्टि है। और दूसरी दृष्टि यह है कि सर्वोत्कृष्ट कला व्यक्तिभोग्य न होगी लेकिन सर्वभोग्य होगी। और सर्वभोग्य कला यदि बाह्य साधनों से अधिक से अधिक मुक्त होगी तभी वह सर्वभोग्य बन सकेगी। इसीलिए मैं बहुत मरतबा यह कहता हूं कि जो चंद्र और असंख्य ताराओं से प्रकाशित नभोमण्डल को देख कर जगत्कर्ता की लीला में तल्लीन हो सकता है उसे चित्रकार के हाथों से चित्रित नभोमण्डल और सूर्योदय और सूर्यास्त को देखने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। अनेक प्रकार के रंग से और चित्रों से विभूषित घर की छत की अपेक्षा उसे कुछ भी न रहेगी। वह तो प्रतिक्षण नये नये रंग धारण करते हुए, नया सौन्दर्य प्राप्त करते हुए आकाश ही से सब कुछ प्राप्त कर लेगा।

जिसे आत्मा के आनंद के साथ गानेवाले मुसाफिर का, भिक्षुक का और प्रभात के समय में पीसनेवाली का गाना सुनना प्राप्त हुआ है उसे शायद हजार रुपया लेकर दीपक, पूर्वी, मालकौंस इत्यादि की धुन जमानेवाले को सुनने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। और यह तो स्पष्ट ही है कि उपर्युक्त चित्रकार द्वारा चित्रित नभोमण्डल का उत्तम चित्र और गानेवाले उस्ताद का गाना गरीब से गरीब आदमी को प्राप्त नहीं हो सकता है परन्तु सृष्टि का नभोमण्डल और उन अशिक्षित गानेवालों का गाना तो उन्हें कहीं भी प्राप्त हो सकेगा।

इस निर्दोष, सर्वभोग्य कला को मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में बहुत बड़ा स्थान है। परन्तु मनुष्य के जीवन में ऐसा समय भी आता है कि जब वह इन्द्रियभोग्य कला से पर होने के लिए लालायित रहता है और उसके पार भी पहुंच जाता है। उसके लिए शरीर और इन्द्रिय की कला जैसी वस्तु अनावश्यक होती है; वह आत्मा की कला में मग्न हो जाता है।

प्र० तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जिस मनुष्य के बारे में आप ऐसी कल्पना कर रहे हैं उसे इन्द्रियों के द्वारा देखना, सुनना, चखना, सूंघना और स्पर्श करना, इत्यादि की कुछ भी आवश्यकता नहीं होती है? शब्द, स्पर्श रूप और गन्ध उसके लिए शून्य हो जाते हैं? और यदि इस दशा को अपना ध्येय मानें तो क्या हमें आरम्भ ही से इन्द्रियों को शिथिल और अन्ध बनाने की आदत डालनी चाहिए?

उ० मेरे इस कहने का यदि आप उतावला अर्थ करेंगे तो आप इसी अन्तिम अनुमान पर पहुंचेंगे। परन्तु जल्दी न करें। विचार कीजिए। चित्रकार के द्वारा चित्रित सूर्यास्त का आनन्द प्राप्त करने के लिए क्या हर समय उस चित्र को देखने के लिए दौड़ा जायगा? जहां सृष्टि ने मनोहर सूर्यास्त और सूर्योदय की बहार न फैलायी हो वहां तो मनुष्य चित्र देख कर ही तृप्त होंगे लेकिन जिस जगह बारहों महीने सृष्टि में होनेवाले सूर्यास्त और सूर्योदय की लीला देखने को प्राप्त होती है वहां मनुष्य सूर्योदय और सूर्यास्त के चित्रों को देखने के लिए थोड़े ही लालायित हो रहेगा। साल में जिसे कभी कोई मरतबा सूर्योदय और सूर्यास्त के दर्शन हो जाते हैं वह अपने लिए और अपने जैसों के लिए उसका रोज दर्शन करने को चित्र की रचना करता है — मूर्ति बनाता है, यह भी कह सकते हैं। परन्तु जो मूर्ति में रहे हुए भगवान का दर्शन और चिन्तन बिना मूर्ति के ही कर सकता है उसको क्या? उसी प्रकार जो अपने हृदय में नित्य निरंतर भव्य आकाश की लीला देख सकता है उसे बाह्य आकाश के चन्द्र और नक्षत्र मंडल के प्रति देखते रहने की बहुत ही कम आवश्यकता होगी। कबीर जैसे ज्ञानी ने जब यह गाया कि:

> या घट भीतर सात समुंदर,
>
> याही में नदी नारा;
>
> या घट भीतर काशी द्वारिका,
>
> याही में ठाकुरद्वारा,
>
> या घट भीतर चन्द्र सूर है,
>
> याही में नव लख तारा
>
> कहे कबीर सुनो भाई साधो,
>
> याही में सत किरतारा

उस समय क्या उन्हें बाह्याकाश के प्रति देखने की कुछ भी अपेक्षा थी? उस समय तो उनके हृदयाकाश में शब्द स्पर्श रूप, रस और गंध की सारी सृष्टि उत्पन्न हुई थी। और यही सबब है कि उन्होंने बड़े आनंद के साथ यह गाया था:

> हम से रहा न जाय, मुरलिया की धुन सुन के
>
> बिना बसन्त फूल एक फूले,
>
> भ्रमर सदा बोलाय मुर०
>
> गगन गरजे बिजली चमके,
>
> उठती हिये हिलोर;
>
> बिकसत कमल मेघ बर साजे,
>
> चितवत प्रभु की ओर मुर०
>
> ताली लागी तहां मन पहुंचा,
>
> गैब ध्वजा फहराय
>
> कहे कबीर आज प्राण हमारा,
>
> जीवत ही मर जाये मुर०

कबीर तो जुलाहा थे और 'योगः कर्मसु कौशलम्' इस न्याय से वे बड़े अच्छे जुलाहे होंगे। अपने बुने हुए थान को उन्होंने अनेक रंग से रंगा कर उसके सौंदर्य की उन्होंने प्रशंसा भी की होगी। परन्तु एक समय तो उन्हें अपने बुने हुए कपड़े का, और रंगे हुए कपड़े का सौन्दर्य देखने के बदले 'साईं' की बुनी हुई चदरियां में कला देखना प्राप्त हुआ था, 'साहब रंगरेज' की रंगी हुई चुनर में उन्हें अनुपम कला दिखाई दी थी।

झीनी, झीनी, झीनी, झीनी, झीनी चदरियां

और

साहेब है रंगरेज, चुनर मोरी रंग डारी,
भाव के कुंड नेह के जल में, प्रेम रंग दई बोर
दुःख के मेल छुटाय दे रे, खूब रंगी झकझोर—चुनर०
कहे कबीर रंगरेज पीआरे, मुझ पर हुए दयाल
शीतल चुनरी ओढि के रे, भये हो मगनमिहाल—चुनर०

कबीर बहेरे होते, अंधे होते या गूंगे होते तो भी क्या उनके आनंद में कुछ कमी हो सकती थी? सूरदासजी का चक्षुहीन होना उन्हें विघ्न रूप होने के बदले सहाय रूप था यही क्यों न कहा जाय?

परन्तु जैसे ज्ञानी को मूर्ति के दर्शन करने में कोई घृणा नहीं है, ज्ञानी तो मूर्ति के पास खड़ा रह कर वहां भी ईश्वर में तल्लीन हो कर ही खड़ा रहेगा, उसी प्रकार अन्तराकाश में से ही सब कुछ प्राप्त करनेवाले को भी बाह्याकाश देख कर तृप्त होनेवालों से घृणा नहीं होती है। वह भी बाह्याकाश को देख कर उतना ही आनन्द प्राप्त करेगा। और उसी प्रकार बाह्याकाश को देख कर आनंद प्राप्त करनेवाला भी चित्रकार द्वारा चित्रित चित्र से घृणा न करेगा। यदि चित्र ही देखने को मिले तो वह चित्र देख कर प्रसन्न होगा। तीनों स्थिति एक से एक अधिक स्वतंत्रता की है। और ये तीनों स्थितियां मनुष्य में एक समय में एक साथ भी रह सकती है—रहती है। क्योंकि हरएक मनुष्य जानमें या अनजानमें भी स्थूल से सूक्ष्म के प्रति प्रयाण करता है। परन्तु आखिर आत्मा की कला अमृत है इसमें कोई सन्देह है? बाह्य साधनों पर अथवा इन्द्रियज्ञान पर आधार रखनेवाली कला में जितनी आत्मा होती है उतने ही अंशों में वह अमृतकला के समान बनती है। और जिसमें आत्मा का बिल्कुल ही अभाव होगा वह कला न होगी किन्तु केवल कृति ही बन जायगी और क्षणभंगुर होगी। उस अमृतकला का अंश जिसमें अधिक है वह मोक्षदायी है।

प्र० आपने तो चरखे का मोक्ष के साधन के रूप में वर्णन किया है और कातने की कला को एक सुन्दर कला कह कर बयान किया है। क्या स्थूल के ऊपर आधार रखनेवाली कला भी मोक्ष का साधन हो सकती है?

उ० मैंने चरखे को सभी के लिए मोक्ष का साधन मान कर उसका वर्णन नहीं किया है। मेरे लिए तो वह मोक्ष का साधन है ही क्योंकि मेरी दृष्टि में चरखा कोई स्थूल चरखा नहीं है। मैंने तो उसके चारों ओर एक बड़ी सृष्टि की रचना की है। चरखे को गरीबों का जीवनतन्तु मान कर, उनके साथ प्रेम के *तन्तु से बांधनेवाला — ऐक्य करानेवाला — मान कर ही मैं उसे* चलाता हूं, और उसे मेरी मोक्ष-साधना का आधार मानता हूं। सभी के लिए वह मोक्ष का साधन नहीं हो सकता है, जैसे किसी अंगरेज को रामनाम में कुछ भी विशेषता न मालूम होगी परन्तु तुलसीदासजी को तो रामनामरटन के सामने सारा जगत् ही मिथ्या मालूम होता था।

इस स्थूल साधन के द्वारा मोक्ष साधा क्यों नहीं जा सकता? तंबुरे और मंजीरे की धुन में बहुतेरे भक्त भगवान के साथ तल्लीन हो जाते होंगे, उसी तरह चरखे की धुन में भगवान के साथ तल्लीन होने की मेरी कामना है।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

एक स्मरणीय विवाह

[श्री जमनालाल बजाज की पुत्री बहन कमलाबाई के विवाह का विधि गत रविवार ता २८ को सत्याग्रहाश्रम में किया गया था। रूढि और परंपरा को अधिक से अधिक पकड़ कर बैठी हुई मारवाडी कौम के अग्रगण्य नेता श्री जमनालालजी ने परंपरा का त्याग करके बड़ी सादगी के साथ, किसी भी प्रकार के आडम्बर के बिना, भोजनादिक के बड़े भारी खर्च के बिना यह विधि होने दिया इसलिए श्री जमनालालजी और उनके समधी श्री केशवदेवजी धन्यवाद के पात्र हैं इस अवसर पर श्री गांधीजी ने वर-वधू को जो आशीर्वाद दिया उसमें उसका महत्त्व स्पष्ट समझाया गया है और इस आदर्श विवाह के सम्बन्ध में उनके उद्गार प्रत्येक हिन्दू के लिए विचारणीय है।]

आप लोग, भाई और बहनें दोनों, जो बाहर से परिश्रम उठा कर रामेश्वरप्रसाद और कमला इन दोनों को आशीर्वाद देने को आये हो इससे मुझे आनन्द होता है और मैं आपको धन्यवाद भी देता हूं। धन्यवाद देने का सबब यह है कि इसको आप सामान्य विवाह नहीं समझते। हिन्दू जाति में जो विवाह होता है, उसमें बहुत आडम्बर होता है। रंग-राग, नाच-तमाशा, खाना-पीना अनेक प्रकार का प्रलोभन होता है। विवाह का धार्मिक अंश जिसके कारण विवाह करना योग्य समझा गया है, वह धार्मिक कारण छुप जाता है, हम धार्मिक अंश को भूल जाते हैं। विवाह में पैसे का व्यय इतना अधिक होता है कि गरीबों को विवाह करना आपत्ति सी हो जाती है। कई लोग कर्जदार हो जाते हैं, और उस कर्ज में से जन्म भर भी उनके लिए छूटना मुश्किल हो जाता है, ऐसे विवाह से वर और कन्या दोनों गृहस्थाश्रम में धर्म-विधि का पालन करे यह आकाशपुष्पवत् हो जाता है। जिसमें इतना आडम्बर होता है और जो विवाह-विधि इतनी विकारमय होती है और जिसे विकारमय बनाने के लिए माता-पिता इतना परिश्रम उठाते हैं उससे वर और कन्या संयममय जीवन व्यतीत करें यह मुश्किल बात है। यद्यपि इस आश्रम का आदर्श यह है कि विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और उसी प्रकार कुछ लोग रहते भी हैं। बालक और बालिकाओं को ब्रह्मचर्य की शिक्षा और पदार्थपाठ दिये भी जाते हैं। ऐसा होते हुए भी आश्रम के नजदीक और उसकी छाया में विवाह किया जाता है इसका कारण क्या? इसको धर्म-संकट माना जाय। अहिंसा का पालन करने वाले किसी पर बलात्कार नहीं करते। आश्रमवासियों में से जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते उनके लिए विवाह करना कर्तव्य ही है। और इस कर्तव्य को करने में हम उनको आशीर्वाद क्यों न दें? और विधि भी अच्छी क्यों न बनावें? यह भी कर्तव्य है और इसके पालन करते हुए और सोचते हुए मैंने यह देखा है कि हिन्दुस्तान में *अथवा सारे संसार में जहां विवाह में धार्मिक विधि मानी जाती है* वहां उसमें संयम का अंश होता है। विवाह स्वेच्छाचार के लिए नहीं है, स्मृतियों में भी लिखा है कि जो दम्पती नियम से रहते हैं वे भी ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। मैंने भी इसको बहुत समय तक नहीं समझा था। पर बहुत विचार करने के बाद मैं

समझ सका। जो अपने विकारों का नाश नहीं कर सकते वे मर्यादा में रह कर विकारों पर अंकुश रखते हुए अनिवार्य इतना ही व्यवहार कर सकते हैं। वे भी संयमी कहलाते हैं। जमना-लालजी का और मेरा जो सम्बन्ध है वह तो आप खूब जानते ही हैं। हम दोनों में यह निश्चय हुआ कि जितनी सादगी से और कम खर्च से विवाह कर सकें करना चाहिए। इस तरह से विवाह की क्रिया करनी चाहिए कि जिससे दोनों पर ऐसा प्रभाव पड़े कि वे विवाह का सच्चा अर्थ समझ सकें। विवाह को आडम्बर रहित बनाना, भोजनादि को और गानतान को स्थान नहीं देना ऐसा अच्छी तरह से कहां हो सकता है? अगर बम्बई में किया जाय तो मारवाड़ी समाज को और जमनालालजी के मित्रों को इससे पाठ मिलेगा। आजकल सुधारों के नाम से जो अधर्म चल रहा है, वह वायु नष्ट हो जायेगा। जो धर्म समझना चाहें उनके लिए दृष्टान्त हो जायेगा। परन्तु मुझे यह भय था कि जितनी सादगी के साथ यहां विवाह हो सकता है उतनी सादगी के साथ वहां नहीं हो सकेगा। इसकी दलीलों में मैं उतरना नहीं चाहता। इसी कारण से मैंने वर्धा को भी छोड़ दिया और बम्बई को भी छोड़ दिया। परन्तु इस कार्य को कैसे किया जाय? जमनालालजी और उनके मातापिता की सम्मति से ही काम नहीं चल सकता था। रामेश्वरप्रसाद के बड़ील वर्ग की भी सम्मति की जरूरत थी। प्रभु का अनुग्रह था कि केशवदेवजी ने भी इसे स्वीकार कर लिया। मारवाड़ी समाज में धन बहुत है और खर्च भी अधिक होता है। इतना अधिक कि गरीबों को विवाह करना अशक्य सा हो जाता है और उन पर बोझ पड़ता है। विवाहों में फुलवाड़ी, भोजन, आतिशबाजी और नाइकाओं का नाच होता है। मैं नहीं जानता कि मारवाड़ी लोगों में नाच होता है या नहीं परन्तु गुजरात के धनिक लोगों में तो कहीं कहीं होता है। इसका असर सारे मारवाड़ी समाज पर, और मारवाड़ी समाज हिन्दू जाति का एक अंश है इसलिए उस पर भी, इतना ही नहीं, बल्कि मुसलमान इत्यादि जातियों पर भी पड़ता है। हां, मैं यह मानता हूं कि उन अन्य जातियों पर थोड़ा पड़ता है। इससे आप सोच सकते हैं कि धनिक लोगों पर कितना बोझ है। परन्तु जो धनवान लोग धन कमाने में मस्त हैं, और अहंकार से ईश्वर को भूल गये हैं, उनकी बात दूसरी है। मारवाड़ी लोगों में धन है। दुराचार होते हुए भी धर्म के लिए प्रेम है। यह बात मैं खूब जानता हूं। धर्म के लिए वे प्रति वर्ष लाखों रुपये देते हैं। इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिए हम दोनों ने सोचा कि बिलकुल सादगी से विवाह किया जाय। इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों हैं। जमना-लालजी और केशवदेवजी का, रामेश्वरप्रसाद और कमला का भला सोचना यह तो स्वार्थ, और दूसरों को मार्ग बताना यह परमार्थ। आप देखेंगे कि इस विवाह में आडम्बर नहीं होगा। नाच-गान नहीं होगा, विवाह के समय केवल धार्मिक विधियां ही की जायेंगी। आप लोगों को निमन्त्रण इस भाव से दिया गया है कि आप इसके साक्षी हों और इसमें आप सम्मत हों और ऐसी प्रतिज्ञा करें कि आप इसका अनुकरण करेंगे। सम्भव है कि मेरी इसमें भूल हो और आप ऐसा करना पसंद न करें। हिन्दुस्तान में चन्द धनिक लोग होने से यह धनिकों का देश नहीं हो जाता। यह कंगालों का मुल्क है। यहां पर कितने लोग भूख से मरते हैं और समय पर अन्न न मिलने से व्याधि-ग्रस्त हो जाते हैं और भूख सहने से कमजोर बन जाते हैं उतने दुनिया के और किसी देश में नहीं। यह मेरा कहना नहीं है मगर इतिहासकारों का कथन है — हिन्दू मुसलमान इतिहासकारों का नहीं, — राज्यकर्ता के कौम के लोगों का यह कथन है। ऐसे कंगाल मुल्क के करोड़पतियों को भी ऐसा काम करने का अधिकार नहीं है जिससे कंगालों के पेट में दर्द हो। धनिक लोग हिन्दुस्तान में ही धन कमाते हैं। वे बाहर से धन कमाकर धनवान नहीं होते। यों तो बाहर के लोगों को दुःख देकर धन कमाना भी महापाप है। जितने करोड़पति या लखपति हिन्दुस्तान में हैं वे कंगालों को और भी कंगाल बनाते हैं। हिन्दुस्तान के सात लाख देहात हैं। उनमें से कई का नाश हो रहा है। उनका खून चूसा जा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जिनको एक समय भी खाने को नहीं मिलता वे लोग मर जाते हैं। इस देश में पशु और मनुष्य दोनों मरते हैं। ऐसी हालत में इतना ही धन खर्च करना चाहिए जो धर्म के लिए अनिवार्य हो। और बचा हुआ धन परोपकार में व्यय करें जिससे हिन्दुस्तान के कंगालों का भी भला हो और धनिकों का भी भला हो। इस दृष्टि से हम देखें तो यह विवाह अनुकरणीय है। यह एक सामान्य सुधार नहीं है। इसकी जड़ खूब भीतर जाती है। और इसका परिणाम भी अच्छा ही होगा। इस तरह का कार्य अगर गरीब करेगा तो भी उसका काम तो होगा ही, पर इतना प्रभाव नहीं पड़ेगा। जमनालालजी दस हजार, बीस हजार, और पचास हजार भी फेंक दे सकते हैं। और उनके मारवाड़ी भाई भी यह कहेंगे कि कैसा अच्छा विवाह किया! परन्तु उन्होंने धन होते हुए भी उसका उपयोग नहीं किया। अपने अधिकार को छोड़ दिया। इसका परिणाम अच्छा ही होगा। कारण गीताजी में भी लिखा है कि श्रेष्ठ लोग जो करते हैं उसका अनुकरण दूसरे लोग करते हैं। यह सच्चा और अनुभवसिद्ध वाक्य है। मैंने आपका अनुग्रह माना है और मैं आपको धन्यवाद देता हूं। आप कमला और रामेश्वरप्रसाद दोनों को आशीर्वाद देंगे। दूसरे भी ऐसा करेंगे तो अच्छी बात होगी। ऐसा करने से स्वतः ही मुल्क की और धर्म की सेवा होगी। रामेश्वरप्रसाद और कमला दोनों यहां पर हैं ऐसा मैं जानता हूं। दोनों समझते हैं। रामे-श्वरप्रसाद समझता ही है और कमला भी इस उमर की हो गई है कि उसके मा-बाप उसको भिन्न कैसी समझ सकते हैं। इन दोनों को समझना चाहिए कि इनके मातापिता जो इतना परिश्रम कर रहे हैं, इतने लोग साक्षी बनने के लिए यहां आ गये हैं, यह विवाह स्वच्छन्द के लिए नहीं। विकार का गुलाम बनने के लिए नहीं। यह दम्पती आदर्श दम्पती बने; उनके ऊंचे भाव बढ़ाने के लिए ही यह सब कर रहे हैं। गृहस्थाश्रम में भी विकार को दबाने का मौका है। शास्त्र तो यह बताता है कि केवल प्रजा की इच्छा होने पर ही विकारवश हो सकते हो। इसको हम भूल गये हैं। और हमको यह बात कोई बतलाता नहीं। रामेश्वरप्रसाद को यह बात मैं बतलाना चाहता हूं कि स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं है। वह अर्धांगिनी है, सहधर्मिणी है। उसको मित्र समझना चाहिए। रामेश्वरप्रसाद स्वप्न में भी कमला को गुलाम न समझे। हिन्दूधर्म में भी ऐसे लोग अभी हैं जो स्त्री को अपना माल समझते हैं। ये दोनों नये जीवन में प्रवेश करते हैं। मैंने एक बार कहा है यह तो एक नया जन्म है। यह दम्पती शिव-पार्वती या सावित्री-सत्यवान या सीता-राम के समान आदर्शभूत हो। हिन्दूधर्म ने स्त्रियों को इतना उच्च स्थान दिया है कि हम सीता-राम कहते हैं राम-सीता नहीं, राधा-कृष्ण कहते हैं कृष्ण-राधा नहीं। अगर सीता नहीं होती तो राम को कोई नहीं जानता। अगर सावित्री नहीं होती तो सत्यवान का नाम भी कहीं सुनाई न देता। अगर द्रौपदी न होती तो पाण्डवों का पता भी न चलता। ज्यादा बोलने की जरूरत नहीं है।

मेरा विश्वास है कि यह कार्य हमको परिणामकारक होगा। मुझको ऐसा सोचने का मौका नहीं आने पावे कि मैंने कैसा अकार्य किया। अभी मेरे आयुष्य के शेष दिन रहे हैं उसमें मैं ईश्वर से डरकर चलना चाहता हूं। जो कुछ करता हूं अपनी अन्तरात्मा को पूछ कर करता हू। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि यह दम्पती हमारे लिए आदर्श होगी हमको पश्चाताप का कोई मौका नहीं देगी। अन्त में मैं इन दोनों को आशीर्वाद देता हू कि ये दोनों दीर्घायु हों और अपने वडिलों को भी सुशोभित करें और धर्म की रक्षा तथा देश की सेवा करें।

बादशाही क्रोध

वर्तमानपत्रों में प्रकाशित समाचारों से मालूम होता है कि शहेनशाह ज्यार्ज विलायत में जो आजकल हुन्नर उद्योग का प्रदर्शन हो रहा है उसे देखने के लिए गये थे। वहां उन्होंने देखा कि जिस विभाग में इग्लैण्ड के टाइपराइटर दिखाये गये थे वहीं एक सरकारी कर्मचारी अमेरिका के बने हुए टाइपराइटर पर कागज टाइप कर रहा था। यह देखकर उन्हें बडा क्रोध हुआ और उन्होंने पूछा: "यदि अंगरेजी टाइपराइटरों की आवश्यकता इग्लैण्ड के बाहर होती है तो इग्लैण्ड में अमरिका के बने टाइपराइटर क्यों इस्तेमाल किये जाते हैं?' एक अधिकारी ने इसकी जांच करने की प्रतिज्ञा की और उन्हें शान्त करने का प्रयत्न किया लेकिन शहेनशाह शान्त न हुए और उन्होंने कहा कि 'इसकी मुझे स्वयं जांच करनी होगी'। अंगरेजी टाइपराइटर बनानेवाले ने कहा: "यदि सरकारी आफिसों में अंगरेजी टाइपराइटर दाखिल किया जाय तो प्रति टाइपराइटर मैं कम से कम एक मनुष्य को तो अवश्य ही रोजी दे सकता हूं?" इसपर टीकाटिप्पणी करते हुए विलायत के वर्तमानपत्र कहते हैं कि जहां आम की सभा कुछ भी नहीं कर सकी है वहां बादशाह की सत्ता और क्रोध काम कर जायगा।

हमें शायद यह मालूम हो कि जो इग्लैण्ड सारी दुनिया में अपना माल भेजता है वह यदि अमरिका के टाइपराइटरों का इतना द्वेष करे तो यह शायद अनुचित है। परन्तु यदि हम बादशाह की दृष्टि से विचार करें तो यह क्रोध वास्तविक प्रतीत होगा। इसका बचाव इस तरह किया गया था कि अमरिका के टाइपराइटर विलायती टाइपराइटर के बनिस्बत अच्छे हैं इसलिए सरकारी आफिसों में उनका इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन राजा चतुर थे, वे समझ गये कि इस प्रकार परायी चीज अच्छी देख कर अपनी चीज फेंक नहीं दी जा सकती है। परायी वस्तु अच्छी हो तो वह उसीको शोभा देगी जिसकी कि वह है। यदि हमसे बन पडे तो हम उसका अनुकरण करें लेकिन यदि यह न हो सके तो जैसा भी हम बना सके हमें उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। बादशाह को सहज ही यह दलील सूझी होगी। वह चाहे जो हो, लेकिन यदि हम इस किस्से से कुछ उपदेश ग्रहण करना चाहें तो हम उससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। अमरिका के टाइपराइटर सरकारी आफीसों में बहुत तो एक हजार के करीब होंगे। उनको निकाल कर विलायती टाइपराइटर दाखिल किये जायं और उस टाइपराइटर के मालिक की बात सच हो तो एक हजार अंगरेजों को रोजी मिल सकती है। लेकिन यदि हिन्दुस्तान में हमलोग बादशाह ज्यार्ज के समान चतुर हों, उन्हीं के समान देश के प्रति प्रेम रखते हों और उन्हीं की तरह हम अपने ही ऊपर क्रोध करें तो एक हजार का ही नहीं बल्कि करोडों भूखों मरनेवालों का पेट भरा जा सकता है। और यह चीज जारी है। बिना परिश्रम के, समझ कर करकसर करके और खर्च बढाये बिना ही हरएक स्त्री या पुरुष खादी का उपयोग करे तो इतना परिवर्तन करने पर ही वह कम से कम एक मनुष्य को एक महीने की रोजी दे सकता है। क्योंकि प्रति मनुष्य कपडे का सामान्य खर्च प्रतिवर्ष ८) होता है। इसमें ५) तो मजदूरी के ही जाते हैं और हिन्दुस्तान में करोडों मनुष्यों को इतने रुपये मिलते भी नहीं है। हिन्दुस्तान की वार्षिक आमदनी प्रति मनुष्य ३०) गिनी जाती है। यह तीस वर्ष पहले का अन्दाज है। मंहगी के कारण आज कुल ४०) मिलते हैं। लेकिन खर्च भी तो बढा हुआ है। इसलिए ३०) आज भी गिने जायं तो कोई भूल न होगी। लेकिन कोई भी अंक क्यों न लिया जाय, ५) की रकम एक मनुष्य की एक महीने की रोजी से अधिक ही है। और इतना बडा पुण्य संपादन करने के लिए राष्ट्र को सिर्फ अपनी भावना, अपना शौक बदलने की ही आवश्यकता है। विलायत के या मिल के अच्छे मुलायम कपडे का दर्जा गरीबों के हाथ से कते हुए सूत के, उनके हाथ की बुनी खादी के बनिस्बत हमेशा ही कम रहेगा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

चरखा-संघ की नयी शाखा

चरखा-संघ के नियमानुसार १८ साल से कम उमरवाले लडके व बच्चे, दूसरे नियमों का पालन करने पर भी अब तक सभ्य नहीं बन सकते थे और उनका सूत भेट में ही जमा किया जाता था। इससे बहुत से लडके, बच्चे पत्र द्वारा बार बार पूछा करते थे कि उनका नाम सभासदों में क्यों नहीं लिखा जाता। इस विषय में विचार करते करते पिछली चरखा-संघ की बैठक में यह निश्चित किया गया कि १८ बरस से कम उमरवाले लडके लडकियां भी जो कि नियमपूर्वक खादी ही पहननेवाले हों, अपना ही कांता हुआ १००० गज मासिक सूत भेजने से चरखा-संघ के सभासद बन सकेंगे। इसमें हेतु यह रहेगा कि लडके लडकियां नियमितता सीख सकेंगे और देश के गरीब लोगों के साथ एक प्रकार का नाता बांध सकेंगे। इसके सिवाय कातने की कला से आंख व अंगुलियों को तालीम तो मिलेगी ही।

सभासद होनेवाले नौजवानों से आशा रखी जायेगी कि वे रोज कम से कम आधा घण्टा कातेंगे और इस काम के लिए अगर वे कोई खास नियत समय रख छोडेंगे तो इससे उन्हें अभ्यास, व दूसरे हरेक काम में भी नियमित होने की प्रेरणा होगी। उन्हें अपने चरखे सुव्यवस्थित रखने पडेंगे, उनको कुछ कुछ सुधारना भी सीखना पडेगा और धीरे धीरे धुनने व पूनी बनाने की कला भी जान लेना होगा। इन सारी क्रियाओं में अगर काम करने में जी लगे तब तो कुछ ज्यादा वक्त नहीं लगता।

पाठशाला जानेवाले लडके लडकियां तो चरखे के बदले तकली का उपयोग करें तो बेहतर होगा। इतना निश्चित हो चुका है कि तकली पर फी घण्टा ८० गज तो आसानी से कांता जा सकता है। इसलिए रोजाना आधा घण्टा कातने से महीने में १००० गज बिना दिक्कत सूत तैयार किया जा सकेगा।

आशा है कि अपने अपने संरक्षकों की इजाजत ले कर बहुत से लडके और लडकियां इसमें अपना नाम लिखावेंगे। पाठशालाओं में तो अगर शिक्षक लोग लडकों का सूत इकट्ठा कर के हरेक पर उनका नाम वगैरह लिख कर एक साथ पारसल कर के भेज दें तो खर्च की बचत होगी।

सूत भेजने का पता--शिक्षण विभाग चरखासंघ, साबरमती।

सूत पर लिखने की बातें:--भेजनेवाले का नाम, उम्र, ठिकाना, सूत की लंबाई, वजन व अंक।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हमारी शर्मे

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २८

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, फाल्गुन शुदी १३, संवत् १९८२ २५ गुरुवार, फरवरी, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १२

जाति–बहिष्कृत

माता की आज्ञा और आशीष पा कर, और कुछ महीनों का बालक पत्नी के साथ छोड कर मैं उत्साहपूर्वक बम्बई पहुंचा। मैं वहां पहुंचा तो सही परन्तु मित्रों ने मेरे बडे भाई से कहा कि जून और जुलाई के महीनों में हिन्दी महासागर में बडा तूफान रहता है और समुद्र की मेरी यह पहली ही सफर होने के कारण मुझे दीवाली बीतने के बाद नवम्बर के महीने में ही बिदा करना चाहिए। और किसीने तूफान में स्टीमरों के डूब जाने की भी बात की थी। यह सुन कर बडे भाई जरा घबराये। उन्होंने ऐसा जोखिम उठा कर मुझे उस समय भेजने से इन्कार किया और मुझे बम्बई में मित्रों के साथ छोड कर वे अपनी नौकरी पर राजकोट चले गये। रुपये वे हमारे एक बहनोई के पास छोड गये थे और मुझे मदद करने के लिए मित्रों से सिफारिश करते गये थे। बम्बई में मुझे दिन बडे से मालूम होने लगे और विलायत के ही स्वप्न आते थे।

परन्तु इस दरम्यान जाति में बडी खलबली मची। पंचायत बैठी। अब तक कोई मोढ बनिया विलायत नहीं गया था और इसलिए यदि मैं विलायत जाऊं तो मेरी खबर लेनी चाहिए! मुझे जाति की पंचायत में हाजिर रहने के लिए कहा गया। मैं वहां गया मुझे यह खबर नहीं है कि उस समय मुझ में यकायक कहां से हिम्मत आ गई थी। मुझे वहां हाजिर होने में न संकोच मालूम हुआ न डर। जाति के मुखिया कुछ दूर के रिश्तेदार भी होते थे। मेरे पिताजी के साथ उनका निकट परिचय था। उन्होंने मुझसे कहा:

"जाति का खयाल है कि विलायत जाने का तुम्हारा विचार उचित नहीं है। हमारे धर्म में समुद्र पार करने की मनाई है। और हमलोग यह भी सुनते हैं कि विलायत जा कर धर्म की रक्षा नहीं की जा सकती। वहां साहब लोगों के साथ खाने पीने का व्यवहार रखना पडता है।"

मैंने उत्तर दिया: "मेरे खयाल से विलायत जाने में जरा भी अधर्म नहीं है। मुझे तो वहां जा कर विद्याभ्यास करना है। और जिन बातों का आपको भय है उनसे दूर रहने की तो मैंने अपनी माताजी के समक्ष प्रतिज्ञा की है। इसलिए मैं उनसे दूर रह सकूंगा।

'लेकिन हम तुमसे यह कहते हैं कि वहां धर्म की रक्षा नहीं हो सकती है। तुम जानते हो कि तुम्हारे पिताजी के साथ मेरा कैसा परिचय था। तुम्हें मेरी आज्ञा माननी चाहिए।' सेठ बोले।

'आप का मेरे पिताजी के साथ जैसा परिचय था उसे मैं जानता हूं। आप मेरे पूज्य हैं लेकिन इस विषय में मैं लाचार हूं। मेरा विलायत जाने का निश्चय मैं न बदल सकूंगा। मेरे पिताजी के मित्र और सलाह देनेवाले जो एक विद्वान ब्राह्मण हैं वे यह मानते हैं कि मेरे विलायत जाने में कुछ भी दोष नहीं है। मेरी माताजी और बडे भाई की आज्ञा भी मुझे प्राप्त हो गई है।' मैंने उत्तर दिया।

'लेकिन जाति का हुक्म तुम न मानोगे?'

मैं असमर्थ हूं। मेरे खयाल से तो जाति को इस विषय में बीच में न पडना चाहिए।

इस उत्तर से सेठ को क्रोध हुआ। उन्होंने मुझे दो चार सुना दी। मैं स्वस्थ बैठा रहा। सेठ ने हुक्म दिया:

"यह लडका आज से जातिबाहर समझा जायगा। जो कोई इसे मदद करेगा या पहुंचाने जायगा उससे जाति जवाब तलब करेगी और १।) जुरमाना होगा।

इस निर्णय का मुझ पर कुछ भी असर न हुआ। मैंने सेठ से अपने मुकाम पर जाने के लिए इजाजत मांगी। इस निर्णय का मेरे भाई पर क्या असर होता है इसका विचार करना आवश्यक था। यदि वे डर जायगे तो? सद्भाग्य से वे दृढ बने रहे और मुझे लिखा कि जाति का ऐसा निर्णय होने पर भी मैं तुम्हें विलायत जाने से न रोकूंगा।

इस घटना के बाद मैं बडा अधीर हो गया था। यदि बडे भाई पर दबाव डाला जायगा तो? और दूसरा कोई विघ्न आयेगा तो? इस प्रकार चिन्ता ही चिन्ता में मैं दिन व्यतीत कर रहा था कि यह समाचार मिले कि ४थी सितम्बर को जानेवाले स्टीमर में जूनागढ के एक वकील बेरिस्टर बनने के लिए विलायत जा रहे हैं। बडे भाई ने जिन मित्रों से मेरी सिफारिश की थी उनसे मैं मिला। उन्होंने भी ऐसा साथ न छोडने की सलाह

हो। समय बहुत ही कम था। मैंने भाई को तार दिया और आने के लिए इजाजत मांगी। उन्होंने इजाजत दे दी। मैंने बहनोई से रुपये मांगे, उन्होंने जाति के हुक्म की बात कही। जाति से बहिष्कृत होने के लिए वे तैयार न थे। हमारे कुटुम्ब के एक मित्र के पास मैं पहुंचा और उनसे प्रार्थना की कि वे मुझे किराया इत्यादि के लिए कुछ रुपये दें और बड़े भाई से फिर उसे वसूल कर लें। उस मित्र ने यह स्वीकार कर लिया। यही नहीं उन्होंने मुझे हिम्मत भी दी। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। उनसे रुपये लेकर टिकट खरीदा। विलायत के सफर का सब सामान तैयार करना था। एक दूसरे अनुभवी मित्र थे। उन्होंने सामान तैयार करवाया। मुझे यह सब बड़ा विचित्र मालूम हुआ। कुछ बातें पसन्द आयी और कुछ तो बिल्कुल ही पसन्द न आयी थी। नेकटाई जिसे मैं पीछे से शौक से पहनता था उस समय बिल्कुल ही पसन्द न आयी थी। छोटा सा जाकेट पहनना नंगा पोशाक मालूम हुआ। लेकिन विलायत जाने के शौक की तुलना में ऐसी नापसन्दगी का कुछ भी हिसाब न था। खानेपीने की चीजें भी अच्छे परिमाण में साथ ली थीं।

मित्रों ने मेरे लिए त्र्यंबकराय मजमुदार (जूनागढ के उन वकील का नाम है) की खोली में ही जगह रक्खी थी। उनसे मेरे लिए सिफारिश भी की थी। वे तो प्रौढ वय के अनुभवी गृहस्थ थे। मैं अठारह साल का अनुभव-रहित युवक था। मजमुदार ने मित्रों को मेरी चिन्ता न करने के लिए कहा।

इस प्रकार १८८८ के सितम्बर की ४ तारीख को मैंने बम्बई छोड़ा था।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

एक विद्यार्थी के प्रश्न

एक भारतीय ईसाई जो लंका (सीलोन) में जा बसे हैं और अभी संयुक्त प्रान्त अमरीका में अध्ययन कर रहे हैं, लिखते हैं:

"मैं जब से कोलम्बो में था तब से आज तक अन्तिम कुछ महीनों को छोड़ करके इतने साल तक आपके कार्यों का और हलचल का बराबर अध्ययन करता चला आ रहा हूं। हाल तो मैं संयुक्त प्रान्त अमरीका में यं. मे. क्रि. ए. कालेज में अपने निवासस्थान सीलोन में कार्य करने के लिए तैयार होने के लिए अध्ययन कर रहा हूं।

लेकिन इन अन्तिम कुछ महीनों से जब से मैं सीलोन छोड़ कर यहां आया हूं, मुझे भारत में आपके कार्यों का कुछ भी समाचार नहीं मिलता है और इसलिए जब आपके और आपके कार्य के बारे में मुझसे प्रश्न किये जाते हैं तो मैं कुछ बातों का निश्चय नहीं कर सकता हूं। इसलिए मैं आपको यह पत्र लिखने की धृष्टता करता हूं। यहां के पत्र-पत्रिकायें आपके कार्य के सम्बन्ध में मुख्तलिफ बातें लिखते हैं इसलिए मुझे अपनी और मेरे अमरिकन मित्रों की जानकारी के लिए आपके कार्यों का सच्चा वृत्तान्त आपसे ही पूछना पड़ता है।"

जो प्रश्न पूछे गये हैं उनमें से कुछ का तो इस पत्र में उत्तर दिया जा चुका है। लेकिन वे इतने सामान्य उपयोग के हैं कि उन्हें दुहराना भी उचित ही होगा। उनका पहला प्रश्न यह है:

'ईसा मसीह के उपदेशों के सम्बन्ध में आपका क्या खयाल है?'

मेरी दृष्टि में उनका नैतिक मूल्य बहुत भारी है। लेकिन इंजिल में जो कुछ भी कहा गया है उसे मैं ईश्वर का अन्तिम शब्द नहीं मानता हूं, न यह कि उसमें सब बातें आ जाती हैं या उसकी सब बातें नैतिक दृष्टि से स्वीकार्य हैं। मानवजाति के सब से महान् उपदेशकों में से ईसा मसीह को मैं एक मानता हूं। लेकिन मैं उन्हें ईश्वर का एकमात्र पुत्र नहीं मानता। इंजिल के बहुत से वाक्य तो गूढ़वादियों से है। मेरी दृष्टि में शब्दार्थ से नाश होता है और तत्त्व से जीवन प्राप्त होता है।

दूसरा प्रश्न है: क्या आप जातिभेद को मानते हैं? यदि मानते हैं तो आप की दृष्टि में उसका क्या मूल्य है?

मैं जातिभेद को जैसा कि आज यह है नहीं मानता हूं। लेकिन चार मुख्य वृत्तियों के कारण जो वर्ण के चार मुख्य भेद हैं उन्हें मैं अवश्य मानता हूं। वर्तमान असंख्य जातियां या उसकी कृत्रिम मर्यादा और विशाल आडम्बर धार्मिकता के विकास को हानि पहुंचाते हैं। उससे हिन्दुओं के सामाजिक स्वास्थ्य को भी हानि पहुंचती है और इसलिए उसके पड़ौसियों की भी हानि होती है।

तीसरा प्रश्न है: "आप की क्या यह इच्छा है कि भारतवर्ष को बृटिश साम्राज्यान्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त हो या उसे सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो और ब्रिटिश सरकार के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध न रहे? यदि आपकी इच्छा यह है कि भारत को सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो तो ब्रिटिश तंत्र के बदले उसका स्थान ग्रहण करने के लिए आपने कैसा तंत्र सोच रक्खा है?"

यदि वह सच्चा हो और नाममात्र का न हो तो ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति से भी मैं सन्तोष मान लूंगा। केवल ब्रिटेन का सम्बन्ध त्याग करने के लिए ही मेरी इच्छा उसके साथ का तमाम सम्बन्ध त्याग करने की नहीं है। लेकिन यदि मुझ में उतनी शक्ति होती तो मैं वर्तमान अस्वाभाविक और हानिक स्थिति का नाश एक क्षण का भी विलंब किये बिना कर देता क्योंकि उससे राष्ट्र का सम्पूर्ण विकास होने में बाधा पहुंचती है। इसलिए ब्रिटेन के साथ एकमात्र ऐसा सम्बन्ध रखने की मेरी इच्छा है और जिस सम्बन्ध को मैं मूल्यवान समझता हूं वह सम्पूर्ण स्वतंत्र और स्वेच्छा से किया हुआ समान साहचर्य का सम्बन्ध है। यदि यह सम्बन्ध टूट गया तो भी भारत में स्वाभाविक तौर पर लोगों की प्रकृति के अनुकूल प्रजातंत्र राज्य ही होगा। एक मनुष्य की इच्छा से नहीं बल्कि लाखों मनुष्यों की इच्छा से ही उसकी स्वरूप-रचना की जायगी।

चौथा प्रश्न है: "देशी राज्य और उसके राज्यकर्ताओं के प्रति आपका व्यवहार कैसा है?"

देशी राज्य और उनके राज्यकर्ताओं के प्रति मेरा सम्पूर्ण मित्रता का व्यवहार है। मैं चाहता हूं कि उनके राज्यतंत्र में सर्वथा सुधार हो जाय। बहुत से देशी राज्यों की हालत बड़ी शोचनीय है लेकिन सुधार भीतर ही से होना चाहिए और यह तो राज्यकर्ता और प्रजा के सम्बन्ध को एक सूत्र में लाने का सवाल है आसपास के प्रान्तों के अधिक शिक्षित जनसमाज की राय का उन पर जो कुछ दबाव पड़े वह पड़ेगा जैसा कि पड़ना लाजिमी है।

पांचवा प्रश्न है: 'संयुक्त राज्य अमरिका की पद्धति पर भारत का संयुक्त राज्यतंत्र बनाया जाय तो क्या आपको यह पसंद होगा?'

यह तुलना खतरनाक है। अमेरिका के संयुक्त राज्यों में जो बात उपयोगी हो सकती है वह शायद भारत को उपयोगी न हो। लेकिन इसका खयाल रखते हुए अन्तिम राज्यतंत्र तो मेरे खयाल

है भाषा के आधार पर बने हुए प्रान्तों का स्वतंत्र और स्वास्थ्य कर संगठन ही होगा।

छठा प्रश्न यह है: 'यहां के वर्तमानपत्रों में प्रकाशित होनेवाले बहुत से लेखों में यह लिखा होता है कि आप बहुत सी बातों में डा. टागोर से भिन्न अभिप्राय रखते हैं और उनमें और आप में अन्तर पड गया है। क्या यह सच है? यदि हां, तो किन बातों के कारण यह मतभेद हुआ है।'

मेरा डा. टागोर से बहुत सी बातों में मतभेद नहीं है। कुछ बातों में मतभेद अवश्य है। यदि मतभेद न होता तो यह आश्चर्य की बात होती। लेकिन उससे या और किसी कारण से भी हमलोगों में केवल कोई अन्तर ही नहीं पड़ा है बल्कि हम लोगों में सच्चा दिली रिश्ता हमेशा रहा है और अब भी है। हमलोगों में बौद्धिक मतभेद होने के कारण तो हमारी मित्रता बेशक और भी अधिक गहरी और सच्ची हैं।

सातवां प्रश्न है: "अभी आप भारत में क्या कर रहे हैं? क्या आपने राजनीति और राजनैतिक नेतापन का त्याग कर दिया है?"

अभी तो मैं खादी कमाई से प्राप्त विश्राम का उपभोग कर रहा हूं और उसीके साथ अ० भा० चरखा संघ के कार्य का विकास कर रहा हूं: यही एक अखिल भारतीय हलचल है, जिसमें मेरा ध्यान लगा हुआ है। जिस वर्ष के लिए मैं महासभा का प्रमुख था उसके खतम होते ही मेरा राजनैतिक नेतापन भी समाप्त हो गया। बल्कि सच पूछा जाय तो मेरे जेल जाने बाद ही उसकी समाप्ति हो गई थी। लेकिन राजनीति की मेरी व्याख्या के अनुसार तो मैंने उसका त्याग नहीं किया है। दूसरे किसी प्रकार से तो मैं कभी राजनीतिज्ञ था ही नहीं। मेरी राजनीति का संबंध आन्तरिक विकास के साथ है। परन्तु उसका रूप विश्वव्यापी होने के कारण बाह्य वस्तुओं पर उसका बहुत बड़ा असर होता है।

आठवां प्रश्न है, "यहां पर मैंने बहुत कुछ वर्णद्वेष फैला हुआ पाया है और कभी कभी तो हमें अपने वर्ण के कारण बड़ी तकलीफें उठानी पड़ती हैं। ऐसी हालत में आप मुझे क्या करने की सलाह देंगे। क्या मैं उसके संबंध की सब बातें लोगों की जानकारी के लिए अपने देश को लिख कर भेजूं तो यह उचित होगा? अथवा जब कभी मुझे सार्वजनिक व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रण मिले तब क्या यह उचित होगा कि मैं यहां के संयुक्त राज्य के लोगों को ही स्वयं यह सब बातें कह सुनाऊं?"

मेरी सलाह तो यह है कि जब वहां गये हो तो वर्णद्वेष की बातों को भूल कर ही वहां रहना चाहिए। लेकिन जहां किसी भी प्रकार से स्वमान को हानि पहुंचती हो वहां भी जान से उसका सामना करना चाहिए। जिन लोगों को प्रतिकूल वायुमण्डल में रहना और फिर भी अपने स्वमान की रक्षा करना है उनके भाग्य में तकलीफें तो बदी हुई हैं ही। उसके सम्बन्ध की बातें यदि आप कटुता और अत्युक्ति को छोड़ कर लिखेंगे तो कहीं भी आप उसे प्रकाशित करावें, अवश्य यह उचित ही समझा जायगा। जब कभी मौका मिले, तब संयुक्त राज्य के लोगों को अपनी तकलीफें सुनाना ही बहुत उत्तम बात होगी।

नवां प्रश्न है: "यहां के विद्यार्थियों के लिए क्या आप एक छोटा सा सन्देश भेजेंगे? सामान्य तौर पर वे बड़े अच्छे लोग हैं और वे यं. मैं. क्रि. ए. के कार्य को जीवन अर्पण करने की तैयारियां कर रहे हैं।"

यदि आपका मतलब भारतीय विद्यार्थियों से है तो मेरी नम्र सलाह यह है "इस दूर विदेश में आपमें जो कोई उत्तम बात हो उसे व्यक्त करो जिससे आपके जीवन आपके पड़ोसियों के लिए अनुकरणीय बन जाय। पश्चिम में जो कुछ देखो उन सब का अनुकरण महज गुलाम की तरह न करो। और आप ईसाई विद्यार्थियों की तरफ से लिखते हैं इसलिए बाइबिल से इस वाक्य को उद्धृत करने का मुझे लोभ होता है—"प्रथम तुम ईश्वर का राज्य और उसकी पवित्रता ढूंढो और फिर सब बातें आपको स्वयं प्राप्त हो जायगी।"

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

त्रैमासिक ब्यौरा

अ० भा० चरखा संघ के मंत्री लिखते हैं:

"१९२५ के आखिरी तीन महीनों में जितनी खादी पैदा हुई और बिकी उसके अंक यं. इं. में प्रकाशित होने के लिए भेज रहा हूं। ऐसे प्रगति के रिपोर्टों को तैयार करने में हमें बड़ी कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ता है क्योंकि जुदी जुदी खादी की संस्थाओं की तरफ से किये गये कार्यों का ब्यौरा हमें समय पर नहीं मिलता है। क्या आप कृपा कर के खादी का कार्य करने वाली संस्थाओं को प्रति-मास खादी की पैदाइश और बिक्री के ब्यौरे नियमपूर्वक भेजने के लिए कहेंगे ताकि दूसरे महीने की २० तारीख तक वह हमें प्राप्त हो जाय। इन संस्थाओं की तरफ से यदि अच्छा सहयोग प्राप्त हो और समय पर उनका रिपोर्ट मिलता रहे तो हम प्रति मास ऐसे अंक तैयार कर के भेज सकेंगे।

१९२५ के आखिरी तीन महीनों में जुदे जुदे प्रान्त की खादी की पैदाइश और बिक्री के अंक:

प्रान्त	पैदाइश (रुपयों में)	बिक्री (रुपयों में)
अजमेर	८२८१-०-०	३६८२-०-०
आन्ध्र	५६५८५-०-०	८९०४३-०-०
बंगाल	११०७६४-०-०	७४००९-०-०
बिहार	४७४४८-०-०	५१८०७-०-०
बम्बई	... ...	७९३२९-०-०
बर्मा	... ...	६००३-०-०
मध्य प्रान्त हिन्दी	८७७-०-०	१७०२-०-०
,, मराठी	... ...	४७९४९-०-०
दिल्ली	३३९९-०-०	५०९९-०-०
गुजरात	१३१५७-०-०	२३०३६-०-०
केरल	९७६-०-०	४१९३-०-०
करनाटक	१३५८२-०-०	११८७७-०-०
महाराष्ट्र	८२५-०-०	१८३४९-०-०
पंजाब	१८२३६-०-०	२६०२२-०-०
सिंध	... ...	६१८८-०-०
तामिलनाड	२५१६०१-०-०	२८५८९०-०-०
संयुक्त प्रान्त	११४८३-०-०	३८३७८-०-०
उत्कल	६७७७-०-०	११७२-०-०
कुल	५४३९५१-०-०	७४४९५९-०-०

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन सुदी ६, संवत् १९८२

हमारी शर्म

डा. मलान का प्रस्ताव और वाइसराय के द्वारा उसकी अन्तिम स्वीकृति, राष्ट्र के लिए शर्म की एक बड़ी कटु घूंट हो गई है। यूनियन सरकार ने एक सिलेक्ट कमिटी खड़ी की है जो एशियाटिक बिल के तत्व और उसकी छोटी मोटी बातों के सम्बन्ध में गवाहियां लेगी। डा. मलान ने उसे चार बातों से मर्यादित कर दिया है। भारत-सरकार की तरफ से केवल पेडीसन प्रतिनिधि मण्डल ही उस समिति के समक्ष गवाही दे सकेगा। भारतवर्ष से न कोई दूसरा प्रतिनिधि मण्डल और न कोई 'हलचल करनेवाला' ही — यह डा. मेलन के अपने शब्द हैं — गवाही की पूर्ति के लिए भेजा जा सकेगा। सिलेक्ट कमिटि को पहली मार्च के पहले अपनी रिपोर्ट दे देनी होगी और यूनियन पार्लियामेन्ट की वर्तमान बैठक में ही उसका अन्तिम निर्णय करने के लिए बिल लिया जाना चाहिए।

मेरी राय में तो कोई स्वतन्त्र राष्ट्र इसमें से एक भी शर्त को स्वीकार नहीं कर सकता है। पेडीसन प्रतिनिधि मण्डल तो केवल तथ्य क्या है यह जानने के लिए वहां गया है समझौता करने के लिए नहीं। यदि उसे वहां समझौता करना होता और गवाही देनी होती तो उससे कहीं अधिक महत्व का प्रतिनिधि मण्डल ही वहां गया होता। दूसरा कोई भी प्रतिनिधि मण्डल दक्षिण आफ्रिका में नहीं जाना चाहिए यह शर्त लगाना अपमान करना है। उससे भी अधिक अपमान की बात भारत सरकार पर यह आक्षेप लगाना है कि वह कभी किसी हलचल मचानेवाले को भी वहां भेज सकती है। पेडीसन प्रतिनिधि मण्डल के मानों संरक्षक बन कर डा. मलान ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह उस अपमान को और भी बढ़ा देता है। और सिलेक्ट कमिटि को अपनी रिपोर्ट पहली मार्च के पहले देनी होगी, यह शर्त होने के कारण भारत सरकार या दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों को यह दिखाने लिए कि बिल का सिद्धान्त १९१४ के समझौते के खिलाफ है, उन तमाम सुबूतों को एकत्र करना और उन्हें कमिटि के समक्ष पेश करना, बड़ा ही मुश्किल है, शायद यह संभव भी न हो सके।

और सिलेक्ट कमिटि मुकर्रर कर के उसीके साथ इस बात को भी जाहिर करना कि यूनियन पार्लियामेन्ट की इसी बैठक में उस बिल का काम हाथ में लिया जावेगा, इस बात को जाहिर करता है कि यूनियन सरकार ने इसके सम्बन्ध में अपना विचार निश्चय कर लिया है और सिलेक्ट कमिटि बनाना तो केवल भारत सरकार के बचाव के लिए और दुनिया को यह विश्वास कराने के लिए कि यूनियन सरकार कुछ भी अन्याय नहीं कर रही है उसकी आंखों में धूल डालना है। इसलिए यूनियन सरकार की यह जो रियायत कही जाती है उससे दुर्भागी औपनिवेशिकों को कोई सन्तोष हो ऐसी मुझे कोई आशा नहीं है। सरकार को अपनी शक्ति का सम्पूर्ण ख्याल है और वह औपनिवेशिकों के खिलाफ उसका उपयोग करने के लिए तुली बैठी है। यह तो स्पष्ट है कि भारत सरकार सिलेक्ट कमिटि के निर्णय को स्वीकार करेगी और भारतीयों को केवल उनके भाग्य पर ही छोड़ देगी। भारत अपनी वर्तमान हालत में यूनियन सरकार के कार्य के खिलाफ अपना अधिक दृढ़ जोरदार और सार्वत्रिक विरोध जाहिर करने के अलावा और कुछ भी करने के लिए असमर्थ है। तब फिर उपनिवेशों में जा कर बसे हुए भारतीय क्या करेंगे? इस प्रश्न का उत्तर केवल वे ही दे सकते हैं।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

लड़ाई के दुष्परिणाम

मि. पेज की पत्रिका का अब दूसरा अध्याय आरंभ होता है। यह हमने देख लिया कि लड़ाई कैसे सुलगी। अब इस लड़ाई के नफेनुकसान का हिसाब इस अध्याय में दिया गया है। उसके लाभों का विचार करते हुए लेखक उसे 'मित्रराज्यों को हुआ लाभ' यह नाम देते हैं अर्थात् यह है ही नहीं कि मानवजाति को उससे कुछ भी लाभ हुआ हो। लेकिन उससे जो नुकसान हुआ है यह केवल मित्र राज्यों का ही नहीं है वरन् सारी मानव-जाति का है। जर्मनी की आर्थिक स्वतंत्रता नष्ट कर दी गई। जर्मनी के आर्थिक विकास को असम्भवनीय बना दिया गया, जर्मनी की युद्धवृत्ति का नाश हुआ और कुछ राष्ट्रों को नाम मात्र की स्वतंत्रता प्राप्त हुई, यही मित्र राज्यों का लाभ कहा जा सकता है। परन्तु नुकसान का तो कोई हिसाब निकाला जा सकता है? आज केवल इसी एक बात का अन्दाज लगाते हैं कि उससे कितनी जाने जाया हुई थी।

नीचे दिये गये अंको से कितनी जानें जाया हुई उसकी कल्पना की जा सकेगी —

देश	मृत	सख्त जख्मी हुए
अमरिका	१०७,२८४	४३,०००
ग्रेटब्रिटन	८०७,४५१	६१७,७४०
फ्रान्स	१४२७,८००	७००,०००
रशिया	२७६२,०६४	१,०००,०००
इटली	५०७,१६०	५००,०००
बेल्जियम	२६७,०००	४०,०००
सर्बिया	७०७,३४३	३२२,०००
रोमानिया	३३९,११७	२००,०००
ग्रीस	१५,०००	१०,०००
पुर्तुगाल	४,०००	५,०००
जापान	२००	...
कुल	६,९३८,५९९	३,४३७,७४०

देश	थोड़े बहुत जख्मी हुए	कैद हुए या गुम हुए
अमरिका	१४८,०००	४,९१२
ग्रेटब्रिटन	१६४१,३९४	६४,९०७
फ्रान्स	२३४४,०००	४५३,५००
रशिया	३९५०,०००	२५००,०००
इटली	४६२,१९६	१३५९,०००
बेल्जियम	१००,०००	१०,०००
सर्बिया	२८,०००	१००,०००
रोमानिया	...	११६,०००
ग्रीस	३०,०००	४५,०००
पुर्तुगाल	१२,०००	२००
जापान	९०७	३
कुल	८,५१६,४९७	४,६५३,५२२

देश	मृत	सख्त जख्मी हुए
जर्मनी	१६११,१०४	१६००,०००
आस्ट्रियाहंगरी	९११,०००	८५०,०००
टर्की	४३६,९०४	१०७,७७२
बल्गेरिया	१०१,९२४	३००,०००
कुल	३,०६०,२५२	२,८५७,७७२

देश	थोड़े बहुत जख्मी हुए	कैद हुए या गुम हुए
जर्मनी	२१८३,१४३	७७२,५५२
आस्ट्रियाहंगरी	२१५०,०००	४४३,०००
टर्की	३००,०००	१०३,७३१
बल्गेरिया	८५२,३९९	१०,८२५
कुल	५,४८५,५४२	१,३३०,०७८

सब राज्यों का कुल नुकसान

मृत	९,९९८,७६१
सख्त जख्मी हुए	६,२९५,५१२
थोड़े बहुत जख्म हुए	१४,००२,०३९
कैद या गुम हुए	५,९८३,६००

कोई एक करोड़ मनुष्य जान से हाथ धो बैठे यह कहने से हमारी कल्पना में यह बात नहीं आ सकती कि उससे कितना नुकसान हुआ है। जब कोई जुलूस निकलता है तब हम उसे देखने के लिए एक कतार में खड़े रहते हैं लेकिन एक करोड़ मनुष्यों का जुलूस कभी किसी ने न देखा होगा। दस दस सैनिकों की कतार परेड करती हों और दो कतारों के बीच दो सैकिण्ड का अन्तर हो तो एक करोड़ सैनिकों को एक निर्दिष्ट स्थान से जाने में ४६ दिन लगेंगे?

और यह अंक भयंकर मालूम होते है परन्तु इसमें जो हानि हुई है उसकी सारी कथा नहीं कही गई। ५,९८३,६०० मनुष्य कैद या गुम हुए बताये गये हैं उनमे से बहुतेरों के तो युद्ध करने में ही प्राण निकल गये होंगे। इंग्लैण्ड में सरकार की तरफ से जो गिनती हुई थी उसमें यह निश्चय किया गया था कि गुम हुए मनुष्यों में से कोई ६० प्रति सैकड़ा मनुष्यों का तो मर जाना ही संभव है। केनेडा के अंकों का अन्दाज ५६ प्रति सैकड़ा है और फ्रान्स के अंकों का ८० प्रति सैकड़ा है। अर्थात् कैदी या गुम हुए मनुष्यों में से यदि आधी संख्या भी मरे हुए मनुष्यों की मानें तो इन मनुष्यों की संख्या में कोई ३०,०००,०० मनुष्य और बढ़ेंगे।

और यह अंक लड़ाई में गये हुए मनुष्यों के हैं। इसके अलावा न लड़नेवालों लोगों में भी लड़ाई के कारण बहुतेरों को काल के गाल में फंस जाना पड़ा था — अर्थात् लड़ाई के रोगों के कारण, कत्ल होने से, बम गिरने से, तोप के गोले उड़ने से, बहिष्कार से, भूख से और कम खाना मिलने से वे मृत्यु के मुख में जा पड़े थे। असंख्य प्रमाणों की जांच करने के बाद प्रो बोगार्ट कहते हैं "यह आसानी से कहा जा सकता है कि युद्ध न करनेवाले मनुष्यों के प्राणों का लड़ाई के कारण अथवा लड़ाई से उत्पन्न कारणों के द्वारा जो हानि हुई है वह लड़ाई में जा कर लड़नेवाले लोगों की प्राण-हानि के बराबर ही है। जो प्रमाण दिये गये हैं उनसे तो डरते डरते यह अन्दाज लगाया गया है वही कहा जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि १ लाख ३०००० मनुष्यों की और भी अधिक प्राणहानि हुई है। लड़ाई के कारण पिताहीन हुए बालकों की संख्या तो बड़ी भयावह है। फ्रान्स के सरकारी अंकों से मालूम होता है कि ८८७,५०० बालक पिताहीन हुए थे। डॉ. कोफस ने अनुमान किया है कि ५१२,००० इटालियन बालक पितृहीन हो गये थे। यदि फ्रान्स के पितृहीन बालकों और मृत सैनिकों का परिमाण दूसरे देशों पर भी लगाया जा सके तो लड़ाई से कुल ६५ लाख बालक पितृहीन हुए थे यह कहा जा सकेगा। यदि इटली की औसत लें तो यह संख्या दूनी हो जायगी। फ्रान्स की औसत सब से कम है और इटली की सब से अधिक। इसलिए लड़ाई के कारण पितृहीन हुए बालकों की संख्या ९० लाख के आसपास होगी।

फ्रान्स की पेन्शन आफिस में संधि होने के दिन लड़ाई के कारण विधवा हुई ५ लाख ८५ हजार स्त्रियों के नाम रजिस्टर किये गये थे। उनकी सच्ची संख्या तो अवश्य ही इससे अधिक होगी। दूसरे देशों की तुलना में फ्रान्स में विवाह का परिमाण कम है। इसलिए यदि यह कहा जाय कि ४०-४५ प्रति सैकड़ा मनुष्य अपने पीछे विधवायें छोड़ कर मर गये हैं तो यह कोई अत्युक्ति न होगी। अर्थात् यह कहने में कि कुल ५० लाख स्त्रियां लड़ाई के कारण विधवा हुई है कोई भूल न होगी।

आक्रमणों के कारण लाखों मनुष्यों को घरद्वार छोड़ कर भागना पड़ा था और उससे मनुष्यों का दुःख और प्राणहानि बहुत बढ़ गई थी। इसके सम्बन्ध में डा. फाक्स लिखते हैं: 'हमने उन्हें सूजे हुए पैरों से बोझ उठा कर, रास्तों पर गिरते पड़ते चलते हुए देखा है। रास्ते में बालकों का जन्म होना भी सुना है और हाल ही के जन्मे बच्चों को मीलों तक उठा कर ले जानेवाली माताओं को भी देखा है। भागनेवाले मनुष्यों को अक्सर मालगाड़ियों में भर दिया जाता था और अनेक स्थानों में ठहरते हुए आखिर धीरे धीरे उन्हें एक अनजाने कोने में भूखेप्यासे, थके हुए मैलेकुचैले निकाल देते हुए भी देखा है। बेल्जियम में १,२५०,००० मनुष्यों की फ्रान्स में २०००,००० मनुष्यों की, इटली में ५००,००० मनुष्यों की, ग्रीस में ३००,००० मनुष्यों की, सर्बिया में ३००,००० मनुष्यों की और आर्मीनिया में २०००,००० मनुष्यों की (सिवा इसके कि उनमें से बहुत से रेतीले मैदान में चले गये थे और मृत्यु को प्राप्त हुए थे) पूर्व जर्मनी में ४०००,००० मनुष्यों की और रोमानिया, रशिया और आस्ट्रीया में बहुत से मनुष्यों की इस प्रकार कुल एक करोड़ मनुष्यों की यह दशा हुई थी।

लड़ाई की सबसे बड़ी हानि तो मृत मनुष्यों के प्रकार की दृष्टि से हुई है। एक करोड़ तीस लाख सैनिकों की जो प्राण हानि हुई वह अच्छे से अच्छे लोगों की ही हुई है क्योंकि दुबले पतले लोग तो फौज में लिये ही नहीं जाते थे। बलवानों से भी बलवान्, प्रामाणिकों से प्रामाणिक बड़े अच्छे लाखों मनुष्य मर गये। संसार के इतने नवयुवकों का खून बहा; उसकी भीषणता की कल्पना आज कैसे की जा सकती है। अब इसका संक्षिप्त सार देखिए:

१ करोड़ सैनिकों की मृत्यु
३० लाख अधिक सैनिकों के मरण की संभावना
१ करोड़ ३० लाख युद्ध में न गये हुए मनुष्यों की मृत्यु
२ करोड़ जख्मी हुए
३० लाख कैदी बने
९० लाख बालक पितृहीन हुए
५० लाख स्त्रियां विधवा हुईं
१ करोड़ मनुष्य घरद्वार हीन हुए

इसे दो सैकिण्ड में पढ़ सकते हैं लेकिन इसके अर्थ को समझने के लिए मानवबुद्धि असमर्थ है। हरएक मनुष्य यह जानता है कि उसके घर जब कोई मनुष्य मरता है तो कैसा हाहाकार होता है। वियोग दुःख से तप्त मनुष्यों को आश्वासन देना हमें प्राप्त हुआ

है परन्तु जहां लाखों करोड़ों की गिनती में मनुष्यों की मृत्यु होती है वहां उनके मृत्यु से हुए दुःख का हिसाब कौन लगावेगा ?

लुसिटेनिया स्टीमर जब एक हजार मनुष्यों के साथ डुबा दिया गया था तब उससे सारे संसार को बड़ा आघात पहुंचा था । युद्ध में मरे २ करोड़ ६० लाख मनुष्यों को डुबाना हो तो ७० वर्ष तक प्रतिदिन एक एक लुसिटेनिया डुबानी होगी अथवा जब से कोलम्बस ने अमरिका की शोध की तब से आजतक प्रति सप्ताह एक एक स्टीमर डुबानी चाहिए । अर्थात् दूसरे प्रकार से कहें तो १५६७ दिन युद्ध चला था उसमें यह हिसाब निकलता है कि प्रतिदिन १६,५८५ मनुष्य मरे थे । अर्थात् यह कहा जा सकता है कि १५६७ दिन तक प्रतिदिन इतने हजार की आबादीवाला एक एक शहर रोज सृष्टि के पट से नष्ट कर दिया जाता था । एक विधवा के दुःख में हमलोग भाग ले सकते हैं और एक बालक पितृहीन हो जाय तो उसका दुःख भी हम समझ सकते हैं परन्तु लाखों विधवाओं के और पितृहीन बालकों के दुःख की कल्पना करना भी हमारी शक्ति के बाहर है । एक दुःखी मित्र के प्रति सहानुभूति दिखाई जा सकती है परन्तु करोड़ मनुष्य के दुःख में कैसे भाग लिया जा सकता है ? एक कुटुम्ब की हानि की नाप हम लगा सकते हैं लेकिन समस्त मानवजाति की हानि की नाप किस बुद्धि से निकाल सकते हैं ?

रुई दो

[खादी प्रतिष्ठान के श्री. सतीशचन्द्र दास गुप्त ने बिहार के कुछ कताई के केन्द्रों का जो मुलाहिजा किया था उसका यह स्पष्ट वर्णन है । उससे यह बात स्पष्ट होती है कि हमारे इस महान देश के गरीब लोगों को कताई से क्या लाभ हो रहा है । लाखों तार जो काते गये हैं भारत के सर्द और अंधेरे कैदखानों में—जिसे झूठ मूठ ही घर का नाम दिया जाता है — उतनी ही सूर्य-किरणों का काम कर रहे हैं । अपने वर्णन को उन्होंने जो नाम दिया है वह बड़ा मौजूं है । इधर हमारे करोड़ों लोग 'रुई दो, रुई दो' चिल्ला रहे हैं उधर कच्चा माल हमें मान्चेस्टर चला जाता है । क्यों ? कुछ पैसे लेकर ही चतुर कातनेवालों की अंगुलियां उसमें से जीवनदायी तार निकालने के लिए तैयार हैं लेकिन रुई प्राप्त करना ही उन्हें मुश्किल मालूम होता है । इस सुन्दर वस्तु की हजारों गठरियां भारत के बे-जबान लोगों को चूसने के कार्य में लगे हुए करोड़ाधीशों का धन बढ़ाने के लिए परदेश भेज दी जाती है । यह प्रत्येक देश प्रेमी का कर्तव्य है कि वह उन लोगों को रुई पहुंचाने के लिए जिनका सतीश बाबू ने वर्णन किया है अपने से जितना भी हो सके पूरा कार्य करे । वह यह कार्य दो तरह से कर सकता है: या तो वह स्वयं ऐसे ही भण्डारों पर अंकुश रक्खे या अ. भा. चरखा-संघ को अपना चन्दा भेज दे जो उसकी तरफ से यह अंकुश रखने का कार्य करेगा । और उसे इस प्रकार काते हुए सूत से बुने हुए तमाम प्रकार के खद्दर का उपयोग करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए । वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, इस मुख्य कार्य में फिर चाहे जितने कार्य शामिल कर सकता है ।

मो० क० गांधी]

सूत का बदला

जब हम मालपानी, बिहार के दरभङ्गा जिले के एक गांव में पहुंचे तब करीब करीब दोपहर का समय हो रहा था । ज्योंही हम लोग सूत के भंडार के नजदीक जा रहे थे हमने रुई की छोटी छोटी पुटलियां ले कर लौटती हुई स्त्रियों की कतारें देखीं । उन्होंने अपने सूत के बदले वह रुई ली थी और अब वे घर जा रही थीं ।

'हाट' होने पर जैसा शोर होता है वैसा शोर कुछ दूरी पर सुनाई दे रहा था । क्या वह हाट का दिन था ? नहीं, राजेन्द्रबाबू ने कहा कि भण्डार के आगे सूत के बदले रुई लेने के लिए जो भीड़ इकट्ठी हुई है उसका यह शोर है । कुछ मिनटों में तो हमलोग भण्डार में ही पहुंच गये । वहां एकत्र औरतों की भीड़ को देख कर मेरी आंखें आनंद से चमक उठी और हृदय आनन्द से धड़कने लगा । वहां छोटी बड़ी सभी उम्र की स्त्रियां थीं । अशक्त बूढ़ी स्त्रियां, तन्दुरुस्त जवान स्त्रियां और प्रफुल्लित मुखवाली छोटी लड़कियां भी थीं । उम्र में इतनी विभिन्नता होने पर भी उनके पहने हुए कपड़ों में समानता थी । सभी फटी हुई या पैबन्द लगी हुई धोतियां पहने हुए थीं । यदि किसी की नीली धोती में एक बालिश्त का सफेद मैला पैबन्द लगा हुआ था तो किसी दूसरी की धोती में एक दर्जन पैबन्द लगे हुए थे और बहुत-सी स्त्रियों की धोतियों के तो ऐसे तार निकल आये थे कि उन पर और पैबन्द लगाये ही नहीं जा सकते थे । वे फटी हुई मालूम होती थीं । ऐसी औरतें बहुत ही कम थीं कि जिनकी धोतियां फटी हुई न हों ।

वे हाते के बाहर आ कर खड़ी हुई । हाते के अन्दर कुछ लोग, कार्यकर्ता और पड़ोसी जो उन्हें स्वेच्छा से मदद करना चाहते थे, रुई और सूत के ढेर में करीब करीब अदृश्य से खड़े थे और जितना भी हो सके जल्दी जल्दी सूत के बदले रुई दे रहे थे । प्रत्येक स्त्री के पास रुई की कुछ पुटलियां थीं । कभी कभी तो एक स्त्री अपने गांव की आठ स्त्रियों का सूत देती थी और उनके बदले रुई लेती थी । 'अरे भय्या अब मेरा सूत लो, मैं सुबह से यहां खड़ी हूं और मुझे अभी तीन कोस जाना है ।' और यह कह कर अभी खाली हुए बरतन में सूत की कुछ लच्छियां एक मैले चीथड़े से निकाल कर उसने डालीं । उस खाली चिथड़े में बदले में मिली रुई वह बांध लेती है । वह अपने चिथड़ों को अच्छी तरह पहचानती है और उसके सूत के बदले में मिली हुई रुई को उसी में लपेट कर, बड़ी हिफाजत के साथ अलग रखती है । उसने अपनी आठ पुटलियों को पूरा कर लिया लेकिन अब भी वह वहां से हटती नहीं है । वह एक दूसरी औरत की कुछ और पुटलियों के लिए हाथ बढ़ाती है और उस रुई देनेवाले मनुष्य से आग्रह करती है कि वह उसको भी निबटा दे क्योंकि उन दोनों का मार्ग एक ही है । दूसरी औरतें अधीर हो जाती हैं और क्रोध करती हैं । वहां फिर झगड़ा होता है । सारा समय वही क्यों ले लेती है । दूसरे भी तो हैं जो उससे भी अधिक दूर से आये हुए हैं । फिर मिन्नतें होती हैं और क्रोधयुक्त वाद भी होता है । उसमें सभी शामिल होते हैं और इससे हाट का सा शोरगुल होता है, वैसा ही जैसा कि रेल के स्टेशन पर तीसरे दर्जे के टिकिटघर के सामने हमेशा ही देखा जाता है ।

और यह सब किस लिए ? मैंने फौरन् ही अनुमान कर लिया कि कताई की मजदूरी के लिए है । एक हिस्सा सूत के बदले १॥ हिस्सा रुई दी जाती है । यहां रुई का भाव ३५) मन है । और इसलिए एक मन रुई कातने की मजदूरी १६) होती है । इस हिसाब से एक पौंड सूत पर तीन आने और ११ तोला सूत पर एक आना मिलता है । सूत ८ या १० अंक का होता है । कातनेवालों को इसी एक आने में से धुनिये को धुनाई भी देनी होती है । यह एक आना कमाने के लिए उसे ८ से १० घण्टे काम करना पड़ता होगा । इतनी आमदनी के लिए इतनी आकांक्षा ? इस आमदनी के लिए ८-१० मील के फासले से

आसपास की औरतों का आना ! आधे दिन में ही रुई की एक गठरी खतम हो गई और दोपहर के बाद दूसरी आधी गठरी रुई के बदले में ही आवेगी। और यह केवल एक ही भण्डार का कार्य है।

जब गांधीजी बंगाल में थे उन्होंने मुझे भावुकता के प्रवाह में बह न जाने के लिए चिताया था। वे चाहते थे कि मैं अपने चक्षु खुले हुए रक्खूं और इस बात का निर्णय करूं कि सचमुच गरीबों को कताई की आवश्यकता है या नहीं। गांधीजी खातवानी जा कर देखें कि खातवानी के आसपास के गांवों में गरीबों के घरों में चरखे को क्या स्थान मिला है। बंगाल में भी खातवानी के जैसे बहुत से केन्द्र हैं और शायद तामिलनाड में भी। सारे भारतवर्ष में निश्चय ही ऐसे हजारों केन्द्र विकास पा सकते हैं।

इस प्रकार के बदले के रिवाज से संभव है सूत घटिया दरजे का मिले। कार्यकर्ताओं को इसके लिए बड़े खबरदार रहना चाहिए और जो सूत एक नियत दर्जे का हो उसीको स्वीकार करना चाहिए। इसलिए जब हलके दर्जे का सूत आता है तो उसके बदले में रुई केवल १। गुनी अधिक दी जाती है। उस समय हृदय को हिला देनेवाला दृश्य उपस्थित होता है। इस हिसाब से डेढ़ आना पौंड कताई मिलती है। वह कांपने लगेगी, बड़े जोर से उसका विरोध करेगी और सूत वापिस ले जाने का और फिर कभी न कातने का डर दिखावेगी। ड्योढ़ी रुई पाने का हक साबित करने के लिए सूत बूढ़ी औरतों को दिखाया जाता है। फैसला मांगा जाता है और दिया जाता है। उस पर मुख्तलिफ रायें होती हैं और यह गोलमाल सामान्य गुलगपाड़े को और भी बढ़ा देता है। कार्यकर्ता तो सिर्फ उसके बण्डल को दूर रख देता है और दूसरों के सूत के बदले रुई देने के कार्य में लग जाता है। बहस तो चलती ही रहती है। कार्यकर्ता उसके सूत का एक तार निकालता है और अच्छा कातने के लिए उसको समझाता है। फिर समझाना हो जाता है और चितावनी देने के बाद झगड़ा निबटा दिया जाता है।

बिक्री के योग्य सूत

मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि इन बहनों को मजदूरी के तौर पर जो अधिक रुई मिलती है उसको वे क्या करती हैं। वे अवश्य ही उसे कातती हैं लेकिन किस लिए ? मुझसे यह कहा गया कि उस अधिक मिली हुए रुई के सूत से वे अपने कपड़े बनवाती हैं। लेकिन इसमें मुझे सन्देह था। जिस हिसाब से वे कातती थीं उस हिसाब से तो वे शीघ्र ही अपने कपड़ों की तमाम आवश्यकताओं को पूरा कर सकती थीं इसलिए उसका केवल यही उपयोग नहीं हो सकता है। ऐसा कोई मार्ग अवश्य ही होना चाहिए कि जिससे वे अपनी मजदूरी के बदले में कुछ पैसे प्राप्त कर सकें। सूत को बदलने की उनकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि उनके पास ऐसा कोई साधन अवश्य था कि जिससे वे अपने घर की आवश्यकताओं को—जो बहुत ही अधिक होती हैं—पूरा करने के लिए बचे हुए अधिक सूत को नकदी से बदल सकें। इस दिशा में विशेष जांच करने पर मुझे यह मालूम हुआ कि ये कातनेवाली औरतें अपना सूत गांव के जुलाहों को बेच देती हैं। अर्थात बिहार में कताई इस हद तक पहुंच गई है कि जुलाहे हाथ कते सूत को खरीद सकते हैं और उससे लाभ उठा सकते हैं।

फिर भी इसमें कोई शक नहीं है कि इस कते हुए सूत में से कुछ सूत से तो कातनेवालियों की धोतियां ही बुनी जाती हैं। सूत के भण्डार के पास की भीड़ में इधर उधर खादी की साड़ियां भी दिखाई देती थीं। दो पहर के बाद जुलाहों के गांव में हम लोग गये थे। वह जगह बुननेवाले चरखे से कता हुआ सूत ही बुन रहे थे। उनका धंधा मन्द हो गया था। गांधीजी का उपकार मानना चाहिए कि अब उन्हें अधिक काम मिल रहा है। इस गांव की बुनाई में यह विशेषता थी कि खादी विभाग की तरफ से उन्हें काम नहीं दिया जाता था लेकिन वे केवल कातनेवालों की आवश्यकता के पूरा करने के लिए ही बुन रहे थे।

अत्यधिक अच्छी चीज

कुछ क्षण हमने इन कातनेवालियों से शान्ति के साथ बातचीत भी की थी। उन्हें भविष्य के सम्बन्ध में भय था "क्या आप यहां और अधिक रुई की गठरियां लावेंगे ? क्या आप हमें सूत के बदले में रुई बराबर देते रहेंगे ?' ये उनके प्रश्न थे। कार्यकर्ताओं ने भी कहा कि लोगों में यह ख्याल है यह कार्य शायद हमेशा न चले और इसलिए वे हमेशा के बनिस्बत अधिक शीघ्र कात रहे हैं। इस भय का कारण यह है कि कभी कभी रुई खतम हो जाती है और उससे लोगों में बड़ा भय फैल जाता है। यदि एक भी भण्डार में रुई कम हो जाती है और वह सूत का बदला नहीं कर सकता है तो दूसरे भण्डारों में यह खबर पहुंच जाती है और बैंकों में ऐसे समय में जैसे लोग दौड़ दौड़ कर पहुंच जाते हैं वैसा ही यहां भी परिणाम होता है। हरएक शख्स उसे आखिरी सौदा मान कर अपने सूत के बदले में रुई ले लेना चाहता है। यह कल्पना की जा सकती है कि ये कातनेवाले अपनी मजदूरी में मिली हुई रुई फिर कातने के लिए इकट्ठी करते होंगे और अभी तो सिर्फ जितना भी हो सके अधिक बार सूत का बदला करने का ही प्रयत्न करते होंगे। वे बड़े दूरदृष्टि हैं। वे अपनी कमाई हुई रुई को फुरसद के समय में कातने के लिए जमा कर रहे हैं। मुझे सन्देह हुआ कि खातवानी के केन्द्र में भी अभी इसी तरह लोग टूट पड़े होंगे क्योंकि मैंने अभी ही सुना है कि १० मील की दूरी पर आया हुआ एक केन्द्र आज सूत के बदले रुई नहीं दे सका है। उन लोगों ने जो कि हम से हार्दिक भाव से बातचीत करते थे कहा—"देखिए हमें कपास देना न रह जाय।"

खातवानी कोई बुनाई-केन्द्र नहीं है और कातनेवाले यह नहीं जानते कि भण्डार गृह में जाने के बाद सूत क्या होता है। एक बुढ़िया जरा ढीठ सी मालूम हुई। उसने कान में पूछा—गांधीजी इस कपड़े को क्या करते हैं ? राजेन्द्रबाबू ने अपने बदन के कपड़े दिखाकर कहा—"यह गांधीजी का कपड़ा है। बुढ़िया बोल उठी—नहीं नहीं, यह गांधीजी का कपड़ा नहीं हो सकता।" उसे जो कुछ दिखाया गया वह बहुत वास्तविक और प्रत्यक्ष था और उससे उसके दिल को सन्तोष न हुआ; क्योंकि उसने तो गांधी-कपड़े के विषय में किसी अनोखी वस्तु की कल्पना कर रक्खी थी।

गांधीजी जिन दिनों बिहार के बगीचेवालों के जुल्मों से लोगों का बचाव कर रहे थे, वहां की औरतों को उनकी धोतियां धोने के लिए समझाते थे। वे बड़े घबराये जब उन्होंने सुना कि उनके बदन पर सिर्फ एक ही एक धोतियां हैं जो वे पहने हैं। ऐसी घोर गरीबी वहां छा रही है। अब जब इस बात का ख्याल मन में उठता है कि वे अपने कते सूत का एक हिस्सा अपने ही कपड़ों के लिए अलहदा रख छोड़ती हैं तब दिल कहता है कि आगे चलकर उनकी जरी-पुरानी और पैबन्द लगी धोतियां शीघ्र ही चली जायंगी और इतना ही नहीं बल्कि वे दो धोतियां रखने का भी आनन्द प्राप्त कर सकेंगी और उन्हें रोजाना धोने का भी सुख प्राप्त कर सकेंगी। यदि यह शुभ कार्य जारी रहा तो राजेन्द्र बाबू किसी दिन गांधीजी को बिहार बुला कर यह दिखा सकेंगे कि उन बहनों के पास दो दो धोतियां हो गई हैं और वे रोज उन्हें धोती हैं।

विधवा-विवाह

एक विधवा बहन लिखती हैं:

"नवजीवन" में आप या अन्य कोई समय समय पर विधवाओं के विषय में लेख लिखते हैं। उन सब का यह अभिप्राय होता है कि कम उम्रवाली विधवाओं का पुनर्विवाह हो तो अच्छा। आत्मोन्नति को अग्राह्य माननेवाले तो ऐसा लिख सकते हैं। पर जब आप ऐसा लिखते हैं तब हृदय को भारी चोट पहुंचती है। अन्य देशों के अनुकरण से भारत की जो अवनति हुई है उसमें अभी इतनी न्यूनता रह गई है। क्या अब उसकी भी पूर्ति कर देना है? कितने ही लोगों का कहना है कि "समाज की वर्तमान चारित्रिक अवस्था तथा परिस्थिति को भी तो देखना पड़ता है"। पर मुझे तो यह कथन मनुष्य की केवल वासना का पोषण करने के लिए ढूंढा हुआ बहाना ही मालूम होता है। जब तक वासना रूपी दीपक में भोग रूपी तेल डालते जायेंगे तब तक वह अधिकाधिक प्रज्वलित होता रहेगा। इसका सच्चा उपाय है यह देखना कि हम उसे किस तरह बुझा सकते हैं। बचपन ही से माता के दूध के साथ ही साथ लड़कों और लड़कियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वे संयोगों के अनुकूल अपना जीवन बनाना सीखें। आप शायद कहेंगे "ऐसा होने में तो बहुत समय लगेगा"। पर यों भी आज सारा समाज पुनर्विवाह का समर्थक नहीं है। अतएव इस दिशा में अनुकूल लोकमत होने के लिए भी समय जरूर ही लगेगा। फिर ऐसी प्रगति किस काम की है जो काल-व्यय के साथ साथ आत्मा का भी ह्रास करती हो। पुनीता गार्गी और मैत्रेयी, झांसी की रानी और चित्तौड़ की पद्मिनी की जननी यही भारत माता है। उसकी लड़कियों को पुनर्विवाह क्यों करना चाहिए? चरखे के प्रताप से अब भरण-पोषण की भी वैसी चिंता नहीं रही। कुटुम्ब की यदि एक भी स्त्री विधवा हो जाय तो उससे सारे कुटुम्ब के पुण्य की चाबी पाई जाती है। इसका प्रायश्चित्त वे उसके प्रति अपना कर्तव्य पालन कर के करें। इसके विपरीत उससे दूर दूर भागने से कैसे काम चल सकता है? ब्रह्मचर्य के तो आप हामी हैं। विधवा, जिसे कुदरत ने ही दीक्षा दी है, देश की आदर्श सेविका क्यों न बने? जगत् की माता बन कर क्यों न संसार के दुःखों का हरण करे? मैंने ऐसी कई विधवायें देखी हैं जो पांच से सात वर्ष की उम्र में ही विधवा हो गई हैं और जो अभी शान्ति और संतोष के साथ अपने कुटुम्बियों की यथाशक्ति सेवा कर रही हैं।"

लेखिका बहन को यह पत्र शोभा देता है। पर इससे विधवा-बहन के प्रश्न का निपटारा नहीं हो सकता। बाल-विधवा धर्म जैसी किसी वस्तु को ही नहीं जान सकती, फिर विधवा-धर्म की तो हम बात ही कैसे कर सकते हैं? धर्मपालन के साथ साथ हम यह कल्पना कर लेते हैं कि उसकी बुनियाद में ज्ञान जरूर है। यह हम कैसे कह सकते हैं कि एक बालक जिसे झूठ सच का कोई ज्ञान नहीं है असत्य के दोष का भाजन है? नौ साल की बालिका यही नहीं जानती कि विवाह क्या वस्तु है, न वह यह भी जानती है कि वैधव्य क्या चीज है। जब उसने विवाह ही नहीं किया तो वह विधवा किस तरह मानी जा सकती है? उसका विवाह तो करते हैं माता-पिता और वे ही समझ लेते हैं कि वह विधवा हो गई। अर्थात् यदि वैधव्य का पुण्य किसीको मिलता हो तो कहना होगा कि वह उन माता-पिता को ही मिलता है। पर क्या वे नौ साल की बालिका का बलिदान कर इस पुण्य के यशभागी हो सकते हैं? और यदि हो भी सकते हों तो हमारे सामने उस बालिका का सवाल तो ज्यों का त्यों खड़ा ही रहता है। मान लीजिए कि अब वह बीस बरस की हो गई। ज्यों ज्यों वह समझदार होती गई उसने अपने आसपास की परिस्थिति से यह जाना कि वह विधवा मानी जाती है। पर इस धर्म को तो वह नहीं समझती। यह भी हम मान लें कि बीस वर्ष की अवस्था को पहुंचते पहुंचते धीरे धीरे उसमें स्वाभाविक विकार पैदा हुए और बढ़े भी। अब उस बाला को क्या करना चाहिए? माता-पिता पर तो वह अपने भावों को प्रकट कर ही नहीं सकती। क्योंकि उन्होंने यह संकल्प कर दिया है कि हमारी युवती लड़की विधवा है और उसका विवाह नहीं करना है।

यह तो एक कल्पित दृष्टांत है। पर भारत में ऐसी एक दो नहीं, हजारों विधवायें हैं। हम यह तो देख ही चुके कि उन्हें वैधव्य का कोई पुण्यफल नहीं मिलता। वे युवतियां अपने विकारों को तृप्त करने के लिए अनेक पापों में फंसती हैं। इसके लिए कौन जिम्मेवार है? मेरे ख्याल से उनके माता-पिता तो अवश्य ही उनके इन पापों में हिस्सेदार होते हैं। पर इससे हिन्दू धर्म कलंकित होता है, प्रति दिन क्षीण होता जाता है। धर्म के नाम पर अनीति बढ़ती जाती है। इसलिए यद्यपि इन बहन के जैसे ही विचार स्वयं मैं भी पहले रखता था, पर अब, विशेष अनुभव से, मैं इस निश्चय पर पहुंचा हूं कि जो बाल-विधवायें युवावस्था को प्राप्त करने पर पुनर्विवाह करने की इच्छा करें, उन्हें उसके लिए पूरी स्वतंत्रता और उत्तेजन भी मिलना चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि माता-पिता को चिंतापूर्वक इन बालाओं का विवाह उचित रीति से कर देना चाहिए। इस समय तो पुण्य के नाम पर पाप का प्रचार हो रहा है।

बाल-विधवाओं का इस तरह विवाह कर देने पर भी हिन्दू-धर्म शुद्ध वैधव्य से तो जरूर ही अलंकृत रहेगा। दम्पती-स्नेह का अनुभव कर लेनेवाली स्त्री यदि विधवा हो जाय और वह स्वयं पुनर्विवाह न करना चाहे तो उसका संयम बाहरी नियंत्रण का अहसानमन्द न रहेगा। और न संसार में ऐसी शक्ति ही है जो उसे विवाहित करने के लिए बाध्य कर सके। उसकी स्वाधीनता तो हमेशा सुरक्षित रहेगी।

जहां आत्मसंयम ही नहीं वहां आत्मसंयम का आरोप करना अनीति कही जायगी। बालकपन में आत्मसंयम के लिए अवकाश ही नहीं। आत्मसंयम सावित्री ने किया, सीता ने किया, दमयंती ने किया। उनके विषय में हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि उन्हें वैधव्य प्राप्त होने पर वे पुनर्विवाह करेंगी। इस प्रकार का शुद्ध वैधव्य रमाबाई रानडे का था। आज वासंती-देवी को यह वैधव्य प्राप्त है। ऐसा वैधव्य हिन्दू-संसार का अलंकार है उससे वह पुनीत होता है। बालविधवाओं के कल्पित वैधव्य से हिन्दू-संसार पतित होता जा रहा है। प्रौढ़ विधवायें अपने वैधव्य को सुशोभित करते हुए बालविधवाओं का विवाह करने के लिए कटिबद्ध हों और हिन्दू-समाज में इस प्रथा का प्रचार करें। उन बहनों को जो उपर्युक्त पत्र लिखनेवाली बहनों के सदृश विचार रखती हैं अपने इस विचार को सुधार लेना चाहिए।

मैं जिस निर्णय पर पहुंचा हूं उसका कारण बालिकाओं का दुःख नहीं है बल्कि इसका कारण है मेरे हृदय में उत्पन्न वैयक्तिकता से सम्बन्ध रखनेवाला सूक्ष्म धर्म-विचार, और उसीको प्रदर्शित करने का प्रयत्न मैंने यहां किया है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

आज का प्रश्न

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २७

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द } अहमदाबाद, फाल्गुन सुदी ६, संवत् १९८२ १८ गुरुवार, फरवरी, १९२६ ई० { मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय ११

विलायत की तैयारी

ईस्वी सन १८८७ में मैंने मेट्रिक्युलेशन (एण्ट्रन्स) की परीक्षा पास की। देश की और गांधी कुटुम्ब की गरीबी ऐसी थी कि यदि बम्बई और अहमदाबाद ये दो स्थान ही परीक्षा देने लिए हों तो काठियावाड़ निवासी अहमदाबाद ही को पसन्द करेगा। मेरे सम्बन्ध में भी यही बात हुई। राजकोट से अहमदाबाद तक की सफर ही मेरी प्रथम अकेले की हुई सफर थी।

मेरे बड़े-बूढ़ों की इच्छा थी कि मुझे पास होने के बाद कालेज में जा कर और आगे पढ़ना चाहिए। बम्बई में भी कालेज था और भावनगर में भी। भावनगर में खर्चा कम था इसलिए भावनगर के शामलदास कालेज में ही जाना निश्चय किया गया। वहां मुझे कुछ भी न आता था, सब मुश्किल ही मुश्किल मालूम होता था। अध्यापकों के भाषणों में कोई दिलचस्पी न मालूम होती थी और न कुछ समझ ही में आता था। इसमें दोष अध्यापकों का न था, बल्कि मेरे कच्चेपन का ही दोष था। क्योंकि उस समय शामलदास कालेज के अध्यापक प्रथम श्रेणी के गिने जाते थे। प्रथम टर्म पूरी करके मैं घर गया।

कुटुम्ब के पुराने मित्र और सलाह देनेवाले एक विद्वान व्यवहार कुशल ब्राह्मण — मावजी दवे — थे। उन्होंने पिताजी के परलोकवास के बाद भी कुटुम्ब के साथ का अपना सम्बन्ध वैसा ही कायम रक्खा था। इन छुट्टियों के दिनों में वे हमारे घर आये। माताजी और बड़े भाई के साथ बातचीत करते हुए उन्होंने मेरी पढ़ाई के सम्बन्ध में प्रश्न किया। यह सुन कर कि मैं शामलदास कालिज में हूं उन्होंने कहा: "अब जमाना बदल गया है। तुम सब भाइयों में से यदि कोई कबा गांधी (मेरे पिताजी) की गद्दी रखना चाहोगे तो वह पढ़े बिना न होगा। यह लड़का अभी पढ़ता है इसलिए उस गद्दी को सम्हालने का बोझ इसीसे उठवाना चाहिए। अभी उसे बी. ए. होने में चार पांच वर्ष लग जायगे और इतना समय देने पर भी उसे ५०) ६०) की ही नोकरी मिलेगी, प्रधानपद न मिलेगा। और यदि मेरे लड़के की तरह उसे भी वकील बनाया जाय तो कुछ साल और लगेंगे और तबतक प्रधानपद के लिए और बहुत से वकील भी तयार हुए होंगे। उसे विलायत भेजना चाहिए। केवलराम (मावजी दवे के लड़के का नाम है) कहता है कि वहां की पढ़ाई आसान है। तीन साल पढ़ाई खतम करके लौट आवेगा। चार पांच हजार से अधिक खर्च भी न होगा। देखो न, वे जो नये बेरिस्टर आये हुए हैं, कैसी शान से रहते हैं? वे यदि प्रधानपद चाहें तो वह भी मिल सकता है। मेरी तो तुम्हें यही सलाह है कि इसी साल तुम्हें मोहनदास को विलायत भेज देना चाहिए। मेरे केवलराम के विलायत में बहुत से मित्र हैं। उनको वह सिफारिश की चिट्ठी लिख देगा तो उसे वहां कोई तकलीफ न होगी।

जोशीजी (मावजी दवे को हमलोग इस नाम से पुकारते थे) ने इस तरह कि मानों उन्हें अपनी सलाह की स्वीकृति के सम्बन्ध में कोई सन्देह ही न था, मेरी तरफ देखा और पूछा

'क्यों, तुम्हें विलायत जाना पसन्द है या यहीं पढ़ना पसन्द है?'

मेरे लिए तो यह बात मनचिन्ती थी। मैं कालिज की कठिनाइयों से डर ही गया था। मैंने कहा, मुझे विलायत भेजो तो बड़ा ही अच्छा हो। कालिज में मालूम होता है जल्दी जल्दी पास न हो सकूंगा। लेकिन मुझे डाक्टरी सीखने के लिए क्यों न भेजा जाय?

मेरे भाई बीच में ही बोल उठे—

"पिताजी को यह पसन्द न था। जब तुम्हारी बात होती थी तब वे कहते थे कि हमलोग वैष्णव हो, हमें हाड़मांस की चीर-फाड़ का काम नहीं करना चाहिए। पिताजी का विचार तो तुम्हें वकील बनाने का ही था।"

जोशीजी ने हां में हां मिलाते हुए कहा: "मुझे गांधीजी की तरह डाक्टरी धन्धे के प्रति कोई घृणा नहीं है। हमारे शास्त्र भी इस धन्धे को बुरा नहीं बताते हैं। लेकिन डाक्टर हो कर तुम दीवान न होगे। मुझे तो तुमारे लिए प्रधानपद या उससे

भी अधिक महत्व का स्थान चाहिए। तभी तुम्हारा विशाल कुटुम्ब टक सकता है। दिन प्रतिदिन जमाना बदल रहा है और कठिन होता जाता है, इसलिए बेरिस्टर होना ही बुद्धिमानी का काम है।"

माताजी की तरफ फिर कर कहा: "आज तो मैं जाता हूं। मैंने जो कुछ कहा है उसपर विचार कर देखना। जब मैं फिर आऊंगा तब मैं तैयारी के समाचार सुनने की ही आशा रक्खूंगा। यदि कोई कठिनाई मालूम हो तो मुझसे कहना।"

जोशीजी गये और मैंने ख्याली पुलाव पकाना शुरू किया।

बड़े भाई विचार में पड़ गये। रुपयों का कैसे इन्तजाम करें और मुझ जैसे नवयुवक को इतनी दूर भेजा भी कैसे जाय?

माताजी तो कुछ भी न समझ सकीं। उन्हें वियोग की बात ही पसन्द न थी। लेकिन उन्होंने प्रथम यही कहा: 'अपने कुटुम्ब में अब काका ही बड़े हैं। इसलिए प्रथम उन्हीं की राय लेनी चाहिए। यदि वे आज्ञा दें तो फिर हमें विचार करना चाहिए।

बड़े भाई को एक और विचार आया: 'पोरबन्दर राज्य पर अपना हक है। लेली साहब एडमिनिस्ट्रेटर हैं। इस कुटुम्ब के सम्बन्ध में उनका मत भी अच्छा है। काका पर उनकी विशेष कृपा है। वे शायद राज्य की ओर से कुछ सहायता भी करें"

मुझे यह सब पसन्द आया। मैं पोरबन्दर जाने के लिए तैयार हुआ। उस समय रेलगाड़ी न थी, बैलगाड़ी का मार्ग था। पांच दिन का रास्ता था। मैं यह तो कह ही चुका हूं कि मैं डरपोक था। लेकिन उस समय मेरा डर दूर हो गया था। विलायत जाने की इच्छा ने मुझपर सवारी कसी। मैंने धोराजी तक की बैल-गाड़ी की। धोराजी से एक दिन जल्दी पहुंचने के लिए ऊंट पर गया। ऊंट की सवारी का भी यही प्रथम अनुभव था।

पोरबन्दर जा पहुंचा। काका को साष्टांग प्रणाम किये और सब बातें कह सुनाईं। उन्होंने विचार करके उत्तर दिया।

"मैं यह नहीं जानता कि विलायत जा कर हम अपने धर्म की रक्षा कर सकेंगे या नहीं। सब बातें सुनने से तो मुझे सन्देह होता है। बड़े बड़े बेरीस्टरों का मुझसे साबका पड़ता रहता है। मैं उनके और साहब लोगों के रहनसहन में कोई भेद नहीं पाता हूं। उन्हें खानेपीने का कोई विचार नहीं होता है। सीगार तो मुंह से जरा भी दूर नहीं होता। पहनावा भी नंगा होता है। इसमें हमारे कुटुम्ब की शोभा न रहेगी। लेकिन मैं तुम्हारे साहस में विघ्न डालना नहीं चाहता। मैं तो कुछ ही दिनों में यात्रा करने के लिए चला जाऊंगा। मुझे अब थोड़े ही वर्ष के लिए जीना है। मृत्यु के किनारे बैठा हुआ मैं तुम्हें विलायत जाने की — समुद्र पार करने की — इजाजत कैसे दे सकता हूं? लेकिन मैं तुम्हारे रास्ते में बाधक न होऊंगा। सच्ची आज्ञा तो तुम्हारी माता की है। यदि वह तुम्हें विलायत जाने की इजाजत दे तो खुशी से चले जाना। यह कहना कि मैं तुम्हें रोकूंगा नहीं। तुमको मेरे आशीर्वाद तो मिलेंगे ही।"

मैंने कहा: 'मैं इससे और अधिक की आपसे आशा नहीं रख सकता। अब मुझे अपनी माता को ही राजी करना होगा। लेकिन लेली साहब को आप सिफारिश का एक पत्र तो लिख देंगे न?"

उन्होंने कहा "यह मैं कैसे कर सकता हूं? लेकिन साहब भले हैं। तुम उन्हें चिट्ठी लिखो और उसमें अपने कुटुम्ब का परिचय दो। वे अवश्य ही तुम्हें मुलाकात के लिए समय देंगे और यदि उनकी इच्छा हुई तो मदद भी करेंगे।"

मुझे यह ख्याल नहीं है कि काकाश्री ने साहब के नाम सिफारिश की चिट्ठी क्यों न दी। कुछ अस्पष्ट स्मरण है कि विलायत जाने के धर्मविरुद्ध कार्य में इतनी सीधी मदद करने में भी उन्हें संकोच हुआ।

मैंने लेली साहब को पत्र लिखा। उन्होंने अपने बंगले पर मुझे मुलाकात के लिए बुलाया। उस बंगले की सीढ़ी पर चढ़ते समय वे साहब मुझसे मिले और इतना ही कह कर कि "तुम बी. ए. पास करो फिर मुझसे मिलना, अभी तो कुछ भी मदद नहीं की जा सकती" वे ऊपर चले गये। मैं बड़ी तैयारी कर के, बहुत से वाक्य रट कर तैयार कर के गया था। नीचे झुक कर दो हाथों से मैंने सलाम भी किया था। लेकिन मेरी सारी मिहनत व्यर्थ गई।

मेरी दृष्टि अब मेरी पत्नी के गहनों पर गई। बड़े भाई पर पारावार श्रद्धा थी। उनकी उदारता के कोई सीमा न थी, उनका पिता जैसा प्रेम था।

मैं पोरबन्दर से बिदा हुआ। राजकोट आ कर सब बातें कह सुनाईं, जोशीजी के साथ सलाह मशवरा किया। उन्होंने मुझे कर्ज कर के भी विलायत भेजने की सलाह दी। मैंने अपनी पत्नी के हिस्से के गहने निकाल देने की सूचना की। उससे दो तीन हजार से अधिक रुपये नहीं मिल सकते थे। भाई ने चाहे जिस प्रकार से भी रुपये इकट्ठा करने का भार उठाया।

लेकिन माताजी कैसे समझतीं? उन्होंने सब प्रकार की जांच आरंभ कर दी थी। कोई कहता कि युवकगण विलायत जा कर बिगड़ जाते हैं। कोई कहता कि वे मांसाहार करते हैं। शराब के बिना उन्हें एक दिन भी नहीं चलता। माताजी ने यह सब बातें मुझे कह सुनाईं। मैंने कहा: क्या तुम मेरा विश्वास न रक्खोगी? मैं तुम्हें दगा न दूंगा। कसम खा कर कहता हूं कि इन तीनों चीजों से सदा बचता रहूंगा। ऐसा ही यदि जोखिम होता तो जोशीजी ही क्यों जाने देते?

माताजी बोलीं "मुझे तेरा विश्वास है, लेकिन दूर देश में क्या होगा? मेरी अकल तो कुछ काम नहीं करती है। मैं बेचरजी स्वामी से पूछूंगी" बेचरजी स्वामी मोढ बनिये थे और जैन साधु हो गये थे। जोशीजी की तरह वे भी हमारे कुटुम्ब के सलाह-कारों में से एक थे। उन्होंने मदद की। उन्होंने कहा "मैं इस लड़के से इन तीनों बातों की प्रतिज्ञा कराऊंगा और फिर उसे वहां जाने देने में कोई बाधा न होगी। उन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा कराई और मैंने मांस, मदिरा और स्त्रीसंग से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। माताजी ने आज्ञा दे दी।

हाइस्कूल में जलसा किया गया। राजकोट का युवक विलायत जाय, यह एक आश्चर्य ही समझा गया था। उत्तर देने के लिए मैं कुछ लिख कर ले गया था। वह वहां शायद ही पढ़ सका हूंगा। सिर फिर सा गया था, शरीर कांप रहा था, इतना ही मुझे याद है।

बड़ेबूढ़ों के आशीर्वाद ले कर मैं बम्बई जाने के लिए रवाना हुआ। बम्बई की यह पहली सफर थी। बड़े भाई भी साथ आये थे।

लेकिन अच्छे काम में सौ विघ्न आते हैं। बम्बई एकदम छूट नहीं सकती थी।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

और भी बदतर

दक्षिण आफ्रिकन एशियाटिक बिल की १० वीं धारा की प्रस्तावित तरमीम में यहां मूल धारा सहित देता हूं—

एशियाटिक बिल धारा १०, उपधारा १— "गवर्नर जनरल गैजेट में प्रकाशित कर के यह करे कि गजट में प्रकाशित तारीख से और उसके बाद उसमें उल्लिखित किसी जाति का कोई व्यक्ति नेटाल प्रान्त में स्थावर सम्पत्ति को न प्राप्त करेगा अथवा न लीस पर ही लेगा, न स्थावर सम्पत्ति की लीस को नया करावेगा। इसमें इस धारा की उपधारा (२) में वर्णित समुद्र-तट का प्रान्त मुस्तसना है। पर इस कानून के जन्म के पहले लिखित 'लीस' के द्वारा प्राप्त स्थावर सम्पत्ति के पट्टे को नया कराने से इस धारा की कोई बात न रोक सकेगी।"

अब संशोधित धारा इस प्रकार हुई—"गवर्नर जनरल गैजेट में प्रकाशित करके यह जाहिर करे कि गैजेट में उल्लिखित तारीख से और उसके बाद, जो कि १ अगस्त १९२५ से पहले की न होगी, उसमें वर्णित किसी श्रेणी का व्यक्ति एक तो, यूनियन की सीमा में ५ साल से ज्यादह के लिए न तो कोई स्थावर सम्पत्ति अपने कब्जे में लेगा, न किराये पर लेगा, और न ली हुई लीस को नया करावेगा और, दूसरे, केप आफ गुड होप और नेटाल प्रान्तों में, रहने के इरादे के अलावा, 'क्लास रेसिडेन्शल एरिया' में कोई स्थावर सम्पत्ति न प्राप्त करेगा और न 'क्लास ट्रेडिंग एरिया' में किसी तिजारत की गरज से, या क्लास रेसिडेन्शल और ट्रेडिंग एरिया में किसी भी गरज से कोई स्थावर सम्पत्ति खरीदेगा।"

एक साधारण पाठक भी मूल धारा और संशोधन पर एक ही दृष्टिपात करके यह अच्छी तरह देख सकता है कि यह तरमीम तो मूल धारा से बेहद खराब है। केवल इतना ही नहीं कि उसमें किसी भी समझौते के लिए जरा भी कोशिश नहीं की गई, बल्कि साफ तौर पर भारतीय लोकमत और यहां तक कि भारत सरकार की भी राय का भी उल्लंघन किया गया है। यूनियन सरकार की यह कार्रवाई उस घोर आन्दोलन के योग्य ही है जो दक्षिण आफ्रिका में एशियाटिक बिल के खिलाफ उमड़ रहा है।

३०६० मील दूर

हिन्दुस्तान के मामलों की अपीलों की सुनवाई के लिए प्रिवी कौन्सिल में दो ज्यादह जजों की नियुक्ति के प्रस्ताव के संबंध में बड़ी धारासभा में जो बहस हाल ही हुई है उसने इस बहस को फिर ताजा कर दिया है कि इस आखिरी अदालत की जगह कौनसी रहे। यदि हम पर किसी तरह का जादू असर नहीं कर गया है तो बिला शक हम इस बात को समझ जायंगे कि तीन हजार मील दूर इन्साफ को लेने (या खरीदने?) जाना कितना फजूल है, कितना पापमय है। कहते हैं कि इतनी मजे की दूरी पर बैठे हुए जज लोग मामलों-मुकदमों का फैसला अधिक निष्पक्ष और निर्लिप्त भाव से कर सकेंगे। पर यदि फर्ज कीजिए देहली में उनकी अदालत रही तो वे ऐसा न कर पावेंगे। पर ज्यों ही हम इस दलील का छानबीन करने लगते हैं यह खड़ी नहीं रहती। क्या बेचारे लन्दन-वासियों की प्रिवी कौन्सिल देहली में होनी चाहिए? और फरासीसी तथा अमरीकावासी क्या करें? क्या फरासीसी ऐसा इन्तजाम करें कि उनकी सब से बड़ी अदालत अमेरिका में रहे और यदि हिन्दुस्तान एक आजाद मुल्क होता तो हम क्या करते? या क्या भारतवर्ष इस बाबत में मुस्तसना है, जिसके कि लिए लन्दन में जा कर अपील करने का अधिकार प्रदान करने की यह खास मेहरबानी की जा रही है? लन्दन में प्रिवी कौन्सिल का स्थान रहने के सम्बन्ध में किसी को महान् उपनिवेशों की मिसाल न पेश करनी चाहिए। वे तो केवल भावना-वश हो कर इस जराजीर्ण पद्धति को अपना रहे हैं। और कितने ही उपनिवेशों में तो यह हलचल हो भी रही है कि हमारी अपील-अदालतें हमारे ही देश में रहें। पर भारत की भावना इससे भिन्न है। आत्म-सम्मान से युक्त भारतवर्ष कभी इस बात को गवारा न करेगा कि उसका आखिरी न्यायमन्दिर दूर विदेश में रहे।

विश्वासघात

समस्त दक्षिण आफ्रिका के सम्बन्ध में एशियाटिक बिल गांधी स्मट्स समझौते के विरुद्ध है। नेटाल के सम्बन्ध में तो यह विश्वासघात ही है। मि. एण्ड्रयूज ने दक्षिण आफ्रिका के किसी एक वर्तमानपत्र में इस विषय पर एक पत्र लिखा है, उसका भावार्थ नीचे दिया जाता है:

"सन १८६० से ही नेटाल सरकार बहुत से भारतीय श्रमिकों को ठेके पर अपने देश मे बुलाती रही है। उनके भारत छोडने से पहिले ही भारत सरकार और नेटाल सरकार में यह समझौता हो जाता था कि यदि भारतीय श्रमिक अपने शर्त के ५ वर्ष गन्ने की काश्त में व्यतीत कर देंगे तो उसके पश्चात उन्हें नेटाल में वहां के निवासी की हैसियत से कुछ स्वत्व प्राप्त हो सकते है। भूमि तथा अन्य प्रकार की स्थावर सम्पत्ति को वे बिना रोक टोक के खरीद सकते हैं। नेटाल सरकार ने भारत से मजूरों को प्राप्त करने की उत्सुकता मे कहा था कि भारतीय श्रमिकों के साथ भारतीय व्यापारी भी आ सकते है।

इन भारतीयों ने अत्यन्ताधिक मूल्य पर इन स्वत्वों को मोल लिया। उनकी पञ्चवर्षीय अवधि में उनको अनेक प्रकार के असदाचारि तथा दोषपूर्णकार्य करने पडे। ये कार्य ऐसे अशिष्ट थे कि अन्त में सरकार को यह बुरी पद्धति ही छोड देनी पडी।

नेटाल सरकार ने जिन शर्तों को स्वीकार किया था उनको अभी निकट वर्तमान तक यथावत् पाला था। दक्षिण आफ्रिका के कानून की १४८ वीं धारा में यह प्रत्यक्ष रूप से लिखा है कि नेटाल औपनिवेशिक सरकार जिन शर्तों को स्वीकार करा लेगी वे यूनियन के लिए भी मान्य होंगी।" (ईयरबुक पृष्ट ७८)

शराबखोरी बन्द करने की शर्त

बम्बई के गवर्नर ने भडोंच की अंजुमन को यह साफ साफ सुना दिया है कि यदि वे चाहते हों कि शराबखोरी बन्द हो तो उन्हें शराब से उत्पन्न होनेवाली आमदनी की कमी पूरी करने के लिए महसूल डालने योग्य दूसरे साधन ढूंढ निकालना चाहिए। अर्थात शराब की बदी को रोकने के साथ सरकार को कोई वास्ता नहीं है। लोग शराबी मिट कर नीतिमान् बनें और उसमें सरकार को महसूल की जो कमी रहे तो उसे पूरी करने का फर्ज सुधारक का है। अर्थात् मद्यनिषेधक मण्डलों को मद्यनिषेध का कार्य शिघ्र ही करना हो तो उन्हें बम्बई के गवर्नर के उत्तर का---जो उत्तर इस सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति का द्योतक है—क्या उत्तर देना चाहिए यह भी विचार कर लेना होगा। जिन टैक्स देनेवालों पर आज भी टैक्स देने का असह्य बोझ है उनसे अधिक टैक्स लेने को मैं केवल अन्याय ही मानता हूं। मद्यनिषेध खर्च की कमी करके ही किया जा सकता है। जो खर्च घटाया जा सकता है वह फौज का खर्च है। लेकिन यह मत सच्चा हो या न हो बम्बई के गवर्नर ने जो कठिनाई बताई है उसका क्या उत्तर देना चाहिए इसके सम्बन्ध की नीति मद्यनिषेधक मण्डलों को अवश्य ही निश्चित कर लेनी चाहिए।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन सुदी ६, संवत १९८२

आज का प्रश्न

जबतक यह प्रकाशित हो कर लोगों के हाथों में पहुंचेगा तबतक तो दक्षिण आफ्रिका के प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य जहाज में बैठ कर दक्षिण आफ्रिका लौट जाने के लिए अपना रास्ता तय करते होंगे। जहाज में बैठने के पहले श्री आबेद आगान जेम्स गोडफ्रे पातर और मिरजा मुझसे मिलने आये थे और स्थिति जैसी कि दिनप्रतिदिन बढ रही है उस पर उन्होंने मेरे साथ बहस भी की थी। जहां गये वहां उनका जैसा अच्छा स्वागत किया गया और सब दलों ने, योरपीयन मण्डलों ने भी जो उनका समर्थन किया था उसपर उन्होंने अपना सन्तोष जाहिर किया था। लेकिन मुझे यह कहने में बड़ी खुशी होती है कि उन्होंने इस प्रकार का अनुमोदन मिलने के कारण अपने को रक्षित समझने के झूठे ख्याल से धोका नहीं खाया है। उन्होंने यह अनुभव किया कि भारतवर्ष की मदद करने की बड़ी इच्छा है लेकिन उसमें उतनी शक्ति नहीं है।

रंगभेद का बिल दृढतापूर्वक प्रगति कर रहा है। सिद्धान्त की दृष्टि से वह उतना ही बुरा है जितना कि एशियाटिक बिल और इसलिए उसके खिलाफ भी उतने ही उज्र पेश किये जा सकते हैं जितने कि एशियाटिक बिल के खिलाफ पेश किये जाते हैं। उसकी प्रगति से यूनियन सरकार का एशियाटिक बिल के सम्बन्ध में जो इरादा और निश्चय है वह स्पष्ट साबित होता है। दिन प्रतिदिन यह बात स्पष्ट होती जाती है कि यूनियन सरकार नियम को ढीला करने के बजाय अधिक कड़ा करने का ही इरादा रखती है। १० वीं दफा में जो सुधार होनेवाला है उससे कोई वैसी राहत नहीं मिलती है और उसमें केप को भी शामिल किया जाता है इससे तो उस बिल के खिलाफ दक्षिण आफ्रिका के कुछ वर्तमान पत्र भी बिगड़ उठे हैं। वे इतने बिगड़े हैं कि एक वर्तमानपत्र ने तो यहां तक लिखा है कि भारत में जा कर डा० अब्दुर रहमान जो कुछ कर रहे हैं उसीसे जलभुन कर शायद दक्षिण आफ्रिका की सरकार केप को भी बिल की मर्यादा में शामिल करती है। हमें आशा करना चाहिए कि सरकार का दूसरा कुसूर चाहे कुछ भी क्यों न हो वह इतनी गंभीर न होगी। लेकिन चाहे जो कुछ हो सरकार के निश्चय के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है। वहां के निवासी भारतवासियों को इसी आशंका-मूल नीति का सामना करना होगा और उसीके खिलाफ लड़ना होगा। यदि उन्हें साम्राज्य सरकार और भारत सरकार की तरफ से सम्पूर्ण और दृढ मदद मिले तो वे सफलतापूर्वक उसका सामना कर सकते हैं। लेकिन उन्हें उनकी मदद न मिलेगी। भारत सरकार साम्राज्य सरकार की छाया मात्र है। वर्तमान यूनियन सरकार साम्राज्य सरकार से न डरती है और न उसका आदर ही करती है। उलटे वही यूनियन सरकार से डरती है कि कहीं वह साम्राज्य से अलग न हो जाय। यह तो ऐसा मामला है कि मानों पूंछ ही कुत्ते को हिला रही है, कुत्ता पूंछ को नहीं। जबतक भारत को ही खो देने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता है साम्राज्य सरकार यूनियन सरकार के सामने अपना कोई अधिकार न चलावेगी। असहयोग की बाह्य निष्फलता को देख कर साम्राज्य सरकार को भारत की लाचारी की अभी आशा बन्धी है। इस लिए इस मौके पर तो उसका अधिकारयुक्त वजन दक्षिण आफ्रिका के पक्ष में ही रहेगा — सिवा इसके कि भारतीय समुद्र के इस तरफ कोई आन्दोलन खड़ा नहीं होता। यदि यह बिल इस समय मुल्तवी रहेगा तो भी इस बात का तो यकीन ही है कि आखिर वह पास तो होगा ही।

दक्षिण आफ्रिका के हमारे देशवासियों को अब क्या करना चाहिए? आत्मनिर्भरता के समान इस संसार में कोई चीज नहीं है। जो अपनी सहायता करता है संसार भी उसकी सहायता करता है। इस मामले में, शायद दूसरे तमाम मामलों की तरह आत्म-निर्भरता के मानी है स्वयं कष्ट उठाना। स्वयं कष्ट उठाना अर्थात सत्याग्रह करना। जब इज्जत नष्ट हो रही है, जब उनके अधिकार छीने लिए जा रहे हैं, जब आजीविका भी भय में है तब उन्हें सत्याग्रह करने का अधिकार है, ऐसे समय में सत्याग्रह करना उनका कर्तव्य हो जाता है। १९०७ और १९१४ में उन्होंने सत्याग्रह किया था और भारत सरकार की तरफ से उसको अनुमोदन भी प्राप्त हुआ था और योरपीयनों और दक्षिण आफ्रिका की सरकार ने उसका स्वीकार भी किया था। उनके सामान्य लाभ के लिए यदि उनमें कष्ट सहन करने की हिम्मत और इच्छा है तो वे आज भी वही कर सकते हैं।

अभी समय नहीं है। उन्हें जैसा कि वे कर रहे हैं तमाम राजनैतिक उपाय पहले आजमा लेने चाहिए। भारत सरकार जो यूनियन सरकार के साथ मन्त्रणा कर रही है उसके परिणाम की भी उन्हें राह देखनी चाहिए। और जब वे जितने भी उपाय हो सके आजमा लें और फिर भी कोई रास्ता न दिखाई दे तब कहीं उनका पक्ष सत्याग्रह के लिए पूर्णपुष्ट होता है। फिर उस समय जरा भी ढीलाढ़वाला करना कायरता होगी। संसार की कोई भी शक्ति किसी भी मनुष्य से उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करा सकती। इस महान नियम की स्वीकृति का सीधा परिणाम ही सत्याग्रह है और वह उसमें शामिल होनेवाले लोगों की संख्या पर कोई आधार नहीं रखता है। सत्याग्रह की शर्तें सभी लाजिमी होती हैं उनमें कोई भी अपवाद नहीं हो सकता। उसमें किसी भी प्रकार का अत्याचार नहीं होना चाहिए। ऐसी निश्चित मांग होनी चाहिए कि जो घटाई ही न जा सके और जो किसी भी विचारशील और निष्पक्षन्यायाधीश को फौरन ही जंच जाय। हमें बहुत सी चीजें पाने का न्यायपूर्वक अधिकार होता है लेकिन सत्याग्रह तो उन्हीके लिए किया जाता है जिसके कि बिना आत्मसम्मान या मानाई जीवन — यह दोनों एक ही बात है — असंभव हो जाय।

उन्हें मूल्य का विचार कर लेना चाहिए। धांधली में या आजमाइश के तौर पर भी सत्याग्रह नहीं किया जा सकता। वह तो मनुष्य के हृदय के भावों की गहराई का माप है। वह इसी लिए किया जाता है कि वह रोका नहीं जा सकता। उसके लिए अर्थात् सत्य के लिए कोई भी मूल्य देना महंगा नहीं होता है। उसमें जब विजय की बहुत ही कम आशा होती है तभी विजय प्राप्त होती है। मनुष्यों की सहायता पर विश्वास रख कर उसका आरंभ नहीं किया जाता है, उसका तो ईश्वर और उसके न्याय में दृढ श्रद्धा पर ही आधार होता है। ईश्वर कठोर भी है और दयालु भी है। वह हमारी सब तरह से अत्यन्त कष्ट दे कर परीक्षा लेता है। लेकिन वह इतना दयालु है कि इस हद तक हमारी परीक्षा नहीं करता कि हमारी कमर ही टूट जाय।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

जेल या अस्पताल ?

कलकत्ते में रोटेरी क्लब के सभ्यों के समक्ष जेलों के सम्बन्ध में बोलते हुए लार्ड लिटन ने अभी हाल ही में कहा कि जैसे हम शरीर के रोगियों को अस्पताल में भेजते हैं जेलों में नहीं, उसी प्रकार हमें मन के रोगियों के लिए अर्थात् मुजरिमों के लिए भी नीति के डाक्टर और नीति के अस्पतालों का प्रबन्ध करना चाहिए। लाट महोदय ने इस विषय को इस प्रकार छेड़ा था--

"जिस आदर्श को मैं चाहता हूं कि आप परीक्षा करें वह यदि थोड़े में और सादे शब्दों में कहा जाय तो यह होगा: सजा के बदले सुधार करना ही हमारे पीनल कोड का आधार होना चाहिए। सजा से दिल में भय उत्पन्न किया जाता है, जबरदस्ती आदतें डाली जा सकती हैं लेकिन उससे भलमन्सी कभी नहीं आ सकती। इसलिए नैतिक पुनरुज्जीवन के साधन के तौर पर वह केवल व्यर्थ ही नहीं है बुरी भी है, और इसलिए त्याज्य है। दुःख या सजा देकर जो नैतिकता दाखिल की जायगी वह झूठी नैतिकता होगी इसलिए जो लोग नीति की मर्यादा का यकीनन् स्वीकार कराना चाहते हैं उन्हें दूसरे साधनों का ही उपयोग करना होगा।'

सजा की उपयोगिता और मर्यादा के सम्बन्ध में लार्ड लिटन कहते हैं:

'सजा, यदि कभी दी भी जाय तो उसका उद्देश हमेशा उस मनुष्य के भले के लिए कुछ आदतें डालना और जाति के लिए आवश्यक नियमादि का पालन सिखाना ही होना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि सजा देने से हमेशा सफलता ही मिलेगी। किसी खास मामले में सजा देने का जो तरीका अख्तयार किया गया हो वह उसके हेतु के पूरा करने के लिए अनुकूल भी हो सकता है और प्रतिकूल भी। और मैं यह भी नहीं कहता हूं कि उस उद्देश को पूरा करने का सिर्फ यही एक उपाय है। मैं तो सिर्फ यही कहता हूं कि सजा करने से सिर्फ ये ही दो उद्देश सिद्ध हो सकते हैं। कष्ट देने से एक बात कभी हासिल नहीं हो सकती और वह है भलमन्सी या नैतिक सदाचार; अर्थात् बुराई दूर करने के लिए और भलाई सिखाने के लिए जो सजा दी जाती है वह निश्चय ही हानिकर होती है। स्वास्थ्य जैसे शरीर की एक स्थिति है उसी प्रकार भलाई भी मन की एक स्थिति है। शरीर की त्रुटियां जैसे सजा देने से दूर नहीं की जा सकती उसी प्रकार नैतिक त्रुटियां भी उससे दूर नहीं की जा सकती। एक जाति की स्वास्थ्य रक्षा के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि छूत के रोग के रोगी को जबरदस्ती अलग कर दिया जाय; उसी प्रकार इसी कारण से ऐसे लोगों को, जिनकी नैतिक त्रुटियां समाज को बड़ी खतरनाक मालूम होती हैं, दूर करना आवश्यक मालूम हो सकता है। लेकिन चेचक की बीमारीवाले को क्षय, बड़े सेवक और कोढ़ के रोगियों के साथ रख कर उसे स्वस्थ कर देने का प्रयत्न करना जितना अविचारयुक्त और बुरा है उतना ही किसी मनुष्य को दूसरे चोरों और दगेबाजों के साथ रख कर उसे चोरी और दगेबाजी की आदत से मुक्त करने का प्रयत्न करना अविचारयुक्त और बुरा है।"

इस कथन के बाद तो यह आशा रक्खी जा सकती है कि अब बंगाल की जेल में किये गये या होनेवाले सुधारों के प्रयत्नों का वर्णन होगा। लेकिन बंगाल के लाट महोदय ने इंग्लैण्ड में किये गये दो दयाधर्मी प्रयत्नों के सफल उदाहरण दिये और कहा:

"आप यह पूछ सकते हैं कि मैंने आपलोगों के सामने इस विषय पर चर्चा क्यों पसन्द किया है। कारण यह है कि यह कार्य ऐसा है कि इसे कोई सरकार नहीं कर सकती। सरकारें अपने हस्तक्षेप से अक्सर इस तरह के कामों को बिगाड़ देती हैं या उनकी गति रोक देती हैं। जिनमें यह करने की प्रेरणा और रुचि होती है उन्हींको यह काम करना चाहिए।'

इस प्रकार अपनी और दूसरी सभ्य सरकारों को इस अति आवश्यक सुधार की जिम्मेवारी से मुक्त करके उन्होंने उसे वहां उपस्थित रोटेरी क्लब के सभ्यों के विशाल और आदर्शवादी कंधों पर डाल दिया।

लेकिन मैं एक अनुभवी और पुराने कैदी की हैसियत से यह मानता हूं कि सरकार को ही इस सुधार का आरम्भ करना चाहिए। परन्तु लार्ड लिटन उसका भार अपने श्रोताओं से ही उठवाना चाहते हैं। दयाधर्मी मनुष्य तो सरकार के प्रयत्नों में सिर्फ मदद ही पहुंचा सकते हैं। आज जैसी स्थिति है उसमें तो दयाशील मनुष्यों को बाद में कुछ प्रयत्न करने भी हों तो पहले कैदखानों की बुराई को ही दूर करना होगा। वहां का वायुमण्डल जुर्म करने की आदत को और भी दृढ़ कर देता है और निर्दोष कैदियों को बिना पकड़े गये जुर्म किस तरह करना चाहिए यह सिखा देता है। जेल में जो बुराई होती है उसे मेरे ख्याल में दयाशील मनुष्यों के प्रयत्न दूर नहीं कर सकते। लार्ड लिटन ने अपनी प्रस्तावना में जब यह कहा कि सजा करने के बदले सुधार करना ही पीनल कोड का आधार होना चाहिए तब उन्होंने इस सत्य को अवश्य ही माना होगा। लेकिन व्याख्यान देते समय वे यह भूल गये कि उनका इरादा तो उनकी पीनल कोड को ही सुधार का आधार बनाना है, और ज्यों ही उन्होंने इस बात का महसूस किया कि उनकी सरकार ने कोई सुधार नहीं कर दिखाया है उन्होंने अन्त में कह दिया कि सुधार करने का प्रयत्न करना सरकार का काम नहीं है।

जैसा कि लार्ड लिटन ने कहा है और उचित ही कहा है कि सिर्फ समाज की रक्षा के लिए ही सजा दी जानी चाहिए। तब तो केवल उन्हें एक जगह रोक रखना ही काफी होगा और वह भी तबतक के लिए जबतक कि साधारण तौर पर यह मान लिया जा सके कि उनकी बुरी आदतें छूट गई हैं और उनके अच्छे चाल-चलन का यकीन हो जाय। कैदियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण करने में, मानवहित की दृष्टि से कार्य का विभाग करने में, अच्छे वर्ग के वार्डर पसन्द करने में, कैदियों को ही वार्डर बनाने के रिवाज को दूर करने में और दूसरे परिवर्तनों को जो आसानी से सुझाये जायं, करने में कोई कठिनाई नहीं मालूम हो सकती।

लार्ड लिटन के बातों से यदि तौला जाय तो भी राजनैतिक कैदियों को बिना किसी भी प्रकार की जांच के ही कैद रखना और उनके प्रति जैसा कि कहा जाता है बुरा व्यवहार करना सर्वथा अनुचित है। यह चाहने योग्य है कि लाट महोदय अपनी इस भव्य कसौटी का उपयोग अपना जेलों के इन्तजाम के सम्बन्ध में ही करें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इससे वे सुधार के रूप में बड़े आश्चर्यकारी शोध कर सकेंगे जिनपर कि सरकार आसानी से अमल करने का प्रयत्न कर सकती है, उतनी अधिक आसानी के साथ जितना कि दयाधर्मी लोग किसी बात को आसानी से करने की ओर सफल करने की आशा रख सकते हैं।

(यं० इं०)

मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य बनाम ब्रह्मचर्य

एक मित्र महादेव देसाई को इस प्रकार लिखते हैं:

"आपको यह तो स्मरण होगा ही कि कुछ महीने पहले 'नवजीवन' में स्वप्नों पर लेख लिखे गये थे — शायद आप ही ने 'यंग इंडिया' में उसका अनुवाद किया था। गांधीजी ने उस समय इस बात को प्रकट किया था कि मुझे अब भी दूषित स्वप्न आते हैं। यह पढ़ते ही मुझे ख्याल हुआ था कि ऐसी बातें प्रगट करने का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता और पीछे से मेरा यह ख्याल सच साबित होता हुआ प्रतीत हुआ है।

विलायत की हमारी यात्रा में मैंने और मेरे दो मित्रों ने अनेक प्रकार के प्रलोभनों के होते हुए भी अपना चरित्र शुद्ध रक्खा था। उन तीन 'म' से तो बिल्कुल ही दूर रहे थे। लेकिन गांधीजी का उपरोक्त लेख पढ़ कर मेरे मित्र बिल्कुल ही हताश हो गये और उन्होंने हताशापूर्वक मुझसे कहा कि 'इतने भगीरथ प्रयत्न करने पर भी जब गांधीजी की यह हालत है तब फिर हमारा क्या हिसाब? यह ब्रह्मचर्यादि पालन करने का प्रयत्न करना वृथा है। गांधीजी के इकबाल से मेरा दृष्टिबिन्दु सर्वथा बदल गया है। मुझे तो अब गया बीता ही समझो' कुछ म्लान मुख से मैंने उसका बचाव करना आरंभ किया "यदि गांधीजी जैसों को भी इस मार्ग पर चलना इतना कठिन मालूम होता है तो फिर हमें अब तिगुने अधिक प्रयत्नशील होना चाहिए। इत्यादि' — जैसी कि दलीलें आप या गांधीजी करेंगे। लेकिन यह सब मिथ्या हुआ। आजतक जो निष्कलंक और सुन्दर चरित्र था वह कलंकित हो गया। कर्म सिद्धान्तानुसार इस अधःपतन का कुछ दोष कोई गांधीजी पर लगावे तो आप या गांधीजी क्या कहेंगे?

जबतक मुझे इस एक ही उदाहरण का ख्याल था मैंने आपको कुछ भी न लिखा था — 'अपवाद' के नाम से आसानी से टाल दिये जानेवाले उत्तर से मैं सन्तोष मानने के लिए तैयार न था लेकिन उपरोक्त लेख के पढ़ने के बाद ही घटित हुए दूसरे ऐसे उदाहरणों से मेरे भय को पुष्टि मिली है और ऊपर बताये गये उदाहरण में मेरे मित्र पर उस लेख का जो परिणाम हुआ वह केवल अपवाद रूप न था इसका मुझे यकीन हो गया है।

मैं यह जानता हूं कि गांधीजी को जो हजारहां बातें आसानी से शक्य हो सकती हैं वे मेरे लिए सर्वथा अशक्य हैं। लेकिन भगवान की कृपा से इतना बल तो प्राप्त है कि जो गांधीजी को भी अशक्य मालूम हो ऐसी एकाध बात मेरे लिए संभव भी हो जाय। गांधीजी का इकबाल पढ़ कर मेरा अन्तर विलोडित हुआ है और ब्रह्मचर्य का स्वास्थ्य जो विचलित हुआ है सो अभीतक स्थिर नहीं हो सका है। फिर भी ऐसे ही एक विचार ने मुझे अधःपतन से बचा लिया है। बहुत मरतबा तो एक दोष ही दूसरे दोष से मनुष्य की रक्षा करता है। इसमें भी मेरे अभिमान के दोष के कारण (गांधीजी को जो अशक्य वह मेरे लिए शक्य!!') मेरा अधःपतन होता हुआ रुक गया। गांधीजी के ध्यान में यह बात लाने की कृपा करेंगे? खास कर अभी जब कि वे आत्मकथा लिख रहे हैं। नग्न और शुद्ध सत्य लिखने में बहादुरी तो अवश्य है लेकिन संसार में और 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के पाठकों में इससे विरुद्ध गुण का परिमाण ही अधिक है इसलिए एक का खाद्य दूसरे के लिए जहर हो सकता है।"

यह शिकायत कोई नयी नहीं है। असहयोग के आन्दोलन का जब बड़ा जोर था और उस समय जब मैंने अपनी गलती को स्वीकार किया था तब एक मित्र ने बड़े ही सरलभाव से लिखा था: "आप को तो गलती हो तो भी उसका इकबाल न करना चाहिए। लोगों को यह ख्याल बना रहना चाहिए कि ऐसा भी कोई एक है कि जिससे कोई गलती ही नहीं हो सकती है। आप ऐसे ही गिने जाते थे। आपने गलती का स्वीकार किया है इसलिए अब लोग हताश होंगे।' इस पत्र को पढ़ कर मुझे हंसी आई और खेद भी हुआ। लेखक के भोलेपन पर मुझे हंसी आई। जिससे कभी गलती न हो ऐसा मनुष्य यदि न मिले तो किसी को भी ऐसा मनाने का विचार करना मुझे आह्लादक प्रतीत हुआ।

मुझसे गलती हो और वह यदि मालूम हो जाय तो उससे लोगों को हानि के बदले लाभ ही होगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि गलतियों की मेरे शीघ्र स्वीकृति से जनता को लाभ ही हुआ है। और मैंने अपने सम्बन्ध में तो यह अनुभव किया है कि मुझे तो उससे अवश्य लाभ हुआ है।

मेरे दूषित स्वप्नों के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिए। सम्पूर्ण ब्रह्मचारी न होने पर भी यदि मैं वैसा होने का दावा करूं तो उससे संसार को बड़ी हानि होगी। क्योंकि उससे ब्रह्मचर्य कलंकित होगा, सत्य का सूर्य म्लान हो जायगा। ब्रह्मचर्य का मिथ्या दावा कर के मैं ब्रह्मचर्य का मूल्य क्यों घटा दूं? आज तो मैं यह स्पष्ट देख सकता हूं कि ब्रह्मचर्य के पालन के लिए मैं जो उपाय बताता हूं वे सम्पूर्ण नहीं हैं, सब लोगों को वे सम्पूर्णतया सफल नहीं होते हैं क्योंकि मैं स्वयं सम्पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूं। संसार यदि यह माने कि मैं सम्पूर्ण ब्रह्मचारी हूं और मैं उसकी जड़ीबूटी न दिखा सकूं तो यह कैसी बड़ी त्रुटि गिनी जायगी?

मैं सच्चा साधक हूं, मैं सदा जागृत रहता हूं। मेरा प्रयत्न दृढ़ है, इतना ही क्यों बस न माना जाय? इसी बात से दूसरों को मदद क्यों न मिले? मैं भी यदि विचार के विकारों से दूर नहीं रह सकता हूं तो फिर दूसरों का कहना ही क्या! ऐसा गलत हिसाब करने के बदले यह सीधा हिसाब ही क्यों न किया कि जो शख्स एक समय व्यभिचारी और विकारी था वह आज यदि अपनी पत्नी के साथ भी अविकारी मित्रता रख सकता है और रंभा जैसी युवती के साथ भी अपनी लड़की या बहन का सा भाव रख कर रह सकता है तो हम लोग भी इतना क्यों न कर सकेंगे? हमारे स्वप्न दोषों को, विचार-विकारों को ईश्वर दूर करेगा ही। यह सीधा हिसाब है।

लेखक के वे मित्र जो मेरे स्वप्नदोष के स्वीकार के बाद पीछे हटे हैं, कभी आगे बढ़े ही न थे। उन्हें झूठा नशा था, वह उतर गया। ब्रह्मचर्यादि महाव्रतों की सत्यता या सिद्धि मुझ जैसे किसी भी व्यक्ति पर अवलम्बन नहीं रखती है। उसके पीछे लाखों मनुष्यों ने तेजस्वी तपश्चर्या की है और कुछ लोगों ने तो सम्पूर्ण विजय भी प्राप्त की है।

उन चक्रवर्तियों की पंक्ति में खड़े रहने का जब मुझे अधिकार प्राप्त होगा तब मेरी भाषा में आज से भी अधिक निश्चय दिखाई देगा। जिसके विचार में विकार नहीं है, जिसकी निद्रा का भंग नहीं होता है जो निद्रित होने पर भी जाग्रत रह सकता है वह निरोगी होता है। उसे क्विनीन के सेवन की आवश्यकता नहीं होती। उसके निर्विकारी रक्त में ही ऐसी शुद्धि होती है कि उसे मलेरिया इ० के जन्तु कभी दुःख नहीं पहुंचा सकते। यह स्थिति प्राप्त करने के लिए मैं प्रयत्न कर रहा हूं। उसमें हारने की कोई बात ही नहीं है। उस प्रयत्न में लेखक को, उनके श्रद्धाहीन मित्रों को और दूसरे पाठकों को मेरा साथ देने के लिए मैं निमन्त्रण देता हूं और चाहता हूं कि लेखक की

तरह वे मुझसे भी अधिक तीव्र वेग से आगे बढ़ें। जो पीछे पड़े हुए हों वे मुझ जैसों के दृष्टांत से आत्मविश्वासी बनें। मुझे जो कुछ भी सफलता प्राप्त हो सकी है उसे मैं निर्बल होने पर भी, विकारवश होने पर भी — प्रयत्न करने से, श्रद्धा से और ईश्वरकृपा से प्राप्त कर सका हूं।

इसलिए किसीको भी निराश होने का कोई कारण नहीं है। मेरा माहात्म्य मिथ्या उद्गार है। वह तो मुझे मेरी बाह्यप्रवृत्ति के — मेरे राजनैतिक कार्य के — कारण प्राप्त है। वह क्षणिक है। मेरा सत्य का, अहिंसा का और ब्रह्मचर्यादि का आग्रह ही मेरा अविभाज्य और सब से अधिक मूल्यवान अंग है। उसमें मुझे जो कुछ ईश्वरदत्त प्राप्त हुआ है उसकी कोई भूल कर भी अवज्ञा न करें, उसमें मेरा सर्वस्व है। उसमें दिखाई देनेवाली निष्फलता सफलता की सीढ़ियां हैं। इसलिए निष्फलता भी मुझे प्रिय है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

लड़ाई कैसे सुलगी ?

(गतांक से आगे)

कैसर ने या किसी दूसरे अधिकारयुक्त मनुष्य ने जानबूझ कर योरप में लड़ाई सुलगाई थी या नहीं यह मैं नहीं कह सकता हूं। स्वयं मुझे तो इसमें सन्देह है। एक मरतबा फौज को कूच कराने का हानिकर कदम उठाया गया कि फिर लड़ाई को रोकना असंभव था। जर्मनी की युद्धवृत्ति और योरप में अपना अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेने की इच्छा रखनेवाले और एक दूसरे के साथ स्पर्द्धा करते हुए राज्य, ये दो बातें जहां इकट्ठी हुईं कि वहां लड़ाई के बिना और क्या परिणाम आ सकता है? जबतक आस्ट्रिया हंगरी अपनी फौज को कूच करने से नहीं रोकता है तबतक रशिया अपनी फौज को कैसे रोक सकता है? और सर्विया को एक मरतबा अल्टीमेटम दे चुकने के बाद जर्मनी या आस्ट्रिया भी फौज को कैसे रोक सकते हैं? क्योंकि ऐसा करना तो उन राज्यों के लिए बड़े कलंक की बात हो जाती।

रशिया के जार और उनके सेनाध्यक्षों की जबाबदेही के सम्बन्ध में प्रो. फे ने अपनी जांच का परिणाम इस प्रकार जाहिर किया है. "(१) २९ वीं जुलाई की रात को ११ बजे रशिया की फौज का कितना ही हिस्सा चल दिया था। (२) इसका कारण यह था कि आस्ट्रिया ने सीधो बात करने से इन्कार किया और सर्विया के साथ लड़ाई जाहिर कर दी। (३) कैसर का तार मिला कि जार ने फौज को रोकने का बड़ा प्रयत्न किया। (४) लेकिन रशिया के युद्धवादियों ने जार के हुक्म का अनादर किया। क्योंकि जर्मनी न रुका इसलिए रशिया भी न रुका। १९१७ में रशिया के सेनाध्यक्ष ने इस प्रकार डींग हांकी थी। "मैं जानता था कि जबाबदेही मेरे ही सिर थी और मैंने हुक्म दिया कि कूच तो बराबर करते ही रहना चाहिए। दूसरे दिन जार के समक्ष मैं झूठ बोला था। उस दिन मैं करीब करीब दिग्मूढ़ सा बन गया था। बड़े धमाके के साथ कूच हो चुका था उसकी मुझे खबर थी और उसे रोकना मुश्किल था। खुश किस्मती की बात तो यह थी कि उसी दिन जार को भी इस बात का निश्चय हो गया कि कूच का आरंभ तो कर ही देना चाहिए था और मैंने फौरन ही काम आरंभ कर दिया था इसलिए मुझे धन्यवाद दिया था। यदि मैंने ऐसा न किया होता तो मैं कभी का जेल में पहुंच गया होता।"

एक प्रसिद्ध अंगरेज लेखक मि० लोश डिकिन्सन इसके संबन्ध में लिखते हैं: "मित्रराज्य जिस प्रकार युद्ध सामग्री बढ़ा रहे थे, संस्थानों में मुल्क बढ़ाने की जो स्पर्द्धा चल रही थी और योरप के अग्निकोण में जुदी जुदी जातियों में जो हितविरोध उत्पन्न हुआ था उनका यदि विचार किया जाय तो यह कहना मुश्किल होगा कि लड़ाई का उत्तरदायित्व केवल जर्मनी के ऊपर ही है। लड़ाई सुलगाने का जर्मनी का उत्तरदायित्व मैं कम नहीं करना चाहता हूं लेकिन वह उत्तरदायित्व योरप के दावानल को सुलगाने के लिए सब राज्यों के उत्तरदायित्व का एक अंश मात्र है"

इटली के पहले के मुख्य प्रधान नीत्ती ने इस प्रकार लिखा है: "लड़ाई के पहले के योरप के राज्यों के दरम्यान एक दूसरे के पत्र, स्वीकृति और संधियों की प्रामाणिक और गहरी जांच करने के बाद मुझे गंभीरतापूर्वक यह कहना पड़ता है कि लड़ाई का उत्तरदायित्व केवल हारे हुए राज्यों के सिर पर ही नहीं है। जब हमारा देश लड़ाई में शामिल था तब हमारे यहां के लोगों को उत्साह दिलाने की वृत्ति से शत्रु को जितना बने उतना काला चित्रित करने का और उसीके सर पर लड़ाई की सारी जबाबदेही मढ़ने का हमारा कर्तव्य हो पड़ा था लेकिन अब चूंकि लड़ाई खतम हो गई है और जर्मनी भी शक्तिहीन हो गया है लड़ाई का उत्तरदायित्व सारा जर्मनी का ही था यह कहने में कुछ अर्थ नहीं है।

जो बचे उससे खादी लो

'थर्ड क्लास' की सफर भी एक बड़े मजे की चीज है — विशेष कर इस लिए कि वह बड़ी सस्ती और शान्त होती है। कोई व्यर्थ बातें कर के तुम्हारा सर भी न दुखावेगा। अपनेको और दूसरों को भी बहुत बड़े न समझनेवाले लोगों की भीड़ में तुम्हें कोई भी पहचान न सके इस तरह एक मैं बैठे रहने में बड़ा सुख है और यदि दिन की सफर ता सोने की जगह न मिले तो भी कोई दुःख की बात नहीं ह शरीर को भी इससे कुछ असुविधा न मालूम होगी।

शायद आप यह पूछोगे: 'इतना शोर होता है और उसे आप शान्ति कहते हैं?

भाई, बेचारे निर्दोष स्त्रीपुरुषों के कलबलाट को सुन कर नाक भौं चढ़ाना उचित नहीं है। बालक— हां, अक्सर वे नाहक तकलीफ देते हैं जरूर लेकिन उनके कलबलाट में मजा आता है — परन्तु आपको बालकों के विचार का होना सीखना चाहिए और यदि आप यह समझ सकें कि वह किस लिए रो रहा है तो आप उसकी मदद भी कर सकेंगे। थर्ड क्लास के डिब्बे के आवाज और कोलाहल की अत्युक्ति करने की आवश्यकता नहीं है। ऊंचे वर्ग के मुसाफिरों की बेहूदी बातचीत से भी बहुत मरतबा उतना ही सर खा जाता है।

हां, लेकिन अभी आपको कोई बात खटक रही है और यह मैं जानता हूं। आप कहेंगे कि डिब्बा गन्दा होता है और बैठनेवाले भी गन्दे होते हैं। सच है, लेकिन जिस मैल को आप समझ सकते हैं उसमें बैठना अच्छा या फर्स्ट या सेकन्ड क्लास के मुसाफिरों के, जो समझ में ही न आवे ऐसे मैल में — फैशन, भभक, धनमद और उनकी कृत्रिमता में — बैठना अच्छा? एक मरतबा आप अपना नाक भौं सिकोड़ना छोड़ दोगे तो आपको देश की औसत सफाई के उदाहरण रूप स्थलों में जाने में कोई कठिनाई न मालूम होगी। मैल से आप कुछ मर न जाओगे। बहुत से लोग मैल को जितना जहरी समझते हैं उतना जहरी वह

स्वेडन से

वार्षिक मूल्य ४)
छःमास का „ २)
एक प्रति का „ -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २६

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद	अहमदाबाद, फाल्गुन बदी १४, संवत् १९८२ ११ गुरुवार, फरवरी, १९२६ ई०	मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

दक्षिण आफ्रिका के भारतीय

(बिशप फिशर का निष्पक्ष अवलोकन)

२

[बिशप फिशर के लेख का बाकी बचा हुआ भाग इस अंक में दिया जा रहा है । श्री एण्ड्रयूज ने दक्षिण आफ्रिका जा कर ईसाइयों के अनेक मण्डलों के समक्ष व्याख्यान दिये हैं । उससे बड़ी खलबली मची है । कुछ लोग तो अपना बचाव करने के लिए [illegible] गये हैं; लेकिन बिशप फिशर जैसी [illegible] को एक पादरियों ने नये कानून को विश्वासघात [illegible] जाहिर किया है ।

म० ह० देसाई]

गोरे लोग यह तो भूल ही जाते हैं कि भारतीय किस परिस्थिति में नेटाल आये थे । गन्ने के बगीचेवाले अंगरेज मालिकों को आरंभ के दिनों में यह मालूम हुआ कि बांटु (हबशी) अच्छा किसान नहीं है क्यों कि वह ढोर ले कर घूमने फिरनेवाला ही होता है । उसे न कोई स्थायी घर होता है, न खेत और न कोई निश्चित गांव ही । जहां इच्छा हुई जंगल काट कर दो तीन साल रहकर जमीन जोत लेता है । फिर जब जमीन का कस कम हो जाता है और स्थानान्तर करने की इच्छा प्रबल हो उठती है तो फिर वहां से आगे चल देता है । उसका जीवन निश्चिन्त और सुखी होता था । इस जमाने के मुआफिक होकर एक जगह बंध कर काम करना उसने स्वीकार नहीं किया । उसमें उसे एकसाथ बहुत घण्टे काम करना पड़ता था । यही नहीं उससे उसका समाजजीवन भी नष्टभ्रष्ट हो जाता था । उसका कुटुम्ब, उसकी जाति के नियम, और सामाजिक रीतिरिवाज जुदे ही प्रकार की रहन–सहन के अनुकूल थे और इसलिए वह बंध कर काम करना स्वीकार न करता था । इसलिए गोरे बगीचेवालों ने मजदूरों को प्राप्त करने के लिए किसानों की भूमि भारतवर्ष के प्रति दृष्टि डाली । मजदूर इकट्ठे करके भेजने के लिए हिन्दुस्तान के गांवों में एजन्ट भेजे गये और उन्होंने सहकुटुम्ब या अकेले ही मजदूरों को तैयार कर के दक्षिण आफ्रिका भेज दिया । ये दलाल लोग उनको ललचाने के लिए थैलियों में भर भर कर सोने के पासे लाये थे और उसे भारतवर्ष के सूर्य के प्रकाश में चमकाते हुए वे मजदूरों को मोहित करते थे और दक्षिण आफ्रिका समृद्धि सिद्धि से भरा हुआ मुल्क है ऐसी बातें करते थे । इस तरह फुसलाने पर बहुत से मजदूर तैयार हो कर आते थे । इकरारनामे पर दस्तखत के बजाय अंगूठे का निशान कराया जाता था । जहाज के जहाज मजदूरों के गये और उन्होंने एकनिष्ठा से काम किया । भारतीय से बढ़कर किसान संसार में और कहीं नहीं है । धैर्य, मिहनत, और काम करने में स्थिरता, इन बातों में उसके समान कोई नहीं है । स्त्री, पुरुष और बालक सभी सुबह से लेकर रात तक काम करते थे । जिस पर उनके दस्तखत लिये गये थे उस इकरारनामों में लिखा था कि, जो मजदूर एकाध दो मुद्दत ठीक ठीक काम करेगा उसे दक्षिण आफ्रिका में जमीन खरीदने का और उस देश के बाशिन्दे के तौर पर रहने का अधिकार प्राप्त होगा । मजदूरों ने एक दो या तीन तीन मुद्दत तक संतोषकारक रीति से काम किया था । उन्हें बहुत थोड़ी मजदूरी मिलती थी । उसमें से उन्होंने कुछ रुपये बचाये और उससे उन्होंने थोड़ी जमीन खरीदी और उसमें वे गन्ने और शाक भाजी बोने लगे । इस धंधे में वे सफल हुए और वह भी यहां तक कि कुछ समय के बाद डरबन और दूसरे शहरों का शाकबाजार करीब करीब उन्हीं के हाथ में आ गया ।

इससे कटु विरोध उत्पन्न हुआ । भारतीयों को निकाल बाहर करने का जो कानून आज तैयार हो रहा है, उसमें ना ऊपर जैसा बताया गया है, उनसे अपने पसीने से कमाई हुई जमीनें छीन ली जायगी । उससे समुद्र किनारे का १० कोस का एक टुकड़ा भारतीयों के पास से छीन कर उसको गोरों का ही ठहराया जाता है । ईश्वर को साक्षी रख कर कहो कि इसका नाम न्याय है या विश्वासघात ! अभी अभी 'कागज का टुकड़ा' यह वाक्य अंगरेज जनता के मुख में बहुत सुनाई देता है और वह हमारी नस नस में इतना व्याप्त हो गया है कि मालूम होता है कि आज हम लोग गंभीर प्रतिज्ञाओं को भी 'कागज का टुकड़ा' गिनने के लिए तैयार हो बैठे हैं । लेकिन यह याद रखना चाहिए कि नामधारी ईसाई ऐसी प्रतिज्ञाओं को तोड़ेंगे और उसे ईसाई राज्य अनुकूल कनून बना कर मदद करेंगे तो भी वे अपने इस कृत्य के लिए हिन्दू–मुसल्मानों के दिलों को और संसार के शुद्ध लोगों को हमेशा ही जवाबदेह रहेंगे ।

भारतीय व्यापारी लोग दक्षिण आफ्रिका में कैसे आये ? नये देशमें आये हुए लोगों को घी, मिठाई, मसाला, कपड़ा इत्यादि

आवश्यक चीजें मिलना मुश्किल हो गई। भारत में प्रचलित और प्रिय नमूने के सोने चांदी के जेवर भी न मिल सकते थे और न उस देशके रंगबेरंगी शुद्ध साड़ियां ही मिलती थी। वहां तो केवल सादा कपड़ा ही मिल सकता था। इसलिए कुछ व्यापारी लोग भारतीयों के लिए उनकी रुचि की चीजें मंगाने लगे। जैसे जैसे वह मांग बढ़ती गई वैसे वैसे यह व्यापार भी बढ़ता गया और कुछ समय के बाद यह व्यापार बहुत ही बढ़ गया।

इस दरम्यान भारतीयों ने देखा कि थोकबन्द माल के गोरे व्यापारियों के और हबशी प्रजा के बीच में वे मध्यम वर्ग के अच्छे व्यापारी बन सकते हैं। उन्हें यह प्रतीत हुआ कि वे विशाल रूप से अच्छा व्यापार कर सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि जैसे हरकाई लोग अच्छे चलते हुए व्यापार के प्रति खींचे हुए चले आते हैं उसी प्रकार भारतीय व्यापारियों की संख्या में और अधिकार में भी वृद्धि होती गई। आज दक्षिण आफ्रिका में निवास कर के रहे हुए भारतीयों में करीब करीब ७० प्रति सैकड़ा तो वहीं जन्म लिये हुए हैं और उनमें बहुतसों के तो बापदादों का भी वहीं जन्म हुआ था। जब इस बात का विचार करते हैं तब समस्त हिन्दी कौम को वहां से निकाल बाहर करने की और उनकी नागरिकता के व्यापार इत्यादि के हकों का इन्कार करने की बात बड़ी ही कठोर मालूम होती है। इनमें से हजारों भारतीयों ने तो कभी भारतवर्ष का किनारा तक नहीं देखा है। अमरिका में तीन तीन पीढ़ियां हुई निवास किये हुए लोगों को इंग्लैण्ड आयर्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी इत्यादि अपने अपने पुरखाओं के असली वतन में लौट जाने को यदि कोई बात कहे तो यह बात कैसी समझी जावेगी? अमरिका निवासियों को अपने वतन में लौटा देने की और भारतीयों को भारत लौटा देने की बात की विचित्रता में कोई फरक नहीं है।

कुछ वर्ष हुए दक्षिण आफ्रिका की सरकार ने ईनाम का नियम अख्तयार किया था, अर्थात जो भारतीय कुनबा स्वयं हिन्दुस्तान लौट जाने के लिए तैयार होता था उसे सरकार अमुक रकम नकद देती थी। कितने ही कुनबों ने ऐसी रकम पा कर आफ्रिका छोड़ दिया और हिन्दुस्तान लौट आये। उनका बेचारों का बड़ा बुरा हाल है; क्योंकि उनका भारतीय जीवन और रीतिरिवाजों के साथ का संसर्ग बिल्कुल ही छूट गया था। भारतीयों से सम्बन्ध रखनेवाले विभाग के अधिकारियों से मैंने हिन्दुस्तान गये हुए भारतीय कुनबों की दक्षिण आफ्रिका फिर लौट आने के लिए करुणामय अर्जियों की बहुतसी बातें सुनी हैं। विदेश में जा कर रहनेवाले अपने कितने ही पुराने रीतिरिवाजों को छोड़ देते हैं और उसके बदले कितने ही नये रिवाजों को ग्रहण करते हैं। उन्हें अपने वतन में लौटा देने का परिणाम अवश्य ही बुरा आवेगा।

इस का एक ही उपाय है कि अभी जो १६१०० भारतीय दक्षिण आफ्रिका में निवास किये हुए पड़े हैं उन्हें शान्ति से उस देश में रहने देना चाहिए और उन्हें नागरिकता के हक देने चाहिए और शिक्षा सम्बन्धी और दूसरे विषयों में प्रगति करने की सुविधाएं कर देनी चाहिए। उन पर विश्वास रखना चाहिए और उन्हें राष्ट्र का अंग बना देना चाहिए। गांधी-स्मट्स समझौते के अनुसार नये भारतीय तो दक्षिण आफ्रिका में दाखिल ही नहीं हो सकते हैं। वहां जितने भारतीयों का जन्म होता है उतनी ही उस कौम में वृद्धि होती है। अब यदि यह कहा जाय कि विशाल प्रदेशवाले उस नये देश में पन्द्रह लाख गोरे १६१०० भारतीयों के साथ खड़े नहीं रह सकते हैं तो इस में भारतीयों की बड़ी भारी प्रशंसा है अथवा गोरी जनता बड़ी अपराधी साबित होती है। देश के भिन्न भिन्न प्रदेश में बिखरी हुई परिमाण में छोटी सी प्रजा आफ्रिका की महाप्रजा में आसानी से समा जा सकती है और उचित समय में उन्हें वहां के नागरिक भी गिने जा सकते हैं।

भारतीयों की दुःख सहन करने की शक्ति अमर्यादित है यह मैंने दक्षिण आफ्रिका में अपने यूरोपियन मित्रों को समझाने का प्रयत्न किया। दुःख, दमन और मुश्किलें सहन करना भारतीयों के लिए स्वभावसिद्ध बात हो गई है। उनका धैर्य अनुकरणीय है। भारतीयों के परिचय में आया हुआ कोई भी मनुष्य इस बात का यकीन दिला सकेगा कि उनपर यदि अंकुश रक्खे जावेंगे तो भी वे दुःख सहन करेंगे और आखिर विजय प्राप्त करेंगे। अभी जो कानून बननेवाला है उसका मसविदा बनाने में जिसका हाथ है ऐसे सरकार के एक मुख्य प्रतिनिधि ने जाहिरा तौर पर यह कहा है: "इस कानून की सभी दफायें समान असरकारक साबित हों या न हों, लेकिन इस कानून को बनाने का एक हेतु यह है कि इस देश में (दक्षिण आफ्रिका में) भारतीयों की स्थिति ऐसी असह्य बना दी जाय कि वे स्वयं ही भारतवर्ष का मार्ग ग्रहण करें" कानून बनाने से यह हेतु सफल न होगा। मिसर के फेरोओं राज्य में यहूदियों ने जो कर दिखाया था उसे भारतीय फिर कर दिखावेंगे। बाइबल में कहा है "उनपर जैसे जैसे जुल्म किया गया वैसे वैसे उनकी संख्या बढ़ती ही गई।"

जो प्रजा कुचली जा रही है उसके बनिस्बत सितमगर को ही दमननीति अधिक हानिप्रद साबित होती है। आज तो गोरी प्रजा इतिहास के ऐसे उदाहरणों के प्रति भी आंख बन्द कर लेती है। दक्षिण आफ्रिका के भारतीय दक्षिण आफ्रिका छोड़ कर आनेवाले नहीं हैं। वे तो वहां रहेंगे ही। भारत सरकार ने एक बात स्पष्ट की है। वाइसराय और धारासभा ने उन्हें भारतवर्ष लौटा देने की बात का विचार करने से भी इन्कार किया है। लेकिन यदि भारत सरकार भविष्य में अपना विचार बदले तो भी उसका इस प्रश्न पर कोई खास असर न होगा क्योंकि अपने जन्म और निवास के अधिकार से देश के नियम और न्यायपूर्वक नागरिक बने हुए लोगों का भावि चाहे जिस प्रकार घड़ने का भारत सरकार और आफ्रिका की सरकार को — दोनों में से किसी को भी कोई अधिकार नहीं है। जैसा हक गोरों का है वैसा उनका भी है। दोनों के बापदादा कहीं बाहर से आ कर बसे हुए हैं। शायद इसी प्रश्न पर से ब्रिटिश साम्राज्य की नागरिकता की कीमत आंकी जावेगी। दक्षिण आफ्रिका के भारतीय पूछते हैं: 'ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक होने में क्या लाभ है?' दक्षिण आफ्रिका साम्राज्य का एक विभाग है, हिन्दुस्तान भी साम्राज्य का एक विभाग है। फिर भी फ्रान्स, जर्मनी, जापान और अमेरिका की प्रजा के बराबर भी भारतीयों को दक्षिण आफ्रिका में अधिकार प्राप्त नहीं है। इन स्वतन्त्र नागरिकों को दक्षिण आफ्रिका में प्रवेश करने का जो परवाना मिलता है उसके अनुसार उन्हें जितने हक और विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं उतने खुद ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक भारतीयों को प्राप्त नहीं होते हैं। दक्षिण आफ्रिका की वर्तमान परिस्थिति में जहां काले गोरे के हकों की तुलना हो रही है वहां समस्त ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक बनने का कोई अर्थ नहीं है। यह मैंने बहुत से अंगरेजों के और बीसों भारतीयों से सुना है। यह हालत कबतक निभ सकेगी?

मिश्र विवाह का भय बता कर दक्षिण आफ्रिका की गोरी प्रजा नये कानून का और भारतीयों को अलग करने की नीति का समर्थन करती है। वर्णभेद का पक्ष करनेवाले साम्राज्यवादी जब दूसरी दलीलें नहीं होती तब हमेशा ऐसी ही दलीलों का आश्रय लेते हैं। इसलिए अब इसी ढंग से हमलोग दक्षिण आफ्रिका और दूसरे देशों का विचार करें। भारतवर्ष में गोरों को आये हुए तीन सदियां हो गई फिर भी आज ३२ करोड़ की बस्तीवाले भारतवर्ष में मिश्रवर्ण प्रजा मात्र दो चार लाख ही होगी। इसी प्रकार ११ करोड़ की बस्तीवाले अमरेका के प्रदेश में भी इतनी ही मिश्रवर्ण प्रजा होगी। संसार के दूसरे बहुत से प्रदेशों के बनिस्बत दक्षिण आफ्रिका में काली प्रजा को अलग रखने की नीति पर बड़ी सख्ती से अमल किया जा रहा है। वर्ण के अनुसार ही शहर के विभाग बनाये जाते हैं; समाज की रचना में भी वर्ण के अनुसार विभाग किये गये हैं; खेलकूद, व्यापार शिक्षा, धर्म इत्यादि जीवन के प्रत्येक व्यवहार में वर्ण के अनुसार सख्त सीमायें मुकर्रर की गई हैं। फिर भी ५० लाख हबशियों की और १५ लाख गोरों की बस्ती में करीब करीब १० लाख मिश्रवर्ण प्रजा है। जिस देश में दूसरे किसी भी देश के बनिस्बत अलग रखने की नीति अपूर्व सख्ती के साथ अख्तियार की गई है वहीं मिश्रवर्ण प्रजा सब से अधिक है। इतना लिख कर ही मैं इस विषय को यहां बन्द कर देता हूं। जहां गोरों को असवर्ण लोगों के प्रति आदरभाव बहुत ही कम होता है वहां व्यभिचार या वर्णसंकर अधिक होता है यह क्या सच नहीं है? क्योंकि यदि पुरुष स्त्री को आदर की दृष्टि से देखता है तो वह स्त्री के प्रति अपना व्यवहार वैसाही रखता है जैसा कि एक वीर को उचित है लेकिन यदि वह उसे अपने से उतरती हुई कोटि की मानता है तो उसकी दृष्टि उसके प्रति विषय की ही होती है। वर्णसंकरता से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि प्रत्येक भिन्न भिन्न कौम की संस्कृति का आदर्श जितना हो सके ऊंचा रक्खा जाय। इससे परस्पर मैत्री, मान और स्वतंत्रता का भाव स्थिर हो सकेगा।

'अलग महल्ले बनाने का और विदेशियों से सम्बन्ध रखनेवाला और उनके नाम लिखने का कानून' ऐसा भला नाम जिस कानून को मिला है उससे निवास और व्यापार दोनों बातों में लोगों का वर्णानुसार विभाग कर के उन्हें बिल्कुल अलग कर देने के सिद्धान्त पर अन्तिम सीमा तक अमल करने का अधिकार लिया गया है। इस मसविदे को धारासभा में एक मरतबा तो पढ़ा जा चुका है। उसे तैयार करनेवाले प्रधान उसके पक्ष में प्रस्तावना करते हुए यह जाहिर करते हैं कि भारतीय परदेशी हैं और जबतक उनकी संख्या में बड़ी भारी कमी न की जायगी तबतक इस प्रश्न का सन्तोषकारक निर्णय न हो सकेगा। इस पर से इस कानून का रहस्य स्पष्ट होता है। दक्षिण आफ्रिका में भारतीयों का नामोनिशान भी न रहने देना चाहिए यही स्पष्ट उद्देश है। लेकिन गोरे लोग यह भूल जाते हैं कि आफ्रिका में वे भी विदेशी ही हैं। अधिकार को प्राप्त एक विदेशी प्रजा राजकीय दृष्टि से निर्बल ऐसी एक दूसरी विदेशी प्रजा का जड़मूल से नाश करने के लिए तत्पर हुई है। इसमें जो नीति का ध्वंस है वह स्पष्ट ही है।

मसविदे में कड़े से कड़े अंकुश और मर्यादायें रक्खी गई हैं। इस लेख में पहले उन सब अपमानों का वर्णन किया जा चुका है। इसलिए मैं उन्हें फिर से यहां नहीं गिनाना चाहता हूं। जिन अंकुशों को वे दाखिल करना चाहते हैं वे करीब करीब सभी ट्रान्सवाल में हाल मौजूद हैं और फिर भी उस प्रान्त में रहनेवाले १२००० भारतीय गोरों के लिए बड़े भयरूप हैं यह मनाया जा रहा है। यह मसविदा मन्जूर किया जाय और अभी ट्रान्सवाल में है वैसा कानून सारे ही दक्षिण आफ्रिका में लागू किया जाय तो भी भारतीय कौम कम भयरूप होगी इसका क्या विश्वास? हरएक प्रकार के अंकुश होने पर भी ये मिथ्या लोग गोरे व्यापारियों के लिए भय का कारण बने हुए हैं तो फिर जब वह अंकुश सारे देश पर लागू किया जायगा तब वह कारण बढ़ेगा क्यों नहीं?

दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों की स्थिति के सम्बन्ध में मेरे विचारों को प्रकाशित करते हुए मुझे बड़ा संकोच होता है क्योंकि दक्षिण आफ्रिका में रंगद्वेष का ख्याल बड़ा ही उग्र है इसलिए उसके सम्बन्ध में कुछ भी बोलने से लोगों के दिल आसानी से उत्तेजित हो जा सकते हैं।

प्रश्न बड़ा ही कठिन है और अभी उसका निर्णय भी होता हुआ नहीं मालूम होता है। यह तैयार किया गया मसविदा घाव पर मलहम का नहीं मगर नमक का काम करता है। यह कानून होगा तो उसका यही परिणाम होगा कि रुकावटों के कारण भारतीयों की स्थिति और भी कठिन हो जायगी। उनमें बलिदान का ख्याल उत्पन्न होगा और सारे संसार में जगह जगह उनके मित्र खड़े हो जायंगे इसलिए सचमुच ही मैं यह आशा रखता हूं कि वहां बुद्धिमानी की नीति ही अख्तियार की जायगी और दक्षिण आफ्रिका की धारासभा इस कानून की अव्यवहारिकता समझ लेगी। इस कानून से भारतीय कौम पर आक्रमण किया गया है फिर भी यदि मैं दक्षिण आफ्रिका का निवासी गोरा होता तो मैं प्रत्येक गोरे को यह समझाता कि इस कानून से गोरों पर ही आक्रमण होता है। भारतीय कौम को इससे जो प्रत्यक्ष हानि होगी उससे कहीं अधिक परोक्ष हानि दक्षिण आफ्रिका में रहनेवाली गोरी प्रजा की होगी। जुल्म करनेवाले और जब उखाड़ देनेवाले कानूनों से जिनपर जुल्म होता है उनके बनिस्बत जो जुल्म करते हैं उनमें सद्गुण और शक्ति का ह्रास हो गया है यही बात इतिहास से साबित होती है। इसके लिए ग्रीस, रूम, रशिया और ऐसे दूसरे बहुत से देशों के राजकीय इतिहास से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

भारतीयों में दुःख सहन करने की सदा शक्ति रहती रही है और दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों ने तो अपने इस गौरवगुण के अनुरूप ही व्यवहार रखने के लिए कमर कसी है। उन्हें फांसी पर चढ़ाया जायगा तो भी उन्हें तो उसमें अमरत्व ही प्राप्त होगा। अभी जो नीति है उससे तो मैं यह मानता हूं कि यह प्रश्न और भी विकट रूप धारण करेगा और यह प्रश्न बहुत ही आवश्यक है। इसलिए मेरा ख्याल है कि साम्राज्य, भारतवर्ष और दक्षिण आफ्रिका की सरकार और दक्षिण आफ्रिका में रहनेवाले भारतीयों के प्रतिनिधि मित्रभाव से एकत्रित हों और सब देखभाल और विचार कर के निर्णय करें तो उससे सन्तोषकारक निर्णय हो सकेगा। इस प्रकार संभव है कि ऐसी शर्तें निश्चित की जा सकें कि जो सबको पसन्द हों। 'दोनों कौमें किस प्रकार काम करती हैं' इसी प्रश्न पर सब आधार रहता है। अकेले विरोध से या सताने से कुछ भी न होगा। दोनों कौमों को सब तरफ से विचार करना चाहिए और किसी के जीवन को, स्वतंत्रता को और प्रगति को कोई हानि न पहुंचे इस प्रकार से सब को एक साथ मिल कर निर्णय करने के लिए शुद्ध और स्पष्ट विश्वासपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन बदी १४, संवत् १९८२

स्वेडन से

स्वेडन-देश से एक सज्जन इस प्रकार लिखते हैं—

"आपका अखबार हर हफ्ते मुझे यहां मिलता है जिससे मुझे बडी खुशी हासिल होती है और ऐसा मालूम होता है मानों मैं सदा आपके समागम में ही रहता हूं। मैं देखता हूं कि आप यं. इं. में दूर देश के लोगों के भी सवालों के जवाब दिया करते हैं और मैं समझता हूं कि आप मेरे प्रश्नों के भी उत्तर देंगे। ... ... क्या आप अपने अखबार में इस बात का उत्तर मुझे देंगे कि आप अब भी अपने कार्यक्रम के तमाम अंगों पर पहले की ही तरह अटल हैं। अखबार लिखा करते हैं कि आपने कितने ही विषयों में अपना मत बदल दिया है, किन्तु आप असहयोग के विषय में पहले जैसा ही उत्साह अब भी रखते हैं। हमारे देश के सब से बडे अखबार में एक लेख आपके विषय में छपा है। उसकी मुख्य मुख्य बातों का उल्था अलहदा कागज पर मैं आपके लिए भेजता हूं। मैं समझता हूं कि उनसे यह साबित होता है कि हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत की भीतरी बातों के ज्ञान का कितना भारी अभाव यहां है। लोग यह समझते हुए नहीं दिखाई देते कि जब कि सर्वसाधारण जनता के चारित्र्य की महत्ता के हर अंग को कुचल डालने का प्रयत्न अंगरेजों ने किया है तब भला वे एक दिन, माह या साल में अपनी सारी खोई हुई पूंजी को किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं। अब तो वे जहां मौजूद हैं वहीं से उनका पुनर्निर्माण करना होगा। माना कि यह काम धीरे ही धीरे हो सकता है पर काम करने के लिए मसाला है बडा शानदार।

मेरे अनुवादित उस लेखांश का उत्तर यं. इं. में देने का कष्ट मैं आपको दे रहा हूं। मैं चाहता हूं कि यहां के लोगों को आप की सच्ची राय से वाकिफ कर दूं। मेरा ख्याल है कि आपके चरखे की ही बुनियाद पर ही भारत की स्वाधीनता, आर्थिक कल्याण और उसके फलस्वरूप आध्यात्मिक 'पुनरुज्जीवन' का निर्माण किया जाने वाला है।

यदि मेरी यह भारी धीठता हो तो इस के लिए मैं क्षमा चाहता हूं। हमारी इंजील में एक वचन है — प्रेम भय को भगा देता है। मैं कोई चालीस बरसों से भारत और उसके निवासियों को प्रेम की दृष्टि से देख रहा हूं — और उसी के बल पर आप को कष्ट देने का यह साहस किया है।"

इन महाशय का भेजा अनुवादित अंश नीचे देखिए —

"गांधी अपने धर्मान्धतापूर्ण आध्यात्मिक साम्राज्यवाद में और पश्चिमी सभ्यता के द्वेष में प्रतिगामी भारतवर्ष का ही मूर्तिमान रूप है। उसका आदर्श वही पुरानी सबसे अलग रहनेवाली ग्रामीण जातियां हैं जो कि खेती और पशु-पालन करती थीं और बाहरी दुनिया से अलग रहती थी और यह था आर्थिक स्वाधीनता का परिणाम। इसीको फिर से प्राप्त करने के लिए गांधी पश्चिमी सभ्यता के बंधन से मुक्त होने के मार्ग-स्वरूप चरखे को अपनाने की सिफारिश करता है। इसके साथ ही वह ऐसी राजनीति को फैला रहा है जो कि बहुत स्पष्टतः दाल-रोटी की राजनीति है और कहता है कि अंगरेजों को तमाम सरकारी पदों से हट जाना चाहिए तथा शासन और सेना तथा परराष्ट्रीय विभाग आदि के हर अंग हमारे अधिकार में हो जाने चाहिए। आधुनिक राज्य-प्रणाली में भारतवासियों को प्रविष्ट कराने के इस झगडे में गांधी खुल्लमखुल्ला खुद अपने ही सिद्धान्तों के बिलकुल खिलाफ चल रहा है। मुझे निश्चय है कि तिलक तथा दूसरे पूर्ववर्ती पुरुषों की अपेक्षा गांधी के सामने इस कार्यक्रम में सिद्धि प्राप्त करने के लिए परिस्थिति प्रतिकूल है। ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति के आन्दोलन की विधियों का मनन जिस शख्स ने किया है उसे पश्चिमी सभ्यता विषयक गांधी के विचार दुर्मति-मूलक दिखाई देते हैं। यह प्रतिपादन करने में किसी प्रकार की अयुक्ति नहीं है कि भारत की राजनैतिक जीवन-शक्ति बहुतांश में पश्चिमी सभ्यता के एक मूर्त स्वरूप — रेलवे — पर अवलंबित है। इन्हीं साधनों के बल पर चरखे का आन्दोलन धडाके से हो रहा है, महासभा की बैठकें एक के बाद एक हो रही हैं, स्थान स्थान और समय समय पर नेताओं की सभा-समितियां होती रहती हैं। पश्चिमी सभ्यता की निन्दा और भर्त्सना कर के गांधी अपने को शुद्ध वायुमण्डल में पाता है। जिन साधनों के द्वारा दुनिया से अपने को अलग रखने का तथा पुराने रीति-रवाजों और सामाजिक तरीकों को अपनाने का आन्दोलन सम्भव हो रहा है वे सच पूछिए तो प्राचीन आदर्श से उसे दूर ही दूर हटा के जा रहे हैं और एक तीसरा विपर्यय पूर्वापर-विरोध तो स्वयं गांधीवाद में ही अपना रंग दिखा रहा है।

"हम यह दिखा चुके हैं कि गांधी एक ओर वैराग्य और जप-तप के आदर्शों का उपदेश देते हुए किस प्रकार दाल-रोटी की प्रबल राजनीति का संचालन कर रहा है और किस तरह उसका सर्व व्यापी आन्दोलन उन्हीं बातों का रूप ग्रहण कर लेता है जिन्हें कि वह नष्ट कर देना चाहता है। और एक तीसरा पूर्वापर-विरोध तो गांधी के जाति-विषयक व्यवहार में खुद ही दिखाई पडता है। गांधी स्वभावतः अपने आर्थिक आदर्श अर्थात् ग्राम्य समाज की स्वाधीनता के अनुकूल समाज-व्यवस्था बनाने की चेष्टा करता है इसलिए यह जरूरी है कि गांधी अपनी प्राचीन जाति-व्यवस्था का पूरा पूरा बचाव करे। पर बात ऐसी नहीं है। गांधी ने कितनी ही बातों में खास कर अछूतों के बारे में, सनातनी लोगों के विचारों के खिलाफ अपनी राय जाहिर की है। इस प्रकार उसके काम से आधुनिक काल को सहायता मिलती है। यह साफ है कि जो हलचल इतने परस्पर विरोधी और विचित्र बातों से जैसे कि ऐकान्तिक राष्ट्रधर्म और उसके अन्तिम अपत्य गांधीवाद से भरी पडी है उससे कोई महत्वपूर्ण बात पैदा नहीं हो सकती। धारासभाओं का पाठशालाओं का, अदालतों का तथा मिलों के कपडों का बहिष्कार तो पूरा पूरा असफल हुआ है।

"इस कार्यक्रम के संबंध में सनातनी हिन्दू लोगों का विचार तथा राजनीति अनुकूल नहीं हो सकती। उनका आन्दोलन निरुपयोगी भी नहीं साबित हुआ है। पर उसका अभीष्ट असर नहीं हुआ है। भारत की स्वाधीनता की हलचल ने पश्चिमी सभ्यता के संपर्क को छोड नहीं दिया है। सरकारी पदों पर तथा उद्योग धन्धों में भारतवासियों की नियुक्ति तेजी के साथ करना, नीची जातियों को विद्यालयों में भरती करना इत्यादि जो बातें भारतीय राजनीति में प्रधान रूप से दिखाई देती हैं वे इस प्रवृत्ति की सूचक नहीं हैं। वर्तमान स्थिति की भावुकतात्मक तीव्रता पर दृष्टि रखते हुए

कोई भारतीय राजनीति के इन दो महान् कार्यक्रमों—सनातनी और आमूल नवीन—का इस प्रकार वर्णन कर सकता है: सनातनी योजना को असफल मान सकते हैं परन्तु उसके आन्दोलन के कारण, जो कि भारत को आधुनिक काल के सांचे में ढालने के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है, आमूल नवीन कार्यक्रम सिद्धि प्राप्त कर सकने के योग्य और बहुत मूल्यवान् है परन्तु उसके पुरस्कर्ताओं की विलक्षण तबीयत के बदौलत ऐकान्तिक राष्ट्र-धर्म की प्रबल सहायता के बिना अपनी सिद्धि करने में असमर्थ है।"

पत्रलेखक के पत्र में किये गए प्रश्न के उत्तर में मुझे वही बात फिर कहनी होगी जो कि पहले मैं इन पत्रों में कह चुका हूं। वह यह कि असहयोग के उस असली कार्यक्रम पर आज भी मेरी अटल श्रद्धा है। मेरा दिल यह भी कहता है कि उस के द्वारा राष्ट्र-कार्य की भारी सेवा हुई है। जिन संस्थाओं पर उसने आक्रमण किया था उनकी वह शान-बान आज नहीं रह गई है। पर मैं मानता हूं कि उसकी प्रतिक्रिया भी भारी हुई है और बहुतेरे लोग जिनका संबंध उन संस्थाओं से था अब फिर उन में चले गये हैं। पर मुझे यह विश्वास है कि अनुकूल समय आने पर वह सारा कार्यक्रम फिर से सजीव हुए बिना न रहेगा—हो सकता है कि उसका बाहरी रूप वह न रहे पर उसका अंतरंग वही रहेगा। तबतक मैं एक अमली आदमी की तरह अपने उन साथियों को अपने सिद्धान्त या व्यवहार का त्याग न करते हुए भरसक सहायता देता रहुंगा।

अब स्वीडन के समाचार-पत्र के उस लेखांश को लीजिए। मेरे हेतु और कार्य के विषय में उसमें वही अज्ञान प्रकट होता है जो कि आम तौर पर विदेशी लोगों को रहता है। रेलवे को मिटा देने से मेरा कोई वास्ता नहीं। चरखे के प्रचार को मैं रेलवे के अस्तित्व से बिल्कुल सुसंगत मानता हूं। चरखे का प्रचार राष्ट्रीय गृह-उद्योग के पुनरुद्धार के हेतु किया जाता है। खेती के बाद सबसे बड़ा उद्योग यही है। इससे उत्पन्न धन का समान और स्वाभाविक बटवारा चरखा-प्रचार के द्वारा होगा। और ऐसा होने से देश पर अमूम छाई कालिमी और कंगाली का दुहेरा दोष दूर हो जायगा। और न मैंने कभी यही सुझाया है न सोचा ही है कि अंगरेज भारत से निकाल दिये जायं। पर हां मैं यह जरूर सोचता हूं कि भारत-सरकार-संबंधी अंगरेजों की दृष्टि में आमूल परिवर्तन हो जाय।

सूक्ष्म रूप की गुलामी की यह मौजूदा अस्वाभाविक और जीवा गिराने वाली प्रणाली हर हालत में बदल जानी चाहिए। अंगरेज मालिक बन कर रहना चाहें तो उन के लिए स्थान नहीं है। यदि वे दोस्त और सहायक बनकर रहना चाहें तो जगह जरूर है। पूर्वोक्त लेख के लेखक अस्पृश्यता-निवारण का महान् तात्पर्य बिल्कुल नहीं समझ पाये हैं। यह बात उन के ध्यान में ही नहीं आ सकती कि अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा तो हिन्दू धर्म का महान् दोष दूर होनेवाला है जो कि उसके अन्दर आ घुसा है और ऐसा होने से श्रम-विभाग की इस भव्य व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा न पहुंचेगी पर, हां, यह मानना होगा कि एक कार्यमग्न मनुष्य के लिए जो कि इतना दूरी पर बैठे हुए एक महान आन्दोलन पर दृष्टिपात करता है, यह मुश्किल बात है कि अंगरेजी परन्तु परिचित बाहरी छिलके के अंदर छिपे हुए अपरिचित गूदे का अवलोकन कर सके। उन के लिए गेहूं की तरह भूसी देखना भी कठिन नहीं है। पश्चिम में अब तक जो ऐतिहासिक लड़ाइयां आजादी के लिए हुई हैं उनकी कोई बात शान्तिमय असहयोग आन्दोलन से नहीं मिलती है। इस का आधार पशु-बल या द्वेष नहीं है। जालिम का विनाश भी इस का लक्ष्य नहीं है। यह तो आत्म-शुद्धि की हलचल है। देश आज सामूहिक शान्ति के लिए तैयार नहीं है इसी लिए हो सकता है कि वह बेकार हो। परन्तु इस आन्दोलन को मिथ्या मान लेना अनुचित होगा। मेरी अपनी राय तो यह है कि यह आन्दोलन किसी तरह असफल नहीं हुआ। भारत की आजादी की लड़ाई में अहिंसा को अटल स्थान मिल गया है। इस बात से कि कार्यक्रम एक साल में पूरा न हो सका, सिर्फ यही आशा जाता है कि लोग इतने थोड़े समय में ऐसे प्रबल सक्षोभ को संभाल न सके। परन्तु यह तो एक ऐसा खमीर है जो कि चुपके चुपके परन्तु निश्चय के साथ जनता के अन्दर अपना रास्ता तय कर रहा है।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

सत्ता का दुरुपयोग

हिन्दुस्तान में किये जानेवाले विरोधों की परवा न करते हुए आखिर दक्षिण आफ्रिका की यूनियन पार्लियामेंट ने रंग-द्वेष के कानून को पास कर ही डाला। वहां के भारतीय निवासियों पर उसका इतना असर नहीं होता है जितना कि मूलनिवासियों पर। इस कानून के द्वारा वे तथा एशियाई लोग खानों पर उन कामों के करने से वस्तुतः रोक दिये गये हैं जिन्हें कि योरपियन लोग करते हैं। भारतवासियों का यह अकारण ही अपमान किया गया है। क्योंकि खानों पर तो बहुत ही कम भारतीय काम करते हैं। पर जहां तक आदिम निवासियों से संबन्ध है, यह कानून केवल उनका कानूनी दरजा ही कम नहीं कर देता है बल्कि खानों पर काम करनेवाले हजारों लोगों के दुनियवी हितों को नष्ट करता है। ऐसी अवस्था में यदि जनरल स्मट्स ने इस कानून के खिलाफ गंभीर चेतावनी दी और उसे घास के ढेर में आग लगा देने की उपमा दी तो कोई आश्चर्य नहीं। यह कानून आदिम-निवासियों के लिए एक चुनौती है। वे चाहे अनपढ़ हो, पर हैं वैसे ही स्वाभिमानी और छुईमुई जैसे, जैसे की दुनिया की अन्य जातियां हैं। आज वे अ-सहाय हैं, इसलिए चाहे भले ही इस चुनौती पर वे खम न ठोंक सकें; पर इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि यदि दक्षिण आफ्रिका के योरपियन अपनी इसी उद्धत नीति पर अड़े रहे तो खुद अपने हाथों अपने विनाश का बीज बोयेंगे। कहते हैं कि जब यह कानून सेनेट में पेश होगा तब वह उसे रद कर देगी। उसे यही करना चाहिए। पर उसी तार में यह खबर है कि वर्तमान सरकार का बहुमत उन संयुक्त सभाओं में है जिन में कि वह अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेना चाहती है। यदि यही रफ्तार रही तो मौजूदा रंगद्वेष का कानून जो कि आज भारत में जन-क्षोभ का कारण हो रहा है, स्थगित नहीं हो सकता, जैसा कि होने की आशा श्री एण्ड्रूज ने प्रदर्शित की है। ये उपाय सच पूछिए तो एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं और रंगभेद के संबन्ध में वर्तमान यूनियन सरकार की नीति को प्रदर्शित करते हैं। सिर्फ भारत-सरकार का कहना ही इस नीति पर पुनर्विचार करा सकता है।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १०

धर्म की झलक

छः या सात वर्ष से ले कर जबतक सोलह वर्ष का हुआ तबतक शाला की पढ़ाई में कहीं भी मुझे धर्म की शिक्षा प्राप्त न हो सकी थी। कहा तो यही जा सकता है कि शिक्षकों के पास से जो सहज ही में प्राप्त होना चाहिए था वह प्राप्त न हो सका था। यह होने पर भी वायुमण्डल में से तो कुछ न कुछ प्राप्त होता ही रहता था। यहां पर धर्म का बड़ा विशाल और उदार अर्थ करना चाहिए। धर्म अर्थात् आत्मा की झलक, आत्मज्ञान।

मेरा जन्म वैष्णव संप्रदाय में हुआ था इसलिए अक्सर मन्दिर में जाना होता था। लेकिन उसके प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न न हो सकी। उसका वैभव मुझे पसन्द न आया। उसमें होनेवाली अनीति की बातें सुनता था इसलिए उसके प्रति उदासीनता पैदा हुई। और मुझे वहां से कुछ भी प्राप्त न हो सका।

लेकिन जो मन्दिर से प्राप्त न हो सका वह मुझे मेरी दाई से प्राप्त हुआ। वह हमारे कुटुम्ब की बड़ी पुरानी नौकर थी। उसका प्रेम मुझे आज भी याद आता है। ऊपर मैं यह लिख चुका हूं कि मैं भूतप्रेतादि से डरता था। रंभा ने मुझे यह समझाया कि उसका औषध रामनाम है। रामनाम के बनिस्बत मुझे रंभा के प्रति अधिक श्रद्धा थी इसलिए भूतप्रेतादि के भय से बचने के लिए मैंने बचपन में ही रामनाम का जप करना शुरू किया। वह बहुत दिनों तक न टिक सका लेकिन जो बीज बचपन में बोया गया था वह नष्ट न हो सका। आज मेरे लिए रामनाम एक अमोघ शक्ति है, उसका कारण मैं रंभाबाई के बोया हुआ बीज ही मानता हूं।

इन्हीं दिनों में मेरे एक काका के लड़के ने, जो रामायण के बड़े भक्त थे, हम दोनों भाइयों के लिए रामरक्षा का पाठ सीखने का प्रबन्ध कर दिया था। हम लोगों ने उसे कण्ठस्थ कर लिया और प्रातःकाल में स्नान करने के बाद उसे हमेशा पढ़ जाने का नियम किया। जबतक पोरबन्दर में रहे तबतक तो यह निभ सका लेकिन राजकोट के वायुमण्डल में वह मिट गया। इस क्रिया के प्रति भी मुझे कोई खास श्रद्धा न थी। बड़े भाई के प्रति जो आदर था उसके कारण और कुछ रामरक्षा का पाठ शुद्ध उच्चार से हो सकता था इस अभिमान के कारण ही उसका पाठ करता था। लेकिन जिस बात की मेरे दिल पर गहरी छाप पड़ी वह रामायण का पठन था। पिताजी की बीमारी का कुछ समय पोरबंदर में बीता था। वहां पर वे नित्य रामजी के मन्दिर में जा कर रामायण सुनते थे। ये रामायण सुनानेवाले महाराज रामचन्द्रजी के परम भक्त बिलेश्वर के लाधा महाराज थे। उनके सम्बन्ध में यह कथा कही जाती थी कि उन्हें कोढ़ निकला था। उसकी दवा करने के बदले उन्होंने बिलेश्वर के महादेव को चढ़े हुए बीलीपत्र कोढ़वाली जगह पर रखे और केवल रामनाम का जप किया। आखिर उनका वह कोढ़ जड़मूल से नष्ट हो गया। यह बात सच हो या न हो, सुननेवालों—हमलोगों—ने सच मान ली। लेकिन यह बात सच थी कि जब उन्होंने कथा का आरम्भ किया तो उनका शरीर बीलकुल निरोग था। लाधा महाराज का कण्ठ मधुर था। वे दोहा चौपाई गाते थे और उनका अर्थ समझाते थे। वे स्वयं उसके रस में लीन हो जाते थे और श्रोताजनों को भी उसमें लीन कर देते थे। उस समय मेरा वय कोई तेरह साल का होगा लेकिन मुझे यह स्मरण है कि उनकी कथा में मुझे बड़ी दिलचस्पी मालूम होती था। मेरे रामायण पर के अत्यन्त प्रेम की नींव ही मेरा यह रामायणश्रवण है। आज मैं तुलसीदासजी के रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूं।

थोड़े महीने बाद हमलोग राजकोट आये। वहां ऐसी कोई कथा न होती थी। हां, एकादशी के दिन भागवत अवश्य पढ़ा जाता था। कभी कभी मैं भी सुनने के लिए बैठ जाता था परन्तु भटजी उसमें दिलचस्पी उत्पन्न नहीं कर सके थे। आज मैं यह समझ सका हूं कि भागवत एक ऐसा ग्रंथ है कि जिसे पढ़ कर धर्मरस उत्पन्न किया जा सकता है। मैंने उसे गुजराती में बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ा है। लेकिन जब मैंने मेरे इक्कीस दिनों के उपवास के समय उसके कुछ भागों को भारतभूषण पण्डित मालवीयजी के शुभ मुख से सुना तब मुझे यह ख्याल हुआ कि उनके जैसे किसी भगवद्भक्त की जबानी यदि बचपन में ही मैं भागवत सुनता तो मुझे बचपन से ही उसपर अच्छी प्रीति हो जाती। उस उम्र में पड़े हुए संस्कारों के मूल बड़े गहरे जम जाते हैं और इसका मैं अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूं, और इसीलिए मुझे यह बात खटकती है कि उस उम्र में कितने ही उत्तम ग्रंथ सुनने का मुझे सौभाग्य प्राप्त न हो सका था।

राजकोट में मुझे अनायास ही जुदे जुदे सम्प्रदायों के प्रति समानभाव रखने की तालीम मिली। हिन्दू-धर्म के प्रत्येक संप्रदाय के प्रति आदरभाव रखना सीखा। क्योंकि माता-पिता वैष्णव मन्दिरों में जाते थे, शिवालय में जाते थे और हमलोगों को भी साथ ले जाते थे या भेज देते थे।

पिताजी के पास जैन धर्माचार्यों में से भी कोई न कोई आचार्य हमेशा आते थे। वे उन्हें भिक्षा भी देते थे। वे पिताजी के साथ धर्म की और व्यवहार की बातें करते थे। इसी प्रकार पिताजी के जो पारसी और मुसल्मान मित्र थे वे भी अपने अपने धर्म की बातें करते थे और पिताजी उनकी बातें आदर — और अक्सर रस — पूर्वक सुनते थे। मैं 'नर्स' होने के कारण ऐसे वार्तालाप के समय अक्सर हाजिर होता था। इस वायुमण्डल का मुझ पर यह असर हुआ कि सब धर्मों के प्रति मेरे में समानभाव पैदा हो गया।

ईसाई धर्म ही केवल अपवाद था। उसके प्रति कुछ अभाव था। उस समय हाइस्कूल के एक कोने में कोई ईसाई नित्य व्याख्यान देता तो वह हिन्दू देवताओं का और हिन्दू धर्मीओं की अवगणना करता था। यह मुझे असह्य मालूम हुआ। मैं केवल एक ही मरतबा यह व्याख्यान सुनने के लिए गया होऊंगा। लेकिन फिर वहां खड़े रहने का भी मुझे कभी दिल नहीं हुआ। इसी समय यह सुना कि एक प्रसिद्ध हिन्दूधर्मी ईसाई बन गये हैं। उनके सम्बन्ध में प्रामाण्यता यह थी कि जब उन्हें ईसाई धर्म में प्रवेश कराया गया उन्हें गोमांस खिलाया गया था और शराब पिलायी गई थी। उनके कपड़े भी बदले गये थे। वे ईसाई होने के बाद कोट, पतलून और अंगरेजी टोपी पहनने लगे थे। यह सुन कर मुझे बड़ा त्रास हुआ। जिस धर्म के कारण गोमांस खाना पड़े, शराब पीना हो, और अपना पहनावा भी बदल देना पड़े उसे धर्म कैसे कहा जाय? मेरे मन ने यही दलील की। और यह भी सुना कि जो भाई ईसाई हो गये हैं उन्होंने अपने

पूर्वजों के धर्म की, रीतिरिवाजों की और देव की बुराई करना आरंभ किया है। इन सब बातों से मुझे ईसाई धर्म के प्रति अभाव हो गया।

यद्यपि दूसरे धर्मों के प्रति मेरे में समभाव हुआ तथापि लेकिन उससे यह नहीं कहा जा सकता कि मुझे ईश्वर के प्रति श्रद्धा थी। इसी समय मेरे पिताजी के पुस्तकसंग्रह में से मनुस्मृति का अनुवाद हाथ आया। उसमें संसार कि उत्पत्ति इत्यादि की बातें पढ़ी लेकिन उसपर विश्वास न हुआ, उल्टी कुछ नास्तिकता उत्पन्न हुई। मेरे दूसरे काका के लड़के की बुद्धि पर जो हाल जीवित हैं, मुझे विश्वास था। उनके पास मैंने अपनी शंकायें पेश की लेकिन वे मेरा समाधान न कर सके। उन्होंने उत्तर दिया "बड़े होने पर तुम ऐसे प्रश्नों का स्वयं ही निर्णय करना सीख लोगे। बालकों को ऐसे प्रश्न नहीं करने चाहिए।" मैं चुप हो रहा लेकिन मन को शान्ति न हुई। मनुस्मृति के खाद्याखाद्य अध्याय में और दूसरे अध्यायों में भी मैंने प्रचलित प्रथा का विरोध पाया। इस शंका का उत्तर भी मुझे करीब करीब ऊपर के जैसा ही मिला। 'किसी दिन बुद्धि का विकास होगा, अधिक पढ़ूंगा और समझूंगा" इस ख्याल से दिल को समझा लिया।

मनुस्मृति पढ़ कर उस समय मैं अहिंसा तो न सीख सका। मांसाहार की बात तो ऊपर लिखी ही गई है। मनुस्मृति ने उसका समर्थन किया। यह भी ख्याल हुआ कि सर्पादि और खटमलों को मारना नीति है। मुझे याद है कि उस समय धर्म मान कर खटमल आदि का मैंने नाश भी किया था।

लेकिन एक बात हृदय में जम गई — यह संसार नीति के आधार पर खड़ा है। नीतिमात्र का सत्य में समावेश होता है। सत्य का शोध करना चाहिए। दिनप्रतिदिन मेरी दृष्टि में सत्य का महिमा बढ़ता ही गया। सत्य की व्याख्या विस्तृत होती गई और अब भी हो रही है।

और एक नीति का छप्पय भी हृदय में बैठ गया था। उससे जीवन का यह सूत्र बन गया कि अपकार का बदला अपकार नहीं लेकिन उपकार ही हो सकता है। उसने मुझ पर साम्राज्य प्राप्त करना आरंभ किया अपकार करनेवाले का भी भला चाहना और करना मेरा अनुराग हो पड़ा और मैंने उसकी अनेक प्रकार से आजमाइश भी की।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

आश्रम भजनावली

पांचवी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३१० होते हुए भी कीमत सिर्फ ०—२—० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०—३—० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी। १० प्रतियों कमसे प्रतियों की वी. पी. नहीं भेजी जाती।

वी. पी. मंगानेवाले को एक चौथाई दाम पेशगी भेजने होंगे व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-पुस्तकें

लोकमान्य को श्रद्धांजलि	॥)
आश्रमभजनावलि	=)
जयन्ति अंक	।)

डाक खर्च अलहदा। दाम मनी आर्डर से भेजिए अथवा वी. पी. मंगाइए— व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

हिन्दू-धर्म की स्थिति

सनातनी हिन्दू का उपनाम धारण करके एक भाई लिखते हैं:

"हिन्दू धर्म की आज की स्थिति जितनी विषम है उतनी ही विचित्र भी है। कट्टर हिन्दू लोग दावा करते हैं कि वे शास्त्रों के वचनों के अनुसार ही चलते हैं लेकिन यही मालूम नहीं होता कि कोई शास्त्र पढ़ता भी है या नहीं। यदि शास्त्रों का अध्ययन करें तो दो बातों का स्पष्ट ज्ञान हो जाय।

१ आज धर्मधुरन्धर माने जानेवाले प्रसिद्ध लोग भी शास्त्रों के अनुसार नहीं चलते हैं।

२ शास्त्रों में जो लिखा है और जितना प्रमाण माना गया है उसके अनुसार सोलह आना न कोई चल सकता है और न कोई इस तरह चलना ही पसंद करेगा।

साधारण जनता का रास्ता तो यही होता है कि जिस प्रकार शिष्ट लोगों का व्यवहार होता है उसी प्रकार उन्हें भी चलना चाहिए। शिष्ट लोगों को यह दिखाना पड़ता है कि वे शास्त्रों के अनुकूल ही व्यवहार कर रहे हैं। अर्थात् सब जगह दंभ ही दंभ दिखाई देता है।

कौनसी रूढि शुद्ध सनातनी है इसका कहीं पता ही नहीं चलता। सनातन रूढि क्या हो सकती है इसके सम्बन्ध में भी जुदे जुदे प्रान्त की कल्पनायें निराली होती हैं। व्यावहारिक धर्माचार का समग्र रूप से अध्ययन करने की दृष्टि से कोई सारे देश में भ्रमण नहीं करता है, निरीक्षण नहीं करता है और न कहीं तुलनात्मक चर्चा ही होती है। सुधारक लोग जो टीकायें करते हैं उसके मूल में अक्सर धार्मिकता के प्रति कोई आदर नहीं होता है, यही नहीं वस्तुस्थिति का अध्ययन भी पूरा नहीं होता है इसलिए उनकी टीकायें अंधी और निर्जीव होती हैं। आज यदि कोई हिन्दू-रिवाजों का कुछ अध्ययन करता है तो वे योरपियन अधिकारी और मिशनरी लोग ही हैं।

हिन्दुओं में हरएक का यह ख्याल है कि अपने प्रान्त का रिवाज ही शुद्ध हिन्दू-धर्म है। अस्पृश्यतानिवारण में कहो या हिन्दू संगठन में, अपने अपने प्रान्त की स्थिति का विचार करके ही नेतागण अपनी राय कायम करते हैं।

इसका एक ही उदाहरण बस होगा। आप कहते हैं कि अस्पृश्यता का निवारण करने के बाद अस्पृश्यों की स्थिति शूद्र के जैसी रहेगी यहां तक तो ठीक है, लेकिन सब जगह शूद्रों की स्थिति भी कहां एक समान है? जिन प्रान्तों में ब्राह्मण लोग भी मांसाहार या मत्स्याहार करते हैं वहां शूद्रों की एक प्रकार की स्थिति है, जहां ब्राह्मणेतर दूसरे सब वर्ण मांसमत्स्य का सेवन कर सकते हैं वहां शूद्रों की स्थिति दूसरी ही है और जिन प्रान्तों में ब्राह्मणों के साथ वैश्यादि दूसरे वर्ण भी निरामिष भोजी हैं वहां की स्थिति और भी निराली है। आपने एक स्थान पर लिखा है कि शूद्रों के हाथ का पानी पीने में यदि अन्य वर्णों को कोई ऐतराज नहीं होता है तो अन्त्यजों के हाथ का पानी पीने में भी उन्हें कोई ऐतराज नहीं होना चाहिए।

अब जहां कितने ही हिन्दू मांसाहार करनेवालों के हाथ का पानी न लेने का आग्रह रखते हैं वहां तिरस्कार के बनिस्बत धार्मिक शौच का विचार ही प्रधान होता है। कुछ हिन्दुओं को सामान्य मांस खानेवालों के हाथ से शुद्ध जल ग्रहण करने मे कोई ऐतराज नहीं होता है लेकिन गोमांस खानेवाली जातियों के हाथ का पानी लेने में उन्हें बड़ा ऐतराज होता है और इसीलिए वे शूद्रों के हाथ का पानी पीने पर भी ईसाई, मुसल्मान और अन्त्यजों के हाथ से पानी नहीं लेते हैं। इन तीनों जाति के

लोगों को स्पर्श किया जा सकता है लेकिन उनके हाथ का पानी कैसे लिया जाय ?

शायद आप यह नहीं जानते होंगे कि गुजरात के अन्त्यज मरे हुए गाय बैलों का मांस खाते हैं, यही नहीं वे गोमांस बेचनेवाले कसाइयों के यहां से गोमांस ला कर खाने मे भी कोई पाप नहीं समझते है । इस हालत में कट्टर हिन्दू के हृदय में यह खयाल अवश्य ही होगा कि अन्य शूद्रों की तरह उनके हाथ का पानी कैसे पीया जाय ? इसके सम्बन्ध में आप अपना वक्तव्य प्रकाशित करेंगे तो अच्छा होगा ।

आपके उपदेशक और अन्त्यज सेवक अन्त्यजों को मिट्टी न खाने को समझाते है । मिट्टी खाने से रोग होते है यही हमारी दलील होती है । अन्त्यजलोग कहते है कि इतने जमाने से खाते चले आ रहे है, हमें रोग कहां हुए है ? हमलोगों के तो वह अनुकूल हो गया है । यदि अन्त्यजलोग मिट्टी और दूसरा भी गोमांस खाना छोड दें तो अस्पृश्यतानिवारण का कार्य आसान हो जायगा और फिर उनके हाथ से पानी लेने में भी कोई ऐतराज न होगा । गुजरात के अन्त्यजों की एक परिषद् बुलाकर उनसे आप इतना करा सको और उन्हीं की कौम के कुछ नेतागण इतना सुधार एकदम कर देने के लिए कमर कस लें तो क्या अच्छा हो ? "

इस पत्र में केवल एक पक्ष की ही दलीलें पेश की गई है । लेखक की इस चिन्ता के लिए स्थान अवश्य है । हिन्दू-धर्म जीवित धर्म है उसमें भरती और ओट आती ही रहती है । वह संसार के नियमो का ही अनुसरण करता है । मूल रुप से तो वह एक ही है लेकिन वृक्ष रुप से वह विविध प्रकार का है । उस पर ऋतुओं का असर होता है । उसका वसन्त भी होता है और पतझड भी । उसकी शरदऋतु भी होती है और उष्णऋतु भी । वर्षा से भी वह वंचित नहीं रहता है । उसके लिए शास्त्र है और नहीं भी है । उसका एक ही पुस्तक पर आधार नहीं है । गीता सर्वमान्य है लेकिन वह केवल मार्गदर्शक है । रूढियों पर उसका बहुत कम असर होता है । हिन्दू-धर्म गंगा का प्रवाह है । मूल में वह शुद्ध है । मार्ग में उसपर मैल चढता है फिर भी जिस प्रकार गंगा की प्रवृत्ति अन्त में पोषक है उसी प्रकार हिन्दू-धर्म भी है । हरएक प्रान्त में वह प्रान्तिय स्वरुप ग्रहण करता है फिर भी उसमे एकता तो होती ही है । रूढि धर्म नहीं है । रूढि में परिवर्तन होगा लेकिन धर्मसूत्र तो वैसे के वैसे ही बने रहेंगे ।

हिन्दू-धर्मी की तपश्चर्या पर ही हिन्दू-धर्म की शुद्धता का आधार रहता है । जब कभी धर्म पर आफत आती है तभी हिन्दू-धर्मी तपश्चर्या करता है, बुराई के कारण ढूंढता है और उसका उपाय करता है । शास्त्रों में वृद्धि होती ही रहती है । वेद, उपनिषद, स्मृति, इतिहासादि एक साथ एक ही समय में उत्पन्न नहीं हुए है । लेकिन प्रसंग आने पर ही उन उन ग्रंथों की उत्पत्ति हुई है । इसलिए उनमें विरोधाभास भी होता है । वे ग्रंथ शाश्वत सत्य को नहीं बताते हैं लेकिन अपने अपने समय में शाश्वत सत्य का किस प्रकार अमल किया गया था यही वे बताते हैं । उस समय जैसा अमल किया गया था वैसा दूसरे समय में भी करें तो निराशा के कूप में ही पडना होगा । एक समय हमारे यहां पशुयज्ञ होता था इसीलिए क्या आज भी करेंगे ? एक समय हमलोग मांसाहार करते थे इसलिए क्या आज भी करेंगे ? एक समय चोर के हाथ पैर काट डाले जाते थे, क्या आज भी उनके हाथ पैर काटेंगे ? एक समय हमारे यहां एक स्त्री अनेक पति करती थी क्या आज भी करेगी ? एक समय हमलोग बालकन्या का दान करते थे तो क्या आज भी वही करेंगे ? एक समय हमलोगों ने कुछ मनुष्यों की प्रजा को तिरस्कृत मानी थी इसलिए क्या आज भी उसे तिरस्कृत ही मानेंगे ?

हिन्दू-धर्म जड बननेसे साफ इन्कार करता है । ज्ञान अनन्त है, सत्य की मर्यादा को किसी ने भी खोज नहीं पायी है । आत्मा की नयी नयी खोजें होती ही रहती है और होती ही रहेगी । अनुभव के पाठ पढते हुए हमलोग अनेक प्रकार के परिवर्तन करते रहेंगे । सत्य तो एकही है लेकिन उसे सर्वांश में कौन देख सका है ? वेद सत्य है, वेद अनादि है लेकिन उसे सर्वांश में कौन जान सका है ? वेद के नाम से जो ग्रन्थ पहचाने जाते हैं वे तो उसका करोडवां भाग भी नहीं है । जो हमलोगों के पास है उसका अर्थ भी सम्पूर्णतया कौन जानता है ?

इतना बडा जंजाल होने के कारण ही तो ऋषियों ने हमलोगों को एक बहुत बडी बात सिखायी है 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' । ब्रह्माण्ड का पृथक्करण करना असंभव है । अपना पृथक्करण कर देखना शक्य है । और अपने आपको पहचाना कि सारे संसार को पहचान लिया । लेकिन अपने को पहचानने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है । और वह प्रयत्न भी निर्मल होना चाहिए । निर्मल हृदय के बिना प्रयत्न का निर्मल होना असंभव है । यमनियमादि के पालन के बिना हृदय की निर्मलता भी संभव नहीं है । ईश्वर की कृपा के बिना यमादि का पालन कठिन है । श्रद्धा और भक्ति के बिना ईश्वर की कृपा प्राप्त नहीं हो सकती है । इसीलिए तुलसीदास-जीने रामनाम का महिमा गाया है और भागवतकार ने द्वादश मन्त्र सिखाया है । जो दिल लगाकर यह जप कर सकता है वही सनातनी हिन्दू है, बाकी और सब तो अक्षा की भाषा में अंधेरा कुवा है ।

अब लेखक की शंकाओं का विचार करें । योरपियन लोग हमारे रीतरिवाजों को देखते अवश्य हैं लेकिन मैं उसे अध्ययन जैसा अच्छा नाम न दूंगा । वे तो टीका करने की दृष्टि से ही देखते हैं इसलिए उनके पास से मुझे धर्म प्राप्त न होगा ।

भूतकाल में गोमांसादि खानेवालों का बहिष्कार भले ही उचित हो, आज तो वह अनुचित और असंभव है । अस्पृश्य मानेजाने-वाले लोगों से गोमांसादि का त्याग कराना हो तो यह केवल प्रेम ही से हो सकेगा, उनकी बुद्धि को जागृत करने पर ही होगा, उनका तिरस्कार करने से न होगा । उनकी बुरी आदतें छुडाने के प्रेममय प्रयोग हो ही रहे है लेकिन खाद्याखाद्य में ही हिन्दू-धर्म की परिसीमा कहीं थोडे ही आ जाती है । उससे अनन्तकोटि अति आवश्यक वस्तु अन्तराचरण है, सत्य अहिंसादि का सूक्ष्म पालन है । गोमांस का त्याग करनेवाले दंभी धूर्त के बनिस्बत गोमांस खानेवाला दयामय, सत्यमय, ईश्वर का भय करके चलनेवाला मनुष्य हजार गुना अधिक अच्छा हिन्दू है और जो सत्यवादी, सत्याचरणी गोमांसादि के आहार में हिंसा देख सका है और जिसने उसका त्याग किया है, जिसको जीव मात्र के प्रति दया है उसे कोटिशः नमस्कार ही । उसने तो ईश्वर को देखा है, पहचाना है, वह परमभक्त है; वह जगद्गुरु है ।

हिन्दूधर्म की और अन्य धर्मों की आज परीक्षा हो रही है । सनातन सत्य एक ही है, ईश्वर भी एक ही है । लेखक, पाठक और हम सब मतमतान्तरों की मोहजाल में न फंसकर सत्य के सरल मार्ग का ही अनुसरण करेंगे तभी हमलोग सनातनी हिन्दू रह सकेंगे । सनातनी माने जानेवाले बहुतेरे भटक रहे है । उसमें कौन जानता है किसका स्वीकार होगा ? रामनाम लेनेवाले बहुत से रह जायेंगे और चुपचाप राम का काम करनेवाले विरल लोग जियवमाल पहन लेंगे ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

शराबखोरी की बन्दी

वार्षिक मूल्य ४)
छमास का „ २)
एक प्रति का „ =)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २५

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, फाल्गुन बदी ७, संवत् १९८२ गुरुवार, ४ फरवरी, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

दक्षिण आफ्रिका के भारतीय

(बिशप फिशर का निष्पक्ष अवलोकन)

[दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों की स्थिति खुद अपनी आंखों देखने के लिए कलकत्ते के बिशप फिशर गत वर्ष में वहां गये थे। उन्होंने गोरों के, ईसाइयों के, व्यापारियों के और भारतवासियों के अनेक मण्डलों से और मुख्य सचीव से—सब से मुलाकात की थी। बहुत से भारतवासी और योरपियनों के घर जा कर उनसे मिले थे। अलग अलग वाडों में रहनेवाले और मिलों के बागीचों के बेरेकों में रहनेवाले भारतवासियों की रहनीकरनी का भी उन्होंने सूक्ष्म अवलोकन किया था। उस पर से उन्हें जो कुछ मालूम हो सका था उसे उन्होंने एक पत्रिका के रूप में प्रकाशित किया है। वे लिखते हैं—"वहां की हालत का ज्यों ज्यों अधिक विचार किया जाता है त्यों त्यों यह अधिक निश्चय होता जाता है कि साम्राज्य के और संसार के सब ईसाइयों को इस बात पर जोर देना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों के प्रश्न का निर्णय न्याय और नीति के अनुकूल किया जाय...... इस पत्रिका में लिखी गई हरएक बात के लिए मेरे पास सुबूत मौजूद हैं और भारतवासियों का जो अपमान और उनको जो अन्याय हो रहा है उसे बढ़ा कर लिखने के बदले दबी हुई कलम से ही उसका चित्र खींचा गया है।" एक निष्पक्ष गवाही की तरफ से इतने संक्षिप्त रूप में दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों की स्थिति का ऐसा अच्छा वर्णन शायद ही और कहीं मिल सकेगा इसलिए नवजीवन के पाठकों के लिए उसका यह अनुवाद यहां दिया जाता है। म. ह. देसाई]

आधुनिक समय में दक्षिण आफ्रिका में अनेक वर्णों के लोग इकट्ठे होने के कारण वहां जो कठिन प्रश्न उपस्थित हुआ है वैसा प्रश्न शायद ही और कहीं होगा। यह नहीं कि यह प्रश्न उसके एक ही विभाग का है, लेकिन यह समस्त आफ्रिका का प्रश्न है। आफ्रिका के मूल बासिन्दे १५ करोड हबशियों में और आखिरी सीमा पर पहुंचे हुए व्यापार सम्बन्धी सुधारों को ले कर गये हुए और उस देश को ही हजम किये बैठे हुए २० लाख से कम गोरों में जो हितविरोध है उससे ही प्रधान कठिनाई उपस्थित होती है। वे गोरे अधिकारी यह निश्चय किये बैठे हैं कि राजनीति, व्यापार या उद्योगों में सब जगह सदा उन्हीं का अधिकार चलना चाहिए। इस प्रकार के अधिकार चलाने पर काले और गंदुमी रंग के लोगों के शिक्षण और उन्नति की व्यवस्था कैसे की जाय यह प्रश्न होता है।

इसमें दक्षिण आफ्रिका के संयुक्त राज्य की परिस्थिति सब से अधिक कठिन मालूम होती है क्यों कि वहां का प्रजातंत्र दूसरी जगहों की तरह अभी उतना विकसित नहीं है। वर्णद्वेष इतना बढ गया है कि वहां यह भय रहता है कि उसके कारण प्रजातंत्र के आदर्श ही भ्रष्ट न हो जायं। यह नहीं हो सकता कि संसार का लोकमत किसी भी सरकार को राजकीय अथवा व्यापारी जातिशाही की किसी भी प्रथा के अनुसार दूसरे लोगों पर आज अधिकार चलाने दें। यही नहीं कि केवल विजीत लोग ही न्याय और उन्नति करने की स्वतंत्र का अधिकार मांगेंगे, परन्तु संसार का लोकमत ही उनके लिए उस अधिकार को मांगेगा। इसलिए अब यह प्रश्न उन राज्यों की अपनी आन्तर्व्यवस्था का ही नहीं रहा है बल्कि समस्त संसार का हो गया है। दक्षिण आफ्रिका की सारी समृद्धि गोरों के हाथ में है। इसलिए उनका कुछ हिस्सा तो कच्चा माल और खनिज पदार्थों पर अकेले अबाधित अधिकार भोग रहा है। श्यामवर्ण के मजदूरों की मिहनत ले कर ही यह समृद्धि बढाई गई है। ये मजदूर लोग अब अपनी विषम स्थिति को और गुलामी को समझने की दशा को प्राप्त हुए हैं। अब उनकी जबान खुली है और अब प्रश्न यह है कि दक्षिण आफ्रिका के राज्य के १५ लाख गोरे, इस समृद्धि को उत्पन्न करने में मदद करनेवाले मजदूरों को इसमें से थोडी सी समृद्धि पर भी अधिकार और कब्जा दिये बिना कितने दिनों तक चला सकेंगे। और इससे भी अधिक महत्व की बात तो यह है कि भूमि और खनिज द्रव्यों पर—दोनों पर मूलतः उस देश के बासिन्दों का ही अधिकार था; गोरों ने जिस प्रकार उन सब पर अधिकार प्राप्त किया हुआ है उसका इतिहास उज्वल नहीं है कलंकयुक्त है।

दक्षिण आफ्रिका के संयुक्त राज्य में वर्ण के अनुसार बस्ती का परिमाण यह है: गोरे १५,१९,०००; भारतवासी १,६१,००० काले (जुदी जुदी जात के हबशी) ५०,०००००; मिश्रवर्ण के लोग ७,०००००।

भारतवासियों की बस्ती प्रान्तों के अनुसार इसप्रकार है: नेटाल १,४०,००० ट्रान्सवाल १२,०००; केप प्रान्त ९,०००. आरेंज फ्री स्टेट की गिनती करने की शायद ही कोई आवश्यकता

मालूम होगी क्योंकि बहिष्कार के सख्त कानून के कारण वहां भारतवासी ४०० से अधिक बढ़ नहीं सके हैं । नेटाल के बहुत से भारतवासी खेती की मजदूरी करनेवाले हैं । कुछ हजार कारखानों और पुतलीघरों में बुद्धि का काम करनेवाले भी हैं, और कुछ आफिसों में क्लर्की का काम करते हैं तो कुछ होटलों में और खानगी घरों में नोकर हैं । भारतवासियों में जुदी जुदी बात का व्यापार सफलता पूर्वक करनेवाले कुछ आगे बढ़े हुए– थोकबन्द और फुटकर माल बेचनेवाले और मंगानेवाले लोग भी हैं । इनमें से कुछ तो बड़े धनी हैं । वे बड़ी बड़ी हवेलियों में रहते हैं और सुधरे हुए ढंग के सुख और सुभीते के सब साधनों का उपयोग करते हैं । दूसरे भी कुछ लोग सुखी हैं और शहरों में और गावों में फुटकर माल का व्यापार करते हैं। दूसरे प्रान्तों में भी करीब करीब ऐसी ही स्थिति है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज की स्थिति के लिए तो जो भारतवासी व्यापार में सफल हुआ है वही कारण हो पड़ा है । आफ्रिका में रहनेवाले हबशी भारतीय व्यापारियों के साथ व्यापार करना ही अधिक पसंद करते हैं इसलिए गोरे यूरोपियनों को उसके साथ स्पर्द्धा करने में बड़ी मुश्किल मालूम होती है । पूर्व के लोगों की तरह आफ्रिकनों को भी 'हां, ना' करके खरीद करने का शौक है इसलिए व्यापार में भारतवासी ही अधिक सफल होते हैं । गरीब योरपियनों को भी तो बहुत मरतबा आफ्रिकन हबशियों की तरह भारतीय व्यापारी और दूकानदारों के साथ सौदा करने में लाभ होता है । भारतीय व्यापारी लम्बे वायदे पर और किफायत हफ्ते से माल देते हैं और वे शायद ही अपने करजदार को कभी अदालत में ले जाते होंगे । इसलिए योरपियन जो गरीब है वह भी योरपियन व्यापारी से माल खरीदने के बदले भारतीय व्यापारियों से माल खरीदते हैं । लेकिन अजायबी की बात तो यह है कि आज जिस योरपियन को भारतीयों से किफायत भाव और हफ्ते से माल मिलता है वह भी जब वर्ण का प्रश्न उपस्थित होता है तब राजनीतिज्ञ गोरों के प्रभाव में आ जाता है । बहुत से योरपियनों ने मुझ से कहा था कि भारतीयों की दुकानों के बिना हमारा जीवन ही असंभव है फिर भी जब वर्ण का प्रश्न उपस्थित होता है तब हम गोरों के अधिकार के लिए ही मत देने को मजबूर होते हैं ।

अर्थात यह प्रश्न आर्थिक स्पर्द्धा का नहीं है लेकिन वर्णद्वेष के कारण ही उपस्थित हुआ है । भारतीय अपना माल सस्ता दे सकता है, उसके कई कारण हैं । पहला कारण तो यह है कि उसका जीवन योरपियनों की तरह खर्चीला नहीं है । योरपियन हमेशा इसका "हलके प्रकार के रहन सहन" के नाम से वर्णन करते हैं । बहुत मरतबा तो ऐसे व्यंग्य भी किये जाते हैं कि 'भारतीय लोग तो तेल लगे हुए चीथड़े की गंध पर भी जिन्दा रह सकते हैं ।' लेकिन इस "हलके प्रकार की रहन सहन" के मूल में दूसरी अनेक बातें रही हुई हैं । भारतीयों को खर्चीले होटलों में जाने की इजाजत नहीं है । शहर के अच्छे भोजनगृहों में भोजन करने की भी उन्हें इजाजत नहीं होती है और न उन्हें नाटकों में और खेलों के स्थानों में जाने की इजाजत होती है । इसका स्वाभाविक परिणाम यही होता है कि भारतीयों का शहर का सस्ता और कम चाहने योग्य स्थान ही पसन्द करना पड़ता है । उनपर रक्खे गये अंकुशों के कारण वे ऐसी करकसर करने के लिए मजबूर होते हैं कि जैसी करकसर करना किसी भी स्वमान की रक्षा करनेवाले नागरिक की तरह उन्हें भी अप्रिय मालूम होता है ।

यदि कोई भारतीय इतना धनी हो जाय कि रोल्सरोइस मोटर में बैठ कर घूमने जा सके तो वह गोरों के आंख में कणी तरह खटकने लगता है और इसप्रकार किसी के आंख में खटकना भारतीय सहन नहीं कर सकता है इसलिए वह किमती मोटर में बैठकर मौज करने के बजाय सस्ती मोटर में ही बैठता है और किराये के कटारों में भी बैठता है । मैं ऐसे बीसों भारतीयों को मिला हूं जो अच्छी तरह रहना चाहें तो रह सकते हैं लेकिन वे मौज-शौक के साधन खरीदने से डरते हैं । क्योंकि अपने धन का जाहिरा उपयोग करनेवाले उनके मित्रों की गोरों के हाथों बड़ी बदनामी हुई थी । काले लोगों को सुखी देखकर गोरे लोग अजीब प्रकार के द्वेष से जल उठते हैं ।

दूसरा भी एक कारण है । भारतीय लोग शराब नहीं पीते हैं और दक्षिण आफ्रिका के गोरों का शराब का बिल बड़ा ही भयंकर होता है । ऐसा भयंकर शराब का बिल होने पर भी योरपीय समाज किस प्रकार टिक रहा है यही आश्चर्य होता है । जब शराब में इतने रुपये खर्च किये जायं तो फिर कोई गोरा मध्यम आमदनी होने पर भी कैसे निभा सकता है ? और भारतीय करकसर से रहनेवाला होने के कारण अपना माल सस्ता बेच सकता है । घुड़दौड़ में जुआर खेलने से, बहुत खेलकूद में पड़ने से, दूसरे मौजशौक और गोरे मजदूरों के बढ़े हुए मजदूरी के भाव से और दूसरे खर्चीलेपन से गोरों का जीवन बड़ा खर्चीला हो जाता है और इन सब बातों में से भारतीय और काले लोग बच जाते हैं इसलिए उनका जीवन बड़ा सस्ता होता है । दक्षिण आफ्रिका के गोरे जिस प्रकार के मौजशौक में रहना चाहते हैं उसे देख कर किसी परदेशी मुसाफिर को तो आश्चर्य ही होगा । हां, इधर उधर कहीं भयंकर गलीचखानों में रहनेवाले गोरे भी मिलेंगे लेकिन सामान्य तौर पर गोरे लोग अपने मूल देश में जिस प्रकार रहते हैं उससे भी अधिक खर्चीला जीवन बिताने की उम्मीद रखते हैं। गोरों का भारतीयों के प्रति असद्भाव होने का कारण अक्सर उनका 'हलके प्रकार का रहन-सहन' बताया जाता है । भारतीयों के बहुत से गोरे मित्रों को तो इस बात का निश्चय है कि जबतक उनका रहन-सहन ऊंचे प्रकार का बनाने के लिए कुछ न किया जायगा तबतक वर्णभेद को रोकने की कोई आशा नहीं है । लेकिन इस हलके प्रकार के रहनसहन के कारणों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए ।

पहला कारण तो अलग बाड़ों का रखना है । भारतीयों के लिए शहर का एक छोटा सा विभाग अलग रक्खा जाता है और योरपियनों के लिए रक्खे गये अच्छे विभाग में उन्हें रहने की इजाजत नहीं होती है । कुछ पहाड़ी और रम्य दृश्ययुक्त प्रदेश तो गोरों के लिए ही निश्चित होते हैं। भारतीयों को वहां जमीन नहीं मिल सकती है । डरबन जैसे शहरों में नये विभाग बन रहे हैं । वहां प्रत्येक जमीन पर यह विज्ञापन का तख्ता लगा हुआ होता है कि 'सिर्फ योरपियनों के लिए' । और अच्छे विभागों की मालिकी के जो दस्तावेज होते हैं उसमें एक बात यह भी लिखी जाती है कि वह मालिक उसे कभी एशियावासी को न दे और यदि दे तो सजा का पात्र समझा जाय । इसलिए स्वाभाविकतया भारतीयों को तो एक प्रकार के ढेबाड़ों में ही जा कर रहना पड़ता है । वहां गन्दगी और मलीनपन का कोई शुमार नहीं होता है । ट्रांसवाल के जोहान्सबर्ग जैसे शहर में जहां भारतीयों को अलग विभागों में भी अपनी जायदाद पर अधिकार नहीं होता है वहां उन्हें कायम के मकान बांधने की ख्वाहिश क्यों होगी ? जमीन भी किराये से ही

मिलती है और जब चाहे उन्हें निकाल दिया जाता है। कायम की जमाबन्दी भी नहीं होती है। भारतीयों के लिए आज अमुक स्थान है लेकिन तीन साल बाद म्युनिसिपल काउन्सील उन्हें उस स्थान से निकाल कर दूसरे स्थान पर जाने की नोटिस दे सकती है। इसलिए सुखी भारतीय को भी कायम के लिए मकान बनवाने की वृत्ति कैसे हो सकती है! स्वाभाविकतया उस पर रक्खे गये सख्त अंकुशों से उसे दुःख होता है। उसे यह मालूम है कि उसे हलके दर्जे का गिना जाता है। पुरातन रूस में जिस प्रकार यहूदियों के साथ व्यवहार किया जाता था उसी प्रकार उन्हें एक जगह से दूसरी जगह और दूसरी जगह से तीसरी जगह पर कुत्तों की तरह किसी सड़े कोने में धकेल कर भेज दिये जाते हैं और बहुत मरतबा उसका परिणाम यह होता है कि उनमें भी गोरों की तरह द्वेष इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

कम खर्चीली रहनसहन का दूसरा कारण यह है कि खेती की मजदूरी करनेवालों को बहुत थोड़ी रोजी मिलती है। ज्यादह से ज्यादह महीने में ५० शिलिंग मिलते होंगे। इतनी आमदनी से ऊंचे प्रकार की रहनसहन कैसे रक्खी जा सकती है? जो बेरेक और रहने के मकान बागीचावाले या मिलोंवाले बनवा देते हैं वे तो उनके इस कलंक को ही प्रकाशित करते हैं। उसमें कोई बात अच्छी हो तो वह उसके ऊपर का चूना है। हमलोग जब एक ऐसे बेरेक को देख रहे थे, तब एक योरपियन मित्र ने कहा थाः "मुझे तो ये सफेदी किये हुए मकानों को देखकर ईसा मसीह का 'सफेदी की हुई कबरों' वाला वचन ही याद आता है। ये मकान अर्थात ईंट या मिट्टी की दिवालें और ऊपर टीन का छप्पर; अथवा तो दिवाल और छप्पर सभी टीन के होते हैं या तो मिट्टी, लकड़ और टीन के तीनों से बने हुए होते हैं। इन बेरेकों में किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं होती है और इसलिए वह ऐसा मालूम होता है मानों कोई विचित्र शहर बना हो। उसकी स्थिति हिन्दुस्तान में अन्त्यजों के महल्लों से भी बदतर होती है। हिन्दुस्तान की सामाजिक प्रथायें तो उनमें बहुत कुछ अंशों में नष्ट हो गई हैं इसलिए इन बेरेकों के बने हुए गांवों में हिन्दुस्तान के ग्राम्यजीवन को नियम में रखनेवाले सामाजिक अंकुश और पुराने सामाजिक नियम नहीं होते। इन गांवों में गिनी हुई शालायें होती हैं इसलिए बालक कुछ बड़े होते ही मिलों में या खेतों में चले जाते हैं और इसलिए जमाने के जमाने यह सामाजिक, आध्यात्मिक और मानसिक गुलामी की प्रथा कायम रहती है। मैं यह नहीं जानता कि दुनिया में दूसरा कोई भी देश इस तरह चला सकेगा लेकिन मुझे विश्वास है कि अभी जितनी दी जाती है उतनी कम रोजी पर और जैसे हैं वैसे गरीब घरों में दक्षिण आफ्रिका ऊंचे प्रकार का रहनसहन पैदा न कर सकेगा — फिर भले ही वे लोग भारतीय हों या किसी दूसरे राष्ट्र के हों।

परन्तु इतना अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि सफल भारतीय व्यापारी वहां के गोरों के लिए एक बड़ा विकट प्रश्न हो पड़ा है। एक बड़े शहर के मेयर ने मेरे साथ बहुत देर तक बातें करने पर इस बात का स्वीकार किया था कि जो नया कानून बनाया जानेवाला है वह नीति की दृष्टि से एक क्षण भी नहीं टिक सकता है फिर भी इस शख्स ने यह तो कहा ही कि यह कानून होना आवश्यक है और ९९ प्रति सैकड़ा गोरे उसके पक्ष में हैं और उसमें नीति है या अनीति यह देखे बिना ही वे इस कानून को पास करेंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि स्थिति ऐसी विषम हो पड़ी है कि अब तो गोरों के लिए मरने जीने का प्रश्न हो गया है और उनके बालकों को भविष्य में भारतीयों के साथ स्पर्द्धा करना मुश्किल होगा इसलिए जो बात सीधी स्पर्द्धा से नहीं हो सकती है वह कानून बना कर ही करनी होगी।

ऐसी स्थिति में भारतीय लोग वहां जैसा अपमान सहन कर रहे हैं वैसे अपमान का कोई स्पष्ट कारण नहीं मिल सकता है। यदि वर्णभेद केवल सामाजिक ही है तो दूसरे देशों में भी वैसे उदाहरण मिल सकते हैं, लेकिन जहां सामाजिक, आर्थिक, राजकीय, जातीय और धार्मिक कारणों से जब कोई रुकावट डाली जाती है तो उस स्थिति का दृष्टान्त ढूंढने के लिए अति पुरातन काल में जाना पड़ता है। ट्राम में आखिरी तीन बेठकों पर ही भारतीय लोग बैठ सकते हैं, अमुक सार्वजनिक पुस्तकालय या वाचनालयों में भी वे नहीं जा सकते हैं; ऊंची श्रेणी के होटलों में, भोजनगृहों में, क्लबों में, ईसाई संस्थाओं में, और चर्च में जाने की भी उन्हें मनाई है। उन्हें सदा सर्वत्र सामान्य तौर पर कुली कहा जाता है। गोरे लड़कों की शालाओं में पढ़ाई जानेवाली एक सरकारी भूगोल में एक बंगाली गृहस्थ का चित्र है; उसके नीचे इस प्रकार चित्रपरिचय दिया गया है "एक भारतीय कुली का नमूना" केम्ब्रिज अथवा आक्सफर्ड अथवा दूसरी किसी भी भारतीय विद्यापीठ के भारतीय स्नातक को देखकर अज्ञान गोरे और उनके लड़के उसे कुली कुली कह कर ही पहचानेंगे, इसका कारण यह है कि प्रतिष्ठा का आधार संस्कृति नहीं है, उसका आधार केवल वर्ण, वर्ण और वर्ण ही है।

सभी भारतीय व्यापारियों को व्यापार के लिए परवाने प्राप्त करने पड़ते हैं। गोरे अधिकारी अपनी खुशी के मुताबिक परवाने देते हैं और उनके लिए समय समय पर अरजी करनी पड़ती है और नया परवाना लेना पड़ता है। व्यापार के लिए या खानगी कामकाज के लिए एक प्रान्त में से दूसरे प्रान्त में जाने वाले सभी भारतवासियों को पासपोर्ट टिकिट दिखाना पड़ता है। उसमें समय दिया हुआ होता है जो एक या दो सप्ताह से अधिक नहीं होता। यह अपमान तो जैसा मूल आफ्रिकावासियों का होता है वैसा ही है — क्योंकि इन आफ्रिकावासियों को बेचारों को, उनके देशमें दूसरे देश से गोरे लोग सिरजोरी करने के लिए आये हैं इसलिए अपने शरीर पर एक परवाना पहनना पड़ता है — उसमें उसका रजिस्टर नम्बर लिखा हुआ होता है और यह लिखा हुआ होता है। उसने टेक्स दे दिया है मानों सारी काली प्रजा ही भटकते हुए कैदी क्यों न हों! इस जमाने में ऐसा और कहीं भी न पाया जायगा सिवा इसके कि झार की जोहुकमी के जमाने में जब 'पीली टिकिट' का कानून था; वह समय ऐसा कहा जा सकता है।

उद्योग का विचार करेंगे तो भी वर्ण के कारण श्यामवर्णी कारीगरों को कुछ लाभदायी मजदूरी नहीं मिल सकती है और केवल चमड़ी का रंग देखकर ही यह निश्चित किया जाता है कि एक ही काम के लिए एक मनुष्य को २५ शिलिंग दिये जा सकते हैं या दो शिलिंग और खुराक। वर्णाभिमान कैसी असाधारण सीमा को प्राप्त हो गया है उसका उदाहरण ट्रान्सवाल में मिल सकता है। वहां आफ्रिका के किसी भी आदिमवासी का यदि उसने तीन महीने किसी गोरे का काम किया हो तो आधा टेक्स माफ कर दिया जाता है।

नेटाल जैसे प्रान्त में भारतवासियों के प्रति कितना द्वेष है यह वहां की बस्ती के परिमाण से भली भांति समझ में आ

सकता है। सब प्रकार के योरपियनों को मिलाकर उनकी एक लाख की बस्ती है और भारतीयों की संख्या एक लाख और चालीस हजार है और भारतीयों का जन्मप्रमाण भी अधिक है, फिर भी राजकीय और व्यापारी अधिकार का उपयोग करनेवाले और समाज में सर्वोपरि अधिकार रखनेवाले गोरे भारतीयों को परदेशी मानते हैं। वे यह जानते हैं कि आफ्रिका के मूल वासियों को तो निकाला नहीं जा सकता है — क्योंकि उनका वही एक देश है और का ी प्रजा इतनी अधिक है कि उसे वहां से निर्मूल करना अशक्य है। गोरों को अपनी निरंकुश सत्ता स्थापित करने की इच्छा होने के कारण उनकी यह मान्यता है कि उनका उद्धार दक्षिण आफ्रिका में से किसी भी प्रकार से भारतीयों को निकाल देने में ही है।

अपूर्ण

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन वदी ७, संवत् १९८२

शराबखोरी की बन्दी

मद्रास के स्वराज्य दल ने अपने कार्यक्रम में शराबखोरी को संपूर्णतया रोक देने का कार्य भी शामिल किया है इसलिए वह बेचारे गरीब लोगों के मित्रों की मुबारकबादी का पात्र बन गया है। यदि गूढ शक्तिसंपन्न हमारी निश्चेष्टता का कारण न होता तो हमने इस बुराई को कभी को दूर कर दी होती। यह मजदूरी करनेवाले लोगों की जीवनीशक्ति की जड ही खोद डालती है और वे अपनेतई इतने कमजोर हैं कि उन्हें मदद की बडी दरकार है। शराबखोरी को एकदम बन्द कर देने के लिए भारतवर्ष के समान कोई दूसरा योग्य स्थान नहीं है। यहां इस विषय में जनता की राय सदा सच्चे मार्ग पर ही रही है। योरप की तरह यहां लोगों की सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि योरप की तरह भारतवर्ष में मुस्लिमान और शिक्षित लोग शराब नहीं पीते हैं। मद्रास के पादरी श्री. डबल्यु. एल. फरग्युसन ने एक पत्रिका प्रकाशित की है और उसमें उन्होंने शराबखोरी को एकदम बन्द कर देने की आवश्यकता दिखाई है। उसके आर्थिक बोझ के सम्बन्ध में पादरी महाशय लिखते हैं:

"कोई भी देश, चाहे कैसा भी धनी और उन्नत क्यों न हो, शराबखोरी का खर्च बरदाश्त करने की शक्ति नहीं रखता है क्योंकि शराबखोरी से राष्ट्र नाश की सीमा तक पहुंच जाता है और कभी कभी तो उससे भी गिर जाता है। भारतवर्ष तो अभी बडा ही गरीब देश है। उसके पास मूल धन की कमी के कारण वह दरिद्र है; वह शिक्षा की कमी के कारण दीन है, वह स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य में हीन है, रहने के मकान, खेती, गृह-उद्योग, गांवों में आपस में व्यवहार करने के लिए सुभीते के साधन इत्यादि सभी बातों में वह गरीब है। और यदि उसके जीवन का कोई भी अंग ऐसा हो कि उसमें उसे अभी है उससे अधिक उन्नति करने की आवश्यकता नहीं है तो उसे जो जानता हो वह हमें बतावे क्योंकि हम यह नहीं जानते हैं कि वह क्या है और कहां है। भारतवर्ष में नशीली चीजों का इस्तेमाल करने की शक्ति नहीं है क्योंकि उससे बडी भारी आर्थिक हानि होती है, जो असह्य है। हम यह नहीं कह सकते कि इसमें कितने रुपये खर्च होते हैं लेकिन सरकार महसूल के तौर पर इसमें से जितना रुपया वसूल करती है उस पर से कुछ अन्दाज लगाया जा सकता सकता है। करीबन २०,००,००,०००) सालाना सरकार इसमें से पाती है। किसी किसी का यह अन्दाज है कि सरकार जितना महसूल पाती है उससे शराब और दूसरी नशीली चीजों में सब मिला कर पांच गुना अधिक खर्च होता है और कोई उसके कुल खर्च का उससे तीन गुना होना ही बताते हैं। यदि हम-लोग इन दो अन्दाजों में से बीच का मार्ग ग्रहण कर के कुल खर्च ८०,००,००,०००) गिनेंगे तो मैं यह नहीं मानता कि उसमें बहुत बडी गलती होगी। अब इस बडी अदद में से बहुत बडा हिस्सा तो मजदूर वर्ग की कमाई से ही आता है—उन्हीं लोगों की आमदनी में से जिन्हें अपनी, अपने कुटुम्ब की और जाति की उन्नति के लिए दामों की बडी आवश्यकता है। यदि हम यह मान लें कि शराब और नशीली चीजों पर जितना खर्च होता है उसमें से ३/४ हिस्सा गरीब और मजदूर वर्ग की तरफ से आता है तो कोई ६०,००,००,०००) का बोझ वे उठाते हैं। यदि सालाना इतनी बडी रकम नशीली चीजों में खर्च होती बचायी जाय, और उसको मकान बनवाने और राष्ट्र को तैयार करने के काम में खर्च किया जाय तो भारतवर्ष के गरीब लोगों को स्वावलम्बी बनाने के कार्य में क्या क्या किया जा सकता है, थोडे ही दिनों में बडे बडे शहरों में गंदेपन के स्थान पर करकसर और सफाई दाखिल हो जायगी और गांवों के विनम्र घरों में उन्नति दिखाई देने लगेगी।"

आर्थिक हानि के बनिस्बत नैतिकहानि और भी अधिक होती है। शराब और नशीली चीजों से जो उनका इस्तेमाल करता है, और जो उनका व्यापार करता है उन दोनों का अधःपात होता है। शराबी माता, बहन और पत्नी का भेद भी भूल जाता है और ऐसा गुन्हा कर बैठता है कि जिसके लिए यदि वह होश में हो तो उसे बडी शरम मालूम होगी। जिन लोगों का मजदूरों के साथ कुछ भी सम्बन्ध है वे जानते हैं कि शराब के दुष्ट प्रभाव के कारण उनकी हालत कैसी गिरी हुई हो गई है। दूसरे वर्ग भी कुछ अच्छे नहीं हैं। मैंने एक जहाज के कप्तान को शराबखोरी की हालत में अपने को भूला हुआ देखा है। जहाज उस समय दूसरे मुख्य अधिकारी को सौंप देना पडा था। बैरीस्टर लोग भी शराब पी कर गटर में पडे हुए पाये गये हैं। हां, इन अच्छी स्थिति के लोगों की संसार में सब जगह पुलिस के द्वारा रक्षा की जाती है और बेचारे गरीब शराबी को उसकी गरीबी के कारण सजा होती है।

शराबखोरी की बुराई उसमें अनेक हानियां होते हुए भी यदि अंगरेजों में फेशनेबुल न मानी जाती तो आज हम गरीब देश में उसे हम इस संगठित हालत में न पाते। यदि हम लोग मोहित न किये गये होते तो आज बुराई की आमदनी से अपने बच्चों को शिक्षा देने से ही इन्कार करते जैसी कि आबकारी की आमदनी है।

मि. फरग्युसन इस बुराई की आमदनी के बजाय नया टैक्स डालने की सूचना करते हैं। मेरी राय में तो यदि सरकार अपने बडे भारी लश्करी खर्च को जिसकी कि आक्रमणों से देशकी रक्षा करने के लिए नहीं लेकिन आन्तरिक बलवों को दबा देने के लिए ही आवश्यकता है, यदि घटा देगी तो नया टैक्स लगाने की कोई आवश्यकता न रहेगी। इसलिए शराबखोरी को सर्वथा बन्द कर

देने की मांग के साथ साथ लश्करी खर्च में उतनी कमी करने की मांग भी पेश करनी चाहिए। यदि मिशनरी लोग जनता की राय का साथ देंगे और शराबखोरी को एकदम बन्द कर देने पर जोर देंगे तो उन्हें लश्करी खर्च का भी अध्ययन करना होगा और जब उन्हें यह सन्तोष हो जाय कि बहुत सा खर्च तो आन्तरिक झगडों के झूठे भय के कारण ही बढाया गया है तो उन्हें भी लश्करी खर्च को कमी करने पर जोर देना होगा, कम से कम उतना खर्च कम कराने के लिए तो अवश्य ही प्रयत्न करना होगा जितना कि नशीली चीजों के महसूल से वसूल होता है।

स्वराजदल और दूसरे राजनैतिक दलों का कर्तव्य तो स्पष्ट है। एक आवाज से शराबखोरी को एकदम सर्वथा बन्द कर देने की मांग पेश करने के लिए वे देश के प्रति अपने कर्तव्य से बंधे हुए हैं। यदि यह मांग पूरी न की जायगी तो स्वराज्य दल को सरकार का दोष मानने का एक दूसरा कारण मिलेगा। श्री० राजगोपालाचार्य ने उचित ही कहा है कि शराबखोरी को एकदम रोक देना जनता को राजनैतिक शिक्षा देने का प्रथम श्रेणि का कार्य है। और यह ऐसा कार्य है कि इसमें सभी दल, जाति और राष्ट्र के लोग आसानी से एक हो कर काम कर सकते हैं।

यह लिखने के बाद, मैंने दिवान बहादुर एम. रामचन्द्रराव की अध्यक्षता में देहली में शराबखोरी को बन्द करने के उद्देश से हुई सभा के कार्य का अहवाल पढा। उस सभा ने जो प्रस्ताव किया है वह मेरी राय में बडे ही कच्चे दिल का प्रस्ताव है। उसमें शराबखोरी को एकदम बन्द कर देने की अति ही आवश्यकता है यह दिखा कर भारत सरकार और स्थानिक सरकारों से प्रार्थना की गई है कि वे अपने आबकारी खाते की नीति के तौर पर शराबखोरी को एकदम बन्द कर देना ही अपना ध्येय बनावें। मेरे ख्याल में भारत सरकार और स्थानिक सरकारों को भी इसका स्वीकार करने में कोई मुश्किल न मालूम होगी। सभी दलों का, भारत सरकार का भी, अन्तिम ध्येय स्वराज्य है लेकिन महासभा के लिए तो वह शिघ्र ही प्राप्तव्य वस्तु है और भारत सरकार के ख्याल में वह दूर का और आदर का फिर भी अप्राप्तव्य ध्येय है। उसी प्रकार सरकार की दृष्टि में शराबखोरी को बन्द कर देना भी अप्राप्तव्य प्रतीत होगा। इसी प्रस्ताव के अनुकूल उस सभा ने सरकार को यह सलाह दी है: "वह इस विषय में लोगों की राय जानने के लिए पूरी सुविधा कर दे और सभा की राय में स्थानिक शराबबन्दी के कानून को दाखिल करना ही इस विषय में लोगों की राय जानने के लिए उत्तम उपाय है।" जैसा कि मैंने ऊपर कहा है लोगों की राय मालूम करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्यों कि वह तो सभी जानते है। प्रश्न तो यह है कि सरकार आबकारी की आमदनी को छोड देने को तैयार है या नहीं। मैं चाहता हूं कि सभा ने अधिक दृढता से, अधिक विचार से अधिक सुसम्बद्ध कार्य किया होता। अब तो वह सभा भारतीय मादकद्रव्य निषेधक मण्डल के नाम से राष्ट्रीय निषेध मण्डल बन गया है। तो अब मैं यह आशा करता हूं कि वह मण्डल अधिक स्पष्ट नीति अख्त्यार करेगा और शराबखोरी की बन्दी को दूर अनिश्चित भविष्य में प्राप्तव्य ध्येय न समझ कर, उसे सम्मति लेने के जारी कार्य के किये बिना ही फौरन ही अमल करने योग्य राष्ट्रीय नीति समझ कर उसके अनुकूल ही कार्य करेगा।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

श्री० एन्ड्रूयूज का परिश्रम

यूनियन सरकार के भारतीयों के खिलाफ कानून बनाने के बिल का चाहे कुछ भी परिणाम क्यों न आवे, इस प्रश्न को हल करने में निःसन्देह श्री० एण्ड्रूयूज का हिस्सा सब से बढ कर ही रहेगा। उनका अथक उत्साह, उनकी नित्य सावधानता और दलील समझाने की शक्ति ने हमें सफलता की आशा दिलाई है। वे स्वयं, यद्यपि आरंभ में बडे निराश थे परन्तु अब उन्हें आशा बंधी है कि यह बिल संभव है कम से कम इस बैठक के लिए तो मुल्तवी रहे। वे शान्ति के साथ पत्र-सम्पादकों से और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से मुलाकात कर रहे हैं। वे पादरियों की सहानुभूति प्राप्त कर रहे हैं और इस नये कानून का उनसे जोरदार शब्दों में विरोध करा रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने दक्षिण आफ्रिका के योरपियनों की राय का जो इस कानून के पक्ष में थी हिला दिया है। इस प्रश्न का उनका अध्ययन गहरा होने के कारण दक्षिण आफ्रिका के कुछ नेताओं को संतोषकारक रीति से वे यह समझा सके हैं कि उस कानून से स्मट्स-गांधी समझौते का स्पष्ट भंग होता है। उन्होंने बिखरी हुई भारतीय शक्तियों को भी इस बिल पर आक्रमण करने लिए एकत्रित की हैं। इस प्रकार श्री. एण्ड्रूयूज ने अपनी भारत की और मनुष्य समाज की सेवा में बडी अच्छी वृद्धि की है। अंगरेज और भारतीयों के सम्बन्ध को मधुर बनाने के लिए जितना प्रयत्न श्री एण्ड्रूयूज ने किया है उतना आज किसी भी जीवित अंगरेज ने नहीं किया है। उनकी एक आशा इन दोनों राष्ट्रों के लोगों को एक ऐसे अभेद्य बन्धन में बांध देना है, जिसका कि आधार परस्पर का आदर और स्वतन्त्रता हो। उनका यह स्वप्न सच्चा हो।

खादी प्रचार

यह समय का प्रभाव है कि अब कुछ बडे शिक्षित लोग भी राष्ट्र और धर्मसेवा केवल उसके प्रेम के खातिर करने के इस भूमि के प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाते हुए त्यागभाव से खादी प्रचार के कार्य में लगे हुए हैं। खादी प्रतिष्ठान के सतीश बाबू के पत्र के कारण मुझे इस बात का स्मरण हुआ है। वे लिखते हैं कि डा. प्रफुल्ल घोष, महासभा समितियों की तरफ से व्याख्यान देते हुए बंगाल में प्रवास कर रहे हैं और खादी को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे श्रम का कुछ भी ख्याल नहीं रखते हैं और श्री० भरुचा की तरह अपने कंधो पर खादी के ताके ले कर फेरी कर रहे हैं। डा. घोष डा. राय के प्रिय शिष्यों में से एक है और टंकशाल में ५००) माहवार वेतन की जगह पर काम करते थे। अब वे ३०) से अधिक वेतन नहीं लेते है और मैंने स्वयं उन्हें देखा है कि वे अब किस तरह रह रहे हैं। बंगाल में या सारे हिन्दुस्तान में अकेले वे ही नहीं है जो बहुत ही गरीबी से रहते है और चरखे के द्वारा गरीब लोगों की सेवा कर रहे हैं। बंगाल और बंगाल के बाहर कितनी ही संस्थाओं में ऐसे शक्तिशाली और शिक्षित युवक पाये जाते हैं, जिन्होंने खादी को अपना यदि एक मात्र नहीं तो मुख्य धंधा बना लिया है और वे यह काम केवल पसीना जितना वेतन ले कर ही कर रहे हैं। लेकिन खादी के मानी भारत के करोडो अधभूखे गरीब लोगों की सेवा करना है इसलिए स्वभावतः इसके लिए कुछ सैं ही नहीं बल्कि हजारों जवान स्त्री-पुरुषों की इसके प्रति भक्ति होना आवश्यक है।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय ९

पिताजी का देहान्त और मेरा कलंक

मेरे सोलहवें वर्ष का यह समय था। हम ऊपर यह तो देख ही चुके हैं कि पिताजी भगंदर की व्याधि के कारण बिलकुल ही शय्यावश थे। उनकी सेवा में माताजी, एक पुराना नौकर और मैं बहुतांश में लगे रहते थे। मेरा 'नर्स' का काम था। व्रण को धोना, उसमें दवा लगानी, मलहम लगाना हो तो मलहम लगाना और जब घर पर दवा तैयार करनी हो तो दवा तैयार कर देना यह मेरा विशेष कार्य था। रात्रि को हमेशा उनके पैर दबाना और जब इजाजत दे अथवा वे सो जायं तो जा कर सो जाना यह मेरा नियम था। मुझे यह सेवा बड़ी प्रिय मालूम होती थी। मुझे यह स्मरण नहीं होता कि मैंने कभी उसमें कोई भूल की हो। ये हाईस्कूल के दिन तो थे ही, इसलिए खानेपीने से जो समय बच जाता था वह शाला में या पिताजी की सेवा में ही व्यतीत होता था। जब उनकी आज्ञा होती और उनकी तबीयत के अनुकूल होता तभी शाम को घूमने जाता था।

इसी साल पत्नी गर्भवती हुई। आज मैं यह समझ सका हूं कि यह दो तरह से लज्जा का कारण था। एक तो यह कि विद्याभ्यास करने का यह समय होने पर भी मैंने संयम न रक्खा और दूसरा यह कि शाला में अध्ययन करने का धर्म मैं समझता था और मातापिता की भक्ति का धर्म उससे भी अधिक समझता था—यहांतक कि बाल्यावस्था से ही इस विषय में श्रवण मेरा आदर्श बन गया था — फिर भी स्त्रीसंभोग मेरे पर सवार हो सकता था। अर्थात् प्रत्येक रात्रि में यद्यपि मैं पिताजी के पैर दबाता था फिर भी उस समय मन तो शयनगृह के प्रति ही दौड़ दौड़ कर जाता था और वह भी ऐसे समय कि जब धर्मशास्त्र, वैद्यकशास्त्र और व्यवहारशास्त्र के अनुसार स्त्रीसंभोग वर्ज्य था। जब मुझे सेवा से छुट्टी मिलती थी मैं बड़ा खुश होता था और पिताजी को दंडवत कर के सीधा शयनगृह में दौड़ जाता था।

पिताजी की बीमारी बढ़ती जा रही थी। वैद्यों ने अपने लेप आजमाये, हकीमों ने मलहमपट्टे आजमा देखे, सामान्य नाई इत्यादि की भी दवाइयां की, अंगरेज डाक्टर ने भी अपनी बुद्धि का उपयोग किया। अंगरेज डाक्टर ने सूचना की कि शस्त्रक्रिया ही उसका एक मात्र उपाय है। कुटुम्ब के मित्रवैद्य ने निषेध किया, उन्होंने उत्तरावस्था में शस्त्रक्रिया नापसंद की। अनेक प्रकार की दवाइयों की बोतलें खरीदी हुई व्यर्थ गई और शस्त्रक्रिया न हुई। वैद्यराज बड़े होशियार और नामांकित थे। मुझे ऐसा मालूम होता है कि वैद्यराज ने यदि शस्त्रक्रिया होने दी होती तो घाव के भर जाने में कोई कठिनाई न होती। शस्त्रक्रिया उससमय के बम्बई के प्रख्यात सर्जन के द्वारा होनेवाली थी। लेकिन मृत्यु नजदीक आ पहुंचा था इसलिए योग्य उपाय कैसे हो सकता था? पिताजी बम्बई से आपरेशन कराये बिना ही, उसके लिए खरीदा गया सामान ले कर लौटे। उन्होंने अब अधिक जीने की आशा छोड़ दी थी। कमजोरी बढ़ती गई और यह स्थिति आ पहुंची कि प्रत्येक क्रिया बिछौने में ही करनी पड़े। लेकिन वे आखिर तक उसका विरोध ही करते रहे और उन्होंने परिश्रम उठाने का ही आग्रह रक्खा। वैष्णव धर्म का यह कठिन शासन है। बाह्यशुद्धि अति आवश्यक है लेकिन पाश्चात्य वैद्यकशास्त्र ने यह सिखाया है कि सभी मलत्यागादि की और स्नानादि की क्रियायें शय्या में पड़े पड़े ही पूरी सफाई के साथ की जा सकती है और बीमार को कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। जब देखो उसका बिछौना साफ ही होगा। इस प्रकार से रक्खी गई स्वच्छता को मैं तो वैष्णवधर्म के नाम से ही पहचानूंगा। लेकिन ऐसे समय में भी पिताजी का स्नानादि के लिए बिछौना त्याग करने का आग्रह देख कर मैं तो आश्चर्यचकित हो जाता था और मन में उनकी स्तुति ही किया करता था।

अवसान की घोर रात्रि नजदीक आ पहुंची। उस समय मेरे काका राजकोट में ही मौजूद थे। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि पिताजी की बीमारी बढ़ रही है यह समाचार मिलने पर ही वे आये थे। दोनों भाइयों में बड़ा सुन्दर प्रेमभाव था। काकाश्री सारा दिन पिताजी के बिछौने के पास ही बैठे रहते थे। और हम लोगों को सो जाने के लिए छुट्टी देकर आप उनके बिछौने के पास ही सोते थे। किसी को यह ख्याल तो था ही नहीं कि यह रात्रि आखिरी रात्रि साबित होगी, भय तो सदा ही बना रहता था। रात्रि के साढ़े दस या ग्यारह बजे होंगे। मैं उनके पैरों को मल रहा था। काकाश्री ने मुझसे कहा: "अब तुम जाओ मैं बैठूंगा। मैं बड़ा खुश हुआ और सीधा शयनगृह में चला गया। पत्नी तो बेचारी गहरी नींद में सो रही थी। लेकिन मैं उसे क्यों सोने देने लगा। मैंने उसे जगाया। पांच सात मिनट ही हुए होंगे कि इतने में जिस नौकर के सम्बन्ध में मैं ऊपर लिख चुका हूं उसने किवाड़ खटखटाये। मुझे खटका सा लगा और चौंक उठा। नौकर ने कहा: 'उठो, पिताजी बहुत बीमार हैं' मैं यह तो जानता ही था कि वे बहुत बीमार हैं इसलिए यहां पर 'बहुत बीमार' का जो विशेष अर्थ था वह मैं समझ गया। शय्या से एकदम कूद कर दूर हो गया और पूछा:

'क्या है? कहो तो सही।'

'पिताजी का देहान्त हो गया।' उत्तर मिला।

अब मैं पश्चात्ताप करूं तो भी क्या फायदा हो? मैं बहुत शरमिन्दा हुआ, और बहुत कुछ कष्ट अनुभव करने लगा। पिताजी के कमरे में दौड़ गया। मैं यह समझा कि यदि मैं विषयान्ध न होता तो इस आखिरी समय में यह वियोग न होता और उनके अन्तकाल के समय में मैं उनके पैर ही दबाते रहता। अब तो मुझे काकाश्री के मुख से ही यह सुनना पड़ा। 'पिताजी तो हम लोगों को छोड़ कर चले गये।" आखिर समय की सेवा का श्रेय अपने बड़े भाई के परमभक्त काका प्राप्त कर गये। पिताजी को अपने अवसान की आगाही हो चुकी थी। उन्होंने इशारे से लिखने का सामान मांगा था और एक कागज में लिखा था कि 'अवसान की तैयारी करो' यह लिख कर अपने हाथ पर जो तावीज बंधा हुआ था उसे तोड़ कर फेंक दिया, सोने का हार था वह भी तोड़ कर फेंक दिया। एक क्षण में तो आत्मा उड़ गया।

गत अध्याय में मैंने अपनी जिस शरम की बात के प्रति इशारा किया है वह इस सेवा के समय की विषयेच्छा की शरम है। यह काला दाग मैं आज तक भी नहीं मिटा सका हूं और न उसे भूला सका हूं। और मैंने हमेशा ही यह माना है कि मातापिता के प्रति मेरी भक्ति अगाध थी, मैं उसके लिए सब कुछ छोड़ सकता था लेकिन उस सेवा के समय भी मेरा मन विषय का त्याग न कर सका था; यह उस सेवा में रही हुई अक्षम्य त्रुटि थी, और इसीलिए मैंने अपने को एकपत्नीव्रत को पालन करनेवाला मानने पर भी विषयान्ध माना है। इससे मुक्ति प्राप्त करने में मुझे बहुत समय लगा और मुक्ति प्राप्त करने के पहले बहुत से धर्मसंकट भी सहन करने पड़े थे।

मेरी छोटीसी कथा का यह अध्याय समाप्त करने के पहले मुझे यह भी कह देना चाहिए कि मेरी पत्नीने जिस बालक को जन्म दिया था वह दो या चार दिन के लिए श्वास लेकर चल बसा। दूसरा परिणाम ही क्या हो सकता है? जिन माबापों को या बाल-स्त्रीपुरुषों को इस उदाहरण से चेतना हो वे चेत जायं।
(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

बिना वैराग्य का त्याग

अभी कुछ समय हुआ आंध्र प्रान्त के एक वकील ने वकीलात की सनद प्राप्त करने के लिए एक अरजी की थी। उन्होंने बारह वर्ष तक वकीलात की थी और १९२१ में उन्होंने असहयोग किया था। उसी वर्ष के दिसम्बर महीने में उन्हें सविनय भंग के लिए एक साल की सजा भी की गई थी। जेल में वे बीमार हो गये और जेल से रिहा होने पर भी दो साल तक बीमार रहे। १९२४ के मार्च महीने में हाइकार्ट ने सनद वापिस खींच लेने की नोटिस दी लेकिन बीमारी के कारण वे अदालत में हाजिर न हो सके और उनकी सनद खींच ली गई। इस साल उन्होंने अच्छे होने पर अरजी की। अरजी में लिखे कुछ उद्गार उल्लेख योग्य हैं। 'एक समय मैंने सारा ध्यान दे दिया था और असहयोग में शामिल हुआ था ... ... जेल में से बाहर निकलने के बाद मैंने असहयोग में कोई भाग नहीं लिया है और न भविष्य में ऐसा करने का विचार ही है। ... अरजदार को अब अपनी गलती मालूम हुई है और वह वचन से बद्ध होता है कि यदि उसे वकीलात करने की इजाजत मिलेगी तो वह ऐसी अदालतों को चलानेवाली सरकार का वफादार रह कर उसको मदद करने का ही काम करेगा," और इतना कलंक भी मानों काफी न था इसलिए जो बाकी रहा वह अरजदार के वकीलों ने और न्यायाधीशों ने पूरा किया। शरणागत को शरमाये बिना उसके प्रति सहानुभूति दिखा कर उसकी इज्जत की रक्षा करने का क्षात्रगुण जब इस सरकार में ही नहीं है तो उसके नोकरों में तो हो ही कैसे सकता है? अरजदार के वकील ने कहा कि जेल से बाहर आने के बाद अरजदार ने असहयोग में ही नहीं लेकिन राजनीति के किसी भी कार्य में कोई भाग नहीं लिया है। न्यायाधीश ने कहा "यह तो वे बीमारी के कारण अशक्त थे इसलिए?" इस पर वकील ने विश्वास दिलाया "अच्छे होने पर भी उन्होंने असहयोग में और राजकार्य में कोई भाग नहीं लिया है और भविष्य में वैसा करने का उनका इरादा भी नहीं है, यद्यपि अब उसमें शामिल होने में कोई जोखिम नहीं है।" अरजदार के वकील ने फिर आगे और कहा: "अरजदार सच्चे असहयोगी हैं, और उनमें चाहे कितने ही दोष क्यों न हो उनमें ऊंचे चारित्र का बड़ा भारी गुण है," अर्थात् उनके वचन पर विश्वास रखना चाहिए। इस पर एक भारतीय न्यायाधीश ने कटाक्ष करते हुए कहा: "हां, बहुत से असहयोगियों के चारित्र बड़े ऊंचे होते हैं!" इस पर वकील ने अरजदार के चारित्र के संबंध में दो बड़े वकीलों के, एक जज-जज का और अपना प्रमाणपत्र दिया। इतना हो जाने पर ही मुख्य न्यायाधीश ने बाकी बचा हुआ व्यंग्य अपने फैसले में सुना कर सनद जारी करने का हुक्म दिया।

इस मामले पर मद्रास के वर्तमान पत्रों में बड़ी चर्चा हुई है। वकील आन्ध्र के सुप्रसिद्ध वकील थे इसलिए उनसे सम्बन्ध रखनेवाली इस बात पर बड़ी चर्चा हो यह स्वाभाविक है। लेकिन सब ने यह चर्चा मार्ग से दूर जा कर ही की है इसीसे दुःख होता है। श्री प्रकाशम् ने तो ऐसी दलीलें की है कि वर्तमान कानून ही खराब है, अथवा उसका विलायत में और तरह से अमल किया जाता है और हिन्दुस्तान में और तरह से। सर एडवर्ड कारसन जैसे और भारत के वर्तमान प्रधान जैसे, सरकार के कृत्यों के विरुद्ध शस्त्रप्रयोग करने की धमकियां देते हैं फिर भी उन्हें कुछ भी नहीं होता है और यहां पर केवल सविनय भंग के लिए सजा दी जाती है। नीति के अपराध के सिवा और किसी भी कारण से वकील की सनद वापिस खींच लेने का अधिकार हाइकार्ट को न होना चाहिए। और कुछ शख्सों ने तो महासभा पर ही टीका करते हुए कहा है कि ऐसे उत्तम चारित्रवाले वकील को इतनी दीन दशा प्राप्त हुई है और उन्हें ऐसा दीन माफी पत्र लिख कर देना पड़ा है उसका कारण यह है कि महासभा ने असहयोगियों के लिए कोई सेवा-संघ तैयार नहीं किया और इसीलिए उन्हें पेट के कारण इतना करने पर मजबूर होना पड़ा है।

यह मामला, उसपर अदालत में हुई चर्चा और बाहर वर्तमान पत्रों में हुई चर्चा, इस बात को प्रकाशित करती है कि आज हमलोग कितने गिर गये हैं अथवा जिस सच्ची स्थिति का हमें आजतक ख्याल तक न था उसे आंख खोल दे इस प्रकार से वह प्रकाशित करती है। अन्यथा रण पर चढ़ा हुआ कहीं शत्रु के कानून का भी कभी विचार करता है? टुकड़े होकर गिरने के लिए जो तैयार है, मरमिटने के लिए जो तैयार है वह क्या कभी इस बात का विचार करेगा कि महासभा ने उसके लिए क्या व्यवस्था की है? यह तो कभी नहीं कहा गया था कि ऐसा विचार करके ही कोई इस युद्ध में शामिल हो और ऐसा विचार करनेवालों को इस युद्ध से अलग रहने के लिए सैकड़ो बार चेतावनियां दी गई थी। बिना वैराग्य के त्याग के ढेर से अब खूब पेट भर गया है। और आज हमलोग अपनी हीनदशा के कारणों को बाहर ढूंढने का प्रयत्न करते है।

हमलोग उच्च शिक्षा और ऊंचे प्रकार के चारित्र की बातें करते हैं लेकिन उच्च शिक्षा और ऊंचा चारित्र किस में पाया जाता है उसका विचार किये बिना ही हम प्रवाह मे खींचे जा रहे हैं। "जिस मुख से पान खाया है उससे कोयला नहीं खाया जा सकता।" इस कहावत को तो अंगरेज लोग ही हमें सिखा सकते हैं। तो क्या पढ़कर हमलोग सामान्य मनुष्यत्व को भी खो बैठेंगे? जिस शिक्षा से स्वमान समझने की शक्ति प्राप्त नहीं होती है, जिससे अपने टेक का महत्व समझ में नहीं आता है उसे प्राप्त की तो भी क्या और न की तो भी क्या? जिस शिक्षा से संकट के समय में अपना टेक न छोड़ कर स्वमान की रक्षा करते हुए मजदूरी कर के पेट भरने जितनी शक्ति प्राप्त नहीं होती उस शिक्षा को ले कर करेंगे ही क्या?

शेक्सपीअर का एक वचन है कि शूर लोगों की एक मरतबा मृत्यु होती है लेकिन कायर तो मरने के पहले अनेक बार मरते हैं। यह मरण क्या हो सकता है? हमलोग प्रार्थना करते है कि 'मृत्यु में से अमृत में ले जा' तो यह मृत्यु क्या है। मृत्यु अर्थात आत्मा का — टेक का नाश। प्रतिज्ञा करने के बाद यदि मनुष्य उसको प्रतिक्षण तोड़े तो वह अनेक बार मृत्यु को प्राप्त होता हुआ मालूम होता है। लेकिन उसका पालन करते हुए जो मर मिटता है वह मर कर अमर बनता है।

अपना भविष्य का युद्ध तो समझ कर बाहर नीकलनेवाले सैनिकों से ही लड़ा जावेगा, रण में जा कर कभी न डरनेवाले सैनिकों से लड़ा जावेगा, पहले मन में खूब विचार करलेनेवालों से ही लड़ा जावेगा; देखादेखी युद्ध में आनेवालों से नहीं, लेकिन शामिल होने के बाद पीछे न हटनेवाले और परमात्मा के नाम को रटते हुए मर मिटनेवालों से ही लड़ा जावेगा।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

लड़ाई कैसे सुलगी ?

तात्कालिक कारण

साराजेवो के आर्चड्यूक के खून के बाद जो घटनायें हुईं उनका महत्व शायद अब हम लोग अच्छी तरह समझ सकेंगे । स्मीथ कार्नेगीवाले सीडनी ब्रॉड फे ने, जिन्होंने नये जर्मन प्रजातंत्र के अधिकार के नीचे प्रकाशित और आस्ट्रिया के पुराने राजतंत्र के नष्ट हो जाने पर वहां के विदेश सम्बन्धी विभाग की तरफ से प्रकाशित, तथा रशिया की राज्यक्रान्ति के बाद बोल्शेविकों द्वारा प्रकाशित कागज पत्रों का अच्छी तरह अध्ययन किया है, 'अमेरिकन हिस्टोरिकल रीव्यु' में सन १९२० में एक महत्व की लेखमाला प्रकाशित की थी । ये लेख साधारण तौर पर सर्वत्र प्रमाणभूत माने गये थे इसलिए उसमें से कुछ उद्धृत कर के यहां दिया जायगा तो यह अनुचित न होगा ।

"ये दो राष्ट्र उन्हीं कागज पत्रों का अध्ययन करने के बाद किस तरह आग्रह-पूर्वक अपनी पुरानी सरकार का ही सारा दोष बताते हैं यह देखने में बड़ी दिलचस्पी मालूम होती है ।

काटस्की के मत के अनुसार जर्मनी ने हिचकिचाते हुए बर्चटोल्ड को सर्बिया पर आक्रमण करने के लिए और इस प्रकर दुनियाभर की लड़ाई में गिरने के लिए धकेल दिया था । गूज के मत के अनुसार भोला कैसर बर्चटोल्ड के अन्धे दुराग्रह और दगे का केवल शिकार ही हो रहा था ।

आस्ट्रिया ने १९१४ के गरमी की ऋतु में देखा कि रशिया और फ्रान्स छुपे तौर से एक बृहद सर्वियन हलचल चला रहे हैं और सर्विया के अधिकार में जुगोस्लाविया के राज्यों का संगठन करने के लिए नयी बालकन मैत्री पैदा कर रहे हैं...... इस प्रकार कैसर ने और उसके परदेश सचीव बेथमनने अपना मार्ग निश्चित किया और उन्होंने आस्ट्रिया को सम्पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी और अपने हाथ के बाहर की स्थिति को बर्चटोल्ड जैसे अविचारी और निःशंक मनुष्य के हाथ में रखने की गलती की । क्यों कि यह करने में वे अपने हाथ पैरों को बांध कर अंधेरे में ही कूद पड़े थे । हम यह देखेंगे कि इस प्रकार उन्होंने अपने को कैसी उलझी हुई हालत में और जो काम उन्हें स्वीकार न थे उनमें फसे हुए और अपनी राय के खिलाफ निर्णयों से बधे हुए पाया था । लेकिन अब कोई उपाय न था । अब न कोई खिलाफ राय जाहिर की जा सकती थी और न धमकाया ही जा सकता था क्यों कि आस्ट्रिया के पक्ष में खड़े रहने के लिए वे बंधे हुए थे और इसलिए अब स्थिति एसी हो गई थी कि जरा भी चूंचा करने पर अपना ही पक्ष दुर्बल हो जाता था । इस प्रकार ५ वीं जोलाई को बेथमन और कैसर दुनिया भर की लड़ाई को सुलगाने की तयारी करने के अपराधी नहीं लेकिन अपने गले में फांसी की रस्सी डाल कर उसका सिरा एक मूर्ख और अविचारी के हाथ में देनेवाले बेवकुफ और बौड़म थे, जिसे वह अब जहां चाहे वहां और जितना चाहे खींच सकता था ... ...

अर्थात् बर्लिन और वियेना से प्राप्त इन कागज पत्रों पर से आस्ट्रिया का अपराध पहले से अब अधिक मालूम होता है और उसी प्रकार जर्मन सरकार ने ही जानबूझ कर लड़ाई कराई थी और और उन्हें ऐसी लड़ाई चाहिए थी इस दोष का भी निराकरण हो जाता है । जर्मनी के युद्ध विषयक लेखकों ने और बृहद् जर्मनी के पक्षपातियों ने व्यक्तिशः चाहे कुछ भी क्यों न लिखा हो और वे कुछ भी क्यों न बोले हों इतना तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि चान्सेलर बेथमन हालवेगने जर्मनी के परदेश सम्बन्धी विभाग के जाहिर प्रतिनिधि की हैसियत से लड़ाई के आरंभ के दिनों में शान्ति, और पड़ोसी के साथ मधुरता की नीति को ही जर्मनी की नीति के तौर पर स्वीकार किया था । बेशक अधिक विशाल अर्थ में इसका विचार करेंगे तो जर्मनी लड़ाई से सम्बन्ध रखनेवाली जवाबदेही से मुक्त नहीं हो सकता है । क्यों कि ता. ५ जोलाई को आस्ट्रिया को स्वतंत्रता देने में और वीयेना के दरबार में फिर समय पर काबू न प्राप्त करने में उसने स्पष्ट गफलत की थी । अलावा इसके सुलेह करने के अनेक प्रयत्नों को जानबूझ कर व्यर्थ करने का दोष जो जर्मनी का ही है— खास कर कैसर का...इससे भी अधिक विशाल अर्थ में देखा जाय तो जर्मनी का सब से बड़ा दोष उसके लश्कर का संगठन था और यही दुनिया की लड़ाई का सब से बड़ा कारण था । ऐसा नियम है कि बड़े बड़े राजनैतिक प्रसंगो पर ही राजनैतिक पुरुषों को अपना दिमाग ठिकाने रखना और हाथ मुक्त रखना मुश्किल हो जाता है और लश्करी पक्ष का उन पर दबाव पड़ने से उसका परिणाम यह होता है कि वे या तो लड़ाई करने के पक्ष में हो जाते हैं या अपना प्रभुत्व जमाये रखने का ही प्रयत्न करते हैं । और इस प्रकार यूरोप में युद्धवाद को जो जमावट हुई उसके लिए जर्मनी के बराबर दूसरा कोई देश जवाबदेह नहीं है ।'

लड़ाई के तात्कालिक कारणों के सम्बन्ध में मि. फिलिप जो बहुत साल तक मि. लाइड ज्यार्ज के सेक्रेटरी थे लिखते हैं: "लड़ाई को किस वस्तुने प्रत्यक्ष सुलगाई ?...उत्तर; युद्ध का टाइमटेबल; जैसा आस्ट्रीया हंगरी ने सर्वीया को दिये हुए अपने अल्टीमेटम की तैयारी में सैन्य इकट्ठा करना शुरू किया कि रशियनों को भी वैसा ही करना आवश्यक मालूम हुआ । क्यों कि उसे भय था कि शायद अग्नि फैल जाय और वह स्वयं सोता हुआ पकड़ा जाय । और जैसे रशिया ने तैयारी शुरू की, जर्मनी भी तैयारी करने पर मजबूर हुआ । क्योंकि जर्मन सैनिकों के टाइमटेबल में सैन्य एकत्रित करने के विषय में यह हिसाब था कि फ्रेन्च सैन्य से हमेशा कुछ दिन आगे रहना चाहिए और जबतक रशिया अपना सैन्य रणमैदान में ला सके उसके पहले ही उसे साफ कर देना चाहिए । इसीलिए, इसी कारण से जब कैसर ने देखा कि सैनिक तैयारियां बिजली के वेग से की जा रही हैं तो उसने झार को सैन्य इकट्ठा करने से रोकने के लिए प्रार्थना करने के और फरमानों के तार भी भेजे थे ।

अपूर्ण

बडोदादा

वार्षिक मूल्य ४)
छःमास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २७

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, माघ सुदी १५, संवत् १९८२ गुरुवार, २८ जनवरी, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय ८

चोरी और प्रायश्चित्त

मांसाहार के और उसके पहिले के समय के कितने ही दूषणों का वर्णन करना अभी और बाकी है। वे विवाह के पहिले या उसके कुछ थोडे ही समय के बाद के हैं।

मेरे एक रिश्तेदार के साथ मुझे बीडी पीने का शौक हुआ था। हम लोगों के पास पैसे तो थे ही नहीं। यह नहीं [illegible] बीडी पीने में कुछ फायदा है, या उसकी बू में कोई मजा आता है। मेरे काका को बीडी पीने की आदत थी। उनको और दूसरे लोगों को धूआं निकालते हुए देख कर हमें भी धूआं निकालने की इच्छा हुई। पैसे तो गांठ में थे नहीं इसलिए काका जिन बीडी के बचे हुए टुकडों को फेंक देते थे उन्हें हम लोगों ने चुरा कर पीना शुरू किया।

लेकिन वे टुकडे भी तो हर वक्त नहीं मिल सकते थे। और उनमें से धूआं भी बहुत नहीं निकलता था। इसलिए नौकर की गांठ में जो दो चार दमडी होती थी उनमें से कभी कभी एकाध चोरी से उठा लेने की आदत डाली और हमलोग बीडी खरीदने लगे। लेकिन फिर प्रश्न यह हुआ कि उन्हें रक्खें कहां? हमें यह तो मालूम था कि बडों के देखते तो बीडी पी नहीं जा सकती है। जैसे तैसे दो चार दमडी चुरा कर कुछ हफ्तों तक तो काम चलाया। इतने में सुना कि एक तरह का पौधा (उसका नाम तो भूल गया हूं) होता है उसकी डाली बीडी की तरह सुलगती है और वह पी जा सकती है। हम वही लाकर फूंकने लगे।

लेकिन हमें संतोष न हुआ। हमारी पराधीनता हमें चुभने लगी। बडों की आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है इसका बडा भारी दुख मालूम होने लगा। जीने से घृणा हुई और हमने आत्महत्या कर लेने का निश्चय किया।

लेकिन आत्महत्या भी करें तो कैसे करें? जहर कौन दे! हमने सुना कि धतूरे के बीज खाने से मृत्यु होती है। जंगल में जाकर हम वही ले आये। संध्या का समय देखा। केदारजी के मंदिर में जाकर दीपमाल में घी चढाया, दर्शन किये और एकांत स्थान ढूंढा। लेकिन जहर खाने की हिम्मत न चली! तुरंत मृत्यु न हुई तो? मरने से भी तो क्या लाभ? पराधीनता ही क्यों न भुगत लें? फिर भी दो चार बीज तो खा ही लिए। ज्यादा खाने की हिम्मत ही न चली। हम दोनों मौत से डरे और यह निश्चय किया कि रामजी के मंदिर में जाकर दर्शन करके शान्त हो जाना चाहिए और आत्महत्या की बात भूल जानी चाहिए।

उस समय मैं यह समझ सका कि आत्महत्या करने का विचार [illegible] आत्महत्या कर लेना उतना आसान नहीं। इससे अब जब कोई आत्महत्या करने की धमकी देता है तो उसका मुझपर बहुत कम असर होता है या यों भी कह सकते हैं कि बिल्कुल ही नहीं होता है।

आत्महत्या कर लेने के इस विचार का एक परिणाम यह हुआ कि हम दोनों झूठी बीडी चुरा कर पीने की, और नौकर की दमडियां चुरा कर बीडी फूंकने की आदत भूल ही गये। बडे होने पर तो मुझे कभी बीडी पीने की इच्छा ही नहीं हुई।

और मैंने यह हमेशा माना है कि यह आदत जंगली, गंदी और हानिकारक है। यह समझने की शक्ति मुझे कभी प्राप्त न हुई कि बीडी का इतना जबरदस्त शौक दुनिया में क्यों है। जिस रेलगाडी के डब्बे में बहुत बीडी फूंकी जाती है वहां बैठना मेरे लिए मुश्किल हो जाता है और उसके धूंवें से मेरा दम घुट जाता है।

बीडीयों के टुकडे चुराने और उसके लिए नौकर के पैसे चुराने के दोष की अपेक्षा दूसरा एक चोरी का अपराध जो मुझसे हुआ था उसे मैं अधिक गंभीर मानता हूं। बीडी का अपराध हुआ तब उमर १२–१३ बरस की होगी। कदाचित् उससे भी कम। लेकिन इस चोरी के समय तो उमर कोई १५ बरस की होगी। यह चोरी मेरे मांसाहारी भाई के सोने के कडे के टुकडे की थी। उन्होंने थोडा सा यानि कोई पचीस रुपये का कर्ज किया था। हम दोनों भाई यह सोच में पडे थे कि उसे किस तरह अदा किया जाय। मेरे भाई हाथ में सोने का ठोस कडा पहनते थे। उसमें से एक तोला सोना काट लेना कोई मुश्किल काम न था।

कडे में से सोना काट लिया गया और कर्ज भी अदा हुआ। लेकिन मेरे लिए यह बात असह्य हो उठी। मैंने फिर कभी चोरी न करने का निश्चय किया। दिल में यह ख्याल हुआ कि पिताजी के पास इस अपराध का स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन कहूं कैसे? यह भय नहीं था कि पिताजी मारेंगे। मुझे यह स्मरण नहीं कि उन्होंने कभी हम में से किसी भाई को पीटा हो। परन्तु उन्हें कष्ट होगा, और शायद वे अपना सिर पीट ले तो! आखिर मैंने यही ख्याल किया कि यह जोखिम उठा कर के भी दोष का स्वीकार कर लेना चाहिए; उसके बिना शुद्धि नहीं हो सकेगी।

अन्त में मैंने यह निश्चय किया कि पत्र लिख कर अपना अपराध स्वीकार कर लूं और माफी माग लूं। मैंने चिठी लिख कर पिताजी के हाथ में दी। चिठी में सारा अपराध स्वीकार कर लिया और उसके लिए सजा मांगी। पिताजी की माफी मांगी थी और उनसे यह प्रार्थना की थी कि वे स्वयं दुःखित न होवें। और आयन्दा फिर ऐसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा भी ली थी।

मैंने कांपते हुए हाथों से वह चिट्ठी पिताजी के हाथों में रक्खी और उनके सामने जा बैठा। उस समय उन्हें भगंदर की बीमारी थी और इसलिए शय्यावश थे। खटिया के बदले लकडी का तख्ता इस्तेमाल करते थे।

उन्होंने चिट्ठी पढी। आंखो में से मोती से आंसू गिर पडे। चिट्ठी भीग गई। थोडी देर उन्होंने आंख बन्द कर ली और फिर चिट्ठी फा[illegible] डाली और पढने के लिए जो बैठ थे सो फिर लेट गये।

मैंने भी रो दिया। मैं पिताजी के दुःख को समझ सका था। मैं चित्रकार होता तो उस चित्र को मैं जैसा का तैसा चित्रित कर सकता था। वह चित्र आज भी मेरी दृष्टि के समक्ष है।

उस मोती के बिंदु के प्रेम-बाणने मुझे घायल कर दिया और मैं शुद्ध हो गया। यह प्रेम तो जिसको अनुभव है वही जान सकता है

'रामबाण वाग्यां रे होय ते जाणे।'

मेरे लिये यह अहिंसा का पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मैंने पिता-प्रेम के सिवाय इसमें और कुछ अधिक न देखा था लेकिन आज तो मैं उसे शुद्ध अहिंसा के नाम से पहचान सकता हूं। ऐसी अहिंसा का यदि व्यापक हो जाय तो उसके स्पर्श से कौन अलिप्त रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसा की शक्ति का माप निकालना अशक्य है।

ऐसी शांत क्षमा पिताजी के स्वभाव से प्रतिकूल थी। मैं मानता था कि वे क्रोध करेंगे कटु-वचन सुनावेंगे, और शायद अपना सिर भी पीट लेंगे। किन्तु उन्होंने ऐसी अगाध शान्ति रक्खी इसका कारण मैं मानता हूं शुद्ध हृदय से मेरा अपराध का स्वीकार कर लेना था। जो आदमी अधिकारी के आगे अपनी इच्छा से अपने दोष का पूरा पूरा, और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा के साथ स्वीकार कर लेता है वह शुद्धतम प्रायश्चित करता है। मैं यह जानता हूं कि मेरे इस दोष-स्वीकार से पिताजी मेरे विषयमें निर्भय हो गये और उनके महा-प्रेम की मेरे प्रति वृद्धि हुई।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

चरखा बमुकाबले मिल

एक अध्यापक महाशय ने एक लंबा पत्र लिखा है। उसका सार इस प्रकार है:—

"क्या भारतवर्ष को स्वराज्य मिलने के बाद भी आप चरखाप्रवृत्ति जारी रखियेगा? क्या उस वक्त देशी मिलें आसानी से नहीं बढाई जा सकेंगी? और उनका माल सस्ता होने से चरखे को धक्का नहीं पहुचेगा? और अन्त में विलायती कपडे का बहिष्कार मिलों ही से होगा इसलिए आप जो चरखे के द्वारा गांवों की भूख मिटाना चाहते हैं, वह उद्देश ज्यों का त्यों कल्पना में ही न रह जायगा? अथवा स्वराज्य के समय उनके दारिद्र्य का उपाय दूसरा कोई नहीं ढूढ लिया जावेगा? जो ऐसा ही होने का संभव हो, तो चरखे की प्रवृत्ति के पिछे आप जो विराट प्रयत्न कर रहे हैं, वह प्रयत्न अभी से ही मिलें बढा कर बहिष्कार सफल करने में क्यों न किया जाय? यदि आप यह मानते हों, कि स्वराज्य मिलने के बाद चरखे की प्रवृत्ति बन्द ही हो जानेवाली है, और वह प्रवृत्ति दस पन्द्रह बरस तो चलनी ही चाहिए, तो फिर उतने समय में नयी मिलें खडी करके क्या एकदम बहिष्कार नहीं किया जा सकता?"

इस दलील का उत्तर नवजीवन में कभी न कभी तो आ ही गया है, फिर भी एक विद्वान महाशय, जो हमेशा 'यंगइंडिया' 'नवजीवन' के पढनेवाले हैं, उनको भी आज यदि शंका उत्पन्न होती है, तो उसके उत्तर का विचार कर लेना निरर्थक नहीं होगा।

मेरा दृढ विश्वास है कि स्वराज्य मिलने के पीछे भी चरखा प्रवृत्ति तो जारी ही रहेगी। चरखा प्रवृत्ति का मूल गांवों में है। स्वराज्य के पीछे भी किसानों को खेती के सिवाय दूसरे उद्योग की आवश्यकता रहेगी। और वह इस देश में तो मात्र चरखा ही हो सकता है। स्वराज्य के पीछे मिलें कहीं बिली की टोपियां जो बरसात के दिनों में एक रातभर में जगह जगह फूट निकलती हैं, उस तरह फूट नहीं निकलेंगी। मिलों के लिए पूंजी चाहिए। गृहीबालों को व्याज चाहिए। उनके लिए खूब जगह चाहिए, पानी वगैरह का सुभीता चाहिए, मजदूर चाहिए, और यंत्र चाहिए। ये साधन चरखे की तरह फूंक मारने से उत्पन्न नहीं हो सकते। यदि बहुतेरे लोग निश्चय कर ले तो हिन्दुस्तान में १ करोड चरखे १ दिन में उत्पन्न हो सकते हैं। लेकिन तीस करोड आदमी चाहें, तो भी ३० करोड तकलीं की मिलें एक दिन में उत्पन्न नहीं हो सकतीं और अनुभव से इतना तो सिद्ध हो ही गया है कि मिल का एक तकला जितना सूत आठ घण्टे में दे सकता है, करीब करीब उतना ही चरखा भी दे सकता है। इसलिए अगर हिन्दुस्तान की जनता चाहे, तो थोडे ही महीनों में चरखे और करघों के जर्ये अपने सारे कपडे बना सकती है। चरखे की प्रवृत्ति के द्वारा सहज संकल्प और तद्रूप प्रयत्न से तात्कालिक बहिष्कार का संभव है। परन्तु कैसे भी संकल्प और प्रयत्नो से मिलों के जर्ये तात्कालिक बहिष्कार का होना असंभव है और मिलों के जर्ये बहिष्कार करने में दो चीजों के लिए हम लोगों को बहुत समय तक परावलंबी रहना पडेगा। बहुत वर्षों तक कलें और इंजिनियर हमलोगों को बहार से प्राप्त करने पडेंगे।

और मिलों की वृद्धि होने से कंगालों का भूखमरा तो नाश हो नहीं सकता। और इस कंगालियत के दूर करने का दूसरा उपाय हमलोगों को आज यदि नहीं मिलता, तो स्वराज्य मिलने पर, मिल

ही जायगा, यह मानने को हमारे पास कोई कारण नहीं है। सार्वजनिक भूखमरे को दूर करने के जो जो उपाय चरखे के बदले में आज तक बताये गये हैं, उनका अभी तक कोई प्रयोग मात्र भी नहीं कर सका है।

इसलिए मेरा अभिप्राय है कि हिन्दुस्तान के करोडों की भूख मिटानेवाली चरखे के सिवाय दूसरी कोई भी शक्ति नहीं है।

और यदि मेरा ऐसाही पक्का अभिप्राय है, तो चर्खे की सफलता निष्फलता का प्रश्न ही मेरे लिये उठ नहीं सकता। मैंने तो ऐसा अभिप्राय भी दिया है, कि परदेशी कपडे के बहिष्कार के बिना करोडों का स्वराज्य प्राप्त होना संभव नहीं है। इस अभिप्राय में भी मैं दृढ हूं। इसलिए चर्खा प्रवृत्ति के व्यापक होने में एक वर्ष लगे कि सौ, मेरे लिए यही स्वराज्य का सुवर्ण-द्वार है, और उसके द्वारा मैं अस्पृश्यों की सेवा करता हूं और हिन्दू-मुसलमान ऐक्य में भी मेरा हिस्सा भरता हूं। क्यों कि उनको भी मुझे तो लोढने, धुनकने, कातने, बुनने के लिए समझाना होगा। मिल की प्रवृत्ति में से ऐसा एक भी परिणाम नहीं आ सकता। वह प्रवृत्ति सफल होने पर ही अच्छी मानी जा सकती है। उसका परिणाम भी अल्प ही आ सकता है। चाहे जिस प्रकार से साधे हुए बहिष्कार को मैं अल्प परिणाम समझता हू। करोडों के प्रयत्न से और उनकी भूख मिटाकर जो बहिष्कार हो सकता है, वही महा परिणाम माना जा सकता है। और चर्खे की प्रवृत्ति तो सफल हो या निष्फल, उसमें तो कोई दोष ही नहीं है। यानि उसमें निष्फलता का होना ही असंभव नहीं है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

जूते और कत्लगाहें (२)

हिन्दी अकाल कमीशन के समक्ष पेश गवाहों के इजहार से नीचे लिखी गवाहियां उद्धृत की गई हैं। उस पर विवेचन करना अनावश्यक है। यदि मांस भोजन करना दोष है तो कत्ल किये गये जानवरों के चमडे के जूते पहनना भी उतना ही दोष गिना जाना चाहिए। क्योंकि ऐसे जूते पहननेवाले और मांसाहारी दोनों ही पशुवध को एकसा उत्तेजन देते हैं। दयाधर्मी धनाढ्यों का यह परमधर्म है कि वे ऐसा प्रबंध करें कि लोगों को मरे हुए ढोरों के चमडे के जूते मिल सकें और वे पशुवध के पाप के भागी बनने से बच जाय।

स० चमडे का बाजार क्या यहां तक अपने कब्जे में है कि उस पर कितनी भी जकात क्यों न लगाई जाय, दूसरे देशों को हमारा चमडा खरीदना ही होगा?

ज० यह बात तो नहीं है। १९१२-१३ में और लडाई के पहले १९१४ के आरंभ में इस देश में केवल चमडे के लिए ही ढोरों को कत्ल किया जाता था और उसके निकास पर १५) सेकडा जकात लगाई गई होती तो भी उसके बाजार पर कोई असर न होता। (पृ. २५४ सर लोगी वाटसन)

स० आपको जितना चाहिए उतना चमडा मिल सकता है?

ज० नहीं, चमडे की बडी कमी है, क्यों कि कत्ल करने में कोई लाभ नहीं रहता है।

स० लेकिन पहले तो चमडे के लिए ढोरों को कत्ल किया जाता था?

ज० यही कारण था कि उस समय मांस बडा सस्ता था।

स० अब क्या उतने जानवरों को कत्ल नहीं किया जाता है।

ज० अब बहुत थोडी कत्ल की जाती है। कसबाओं को मांस मिल सके उतनी ही। (पृ. ३५१ मि. एल सी. मौलक)

चमडे आजकल जुदी जुदी जात के थोकबन्द बेचे जाते हैं इसलिए प्रत्येक स्थानिक चर्मकार को उसे खरीदना मुश्किल मालूम होता है। क्योंकि थोकबन्द माल लेने में उन्हें जितने की आवश्यकता होती है उससे या तो उसमें अधिक टुकडे निकलते है या उन्हें जितनी जात के चमडे चाहिए उतनी जात के चमडे उसमें नहीं मिलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जो कुछ चंद कत्लगाहें हैं उनका इनको मजबूरन सहारा लेना पडता है। (पृ. ४४७ बाबु भुवनमोहन दास)

स० क्या आप यह मानते हैं कि मरे हुए ढोरों के चमडे से अव्वल दर्जे का चमडा कमाया जा सकता है?

ज० मैं यह नहीं मानता।

स० तो क्या इसी लिए आपको कत्ल किये हुए ढोरों के चमडे की जरूरत होती है?

ज० हां, कत्ल किये गये ढोरों के चमडे अधिक कीमती होते है और यह बहुत करके बडे शहरों में या छावनी में मिल सकते हैं, उसके दाम पूरे लपजाने है। (पृ. ४५० बाबु भुवनमोहन दास)

ज० निकास पर अंकुश न रहने के कारण बाजार में तेजी मन्दी बहुत होती है। आज बकरे के दो रुपये देने पडते हैं तो कल ? देने पडेंगे। ऐसी हालत में हमारा धंधा कैसे चल सकता है?

स० निकास पर जकात हो या न हो तो भी क्या भाव में तेजी मन्दी न होती रहेगी?

ज० जकात हो तो तेजी मन्दी बहुत न होगी, क्योंकि अमरिकन व्यापारी बकरे के चमडे का भाव तेज करने के पहले बहुत विचार करेंगे। इस देश में अधिकांश चमडे के लिए ही बकरों को कत्ल किया जाता है। १९१९ में जब बकरे के चमडे का भाव तेज था तब पूर्व-बंगाल में बकरे के चमडे के लिए ही उनको कत्ल किया गया था और मांस तो लोगों ने घूरे पर फेंक दिया था। मैं पूर्व बंगाल का बाशिंदा हूं इसलिए यह सब जानता हूं। मेरी जान में तो उस समय बकरे का मांस एक आने का एक सेर बिकता था। ऐसी हालत में हिन्द के चर्मकारों की उन्नति कैसे हो सकती है।

स० निकास पर जकात डालने से भाव की तेजीमन्दी में क्यों फर्क पडेगा?

ज० निकास के सबब से ही तो भाव में तेजीमन्दी होती है।

स० क्या आप निकास बिल्कुल ही बन्द कराना चाहते है?

ज० नहीं, मैं सिर्फ इतना ही चाहता हू कि परदेशी मुंह मांगे दाम न चढा दें। और निकास के ऊपर जकात डालने पर ये लोग एक हद में रहेंगे।

स० आप को क्या ऊंची किस्म के चमडे की ही जरूरत होती है?

ज० चमडे दो प्रकार के होते है। गाय-भैंस का चमडा और बकरे का चमडा। बकरे का चमडा ८० फी सदी ऊंची किस्म का होता है। बकरे केवल कत्ल ही किये जाते है और उन्हें स्वाभाविक मौत से मरने नहीं दिया जाता है, इसलिए बकरे का चमडा सब ऊंची किस्म का ही होता है।

(पृ० ४५१ बाबु भुवनमोहन दास)

स० हिन्दुस्तान में चमडा कमाने का उद्योग बढे, चमडे का भाव तेज हो और गायों की अधिक कत्ल हो, यही न?

ज० हम चर्मकारों का इसमें अलबत्ता लाभ है।

(पृ० ५१८ नीलरतन सरकार)

वालजी गोविंदजी देसाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ सुदी १५, संवत् १९८२

दक्षिण आफ्रिका का प्रश्न

मुझे अफसोस के साथ यह कहना पड़ता है कि दक्षिण आफ्रिका में जो अति गंभीर स्थिति उत्पन्न हुई है उस पर लार्ड रीडिंग के अभिवचनों से मुझे कोई आशा नहीं होती है। वे अपनी कूटनीति की किसी चाल से यूनियन सरकार की पारलियामेन्ट में उस बिल का विचार के लिए अभी हाल आना रोक सकते हैं लेकिन हाल ही में आये हुए तारों से पता चलता है कि जिस कठोर सत्य का हमें सामना करना है वह यह है कि दक्षिण आफ्रिका में अब इसी तरह काम किया जा रहा है कि जैसे मानों वह बिल उस भूमि का कानून ही क्यों न बन गया हो, और परवाने बदले नहीं जा रहे हैं। इस बिल का स्वयं सिद्धान्त ही अन्यायमूलक है। मेरे ख्याल में लार्ड रीडिंग जिस बात का प्रयत्न कर रहे हैं वह यह है कि वे बिल की छोटी मोटी बातों में थोडी बहुत रद्दोबदल करावेंगे लेकिन उसके तत्त्व में कुछ भी परिवर्तन न करावेंगे। उसका तत्त्व यह है कि वहां के रहनेवाले भारतीयों को १९१४ के समझौते के अनुसार जो हक प्राप्त थे उन्हें कम करना है। उस बडे युद्ध के बाद उस समझौते का मूल आधार अधिक अंकुशों का बढ़ाना न था लेकिन सदा के लिए भारतवासियों का वहां आना मर्यादित हो जाने पर वहां रहने वालों की स्थिति और अधिकार में धीरे धीरे लेकिन दृढता से सुधार करना था। वह भय केवल १९१४ में ही नहीं लेकिन नेटाल ने बाहर से अपने देशमें आनेवालों के लिए अपना कानून किया और केपने उसका अनुसरण किया तब दूर हो गया था। ट्रान्सवाल में तो भारतीयों की संख्या कभी भी अधिक न थी। आरेन्ज फ्री स्टेट में भी भारतीयों की बस्ती कुछ नहीं सी थी। लेकिन लोकप्रिय सरकार के जमाने में जब लोगों के दिल उत्तेजित हो उठते है उन्हें किसी न किसी प्रकार से अवश्य सन्तुष्ट करना पडता है। दक्षिण आफ्रिका के सभी राज्यनीतिज्ञों ने लोगों के दिलों को उत्तेजित किया था और इस प्रश्न का अध्ययन किये बिना ही वे स्वयं भी उस उत्तेजना में भाग लेते थे। सरकार ने जब बाहर से आनेवालों पर अंकुश रखने के लिए एक बडा सख्त कानून बना कर उनके इस भय को दूर कर दिया है तो अब भारतीयों को यह आशा रखने का पूरा हक है कि जैसा समय बीतता जायगा उनकी स्थिति भी सुधरती जायगी। लेकिन स्पष्ट बात तो यह है कि यह नहीं हुआ है और १९१४ से आज तक का इतिहास यही बताता है कि भारतीयों के अधिकारों पर बराबर एक से एक इस प्रकार अनेक आक्रमण किये जा रहे है। यदि लार्ड रीडिंग अपना फर्ज अदा करना चाहते हैं तो उन्हें सिर्फ उस बिल के विचार को ही मुलतवी नहीं रखना चाहिए लेकिन उन्हें फिर १९१४ की स्थिति प्राप्त हो — यद्यपि वह स्थिति भी बुरी है — यही आग्रह रखना चाहिए। जब समझौते के प्रयत्नों का परिणाम मालूम हो तब यह न कहा जाना चाहिए कि लार्ड रीडिंग ने ऐसा कुछ भी प्राप्त नहीं किया है जो उन प्रवासी भारतीयों की दृष्टि में तात्त्विक लाभ गिना जा सके।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

बडोदादा

गांधीजी को तार मिला कि ता. १९ की सुबह 'बडोदादा' जो शांतिनिकेतन के पितामह के समान थे चिरंतन शांति में लीन हो गये हैं। तार पढते ही छ सात महीने पहिले जिस प्राचीन ऋषि के दर्शन किये थे उनकी मूर्ति नजर के आगे खडी हो गई। 'आनन्दम् ब्रह्मणो विद्वान बिभेति कदाचन' (ब्रह्म के आनंद को जाननेवाला कभी भय को प्राप्त नहीं होता। इस महावाक्य का बारंबार उच्चार करती हुई वह मूर्ति उपस्थित हुई और इस महा-वाक्य की प्रतिध्वनि कान पर पडने लगी। क्या उस दिन का उनका उल्लास, कैसा उस दिन का उनका बालोचित आनंद! गांधीजी विदा लेते लेते उनके पैरों पडे। उस समय उन्होंने कहा था 'आपका आगमन जीवन की सुखी मरुभूमी में जलबिंदु के समान है। इस दिन की याद में मेरी भवाटवी की यात्रा मुझे मुश्किल न मालूम हो तो अच्छा हो।' इन वचनों में केवल गांधीजी के वियोग का दुःख न था। इनमें तो भगव-द्वियोग का दुख था। भगवद्भक्ति तो इन्होंनें अपने लंबे आयुष्य में खूब की थी। भगवान का कीर्तन भी लेखों और प्रवचनों के द्वारा बहुत कुछ किया था। परंतु वह सब वियोगभक्ती थी। परन्तु उस दिन तो 'बडोदादा' संयोगभक्ति के लिए तडपते थे। अब कबतक वियोग रहेगा? विदा लेते लेते गांधीजी बोले, 'आप जिसका दर्शन चाहते हैं उसका जबतक दर्शन न हो जाय तबतक इस देह को टिका रखना'। उन्होंनें उत्तर में कहा 'हां और ईश्वर की भी कैसी कृपा! उस देह की अब वियोगभक्ति के लिए भी जरूरत न रही, वह पके हुवे फल की तरह गिर पडी। 'जरूरत न रही,' यह इसलिए कहता हूं कि जिस वस्तु के लिये 'बडोदादा' तरस रहे थे, वह उनको प्राप्त हो चुकी थी। पिछले दिसबर की १५ तारीख को हम वर्धा थे, उस समय गांधीजी को एक छोटा सा पत्र मिला। उसमें ये लिखा हुआ था, 'ईश्वर की कृपा है कि आपकी प्रार्थना फली है। जिसे प्राप्त करने के बाद और कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रहता, वह मुझे प्राप्त हो गया है।' इस प्रकार वे

> यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
> यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।

इसमें वर्णन की हुई स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। और महीने भर के बाद ही तो उन्होंने देह को सर्प की केंचुली की तरह त्याग दिया।

× × × ×

इस महर्षी के दर्शन के लिए शान्तिनिकेतन में सालभर में एकाद बार भी जाना प्राप्त हो, तो यह भी एक लाभ ही था। उनके पास जा कर बैठें, उनके चरणस्पर्श करें, चाहे वे कुछ बोलते न हों, फिर भी केवल उनकी मौनधारी शांत मुद्रा को भी देखते रहें, तो भी यही प्रतीत होगा कि मानों उसमें से स्नेह और करुणा ही फूट रही है। उनसे परिचय प्राप्त करने की तो जरूरत ही क्या थी? यदि उन्होंने यह सुना कि आप किसी ही प्रकार से देश की छोटी मोटी सेवा करते हैं, तो उनकी आपके ऊपर सदा ही अमीदृष्टि रहेगी। और बालक की तरह वे आपके साथ बातें ही किया करेंगे। ८८ वर्ष की उमर में भी उनकी स्मृति बहुत मंद न हो पायी थी। बात बात में पाश्चात्य तत्त्वज्ञान के अपने अगाध ज्ञान-भण्डार में से कुछ वचन सुनावें, उनका अपने तत्त्वज्ञान के साथ मुकाबला करले, और अपने कथन के समर्थन में शंकराचार्य के लिखे वाक्यों को उद्धृत करते थे। उनका अपने शास्त्रों का अध्ययन जितना गहरा था, उतना ही

अन्य शास्त्रों का भी था । ईसाई सिद्धान्तों के बारे में भी मैंने उन्हें ऐसे ज्ञान के साथ बात करते हुए सुना है कि विद्वान ईसाई भी उसे सुन कर लज्जित होते थे । 'तत्त्वबोधिनी,' 'भारती,' तथा दूसरे मासिक उनके तत्त्वाभ्यास के लेखों से भरे पड़े हैं । परन्तु उनका अध्ययन इतना गहरा होते हुए, और टागोर कुटुम्ब को सहज-प्राप्त ऐसे पाश्चात्य संस्कारवाली अनेक व्यक्तियों के संसर्ग में होते हुए भी आर्य संस्कृति और भारतवर्ष के प्रति उनका प्रेम सदा अबाधित रहा । कविवर का संस्कृत और विशेष कर उपनिषदों के प्रति जो प्रेम है उसके लिए वे जितने महर्षि के ऋणि है उतने ही 'बड़ोदादा' के भी हैं । उनके जो निबन्ध व काव्य और पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनमें आर्य संस्कृति का उनका अध्ययन व अनुराग और देशोद्धार की तीव्र आकांक्षा जहां तहां प्रगट होती है । वे अपने को धन्य मानें जिन्हें ऐसे ऋषि के आशीर्वाद प्राप्त हों कि जिन्होंने अपने देश का करीब करीब एक शताब्दि का इतिहास देखा था, अपने पूर्व जीवन में अनेक सुधारक प्रवृत्तियों में हाथ बटाया था और पश्चिम के प्रवाह के सामने अपना दिमाग कब्जे में रक्खा था ।

× × × ×

गांधीजी का और उनका संबंध बहुत पुराना नहीं था । हां, दक्षिण आफ्रिका से जब गांधीजी लौटे थे तब शायद उन्होंने 'बड़ोदादा' के साथ कुछ थोड़ा समय बिताया होगा । लेकिन असहयोग के बाद उनका यह संबंध अधिक गहरा होता गया । गांधीजी ने उस मौके पर जब कभी कोई नयी बात की कि तब उनकी तरफ से आशिर्वाद और प्रोत्साहन का पत्र अवश्य ही आता था । जब से शान्तिनिकेतन की स्थापना हुई है तब से वे सार्वजनिक जीवन से निवृत्त हो कर शान्तिनिकेतन के बालकों को थोड़ा-बहुत पढ़ाते रहते हैं । 'गीतापाठ' पुस्तक, इन बालकों को सुनाये गये प्रवचनों का ही संग्रह है । परन्तु फिर भी उनको देशोन्नति का विचार तो रहता ही था । वे बार बार यही कहा करते थे कि 'मैं एक ऐसे नेता के लिए तड़पा करता था कि जो देश को सच्चा मार्ग दिखावें और ईश्वर ने गांधी को और उनके कार्य को देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त कराया है । वे ८० वर्ष के हुए थे फिर भी अखबार नियमित पढ़ते पढ़ाते थे और अपने विचारों का विनिमय करते थे । अपने पास आनेवाले युवानों को प्रोत्साहन देते थे और बहुत उत्साह में आ जाते थे तो गांधीजी को पत्र लिखते थे: 'मेरे हाथ चलते होते तो कैसा अच्छा होता! मैं खुद चरखा चला कर आप के कार्य में मदद करता, आज तो विचार ही से मदद कर सकता हूं' । गांधीजी को उन्होंने अनेक बार यह कहा था । गांधीजी तो उनके चरणों में जा कर बैठे थे उनको गुरु के स्थान पर पूज्य मान कर ही उनके पास बैठे । लेकिन उन्होंने तो शिष्य को ही गुरु मानने की वृत्ति दिखाई थी ।

× × × ×

"कैसा उनका प्रेम और कैसी उनकी ममता! गांधीजी के बारे में अनुचित टीकायें सुन कर आगबबूला हो उठते थे, और कभी कभी तो उचित टीका सुन कर भी वे उत्तेजित हो उठते थे । उन्हें गांधीजी के प्रवृत्ति के लिए ऐसा ही तीव्र पक्षपात था । 'मैं तो वाग्बन्धन बोल कर ही बताता हूं आप उसका आचरण कर रहे हैं' सरल भाव से यह कह कर गांधीजी को उन्होंने आखिरी मुलाकात में कितनी ही बार शरमाये थे । इतना ही नहीं उन्हें तो गांधीजी की सेना का सबसे आखिरी कोटि का सैनिक भी प्राणप्रिय था । ऐसी विरल देशभक्ति से रंगे हुए इस हृदय के आशिर्वचनों ने गांधीजी के आशावाद को चिरजाग्रत रखने में कम हिस्सा नहीं लिया होगा ।

× × × ×

और यह प्रेम सबल कारणों के ऊपर बंधा हुआ था । असहयोग पर पूरा विचार कर के उन्होंने उसे हिन्दुस्तान की जनता को मिला हुआ एक अमोघ धर्मशस्त्र माना था और ईश्वर ने उन्हें खुद जैसी सेवा करने की कामना थी वैसी सेवा करने के लिए निमित्त बने हुए दूसरे लोगों को उत्पन्न किये थे यह देख कर उनका उदार हृदय प्रेम से भर आता था । १९२१ में अपने मित्रों को लिखे हुए उनके कुछ बंगाली पत्र मेरे पास हैं । एक पत्र में की हुई असहयोग की समालोचना हृदयस्पर्शी है:—

"योगशास्त्र में लिखा है कि सुखी मनुष्य को देखकर मैत्री-भाव धारण करने से चित्त की ईर्षा रूपी मलीनता उड़ जाती है दुःखी जन को देखकर कारुण्यभाव धारण करने से चित्त का दूसरों का अपकार करने की वृत्ति रूपी मैल धुल जाता है । पुण्यशील जन के प्रति अनुमोदनभाव धारण करने से चित्त का असूया रूपी मैल धुल जाता है । इसके बाद यह मन्त्र दिया हुआ है: 'अपुण्यशीलेषु च औदासीन्यमेव भावयेत्, नानुमोदनम् न वा द्वेषम्' अर्थात् अधर्मपरायण व्यक्ति के प्रति — खास करके ब्रिटिश राजपुरुष जैसे दिनदोपहर को धाड़ डालनेवालों के प्रति — औदासीन्यभाव (असहयोगभाव) रखना यही कर्तव्य है — अनुमोदन का गंध ही नहीं और द्वेष का मात्र भी नहीं । इतने में मेरा सारा कथन आ जाता है ।" दूसरे एक पत्र में लिखते हैं:—

"हमलोगों ने धीरे धीरे इस राज्य के राजनीतिज्ञों से विषमिश्रित दान ले कर अपना कर्ज असह्य बढ़ा लिया है । इस हालत में नया करज करना बन्द करके पुराना चुकाने के लिए अभी हमलोगों के पास जो रहेसहे साधन मौजूद हैं उनका जीर्णोद्धार करनेवाले को क्या आप रोकेंगे और कहेंगे कि 'नहीं नहीं दान लिए जाओ'? घी खाना लाभदायी है, घी न खाना सूख जाने के बराबर है — अर्थात् 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' (करज करके भी घी पीना चाहिए)।

मैं तो सब बातों की एक बात यह समझता हूं कि अंग्रेज राजनीतिज्ञों के साथ सहयोग करना ऐसा ही है जैसा बगुले का बिल्ली के साथ बैठ थाली में भोजन करना । हम सब जानते हैं कि गांधी काम, क्रोध, मद, मत्सर के कीचड़ में से निकल कर बहुत ही ऊंचे उठे हुए हैं और वे वहीं से अपना काम करते हैं । गांधी में रणोन्मत्तता जैसी कोई वस्तु नहीं है । वह अहिंसा का एकान्तिक सेवक है । वे ऐसे नहीं कि जोश में आ कर कोई प्रवृत्ति कर बैठें ।

जिसे सब लोग पसंद करते हैं वैसे कामों को करने में भी वे जोश या नशे में आ कर कुछ न करेंगे । इसलिए इसीमें श्रेय है कि उनके शुभ्र, विशुद्ध, साधुजनोचित सत्कार्य में सर्वान्तः-करणपूर्वक शामिल हों । मेरा तो ध्रुव विश्वास है कि गांधी के जैसा विशुद्ध सोना इस घोर कलिकाल में मिलना दुर्लभ है । इस सोने का व्यापार क्यों न कर लें?"

अपने प्रीतिभाजन, अपने पास बैठनेवालों, और उनसे सलाह लेनेवालों को इस प्रकार अपना अन्तर मथन करके उसका नवनीत देनेवाले इस महात्मा के विचारों से जैसा कि ऊपर कहा गया है असहयोग को कुछ कम पुष्टि नहीं मिली है?

देश सन्मार्ग पर चढ़ा है । गिरता पड़ता भी यह अब उसीसे चला जायगा, उसे छोड़ेगा नहीं । यह विश्वास ही उनके लिए

काफी था। वे स्वराज्य लेने के लिए अधीर न थे। उनके लिए तो देश को एक कदम आगे बढ़ा हुआ, अर्थात सन्मार्ग पर जाता हुआ देखना ही बस था।

× × × ×

इस विरल पुरुष के देशहित विषयक विचार तो देखें। जिस असहयोग का मूल गांधीजी के गीताभ्यास में है उस गीता के प्रति 'बड़ोदादा' के अनुराग के भी एक दो उदाहरण देकर उनके इस पुण्यस्मरण को समाप्त करेंगे।

"गीता हमारे मन्दिर का बिना तेल जलता अखंड दीपक है। पश्चिम का सारा तत्वज्ञान इकट्ठा होकर चाहे जितना प्रकाश क्यों न फैलावे हमारे इस छोटे से दीपक की अखंड ज्योति उसे मंद कर देगी, उसका प्रकाश उससे कहीं अधिक है। इस दीपक से जो एक सूक्ष्मवायु निकलती है उससे हमारे देश की वायु पवित्र होती है और उस वायु से प्रेरित मेघ से शांतिजल की बूंदबूंद टपक कर हमारे त्रितापदग्ध हृदय को ठंडा करती है — वह जल मृतसंजीवनी-सुधा के समान है। हमारा शरीर थक कर जब हार बैठता है, किसी काम में चित्त नहीं लगता उस समय एक अमृतबिन्दु भी हमें स्फूर्ति देती है —

'उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत्।'

साधन और साध्य के सम्बन्ध में वे लिखते हैं:—

'पृथ्वी को कितने ही युगों की तपस्या के बाद आत्मा की प्राप्ति हुई है। पृथ्वी के अंधकार में आत्मा प्रकाश है, मरुभूमिका नंदनवन है। आत्मा को प्राप्त करने पर पृथ्वी की श्री-शोभा बदल गई है। सागर सहित पृथ्वी का समस्त धन एक तरफ रक्खा जाय और दूसरी तरफ आत्मा को रक्खा जाय तो उस धन की कोई कीमत न होगी। यदि इतना ही होता कि आत्मा 'है' तो उसे जानने की कोई भी परवा न करता। परंतु आत्मा तो 'अस्ति' 'भाति' 'प्रिय' इन तीन अमोल रत्नों का बना हुआ है। 'अस्ति' में आत्मा की ध्रुव प्रतिष्ठा, 'भाति' में आत्मा का प्रकाश और 'प्रिय' में आत्मा का प्रेमामृत है। कूएँ में कीचड़ हो जाने पर जब उसका जल मैला हो जाता है तब कूएँ को जिस प्रकार उलेचकर साफ करना पड़ता है उसीप्रकार विवेक वैराग्य और संयम के द्वारा आत्मा को भी शुद्ध रखना पड़ता है। वैसा न किया जाय तो साधक आत्मा का उपभोग नहीं कर सकता। संस्कृत भाषा में जैसे व्याकरण, अलंकार, काव्य, साहित्य सब आ जाता है, उसी तरह समग्र आत्मा में ज्ञान, वीर्य प्रेम, आनंद सब आ जाता है। यह सहज ही समझ में आ सकता है: परन्तु साथ ही यह भी समझना जरूरी है कि संस्कृत भाषा की व्युत्पत्ति जानने के लिये सब से पहले संस्कृत भाषा का व्याकरण जानने की जरूरत होती है — कारक, विभक्ति, सर्वनाम, उपसर्ग आदि संस्कृत भाषा के भिन्न भिन्न अंगप्रत्यंगों का अच्छी तरह अध्ययन करना पड़ता है। इसके बाद इन सब अंगप्रत्यंगों का ज्ञान एकत्रित करके व्याकरण के ज्ञान का भाषा के व्यवहार के लिए किस तरह उपयोग किया जा सकता यह तो हाथ में कलम लेकर सीख सकते हैं। यह न किया जाय तो संस्कृत काव्य साहित्य का रस लेने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है। विद्यार्थी आचार्य को कहे कि एक तो व्याकरण पढ़ने में ही कुछ मजा नहीं आता है और फिर शब्दों को इकट्ठे करके उनके वाक्य बनाना बड़ी मिहनत का काम है इसे तो शाकुंतल नाटक ही क्यों न पढ़ें? जिस प्रकार यह उसकी दुरा-कांक्षा समझी जावेगी उसी प्रकार साधक भी यदि आचार्य को कहे [illegible] तत्वज्ञान सिखा दे शमदमादि साधन अतिशय कठिन हैं, इन सब में मेरा मन नहीं लगता — आध्यात्मिक प्रेम-आनंद फौरन् ही मिल जाय ऐसा कुछ सदुपदेश दीजिए,— तो यह उससे भी बढ़कर दुराकांक्षा है। पातंजल के योगशास्त्र में पांच सीढ़ियां बताई गई हैं। श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा। गीता में भी उपदेश में पहली वस्तु श्रद्धा है — आत्मा के ध्रुव अस्तित्व के प्रति विश्वास। दूसरी सीढी वीर्य अर्थात् शमदमादि साधनों में और अनासक्त रहकर अबाधित रूप से कर्तव्य में लगे रहना, स्मृति — आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव, समाधि यानि एकाग्रता और प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान। .. .. ये पांच सीढ़ियां जब पूरी हो जाती है तब आनंद का फवारा साधक के मगज में फूटता है।"

'बड़ोदादा' की उत्तरावस्था का बहुत सा समय इन साधनों के करने ही में जाता था। चार पांच वर्ष पहले तो कुछ कुछ लिखने का काम भी करते थे। ८५ वर्ष की उम्र में तो इन्होंने बंगाली शार्टहेंड (लघुलिपि) की एक अपनी ही नयी तर्ज निकाली थी। और उसके लिए वे सूचनायें अपने मोती के दाने से अक्षरों में लिखते थे। जब आंखों से देखना बंद हुआ और लिखना बंद करना पड़ा तब भी उपनिषद आदि पढ़वाना जारी रक्खा था। अपने मनोरंजन के लिए कागज काट काट कर तरह तरह की संदूकें बनाते और बालकों को देते। छोटे छोटे काव्य बनाते — कोई उनकी गोद में हमेशा खेलनेवाली गिलहरी पर, तो कोई रविबाबू या वैसे ही कोई दूसरे चिरंजीवी के जन्मदिन पर। आखिर को यह प्रवृत्ति भी कम की। भगवद् वियोगदुःख उन्हें चुभने लगा और भगवत्कृपासे अंतकाल में वे जिसके लिए तड़पते थे वही उन्हें मिल गया।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

लड़ाई कैसे सुलगी?

एक दूसरे का भय

इस अध्याय में लड़ाई के सुलगने में जो पांचवां कारण है उस पर विवेचन किया गया है, वह कारण एक दूसरे का भय है।

विदेश सम्बन्धी कामकाज करनेवाले सचिवों ने और युद्ध मन्त्रियों ने कितनी ही सदियां हुईं अपनी नीति का अनुमोदन कराने के लिए राष्ट्रों के डर की वृत्ति को उत्तेजना दी है। समस्त यूरोप ही जब एक सशस्त्र छावनी बन गया हो और एक सौ साल में ही जहां बड़ी बड़ी ८० लड़ाइयां हुई हों वहां जनता की भय की वृत्ति को बड़ी आसानी से उत्तेजित किया जा सकता है। जर्मनी के युद्धवादियों के लेखों ने और कैसर और उसके सेनापतियों के युद्धप्रलाप ने फ्रांस, रशिया और इंग्लैण्ड को भय से कंपा दिया था। इसके लिए तो कोई सबूत की जरूरत नहीं है। यह कंपकंपी सच्ची थी इसके सम्बन्ध में भी दो मत नहीं हो सकते हैं।

लेकिन अधिकांश में इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता है कि जर्मन राष्ट्र और बहुतसे जर्मन-नेता भी भयभीत रहते थे। लड़ाई के पहले इस बात का कई मरतबा स्वीकार किया गया है और अभी प्रकाशित हुए मित्रराज्यों के नेताओं के व्याख्यानों में और पुस्तकों में भी यही दिखाया गया है १९०८ के जोलाई महीने की २८ वीं तारीख को क्वीन्स हाल में व्याख्यान करते हुए मि. लाइड जार्ज ने कहा था: 'जर्मनी की स्थिति देखो। हमलोगों के लिए जैसा हमारा जलसैन्य है वैसा ही उनके लिए उनका स्थलसैन्य है। आक्रमण होने पर अपने बचाव के लिए उनके पास वही एक साधन है। जर्मनी के पास इतना बड़ा लश्कर नहीं है कि वह दो शक्तियों के सामने

कर सकें। उसके पास फ्रान्स, रशिया, इटली और आस्ट्रीया से अधिक बलवान सैन्य भले ही हो लेकिन वह दो महाशक्तियों के बीच में पड़ा हुआ है। ये दोनों महाशक्तियां एकत्रित हो कर उसके सैन्य से भी बहुत अधिक लश्कर जर्मनी में उतार सकती हैं। आप यह पूछते हैं कि संधि और समझौते के सम्बन्ध में जब वर्तमानपत्रों में कितनी ही विचित्र बातें प्रकाशित होती हैं तब जर्मनी क्यों भड़क उठता है — लेकिन उस समय मैंने जो यह बात कही है उसे याद रखना चाहिए ... ... देखो जर्मनी यूरोप के मध्य में, दोनों तरफ फ्रांस और रशिया से — जिनका दोनों का एकत्रित लश्कर उसके लश्कर से बहुत बड़ा है — घिरा हुआ पड़ा है। यदि हमलोगों पर कोई दो राष्ट्र मिल कर आक्रमण करे — जर्मनी और फ्रान्स अथवा जर्मनी और आस्ट्रीया के दोनों का मिल कर इतना बड़ा जहाजी बेड़ा हो कि वह हमलोगों से अधिक बलवान हो तो हमारी क्या दशा होगी? क्या हमलोग भी न डर जायंगे? हम क्या अपनी शस्त्रसमृद्धि न बढ़ायंगे? अवश्य ही बढ़ायंगे। हमलोगो के सम्बन्ध में नियत खराब है इसलिए जर्मनी घबड़ाया है, यह जो मानते हैं उन मित्रों को मैं यह कहता हूं कि जिस परिस्थिति में जर्मनी घबड़ाया है उस परिस्थिति में यह याद रखना चाहिए कि हमलोग भी घबड़ा जायंगे"।

१९०९ के मार्च में लार्ड एशर को लिखे गये एक पत्र में लार्ड फिशर ने लिखा था: "जरमन लोग मनवारें बांधने में इधर से उधर हो रहे हैं उसका कारण यह नहीं कि वह आप लोगों से लड़ना चाहता है। उन्हें तो शायद कभी कोई पीट या बिस्मार्क जैसे कोपनहेगन की सी लड़ाई जगानेवाला न निकल पड़े इस बात का हरदम डर लगा रहता है और यही उसका कारण है।" और १९११ के सितम्बर में लार्ड फिशर ने लिखा था: "मुझे विचित्र तौर से (लेकिन बिल्कुल निश्चित) समाचार मिले हैं कि जर्मन ब्रिटिश आर्मेना के कारण कांप रहे हैं।"

लन्डन टाइम्स के संवाददाता कर्नल रेपिंगटन ने १९२१ में लिखा था "जरमन युद्धशास्त्रीदल दो तरफ लड़ना पड़ेगा इस डर से दब रहे हैं और १९०५ में रशिया जिस तेजी से अपना लश्कर बढ़ा रहा है उसे देख कर उनका डर जल्दी दूर न हो सकेगा।"

१९२१ में किये गये अपने एक व्याख्यान में वाइकाउन्ट ग्राइस — ब्रिटन के एक सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ—ने कहा था: बहुत मरतबा तो लड़ाई होते होते किसी प्रकार रुक गई थी लेकिन उससे जुदी जुदी सरकारें और सहायक राष्ट्र प्रतिवर्ष अधिक शान्तिशील रहने के बदले कम शान्तिशील रहते थे क्योंकि शान्ति की किसी को भी इच्छा न थी। हालत यह थी कि जरा सी चिनगारी पड़ जाने पर सारा दारुगोला एकदम भड़क उठ सकता था। उसमें फिर भय और शामिल हुआ। रशिया और जर्मनी एक दूसरे से डरते। दोनों को यह डर लगा हुआ था कि शायद उसपर दूसरा राष्ट्र अकस्मात आक्रमण करे तो! जर्मनों के कृत्यों का हमें इस दृष्टि से विचार करना चाहिए। उन्हें यह सदा भय लगा हुआ था कि रशिया किस समय क्या कर देगा और उन्होंने यह ख्याल किया था कि रशिया की तरफ से जो आक्रमण का होना निश्चित ही है वह आक्रमण हो उसके पहले उसपर आक्रमण किया जाय यही बुद्धिमानों का काम है। १९२० में लार्ड हेल्डन ने लिखा था: "जर्मनी और आस्ट्रीया को रशिया का कैसा डर लगा हुआ था यह समझना हमारे लिए कठिन है और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि आस्ट्रीया को सर्विया निर्भय रहने दे ऐसा पड़ौसी न था।

बर्लिन के पुराने अमरिकन प्रतिनिधि मि. गिराई ने लिखा है: "बाहर के लोगों को जर्मन लोगों का युद्धप्रिय और जोशीले होना मालूम होता है। लेकिन सच बात तो यह है कि जर्मनों में एक बहुत बड़ी संख्या ने लड़ाई के लिए बड़ी भारी तैयारी करने में जो बड़ा त्यागभाव दिखाया है उसका कारण उनका डर था।

हाथकती कथा

(गतांक से आगे)

"यह क्या? यहां बुनाई में तार कितने कम हैं? यह क्या मच्छरदानी बनाई है या धोती? इसके दाम न मिलेंगे। इसे तुम्हीं वापस ले जाओ'।

"अरे दादा रे दादा, इसे मैं क्या करूंगा?"

"सुब्रह्मण्यम, इसे कह दो कि हमलोगों को ऐसा माल नहीं चाहिए। इसे कहो कि वह उसे अपने घर ले जाय या बाजार में बेच दे या चाहे जो करे। अब मैं दूसरों के ताके देखता हूं। इसी अकेले पर इतना समय कैसे दे सकता हूं? बुननेवाला बेचारा गभड़ा गया वह स्तब्ध हो कर खड़ा रहा। वह समझ गया कि इस समय पार्थसारथी सचमुच ही गुस्से हुआ है। पहले पार्थसारथी कितना भी गुस्सा क्यों न करता उसकी सख्ती और धमकियों से उन गरीब बुननेवालों को कभी कोई भय न लगता था। ऊपर ऊपर से कितनी सख्ती क्यों न दिखावे लेकिन नेत्रों में जो दया हो तो वह कहीं छिप सकती है? लेकिन आज तो पार्थसारथी सचमुच ही चिढ़ा हुआ था।

यहां किस लिए खड़ा है? यह कुछ न होगा। बड़ा खराब कपड़ा है। यहां से चले जाओ' पार्थसारथी ने वह ताका फेंक दिया और इस प्रकार गर्जना कर के दूसरे आदमियों का माल देखना शुरू किया।

'लेकिन साहब' बुननेवाला बोलने जाता था।

'नहीं, नहीं, कुछ नहीं'। पार्थसारथी ने उसे बिचमें रोक दिया।

वह बुननेवाला बोला "इस सप्ताह में मेरा लड़का मर गया।"

पार्थसारथी कुछ लज्जित हुआ और ऊंचे देखा। उस बुननेवाले ने अपनी कथा और आगे कहना शुरू किया, "और साहब, उसकी मां भी बीमार है। ईश्वर जाने उसका क्या होगा। घर में किसी भी बात का ठिकाना नहीं है। ऐसी हालत में काम में मन ही कैसे लग सकता है? मैं तो करघे को एक ओर ही पड़े रहने देता लेकिन चूल्हे पर हांडी तो चढ़नी ही चाहिए न? बस इसीलिए उसे चलाया लेकिन जब हाथ से काम कर रहा था उस समय दिल तो दूसरी ही तरफ था। भाई इतनी बार जाने दो, इसके पहिले क्या मैंने आप को नाराज किया है?"

इस समय जरा शान्त हो कर पार्थसारथी ने कहा 'क्या यह कोई कारण कहा जा सकता है? मैं ऐसे कपड़े को ले कर क्या करूं? क्या ग्राहकों से मैं यह कहूं कि बुननेवाले का लड़का मर गया था।"

"भाई साहब, इस मरतबा तो जाने दो।"

'नहीं, यह ताका तो रक्खूंगा ही नहीं; इसे तुम अपने घर ले जाओ" एक मरतबा वह बोल चुका था इसलिए पार्थसारथी अब अपना निश्चय क्यों कर बदलता?

गरीब बेचारा बुननेवाला रोता हुआ कहने लगा "मेरा सत्यानाश हो जायगा। मेरे बालबच्चे इस सप्ताह में भूखों मर

जायेंगे । यह कह कर जमीन पर लम्बा लेट कर पार्थसारथी के पैरों को छू वह माफी मागने और गिड़गिड़ाने लगा ।

"सुब्रह्मण्यम, इसे पैसे दो ।" लेकिन देखो आयंदा ऐसे बहाने न चलेंगे । तुम्हारा लड़का कितना बड़ा था ?

"अरे साहब बिल्कुल जवान था, कोई सत्तरह साल का था" वह गरीब बुननेवाला बोल उठा, कितने ही वर्ष हुए मैं उसे बुनने का काम सिखाता था और अब वह करघे पर बैठने लगा था और इस बुढ़ापे में मेरी मदद करने लायक हुआ था कि परमात्मा ने उसे अपने पास बुला लिया ।"

बाकी सब ताके चुपचाप देखे गये । पार्थसारथी को उन पर टीका करने की हिम्मत न हुई । जब हम कुछ कर बैठते हैं और उसको फिर सुधार नहीं सकते है तो जैसे पछताते और विचार करते हुए बैठे रहते हैं वैसा ही पार्थसारथी का भी हाल था । भोजन के समय भी उनकी वही वृत्ति कायम रही । उनकी माता ने भी कोई सवाल नहीं किया और परोस दिया ।

उस रात को उन्हे बहुत ही कम नींद आई । सुबह जल्दी उठ कर बिछाने में बैठे बैठे उसने ईश्वर की प्रार्थना की तब कहीं वह स्वस्थ हुआ, दूसरे दिन वह फिर प्रफुल्लित दिखाई देने लगा । उनकी माता और सुब्रह्मण्यम दोनों की चिन्ता दूर हुई ।

× × × ×

पार्थसारथी ने कहा "इस प्रकार सब एक समान बुनाई की मांग का कोई अर्थ नहीं है, खादी खादी ही है । उससे बुननेवालों के सुखदुःखों को कैसे अलग किया जा सकता है ? आज बुननेवाला आनन्द में है तो उसके हाथ, पैर और आंखे अच्छी तरह काम करते है । लेकिन कल दुःख आ पड़ा । दुःख में भी वह क्या करघा थोड़े ही छोड़ सकता है ? वह एक दिन भी उसे छोड़ दे तो दूसरे ही दिन उसे इधर उधर दौड़ना पड़े । सांचे के करघे मे जिस प्रकार आप ही आप काम होता है उस प्रकार कहीं इसमें थोड़े हो सकता है ?

सुब्रह्मण्यम बुनाई के काम में बड़ा होशियार था । उसने पार्थसारथी की इस टीका का अपने ही ढंग मे अर्थ किया ।

"सच बात है, सूत को कितना भी बराबर क्यों न काता जाय, खादी में एक सी बुनाई कैसे आ सकती है ? जहां बाना पतला होगा वहां बुनाई कम मालूम होगी । इसमें हमलोग कुछ भी नहीं कर सकते । हमेशा बुननेवाला का दोष थोड़े ही होता है ? इन बम्बईवालों को हमें साफ साफ कह देना चाहिए कि चरखे और करघे से उन्हे मिल के कपड़े की आशा न रखनी चाहिए । चरखे चरखे ही और करघे करघे ही हैं ।"

"सच है" सुब्रह्मण्यम ने कहा "गांधीजी ने कानपुर में उनके लिए कोई पुतलीघर तो नहीं खड़ा किया है कि पुतलीघर बनवाने के लिए रुपये खर्च किये बिना ही उन्हें पुतलीघर का कपड़ा प्राप्त हो ।

बिल्कुल सच है । गांधीजी ने तो गृहउद्योग खड़ा किया है और इस प्रकार उन्होंने हजारों स्त्री-पुरुषों की सेवा की है । फैशन और टेस्ट (रुचि) वालों को दरिद्रता और दुःख में होनेवाली सेवा में ही सौन्दर्य मानना होगा, सुन्दर बुनाई और एक सी बुनाई की उन्हें आशा न रखनी चाहिए ।

इस प्रकार खादी के मानसशास्त्र की चर्चा हो रही थी कि एक बुढ़िया जल्दी जल्दी वहां आई और पार्थसारथी के पैरों में कुछ पैसे फेंक कर रोने लगी ।

"लेकिन है क्या ? पार्थसारथी ने हंसते हंसते पूछा । उसे यह मालूम था कि नहीं जैसी बात के लिए भी इन कातनेवाली स्त्रियों को रोने की आदत है ।"

"भाई साहब, ये अपने पैसे आप ले लो । मेरी अंधी की आंख अपनी एकलौती विधवा लड़की को अभी मिट्टी दे कर आई हूं, अब मुझे जी कर करना ही क्या है ?

"लेकिन है क्या ? पार्थसारथी ने पूछा ।

"मुझे मरने ही दो । यह लो अपने पैसे, मुझे नहीं चाहिए ।"

"खाली मत [illegible]न, रोना बन्द कर दे और कह तो सही कि तुझे क्या चाहिए ?" पार्थसारथी ने करुणाभरी आवाज से कहा ।

"भाई साहब, रामकृष्ण कहते हैं कि इस समय मेरा सूत बहुत मोटा है और एकसा नहीं है । और यह कह कर उन्होंने मेरा एक आना काट लिया है । इन सब दिनों में क्या मेरा सूत सब से अच्छा नहीं था ? मैंने अपनी लड़की से भी बार बार यही कहा था कि दूसरों की तरह जैसा आया वैसा सूत न कात कर बहुत ख्याल दे कर बड़ा अच्छा सूत कातना चाहिए । हमारा सूत तो हमेशा चांदी के तार सा ही रहा है । किसी भी बुननेवाले को जिसको सूत की पहचान है पूछ देखो न ? यह कह कर वह रोने लगी और उसके शब्द उसके रोने में लीन हो गये ।

सुब्रह्मण्यम ने उसे शान्त करने का प्रयत्न किया और कहा कि अच्छा सूत हो तब अच्छे सूत कताई मिलती है और बुरा सूत हो तो कताई कम मिलती है । सूत एकसा न हो तो बुननेवाला उसे ले कर क्या करेगा ? कल ही तो बुननेवाले चिल्ला रहे थे ।

अब बुढ़ियाने विस्तार से अपनी कथा कहना शुरू किया "ले लो अपने पैसे ले लो, मुझे नहीं चाहिए । मेरी निराधार की आधार, अन्धी की लकड़ी—मेरी लड़की इस दुःखमय संसार में जैसे तैसे दिन निकालने में मदद करती थी । वह बेचारी एक दिन के बुखार में परसों मर गई । लेकिन परमात्माने मुझे न बुला ली और यह भी न बताया कि बिना खाने के कैसे जी सकते हैं । चावल का पानी पी कर पेट भरने को रोते रोते और आंसू पोंछते पोंछते मुझे कातना पड़ा ताकि इस सप्ताह का मेरा सूत कम न हो । इस दुःख के कारण सूत कुछ मोटा भी कता होगा । मेरे जैसी गरीब को क्यों सताते हो ? अपनी पड़ोसन से मैंने कुछ पैसे उधार लिये थे—परमात्मा उसका भला करे—जब मेरी लड़की मर रही थी और घर में एक भी पैसा न था तब उसने मदद की थी । उस हाट में अनाज खरीदने में मेरे सब पैसे खर्च हो गये । दो सप्ताह में तो पड़ोसन का रुपया लौटा देना होगा । और जिस समय मेरी छाती फट रही थी उस समय मैंने काता था और उस सूत के लिए आप एक आना कम देते हो ? आगामी सप्ताह में तो आप दो आने कम कर दोगे । मैं फिर पेट कैसे भरूंगी और करजा कैसे चुकाऊंगी ? आग लगे ऐसे जीने में । पार्थसारथी ने कहा ' सुब्रह्मण्यम, सूत के खाते में जाओ और रामकृष्ण को कहो कि इस बुढ़िया को पूरे पैसे दें । इसे कुछ पैसे आगे के लिए भी क्यों न दिये जायं ? जाओ बूढ़ी मां जाओ, तुम्हें पूरे पैसे दिये जायंगे, रो ओगते । बुढ़िया ने पैसे उठा लिए और चली गई ।

"इस प्रश्न का निबटारा कैसे लावें ?" पार्थसारथी कुए पर अपनी मां के लिए पानी लेने जा रहे थे उस समय उन्होंने जरा जोर से कहा । कुए पर घड़ा ले कर खड़ी हुई उनकी माता ने उस बुढ़िया की सारी कथा सुनी थी उसने आह भरी "बेचारी बुढ़िया !"

तीन प्रश्न

वार्षिक मूल्य ४)
छमाही का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २२

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, माघ सुदी ८, संवत् १९८२ गुरुवार, २१ जनवरी, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय ७

दुःखद प्रसंग (२)

मुकर्रर किया हुआ दिन भी आ पहुंचा। मेरी स्थिति का पूरा पूरा वर्णन करना मुश्किल है। एक ओर सुधार करने का उत्साह और जीवन में बड़े ही महत्व का परिवर्तन करने की नवीनता थी और दूसरी ओर चोर की तरह छुपछिपकर कार्य करने की शर्म थी। मुझे आज यह स्मरण नहीं है कि इनमें से कौनसी बात उस समय प्रधान थी। हमलोग नदी किनारे एकान्त ढूंढने के लिए गये। दूर जा कर जहां कोई भी देखनेवाला न हो ऐसा एक कोना ढूंढ निकाला और वहां मैंने जीवन में जो पहले कभी नहीं देखा था वह — मांस देखा। उसके साथ भठियारे के घर की डबलरोटी भी थी। दो में से एक भी चीज अच्छी न लगती थी। मांस तो चमड़े सा मालूम होता था। उसे खाना ही असंभव मालूम होता था। मुझे उल्टी सी आने लगी और खाना छोड़ना पड़ा।

मुझे उस रात को बड़ी बेचैनी रही निद्रा ही न आती थी स्वप्ने में मानों यह मालूम होता था कि शरीर में बकरा जिन्दा है और वह रुदन करता है। मैं चमक उठता था, पछताता था और फिर विचार करता था कि मांसाहार तो करना ही होगा, हिम्मत न हारनी चाहिए! मित्र भी हार माननेवाले न थे। अब उन्होंने मांस को जुदे जुदे प्रकार से पकाना, सजाना और ढांकना आरम्भ किया और नदी किनारे के जाने के बदले बबर्चीओं के साथ सलाह कर के छुपे तौर से राज्य के अतिथिगृह में ले जाने की योजना की। वहां मुझे कुरसी, मेज इत्यादि साधनों के प्रलोभन में डाल दिया। इसका असर हुआ। रोटी के प्रति जो तिरस्कार था वह अब कम हो गया और बकरे की भी माया छूटी। मांस तो नहीं कह सकता लेकिन मांसवाले पदार्थों का मुझे स्वाद लग गया। इस प्रकार एक वर्ष बीता होगा और करीब करीब ५-६ मरतबा मांस खाने को मिला होगा। क्योंकि हमेशा राज्य का अतिथिगृह नहीं मिल सकता था और न हमेशा स्वादिष्ट गिने जानेवाले भोजन भी तैयार हो सकते थे। और ऐसे खाने तैयार करने में रुपयों की भी आवश्यकता होती है। मेरे पास तो कानी कौड़ी भी न थी और इसलिए मैं तो कुछ भी न दे सकता था। इसमें जो कुछ खर्च होता था वह उसी मित्र को जुटाना पड़ता था। मुझे आज तक इस बात का पता नहीं लगा है कि वे खर्च के लिए रुपये कहां से लाते थे। उनका इरादा तो मुझे मांस की चाट लगा देना था, मुझे भ्रष्ट करना था इसलिए वे खर्च करते थे। लेकिन उनके पास भी कोई बड़ा खजाना तो था ही नहीं! इसलिए ऐसे खाने क्वचित ही प्राप्त हो सकते थे।

जब कभी ऐसा खाना खाने को मिलता तब घर पर भोजन नहीं हो सकता था। माता जब भोजन करने के लिए बुलाती उस समय, 'भूख नहीं है, खाना हजम नहीं हुआ है' इत्यादि बहानें बनाने पड़ते थे। इस प्रकार बहाने बनाने में मुझे बड़ा आघात होता था। यह झूट, और वह भी माता के समक्ष! और यदि माता-पिता को यह पता चल जाय कि हमारे लड़के मांसाहारी बने हैं तो उनपर तो बिजली ही कड़क कर गिरती। ऐसे ख्यालों से मेरे हृदय को बड़ी पीड़ा पहुचती थी। इसलिए मैंने निश्चय किया कि मांस खाना आवश्यक है; उसका प्रचार कर के हिन्दुस्तान को सुधारेंगे लेकिन माता-पिता को ठगना और झूठ बोलना तो मांस न खाने से भी अधिक बुरा है। इसलिए माता-पिता की जीवितावस्था में मांस न खाना चाहिए। उनकी मृत्यु के बाद जाहिरा तौर पर मांस खाना चाहिए और जबतक वह समय न आवे तबतक मांसाहार का त्याग करना चाहिए। मैंने उन मित्र को अपना यह निश्चय सुना दिया और तब से मांसाहार जो छूटा सो छूटा। माता-पिता को कभी भी यह खबर न हुई कि उनके दो पुत्र मांसाहार कर चुके थे।

माता-पिता को न ठगने के शुभ ख्याल से मैंने मांसाहार का त्याग किया लेकिन उस मित्र की मित्रता को न छोड़ा। मैंने सुधारने के लिए उसकी मित्रता की थी लेकिन मैं स्वयं ही भ्रष्ट हुआ और उसका मुझे ज्ञान तक न रहा।

उन्हीं की मित्रता के कारण मैं व्यभिचार में भी प्रवृत्त होता था। एक मरतबा वे मित्र मुझे वेश्याओं के महोले में ले गये। वहां मुझे उन्होंने एक वेश्या के मकान में योग्य सूचनायें दे कर भेजा। मुझे उसे कुछ रुपये पैसे तो देने ही न थे, सब हिसाब हो चुका था। मुझे तो केवल उसके साथ बातचीत ही करनी थी।

मैं उस मकान में बंद तो हुआ; लेकिन जिसे ईश्वर बचाना चाहता है वह भ्रष्ट होना चाहे तो भी पवित्र रह सकता है। इस कमरे में मुझे सब जगह अंधकार ही अंधकार दिखाई देने लगा। मुझे बोलने तक का होश न रहा। लज्जा का मारा स्तब्ध हो कर उसके पास खाट पर बैठ गया लेकिन कुछ भी बोल न सका। वह बड़ी गुस्से हुई और उसने मुझे दो चार सुना कर दरवाजा ही दिखा दिया। उस समय तो मुझे ऐसा मालूम हुआ था कि मेरी मर्दानगी को दाग लग गया है और इसलिए मैंने यह चाहा भी कि यदि पृथ्वी मार्ग दे तो उसमें समा जाऊं। लेकिन इस तरह बच जाने के लिए मैंने सदा ईश्वर का उपकार माना है। मेरे जीवन में ऐसे ही दूसरे दो चार प्रसंग और भी आये थे और उनका मुझे स्मरण है। उनमें से बहुत से प्रसंगों पर तो यही कहा जायगा कि मैं अपनी तरफ से किसी भी प्रकार के प्रयत्न के बिना ही संयोगवश बच गया था। मैंने तो विषय की इच्छा की थी इसलिए मैं तो उसे कर ही चुका था। लेकिन इच्छा करने पर भी जो प्रत्यक्ष कर्म से बच जाता है उसे हम लौकिक दृष्टि से बचा हुआ कहते हैं और मैं इन प्रसंगो में इसी प्रकार उतने ही अंशों में बचा हुआ गिना जा सकता हूं। और कुछ कार्य तो ऐसे हैं कि जिनको करने से मनुष्य बच जाय तो वह उसे और उसके सहवास में आनेवालों को बड़ा लाभदायी सिद्ध होता है और जब विचार की शुद्धि होती है वह उस कार्य से बच जाने के लिए ईश्वर का उपकार मानता है। यह अनुभव की बात है कि मनुष्य की अधःपात की इच्छा न होने पर भी उसका अधःपात होता है, उसी प्रकार यह भी अनुभव सिद्ध है कि अधःपात की इच्छा रखनेवाला मनुष्य भी अनेक प्रकार से संयोगवश बच जाता है। इसमें पुरुषार्थ कहां है, दैव कहां है अथवा किन किन नियमों के वश हो कर मनुष्य का अधःपात या उसकी रक्षा होती है, ये प्रश्न गूढ हैं। उसका आजतक निर्णय नहीं हो सका है और उसका आखिरी निर्णय हो सकेगा या नहीं यह कहना भी मुश्किल है।

अब आगे बढ़ें।

मुझे अबतक भी यह ज्ञान न हुआ कि उस मित्र की मित्रता अनिष्ट है। लेकिन ऐसा ज्ञान हो उसके पहले मुझे और भी कुछ कटु अनुभव प्राप्त करने थे। उनके दूसरे दोषों का जिनका मुझे ख्याल भी न था, जब मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुआ उस समय ही मुझे यह ज्ञान हो सका था। लेकिन मैं जहां तक बन पड़े समयानुसार क्रमशः अपने अनुभवों का वर्णन कर रहा हूं इसलिए वे अनुभव भी आगे आ कर ही लिखे जावेंगे।

लेकिन एक बात जो इस समय की है, कहनी ही होगी। हम पतिपत्नी में कितना ही अंतराय और क्लेश होता था और उसका कारण यह मित्रता भी था। मैं यह तो ऊपर लिख ही चुका हूं कि मैं प्रेमी और वहमी पति था। मेरे वहम में वृद्धि करनेवाली यह मित्रता भी थी क्यों कि उन मित्र के सत्य के सम्बन्ध में मुझे कभी अविश्वास ही न होता था। इन मित्र की बातें मान कर मैंने मेरी धर्मपत्नी को बहुत दुःख दिया था और इस हिंसा के लिए मैंने अपने को कभी भी माफ नहीं किया है। ऐसे कष्ट तो हिन्दू स्त्रियां ही सहन करती होंगी और इसलिए मैंने हमेशा स्त्री को सहनशीलता की मूर्तिरूप ही माना है। नौकर के ऊपर जब झूठा सन्देह होता है उस समय वह नौकरी छोड़ देता है, पुत्र के ऊपर जब ऐसी आफत आती है वह बाप का घर छोड़ देता है। मित्रों में जब वहम को स्थान मिलता है तब मित्रता टूट जाती है, पत्नि को जब पति के ऊपर सन्देह होता है तब वह दिल मसोस कर रह जाती है लेकिन यदि पति अपनी पत्नी को सन्देह की दृष्टि से देखता है तो उस बेचारी की तो आफत हो जाती है। वह कहां जायगी? हिन्दू स्त्री तो अदालत में जाकर विवाह की ग्रंथी को भी नहीं तुड़वा सकती है। उसके लिए ऐसा ही एकपक्षी न्याय है। मैंने ऐसा ही न्याय उसे दिया उसका दुःख मैं कभी भी नहीं भुला सकता हूं। इस सन्देह का तो सर्वथा नाश तभी हो सका जब कि मुझे अहिंसा का सूक्ष्म ज्ञान हुआ। मैं ब्रह्मचर्य का महिमा समझ सका और यह समझने लगा कि पत्नी पति की दासी नहीं है लेकिन उसकी सहचारिणी है, सहधर्मिणी है; दोनों एक दूसरे के सुखदुःख के समान हिस्सेदार हैं; और पति को बुरा भला करने की जितनी स्वतंत्रता है उतनी ही स्वतंत्रता स्त्री को भी है। उस समय का जब मुझे स्मरण होता है तब मुझे अपनी मूर्खता और विषयान्ध निर्दयता पर क्रोध आता है और मित्रता की मेरी मूर्छा के सम्बन्ध में दया आती है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अस्पृश्यता का बचाव

त्रावणकोर से एक महाशय लिखते हैं:

"ब्राह्मण और उनके आचार और रीतिरिवाजों के सम्बन्ध में कुछ गलतफहमी हुई मालूम होती है। आप अहिंसा की प्रशंसा करते हैं लेकिन मात्र ब्राह्मणो की ही जाति ऐसी है जो उसे धर्म-कार्य समझ कर उसका पालन करती है। यदि कोई उसका भंग करता है तो हम उसे जाति से बहिष्कृत समझते हैं। जो लोग मांस खाते है या मांस के लिए हत्या करते हैं उनके सहवास में आना ही हमलोगों की दृष्टि में पाप है। कसाई, मच्छीमार, ताड़ी बनानेवाला, मांस खानेवाला, शराब पीनेवाला और धर्महीन मनुष्य के नजदीक आने से ही हमारा नैतिक और भौतिक वायुमण्डल भ्रष्ट हो जाता है। तप और धार्मिकता की हानि होती है और पवित्रता का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

इसे हमलोग भ्रष्टता मानते हैं और इसलिए हमें स्नान करना पड़ता है। यद्यपि समय और भाग्य ने तो कई मरतबा पलटा खाया है लेकिन ऐसे नियमों के कारण ही तो ब्राह्मण लोग अबतक अपने परंपरागत गुणों की रक्षा कर सके हैं यदि इसप्रकार से संयम को दूर कर दिया जायगा और ब्राह्मणों को दूसरों से स्वतंत्रता पूर्वक मिलने जुलने दिया जायगा तो उनका इतना अधःपतन होगा कि वे हलके से भी हलके जातिहीन शूद्रों के समान बन जावेंगे, छुपे तौर से वे बहुत कुछ दुराचार करेंगे और पवित्र होने का ढोंग भी करेंगे और साथ ही साथ संयम की मर्यादा को दूर करने का भी प्रयत्न करेंगे क्योंकि इस मर्यादा के कारण अपने पापों को छिपाने में उन्हें बड़ी कठिनाई मालूम होती है। हम यह तो जानते ही है कि आज जो लोग नाम मात्र के ब्राह्मण है वे ऐसे ही है। और वे लोग अपनी गिरी हुई दशा पर दूसरों को खींच के लाने के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं।

उस स्थान में जहां लोगों की आदत और उनके भलेबुरे के ख्याल के अनुसार (रंग, अधिकार और धन के भेद के अनुसार नहीं जैसा कि पश्चिम में गलती से किया जा रहा है) उनका आवश्यकतानुसार वर्गीकरण करके उनके धंधे को और सामाजिक और गृहविषय सुविधाओं को देख उनकी स्पष्ट मर्यादा बांध कर उन्हें जुदे केन्द्रो में रहने के लिए स्थान दिया जाय, जैसा कि हमारी मातृभूमि में किया जाता है, तो यह संभव नहीं कि कोई मनुष्य यदि अपनी रहनीकरनी बदले भी तो वह बहुत दिनों तक छिपा रह सके।

लेकिन यदि कसाई, मांस खानेवाले और शराबखोरों में कोई आ कर रहे तो यह संभव नहीं कि वह उनमें रह सके और अपने वैशेषिक गुणों की रक्षा कर सके। स्वभावतः हमलोग अपनी रुचि के अनुकूल ही वातावरण पसंद करते हैं। इसलिए ब्राह्मण के रहने की जगह का वायुमण्डल भी भौतिक, नैतिक और धार्मिक दृष्टि से पवित्र रखना चाहिए और कसाई, मछलीमार और ताडी बनानेवालों के आक्रमण से उसकी रक्षा करनी चाहिए।

भारतवर्ष में जाति और उसके धंधे अविच्छिन्न भाव से जुडे हुए हैं और इसलिए स्वभावतः ही जिस जाति का वह मनुष्य है उसका धंधा भी वही मान लिया जा सकता है।

यही कारण है कि अस्पृश्यता और नजदीक न आने देने की मर्यादा रक्खी गई है। इससे हमारी जाति की पवित्रता की केवल रक्षा ही नहीं होती है बल्कि दुराचारियों को जाति से बहिष्कृत करने की सामाजिक और धार्मिक सीधी सजा भी दी जाती है और इसलिए प्रकारान्तर से उन्हें यदि वे हमारे साथ सब प्रकार का व्यवहार रखना चाहते हों तो, अपनी बुरी आदतों को छोडने के लिए मजबूर भी करती है।

इसलिए आप उन्हें सार्वजनिक तौर से यह उपदेश दें कि वे अपने पापकार्यों को छोड दें और कसाई और कलाई का काम करने लगें और वे आवश्यक धार्मिक क्रियायें जैसे नहाना, उपवास करना और प्रार्थना करना इत्यादि भी करें। यदि वे कुछ वर्षों में नजदीक न आने की मर्यादा को दूर करना चाहते हैं तो उन्हें उन लोगों के साथ मिलना जुलना न चाहिए कि जिन लोगों ने अपनी पुरानी आदतों का त्याग नहीं किया है। शास्त्रों ने यही मार्ग दिखाया है। मनुष्य के अपने खानगी पापकर्मों को और उसके गुणों को जानने का कोई मार्ग नहीं है इसलिए ऐसी बातों से कोई लाभ नहीं कि फलाने का मन पवित्र है और फलाने मन मैला है। मनुष्य की सामाजिक आदतों से ही हम उसके खानगी जीवन की परीक्षा कर सकते हैं। इसलिए जो शख्स खुले तौर से हमारे अहिंसा धर्म का स्वीकार नहीं कर सकता है और मच्छी मारना और मांस खाना नहीं छोड सकता है वह इस योग्य नहीं माना जा सकता कि वह नजदीक भी न आने की परम्परागत मर्यादा का त्याग करें। सच बात तो यह है कि अस्पृश्यता और कुछ नहीं है लेकिन अहिंसा धर्म की रक्षा और प्रचार का मात्र व्यवहारिक साधन है।"

लेखक ने जिस प्रश्न को छेडा है उस पर पहले कई मरतबा विचार किया जा चुका है फिर भी उनकी दलीलों में उनका जो भ्रम है उसे दूर करना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि ब्राह्मणों की तरफ से जो यह दावा किया जा रहा है कि वे निरामिषभोजी हैं, सम्पूर्ण सत्य नहीं है। यह केवल दक्षिण के ब्राह्मणों के संबन्ध में ही ठीक हो सकता है। लेकिन दूसरी जगहों में तो वे स्वतंत्रतापूर्वक मच्छी खाते हैं और बंगाल, काश्मीर इत्यादि स्थानों में तो मांस भी खाते हैं। और दक्षिण में भी मांस खानेवाले और मच्छी खानेवाले सब लोग अस्पृश्य नहीं है। और अस्पृश्य जो अत्यन्त पवित्र है वह भी जातिहीन समझा जाता है क्योंकि उसका जन्म उस कुल में हुआ है जो अन्यायपूर्वक अस्पृश्य और समीप न आने योग्य गिना जाता है। अधिकांशमात्र मांस खानेवाले अब्राह्मणों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर क्या ब्राह्मण लोग नहीं चलते हैं? क्या वे मांस खानेवाले हिन्दू राजाओं का आदर नहीं करते हैं?

लेखक जैसे शिक्षित मनुष्यों को, जिस रिवाज का किसी भी प्रकार से बचाव नहीं किया जा सकता है और जिसकी बुनियाद अब हिल उठी है उस रिवाज का अपने जोश में आ कर, अपनी दलीलों के स्पष्ट अर्थ का विचार किये बिना ही, बचाव करते हुए देख कर बडा ही आश्चर्य और दुःख होता है। लेखक मांस खाने की छोटी सी हिंसा की बात पर बडा जोर देते है लेकिन कोरी काल्पनिक पवित्रता की रक्षा के लिए करोडों भाइयों को जान-बूझ कर दबाये रखने की बडी भारी हिंसा की बात को वे भूल जाते हैं। मैं उन्हें यह कहता हूं कि जिस निरामिषता की रक्षा करने के लिए दूसरे मनुष्यों को हलके मान कर उनका बहिष्कार करना पडता है वह संग्रह करने योग्य नहीं है। इस प्रकार यदि उसकी रक्षा की जायगी तो वह गरमी में उगनेवाले पौदे के समान ठंडी हवा लगते ही नष्ट हो जायगी। निरामिषता को मैं बडा महत्व देता हूं। मुझे विश्वास है कि ब्राह्मणों ने इस निरामिषता और स्वयं निर्मित संयम के नियमों से बडा आध्यात्मिक लाभ उठाया है। लेकिन जब वे अति उन्नत अवस्था में थे उस समय उन्हें अपनी पवित्रता की रक्षा करने के लिए बाह्य मदद की आवश्यकता न थी। कोई भी गुण जब वह बाह्य प्रभावों का सामना करने में असमर्थ हो जाता है उसकी जीवनशक्ति नष्ट हो जाती है।

और लेखक जिस प्रकार की रक्षा का जिक्र करते हैं वैसी रक्षा के लिए ब्राह्मणों के दावे से अब कोई लाभ भी नहीं है क्यों कि अब बहुत देर हो चुकी है। सद्भाग्य से ऐसे ब्राह्मणों की तादाद अब बढ रही है जो ऐसी रक्षा की बातों के प्रति घृणा की दृष्टि से देखते हैं इतना ही नहीं जो बडी बडी तकलीफें सहन करने का जोखिम उठा करके भी इसके सुधार की हलचल के नेता बन रहे हैं। इसी से सुधार के अतिशीघ्र प्रगति करने की बडी आशा बंधती है।

लेखक मुझ से यह चाहते हैं कि नीच गिने जानेवाले लोगों को मैं पवित्र बनने के लिए उपदेश दूं। यह मालूम होता है कि वे 'यंग इंडिया' नहीं पढते हैं अन्यथा वे यह अवश्य जान सकते थे कि उन्हें ऐसा उपदेश देने का एक भी मौका मैं व्यर्थ नहीं जाने देता हूं। मैं उन्हें यह समाचार भी देता हूं कि वे उसका सन्तोषजनक उत्तर भी देते हैं। मैं लेखक को उन सुधारकों के वर्ग में शामिल होने के लिए निमंत्रण दूंगा कि जो इन दुःखी लोगों में जा कर उनके संरक्षक बनकर नहीं, लेकिन उनके सच्चे मित्र बन कर काम कर रहे हैं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ सुदी ८, संवत् १९८२

तीन प्रश्न

एक महाशय ने बड़े ही विनम्र भाव से तीन प्रश्न पूछे हैं। उन्होंने प्रश्नों के साथ अपने उत्तर भी लिखे हैं लेकिन स्थानाभाव से मैं उन्हें यहां नहीं दे रहा हूं। प्रश्न इस प्रकार हैं, वे उन्हीं के शब्दो में दिये गये हैं।

"(१) वर्णभेद-जन्मजात — आप मानते हैं। किन्तु किसी आदमी को कौनसा भी कर्म करने में हर्ज नहीं तथा किसी भी आदमी में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि द्विजों के गुण आ सकते हैं यह भी आपको मान्य है। ऐसी हालत में वर्ण या उपाधि की क्या जरूरत है? सिर्फ जन्म से नाम का आरोपण क्यों? जन्म को इतना महत्त्व क्यों?

(२) आप अद्वैततत्त्व मानते हैं और यह भी कहते हैं कि सृष्टि अनादि अनंत तथा सत्य है। अद्वैततत्त्व सृष्टि के अस्तित्व का इन्कार करता है। आप द्वैती भी नहीं, क्यों कि आप जीवात्मा के स्वतंत्र कर्तृत्व पर श्रद्धा रखते हैं। इसलिए आपको अनेकांतवादी या स्याद्वादी कहना क्यों ठीक नहीं है?

(३) आपने कई बार लिखा है कि ईश्वर के मायने देह-विरहित, वीतरागी, स्वतंत्र और उपाधिरहित शुद्धात्मा है। अर्थात् ईश्वर ने सृष्टि नहीं पैदा की और वह पापपुण्य का निकाल भी नहीं देने बैठता। तो भी आप ईश्वरेच्छा की बात बार बार करते ही रहते हैं। उपाधिरहित ईश्वर को इच्छा कैसे हो सकती है और उसकी इच्छा के अधीन आप कैसे हो सकते हैं? आपकी आत्मा जो कुछ करने चाहती है कर सकती है। यदि एकदम न (कर) सकती हो तो उसी आत्मा का पूर्वसंचित कर्म ही उसका कारण है न कि ईश्वर। आप सत्याग्रही होने के कारण सिर्फ मूढात्माओं को समझाने के लिए यह असत्य बात नहीं कहते होंगे। तो फिर यह ईश्वरेच्छा का दैववाद क्यों?"

(१) वर्णभेद को मानने में मैं सृष्टि के नियमों का समर्थन करता हूं। मातापिता के कुछ गुण-दोषों को हमलोग जन्म से ही प्राप्त करते हैं। मनुष्य योनि में मनुष्य ही पैदा होते हैं और यही जन्मानुसार वर्णों का सूचक है। और जन्म से प्राप्त गुण-दोषों में हमलोग अमुक अंशों में परिवर्तन कर सकते हैं इसलिए कर्म को भी स्थान है। एक ही जन्म में पूर्वजन्म के फलों को सर्वथा मिटा देना शक्य नहीं है। इस अनुभव की दृष्टि से तो जो जन्म से ब्राह्मण है उसे ब्राह्मण मानने में ही सब प्रकार का लाभ है। विपरीत कर्म करने से ब्राह्मण यदि इसी जन्म में शूद्र बने तो भी संसार उसे ब्राह्मण ही माना करे तो उसमें संसार की कोई हानि न होगी। यह सच है कि आज वर्णभेद का उलटा अर्थ हो रहा है और इसलिए यह भी सच है कि वह छिन्नभिन्न हो गया है। फिर भी जिस नियम का मैं पद पद पर अनुभव करता हूं उसका मैं कैसे इन्कार कर सकता हूं? मैं यह समझता हूं कि यदि मैं उससे इन्कार करूं तो बहुत सी मुश्किलों से बच जाऊंगा। लेकिन यह दुर्बुद्धि का मार्ग है। मैंने तो यह स्पष्ट पुकार कर कहा है कि वर्ण के स्वीकार में मैं ऊंच नीच के भेद का स्वीकार नहीं करता हूं। जो सच्चा ब्राह्मण है वह तो सेवक का भी सेवक बन कर रहता है। ब्राह्मण में भी क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के गुण रहते हैं। केवल उसमें ब्राह्मण गुण दूसरे गुणों की अपेक्षा अधिक होना चाहिए। लेकिन आज तो वर्ण भी चाक पर चढा हुआ है और उसमें से क्या निकलेगा यह तो ईश्वर ही या ब्राह्मण ही जान सकते हैं।

(२) यह सच है कि मैं अपने को अद्वैतवादी मानता हूं लेकिन मैं द्वैतवाद का भी समर्थन कर सकता हूं। सृष्टि में प्रतिक्षण परिवर्तन होता है इसीलिए सृष्टि असत्य — अस्तित्वरहित — कही जाती है। लेकिन परिवर्तन होने पर भी उसका एक रूप ऐसा है, जिसे स्वरूप कह सकते हैं, उस रूप से वह है यह भी हमलोग देख सकते हैं इसलिए वह सत्य भी है। उसे सत्यासत्य कहो तो भी मुझे कुछ उज्र नहीं है। इसलिए यदि मुझे अनेकान्तवादी या स्याद्वादी माना जाय तो भी इसमें मेरी कोई हानि न होगी। जिस प्रकार मैं स्याद्वाद को जानता हूं उसी प्रकार मैं उसे मानता हूं, पंडित लोग जैसा मनाना चाहें वैसा शायद नहीं मानता। वे मुझे वाद करने के लिए बुलावें तो मैं हार जाऊंगा। मैंने अपने अनुभव से यह देखा है कि मैं अपनी दृष्टि में हमेशा ही सच्चा होता हूं और मेरे प्रमाणिक टीकाकार की दृष्टि में मैं बहुत सी बातों में गलती पर होता हूं। मैं यह जानता हूं कि अपनी अपनी दृष्टि में हम दोनों ही सच्चे हैं। और इस ज्ञान के कारण मैं किसीको भी सहसा झूठा, कपटी इत्यादि नहीं मान सकता हूं। सात अन्धों ने हाथी का सात प्रकार से वर्णन किया था और वे सब अपनी अपनी दृष्टि में सच्चे थे, आपस में एक दूसरे की दृष्टि में गलत थे और ज्ञानी की दृष्टि में सच्चे भी थे और गलत भी थे। मुझे यह अनेकान्तवाद बड़ा ही प्रिय है। उसमें से ही मैं मुसल्मान की दृष्टि से मुसलमान की और ईसाई की दृष्टि से ईसाई की परीक्षा करना सीखा हूं। मेरे विचारों को जब कोई गलत समझता था तो पहले मुझे उसपर बड़ा क्रोध होता था लेकिन अब मैं उसकी आंखों से उसका दृष्टिबिन्दु भी देख सकता हूं इसलिए मैं उस पर भी प्रेम कर सकता हूं। क्योंकि मैं संसार के प्रेम का भूखा हूं। अनेकान्तवाद का मूल अहिंसा और सत्य का युगल है।

(३) ईश्वर के जिस रूप को मैं मानता हूं उसीका मैं वर्णन करता हूं। झूठ-मूठ लोगों को समझा कर मैं अपना अधःपात किसलिए होने दूं? मुझे उनसे कौनसा ईनाम लेना है? मैं तो ईश्वर को कर्ताअकर्ता मानता हूं। उसका भी मेरे स्याद्वाद से उद्भव होता है। जैनों के स्थान पर बैठ कर उसका अकर्तृत्व सिद्ध करता हूं और रामानुज के स्थान पर बैठ कर उसका कर्तृत्व सिद्ध करता हूं। हम सब अचिन्त्य का चिन्तवन करते हैं। अवर्णनीय का वर्णन करते हैं और अज्ञेय को जानना चाहते हैं इसलिए हमारी भाषा तुतलाती है, अपूर्ण है और कभी कभी तो वक्र भी होती है। इसीलिए तो ब्रह्म के लिए वेदों ने अलौकिक शब्दों की रचना की और उसका 'नेति' के विशेषण से परिचय दिया। लेकिन यद्यपि वह 'यह नहीं है' फिर भी वह है। अस्ति सत्, सत्य ०,१,११......यह कह सकते हैं। हमलोग हैं, हमें पैदा करनेवाले मात-पिता हैं और उनके भी पैदा करने वाले हैं......इसलिए सब को पैदा करनेवाला भी एक है, यह मानने में कोई पाप नहीं है लेकिन पुण्य है। यह मानना धर्म है। यदि वह नहीं है तो हम भी नहीं हो सकते हैं। इसीलिए हम सब उसे एक आवाज से परमात्मा, ईश्वर, शिव, विष्णु, राम, अल्लाह, खुदा, दादा होरमज, जिहोवा, गाड इत्यादि अनेक और अनंत नामों से पुकारते हैं। वह एक है, अनेक है; अणु से भी

छोटा और हिमालय से भी बड़ा है; समुद्र के एक बिन्दु में भी समा जा सकता है और ऐसा भारी है कि सात समुद्र मिल कर भी उसे सहन नहीं कर सकते हैं। उसे जानने के लिए बुद्धिवाद का उपयोग ही क्या हो सकता है! वह तो बुद्धि से अतीत है। ईश्वर के अस्तित्व को मानने के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है। मेरी बुद्धि अनेक तर्क वितर्क कर सकती है। बड़े भारी नास्तिक के साथ विवाद करने में मैं हार जा सकता हूं, फिर भी मेरी श्रद्धा बुद्धि से भी इतनी अधिक आगे दौड़ती है कि मैं समस्त संसार का विरोध होने पर भी यही कहूंगा कि ईश्वर है, वह है ही है।

लेकिन जिसे ईश्वर का इन्कार करना है उसे उसका इन्कार करने का भी अधिकार है। क्योंकि वह तो बड़ा दयालु है, रहीम है, रहमान है। वह मिट्टी का बना हुआ कोई राजा तो है ही नहीं कि उसे अपनी दुहाई कुबूल कराने के लिए सीपाही रखने पड़ें। वह तो हम लोगों को स्वतंत्रता देता है फिर भी केवल अपनी दया के बल से हमलोगों को नमन करने के लिए मजबूर करता है। लेकिन हमलोगों में से यदि कोई नमन न भी करे तो भी वह कहता है: 'खुशी से न करो, मेरा सूर्य तो तुम्हारे लिए भी रोशनी देगा, मेरा मेह तो तुम्हारे लिए भी पानी बरसायगा। मेरा अधिकार चलाने के लिए मुझे तुम पर बलात्कार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।' जो नादान है वह भले ही उसे न माने लेकिन मैं करोड़ों बुद्धिमानों में से एक हूं इसलिए उसको प्रणाम करने से कभी नहीं रुकता।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

गुरुकुल

गुरुकुल शब्द एक पारिभाषिक शब्द हो गया है और उसका केवल अमुक प्रकार के आर्यसमाजी विद्यालयों के लिए ही प्रयोग किया जाता है। इन गुरुकुलों के सम्बन्ध में एक भाई लिखते हैं:

"मैं गत ६ वर्षों से होमरूल, असहयोग इत्यादि हलचलों में शामिल होता आ रहा हूं और उसका अनुभव कर रहा हूं; और उतना ही आर्यसमाजियों का अनुभव करने का भी प्रयत्न करता हूं क्योंकि मेरी यह मान्यता है कि यदि कुछ जीवन कहीं दिखाई देता है तो वह इसी में है। ज्यों ज्यों मैं असहयोग में गहरा उतरता जाता हूं और नवजीवन पढ़ता जाता हूं त्यों त्यों मेरी श्रद्धा उस में दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। जहां देहली में देखा तो वहां के कन्या गुरुकुल की मुख्य अधिष्ठात्री देवी (विद्यावती सेठ, बी. ए.) भी खादी में बड़ी श्रद्धा रखती हैं और आपकी परम भक्त हैं। हरद्वार गुरुकुल में देखा तो वहां के मुख्य अधिष्ठाता स्वयं कात रहे थे और वे खुद अपने हाथ के कते सूत का बना हुआ कपड़ा पहनने की आशा रखते हैं। अभी जो खादी वे पहनते हैं उसका सूत उनकी माता ने काता था इस लिए वह भी घर का ही था। कांगड़ी का भी यही हाल है। सूपा गुरुकुल का तो अभी आरंभ ही है फिर भी वहां इसी दिशा में प्रयत्न किया जा रहा है। वहां (हरिद्वार में) ऋषिकुल देखा तो उस में इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। अंत्यजों के बारे में पूछताछ की तो उत्तर मिला कि उनको छू सकते हैं लेकिन जबतक वे दूसरा जन्म न लें तबतक अध्ययन इत्यादि के लिए उनको वहां कोई स्थान नहीं है। यह सुन कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। सनातन धर्म माने जानेवाले धर्म ने क्या कर दिया है!

अस्पृश्यों के संबन्ध में आर्यसमाज बड़ा प्रयत्न कर रही है। दक्षिण में एक ऐसी जाति है, उसे ब्राह्मणों से ६४ गज दूर चलना पड़ता है। इस सीमा के अन्दर यदि कोई ब्राह्मण का घर हो तो चौका चूल्हा निकाल देना पड़ता है और यदि इस सीमा में कोई देवता आ जाय तो भी यही होता है। इन लोगों में भी आर्यसमाजी काम कर रहे हैं।

ऊपर कही गई बातों को आप अच्छी तरह जानते हैं और आर्य समाजियों के प्रति आप को प्रेम भी है। लेकिन प्रेमपूर्वक आपने जो उनके दोष बताये थे उससे आपके अनुयायियों में बड़ी गलतफहमी फैली हुई है और वे उनके प्रति घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अब भी आप इस संस्था के यदि दोष हों तो दोष और गुण हों तो गुण वर्तमानपत्र द्वारा जाहिर करेंगे तो बड़ा उपकार होगा और लोगों की गलतफहमी दूर होगी। आपने जो दोष बताये हैं उनका मैं सप्रेम स्वीकार करता हूं लेकिन उनके गुणों को अधिक मानता हूं। मैं समाजी नहीं हूं लेकिन प्रेमी हूं और और आपके नवजीवन से मेरा प्रेम अधिक बढ़ता जा रहा है। जब आखिर आखिर आप सूरत जिले में गये थे उस समय आप सूपा गुरुकुल की मुलाकात को भी गये थे। आपके साथ जाने वाले भाइयों ने मुलाकात का न कुछ रिपोर्ट भी लिया था लेकिन उन्होंने सूपा गुरुकुल का नाम (कहीं छूत न लग जाय इस डर से या मैं नहीं जानता कि किस कारण से) भी न आने दिया था।"

मैं यह मानता हूं कि मुझे किसी के भी प्रति घृणा नहीं है, फिर आर्यसमाजियों के प्रति कैसे हो सकती है? मैं हमेशा से आर्यसमाजियों के सम्बन्ध में आया हूं और यह सम्बन्ध आज भी कायम है। हमारा सम्बन्ध या प्रेम जरा भी कम नहीं हुआ है इसलिए यदि मेरे लिखने से किसी के दिल में उनके प्रति घृणा पैदा हुई हो तो मेरे लिए यह आश्चर्य और दुःख की बात है। आर्यसमाजियों की कुछ कृतियों के सम्बन्ध में यदि कोई मतभेद हो तो भी उनकी दूसरी देशसेवा भुलाई नहीं जा सकती है। उन्होंने जनता में नया जीवन डाला है। उन्होंने हिन्दू धर्म में घुसे हुए बहुत दंभों का दर्शन कराया है। उन्होंने साहस किया है, स्त्री शिक्षा में बड़ा भारी हिस्सा दिया है। दलितों की सेवा की है, संस्कृत और हिन्दी के अध्ययन को तरजीह दी है। ऋषि दयानन्द ने लड़कपन में ही मातापिता के साथ सत्याग्रह करके जनता को ब्रह्मचर्य का पाठ सिखाया है, और इसका पवित्र स्मरण हमेशा ही ताजा रहेगा। विद्यादेवीजी के खादी प्रेम को मैं जानता हूं। उन्हें एक बुनना जाननेवाली बहन भेजने का प्रयत्न कर रहा हूं। कांगड़ी गुरुकुल का और मेरा सम्बन्ध पुराना है। स्वामीजी की प्रेरणा से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने खूब मिहनत करके दक्षिण आफ्रिका में मुझे कुछ धन भेजा था उसे मैं किसी भी प्रकार नहीं भूल सकता हूं। वहां के अध्यापक खादीप्रेमी हैं यह भी मैं जानता हूं। सूपा गुरुकुल का उल्लेख यदि नवजीवन में न आ सका तो उसका कारण लापरवाही नहीं है, घृणा तो हो ही नहीं सकती है। उल्लेख के अभाव की जवाबदेही या तो मुझ पर या महादेव देसाई पर ही हो सकती है। मैं तो यह जानता हूं कि इसके लिए मैं जवाबदेह नहीं हूं और महादेव को घृणा हो यह मैं असंभव वस्तु मानता हूं। लेकिन जहां हवागाड़ी की तरह सफर हो रही हो वहां किसी बात का उल्लेख करना रह जाय तो यह संभव है। सूपा गुरुकुल के प्रयत्न को मैं प्रशंसनीय प्रयत्न मानता हूं। उसके अधिष्ठाता के उत्साह के प्रति मेरा ध्यान आकर्षित हुआ था। उन्हीं के उत्साह के वश हो कर मैंने वहां जाना स्वीकार किया था। मैंने यह देखा था कि वहां खादी के लिए अच्छा प्रयत्न किया जा रहा था। मैं यह मानता हूं कि गुरुकुल भी शिक्षा-विषय में अपनी तरफ से अच्छा हिस्सा दे रहे हैं। मैं उनकी उन्नति चाहता हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

हाथकती कथा

[कथा भी कहीं हाथ से कती जाती है । लेकिन राजाजी ने यह भी कर दिखाया है । यंग इंडिया के लिए सूत की सुन्दर कथा लिखी है और उसका हाथकती कथा नाम रखा है । इसका मतलब यह है कि उन्होंने यह कथा कहीं से चुराई नहीं है, यह वास्तविक नहीं है लेकिन उसे अपने अनुभवों पर से तैयार की है । इसलिए हाथकते सूत के समान पवित्र सब रसों से युक्त होने पर भी इस जीवन की तरह यह करुणारस-प्रधान कथा है । इसीलिए उसे हाथकती कथा कह सकते हैं । यह उसका अनुवाद है—

मो० क० गांधी]

तामिल प्रान्त के एक दूर के कोने में, राजनीति को छोड़ कर पार्थसारथी खादी का काम कर रहे थे । वे अविवाहित थे और उनकी मां उनके साथ रहती थी । कालियुर और उसके आसपास के गांवों के लोगों में वे प्रचार कार्य करते थे । गरीब पुरुषों को और खास कर स्त्रीयों को वे गांधीयुग की बातें सुनाते थे । उनके प्रचार का परिणाम यह हुआ कि घर में पड़े हुए पुराने चरखे फिर बाहर निकाले गये और चलाये जाने लगे । चरखे का मधुर शब्द फिर शुरू हुआ कि गांव के बढ़ई को नये चरखे बनाने का ख्याल हुआ । यह रोजी कमाने का नया साधन हो पड़ा, इसलिए 'क्यों आपको चरखे सुधरवाने हैं या नये बनवाने हैं ?' यह किसानों से पूछने में उनको बड़ा आनन्द होता था । किसी दिन उस गांव में जा कर यदि देखें तो रास्ते पर सूत से भरी ताड़ की बनी हुई टोकरियां सिर पर उठा कर अर्धवस्त्रा स्त्रीयों की कतार गांधी खादी कार्यालय की तरफ जाती हुई दिखाई देती थी । कार्यालय में तो उनकी भीड़ ही लग जाती थी । कोई अपना सूत देखती है तो कोई सूत पर लगी हुई धूल उड़ाती है, कोई अपनी टोकरी में रुई भरती है तो कोई पसीना बहा कर कमाये हुए दाम बार बार गिनती है । घर का काम करने के बाद उसमें से जितना भी समय वे बचा सकती थीं उतना बचाती और चरखा चलाती थीं ।

अपने गृहजीवन में इस परिवर्तन को देख कर पुरुषों का आनन्द भी हृदय में न समाता था । स्त्रीयें फुरसद के समय में कुछ कमा कर लावें और वह हाट के दिन काम में आवे तो यह किसको पसन्द न होगा ? तीन साल हुए, सूखा पड़ा हुआ था । बेचारे मुंह फैलाये आकाश की तरफ देखते रहते थे और सर खुजलाते थे । इससे बचने का क्या उपाय हो सकता था ? बहुत से तो मजदूरी के लिए विदेश जाने के लिए विदेश यात्रा के कायदे कानून जानने के लिए पूछताछ कर रहे थे । लंका और पूर्व के दूसरे द्वीपों के बगीचेवालों के एजन्ट मजदूरों के नाम लिखने का काम बड़ी तेजी से कर रहे थे । उस समय एक दिन पार्थसारथी कालियुर पहुंचे और उन्होंने अपना खादी कार्यालय वहां खोल दिया ।

पार्थसारथी ने कालेज क्यों छोड़ी, निराशा से उनके पिता की कैसे मृत्यु हुई, उनकी माता कितनी दुःखी हुई और उन्हें किस प्रकार आश्वासन मिला और आखिर पार्थसारथी कालियुर कैसे आये यह सब कथा यदि जरूरत हुई तो फिर कभी कहेंगे ।

× × × ×

मीनाक्षी ने गांव को छोड़ते हुए एक बढ़ ने आवाज दे कर कहा "पगली, बच्चों को मैं देखता हूं तुम अपने कातो, शनीचर

पार्थसारथी ने इस गांव के सूत के लिए शनीचर का दिन मुकरर किया था । पड़ोस ने कहा 'अच्छा' । घर में बच्चों की आंखें दुखती थीं और वे रोते थे इसलिए घर बैठ कर कातने की सलाह उसे बहुत अच्छी मालूम हुई । अपनी झोंपड़ी के सामने के आंगन में चरखा निकाल कर बैठी और पूनियों की टोकरी ले कर कातने लगी ।

आसपास के गांवों की भी यही कथा थी । पुरुषों ने खेत और घर का मोटा काम आप करना शुरू कर दिया था और स्त्रीयें, बुड्ढी और जवान सब चरखा चलाने लगी थीं । बुड्ढी स्त्रीयों को बसे तो कौन पूछे ? लेकिन चरखे का पुनरुद्धार होने पर उन्हें अपनी कला दिखाने का मौका मिला और उसमें वे जवान स्त्रीयों को भी थका देती थीं । जवान औरतों का काता हुआ सूत जब बहुत मोटा निकलता था तब वे उनका मजाक उड़ाती थीं । उनका हाथ तो कातने में अच्छा जमा हुआ था; इसलिए आंखों से दिखता न था, उंगलियां कांपती थीं फिर भी वे आसानी से अच्छा सूत निकाल सकती थीं । जवान औरतों को अभी यह कला मालूम न थी । लेकिन धीरे धीरे सभी का हाथ उस पर बढ़ने लगा और पार्थसारथी इन सिखाऊ औरतों के सूत को भी सुधरता हुआ देख कर आनंद से फूल उठते थे ।

वह अपने घनिष्ठ मित्र सुब्रह्मण्यम से कहते कि "बचपन में सीखने में कहीं देर थोड़े ही लगती है ।"

सुब्रह्मण्यम को उन कांपती हुई धीरे धीरे चलनेवाली वृद्धाओं के प्रति पक्षपात था । यदि कोई लड़की बुरा सूत कात कर लाती तो वे फौरन उसकी मजदूरी कुछ कम कर देते थे । वे कहते: 'बुननेवाले ऐसा सूत ले कर उसे करेंगे क्या ? उससे क्या बड़े थैले बनाये जायंगे !

लेकिन पार्थसारथी कहते "सब देखते ही देखते सुधर जायंगे, यह देखो" यह कह कर उसने अभी ही देखी हुई सूत की लच्छी उनके प्रति फेंकी ।

इस प्रकार प्रति शनीचर को सूत आता था और कार्यालय की दीवाल के सहारे लगा हुआ दिन प्रतिदिन बढ़नेवाला सूत का ढेर देख कर पार्थसारथी और उसके सहकारी बड़े खुश होते थे ।

× × × ×

कालियुर कार्यालय में इस प्रकार खादी की पैदाइश बढ़ने लगी । लेकिन फिर सूखा पड़ा, कुए में पानी सूख गया । बेचारे किसान लोग फिर घबड़ा गये । स्त्रीयों को तो विचार करने की और चर्चा करने की फुरसद ही कहां मिलती थी । वे बेचारी तो सारा दिन अपना चरखा ले कर ही बैठती थीं — दिन को और चांदनी रात को कातती ही रहती थीं । पार्थसारथी का छोटा सा कार्यालय सब को न पहुंच सकता था । रुई के ढेर के ढेर सुबह की रोशनी में बरफ की तरह नज आते थे । सूत की भरी हुई टोकरियां इतनी आती थीं कि सूत को रखने के लिए जगह का प्रश्न बड़ा विकट हो गया था । गांव का पटेल भला आदमी था । उसके साथ उनकी दोस्ती थी इसलिए उसने एक खाली झोंपड़ा सूत भरने के लिए दूढ निकाला । जितना सूत आता था उसे बुनवाने में और बुने हुए कपड़े को बेचने में अब उन्हें मुश्किल मालूम होने लगी । पार्थसारथी ने उत्तर में रहनेवाले अपने कितने ही मित्रों को पत्र लिख कर उन्हें मदद करने के लिए कहा । कितनों को इससे दिलचस्पी हुई और उन्होंने अपने दूसरे मित्रों को भी मदद करने के लिए कहा । आखिर बंबई के खादी-राजा जैराजानी के साथ नियमपूर्वक खादी लेने का करार हुआ । यह होने पर तो कातने

गांवों में खूब जागृति आ गई। कालिपुर में तो जहां देखो वहां उत्साह और जीवन ही दिखाई देता था। कालिपुर की इस अद्भुत प्रगति को देखने के लिए दूर दूर के ग्रांवों के लोग आते थे।

एक दिन पार्थसारथी को खादी-राजा का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था:

"आपकी खादी अच्छी है लेकिन अब भी उसमें सुधार किया जा सकता है। उसको थोडी और घनी न बुनवा सको? यदि ऐसा हो सके तो वह फौरन बिक जायगी।"

पार्थसारथी यह पत्र पढ कर दिल में कुछ हंसे और बोले: "जेराजानी की दुकान में मालूम होता है माल कुछ पडा रहा है इसलिए अब उन्हें बुनाई देखने की फुरसद मिली है।"

पार्थसारथी ने बुननेवालों से कहा कि अब जरा घनी बुनाई करो। जब जेराजानी को माल पसंद आया उन्हों ने पार्थसारथी को इसके लिए खास धन्यवाद दिया। थोडे दिनों के बाद फिर एक पत्र आया। उसमें लिखा था "बुनाई सुधरी है और ग्राहकों को माल पसंद है लेकिन सब ताके एक से नहीं होते। आप बुननेवालों पर अब थोडा विशेष ध्यान दें।"

खादी-राजा की तरफ से ऐसा पत्र मिला है इसलिए बम्बई में अब खादी का बाजार अवश्य ही मन्द हो गया होगा।

'लेकिन यह कैसे हो सकता है?' सुब्रह्मण्यम ने क्रोध में आकर कहा। 'यह आदमी हम लोगों को चूसना चाहता है'।

पार्थसारथी ने कहा: 'नहीं, भाई उन्हें भी तो अपने ग्राहकों को सन्तोष देना होता है न? और यदि वे यह न करें तो उनके माल की खपत कैसे हो और वे हमें मदद भी कैसे करें?"

पार्थसारथी ने अब बुननेवालों पर कुछ सख्ती करना शुरू किया। गुरुवार का दिन बुननेवालों के लिए अपने अपने बुने हुए ताके लेकर आने के लिए मुकर्रर था। पार्थसारथी ने प्रत्येक ताके को देखना और उसके दोष बताना शुरू किया। एक दो सप्ताह के बाद तो वह बुनाई पर इतना अधिक जोर देने लगे कि उन्होंने बुननेवालों को यह चितावनी दे दी कि अमुक प्रकार की बुनाई से जिसकी बुनाई हलकी होगी उसे बुनाई कम दी जायगी।

बुननेवालों को यह नया तरीका पसंद न था, उनमें से कितनों ही ने उसका विरोध किया और वे अपना हिसाब करके अपने पुराने मालिक मिल के सूत के व्यापारियों के पास चले गये। लेकिन बहुतेरों के दिल में यह ख्याल हुआ कि इस तरह उनके पास जाने में मान और धन — दोनों की हानि है क्योंकि वे उन्हें एक बार नमस्कार कर के आये थे। और इस लिए पार्थसारथी का काम बराबर चलता रहा।

× × × ×

पहले जितनी जल्दी जेराजानी की तरफ से माल की मांग आती थी उतनी जल्दी अब न आती थी। इसलिए पार्थसारथी ने उन्हें एक पत्र लिख कर यह पूछा: "अब तो हमारा माल पसंद है न?" कुछ दिनों के बाद उत्तर मिला:

"बुनाई सुधरी है। आप उस पर अधिक ध्यान दे रहे हैं इससे बडा आनन्द होता है। लेकिन अभी उस में दोष भी बहुत से हैं। हमें तो हमारे ग्राहकों को रिझाना पडता है। उन्हें तो मिलों के कपडों की सफाई चाहिए. हमलोग आपको मदद करने के लिए तो तैयार ही हैं लेकिन आपको भी यह समझना चाहिए कि जबतक माल ऐसा न हो कि फ़ौरन ही बिक जाय हमलोग कर ही क्या सकते हैं?"

पार्थसारथी का काम ज्यों त्यों चल रहा था। जब बुननेवाले कपडा लेकर आते थे उन्हें उनको गुस्सा दिखाना पडता था। हृदय में तो दया होती थी लेकिन ऊपर ऊपर से उन्हें सख्ती दिखानी पडती थी।

कुरते की खादी का एक टुकडा देख कर उन्होंने कहा: 'यह ऐसा क्यों है? इस जगह बुनाई घनी है और इस जगह कम क्यों है?' बुननेवाले भी इसके आदी हो गये थे। इस टुकडे के बुननेवाले ने कहा: 'अब और अच्छा बुनेंगे।'

'यह न होगा, इस समय चार आना काट लेता हूं।'

बुननेवाला चिल्ला कर बोल उठा: रे बाप! ऐसा न होगा! भाई, मेरे पेट पर पैर न रक्खो।

आध घण्टे तक उसकी विनय और पार्थसारथी की सख्ती का झगडा दिखाई होता रहा। इसप्रकार बहुत सा समय निकल गया, लेकिन बुनाई और पोत कैसे सुधर सकता है। बम्बई के ग्राहकों को कैसे खुश किया जा सकता है। बंबईवाले तो मिल के कपडे की खादी मिले तभी उसे पहनेंगे।

एक दिन पार्थसारथी ने सुब्रह्मण्यम से कहा: "यह ठीक नहीं है। हमें यही खादी बनानी होगी।" सुब्रह्मण्यम ने हंस कर कहा: "इन लोगों से एक धोती का डेढ रुपया न दिया जायगा— जबतक मिल की धोतियां इतनी ही कीमत में दो मिल सकती हैं उनसे ऐसी आशा कैसे रक्खी जा सकती है?

पार्थसारथी ने कहा: 'सच बात है। लेकिन हमे प्रयत्न करना ही होगा। प्रति सप्ताह अपना बाजार होता है वहां हमलोग जायंगे। हमलोग बम्बई के शौकीन फक्कडों के लिए मजदूरी न कर सकेंगे।

—अपूर्ण

टिप्पणियां

बडे दादा का स्वर्गवास

इस बात पर विश्वास लाना कि द्विजेन्द्रनाथ टागोर अब नहीं रहे बडा ही कठिन है। शान्तिनिकेतन के तार से यह शोकजनक समाचार मिला है कि बडे दादा को द्विजेन्द्रनाथ टागोर के नाम से चिरशान्ति प्राप्ति हुई है। उनका वय ९० वर्ष के लगभग था फिर भी उनमें वह आनंद और उत्साह दिखाई देता था कि उनके पास आनेवाले को कभी यह मालूम ही नहीं होता था कि उनके भौतिक अस्तित्व को अब थोडे ही दिन बाकी हैं। प्रतिभासम्पन्न पुरुषों के उस कुटुम्ब में बडे दादा का स्थान महत्व का था। वे विद्वान थे, संस्कृत और अंग्रेजी दोनों अच्छी तरह जानते थे लेकिन इसके अलावा वे बडे धार्मिक मनुष्य थे और उनका हृदय भी विशाल था। वे श्रद्धा से उपनिषदों को ही मानते थे फिर भी संसार की दूसरी धर्म-पुस्तकों से प्रकाश पाने के लिए भी वे स्वतंत्र थे। उन्हें अपने देश पर बडा प्रेम था, फिर भी उनकी देशभक्ति दूसरे गुणों की विरोधी न थी। वे अहिंसात्मक असहयोग के आध्यात्मिक रहस्य को समझते थे लेकिन इसके साथ यह नहीं कि वे उसके राजनैतिक महत्व को भी न समझते हों। वे चरखे में दिल से विश्वास रखते थे और अपनी वृद्धावस्था में भी उन्होंने खादी धारण की थी। एक युवक में जितना उत्साह होता है उतने ही उत्साह के साथ वे वर्तमान बातों को जानने के लिए प्रयत्न करते थे। बडे दादा की मृत्यु से हमलोगों में से एक साधु, तत्त्वज्ञानी और स्वदेशभक्त उठ गया है। मैं कवि और शान्तिनिकेतनवासियों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता हूं।

अब भी लड़ रहे हैं।

नेलोर की खिलाफत कमिटि के मंत्री ने तार किया है: 'हिन्दू और मुसलमानों में तनाजा बढ़ रहा है। उद्दंड हिन्दू मामूल के खिलाफ मस्जिदों के सामने से बाजा बजाते हुए जलसा निकाल रहे हैं, मुसल्मानों ने गाय की कुरबानी करने का निर्णय किया है, मामला गंभीर है, कृपया आप बीचबचाव करें।'

मुझे बीचबचाव करने के लिए कहना मेरे अभिमान का पोषण करना है। यद्यपि मैं तो इस बात को कई दफा जाहिर कर चुका हूं कि इन दंगेखोर लोगों पर मेरा कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मालूम होता है उनका सितारा आजकल बड़ा तेज है। लेकिन मेरा यह अभिमान शान्ति की रक्षा के लिए कुछ भी मदद नहीं कर सकता है। मैं तो दोनों दलों को किसीको पंच मानने का सभ्य और बुद्धियुक्त मार्ग ही दिखाऊंगा। लेकिन यदि उन्हें यह मार्ग पसंद नहीं है तो लाठी का कानून उनके हाथ में ही है।

एक भूल

बिलासपुर से एक महाशय पत्र लिख कर मुझे इस बात की याद दिलाते हैं कि मेरी आदत के खिलाफ मैं अपने 'बिहारयात्रा' के लेख में चरमपुर गांधी विद्यालय के नींव डालने के कार्य का उल्लेख करना भूल गया हूं। मैं शीघ्र ही उस भूल का अब सुधार देता हूं। मुझे उसके संस्थापक और व्यवस्थापकों का जिक्र अच्छी तरह याद है। वे मेरी कमजोर तन्दुरस्ती को देख कर चार पांच मील दूर नींव डालने की जगह पर मुझे नहीं ले जा सके थे लेकिन चरमपुर से एक ईंट ला कर मेरे उसके स्पर्श करने में ही उन्होंने संतोष मान लिया था। मुझे यह समाचार भी मिले थे कि बहुतेरे आत्मत्यागी स्वयंसेवक इस काम में लगे हुए हैं। इच्छा न रहने पर भी मैं उसका उल्लेख करना भूल गया हूं। एक ही दिन में बहुत से काम करने पड़ते थे और करीब करीब रोजाना एकसे ही काम करने पड़ते थे। इस लिए यदि मेरे लेख में बहुत सी बातों का चाहे वे स्वयं उनके महत्व की हों या कम से कम उन लोगों के लिए जो उनमें लगे हुए हैं, बड़ी ही महत्व की हों फिर भी यदि उल्लेख न हुआ हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मुझे आशा है कि वह शाला अब पूरी तैयार हो गई होगी और व्यवस्थित तौर पर काम करती होगी।

प्रशंसनीय हृदय

महाराजा भाटोर की प्राणान्तक बीमारी के समय एक मित्र जो उनके पास थे, उनके अन्तिम समय के दृश्य का इस प्रकार वर्णन करते हैं:

'श्री महारानी बड़ी आश्चर्यमय हैं। उनको एक मरतबा देखने से ही बड़ा लाभ होता है। वे बड़ी बुद्धिमान और प्रभावशाली स्त्री हैं। उनके मृत्यु के चार दिन पहले से वे उनके पास ही बैठी रहती थीं। वहां से जरा भी न हटती थी। न खाना खाती थी न नींद ही लेती थी और महाराजा की सेवा में ही लगी रहती थी। वे सब काम अपने ही हाथों से करती थी। अन्तिम समय में उनके कानों में उन्होंने भजन भी गा सुनाये थे और अन्तिम श्वास निकल जाने पर उनकी आंखें भी बन्द की थी। वे खुद न रोती हैं न दूसरों को रोने देती हैं। वे छाया की तरह घर में इधर उधर फिरती रहती हैं और अपना सब फर्ज अदा करती हैं। ऐसा प्रभावशाली शोकवर मैंने कभी भी न देखा था।'

ऐसी भक्ति, प्रभाव और त्याग अनुकरणीय है। लाखों न मृत-मनुष्य के पीछे रोना जना किया गया है फिर भी हिन्दुओं बहुत कुछ रोना धोना किया जाता है। बहुत से स्थानों में तो रोना एक रिवाज हो गया है और जहां रोना ही नहीं आता वहां रोने का ढोंग किया जाता है। यह रिवाज जंगली और अधार्मिक है और उसे रोकना चाहिए। जिन्हें ईश्वर में श्रद्धा है उन्हें मृत्यु को मुक्ति मान कर उसका स्वागत करना चाहिए। जवानी और वृद्धावस्था के समान ही यह परिवर्तन भी निश्चित ही है और इसलिए जैसे वृद्धावस्था के लिए कोई शोक नहीं करता है उसी प्रकार उसपर भी किसीको शोक न करना चाहिए।

बड़ोदे का शिक्षा-कार्य

बड़ोदे के राजा के अपने राज्य में अधिक न रहने के संबन्ध में और रियासत की थोड़े थोड़े सुधार देने की नीति के संबन्ध में चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाय, उस रियासत में शिक्षा के संबन्ध में जो प्रगति की गई है उसके बारे में कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता है। महाराजा साहब के सुवर्ण महोत्सव के समय शिक्षा विभाग की तरफ से जो पुस्तिका प्रकाशित की गई है उससे यह बात स्पष्ट होती है। ५० साल पहले वहां केवल २०० प्राथमिक शालायें थीं और उनमें केवल ८०० लड़के पढ़ते थे। आज वहां ५८ अंग्रेजी के स्कूल हैं। उसमें एक कालेज भी है। उनमें कोई १०,०२५ विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिसमें ३०५ लड़कियां भी हैं। देशी भाषा के २,९१८ स्कूल हैं। उनमें ११७१:८ विद्यार्थी पढ़ते हैं जिसमें ६७३०० लड़कियां हैं। इसमें दलित वर्गों के ५११ स्कूल भी शामिल हैं। १२४ उर्दू पढ़ाने के स्कूल हैं और उनमें कोई २६ लड़कियों के लिए हैं। इनमें ६६९३ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। यह सब निःसन्देह प्रशंसनीय है। लेकिन यह प्रश्न होता है कि इस शिक्षा से लोगों की मांग पूरी होती है या नहीं? हिन्दुस्तान के दूसरे विभागों की तरह यहां भी किसानों की ही बस्ती अधिक है। क्या इन किसानों के लड़के अधिक अच्छे किसान बनते हैं? क्या उन्होंने शिक्षा पाकर कुछ नैतिक और भौतिक उन्नति कर दिखाई है? परिणाम जानने के लिए ५० साल का समय काफी लंबा है। लेकिन मुझे भय है कि इसका सन्तोषजनक उत्तर न मिल सकेगा। बड़ोदे के किसान दूसरे विभागों के किसानों के बनिस्बत न अधिक सुखी हैं और न अच्छे सुधरे ही हुए हैं। दुष्काल के समय में दूसरी जगहों के किसान की तरह वे भी लाचार हो जाते हैं। दूसरे गांवों की तरह उनके गांवों की स्वच्छता भी वैसी ही होती है। वे अपना कपड़ा आप बना लेने के महत्व को भी नहीं समझते हैं। बड़ोदे की कुछ जमीन तो बड़ी ही उपजाऊ है। उसे रुई बाहर नहीं भेजनी चाहिए। यह राज्य आसानी से आत्मावलम्बी राज्य बन सकता है और उसके किसान अच्छी उन्नति कर सकते हैं। लेकिन उसमें तो विदेशी कपड़ा भरा हुआ है — और यह उसकी दरिद्रता और कलंक का स्पष्ट चिह्न है। शराबखोरी भी वहां कुछ कम नहीं है। शायद इस बात में तो वह और भी अधिक गिरा हुआ है। ब्रिटिश राज्य की तरह बड़ोदा राज्य की शिक्षा भी शराब की आमदनी से दूषित है। कालीपरज के लोगों को अक्षरज्ञान मिलने पर भी शराबखोरी से तो उनका सत्यानाश निकल जाता है। सच बात तो यह है कि बड़ोदा का शिक्षा-कार्य ब्रिटिश हिन्दुस्तान की शिक्षा पद्धति का अनुकरण-मात्र है। उस शिक्षा प्राप्त करने पर हम हमारे देश में ही विदेशी बन जाते हैं और प्राथमिक शिक्षा जो मिलती है उसका जीवन में कोई उपयोग न होने के कारण वह व्यर्थ हो जाती है। उसमें न मौलिकता है और न स्वाभाविकता ही है।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी

वे चाहे जितना दौड़ सकते थे, उनका वेग भी अच्छा था। वे कूद भी अच्छा सकते थे। मार सहन करने की उनकी शक्ति भी वैसी ही थी। वे हमेशा अपनी इस शक्ति का मेरे सामने प्रदर्शन करते थे। मनुष्य अपने में जो शक्ति नहीं है उसे जब दूसरे में देखता है उसे बड़ा आश्चर्य होता है। मुझे भी वैसा ही आश्चर्य हुआ। दौड़ने कूदने की शक्ति मुझमें कुछ नहीं सी थी। मुझे ख्याल हुआ कि इस मित्र के समान मैं भी बलवान होऊं तो क्या अच्छा हो?

मैं बड़ा ही डरपोक था। चोर, भूत और सर्पादि के भय से मैं सदा डरा करता था। इस डर के कारण मुझे बड़ा कष्ट होता था। रात को कहीं भी अकेले जाने की हिम्मत न होती थी। अंधेरे में तो कहीं भी न जाता था। बिना दीये के सोना तो मेरे लिए केवल असंभव था। इधर से भूत आवेगा, तो उधर से चोर और तीसरी तरफ से सर्पादि! इसलिए दीये का होना जरूरी था। साथ सोयी हुई और अब कुछ तारुण्य को प्राप्त स्त्री को भी मैं अपना भय कैसे बता सकता था? लेकिन मैं यह समझ चुका था कि मुझसे वह अधिक हिम्मतवान थी और इसलिए मुझे लज्जा भी मालूम होती थी। सर्पादि का उसे कभी भी भय न रहता था। अंधेरे में अकेली जा सकती थी। मेरे वे मित्र मेरी इस दुर्बलता को जानते थे। और मुझसे कहते थे 'मैं तो जिन्दा सर्पों को भी पकड़ लेता हूं, चोर से जरा भी नहीं डरता और भूत को तो मानता ही नहीं हूं।' उन्होंने मुझे इस बात का यकीन कराया कि मांसाहार के कारण ही वे यह सब कर सकते थे।

इन्हीं दिनों में शाला में 'नर्मद' (गुजरात का एक कवि) का निम्न लिखित काव्य गाया जाता था:

'अंग्रेजो राज करे देशी रहे दबाई
देशी रहे दबाई जोने बेना शरीर भाई
पेलो पांच हाथ पूरो, पूरो पांच सेंदे.'

[देशी लोग दबे हुए रहते हैं और अंगरेज लोग राज करते हैं। दोनों का शरीर ही देखो, वह पूरा पांच हाथ है क्यों कि मांस का सेवन करता है।]

इन सब बातों से मेरे मन पर बड़ा असर हुआ। मैं पिघला और यह मानने लगा कि मांसाहार अच्छी चीज है, उससे मैं बलवान और हिम्मतवान बनूंगा और यदि समस्त देश मांसाहार करने लगे तो हम अंगरेजों को हरा सकते हैं।

मांसाहार का आरंभ करने के लिए एक दिन मुकर्रर किया गया।

पाठक यह न समझ सकेंगे कि इस निश्चय का और आरंभ का क्या अर्थ हो सकता है। गांधी कुटुम्ब वैष्णव सम्प्रदाय का था। माता-पिता बड़े धर्मचुस्त माने जाते थे। वे हमेशा मन्दिर को जाते थे। कुछ मन्दिर तो हमारे कुटुम्ब के ही मन्दिर माने जाते थे। और गुजरात में जैन संप्रदाय का भी अधिक जोर है। हरएक प्रवृत्ति में और हरएक स्थान में उसका भी असर दिखाई देता है। इसलिए मांसाहार के प्रति जो तिरस्कार और विरोध गुजरात में, श्रावकों में और वैष्णवों में पाया जाता है वैसा हिन्दुस्तान में और सारे संसार में और कहीं भी नहीं पाया जाता है। ये मेरे संस्कार थे।

माता-पिता का मैं परम भक्त था। मैं यह मानता था कि यदि वे मेरे मांसाहार की बात जानेंगे तो उनकी असमय में ही जान निकल जायगी। जाने अजाने भी मैं सत्य का सेवक तो था ही। मैं यह भी नहीं कह सकता कि मांसाहार करने में मैं माता-पिता को ठगता हूं यह ज्ञान मुझे उस समय न था।

ऐसी स्थिति में मांसाहार करने का मेरा निश्चय मेरे लिए बड़ी गंभीर और भयंकर वस्तु थी।

लेकिन मुझे तो सुधार करना था। मुझे कोई मांसाहार का शौक न था। उसमें बड़ा स्वाद है यह मान कर तो मैं मांसाहार का आरंभ नहीं करता था। मुझे बलवान और हिम्मतवान बनना था और दूसरों को भी वैसाही बनने के लिए निमंत्रण देना था और फिर अंग्रेजों को हरा कर हिन्दुस्तान को स्वतंत्र बनाना था। उस समय स्वराज्य शब्द तो मैंने सुना ही न था। ऐसा सुधार करने के जोश में मुझे कुछ भी होश न रहा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

वायकोम का सत्याग्रह

हिन्दू सुधारक जो अस्पृश्यता को दूर करना चाहते हैं उन्हें वायकोम के सत्याग्रह का रहस्य और उसके परिणाम समझ लेने चाहिए। सत्याग्रह का ध्येय मन्दिर के आसपास के रास्तों का खुला करना था, मन्दिरों में प्रवेश करना नहीं। उनका यह दावा था कि रास्ते जिस प्रकार दूसरे हिन्दुओं के लिए और अहिन्दुओं के खुले हुए होते हैं उसी प्रकार अस्पृश्यों के लिए भी होने चाहिए। इसमें उनको पूरी पूरी विजय हुई है। लेकिन यद्यपि सत्याग्रह तो रास्तों को खुला करने के लिए ही किया गया था फिर भी सुधारकों का अन्तिम उद्देश तो यही है कि दूसरे हिन्दुओं को जो कठिनाइयां नहीं होती हैं और जो अस्पृश्यों को ही सहन करनी पड़ती हैं उन्हें दूर कर दिया जाय। इसलिए इसमें मन्दिर, कुए और शाला इत्यादि जगहों में जहां दूसरे अब्राह्मण लोग जा सकते हैं उनके जाने का भी समावेश हो जाता है।

लेकिन इन सुधारों को प्राप्त करने के लिए सीधे कार्य का अवलम्बन किया जाय उसके पहले बहुत कुछ काम करना बाकी रह जाता है। सत्याग्रह का कभी भी एकदम आरंभ नहीं किया जाता है और जबतक दूसरे नरम उपायों की आजमाइश नहीं कर ली जाती उसका आरंभ कभी भी नहीं किया जा सकता है। दक्षिण के सुधारकों को मन्दिर प्रवेश इत्यादि सुधारों के सम्बन्ध में लोगों को शिक्षा देकर उनकी राय कायम करनी होगी। यह कठिनाई केवल दक्षिण में ही नहीं है लेकिन हमें इस लज्जाजनक बात का स्वीकार करना चाहिए कि दुर्भाग्य से समस्त हिन्दुस्तान के हिन्दुओं में यह बात सामान्य है। इसलिए श्री कोल्हापुर नायर ने अस्पृश्यों में भी जो सब से अधिक दबे हुए और दुःखी हैं उन लोगों में अर्थात जिनकी छाया भी अपवित्र मानी जाती है उन पुलियाओं में बड़े उत्साह के साथ जो काम करने का निश्चय किया है उसका मैं स्वागत करता हूं। किसी भी सीधे कार्य के बाद रचनात्मक कार्य—अर्थात भावना उत्पन्न करने का कार्य करने का नियम बहुत ही अच्छा है। सुधार का कार्य दोनों तरफ से होना चाहिए। सवर्णों को जिनको उन्होंने दबा रखा है उन अस्पृश्यों के प्रति अपना कर्तव्य करने के लिए उन्हें समझाना चाहिए और अस्पृश्यों को अधिक योग्य बनाने के लिए और उनकी बुरी आदतों को जिनके कि लिए वे जवाबदेह नहीं हो सकते हैं फिर भी समाज में उचित स्थान प्राप्त करने के लिए जिन्हें उन्हें छोड़ देना चाहिए, उन्हें छोड़ने के लिए मदद करनी चाहिए।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

टिप्पणियां

भूत प्रेतादि

एक गृहस्थ ने एक बड़ा लंबा पत्र लिख कर उसका सार दिया है। उस सार का भी सार इस प्रकार है:

(१) "यदि आप प्रेतादिक को मानते हों तो उनके निवारण का उपाय क्या है?

(२) यदि आप उन्हें असत्य मानते हों तो जो दृष्टान्त मैंने दिये हैं उनका जवाब दे कर आप मेरे मन का समाधान करेंगे?

मैं एक दुःखरा हुआ मनुष्य हूं। प्रेतादिक को नहीं मानता। लेकिन मेरे घर में ही बहुत वर्षों से इसका उपद्रव हो रहा है इसलिए आखिर यह क्या सच बात क्या है यह जानने के लिए आपको लिखा है।"

फिर इस लेखक ने अपने को और अपने लोगों को हुई पीड़ा के कई दृष्टान्त दिये हैं लेकिन उन्हें यहां प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं मालूम होती है।

भूत प्रेतादिक है या नहीं इसका निर्णय मैं नहीं दे सकता हूं। मैं यही कह सकता हूं कि कितने ही वर्ष हुए, वे नहीं हैं यह मान कर ही मैं अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूं। जो लोग उनकी हस्ती को नहीं मानते हैं उन्हें उससे कुछ भी हानि हुई हो, यह मैंने कभी भी नहीं सुना है। मैंने यह भी अनुभव किया है कि जो लोग उसकी हस्ती को मानते हैं उन्हें उससे पीड़ा पहुंचती है इसलिए 'मन्त्रा भूत और शंका डाकिन' की कहावत का आदर करना ही उचित है।

लेकिन थोड़ी देर के लिए यही मान लो कि भूत प्रेतादिक हैं तो भी वे सब ईश्वर की ही माया हैं। जिस ईश्वर के कब्जे में हम लोग हैं उसीने भूत प्रेतादि को भी उत्पन्न किया है। और एकेश्वर को माननेवाला कभी दूसरे की आराधना न करेगा। जो ईश्वर का बंदा बनता है वह दूसरे की गुलामी कभी भी न करेगा। इसलिए जैसे मनुष्यों की तरफ से दुःख प्राप्त होने पर ईश्वरवादी के लिए राम ही रामबाण औषधि है उसी प्रकार भूतादि के सम्बन्ध में भी है। लिखनेवाले और उसके सगे सम्बन्धी यदि श्रद्धापूर्वक रामनाम का जप करेंगे तो भूतादिक भाग जायगे। संसार में करोड़ों मनुष्य भूत प्रेतादिक को नहीं मानते हैं और उन्हें वे कुछ भी नहीं कर सकते हैं। लेखक अपना अनुभव लिखते हुए यह लिखते हैं कि भूतादि उनके पिताजी को बड़ी पीड़ा देते हैं लेकिन अब वे स्वयं पिताजी से दूर रहते हैं उस समय उन्हें कोई पीड़ा नहीं होती है। उपाय भी इसी में रहा हुआ है। उनके पिताजी भूत प्रेतादि से डरते हैं इसलिए उन्हें वे डराते हैं, जैसे दंड से डरनेवाले को ही राजा दंड दे सकता है उसी प्रकार। जो दंड से डरता ही नहीं है उसके सम्बन्ध में राजदंड का क्या उपयोग होगा? जो भूत से डरे ही नहीं उसे भूत क्या करेगा।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

दक्षिण आफ्रिका

श्री एण्ड्रयूज दक्षिण आफ्रिका में बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए हिन्दुस्तानियों की तरफ से लड़ रहे हैं। भारत सरकार को तो सन्तोष हो गया है क्योंकि दक्षिण आफ्रिका की सरकार ने उसकी अरजी पर विचार करने का स्वीकार किया है और अपने भारतीय आश्रितों से ढेर का ढेर लेकर उसे कुछ वापिस लौटा देने का भी स्वीकार किया है। श्री एण्ड्रयूज ऐसी ही सरकार से यह आशा रखते हैं कि वह एशियावासियों के विरुद्ध जो बिल तैयार हुआ है उसको कम से कम उतने समय तक मुल्तवी रखने के लिए अपनी तरफ से दबाव डाले कि जब तक सारा जोश ठंडा पड़ जाय और विचार से काम लिया जा सके। लेकिन अब थोड़े ही दिन हैं कि हमें अधिक बुरी बात सुननी पड़ेगी। यूनियन पारलीयामेन्ट में वह बिल शीघ्र ही पेश किया जायगा। यदि यूनियन सरकार भारत सरकार के प्रति शिष्टाचार भी दिखावेगी तो वह उस बिल पर विचार करना तब तक मुल्तवी रखेगी जबतक कि भारत सरकार का प्रतिनिधि मण्डल अपनी जांच पूरी करके भारत नहीं लौट आता है और भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट नहीं सुनाता है और जबतक भारत सरकार को अपनी अरजी तैयार कर के यूनियन सरकार को देने का समय नहीं मिलता है। लेकिन दक्षिण आफ्रिका में जिस प्रकार काम होता है उस पर से यह बात चर्चास्पद है कि यूनियन सरकार यह शिष्टाचार भी दिखावेगी या नहीं, जैसे शिष्टाचार की कि एक सरकार दूसरी सरकार से आशा रखती है।

हार्निमेन का स्वागत

बम्बई सरकार और मेरे ख्याल से भारत सरकार भी अपने को इसलिए मुबारकबादी दे सकती हैं क्योंकि उन्होंने हिन्दुस्तान को और एक बहादुर अंगरेज को जो अन्याय किया था उसे बड़ी आनाकानी के साथ भी आज हटा कर दूर किया है। उन्होंने हार्निमेन को भारत में, — जिस देश पर उन्हें बड़ा प्रेम है और जिसके लिए वे बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं — आने से न रोकने की बड़ी हिम्मत की है। यह कोई भी नहीं जानता है कि हार्निमेन को अकस्मात यहां से देशपार करने का सच्चा कारण क्या था। उन पर कोई मुकद्दमा न चलाया गया था और न उन्हें उन पर लगाये गये अपराधों से इन्कार करने का अवसर ही दिया गया था।

इस प्रकार अपनी ही इच्छा से जबरदस्ती समुद्र पार भेज देने के ऐसे दृष्टान्तों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतसरकार का कैसा अनुत्तरदायी अधिकार है। हार्निमेन के बनिस्बत और किसी ने भी ऐसे अधिकार को रोकने के लिए अधिक कोशिश और बहस न की थी और आखिर वे भी उसके बलि हो गये थे। श्री० हार्निमेन के स्वागत में मैं भी अपना नम्र हिस्सा देता हूं। उन के लौट आने से स्वराज्य के लिए जो शक्तियां युद्ध कर रही हैं उनमें सामर्थ्य और उत्साह की वृद्धि होगी और उसमें जो लोग ऐसे यशस्वी युद्ध में लगे हुए हैं उनके हृदय में बड़ा ही आनंद होगा। उनके सामने जो कठिन कार्य पड़ा हुआ है उसे करने के लिए श्री हार्निमेन को तन्दुरुस्ती और दीर्घ आयुष्य प्राप्त हों।

महासभा के सभासद

जो लोग सूत दे कर महासभा के सभासद होना चाहते हैं उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि उन्हें यदि वे सभासद होना या बने रहना चाहें तो अपना चन्दा देना होगा। चरखासंघ के सभासद होने से ही काम न चलेगा। चरखासंघ के सभासद का महासभा का सभासद होना कोई आवश्यक नहीं है। महासभा के सभासद बनने के लिए तो उसका फार्म भर कर चरखा संघ को भेजना पड़ता है। चरखासंघ के सभासदों को यदि वे सब के बदले का अपने हाथ कता सूत (कम से कम दो हजार गज) भेज चुके हैं तो उन्हें इस साल के लिए और अधिक सूत भेजने की आवश्यकता नहीं है।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ वदी ३०, संवत् १९८२

वर्णभेद का पाप

दक्षिण आफ्रिका में जाति और रंग के अपराध के कारण हमें सजा भुगतनी पड़ती है और हिन्दुस्तान में हम अपने धर्मभाइयों को जाति और वर्ण के अपराध के कारण सजा करते हैं। पंचम वर्ण का मनुष्य बहुत बड़ा अपराधी है और इसलिए वह अस्पृश्यता, नजदीक न आने दिया जाना, नजरों में भी न आना इत्यादि अनेक सजाओं का पात्र समझा जाता है। मद्रास प्रान्त में अभी जो एक असाधारण मुकद्दमा हुआ था उससे हमारे नीच गिने जानेवाले और दबे हुए देशवासियों की अशोक दशा पर कुछ प्रकाश पड़ता है। एक सादा और साफ कपड़े पहना हुआ पंचमा, किसी का भी दिल दुखाने की या किसी भी धर्म का अपमान करने की जरा भी इच्छा न रखते हुए सम्पूर्ण भक्तिभाव से प्रेरित हो कर एक मन्दिर में गया था। वह हर साल यात्रा के लिए वहाँ जाता था, लेकिन वह कभी अन्दर नहीं गया था। परन्तु इस साल वह भक्ति के जोश में और ध्यान में अपने को भूल गया और दूसरे यात्रियों के साथ मन्दिर में चला गया। पुजारी उसे दूसरे लोगों के साथ पहचान न सका और उसने उसकी पूजा का स्वीकार किया। लेकिन जब उसे होश आया उसने अपने को उस स्थान में पाया जहाँ उसे जाने की मनाई थी और इसलिए वह डर गया और मन्दिर में से भाग गया। परन्तु कुछ लोगों ने जो उसे पहचानते थे उसे पकड़ लिया और पुलिस के हवाले कर दिया। मन्दिर के अधिकारियों को जब इस अपराध का पता चला उन्होंने मन्दिर की शुद्धि की। फिर उस पर मुकद्दमा चला। एक हिन्दू मेजिस्ट्रेट ने अपने धर्म का अपमान करने के लिए उसको ७५) जुरमाना किया और जुरमाना न दे तो एक महिने की सख्त कैद की सजा दी। उस पर अपील की गई। फिर उस पर बड़ी लम्बी बहस हुई। फैसला दूसरे दिन पर मुलतवी रखा गया और जब उसे मुक्त कर दिया गया तो इसका कारण यह नहीं था कि अदालत यह मानती थी कि उस गरीब पंचमा का मन्दिर में जाने का हक था लेकिन क्यों कि नीचे की अदालत अपमान को साबित करना भूल गयी थी इसलिए उसे छोड़ दिया गया था। इसमें न्याय, सत्य, धर्म या नीति किसी की भी विजय नहीं हुई है।

इस अपील के सफल होने से केवल यही सन्तोष हो सकता है कि यदि कोई पंचमा भक्ति के जोश में आकर अपने को भूल जाय और उसे इस बात का ख्याल न रहे कि उसको मन्दिर में प्रवेश करने की मनाई है तो उसे उसके लिए सजा न भुगतनी होगी। लेकिन यदि वह पंचमा या उसके साथ का कोई दूसरा पंचमा मन्दिर में प्रवेश करने की फिर हिम्मत करे तो यह बहुत कुछ संभव है कि जो लोग उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं वे यदि उन्हें आजन्म कोई सजा न दें तो अदालत उनको बड़ी सख्त सजा देगी।

यह स्थिति सचमुच ही निस्मयकारी है। दक्षिण आफ्रिका में हमारे देशवासियों के साथ जो व्यवहार किया जाता है उससे हमें बड़ा रोष होता है और वह उचित ही है। हम लोग स्वराज प्राप्त करने के लिए अधीर हो रहे हैं। लेकिन हम हिन्दू लोग हमारे स्वधर्मियों के एक पांचवें हिस्से को एक कुत्ते से भी बुरा समझ कर उनके साथ व्यवहार करने में जो अनुचितता है उसे देखने से इन्कार करते हैं। क्यों कि कुत्ते अस्पृश्य नहीं हैं। हम लोगों में कुछ तो उन्हें अपनी बैठक की शोभा समझ कर पालते हैं।

हमारी स्वराज की योजना में अस्पृश्यों का स्थान क्या होगा? यदि स्वराज में उन्हें सब कठिनाइयों से और बंधनों से मुक्त कर दिया जायगा तो हम आज ही उनकी स्वतंत्रता का ऐलान क्यों नहीं करते? और यदि आज हम यह करने के लिए असमर्थ हैं तो क्या स्वराज मिलने पर हमलोग इससे कुछ कम असमर्थ होंगे?

इन प्रश्नों के बारे में चाहे हम अपनी आँखें और कान बन्द कर सकते हैं लेकिन पंचमाओं के लिए तो यह बड़ा ही महत्व का प्रश्न है। यदि हम लोग इस सामाजिक और धार्मिक अत्याचार के विरुद्ध एक हो कर लड़ेंगे न होंगे तो सनातन हिन्दू धर्म के विरुद्ध ही न्याय रहेगा।

इस बुराई को दूर करने के लिए अवश्य ही बहुत कुछ किया गया है। लेकिन जबतक मन्दिर में जाने के लिए उन पर फौजदारी मामला चलाया जाना संभव हो सकता है और नीच वर्णों को मन्दिर में जाने का, सार्वजनिक कुओं पर पानी भरने का और उनके बच्चों को सार्वजनिक शालाओं में बिना किसी रुकावट के जाने का अधिकार नहीं दिया जाता है तबतक वह काम कुछ भी नहीं किया जा सकता है। हमें उन्हें वही हक देने चाहिए जो हक कि हम लोग चाहते हैं कि दक्षिण आफ्रिका में युरोपियन लोग हमारे देशवासियों को दें।

लेकिन यह नहीं कि इस मामले में भी कुछ सन्तोषकारक बातें न हों। यह अवश्य ही सन्तोष का विषय है कि उसको जो सजा दी गई थी वह रद्द कर दी गई लेकिन सबसे अधिक सन्तोष का विषय तो यह है कि गरीब बेचारे पंचमाओं की तरफ से अब सवर्ण हिन्दू भी दिल लगा कर प्रयत्न कर रहे हैं। यदि अपराधी की मदद को कोई न गया होता तो इस अपील पर किसी का भी ध्यान न जाता। और श्री० राजगोपालाचार्य ने अपील में जो बहस की थी वह कुछ कम महत्व की बात न थी। मेरे ख्याल से असहयोग के सिद्धान्त का यह उचित प्रयोग था। यदि उनके प्रयत्न करने पर मुवक्किल छूट जा सकता था और फिर भी वे अदालत में आ कर उसने तो असहयोग किया है इस सन्तोष से केवल हाथ जोड़ कर बैठे ही रहते तो वे धर्मच्युत ही गिने जाते। उस पंचमा को असहयोग का कुछ भी ज्ञान नहीं था। उसने तो जुरमाना या कैद की सजा माफ करने के लिए ही अपील की थी। चाहने योग्य वस्तु तो यह है कि हरएक शिक्षित हिन्दू अपने को अस्पृश्यों का मित्र समझे और इसे अपना कर्तव्य माने कि धर्म के नाम पर रूढि के अत्याचार से वे उनकी रक्षा करें। पंचमा का मन्दिर में जाना धर्म का अपमान नहीं है लेकिन उनको मन्दिर में जाने की मुमानियत का होना ही धर्म का और मनुष्यत्व का अपमान है।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावली

पाँचवीं आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३१० होते हुए भी कीमत सिर्फ ० २-० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०-२-० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी। १० प्रतियों से कम प्रतियों की वी. पी. नहीं भेजी जायगी।

वी. पी. मंगानेवाले को एक चौथाई दाम पेशगी भेजने होंगे।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

धर्म का अपमान !

वह घटना

मद्रास के पास तिरुपति नामक एक पवित्र तीर्थ है। उसका बहुत बड़ा महिमा है—बंगाल में जैसा तारकेश्वर का है वैसा ही मद्रास में तिरुपति का है। इस तीर्थ के सम्बन्ध में लोगों में यह श्रद्धा फैली हुई है कि पतितों में भी जो पतित हो वह भी वहां जा कर तिर जा सकता है। उसके नजदीक ही तिरुवन्नुर नामक एक दूसरा तीर्थस्थल भी है। तिरुवन्नुर के मन्दिर का भी वैसा ही महिमा है। इस मन्दिर में जा कर माला जाति का एक अन्त्यज दर्शन कर आया था और इसलिए उस पर दफे फौजदारी २९५ वें के मुताबिक धर्म का अपमान करने का और पवित्र स्थान को अपवित्र करने का जुर्म लगाया गया था। वह जुर्म उस पर साबित भी हो गया और उसे ७५) जुरमाना किया गया; यदि जुरमाना न दे सके तो एक महीने की सख्त कैद की सजा दी गई थी।

यदि कोई यह पूछे कि मेजिस्ट्रेट ने यह सजा कैसे दी होगी? न्यायासन को भूषित करनेवाले उस न्यायाधीश ने इस सारे ही किस्से का जिस प्रकार वर्णन किया है वह वर्णन उन्हीं के शब्दों में यहां देना चाहिए।

"मुद्दालेह दस वर्ष हुए तिरुवन्नुर के मन्दिर की यात्रा को हर साल आता है। गत अगस्त की ता. १४ को भी वह हमेशा की तरह वहां गया था। फरियादी साक्षी नं. ३ एक दुकानदार है। उसीकी दुकान पर से मुद्दालेह पूजा के लिए नारियल और कपूर खरीदता है। इस समय भी उसने उसीकी दुकान पर से ये चीजें खरीदीं। उस समय उसने दुकानदार से पूछा भी था कि माला लोगों को मन्दिर में जाने देते हैं या नहीं। दुकानदार ने उत्तर में कहा था कि मालाओं को मन्दिर में जाने की इजाजत नहीं मिल सकती है। यह सुन कर वह वहां से चला गया। थोड़ी देर के बाद फरियादी साक्षी नं. २ ने उसे 'गर्भगृह' के संघ में देखा। वहां उसने पूजारी को नारियल और कपूर दिये और आरती के लिए चार आने भी दिये। इसके बाद उसको परसाद दिया गया और वह वहां से चल दिया।

फरियादी साक्षी नं. ४ जिस समय मुद्दालेह ने दुकानदार को पूछा कि माला लोग मन्दिर में जा सकते हैं या नहीं उस समय वहां हाजिर था इसलिए उसे सन्देह हुआ। भीड़ में जा कर उसने उसकी तलाश की और मन्दिर के सुवर्णद्वार के नजदीक उसे पाया। फरियादी साक्षी नं. ५ ने उसे मंदिर से हाथ में टूटा हुआ नारियल लेकर आते हुए देखा था।

फरियादी साक्षी नं. ६ मन्दिर का मिरासदार है। उसका और फरियादी नं. २ का कहना है कि माला लोगों को हिन्दू मन्दिर में दाखिल होने की मनाई है। यदि कोई माला मन्दिर में चला भी जाय तो जबतक उसकी शुद्धि न की जाय वह मन्दिर पूजा के योग्य नहीं होता है। उसी दिन मन्दिर की शुद्धि भी की गई थी क्योंकि मुद्दालेह मन्दिर में गया था। फरियादी साक्षी नं. ७ सिद्धान्त के पण्डित हैं। उन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि भी प्राप्त है। उनका भी यह कहना है कि माला लोगों को हिन्दू मन्दिर में प्रवेश करने की मनाई है और वे अपने कथन का समर्थन करने के लिए शास्त्र के प्रमाण भी देते हैं।

मुद्दालेह स्वयं इस बात का स्वीकार करता है कि वह दुकानदार नारियल और कपूर खरीद कर वहां हमेशा पूजा किया करता था और जहां रथ खड़ा किया जाता है वहां गया था। लेकिन इतने में ही उसने देखा कि यात्रालु लोग "गोविन्दा, गोविन्दा, गोविन्दा" पुकारते हुए चले आ रहे थे। इस ध्वनि को सुनते ही उसे भी जोश आ गया और उसको कुछ भी होश न रहा। जब उसे होश आया उसने अपने को मन्दिर के ध्वजस्तंभ के नजदीक पाया और डर कर वहां से भाग गया।"

कैसे विस्तार से इस मुकद्दमे का वर्णन किया गया है? सजा करनेवाले की वाणि से भी कितनी करुणा टपक रही है! मुद्दालेह बेचारा शुद्ध सत्यवादी है — न्यायाधीश और फरियादी साक्षियों के जितना ही सत्यवादी है—और न्यायाधीश भी इसका स्वीकार करते हैं क्योंकि वे भी मुद्दालेह के वचनों का ही उल्लेख करते हैं। मुद्दालेह मन्दिर के सुवर्णद्वार तक गया इतना ही नहीं, उसने आरती के लिए चार आने भी चढ़ाये थे! और दुकानदार से यह पूछ कर मालूम कर लेने के बाद कि माला लोग मन्दिर को अपवित्र नहीं कर सकते हैं उसने ऐसा भयंकर अपराध किया था! क्योंकि मिरासदार कहता है इसलिए मन्दिर अपवित्र हुआ था! क्योंकि मन्दिर की शुद्धि की गई थी वह अपवित्र हुआ था! और सरकार से प्राप्त महामहोपाध्याय की उपाधि धारण करनेवाले एक पण्डित आ कर शास्त्र के वचनों का उल्लेख कर के कहते हैं इसलिए भी मन्दिर अपवित्र हुआ था! इससे अधिक सुबूतों की क्या आवश्यकता है?

श्री राजगोपालाचार्य मदद को दौड़े।

श्री राजगोपालाचार्य ने इस त्रासजनक कथा को सुना और वे सख्त हो गये। मित्रों ने उनसे आग्रह किया कि अपील की जा रही है उसमें आप मदद करने की कृपा न करेंगे? राजाजी वहां पहुंचे। अपील करनेवाले वकील ने सोचा राजाजी के पास ही अपील कराई जाय तो क्या अच्छा हो। उन्होंने राजाजी से इसके लिए प्रार्थना की। राजा ने कहा "मैं तो केवल एक मित्र के बतौर बहस करूं। — वकील के तौर पर नहीं — जज साहेब से पूछो, क्या वे इसके लिए इजाजत देंगे? जज साहेब ने इजाजत दे दी और राजगोपालाचार्य ने अपील में बहस की।

कोई सात साल में राजगोपालाचार्य पहली दफा अदालत में गये — हां, एक गलती हुई, जब सविनय भंग के लिए उन्हें जेल भेजा गया उस समय अपराधी की हैसियत से अदालत में गये थे, उसे यदि न गिना जाय तो सात साल में पहली ही बार वे अदालत में गये थे। वे असहयोगी हो कर अदालत में क्यों गये, अदालत के बहिष्कार में पूरा पूरा विश्वास रखने पर भी वे अदालत में क्यों गये? इस प्रश्न का मैं फिर उत्तर दूंगा। अभी तो मैं उन्होंने जो दलीलें की थी उसीका बयान करूंगा। छोटी अदालत ने एक विचित्र कारण बता कर मुद्दालेह को अपना बचाव करने का भी मौका न दिया था। अपने बचाव में उसने तिरुवलुवाड के *गणपतिशास्त्री* का, स्वामी श्रद्धानन्द का और गांधीजी का शास्त्र के अर्थों के सम्बन्ध में अपना साक्षी होना बताया था। लेकिन मेजिस्ट्रेट ने इन साक्षियों को बुलाने का समय देने से इन्कार किया और उसका कारण यह बताया कि मुद्दालेह समय बीताने के लिए ही ऐसे साक्षियों के नाम दे रहा है। श्री. राजगोपालाचार्य ने कहा: "मुद्दई साक्षियों को बुला सकता है लेकिन मुद्दालेह नहीं बुला सकता यह कहां का न्याय है? मुद्दालेह को अपने गवाह पेश करने की अरजी को नामंजूर करते हुए मेजिस्ट्रेट ने यह कहा था कि माला लोगों के मन्दिर में

आप मुझा न जाने दें। मैं नहीं चाहता हूं कि आप अपमान नहीं होता है इसीलिए मुझे छोड़ दें। इसके बनिस्बत यह शुद्ध बुद्धि से अथवा प्रामाणिक ढंग समझ कर मन्दिर में गया था इस लिए अपमान हो ही नहीं सकता है, यह कारण बता कर छोड़ दें। मैं अन्त्यज हूं, मैं यह मानता हूं कि मैं हिन्दू हूं और हिन्दू-मन्दिर में पूजा करने का मुझे हक है। यदि मुझे मन्दिर में जाने के लिए रोका भी जायगा तो बहुतेरे अधिकारी और प्रतिष्ठित हिन्दू जा कर यह कहेंगे कि उसका यह दावा उचित है। उसने यह दावा बड़ी ही शान्ति के साथ किया है। वह दरवाजा तोड़ कर या खोल कर अन्दर नहीं गया था। उस पर धर्म का अपमान करने का अपराध तो लगाया ही नहीं जा सकता है। महात्मा गांधी ने अस्पृश्यतानिवारण की प्रवृत्ति को एक व्यापक प्रवृत्ति बना दिया है। महासभा ने इस प्रवृत्ति को अपनाया है, अस्पृश्य माने जानेवाले लोगों की जागृति हुई है और ऊंची जातवाले कितने ही हिन्दू उन्हें स्पृश्य और हिन्दू मानने लगे हैं। इन सब बातों का विचार करके अन्त्यजों का मन्दिर में पूजा करने का हक, प्रामाणिक हक ही माना जाना चाहिए।"

अदालत: 'मैं इस बात का स्वीकार करता हूं कि उनका यह हक कबूल रखना चाहिए लेकिन यह हक कबूल रखा गया है यह कहना तो दूसरी ही बात है।'

दूसरे दिन मेजिस्ट्रेट ने फैसला दिया। उसमें उन्होंने कहा: "यह साबित नहीं होता है कि अपराधी ने धर्म का अपमान किया है या किसी के दिल को कष्ट पहुंचाया है इसलिए अपराधी को निर्दोष मान कर छोड़ दिया जाता है।"

क्या अब भी न समझोगे ?

इस प्रकार मेजिस्ट्रेट ने 'अन्त्यज हिन्दू-मन्दिर में प्रवेश करे तो धर्म का अपमान नहीं होता है' इस कारण से नहीं लेकिन इस मामले में अपमान सिद्ध नहीं होता है, यह कारण बता कर अपराधी को छोड़ दिया। कानून की दलीलें सबल होने पर भी, राजगोपालाचार्य ने हिन्दू मेजिस्ट्रेट के अन्तर को जाग्रत करने का प्रयत्न किया लेकिन बारह महीने कानून का ही विचार करनेवाले वे उसमें से कैसे निकल सकते थे ?

श्री. राजगोपालाचार्य की इस दलील को यहां मैंने विस्तारपूर्वक इसलिए दी है कि हिन्दूसमाज ऐसी घटनाओं को सुन कर भी कुछ चेते और समझे। अन्त्यज के मन्दिर में प्रवेश करने से धर्म का अपमान तो कुछ भी नहीं होता है लेकिन ऐसे अन्त्यज को रोक रखने के लिए जिस हिन्दूसमाज में कोशिश की जाती है और जिसे बचाने के लिए कानून की ऐसी लम्बी [illegible] करनी पड़ती है वह हिन्दूसमाज अपने धर्म का उपहास ही करता है और संसार के सामने अपने को उपहासास्पद साबित करता है।

[illegible] और व्यवहार

अब श्री. राजगोपालाचार्य असहयोगी होने पर भी अदालत में [illegible] और [illegible] का उन्होंने क्यों बचाव किया, इसका [illegible] क्योंकि यह प्रश्न भी बड़ा है। अन्त्यजों को अस्पृश्य [illegible] रोक रखने [illegible] भी यह दलील करते [illegible] राजगोपालाचार्य असहयोगी हैं इसलिए वे अदालत में नहीं [illegible] श्री. राजगोपालाचार्य ने [illegible] किया है [illegible] समझाया है। [illegible]

"अभी ही सुन मैं दूसरे यात्रियों के साथ मन्दिर में जानेवाले अन्त्यज को सरकारी कानून के अनुसार अपराधी ठहराया गया, यह सुन कर मुझे बड़ा ही क्षोभ हुआ। मुझे [illegible] बुलाया गया। वकील ने मुझ से कहा 'उसका आप ही बचाव न करो?' मैंने कहा यदि एक मित्र के नाते पर मुझे बहस करने दें तो मैं करूंगा। अदालत ने इजाजत दी। वकील का पोशाक भी न पहना था — सूट बूट और कुरता पहने — खादी का जो उपरना ओढ़ता हूं वह ओढ़ा था। मेरा ख्याल है कि प्रत्येक नियम के स्थूल अक्षरों का उल्लंघन आगे पर भंग कर के ही उसका सच्चा पालन किया जा सकता है। एक भला और भोला भक्तजन वैष्णव के सब चिह्नों से अंकित, कण्ठी पहने हुए, नारियल और कपूर ले कर भक्तों के झुण्ड में आ कर मन्दिर में दौड़ जाता है, पूजा कर के बाहर आता है। बाहर उसकी जाति जानने पर पुलिस उसे मन्दिर अपवित्र करने के लिए और धर्म का अपमान करने के लिए पकड़ती है और उसे सजा कराती है — ऐसे घोर अन्याय का विचार करते हुए मैंने यह निश्चय किया कि अदालत के सामने अन्त्यजों के नियम का अक्षरार्थ नहीं किया जा सकता है। मुझे यह भी ख्याल हुआ कि अन्त्यज के माने जानेवाले इस अपराध के सम्बन्ध में मेरा जो ख्याल है वह अदालत को सुना कर अस्पृश्यतानिवारण के कार्य को भी मैं मदद कर सकूंगा।

यह बेचारा न सत्याग्रही था और न सुधारक था और वह न कोई योद्धा ही था, वह तो एक गरीब अन्त्यज था। वह अपने को हिन्दू समझनेवाला और हिन्दू-धर्म में श्रद्धा रखनेवाला था। मन्दिर में रहनेवाला ईश्वर उसकी भक्ति और उसकी आरती चाहता है यह उसकी निष्ठा थी। उसे यह सलाह देने की मेरी हिम्मत न हुई कि वह अदालत की दी हुई सजा सहन कर ले। यह सजा सहन कर के तो उसे फिर वैसा ही गुन्हा करते रहना चाहिए — लेकिन वह ऐसा सत्याग्रही न था — और ऐसे भक्त और भक्त अन्त्यजों के साथ हमलोगों का अभी ऐसा तादात्म्य या अनुसंधान नहीं हुआ है कि उनकी रक्षा के लिए हम उनके हाथ में सविनय भंग की तलवार रख सकें। रूढ़ि के विरुद्ध बगावत करने की हिम्मत करनेवाले बहुत से लोगों को यही नहीं मालूम होता है कि ईश्वर क्या है। वे तो धर्म में समानता का दावा इसलिए करते हैं क्योंकि उससे राजकीय हक प्राप्त होते हैं, और इसलिए नहीं कि हिन्दूमन्दिरों में उन्हें पूजा करने का अधिकार प्राप्त हो। यह अन्त्यज तो बेचारा प्रति वर्ष इस मन्दिर के पास आता था और गरीबी से नम्रतापूर्वक अपना नारियल और कपूर दे कर चला जाता था। इस साल संभव है कि गांधीयुग की भावना का असर उसके कान पर पहुंचा हो और उसके विश्वास की लौ बढ़ गई हो। उस बेचारे ने यह किसी से पूछ भी लिया था कि अन्त्यजलोग मन्दिर में जा सकते हैं या नहीं? नारियल बेचनेवाले दूकानदार ने कहा कि वे नहीं जा सकते हैं। उसने इस पर कोई झगड़ा नहीं किया, वह तो दरवाजे पर [illegible] के समीप ही अपनी भेंट रख कर लौट जानेवाला था कि इतने में तिरुपति के यात्रियों की रणतूर 'गोविन्दा, गोविन्दा, गोविन्दा' सुनाई दी। यात्रियों का झुंड दौड़ता हुआ और रणनाद करता हुआ चला आ रहा था। वे सभी उनके साथ वह भी दौड़ पड़ा और वह भी मन्दिर में चला गया। उसके कपूर और नारियल मूर्ति के समीप [illegible] दिये गये थे। [illegible] तोड़ भी दिया गया था और वह बेचारा [illegible] हो कर अपने घर [illegible] रहा था कि [illegible] और [illegible]

पर अपराध लगा कर उसे सजा की गई थी। उस बेचारे अन्त्यज को जो विचार उस शुभ घड़ी में यकायक मन्दिर में खींच ले गये थे उन विचारों को कौन जान सकता है?"

व्यवहार और धर्म जुदे जुदे हैं। जो धर्म व्यवहार में निरर्थक होता है उस धर्म की कुछ भी कीमत नहीं होती है। एक कोने में बैठ कर गायत्री का जप करनेवाला मनुष्य या मुनि अपने समक्ष किसी को जलते हुए और मृत्यु को प्राप्त होते हुए देखे या किसी का आर्तनाद सुने फिर भी वह बैठा बैठा जप ही किया करे तो उस मनुष्य को धर्मनिष्ठ मनुष्य न कह कर जड़ ही कहेंगे। उस भक्त अन्त्यज को बचाना श्री. राजगोपालाचार्य का कर्तव्य था, उनका यह धर्म था। असहयोग के स्थूल अक्षरों का पालन करने में उतना धर्म न था। स्थूल अक्षरों को छोड़ कर के ही वे उस धर्म का सच्चा पालन कर सकते थे। ऐसे प्रसंगों में यदि नियम के अक्षरों का जान बूझ कर भंग न किया जाय तो नियम निरर्थक होता है, वह नियम आत्मा से हीन हो जाता है।

(नवजीवन) **महादेव हरिभाई देसाई**

लड़ाई कैसे सुलगी ?

(अनुसंधान अंक २० पृष्ठ १५७ से)

अर्थात् युरोपीय राज्यों ने केवल अपने ही लश्कर और जलसेना पर आधार रख कर सन्तोष न माना था लेकिन संधियां भी की थीं और अपने सब साधनों को 'संधि' से अपने साथ बद्ध हुए राष्ट्र की सेवा में धर दिये थे। लड़ाई के पहले तीन चार वर्ष में युद्धसामग्री के इस प्रकार बढ़ाने की हरीफाई का सही सही अर्थ सब समझ में आ सकता है। एक तरफ से इंग्लैंड, फ्रान्स, रशिया और दूसरी तरफ से आस्ट्रीया, जर्मनी और इटली के १९१० से १९१३ तक के ४ वर्ष के लश्करी खर्च के अंक इस प्रकार हैं।

लाख पौंड

	स्थलसेना	जलसेना	कुल
जर्मनी	५५१५	१०४४	७६५९
आस्ट्रीया हंगरी	२८२५	४६२	३२८७
इटली	१९३७	९५०	२८८७
कुल	१०२७७	३५५६	१३८३३
रशिया	६३६८	१७३८	८१०९
फ्रान्स	४६४०	१९६४	६६०४
ब्रिटन	३९०१*	४१५५	८०१६
कुल	३९०३	८६९३	२३६०२

* इसमें बोअर लड़ाई के समय जो २७८० लाख पौंड का खर्च हुआ था वह शामिल नहीं है। १९०० का अन्दाजन २८० लाख पौंड का खर्च इसमें शामिल है।

सच पूछा जाय तो इन अंकों से जो कुछ मालूम होता है उससे भी अधिक ध्यान देने योग्य दूसरे संयोग भी थे। क्योंकि इटली ने महायुद्ध के समय अपना विचार बदल दिया था और वह ब्रिटन की तरफ से लड़ा था। इसलिए यदि इटली का खर्च मित्रराज्यों के खर्च में शामिल कर दिया जाय तो उसके यह अंक होंगे। जर्मनी, आस्ट्रीया का कुल खर्च १०९४० लाख; रशिया, फ्रान्स, ग्रेटब्रिटन और इटली का १६४८० लाख अर्थात् १९०० से १९१३ तक ४ वर्षों में ग्रेटब्रिटन और रशिया ने अपने जलसेना और स्थलसेना पर जर्मनी से अधिक खर्च किया था और इन चार राज्यों का कुल खर्च जर्मनी और आस्ट्रीया हंगरी के कुल खर्च के अनुपात में ना गुना अधिक था।

१९१३ की ७ वीं जून को आम की सभा में युद्ध मंत्री से एक सभासद ने प्रश्न किया था कि रशिया, आस्ट्रीया हंगरी, जर्मनी और फ्रान्स के शान्ति रक्षक सैन्य में गत दो वर्षों में कितनी वृद्धि हुई है। उसका इस प्रकार उत्तर दिया गया था।

रशिया

सैन्य बढ़ाया गया	७५,०००
वर्तमान शान्ति रक्षक सैन्य	१,२८४,०००

भविष्य का अभी मालूम नहीं हो सका है।

फ्रान्स

सैन्य बढ़ाया जायगा	१८३,७१५
भविष्य का शान्ति रक्षक सैन्य	७४१,५७२

जरमनी

सैन्य बढ़ाया गया	३८,३७८
,, बढ़ाया जायगा	१३६,०००
भविष्य का शान्ति रक्षक सैन्य	८११,९६४

आस्ट्रीया हंगरी

सैन्य बढ़ाया गया	५८,५०५
वर्तमान शान्ति रक्षक सैन्य	४७३,६४३

भविष्य का सैन्य अभी मालूम नहीं हो सका है।

नीचे दिये गये अंकों में १९१४ में नौका सैन्यों का जुदी जुदी शक्तियों की तुलना हो सकेगी।

	बड़े जहाज	हथियार बन्द क्रूझर	छोटी क्रूझर	टोरपीडो जहाज और गन-बोट	डिस्ट्रोयर (विध्वंसक जहाज)	सबमरीन जहाज
मित्र त्रिपुटी						
जरमनी	४८	९	४९	५४	१४४	३६
आस्ट्रीयाहंगरी	२०	२	१३	४८	१८	११
इटली	२०	९	१३	१०९	४८	२६
कुल	८८	२०	७५	२४७	२१०	७३
मित्र त्रिसंघ						
ग्रेटब्रिटन	८२	५१	९२	१२९	२४८	९७
फ्रान्स	३४	२०	११	१६८	८३	१०२
रशिया	२२	६	१६	३५	१४०	५५
कुल	१३८	७७	११९	३२५	४७१	२५४

हिन्दी-पुस्तकें

लोकमान्य को श्रद्धांजलि	॥)
आश्रमभजनावलि	≈)
जयन्ति अंक	।)

डाक खर्च अलहदा। दाम मनी आर्डर से भेजिए अथवा वी. पी. मंगाइए—

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

महासभा

वार्षिक मूल्य ४
छमास का ,, २
एक प्रति का ,, -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, माघ बदी ८, संवत् १९८२ गुरुवार, ७ जनवरी, १९२६ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय ५

हाइस्कूल में

मैं यह ऊपर कह गया हूं कि जब मेरा विवाह हुआ उस समय मैं हाइस्कूल में पढ़ता था। उस समय हम तीनों भाई एक ही शाला में पढ़ते थे। मेरे ज्येष्ठ बन्धु ऊपर के वर्गों में थे और जिनका मेरे साथ ही साथ विवाह हुआ था वे मुझसे एक ही वर्ग आगे थे। विवाह का परिणाम यह हुआ कि हम दोनों का एक एक वर्ष व्यर्थ गया। मेरे भाई के लिए तो इससे भी अधिक विषम परिणाम यह हुआ कि विवाह के बाद वे शाला में ही न रह सके। परमात्मा जाने कितने ही युवकों के सम्बन्ध में ऐसा अनिष्ट परिणाम आता होगा। विद्याभ्यास और विवाह ये दोनों हिन्दू संसार में ही एक साथ रह सकते हैं।

मेरी पढ़ाई चलती रही। हाइस्कूल में मैं बोदा लड़का न गिना जाता था। शिक्षकों की प्रीति तो मैंने हमेशा ही सम्पादन की थी। प्रतिवर्ष विद्यार्थी के अभ्यास और उसके चालचलन के संबंध में मातापिताओं के पास प्रमाणपत्र लिख कर भेजे जाते थे। उसमें मेरा अभ्यास और चालचलन ठीक न होने की शिकायत कभी भी न लिखी गई थी। दूसरे वर्ग में से पास हो जाने के बाद तो इनाम भी प्राप्त किये थे और पांचवें और छठे वर्ग में तो अनुक्रम से चार रुपया और दस रुपया शिष्यवृत्ति (स्कालरशीप) भी प्राप्त की थी। इस शिष्यवृत्ति को प्राप्त करने में मेरी होशियारी के अतिरिक्त भाग्य ही अधिक प्रबल था। क्यों कि ये वृत्तियां सब के लिए न थीं, लेकिन सोरठ प्रान्त में जो लड़का प्रथम आवे उसीको मिलती थी। चालीस या पैंतालीस विद्यार्थियों के उस वर्ग में उस समय सोरठ प्रान्त के विद्यार्थी हो ही कितने सकते थे?

मेरे सम्बन्ध में मुझे यह याद है कि मुझे अपनी होशियारी के प्रति कुछ भी मान न था। इनाम या शिष्यवृत्ति मिलने पर मुझे आश्चर्य होता था लेकिन मुझे अपनी चालचलन के सम्बन्ध में बड़ी चिन्ता रहती थी। चालचलन में जरा भी त्रुटि होती थी कि मुझे रुलाई आ जाती थी। यदि मुझसे ऐसा कोई कार्य हो जाय कि जिससे शिक्षक को मुझे बुरा भला कहना पड़े या उसको ऐसा भास ही हो तो मुझे वह असह्य हो जाता था। मुझे याद है कि एक समय मार खानी पड़ी थी। मार का दुःख न था लेकिन मैं सजा का पात्र गिना गया यही बड़ा भारी दुःख था। मैं बहुत कुछ रोया। यह प्रसंग शायद पहले या दूसरे वर्ग का है। दूसरा एक प्रसंग सातवें वर्ग का भी है। उस समय दोराबजी एदलजी गिमी हेड मास्टर थे। वे विद्यार्थीप्रिय थे क्योंकि वे नियमों का पालन कराते थे, नियमपूर्वक काम करते थे और काम लेते भी थे और पढ़ाते भी अच्छा थे। उन्होंने ऊपर के वर्गों के विद्यार्थियों के लिए कसरत करना और क्रिकेट खेलना फर्ज बना दिया था। मुझे वह नापसंद था। जबतक यह अनिवार्य विषय नहीं बना दिया गया तबतक मैं कसरत, क्रिकेट या फूटबॉल में कभी भी नहीं गया। न जाने में मेरी लज्जाशील प्रकृति भी एक कारण था। अब मैं यह समझ सका हूं कि यह मेरी भूल थी। उस समय मुझे यह गलत ख्याल हो गया था कि कसरत का शिक्षा के साथ कोई संबंध नहीं है। लेकिन अब समझ सका हूं कि विद्याभ्यास में व्यायाम को अर्थात् शारीरिक विकास को भी मानसिक विकास के समान ही स्थान मिलना चाहिए।

फिर भी मुझे यह कहना चाहिए कि कसरत में न जाने से मुझे कुछ भी नुकसान न हुआ। उसका कारण यह था कि पुस्तकों में मैंने खुली हवा में घूमने जाने की सिफारिश को पढ़ा था और वह मुझे पसंद भी आई थी, इसलिए हाइस्कूल के ऊपर के वर्गों में ही बाहर घूमने जाने की जो मुझे आदत पड़ी थी वह आखिर तक रही। घूमना भी तो व्यायाम ही है। इसलिए मेरा शरीर भी अच्छा बना रहा।

मेरी इस नापसंदी का दूसरा कारण, पिताजी की सेवा करने की मेरी तीव्र इच्छा थी। शाला बन्द होने पर फौरन् ही घर जाता था और उनकी सेवा में लग जाता था। जब कसरत में जाना अनिवार्य कर दिया गया तब इस सेवा में भी विघ्न पड़ा। मैंने गीमी साहब से प्रार्थना की कि पिताजी की सेवा करने के लिए मुझे कसरत में जाने से माफी मिलनी चाहिए। लेकिन वे माफी क्यों देने लगे? एक शनीचर को सुबह की शाला थी। शाम को चार बजे कसरत में जाना पड़ता था। मेरे पास घड़ी न थी और आकाश में बादल थे इसलिए दिन दिखाई न पड़ता था। बादलों से मैं ठगा गया। जब कसरत में पहुंचा उस समय सब लड़के चले गये थे। दूसरे दिन गीमी साहब ने हाजिरी देखी तो

मुझे गैरहाजिर पाया। मुझसे उसका कारण पूछा गया। मैंने जैसा था वैसा बता दिया। लेकिन उन्होंने मेरा कहा सच नहीं माना और एक आना या दो आना (ठीक ठीक याद नहीं है) जुरमाना कर दिया। मैं झूठा साबित हुआ और इसका मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं यह कैसे सिद्ध करूं कि मैं झूठा नहीं हूं? उसका कोई उपाय ही न था। दिल ही दिल में समझ कर बैठा रहा और रोता रहा। उस दिन मैं यह समझा कि सच बोलनेवाले को और सत्य काम करनेवाले को कभी गाफिल भी न रहना चाहिए। मेरे विद्याभ्यास के समय में मेरी ऐसी यह गफलत पहली और आखिरी ही थी। मुझे कुछ कुछ ऐसा याद पड़ता है कि यह जुरमाना मैं उस समय मुआफ करा सका था।

कसरत में से तो आखिर मुक्ति प्राप्त की ही। हेडमास्तर को पिताजी ने इस मतलब का एक पत्र लिखा कि शाला के समय के बाद के समय में वे अपनी सेवा के लिए मेरी हाजरी घर पर चाहते हैं। इस पत्र के कारण मुझे उससे छुट्टी मिली। लेकिन यद्यपि मुझे व्यायाम न करने की सजा न भुगतनी पड़ी थी लेकिन एक दूसरी भूल जो मैंने उस समय की थी उसकी सजा तो मैं आज भी भुगत रहा हूं। पढ़ाई में अक्षर सुधारने की कोई आवश्यकता नहीं है यह गलत ख्याल न मालूम कहां से मेरे दिल में आ घुसा था। मैं विलायत गया तबतक यह ख्याल बना रहा। उसके बाद और खास कर दक्षिण आफ्रिका में जब मैंने वकीलों के और पढ़े हुए नवयुवकों के अक्षर मोती के दानों के समान सुन्दर देखे उस समय मुझे शर्म मालूम हुई और बड़ा पछताया। उस समय मैं यह समझा कि बुरे अक्षरों का होना अधूरी शिक्षा का ही चिह्न गिना जाना चाहिए। मैंने पीछे से अपने अक्षर सुधारने का बड़ा प्रयत्न किया लेकिन उसका कुछ भी फल न हुआ। जवानी में मैंने जिस बात पर ध्यान नहीं दिया था उस बात को मैं आज तक भी नहीं कर सका हूं। मेरे उदाहरण से प्रत्येक युवक और युवती को यह चितावनी मिल जानी चाहिए कि अच्छे अक्षरों का होना विद्या का एक आवश्यक अंग है। अच्छे अक्षर निकालना सीखने के लिए लेखनकला सीखने की आवश्यकता है। अब मैं तो इस राय पर पहुंचा हूं कि बालकों को प्रथम लेखनकला ही सीखानी चाहिए। जिस प्रकार बालक पक्षी इत्यादि पदार्थों को देख कर उन्हें सहज ही में पहचान सकते हैं उसी प्रकार वे अक्षर पहचानना भी सीखें और जब लेखनकला सीख कर चित्र इत्यादि निकालने लगें उस समय अक्षर लिखना सीखें तो उनके अक्षर भी छपे हुए अक्षरों के समान ही होंगे।

इस समय के विद्याभ्यास से संबन्ध रखनेवाले दूसरे दो स्मरण भी उल्लेख योग्य है। विवाह के कारण मेरा जो एक वर्ष बिगड़ा था उसको बचा लेने के लिए दूसरे वर्ग के मास्टर ने मुझसे कहा। मिहनत करनेवाले विद्यार्थियों को उस समय इसके लिए इजाजत दी जाती थी। इसलिए मैं तीसरे वर्ग में कोई ६ ही महीने रहा और गरमी की छुट्टियों के पहले होनेवाली परीक्षा के बाद मैं चौथे वर्ग में चला गया। इस वर्ग में कितने ही विषयों की अंगरेजी के द्वारा शिक्षा देना शुरू होता है। इसमें मेरी समझ में कुछ भी न आता था। भूमिति भी चौथे वर्ग में ही सिखाना शुरू की जाती थी। मैं उसमें पीछे तो था ही और उसे तो मैं बिल्कुल ही न समझ सकता था। भूमितिशिक्षक बड़ी अच्छी तरह समझाते थे लेकिन मेरी समझ में कुछ भी न आता था। बहुत दफा तो मैं निराश हो जाता था। किसी किसी समय तो यह ख्याल भी होता था कि एक साल में दो वर्ग पास करने के प्रयत्न को छोड़ कर मैं तीसरे वर्ग में ही जा बैठूं। लेकिन ऐसा करने में तो मेरी लाज जाती थी और जिस शिक्षक ने मेरे पर विश्वास रख कर मेरी सिफारिश की थी उसकी भी लाज जाती थी। उसी भय के कारण नीचे उतरने का मैंने विचार छोड़ दिया। प्रयत्न करते करते जब मैं युक्लिड के तेरहवें प्रमेय पर आया उस समय यकायक मुझे यह मालूम हुआ कि यह तो बड़ा ही सरल विषय है। जिसमें केवल बुद्धि का सीधा और सरल उपयोग ही करना होता है उसमें मुश्किल ही क्या हो सकती है? इसके बाद तो भूमिति का विषय मेरे लिए बड़ा सरल और रसिक विषय हो गया था।

संस्कृत में मुझे भूमिति से भी अधिक कठिनाई मालूम हुई थी। भूमिति में कुछ भी रटना न पड़ता था लेकिन संस्कृत में तो मेरी दृष्टि में सभी बातें रटने की थीं। इस विषय का भी चौथे वर्ग से ही आरम्भ होता था। छठे वर्ग में मैं घबड़ा गया। संस्कृत के शिक्षक बड़े सख्त थे। विद्यार्थीयों को बहुत कुछ सीखा देने का उन्हें लोभ रहता था। संस्कृत के और फारसी के वर्ग में एक प्रकार की स्पर्द्धा रहती थी। फारसी सीखानेवाले मौलवी बड़े नम्र स्वभाव के थे। विद्यार्थी आपस आपस में बातें करते थे कि फारसी तो बड़ी सहल है और फारसी के शिक्षक भी बहुत ही भले हैं। विद्यार्थी जितना सीखते हैं उतने से ही वे सन्तोष मान लेते हैं। मैं भी फारसी सहल है यह सुन कर ललचा गया और एक दिन फारसी के वर्ग में जा कर बैठ गया। संस्कृत शिक्षक को इससे बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने मुझे बुला भेजा और कहा "यह तो समझो कि तुम किसके लड़के हो। अपने ही धर्म की भाषा तुम न सीखोगे? तुमको जो कुछ कठिनाई मालूम होती हो वह मुझसे कहो। मैं तो सभी विद्यार्थियों को अच्छी संस्कृत पढ़ाना चाहता हूं। आगे चलने पर तो उसमें रस के घूंट पीने को मिलेंगे। तुम्हें इस प्रकार न हारना चाहिए। फिर से तुम मेरे वर्ग में ही आ कर बैठो।" यह सुन कर मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई। शिक्षक के प्रेम का मैं अनादर न कर सका। आज मेरा आत्मा कृष्णाशंकर मास्टर का उपकार मान रहा है क्योंकि जितना संस्कृत मैं उस समय सीख सका था उतना यदि न सीखा होता तो आज संस्कृत शास्त्रों में जो मैं दिलचस्पी ले रहा हूं उतनी दिलचस्पी मैं कभी भी न ले सकता था। मुझे तो यही पश्चाताप हो रहा है कि मैं कुछ अधिक संस्कृत न सीख सका क्योंकि पीछे से मैं यह समझ सका हूं कि एक भी हिन्दू बालक ऐसा न होना चाहिए कि जिसका संस्कृत का अध्ययन अच्छा न हो।

अब तो मैं यह मानने लगा हूं कि भारतवर्ष के उच्च शिक्षा के क्रम में मातृभाषा के सिवा राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी, अंगरेजी को भी स्थान मिलना चाहिए। इतनी भाषाओं की संख्या से किसी को भी डरने का कोई कारण नहीं है। यदि व्यवस्थित तौर पर भाषा सीखायी जाय और हम लोगों पर अंगरेजी में विचार करने का और उसके द्वारा सब विषयों को सीखने का बोझा न रहे तो उपरोक्त भाषाओं के सीखने में कोई बोझा न मालूम होगा, यही नहीं उसमें बड़ी दिलचस्पी भी रहेगी। जो शख्स एक भाषा को शास्त्रीय रीति से सीखता है उसको दूसरी भाषाओं का ज्ञान बड़ा सुलभ है। सच पूछा जाय तो हिन्दी, गुजराती, संस्कृत एक भाषा में गिनी जा सकती है और उसी प्रकार फारसी और अरबी भी। फारसी यद्यपि संस्कृत से और अरबी हिब्रू से सम्बन्ध रखनेवाली है फिर भी दोनों इस्लाम के प्रकट होने के बाद विकसित हुई हैं इसलिए दोनों में निकट सम्बन्ध है। उर्दू को मैं अलग नहीं गिनता हूं क्योंकि उसके व्याकरण का हिन्दी में

समावेश हो जाता है। उसमें शब्द तो फारसी और अरबी के ही हैं। ऊंचे प्रकार की उर्दु जाननेवालो को फारसी और अरबी सीखना आवश्यक है, उसी प्रकार जिस प्रकार कि ऊंचे प्रकार की गुजराती, हिन्दी, बंगाली, मराठी जाननेवालों को संस्कृत सीखना आवश्यक है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

कानपुर

कानपुर जाते हुए हमलोग भुसावल से श्री सरोजिनी देवी के साथ हुए। हमें यह समाचार तो पहले ही से मिल गये थे कि कानपुर में कुछ थोडे से मनुष्य श्रीमती के अध्यक्ष होने के विरुद्ध हैं और वे उनके स्वागत को हानि पहुंचाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। हमलोग यही सोच रहे थे कि यदि उनके प्रयत्न सफल हुए तो कैसा कलंक लगेगा। लेकिन सरोजिनी देवी तो इसके लिए तैयार हो कर आयी थीं। उन्होंने स्वयं यह बात छेडी और मुस्कराते हुए कहाः 'मुझे बहुत से पत्र — कोम्युनिस्टों (वसुधैव कुटुम्बवादियों) के — मिले हैं। वे लिखते हैं कि हमलोगों को आप से कोई झगडा नहीं है लेकिन आप अपना धर्म भूल गयी हैं और कोस्मोपोलिटन बन गयी हैं यह हमलोगों को पसंद नहीं है और इसलिए हमलोग आपका स्वागत न करेंगे। गरीब बेचारे! उन्होंने काले झंडे भी तैयार रक्खे हैं। उन्हें देखने में बडा आनन्द आवेगा। पद्मजा तो यह तमाशा देखने के लिए ही साथ आई है। लेकिन सरोजिनी देवी या उनकी लडकी को किसी को भी यह देखने का मजा न मिला और हमलोगों को भी यह कष्टप्रद अनुभव न हुआ। लोगों की भीड का, शहर की सजावट का और उनके उत्साह का कोई हिसाब न था। लेकिन इतना अवश्य कह देना चाहिए कि हमारे इतिहास की इस असाधारण घटना — महासभा का अध्यक्ष एक स्त्री का होना — देख कर भी इस प्रान्त की स्त्रियें पर्दा छोड कर बाहर न नीकलीं। बाहर या मण्डप में थोडी ही सी स्त्रीयां थी।

× × × ×

व्यवस्था—रहने-करने की, खानेपीने की, सफाई की— अच्छी कही जा सकती है। रसोई सम्बन्धी व्यवस्था तो इतनी अच्छी थी कि पहले की जितनी भी महासभायें देखी हैं उनमें किसी में भी वैसी व्यवस्था न दिखाई दी थी। हां, बेलगांव की सफाई कुछ अंशों में बढ कर अवश्य थी। और यह सब एक ही मनुष्य के उत्साह का फल था। फूलचन्द जैन नामक एक व्यापारी हैं, वे लोहे का व्यापार करते हैं। उनकी नम्रता की कोई सीमा नहीं है। उनको देख कर कोई भी उन्हें लक्षाधिपति न समझेगा, लेकिन सामान्य मजदूरी कर के पेट भरनेवाला ही समझेगा। परन्तु रसोई के खर्च में जितनी भी कमी हो उसे अपनी तरफ से पूरा करना स्वीकार कर के उन्होंने अपनी ही देखभाल के नीचे सारी व्यवस्था की थी—न कभी उनका महासभा देखने के लिए दिल चला और न कभी प्रदर्शन देखने के लिए। वे तो अपने ही काम में लगे रहते थे। उन्होंने शहर में से ही परोसनेवालों का एक बडा संघ खडा किया था और वे जो लोग भोजन करने के लिए आते थे उन्हें इतने प्रेम और आग्रह के साथ भोजन कराते थे कि मानों वे अपने घर ही पर उन्हें खाना खिलाते हों। परोसनेवालों के प्रेम को देख कर उनके मैले कपडों को भी थोडी देर के लिए भूल जाने का दिल होता था।

स्वयंसेवकों के सैन्य ने भी अच्छा कार्य किया था। उनमें बहुत से तो खादी धारण करते थे। वे सब बराबर समय पर काम पर आते थे और समय पर ही जाते थे। महतरों का खाता भी बडा आकर्षक था — दूसरी महासभाओं से भी अधिक-क्योंकि यहां पर संयुक्त प्रान्त का विनय और विवेक था — मैले पर धूल भी वे ही डाल आते थे। उनके बारे में इतना कह कर एक त्रुटी भी कह सुनाऊं? यह सब स्वयंसेवकों को लागू नहीं होती है। शायद दो तीन स्वयंसेवकों का ही कसूर होगा लेकिन उनके लाभ के लिए ही वह उल्लेख योग्य है। मुझे एक बीमार को प्रदर्शन में से उठा कर दूसरी जगह पर ले जाना आवश्यक था। उसको सख्त न्यूमोनिया हो गया था। डाक्टर ने फौरन् ही उसे वहां से हटा कर ले जाने के लिए ताकीद की थी। रेडक्रासवाले स्वयंसेवकों का यह कार्य था। डाक्टर तो बेचारे फौरन ही बाहर निकले लेकिन रेडक्रासवाले कहीं दिखाई न देते थे। खोजने पर बहुत से मण्डप में मिले। डाक्टर ने उन्हें सूचना की कि वे फौरन ही 'स्ट्रेचर' ले कर चलें। लेकिन उन्होंने जबतक संगीत खतम न हो जाय वहां से निकलने से इन्कार किया। डाक्टर ने कहाः 'ये लोग यह नहीं समझ सकेंगे कि यह कार्य कितना आवश्यक है। वे तो संगीत सुन कर ही बाहर निकलेंगे।' यह तो केवल इने गिने प्रसंगो में से एक है। मैं फिर यह कहता हूं कि टीका करने के लिए मैंने इस प्रसंग का यहां उल्लेख नहीं किया है। ऐसे कार्य जिन स्वयंसेवकों को सौंपे जाते है उन्हें तो सतत जाग्रत रहने के लिए और अच्छे से अच्छे संगीत को या अद्भुत भाषण होते हों तो उनको भी त्याग करने के लिए तैयार ही रहना चाहिए। स्वयंसेवक में आदर्श पुलीस की कर्तव्यबुद्धि और त्वरा होनी चाहिए और पुलीस में जो नहीं पाया जाता है उतना ज्ञान और प्रेम होना चाहिए।

× × × ×

लेकिन अब हम महासभा में प्रवेश करें। व्यवस्था इत्यादि को देख कर जितना आनन्द हुआ उतना आनन्द महासभा का काम देख कर भी हुआ यह कैसे कहा जा सकता है? कानपुर की महासभा यह शिर्षक इस लेख को देते समय थोडी देर के लिए यह ख्याल हुआ कि 'कानपुर का दिवाने खास' यह शिर्षक उसका रक्खा जाय तो क्या बुरा है?

इस समय यद्यपि महासभा में प्रतिनिधियों की फीस एक रुपया रक्खी गई थी — त गरीब लोग भी आ सकते थे, और बहुत से गांवों के रहने के लोग आये भी थे। खादी प्रदर्शन का आकर्षण भी कुछ कम न था। इसलिए आम-वर्ग के लोगों की बडी भीड थी, फिर भी यही मालूम होता था कि इस वर्ष से महासभा आमवर्ग की न रह कर खास वर्ग की ही हो रही है।

× × × ×

(शेष पृष्ठ ११६ पर)

आश्रम भजनावली

पांचवी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३२० होते हुए भी कीमत सिर्फ ०—२—० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०—३—० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी। १० प्रतियों से कम प्रतियों की वी. पी. नहीं भेजी जाती।

वी. पी. मंगानेवाले को एक चोथाई दाम पेशगी भेजने होंगे।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ बदी ८, संवत् १९८२

सालभर का संयम

बहुतेरे मित्र और सहयोगियों के साथ सलाह मशवरा करने के बाद मैं इस निश्चय पर पहुंचा हूं कि एक साल तक मुझे आश्रम में ही रह कर आराम लेना चाहिए और सार्वजनिक कार्यों के लिए और कहीं भी न जाना चाहिए। कच्छ की मुसाफरी के बाद तो यह निश्चय किया गया था कि महासभा में हाजिर रह कर वहां से लौटने पर महाराष्ट्र बिहार और आसाम की मुसाफरी का आरंभ कर दूं। लेकिन मेरे सात दिनों के उपवास के बाद इस निश्चय को बदलना पड़ा है। मैं बहुत ही कमजोर हो गया हूं। कच्छ की मुसाफरी में और उपवास में कुल मेरा १० पौंड वजन कम हो गया है। इसलिए डाक्टरों को और मुझे भी यह आवश्यक मालूम हुआ है कि मैं शान्ति प्राप्त करने के लिए एक ही स्थान पर रह कर आराम करूं।

और मैंने यह भी अनुभव किया कि आश्रम में जो कुछ त्रुटियां मैं देख पाया हूं उसमें भी मेरी हमेशा की गैरहाजिरी ही कारणभूत थी। आश्रम की स्थापना करते समय मेरा यह ख्याल था कि मैं मेरा बहुतेरा समय तो आश्रम में ही व्यतीत करूंगा। लेकिन यह न हो सका और आश्रम में तो दिन प्रति दिन वृद्धि ही होती गई। मैंने अपने उपवासों के दिनों में यह महसूस किया कि यदि आश्रम मेरी सब से उत्तम कृति है तो मुझे उसके लिए मेरा ठीक ठीक समय देना ही होगा।

चरखासंघ की उत्पत्ती का कारण भी तो मैं ही हूं। उसकी व्यवस्था दृढ करनी हो तो भी मुझे एक ही स्थान में रह कर उसके कार्यों की देखभाल करनी चाहिए। मैं और मेरे सहयोगी सभी इस बात को मानते हैं।

अन्त में यदि खादी को स्वावलंबी बनाना है तो उसे भी तो मेरी सफर से मिलनेवाली उत्तेजना से आराम देना होगा। इससे खादी की स्वतंत्र शक्ति का परिमाण मालूम किया जा सकेगा।

इसलिए [illegible] काम करनेवाले सभी लोगों की यही राय कायम हुई कि इन सब कारणों को देख कर मुझे एक साल के लिए क्षेत्रसंन्यास लेना चाहिए और इस वर्ष की २० वीं डिसम्बर तक आश्रम छोड़ कर कहीं भी न जाना चाहिए। अपने स्वास्थ्य के कारण से या किसी ने कभी जिसकी कल्पना भी न की हो ऐसे कोई कार्य के आ पड़ने पर मुझे यदि कहीं जाना पड़े तो यह केवल एक अपवाद ही होगा।

मुझे आशा है कि मेरे इस निश्चय में सब लोग मेरी मदद करेंगे। मैं यह जानता हूं कि मेरी यात्राओं में रुपये एकत्रित किये जा सकते हैं। अब यह कार्य भी मेरे साथ काम करनेवाले मित्रों को ही करना होगा। चरखासंघ के लिए रुपयों की आवश्यकता तो है ही। चरखासंघ अर्थात् देशबन्धु स्मारक। उसके कार्य के लिए अभी हाल ही में दस लाख रुपये की आवश्यकता है। देशबन्धु स्मारक के लिए मैं इस रकम को कुछ भी नहीं मानता हूं। मेरी अभिलाषा तो एक करोड़ रुपये इकट्ठे करने की थी। अब मैं केवल इस अभिलाषा को पाठकों के सामने ही प्रकाशित कर सकता हूं। उपरोक्त निश्चय को करते समय मैंने यह आशा तो रक्खी ही है कि इस कार्य में सब लोग यथाशक्ति मदद करेंगे। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरी यह आशा सफल हो।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

द० आ० के राजनीतिज्ञों को चितावनी

कानपुर की महासभा में दक्षिण आफ्रिका के मामले से सम्बन्ध रखनेवाला प्रस्ताव पेश करते हुए गांधीजी ने इस प्रकार व्याख्यान दिया था:

इस प्रस्ताव को आप लोगों के सामने मंजूरी के लिए पेश करते हुए मुझे बड़ी खुशी होती है; यही नहीं, श्री सरोजनी देवी ने इसे आप के सामने पेश करने का कार्य मुझे सौंपा है इसे मैं अपना बड़ा सद्भाग्य मानता हूं। सरोजिनी देवी ने आप लोगों से मुझे 'दक्षिण आफ्रिकन' कह कर मेरा परिचय कराया है लेकिन यदि उन्होंने इतने शब्द कि 'जन्म से हिन्दुस्तानी लेकिन दक्षिण आफ्रिका का अपना अंगिकार किया हुआ' उसमें और जोड़ दिये होते तो अच्छा होता। दक्षिण आफ्रिका ने मुझे गोद लिया है और दक्षिण आफ्रिका से आये हुए जिस प्रतिनिधि मण्डल का आप प्रेमपूर्वक स्वागत करनेवाले हैं उसके नेता आप लोगों से यह कहेंगे कि दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों का यह दावा है कि हिन्दुस्तान को गांधी हम लोगों ने दिया है तब आपको उसका विचार होगा। उनका यह दावा मुझे स्वीकार है। यह बात सच है कि हिन्दुस्तान की जो कुछ भी सेवा मैं कर सका हूं—वह असेवा भी हो सकती है—उसका कारण ही यह है कि मैं दक्षिण आफ्रिका से आया हुआ हूं। मेरी सेवा यदि वह असेवा है तो भी यह उनका दोष नहीं है यह तो मेरी मर्यादा है। इसलिए इस प्रस्ताव में जो कुछ कहा गया है उसके समर्थन में मुझे आप लोगों के सामने इस बात की गवाही देनी है कि यह बिल जो दक्षिण आफ्रिका के भाइयों के सिर पर तलवार की तरह लटक रहा है, उसका उद्देश भारतवासियों को केवल अधिक अन्याय करना ही नहीं है लेकिन दक्षिण आफ्रिका में से उन्हें निकाल देना है।

इस बिल का यही अर्थ है। दक्षिण आफ्रिका के गोरों ने इस बात का स्वीकार किया है। यूनियन सरकार ने भी यह नहीं कहा है कि उसका यह अर्थ नहीं है। यदि बिल का परिणाम यही हो तो दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों को उससे कितना दुःख होगा इसकी आप स्वयं ही कल्पना कर सकते हैं। थोड़ी देर के लिए यह मान लो कि बड़ी धारासभा की बैठक में एक बहिष्कार का कानून पास होनेवाला है और उससे एक लाख भारतवासी को हिन्दुस्तान में से निकाल दिये जायंगे। ऐसी आफत के समय में हमलोग क्या करेंगे? ऐसे प्रसंग पर हमारा व्यवहार कैसा होगा? ऐसा ही प्रसंग उपस्थित हुआ है इसलिए यह प्रतिनिधि-मण्डल आप लोगों के पास आया है। हिन्दुस्तान की प्रजा की तरफ से, महासभा से, वायसराय से, हिन्दी सरकार से और उसके ऊपर शाही सरकार से मदद प्राप्त करने के लिए यह प्रतिनिधि मण्डल यहां पर आया हुआ है।

लार्ड रीडिंग ने उन्हें बड़ा लम्बा जवाब दिया है। उस उत्तर को मैं सन्तोषकारक नहीं मान सकता हूं। वायसराय का उत्तर जितना लम्बा है उतना ही असन्तोषकारक भी है। लार्ड रीडिंग को प्रतिनिधि-मण्डल से यदि यही बात कहनी थी तो वे थोड़े शब्दों में ही उत्तर दे सकते थे। यही किया होता तो उन्हें इतनी लम्बी बात न करनी पड़ती और जिन लोगों को उनके किसी भी प्रकार के अपराध के लिए नहीं, लेकिन दक्षिण आफ्रिका के कितने ही गोरे इस बात का स्वीकार करेंगे कि उनके गुणों के लिए ही, आज दक्षिण आफ्रिका में से अपमान करके निकाल दिये जा रहे हैं उन्हें किसी भी प्रकार की मदद करने में वह स्वयं असमर्थ है यह स्वीकार करके एक बड़ी सरकार अपनी कायरी जाहिर करती है, यह लज्जाजनक दृश्य प्रतिनिधि मण्डल के पुरुषों को और इस देश को न देखना पड़ता। जिन लोगों को

वहां से निकाल देने का प्रयत्न हो रहा है उनमें कितनों की तो दक्षिण आफ्रिका जन्मभूमि है। इसलिए अपने इन मित्रों को और हमें भी उनके इस प्रकारके उत्तर से कैसे सन्तोष हो सकता है? वायसराय कहते हैं कि दक्षिण आफ्रिका की सरकार को 'अरजी' करने का — प्रार्थना करने का अधिकार भारत सरकार ने अपने हाथ में रक्खा है। 'अरजी' करने का अधिकार! और 'अरजी' भी कौन करे? एक जबरदस्त सरकार, जिस सरकार के बारे में यह माना जाता है कि वह तीस करोड मनुष्यों के भविष्य को अपनी हथेली रक्खे हुए है वह सरकार! यह सरकार अपनी अशक्ति जाहिर करती है! और अशक्ति किस लिए है? दक्षिण आफ्रिका सस्थानिक स्वराज्य हासिल किये हुए है इसलिए?

लार्ड रीडिंग ने प्रतिनिधि मण्डल से कहा है कि जो राज्य संस्थानिक स्वराज्य हासिल किये हुए हैं उनके घर की — अर्थात् आंतरिक व्यवस्था में दखल करने का हिन्दी सरकार को और शाही सरकार को अधिकार नहीं है। हमारे भारतवासी जो वहां जा कर स्थायी रूप से बस गये हैं और जिन्हें मनुष्यत्व का साधारण हक भी नहीं दिया जाता है, उनके घरबारों का विनाश करने के लिए जो नीति ग्रहण की गई है उस नीति को आन्तरिक नीति या घर की व्यवस्था का नाम देने का क्या मतलब हो सकता है? भारतवासियों के बजाय यदि युरोपियन या अंगरेज लोग ही ऐसी स्थिति में होते तो क्या होता?

एक उदाहरण पेश करता हूं। आप यह जानते हैं कि बोअर युद्ध किस लिए हुआ था? दक्षिण आफ्रिका में जो युरोपियन लोग कायम के लिए बस गये थे जिनको ट्रान्सवाल की प्रजासत्ताक सरकार 'उटलेन्डर्स' के नाम से पहचानती थी, उनका संरक्षण करने के लिए वह युद्ध की ज्वाला भडक उठी थी। ब्रिटिश सरकार की तरफ से श्री चेम्बरलेन ने पुकार कर यह कहा था कि ट्रान्सवाल स्वतन्त्र सरकार हो तो भी उससे क्या? मैं तो इस बात का स्वीकार ही नहीं करता हूं कि यह प्रश्न आन्तरिक नीति का या घर की व्यवस्था का हो सकता है। उन्होंने ट्रान्सवाल के 'उटलेन्डर्स' के हकों का रक्षण करने का भार अपने सिर ले लिया था और इसीलिए महान बोअर युद्ध शुरू हुआ था।

लार्ड लेन्सडाउन ने कहा था कि ट्रान्सवाल के भारतीयों की तकलीफों का जब मैं विचार करता हूं तब मेरा खून खौलने लगता है। वे मानते थे कि दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों की तकलीफें भी बोअर युद्ध के कारणों में से एक थी। अब वे विज्ञापन कहां गये? आज जब डेढ लाख भारतवासियों की जान, इज्जत और रोजी जोखिम में आ पडी है उस समय ब्रिटिश सरकार को यूनियन सरकार के साथ युद्ध करने की क्यों नहीं सूझती है?

मैंने जिस बात का ऊपर वर्णन किया है उसके सम्बन्ध में किसी को कुछ भी सन्देह नहीं है। दक्षिण आफ्रिका में ब्रिटिश भारतवासियों की तकलीफें बढती जा रही है इसका भी कोई इन्कार नहीं कर सकता है। बिशप फिशर जो दक्षिण आफ्रिका हो आये हैं उन्होंने एक छोटी सी पत्रिका लिखी है। यदि उसको देखोगे तो उसमें दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों पर जो तकलीफें लादी जा रही हैं उसका रोमांचक हाल दिया गया है। बिशप फिशर निष्पक्ष हो कर भी इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि इसमें भारतीयों का कोई कसूर नहीं है। इस अन्याय के लिए गोरे लोग ही जवाबदेह है। इसके लिए द्वेषी और ईर्षालू गोरे जवाबदेह हैं; युरोपीयनों की संकुचितता और उद्दंडता जवाबदेह है। बिशप फिशर कहते हैं कि भारतीयों की लायकी को देखते हुए तो दक्षिण आफ्रिका के गोरों का उनके प्रति अच्छा बर्ताव होना चाहिए था।

इन्साफ यदि इस अधर्म को खुला करने में समर्थ होगा, दक्षिण आफ्रिका के गोरे राजपुरुषों की स्वीकृति यदि इस अन्याय को सिद्ध करने में काफी होगी, संसार में यदि धर्म का साम्राज्य होगा, तो दक्षिण आफ्रिका के गोरे उस कानून को पास न कर सकेंगे, और हमें और प्रतिनिधि मण्डल को अपना अमूल्य समय खराब न करना होगा और दक्षिण आफ्रिका के गरीब लोगों के रुपयों को पानी की तरह न बहाना होगा।

लेकिन नहीं। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस, यही न्याय अभी दुनिया में चल रहा है। दक्षिण आफ्रिका के गोरों ने हमारे देशवासियों पर यह अन्याय करना चाहा है और वह किस लिए? जनरल स्मट्स कहते हैं कि दो संस्कृतियों का विरोध होने के कारण। वे इस विरोध को सहन नहीं करते हैं। जनरल स्मट्स यह मानते हैं कि यदि हिन्दुस्तान में से आनेवाले इन दलों को दक्षिण आफ्रिका में आने से रोक न दिये जायगे तो दक्षिण आफ्रिका के गोरों को भय है कि वे पूर्व के लोगों से दब ही जायंगे। उनकी संस्कृति को हम लोग क्यों कर भ्रष्ट कर सकते हैं? हम लोगों में स्त्रीपुरुष करकसर से रहते हैं इसलिए क्या उनकी संस्कृति बिगड जायगी? हमलोगों को शाकभाजी या फलों की फेरी करने में और उन्हें दक्षिण आफ्रिका के किसानों के घर घर पहुंचाने में शर्म नहीं मालूम होती है इसलिए क्या उनकी संस्कृति जोखिम में पड जायगी? जिसे संस्कृति का विरोध कहते हैं वह यही है।

किसीने कहा है (कहां पर कहा है यह याद नहीं है लेकिन अभी अभी ही कहा है) कि दक्षिण आफ्रिका के गोरे इस्लाम के आने से डरते हैं। जिस इस्लाम ने स्पेन में सुधार दाखिल किया और जिसने सारी दुनिया को भ्रातृभाव का सिद्धान्त सीखाया उस इस्लाम से? दक्षिण आफ्रिका के मूल निवासी इस्लाम का स्वीकार कर रहे हैं यही उनको डर है। यदि भ्रातृभाव का होना पाप है और यदि वे काले लोगों की समानता से डरते हैं तो यह कहा जा सकता है उनका डर साधार है। सच बात तो यह है कि उन्हें आलमगीर बनना है, दुनिया में जितनी जमीन है सब पचा लेनी है। कैसर कुचल गया है फिर भी उसे एशियाई संगठन का डर लगा हुआ है और एक कोने में बैठा हुआ भी वह यह आवाज निकालता रहता है कि यह संकट है और युरोपीयनों को उससे चेतते रहना चाहिए। संस्कृति का यही तो झगडा है और इसीलिए लार्ड रीडिंग में उनके घर की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं है।

इस युद्ध में ऐसे भयंकर परिणाम भरे हुए है। इस प्रस्ताव में इस युद्ध को असमान कहा गया है और प्रस्ताव में इस असमान युद्ध में महासभा को अपना हिस्सा दे कर कृतार्थ होने के लिए कहा गया है। मेरा आवाज यदि दक्षिण आफ्रिका तक पहुंच सकता है तो मैं वहां के राजनीतिज्ञों से जिनके हाथ में दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों का भविष्य है एक प्रार्थना करना चाहता हूं।

अबतक मैंने दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों की काली बाजू का ही वर्णन किया है। इसलिए मुझे यहां पर यह भी कह देना चाहिए कि इन गोरों में कितने ऐसे भी हैं जिन्हें मैं अपने मित्र समझता हूं। दक्षिण आफ्रिका के गोरों में से कुछ व्यक्तियों ने मुझ पर बडा प्रेम दिखाया है और मेरा बडा आदर किया है। जनरल स्मट्स के साथ भी मेरा परिचय है यद्यपि मैं उनके मित्र

होने का दावा नहीं कर सकता हूं। यूनियन सरकार की तरफ से मेरे साथ समझौता करनेवाले वे ही थे। उन्होंने ही यह कहा था कि दक्षिण आफ्रिका के ब्रिटिश भारतवासियों को वहां रहने का हक है। यह करार आखिरी करार है और अब भारतीय सत्याग्रह करने की धमकी न दें और दक्षिण आफ्रिका के गोरे भारतीयों को आराम से बैठने दें; ये वचन भी तो जनरल स्मट्स के ही हैं।

लेकिन दक्षिण आफ्रिका में से मैं इधर आया नहीं कि भारतीयों पर एक के बाद एक अन्याय होना शुरू हो गया है। जनरल स्मट्स का वह वचन अब कहां गया? मनुष्य मात्र को एक दिन जिस मार्ग से जाना है उस मार्ग से वे भी एक दिन चले जायंगे। उनकी वाणि और करनी ही पीछे रह जायगी। जनरल स्मट्स कोई ऐसी वैसी व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने एक राष्ट्र के प्रतिनिधि की हैसियत से वह सत्य वचन दिया था। वे ईसाई होने का दावा करते हैं और दक्षिण आफ्रिका की सरकार का हरएक सदस्य ईसाई है। ईसाई होने का उनका दावा है। उनकी पार्लमेन्ट खुलने के पहले वे बाइबल में से प्रार्थना करते हैं और एक पादरी प्रार्थना से ही कार्य शुरू करता है। जिस ईश्वर की यह प्रार्थना की जाती है वह ईश्वर न गोरों का है, न हबशियों का, न मुसल्मानों का और न हिन्दुओं का। वह तो सभी का ईश्वर है।

मैं अपने प्रतिष्ठायुक्त स्थान से अपनी जवाबदेही को पूरी तरह समझ कर यह कहता हूं कि दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों को जो न्याय प्राप्त करने का हक है उस न्याय को देने में जरा भी हिलाहवाला किया जायगा और न्याय करने में वे निष्फल होंगे तो वे बाइबल का इन्कार करते हैं और अपने ईश्वर का भी इन्कार करते हैं।

श्री एण्ड्रयूज की हलचलल

श्री एण्ड्रयूज जब से वे दक्षिण आफ्रिका गये हैं वे बड़ा काम कर रहे हैं। वर्तमानपत्रों को तार भेजने के अलावा उन्होंने महासभा सप्ताह दरम्यान कानपुर को भी बराबर नियमपूर्वक तार भेजे थे। एक तार में वे लिखते हैं: "१९१९ में शाही प्रधान मण्डल में जनरल स्मट्स ने दक्षिण आफ्रिका में रहनेवाले भारतीयों के सम्बन्ध में यह बात जाहिर की थी कि यदि किसी प्रश्न में कोई मुश्किल मालूम हो तो हमलोग उस पर शहन्शाहत के इस मंत्रणास्थान में मित्रभाव से चर्चा कर सकते हैं और विचार करके उसका कुछ न कुछ निर्णय कर सकते हैं। मुझे यकीन है कि इस प्रकार हम उसका अवश्य ही निबटारा कर सकेंगे।' उसके बाद तार में लिखा है कि 'जनरल स्मट्स के इस वचन को देख कर क्या हमारी यह मांग उचित नहीं है कि जब तक ऐसी मंत्रणा न कर ली जाय तबतक यह बिल रोक दिया जाय?' इस बिल को रोकने के लिए दूसरी बहुतसी बातें उचित गिनी जायगी और इस बिल को उड़ा देने के लिए भी दूसरे कितने ही उपाय उचित माने जायगे लेकिन उसे करेगा कौन? क्या शाही सरकार इस भयंकर अन्याय को जो होनेवाला है रोकने के लिए जितने भी साधन हो सके उनका प्रयोग करने के लिए तैयार है? क्या भारतसरकार शाहीसरकार पर इसके लिए दबाव डालेगी? क्या हमलोग भारतसरकार को यह करने के लिए मजबूर कर सकते हैं?

श्री० एण्ड्रयूज बाद के भेजे हुए महासभा के प्रस्ताव के सम्बन्ध में लिखते हैं: 'इस सम्बन्ध में महासभा ने जो कुछ किया उससे यहां सब लोग बड़े प्रसन्न हुए हैं।'

(पृ० ६०)

कानपुर

(अनुसंधान पृष्ठ ६१ से)

इसके कारणों की परीक्षा करें। प्रथम तो अध्यक्ष के व्याख्यान ही को लें। महासभा के सभापतियों के व्याख्यानों में शायद यही सबसे छोटा व्याख्यान कहा जा सकता है, और सरोजिनी देवी ने जिन्हें अपना व्याख्यान लिखने की आदत ही नहीं है इतना छोटा सा भी अपना व्याख्यान किस प्रकार लिखा होगा यही आश्चर्य होता है। इस छोटे से व्याख्यान में भी उनका वाग्वैभव परिपूर्ण था। लेकिन यह वाग्वैभव किसके लिए था? जनता के लिए? उत्तर में 'हां' नहीं कहा जा सकता है। मेरे लिए भी उनके व्याख्यान का अनुवाद करना मुश्किल काम है और जनता के लिए तो उसका अच्छा अनुवाद भी समझना मुश्किल होगा। श्रीमती उर्दु अच्छा बोल सकती हैं — एक दो दफा तो मैंने उन्हें उर्दु बोलते हुए सुना भी है — लेकिन कानपुर में न उनके व्याख्यान की हिन्दी या अंगरेजी नकल बांटी गई और न स्वयं उन्होंने ही उर्दु में अपना व्याख्यान किया। यदि कोई कहे कि घण्टे डेढ़ घण्टे तक बोलने के बाद उनसे उर्दु में बोलने की आशा रखना जुल्म है तो मैं उससे यह कहूंगा कि अंगरेजी में बोलने के बदले वे उर्दु में ही बोली होती तो यह उनको बड़ी शोभा देता।

यह तो अध्यक्ष के व्याख्यान की बात हुई। अब रहे प्रस्ताव। दो तीन प्रस्तावों के सिवा जनता को जिसमें दिलचस्पी हो ऐसा एक भी प्रस्ताव न था। अंगरेजी व्याख्यानों का ही आधिक्य था। जो प्रस्ताव चर्चा का केन्द्र बन बैठा था, उसकी भाषा मेरे जैसों को भी समझना मुश्किल थी तो फिर बेपढेलिखों का तो वहां ठिकाना ही क्या लग सकता था? और जहां प्रस्ताव की भाषा ही मुश्किल और बेढब थी वहां उस पर गई चर्चा के मुश्किल होने के बारे में पूछना ही क्या था।

× × × ×

ऊपर जो मैं यह कह गया हूं कि आमलोग जिसमें दिलचस्पी ले सकते हैं ऐसे तीन ही प्रस्ताव थे। उनमें से प्रथम तो दक्षिण आफ्रिका के बारे में था और वह भी गांधीजी के व्याख्यान से पेश किया गया था इस लिए; दूसरा पटना के प्रस्ताव से बदले गये मताधिकार को कायम रखने का प्रस्ताव और तीसरा महासभा का और उसके अधीन काम करनेवाली संस्थाओं का सब कामकाज हिन्दुस्तानी या अपने प्रान्त की भाषा में ही करने का प्रस्ताव।

दक्षिण आफ्रिका के प्रस्ताव का सार यहां दिये देता हूं। वहां रहनेवाले हिन्दुस्तानियों को वहां से निकाल देनेकी पैरवी करनेवाला कानून पास न हो जाय इस लिए महासभा ने दो-एक उपाय करने के लिए बताये हैं. प्रथम तो यह कि स्मट्स और गांधीजी के दरम्यान १९१४ में जो समझौता हुआ था और जिस में दक्षिण आफ्रिका की सरकार ने यह स्वीकार किया था कि हिन्दुस्तानियों की तकलीफें बढे ऐसा एक भी कानून वह न बनावेगी, उसका अनेक बार भंग हुआ है फिर भी यही कहा जाता है कि भंग नहीं हुआ है इसलिए उसका दर असल भंग किया गया है या नहीं यह जांच करने के लिए एक पंच मुकर्रर किया जाय अथवा जिसमें दक्षिण आफ्रिका के हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधि भी हों ऐसी एक 'राउन्ड टेबल कॉन्फरन्स' की जाय। यदि इन दो में से एक भी बात न हो सके तो ब्रिटिश सल्तनत का फर्ज है कि वह दक्षिण आफ्रिका के वायसराय के नाम यह हुकम भेजे कि उस कानून पर वह बादशाह की तरफ से मंजूरी के दस्तखत

हरगिज न करें। इन तीनों बातों में से यदि कुछ भी न किया जाय तो उसके विरुद्ध जो युद्ध किया जाय या उसमें हिन्दुस्तान की तरफ से पूरी मदद की जाय। पूरी मदद करने से क्या मतलब हो सकता है यह गांधीजी ने अपने हिन्दी में दिये गये व्याख्यान में अच्छी तरह समझाया था: 'यह प्रस्ताव कर के आप लोग सो न जाना। लेकिन आप लोगों को तो यह निश्चय होना चाहिए कि आपलोगों को जो करना चाहिए वही आप करेंगे। स्वराज्य दल को भी यह निश्चय कर लेना चाहिए कि प्रस्ताव में जो सूचनायें की गयी हैं उनका यदि वे सरकार से स्वीकार न करा सकें तो उन्हें युद्ध के लिए देश को तैयार करना होगा और महासभा भी यह निश्चय करे कि यदि द० आफ्रिका में सत्याग्रह किया जाय तो उसकी मदद की जाय, इतना ही नहीं यहां पर हमलोग भी सत्याग्रह करें। यह नहीं कि केवल बोरसद के महसूल के खिलाफ, या नागपुर में किये गये राष्ट्रीय झण्डे के अपमान के लिए ही सत्याग्रह करना चाहिए, लेकिन दूर विदेशों में पड़े हुए अपने भाइयों के लिए भी हमें सत्याग्रह करना चाहिए। आज ही यदि मैं देश का वातावरण बदला हुआ पाऊं और मुझे यकीन हो जाय कि हिन्दू-मुसलमान अपना पागलपन छोड़ कर एक हो गये हैं और यह समझने लगे हैं कि दक्षिण आफ्रिका में हिन्दु-मुसलमानों का दोनों का एकसा अपमान हो रहा है और वे मुझे अपनी तरफ से यह पैगाम भेजे कि हमलोग तैयार हैं सत्याग्रह करो तो मैं कहता हूं कि आज यद्यपि मैं मुरदा सा मालूम होता हूं फिर भी यह युद्ध करने के लिए फिर जिन्दा हो जाऊंगा।

× × × ×

दूसरा प्रस्ताव पटना के प्रस्ताव को कायम रखने का था। उसमें यह कहा गया था कि महासभा के सभ्य बनने के लिए या तो २००० गज सूत का चन्दा या चार आना देना चाहिए और महासभा के कार्यप्रसंगों पर शुद्ध खादी ही पहननी चाहिए; यदि कोई शख्स हमेशा शुद्ध खादी न पहन सके तो उसे कम से कम विदेशी कपड़ा तो पहनना ही नहीं चाहिए। इस मताधिकार के प्रस्ताव में जो खादी रक्खी गई थी वह कुछ लोगों को पसंद न थी। इस पर बड़ी चर्चा हुई। महाराष्ट्री उसके विरुद्ध थे और दूसरे भी दो चार होंगे। यह प्रस्ताव महासमिति में केवल थोड़े से मनुष्यों का ही विरोध होने से पास हो गया था। महासमिति में इस प्रस्ताव को पेश करते हुए गांधीजी को कुछ सख्त शब्द कहने पड़े थे।

'बाबा साहेब परांजपे और श्री सांबमूर्ति ने मुझे यह प्रस्ताव लौटा लेने के लिए कहा है। मैं किस अधिकार से उसे लौटा लूं? यह तो केवल एक अकस्मात ही है कि उसे पेश करने का भार मुझ पर आ पड़ा है। यह तो कार्यवाहक समिति का प्रस्ताव है। और मुझ से 'अपील' क्यों करते हो? यह मुझे भी शोभा नहीं देता है और आपको भी शोभा नहीं देता है। मैं कौन? मुझे भूल जाइये — यदि आप लोग लोकतंत्र को चाहते तो छोटे बड़े का ख्याल छोड़ दो, प्रस्ताव की योग्यता का ही विचार करो। और मुझे आप किस बात को लौटा लेने का आग्रह कर रहे हैं? मेरे दिल में गहरे से गहरे बैठे हुए मेरे जीवन सिद्धान्तों को?

श्री जयकर और केलकर ने भी उसका विरोध किया है। आप लोग यह भूल जाते हैं कि मताधिकार का आधार ध्येय पर होता है। कताई बात कठिन है — मुश्किल है इसलिए क्या हम लोग उससे भाग जायंगे? हमलोगों के लिए स्वराज प्राप्त करना ही मुश्किल है तो फिर उसकी बात ही क्यों नहीं छोड़ देते हो? यदि मुझे इस बात का यकीन हो जाय कि महासभा के एक करोड़ सदस्य हो जाने पर स्वराज मिल जायगा तो मैं चार आने का चन्दा भी निकाल दूंगा, उम्र का ख्याल भी छोड़ दूंगा और कोई शर्त न रक्खूंगा। जो कुछ कार्य अब तक किया गया है उस पर यदि पानी फिराना है तो यह प्रस्ताव क्यों नहीं लाते कि जो चाहे महासभा में दाखिल हो सकता है। लेकिन भाई, महासभा के लिए जो जरा भी मिहनत करने के लिए तैयार नहीं है उसे क्या महासभावादी कहलाने में शर्म न मालूम होगी! यदि आप लोगों को विदेशी कपड़े का बहिष्कार करना है तो मीलों के कपड़े का ख्याल ही छोड़ दो। मैं मीलोंवाले प्रान्त में से ही आता हूं। मेरा मीलवालों के साथ का सम्बन्ध बड़ा अच्छा है लेकिन मैं यह जानता हूं कि वे देश की कठिनाइयों के समय में उसका कभी भी साथ नहीं देते हैं। वे तो साफ साफ यही कहते हैं वे देशप्रेमी नहीं है, उन्हें तो धन इकट्ठा करना है। यदि सरकार चाहे तो सभी मीलें बन्द करा सकती है, बाहर से यंत्रों का हिन्दुस्तान में आना हो रोक दे सकती है लेकिन सरकार का यह सामर्थ्य नहीं कि वह हमारे चरखों को और तकुओं को जला दे। एक जर्मन एन्जीनियर को यहां आते हुए उसने रोका था। मुझे अंगरेजों के स्वभाव के सम्बन्ध में विश्वास है — जिस प्रकार मनुष्य स्वभाव में विश्वास है उसी प्रकार — लेकिन अंगरेज की यह खासीयत है कि वह अपने देश का हित पहले देखेगा। और लेन्केशायर को जीवित रखने से ही और हिन्दुस्तान में उसकी इच्छा के विरुद्ध अपना रद्दी माल खाली करने से ही वह हित-रक्षा हो सकती है। इस अंगरेज के साथ लड़ने में खून का पानी करना होगा, पानी। स्वराज कोई खेल नहीं है — स्वराज कोई सस्ती चीज नहीं है। वह तो सिर दे कर प्राप्त करने योग्य बड़ी मुश्किल से प्राप्तव्य वस्तु है। आज आप लोग मेरा विरोध कर सकते हैं लेकिन अब ऐसा समय आने ही वाला है जब आप सब लोग यही कहेंगे कि जो गांधी कहता था वही सत्य है। इसलिए जबतक इस मामले में मेरे पक्ष में बहुमति है तब तक मैं आप लोगों से यह प्रार्थना करता हूं कि इतना जरा सा त्याग करना पड़ता है इसलिए उसे न ठुकराओ।

और हमलोग ऐसा विश्वास क्यों न रक्खें कि महासभा के सब सदस्य प्रामाणिक ही होंगे। क्या इतनी भी आशा न रक्खें कि लोग अपने किये हुए प्रस्तावों का पालन करेंगे? हां, यदि आपको खादी पहनने में सिद्धान्त का उज्र हो अथवा उससे आपके धर्म को हानि पहुंचती हो तो आप लोगों को महासभा छोड़ देनी चाहिए। लेकिन महासभा में रह कर आप महासभा के प्रस्ताव का अनादर नहीं कर सकते हो। जबतक मैं महासभा में रहता हूं तबतक मेरे पक्ष में बड़ा अल्पमत हो तो भी मुझे प्रस्ताव का पालन तो करना ही चाहिए

और आप बहुमति के जुल्म की बातें कर रहे हैं? थोड़े से मनुष्य आप लोगों पर अपनी इच्छा के अनुसार अधिकार चला रहे हैं और उसके जुल्म का तो आपको ख्याल तक नहीं! और सच्ची बात के खिलाफ जुदे जुदे उज्र पेश करना हम लोगों का काम है। मैं आप लोगों को यह चेतावनी देता हूं कि यदि आप खादी को विदा दोगे तो लोग भी आप लोगों को विदा कर देंगे — नरमदलवालों के साथ तुलना करने में आप लोगों में कोई विशेषता ही न रहेगी। हम सब बड़े अमीरलोग हैं क्योंकि हम स्वयं खादी न पहनते होंगे तो भी नेताओं से तो हम खादी पहनने की ही आशा

रक्खेंगे। बाबा साहब के बराबर मैंने लोकसेवा न की होगी लेकिन मेरी दस साल की सेवा में मैं उनकी नस नस को अच्छी तरह समझ गया हूं और उनको जान कर ही आपसे यह कहता हूं कि खादी को छोड़ कर आप लोग कुछ भी फायदा न निकलोगे।'

× × × ×

अब रहा हिन्दुस्तानी भाषा का तीसरा प्रस्ताव। महासभा के विधि विधान में एक ऐसा मूल प्रस्ताव है कि हिन्दुस्तानी भाषा महासभा की भाषा रहेगी लेकिन जहां आवश्यकता मालूम हो वहां अंगरेजी का भी इस्तेमाल किया जा सकता है, इस वाक्य से उसका महत्व कम होता था। इसमें यह सुधार करना सूचित किया गया कि महासभा का सब कामकाज हिन्दुस्तानी भाषा में या प्रान्त की भाषा में ही किया जाय, और जो हिन्दुस्तानी न बोल सकता हो वही लाचार हो कर अंगरेजी बोले। यह प्रस्ताव जब महासमिति में पेश किया गया उसका जिस प्रकार विरोध हुआ उससे मेरी इस टीका को कि 'महासभा दिवाने खास होती जा रही है' अधिक पुष्टि मिलती थी। इसके विरुद्ध अनेक दलीलें की गईं, बहुत से लोगों ने तो इसमें जबरदस्ती को पाया। बहुतेरे लोगों को तो यही ख्याल हुआ कि महासभा के दरवाजे बन्द कर के बुद्धिमान वर्ग को निकाल देने की यह तरकीब है। एक मरतबा जब मत लिए गये तो इस प्रस्ताव पर ५८ खिलाफ ५० मत मिले। उस पर फिर से चर्चा करने का अवसर दिया गया—केवल सरोजिनी देवी की भलामनसाहत का ही यह परिणाम था—इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए किसी ने तैलगू में तो किसी ने मराठी में व्याख्यान दिये लेकिन आखिर को दुबारा मत लेने पर ९१ विरुद्ध ६८ मत से यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इसलिए फिर महासभा में इसका विरोध करने के लिए एक दो शख्सों ने नोटिस दी। लेकिन श्रीमती सरोजिनी देवी ने वृथा वादकरनेवालों को अवसर न देने के लिए उसे अध्यक्ष स्थान से स्वयं ही पेश किया था।

ये तो आमवर्ग के प्रस्ताव हुए। बाकी के जो प्रस्ताव हुए उनमें से बहुतेरे खासवर्ग के थे। उसमें महाप्रस्ताव धारासभा के कार्यक्रम का था। इस पर जो चर्चा हुई, जो सुधार पेश किये गये, जो सख्त व्याख्यान हुए और शाम तक महासभा में जो युद्ध होता रहा उसे देख कर यही ख्याल होता था कि सब एक दूसरे की बात को तोड़ना चाहते हैं और अन्य से अपने को ही बड़ा मान कर वे सब बोल रहे हैं। लालाजी और मालवीयजी के सिवा और सबके व्याख्यान करीब करीब अंगरेजी में ही हुए थे और लालाजी और मालवीयजी के व्याख्यान भी इतने बड़े थे कि सुननेवाले भी सुनते सुनते थक जाय। लेकिन इतनी चर्चा हो जाने के बाद भी प्रतिनिधिगण तो बेचारे पुकार पुकार कर यही कहते थे कि 'भाई साहब, प्रस्ताव और उसके सुधार हमलोगों को कुछ हिन्दी में समझाओ भी तो? और सब लोग अपनी अपनी बात के समर्थन में गांधीजी के वचनों का ही उल्लेख करते थे। (गांधीजी उस दिन हाजिर न थे)

एक पक्ष ने अन्य पक्ष को अप्रामाणिक कहा, अन्य पक्ष ने पहले पक्ष को अप्रामाणिक कहा। एक पक्ष ने अन्य को गलत सिद्ध किया, उसने पहले पक्ष को गलत सिद्ध किया—तो अब क्या बाकी रहा? शुद्ध असहयोग? लेकिन यह सुनाना किसको था?

इसमें गांधीजी की स्थिति क्या हो सकती थी। उनकी स्थिति तो स्पष्ट थी। पटना के प्रस्ताव को कायम रखने का प्रस्ताव उन्होंने पेश किया लेकिन उस पर मत नहीं दिया। दूसरे किसी भी प्रस्ताव पर उन्होंने अपना मत नहीं दिया। लेकिन वे स्वराज्यपक्ष के साथ ही रहे थे, महासभा की कार्यकारिणी समिति में भी उन्होंने अपना नाम लिखा जाने दिया था। क्योंकि वे एक ही आशातन्तु से उस पक्ष के साथ बंधे हुए हैं और वह आशा का तन्तु है खादी और सविनयभंग—इन दो चीजों के कारण उनकी यह श्रद्धा है कि आखिर थक कर के भी स्वराजवादी ठिकाने पर आ जायगे।

× × × ×

गांधीजी ने किसी भी प्रस्ताव पर अपना मत नहीं दिया था यह ऊपर लिखा गया है लेकिन उसमें एक अपवाद है। मोतीलालजी के प्रस्ताव के आरंभ में यह श्रद्धा प्रकट की गई है कि सविनय-भंग ही अन्तिम उपाय है और उसके बाद यह वाक्य है: 'लेकिन देश उसके लिए आज तैयार नहीं है यह देख कर' इस वाक्य को प्रस्ताव में से निकाल देने के लिए एक सुधार पेश किया गया। उसके पक्ष में ठीक ठीक मत मिले थे। उसके विरुद्ध थोड़े से ही मत अधिक होंगे। इसलिए सुधार पेश करनेवाले भाई ने मत फिर से गिनने के लिए दरख्वास्त की और श्रीमती ने उसका स्वीकार किया। उसके पक्ष में अच्छे हाथ ऊंचे किये गये—कोई ६८ होंगे। यह देख कर लालाजी घबड़ाये। लालाजी ने कहा: यदि इसमें हारे तो सारा प्रस्ताव ही बेहूदा मालूम होगा। महात्माजी इस दफा तो हाथ ऊंचा करो,' इस प्रार्थना का गांधीजी ने स्वीकार किया और अपनी चद्दर में से हाथ निकाल कर ऊंचा करते हुए कहा 'देखो यह आपकी खातिर से ही हाथ ऊंचा कर रहा हूं।' सब हंस पड़े। दूसरे बहुत से हाथ ऊंचे हुए और ९१ विरुद्ध मत से वह सुधार उड़ गया 'सवनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः!

× × × ×

महासभा के कामकाज के सम्बन्ध में एक बात तो मैं कह चुका हूं, अब दूसरी बात कहता हूं। हिंदू-मुसलमान ऐक्य के प्रश्न को सबने आग की तरह समझ कर उसे दूर ही रखा था। उस पर चर्चा करने की किसी को भी हिम्मत न पड़ती थी। अभी तो हमें अपने मन के मैल धोने की आवश्यकता है। महासभा में या महासभा में जितने भी व्याख्यान हुए उनमें से एक में भी असन्तोष के उद्गार न थे यह नहीं कहा जा सकता था। इनमें से अभ्यंकर जैसे योद्धा के व्याख्यान को और भी शंकरलाल जैसे थपाड़ मार कर मुंह लाल रखनेवालों के व्याख्यान को हम निकाल दे सकते हैं। बाकी अन्य सबके व्याख्यानों में गहरे में असन्तोष का ध्वनि छिपा हुआ था—निराशा का नहीं। क्योंकि निराशा ही हो तो महासभा बन्द करनी चाहिए। लेकिन असन्तोष तो था ही। यदि यह असन्तोष 'डिवाइन डिस्कन्टेन्ट' अर्थात् दैवी असन्तोष हो जाय—सुधा प्राप्त किये बिना सन्तोष न माननेवाली प्रयत्नशील वृत्ति में उसका परिणमन हो तो आज भी कुछ नहीं बिगड़ा है। महासभा यदि 'दिवाने खास' बन रही है तो उसकी जवाबदेही भी तो आमजनता पर ही है यह उन्हें समझ लेना चाहिए। जनता ने—आमवर्ग ने अपना कर्तव्य पालन किया होता तो आज उनको महासभा में से निकाल देने की कोई धमकी न दे सकता था। लेकिन आमलोग तो केवल 'गांधीजी की जय' पुकारने लगे। उनके सामने एक ही कार्य पड़ा हुआ है चिरखा कातने का आह्वान। राजकाज छोड़ कर बैठे हुए गांधीजी से वे अब भी कार्य में जितनी सलाह लेना चाहते हों ले सकते हैं। जिस प्रकार स्वराज्यवादियों को एक साल में अपना काम कर दिखाना है उसी प्रकार वे भी एक वर्ष में अपना काम दिखा कर के गांधीजी को युद्ध के लिए बुला सकते हैं और कह सकते हैं कि 'धनुष्य बाण लो हाथ'।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देसाई

वफादारी का अतिरेक

वार्षिक मूल्य ४)
छःमास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २०

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, माघ वदी १, संवत् १९८२ गुरुवार, ३१ दिसम्बर, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

एक प्रेमी की चिन्ता

एक सज्जन लिखते हैं:

"आप 'नवजीवन' में किसानों के सम्बन्ध में कुछ नहीं सा ही लिखते हैं। हिन्दुस्तान में किसानों की ही बस्ती अधिक है और संयुक्त प्रान्तों में और बंगाल में तो कुछ थोड़े से लोगों के पास ही सब जमीन है। इन जमीन के मालिकों के पास बहुतसी जमीन होती है और किसानों के पास जिनकी तादाद लाखों की है नाम को भी जमीन नहीं होती। संयुक्त प्रान्त में लाखों किसान कई दिन तक बेचारे चबेना खा कर ही अपना गुजारा करते हैं। [illegible] किसानों का [illegible] कैसे हो सकता है? किसानों को इस [illegible] गुलामी में पड़ा रहना होगा? क्या आप यह नहीं जानते कि ताल्लुकदारों से और जमींदारों से हिन्दुस्तान की गुलामी है, और दस हजार बीघा जमीन जो अभी एक के हाथ में है वह ४०० किसानों को बांट दी जाय तो हिन्दुस्तान की गरीबी का शीघ्र ही अन्त हो?

गुजरात के प्रत्येक गांव में चार पांच ऐसे 'पाटीदार' होते हैं जो 'चौधरिया' के नाम से पहचाने जाते हैं। इनमें एक मुखी होता है। वह सब बातों में दखल करता है और लोगों का चैन नहीं लेने देता है। वह जो अपने दिल में आता है वही करता है। इसके सिवा गांव के बनिये भी किसानों को हिसाब में भाव में इधरउधर कर के लूट लेते हैं।

आज सब जगह किसान लोग कपास बोते हैं इसलिए अनाज मंहगा है। आप स्वराजिस्टों को कह कर ऐसा एक कानून न बनावें कि वे कपास कम बोवें?

गुजरात में किसान लोग तम्बाकू के पीछे पड़ गये हैं। कुछ लोग तो ७५-१०० बीघा जमीन में केवल तम्बाकू ही बोते हैं। मुझे कभी कभी तीसरे दरजे में मुसाफरी करनी पड़ती है वहां बीडी पीनेवाले बड़ा त्रास उत्पन्न करते हैं। सब लोग डब्बे में बैठे बैठे बीडी ही पीते हैं। ब्राह्मण जो अपने को उच्च वर्ण के मानते हैं वे भी बीडी पीते हैं।

इसके सिवा आप विधवाओं के लिए भी आप जोर दे कर क्यों नहीं लिखते हैं? क्या ज्ञाति के महाजन कभी विधवाओं को फिर से ब्याह करने की छुट्टी देंगे? विधवाओं को तो अपना कोई आप ढूंढ लेना होगा। यह कार्य करने के लिए आप किसी महाजन को तैयार क्यों नहीं करते हैं? विधवायें बड़ा कष्ट उठाती हैं। महाजन के डर के कारण वे फिर से विवाह नहीं करती है और परिणाम में पाप करती हैं। वे बच्चों को — एक दो दिन के बच्चों को मार डालती हैं। लेकिन यह हमारे यहां के दुष्ट रिवाजों का ही दोष है, अनाथ विधवाओं का नहीं।

हिन्दुओं में यदि कोई मर जाय तो उसके पीछे जेवनार करनी पड़ती है और ज्ञाति के लोग लड्डू खाते हैं, यह क्या हैवानियत नहीं है? उस बेचारे के घर में तो अपार शोक होता है और उस समय सब लोग मिष्टान्न खाते हैं। इसके अलावा कन्याविक्रय इत्यादि अनेक दोष हैं।

बनिये की एक ज्ञाति है [illegible] उसमें छोटी छोटी कितनी ही ज्ञातियां होती हैं। अहमदाबाद के बनिये को सूरत के बनिये से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, फिर अहमदाबाद के बनिये को अल्हाबाद के बनिये के प्रति सहानुभूति कैसे हो सकती है?

आपने विदेशी कपड़े का पहरा क्यों बन्द कर दिया है यह समझ में नहीं आता। अब फिर आप ऐसा पहरा क्यों न शुरू करें?"

इस पत्र को मैंने कुछ छोटा कर दिया है। उसके विषय असम्बद्ध मालूम होंगे लेकिन प्रत्येक का अन्तराग्नि के साथ सम्बन्ध है।

किसानों के सम्बन्ध में मैं 'नवजीवन' में अधिक कुछ नहीं लिखता हूं क्योंकि व्यवहार-कुशल होने के कारण मैं ऐसे विषयों पर लेख नहीं लिखता हूं जिनके सम्बन्ध में मैं या पाठकगण अभी हाल कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

'नवजीवन' का सम्पादन भार जब मैंने ग्रहण किया उस समय आरंभ में ही 'हिन्ददेवी' की तस्वीर दी गई थी और उसमें किसानों को ही प्रधान पद दिया गया था। किसानों की स्थिति को सुधारने की तो बड़ी आवश्यकता है लेकिन जबतक राज्य की बागडोर किसानों के प्रतिनिधियों के हाथ में नहीं है अर्थात् जबतक स्वराज-धर्मराज न होगा तबतक उनकी स्थिति का सुधार करना असंभव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही है। किसानों को पूरा 'चबेना' भी नहीं मिलता है और इसका मुझे सम्पूर्ण ज्ञान है। इसीलिए तो मैंने चरखे का पुनरुद्धार सूचित किया है।

जितनी कानूनों को सुधारने की आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता किसानों की आन्तर् अवस्था सुधारने की भी है। यह कार्य तो तभी होगा जब ऐसे असंख्य सेवकगण निकल पड़ेंगे

जो गांवों में आकर फलेच्छा से रहित आसनबद्ध होकर क्षेत्रसंन्यास लेकर बैठ जायंगे। युग युग की बुरी आदतें एक या दो साल में दूर नहीं हो सकती है।

जमींदारों और ताल्लुकदारों के पास से हजारों बीघा जमीन बलात्कार कर के छीन नहीं ली जा सकती है। लेकर के दी भी किसको जाय? ताल्लुकदार और जमींदारों के पास से जमीन छीन लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके हृदय का परिवर्तन होना ही आवश्यक है। जमींदार और ताल्लुकदारों के हृदय में राम का निवास हो —— दयाभाव उत्पन्न हो तो वे अपने किसानों के रक्षक बनेंगे और अपनी जमीन को किसानों की ही जमीन मान कर मुख्य पैदाइश का मुख्य हिस्सा उन्हीं को देकर स्वयं केवल आजीविका के लिए यत्किंचित ही लेंगे। यदि कोई कहे कि ऐसा युग तो जब चन्द्र सूर्य का उदित होना बन्द होगा तभी आ सकेगा, लेकिन मैं यह नहीं मानता। संसार का प्रवाह ही शान्ति-अहिंसा के मार्ग के प्रति आ रहा है। राक्षसी बल का मार्ग तो युगों से लिया जा रहा था और आज भी लिया जा रहा है। कोई यह न मानें कि रशिया इत्यादि देशों में लोग सुखी हो गये हैं। उनके सिर पर तलवार तो लटकती ही रहती है। जो लोग हिन्दुस्तान के किसानों की सेवा करना चाहते हैं उन्हें तो शान्ति के मार्ग पर अचल श्रद्धा रख कर ही कार्य करना होगा। दूसरे लोग तो सब केवल अपने अभिमान को ही तृप्त कर रहे हैं। उनकी कल्पना में किसानों का समावेश ही नहीं होता है अर्थात् यही कहो कि वे उनकी हालत को जानते ही नहीं हैं।

जो ऊपर कहा गया है वह 'चौदशिया' बनीये हों या 'पाटीदार,' सभी को लागू होता है। वे सब गांव के अनजान और भोले किसानों को लूटते हैं। उन्हें स्वार्थ के सिवा और किसी भी बात का ख्याल नहीं होता है। लेकिन वहां भी उपाय केवल नीति की शिक्षा ही है। दुःखी मनुष्य के लिए सत्याग्रह और असहयोग की शिक्षा की आवश्यकता है। अपनी संमति न हो तो गुलाम भी गुलाम नहीं बन सकता है। यदि लोग शरीरबल से सामना करने की तालीम ग्रहण कर सकते हैं तो क्या वे आत्म-बल की तालीम ग्रहण नहीं कर सकते? आत्मारहित जड़ पदार्थ-शरीर का उपयोग करना हम सीख सकते हैं लेकिन क्या शरीर के स्वामी का अर्थात आत्मा का अधिकार हम नहीं जान सकते!

किसानों को मर्यादा में रह कर कपास बोना और तम्बाकू कम और बिल्कुल ही न बोना कौन सीखावेगा?

विवाह के संबन्ध में दुष्ट रिवाजों का सुधार कैसे किया जा सकता है? व्याख्यानों से कितना कार्य हो सकेगा? इन सबका मूल भी नीति की शिक्षा ही है। नीति की शिक्षा के माने हैं जिसे वह मालूम हुई है वह उसका जाहिरा तौर पर अमल करे और यह करने में जो कष्ट हों वे सब सहन कर लें।

छोटी छोटी ज्ञातियों को एक करने के लिए सम्भव है कि कुछ थोड़े ही दिनों में प्रयत्न होंगे।

जरा सी बीड़ी! वह भी दुनिया का कैसा नाश कर रही है। बीड़ी का ठंडा नशा कुछ अंशों में मद्यपान से भी अधिक हानिकर है क्यों कि मनुष्य उसका दोष शीघ्र नहीं देख सकता है। उसका उपयोग असभ्यता में नहीं गिना जाता है बल्कि सभ्य कहलाने वाले लोग ही उसका उपयोग बढ़ा रहे हैं। फिर भी जो लोग इससे बच सकते हैं उन्हें बचना चाहिए।

विधवा विवाह आवश्यक है। यह तो तभी होगा जब युवक-वर्ग शुद्ध बन जायगा। लेकिन युवकवर्ग में शुद्धि कहां है? अपनी पढ़ाई का वे सदुपयोग कहां करते हैं? अथवा तो पढ़ाई का ही दोष क्यों न निकालें? बाल्यकाल से ही हमें पराधीनता की तालीम मिलती है? उसमें से हम लोग स्वतंत्र विचार करना कैसे सीख सकते हैं। स्वतंत्र आचार तो हो ही कैसे सकते हैं! ज्ञाति के गुलाम, शिक्षा के गुलाम और सरकार के गुलाम। हमारे लिए तो सभी साधन बंधनकारक साबित हुए हैं यही कहा जा सकता है। इतने पढ़े हुए हैं उनमें से कितनों ने अपने यहां की बालविधवाओं का जीवन सुधारा है? रुपये के प्रलोभन में से कितने बच सके हैं! कितनों ने स्त्री जाति को अपनी मा बहन समझ कर उनका रक्षण किया है? कितनों ने ज्ञाति का भय छोड़ कर जो अपने को सत्य मालूम हुआ है उसका पालन किया है? विधवा किस के पास जा कर अपनी गुहार सुनावें? मैं विधवा की तरफ से वकीलात भी किसके आगे जा कर करूं? किसको प्रोत्साहन दूं? कितनी बालविधवायें 'नवजीवन' पढ़ती हैं? पढ़ती हैं उनमें से कितनी अपने विचारों पर अमल करती हैं? फिर भी प्रसंग आने पर 'नवजीवन' के द्वारा विधवाओं का आर्तनाद सुनाया करता हूं। समय आने पर और भी सुनाऊंगा। लेकिन इस दरम्यान में मैं यह दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूं, समझाना चाहता हूं कि जिसके यहां बाल-विधवा है उसका धर्म है कि वह उसका विवाह कर दे।

ज्ञाति की दूसरी बुराइयों का भी लेखक ने ठीक ठीक वर्णन किया है लेकिन जहां आस्मान ही फट पड़ा है वहां कौन क्या कर सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि मृत्यु के पीछे जेवनार करना एक जंगली रिवाज है। और विवाह कार्य में जो भोजन दिया जाता है वह भी कुछ कम जंगली नहीं है। उसके पीछे इतना खर्च क्यों किया जाय? इतना आडम्बर क्यों करें? लेकिन दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी विवाह में कम ज्यादह खर्च अब भी किया जा रहा है इसलिए हम चाहे भले ही उसे कम जंगली कहें लेकिन मृत्यु के बाद तो हिन्दू धर्म में ही खर्च होता हुआ दिखाई देता है। ऐसे अनेक सुधारों की आवश्यकता स्पष्ट है। लेकिन जब समाज का जीवन विचारमय, स्वतंत्र और नीतिमय बनेगा तब सब सुधार एक साथ ही हो जायंगे। जब तक हमलोग विचारशून्य और पराधीन रहेंगे तब तक एक तार खींचने से तेरह तार टूट जायगे।

लेखक की आखिरी चिन्ता विदेशी कपड़े जलाने के सम्बन्ध में है। यदि लोग मुझे इस बात का यकीन दिलावें की वे अपने विदेशी कपड़ों की ही होली करेंगे और दूसरों के कपड़ों की नहीं, कोई किसी की टोपी उठा कर 'होली' में न फेंके तो मैं आज विदेशी कपड़े की होली करने का प्रचार करूंगा। इस होली की उचितता के सम्बन्ध में मुझे जरा भी सन्देह नहीं है लेकिन मुझे लोगों की हिंसा का भय है। जिस वस्तु की उत्पत्ति शुद्ध प्रेम से होती है उसका भी जब पूरा पूरा दुरुपयोग किया जाता है तब यह समझना चाहिए कि उस वस्तु को बाहर लाने का वह समय नहीं है। और जब मैंने बम्बई में अनुभव किया कि लोग स्वयं विदेशी कपड़े पहनते हैं फिर भी दूसरे के विदेशी कपड़ों को छीन छीन कर उसकी होली करने को तैयार हैं तब मैंने उस शस्त्र को लौटा लिया। अभी तो कुसंप, पाखण्ड इत्यादि मैल ऊपर उठ आया है। ऐसे समय में शान्तिमय प्रयोगों को कुछ हल्का कर देना ही आवश्यक है। इसीलिए खादी उत्पन्न करने का, चरखा चलाने का और खादी बेचने का महान् शान्ति-मय प्रयोग, जो सर्व काल में चलाया जा सकता है चलाया जा रहा है। जिन्हें शान्ति से हिन्दुस्तान का स्वराज-धर्मराज हासिल करना है वे तो उसे परम धर्म मान कर ही उस पर अमल करेंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय ४

मेरा स्वामित्व

मेरे विवाह के समय निबंधों की छोटी छोटी पत्रिकायें — एक पैसे की या एक पाई की कीमत की आज याद नहीं है — निकलती थीं। उसमें दंपतीप्रेम, बाललग्न और करकसर इत्यादि विषयों की चर्चा होती थी। इसमें से कोई भी निबंध जब मेरे हाथ पड़ता था तो मैं उसे समग्र पढ़ जाता था। और मेरी यह आदत तो थी ही कि जो पढ़ता था वह यदि पसंद न होता तो उसे मैं फौरन् ही भूल जाता था और जो पसंद पड़ता था उस पर अमल करता था। एक मरतबा यह पढ़ा था कि एकपत्नीव्रत पालन करना पति का धर्म है और यह बात हृदय में बैठ गई थी। मुझे सत्य का शौक था इसलिए पत्नी को दगा नहीं दे सकता था और इस कारण यह भी समझ सका था कि दूसरी स्त्री के साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। छोटी उम्र में एकपत्नीव्रत का भंग होना बहुत ही कम संभव होता है।

लेकिन इन सद्विचारों का एक बुरा परिणाम भी हुआ। यदि मुझे एकपत्नीव्रत का पालन करना चाहिए तो पत्नी को भी तो एकपतीव्रत पालन करना चाहिए न? इस ख्याल से मेरे हृदय में ईर्ष्या ने प्रवेश किया 'पालन करना चाहिए' के विचार पर से मैं 'पालन कराना चाहिए' के विचार पर आया। और यदि मुझे उसका पालन कराना चाहिए तो मुझे उसके लिए चौकीदारी भी तो करनी चाहिए। मेरी पत्नी की पवित्रता के संबन्ध में मुझे शंका करने का कोई कारण न था लेकिन ईर्ष्या कारण कहां देखती है। मेरी पत्नी हमेशा कहां कहां जाती है यह मुझे अवश्य ही मालूम करना चाहिए और इसलिए वह मुझसे इजाजत लिये बिना कहीं जा ही नहीं सकती थी। यह हम लोगों में एक कष्टप्रद झगड़े का कारण हो पड़ा। बिना इजाजत के कहीं भी न जाना चाहिए यह तो एक प्रकार की कैद है। लेकिन कस्तूरबाई ऐसी कैद सहन करनेवाली न थी। चाहे जहां वह मुझे पूछे बिना ही जाती थी। ज्यों ज्यों मैं अधिक अंकुश रखने का प्रयत्न करता था त्यों त्यों वह अधिक स्वतंत्रता दिखाती थी और मैं इससे अधिक चीढ़ जाता था। इसलिए हम लोगों में मान करना और एक दूसरे से न बोलना एक सामान्य विषय हो पड़ा। कस्तूरबाई ने जो स्वतंत्रता दिखाई थी उसे मैं निर्दोष मानता हूं। एक बाला जिसके मन में कुछ भी पाप नहीं है वह देवदर्शन करने के लिए या किसी से मिलने जुलने के लिए जाने के सम्बन्ध में वृथा अंकुश को कैसे सहन कर सकती है? और यदि मैं उस पर दाब रखना चाहूं तो तो वह मुझ पर भी दाब रखना क्यों न चाहें। लेकिन यह तो आज समझ सका हूं। उस समय तो मुझे अपना स्वामित्व सिद्ध करना था। लेकिन पाठक यह न मानें कि हमारे गृहसंसार में कुछ भी मधुरता न थी। मेरी वक्रता के मूल में प्रेम था। मैं अपनी स्त्री को आदर्श स्त्री बनाना चाहता था। वह शुद्ध बने, शुद्ध रहे, जो मैं सीखता होऊं वह सीखे, जो पढ़ता होऊं वह पढ़े और हम दोनों एक दूसरे में ओतप्रोत रहें, यही मेरी भावना थी।

यह मुझे ख्याल नहीं है कि कस्तूरबाईकी भावना भी ऐसी ही थी। वह निरक्षर थी। स्वभाव से सीधी, स्वतंत्र, मिहनत करने-वाली और मेरे साथ कम बोलनेवाली थी। अपने अज्ञान के कारण उसे असंतोष न था। मैं पढ़ता हूं इसलिए वह भी पढ़े ऐसी उसकी इच्छा मैंने अपने लड़कपन में कभी भी अनुभव नहीं की थी। इसलिए मैं यह मानता हूं कि मेरी भावना एकांगी थी। मेरा विषयसुख एक ही स्त्री के ऊपर निर्भर था और मैं उस सुख का प्रतिघोष देखना चाहता था। जहां प्रेम एक पक्ष में ही हो वहां भी तो उसमें सर्वांश में दुःख नहीं होता है।

मुझे यह कहना चाहिए कि मैं मेरी स्त्री के प्रति विषयासक्त था। शाला में भी उसीके विचार आते थे और यही ख्याल बना रहता था कि कब रात हो और हमलोग मिलें। वियोग असह्य मालूम होता था और मेरी कितनी ही इधर उधर की बातों से मैं कस्तूरबाई को सोने ही न देता था। यदि मैं इस आसक्ति के साथ कर्तव्यपरायण न होता तो मैं रोग से पीड़ित हो कर अवश्य ही मृत्यु के वश हो गया होता अथवा मुझे ऐसा भास होता है कि मैं संसार में केवल वृथा ही जीवन व्यतीत करता होता। सुबह होते ही नित्य कर्म तो करने ही चाहिए और किसी को भी ठगना न चाहिए इस ख्याल ने बड़े बड़े संकटों में मेरी रक्षा की है।

मैं ऊपर कह गया हूं कि कस्तूरबाई निरक्षर थी। उसे पढ़ाने की मुझे बड़ी इच्छा थी लेकिन मेरी विषयवासना उसे पढ़ाने का अवसर ही कब देती थी? एक तो मुझे जबरदस्ती उसे पढ़ाना पड़ता था और वह भी तो रात्रि में एकान्त के समय ही हो सकता था। बड़ेबूढ़ों के समक्ष तो स्त्री के प्रति देख भी नहीं सकते थे और बात तो हो ही कैसे सकती थी? उस समय काठियावाड़ में घूंघट निकालने का जंगली और निरर्थक रिवाज था और बहुतांश में वह आज भी मौजूद है। इसलिए पढ़ाने के लिए सब प्रकार की प्रतिकूलता थी। और इसलिए मुझे यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि युवावस्था में मैंने उसे पढ़ाने के लिए जो प्रयत्न किये सब निष्फल हुए। जिस समय मैं विषय की निद्रा में से जागृत हुआ उस समय तो मैंने सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना आरंभ कर दिया था और इसलिए मेरी ऐसी स्थिति न थी कि मैं उसमें कुछ अधिक समय दे सकूं। शिक्षकों के द्वारा पढ़ाने के प्रयत्न भी निष्फल हुए। आज कस्तूरबाई जैसे तैसे पत्र लिख सकती है और सामान्य गुजराती समझ सकती है। मैं यह मानता हू कि यदि मेरा प्रेम विषय से दूषित न होता तो वह आज विदुषी स्त्री होती। उसके पढ़ने के आलस्य को मैं जीत ले सकता था। मैं यह जानता हूं कि शुद्ध प्रेम के लिए कुछ भी अशक्य नहीं है।

मैं स्वस्त्री के साथ इस प्रकार विषयी होने पर भी कैसे बच गया उसका एक कारण मैं ऊपर लिख चुका हू। एक दूसरी भी बात उल्लेख योग्य है। मेरे सैंकड़ों अनुभवों पर से मैं यह निष्कर्ष निकाल सका हूं कि जिसकी निष्ठा सच्ची होती है उसकी ईश्वर ही रक्षा करता है। हिन्दूसंसार में बाललग्न का हानिकर रिवाज है तो उसके साथ साथ उसमें से कुछ मुक्ति मिले ऐसा भी एक रिवाज है। बालक पतिपत्नी को मातापिता अधिक समय तक एक साथ नहीं रहने देते हैं। बाल स्त्री का आधे से भी ज्यादह समय अपने मातापिता के घर ही में बीतता है। हम लोगों के सम्बन्ध में भी यही हुआ। अर्थात् १३-१८ वर्ष के दरम्यान हमलोग अलग अलग सब प्रसंगों को मिला कर तीन साल से अधिक एक साथ न रहे होंगे। ६-८ महिने तक साथ रहते कि पत्नी के लिए उसके मातापिता के यहां से बुलौआ आही जाता था। १८ साल की उम्र में तो मैं विलायत गया था इसलिए हमलोगों में अच्छा लम्बा वियोग आ पड़ा। विलायत से लौट आने पर कोई

६ ही महिने एक साथ रहे होंगे क्योंकि मुझे राजकोट से बम्बई और बंबई से राजकोट आना जाना पड़ता था। उसके बाद दक्षिण आफ्रिका का निमंत्रण मिला और इस दरम्यान तो मैं अच्छी तरह जागृत भी हो गया था।—

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ बदी १, संवत् १९८१

वफादारी का अतिरेक

एक सज्जन लिखते हैं:

"यदि कोई सरकारी कर्मचारी देशहित के कार्य में सहानुभूति प्रकट करता है अथवा तदनुकूल कार्य करना आरम्भ करता है — उदाहरण के तौर पर जैसे खादी पहनने लग जाय — तो लोग कहते हैं कि जिसने सरकार का निमक खाया है उसे सरकार के विरुद्ध किसी भी काम में सहाय न करनी चाहिए और न उसके विरुद्ध कोई काम ही करना चाहिए, और यदि ऐसा कोई करे तो यह सेवक का धर्म जो स्वामीभक्ति है उसके खिलाफ होगा। इसका समर्थन करने के लिए महाभारत में से उदाहरण पेश किया जाता है। भीष्म, द्रोणादि यह जानते थे कि दुर्योधन का पक्ष गलत है फिर भी उसी की तरफ से वे लड़े। भीष्म जैसे धर्मात्मा ने दुर्योधन का त्याग क्यों न किया?"

यह दलील केवल हिन्दुस्तान में ही हो सकती है। हिन्दुस्तान ने स्वामीभक्ति को बहुत बढ़ाया है और उससे लाभ भी उठाया है। फिर भी आज तो हमलोग अच्छे से अच्छी वस्तु का भी अतिरेक और वक्रता ही अनुभव कर रहे हैं।

प्रथम तो महाभारत के दृष्टांत को ही बीच में से उठा दे कर उड़ा दें। भीष्मादि के पास जब धर्मराज गये तब उन्होंने स्वामीभक्ति को निमित्त न बना कर अपने उदर के प्रति हाथ कर के कहा था कि 'पापी पेट के लिए यह कर रहे हैं।' विदुरजी किसी के भी साथ न रहे। रामायण देखेंगे तो मालूम होगा कि विभीषण ने धर्म का ख्याल करते हुए न स्वामीभक्ति को देखा न भ्रातृप्रेम को, उन्होंने रामचन्द्र को सम्पूर्ण मदद की, लंका के छिपे हुए भेदों को—रहस्यों को बताया और प्रह्लादादि के साथ वे भक्तों में गिने गये।

लेकिन शायद हमें इससे विरुद्ध दृष्टांत भी मिले तो भी जहां नीतिविरुद्ध दृष्टांत मिलते हों वहां हमें उनका अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए। रामायण में गोमांस का वर्णन हो या वेद में पशुवध का वर्णन देखा जाय तो उससे आज हम न गोमांस खायंगे और न पशुवध करेंगे। सिद्धान्त तो तीनों कालों के एक ही होते हैं लेकिन उसके आधार से बनाये गये आचारों के नियमों में समय के बदलने पर, स्थिति के बदल जाने पर समय समय पर परिवर्तन तो होता ही रहेगा।

अब वफादारी का विचार करें। सरकार की नोकरी के सम्बन्ध में गर्भित या प्रसिद्ध ऐसा एक भी नियम नहीं है कि जिससे सरकारी कर्मचारी खादी न पहन सके। कुछ कर्मचारियों को खास सरकारी पोषाक पहनना पड़ता है लेकिन यह बात ही दूसरी है। ऐसे पोषाक पहननेवाले कर्मचारी भी अपने खानगी समय में खाहिश तौर पर खादी पहन सकते हैं। खादी ऐसी वस्तु नहीं है कि जो सरकार के विरुद्ध हो और न ऐसी गिनी ही जाती है। उसी प्रकार ऐसा भी कोई नियम नहीं है कि कोई सरकारी कर्मचारी किसी भी सार्वजनिक हलचल के प्रति सहानुभूति न बता सके। हां, जो नोकर वफादार है वह जबतक नोकरी करता है तबतक सरकार जिस हलचल को देशद्रोही गिनती है उसमें भाग नहीं ले सकता है। लेकिन यदि वह सरकार के हुक्म को अनुचित मानता हो और उसमें उतनी हिम्मत हो तो नोकरी छोड़ कर के वह सरकार का विरोध भी कर सकता है। नीति का या दूसरा ऐसा कोई नियम नहीं है कि जो एक मरतबा नोकर बना वह सदा ही नोकर बना रहेगा और सेवक को स्वामी के कार्य की नीति अनीति का विचार ही नहीं करना चाहिए। वफादारी की भी मर्यादा होती है। वफादारी से इतना ही अपेक्षित है कि जो नोकरी मिली हो उसमें जबतक सम्बन्ध है और जबतक वह नोकरी करता है उसे वफादार रहना चाहिए। अर्थात दफ्तरखाने में काम करनेवाला नोकर निश्चित किये हुए घण्टे पूरे भरे और रुपये की या पत्रों की चोरी न करे और अपनी नोकरी के समय पर सरकार की जो गुप्त बातें मालूम हुई हों उन्हें जाहिर न करें। लेकिन वह चोबीसों घण्टे का नोकर नहीं है, उसने अपना आत्मा नहीं बेच डाला है। जिसे वह राष्ट्रीय हलचल मानें उसके प्रति वह विचार में अवश्य ही सहानुभूति रख सकता है और यदि प्रसिद्ध नियमों के विरुद्ध न हों तो वह कार्य में भी सहानुभूति दिखा सकता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

लड़ाई कैसे सुलगी ?

(गतांक से आगे)

गुप्त पत्रव्यवहार

इस प्रकार सब देश लड़ाई के लिए बड़ी तैयारी कर रहे थे और लड़ाई की ही बातें करते थे। यही नहीं लेकिन जो गुप्त पत्रव्यवहार अबतक मालूम हो सका है उसे देखने से भी यह प्रतीत होगा कि सभी यूरोपीय राजनीतिविशारद और युद्धनायकगण लड़ाई करना अनिवार्य समझते थे। अनेक अंगरेज नेताओं की तरफ से हम लोग यह जान सके हैं कि ब्रिटिश जलसैन्य की पूर्णता के विषय में सभी को संतोष था। १९१८ के नवम्बर में ब्रेडफर्ड कालेज में बोलते हुए अनेक वर्ष के युद्ध मंत्री लार्ड हाल्डेनने कहा था: "जब लड़ाई हुई उस समय हमारा बेड़ा ऐसी अच्छी स्थिति में था कि पहले कभी उसका ऐसी स्थिति में होना याद नहीं है। जर्मन बेड़े के विरुद्ध अपना बल दुगुना था। आगस्ट की तीसरी तारिख को सोमवार के दिन ११ बजे अर्थात् ११ घण्टे पहले हमलोगों ने लड़ाई की हलचल शुरू की थी। कुछ ही घण्टों में हमारे जलसैन्य की सहायता से हमारा स्थलसैन्य किसीको भी न मालूम हो इस प्रकार इंग्लिश चेनल पार कर गया था।'

दूसरे अनेक बड़े बड़े ब्रिटिश नेता तो इससे भी आगे बढ़ कर यह कहते हैं कि जलसैन्य में स्पर्धा का आरंभ कराने की जवाबदेही का सारा ही भार इंग्लैण्ड के ऊपर ही है। १९०८ की जनवरी की २८ वीं तारीख को दिये गए एक भाषण में लार्ड क्यार्डे ने कहा था: 'आरंभ हमलोगों ने किया था उन्होंने नहीं। हमारा जलसैन्य इतना बड़ा था कि कैसा भी दुश्मन क्यों न तैयार हो हमलोग हारनेवाले न थे। फिर भी हमें संतोष न था। 'ड्रेडनोट तैयार करो' यही हम कहते रहे।'

ब्रिटेन के विदेश सम्बंधी नीति के प्रधान सर एडवर्ड ग्रे ने १९१४ के फरवरी महिने में यह कहा था: 'इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पहला 'ड्रेडनोट' बनाने की जवाबदेही हमारे सिर है। हम

लोगोंने ही शुरुआत की ऐसी टीका हमारे सम्बन्ध में अवश्य ही हो सकती है।'

फ्रान्स भी लड़ाई की आशा रखता था और उसने भी हर प्रकार से तैयारी कर रक्खी थी। १९१४ मई की ८ वीं तारीख को पेरिस में रहनेवाले बेल्जियम प्रतिनिधि ने एक गुप्त पत्र में अपने विदेश संबंधी नीति के प्रधान को लिखा था "कुछ महिने हुए फ्रेंच प्रजा का लड़ाई करने के लिए अधिकाधिक उत्साह बढ़ रहा है और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उसकी खुमारी बढ़ रही है। अच्छे जानकार और व्यवहार में पूर्ण अनुभवी ऐसे कितने ही मनुष्य हैं जो दो साल पहले फ्रान्स और जर्मनी के दरम्यान लड़ाई होने की बात सुन कर कांप उठते थे। आज उनकी बातचीत का रंग बदल गया है। वे यह जाहिर करते हैं कि उन्हें अपनी जीत के बारे में कोई सन्देह नहीं है; फ्रेंच स्थलसेना में जो सुधार हुआ है उसका जिक्र करते हैं और कहते हैं कि रशिया को लश्कर उतारने का, अपनी युद्ध सामग्री एकत्रित करने का और जर्मनी पर पश्चिम में आक्रमण करने का समय मिले तबतक वह जर्मनी के लश्कर को बराबर रोक सकता है।

१९१४ में आगस्ट की ४ तारीख को फ्रेन्च पार्लमेंट के समक्ष व्याख्यान देते हुए प्रेसिडेन्ट प्वांकेरे बोले थे "फ्रान्स तो समय की राह देख कर ही बैठा था। शान्ति और सावधानी के साथ वह तैयार है, दुश्मनों को हमारे शूरवीर सीपाहियों का सामना करना होगा। फ्रेन्च सेना के एक अधिकारी ने अपने १९१० में प्रकाशित हुए एक पुस्तक में लिखा था 'बेल्जियम लश्कर और ब्रिटन के चार दलों की गिनती किये बिना ही लड़ाई के आरंभ में फ्रान्स अपने बलवान शत्रु के मुख्य दल का मुकाबला करने की शक्ति रखता था।

रशिया का लश्कर संसार में सबसे बड़ा था। आस्ट्रिया के युवराज आर्चड्यूक फर्डिनन्ड का खून होने के दो सप्ताह पहले ही रशिया के एक मुख्य वर्तमान पत्र में एक बड़ा ही महत्व का लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें लश्कर की स्थिति के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया था। सामान्य तौर पर इस लेख के बारे में यह मान्यता थी कि वह लेख रशिया के युद्धमंत्री का लिखा हुआ था। "अभी शाहेनशाह का जो हुक्म निकला था उसके अनुसार रंगरूटों की संख्या ४५००० से बढ़ा कर ५८०००० की कर दी गई है। इस प्रकार हमें प्रति वर्ष १३०००० मनुष्य अधिक मिलेंगे। और नौकरी का समय भी ६ महिना और बढ़ा दिया गया है इसलिए प्रत्येक जाड़े की ऋतु में रंगरूटों की चार टुकड़ियां तैयार रहेंगी। सामान्यतया त्रिराशी से गिन कर हमारे लश्कर की संख्या कितनी है यह कहा जा सकेगा। अर्थात ५८०००० × ४ = २३२०,००० मनुष्यों की है। अभी तक किसी भी देश के लश्कर में इतनी संख्या का होना कभी किसीने नहीं सुना है। केवल महान प्रतापी रशिया ही इतना बड़ा लश्कर रख सकता है। तुलना करने के लिए यहां इतना कहना आवश्यक है कि जर्मनी में आखिरी लश्करी कानून के अनुसार ८,८०,००० का, आस्ट्रीया का ५००,००० का और इटली का ४००,००० का लश्कर था।

लंडन टाइम्स के सेन्टपीटर्सबर्ग के संवाददाता ने १९१३ के अक्टोबर की १० वीं तारीख को लिखा था "सब इस बात का स्वीकार करते हैं कि रशियन लश्कर अभी जैसा तैयार है उससे अधिक अच्छा शायद ही कभी होगा। उसके पास काफी रुपये हैं, काफी खुराक है, और उसका तोपों का बल कैसा है यह कहना तो मुश्किल है लेकिन उसकी बन्दूक की तालीम तो बहुत कुछ सुधर गई है।'

३ संधि

हमलोग यह देख गये हैं कि यूरोप के सभी बड़े बड़े राज्य नये मुल्क, कच्चा माल, व्यापारमार्ग और अपने माल के लिए बाजार प्राप्त करने के लिए सारी पृथ्वी पर जो स्पर्द्धा चल रही थी उसमें शामिल थे और जो जो आर्थिक लाभ उन्होंने प्राप्त किये थे उनकी रक्षा करने के लिए और दूसरे और भी अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए सभी ने जलसेना और स्थलसेना को तैयार रक्खा था। यही नहीं जो बाकी बचा था उसे वे दूसरे राष्ट्रों के साथ सन्धि और करार कर के पूरा करने का सदा ही मनोरथ रखते थे। उसी प्रकार १८७९ में जर्मनी और आस्ट्रिया के बीच सन्धि हुई थी। सन १८८२ में इटली ने ट्युनिस में फ्रान्स के आक्रमण का बचाव करने में निष्फलता प्राप्त करने पर जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ सन्धि करना चाहा और सन्धि की। १८९१ में फ्रान्स और रशिया में सन्धि हुई और सन १८९४ में उनके बीच एक प्रकार का लश्करी करार कायम हुआ। इस करार में दोनों राज्यों के दरम्यान ऐसा निश्चय हुआ कि इटली, जर्मनी और आस्ट्रीया में से यदि एक भी उनमें से एक पर भी आक्रमण करे तो दोनों राष्ट्रों को फौरन ही पहले किसी भी प्रकार की सूचना दिये बिना ही लश्कर भेजने की और सरहद पर भेजने की तैयारी करनी चाहिए। जर्मनी के खिलाफ लड़ाई में लश्कर भेजने की संख्या निश्चित हुई थी। भविष्य में जो परिवर्तन करनी थी उसके संबन्ध में भी निश्चय किया गया था। दो में से किसी भी एक राष्ट्र ने दूसरे से अलग रह कर किसी भी प्रकार की संधि न करने का भी निश्चय किया था और यह भी निश्चय हुआ था कि जबतक उन तीन राष्ट्रों की संधि कायम रहेगी तबतक इन दोनों राष्ट्रों की संधि भी कायम रहेगी।"

सन १९०४ में इंग्लैंड और फ्रान्स में संधि हुई और यह निश्चय किया गया कि फ्रान्स इंग्लैंड को (इजिप्त) मीसर देश में निर्विघ्न स्वतंत्र रहने दे और उसके बदले में इंग्लैंड को चाहिए कि वह फ्रान्स को मोरोक्को में सर्वथा स्वतन्त्र रहने दे। यह करार कुछ दिनों के 'मैत्री की ग्रन्थी' के तरीके पर पक्का किया गया। फ्रान्स और इंग्लैंड की यह संधि तो मैत्री की मर्यादा को भी पार कर गई। लड़ाई के बाद प्रकाशित हुए एक पुस्तक में ब्रिटिश लश्कर का प्रधान लार्ड फ्रेंच लिखता है "अब तो संसार यह जान गया है कि एक बड़े अरसे से ग्रेटब्रिटन और फ्रान्स के लश्कर के मुख्य प्रधान सलाह मशवरा कर रहे थे और उनमें यह करार पाया था कि यदि अमुक घटना हो तो दोनों को एक साथ मिल कर काम करना चाहिए......यह निश्चय हुआ था कि ब्रिटिश लश्कर फ्रेंच लश्कर की बांह और व्यूह रचना करे और जुदे जुदे दलों के उतरने के लिए मोबाज और साकाटो के बीच के प्रदेश में स्टेशन भी मुकर्रर किये गये थे। यह निश्चय किया गया था कि साकाटो में लश्कर की बड़ी छावनी डाली जाय।"

इसी के संबन्ध में प्रसिद्ध लश्करी संवाददाता कर्नल रेपिंगटन लिखते हैं; "१९०६ में अंगरेज और फ्रेंच लश्कर के अधिकारीयों में सलाह मशवरा होना आरंभ हुआ और १९१४ तक अर्थात लड़ाई शुरू होने तक यह बराबर जारी रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश और फ्रेंच लश्करी अधिकारीयों में गाढ सहयोग हुआ और धीरे धीरे फ्रान्स में हमारा लश्कर के जाने के लिए जहाज, लश्कर और रेल्वे इत्यादि की योजना तैयार होती रही।"

(अपूर्ण)

वर्धा के आश्रम में

वर्धा में आ कर गांधीजी ने उपवास के दिनों में जो वजन गवाया था वह फिर प्राप्त कर लिया है। यह समाचार तो शायद पाठकों को दैनिक वर्तमान पत्रों के द्वारा भी मिल गया होगा। यहां पर सत्याग्रहाश्रम की शाखा में जिसके श्री. विनोबा संचालक है, उन्होंने निवास किया है। वातावरण की शान्ति के सम्बन्ध तो कहना ही क्या है? आश्रम शहर से दूर है और आश्रम के पास श्री जमनालालजी चोकीदार बन कर पडे हुए हैं इसलिए बिना काम के कोसी भी मनुष्य का वहां आना जाना नहीं हो सकता है। चारों ओर मीलों तक खेत और खुले हुए मैदान फैले हुए हैं—कभी कभी आने जानेवाली गाडियों का आवाज सुनाई देता है और बस यही कुछ शान्ति का भंग करता है।

लेकिन यह तो बाह्य शान्ति की बात हुई। आन्तर शान्ति में विक्षेप डालनेवाली एक भी बात नहीं है यह कहना काफी न होगा। यहां पर तो शान्ति को पुष्ट करने के ही सब साधन है। अपने नियत कार्य में सदा परायण रहनेवाले आश्रमवासी शान्ति के सिवा और क्या दे सकते हैं? सुबह चार बजे से रात के ८ बजे तक सब अपने अपने काम में लगे रहते हैं। प्रार्थना के समय अभी एक ही दिन गांधीजी बोले थे और वह भी अपनी ही इच्छा से। यहां प्रार्थना में भजन नहीं गाये जाते हैं क्यों कि विनोबा की वाणि में तो तुकाराम और रामदास होते ही है—लेकिन इसका कारण मैं अभीतक नहीं जान सका हूं। प्रतिदिन श्री. विनोबा प्रार्थना के बाद अपने अगाध ज्ञान भंडार में से एकाध वचन या मन्त्र ले कर उस पर प्रवचन करते है। उस प्रसादी का मैं अकेला ही उपभोग करूं इसके बनिस्बत क्या यह अच्छा नहीं है कि मैं नवजीवन के पाठकों को भी उसमें से हिस्सा दूं?

गीता में हिंसा है या अहिंसा?

गीताजी में अहिंसा कैसे हो सकती है? यह शंका केवल नवजीवन के पाठकों को ही नहीं होती है लेकिन यहां पर भी श्री. विनोबा से यह प्रश्न पूछनेवाले बहुत से मनुष्य हैं। जहां गीताजी का अभ्यास हो रहा है वहां मानों गीताजी के संबंध में केवल यही एक प्रश्न पूछने लायक है यह मान कर ही लोग अपनी जिज्ञासा की समाप्ति करते है। इस प्रश्न का श्री विनोबा ने जो उत्तर दिया था उसका सार मैं यहां देना चाहता हूं। इसी प्रश्न को ले कर गांधीजी ने जो लेख लिखा था वह तो पाठकों के स्मरण में अभी ताजा ही होगा। उसमें जो मुख्य बात कही गई थी उसी बात पर श्री विनोबा ने विस्तार से विवेचन किया है यह कहें तो भी यह ठीक ही होगा।

मेरा गीताभ्यास

आरम्भ में अपना गीताजी के विषय का प्रेम बयान करते हुए उन्होंने कहा: "शायद ही कोई दिन ऐसा जाता होगा कि जिस दिन मैंने गीताजी का उच्चार या विचार न किया हो। आज बारह साल हुए मेरा गीताजी का अभ्यास सतत जारी है। उपनिषद् तो है ही, उसमें से कुछ कम हासिल होता है यह बात नहीं लेकिन उसमें से थोडे ही लोगों को कुछ मिलता है। वेद है लेकिन वे गूढ है। वेद विशिष्टपावन अर्थात अमुक वर्ग को ही पावन करनेवाले हैं। लेकिन गीताजी तो विश्वपावन है। इसका अभ्यास अर्थात उसका पारायण करने का मेरा प्रयत्न इतना अधिक है कि यदि मैं यह कहूं कि मैं अपने किसी मित्र या व्यक्ति को जितना पहचानता हूं, उससे अधिक मैं गीताजी को पहचानता हूं तो यह ठीक ही होगा। इसलिए जब मुझसे यह प्रश्न पूछा गया कि गीताजी हिंसा का प्रतिपादन करती है या अहिंसा का, तो मुझे उत्तर देने में जरा भी विलम्ब न करना पडा, और यह बात ही ऐसी है कि यदि इसके बारे में मुझसे सैंकडों बार भी पूछा जाय तो भी मैं उससे ऊब न जाऊंगा।

मूल प्रश्न

व्यासमुनि ने गीताजी को उपनिषदों का दोहन करके तैयार किया है और उपनिषदों में अहिंसा के सिवा और दूसरी किसी भी बात का प्रतिपादन नहीं किया गया है इसलिए गीताजी में भी अहिंसा का ही प्रतिपादन हो सकता है। इस तर्क से तो इस बात का फौरन ही निर्णय किया जा सकता है लेकिन आइये, हमलोग उसका शास्त्रीय निरीक्षण भी करें।

गीताजी के विषय के सम्बन्ध में बहुतेरों को शंका होती है; क्योंकि उसका बाह्य परिवेष भ्रम में डालनेवाला है। यदि ऊपर ऊपर से ही देखा जाय तो उसका सारा ही परिवेष युद्ध का है और इसलिए मनुष्य यह अनुमान कर लेता है कि उसका विषय भी यही होगा। लेकिन जैसा नारियल का रूप है वैसी ही गीताजी भी है। जो नारियल को नहीं जानता है वह हरे नारियल को देख कर यह कैसे कह सकता है कि उसमें मृदु मिष्ट पदार्थ भरा हुआ है। उसका बाह्यावरण तो इतना कठिन है कि उसको तोडने में ही आप का पसीना छूट जाता है और यही बात गीताजी के सम्बन्ध में भी है। तुलसीदास और वाल्मीकि ने रामचन्द्रजी का जैसा वर्णन किया है—बाहर से वज्र तुल्य और अन्तर में शिरिष जैसे कोमल—केवल इसलिए ही नहीं कि उन्होंने सीताजी का त्याग किया था लेकिन उनका सारा ही जीवन ऐसा था—उसी प्रकार गीताजी में भी उसका आन्तर कोमल है और बाह्य स्वरुप कठोर है।

इसलिए हम उसके बाह्य स्वरुप का छेदन करके उसकी परीक्षा करें। अर्जुन को किस बात की कठिनाई है, वह भगवान कृष्ण के पास किस बात का निर्णय कराने के लिए गया था? इसीका विचार करें। उसके हृदय में क्या ऐसा प्रश्न हुआ है कि हिंसा योग्य है या अहिंसा? उसकी कठिनाई तो यह है:

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे।

युद्ध में स्वजनों को मारने से परिणाम में श्रेय नहीं होता है। और ये स्वजन भी कैसे? ऐसे वैसे नहीं। प्रत्येक वस्तु का अतिशय भी मित भाषा में वर्णन करनेवाले व्यासजी को भी उनका वर्णन करने के लिए ५–६ श्लोक देने पडे हैं। आचार्य, पितृ, मामा, साला और श्वशुर इत्यादि को सबको मारने से किस प्रकार 'सुखिनः स्याम माधव'? उसके दिल में यह प्रश्न उठा है। उसने पहले बहुतसी हिंसा की थी आज भी वह मारने योग्य शत्रु को छोडनेवाला न था लेकिन उसे तो सिर्फ अपने स्वजनों को देख कर मोह हुआ था और गात्र शिथिल हो गये थे।

यह सच है कि उसमें युद्ध के दोषों की बात की गई है, युद्ध से कुलक्षय, कुलक्षय से कुलधर्मनाश और स्त्रीयों का दूषित हो जाना इत्यादि सब परिणामों का वर्णन किया है लेकिन यह दलील तो ऐसी ही है जैसे कोई न्यायाधीश जो हमेशा से फांसी की सजा देता चला आया है वह जब उसका लडका खून करके गुन्हेगार बन के सामने आता है उस समय फांसी की सजा के विरुद्ध दलीलें करता है। फांसी की सजा करना बुरा है यह ज्ञान उसे पहले अपने जीवन में कभी न हुआ था लेकिन अब जब अपने ही लडके की बात आई है उस समय उसे मोह होता है और वह कहता है कि 'फांसी की सजा बुरी है, उसका परिणाम कुछ अच्छा नहीं होता है, गुन्हे कम नहीं होते हैं;

महात्मा गांधी भी यही कहते हैं।' इस प्रकार मोहाविष्ट मनुष्य भी अकसर अपने को रोचक मालूम होनेवाले शास्त्रों के प्रमाण देता है। परंतु हां; एक बात संभव हो सकती है। अपने पुत्र को सजा करने का प्रसंग ही उसकी आत्मा को जाग्रत करने का निमित्त बन सकता है लेकिन अर्जुन के बारे में यह बात न थी। उसने ऐसा एक भी शब्द न कहा था कि जिसका ध्वनि यह हो कि युद्ध निन्द्य वस्तु है या अहिंसा भिन्न वस्तु है इसलिए मैं उसका त्याग करना चाहता हूं।

और श्री कृष्ण ने भी क्या किया है? उन्होंने भी तो युद्ध विषयक दलील का कहीं उत्तर ही नहीं दिया है, उसकी चर्चा तक नहीं की है। कुलक्षय और कुलधर्मनाश, स्त्रीयों की दूषितता होने पर भी युद्ध कर्तव्य है यह भगवान ने कहीं भी नहीं कहा है। उन्होंने तो कहा था:

प्रज्ञावादांश्च भाषसे

अर्थात 'युद्ध और हिंसा अनुचित है यह बात तो सच है लेकिन तुम तो केवल वाद कर रहे हो, तुम तो सत्य वस्तु का अपने मोह को पुष्ट करने के लिए उपयोग कर रहे हो,' यह भगवान का कहना है। 'प्रज्ञावाद' कह कर के उन्होंने उस बात की यथार्थता और अर्जुन ने उसका जो दुरुपयोग किया था वह प्रकट कर दिया था।

यदि अर्जुन को युद्ध के प्रति वह युद्ध होने के कारण ही तिरस्कार पैदा हुआ होता तो भगवान ने उसको उद्देश करके जो इतर वचन कहे थे उसका भी वह योग्य उत्तर देता। भगवान ने तो उसको कहा था:

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।

अर्जुन यह उत्तर दे सकता था कि यदि मेरी अकीर्ति होगी तो भी मुझे उसकी परवा नहीं है। मुझे हिंसा नाम भी न चाहिए। भगवान ने अर्जुन की मनोदशा को 'क्लैब्यं' और 'क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं' कहा था। अर्जुन को यदि अहिंसा का सच्चा रंग लगा होता तो वह उत्साहपूर्वक यह कह सकता था कि नहीं, मैं तो सम्पूर्ण वीरता से और हृदयबल के साथ जागृतावस्था में यह कहता हूं कि मुझे यह युद्ध नहीं करना है। लेकिन वह तो स्वजनों की ही बात करता है, यही प्रश्न पूछता है कि पूजार्ह भीष्म और द्रोण को मैं क्यों कर मार सकता हूं? अहिंसा ही श्रेय है यह कह कर यदि उसने हिंसा का त्याग किया होता तो श्री कृष्ण को सारी गीता न कहनी पड़ती। लेकिन अर्जुन की हिंसा त्याग करने की इच्छा तो राजसी हो या तामसी, वह सात्विक न थी। उसके लिए युद्ध नियत कर्म था और यदि मोह के वश हो कर वह उसका त्याग करना चाहता हो तो वह त्याग तामस त्याग था।

'मोहात्तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः।

मोह से नियत कर्म का त्याग करना यह तामसकार्य है। दुःख होगा इस भय के कारण वह उसका त्याग करना चाहता था तो वह त्याग राजस त्याग था।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्॥

इन दोनों प्रकार के त्याग से श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को बचाना चाहते थे।

गीताजी में सारा प्रश्न ही तो मोह और मोह के निवारण का है। आरंभ ही में अर्जुन अपनी स्थिति का इस प्रकार वर्णन करते हैं:

'कार्पण्य दोषोपहतः स्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्म संमूढचेताः।'

और इस धर्म संमोह के नाश के लिए उसे सारी गीता सुना कर फिर भगवान उससे प्रश्न करते हैं:

'कच्चिदज्ञान संमोहः प्रणष्टस्ते धनंजय।'

क्या अब तुम्हारा अज्ञानजनित संमोह नष्ट हो गया? उसका अर्जुन स्पष्ट उत्तर देता है

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।'

इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर सारा मोह का ही प्रश्न सिद्ध होता है। युद्ध की कार्याकार्यता या हिंसा अहिंसा का तो उसमें प्रश्न ही नहीं है।

और तर्क के नियमानुसार भी जिस पूर्वपक्ष का उत्तर नहीं दिया जाता है उसका स्वीकार ही मान लिया जाता है। युद्ध से होनेवाली परंपरा की दलील को 'प्रज्ञावाद' कह कर के वह वस्तुतः सच है (यद्यपि अर्जुन के मुख में वह शोभा नहीं देती है) यही कहा गया है। लेकिन उसका कुछ भी उत्तर न देने में भी उसके स्वीकार का समावेश हो जाता है।

दूसरे प्रमाण

अब एक दूसरे प्रमाण पर आते हैं। आठवें अध्याय में कहा है:

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च'

इसका क्या अर्थ है? सर्वकाल मेरा अनुस्मरण कर और युद्ध कर; यह कहा है। तो क्या इसका अर्थ यह हो सकता है कि सर्वकाल कुरुक्षेत्र पर ही युद्ध किया कर? श्री भगवान ने तो इस प्रकार एक अनुमान वाक्य कह दिया है: मेरा स्मरण करते करते जिसका अन्तकाल होता है उसको परमगति मिलती है। सर्वकाल मेरा स्मरण रखने से ही अन्तकाल में मेरा स्मरण रहता है। परमगति प्राप्त करने के लिए सर्वकाल मेरा स्मरण कर।

इसीके साथ 'युद्ध कर' शब्दों को भी जोड़ दिया है। उसका अर्थ स्थूल युद्ध करें तो अनर्थ होगा। मेरा स्मरण कर और सदाकाल आसुरी सम्पत् के साथ युद्ध करता रहे यही अर्थ 'सर्व काल' शब्द का प्रयोग होने के कारण अभीष्ट मालूम होता है।

और अन्त में श्री भगवान ने जगह जगह जो सीधा उपदेश किया है उसको देखने से भी मालूम होगा कि उसमें अहिंसा का ही उपदेश है। ज्ञानी, भक्त या कर्मयोगी सभी के लिए एक ही बात कही है। दैवीसंपद् का वर्णन करते हुए अहिंसा का वर्णन तो किया है लेकिन 'अहिंसा'वाचक दूसरे गुणों का भी कथन किया है: जैसे अक्रोध, शान्ति, 'भूतेष्वदया' मार्दव, ह्री इत्यादि। क्षत्रिय के गुणों का वर्णन करते हुए 'युद्धेषु चाप्यपलायन' ही कहा गया है। युद्ध में निर्भय हो कर खड़े रहने को ही कहा है, युद्ध में मारना या संहार करना नहीं कहा गया। सतरवें अध्याय में त्रिविध तप का वर्णन करते हुए शारीर तप में 'अहिंसा का, वाङ्मय तप में अनुद्वेग कर वाक्य' का (अर्थात् अहिंसा का) और मानसतप में भी 'मनःप्रसादः सौम्यत्व' का (अर्थात् अहिंसा का ही) निर्देश किया गया है। अपने को सब से अधिक प्रिय भक्तों के लक्षणों का वर्णन करते हुए उसका आरंभ ही

अद्वेष्टा सर्व भूतानाम्

से करते हैं और अन्त में

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः

यह कह कर फिर से अहिंसा की ही पुनरुक्ति करते हैं।

अब टीकाकारों का भी विचार करें और यह इसलिए नहीं कि उनका ही कहना प्रमाण है लेकिन यह जानने के लिए कि उनका उनका क्या अभिप्राय है और अपने अर्थ का समर्थन करने में वे अनुकूल

द० आ० की समस्या

वार्षिक मूल्य ४)
छमाही का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १९

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, पौष सुदी १०, संवत् १९८२ गुरुवार, २४ दिसम्बर, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

गुणों को छिपाना चाहिए

एक महाशय लिखते हैं:

'आपके उपवास और दूसरे प्रायश्चित और प्रार्थनाओं के सबंध में मेरा ख्याल है कि उस में कोई न कोई त्रुटी अवश्य रह जाती है और यही सबब है कि उनका योग्य परिणाम नहीं आता है। इस प्रकार के त्यागों का यदि परिणाम लाना हो तो उनका विज्ञापन नहीं करना चाहिए और जहां तक हो सके उसे चुपचाप और छिपा कर ही करना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है कि गुणों को छिपाना चाहिए और पापों को जाहिर करना चाहिए।'

पत्र लिखनेवाले महाशय जो कहते हैं उसमें बहुत कुछ सत्य है। अब स्वयं मेरे उपवास, प्रायश्चित और प्रार्थनाओं के संबंध में; उनमें से कुछ तो अवश्य ही जाहिर होंगे क्यों कि सार्वजनिक परिणाम लाने के उद्देश से ही वे किये गये होते हैं। लेकिन मैं बडी कठिनाई में काम कर रहा हूं। जिसे मैं छिपाना चाहता हूं उसे भी मैं नहीं छिपा सकता हूं। इसलिए मुझे तो मेरे मार्ग का अनुसरण करना चाहिए और इस परिस्थिति में प्रायश्चित्तों से मुझे जो कुछ सान्त्वना मिल सके प्राप्त करना चाहिए। यदि मैं अपने लिए इतना ही प्रमाण दे सकूं कि मैं अपने खानगी प्रायश्चितों को जाहिर करना नहीं चाहता हूं तो यही बस होगा। सार्वजनिक प्रायश्चितों के सम्बन्ध में मुझे उसकी सूक्ष्म योग्यता के बारे में कोई सन्देह नहीं है और इसलिए यदि मैं शीघ्र ही उसका परिणाम न देख सकूं तो इसमें मेरा क्या बिगडता है? यदि प्रत्येक अच्छे या बुरे कार्य का परिणाम फौरन ही मिल जाया करे तो श्रद्धा जैसी वस्तु का कुछ भी मूल्य न रहेगा। परिणामों का अनिश्चित स्वरूप ही मनुष्य की कसौटी करता है उसे नम्र बनाता है और उसकी सच्चाई और श्रद्धा की परीक्षा करता है।

अनुकरणीय

पाठक जानते हैं कि श्री शेख कुरैशी ईमाम के प्रतिनिधि मण्डल के साथ अरबस्तान गये हुए हैं। उन्होंने मुझे चरखा संघ के लिए इस महिने का सूत भेजा है। यदि संघ के सभी सभासद उनका अनुकरण करेंगे और वे चाहे कहीं हों किसी भी स्थिति में क्यों न हों अपना सूत भेजते रहेंगे तो संघ बडा प्रभावशाली बन जायगा और जिस कार्य के लिए उसका आरंभ किया है वह सफल होगा। एक साथ या किसी के जरिये रुपये का चन्दा भेजना आसान है लेकिन अपनी मिहनत से तैयार की हुई चीज समय समय पर देने के लिए सुव्यवस्थित दिमाग चाहिए और उसके लिए चिन्ता रखनी पडती है। मैं आशा करता हूं जिस प्रकार श्री. शेख कुरैशी अपनी जवाबदारी समझते हैं उसी प्रकार संघ के दूसरे सभासद भी समझेंगे।

एक अमेरिकन का संतोष

जब कितने ही कुछ हिन्दुस्तानी मित्र अमरिका का निमंत्रण स्वीकार न करने के लिए मुझ पर झिडकी बरसा रहे हैं, एक अमरिकन मित्र जो हिन्दुस्तान को अच्छी तरह समझते हैं लिखते हैं:

"इस देश में आने के लिए अमरिकन मित्रों के निमन्त्रण का आपने जो उत्तर दिया है उस पर मैं क्या अपना संतोष जाहिर कर सकता हूं? मुझे आशा है कि आप इसी बात पर कायम रहेंगे क्योंकि आप हिन्दुस्तान में रह कर ही हमें बहुत लाभ पहुंचा सकेंगे। हमारे अच्छे से अच्छे लोगों में भी अपनी जिज्ञासा तृप्त करने के लिये प्रयत्न करने की आदत है और आप उसके भोग हो पडे यह मुझे बिलकुल ही पसन्द नहीं है।"

मैं इस अमेरिकन मित्र को यह यकिन दिला सकता हूं कि वे ऐसा कोई भय न रक्खें कि मैं ऐसी व्यर्थ जिज्ञासा तृप्त करने के लिए अमरिका जाऊंगा। मेरे मन में तो यह बात स्पष्ट बैठी हुई है कि जबतक मैं भारतवर्ष में ही अपनी स्थिति दृढ नहीं कर लेता हूं तबतक मैं अमरिका या यूरोप जा कर भी पश्चिम की या पूर्व की कुछ भी सेवा न कर सकूंगा।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

आश्रम भजनावली

पांचवी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३१० होते हुए भी कीमत सिर्फ ०—२—० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०—३—० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी। १० प्रतियों से कम प्रतियों की वी. पी. नहीं भेजी जाती।

वी. पी. मंगानेवाले को एक चौथाई दाम पेशगी भेजने होंगे।

व्यवस्थापक, हिन्दी–नवजीवन

'मेरा धर्म'

मेरे ऐसे बहुत से मित्र हैं जो मुझे 'मेरा धर्म' बताते हैं। मुझे उनकी यह बात पसंद है। वे मुझे बिना हिचकिचाहट के लिखते हैं यह उनका मेरे प्रति प्रेम, और मुझे उससे दुःख न होगा यह उनका विश्वास साबित करता है। ऐसा एक पत्र मुझे अभी मिला है। लिखनेवाले प्रसिद्ध गुजराती कार्यकर्तागण और अपने प्रदेश के नायक हैं। पाठक यह तो सहज ही में समझ लेंगे कि उनका यह पत्र सद्भाव से प्रेरित हो कर लिखा गया है। इस लिए मैं उस पत्र को कुछ घटा कर के यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ:

'पूज्यभाव से वंदन करते हुए हमलोग आपकी सेवा में हमारे विचार के उपस्थित हो रहे हैं।

१ आज आपकी प्रवृत्ति के सम्बन्ध में जनता में और नेताओं में अनेक मतभेद दिखाई दे रहे हैं:

(क) 'असहयोग' की भरती उतर गई है और अब उसकी ओट का समय है और कुछ स्थानों में तो दिशा भी बदल दी गई है।

(ख) प्रजा में खादी के सम्बन्ध में बहुत ही थोडा प्रेम दिखाई देता है।

(ग) 'कातने और पींजने का कार्य' कुछ स्थानों में सम्पूर्ण और कुछ स्थानों में तो बहुतांश में बन्ध सा हो गया है।

(घ) 'हिन्दू-मुसलमान ऐक्य' का इष्ट परिणाम आने के बदले कुछ स्थानों में तो उसका अनपेक्षित विपरीत परिणाम ही दिखाई दिया है और कुछ जगहों में तो पहले से भी अधिक विरुद्धता बढी हुई है।

(ङ) 'अस्पृश्यतानिवारण' के लिए हार्दिक और अथसाध्य प्रयत्न किये गये, फिर भी उससे कुछ अधिक श्रेय सिद्ध नहीं हो सका है।

(च 'स्वराज प्राप्ति' के प्रयत्नों से भी नेताओं में संगठन होने के बदले अनेक विभाग हो रहे हैं।

अर्थात् आपका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक बल बहुत कुछ खर्च हो गया है और उसका खर्च अब भी हो रहा है। लेकिन बहुतसे लोगों को उसका वृथा व्यय होता हुआ मालूम होता है।

२ कारण चाहे कुछ भी हो — प्रजा का दुर्भाग्य हो किंवा समय ही न आया हो, या यह प्रजा ईश्वर की इतनी कृपापात्र न बनी हो, आपके अविश्रान्त प्रयत्नों का इष्ट फल नहीं आ सका है। इस से हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि आप की प्रवृत्ति से केवल हानि ही हुई है। जनता में नया जीवन आ गया है और दूसरे काम भी हुए हैं लेकिन हमलोग हानि-लाभ का परिमाण नहीं निकाल सकते हैं।

३ आज भारतवर्ष में अनेक नेता हैं लेकिन यह बात सच है कि समस्त जनता एक आप ही के प्रति जितना प्रेमभाव रखती है और उसके कारण आप से जितनी आशा रखती है उतना और [illegible] है; इसलिए आपके बलमयी का हिन्दुस्तान [illegible] ही बचे हो तो उसका परिणाम की सेवा में और [illegible] ही हमलोग हमारा यह विचार अधिक शुभ होगा यह मानकर आपके चरणों में धरते हैं: [illegible] भारतवर्ष का किनारा छोड

“एकाध साल के लिए [illegible] फ्रिका का प्रवास कर आवें” कर आप युरोप या अ[illegible] के कारण भारत के रंग से [illegible] बहुत से वर्षों के [illegible] हुई है उसे दूर करने के लिए पूर्व के [illegible] की आई [illegible]

सीधे सादे और सरल उपाय असफल साबित हुए हैं अथवा बहुत ही कम परिणाम ला सके हैं। इसलिए दूसरे अधिक फलदायक और संभवनीय उपायों का शोध कर के उनकी आजमाइश करने की जरूरत है। इसलिए आप जैसी महान् व्यक्ति के लिए यही उचित है कि आप अमरिका जैसे देश के निमंत्रण को स्वीकार कर के कुछ समय के लिए उस भूमि में जा कर लौट आवें। अथवा आफ्रिका का क्षेत्र तो तैयार ही है। मालूम होता है वहाँ अधिक परिणाम लाया जा सकेगा।

४ अमरिका जैसे देश के प्रवास में ये लाभ हैं:

(१) उस देश के महापुरुषों को जिनको आपके प्रति सद्भाव है अपनी जिज्ञासा तृप्त होने के कारण शान्ति और सुख मिलेगा।

(२) धार्मिक विषयों में अन्य देशों को भारतवर्ष से ही कुछ सीखना होगा। इस दिशा में विवेकानन्द आदि ने जितना कार्य किया है उसमें कुछ वृद्धि की जा सकेगी।

(३) आपके प्रवास दरम्यान आपका वहां के नेताओं से प्रधानों से और राष्ट्रीय तथा प्रजाकीय अनेक नेताओं से समागम होगा और उसमें एक दूसरे के हृदयों को खोल कर अधिक विचार करने का अवसर प्राप्त होगा।

(४) विदेशी जनता को भारतवर्ष की जनता की सच्ची स्थिति का सच्चा वर्णन आप जैसे विश्वासपात्र स्थान से प्राप्त होने के कारण, वे उसे अच्छी तरह समझ सकेंगे। और अधिकारयुक्त स्थान की तरफ से जो पडदा डाल देने की कोशिश हो रही है वह खुल जाने से भारत के भावी के लिए आपने जो योजना तैयार की है उसमें एक प्रकार की महान शक्ति मदद कर सकेगी।

(५) पश्चिम की तरफ से हिन्दुस्तान के लिए तन, मन, और धन तक समर्पण करनेवाली और सद्भाव रखनेवाली व्यक्तियां आपका साथ देंगी।

(६) 'अहिंसात्मक असहयोग' अथवा 'अहिंसा' और 'सत्याग्रह' के अस्त्रों पर पाश्चात्य जनता का जो मोह है वह आपके प्रत्यक्ष समागम के कारण अधिक पुष्ट होगा और वह भारत को बडा लाभप्रद होगा।

५ अन्तमें अब हम एक अति आवश्यक वस्तु पेश करने की इजाजत चाहते हैं और वह यह कि 'हाथकताई और बुनाई के अलावा खादी पहनने से भी अधिकांश श्रेय होता है। और इस सत्य सिद्धान्त के प्रचार के लिए प्रत्येक तालुके में एक खादी की दूकान खोलने की आवश्यकता है, अन्यथा कुछ थोडे ही समय में खादी के बिलकुल ही अदृश्य हो जाने का भय है।"

यद्यपि यह पत्र सद्भाव से लिखा गया है और प्रथम पढने पर उसकी दलीलें सही मालूम होती हैं फिर भी मैं इन भाइयों की सलाह के मुताबिक काम नहीं कर सकता हूँ।

धर्मशास्त्र ढोल बजा कर यही कहते हैं कि विगुण हो तो भी स्वधर्म ही अच्छा होता है। परधर्म उससे बढ कर क्यों न हो लेकिन स्वधर्म में रह कर मृत्यु से भेंट करना भी उचित है। परधर्म तो भयावह है। आज मेरी बात लोगों को भले न मालूम होती हो तो क्या मैं उसे छोड कर भाग जा सकता हूँ? 'असहयोग' को शुरू करनेवाला मैं अकेला ही तो साक्षी था। मैं यह भी नहीं जानता था कि उसका सत्कार कैसा होगा। मैंने जिसे धर्म समझा उसीके अनुसार कार्य किया और दूसरों को भी वही कार्य करने के लिए निमन्त्रण दिया। बहुत से लोग उसके प्रति आकर्षित हुए। यदि आज उनको उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं है तो उससे मेरा क्या बिगडा? क्या इसलिए मुझे अपना धर्म छोड देना चाहिए?

हिन्दी-नवजीवन
गुरुवार, पौष सुदी १०, संवत १९८२

दक्षिण आफ्रिका की समस्या

दक्षिण आफ्रिका का प्रतिनिधि मण्डल जो कागजपत्र अपने साथ लाया है उसे जितना अधिक पढ़ते हैं उतनी ही अधिक यह समस्या मुश्किल मालूम होती है। डा. मेलन का ख्याल है उन्होंने जिस कानून को करना चाहा है उससे १९१४ के गांधी–स्मट्स समझौते का कहीं भी भंग नहीं होता है। उनके पास जो प्रतिनिधि मण्डल गया था उसके नेता श्री जेम्स गोडफ्रे ने जो आज प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य की हैसियत से हिन्दुस्तान आये हुए हैं, इसका सफलतापूर्वक विरोध किया था। इस समझौते में सत्याग्रह या उस समय जो पॅसिव रिजिस्टन्स के नाम से प्रसिद्ध था उस युद्ध का जिन जिन विषयों के साथ सम्बन्ध था उन विषयों का अन्तिम निर्णय किया गया था। रंगभेद या जाति भेद के आधार पर बनाये जानेवाले कानूनों को सदा के लिए रोकने के लिए ही वह युद्ध किया गया था। उन ८ वर्षों में जबतक कि युद्ध चलता रहा यह मुख्य बात एक मरतबा ही नहीं लेकिन बार बार जाहिर की गई थी। युद्ध में ऐसा समय भी आया था कि जब जनरल बोथा और जनरल स्मट्स केवल इस बात पर महत्व की तमाम बातों को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गये थे कि भारतीय जातिभेद के उस विरोध को छोड़ दें जिसे वे (जनरल बोथा और जनरल स्मट्स) केवल भावुकता के कारण ही किया गया विरोध मानते थे। उसके बाद १९०८ से युद्ध मुख्यतः इसी एक विरोध को ही केन्द्र मान कर चलता रहा। जनरल बोथा ने उस समय यह जाहिर भी किया था कि इस बात पर दक्षिण आफ्रिका की कोई भी सरकार जरा भी पीछे न हटेगी। और उन्होंने यह भी कहा था कि युद्ध को अब आगे और चलाने में हिन्दुस्तानी लोग हवा को लातें लगाने का ही काम कर रहे हैं। इसलिए यह बात तो निश्चित ही है कि समझौते का सार ही यह था कि भारतीयों से संबंध रखनेवाले किसी भी कानून में जातिभेद के तत्व को किसी भी प्रकार से स्थान नहीं दिया जा सकता है लेकिन इधर तो डा. मेलन के बिल के एक एक वाक्य से जातिभेद के तत्व की ही बू आती है।

इसलिए मेरे नम्र अभिप्राय के अनुसार तो इस मामले में इस बिल से उस समझौते का भंग होता है। इसके अलावा भारतीयों के संबंध में कानून बना कर नयी रुकावटें खड़ी करने के विरुद्ध ही तो वह युद्ध किया गया था। वह समझौता भारतीयों के अधिक अच्छे भविष्य के मंगलाचरण रूप था। पत्रव्यवहार में तो यही बात कही गई है। समझौते का अर्थ क्या हो सकता है? आज यदि सरकार की एक इच्छा मात्र से ही भारतीयों पर अंकुश रक्खा जा सकता है तो भारतीयों के हकों पर फिर कभी आक्रमण न होगा इसका क्या यकीन हो सकता है? आठ साल के युद्ध के बाद जिसमें हजारों भारतीयों ने बड़ी तकलीफ उठाई थी और जिसमें कुछ लोगोंने और अच्छे लोगोंने अपनी जान भी गमाई थी, वह समझौता एक अनिच्छुक सरकार को मजबूर कर के करा लिया गया था। उस समझौते की कीमत ही क्या हो सकती है जिससे आज एक झगड़े का तो अन्त होता है लेकिन दूसरे ही दिन दूसरा झगड़ा खड़ा हो जाता है? क्या वर्तमान कानूनों का अमल उनके वर्तमान हकों के प्रति पूरा ध्यान देकर इसीलिए किया जाता था कि उन पर नये कानून बना कर आक्रमण किया जाय? डा. मेलन की दलील ऐसी ही मालूम होती है और उनका समझौते का अर्थ भी ऐसा ही प्रतीत होता है। मंत्री की इस दुःखद दलील में इतनी बात संतोषजनक अवश्य है कि वे समझौते का इन्कार नहीं करते हैं लेकिन यह कहते हैं कि उनके बिल से उसका भंग नहीं होता है। इसलिए यह ख्याल किया जा सकता है कि यदि यह साबित हो सके कि बिल से समझौते का भंग होता है तो वह बिल दूर कर दिया जायगा।

लेकिन किसी समझौते के अर्थ के संबंध में जब दोनों पक्षों में मतभेद हो तो क्या करना चाहिए? उसका साधारण उपाय तो सभी जानते हैं लेकिन मैं दक्षिण आफ्रिका की ऐसी ही दो पहले की घटनाओं का उल्लेख करूंगा। १८९३ की साल के लगभग ट्रान्सवाल में प्रवासी भारतवासियों के हकों के सम्बन्ध में दक्षिण आफ्रिका (ट्रान्सवाल) की रिपब्लिक में और ब्रिटिश सरकार में कुछ मतभेद था। उनमें एक प्रश्न १८८५ के ३ कानून के अर्थ के सम्बन्ध में भी था। दोनो पक्षों की रजामन्दी से इसका निर्णय करने का कार्य एक सरपंच को मुकर्रर करके उसे सौंपा गया था। ऑरेन्ज फ्री स्टेट के मुख्य न्यायाधीश मेल्विल डी. वीलिअर्स सरपंच बनाये गये थे। दूसरा ऐसा ही मतभेद वेरीनिजीन की संधि के अर्थ के संबंध में ट्रान्सवाल सरकार के प्रतिनिधि जनरल बोथा और ब्रिटिश सरकार में उत्पन्न हुआ था। मेरा ख्याल है कि उस समय सद्गत सर हेनरी केम्बेल बेनरमेन ने यह निर्णय दिया था कि कमजोर पक्ष अर्थात् ट्रान्सवाल सरकार उसका जो अर्थ करे वही स्वीकार किया जाना चाहिए और बिना पंच के या किसी दूसरे प्रयत्न के ही लार्ड किचनर के खिलाफ ब्रिटिश सरकार ने जनरल बोथा के अर्थ का स्वीकार किया था। क्या डा. मेलन इनमें से किसी भी एक उदाहरण का अनुसरण करेंगे या शेर और बकरे की कहानी में जिस प्रकार शेर कहता है उसी प्रकार वे भी यही कहेंगे उनकी ही बात हमेशा सच्ची होती है? कुछ भी हो जब डा. मेलन १९१४ के समझौते का स्वीकार करते हैं तो दक्षिण आफ्रिका के भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का पक्ष बहुत ही मजबूत है।

वायसरॉय के समक्ष पेश करने के लिए तैयार किये गये अपने इजहार में उन्होंने अपना पक्ष बड़ा ही मजबूत किया है। जिन तकलीफों का उन्होंने उसमें जिक्र किया है उनका १९१४ के समझौते की दृष्टि से उन्होंने कोई विशेष विचार नहीं किया है क्योंकि डा. मेलन ने उन्हें यह कहा था कि उनके बिल से समझौते का कोई भंग नहीं होता है। लेकिन यह मामला ऐसा है कि उसे आसानी से नहीं छोड़ा जा सकता है। उनका काम निःसन्देह बड़ा ही मुश्किल है। एक तरफ दृढ़ सरकार है और वह जातिभेद के तत्व के आधार पर कानून बनाये जाने का निश्चय किये हुए है। तमाम यूरोपियन लोग इस प्रश्न पर एकमत हैं। श्री एण्ड्रयूज कहते हैं कि जनरल स्मट्स का भी अपना प्रभाव सरकार के पक्ष में है। लेकिन मुझे इससे आश्चर्य नहीं होता क्यों कि उन्होंने हमेशा जिधर की हवा देखी उधर ही मुख फेरने की नीति अख्तियार की है। यह उनकी खासीयत है और इसलिए उन्हें 'स्लीम जेनी' का नाम मिला है। लेकिन सत्य तो भारतीयों के पक्ष में ही है। यदि उन्होंने सिद्धान्त में एक इंच भी पीछे न हटने का दृढ़ निश्चय किया है तो उनकी जीत अवश्य ही होगी।

डा. मेलन ने जेम्स ओडके से इस कानून के सिद्धान्त को स्वीकार करके उसकी शर्तों के सम्बन्ध में बहस करने के लिए और जिसे वे कार्यात्मक सूचनायें कहते है वैसी सूचनायें करने के लिए कहा था लेकिन यह खुशी की बात है कि उन्होंने निश्चयपूर्वक इस जाल में फंसने से इन्कार किया। भारतवर्ष कमजोर है फिर भी इसमें उससे जो कुछ भी मदद हो सकेगी वह करेगा। सभी पक्षों की उन्हें मदद होगी। वे हिम्मत रखें और युद्ध करते रहें।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

धन मौके पर

महासभा का आगामी सम्मेलन उसके इतिहास मे निराला ही होगा। राष्ट्र की तरफ से अधिक से अधिक जो सम्मान और गौरव प्रदान किया जा सकता है वह एक भारतीय स्त्री को पहली ही मरतबा मिलेगा। चाहे हम लोग घृणापात्र हों, गुलाम हों, लाचार हों और इसलिए चाहे दुनिया हमारी राष्ट्रीय सभा का कुछ भी ख्याल न करे फिर भी हमारे लिए तो हमारी इस सभा का सभापतित्व ही सब कुछ होना चाहिए। ऐसा अनुपम गौरव प्राप्त करने का उनका हक है और आज उन्हें वह प्राप्त होगा। श्रीमती सरोजिनी नायडू कवि होने के कारण संसार मे प्रसिद्ध है। जब से वे सार्वजनिक कार्य मे भाग लेने लगी है उन्होंने उसे कभी नहीं छोडा है। उनके पास जो चाहे जा सकता है। राष्ट्र उनसे जो कुछ सेवा मांगे वह सेवा करने के लिए वे सदा ही तत्पर रहती है। ऐसा ही उनका ध्येय है। उनके चहेरे मे ही शौर्य और साहस प्रकट होता है। १९२१ के बंबई के दंगे के समय वे निर्भय हो कर बंबई की गलियों में जाती थी और दीवाने लोगों की भीड को उनके अन्धे जोश के कारण बुरा भला भी सुनाती थी। यदि खबर मिलने पर फौरन ही आवश्यकता हो तो अपनी तन्दुरस्ती का जोखम उठा करके भी किसी भी काम के लिए तैयार हो जाना त्याग है तो वे भी बहुत बडा त्याग करने के लिए शक्तिमान है। जो लोग उनकी आफ्रिका की यात्रा में उन के साथ थे उन्होंने मुझसे कहा है कि वे बडी कठिन परिस्थिति में भी अविश्रान्त परिश्रम करती थी — वह इतना परिश्रम करती थी कि बहुत से युवक भी देख कर शरमा जाते थे। दक्षिण आफ्रिका में उन्होंने जो कार्य किया उससे वे उन गुणों की ही प्रतिनिधि साबित हुई है। नूतन परिस्थिति मे और कुशल राजनीति विशारदों में भी वे अपने कार्य के योग्य साबित हुई थी। यदि उनकी यात्रा से अपने कष्ट पीडित देशवासियों को कुछ राहत न मिली तो उसका कारण कोई उनकी अयोग्यता नहीं है बल्कि उससे तो यही सिद्ध होगा कि यह समस्या कितनी कठिन है। इससे अधिक और कोई भी कुछ न कर सकता था। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि कर्तव्य का भंग किये बिना हम लोग सरोजिनी नायडू के इस हक को छुपा नहीं सकते है। गत वर्ष हम लोगों ने यह किया सही बस था।

इसलिए यह हमारा कर्तव्य है कि हमसे जितना भी बन पडे हमें उनकी मदद करनी चाहिए ताकि उनका कार्य आसान हो जाय और उनका बोझ हलका हो। उनके सामने बडे नाजुक और कठिन प्रश्न पडे हुए है। उनके यहां गिनने की जरूरत नहीं है। वे प्रश्न भीतरू भी है और बाह्य भी हैं। यदि हम उन्हें घर ही में से हटाव कर दूर कर सकें तो तीन चौथाई लडाई को हमलोग जीत लेंगे।

घरेलू मामलों में तो स्त्री ही: सब से अधिक कुशल अधिकारिणी है। इसलिए क्या हमारे घर की कठिनाइयों को दूर करने में जिनमें पुरुष लोग असफल हुए हैं। सरोजनी देवी सफल होंगी? वे स्त्री हैं फिर भी यदि हम उनकी मदद न करेंगे तो वे सफल न हो सकेगी। हरएक महासभावादी को इसको हल करने में अपना पूरा हिस्सा देना अपना कर्तव्य समझना चाहिए। बाह्य कठिनाइयों को तो कुशल व्यक्तियां आप देख लेंगी लेकिन हम सभी घरेलू मामले हल करने में कुशल हैं या हमें सभी को कुशल होना चाहिए। हम लोग सब शान्ति के लिए और आपस के झगडे और युद्ध को बन्द करने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं, हमलोग सब स्वदेश-प्रेमी बन सकते हैं और संकुचितता छोड सकते हैं। हम लोग प्रस्ताव कर के अपना जो कर्तव्य निश्चित करें उसे प्रामाणिकता के साथ पूरा कर सकते हैं। हमारे सहयोग के बिना श्रीमती सरोजिनी कुछ भी नहीं कर सकती है। हमारी सहायता पाने से वे वह कार्य कर सकेंगी जिसके कि लिए वे स्त्री और कवि होने के कारण विशेष प्रकार से योग्य हैं। ईश्वर उन्हें अपने कठिन कर्तव्य को पूरा करने के लिए शक्ति और बुद्धि प्रदान करें।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

लडाई कैसे सुलगी ?

पहले के एक अङ्क में लडाई के सुलगने के आर्थिक कारण दिखाये गये थे। अब यह उसका दूसरा विभाग है। इसमें लडाई करने के संकल्प ने-युद्धवाद ने क्या किया है उसका स्पष्ट उल्लेख है। मि. पेज के लेख का सार ही दिया जा रहा है:

लोभ के प्रमाण में लडाई के साधनों की वृद्धि

यूरोपीय शक्तियों को सब को अपना अपना साम्राज्य बढाने का जो लोभ लगा हुआ था उसका सही सही अन्दाज तो हम तभी लगा सकते है जब कि हम यह देख लें कि उन्होंने प्रत्येक ने अपने इस लोभ को तृप्त करने के लिए युद्ध के साधन बढाने पर कितना विश्वास रक्खा था। लडाई के औचित्य और परिणाम के संबंध मे किसी को कुछ भी सन्देह न था और धमकी दे कर निश्चित किये हुए मुल्क को प्राप्त करने की नीति अख्त्यार की जाती थी। इसलिए संस्थानों के बढाने के लोभ के युग के साथ ही साथ लडाई के साधन बढाने के युग का भी आरंभ होता है।

जुदे जुदे देश और राष्ट्र लडाई की कैसी और कितनी तैयारी कर रहे थे यह 'बेकर्स ट्रस्ट कंपनी (न्यूयोर्क)' की तरफ से प्रकाशित की गई एक पुस्तक को देखने से मालूम हो सकेगा। फ्रान्स और जर्मनी के दरम्यान प्रथम १८७१ में लडाई हुई थी और फिर १९१४ मे दूसरी लडाई हुई। इन दोनों लडाइयों के दरम्यान के ४० वर्षों में यूरोप के राज्यो ने ४५ अरब डालर की कीमत का सुवर्ण अपनी जलसेना या स्थलसेना में खर्च किया था— अर्थात साल में एक अरब से भी अधिक खर्च किया था यूरोप के बडे बडे राज्यो ने इस शस्त्र-रक्षित शान्ति के युग में कितने अरब डालर खर्च किये थे उसके अंक इस प्रकार हैं:

		जल सेना	स्थल सेना	कुल	अरब डालर
१	फ्रान्स	२.४	६.१	८.५	,,
२	ग्रेटब्रिटन	४.१	४.३	*८.४	,,
३	रशिया	१.४	६.१	+७.५	,,
४	जर्मनी	१.७	५.७	७.४	,,
५	इटली	०.८	२.२	३.०	,,
६	आस्ट्रीया-हंगरी	०.३	२.४	२.७	,,
		१०.७	२६.८	३७.५	अरब डालर

* इसमें बोअर लड़ाई में जो एक अरब डालर खर्च किया गया था वह नहीं गिना गया है. † इसमें जापान की लड़ाई में खर्च किये गये एक अरब डालर नहीं गिने गये हैं

इस प्रकार ४१ साल के कुल खर्च में फ्रान्स, ग्रेटब्रिटन और रशिया जर्मनी से बढ़ जाते हैं। स्थलसेना में जर्मनी का तीसरा नम्बर है

यह तो ४१ वर्ष का खर्च है। १९०० से १९१३ के दरम्यान इन राज्यों ने जो रुपये खर्च किये हैं वे भी जानने लायक हैं। पुस्तक में तो प्रत्येक वर्ष के खर्च के अंक दे कर यह दिखाया गया है कि सन १९०० में इन देशों ने जितना खर्च किया गया था उसके मुकाबले १९१३ में दूना खर्च किया गया था और कुछ में तो तिगुना भी किया गया था।

इन सब अंकों को देने में बड़ा विस्तार होगा। यहाँ पर सन १९०० के सन १९१३ के और कुल १४ साल के अंक दिये जाते हैं। सभी अंक करोड़ पौंड में हैं।

	जर्मनी		रशिया		ग्रेटब्रिटन	
	जल	स्थल	जल	स्थल	जल	स्थल
१९००	.८	३.२	.९	३.५	२.९	९.'+
१९१३	२.३	५.८	१.४	६.१	४.४	२.८
कुल १४ वर्ष के अंक	२१.४	५५.३	१७.१	६३.६	४९.९	५९.८

	फ्रान्स		आस्ट्रीया		इटली	
	जल	स्थल	जल	स्थल	जल	स्थल
१९००	१.४	२.६	.१	१.६	.४	.९
१९१३	१.८	५.०	.५	२.२	१.१	२.९
कुल १४ वर्ष के अंक	१९.६	४६.४	४.६	२८.१	९.५	१९.३

	जापान		अमरिका	
	जल	स्थल	जल	स्थल
१९००	.९	.७	१.२	३.१
१९१३	.९	.९	२.७	३.३
कुल १४ वर्ष के अंक	८.८	१०.९	३२.२	११.२

+यह खर्च कम मालूम होता है क्योंकि इनमें सन् १९०० के अंक में बोअर लड़ाई के खर्च के अंक भी शामिल हैं।

युद्ध ही युद्ध

इन अंकों पर से यह बात मालूम हो सकेगी कि प्रत्येक देश ने लड़ाई के साधन तैयार करने में कोई बात उठा न रक्खी थी। लेकिन इसके अलावा उनके विचार और वाणि भी इसी दिशा में कार्य कर रहे थे। जर्मनी के सेनाधिकारियों ने तलवार चलाने की कैसी गर्वयुक्त बातें की थी उसका अब सारे संसार को पता है इसलिए उसके कुछ अधिक सुबूत देने की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन यह केवल उन्हीं का काम न था। सभी देश इसमें एक दूसरे से बढ़कर साबित हो सकते थे। अंग्रेज जल सेनाधिपतियों का अधिकारी लार्ड फिशर बोलने में किसी भी बात की कमी न रखता था। १९१० में उसने कहा था: 'यदि लड़ाई का आरंभ हो और उस समय मैं ही उसका मुख्य अधिकारी रहा तो मेरे तो यही हुक्म होंगे (१) लड़ाई करना अर्थात गरदनें काटनी है (२) लड़ाई में नम्रता दिखाना कायरपन है (३) पहला वार तुम्हीं करो, बराबर वार करो, चाहे जहां वार करो।'

लड़ाई के बाद लार्ड फिशर ने अपने जीवन के स्मरणों को प्रकाशित किये हैं। उसमें उन्होंने बादशाह को की हुई एक सूचना का उल्लेख है: 'सन १९०८ में भी जर्मनी के पास तो सिर्फ चार ही सबमेरीन थे। उस समय मैंने अपने राजा एडवर्ड को लिखा, उनके पास भी गया और उन्हें पिट के जितने ही दफा भी वह सुनाये थे कि जिनमें भावी शत्रु बहुत बलवान हो जाय उसके पहले ही उसे सीधा कर देने के उद्गार हैं। नेलसन ने कोपनहेगन के समीप किसी प्रकार की सूचना दिये बिना ही डेन्मार्क के जहाजी बेड़े पर हमला करके उसे नष्ट कर दिया था। यह कोई भलमनसी तो नहीं कही जा सकती है लेकिन युद्ध में भलमनसी कहाँ होती है? अब जर्मनों ने तो हमेशा से ही अपनी यह इच्छा प्रकट की थी कि इंग्लण्ड को ऐसा पराजित किया जाय कि उसे अपने बड़े से बड़े बेड़े को भी समुद्र में डालने में हिचकिचाहट मालूम हो। इसलिए जिस समय जर्मन बेड़े पर कब्जा कर लेने का अवसर मिला था उस समय मैंने बादशाह को बताया था उसी प्रकार आसानी से और शायद बिना खून बहाये ही उस पर कब्जा कर लेना बुद्धिमानी नहीं तो और क्या हो सकता है?'

सन १९१० में लार्ड एशर को लिखे हुए अपने एक पत्र में से भी लार्ड फीशर ने इसी बात का उल्लेख किया है: '९९ की हेग परिषद में मैंने कहा था कि यदि मेरा बस चले तो मैं तो कैदियों को सताते हुए तेल की कड़ाई में डाल कर उनकी जान लूं और दुश्मनों के निर्दोष मनुष्यों को भी उनके कलेजे से घास की तरह काट डालूं। यह कहने में शायद मैं कुछ अधिक बोल गया हूंगा लेकिन लड़ाई में उतरने के बाद दुश्मनों को त्राहि त्राहि पुकारने पर मजबूर न करें तो इससे बढ़ कर और हमारी बेवकूफी ही क्या हो सकती है? लड़ाई छिड़ जाने पर जो जितनी लूट उसकी उतनी जीत होती है और मेरा ख्याल है कि ऐसे अवसर पर उन्हें क्या करना चाहिए। लेकिन लड़ाई क्या चीज है इसका ख्याल यदि हम लोगों को इंग्लण्ड न करावेंगे तो यह एक बड़ी भारी भूल होगी।'

सन १९०४ के अप्रेल की १० तारीख को एक मित्र को लिखे हुए पत्र में लार्ड फीशरने कहा था 'हे भले मानुष, तुम्हें यह लिखते भी लज्जा नहीं मालूम होती है कि तुमने यह मान लिया है कि मैं यह कहता हूं कि सबमरीनों का केवल रक्षण करने के लिए ही उपयोग किया जा सकता है। सबमरीनों से आक्रमण क्यों न किया जाय? भले आदमी, यदि अपने नौकापति में कुछ नूर हो तो वह लड़ाई जाहिर होने के पहले ही अपने सबमरीनों को रोक कर दुश्मनों के बन्दरों में क्यों न ले जाय जैसा कि जापान ने रशिया के नौकापतियों को खबर हुई कि लड़ाई जाहिर हो गई है उनके पहले ही किया था।'

सन १९१२ में लार्ड सेल्बर्न ने मान्चेस्टर में व्याख्यान देते हुए कहा था (लार्ड सेल्बर्न बोअर लड़ाई में क्या थे सेनाधिपति थे यह तो सभी जानते होंगे). 'अवसर मिलने पर अपना अपना काम निकाल लेना है और यही नीति योग्य है। इतिहास में जिस राष्ट्र का नाश करना है उसे ऐसा ही करना चाहिए......ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना कैसे हुई इसीका विचार करो। शुरू से ही इस महाराज्य की नींव डाली गई थी — युद्ध और जाल। अर्थात् हमलोग जो तलवार के बल से एक तृतीयांश पृथ्वी के मालिक बन बैठे हैं, यदि जर्मनी से यह कहें कि उसे अपना शास्त्र बल कम करना चाहिए और जर्मनी उसका इन्कार करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? वह तो जिस मार्ग से इंग्लैण्ड अप्रतिम स्थिति को प्राप्त हुआ है उसी के प्रति अंगुली बताता है — और उसमें कुछ दोष भी नहीं है — और आखिर तौर पर और राजनैतिक भाषा में कहता है कि जर्मनी भी इसी मार्ग से इसी स्थिति पर पहुंचना चाहता है। ऐसा कौन मनुष्य है जो इस

धन लुटाते है और समय भी लुटाते हैं । कई महिने पहले से तैयारियां होने लगती है । कपडे बनाये जाते हैं, गहने बनवाये जाते हैं । ज्ञाति–भोजन के खर्च का अन्दाजा लगाया जाता है । भोजन की सामग्री बनाने में स्पर्द्धा होती है । स्त्रीयें गला हो या न भी हो तो भी गीत गा गा कर आवाज बैठा देती है, बीमार भी हो जाती हैं और पडोसी की शान्ति का भंग करती हैं । पडोसी भी अपने यहां प्रसंग आने पर यही करते हैं इसलिए वे आवाज, झूठन, और दूसरी गन्दकी उदासीन भाव से सहन करते हैं ।

ऐसा गुलगपाडा तीन मरतबा होने के बदले एक ही मरतबा हो तो क्या अच्छा हो ! खर्च कम होगा फिर भी विवाह की शोभा बनी रहेगी क्योंकि तीन शादियां एक साथ होने से धन खर्च करने में कोई कसर करने की कोई जरूरत न रहेगी । पिताजी और काकाश्री वृद्ध थे । हमलोग उनकी आखिरी सन्तान थे । इसलिए हमारी शादी खूब धूमधाम से करने की भी उनकी लालसा थी । इस विचार से और ऐसे ही दूसरे विचारों से उन्होंने तीनों शादियां एक साथ करने का निश्चय किया था । और उसमें मैंने जैसा ऊपर कहा है कई महिने पहले से तैयारियां की जा रही थी ।

हमलोगों ने तो केवल उस तैयारी को देख कर ही यह जाना था कि शादी होनेवाली है । उस समय तो मुझे केवल यही अभिलाषा थी कि अच्छे अच्छे कपडे पहनने को मिलेंगे, बाजे बजेंगे, अच्छे भोजन खाने को मिलेंगे और एक नयी लडकी के साथ विनोद करने को मिलेगा । मुझे यह याद नहीं कि इसके सिवा और कोई ख्याल हो । विषय करने की वृत्ति तो पीछे से उत्पन्न हुई । यह किस प्रकार उत्पन्न हुई उसका मैं वर्णन कर सकता हू लेकिन पाठकों को वैसी कोई जिज्ञासा न रखनी चाहिए । मैं मेरी इस शर्म की बात पर पडदा डालना चाहता हू । जो कुछ जानने लायक है वह आगे कहा जायेगा । लेकिन जिस मध्यबिन्दु पर मैंने अपनी दृष्टि कायम की है उसके साथ इसका बहुत ही कम सबन्ध है ।

हम दोनों भाइयों को राजकोट से पोरबन्दर बुला लिए गये । वहां तेल चढाना इत्यादि विधि किया गया । यह सब विनोदात्मक है लेकिन उसे छोड देना चाहिए ।

पिताजी दीवान थे लेकिन फिर भी नौकर थे । और वे राजप्रिय थे इसलिए और भी अधिक पराधीन थे । ठाकुर साहब आखिर तक उन्हें जाने ही नहीं देते थे और जब जाने की इजाजत दी तो खास इक्कों का बन्दोबस्त किया और दो ही दिन पहले उन्हें आने दिया । लेकिन विधाता ने तो कुछ और ही सोच रक्खा था । राजकोट से पोरबन्दर कोई ६० कोश दूर है । बैलगाडी से पांच दिनका रास्ता है । लेकिन पिताजी तीन ही दिन में आये । आखिरी दिन को टांगा उलट गया । उन्हें सख्त चोट लगी हाथों पर और पीठ पर पट्टियां बांधनी पडी । हमारा और उनका इस शादी में से आधा मजा किरकिरा हो गया था लेकिन शादी तो हुई । लिखे हुए मुहूर्त कहीं फिर सकते हैं ? मैं तो विवाह के बालउल्लास में पिताजी का दुःख भूल गया था ।

मैं पितृभक्त तो था ही लेकिन विषय भक्त भी वैसा ही था न ? यहां पर विषय का अर्थ एक इन्द्रिय का विषय नहीं है, उसका मतलब भोग मात्र से है । मातापिता की भक्ति के पीछे सभी आनन्द का त्याग करना चाहिए यह ज्ञान तो अभी पीछे से होनेवाला था । यह होने पर भी मेरे जीवन में एक उल्टी बात हो गई और वह मुझे आज तक खटक रही है । जब जब मैं निष्कुलानन्दजीका यह भजन गाता हुं और सुनता हू कि: 'त्याग टके रे वैराग्य विना करीए कोटी उपाय जी ' करोडो उपाय करने पर भी वैराग्य के बिना त्याग नहीं टिक सकता है, तब मुझे यह कटु प्रसंग याद आता है और मुझे लज्जा मालूम होती है ।

पिताजीने ऊपर ऊपर से अपनी हालत ऐसी अच्छी दिखाई कि कुछ मालूम ही न हो सके । तकलीफ हो रही थी फिर भी वे शादी में शामिल हुए । किस प्रसंग पर पिताजी कहां कहां बैठे थे इसका आज भी मुझे सूक्ष्म स्मरण है । बालविवाह का विचार करके पिताजी के कार्य की जो टीका मैंने अभी की है वह टीका मैंने अपने मन में उस समय थोडे ही की थी ? उस समय सभी बातें योग्य और मनपसंद मालुम होती थी, शादी करने का शौक था और पिताजी जो करते हैं वही उचित है यही ख्याल था इसलिए उस समय के स्मरण अभी ताजे ही से हैं ।

शादी हो गई, फेरे फिर लिए और, हम पतिपत्नी तभी से एक साथ रहने लगे । वह प्रथम रात ! दो निर्दोष बालक बिना समझे ही ससार में कूद पडे । भाभी ने उपदेश किया कि प्रथम रात्रि को मुझे क्या करना चाहिए । यह स्मरण नहीं कि धर्मपत्नि को उस समय किसने उपदेश दिया होगा । यह मैने कभी उससे पूछा ही नहीं है । आज भी पूछा जा सकता है लेकिन पूछने तक की इच्छा नहीं है । पाठक यह जान लें कि मुझे आज ऐसा भास होता है कि हमलोग उस समय एक दूसरे से डरते थे । हमें लज्जा तो मालूम होती ही थी । बातें किस प्रकार की जाय कैसे की जाय इत्यादि बातें मैं क्यों कर जान सकता था ? जो उपदेश मिला हुआ था वह भी क्या मदद कर सकता था ! जहां संस्कार ही बलवान होते हैं वहां उपदेश का विस्तार मिथ्या होता है । धीरे धीरे हम एक दूसरे को पहचानने लगे । हम दोनों की उम्र समान है । मैंने तो स्वामित्व दिखाना शुरु किया । लेकिन यह अब अगले अध्याय में कहा जायेगा ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

सूत नियमित भेजो

जिन लोगों ने जुदे जुदे प्रान्त से अबतक नवम्बर का अपना सूत का चन्दा नहीं भेजा है उनके अंक इस प्रकार है

	प्रान्त	कुल संख्या	जिन का चन्दा नहीं मिला है	उनका परिणाम प्रति सैकडा
१	अजमेर	५	१	२०
२	आन्ध्र	१९९	१०१	५०
३	आसाम	९०	११	१२
४	बिहार	१०२	३२	३१
५	बंगाल	२३९	१०६	४४
६	बिरार	१	०	०
७	ब्रह्मदेश	५	०	०
८	मध्यप्रान्त (हिन्दी)	२५	१	४
९	,, (मराठी)	५९	२	४
१०	बंबई	६६	१४	२१
११	देहली	१७	१	६
१२	गुजरात	३५०	५२	१५
१३	कर्णाटक	९५	१४	१४
१४	केरल	४३	१६	३७
१५	महाराष्ट्र	१६८	१९	११
१६	पंजाब	१६	५	३१
१७	सिंध	४७	११	२३
१८	तामिलनाडू	२७७	५६	२४
१९	संयुक्त प्रान्त	६५	२२	३४
२०	उत्कल	२०	१	५
	कुल	१८९३	४७१	२५

विद्यार्थी के प्रश्न

वार्षिक मूल्य ४)
छमास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १८

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, पौष सुदी २, संवत् १९८२ गुरुवार, १७ दिसम्बर, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय २

बाल्यावस्था

पोरबन्दर से जब पिताजी राजस्थानिक कोर्ट के सभ्य बन कर राजकोट गये उस समय मेरी उम्र कोई सात साल की होगी। राजकोट की किसी देहाती शाला में मुझे बिठाया गया था। उस शाला में पढ़ने के दिन मुझे अब भी अच्छी तरह याद हैं। शिक्षकों के नाम इत्यादि भी याद हैं। जिस प्रकार पोरबन्दर की उसी प्रकार यहां की पढ़ाई के संबन्ध में भी कोई विशेष जानने लायक बात नहीं है। उस समय शायद ही मेरी सामान्य वर्ग के विद्यार्थीयों में गिनती होती होगी। देहाती स्कूल में से कस्बे की शाला में और कस्बे की शाला में से हाइस्कूल में आने में मुझे बारहवां वर्ष बीत गया। मुझे यह याद नहीं पड़ता कि तबतक मैंने कभी शिक्षकों को धोखा दिया हो। और न मुझे यह याद है कि मैंने उस समय कोई मित्र भी किये हों। मैं बड़ा लज्जाशील लड़का था। शाला में मुझे अपने काम से ही काम था। घण्टा बजने के समय शाला में पहुंचता था और शाला बन्द हो जाने पर घर भाग आता था। 'भाग आता था' यह विचारपूर्वक लिख रहा हूं क्योंकि मुझे किसी के भी साथ बातचीत करना पसन्द न था। मुझे यह डर भी लगा रहता कि 'कोई मेरा मजाक उड़ायेगा तो?'

हाइस्कूल के प्रथम वर्ष की ही परीक्षा के समय की एक घटना उल्लेख योग्य है। एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर जाइल्स इम्तहान लेने के लिए आये थे। प्रथम वर्ग के लड़कों को पांच शब्द लिखवाये गये थे। उनमें एक 'केटल' (kettle) शब्द भी था। उसके मैंने गलत हिज्जे लिखे। शिक्षक ने मुझे अपने बूट की नोक से चिताया। लेकिन मैं चेतनेवाला कहां था? मुझे यह ख्याल भी न था कि शिक्षक मुझे सामने के दूसरे लड़के की पाटी पर देख कर अपने हिज्जे सुधारने के लिए कह सकते थे। मैं तो यही मान रहा था कि शिक्षक हम लोग चोरी न करें यही देख रहे थे। सब लड़कों के पांचो शब्द सही निकले, केवल मैं ही मन्दबुद्धि साबित हुआ। मेरी यह बेवकूफी मुझे शिक्षक ने पीछे से समझाई लेकिन उसकी मेरे मन पर कुछ भी असर न हुई। दूसरे लड़के के पास से चोरी करना मैं कभी भी न सीख सका।

यह होने पर भी मैंने उस शिक्षक के प्रति सदा सन्मान की दृष्टि रक्खी थी। अपने से बड़ों का दोष न देखने का मेरे में सहज गुण था। इस शिक्षक के और भी दूसरे दोष मैं पीछे से जान सका था लेकिन उनके प्रति मेरे हृदय में वैसा ही सन्मान बना रहा। मैं यही समझा हुआ था कि अपने से बड़ों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। जो वे कहें वही करना चाहिए, लेकिन उनके कार्यों के काजी न बनना चाहिए।

इस समय की दूसरी दो बातों को भी मैं कभी भी नहीं भूल सका हूं। वे मुझे हमेशां से याद हैं। सामान्य तौर पर मुझे शाला के पाठ्य पुस्तकों के सिवा और कुछ पढ़ने का शौक न था। पाठ करने चाहिए, मास्टर बुरा-भला कहे यह क्यों सहन करें? और मास्टर को धोखा नहीं देना चाहिए इस ख्याल से मैं पाठ तैयार करता था लेकिन मन में आलस होता था। इसलिए बहुत मरतबा तो पाठ कच्चे ही रह जाते थे और इसलिए दूसरी किताबें पढ़ने का मुझे ख्याल भी कैसे हो सकता था? लेकिन पिताजी ने खरीदा हुआ एक पुस्तक मैंने देखा। इस 'श्रवण पितृभक्तिनाटक' को पढ़ने के लिए मेरा दिल चला। उसे मैं बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ गया। इस समय कांच में चित्र बतानेवाले भी घर आते थे। उनके पास मैंने यह दृश्य भी देखा कि श्रवण अपने मातापिता को कावड़ में बिठा कर यात्रा करने के लिए ले जा रहे हैं। मेरे ऊपर इन दोनों बातों की बड़ी गहरी छाप पड़ी। मुझे ख्याल हुआ कि "मुझे भी श्रवण जैसा ही बनना चाहिए।" श्रवण की मृत्यु के समय उसके मातापिता का विलाप अब भी याद है। उस 'ललित' छंद को मैंने बाजे में भी उतारा था। बाजा सीखने का शौक था और पिताजी ने एक बाजा भी ला दिया था।

उन्हीं दिनों में मुझे किसी नाटक कम्पनी का एक नाटक देखने की भी इजाजत मिली थी। हरिश्चन्द्र का नाटक था। इस नाटक को देखने से मैं कभी थकता ही न था। उसे बार बार देखने को दिल करता था लेकिन बार बार जाने कौन दे? लेकिन मैंने अपने दिल में सैंकड़ो बार इस नाटक का नाट्य किया होगा। हरिश्चन्द्र के ही स्वप्न आते थे। यही धुन लगी कि "हरिश्चन्द्र जैसे — सत्यवादी सभी क्यों न हों?" हरिश्चन्द्र के ऊपर जैसी विपत्ति पड़ी थी वैसी विपत्तियां सहन कर के सत्य का पालन करना ही सत्य है। मैंने तो मान लिया था कि

हरिश्चन्द्र पर वैसी ही आपत्तियां पड़ी थीं जैसी कि नाटक में दिखाई गई थीं। हरिश्चन्द्र का सत्य देख कर, उसका स्मरण कर के मैं बहुत कुछ रोता था। लेकिन आज मेरी बुद्धि यह समझने लगी है कि हरिश्चन्द्र कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न होगा। फिर भी मेरे लिए तो हरिश्चन्द्र आज भी जीवित हैं। मैं यदि आज भी उन नाटकों को पढ़ूं तो मैं मानता हूं कि मुझे आज भी आंसू आ जायंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

शरीर पर उपवास की असर

एक डाक्टर मित्र ने जिन्हें कुछ रोगों पर उपवास के फायदेमन्द होने में श्रद्धा है, मुझे उपवास का शरीर पर जो जो परिणाम होता है और जो मुझे अपने उपवास के दिनों में मालूम हो सका है उन्हें लिख कर प्रकाशित करने के लिए लिखा है। मैंने उनकी इस प्रार्थना का स्वीकार कर लिया है क्यों कि उनका महत्व कुछ कम नहीं है और मैं यह जानता हूं कि बहुत से शख्सों ने तो उपवास करके अपना नुकसान ही कर लिया है। मैंने जितने भी उपवास किये हैं, करीब करीब वे सभी नैतिक दृष्टि से किये हैं फिर भी भोजन के संयम में एक चुस्त सुधारक होने के कारण और उपवास के कुछ अमुक रोगों में भी उपयोगी होने के संबंध में मुझे विश्वास होने के कारण मैं उससे शरीर पर होनेवाले परिणामों पर ध्यान देना नहीं भूला हूं। फिर भी मुझे यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि मैंने इसके संबंध में पूरी जांच नहीं की है। और उसका सिर्फ यही कारण है कि उन दोनों बातों को एक साथ मिला देना मेरे लिए असंभव था। मैं उसके नैतिक मूल्य के विचार में ही इतना मशगूल था कि मैं उसके शरीर संबंधी परिणामों पर ध्यान ही नहीं दे सकता था। इसलिए मैं केवल मेरे मन पर उसकी जो सामान्य छाप पड़ी है वही दे सकूंगा। उसके ठीक ठीक परिणामों को जानने के लिए मैं डा. अन्सारी और डा. अब्दुर रहमान से ही पूछने के लिए कहूंगा। उन्होंने गत वर्ष मेरे उपवास के दिनों में मेरी पूरी देखभाल की थी। उन्होंने बड़ी मिहनत उठाई थी। वे हर समय मेरे पास रहते थे और दिल लगा कर मेरी निगरानी कर रहे थे।

मुझे आरंभ में ही मेरे दूसरे आठ दिनों के उपवास के समय जो हानिकारक बात हुई थी उसका प्रथम उल्लेख कर देना चाहिए। यह उपवास १९१४ में दक्षिण आफ्रिका में किया था और यह १४ दिन का उपवास था। उपवास खुलने के बाद दूसरे ही दिन यह जान कर कि उससे मेरी कुछ भी हानि न हुई मैंने तीन मील तक चलने का बड़ा परिश्रम किया। दूसरे या तीसरे ही दिन टांग की मांसहीन पिंडलियों में बड़ा दर्द होने लगा। उसका कारण न समझ कर ज्यों ही यह दर्द बन्द हुआ कि मैंने फिर चलना शुरू किया। इसी हालत में मैं दक्षिण आफ्रिका छोड़ कर विलायत गया। और वहां मुझे डा. जीवराज महेता ने देखा। उन्होंने मुझे यह चेतावनी दी कि यदि तुम इसी प्रकार चलना कायम रक्खोगे तो जिन्दगी भर के लिए पंगु बन जाओगे। तुम्हें कम से कम १५ दिन लेटे रहना चाहिए और आराम लेना चाहिए। लेकिन यह चेतावनी मुझे बहुत देर के बाद मिली और मेरी तन्दुरुस्ती बिगड़ गई। इसके पहले मेरा स्वास्थ्य बड़ा अच्छा था। मैं ४० मील तक बिना थकावट के जा सकता था। उन दिनों में २० मील चलना तो मेरे लिए कुछ बात न थी। अपने अज्ञान के कारण मैंने अपने शरीर को जो अधिक श्रम पहुंचाया उसीके कारण मुझे पसलियों के दर्द का रोग हुआ था। उसने मुझे बड़ी पिड़ा पहुंचाई और मेरे स्वास्थ्य को जो पहले अच्छा था बिगाड़ दिया। मेरे जीवन में मेरे ऊपर यह किसी बड़े रोग का पहला ही आक्रमण था। इतना मूल्य दे कर मुझे जो अनुभव हुआ उससे मैंने यह सीखा कि उपवास के दिनों में शरीर को सम्पूर्ण आराम देना चाहिए और उपवास के बाद भी उपवास के दिनों के प्रमाण में कुछ दिन आराम लेना अत्यन्त आवश्यक है। यदि इतने से सादे नियम का ही यथा योग्य पालन किया गया तो फिर किसी दूसरे बुरे परिणाम की आशंका रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। बेशक, मेरा यह विश्वास है कि नियमित तौर पर किये गये उपवास से शरीर को लाभ ही होता है। उपवास के दिनों में शरीर में से बहुत कुछ अशुद्धियां निकल जाती है। गत वर्ष उपवास के दिनों में और इस समय भी, पहले के उपवासों के नियम के विरुद्ध, मैं निमक और सोडा डाल कर पानी पीता था। *उपवास के दिनों में पानी के प्रति* मुझे अरुचि हो गई थी। निमक और सोडा डालने से ही मैं कुछ पी सकता था। बहुत सा पानी पीने से पेट साफ रहता है और मुंह में नमी रहती है। तीन छटांक या पावभर पानी में २ रत्ती निमक और उतना ही सोडा डाला जाता था और मैं ६–८ दफे में सवासेर या डेढसेर के करीब पानी पीता था। मैं हमेशा 'एनीमा' भी लेता था। करीब ½ पौन्ड पानी, उसमें १६ रत्ती निमक और उतना ही सोडा डाल कर लेता होऊंगा। पानी गरम ही होता था। मुझे हमेशा बिस्तरे में ही कपड़ा गिला कर के स्नान भी कराया जाता था। गत वर्ष के और इस वर्ष के उपवासों के दिनों में मुझे रात्री में और कुछ दिन में भी काफी निद्रा मिली थी। आखिरी उपवास के समय तो मैंने प्रथम तीन दिनों में करीब करीब सुबह चार बजे से ले कर शाम के आठ बजे तक काम किया था और उस समय जिसके कारण उपवास करने पड़े थे उसपर बहस होती रही और मैंने अपना पत्रव्यवहार और सम्पादन कार्य भी किया। चौथे दिन सिर में बड़ा भारी दर्द शुरू हो गया और श्रम असह्य हो उठा। चौथे दिन की दोपहर को मैंने तमाम काम बन्द कर दिया। दूसरे ही दिन से मुझे अच्छा मालूम होने लगा। थकावट दूर हो गई थी और सिर का दर्द भी करीब करीब बन्द हो गया था। छट्ठे दिन मैं और भी ताजा मालूम होने लगा था और सातवें दिन तो मैं ऐसा ताजा और शक्तिवान मालूम होता था कि मैं उसदिन उपवास संबंधि अपना लेख भी लिख सका था।

मुझे यह ख्याल नहीं कि मुझे उपवास के दिनों में भूख का दुःख मालूम हुआ हो। उपवास खोलने के समय मुझे कोई जल्दी न थी। मुझे जिस समय उपवास खोलना चाहिए था उससे आध घण्टा विलम्ब करके ही मैंने उपवास खोला था। उपवास के दिनों में कातने के संबंध में भी कोई कठिनाई नहीं मालूम हुई। मैं तकिया लगा कर रोजाना कोई आध घण्टे से भी ज्यादह बैठ सकता था और अपनी मामूली वेग के साथ कात भी सकता था। रोजाना की तीन समय की आश्रम की प्रार्थना में आना भी मुझे [illegible] पड़ा था। आखिरी चार दिन तो मुझे खटिया में [illegible] लाया जाता था। यत्न करने पर मैं वहां बैठ भी सकता था लेकिन मैंने उस समय अपनी शक्ति की रक्षा करना ही योग्य समझा। मुझे कुछ अधिक शारीरिक कष्ट भोगना पड़ा हो यह ख्याल नहीं होता है। सिर्फ मुझे एक ही कष्ट की बात याद है। बार बार [illegible] आता था लेकिन अक्सर पानी के घूंट लेने पर आराम [illegible] जाता था। नारंगी और अंगूर का रस, कुल तीन छटांक [illegible] करीब के [illegible] मैंने उपवास खोला था। मैंने नारंगी भी [illegible] थी। [illegible] बाद फिर मैंने वही किया और उसमें १० [illegible] और [illegible]

थे। अंगूर उसके छिलके को निकाल कर धीरे धीरे चूस लिए गये थे। फिर कुछ देर के बाद 'एनीमा' लेने के बाद उस दिन मैंने बकरी का दूध उसमें एक छटांक पानी मिला कर पिया था और उसके बाद नारंगी और अंगूर खाये थे। पानी और दूध मिला कर औटा किया गया था। शामको मैंने उतना ही दूध पानी मिला कर फिर लिया था और उसके साथ फल भी खाये थे। दूसरे दिन दूध बढ़ा कर ५ छटांक कर दिया था और उसमें पानी तो हमेशा ही मिलाया जाता था। इस प्रकार हमेशा तीन तीन छटांक दूध बढ़ाता गया यहांतक की अब दूध डेढ़ सेर तक लेने लगा हूं। पानी तो अब भी उसमें मिलाया जाता है लेकिन अब दूध की हर एक खुराक में केवल आधी छटांक पानी ही मिलाया जाता है। कोई डेढ़ दिन तक मैंने केवल खालिस दूध ही पिया था लेकिन उससे कुछ भारीपन मालूम होने लगा और उसका कारण खालिस दूध को ही समझ कर दूध में पानी मिलाना फिर आरम्भ किया है।

उपवास खोलने के बाद आज यह बारहवां दिन है जब कि मैं यह लिख रहा हूं। अबतक मैंने कोई भी वजनदार खुराक नहीं ली है। अब भी फल या कुछ हिस्सा तो उसके रस के रूप में ही लेता हूं और आखिरी तीन दिनों में तो मैंने अनार पीकू और अरण्ड ककड़ी लेना भी शुरु किया है। अधिक से अधिक दूध जो मैंने अबतक लिया है २ सेर के करीब है। साधारण तौर पर १॥ सेर दूध पीता हूं और कभी कभी मैं उसके साथ थोड़ी सी डबल रोटी या हलकी सी चपाती भी खाता हूं। लेकिन महिने के महिने मैं दूध और फल खा कर ही रहता हूं और अपने को हमेशा स्वस्थ हालत में रखता हूं।

जेल से निकलने के बाद अधिक से अधिक ११२ पौंड तक मेरा वजन पहुंच गया था। इस सात दिनों के उपवास में कोई ९ पौंड वजन कम हो गया था। अब मैंने खोया हुआ तमाम वजन फिर प्राप्त कर लिया है और अब मेरा वजन १०३ पौंड से भी कुछ अधिक है। अब दो दिन से तो मैं सुबह-शाम नियमित कसरत भी कर रहा हूं और उसमें मुझे कुछ भी श्रम नहीं मालूम होता है। समान जमीं पर चलने में भी मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम होती है। लेकिन अब भी सीढ़ियाँ चढ़ने या उतरने में कुछ श्रम मालूम होता है। दस्त भी ठीक ठीक साफ होते हैं और रात को मैं जब चाहता हूं निद्रा ले सकता हूं।

मेरी राय में तो उन २१ दिनों के उपवास के कारण या इन सात दिनों के आखिरी उपवास के कारण मेरे शरीर को कुछ भी हानि नहीं पहुंची है। इन सात दिनों में वजन का घट जाना कुछ भयप्रद और चिन्ताजनक अवश्य था। लेकिन आरंभ के साढे तीन दिनों में मैंने जो बड़ा श्रम किया था वही उसका कारण था। थोड़ा और आराम कर लेने पर मैं अपनी मूल शक्ति जिससे कि मैंने उपवास का आरंभ किया था फिर प्राप्त कर लूंगा और शायद कमजोरी में लेने जो शक्ति और वजन गंवाया था वह भी बिना कठिनाई के प्राप्त कर सकूंगा।

एक औसत दरजे के आदमी की दृष्टि से और केवल शरीर की दृष्टि से मैं जो लोग किसी भी कारणवश उपवास करना चाहे उनके लिए निम्न लिखित नियमों का उल्लेख कर रहा हूं।

१. आरंभ से ही अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति संरक्षा करनी चाहिए।

२. जब उपवास करो तो तुम्हें खाने के संबंध में कोई भी विचार न करना चाहिए।

३ निमक और सोडा डाल कर या बिना सोडा या निमक के ही ठंडा पानी जितना भी हो सके थोड़ा थोड़ा कर के पीओ। (पानी औटा कर ठंडा किया हुआ होना चाहिए) निमक और सोडा से नहीं डरना चाहिए। क्योंकि बहुत से प्रकार के पानी में स्वतंत्र निमक रहता है।

४ रोजाना गरम पानी के कपड़े से शरीर साफ करना चाहिए।

५ उपवास के दिनों में रोजाना नियमित रूप से 'एनीमा' लेना चाहिए। रोजाना जो मल निकलेगा उसे देख कर तुम्हें बड़ा आश्चर्य होगा।

६ जितना भी हो सके खुली हवा में निद्रा लो।

७ सुबह धूप में बैठो। धूप और हवा में बैठना भी उतना ही शुद्धि का कारण है जितना कि स्नान करना।

८ उपवास के सिवा और सब बातों का विचार करो।

९. किसी भी उद्देश से उपवास क्यों न किये हों लेकिन इन अमूल्य दिनों में अपने रचयिता का, उसके साथ के अपने संबंध का और उसकी दूसरी सृष्टि का ही विचार करना चाहिए। इससे तुम्हें ऐसी ऐसी बातें मालूम होंगी जिसका तुम्हें ख्याल तक न होगा।

इस डाक्टर मित्र से माफी मांगते हुए लेकिन अपने अनुभवों का और अपने से दूसरे लोगों के अनुभवों का सम्पूर्ण ख्याल कर के मैं बिना किसी हिचपिचाहट के यह कहूंगा कि यदि निम्न लिखित शिकायते हों तो अवश्य ही उपवास किया जाय।

(१) कब्जीयत का होना, (२) शरीर पीला पड़ जाना (३) बुखार का मालूम होना (४) बदहजमी का होना (५) सिर में दर्द होना (६) वाय का दर्द होना (७) जोड़ों में दर्द होना (८) बेचैनी मालूम होना (९) उदासीपन का होना (१०) अतिशय आनन्द का होना।

यदि इन अवसरों पर उपवास किये गये तो डाक्टर की या कोई दूसरी पेटन्ट दवाइयां खाने की कोई जरुरत न रहेगी।

जब भूख लगे और खाने के लिए पूरी मिहनत की गई हो तभी खाना चाहिए।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

केनिया के हिन्दुस्तानी

गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य श्री रामदेव पूर्वीय आफ्रिका में कोई छ महिने रहे। वे यहां रहनेवाले हिन्दुस्तानियों के जीवन का बड़ा दुःखमय चित्र खींचते हैं। उन्होंने मुझसे कहा है कि बहुत से हिन्दू-मुसलमानों ने शराब पीना शुरू किया है और वे उन बहुतेरी विदेशी चीजों का इस्तेमाल करते हैं जिनका कि उपयोग करना उनके लिए आवश्यक नहीं है। स्थानिक कांग्रेस की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। और यह कहने से उनका मतलब यह है कि नेतागण अपना काम अच्छी तरह नहीं कर रहे हैं। वे और भी दूसरे आक्षेप करते हैं और उन्हें प्रकाशित करने के लिए वे मुझे अधिकार भी देते हैं लेकिन अभी मैं उन्हें प्रकाशित नहीं करता हूं। मैं चाहता हूं कि मैं उनकी सूचना के अनुसार किसीको पूर्वीय आफ्रिका में भेज कर उनके आक्षेपों के बारे में जांच पड़ताल कर सकूं लेकिन मुझे अफसोस है कि कम से कम अभी यह करना मेरे लिए संभव नहीं है। लेकिन मैं केनिया के हिन्दुस्तानियों से यह प्रार्थना अवश्य करुंगा कि वे अपना आंतर् शोध करें। जो बातें इस टीप्पणी में नहीं लिखी गई हैं उन्हें भी मालूम कर लें और अपने को व्यवस्थित करें। जिन लोगोंने शराब पीना आरंभ किया है उन्हें इस [illegible] छोड़ देना चाहिए और जो इस आदत से बचे हुए हैं [illegible] अपने दूसरे वहां रहनेवाले भाइयों को इस बुराई को दूर [illegible] के लिए मदद करनी चाहिए। मो० क०

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष सुदी २, संवत् १९८२

विद्यार्थी के प्रश्न

एक विद्यार्थी जो अमरिका में अध्ययन कर रहे हैं लिखते हैं: "मैं उनमें से एक हूं जो यह चाहते हैं और इस बात में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं कि हिन्दुस्तान की गरीबी को दूर करने के लिए उसके साधन के तौर पर हिन्दुस्तान के कच्चे माल का योग्य उपयोग किया जाय। इस देश में मुझे यह छठा साल है। लकडी से सम्बन्ध रखनेवाला रसायनशास्त्र मेरा खास विषय है। यदि मुझे हिन्दुस्तान के हुन्नर उद्योग के विकास के महत्व के सम्बन्ध में सम्पूर्ण श्रद्धा न होती तो मैं डाक्टरी में या सरकारी नोकरी में ही चला गया होता। यदि मैं कागज बनाने का या ऐसा ही कोई उद्योग करने का साहस करूं तो क्या आप उसका समर्थन करेंगे? यदि हिन्दुस्तान के लिए विचारपूर्वक मानवसमाज का ख्याल करके एक दयाधर्ममूलक औद्योगिक नीति अख्त्यार की जाय तो उसके संबंध में आप की क्या राय है? क्या आप विज्ञान की प्रगति चाहते हैं? मेरा ऐसी ही प्रगति से मतलब है जो मनुष्यजाति के लिए केवल आशीर्वाद रुप हो। उदाहरण के तौर पर फ्रान्स के पेस्टोर का और टारोन्टो के डा. बोन्टींग का वैज्ञानिक कार्य।"

मैं इस प्रश्न का सार्वजनिक तौर पर इसलिए उत्तर दे रहा हूं क्यों कि सब जगह के विद्यार्थियों के तरफ से मुझे बहुत से प्रश्न पूछे जाते हैं और क्यों कि मेरे विज्ञान संबंधी विचारों के बारे में बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। जिस प्रकार के औद्योगिक साहस का यह विद्यार्थी जिक्र कर रहे हैं वैसा किसी भी प्रकार का साहस करने के खिलाफ मुझे कुछ भी नहीं कहना है। सिर्फ मैं उसे दयाधर्म मूलक नहीं कहूंगा। मेरे नजदीक दयाधर्ममूलक एक ही व्यवसाय है और वह है हाथकताई का पुनरुद्धार। क्यों कि उसीके जरिये दरिद्रता को जो इस देशमें करोडों मनुष्य के जीवन का उन्हीं के घरमें नाश कर रही है दूर की जा सकेगी। उसके साथ फिर और दूसरी बातें भी जो इस देश की आर्थिक शक्ति को बढा सकती हो शामिल की जा सकती है। इसलिए विज्ञान की शिक्षा पाये हुए युवकों से मैं तो यही आशा रक्खूंगा कि वे चरखा बनाने में ही अपनी तमाम शक्ति का उपयोग करे और यदि संभव हो तो हिन्दुस्तान के झोंपडो में काम आने लायक दूसरे अधिक अच्छे यंत्र तैयार करे। मैं विज्ञान की स्वयं प्रगति के विरुद्ध नहीं हूं। मैं तो पश्चिम के वैज्ञानिक उत्साह का प्रशंसक हूं। मेरी प्रशंसा को मैं यदि कोई विशेषण लगाता हूं तो वह इसलिए कि पश्चिम के वैज्ञानिक ईश्वर की निम्न सृष्टि का कुछ भी विचार नहीं करते हैं। प्राणिव्यवच्छेदन को मैं नफरत की निगाह से देखता हूं। विज्ञान और मनुष्यत्व के नाम से निर्दोष प्राणियों की जो अक्षम्य हत्या होती है उसके प्रति मुझे घृणा है। निर्दोष खून से रंगी हुई वैज्ञानिक शोधों की मेरी दृष्टि में कुछ भी कीमत नहीं है। प्राणिव्यवच्छेदन के बिना यदि खून के दौरे के संबंध के तत्वों की शोध न हो सकती थी तो संसार का कार्य उनके बिना भी अच्छी तरह से चल सकता था। लेकिन अब मैं उस दिन को भी आते हुए देख रहा हूं कि जब पश्चिम के प्रामाणिक वैज्ञानिक लोग ज्ञान की शोध के वर्तमान तरीकों को मर्यादित कर देंगे। भविष्य के माप में सिर्फ मानवजाति का ही ख्याल नहीं किया जायगा लेकिन तमाम प्राणवान जीवों का ख्याल किया जायेगा। और जिस प्रकार अब हम धीरे धीरे, लेकिन यकीनन इस बात को मालूम करते जा रहे हैं कि हिन्दू-समाज अपने पांचवें हिस्से के लोगों को गिरी हुई हालत में रख कर उन्नति करने का ख्याल करे तो यह उसकी सरासर भूल है अथवा पश्चिम के लोग पूर्वीय या आफ्रिकन हिन्दुस्तानियों को चूस कर और उन्हें हलके बना उन्नति करना चाहें तो उनका यह ख्याल गलत है; उसी प्रकार समय आने पर हम लोग यह भी समझ सकेंगे कि मनुष्यों को दूसरी सृष्टि से जो श्रेष्ठ बनाया है वह इसलिए नहीं कि वे उनकी कत्ल करे लेकिन इसलिए कि वे अपने साथ उनका भी भला करे। क्यों कि मुझे इस बात का सम्पूर्ण विश्वास है कि उनके भी वैसी ही आत्मा जैसी कि मेरे में है।

वही विद्यार्थी यह भी पूछते हैं: "हिन्दुस्तान में ईसाई मिशनरियों के कार्य के मूल्य के संबंध में मैं आपकी स्पष्ट राय जानना चाहता हूं। अपने देशवासियों के जीवन को बनाने में ईसाई मजहब ने क्या कुछ हिस्सा दिया है? क्या हम ईसाई मजहब के बिना चला सकते हैं।"

मेरी राय में ईसाई मिशनरियों ने हमें प्रकारान्तर से लाभ पहुंचाया है सीधी तौर पर तो उनसे लाभ के बदले हानि ही हुई है। मैं धर्मान्तर करने के वर्तमान तरीके के खिलाफ हूं। दक्षिण आफ्रिका और हिन्दुस्तान के धर्मान्तर करनेवाले मनुष्यों का अनुभव पाने के बाद मुझे विश्वास हो गया है कि उससे नये ईसाईयों की, जिन्होंने यूरोपीयन सभ्यता का बाह्य रुप ही समझा होता है और जो ईसा मसीह के उपदेश का तत्व नहीं समझते हैं कोई नैतिक उन्नति नहीं होती है। मेरे इस कथन में सामान्य लोगों की मनोवृत्ति से ही संबंध है, उत्तम अपवादों से नहीं। लेकिन प्रकारान्तर से तो ईसाई मिशनरियों के प्रयत्न से हिन्दुस्तान को बहुत कुछ लाभ हुआ है। उसने हिन्दू और मुसल्मानों को अपने अपने धर्म की शोध करने के लिए उत्साहित किया है। उसने हमें अपने ही घर को साफ करने के लिए मजबूर किया है। मैं मिशनरियों के शिक्षा मन्दिर और अस्पताल इत्यादि को भी ऐसे ही कामों में गिनता हूं क्योंकि वे शिक्षा देने के लिए या अस्पताल बनाने के उद्देश से नहीं लेकिन धर्मान्तर करने के उद्देश से ही स्थापित किये जाते हैं।

जिस प्रकार संसार महम्मद या उपनिषद् के उपदेश के बिना नहीं चला सकता है उसी प्रकार ईसा मसीह के उपदेश के बिना भी नहीं चला सकता है और इसलिए हम भी उसके बिना नहीं चला सकते हैं। मैं तो इन सब को एक दूसरे के पूरक ही मानता हूं और किसी प्रकार भी वे एक दूसरे से अलग नहीं है। उसका सच्चा अर्थ परस्पर आत्मसम्बन्ध, और परस्परावलम्बन है लेकिन अभी हमें यह समझना बाकी है। हम लोग अपने धर्म के केवल उदासीन प्रतिनिधि हैं और अक्सर हमलोग उसका उपहास ही करते हैं।

इस विद्यार्थि ने तीसरा प्रश्न यह पूछा है:

"भारतवर्ष के संयुक्त राज्य में हम देशी राज्यों को क्या अभी है उसी हालत में रहने देंगे या वहां भी प्रजातंत्र हो जायगा? राज्यनैतिक ऐक्य को कायम करने के लिए हमारी एक सामान्य राष्ट्रभाषा क्या होगी? अंगरेजी को ही हम क्यों न राष्ट्रभाषा बनावें?

देशी राज्य भी, यदि दिखाई न दे, अब अपनी हालत बदल रहे हैं। जब हिन्दुस्तान के एक बडे हिस्से में प्रजातंत्र हो जायगा उस समय देशी राज्यों में भी एक मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता न चल सकेगी। यह कोई नहीं कह सकता है कि हिन्दुस्तान का प्रजातन्त्र

क्या होगा। यही काफी है कि हम यह देख लें कि यदि अंगरेजी ही एक सामान्य भाषा रही तो भविष्य क्या हो सकता है। उस समय कुछ थोड़े ही लोगों का वह प्रजातन्त्र राज्य होगा। यदि हम हिन्दुस्तान के मानवसमाज की राजनैतिक ऐक्यता देखना चाहते हैं और हमें यही करना भी चाहिए, तो जो उसका जैसा भविष्य कहेगा वह ईश्वर का पयगम्बर ही होगा। हिन्दुस्तान की जनता की एक सामान्य भाषा अंगरेजी तो कभी भी नहीं हो सकती है। वह तो जिसे मैं हिन्दुस्तानी कहता हूं और जो हिन्दी और उर्दू का परिणाम है वही हो सकेगी। हमारे अंगरेजी के व्याख्यानों ने हमें हमारे करोड़ों देशवासी भाइयों से जुदा कर दिया है। हमलोग हमारे देश में ही विदेशी बन गये हैं। हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञों के मन में अंगरेजी के व्याख्यानों ने जो घर कर लिया है उसे मैं अपने देश और मनुष्यत्व के प्रति गुन्हा मानता हूं क्योंकि हमलोग अपने देश की उन्नति में रोड़ा अटकानेवाले बन गये है। और जो एक बड़े भारी खण्ड की उन्नति है वही मनुष्यत्व की भी प्रगति होगी और उसी प्रकार मनुष्यत्व की प्रगति उसकी भी उन्नति होगी। अंगरेजी पढ़े लिखे मनुष्यों को जो गांवों में गये हैं उ ... एक को मेरी तरह यह अनुभव हुआ है। मुझे अङ्गरेजी भाषा के प्रति और अङ्गरेज लोगों के बहुत से अच्छे गुणों के प्रति मान है और मैं उनकी प्रशंसा करता हूं। लेकिन मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि अङ्गरेजी भाषा और अङ्गरेज लोग हमारे जीवन में वह स्थान प्राप्त किये हुए हैं कि जिससे हमारी और उनकी दोनों की प्रगति रुक रही है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

ओटा या चर्खी

यह यंत्र कातने के चर्खे के मुकाबले में कुछ हेकड़ा गया है, परंतु यह चीज चर्खे की बनिस्बत किसी दर्जे में कम नहीं है। कई खादी प्रेमी तो चर्खे की बात कुछ देर के लिए भूल कर ओटा का प्रचार करने के लिए उत्सुक है। उनकी दलील है कि अगर दूर दूर के गांवों में मजदूरी पहुंचाने के सवाल को हल करना हो तो जो काम इस यन्त्र के जरिये होगा वह और किसी से न होगा। इस दलील में यह भेद है कि चर्खे पर सारा दिन काम करने में जितनी मजदूरी मिलती है उससे तीन चार गुनी इस यंत्र पर काम करने वाले स्त्री या पुरुष को मिल सकती है। और इससे भी एक और विशेष बात यह है कि कल में एक मन कपास ओटने का जो खर्च पड़ता है लगभग उतना ही ओटे से आता है। और सुना जाता है कि दूर दूर के गांवों को तो कलों में ओटाने को जाने से दुगुना खर्च सहन करना पड़ता है और गाड़ियां भर कर कारखाने तक जाना और सारा दिन गुमाना पड़ेगा। इसलिए ओटा प्रचार का आग्रह रखने वालों की बात में बल काफी है सही, पर चर्खे के बिना चर्खी भी टिकती नहीं; इसे न भूलना चाहिए। और इसलिए चर्खे को अलग रख कर चर्खी का प्रचार नहीं हो सकता। चर्खे की स्थापना से ही वह हो सकता है। इतनी प्रस्तावना कर के अब चर्खी का विचार करें।

इस नये चर्खाआन्दोलन की शुरूआत में चर्खे के सुधारने के लिए खूब आवाज उठी थी और चर्खी के सुधार के लिए भी वैसा ही कुछ हुआ था। जैसे चर्खे के सुधार के लिए इनाम देना प्रगट हुआ था वैसे ही चर्खी के लिए भी प्रगट हुआ था। चर्खी के सुधारने का प्रयत्न भी हुआ था। लेकिन जैसे चर्खा सुधारक मूल चर्खे का अभ्यास किये बिना आगे बढ़े वैसे चर्खी-सुधारकों ने भी किया है। और इसका नतीजा यह हुआ है कि आगे जाने के बदले पीछे हटे हैं।

परदेशी शोधकों ने एक हाथ-चर्खी की शोध की है उसकी कीमत देशी चर्खी से तीस चालीस गुनी यानी करीब तीनसौ रुपये होगी। वह दो आदमियों से चलायी जाती है। एक आदमी चक्कर घुमाता है और दूसरा कपास पूरता है। शोधक का दावा है कि उसमें से हर घण्टे ४ से ६ पौंड रूई निकलती है। यानी फी घण्टा १२ से १८ पौंड कपास उसके जरिये ओटी जा सकती है। इस हिसाब से तो गोया एक आदमी हर घण्टे में ६ से ९ पौंड ओट सकता है।

यह नीचे का चित्र गुजरात की पुरानी चर्खी का है।
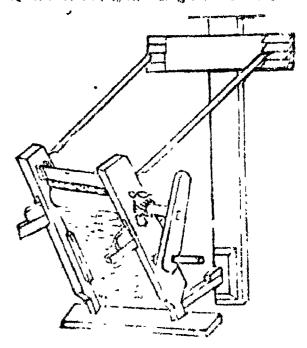
यह चर्खी माल और मजदूरी के अनुसार ० से ७ रुपये के बीच में बनती है। और उसमें से हर घंटे लगभग दो पौंड रूई निकल सकती है। अच्छा और साफ कपास एक घंटे में ६ पौंड तक ओटाते देखा है। अर्थात उस परदेशी चर्खी के बनिस्बत सिर्फ जरा सा कम काम इसमें उतरता है।

नीचे दूसरा चित्र दिया जाता है वह इसी चर्खी का दूसरा रूप है।
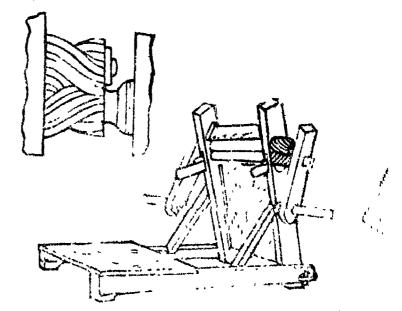
इसमें सिर्फ चर्खी की तरतीब में ही परिवर्तन किया गया है। पहले चित्रवाली चर्खी को दीवाल या खंभे के साथ जोड़ना पड़ता है। और अगर वह ठीक ठीक न जमे तो बड़ी दिक्कत पड़ती

है । पर दूसरे चित्रवाली चर्खी इधर उधर फेरी जा सकती है । उसे किसी प्रकार के आधार की जरूरत न होने से आंगन में धूप के अन्दर बैठ कर काम करना हो तो कर सकते हैं । और अगर एक घर में से उठ कर पड़ोसी के घर में बैठ कर काम करना हो तो आसानी से वहां ले जा सकते हैं । उसमें बैठने के लिये तख्ता जड़ा है इसलिए ओटनेवाले के वजन के कारण उसके खिसकने का डर नहीं रहता है । कहीं २ पर अलग चर्खी की पटली पर पत्थर का भार रख कर काम चलाया जाता है । लेकिन उसमें काफी अनुकूलता नहीं होती । चर्खी को तिरछी रखना जरूरी है जिससे कि निकले हुए बीज बेलन परसे खिसक कर गिर जाते हैं, और कपास पूरने के लिये जगह खाली होती जाती है । इसीसे कपास देनेका काम जल्दी से होता है और ओटाई अधिक होती है । बहुत सी जगहों पर ओटा सीधा रख कर काम करते हैं इससे काम कम होता है यह स्पष्ट बात है । दूसरे चित्रवाला ओटा बैठक में सिर्फ जड़ा होने से इसमें पूरा २ सुभीता पड़ता है ।

यह चर्खी तिरछी रखने के लिये बैठक के साथ जिन टेकों से टिकायी हुई दिख पड़ती हैं उनको इच्छानुसार निकाल और डाले जा सकें ऐसे बनाये जाते हैं । इसलिए इसे आराम कुर्सी की नाई समेट सकते हैं । ऐसी बनावट से कीमत में कुछ फर्क नहीं पड़ता है ।

नीचे तीसरा चित्र दिया है । ऐसी चर्खी बिहार, बंगाल, आसाम, आंध्र और तामिल नाड़ु में आज भी प्रचलित है ।
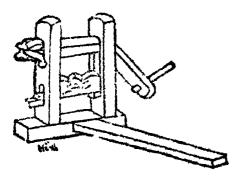
इन प्रांतो में उसकी कीमत कहीं एक और कहीं दो रूपये के करीब होती है । लेकिन गुजरातवाली चर्खी की अपेक्षा उस पर काम करीब चौथाई भाग के बराबर ही होता है । उसमें लकड़ी के ही दोनों बेलनों से कपास ओटी जाती है । गुजरात की चर्खी में जैसे नीचे काठ का बेलन और ऊपर लोहे का होता है वैसे इसमें नहीं होता । दोनों काठ के बेलन होने से इतना फायदा जरूर है कि जो रूई ओटी जा कर निकलती है वह बिलकुल मुलायम होती है । इससे उस रूई की धुनाई में बहुत कम मिहनत पड़ती है । उस रूई को देखते ही ऐसा मालूम होता है कि चर्खी में उसके तन्तुओं को जरा भी इजा नहीं पहुंचती और यह भी कि धुनाई से भी उस रूई के रेशों को कुछ जरब नहीं पहुंचती है ।

इन चर्खियों के बेलन की लंबाई बहुत कम रक्खी जाती है । ६-७ इंच से ज्यादा लंबी चर्खियां कहीं देखने में नहीं आती हैं । दूसरे चित्र में जो बैठकवाली चर्खी दिखाई पड़ी है वह इसका सुधारा हुआ रूप है । उसमें ९ से ११ इंच तक लंबा बेलन लगाया जाता है । और उसके काम का हिसाब देखने से मालूम हुआ कि लोहेवाली चर्खी से सिर्फ १० फ सदी कम काम होता है इसलिए चर्खी-जगत में यह सुधार बड़ा उपकारी हुआ है ।

सुधरी हुई चर्खी में एक दूसरा फायदा यह हुआ है कि उसके लिये तनछ की ही लकड़ी लगती थी उसके एवज में बबूल की लकड़ी लगाई जा सकती है । सिर्फ उसमें तिरछी लकीरें कोर लेनी पड़ती हैं । तनछकी लकड़ी दूसरे प्रांतों में मिलती नहीं है या अब तक पहचानी नहीं गई है इसलिए उसकी जगह बबूल का उपयोग हो सकता है यह बड़ी अनुकूलता हो गई ।

उत्कल की चर्खी का एक नमूना मिला है । उसमें सिर की लकड़ी के बेलन लगाये गये मालूम होते हैं । इस लकड़ी का उपयोग, उपयोग करनेवाले और बनानेवाले का इस यंत्र के बारे में अज्ञान सूचित करता है ।

भिन्न २ लकड़ियों के बेलन का उपयोग करके देखने से मालूम हुआ है कि तनछ की लकड़ी सब से बढ़िया काम देती है । बबूल से भी काम चल जाता है, और इसके अलावा तीन चार दूसरी जाति की लकड़ियों का उपयोग भी सुना गया है, यथा जामुन, पीपल, हलदवा, लेसवा आदि ।

विलायती हाथ चर्खी और ऊपर कही हुई देशी हाथ चर्खियों की तुलना कर के समझनेवाले देख सकते हैं कि हाथ चर्खी में यांत्रिक संशोधन को स्थान नहीं है ।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

पशुवध

उसके कारण और उपाय

मुख्यतः चमड़े के लिए पशुवध होता है । चमड़े का बाजार जैसा तेज होता जायगा वैसे ही पशुओं की कत्ल भी बढ़ती जायगी ।

पंजाब प्रान्त में बोर्ड आफ इकोनोमिक इंक्वायरी ने पंडित शिवदत्त कृत इस विषयक एक उत्तम निबन्ध प्रकाशित किया है । उसमें से नीचे दी गई सूचि ली गई है । उसमें गाय के चमड़े के भाव की और उसकी कत्ल की तुलना की गई है ।

वर्ष	लाहोर में गाय के चमड़े का भाव	गाय और उसके बछेरों की कत्ल
१९१५	६॥	६,९३५
१९१६	४॥	६,०२३
१९१७	अप्राप्य है	...
१९१८	३६	६,४६५
१९१९	३४	९,५०५
१९२०	३९	७,९५२

इन अंकों का विवेचन करते हुए श्री शिवदत्तजी लिखते हैं:

"यह प्रतीत होता है कि गाय के चमड़े के भाव में और उनकी कत्ल में कोई सीधा संबंध है । १९१९ में उनकी कत्ल इसलिए बढ़ी थी क्योंकि उस वर्ष अमरिकन गायों के चमड़े बहुत महंगे थे और यहां दुष्काल होने के कारण चारा न मिलता था और ढोर बड़े सस्ते हो गये थे ।"

कत्ल किये गये ढोरों के चमड़े ज्यादातर हिन्दुस्तान में ही कमाये जाते हैं और उनमें से बनाये हुए जूते आज हमलोग पहनते हैं । इसलिए दयाधर्म को माननेवाले सभी लोगों का यह कर्तव्य है कि वे केवल मरे हुए ढोरों के चमड़े को ही कमानेवाले कारखानों (टेनरी) की स्थापना करें और दयाधर्मी साहुकारों को तो इस उपकारी प्रवृत्ति के साथ से जो दूषित न हों ऐसे जूते काफी तादाद में तैयार कर देने के लिए अवश्य ही यह उद्योग करना चाहिए । मरे हुए ढोरों के चमड़े की रक्षा की जाय और

इसका उपयोग किया जाय तो फिर केवल चमड़े के लिए उनकी जो रक्षा होती है वह शीघ्र ही बन्द हो जायगी।

इसके अलावा करोड़ों रुपये का चमड़ा विदेशों में भेजा जाता है और इसको 'दयालु' अंगरेज सरकार की उल्टी राजनीति मदद करती है। संयुक्त प्रान्त के चुमड़ उद्योग के अधिकारी मि. सिल्वर ने १९१२ में व्याख्यान देते हुए कहा था:

"क्या कभी आपने यह देखा है कि कच्चा माल विदेशों में भेजनेवाले व्यापारियों की मदद करने के लिए ही रेल्वे अपना भाड़ा घटाती है। "रेल्वे गुड्स टैरिफ" नामक मनुष्य को उलझन में डाल देनेवाली पुस्तकें पढ़ोगे तो मालूम होगा कि देश के अन्त:प्रदेश में से समुद्र किनारे तक अपनी यहां की पैदाइश को ले जाने के लिए रेल्वे कम से न्यून भाड़ा लेकर काम करती है। इसका परिणाम यह होता है कि कच्चा माल परदेश चला जाता है और परदेशी उद्योगों का पोषण करता है। रेल्वे की इस नीति के कारण अक्सर यह होता है कि हमलोग अपने कच्चे माल को लेकर कोई हुनर या उद्योग नहीं बढ़ा सकते हैं, अपने देशके मजदूरों के हाथ से इतना काम चला जाता है और हुनर उद्योग में से जो आर्थिक लाभ हो सकता है वह लाभ भी हम नहीं ले सकते हैं।

बाबू विक्रमादित्य सिंह ने कानपुर में भारतीय हुनर उद्योग के कमीशन* समक्ष अपना इजहार देते हुए इस प्रकार कहा था:

"कच्चे चमड़े यदि देहली या कानपुर से हावड़ा ले जाने हों तो रेल्वे क्रमशः एक मन पर पौने सात आने और सवा पांच आने किराया लेती है लेकिन यदि देहली से कानपुर जाने हों तो अन्तर केवल २७१ मील का होने पर भी पांच आने और आठ पाई भाड़ा लेती है। देहली या कानपुर से हावड़ा ले जाने के लिए १०० मील पर ९ पाई लेती है और देहली से कानपुर ले जाने के लिए ३६ मील पर ९ पाई लेती है। कानपुर से हावड़ा ६११ मील है फिर भी किराया सवापांच आने हैं और देहली से कानपुर २७१ मील है फिर भी किराया पांच आने और आठ पाई है। चमड़े इस देश में ही कमाये जाय और इस देश के भूखों मरनेवाले लोगों को रोजी मिले, इसे ही असंभव बनाने के लिए कानपुर से हावड़ा कमाया हुआ चमड़ा ले जाने के लिए एक मन पर १ रुपया किराया लिया जाता है। अर्थात कानपुर से हावड़ा कच्चा चमड़ा ले जाना हो तो सवा पांच आने लगते है और कमाया हुआ चमड़ा उतनी ही दूर ले जाना हो तो एक रुपया लगता है।"

चमड़े के संबंध में जो हाल है वही अनाज, रुई इत्यादि के बारे में भी है।

पशुवध के दूसरे कारणों का फिर कभी विचार करेंगे।

(नवजीवन) वालजी गोविंदजी देसाई

* 'मिनिट्स आफ एविडेन्स' पुस्तक १ पृष्ठ १५१

आश्रम भजनावली

पांचवी आवृत्ति छपकर तैयार हो गई है। पृष्ठ संख्या ३२० होते हुए भी कीमत सिर्फ ०—२—० रक्खी गई है। डाकखर्च खरीदार को देना होगा। ०—३—० के टिकट भेजने पर पुस्तक बुकपोस्ट से फौरन रवाना कर दी जायगी। १० प्रतियों से कम प्रतियों की वी. पी. नहीं भेजी जाती।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

टिप्पणियां

मालवीयजी और लालाजी

हिन्दू महासभा के एक उत्साही सदस्य ने मुझे 'य. इं.' और 'नवजीवन' में उत्तर देने के लिए कोई १५ प्रश्न भेजे हैं। एक दूसरे महाशय ने इन्हीं प्रश्नों के तरीके पर मेरे साथ इसी बारे में बहस की है। मैं उन सब प्रश्नों का उत्तर देना नहीं चाहता हूं लेकिन उनमें कुछ को तो मैं छोड़ देने की भी हिम्मत नहीं कर सकता हूं। क्यों कि उन प्रश्नों से तो पंडित मदनमोहन मालवीयजी और लालाजी पर वर्तमान पत्रों में जो आक्रमण हो रहा है उस ओर मेरा ध्यान खींचा गया है। मुझसे ये प्रश्न पूछे गये हैं. 'क्या आपको उनके भले उद्देश के बारे में शंका है? क्या आप उन्हें सीधी तौर पर या और किसी दूसरे तरीके पर हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के विरोधी मानते हैं? आप मानते हैं कि क्या वे देशको जानबूझ कर किसी भी प्रकार की हानि पहुंचा सकते हैं?' मैं अक्सर यह देखता हूं इन स्वदेश भक्त वीरों पर इस प्रकार आक्रमण होता है। मैं यह भी जानता हूं कि मेरे बहुत से मुसल्मान मित्रों को इन दोनों प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के प्रति सम्पूर्ण अविश्वास है। लेकिन मैं, बहुतेरी बातों में उनसे कितना भी मतभेद क्यों न रक्खूं, उनमें से किसी एक पर भी कभी भी अविश्वास नहीं ला सकता हूं। जिस प्रकार मैंने मुसलमानों को मालवीयजी और लालाजी पर इस प्रकार आक्षेप करते हुए देखे है उसी प्रकार हिन्दुओं को भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुसलमानों पर ऐसे आक्षेप करते हुए देखे है। लेकिन मैं उनमें से किसी भी पक्ष के आक्षेपों पर विश्वास नहीं ला सका हूं और मैं अपना मन्तव्य भी किसी भी पक्ष को नहीं समझा सका हूं। मालवीयजी और लालाजी दोनों ही देश के पके हुए सेवक हैं। दोनों बहुत दिनों से, देश की बराबर प्रशंसनीय सेवा कर रहे हैं। उनके साथ दिल खोल कर बातचीत करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है लेकिन मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं है कि जब मैंने उन्हें मुसलमानों के विरोधी पाये हों। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें मुसलमान नेताओं के प्रति अविश्वास नहीं है और इस बड़े कठिन और नाजुक प्रश्न के उपाय के संबन्ध में हम लोग एक राय हैं। उन्हें ऐक्य की आवश्यकता के बारे में कुछ भी संदेह नहीं है और उन्होंने अपने विचारों के अनुसार उसके लिए प्रयत्न भी किया है। मेरी राय में तो इन नेताओं के उद्देश के संबंध में शंका करना ही ऐक्य के होने के सम्बन्ध में शंका प्रकट करना है। जब हम लोग संधि करेंगे, किसी न किसी दिन हमें यह करना ही होगा, उस समय उनकी बातों का हिन्दू-समाज पर ठीक वैसाही असर पड़ेगा जैसा कि मुसल्मानों में मौलाना अबुल कलाम आजाद और हकीम साहब की बातों का असर पड़ता है। बेशक, हरएक कार्यकर्ता को इसके लिए यही उपाय बताया जा सकता है कि जबतक किसी कार्यकर्ता के विरुद्ध कोई स्पष्ट प्रमाण न मिले तबतक तो उसे उसके शब्दों पर ही विश्वास रखना चाहिए। यदि उसमें गलती हो और उसको धोखा हो तो भी विश्वास रखनेवाले का उससे कुछ भी नुकसान नहीं होता है। शंका और अविश्वास के वातावरण में सार्वजनिक जीवन यदि असंभव नहीं तो असह्य अवश्य हो जाता है।

खादी प्रदर्शिनी

एक महाशय पत्र लिख कर पूछते हैं कि महासभा सप्ताह के दरम्यान कानपुर में जो खादी प्रदर्शिनी होनेवाली है उसमें विदेशी या देशी मिल के सूत की बनी खादी या दरियां भी प्रदर्शिनी में रक्खी जा सकेंगी या नहीं? बेलगाम में भी इसी प्रकार का प्रश्न

बठा था और उस समय यह निर्णय किया गया था कि केवल शुद्ध खादी ही प्रदर्शिनी में रक्खी जा सकेगी और जिसमें विदेशी या देशी मिल का सूत होगा उसे वहां न रक्खा जा सकेगा। आज भी वही स्थिति कायम है, उसमें कोई फरक नहीं पडा है और मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि खादी प्रदर्शिनी में शुद्ध खादी के सिवा और कुछ भी रखना धोखा देना है।

धारासभा प्रवेश

एक अमेरिकन पत्रकार लिखते हैं: "आपको धारासभा प्रवेश का किसी भी प्रकार से समर्थन करते हुए देख कर मुझे अफसोस होता है। आप इस स्थिति पर पहुंचे उसके पहले यदि आप सही थे तो अब आप गलती पर हैं। मैंने धारासभा को हमेशा उस टीन के टुकडे के साथ उपमा दी है जो बच्चे को फुसलाने के लिए यह कह कर दिया जाता है कि देखो यह चांद है। भाई, इससे खेलो। यही तुम चाहते थे न।"

मेरे लेखों में से कुछ इधर उधर की बातें पढ कर लेखक ने मेरी स्थिति के बारे में गलत ख्याल किया है। धारासभा प्रवेश के संबंध में तो मैं अब भी उसी स्थिति पर कायम हूं जिस पर कि मैं १९२०-२१ में कायम था। लेकिन मैं व्यवहारिक आदमी होने का दावा करता हूं। मैं आंखें बन्द करके जो बातें मेरे सामने स्पष्ट दिख रही हैं उन्हें न देखने का प्रयत्न नहीं करता हूं। इसलिए मैंने इस बात का स्वीकार कर लिया है कि मेरे कुछ मित्र और सहयोगी कार्यकर्ता जो १९२०-२१ में मेरे साथ एक ही जहाज में बैठे हुए थे अब उस जहाज को छोड कर चले गये हैं और उन्होंने अपना मार्ग बदल दिया है। वे भी उतने ही राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं जितना कि मैं खुद उसका प्रतिनिधि होने का दावा करता हूं। इसलिए मुझे यह निर्णय करना पडा है कि मैं अपने मार्ग को उनके मार्ग के साथ अनुकूल बनाने के लिए जहां तक हो सके विशाल बनाऊं। धारासभा प्रवेश की बात ऐसी थी कि मैं उसे बदल नहीं सकता था इसलिए मुझे अपने सहयोगी स्वराजी भाइयों को इसमें जितनी भी मदद मुझसे हो सके, करने में कोई हिचकिचाहट नहीं मालूम होता है; उसी प्रकार जिस प्रकार कि मैं खुद शान्ति चाहनेवाला हूं फिर भी यूरोपियनों के खिलाफ बहादुर रिफों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित किये बिना मैं नहीं रह सकता हूं।

गत वर्ष का खादी कार्य

अ० भा० खादी मण्डल के जो अब चरखा संघ में परिणत हो गया है, गत वर्ष के कार्य की रिपोर्ट पर से बहुत कुछ जानने लायक बातें मालूम हो सकेंगी। मैं केवल खादी प्रेमियों से ही उसे पढ जाने की सिफारिश नहीं करता हूं लेकिन टीका करनेवालों से और जिन्हें खादी के संबंध में शंका है, उनसे भी उसके लिए सिफारिश करूंगा। साबरमती में चर्खा संघ के मंत्री को लिखने से रिपोर्ट मिल सकती है। उसमें अपनी एक भी त्रुटि को छिपाना नहीं छोडा है। उसमें प्रान्तिक संस्थाओं की तरफ से किये गये विलम्ब और उदासीनता के संबंध में काफी विवेचन किया गया है। उसमें चरखे के प्रचार में जो बडी कठिनाइयां हैं उनका भी उल्लेख किया गया है। लेकिन यह सब कहने के बाद भी इसने जो कार्य किया है उसकी रिपोर्ट से मालूम होगा कि खादी ने कितनी प्रगति की है। वह प्रगति इतनी नहीं है कि चौंका दे, वह इतनी नहीं है कि गांवों में रहनेवालों के जीवन पर उसका असर पडे, वह इतनी नहीं है कि उससे विदेशी कपडे का बहिष्कार, जिसके कि लिए हमलोग लालायित रहते हैं किया जा सके लेकिन उसकी रिपोर्ट स्वयं असर करनेवाली है। ऊपर ऊपर से देखनेवाले मुझसे कहते हैं कि खादी की प्रवृत्ति मन्द हो गई है क्योंकि शहरों में अब वे पहले के बनिस्बत सफेद टोपियां कम देखते हैं। मैं सफेद टोपियां इसलिए लिख रहा हूं क्योंकि सब सफेद टोपियां खादी की नहीं होती हैं। अनुभव से मैं यह सीखा हूं कि ये टोपियां बडी धोखा देनेवाली थीं। ऐसी टोपियां पहननेवाले सब सच्चे प्रामाणिक मनुष्यों से कुछ अधिक खादी-प्रेमी न थे जो विदेशी कपडों का और प्रकार से त्याग नहीं कर सकते थे इसलिए दिखावे के लिए या उससे भी बुरे उद्देश से खादी की टोपी पहनने से इन्कार करते थे। अङ्कों से तो आज दूसरी ही बात मालूम होती है। १९२१ में जितनी खादी पैदा होती थी उससे अब अधिक खादी पैदा होती है, अब चरखे भी अधिक चल रहे हैं, उनसे सूत भी अधिक निकलता है और जो खादी तैयार होती है वह चार वर्ष पहले जो खादी तैयार होती थी, उसके बनिस्बत कहीं अधिक अच्छी होती है। कार्य अब अच्छा व्यवस्थित और नियमित हो गया है और इसलिए अब शिघ्रता से अधिक प्रगति की जा सकती है। अब कताई ले कर कातनेवाले लोग भी पहले के बनिस्बत अधिक हैं। और धीरे धीरे स्वेच्छा से कातनेवाले भी बढ रहे हैं। किसी भी दूसरे राष्ट्रीय खाते के बनिस्बत इस समय खादी का संगठन कार्य करने में ज्यादह स्त्री-पुरुषों को रोजी मिल रही है। खादी का सेवा कार्य हमेशा प्रगत्यात्मक सेवा कार्य है। प्रामाणिक बुद्धिमान और मिहनत करनेवाले कार्यकर्ताओं को अच्छा वेतन देने की उसकी शक्ति अमर्यादित है। खादी कार्य में अवैतनिक कार्यकर्ता भी अधिक मिले हैं। सब से बढ कर तो यह बात अब साबित हो गई है कि योग्य व्यवस्थित संस्था के बिना, जो खादी का ही कार्य करती हो और जिसमें वेतन लेनेवाले या न लेनेवाले बहुत से अच्छे कार्यकर्ता काम करते हों, खादी का कार्य नहीं हो सकता है। उसके कारीगर विभाग ने कुछ महत्व की शोधें भी की हैं जैसे थोडे से सूत को भी दबाने के लिए सूत के दाब यंत्र को उसने सुधारा है। उसमें खादी और सूत के नमूनों की परीक्षा की जाती है और नकली खादी को फौरन ही पहचान लिया जाता है। अपने अपने स्थानों में कार्य करने के लिए उसमें विद्यार्थी भी तैयार किये जाते हैं। रंगने के काम के प्रयोग किये जाते हैं और पानी से भी बचानेवाली खादी तैयार करने का प्रयोग हो रहा है। इन दोनों प्रयोगों में ठीक ठीक सफलता मिली है। जो लोग खादी के कार्य के सम्बन्ध में शंकित रहते हैं उन्हें यह रिपोर्ट मंगा कर स्वयं इस बात का यकीन कर लेना चाहिए। उन्हें संघ के सभासद बनना चाहिए, और जो लोग उसकी शर्तों को पूरा नहीं कर सकते हैं उन्हें जो कुछ भी वे कर सकें अपने कार्य से उसकी मदद करनी चाहिए और उसमें जितना भी हो सके उन्हें चन्दा भी देना चाहिए।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-पुस्तकें

लोकमान्य को श्रद्धांजलि	॥)
दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह (पूर्वार्द्ध) ले० गांधीजी	॥।)
आश्रमभजनावलि	≈)
अयन्ति अंक	।)

डाक खर्च अलहदा। दाम मनी आर्डर से भेजिए अथवा वी. पी. मंगाइए—

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

राष्ट्रीय शिक्षा

वार्षिक मूल्य ४)
छःमास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १७

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद	अहमदाबाद, पौष वदी १०, संवत् १९८२ गुरुवार, १७ दिसम्बर, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

अध्याय १

जन्म

गांधी कुटुम्ब पहले तो पंसारी की दुकान या ऐसा ही फुटकर माल का व्यापार करते होंगे। लेकिन तीन पीढ़ि हुई मेरे दादा से ले कर वे दिवानगिरी करते चले आ रहे थे। उत्तमचंद गांधी अथवा ओता गांधी संभव है बड़े टेक वाले थे। उन्हें राजखटपट के कारण पोरबंदर छोड़ना पड़ा और उन्होंने जूनागढ़ का आश्रय लिया। उन्होंने नवाब साहब को बायें हाथ से सलाम की। किसीने इस स्पष्ट दिखनेवाले अविनय का कारण पूछा तो उसे जवाब मिला 'दाहिना हाथ तो पोरबन्दर को दे चुका हूं'।

ओता गांधी को एक के बाद एक इस प्रकार दो पत्नियां थी। पहली स्त्री से उन्हें चार पुत्र हुए थे और दूसरी से दो। मुझे मेरा बचपन याद करने पर यह ख्याल नहीं होता है कि ये सब सौतेले भाई थे। इनमें से पांचवें करमचंद गांधी अथवा कबा गांधी थे और आखिरी तुलसीदास गांधी थे। दोनों भाई, एक के बाद एक इस प्रकार पोरबन्दर के दिवान रहे थे। कबा गांधी, मेरे पिताजी राजस्थानिक कोर्ट के सभ्य थे। फिर राजकोट में और कुछ समय वांकानेर में दिवान थे। आखिर उन्होंने राजकोट दरबार से पेन्शन ले कर स्वर्गवास किया।

कबा गांधी को एक के बाद एक इस प्रकार चार स्त्रियां हुई थीं। पहली दो के दो लड़कियां थी। आखिरी पुतलीबाई को एक लड़की और तीन लड़के थे, उनमें से आखिरी मैं था।

पिता कुटुम्बप्रेमी, सत्यप्रिय, शूर, उदार लेकिन क्रोधी थे। कुछ अंश में शायद वे विषयासक्त भी होंगे। उनका अन्तिम विवाह उनके चालीसवें वर्ष के बाद हुआ था। हमारे कुटुम्ब में और बाहर लोगों में भी उनके बारे में यह कहा जाता था कि वे रिश्वत से दूर रहते थे इसलिए वे शुद्ध न्याय कर सकते थे। राज्य को बड़े वफादार थे। एक समय किसी प्रान्त के एक गोरे साहब ने राजकोट के ठाकोर साहब का अपमान किया था इसलिए वे उसके साथ लड़ पड़े। साहब गुस्से हो गये और उन्होंने माफी मांगने के लिए फरमाया। उन्होंने माफी मांगने से इन्कार किया इसलिए उन्हें कुछ घण्टे हाजत में भी रहना पड़ा था लेकिन वे माफी मांगने को तैयार न हुए। आखिर साहब को उन्हें छोड़ देने का हुक्म देना पड़ा।

पिताजी ने द्रव्य एकत्रित करने का कभी भी लोभ नहीं किया था। इसलिए वे हम लोगों के लिए बहुत ही थोड़ा धन छोड़ गये थे।

पिताजी को केवल अनुभव का शिक्षण मिला था। जिसे हम आज गुजराती पांच किताबों का ही ज्ञान मान सकते हैं उतना ही शिक्षण उन्हें मिला होगा। इतिहास भूगोल का तो उन्हें कुछ भी ज्ञान न था। फिर भी उनका व्यवहारिक ज्ञान इतना ऊंचा था कि सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रश्नों का निर्णय करने में या हजार आदमियों से भी काम लेने में भी उन्हें जरा भी मुश्किल न मालूम होती थी।

उन्हें धार्मिक शिक्षण भी कुछ नहीं सा ही मिला था। लेकिन मन्दिरों में जाने से या कथा इत्यादि सुनने से जो धार्मिक ज्ञान असंख्य हिन्दुओं को सहज ही प्राप्त होता है, वह ज्ञान उन्हें भी था। अपने अन्तिम वर्षों में कुटुम्ब के एक विद्वान ब्राह्मण मित्र की सलाह से उन्होंने गीता का पाठ आरंभ किया था और वे रोजाना अपने पूजा के समय पर कुछ श्लोक उच्च स्वर से पढ़ जाते थे।

माता एक साध्वी स्त्री थी। मेरे मन पर उनकी ऐसी ही छाप पड़ी हुई है। वे बड़ी धर्मभीरु थीं। पूजापाठ किये बिना कभी भी भोजन न करती थी। हमेशा मन्दिर जाती थी। जब से मैं समझने लगा हूं मुझे यह याद नहीं पड़ता कि उन्होंने कभी चातुर्मास का व्रत छोड़ा हो। कठिन से कठिन व्रतों का वे आरंभ करती थीं और उन्हें वे निर्विघ्न पूरा करती थीं। बीमार पड़ने पर भी वे आरंभ किये हुए व्रत को न छोड़ती थी। मुझे ऐसा एक समय याद है कि जब उन्होंने चान्द्रायण व्रत किया था और बीमार पड़ गई थी, लेकिन उन्होंने व्रत नहीं छोड़ा। चातुर्मास में एक ही समय भोजन करना उनके लिए सामान्य बात थी। इतने ही से संतोष न मान कर उन्होंने एक चातुर्मास में एक दिन उपवास और एक दिन एक समय भोजन करना इस प्रकार का भी व्रत रक्खा था। लगातार दो तीन दिनों का उपवास करना उनके लिए कुछ बड़ी बात न थी। एक चातुर्मास में उन्होंने ऐसा व्रत रक्खा था कि उसमें सूर्यनारायण के दर्शन करने के बाद ही भोजन किया जा सकता था। इस वर्षाऋतु में हमलोग बादलों के सामने ही देखा करते थे कि कब

सूर्यनारायण दिखाई दे और तब माता भोजन करे। वर्षाऋतु में सूर्य का दर्शन होना बहुत ही कठिन होता है यह सभी जानते हैं। ऐसे भी दिनों का मुझे स्मरण है कि सूर्य दिखाई देता और जहां हम पुकार उठते कि 'मां, मां, सूरज दिखाई देता है' और मां दौड़ कर आती कि सूर्य छिप जाता था। "कुछ नहीं, आज भाग्य में भोजन नहीं लिखा है" कह कर माता लौट जाती थी और अपने काम में लग जाती थी।

माता व्यवहारकुशल थी। दरबार सम्बन्धी सभी बातें जानती थी। रनवास में उनकी बुद्धि अच्छी गिनी जाती थी। मैं बालक होने के कारण मां कभी कभी मुझे दरबार गढ़ में ले जाती थी और 'मा साहब' के साथ के उनके कुछ संवाद तो मुझे अब भी याद है।

इन्हीं माता पिता के घर संवत् १९२५ के भाद्रपद बद १२ के दिन अर्थात १८६९ के अक्तूबर की ता. २ को मैंने पोरबन्दर में अर्थात सुदामापुरी में जन्म ग्रहण किया।

लड़कपन पोरबन्दर में ही बिताया। मुझे किसी शाला में बिठाया गया था यह याद है। मुश्किल ही से कुछ पहाड़े सीखा होगा। मुझे याद है उस समय मैं लड़कों के साथ गुरुजी को केवल गाली देना ही सीखा था। और उसके अलावा और कुछ याद नहीं है इसलिए मैं यह अनुमान करता हूं कि मेरी बुद्धि मंद होगी और याददाश्त भी उस समय हम जो सतरें मास्टर को गाली देने के लिए गाते थे उनमें के कच्चे पापड़ की सी रही होगी।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ईश्वर एक ही है

(गतांक से आगे)

(१) एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः।

यह एक ही देव है जो मन में प्रवेश किये हुए है, यह प्रथम प्रकट हुआ था और सब के गर्भ में अन्तर में रहा हुआ है।

(२) स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।

स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत् ॥

स्कम्भ कहने से विश्व के स्तम्भ रूप परमात्मा से ही यह द्यौ और पृथ्वी टिके हुए हैं। ये सब जो आत्मवान हैं, प्राणवान, निमिषवान हैं वही स्कम्भ है।

(३) वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।

सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद्ब्राह्मणं महत् ॥

विस्तृत (दीर्घ–लम्बा)—जिस में यह प्रजा गुंथ रही है उसे मैं जानता हूं। इस सूत्र (प्रकृति) के सूत्र को (परमात्मा को) भी मैं जानता हूं जो महद् ब्रह्म है।

(४) बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति।

यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।

द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता।

उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥

उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः।

दिव स्पशः प्रचरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥

सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्।

संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः।

सिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥

इस जगत का महान अधिष्ठाता मानो पास रह कर ही सब कुछ देखता है। और फिरता हुआ भी जो कुछ विचार करता है उन सब को वह देखता है; जो खड़ा रहता है, फिरता है टेढ़ा चलता है, गुफा में जा बैठता है या ऊंचा चढ़ता है उसे भी, अर्थात सब कुछ वह जानता है। दो शख्स इकट्ठे बैठ कर बातें करते हैं उसे तीसरा वरुण राजा जानता है। और यह भूमि भी वरुण राजा की है। यह प्रकाशमान गगनमण्डल भी उसके अन्तिम छोर तक उसीका है। ये दो समुद्र–अन्तरिक्ष और पृथ्वी के—वरुण के दो पहलू हैं। और इस अल्पजल में—छोटे से खड्डे में भी वही छिपा हुआ है। यहां से भाग कर आकाश में चला जाय तो भी वरुण राजा के हाथ से कोई नहीं छूट सकता है। हजार नेत्रवाले उसके दूत आकाश में से सब जगह फिरते हैं और यह सब देखते हैं। भूमि के उस पार भी देखते हैं। जो आकाश और पृथ्वी के बिच में हैं और जो उससे उस पार हैं उन सब को वरुण राजा देखता है। प्राणियों के नेत्र–निमिष भी उसके गिने हुए हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार कि पासा डालनेवाला पासे गिन लेता है। हे वरुण, तेरे सात, सात, और तिन गुने पाश हैं वे सब जो असत्य-वादी हैं उन्हीं को बाधा पहुचावें और सत्यवादी को छोड़ दें।

(अथर्व वेद)

(१) देव स्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान

इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥

देव–त्वष्टा–सविता जो सर्वरूपवाला है, वह सब प्रजा (उत्पन्न हुए सृष्टि के सब पदार्थों) का पोषण करता है; ये सब भुवन उसीके हैं। यही एक देवों का बड़ा असुरत्व–अस्तित्व अर्थात प्राणदातापन–है: अर्थात देवों का अस्तित्व अर्थात प्राणदान–सामर्थ्य इसी के कारण है, इसी में समाविष्ट है।

(२) विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्,

सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

सब तरफ नेत्रवाला, सब तरफ मुखवाला, सब तरफ हाथवाला, सब तरफ पैरवाला, बाहु और पांखों के द्वारा फूंक कर (लुहार जिस प्रकार अग्नि को फूंक कर लोहा तैयार करता है उसी प्रकार) द्यौ और पृथ्वी को बनानेवाला एक देव है।

(३) किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।

मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ।

वह कौन वन था? कौन वृक्ष था? जिसमें से द्यौ और पृथ्वी बनाई? बुद्धिमान मनुष्यों, अपने मन के साथ विचार करो: (उत्तर) भुवनों को धारण करनेवाला उसका अधिष्ठाता ही वह था (यह वन और यह वृक्ष था।)

(४) यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥

जो हमारा पिता, हमारा उत्पन्न कर्ता, हमारा विधाता (विशेष रूप से रखनेवाला) है, जो सभी भुवनकी धर्मों को जानता है। जो देवों का नाम पाडनेवाला है उसी अज्ञेय प्रश्नरूप (रहस्यमय) देव के प्रति जुदे जुदे विविध भुवन प्रयाण कर रहे हैं।

(५) तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।

अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥

उसे गर्भरूप से प्रथम जल ने धारण किया था, जिस में सर्व देव एकत्रित होते हैं वह एक अजन्मा की नाभि में रहा हुआ है; और उसमें सर्व भुवन रहे हुए हैं। अर्थात् देवों की एक महात्मा के आत्मा में एकता होती है और वह आत्मा अजन्मा की नाभि में से अर्थात् परमात्मा के गर्भ में से होता है।

(ऋग्वेद)

शिक्षक और विद्यार्थी

आजकल विद्यार्थियों के बहुत से सम्मेलन होते हैं, परिषद भी होते हैं। उन्होंने शायद ही इस साल की एक चिरस्मरणीय घटना पर ध्यान दिया होगा। वह घटना है गांधीजी के अपने प्राण प्रिय विद्यार्थियों के लिए किये हुए सात दिनों के उपवास। इस उपवास का महत्व केवल उन्हीं विद्यार्थियों के लिए नहीं है जिनके कि लिए वे किये गये थे, लेकिन उसका महत्व समस्त विद्यार्थि-जगत के लिए है; इतना ही नहीं शिक्षकों के लिए भी वह उपवास उतना ही महत्व रखता है। यह महत्व उपवास विषयक विशेष लेख में से (जो गतांक में दिया जा चुका है) समझ सकेंगे। इसके अलावा उपवास की समाप्ति के दिन सुबह विद्यार्थियों को अपने पास बुला कर उन्होंने धीरे और मधुर कंठ से जो उद्गार निकाले थे उस पर से भी समझ में आ सकेगा। उसमें से जितना दिया जा सकता है उतना भाग विद्यार्थी और शिक्षकों के — दोनों के लाभार्थ यहां दिया जाता है:

"गत मंगलवार को मैंने उपवास शुरू किये थे। तुम सब लड़के उस मंगलवार को याद करो। उस दिन मैंने यह क्यों किया? मेरे सामने तीन रास्ते थे:

(१) सजा करने का — जब बालक कोई गलती करता है तो शिक्षक उसे सजा दे कर सन्तोष मान लेता है। 'गलती पकड़ ली और उसे बन्द करने के लिए अधिकार का उपयोग किया यह कुछ कम थोड़े ही है?' ऐसा विचार कर के वह अपने को कृतकृत्य मान लेता है। लेकिन मैं भी एक शिक्षक हूं। आजकल दूसरे कामों में उलझे रहने के कारण पढ़ाने के कार्य में अपना हिस्सा नहीं दे सकता हूं, फिर भी अपनी शाला की उत्पत्ति के मूल में तो मेरा अपना ही मुख्य हाथ है। एक शिक्षक की हैसियत से मेरे अनुभव में मुझे यह रास्ता निरर्थक और हानिकारक प्रतीत हुआ है।

(२) उदासीनता का — जो हुआ सो हुआ, उसमें अपना बस ही क्या चलता है? लड़के पढ़ते हैं, ठीक रास्ते खेलते हैं, दूसरे विषयों में भी ठीक ठीक तैयार हो गये हैं और गीता इत्यादि थोड़ा बहुत तो उन्हें याद है, फिर व्यर्थ झंझट में पड़ने से क्या लाभ? लड़कों में आपस में कैसा बर्ताव है यह शिक्षक कहां और कितनी मरतबा देखने जायगा?" इस उदासीनता में मुझे निष्ठुरता और कर्तव्य विमुखता दिखाई देती है।

(३) प्रेम का — मैं तो तुम्हारे जीवन की परीक्षा करनेवाला हूं। तुम्हारी इच्छा जानने की इच्छा रखता हूं। मैल के पीछे पड़ कर उसे साफ करनेवाला हूं। मैल निकालना ही प्रथम शिक्षा है और बाकी सब पीछे से हो जायगा यह मानता हूं इसलिए जब मैंने तुम लोगों में मैल देखा तो मेरा क्या कर्तव्य हो सकता है? न तुम को सजा कर सकता हूं और न शिक्षकों को ही। मैं शाला का प्रधान हूं इसलिए मुझे अपने ही को सजा करनी चाहिए यही मैंने अपने मन में निर्णय किया। सात दिन की यह प्रतिज्ञा आज पूरी होती है।

मैंने तो इन दिनों में बहुत कुछ प्राप्त किया है। तुम लोगों ने क्या पाया? तुम लोग फिर कभी गलती न करोगे ऐसा यकीन दिला सकते हो? तुम लोग मुझे दुःखी देख कर दुःखी हो यह मान्यता मेरे उपवास के अंदर गहरे में छिपी हुई है। वह हमारा पिता है उसे कष्ट कैसे पहुंचावें? उसे तो सुखी करना चाहिए ऐसा तुम को ख्याल होवे यह जानने में ही मेरा अभिमान है। भूल न करने की कुंजी तो तुम लोगों ने समझ ली है न? झूठ जरा भी न बोलना चाहिए, एक भी बात न छिपानी चाहिए, यदि कोई दोष या भूल हुई हो तो उसका अपने शिक्षक या अपने बड़ों के सामने स्वीकार कर लेना चाहिए। इतना करने में तुम भूल न करोगे तो बच जाओगे। इतना ही तुम करोगे तो मैं समझूंगा कि अच्छा हुआ मैंने उपवास किये। प्रथम यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए; विषय का ध्यान मत करो, द्वेष या ईर्ष्या न करो, किसीकी उसकी पीठ पीछे निंदा न करो, काम में लगे रहो, अपने को मत ठगो— अर्थात किसी दूसरे को भी न ठगो। कातना, पढ़ना, पाठ करना विचार करना इत्यादि सब काम प्रामाणिकता के साथ करो। आध घण्टा कातना हो तो एक घण्टा काता है यह कह कर दगा न करो।

प्रत्येक उपवास के समय मैं "वैष्णव जन" तो गाने को कहता ही हूं। उसीमें से मुझे सब कुछ मिल जाता है। गीताजी यदि मैं भूल जाऊं तो भी यह भजन ही मेरे लिए काफी है। सच पूछो तो इससे भी एक और वस्तु अल्प है — बालक उसे शायद न भी समझ सकें — वह यह है कि सत्य ही परमेश्वर है, सत्य का भंग करना ही ईश्वर को ठगना है — इतना तुम याद रखोगे तो पार उतर जाओगे।"

महादेव हरिभाई देसाई

कातनेवालों के प्रति

चरखा संघ के मंत्री लिखते हैं:

सभ्यों को मार्गसूचक निम्न लिखित सूचनायें हम यहां दे रहे हैं:

(१) मिल की पूनियों से काता गया सूत सभ्यों के चन्दे के तौर पर स्वीकार नहीं किया जा सकेगा।

(२) सूत का चन्दा बुकपोस्ट या साधारण पारसल से भेजा जा सकता है, उसकी रजिस्ट्री कराने की कोई जरूरत नहीं है।

(३) सभासद होने के लिए छपी हुई अरजी भेजना ही कोई आवश्यक बात नहीं है। अरजी लिख कर भी दी जा सकती है। वह पहले चन्दे के पार्सल के साथ भेजी जा सकती है या अलग भी भेजी जा सकती है।

(४) जो अलग अलग सभ्य बनना चाहते हैं और इसलिए अपना चन्दा भेजते हैं उन्हें यह बात स्पष्ट लिख देना चाहिए।

(५) पुराने सभ्य जब चन्दा भेजें उन्हें अपना क्रमांक भी लिखना चाहिए। यदि वे क्रमांक न लिखें तो उन्होंने कितनी मरतबा चन्दा भेजा है यह लिखना चाहिए।

(६) सूत पर जो चिट लगाया जाय वह मोटे कार्ड-बोर्ड का होना चाहिए, और उसके भेजने की सब बातें और सूचनायें उसमें स्पष्ट लिखनी चाहिए।

(७) सभ्यों को हमेशा एक ही तरह के दस्तखत करने चाहिए।

(८) किसी भी सभासद का चन्दे के तौर आया हुआ सूत उसे किसी प्रकार लौटाया न जायेगा और न बेचा जावेगा। लेकिन यदि सूत काफी तादाद में भेजा जायेगा तो यदि सभासद की इच्छा होगी और वे सूत और बुनाई के दाम देने के लिए तैयार होंगे तो वह कपड़े के रूप में बुन कर दिया जा सकेगा। लेकिन सभासदों का माहवारी चन्दा अलग एकत्रित करके न रक्खा जा सकेगा।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष बदी १०, संवत् १९८२

दक्षिण आफ्रिका का प्रतिनिधि मण्डल

दक्षिण आफ्रिका से जो प्रतिनिधि मण्डल आ रहा है और जो १२ ता. को यहां पहुंचनेवाले हैं उसकी सम्पूर्ण सूची इस प्रकार है: डा. अब्दुर रहमान, सोराबजी रुस्तमजी, श्री वी. एस. पथीर, सेठ अी. मीरजा, सेठ अमोद भायात, श्री जेम्स गोडफे, सेठ हाजी इस्माइल, श्री भवानी दयाल।

दक्षिण आफ्रिका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषों का यह प्रतिनिधि मण्डल बना है और वे वहां के योग्य प्रतिनिधि हैं। ये दक्षिण आफ्रिका में रहनेवाले प्रवासी भारतवासियों के जुदा जुदा वर्ग की तरफ से उनके लाभ की बात कह सकते हैं। इसके अध्यक्ष डा. अब्दुर रहमान है और उनका जन्म भी आफ्रिका में ही हुआ था और उसमें ऐसे दूसरे भी कुछ लोग हैं। ये सुयोग्य डाक्टर मलाया डाक्टर के नाम से प्रसिद्ध है लेकिन उनमें हिन्दुस्तानी खून है। दक्षिण आफ्रिका की जाति का मलाया भी एक आन्तर विभाग है। वे सब मुसल्मान है और मलाया स्त्रीयें बिना संकोच के हिन्दुस्तानी मुसल्मानों के साथ शादी कर लेती है। ऐसे विवाहबद्ध युगल बड़े सुखी होते हैं और उनकी सन्तति में से कुछ तो बड़ी उच्च शिक्षा पाये हुए हैं। डा. अब्दुर रहमान भी उसी श्रेणि के हैं। उन्होंने स्काटलैण्ड में डाक्टरी सीखी थी और केप टाउन में उनका धंधा खूब चला रहा है। वे केप की पुरानी धारासभा के सभ्य थे और म्युनिसिपल्टि के मशहूर सदस्य थे। लेकिन वे भी रंगभेद से नहीं बच सके हैं।

इस प्रतिनिधि मण्डल का यकीनन अच्छा स्वागत होगा और उनकी बातें धैर्य से सुनी जायगी। हर्ष की बात है कि प्रवासी भारतवासियों प्रश्न किसी एक दल का प्रश्न नहीं है। यह प्रश्न ऐसा है कि हिन्दुस्तान में रहनेवाले अंगरेजों की भी इसमें हिन्दुस्तानियों के प्रति सहानुभूति है। उनका पक्ष है भी बड़ा ही न्यायपूर्ण। इसलिए अब यह प्रश्न केवल न्याय प्राप्त करने की हिन्दुस्तानियों की शक्ति का ही प्रश्न हो रहा है। यदि भारत सरकार दृढ रहे और शाही सरकार की उसे मदद मिले तो यूनियन सरकार को केन्द्र की तरफ से आये हुए इस निर्णयात्मक दबाव के सामने झुकना ही पड़ेगा। लेकिन इससे दक्षिण आफ्रिका के साम्राज्य से निकल जाने का भय है। ऐसे अनेच्छुक हिस्सेदारों को, जो जरा सी बात पर किनारा काट कर निकल जा सकते हैं एक सूत्र में बांध रखने का मूल्य तो केवल साम्राज्यवादी ही समझ सकते हैं। उन शक्तियों को जो आपस मे विरोधी हैं एकत्र रखने की अत्यधिक चिन्ता के कारण ही तो शाही राज्यनीति इतनी गिर गई है कि केवल आफ्रिकावासी और एशियावासियों को चूसना ही उसका ध्येय हो गया है और वह जहां संभव हो उनकी इस लूट में दूसरी योरपीय शक्तियों को शामिल नहीं होने देती है। प्रवासी भारतवासियों के प्रश्न के प्रति ग्रेटब्रिटेन की जो नीति होगी वही उसकी और उसके इरादों की खरी कसौटी होगी। यूनियन सरकार की तरफ से दबाव आने पर भी क्या वह न्याय कर सकेगी? दक्षिण आफ्रिका का प्रतिनिधि मण्डल इसी प्रश्न का उत्तर लेने के लिए आ रहा है। (यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

राष्ट्रीय शिक्षा

राष्ट्रीय विद्यापीठ का वार्षिक उपाधिदान और इनामों का समारंभ हुआ था। उस समय साल भर का कुल ब्यौरा पढा गया था। उसमें बिना किसी प्रकार की बनावट के यह दुख बात जाहिर की गई थी कि विद्यापीठ के हाथ नीचे काम करनेवाले या उससे सबंध रखनेवाले विद्यामन्दिरों में पढनेवाले लड़के और लड़कियों की संख्या घट रही है। गुजरात में शायद यदि उत्तम व्यवस्थापूर्वक चलनेवाली राष्ट्रीय शालायें नहीं है तो उनकी आर्थिक स्थिति तो अवश्य उत्तम है। इन शालाओं के बारे में कम से कम इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रुपयों की कमी के कारण उनकी स्थिति डांवाडोल नहीं हो रही है।

निःसन्देह इस समय राष्ट्रीय शालायें लोकप्रिय नहीं हैं। उनके पास न खूबसुरत और कीमती मकान है और न वैसा सामान ही है। और न उसमें बड़ी बड़ी तनख्वाह पानेवाले प्रोफेसर या शिक्षक ही हैं। और उनमें से न कोई अपने पुराने इतिहास का दावा कर सकती है और न तरीके का। और न वे भविष्य जीवन की रौनकदार आशाओं का भी यकीन दिला सकती हैं।

लेकिन जिस बात का वे दावा करती हैं उसीसे बहुतेरों को तो उसके प्रति लालच होती है। वे उन आत्मत्यागी स्वदेशभक्त शिक्षकों के अपने पास होने दावा करती है जो हमेशा गरीबी और तंगी की हालत में रहते हैं और वह इस लिए कि उनसे शिक्षा पा कर राष्ट्र के युवक लाभ उठावें। इन शालाओं में हाथकताई और उसके साथ संबंध रखनेवाली सब बातें सिखाई जाती है। वे सेवा करने की कला सिखाती हैं। वे देशी भाषा में शिक्षा देने का प्रयत्न करती है। वे राष्ट्रीय खेल-तमाशे और राष्ट्रीय संगीत का पुनरुद्धार करने का प्रयत्न करती हैं। वे गांवों में जा कर सेवा करने के लिए लड़कों को तैयार करती है और इसलिए हिन्दुस्तान के गरीबों के प्रति उनमें भ्रातृभाव उत्पन्न करती हैं। लेकिन इतना आकर्षण काफी नहीं है इसीलिए तो संख्या घट रही है।

इन शालाओं के लोकप्रिय न होने का कारण केवल उनका इस प्रकार आकर्षणहीन होना ही नहीं है। जोश के, नशे के और आशा के उस १९२१ के वर्ष में बहुत सी बातें की गई थीं। वह नशा अब दूर हो गया है और उसका स्वाभाविक परिणाम अब दिखाई दे रहा है। लड़कों ने अब हिसाब गिनना शुरू किया है और स्वदेशभक्ति कोई गणित का हिसाब नहीं है यह ज्ञान न होने के कारण उन्होंने उसका गलत परिणाम निकाला है, और इसीलिए उन्होंने सरकारी शालाओं को और कालिजों को ही अधिक पसंद किया है। इसमें उनका कुछ भी दोष नहीं है। हमारे आसपास आज जो कुछ भी है उसका व्यापार और नफे की भाषा में ही परिवर्तन हो गया है। लड़के और लड़कियों से यह आशा रखना कि वे आसपास के वायुमण्डल से ऊपर उठ जावें बहुत ही अधिक आशा रखना है।

इतना ही नहीं है। शिक्षक लोग भी पूर्ण नहीं है। वे सब आत्मत्यागी नहीं है। वे सब छोटे छोटे झगड़े और प्रपंचों से दूर नहीं है। वे सब स्वदेशभक्त भी नहीं है। इसमें उनका भी कुछ दोष नहीं है। हम सब परिस्थिति के दास है। हमेशा दबे रह कर नौकर की तरह काम करने की हमें शिक्षा मिली है, हमारी आरंभक शक्ति का नाश हो गया है, इसलिए हमलोग अपने देश के प्रेम के खातिर, केवल अपने प्रेम के कारण, कुटुम्ब के प्रेम के कारण या सेवा के लिए भी, अर्थात किसी के भी खातिर आत्म त्याग करने के आह्वान का योग्य उत्तर नहीं दे सकते हैं।

वर्तमान मन्द प्रवृत्ति का कारण क्या है यह बताया जा सकता है लेकिन जिस प्रकार मूल कार्यक्रम के दूसरे विषयों में मेरी श्रद्धा अटल है उसी प्रकार राष्ट्रीय शालाओं में भी मेरी श्रद्धा अटल है। मैं राष्ट्र के मापयंत्र में मन्दी का होना स्वीकार करता हूं और इसीलिए इस स्थिति का स्वीकार करनेवाले महासभा के प्रस्तावों का अनुमोदन भी करता हूं लेकिन उसकी मुझ पर कुछ भी असर नहीं होती है। और मैं दूसरों को भी यही करने के लिए कहता हूं। इन राष्ट्रीय शालाओं की संख्या घटती जाती है फिर भी, मेरे लिए तो वे आशा और आकांक्षा के रेतीले मैदान में पानीवाली और हरी भरी छोटी छोटी जगहों के समान है। जिस प्रकार वे आज हमें अवैतनिक और थोड़ा वेतन पानेवाले सेवक तैयार करके देती है उसी प्रकार भविष्य का राष्ट्र भी इन्हीं के द्वारा तैयार होगा। आप कहीं भी जायं आपको ऐसे असहयोगी युवक और युवतियां मिलेंगी जो मातृभूमि की सेवा में अपनी तमाम शक्ति लगा रहे हैं और बदले में कुछ भी आशा नहीं रखते हैं। इसलिए मुझे उन आलोचक महाशय की सलाह पर कुछ भी ध्यान न देना चाहिए जो मुझे गुजरात महाविद्यालय में लड़कों की संख्या घट रही है इसलिए उसे बन्द करने को लिखते हैं। यदि लोग उसे मदद करेंगे या लोग मदद करें या न भी करें लेकिन यदि उसके शिक्षकगण दृढ़ रहेंगे तो महाविद्यालय में जब तक एक भी सच्चा लड़का या लड़की उसके आदर्शानुसार अपनी पढ़ाई खतम करना चाहेगा तब तक तो उसको चलाना ही पड़ेगा। उस संस्था के चलाने के लिए उत्तम वायुमण्डल का होना ही कोई शर्त नहीं है। वायुमण्डल अच्छा हो या बुरा उसे चलाना ही चाहिए।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

एक राष्ट्रीय शाला

कुछ दिन पहले पड़ोस की एक राष्ट्रीय शाला की मुलाकात करने का सद्भाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। पांच साल पहले, असहयोग के आन्दोलन का जब बड़ा जोश था, यह शाला वहां खोली गई थी। उस समय लोगों का उत्साह बहुत ही अधिक था। लेकिन पीछे बाहर की मंदता और उत्साहहीनता ने उस गांव में भी प्रवेश किया और अब वह राष्ट्रीय शाला गिरी हुई हालत में है। गांव बड़ा है और शाला का अच्छा फंड था इसलिए यह शाला दो तीन साल तक अच्छी तरह से चलाई गई। लेकिन लोगों की शिथिलता ने उनकी प्रामाणिकता पर भी आक्रमण किया। फंड का ब्याज मिलना बन्द भी हो गया और शादी इत्यादि प्रसंगों पर जो चन्दा लिया जाता था अथवा लिया जाता है वह साहुकारों के घर में या दूसरे लोगों के घर में ही रह गया। विद्यापीठ की तरफ से मिलनेवाली एक तिहाई ग्रान्ट के कारण शाला को कुछ भी नुकसान न हुआ। विद्यार्थियों की फीस के २२००) और ग्रान्ट के ११००) मिल कर शाला का निभाव हो जाता है। विद्यापीठ से रुपये मिलते हैं इसलिए अब लोग उसमें रुपये क्यों दें?

लेकिन इस प्रकार मुफ्त में चलनेवाली शाला भी अब लोगों को बुरी मालूम होने लगी है। कोई कहता है कि उस पर दूसरी शालाओं का असर पड़ा है तो कोई कहता है लोगों को इस शाला की जरूरत ही नहीं है। कुछ समय के लिए उसे चलाना अनिवार्य था इसलिए चलाई; अब उसे बन्द करनी चाहिए।

शाला के लड़कों के साथ मैंने खूब विनोद किया। मैंने देखा उनमें स्वतंत्र विचार करने की शक्ति है, और निर्भयता भी है। मैं उनके मातापिताओं को और उनके नेताओं को भी मिला और उनसे पूछा "ऐसे बालकों को आप सरकारी शालाओं में क्यों भेजना चाहते हैं?" उत्तर मिला "आप सब आते हैं उससे इन बालकों को तो संतोष होता है लेकिन हमें उससे संतोष नहीं होता। हम लोग तो यही जानना चाहते हैं कि इस शाला के होने के पहले प्रवेशिका — एण्ट्रन्स की परीक्षा में जितने लड़के उत्तीर्ण होते थे उतने अब उस परीक्षा में या विद्यापीठ की परीक्षा में पास होते हैं या नहीं।" विद्यापीठ की परीक्षा में इन शब्दों का प्रयोग करना केवल दम्भ था। तीन चार घण्टे तक बातें होती रहीं। उसमें उनकी सब से बड़ी दलील यही थी। गांव ही में से किसी सद्गृहस्थ ने उनको उत्तर दिया कि इस शाला के विद्यार्थी दूसरी शाला में जाकर बड़ा अच्छा परिणाम दिखाते हैं। ६ लड़के तो गत वर्ष में बड़े ऊंचे नम्बर पर आये थे। लेकिन आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण वे आगे न बढ़ सके थे। उन्होंने एक दूसरी दलील भी की? "लड़के ही इस शाला को नहीं चाहते हैं।" इसका तो मैंने ही उत्तर दे दिया कि ७५ फी सदी लड़के इस शाला को चाहते हैं। यह सुन कर वे कहने लगे "लोगों को — साधारण लोगों को ही इस शाला की जरूरत नहीं है और हम लोग लोगों के प्रतिनिधि हो कर उन्हीं के अभिप्राय को जाहिर कर रहे हैं।" अन्यथा प्रतिनिधियों को शाला की आवश्यकता है! यह दलील कैसी हास्यजनक है यह तो वे भी समझ सके थे। एक वृद्ध ने १९२०-२१ में असहयोगी बन कर बड़ा उत्साह दिखाया था और खादी का स्वीकार कर लिया था लेकिन इस साल आठ वर्ष में पहली ही मरतबा उन्होंने मोजे मंगवाये पगड़ी पहनी और गवर्नर साहब के साथ हाथ मिलाने का अहोभाग्य प्राप्त किया। वे तो बालकों को जमीन और जानवरों के तुल्य ही मानते हैं "जमीन में मनुष्य रुपये किस लिए रोकता है? आमदनी करने के लिए। गाय को चारा किस लिए डालते हैं? दूध के लिए। उसी प्रकार बालक को भी पढ़ाए जाते हैं।" एक शिक्षक ने पूछा "लेकिन उनका चारित्र्य सुधरता है यह भी देखोगे या नहीं? वृद्ध ने कहा 'चारित्र में से क्या रुपये मिलेंगे?' 'तब तो आपके लिए रुपये ही परमेश्वर हैं' इसके उत्तर में उन्होंने कहा 'सभी को है' रुपये न हों तो यह शाला कैसे चलेगी? और रुपये न हों तो गांधी महात्मा का कार्य भी कितने दिन चल सकेगा?"

आश्चर्य की बात तो यह थी कि किसीको भी सिद्धान्त की कुछ भी न पड़ी थी। असहयोग का किस लिए आरंभ हुआ राष्ट्रीय शिक्षा का किस हेतु से आरंभ किया गया, इसका कोई विचार तक न करता था। स्वाभिमान का तो मानो अब कोई प्रश्न ही नहीं रहा है। इमलोगों के हृदय में मानो कोई भाव है ही नहीं।

इन नेताओं के साथ जो बातचीत हुई उसके करुण नाटक को देख कर मैंने बालकों के नाट्यप्रयोगों को देखा। मैले कुचेले और बुरे दिखनेवाले मांग कर लाये गये विदेशी कपड़े पहना कर इन नटों को सजाये गये थे। उनको देखने के लिए लोगों की खासी भीड़ हुई थी। लेकिन अन्त्यजों को वहां कैसे आने दिया जा सकता है? यदि मैं शर्त कर सकता होता तो मैं यह शर्त करता कि यदि अन्त्यजों को न आने दोगे तो मैं भी इस में शामिल न होऊंगा। लेकिन मुझे ऐसी प्रतीति न हुई कि मैं ऐसी सख्ती करने का अधिकारी हूं। लड़कों के नाट्य-प्रयोगों को मैंने देखे और उनके सामने बोलने का नाटक मैंने भी किया। मेरा 'नाटक' इसलिए, क्योंकि जिस दृष्टि से लोग नटों को देखने के लिए आये थे उसी दृष्टि से वे मुझे भी

देखने के लिए आये थे। मैं यह जानता था कि मेरा बोलना अरण्यरोदन के समान ही है।

शाला नहीं चाहिए इस के माने है राष्ट्रीय शाला के शिक्षक नहीं चाहिए और अब बेचारे कातनेवाले, खादी पहननेवाले और बार बार लडकों को खादी पहनने के लिए कहनेवाले शिक्षकों को निकाला जा रहा है तो फिर खादी के सूखे हुए मूल अभी जो जमीन में बचे हुए हैं वे भी निकाल फेंक दिये जाय तो उन्हें आराम मिले !

शिथिलता क्यों हुई ' यह प्रश्न मैं बडी बडी बातें करनेवाले तो मुझे बहुत से लग मिले। "देश में कोई प्रगति नहीं हो रही है यह कारण तो न होगा ? गांधीजी केवल चरखे पर जोर दे रहे हैं यह कारण तो न होगा ?" इस प्रकार वे प्रश्न करते थे। मैंने कहा " भाई गांधीजी केवल चरखे पर ही जोर नहीं दे रहे हैं। यदि वे जोर दे सकते होते तो वे सभी विषयों पर जोर देना चाहते हैं। पंचायत की स्थापना करके लोगों को अदालत में जाने से रोकने का कार्य करने से आपको कौन रोकता है ? लोगों को शराब पीने से रोकने का कार्य करने से आप को कौन मना करता है ? अस्पृश्यता का पाप धो डालने के कार्य को करने से आपको कौन मना करता है ? जितना भी बन सके करो लेकिन कम से कम, कमजोर से भी कमजोर जिसे कर सकता है वह एक घण्टा कातने का और खादी पहनने का काम तो करो-उनकी ऐसी ही दीन प्रार्थना है।" लेकिन उनके साथ दलील करना फिजूल था। जहां इच्छा ही नहीं है वहां दलील करने से क्या लाभ ? दो या चार धनिकों को अपने लडकों को एण्ट्रन्स पास कराना है इसलिए साधारण वर्ग के लोगों के लडकों को जिन्हें एण्ट्रन्स पास नहीं होना है लेकिन सामान्य शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद अपने खेत जा कर सम्हालने हैं उन्हें भी राष्ट्रीय शालाओं में जाने से रोकना है। धनिक लोग इस शाला में से निकलने के बाद भी अपने लडकों को एण्ट्रन्स की परीक्षा में भेज सकते हैं लेकिन उनको ऐसा भय है कि मानो यह शाला ही उनके लडकों की एण्ट्रन्स पास करने की शक्ति का हरण कर लेती है।

इस शाला को बन्द करने की प्रवृत्ति के कारणों का पृथक्करण करने पर मुझे ऐसा ही क्षुद्र स्वार्थ दिखाई दिया है। इससे यदि किसी को बुरा मालूम हो तो मैं उससे क्षमा चाहता हूं। इसमें मैं किसी के भी साथ अन्याय नहीं कर रहा हूं यह मेरी आत्मा मुझे साक्षी दे रहा है।

बिनायण मुझसे कहते थे कि विद्यार्थियों के कहने से ही हम-लोगों ने यह शाला खोली थी और विद्यार्थियों की इच्छा से ही हम उसे बन्द करेंगे। हम आशा करते हैं कि विद्यार्थीगण यदि शाला को कायम नहीं रख सकते हैं तो वे कम से कम सरकारी शालाओं में जाने से तो अवश्य ही इन्कार करेंगे।

म० ह० देसाई

[इस लेख को पढ़ कर किसे दर्द न होगा ? मुझे तो बहुत दुःख हो रहा है। इस आशा को उत्तम राष्ट्रीय शालाओं में [illegible] भी पहुंची है। [illegible] कर रहे हैं। [illegible] इस शाला के निमित्त [illegible] जिन्होंने इस शाला की स्थापना की [illegible] त्यागवाली [illegible] यह बात कितनी [illegible] है [illegible] समझावेगा कौन ? [illegible] की भावी है वहां वहां मैं तो यह आशा करूं कि वे अवश्य ही पछतावेंगे। राष्ट्रीय शाला चाहे कैसी भी क्यों न हो उसमें विद्यार्थियों को स्वतन्त्र वायुमण्डल में रहने की जो तालीम मिलती है वह और कहां मिल सकेगी ? मो० क० गांधी]

(नवजीवन)

टिप्पणियां

अ० भा० देशबन्धु स्मारक

इस फंड का ब्यौरा अब इस प्रकार है:

स्वीकृत रकम	रु. ८१६९३—६—६.
कच्छ में इकट्ठी की गई रकम,	
श्री गोपालदास खीमजी के द्वारा	८२५३—०—०
डा. ई० सी० असर्वांव के द्वारा	५२—७—०
सत्याग्रहाश्रम साबरमती में	४७३—९—९
श्री चेटरजी कृष्ण ऐयर	४—१४—०
महात्मा गांधीजी की कच्छयात्रा में	२४६—१३—६
महात्मा गांधीजी की तरफ से	
बम्बई स्टेशन पर	४९—०—०
हैदराबाद (सिंध) के कताई मण्डल के तरफ से	१०—०—०
देशबन्धु आश्रम की तरफ से	०—१४—०
श्री शम्भुनाथ	१५—०—०
एक सद्गृहस्थ	१८—०—०
श्री नंदरामदास हीरानंद	२५—०—०
श्री चीमनलाल मोहनलाल	४०१—०—०
	९१४३२—७—३

प्रगति यद्यपि धीरे धीरे हो रही है लेकिन दृढ हो रही है। सूची से यह मालूम होता है कि दान के कारण को समझ कर नहीं लेकिन किसी भी शख्स के प्रभाव में आ कर दान देने की आदत अब भी वैसी ही चली आ रही है।

उपवास की समाप्ति

उन मित्रों को जो मेरे स्वास्थ्य के लिए बड़े चिन्तातुर रहते हैं यह जान कर बड़ी खुशी होगी कि यद्यपि सात दिनों के उपवास से मेरा वजन ९ पौंड घट गया था तो भी उपवास खतम होने के बाद सात दिनों में मैंने उसमें से ६ पौंड वजन तो फिर प्राप्त कर लिया है। अब मैं कुछ थोडी कसरत भी कर सकता हूं और रोजाना काम भी ठीक ठीक कर सकता हूं। यह प्रकाशित होगा उसके पहले मैं वर्धा पहुंच जाऊंगा। महासभा के बाद वहां जितना भी हो सके मैं आराम लेना चाहता हूं। इसलिए मध्यप्रांत से और दूसरे मित्रों से यह प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे वर्धा में कार्य के लिए आया हुए न समझें। 'साप्ताहिकों' का सम्पादन करने में और रोजाना पत्रव्यवहार करने में ही मेरी सारी शक्ति खर्च हो जायगी। मैं कानपुर पहुंचूं इसके पहले ही मेरा वजन जितना घटा है उतना पूरा कर लेने की मैं आशा रखता हूं।

पत्रलेखकों को

मुझे अफसोस के साथ मेरे साथ पत्र व्यवहार करनेवाले महाशयों को यह कहना पडता है कि मेरे उपवास के कारण मेरा पत्रव्यवहार बहुत ज्यादा बाकी रह गया है। यद्यपि मेरे सहायकों ने उसमें से बहुतेरे पत्रों का उत्तर दे दिया है फिर भी मेरे सामने ऐसे पत्रों का एक ढेर पड़ा हुआ है जिस पर कि मुझे ध्यान देना आवश्यक है। पत्र लिखनेवाले मुझे इस विलम्ब के कारण क्षमा करेंगे। जितना भी हो सके मैं शीघ्र ही इस कार्य को पूरा करने की आशा रखता हूं।

शुद्ध खादी के प्रति

चन्दननगर का प्रवर्तक संघ एक बड़ी संस्था है। अब तक उसमें मिल खादी तैयार होती थी और उसीको वे बेचते थे। मेरी चन्दननगर की मुलाकात के समय संघ के अधिष्ठाता श्री मोतीलाल रायने अपने कारखाने को शुद्ध खादी के कारखाने में बदल दिया है। अब वे लिखते हैं:

“हमने चन्दननगर के मृणालिनी वस्त्र कार्यालय को और कलकत्ता प्रवर्तक भण्डार को ता. ३० अक्तूबर से शुद्ध खादी के केन्द्रों में परिणत कर दिया है। और इसकी सूचना आपको उसी समय दे दी गई थी।

अब सारी संस्था शुद्ध खादी का ही काम करेगी लेकिन आप यह तो जानते ही हैं कि यह साहस कर के हमने कितनी बड़ी जोखिम अपने सिर उठाई है।”

मुझे अफसोस है कि वे जिस सूचना का जिक्र करते हैं वह मुझे नहीं मिली है। मैं मोती बाबु को इस परिवर्तन के लिए मुबारिकबादी देता हूं और आशा करता हूं कि आरंभ में इस संस्था को कठिनाइयों को सामना करना पड़े तो भी वे खादी का कार्य ही करती रहेगी।

अ० भा० गोरक्षा मण्डल

मंत्री मिले हुए सूत का इस प्रकार स्वीकार करते हैं:

नं.	नाम		गज
	सभ्यों का सूत		
	गुजरात ५–७		
१०	के. सिद्धगुप्ता	साबरमती	२४०००
११	तुलसी महेरजी	,,	२४०००
१२	बालीलाल जीवनलाल राणा	,,	१२०००
	सिंध		
१३	धानाभाई मनैया	करांची	१००००
	मध्यप्रांत		
१४	विश्वम्भर	जबलपुर	४०००

नं. ६, ८ और ९ ने और भी अधिक सूत भेजा है। उनका कुल सूत अब क्रमशः १०८१५, ९२०० और ५००० गज हो गया है।

दान में मिला

छिम्मनलाल जमनादास	अहमदाबाद	१०००
ठि.. बी. नरसिंह	चोपोल	३८६०

चमड़े का व्यापार

हिन्दुस्तान की पैदावारी में, चमड़े के उद्योग का, उसके महत्व के हिसाब से पांचवा नम्बर आता है। बाहर विदेशों में जो चमड़ा भेजा जाता है उसकी साधारण तौर पर कीमत लगाई जाय तो सालाना ११७० लाख रुपया होती है। उसमें से सालाना ८४४ लाख से भी अधिक कीमत का चमड़ा तो कलकत्ते से ही विदेश में भेजा जाता है। मुख्यतः यह व्यापार लड़ाई के पहले जरमनों के हाथ में था और अब भी उन्हीं के हाथों में है। इसलिए यदि चमड़े के कारखाने राष्ट्रीय दृष्टि से चलाये जायंगे तो चमड़े के लिए जिन हजारों जानवरों का वध किया जा रहा है उनकी केवल रक्षा ही न होगी बल्कि भारत में ही चमड़ा रहने से देश की कारीगरी का उपयोग होगा और इस प्रकार अधिक धन बच रहेगा।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

गुजरात विद्यापीठ

उस दिन गुजरात विद्यापीठ का आडम्बरहीन उपाधिदान समारंभ बड़ी शान्ति से हुआ। गांधीजी ने जो लड़के गत वर्ष में उत्तीर्ण हुए थे उन्हें उपाधियां प्रदान की। उनमें दो स्त्री विद्यार्थिनी भी थी। वे ही विद्यापीठ की प्रथम स्त्री स्नातिकायें हैं। गत वर्ष कोई ५३ लड़कों को उपाधि मिली थी इस साल कोई ४९ लड़कों को मिली है (उनमें से १६ विद्यार्थियों का 'व्यापार' विषय था)। गुजरात पुरातत्व मन्दिर भी उत्साहवर्धक प्रगति कर रहा है। उसने इस वर्ष में दो महत्व की पुस्तकें प्रकाशित की हैं। वे पुस्तकें हैं: 'समाधिमार्ग' और 'बौद्ध संघनो परिचय'। दोनों प्रो. धर्मानन्द कौसाम्बी की लिखी हुई हैं। विद्यापीठ की पाठ्य पुस्तक समिति ने इस साल ९ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इस वर्ष में विद्यापीठ से सम्बन्ध रखनेवाली ५६ शालायें हैं। गत वर्ष ऐसी ७५ शालायें थी। उनमें लड़कों की कुल संख्या [illegible] है। गत वर्ष में उनकी संख्या ८२६६ थी।

इन अंकों से हालत कुछ गिरती हुई मालूम होती है लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर किसी भी प्रकार के अंक या सूची प्रकाश नहीं डाल सकते हैं। विद्यापीठ ने गुजरात को तीन आजीवन कार्यकर्ता दिये हैं और उसने दो प्रोफेसर तैयार किये हैं जो आज वर्तमान प्रोफेसरों स्थान खुशी से ले सकते हैं। कालिज का त्रैमासिक 'साबरमती' अपनी किस्म का एक ही है और वह एक ऐसे आदर्श को कायम कर सका है कि जिस पर शायद ही कोई दूसरा कालिज का मासिक पत्र पहुंचा हो। 'साबरमती' में जितने भी लेख प्रकाशित हुए हैं उनमें से श्री गोपालदास पटेल का 'कान्ट का नीतिशास्त्र' नामक लेख सब से उत्तम होने के कारण कुलपति ने उन्हें नारागौरी पदक प्रदान किया। लेकिन यह ऐसी बात है जो अंकों में नहीं मालूम हो सकती है। इस लेख में 'कान्ट के नीतिशास्त्र' को केवल सुस्पष्ट व्यक्त ही नहीं किया गया है लेकिन उसमें उस तत्वज्ञानी के ज्ञान विषयक विचारों का भी सार दिया गया है और बड़ी अच्छी गुजराती भाषा में लिखा गया है। यह इसका एक सुफल ही है। बंबई युनिवर्सिटी ने तत्वज्ञान के बहुत से ग्रेज्युएट पैदा किये हैं लेकिन उनमें से शायद ही किसीने अपनी मातृभाषा में अपना तत्वज्ञान विषयक ज्ञान प्रकट करने का साहस किया होगा। और गुजरात को किसी पाश्चिमात्य तत्वज्ञानी का परिचय कराने के लिए तो किसी ने भी कोई पुस्तक नहीं लिखी है। श्री गोपालदास ने इस आवश्यकता को पूरी की है और उनका होना विद्यालय के एक गौरव का विषय है।

उपाधिदान समारंभ के समय का व्याख्यान

गांधीजी ने थोड़े में विद्यार्थियों को यह संदेश सुनाया था:

"जिन विद्यार्थियों को आज उपाधि और ईनाम मिले हैं उन्हें मैं मुबारकबादी देता हूं। मैं चाहता हूं कि वे चिरजीवी हों और उनको उपाधि और उनका ज्ञान उन्हें और उनके देश के लिए मानास्पद विषय हों। हमें अपने आसपास फैले हुए निराशा के अन्धकार में अपना मार्ग नहीं भूल जाना चाहिए। हमें बाहर के वायुमण्डल में आशा के किरण नहीं ढूंढना चाहिए लेकिन अपने हृदय के अन्दर ही उन्हें ढूंढना चाहिए। विद्यार्थी जिन में श्रद्धा है, जो भय से निर्भय हो गये हैं, जो अपने काम में लगे रहते हैं और जो अपने कर्तव्यों का पालन करना ही हक समझते हैं, वे आसपास की निराशाजनक स्थिति को देख कर कायर न बन जायंगे। वे यह समझ लेंगे कि अंधकार क्षणिक है और प्रकाश निकट ही है। असहयोग असफल नहीं हुआ है। सहयोग और असहयोग जब से काल की

उत्पत्ति हुई है तभी से है, सत और असत, शान्ति और अशान्ति, जीवन और मरण ये द्वंद्व होते ही हैं। यदि हमें सत्य के साथ सहयोग करना चाहिए तो असत्य के साथ असहयोग भी करना चाहिए। यदि मातृभूमि के प्रति वफादार रहना प्रशंसनीय है तो उसके प्रति बेवफा होना नफरत के योग्य अवश्य है। यदि हमें स्वतंत्रता के साथ सहयोग करना है तो हमें गुलामी के साथ असहयोग करना ही होगा। राष्ट्रीय शालायें चाहे एक हों या अनेक, चाहे उनमें अनेक लड़के हों या एक ही हो, भविष्य के इतिहासकारों को स्वतंत्रता प्राप्त करने के साधनों में राष्ट्रीय शालाओं को महत्व का स्थान देना ही होगा। हमारा साहस नया है। आलोचकों को उसमें दोष दिखाने के लिए बहुत सी बातें मिलेंगी। कुछ दोष तो हम खुद ही देख सकते हैं। हमें उनका उपाय करने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। मैं जानता हूं कि हमारे प्रबंध में बहुत सी बातों की कमी रहती है। हमारे व्यवस्थापक और प्रोफेसर लोग अपूर्ण हैं। हमलोग इन बातों पर बराबर ध्यान दे रहे हैं और दोषों को दूर करने में कोई बात उठा न रक्खेंगे।

विद्यार्थीगण! धीरज रक्खो, यह विश्वास करो कि स्वराज्य की सेना के तुम सिपाही हो। ऐसे सिपाही के जो योग्य न हो ऐसा कुछ भी न करो, न कहो और न विचारो। ईश्वर की तुम पर कृपा होगी।"

चरखा संघ

नवम्बर ता. ३० तक के चरखा संघ के सदस्यों का और सहायकों का ब्यौरा प्रान्तों के अनुसार इस प्रकार है:

	'अ' वर्ग	'ब' वर्ग	
	सभ्य	सभ्य	सहायक
१ अजमेर	५	०	०
२ आन्ध्र	१५८	४	०
३ आसाम	३६	०	०
४ बिहार	६२	८	०
५ बंगाल	१०३	१	४
६ बिरार	१	०	०
७ बंबई	४६	२	२
८ ब्रह्मदेश	३	२	१
९ मध्यप्रान्त (हिन्दी)	१६	२	०
१० ,, (मराठी)	३४	११	२
११ देहली	११	०	०
१२ गुजरात	२२४	७०	१
१३ कर्णाटक	६४	४	२
१४ केरल	२०	१	०
१५ महाराष्ट्र	१०३	१०	२
१६ पंजाब	१३	०	०
१७ सिंध	२९	१०	१
१८ तामिल नाडू	१४५	१२	१
१९ संयुक्त प्रान्त	५४	३	०
२० उत्कल	१७	०	०
	११४४	१४०	१७

चरखे के प्रति जिन्हें उत्साह है, उनके आग्रह को मान्य रख कर 'अ' वर्ग के लिए माहवार २००० गज सूत के बदले १००० गज सूत चन्दा रक्खा गया है और 'ब' वर्ग के लिए केवल वार्षिक २००० गज का चन्दा रक्खा गया है। इसलिए इन अंकों को हम प्रगतिसूचक तो कभी भी नहीं कह सकते हैं। पुराने मताधिकार के अनुसार कितने सभ्यों की तरफ से कितना हाथ कता सूत प्राप्त हुआ था इसके अङ्क निश्चित रूप से मालूम होते तो उनकी तुलना की जा सकती थी। अभी हमारे पास निश्चित अंक मौजूद नहीं है लेकिन यदि सब प्रान्तों की तरफ से ऐसे अंक तैयार किये जायं तो हम कितने आगे बढ़े हैं या कितने पीछे हटे हैं यह मालूम हो सकेगा। गुजरात में सूत खरीद कर देनेवाले बहुत थोड़े सभ्य थे इसलिए उसके अंक इसके सूचक हो सकते हैं। २५०० रजिस्टर किये गये सभ्यों में से २६६ सभ्यों ने साल भर का पूरा चन्दा २००० गज का दे दिया था। ११४ सभ्यों ने १२००० गज सूत भेजा था; १२००० से कम सूत भेजनेवाले १२७३ शख्सों में से अधिकतर लोगों ने २००० गज से अधिक सूत दिया था। इन सब कातनेवालों का क्या हुआ? चरखा-संघ यदि उनसे आशा न रक्खेगा तो किस से आशा रक्खेगा? क्या उनमें से बहुतेरों ने पटना की महासमिति के बाद कातना छोड़ दिया है। यदि ऐसा ही है तो उन्होंने महासमिति के प्रस्ताव का गलत अर्थ किया है। लेकिन ऐसा ही है यह मानने का कोई कारण नहीं है। ऐसे कितने ही लोगों को हम जानते हैं जो कातते हैं लेकिन चरखा-संघ में शामिल नहीं हुए हैं। शामिल न होने का कारण भी तो शिथिलता है। शर्तें जैसी कम सख्त होंगी वैसे प्रगति भी कम होती जायगी तो यह किसी के लिए भी शोभास्पद नहीं है।

म० ह० देसाई

दुष्काल में कताई

दुष्काल पीड़ितों को सहाय करने के लिए अब कताई का अच्छी तरह उपयोग किया जा रहा है। उत्कल जहां दुष्काल है वहां आजकल इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा रहा है। उसके परिणामों का रिपोर्ट इस प्रकार है:

'बाढ़ से पीड़ितों को और खास कर मजदूर वर्ग को, जिनकी कि यहां अच्छी संख्या है और जो बड़े कष्ट में है, उनको राहत पहुंचाने के लिए ही इस प्रदेश में कताई का उपयोग किया जा रहा है। यदि उन्हें कभी मजदूरी का काम मिलता भी है तो उन्हें मजदूरी बहुत ही कम मिलती है, जैसे पपनपलायम में जहां दिन भर काम करने पर पुरुष को ४ आने मजदूरी के मिलते हैं और स्त्रियों को तो दो ही आने मिलते हैं। ऐसी स्थिति होने के कारण कताई आवश्यक हो पड़ी है और उससे बड़ी राहत मिलती है। कातनेवाले कुटुम्बों की आमदनी में उस से ठीक ठीक वृद्धि होती है। नीचे दिये गये अंकों से यह मालूम हो सकेगा।

१	२	३	४	५	
गांव	चरखे	साल में कातते कितना है	चरखे से आमदनी	दूसरे साधनों से	परिमाण ४ से ५
बेलारपलायम्	२५	१२८० पौं.	४०१)	१४००)	२८ प्र.सै.
पपनपलायम्	६८	३८४९ पौं.	१२०४-१०	५२२०)	२३ ,,
सेम्बापलायम	२४	१२१२ पौं.	३७८-१२	२६५२)	१६ ,,

यदि इन अंकों के साथ उस गांव के कपड़े के खर्च की तुलना की जाय तो इसके अंक इस प्रकार होंगे:

गांव	चरखे से आमदनी	कपड़े का खर्च	परिमाण २ से ३
बेलारपलायम्	४०१)	८४२)	४७ प्रति सैकड़ा
पपनपलायम्	१२०५)	१४८०)	८१ ,,
सेम्बापलायम्	३७८-१२	७४८)	६५ ,,

मेरा आखिरी उपवास

वार्षिक मूल्य ४)
छःमास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १६

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद	अहमदाबाद, पौष बदी १, संवत् १९८२ गुरुवार, ३ दिसम्बर, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भूमिका

चार या पांच वर्ष के पहले मैंने निकट के साथियों के आग्रह के वश हो कर आत्मकथा लिखने का स्वीकार कर लिया था और उसका आरंभ भी किया था। फुलस्केप कागज का एक पृष्ठ भी पूरा न लिख सका था कि बंबई में ज्वाला भड़क उठी और मेरा यह कार्य पूरा न हो सका। उसके बाद मैं एक के बाद दूसरे ऐसे अनेक व्यवसायों में उलझा रहा और आखिर मुझे मेरा यरोडा का स्थान मिला। वहां भाई जेरामदास भी थे। उनका मुझसे यह आग्रह था कि और सब कामों को छोड़ करके भी मुझे आत्मकथा तो पहले ही लिख कर पूरी करनी चाहिए। मैंने उन्हें यह उत्तर भेजा कि मेरा अभ्यासक्रम निश्चित हो चुका है और जबतक वह पूर्ण नहीं होता, मैं आत्मकथा का आरंभ न कर सकूंगा। यदि मुझे यरोडा में मेरा पूरा समय व्यतीत करने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ होता तो मैं अवश्य ही आत्मकथा लिख सकता था। लेकिन उसका आरंभ करने में मुझे अभी एक साल बाकी था। उसके पहले तो मैं उसका किसी प्रकार भी आरंभ न कर सकता था, इस लिए वह रह गई। अब स्वामी आनंदानंद ने फिर उसके लिए आग्रह किया है। और मैंने दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास समाप्त किया है इस लिए मुझे आत्मकथा लिखने का भी लोभ हुआ है। स्वामी तो यह चाहते थे कि मैं आत्मकथा पहले सम्पूर्ण लिख कर तैयार करूं और फिर वह पुस्तक के रूप में प्रकाशित की जाय। लेकिन मेरे पास इतना समय नहीं है। यदि मैं लिखूं तो 'नवजीवन' के लिए ही लिख सकता हूं। नवजीवन के लिए मुझे कुछ तो लिखना ही पड़ता है। तो फिर आत्मकथा क्यों नहीं? स्वामी ने इस निर्णय का स्वीकार किया और अब आत्मकथा लिखने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है। लेकिन एक शुद्ध मित्र ने जब मैं सोमवार के दिन मौन में था मुझे निम्नलिखित वाक्य सुनाये।

"आप आत्मकथा किस लिए लिखेंगे? यह तो पश्चिम की प्रथा है। पूर्व में किसीने लिखी हो यह याद नहीं है। और लिखेंगे क्या? आज जिन बातों को आप सिद्धान्त के तौर पर मानते हैं उन्हें कल सिद्धान्त मानना छोड़ दें तो? अथवा अपने सिद्धान्त के अनुकूल आज आप जो कार्य कर रहे हैं उनमें पीछे से कुछ परिवर्तन करना पड़े तो? आपके लेखों को प्रमाण मान कर बहुत से लोग अपना व्यवहार बनाते हैं। यदि वे गलत रास्ते पर चले जायं तो? इसलिए सावधान रह कर अभी हाल आप आत्मकथा जैसा कुछ भी न लिखें तो क्या यह ठीक नहीं है?"

इस दलील की मुझपर थोड़ी बहुत असर हुई। लेकिन मुझे आत्मकथा कहां लिखनी है? मुझे तो आत्मकथा लिखने के बहाने मैंने सत्य के जो अनेक प्रयोग किये हैं उनकी कथा लिखनी है। यह सच है कि उनीमें मेरा जीवन ओतप्रोत होने के कारण कथा एक जीवनवृत्तान्त जैसी ही बन जायगी। लेकिन यदि उसके पृष्ठों में सर्वत्र मेरे प्रयोग ही दिखाई देंगे तो मैं इस कथा को निर्दोष ही समझूंगा। मैं मानता हूं कि मेरे सब प्रयोगों का समुदाय जनता के सामने हो तो यह बड़ा ही लाभप्रद होगा। अथवा यों कहो मुझे ऐसा मोह है। राजनैतिक क्षेत्र में किये गये मेरे प्रयोगों को अब हिन्दुस्तान तो जानता ही है, इतना ही नहीं सभ्य कहलानेवाला जगत भी थोड़े बहुत अंशो में उन्हें जानता है। मेरी दृष्टि में उनकी कीमत सबसे कम है और इसलिए इन प्रयोगों के कारण मुझे जो 'महात्मा' का पद मिला है उसकी कीमत भी बहुत ही कम है। बहुत मरतबा तो इस विशेषण ने मुझे अत्यंत कष्ट पहुंचाया है। मुझे ऐसी एक भी क्षण याद नहीं है कि इस विशेषण के कारण मैं कभी अभिमान से फूल गया होऊं। लेकिन मेरे आध्यात्मिक प्रयोगों का जिन्हें मैं ही जान सकता हूं और जिनके कारण मेरी राजनैतिक क्षेत्र की शक्ति भी प्रकट हुई है, उनका वर्णन करना मुझे पसंद है। यदि वह सचमुच ही आध्यात्मिक हैं तो इसमें अभिमानी को तो कहीं स्थान ही नहीं है। इससे तो केवल नम्रता ही बढ़ती है। ज्यों ज्यों मैं विचार करता हूं, मेरे भूतकाल के जीवन पर दृष्टि डालता हूं त्यों त्यों मैं मेरी अल्पता स्पष्ट देख सकता हूं। मुझे जो करना है, जिसके लिए मैं ३० वर्ष हुए लालायित हो रहा हूं वह तो आत्मदर्शन है, वह ईश्वर का साक्षात्कार है, मोक्ष है। मेरा चलना फिरना सब इसी एक दृष्टि से होता है। मैं लिखता भी इसी दृष्टि से हूं और राजनैतिक क्षेत्र में मेरा कूद पड़ना भी इसी दृष्टि के अधीन था। लेकिन मेरा यह अभिप्राय तो पहले ही से बना हुआ है कि

जो बात एक के लिए शक्य है वह और सबके लिए भी शक्य हो सकती है । इसलिए मेरे प्रयोग गुप्त नहीं हुए है और न रहे है । उसे यदि सब देख सकते हों तो उसकी आध्यात्मिकता कम हो जाती है यह मै नहीं मानता । कुछ ऐसी बातें अवश्य हैं जो केवल आत्मा ही जानता है और जो केवल आत्मा में ही समा जाती है । लेकिन यह तो मेरी शक्ति के बाहर की बात है । मेरे प्रयोगों में तो आध्यात्मिक अर्थात नैतिक, धर्म अर्थात नीति, आत्मा की दृष्टि से जो नीति का पालन किया जायगा वही धर्म होगा । अर्थात बालक, जवान या वृद्ध जिन बातों का निर्णय करते है या कर सकते है उन्हीं बातों का इस कथा में समावेश होगा । यदि मै तटस्थ भाव से निरभिमान रह कर यह लिख सकूंगा तो उसमें से दूसरे ऐसे ही प्रयोग करनेवालों को बहुत कुछ सामग्री प्राप्त हो सकेगी । मेरे प्रयोगों के सम्बन्ध में मैं किसी भी प्रकार की सम्पूर्णता का दावा नहीं कर रहा हूं । विज्ञानशास्त्री जिस प्रकार बहुत ही नियमपूर्वक विचार कर के और बारीकी के साथ प्रयोग करते है और फिर भी वे उनके परिणामों को आखिरी परिणाम मानने के लिए नहीं कहते है; और उनके वे परिणाम सच ही है इसके लिए यदि वे सशययुक्त नहीं रहते है तो तटस्थ अवश्य रहते है । मेरे प्रयोगों के सम्बन्ध में मेरा भी यही दावा है । मैने बड़ा आत्मनिरीक्षण किया है, एक एक भाव की परीक्षा की है, उसका पृथक्करण किया है और उसमें से जो परिणाम निकाले है वे सब के लिए आखिरी है, वे सही है और वे ही परिणाम सही हो सकते है ऐसा दावा मै कभी भी नहीं करना चाहता हूं । हां, मेरा यह दावा अवश्य है कि मेरी दृष्टि में वे सही है और आज तो वे ही अन्तिम परिणाम से मालूम होते है । यदि मुझे ऐसी प्रतीति न हो तो उनके आधार पर मुझे किसी कार्य की रचना न करनी चाहिए । और मै तो पद पद पर जिन वस्तुओं को देखता हूं उनके त्याज्य और ग्राह्य ऐसे दो विभाग कर देता हूं और ग्राह्य वस्तु को समझ कर उसके अनुकूल अपने आचारों को बनाता हूं । और जबतक इस प्रकार निश्चित किये गये मेरे आचार मेरी बुद्धि को और आत्मा को संतोष पहुंचाते है मुझे उन परिणामों के संबन्ध में अटल विश्वास ही रखना चाहिए ।

यदि केवल सिद्धान्तों का अर्थात तत्वों का ही वर्णन करना होता तो मै यह आत्मकथा न लिखता । लेकिन मुझे उनके आधार पर रचे हुए कार्यों का इतिहास देना है और इसीलिए मैने इस प्रयत्न को 'सत्य के प्रयोग' यह पहला नाम दिया है । इसमें सत्य से भिन्न माने जानेवाले अहिंसा, ब्रह्मचर्य इत्यादि नियमों के प्रयोग भी समाविष्ट हो जायंगे । लेकिन मेरे लिए सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें असंख्य वस्तुओं का समावेश हो जाता है । यह सत्य स्थूल वाणि का सत्य नहीं है । यह तो जिस प्रकार वाणि का सत्य है उसी प्रकार विचार का भी है । यह सत्य तो केवल हमारी कल्पना का ही सत्य नहीं है, लेकिन स्वतंत्र चिरस्थायी सत्य है अर्थात ईश्वर ही है । ईश्वर की व्याख्यायें अनन्त है क्योंकि उसकी विभूतियां असंख्य है, वे मुझे आश्चर्यचकित कर देती है और एक क्षण के लिए मुग्ध भी कर देती है । लेकिन मै तो सत्यरूपी ईश्वर का ही उपासक हूं । वही एक सत्य है और सब मिथ्या है । यह सत्य मुझे अभी तक मिला नहीं है लेकिन मै उसका शोधक हूं । उसकी खोज प्राप्त करने के लिए मै प्रिय से प्रिय वस्तु का भी त्याग करने को तैयार हूं, और इस शोधरूपी यज्ञ मे अपने शरीर की भी आहुति देने के लिए तैयार हूं । और मुझे विश्वास है मेरे मे यह शक्ति है । लेकिन जबतक मै इस सत्य का साक्षात्कार नहीं करता हूं तबतक जिसे मेरा अन्तरात्मा सत्य मानता है उसी काल्पनिक सत्य को आधार मान कर, उसी को मार्गदर्शक समझ कर, उसीका आश्रय ले कर मै अपना जीवन व्यतीत करता हूं । इस मार्ग पर चलना यद्यपि तलवार की धार पर चलने के समान है फिर भी मुझे यही सबसे अधिक आसान मालूम होता है । इस मार्ग पर चलने से मुझे मेरी बड़ी से बड़ी भूल भी तुच्छ जान पड़ती है । क्योंकि भूलें करने पर भी मैं बच गया हूं और मेरे ख्याल के मुताबिक कुछ आगे भी बढ़ा हूं । दूर दूर मै उस विशुद्ध सत्य की झांकी भी कर रहा हूं । सत्य ही है, और उसके सिवाय इस जगत में दूसरा कुछ भी नहीं है; मेरा यह विश्वास दिन प्रति दिन दृढ हो रहा है । यह कैसे बढ़ा इसे मेरा जगत अर्थात नवजीवन इत्यादि के पढ़नेवाले भले ही जान ले और मेरे प्रयोगों में वे भी हिस्सेदार बन कर मेरे साथ उसकी झांकी करें । जितनी बातें मेरे लिए शक्य है उतनी एक बालक के लिए भी है । मेरा यह विश्वास अधिकाधिक दृढ हो रहा है और इसके लिए मेरे पास सबल कारण भी मौजूद है । सत्य की शोध के साधन जितने कठिन है उतने ही आसान भी है । अभिमानी को वे अशक्य मालूम होंगे लेकिन एक बालक को वे सर्वथा शक्य भी मालूम हो सकेंगे । सत्य के शोधक को रजकण से भी अधिक नम्र बनना पड़ता है । सारा जगत रजकण को पैरों के नीचे कुचलता है लेकिन जबतक सत्य का शोधक इतना अल्प नहीं बनता है कि रजकण भी उसको कुचल सके, तबतक उसे स्वतंत्र सत्य की झांकी होना दुर्लभ है । वसिष्ट और विश्वामित्र के संवाद में यह बात स्पष्ट समझाई गई है । ईसाई-धर्म और इस्लाम भी इसी बात को सिद्ध करते है ।

जो अध्याय मै आगे लिखनेवाला हू उसमें पाठकों को अभिमान का भास भी हो तो वे यह समझ लें कि मेरी खोज में अवश्य कुछ दोष है और जिन चीजों की मैं झांकी कर रहा हूं वे मृगजल के समान है । मेरे एसे अनेकों का भले ही क्षय हो, लेकिन सत्य का जय हो । अल्पात्माओं का नाप निकालने के लिए सत्य का गज कभी भी छोटा न हो ।

मैं चाहता हूं कि मेरे लेखों को कोई भी प्रमाणभूत न मानें । मेरी यह प्रार्थना है । उनमें वर्णित प्रयोगों को दृष्टांत रूप मान कर सब लोग यथाशक्ति यथामति अपने अपने प्रयोग करें यही मेरी इच्छा है । मेरा विश्वास है कि इस संकुचित क्षेत्र मैं मेरी आत्मकथा में से बहुत कुछ सामग्री मिल रहेगा । क्यों कि कहने योग्य एक भी बात मै न छिपाऊंगा । मै पाठकों को अपने दोषों का भी पूरा पूरा आभास कराने की आशा रखता हूं । मुझे सत्य के शास्त्रीय प्रयोगों का वर्णन करना है । मै कैसा अच्छा हूं यह वर्णन करने की मुझे रंच मात्र भी इच्छा नहीं है । जिस कसौटी पर मैं अपने को कसना चाहता हूं और जिस कसौटी का हम सब को उपयोग करना चाहिए उसके अनुसार तो मै अवश्य यही कहूंगा:

'मो सम कौन कुटिल खल कामी,
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो निमकहरामी' ।

क्यों कि जिसे मै सम्पूर्ण विश्वास के साथ अपने श्वासोच्छ्वास का स्वामी मानता हूं और जिसे मै अपने निमक का देनेवाला समझता हूं उससे मैं अब भी दूर हूं और मुझे यह प्रतिक्षण अखरता है । इसका कारण म अपने विकारों को समझता ह लेकिन मैं अब भी उन्हे दूर नहीं कर सकता हूं ।

लेकिन अब बस हुआ। प्रस्तावना में से मैं प्रयोगों की कथा में नहीं आ सकता हूं। वह तो कथा-प्रकरणों में ही मिल सकेगी.

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

लडाई कैसे सुलगी ?

एक अमेरिकन मित्र ने कुछ समय पहले मुझे एक पत्रिका भेजी थी। आखिरी महान युद्ध के कारणों पर उससे बहुत कुछ प्रकाश पडता है। इस दावानल के प्रकट होने के कारणों पर हम किसी भी समय विचार क्यों न करें वह पिष्टपेषण न कहा जायगा। इस पत्रिका में बडी बारीकी के साथ दलील कर के लडाई के सभी कारणों का समावेश किया गया है इसलिए उसमें से कुछ असरकारक 'अवतरणों' को यहां देने में मुझे उसके लेखक से माफी मांगने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती है। लेखक का नाम मि. पेज है। वे सच्चे शिक्षित जिज्ञासु प्रतीत होते हैं। उन्होंने युद्ध के कारणों को पांच विभागों में विभाजित कर दिये हैं। वे विभाग हैं: आर्थिक साम्राज्यवाद, युद्धवाद, संधि, गुप्तमंत्रणा और भय। पहले विभाग के संबन्ध में वे इस प्रकार लिखते हैं।

"विलियम्स टाउन में, इन्स्टिट्यूट आफ पोलिटिक्स के समक्ष व्याख्यान देते हुए इटली के एक बडे अर्थशास्त्री प्रोफेसर बिकेट ने कहा था कि १८७८ की बर्लिन की कांग्रेस ने यूरोप के इतिहास का एक अध्याय समाप्त किया है। उसी दिन से केवल योरप के ही प्रश्नों की दृष्टि से योरप के जुदे जुदे राष्ट्रों के पारस्परिक संबन्ध का विचार होना बन्द हो गया है और योरप बाहर के संस्थानों और बाजारों का कब्जा प्राप्त करने की दृष्टि से ही उसका विचार होने लगा है। ड्राइन या डेन्यूब नदी पर योरप के प्रधान मंत्रियों की मंत्रणा का होना बन्द हो गया और ट्युनिस, नाइजीरिया और मंचूरिया ही उनकी मंत्रणा के प्रधान विषय बन बैठे हैं। उसके बाद ३५ वर्ष तक सभी बडे बडे योरपीयन राष्ट्रों में संस्थानों, अधिकारप्रद क्षेत्र, कच्चा माल, बाजार और व्यापार-मार्ग इत्यादि वस्तुओं के लिए कटु स्पर्द्धा होती रही। करीब करीब सारा ही आफ्रिका खण्ड और एशिया के बडे बडे देश इन राष्ट्रों ने आपस में बांट लिए थे। ई. सन १८०५ में आफ्रिका का एक बहुत ही छोटा सा हिस्सा योरपियनों के कब्जे में था। लेकिन बंटवारा इतना शीघ्र किया गया कि १९१२ में तो आफ्रिका निवासियों के हाथ में केवल दो छोटे से टुकडे ही बाकी रह गये। इस लूट में किसे अधिक लाभ हुआ है यह निम्न लिखित अंकों से मालूम हो सकेगा।

	वर्ग मील
ब्रिटिश आफ्रिका	३७०१४११
फ्रेन्च आफ्रिका	४०८६९५०
जर्मन आफ्रिका	९१०१५०
बेल्जीयन आफ्रिका	९०००००
पुर्तुगीज आफ्रिका	७८७०००
इटालियन आफ्रिका	६०००००
स्पेनीश आफ्रिका	७९८००
स्वतंत्र राज्य	३९३०००
	११४५८८९१

इस प्रकार आफ्रिका पर कब्जा कर लेने के बाद उनकी स्पर्द्धा दूसरे देशों के लिए होने लगी। वे एशिया के बडे बडे हिस्सों पर कब्जा करने लगे। बीसवीं सदी के पहले दस वर्षों में योरपीय राज्यों का एशिया पर राजकीय प्रभाव कितना था यह इस सूची से मालूम हो सकेगा।

	वर्ग मील
रशिया	६४९५९५०
चीन	४२९९६००
ब्रिटन	१०९८२९०
तुर्की	६८१९८०
होलेंड	५८६०८१
फ्रान्स	२८४५८०
जापान	१६१११०
अमरिका	११४२३०
जर्मनी	१०५
दूसरे स्वतंत्र प्रदेश	२२४२२३०
	१६८१८१७३

७५ साल हुए योरप की बडी बडी राष्ट्र चीन में अपने व्यापारिक हित के लिए और अधिकारप्रद क्षेत्रों पर कब्जा प्राप्त करने के लिए स्पर्द्धा कर रहे हैं। उसके परिणामों की कथा प्रो विलोबी ने 'चीन में परदेशी राज्यों का हक और उनका हितसंबंध' नामक ५९४ पृष्ठ की पुस्तक में लिखी है। परदेशी राज्यों ने महा युद्ध के कारण, युद्ध का डर दिखा कर या दूसरे से जिन हकों को प्राप्त किया है उनका हिसाब करें तो उनमें, दूसरों की हदों में उनकी सत्ता, संधि की रूसे बांट लिए गये बंदरगाह, अधिकारप्रद क्षेत्र, खानें खोदने की स्वतंत्रता, रेल्वे पर अंकुश, समुद्रों पर जकात और नमक पर कर डालने का अधिकार, युद्ध के प्रदेश, चीन देश में परदेशी अधिकार में रहने वाली बडी बडी लश्करी छावनियाँ डालने का अधिकार, इत्यादि सभी बातें आ जाती हैं।

चीनकी लूट में से प्रत्येक परदेशी सत्ता के हाथ क्या क्या लगा है यह नीचे दिया गया है।

ग्रेटब्रिटन : हांगकांग, कव्लुन, सिक्किम, वाईहाईवाई, और यांगटसे नदी के प्रान्त में, शंघाई में और तिबेट में अधिकार।

रशिया : मंचुरिया का आमूर नदी का प्रदेश, चीनी तुर्कस्तान में पश्चिम इली, पोर्ट आर्थर, डाइरेन और मंचुरिया और मोंगोलिया में अधिकार।

जर्मनी : क्याउचाउ, सिङ्गताओ, शान्टुङ्ग में अधिकार।

फ्रान्स : आनाम, टानकिन, क्वांगचौवान, क्वांगटुंग, क्वांगसी और युनान में अधिकार।

जापान : कोरिया, फार्मोसा, लोकचाउ द्वीपसमूह, पेस्काडोर्स, पोर्टआर्थर और रशिया से लिया हुआ डाइरेन तथा फुकिन, शान्टुङ्ग और चीन के दूसरे भागों में अधिकार।

आर्थिक स्पर्द्धा के महत्व के सम्बन्ध में कोलम्बिया युनिवर्सिटी के प्रोफेसर जे. हेई कहते हैं: मिश्रदेश में, चीन में, सियाम में, सुदान में मोरोक्को में, ईरान में, तुर्क के साम्राज्य में और बाल्कन में, जो घर्षण के क्षेत्र हैं उनसे जिन्हें कुछ भी परिचय है उन्हें बीसवीं सदी के सभी युद्धों को और खास कर गत महायुद्ध के कारणों की बडी महत्व की कुंजी प्राप्त हो जायगी।"

दूसरे अंकों में स्थल की सुविधा के अनुसार दूसरे चार कारणों के संबंध में भी अवतरण दिये जावेंगे।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

के केन्द्र ढूंढ निकालने प्रयत्न करेगा । इस प्रकार खादी की तादाद और किस्में दोनों बढ़ जायंगी । जहां तक मुमकिन होगा वह खादी को सस्ती करने का भी प्रयत्न करेगा । आदर्श केन्द्रों में जो कार्य हो रहा है उसे सब प्रकार का उत्तेजन दिया जायेगा । मण्डल ऐसे केन्द्रों को भी उत्तेजन देगा जहां बाजार में काफी परिमाण में सूत बिकता होगा । खादी गांवों में अभी जितनी जा रही है उससे अधिक परिमाण में वह वहां जा सके इसके लिए भी मण्डल प्रयत्न करेगा ।

इरोड मंत्री

४-११-२६ तामिलनाड़ खादी मण्डल

रिपोर्ट की बातें स्पष्ट हैं । खादी के चाहनेवालों का इसपर ध्यान खींचने के लिए अधिक सिफारिश की जरूरत नहीं है । इस रिपोर्ट से तो खादी के प्रति जिन्हें सहानुभूति नहीं है ऐसे आलोचकों को भी अपनी राय बदलने के लिए काफी कारण मिलेंगे । तामिलनाड़ में व्यापारिक रीति से नियमपूर्वक जो काम हो रहा है उससे वहां के आत्म-त्यागी कार्यकर्त्ताओं की शक्ति और दृढ़ता का बहुत कुछ परिचय मिलता है । वे खादी उत्पन्न करने का और फेरी करने का नम्र कार्य कर रहे हैं और उन्होंने अपने स्वार्थ को छोड़ कर गांवों में ही रहना पसन्द किया है । जबतक शिक्षित पुरुष और स्त्रियें तन मन लगा कर खादी का कार्य न करेंगे तबतक खादी कुछ अधिक प्रगति कर सकेगी यह ख्याल भी नहीं किया जा सकता है । पाठकों को इस बात का यकीन रखना चाहिए कि ऊपर जो चित्र खींचा गया है उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है ।

इस साल उस प्रान्त में बिक्री और पैदाइश के ३६ केन्द्र और अधिक खुल सके और उन्हें खोलना आवश्यक मालूम हुआ यह इस बात का प्रमाण है कि बड़े बड़े विघ्न होने पर भी खादी को स्थिरता प्राप्त हो रही है । गांवों में फेरी करने का जो अच्छा परिणाम बताया गया है वह परिणाम तो आना ही चाहिए था और रिपोर्ट में लिखने के अनुसार यदि अधिक व्यवस्था रक्खी जायगी और और भी सम्हल कर काम किया जायगा तो इससे भी अधिक अच्छे परिणाम की आशा रक्खी जा सकेगी ।

अपनी हद में खादी के कार्य में लगाने के लिए जुदे जुदे तालुकों से १०००) इकट्ठा करने के लिए जो प्रार्थना की है उस पर पाठकों को ध्यान देना चाहिए; हम यही चाहेंगे कि तीन तालुके ने इस प्रार्थना का जो उत्तर दिया है उससे आम तौर पर और भी तालुकों को उत्साह मिले ।

जो प्रान्त तामिलनाड़ के साथ स्पर्द्धा कर रहे हैं उन्हें अपने रिपोर्ट बहुत ही शीघ्र तैयार कर भेजने चाहिए ।

नकली खादी

एक महाशय नागपुर से किसी कपड़े के थान पर से एक तस्वीर निकाल कर भेजते हैं और लिखते हैं कि भोले लोगों को यह कपड़ा शुद्ध खादी के नाम से दिया जाता है और लोग उसे अच्छी खादी समझ कर खरीद लेते हैं । और उस पर थान से निकली जुल्मी एक भोंडी तस्वीर और चरखे को देख कर उनका यह ख्याल और भी दृढ़ हो जाता है । इस प्रकार के कामों को न पवित्र कह सकते हैं और न स्वदेशाभिमानयुक्त । और उससे मिलों के खिलाफ बुरे भाव उत्पन्न होते हैं । क्या मिलमालिकों का मण्डल ऐसे कामों के सम्बन्ध में जिसका कि मुझे बार बार जिक्र करना पड़ा है कोई इन्तजाम न करेगा ?

मो० क० गांधी

ईश्वर एक ही है

[गत वर्ष के उपवास के दिनों में गांधीजी ने बनारस विश्वविद्यालय के आचार्य श्री आनन्दशंकर ध्रुव से, एकेश्वरवाद के संबंध में वेदों में से कुछ मन्त्र लिख भेजने के लिए प्रार्थना की थी । उन्होंने एक लम्बी चिट्ठी लिख कर बहुत से मन्त्र लिख भेजे थे । उनका अनुवाद यहां दिया जाता है । महादेव देसाई]

पुराण दिक ग्रंथों में और महाभारतादिक प्राचीनतर ग्रंथों में ईश्वर एक ही है इस मतलब का प्रतिपादन करनेवाले अनेक श्लोक हैं । और उपनिषद तो एक ही ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं । उससे भी प्राचीनतर ब्राह्मण ग्रंथों में 'प्रजापति' नाम से एक ही ईश्वर का प्रतिपादन किया गया है । आपने जो वेदमंत्र मांगे हैं उन्हें लिखने के पहले मैं उनके बारे में थोड़ा सा उपोद्घात लिखना चाहता हूं ।

उपनिषद् का एक वाक्य है:

"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः । ... ... य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद, यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥"

जो पृथिवी में रहता है फिर भी पृथ्वी से भिन्न है, जिसे पृथ्वी नहीं जानती है, पृथ्वी जिसका शरीर है, जो पृथ्वी में और पृथ्वी के बाहर रह कर उसका नियमन करता है — वही मेरा अन्तर्यामी अमृत आत्मा है । (इसी प्रकार जल तेज इत्यादि तत्त्वों में भी वह है यह कह कर आखिर कहते हैं:)

जो आत्मा जीवात्मा में रहता है फिर भी उससे भिन्न है, जिसे आत्मा नहीं जानता है, आत्मा जिसका शरीर है जो आत्मा में और आत्मा से भिन्न रह कर उसका नियमन करता है — वही मेरा अन्तर्यामी अमृत आत्मा है ।

इस महा वाक्य में परमात्मा का, विश्वरूप, विश्व के अन्तरात्मा और विश्व से पर ऐसे परमात्मा के रूप में वर्णन किया गया है । इसमें आखिरी रूप का यहूदि और इस्लाम धर्म में अच्छा वर्णन किया है, लेकिन (इस्लाम के सूफि वाद को छोड़ कर) उन धर्मों में पहले दो स्वरूपों पर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है । इस तीसरे रूप के अलावा ईसाई धर्म में दूसरे रूप के अंश भाग का भी ग्रहण किया गया है । वह इस प्रकार कि परमात्मा को वे मनुष्य के आत्मा में देखते हैं लेकिन बाह्य जगत में उसे नहीं देखते । पहला रूप तो उसमें भी नहीं है । यह होने के कारण ही तो वेद में परमात्मा को इस विश्व के अनेक पदार्थों के सृष्टि कर्ता के रूप में ही नहीं लेकिन उनके आत्मा के रूप में भी देखा गया है । विद्वान ईसाई लोग इस बात को भूल जाते हैं और जहां परमात्मा के शरीर रूप से उन पदार्थों का वर्णन किया जाता है वहां उन्हें अनेकेश्वरवाद की भ्रान्ति होती है । इस अनैक्य में जो ऐक्य है उसका श्री मेक्समूलर को कुछ ज्ञान हुआ था लेकिन उन्होंने भी इसमें परमात्मा के सकल स्वरूप का स्वीकार किया हुआ है यह मानने के बदले उसे Henotheism अर्थात् एकदेववाद नाम दे कर सन्तोष माना है । ईश्वर को Transcendental (परमात्मा) और Immanent (अन्तरात्मा) मानने के बदले केवल Transcendental (परमात्मा) मानने से Immanent (अंतरात्मा) स्वरूप के कारण जिन पदार्थों में परमात्मा का दर्शन होता है वे अनेक होने के कारण अनेकता होती है । 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' यह प्रसिद्ध मन्त्र

संहिताकाल के पिछले विभाग की कोरी कल्पना नहीं है। वेद में देवों के नाम विशेषणात्मक है यह जानने पर यह मन्तव्य सही मालूम होता है। सविता अर्थात प्रेरक आत्मा, वरुण अर्थात सब पदार्थों को ढक कर रहनेवाला परमात्मा, विष्णु अर्थात सब में व्याप्त हो कर रहनेवाला परमात्मा, पूषा अर्थात पोषण करनेवाला परमात्मा, मित्र अर्थात मित्रभूत परमात्मा इत्यादि। उसी प्रकार, अग्नि इत्यादि देवों की स्तुति की गई है उनमें भी जो भाव प्रकट किये गये हैं उनका सामान्य अग्नि इत्यादि के साथ संबंध नहीं लगाया जा सकता है। सामान्य अग्नि का वर्णन करते करते ऋषि उसके अन्तर में प्रवेश कर जाते हैं और उसमें परमात्मा के दर्शन करने के साथ ही उसीके साथ संबंध रखनेवाला और सामान्य अग्नि इत्यादि के साथ जिसका संबंध नहीं लगाया जा सकता है ऐसा ही वर्णन करते हैं। ईश्वर एक ही है यह सिद्धान्त केवल ज्ञानी लोगों का ही न था। लेकिन यह सिद्धान्त तो लोकप्रिय भी था, इसका भी प्रमाण है। जिन मन्त्रों में स्पष्ट एकेश्वरवाद का वर्णन है वे मन्त्र मात्र थोड़ा सा पाठान्तर कर के सभी वेदों में लिये गये हैं। अर्थात मूल ऋग्वेद का मन्त्र दूसरे वेदवालों को भी इतना प्रिय हो पड़ा कि सभी वेदवालों ने उसे लिया। एकेश्वरवाद के बहुत से मन्त्रों के संबन्ध में यही हुआ है। जैसा ऊपर कहा गया है पूर्वार्द्ध में जो देव प्रसिद्ध थे उनके नाम भी विशेषण रूप में पाये जाते हैं। इसके अलावा एकेश्वरवाद का सबल प्रमाण यह है कि 'अदिति' पद से 'आदित्य' शब्द बना है, आदित्य पद से अदिति शब्द नहीं बना है। इसी से यह बात सिद्ध हो जाती है एक अदिति (Infinite) को पहले ग्रहण किया है और उनके गुण रूप से अर्थात आविर्भाव रूप से आदित्यों को अर्थात देवों को ग्रहण किये हैं।

अब आप की इच्छानुसार कुछ वेदमन्त्रों को लिख रहा हूं। मेरे विचार में आपको जिससे विषय का दिग्दर्शन हो सके उतने अवतरण ही काफी होंगे।

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे विश्वस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै० ॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै० ॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै० ॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै० ॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै० ॥
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै० ।
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै० ।
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।"

प्रथम हिरण्य गर्भ थे — वे प्रजा समस्त के एक ही स्वामी बने हुए थे। उन्होंने पृथिवी का धारण किया और यह आकाश धारण किया। किस देव की हम हवि दे कर उपासना करें?

जो आत्मदायी (आत्मा का देनेवाला) है, बलदायी है। जिसकी आज्ञा का सब देव पालन करते हैं, अमृत जिसकी छाया है, मृत्यु जिसकी छाया है। किस देव की०

अपने महिमा में, श्वास लेते और आंख मटमटाते जो (प्राणीमात्र) जगत का राजा बना हुआ है। दो पैरवाले और चार पैरवालों का जो ईश्वर है। किस देवकी०

जिसकी महिमा के कारण यह हिमालय स्थिर बना हुआ है। पृथिवी सहित-समुद्र जिसका कहा जाता है। ये दिशायें जिसके हाथ हैं। किस देवकी०

जिसके कारण द्यौ (प्रकाशमान आकाशमण्डल) ऊपर स्थिर हो रहा है और पृथिवी दृढ बनी हुई है;—जिसके कारण स्वर्ग टिका हुआ है और अंतरिक्ष टिका हुआ है, जो अन्तरिक्ष में जल का बनानेवाला है। किस देवकी०

जिसके रक्षण से स्थिर रहनेवाले पृथिवी और आकाश, दिल में कांपते हुए जिसे देखते हैं। उदित सूर्य जिसमें रह कर प्रकाश देता है। किस देवकी०

जिस समय महान जल विश्व में आये — गर्भ धारण करते हुए और अग्नि को उत्पन्न करते हुए — उस समय देवों का एक प्राण प्रकट था। किस देव की०

जो देवों में एक अध्यक्ष देव था। किस देवकी०

हे देव हम को न मारना — जो सत्य धर्म का देव, पृथिवी का उत्पन्न करनेवाला है; जिसने द्यौ (प्रकाशमान आकाश मण्डल) उत्पन्न किया है; जिसने महान मनोहर जल उत्पन्न किया है। किस देवकी०

हे प्रजापति! तेरे बिना और कोई इन सर्व उत्पन्न किये हुए पदार्थों को व्याप्त करके नहीं रहा है........ अपूर्ण

गोरक्षा का निबंध

गोरक्षा पर मंगाये गये ईनामी निबंध में से कुछ निबंध तो आ भी गये हैं। उनमें से बहुत से तो बड़ी ला परवाही से लिखे गये हैं। कुछ तो कागज के दोनों तरफ लिखे गये हैं। कुछ तो इस तरह लिखे गये हैं कि पढे ही नहीं जा सकते। भविष्य में जो इस स्पर्द्धा में भाग लेना चाहें उनसे प्रार्थना की जाती है वे अपना निबंध:

(१) कागज की एक बाजू पर ही लिखें।

(२) स्याही से सुवाच्य और बड़े हरफों में लिखें।

(३) अच्छी तरह बंधे हुए और मजबूत कागज पर लिखें और अपना पूरा नाम और पता भी उसमें लिखें।

इसमें भाग लेनेवालों को चेतावनी दी जाती है कि नापास किये गये निबंध वापिस न लौटाये जायेंगे। इसलिए उन्हें अपना निबंध भेजने के पहले उसकी नकल करके उसे अपने पास रख लेनी चाहिए।

मो० क० गांधी

मजदूरों की विजय

जिस परिस्थिति के कारण मजबूर हो कर इतने दिनों बाद भी भारत सरकार को रूई पर की जकात को बन्द कर देनी पड़ी है उससे अब इस कार्य के करने में उसका किसी प्रकार का भी गौरव नहीं रहा है। इस बुराई को दूर करने का सारा श्रेय बम्बई के मिल-मजदूरों को ही है। हम उनको इस विजय के लिए, जो उन्हीं की है मुबारकबादी देते हैं।

उनकी यह विजय बड़ी अपूर्व है और अव्यवस्थित मजदूरों ने उसे हासिल किया है इससे उसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। मिल-मालिकों को इस विजय के लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहिए और इसके कारण मजदूरों का और उनका परस्पर का संबन्ध और भी गौरवयुक्त और अच्छा हो जाना चाहिए।

(सं० हि०)

दक्षिण आफ्रिका

वार्षिक मूल्य ४)
छःमास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचंद गांधी

वर्ष ५] [अंक १४

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद	अहमदाबाद, अगहन सुदी ११, संवत् १९८२ गुरुवार, २६ नवम्बर, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

कच्छ के संस्मरण

(गतांक से आगे)

मूंद्रा में सब से अधिक कटु अनुभव हुआ। वहां तो दम्भ, आडम्बर और नाटक ही देखने को मिला था। मुसलमानों को भी, जो ने भी अस्पृश्यता में क्यों न मानते हों, भद्र लोगों में ही बिठाये गये थे। अन्त्यज विभाग में भी केवल मेरे साथवाले और मुसलमान स्वयंसेवक ही बैठे थे। हिन्दू स्वयंसेवकों में से यद्यपि बहुत से उनके कथनानुसार अस्पृश्यता को नहीं मानते थे फिर भी उन्हें भद्र लोगों के बाड़े में ही रक्खे गये थे।

मूंद्रा में एक अन्त्यज शाला है। लेकिन उसे तो एक सखी मुसलमान सेठ इब्राहीम प्रधान अपने खर्च से चलाते हैं।

इस शाला की कुछ बातें बड़ी अच्छी गिनी जा सकती हैं। बालकों को बड़े साफ रक्खे जाते हैं। शाला का मकान शहर के मध्यभाग में है। बालकों को टूटेफूटे अक्षर से कुछ भेदक श्लोक भी रटाये गये हैं। कताई, बुनाई, धुनकना इत्यादि काम शाला में ही होता है। केवल लड़कों को पहनने के कपड़ों में खादी का इस्तेमाल नहीं किया गया था लेकिन संचालकों ने उसमें जिस कपड़े का इस्तेमाल किया था, उसे शुद्ध खादी मान कर ही उसका उपयोग किया था। पाठकगण शायद यह ख्याल करेंगे कि मुझे इस शाला से तो कुछ संतोष हुआ ही होगा। लेकिन मुझे उससे सन्तोष न हुआ। मुझे उसे देख कर दुःख हुआ था। क्योंकि इसका यश या पुण्य किसी भी हिन्दू को प्राप्त नहीं हो सकता था। इसके दाता सेठ का नाम तो मैं ऊपर दे चुका हूं। उसके संचालक श्रीमान् आगाखान के मूंद्रा के वारिस हैं। सेठ इब्राहीम प्रधान को तो उनके दान के लिए धन्यवाद ही दिया जा सकता है क्यों कि जैसा कि मुझसे कहा गया था वह शाला अन्त्यजों को या उसमें पढ़नेवाले बालकों को मुसलमान बनाने के लिए नहीं चलाई जा रही है। मूंद्रावासियों ने भी मुझसे कहा था कि संचालक मांकेजीना मेघजी वेदान्ती और ज्ञानी हैं। यह सब संतोषकारक अवश्य है। लेकिन इसमें हिन्दुओं का क्या है? अस्पृश्यता तो हिन्दू-धर्म का मैल है और हिन्दू-धर्म का पाप है। उसका प्रायश्चित्त भी तो हिन्दुओं को ही करना चाहिए। मेरे शरीर पर चढ़े हुए मैल को जब मैं निकालूंगा तभी वह निकलेगा। वह शाला सेठ इब्राहीम प्रधान को जितनी शोभा देती है मूंद्रा के हिन्दुओं को वह उतनी ही शरमानेवाली भी है?

लेकिन जिस प्रकार ऐसे दुःखद प्रसंगों को देखने का मुझे दुर्भाग्य प्राप्त हुआ था उसी प्रकार मुझे कुछ अच्छे प्रसंग भी देखने को मिले थे। श्री जीवराम कल्याणजी के नाम से पाठक परिचित हैं। उन्होंने अन्त्यज-सेवा को अपना धर्म बना लिया है। उनकी दानवीरता उनका सब से बड़ा भारी गुण नहीं है लेकिन स्वयं सेवा करने का उनका आग्रह ही उनको अधिक शोभा देता है। वे अपना धन अपना समय सब खादी और अन्त्यज के काम में लगा देते हैं। मांडवी के श्री गोकलदास खीमजी भी निर्भय हो कर अन्त्यजों की अच्छी सेवा कर रहे हैं। अपने प्राण से ... वे एक अन्त्यज शाला चलाते हैं। ऐसे अन्त्यज सेवकों को मैंने वहां जगह जगह देखा। इसलिए कच्छ की अस्पृश्यता के संबंध में निराश होने का मुझे कुछ भी कारण नहीं दिखाई देता है। सभाओं के लज्जाजनक दृश्यों को मैं क्षणिक मानता हूं। स्थायी काम तो हो ही रहा है और इसमें मुझे कुछ भी संशय नहीं है कि वह और भी बढ़ता ही जायगा।

लेकिन अन्त्यजों को राज्य की तरफ से बहुत कुछ दुःख उठाना पड़ता है। अन्त्यजों के लिए वहां एक कानून है; उसे बहुत से लोग तो व्यभिचार के ठेके के नाम से जानते हैं। इस कानून की रू से अन्त्यजों को व्यभिचार करने पर सजा की जाती है और इसका ठेका दे दिया जाता है। जो शख्स इसके लिए सब से अधिक रुपये देता है उसे राज्य की तरफ से यह हक होता है कि वही अकेला ऐसे जुर्म पकड़ सकता है और उसमें जो कुछ भी जुरमाना होता है वह भी उसी को मिलता है। इसलिए ठेकेदार का काम यह होता है कि जैसे बने वैसे वह ऐसे जुर्मों को बढ़ावें। अर्थात्, जहां व्यभिचार नहीं होता है वहां भी उसे पैदा करके या उसका आरोपण करके भी ठेकेदार जुरमाना वसूल करता है। अन्त्यज लोग इससे बड़े दुःखी हैं।

बुनाई का काम करनेवालों को भी बड़ी तकलीफ है। जिस किसी बुननेवाले ने किसी महाजन से कुछ रुपये लिए कि वह जब तक उसे पूरा नहीं कर देता है वह किसी दूसरे के लिए कुछ भी नहीं बुन सकता है। इसलिए उन्हें एक या दो आदमी के गुलाम बन कर ही रहना पड़ता है। जो कुछ भी वह दाम दे उन्हें

लेने पडते हैं और उसी के लिए कपडा बुनना पडता है। वह लेनदार जो चाहे ब्याज मांग सकता है। इसलिए उसके हाथ से बेचारा अन्त्यज कभी भी रिहा नहीं हो सकता है। इस तकलीफ के कारण कुछ लोगों ने तो अपना यह धंधा ही छोड दिया है। कच्छ में हजारों अन्त्यज बुनने का काम जानते हैं और यदि यह कानून न होता तो वे खुशी से अपनी आजीविका इसीमें से प्राप्त कर सकते थे। मुझे आशा है कि कच्छनरेश इन दोनों कष्टों में से उन्हें बचा लेंगे। मैंने ये दोनों बातें उनके सामने पेश की हैं।

वृक्षरक्षण और वृक्षारोपण

कच्छ के सफर में जिन प्रश्नों का विचार करना पडा था उनमें से एक वृक्षरक्षण और वृक्षारोपण का भी प्रश्न है। कच्छ तो कुछ अंशों में सिंध का ही एक विभाग गिना जा सकता है। लेकिन सिंध को सिंधु नदी मिली है। उसीसे उसका निभाव होता है। यदि सिंधु नदी न हो तो सिंध बरबाद ही हो जाय। कच्छ में अंजार, मुन्द्रा इत्यादि कुछ थोडे से प्रदेश को छोड कर कहीं भी वृक्ष इत्यादि देखने को भी नहीं मिलते हैं। और जहां वृक्ष इत्यादि नहीं होते हैं वहां वर्षा हमेशा ही कम होती है। कच्छ की भी यही हालत है। वर्षा इतनी कम और अनियमित होती है कि वहां सदा दुष्काल ही बना रहता है। पानी की हमेशा तंगी रहती है। यदि कच्छ में नियमपूर्वक और बडे प्रयत्नों के साथ वृक्ष बोये जाय तो कच्छ में वर्षा का परिमाण भी बढाया जा सकेगा और भूमि उर्वरा बन सकेगी। श्री० जयकृष्ण इन्द्रजी इसके लिए बडा प्रयत्न कर रहे हैं। मांडवी शहर से कुछ दूर एक जगह पर उन्होंने मेरे हाथ से एक वृक्ष का आरोपण भी कराया था। यह क्रीया मुझे कच्छ में बडी ही प्रिय मालूम हुई। उस दिन वहां वृक्षरक्षा सभा का भी आरंभ किया गया था। मैं चाहता हूं कि जिस हेतु से उस सभा की स्थापना की गई है और जिस हेतु से मेरे हाथ से वृक्षारोपण कराया गया था वह हेतु सफल हो।

श्री० जयकृष्ण इन्द्रजी गुजरात के रत्न हैं। गुजरात में ऐसी बहुत ही थोडी व्यक्तियां हैं जो अपने विषय के साथ तन्मय हो जाती हों। ऐसी ही प्रधान व्यक्तियों में जयकृष्ण इन्द्रजी का स्थान है। बरडा के एक एक वृक्ष को और पौधों को वे पहचानते हैं। वृक्षारोपण में उन्हें इतना विश्वास है कि वे उस कार्य को प्रथम स्थान देते हैं और यह मानते हैं कि उस में बडे परिणाम आ सकेंगे। इस विषय में उनका उत्साह और विश्वास फलनेवाला विषय है। कच्छ पर तो उनका कभी का [illegible] पडा है। राजा और प्रजा दोनों ही यदि इस काम पर ध्यान दें तो वे जहां वृक्षों के संबंध में ज्ञान रखनेवाली ऐसी एक व्यक्ति मौजूद है वहां उनके ज्ञान से लाभ उठा कर उस देश को एक सुन्दर उद्यान के रूप में बदल दे सकते हैं।

जोहान्सबर्ग पहले एक रमन ही देश था। वहां तृण के सिवा और कुछ भी न पैदा होता था। मकान एक भी न था। लेकिन आज चालीस वर्ष में वह सुवर्णपुरी बन गया है। एक समय था कि जब लोगों को एक बाल्टी पानी के लिए बारह आने देने पडते थे और कभी कभी तो सोडावाटर से ही काम चलाना पडता था। कभी [illegible] हाथ मुंह भी सोडावाटर से ही धोने पडते थे। वहीं आज पानी भी है और वृक्ष भी हैं। सुवर्ण की खानों के मालिकों ने [illegible] उत्साह [illegible] आज पहले पहल दूर दूर से वृक्षों के पौधे मंगा कर बोये थे और उसे हराभरा बना दिया था। उस से उन्होंने वर्षा का परिमाण भी बढा लिया था। ऐसे दूसरे भी उदाहरण दिये जा सकते हैं जहां जंगल काट डालने से वर्षा कम हुई है और वृक्षों के बोने के कारण वर्षा बढ गई है।

कच्छ का धनिक वर्ग यदि इस कार्य में उत्साह दिखावे तो बहुत कुछ कार्य हो सकेगा। जिस प्रकार गोरक्षा धर्म है उसी प्रकार ऐसे प्रदेशों में वृक्षरक्षा भी धर्मकार्य है। हमारी मान्यता है कि एक गाय के पालनेवाले को उसके पुण्य का फल मिलता है। उसी प्रकार कच्छ काठियावाड जैसे प्रदेशों में वृक्षों की रक्षा करने-वाले को या बोनेवाले को भी पुण्यफल मिलता है। जलाने के लिए या किसी और काम के लिए भी लकडी नहीं काटनी चाहिए। नजदीक के किसी वृक्ष को काट कर उसे जलाने के बनिस्बत जलाने के लिए बाहर से लकडी मंगाना ही अधिक सस्ता पडता है। वृक्ष काटनेवाले को यद्यपि उस समय तो लकडी मुफ्त में मिलती है लेकिन उससे कच्छ को जो नुकसान होगा उसकी भरपाई कभी भी न हो सकेगी। जिसमें से लकडी काटी जा सकती है ऐसा कोई भी वृक्ष दस वर्ष के पहले तैयार नहीं हो सकता है और जिस पर दस साल मिहनत की गई है और जो अनेक प्रकार से भूमि और मनुष्य का रक्षण करता है उसे कैसे काट सकते हैं !

काठियावाड की भी ऐसी ही स्थिति है। काठियावाड में भी वृक्षसंग्रह का प्रश्न बडा महत्व रखता है। लेकिन काठियावाड की स्थिति तो और भी कठिन है क्यों कि काठियावाड यद्यपि एक छोटा और सुन्दर द्वीपकल्प है फिर भी उसके इतने विभाग हो गये हैं और वे एक दूसरे से इतने स्वतंत्र हैं कि जबतक उन सब में सहयोग न हो तबतक वृक्षरक्षण और वृक्षारोपण का कार्य सुव्यवस्थित नहीं हो सकता है। लेकिन यदि कच्छ और काठियावाड को उजाड नहीं बनाना है तो वहां के लोगों को पहले से ही उसका योग्य उपाय करना होगा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

समय की धरोहर

इन पृष्ठों में अकसर मैंने गांधीजी के बारे में लिखा है कि उन्होंने अपने बहुतसे श्रोताओं से बहुतेरे प्रसंगों पर यह कहा है कि हमारा समय हमारे पास एक प्रकार की धरोहर है। लेकिन अभी अब मैंने ही गलती की यह पाठ मेरे हृदय में गहरा बैठ गया। मैं अक्सर इसके लिए लोगों पर हंसा हूं। आज वे भी मेरी हंसी उडा सकते हैं।

बाह्य दृष्टि से तो मैंने फ्रेंच सीखना कैसे शुरू किया और उसका अन्त कैसा हुआ उसकी यह कहानी है। लेकिन सच पूछा जाय तो यह मेरी लज्जा की और मेरी दीनता की कहानी है। मेरे लिए यह बहुत ही लज्जा की बात है क्योंकि "जितना अधिक और अच्छा तुम जानते हो तुम्हारे कार्यों का उतना ही अधिक कडा न्याय होगा।" मैं जेल में गया तभी समय से मुझे फ्रेंच सीखने की की इच्छा थी। लेकिन उर्दू का हक पहिला था क्योंकि उसे सीखने के लिए बहुत मौके मिले थे और मैं यह जानता था कि उर्दू या हिन्दुस्तानी, अपनी राष्ट्र-भाषा सीखना मेरा धर्म था और फ्रेंच सीखने की तो मात्र एक जिज्ञासा ही थी। और यह जिज्ञासा तो थी ही, उसे जब मौका मिला तब प्रकट हुई। मैंने मीस मेडेलीन स्लेड के आश्रम में आने पर यह मौका पाया और उसका उपयोग करने के लिए जरा भी समय व्यर्थ न गवाया। वह तो सेवा करने के लिए आई हैं, लेने के लिए नहीं लेकिन देने के लिए आई हैं। इसलिए जब उन्होंने कहा कि वे चाहती हैं कि मैं आप की कुछ सेवा कर सकूं, मैंने फ्रेंच सीखने की मेरी ख्वाहिश जाहिर कर दी। "अवश्य"। उन्होंने कहा और मैंने बिना किसी विचार के ही [illegible] पढाई शुरू कर दी। मैंने पहिला पाठ लिया और आतुरतापूर्वक दूसरा पाठ लेने के लिए गया। एक ही दिन की पढाई में कुछ वाक्यों को

समस्त जैसा अभिमान का विषय था। मैंने अपने गुरु से पूछा कि क्या गांधीजी जानते हैं कि मैंने फ्रेंच पढ़ना शुरू किया है? उन्होंने कहा वे जानते हैं और उन्हें इससे बड़ा आश्चर्य हुआ है। इस आश्चर्य शब्द ने मुझे झटका दिया और क्या होगा इसकी मैं कल्पना करने लगा। अभी मैंने दूसरा सबक पूरा भी न किया था कि मुझे सन्देसा मिला कि गांधीजी बुला रहे हैं। मैं उनके पास अवश्य डरता और कांपता हुआ गया, लेकिन जो कुछ हुआ उसके लिए मैं तैयार न था। उन्होंने कुछ इधर उधर की बातें पूछीं और मैंने सोचा कि मैं केवल अपने ही ख्याल से कायर बन गया था। लेकिन अभी मैं अपने को इस बात का यकीन ही दिला रहा था कि मुझे तूफान का सामना करना पड़ा। उन्होंने अपनी नाराजी छिपा कर हंसते हुए पूछा कि "तुमने फ्रेंच सीखना शुरू किया है?" मैंने भी उत्तर में हंसते हुए 'हां' कहा। उन्होंने फिर भी हंसते हुए कहा "कल जब वह तुम्हारे साथ भ्रमण का निश्चय कर रही थी उस समय मैंने सोचा था कि तुम उनके पास उन्हें हिन्दी पढ़ाने के लिए जाओगे। लेकिन आज सुबह मैंने उनसे पूछा कि तुम अपना समय किस प्रकार बिताती हो तो उन्होंने मुझसे कहा कि वह एक घण्टा तुम्हें फ्रेंच सीखाने में बिताती हैं। तुम जानते हो कि मैंने उनसे क्या कहा था?" मैंने कहा "हां" उन्होंने मुझसे कहा था कि आपको उससे आश्चर्य हुआ है।" उन्होंने कहा "ठीक, मैं कहता हूं कि मैंने क्या कहा था। मैंने कहा था कि रोम जल रहा था तब नीरो फिडल बजा रहा था और उसमें वह मग्न था।" और फिर प्रश्नों के झोंके छूटने लगे। "तुमने फ्रेंच किस लिए सीखना शुरू की है? फ्रेंच विदुषी मीस स्लेड यहां पर है इस लिए? या तुम रोमां रोलां को फ्रेंच भाषा में पढ़ना चाहते हो इसलिए? या क्या अपना फ्रेंच पत्र-व्यवहार बढ़ाने के लिए?" मैंने कहा "नहीं, मुझे फ्रेंच सीखने की बहुत दिनों से इच्छा थी और मेरे फ्रेंच जाननेवाले मित्रों ने मुझसे कहा था कि यह भाषा सीखना आसान है और उपयोगी भी है। अब उन्होंने कुछ सख्ती से कहा "अच्छा, क्या तुम यह जानते हो कि सब अंग्रेज फ्रेंच भाषा नहीं जानते हैं और उनमें से अच्छे से अच्छे लोग भी फ्रेंच लेखकों के अंग्रेजी अनुवादों को पढ़ कर ही सन्तोष मान लेते हैं? और बहुतेरे उत्तम फ्रेंच साहित्य का तो यह प्रकाशित हुआ नहीं कि उसका अंग्रेजी में अनुवाद हो जाता है।" और फिर वे एक या दो मिनिट तक कुछ भी न बोले और फिर पूछा "तुम क्या मानते हो, इसके सीखने में कितने दिन लगेंगे?" मैंने कहा "मुझसे कहा गया है कि छः महीने लगेंगे" "कितने घण्टे?" "रोजाना एक घण्टा" "लेकिन जब हम लोग सफर में होंगे तब?" "तब मुश्किल है। लेकिन मैं ख्याल करता हूं कि मैं सफर में भी कुछ न कुछ समय निकाल लूंगा।" "क्या यह सच है? तुमको यकीन है?" मैं कुछ हिचकिचाया। उन्होंने फिर पूछा "और अब तुम फ्रेंच सीखना चाहते हो इसलिए मुझे तुमको एक घण्टा रोजाना छुट्टी देनी होगी। क्या यह सच है न?" इसे मैं सहन न कर सका। मैंने उत्साहपूर्वक कहा "नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं किसी भी प्रकार समय निकाल लूंगा" अब उन्होंने दलील को स्पष्ट करते हुए कहा "तुम समय न पाओगे लेकिन समय चुरा कर निकालोगे।" मैं चुप ही रहा "क्या तुम्हारा यह ख्याल नहीं है?" उन्होंने स्वीकृति की आशा से यह पूछा। मैंने कहा "मैं भी यही ख्याल करता हूं। फ्रेंच सीखने में जितना समय लगेगा इतना समय मैं कातने में और अधिक लगा सकूंगा।" उन्होंने कहा "हां, और भी बहुतसी बातें हैं। लेकिन जब हम जीवन मरण के युद्ध में लगे हुए हैं उस समय तो तुम फ्रेंच सीखने का ख्याल ही कैसे कर सकते हो? स्वराज मिल जाने के बाद तुम जितनी चाहो फ्रेंच पढ़ो। लेकिन तब तक तो—"

मैंने क्षमा और जाने के लिए इजाजत पाने की आशा से कहा "मैं आज से उसका सीखना बन्द कर देता हूं।" उन्होंने कहा "लेकिन यह अभी संपूर्ण नहीं है। क्या तुम यह जानते हो कि मिस स्लेड अपना सब कुछ छोड़ कर के यहां आई हुई हैं? तुम जानते हो कि हमारे में से किसी के भी त्याग से हम लोगों के लिए उनका त्याग अधिक है। क्या तुम यह जानते हो कि वह यहां सीखने के लिए, अध्ययन करने के लिए और सेवा करने के लिए आई हैं और इस देश के लोगों की सेवा में और इस प्रकार अपने देश की सेवा में अपना सब समय लगा देने का उन्होंने निश्चय किया है और उनके देश में कुछ भी क्यों न हो उससे वह अपने निश्चय से जरा भी न डिगेंगी। इसलिए उनकी हरएक मिनट दूना महत्व रखती है और बड़ी कीमती है और यह हमारा फर्ज है कि हमारे से जितना भी बन सके उन्हें कुछ दें। वह हमारे सम्बन्ध में सब कुछ जानना चाहती हैं और इसलिए उन्हें हिन्दुस्तानी सीख लेनी चाहिए। जबतक हम लोग उन्हें अपने समय का अच्छे से अच्छा उपयोग करने में मदद न करेंगे तबतक वह यह कैसे कर सकेंगी। हमारा समय बड़ा धार्मिक महत्व रखता है लेकिन उनका समय तो उससे भी अधिक पवित्र धरोहर है। इसलिए उसका फ्रेंच सीखने में उपयोग न किया जाना चाहिए। मैं तो तुमसे यह आशा रखता हूं कि तुम उन्हें संस्कृत हिन्दी या ऐसी ही दूसरी भाषा सीखाने के लिए रोजाना एक घण्टा समय दोगे।"

इसका मैं कुछ भी उत्तर न दे सकता था। मैंने चुप रह कर ही अपने दोष का स्वीकार कर लिया था "इसके लिए कोई प्रायश्चित भी है, जो मुझे करना चाहिए?" उनसे यह पूछना तो उचित न था। स्वयं मुझे ही उसकी स्फुरणा होनी चाहिए थी। लेकिन उनकी कृपा ने मुझे क्षमा कर दिया था और उन्होंने ही मुझे प्रायश्चित बता दिया "कल फिर उसी समय उनके पास जाना और अपनी गलती को प्रकाशित कर के फ्रेंच पढ़ने के बजाय उनके साथ श्लोक ही पढ़ना।"

महादेव देसाई

बड़ी हिचकिचाहट के साथ बहुत कुछ काटछांट कर के मैंने इसे यहां प्रकाशित किया है।

(नं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

उत्साहप्रद अंक

तामिलनाड के ३० सितम्बर १९२५ तक के एक वर्ष के नीचे दिये गये खादी के अंक ध्यान देने योग्य हैं:

	१९२४-२५	१९२३-२४
खादी बोर्ड की तरफ से उत्पन्न की गई खादी	३,१८८२६)	२,९०६४८)
दूसरे मदद लेकर या बिना मदद के ही खादी पैदा करनेवालों की तरफ से	३,८६९६२)	१,८२२१६)
कुल	७,०५७८८)	४,७२८६४)

१९२४-२५ में फुटकर बिक्री कोई ४,४५,३२४) की हुई थी जो गत वर्ष की खादी की पैदाइश के लगभग समान है।

इस साल की कुल बिक्री, जिसमें दूसरे प्रान्तों को भेजी गई खादी भी शामिल है, कुल ८,३२८४६) की होती है और १९२३-२४ में सिर्फ ३,६५,१५८) की बिक्री हुई थी। इस साल की खादी की पैदाइश और बिक्री दोनों ही बढ़ गई है। पैदाइश दूनी हो गई है और बिक्री दूनी से भी अधिक हो गई है।

हिन्दी-नवजीवन
गुरुवार अगहन सुदी ११, संवत १९८२

दक्षिण आफ्रिका के भारतवासी

श्री एण्ड्रयूज दक्षिण आफ्रिका चले गये, भारत सरकार की तरफ से एक शिष्ट मण्डल दक्षिण आफ्रिका जाने के लिए तैयार है और डा. अब्दुर्रहमान के नेतृत्व में जो शिष्ट मण्डल दक्षिण आफ्रिका गया था वह अब लौट रहा है । इन सब कारणों से दक्षिण आफ्रिका का प्रश्न आज बड़ा महत्व रखता है । दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों के लिए तो यह जीवन और मरण का प्रश्न है । यूनियन सरकार ने सीधे और खुले हुए साधनों से या जबरदस्ती से ही उन्हें बाहर निकाल कर नहीं लेकिन उनको दबा कर और ऐसे ही दूसरे अप्रामाणिक साधनों के द्वारा ही दक्षिण आफ्रिका में से भारतवासियों के अस्तित्व के मिटा देने का निश्चय किया है । जिस कानून का जिक किया जा रहा है उससे तो भारतवासियों के लिए प्रामाणिक रोजी प्राप्त करने के सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं और यूनियन सरकार यह कर के उनका स्वाभिमान ही नष्ट कर देना चाहती है । जब वहां स्वतंत्र विचार के और स्वाभिमान रखनेवाले भारतवासी हो न रहेंगे और सरकार को केवल मजदूरों से, रसोई बनानेवालों से, व्यापारियों से और ऐसे ही दूसरे लोगों के साथ व्यवहार करना होगा उस समय भारतियों का प्रश्न यूनियन सरकार को कुछ भी तकलीफ न देगा । उन्हें तो कुछ नोकरों की ही जरूरत है, वे उनके साथ समानता का दावा करनेवाले व्यापारियों को और किसानों को नहीं रखना चाहते हैं ।

इसलिए यूनियन सरकार ने हिन्दुस्तान से उसके पास गये हुए शिष्ट मण्डल को जो उत्तर दिया उसे सुन कर मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता है । उन्होंने ... उस कानून को कायम करने के लिए अपना निश्चय ही जाहिर ... है । वे सिर्फ छोटी मोटी बातों के संबंध में कार्यात्मक ... विचार ... के लिए तैयार हैं । उन्होंने गोल– मिति के बारे में अभी ... नहीं किया है ।

यदि दक्षिण आफ्रिका के भारतवासी इतना दिखायेंगे और आपस में ऐक्य रखेंगे तो दक्षिण आफ्रिका में श्री एण्ड्रयूज की उपस्थिति से मुझे बहुत कुछ आशा बंधेगी । यदि सरकारी शिष्ट मण्डल को सिद्धान्त के ... में दृढ़ रहने की आज्ञा दी गई होगी तो वह भी बहुत कुछ कर सकेगा । १९१४ के समझौते के अनुसार जो हक मिले थे उसमें तो कम से कम कोई कमी न होनी चाहिए । जिस कानून का जिक है उससे तो उन्हीं हकों को छीना जा रहा है ।

दक्षिण आफ्रिका के बारे में जिन्हें कुछ भी ज्ञान है वे यह जानते हैं कि वहां के हिन्दुस्तानी बाशिन्दों के प्रति युरोपीयन जनता का कोई विरोध नहीं है । यदि वहां की युरोपीयन जनता के एक बड़े विभाग ने उनका विरोध किया होता तो बिना कानून के ही वे उनका वहां रहना दूभर कर सकते थे । दक्षिण आफ्रिका के मूल निवासी भी उनका विरोध नहीं कर रहे हैं । दक्षिण आफ्रिका के मूल निवासी या युरोपीयन बाशिन्दे उनका विरोध नहीं कर रहे हैं इतना ही नहीं वे बड़ी खुशी से और स्वतंत्रता-पूर्वक उनके साथ व्यवहार रखते हैं और तभी तो वे वहां रह सकते हैं । इस कानून को जिसका कि जिक हो रहा है बना कर एक तरफ से भारतवासी और दूसरी तरफ से युरोपीयन बाशिन्दे और वहां के मूल निवासियों में, जो स्वतंत्र व्यापारिक संबन्ध है उसमें दखल करने के लिए प्रयत्न किया जा रहा है । इसलिए यदि भारत-सरकार दृढ़ बनी रहेगी तो यूनियन सरकार की दलीलें कुछ भी काम न आवेगी । इन लोगों को भारतवर्ष के करोड़ों लोगों से दब जाने का जो उचित डर लगा हुआ था वह १९१४ में दूर हो जाने पर तो वहां के भारतवासियों को व्यापार, जमीन की मालिकी और आन्तरप्रवास के लिए इजाजत देने के लिए और उनके इन हकों की हिफाजत करने के लिए यूनियन सरकार बंधी हुई थी और इसीमें उसका गौरव था । लेकिन यह तो उस समझौते को ही बदल देने का प्रयत्न हो रहा है । मैं पाठकों के सुभीते के लिए १९१४ के समझौते से संबंध रखनेवाले पत्रव्यवहार को यहां फिर प्रकाशित कर रहा हूं :

यूनियन सरकार का पत्र

कुछ दिन हुए हिन्दी कौम के संबंध में जनरल स्मट्स के साथ आपकी कुछ बातचीत हुई थी । पहली मुलाकात के समय आपने नये कानून के होने पर अपना संतोष जाहिर किया था और कहा था कि जिन जिन बातों के लिए कानून की आवश्यकता थी उन बातों का इस कानून से निबटारा हो जाता है । लेकिन दूसरी मुलाकात में आपने उस कानून के अमल करने के संबंध में कुछ बातें पेश की थी जिनका कि इस बिल में कोई समावेश नहीं होता था । इन बातों के संबन्ध में जनरल स्मट्स का कहना यह है:

(१) १८९५ के १७ नंबर के कानून में जो भारतवासी आते हैं उन्हें १८९१ के २५ नंबर के कानून की १०६ दफे के मुताबिक उनकी पहली या दूसरी गिरमिट पूरी होने पर उन्हें रिहा कर देने का सर्टिफिकट देने का प्रबन्ध प्रोटेक्टर के साथ करने में कोई मुश्किल नहीं मालूम होती है ।

(२) जिन भारतवासियों को एक से अधिक स्त्रियां हैं उनकी स्त्रियों को और बालबच्चों को यदि उनकी संख्या अधिक नहीं है तो अपने पति और मातापिता के पास आने के लिए इजाजत दी जायगी ।

(३) जिनका द. आफ्रिका में ही जन्म हुआ है ऐसे भारतवासियों के संबन्ध में पहले जैसी स्थिति ही कायम रक्खी जावेगी और नये कानून की ... दफा उनपर न लगायी जावेगी । लेकिन यदि पहले के बनिस्बत बहुत बड़ी संख्या में भारतवासी केप में दाखिल होना चाहेंगे तो इस कानून की यह दफा भी उनपर लगाई जायगी ।

(४) हिन्दुस्तानी कौम के हित के लिए जिन शिक्षित भारत-वासियों को यूनियन में लिए जावेंगे उन्हें दूसरे प्रान्तों की हद में जाने पर कोई प्रश्नपत्र न भरना होगा । क्योंकि इमीग्रेशन कानून की १९ वीं दफे के अनुसार जो प्रश्नपत्र भरे जावेंगे वे ही काफी होंगे ।

(५) जो भारतवासी अपने शिक्षित होने की परीक्षा दे कर केप में या नेटाल में १९१३ के पहले दाखिल हुए होंगे उन्हें यदि वे उन प्रान्तों में पहले कभी तीन साल तक न रहे होंगे तो भी उन्हें फिर वहां वापिस आने में कोई रुकावट न होगी ।

(६) जो सब सत्याग्रही जेल में गये थे उनके मुकद्दमे जनरल स्मट्स न्याय विभाग के प्रधान के पास पेश करेंगे और इसमें उन्हें जो कुछ भी सजायें होंगी उनका सरकार भविष्य में उनके खिलाफ

उपयोग न करेगी। उन्हें विश्वास है कि मि. डी. पेट को भी इसमें कोई बाधा न होगी।

(७) जिन भारतवासियों को खास कर के शिक्षित होने की परीक्षा लेने के बाद दाखिल किये गये होंगे उन्हें विशेष परवाने दिये जायंगे।

(८) कमीशन के रिपोर्ट में जो सिफारिशें की गई हैं और जिन सिफारिशों का इस बिल में समावेश नहीं किया जा सकता है उनपर भी सरकार अमल करेगी। और आखिरी दफे में बताई गई शर्तें कुबूल करने पर सरकार ऊपर लिखी गई तमाम बातों का शीघ्र ही प्रबन्ध कर देगी।

जो कानून जारी है उनके संबंध में जनरल स्मट्स लिखाते हैं कि उनका न्यायपूर्वक और अभी उनको जो हक प्राप्त हैं उनकी रक्षा करके ही अमल किया जावेगा।

अन्त में जनरल स्मट्स लिखाते हैं कि दुर्भाग्य से जो झगड़े सरकार के साथ होते चले आ रहा है उनका इस नये कानून से और इस पत्र में दिये गये अभिवचनों से निबटारा हो जाता है और इस विषय में अब किसी को कुछ भी संशय न रहना चाहिए और हिन्दी कौम उसका समझौते के तौर पर ही स्वीकार करती है यही समझना चाहिए।

गांधीजी का उत्तर

आप का पत्र जिस में जनरल स्मट्स के साथ मेरी मुलाकात के समय जो बातें हुई थीं उन का सार दिया गया है, मुझे आज मिला है। जनरल स्मट्स को और बहुत से काम होने पर भी उन्होंने गत शनिवार को मुझसे मुलाकात की यह उनकी कृपा है। उन्होंने बड़े धैर्य और विनय के साथ मेरी सब बातें सुनी इसके लिए मैं उनका ऋणी हूं। नये कानून से और मेरे और आप के दरम्यान इस पत्रव्यवहार से सत्याग्रह के युद्ध का अन्त होता है। यह युद्ध १९०६ में शुरू किया गया था और उसमें हिन्दुस्तानी कौम को बड़ी हानि उठानी पड़ी है और उस को रुपयों की भी बड़ी हानी हुई है। इस युद्ध ने सरकार को भी चिन्ता और विचार में डाल दिया था। जनरल स्मट्स यह जानते हैं कि मेरे कुछ भाई तो अब भी यह चाहते हैं कि मैं और भी कुछ आगे बढ़ूं। जुदा जुदा प्रान्त में व्यापार करने के परवाने के कानून से, ट्रान्सवाल के सोने के कानून, ट्रान्सवाल के कानून, और ट्रान्सवाल के १८८५ के कानून से, वे सब नाराज हैं। और वे यह चाहते हैं कि उन कानूनों में ऐसी तरमीम की जाय कि जिससे वहां की हिन्दुस्तानी कौम को रहने के लिए, व्यापार के लिए और जमीन की मालिकी के काफी हक प्राप्त हों। कितने ही लोगों को तो इस कारण असंतोष है क्योंकि हरएक प्रान्त में जाने के लिए उन्हें काफी स्वतंत्रता नहीं मिली है और कितने ही लोगों को इसलिए असंतोष है क्योंकि नये कानून में शादी के संबंध में जो निर्णय किया गया है उससे और भी अधिक अच्छा निर्णय नहीं किया गया है। उन्होंने मुझसे कहा कि ये सब बातें भी सत्याग्रह के युद्ध में शामिल होनी चाहिए। लेकिन मैं इसका स्वीकार नहीं कर सका हूं। इसलिए यद्यपि उपरोक्त बातों का सत्याग्रह के युद्ध के साथ कोई संबंध नहीं है फिर भी उन पर सरकार को अधिक उदारतापूर्वक विचार करना होगा और इसका कोई भी इन्कार न कर सकेगा। जब तक इस देश में रहनेवाले हिन्दियों को संपूर्ण दीवानी हक प्राप्त न होंगे तब तक उन्हें कभी भी संतोष न हो सकेगा। इसकी आशा करना ही व्यर्थ है। मैंने अपने भाइयों से कहा है कि उन्हें धैर्य रखना होगा और अभी सरकार ने जितना दिया है उससे यह अधिक दे सके ऐसी स्थिति उत्पन्न हो इसके लिए उन्हें यहां की आम प्रजा को उचित साधनों के द्वारा तैयार करनी होगी। मुझे आशा है कि जब यहां के गोरे लोग यह समझने लगेंगे कि हिन्दुस्तान से गिरमिट लोगों का आना बन्द हो गया है, गत वर्ष के कानून के कारण हिन्दुस्तान से स्वतंत्र भारतवासियों का भी आना बहुत कुछ बन्द हो जायगा और हिन्दी कौम को राज्यसत्ता का लोभ नहीं है तो वे यह भी समझ सकेंगे कि हिन्दी कौम को जिन हकों का मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूं उनके देने में ही न्याय है इतना ही उन्हें वे हक देने ही पड़ेंगे। जिस उदारता के साथ सरकार ने इस प्रश्न का निबटारा कर दिया है उसी उदारता का यदि सरकार उसका अमल करने के समय भी अपने वचन के अनुसार परिचय देगी तो मुझे यकीन है कि समस्त यूनियन में हिन्दी कौम कुछ शान्ति के साथ रह सकेगी और सरकार को कभी भी तकलीफ का कारण न होगी।"

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

जूते और जानवरों की कत्ल

बंगाल और मध्यप्रांत में भारतीय हुनर उद्योग कमिशन के सामने जो इजहार हुए थे उनमें से कुछ अवतरणों को हम पाठकों के सामने पेश कर रहे हैं। उससे इस विषय पर बड़ा प्रकाश पड़ता है और यद्यपि इसके प्रति हमलोग अपनी आंखें बन्द कर लेते हैं और यह देखना नहीं चाहते हैं फिर भी यह बात तो निःसंशय साबित हो जाती है कि जो उम्दा जूते हमलोग पहनते हैं, या हाथ में रखने के बेग जो हमलोग अभिमान से लिये लिये फिरते हैं या कपड़े रखने के बेग जिनमें हमलोग अपने कीमती कपड़े, फिर चाहे वे खादी के हों, विदेशी हों या मिल के बने हुए हों, रखते हैं, वे सब निर्दोष जानवरों के खून से लाल रंगे हुए होते हैं। और यदि संसार में नीति की रक्षक कोई सरकार है तो हमें किसी न किसी दिन उसके सामने इसके लिए जवाब भी देना होगा।

(पृ. ८५ श्री दास मेनेजर नेशनल टेनरी कलकत्ता)

जबानी इजहार

प्रश्न "आप कहते हैं कि आप कलकत्ते से ही चमड़ा खरीद लेते हैं: क्या आप यह काम भी करते हैं?

उत्तर "मैं अक्सर कत्लगाहों में जाता हूं और वहां से चमड़ा खरीदता हूं।

प्र०—आप चमड़ा खरीद करने में और चमड़ा कमाने में—तैयार करने में भी कुशल हैं?

उ०—जब जानवर जिन्दा होते हैं उसी समय उनका चमड़ा खरीद लेने का कलकत्ते में रिवाज है। वे कत्लगाहों में लाये जाते हैं उस समय मैं उन्हें देख लेता हूं और उनमें से पसन्द कर के मैं अपने लिए चमड़े की खरीद कर लेता हूं। सुखाये गये चमड़े में से चमड़ा पसंद करना बड़ा ही मुश्किल काम है।

(पृ. २४१ डा. नीलरतन सरकार.)

लेखी इजहार

मुझे यहां यह कहना चाहिए कि क्रोम चमड़ा कमाने के लिए उत्तम प्रकार के चमड़े की आवश्यकता होती है — कत्लगाहों में से प्राप्त किया हुआ चमड़ा अधिक पसंद करने योग्य है — यदि ऐसा कोई प्रबन्ध किया जा सके कि जिससे यह यकीन हो जाय कि जुदे जुदे कत्लगाहों से जैसा चाहिए वैसा चमड़ा उचित परिमाण में बराबर प्राप्त होता रहेगा तो बंगाल में क्रोम चमड़ा कमानेवालों को बड़ा लाभ होगा।

(पृ. ६८७–८ मि. लेफ्टविच, खेतीवाडी के डाइरेक्टर मध्यप्रान्त)

जबानी इजहार

प्र०—क्या आप कत्लगाहों के मुतालिक कुछ और भी ज्यादा इत्तिला दे सकेंगे ? मैंने सुना है कि इस प्रान्त के कत्लगाहों में कुछ विशेषता है ।

उ०—मुझे इस उद्योग के संबंध में कोई विशेष ज्ञान नहीं है फिर भी यदि मैं यह कहूं कि दुष्काल के समय उसका आरंभ हुआ था तो मुझे विश्वास है कि मैं बिल्कुल ठीक ही कह रहा हूं । किसान लोग तंगी में थे और तकलीफ में होने के कारण उन्होंने बहुत से जानवरों को बेच दिया था । चालाक मुसलमान ठेकेदारों ने अपना अवसर देख लिया और उन्होंने बाकायदा अपना व्यापार शुरू कर दिया । वह इतना बढा कि उसमें उन्हें अच्छी आमदनी होने लगी और उनका यह धंधा कायम हो गया । उनका चमडे का उद्योग प्रधान उद्योग नहीं है । प्रधान उद्योग तो उनका मांस का उद्योग है । मांस के टुकडे कर के उनको सुखा देते हैं और लकडी की मोली की तरह उनको बांध लेते है और फिर उसे कलकत्ता भेज देते हैं । वहां से रंगून, मलाया और कुछ तो चीन तक भेजा जाता है ।

प्र०—इन कत्लगाहों के संबंध में इस मामले में यहां के लोगों के भाव कैसे है ?

उ०—उनके संबंध में लोगों में क्रोध का कोई भाव नहीं है, उन्हें उसमें लालच है । म्युनिसिपल्टि के सदस्य भी उसमें हिस्सेदार है और मैं मानता हूं कि ब्राह्मण और हिन्दू—लोगों का भी उसके (शेर होल्डर) हिस्सेदार होना पाया गया है ।

(पृ. ७३ मि. जे. के. पीठरसन)

लेखी इजहार

कलकत्ते में जो लोग आज कल चमडे का काम करते हैं वे सब ज्यादातर क्या हमेशा ही म्युनिसिपल्टि के कत्लगाहों से प्राप्त किये हुए ताजे चमडे को ही कमाने का काम करते हैं ।

(पृ. ७६३ कटक टेनेरी के श्रीयुत एम. एस. दास)

जबानी इजहार

प्र०—आप कैसे चमडे का उपयोग करते हैं—ताजे चमडे का, सुखाये हुए चमडे का, या संखिये से तैयार किये हुए चमडे का ?

उ०—मैं ताजे चमडे का ही उपयोग करता हूं । संखिये से तैयार किया हुआ चमडा इस देश में नहीं मिलता है ।

प्र०—क्या आपने कभी नमक से तैयार किये गये चमडे को आजमाया है ?

उ०—हम उसको भी इस्तेमाल करते हैं ।

प्र०—क्या उसमें से आप अच्छा चमडा कमा सकते हैं ?

उ०—हां ।

प्र०—क्या ताजे चमडे के बनिस्बत नमक के साथ सुखाये गये चमडे को कमाना ज्यादा मुश्किल काम नहीं है ?

उ०—कत्लगाहों से प्राप्त किये गये ताजे चमडे से उत्तम चमडा कमाया जा सकता है । वह अधिक मुलायम भी होता है । धूप में सुखाये गये चमडे में बडी जोखम उठानी पडती है क्योंकि सुखाने मे कभी कभी तीन चौथाई चमडा नष्ट हो जाता है ।

बालजी गोविंदजी देसाई

श्रीयुत देसाइ ने हुमर उद्योग के कमीशन के समक्ष दिये गये बडे लम्बे चौडे इजहारों में से उपरोक्त अवतरणों को नकल कर के यहां दिया है । यदि पाठकों पर ये कुछ असर कर सकें तो उन्हें अ० भा० गोरक्षा मण्डल के सभ्य बनना चाहिए । यदि वे कुछ ज्यादा दे सकें तो उन्हें दान या भेंट के रूप में भी कुछ रकम भेजनी चाहिए ताकि इन पृष्ठों में पहले बताई गई चमडे के कारखानों की योजना पर अमल किया जा सके । उसमें तो केवल मृत ढोरों के चमडे को ही कमा कर तैयार किया जावेगा ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

अहमदाबाद में तकली का कताई

अहमदाबाद में इन महीने की १८ वीं तारीख को श्रीमती अनसूया बहन ने मजूर महाजन की शालाओं के लडकों में तकली पर कातने की स्पर्द्धा कराने की व्यवस्था की थी । यह काम म्युनिसीपल्टि के हाल में हुआ था । श्री वल्लभभाई ने इस हाल का उपयोग करने की इजाजत देने की कृपा की थी । श्री राजगोपालाचारी को इसका नीरीक्षण करने के लिए और लडकों को कुछ उपदेश देने के लिए निमंत्रित किये गये थे । इस स्पर्द्धा में शामिल होने के लिए लडकों को कुछ ही घण्टे पहले खबर दी गई थी इसीलिए सब लडके इसमें भाग न ले सके थे । फिर भी २०२ लडके उसमें शामिल हुए थे । उसका परिणाम इतना उत्साह-प्रद था कि देश की सभी शालाओं को उसपर विचार करना चाहिए ।

कहीं भी इतने थोडे समय में तकली की आजमाइश इतनी सफल नहीं हुई है । यह स्मरण होगा कि ६ महीने पहले गांधीजी ने इन लडकों के कातने का नीरीक्षण किया था और उनको ईनाम दिया था । उस समय तकली पर कातने का यहां आरंभ ही किया गया था और अधिक से अधिक एक घण्टे में सिर्फ ५० गज सूत काता जा सकता था । अभी जो परीक्षा हुई उसका परिणाम देखने से प्रतीत होता है कि इस दरम्यान में उन्होंने आश्चर्यकारक प्रगति की है ।

२०२ लडके इसमें शामिल थे । उनमें से १५ वर्ष के कोई ६ लडकों को छोड कर बाकी के लडकों की उम्र ७ से १२ वर्ष तक की थी और ७६ लडके तो अभी प्राथमिक शिक्षण ही पा रहे थे । एक घण्टे तक कताई होती रही । जो सूत मिला उसकी कताई में कुशल व्यक्तियों ने परीक्षा की थी । और यहां यह भी कह देना चाहिए कि उनको जो रुई दी गई थी वह कोई अच्छी रुई भी नहीं कही जा सकती थी ।

परिणाम पर से मालूम होता है कि २८ लडकों ने औसतन् घण्टे में ११५ गज सूत काता था और वह औसतन् १२ अंक का सूत था । इनमे से जिस लडके का वेग सब से अधिक था वह घण्टे में १५ अंक का १३९ गज सूत कात सका था और जिसका वेग सब से कम था वह १५ अंक का १०१ गज सूत कात सका था । चार लडकों का सूत बहुत ही अच्छा था और १७, १८, १९, २७ अंक तक महीन कता हुआ था ।

३१ लडके घण्टे में ७५ से १०० गज तक के वेग को पहुंच सके थे । उनमें सबसे अधिक ९६ गज का सूत था और सब से कम ७४ गज का सूत था ।

५२ लडके ५२ से ७५ गज के वेग तक पहुंच सके थे । उनमें ७८ गज सूत सबसे अधिक था और ५२ गज सबसे कम । ३६ लडके ४० से ५० गज के वेग को पहुंच सके थे और २९ लडके ३०-४० गज तक सूत कात सके थे ।

१५ लडके २० गज से अधिक सूत नहीं कात सके थे । १९ लडकों ने तो परीक्षा के लिए अपना सूत ही नहीं दिया था । ६ लडकों का सूत इतना खराब था कि उसकी परीक्षा ही नहीं

की जा सकती थी । ये लड़के सब छोटे दरजे के और वर्गों के घरों के थे । उनकी औसत उम्र कोई ८ साल की होगी ।

१६८ लड़कों का सूत उतना ही अच्छा था कि जितने की उनसे आशा रक्खी जा सकती है । दो एक मुसल्मान लड़कों को छोड़ कर सभी लड़के नीच मानी जानेवाली वर्णों के थे । उनके मातापिता अहमदाबाद की मिलों में सचे पर कताई का काम करते है । इन लड़कों ने तकली पर कात कर इतना सूत इकट्ठा किया है कि अनसूया बहन आगामी वर्ष को इन लड़कों को इसी सूत के कपड़े पहनाने की आशा कर रही हैं ।

यह शायद हिन्दुस्तान की शालाओं में तकली की सब से अधिक सफल आजमाइश है । और अगर सूत अच्छा दिया गया होता तो उसका और भी अच्छा परिणाम आ सकता था । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि श्री० राजगोपालाचारी को यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ था और उन्होंने यह आशा की थी कि सभी राष्ट्रीय और म्युनिसिपलिटि की शालाएं इसका अनुकरण करेंगी । उन्होंने कहा कि जिन लड़कों को गांधीजी ने एक खास अर्थ में अपने ही पुत्र माने है उन्होंने इस इज्जत के लिए अपने को योग्य सिद्ध किया है । उन्होंने लड़कों से कहा कि उन्हें इस बात को जान कर अभिमान करना चाहिए कि वे केवल लिखना पढ़ना सीखनेवाले लड़के ही नहीं है लेकिन स्वराज्य की शक्तिशाली सेना के सिपाही भी हैं ।

महादेव देसाई

क्या म्युनिसिपलिटि के कमीश्नर इस पर ध्यान देंगे ।

मो० क० गांधी

मौलाना आजाद की अपील

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने हिन्दुमुसल्मानों के प्रश्न पर वर्तमानपत्रों के लिए जो एक सन्देशा प्रकाशित किया है उसकी एक नकल उन्होंने मेरे पास भी भेजने की कृपा की है । वे उन लोगों में से एक हैं जो सचमुच यह चाहते हैं कि उनमें ऐक्य हो । उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कार्य-समिति की सभा बुलाने के लिए भी मुझसे कहा है । लेकिन कानपुर में महासभा सप्ताह के शुरू होने के पहले मैं कार्य-समिति को बुलाना नहीं चाहता हूं क्योंकि महासभा का वार्षिक जलसा अब बहुत ही शीघ्र होनेवाला है और इसलिए कार्यसमिति को अभी बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती । मैं यह चाहता हूं कि यह समिति इस समस्या को हल कर दे लेकिन मुझे इस बात का स्पष्ट स्वीकार कर लेना चाहिए कि मुझे उससे अब ऐसी कोई आशा नहीं है । लेकिन इससे मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि मैं इस प्रश्न के हल होने के बारे में ही निराश हो बैठा हूं । लेकिन महासभा इस प्रश्न का निर्णय कर सके और उस निर्णय को कबूल करने के लिए दोनों कोमों को मजबूर कर सके ऐसी मुझे उससे कोई आशा नहीं है । हम इस सत्य बात को क्यों छिपायें कि महासभा दोनों तरफ से लड़नेवाले लोगों के प्रतिनिधियों की नहीं बनी है ? जबतक महासभा का प्रभाव उन लोगों पर नहीं पड़ता है जो इन झगड़ों में भाग लेनेवाले लोगों के पीछे रह कर काम कर रहे हैं और जबतक वर्तमान पत्रों के वे सम्पादक जो अपना वैमनस्य बढ़ा रहे हैं, ऐक्य की आवश्यकता में विश्वास नहीं करते है या स्थिति ही ऐसी नहीं हो जाती कि जनता पर उनका कुछ भी प्रभाव न पड़े, तबतक महासभा ऐक्य के संबन्ध में कुछ भी फायदे का काम न कर सकेगी । मेरे कटु अनुभव ने तो मुझे यह शिक्षा दी है कि जो लोग ऐक्य का नाम लेते है वे अनैक्य के — मतभेद के अर्थ में ही उसका प्रयोग करते हैं । यूरोप में गत महायुद्ध के समय जैसा असत्य का वातावरण फैला हुआ था वैसा ही असत्य का वातावरण आज हमारे चारों और फैला हुआ है । यूरोप के वर्तमान पत्रों ने उस समय कभी कोई बात सच्ची न लिखी थी । जुदा जुदा राष्ट्र के प्रतिनिधियों ने झूठ बोलने को एक उत्तम कला का रूप दे दिया था । इस पुराने सिद्धान्त का कि जेहोवा बच्चों के भी खून का प्यासा है उसकी तमाम भयंकरता के साथ पुनरुद्धार किया गया था । और आज यही हाल हमारा भी है । हमारे छोटे छोटे झगड़ों में हमारे धर्म को बचाने के लिए हम झूठ बोल सकते है और दगा भी कर सकते हैं । यह मुझसे किसी एक ही शख्स ने नहीं कहा है लेकिन सैकड़ों मनुष्यों की जबानी मैंने यही बात सुनी है ।

लेकिन इसके लिए जरा भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है । मैं जानता हूं मतभेद का राक्षस अब आखीरी सांस ले रहा है । असत्य का कोई आधार नहीं होता है । ऐक्य का अभाव और मतभेद का होना असत्य वस्तु है । यदि वे सिर्फ अपने स्वार्थ का भी विचार करेंगे तो भी ऐक्य हो सकेगा । मैंने तो निःस्वार्थ ऐक्य की आशा रक्खी थी । लेकिन परस्पर स्वार्थ के आधार पर भी यदि ऐक्य होगा तो मैं उसका स्वागत करूंगा । मौलाना साहब जिस मार्ग का सूचन करते है उससे वह ऐक्य न होगा। जब ऐक्य होगा, वह शायद ऐसे ही साधनों से हो सकेगा जिससे कि हमें कुछ भी आशा न होगी । ईश्वर तो बड़ा मायावी है । वह हमें सबक देता है हमारे क्षुद्र छलों को प्रकट कर देता है । जब किसी को मृत्यु का ख्याल भी नहीं होता है उस समय उसे वह काल के गाल में फंसा देता है । जब हम जीवन का चिह्न भी नहीं देख पाते है उसी समय वह जीवन प्रदान करता है । हमें अपनी दुर्बलता का स्वीकार कर लेना चाहिए । हमें अपनी हार कबूल कर लेनी चाहिए । मुझे यकीन है कि हम लोग अपनी नम्रता की धूलि में से ही ऐक्य का अचल पर्वत रच सकेंगे ।

मुझे अफसोस है कि मौलाना साहब की प्रार्थना का मैं इससे अधिक उत्साहप्रद और अच्छा उत्तर नहीं दे सकता हूं । उन्हें यह जान कर ही संतोष मान लेना चाहिए कि ऐक्य के लिए वे स्वयं जितने आतुर हैं उतना ही उसके लिए मैं भी आतुर हूं । ऐक्य हासिल करने के उनके मार्ग में यदि मुझे श्रद्धा नहीं है या मैं उसमें श्रद्धा नहीं रख सकता हूं तो इसमें हानि ही क्या है ? मैं उनके कार्य में कोई बाधा न डालूंगा । मैं ऐक्य के लिए चेष्टा नहीं कर रहा हूं इसके माने यह नहीं है कि मुझे अब उसमें कोई श्रद्धा नहीं रही । मैं फिर इस बात को जाहिर करता हूं कि मुझे उसमें अटल श्रद्धा है । उसी ऐक्य के खातिर जो ऐक्य होनेवाला है उसके उत्पादक बनने के अधिकार का भी मुझे त्याग कर देना चाहिए । जब मेरी दस्तअंदाजी से काम बनता नहीं है बल्कि उससे तकलीफ ही बढ़ती है तो मुझमें इतनी अक्ल अवश्य है कि मैं दूर खड़ा रहूंगा और घाव के भर जाने तक राह देखा करूंगा ।

(यं. इं.)

मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

कातनेवालों की मुश्किल

एक कातनेवाले पूछते हैं कि चर्खा संघ के नियम के अनुसार सदस्यों से किस बात की आशा की जाती है। हाथ कताई और खादी का प्रचार करना उनका कर्तव्य होगा। मेरा जैसा लोभी तो उसके सदस्यों से यह भी आशा रक्खेगा कि वे लोगों में जा कर उनसे खादी पहनने के लिए, रोजाना नियमपूर्वक कातने के लिए और चर्खासंघ के सदस्य बनने के लिए कहे। वह उनसे यह भी कहेगा कि वे उनमें जाकर खादी की फेरी करें, उन्हें कातना सीखावें और मित्रों से संघ के लिए मेंट के रुपये वसूल करें। लेकिन आशा रखना एक बात है और आशा का पूरा होना दूसरी बात है? इसलिए जब कोई शख्स उसका सदस्य बनता है और हमेशा विचारपूर्वक मिहनत के साथ कातता है और जहां कहीं भी कपडे की आवश्यकता हो वहां वह खादी का ही इस्तेमाल करता है तो कम से कम उसे जितनी बातें करनी चाहिए उतनी उसने की है यही मान लिया जायगा। बहुत से सदस्य तो बेशक इन दो सिरों के बिच में ही कहीं न कहीं रहेंगे। दूसरे एक महाशय पूछते हैं "यद्यपि मेरी आदत खादी पहनने की है फिर भी कुछ मौकों पर मैं विदेशी कपडे भी पहनता हूं। मैं कातता तो नियमपूर्वक हूं; तो क्या मैं चर्खासंघ का सदस्य बन सकता हूं?" मुझे भय है कि ऐसे लोग चर्खा-संघ के सदस्य नहीं बन सकते हैं। खादी पहनने की आदत के कहने ही से उसमें असाधारण और अनिवार्य कारण के सिवा दूसरे कपडे के त्याग का समावेश हो जाता है। संघ के संस्थापकों की बडी इच्छा है कि उसके सदस्यों की संख्या बढ जाय। लेकिन उसके नियमों का सम्पूर्ण पालन करनेवालों को प्राप्त करने के लिए वे उससे भी अधिक आतुर हैं। मण्डल को उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके सदस्य और कार्यकर्ता खादी में सम्पूर्ण और अटल विश्वास रखनेवाले हों। हमें करोडो लोगों में इसके लिए श्रद्धा उत्पन्न करनी है। यदि हम इसमें पूरे दिल के साथ न जुड जायंगे तो हमें सफलता न मिल सकेगी। जो लोग खादी नहीं पहन सकते हैं वे अपना हाथ कता सूत, रुपये, रुई इत्यादि भेज कर इस हलचल को अनेक प्रकार से मदद कर सकते हैं।

एक उत्तम परिणाम

एक महाशय लिखते हैं:—

"जहां तक मुझे समाचार मिले हैं तिरुपाटी, मेरे शहर में से १५२ व्यक्तियों ने हाथ कताई के काम को अपना लिया है। उन्होंने डेढ साल में सब मिला कर अपने ही हाथ के कते सूत से १५३३ गज कपडा तैयार किया है। सब कपडे की चौडाई कोई एक गज ही न थी। बहुत सा कपडा तो ४५ इंच चौडा बुना गया था। कातनेवालों का ब्योरा इस प्रकार है।

१ धारासभा के सभ्य और हाइकोर्ट वकील
२ प्रान्तिक धारासभा के सभ्य (कुटुंब में सूत काता जाता है)
११ वकील (एक के सिवा सब युनीवर्सिटी के पदवीधारी हैं)
२ शिक्षक (बी. ए. एल टी एस)
२ असहयोगी वकील
१ विद्यार्थी (ऊंचे वर्ग का)
१ डाक्टर (एल एम. पी)
४ वकीलों के कलर्क
३ स्त्रीयां
१४ छोटे ग्रेड के शिक्षक
१ जमीन्दार और म्युनिसिपल्टि के सभ्य
२ स्कूल के विद्यार्थी
५१ कलर्क और छोटे छोटे व्यापारी
५० म्युनिसिपल्टि की शालाओं के विद्यार्थी
———
१५२

इस सूची से यह मालूम हो जायगा कि हाथकताई को सफल करने के लिए सभी वर्ग के लोग प्रयत्न कर रहे हैं। जो सूत तैयार हुआ है वह सब आराम के समय में काता गया था और बहुत सा सूत तो २० अंक के ऊपर का है। एक बडे व्यवसायी वकील के बारे में ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होंने अपने हाथ से और उनके कुटुम्ब ने कात कर इतना सूत तैयार किया था कि वे अपने और घर के उपयोग के लिए १५१ गज कपडा तैयार कर सके थे।"

इससे खादी चुपचाप किस तरह फैल रही है यह मालूम होगा। पत्र लेखक महाशय ने जिन कातनेवालों का जिक्र किया है वैसे कातनेवाले मैंने हर जगह पाये हैं। लेकिन यह ब्योरा ध्यान खींचने लायक है। जिनका किसी मण्डल से कोई सम्बन्ध नहीं है और जो बिना किसी मण्डल की सहायता के ही स्वेच्छा से कात रहे हैं उनके कातने का परिणाम शायद ही दिखाई देता है। इस लिए मेरी राय तो यह है खादी को सार्वत्रिक बनाने के लिए समय की जरूरत है और वह समय अब दूर नहीं है। और स्वेच्छा से किये गये प्रयत्नों के कारण यदि वह लोकप्रिय बन जायगी तो फिर यह सम्भव नहीं कि यंत्र पर काम करनेवाले उसके साथ स्पर्द्धा कर सकें।

बालकों की शाखा

छोटे बच्चे पत्र लिख कर पूछते हैं कि वे पक्के खादी पहननेवाले हैं और बहुत ही नियमपूर्वक कातते हैं फिर वे चर्खा-संघ के सदस्य क्यों नहीं हो सकते हैं। उनमें एक नो साल की लडकी भी है। बालकों के लिए इसकी एक शाखा खोलने के प्रस्ताव पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। अभी मैं एक छोटी लडकी को इसका नेता बनने के लिए राजी करने का प्रयत्न कर रहा हूं और उसके मातापिता से इसके लिए इजाजत प्राप्त करने के लिए भी कोशिश कर रहा हूं। यदि थोडे ही लडके और लडकियां इसके लिए तैयार होंगे तो इसका कुछ भी उपयोग न होगा। यदि बहुतेरे माता-पिता इसमें सहयोग करेंगे तो इससे लाभ हो सकेगा। प्रत्येक शाला चाहे वह सरकारी हो या गैरसरकारी हो इस हलचल को मदद कर सकती है। इसे इसीलिये राजनीति से दूर रक्खा गया है। जो लोग उसके राजनैतिक परिणाम से अर्थात विदेशी कपडे के बहिष्कार से डरते नहीं हैं उन्हें तो इससे दूर रहने की जरा भी आवश्यकता नहीं है। यदि बालकों के लिए यह शाखा स्थापित की गई तो वह एक सच्चा दया का संघ होगा जो दुष्काल पीडित करोडों लोगों के लिए कुछ त्याग करने के कर्तव्य के बंधन में बच्चों को बांध रक्खेगा।

(य० इं०) मो० क० गांधी

सच्चे महासभावादी

वार्षिक मूल्य ४)
छःमास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १४

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, अगहन सुदी ४, संवत् १९८२ गुरुवार, १९ नवम्बर, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

एक जरमन की शिकायत

जरमनी से 'बड़े दादा' को एक पत्र मिला है। उसमें से नीचे लिखा भाग मैंने यहां दिया है:

"बुराई तो आकाश में भी व्याप्त हो रही है। जो बुरे लोग हैं वे धनी हैं और जो अच्छे लोग हैं उन्हें आजीविका प्राप्त करने के लिए कड़े प्रयत्न करने पड़ते हैं। हम लोग जो शहर में क्लर्कों का काम करते हैं सबसे अधिक गरीब हैं। हमारी तनख्वाह बहुत ही कम है। मासिक १५ डालर मिलते हैं और इसलिए हमें हमेशा ही तंगी में रहना पड़ता है।

मुझे अक्सर हिन्दुस्तान आने की, उसे देखने की और गांधीजी के चरणों में बैठने की बड़ी इच्छा होती है। मैं बिल्कुल अकेला हूं। मेरे न स्त्री है न बच्चे हैं। सदा बीमार रहनेवाली एक गरीब बेचारी मेरी भतीजी जिसका कोई दूसरा सहायक नहीं है मेरे घर की देखभाल करती है। यदि यह भतीजी न होती तो मैं पादरी बन गया होता। लेकिन मैं उसे कष्ट में छोड़ कर नहीं आ सकता हूं। मैंने विश्वविद्यालय में शिक्षा भी पाई है। मैंने पुरानी और वर्तमान विदेशी भाषाओं का अभ्यास भी किया है। मैंने बौद्धधर्म और कुछ अज्ञेयवाद का भी अध्ययन किया है। लेकिन मैं अच्छी जगह और अच्छी तनख्वाह नहीं पा सकता हूं। यह वर्तमान जर्मनी का हाल है। पंद्रह साल पहले जब यह भयंकर युद्ध न हुआ था मैं एक स्वतंत्र मनुष्य और धोमक था। लेकिन अब जब हमारे सिक्के की कीमत बहुत ही घट गई है, जर्मनी के दूसरे हजारों विद्वानों की तरह मैं भी भिखारी बन गया हूं। मेरी उम्र अब ४५ वर्ष की है और मैं कितना निराश हो गया हूं इसका आपको ख्याल भी न हो सकेगा। मुझे यूरप से बहुत ही घृणा हो रही है। यहां मनुष्यों के मानो आत्मा ही नहीं है, वे उन जंगली जानवरों के से हैं जो एक दूसरे को खा जाते हैं। क्या मैं हिन्दुस्तान जा सकता हूं? क्या मैं हिन्दुस्तान का दार्शनिक-तत्त्वज्ञानी बन सकूंगा? मुझे भारत में विश्वास है और मुझे आशा है कि भारत ही हमारी रक्षा करेगा।"

इस पत्र के आरंभिक वाक्य किसी हिन्दुस्तानी क्लर्क ने लिखे होते तो भी वे ठीक ही थे। जर्मन क्लर्कों के बनिस्बत उनकी हालत कोई अच्छी नहीं है। हिन्दुस्तान में भी बुरे लोग धनवान बन बैठे हैं और अच्छे लोगों को आजीविका प्राप्त करने के लिए बड़ी मिहनत करनी पड़ती है। यह तो 'पहाड़ दूर ही से सुन्दर मालूम होते हैं' इस कहावत को ही चरितार्थ करना है। इस जर्मन लेखक जैसे मित्रों को यह चेतावनी मिल जानी चाहिए कि वे हिन्दुस्तान को जर्मनी से या किसी दूसरे देश से अधिक अच्छा देश न मानें। उन्हें यह बात समझ लेनी चाहिए कि धन का होना कोई सज्जनता का प्रमाण नहीं है। हां गरीबी अक्सर सज्जनता का प्रमाण अवश्य होती है। सज्जन मनुष्य गरीबी का इच्छा से स्वीकार कर लेता है। यदि लेखक एक समय बड़े समृद्धशाली थे तो उस समय जर्मनी दूसरे मुल्कों के धन को चूस रहा था। इसका तमाम हरएक देश में उसकी हरएक व्यक्ति ही के हाथ में है। हरएक को अपने अन्तःकरण से ही शान्ति प्राप्त करनी चाहिए। और यदि वह सच्ची शान्ति है तो उसपर बाहरी परिस्थितिओं का कुछ भी असर न होगा। लेखक कहते हैं कि उनकी गरीब भतीजी यदि न होती तो वे पादरी बन जाते। मुझे इसमें उनके विचार का क्रम कुछ बिगड़ा हुआ मालूम होता है। इससे तो उनके ख्याल के मुताबिक पादरी बनने के बनिस्बत लेखक की वर्तमान स्थिति ही कुछ अच्छी मालूम होती है। क्योंकि आज उनको एक गरीब भतीजी की भी फिक्र करनी पड़ती है। लेकिन पादरीपन का दस्तावेज प्राप्त करने पर तो उन्हें किसीकी कुछ भी फिक्र न करनी होगी। लेकिन सच बात तो यह है कि पादरी बन जाने पर तो उन्हें सैकड़ों भतीजे, भतीजियों की फिक्र करनी चाहिए। पादरी की जवाबदेही का क्षेत्र भी इस संसार के समान विशाल होना चाहिए, जब आज वे अपने लिए और अपनी भतीजी के लिए गुलामी कर रहे हैं तो पादरी बन जाने पर तो तमाम अपरिचित मनुष्य जाति के लिए भी गुलामी करने की आशा उनसे रक्खी जावेगी। इसलिए मैं इस मित्र को और उनके जैसों को यह सलाह देता हूं कि वे पादरीपन का जामा ओढ़े बिना ही अपने को दूसरे मनुष्यों के साथ एक कर दें। इससे उन्हें पादरियों के कर्तव्य का लाभ भी प्राप्त होगा और वे भयंकर झगड़ों से भी बच जायगे।

यह जर्मन मित्र हिन्दुस्तान के तत्त्वज्ञानी बनना चाहते हैं। मैं उनको यह यकीन दिलाता हूं कि तत्त्वज्ञान में कोई देश विशेष नहीं है। हिन्दुस्तान का तत्त्वज्ञानी उतना ही अच्छा या बुरा है जितना की दूसरा का तत्त्वज्ञानी।

मेरे ख्याल में लेखक ने एक बात का कुछ ठीक ठीक अनुमान किया है। यद्यपि हिन्दुस्तान में भी कुछ जंगली और हीनात्मा दो पैर के जानवर बसते हैं फिर भी औसत दर्जे के हिन्दुस्तानिओं के मन का झुकाव अपने में से ऐसी पशुता को दूर करने की तरफ ही होता है। और यह मेरा विश्वास है कि यदि हिन्दुस्तान, उसने १९२१ में जिस मार्ग को पसंद किया है उसे ही कायम रक्खेगा तो यूरप उससे बहुत कुछ आशा रख सकता है। उस समय उसने बहुत कुछ विचार करने के बाद ही सत्य और शान्ति का मार्ग पसंद किया था और उसे चरखे के स्वीकार में और बदी के साथ असहयोग करने में अंकित किया था। जिस कदर मैं इस देश के बारे में जानता हूं उसने उस मार्ग को नहीं छोडा है और उसके उसे छोडने की संभावना भी नहीं है।

अप्रिय सत्य

"हिन्दुस्तानियों को लाभ पहुंचाने के लिए हमने हिन्दुस्तान को नहीं जीता है। मैं यह जानता हूं कि मिशनरियों की सभा में यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बढाने के लिए हमने हिन्दुस्तान को जीता है। लेकिन यह एक ढकोसला है। हमलोगों ने हिन्दुस्तान को ग्रेट ब्रिटेन के माल की खपत कराने के लिए ही जीता है। हमलोगों ने तलवार से उसे जीता है और तलवार से ही हमें उसे अपने अधिकार में रखना चाहिए, ("शर्म है" की आवाजें हुईं) आप चाहें तो 'शरम' की आवाजें दे सकते हैं लेकिन मैं जो बात सच है वही कह रहा हूं। मैं हिन्दुस्तान में मिशनरियों के काम में बडी दिलचस्पी लेता हूं और ऐसा बहुत सा कार्य मैंने किया भी है लेकिन मैं ऐसा दंभी नहीं कि यह कहूं कि हिन्दुस्तान को हम लोग हिन्दुस्तानियों के लिए ही अपने अधिकार में रक्खे हुए हैं। हम इसलिए इसपर कब्जा किये हुए हैं क्यों कि सामान्य तौर ब्रिटिश माल की और खास करके लेन्केशायर के माल की बिक्री के लिए यह एक बडा अच्छा स्थान है।"

यह कहा जाता है कि ये शब्द सर जायसन हिक्स के हैं। लेकिन हमें अपनी गुलामी का स्मरण दिलानेवाले प्रधान यह पहले ही नहीं है। सत्य बात अरुचिकर क्यों मालूम होती है? यह अच्छा है कि हम अपने बारे में यह जान लें कि हमलोगों के भाग्य में जो हमें तलवार के बल से जीत लेते हैं उनके लकडी काटनेवाले और पानी भरनेवाले कुली बनना ही लिखा है। लेंकेशायर के माल पर जो वजन दिया गया है वह भी ठीक ही हुआ है। मैंचेस्टर का कपडा हिन्दुस्तान में बिकना बंध हो जायगा कि उनकी तलवार भी म्यान हो जायगी। सर विलियम की तलवार की धार को खण्डित करने की अपेक्षा मैन्चेस्टर के कपडे का और इसलिए तमाम विदेशी कपडों का इस्तेमाल न करना कहीं आसान है। यह शिघ्रता से भी हो सकेगा और यही अधिक संभव है और लाभप्रद भी है। उनकी तलवार की धार को खण्डित करने के लिए तो तलवारों की संख्या भी बढानी होगी और उससे दुनिया में कष्ट भी बहुत बढ जायेंगे। अफीम की पैदाइश की तरह तलवार बनाने के काम पर भी अंकुश होना जरूरी है। अफीम के बनिस्बत तलवार ही के कारण संसार में अधिक कष्ट पाये जाते हैं। और इसलिए मैं यह कहता हूं कि यदि भारतवर्ष चरखे को अपना लेगा तो वह हथियारों पर अंकुश रखने में और दुनिया की शान्ति की रक्षा करने में दूसरे देशों के और साधनों के बनिस्बत बहुत ही अधिक हिस्सा दे सकेगा।

नैतिक दुर्बलता

एक महाशय इस प्रकार लिखते हैं:

"मैं स्वयं हिन्दू हूं और बडी ऊंची जाति का ब्राह्मण हूं। लेकिन मैं सुधारक वर्ग का हूं। मुझे मनुष्य की विवेक-बुद्धि में विश्वास है। विवेकबुद्धि ही ईश्वर है, ईश्वर ही विवेकबुद्धि है। हिन्दुओं के तत्त्वज्ञान ने जो 'सोऽहम्' 'वही मैं हूं' के सिद्धान्त पर जोर देता है आज ऐसी रुकावटें खडी कर दी हैं कि उसे पार करना हिमालय को पार करने से भी अधिक दुष्कर है। जिस धर्म का आधार चित्तशुद्धि पर है उसी धर्म में रिवाज और शुष्क धार्मिक क्रियाओं की इतनी बढती हुई है कि सत्य प्रकाश दिखाई भी नहीं देता है। जिस संस्कृति ने 'ईश्वर के एक पिता होने पर और दूसरे प्राणियों में परस्पर भ्रातृभाव होने पर' ही अधिक जोर दिया था वही संस्कृति आज ब्राह्मण सन्तानों के द्वारा करोडों लोगों के कुचले जाने के पक्ष में दिखाई देती है। ब्राह्मणों में भी सिवा इसके कि उनका एक (ब्राह्मण) वर्ग की संतति होना पुरानी कथाओं से पाया जाता है और कोई सामान्य बात नहीं पायी जाती है। अहिंसा के सिद्धान्त ने हमें नीच कायर बना दिया है। हिन्दू हिन्दू के प्रति अपना व्यवहार साफ नहीं रखता है, मुसलमान मुसलमान के प्रति और ईसाई ईसाई के प्रति हमेशां साफ व्यवहार रखता है। हिन्दू-समाज से बाहर के रिवाजों को भी हिन्दू लोग ही अधिक सहन करते हैं। यह उनकी कायरता का प्रमाण है। मुसलमान यह कभी भी सहन नहीं करते हैं और ईसाई भी शायद ही सहन करते होंगे। क्या शिक्षित हिन्दू लोग भी इस ढकोसले को इसी प्रकार चलाते रहेंगे या उसके विरुद्ध हथियार लेकर उसका अंत कर देंगे?"

पत्रलेखक महाशय ने जो बातें कही हैं उसपर मैं कोई प्रकाश नहीं डाल सकता हूं लेकिन इसपर मैं अपनी सलाह दे सकता हूं। सुधार अपने से ही पहले शुरू होना चाहिए। "वैद्य तू अपनी ही दवा कर" यह सिद्धान्त बिल्कुल सही है। जो लोग हिन्दुओं की नैतिक दुर्बलता और कायरता का अनुभव करते हैं उन्हें कम से कम पहले अपने ही से काम शुरू करना चाहिए। जो आक्षेप किये गये हैं उनमें से कुछ बातों को छोड कर सामान्य तौर पर उन आक्षेपों की सत्यता का स्वीकार अवश्य ही कर लिया जायगा। लेकिन उसके विरुद्ध हथियार उठाने से क्या यह बदी दूर हो सकेगी? तलवार के पटे खेलने से नैतिक दुर्बलता का उपाय कैसे हो सकेगा? क्या जबरदस्ती करने से छोटी छोटी ज्ञाति, अस्पृश्यता और अर्थहीन रिवाज दूर हो जावेंगे? क्या उससे जबरदस्ती का धर्म दाखिल न हो जायगा? यदि ईश्वर विवेकबुद्धि ही है तो तलवार की मदद नहीं लेनी चाहिए, लेकिन विवेकबुद्धि को ही जागृत करना चाहिए।

अथवा क्या लेखक हिन्दू-मुस्लिमों के वैमनस्य के बारे में इशारा करते हैं और हिन्दुओं को तलवार उठाने को कहते हैं? लेकिन सूक्ष्म परीक्षण करने पर यह बात मालूम हो जायगी कि बहुत से मामलों में तो हथियार उठाने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती है, इतना ही नहीं वह हानिकारक भी होता है। आवश्यकता मात्र कष्टसहिष्णु बनने की है। मैं मानता हूं कि हमलोग अहिंसा के कारण कायर नहीं बने हैं लेकिन अहिंसा के अभाव के कारण ही बने हैं। अपने विरोधियों का बुरा चाहना यह अहिंसा के कारण तो कभी भी नहीं हो सकती है; लेकिन उसके अभाव में ही यह हो सकता है। यह नहीं कि जो लोग हथियार नहीं उठाते हैं वे अहिंसा के ख्याल से ही हथियार नहीं उठाते हैं। लेकिन आज वे मृत्यु से डरते हैं इसीलिए हथियार नहीं उठाते हैं।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, अगहन सुदी ४, संवत् १९८२

सच्चे महासभावादी

१

'आप यह नहीं जानते कि हम महासभावाले क्या हैं ? मैं आपको यह सुनाऊंगा । महासभा के एक बड़े मशहूर सदस्य एक बड़े अच्छे आराम के घर पर पहुंचे । उनको वहां आने के लिए कोई निमंत्रण नहीं दिया गया था । उस मकान के मालिक को उन्होंने कुछ खबर भी न दी थी । वे वहां पहुंचे कि उस मकान के मालिक ने उनसे पूछा कि वे ठहरेंगे कहां ? उन्होंने उत्तर दिया: 'यहां, और कहां !" मकान का मालिक उनकी इस कृपा के लिए तैयार न था लेकिन उसने उस समय जैसा भी बन पड़ा उनके लिए अच्छा प्रबन्ध कर दिया । परन्तु जिस मिहमान ने इस प्रकार अपने को उसपर लाद दिया था उसकी निन्दा करना वह भूला नहीं । उसने सूक्ष्म भाव से उनका अपमान करने के लिए भी मौके ढूंढ निकाले लेकिन उन्होंने ऐसे अपमानों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया । मुझे आपको यह भी कह देना चाहिए कि मिहमानी करनेवाला वह मकान का मालिक महासभा का सदस्य न था ।"

२

दूसरे एक महासभावाले ने बिना किसी भी प्रकार की इत्तिला दिये एक महासभा के कार्यकर्ता के घर पर आ कर अड्डा जमा दिया था । उनके साथ बहुत से लोग थे और जिस प्रकार के आराम की उन्होंने आशा रक्खी थी वैसा आराम न मिलने पर वे उस कार्यकर्ता पर बहुत ही बिगड़े थे । हम महासभावाले अपने बारे में इतना ऊंचा ख्याल बना लेते हैं कि हम लोग यह मानने लगते हैं कि हमें बहुत ही भोले लोगों से सबसे अच्छी सेवा मांगने का और पाने का पूरा हक है ।"

यह दो किस्से महासभा के एक सच्चे कार्यकर्ता ने ऐसे दर्द के साथ मुझसे बयान किये थे कि मुझे यह ख्याल हुआ कि मैं उनका उल्लेख कर के उनसे कुछ शिक्षा मिल सकती हो तो उसको जाहिर करूं । जबतक यह अपने सिर पर निष्फल ही नाराज न बैठ जाय तबतक किसीको भी इसे अपने सिर नहीं ओढ़ लेना चाहिए । इन घटनाओं को जान-बूझ कर धिनाउ किया गया है । मैं इसकी दूसरी बाजू नहीं जानता हूं । इसलिए किसीको भी इन लोगों को पहचानने का प्रयत्न करने में अपना समय व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए ।

जो बात करनी आवश्यक है वह यह है कि उनका कभी भी अनुकरण न किया जाय । महासभावालों को सच्चे महासभावादी बनने के लिए सब बातों से परे होना चाहिए । यह याद रखना चाहिए कि वे नीतियुक्त और शान्त साधनों से स्वराज्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं । बहुत दिनों से हमलोग उसके लिए प्रयत्न कर रहे हैं । इसलिए उससे जो स्पष्ट अनुमान निकल सकता है वह यह है कि हमलोगों ने अपने परस्पर के व्यवहार में भी उन साधनों का उपयोग नहीं किया है जो जांच करने पर उचित ही जान पड़ें । एक महाशय ने तो पत्र लिख कर मुझे यह सूचना की थी कि अपने प्रतिपक्षियों के प्रति तो हमें सत्य और अहिंसा का व्यवहार रखना चाहिए लेकिन हमारे आपस के व्यवहार में उसकी कोई आवश्यकता नहीं है । लेकिन अनुभव से यह बात जानी जाती है कि यदि हम सब समय, सभी मौकों पर सत्य और अहिंसा का व्यवहार नहीं रखते हैं तो हम कुछ मौकों पर, कुछ लोगों के प्रति वैसा व्यवहार रखने में भी असमर्थ होते हैं । यदि हम आपस में ही एक दूसरे के प्रति विचार से काम नहीं लेते हैं तो हम बाहर की दुनिया के प्रति भी विचार से काम न ले सकेंगे । यदि हम अपने अंदर के और बाहर के तमाम व्यवहारों में, छोटी छोटी बातों में भी, विचारपूर्वक शुद्ध न रहेंगे तो महासभा की प्रतिष्ठा सब नष्ट हो जायगी । यदि हम पाई की ही फिक्र करेंगे तो रुपया अपनी फिक्र आप ही कर लेगा ।

सच्चा महासभावादी एक सच्चा सेवक है । वह हमेशा सेवा करता है, लेता कभी नहीं । जहांतक उसके अपने आराम से संबन्ध है उसको आसानी से संतोष हो जायगा । सबसे पीछे बैठने में ही वह संतोष मानता है । वह जातिगत या प्रान्तिक अभिमान नहीं रखता है । उसके ख्याल में उसका देश ही सबसे बढ़ कर है । उसने सब दुन्यवी आशाओं का त्याग कर दिया है, यहांतक कि मृत्यु के भय को भी छोड़ दिया है और इसलिए वह बहुत ही अधिक बहादुर होता है । और क्यों कि वह बहादुर होता है इसलिए उदार भी होता है और अपनी नम्रता के कारण और अपने दोषों का और अपनी मर्यादा का उसे ज्ञान होने के कारण वह बड़ा क्षमावान भी होता है ।

यदि ऐसे महासभावादियों का मिलना मुश्किल है तो स्वराज बहुत दूर है । और हमें अपने ध्येय-उद्देश को बदलना होगा । अभी तक हमें स्वराज नहीं मिला है यही इस बात का सुबूत है कि आज जितने चाहिए उतने सच्चे महासभावादी नहीं हैं । चाहे कुछ भी क्यों न हो, यदि मैंने बुरी घटनाओं का, जो बढ़ भी सकती हैं, उल्लेख किया है तो मुझे इस बात का भी प्रमाण देना चाहिए कि मैंने जिस कसौटी का नाम लिया है उसपर ठीक उतरने वाले महासभावादी भी हैं । वे थोड़े हैं लेकिन दिन प्रति दिन बढ़ते आ रहे हैं । वे प्रसिद्ध नहीं हुए हैं और यह अच्छा ही है कि वे मशहूर नहीं हुए हैं । यदि वे चाहने लगें कि वे प्रकाश में आवें और महासभा के कार्यों में उनका नाम इज्जत के साथ लिया जाय तो काम का होना ही असंभव हो जायगा । जो लोग 'विक्टोरिया क्रास' का पदक पाते हैं वे सब से अधिक बहादुर और दयावान सेवक ही होते हैं यह बात नहीं है । दुनिया के जो सच्चे बहादुर और नायक हैं उन्हें आखिर तक कोई भी नहीं जान सकता है । उनके कार्य अमर-चिरंजीवी होते हैं । उनका फल स्वयं उनका कार्य ही होता है । ऐसे लोग ही दुनिया में सच्चे झाड़ू लगानेवाले हैं—वे उसको शुद्ध करते हैं । उनके बिना दुनिया ऐसी कष्टमय प्रतीत होगी कि उसमें कोई भी न रह सकेगा । महासभा के सभासदों में से ऐसे ही कुछ लोगों की मुलाकात करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है । लेकिन उनके लिए महासभा कोई ऐसी संस्था नहीं कि उसमें होने के कारण वे अभिमान करने लगें । बेशक इस समय महासभा के प्रधान प्रधान पदों पर कब्जा करने के लिए और महासभा को अपने अधिकार में लेने के लिए बड़ी स्पर्धा हो रही है । यह एक रोग है जिसका कि अभी अभी स्फोट हुआ है । कुछ समय के बाद वह अवश्य ही दूर हो जायगा और फिर स्वास्थ्य स्थापित होगा । लेकिन जबतक महासभा प्रामाणिक, स्वार्थरहित और सच्चा [illegible] करनेवाले लोगों की संस्था न बन जायगी तबतक यह न हो सकेगा ।

महासभा में सदा जनता का ही प्रतिनिधित्व रहे। लेकिन उससे किसीको लोगों से सेवा पाने का हक प्राप्त हो जाता है यह नहीं मान लेना चाहिए। आगामी वर्ष के लिए एक स्त्री महासभा की प्रधान होगी। यदि स्त्री आत्मत्याग और पवित्रता की मूर्ति नहीं है तो वह कुछ भी नहीं है। महासभा के सदस्य, स्त्री हों या पुरुष हों वे अवश्य खूब नम्र बनें अपने हृदय को शुद्ध करें और करोडों मूक लोगों के योग्य प्रतिनिधि बनें।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

हमारी अस्वच्छता

मेरी हिन्दुस्तान की यात्रा में मुझे हमारी अस्वच्छता को देख कर ही सबसे अधिक कष्ट हुआ है। जहां गया वहीं मैंने उसे पाया। मुझे जबरदस्ती सुधार करने की नीति मान्य नहीं है लेकिन करोडों लोगों में जो आदतें घर कर बैठी हैं उनको बदलने में जो समय लगेगा उसका जब मैं विचार करता हूं तब इस अस्वच्छता के बडे महत्व के प्रश्न से जहांतक संबन्ध है मैं जबरदस्ती सुधार करने की नीति को स्वीकार करने के लिए भी तैयार हो जाता हूं। बहुत से रोग तो केवल अस्वच्छता के कारण ही उत्पन्न होते हैं। अस्वच्छता के कारण ही नारू निकलता है। कोई भी क्यों न हो, जो स्वच्छता के मूल नियमों का पालन करता है उसे यह रोग कभी भी न होना चाहिए। यह रोग गरीबी के कारण भी नहीं होता है। स्वच्छता के मूल नियमों का अज्ञान ही उसका एकमात्र कारण है।

मांडवी की गन्दगी को देख कर ही मुझे ये विचार सूझे हैं। मांडवी के लोग कुछ गरीब नहीं है, उनको अज्ञान भी नहीं कहा जा सकता है फिर भी उनकी आदतें ऐसी गंदी है कि उसका कुछ वर्णन ही नहीं हो सकता है। जिन रास्तों पर वे नंगे पैर चलते है उन्हें ही वहांके लोग गंदे करते हैं। वे प्रतिदिन प्रातःकाल में उन्हें गन्दा करते है। उस शहर में कहीं पाखाना जैसी कोई चीज है ही नहीं। इन रास्तों पर से मैं बडी कठिनाई से जा सका था।

मुझे मांडवी के लोगों के प्रति कठोर न होना चाहिए। मुझे याद है कि मद्रास की गलियों में और रास्तों पर भी मैंने इससे कुछ अच्छा दृश्य न देखा था। पुख्त उम्र के लोग नदी के किनारे बैठ जाते हैं और फिर किसी भी प्रकार के विचार के बिना ही नदी में से पानी लेते है और उसके साथ मोतीझरा, हैजा और पेचीश के जन्तुओं को भी उसमें दाखिल करते हैं। यही पानी पीने के लिए भी काम में आता है। पंजाब में हमलोग छतों को गंदा करते हैं और वहां बहुतसी मक्खियां पैदा करते हैं और ईश्वर के कानून का भंग करते हैं। बंगाल में एक ही तालाब में मनुष्य और जानवर पानी पीते है और उसी में वे नहाते भी हैं और वहीं बरतन भी साफ करते हैं। लेकिन मुझे इस लज्जाजनक बात का अधिक वर्णन नहीं करना चाहिए। लेकिन यदि यह शरम की बात है तो उसको छिपाना भी पाप है। लेकिन मैं इसके संबंध में अधिक लिखने की हिम्मत नहीं करता हूं। मैंने उसका कुछ हलका सा ही चित्र खींचा है।

मैं मांडवी के साहसी लोगों को आदर्श स्वच्छता का मार्ग दिखाने के लिए और उसके नेता बनने के लिए प्रार्थना करूंगा। राज्य की तरफ से मदद मिले या न मिले उन्हें इस कार्य में किसी कुशल व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए और सम्पूर्णतया स्वच्छता स्थापित करने के लिए रुपये खर्च करना चाहिए। साधुता के बाद स्वच्छता का ही महत्व अधिक है। मलीन अन्तःकरण के कारण जिस प्रकार हम ईश्वर के कृपापात्र नहीं बन सकते है उसी प्रकार मलीन देह से भी नहीं बन सकते हैं। स्वच्छ देह अस्वच्छ नगर में नहीं रह सकता है।

हमें सभी कामों को स्वराज हासिल करने तक मुल्तवी नहीं रखना चाहिए और इस प्रकार स्वराज को ही मुल्तवी नहीं कर देना चाहिए। बहादुर और साफ सुथरे लोग ही स्वराज प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि सरकार बहुत सी बातों के लिए जवाबदेह है फिर भी मैं यह जानता हूं कि हमारी अस्वच्छता के लिए ब्रिटिश अधिकारी जवाबदेह नहीं हैं। हां, यदि हम उन्हे पूरी स्वतंत्रता दें तो वे तलवार के बल से हमारी आदतों को सुधार देंगे। वे ऐसा नहीं करते हैं क्योंकि उसमें उन्हें कुछ रुपये मिलने की आशा नहीं है। लेकिन वे स्वच्छता के संबंध में कैसे भी सुधार करने के प्रयत्नों का स्वागत करेंगे और उन्हें उत्साहित करेंगे। इस मामले में हमें यूरप से बहुत कुछ सीखना बाकी है। हमलोग अभिमान के साथ मनु के कुछ श्लोक, और यदि मुसलमान हुए तो कुरान की कुछ आयतें पढते हैं। लेकिन हमलोग उसपर अमल नहीं करते हैं। इन पुस्तकों में स्वच्छता के संबंध में जो सिद्धान्त पाये जाते हैं उनपर से यूरपियन लोगों ने स्वच्छता के सम्बन्ध में एक बडा शास्त्र रच कर तैयार किया है। हमें उनके पास से उसे सीखना चाहिए और हमारी आवश्यकता और आदतों के अनुकूल उसका स्वीकार करना चाहिए। केवल शोभा के लिए नहीं लेकिन काम करने के लिए एक स्वच्छता-प्रसारक-मण्डल स्थापित किया जाय तो मैं उसे बहुत ही पसन्द करूंगा। उसके सभासद ऐसे होने चाहिए कि वे झाडू, फावडा और एक बाल्टि लेकर काम करने में भी अपनी इज्जत समझे। समस्त भारत वर्ष की शालाओं में और कालिजों में पढनेवाले लडके लडकियों के लिए यह एक बडा ही अच्छा राष्ट्रीय कार्य है।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

रामनाम और खादी

एक पुराने ' जोगी ' इस प्रकार लिखते हैं :

" आपका कार्य बिना रामनाम के प्रचार के अपूर्ण और रूखा मालूम होता है। स्वराज की अपेक्षा रामनाम पर ही अधिक जोर देना चाहिए। तुलसीदासजी के रामायण में बालकाण्ड की आरंभिक प्रस्तावना — कथा भाग के पूर्व का भाग — बार बार पढने पर मुझे यह यकीन हो गया है कि बिना जप किये मन को शुद्धि होना कठिन है। बहुत से लोग जब प्रेम में मस्त हो एक साथ मिल कर राम नाम का शोर करते हैं तब जो शक्ति उत्पन्न होती है उसके सामने कोई दूसरी शक्ति ठहर नहीं सकती है। अर्थशास्त्र के द्वारा खादी का प्रचार हो ही नहीं सकता। उससे न स्वराज मिल सकता है और न ऐक्य हो सकता है।

" विद्वानों को तो संसार में कोई भी नहीं समझा सका है। भक्तों को समझा सकते हैं। आपको तो मोह हो गया है। श्री राम और श्री कृष्ण ने विद्वानों के साथ माथापच्ची नहीं की थी। विद्वान लोग तो जो घटनायें होती है उनपर चर्चा करते है और उस घटना के होने में किन कारणों की मदद थी इसका ही निर्णय करते है। लेकिन घटनाओं को घटाने के काम में तो भगवान और उनके भक्तों (गोपी और बानरों) का ही हाथ होता है। अर्जुन विद्वत्ता दिखाने गया इसलिए उसे अनार्य, अस्वर्ग्य, अकीर्तिकर, क्लीब, क्षुद्र और दुर्बल हृदय का कहा, लेकिन जब वह भक्त बना उसका मोह नष्ट हो गया। भगवान स्वयं ही अपने भक्त हैं और संसार को भक्ति करना सिखाते हैं। आप भी अब एक

जगह शान्ति से बैठें, भटकना छोड़ दें और जो कर्तव्य है उसे ही करें; अर्थात् रामनाम का जप और कर्तव्य कर्म की स्थापना करें।

लिखने का दिल बहुत होता है और बहुत दिनों से हो रहा है। लेकिन मेरा यह पत्र शायद आपको पहुंचे या न भी पहुंचे। आपके पास पहुंचने के पहले यह आपके बहुत से पार्षदों के हाथ से गुजरेगा। फिर भी इस मरतबा यह पत्र लिखा है। उसमें दोष न निकालिएगा। उसमें से जो ग्रहण करने योग्य हो उसे ग्रहण कर लीजिएगा।"

यह पत्र दो महीने से मेरे ही पास पड़ा हुआ है। मैंने सोचा था कि कुछ फुरसत मिलने पर मैं उसे नवजीवन के पाठकों के सामने पेश करूंगा। आज यह फुरसत मिली है अथवा यों कहो कि मैंने ही इसके लिए कुछ फुरसत का समय निकाला है। पत्र-लेखक ने मुझे दोष न देखने की सलाह दी है। और आज यदि मैं उनके पत्र पर टीका कर रहा हूं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं उसके दोषों को ही देख रहा हूं, लेकिन उसका हेतु तो इस पत्र को नवजीवन में कहीं न कहीं स्थान दे कर रामनाम की महिमा प्रकट करना है। पत्रलेखक महाशय और दूसरे लोग भी इस बात का यकीन रक्खें कि जो ग्रहण करने योग्य है उसे मैं अवश्य ही ग्रहण करता हूं। मुझे यह प्रतीत होता है कि रामनाम की महिमा में मुझे अब कुछ नया सीखना बाकी नहीं है। क्यों कि मुझे उसका अनुभवज्ञान है। और इसीलिए मेरा अभिप्राय यह है कि खादी और स्वराज्य के प्रचार की तरह रामनाम का प्रचार नहीं हो सकता है। इस कठिन काल में रामनाम का उल्टा जाप होता है। अर्थात् बहुत से स्थानों में केवल आडम्बर के लिए, कुछ स्थानों में अपने स्वार्थ के लिए और कुछ जगहों में व्यभिचार करने के लिए इसका जाप होता हुआ मैंने देखा है। यदि केवल उसके उल्टे अक्षरों का ही जाप हो तो उसमें मुझे कुछ भी नहीं कहना है। यह हमने पढ़ा है कि शुद्ध हृदय के लोगों ने उल्टा जाप जप कर के भी मुक्ति प्राप्त की है और इसे हम मान भी सकते हैं। लेकिन शुद्धोच्चारण करनेवाले पापी पाप की पुष्टि के लिए रामनाम के मंत्र का जप करें तो क्या कहेंगे? इसीलिए मैं रामनाम के प्रचार से डरता हूं। जो लोग यह मानते हैं कि भजन मण्डली में बैठ कर नाम की रट लगाने से, शोर करने से ही भूत, भविष्य और वर्तमान के सब पाप नष्ट हो जायगे और कुछ भी करना बाकी न रहेगा, उन्हें तो दूर ही से नमस्कार करने चाहिए। उनका अनुकरण नहीं किया जा सकता। रामनाम जपने की योग्यता प्राप्त करने के लिए मैं तो प्रथम खादीप्रचार इत्यादि की योग्यता की ही अपेक्षा रक्खूंगा। रामनाम के जाप से ही खादी के प्रचार के लिए वायुमण्डल तैयार होगा यह मुझे कहीं भी नहीं दिखाई दे रहा है।

विद्वानों को संसार में कोई भी नहीं समझा सका है यह वाक्य जो राम के दास हैं वे किस प्रकार लिख सकते हैं? मुझे यह नहीं मालूम होता कि मुझे कुछ भी मोह हुआ है। विद्वान भी तो राम की दुनिया में ही रहते हैं और बहुतेरे विद्वान राम का नाम लेकर तिर भी गये हैं। सच बात तो यह है कि विद्वानों को बिना भक्त के और कोई भी नहीं समझा सकता है। और भक्त होने की अभिलाषा रखनेवाला मैं विद्वानों को समझाने का प्रयत्न भी कर रहा हूं। और मुझे मोह न होने के कारण जो लोग समझते नहीं हैं उनपर मुझे क्रोध भी नहीं होता है किन्तु मुझे अपनी भक्ति में ही न्यूनता होने के कारण स्वयं अपने पर ही क्रोध होता है। और मेरे हृदय में राम सर्वदा निवास करे इसके लिए अधिक हृदयशुद्धि की आवश्यकता है यह उपदेश पाने के लिए मैं सदा आकांक्षित रहता हूं और मैं अपने को सदा यही उपदेश देता रहता हूं। यदि भक्ति में रस पैदा न कर सके तो यह भक्त का दोष है, श्रोता का नहीं। रस हो तो श्रोता उसे अवश्य ही लूटेंगे। लेकिन यदि रस ही न हो तो श्रोताओं का क्या दोष? कृष्ण की बंसी यदि फूटी होती और उसमें से कर्कश शब्द निकलता होता तो उसे सुनकर गोपियां भयभीत होकर भाग भी जाती तो उसके कृष्ण की ही निंदा होती गोपी की नहीं। अर्जुन बिचारा यह थोड़े ही जानता था कि यह पढ़ा हुआ मूर्ख है और अपनी निपुणता दिखाने में गोलमाल कर रहा है। लेकिन कृष्ण की शुद्धता ने अर्जुन को शुद्ध कर दिया और उसका मोह दूर किया। इसलिए जो रामनाम का प्रचार करना चाहता है उसे स्वयं अपने हृदय में ही उसका प्रचार करके उसे शुद्ध कर लेना चाहिए और उसपर राम का साम्राज्य स्थापित करके उसका प्रचार करना चाहिए। फिर उसे संसार भी ग्रहण करेगा और लोग भी रामनाम का जप करने लगें। लेकिन जिस किसी स्थान पर रामनाम का जैसा तैसा भी जप कराना पाखंड की वृद्धि करना है और नास्तिकता के प्रवाह का वेग बढ़ाना है।

एक जगह बैठने से मनुष्य स्थिर थोड़े ही हो सकता है। जिसका मन सदा करोड़ों योजन की मुसाफिरी करता है और जो शरीर को बांध कर बैठा है उसे राम भी क्यों कर पहुंच सकेंगे? लेकिन जो दमयंती की तरह जंगल जंगल भटकता है और पेड़ों को, जंगल के जानवरों को भी अपने रामरूपी नल की खबर पूछता रहता है उसे भटकता हुआ कहेंगे या स्थिर कहेंगे? यह क्यों न कहें कि बैठे हुए को जो भटकता देखता है और भटकते हुए को जो स्थिर देखता है वही ठीक देखता है? कर्तव्य कर्म की स्थापना कैसे की जा सकती है? कर्म करने से ही होगी न? यदि ऐसा ही है तो मैं संसार जीत चुका हूं क्योंकि जिसे मैं न करूंगा उसे मैं कभी भी न कहूंगा। इस 'पुराने जोगी' के मोह की बात मुझे पाठकों को सुनानी होगी। यदि दूसरे लोग यह नहीं जानते हैं तो यह क्षन्तव्य है, लेकिन यह 'जोगी' तो यह जानते ही हैं कि मेरे पास ऐसे पार्षद हैं ही नहीं जो सद्भाव से लिखे गये ऐसे पत्र मेरे पास शीघ्र न पहुंचा दें। यह पत्र तो मुझे फौरन् ही मिल गया था लेकिन मैं आज दो महीने के बाद उसका उत्तर दे सका हूं। इसमें दोष किसका है? बेचारे गरीब निद्रापात्र बने हुए पार्षदों का है, मेरा है, विधि का है या पत्र लिखनेवाले का ही है? इसमें हमलोग लिखनेवाले का ही दोष मान लेंगे। जो लोग मुझे धर्मसंकट में डालनेवाले ऐसे पत्र लिखते हैं उन्हें राह देखनी चाहिए, धीरज रखनी चाहिए। उन्होंने जो समस्या मेरे सामने रक्खी है वह ऐसी तो है ही नहीं कि जिस प्रकार मैं यह एक पल में कह सकता हूं कि मिल के सूत का बना कपड़ा खादी नहीं है उसी प्रकार उसका भी उत्तर दे सकूं। ऐसे पत्रों का उत्तर देने से रामनाम का महत्व घट जाने का भी डर मुझे लगा रहता है। इसलिए यह ख्याल भी होता है कि इसका उत्तर ही न दें तो उसमें क्या नुकसान होगा? और फिर यह किसे मालूम है कि इस उत्तर में कुछ मोह न रहा होगा? यदि इसमें कुछ मोह होगा तो भी जिस प्रकार थोड़े बहुत पुष्पदल राम के चरणों पर रख दिये जाते हैं उसी प्रकार यह मोह भी उन्हीके समर्पण हो।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

कच्छ के संस्मरण

आशा का पंवाड़

कच्छ जाने के लिए स्टीमर पर सवार होने के पहले ही मैंने सहज भाव से यह कहा था कि मुझे यह खबर नहीं है कि मैं कच्छ किसलिए जा रहा हूं। और अब इस लंबी सफर को पूरा होने में केवल एक ही दिन बाकी है फिर भी मुझे यही ख्याल होता है कि मैं यहां किसलिए आया था ! हरएक जगह जाने के पहले मैं यह विचार कर लेता हूं कि मुझे वहां क्या करना होगा और मुझे वहां से क्या आशा रखनी चाहिए। कच्छ के बारे में तो मुझे कुछ भी खबर न थी। सिर्फ कुछ कच्छी मित्रों के प्रेम और आग्रह के वश हो कर ही मैं कच्छ जाने के लिए तैयार हुआ था। 'कुछ' शब्द का मैंने जान बूझ कर प्रयोग किया है। क्योंकि मैंने यहां आ कर देखा कि कुछ लोगों ने तो यह भी कहा कि मुझे कच्छ बुलाने के पहले उनसे कुछ भी पूछा न गया था और उन्हें तो आखिर पीछे से उनका साथ देना पड़ा था। मैंने तो बिना किसी आधार के ही आशा के महल बांधे थे इसलिए अब ऐसा मालूम होता है कि मानों चारों ओर निराशा ही निराशा देख रहा हूं। लेकिन गीता जिसकी मार्गदर्शक बनी हुई है उसे कभी निराश नहीं होना पड़ता है अथवा यों कहें कि उसे कभी आशा रखनी ही न चाहिए। इस समय मैंने आशा का हवाई किला बनाया था इसलिए गीता का गानेवाला हंसता हुआ लेकिन लाल आंखें बना कर यह कह रहा है कि "तू क्यों भूला ? अब अपनी भूल की सजा भी पा ले। आशा रक्खी थी इसलिए अब कड़ु निराशा का भी अनुभव कर ले। मुझे इस बात का अनुभव तो है ही कि निराशा से आरंभ करने पर उसके फल बड़े मधुर होते हैं। अब फिर भूल न करना। निराशा भी मनका एक तरंग है इसलिए जो सावधान रहता है उसे कभी भी निराशा नहीं होती है क्यों कि वह आशा को मन में कभी भी स्थान नहीं देता है।"

यह तो तत्वज्ञान-जिज्ञासुओं की बात हुई। आत्मा के आनंद के लिए इसकी आवश्यकता थी। अब इतिहास कहता हूं।

२२ वीं अक्तूबर को मांडवी पहुंचे थे। आज दूसरी नवम्बर है। हिन्दुस्तान के दूसरे भागों में तो अब तक मैंने बहुत से गांवों की सफर कर ली होती। लेकिन कच्छ में जिसपर से मोटर जा सके ऐसे रास्ते बहुत ही कम हैं; शायद तीन या चार ही होंगे। रेलगाड़ी तो उससे भी बहुत कम चलती है। भूज से तूणी बन्दर या जारी बन्दर जाने के लिए ही रेल है। मांडवी से भूज, भूज से कोटड़ा, और मुन्द्रा से भूज जाने के लिए ही मोटर में सफर की जा सकती है। दूसरी जगहों को जाने के लिए तो बैलगाड़ी की ही जरूरत होती है और मार्ग बड़े विकट होते हैं। हरएक जगह जहां देखो वहां, रेत और धूल का तो कुछ ठिकाना ही न था। बैलगाड़ी भी एक छोटा सा इक्का होता है और उसमें केवल एक ही मनुष्य शान्ति से बैठ सकता है, वह उसमें सो नहीं सकता है। पहले ही दिन मोटर में जाने पर भी मेरा हाल तो बिगड़ गया था। कुछ सर्दी सा बुखार भी आ गया था। इसलिए स्वागत-समिति ने मोटर में या बैलगाड़ी में मेरे सोने के लिए भी व्यवस्था की थी। मेरे लिए वे एक बड़ी बैलगाड़ी अर्थात् रथ ले आये थे। इसपर भी कोटड़ा से कोठारा जाने का रास्ता बहुत ही खराब था इसलिए मुझे आधा रास्ता पालखी में बैठ कर तय करना पड़ा था। पालखी में बैठना मुझे पसंद न था लेकिन वहां पर, या तो बीमार पड़ना, या कोठारा जाना ही छोड़ देना या पालखी में बैठना, इन तीनों में से एक बात पसंद करनी थी। मेरी बीमारी का जोखिम उठाने के लिए स्वागत-समिति भी तैयार न थी। इसलिए मैंने पालखी में बैठना ही पसंद किया। मुझे यहां पर इस बात का स्वीकार कर लेना चाहिए कि मुझे कोठारा की तरफ से बहुत बड़ी लालच दी गई थी। वहां बड़े अच्छे कार्यकर्ता हैं, वहां बहुत रुपये मिलेंगे और वहां जाने पर मैं कच्छ के दुष्काल के बारे में भी बहुत कुछ जान सकूंगा इत्यादि अनेक बातें कही गई थीं। इसलिए मैं पालखी की जाल में फस गया। पालखी उठानेवाले कहार राज्य के मुहलगे मालूम होते थे। वे रास्ते भर स्वयंसेवकों पर सरदारी दिखाते थे और यदि वे कुछ कहते तो क्रोध करते थे और उन्हें बहुत कुछ सुनाते थे। रास्ते भर उन्होंने क्लेश और असंतोष प्रकट किया। ऐसे मनुष्यों के द्वारा उठाया जाना मुझे बहुत अखरा। पैदल चलने की इच्छा हुई लेकिन वह हो ही कैसे सकता था ? इससे तो केवल झगड़ा दिखावा हो सकता था। इसलिए जिस प्रकार शव को ले जाते हैं और वह कुछ भी नहीं बोलता है उसी प्रकार मैं भी चुपचाप पड़ा रहा। अब फिर कभी पालखी में बैठने के पहले मैं बहुत विचार करूंगा।

मेरे संबन्ध में जो बहुत से वहम प्रचलित हैं उनमें से एक यह भी है कि मुझे मोटर रेल इत्यादि बिल्कुल ही पसन्द नहीं है। एक भाई ने गंभीरतापूर्वक मुझसे यह भी प्रश्न पूछा था कि मुझे कच्छ के जैसे रास्ते पसंद हैं या पक्की सड़कें ? यह वहम दूर करने के लिए मुझे ठीक अवसर मिला है। मेरा यह विश्वास है कि मानवजाति की सभ्यता के लिए न रेल की आवश्यकता है और न मोटर की जरूरत है। लेकिन यह तो आदर्श की बात हुई। लेकिन आज हिन्दुस्तान में रेल ने घर किया है और जहां सब जगह रेल और मोटरें हैं वहां एक ही शहर को रेल से अस्पृश्य रखने की बेवकूफी मैं कभी भी न करूंगा। मांडवी तक यदि स्टीमरें आती हैं तो वहांसे भूज तक रेलगाड़ी हो तो मैं उसका द्वेष न करूंगा बल्कि मैं उसे पसन्द ही करूंगा। और यही मोटर के बारे में भी है। मैं यह मानता हूं कि पक्की सड़कें तो होनी ही चाहिए। मोटर और रेल से वेग बढ़ता है लेकिन उसमें कोई धर्म की बात नहीं है। लेकिन पक्की सड़कें बनवाने से तो धर्म की भी रक्षा होती है। कच्चे धूल से भरे हुए रास्तों में जानवरों को कितनी तकलीफ होती है ? बैलगाड़ी में और बैलगाड़ी के रास्ते में हमेशा ही मैं सुधार करना चाहूंगा। अच्छे रास्ते होना सुव्यवस्थित राज्य का भूषण है। राजा और प्रजा का दोनों का धर्म और अच्छे रास्ते बनवाना फर्ज है। मोटर के लिए पक्की सड़कें चाहिए तो जानवरों के लिए क्यों न चाहिए ? क्या वे नहीं बोल सकते हैं इसलिए ? यदि राजा यह साहस न करे तो व्यापारी क्यों न करें ! कच्छ में यह साहस करना आसान है क्योंकि वहां के गांवों के बीच कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं है। प्रजा के लिए ऐसा साहस करना कठिन अवश्य है लेकिन अशक्य नहीं है। पहले तो प्रजा को राजा के सामने ही इस बात को पेश करना चाहिए।

अन्त्यज प्रश्न

अन्त्यज प्रश्न के संबंध में कच्छ में जो कठिनाइयां उपस्थित हुई थीं, वैसी कठिनाइयों का मुझे और कहीं भी अनुभव न हुआ था। कच्छ के अन्त्यजों में जागृति का होना भी इसका एक कारण है। प्रत्येक स्थान की सभा में उनके झुंड के झुंड आते

थे, उन्हें स्वयंसेवकों ने इसके लिए उत्साहित भी किया था। लेकिन दूसरी तरफ से स्वागत-समिति ने सबको राजी रखने की नीति ग्रहण की थी। इसलिए सब जगह एक ऐसा पक्ष खड़ा हो गया था कि जो अन्त्यजों के साथ बैठने में विरोध करता था। मैंने भुज में प्रथम यह विरोध देखा। लेकिन मैंने यह मान लिया कि वहां उसका निबटारा अच्छी तरह से हो गया था। किन्तु मैंने देखा कि आखिर उसका अनर्थ किया गया। भुज में जो बात शोभास्पद मालूम हुई थी वही और दूसरी जगहों पर अविवेकयुक्त और निर्दय प्रतीत हुई। सभी जगहों पर दो विभाग से हो गये थे और आखिर स्वागत-समिति भी ऐसी ही बन गई थी कि मानों वह अस्पृश्यता को धर्म मानती थी। हरएक जगह के अनुभव विचित्र, करुणामय और हास्यमय थे। हास्यमय इसलिए थे क्यों कि किसीने भी जानबूझ कर अविवेक नहीं किया था कुछ तो मेरे व्याख्यानों का अनर्थ हुआ था और कुछ जान निर्दोष बुद्धि से ही बड़ा अविवेक दिखाया गया था।

यदि इसपर से कोई यह मान ले कि कच्छ में अस्पृश्यता का बहुत जोर है तो यह गलत होगा। यदि स्वागत समिति की प्रधान प्रधान व्यक्तिओं ने कमजोरी न दिखाई होती और भुज में मैंने जो कार्य किया था उसका दूसरे स्थानों में अनर्थ न होता तो कच्छ के लोगों की ऐसी हंसी कभी भी न होती। कच्छ में तो शहर में भी अन्त्यजों का मोहल्ला होता है। यहांके अन्त्यज भी काठियावाड़ के अन्त्यजों के बनिस्बत ज्यादा निडर मालूम हुए। शायद वे कुछ अधिक बुद्धिमान भी होंगे। बहुत से अन्त्यज बुनाई का काम करते हैं। भुजपर में तो एक अन्त्यज का कुटुम्ब बढ़ई का काम करता है। कच्छ की सभाओं में जिस तादाद में अन्त्यज लोग आये थे उतनी तादाद में और कहीं भी उन्हे आते हुए मैंने नहीं देखा है। सभाओं में मैं अन्त्यजों को प्रश्न पूछता था और वे निर्भय हो कर बड़े विचार के साथ उसका उत्तर देते थे। वे अपनी तकलीफें भी समझाते थे। मांडवी के अन्त्यजों में से कोई २० कुटुंबों ने अर्थात् १०० आदमियों ने मद्य-मांसादि न खाने की और खादी पहनने की प्रतिज्ञा ली थी। अंजार में भी बहुत से अन्त्यजों ने एक विशाल सभा के समक्ष मिट्टी न खाने की और मद्यपान न करने की प्रतिज्ञा ली। मुझे कुछ ऐसा भास होता है कि कच्छ के अन्त्यजों में मद्य-पान का रिवाज कुछ कम है। और साधारण जनसमाज में तो अस्पृश्यता दिखाई भी न देती थी। केवल उच्च मानी जानेवाली कौमें, जैसे ब्राह्मण, बनिये, भाटिया और लुहाना, ही अस्पृश्यता का ढोंग करते हुए दिखाई देते थे। ढोंग इसलिए कहता हूं क्योंकि बहुतेरे तो केवल डर के मारे भद्रलोगों में जा कर बैठे थे। उनमें से बहुत से लोगों ने मुझसे यह कहा था कि वे अस्पृश्यता को नहीं मानते हैं लेकिन उन्हें ज्ञाति से बहिष्कृत हो जाने का डर है इसीलिए वे जाहिर में उसका विरोध नहीं कर सकते हैं। जो जुलूस निकलते थे उनमें अन्त्यज लोग भी शामिल हो जाते थे लेकिन इसपर कोई एतराज न करता था। और यह तो मैंने कई जगहों पर देखा कि वहां उच्च वर्ण के युवक निर्भय हो कर अन्त्यजों की सेवा कर रहे हैं। इसलिए यद्यपि कच्छ में अन्त्यजों के संबंध में कुछ दुःखद अनुभव अवश्य हुए हैं फिर भी वहां अस्पृश्यता का जोर था बहुत कुछ कम हो गया है। कुछ मर्यादित लोग वहां तो पकड़े बैठे हैं लेकिन उनका यह प्रयत्न निरर्थक है। (अपूर्ण)

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

गोरक्षा-मण्डल

आज तक इस मण्डल की तरफ से जो सूत का चन्दा वसूल हुआ है उसकी निम्न लिखित सूची मंत्री ने मुझे दी है।

क्रमांक	नाम		गज
	बंबई		
१	दिवालीबाई झवेरदास		८०००
२	जमनादास गांधाभाई		४०००
३	के. डी. केले		८०००
४	शंकरलाल गुप्त		१००००
	मध्यप्रान्त (मराठी)		
५	जमनालाल बजाज	वर्धा	४६००
	गुजरात		
६	मोहनदास करमचंद गांधी	साबरमती	६३७५
७	कल्याणजी नरोत्तम	कोटडा	२४०००
८	छगनलाल शिवलाल	दाहोद	८०००
९	मगनलाल खु० गांधी	साबरमती	३०००
	महाराष्ट्र		
१०	यमुताई पार्वती	वाई	४०००
११	पार्वतीबाई चिटनीस	,,	४०००
१२	यशोदाबाई बापट	,,	४०००
१३	सरस्वतीबाई बापट	,,	४०००
१४	आनन्दीबाई टीटे	,,	२०००
१५	वेणूबाई बापये	,,	४०००
१६	भागीरथीबाई बापाये	,,	४०००
१७	गंगाबाई गोडबोले	,,	८०००
१८	पार्वतीबाई साठे	,,	३०००
१९	अम्बिकाबाई साठे	,,	२०००
२०	गंगाबाई भावे	,,	३०००
२१	इन्दिराबाई मराठे	,,	४०००
२२	त्र्यंबकाचार्य बाळे	,,	४०००
२३	नरयन सदाशिव मोन	,,	६०००
२४	माणिकबाई गुजरबाई	,,	२०००
२५	दुर्गाबाई देशपाण्डे	,,	२०००
२६	रमाबाई टांभे	पूना	२४०००
२७	राधाबाई गरवले	,,	३०००
२८	एम. वी. पडळेकर	,,	४०००
२९	एस. एम. डांके	थाना	२०००
	भारत गोवर्धन मण्डल आदि, श्री. एम. के. जोशी के द्वारा		१९५००

मैं दूसरे लोगों को भी इस मण्डल के कातनेवाले सभासद बनने के लिए उत्साहित करने को यह सूचि प्रकाशित करता हूं। वाई की सूची गोवर्धन संस्था के श्री शेण्डे महाराज के प्रयत्नों का फल है। मुझे आशा है कि जिन्होंने नकद चन्दा दिया है उनकी सूचि भी मैं बहुत जल्दी प्रकाशित कर सकूंगा। यदि मण्डल अपना काम अच्छी तरह से करना चाहे तो उसे और भी अधिक मदद की दरकार है।

(य० इं०) मो० क० गांधी

वार्षिक मूल्य ४)
छमाही का „ २)
एक प्रति का -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ९] [अंक १३

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, अगहन बदी ११, संवत् १९८४ गुरुवार, १० नवम्बर, १९२७ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

ऊंचनीच का ख्याल

सैमनसिंग की जिला वैश्यसभा की तरफ से मुझे नीचे लिखा पत्र दिया गया था:

१ हमारी समिति का उद्देश एकता करना और हमारी जाति का पुनरुद्धार करना है।

२ जहां तक समझते हैं आपका कार्य तीन प्रकार का है:

(क) चरखा और खादी का प्रचार

(ख) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य

(ग) अस्पृश्यता का त्याग

पहले दो कार्य सर्वसामान्य हैं। हम लोग केवल तीसरे कार्य के संबंध में ही आपके पास आये हैं और यह दिखाना चाहते हैं कि बंगाल के हिन्दुओं को एक करने के कार्य में अस्पृश्यता की भावना किस प्रकार बाधा पहुंचाती है।

३ बंगाल के हिन्दुओं के मुख्य दो विभाग किये जा सकते हैं। (१) वे जिनके हाथ का जल ग्रहण किया जाता है; (२) वे जिनके हाथ का जल ग्रहण नहीं किया जाता। पहले विभाग में ब्राह्मण, वैद्य, कायस्थ और नवशाखवाले हैं और दूसरे विभाग में, वैश्यशाहा, सुवर्णवणिक (सुनार) सूत्रधार (बढ़ई) जोगी (जुलाहा) सुंडी (कलाल) मच्छीमार, भोई, धोबा (धोबी) चमार, कापालिक, नामशूद्र इ० है। इनमें से कितनों ही को तो मर्दुमशुमारी में दलितवर्गों में गिने गये हैं।

प्रथम विभाग की तीन वर्णों हिन्दू जाति की मालिक बन बैठी हैं और वे दूसरे विभाग की जातियों का केवल तिरस्कार ही नहीं करती है लेकिन उन्हें अनेक प्रकार से हैरान भी करती हैं। उन्हें देवमंदिरों में जाने की मुमानियत है, इस वर्ग के विद्यार्थियों को बोर्डिंगों में रहने की और खानेपीने की बहुत कुछ असुविधायें होती हैं, होटलों में और हलवाइयों की दुकानों में उन्हें दुत्कारा जाता है।

बंगाल के अस्पृश्यता निवारक कार्यकर्ता, योग्य कार्य पद्धति न होने के कारण कुछ भी प्रगति नहीं कर सकते है। १९२१ की मर्दुमशुमारी में बंगाल के हिन्दुओं की कुल संख्या २,०९,४०,००० से भी अधिक थी, उनमें से १७ प्रति सैकड़ा ब्राह्मण, १६ प्रति सैकड़ा कायस्थ और १० प्रति सैकड़ा वैद्य मिल कर उनकी कुल २८ लाख ९ हजार की संख्या होती है।

पूर्व बंगाल और सिलहट की अकेली वैश्यशाहा कौम ही जो व्यापार में सब से बढ़ी हुई है ३,६०,००० अर्थात् हिन्दुओं की संख्या के प्रमाण में ३॥ प्रति सैकड़ा है। उनमें हजार में ३४२ लोग पढ़ना लिखना जानते हैं और वैद्यों में ६६२, ब्राह्मणों में ४८४, कायस्थों में ४१३, सुवर्णवणिकों में ३८६ और गन्धवणिकों में प्रति हजार ३४४ मनुष्य पढ़ना लिखना जानते है। दूसरे आचरणीय वर्णों में पढ़ना लिखना जाननेवालों की संख्या का प्रमाण बहुत ही कम है। फिर अनाचरणीय वर्णों के बारे में क्या कहा जा सकता है?

हमारी कौम की तरफ से कालेज, हाईस्कूल, अस्पताल, तालाब, पक्के कुंए इत्यादि अनेक संस्थाएं चलाई जाती हैं और सखावत में भी वह किसीसे कम नहीं है। आचारविचार और अतिथि का सत्कार करने में भी वह किसीसे कम नहीं है। स्त्री-शिक्षा के संबंध में भी वह कम नहीं है। फिर भी हम लोग हिन्दू समाज की कक्षा के बाहर माने जाते हैं। हमारी कौम किसी भी राष्ट्रीय प्रवृत्ति में कभी पीछे नहीं रही है, फिर भी हमारे योग्य दरजे का स्वीकार करने का विचार भी हिन्दू-समाज को कभी नहीं हुआ है। हमारे मार्ग में सामाजिक रुकावटें न हों तो हम आज के बनिस्बत कितने अधिक उपयोगी बन सकते है?

सुंडियों (कलालों) से हम लोग बिल्कुल ही जुदा है। लेकिन वे भी अपने को 'शाहा' कहते हैं इसलिए संकुचित विचार के हिन्दू हमें भी उन्हींके साथ रख देते हैं। हमने तो पूरी शोध करके इस बात को सिद्ध कर दिया है कि हमारी कौम उत्तर और पश्चिम हिन्दुस्तान की तरफ से आयी हुई है और ब्राह्मण धर्म का फिरसे जब अधिक जोर हुआ उस समय हमलोग बौद्ध धर्म की असर को सम्पूर्ण दूर न कर सके इसलिए हिन्दूधर्म में हमें योग्य स्थान न मिला और तिरस्कृत बन रहे।"

इन बातों में संभव है कुछ अतिशयोक्ति हो, लेकिन ऊंचनीच के भेद का कीड़ा हिन्दू-धर्म के मर्म को ही खा रहा है यह दिखाने के लिए ही मैंने यह पत्र यहां दिया है। जिन्होंने ये बातें लिख भेजी है, उनका वे लोग जो उनसे ऊंचे गिने जाते है तिरस्कार करते हैं और वे उनसे भी जो अधिक तिरस्कृत हैं उनसे अपने को ऊंचे और अलग मानते हैं। इस प्रकार तिरस्कृत "अस्पृश्यों" में भी ऊंचनीच का भेद व्याप्त हो रहा है। कच्छ की यात्रा में मैंने यह देखा कि हिन्दुस्तान के दूसरे भागों की तरह कच्छ में भी अस्पृश्यों में ऊंचनीच का भेद है और ऊंची

जाति का अन्त्यज नीची जाति के अन्त्यज को छूने से इन्कार करता है इतना ही नहीं नीची जाति के बालक जिस शाला में पढ़ने को जाते हैं उस शाला में अपने लड़के को भेजने से भी वह साफ इन्कार करता है। अब ऐसी स्थिति है तो उनके दरम्यान रोटी बेटी के व्यवहार की बात ही कैसे हो सकती है? वर्णभेद का जो भयंकर अनर्थ हुआ है उसका यह उदाहरण है। और एक वर्ग अपने को दूसरे वर्ग से ऊंचा मान कर जो अभिमान करता है उस अभिमान का विरोध करने के लिए ही मैं अपने को भंगी कहलाने में आनन्द मानता हूं, क्योंकि मेरे ख्याल से कोई भी जाति ऐसी नहीं है जो भंगी से भी नीची हो। समाज में भंगी ही बेचारा कोढी है। उसे सब दुत्कारते हैं और फिर भी समाज के स्वास्थ्य के लिए अर्थात समाज को जीवित रखने के लिए किसी दूसरे वर्ग के बनिस्बत भंगी का वर्ग ही अधिक उपयोगी और आवश्यक है। जिन्होंने मुझे यह पत्र लिखा है उनके प्रति भी मेरी पूर्ण सहानुभूति है। लेकिन जिनके भाग्य में उनसे भी नीचा गिना जाना लिखा है उन्हें वे अपने से नीचा न समझें। ऐसे लोगों को अपने वर्ग में मिला कर दूसरों को जो लाभ नहीं मिलता है उस लाभ को लेने से उन्हें भी साफ इन्कार कर देना चाहिए। हिन्दू-धर्म में से अस्वाभाविक असमानता के कलंक को दूर करना हो तो उसे निर्मूल करने के लिए हममें से कितनों ही को खून पानी एक करना होगा। मेरे ख्याल में तो वे जो ऊंचा होने का दावा करते हैं अपने इसी दावे के कारण उसके लिए नालायक साबित होते हैं। सच्ची और स्वाभाविक बड़ाई तो बिना दावे के ही मिल जाती है। जो सचमुच बड़ा है उसके कहे बिना ही उसे सब कोई बड़ा कहते हैं और वह अपनी बड़ाई का इन्कार करता है, केवल आडम्बर से या झूठी नम्रता दिखाने के लिए नहीं लेकिन इस शुद्ध ज्ञान के कारण कि जो अपने को नीचा मानता है उसकी आत्मा और अपनी आत्मा में कोई भेद नहीं है। सृष्टि के सभी प्राणियों की एकता और अभेद के ज्ञान में ऊंच-नीच के भाव को कहीं अवकाश ही नहीं होता है। जीवन तो कार्यक्षेत्र है, अधिकार और हकों का संग्रह नहीं है। जो धर्म ऊंच-नीच के भेदों की प्रथा पर आधार रखता है उसका सर्वथा नाश ही होगा। वर्ण-धर्म का मेरा अर्थ यह नहीं है। मैं वर्ण-धर्म को मानता हूं क्योंकि मेरा यह ख्याल है कि वह जुदा जुदा धन्धे के मनुष्यों के कर्तव्यों को निश्चित करता है। इस धर्म के अनुसार वही ब्राह्मण है जो सभी वर्णों का सेवक है — शूद्रों का और अस्पृश्यों का भी सेवक है। चारों वर्ण की सेवा करने के लिए वह अपना सब कुछ अर्पण कर देता है और प्राणिमात्र की दया पर ही अपनी आजीविका का आधार रखता है। अधिकार, सन्मान और अपने हकों का दावा करनेवाला क्षत्रिय नहीं है। क्षत्रिय तो वही है जो समाज का रक्षण करने के लिए, उसकी प्रतिष्ठा के लिए स्वार्पण कर देता है। अपने ही लिए कमानेवाला और संग्रह करनेवाला वैश्य नहीं है लेकिन चोर है। हिन्दू-धर्म की मेरी कल्पना के अनुसार पांचवा, अर्थात अस्पृश्यों का वर्ण है ही नहीं। जिन्हें अस्पृश्य कहते हैं वे दूसरे शूद्रों के समान ही अधिकार रखनेवाले समाजसेवक हैं। मैं यह मानता हूं कि समाज का परम श्रेय करने के लिए सोची गई उत्तमोत्तम प्रथा वर्ण-धर्म की प्रथा है। आज तो केवल उसकी विडंबना हो रही है। और यदि वर्ण धर्म की रक्षा करना है तो वर्णधर्म के इस उपहास योग्य ढांचे का नाश कर के वर्णधर्म के प्राचीन गौरव का पुनरुद्धार करना होगा।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

कातो, कातो और कातो

यदि आप अन्यत्र दिये गये हकीम साहेब के पत्र के महत्व को समझ सकते हैं तो आप चरखा-संघ में अवश्य ही शामिल होंगे और जिसे राष्ट्र आज भी हासिल कर सकता है उसे हासिल करने में आप उसकी मदद करेंगे। यदि हमारे में से बहुत से लोग इस कार्य को करेंगे तभी तो राष्ट्र उसे कर सकेगा। और यह करने के लिए उत्तम मार्ग यही है कि हमलोग सब चरखा-संघ के सभासद बनें और दूसरों को भी उसके सभासद बनने के लिए कहें। खादी न पहनने के लिए और न कातने के लिए बहाने न ढूंढो लेकिन खादी पहनने के और कातने के कारण ढूंढ निकालो। आप अपने दूसरे कार्यों का त्याग किये बिना ही उसके सभासद बन सकते हैं। आपको सिर्फ विदेशी और मिल के बने कपड़े के प्रति आपकी रुचि का त्याग करने को ही कहा जाता है। यदि आप उसमें जो अगण्य लाभ हैं उनका हिसाब करेंगे तो यह त्याग कोई बहुत बड़ा त्याग न होगा। बीस साल हुए हमलोग स्वदेशी की बातें कर रहे हैं। हमलोग कम से कम १९०६ से विदेशी और विलायती कपड़े के बहिष्कार की बातें कर रहे हैं और उसपर अमल तो बहुत ही थोड़ा करते हैं। अनुभव से यह बात साबित हो चुकी है कि हमलोग किसी भी कार्य में सफल नहीं हुए हैं। हमलोग सिर्फ विदेशी कपड़े का बहिष्कार ही एक मात्र सफल कर सकते हैं। यदि हम जीवित रहना चाहते हैं तो बुद्धि यह कहती है कि हमें यह बहिष्कार सफल करना होगा। यह हमारा हक है और फर्ज भी है। मैं तो यह कहने का भी साहस करता हूं कि इस सादे और आवश्यक बहिष्कार के बनिस्बत कोई भी कार्य अधिक सफल नहीं हो सका है। महाशय लोग यदि काफी तादाद में चरखा-संघ के सभासद बन जायं तो उसमें सम्पूर्ण सफलता भी प्राप्त की जा सकेगी।

शान्ति का दूत

श्री एण्ड्रयूज का स्वयंनिर्णित कार्य यह है कि उनसे जो कुछ भी बन पड़े वह सेवा करना और फिर उसे भूल जाना। उनकी सेवा का रूप अक्सर शान्ति स्थापित करना होता है। अभी उन्होंने उड़ीसा में दुःखी और पीड़ित मनुष्यों और ढोरों के बीच और बम्बई के कष्ट-पीड़ित मिल-मजदूरों के सम्बन्ध में अपना काम पूरा किया ही न था कि उन्हें दक्षिण आफ्रिका में जा कर वहांके भारतीयों को जो कष्ट में पड़े हुए हैं मदद करने की आवश्यकता महसूस होने लगी है। लेकिन वे वहां केवल भारतीयों की ही मदद नहीं करेंगे लेकिन यूरोपियनों की भी सहायता करेंगे। उनमें न द्वेष है न क्रोध है। वे हिन्दुस्तानियों के प्रति मिहरबानियां दिखाने को नहीं कहते हैं। वे तो सिर्फ न्याय ही चाहते हैं। श्री एण्ड्रयूज दक्षिण आफ्रिका के लिए कोई नये नहीं हैं। दक्षिण आफ्रिका के राजनीतिज्ञ उन्हें जानते हैं और वे इस बात का स्वीकार करते हैं कि वे यूरोपियनों के भी उतने ही मित्र हैं जितने कि हिन्दुस्तानियों के। भारतीयों का प्रश्न बड़ी विकट समस्या हो पड़ा है। दक्षिण आफ्रिका में रहनेवाले भारतीयों के लिए तो यह जीवनमरण का प्रश्न है। ऐसे विकट प्रसंग पर श्री. एण्ड्रयूज के उनके पास होने से उन्हें बड़ी शान्ति मिलेगी। पहले जिस प्रकार इन भले मित्र के प्रयत्नों का अच्छा फल हुआ है उसी प्रकार इस समय भी उनका प्रयत्न सफल हो। लेकिन क्योंकि श्री एण्ड्रयूज उनके दरम्यान हैं दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों को

यह नहीं मान लेना चाहिए कि वे निर्भय हो गये हैं। उनके वहां होने से ही उनके कष्ट दूर नहीं हो सकते हैं। वे उन्हें सलाह दे सकते हैं, मार्ग दिखा सकते हैं, और सुलेह कराने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं लेकिन जबतक स्वयं वहांके निवासी भारतीयों में ही हिम्मत और ऐक्य न होगा तबतक उनकी सलाह, इत्यादि से भी कुछ लाभ न होगा।

खादी का सूचीपत्र

बंबई के खादी भंडार के व्यवस्थापक ने जो अ. भा. खा. मंडल के हस्तक (अब चरखा-संघ के हस्तक) चल रहा है, मुझे एक अच्छा छपा हुआ अपना सूचीपत्र भेजा है। खादी ने जो प्रगति की है वह उसपर से मालूम की जा सकती है। उसको चार साल हुए हैं और इस दरम्यान कुल ८३०,३२९ रुपये की बिक्री हुई है। १९२२-२३ में सब से ज्यादा बिक्री हुई थी अर्थात २,४५,५१५ रुपये का माल बिका था। और सबसे कम बिक्री इस साल हुई है अर्थात १,६८,२८० रुपये का माल बिका है। यह कहा जाता है कि १९२२-२३ में मेरे जेल में होने के कारण बिक्री अधिक हुई थी। लोगों ने यह ख्याल किया, और उनका यह ख्याल सही था कि जितना अधिक वे खद्दर का इस्तेमाल करेंगे उतना ही अधिक वे स्वराज्य के नजदीक पहुंच जायंगे। और स्वराज मिल जायगा तो मैं भी रिहा हो जाऊंगा। अब जो उसमें कमी हुई है उसका कारण लोगों का यह ख्याल है कि खादी केवल थोड़े ही दिनों के लिए आवश्यक वस्तु थी। लेकिन सच बात तो यह है अपने देश का अनाज और हवा जिस प्रकार हरएक समय पर आवश्यक है उसी प्रकार खादी भी हरएक समय के लिए आवश्यक है। लेकिन कायम के ग्राहक हों तो एक प्रकार से कम बिक्री का होना भी अच्छा ही है। इस भण्डार के और दूसरे भण्डारों के अस्तित्व से यह साबित होता है कि वे जिस वस्तु की मांग है उसे पूरा कर रहे हैं। लेकिन खादी का राजनैतिक परिणाम तो सालाना १ लाख से कुछ अधिक रुपये की बिक्री होने से कुछ भी नहीं हो सकता है। लेकिन करोड़ों की, सच पूछो तो साठ करोड़ की सालाना उसकी बिक्री हो तभी उसका राजनैतिक परिणाम आ सकता है। बम्बई में केवल ऐसे एक दो भंडार ही न होने चाहिए। आज जैसे वहां कुछ सौ विदेशी कपड़े के भंडार हैं वैसे ही खादी के सैंकड़ो भंडार वहां होने चाहिए। ऐसे भंडारों की सहायता न करने का अब कोई बहाना भी नहीं चल सकता है, क्योंकि अब उनमें भिन्न भिन्न और योग्य रुचि के अनुकूल माल मिलता है। सूची पत्र में, कमीज की खादी, मलमल की खादी, साड़ी, धोती, टोवेल, रुमाल, तैयार कमीज, टोपी, थैलियां, चद्दरें इत्यादि बहुत सी चीजें हैं। लेकिन उसपर टीका करनेवाले महाशय कहते हैं कि उनकी जरा कीमत भी तो देखिए। मैंने उनकी कीमत का भी हिसाब लगाया है और मुझे उससे सन्तोष हुआ है। बाह्य दृष्टि से देखने पर कीमत कुछ अधिक मालूम होती है लेकिन दर असल तो वह बड़ी सस्ती है क्योंकि खद्दर खरीदने में आप स्वराज्य हासिल करने के कार्य में भी कुछ अपना हिस्सा देते हैं। यदि आपको यह विश्वास नहीं है कि खादी में स्वराज्य प्राप्त करने की शक्ति है तो आप कम से कम भूखों मरते स्त्री पुरुषों को तो अवश्य ही कुछ न कुछ सहाय करते हैं। यदि खादी पहननेवाले औसतन अपने कपड़े के लिए सालाना १० रुपया भी खर्च करे तो भी ऐसे चार खादी पहननेवाले ऐसे एक मनुष्य का तो अवश्य ही पोषण करते हैं। जिस खादी में यह शक्ति है उसे, वे जिनका अपने देश पर प्रेम है और जो गरीबों से प्रेम करते हैं क्या कभी महंगी समझेंगे?

नकली खादी

एक मित्र ने किसी हिन्दुस्तानी मिल में बुनी हुई नकली खादी पर से एक चित्र निकाल कर मुझे भेजा है। उसपर एक चरखा छपा हुआ है और उसके पास ही पूनियों से भरी हुई एक टोकनी रक्खी हुई है और सूत से लपेटी कुछ फिरकियां उसके सामने रक्खी हुई हैं। ये पत्र लेखक महाशय लिखते हैं कि ऐसी खादी करीब करीब सभी हिन्दुस्तानी मिलों में तैयार की जाती है और जापान भी ऐसा ही माल तैयार कर के यहां भेजता है। वे कहते हैं गरीब लोगों को जब खादी मांगने पर खादी जैसा दिखनेवाला यह कपड़ा बताया जाता है और उसपर वे चरखा इत्यादि के चित्र देखते हैं तो उन्हें कुछ भी सन्देह नहीं होता है और वे उसे खरीद लेते हैं और भारतवर्ष की आर्थिक तकलीफ को दूर करने के लिए उन्होंने अपनी तरफ से भी कुछ किया है इस ख्याल से वे अपनेतईं अभिमान भी लेते हैं। यह बड़ी ही दयाजनक स्थिति है कि मिल मालिकों में स्वदेशाभिमान का अंश तक नहीं है। नफा उठाने के लिए या अब यों कहें कि मिलों को कायम रखने के लिए वे राष्ट्र का कुछ ख्याल नहीं रखते हैं। फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो कि मिलों की सहायता से विदेशी कपड़े का बहिष्कार सफल करने की आशा रखते हैं। इसमें बड़ी भारी भूल यह होती है कि वे यह मान लेते हैं कि खादी की हलचल सफल होने के पहले ही मिलों का राष्ट्र के लिए उपयोग किया जा सकेगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि एक दिन सभी मिलें राष्ट्र कार्य के अनुकूल हो जायंगी। लेकिन जबतक खादी, सारी दुनिया के विरुद्ध होते हुए भी अपनी स्थिति कायम नहीं कर लेती है तबतक वह दिन कभी भी नहीं आ सकता है, अर्थात दूसरे शब्दों में कहें तो आम जनता में उस समय इस विषय के संबंध में इतनी जाग्रती हो जायेगी कि वे खादी के सिवा और दूसरा कपड़ा पहनने से ही इन्कार कर देंगे, वे सिर्फ देख कर ही असली और नकली खादी को पहचान सकेंगे।

चरखा संघ और सरकारी कर्मचारी

एक सरकारी कर्मचारी लिखते हैं कि वे चार साल हुए खादी ही पहनते हैं और वह खादी उनके अपने हाथ के कते सूत से ही बनी हुई होती है। वे हमेशा कातते हैं लेकिन सरकारी कर्मचारी होने के कारण वे अबतक किसी भी मंडल के सभासद न बने थे। वे अब यह पूछते हैं कि चरखा संघ, जैसा कि उसके उद्देश से मालूम होता है कोई राजनैतिक संस्था नहीं है, तो क्या अब वे उसके सभासद हो सकते हैं। निश्चय ही मेरी राय तो यह है कि यदि वायसराय भी उसके उद्देश को कुबुल रखते हों तो उसके सभासद बन सकते हैं और उनपर किसी भी प्रकार का दोष न लगेगा सिवा इसके कि सरकारी नोकरी के नियमों में ऐसा कोई नियम हो जो कि सरकारी कर्मचारियों को कैसे भी मंडल का चाहे वह राजनैतिक मंडल हो या न हो, सभासद होने में निषेध करता हो। यदि ऐसा कोई नियम है तो किसी भी सरकारी कर्मचारी को जिसे चरखा संघ से सहानुभूति हो उसका सभासद नहीं बनना चाहिए। यही महाशय फिर यह भी पूछते हैं कि आधा घण्टा रोजाना कातना आवश्यक है या सभासद चाहें तो जितना भी जल्दी हो सके अपना चन्दा दे सकते हैं। संघ की वर्तमान रचना के अनुसार तो जो चाहें अपना साल भर का चन्दा इकट्ठा एक साथ ही भेज सकते हैं, रोजाना कातना कोई आवश्यक बात नहीं है। लेकिन अपना चन्दा दे देने पर भी रोजाना कातना 1 उपयोगी अवश्य है।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, अगहन बदी ५, संवत् १९८२

हमारी दुर्बलता

हकीम साहब अजमल खां और डा. अन्सारी यूरप की और उसके साथ सीरिया की भी लंबी यात्रा पूरी कर के अभी ही लौटे हैं। उन्होंने मुझे नीचे लिखा पत्र भेजा है :

"दक्षिण सीरिया में जहां कि ड्रूस लोग रहते हैं और जहां इस पीडित लोगो के द्वारा फ्रान्सीसियों का अर्थात् राष्ट्र-संघ की आज्ञा से अधिकार प्राप्त राज्य का, सशस्त्र विरोध किया जा रहा है, वहां अभी जो घटनायें हुई हैं, उनसे वहांके फ्रान्सीसी अधिकारियों की भयंकरता प्रकट होती है। दो दिन पहले पेलेस्टीन से वहां के लोगों की प्रसिद्ध और प्रभावशाली संस्था लजनातुल तन्फीझीया के मंत्री सैयद जमालुद्दीन अलहुसैनी की तरफ से जो तार मिला है उसमें लिखा है कि डेमास्कस के शहर को फ्रान्सीसियों के आक्रमण से और हवाईजहाजों से बड़ा नुकसान पहुंचा है और उससे असहाय मनुष्य मर गये है। ब्रिटेन के वर्तमान-पत्रो में जो खबरें इसके मुताल्लिक छपती थीं उनसे भी यह पता चलता था कि सीरिया की हालत खराब है लेकिन पेलेस्टिन के इस तार से और कैरो से रूटर के तार से, जो उसके बाद मिला है, यह मालूम होता है कि ड्रूस लोगों के देश पर और डेमास्कस के लोगों पर फ्रान्सीसी लोग बड़ा अमानुष जुल्म कर रहे हैं।

इस भयंकर जुल्मों के अलावा सीरिया की हमारी यात्रा में भी हमने कितनी ही बातें ऐसी देखीं जिससे कि फ्रान्सीसियों की निर्दयता और सीरिया के अपने अधिकार के प्रान्त के लोगों के प्राथमिक हकों के प्रति उनकी निष्ठुरता साबित होती है। हमने अपने अनुभवों का वर्णन हिन्दुस्तानी छापों में प्रकाशित किया है लेकिन हमदर्द में छपे हुए उन उर्दु रिपोर्टों को पढने की आपकी तकलीफ को बचाने के लिए हम उनमें से सीरिया की वर्तमान स्थिति से संबंध रखनेवाली महत्व की बातों का सारांश ही यहां देते हैं। जब सीरिया के संबंध में राष्ट्रसंघ ने फ्रेन्च सरकार को आज्ञापत्र दिया उस समय फ्रेन्च सरकार ने और हाई कमीश्नर ने जाहिरा तौर यह जाहिर किया था कि वे सीरिया को उसकी आंतर्व्यवस्था के संबंध में संपूर्ण स्वतंत्रता देंगे। सीरिया को कितने ही स्वतंत्र प्रान्तों में बांट दिया जाने को था और उनमें हरएक में एक गवर्नर जो लोगों की तरफ से चुना गया हो रहनेवाला था। उसको सलाह देने के लिए लोगों की तरफ से चुना गया एक प्रतिनिधि मंडल भी रक्खा जानेवाला था। लेकिन बाहर दिखाने के लिए लिबेनन और डेमास्कस के प्रान्तों में इन वादों पर अंशतः अमल किया गया लेकिन ड्रूस लोगों के देश हौरन को न तो प्रान्तिक स्वतंत्रता दी गई और न वहां लोगों की तरफ से चुना गया कोई प्रतिनिधि मंडल और उनका प्रमुख ही रक्खा गया। लेकिन उनकी इच्छा के विरुद्ध उनपर एक फान्सीसी अफसर कैप्टन कारबियोलेट को रक्खा गया था और जब लोगों ने उसके विरुद्ध अपने भाव प्रकट किये और अपने प्रतिनिधियों को उनके पास भेजा तो उनका अपमान किया गया और उनके प्रसिद्ध प्रसिद्ध लोगों को जाहिरा तौर पर कोडे मारे गये और उन्हें कैद कर लिया गया और उनकी औरतों के साथ भी बुरी तरह से पेश आये। कैप्टन कारबियोलेट जो फ्रेन्च कौंगो से आये थे उन्होंने, फ्रेन्च कौंगो के गरीब निवासीयों पर फ्रान्सीसी लोगों ने जो जो जुल्म किये थे वे सब जुल्म यहां पर भी किये। लेकिन ड्रूस जाति पुरानी है स्वाभिमान रखती है और बहादुर और लडायक है इसलिए उन्होंने उसका विरोध किया और वे हथियार उठाने के लिए भी मजबूर हुए। उन्होंने फ्रेन्च लश्कर को बड़ा नुकसान पहुंचाया है और अबतक उनके देश पर किये गये फ्रान्सीसियों के आक्रमण को रोकने के प्रयत्न में सफल भी हुए है लेकिन सीरिया के दूसरे विभागों में जैसे कि डेमास्कस और अलेप्पो में फान्सीसियों की तरफ से जो कार्य किये जाते हैं उनसे इन देशों में भी गदर के भाव फैल रहे है। ऊपर जिस तार की बात की गई है उसमें डेमास्कस के लोगों पर अभी अभी जो जुल्म किये गये हैं उनका वर्णन है।

फ्रेन्च सरकार अनुचित और अप्रामाणिक साधनों का भी उपयोग कर रही है और इस देश में कागज के नोट चला कर उसका सुवर्ण और धन सारा खींच ले जा रही है। वह धीरे धीरे उस देश के आर्थिक साधनों का महत्व घटा रही है और उसका नाश कर रही है, जिसका परिणाम यह होता है कि लोग बेचारे गरीब और साधनहीन बन रहे हैं। और इस लूट को पूरा करने के लिए वे शहर और गांवों के लोगों से, उनको सजा और जुरमाना करके भी सुवर्ण खींच रहे हैं।

हम आपको यह इसलिए लिख रहे है कि इन एसियावासी भाइयों के लिए आपकी सहानुभूति प्राप्त हो और महासभा के प्रमुख की हैसीयत से आपको हमलोग यह प्रार्थना करें कि राष्ट्र-संघ को, जिसने फ्रान्स को सीरिया की हुकुमत के संबंध में आज्ञा-पत्र दिया है आप एक तार भेजें और दूसरी महासभा समितियों को भी ऐसा ही करने के लिए कहें। हमलोग यह जानते हैं कि भारत की वर्तमान स्थिति ऐसे कोई कार्य के लिए अनुकूल नहीं है फिर भी संपूर्ण विचार के बाद हमारी यह राय कायम हुई है कि भारतवासी, मुसलमान और एसियानिवासी होने के कारण हमें तमाम कष्टपीडित एसियानिवासियों के प्रति सहानुभूति दिखानी चाहिए और उनके साथ मित्रता का संबंध जोडना चाहिए जिससे हमें भी लाभ हो और उन्हें भी।"

महासभा की तरफ से राष्ट्रसंघ को तार भेजने की उनकी सलाह का मैं किसी प्रकार भी स्वीकार न कर सका इसलिए मैंने उन्हें निम्न लिखित उत्तर भेजा है।

"आपका पत्र, जिस पर आपके और हकीम साहेब के दस्तखत है, मुझे मिला है। महासभा का प्रमुख राष्ट्र-संघ को तार भेजे तो इससे क्या लाभ होगा? पींजडे में बन्द सिंह का सा मेरा हाल है, फर्क सिर्फ इतना ही है कि सिंह व्यर्थ ही स्वतंत्र होने के लिए हाथ पैर पछाडता है, दांत पीसता है और लोहे की सींकों को तोड डालने के लिए प्रयत्न करता है लेकिन मैं अपनी मर्यादाओं को जानता हूं और इसलिए इस प्रकार हाथ पैर पछाडने से और दांत पीसने से इन्कार करता हूं। यदि हमारी मदद के लिए हमारे में ऐसी कोई शक्ति होती तो मैं आपकी सूचना के अनुसार अवश्य ही तार भेज देता। यं. इं. में जिन बातों का मैं उल्लेख नहीं करता हूं वे मेरे हृदय में बड़ी गहरी हैं और वे मैं जिन बातों को विज्ञापित करता हूं उनसे कहीं अधिक वजनदार और महत्त्व की हैं। लेकिन मैं उस अदृश्य शक्ति के सामने उन्हें रोजाना जाहिर करना कभी भी नहीं भूलता हूं। जब मैं हमारे चारों ओर के वायुमण्डल का विचार करता हूं तब मैं दुःखी होता हूं और ऊब जाता हूं और फिर

जब हृदय के अन्दर के शान्त गंभीर नाद को सुनता हूं उस समय मुझे आशा दिखाई देती है और मेरे चारों ओर भीषण ज्वालायें दिखाई देती है फिर भी मैं मुस्कुराता रहता हूं। कृपया हमारी असहायावस्था का विज्ञापन करने से आप मुझे बचा लेंगे।"

लेकिन इस मामले में दूसरा अच्छा कार्य जो मैं कर सकता हूं वह उनके पत्र को और मेरे उत्तर को प्रकाशित करना है। जबतक किसी नैतिक या भौतिक शक्ति की सहाय न हो तबतक मैं यह नहीं मानता कि प्रार्थना करने से कुछ भी लाभ होगा। अपनी प्रार्थना को सफल करने के लिए प्रार्थना या अरजी करनेवाला जब कुछ कार्य करने का और उसके लिए कुछ त्याग करने का निश्चय कर लेता है तभी नैतिक शक्ति उत्पन्न होती है। बच्चे भी सहज ही इस सिद्धांत को समझ लेते है। वे रोते हैं, चिल्लाते है और शैतान बच्चे तो उनकी इच्छा पूरी न की जाय तो अपनी मां को मारने में भी नहीं हिचकिचाते। जबतक हम लोग इस सिद्धान्त को समझ कर उसपर अमल करने के लिए तैयार नहीं है तबतक प्रार्थना करके हम यदि और कुछ नहीं तो महासभा की और अपनी हंसी अवश्य ही करावेंगे।

हम यदि चाहें तो भी शैतान बच्चों की तरह शैतान नहीं हो सकते है। लेकिन यदि हम चाहें तो दुःख अवश्य सहन कर सकते है। मैं चाहता हूं कि सीरिया पर जो जुल्म या डायरशाही चलाई गई है उसके संबंध में हमलोग भारतवासी, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और ऐशियानिवासी की हैसीयत से कैसे लाचार है इसका अनुभव करें। हमारी लाचारी का जब हमें निश्चयात्मक ज्ञान होगा तब हम शायद उन जानवरों का अनुकरण करना सीखेंगे जो कि तूफान और वर्षा के समय में एक जगह इकट्ठे होते है और एक दूसरे से गरमी और हिम्मत पाते हैं। वे उस तूफान के देवता से उसे रोकने के लिए व्यर्थ प्रार्थना नहीं करते है किन्तु सिर्फ उसका उपाय ही कर लेते हैं।

और हम हिन्दू-मुसलमान तो एक दूसरे से लड़ते है और दिनबदिन दोनों का भेद बढ़ता ही जा रहा है। हमलोगों ने अभीतक चरखे के रहस्य को नहीं समझा है और जो समझते हैं वे न कातने के लिए कुछ न कुछ बहाने ढूंढ निकालते हैं। हमारे चारों ओर तूफान है और फिर भी हम एक दूसरे से हिम्मत और गरमी (सहानुभूति) प्राप्त करने के बजाय तूफान के देवताओं से अपना हाथ रोक लेने के लिए प्रार्थना करना और केवल कांपते रहना ही पसंद करते हैं। यदि मैं हिन्दू मुसलमानों में ऐक्य नहीं स्थापित कर सकता हूं और लोगों से चरखे का स्वीकार करने के लिए नहीं समझा सकता हूं तो कम से कम मुझे इतनी बुद्धि अवश्य है कि मैं दया की भिक्षा मांगने के लिए किसी प्रार्थना पत्र पर दस्तखत भी नहीं करता हूं।

और राष्ट्र-संघ क्या है? सच पूछा जाय तो क्या वह सिर्फ फ्रान्स और इंग्लैण्ड ही नहीं है? क्या दूसरी शक्तियों का कुछ भी वजन पड़ता है? क्या फ्रान्स से, जिसने समानता, न्याय और भातृभाव के अपने आदर्श को त्याग दिया है, प्रार्थना करने से कुछ लाभ होगा? उसने जरमनी को न्याय नहीं किया है, रीफों में और उसमें भातृभाव नहीं है और सीरिया में वह समानता के सिद्धान्त को कुचल रही है। यदि हमें इंग्लैण्ड से प्रार्थना करनी है तो राष्ट्र-संघ तक जाने की हमें कोई जरूरत नहीं है। वह तो हमारे घर के पास ही है। वह तो सिवा इसके कि कुछ दिनों के लिए देहली में उतर आय शीमला की ऊंची पहाड़ियों पर बैठी रहती है। लेकिन उससे प्रार्थना करना वैसा ही है जैसा कि आततायी के खिलाफ सीझर के पास प्रार्थना करना।

इसलिए हमें सत्य को उसके खुले रुप में देखना चाहिए और राष्ट्र से अपना फर्ज अदा करने के लिए प्रार्थना करना सीखना चाहिए। भारत के जयें ही सीरिया का दुःख दूर होगा। यदि हम अपनी बड़ाई की कीमत नहीं कर सकते है तो हमें अपना छोटापन स्वीकार कर लेना चाहिए और चुप रहना चाहिए। लेकिन हमें छोटे बनने की जरूरत नहीं है। हमें एक काम तो अच्छी तरह करना चाहिए—या तो अपने भाई पशुओं की तरह आखिर तक लड़ लेना चाहिए या हमें मनुष्यों की तरह विशाल सहयोग के आधार पर दुनिया को यह सीखाना चाहिए कि अपने से जो कमजोर हैं उन्हें चूसना अनुपयोगी है इतना ही नहीं वह पाप है। और ऐसा करोडों का सहयोग केवल चरखे से ही संभव हो सकता है। (य० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

अफीम संबंधी रिपोर्ट

महासभा की तरफ से अफीम के संबंध में जो जांच की गई थी उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है और महासभा समिति जोरहट, आसाम, से या श्री एण्ड्र्यूज शान्तिनिकेतन, इस पते पर से रु १-८-० में या दो शिलिंग में प्राप्त की जा सकती है। रिपोर्ट बड़ी अच्छी छपी है और उसमें १६८ सफे हैं। उसमें एक नकशा है, परिशिष्ट है, असाधारण शब्दों का कोष है और विषयानुक्रमणिका है। अकेली रिपोर्ट ८४ पन्ने में है। उसमें ९ प्रकरण हैं। उसकी प्रस्तावना श्री एण्ड्रयूज ने लिखी है। वे उसके सहयोगी सभासद थे। और इस जांच समिति को बनाने में और इस जांच में मुख्य हाथ उन्हींका था। इस जांच समिति के प्रमुख श्री कुलधर चेलीहा थे। श्री एण्ड्रयूज कार्यकर्ताओं की इस प्रकार तारीफ करते हैं:

"इस समिति के कार्यकर्ताओं ने जिन्होंने देश की इस सेवा के लिए अपना समय, आराम और सब कुछ त्याग दिया था, उनकी हीम्मत और लगातार काम करने की शक्ति को देख कर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ है। यह जांच तो ऐसी जांचों की एक श्रेणि में प्रथम है। आसाम को पहले पसंद इसीलिए किया गया था क्योंकि भारत में अफीम की बदी वहीं अधिक फैली हुई है। राष्ट्र-संघ के निर्णय के अनुसार १०००० लोगों के लिए दवा के काम में ६ सेर अफीम की जरूरत होती है जब आसाम में उतने ही लोगों के लिए कम से कम ४५ सेर और अधिक से अधिक २३७ सेर अफीम औसतन् खर्च होती है। रिपोर्ट से मालूम होता है कि असहयोग के जमाने में अफीम की बिक्री१६१४ मन से ८८४ मन तक गिर गई थी। यह पहरे का परिणाम था जो गैर कानून करार दिया गया था। ११०० कार्यकर्ताओं को जिनमें वकील, कालिज के विद्यार्थि और दूसरे शिक्षित लोग भी थे, गिरफ्तार किये गये थे। लेकिन एक देशसेवक को, सुधारक को इस रिपोर्ट के पढ़ने से कितनी खुशी होगी इसकी अभी से कल्पना न कर लेनी चाहिए। उसकी सिफारिशों को ही यहां लिख कर मैं इस रिपोर्ट की आलोचना को समाप्त करूंगा।

(१) अफीम और उससे बनी चीजों की बिक्री आखिर इतनी घटा देनी चाहिए कि उससे केवल आसाम की वैज्ञानिक और दवा की आवश्यकताओं को ही पूरा किया जा सके।

(२) ४० वर्ष से जिनकी अवस्था अधिक है और जो अफीम के आदी है उन्हें उचित प्रमाण में अफीम मिल सके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए और इसलिए उनके नाम दर्ज कर लेने चाहिए।

(३) जिनकी अवस्था ४० से कम है और जो अफीम के आदी हैं उन्हें रोगी की तरह डाक्टरों को सौंप देना चाहिए।

जब कभी उन्हें अफीम की जरूरत हो तो केवल डाक्टर ही की आज्ञा से उन्हें वह दी जायगी । और तीन तीन महीने के बाद उसके लिए डाक्टर की उन्हें फिर दुबारा इजाजत लेना होगी ।

(४) आगामी पांच साल के अन्दर ही अन्दर यह सब परिवर्तन हो जाना चाहिए और पांच साल के बाद उसे जहर की सूची में, प्राणहारक औषधि कानून के अनुसार दर्ज कर लेना चाहिए और आसाम के निवासियों के लिए उसी तरह उसे गिना जाना चाहिए ।

सरकार इस बारे में क्या करेगी इस पर ही यद्यपि बहुत बातों आधार रहता है फिर भी जबतक लोगों को इस विषय में शिक्षा देकर उसके खिलाफ एक सार्वजनिक राय कायम न की जायगी तबतक कुछ भी प्रगति न हो सकेगी । असहयोग की हलचल ने यह दिखा दिया है कि अफीम की बदी को रोकने के लिए सार्वजनिक प्रचार कार्य से, स्वेच्छापूर्वक किये गये प्रयत्नों से कितना अच्छा कार्य किया जा सकता है । इन साधनों से क्या हो सकता है इसका प्रमाण यही है कि एक साल में ही अफीम की बिक्री बहुत कुछ घट गई थी । इस कार्य में और भी अधिक प्रगति होनी चाहिए और उसे बराबर जारी रखना चाहिए ।

इसलिए हमारी उन लोगों से जो आसाम के हितैषी हैं यह प्रार्थना है कि वे अफीम-निषेधक मंडलियों की स्थापना करें और लोगों को आमतौर पर उसका उपयोग बन्द करने के लिए समझावें । इससे यह परिणाम होगा कि अफीम की बदी के खिलाफ लोगों को अपनी राय कायम करने की शिक्षा मिलेगी और नीति का वह वायुमण्डल तैयार होगा, जिस के कि बिना सफलता की आशा रखना व्यर्थ है । उन अशिक्षित लोगों को समझाने के लिए जो इसका अधिक से अधिक उपयोग कर रहे हरएक मार्ग से प्रयत्न होने चाहिए । और खास करके आसाम की प्राथमिक शालाओं में और पहाडी लोगों में छोटे छोटे बच्चों को बड़े ध्यान से इस विषय की शिक्षा देना अत्यन्त ही आवश्यक है ।

हमलोग इस कार्य में निषेध-मंडलों की स्थापना करने के लिए समाज के सभी लोगों को और खास करके मिशनरी लोगों को, क्योंकि मिशनरियों का उनके साथ बड़ा निकट संबंध है, सहयोग करने के लिए निमंत्रण देते हैं ।

और अंत में हमलोग महात्मा गांधीजी को फिर एक बार आसाम में आ कर अफीम निषेधक हलचल के, जो केवल शान्त साधनों से ही चलाई जायेगी, नेता बनने के लिए प्रार्थना करते हैं ।"

मुझसे की गई प्रार्थना पर मेरा ध्यान गया है । मेरी बंगाल की यात्रा के समय जब देशबन्धु दास को निर्दय मृत्यु ने खींच लिया था उस समय मैं आसाम न जा सका था । इसके लिए मुझे बड़ा रंज है । यदि सब ठीकठाक रहा तो आगामी वर्ष में उस सुन्दर बाग की मुलाकात करने का मैंने श्री फूकन को वादा किया है। मेरी शर्तें तो जाहिरा है । देशबन्धु का सिद्धान्त था, मनुष्य, दारुगोला और रुपया । यदि आज वे सदेह हमारे साथ नहीं है फिर भी मुझे इसका पालन करना चाहिए । हाथकता सूत दारुगोला है । इससे किसीका हानि नहीं पहुंचती है और इसकी रक्षा करने की शक्ति तो अमर्यादित है । यदि श्री फूकन और उनके मित्र अपना ही उदाहरण पेश कर के आसाम निवासियों से चरखे का स्वीकार करा के उनका आलस्य त्याग देने को उन्हें समझायेंगे तो मैं उनकी अफीम की बुरी आदत को दूर करने का भार अपने सिर ले लूंगा । उनका विश्वास है और उनके साथ मेरा भी यह विश्वास है कि आसाम में खद्दर के लिए बहुत कुछ आशा है । वे आशायें शीघ्र सफल हों । तब मैं शिक्षित आसाम निवासियों को धारासभा की जाल में फंसे रहने के कारण माफ कर दूंगा ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

गोरक्षा का निबंध

पाठकों को यह जान कर बड़ी खुशी होगी कि श्री आचार्य ध्रुव और सी. वा. वैद्य ने गोरक्षा पर इनामी निबन्धों के परीक्षक बनने के लिए अपनी स्वीकृति दे देने की कृपा की है । मैं तो अब सिर्फ यही आशा रखता हूं कि जो निबंध आवेंगे वे इस विषय के और जिन्होंने निबंधों के परीक्षक बनना स्वीकार किया है उन विद्वानों के योग्य होंगे । आचार्य ध्रुव की सूचना है कि मुझे इस बात को स्पष्ट कर देना चाहिए कि जो विद्वान निबंध लिखें वे केवल शुष्क और अनुपयोगी तर्क और विवाद की दृष्टि से ही शास्त्रों की परीक्षा न करें लेकिन विशाल ऐतिहासिक दृष्टि से ही उनका विचार करें । और उन्हें यह भी आशा है कि निबंध लिखनेवाले डेरी और चमड़े के कारखानों का भी इसी प्रकार विचार करेंगे । वे ऐतिहासिक दृष्टि से इस बात की खोज करेंगे कि गोरक्षा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई और धर्म के अनुकूल गायों की अर्थात ढोरों की रक्षा करने के जितने भी साधन और उपाय शक्य हों उन सबकी परीक्षा करेंगे।

एक महाशय पत्र लिख कर यह पूछते हैं कि निबन्ध कितना बड़ा होना चाहिए । लेकिन इसकी मर्यादा रखने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम हुई है, क्यों कि लेखक की इस विषय का विचार करने की शैली पर ही उसका आधार रहेगा । लेकिन सामान्यतया मैं इतना अवश्य कह सकता हूं कि निबंध जितना छोटा होगा उतना ही अच्छा होगा । मैं परीक्षकों को खूब अच्छी तरह जानता हूं और इसलिए यह कह सकता हूं कि निबंध लंबा होने के कारण उनपर उसका कुछ भी असर न पडेगा । इसलिए हरएक लेखक को अपने आप ही इसका विचार कर लेना चाहिए । मैं सिर्फ उनसे यही आशा रखता हूं कि वे निबंध लिख कर फिर उसे दुबारा पढ़ जावेंगे और जहां आवश्यक मालूम हो उसे काट छांट देंगे । कताई के निबंध के मेरे अनुभव के कारण ही मैं यह चितावनी दे रहा हूं ।

एक दूसरे महाशय समय बढाने के लिए लिख रहे हैं और उसके लिए यह योग्य कारण भी बताते हैं कि जो संस्कृत के प्रोफेसर इसमें भाग लेना चाहेंगे वे उस समय तक अपने निबंध को पूरा न कर सकेंगे । मैं इसलिए बड़ी खुशी से ३१ मार्च १९२६ के बजाय ३१ मई १९२६ तक समय बढा देता हूं ।

अब एक सूचना पर विचार करना बाकी रह जाता है । एक महाशय निबंध लिखने के लिए दूसरी भाषाओं के साथ संस्कृत भाषा को भी पसंद करने की उपयोगिता के बारे में शंका करते हैं । संस्कृत को पसंद करने का कारण यह है कि हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों के बहुसंख्यक विद्वान पंडितों को भी अपने राष्ट्र को अपनी विद्या का लाभ देने के लिए अवसर दिया जाय और उन्हें उसके लिए उत्साहित किया जाय । मेरी दक्षिण की यात्रा में मुझे कुछ ऐसे पंडितो से मुलाकात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जो वर्तमानकालीन हलचलों में बडी दिलचस्पी लेते हैं । लेकिन उनकी विद्या का हमें कुछ भी लाभ नहीं मिलता है क्योंकि संस्कृत की कीमत आजकल घट गई है । मुझे आशा है कि संस्कृत के वे विद्वान जो अच्छी अंगरेजी नहीं जानते हैं या जो जानते हैं वे भी राष्ट्र को एक प्रमाणग्रंथ तैयार कर के देंगे ।

मुझे यह कहने की तो कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती कि यदि कोई संस्कृत का निबंध ईनाम के लिए पसन्द किया गया तो उसका केवल हिन्दी और अंगरेजी में ही अनुवाद न होगा बल्कि उर्दू और दूसरी महत्त्व की भाषाओं में भी उसका अनुवाद तैयार कराया जायेगा। ईनामी निबंध के गुणों के ऊपर ही इन सब बातों का आधार रहेगा। मैं आशा करता हूं कि इससे हमारे धार्मिक साहित्य में बड़ा महत्त्व का स्थान प्राप्त करने योग्य एक अच्छा ग्रंथ तैयार हो सकेगा, फिर चाहे वह मूल में किसी भी भाषा में क्यों न लिखा गया हो।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

कच्छ-यात्रा

बंबई से चल कर मांडवी होते हुए कच्छ की प्रजा की तकलीफों की अनेकानेक बातें सुनते सुनते हम लोग भुज —कच्छ के मुख्य शहर—में पहुंचे। जिस रोज वहां पहुंचे उसी दिन एक सार्वजनिक सभा रक्खी गई थी और उसमें लोगों की तरफ से अभिनन्दन पत्र दिया जानेवाला था। नगरसेठ ने अभिनन्दन पत्र को पढ़ा। उसमें गांधीजी के अस्पृश्यता विषयक विचारों की स्तुति की गई थी और यह भी कहा गया था कि वे विचार उन्हें कुबूल हैं, और उनका कर्तव्य क्या है यह दिखाने के लिए विनति भी की गई थी। लेकिन जिन अन्त्यजों के प्रति सहानुभूति दिखाई गई थी वे कहां थे? गांधीजी ने देखा कि उन्हीं के बैठने की जगह के पीछे रस्सी से मर्यादित किये एक विभाग में उन्हें बिठाये गये थे। इसलिए गांधीजी को उन्हें एक गंभीर चेतावनी देने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने कहा:

' आप लोगों के दिये अभिनन्दन पत्र पर से तो मैंने यह ख्याल किया था कि आप लोग अपनी इस सभा में आपके और अन्त्यजों के दरम्यान कोई लकीर न खींचेंगे। लेकिन अब मैं देखता हूं कि आपने ऐसा भेद रक्खा है तो अब मेरा स्थान भी अन्त्यज भाइयों में ही होगा क्योंकि जगह जगह मैंने अपने को भंगी ही कहा है। मेरा यह दावा कोई मिथ्याभिमान का नहीं है, यह मेरा अज्ञान भी नहीं है और न उसमें पश्चिम की हवा ही है। यह दावा केवल सेवाभाव से किया गया है और वह भी जन्म से हिन्दू धर्म की पहचान कर लेने के बाद, जन्म से ही धर्मिष्ठ माता-पिता का सूक्ष्म अनुकरण करके ही किया गया है। शरीर और शरीरी को पहचानने के लिए मैंने प्रयत्न किया है और एक प्राकृत मनुष्य शास्त्र का जितना अध्ययन कर सकता है उतना अध्ययन मैंने किया है और उसका अनुभव भी किया है। उस अध्ययन और अनुभव के कारण मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि यदि हिन्दू-धर्म अस्पृश्यता को कायम रक्खेगा तो हिन्दुओं का नाश होगा, हिन्दू धर्म का नाश होगा और हिन्दुस्तान का भी नाश होगा। भारतवर्ष में भ्रमण करते हुए मैं अनेक शास्त्रियों को और पंडितों को मिला हूं और उनसे इस विषय पर चर्चा करने के बाद मेरा यह निश्चय अधिकाधिक दृढ़ हो रहा है। इसलिए मैं आपको यह साफ साफ कह देता हूं कि मेरे ये विचार हैं और इसलिए यदि मैं अस्पृश्य होऊं, त्याज्य होऊं तो आप लोग आग्रह से मेरा त्याग करेंगे और मुझसे एक दिन में ही इस यात्रा की समाप्ति करने के लिए कह देंगे। इससे मुझे कुछ भी दुःख न होगा। मैं समझूंगा कि कच्छ में स्वाभिमान है, हिम्मत है। इससे केवल आप ही का कल्याण न होगा बल्कि मेरा और अन्त्यजों का भी भला होगा। आप मेरा त्याग करेंगे इससे आपके और मेरे संबंध में कोई फर्क न होगा। उससे मेरा अनादर न होगा। लेकिन यदि मुझे बुला कर आप अन्त्यजों का अनादर करेंगे तो उससे मेरा बड़ा अपमान होगा। मैं हिन्दू-धर्म में ओतप्रोत हो गया हूं, हिन्दू-धर्म के लिए जीता हूं और उसीके लिए मरना चाहता हूं। यदि मुझे आज यह मालूम हो जाय कि मेरी मृत्यु से हिन्दू-धर्म को लाभ होगा तो मैं जितने प्रेम और उत्साह के साथ आप लोगों के साथ मिल रहा हूं उतने ही प्रेम और उत्साह के साथ मृत्यु का भी आलिंगन करूंगा। हिन्दू-धर्म की सेवा करता हुआ मैं अस्पृश्यता को उसका बहुत बड़ा भारी कलंक मानता हूं और अन्त्यजों को प्राणसमान गिनता हूं। इसलिए जिस प्रकार रामायण से प्रेम रखनेवाला जहां रामनाम की निंदा होती हो वहां से डेढ़ कोश दूर भागता है उसी प्रकार मैं भी जहां अन्त्यजों का तिरस्कार होता है वहां से दूर रहता हूं। आप लोगों ने मेरे सत्याग्रह की स्तुति की है। आज मैं उसीका सबक आपको सीखाना चाहता हूं। आप या तो अन्त्यजों को यहां आने दें या मुझे ही वहां जा कर उनमें बैठने दें। यदि आप अन्त्यजों को यहां आने देना चाहते हैं तो उन्हें यह निश्चय करने के बाद ही यहां आने दीजिएगा कि आप ऐसा करने में पुण्य का काम कर रहे हैं पाप का नहीं। यदि आप उसमें पाप मानते हैं तो मुझको ही उनमें जाने दीजिएगा।'

इस पर मत लिए गये। बहुमति अन्त्यजों के विरुद्ध थी इसलिए गांधीजी ने उसका स्वीकार किया और कहा:

' बहुमति अन्त्यजों के विरुद्ध है। इसलिए अब आप इस मेज को अन्त्यजों के विभाग में रखने के लिए स्वयंसेवकों को इजाजत दें। वहां से किये गये मेरे व्याख्यान को अब आप सुनें। अस्पृश्यता का नाश बलात्कार से न हो सकेगा लेकिन सत्याग्रह से होगा, प्रेम के आग्रह से होगा। कष्ट सहन करने से और तपश्चर्या से ही धर्म में सुधार हो सकेगा, और दूसरे उपायों से न होगा। क्रोध से, तिरस्कार से या दुःख से भी न होगा। सत्य का जो विरोध करता हो उसका मन से भी बुरा न सोचना चाहिए; यही सत्याग्रही का धर्म है।'

अभिनन्दन-पत्र में और भी बहुतसी बातें थीं। राजा और प्रजा के कर्तव्यों को समझाने की भी विनति की गई थी। इस पर गांधीजी ने कहा:

' राजाओं के राज्य में जब धर्म होता है तभी वह राज्य चल सकता है। जिस राज्य में एक भी मनुष्य भूखों न मरता हो, बालिकायें निर्भय बन कर चाहे जहां घूम-फिर सकती हों और कोई दुराचारी उसपर नजर भी न डाल सके, राजा प्रजा का पुत्रवत् पालन करता हो और रैयत को खिला कर खाता हो, ऐसे ही राजतंत्र का मैं पुजारी हूं। ऐसा राज्य होने के लिए मैं चाहता हूं कि प्रजा और राजा में प्रेम हो। जब ऐसे राजा होंगे तब उस राज्य में न दुष्काल होगा, न व्यभिचार होगा, न शराब होगी और न कोई भूखों मरेगा। लेकिन आज राजालोग अपना धर्म भूल गये हैं। राजा जब तक पवित्र और अच्छा हो तब तक प्रजा उसे मदद करे। लेकिन यदि वह अत्याचारी बन जाय तो? प्रजा का धर्म है कि राजा को सब बातें सुना दें। 'यथा राजा तथा प्रजा' यह जितना सच्चा है उतना ही 'यथा प्रजा तथा राजा' भी सच्चा है। प्रजा के सत्य का वीर्य का और रंकता का प्रभाव राजा पर पड़े बिना नहीं रहता है और राजा के अत्याचार की और असत्य की भी असर हुए बिना नहीं रहती है। जिन कष्टों के बारे में आप लोग जिक्र कर रहे हैं वे यदि सच्चे हैं तो प्रेम और

क्यों संकोच होता है ? यदि सचमुच ही ये कष्ट आपको सहन करने पड़ते हैं तो उसका उपाय भी आप ही के हाथों में है। वह अविनय और अमर्यादा का उपाय नहीं है लेकिन वह तो सत्य और प्रेम का उपाय है। जहां सत्य, प्रेम और शौर्य का त्रिवेणी-संगम होता है वहां कुछ भी अशक्य नहीं है।'

ता. २५ को भूज से कोटड़ा जाने के लिए रवाना हुए। कोटड़ा खादी और अन्त्यज प्रेमी भाई जीवराम कल्याणजी के लिए प्रसिद्ध है। अन्त्यज प्रेमी विशेषण का महत्व कोटड़ा जाने पर ही समझ में आ सकता है। क्यों कि अस्पृश्यता के कारण भूज में जो विरोध हुआ था उसका यहां के विरोध के आगे कुछ भी हिसाब न था। मूलजी मिका नामक एक व्यापारी ने खुद एक अच्छी रकम दे कर एक अन्त्यजशाला के लिए कोई सात आठ हजार रुपये इकट्ठे किये थे। उन्हें उसकी नींव गांधीजी के हाथ से रखवानी थी। अन्त्यजशाला के नाम से यदि कोई यह कल्पना करे कि वहां अन्त्यजों का बड़ा अच्छा जमघट होगा, वहां उनके बालकों को इकट्ठा कर के अस्पृश्यता के त्याग की नींव डाल कर शाला की नींव रक्खी जानेवाली होगी तो यह गलत है। वहां ऐसा कुछ भी न था। वहां तो यह कहा जाता था कि रुपये देनेवालों ने इस शाला के लिए यही समझ कर रुपये दिये हैं कि अन्त्यजों के बालकों को कोई छूए नहीं, शिक्षक भी उनका स्पर्श न करे और सब काम अलग ही अलग रह कर किया जाय। हम लोगों को यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ। भूज की तरह यहां भी सभा हुई। व्यवस्था भी वैसी ही रक्खी गई थी। रात्रि को अन्त्यजशाला की नींव रक्खी गई। दो एक सद्गृहस्थों ने शाला में से अस्पृश्यता को दूर रखने का वचन दिया तभी गांधीजी उसकी नींव रखने के लिए राजी हुए थे।

अब हमारी यात्रा में हम जहां गये वहां कोटड़ा के ही दृश्य नजर आते थे। आखिर हम लोग मांडवी पहुंचे। भूज की कथा सब जगह फैल गई थी। मांडवी में गांधीजी को ठहराने की जगह के बारे में ही चर्चा होने लगी। ढेड की लड़की को साथ रखनेवाले गांधीजी को ठहरने के लिए जगह दे कर जोखिम कौन उठावे ? आखिर एक धनवान साधु उनको ठहराने के लिए और सभा भरने के लिए जगह देने को राजी हो गये। सभा के लिए यह नियम रक्खा गया कि उसमें जाने के लिए दो रास्ते रक्खे जाय, एक भद्रलोगों के लिए और दूसरा अन्त्यजों के लिए। अन्त्यजों के रास्ते से केवल अन्त्यज लोग ही जा सकते थे। भद्रलोगों को तो दरवाजे से दाखिल हो कर सीधे सभा में जाना पड़ता था। और फिर जो चाहे अन्त्यजों में आकर बैठ सकता था और जो इस प्रकार उनके साथ जाकर बैठता था उसे अन्त्यजों के रास्ते से ही निकलना पड़ता था। स्वागत-समिति ने निश्चय किया था कि गांधीजी भी जन्म से तो भद्रलोग ठहरे इसलिए उन्हें भी भद्रलोगों के रास्ते से ही आना चाहिए। लेकिन गांधीजी तो अपने स्वजनों के लिए निर्णित किये रास्ते से ही गये। स्वागत मंडल में से किसीने इसपर आपत्ति प्रकट की। गांधीजी ने उन्हें समझाया लेकिन वे समझ ही नहीं सकते थे। जिस जगह सभा रक्खी गई थी उस ब्रह्मपुरी के मालिक साधु शिद्धुगरजी ने यह बात सुनी। वे यह सुनते चीढ़ गये और सभा छोड़ कर चले गये। गांधीजी तो अभी सभा में भी नहीं पहुंच पाये थे।

गांधीजी दो विभागों के बीच में खड़े किये मंच पर खड़े हो कर लोगों को समझाने लगे: 'साधुजी को सभा छोड़ कर चले जाने की कोई आवश्यकता न थी वे अपनी जगह पर बैठे मुझे स्पर्श किये बिना ही अभिनन्दन पत्र दे सकते थे। अब भी आप में से कोई मेरा यह संदेशा उन्हें पहुंचा सकते हो।' लेकिन किसी की भी यह संदेशा पहुंचाने की हिम्मत न चली। इतने में साधुजी ने ही सभा को खाली करने के लिए अपने आदमी भेज दिये और वे अपनी लाठीयों से अन्त्यजों को मार भगाने लगे। दूसरे दिन मैदान में सभा की गई और उसमें गांधीजी को अभिनन्दन पत्र दिया गया। गांधीजी ने शहर की सफाई के संबंध में और पहले दिन की घटना के संबंध में अपना दुःख प्रकट किया और और भी बहुत सी बातें कहीं।'

फिर मुंद्रा पहुंचे। मुंद्रा में जो कुछ हुआ उससे तो गांधीजी को मर्मवेदना हुई। कितने ही गृहस्थों ने यह दिखाने का भी प्रयत्न किया कि मुंद्रा में अस्पृश्यता है ही नहीं। लेकिन शाम को सभा हुई, उस समय दाहिनी ओर के अन्त्यजों के विभाग में मुंद्रा का एक भी शख्स न था। मुसल्मान भी भद्रलोगों में थे, अन्त्यजशाला के शिक्षक भी भद्रलोगों में थे। उस सभा में गांधीजी ने जो भाषण किया उसके प्रत्येक शब्द में से वेदना का रुधिर टपक रहा था। गांधीजीने कहा कि कच्छ में आ कर अब मुझे यह नया संबोधन 'अन्त्यज भाई और बहनें, और उनके साथ सहानुभूति रखनेवाले दूसरे हिन्दू भाई और बहनें'' शुरु करना पड़ता है। यह सच है कि कच्छ का प्रश्न सारे हिन्दुस्तान को हिला रहा है लेकिन मुझे कहीं भी ऐसा संबोधन करने का प्रसंग नहीं आया है। क्यों कि इस प्रश्न ने यहां पर जो रूप धारण किया है वैसा रूप उसने कहीं भी धारण नहीं किया था। पहले पहल भूज में जब यह बखेड़ा खड़ा हुआ था तब उसका फौरन ही निपटारा कर लेने के लिए मैंने भूज को मुबारकबादी दी थी लेकिन दूसरे स्थानों पर मुबारिकबादी देना मेरे दिल ने कुबूल नहीं किया है। जहां सारी प्रजा अस्पृश्यता को मानती है वहां मुझे बुलाना ठीक नहीं है। जहां अन्त्यजों का अनादर होता है वहां मुझे बुलाना मेरा अपमान करना है। यहां आ कर अन्त्यजों की शाला के संबंध में भी सुना। मुझे ख्याल हुआ कि उसमें अन्त्यजों की सेवा होती होगी। लेकिन इस शाला के लिए तो मैं इब्राहीम प्रधान साहब को धन्यवाद दूंगा। हिन्दू प्रजा को उसके लिए कुछ भी धन्यवाद नहीं दिया जा सकता है। उसका अस्तित्व ही हिन्दुओं के लिए लज्जा की बात है। मेरे लिए यदि कोई मुसल्मान शिवालय बनवा दे तो यह मेरे लिए लज्जा की बात है। शाला की कातने की और धुनकने की प्रवृत्ति को देख कर मुझे आनन्द हुआ था लेकिन फौरन ही मुझे यह ख्याल आया कि उसका पुण्य न मुझे है न हिन्दुओं को है। मेरे बजाय यदि मुसल्मान गायत्री पढ़ कर सुनावे तो उससे मेरा पेट कैसे भरेगा ? मुझे तो तभी संतोष होगा जब कोई ब्राह्मण आ कर यह कहे कि मैं गायत्री पढ़ कर सुनाऊंगा। लेकिन यहां पर जो काम हिन्दुओं को करना चाहिए वह खोजा लोग कर रहे हैं। यहां पर किसीको अन्त्यजों की कुछ भी नहीं पड़ी है। मेरे पास जो अन्त्यज लोग बैठे हैं उनमें मिहमानों के सिवा दूसरे कोई अन्त्यजेतरों को नहीं देख रहा हूं। दिन को जो लोग मेरे साथ थे वे भी *अन्त्यजों को* छोड़ कर भद्रलोगों के बाड़े में जा बैठे हैं। आज यदि आप मेरे सीने को चीर कर देखेंगे तो उसमें आप रुदन ही भरा हुआ पायेंगे। क्या यह हिन्दू-धर्म है कि जहां अन्त्यजों की किसी को कुछ भी नहीं पड़ी है। *इस गांव में अन्त्यजों की सहाय करनेवाला एक भी मनुष्य नहीं है !*

(नवजीवन)

• कवि ठाकुर और चरखा

वार्षिक मूल्य ४)
छमाही का „ २)
एक प्रति का -)|

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १२

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, अगहन बदी ५, संवत् १९८२ गुरुवार, ५ नवम्बर, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

संयुक्त प्रान्त की यात्रा

नाज़ुक मंच

मेरी बिहार यात्रा हाजीपुर में समाप्त हुई। हाजीपुर में बड़ी अच्छी व्यवस्था और शान्ति रही। राष्ट्रीय-शाला के छोटे छोटे मकानों में मुझे ठहराया गया था और उसीके सामने एक बड़ी भारी सार्वजनिक सभा की गई थी। लेकिन स्वयंसेवकगण व्यवस्था रखना जानते थे। भीड़ के लोगों को पहले ही से यह इत्तिला दे दी गई थी कि मैं और, भीड़ का एक आदमी ही बस आना और मेरे पैरों को छूना इत्यादि सहन करने के लिए असमर्थ हूं। इससे उस शाला के अहाते के चारों ओर सैंकड़ों आदमियों की भीड़ होने पर भी मुझे पूरी शान्ति मिली थी। बिहार में जितनी भी राष्ट्रीय शालायें है उनमें शायद इसी शाला की व्यवस्था सब से उत्तम है और इसमें शिक्षक भी उत्तम कोटि के है। बाबु जलकधारी, जो एक उत्तम चारित्र्यवान असहयोगी वकील हैं, इसके आचार्य हैं। हाजीपुर में करीब ५००० रु. की एक थैली भी भेंट की गई थी। इस प्रकार ऐसी आह्लादजनक समाप्ति के साथ और सोनपुर में उन हजारों लोगों को आराम पहुंचाने के लिए और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कि जो हिन्दुओं के नये वर्ष के पहले महिने की पूनों को वहां मेले में जमा होते है, एक सेवाश्रम खोलने की क्रिया करके मैंने बिहार की यात्रा समाप्त की। सोनपुर के इस मेले में उत्तमोत्तम घोड़े, हाथी और गाय, बैल इत्यादि और दूर दूर से आते है। इसके बाद मैंने संयुक्त प्रान्त में प्रवेश किया। बलिया में ही प्रथम मुकाम रहा।

बलिया जाने के लिए सिर्फ चार घन्टे का सफर करना पड़ा था। लेकिन इसमें मुझे बड़ी तकलीफ मालूम हुई। यहांकी सभा मुझे बड़ी ही कष्टप्रद मालूम हुई थी और बिहार में मुझे जो अनुभव हुआ था उसके विपरीत ही यहां अनुभव हुआ। जिस गाड़ी में हम लोग छपरा से बलिया गये वह बड़ी धीरे चलती थी, और कुछ मिनिटों के बाद ही स्टेशन आ जाते थे। हरएक स्टेशन पर एक बड़ी भारी भीड़ होती थी और लोग बड़ा शोर मचाते थे। स्वयंसेवक उन्हें रोकने में असमर्थ थे। मैं यह जानता हूं कि उनका मेरे प्रति अच्छा और अतिशय प्रेम था। मुझे १९२१ में ही बलिया जाना चाहिए था लेकिन मैं उस समय नहीं जा सका था। लोगों को इसलिए मेरे वहां जाने के संबंध में केवल अविश्वास सा हो गया था लेकिन जब मैं वहां सचमुच आ पहुंचा तो वे खुशी से पागल बन गये। स्वयंसेवक उन्हें अपने काबू में न रख सके। लेकिन ज्यों ही मैं उन्हें अपनी बात सुना सका और देशबन्धु-स्मारक फंड के लिए उनको समझा सका त्यों ही उन्होंने उदारता से रुपये देने शुरु किये। बलिया ही में स्टेशन पर जो भीड़ थी उसमें किसी प्रकार की भी व्यवस्था नहीं रक्खी जा सकती थी। अमरिकन मिशन के पादरी पेरिल साहब ने मेरे लिए अपनी मोटर स्टेशन पर लाने की कृपा की थी। मैं बड़ी मुश्किलों से उस मोटर तक जा सका था। लेकिन उस मोटर के कारण ही मुझे कोई हानि पहुंचने के पहले मैं उस भीड़ में से बाहर निकल सका था। स्टेशन से हम लोग सीधे वहांकी सार्वजनिक सभा में गये। वहां एक बड़ा भारी और ऊंचा मंच तैयार किया गया था। उसे देखते ही मैं यह समझ गया कि किसी नौसिखिये ने उसकी रचना की है और जितने आदमी की उसपर जगह रक्खी गई थी उतने आदमियों का वहां बैठना मुनासिब न था। वहां कुल सात अभिनन्दन-पत्र दिये गए थे। जिन जिन लोगों का इनके साथ संबंध था उन सबका वहां मंच पर होना स्वाभाविक था। उस मंच पर जाने के लिए जो सीढ़ियां बनाई गई थीं वे भी हिलती थीं, उसपर से फिसल जाने का डर बना रहता था और कोई सलामती न थी। यदि कोई उसपर जरा भी चलता फिरता कि सारा मंच हिलने लगता था। १० आदमियों का वजन भी वह नहीं सम्हाल सकता था और एक आदमी के लिए भी उसके कुछ भागों पर चलना भयकारी था। प्रमुख ने फौरन् ही यह समझ लिया कि किसी भी प्रकार की दुर्घटना से बचना हो तो यह आवश्यक है कि मुझे अकेले को वहां छोड़ कर और सबको वहां से हट जाना चाहिए। इसलिए वे सब धीरेधीरे मुझे राजेन्द्रबाबु के हाथों में सौंपकर नीचे चले गये। जिन्हें अभिनन्दन-पत्र पढ़ने थे वे एक के बाद एक इस प्रकार आते थे। और फिर भी, इतना ख्याल रखने पर भी, यह अन्देशा बना रहता था कि क्या मालूम किस समय वह मंच सारा का सारा ढेर हो जाय। ऐसा भयप्रद और कमजोर मंच देखने का यह मेरा पहला ही अनुभव न था। मुझे कम से कम दो दुर्घटनायें याद है। लेकिन यह सबसे अधिक कमजोर था। कुशल इंजिनियर लोग तो उसे देखते ही उसकी कमजोरी ताड़ सकते थे। लेकिन जिन्होंने उसकी रचना की थी उन्हें कुछ भी अनुभव न था। महासभा के कार्यकर्ताओं को इस उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और उन्हें बड़े बड़े मंच बनाने के लिए प्रयत्न नहीं करना चाहिए। यदि वे ऐसा मंच बनाना चाहें तो भी उन्हें कार्यकुशल

व्यक्तियों को ही यह काम सौंप देना चाहिए। स्वयंसेवक सभा को भी ठीक ठीक व्यवस्था में न रख सके थे। जब अभिनन्दन-पत्र पढ़े जाते थे उस समय भी शोर हो रहा था। लेकिन जब मैंने उनसे मेरी बातें सुन लेने के लिए बिनती की, वे सब संपूर्ण शान्त हो गये थे। इससे मैंने यह अनुमान निकाला कि बिहार की तरह यदि यहांपर भी कुछ पहले ही से तैयारी की गई होती तो उसका परिणाम भी अच्छा होता और बलिया में से जो कुछ भी कार्य कर सका उससे कहीं ज्यादा और अच्छा कार्य मैं कर सकता था। शान्त और लगातार काम करने की ही आवश्यकता है। बलिया में कुछ बड़े अच्छे कार्यकर्ता भी हैं और इसलिए उसे आज के बनिस्बत अधिक अच्छे कार्य का केन्द्र भी बनाया जा सकता है। मैं यह जानता हूं कि बलिया के लोग बड़े धैर्यवान और कष्टसहिष्णु हैं। उन्होंने १९२०-२१ में कुछ कम त्याग नहीं किया था।

काशी विद्यापीठ

बलिया से हम लोग काशी गये। वहां सीतापुर जाते हुए हमें लखनौ जाने के लिए गाड़ी बदलनी थी। बनारस में पांच घण्टे का मुकाम रहा। बाबु भगवानदास ने काशी विद्यापीठ के विद्यार्थियों की एक सभा रक्खी थी। म्युनिसिपलिटि के अधिकार में चलनेवाले मिडिल-स्कूलों में कताई और बुनाई के संबन्ध में जो अच्छा कार्य किया गया है उसे देखने के लिए भी वे मुझे ले गये थे। पाठकों को शायद यह याद होगा कि इस कार्य का आरंभ श्री रामदास गौड ने किया था और तबसे वह बराबर होता चला आ रहा है। इन शालाओं में चरखे और तकली दोनों का उपयोग होता है। यह आजमाइश ठीक ठीक सफल हुई कही जा सकती है। विद्यापीठ में मुझे उसका कारखाना दिखाया गया था। उसमें बढ़ई का काम बड़ा अच्छा होता है और उसमें तरक्की भी हो रही है। विद्यापीठ में चरखे की उन्नति अच्छी नहीं हुई है। मैंने अपने व्याख्यान में विद्यार्थीओं से और अध्यापकों से यह कहा कि यदि उन्हें चरखे में श्रद्धा नहीं है तो विद्यापीठ के पाठ्य-विषयों में से ही उसे उन्हें निकाल देना चाहिए। क्योंकि चरखे को राष्ट्रीय हलचल का एक अंग मानने का रिवाज पड़ गया है उसे इस प्रकार स्थान देने से कोई लाभ न होगा। वह समय अब आ गया है जब कि प्रत्येक राष्ट्रीय शाला को अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीति का विकास करना होगा और उसका विरोध होने पर भी उसे सफल करने का प्रयत्न करना होगा।

लखनौ में

बनारस से हम लोग लखनऊ गये। वहां कोई तीन घण्टे से ज्यादा मुकाम रहा। वहां मुझे लखनऊ म्युनिसिपलिटि ने अपनी तरफ से एक अभिनन्दन पत्र दिया। वह अभिनन्दन पत्र बड़े ऊंचे प्रकार की उर्दु में लिखा हुआ था। मेरे जैसे सादे मनुष्य को समझने के लिए, जो संयुक्त प्रान्त का निवासी नहीं है, भाषा को जितनी भी मुश्किल बनाई जा सकती थी उतनी ही उसे मुश्किल बनाने की खास कोशिश की गई थी। उसमें अरबी और फारसी के बड़े बड़े कठिन शब्दों का प्रयोग किया गया था। और ऐसा मालूम होता था कि मानों हरएक मामूली बोलचाल का शब्द और जिसका मूल संस्कृत से हो ऐसा एक भी शब्द उसमें न आने पावे इसके लिए खास कोशिश की गई थी। और इसीलिए मुझे उसका अंगरेजी अनुवाद दिया गया था। मैंने म्युनिसिपलिटि से कहा कि मैं उन्हें उनकी बड़े ऊंचे प्रकार की उर्दु के लिए मुबारिकबादी नहीं दे सकता हूं। मैं प्रान्तों की आपस की बोलचाल और व्यापार के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता का स्वीकार करता हूं लेकिन वह भाषा लखनवी उर्दु या संस्कृतमय हिन्दी नहीं हो सकती है। वह भाषा तो हिन्दुस्तानी ही हो सकती है और हिन्दी और उर्दु जाननेवाले लोग जिन शब्दों का आम तौर पर प्रयोग करते हैं उन्हीं शब्दों की वह बनी होगी। उसे हिन्दू और मुसलमान दोनों समझ सकेंगे। लखनऊ की म्युनिसिपलिटि काम कर के स्वराजियों के हाथों में है। उसके पहले के सभासदों के कार्य के बनिस्बत उनका कार्य भी कुछ कम महत्त्व का नहीं है। लेकिन मैंने मेरे उन श्रोताओं से यह कहा कि सिर्फ अपने पहले के कार्यकर्ताओं के समान ही काम कर सकने पर संतोष मान लेना ठीक नहीं है। महासभा के लोग जहां कहीं भी जिस किसी भी संस्था को हस्तगत कर लेते हैं वहां उन्हें अधिक अच्छा काम कर दिखाना चाहिए। और इसीलिए लखनऊ के रास्ते ऐसे खराब हैं यह विचारणीय वस्तु है। यदि रुपये की कमी उसका कारण है तो यह बहाना नहीं चल सकता है क्योंकि महासभावालों से तो यह आशा रक्खी जाती है कि वे स्वयं कुदाली और फावड़ा ले कर स्वेच्छा से मिहनत कर के रास्तों को दुरुस्त करें। मैंने म्युनिसिपलिटि को उसके खद्दर के प्रयोग के लिए मुबारिकबादी दी और उसे यह चेतावनी भी दे दी कि जबतक वे अपने शहर को सस्ता और अच्छा दूध न पहुंचा सकें तबतक उसे कभी भी संतोष नहीं होना चाहिए।

म्युनिसिपलिटि के अभिनन्दन पत्र में हिन्दू मुस्लिम प्रश्न पर जान-बूझ कर कोई बात न कही गई थी। फिर भी मित्रों (म्युनिसिपलिटि के बहुत से हिन्दू और मुसलमान सभासद मेरे मित्र थे) के साथ बातचीत करने में मैं इस प्रश्न को छोड़ न सका और इसलिए इन दोनों दलों में जो तनाजा बढ़ता जा रहा है उसपर मुझे कुछ कहना पड़ा। मैंने उनसे कहा कि हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों में कुछ भी क्यों न हो कमसे कम लखनऊ में तो दोनों दलों को अपने मत-भेदों को दूर कर के ऐसा ऐक्य कर लेना चाहिए कि कैसी भी स्थिति क्यों न उत्पन्न हो और हिन्दुस्तान के दूसरे भागों में कैसे भी झगड़े क्यों न चलते रहें उनका ऐक्य कभी टूटे ही नहीं।

मुझे चलते चलते लड़कियों के विद्यालय की भी मुलाकात करने का मौका मिला था। यह विद्यालय अमेरिकन मिशन का है और यह कहा जाता है कि सारे एशिया खण्ड के ऐसे विद्यालयों में यह सबसे पुराना है। मैंने उसमें देखा कि हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की लड़कियां वहां पढ़ती हैं। उन्होंने मुझे घेर लिया और वे अपनी हस्ताक्षरों की पुस्तक में मुझसे मेरे हस्ताक्षर करा लेना चाहती थीं। मैंने अपनी शर्त मना कर बहुतेरों को अपने हस्ताक्षर दिये हैं और वह शर्त यह है कि जो लोग मुझसे मेरे हस्ताक्षर चाहें उन्हें खादी पहननी चाहिए और नियमपूर्वक कातना चाहिए। मैंने लड़कियों को भी यह शर्त सुनायी। उन्होंने फौरन ही उसका स्वीकार कर लिया और वहां की मुख्याध्यापिका ने मुझे इस बात का यकीन दिलाया कि वह स्वयं इस बात का ख्याल रक्खेंगी कि वे अपना वादा धर्म भाव से पूरा करती हैं या नहीं।

सीतापुर में

लखनऊ से हम लोग मोटर में बैठ कर सीतापुर गये। वहां कोई १० बजे शाम को पहुंचे होंगे। मैं अपने मुकाम पर पहुंचूं उसके पहले ही मुझे हिन्दुसभा का अभिनन्दन पत्र ग्रहण करने के लिए उसकी सभा में जाना पड़ा था। मैंने उस अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए कहा कि मैं उस अभिनंदन-पत्र के योग्य नहीं हूं क्यों कि मैंने हिन्दुसभा के लिए अबतक कुछ भी काम नहीं किया है और मैंने उसकी कुछ हलचलों के विरुद्ध — यद्यपि मित्रभाव से — बहुत कुछ टीकायें भी की हैं। मैंने इसीलिए इस अभिनंदन-पत्र का स्वीकार किया है क्यों कि हिन्दू-धर्म

के प्रति मेरी भक्ति किसी से कुछ कम नहीं है। मैंने उनसे यह भी कहा कि जितनी भी धार्मिक हलचलें हैं वे सच्ची सेवा तभी कर सकती हैं जब कि वे सत्य और अहिंसा को संपूर्ण ग्रहण किये हुए हों। हिन्दूसभा से मैं सार्वजनिक सभा में गया। वहां म्युनिसिपल्टि की तरफ से अभिनन्दन पत्र दिया जानेवाला था। दूसरे दिन मैं अली-भाइयों के साथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परिषद में गया। उसके प्रमुख ने जो व्याख्यान दिया था वह और प्रकारों से अच्छा होने पर भी उसमें फारसी और अरबी का एक भी शब्द न आने पावे इसके लिए बड़ा ही ध्यान रक्खा गया था। इसलिए मुझे उन्हीं बातों को फिर वहां भी दोहरानी पड़ी जो मैंने लखनऊ की म्युनिसिपल्टि के अभिनन्दन पत्र के समय कही थीं। संस्कृतमय और बड़ी कृत्रिम हिन्दी उसी प्रकार त्याज्य है जैसे कि फारसी मिली हुई ऊंचे प्रकार की उर्दू। मैंने हिंदुस्तानी को इसीलिए एक सामान्य माध्यमिक भाषा मानी है क्योंकि उसे कोई २० करोड़ से अधिक लोग समझते हैं। यह भाषा कृत्रिम लखनवी उर्दू नहीं है और न सम्मेलनी हिन्दी है। कमसे कम सम्मेलन से तो ऐसे ही अभिनन्दन पत्र की आशा रक्खी जा सकती थी कि जिसे साधारण हिन्दू या मुसलमान कोई भी समझ सकता हो। वह प्राणि जो 'ईश्वर' का नाम लेता है लेकिन खुदा कहने से डरता है अथवा वह जो हर मरतबा 'खुदा' कहता है और 'ईश्वर' का नाम लेना पाप समझता है वह कोई मोहक प्राणि नहीं हो सकता है। मैंने उन श्रोताओं को यह भी याद दिलाई कि संयुक्त प्रान्त में हिन्दी प्रचार केवल हिन्दी साहित्य को सुधारने में और हिन्दी रविन्द्रनाथ को उत्पन्न करने के लिए वायुमण्डल तैयार करने में ही हो सकता है; और सम्मेलन को तो संयुक्त प्रान्त के बाहर हिन्दुस्तानी भाषा को लोकप्रिय बनाने में और दूसरी भाषाओं की पुस्तकें देवनागरी लिपि में प्रकाशित करने में ही अपना सारा ध्यान लगा देना चाहिए। मौलाना महमदअली ने मेरी पहली बात पर जोर दे कर कहा कि यदि हिन्दुस्तानी भाषा को अपने ही प्रान्त में लोकप्रिय बनाने के लिए किसी बाहरी कृत्रिम साधन की आवश्यकता है तो उसे एक सामान्य माध्यमिक भाषा बनाने के प्रयत्न को छोड़ देना होगा। दोपहर को मौ० शौकतअली के सभापतित्व में एक सभा हुई थी। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम ऐक्य पर व्याख्यान दिया था और अंत में चरखा और खादी के बारे में भी कुछ कहा था। उनके बाद मुझसे व्याख्यान देने के लिए कहा गया। मैंने उसी विषय पर व्याख्यान देना शुरू किया जिसका कि मौलाना साहब ने श्रोताओं को परिचय करा दिया था। मैंने उन्हें चरखा और खादी की आवश्यकता समझाई और यह कह कर मेरी दलीलें खतम की कि पटना में जो निर्णय हुआ है उसमें उन्हें सहायता करनी चाहिए। मेरे ख्याल में वह निर्णय कोई जबरदस्ती निर्णय नहीं हुआ था, बल्कि महासभा में आम जनता की राय का वह एक प्रतिबिंब था। पंडित मोतीलालजी ने मेरे बाद व्याख्यान दिया। उन्होंने पटना के निर्णय को बखूबी समझाया, उसकी हरएक बात पर विवेचन किया और चरखा और खादी में अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए यह कहा कि जबतक महासभा प्रधानतः राजनैतिक संस्था न बन जायगी तबतक वह लोगों की सम्पूर्णतया प्रतिनिधि संस्था न बन सकेगी। पंडितजी का वह प्रस्ताव जिसमें पटना के निर्णय का समर्थन किया गया था और चरखा संघ की स्थापना का अनुमोदन किया गया था पास करने के बाद सब प्रतिनिधि गुजराती तंबु में गये और वहां उन्होंने सीतापुर के गुजरातियों की दी हुई दावत का स्वीकार किया।

मेरी संयुक्त प्रान्त की यात्रा, यदि उसे यात्रा कह सकते हैं तो, लखनऊ से आये हुए हिन्दूसभा के शिष्टमण्डल के साथ लखनऊ के हिन्दू-मुसल्मानों के वैमनस्य के बारे में बड़ी लम्बी और हार्दिक चर्चा के बाद खतम हुई थी। मैंने उनसे कहा कि उनके झगड़े में पंच बनने का भार जो मैंने अपने सिर लिया है उसे मैं भूला नहीं हूं। मैंने गत वर्ष देहली में इसका भार अपने सिर लिया था लेकिन अब समय बदल गया है और अब एक भी दल अपना झगड़ा मेरे सामने पेश न करेगा। लेकिन यदि वे मुझे ही पंच बनाना चाहते हैं तो मैं बड़ी खुशी से लखनऊ जाने के लिए और उनका न्याय करने के लिए तैयार हूं। और जब उन्होंने मुझ से यह कहा कि वे मुझे पंच बनाने के लिए राजी हैं तो मैंने उनसे कहा कि वे मुसल्मानों के पास भी जायं और फिर मुझे इस बात को इत्तिला दें कि दोनों दलों के नेतागण मेरे दिये हुए न्याय को कबूल करने के लिए तैयार हैं या नहीं। इस प्रकार मेरी बिहार और संयुक्तप्रान्त की यात्रा समाप्त हुई।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

एक कातनेवाले का संकट

एक महाशय पत्र लिखते हैं कि चरखा-संघ के चन्दे के सूत को भेजने में जो डाकखर्च आता है वह सूत के दामों से भी बढ़ जाता है। क्या यह खर्च बचाने का कोई रास्ता नहीं है? क्या सब पेकेट रजीस्ट्री करा के ही भेजने चाहिए? यदि नहीं तो क्या वे बेरंग भेज दिये जाय? अहमदाबाद के प्रस्तावानुसार जब सूत अ. भा. खादी-मंडल को भेजा जाता था तभी इस आपत्ति पर तो विचार कर लिया गया था। अभी या कभी भी सारा का सारा डाक खर्च बचा लेना तो असंभव मालूम होता है। लेकिन आज म बहुत कुछ किया जा सकता है। सूत के पेकेटों को रजीस्ट्री करा के भेजने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। और बेरंग पेकेट भेजने से भी काम न चलेगा। डाक खर्च तो सूत भेजनेवालों को ही देना होगा। लेकिन इसकी कोई वजह नहीं मालूम होती है कि हर एक सभासद अपना सूत अलग अलग क्यों भेजे। हरएक गांव में या महोल्ले में जहां सभासद्गण एक दूसरे के नजदीक नजदीक रहते हों वहां उनमें से एक शख्स सब सूत एक जगह जमा कर ले और फिर सारा ही एक पारसल में बांध कर भेज दें। यदि उनमें से कोई काम करने के लिए तैयार हो जाय और उसकी जवाबदेही अपने सिर ले ले तो यह आसानी से हो सकेगा। और मासिक चन्दे के बारह हफ्ते अलग अलग भेजकर एक साल का चन्दा पूरा करना भी कोई आवश्यक नहीं है। जिन्हें काफी समय मिलता है वे एक महिने में ही १२००० गज सूत कात कर उसका एक पारसल बना कर भेज दे सकते हैं या फिर यदि चाहें मासिक चन्दे के रूप में भी भेज सकते हैं। उन्हें जैसी भी सुविधा हो वे कर सकते हैं। अब प्रश्न यह है कि इसमें रोजाना नियमपूर्वक कातने की बात कहां रही। चन्दा दे देने पर भी रोजाना नियमपूर्वक कताई हो सकेगी और इस प्रकार जो सूत तैयार होगा वह खुद कातने-वाले के अपने उपयोग में आ सकेगा। हाथकता १२००० गज सूत भेजने के कर्तव्य से रोजाना नियमपूर्वक कातने का कर्तव्य भिन्न है। और राष्ट्रिय दृष्टि से इसके आर्थिक पहलू पर विचार किया जाय तो भी यह आवश्यक है कि डाकखर्च बचाने के लिए जितना भी जल्दी हो सके १२००० गज सूत कात देना चाहिए। मुझे आशा है कि कुछ समय के बाद यह डाकखर्च बचाने के लिए, सूत देने के लिए योग्य केन्द्रों का प्रबन्ध कर दिया जावेगा।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, अगहन बदी ५, संवत् १९८२

कवि ठाकुर और चरखा

कुछ समय पहले जब सर रविन्द्रनाथ ठाकुर की चरखे पर टीका प्रकाशित हुई थी उस समय कुछ मित्रों ने मुझे उसका उत्तर देने के लिए कहा था। तब मैं बहुत काम में लगा हुआ था। इसलिए मैं उसका पूरा पूरा अध्ययन नहीं कर सका था। लेकिन मैंने उसे इतना अवश्य पढ़ा था कि मैं उसका प्रवाह किस ओर है यह समझ लूं। उसका उत्तर देने की मुझे कोई जल्दी न थी। यदि मुझे समय होता तो भी जिन्होंने उस टीका को पढ़ा था वे इतने उत्तेजित हो गये थे या उसके प्रभाव में इतने आ गये थे कि उस समय मैं जो कुछ भी लिखता, उसकी वे कदर न कर सकते थे। इसलिए उस विषय पर मेरे उत्तर लिखने का तो यही उचित समय है क्यों कि अब कविश्री की टीका और मेरे उत्तर पर, यदि उसे उत्तर कहा जा सकता है तो, निखालस राय कायम की जा सकेगी।

उस टीका का तात्पर्य कविश्री और आचार्य सील की चरखे के संबंध में जो स्थिति है उसके लिए अधीरता प्रकट करने के कारण आचार्य राय को फटकार बताना है और उसके प्रति मेरा एकांगी और अत्यधिक प्रेम होने के कारण मुझे भी कोमल शब्दों में फटकार सुनाना है। लोगों को यह समझ लेना चाहिए कि कविश्री उसकी आर्थिक महत्ता का इन्कार नहीं करते हैं। और उन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि इस लेख के लिखने के बाद उन्होंने देशबन्धु दास स्मारक फंड के लिए उसके प्रार्थनापत्र में अपने दस्तखत भी किये हैं। उन्होंने उस प्रार्थनापत्र को ध्यान पूर्वक पढ़ने के बाद ही उस पर दस्तखत किये थे और दस्तखत करते समय मुझे उन्होंने यह संदेशा भी भेजा था कि उन्होंने चरखे के विषय में एक लेख लिखा है जिसे पढ़ कर मुझे नाराजी होगी। मैं उस लेख को पढ़ कर नाराज नहीं हुआ हूं। मेरे विचारों से उनके विचार भिन्न होने से ही मैं क्यों नाराज होऊंगा? यदि हर एक मतभेद के कारण नाराज होना पड़े तो, क्योंकि किसी भी दो शख्स के मत एक नहीं हो सकते हैं इसलिए जीवन केवल प्रतिकूल वेदना का एक मात्र संग्रह हो पड़ेगा और केवल भाररूप होगा। इसके विपरीत स्पष्ट टीकाएं पढ़ कर तो मुझे बड़ी खुशी होती है। क्योंकि मतभेद के कारण हमारी मित्रता और भी गहरी होगी। मित्र को मित्र होने के लिए बहुत सी बातों में एकमत होने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन मतभेद में तीव्रता और कटुपन न होना चाहिए। मैं साभार इस बात का स्वीकार करता हूं कि कवि की टीका में ऐसी कोई तीव्रता या कटुपन नहीं पाया जाता है।

मुझे इतनी प्रास्ताविक बातें इसलिए कहनी पड़ी हैं क्योंकि यह अफवा चल रही है कि ईर्ष्या ही इस टीका का मूल है। इस प्रकार अकारण शंका करना दुर्बलता और असहिष्णुता का वायुमण्डल होना सूचित करता है। जरा सा विचार करने पर यह आक्षेप दूर हो सकता है। कविश्री मुझसे क्यों ईर्ष्या करेंगे। ईर्ष्या के लिए स्पर्द्धा का होना आवश्यक है। मैं जीवन में एक भी कविता लिखने में सफल नहीं हुआ हूं। कवि में जो कुछ है उसका अंश भी मेरे में नहीं है। उनकी सी महत्ता प्राप्त करने की मैं आशा नहीं रख सकता हूं। वे अपनी महत्ता के आप ही अधिकारी हैं। आज संसार में उनका सानी कोई दूसरा कवि नहीं है। कवि की इस स्पर्द्धारहित महत्ता का मेरे महात्मापन से कोई संबंध नहीं है। यह बात समझ लेनी चाहिए कि हमारे क्षेत्र अलग अलग हैं और कहीं भी एक दूसरे पर वे आक्रमण नहीं करते हैं। कवि अपनी ही सृष्टि की अद्भुत दुनिया में — अपने विचारों की दुनिया में रहते हैं और मैं किसी दूसरे की सृष्टि का — चरखे का गुलाम हूं। कवि अपनी वीणा के नाद पर अपनी गोपियों को नचाते फिरते हैं और मैं अपनी प्यारी सीता—चरखा के पीछे भटकता फिरता हूं और उसे दस मस्तक के रावण से — जपान, मान्चेस्टर, पारिस इत्यादि से — मुक्ति दिलाना चाहता हूं। कवि नया आविष्कार करते हैं। वे उसकी रचना करते हैं, उसका नाश करते हैं और फिर उसकी रचना करते हैं। और मैं तो केवल शोधक हूं। और इसलिए एक वस्तु का शोध पाने पर मुझे तो उसीको पकड़ कर बैठ जाना चाहिए। कवि तो दिन प्रति दिन दुनिया के सामने नई और मोहक चीजें रखते हैं। मैं तो सिर्फ पुरानी और जराजीर्ण वस्तुओं में छिपी हुई उनकी कार्यक्षमता को मात्र दिखाता हूं। संसार में उस जादुगर को बड़ी आसानी से गौरव का स्थान प्राप्त हो जाता है जो रोजाना नई नई खुश करनेवाली चीजें दिखाता है। इसलिए हम दोनों में कोई स्पर्द्धा हो ही नहीं सकती है। लेकिन मैं नम्रभाव से इतना कह सकता हूं कि हमारी हलचलें एक दूसरे की पूरक अवश्य हैं।

सच बात तो यह है कि कविश्री की टीका में कविश्री ने कविसुलभ स्वच्छन्द का उपयोग किया है और इसलिए जो कोई उसके सीधे अर्थ को ग्रहण करेगा वह अपने को बड़ी ही बेढब स्थिति में पायेगा। किसी पुराने कवि ने कहा है कि सालोमन अपने तमाम ठाटबाट के साथ हो तो भी वह एक कमल की शोभा को नहीं पहुंच सकता है। इसमें उसका आशय कमल की प्राकृतिक शोभा और पवित्रता के प्रति इशारा करना है और सालोमन के कृत्रिम ठाटबाट और वैभव के साथ, उसके बहुत से अच्छे कार्य होने पर भी, जो पापमय है उसकी तुलना करना है। या इसीमें कवि का स्वच्छंद देखो न; "सूई के सुराख में से ऊंट का निकल जाना आसान है लेकिन धनवान मनुष्य का स्वर्ग में जाना उतना आसान नहीं है।" हम यह जानते हैं कि सूई के छेद में से कभी भी ऊंट नहीं निकला है और न निकल सकता है और हम यह भी जानते हैं कि जनक जैसे धनवान मनुष्य भी स्वर्ग में गये हैं। अथवा मनुष्यों के दांतों की ही सुन्दर उपमा क्यों नहीं लेते, उसकी अनार के दानों के साथ तुलना की जाती है। जो मूर्ख औरतें इसका शब्दशः अर्थ करती हैं वे अपने दांतों की सुन्दरता को बिगाड़ देती हैं और उसे नुकसान भी पहुंचाती है। चित्रकार और कवियों को सच्चा चित्र खींचने के लिए प्रमाणों को बहुत कुछ बढ़ा देना पड़ता है। इसलिए जो लोग चरखे के संबंध में कविश्री के शब्दों का शब्दशः अर्थ करते हैं वे उन्हें अन्याय करते हैं और स्वयं अपने ही को नुकसान पहुंचाते हैं।

कविश्री यंग इंडिया नहीं पढ़ते हैं, उनसे यह आशा ही नहीं रक्खी जा सकती और उन्हें उसे पढ़ने की कोई जरूरत भी नहीं है। इस हलचल के बारे में जो कुछ भी वे जानते हैं वे सब उन्होंने सिर्फ इधर उधर की बातचीतों में से ही ग्रहण किया है। और इसलिए उन्होंने जिस बात को चरखा-धर्म की अतिशयता मान ली है उसीकी उन्होंने निंदा की है। वैसे वे यह मानते हैं कि मैं यह चाहता हूं कि सबलोग अपने और सब कामों से छोड़ कर दिनरात कातना ही करें।

अर्थात् मैं यह चाहता हूं कि कवि अपनी कविता छोड़ दे, किसान हल छोड़ दे, वकील वकालत छोड़ दे और डाक्टर अपना धंधा छोड़ दे। लेकिन यह बात सत्य से बहुत दूर है। मैंने किसीको भी यह नहीं कहा है कि वह अपना धंधा छोड़ दे। लेकिन मैंने तो उनसे यह कहा है कि वे राष्ट्र के लिए यज्ञ के तौर पर ३० मिनट कातने के लिए समय दे कर उसे और भी अधिक शोभा दें। मैंने भुक्खड़, पीड़ित स्त्री–पुरुषों को, जो लोग काम न मिलने के कारण आलसी बन कर बैठे रहते हैं, अपनी आजीविका प्राप्त करने के लिए कातने को अवश्य कहा है, और अधभूखे किसानों को भी अपने फुरसत के समय पर अपनी थोड़ी सी आमदनी में कुछ और बढ़ाने के लिए कातने को कहा है। यदि कवि भी रोजाना आध घंटा इस प्रकार कातने में समय व्यय करें तो उनकी कविता और भी अधिक भव्य और गहरी बनेगी। क्योंकि इस प्रकार उनकी कविता में आज के अनियंत्रित गरीबों के दुखों का और आवश्यकताओं का अधिक असरकारक प्रतिबिंब दिखाई देगा।

कविश्री का ख्याल है कि चरखे से राष्ट्र में मृत्यु के तुल्य एक सादृश्य-समानता दिखाई देगी और यह ख्याल कर के वे यदि हो सके तो उसका त्याग भी करना चाहते हैं। लेकिन सच बात तो यह है कि चरखे का काम ही हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों में जो आवश्यक और जीवन्त ऐक्य है उसको प्रकट करना है। भव्य और रंग बिरंगी भिन्नता होने पर भी प्राकृतिक रचनाओं में भी ध्येय, रूप और कार्य में एक प्रकार का ऐसा ऐक्य पाया जाता है कि जिसे हम कभी भी नहीं भूल सकते हैं। दो मनुष्य कभी भी एक से नहीं होते हैं, यमल लड़के भी एक से नहीं होते हैं। और फिर भी मनुष्य जाति में बहुत सी बातें एकसी और सामान्य होती हैं। और तमाम वस्तुओं की इस समानता के मूल में एक सामान्य चैतन्य व्याप्त है। इस ऐक्य के—अद्वितीय ब्रह्म-के सिद्धान्त को शंकराचार्य ने उसकी अंतिम लेकिन न्यायपुक्त और स्वाभाविक सीमा तक पहुंचा दिया है और उन्होंने इस बात को संसार के सामने जाहिर किया है कि सत्य एक ही है, ईश्वर एक ही है और जितने व्यक्त रूप दिखाई देते हैं वे केवल भ्रमरूप हैं, रज्जु में सर्प की तरह दिखाई देते हैं। हमें इस बात पर बहस करने की कोई जरूरत नहीं है कि जिसे हम देख रहे हैं वह क्या असत् है या इस संसार के मूल में जो वस्तु है और जिसे हम नहीं देख सकते हैं वह क्या सत् है। यदि आप की इच्छा हो तो आप दोनों ही को समान सत् कह सकते हैं। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं वह यह है कि सभी वस्तुओं में एक प्रकार का ऐक्य है। भिन्नता और असंख्य रूप होने पर भी उनमें ऐक्य है, सादृश्य है। और इसीलिए मैं यह मानता हूं कि धंधे भिन्न भिन्न होने पर भी सब लोगों के किसी एक धंधे में एक प्रकार का अनिवार्य सादृश्य और ऐक्य होना भी आवश्यक है। क्या खेती का काम बहुत से लोगों के लिए सामान्य नहीं है? और क्या बहुत दिनों पहले मनुष्य जाति के एक बहुत बड़े हिस्से के लिए कताई भी एक सामान्य धंधा न था? जिस प्रकार राजा और रंक को, दोनों को खाने की और कपड़े पहनने की आवश्यकता है उसी प्रकार दोनों को अपनी अपनी प्रधान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मिहनत करनी भी चाहिए है। राजा भले ही केवल यज्ञ के लिए और आदर्श के तौर पर यह मिहनत करे, लेकिन यदि वह अपनी तईं और अपनी प्रजा के प्रति सत्य की रक्षा करना चाहता है तो उसके लिए इतनी मिहनत करना अनिवार्य होगा। आज यूरप शायद इस अति आवश्यक बात को न समझ सकेगा क्योंकि उसने उन जातियों को जो यूरपियन नहीं हैं, नुकसान पहुंचा कर अपना काम कर लेना अपना धर्म मान लिया है। लेकिन यह धर्म भ्रममूलक है और इसलिए निकट भविष्य में उसका नाश हो ही जायगा। वे जातियां जो यूरपियन नहीं हैं अपनी हानि को हमेशा के लिए सहन न कर सकेंगी। मैंने इसमें से निकलने लिए एक रास्ता दिखाया है और वह शान्त और अहिंसामय होने के कारण गौरवास्पद और उदार भी है। मेरे इस रास्ते का वे इन्कार कर सकते हैं लेकिन उसका इन्कार करने पर एकही मार्ग बाकी रहेगा और वह है युद्ध की खींचातानी; उसमें हरएक की तरफ से एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न होता रहेगा। उस समय जब कि वे जातियां जो यूरपियन नहीं हैं यूरपियन जातियों को चूसने का प्रयत्न करेंगी तब चरखे का सत्य वे समझ सकेंगे। यदि हमें जीवित रहना है तो श्वासोच्छ्वास भी लेने होंगे लेकिन इंग्लैंड से हवा मंगा कर हम जिस प्रकार श्वास नहीं ले सकते हैं और न खाना ही वहां से मंगवा कर खा सकते हैं उसी प्रकार हमें कपड़े भी वहां से नहीं मंगाने चाहिए। मुझे इस सिद्धान्त को इस सीमा तक ले जाने में भी कुछ हिचकिचाहट नहीं होती है कि बंगाल को बंबई से और बंगालक्ष्मी से भी अपने लिए कपड़े नहीं मंगाने चाहिए। यदि बंगाल अपना स्वाभाविक और स्वतंत्र जीवन बीताना चाहे और हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों को या बाहर के किसी देश को भी चूस कर अपना फायदा कर लेने का विचार भी न करें तो जिस प्रकार वह अपने लिए अनाज तैयार कर लेता है उसी प्रकार अपने ही गांवों में उसे कपड़े भी तैयार कर लेने होंगे। यंत्रों को भी स्थान है, यंत्रोंने अपना स्थान प्राप्त भी कर लिया है। लेकिन मनुष्यों के लिए जिस प्रकार की मिहनत करना अनिवार्य होना चाहिए उसी प्रकार की मिहनत का स्थान उसे न ग्रहण कर लेना चाहिए। अच्छा सुधरा हुआ हल एक अच्छी चीज है। लेकिन अपने किसी आविष्कार से कोई शख्स ऐसा यंत्र बना सके कि उससे हिन्दुस्तान भर की सारी जमीन वह अकेला ही जोत सकता हो और हिन्दुस्तान की जितनी भी खेतीबाड़ी की उपज है उसपर, सबपर वह अपना ही अधिकार रख सकता हो, और लाखों लोगों को इससे बेकार हो जाना पड़े तो वे सब लोग निकम्मे और मूर्ख बन जायगे, और बहुत से ऐसे हो भी गये हैं। और यह भय है कि और भी बहुत से लोग उसी हालत को पहुंच जायंगे। घर में चलाने लायक यंत्रों में सुधार किये जांय तो मैं उसका स्वागत करूंगा। लेकिन मैं यह भी समझता हूं कि जबतक लाखों किसानों को उनके घर में कोई दूसरा धंधा करने के लिए न दिया जाय तबतक हाथ मिहनत से चरखा चलाने के बदले किसी और दूसरी शक्ति से कपड़े का कारखाना चलाना गुनाह है।

आयर्लैंड के साथ तुलना करने से कोई बहुत प्रकाश नहीं पड़ता है। वह हमें आर्थिक सहयोग की आवश्यकता समझाने के लिए सम्पूर्ण है। लेकिन हिन्दुस्तान की परिस्थिति जुदा होने के कारण हमलोग जुदे ही तरीके पर ऐसे सहयोग को सफल कर सकते हैं। हिन्दुस्तान के दुखों को दूर करने के लिए, यदि १९०० मील लंबे और १५०० मील चौड़े देश के अधिकांश लोगों को ही उससे फायदा पहुंचाना है, तो सहयोग करने के जितने भी प्रयत्न किये जायं वे सब चरखे को ही केंद्र मान कर उसीके आसपास किये जाने चाहिए। सर गंगाराम हमें एक आदर्श खेत का नमूना दिखा सकते हैं लेकिन जिनके पास रुपये नहीं हैं और जमीन सिर्फ २–३ एकड़ के करीब है, और जिन्हें उससे भी कम हो जाने का भय बना रहता है उन किसानों के लिए वह आदर्श खेत नहीं हो सकता है।

चरखे की केवल जय कर अर्थात् जिन्होंने अपने आलस्य का त्याग कर दिया है और सहयोग के लाभों को समझ लिया है उन लोगों से आ कर काम करनेवाला राष्ट्रीय एक ऐसा कार्यक्रम तैयार

करेगा कि जिससे उनमें से मेलेरिया का नाश हो, स्वच्छता बढे, गांवों के झगडे और लडाईयों का वहीं न्याय कर दिया जाय, ढोरों की रक्षा और अच्छी उत्पत्ति की जा सके, और ऐसी ही सैंकडों लाभ की हलचलें की जांय। जहां कहीं चरखे का ठीक ठीक प्रचार हुआ है वहां सब जगह, गांवनिवासियों की और कार्यकर्ताओं की शक्ति के अनुसार ऐसी उपयोगी हलचलें भी हो रही हैं।

कवि की सब दलीलों का विस्तार से उत्तर देने का मेरा इरादा नहीं है। जहां हमारा मतभेद सिद्धान्तों में नहीं है, और ऐसा मतभेद दिखाने का मैंने प्रयत्न किया है, वहां कवि की दलिलों में ऐसी कोई बात नहीं है जिसका कि मैं स्वीकार करके चरखे के संबंध में अपनी स्थिति कायम न रख सकूं। चरखे के संबंध में जिन बहुत सी बातों का उन्होंने मजाक उडाया है वे मैंने कभी भी नहीं कही है। चरखे में जिन गुणों के होने का मैं दावा करता हूं उनको उनके आक्रमण से कोई हानि नहीं पहुंची है।

एक बात ने, सिर्फ एक ही बात ने मुझे बडा दुःख पहुंचाया है। कवि ने फुरसद के समय की बातचीतों में सुना और उस पर विश्वास कर लिया है कि मैं राममोहनराय को बहुत छोटा [illegible] आदमी समझता हूं। मैंने कभी उन्हें यह नहीं कहा है और उन्हें छोटा तो कभी माना ही नहीं है। जिस प्रकार कवि की दृष्टि में वे बहुत बडे आदमी हैं उसी प्रकार मेरी दृष्टि में भी वे हैं। सिर्फ एक घटना को छोड कर मुझे याद नहीं है कि मैंने कभी उनके नाम का प्रयोग किया हो। मुझे एक मरतबा उनके नाम का प्रयोग करना पडा था और वह पश्चिमीय शिक्षा के संबन्ध में था। चार साल हुए मुझे याद है कि कटक की रेत में मैंने यह कहा था कि पश्चिम की शिक्षा प्राप्त किये बिना ही उत्तम प्रकार के संस्कार प्राप्त कर लेना संभवनीय है और जब किसीने इस सम्बन्ध में राममोहन राय का नाम दिया तब मुझे याद है कि मैंने यह कहा था कि वे उपनिषद इत्यादि ग्रंथो के अप्रसिद्ध रचयिताओं की तुलना में बहुत छोटे हैं। यदि मैं यह कहूं कि मिल्टन या शेक्सपीअर की तुलना में टेनीसन बहुत छोटा है तो इससे मैं टेनीसन के बारे में कोई हलका खयाल नहीं रखता हूं। मेरा तो यह दावा है कि इससे तो मैं उन दोनों की बडाई को और भी बढाता हूं। यदि मुझे कवि के प्रति भक्तिभाव है और वे जानते हैं मुझे उनके प्रति भक्तिभाव है तो मेरे लिए यह संभव नहीं कि मैं उस मनुष्य की बडाई को घटाने का प्रयत्न करूं कि जिसने बंगाल की सबसे बडी सुधारक हलचल के लिए क्षेत्र को तैयार किया था और जिस हलचल का सबसे बडा उत्तम फल स्वयं अपने ये कवि हैं।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

ऊन या रुई

एक मित्र पूछते हैं कि पहाडी लोग जो रुई का कभी इस्तेमाल ही नहीं करते हैं और जिनके पास बहुतसी ऊन रहती है और जो ऊन के ही कपडे पहनते है, क्या वे सूत के बजाय कता हुआ ऊन भेज कर महासभा के सभासद बन सकते है। पहाडी लोग कता हुआ ऊन भेज कर अवश्य ही महासभा के स[भास]द बन सकते हैं। रुई के ऊपर जोर नहीं दिया जा रहा [illegible] हाथ-कताई पर ही जोर दिया जा रहा है। और मैं आशा करता हूं कि महासभा के वे कार्यकर्ता जो पहाडी मुल्कों में काम कर रहे हैं जितने भी हो सके ऊन कातनेवालों के नाम महासभा और चरखा-संघ में दर्ज करावेंगे। (यं० इं०)

गोरक्षा की योजना

गोरक्षा का काम धीरे धीरे हो रहा है। मैं गो-सेवकों से यह कह सकता हूं कि उसकी गति एक क्षण के लिए भी नहीं रुकती है। मैं इसका दिन-रात विचार करता हूं। इसपर बहस भी काफी करता हूं। कच्छ में बहुत से गो-सेवक हैं और फिर कभी मैं कच्छ में आ सकूंगा इसकी मुझे कोई आशा नहीं है। इसलिए मैंने अपनी यह योजना उन्हें सुना कर कुछ रुपये भी इकट्ठे किये हैं। यह लिखने के समय तक तीन हजार के करीब रुपये इकट्ठे हो गये हैं और मुझे आशा है कि अभी और भी रुपये इकट्ठे होंगे।

कुछ मि[त्रों] ने मुझे गो-रक्षा की योजना उसके अंकों के साथ प्रकट करने को कहा है। वह योजना यह है।

(१) मरे हुए ढोरों का चमडा विदेशों में चला जाता है और कत्ल किये गये ढोरों का चमडा हमलोग अपने इस्तेमाल में लाते हैं। इसमें जो पाप होता है उसके लिए हमीं जवाबदेह हैं। उसे रोकने के लिए चमडे के कारखाने हमें अपना धर्म समझ कर चलाने होंगे। इसमें मुझे अब कोई सन्देह नहीं रहा है कि गोरक्षा का यह एक अंग ही बन जाना चाहिए। इस कार्य का आरम्भ एक चमडे का कारखाना अपने हाथ में कर लेने से ही हो सकेगा। इस कार्य के लिए आज सवा लाख रुपये की जरूरत है। इस कार्य में आखिर कुछ नुकसान न होना चाहिए और नफा तो कोई करना है ही नहीं, इसलिए इसमें किसीसे भी स्पर्धा होने का डर नहीं है।

(२) इस कार्य के लिए काम करनेवालों को भी तैयार करने होंगे। इसमें कुछ अध्ययन की भी आवश्यकता है। योग्य काम करनेवाले सीखने के लिए तैयार हों तो उन्हें शिष्यवृत्ति भी दी जायगी। इसमें मेरे हिसाब से सालाना कोई ५,००० रुपये खर्च होंगे।

(३) मंडल के लिए एक पुस्तकालय की भी आवश्यकता है। उसमें ढोरों का बढाना, उनका पालनपोषण करना, दूध के डेरी के कारखाने और चमडे के कारखाने इत्यादि विषयों से संबंध रखनेवाली पुस्तकें होनी चाहिए। इसमें कोई ३००० की आवश्यकता है। यह सिर्फ अन्दाज है।

(४) डेरी का प्रयोग करने के लिए अर्थात डेरी के कार्य में कुशल व्यक्ति को रोक कर उसका उससे रिपोर्ट तैयार कराने में, किसी शहर की उस दृष्टि से जांच कराने में, इत्यादि आरंभिक व्यय के लिए कोई १०००० रु. की आवश्यकता होगी।

इस प्रकार एक साल में इस योजना में रु. १,४३,००० खर्च होगा। चमडे के कारखाने में जो रुपये लागत के तौर पर लगेंगे। और उसकी तादाद कुल १,२०,००० रु. होती है। और दूसरा तैयारी और जांच का आरंभिक खर्च है।

मंडल का सामान्य खर्च इसमें नहीं गिना गया है क्योंकि यदि उसके सभासदों के चन्दों में से ही उसका खर्च न चल सके तो मंडल का होना मैं निरर्थक मानता हूं। मंत्री की नियुक्ति हो गई है। इसके लिए मैंने श्री० वालजी गोविंदजी देसाई को पसंद किया है। वे पहले गुजरात कालेज में और फिर हिन्दू-विश्वविद्यालय में अध्यापक का काम करते थे। उन्हें २०० रु. माहवार वेतन देना निश्चय हुआ है। इसके अलावा उनको मकान का किराया भी देना होगा। अभी तो वे आश्रम में रहते हैं इस लिए मकान का किराया नहीं दिया जाता है। लेकिन फिर कभी मकान के किराये के २५ रु. भी शायद उन्हें देने होंगे। आफीस के लिए अभी कोई दूसरा खर्च नहीं किया गया है।

दूसरे कार्यकर्ताओं को भी रखना होगा । लेकिन जैसे जैसे सभासद बढ़ते जायंगे वैसे वैसे इस काम में भी सुविधा होती जायगी । मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि किसी भी हालत में क्यों न हो रु. १,४२,००० का खर्च तो करना ही होगा, क्योंकि चमड़े का कारखाना और डेरी धर्मभाव से चलाये बिना गोरक्षा को मैं असंभवनीय मानता हूं ।

मुझे आशा है कि गो-सेवकगण इस महान कार्य में अवश्य ही मदद करेंगे ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

प्रश्नों के बंबगोले

यंग इंडिया के कुछ पाठक ऐसे हैं जो अक्सर बेढब प्रश्न पूछा करते हैं । लेकिन क्योंकि उससे उन्हें आनंद होता है मुझे इतनी असुविधा को भी सहन कर लेना चाहिए और वे कितने ही अरुचि-जनक क्यों न हों मुझे उनके प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए । पत्रलेखक महाशय अपना पहला वार इस प्रकार करते हैं ।

" पहली अक्तूबर के यंग इंडिया में चरखा-संघ के कार्यकारी मंडल के सभासदों के नामों में आपके नाम के आगे ' महात्मा ' शब्द लिखने के लिए कौन जवाबदेह है ? "

पत्रलेखक महाशय यह विश्वास रक्खें कि चरखा-संघ के सभासदों के नामों में महात्मा शब्द के आने के लिए उसका संपादक जवाबदेह नहीं है । जिन्होंने उसके विधि विधान को पास किया था वे ही उसके लिए जवाबदेह हैं । यदि मैंने उसके विरुद्ध सत्याग्रह किया होता तो यह शब्द वहां न रहता लेकिन मैंने इस गुनाह को इतना गंभीर नहीं माना है कि मैं उसके लिए सत्याग्रह जैसे भयंकर हथियार का उपयोग करूं । जबतक कोई ऐसी विपत्ति न आ पड़ेगी तबतक यह आपत्तिजनक शब्द मेरे नाम के साथ हमेशा लगा ही रहेगा ; और जिस प्रकार मैं उसे सहन करता हूं उसी प्रकार धैर्यवान आलोचकों को भी उसे सहन कर लेना चाहिए ।

" आप कहते हैं कि आप और दूसरे आपके साथ काम करनेवाले लोग उन मित्रों की उदारता पर अपनी आजीविका का आधार रखते हैं जो लोग कि सत्याग्रहाश्रम का खर्च पूरा करते हैं । क्या उस संस्था को जिसमें सशक्त शरीर के आदमी हों, मित्रों की उदारता पर उनकी आजीविका के लिए आधार रखना उचित है ? "

पत्रलेखक महाशय ' उदारता-दान ' का केवल शब्दार्थ ही समझ रहे हैं । इस संस्था का हरएक सदस्य स्त्री हो या पुरुष उसके कार्य में अपने शरीर और बुद्धि का—दोनों का पूरा उपयोग करता है । लेकिन फिर भी यह तो कहा ही जायगा कि इस संस्था का आधार मित्रों की उदारता पर ही है । क्यों कि वे जो कुछ भी उसे दान में देते हैं उसके बदले में उन्हें तो कुछ भी नहीं मिलता है । उसके लोगों की मिहनत का फल तो राष्ट्र को मिलता है ।

" जिसे टॉलस्टॉय ' रोटी के लिए मिहनत करना ' कहते हैं उसके बारे में आपका क्या अभिप्राय है ? क्या आप शारीरिक मिहनत कर के अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं ? "

सच पूछा जाय तो 'रोटी के लिए मिहनत करना' ये शब्द टॉलस्टॉय के हैं ही नहीं । उन्होंने दूसरे एक रशीयन लेखक बुदरफ से उसे ग्रहण किया था और उसका अर्थ यह है कि हरएक को रोटी पाने के लिए काफी शारीरिक मिहनत करनी चाहिए । इसलिए आजीविका का विशाल अर्थ करने पर यह आवश्यक नहीं है कि शारीरिक मिहनत करके ही आजीविका प्राप्त की जाय । लेकिन हर शख्स को कुछ न कुछ उपयोगी शारीरिक मिहनत अवश्य करनी चाहिए । अभी तो मैं शारीरिक मिहनत सिर्फ ५ में ही करता हूं । यह तो सिर्फ उदाहरण के लिए नाम मात्र है । मैं काफी शारीरिक मिहनत नहीं कर रहा हूं । और यह भी एक कारण है कि मैं अपने को मित्रों के दान पर जीनेवाला कहता हूं । लेकिन मैं यह भी मानता हूं कि हरएक राष्ट्र में ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता है कि जो अपना शरीर, मन और आत्मा सब कुछ राष्ट्र को अर्पण कर देते हैं और जिन्हें अपनी आजीविका के लिए दूसरे मनुष्यों पर अर्थात् ईश्वर पर आधार रखना पड़ता है ।

" मुझे ख्याल है कि आपने कहीं यह कहा है कि युवकों को अपनी आवश्यकतायें घटा देनी चाहिए और उन्हें साधारणतया सिर्फ १० रुपया माहवार खर्च करना चाहिए । क्या शिक्षित युवकों के लिए यह संभव है कि वे बिना पुस्तकों के, बिना किसी भी प्रकार की सफर किये, या बड़े बड़े आदमियों के संबंध में आये बिना रह सकेंगे ? यह सब करने के लिए रुपयों की आवश्यकता होती है । उन्हें बीमारी, वृद्धावस्था या ऐसी ही कोई दूसरी स्थिति में अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ बचा भी रखना चाहिए ।"

सुव्यवस्थित समाज में राष्ट्र के ऐसे सेवकों के लिए जिनका कि पत्र लेखक महाशय उल्लेख कर रहे हैं पुस्तकालय रहेंगे जिन कि वे मुफ्त में उपयोग कर सकेंगे । उनके सफर का खर्च भी राष्ट्र देगा । और उनका कार्य ही उनको बड़े बड़े आदमियों के संबंध में लावेगा । बीमारी वृद्धावस्था इत्यादि अवस्थाओं में भी राष्ट्र ही उसकी आजीविका की व्यवस्था करेगा । हिन्दुस्तान के लिए और किसी दूसरे देश के लिए भी यह बात कोई नई नहीं है ।

" पंचमाओं की हालत सुधारने के लिए मालूम होता है आप उनके लिए मन्दिर बनवाने की सलाह देते हैं । क्या यह सच नहीं है कि हिन्दुओं की बुद्धि पीढियां-गुजरी मन्दिरों में मर्यादित हो जाने के कारण उन्हें ईश्वर के उससे कुछ बड़े और विशालरूप का कुछ ख्याल भी नहीं होता है ? जब आप अस्पृश्यता को दूर कर करना चाहते हैं, जब आप अस्पृश्यों की कीमत बढाना चाहते हैं और उन्हें समाज में स्वतंत्रता और इज्जत देना चाहते हैं तो क्या आप वर्तमान समय में ऊंचे कहलानेवाले हिन्दुओं की बुराइयां, पाप और वहमों को भी नकल करने के लिए उन्हें उत्साहित करेंगे ? अस्पृश्यों का सुधार करते समय तमाम हिन्दु जाति का भी सुधार क्यों न करें ? कम से कम जहांतक मंदिर के ईश्वर से उसका संबंध है वहां तक उसका सुधार क्यों न करें ? अस्पृश्यों की वर्तमान सामाजिक असहायता दूर करने में हम उनके मन को और विचार को भी स्वतंत्र बनाने का प्रयत्न क्यों न करें ता कि इससे इस सामाजिक सुधार के कारण धर्म का रूप विशाल हो जाय और प्रत्येक वस्तु का बुद्धिपूर्वक विचार करने की दृष्टि प्राप्त हो ?

इसके साथ यह भी यहां दिखा देना चाहिए कि खादी का प्रचार कार्य सफल होने के लिए उसका उद्देश केवल विदेशी कपड़ों का बहिष्कार ही न होना चाहिए लेकिन कपड़े इत्यादि में पहनाव के संबंध में अराष्ट्रीय और यहां की आबहवा के प्रतिकूल जो बातें घुस गई हैं उन्हें भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । कुछ अंशों में इससे ऐसा कार्य हुआ भी है । "

मैं मन्दिरों का होना पाप या वहम नहीं मानता हूं । मनुष्यों के लिए पूजा का या भजन का एक सामान्य प्रकार होना और पूजा के लिए या भजन के लिए एक सामान्य स्थान का होना

आवश्यक मालूम होता है । मैं यह नहीं मानता हूं कि हिन्दुओं का मन्दिर या रोमन केथलिकों का गिरजाघर उसमें मूर्ति होने के कारण अवश्य ही कोई बुरा और वहम का स्थान होगा और मस्जिद या प्रोटेस्टंटो का गिरजाघर उसमें मूर्ति न होने कारण अच्छा और वहमरहित स्थान होगा । एक पुस्तक या क्रास के चिह्न से भी आसानी से मूर्तिपूजा हो सकती है और इसलिए उसमें भी वहम हो सकता है और बालकृष्ण और कुमारी मेरी की पूजा भी पूजा करनेवाले का उद्धार करनेवाली और वहम से रहित हो सकती है । इसका भक्त के हृदय की स्थिति पर ही सारा आधार रहता है । खद्दर के प्रचार कार्य में और अस्पृश्यों के लिए मन्दिर बनवाने में मुझे कोई समानता नहीं दिखाई दे रही है । लेकिन मैं पत्रलेखक की इस दलील को स्वीकार कर लेता हूं कि विदेशी कपडे के विरुद्ध हलचल में विदेशी हानिकर और अनावश्यक फैशन और रिवाजों के विरुद्ध हलचल भी शामिल होनी चाहिए । लेकिन उसके लिए अलग उपदेश की आवश्यकता नहीं है । साधारण तौर पर तो जिन लोगों ने खद्दर का स्वीकार कर लिया है उन्होंने ऐसे हानिकर और आबहवा के प्रतिकूल रिवाजों का और फैशन का त्याग कर ही दिया है ।

"मेरा यह ख्याल है कि आपने खिलाफत के काम में जो मदद की है वह इसलिए की है क्यों कि अपने भाई, हिन्दुस्तान के मुसलमानों के दिल को उससे चोट पहुंची थी । क्या किसी भी काम के विषय में उसकी सही सही योग्यता के बारे में पूरा संतोष हुए बिना ही केवल इस ख्याल से कि उससे किसी के दिल को चोट पहुची है, उसकी मदद करना उचित होगा ? अथवा क्या आपको इस बात का संतोष हो गया था कि खिलाफत का मामला योग्य और सच्चा था ? और यदि आपको संतोष हो गया था तो इस बात को ख्याल में रख कर कि वर्तमान टरकी ने इस ख्याल से कि उससे इस्लामी दुनिया में अनुचित और प्रबल धर्माभिमान फैलता है उस संस्था को जरासी देर में नष्ट कर दिया है, क्या आप उसके लिए अपने कारण बतायेंगे ?"

पत्र लेखक की यह दलील बिल्कुल सही है कि अपने भाई का मामला हो तो भी उसमें मदद करने के पहले उसकी परीक्षा कर के उसके उचित और न्याययुक्त होने का संतोष प्राप्त कर लेना चाहिए । मुसल्मानों का इस कार्य में साथ देने का जब मैंने निश्चय किया उसके पहले मुझे तो इस बात का संतोष हो गया था कि उनके मामले में उनके तरफ ही इन्साफ था । खिलाफत के मामले को उचित मानने के मेरे कारणों को जानने के लिए मैं उस समय की यंग इंडिया की फाइलें देखने की सलाह दूंगा । वर्तमान टरकी जो कुछ भी करता है वह सब उचित ही नहीं होता है । और अलावा इसके मुसल्मान लोग अपने रीति-रिवाजों में जो चाहे नई बातें दाखिल कर सकते हैं लेकिन जो मुसल्मान नहीं है वह उस धर्म में कोई नई बात दाखिल करने के लिए उन्हें नहीं कह सकता है । वह तो सिर्फ इतना ही कर सकता है कि उसका समर्थन करने के पहले यह देख ले कि सामान्य नीति की दृष्टि से वह उचित है या नहीं । मुझे इस बात का संतोष हो गया था कि खिलाफत की संस्था में कोई बात अनुचित न थी । जो मुसल्मान नहीं है ऐसे कितने ही दूसरे लोगों ने, जिसमें स्वयं लाइड जार्ज भी एक है, इस मामले में मुसल्मानों के पक्ष का ठीक होना स्वीकार किया था । और जो मुसल्मान नहीं है ऐसे लोगों के आक्रमण से ही इस संस्था की रक्षा करने में मैंने उसकी मदद की थी ।

"अफ्रीका में और यहां पर भी जब आप लडाई में जाने के लिए आदमियों को भरती करते थे उस समय क्या आप युद्ध के कार्य को मदद नहीं कर रहे थे ? आपके अहिंसा के सिद्धान्त के साथ इसका मेल कैसे मिलेगा ?"

दक्षिण आफ्रिका में घायलों की मदद करने के लिए और हिन्दुस्तान में लडाई पर जाने के लिए आदमियों की भरती करने में मैंने लडाई के कार्य की मदद नहीं की है लेकिन उससे मैंने ब्रिटिश साम्राज्य की ही मदद की थी । मुझे उस समय यह विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य आखिर हितावह साबित होगा । युद्ध के प्रति मुझे आज जितना तिरस्कार है उतना ही तिरस्कार उस समय भी था । जिस प्रकार आज मैं बंदूक नहीं उठा सकता हूं उसी प्रकार उस समय भी मैं बंदूक नहीं ले सकता था । लेकिन जीवन कोई सीधी लकीर तो है ही नहीं । वह तो कर्तव्यों का एक मजमा है और एक कर्तव्य अक्सर दूसरे कर्तव्य के विरुद्ध भी होता है, और मनुष्य को उनमें से किसी एक ही कर्तव्य को पसंद करने के लिए मजबूर होना पडता है । एक नागरिक की हैसियत से नहीं लेकिन युद्ध विरुद्ध हलचल करनेवाले एक नेता की हैसियत से ही मुझे उन लोगों को जो युद्ध की नीति का स्वीकार करते है, लेकिन कायरता, हलके ख्याल और ब्रिटिश सरकार के प्रति क्रोध के होने के कारण भरती नहीं होते थे, यह सलाह देनी पडी थी । मैंने उन्हें यह सलाह दी थी कि जबतक उन्हें युद्ध नीति में विश्वास है और वे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादार होना जाहिर करते हैं तबतक तो उनका यह फर्ज है कि वे लडाई में जाने के लिए भरती हो कर साम्राज्य की सहायता करें । मुझे हथियार चलाने की नीति में श्रद्धा नहीं है और वह अहिंसा धर्म के, जिसका की मैं इकरार करता हूं विरुद्ध है फिर भी मैं हथियारों के कानून को जिसे मैं भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार का सबसे बडा कलंक मानता हूं, दूर करने के लिए आरंभ की गई किसी भी हलचल का अवश्य ही साथ दूंगा । मैं यद्यपि तलवार का जवाब तलवार से देने की नीति को नहीं मानता हूं फिर भी चार साल पहले मैंने बेतिया के निकटवर्ती ग्राम के लोगों से यह कहा था कि वे अहिंसा के रहस्य को कुछ भी न समझते थे इसलिए उन्होंने अपने माल असबाब और लोगों की हथियारों से रक्षा न करने में अपना कायरता का ही परिचय दिया था । और पत्र लेखक महाशय जानते होंगे कि मैंने हिन्दुओं को अभी यह कहने में भी जरा हिचकिचाहट नहीं दिखाई है कि यदि उन्हें अहिंसा में संपूर्ण श्रद्धा नहीं है और वे उसपर अमल नहीं कर सकते हैं तो जो कोई भी उनकी औरतों को भगा ले जाय, चाहे उनसे, वे हथियारों के बल से भी उनकी रक्षा न करेंगे तो वे अपने धर्म और मनुष्यत्व के खिलाफ बडा भारी गुन्हा करेंगे । मेरा पहले का व्यवहार, मेरी ये सलाहें, मेरे अहिंसा धर्म के साथ केवल सुसंबद्ध ही नहीं मालूम होती हैं लेकिन वह उसका परिणाम ही है । इस सिद्धान्त को जबान से कह देना आसान है लेकिन उसको समझ कर स्पर्धा, दु:ख और विकारों से भरी हुई इस दुनिया में उसके अनुसार व्यवहार रखना बडा ही मुश्किल काम है । मैं उस शास्त्र की मुश्किलों को जो इसके लिए प्रयत्न कर रहा हो अब दिन प्रतिदिन अधिकाधिक समझ रहा हूं । और फिर भी मेरी यह श्रद्धा कि उसके बिना जीवन जीने योग्य नहीं है हमेशा दृढ होती जा रही है ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

सौजन्य हिन्दी नवजीवन ता. ५-११-२५

अखिल भारतीय चरखा संघ का चन्दा

अ० भा० च० सं० के मंत्रीजी लिखते हैं—

अखिल भारतीय चरखा संघ के सदस्य बनने की इच्छा रखने वाले कितने ही महाशयों ने हमसे यह पूछा है कि इस संबंध में उनको क्या करना है। कुछ ने तो महासभा और चरखा संघ के लिए अलग २ सूत भेजा है। कुछ सज्जनों ने जो कि महासभा का इस वर्षभर के चन्दे का २०००० गज सूत दे चुके हैं यह पूछा है कि उनका दिया हुआ सूत चरखा संघ के चन्दे में भी गिन लिया जायगा या नहीं। कुछ ने और २ शंकाएँ उठाई हैं। इन महाशयों की तथा इस काम से संबंध रखने वाले अन्य महाशयों की जानकारी के लिए, तथा इस खयाल से कि इस विषय की सारी शंकाएँ दूर हो जावें हम निम्न लिखित सूचनाएँ देना चाहते हैं:-

(१) जो महाशय चरखा संघ के अ वर्ग या ब वर्ग के सदस्य होना चाहें उनकी अवस्था १८ वर्ष से ऊपर होनी चाहिए और वे स्वभावतः खादी ही पहनते हों। उनको चाहिए कि इन सूचनाओं के अन्त में जो प्रार्थना-पत्र दिया गया है उसे भर के अपने चन्दे के सूत के साथ २ साबरमती भेज दें।

(२) अ वर्ग के लिए चन्दा १००० गज सूत प्रति मास और ब वर्ग के लिए २००० गज सूत प्रति वर्ष पेशगी देना होता है।

(३) चन्दे में जो सूता भेजा जावे वह (अ) सदस्य का खुद का काता हुआ हो (ख) एकसा और मजबूत हो (ग) ठीक तरह से एक ही तरह की अट्टियाँ बनाई हुई हों (घ) दोनों सिरे ठीक तरह बंधे हुए हों (च) अट्टियों में बराबर तारों की लच्छियाँ हों।

(४) चरखा संघ के जो सदस्य महासभा के भी सदस्य होना चाहते हों उनको अपने प्रार्थना-पत्र में यह बात साफ साफ लिखनी चाहिए।

(५) चरखा संघ के अ वर्ग के और ब वर्ग के सदस्य बिना ज्यादा चन्दा दिये हुए मात्र इच्छा दर्शाने से महासभा के सदस्य हो सकते हैं। यह भी जरूरी नहीं कि वे इसके लिए अलग २ प्रार्थना-पत्र भर के भेजें। उनको तो केवल अपने वर्ग के सामने अगर वे अ वर्ग के सदस्य हों तो अ+म और अगर ब वर्ग के सदस्य हों तो ब+म लिख देना काफी है।

(६) जो सूत महासभा के इस वर्ष के चन्दे के लिए दिया जा चुका है चाहे वह पूरा वर्षभर का २०००० गज क्यों न हो चरखा संघ के चन्दे में नहीं गिना जावेगा इस लिए जो चरखा संघ के सदस्य होना चाहें उनको चन्दा नये सिरे से भेजना चाहिए।

(७) जो महाशय महासभा को इस वर्ष का पूरा चन्दा यानी २०००० गज सूत दे चुके हैं अथवा जिन्होंने मार्च से सितम्बर तक का पूरा चन्दा यानी १४००० गज सूत दे दिया है वे बिना और चन्दा दिये हुए इस वर्ष के अन्त तक महासभा के सदस्य समझे जावेंगे।

(८) जो महाशय अबतक महासभा के सदस्य नहीं हुए हैं मगर अब महासभा और चरखा संघ दोनों के सदस्य होना चाहते हैं उनको चाहिए कि फौरन २००० गज सूत भेज दें और साथ में महासभा के सदस्य होने की इच्छा प्रकाशित करें। यदि वे अ वर्ग के सदस्य होना चाहेंगे तो उनका २००० गज सूत चरखा संघ के २ महीने के चन्दे में जमा कर लिया जावेगा और उसके पीछे उनको १००० गज सूत प्रति मास भेजते रहना होगा। और यदि वे ब वर्ग के सदस्य होना चाहेंगे तो वही सूत चरखा संघ के भी वर्षभर के चन्दे में जमा हो जावेगा।

(९) जो महाशय केवल महासभा के सदस्य होना चाहें उनको २००० गज सूत वर्षभर के लिए पेशगी भेज देना होगा और साथ में वह प्रार्थना-पत्र भर के भेजना होगा जिसका उल्लेख चरखा संघ के विधि-विधान की नवीं मद में किया गया है। इन महाशयों को यह याद रखना जरूरी है कि महासभा का वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक माना जाता है।

गुजरात	७२	१२	(२२)	श्री०	पुंजाभाई गोवर्धनदास	साबरमती	अ	२०००	अक्तूबर + नवम्बर
	७३	१२	(२३)	,,	बाडोलाल राणा	,,	अ	१०००	अक्तूबर
	७४	१२	(२४)	श्रीमती	चंचलबेन वी० राणा	,,	अ	१०००	,,
	७५	१२	(२५)	,,	गंगादेवी टी० सनाढ्य	,,	अ	२०००	अक्तूबर + नवंबर
	७६	१२	(२६)	श्री०	बालकृष्ण भावे	,,	अ	४०००	अक्तूबर से जनवरी
	७७	१२	(२७)	,,	मोहनलाल के० पंड्या	कठलाल	अ	१०००	अक्तूबर
	७८	१२	(२८)	,,	केशवलाल एम० गांधी	साबरमती	अ	१२६६	,,
	७९	१२	(२९)	श्रीमती	कस्तूरबाई एम० गांधी	,,	अ	१०६०	,,
	८०	१२	(३०)	श्री०	तोताराम सनाढ्य	,,	अ	२०००	अक्तूबर + नवंबर
	८१	१२	(३१)	,,	माधवलाल पटेल	,,	अ	४०००	अक्तूबर से जनवरी
	८२	१२	(३२)	,,	मगनलाल पी० देसाई	,,	अ	१०००	अक्तूबर
कर्णाटक	८३	१३	(१)	,,	गंगाधरराव देशपांडे	बेलगाम	अ	१०००	,,
	८४	१३	(२)	,,	डी० आर० मजली	,,	अ	१०००	,,
	८५	१३	(३)	,,	डी० ए० मुदबर	,,	अ	१०००	,,
	८६	१३	(४)	,,	डी० एम० अकवत	,,	अ	१०००	,,
	८७	१३	(५)	,,	एन० ए० कुलकर्णी	,,	अ	१०००	,,
	८८	१३	(६)	,,	एस० जी० कत्तूर	,,	अ	१०००	,,
	८९	१३	(७)	,,	एन० एस० हिवकर	,,	अ	१०००	,,
	९०	१३	(८)	,,	जी० वी० ककमरी	,,	अ	१०००	,,
	९१	१३	(९)	,,	वी० एस० कोन्नेर	,,	अ	१०००	,,
	९२	१३	(१०)	,,	एम० पी० बाडोहर	,,	अ	१०००	,,
	९३	१३	(११)	,,	वी० पी० नदगावदा	,,	अ	१०००	,,
महाराष्ट्र	९४	१५	(१)	,,	वासुदेव बी० दास्ताने,	जलगाव	अ	१०००	,,
	९५	१५	(२)	,,	गजानन एस० मवाणकर	साबरमती	अ	२०००	अक्तूबर + नवंबर
	९६	१५	(३)	,,	लालशंकर वी० रेवाशंकर,	सान्ताक्रुज	अ	१०००	अक्तूबर
	९७	१५	(४)	,,	के० आर० सामन्त,	कुडेवाडी	अ+म	१०००	,,
	९८	१५	(५)	,,	पी० वी० केशकर,	साबरमती	अ+म	२०००	अक्तूबर + नवंबर
	९९	१५	(६)	,,	एन० पी० पुन्ताम्बेकर,	भुसावल	अ	१०००	अक्तूबर
	१००	१५	(७)	श्रीमती	विद्यागौरी मेहता	,,	अ	१०००	,,
	१०१	१५	(८)	श्री०	जी० आर० गोसावी	,,	अ	१०००	,,
	१०२	१५	(९)	,,	बाई० ए० कडके	,,	अ	१०००	,,
	१०३	१५	(१०)	,,	बाबूसिंह बल्लूसिंह	,,	अ	१०००	,,
	१०४	१५	(११)	,,	जी० जी० चावरे	,,	अ	१०००	,,
	१०५	१५	(१२)	,,	चम्पालाल भूरमल	,,	अ	१०००	,,
	१०६	१५	(१३)	,,	ई० जी० डकारे	,,	अ	१०००	,,
	१०७	१५	(१४)	,,	जी० एम० प्रधान	,,	अ	१०००	,,
	१०८	१५	(१५)	,,	एस० आर० वालुंजकर	,,	अ	१०००	,,
पंजाब	१०९	१६	(१)	,,	मुलदयाल जुलाहा,	कमालिया	अ	२६०७	अक्तूबर+नवंबर
सिंध	११०	१७	(१)	,,	समुंदरसिंह मुरीजमल,	हैदराबाद	अ	२०२१	,,
	१११	१७	(२)	,,	उत्तमचंद जे० गिदवाणी	,,	अ	५०६१	अक्तूबर से जनवरी
	११२	१७	(३)	,,	गिरिधारी कृपलानी	साबरमती	अ	१०००	अक्तूबर
	११३	१७	(४)	,,	सेवकराम करमचन्द,	पुराना सक्कर	अ	१०००	,,
	११४	१७	(५)	श्रीमती	गंगाबाई के० आडवाणी	फीरोज	अ	१०००	,,
तामिलनाडु	११५	१८	(१)	श्री०	के० एम० सुब्रह्मण्यम्	साबरमती	अ	१०००	,,
संयुक्त प्रांत	११६	१९	(१)	,,	जवाहरलाल नेहरू	इलाहाबाद	अ	१०००	,,
	११७	१९	(२)	श्रीमती	कमला नेहरू	,,	अ	१०००	,,
	११८	१९	(३)	श्री०	महावीर प्रसाद मालवीय	,,	अ	१०००	,,
	११९	१९	(४)	,,	जमुना प्रसाद मथुरिया	साबरमती	अ	१०००	,,
	१२०	१९	(५)	,,	श्रीनिवास संगल	कुलपहाड	अ+म	५०००	अक्तूबर से फरवरी
	१२१	१९	(६)		स्वामी सहजानन्द	सिमरी	अ+म	४०००	अक्तूबर से जनवरी
	१२२	१९	(७)	श्री०	शुऐब कुरेशी	बम्बई	अ+म	१०८०	अक्तूबर
उत्कल	१२३	२०	(१)	,,	निरंजन पटनायक	बरहामपुर	अ	१०६७	,,
	१२४	२०	(२)	श्रीमती	किशोरीमणी देवी	,,	अ	१०००	,,
	१२५	२०	(३)	श्री०	महावीरसिंह	झारसुगुडा	अ	१०००	,,

एक प्रश्नमाला

वार्षिक	मूल्य ४)
छमास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)॥

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ११

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द } अहमदाबाद, कार्तिक सुदी १३, संवत् १९८५ गुरुवार, २५, अक्तूबर, १९२८ ई० { मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

ईश्वर-भजन

एक पारसी भाई ने ईरान से एक पत्र लिखा है और उसमें कितने ही गूढ प्रश्न पूछे हैं। मैं उन्हें यहां उन्हीं की भाषा में दिये देता हूं। उन्होंने दो तीन जगहों पर अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। मैं यहां पर उनका अनुवाद ही करता।

(१) "ईश्वर पर मेरी सम्पूर्ण श्रद्धा है। मैं मानता हूं कि ईश्वर की [illegible] अच्छी बुरी या भले काम जैसे कि लड़ाई, मरना [illegible], चोरियों का अपने [illegible] इत्यादि सभी बातें ईश्वर की ही खुशी से होती हैं और हम लोग न्यूनबुद्धी होने के कारण ईश्वर के कामों को समझ नहीं सकते हैं।

(२) "इससे मैं इस दुविधा में ही पड़ा रहता हूं कि जब सब चीजों को ईश्वर ही बनाता है और वही अपनी खुशी से सब कुछ करता है तब फिर मेरा सा तुच्छ मानवी खुदा की किस प्रकार सेवा कर सकता है। यदि गरीबी और दुःख खुदा ही की इच्छा से मनुष्य पर आ गिरते हैं तब फिर बड़ी बड़ी संस्थायें, अस्पताल, सदावत इत्यादि चलाने से ईश्वर की हम कैसे सहाय कर सकेंगे? क्या ईश्वर को मेरे जैसे आदमियों की मदद की दरकार है? वह सब कुछ कर सकता है, गरीबी, दुःख इत्यादि सब कुछ वह एक ही पल में दूर कर सकता है। लेकिन उन्हें वह स्वयं ही रहने देता है।

(३) "आप मुझे यह बतावें कि मुझे ईश्वर की सेवा किस प्रकार करनी चाहिए। यदि मैं गरीबों को अच्छी सलाह देने जाता हूं, उनके दुःखों को कम करने का प्रयत्न करता हूं तो मुझे यह ख्याल होता है कि ईश्वर के काम में मैं नाहक दखल डाल रहा हूं और वह मुझे कभी भी न करना चाहिए।

(४) "अब इस छोटी सी जिन्दगी में हमें ईश्वर को किस प्रकार भजना चाहिए? और इस दुनिया में जीवित रहने का हेतु ही क्या हो सकता है? मेरा मन इस गोरखधंधे में फंस गया है और मुझे यह नहीं मालूम कि कौन सा मार्ग सच्चा हो सकता है।"

ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी हिल नहीं सकता है तो फिर मनुष्य के लिये क्या करना बाकी रहेगा? यह प्रश्न अनादि है और वह सदा ही पूछा जायेगा। लेकिन उसका जवाब भी तो इसी सवाल के अन्दर है क्योंकि सवाल पूछने की शक्ति भी तो ईश्वर ने ही दी है। जिस प्रकार हम लोग एक नियम और कानून के वश रहते हैं उसी प्रकार ईश्वर भी रहता है। हमारा कानून और हमारा ज्ञान अपूर्ण होता है और इसलिए हम लोग अपने कानूनों का सविनय और अविनय भंग भी कर सकते हैं। लेकिन ईश्वर तो सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान है और इसलिए वह अपने कानून का कभी भी भंग नहीं करता है। उसके कानून में न कोई बात बढ़ाई जाती है और न कोई घटाई जाती है। उसके कानून और नियम अटल हैं। उसने हमें अनेक प्रकार के विचार करने की और उनमें से कुछ पसंद करने की, अच्छा बुरा समझने की शक्ति दी है और उसीमें हमारी स्वतन्त्रता का समावेश होता है। यह स्वतन्त्रता बहुत ही कम है। इतनी कम है कि एक ज्ञानी को यह कहना पड़ा कि एक जहाज के तख्ते पर घूमने फिरने की जितनी स्वतन्त्रता होती है उससे भी वह कम है। लेकिन चाहे जितनी भी कम क्यों न हो वह आखिर स्वतंत्रता तो है ही। वह कम होने पर भी इतनी अवश्य है कि मनुष्य इसके द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। दैव और पुरुषार्थ का युग्म कभी एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ता है। लेकिन मुक्ति के पथ पर चलनेवालों को दैव कभी बाधा नहीं पहुंचाता है। इसलिए हमें अब इसी बात का विचार करना चाहिए कि ईश्वर की सेवा किस प्रकार की जाय, उसका भजन कैसे किया जाय। ईश्वर की सेवा एक ही प्रकार से हो सकती है: गरीबों की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। एक चींटि की सेवा करने पर वह ईश्वर ही की सेवा होगी। लेकिन चींटियों के घरों के पास आटा डालने से उनकी सेवा न होगी। ईश्वर चींटि को कन और हाथी को मन देता है। चींटि को भी जो जानबूझ कर नहीं कुचलता है वही उसकी सेवा करता है और इसतरह जो ज्ञानपूर्वक चींटि को भी दुःख नहीं पहुंचाता है वह अन्य प्राणियों को और अपनी ही जाति के मनुष्य प्राणी को कभी भी दुःख न पहुंचावेगा। प्रत्येक स्थल पर और प्रत्येक समय पर सेवा का प्रकार बदलता रहता है, यद्यपि वृत्ति एक ही बनी रहती है। दुःखी मनुष्य की सेवा करने में ईश्वर ही की सेवा होती है लेकिन उसमें विवेक होना चाहिए। भूखे मनुष्य को भोजन देने से सेवा ही होगी यही मान बैठने का कोई कारण नहीं है। जो मनुष्य आलसी है, और दूसरे के भरोसे बैठा रहता है और भोजन की आशा रखता है उसे भोजन देना [illegible] उसे काम देना पुण्य का काम है और यदि वह काम करने

के लिए तैयार नहीं है तो उसे भूखा ही रखने में उसकी सेवा होगी। ईश्वर का नाम जपना, पूजा पाठ करना आवश्यक है क्योंकि उससे आत्मा की शुद्धि होती है और जो मनुष्य आत्मशुद्ध है वह अपना मार्ग स्पष्ट देख सकता है। लेकिन पूजापाठ ही कुछ ईश्वर की सेवा नहीं है। वह सेवा का साधन है और इसीलिए गुजराती कवि नरसिंह ने गाया है:

शुं थयुं स्नान सेवा ने पूजा थकी
शुं थयुं माळ ग्रही नाम लीधे

इस उत्तर में से तीसरे प्रश्न का भी उत्तर मिल जाता है। तीसरा प्रश्न है जीवन का हेतु? जीवन का हेतु अपने को पहचानना है। नरसिंह की भाषा में कहें तो

ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यो नहीं
त्यां लगी साधना सर्व झूठी

और आत्मतत्त्व-आत्मज्ञान, जीवमात्र के साथ अर्थात ईश्वर के साथ ऐक्य-तन्मयता सिद्ध करने से ही प्राप्त होता है। जीवमात्र के साथ ऐक्य करने के मानी है उनके दुःखों को समझ कर स्वयं दुःखी होना और उनके दुःख का निवारण करना।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अपने मत का प्रचार

हमलोगों में आजकल बहुत ही मतभेद दिखाई दे रहा है। मतभेद होने में कोई बुराई नहीं है लेकिन सच्चे और दिखाऊ मतभेद में जो भेद है उसे समझ लेना चाहिए। स्वतन्त्र मत जो कहे वही मनुष्य का स्वतन्त्र मत हो सकता है। लेकिन हमारे मन की स्थिति तो इंग्लैण्ड के राजा की सी है। इंग्लैण्ड के राजा का विचार स्वतंत्र कहां होता है? पार्लमेन्ट प्रस्ताव करती है और फिर उसे राजा के पास औपचारिक मञ्जूरी प्राप्त करने के लिए भेज देती है। राजा को उसपर हस्ताक्षर कर देने पड़ते हैं। ऐसी ही कुछ हालत हमारे मन की भी है। इन्द्रियं चाहे जैसा प्रस्ताव कर डालती हैं और मन उस पर हस्ताक्षर कर देता है। भेद केवल इतना ही है कि मन का स्वभाव तर्कशील होता है और इसीलिए दस्तखत करने के पहले वह अपने समाधान के लिए कुछ दलीलें भी तैयार कर लेता है। उसके बिना उसका समाधान नहीं होता है। इन्द्रियों के विरुद्ध तर्क करने का मानों उसे कुछ अधिकार ही नहीं होता है। सनातन धर्म की यह मर्यादा है कि यदि साधक को कुछ तर्क करना है तो उसे वेद के अनुकूल ही तर्क करना चाहिए, उसी प्रकार इन्द्रियों के अनुकूल तर्क करने का मन का भी व्रत होता है। ऐसे जो मत होते हैं वे सच्चे मत नहीं होते। वह तो केवल आत्मवञ्चना होती है। सुबह जल्दी उठने में इन्द्रियों को आलस्य होता है और इसलिए मन को भी वैसा ही मालूम होता है, और वह फिर उसीके अनुकूल दलीलें करने लगता है। जैसे 'सुबह जल्दी उठना उचित नहीं है क्योंकि उससे दिनभर शरीर में बराबर स्फूर्ति नहीं रहती है। और यह भी देखो न कि यदि ईश्वर को हमारा जल्दी उठना ही मञ्जूर होता तो उसने सुबह होने के पहले ही प्रकाश भी दे दिया होता।' ऐसी दलीलें करने पर मन को यह प्रतीत होता है कि अब उसका मत निश्चित हो गया है। हम लोग यह अवश्य कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपने मत की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। लेकिन हम लोग मत-स्वातंत्र्य के सही अर्थ को नहीं समझते है। इन्द्रियों का अधिकार चलने न दे और फिर स्वतंत्र मन हमें जो कुछ भी कहे वही हमारा स्वतंत्र मत होगा। मन में जिस किसी बात की स्फुरणा हो जावे उसे ही सच्चा मत नहीं कह सकते हैं लेकिन मन विवेक के साथ जिस बात की योजना करता है वही सच्चा मत होता है। यदि इस बात को हमेशा ध्यान में रक्खा जाय तो बहुत से मत-भेद दूर हो जायंगे।

इन्द्रियनिग्रह-पूर्वक हमें जो बात निश्चित मालूम होती हो उसी मत का प्रचार करना उचित होगा। लेकिन ऐसे मतों के प्रचार का उचित साधन आचार है, उच्चार नहीं। उच्चार से मत प्रचार करने की इच्छा करना केवल मोह है। और ऐसा मोह हम लोगों में बहुत भरा हुआ है। यदि हमारा मत उचित है तो उसके अनुकूल व्यवहार करने से उसका खुद बखुद प्रचार होगा। हमें सत्य पर विश्वास होना चाहिए। सत्य में अपना प्रचार करने की स्वयंभू शक्ति है। सत्य सूर्य की तरह स्वयंप्रकाशी है। सूर्य को जिस प्रकार कोई ढांक नहीं सकता है उसी प्रकार सत्य को भी कोई नहीं ढांक सकता है। आचार को छोड़ कर बाह्य साधनों से उसका प्रचार करने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। उसका कुछ भी परिणाम न होगा। उससे हिंसा बढ़ती है और असत्य का प्रचार होता है। प्रचार की भी मर्यादा होती है। सूर्य में कैसी जबरदस्त प्रचार-शक्ति है। फिर भी वह उसकी मर्यादा को जानता है। इसलिए वह संसार का 'मित्र' बन कर भी प्रचार कर सकता है। यदि कोई किवाड़ बन्द करके सो जाय तो सूर्य उसकी सेवा करने के लिए द्वार पर आ कर खड़ा रहेगा लेकिन द्वार को धक्का दे कर अन्दर न घुस पड़ेगा। लेकिन ज्यों ही द्वार खुला कि वह घर का सब अन्दर प्रवेश कर जाता है। यही प्रचार की मर्यादा है। हमारा मत सच्चा हो तो भी उसका प्रचार तो स्वाभाविक तौर पर ही होना चाहिए। मूक व्यवहार ही स्वाभाविक प्रचार-कार्य है। आचार का मौन छूटा कि हिंसा दाखिल हुए बिना न रहेगी। और हिंसा दाखिल हुई कि सत्य भी वहां से काफूर हो जायगा। आग जैसे पानी से बुझ जाती है उसी प्रकार सत्य भी हिंसा से उड़ जाता है। उसके अनुकूल व्यवहार न रक्खा जाय और प्रचार करने का प्रयत्न किया जाय तो यह खुली हुई हिंसा ही है। प्रचार कार्य जल्दी करना भी हिंसा है। उसके अलावा उसमें अश्रद्धा और अज्ञान तो अवश्य होता है। और उसे दंभ भी क्यों न कहें! बालक जब बीज बोते हैं और उसका अंकुर फूटने लगता है तब उसे जल्दी उगाने के लिए जैसे वे उसे खींच लेते हैं वैसा ही मामला यह भी है।

मत अर्थात इन्द्रियनिग्रही मन का विचार, और उसके प्रचार का साधन कृति है। यह दो सिद्धान्त निश्चित हो जाने पर सब बातें स्पष्ट हो जाती हैं। कृति के साथ प्रसंगानुसार कुछ और बातों की भी हम कल्पना कर सकते हैं। पतिव्रता स्त्री जिस प्रकार अपने पति का नाम नहीं लेती है उसी प्रकार कर्मयोगी भी अपने मत का उच्चार नहीं करता है। लेकिन इन दोनों ही पक्षों में हम अपवादों की कल्पना कर सकते हैं। किसी विशेष प्रसंग के उपस्थित होने पर अपना मत समझाने में कोई हानि नहीं है। लेकिन हमें केवल अपना मत ही समझाना चाहिए। दूसरे का खंडन करने का मोह छोड़ देना चाहिए। मत-प्रतिपादन के दो भाग हैं एक अपने मत का समझाना, और दूसरा विपक्षी का खण्डन करना। लेकिन ये विभाग केवल काल्पनिक हैं यथार्थ नहीं। दिया जलाना और अंधेरे को दूर करना कोई दो काम थोड़े ही हैं? सच पूछो तो दीपक जलाना ही एक सच्चा कार्य है। उसमें भी हम लोग तो दूसरे का खण्डन करने में ही अपनी शक्ति का अधिक व्यय करते हैं। दूसरे के मत का खण्डन करने से यह सिद्ध नहीं होता है कि हमारा मत सच्चा है। और सीधी सादी भाषा में अपना मत समझा देने पर दूसरे के मत का खण्डन करने की आवश्यकता नहीं होती है।

भूमिति में युकलिड ने किसी भी प्रकार का खण्डनवाद न चला कर केवल उसके सिद्धान्तों को ही सीधी भाषा में समझा दिया है। उन सिद्धान्तो का आज सारी दुनिया पर अधिकार है। दूसरे के मत का खण्डन करने का प्रयत्न करने में उसके मत के प्रति हमारा सूक्ष्म प्रेम ही कारण होता है। संत-साधुओं का कहना है कि भक्तिमार्ग में प्रेम से या द्वेष से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। बीभीषण अपने प्रेम के कारण और रावण अपने द्वेष के कारण तिर गये। इसका भावार्थ भी वैसा ही है जैसा कि ऊपर कहा गया है। मिल्टन ने अपने 'पेरेडाइज लोस्ट' में शैतान के दिल में सात्विकता के प्रति तात्विक द्वेष बतला कर उसके लिए पाठकों के हृदय में सहानुभूति पैदा की है। जिसके दिल में सात्विकता के प्रति तीव्र द्वेष होता है उसके दिल में सूक्ष्म रूप से सात्विकता अवश्य होती है। इसी प्रकार जो लोग तमोगुण का अतिशय निषेध करते हैं उनमें निसंदेह कुछ न कुछ तमोगुण अवश्य होता है।

जिस प्रकार विशेष प्रसंगो पर अपना मत समझाने की आवश्यकता का होना स्वीकार किया गया है उसी प्रकार ऐसे प्रसंगो की भी कल्पना की जा सकती है जब कि दूसरों की भूल उन्हें बताना भी आवश्यक होता है। लेकिन दूसरे के मत को निर्मूल करना एक बात है और दूसरे ही को निर्मूल कर फेंक देना दूसरी ही बात है। किसी के मत की भूल उसे बताते हुए उसे माननेवाले को ही बिच में ला कर उस पर टीका करना अनुचित है। नारियल की नरेटी को तोड़ कर उसमें से गिरी निकाल लेनी चाहिए। उसी प्रकार मनुष्य के मत (यदि वह गलत हो तो) को तोड़ कर उस मनुष्य को ग्रहण करना भी आना चाहिए। नदी टेढी होने से उसका पानी कुछ टेढा नहीं होता है और रोटी गोल होने पर भी उसका माधुर्य गोल नहीं बन सकता है, उसी प्रकार मनुष्य का मत दूषित होने से वह स्वयं दूषित नहीं हो जाता है। नदी का प्रवाह और रोटी का आकार जिस प्रकार बाह्य परिस्थितियों के कारण बना होता है उसी प्रकार मनुष्य के मत का भी आधार बाह्य परिस्थिति पर है। इसीलिए मत का विचार करते समय मनुष्य को अलग ही रखना चाहिए। बहुत मरतबा हम यह देखते हैं कि जो मत हमें कुछ समय पहले सही मालूम होता था वही मत आज हमें गलत मालूम होता है। जिन लोगों को विचार आने पर उसे फौरन ही लिख लेने की आदत है उनके लेखों पर से उनके मत की वृत्तियां धीरे धीरे किस प्रकार बदलती गई यह फौरन ही दिखाई देगा। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य, जबतक उनका विचार कृति में उतर कर, शरीर में पच कर हृदय में प्रवेश कर अपने आप बाहर व्यक्त नहीं होता है तबतक उसे प्रकट ही नहीं करते है। अपना ही पुराना मत वह कुछ भी क्यों न हो आज यदि हमें पसंद न आवें तो हम उसे छोड देंगे और प्रसंग उपस्थित होने पर उसका खण्डन भी करेंगे। लेकिन वह किस भावना से और किस प्रकार? दूसरों के मत का खण्डन करने का प्रसंग उपस्थित हो तो भी हमें उसी प्रकार उसका खण्डन करना चाहिए जैसे कि मानों हम अपने ही पुराने मत का खण्डन कर रहे हों। इससे भी अच्छा न्याय तो इस प्रकार हो सकेगा। अपने पुराने मत के प्रति हम कठोर दृष्टि से नहीं देखते है। हमें उसे कठोर दृष्टि से देखना सीखना चाहिए। दूसरों के मत के प्रति हम लोग हमेशा कठोर दृष्टि से देखते हैं, हमें यह कभी नहीं करना चाहिए। मनुष्य को स्वयं ही इस बात की ठीक ठीक खबर नहीं होती है कि उसका सच्चा मत क्या है। कदली के स्तंभ के समान मनुष्य के मन पर एक पर एक इस प्रकार कितने ही आवरण पड़े हुए होते हैं। इन आवरणों को दूर करके यदि देखें तो अन्दर का मन अत्यंत निर्मल शुद्ध और सरल दिखाई देगा। और यह बात भी हमेशा याद रखनी चाहिए कि कल का हमारा पुराना मत जिस प्रकार आज बदल गया है उसी प्रकार आज का मत भी चाहे वह कितना भी ठक क्यों न मालूम हो उसके कल बदल जाने की पूरी संभावना है। इससे यह मतलब नहीं है कि मनुष्य को हमेशा ही संदेह में पड़े रहना चाहिए। शंका में जरा भी न रहना चाहिए। आज जो मुझे ठीक जंचता है उसी के अनुकूल मुझे अपना व्यवहार रखना चाहिए। लेकिन दूसरों के मतों का खण्डन करते समय अपने अनुभव से सिद्ध अपने मतों की क्षणभंगुरता कभी भी न भूलनी चाहिए। किसी भी व्यक्त स्वरूप में सम्पूर्ण ईश्वर नहीं रह सकता है। उसमें उसका एक अल्पांश ही व्यक्त होता है। उसी प्रकार सम्पूर्ण सत्य भी हमारे मत में नहीं हो सकता है। जिस प्रकार ईश्वर का अंश एक ही वस्तु में नहीं होता है और थोडे बहुत परिमाण में सभी वस्तुओं में रहता है उसी प्रकार यह बात भी नहीं हो सकती है कि सत्य का अंश हमारे ही मत में रहे और दूसरों के मत में न रहे। दूसरों के मतों में भी कुछ सत्य तो अवश्य ही होगा। यह श्रद्धा ही सत्याग्रह का आधार है और सत्याग्रह की मर्यादा है। कोई भी मनुष्य, समाज या संस्था बिल्कुल ही सत्यहीन और ईश्वरहीन नहीं है। इसलिए सत्याग्रह से मनुष्य, समाज और संस्था कोई भी विजय प्राप्त कर सकता है। यही सत्याग्रह का आधार है और इसी कारण से हमारी दृष्टि में असत्य से अधिकृत मनुष्य, समाज और संस्था का प्रतिकार करने में हमें अहिंसामय साधनों का ही उपयोग करना चाहिए। यही सत्याग्रह की मर्यादा है। अर्थात मनुष्य के मत का विचार करते हुए अथवा उसके कृत्यों का प्रतिकार करते हुए भी मनुष्य को तो उसके मत और कृति से अलग ही रखना चाहिए। यही सत्याग्रह का मुख्य सिद्धान्त है।

इस उपदेश को ग्रहण करने की शक्ति ईश्वर हमें प्रदान करें :

(महाराष्ट्र धर्म) विनोबा

खादी किसे कहते है?

कितने ही लोग जिस प्रकार मिल के कते और बुने लेकिन मोटे कपड़े को खादी समझ कर पहनते हैं उसी प्रकार कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि हाथ से कते हुए सूत का बना हुआ सिर्फ मोटा और खुरदरा कपडा ही खादी है। लेकिन यह बात ठीक नहीं है। हाथ से कते हुए सूत का हाथ से बुना हुआ कैसा भी बारीक कपडा क्यों न हो वह खादी ही है। वह रुई की, रेशम की और ऊनकी भी हो सकती है। जिसे जो अनुकूल हो वही वह पहने। आंध्र की खादी बहुत ही बारीक होती है। आसाम में कुछ रेशम की खादी भी बनती है। काठियावाड में ऊन की खादी होती है। अर्थात खादी का गुण और उसकी विशेषता उसकी हाथ की कताई और हाथ की बुनाई है। साधारण तौर पर हाथ की कती और बुनी खादी मोटी और खुरदरी होती है इसलिए लोग यह मान लेते है कि खादी ऐसी ही हो सकती है। लेकिन साठ से अस्सी अंक के सूत की बारीक खादी भी बनती है। किन्तु जो लोग मोटी और खुरदरी खादी का ही उपयोग करते हैं वे जानते हैं कि मोटी खादी बदन को बडी मुलायम मालूम होती है और वह खुरदरी होने के कारण खाल की रक्षा भी करती है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक सुदी १३, संवत् १९८२

एक प्रश्नमाला

जब मैं लखनौ में था वहां के 'इंडियन डेली टेलीग्राफ' के सहायक संपादक ने मुझे उत्तर देने के लिए एक प्रश्नमाला दी थी। उनके प्रश्न बड़े दिलचस्प हैं इसलिए मैं उनमें से बड़े महत्व के प्रश्नों को मेरी तरफ से उनका उत्तर दे कर यहां प्रकाशित कर रहा हूं।

१. "क्या आप एक साल के भीतर या किसी निश्चित समय के अंदर ही अंदर सामुदायिक सविनय भंग आरंभ करने का कोई विचार रखते हैं?"

वर्तमान समय में मैं ऐसी कोई आशा नहीं रखता हूं कि किसी मर्यादित समय के अन्दर ही अन्दर मैं सामुदायिक सविनय भंग का आरंभ कर सकूंगा।

(२) "क्या आप इस कहावत को मानते हैं कि परिणाम से ही साधनों की उचितता समझी जाती है?"

मैंने इस कहावत को कभी भी नहीं माना है।

(३) "एक साल के पहले आपके बारे में यह कहा गया था कि आप सविनय भंग आरंभ करना चाहते थे और एक मरतबा आप उसका आरंभ कर चुके कि फिर कहीं कहीं अशांति दंगे हो भी जाय तो भी आप उसको बन्द न करेंगे। जनता के लिए सम्पूर्ण अहिंसा का पालन करना असम्भव होने के कारण क्या आप कुछ अंशों में हिंसा का भी जोखिम (उतना कम जितना कि आप से हो सकता है) उठा लेंगे और सविनय भंग का आरंभ करेंगे?"

एक साल पहले मैंने जो कहा था और आज भी फिर मैं दुबारा कहना चाहता हूं वह यह है कि अब मैं जिस किसी का कुछ भी आरम्भ करूंगा उसका आरंभ मुझे आशा है कि अब शर्तिया आरंभ न होगा लेकिन स्वतन्त्र होगा। और फिर उसमें जरा भी पीछे हटना न होगा। मैंने सविनय भंग को जब कभी रोक दिया है उस समय उसे सिर्फ किसी अशांति दंगे के हो जाने के कारण ही नहीं रोक दिया है। मैंने इस बात को जान लेने के बाद ही उसे रोक दिया है कि महासभा के लोगों ने ही जिन्हें इस बारे में अधिक विचारशील होना चाहिए था, ऐसी ज्यादती का आरंभ किया था और उसे उत्साहित किया था। किसी भी प्रकार की अशांति के कारण, जैसे कि मोपला-कांड के कारण, सविनय भंग रुक नहीं सकता था। लेकिन चौरीचौरा के कारण उसे रुकना पड़ा क्यों कि महासभावादियों का उसमें हाथ था।

(४) "कलकत्ते के दंगे में आपने सारा ही दोष हिन्दुओं मत्थे मढा था। लेकिन मारवाड़ियों के मण्डल ने या किसी हिन्दू संस्था ने आपकी राय के खिलाफ उज्र किया था और हिन्दुओं को जोश दिलाने में मुसलमानों का काफी दोष था यह साबित करने के लिए प्रमाण भी पेश किये थे। आपने यह वचन दिया था कि आपको यदि अपनी राय में भूल मालूम होगी तो आप उसे जाहिरा तौर पर स्वीकार कर लेंगे। तो क्या अब आप अपनी पहले की राय को बदल कर उसे जाहिर करेंगे?"

मुझे अपनी पहली राय बदलने के लिए अबतक कोई कारण नहीं मिला है।

(५) "आप म्युनिसिपल्टी (जो आज कल स्वराज दल के हाथों में है) के दिये हुए अभिनन्दन पत्र को तो स्वीकार करने के लिए राजी हो गये, लेकिन आपने हिन्दू-सभा के अभिनन्दन पत्र को क्यों टाल दिया? आप हिन्दू हो कर भी हिन्दू जनता की प्रतिनिधि संस्था के प्रति ऐसा अनुचित भेद-भाव क्यों रख रहे हैं?"

मैंने लखनौ की हिन्दू-सभा के अभिनन्दन पत्र को टाल नहीं दिया है बल्कि मैंने तो उनसे यह कहा था कि जब मैं लखनौ कि मुलाकात को आऊंगा तब मैं उनके अभिनन्दन पत्र का खुशी से स्वीकार करूंगा। म्युनिसिपल्टि के स्वराजी सभासद इसके बाद मुझे मिले और लखनौ हो कर मैं जा रहा था उस दरम्यान ही उनके अभिनन्दन पत्र को स्वीकार करने के लिए मुझसे आग्रह करने लगे। हिन्दू सभा भी वैसा ही कर सकती थी। उसमें टाल देने की तो कोई बात थी ही नहीं। मैंने तो सिर्फ यही ख्याल किया था कि जब मैं लखनौ हो कर सिर्फ जा ही रहा था उस समय वे मुझे अभिनन्दन पत्र देना नहीं चाहेंगे, खास कर के क्योंकि जब वे लखनौ में हिन्दू-मुसलिमों के तनाजे के बारे में मुझसे चर्चा करना चाहते थे। सीतापुर में मैंने हिन्दू-सभा के अभिनन्दन पत्र का बड़ी खुशी से स्वीकार किया था।

(६) "अमीनाबाद पार्क के आरती-नमाज के प्रश्न की तलवार एक साल से ज्यादह अरसा हुआ कि लटक रही है। यदि दोनों दल आपके निर्णय को कुबूल रखने का वचन दें तो क्या आप उस प्रश्न पर अपना निर्णय जाहिर करने की कृपा करेंगे?"

मैंने अपनी संयुक्त प्रांत की यात्रा के वर्णन में इस मामले की चर्चा की है।+

(७) "एक हिन्दू की हैसियत से इस मामले में आपकी क्या राय है?"

मुझे सब बातें मालूम नहीं हैं इसलिए मैं कोई राय नहीं दे सकता हूं। यदि मैंने पहले ही से अपनी राय कायम कर ली होती तो मैं यदि दोनों दल मेरा निर्णय कुबूल रखने के लिए राजी भी होते तो भी उनका पंच बनने के लिए कभी भी राजी नहीं हो सकता था।

(८) "मोहर्रम के दिनों में या ऐसे ही दूसरे अवसरों पर मुसल्मानों के बाजा बजाने का हिन्दू लोग तो कभी विरोध नहीं करते हैं। तो फिर हिन्दुओं के बाजों का मुसल्मानों को क्यों विरोध करना चाहिए? क्या हिन्दुओं को हर उपाय से अपने धार्मिक हकों का रक्षण करने का हक नहीं है?"

इस प्रश्न में दो प्रश्न ऐसे हैं जिनका असल हाल मुझे मालूम नहीं है। रहा तीसरा प्रश्न। हिन्दुओं को अपने धार्मिक हकों की हरेक प्रकार के साधनों से नहीं, लेकिन प्रत्येक सत्ययुक्त और मेरी राय में अहिंसात्मक साधनों से ही उनकी रक्षा करने का हक है।

(९) "पटना में दो भगाई गई लड़कीयां आपके सामने लाई गई थीं। एक हिन्दू की हैसियत से सारे हिन्दुस्तान में अबके लड़कीओं को भगा ले जाने की जो बदी फैल रही है उसके खिलाफ आप हिन्दुओं को क्या करने की सलाह देंगे?"

मैंने गत सप्ताह में इस नाजुक प्रश्न की चर्चा की है।

(१०) "क्या हिन्दुओं का, मुस्लिमों के खिलाफ कोई आक्रमणात्मक कार्य करने के लिए नहीं लेकिन अपने धार्मिक हकों की रक्षा करने के लिए और लड़के लड़कीयों को भगा ले जाने की बदी

+ इस यात्रा का वर्णन आगामी अंक में प्रकाशित किया जायगा।

ऐसी बदियों को दूर करने के लिए और हिन्दू जाति की शारीरिक, सामाजिक, नैतिक, और बौद्धिक उन्नति के लिए उनका अपना संगठन करना ठीक न होगा ?"

मुझे यह ख्याल नहीं होता है कि कोई भी शख्स इस प्रश्न में जिस प्रकार के संगठन की बात कही गई है वैसे संगठन का विरोध कर सकता है। मैं तो अवश्य उसका विरोध नहीं कर रहा हूं।

(११) "मौलाना शौकतअली ने आपके द्वारा बिहार खिलाफत कान्फरन्स को एक संदेशा भेजा था। यदि लाला लाजपतराय और पं. मालवीयजी किसी हिन्दू सभा को आपके द्वारा कोई सन्देशा भेजना चाहें तो क्या आपको उसमें कोई आपत्ति होगी ?"

मौलाना शौकतअली ने मेरे द्वारा बिहार खिलाफत कान्फरन्स को कोई भी सन्देशा नहीं भेजा है। यदि उन्होंने ऐसा किया भी होता तो भी यदि वह सन्देशा आपत्तिजनक न होता तो मैं अवश्य ही उनके सन्देशे को पहुंचा देता। यदि पं. मालवीयजी और लाला लाजपतराय मुझे ऐसा ही कोई काम सौंपे तो मैं उसे भी अवश्य ही करूंगा।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

बिहारयात्रा

५

मगुरी

यहां पर मगुरियों से, जिन्हें माथुर भी कहते हैं, मेरा परिचय हुआ। वे वैश्य जाति के हैं और पीढ़ियों हुई मथुरा और उसके आसपास के मुल्क से आ कर यहां बस गये हैं। वे मध्यम स्थिति के और शाकाहारी हैं। उनका प्रधान व्यवसाय व्यापार है। उनमें कुछ लोग तो कट्टर सुधारक भी हैं। उन्होंने खादी को अपना लिया है और वे यह अच्छी तरह समझते हैं कि गरीबों को उससे क्या फायदा होगा। उन्होंने अपने अभिनन्दनपत्र में यह कहा था कि वे असहयोग की हलचल को शुद्ध आत्मशुद्धि की हलचल समझते हैं और उसने उनके आंतरिक जीवन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। वे राजनीति में कुछ भी भाग नहीं ले रहे हैं। लेकिन वे अपनी जाति में सब प्रकार के सुधार दाखिल करने की भरसक कोशिश कर रहे हैं। असहयोग की हलचल का इतने लोगों पर जो नैतिक असर पड़ा है वही उसका सबसे अधिक स्थायी परिणाम है। उसके साथ ही साथ ऐसे परिणाम भी हुए हुए हैं कि जिनका हमें ख्याल तक नहीं है। मुझे यह भी संवाद मिला है कि संथाल जाति में भी ऐसा ही सुधार हुआ है। बहुत से शराब के आदी अब शराब को छूते तक नहीं है। उनमें जो हलचल हो रही थी उसे अब पहरा बन्द किया गया पहुंचा था। लेकिन अब उसकी हलचल फिर चल पडी है और १९२१ की तरह उसके हिंसात्मक हो जाने का अंदेशा भी नहीं रहा है। यदि संथालों की शराबखोरी से रक्षा की जायगी तो इनके जैसी सादी सीधी और बहादुर जाति को हम नष्ट होने से बचा सकेंगे।

लोकल बोर्ड के सभासदों का कर्तव्य

गिरीडीह में जो अभिनन्दन पत्र दिये गये थे उनमें बड़ी दिलचस्प बातों का जिक्र किया गया था। और चैबासा की तरह यहां भी गोशाला समिति की तरफ से एक अभिनन्दन पत्र दिया गया था। लोकल बोर्ड की तरफ से जो अभिनन्दन पत्र दिया गया था उसमें उसकी हुकूमत के मातेहत रास्तों की खराब हालत का होना भी कबूल किया गया था और उसका सबब रुपयों की कमी का होना बताया गया था। मैंने इसका उत्तर देते हुए बेधड़क उन्हें यह कह दिया कि जब लोकल बोर्ड के सभासद महासभावादी हैं तब रुपयों की कमी का होना रास्तों को खराब हालत में रखने का कोई कारण नहीं हो सकता है। रास्ते भी तो राष्ट्रीय धन हैं। महासभावादी राष्ट्र के सेवक हैं और लोकल बोर्ड में जाने से रास्तों की देखभाल करना अब उन्हीं के जिम्मे आ पड़ा है तब चाहे रुपये हों या न हों उनका तो यह फर्ज है कि वे रास्तों को दुरुस्त रक्खें। वे हरएक अच्छी बात के लिए सरकार से भले ही युद्ध करें लेकिन उन्हें रचनात्मक कार्य के प्रति जरा भी ला-परवाही न दिखानी चाहिए। यदि वे अपने इस कार्यभार को अच्छी तरह नहीं सम्हाल सकते हैं तो उन्हें अपनी जगह का इस्तिफा दे देना चाहिए। रुपयों की कमी के कारण इस्तिफा दे देने की जरूरत नहीं है क्योंकि स्वेच्छा से मिहनत करने से भी यह कमी पूरी की जा सकती है। ऐसे बोर्डों के सभासदों को चाहिए कि वे स्वयं कुदाली और फावड़ा लेकर, कमर बांध कर रास्तों पर कार्य करने के लिए निकल पड़ें और अपनी मदद के लिए स्वयंसेवकों को बुला लें। इससे प्रजा उनको आशीर्वाद देगी, मूक ढोरों का आशीर्वाद भी उन्हें प्राप्त होगा और बड़े अधिकारी भी उनकी इज्जत करेंगे। हर जगह म्युनिसिपलिटि का बहुत सा कार्य तो बेशक उसके सभासद ही, अधिकार की रू से नहीं किन्तु स्वेच्छा-पूर्वक की गई प्रजा की मदद से अपने आप करते हैं। स्वर्गवासी श्री जोसेफ चेम्बरलेन, सिर्फ म्युनिसिपलिटि के तनख्वाह पानेवाले नोकरों की मदद से ही नहीं बल्कि बरमिंगहाम-निवासियों की स्वेच्छापूर्वक की गई आर्थिक और दूसरे प्रकार की मदद के कारण ही बरमिंगहाम को मूर्तियों से और सुन्दर सजावटों से सजा हुआ स्वच्छ नगर बना सके थे। अपने नागरीकों से इच्छापूर्वक और अत्यधिक मदद मिलने के कारण ही तो ग्लासगो की म्युनिसिपलिटि थोड़े ही दिनों में और अनुकरणीय रूप से प्लेग के आक्रमण को दूर कर सकी थी। यह तो मेरे अनुभव की बात है कि जोहान्सबर्ग की म्युनिसिपलिटि ने भी प्लेग के वैसे ही आक्रमण को उसी प्रकार कुछ ही दिनों में नष्ट कर दिया था। प्लेग का समूल नाश करने के लिए उसने इस कार्य में रुपयों का कुछ भी हिसाब न रक्खा था। उसने बाजार की जगह और मकानों को सब को जला दिया और उसके दृढ़ नागरीकों ने अपनी धन दौलत सब इसमें लगा दी थी। मैंने अपने श्रोताओं से कहा कि यदि लोकल बोर्ड के पास काफी रुपया नहीं है तो उसके सभासदों को महासभा के स्वयंसेवकों की मदद से रास्तों की स्वयं दुरुस्ती करने के लिए जो मैं कहता हूं, उसमें मैं उनको कोई बड़ा बहादुरी का काम करने को नहीं कह रहा हूं। यदि हमने म्युनिसिपलिटि और लोकल बोर्डों पर कब्जा कर लिया है तो अधिकार की रू से हमारे जिम्मे जो जो रचनात्मक काम आवें उन्हें अच्छी तरह पूरा करने की हमारी शक्ति हमें दिखा देनी चाहिए।

गो-रक्षा

गिरीडीह की गोशाला समिति के अभिनन्दन पत्र में लिखा था की उसको दान इत्यादि से सालाना रु ५००० की आमदनी होती है और दूध इत्यादि से रु २००० की सालाना आमदनी होती है। इससे पाठकों को यह याद आवेगी कि चैबासा का सा हाल यहां भी है। बातें तो बहुत होती हैं लेकिन काम कुछ भी नहीं होता। आदर्श गोशाला अपने शहर को अपने ही पाले हुए ढोरों का अच्छा और सस्ता दूध काफी परिमाण में पहुंचाती है और कत्ल किये हुए ढोरों के नहीं बल्कि मरे हुए ढोरों के चमड़े से बने हुए खासे चलनेवाले जूते तैयार करके देती है। ऐसी गोशाला शहर के मध्य में या उसके आसपास कहीं नजदीक में

एक या दो एकड़ जमीन पर नहीं हो सकती है। लेकिन वह तो शहर से दूर जंगल में ५०–१०० एकड़ जमीन पर ही हो सकेगी। वहां डेरी और चमड़े का कारखाना भी होगा और वे पूर्ण व्यवसाय की दृष्टि से और उनकी राष्ट्रीयता का ख्याल रख कर चलाये जायेंगे। इससे ब्याज और नफे का हिस्सा भी न बांटा जा सकेगा और कोई नुकसान भी न उठाना होगा। कुछ समय के बाद जब सारे हिन्दुस्तान में जगह जगह ऐसी गोशालायें बन जायंगी तब वह समय हिन्दू-धर्म की सम्पूर्ण सफलता का समय होगा, और यह गोरक्षा अर्थात् चोपायों की रक्षा के संबध में हिन्दुओं की सचाई का प्रमाण होगा। इससे हजारों आदमियों को, शिक्षित मनुष्यों को भी प्रामाणिक रोजी मिलेगी; क्योंकि डेरी और चमड़े के काम में बड़े ही ऊंचे प्रकार के वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता है। डेरी संबधी उत्तमोत्तम अनुभवो के लिए हिन्दुस्तान ही आदर्श राज्य हो सकता है, डेन्मार्क नहीं। और हिन्दुस्तान को सालाना ९ करोड़ रुपयों का मरे हुए ढोरो का चमड़ा विदेशों को नहीं भेज देना चाहिए और कत्ल किये हुए ढोरों का चमड़ा उसे अपने उपयोग में नहीं लाना चाहिए; क्योंकि यह उसके लिए लज्जा की बात है। और यदि यह भारत के लिए लज्जा की बात है तो हिन्दुओं के लिए तो यह और भी अधिक लज्जा की बात है। मै चाहता हूं कि गिरीडीह के अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुए मैंने जो कुछ कहा है उस पर सभी गोशाला समितियां ध्यान देंगी और वे अपनी गोशालाओं को सभी प्रकार की बुड्ढी और निकम्मी गौओं का आश्रयस्थान, आदर्श डेरी और चमड़े के कारखानों में बदल देंगी।

कौन काते?

गिरीडीह के अभिनन्दन पत्र में जो तीसरी दिलचस्प बात कही गई थी वह है मजदूरों का न कातना। गिरीडीह में कुछ अभ्रख की खानें भी हैं। उन खानों में बहुत से मजदूर काम करते है। ये मजदूर लोग कातने से जितनी मजदूरी मिल सकती है उससे कहीं अधिक मजदूरी पाते है और इसलिए वे बिल्कुल ही नहीं कातते हैं। सच बात तो यह है कि उस अभिनन्दन पत्र में इसके लिए कोई क्षमा मांगने की आवश्यकता न थी। यं. इं. के पाठक यह जानते हैं कि मैंने यह कभी नहीं कहा कि वे लोग भी, जो किसी ऐसे व्यवसाय में लगे हुए हैं जिससे कि उन्हें अच्छी आमदनी होती है, अपने व्यवसाय को छोड़ कर कातने ही को पसंद करें। मैंने तो बार बार यही कहा है कि उनसे ही कातने की आशा रक्खी जा सकती है और उन्हीं से कातने के लिए कहना चाहिए जो किसी आमदनीवाले व्यवसाय में नहीं लगे हुए हैं, और वह भी उस समय जब उन्हें फुरसद हो। कताई की कल्पना का सारा आधार ही इस बात पर है कि इस देश में लाखों स्त्री पुरुष ऐसे हैं जिन्हें साल में कम से कम चार महीने कुछ भी काम नहीं होता है और वे आलसी बने बैठे रहते हैं। इसलिए दो ही वर्ग के लोगों से कातने की आशा रक्खी जा सकती है। एक तो वे हैं जो कताई की मजदूरी लेकर कातते हैं, और जिनका कि मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूं। और दूसरे भारत के वे विचारशील लोग हैं जिन्हें त्याग भाव से उदाहरण पेश करने के लिए और खद्दर को सस्ता करने के लिए कातना चाहिए। लेकिन यद्यपि मैं यह समझ सकता हूं कि ये मजदूर लोग कातते क्यों नहीं हैं, फिर भी मैं यह नहीं समझ सकता कि वे लोग खादी क्यों नहीं पहनते हैं। उस बड़ी सभा में एक भी शख्स ऐसा नहीं था जो खादी न पहिनने के लिए कोई कारण दिखा सकता हो। गिरीडीह अपना सूत आप तैयार कर सकता है और उससे बिना किसी कठिनाई के अपने लिए खादी भी तैयार कर सकता है। यदि वे यह नहीं चाहते हैं तो वे तैयार खादी प्राप्त कर सकते हैं और वह प्रमाण में कुछ सस्ती भी होगी। लेकिन मैं देख रहा हूं कि उन अभिनन्दन पत्रों में खादी और चरखे के सम्बन्ध में यद्यपि उन्होंने अपनी त्रुटियों का स्वीकार किया था फिर भी मुझे डर है कि उनकी यह स्वीकृति निकट भविष्य में कोई सुधार करने की इच्छा से नहीं की गई थी। वह तो आजकी ही हालत कायम रखने के लिए केवल सान्त्वना रूप थी। अपनी त्रुटियों का स्वीकार तभी उपयोगी हो सकता है जब कि उसका स्वीकार कर लेने के बाद उससे दूर रहने का विचार दृढ़ हो। यदि उसका उपयोग किसी सुधार के विरुद्ध अपने को कठोर बनाना है तो उससे कुछ भी लाभ न होगा। इतना ही नहीं वह हानिकर भी है। मुझे आशा है कि मुझे दिये गये अभिनन्दन पत्रों में उनका अपनी त्रुटियों का स्वीकार करना उनमें एक निश्चित सुधार का कारण बन जायगा।

राष्ट्रीय शाला

गिरीडीह से हम लोग मधुपुर गये। वहां एक छोटे से सुंदर नये टाउन हाल को खुला रखने की क्रिया करने को मुझसे कहा गया था। मैंने उस क्रिया को करते हुए और म्युनिसिपल्टी को उसका अपना मकान तैयार हो जाने पर मुबारकबादी देते हुए यह आशा व्यक्त की कि वह म्युनिसिपल्टी मधुपुर को उसकी आबोहवा और उसके आसपास के कुदरती दृश्यों के अनुकूल एक बहुत ही सुन्दर जगह बना देगी। बबंई और कलकत्ता जैसे बड़े शहरों की पुनर्रचना करने में बड़ी ही मुश्किलें पेश आती हैं। लेकिन मधुपुर जैसी छोटी जगहों में यद्यपि म्युनिसिपल्टी की आमदनी बहुत ही थोड़ी होती है फिर भी उन्हें अपनी अपनी हद को साफ सुथरा और रोगरहित रखने में कोई मुश्किल का सामना नहीं करना पड़ता है। मैंने मधुपुर की राष्ट्रीय शाला की भी मुलाकात ली। हेड मास्तर ने अपने अभिनन्दन पत्र में उसके भविष्य का बड़ा ही अन्धकारमय चित्र खींचा था। उसमें लड़कों की हाजिरी घट रही है और लोगों की तरफ से आर्थिक सहायता भी कम की जा रही है। उन्होंने यह भी कहा कि कुछ मा-बापों ने अपने बच्चों को सिर्फ इसलिए उठा लिया है क्योंकि शाला में हाथ कताई का विषय अनिवार्य कर दिया गया है। उस अभिनन्दन पत्र में इन मुश्किलों में से बाहर निकलने लिए मुझ से मार्ग पूछा गया था। मैंने उनसे कहा कि यदि शिक्षकों को अपने कार्य में श्रद्धा है तो उन्हें निराश न होना चाहिए। सभी सच्ची संस्थाओं को भले बुरे दिन देखने पड़ते हैं और यह स्वाभाविक ही है। उनको ये कठिनाइयां उनकी परीक्षा का समय है। वही विश्वास दृढ़ विश्वास कहा जा सकता है जो एक तूफान का सामना करने पर भी स्थिर बना रहता है। यदि शिक्षकों को यह संपूर्ण विश्वास है कि उनकी शाला के जरिये उनके आसपास के लोगों को उन्हें अपना संदेश सुनाना है तो उन्हें बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तैयार होना चाहिए। फिर यदि उनको इसबात का यकीन हो जाय कि उन्होंने अपनी शाला के लिए सब कुछ कर लिया है और उनकी त्रुटियों के कारण मा-बाप और लड़के शाला से अलग नहीं हो रहे हैं किन्तु वह सिद्धान्त ही जिसके लिए वे प्रयत्न कर रहे है उन्हें ठीक नहीं जच रहा है तो फिर चाहे उनकी शाला में एक लड़का हो या १०० लड़के हो वे उसकी कुछ भी परवाह न करें। यदि उन्हें कताई में श्रद्धा है तो इस कारण से यदि मा-बाप अपने बच्चों को शाला से निकाल भी लें तो भी वे उस पर कुछ भी ध्यान न देंगे। और यदि उन्होंने कताई को सिर्फ इसीलिए

रक्खा है क्योंकि वह एक रिवाज हो गया है या महासभा के प्रस्ताव में उसका होना आवश्यक बतलाया गया है, और इसलिए नहीं क्योंकि उन्हें उसमें श्रद्धा है तो उन्हें लोगों का सद्भाव कायम रखने के लिए कताई को निकाल देने में जरा भी न हिचकिचाना चाहिए। वह समय अब आ गया है कि राष्ट्रीय शिक्षक गण अपने आप ही अपनी पसंदगी का निश्चय कर लें। क्योंकि नये सुधार दाखिल करने पर उनका विरोध करनेवाले कुछ लोग भी अवश्य ही निकल पड़ते हैं और शिक्षक जिन्हें अपने में और अपने उद्देश में श्रद्धा है वे ही जिन सुधारों को वे आवश्यक समझते हैं उनके विरोध का सामना कर सकते है और शायद यही उनके नये साहस को उचित प्रमाणित करता है।

फुटकर बातें

माधुपुर से हमलोग पुरनिया जिले की ओर रवाना हुए। उसके आसपास का दृश्य बिल्कुल ही नया था और यह जिला भी नया था। क्योंकि पुरनिया जिला गंगा के उत्तर किनारे पर उत्तर-पूर्व की ओर है। सारा ही जिला हिमालय की तराई है। यहां की आबहवा और यहां के लोग करीब करीब चम्पारन की आबहवा और लोगों के समान है। हम लोग सकरीगली घाट से मनियारी घाट गये। यह करीब दो घण्टे का सफर था। हमलोग मुबह मनियारी पहुंचे। वहां के लोगों ने देशबन्धु-स्मारक फण्ड के लिए एक थैली भेंट की। हमलोग रेलगाड़ी में बैठ कर मनियारी से कटिहार जंक्शन पहुंचे। वहां मुआमिक मामूल सार्वजनिक सभाएं की गई थीं। दूसरे दिन हमलोग किशनगंज पहुंचे। वहां भी सभायें हुए थीं और थैली भेंट की गई थी। किशनगंज में मारवाड़ियों की काफी आबादी है। उन्होंने अच्छा चन्दा इकट्ठा किया था। वहीं एक शिष्टमंडल ने आकर मुझसे यह शिकायत की कि यद्यपि वे खादी पहनने को राजी है और तैयार भी हैं लेकिन किशनगंज में खादी मिलती ही नहीं है। उन्होंने कहा कि कपड़े का सारा ही व्यापार मारवाड़ी लोगों के हाथों में है और वे सिर्फ विदेशी कपड़ा ही बेचते हैं क्योंकि उन्होंने उनसे कहा था कि उसमें उन्हें बहुत फायदा होता है। मैंने उस मंडल के शिष्ट लोगों से कहा कि मैं मारवाड़ियों को बड़ी खुशी से इसके लिए कहूंगा लेकिन उनका बहाना चल नहीं सकता है। क्योंकि यदि किशनगंज में खादी की बहुत मांग है तो वे खुद वहां पर एक सहयोगी भंडार खोल सकते है। उन मारवाड़ी व्यापारियों पर जो कि किशनगंज के व्यापार के लिए आये है, दोष लगाने से कुछ लाभ न होगा। क्योंकि आप जैसे लोगों का ही जिन्हें खादी पर श्रद्धा है, यह फर्ज है कि खादी का रिवाज डालें, उसका संग्रह करने के लिए कुछ तकलीफ उठावें और फिर मारवाड़ियों को भी वही माल रखने लिए कहें। लेकिन वे यह करने के लिए तैयार न थे। मैंने उनसे यह भी कहा कि यदि एक निश्चित मिकदार खादी की बिक्री का वे मुझे यकीन दिला सकते हैं तो मैं भी राजेन्द्रबाबू को किशनगंज में एक खादी भंडार खोलने के लिए भी कहूंगा। लेकिन यह जोखिम उठाने के लिए भी वे तैयार न थे। मैंने फिर बड़े बड़े मारवाड़ी व्यापारियों से बातचीत की। उन्होंने कहा कि कुछ मारवाड़ियों ने कुछ अरसे के लिए कुछ खादी भी अपने यहां रक्खी थी लेकिन उसकी कुछ अच्छी बिक्री न होती थी। उन्होंने इस बात का स्वीकार किया कि उन्होंने खादी को जनता के सामने बार बार रख कर उसे लोकप्रिय बनाने कोई प्रयत्न नहीं किया था।

नेपाल की सरहद

हमलोग किशनगंज से अररिया गये और अररिया से फारबिसगंज पहुंचे। यह बिहार की उत्तर-पूर्व की सीमा है और यहीं से नेपाल की हद शुरु होती है। मुझसे यह कहा गया था कि जब आकाश बड़ा स्वच्छ होता है यहां से हिमालय की बरफ से ढंकी हुई कतारें भी दिखाई देती हैं। हम लोग फारबिसगंज पहुंचे इसके पहले मुझे यह इच्छा हुई थी कि मैं राजेन्द्रबाबू और उनके साथ काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को लोगों पर अच्छा अधिकार प्राप्त करने के लिए मुबारिकबादी दूं, क्योंकि लोगों की बड़ी भीड़ होने पर भी उनमें व्यवस्था थी, वे शोरोगुल न मचाते थे, और मेरे पैरों को न छुने में उन्होंने संयम का परिचय दिया था। लेकिन फारबिसगंज में मेरा यह भ्रम दूर हो गया। वहां व्यवस्था कुछ भी न रही। भीड़ बहुत ही अधिक थी। बड़े सख्त ताप में सभा रक्खी गई थी। लोगों के सिर पर कोई छाया न थी और वे सुबह से राह देखते बैठे हुए थे। गुलगपाड़ा बहुत हो रहा था। मेरे लिए जरा सी भी शान्ति पाना असंभव हो गया था। और स्वयंसेवकगण ऐसी भारी भीड़ को मेरे पास आने से और मुझे छुने से रोकने में असमर्थ थे। सच बात तो यह थी कि पहले वहां कुछ अधिक कार्य हुआ ही न था। स्वयंसेवक अपने काम के लिए बिल्कुल ही नये थे। उन्होंने अपने भरसक बड़ी कोशिश की। उसमें दोष किसी का भी न था। उनके लिए तो यह नयी बात और नया अनुभव था। और लोग तो मेरे नजदीक आकर मुझे छुने के इस मौके को जिसे वे अपूर्व मानते थे, छोड़ना नहीं चाहते थे। यह प्रेमयुक्त बहस है लेकिन मुझे यह बहुत ही तकलीफ देता है। मैंने उनसे खादी, चरखा, शराबखोरी, जुआर इत्यादि के संबंध में बहुत कुछ बातें कहीं। लेकिन मुझे भय है कि उसमें से वे कुछ भी न समझ सके होंगे। ईश्वर की लीला विचित्र है। हजारों लोग उस व्यक्ति के प्रति उस चीज के प्रति, अपने आप खींचे चले आते हैं जिसका कि उन्हें नाम मात्र ज्ञान है। मैं यह नहीं जानता कि मेरे जैसे एक अजनबी को देख कर उन्हें कुछ लाभ हुआ होगा या नहीं। मैं यह भी नहीं जानता कि मैंने फारबिसगंज आने में अपने समय का सदुपयोग किया था या दुरुपयोग। यदि हम ईश्वर और मनुष्यों की सेवा के लिए ही सब कुछ करते हों और जिसे हम बुरा समझते हैं उसे न करते हों तो फिर शायद यह अच्छा ही है कि हम अपने कार्यों के परिणामों को जान नहीं सकते हैं।

उपसंहार

फारबिसगंज से हम लोग विशनपुर की ओर गये। विशनपुर पुरनिया से २५ मील दूर है। और क्योंकि वहां पक्का रास्ता नहीं है मोटर में बैठ कर जाने में जरा तकलीफ होती है। इस गांव में एक बड़ी सभा हुई थी। और इस छोटे से गांव में जो रेलवे लाइन से दूर है सार्वजनिक कामों में लोगों का ऐसा उत्साह देख कर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ था। लोगों ने स्मारक के लिए अच्छा चन्दा दिया था। इस सभा की सबसे नयी बात तो यह थी कि सभा के लिए एक स्थायी मंच तैयार किया गया था। वह करीब १५ फीट ऊंचा था और ईंटों का पक्का बना हुआ था। उसके नीचे के हिस्से में खादीभंडार रक्खा गया है। उसकी सारी ही कल्पना में उपयोगिता के साथ सुन्दरता का मिश्रण किया गया है। इस गांव में सबसे अधिक आह्लादप्रद वस्तु तो उसका पुस्तकालय और वाचनालय है। मुझे ही उसे खुला रखने की क्रिया करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पुस्तकालय के चारों ओर खुला हुआ विशाल बाड़ा है और उसमें संगमरमर की बेंचें पड़ी रहती है। यह पुस्तकालय चौधरी लालचंद जी की स्वर्गवासी पत्नि का स्मारक है। विशनपुर जैसी जगह में ऐसा स्मारक खोलने का विचार किया गया इसीसे यह प्रमाणित होता है कि यहां लोगों को राजनैतिक शिक्षा सही सही और

अच्छी मिली है। किशनपुर से हम लोग पुरनिया लौट आये। यह इस जिले का मुख्य स्थान है और यहीं बिहार की यात्रा समाप्त की गई। इस यात्रा की समाप्ति तो असलियत में हाजीपुर में हुई। मैं यहां के कुछ युवक कार्यकर्ताओं के उत्साह के कारण जिसकी कि वजह से यहां एक राष्ट्रीय-शाला स्थापित की गई थी, उसके प्रति चार वर्ष हुए आकर्षित हुआ था। पुरनिया जिले से कोई सत्तरह हजार रुपये मिले। उनमें से कुछ तो बिहार (राष्ट्रीय) विद्यापीठ के लिए दिये गये हैं। बाकी के १५००० रुपये देशबन्धु स्मारक फंड के लिए हैं। बिहार यात्रा में इन रुपयों को मिला कर कुल ५०,००० रुपये स्मारक फंड के लिए मिले हैं। बिहार के भले और सादे सीधे लोगों को छोड़ कर जाने से मुझे रंज होता है। मैं आशा करता हूं कि यदि सब ठीक ठाक रहा तो बिहार की बाकी यात्रा मैं दूसरे वर्ष के आरंभ में पूरी करूंगा। मुझे आशा है कि बिहारी लोग इस दरम्यान में चरखा और खादी में बहुत कुछ प्रगति कर दिखावेंगे। उसके खादी भंडारों में जो सुन्दर खादी पड़ी हुई है वह सब बिक जानी चाहिए। चरखा-संघ के बहुत से सभासद बन जाने चाहिए और वे केन्द्र जहां कि लोग स्वयंसेवकों के आने की राह देख रहे हैं कताई के लिए अच्छी तरह व्यवस्थित हो जाने चाहिए। शराबखोरी की बदी भी रोक दी जानी चाहिए।

(पं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

एक हजार का ईनाम

गो-रक्षा के विषय पर एक उत्तम पुस्तक का होना आवश्यक है। एक अमेरिकन मित्र ने जो गोरक्षा के प्रश्न में बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं मुझसे इस विषय की एक पुस्तक मांगी थी। मुझे ऐसी कोई पुस्तक न मिली जिसमें कि वे जिन बातों को जानना चाहते है उन सब बातों का पूरापूरा वर्णन दिया गया हो। इसलिए मैं श्री० रेवाशंकरजी के पास गया और उनसे पूछा कि क्या वे गो-रक्षा पर निबंध लिखने के लिए भी कोई ईनाम निकालेंगे? इस विषय पर सबसे उत्तम निबंध के लेखक को वे एक हजार रुपया ईनाम देने को राजी हुए हैं। उसकी शर्तें ये हैं: १९२६ की ३१ मार्च को या उसके पहले अखिल भारतीय गो-रक्षा मंडल के मंत्री के पास सत्याग्रहाश्रम, साबरमती, में सब निबंध पहुंच जाने चाहिए। वह अंगरेजी, संस्कृत या हिन्दी में, तीन में से किसी भी एक भाषा में लिखा जा सकता है। उसमें गो-रक्षा का मूल, उसका अर्थ और उसका रहस्य इन तीनों बातों का सम्पूर्ण ऊहापोह होना चाहिए और उसका समर्थन करने के लिए शास्त्रों में से प्रमाण देने चाहिए; उसमें शास्त्रों की परीक्षा भी करनी चाहिए और यह मालूम करना चाहिए कि गोरक्षा-मंडल यदि डेरी और चमड़े का कारखाना खोले तो उसके लिए शास्त्रों में कोई निषेध तो नहीं किया गया है। उसमें भारतीय गोरक्षा का इतिहास भी होना चाहिए और भारत में समय समय पर गोरक्षा के लिए किन किन उपायों का अवलंबन किया गया था यह दिखाना चाहिए। उसमें भारत के चौपायों की संख्या दिखाने के लिए उसके अंक देने चाहिए और चरागाह के प्रश्न की परीक्षा की जानी चाहिए। हिन्दुस्तान में चरागाह जमीन के संबंध में सरकार की नीति का क्या परिणाम होता है और गो-रक्षा के लिए क्या क्या उपाय करने चाहिए यह भी उसमें दिखाना चाहिए। मैं आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव और सी. वी. वैद्य को इसके परीक्षक बनने के लिए निमंत्रण दे रहा हूं। इन शर्तों में यदि तबदीली करनी आवश्यक मालूम होगी तो इसके प्रकाशित होने पर १५ दिन के भीतर ही भीतर वह की जा सकेगी, ताकि जो मित्र गोरक्षा के विषय में दिलचस्पी ले रहे हैं उनकी राय भी मालूम हो और उसका उपयोग भी किया जा सके। यदि १५ दिन के अन्दर उनमें कोई तबदीली न हो तो इन्हीं शर्तों को आखिरी शर्तें मान ली जायं।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

कानपुर की महासभा

कानपुर की महासभा को अब बहुत दिन नहीं रहे हैं। स्वागत-समिति के सामने बहुत सी आकस्मिक बाधायें उपस्थित हुई थीं। समिति को महासभा के लिए भूमि प्राप्त करने में ही विघ्न का सामना करना पड़ा था लेकिन अब वह दूर हो गया है। लेकिन अब जो समय बाकी है उसमें संपूर्ण तैयारी करने के लिए बहुत से स्वयंसेवकों की और धन की आवश्यकता होगी। मुझे आशा है कि स्वागत-समिति को यह मदद भी मिल जायगी और शीघ्रता-पूर्वक काम हो सकेगा।

मुझे आशा है कि कानपुर की स्त्रियां इस बात को ध्यान में रक्खेंगी कि महासभा के लंबे और विविध इतिहास में पहले पहल भारत की एक सुपुत्री को उसका प्रमुख-पद प्राप्त होगा। मुझे आशा है कि बहुत सी स्त्रियां भी इस समय महासभा की स्वयंसेविकायें बनने के लिए तैयार होंगी और वे उन स्त्रियों की जिनकी कि इस समय पहले के बनिस्बत अधिक संख्या में महासभा में आने की आशा है सेवा करने के लिए और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तैयार रहेंगी।

चरखा-संघ में दाखिल हो

जो लोग स्वेच्छा से महासभा को अपने हाथ का कता सूत भेजते थे उन्हें अब चरखा-संघ में अपने नाम लिखा देना चाहिए। (अ) वर्ग के सब सभासद जैसा जी चाहे अब मासिक चन्दे से या एक बारगी ही अपना १२००० गज सूत भेज सकते हैं। डाक खर्च बहुत बड़ा खर्च है। जितना भी यह बचाया जा सके उसे बचाने की जरूरत है। इसलिए यही इष्ट है कि सारा सूत, एक साथ ही भेज दिया जाय और यदि बहुत से सभासदों का सूत एक ही पारसल में रवाना किया जाय तो यह और भी अच्छा हो। कुछ ऐसे ही इरादे से सूनावल स्टेशन पर श्री हाललाने ने मुझे ५७ सभासदों का सूत उनके नाम और पते के साथ दिया था। सब जगहों से अब सूत भेजना शुरू हो जाना चाहिए।

परिणाम

पाठकों को शायद याद होगा कि श्री रेवाशंकर जगजीवन झवेरी ने 'हाथकताई' पर सर्वोत्तम निबंध लिखने के लिए एक हजार रुपये का ईनाम जाहिर किया था। उसके परीक्षक थे, गांधीजी, श्री शंकरलाल बैंकर, श्री मगनलाल गांधी। पीछे से श्री सेठ अंबालाल साराभाई को भी परीक्षक बनने के लिए निमंत्रित किये गये थे। कुल ६० निबंध आये थे। परीक्षकों ने बड़ी चर्चा के बाद यह निर्णय किया कि ईनाम को दो हिस्सों में बांट कर श्री पुणतांबेकर (बम्बई) और श्री वरदाचारी (मद्रास) को दे दिया जाय। और यह भी तय हुआ कि ये दोनों महाशय या उनमें से जिसे फुरसद हो वह एक, दोनों निबंधों की तुलना कर के उसपर से एक अत्यन्त उपयोगी निबंध तैयार करे और वही निबन्ध प्रकाशित किया जाय।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

शाश्वत समस्या

वार्षिक मूल्य ४)
छःमास का „ २)
एक प्रति का -)।

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १] [अंक १०

[illegible] स्वामी आनंद | अहमदाबाद : कार्तिक सुदी ५, संवत् १९[illegible] गुरुवार [illegible] अक्तूबर १९२[illegible] ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

राष्ट्रीय शिक्षा

[illegible] राष्ट्रीय शिक्षा में [illegible] मुझ से यह [illegible] आज कल यह अवस्था और [illegible] अर्थ भी नहीं हो सकता है। [illegible] अब [illegible] राष्ट्रीय शिक्षा [illegible] ठीक ठीक चलाने पर ही है। [illegible] सरकारी शालाओं में [illegible] में शिक्षा पा रहे हैं [illegible] अब उन शालाओं [illegible] विद्यालयों का त्याग करने के लिए न हम प्रशंसा कर सकते हैं और न उन्हें अब कोई प्रशंसा करना ही चाहता [illegible] के समक्ष गये हैं। वे सरकारी विद्यालयों में या तो अपनी कमजोरी के कारण, उनके शौक के कारण या राष्ट्रीय विद्यालयों में उन्हें श्रद्धा न होने के कारण ही पढ़ रहे हैं। इनका कारण चाहे कुछ भी क्यों न हो, उनकी कमजोरी, उनका शौक और उनकी अश्रद्धा को दूर करने का एक ही उपाय है और वह राष्ट्रीय संस्थाओं को उनके शिक्षकों के चारित्र्य और योग्यता के बल से अधिक दृढ और लोकप्रिय बनाना है।

दक्षिण कलकत्ता की राष्ट्रीय शाला की तरफ से मेरे पास एक अर्जी आई है। उसके साथ एक पत्र लिख कर मुझे इस बात की भी याद दिलाई गई है कि मैं जब कलकत्ते में बहुत दिनों के लिए मुकाम किये पड़ा था उस समय एक दिन उस शाला को देखने के लिए वहाँ गया भी था। उस अर्जी पर अच्छे प्रभावशाली लोगों के दस्तखत हैं। मुझे यह भी याद दिलाया गया है कि उन्होंने हाथ कताई को अनिवार्य विषय में रखा है। उसमें १०० लड़के पढ़ते हैं और अठारह शिक्षक हैं। उस शाला को मासिक रु. २००) की मदद मिलती है। हिन्दुस्तान में ऐसी कई शालायें या विद्यालय हैं जिनके शिक्षकों की तरफ से मुझसे इस बात की प्रार्थना की जाती है कि मैं नं. इं. में उनका या तो विज्ञापन दूं; या इससे भी बढ़ कर वे मुझसे यह चाहते हैं कि चन्दे के लिए लिखे गये उनके प्रार्थना-पत्र पर मैं अपने दस्तखत कर दूं। कुछ कहीं अन्य संस्थाओं के प्राण भी नजर न करने का जोखिम उठा करके भी मुझे इस लालच में गिरफ्तार न होना चाहिए। किसी संस्था की मुलाकात में [illegible] छाप पड़ती है वह छाप यदि बुरी हुई तो उससे किसी भी संस्था को कुछ नुकसान न होने देना चाहिए। वैसे ही उसमें यदि कहीं मेरी अच्छी छाप पड़े तो उससे किसी अयोग्य संस्था को आसमान पर चढ़ाने न देना चाहिए। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कोई भी योग्य संस्था मदद न मिलने के कारण कभी नष्ट न होगी। जो संस्थायें नष्ट हो गई हैं वे या तो इस कारण नष्ट हो गई कि उनमें कोई ऐसी बात ही न थी कि जो जनता को मोहित कर सके या स्वयं शिक्षकों को ही अपने में उनके लिए कोई श्रद्धा न रही होगी। यदि हमारे शब्दों में कहें तो उन्होंने अपनी दृढ रहने की शक्ति ही को खो दिया होगा। इसलिए मैं इस शाला के और दूसरी शाला और विद्यालयों के संचालकों से यही प्रार्थना करूंगा कि सब तरफ निराशा छा गई है फिर भी वे कभी निराश न हों। योग्य शाला और विद्यालयों की परीक्षा का यही समय है। हिन्दुस्तान में आज ऐसी कितनी ही संस्थायें हैं जो बड़े बड़े विघ्न और बाधाओं का सामना कर रही हैं। उनके शिक्षकों की आवश्यकता पूरी नहीं होती है फिर भी उन्हें अपने में और अपने उद्देश में पूरी पूरी श्रद्धा है। मैं यह जानता हूं कि आखिर उनकी उन्नति होगी और आज जिस परीक्षा में से वे गुजर रहे हैं उसके कारण वे अधिक दृढ बनेंगे। मैं जनता से कहूंगा कि वे ऐसी संस्थाओं का अध्ययन करें और यदि उन्हें आवश्यक मालूम हो और यदि वे योग्य समझें तो उन्हें मदद भी करें।

मैंने बहुतसी शालाओं में जिनकी कि मैंने मुलाकात की है यह देखा है कि वे कताई को सिर्फ इसलिए रखते हैं क्योंकि आजकल उसका रिवाज सा पड़ गया है। इससे कताई को और विद्यार्थियों को किसीको भी न्याय नहीं होता है। यदि कताई को अनिवार्य और आवश्यक उद्योग मान कर उसे उत्तेजन देना है तो बड़ी गंभीरतापूर्वक उसका विचार होना चाहिए और अच्छी व्यवस्थित शालाओं में जैसे दूसरे विषयों को पढ़ाया जाता है उसी प्रकार उसकी पढ़ाई भी ठीक ठीक और शास्त्रीय ढंग से होनी चाहिए। उस समय सब चरखे अच्छी हालत में और व्यवस्थित रहेंगे और इस पत्र में समय समय

पर उसकी जो कसौटियां बयान की गई हैं उनमें वे ठीक ठीक उतर सकेंगे। उस समय विद्यार्थियों के काम की रोजाना जांच की जावेगी, जैसे दूसरे विषयों में उनको दिया हुआ सबक जांचा जाता है और जो जांचा ही जाना चाहिए। और जब तक सभी शिक्षक इस कला को उसकी बारीकियों के साथ सीख नहीं लेते हैं ऐसा होना संभव नहीं है। कताई में कुशल व्यक्ति को नौकर रखना रुपयों का दुरुपयोग करना है। यदि कताई अच्छी तरह सिखानी हो तो हरएक शिक्षक को कताई में कुशलता संपादन करनी होगी। यदि शिक्षक को कताई की आवश्यकता के बारे में पूरी पूरी श्रद्धा है तो वह रोजाना दो घण्टे मिहनत करने से एक महिने में ही उसे सीख लेगा। लेकिन जैसा कि मैंने पहले कहा है लड़के और लड़कियों को अपने घर में बैठ कर कातने के लिए चरखा भले ही सिखाया जाय किन्तु वर्ग में कातने के लिए तो तकली ही बड़ी उपयोगी और कम खर्च की चीज है। ५० लड़के रोजाना चरखे पर आधा घण्टा कातें और हरएक १०० गज सूत तैयार करे इससे तो यही बेहतर है कि ५०० लड़के रोजाना एक नियत समय पर तकली कात कर हरएक २५ गज सूत तैयार करे। इस प्रकार तकली से रोजाना १२,५०० गज सूत तैयार होगा जब चरखे से सिर्फ ५००० गज सूत ही तैयार हो सकेगा।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

मारवाडियों को

१९२१ में जागृति की जो बाढ़ आई, उसका केवल एकही प्रश्न पर—विषय पर असर नहीं पड़ा है। वह प्रवृत्ति ऐसी व्यापक थी कि उसका असर सभी जातियों पर और सभी प्रश्नों-विषयों पर पड़ा है। यदि कोई चकवृथक यही मान बैठे कि उस प्रवृत्ति का रंग केवल थोड़े ही दिनों के लिए था तो वह यह भले ही मानें। लेकिन समय बीतने पर सभी को यह यकीन हुए बिना न रहेगा कि उनकी यह मान्यता बिल्कुल ही गलत थी। उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ भले ही मालूम हो लेकिन वस्तुतः तो वह एक ही वस्तु है यह कभी मालूम हुए बिना न रहेगा। भागलपुर में मारवाड़ी सम्मेलन के समक्ष मैंने जो व्याख्यान दिया उसपर विचार करते हुए मुझे ये विचार सूझे हैं। मारवाड़ी समाज में समाज—सुधार के लिए अनेक प्रकार की हलचल हो रही है। यह अग्रवाल मारवाड़ियों का सम्मेलन था। जिस प्रकार गुजरात में कहीं कहीं महाजन लोग अंत्यज प्रश्न के निमित्त बहिष्कार के शस्त्र का उपयोग करते हुए दिखाई देते हैं उसी प्रकार मारवाड़ी समाज में भी, महाजन लोग दूसरे ही प्रसंगों पर उसी शस्त्र का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं।

विधवाविवाह, बालविवाह इत्यादि प्रश्नों का कम व अधिक प्रमाण में लगभग सारे ही हिन्दू समाज से संबंध है। इसलिए मारवाड़ी भाईयों को मैंने जो बातें कहीं थीं उनका यद्यपि यंग इंडिया में मैं कुछ अंश में उल्लेख कर चुका हूं फिर भी मैं यहीं यहां कुछ विस्तृत रूप में लिखना चाहता हूं। बहिष्कार का शस्त्र भयंकर है। यदि उसका विचारपूर्वक उपयोग न किया जायगा तो यह शस्त्र हिंसा ही का रूप धारण कर लेगा। और यदि यह रूप वह शस्त्र धारण कर ले तो उसका परिणाम उस जाति का नाश होगा। इसलिए मैंने मारवाड़ी भाइयों को यही सलाह दी कि वे इस शस्त्र का उपयोग ही न करें। जबतक उनके महाजन ज्ञानी, स्वार्थहीन और प्रेममय न बन जायें, उन्हें बहिष्कार का विचार भी न करना चाहिए। सुधारक लोग भले ही अपना सुधार जारी रखें। उससे जाति को क्या हानि होगी? जिसे सारा संसार अनीति मानता है उसके लिए यदि किसी को सजा की जाय तो यह बात किसी के भी समझ में आ सकती है। लेकिन एक व्यक्ति जो धर्म समझ कर अंत्यज को छूता है, दूसरा जो धर्म समझ कर पुख्त उम्र की होने पर ही अपनी लड़की की शादी करने को तैयार है, तीसरा जो बालविधवा की शादी करना चाहता है और चौथा कि जो अपनी ही ज्ञाति की छोटी छोटी जातों में से किसी भी एक जाति में अपने लड़के की शादी करना चाहता है, उनका बहिष्कार किसलिए किया जाय? उनका बहिष्कार करने से तो किसी भी प्रकार का सुधार न हो सकेगा और धर्म, ज्ञाति और देश की उन्नति रुक जायगी। मुझे यह निश्चय हो चुका है कि बहिष्कार का ऐसा दुरुपयोग कभी भी न किया जाना चाहिए। ज्यों ज्यों मैं अधिकाधिक प्रान्तों में सफर कर रहा हूं, त्यों त्यों मुझे विधवाओं के दुःख की कथा, बालविधवाओं के कारण होनेवाली अनीति, छोटी उम्र के बच्चों का विवाह इत्यादि को सुन कर बड़ा कष्ट हो रहा है। ऐसे हिन्दू-समाज की संतति यदि वीर्यहीन हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? महाजन लोग यदि अपना धर्म समझने लगें और अपनी मर्यादा का उन्हें ज्ञान हो जाय तो वे ही इस प्रकार के सामाजिक सड़े को दूर करने के लिए सुधारकों को प्रोत्साहन देंगे।

सम्मेलन में समाज—सुधार के विषय पर मैंने जैसा विवेचन किया वैसा ही विवेचन मैंने गोरक्षा पर भी किया। दिनप्रतिदिन ज्यों ज्यों मुझे गोशालाओं का अधिक अनुभव हो रहा है त्यों त्यों यह बात मुझे स्पष्ट मालूम होती जाती है कि जनता के लिए उसका जैसा चाहिए वैसा उपयोग नहीं हो रहा है। ९ करोड़ रुपये का मरे हुए ढोरों का चमड़ा जर्मनी चला जाता है और हम लोग कत्ल किए गये ढोरों के चमड़े से बने जूते पहनते हैं और यह मानते हैं कि अपने धर्म की रक्षा कर रहे हैं; यह कैसी दुःख की बात है? हिन्दुस्तान में बहुतेरी गोशालाएं तो मारवाड़ी भाइयों के हाथों में हैं। गोरक्षा के नाम पर वे अधिक से अधिक दान करते हुए मालूम होते हैं लेकिन उन्हें यह ज्ञान नहीं कि उस दान का उपयोग कैसे कर किया जाय। इसलिए गाय बैलों की कत्ल घटने के बजाय बढ़ रही है। जानवरों को एक किस्म का क्षय लागू हो रहा है। दूध महंगा हो रहा है और उसकी अशुद्धि भी बढ़ रही है। यह कितना अंधेर है? मारवाड़ी भाई अपने व्यापार में तो कभी ऐसी गफलत नहीं करते हैं। गोशालाओं के प्रबंध में दान दे कर वे ऐसे उदासीन क्यों बने रहते हैं? क्या धर्म के काम में कार्यकुशलता और व्यवहार बुद्धि की आवश्यकता नहीं है? कत्ल किये गए ढोरों के चमड़े का उपयोग बन्द करना उन्हीं के हाथों की बात है। मरे हुए ढोरों के चमड़े के व्यापार को केवल परोपकार करने की दृष्टि से ही अपने हाथ में कर लेना उनका धर्म है। आज धर्म के नाम से या केवल वहम के कारण गोशालाओं में मर जानेवाले ढोरों के चमड़े का हम उपयोग नहीं करते हैं और उनको कत्ल करने के लिए प्रोत्साहन दे रहे हैं। क्योंकि मृत जानवरों के चमड़े को हम इस्तेमाल ही में न लाते होते तो यह बात दूसरी ही थी। लेकिन कोई भी हिन्दू उसका ऐसा अर्थ नहीं कर रहा है। यही नहीं जिस प्रकार कि हम लोग गाय की पूजा करने पर भी उसके दूध को पवित्र मानते हैं और उसका उपयोग करने के लिए लोगों को उत्साहित करते हैं उसी तरह हिन्दू धर्म में चमड़े का भी बिना किसी रुकावट के उपयोग किया जा सकता है। मैं इस विषय पर तटस्थ रह कर विचार कर सकता हूं क्योंकि मैं गाय भैंस के दूध को मुतलक ही अपने उपयोग में नहीं लाता हूं और चमड़े का भी, जहां भी हो सके, बहुत ही थोड़ा उपयोग करता हूं। अनुभव से मैं यह

देख सका हूं कि यदि हम लोग गाय भैंस इत्यादि की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें उनके दूध का, चमड़े का और उनसे उत्पन्न होनेवाली खाद का संपूर्ण उपयोग करना होगा। ऐसा समय भले ही आवे कि जब हम दूध का भी इस्तेमाल न करते हों। लेकिन जब ऐसा समय आवेगा तब हम गोशालाएं रखना भी बन्द कर देंगे और अनेक प्रकार के जानवर, जिनको हम पालते नहीं है उनकी कुदरत जिस प्रकार अपने नियमों के अनुसार रक्षा करती है उसी प्रकार वह गाय भैंसों की भी रक्षा करेगी। आज तो मैं गोरक्षा में, पके हुए और पालने के उपयोगी जानवरों की रक्षा का ही तत्व देख रहा हूं। और आज गोरक्षा का अर्थ भी इतना ही हो सकता है कि खुराक के लिए या मनोरंजन के लिए गौओं की कत्ल नहीं करनी चाहिए और जबतक वे जिन्दा रहें, जिस प्रकार हम अपने शरीर की रक्षा करते हैं उनके शरीर की रक्षा करनी चाहिए। इस मतलब को सिद्ध करने के लिए उनके मर जाने के बाद यदि उनके चमड़े का हम उपयोग न करेंगे तो उनकी कत्ल दिन ब दिन बढ़ती ही जावेगी। इसीलिए मैं गोसेवक मारवाड़ी भाइयों से विनती करता हूं कि वे अपने दान में भी अपनी बुद्धि और अपनी व्यापार-शक्ति का परिचय दें। उनके पास अपने अधिकार में जितनी गोशालाएं हैं उनका सबका यदि वे आदर्श बदल दें तो वे एक साल में ही लाखों गायों भैंसों को बचा सकते हैं। और फिर कुछ समय के बाद वे किसी से भी प्रार्थना किये बिना जानवरों की कत्ल को बिल्कुल ही रोक दे सकते हैं। जिन्हें गोमांस खाना हराम नहीं है वे इस ख्याल से कि हिन्दुओं के दिल को चोट पहुंचेगी गोमांस यदि सस्ता होगा तो उसे खाना कभी न छोड़ेंगे। सस्ता होने पर भी उसे छोड़ देने के लिए तो बड़े ऊंचे प्रकार के हृदय की आवश्यकता है। लेकिन यह तो धर्मभावना की बात हुई। यह भावना बल करने से या विनती करने से प्रकट नहीं होती है। इसलिए मैंने जो कुछ भी मारवाड़ी भाइयों से कहा है वही दूसरे हिन्दू भाइयों से भी मैं कहना चाहता हूं। चमड़े के कारखाने का उपयोग करने की अनिच्छा दूर करना होगा इतना ही नहीं मैंने जो मर्यादा कही है उसके अंदर रह कर ऐसे कारखानें चलाना गोशालाओं का एक अनिवार्य अंग है यही समझना होगा।

जिस प्रकार गोरक्षा मारवाड़ी भाइयों का विषय है उसी प्रकार हिन्दी प्रचार को भी उन्होंने अपने दान का विषय बना लिया है। उसमें भी जितनी आवश्यकता रुपयों की है उतनी ही आवश्यकता बुद्धि की भी है। हिन्दी प्रचार के कार्य को तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है।

एक तो यह कि जहां हिन्दी मातृभाषा के तौर पर बोली जाती है वहां उसका विकास करना। और यह कार्य खास हिन्दी जाननेवालों का ही है। उसमें आजतक एक भी रवीन्द्रनाथ पैदा नहीं हुआ है इसका जो मुझे दुःख है उसे प्रकट कर के मैं इस विषय में कुछ अधिक नहीं कहना चाहता हूं।

दूसरा कार्य है जहां हिन्दी नहीं बोली जाती वहां उसका प्रचार करना। मैं यह मानता हूं कि यह कार्य दक्षिण के प्रान्तों में सुव्यवस्थित तौर पर चल रहा है। लेकिन यदि यह कहूं कि बंगाल जैसे विशाल प्रान्त में इसके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं हो रहा है तो यह बात गलत न होगी। वहां भी उत्तम हिन्दी जाननेवालों को रख कर हिन्दी सिखाने के लिए निःशुल्क शालाएं खोलनी चाहिए और दक्षिण के प्रान्तों की तरह यहां भी बंगाली से हिन्दी सिखने के लिए सीधी भाषा में पुस्तकें लिखनी चाहिए।

तीसरा कार्य है देवनागरी लिपि का प्रचार करना। यदि सब लोग अपनी लिपि के साथ साथ देवनागरी लिपि भी सीख लें तो हिन्दी को और हमारे प्रान्तों की भाषाओं को जो संस्कृत में से ही निकली हुई है, समझने में बड़ी आसानी होगी। इसके प्रचार लिए सब से सरल मार्ग यही है कि बंगाली साहित्य के उत्तमोत्तम ग्रंथों को उनके साथ हिन्दी अनुवाद और शब्दकोषों के जोड़ कर देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया जाय। इस कार्य का भार मारवाड़ी, गुजराती या दूसरे धनी लोग या विद्वान लोग उठा लें तो थोड़े दिनों में ही बड़ा अच्छा कार्य किया जा सकता है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

लोहानी कहां है ?

लोहानी का जब पता न चला और आखिर मैं निराश हो गया तब मुझे जिसकी तरफ से कुछ भी आशा न थी ऐसे ही एक स्थान से इसमें मदद मिली है और अब वर्तमान पत्रों के अवतरणों के रूप में उससे संबंध रखने वाली सब बातें मेरे सामने मौजूद हैं। मैं देखता हूं कि इन अवतरणों का आधार यंग इंडिया में पहले पहल लोहानी के संबंध में लिखी मेरी टीप्पणी है। इन वर्तमान पत्र के संवाद दाताओं ने मालूम होता है कि यह समझ लिया था कि मैं उनके लिखे हुए लेखों को पढूंगा। मालूम होता है कि वे इस बात को नहीं जानते हैं कि यंग इंडिया या नवजीवन के परिवर्तन में जितने पत्र आते है उन सब को पढ़ने का मुझे समय नहीं होता है। मैंने कई बार यह प्रार्थना की है और आज फिर वही प्रार्थना करता हूं कि जो लोग वर्तमान पत्रों में लेख लिख कर मुझे कुछ संवाद देना चाहते है, मेरी भूल सुधारना चाहते हैं या मुझे सलाह देना चाहते है वे उसमें से उस भाग को काट कर मेरे पास अवश्य भेज दें। अपने एक संवादपत्र में लेखक मुझे लोहानी कहां है यह नहीं मालूम होने के कारण बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हैं। इसके लिए रंज तो मुझे भी है लेकिन उन्हें आश्चर्य क्यों है ? मैंने इसके पहले ही इस बात का स्वीकार कर लिया है कि मुझे अपने देश को भूगोल का बराबर ज्ञान नहीं है। जब मैं गुजराती शाला में पढ़ता था तब हिन्दुस्तान की भूगोल से मेरा कुछ यों ही परिचय कराया गया था और ज्योंही मैं अंग्रेजी पढ़ने लगा कि पहले ही दर्जे में मुझे बेंत का डर दिखा कर विलायत के प्रान्तों के नाम और दूसरे विदेशी नाम रटने को कहा गया। उनका उच्चारण करने में और उन्हें याद रखने में मेरा सिर दर्द करने लगता था। किसी ने भी मुझे यह नहीं सिखाया कि लोहानी कहां है। मुझे यकीन है कि मेरे अध्यापक भी यह नहीं जानते थे। मैं पंजाब जाने के पहले भीवानी को भी जिसके कि नजदीक लोहानी है नहीं जानता था। मेरे पास जो वर्तमान पत्रों के अवतरण हैं उन पर से यह मालूम होता है कि लोहानी हिन्दुओं का एक छोटा सा गांव है। उस पर से यह भी पता चलता है कि लोहानी के हिन्दू जमींदारों ने मुसल्मानों को वहां बुलाये थे। अब हिन्दू और मुसल्मान जमीन के एक टुकड़े के लिए लड़ रहे हैं। मुसल्मानों दावा है कि यह भूमि उनके लिए पवित्र है और हिन्दुओं का दावा है कि यह जमीन हमेशा से उन्हीं के अधिकार में रही है। यह मामला अभी अदालत में पेश है। और मुझे उसे वहीं छोड़ देना चाहिए। वर्तमान पत्र में लेख लिखने वाले वे महाशय मुझे इस मामले की जांच करने के लिए और उस पर अपनी राय जाहिर करने लिए निमंत्रण देते हैं। यदि मुझे यह अधिकार होता, मैं मानता हूं कि एक समय मुझे यह अधिकार था, तो मैं अवश्य ही इस मामले की जांच करता और इस झगड़े को अदालत में जाने से रोकता। लेकिन अब तो मुझे यही स्वीकार करना होगा कि मैं इसकी जांच करने के लिए असमर्थ हूं। फिर भी मैं दोनों पक्षों को यही सलाह दूंगा कि वे उन लोगों के पास जायें जिन पर कि उन्हें विश्वास हो और उन्हें इसमें पड़ने के लिए प्रार्थना करें।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक सुदी ५, संवत १९८२

शाश्वत समस्या

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को मैं चाहे कितना भी टाल देना क्यों न चाहूं वह प्रश्न तो मुझे छोडता ही नहीं है। मुसलमान मित्र इसका निबटारा करने के लिए मुझसे आग्रह कर रहे हैं और हिन्दू मित्र इस प्रश्न को लेकर मुझसे बहस करना चाहते हैं। कुछ तो यह भी कहते हैं कि मैंने वायु को संचारित किया है तो अब मुझे तूफान का भी सामना करना चाहिए। जब मैं कलकत्ते में था उस समय एक बिहारी मित्र ने मुझे गुस्से में और रंज में आकर एक पत्र लिखा था और उसमें हिन्दू लडकों को और खास कर लडकियों को भगा ले जाने की कहानी बयान की थी। मैंने उन्हें तो टका सा जवाब दे दिया और कहा कि मुझे उनकी उस कहानी में विश्वास नहीं है और यदि उनके पास उसके सबूत हों तो वे भेजें; मैं बडी खुशी से उनकी जांच करूंगा और यदि मुझे यकीन हो गया तो चाहे मैं और कुछ न कर सकूं तो भी मैं उसकी निंदा अवश्य ही करूंगा। उसके बाद उन्होंने वर्तमान पत्रों में से काट काट कर भगा ले जाने के मामलों के दिल दहलाने वाले वर्णन मेरे पास भेजे हैं। मैंने उन्हें लिख दिया है कि वर्तमान पत्रों के वर्णनों को जुर्म का सुबूत नहीं माना जा सकता है। ऐसे बहुत से मामलों में वर्तमान पत्र तो ज्यादातर भडकाने वाले, गुमराह करने वाले और झूठे होते हैं। हिन्दू और मुसल्मानों के ऐसे कुछ पत्र हैं जो एक दूसरों का बुरा कहने का ही काम करते हैं। मुझे तो इसके काफी सतोषजनक प्रमाण मिले हैं कि उनकी बहुत सी बातें यदि झूठ नहीं होती हैं तो बडी अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य होती हैं। इसलिए मैंने उसके ऐसे ही अकाट्य प्रमाण मांगे जो किसी भी आदालत में स्वीकार किये जा सकते हैं। टीटागढ का मामला सचमुच ऐसा ही है। मुसल्मान एक लडकी को भगा ले गये हैं। यह कहा जाता है कि उसने इस्लाम का स्वीकार कर लिया है। और अदालत का हुकम हो गया है फिर भी अभी तक जहां तक मुझे खयाल है वह वापिस नहीं लाई गई है। और उसमें विशेषता तो यह है कि लडकी को वापिस न लाने में बडे बडे इज्जतवालों का भी हाथ है। जिस वक्त मैं टीटागढ में था इस लडकी के बारे में किसी ने भी अपने ऊपर उसकी जवाबदही होना स्वीकार नहीं किया। पटना में भी मुझे कुछ ऐसी ही चौंका देने वाली खबरें मिली थीं। उनके सुबूत भी मेरे सामने पेश किये गये थे। इस समय मैं उसमें अधिक गहरा नहीं उतरना चाहता हूं क्योंकि उसकी तमाम बातें मेरे सामने पेश नहीं की गई हैं। ऐसे मामलों को सुन कर सभी को विचार करना पडता है और देशहितैषियों को, सबको उसपर ध्यान देना परम आवश्यक है।

अब मस्जिदों के सामने बाजा बजाने का सवाल रहा। मैंने यह सुना है कि मुसल्मानों की यह मांग है कि मस्जिदों के सामने किसी भी समय, धीरे या जोर से कैसा भी बाजा न बजाया जाय। उनकी यह भी एक मांग है कि मस्जिदों के पास जो मन्दिर हों उनमें नमाज के वक्त पर आरती भी बन्द कर देनी चाहिए। मैंने यह भी सुना है कि कलकत्ते में प्रातःकाल के समय कुछ लडके रामनाम रटते हुए मस्जिद के पास से आ रहे थे, उन्हें रोका गया था।

तो अब किया क्या जाय? ऐसे मामलों में अदालतों पर आधार रखना सडे बांस पर आधार रखने के बराबर है। यदि मैं अपनी लडकी को भगा ले जाने दूं और फिर अदालत में जाऊं तो अदालत मुझे क्या मदद करेगी, कैसे मदद करेगी? वह तो खुद ही लाचार हो जायगी। और यदि मेजिस्ट्रेट मेरी कायरता को देख कर मुझ पर नाराज हो जाय तो वह मुझे घृणा के साथ जिसके कि मैं लायक हूंगा अपने सामने से हट जाने को ही कहेगा। अदालत साधारण जुर्मों का ही न्याय करती है। लडकों को और लडकियों को आम तौर पर भगा ले जाने का जुर्म साधारण जुर्म नहीं हैं। ऐसे मामलों में तो लोगों को अपने ही ऊपर आधार रखना चाहिए। अदालत तो उन्हींको मदद करती है जो लोग कि अक्सर अपने आप अपनी मदद कर सकते हैं। इसमें अदालत की तरफ से जो रक्षा होती है वह सिर्फ सहायक होती है। जबतक मनुष्य निर्बल बने रहेंगे तबतक उनकी निर्बलता से लाभ उठानेवाले भी कोई न कोई अवश्य ही निकल पडेंगे। इसलिए अब आत्म-रक्षा के लिए अपना संगठन करना ही एक मात्र उपाय है। ऐसे मामलों में जिनका कि इससे संबंध है वे यदि शान्त प्रतिकार करने में असमर्थ हों तो वे अपनी रक्षा के लिए कैसे भी हिंसात्मक साधनों का उपयोग क्यों न करें मैं उसे ठीक ही समझूंगा। अवश्य जहां गरीब और लाचार मांबाप के लडके और लडकियां भगा दिये जाते हैं वहां बात बडी पेचीदा हो जाती है। वहां इसका उपाय किसी एक व्यक्ति को ही नहीं ढूंढना पडता है। लेकिन सारी जाति को ही, एक सारे वर्ग को ही उसका उपाय ढूंढ निकालना चाहिए। लेकिन आम जनता की राय को इसके लिए संगठित करने के पहले यह परम आवश्यक है कि लडके लडकियों को भगा ले जाने के सच्चे और प्रामाणिक मामलों को लोगों के सामने रक्खा जाय।

बाजे का सवाल तो बडा ही सीधा है। बाजा का लगातार बजाना, आरती और रामनाम का रटना क्या सचमुच ही धार्मिक आवश्यकतायें हैं या नहीं? यदि वह धार्मिक आवश्यकता है तो अदालत का मनाई हुकम भी उसके लिए बंधनकर्ता नहीं है। परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न आवे बाजा बजाना ही चाहिए, आरती करनी ही चाहिए और रामनाम की धुन लगानी ही चाहिए। यदि मेरा अहिंसा का धर्म स्वीकार रक्खा जाय तो मैं नम्र और विनीत निःशस्त्र स्त्रीपुरुषों का जिनके कि पास एक लाठी भी न हो एक जुलूस निकालने की सलाह दूंगा। वे रामनाम को रटते जायेंगे और यदि यही झगडे का विषय है तो वे मुसल्मानों का सारा ही गुस्सा अपने सिर उठा लेंगे। यदि वे मेरे सूत्र का स्वीकार करना न चाहते हों तो भी उन्हें रामनाम की रट लगाते रहना चाहिए और अंत तक लड लेना चाहिए। परन्तु दंगा हो जाने के डर से या अदालत के हुकम से बाजा रोक देना अपने धर्म का ही इन्कार करना है।

लेकिन इस प्रश्न का दूसरा पहलू भी है। लगातार बाजा बजाना, और नमाज के वक्त मस्जिद के पास से जाते हुए भी हमेशा बाजा बजाना क्या यह धार्मिक आवश्यकता है? क्या रामनाम की रट लगाना भी ऐसी ही आवश्यक वस्तु है। आज-कल सिर्फ मुसल्मानों को चिढाने के लिए ही बहुतसे जुलूस निकालने का रिवाज हो गया है, नमाज के वक्त पर ही आरती की जाती है और रामनाम की धुन लगाई जाती है, और वह भी इसलिए नहीं, क्योंकि वह धार्मिक आवश्यकता है बल्कि इसलिए कि लडने का अवसर प्राप्त हो; यह जो आक्षेप किया जाता है उसका क्या जवाब है? यदि ऐसा ही होता है, तो उससे तो

अपने ही मतलब को हानि पहुंचेगी और धार्मिक उत्साह न होने के कारण अदालत का हुक्म, फौजी सिपाहियों का आना या ईंटों की वर्षा के कारण उस धार्मिक क्रिया का जरा में ही अंत हो जायगा।

इसलिए पहले यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि उसकी आवश्यकता है या नहीं। जरा सी भी उत्तेजना न दिखानी चाहिए। आपस में समझौता करने के लिए भरसक कोशिश करनी चाहिए। और जहां समझौता होना संभव नहीं है वहां विपक्षियों का और उनके भावों का ख्याल करके हमें अदालत की मदद के बिना ही एक ऐसी हद बांध लेनी चाहिए कि उससे फिर हम किसी प्रकार से भी पीछे न हटें। अदालत का मनाई हुक्म होने पर भी हमें उस हद पर कायम रहने के लिए लड़ना चाहिए। कोई कभी भी मुझ पर यह दोष न लगावें कि मैं कमजोर बनने की सलाह देता हूं या कमजोरी को उत्तेजना दे रहा हूं या किसी से सिद्धान्त छोड़ देने के लिए कहता हूं। लेकिन मैंने यह अवश्य कहा है और आज भी कहता हूं कि हरएक छोटी मोटी बात को सिद्धान्त का रूप दे कर उसे बड़ा महत्व नहीं दे देना चाहिए।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

बहिष्कार बनाम रचनात्मक कार्य

आगामी गंजाम जिला परिषद में हाजिर रहने के लिए मुझे एक बड़ा जरूरी निमन्त्रण भेज कर एक आन्ध्र मित्र इस प्रकार लिखते हैं :—

"महासभा के रचनात्मक कार्यक्रम से संबंध रखनेवाला सबसे अच्छा काम हीरामण्डलम् के आसपास के गांवों में हुआ है। लोगों में से बहुतेरे खादी पहनते हैं। शायद आप यह तो जानते ही हैं कि आन्ध्र देश को धारासभाओं के कार्य से प्रीति नहीं है। वह अपरिवर्तनवादी दल में है। बहिष्कारों को छोड़ देने के कारण वह आपको कभी भी माफ नहीं कर सकता है। हमारी तो एक मात्र आशा रचनात्मक कार्य है। लोगों का दिल टूट रहा है और उनका उत्साह मंद हो गया है। हीरामण्डलम खादी की उत्पत्ति के लिए एक बड़ा भारी केन्द्र है। जिसका महासभा समिति कितने ही प्रकार की खादी तैयार करती है, और इस जिले में उसकी एक बड़ी अच्छी दुकान भी है। वहां एक राष्ट्रीय शाला भी है। यह वैद्यों का केन्द्र है और ये सब खादीवाले हैं। लेकिन उससे क्या लाभ? स्वराज के लिए उनका उत्साह तो करीब करीब नष्ट हो गया है। बहिष्कारों के बिना लोगों को रचनात्मक कार्य में कुछ भी विश्वास नहीं है। उन्हें फिर से उत्साह दिलाने के लिए हमारे सब प्रयत्न व्यर्थ हो रहे हैं। मैंने अपने सभी दुन्यवी लाभों का त्याग दिया है, केवल भीखारी बन गया हूं और फिर भी जहां आशा का कोई चिन्ह नहीं दिखाई दे रहा है वहीं आशा रख कर स्वराज पाने के लिए कार्य कर रहा हूं।"

मैंने उन्हें लिख दिया है कि गंजाम जिला परिषद में मैं कितना भी क्यों न चाहूं मेरा हाजिर रहना केवल असम्भव है। मैं बड़ी मुश्किलों से, और मेरी दृष्टि में बहुत ही धीरे धीरे इस वर्ष की मुसाफरी के कार्यक्रम का बाकी बचा हुआ और बहुत ही जरूरी हिस्सा पूरा कर रहा हूं। इस लगातार के सफर के बाद मैं फिर कुछ आराम करने की आशा रखूंगा। मुझे बड़ा ही रंज है कि मुझे अपने आन्ध्र मित्रों को निराश करना पड़ा है। लेकिन मैंने मेरे थके हुए हाथ पैरों को आराम की जरूरत है इसका विज्ञापन करने के लिए उपरोक्त अवतरण को यहां प्रकाशित नहीं किया है; लेकिन मैंने उसे यहां इसलिए दिया है कि जिन विचारों के विपर्यय के कारण लेखक महासभा के बहिष्कारों को त्याग देने ही को रचनात्मक कार्य में लोगों का उत्साह न्यून होने का कारण मानते हैं उस विपर्यय को मैं दूर कर दूं। पहली बात तो यह है कि यदि आंध्र देशनिवासियों को धारासभा से प्रेम नहीं है तो महासभा उन्हें उससे प्रेम करने को मजबूर नहीं करती है। वह तो सिर्फ उन लोगों को जिन्हें धारासभा में विश्वास है इसबात का अधिकार देती है कि वे महासभा के नाम से और उसकी तरफ से धारासभा का कार्य अपने ऊपर उठा लें। जिन्होंने अपने विश्वास के कारण नहीं किन्तु महासभा की भक्ति के कारण धारासभा का कार्य छोड़ दिया था उनपर से उसने अब अपना मनाई हुकम वापिस खींच लिया है। धारासभा में जाने के कार्य की निंदा करने के लिए महासभा के नाम का उपयोग उसने रोक दिया है और जिन लोगों की ऐसे राजनैतिक कार्यों में श्रद्धा है उन्हें वह कार्य बड़े उत्साह से करने के लिए उत्साहित किया है। महासभा अपने किसी भी सभासद की अन्तरआत्मा को बांध नहीं लेती है। बाहरी मदद न मिलने पर जिनका उत्साह मद पड़ जाता है उन्हें खुद अपने ही में बहुत कम विश्वास होना चाहिए। इसके अलावा लेखक यह भी भूल जाते हैं कि महासभा ने विदेशी कपड़े के बहिष्कार का त्याग नहीं किया है, यही नहीं वह तो जो उसको सफल कर दिखावेंगे उन्हें आशीर्वाद देने के लिए, उनकी तारीफ करने के लिए और उन्हें प्रमाणपत्र देने के लिए भी तैयार है। मैं यह प्रमाणपत्र पाने के लिए भरसक कोशिश कर रहा हूं और मैं मेरे इस प्रयत्न में शामिल होने के लिए हरएक को निमन्त्रण दे रहा हूं। ऐसा बहिष्कार तो तभी सफल हो सकता है जब कि खादी इतनी लोकप्रिय हो जाय कि घर घर वही दिखाई पड़े। और इसीलिए चरखासंघ की स्थापना हुई है। प्रत्येक बहिष्कार का एक रचनात्मक अंग भी होता है। यह संघ रचनात्मक कार्य में ही अपने सब प्रयत्न लगा देगा। खादी तैयार करने और पहनने के साथ दूसरे बहिष्कारों का जैसे उपाधि, शालाएं, अदालतें इत्यादि के त्याग का क्या संबंध हो सकता है? इन बहिष्कारों की खूबी ही यह है कि वे स्वतंत्र हैं और अकेले रह सकते हैं। कोई व्यक्ति सभी बहिष्कारों का पालन करें या किसी भी एक बहिष्कार का पालन करें तो भी उसे लाभ तो होगा ही। और जब एक राष्ट्र में से काफी तादाद के लोग उनका पालन करने लगेंगे तो राष्ट्र स्वराज के लायक बन जायगा। अंधश्रद्धा और अंध प्रयत्न से स्थायी लाभ कुछ भी नहीं होता। इसलिए यह आवश्यक है कि हम यह समझ लें कि रचनात्मक कार्य में निसंदेह वह शक्ति है जो हमें स्वराज्य के योग्य बनावेगी, इतना ही नहीं उसकी स्वतंत्र उपयोगिता भी कुछ कम नहीं है। लेखक ने यह अच्छा ही किया है कि उन्होंने अपने दुन्यवी लाभों का त्याग कर दिया है और वे भिखारी बन गये हैं। लेकिन उन्हें यह ख्याल रखना चाहिए कि वह त्याग ही स्वयं एक बड़ा भारी लाभ है, त्याग ही त्याग का फल है। राष्ट्र को स्वराज्य मिलने के पहले हजारों को उसी तरह त्यागी और भिखारी बनना पड़ेगा। जिसने स्वराज्य के लिए त्याग कर दिखाया है उसने खुद तो स्वराज्य पा ही लिया है। इसलिए उन्हें जहां आशा नहीं वहां आशा रखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनका त्याग स्वेच्छा से और बुद्धिपूर्वक है। उन्हें तो सब तरफ आशा ही आशा दिखानी चाहिए, निराशा तो उनके पास फटक भी नहीं सकती। दूसरों में श्रद्धा पैदा करने के लिए पहले यही आवश्यक है कि हमारी श्रद्धा स्वयं प्रकाशमय और बुद्धिपूर्वक हो। इसलिए जिन्हें १९२१ के खादी के और दूसरे कार्यक्रम में श्रद्धा है उन्हें तो महासभा की नीति, राजनीति और कार्यक्रम में परिवर्तन हो तो भी अचल रह कर अपने काम में ही लगे रहना चाहिए। (यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

बिहारयात्रा

३

बहिष्कार की विडंबना

फिर मुझे वहां के प्रान्तिक मारवाडी सम्मेलन में हाजिर होना पडा था। वहां मैंने सामाजिक बहिष्कार, और समाजसुधार की आवश्यकता के प्रश्नों पर व्याख्यान दिया। मैंने मारवाडी मित्रों से कहा कि बहिष्कार का हथियार न्याय-दृष्टि से सिर्फ उन्हीं लोगों के हाथ में होना चाहिए जो महाजन कहलाने के योग्य हैं। महाजन तो वेही कहे जा सकते है जो पवित्र हैं, अपनी ज्ञाति और वर्ग के सच्चे प्रतिनिधि हैं और जो अपने व्यक्तिगत द्वेष और ईर्ष्या के कारण किसीका भी बहिष्कार नहीं करते है लेकिन अपने ज्ञातिबंधुओं के हित की रक्षा करने के लिए निःस्वार्थ हेतु से ही बहिष्कार की आज्ञा देते हैं। वे लोग जो विद्या संपादन करने के लिए या नीति से धन संपादन करने के लिए समुद्र-यात्रा करते ह, या जो अपने लडके या लडकी के लिए योग्य वर या वधू प्राप्त करने के लिए अपनी छोटी सी जाती बाहर जाते है या अपनी छोटी उम्र की विधवा लडकी की फिर से शादी कर देते है, उनका बहिष्कार करना अनीति है और अपनी शक्ति का दुरुपयोग करना है। वर्णाश्रम धर्म, जिसे हिन्दू समाज में योग्य और उपयोगी स्थान प्राप्त है उसकी रक्षा करने के लिए यही तो योग्य समय है कि छोटी छोटी ज्ञाति सब एक कर दी जाय। उदाहरण के लिए मान लो कि यदि कोई मारवाडी ब्राह्मण या वैश्य शादी करना चाहता है तो वह बंगाली ब्राह्मण या वैश्य के साथ वैवाहिक संबन्ध क्यों न जोडें? महाजनों को सचमुच ही महान बनने के लिए इस प्रकार की एकता को उत्तेजना देनी चाहिए उन्हें उसे दबा न देना चाहिए।

यदि सचमुच ही आज कोई बहिष्कृत रहने के योग्य है तो वेही लोग हैं जो बचपन में ही अर्थात १६ वर्ष की उम्र के पहले ही अपनी लडकीयों की शादी कर देते हैं। यदि गुप्त अनीति और व्यभिचार को रोकना है तो मातापिताओं का यह फर्ज है कि वे विधवा बालिकाओं के पुनर्विवाह को भी प्रोत्साहन दें।

वैजनाथ धाम के पण्डे

भागलपुर से हमलोग बांका पहुचे। वहां जिला परिषद हुई थी। उसके प्रमुख मौलाना शफी साहब थे। यहां सिवा इसके कि एक बडी भीड थी और उसमें से मैं बडी मुश्किल से मेरे पांव की उंगली में एक जगह चोट खा कर बाहर निकल सका और उल्लेख योग्य बात कुछ भी न थी। वहां से हम देवगढ पहुंचे। उसे वैजनाथ धाम भी कहते हैं। यह केवल एक प्रसिद्ध यात्रा का स्थान ही नहीं है किन्तु चारों ओर पहाडियों से घिरि हुई एक सुन्दर जगह होने के कारण स्वास्थ्य के लिए भी बडी अच्छी जगह है। बंगाली लोग तो इसे बहुत ही पसंद करते हैं। मैंने यहां के पंडों को देखा वे संस्कारी और सभ्य थे। यात्रा के दूसरे तीर्थों में ऐसे संस्कारी पण्डे देखने को नहीं मिलते हैं। मुझसे यह कहा गया कि यहां के स्वयंसेवकों में एक बहुत बडी संख्या युवक पण्डों की ही है और वे यात्रियों को बडी मदद पहुंचाते हैं। उनमें कुछ तो अच्छे शिक्षित पण्डे भी हैं। उनमें से एक तो हाईकोर्ट वकील हैं। यहां कुछ वृद्ध पण्डों से मुलाकात करने का भी मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे मुझसे यह जानना चाहते थे कि वे लोगों की सेवा किस प्रकार कर सकते हैं और जब मैंने उनसे यह कहा कि उन्हें तो, यात्रीओं से उनको दुःख दे कर रुपया कमाने के बजाय उनकी सेवा ही करनी चाहिए और तीर्थ को पवित्र और संयमी जीवन बीता कर सचमुच ही पवित्र बना देना चाहिए, तो उन्होंने उसका फौरन स्वीकार कर लिया और उनकी इस स्वीकृति में मुझे सचाई की बू आती थी। उन्होंने मेरी बताई हुई बुराइयों का अपने में होना भी नम्रता से स्वीकार कर लिया। जब मैंने सुना यहां का बडा मंदिर अंत्यजों के लिए भी खुला हुआ है तब तो मुझे बडी खुशी हुई और आश्चर्य भी हुआ। मंदिर के सामने के विशाल मैदान में स्त्रीयों की सभा की गई थी। देवगढ में पण्डा स्वयंसेवकों ने जो व्यवस्था रक्खी थी वह व्यवस्था दूसरी जगहों की व्यवस्था से अवश्य ही बढ कर थी।

कष्टसहिष्णुता

सार्वजनिक सभा जो की गई थी उसमें इतनी अच्छी व्यवस्था थी कि संपूर्ण शांति का यकीन हो सकता था। जनता की तरफ से उस समय जो अभिनंदन दिया गया था उसमें १९२१-२२ में उस जिले के लोगों को जो भयंकर कष्ट सहने पडे थे उनका उल्लेख किया गया था। यहां यह कह देना आवश्यक है कि यह जिला सन्थल परगना का जिला कहलाता है। बिहार का यह भाग कानून के बहार है और इसलिए इस विभाग में कमीश्नर की इच्छा ही कानून है। उसमें यह भी कहा गया था की १९२१-२२ में शराबखोरी इस प्रांत में से बिल्कुल ही उठ गई थी लेकिन अब फिर वह सन्थल लोगों में घर कर रही है। खद्दर के लिए यह कहा गया था कि वहांकी स्थिति बडी ही आशाजनक है। मैंने उत्तर देते हुए कहा कि बिना बहुत सा कष्ट उठाये कोई भी राष्ट्र बन नहीं सकता है। इसलिए मैं १९२१-२२ में आप लोगों को जो कष्ट उठाना पडा है उस पर कुछ भी ध्यान न दूंगा। कष्टसहिष्णुता से फायदा उठाने के लिए सिर्फ स्वेच्छा से कष्ट सहन करना चाहिए और उसमें आनंद मानना चाहिए। जब कष्ट आ पडा है तो आखिर वह कष्ट उठानेवाले को अधिक दृढ और सुखी बना कर ही छोडेगा। लेकिन यह सुन कर मुझे बडा रंज है कि इस जिले के लोगों का इस कष्ट के कारण अधःपात हो रहा है। इसके तो यही मानी हो सकते है कि उस समय जो कष्ट सहन करना पडा था वह कष्ट स्वेच्छापूर्वक सहन नहीं किया गया था। शुद्ध और स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहन करने के उदाहरण तो स्वयं कार्यकर्ताओं को ही लोगों के सामने रखने चाहिए। सन्थल लोगों में शराबखोरी के विरुद्ध बराबर हलचल करते रहना चाहिए और चरखे के कार्य को बराबर व्यवस्थित करना चाहिए।

दो चित्र

यहां की म्युनिसिपल्टि की तरफ से भी एक अलाहदा अभिनंदन पत्र दिया गया था। मैं इसका सिर्फ इसीलिए उल्लेख कर रहा हू क्योंकि यह अभिनन्दन पत्र देने के लिए वहां खुले में बडी अच्छी और रोचक व्यवस्था की गई थी। निमंत्रित सद्गृहस्थों को टिकट दिये गये थे और उनकी संख्या इतनी थोडी थी कि किसी भी अच्छे मकान में वे बैठ सकते थे लेकिन प्रबंधकर्ताओं ने यह पसंद नहीं किया और उन्होंने एक जगह जहां का कुदरती दृश्य बडा ही सुन्दर था पत्तों से सजा हुआ एक छोटा सा मंडप तैयार करवाया था। इसलिए मुझे म्युनिसिपल्टि के अभिनन्दनपत्र पत्र का उत्तर देते हुए, मन्दिर जाने के गन्दे मार्ग के बारे में और उसके आसपास की टूटी फूटी जगह के बारे में कुछ कहना पडा। मैंने हिन्दुस्तान के करीब करीब सभी तीर्थों की यात्रा की है और सब जगह मन्दिर के अन्दर और बहार ऐसी ही शोकजनक स्थिति पाती है। सब जगह बेहद अव्यवस्था, धूल,

कोलाहल और दुर्गन्ध पायी जाति है। शायद देवगढ में दूसरी जगहों से हालत कुछ अच्छी हो फिर भी जिस जगह अभिनन्दन पत्र दिया गया था उस जगह में और मन्दिर के आसपास की जगह में जो भेद पाया गया उससे मुझे बड़ा ही दुःख हुआ। यदि म्युनिसिपलिटि, पंडे और यात्री सब मिल कर प्रयत्न करें तो वे मन्दिर और उसके आसपास की जगह को जैसा कि उसे होना चाहिए बहुत ही सुन्दर सुगन्धित और अच्छा बना सकते हैं। मैंने उनसे कहा कि यदि अच्छी व्यवस्था और प्रमाणिकता का यकीन दिलाया जा सके तो मुझे यकीन है कि धनवान यात्री लोग ऐसे पवित्र तीर्थ स्थानों पर उन्हें जो आराम मिलेगा उसके बदले में इसके लिए खुशी खुशी रुपया देंगे।

बदसूरत और अनुपयोगी

देवगढ से हम लोग खड़गडीह की तरफ गये। वहां गीरीडीह हो कर जाना पड़ता है। गीरीडीह से मोटर के रास्ते से वह २६ मील दूर है। इस जगह स्त्रीयों की सभा से ही कार्यक्रम हुआ। अबतक स्त्री श्रोताओं के भारी और अत्यधिक गहनों के शृंगार को देख कर, यद्यपि वे मुझे असह्य मालूम होते थे फिर भी उन पर टीका करने में मैं संयम का पालन कर रहा था। लेकिन जब मैंने उन स्त्री श्रोताओं को कोनी तक चूड़ियां, और नाक में बड़ी भारी नथ पहने जो उनसे सम्हल भी न सकती थी देखा तो मुझसे रहा न गया और मैंने उनसे धीरे से यह कहा: ऐसे भारी गहने पहनने से उनकी सुन्दरता में कोई वृद्धि नहीं होती है, उससे बहुत कुछ असुविधा होती है, अकसर रोग उत्पन्न होते हैं और जैसा कि मैं स्पष्ट देख रहा हूं उनमें मैल जम जाता है। मैंने इस कदर गहने पहनने का ख्याल कहीं भी नहीं देखा है। मैंने वजनदार गहने देखे है। काठियावाड की स्त्रीयां पांव में बड़े वजनदार कड़े पहनती हैं। लेकिन मैंने चूडियां इत्यादि गहने से इतना शरीर ढक देने का रिवाज और कहीं नहीं देखा था। किसीने मुझे यह खबर भी दी है कि कभी कभी नथ के बोझ से नाक की चमड़ी भी फट जाती है। मैं मेरे स्त्री श्रोताओं पर मेरी ऐसी सीधी टीका का क्या असर होता है यह देखने के लिए अत्यधिक उत्सुक हो रहा था। इस लिए मेरा व्याख्यान पूरा हो जाने के बाद जब उन स्त्रीयोंने अपनी थैलियां खोल कर देशबंधु के स्मारक के लिए उदारता से दान देना शुरू किया तब मुझे कुछ राहत मिली। मैं हरएक दाता को खास कर यह समझाता था कि वे अपने गहनों में से कुछ मुझे दे दें। वे मेरी बातों को मुस्कुराते हुए सुन लेती थी और उनमें से कुछ स्त्रीयों ने मुझे अपने कुछ गहने दे भी दिये थे। मैं यह नहीं जानता कि गहनों की संख्या और जाति का संबंध चारित्र से भी है या नहीं। लेकिन बहुतेरे उदाहरण देकर यह बात तो साबित की जा सकती है कि उसका संबंध बुद्धि से अवश्य है। और उसका संबंध चारित्र से नहीं तो भी सत्कारिता से अवश्य है। लेकिन मैं सत्कारिता से भी चारित्र को अधिक महत्व देता हूं इसलिए मैं इस दुविधा में हूं कि हिन्दुस्तान के जुदे जुदे भागों में हजारों स्त्रीयों को व्याख्यान सुनाने का मुझे जो सौभाग्य प्राप्त होता है उसका मैं यदि उनके शृंगार करने की कला में सुधार करने की आवश्यकता को दिखाने में कुछ उपयोग करूं तो क्या हमेशा यह ठीक ही होगा। किन्तु मैं इन सादी सीधी स्त्रीयों के माता पिताओं को और पतियों को यही समझाऊंगा कि करकसर और खूबसूरती के लिहाज से उनके गहनों को बहुत कुछ कम कर देना परम आवश्यक है।

(अपूर्ण)

(यं. इं.) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

एक मित्र की हैरानी

एक मित्र बड़ी हैरानी में है। वे एक हिन्दुस्तानी पेढी में काम करते है। उन्हें वहां सुबह के ८ बजे से रात के ९ बजे तक काम करना पड़ता है, दिन में खाना खाने की कुछ छुट्टी मिलती होगी। लेकिन उस पेढी के मालिक उन्हें किस कपड़े के बने या कैसे कपड़े पहनना चाहिए इसके लिए कोई हुकम नहीं देते हैं और इसलिए वे अपनी खुशीसे खादी ही पहनते हैं। एक विदेशी पेढी उन्हें दूनी तनख्वाह देने के लिए तैयार है और वहां उनसे काम भी कम लिया जायगा। लेकिन उस पेढी के विदेशी मालिक उनका खादी पहनना सहन नहीं कर सकते हैं। अब उनके सामने जो मुश्किल पेश है वह यह है: यदि वे विदेशी पेढी की नौकरी कर लेते हैं, तो उससे केवल उनकी भौतिक स्थिति ही का सुधार न होगा लेकिन उन्हें रोजाना कातने के लिए समय भी मिलेगा। उन्हें कातने में श्रद्धा है। लेकिन उस नौकरी को ले लेने पर उन्हें खादी को—जिस पर कि उन्हें प्रीति है—त्याग करना होगा। यदि वे वहीं रहते हैं जहां कि आज काम कर रहे हैं तो उन्हें बारह घण्टे की गुलामी करनी पड़ती है, रुपये-पैसे की तकलीफ उठानी पड़ती है और कातने के लिए समय भी नहीं मिलता है। तो अब उन्हें क्या करना चाहिए? मैं तो किसी भी प्रकार के संकोच के बिना अपनी राय दे सकता हूं। खद्दर के प्रश्न को इससे अलग कर लें तो भी स्वाभिमानी मनुष्य के लिए विदेशी पेढी की यह लालच केवल अस्वीकार्य ही होनी चाहिए। और उसकी सिर्फ यही एक वजह है कि उनकी स्वतंत्रता पर अनधिकार आक्रमण किया जाता है और यह आक्रमण खास कर के उनके राष्ट्रीय भावों पर हो किया जाता है और दूसरी जो बातें उन्होंने बयान की है उस पर से यह भी प्रतीत होता है कि खादी के प्रति सद्भाव न होने के कारण ही उन्होंने यह शर्त रखी है। दूसरे, गुण-दोषों का विचार करके भी मैं तो खादी पहनना ही अधिक पसंद करूंगा, चाहे फिर उसके लिए कताई को कुछ समय के लिए छोड ही देना क्यों न पड़े। यदि सब लोग खादी पहनना छोड देंगे तो कताई का कुछ भी प्रयोजन न रहेगा। कताई की उपयोगिता स्वतंत्र नहीं अपेक्षित है। यदि तैयार किया हुआ सूत बाजार में बिक नहीं सकता है तो लाखों आधे पेट रहनेवाले लोगों को कातने के लिए कहना निष्ठुरता से उनका मजाक करना है। इस समय आवश्यकता तो इस बात की है कि खादी को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाई जाय। कातने की भी बेशक बहुत ही आवश्यकता है लेकिन जहां कातने में और खादी पहनने में से किसी एक को पसंद करना पड़ता है वहां निःसंदेह खादी पहनना ही पसंद करना होगा। जिन लोगों को अपनी थोडी सी आमदनी को कुछ और बढाने की जरूरत है उन्हीं को कातने के लिए कहा गया है और वह भी फुरसद के समय में। और उन लोगों को बिना दाम लिये कातने को कहा गया है जिन्हें फुरसद है और जो राष्ट्र को उस रूप में अपनी मिहनत नजर करना चाहते हैं। इन मित्र के मामले में उन्हें कातने की इच्छा है तो उन्हें किसी वक्त समय भी मिल रहेगा। शायद वे अपने कार्यालय को ट्राम में या रेलगाडी में बैठ कर जाते होंगे। वे अपने साथ तकली ले जाया करें और जब थोडी भी फुरसद मिले उसपर कात लिया करें। मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूं जो इस तरह कातते हैं। इसलिए मुझे आशा है कि पत्रलेखक महाशय किसी लालच के वश हो कर अपना खादी का पहनना कभी भी न छोडेंगे। मुझे यह आशा थी

कि विदेशी व्यापारी पेढ़ियों में खादी के प्रति अब कोई दुर्भाव न रहा होगा। कलकत्ते में जिन युरोपियन व्यापारियों से मुझे बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था उन्होंने तो खादी के प्रति कोई दुर्भाव न दिखाया था। मैं चाहता हूं कि जो प्रभावशाली विदेशी व्यापारी इसे पढ़ें वे ऐसे दुर्भावों को दूर करने के लिए अपने प्रभाव का अवश्य ही उपयोग करें। और हिन्दुस्तानी पेढ़ियों के लिए भी अब वह समय आ गया है कि वे अपने आदर्शों को कुछ बदलें और उनके नौकरों के काम के घण्टे कुछ कम कर दें। दुनिया का अनुभव यह है कि ज्यादा घण्टे काम लेने से काम कुछ ज्यादा नहीं होता है बल्कि कम ही होता है। इन आवश्यक सुधारों को स्वेच्छा-पूर्वक और उदारता-पूर्वक दाखिल करने के लिए कुछ थोड़ी हिम्मत और प्रथम कदम बढ़ाने ही की आवश्यकता है। यह सुधार वैसे तो स्वयं ही कुछ समय के बाद हुए बिना न रहेंगे लेकिन मजबूर हो कर जब इन सुधारों को दाखिल करना होगा तब उसमें कुछ गौरव न होगा। नौकरों से थोड़े घण्टे काम लेने को सारे संसार में हलचल हो रही है। इसे कोई नहीं रोक सकता है। क्या भारतवर्ष का व्यापारी मण्डल या ऐसा ही कोई दूसरा मण्डल इस कार्य को मदद न करेगा?

स्वाधीन भारत में गोआवासियों का स्थान

एक गोआनिवासी मित्र पूछते हैं कि स्वराज्य मिल जाने पर आपके और समस्त भारतवासियों के उन गोआवासियों के प्रति क्या भाव रहेंगे जो कि इसी देश में रहते हैं और यहीं अपनी जीविका उपार्जन करते हैं। थोड़े ही में मैं इस बात का जवाब देता हूं कि गोआवासियों के प्रति उनका वही भाव रहेगा जो कि किसी भी भारतीय के प्रति रहता है क्योंकि गोआनिवासी उतने ही अंशों में भारतवासी हैं जितने अंशों में कि भारत के किसी भी हिस्से का रहने वाला दूसरा शख्स। वे एक विदेशी सरकार के हाथ के नीचे हैं इससे उनके साथ किये जाने वाले व्यवहार में कोई भेद नहीं किया जा सकता। यदि उक्त प्रश्न में छिपा हुआ उनका डर धर्म-भेद के कारण हो तो मैं यह बार बार कह चुका हूं कि स्वराज्य किसी एक मजहब के लिए नहीं होगा। वह सब धर्मों के लिए होगा और जिनका जन्म या पालन-पोषण भारत में नहीं हुआ है उनकी भी पूर्ण रूपसे रक्षा की जायगी, उतनी ही पूर्ण रूप से जितनी कि वर्तमान सरकार की छत्रछाया में बिना किसी भेद-भाव के की जाती है। मैं तो ऐसे ही स्वराज्य की कल्पना करता हूं। अन्त में वह कैसा होगा यह भारत के विचारवान पुरुष आगे चलकर क्या करेंगे इसपर निर्भर है। भविष्य के भारत को बनाना गोआनिवासियों के हाथों में भी उतना ही है जितना कि अन्य किसी जाति के हाथों में। इसलिए किसी को भी यह न पूछना चाहिए कि स्वराज्य के दिनों में उनका क्या होगा। क्योंकि दुःख सहन करने के लिए तो सिर्फ बेवकूफ और कायर ही जिन्दा रहते हैं। यदि राज्य व्यक्तियों के अधिकारों पर आक्रमण करेगा तो हरएक व्यक्ति अपने स्वातन्त्र्य की स्वयं ही रक्षा करेगा। जबतक बहुत सी व्यक्तियों मे इस प्रकारकी प्रतिरोध शक्ति नहीं आती है तबतक भारतवर्ष सच्ची स्वतन्त्रता हासिल नहीं कर सकेगा।

आपने क्या किया है?

यदि कातने में आपको श्रद्धा है और आप चरखा-संघ को विश्वास की दृष्टि से देखते हैं तो क्या आप उसके सभासद बन गये हैं? यदि आप उसके सभासद नहीं बने हैं तो क्यों नहीं बनें उसका आप कारण बतावेंगे? यदि आप उसके सभासद बन गये हैं तो अपने हाथ का अच्छा कता हुआ सूत चन्दे के लिए भेजने के अलावा खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए आप क्या प्रयत्न कर रहे हैं? क्या आप ने अपने मित्रों को और कुटुंब के लोगों को भी चरखा-संघ में दाखिल होने के लिए पूछा है? क्या आप ने अपने कुटुम्ब के बच्चों को भी देश के लिए कुछ काम करने के लिए कहा है? बच्चे यदि बचपन में ही बुद्धिपूर्वक आत्म-त्याग करना सीख जांय और संगठन और व्यवस्था को समझने लगें तो यह पढ़ाई उनके लिए कुछ कम महत्व की वस्तु नहीं है। अव्यवस्थित और संगठनहीन आधे घण्टे की मिहनत से चाहे कुछ भी फायदा न हो लेकिन किसी संगठित संस्था के लिए व्यवस्थित तौर पर आधा घण्टा देश के किसी भी कोने में बैठ कर मिहनत की जाय तो उसमें वह शक्ति है कि वह राष्ट्रीय जीवन में क्रान्ति कर दे। बच्चे रोजाना कुछ काम करके यदि अपने देश को इस प्रकार याद करते रहें तो यह भी कुछ कम नहीं है। इससे उन्हें संयम और व्यवस्था का बड़ा अमूल्य पाठ पढ़ने को मिलेगा। बच्चों को सादे सीधे मिहनत के काम करने के गुणों को दिखाने में चरखे का वह रहस्य जिसका आपको खयाल भी न होगा आप जान सकेंगे। यह पूछ कर कि जब सारा हिन्दुस्तान आलसी बना हुआ है उस समय आपके आधा घण्टा कातने से क्या लाभ होगा कृपया कठिनाई का पहाड़ सामने न खड़ा कीजिएगा। आप तो अपना कर्तव्य ही अच्छी तरह से कर दीजिए और फिर बाकी तो सब कुछ अपने आप हो जायगा। हमारे हाथ में कुछ संसार का राज्य तो है ही नहीं। लेकिन हमारी बात तो हमारे ही हाथ में है। और आप यह देखेंगे कि सब लोगों के लिए जो हम यही कर सकते हैं। आप ही तो सब कुछ हैं। इस कहानी में बहुत कुछ सत्य है 'गाड़ी बढाओगे तो रुपया आपही बढ जायगा'।

कातनेवाले ध्यान दें

महासभा समिति के प्रस्ताव के अनुसार गत वर्ष में जो सूत प्राप्त हुआ वह जिनके अधिकार में था वे कहते हैं कि जो कातने वाले चरखा-संघ के सभासद बनना चाहते हैं उन्हें मैं एक चेतावनी दे दूं कि वे खराब और बराबर कता हुआ न हो ऐसा सूत कभी भी न भेजें। बहुतसा खराब सूत तो अब भी उनके पास पड़ा हुआ है। वे उसको अभी कुछ उपयोग में नहीं ला सके हैं। वह रोटी जो बुरी तरह बनी हुई हो और बराबर सिकी न हो रोटी ही नहीं कही जा सकती, उसी तरह वह सूत जो बराबर कता हुआ और समान न हो सूत के नाम के योग्य नहीं है। सभासद बनने के लिए सिर्फ अपने हाथ का कता १००० गज सूत भेजना ही काफी नहीं है लेकिन उसके लिए तो अपने हाथ का कता अच्छा एकसमान सूत १००० बार भेजना आवश्यक है। यह तो 'अ' वर्ग की बात हुई, 'ब' वर्ग के सभासदों को भी साल में वैसा ही अच्छा कता हुआ २००० गज सूत भेजना चाहिए। इसलिए यदि संघ के मन्त्री अपना कर्तव्य बराबर करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि वे उस सूत को लेनेसे ही इन्कार कर दें जो सूत एक हद से गिरा हुआ मालूम हो। वह हद बड़ी कड़ी न होनी चाहिए लेकिन इतनी कड़ी तो अवश्य होनी चाहिए कि वह अच्छे बुनने लायक सूत की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करती हो। यदि चन्दा नकद लिया जाय तो सिक्के के टुकड़े को कोई रुपया मान कर न ले लेगा उसी तरह जब सूत का चन्दा लिया जाता है तब खराब सूत भी चन्दे में नहीं लिया जा सकता है।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी

गीता का अर्थ

वार्षिक मूल्य ४)
छमाही का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ९

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, कार्तिक बदी १३, संवत् १९८२ गुरुवार, १५ अक्तूबर, १९२५ ई० { मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

मान है या मानहानि?

एक कार्यकर्ता लिखते हैं:

"मैं आप को यकीन दिलाता हूं कि बहुत से कार्यकर्ताओं को महासभा के फंड में से वेतन लेने में मानहानि मालूम होती है लेकिन वे लाचार हैं। मैं इसलिए आपसे प्रार्थना करता हूं की आप यंग इंडिया में कुछ लिख कर उन्हें इसके लिए उत्साहित करें।"

सिविल सर्विस में दाखिल होने के लिए युवक गण क्यों बड़ी बड़ी मिहनत उठाते हैं और पानी की तरह रुपया बहाते हैं? वे उसमें अपनी मानहानि नहीं समझते इतना ही नहीं वे उसमें अभिमान भी लेते हैं। जब वे परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं उनके मित्र उनका सत्कार करते हैं, और जब सिविल सर्विस में उन्हें कहीं नोकरी मिल जाती है उन्हें अभीनन्दन पत्र भी दिये जाते हैं। क्या लाखों लोगों पर अधिकार चलाना, तलवार की नोक से कर उगाहना और वह भी अक्सर उन लोगों से जो कर नहीं दे सकते हैं, महासभा की सेवा करने से अधिक मानास्पद है? महासभा में तो प्रेम और सेवा के अधिकार के सिवा दूसरा कोई अधिकार नहीं मिल सकता और मात्र निर्वाह के योग्य ही कुछ वेतन दिया जाता है। यदि यह दलील की जाय कि महासभा में वेतन लेने वाले और अवैतनिक सेवकों का एक प्रकार का हानिकर योग होता है तो सरकारी नोकरीयों में भी तो यही पाया जाता है न। इस सरकार के पास भी जैसा कि हरेक सरकार के पास होना चाहिए, जहां एक वेतन लेनेवाला नोकर है वहां साथ में दस वेतन न पाने वाले नोकर भी हैं। इन दोनों वर्गों में अक्सर एक दूसरे के प्रति ईर्षा भी हुआ करती है। जहां तक इस बात को मैं समझ सका हूं महासभा की नोकरी में दाखिल होने में अनिच्छा होने का सिर्फ एक ही कारण है और वह उसका नयापन और अर्द्धजीवन है। दूसरे सब कारण कमोबेश केवल काल्पनिक मालूम होते हैं। बेशक जब महासभा को भी सच्ची इज्जत और प्रभाव प्राप्त होगा जो आज उसे प्राप्त नहीं है — आज की उसकी प्रसिद्धि केवल अपेक्षा से है स्वतंत्र नहीं — उस समय एक चपरासी भी राष्ट्र की सेवा करने में और अपनी योग्यता से कुछ कम वेतन लेने में अपनी इज्जत समझेगा। लेकिन अभी तो महासभा के प्रामाणिक वेतन लेनेवाले कार्यकर्ताओं से फिर चाहे वे मुख्य विभाग में, शिक्षाविभाग में या खादी और स्वराजदल की शाखाओं में कहीं भी काम करते हो मैं यही कहूंगा कि वे इस संस्था को अपनी ईमानदारी भक्ति और बराबर ध्यान देकर कार्य करने की शक्ति से लोगों को अपनी ओर आकर्षणकारी बनावें। जिन्हें इस बात का खयाल बना रहता है कि वेतन लेकर उन्हें उस के काम में जितना भी समय और ध्यान देना चाहिए उतना वे दे रहें हैं उन्हें फिर महासभा के वैतनिक सेवकों में होने के कारण कुछ भी दुःख न मानना चाहिए। जैसे जैसे हम रचनात्मक कार्य में अधिकाधिक प्रगति करते जायंगे वैसे वैसे हमें वैतनिक सेवकों की भी अधिक आवश्यकता होगी। हम लोग एक राष्ट्र की हैसियत से इतने गरीब हैं कि हमें अपना सब समय देनेवाले बहुतसे अवैतनिक सेवक मिल ही नहीं सकते हैं। हमें वेतन लेनेवाले सेवकों पर ही विशेष आधार रखना होगा। जिसे जरूरत है वह यदि वेतन लें तो उसमें किसी प्रकार की उसकी मानहानि होती है यह खयाल जितना भी जल्दी दूर हो सके राष्ट्र के लिए उतना ही अच्छा है।

क्या चरखा संघ केवल हिन्दुओं का रहेगा?

मौलाना ने मुझसे कहा है कि उनके एक मुसल्मान मित्र ने उन्हें इस बात की चेतावनी दी है कि 'चरखा-संघ' की मातहती में जो खादी काम होगा वह भी खादी बोर्ड ही की तरह हिन्दुओं के हाथ में ही रहेगा। मौलाना ने पहले ही उस मुसलमान मित्र के साथ इस विषय पर बहस कर ली है क्यों कि वे स्वयं जानते हैं कि श्री० बेंकर ने मुसलमान कार्यकर्ताओं की तलाश में कितनी जीजान से कोशिश की थी। मैं अपना निजी अनुभव भी कहता हूं। मै जहां कहीं गया हूं मैंने खादी-संगठन के संचालकों से यही प्रश्न किया है कि उनके साथ कुछ मुसल्मान कार्यकर्ता भी हैं या नहीं। इसके जवाब में सबों ने एक स्वर में यही कहा है कि खादी के कार्य में मुसल्मान कार्यकर्ताओं का मिलना कठिन है। खादी-प्रतिष्ठान में कुछ मुसल्मान हैं पर वे साधारण श्रेणी के हैं। अभय-आश्रम में भी एक या दो मुसल्मान हैं। पर ऐसे उदाहरण मैं ज्यादा नहीं दे सकता। बात यह है कि खादी-सेवा का कार्य अभी ज्यादा प्रतिष्ठित नहीं हुआ है। इसमें काम करने से ज्यादा रुपया नहीं कमाया जा सकता। कुछ समय पहले मैंने इसके बारों की छानबीन की तो मुझे मालूम हुआ कि इसमें १५०) रु०

मासिक से अधिक वेतन कहीं नहीं दिया गया। यह १५०) रु० भी बड़े योग्य संगठन कर्ता को दिये गये थे। सब जगह खादी के कुशल कार्यकर्ता मुफ्त में काम करते हैं। सेवा की शर्तों का कठिन होना आवश्यक ही है। अपना सारा समय दे देनेवाले ऐसे खादी-कार्यकर्ता नहीं मिल सकते जो अपने हाथ से न कातते हों अथवा हमेशा खादी न पहनते हों। यदि कोई नेक मुसल्मान अपनी सेवाओं को अर्पण करेंगे तो मुझे उनसे बड़ी प्रीति होगी। जो यह करने के लिए तैयार हो वह मौलाना साहब को अर्जी भेजें। उन्होंने प्रत्येक की परीक्षा स्वय कर के फिर संघ में उसके लिए सिफारिश करने का निश्चय किया है। पर मैं मुसल्मान, क्रिश्चियन, पारसी, यहूदी आदि जिस किसी का इसके साथ सम्बन्ध है उन्हें यह योग्य सूचना दे देता हूं कि उनके प्रयत्न, योग्यता और खादी-प्रेम के अभाव में खादी-सेवा हिन्दुओं के हाथ में चली जाय तो इसके लिए वे फिर संघ को दोष न दें।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

शिक्षितवर्ग के संबंध में

मेरी बिहार की यात्रा में एक मित्र ने उत्तर देने के लिए मुझे निम्न लिखित प्रश्न लिख कर दिये हैं:

"आपको शिकायत है कि शिक्षित वर्ग आपका अनुसरण नहीं कर रहे हैं और आपका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। क्या यह इसलिए तो नहीं है न कि आपने हलचल के आरंभ में उनका कुछ विचार नहीं किया था और उनको ऐसी वस्तुओं का त्याग करने को कहा था जिनका कि त्याग करना उनके लिए असंभव था?"

मुझे यह याद नहीं कि मैंने कभी ऐसी शिकायत की हो कि शिक्षित वर्ग मेरा अनुसरण नहीं कर रहे हैं। यदि मैंने किसी बात की शिकायत की हो तो वह यह है कि उस वर्ग को मैं अपनी स्थिति या जिसे मैं सत्य मानता हूं उसे समझाने में असमर्थ हुआ हूं। यह कहना कि मैंने कभी भी शिक्षित वर्ग का त्याग किया था मेरे संबन्ध में एक बड़ी भारी गलत फहमी है। क्या कोई सुधारक भी किसी वर्ग का त्याग कर सकता है? वह तो हमेशा ही सब को किसी खास सुधार में शामिल होने के लिए निमंत्रण देता है। वह पहले अपना धर्मान्तर करके ही कार्य का आरंभ करता है। दूसरे शब्दों में कहूं तो वह समाज से अपने को प्रथम अलग कर लेता है और जबतक समाज उस सुधार के गुणों को न समझने लगे तबतक उसी हालत में पड़ा रहता है। यह समाज का दोष नहीं है, यदि उसका हृदय और मस्तक किसी खास सुधार को समझ न सके या उसकी कीमत न कर सके। यदि सुधारक जिस समाज में वह रहता है उसमें से अपने सुधार को ग्रहण करने के लिए लोगों को प्रसन्न नहीं कर सकता है तो स्पष्ट है कि उस सुधार या सुधारक में, दो में से एक में दोष अवश्य है। मैं खयाल करता हूं कि मुझे इस बात का स्वीकार करना ही पड़ेगा कि शिक्षित वर्ग से जिस प्रकार का त्याग करने को कहा गया था वैसा त्याग करना उसके लिए एक वर्ग के तौर पर असंभव था। लेकिन अपवाद रूप से क्या बहुतेरे शिक्षितों ने बड़ा शानदार त्याग नहीं कर दिखाया है?

"यदि हमें ठीक ठीक याद है तो आपने हलचल के आरंभ में यह कहा था कि यदि जनता आपका साथ देगी तो आप शिक्षित वर्ग की कुछ भी परवाह न करेंगे। यदि यह सच है तो क्या अब आपने अपनी राय बदल दी है? यदि यही बात है तो आप उन्हें अपने खयाल के मुआफिक करने के लिए क्या उपाय कर रहे हैं या क्या करना चाहते हैं?"

मुझे यह आशा है कि मैंने कभी यह नहीं कहा कि मैं शिक्षित वर्ग की कुछ भी परवाह नहीं करता हूं। एक सुधारक न ऐसा कह सकता है न कर ही सकता है। लेकिन मैंने यह अवश्य कहा था और मेरा आज भी यही खयाल है कि यदि असहयोग के तत्व को जनता ग्रहण कर ले तो बिना शिक्षित वर्ग की सहायता के ही स्वराज्य हासिल किया जा सकता है। इसके लिए जनता को प्रधानतः यह काम करना चाहिए कि वे परदेशी कपड़े और मिल के बने कपड़े के साथ असहयोग करें और अपने हाथ के कते और बुने कपड़े से संपूर्ण सहयोग करें। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसी सादी और सीधी दिखने वाली बात भी शिक्षित वर्ग की सहायता के बिना नहीं हो सकती है। मैं इस बात का बड़े गौरव के साथ स्वीकार करता हूं कि यदि सैंकड़ो शिक्षित स्त्री पुरुषों ने चरखे और खद्दर का संदेश फैलाने में मुझे मदद न की होती तो आज उसने जो प्रगति की है वह प्रगति कदापि न होती। और यदि जितना चाहिए उतनी जल्दी प्रगति नहीं हो रही है तो उसका कारण यह है कि शिक्षित लोग एक वर्ग के तौर पर खादी की हलचल से दूर रहे हैं।

"क्या सचमुच आपका यह खयाल है कि जनता आपका साथ दे रही है या आप यह मानते हैं कि वे सिर्फ आपको महात्मा समझकर आपकी बात पर खुश हो कर ताली ही पीटते हैं और आप जो सलाह देते हैं उसकी कुछ भी परवाह नहीं करते हैं?

मेरा यह विश्वास है कि जनता विचार में तो मेरे साथ है लेकिन बुद्धि जो उन्हें करने को कहती उसे करने के लिए उनमें हिम्मत नहीं। इस विषय में मैंने हजारों की परीक्षा ली है। वे सब बिना अपवाद के यही कहते हैं "हम क्या कर सकते हैं? आप जो कहते हैं हम सब समझते हैं। लेकिन हममें उतनी शक्ति नहीं है। आप हमें उसे करने के लिए शक्ति प्रदान कीजिए" यदि शक्ति देना मेरे हाथों की बात होती तो अबतक जनता कभी की कुछ और की और ही हो गई होती। लेकिन मैं जानता हूं कि मैं इस विषय में लाचार हूं। जिस शक्ति को वे मुझसे पाने की व्यर्थ आशा रखते हैं उसे तो सिर्फ ईश्वर ही दे सकता है।

"क्या आप यह खयाल करते हैं कि जनता का ऐसा सुव्यवस्थित संगठन किया जा सकता है कि वह सामुदायिक सविनय भंग के लिए संपूर्ण लायक बन जाय? और क्या यह भय हमेशा ही न बना रहेगा कि वे कहीं अधिक उत्साहित हो कर अपनी अव्यवस्था से और जरूरत से ज्यादह उत्तेजना दिखा कर कैसी भी राज्यनैतिक हलचल को नष्ट न कर डालें?"

यद्यपि प्रमाण मेरे विरुद्ध है फिर भी मैं यह मानता हूं कि सामुदायिक सविनय भंग के लिए जनता को संगठित किया जा सकता है। अर्थात जितना जल्दी उसे लड़ाई के लिए संगठित किया जा सकता है उससे कहीं अधिक जल्दी उसे इसके लिए संगठित कर सकते हैं। मेरी दृष्टि में एकाद जगह कभी कभी हो जानेवाले विचारहीन हिंसात्मक झगड़े में और सुव्यवस्थित जनसमुदाय के हिंसात्मक युद्ध में बड़ा भेद है। भारतवर्ष को जर्मनी की तरह एक युद्ध की छावनी बना देने में पीढ़ियां बीत जायगी। पर इसके मुकाबले में लोगों को कष्ट झेलने पर भी शान्त रहना सीखाना कहीं अधिक आसान है। बम्बई, चौरीचौरा और दूसरी जगहों में कुछ दंगे हो जाने पर भी १९२१ में यह बात स्पष्ट और आश्चर्यकारी रूप में दिखाई दी थी। लेकिन मुझे इस बातका

स्वीकार तो अवश्य ही करना चाहिए कि निकट भविष्य में सामुदायिक सविनय भंग के लिए जनसमुदाय को संगठित करने से आज तो मैं भी निराश हो गया हूं। इस समय उसके कारणों की चर्चा में उतरने की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन मैं यह मानता हूं कि यदि भारतवर्ष को कभी स्वराज्य मिलेगा और यदि वह जनसमाज का स्वराज होगा तो केवल सामुदायिक सविनय भंग करने की शक्ति का विकास करने पर ही ऐसा स्वराज्य मिल सकेगा। प्रश्न के अन्तिम भाग से प्रतीत होता है कि प्रश्नकर्ता को जनता के प्रति विश्वास नहीं है अथवा उसके सम्बन्ध में वे बडे अधीर हो जाते हैं। हम ऐसे कब या कितनी दफा साधारण जन-समाज के सम्बन्ध में आये कि हम उस पर अव्यवस्थितता और अधिक उत्तेजना का दोषारोप कर सकें? जनसमुदाय के बनिस्बत यह गुन्हा करने के लिए तो हमी ज्यादह जवाबदेह है। मेरी बिहार यात्रा में भी मैंने इसी बात के प्रमाण पाये हैं। कार्यकर्ताओं ने देख लिया कि शोरोगुल से मेरी तन्दुरस्ती को नुकसान होगा। वे हरेक जगह पहले ही से इस बात की तैयारी करते थे कि लोग एक बडी तादाद में इकट्ठे तो हों लेकिन वे वहां खडे रहने के सिवा कुछ शोरोगुल न मचावें। और मैंने बडे आश्चर्य के साथ बडी खुशी से यह देखा कि वे बंगाल की तरह यहां भी उसका बराबर पालन कर रहे थे। जिन्हें सफर में जनसमुदाय से संबन्ध पडा है उनका यह सार्वत्रिक अनुभव है।

'आप जनसमुदाय को सुसंगठित और व्यवस्थित बनाने के लिए क्या उपाय ले रहे हैं?'

मैं या कोई दूसरा जिस एक उपाय का अवलम्बन कर सकते हैं वह उपाय है त्यागभाव से जनसमाज की सेवा करना। और ऐसी सेवा सिर्फ खादी ही के जरिये हो सकती है।

"महासभा में ऐसे बहुत से लोग दाखिल हो गये हैं जो वहां न होने चाहिए थे। क्या आप इससे पूरेपूरे वाकिफ हैं? इस हलचल में से ऐसे लोगों को दूर करने के लिए आप क्या उपाय कर रहे हैं?"

मैं इस दुर्भाग्य की बात को जानता हूं। सभी जनसत्तावादी संस्थाओं के भाग्य में ऐसी बातें होना बदा है। इसलिए मुझे या किसी अन्य व्यक्ति को यह पूछना कि वह इसके लिए क्या उपाय कर रहा है निरर्थक है। जो लोग अपने को उसमें रहने योग्य मानते हैं उनका यह फर्ज है कि वे सब मिल कर महासभा को शुद्ध रखने के लिए भरसक कोशिश करें।

"क्या आप यह नहीं जानते कि आपके अनुयायी बनने के लिए जिन लोगोंने अपनी आजीविका के साधन को त्याग दिया है उनमें से बहुतेरों का भार समाज और उनके कुटुम्बों पर पडा है और उनके रिश्तेदार जो अच्छी स्थिति में उनका पालन कर रहे हैं। यदि बात ऐसी ही है तो इस दोष को दूर करने के लिए आप क्या उपाय योजेंगे?"

इस विषय में लेखक के विचार का समर्थन करने में मैं असमर्थ हूं। बेशक कुछ ऐसे उदाहरण अवश्य हैं जिनमें उन्हें बहुत कष्ट उठाना पडा है लेकिन उसका कारण तो यह है कि वे अपनी रहन सहन का तरीक नहीं बदल सके हैं और खर्च को नहीं घटा सके हैं। उन्होंने अपने मामले में नोकरी पर वापस जाने के बनिस्बत या वकीलात फिर से शुरु करने के बनिस्बत यही पसंद किया कि मित्र और रिश्तेदारों की मदद से ही वे अपना गुजारा चलावें। मेरी राय में उनकी यह पसंदगी उनको कोई नीचा दिखानेवाली बात नहीं है।

"सच्चे कार्यकर्ताओं के और उनके कुटुम्बों के पोषण के लिए एसे सार्वजनिक फंड की जिसका इन्तजाम एक ट्रस्टीयों के बोर्ड के हाथ में हो क्या कोई आवश्यकता नहीं है?"

ऐसे कार्यकर्ताओं के लिए जिनका कि वर्णन किया गया है, सार्वजनिक फंड उगाहने के मैं विरुद्ध हूं। इससे तो केवल आलसीयों की संख्या ही बढ जायगी। हर एक सच्चे कार्यकर्ता को महासभा की किसी भी शाखा में दाखिल होने में और अपनी सेवा के बदले में वेतन लेने में अपनी इज्जत समझना चाहिए।

"स्वराजदल को प्रांतिक धारासभाओं में और बडी धारासभा में महासभा के प्रतिनिधि बन कर जाने के लिए आपने उन्हें इजाजत देते हुए केवल कोरे कागज पर दस्तखत ही तो कर दिये हैं। लेकिन क्या इसके पहले आपको इस बात का संतोष हो गया था कि वे सदा महासभा के अनुकूल ही रहेंगे? क्या उस दल के नेताओं ने अभी जो कुछ कहा है उस पर से यह नहीं प्रतीत होता कि वे महासभा के प्रस्तावों के अनुकूल अपना कार्यक्रम और उद्देश बदलने के बजाय महासभा को छोड देना ही अधिक पसंद करेंगे?"

जैसा लेखक का खयाल है वैसी कोई इजाजत स्वराज्यदल को नहीं दी गई है। मुझे इस बात का पूरा पूरा संतोष है कि स्वराज्य दल महासभा की राय के अनुकूल ही रहेगा। क्योंकि उनकी संस्था जनसत्तावादी होने के कारण उसे जनसमाज की राय पर ही बडा आधार रखना होगा।

"आप चरखा-संघ की स्थापना करते हैं इससे मुझे यह खयाल होता है कि आपने महासभा स्वराज-दल को सौंप दी है और इसलिए अब आप रचनात्मक कार्य को महासभा के मुख्य कार्य के तौर पर नहीं किन्तु एक सहायक कार्य के तौर पर ही करना चाहते हैं। यदि यह सच है तो क्या आप महासभा में से अपना हाथ खींच नहीं ले रहे हैं और क्या आप उन लोगों का त्याग नहीं कर रहे हैं जो गया की महासभा के बाद स्वराजदल के खुलमखुला विरोधी बन जाने पर भी आपके अनुयायी बने रहे?"

मैंने स्वराजदल को या और किसी भी दल को न महासभा सौंप दी है और न मुझे कोई ऐसा सौंप देने का कोई अधिकार ही है। यदि महासभावाले स्वराजदल के साथ न हों तो स्वराजदल एक दिन के लिए भी महासभा पर अपना अधिकार कायम नहीं रख सकता। मुझे आशा है कि रचनात्मक कार्य महासभा में केवल एक सहायक कार्य ही न बन जायगा। महासमिति के प्रस्ताव ने इतना ही किया है कि उसने धारासभा के कार्यक्रम को रचनात्मक कार्यक्रम के समान ही महत्व दिया है और उससे चरखा और खादी के कार्य को करने के लिए उसके हाताओं की एक स्वतंत्र संस्था की स्थापना की गई है। जब तक महासभा अखिल भारत चरखा-संघ की पोषक बनी रहेगी तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि मैंने महासभा में से अपना हाथ खींच लिया है। मैंने जैसे उपर कहा है किसी का भी मैंने त्याग नहीं किया है।

जिन्हें धारासभा में विश्वास नहीं है और केवल चरखे में ही विश्वास है वे चरखा-संघ में अब भी रह सकते हैं।

"यदि स्वराज्यदल अपने दिये हुए वचनों का पालन न कर सके तो चरखा और खादी के सिवा देश के राजकीय उद्धार के लिए भविष्य के दूसरे कार्यक्रम के संबंध में आपकी क्या राय है?"

मैं यह नहीं जानता कि इस प्रश्न में किन वचनों के संबंध में उल्लेख है। इस देश का राजकीय उद्धार तो तभी हो सकता है कि जब वह सविनय भंग के लिए या हथियार ले कर युद्ध करने के लिए तैयार हो जाय। हथियारों से युद्ध करने की ताकत तो सिर्फ

बड़ी लम्बी और कठिन तैयारी से ही प्राप्त हो सकती है। सविनय भंग की ताकत सिर्फ रोजाना जिनकी संख्या में वृद्धि हो रही है उन लोगों की रचनात्मक शक्ति का विकास करने से प्राप्त हो सकती है और क्योंकि अभी कई पीढ़ियों तक भारतवर्ष को कभी हथियारों से युद्ध करने की ताकत प्राप्त होगी इस पर मुझे विश्वास नहीं है मैं चरखे की शान्त, निश्चयात्मक और क्रांतिकारी क्रान्ति-शक्ति में ही विश्वास किये बैठा हूं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक बदी १२, संवत् १९८२

गीता का अर्थ

एक मित्र इस प्रकार प्रश्न करते हैं:

"गीता का संदेश क्या है? हिंसा या अहिंसा? मालूम होता है यह झगड़ा हमेशा ही चलता रहेगा। यह बात और है कि हम गीता में किस संदेश को देखना चाहते हैं और उसमें से कौनसा संदेश निकालना चाहते हैं और यह दूसरी ही बात है कि उसको सीधे ही पढ़ने पर क्या छाप पड़ती है। जिसके दिल में यह बात जम गई है कि अहिंसातत्व ही जीवनसंदेश है उसके लिए तो यह प्रश्न गौण है। वह तो यही कहेगा कि गीता में से अहिंसा निकलती हो तो मुझे वह ग्राह्य है। इतने भव्य ग्रंथ में से अहिंसा जैसा भव्य धार्मिक सिद्धान्त ही निकलना चाहिए। किन्तु यदि न निकलता हो तो गीता को भी रहने दीजिए। उसको आदर से पूजेंगे लेकिन उसे प्रमाण-ग्रंथ मानेंगे नहीं।

"प्रथम अध्याय को पढ़ने पर यही प्रतीत होता है कि अहिंसावृत्ति से प्रेरित अर्जुन अशस्त्र हो कर कौरवों के हाथों मरने को तैयार है। हिंसा से होनेवाले पाप और हानि उसकी दृष्टि में स्पष्ट नजर आते हैं। विषाद से वह कांप उठता है और कहता है:

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।

इस पर श्रीकृष्ण उसे कहते हैं: "समझदार हो कर भी यह क्या बोलते हो? कोई किसीको न मारता है न कोई मरता ही है। आत्मा अमर है और शरीर का नाश तो होगा ही। इसलिए इस धर्मप्राप्त युद्ध को लड़ लो। जय क्या और पराजय क्या? केवल अपना कर्तव्य पूरा करो।

११ वें अध्याय में भी उसे विश्वरूप दिखा कर भगवान श्रीकृष्ण यही कहते हैं:

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः।

ईश्वर की दृष्टि में हिंसा और अहिंसा दोनों समान ही हैं। लेकिन मनुष्य के लिए ईश्वर का संदेश क्या हो सकता है?

'युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।

क्या यह? गीता का संदेश यदि अहिंसा हो तो १ और ११ अध्याय सुसंबद्ध नहीं मालूम होते। वे उसे पोषक तो हैं ही नहीं। ऐसी शंकाओं का समाधान कौन करे?

काम की भीड़ में से कुछ समय निकाल कर आप इसका जवाब दें तो अच्छा हो।"

ऐसे प्रश्न तो हुआ ही करेंगे और जिसने कुछ अध्ययन किया है उसे उनका यथाशक्ति जवाब भी देना होगा। किन्तु इसका समाधान करने पर भी आखिर मुझे यह तो कहना ही पड़ेगा कि मनुष्य वही करेगा जो उसका हृदय उसे करने को कहेगा। प्रथम हृदय है और फिर बुद्धि। प्रथम सिद्धान्त और फिर प्रमाण। प्रथम स्फुरणा और फिर उसके अनुकूल तर्क। प्रथम कर्म और फिर बुद्धि। इसीलिए बुद्धि कर्मानुसारिणी कही गई है। मनुष्य जो कुछ भी करता है या करना चाहता है उसका समर्थन करने के लिए प्रमाण भी ढूंढ निकालता है।

इसलिए मैं यह समझता हूं कि मेरा गीता का अर्थ सब के अनुकूल न होगा। ऐसी स्थिति में यदि मैं इतना ही कहूं कि गीता के मेरे अर्थ पर मैं किस तरह पहुंचा और धर्मशास्त्रों के अर्थ निकालने में मैंने किन किन सिद्धान्तों को मान्य रखा है तो यही बस होगा। "परिणाम चाहे कुछ आवे मुझे तो युद्ध करना चाहिए। जो शत्रु मरने योग्य हैं वे तो स्वयं ही मरे हुए हैं। मुझे तो उनको मारने में मात्र निमित्त बनना है"।

१८८९ की साल में गीताजी से मेरा प्रथम परिचय हुआ। उस समय मेरी उम्र २० साल की थी। उस समय मैं अहिंसा धर्म को बहुत ही थोड़ा समझता था। शत्रु को भी प्रेम से जीतना चाहिए यह मैं गुजराती कवि शामल भट्ट के इस छप्पय से "पाणी आपे ने पाय भलुं भोजन तो दीजे" सीखा था। इसमें रहा हुआ सत्य मेरे हृदय में अच्छी तरह बैठ गया था। किन्तु उस समय मुझे उसमें से जीवदया की स्फुरणा नहीं हुई थी। इसके पहले मैं देश ही में मांसाहार कर चुका था। मैं मानता था कि सर्पादि का नाश करना धर्म है। मुझे याद आती है कि मैंने खटमल इत्यादि जीवों को मारे हैं। मुझे तो यह भी याद आता है कि मैंने एक बिच्छु को भी मारा था। आज यह समझता हूं कि ऐसे जहरी जीवों को भी न मारना चाहिए। उस समय मैं यह मानता था कि हमें अंगरेजों के साथ लड़ने के लिए तैयारी करनी होगी। 'अंगरेज राज्य करते हैं इसमें आश्चर्य ही क्या है' इस मतलब की एक कविता गुनगुनाया करता था। मेरा मांसाहार इसी तैयारी का कारण था। विलायत जाने के पहले मेरे ऐसे विचार थे। मैं मांसाहार इ० से बच गया इसका कारण माता को दिये हुए वचनों को मरणान्त पालन करने की मेरी वृत्ति थी। मेरे सत्य प्रति के प्रेम ने बहुत सी आपत्तियों में से मेरी रक्षा की है।

अब दो अंगरेजों से प्रसंग पड़ने पर मुझे गीता पढ़नी पड़ी। 'पढ़नी पड़ी' इसलिए कहता हूं क्योंकि उसे पढ़ने की मुझे कोई खास इच्छा न थी। लेकिन जब इन दो भाइयों ने मुझे उनके साथ गीता पढ़ने को कहा तब मैं शरमिन्दा हुआ। मुझे अपने धर्मशास्त्रों का कुछ भी ज्ञान नहीं है इस ख्याल से मुझे बड़ा दुःख हुआ। इस दुःख का कारण मालूम होता है अभिमान था। मेरा संस्कृत का अध्ययन ऐसा तो था ही नहीं कि गीताजी के सब श्लोकों का अर्थ मैं बिना किसी मदद के ठीक ठीक समझ लूं। ये दोनों भाई तो कुछ भी न समझते थे। उन्होंने सर एडविन आर्नोल्ड का गीताजी का उत्तमोत्तम काव्यानुवाद मेरे सामने रख दिया। मैंने तो फौरन ही उस पुस्तक को पढ़ डाला और उसपर मैं मुग्ध हो गया। तब से लेकर आज तक दूसरे अध्याय के अन्तिम १९ श्लोक मेरे हृदय में अंकित हैं। मेरे लिए तो सब धर्म उसी में आ गया है। उसमें संपूर्ण ज्ञान है। उसमें कहे हुए सिद्धान्त अचल हैं। उसमें बुद्धि का भी संपूर्ण प्रयोग किया गया है। लेकिन यह शुद्ध संस्कारी बुद्धि है। उसमें अनुभवज्ञान है।

इस परिचय के बाद मैंने बहुत से अनुवाद पढ़े, बहुत सी टीकाएं पढ़ी, बहुत से तर्क किये और सुने लेकिन उसे पढ़ने पर जो मुझपर छाप पड़ी थी वह दूर नहीं होती। ये श्लोक गीताजी के अर्थ समझने की कुंजी है। उससे विरोधी अर्थवाले वचन यदि मिले तो उन्हें त्याग करने की भी मैं सलाह दूंगा। नम्र और विनयी मनुष्य को तो त्याग करने की भी जरूरत नहीं है। वह तो सिर्फ यों ही कह दे कि दूसरे श्लोकों का आज इसके साथ मेल नहीं मिलता है तो यह मेरी बुद्धि का ही दोष है: समय बीतने पर इनका और इन उन्नीस श्लोकों में कहे गये सिद्धान्तों का भी मेल मिल रहेगा। अपने मन से और दूसरों से यह कह कर वह शान्त हो रहेगा।

शास्त्रों का अर्थ करने में संस्कार और अनुभव की आवश्यकता है। 'शूद्र को वेद का अध्ययन करने का अधिकार नहीं' यह वाक्य सर्वथा गलत नहीं है। शूद्र अर्थात असंस्कारी, मूर्ख, अज्ञान; वे वेदादि का अध्ययन करके उनका अनर्थ करेंगे। बड़ी उम्र के भी सब लोग बीजगणित के कठिन प्रश्न अपने आप समझने के अधिकारी नहीं हैं। उनको समझने के पहले उन्हें कुछ प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। व्यभिचारी के मुख में 'अहंब्रह्मास्मि' क्या शोभा देगा? उसका वह क्या अर्थ (या अनर्थ) करेगा?

अर्थात शास्त्र का अर्थ करनेवाला यमादि का पालन करनेवाला होना चाहिए। यमादि का शुष्क पालन जैसा कठिन है वैसा निरर्थक भी है। शास्त्रोंने गुरु का होना आवश्यक माना है लेकिन इस जमाने में गुरुओं का तो करीब करीब लोप सा हो गया है। ज्ञानी लोग इसीलिए भक्तिप्रधान प्राकृत ग्रंथों का पठनपाठन करने की शिक्षा देते हैं। किन्तु जिसमें भक्ति नहीं, श्रद्धा नहीं, वह शास्त्र का अर्थ करने का अधिकारी नहीं होता। विद्वान लोग विद्वत्तापूर्ण अर्थ उसमें से भलेही निकालें लेकिन वह शास्त्रार्थ नहीं। शास्त्रार्थ तो अनुभवी ही कर सकता है।

परन्तु प्राकृत मनुष्यों के लिए भी कुछ सिद्धान्त तो हैं ही। शास्त्रों के वे अर्थ जो सत्य के विरोधी हैं सही नहीं हो सकते। जिसे सत्य के सत्य होने के बारे में ही शंका है उसके लिए शास्त्र है ही नहीं अथवा यों कहिए उसके लिए सब शास्त्र अशास्त्र हैं। उसको कोई नहीं पहुंच सकता। जिसे शास्त्र में से अहिंसा नहीं प्राप्त हुई है उसके लिए भय है लेकिन उसका उद्धार न हो यह बात नहीं। सत्य विध्यात्मक है, अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य वस्तु का साक्षी है, अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निषेध करती है। सत्य है, असत्य नहीं है। हिंसा है, अहिंसा नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होना चाहिए। यही परम धर्म है। सत्य स्वयं सिद्ध है। अहिंसा उसका संपूर्ण फल है, सत्य में वह छिपी हुई है। वह सत्य की तरह व्यक्त नहीं है। इसलिए उसको मान्य किये बिना मनुष्य भले ही शास्त्र का शोध करे। उसका सत्य आखिर उसे अहिंसा ही सीखावेगा।

सत्य के लिए तपश्चर्या तो करनी ही पड़ती है। सत्य का साक्षात्कार करनेवाले तपस्वी ने चारों ओर फैली हुई हिंसा में से अहिंसा देवी को संसार के सामने प्रगट कर के कहा: हिंसा मिथ्या है, माया है, अहिंसा ही सत्य वस्तु है। ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह भी अहिंसा के लिए ही है। ये अहिंसा को सिद्ध करनेवाले हैं। अहिंसा सत्य का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है। सत्यार्थी अपनी शोध के लिए प्रयत्न करते हुए यह सब बड़ी जल्दी समझ लेगा और फिर उसे शास्त्र का अर्थ करने में कोई मुसीबत पेश न आवेगी।

शास्त्र का अर्थ करने में दूसरा नियम यह है कि उसके शब्दों को पकड़ कर नहीं बैठना चाहिए लेकिन उसका ध्वनि देखना चाहिए, उसका रहस्य समझना चाहिए। तुलसीदासजी की रामायन उत्तम ग्रन्थ है क्योंकि उसका ध्वनि स्वच्छता है, दया है, भक्ति है। उसमें 'शूद्र गंवार ढोल अरु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी' लिखा इसलिए यदि कोई पुरुष अपनी स्त्री को मारे तो उसकी अधोगति होगी। रामचन्द्रजी ने सीताजी पर कभी प्रहार नहीं किया, इतना ही नहीं उन्हें कभी दुःख भी नहीं पहुंचाया। तुलसीदासजी ने केवल प्रचलित वाक्य को लिख दिया। उन्हें इस बात का खयाल भी न हुआ होगा कि इस वाक्य का आधार ले कर अपनी अर्धांगना का ताड़न करनेवाले पशु भी कहीं निकल पड़ेंगे। यदि स्वयं तुलसीदासजी ने भी रिवाज के वश वर्ती हो कर अपनी पत्नि का ताड़न किया हो तो भी क्या? यह ताड़न अवश्य ही दोष है। फिर भी रामायन पत्नि के ताड़न के लिए नहीं लिखी गई है। रामायन तो पूर्ण पुरुष का दर्शन कराने के लिए, सती शिरोमणी सीताजी का परिचय कराने के लिए और भरत की आदर्श भक्ति का चित्र चित्रित करने के लिए लिखी गई है। दोषयुक्त रिवाजों का समर्थन जो उसमें पाया जाता है वह त्याज्य है। तुलसीदासजी ने भूगोल सीखाने के लिए अपना अमूल्य ग्रंथ नहीं बनाया है इसलिए उनके ग्रंथ में यदि गलत भूगोल पायी जाय तो उसका त्याग करना अपना धर्म है।

अब गीताजी देखें। ब्रह्मज्ञानप्राप्ति और उसके साधन यही गीताजी का विषय है। दो सेनाओं के बीच युद्ध का होना निमित्त है। यह भले ही कह सकते हो कि कवि स्वयं युद्धादि को निषिद्ध नहीं मानते थे और इसलिए उन्होंने युद्ध के प्रसंग का इस प्रकार उपयोग किया है। महाभारत पढ़ने के बाद तो मेरे उपर जुदी ही छाप पड़ी है। व्यासजी ने इतने सुन्दर ग्रंथ की रचना कर के युद्ध के मिथ्यात्व का ही वर्णन किया है। कौरव हारे तो उससे क्या हुआ? और पाण्डव जीते तो भी उससे क्या हुआ? विजयी कितने बचे? उनका क्या हुआ? कुन्ती माता का क्या हुआ? और आज यादव कुल कहां है?

जहां विषय युद्ध वर्णन और हिंसा का प्रतिपादन नहीं है वहां उस पर जोर देना केवल अनुचित ही माना जायगा। और यदि कुछ श्लोकों का संबंध अहिंसा के साथ बैठाना मुश्किल मालूम होता है तो सारी गीताजी को हिंसा के चौखटे में मढ़ना उससे कहीं ज्यादह मुश्किल है।

कवि जब किसी ग्रंथ की रचना करता है तो वह उसके सब अर्थों की कल्पना नहीं कर लेता है। काव्य की यही खूबी है कि वह कवि से भी बढ जाता है। जिस सत्य का वह अपनी तन्मयता में उच्चारण करता है वही सत्य उसके जीवनमें अक्सर नहीं पाया जाता। इसलिए बहुतेरे कवियों का जीवन उनके काव्यों के साथ सुसंगत नहीं मालूम होता है। गीताजी का सर्वांश तात्पर्य हिंसा नहीं है लेकिन अहिंसा है; यह २ रा अध्याय जिससे विषय का आरंभ होता है और १८ वां अध्याय जिसमें उसकी पूर्णाहूति होती है देखने से प्रतीत होगा। मध्य में देखोगे तो भी यही प्रतीत होगा। बिना क्रोध के, राग के या द्वेष के हिंसा का होना संभव नहीं। और गीता तो क्रोधादि को पार कर के गुणातीत की स्थिति में पहुंचाने का प्रयत्न करती है। गुणातीत में क्रोध का सर्वथा अभाव होता है। अर्जुन ने कान तक खींच कर जबजब धनुष चढाया उस समय की उसकी लाल लाल आंखें मैं आज भी देख सकता हूं।

परन्तु अर्जुन ने कब अहिंसा के लिए युद्ध छोड़ने की हठ की थी। उसने तो बहुत से युद्ध किये थे। उसे तो एकायक मोह हो गया था। वह तो अपने सगेसम्बन्धियों को नहीं मारना चाहता

था। अर्जुन ने दूसरों को जिन्हें वह पापी समझता हो न मारने की बात तो की न थी। श्रीकृष्ण तो अंतर्यामी हैं। वे अर्जुन का यह क्षणिक मोह समझ लेते हैं और इसलिए उससे कहते हैं। 'तुम हिंसा तो कर चुके हो। अब इस प्रकार यकायक समझदार बनने का दंभ करके तुम अहिंसा न सीख सकोगे। इसलिए जिस काम को तुमने आरम्भ किया है उसे अब तुम्हें पूरा ही करना चाहिए। घण्टे में चालीस मील के वेग से आनेवाली रेलगाड़ी में बैठा हुआ शख्स यकायक प्रवास से विरक्त हो कर यदि चलती हुई गाड़ी में ही कूद पड़े तो यही कहा जायगा कि उसने आत्महत्या की है। उसने उसने प्रवास या रेलगाड़ी में बैठने के मिथ्यात्व को कुछ नहीं सीखा है। अर्जुन का भी यही हाल था। अहिंसक कृष्ण अर्जुन को दूसरी सलाह दे ही नहीं सकता था। लेकिन उससे यह अर्थ नहीं निकाल सकते कि गीताजी में हिंसा ही का प्रतिपादन किया गया है। यह अर्थ निकालना उतना ही अनुचित है जितना कि यह कहना कि शरीर-व्यापार के लिए कुछ हिंसा अनिवार्य है और इसलिए हिंसा ही धर्म है। सूक्ष्मदर्शी इस हिंसामय शरीर से अशरीरी होने का अर्थात् मोक्ष का ही धर्म सिखाता है।

लेकिन धृतराष्ट्र कौन था? दुर्योधन, युधिष्ठिर और अर्जुन कौन थे? कृष्ण कौन थे? क्या ये सब ऐतिहासिक पुरुष थे? और क्या गीताजी में उनके स्थूल व्यवहार का ही वर्णन किया गया है? अकस्मात अर्जुन सवाल करता है और कृष्ण सारी गीता पढ़ जाते हैं। और यही गीता अर्जुन उसका मोह नष्ट हुआ है यह कह कर भी फिर भूल जाता है और कृष्ण से दुबारा अनुगीता कहलवाता है।

मैं तो दुर्योधनादि को आसुरी और अर्जुनादि को दैवी वृत्ति मानता हूं। धर्मक्षेत्र यह शरीर ही है। उसमें द्वन्द्व चलता ही रहता है और अनुभवी ऋषि कवि उसका तादृश वर्णन करते हैं। कृष्ण तो अन्तर्यामी हैं और हमेशा शुद्ध चित्त में घड़ी की तरह टिक टिक करते रहते हैं। यदि चित्त को शुद्धिरूपी चाबी नहीं दी गई हो तो अन्तर्यामी यद्यपि वहां रहते तो हैं, लेकिन उनका टिकटिकाना तो अवश्य ही बन्द हो जाता है।

कहने का आशय यह नहीं कि इसमें स्थूल युद्ध के लिए अवकाश ही नहीं है। जिसे अहिंसा सूझी ही नहीं है उसे यह धर्म नहीं सिखाया गया है कि कायर बनना चाहिए। जिसे भय लगता है, जो संग्रह करता है, जो विषयमें रत है वह अवश्य ही हिंसामय युद्ध करेगा। लेकिन उसका वह धर्म नहीं है। धर्म तो एक ही है। अहिंसा के मानी हैं मोक्ष और मोक्ष सत्यनारायण का साक्षात्कार है। पर इसमें पीठ दिखाने को तो कहीं अवकाश ही नहीं है। इस विचित्र संसार में हिंसा तो होती ही रहेगी। उससे बचने का मार्ग गीता दिखाती है। लेकिन साथ साथ गीता यह भी कहती है कि कायर हो कर भागने से हिंसा से न बच सकोगे। जो भागने का विचार करता है उसे तो मारना चाहिए या मरना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता ने जिन श्लोकों का उल्लेख किया है उनका रहस्य यदि *अब भी उनकी समझ में न आवे तो मैं समझाने को असमर्थ हूं. सर्व शक्तिमान ईश्वर कर्ता, भर्ता, और संहर्ता है और वह ऐसा ही* होना चाहिए। इस विषय में कोई शंका तो न होगी न? जो उत्पन्न करता है वह उसका नाश करने का अधिकार भी अपने पास रखता है। वह किसी को भी नहीं मारता है क्यों कि वह उत्पन्न भी नहीं करता है। नियम यह है कि जिसने जन्म लिया है उसने मरने ही के लिए जन्म लिया है। ईश्वर भी इस नियम को नहीं तोड़ता है। यह उसकी दया है। यदि ईश्वर ही स्वच्छंद और स्वेच्छाचारी बन जाय तो हम सब कहां जायेंगे?

(नवजीवन)　　　मोहनदास करमचंद गांधी

बिहारयात्रा

(गतांक से आगे)

जिन्होंने लगातार बरसों तक खादी पहनी है उनका अनुभव तो यह है कि यदि हाथ के कते हुए अच्छे सूत की खादी बनाई जाय तो वह उसी अंक के सब से बढ़िया कते हुए मिल के सूत से कहीं अधिक टिकाऊ होती है। उदाहरण के लिए मेरे कुछ आन्ध्र देशीय मित्रों ने मुझे अपनी धोतियां बतलाई थी जो चार वर्ष तक चली थीं। इसके विपरीत मिल की धोतियां एक ही साल में फट जाती हैं। लेकिन मैं इस बात पर जोर नहीं दे रहा हूं कि हाथ का कता हुआ सूत अधिक टिकाऊ होता है। पर मेरा प्रतिपाद्य विषय तो यह है कि भारतीय कृषकों के लिए हाथ की कताई का काम ही एक सहायक धन्धा हो सकता है। भारत की कुल जन-संख्या में से सैकड़ा पीछे ८५ कृषक हैं। अतएव वस्त्र संबन्धी हमारी मांग हाथ के कते हुए सूत के द्वारा ही पूरी की जानी चाहिए। इस प्रकार हमारी शक्तियां चाहे जहां, और चाहे जिस तरह कते हुए और सब से सस्ते सूत की तलाश में नहीं बल्कि सबसे सस्ते और सबसे बढ़िया हाथ के कते हुए सूत की तलाश में ही लगानी चाहिए। यदि उपरोक्त बातों में से एक भी बात सच हो तो इस राष्ट्र के उद्योग विभाग को चरखे को ही मुख्य और केन्द्र स्थान देना चाहिए। चरखे ही के ऊपर उस विभाग की इमारत खड़ी की जानी चाहिए। अतएव उद्योग-विभाग को ज्यादा सूत पैदा करने के लिए चरखे में सुधार करने चाहिए। उन्हें केवल हाथ का कता हुआ सूत ही खरीदना चाहिए। इससे हाथ की कताई के धन्धे को अपने आप उत्तेजन मिल जायगा। उन्हें ऐसे उपायों की योजना करनी चाहिए कि जिससे सब प्रकार के हाथ के कते हुए सूत का उपयोग किया जा सके। उन्हें हाथ के कते हुए सबसे उत्तम सूत के लिए कुछ पारितोषिक मुकर्रर करना चाहिए। उन्हें ऐसी भूमि तैयार करनी चाहिए कि जिसमें कातने लायक बढ़िया सूत पैदा हो सके। इतना काम कर लेने से हाथ की कताई के धन्धे को कम उत्तेजन नहीं मिलेगा। ऐसा करने से हाथ की कताई के साथ ही साथ हाथ की बुनाई को भी प्रोत्साहन मिलेगा और ऐसे आदमियों की सेवा की जा सकेगी जिन्हें कि सहायता की बड़ी आवश्यकता है।

लेकिन इसके विरुद्ध यह दलील की जाती है कि हाथकताई से कुछ लाभ नहीं। हाथकताई उन लोगों के लिए तो अवश्य ही बड़े फायदे की चीज है जिनको कि घण्टों बिना काम के बैठा रहना पड़ता है और जिनकी आमदनी में एक पैसा भी यदि बढ़ जाय तो वे उसे बड़े स्वागत की वस्तु समझते हैं। यदि हिन्दुस्तान के लाखों किसानों को साल में कम से कम चार महीने यों ही आलस्य में बिना काम के न बिताने पड़ते होते तो चरखे का कार्यक्रम व्यर्थ ही था। जहां कहीं खादी के कार्यकर्ताओं ने प्रेमभाव से कार्य किया है वहां गांव के लोगों को उससे केवल लाभ ही नहीं हुआ है किन्तु वे तो उसे आशीर्वाद रूप समझते हैं क्योंकि अब उनके पास वे लोग हैं जो उनका सूत खरीद लेते हैं। जिनकी माहवारी आमदनी ५-६ रुपये से अधिक नहीं है और जिन्हें काफी समय है वे अपनी आमदनी में माहवार दो रुपया बढ़ाने के लिए अवश्य ही बड़ी खुशी से कातेंगे।

मलखाचक और दूसरे केंद्र

बिहार के कुछ स्थानों में स्वयंसेवकोंने जो कुछ काम किया है उसका ब्योरा मेरे सामने रक्खा हुआ है। कुम्हार-उद्योग के कारखाने को देखने के बाद मैंने मलखाचक में एक दूसरे केन्द्र को भी देखा।

यह स्थान पटना से बारह मील दूर है। सिर्फ मलखाचक में ही जहां की आबादी केवल १००० की है कोई ४०० चरखे चलते होंगे और १० जुलाहे हाथकता सूत ही बुनते होंगे। मैंने वहां कुछ बहनों को चरखा कातते हुए देखा। चरखे कुछ ठीक नहीं बने हुए थे लेकिन फिर भी कातनेवालियां तो बड़ी खुशी से उस पर कात रही थी। वे औसतन् २ रुपया माहवार पाती हैं। १००० की आबादी के गांव में प्रतिमास ८०० रुपये की आमदनी का बढ जाना कभी भी एक बडी अच्छी आमदनी कही जा सकती है। मैं जुलाहों का जो माहवार रु. १५ के हिसाब से कमाते हैं कुछ भी हिसाब नहीं लगाता हूं। शायद यह आमदनी नयी न हो। ये लोग कताई को व्यवस्थित करने के अलावा गांव के लोगों को अपने मर्यादित साधन और मर्यादित वैद्यकीय ज्ञान के अनुकूल दवा इ० की भी मदद करते हैं। उन्हों ने यह कार्य १९२१ में शुरु कियाथा और उनके कार्य के अभीतक के ब्योरे से मालूम होता है कि ये छः केन्द्रों में सेवा कर रहे हैं। वे ये है: मधुबनी, कपासिया, सक्रो, शाखेपुर, पपरी और मलखाचक। उन्होंने १९२२ म ६२००० रु. की खादी तैयार की, १९२३ में ८४००० की, और १९२४ मे ६३००० की। और १९२५ के इन नौ महिनों में एक लाख की खादी तो तैयार भी हो चुकी है। १९२४ में रूई की कमी के कारण ही वे कम खादी तैयार कर सके थे। रिपोर्ट माळूम होता है कि यदि उनको बराबर रूई पहुंचाई जाय और इसका उन्हें यकीन दिलाया जाय कि तैयार किया हुआ माल सब बिक जायगा तो इस कार्य को और भी अधिक बढाने की उनकी शक्ति तो अमर्यादित हैं। उनका विश्वास है कि पडौस का हरएक गांव इस काम के लिए उनके वहां जाने पर उनका स्वागत करेगा। वे जो खादी तैयार करते है वे बडी अच्छी होती है और उसकी सब किस्में कुछ मोटी और खुरदरी भी नहीं होती। उनमें कुछ तो बडी महीन और सफाईदार होती हैं। वे १० अंकका सूत ४० तोला कातने पर चार आना कताई देते हैं और ४५ इंच पने के कपडे की ढाई आना गज के हिसाब से बुनाई देते हैं। वे कुल २८ कार्यकर्ता हैं। इन केन्द्रो के पीछे खुराक और सफर खर्च मिलाकर औसतन् एक कार्यकर्ता के पीछे २५ रु. माहवार खर्च होता है। ये केन्द्र या भंडार भी कुछ नुकसान उठाकर काम नहीं करते हैं। वे अपनी खादी की बिक्री को व्यवस्थित किये हुए हैं। अब प्रतिमास वे जिस किस्म का सूत पाते हैं उससे प्रतीत होता है कि धीरे धीरे उसमें बडा सुधार हो रहा है। इन कार्यकर्ताओं के बदौलत ७००० चरखे और हाथकते सूत को बुनने वाले २५० करघे चलते हैं।

बिहार की स्थिति किसी प्रकार कुछ विशेष तो है ही नहीं। बंगाल, आंध्र, तामिल और संयुक्त प्रान्तों के बहुतेरे भागों में भी वैसी ही स्थिति पाई जाती है। मैंने इन प्रान्तों का नाम इसलिए दिया है क्योंकि उन लोगों की स्थिति का जिन्होंने कताई को अपना लिया है बडी अच्छी तरह अध्ययन किया जा सकता है। वर्तमान समय में तो बहुतेरे प्रान्तों की स्थिति भी वैसी ही प्रतीत होगी। उडीसा को ही लीजिए। वहां लोग किसी कदर गुजारा करते हैं और इसलिए उस प्रान्त में सिर्फ होशियार कार्यकर्ताओं की और सुव्यवस्थित कार्य की ही राह देखी जा रही है। राजपूताना में बहुत से लक्षाधिपतियों के होने पर भी वह एक ऐसा देश है जहां कताई का हुनर अब भी जीवित है और जहां आम लोग बहुत ही गरीब हैं। यदि राजा महाराजा लोग इस हलचल को मदद करेंगे, अपने अपने राज्य में खादी पहननेवालों को उत्तेजन देंगे, और जहां कहीं खादी के प्रचार में बाधायें उपस्थित की गई हो उन्हें दूर कर देंगे तो इस पुराने जलहीन देश में बिना किसी भी प्रकार की मूडी के लगाये और बिना किसी प्रकार के आडंबर के लाखों रुपया गरीब लोगों को मिल सकेगा।

हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न

पटना से हम भागलपुर पहुंचे। भागलपुर में एक बडी सार्वजनिक सभा की गई थी। उसमें मुझे हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न के संबंध में कुछ विस्तार से बोलना पडा था। यद्यपि उन लोगों पर जो कि इस प्रश्न को लेकर हलचल किया करते हैं अब मेरा कोई प्रभाव नहीं रहा है फिर भी वे इस प्रश्न से उत्पन्न होनेवाली जुदी जुदी समस्याओं के बारे में मुझसे चर्चा किया करते हैं। इसलिए मुझे यह खयाल हुआ कि मैं इस संबंध में अपने खयाल, चाहे उसकी कुछ भी कीमत क्यों न हो, फिर से जाहिर कर दूं। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि दोनों पक्षों का बार बार उन मामलों के बारे में सरकार के पास जाना जिनको कि हम आपस के समझौते से या तलवार के बल से निबटा सकते हैं, उसके गुणदोष का विचार न करके भी, मुझे पसन्द नहीं है। इसलिए मैंने श्रोताओं से कहा कि यदि दोनो में से एक भी पक्ष समझौता करने के लिए राजी नहीं है और दोनों को एक दूसरे की तरफ से डर लगा रहता है तो इस बात का प्रयत्न करने के बनिस्बत कि सरकार आकर दखल करें और मामले को निबटायें बेहतर तो यह है कि वे लड कर लाठी के बल से ही उसका निबटारा कर लें। डर कर भाग जाना कायरता है और कायरता से न तो समझौता हो सकेगा और न अहिंसा को ही कुछ मदद मिलेगी। कायरता हिंसा की एक किस्म है और उसे जीतना बडा ही दुश्वार है। हिंसा से प्रेरित मनुष्य को हिंसा छोड कर अहिंसा की उत्तम शक्ति को ग्रहण करने को समझाने में सफल होने की आशा की जा सकती है लेकिन कायरता तो सब प्रकार की शक्ति का अभाव है और इसलिए बिल्ली के संबंध में चूहे को अहिंसा सीखाना केवल असंभव ही है। और क्यों कि बिल्ली को मारने की उसमें शक्ति नहीं है वह यह समझने में भी असमर्थ होगा कि अहिंसा किस चीडिया का नाम है। अन्धे को बुरी चीजों को देखने से मना करना क्या हास्यास्पद नहीं प्रतीत होता? १९२२ में मैं और मौलाना शौकतअली बेटिया गये थे। बेटिया के नजदीक एक गांव के लोगों ने मुझसे कहा कि जब पुलिस उनके गांव को लूट रही थी और औरतों को हैरान कर रही थी उस समय वे भाग गये थे, क्योंकि मैंने उन्हें अहिंसक रहने के लिए कहा था। यह सुनकर मैंने शरम के मारे गरदन झुका ली। फिर मैंने उन्हें यह यकीन दिलाया कि मेरी अहिंसा के मानी यह कदापि नहीं। मैंने तो उनसे यह आशा रक्खी थी कि यदि कोई सब से बडी ताकत भी उन लोगों को सताती हो जो उनकी रक्षा में है तो वे अवश्य ही बीच में पडेंगे और सारा वार अपने सिर उठा लेंगे यहां तक कि मर जायेंगे लेकिन उस तूफान की जगह से भागेंगे नहीं। तलवार की नोक से अपने माल, इज्जत और धर्म की रक्षा करने में काफी मर्दानिगी है और जालिम को कुछ भी नुकसान न करने की इच्छा रखते हुए उनकी रक्षा करना उससे भी अधिक मर्दानगी का और गौरव का कार्य है। लेकिन कर्तव्य की जगह को छोड कर भाग जाना और अपनी जान बचाने के लिए अपने माल इज्जत और धर्म को जालिम की दया पर छोड देना, केवल नामर्दी का अस्वाभाविक और गौरवहीन कार्य है। वे जो मरना जानते है उन्हें मैं मेरी अहिंसा सफलतापूर्वक सीखा सकता हूं लेकिन जो मरने से डरते हैं उन्हें मैं अहिंसा नहीं सीखा सकता। मैंने श्रोताओं से यह भी कहा कि जो लोग मेरी तरह जान बूझ कर लडना नहीं चाहते हैं और समझौता कराने में

असमर्थ हैं वे उन मुसल्मानों की तरह जो पहले चार खलीफाओं के जमाने में जब भाई भाई आपस में लड़ने लगे थे गुफाओं में जा कर बैठे थे, अलग जा बैठ सकते हैं। इन दिनों पर्वतों की गुफाओं में जा कर रहना व्यवहार दृष्टि से असंभव मालूम होता है लेकिन हरेक आदमी अपने पास हृदय में जो गुफा है उसमें अवश्य ही विश्रांति ले सकता है। लेकिन यह तो वही कर सकते हैं जो एक दूसरे के धर्म और रिवाज को सम्मान की दृष्टि से देखते हों। (अपूर्ण)

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

ज्ञाति से बहिष्कृत

जिस समाज के महाजन बिना विचारे केवल मोह से, वहम के कारण या अज्ञान या ईर्ष्या से प्रेरित हो कर व्यक्तियों का बहिष्कार करते हैं उस समाज में रहने के बनिस्बत वह समाज हमारा त्याग कर दे यही इष्ट है। क्योंकि यदि समाज एक भी सत्यनिष्ठ व्यक्ति का त्याग कर दे तो फिर उसमें दूसरे सत्यनिष्ठ मनुष्य क्यों कर रह सकते हैं?

यह तो सिद्धान्त की बात हुई। यदि हमेशा हम उसपर अमल नहीं कर सकते हैं तो भी हमें उसका स्मरण रखना आवश्यक है। मालूम होता है कि आजकल महाजनों का जुल्म बढ़ रहा है। ऐसे भी महाजन पड़े हैं जो अंत्यज को भोजन कराना भी दोष मानते हैं। उन्हें एक पंक्ति में बिठानेवाले और उसमें अपनी सम्मति देनेवाले हिन्दू तो पापी समझे जाते हैं। ऐसे पापियों के समाज में तो हमारे बीच जो जो पुण्यात्मा हों वे सभी दाखिल हों।

लेकिन बहिष्कार कैसे सहा जाय? किसीके यहां भोजन नहीं पा सकते, धोबी बन्द कर देते हैं, और नाई को भी बन्द कर देते हैं। फिर वे डाक्टर को भी क्यों न बन्द करें? अब केवल जान से मार डालना ही बाकी रहा न? बहिष्कृत सुधारक में मृत्यु पर्यन्त अटल रहने की शक्ति तो अवश्य ही होनी चाहिए। विशुद्ध बने हुए हिन्दू अन्त्यजों की आत्मिक सेवा मर कर ही कर सकते हैं। किसीके यहां भोजन करने की आवश्यकता ही क्या है? अपने घर बैठ स्वयंपाकी बन कर शान्ति से भोजन क्यों न करें? धोबी यदि कपड़े न धोवे तो हाथ से धो लें और उतने पैसों की बचत करें। हजामत हाथसे कर लेना तो आजकल सामान्य बात हो पड़ी है। लेकिन कन्या का ब्याह करेंगे कहां? और पुत्र के लिए कन्या कहां ढूंढेंगे? यदि अपनी ज्ञाति में से ही वर या वधू ढूंढने का आग्रह हो और यदि न मिले तो उन्हें संयम का पालन करना चाहिए। यदि उतना संयम रखने की शक्ति न हो तो दूसरी ज्ञाति में उसके लिए खोज करना चाहिए। यदि उसमें भी निराश होना पड़े तो जो वस्तु अपरिहार्य है उसके लिए उदासीन ही रहना चाहिए।

वर्ण तो चार ही हैं। ज्ञाति चार हो या चालीस हजार हो। छोटी छोटी जातियों का समागम होना तो स्वागत के ही योग्य है। छोटी जातियों से हिन्दू धर्म को बड़ी हानि उठानी पड़ी है। जो वैश्य हैं वह समस्त हिन्दुस्तान की वैश्य जाति। मैं कहीं भी सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न क्यों न करे? ब्राह्मण जाति के और समान धर्म के आचार विचारवाले ब्राह्मणों में गुजरात के ब्राह्मण अपने लिए वर कन्या क्यों न ढूंढें। इतना सुधार करने की भी यदि हिम्मत नहीं है तो हिन्दुत्व के अति संकुचित हो जाने का भय है। बंगाल की लड़की गुजरात में आवे और गुजरात की लड़की बंगाल में जाय यह बात कुछ संपूर्ण अनिष्ट नहीं है। वर्ण की रक्षा करनेवाले यदि छोटी छोटी जातियों की भी रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे तो छोटी जातियां तो गई है और उसके साथ संभव है कि वे वर्ण को भी खो बैठेंगे।

आज वर्ण भी तो छिन्न भिन्न हो गये हैं। स्त्री पुरुषों को इस विषय का पूरा पूरा मथन करने की आवश्यकता है। प्रथम गुजरात के ही वर्ण मिल कर अपने व्यवहार का विस्तार बढ़ावें तो वे बहुत कुछ आगे बढ़े कहे जावेंगे। सब वर्ण अपनी छोटी छोटी ज्ञातियों को क्या एक नहीं कर सकते?

छोटी छोटी जातियों के महाजनों में यदि इस पर विचार करने जितना उत्साह भी न हो तो व्यक्तियों को ही प्रथम आगे कदम बढ़ाना चाहिए।

लेकिन मुझे बात तो बहिष्कार ही की करनी थी। छोटी छोटी जातियों के बारे में मैंने इतना विचार किया वह केवल बहिष्कृत व्यक्तियों की अपनी शान्ति के लिए ही। जुल्म चाहे घर का हो या बाहर का उसे दूर करने का उपाय एक ही है। बहिष्कृत व्यक्ति का मार्ग तो आज बहुत ही सरल है। लेकिन मान लो यदि छोटी छोटी जातियों का आज जो वातावरण है उसमें किसी छोटी जाति से बहिष्कृत व्यक्ति वर्ण से भी बाहर हो जाय तो? ऐसा हुआ तो भी क्या? आज हिन्दुस्तान में प्रत्येक स्थल में ऐसे सुधारकों की आवश्यकता है जिन्हें एकाकी खड़े रहने की शक्ति प्राप्त हो।

लेकिन इस प्रकार जो शुद्ध व्यक्ति एकाकी खड़े रहने की हिम्मत करता है उसे क्रोध नहीं होता, उसे द्वेष नहीं होता, वह सहनशील होता है। वह जालिम का भी तिरस्कार नहीं करता है। वह उसका भी भला चाहता है और मौका मिलने पर उसकी सेवा करता है। सेवा का धर्म कोई कभी भी न छोड़े। सेवा कराने का अधिकार तो हो ही कैसे सकता है? धर्म तो यह कहता है: "मैं तो सेवा हूं, मुझे विधाताने अधिकार दिया ही नहीं है;" जिसको कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है वह खोवेगा क्या? बहिष्कृत को तो सेवा कराने की इच्छामात्र का भी त्याग कर देना चाहिए। ऐसे लोगों को सेवा भी प्राप्त हो जाती है ऐसा कुछ विचित्र नियम है लेकिन उससे सेवक को कुछ मतलब नहीं। सेवा भी प्राप्त होगी इस खयाल से जो सेवा के त्याग का दावा करता वह चोर है। उसे अवश्य ही निराश होना पड़ेगा।

अन्त्यजों के सेवकगण! तुम्हें जो कष्ट पहुंचावें उन्हें तुम रजकण के समान नम्र रह कर कष्ट पहुंचाने दो। पृथ्वी अपने पैरों के नीचे सदा दबी रहती है, कुचली जाती है फिर भी वह हमें अभय प्रदान करती है। इसीलिए हम उसे माता कहते हैं और रोज सुबह उठकर उसका स्तवन करते हैं।

"समुद्र जिसका वसन है, पर्वत जिसका स्तन-मण्डल, विष्णु जैसे रक्षा करनेवाले जिसके पति हैं, उसे कोटि कोटि नमस्कार हो। हे माता हमारे पादस्पर्श की हमें क्षमा करना।" ऐसी माता से जिन्होंने उत्तमोत्तम नम्रता सीखी है उन सेवकों का बहिष्कार हो तो भी उन्हें कुछ भी हानि न होगी।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

सूत भेजो

अखिल भारतीय चरखा-संघ का वर्ष इस महिने से शुरू होता है इसलिए जो उसके सभासद होना चाहें उन्हें अपने सूत का माहवारी चन्दा फौरन ही भेज देना चाहिए। महासभा के वे सभासद जो कताई की शर्त के अनुसार नियमित सूत का चन्दा भेजते थे उन्हें चरखा संघ के सभासद बनने में कोई मुश्किल न मालूम होगी। लेकिन उन अनियमित सभासदों को भी जो अपना सूत का चन्दा पूरा नहीं दे सकते थे, अब चरखा-संघ के सभासद बनना चाहिए क्योंकि महासभा के मूल चन्दे के बनिस्बत अब वह चन्दा आधा ही रह गया है। इन अनियमित सभासदों को कम से कम चरखा-संघ के 'ब' वर्ग के सभासदों में दाखिल होने में तो कोई मुश्किल होनी ही न चाहिए।

असहयोगियों का भाग्य

वार्षिक मूल्य ४)
छमास का ,, २)
एक प्रति का -)।
विदेशों के लिए ७

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, कार्तिक वदी ६, संवत् १९८२, गुरुवार, ८ अक्तूबर, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

बड़े भाई का अभिवचन

मौलाना शौकतअली अ० भा० च० सं० की कार्य-सभा में अपनी स्थिति कायम रखने की ओर झुके हैं। वे अपने काम के द्वारा खादी के प्रति अपना विश्वास सिद्ध करना चाहते हैं। यद्यपि पहले थोड़ा बहुत नियमित कातने का काम किया था, पर अब वे उसे अधिक से अधिक नियमित रूप से करने तथा मुझे मासिक चंदा भेजने में दृढ़ता से काम लेंगे। उन्होंने इस वर्ष के आखिर तक 'अ' वर्ग के कम से कम ३००० मुसलमान सदस्य बनाने का प्रण किया है। मैंने मौलाना साहेब से कहा है कि इस साल के आखिर के पहले 'अ' वर्ग के ३००० सदस्य बना लेना मुझे पूर्ण संतोष देगा। किन्तु मैंने उन्हें यह भी कहा है कि जिनका कातना पेशा न हो परन्तु जो नियमपूर्वक कातते हों और महीनेवार अपना सूत भेजते हों ऐसे ३००० मुसलमान पाने में उनको बहुत ही ज्यादा शक्ति खर्चनी पड़ेगी। आज महासभा के रजिस्टर में सारे हिन्दुस्तान में स्त्री और पुरुष मिलाकर भी ३००१ सदस्य ऐसे नहीं हैं जिन्होंने कि आज तक का २००० गज का चन्दा दिया हो। यह बात अत्यंत दुःखद है परन्तु सत्य है। परिवर्तन तो निस्सन्देह चन्दा आधा रह जाने से होगा। परन्तु अनुभव से यह जाना गया है कि लोग उकसाये जाने पर और जोश में आ के एक विशेष काम करने को तैयार हो जाते हैं मगर बहुत लोग ऐसे हैं जो लगातार हर दिन हर मास कोई काम नहीं किया करते। तो भी मेरा तो यही विश्वास है कि विशेष तरक्की करने के पहले हमें ऐसे मनुष्य चाहने पड़ेंगे जो राष्ट्र के लिए की गई प्रतिज्ञाओं को लम्बे वक्त तक पालन करने में अपना गौरव समझेंगे। इसलिए मैं चाहता हूं कि मौलाना साहिब को पूर्ण सफलता हो।

१४ लाख जमा करके भी गरीब

एक मित्र लिखते हैं:—

"मैंने सुना है कि आप सन्यासी होने का दावा करते हैं। पर इसके साथही आपने अपने तथा अपने बालबच्चों के लिये एक बड़ी रकम जमा कर रखी है। रकम १४ लाख की सुनी जाती है। इस रकम का आपने एक ट्रस्ट भी बनाया है और आप बड़ा सीधा और आराममय जीवन व्यतीत करते हैं। यह सुनकर हममें से कुछ लोगों का दिल तो दहल उठा है। क्या आप मिहरबानी करके जनता के सामने इस विषय पर कुछ प्रकाश डालेंगे? मुझे खुद इस बात पर विश्वास नहीं हुआ है।"

यदि यह सवाल मेरे एक परिचित मित्र द्वारा उपस्थित नहीं किया जाता तो मैं इस की ओर ध्यान भी नहीं देता। खास कर इसलिए कि कुछही मास पूर्व मुझसे अपने निजी खर्चे के सम्बन्ध में एक प्रश्न पूछा जा चुका है और उसका उत्तर देते हुए मैंने अपनी खानगी बातों का भी उसमें उल्लेख कर दिया है। मेरे पास कभी भी मेरे निजके १४ लाख रुपये नहीं रहे हैं। जब मैंने अपनी सब सम्पत्ति का त्याग किया उस समय मेरे पास जो कुछ था उसे मैंने एक ट्रस्ट के आधीन कर दिया। पर यह रकम सार्वजनिक कार्यों के निमित्त की थी, उसमें से मैंने निजके लिये कुछ नहीं रक्खा था। मैंने अपने आपको कभी सन्यासी नहीं कहा है। सन्यास धारण करना बड़ा कठिन है। मैं अपने आपको सेवामय जीवन व्यतीत करने वाला एक नम्र गृहस्थ मानता हूं। साबरमती के सत्याग्रह आश्रम के संस्थापकों में से मैं भी एक हूं। मेरे मित्रवर्ग के दान पर मेरी गृहस्थी चलती है और आश्रम भी मित्रवर्ग की सहायता से ही चलता है। यदि आराम और सख मनकी स्थितियां हैं तो सचमुच मैं बड़े आराम और सख के साथ रहता हूं। बिना द्रव्य की सहायता के ही मुझे अपनी आवश्यकता के अनुसार सब कुछ मिल जाता है। हमेशा कार्य में लगे रहने के कारण मेरा जीवन आनन्दमय रहता है। मैं एक पक्षी के समान स्वतन्त्र हूं क्योंकि मुझे इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि कल मेरा क्या होगा। सचमुच मेरे वर्तमान जीवन को देखकर तो यह भी कहा जा सकता है कि मैं सुलतान का जीवन व्यतीत करता हूं। कुछ ही दिन पहले जब कि गया स्टेशन पर ट्रेन खड़ी हुई थी एक अंग्रेज रमणी ने मेरे पास आकर प्रश्न किया था, "मैं तो समझती थी कि आप तीसरे दर्जे में मुसाफरी करते होंगे जहां बहुत भीड़ रहती है। पर मैं देखती हूं कि आप तो कई आदमियों के साथ बड़े आराम से सेकन्ड क्लास में मुसाफरी कर रहे हैं। क्या आपने ऐसा नहीं कहा है कि मैं गरीबों के समान रहना चाहता हूं। क्या आप यह सोचते हैं कि गरीब आदमी भी सेकन्ड क्लास में बैठने में इतना पैसा खर्च कर सकते हैं? क्या आपका कार्य आपके सिद्धान्तों के प्रतिकूल

नहीं है ?" मैंने बिना किसी प्रकार की आनाकानी किये एकदम स्वीकार कर लिया कि हां मैं अपराधी हूं। मैंने उस भाई को यह बतला देने की परवा न की कि मेरा जीर्णशीर्ण शरीर लगातार की थर्ड क्लास की मुसाफरी की थकावट को सहन करने में असमर्थ हो गया है। मेरे खयाल से शरीर की जीर्णता इस बात का बहाना नहीं हो सकती थी कि मैं सेकन्ड क्लास में मुसाफरी करूं। मैं दुःख के साथ यह बात जानता हूं कि लाखों स्त्री-पुरुष शरीर में मुझसे भी अधिक कृश हैं पर फिर भी चूंकि उनके कोई ऐसे मित्र नहीं हैं जो उन्हें सेकन्ड क्लास का किराया दे सकें उन्हें तीसरे दर्जे में ही मुसाफरी करना पड़ती है। मैं कहा करता हूं कि मैं गरीबों के साथ एक रूप होना चाहता हूं। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि मेरा आचरण मेरे इस कथन से मेल नहीं खाता है। यही जीवन की दुःखान्तक कथा है पर इस दशा में भी मैं अपने आनन्द से दूर होना नहीं चाहता। मेरे वर्तमान जीवन में उस भाई को जो विरोध दिखाई दिया उसके रहते हुए भी यह विचार कि मैं ईमानदारी के साथ निरन्तर अपनी शारीरिक आवश्यकताओं से लड़ रहा हूं मुझे पोषण देता है।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

बिहार यात्रा

२

चक्रधरपुर से चैबासा तक बड़ा ही अच्छा मनोहर रास्ता है। इस रास्ते पर मोटर भी जा सकती है। चैबासा में मेरी 'हो' नामक जाति के साथ मुलाकात हुई। इस जाति के पुरुष और स्त्रियां सब के सब देखने लायक हैं। वे बालकों के समान सरल चित्त हैं और उनमें इतना पक्का विश्वास है कि कोई भी सरलता से उसे हिला नहीं सकता। उनमें से बहुतसे तो चरखा और खादी का उपयोग करते हैं। ई. स. १९२१ में कांग्रेस कार्य-कर्ताओं ने उनमें सुधार का काम शुरू किया। उनमें से बहुतरों ने तो मृत शरीर का खाना बन्द कर दिया है और कई शाक-भोजी हो गये हैं। जब मैं रांची जा रहा था तो रास्ते में खूटी नामक स्थान पर मेरी मुण्डा जाति के लोगों के साथ मुलाकात हुई। उनमें काम करने के लिए बड़ा विस्तीर्ण क्षेत्र है। कई पीढ़ियों से क्रिश्चियन पादरी उनकी बहुमूल्य सेवाएं कर रहे हैं पर इसके बदले में वे उन भोले प्राणियों को ईसाई बनाना चाहते हैं और मेरी नाकिस राय में इसी लिये उन्हें विशेष लाभ नहीं होता। मैंने वहां कुछ स्थानों में उनकी पाठशालाएं भी देखीं। यह सब कुछ ठीक था पर पादरियों और हिन्दू कार्यकर्ताओं के बीच मुझे वहां झगड़ा होने की संभावना दिखाई दी। हिन्दू कार्यकर्ता यदि चाहें तो आसानी से इन हो, मुण्डा आदि जातियों के दिलों में अपनी सेवाओं के प्रति विश्वास पैदा कर सकते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि पादरी लोग भी धर्म परिवर्तन करने की आन्तरिक इच्छासे नहीं बल्कि मनुष्यजाति की सेवा के भाव से उनमें कार्य करें। इस संबंध में मैंने जो विचार मिशनरी कान्फेरन्स और कलकत्ता की अन्य क्रिश्चियन संस्थाओं के सामने रखे थे, उन्हें फिर से यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं। मैं जानता हूं कि कोई भी व्यक्ति चाहे जितनी सद्भावना से चाहे जितना उपदेश दे क्रिश्चियन समाज के कार्यक्रम में इस प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हो सकता और खास कर वैसी हालत में तो यह बिलकुल ही अशक्य है जब कि यह उपदेश किसी बाहरी आदमी द्वारा दिया गया हो। यह तो तभी हो सकता है जबकि उनमें के किसी व्यक्ति को इस बातमें पूर्ण विश्वास हो जाय अथवा उनकी संपूर्ण जाति के अन्दर इसके लिये सामूहिक आन्दोलन खड़ा हो। इन्हीं जातियों में कुछ लोग हैं जो 'भक्त' कहलाते हैं। भक्त लोगों का खादी में विश्वास है। इस जाति के स्त्री और पुरुष सबके सब चरखा चलाते हैं। वे अपने ही हाथ की बुनी हुई खादी पहनते हैं। उनमें से कई तो अपने अपने चरखों को कन्धों पर रख कर मीलों चले आये थे। यहां एक सभा में मुझे व्याख्यान देने का अवसर मिला था जहां ४०० आदमियों को लगातार चरखा चलाते हुए मैंने देखा। उनके कुछ भजन बने हैं जिन्हें वे एकाग्र हो कर गाते हैं।

छोटा नागपुर की मेरी संपूर्ण यात्रा मोटरों में हुई। सब रास्ते अच्छे हैं और उनके आसपास का दृश्य बड़ा ही भव्य है। चैबासा से हमें चक्रधरपुर लौट आना पड़ा। चक्रधरपुर से मोटर में बैठकर कुन्ती और एक दो दूसरे स्थानों पर ठहरते हुए रांची पहुंचे। रांची पहुंचने के कुछ ही पहले शाम के ९ बजे वहां एक महिलाओं की सभा करने का निश्चय हुआ था। मुझे नहीं मालूम कि सभा के संचालकों अथवा महिलाओं ने मेरी देशबन्धु स्मारक फण्ड की अपील के लिये भी कुछ ठहरा लिया था या नहीं। पर जब कभी मैं सार्वजनिक सभा में कुछ बोलता हूं तो यह अपील करना नहीं भूलता। इसलिए इस सभा में भी मैंने अपील पेश करदी। आधी से ज्यादा स्त्रियां बंगाली थीं। बहुतसी तो अपने साथ पैसे नहीं लाई थीं अतएव उन्होंने अपने गहने ही उतार कर दे दिए। कुछ गहने तो बड़े कीमती थे। वह बड़ा ही अच्छा दृश्य था जब कि ये बंगालिन बहनें अपने प्रिय नेता की स्मृति में अपनी खुशी से अपने गहने उतार कर दे रही थीं। कहना अनावश्यक होगा कि मैंने इन सभाओं में साफ साफ प्रकाशित कर दिया कि दान की यह तमाम रकम चरखा और खादी के प्रचार में खर्च की जायगी।

रांची से मुझे बरुकान्हा ले गये। यह एक छोटासा गांव है यहां बाबू गिरीशचन्द्र मजूमदार की अधीनता में सहकारी समिति की ओर से हाथ की बुनाई का प्रयोग किया जा रहा है। बाबू गिरीशचन्द्र खादी का काम बड़े उत्साह से करते हैं। उन्हें आशा है कि बुनाई के काम में पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकेगी। प्रयोग हाल ही में शुरू किया गया है। यदि संगठन ठीक प्रकार से किया गया और चरखों ने अच्छा काम दिया तो दूसरे स्थानों की तरह यहां भी चरखा सफलता प्राप्त कर सकेगा।

रांची में देशबन्धु दास स्मारक कोष के लिए कुछ लोगों ने कम्पनियां बनाकर नाटक के दो खेल किये। एक खेल बंगालियोंने और दूसरा बिहारियों ने किया था। चूंकि ये नाटक कम्पनियां खेल करने का पेशा नहीं करती थीं मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार करने में कोई आपत्ति न की। पर बंगालियों द्वारा किये गये खेल से तो मैं बड़ा निराश हुआ। मुझे पेशा करनेवाली कम्पनियों और इस कम्पनी के खेलों में कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया। इसमें भी पेशेदार कम्पनियों की पूरी पूरी नकल थी। सब की सब पोशाकें विदेशी वस्त्रों की बनाई हुई थीं। चेहरों पर पाउडर भी लगाया गया था। मुझे तो यह आशा थी कि ऐसी बातें न होंगी और कम से कम ड्रेस तो खादी की ही होगी। इसीलिए जब मैं बिहारी कम्पनी द्वारा किये गये खेल में आने लगा तो मैंने यह शर्त कर ली कि यदि आप मुझे अपना खेल दिखाना चाहते हैं तो आपको खादी के ड्रेसों का उपयोग करना होगा। न केवल अभी ही बरन हमेशा के लिए आप लोगों को खादी की ड्रेस काम में लानी होगी। जब उन्होंने इस शर्त को एकदम स्वीकार कर लिया तो सचमुच मुझे आश्चर्य हुआ। बहुत थोड़ासा समय बाकी

रह गया था और उसी में उन लोगों को तमाम परिवर्तन करना था। मेनेजर ने मेरे साथ जो वादा किया था उसका उल्लेख करते हुए उसे पूर्ण करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। यद्यपि इस परिवर्तन के कारण बिहारियों के खेल में चटकमटक की कमी रही पर मेरी राय में इससे उनका गौरव बढ़ गया। मैं तमाम ऐसी नाटक कम्पनियों के लिए इस प्रकार के परिवर्तन की सिफारिश करता हूं। सच तो यह है कि नाटक का पेशा करनेवाली वे कम्पनियां जिनमें कि स्वदेशानुराग का अङ्कुर विद्यमान है इस प्रकार का परिवर्तन सरलता के साथ कर सकती है और इस तरह दिन पर दिन बढ़ने वाले भारत के लाखों लोगों की आर्थिक उन्नति में कुछ वृद्धि करेंगी, फिर वह चाहे कितनी ही थोड़ी हो।

उद्योग विभाग के मेसर्स एन. के. राय और एम. के. राव से मेरी खादी पर बड़ी रोचक बहस हुई। एक ब्रह्मचर्याश्रम भी मैंने देखा। यह आश्रम महाराजा कासिमबाजार के दान का फल है। रांची से मोटर में बैठ कर हम हजारीबाग पहुंचे। यहां कइयों से मुलाकात लेने के बाद मैं सेन्ट कोलम्बस मिशनरी कालेज के विद्यार्थियों के सामने कुछ बोलने के लिए गया। यह मिशनरी कालेज बड़ी पुरानी संस्था है। मैंने विद्यार्थियों के सामने समाज सेवा पर कुछ कहा। मैंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया कि यह सेवा चारित्र्य के बिना नहीं हो सकती। छोटे छोटे गांवों में प्रवेश किये बिना भारत में विशाल रूप में समाज-सेवा नहीं की जा सकती। और यही उस सेवा का पुरस्कार होगा क्योंकि इसमें न जोश खरोश है, न शोहरतबाजी है और अक्सर यह बड़ी कठिन परिस्थिति में तथा घने अज्ञान और वहम के मुकाबले में करनी पड़ती है। मैंने उन्हें यह दिखलाने का प्रयत्न किया कि भारतवर्ष में समाज-सेवा का सबसे अच्छा रूप कोई हो सकता हो तो वह है चरखे और खादी। क्योंकि इसके द्वारा युवक लोग देहातियों के सम्पर्क में आते रहेंगे, उनकी जेब में रोज कुछ पैसे डालते रहेंगे और अपने तथा उनके बीच एक अटूट ममत्व कायम कर सकेंगे। एवं इसके द्वारा उन्हें अपने कर्ता को पहचान होने में सहायता मिलेगी क्योंकि दीन-दुखियों को निस्वार्थ सेवा ही ईश्वर-सेवा है।

हजारीबाग से गया तक मोटर रास्ते पर के कुछ स्थानों में ठहरते हुए हम पटना पहुंचे यहां महासमिति का कार्य और अ० भा० चरखा संघ की स्थापना ये मुख्य कार्य थे। पटना में मुझे मालूम हुआ कि लगातार की मुसाफरी की थकावट के कारण मेरा स्वास्थ्य बड़ा खराब हो जायगा। ज्यों ही गया नजदीक आने लगा लोगों की भीड़ की आवाज मेरे कानों को असह्य मालूम होने लगी। यदि मैं कानों में उंगलियां न डाल लेता तो मुझे गश आ गया होता। राजेन्द्र बाबू ने इस अविवेकपूर्ण पर साथ ही सद्भाव प्रेरित शोरगुल को बन्द करने में बड़े परिश्रमपूर्ण उपायों से काम लिया। उन्होंने बड़ी मिहरबानी कर के मेरे कार्यक्रम में संशोधन कर दिया और उसे घटा दिया। इस कारण और स्थानों की बनिस्बत पटना में मुझे कुछ अधिक आराम करने को मिला। बहुत दिनों से खुदाबख्श ओरियन्टल लायब्रेरी को देखने की मेरी इच्छा हो रही थी। अतएव मैं अपनी इस कामना को पूरी करने के लिए वहां गया। मैंने इस लायब्रेरी के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना था। पर मेरा यह विश्वास नहीं था कि उसमें इतना बहुमूल्य खजाना है। इसके प्रेमी संस्थापक खान बहादुर खुदाबख्श एक वकील थे। उन्होंने बड़े प्रेम और मिहनत के साथ समुद्र पार से भी बहुत से प्राचीन अरबी और फारसी के अप्राप्य ग्रन्थ मंगवा कर एकत्र किये थे। कुछ कुरान की हस्तलिखित प्रतियां भी इसमें हैं। इन प्रतियों में बड़े सुन्दर बेल-बूटे बनाये हुए हैं। इन बेलबूटों के बनानेवाले अज्ञात कारीगर ने इसके लिए बरसों तक चित्त लगा कर कार्य किया होगा। शाहनामा के बेल-बूटेदार संस्करण की प्रति का प्रत्येक पन्ना कला-सुन्दर है — वह आंखों के लिए बड़ा मनोहर दृश्य है। मैं समझता हूं कि इस लायब्रेरी में की कुछ हस्तलिखित प्रतियों का मूल्य साहित्य की दृष्टि से बहुत भारी है। इस लायब्रेरी के संस्थापक बड़े सम्मान के पात्र हैं क्योंकि उन्होंने राष्ट्र को इतना बड़ा दान दिया है।

पटना में मैंने एक और रोचक वस्तु देखी। वह था उद्योग विभाग का कारखाना। मि. राव इसके सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। कारखाने की इमारत नये ढंग से बनी हुई है, उसका ढांचा बड़ा अच्छा है, उसमें प्रकाश और हवा-काफी तौर से आती है और सफाई की ओर भी सावधानी से ध्यान दिया जाता है। इस कारखाने में खास कर करघों की बुनाई और खिलौनों की बनवाई का काम होता है। पटना इन धन्धे के लिए मशहूर है। फीते बुनने और खाट की निवार बुनने के सुधरे हुए करघे प्रशंसनीय है। इतने बड़े कारखाने में खास वस्तु चरखे की कमी मुझे जरूर खटकी। खिलौने बनाने की कला में जो सुधार किया गया है उससे खिलौने बनाने वालों की आमदनी में अवश्य वृद्धि होगी। अतएव इस कला को पटने के समान शहर के कारखानों में स्थान मिलना योग्य ही है। एक भारतीय कारखाना तबतक अधूरा ही है जबतक कि उसमें करघे को स्थान न मिले। साथ ही उद्योग-धन्धे का ऐसा कोई भी राष्ट्रीय विभाग संपूर्ण नहीं कहा जा सकेगा जो कि हाथ की बुनाई की ओर ध्यान नहीं देता। ऐसा करना उन लाखों ग्रामवासियों की अवहेलना करना होगा जिनके पास कोई सहायक धन्धा नहीं है। मेरे सामने हाथ की कताई के काम के मार्ग में आने वाली कठिनाइयां पेश की गई हैं :—

(१) हाथ का कता हुआ सूत मिल के सूत की स्पर्धा नहीं कर सकता क्योंकि वह मिल के सूत के समान मजबूत किसी हालत में नहीं हो सकता।

(२) चरखी के द्वारा बहुत कम सूत काता जा सकता है अतएव उससे लाभ नहीं हो सकता। (अपूर्ण)

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

दक्षिण आफ्रिका के विषय में

"दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों पर आजकल जो अत्याचार हो रहा है उसके लिए उन्हें धैर्य देने तथा सहायता करने के लिए ११ वीं अक्तूबर को जगह जगह सभा करना इस आशय का एक प्रस्ताव अ० भा० म० स० ने पास किया है। इन सभाओं में सब पक्षों के मनुष्यों को निमंत्रण करने की आवश्यकता है। इस प्रश्न के विषय में किसी का मतभेद तो है ही नहीं अतएव ऐसी आशा की जाती है कि सब पक्ष के लोग ऐसे अवसर पर हाजिर होंगे। हमारी सहानुभूति से दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों को कुछ धीरज होगा। यदि भारत-सरकार भी कुछ उनको मदद देना चाहे तो उसमें भी ये सभायें सहायक होंगी और कुछ नहीं तो अपने से जितनी बन सके उतनी सहायता तो उनको पहुंचेगी। इससे मुझे आशा है कि जगह जगह सभायें होंगी और उसमें लोग हाजिर होंगे। द० आफ्रिका के प्रश्न से कोई भी राजनीति जाननेवाला मनुष्य बिल्कुल अजान तो न ही हो सकता।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक बदी ६, संवत् १९८२

सिक्ख धर्म

पटनेवाली महासमिति की बैठक के समय सरदार मंगलसिंह ने मेरा ध्यान 'मेरे क्रान्तिकारी मित्र' नामक लेख का ओर खींचा। यह लेख ९ अप्रेल के यंगइन्डिया में छपा था। उन्होंने कहा कि कुछ सिक्ख मित्रों ने उसका यह आशय समझ लिया है कि आपने कृष्ण को तो बडे गौरव के पद पर चढा दिया है और गुरु गोविंदसिंह का वर्णन ऐसा किया है मानों वे एक गुमराह देशभक्त हों। और इस पर उन्हें बुरा भी लगा है। सरदारजी ने मुझसे यह भी कहा कि अपने उन वाक्यों के आशय को यथासंभव शीघ्र ही स्पष्ट कर दीजिए। जो लोग मेरे लेखों को ध्यानपूर्वक पढते हैं वे देखेंगे कि मैंने अपनी भाषा में बडी सावधानी से काम लिया है। मैंने ऐसी कोई बात निश्चयात्मक रूप से नहीं कही है। मैंने यही लिखा था कि गुरु गोविन्दसिंह तथा अन्य वीरों के सम्बन्ध में जो २ बातें कही जाती हैं उनको यथार्थ मानते हुए यदि मैं उनका समकालीन होता तो सम्भवतः उन्हें गुमराह देशभक्त बताता। किन्तु दूसरे ही वाक्य में मैंने यह फौरन कहा है कि इस समय में उन व्यक्तियों पर किसी प्रकार की राय कायम करना मेरे लिए उचित न होगा क्योंकि जहांतक उनके जीवन की प्रत्येक छोटी छोटी बातों से सम्बन्ध है मैं इतिहास को नहीं मानता। सिक्ख गुरुओं के सम्बन्ध में मेरा विश्वास है कि वे गहरे धार्मिक नेता और सुधारक थे। वे सब हिन्दू थे और गुरु गोविन्दसिंह हिन्दू धर्म के जबरदस्त रक्षणकर्ताओं में से थे। मेरा यह भी विश्वास है कि उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा ही के लिए तलवार उठाई। पर मैं उनके कार्यों पर अपनी सम्मति नहीं दे सकता और जहांतक तलवार उठाने के साथ उनका सम्बन्ध है मैं बतौर आदर्श के उनका उपयोग नहीं कर सकता। यदि मैं उनके समय में होता और मेरे वही विचार होते जो कि आज हैं तो कह नहीं सकता कि मैं क्या करता। मैं समझता हूं ऐसी बातों में 'भवति न भवति' करना व्यर्थ समय गवाना है। मैं सिक्ख धर्म को हिन्दू धर्म से भिन्न नहीं समझता। मैं उसे हिन्दूधर्म का अंग तथा वैष्णवधर्म की तरह एक सुधारक पंथ समझता हूं। सिक्खों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले जितने ग्रंथ मेरे हाथ आ पाये मैंने यरवडा जेल में पढे थे। ग्रंथसाहब के भी कुछ अंश मैंने पढे हैं। उसका आध्यात्मिक तथा नैतिक स्वरूप मुझे ऊंचा उठाने वाला मालूम हुआ। आश्रमभजनावलि में हमने गुरु नानक के भी कुछ भजन रक्खे हैं। फिर भी यदि सिक्ख लोग सिक्ख पंथ को हिन्दूधर्म से बिलकुल भिन्न समझें तो इसमें भी मेरा कोई झगडा नहीं है। जब मैं पहले पहल पंजाब गया तो मेरे कुछ सिक्ख मित्रों को मेरा सिक्ख पंथ को हिन्दूधर्म का अंग मानना बुरा मालूम हुआ। यह देख कर मैंने ऐसा कहना बंद कर दिया। किन्तु पूछा जाने पर मुझे अपना विश्वास प्रकट करने के लिए सिक्ख भाई मुझे क्षमा करें। अब श्रीकृष्ण को लीजिए। सिक्ख गुरुओं को मैंने ऐतिहासिक व्यक्ति माना है क्योंकि इसके लिए हमारे पास विश्वसनीय प्रमाण मौजूद है परन्तु मुझे पता नहीं कि महाभारत का कृष्ण कभी हुआ भी था। मेरे कृष्ण का कोई सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक व्यक्ति से नहीं है। जो कृष्ण अपनी मानहानि होनेपर हत्या करने के लिए उतारू होता हुआ बतलाया जाता है और अहिन्दू जिसका वर्णन दुराचारी युवक के रूप में करते है उसके आगे मेरा सिर न झुकेगा। मैं जिस कृष्ण को मानता हूं वह तो है पूर्णावतार, पूर्ण निष्कलंक और गीता के तथा लाखों मनुष्य प्राणियों के जीवन को अनुप्राणित करनेवाला। यदि कोई मुझे यह समझा दे कि महाभारत भी वर्तमान ऐतिहासिक पुस्तकों की तरह एक इतिहास ग्रंथ है और महाभारत का एक एक शब्द प्रमाणयुक्त है और यह कि महाभारत के कृष्ण ने वे ही कार्य किये हैं जो कि उनके लिये कहे जाते है तो मैं उस कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानने के लिए तैयार न होऊंगा। फिर चाहे इसके लिए मैं हिन्दू समाज से बाहर ही क्यों न निकाल दिया जाऊं। पर महाभारत मेरे नजदीक एक गहन धार्मिक ग्रंथ है। वह अधिकांश में एक रूपक है। इतिहास के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। उसमें तो उस शाश्वत युद्ध का वर्णन है जो कि हमारे अन्दर निरन्तर होता रहता है। वह ऐसी सजीव भाषा में किया गया है कि जिससे कुछ समय के लिए हमारा यह खयाल हो जाता है कि उसमें वर्णित कृत्य सचमुच मनुष्यों के द्वारा ही किये गये है। और न मैं वर्तमान महाभारत को मूल ग्रंथ की वास्तविक प्रतिलिपि मानता हूं। इसके विपरीत मैं तो समझता हूं कि मूल महाभारत में अबतक कई परिवर्तन हो गये हैं।

(य. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

असहयोगियों का भाग्य

एक मित्र पूछते हैं, "आपके अपने आपको पूर्णतया स्वराज्य दल को सौंप देने पर उन लोगों का भविष्य क्या होगा जिन्होंने असहयोग को अपना राजनैतिक धर्म बना लिया है?" प्रश्न कर्ता महाशय यह बात भूल जाते है कि मैं अब भी पहले का जैसाही कट्टर असहयोगी हूं; और असहयोग मेरा राजनैतिक धर्म ही नहीं बल्कि कौटुंबिक और सामाजिक धर्म भी है। जैसा कि मैं बार बार इन्हीं लेखों में कह गया हूं जब तक किन्हीं खास दशाओं में असहयोग करना सम्भवित न रक्खा जाय तबतक स्वेच्छाजनित और कल्याणकारी सहयोग असम्भव है। महासभा किसी को उसका धर्म नहीं बतलाती। वह तो एक सूक्ष्म मापयंत्र है और भारत के राजनैतिक दिमाग के मिजाज की समय समय की तबदीली बतलाता है। महासभा का कोई भी सदस्य अपने राजनैतिक धर्म के प्रतिकूल आचरण करने के लिए बाध्य नहीं। पर अब उसे असहयोग के प्रचार में महासभा के नाम को इस्तैमाल न करना चाहिए। प्रस्ताव के अनुसार महासभा की ताकत और रुपया पैसा जो कि पहले से ही किसी विशेष काम के लिए नहीं रख लिया गया है स्वराज्य दल की धारासभा सम्बंधी नीति के प्रचार में खर्च किया जायगा। इसलिए अन्य महासभा संस्थायें इस काम में मदद करने की हकदार हो गईं इतना ही नहीं बल्कि वे इस बात के लिए बाध्य हैं कि जब कभी वे धारासभा प्रचार में धन खर्च करेंगी तो स्वराज्य-दल के लिए ही करेंगी। और इसी के विरुद्ध कोई भी महासभा संस्था जहां कि बहु संख्यक मत किसी भी शुद्ध राजनैतिक कार्य के लिए धन इकट्ठा करने और खर्च करने के विरुद्ध हो इस प्रस्ताव द्वारा अपने विश्वास के विरुद्ध आचरण करने को बाध्य नहीं

है। महासभा के सारे प्रस्ताव मार्ग–दर्शक रूप हैं वे दबाव के लिए तो हरगिज नहीं।

लेखक महाशय और भी पूछते हैं, "असहयोग के संबन्ध में चरखा-संघ की क्या स्थिति होगी?" चरखा–संघ को राजनैतिक असहयोग से कोई वास्ता नहीं। आरंभ से ही राजनीति उसके क्षेत्र के बाहर है। मैं उस संघ का सभापति हूं एक कट्टर असहयोगी की हैसियत से नहीं, बल्कि इस हैसियत से कि मैं खादी का आन्तरिक हृदय से चाहनेवाला हूं। यह तो व्यापारिक या आर्थिक संस्था है और उसके उद्देश्य आमजनता को लाभ पहुंचाने वाले हैं। वह खादी का व्यापार सदस्यों के लाभ के लिए नहीं बल्कि राष्ट्र के लाभ के लिए चलावेगी। सदस्य लोग मुनाफेका भाग पाने के स्थान में वार्षिक चन्दा दिया करेंगे जिससे कि उनके चन्दे द्वारा सारा राष्ट्र सम्मिलित हो सके। यह संस्था राजनैतिक विचारों के माफिक सहयोगियों, असहयोगियों, राजाओं, महाराजाओं और तमाम जातियों और धर्मों के आदमियों को निमंत्रण देती है जिनको चरखे और खादी के आर्थिक मूल्य में श्रद्धा है।

लेखक महाशय यह भी लिखते हैं, "चरखा–संघ का कार्यक्रम पंच–बहिष्कार विना पूरा न होगा।" मैं इसे बिलकुल नहीं मानता। अधिक से अधिक काम करनेवाला वकील भी खादी क्यों नहीं पहने जैसा कि कुछ वकील आज पहन रहे हैं? सरकारी मदरसों के विद्यार्थी तथा शिक्षकवर्ग भी क्यों न खादी पहनें? स्वराज्यदलवालों को देखें तो धारासभाओं में जानेवाले भी अवश्य खादी पहन रहे हैं उन्होंने तो खादी को बड़ी धारा–सभा तथा धारा–सभाओं तक में पहुंचा दिया। कई एक उपाधि धारी सज्जन भी हमेशा खादी पहनते हैं।

हमारे लेखक की अन्तिम कठिनाई यह है कि "यदि अटल असहयोगी महासभा से बाहर निकाल दिये गये और चरखा-संघ में भी उनको स्थान न मिला तो क्या यह संभव होगा कि वे अलग अपनी एक अखिल भारत संस्था बना लें?" प्रश्न बहुत ही बेढंगे रूप में किया गया है। महासभा से तो कोइ भी कभी बाहर नहीं निकाला जाता। अवश्य ही वे लोग छोड के जा सकते हैं और जाया करते हैं जो यह देखते हैं कि बहुमत का कार्यक्रम उनकी आत्मा के खिलाफ चलता है। बहुमत इस बात के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि वह अल्पमत के माफिक न रहा। इसलिए यदि ऐसे असहयोगी हैं जो महासभा में तब तक रहना गवारा नहीं कर सकते जब तक वह धारासभा में जाने की सिफारिश करती है तो वे अवश्य ही अलग हो सकते हैं। मैं तो और आगे कहूंगा और यहां तक कहूंगा कि यदि वे महासभा के अन्दर रह कर धारासभा सम्बन्धी कार्यक्रम का विरोध करना चाहते हों तो उनको अलग ही हो जाना चाहिए। मेरी राय में तो महासभा का यंत्र इस प्रकार चलाया जाना आवश्यक है कि अन्दर से उसमें कोई संघर्षण न हो। मैं पहले ही बता चुका हूं कि चरखा संघ में असहयोगियों को भी स्थान है जैसा कि सहयोगियों के लिए है। इतने पर भी यदि कोई असहयोगी ऐसे हैं जिनको अलग ही अपनी एक अखिल भारत संस्था बनाना कर्तव्य लगता है तो उनके लिए वैसा करना अवश्य ही सम्भव है मगर वैसा करना मैं तो बिल्कुल उचित नहीं मानता। इतना ही काफी होगा कि कुछ समय के लिए असहयोगी लोग असहयोग को खुद अपने ही तक मर्यादित रक्खें।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

चरखा–संघ

चरखा–संघ की स्थापना कुछ ऐसी वैसी बात नहीं है। इसकी स्थापना स्थापकों की प्रतिज्ञा का चिह्न है; वह उनका चरखे के प्रति विश्वास, और उसके लिए अपना सबकुछ अर्पण करने का निश्चय जाहिर करता है।

मेरा मन तो यह कहता है कि उसीमें स्वराज्य है; उसके विना करोडों की सेवा मैं अशक्य मानता हूं। प्रत्येक मनुष्य खुद प्रत्येक मनुष्य की सेवा नहीं कर सकता, किंतु प्रत्येक मनुष्य एक ऐसे काम में मदद कर सकता है कि जो सबकी सेवा करनेवाला हो, जिसका फल सबको मिले। और वह है अकेला चरखा, जो करोडों के पास पहुंच सकता है, जो करोडों को भूखों मरने से बचा लेता है, जो करोडों के लिए अन्नपूर्णा हो सकता है। मैं टोकनी बनाने के कारखाने में लगूं तो दो–चार हजार मनुष्यों को मदद कर सकता हूं, साबुन के कारखाने में लगूं तो वहां भी दो–चार हजार को रोजी मिल सकती है, मिल में लगूं तो वहां भी दो–चार हजार को अथवा सब मिलों को मिलाकर दस–पंद्रह लाख को रोजी मिले और दो–चार हजार को ब्याज। किंतु जो मैं चरखे की प्रवृत्ति में लगूं तो मानों करोडों को भोजन देनेवाले कारखाने में सम्मिलित हुआ।

पाठक विचार कर देखेंगे तो उनको एक भी ऐसा धंधा न मिलेगा कि जिससे करोडों की सेवा हो सके। हां, एक खेती है। किंतु अभी खेती का लोप नहीं हुआ है, और वह एक ऐसी चीज है कि मनुष्य उसे चाहे जब, चाहे जिस समय, और चाहे जितने समय तक नहीं कर सकता। लेकिन सूत? मनुष्य उसे तो चाहे जहां कात सकता है और तकली जेब में रखकर चलते चलते भीदो–तीन गज महायें कात सकता है। एक क्षण तक भी काता हुआ काम में आ सकता है, किंतु एक क्षण में खेती नहीं की जा सकती। उसमें तो कम से कम एक ही जगह पर विशेष रूप से और काफी समय देना जरूरी है। इसीसे चरखा महायज्ञ है और सबों के लिए सुलभ है।

ऐसी वस्तु के संघ की सेवा कौन न करेगा? चरखे में जो दोष देखते हैं उन्हें कौन क्या समझावें? क्या, दो गज सूत इस देश की दौलत में बढे, यही अच्छा न लगने का कारण है? और ये दो गज भी फुरसत के समय में कातना है।

मेरी इच्छा है कि सब भाईबहनें इस संघ में शामिल हों। दो हजार के बजाय एक हजार लेना ठहरा यह मुझे ठीक नहीं मालूम हुआ। और भी बहुतेरों को यह ठीक मालूम न हुआ। परंतु यह कुछ इस संघ में शामिल न होने का कारण नहीं। वे खुद भले ही दो हजार गज देनेवालों में रहें। प्रतिज्ञा लेना यह बहुत अच्छा है लेकिन प्रतिज्ञा लेने की कलम निकाल डाली गई, इसका अर्थ यह नहीं कि प्रतिज्ञा लेने की इच्छा रखनेवाले शामिल न हों। वे खुद प्रतिज्ञा तो अवश्य लें, और प्रतिज्ञा न ली हो तो भी यह बात समझी हुई है कि अनिवार्य कारण न हों तो सबआधा घंटा तो कातेंगे ही। प्रतिज्ञा-पत्र मौकूफ कर दिया गया किंतु व्यवस्थापक समिति में शामिल होनेवाले तो चरखे को अपनी प्रधान प्रवृत्ति मानेंगे ही।

लेकिन जो अठारह वर्ष से कम उम्र के हों, और जो नियमपूर्वक न कात सकते हों उन्हें क्या करना चाहिए? वे पहले के मुताबिक जितना बन सके उतना सूत दान करें।

इस समय किसीको रुई नहीं दी जायगी। किसीकी झूठी खुशामद कर के उससे कताने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो कातने का धर्म समझते हों वे ही सूत भेजें। रुई का खर्च तो

नहीं के बराबर है । 'दमडी की बुढिया टका मुडाई' वाली कहावत न हो जाय । जो अपनी राजी खुशी से सूत दे सके उनसे सूत की भिक्षा मांगने का हेतु यही है कि —

(१) उससे खादी सस्ती हो सकती है ।

(२) उससे प्रजा आलस्य छोड कर अपना बचा हुआ समय प्रजाके कल्याण में खर्च करें ।

(३) उससे धनवान गरीबों के साथ अपना सीधा सबन्ध बांधे और उन्हें रोज याद करे ।

(४) उससे सब विदेशी कपडों के बहिष्कार में मदद दे ।

(५) उससे सब यथाशक्ति एक ही प्रकार की देशसेवा अवश्य कर पावें ।

(६) उससे मध्यम वर्ग जो अभी देहातियों की मजदूरी के ऊपर अपना निर्वाह करता है वह उसका कुछ बदला दे जो कि वह आज स्वेच्छापूर्वक नहीं दे रहा है ।

(७) मध्यम वर्ग के गरीबों को जो अपने जीवन की भी श्रद्धा खो बैठे हैं उन्हें अपने कातने से श्रद्धा प्राप्त करने का मार्ग बतलावे ।

ऐसे परिणाम तो वहीं हो सकते हैं जहां मनुष्य अपनी उमग से कातता हो ।

इस महान कार्य में रुपयों की भी मदद तो चाहिए । मुझे आशा है कि जिसे चरखे में श्रद्धा हो वे सूत तो भेजेंगे ही, इतना ही नहीं पर यदि उनके पास द्रव्य हो तो उसकी भी मदद करेंगे । यह संस्था अनेक मध्यम वर्ग के लोगों को रोजी देगी । जो अंक मैंने प्रसिद्ध किये हैं उससे मालूम होगा कि आज भी कितने मनुष्य इस प्रवृत्ति से अपनी आजीविका प्राप्त कर रहे है । यदि यह कार्य विशाल हो तो यह संस्था हजारों को रोजी देने वाली बन जाय । जिसमें करोडों का व्यापार चलता है उस वस्तु में हजारों, प्रामाणिकता से, अपनी रोजी पाये यह कौनसी बडी बात है ।

अब एक विश्वास की बात रही । जो लोग समिति में है वे विश्वासपात्र और कुशल है ? मेरी नाकिस राय के अनुसार तो वे जरूर ऐसे ही हैं । यह सत्य है कि ऐसे और दूसरे सेवक रह गये हैं जिनका नाम इसमें नहीं है । एक मित्र सूचित करते हैं कि कई तो ऐसे हैं जिन्हें इसमें होना ही चाहिए था इन सबकी एक विचारक समिति बनाई जाय । मैंने इस पर विचार कर देखा है । मुझे वह अनावश्यक प्रतीत होता है । विचार करना थोडा है, उसका अमल करना बहुत है । इससे तो यही अच्छा है कि अमली कार्य को करने की समिति को खडी करने में थोडे लेकिन अपना सारा समय देनेवाले कार्यकर्ता मिलें ।

यह संघ सेवा के लिए है अधिकार के लिए नहीं । सरदारी की गंध के लिए भी जहां स्थान नहीं और जहां सेवा यही धर्म है वहां अधिकार की स्पर्धा तो हो ही नहीं सकती । मैं तो चाहता हूं कि जिनको सेवा करनी हो वे अपनी सूचनायें भेजते रहें । यदि विचारक सभा बनाई जाय तो उसकी बैठकें होनी चाहिए । जहां नई पोलिसी अथवा पद्धति चलाना हो वहां ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता होती है । यहां तो काम ही की देखरेख करना है । इसलिए मै तो मानता हूं कि १२ लोगों की समिति यथार्थ है । इसमें भी अभी तीन जगहें भरना बाकी छोड दिया है । क्योंकि सब जगहें भरने की जरूरत नहीं मालूम हुई । विशेष बातें अनुभव से मालूम होंगी ।

खादी का व्यापार परोपकार के लिए है । सामान्यतः व्यापार में परोपकार के लिए स्थान नहीं होता है । ऐसा माना गया है कि व्यापार और परोपकार ये एक दूसरे की विरोधी वस्तुएं हैं । राज्यसत्ता की सहायता न हो और परोपकार भी न हो तो खादी का व्यापार चल ही नहीं सकता । व्यापार करनेवालों को जिस प्रकार परोपकार सीखने की आवश्यकता है उसी प्रकार खादी खरीदने वालों को भी परोपकार की भावना हासिल करने की जरूरत है । पेरिस की लेस अथवा मान्चेस्टर की मलमल बहुत ही अच्छी लगती हो तो भी उसका त्याग कर के जो खादी ही को अपनायगा वह तो परोपकार ही करेगा इसमें शक नहीं ।

हे ईश्वर, सेवाभाववाले खादी सेवकों की वृद्धि कर ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

विविध प्रश्न

कच्छ के एक शिक्षक ने मुझसे कुछ प्रश्न पूछे हैं । उनके जवाब सर्व-साधारण के सामने रखने योग्य हैं अतएव मै उन प्रश्नों को यहां उद्धृत करके उनके जवाब लिखता हू ।

१ " मै विद्यालय का शिक्षक हूं । मुझमें जैसा चाहिए वैसा चारित्र्य, सत्य और ब्रह्मचर्य नहीं है । मैं उसे प्राप्त करने के लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहा हूं । मेरे पिता के सिर कर्ज है । ऐसी हालत में क्या आप मुझे शिक्षक के पद से इस्तीफा देने की सलाह देते हैं ?"

वाञ्छनीय चारित्र्य के अभाव में इस्तीफा देने का विचार सुन्दर है, यह मै स्वीकार करता हू । फिर भी इसमें विवेक से काम लेने की आवश्यकता है । यदि कार्य करते करते दोष कम होते जाय तो इस्तीफा देने की कोई आवश्यकता नहीं । कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं होता । शिक्षक वर्ग में चारित्र्य की बहुलता होती है ऐसा तो देखने में नहीं आता । अपने कार्य में जाग्रत रहने और यथाशक्ति उद्यम करते रहने से मनुष्य सतोष पा सकता है । पर इस संबन्ध में सबोंके लिए एक ही तरीका काम नहीं दे सकता । सबको अपने अपने लिए सोच लेना चाहिए ।

पिता के कर्ज का प्रश्न सहल है । यदि कर्ज योग्य कार्यों के लिए किया गया हो तो चुकाया जाना चाहिए । यदि वह कर्ज शिक्षक की नौकरी करते रहने से न चुकाया जा सके तो कोई अन्य नौकरी या धन्धा ढूढ लेना चाहिए ।

२ " प्रतिसप्ताह एक दिन मौन व्रत का पालन करने में नैतिक के अतिरिक्त कोई आरोग्य सबन्धी लाभ भी है ?"

सामान्यतया मौन से आरोग्य का भी लाभ पहुचता है ऐसा कहा जा सकता है । परन्तु जो मनुष्य मौन में आनन्द प्राप्त न कर सकता हो उसके आरोग्य को लाभ न होगा ।

३ "आपने अपनी 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान' नामक पुस्तक में बतलाया है कि दूध और नमक ये दोनों वस्तुएं त्याज्य हैं । दूध अहिंसक दृष्टि से और नमक आरोग्य की दृष्टि से । यदि दूध त्याज्य है तो उसमें से उत्पन्न होने वाले घी, छाछ आदि पदार्थ भी त्याज्य होने चाहिए । अतएव इन पदार्थों के विषय में आप की राय में अब कोई परिवर्तन हो गया है या वह पूर्ववत ही कायम है ।"

इस विषय में मेरे विचारों में फेरफार नहीं हुआ है । हां, मेरे वर्ताव में अवश्य हुआ है । मेरा यह दृढ विश्वास है कि जो दूध के बिना रह सकता है उसे आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है । दूध और उससे उत्पन्न हुए पदार्थों का त्याग ब्रह्मचर्य के पालन में बडा सहायक होता है । जो दूध का सेवन नहीं करता है वह छाछ और घी से भी परहेज रखे तो अच्छा है । जीवन

के मोह के वशीभूत हो कर अथवा आवश्यक होने के कारण बकरी के दूध का मैंने स्वीकार किया है, यदि मै सार्वजनिक कार्यों में न पड़ा होता तो दूध को फिर से छोड़ देता और मेरा प्रयोग शुरू रखता । दुर्भाग्य से मुझे कोई ऐसा डाक्टर वैद्य अथवा हकीम न मिला जो दूधत्याग के प्रयोग मे मुझे मार्ग दिखलावे । वैद्यों से मुझे आशा थी । मेरी ऐसी धारणा थी कि उनकी विचार श्रेणी मे आत्मा के स्वास्थ्य के लिए स्थान है । पर इस प्रकार के वैद्य जिनपर कि मेरी आंख जमे मुझे नहीं मिले । इसी कारण मुझे दूध का उपयोग करना पड़ा है । केवल शरीर-संग्रह के लिये दूध उपयोगी हो सकता है ऐसा मै समझता हू । इसीलिए अब मै किसीको यह नहीं कहता कि दूध छोड़ दो । पर मेरी पुस्तक में रहे हुए विचारों को मै बदलना नहीं चाहता । मेरे कई मित्र अब भी दूध के त्याग का प्रयोग कर रहे है । उन्हें मैं ऐसा करने से नहीं रोकता और न उन्हे इस सम्बन्ध मे खास तौर से प्रोत्साहित ही करता हू ।

नमक के सम्बन्ध में भी मत है । नमक छोड़ देने से कुछ नुकसान होता हो ऐसा मेरा ख्याल नहीं । पर अब मैं नमक का आग्रह-पूर्वक त्याग नहीं करता । मै जानता हू कि कुछ समय के लिये अथवा सदा के लिए नमक का त्याग आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी है । यह ध्यान में रखने लायक बात है कि पानी आदि के साथ थोड़ा बहुत नमक हम रोज खाते है । जो कोई शरीर-आरोग्य की दृष्टि से दूध, मीठा आदि का त्याग करे तो उसके लिए किसी अनुभवी डाक्टर से सलाह लेकर यह काम करना उचित होगा । आध्यात्मिक दृष्टि से इन वस्तुओं का त्याग करनेवाले की त्यागवृत्ति पूर्णरूप से जाग्रत हो जानी चाहिए ।

४ "अहिंसा का पालन करनेवाले को तो खाने के लगभग सभी पदार्थों का त्याग करना पड़ेगा । फलाहार में भी हिंसा है क्योंकि फलफूल में जीव होते है । पर यदि वृक्ष पर से पके हुए फल अपने आप गिर पड़ें तो उन्हे खाने में कोई हर्ज नहीं । परन्तु ऐसे फल मेरे समान गरीब मनुष्य के लिए बड़े महगे पड़ेंगे । संयोग तथा समय द्वारा दी गई छूट का उपयोग करके हमेशा केवल गेहू का उपयोग करना चाहिए । केवल पानी में पकाया हुआ उसकी दलिया ही खाया जाय, कोई वनस्पति या फल भी न खाया जाय तो क्या आपकी यह धारणा अथवा अनुभव है कि सुबह शाम केवल इतनी सी थुली खा लेने से मेरे समान १९ वर्ष का युवक जिसे जीवनभर ब्रह्मचर्य का पालन करने की अभिलाषा है आजीवन केवल दलिये पर रह सकता है ? क्या केवल दलिया ही से उसके शरीर को आवश्यक पोषण मिल सकता है ?"

पका हुआ फल जो कि अपने आप जमीन पर गिरता है उसमें भी जीव है, अतएव उसे खाना भी दोषमय गिना जा सकता है । शरीर सम्बन्ध ही दोष है और जहां दोष है वहां दुःख भी है । इसीसे तो मोक्ष की आवश्यकता है । बलात्कार से शरीर का नाश करने से शरीर से मुक्त नहीं हो सकते । शरीर सम्बन्ध का आत्यंतिक नाश, आत्यंतिक अनिच्छा वैराग्य अर्थात् त्याग ही से हो सकता है । इच्छा अथवा अहंकार शरीर का मूल है । ये गये कि शरीर का खाना न खाना एकसा हुआ । पर रहे हुए शरीर को जितनी चेष्टा आवश्यक हो उतने ही अंशो मे वह आवश्यक आहार करे। मनुष्य शरीर का आवश्यक आहार फलादिक वनस्पतियां है । इन्हें कम से कम मात्रा और कम से कम प्रकार में लेकर मनुष्य अपना निर्वाह करे तो दोषमय आहार लेते हुए भी वह निर्दोष रहता है ऐसा कहा जा सकता है । ऐसी अवस्था में खुराक स्वाद के लिए नहीं ली जाती है प्रत्युत जीवन-व्यापार के अथवा यों कहिए कि शरीर-यात्रा के लिए ली जाती है । अब यह बात समझ में आ सकेगी कि स्वेच्छा से पड़ा हुआ पका फल यदि रस के लिए लिया जाता है तो वह दोषमय आहार हुआ है और स्वतः प्राप्त वनस्पति का पकाया हुआ आहार यदि रस की इच्छा से नहीं वरन् केवल भूख मिटाने के लिए लिया जाय तो वह निर्दोष हुआ है ।

संयमी और निरोगी मनुष्य केवल दलिये पर रह सकता है ऐसा मै मानता हूं । लेखक भी तो मै यह सलाह दूंगा कि वे उदासीन वृत्ति से मिर्च आदि मसाले से रहित सामान्य भोजन करें । यही उनके लिये काफी होगा । ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये मुख्य आवश्यकता रस को मारने अथवा जीतने की है । छप्पनभोग का खानेवाला रसत्यागी है ऐसा नहीं कहा जा सकता । पर जनता तो सामान्य आहार करके भी रसत्यागी हो सकती है । अन्त में सबको सूक्ष्मता के साथ अपनी आत्मा से प्रश्न करना चाहिये कि वह रसके लिए खाता है या केवल निर्वाह के लिये । खुराक में भी अपने पास कोई सीधी लकीर नहीं है । सीधी लकीर तो केवल अंतर मे है । बाहर तो प्रपञ्च है । यह तो विशाल और रंगबिरंगा वटवृक्ष है । उसमे से मनुष्य को अद्वैत की साधना करनी है ।

५ "मन को खाने की प्रबल इच्छा हो और शरीर को भी भूख लगी हो तो क्या उसे दबाकर उपवास करने से लाभ होता है ?"

फायदा और गैरफायदा उपवास के हेतु और मनुष्य की शक्ति पर अवलम्बित है । मन को तो कवियों ने मद्यपान किये हुए बन्दर की उपमा दी है । मन की इच्छाओं का पार नहीं । उनका तो प्रतिक्षण दमन करते रहना चाहिए ।

६ "मै चाय नहीं पीता पर मेरे घर के सब आदमी पीते है । मैं ही कमाता हू अतएव मै घर में चाय लाऊ ही नहीं तो वह बन्द हो जाय । क्या ऐसा करना मेरे लिए योग्य होगा ? मै कमाता होऊं अथवा न कमाता होऊं पर यदि मैं उपवास कर के अपने घर वालों को चाय पीने से रोकू तो क्या यह मेरे सबन्धियों पर ही मेरा बलात्कार न होगा ?"

यदि किसी कुटुम्ब का मुखिया अथवा कमाने वाला स्वयं चाय न पीने के कारण दूसरों को चाय नहीं पिलाता है तो वह बलात्कार करता है । उसे दूसरों को धैर्य के साथ समझाना चाहिए । पर जबतक वे न समझे तबतक उसे उनके लिए चाय ला देनी चाहिए ऐसा मेरा मत है । दूसरे यदि न मानें तो उनके लिए उपवास करना यह मुढचिरापन है और मुंढचिरापन जड़ है ।

७ "मै मानता हू कि शारीरिक शिक्षा करने से कोई नहीं सुधरता, पर फिर भी मैं अपने वर्ग के विद्यार्थियों को सजा देता हूं । मेरा यह कार्य हिंसा है या नहीं ? मै यह जानता हू कि यदि मैं किसी शरीर या बुन्दू लड़के को स्वयं सजा न दे कर हेड मास्टर के पास भेजूगा तो वे भी उसे शारीरिक सजा ही देंगे । पर इतने पर भी यदि मै उस लड़के को वहां भेजता हूं तो मै हिंसा करता हूं या नहीं ?"

विद्यार्थी को स्वयं सजा देने और उस पाठक के पास सजा के लिए भेजने इन दोनों ही में हिंसा है । यद्यपि यह प्रश्न पूछा नहीं गया है कि शिक्षक किसी बालक को सजा दे सकता है या नहीं तथापि वह मूल प्रश्न के गर्भ में आ जाता है । मै ऐसे प्रसंग की कल्पना कर सकता हूं कि कोमल बालक जब कोई दोष

करे, और उस दोष की खबर उसे हो तो उसे दण्ड देने का धर्म प्राप्त होता हो। प्रत्येक शिक्षक को अपने धर्म को विचारने की आवश्यकता है। पर सामान्य नियम तो यह है कि शिक्षक कभी भी विद्यार्थी को शारीरिक दण्ड न दे। यह अधिकार यदि हो भी तो माता-पिता को भले ही हो सकता है। उपयुक्त दण्ड वही कहा जा सकता है जिसे विद्यार्थी स्वयं स्वीकार कर ले। ऐसे प्रसंग बार बार नहीं आते। यदि आवें और दण्ड देना उचित है या नहीं इसमें शंका हो तो वह न दिया जाय। क्रोध में तो कभी भी दण्ड नहीं देना चाहिए।

८. "मैं जानता हूं कि क्रोध शरीर को और चारित्र्य को नुकसान पहुंचाता है अतएव मैं क्रोधित न हुआ होऊं पर फिर भी मैं विद्यार्थी पर क्रोधित होने का सा रूप धारण करूं, दण्ड देने का विचार न होने पर भी दण्ड देने का भय बतलाऊं तो मेरा यह आचरण असत्य गिना जायगा या नहीं?"

यह दोष कई बार होता हुआ पाया जाता है। मारने का भाव दिखाना हर प्रकार से दोषित है।

९. "संतति नियमन के लिए ब्रह्मचर्य ही एक मात्र उपाय है यह मुझे मान्य है। मेरा हृदय इसे स्वीकार करता है पर साथ ही बुद्धि बलवा खड़ा करती है। वह कहती है कि जिस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय का उपयोग करने में कोई नुकसान नहीं हो सकता बल्कि उपयोग न करने से हानि होती है उसी प्रकार इस इन्द्रिय का उपयोग न करने से भी कुछ नुकसान तो न होगा? इसी प्रकार संतति नियमन समिति के प्रधान ने भी 'क्रानिकल' में आपके नाम पर एक पत्र लिखा था। अतएव इस दलील का आप खुलासा करें।"

यह सिद्धान्त ही नहीं है कि इन्द्रिय मात्र का उपयोग आवश्यक है। जो पुरुष ज्ञानपूर्वक वाचा के उपयोग का त्याग करता है वह संसार पर उपकार करता है। इन्द्रिय-उपयोग धर्म नहीं है। इन्द्रिय-दमन धर्म है। ज्ञान और इच्छापूर्वक हुए इन्द्रिय-दमन से आत्मा का लाभ होता है, हानि नहीं। विषयेन्द्रिय का उपयोग केवल संतति की उत्पत्ति के लिए ही स्वीकार किया गया है। पर जो संतति का मोह छोड़ देता है उसकी शास्त्र भी वन्दना करते हैं। इस युगमें विकारों की महिमा इतनी बढ़ गई है कि अधर्म ही को लोग धर्म मानने लग गये हैं। विकारों की वृद्धि अथवा तृप्ति में ही जगत का कल्याण है ऐसी कल्पना करना महा दोषमय है ऐसा मेरा विश्वास है। यही शास्त्र भी कहते हैं और यही आत्मदर्शियों का स्वच्छ अनुभव है। हिन्दुस्थान में तो बाल्यावस्था में ही हम विवाह जंजाल में पड़ जाते हैं। ऐसी हालत में विकारतृप्ति के साधनों की योजना करना और उसके लिये समाजों की स्थापना करना यह अज्ञान और अंध-अनुकरण की परिसीमा है। विकार रोके नहीं जा सकते अथवा उन्हें रोकने में नुकसान है यह कथन ही अत्यन्त अहितकर है। यदि इस दुर्बल देश में विकार तृप्ति उत्तेजक सम्प्रदाय चल निकला तो भारतवर्ष की प्रजा निर्माल्य हो जायगी और अन्तमें उसका नाश हो जायगा इसमें मुझे कोई शक नहीं। विषय तृप्ति करते रह कर संतति रोकने के उपाय करना राक्षसी शरीर और राक्षसी खानपान वालों को भले ही नुकसान न पहुंचावे। हिन्दुस्तान को तो संयम की शिक्षा ही लाभ पहुंचा सकती है।

१० "अहिंसा का पालन करने वाला किसी भी वाहन का उपयोग नहीं कर सकता। बहुत से खाद्य पदार्थों का भी उसे त्याग करना पड़ता है। तब यह प्रश्न उठता है कि परमात्मा ने ये पदार्थ और ये प्राणी किस लिये पैदा किये होंगे? यद्यपि प्रभु की इच्छा तो अकल है तो भी कृपा कर इस बात का खुलासा कर दीजिये।"

इसका जवाब ऊपर आ जाता है। फिर भी इतना और कह देता हूं कि अहिंसा का पालक आवश्यक वाहन का सर्वथा त्याग नहीं करता। बहुतसी वस्तुओं का सर्वथा त्याग इष्ट है और कुछ का यथाशक्ति त्यागही बस है। प्रभु की सब कृति ओतप्रोत है। प्राणी केवल मनुष्य की अनेक इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। अतएव जिस प्रकार इच्छा का त्याग इष्ट है उसी प्रकार अन्य प्राणियों के उपयोग का त्याग भी इष्ट है। सब अपनी २ मर्यादा अंकित करलें। जैसे कि जिसका काम मिट्टी से चल सके वह साबुन का उपयोग न करे। पर साबुन काम में लानेवालों की निन्दा करके अधिक हिंसा दोष का भागी भी न बने। कांटेदार अथवा गर्म जमीन पर चलते समय जूतों का उपयोग अच्छी तरह करे और जहां उसकी आवश्यकता न हो वहां नंगे पैर ही चले।

दूसरे कई ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं। पर उन प्रश्नों का अनुमान जवाबों पर से ही किया जा सकता है।

१. व्यायाम करने वालों को लंगोट पहनने की सम्पूर्ण आवश्यकता है। पाश्चात्य देश वासियों ने भी इसकी जरूरत को महसूस किया है।

२ प्रातःकाल उठ कर दतौन करना और उसके बाद गरम किया हुआ जल पीना चाहिये। इसमें फायदा है। बहुत से साफ ठंढा जल पीते हैं। इसमें भी नुकसान तो नहीं है।

३. गृहस्थी जीवन में बाल बढ़ाना मैल बढ़ाने के बराबर है। या उन्हें साफ रखने में बहुत समय खर्च करना पड़ता है। पुरुष के लिये तो यही योग्य मालूम होता है कि वह छोटी सी शिखा के सिवा सब भाग कैंची या उस्तरे से कटवा डाले। यदि कोई मेरा कहना माने तो मैं तो लड़कियों के बाल भी कटवाऊं। बालों में शोभा है यह तो हम अभ्यास पड़ जाने के कारण मानते हैं। शोभा तो केवल बर्ताव में है, बाहरी दिखावे में नहीं। यह वहम है कि बाल कुदरती हैं इसलिये वे न कटाये जाने चाहिये। हम नख कटवाते हैं। यदि न कटवायेंगे तो उनमें मैल भर जायगा अथवा सारा दिन उन्हें साफ रखना होगा। स्नान द्वारा हम चमड़ी पर का मैल हमेशा उतारते हैं। हमें यहां यह विचारने की आवश्यकता नहीं कि जो जंगलवासी हैं, जिन्होंने अपनी बहुतसी क्रियाओं को रोक रक्खा है उनके लिये कौनसा कायदा लागू होता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

सरोजिनी देवी

सरोजिनी देवी आगामी वर्ष के लिए महासभा की सभा नेत्री निर्वाचित हो गई। यह सम्मान उनको पिछले वर्ष ही दिया जाने वाला था। बड़ी योग्यता द्वारा उन्होंने यह सम्मान प्राप्त किया है। उनकी असीम शक्ति के लिए और पूर्व और दक्षिण आफ्रिका में राष्ट्रीय प्रतिनिधि की हैसियत से की गई महान सेवाओं के लिए वे इस सम्मान की पात्र हैं और आजकल के दिनों में जब कि स्त्री जाति के अन्दर भारी जागृति हो रही है स्वागत कारिणी समिति का भारतवर्ष की एक सर्वोत्तम प्रतिभाशालिनी पुत्री को सभापति चुनना भारतवर्ष की स्त्री जाति का समुचित सम्मान करना है। उनके सभापति चुने जाने से हमारे प्रवासी देश भाइयों को पूर्ण सन्तोष होगा और इससे उनके अन्दर वह साहस पैदा होगा जिससे वे अपने सामने उपस्थित लड़ाई को लड़ सकेंगे। राष्ट्रद्वारा दिये जानेवाले सब से ऊंचे पद पर उनका होना स्वतंत्रता को हमारे अधिक नजदीक लावे।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

केवल सत्याग्रही के आत्म-बलिदान तथा औरों के द्वारा दिये गये दण्ड की खिचड़ी कर देते हैं। पर आशा है कि उनके मन में ऐसा गोलमाल न होगा। परन्तु उसकी संभावना भी न रहने देने के लिए मैं इस बात को स्पष्ट किये देता हूं कि जब एक दूसरे को हानि पहुंचाता है तभी उसे हिंसा कहते हैं। स्वयं अपने शरीर को कष्ट पहुंचाना तो उल्टा अहिंसा का सत्व है और हिंसा के स्थान पर उसकी स्थापना की गई है। यह बात नहीं कि मैं जीव के मूल्य को कम आंकता हूं और इसलिए सत्याग्रह में प्राणार्पण करने को प्रसन्नवदन हो कर देखता हूं, बल्कि इसका कारण यह है कि मैं जानता हूं कि अन्त को जा कर इन प्राण गवांने वालों की आत्मा उच्चता को प्राप्त करती है और उनके आत्म यज्ञ के फल-स्वरूप संसार की भी नैतिक समृद्धि होती है। मैं समझता हूं कि लेखक का यह कहना सही है कि "असहयोग केवल एक आदर्श ही नहीं है बल्कि, भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति का सुरक्षित और द्रुत मार्ग है।" मैं तो यह भी कहता हूं कि यह सिद्धान्त राष्ट्रों के परस्पर व्यवहार में भी काम दे सकता है। पिछले महयुद्ध को ही लीजिए। हां, मैं जानता हूं कि इस मिसाल को लेकर मैं नाजुक मामले में हाथ डाल रहा हूं। पर अपने आशय को स्पष्ट करने के लिए ऐसा किये बिना चारा नहीं। जैसा कि मैंने समझा है, वह युद्ध दोनों पक्ष से लोभ-मूलक युद्ध था। वह युद्ध था निर्बल जातियों की लूट में मिले माल के बंटवारे का युद्ध — इसी लूट को लोग बड़े जोरों शोर के साथ 'विश्व-व्यापी व्यापार' कहते हैं। यदि जर्मनी आज अपनी नीति बदल दे और यह निश्चय कर ले कि मैं अपनी आजादी का उपयोग विश्व-व्यापार के बटवारे के लिए नहीं, बल्कि अपनी नैतिक श्रेष्ठता के द्वारा पृथिवी की निर्बल जातियों की रक्षा के लिए करूंगा, तो यह सब अवश्य ही बिना शस्त्र-साधन के कर सकेगा। हम देखेंगे कि योरप में आम तौर पर निःशस्त्रीकरण होने के आरंभ के पहले, — यदि योरप अपने आत्मघात पर न तुला हो तो उसे यह एक न एक दिन करना लाजिमी है — किसी न किसी राष्ट्र को, भारी जोखिम उठा कर निःशस्त्रीकरण के लिए आगे बढ़ना होगा। और यदि ऐसा समय हमारे सुदैव से आया, तो उस राष्ट्र में अहिंसा इस दरजे तक पहुंच चुकेगी कि जिससे सब राष्ट्र उसी आदर की दृष्टि से देखते होंगे। उसके निर्णयों में गलती के लिए जगह न रहेगी, उसके निश्चय अटल होंगे, उसकी स्वार्थ त्याग की क्षमता भारी होगी, और वह और राष्ट्रों के लिए भी उतना ही जीवित रहना चाहेगा, जितना कि खुद अपने लिए। इस नाजुक विषय का अब यहीं खतम करना ठीक है। हां, मैं जानता हूं कि एक अमली बात पर मैं यह विचार स्वप्न में बैठ कर लिख रहा हूं, बिना ही उसके अर्थ की व्याप्ति को जाने हुए। इसपर मेरा सफाई यह है कि, यदि मैं लेखक का भाव ठीक ठीक समझा हूं, तो वे यही मुझसे कराना चाहते हैं।

हां, मैं अवश्य संपूर्ण अहिंसा का समर्थन करता हूं और उसको मनुष्यों और राष्ट्रों के परस्पर व्यवहार में संभवनीय मानता हूं। परन्तु वह 'बुराइयों के विरोध से विरक्ति' नहीं है। बल्कि इसके प्रतिकूल मेरी अहिंसा तो दुष्टता और प्रतिहिंसा के मुकाबले में, जो कि स्वभावतः दुष्टता को बढ़ाते हैं, अधिक और सच्चा संग्राम है। मैं अनीति का मानसिक और इसलिए नैतिक विरोध करने का विचार करता हूं। मैं जालिम की तलवार के मुकाबले में उससे भी ज्यादह तेज धार ले कर नहीं, बल्कि उसकी इस उम्मीद को निर्मूल कर के कि मैं उसका शारीरिक प्रतीकार करूंगा, उसके शस्त्र को बेकार कर देना चाहता हूं। मैं जिस तलवार से उसकी तलवार का प्रतीकार करूंगा उससे वह भौंचक रह जायगा। पहले तो वह चौंधिया जायगा और अन्त में वह उसका लोहा मान जायगा — और उससे उसका सिर नीचा नहीं होगा, बल्कि वह ऊंचा उठ जायगा। इसपर यह कहा जा सकता है कि यह भी आदर्श स्थिति ही है। और ऐसा है भी। जिस वस्तु के आधार पर मैंने अपनी युक्तियां खड़ी की हैं वह उतनी ही सच है जितनी कि युक्लिड की परिभाषा। उसके अनुसार हम काले तख्त पर सरल रेखा तक नहीं खींच सकते हैं; पर इससे व्यवहार में उन परिभाषाओं की सत्यता कम नहीं हो जाती। लेकिन जिस तरह रेखा-गणित वाले युक्लिड की परिभाषाओं को ध्यान में रक्खे बिना आगे नहीं बढ़ सकते उसी तरह हम भी — ये जर्मन मित्र, उनके साथी और खुद मैं भी — उन मूलभूत बातों के बिना अपना काम नहीं चला सकते, जिनके कि आधार पर सत्याग्रह सिद्धान्त खड़ा है।

अब मेरे लिए सिर्फ एक ही सवाल का जवाब देना बाकी रह गया है। लेखक ने बड़ी ही चतुराई से अंगरेजों के सारी दुनिया के रक्षक बनने के अधिकार की उद्धतता की तुलना विवाहित लोगों के पारस्परिक संबंध-विषयक मेरे विचारों से की है। परन्तु यह तुलना यथार्थ नहीं है। विवाह-बंधन का अभिप्राय यह है कि दोनों परस्पर रजामन्दी से एक दूसरे से संयोग करें। परन्तु ब्रह्मचर्य के लिए किसी की रजामन्दी दरकार नहीं है। दर्बाहक जीवन एक असह्य बात हो जायगा, जैसी कि, वह जरूर हो जाता है, जब कि उनमें से एक जन संयम के तमाम बन्धनों को तोड़ डालता है। विवाह के द्वारा और सब व्यक्तियों को छोड़ कर सिर्फ उन दो व्यक्तियों के संयोग का अधिकार कायम किया जाता है, जब कि दोनों की सम्मिलित इच्छा से ऐसा संयोग अभीष्ट माना जाय। परन्तु इसके द्वारा एक जन को अपनी इच्छा के अनुकूल दूसरे जन से आज्ञा पालन कराने का अधिकार कायम नहीं किया जाता है। अब यह प्रश्न जुदा है कि जब [illegible] नैतिक अथवा अन्य कारणों से दूसरे की इच्छा की पूर्ति [illegible] सकता तब क्या करना चाहिए। अपनी तरफ से तो मैं, तलाक ही उसका एक मात्र उपाय हो, तो अपनी नैतिक प्रगति में बाधा डालने की अपेक्षा उसे स्वीकार करने में न हिचकूंगा। यह मान कर कि मैं निरे नैतिक कारणों से ही संयम का पालन करना चाहता हूं।

(अंगरेजी से अनुवादित) मोहनदास करमचंद गांधी

(पृष्ठ ५६ से आगे)

जब किसी प्रान्त में ५० सदस्य हो जायं तब वे 'अ' वर्ग के सदस्यों में से ५ सदस्यों को चुन कर एक परामर्श-समिति बना लेंगे जो कि अपने प्रान्त के काम-काज के संबंध में संघ को सलाह दिया करेगी।

सहायक

जो सज्जन अ० भा० चरखा संघ को १२) हरसाल पेशगी देंगे और सदा-सर्वदा खादी पहनेंगे वे संघ के सहायक सदस्य समझे जायंगे।

जो सज्जन सदा-सर्वदा खादी पहनेंगे और संघ को ५००) एकमुश्त देंगे वे संघ के आ-जीवन सहायक हो जायंगे।

तमाम 'सहायकों' को कार्य-सभा की रिपोर्ट, कार्यवाई हिसाब के कागज-पत्र, बिना मूल्य पाने का हक होगा।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन सुदी १४, संवत् १९८२

अखिल भारत चरखा-संघ

पाठकों को अन्यत्र अ० भा० चरखा-संघ का विधान मिलेगा। उसका ध्यान-पूर्वक अवलोकन करने से मालूम होगा कि फिलहाल वह न केवल प्रजासत्ताक संस्था नहीं है, बल्कि परिणाम में एक आदमी का कारोबार है। इससे या तो उसके उत्पादक की *अहम्मन्यता सूचित होती है या उसका इस कार्य के तथा स्वयं* अपने प्रति पूर्ण श्रद्धा। जहांतक एक आदमी को अपनी पहचान हो सकती है, इस संघ को एक-तंत्री स्वरूप देने में अहन्ता का अंश नहीं है। व्यापारिक संस्थायें प्रजासत्ताक कभी नहीं हो सकती। और यदि चरखा-कताई को घर घर में पहुंचाना हो और देश में सफल बनाना हो तो उसके अराजनैतिक और आर्थिक अंग का पूरा पूरा विकास करना होगा। अ० भा० चरखा-संघ के द्वारा इसीका उद्योग किया जायगा। संघ में अपने साथियों का चुनाव करने में मैंने महज उपयोगिता का विचार रक्खा है। हर व्यक्ति उसके विशेष गुणों के कारण चुना गया है। चुनाव में प्रान्तों के प्रतिनिधित्व का कोई सवाल न रक्खा गया था। और कुछ तो सर्वोत्तम कार्य-कर्ता कार्य-सभा से इसलिए अलग रक्खे गये हैं कि जिससे गलत-फहमी की संभावना न उठ जाय। शायद कोई पूछे कि चरखे की दृष्टि से मा० शौकतअली में कौनसा विशेष गुण है? हां, है। एक तो वे मुसलमान हैं, दूसरे पक्के खादी-भक्त हैं, तीसरे १००० गज हर माह सूत कात कर देना चाहते हैं और चरखे तथा खादी के लिए अपने बस भर सब कुछ करना चाहते हैं। किसी स्वराजी का भी नाम मैंने जान-बूझ कर नहीं रक्खा है और उसका कारण स्पष्ट है।

चरखा-संघ की स्थापना के समय कोई १०० से ऊपर खादी भक्त, जिनमें स्वराजी भी थे, मेरी सहायता कर रहे थे। उस समय मुझसे यह पूछा गया था कि क्या खादी के राजनैतिक महत्व में आपका विश्वास नहीं रह गया है, अथवा सत्याग्रह के अनुकूल वायुमण्डल तैयार करने के उसके सामर्थ्य से विश्वास उठ गया है? मैंने इसका जोर के साथ उत्तर दिया — 'नहीं।' खादी का राजनैतिक महत्व उसकी आर्थिक क्षमता ही है। जो लोग पेशा या काम के अभाव में भूखों मर रहे हों उनमें राजनैतिक आत्म-जागृति कहां से हो सकती है? खादी का उस देश में कोई राजनैतिक महत्व न होगा जहां कि लोगों को कपड़े की जरूरत नहीं है, जहां व शिकार पर गुजर करते हैं, या जहां के लोग दूसरे देशों के लोगों की लूट पर अपना गुजर करते हैं। हिन्दुस्तान में खादी के राजनैतिक मूल्य का कारण है उसकी विशेष स्थिति अर्थात् यह कि उसे कपड़े की जरूरत है, किसी दूसरे देश को वह लूटता नहीं है, और उसके लाखों लोगों को भूखों मरते हुए भी साल में चार महीने के लिए कोई काम-धन्धा नहीं है। सत्याग्रह के लिए वायुमण्डल तैयार करने का खादी का सामर्थ्य इस बात के सामर्थ्य में है कि यदि सफल हुई तो इसके द्वारा हमें अपने अन्दर कुछ शक्ति का भान होगा, शान्ति का वायुमण्डल उत्पन्न होगा और शान्ति के अन्दर भी अटल निश्चय होगा। बहुतेरे आदमी जो सत्याग्रह का नाम जब तब लिया करते हैं, नहीं जानते कि उसका तात्पर्य क्या है? वे उसे गहरे उत्तेजनामय वायुमण्डल के साथ जोड़ देते हैं, जो कि सदा प्रकृत हिंसा का रूप धारण कर लेने के लिए उद्यत रहता है। हालां कि सत्याग्रह इसके बिलकुल विपरीत है। और जबतक खादी आर्थिक दृष्टि से सफल न हो न तो राजनैतिक फल और न शान्त वायुमण्डल सम्भवनीय है। इसलिए इसके स्थायी और आर्थिक स्वरूप पर जोर देने की जरूरत है, जो कि इसका सीधा परिणाम है। इसलिए उसका प्राक्कथन विचार-पूर्वक रक्खा गया है और वह परम आवश्यक है। उग्र से उग्र राजनैतिक पुरुष और उग्र से उग्र सत्याग्रही इस संघ में शामिल हो सकता है। पर वह एक आर्थिक कार्यकर्ता की हैसियत से ऐसा करेगा। *किसी भी महाराजा को संघ से दूर रहने की आवश्यकता नहीं,* यदि वे खादी के महान् आर्थिक मूल्य के कायल हों और देश के लाखों भूखों रहने वाले लोगों के लिए एक उचित सहायक पेशे की आवश्यकता स्वीकार करते हों। इसलिए मैं उन तमाम लोगों को जो खादी और चरखे में विश्वास करते हैं, फिर वे किसी धर्म या जाति के हों और उनके राजनैतिक विचार कैसे ही हों, आवाहन करता हूं कि वे चरखा-संघ में शरीक हों। मैं उन अंगरेजों तथा और यूरपियनों को भी निमंत्रण दूंगा जिन्हें कि भारत के लाखों लोगों की फाकेकशी का खयाल है, कि वे इस संघ में सम्मिलित हों। मैं जानता हूं कि बहुतेरे सज्जन ऐसे हैं जो खादी को मानते हैं, जिनका विश्वास चरखा-कताई पर है, पर जो खुद कातना न चाहेंगे। वे लोग खादी पहन कर संघ के 'सहायक' हो सकते हैं। फिर ऐसे लोग भी हैं जो किसी न किसी कारण खादी भी न पहनना चाहेंगे — पर फिर भी वे खादी की हर तरह से उन्नति चाहते हैं, वे संघ को आर्थिक सहायता दे सकते हैं।

पर यह बात न भूलना चाहिए कि जबतक महासभा की खुशी होगी, संघ महासभा का अंगभूत रहेगा। और उस अवस्था में महासभा को उसके खादी और हाथ-कताई के कार्यक्रम में हर तरह की सहायता देना उसका कर्तव्य होगा। इस तरह महासभा और संघ को जोड़ने वाली कड़ी होगी दोनों का चरखे और खादी पर विश्वास। यों इस संघ का महासभा की विविध राजनैतिक बातों से कोई संबंध न रहेगा और न उनका कोई असर इसपर होगा। इसका अस्तित्व स्वतन्त्र रहेगा, उसका उद्देश सिर्फ चरखे और खादी के प्रचार तक मर्यादित रहेगा, उसका अपना अलहदा विधान रहेगा और उसके अनुसार उसका काम-काज होगा। यहांतक कि उसने अपना एक जुदा ही मताधिकार बनाया है और वह, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, अ-महासभावादियों को भी अपना सदस्य बना सकता है और कोई महासभावादी — कताई-सदस्य तक — संघ का सदस्य होने के लिए बाध्य नहीं है।

वर्तमान विधान उतना कड़ा नहीं है जितना कि मैंने पहले बनाना चाहा था। जो मसविदा मैंने तैयार किया था उसमें हर माह २००० गज सूत देना हर 'अ' वर्ग के सदस्य के लिए लाजमी था। साथ ही उसे नीचे लिखी प्रतिज्ञा भी करनी पड़ती थी —

यह मेरा दृढ विश्वास है कि भारत का आर्थिक उद्धार घर घर में चरखे और खादी का प्रचार हुए बिना असंभव है। इसलिए मैं उस अवस्था को छोड़ कर जब कि मैं बीमार होऊं या अन्य कारण से असमर्थ हो जाऊं, कम से कम आध घण्टा रोज सूत कातूंगा और

सदा-सर्वदा हाथकती, हाथ-बुनी खादी पहनूंगा और यदि मेरा यह विश्वास बदल जायगा या मैं चरखा कातना और खादी पहनना छोड़ दूंगा तो मैं संघ की सदस्यता से इस्तीफा दे दूंगा ।

दो हजार गज सूत की जगह अब १ हजार ही रह गया । यह उन लोगों के प्रबल विरोध का परिणाम है जो 'अ' वर्ग के सदस्य होना चाहते थे, पर फिर भी १००० गज हर माह सूत कात पाना अपने लिए मुश्किल मानते थे । पूर्वोक्त प्रतिज्ञा-पत्र भी उठा लिया गया; क्योंकि ऐसी गंभीर प्रतिज्ञा की बात ही औरों को भद्दी-सी दिखाई दी, हालां कि मैं अब भी उनकी राय को गलत मानता हूं । खुद मेरी तथा और कितने ही लोगों की यह राय है कि प्रतिज्ञायें और व्रत की आवश्यकता हर एक मनुष्य के लिए भी रहती है । यह एक समकोण की तरह है—लगभग नहीं बल्कि ठीक ९० अंश का । समकोण में यदि जरा भी गड़बड़ हो तो उससे उसका महान् उद्देश ही गिर जाता है । स्वेच्छापूर्वक की गई प्रतिज्ञा थवई की उस डोरी की तरह है जो कि मनुष्य को हमेशा सीधे रास्ते पर रखती है और गलत रास्ते जाते ही चेतावनी देती है । सर्व-साधारण व्यवहार के नियम वह काम नहीं देते जो कि व्यक्तिगत व्रत या प्रतिज्ञा देते हैं । इसलिए हम समस्त सु-संचालित संस्थाओं में प्रतिज्ञाओं का रिवाज देखते हैं । वाइसराय को भी शपथ खानी पड़ती है । सारी दुनिया में धारासभाओं के सदस्यों को शपथ खानी पड़ती है और मैं समझता हूं कि यह ठीक भी है । सेना में सम्मिलित होनेवाला सैनिक भी ऐसा ही करता है । फिर लेखी प्रतिज्ञा मनुष्य को समय समय पर अपनी प्रतिज्ञा की याद दिलाती रहती है । स्मरण-शक्ति बहुत निर्बल वस्तु है । लिखित शब्द चिरंजीवी होते हैं । परन्तु चूंकि इन प्रतिज्ञा-पत्रों का विरोध खासा प्रबल था, मैंने उन्हें उठा लेना ही उचित समझा; क्योंकि यह तो सारी कार्यवाई में एक मानी हुई ही बात थी । सो अब यद्यपि वह प्रतिज्ञा-पत्र यों कागज पर कायम नहीं रहा है तो भी हर शख्स का यह विश्वास तो अवश्य ही होना चाहिए और हर शख्स से यह उम्मीद की जाती है कि वह बीमारी आदि अनिवार्य आपत्ति के दिनों को छोड़ कर आध घण्टा रोज सूत कातेगा । कार्य-सभा के सदस्यों के प्रतिज्ञा-पत्र में इतनी बात और ज्यादह थी—

मैं संघ की सभा के अपने पद के कर्तव्यों का पालन ईमानदारी के साथ करने की प्रतिज्ञा करता हूं और अपने निजी सार्वजनिक तमाम कामों से उसे तरजीह दूंगा ।

यह कहा गया कि ऐसा प्रतिज्ञा-पत्र न लिखाया जाय; पर ईमानदारी के साथ अपना फर्ज अदा करने की बात को एक अंगीकृत वस्तु समझ लेना चाहिए । ऐसे संघ में जिसकी सभा में पद पाना कोई अधिकार नहीं बल्कि कर्तव्य ही कर्तव्य है, और जहां सब कुछ सेवा ही सेवा है, सिवा अपनी अन्तरात्मा के कोई प्रशंसा-पत्र देनेवाला नहीं है, सब लोग भाग ले सकते हैं—फिर वे चाहे पदाधिकारी हों या न हों । ऐसी अवस्था में मैं आशा करता हूं कि किसीका नाम रह जाने से न तो किसीको बुरा ही मालूम होगा और न गलतफहमी ही होगी । बल्कि इसके विपरीत मैं तो यह आशा करता हूं कि तमाम खादी-कार्यकर्ता, जिनके पास कुछ नई बात या विशेष योजना हो, अपने विचार या बुद्धि के द्वारा इस संघ की सहायता देने में पीछे न रहेंगे । इसकी सफलता तभी हो सकेगी जब छोटे से छोटा व्यक्ति भी हरतरह से इसमें सहायता देगा ।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

महा-समिति

पटना में महासमिति ने स्वराजियों के हाथ में महासभा की सत्ता देने का काम पूरा कर दिया । प्रस्तावों पर खूब जोर-शोर से बहस हुई और समष्टिरूप से संयम का पालन भी अधिक से अधिक दिखाई दिया । प्रस्तावों के भिन्न भिन्न भागों पर बहुमति उतनी अधिक संख्या में न थी जितनी कि मैंने उम्मीद की थी या जितनी कि एक छोटी संस्था के द्वारा एक बड़ी संस्था के विधान-परिवर्तन के लिए आवश्यक हो सकती है । पर मेरा दिल कहता है कि उन प्रस्तावों को उपस्थित होने दे कर मैंने देश के हित के अनुकूल ही काम किया है । मैं पहले ही यह बात कबूल कर चुका हूं कि विधान में परिवर्तन करना मामूली तौर पर महासमिति के अधिकार-क्षेत्र के बाहर है और यह एक किस्म की बगावत है । परंतु यह मेरा मत है कि हर संस्था का जिसे कि अपनी नेकनामी का ख्याल है, कर्तव्य है कि वह ऐसे विषम अवसर का मुकाबला साहसपूर्वक करे, यदि उसे इस बात का निश्चय हो गया हो कि खुद उस संस्था के हित के लिए इस बात की जरूरत है । इसी कारण मैंने पहले समिति से यह तय करना चाहा कि उसकी राय में महासभा के अधिवेशन तक इन्तजार न करते हुए विधान में परिवर्तन करने का अवसर उपस्थित हुआ है या नहीं ? तुरन्त परिवर्तन करने के पक्ष में बहुत भारी बहुमति थी । इसलिए खुद उस प्रस्ताव के संबंध में वैसी ही बहुमति का आग्रह मैंने नहीं रक्खा । अब यह महासभा के अधिकार की बात है कि वह महासमिति के कार्य को अच्छा कहे या उसको नापसंद करके बुरा कहे अथवा बुरा कह कर भी उसके कार्य को स्वीकार कर ले, क्योंकि अब वह एक सिद्ध बात हो गई है । इसपर एक दो सदस्यों ने कहा कि महासभा के द्वारा निंदा होना तो असंभव बात है; क्योंकि महासमिति के प्रस्ताव पर अमल तो अभी से शुरू हो जायगा और जो लोग महासभा में आवेंगे वे इसीके बदौलत प्राप्त नये मताधिकार के बल पर आवेंगे । सो उनसे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वे उसीकी निन्दा करें जिसने कि उनके साथ यह भलाई की है ? पर ऐसा होने की जरूरत नहीं है । यदि केवल नियम-विरुद्ध होने की बुनियाद पर महासमिति का यह परिवर्तन ना-पसंद किया जाय तो वे लोग भी जिन्हें कि इससे लाभ पहुंचा है, समिति के अवैध कार्य को बुरा कह सकते हैं और उनका ऐसा करना ठीक भी होगा । वे परिवर्तन के औचित्य को स्वीकार करके भी महासमिति के किसी भी हालत में परिवर्तन करने के अधिकार का खण्डन कर सकते हैं ।

यह परिवर्तन कोई भारी नहीं हुआ है । किसीके हित का घात इससे नहीं हुआ है । किसी एक भी व्यक्ति का मताधिकार छीना नहीं गया है । कोई भी पक्ष परिवर्तन से पहले की अपनी अवस्था से बुरी अवस्था में नहीं है । असहयोगियों को शिकायत करने की जरूरत नहीं है; क्योंकि राष्ट्र-नीति के तौर पर असहयोग स्थगित हो चुका है । और रचनात्मक कार्यक्रम ज्यों का त्यों अटल है । कताई और खादी अब भी राष्ट्रीय कार्यक्रम का अंग बना ही हुआ है । धारा-सभा का कार्यक्रम, जिसे कि स्वराज्य-दल महासभा के नाम पर चला रहा था उसे अब महासभा स्वराज-दल के द्वारा चलावेगी । यह भेद ऐसा है जिसे भिन्नता नहीं कह सकते । जो लोग चरखे को राजनैतिक कार्यक्रम के ऊपर रखते हैं और राजनैतिक कार्यक्रम को छोड़ कर अकेले चरखे में ही विश्वास करते हैं, उन्हें किसी तरह हानि नहीं पहुंची । क्योंकि उनकी उन्नति के लिए उनके

पास एक पृथक् संस्था हो गई है। और चरखा-कताई अब भी वैकल्पिक मताधिकार बना हुआ है और सार्वजनिक तथा महासभा के अवसरों पर खादी पहनना अब भी लाजिमी बना हुआ है। और न महासभा के बाहर रहनेवाले दलों पर भी उसका बुरा असर हुआ है। बेलगांव के ठहराव के अनुसार जहां उन्हें स्वराजी और अपरिवर्तनवादी दोनों से समझौते की बातचीत करने या उन्हें अपने मत का कायल करने की आवश्यकता थी तहां अब, सिर्फ स्वराजियों को ही अपने मत में मिला लेना है या उनके मत में मिल जाना है। अतएव यह परिवर्तन हर प्रकार से प्रतिनिधित्व के हक की सीमा को बढाता है और सब दलों के संगम को कम कठिन बना देता है। कोई महासभा लोगों की स्वतंत्रता-वृद्धि के पक्ष मे हुए परिवर्तन को एकाएक नापसंद नहीं कर सकती। यही नहीं, बल्कि यह परिवर्तन मेरी राय म उन लोगों की आवश्यकता के अनुसार ही हो पाया है जो कि अबतक महासभा से एक-रूप रहे हैं। पर उनके लिए शायद यह काफी नहीं है। यदि यही बात हो तो मुझे इसपर दुख होगा।

बहस में कुछ सदस्यों ने यह भय जाहिर किया कि यदि चरखा-संघ को चन्दे का सूत सीधा भेज दिया गया तो सम्भव है कि इससे पेशादार चरखा कातने वालों का अंधाधुंध दुरुपयोग हो या बेईमानी और चालबाजी कर के महासभा में अपने दल के लोग भर दिये जायं और इस तरह फिर वही अवाञ्छनीय स्थिति कर दी जाय और इस प्रस्ताव के द्वारा प्राप्त लाभ की जड पर ही कुठाराघात हो जाय। यह डर उस अवस्था में लोगों को होता था जब कि सूत प्रान्त का प्रान्त में ही जमा करने की आजादी हो। पर यदि प्रधान कार्यालय में सूत दिया जाय तो यह भय न रह जाता था। इस आक्षेप का उपाय सोचने में कोई कठिनाई न थी। इसी कठिनाई को दूर करने के लिए संघ के विधान में यह अंश जोडा गया है कि महासभा के सदस्य जो चार आना देने की बनिस्बत कातना पसंद करें वे अपना सूत प्रधान कार्यालय को भेजें। मेरा तो यह विचार हरगिज नहीं है कि महासभा को चरखा कातने वालों से भर दूं। और इस तरह फिर महासभा को बिलकुल या मुख्यतः सूतकारों की संस्था बना दूं और धारासभा के राजनैतिक कार्यक्रम को उसमें से हटा दूं। हां, इसमे कोई शक नहीं कि मैं ऐसा चाहता तो हूं। पर यह तभी हो सकता है जब कि वे लोग जिनको आज सत्ता दी गई है सोलहों आना चरखे के कायल हो जावें। और यह हो सकता है चरखा चलाने वालों के कार्य के द्वारा। महासभा के अंदर नहीं बल्कि बाहर रह कर किये कार्य के द्वारा। यदि चरखे में स्वयं ही ऐसी स्वाभाविक जीवनी शक्ति है और उसका प्रचार घर घर हो जाय या हो गया जिससे हम अपने दृष्टि-पथ में विदेशी कपडे को हटाने का अनुमान बांध सकें तो आज के सब स्वराजी चरखावादी हो जायंगे। परन्तु यह हो सकता है सिर्फ अकेले उन लोगों के प्रयत्नों के द्वारा जो कि सोलहों आना चरखे के कायल हैं। वे अपने विश्वास को कार्यरूप में परिणत कर दें तो स्वराजी पूरेपूरे चरखे के मत में मिल जायेंगे। इसलिए मेरी यह बल-पूर्वक सलाह है कि जो लोग इस समय महासभा के कताई-सदस्य हैं वे यदि ऐसे ही सदस्य बने रहना चाहें तो अपना सूत प्रधान कार्यालय को भेज दें। कताई के द्वारा महासभा के सदस्यों की वृद्धि करने के फेर में उन्हें पडने की आवश्यकता नहीं। हां, संघ के सदस्य बनाने के लिए वे अपनी पूरी शक्ति और योग्यता लगावें। और यदि एक भारी तादाद में सूत कातने वाले सदस्य हमें प्राप्त हो सके, पेशेदार कातनेवालों में से नहीं बल्कि उन लोगों में से जो केवल यज्ञ-भाव से कातते हों, जीविका के लिए नहीं, तो यह एक ऐसी प्राप्ति होगी जिसका असर हुए बिना रहेगा। परन्तु फिलहाल, जबतक कि सब तरह का शकोशुबह दूर नहीं हो जाता, उन्हें महासभा के सदस्य बनने से बाज आना चाहिए। मेरी सदा से यह राय रही है कि राष्ट्रीय महासभा में आपस के झगडे न हुआ करें और महासभा पर कब्जा करने के लिए भद्दी कार्रवाइयां न होनी चाहिए। जो लोग बहुमत की नीति से सहमत न हों, वे या तो महत्वपूर्ण बातों में इस हद तक न लडें कि मतों की गिनती करने की नौबत आ जाय, या यदि उनकी अन्तरात्मा इसके खिलाफ होती हो तो वे कुछ समय के लिए महासभा से बिल्कुल अलग हो जायं। इसलिए मैं उन उग्र असहयोगियों से निवेदन करूंगा, जो कि यदि महासभा में रहें तो स्वराजियों से बार बार कदम कदम पर लडना अपना कर्तव्य समझते हों, वे महासभा से अलग हट जायं और यदि वे चाहें तो बाहर रह कर लोकमत तैयार करें। उन्हें स्वराजियों के लिए पूरा मैदान खाली रहने देना चाहिए और उनकी नीति के अनुसार काम करने का पूरा मौका दे देना चाहिए। मेरी राय में यदि वे सरकार पर अपना सिक्का जमाना चाहें तो महासभा पूरी पूरी उनके अधिकार में रहनी चाहिए, असहयोगी उसमें कुछ भी हस्तक्षेप न करें।

इसलिए मेरी राय में जहां कहीं दोनों दल के लोगों की संख्या बराबर बराबर हो, असहयोगियों अथवा अपरिवर्तनवादियों को चाहिए कि खुद हो कर अपने तमाम पदों का चार्ज और दफ्तरों का कब्जा स्वराजियों को दे दें। जहां अपरिवर्तनवादियों का भारी बहुमत हो वहां वे स्वराजियों के काम में रुकावट न डालें और अपनी अन्तरात्मा के अनुकूल जहांतक हो उनकी सहायता करें। कोई महासभावादी किसी हालत में धारासभाओं के लिए ऐसा उम्मीदवार खडा न करे जिसे स्वराजियों ने पसन्द न किया हो और न उनके पसन्द किये उम्मीदवार के मुकाबले में किसीको खडा करें।

एक ऐसी हर्षदायक बात हुई है जिसका उल्लेख यहां किये बिना नहीं रह सकता। समिति के बहुसंख्यक लोगों का यह विचार था कि तमाम महासभावादियों के लिए खादी एक राष्ट्रीय पहनावा करार दे दी जाय परन्तु अन्त में जब यह बात लोगों को जंच गई कि इससे स्वराजदल को परेशानी होगी तो फिर इसपर जोर न दिया गया। परन्तु बेलगांव के प्रस्ताव में इतना सुधार तो सब लोगोंने खुशी खुशी कबूल कर लिया कि महासभा तथा दूसरे सार्वजनिक अवसरों पर खादी पहिनना तो लाजिम है ही। हर महासभावादी से यह भी उम्मीद की जाती है कि वे तमाम अवसरों पर खादी पहनेंगे और विलायती कपडा तो हर हालत में न पहनेंगे और न इस्तमाल करेंगे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

महासमिति का प्रस्ताव

[अ]

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि महासभा की एक अच्छी जमात का यह मतालबा है कि मताधिकार बदल दिया जाय, और आम तौर पर यह राय पाई जाती है कि मौजूदा हालत का विचार करते हुए, मताधिकार की सीमा बढा दी जाय, महासमिति यह निश्चय करती है कि महासभा संगठन का नियम, हटा लिया जाय और उसकी जगह यह नियम जारी किया जाय—

नियम ७ (अ) जो शख्स कि नियम ४ के अनुसार अ-योग्य न होगा, और ४ आना सालाना देगा या अपना

काता एकसा मजबूत सूत २००० गज देगा, वह महासभा की किसी भी प्राथमिक समिति के सदस्य होने का मुस्तहक होगा। पर शर्त यह है कि कोई भी सदस्य एक ही साथ महासभा की किसी दो संस्थाओं का सदस्य न हो पावेगा।

(आ) उपनियम (अ) में लिखित सूत-चंदा सीधा अ० भा० चरखा संघ के मंत्री या उनके नियुक्त किसी व्यक्ति को भेजा जायगा, और अ० भा० संघ के मंत्री का यह प्रमाण-पत्र मिलने पर कि उस व्यक्ति ने २००० गज अपना काता एक सा सूत बतौर सालाना चंदे के दे दिया है, वह नियम (अ) में उल्लिखित सदस्यता के हक को प्राप्त करेगा। पर शर्त यह है कि अ० भा० संघ के ब्योरे की सचाई की जांच के लिए महासमिति या प्रान्तीय समिति या उसकी कोई उप समिति को उसके हिसाब-किताब, संग्रह तथा अ० भा० चरखा संघ के रसीद बुक को जांचने का अधिकार होगा और यह भी शर्त है कि यदि हिसाब-किताब, सूत के संग्रह और रसीद बुक में किसी बात की गलती पाई जायगी, तो अ० भा० चरखा संघ का दिया उस व्यक्ति का प्रमाण-पत्र रद कर दिया जायगा। पर हां अ० भा० चरखा संघ यों या अयोग्य करार दिये गये मनुष्य को कार्य-समिति को अपील करने का हक रहेगा।

जो कोई महासभा के सदस्य होने के लिए सूत कातना न हेगा उसे उचित जमानत के बाद रुई कातने के लिए दी जा सकती है।

(इ) सदस्यता का सूत १ जनवरी से ३१ दिसंबर तक गिना जायगा और जो इसके बीच में सदस्य होगा उसका चंदा कम न किया जायगा।

(ई) जो सदस्य उपनियम (अ) का पालन न करेगा या राजनैतिक तथा महासभा के जलसों के समय अथवा महासभा का अन्य काम करते हुए हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी न पहनेगा वह महासभा की किसी समिति, या उपसमिति, या किसी महासभा-संस्था के लिए प्रतिनिधि के चुनाव में राय देने या उसमें चुने जाने का मुस्तहक न होगा और न महासभा की किसी बैठक में किसी महासभा-संस्था में, उसकी किसी समिति या उप समिति में शरीक हो पावेगा। इसके अलावा महासभा अपने सदस्यों से यह भी उम्मीद करती है कि वे और अवसरों पर भी खादी ही पहनेंगे और विलायती कपड़ा तो किसी हालत में न पहनेंगे न इस्तेमाल करेंगे।

(उ) इस साल के तमाम वर्तमान सदस्य आगामी ३१ जनवरी तक सदस्य कायम रहेंगे, नये साल का चंदा उन्होंने चाहे न भी दिया हो।

अपवाद

उपनियम (अ) उन लोगों के अधिकारों का अपहरण न करेगा, जो कि रद किये गये नियम के अनुसार पहले ही सदस्य हो चुके हैं—बशर्ते कि यों उनकी सदस्यता बाकायदा हो। इसके अलावा जिन लोगोंने अपना या औरों का काता सूत सितम्बर १९२५ तक चंदे में दे दिया हो वे इस साल के सदस्य रहने के मुस्तहक रहेंगे—यद्यपि वे आगे सूत न भी दें।

(ब)

चूंकि महासभा ने बेलगांव में अपने ३० वें अधिवेशन में एक ओर महात्मा गांधी और दूसरी ओर स्वराज्य-दल की तरफ से देशबन्धु दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू में हुए ठहराव को स्वीकार किया था, जिसके कि द्वारा महासभा का कार्य रचनात्मक काम तक ही परिमित हो गया था। और यह तय किया गया था कि "बड़ी तथा प्रान्तीय धारासभाओं का काम महासभा की तरफ से महासभा का अंगभूत काम समझ कर स्वराज्य-दल के द्वारा किया जाय और ऐसे काम के लिए स्वराज्य-दल खुद अपने नियमादि बनावे और अपने रुपये-पैसे का लेन-देन करे" और

चूंकि उसके बाद की घटनाओं ने यह दिखा दिया है कि देश के सामने आज जो परिवर्तित अवस्था खड़ी है उसमें यह बंधन जारी न रहना चाहिए और इसलिए अब से महासभा को मुख्यतः राजनैतिक संस्था बन जाना चाहिए;

यह निश्चय किया जाता है कि महासभा अब देश-हित के लिए आवश्यक तमाम राजनैतिक कार्यों को अपने हाथ में लेती है और इस प्रयोजन के लिए महासभा की सारी सत्ता और धन का उपयोग करती है। इसमें वह रकम मुस्तसना है जो खास तौर पर 'ईयर मार्क' है और जो अखिल भारत खादी मण्डल, या प्रान्तिय खादी मण्डल के ताबे है। पूर्वोक्त खादी मण्डलों का सारा कब्जा, मौजूदा लेनदेन सहित, अखिल भारत चरखा-मण्डल को मिल जायगा, जिसे कि महात्मा गांधी ने महासभा के अंगभूत स्थापित किया है लेकिन जिसका अस्तित्व स्वतन्त्र है और जिसको अपने उद्देश की पूर्ति के लिए इन मण्डलों के तथा अन्य कोष के लेन-देन की पूरी सत्ता रहेगी।

इसमें शर्त यह है कि भारतीय तथा प्रान्तीय धारासभाओं में काम स्वराज्य-दल के द्वारा उसके विधान तथा नियम के अनुसार निश्चित नीति और कार्यक्रम के मुताबिक किया जाय—इस शर्त पर कि महासभा उस नीति के अनुसार काम करने के लिए आवश्यक परिवर्तन समय समय पर करती रहेगी।"

टिप्पणियां

क्षमा-प्रार्थना

मुझे निहायत अफसोस है कि बिहार की अपनी बाकी यात्रा को मुल्तवी करने का भागी मुझे होना पड़ा है। पर मैं लाचार था। पिछले उपवास के बाद से मैं जो लगातार सफर कर रहा हूं उसके कारण, मैं देखता हूं, मेरी तन्दुरुस्ती धीरे धीरे भीतर ही भीतर खराब हो रही है। मेरे शरीर के किसी अवयव को तो कोई बाधा पहुंची हुई नहीं दिखाई देती। पर शरीर थक गया है और उसे कुछ आराम की जरूरत मालूम होती है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने मेरी क्षीण-क्षीण अवस्था को देखा। मैंने यह भी देखा कि हजारों लोगों के कुहराम को, फिर वह कितना ही सद्भाव-प्रेरित हो, सहन करने की शक्ति मुझ में न रह गई। इसलिए उन्होंने १५ अक्तूबर के बाद बिहार-यात्रा से मुझे मुक्त कर दिया है। और वहां का शेष कार्यक्रम भी इतना हलका कर दिया है कि जिससे मुझे रोज काफी आराम मिले और सप्ताह में दो दिन यं. इं. के सम्पादन के लिए मिल जायं। युक्तप्रान्त के मित्रों ने भी २ ही दिन युक्तप्रान्त में देने पर सन्तोष मान लिया है। महाराष्ट्र खादी-भक्तों ने भी मुझे नवंबर में महाराष्ट्र के कुछ भागों में दौरा करने के वचन से मुक्त कर दिया है। अब मेरी इस साल की यात्रा कच्छ की १५ दिन की मुख्तसर यात्रा के बाद समाप्त हो जायगी। कच्छ के मित्रों का आग्रह है कि मैं अक्तूबर में ही कच्छ आऊं। पर उन्होंने वादा किया है कच्छ की यात्रा में शोर-गुल न मिलेगा, सब जगह आराम दिया जायगा। उन्होंने मेरे सामने खादी और चरखे के प्रचार के लिए भारी थैली लटका रक्खी है। इन तमाम सज्जनों को मैं धन्यवाद देता हूं जोकि मुझपर इतनी कृपा रखते हैं और मेरी इतनी सुध रखते हैं। मैं उम्मीद करता हूं कि कच्छ के मित्र अपने वचन का पालन करेंगे। जिन प्रान्तों ने मुझे यात्रा से मुक्त कर दिया है उनसे मैं वादा करता

हूं कि मैं अगले साल आपके यहां आऊंगा, यदि अब भी वहां के लोग ऐसा चाहते होंगे। कार्यक्रम का निश्चय कानपुर में सलाह कर के कर लेंगे।

स्वेच्छापूर्वक कातनेवालों से

अ० भा० चरखा मण्डल के मंत्री चाहते हैं कि स्वेच्छापूर्वक कातनेवालों का ध्यान नीचे लिखी बात की ओर दिलाया जाय—

१. "संघ के सदस्य होनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को नीचे लिखे नमूने के अनुसार आवेदन-पत्र भेजना चाहिए—

सेवा में—

मंत्री अ० भा० चरखा-संघ
साबरमती

प्रिय महाशय,

मैंने अ० भा० चरखा-संघ के नियमों को पढ़ा है। मैं वर्ग का सदस्य/सहायक होना चाहता हूं और के लिए मेरा चंदा इसके साथ भेजता हूं। कृपया सदस्यों में मेरा नाम लिख लीजिए।

२. सूत सीधा साबरमती को भेजा जाय।

३. सूत के साथ नीचे लिखा ब्योरा एक चिट पर लिख कर भेजना चाहिए—

(१) सदस्य का नाम, पता—जिसमें महासभा के प्रान्त और परगने का नाम हो।

(२) जिस मास का चन्दा हो उसका नाम

(३) (अ) सूत की लंबाई
(आ) ,, का वजन
(इ) ,, अंक
(ई) फालकी का आकार
(उ) रुई की किस्म

संघ की स्थापना के समय जिन २०० सज्जनों ने अपने नाम दिये थे वे कृपया इस बात पर ध्यान रक्खें।

(य० इं०) मो० क० गांधी

अ० भारत चरखा-संघ का विधि-विधान

चूंकि अब वह समय आ पहुंचा है कि कताई और खादी की उन्नति के लिए तज्ञ लोगों का एक संगठन कायम किया जाय, और चूंकि अनुभव ने यह दिखला दिया है कि बिना स्थायी संगठन के जो कि राजनीतियों, राजनैतिक परिवर्तनों या राजनैतिक संस्थाओं के परिवर्तनों के प्रभाव और अंकुश के बाहर हो, इसकी उन्नति सम्भवनीय नहीं है, इसलिए अखिल भारत चरखा-संघ की स्थापना महासमिति की रजामन्दी के साथ की जाती है। यह महासभा का अंगभूत रहेगा परन्तु उसका अस्तित्व और सत्ता स्वतन्त्र होगी।

इस संघ में सदस्य, सहायक और दाता लोग रहेंगे जिनकी कि व्याख्या आगे की गई है और नीचे लिखे सज्जनों की एक कार्य-सभा पांच वर्ष के लिए रहेगी :—

१ महात्मा गांधी
२ मौलाना शौकतअली
३ श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद
४ ,, सतीशचन्द्र दास गुप्त
५ ,, मगनलाल खुशालचंद गांधी
६ ,, सेठ जमनालाल बजाज खजांची
७ ,, शुऐब कुरैशी
८ ,, शंकरलाल घेलाभाई बेन्कर } मंत्री
९ ,, पं. जवाहरलाल नेहरू

सभा के अधिकार

सभा अ० भा० खादी-मंडल तथा तमाम प्रान्तीय खादी मण्डलों के रुपये पैसे तथा माल असबाब को अपने कब्जे में लेगी और उसे उस तथा दूसरे फण्डों की रकम के देन-लेन करने का पूरा अधिकार होगा और उसके वर्तमान देन-लेन की जिम्मेवारी को अदा करेगी।

सभा को कर्ज लेने, चन्दा जमा करने, स्थावर सम्पत्ति रखने, उचित जमानत ले कर रुपया देने, कताई और खादी के प्रचार के लिए रहन रखने रखाने, कर्ज, दान या सहायता (Bounty) के रूप में खादी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने, उन मदरसों या संस्थाओं को जहां चर्खा कातना सिखलाया जाता है स्थापित करने या सहायता देने, खादी भण्डारों को खोलने या सहायता देने, खादी सेवक संघ स्थापित करने, महासभा के चन्दे में आये हाथ कते सूत को महासभा की तरफ से लेने और उसकी रसीद देने तथा इसके उद्देशों की पूर्ति के लिए जिन जिन बातों की जरूरत समझी जाय उन सब को करने का अधिकार है। संघ के अथवा कार्यसभा के कामों के लिए नियमादि बनाने, उनमें तथा जब जब आवश्यक हो वर्तमान विधि-विधान में भी सुधार-संशोधन करने का अधिकार सभा को है।

इस्तीफे, मृत्यु आदि के द्वारा जो जगहें वर्तमान सभा में खाली होंगी उनकी पूर्ति शेष सदस्य कर लिया करेंगे।

सभा को किसी भी समय बारह की संख्या तक अपने सदस्यों को बढ़ाने का अधिकार है और सभा की बैठकों के लिए ४ सदस्यों का कोरम रहेगा।

सभा अपना हिसाब ठीक ठीक रखेगी और उसके बही खाते को कोई भी आदमी देख सकेगा।

संघ का प्रधान कार्यालय सत्याग्रह-आश्रम साबरमती में होगा।

सदस्य

'अ' और 'ब' दो प्रकार के सदस्य रहेंगे।

(१) 'अ' वर्ग में वे सदस्य होंगे जिनकी उम्र १८ साल से ऊपर होगी, जो सदा खादी पहनते होंगे और जो अपना काता मजबूत और १००० गज एकसा सूत खजांची को या सभा के द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति या स्थान को भेजेंगे।

(२) 'ब' वर्ग में वे लोग होंगे जिनकी उम्र १८ वर्ष से ज्यादा होगी और जो सदा-सर्वदा खादी पहनेंगे और साल में २००० गज अपना काता मजबूत और एकसा सूत देंगे।

महासभा की सदस्यता के चन्दे के लिए जो सदस्य संघ को सूत देंगे वह इस संघ के चन्दे का अङ्ग समझा जायगा।

सदस्यों के अधिकार और कर्तव्य

'अ' और 'ब' दोनों वर्ग के सदस्यों का कर्तव्य होगा कि वे कताई और खादी का प्रचार करें

वर्तमान कार्य-सभा के पांच वर्ष की मीयाद खतम होने के बाद सदस्य लोगों को 'अ' वर्ग के सदस्यों में से उसके सदस्य चुनने का अधिकार होगा। आज की तारीख से ५ साल की मीयाद खतम होने के बाद सदस्य लोग ⅔ के बहुमत से संघ के विधान में परिवर्तन कर सकते हैं।

(शेष पृष्ठ ५६ पर)

ब्रिटिश सिंह का क्या ?

वार्षिक मूल्य ४)
६ मास का ,, २)
एक प्रति का -)।
विदेशों के लिए ७

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ६

मुद्रक–प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, आश्विन सुदी ७, संवत् १९८२ गुरुवार, २४ सितम्बर, १९२५ ई० । | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बिहार–यात्रा

पुरुलिया में हुई बिहार प्रांतीय परिषद में उपस्थित होने के साथ ही मेरा बिहार का दौरा शुरू हुआ। परिषद में मुख्य काम यह हुआ कि उसने कताई-मताधिकार में प्रस्तावित परिवर्तन के समर्थन करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया। सभापतिजी ने अपनी वक्तृता अंगरेजी में पढ़ी। क्या अच्छा होता यदि मौलवी जुबैर हिन्दुस्तानी में अपना भाषण लिखते। तकरीर यों बढ़िया थी; पर आध भी प्रेक्षक उसे न समझ पायें होंगे। उसी मण्डप में हिन्दू सभा और दूसरे दिन खिलाफत परिषद् भी हुई। मैंने चाहा कि मैं किसी परिषद में कुछ न बोलूं। यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई कि सब सभापतियों ने मेरी इस इच्छा को मान लिया। मैं अब बोलते बोलते आजिज आ गया। मुझे अब कुछ कहना बाकी नहीं है। मैं घूमता भी इसलिए हूं कि, मेरा खयाल है, कि जनता मुझसे मिलना चाहती है। मैं तो अवश्य ही उनसे मिलना चाहता हूं। मैंने थोडे शब्दों में अपना सीधा-सादा पैगाम सुनाया और उन्हें तथा मुझे इसपर सन्तोष हुआ। वह धीरे धीरे परन्तु यकीनन् जनता के हृदय में प्रवेश करता है।

परिषद के साथ ही एक सु-व्यवस्थित औद्योगिक प्रदर्शिनी भी थी। हमने वहां खादी के असंदिग्ध विकास को देखा। कताई की होड भी थी और इनाम भी बांटा गया था। खादी-प्रतिष्ठान के उस्मान को पहला इनाम — स्वर्ण पदक — मिला। छः साल की एक छोटी लडकी ने भी इनाम पाया। उसका सूत किसी तरह बुरा न था। उसको इनाम इस बात पर मिला कि छः साल की होने पर भी वह होड में भली भांति कात सकी। खादी प्रतिष्ठान के क्षितीश बाबू ने 'जादू की लालटेन' के द्वारा खादी संबंधी व्याख्यानों का प्रयोग दिखाया। लोगों ने उसको खूब पसंद किया।

अभिनंदन-पत्र और रुपये की थैली तो थी ही। थैली दी गई अ. भा. देशबन्धु स्मारक-कोष के लिए। स्त्री और पुरुष दोनों की सभाओं में भी चंदा एकत्र किया गया। मामूल के माफिक स्त्रियों की सभा में ज्यादह रकम मिली।

मुझे गोलुन्दा गांव को लिवा ले गये। वह सहयोग समिति का एक केंद्र है। वहां चरखे का प्रयोग हो रहा है। प्रयोग दिलचस्प है और यदि वैज्ञानिक रीति से किया गया तो सफल हुए और आश्चर्यजनक फल उत्पन्न किये बिना न रहेगा।

पुरुलिया में एक पुराना कुष्ठाश्रम देखा। उसकी सारी व्यवस्था लन्दन मिशनरी सोसायटी की तरफ से होती है। कटक में मैंने पहली बार कुष्ठाश्रम देखा। पर वह जल्दी में देखा था। सिर्फ कोढियों और सुपरिण्टेण्डण्ट से ही मिल पाया। वहां के कार्य को न देख पाया। पुरुलिया में मैंने कोढियों के रहने के स्थान को देखा तथा संस्था के काम को समझा। दोनों जगहों में सुपरिण्टेण्डेण्ट और उनकी धर्मपत्नियां कोढियों के प्यारे मित्र हो गये थे। और आश्रम में रहनेवालों के चेहरे पर सुख का अभाव नहीं दिखाई दिया। अपने सुपरिण्टेण्डेण्टों के प्रेममय व्यवहार के कारण वे अपने दुःख को भूल गये थे। पुरुलिया में मुझसे कहा गया कि तेल के इन्जेक्शन से, खास कर आरंभिक अवस्था में, कुष्ठ दब जाता है। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझसे यह भी कहा कि भयंकर कुष्ठ ग्रसित लोग भी जिनकी कि चमडी निकल गई थी और उँगलियां गल गई थीं, बिलकुल संक्रामक न पाये गये। बीमारी अपना काम कर चुकी थी। वह न तो संक्रामक ही थी और न उसका कोई इलाज था। और छूत के रोगी तो वे थे जिनको न तो रोगी खुद ऐसा समझते हैं और न लोग ही। ऐसी मिसालें भी हैं जिनमें इन्जेक्शन से पूरा आराम हो जाता है। हमारे लिए यह बडे नीचा देखने की बात है कि ऐसे दुःखी मनुष्यों की सेवा जैसे इस आवश्यक कार्य का सारा भार विदेश के ईसाई लोग उठावें। वे तो इसके लिए हमारे आदर के पात्र हैं। पर हम? पाठक यह जान कर दुःखी होंगे कि देश में कुष्ठ रोग बढ रहा है। इसका मामूली सबब है अशुद्ध रहन सहन और अनुचित भोजन-पान।

बिहार के और हिस्सों से भिन्न पुरुलिया और उसके आसपास के प्रदेश में मुख्यतः बंगाली-भाषी लोग रहते हैं। कलकत्ते से उसकी आबहवा बेहतर है और ठंडी भी है। बंगाली लोग पुरुलिया को स्वास्थ्य-सुधार का स्थान समझते हैं। देशबन्धु के पिता ने पुरुलिया में एक सुन्दर घर बनवाया था। मैं उसी घर में ठहराया गया था। देशबन्धु के स्वर्गवास के बाद उस घर में ठहरते हुए मुझे रंज हुआ। उनके माता-पिता की समाधियां उस मकान में हैं। एक कोने में उनका स्थान है। एक सीधा-

सादा आडंबर-हीन चौतरा उनकी चिता भस्म के स्थान पर बना हुआ है । सामने ही एक मकान टूटी-फूटी अवस्था में है जो कि देशबन्धु की एक बहन के द्वारा बनाया गया था और उसमें एक विधवाश्रम था । उनकी बहन के असामयिक स्वर्गवास से विधवाश्रम का भी अतकाल अपने-आप आ गया । एक और टूटी-फूटी इमारत मुझे बताई गई जिसमें गरीबों के रहने के लिए कोठरियां बनी हुई थीं । सारा आसपास का दृश्य इस परोपकारशील कुटुब की आध्यात्मिक उदारता के अनुरूप था । ऐसी अवस्था में मेरा यह सौभाग्य था जो देशबन्धु के एक चित्र का अनावरण मेरे हाथों कराया गया तथा देशबन्धु ग्राम एवं देशबन्धु रोड दर्शक पट्टियां खुलवाई गई ।

हो और मुंडा तथा अन्य आदिम निवासियों के यहां मेरे आने तथा उनके अन्दर जो सुधार-कार्य चुपचाप हो रहा है उसके संबंध में मुझे जरूर लिखना है । पर अब वह आगे के अंक में ।

(यं० इ०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

मेरे नाम का दुरुपयोग

अहमदाबाद का एक व्यापारी चाय का पेशा करता जान पड़ता है । वह खूब विज्ञापन-बाजी करता है । उसने विज्ञापनों में मेरे नाम का उपयोग इस तरह किया है कि मानों मैंने उसके व्यापार को प्रोत्साहन दिया हो, अथवा मैं चाय को पसद ही करता हू । इस सिलसिले में मुझे चार-पांच शिकायती खत मिले हैं । नाम-ठाम देकर मैं इस चाय की अधिक शोहरत नहीं करना चाहता । सिर्फ इतना ही लिख डालना बस है कि मैंने सारे हिन्दुस्तान में किसी चायवाले को उसकी चाय के लिए प्रमाण-पत्र नहीं दिया । अनेक वर्षों से मैंने चाय नहीं पी । मैं नहीं मानता कि मनुष्य के शरीर के लिए चाय की आवश्यकता है । चाय यदि उबाल कर बनाई जाय तो वह दूषित हो जाती है । चाय के द्वारा लोगों ने दूध का बचाव किया है, पर मै समझता हू कि उससे बहुत हानि हुई है । चाय के बागीचों में मजूरों को बहुत तकलीफ मिलती है इससे भी चाय मुझे ना-पसंद है । जिसे चाय की चाट लग जाती है उसे जब चाय नहीं मिलती तो जान सूखने लगती है । इसलिए ऐसे दुर्व्यसन का त्याग ही अच्छा है । जिसे जेल में जाना हो उसे तो चाय से बचना ही उचित है । क्योंकि जेल में चाय नहीं दी जाती । इस कारण चाय के विज्ञापन में मेरा नाम इस प्रकार घुसेड़ना अनुचित है । इससे मुझे दुःख होता है । अतएव जो लोग मेरे नाम का उपयोग कर रहे है वे अपने विज्ञापनों से मेरा नाम निकाल डालें ।

वैसे मेरे नाम के दुरुपयोग की कहानी तो लबी है । मेरे नाम पर मनुष्यों का वध हुआ है, मेरे नाम पर असत्य का प्रचार हुआ है, मेरे नाम का दुरुपयोग चुनावों के समय किया गया है, मेरे नाम पर बीड़ियां बेची जाती हैं, जिनका कि मैं शत्रु हू, मेरे नाम पर दवाइयां बेची जाती हैं । इस तरह जहां सारा आसमान फट पड़ा हो वहां पैबंद किस तरह लगावें ?

एक अंगरेजी लेखक ने कहा है कि जहां मूर्खों की या अज्ञानियों की संख्या अधिक है वहां धूर्त, धोखेबाज भूखों नहीं मरते । इस सत्य का अनुभव किसे न हुआ होगा ? मैं तो पुकार पुकार कर कह चुका हूं कि मेरे नाम के उपयोग से कोई धोखे में न आवें । हर चीज के गुण-दोष का विचार स्वतन्त्रता-पूर्वक करें । जहां कोई मेरे प्रमाण-पत्र की आवश्यकता समझें और जरा भी शुबह पैदा हो तो मुझसे पूछ कर इत्मीनान कर लेना अति आवश्यक है । (नवजीवन)

मद्रास के एक सज्जन ने मेरे नाम एक छपी हुई खुली चिट्ठी भेजी है । उसमें उन्होंने तामिलनाड में किये स्वराजियों के (उनकी राय के अनुसार) अनेक कु-कृत्यों का वर्णन किया है और यह कह कर कि म्युनिसिपल चुनाव के सबध में मेरे नाम का दुरुपयोग किया गया है मेरा ध्यान उनकी ओर खींचा है । नीचे उसके कुछ नमूने लीजिए

" स्वराजियों ने म्युनिस्पल्टी के इस बार के चुनाव के समय अपने अज्ञान मतदाताओं को जिस तरह सरेदस्त झूठी बातें कहने के लिए पढ़ा रक्खा था — इसके लिए जैसा विधिपूर्वक आन्दोलन मचाया, वह इस शहर में पहले कभी न देखा गया था । मतदाताओं से कहा गया कि दूसरे प्रतिस्पर्द्धी उम्मीदवार को राय देने का वादा कर लो, उनके वाहन का भी उपयोग कर लो, विरुद्ध दल से उनके चुनाव के नबर भी ले लो — फिर भी आ कर राय स्वराज्य-दल के हक में दो । × × इन चुनावों के समय घूस और नीति-भ्रष्टता का तो खासा बाजार गर्म रहा । स्वराजियों को जितनी कुछ सफलता की आशा थी रुपये के बल पर । × × नवयुवकों और युवतियों की मण्डलियां भजन-मण्डलियों का नाम धारण कर के, ' महात्मा गांधी की जय ' बोलती हुई कितने ही अनजान मतदाताओं के मन में यह भ्रम उत्पन्न करती हुई कि हमारी राय महात्मा गांधी के लिए दी जायगी, शहर में घूमती थी । इससे भी भद्दी बात यह की गई कि मतदाताओं की कमजोरियों से फायदा उठाया गया और उन्हें शराब पिला कर महात्मा गांधी के नाम पर उनसे राय ले ली गई । एक महल्ले में पतित बहनें मतदाता है । महासभा के उम्मीदवार या उनके मित्र वहां पहुचे और इन अभागिनी स्त्रियों से कहा कि हमारे मुकाबले में जो उम्मीदवार खड़ा है वह तुमको शहर से निकलवा देने के पक्ष में है और हम महासभा के लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम्हें अपना धन्धा बामिजाज करने देंगे । × × एक चुनाव के अड्डे पर तो आपकी तस्वीर बड़े मौके की जगह पर लगाई गई थी, खूब फूल-मालायें पहनाई गई थीं, और शोहदों का एक दल आरती उतारने के लिए भी पैसे दे कर बुला रक्खा था । वह जरा जरा देर में ' महात्मा गांधी की जय ' पुकारता था और कहता था महात्मा गांधी के हक में राय दो । '

यदि यह चित्र सदृश हो तो अवश्य ही यह शोचनीय है । लेखक मुझसे कहते हैं कि इन तरीकों से आपको अपना संबंध न होने की घोषणा करनी चाहिए । उनकी इस सूचना का या तो यह अर्थ है कि वे मुझे जानते नहीं हैं, क्योंकि मैं तो कई बार असत्य, हिंसा और शोहदबाजी के खिलाफ अपनी कड़ी से कड़ी नापसंदी जाहिर कर चुका हूं । यहांतक कि, जब कि मेरी स्थिति के सबध में गलत-फहमी होने का जरा भी मौका पेश आया, मैंने अपने नाम के बेजा उपयोग के लिए एक से अधिक बार प्रायश्चित्त भी किया है । फिर भी मेरे लिए यह असंभव बात है कि मै अपनेको उन लोगों के कामों के लिए जिम्मेवार मानूं, जोकि बिना किसी तरह के तकाजे के मेरे नाम पर बुरे काम करते हैं । या लेखक की सूचना का यह अभिप्राय हो सकता है कि यदि उनकी लिखी बातें सच हो तो मैं स्वराज्य-दल को सहायता देना बद कर दूं । मै यह तबतक नहीं कर सकता जब-तक पण्डित मोतीलालजी जैसे शख्स उसके पथदर्शक हैं और जब तक कि उसका मौजूदा सकल्प कायम है । स्वराज्य-दल को मैं जो आम तौर पर सहायता देता हूं उसका यह अर्थ नहीं है कि मैं उस दल के नाम पर अख्तयार किये गये हर तरीके या स्वराज्य-दल के हर सदस्य के काम की ताईद करता हूं । मुझे

इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वराज्य दल में निकम्मे और पाखण्डी लोग हैं; पर मुझे दुःख के साथ यह भी कहना पड़ता है कि अभीतक मैं ऐसी किसी प्रजासत्तात्मक संस्था के संपर्क में नहीं आया हूं कि जो इस तरह के आदमियों से अपनेको साफ–पाक रख सकी हो। मनुष्य अपनेको बरी रखने के लिए अधिक से अधिक इतना ही कर सकता है कि वह उस संस्था के संकल्प और उसके संचालकों के सामान्य गुण–शील की छान–बीन करे और जब कि उसे उसका संकल्प आपत्ति योग्य मालूम हो, या संकल्प के ठीक रहने पर भी संस्था बुरे लोगों के हाथों में चली गई हो तो अपना ताल्लुक उससे हटा ले। यदि स्वराज्य–दल में बुरे लोग घुस गये हों तो उसमें बहुत से सुयोग्य, ईमानदार, त्यागी और कठिन परिश्रमी लोग भी हैं। दूसरे दल के मुकाबले में इससे उसकी हानि न होगी। लेखक इत्मीनान रक्खें कि यदि लेखकवर्णित कार्रवाइयां एक आम बात हो गई तो मैं किसी दल को चाहे कितना ही बढ़ाऊं, उसे कोई सर्व–नाश से नहीं बचा सकता। अतएव लेखक, सर्व-साधारण तथा मेरे सामने सवाल यह है कि इस बात का पता लगाया जाय कि स्वराज्य–दल की तरफ से दर हकीकत ऐसी कार्रवाइयां की गई हैं और उनको जारी रहने दिया गया है या नहीं? मेरे कर्तव्य का पालन तो इस विषय में इतने ही से हो जाता है कि मैं किसी प्रशसनीय कार्य के लिए भी टेढ़ा और टेढ़े मार्ग से काम लेने के प्रति अपनी नापसन्दगी प्रकट कर दिया करूं। संभावना तो यह है कि वे लोग जिनपर ये इल्जाम लगाये गये हैं, उनका खण्डन करेंगे। मैं उनपर विश्वास करने में सावधान रहता हूं; क्योंकि तजरिबे ने यह सिखाया है कि जहां दल–बन्दी के भावों का दौर–दौरा होता है वहां एक दल दूसरे दल पर निर्मूल आरोप किया करता है। यहां तक कि मेरा महात्मापन भी मुझे उन इल्जामों से नहीं बचा पाया है जो कि मैं जानता हूं बिलकुल असत्य हैं। अभी जब मैं कलकत्ते में था तब मुझपर 'मनस्येक वचस्येक' तथा बेहद असंगति का आरोप लगाया गया था। रौलट कानून के आन्दोलन के जमाने में पंजाब के कितने ही देश–भक्तों पर बदमाशी का इल्जाम लगाया गया था, जिससे कि वे बिलकुल बरी थे। मैं ऐसे एक भी सार्वजनिक कार्यकर्ता को नहीं जानता जो अपने सार्वजनिक जीवन में कभी न कभी संशय–पात्र न समझा गया हो। इसलिए दलों या उनके नेताओं पर जब इल्जाम लगाये जाते हैं तब उनके मानने में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए।

मिल-मजूरों की दुर्दशा

कलकत्ते से मिले एक पत्र में वहां के मिल मजूरों के नीचे लिखे अंक लिखे हैं और उनकी अवस्था का वर्णन किया है —

"बंगाल के भिन्न भिन्न भागों की मिलों में काम करने वाले मजूरों की औसतन संख्या इस प्रकार है —

कचरपाड़ा	१२,०००
हाजीनगर नेहाटी गौरीपुर	३०,०००
कचरपाड़ा, इच्छापुर, श्यामनगर	५०,०००
काँकिनाड़ा, जगदल	८०,०००
टीटागढ़	१,२५,०००
कमरहटी, कोसीपुर, दमदम, बेलियाघाट, सियालदह	६५,०००
तेलिनिपाड़ा, श्रीरामपुर, रिशरा, चम्पदनी, सलखिया, सिबपुर, हावड़ा, लिलुआ, बजबज, बोरिया, राजगंज, तोलीगंज, खिदरपुर	१,५०,०००
कुल	६,६२,०००

"अधिकांश मजूर निरक्षर हैं। उनकी पत्नियां तो और भी अधिक। उनके बच्चों की नैतिक अवस्था दिन पर दिन खराब होती जा रही है। उनकी आदतें ऐसी बिगड़ी हुई हैं कि जो कुछ कमाते हैं, जुआ, शराब और रंडीबाजी में उड़ा देते हैं। जब रुपया चुक जाता है और खाने के फाके पड़ते हैं तब काबुलियों से या महाजनों से २ आना की रुपया प्रतिमास, या प्रतिसप्ताह तक, सूद पर रुपया कर्ज लेते हैं। ये लोग घोर अज्ञान और अविद्या के कारण दिन पर दिन बरबाद हो रहे हैं। क्या इस अंधकार की अवस्था से उनके उद्धार का कोई उपाय नहीं है?"

मैं यह नहीं कह सकता कि ये अंक या यह वर्णन बिलकुल ठीक होगा; पर हां — आम तौर पर दोनों को सही मान सकते हैं। पत्र–लेखक लिखते हैं कि स्वर्गीय देशबन्धु ने 'इन दुखों से हमारा छुटकारा कराने का' वादा किया था, और अब उनकी मृत्यु हो जाने से जो काम शुरू तक न हो पाया था उसको संपन्न करने की प्रेरणा मुझे करते हैं। फिर वे कहते हैं कि आप दस-लाख रुपये को पूंजी जमा करके सिनेमा कंपनी के एक कार्यकर्ता को दीजिए जिसके द्वारा मजूरों को शिक्षा दी जाय और उनके अन्दर चरखे और करघे की प्रतिष्ठा की जाय।

लेखक का आशय तो अच्छा है पर वे यह नहीं जानते कि सिनेमा से लोग साक्षर नहीं हो जायंगे या उनके बताये दुर्गुणों से मुक्त हो जायंगे। वे यह भी नहीं जानते कि मजूर लोग करघे या चरखे का अवलंबन एक सहायक पेशे के तौर पर न करेंगे; क्योंकि इसकी उन्हें आवश्यकता नहीं। हां, हड़ताल के दिनों में काम आने या जब वे बे–कार हों तब के लिए वे कताई या बुनाई सीख सकते हैं। मजूरों का नैतिक और सामाजिक सुधार महा–कठिन और श्रम–साध्य काम है। वह धीरे धीरे होने वाला है और उन्हीं सुधारकों के द्वारा हो सकता है जो उन्हींके अन्दर रहते हों और अपने उज्ज्वल सदाचार के द्वारा मजूरों के जीवन को बेहतर बनावें। ऐसे काम के लिए किसी पूंजी की जरूरत नहीं है और जिस किसी रकम की जरूरत होगी खुद मिल–मजूर ही उसका प्रबंध कर देंगे जैसे कि अहमदाबाद में हुआ है और शायद शीघ्र ही जमशेदपुर में होवे।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन सुदी ७, संवत् १९८२

ईश्वर-भजन

"ईश्वरभजन-प्रार्थना किस तरह और किसकी करें यह समझ में नहीं आता और आप तो बार बार लिखते हैं प्रार्थना करो, प्रार्थना करो। सो आप समझाइए कि वह कैसे हो सकती है ?"

एक सज्जन इस प्रकार पूछते हैं। ईश्वर-भजन का अर्थ है उसके गुण का गान; प्रार्थना का अर्थ है अपनी अयोग्यता की, अपनी अशक्ति की स्वीकृति। ईश्वर के सहस्र अर्थात् अनेक नाम हैं। अथवा यों कहिए कि वह नामहीन है। जो नाम हमको अच्छा मालूम हो उसी नाम से हम ईश्वर को भजें, उसकी प्रार्थना करें। कोई उसे राम के नाम से पहचानते है तो कोई कृष्ण के नाम से; कोई उसे रहीम कहते हैं तो कोई गॉड। ये सब एकही चैतन्य को भजते हैं। परंतु जिस प्रकार सब तरह का भोजन सब को नहीं रुचता उसी तरह सब नाम सब को नहीं रुचते। जिसको जिस का सहवास होता है उसी नाम से वह ईश्वर को पहचानता है और वह अंतर्यामी, सर्वशक्तिमान्, होने के कारण हमारे हृदय के भाव को पहचान कर हमारी योग्यता के अनुसार हमको जवाब देता है।

अर्थात् प्रार्थना या भजन जीभ से नहीं वरन् हृदय से होता है। इसीसे गूंगे, तुतले, मूढ भी प्रार्थना कर सकते हैं। जीभ पर अमृत हो और हृदय में हलाहल हो तो जीभ का अमृत किस काम का ? कागज के गुलाब से सुगंध कैसे निकल सकती है ? इस लिए जो सीधे तरीके से ईश्वर को भजना चाहता हो वह अपने हृदय को मुकाम पर रक्खे। हनूमान की जीभ पर जो राम था वही उसके हृदय का स्वामी था और इसीसे उसमें अपरिमित बल था। विश्वास से जहाज चलते हैं, विश्वास से पर्वत उठाये जाते हैं, विश्वास से समुद्र लांघा जाता है; इसका अर्थ यह है कि जिसके हृदय में सर्व-शक्तिमान् ईश्वर का निवास है वह क्या नहीं कर सकता ? वह चाहे कोढी हो, चाहे क्षय का रोगी हो। जिसके हृदय में राम बसते हैं उसके सब रोग सर्वथा नष्ट हो जाते हैं।

ऐसा हृदय किस प्रकार हो सकता है ? यह सवाल-प्रश्न कर्ता ने नहीं पूछा है। परंतु मेरे जवाब में से निकलता है। मुंह से बोलना तो हमें कोई भी सिखा सकता है; पर हृदय की वाणी कौन सिखा सकता है ? यह तो भक्त-जन ही कर सकते हैं। भक्त किसे कहें ? गीताजी में तीन जगह खास तौर पर और सब जगह आम तौर पर इसका विवेचन किया गया है। परंतु उसकी संज्ञा या व्याख्या मालूम हो जाने से भक्तजन मिल नहीं जाते। इस जमाने में वह दुर्लभ है। इसीसे मैंने तो सेवा धर्म पेश किया है। जो औरों की सेवा करता है उसके हृदय मे ईश्वर अपने आप, अपनी गरज से, रहता है। इसीसे अनुभव-ज्ञान-प्राप्त नरसिंह महेता ने गाया है—

'वैष्णव जन तो उसको कहिए जो पीड पराई जाने रे'

और पीडित कौन है ? अंत्यज और कंगाल। इन दोनों की सेवा तन, मन, धन से करनी चाहिए। जो अंत्यज को अछूत मानता है वह उसकी सेवा तन से क्या करेगा ? जो कंगाल के लिए चरखा चलाने जितना भी शरीर हिलाने में आलस्य करता है, अनेक बहाने बनाता है, वह सेवा का मर्म नहीं जानता। कंगाल यदि अपंग हो तो उसे सदावर्त दिया जा सकता है। पर जिसके हाथ-पांव मौजूद है उसे बिना मिहनत के भोजन देना मानों उसका पतन करना है। जो मनुष्य कंगाल के सामने बैठकर चरखा चलाता है और उसे चरखा चलाने के लिए बुलाता है वह ईश्वर की अनन्य सेवा करता है। भगवान् ने कहा है, 'जो मुझे पत्र पुष्प, पानी, इत्यादि भक्तिपूर्वक देता है वह मेरा सेवक है।' भगवान् कंगाल के घर अधिक रहते हैं, यह तो हम निरंतर सिद्ध होता हुआ देखते हैं। इसीसे कंगाल के लिए कातना महा-प्रार्थना है, महायज्ञ है, महा-सेवा है।

अब प्रश्न-कर्ता को जवाब दिया जा सकता है। ईश्वर की प्रार्थना किसी भी नाम से की जा सकती है। उसकी सच्ची रीति है हृदय से प्रार्थना करना। हृदय की प्रार्थना सीखने का मार्ग सेवा-धर्म है। इस युग मे जो हिंदू अंत्यज की सेवा हृदय से करता है वह शुद्ध प्रार्थना करता है। हिंदू तथा हिंदुस्तान के दूसरे अन्य धर्मी जो कंगाल के लिए हृदय से चरखा चलाते हैं, वे भी सेवा-धर्म का पालन करते हैं और हृदय की प्रार्थना करते हैं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ब्रिटिश सिंह का क्या ?

सुदूर केलिफोर्निया (अमेरिका) से एक पत्र मिला है —

"केनेडी अपनी पशु शाला में बैठा हुआ था, और संयोग से उसने अपने आंगन मे नजर डाली। उसकी एक चार बरस की पोत्री खेल रही थी। उसने देखा कि एक पहाडी सिंह उसकी ओर चुपके से चला आ रहा है। केनेडी अपनी रायफल लेने झपटा और ज्यों ही सिंह लडकी पर चोट करनेवाला था, उसने खिडकी से निशाना ताक कर गोली मार दी। गोली उसके कलेजे को पार कर गई।

अब उस बच्चे के पिता कि इस कारवाई पर अपनी राय दीजिए और नीचे लिखे सवालों का जवाब दीजिए —

'उसका सिंह को मारना ठीक था ? क्या उस पिता को अहिंसात्मक रहकर सिंह को बच्चे को फाड डालने देना चाहिए था ? क्या पिता को सिंह से प्रार्थना करते रहना चाहिए था ? और इस तरह अपने बच्चे की जान को खतरे में डालना चाहिए था ? क्या पिता के लिए यह शक्य था कि वह अपने बच्चे को बचाने के लिए दया-प्रार्थना करता ? क्या आप ब्रिटिश सिंह की आत्मा की इसी तरह प्रार्थना करते रहेंगे और उसे लाखों भारतवासियों को फाड खाने देंगे ?"

पहले प्रश्न का मेरा उत्तर यह है कि पिता का सिंह को मार डालना ठीक था। दूसरे सवालों को पूछ कर लेखक ने अपने अहिंसा तथा और उसकी कार्य रीति विषयक अज्ञान का परिचय दिया है। अहिंसा एक मानसिक या बौद्धिक अवस्था उतनी नहीं है जितनी की हृदय का, आत्मा का गुण है। यदि केनेडी को सिंह का भय न होता — निर्भयता अहिंसा की पहली और अनिवार्य शर्त है — यदि उसका हृदय इस बात को कुबूल करता कि सिंह के भी ऐसी आत्मा है जैसी कि खुद मुझे है तो बंदूक ले कर दौडने और जबतक कि वह बंदूक ले कर वापस न आ जाय और वह अचूक निशाना न मार दे, तबतक सिंह के इन्तजार करने के संशयाहार्द संयोग पर दारोमदार न रखते हुए उसे सीधा

सिंह की ओर दौड़ कर उसके गले में बाँह डाल कर पूरे विश्वास के साथ उसकी अंतरात्मा को प्रेरणा कर के अपने बच्चे को बचा लेना चाहिए था। यह बात बिल्कुल सच है कि अहिंसा की इस स्थिति पर पहुंचना बहुत ही थोड़े लोगों के लिए शक्य है। इसलिए मनुष्य-जाति आम तौर पर हमेशा सिंह और शेर को मार कर अपने बच्चे और पशुओं की रक्षा करती रहेगी। परन्तु इससे मूल सिद्धान्त में कोई बाधा नहीं पड़ती। साधु-सन्तों का जंगल में निःशंक रहना और किसी भी जंगली पशु को दुःख न पहुंचाये बिना रहना, यह चमत्कार हिन्दुस्तान में अज्ञात नहीं है। पश्चिम में भी इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। लेखक ने वीर पुरुषों के संबंध में भी एक अकल्प्य कल्पना करने की भूल की है। यदि केनेडी योंही खड़ा खड़ा देखता रहता और उसके बच्चे को सिंह पकड़ कर खा जाता तो यह किसी सूरत या शकल में अहिंसा न होती। बल्कि निरी हृदयहीन कायरता होती, जो कि अहिंसा के विपरीत है। लेखक का आखरी प्रश्न ही ऐसा है जो कि इस पत्र के उद्देश तक ले जाता है। उसमें लेखक ने हमारे जमाने के इतिहास के प्रति घोर अज्ञान प्रकट किया है। उनको जानना चाहिए कि जिस आन्दोलन के लिए मैं जिम्मेवार हुआ हूं वह उस तरह की प्रार्थना नहीं है जैसी की लेखक का ख्याल है। इस आन्दोलन के द्वारा हम ब्रिटिश सिंह की आत्मा तक नहीं, बल्कि भारतवर्ष की आत्मा तक पहुंचते हैं, इसलिए कि वह उसको प्राप्त कर ले। यह आंतरिक शक्ति को विकसित करने का आन्दोलन है। इसलिए अपने अन्तिम रूप में यह निःसन्देह ब्रिटिश सिंह की आत्मा तक पहुंचेगा। परन्तु उस अवस्था में वह एक समान स्थिति वाले की एक समान स्थिति वाले को प्रार्थना होगी। एक भिखारी की उस दाता को नहीं जो शायद कुछ दे दे। अथवा एक बौने की एक राक्षस से अपनी रक्षा करने की व्यर्थ याचना नहीं। उस अवस्था में एक आत्मा के प्रति दूसरी आत्मा की ऐसी जोरदार प्रार्थना होगी कि कोई उसे रोक न सकेगा। हां, इसमें कोई सन्देह नहीं कि जबतक हमारी आंतरिक शक्ति का विकास हम कर रहे हैं तबतक सिंह की हमें फाड़ डालने की अनिवार्य क्रिया जारी ही रहेगी। पर यह उस अवस्था में भी यह नहीं हो सकती जब कि भारत-वर्ष केनेडी की तरह बंदूक लेकर दौड़ पड़ेगा। परंतु केनेडी तो लेने गया था उस बंदूक को जो कि उसके पास थी और जिसे कि वह चलाना जानता था, परंतु हिंदुस्तानी केनेडी, केलिफोर्नियन केनेडी के विपरीत बिनाही आवश्यक शस्त्रास्त्र या उनको चलाने की विद्या के ब्रिटिश सिंह को मारने की कोशिश करेगा! मेरे तरीके से ब्रिटिश सिंह को नष्ट करने की नहीं, बल्कि उसके स्वभाव को बदल देने की संभावना है। इसके अलावा केनेडी की विधि के अनुसार भारत-वर्ष को अपने अन्दर उन्हीं गुणों को उदय करना होगा जिन्हें कि हम आज ब्रिटिश सिंह के अन्दर शोचनीय मानते हैं। अन्त में तीसरा रास्ता जिसे कि लेखक न केवल संभवनीय ही मानते हैं, बल्कि इस विधि का स्थान उसे देना चाहते हैं, भारतवर्ष के संबंध में मुतलक उत्पन्न नहीं होता, जैसा कि वह केलिफोर्निया के संबंध में भी उत्पन्न नहीं होता। भारत के पास अपनी आजादी के सिर्फ दो रास्ते हैं। या तो अपनी आजादी के लिए और उस दर्जेतक, सिर्फ अहिंसात्मक साधनों का अवलंबन करें, या हिंसा के पश्चिमी साधनों को तथा उससे जो जो बातें गृहीत होती हैं उन सब को बढ़ाने का प्रयत्न करे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

अछूतपन और सरकार

एक महाशय लिखते हैं:—

"२७-८-२५ के 'यंग इंडिया' में आप फरमाते हैं कि मैं एक भी ऐसी मिसाल को नहीं जानता कि जिसमें सरकार ने लोगों के अछूतपन दूर करने के कार्य में रुकावट डाली हो। यह तो अच्छी नीति है कि हम बुरे के साथ भी न्याय का व्यवहार करें। पर हमें सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं न्याय के पक्ष में हम भूल न कर बैठें। मुझे कहना पड़ता है कि आपने यह बात असावधानी के क्षण में लिख डाली है—बड़ी हिचकिचाहट के बाद मैं इस विचार को अपने हृदय में स्थान दे रहा हूं। आपने सरकार को इस अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन में किसीका पक्ष लेते हुए न देखा हो, परन्तु मैं तथा इस आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे लोग इस बात को जानते हैं और जानते हैं अपनी बहुत हानि कर के कि सरकार यदि सचमुच इस सुधार में बाधा नहीं डाल रही है तो वह उसे दूसरा रूप देने की कोशिश निःसन्देह कर रही है। आप जानते ही हैं कि जब श्रीमान् युवराज का आगमन यहां हुआ तब एक अछूत मेरठ से अछूतों की एक टोली लाया और दलित जातियों की तरफ से युवराज को अभिनन्दन पत्र दिया गया। जिस परिस्थिति में मान-पत्र दिया गया, जिस ढंग से अछूतों को मिलाया गया और जिस ढंग के लोग राष्ट्रमत के खिलाफ इस काम में लगाये गये उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सरकार के सिवा और किसीका छिपा हाथ उसमें न था। और सत्ताधारी इतना ही करके नहीं रहे, आगे जो जो कुछ हुआ उससे यह मालूम होता है कि वह एक सोची समझी नीति का श्रीगणेश-मात्र था। शायद आपको पता न हो कि मैनपुरी, इटावा, एटा और कानपुर के भी जिलों में एक नई हलचल शुरू हुई है। इसमें उसी मनोभाव का स्मरण हो आता है जो युवराज के आगमन के समय दलित जातियों के कुछलोगों का पाया गया था। उसका नाम रक्खा गया है आदि-हिन्दू-आन्दोलन। इस आन्दोलन के नेता ने कितने ही परचे और विज्ञप्तियां प्रकाशित की हैं और दलित जातियों में बांटी हैं। वह उच्चवर्ण के हिन्दुओं का तीव्र विरोधी है और उन्हें वह 'विजयी' लोगों की श्रेणी में रखकर उन्हें दलित लोगों की वर्तमान दुरवस्था का जिम्मेवार बताता है। उसने आर्यों के इस देश में तलवार और बन्दूक ले कर आने तथा आदि-निवासियों को गुलाम बना छोड़ने के सिद्धान्त को पकड़ लिया है। वह अछूतों के हृदयों तक पहुंचता है, जिन्हें कि वह यहां के असली बाशिन्दे मानता है, और उन्हें उच्च वर्ण के हिन्दुओं के खिलाफ उठ खड़े होने को उभाड़ता है। जुदे प्रतिनिधित्व का मतालबा किया जाता है, नौकरियों में अच्छी तादाद देने की मांग भी की जाती है वह उनके दिल में यह बात जंचाना चाहता है कि यदि मंगलमय ब्रिटिश-राज न होता तो ये उच्च हिन्दू अछूतों को बेहाल कर देते। इस हलचल की मदद पर सत्ताधारी लोग हैं—इसे एक प्रकट रहस्य ही समझिए। सामाजिक कार्य के इस क्षेत्र में भी भेद-नीति का श्री-गणेश हुआ सा दिखाई देता है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सरकार इस झगड़े के मूल में नहीं है, वह अपनी हुकूमत को चिरजीव बनाने के लिए एक और निमित्त पैदा करने की कोशिश नहीं कर रही है? सरकार चाहे किसी समाज-सुधारक के मार्ग में रोड़े न अटकाती हो, पर वह हमारी सामाजिक उलझनों से उत्पन्न स्थिति से क्यों न लाभ उठावे? क्या यह मनोभाव मनुष्य के लिए स्वाभाविक नहीं है?"

इसमें स्पष्टतः विचार-दोष है। युवराज के आगमन के समय अछूतों के उन्हें मान-पत्र देने की कथा मुझे मालूम है। और यद्यपि मैं लेखक लिखित आन्दोलन में सरकार के पृष्ठपोषक होने की बात से परिचित नहीं हूं तथापि मुझे बिलकुल ताज्जुब न होगा यदि यह इल्जाम अच्छा आधार हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सरकार का झुकाव हममें भेद डालने की ओर है। उसकी शक्ति हमारी फूट में ही है। हमारी एकता उसे चूर चूर कर देगी। पर यह नीति इस बात का प्रमाण नहीं है कि सरकार हमारे अछूत-सुधार के काम में दखल दे रही है। जैसे सरकार खुले आम या दबे-छिपे अछूतपन दूर करने, अछूतों के लिए मदरसे चलाने और कुवें खोदने या हमारे कुओं से उन्हें पानी लेने देने के कार्यों मे बाधा नहीं डाल रही है। अछूतों का उपयोग किया जाना एक बात है और हिन्दुओं के द्वारा उनका सुधार होना दूसरी बात है। यदि हम हठपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करने और हिन्दू-धर्म से इस पाप को धो बहाने से मुह मोडेंगे तो उनका ऐसा उपयोग निश्चित रूप से होता रहेगा। और यदि हम इस तरह सरकार के मत्थे दोष मढते रहेंगे और स्वराज्य प्राप्त होने तक अछूतपन को मिटाने की राह देखते रहेंगे तो इस दिशा में हम अपनी पूरी शक्ति के साथ उद्योग न कर पावेंगे।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

सच्चा सत्याग्रह

बहुत समय से मैंने वायकम तथा क्रूरता दूर करने के संग्राम के संबंध में जानबूझ कर कुछ न लिखा था। और न अभी उससे प्रत्यक्ष संबंध रखने वाली कोई बात लिखना चाहता हूं। पर यहां मैं यह बात पाठकों को जरूर कहना चाहता हूं कि वायकम के सत्याग्रही किस तरह अपना समय व्यतीत कर रहे है।

पिछली १ अगस्त का वायकम से लिखा एक पत्र कलकत्ते में मुझे मिला था। वह भूल से उस समय प्रकाशित करना रह गया। पर उसका आशय आज भी वैसा ही ताजा बना हुआ है। इस लिए उसे यहां देता हूं —

"अब मेरे सहित यहां सिर्फ १० स्वयंसेवक हैं। एक तो रोजाना रसोई का काम करता है और दूसरे, एक को छोडकर, सत्याग्रह करते हैं — हर एक तीन तीन घंटा। सत्याग्रह के लिए जाने और आने का समय मिलाकर ४ घंटे होते हैं। हम नियमपूर्वक ४॥ बजे उठते हैं और आध घंटा प्रार्थना में जाता है। ५ से ६ तक झाडू-बुहारा, पानी लाना और बरतन मलना होता है। ७ बजे तक हम, दो आदमियों को छोड कर, (जो कि नहाकर ५-४५ पर सत्याग्रह को जाते हैं।) स्नान करके लौटते हैं और चरखा कातते तथा रुई धुनते है, जबतक कि सत्याग्रह के लिए जाने का समय न हो जाता। हममें से अधिकांश लोग नियमपूर्वक रोज एक एक हजार गज सूत देते हैं और कुछ तो इससे भी अधिक। रोजाना कोई १०,००० गज निकलता है। रविवार को मैं कोई काम करने पर जोर नहीं देता। उस दिन हर आदमी अपनी मर्जी के मुताबिक काम करता है। कुछ लोग तो रविवार को भी दो तीन घंटे कातते और धुनते है। जो हो; रविवार को सूत नहीं दिया जाता। जो लोग महासभा के सदस्य हैं वे रविवार को अपने चंदे का सूत कातते हैं। कुछ लोग रविवार को तथा और फुरसत के वक्त में सूत कातकर देशबंधु-स्मारक में देने के लिए रखते हैं। ४ सितंबर को अर्थात् दादाभाई जयंति के दिन हम एक छोटा सूत का बंडल आपके पास भेजना चाहते हैं। मुझे आशा है कि आप उसे पाकर खुश होंगे। इसे हम अपने दैनिक कार्य के अलावा कातेंगे। हम या तो उस दिन सूत की भिक्षा मांगेंगे या दिनभर सूत कातेंगे और जो कुछ मिलेगा आपकी सेवा में भेज देंगे; पर हम अभीतक तय नहीं कर पाये हैं कि क्या करेंगे ?"

इससे जाना जाता है कि वायकम के सत्याग्रहियों ने अपने काम के भाव को समझ लिया है। न तो धूमधडाका है, न शोरगुल। बल्कि अपने यथोचित आचरण के द्वारा विजय प्राप्त करने का सीधा सरल निश्चय है। सत्याग्रही को अपने एक एक मिनट का अच्छा हिसाब देना चाहिए। वायकम के सत्याग्रही यही कर रहे हैं। पाठकों के ध्यान में महासभा के लिए सूत कातने की तथा दादाभाई जयति के लिए और समय निकाल कर सूत कातने की उनकी प्रामाणिकता आये बिना न रहेगी। देशबंधु स्मारक के लिए सूत कातने का विचार भी उनके अन्य कार्यों के अनुरूप ही है। मेरे सामने एक पत्र है, जिसमें रविवार को छोड कर, सप्ताह भर के हर स्वयंसेवक के सूत का हिसाब लिखा हुआ है। एक व्यक्ति ने अधिक से अधिक सूत ६८९५ गज १७ अंक का काता है। कम से कम सूत २९३६ गज, १८ नंबर का है। इस कमी का कारण यह लिखा है कि वह तीन दिन तक छुट्टी पर गया था। उस सप्ताह का औसत फी आदमी प्रतिदिन ८६६.६ गज था। २६ अगस्त को पूरे होनेवाले सप्ताह के अंक भी मेरे सामने हैं। एक व्यक्ति ने अधिक से अधिक ७,७०० गज काता है और कम से कम २०००। पिछले शख्स ने सप्ताह में दो ही दिन काता है। पाठक शायद पूछेंगे कि चरखा और अस्पृश्यता-निवारण से संबध क्या है ? यों ऊपर ऊपर देखने से कुछ भी नहीं। वास्तव में देखें तो बहुत है। किसी एक कार्य को, उसकी अन्तर्गत भावना को हटा दे, तो सत्याग्रह नहीं कह सकते। कताई के अंदर जो भावना यहां पर है वह आगे चलकर अपना असर डाले बिना न रहेगी। क्योंकि इन नवयुवकों के नजदीक कताई एक राष्ट्रीय यज्ञ है, जिससे कि अनजान में सच्ची नम्रता धैर्य और निश्चय ये गुण प्रकट होने की आशा है, जो कि स्वच्छ सफलता के लिए अनिवार्य हैं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

कौमी पंचायत ?

पिछले साल देहली में, जाति-गत झगडों के निपटारे के लिए एक कौमी पंचायत कायम हुई थी। मैं उसका सभापति माना जाता हूं। देहली, फिर पानीपत और अब इलाहाबाद से तार और खत मिले है कि मैं वहां के झगडों का तस्फिया करूं। मुझे बडे अफसोस के साथ उन लोगों को यह सलाह देनी पडी है कि दोनों फरीक पर अब मेरा प्रभाव नहीं रह गया है। पंचायत से उसी अवस्था में लाभ होता है जब उसका प्रभाव दोनों फरीक पर हो और वे उसके फैसले के अनुसार चलने को राजी हों। देहली की सभा के बाद जमाना बदल गया। इस वक्त तो दोनों दल के लोग पंचायत के द्वारा निपटारा कराने के बजाय लडने के लिए ज्यादह संगठित हो रहे हैं। हां, अन्त को जा कर उन्हें मिलना होगा, इसमें तो कोई सन्देह नहीं। पर ऐसा मालूम होता है कि यह तब होगा जब दोनों तलवार की पंचायत से तृप्त हो चुकेंगे। मैं समझता हूं कि मुझे अपनी मर्यादितता का खयाल है और मेरा विश्वास है कि किसी किस्म के जातीय झगडों के बीच में न पड कर ही मैं शान्ति-सुलह के कार्य की अधिक सेवा करूंगा।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

खेती में हिंसा ?

'नवजीवन' के एक निरन्तर पाठक पूछते हैं —

मैंने 'नवजीवन' (पुराने) में पढ़ा है कि खेती शुद्ध यज्ञ है यह सच्चा परोपकार है।

चींटी जैसे छोटे जीव के पैरों तले कुचल जाने से मन में दुःख होता है। खेती करने वाला किसान तो ऐसे अनेक असंख्य जीवों को अपनी आंखों के सामने मरते हुए देखते हैं। इससे उसके मनमें 'यों तो बहुतेरे जीव मरा करते हैं' यह मानते हुए क्या निष्ठुरता नहीं आ जायगी ?

जिसे चींटी जैसे कीड़े को भी मरता देख कर दुःख होता है वह खेती कैसे कर सकता है ? वह यदि भीख मांग कर पेट भरता हो तो क्या बुरा ? अथवा कोई और धन्धा क्यों न करे ? पर आप तो भीख को हीन से हीन समझते हैं ? मैं अनुभव से इस बात को मानता हूं।

मुझे खेती करने की बड़ी चाह है। पर पूर्वोक्त प्रकार की जीव-हिंसा और बैल को आर लगाने में डरता हूं।

यह बात सच है कि खेती में सूक्ष्म जीवों की अपार हिंसा है। पर दूसरा वाक्य भी इतना ही सच है। वह यह कि शरीर-निर्वाह में — श्वासोच्छ्वास करने में भी असीम सूक्ष्म जन्तुओं की हिंसा है। परन्तु जिस प्रकार आत्म-घात करने से शरीर-रूपी पिंजर का सर्वथा नाश नहीं होता। उसी प्रकार खेती के त्याग से खेती का भी नाश नहीं होता। मनुष्य मिट्टी का पुतला है। मिट्टी से उसका शरीर पैदा हुआ है और मिट्टी के पर्यायों पर उसका जीवन निर्भर है। खेती में रहने वाले दोष से दूर रहने के लिए जो भिक्षान्न खाता है वह दुहेरा दोष-भागी होता है। खेती करने का दोष तो वह करता ही है, क्योंकि भिक्षा में मिला अन्न किसी न किसी किसान की मिहनत से ही पैदा हुआ है। उस किसान की खेती में भिक्षान्न भोजन करने वाले का हिस्सा अवश्य आ जाता है। और दूसरा दोष है भिक्षान्न खाने वाले का अज्ञान और उससे उत्पन्न होने वाला आलस्य।

यदि एक मनुष्य के लिए खेती का त्याग उचित है तो अनेक के लिए भी है। अनेक लोग यदि भीख मांग खावें तो थोड़े किसान बेचारे भिखारियों के लिए मजूरी करने के बोझ से ही कुचल जावें और उसका पाप भिखारी के सिर नहीं तो और किसके सिर होगा ?

खेती इत्यादि आवश्यक कर्म शरीर-व्यापार की तरह अनिवार्य हिंसा है। उसका हिंसापन चला नहीं जाता है और मनुष्य ज्ञान, भक्ति आदि के द्वारा अन्त को इन अनिवार्य दोषों से मोक्ष प्राप्त कर के इस हिंसा से भी मुक्त हो जाता है। इसलिए शरीर जिस प्रकार मनुष्य के लिए बन्धन का द्वार है उसी प्रकार मोक्ष का भी द्वार है। उसी तरह जो करोड़पति होने के लिए खेती करता है उसके लिए खेती बन्धन का द्वार है। जो केवल आजीविका के लिए करता है उसके लिए खेती मुक्ति का द्वार हो सकती है।

कार्य-मात्र, प्रवृत्ति-मात्र, उद्योग-मात्र सदोष हैं। आवश्यक उद्यम-मात्र में एक-सा दोष है। मोती के रोजगार में, रेशम के धन्धे में, सुनार के पेशे में खेती से बहुत अधिक दोष है। क्योंकि ये धन्धे आवश्यक नहीं हैं। उनमें हिंसा तो बहुतेरी हुई है। मोती हिंसा बिना मिल नहीं सकते। सीप का कीड़ा उबाला जाता है। सुनार जो आसमानी आग पैदा करता है उसमें जलने वाले जन्तुओं से यदि पूछें और वे जवाब दे सकें तो हमें उनके धन्धे की हिंसा का कुछ खयाल हो सकता है।

चारों ओर हिंसा से घिरे और जलते हुए इस जगत् में विचरने वाले जिस महापुरुष ने अहिंसा-रूपी धर्म उत्पन्न किया उसको मेरा साष्टांग प्रणाम है।

चींटी को भी बचा कर चलना यह हमारा सहज धर्म है। जो मनुष्य ऊंचा सिर कर के बिना विचारे, बिना देखे, अपने घमण्ड में मस्त चला जाता है और अपने पैरों के नीचे कुचले जाने वाले असंख्य जीवों का विचार तक नहीं करता वह तो जान-बूझ कर अनावश्यक पापकर्म करता है और अपने हाथों अपने लिए नरक का द्वार खुला करता है। उसकी तुलना किसान से, जो कि उसके मुकाबले में निर्दोष माने जाने चाहिए, हो ही नहीं सकती। खेती करने वाले असंख्य किसान चलते हुए बारीक नजर से चींटी आदि प्राणियों को बचाते हैं। उनमें गर्व नहीं होता। वे नम्र हैं। वे जगत् के पालनेवाले हैं। दुनिया का नव-दशांश भाग खेती करता है। उसीमें श्रेय है। खेती आवश्यक शुद्ध यज्ञ है। श्रेष्ठ धर्मवान उस धन्धे को कर सकता है। और दूसरे अनावश्यक धन्धों को छोड़ कर खेती करे तो पुण्य है।

बैल को आर लगाने की बात बिना विचारे लिखी गई है। सब किसान बैल को आर नहीं मारते। कितने ही किसान बैल इत्यादि अपने पशुओं को अपने कुटुंब की तरह मानते हैं और प्रेम-भाव से उनका पालन-पोषण करते हैं।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

चरखे का असर

एक सज्जन देशी राज्य के निवासी हैं। महासभा के तो सदस्य नहीं हैं, परंतु चरखे के कायल हैं, और रोज चरखा कातते हैं। वे लिखते हैं:—

"पिछले सात महीनों में मैंने कोई १५० घण्टे सूत काता है। अपने इस थोड़े अनुभव से मेरा यह खयाल हो गया है कि जब तक हम पुरुष खुद चरखा कात कर उम्दा, मजबूत, बुनने लायक सूत निकालने की मिसाल अपनी स्त्रियों के सामने न पेश करेंगे तबतक चरखे का जीर्णोद्धार असंभव है। मेरा मन यह भी कहता है कि हम जैसे अनियमित जीवन बिताने वालों को चरखा अवश्य ही नियमित बनावेगा और हमारे दायित्व-हीन स्वभाव में जिम्मेवारी का भाव उत्पन्न करेगा।"

ये अकेले ही ऐसे पुरुष नहीं हैं जिन्होंने चरखे को नियम-पालन सिखानेवाला पाया है। और जो लोग चरखा-प्रचार के काम में लगे हुए हैं उनमें से कौन इस बात की पुष्टि नहीं करते कि यदि स्त्रियों से चरखा कताना हो तो पुरुष न केवल उदाहरण पेश करें बल्कि उन्हें उस कला का ज्ञान भी करावें ? चरखे में अबतक जो-कुछ थोड़े परन्तु महत्त्व-पूर्ण सुधार हुए हैं उसका श्रेय उन्हीं शिक्षित पुरुषों के प्रयत्नों को है जो कि इस काम में निस्वार्थ भाव से और नियमित रूप से लगे हुए हैं।

(यं० इं०) **मो० क० गांधी**

अनिवार्य फौजी शिक्षा

एक प्रयाग के ग्रेज्युएट लिखते हैं —

"मैं प्रयाग-विश्वविद्यालय का एक रजिस्टर्ड ग्रेज्युएट हूं। प्रयाग विश्वविद्यालय के कोर्ट में चुने जाने वाले उम्मीदवार को राय देने का हक मुझे हासिल है।

मैंने विश्वविद्यालयों में फौजी शिक्षा को अनिवार्य करने के विचार का विरोध किया है। इसपर आपत्ति खड़ी की गई है। इस प्रश्न पर मैं यं. ई. के द्वारा आपकी सम्मति जानना चाहता हूं। मेरे विचार संक्षेप में इस प्रकार हैं —

'मैं इस बात को मानता हूं कि स्वराज-सरकार में युवकों को फौज में, अपने जीवनक्रम के, लिए दाखिल होने की जरूरत होगी और उनकी इस प्रवृत्ति को हमें प्रोत्साहन देना होगा। पर मैं समझता हूं कि विदेशी सरकार में इस बात की रक्षाका कोई साधन नहीं है कि विश्वविद्यालय की टुकड़ी का उपयोग भारतीय राष्ट्र के खिलाफ न किया जायगा, जैसा कि पिछले जमाने में भारतीय फौज का उपयोग किया जा चुका है। फिर यदि हमारे नवयुवक फौजी तालीम के लिए मजबूर किये गये तो क्या यह हमारी नैतिक गुलामी की जंजीर में एक और कड़ी न होगी? क्या यह विश्वविद्यालय के आदर्श के विरुद्ध नहीं है? विश्वविद्यालय ही में तो हम अपनी उन्नति के लिए स्वतंत्र वायुमण्डल की आशा कर सकते हैं। क्या इससे हमारा आदर्श फौजी सांचे में न ढलेगा? विदेशों के विश्वविद्यालयों की जानकारी मुझे थोड़ी है, फिर भी जहांतक मुझे ज्ञात है, इंग्लैण्ड और अमेरिका जैसे स्वाधीन देशों के विश्वविद्यालयों में भी फौजी शिक्षा अनिवार्य नहीं है। यदि हम राजनैतिक दृष्टि का खयाल न करें तो भी क्या हमें व्यक्तियों को उनकी अन्तरात्मा की प्रेरणा के अनुसार चलने की इजाजत न देनी चाहिए—जिसकी कि रक्षा के लिए पिछले युद्ध के समय में अनेक अंगरेजों ने जेल भोगी, हालांकि उनमें से कोई भी मौत से डरने वाला न था।'

इन विचारों पर पूरे ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। इसके विपरीत शारीरिक शिक्षा की अनिवार्यता की पुष्टि में खुशी के साथ करूंगा — और सच पूछिए तो मैं उसका प्रतिपादन भी करता हूं। मैं समझता हूं कि यदि यह अनिवार्य कर दी जाय तो विश्व-विद्यालय की सब आवश्यकतायें पूर्ण हो जायंगी।

उन लोगों के लिए जो कि जीवन या राजनीति संबंधी अपने जुदे विचार रखते हैं विश्व-विद्यालय का दरवाजा बंद न रखना चाहिए। यों ही ऐसी संस्थाओं में प्रतिबन्धक बातें बहुतेरी हैं।"

मैं धर्मतः शान्तिवादी हूं। अतएव विश्वविद्यालय में फौजी शिक्षा को अनिवार्य कराने के संबंध में लेखक की एक एक बात की हृदय से पुष्टि करता हूं। परन्तु उपयोगिता तथा राष्ट्रीयता की दृष्टि से भी उनकी युक्ति सबल मालूम होती है। केवल इतना ही नहीं कि विश्वविद्यालय की फौजी टुकड़ी का उपयोग राष्ट्रीयता-विरोधी कामों में किये जाने के खिलाफ कोई रक्षा-साधन नहीं है, बल्कि जबतक सरकार का यह राष्ट्रीयता-विरोधी स्वरूप बना हुआ है तबतक इस टुकड़ी का उपयोग मौका पड़ने पर राष्ट्र के खिलाफ भी किये जाने की बहुत संभावना है। जैसे, किसी भावी डायर को, एक और जालियांवाला बाग बनाने में इन विश्व-विद्यालय के लोगों का उपयोग करने से कौन रोक सकता है? जब कि साम्राज्य के व्यापार के लिए चीनी और तिब्बती जैसे निर्दोष लोगों पर आधिपत्य जमाना आवश्यक मालूम हो तो उनपर चढ़ाई करने के लिए क्या वे अपनी सेवायें अर्पित न करेंगे? क्या पिछले योरपियन युद्ध में भाग लेने वाले कुछ युवक स्वयंसैनिकों ने अपने कार्य का समर्थन यह कह कर नहीं किया था कि उसके द्वारा हमें युद्ध-कला का अनुभव मिला? ठीक इसी कारण ने, जान में हो या अनजान में, सीमा-प्रान्त की चढ़ाइयों की प्रेरणा की थी। जो लोग सफलतापूर्वक साम्राज्य का संचालन करते हैं उन्हें अन्तःस्फूर्ति से मनुष्य-स्वभाव का ज्ञान होता है। वह बुद्धिपूर्वक बुरा या दुष्ट-हेतु पूर्ण नहीं होता। प्रेरक हेतु यदि उच्च हो तो उसका कार्य उमदा होता है। और हजारों नवयुवकों को किसी सैनिक टुकड़ी में शामिल होने के पहले राजभक्ति की शपथ खानी होगी और बीसों मौकों पर युनियन जैक को सलाम करना होगा। ऐसी हालत में वे स्वभावतः अपनी राजभक्ति का अच्छी तरह पालन करेंगे, और अपने अफसरों के द्वारा गोली चलाने का हुक्म मिलते ही अपने देश-भाइयों पर खुशी से गोली चलावेंगे। अतएव यद्यपि मैं जो कि एक महा-अहिंसा-भक्त हूं, उन लोगों के लिए जो प्रसंग पड़ने पर शस्त्रों का उपयोग करने की आवश्यकता के कायल है फौजी शिक्षा को समझ सकता हूं, तथापि मैं उस सरकार के अधीन रहते हुए जो कि लोगों की आवश्यकता की बिलकुल पूर्ति नहीं करती है देश के युवकों के लिए फौजी-शिक्षा का प्रतिपादन करने में असमर्थ हूं। और अनिवार्य फौजी-शिक्षा का तो हर हालत में, राष्ट्रीय सरकार की अधीनता में भी, विरोध करूंगा। जो लोग फौजी शिक्षा न ग्रहण करना चाहें वे राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में शामिल होने से मना न किये जाने चाहिए। शारीरिक शिक्षा की बात इससे बिलकुल भिन्न है। वह अलबत्ते प्रत्येक अच्छी शिक्षा-योजना का, और विषयों की तरह, एक अंग हो सकती है-होनी चाहिए।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

गो-शालाओं का गणना-पत्रक

अ० भा० गो-रक्षा-मण्डल का काम चींटी की तरह धीमे धीमे चल रहा है, पर पाठक जान लें कि वह चल रहा है।

पिछली सभा में एक प्रस्ताव ऐसा हुआ था कि भारतवर्ष की मौजूदा गो-शालाओं और पींजरापोलों का गणना-पत्रक कुछ बातों के ब्योरे सहित तैयार करना चाहिए। कुछ गो-शालाओं का वृत्तान्त तो मिलता है; पर सब गो-शालाओं के मिलने की आवश्यकता है। उस पत्रक में नीचे लिखी बातों की तफसील होनी चाहिए —

(१) नाम

(२) मुकाम

(३) जन्म की तिथि

(४) जानवरों की संख्या ब्योरे सहित (जैसे कि गाय, भैंस, अपंग और दूध न देने वाली, बैल, सांढ, आदि)

(५) जमीन और मकान का वर्णन, नाप इत्यादि

(६) आमदनी और खर्च

(७) समिति के सभ्यों के नाम, आदि। पत्रिका छपती हो तो वह भी भेजें।

(८) प्रचारक की आवश्यकता है?

(९) बूचड़खाना कितनी दूरी पर है?

(१०) मवेशी बेचने का बाजार कहां है?

प्रत्येक गो-शाला और पींजरापोल के संचालक से प्रार्थना है कि वे इतनी खबरोंवाला पत्रक बंबई श्री मगीनदास अमुलखराय को (होमजी स्ट्रीट, हनुमान बिल्डिंग, कोट बंबई नं. १) भेजें। चौंडे महाराज ने जहां तक हो सकेगा सेवकों को भेज कर सब ब्योरा प्राप्त करना अंगीकार किया है। मैं मान लेता हूं कि जहां जहां चौंडे महाराज के सेवक पहुंचेंगे वहां वहां संचालक उन्हें मदद करेंगे। (नवजीवन) मो० क० गांधी

अमेरिकन मित्रों से

वार्षिक	मूल्य ४)
६ मास का	„ २)
एक प्रति का	„ -)।
विदेशों के लिए	७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ५

मुद्रक–प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, आश्विन वदी १४, संवत् १९८२ गुरुवार, १७ सितम्बर, १९२५ ई०	मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

एक प्रश्न-माला

एक अरसे से अच्छे राष्ट्रीय कार्यकर्ता ने कुछ प्रश्न मेरे पास उत्तर देने के लिए भेजे हैं। वे उत्तर-सहित नीचे दिये जाते हैं : —

"आप कहते हैं कि हमें स्वराज्य-दल की सहायता करनी चाहिए। यहां सहायता से आपका क्या तात्पर्य है ?"

मेरा तात्पर्य यह है कि हर एक मनुष्य जहां तक उसकी आत्मा गवाही दे अपनी योग्यता के अनुसार इस दल की ज्यादह से ज्यादह मदद करे। इस प्रकार जिस मनुष्य का मन धारासभा सम्बंधी कार्यक्रम की ओर झुकता हो और जिसे ऐसा करने में कोई तात्विक विरोध न हो वह इस दल में सम्मिलित हो सकता है। जिसको तात्विक विरोध हो वह उससे अलग रहेगा; पर सम्मिलित होने को छोड़ कर बाकी जितनी भी सहायता वह कर सके करेगा। मुमकिन है उसे मत देने में भी आपत्ति हो। तो वह मत देने तक से अलग रहेगा। पर किसी भी हालत में वह इस दल की निन्दा तो न करेगा।

"क्या गांव के नवयुवक कार्यकर्ता चुनाव-सम्बंधी झगड़ों में भाग लें और स्वराज्य-दल वालों के लिए मत प्राप्त करने में योग दें ?"

अपरिवर्तन-वादियों के लिए वैसा सम्भव हो यह मैंने अभी तक नहीं खयाल किया है। उदाहरणार्थ, जो ग्रामीण कार्यकर्ता खादी का कार्य कर रहे हैं और राजनैतिक भावों को ले कर उस ओर नहीं झुके हैं वे जरूर ही अपने आपको और अपने काम को उस हद तक बाधा न पहुंचने देंगे जिस हद का खयाल इस प्रश्न में रक्खा गया है।

"स्वराज्य-दल वाले ग्रामीण संस्थाओं, युनियनों तथा नागरिक संस्थाओं पर अधिकार कर लेना चाहेंगे। ऐसी हालत में खादी कार्यकर्ताओं को क्या करना होगा ?"

मैं स्वराज्य-दल वालों से भी यह उम्मीद रखता हूं कि वे खादी का कार्य करेंगे। उनके और अपरिवर्तन वादियों के बीच में अन्तर केवल इतना ही है कि स्वराज्य-दल वाले खादी कार्य के साथ साथ धारासभा सम्बन्धी कार्य भी करेंगे फलतः वे खादी के प्रेमी होते हुए भी धारासभा-संबंधी कार्य को पहला स्थान देंगे। अपरिवर्तन वादियों के पास तो खादी तथा अन्य विधायक कार्यक्रम के सिवा कुछ है नहीं। दोनों अपने अपने रास्ते जा सकते हैं और दोनों से यह उम्मीद है कि वे एक दूसरे की, जहां तक आत्मा साक्षी दे, ज्यादा से ज्यादा सहायता करेंगे।

"जब एक ओर ब्राह्मण और दूसरी ओर अब्राह्मण चुनाव में एक-दूसरे के मुकाबिले खड़े होंगे तब आपकी क्या स्थिति होगी ?"

ऐसी हालत में अगर मैं आपके स्थान पर होऊं तो ईर्ष्या, द्वेष और झगड़ा मिटाने के सिवा अन्य उद्देश्य से मैं इस मामले में पड़ने से ही बचूंगा।

"आपने कहा है कि अपरिवर्तनवादी, स्वराज्य-दल वालों का विरोध न करें, इतना ही नहीं बल्कि सहायता भी करें। यह सहायता किस प्रकार की होगी ?"

इस प्रश्न का उत्तर मैं पहले ही दे चुका हूं। जब मित्रता होती है तब अपने खास काम को कोई बाधा न पहुंचा कर भी अनेक प्रकार से हम सहायता कर सकते है। मगर किस हद तक सहायता करनी, यह तो हर एक व्यक्ति स्वयं ही अपने लिए विचार ले। ऐसी स्वेच्छा-पूर्वक दी जानेवाली सहायता में, जिसके बारे में दूसरा कुछ बतला तक नहीं सकता, दबाव डालने के लिए तो बिल्कुल स्थान नहीं। यहां दल-संबंधी तंत्र-निष्ठा का प्रश्न नहीं है। मेरी व्यक्तिगत रूप से यह राय है। मेरे खुद के आचरण से इस सहायता का अर्थ ज्यादह अच्छी तरह समझ में आ सकता है।

"आपने स्वराज्य-दल वालों को जो सहायता करने का निश्चय किया है वह महज जरूरत को देख कर या यह समझ कर कि भारतवर्ष को धारा-सभाओं से कुछ लाभ पहुंचेगा ?"

इसमें एक तीसरा कारण भी हो सकता है। मैं यह नहीं मानता कि वर्तमान दशा में धारा-सभायें भारतवर्ष को लाभ पहुंचा सकेगी। और न सिर्फ जरूरत के खयाल से ही मैं स्वराज्य-दल वालों की अपनी थोड़ी शक्ति के अनुसार सहायता करता हूं। मुझे धारा-सभा-संबंधी कार्यक्रम पसन्द नहीं; मगर मैं देखता हूं कि भारतवर्ष के अधिकांश पढ़े-लिखे लोग उस कार्यक्रम के बगैर रह ही नहीं सकते। इन लोगों में जो बड़े से बड़े नेता हैं उन्हें यदि महा उग्र राजनैतिक प्रचार-कार्य दिया जाय तो वे खुशी से वहां से हट जायंगे। उनको अकेले विधायक कार्यक्रम से संतोष नहीं हो सकता। उनकी समझ में उसकी गति बहुत धीमी है।

मैं मानता हूं कि उनका वह भाव प्रामाणिक है। इसलिए इस ख्याल से कि सारी शक्तियां देश के उद्धार में लग सकें और यह समझ कर कि धारा-सभा में जा कर भी विधायक कार्यक्रम को मदद पहुंचाई जा सकती है और जो जो बातें सार्वजनिक भलाई में बाधक हों उनका गौरव-युक्त विरोध किया जा सकता है, मैंने अपनी सहायता के लिए उस दल को पसन्द कर लिया है जो मेरी शर्तों को सब से अधिक पूरा करता है।

क्या हिन्दू-धर्म में शैतान है?

एक सज्जन लिखते हैं —

"कुछ महीने पहले आपने मेरा एक पत्र कुछ धर्म-ग्रन्थों तथा ईश्वर-संबंधी विश्वास के विषय में ऐसा शीर्षक दे कर छापा था जो कि उसके विषय के सर्वांश में अनुकूल न था। (देखिए यं० इं० १९२५ पृ० १५५) अब मेरा जी चाहता है कि आपसे दूसरा प्रश्न ईश्वर के विरोधी (ईसाई लोगों के विश्वास के अनुसार) के संबंध में करूं, जिसका कि नाम आप बहुत बार अपने लेखों और व्याख्यानों में लिया करते हैं और जो कि खाली नहीं जाता, जैसा कि देखिए ६-८-२५ के यं० इं० में 'शैतान का जाल' नामक आपका लेख। यदि केवल आलंकारिक प्रभाव डालना आपको अभीष्ट होता, क्योंकि आप उन लोगों की भाषा में लिख और बोल रहे थे जिन्हें कि ईसाई-धर्म के द्वारा शैतान के अस्तित्व में विश्वास रखना सिखाया गया है, तो मुझे कुछ कहना न था। परन्तु उस लेख में और बातों के साथ यह भी पाया जाता है कि आप शैतान की हस्ती पर विश्वास रखते हैं। मेरी नाकिस राय में यह विश्वास बिल्कुल अहिन्दू है। जब अर्जुन ने श्री कृष्ण से पूछा कि मनुष्य के पतन का कारण क्या है तो उन्होंने कहा— 'काम एष, क्रोध एष,' आदि। हिन्दू-मत के अनुसार यह माना जाता है कि मनुष्य को मोह में डालने वाला उससे बाहर कोई व्यक्ति नहीं है और न वह 'एक' ही है; क्योंकि शास्त्र में तो मनुष्य के छः शत्रु बताये गये हैं— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर। इससे यह स्पष्ट है कि हिन्दू-धर्म में शैतान के लिए जगह नहीं है, जिसको कि ईसाई-धर्म ने 'पतित फरिश्ता' 'मोह में गिराने वाला' कहा है या एक फ्रेंच लेखक (अनातोले फ्रान्स) ने जिसे 'ईश्वर का व्यवहारू आदमी' कहा है। तब यह कैसी बात है कि आप जो कि एक हिन्दू हैं, इस तरह बोलते और लिखते हैं मानों आप उस पुराने शैतान के वास्तविक अस्तित्व में विश्वास रखते हों?"

ये लेखक 'यंग इंडिया' के पाठकों के सु-परिचित हैं। वे इतने सजग हैं कि 'शैतान' शब्द का प्रयोग मैं जिस आशय में करता हूं उसे न जान पाते हों सो बात नहीं। पर उनका मैंने यह स्वभाव देखा है कि जहां कहीं जरा भी गलतफहमी की आशंका हो, या जिसके अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो वहां वे मुझे छेड़े बिना नहीं रहते। मेरी राय में हिन्दू-धर्म की खूबी उसकी सर्व-व्यापकता और सर्व संग्राहकता है। महाभारत के कर्ता ने अपनी महान् सृष्टि के संबंध में जो कुछ कहा है वह हिन्दू-धर्म पर भी उतना ही घटता है। और धर्मों में जो बातें काम की मिलती हैं वे हमेशा हिन्दू-धर्म में पाई जाती हैं। और जो कुछ उसमें नहीं है उसे सार-हीन या अनावश्यक समझना चाहिए। मैं जरूर मानता हूं कि हिन्दू-धर्म में शैतान के लिए जगह है। बाइबिल मे यह विचार न तो नया है, न मौलिक है। बाइबिल में भी शैतान कोई व्यक्ति नहीं है। या बाइबिल में वह व्यक्ति उसी दरजे तक है जिस दरजे तक रावण या सारी असुर-सन्तति हिन्दू-धर्म में है। मैं दस सिर और बीस हाथ वाले ऐतिहासिक रावण को उससे अधिक नहीं मानता जितना कि ऐतिहासिक शैतान को मानता हूं। और जिस तरह कि शैतान और उसके साथी पतित फरिश्ते हैं उसी तरह रावण और उसके साथी भी पतित फरिश्ते, या चाहें तो देव कहिए, हैं। यदि दुर्विकारों और उन भावों को व्यक्तियों का जामा पहनाना कोई अपराध है तो शायद हिन्दू-धर्म इस अपराध के लिए सब से अधिक जिम्मेवार है। क्या पूर्वोक्त छः विकारों को हिन्दू-धर्म में व्यक्ति का रूप नहीं दिया गया है? धृतराष्ट्र और उसके सौ पुत्र कौन और क्या हैं? काल के अन्त तक कल्पना-शक्ति अर्थात् काव्य मनुष्य के विकास में अपना उपयोगी और आवश्यक काम जरूर करेगा। हम विकारों का जिक्र इसीतरह करते रहेंगे मानों वे कोई व्यक्ति हों। क्या वे दुष्ट मनुष्यों की तरह हमें नहीं सताते? इसलिए और स्थानों की तरह इस स्थान पर भी अक्षरार्थ करने से मृत्यु है और आशय ग्रहण करने में जीवन-लाभ है।

प्रिय और अप्रिय सत्य

हाल ही प्रकाशित हुए एक लेखक के एक पत्र में से मैंने कुछ वाक्य निकाल डाले थे। उसके सिलसिले में वे शिकायत करते हैं—

"मेरे उस पत्र से आपने जो कुछ अंश निकाल डाला, उसके होते हुए भी मैं कहता हूं कि आपको भेजे अपने तमाम पत्रों में और खास कर उनमें जिनका संबंध जाति-गत प्रश्नों से है, मैंने 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' इस दूरदृष्टि-पूर्ण वचन का पालन नहीं किया है, बल्कि विलियम लाइड गैरिसन की उस उक्ति का पालन किया है, जो कि 'इंडियन सोशल रिफार्मर' बम्बई का ध्येय-सूत्र है — मैं सत्य की तरह कठोर-अप्रिय बोलूंगा और न्याय की तरह अटल आग्रही रहूंगा आदि"

मैं अप्रिय सत्य का ख्याल नहीं करता। हां, तीखे चटपटे सत्य पर जरूर मेरा एतराज है। तीखी-चटपटी भाषा सत्य के नजदीक उतनी ही विजातीय है जितनी कि निरोग जठर के लिए तेज मिर्चियां। जो वाक्य मैंने हटा लिये थे वे लेखक के आशय को स्पष्ट करने के लिए या उसमे से कोई मुद्दा निकालने के लिए आवश्यक न थे। वे न तो उपयोगी थे न आवश्यक, उल्टा दिल दुखाने वाले थे। ऐसा विचार करने का रिवाज सा पड़ गया दिखाई देता है कि सच बोलने के लिए मनुष्य को अप्रिय भाषा का प्रयोग करना चाहिए। हालां कि जब सत्य अप्रियता के साथ में उपस्थित करते हैं तब उसको हानि पहुंचती है। यह ऐसा ही है जैसा कि शक्ति को सहारा देना। सत्य स्वयं ही पूर्ण शक्तिमान् है और जब कड़े शब्दों के द्वारा उसकी पुष्टि का प्रयत्न किया जाता है तब वह अपमानित होता है। मुझे उस संस्कृत वचन में और गैरीसन के सूत्र में कोई विरोध नहीं दिखाई देता। मेरी राय में उस संस्कृत श्लोक का अर्थ है कि मनुष्य को सत्य प्रिय-मृदु भाषा में बोलना चाहिए। यदि कोई मृदुलता से ऐसा न कर सके तो बेहतर है कि वह चुप रहे। इसका आशय यह है कि जो मनुष्य अपनी जिह्वा को कब्जे में नहीं रख सकता उसमें सत्य का अधिष्ठान नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो 'अहिंसा-शून्य सत्य, सत्य नहीं, बल्कि असत्य है।' गैरिसन के सूत्र का अर्थ उसके जीवन को सामने रखकर लगाना चाहिए। वह अपने समय का एक नम्र से नम्र मनुष्य था। उसकी भाषा को देखिए, वह सत्य कीही तरह कठोर होगी पर चूंकि सत्य वही होता है जो कि कभी कठोर नहीं होता बल्कि हमेशा प्रिय और हितकर होता है, उस सूत्र का यही अर्थ हो सकता है कि गैरिसन उतना

हो नम्र होगा जितना कि सत्य। यह दोनों बचन वक्ता या लेखक की आंतरिक अवस्था से संबन्ध रखते हैं, उस प्रभाव से नहीं जोकि उन लोगों पर पड़ेगा जिनके संबन्ध में वह लिखा या कहा गया हो। "इण्डियन सोशल रिफार्मर" यदि अप्रिय बात करता हो तो बहुत ही कम। वह सब के साथ न्यायोचित व्यवहार करता है। हालांकि कभी कभी जल्दी में एकदम नतीजे निकाल बैठता है और आगे चलकर व्यक्ति और वस्तु के संबन्ध में अपने अनुमान उसे बदलने पड़ते हैं। इन दिनों जब कि चारों ओर कटुता फैली हुई है अति सावधानी भी कोई भारी बात नहीं कही जा सकती। और आखिर पूर्ण सत्य को जानता ही कौन है? मामूली व्यवहार में तो सत्य सिर्फ एक सापेक्ष शब्द है। जो बात मेरे नजदीक सत्य है वही आवश्यक रूप से मेरे अन्य साथियों के नजदीक सत्य नहीं हो सकती। हम सब उन अन्धे आदमियों की तरह हैं जिन्होंने हाथी को टटोल टटोल कर उसका जुदा जुदा वर्णन किया था। और उनकी बुद्धि और विचार के अनुसार वे सब सच थे। परंतु हम यह भी जानते हैं कि वे सब गलती पर थे। हर आदमी सत्य से बहुत दूर रहा था। इसलिए यदि कोई आदमी कटुता से बचने रहने की आवश्यकता पर जोर दे तो वह कुछ ज्यादह बात नहीं कही जा सकती। कटुता से कल्पना-पथ मलिन हो जाता है। और मनुष्य उस मर्यादित सत्य को भी देखने में उस हद तक असमर्थ हो जाता है जिस हदतक कि शरीर से अन्धे मनुष्य देख पाये।

खादी-कार्यकर्त्ताओं का लेखा—

नीचे लिखा ब्योरा और मिला है—

प्रान्त या केन्द्र का नाम	कार्यकर्त्ताओं की संख्या	वैतनिक या अवैतनिक	ग्रेजुएट	कुल वेतन	औसत खर्च फी कार्यकर्ता
सिन्ध	६ पूरा समय काम करने वाले	५ वै० १ अवै०		२३०)	३८
	३ कुछ समय ,,	२ वै० १ अवै०	१	११५)	३८
पंजाब खादी मण्डल	१२	कोई	तफसील	नहीं	लिखी
देहली	७ पूरा समय काम करने वाले	६ वै० १ अवै०		१६५)	२३-५
	१ कुछ समय ,,	तमाम अवै०		०	०

(यं० इं०) मो० क० गांधी

'माधुरी' और गंदे विज्ञापन

'माधुरी' हिन्दी की लोक-प्रिय और लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रिका है। उसके कुछ गंदे विज्ञापनों की ओर लोगों का ध्यान गया। एक विज्ञापन ने तो कुछ सनसनी भी फैला दी थी। मैंने उसके उत्साही और हितेच्छु सम्पादक का ध्यान उसकी ओर खींचा। जब पर उन्होंने जो कार्रवाई की और जो उत्तर मुझे भेजा वह उनकी प्रतिष्ठा और 'माधुरी' की शोभा बढ़ाने वाला है। आपने केवल उस विज्ञापन को ही नहीं निकलवा डाला, बल्कि अन्य ऐसे विज्ञापनों के निकाल डालने की भी तैयारी दिखलाई है। आप लिखते हैं कि मैं शुरू से ही अश्लील विज्ञापनों के खिलाफ हूं। २ वर्ष हुए मैंने खुद 'माधुरी' में इसपर एक नोट लिखा था। तब 'माधुरी' में ऐसे विज्ञापन प्रायः छपते भी नहीं थे। इधर ही छपने लगे हैं।' पर अब तो आपने उन्हें न छपने देने का ही निश्चय प्रकट किया है। निस्सन्देह इस कार्य और नीति के लिए वे अपने पाठकों के धन्यवाद-भाजन हैं। माधुरी के आन्तरिक गुणों के साथ साथ बाहरी रूप और गुण में भी शुद्धि और वृद्धि होती रहेगी तो उससे हिन्दी-समाज की बड़ा सेवा होगी। खुशी की बात है कि 'माधुरी' इसमें दिन दिन आगे बढ़ रही है। मुझे आशा है कि हिन्दी के अन्य पत्र-पत्रिका भी जो अबतक किसी न किसी कारण से गंदे विज्ञापनों के मोह से अपनेको छुड़ा नहीं पाये हैं 'प्रताप' और 'माधुरी' से शिक्षा ग्रहण करेंगे। बुराई बुराई ही है और उससे किसी भी अंश में कभी अच्छा फल नहीं निकल सकता। यदि आज किसी बात में उसका नतीजा अच्छा या हमारे अनुकूल दिखाई पड़ता है तो इसका कारण यही है कि उसके छिपे बुरे नतीजे की ओर, जो कि हमें अप्रिय है और लक्ष्य नहीं रहा है, सहसा हमारा ध्यान नहीं जाता। हमें अपने पत्रों का जीवन इसीलिए न प्यारा और अभीष्ट है कि हम उसके द्वारा जन-सेवा की आशा और संभावना देखते हैं ! पर यदि गंदे विज्ञापनों को अपना करके आज हम प्रत्यक्ष रूप से अपने पाठकों का अहित-साधन कर रहे हैं तब हम यह कैसे कह सकते हैं कि हमें केवल पाठकों की सेवा का ही खयाल है ? हम एक बात में पाठकों की सेवा करते हैं तो दूसरी बात में अ-सेवा। सच्ची सेवा हमारे हाथों तभी होगी जब हमारी सेवा के साधन शुद्ध और स्वच्छ होंगे। यदि हिन्दी के पत्र-संचालक अपनी इस थोड़ी सी कमजोरी पर विजय प्राप्त कर लें तो वे देखेंगे कि उनके पत्र के भविष्य की चिन्ता उनकी अपेक्षा उनके पाठकों को, और उनसे भी अधिक उस जगदीश्वर को है जिसे अपने बाल-बच्चों का हित हम से अधिक प्यारा और अभीष्ट है और जिसको चिन्ता उसे हमसे अधिक है। पत्र पाठकों की सेवा के लिए निकाला जाता है, अतएव उसके भरण-पोषण की चिन्ता का भार संचालक के सिर पर नहीं, बल्कि पाठकों के सिर पर रहना चाहिए। पाठक इस जिम्मेवारी को तभी अनुभव कर सकेंगे जब एक तो हम उनकी स्वच्छ और सच्ची सेवा करें और दूसरे अपने लेखों और व्यवहारों से उनके हृदय पर यह भाव अंकित करें कि वे केवल पाठक नहीं पत्र के मालिक भी हैं। संपादक बेचारा पत्र को लिखने की चिन्ता करे या उसका पेट भरने की भी ? पत्र का पेट भरना काम पाठकों का है। हम विज्ञापनों के संबंध में अपनी नीति को संशोधित कर के, पाठकों का काम अपने सिर से हटा कर पाठकों को सौंपने के मार्ग में जरूर आगे बढ़ सकेंगे। आशा है, हिन्दी के अन्य पत्र-संपादक और संचालक इस विषय में उदासीन न रहेंगे। ह० उ०

देशबन्धु-स्मारक कोष

६-८-२५ तक पं. जवाहरलाल नेहरू के पास २९,०५०-१२-६ पहुंचे हैं और १६-९-२५ तक 'नवजीवन' कार्यालय में ११४६-१४-३ प्राप्त हुए हैं। कुल रकम ३०१९७-१०-९ हो जाती है।

हिन्दी-नवजीवन

बुधवार, आश्विन बदी १४, संवत् १९८२

अमेरिकन मित्रों से

मुझे कितने ही अ-ज्ञात योरपियन और अमेरिकन मित्रों की मित्रता का सौभाग्य प्राप्त है। मुझे यह लिखते हुए खुशी होती है कि उनका दायरा लगातार बढ़ रहा है खास कर शायद अमेरिका में। कोई एक साल पहले मुझे अमेरिका आने के लिए एक आग्रह-पूर्ण निमंत्रण मिला था। अब और भी जोर के साथ वही निमंत्रण फिर दिया गया है और सो भी आने-जाने का तमाम खर्चा उठाने के आश्वासन-सहित। मैं तब उस कृपा-पूर्ण निमंत्रण को स्वीकार करने में असमर्थ रहा और आज भी हूं। उसे स्वीकार करना तो बड़ा आसान काम है; पर मुझे इस मोह से अभी अवश्य बचना होगा; क्योंकि मेरा दिल कहता है कि जबतक मैं भारत के शिक्षित और बुद्धि-वादी लोगों का और मेरा संबंध ठीक न कर लूं तब तक मैं उस महा-द्वीप के लोगों के हृदय को अच्छी तरह न समझा सकूंगा।

मुझे अपनी सैद्धान्तिक स्थिति में तो कोई सन्देह नहीं है। पर अभी मैं अधिकांश शिक्षित लोगों को उसका कायल करने में समर्थ नहीं हो रहा हूं। ऐसी अवस्था में जबतक भारत के शिक्षित-समुदाय ने मुझे छोड़ रक्खा है तबतक मैं अमेरिकन या योरपियन मित्रों से अपने देश के लिए कोई कारगर सहायता नहीं प्राप्त कर सकता। हां, मैं जरूर सारी दुनिया को दृष्टि-पथ में रख कर विचार करना चाहता हूं। मेरी देश-भक्ति में सामान्यतः सारी मानव-जाति का हित समाविष्ट है। अतएव मेरी भारत-सेवा में सारी मनुष्य-जाति की सेवा का अन्तर्भाव हो जाता है; पर मेरा हृदय कहता है कि यदि मैंने उसे पश्चिम की सहायता पर छोड़ दिया तो मैं अपनी कक्षा के बाहर चला जाऊंगा। इसलिए फिलहाल तो मुझे अपने भारत के संकुचित मंच से पुकार कर ही पश्चिम से जो कुछ सहायता मिल सके उसपर सन्तुष्ट रहना चाहिए। यदि मुझे अमेरिका और योरप जाना ही हो तो मुझे अपनेको शक्तिमान् बना कर जाना चाहिए, न कि अपनी कमजोरी की हालत में, जो कि मैं महसूस करता हूं कि आज है। अपनी कमजोरी से मेरा मतलब देश की कमजोरी से है। क्योंकि भारत की आजादी की सारी तजवीज का दारोमदार उसकी भीतरी शक्ति के विकास पर है। वह आत्म-शुद्धि की तजवीज है। अतएव पश्चिम के लोग अपने यहां से विशेषज्ञों को उस योजना के मर्म को समझने, उसका अध्ययन करने के लिए भेज कर ही भारतीय आन्दोलन की सर्वोत्तम सहायता कर सकते हैं। वे अपने दिल और दिमाग को खुला रख कर यहां आवें, और आवें एक सत्य-शोधक के विनय-भाव को साथ ले कर। तब शायद वे उसकी वास्तविक स्थिति को देख पावेंगे। यदि मैं अमेरिका गया तो तो मेरा पूर्ण सत्य-निष्ठ रहने का निश्चय होने पर भी संभव है कि मुझसे भारत का एक गौरव-पूर्ण संस्करण उनके सामने पेश हो जाय। लिखित अथवा कथित शब्द-बल की अपेक्षा मैं विचार-शक्तिका अधिक कायल हूं। और यदि यह हलचल जिसको कि मैं पेश करना चाहता हूं अपने अन्दर जीवनी शक्ति रखती होगी और ईश्वर का वरद हस्त इसपर होगा तो संसार के भिन्न भिन्न भागों में मेरे शरीर की उपस्थिति के बिना ही वह सारे विश्व में फैले बिना न रहेगी। जो हो; इस समय तो मुझे अपने सामने प्रकाश नहीं दिखाई दे रहा है। मुझे धीरज रख कर यहीं भारत में ही किसी तरह आफत-मुसीबत उठाते हुए अपना रास्ता तय करना होगा जब तक कि मुझे भारत की सीमा के बाहर जाने का साफ रास्ता न दिखाई दे।

निमंत्रण का आग्रह करने के बाद उस अमेरिकन मित्र ने मेरे विचार के लिए कई प्रश्न पेश किये हैं। मैं उनका स्वागत करता हूं और खुशी के साथ उनका उत्तर यहां देता हूं। वे कहते हैं —

"आप चाहे आज या आगे कभी यहां पधारने का निश्चय करें या न करें, मुझे विश्वास है कि आप नीचे लिखे प्रश्नों को अपने विचार के योग्य समझेंगे। बहुत समय से वे मेरे दिमाग में घूम रहे हैं।"

उनका पहला प्रश्न यह है —

"क्या वह समय आ गया है — या आ रहा है — जब कि आप भारत की सब से अच्छी सहायता दुनिया और खास कर के योरप और अमेरिका में एक नये आत्म-चैतन्य का प्रादुर्भाव कर के, करें?"

इस प्रश्न के कुछ अंश का उत्तर ऊपर आ ही चुका है। मेरी राय में अभी वह समय नहीं आया है — किसी दिन आ सकता है — जब कि मैं भारत के बाहर जाऊं और सारी दुनिया में नई आत्म-जागृति फैलाऊं, जो कि अब भी अप्रत्यक्ष और अज्ञात-रूप से धीरे धीरे हो रही है।

"क्या सारी मानव जाति के वर्तमान हित सब जगह इतने जटिल रूप से परस्पर-संमिश्र नहीं है कि भारतवर्ष जैसा कोई भी एक देश दूसरे देशों के अपने वर्तमान संबंधों से बहुत दूर नहीं हटाया जा सकता?"

मैं लेखक की इस बात को मानता हूं कि कोई भी देश बहुत समय तक दुनिया से अकेला नहीं रह सकता। भारत को स्वराज्य प्राप्त करने की वर्तमान योजना ऐकान्तिक स्थिति प्राप्त करने की योजना नहीं है, बल्कि सारे विश्व के लाभ के लिए पूर्ण आत्म-साक्षात्कार और आत्म-कथन की है। वर्तमान गुलामी और असहाय अवस्था से केवल भारत को ही नहीं, केवल इंग्लैंड को ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया को हानि पहुंचती है।

"क्या आपका संदेश और साधन आवश्यक अंश में विश्वव्यापी मन्त्र नहीं है, जो कि अनेक देशों के यत्र-तत्र बिखरे सहृदय जनों के हृदय पर अपनी सत्ता जमावेगा, और वे लोग उसको पा कर धीरे धीरे संसार का काया-पलट कर देंगे?"

यदि मैं बिना अहंकार के और उचित नम्रता के साथ कह सकता हूं तो मेरा सन्देश और मेरे साधन अवश्य ही अपने आवश्यक अंश में सारी दुनिया के लिए हैं और यह जानकर मुझे तीव्र संतोष होता है कि पश्चिम के कितने ही और दिन दिन बढ़ने वाले नर-नारियों ने इसे अपने हृदय में अपना लिया है।

"यदि आप सिर्फ पूर्व की ही भाषा में और केवल भारत की आवश्यक बातों को दृष्टि में रखकर अपने संदेश का प्रत्यक्ष प्रयोग करेंगे, तो क्या इस बात का खतरा नहीं है कि अनावश्यक बातों की खिचड़ी मूल सिद्धान्तों के साथ हो जाय — वे बातें जो कि केवल भारत की एक सिरे पर पहुंच जानेवाली स्थितियों के अनुरूप हैं, गलती से सारी दुनिया की दृष्टि से परम आवश्यक समझ ली जायं?"

लेखक का बताया खतरा मेरे ध्यान में है, पर वह अनिवार्य मालूम होता है। मैं एक ऐसे वैज्ञानिक की हालत में हूं जिसका

कि प्रयोग अभी बहुत-कुछ अधूरा है और इसलिए जो अभी उसके बड़े बड़े परिणामों और उप-सिद्धान्तों का अनुमान ऐसी भाषा में व्यक्त करने में असमर्थ है जिसे सब समझ सकें । इसलिए इस प्रयोगावस्था में तो गलत-फहमी की जोखिम उठाये बिना छुटकारा नहीं दिखाई देता, और गलतफहमी तो होती ही आ रही है और अब भी शायद बहुत जगह जारी है ।

"क्या आपको इसलिए अमेरिका, (जो कि अपने दोषों के रहते हुए भी शायद दुनिया की सब जीवित प्रजाओं से अधिक आध्यात्मिक बनने की शक्ति अपने गर्भ में रखता है) न आना चाहिए, कि आप पश्चिमी और उसी प्रकार पूर्वी सभ्यता की भाषा में दुनिया को अपने संदेश का तात्पर्य समझा सकें ? "

लोग सामान्यतः मेरे सन्देश को उसके परिणामों पर से समझेंगे । इसलिए उसके लोगों के द्वारा कारगर तौर पर सुने जाने का सब से छोटा रास्ता शायद यही होगा कि वह खुद ही अपनी बात कहे, कम से कम वर्तमान अवस्था में तो ।

" जैसे—क्या आपकी प्रेरणा के पश्चिमी अनुयायी चरखा कातें और उसका प्रचार करें ? "

अवश्य ही पश्चिमी लोगों के लिए चरखा कातने और उसका प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है—हां, वे भारत के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करने या अपनी संयम-साधना के लिए, अथवा चरखे की गृहउद्योग-संबंधी आवश्यक विशेषताओं को कायम रखते हुए उसे और अधिक उपयोगी बनाने में अपनी आविष्कारक बुद्धि-शक्ति का प्रयोग करने के लिए उसे चलावें तो हर्ज नहीं । परन्तु चरखे का सन्देश तो उसकी परिधि से बहुत ही व्यापक है। उसका पैगाम है—सादा जीवन, मानव-जाति की सेवा, औरों को हानि न पहुंचाते हुए रहना, धनी और निर्धन, राजा और रंक में अटूट ममत्व-बंधन उत्पन्न करना । यह व्यापक सन्देश अवश्य ही सब के लिए है ।

"रेल-रोड, डाक्टर, अस्पताल तथा आधुनिक सभ्यता के अन्य अंगों की जो निन्दा आपने की है क्या वह परम आवश्यक है और अपरिवर्तनीय है ? क्या हमें पहले अपनी आत्मिक शक्ति का इतना विकास न कर लेना चाहिए कि जिससे यन्त्र-साधन को तथा आधुनिक जीवन की सु-संगठित, वैज्ञानिक और उत्पादक शक्तियों को आध्यात्मिक रंग में रंग सकें ! "

रेल-रोड आदि-संबंधी मेरी निंदा है तो सच और वह ज्यों की त्यों कायम भी है, फिर भी वर्तमान आन्दोलन पर उसका कुछ असर नहीं है—इसमें तो लेखक-वर्णित किसी बात का तिरस्कार नहीं है । वर्तमान हलचल में मैं न तो रेल-रोड पर हमला कर रहा हूं और न अस्पतालों पर; पर आदर्श अवस्था में मुझे उनके लिए या तो बिलकुल नहीं, या बहुत कम स्थान दिखाई देता है ।

वर्तमान आन्दोलन ठीक वैसा ही प्रयत्न है जैसी कि लेखक की अभिलाषा है। पर वह यन्त्र-सामग्री को आध्यात्मिक रूप देने की हलचल नहीं है। यह तो मुझे असंभव बात मालूम होती है। हां, इतना हो सकता है कि यन्त्रों के संचालक मनुष्यों में मानुष-भाव, दया-धर्म की प्रेरणा की जाय । धन, सत्ता को थोड़े लोगों के हाथों में केन्द्रित करने और बहुतेरे लोगों को लूटने के लिए एकत्र करने के उद्देश से यन्त्र-कला का संगठन करना मैं बिलकुल अनुचित समझता हूं । वर्तमान समय का बहुतेरा यन्त्र-संगठन इसी नमूने का है। चरखे की हलचल क्या है ? यन्त्र-कला को उस एकाकी और लुटाऊ की स्थिति से हटा कर उसके योग्य स्थान पर बिठाने का उद्योग । अतएव मेरी योजना में यन्त्र-उद्योग से संबंध रखनेवाले पुरुष न केवल अपना, न केवल अपने राष्ट्र का, बल्कि सारे मनुष्य-समाज का विचार करेंगे । इस तरह लंकाशायर का अपने यन्त्र-उद्योग का उपयोग भारत तथा दूसरे देशों की आर्थिक लूट के लिए करना बन्द हो जायगा, और इसके प्रतिकूल वे ऐसे उपाय सोचेंगे जिससे भारतवर्ष अपने कपास को खुद अपने ही गांवों में कपड़े के रूप में परिवर्तित कर सके । और न अमेरिकन लोग अपने आविष्कारक बुद्धि-कौशल के द्वारा पृथिवी की दूसरी जातियों को लूट कर अपनेको मालामाल कर सकेंगे ।

" अमेरिका जैसे देश की अनुकूल परिस्थिति में क्या यह संभवनीय नहीं है कि मनुष्य सर्वोत्तम आत्म-जागृति को सिद्ध करे और आगे बढ़ावे और उसे ऐसे प्रयोजन और शक्ति, साहस और माधुर्य के रूप में परिणत करे जिससे भारत के करोड़ों तथा पृथिवी के चारों कोने के लोगों की आत्माओं को मुक्ति मिले ? "

यह जरूर हो सकता है । अवश्य ही मुझे यह आशा है कि अमेरिका मनुष्य की सर्वोत्तम आत्म-जागृति करने का उद्योग करेगा; पर शायद वह समय अभी नहीं आया है । शायद वह भारत के अपने आत्म-दर्शन के पहले न भी आवे । इससे बढ़ कर खुशी मुझे और किसी बात से नहीं हो सकती कि अमेरिका और योरप अपनी शक्ति भर भारत के दुर्गम पथ को सुगम बनावें । भारत के रास्ते में जो जो मोह और प्रलोभन सामग्री है उसे हटा कर और उसे अपने प्राचीन उद्योगों का अपने गांवों में पुनरुत्थान करने के लिए उत्साहित करते हुए वे ऐसा कर सकते हैं ।

"इसका क्या कारण है कि हर देश में मुझ जैसे लोग आपके कृतज्ञ हैं और आपका अनुकरण करने के लिए उत्सुक हैं ? क्या इसके ये दो कारण मुख्य नहीं हैं ?

पहला — सारे संसार को एक नयी आत्म-जागृति की आवश्यकता है — हर शख्स के विचार और भाव में इस अनुभव की जरूरत है कि मनुष्य-मात्र में समान दैवी अंश है, सब में बन्धु-भाव और एकता स्थापित होने की आवश्यकता है ।

दूसरा — दूसरे किसी विश्व-विख्यात व्यक्ति की अपेक्षा आपमें वह आत्म-चैतन्य है — यही नहीं बल्कि उसे औरों में जाग्रत करने का सामर्थ्य भी है । "

मैं सिर्फ यही आशा कर सकता हूं कि लेखक का अनुमान सच हो ।

" यह सारी दुनिया की आवश्यकता है — है न ? — —— जिसका कि जवाब आप सबसे अच्छी तरह दे सकते हैं — वह जवाब जो कि ईश्वर ने मनुष्य को कृपा-पूर्वक बख्शा है ? आपका जीवन-कार्य अकेले भारत में ही कैसे पूरा हो सकता है ? यदि मेरे हाथ या पैर में इतनी जीवनी शक्ति डाल दी जाय कि जो मेरे शरीर के तौल से बहुत बाहर हो तो उससे मेरा सामान्य स्वास्थ्य अच्छा रहेगा — या उस एक प्रिय अंग-विशेष को भी उससे स्थायी लाभ होगा ? "

मैं अच्छी तरह जानता हूं कि अकेले भारत में मेरा जीवन-कार्य पूर्ण न होगा । परन्तु, मैं समझता हूं मुझमें अपनी मर्यादितता को स्वीकार करने की तथा इस बात को देखने की नम्रता है कि जबतक खुद भारतवर्ष में मेरे प्रयोग का परिणाम न मालूम हो जाय तबतक मुझे अपने भारत के मर्यादित मंच पर ही खड़े रहना चाहिए । जैसा कि मैं पहले जवाब दे चुका हूं, मैं भारतवर्ष को एक स्वतंत्र और बलवान् राष्ट्र देखना चाहता हूं जिससे कि वह संसार के भले के लिए अपनेको शुद्ध और उत्सुक बलिदान के निमित्त अर्पित कर सके । शुद्ध व्यक्ति कुटुंब के लिए, कुटुंब गांव के लिए, गांव जिले के लिए, जिला प्रान्त के

लिए, प्रान्त राष्ट्र के लिए और राष्ट्र सारे मनुष्य-समाज के लिए अपना बलिदान करता है।

"क्या मैं यह भी निवेदन करूं — आपके संदेश के प्रति भारी भक्ति-भाव रखते हुए,— कि अकेले या मुख्यतः भारतवर्ष के साथ मिलान करने की अपेक्षा सारी दुनिया के साथ मिलान करने से शायद खुद आपके भी दृष्टि-क्षेत्र और स्फूर्ति को कुछ लाभ हो?"

हां, मैं मानता हूं कि इस वक्तव्य में बहुत-कुछ बल है। यह कोई असंभव बात नहीं है कि मेरी पश्चिम-यात्रा के बदौलत मुझे व्यापक जीवन-दृष्टि तो नहीं — क्योंकि मैंने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि वह व्यापक से व्यापक है — पर हां, उस दृष्टि का अनुभव करने के लिए नये साधन मालूम हो सकें। मेरे लिए इसकी जरूरत है तो ईश्वर इसका रास्ता मेरे लिए खोल देगा।

"क्या भारतवर्ष अथवा अन्यत्र सरकार का राजनैतिक स्वरूप उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि व्यक्ति का आत्म-बल — अपने अन्दर तथा आसपास व्याप्त दैवी-भाव से जो कुछ सर्वोत्तम स्फूर्ति वह ग्रहण कर सकता है उसका साहसपूर्ण प्रकाशन?"

हां, व्यक्ति का आत्म-बल हमेशा बहुत महत्वपूर्ण वस्तु होती है। राजनैतिक स्वरूप उसी आत्म-बल का एक स्थूल रूप है। सर्व-सामान्य व्यक्ति के आत्म-बल से भिन्न मैं किसी सरकार के रूप को नहीं मानता। इसीलिए मैं मानता हूं कि लोग उसी सरकार को पाते हैं जिसके कि लायक वे होते हैं। दूसरी भाषा में कहूं तो स्व-राज्य स्व-प्रयत्न के ही द्वारा प्राप्त हो सकता है।

"क्या सब जगह व्यक्तियों में इस आत्म-बल के शुद्धिकरण और विकास की आवश्यकता ही मुख्य नहीं है — जो कि शायद थोड़े लोगों से शुरू होगी और एक दैवी स्पर्धा की तरह बहुतेरे लोगों में फैल जायगी?"

हां, जरूर है।

"आपकी यह शिक्षा ठीक ही है कि ऐसे आत्म-बल का ठीक ठीक विकास होने से भारत की आजादी का निश्चय हो जायगा। क्या सभी जगह वह तमाम राजनैतिक, आर्थिक और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के, जिनमें युद्ध और सुलह के प्रश्न भी शामिल है, स्वरूप को बदने में सहायता न देगी? क्या आज जब कि सारा मानव-समाज परस्पर पड़ोसी है, मानव-सभ्यता के वे स्वरूप भारत में सारी दुनिया से आमूलतः श्रेष्ठ बनाये जा सकते हैं?"

इससे पहले के छेदकों (paragraphs) में इसका उत्तर आ गया है। मैं इस पत्र में कई बार लिख चुका हूं कि भारत की स्वाधीनता से दुनिया की स्थान और व्यक्ति-संबंधी वर्तमान दृष्टि में क्रान्ति हुए बिना न रहेगी। उसकी अशक्ति का असर सारे मानव-समाज पर हो रहा है।

"मेरे तथा अन्य किसीकी अपेक्षा आप ही इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि इन प्रश्नों का उत्तर कैसा दिया जाय। मैं मुख्य कर के आ-के पत्र में अपनी श्रद्धा और अमेरिका तथा सारी मानुष्य-जाति के जरूरी कूट-प्रश्नों को हल करने में आपके नेतृत्व के प्रति अपनी अतृप्त तीव्र अभिलाषा प्रकट करना चाहता हूं। इसलिए क्या आप कृपा कर के इस बात को याद रक्खेंगे कि यदि (और जब) वह समय आवे कि बड़ी स्फूर्ति के साथ निर्दिष्ट आपकी दिशा में भारत की प्रगति रुकती हुई दिखाई दे — इस बात के इन्तजार में कि पश्चिमी दुनिया उसके साथ चले — तो हम पश्चिम-निवासियों का यह निमंत्रण आपकी सेवा में उपस्थित समझिए कि आप कुछ महीना अपना समय और अपनी मूर्ति का दर्शन हमें दीजिए। मेरे अपने दिल का भाव यह है कि यदि आप हमें बुलावेंगे और बतावेंगे तो हम (इस विशाल पृथिवी-पटल पर बिखरे हुए आपके अज्ञात अगणित अनुयायी) एक नये और उदार विश्व व्यापी आत्मिक कुटुम्ब के आविष्कार और साक्षात्कार में, जिसमें कि मनुष्य का चिरकालीन बन्धुभाव, प्रजा-सत्ता, शान्ति और आत्मोन्नति का स्वप्न क्या भारत, क्या इंग्लैंड, क्या अमेरिका और क्या और जगह के हर व्यक्ति के दैनिक जीवन की खूबी हो जायगी, आपके प्राणों के साथ अपने प्राणों को मिला देंगे।"

क्या अच्छी होता यदि सारी दुनिया का नेतृत्व करने की अपनी शक्ति पर मेरा विश्वास होता। अपने संबंध में मैं मिथ्या विनय नहीं रखता। यदि मेरे मन में ऐसी प्रेरणा होगी तो मैं ऐसे हार्दिक निमंत्रण को स्वीकार करने में एक मिनिट की देरी न करूंगा; परन्तु अपनी मर्यादितता के रहते हुए, जिसका कि दुःख-युक्त ज्ञान मुझे है, न जाने क्यों मेरा मन कहता है कि मेरा प्रयोग एक अंश तक मर्यादित ही रहे तो अच्छा। जो बात अंश पर घटित होगी वही पूर्ण पर होगी। हां, यह सच है कि मेरी निर्दिष्ट दिशा में भारत की प्रगति रुक गई सी मालूम होती है: पर मैं समझता हूं कि यह सिर्फ दिखाई ही देती है। १९२० में जो छोटा-सा बीज बोया गया था वह नष्ट नहीं हुआ है। मैं समझता हूं कि वह गहरी जड़ें पकड़ रहा है। बहुत जल्द वह एक विशाल वृक्ष के रूप में दिखाई देगा। पर यदि मैं भ्रम में भटक रहा हूं तो मेरी अमेरिका-यात्रा से मिल सकने वाला कृत्रिम और अस्थायी उत्साह उसको पुनर्जीवन नहीं दे सकता। मुझे उसका आगमन दिखाई दे रहा है। यह जरूरी निमंत्रण उसके अनेक लक्षणों में से एक लक्षण है। पर मैं जानता हूं कि उसके लिए हमें अपनेको पात्र बनाना होगा — तभी वह एक भारी बाढ़ की तरह, ऐसी बाढ़ कि जो सफाई कर डालती है और बल-प्रदान करती है, हमारे सामने उपस्थित होगा।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

शिक्षादायक तालिका

गुजरात प्रांतिक समिति ने नीचे लिखी एक तालिका तैयार की है। वह बहुत ही शिक्षाप्रद और मनन करने योग्य है—

"३१ अगस्त को समाप्त होनेवाले आधे वर्ष तक गुजरात प्रान्तिक समिति के सदस्यों के आये सूत-चन्दे का ब्योरा—

शुरू में सदस्य हुए		साल भर का चंदा दे देनेवाले	छः महीने का चंदा देनेवाले	अनियमित देनेवाले	पूरा नागा करनेवाले	कुल मिला सूत गज
'अ'	'ब'					
२२९५	३६५	२६६	३१४	१२५३	७२५	१,५८,३८,०००

सूचना—इस तालिका से यह जाना जाता है कि कुल २५८० सदस्यों में से, जो कि शुरू में सदस्य हुए थे, सिर्फ ५८० आगामी महासमिति के चुनाव में राय देने के मुस्तहक हैं।

अनियमित सूत देनेवालों का सूत ६७५० हजार गज अर्थात् औसतन ५५०० गज मिला है हालां कि मिलना चाहिए था १२००० गज।"

इन अंकों से हमें अपने सामने पड़े हुए काम का कुछ ख्याल हो सकता है। गुजरात में न तो संगठन की कमी है और न खादी कार्यकर्ताओं की। परन्तु यह एक अजीब बात मालूम होगी कि एक चौथाई से भी कम रजिस्टर्ड सदस्यों ने अपने कर्तव्य का पालन किया है। इन अंकों से उस कार्यकर्ता को जिसे कि धुन और लगन है और जिसे कि अपने और अपने अंगीकृत कार्य पर विश्वास है, निराश होने की आवश्यकता नहीं। पर उसे अपने कार्य के पथ की कठिनाइयों को कम न आंकना चाहिए। हम स्वराज्य तबतक न प्राप्त कर पावेंगे जबतक उसके लिए काम न करेंगे। महासभा के लोगों को अस्पष्ट वादा कर लेने की और उसको भूल जाने की बुरी आदत पड़ गई है, खास कर तब जब किसी काम का वादा किया हो। जीवन के मामूली व्यवहारों में भी हमें अपने दिये वचनों को पालना पड़ता है। व्यापारिक मामलों में तो वचन-भंग के लिए सजा भी भुगतनी पड़ती है। और अपनी बनाई संस्था को दिये स्वेच्छापूर्वक वचन का पालन करना तो सुव्यवस्थित समाज में व्यापारिक विषय में दिये वचन की अपेक्षा अधिक कड़ा बंधन होना चाहिए। इस तरह कानून की सत्ता के द्वारा अदा किये जाने वाले ऋण की अपेक्षा अपने मान-गौरव के लिहाज पर लिये ऋण की अदायगी पहले होनी चाहिए। परन्तु न जाने क्यों महासभा का ऋण अभी तक मामूली ऋणों की उच्चता और पवित्रता के भी पद पर नहीं पहुंच पाया है। जिन लोगों का विश्वास खादी पर नहीं है वे निस्सन्देह यह कहेंगे कि देखो यह कताई-मताधिकार की असफलता का ज्वलन्त प्रमाण है। मुझे ऐसे आक्षेपकों से इस पर बहस करने की धृष्टता करनी चाहिए। कताई मताधिकार ने ठीक ठीक अपने सब से निबल मुकामों को हमारी आंखों के सामने ला रक्खा है। और यह भी याद रखना चाहिए कि ४ आना मताधिकार का भी हाल इससे अच्छा नहीं रहा है। जिन लोगों ने एक बार अपना नाम रजिस्टर में लिखा लिया वे अपनी खुशी से दूसरी बार अपना चन्दा देने नहीं आये। और यदि चन्दा हर महीने लिया जाता तो उसमें भी वैसे ही लोग नागा करते जैसे कि सूत में करते हैं। परन्तु रुपया देना रोज-मर्रा काम करने से बिल्कुल भिन्न चीज है। स्वराज्य कोई रुपये का देनलेन नहीं है। वह रुपया दे कर खरीदने की भी चीज नहीं है। उसे तो ठोस, लगातार और जोरशोर के काम के द्वारा खरीदना होगा। और मैं यह कहने की धृष्टता करता हूं कि यदि महासभा ने चरखे की जगह पेन्सिल दुरुस्त करने का काम दिया होता तो भी फल यही निकलता। अतएव इन अंकों के अध्ययन से मैं यही नतीजा निकालता हूं कि हमको बेलगांव में शुरू किये तरीके पर ही काम जारी रखना चाहिए, यदि हम यह चाहते हों कि महासभा एक काम करने वाली, फलदायी और शक्ति-संपन्न संगठित संस्था हो। जहां तक दिखाई देता है अनिवार्य चरखा-कताई तो महासभा में से उठ जायगी, पर यदि महासभा कताई के लिए रुपये के चंदे के साथ मताधिकार में स्थान रहने दे तो उसे कारगर बनाने के प्रयत्न में शिथिलता न आने देनी चाहिए। ३० करोड़ नर-नारियों में हमें कुछ लाख ऐसे स्त्री-पुरुष मिलने में दिक्कत न होनी चाहिए जो राजी-खुशी देश के लिए बिला नागा नियमित श्रम करें। कताई को इसी कारण मैंने चुना है कि राष्ट्रीय दृष्टि से उसका बड़ा मूल्य है और चरखा बहुत सादा औजार है। गुजरात के भिन्न भिन्न जिलों के काम की तफसील पढ़ने का बोझ मैंने पाठकों पर नहीं डाला है। प्रान्तिक समिति के विवरण में तो जिलों के काम का ब्यौरा दिया गया है। समिति का संगठन इतना पूर्ण और इतना सच्चा है कि जहां लोगों की शक्ति ठीक तरह प्रकट की है तहां उनकी अ-शक्ति को भी छिपाने की चेष्टा नहीं की गई है। ब्योरे से मालूम होता है कि जो ५८० व्यक्ति अबतक अपना पूरा चंदा दे रहे हैं वे सारे गुजरात में फैले हुए नहीं हैं। बल्कि ५ कताई-संस्थाओं के लोग हैं। यदि ये न होतीं तो शायद ये ५८० भी नहीं रह जाते। इसलिए यदि स्वेच्छापूर्वक कताई को घर घर में फैलाना हो तो सारे भारत में चरखा-संघों की बड़ी आवश्यकता है।

(य० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

हमारी गंदगी

२

पिछले सप्ताह में हमने अपनी गंदगी का विचार किया था।

जहां तहां शौच जाने की आदत लोगों को छोड़ देनी चाहिए। शहरों में या गांवों में निर्दिष्ट स्थान पर ही शौच जाने की आदत हमें डालनी चाहिए। हमारी आजकल की आदत इससे उलटी है। इतना ही नहीं, वरन् घर के आंगन अथवा गली बिगाड़ने में भी हम लोग जरा नहीं सकुचाते। उससे दुर्गंध बढ़ती है, हवा खराब होती है और आंगनों या गलियों में नंगे पैर चलना तक मुश्किल हो जाता है। गांवों में कुछ खेत मुकर्रर कर लें, वहीं अथवा अपने अपने खेत में शौच जाना चाहिए और शौच-क्रिया पूरी करने के पीछे हरएक आदमी को उसपर कोरी मिट्टी डाल देना चाहिए। ऐसा करने का अच्छे से अच्छा तरीका है छोटी कुदाली या फावड़े से जमीन खोद कर गड्ढे में शौच जाना और फिर खोदी हुई मिट्टी से उस गड्ढे को भर देना। फिर अगर ऐसी जगहों पर कुछ निशानी रखने का रिवाज डाल दें तो सब लोग जान भी सकें। ऐसा करने में एकांत का भंग न हो इसलिए पांच सात जगहें मुकर्रर की जा सकती हैं।

लोग अगर समझ जांय और ऐसे प्रबन्ध के अनुकूल हों तो यह काम शीघ्र ही और बिना खर्च के हो सकता है। सच पूछा जाय तो इससे बिना परिश्रम ही प्रजा की सम्पत्ति बढ़ सकती है और तन्दुरुस्ती भी सुधर सकती है। जिस खेत में शौच जायेंगे उस खेत की पैदावार बढ़ेगी, यह तो सारे संसार का अनुभव है। यदि लोग इस योजना का मूल्य समझ जांय तो अपने खेत का ऐसा उपयोग करने के लिए उलटे और दाम खर्चेंगे। ऐसा दूसरे देशों में होता है। हमारे देश में भी कितने ही स्थानों में किसान लोग गांव का मैला ले जाने का ठेका लेते देखे गये हैं। मगर वे लोग इस बुरी तरह मैला उठाते हैं कि देखने से भी घिन लगती है। यदि मेरी सूचना काम में लाई जाय तो किसीको कुछ उठाने जैसा न रहे, हवा भी न बिगड़े और गांव भी साफ-सुथरे रहें।

यह तो हुई गांव की बात। शहरों में वैसा नहीं हो सकता। शहरों में तो पाखाने चाहिए ही। जहां विलायती ढंग के पाखाने हैं और नालियों के जरिये सारा मैला एक स्थान पर इकट्ठा किया जाता है उसकी चर्चा करना यहां निरर्थक है। हमें तो यही विचारना है कि लोग अपने आप क्या कर सकते हैं। लोगों को नीचे लिखे नियम अपनी खुशी से पालन करने चाहिएं: —

१, दोनों क्रियायें मुकर्रर की हुई जगह पर ही की जानी चाहिए।

२. गलियों में जहां तहां पेशाब करने बैठ जाना भी बुरा गिना जाना चाहिए।

३. जहां पेशाब की हो वहां पेशाब करने के बाद सूखी मिट्टी से उसे अच्छी तरह ढांक देना चाहिए।

४. पाखाने बिलकुल साफ रहने चाहिए जहां पानी गिरता है वह जगह भी स्वच्छ रहे। हमारे पाखाने मानों हमारी निन्दा करते हैं, स्वच्छता के नियमों का भंग दर्शाते हैं।

५. मैला सारा खेतों में जाना चाहिए। इन तमाम नियमों का पालन कैसे हो सकता है? उत्तर यह है कि शिक्षा द्वारा। जबतक लोग नियमों को समझ न जायंगे, उनका प्रयोजन जब तक वे न जानेंगे तब तक कायदा-कानून फिजूल है। कानून तो थोड़े से मनुष्यों के लिए हो सकता है। अधिकांश लोग जबतक कानून को न समझें अथवा न मानें तबतक उसके अनुसार दी जानेवाली सजा का कुछ भी उपयोग नहीं होता।

इस शिक्षा के लिए अक्षरज्ञान की जरूरत नहीं। 'जादू की लालटेन' द्वारा तथा भाषणों द्वारा गंदगी से पहुंचने वाली हानियों का और खाद के लिए मैले को बचाने के लाभों का ज्ञान लोगों को कराना चाहिए। भांति भांति के साधन बताने चाहिए।

पर सबसे बढ़िया शिक्षा तो स्वयं कर के दिखाना है। इसलिए जो लोग समझ गये हैं उन्हें स्वयं इन सूचनाओं पर अमल कर के दूसरों के सामने उदाहरण पेश करना चाहिए।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

'कलियुगी भीम' और ब्राह्मण-वर्ग

गत ८ सितम्बर को साबरमती में सुबह चार बजे पहले से समय ठीक कर के प्रो० राममूर्ति, जिन्हें कि अपनेको 'कलियुगी भीम' कहने में आनंद मिलता है, मुझसे मिले थे। उन्होंने आधुनिक ब्राह्मणों की दुर्दशा के विषय में मुझसे खासी बातचीत की और मुझसे ऐसे सवाल कराये जिनसे कि उन्हें बड़ा संतोष होता हुआ दिखाई दिया और हमारी अब्राह्मण आत्माओं में उस समय के लिए आत्मीय-भाव दिखाई दिया और उनके सामने ब्राह्मणों से जिनकी कि संख्या वे कहते हैं मुट्ठीभर है, अब्राह्मणों के युद्ध की कल्पना खड़ी हुई।

हमारी इस बातचीत के बाद उन व्यायाम के प्रोफेसर ने मेरी शारीरिक शक्ति पर चिन्ता के साथ अपने विचार प्रकट किये और 'निरोग शरीर में निरोग मन' के रहस्यों में मेरा प्रवेश कराया। उन्होंने मुझे खुशी के साथ अपने मत में मिलता हुआ देखा। उन्होंने व्यायाम के जो प्रयोग मुझे बताये वे थे तो आनंददायी परंतु मेरा ख्याल होता है कि मुझ जैसे अधेड़ आदमी के लिए अब वे भारी हैं। उन्होंने कहा कि समस्त योरोपियन व्यायाम—विधियों से मेरी यह विधि श्रेष्ठ है। मैंने हार्दिक भाव से उनके इस प्रमाण-पत्र की पुष्टि की। उनकी व्यायाम क्रियायें और कुछ नहीं, हठ-योग के अभ्यास थे। मैं समस्त नवयुवकों का ध्यान उनकी ओर दिलाता हूं। प्राणायाम का अभ्यास यदि किसी सिद्ध-हस्त मनुष्य की देख-रेख में किया जाय तो उससे स्वास्थ्य को बहुत लाभ पहुंचता है। पर इसके सम्बन्ध में कोई अपने आपको धोखा न दे लें। जो लोग इन अभ्यासों को करना चाहें वे केवल और एक-मात्र स्वास्थ्य के ही हेतु से ऐसा करें। एक हद तक उनका थोड़ा बहुत आध्यात्मिक मूल्य भी है। परन्तु मैं जोर के साथ कहूंगा कि नवयुवक आध्यात्मिक पुनर्जीवन प्राप्त करने के लिए हठ-योग के अभ्यास के फेर में न पड़ें। वर्तमान युग में शारीरिक अभ्यासों की अपेक्षा हार्दिक भक्ति से वह अधिक प्राप्त होता है और 'हठयोग' के [illegible] आध्यात्मिक गुण प्राप्त करने के लिए मनुष्य को ऐसे गुरु की आवश्यकता है जो इन अभ्यासों के द्वारा स्वयं आध्यात्म-सिद्ध हो गया है। मैंने ऐसे गुरु की खोज की; पर सफलता न हुई। पर इसका यह अर्थ नहीं कि भारतवर्ष में पूरे हठ-योगी अवश्य ही नहीं है। पर जहां मुझ जैसा जागरूक शोधक सफल न हुआ वहां नवयुवक सावधान रहें, और बिना कड़ी परीक्षा के किसी को अपना गुरु न बना बैठें।

पर मैं तो इधर-उधर भटक गया। मुझे अपने उस वादे का पालन करना चाहिए जो कि मैंने प्रो० साहब से किया था जब कि वे मेरी और उनकी राजनैतिक बात-चीत का सार मुझे दिखाने के लिए लाये थे। वे ऐसे समय में उसे लिख कर लाये थे जब कि उसे देखने का जरा भी अवकाश मुझे न था। इस लिए मैंने कहा था कि आप के लिखे मजमून को देखने के बनिस्बत मैं खुद ही उसका सार यं. इं. में दे दूंगा। उन्होंने मुझ से कहा कि म्युनिसिपल तथा जिला बोर्डों के चुनाव में आपके नाम का उन लोगों के द्वारा जो अपनेको महासभावादी और स्वराजी कहते थे, विधि-विरुद्ध दुरुपयोग हुआ था। और यह भी कहा कि इसके कारण जनता में आपका प्रभाव कम हो रहा है। मैंने उनसे कहा कि मुझे अपने प्रभाव का कुछ ख्याल नहीं है, और यदि लोग मेरे नाम का विधि-विरुद्ध उपयोग करें तो मेरे पास इसका कोई इलाज नहीं है। प्रो० साहब ने उसी क्षण जवाब दिया "क्या आप कम से कम यह भी नहीं कर सकते कि मतदाताओं पर अपना मत प्रकट कर दें कि वे क्या करें?" मैंने उत्तर दिया कि ऐसा तो मैं एक से अधिक बार कर चुका हूं। मेरे नजदीक खाली महासभा के नाम लेने से दाद नहीं मिल सकती। मैं सिर्फ उन्हीं लोगों को अपनी राय दे सकता हूं जो वास्तव में महासभावादी और स्वराजी हों। इसलिए मैं उन्हीं लोगों को अपनी राय दूंगा जो महासभा के ध्येय को मानते हों, जो सदा-सर्वदा हाथ-कती हाथ-बुनी खादी पहनते हों, जो सब जातियों की एकता पर विश्वास करते हों और यदि वे हिन्दू हैं तो वे अछूत कहलाने वाले भाइयों के सक्रिय हामी हों, और यह विश्वास करते हों कि अछूतपन का पाप अविलंब दूर होना चाहिए, जो नशीली वस्तुओं के पूरे निषेधक हों और महासभा के तमाम प्रस्तावों का पालन करते हों। और यदि मुझे ऐसे उम्मीदवार न मिलें तो मैं अपनी राय अपने पास रख छोड़ूंगा। राय का न देना भी मत-दाता के अधिकार का उसी तरह प्रयोग करना है जिस तरह कि उसका देना।

उसके बाद प्रो० साहब ने मुझसे ब्राह्मण का लक्षण पूछा। मैंने कहा — "ब्राह्मण वह है जो अपने धर्म और देश के लिए अपने को स्वाहा कर दे और उनकी सेवा के लिए अपने जीवन में दरिद्रता-धर्म को सानंद अंगीकार करे।" इसपर प्रो० साहब ने तुरंत पूछा "क्या ऐसे ब्राह्मण हैं भी?' मैंने जवाब दिया "बहुत नहीं, पर शायद जितना आप सोच रहे हों उससे अधिक होंगे।"

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

गो-रक्षा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक [illegible]

मुद्रक-प्रकाशक
स्वामी आनन्द

अहमदाबाद, आश्विन बदी ८, संवत् १९८२
गुरुवार, १० सितम्बर, १९२५ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

अछूतों के संबंध में

उस दिन कलकत्ते में आन्ध्र देश के श्री वी. एन. शर्मा मिले और उन लोगों के काम की कठिनाइयों के विषय में मुझसे पूछा जो कि पंचम लोगों की सेवा कर रहे हैं। उन्होंने उस बातचीत को लिख कर मेरे देखने के लिए और यदि मुमकिन हो तो छपने के लिए भेजा है। उसमें कार्यकर्ताओं को सहायता मिलने की सम्भावना है, इसलिए मैं उनके सवालों और अपने जवाबों को [illegible]

१. अछूतपन दूर करने के लिए आप किस तरह का प्रचार-कार्य करने की राय देते हैं?

अब बहुत जबानी प्रचार करने की जरूरत नहीं है। काम को ही प्रचार समझना चाहिए। आपको सामाजिक दिक्कतों की परवा न करते हुए बे-खटके अछूतों की हालत सुधारने का अपना काम करना चाहिए। जब कोई बड़े लोग आवें तो उनके व्याख्यानों की तजवीज करनी चाहिए।

२. हमारे प्रान्त में इस विषय पर दो राये हैं और इस आशय का एक प्रस्ताव भी पास हो चुका है कि अ-पंचम लोगों में प्रचार-काम करने के लिए रुपया न खर्च करना चाहिए। कुछ लोगों का विचार है कि पहले पंचम लोगों को शिक्षा-पदा देना चाहिए और उनकी तरफ से अछूतपन दूर करने की मांग पेश होनी चाहिए, पर कुछ लोगों का राय है कि उच्च वर्ण हिन्दुओं में उपदेशकों के द्वारा प्रचार करना चाहिए जिससे उनके हृदय का पलटा हो और वे समझने लगें कि अछूतपन एक पाप है और वैतनिक पण्डितों तथा दूसरे उपदेशकों को इस काम में नियुक्त करना चाहिए।

मैं पण्डितों पर एक पैसा खर्च न करूंगा। यदि आप उन्हें द्रव्य देंगे तो वे भक्त हो जायंगे। वे वेतन के लिए काम करेंगे। हां, पंचमों को अपनी स्थिति का ज्ञान कराने के लिए रुपया अलबत्ते खर्च होना चाहिए। हमारे साधन हमेशा शान्तिमय हों। उच्च वर्ण कहलाने वाले हिन्दुओं को अपने भाव बदल देने चाहिए और अपनी ही उच्चता और शुद्धि के लिए उन्हें यह कलंक धो डालना चाहिए। यदि वे ऐसा न करेंगे और उन्हें दबाने पर तुले रहेंगे, तो ऐसा समय आये बिना न रहेगा जब कि खुद अछूत लोग ही हमारे खिलाफ बगावत का झंडा करेंगे और संभव है कि वे हिंसा-काण्ड का भी आश्रय ले लें।

मैं अपनी तरफ से ऐसे किसी महा-संकट को रोकने का प्रयत्न अपनी पूरी शक्ति के साथ कर रहा हूं। और उन सब लोगों को भी ऐसा ही करना चाहिए जो कि अछूतपन को पाप मानते हैं।

३. क्या आप यह मानते हैं कि पंचम लोगों के लिए जो अलहदा स्कूल खोले जाते हैं उनसे अछूतपन के दूर होने में किसी तरह सहायता मिल सकती है?

आगे चल कर अवश्य ही सहायता मिलेगी, जैसी कि हर प्रकार की शिक्षा से मिलती है। परन्तु ऐसे मदरसे अकेले अछूतों ही के लिए न होने चाहिए और जातियों के लड़के भी उनमें लेने चाहिए। फिलहाल वे न आवेंगे, परंतु समय पा कर उनका दुर्भाव कम हो जायगा, यदि शाला की व्यवस्था अच्छी रही। यदि आप मिश्र-शालायें चाहते हों तो आपको अपने मुहल्ले में ऐसी एक पाठशाला खोलनी चाहिए। मान लीजिए कि आपका एक घर है। आपसे कोई यह न कहेगा कि अपने घर से चले जाइए। एक अछूत लड़के को अपने घर में ले आइए और पाठशाला शुरू कर दीजिए। और लड़कों को भी समझा कर लाइए।

४. हमारे प्रान्त में उन शालाओं को प्रोत्साहन दिया जाता है जिनमें अछूतों के तथा दूसरे लोगों के लड़के एक साथ पढ़ते हैं।

हां। आप उनको प्रोत्साहन दे सकते हैं। परंतु आपको उन मदरसों या संस्थाओं की सहायता करने से बाज न आना चाहिए जिनमें अकेले अछूतों के लड़के हों।

५. कुछ तालुका बोर्डों में ऐसे हुकुम जारी हुए हैं कि वे शालायें तोड़ दी जायंगी जो अछूतों के लड़कों को लेने से इनकार करती हैं। क्या हमको अपने प्रचारकों द्वारा उन स्कूलों में पंचम लोगों को भरती कराने में सहायता देनी चाहिए।

अवश्य। आपको उन्हें सहायता करनी चाहिए। पर खास तौर पर प्रचारक रखने की जरूरत नहीं है। आपके कार्यकर्ता ही उसके लिए काफी होंगे।

६. तो अब प्रचार-काम के बारे में आप क्या कहते हैं? क्या आप समझते हैं कि चुपचाप काम करना भर बस है?

हां, जब कि पंचम लोगों की हालत को ऊंचा उठाने के लिए कोई ठोस काम नहीं हो रहा हो तो जबानी प्रचार से लाभ न होगा। (इस सिलसिले में महात्माजी ने वायकम-सत्याग्रह का

जिक्र किया और कहा कि उसका उस प्रान्त के लोगों पर बड़ा भारी असर हुआ।)

तब मैंने पूछा —

७. तो फिर जब ऐसे प्रश्न पैदा हों तब क्या हम जी खोल कर प्रचार के लिए रुपया खर्च करें?

नहीं, जी खोल कर नहीं। ठोस काम खुद ही अपना प्रचार कर लेता है। वायकम में अधिकांश द्रव्य रचनात्मक कार्यों में खर्च किया गया है।

८. क्या आप निकट भविष्य में अछूतपन के प्रश्न में और भी जोर-शोर के साथ भिड़ जाने का विचार रखते हैं?

मैंने तो पहले ही उसे भरसक जोरशोर के साथ उठा लिया है। हम जहां कहीं सम्भव हो पाठशालायें खोलने, कुंएं खुदवाने और मंदिर बनवाने आदि की चेष्टा कर रहे हैं। काम रुपये के अभाव में रुकता नहीं है। पर शायद आप इसलिए कि पत्रों में उसकी शोहरत नहीं होती है, समझते हैं कि कुछ भी काम नहीं हो रहा है।

९. बेलगांव प्रस्ताव के अनुसार तो कोई भी स्कूल राष्ट्रीय नहीं हो सकता जिसमें पंचम लड़के न लिये जायं।

बेशक, वे राष्ट्रीय स्कूल हई नहीं।

१० क्या आपकी यह राय है कि ऐसे स्कूल यदि और सब शर्तों का पालन करते हों पर ऐसा न कर पाते हों तो क्या उन्हें महासभा से सहायता न मिलनी चाहिए?

नहीं, कोई सहायता न मिलनी चाहिए।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

अहमदाबाद के मजदूरों के साथ

गांधीजी ने अहमदाबाद में कुल थोड़े दिनों के लिए मुकाम किया। उस दरम्यान उनके सामने एक बड़ा भारी कार्यक्रम था और उसमें एक बड़ी दिलचस्पी का कार्य था अहमदाबाद में मजूर-संघ और खुद मिल-मजूरों की तरफ से खोली गई पाठशालाओं में पढ़ने वाले मिल के मजूरों के बालकों के साथ उनकी मुलाकात। इन पाठशालाओं में पढ़नेवाले बालकों की संख्या और शालाओं की संख्या का ब्योरा गांधीजी ने अन्यत्र दिया है। उन्होंने व्यवस्थापकों को उनकी सुव्यवस्था के लिए मुबारकबादी दी और उन्हें बालकों को साफ-सुथरा रहने की आदत डालने पर खास तौर पर ध्यान देने की सूचना की। इन शालाओं में कुछ अस्पृश्य बालक भी पढ़ते हैं और उनमें कताई सुव्यवस्थित रीति से की गई इन दो बातों ने गांधीजी को खास तौर पर आकर्षित किया। इन शालाओं में चरखे के बिना ही कताई करने की आजमायश होने के बारे में गांधीजी ने इस प्रकार कहा: "अब मैं समझ सका हूं कि शालाओं में चरखा दाखिल करने का विचार ठीक न था। तकली में जो फायदे हैं वे चरखे में नहीं हैं। मेरा विश्वास है कि सब चरखे नष्ट कर दिये जायं तोभी तकली में इतनी शक्ति है कि वह परदेशी कपड़े का पुरअसर बहिष्कार करने में समर्थ है। चरखा दर असल गृह-उद्योग के योग्य है। और तकली? उसमें न तो अमद की जरूरत है, न जोगी की और न तेल की। इसलिए वह शालाओं के योग्य है।" जब गांधीजी सभा में व्याख्यान दे रहे थे उस समय लड़कों को उसे सुनते हुए अपनी तकली चलाकर मजबूत एकसा तार निकालते हुए देखना बड़ा ही आनन्ददायक मालूम होता था। केवल दो महीने की आजमाइश का परिणाम यह हुआ है कि २०० से अधिक लड़के तकली पर कातना सीख गये हैं और अब दूसरे लड़कों में भी उसका शौक फैल रहा है।

शिक्षकों को और लड़कों को इस प्रकार कुछ कह कर उन्होंने लड़कों के साथ मन-बहलाव शुरू किया। उन्होंने कहा "लड़कों! अब तुम समझ गये न कि तुम्हें अपने दांत खूब साफ रखना चाहिए और नाखून बराबर कतरे हुए होना चाहिए। तुम लोगों में से मुसल्मान लड़कों को मैं एक बात कहता हूं। अरब के लोग अपने दांतों की खुबसूरती पर इतना ध्यान देते हैं कि जब वे जहाज पर चढ़ते हैं तब भी एक बड़ी दतौन अपने साथ रखते हैं और घण्टों उससे अपने दांत साफ किया करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि वे बड़े तन्दुरुस्त और खुबसूरत होते हैं। लेकिन आंतरशुद्धि का महत्व बाह्यशुद्धि के बराबर ही है" और यह कह कर जब गांधीजी ने एक लड़के से पूछा कि आंतरशुद्धि का क्या मतलब है? तो उसने फौरन् उत्तर दिया 'हृदय की शुद्धि' 'लेकिन हृदय कहां है?' एक लड़के ने अपनी छाती पर हाथ रख कर कहा 'यहां'। 'और ऐसा चौकीदार कौन है जो दिन रात चौकी किया करता है?' लड़कों ने उत्तर दिया 'ईश्वर'। गांधीजी ने कहा 'ठीक! तब तुम्हें हमेशा इस बात की चौकी करते रहना चाहिए ता कि उस चौकीदार को तुम्हें सुधारने के लिए दिन रात चौकी करने की तकलीफ न उठानी पड़े। शरीर और हृदय दोनों पर खूब ध्यान दे कर उन्हें शुद्ध रखना चाहिए। और मैं देखता हूं कि तुममें से बहुत से तो अस्पृश्य या ढेड़ हैं। तुम जानते हो कि तुम लोगों को—ढेड़ों के लड़कों को मैं अपने ही लड़के मानता हूं। और यदि तुम इसके लायक बनना चाहो तो तुम्हें दूसरे लड़कों से भी अधिक साफ-सुथरा रहना चाहिए।'

शाम को गांधीजी इन बालकों के मातापिताओं से उस वृक्ष के नीचे मिले जो १९१८ की सफल हड़ताल के दिनों से ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर चुका है। क्योंकि जिस वृक्ष के नीचे १९१८ में २३ दिन तक वे एकत्र हुए थे और गांधीजी और श्रीमती अनसूयाबाई के व्याख्यानों को सुना था वहां वे हर साल एकत्र होते हैं। यह बड़ी महत्व की बात है कि प्रधान मिलमालिकों में दो—सेठ अंबालाल साराभाई और श्री गोरधनभाई पटेल भी इस सभा में उपस्थित हुए थे। मजूर-संघ की वार्षिक रिपोर्ट बहुत बड़ी थी। लेकिन मंत्री ने सारी नहीं पढ़ी। व्यवहारदक्ष मनुष्य की तरह सिर्फ थोड़े में ही महत्व के विषय कह सुनाये। शालाओं से संबंध रखने वाले अंक और बातों से वे कुछ कम महत्व नहीं रखते हैं। इस वर्ष में मजूर संघ के कुल १४००० सदस्य हुए हैं और चन्दा कुल २५००० रुपया इकट्ठा हुआ है। हर एक विभाग में से एक एक प्रतिनिधि चुन कर भेजा गया है और वे साल भर में ७४ मरतबा एकत्र हुए थे। संघ के कार्यकर्ताओं की १३० सभायें मिलों के अहातों में दोपहर की छुट्टी में हुई थीं। संघ ने इस साल १८३ शिकायतों पर गौर किया था। संघ की तरफ से सत्तात्मक-रूप से कोई हड़ताल नहीं हुई थी। मंत्री ने इस बात पर संतोष जाहिर किया कि संघ के अधिकारियों के प्रति मिल के अधिकारियों ने बड़ी सहानुभूति दिखाई थी और बड़ा शिष्ट व्यवहार किया था और अक्सर उनकी न्याय करने की सच्ची ख्वाहिश दिखाई देती थी। हम आज यह कह सकते हैं कि शिकायत ले कर हमें आज तक कुछ मिलों में तो जाना ही नहीं पड़ा है। संघ की तरफ से एक 'सेविंग-बेंक' भी खोला गया है और रु. १०६६९ बहुत थोड़े व्याज पर मजदूरों को उनकी जरूरत के मुताबिक कर्ज पर दिये गये हैं। इसमें यह बात जानना बड़ा ही दिलचस्प प्रतीत होगा कि जो रकम कर्ज पर दी गई है उसका ५० फी सदी रुपया तो खास खर्च की कमी पूरी करने के लिए

लिया गया है। ४१ फी सदी रुपया उन लोगों को पुराना करजा अदा करने के लिए दिया गया था जिन पर २०० रुपया फी सदी ब्याज देना पडता था। संघ का एक खासा दवाखाना भी है जो अच्छे योग्य डाक्टर के अधिकार में है। औरतों के लिए भी एक प्रसूति-गृह तथा रोगिणियों के रहने का प्रबंध है। संघ ने ५६६२) को सस्ती खादी और १७०००) का अनाज बेचा। एक समाज सुधार विभाग भी है जो कि मजूरों की स्थिति का निरीक्षण करता रहता है। इसने २००० घरों से ब्योरा संग्रह किया और उसकी खोज का अच्छा फल मिलमजूरों की सामान्य ज्ञानवृद्धि तथा सामाजिक सुधार की प्रगति के हक में होगा। संघ ने मिलमालिकों से इस काम में सहयोग की प्रार्थना की है और वह ठीक भी है, क्योंकि मजूरों की हालत सुधारने से काम की सुचारुता बढ जायगी। पर यह ध्यान देने की बात है कि संघ मिलमालिकों के कुछ न करने को अपने कुछ न करने का बहाना नहीं बनाना चाहता। रिपोर्ट कहती है 'हम जानते हैं कि हमें बिलकुल तैयार हो कर मिलमें आना चाहिए और ठीक समय पर आकर काम शुरू कर देना चाहिए। कुदरती जरूरत से ज्यादा एक मिनट भी अपने काम के कमरों को खाली न छोडना चाहिए। हमें मिलवालों को यकीन दिला देना चाहिए कि हमारा काम, त्रुटिहीन है। मशीनों से हम बडे सावधानी से काम लेते हैं। कम से कम सामग्री खर्च होने और बिगडने देते है।' इस निश्चय के द्वारा संघ की स्थिति खास तौर पर मजबूत हो जाती है और उन्हें इस बात का हक हो जाता है कि मिलमालिकों से सहानुभूति और प्रोत्साहन प्राप्त करें। उनके एक प्रतिनिधि ने तो सभा में साफ साफ स्वीकार किया कि आजकल बाजार में जो बडी मंदी है उसकी वजाह से वेतन की कमी के कष्ट पर हम जोर नहीं दे सकते। और यदि पंचों के तय किये पिछले फैसलों की पाबंदी होती रहे तो बस है। मिलमजूरों के लिए यह कम श्रेय की बात नहीं है।

गांधीजी ने अपने भाषण में मजूरों के कर्तव्य पर खास तौर पर जोर दिया। वे जानते थे कि उन्हें पानी की कमी की, रसोई घर की जगह न होने की, पैखाने ठीक ठाक साफ न होने की, काम लेने वालों के द्वारा पीटे जाने और दुर्व्यवहार होने की तथा धासल विभाग में सिरों की बहुत टूटफूट होने और इस लिए कम काम होने और कम मजूरी मिलने की तकलीफें उनको थीं। पर उनको यह निश्चय था कि उनमें से कुछ बातें तो खुद उन्हीं पर—उनके ठीक ठीक स्वाभिमान का भाव जाग्रत कर लेने पर अवलंबित हैं। उन्होंने बडी खुशी के साथ इस बात का उल्लेख किया, कि संघ ने कुछ लोगों को ऋणमुक्त कर दिया है और थोडे सूद पर कर्ज दे कर भारी सूद के कर्ज से उनका पिंड छुडा दिया है। परंतु उन्हें इतना अधिक कर्ज लेना पडता है यह उनकी जीवन विधि पर एक शोकमय भाष्य ही है। उनको मजूरी कम मिलती हो पर उन्हें इसमें कुछ संदेह नथा कि यदि वे मितव्यय से काम लें, शराब आदि दूसरी बुरी बातों से बचे रहें तो उन्हें कर्ज लेने की जरूरत न रहेगी।' मुझे यह देखकर खुशी होती है कि मजूरों को मिल मालिकों की आज की कठिन स्थिति का ख्याल है। जब कि उन्हें बडी कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है तब आप ज्यादा वेतन नहीं मांग सकते। ऐसा वक्त भी आ सकता है जब कि स्वामिभक्त मजूर यह कहेंगे कि अच्छा, हम बिना ही मजूरी लिए काम करने को तैयार हैं जिस से कि मिलें बंद न करनी पडें। पर मैं जानता हूं कि आप आज उसके लिए तैयार नहीं हैं। आपके और मिल मालिकों के बीच इतना विश्वास नहीं है। आप आज अनेक अन्यायों के होते हुए भी मजूरी कर रहे हैं और जबतक मिल-मालिक अपने सौजन्य और सद्व्यवहार के द्वारा आपको अपना नहीं बना लेते तबतक आप ऐसा कुछ न करेंगे। मैं चाहता हूं कि आप इसी उद्देश को ले कर काम करें।

यह कहते हुए खुशी होती है कि इस संघ और मिल-मालिकों के संघ का संबंध परस्पर जितना अच्छा है उतना भारतवर्ष में शायद ही कहीं हो। इसका कारण है एक सुसंघटित और सबल मजूर संघ का होना। गांधीजी ने मिल-मालिकों के संघ के मंत्री से दिल खोल कर बातें कीं। और मिल-मालिकों के कर्तव्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और कहा कि किस तरह जमशेदपुर में ताता ने पानी पहुंचाने और मैला साफ करने के बारे में प्रबंध किया है और सुझाया कि उनके प्रबंध से एक सबक लेने योग्य है। मंत्री महाशय ने इस सूचना को अच्छी तरह ग्रहण किया और विद्यार्थियों की सभा में प्रकाशित किया कि पाठशालाओं के लिए रही बाकी रकम तुरंत ही दे दी जायगी और पानी की कमी तथा सिरों की टूट आदि के संबंध में जो शिकायतें मेरे पास पहुचेंगी उनपर मैं जरूर ध्यान दूंगा।

(यं० इं०) महादेव हरिभाई देसाई

बंगाली ईसाई-समाज

पिछले ६ महीने में गांधीजी ईसाइयों के जितने समागम में आये, पिछले सप्ताह में उन्होंने खास जल्से किये। 'भारतीय ईसाई' शब्द के बदले अब गांधीजी 'ईसाई भारतीय' संज्ञा का प्रयोग करते हैं। इसके प्रयोग की सूचना करने वाले एक ईसाई भाई हैं। इसमें बडा रहस्य है। पहली संज्ञा में जोर धर्म के भेद पर है और दूसरी में भारतीयत्व पर है।

कटक में जो ईसाईयों की सभा हुई थी उसके सभापति बाबू मधुसूदन दास खादीधारी थे। एक छोटी सी धोती और कुर्ता पहने थे। श्रोताओं में अधिकांश ईसाई ही थे। फिर भी बहुतेरे देशी पहनाव पहने थे और सभा का काम उडिया भाषा में हुआ था। यहां तो सब लोग सुधरे हुए शहर के शहराती ठहरे। सब साहब और सब अंग्रेजी बोलनेवाले, इसलिए यह सलाह कि ईसाई बन कर हिन्दुस्तानी-पन न खो बैठो, मर्मभेदक मालूम हुई।

सभा में धर्मांतर के प्रश्न की चर्चा की। यहां धर्मांतर के एक नये पहलू की तरफ ध्यान खींचा। "यदि आपको जान या अनजान में यह मालूम हुआ हो कि हिन्दू-धर्म में वहम और कुप्रथा ही जहां तहां भरे हुए हैं और इसलिए आप ईसाई हो गये हों तो उन वहमों से दूर रहिए। परन्तु देशी लोगों से क्यों दूर रहते हैं? ईसाई-धर्म यह तो नहीं शिक्षा देता कि वहमों की माया को छोड कर शराब की माया को पीछे लगा लो, विदेशी कपडे की माया को लगा लो, विदेशी रीतरिवाज की माया को लगा लो, और बन्धु—प्रेम और विश्वप्रेम की बातें करने के पहले देशप्रेमी तो बनो, देश के गरीबों के दुःख से दुःखी होने वाले तो बनो। यदि देश के दुःख का अनुभव करोगे तो किसी दिन विदेश के दुःख का भी अनुभव कर सकोगे। और देश के दुःख के अनुभव करने का एक लक्षण है—खादी और चरखे को उत्तेजना देना। खुद कातने में यदि मन न लगता हो तो गरीब लोग जिस कपडे को कात कर बनाते हैं उसको कम से कम पहनिए तो।"

योरपियन और ईसाई लोगों के साथ मिलाप यह बंगाल निवास के बडे महत्वपूर्ण उप-परिणाम कहे जा सकते हैं।

(यं० इं०) म० ह० दे०

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन बदी ८, संवत् १९८२

गो-रक्षा

ज्यों ज्यों मैं गोरक्षा के प्रश्नों का अध्ययन करता हूं त्यों त्यों मैं उसका महत्व समझता हूं। हिन्दुस्तान में गोरक्षा का प्रश्न दिन ब-दिन गंभीर होता जायगा, क्योंकि उसमें इस देश की आर्थिक स्थिति का प्रश्न छिपा है। मैं ऐसा मानता हूं कि धर्म-मात्र में आर्थिक, राजनैतिक इत्यादि विषयों का समावेश है। जो धर्म शुद्ध अर्थ का विरोधी है वह धर्म नहीं है; जो धर्म शुद्ध राजनीति का विरोधी है वह धर्म नहीं है। धर्म-रहित अर्थ त्याज्य है। धर्म-रहित राज्यसत्ता राक्षसी है। अर्थ आदि से निराली धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं है। व्यक्ति अथवा समाज धर्म से जीवित रहते हैं और अधर्म से नष्ट होते हैं। सत्य के अवलंबन के द्वारा किया अर्थ-संग्रह अर्थात् व्यापार प्रजा का पोषण करता है। सत्यासत्य के विचार से रहित व्यापार प्रजा का नाश करता है। ऐसे अनेक उदाहरण बताये जा सकते हैं कि असत्य से, छल-कपट से किया गया लाभ क्षणिक है और अंत में उससे हानि ही है।

इसलिए गोरक्षा के धर्म का विचार करते हुए हमको अर्थ का विचार करना ही पडेगा। यदि गोरक्षा शुद्ध अर्थ का विरोध करती हो तो उसका त्याग एकबारगी कर देना चाहिए। इसके बिना इस स्थिति में हम यदि गोरक्षा करना चाहेंगे भी तो वह असंभव सिद्ध होगी।

गोरक्षा के अंदर छिपे अर्थ-लाभ का विचार हमने नहीं किया। इसीसे जिस देश के असंख्य लोग गोरक्षा को धर्म मानते हैं उसी देश में गाय और उसके वंशज भूखों मरते हैं। उनकी सब हड्डियां बाहर निकली रहती हैं — ऐसी कि गिनी जा सकें। और उनका वध हिन्दुओं की केवल असावधानी के कारण होता है। गोरक्षा में हिन्दुस्तान की खेती की हस्ती का भी समावेश होता है। अब हिन्दू-मात्र गोरक्षा का अर्थशास्त्र समझ लेंगे तभी गो-हत्या बंद हो सकती है। धर्म के नाम पर होनेवाली हत्याओं से, हिन्दुओं की केवल मूर्खता से की जानेवाली हत्यायें सो-गुनी ज्यादह होंगी। जबतक हिन्दू खुद गोरक्षा का शास्त्र न समझेंगे तबतक करोडों रुपया खर्च होने पर भी गाय बचनेवाली नहीं।

देश के हिन्दू व्यापारी, मारवाडी गोरक्षा का प्रयत्न करते हैं। वे उसके लिए खूब धन खर्च करते हैं। उनमें भी सब से साहसी मारवाडी हैं। हिन्दुस्तान में ज्यादह से ज्यादह गौशाला खोलने वाले मारवाडी व्यापारी ही हैं। वे उसमें लाखों रुपये खुशी से देते हैं। और इसीसे मैंने कहा है कि मारवाडियों के बिना गोरक्षा का प्रश्न हल नहीं हो सकता। मैंने अनेक गोशालायें देखीं। किंतु उनमें से एक भी गोशाला के विषय में यह नहीं कह सकता कि यह आदर्श गोशाला है।

ये विचार कलकत्ते की लिलुआ की गोशाला देखने से उत्पन्न हुए हैं। इस गोशाला में हर वर्ष २॥ लाख रुपये खर्च होते हैं। किंतु उससे उसका मावजा कुछ नहीं मिलता ऐसा कहें तो इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं। हर वर्ष २॥ लाख रु० जिस गोशाला को मिलते हैं उसमें हर साल कम से कम १० हजार जानवर बचने चाहिए। इस संस्था में तो इतने जानवर पलते भी नहीं हैं। इसमें संचालकों का दोष नहीं और न उनकी भोलाभाली ही है। मुझे जो मंत्री यह संस्था दिखाने के गये वे संस्था की यथाशक्ति सेवा कर रहे थे। किंतु यहां पद्धति का दोष है। ऐसी संस्थाओं के संचालन के ज्ञान का अभाव है और इसीसे उन संस्थाओं से लोगों को लाभ नहीं मिलता है।

ऐसे धर्म-कार्य में व्यवहार-कुशलता की आवश्यकता नहीं मानी जाती है। उसके यथोचित रूप से चलने का प्रमाण इतना ही काफी मान लिया जाता है कि उसके व्यवस्थापक बेईमान अर्थात् खाऊ नहीं है। जिस व्यापार—काम में हरसाल २॥ लाख की रकम लगती हो उसमें अच्छे अच्छे नौकर रक्खे जाते हैं, लेकिन यहां तो घर के रोजगार में लगे हुए व्यापारी सेवाभाव से अपना थोडा समय उसे देते हैं। देनेवाले धन्यवाद के पात्र हैं। किंतु इससे गोमाता की रक्षा नहीं होती है। गोमाता की रक्षा के लिए कार्यदक्ष मनुष्यों की सहायता प्रत्येक क्षण उस कार्य के लिए मिलनी चाहिए, और यह तो सिर्फ ज्ञानवान, तपस्वी, त्यागी ही दे सकते हैं। अथवा कार्यकुशल लोगों उचित वेतन ले कर करें। धर्म करने वाले कार्य-कुशल भले ही न हों, किंतु धर्मादा कार्य के चलाने में तो व्यापारी से भी ज्यादह कुशलता, श्रम इत्यादि होने चाहिए। व्यापारियों के लिए जो नीति-नियम होते हैं वे सब धर्म-कार्य में भी होना चाहिए। गोशाला यदि व्यापार के लिए चलती हो तो उसमें उस शास्त्र के ज्ञान वाले पुरुष काम करते होंगे और वे नित्य नये प्रयोग कर अधिकाधिक गायों का रक्षण करेंगे, गोशाला में पशु पालन के, दूध की स्वच्छता के, दूध के बढाने के अनेक प्रयोग करेंगे। यह तो स्पष्ट ही है कि पशु-पालन का जो ज्ञान गोशाला के द्वारा मिलता है वह और कहीं नहीं मिल सकता। किंतु गोशाला एक धर्म-कार्य है। वह चाहे जिस रीति से चल सकता है। उसकी कोई फिकर नहीं करता है। वेद की पाठशाला में यदि वेदों का ज्ञान कम से कम मिले तो जिस प्रकार उसकी अवज्ञा होती है वैसा ही हाल वर्तमान गोशालाओं का है।

लिलुआ की गोशाला की जगह की उत्तमता के विषय में मुझे संदेह है। मुझ जैसा गोशाला-शास्त्र न जाननेवाला भी कह सकता है कि यहां के मकान ठीक नहीं है। वहां दूध इत्यादि की परीक्षा का कोई साधन नहीं है। यह भी कोई नहीं कह सकता कि गाय के दूध में बढती हो सकती है या नहीं। ऐसा मालूम होता है मानों मालिक होते हुए भी बिना मालिक की यह संस्था है। संस्था के संचालकों को मैं तो यह सलाह देता हूं कि वे गोशाला चलाने वाले शास्त्रज्ञों की सलाह ले कर वेतन दे कर कुशल मनुष्यों के द्वारा अपना कार्य करें। गोशाला के अंगभूत पशुओं और सांडों का पालन, बधिया करने की क्रिया में सुधार, पशुओं की खुराक, उस के बोने के साधन, दूध दुहने की स्वच्छ क्रियायें,— इन बातों का ज्ञान मिलना चाहिए। इस विषय में जबतक उदासीनता होगी तबतक यही समझना चाहिए कि गोशाला से पूरा लाभ नहीं मिलता है। उसमें से एक भी गाय या बैल मरे या परदेश भेजने में आवे तो वह हमारे लिए एक शर्म की बात है। मेरा दृढ विश्वास है कि गोशालों की मार्फत यह कार्य अच्छी तरह हो सकता है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

एक प्रयोग

जो लोग ग्राम-संगठन से प्रेम रखते है उन्हें नीचे लिखा वर्णन शिक्षाप्रद होगा —

"कोइंबतूर जिले के एक कोने में कनूर नामक एक छोटा सा गांव है। जब से खादी आन्दोलन आरंभ हुआ है तबसे यहां खादी काम का केन्द्र बना हुआ है। श्री बालाजीराव नाम के एक वकील ने काम की शुरुआत की। असहयोग की पहली पुकार पर उन्होंने वकालत छोड दी थी। पिछले साल तामिलनाड खादी मण्डल ने उसका काम सीधे अपने हाथ और देखरेख में लिया और अब उसमें तीन हजार रुपये की पूंजी पर कोई एक हजार रुपये कीमत की खादी हर हफ्ते तैयार होती है। पैदावार और भी बढ सकती है; पर उसके लिए वहां के मौजूदा कार्यकर्ता श्री गोमेज को एक या अधिक सहायकों की आवश्यकता होगी। श्री गोमेज ईसाई भारतीय हैं और अपने कथक कार्य और उत्साह के द्वारा वे सबको प्रिय हो गये हैं।

परन्तु कनूर की खूबी बिक्री के लिए खादी तैयार करने मे नहीं है। बल्कि गांव में जो लोग खुद अपना सूत कात कर खादी पहनते है, इस प्रगति-कार्य में है। अब तक के अच्छ कामों का यह परिणाम हुआ है कि यहां के नायकर घरों में, जो इस गांव में सबसे प्रभावशाली जाति हैं, चर्खा-कताई का रिवाज पड गया और दृढ हो गया है। उनके उदाहरण को देख कर और जातियों मे भी और गोंडर जाति के कुछ लोगों ने भी अपने ही कते सूत की खादी पहनना शुरू किया है। धनी और मध्यम श्रेणी के लोगों को फुरसत का समय बहुत मिलता है। इस लिए उन्होंने खुदही सूत कातना अंगीकार किया है। चर्खा और खादी की मौजूदा हालत इस प्रकार कही जा सकती है —

घरू उपयोग के लिए चलनेवाले चरखे	३४
मजदूरी के ,,	७
बेकार चरखे	३२
लोढने चलनेवाले	१०
,, बेकार	१४
खादी बुननेवाले करघे	४
मिल का सूत ,,	०

१. सूत कातनेवालों के घरों में कपास जमा ५६¾ मन
(२५ नायकर, ६ गोंडर और १ ब्राह्मण कुटुम्ब मिल कर ३९२ पौंड लोढा हुआ कपास देंगे)
२. सूत काता गया (जैसा कि १९ जून को) १८०¾ पौंड
३. खानगी घरों में पूनियां और सूत जमा ८९¾ पौंड
४. कपडा तैयार ४५०¾ वर्ग गज
५. खुद कातनेवालों के घरों में कते सूत का कपडा बनेगा। १४८६ गज
६. गांव की वस्त्र-संबंधी आवश्यकता ७५०० वर्ग गज अथवा ३६४०)

खुद उन्हींके परिश्रम से उत्पन्न खादी के द्वारा गांव की जरूरत का कोई २० फी सदी कपडा मिलेगा। हर खुद सूत कातनेवाला घर मौसम पर अपनी जरूरत का कपास ले रखता है दो तीन महीने में उसका सूत कात डालता है। मजूरी पर चलनेवाले चर्खे का सूत इन खुद कातने वालों के सूत में सहायक होता है। वह उन उत्पादक केन्द्रों मे नहीं जाता जोकि बिक्री के लिए खादी बनाते हैं। गांव का प्रायः हर किसान उसके लिए कपास देता है।

कपास के मौसम पर तथा उसके कुछ समय बाद स्त्रियां घर में अपना सारा फुरसत का समय चर्खे को देती हैं। ऊपर लिखे अंकों से यह मालूम होगा कि ४० से कम चर्खे साल में सिर्फ तीन और बहुत हुआ तो चार महीने काम करके और सो भी फुरसत के समय में, गांव की जरूरत के कपडे का पांचवां हिस्सा पूरा करते हैं। पिछले साल जिन आठ चर्खों ने काम किया था वे इस साल खास कर काफी कपास न मिलने के कारण ही बंद रहे। जो बत्तीस चर्खे बद पडे रहे वे यदि चलने लगें तो इस गांव का आधा कपडा निकल आवे। रंगाई के इन्तजाम की कमी से अबतक साडियों में घर-कता सूत नहीं लग रहा है। परन्तु तामिलनाड-मण्डल की ओर से उसका इंतजाम हो रहा है। एक रंगाई में निपुण युवक गांव में बसने के लिए लुभाया गया है और तामिलनाड मण्डल उसे कुछ स्थायी काम देने की तजवीज कर रहा है। इससे गांव के लोगों को भी रंगाई की आवश्यक सहूलियत हो जायगी।

खुद सूत कात कर कपडा पहनने से बहुत-सी बातों में खर्च कम हो जाता है। इसको जानने के लिए हम कपडे के खर्च का एक उदाहरण लें और फिर घर की जरूरत और खर्च के लिहाज से उसपर विचार करें। इस गांव के एक सब से बडे कुटुंब ने जिसकी सालाना आमदनी ६ हजार रु. से अधिक है अपना आज का और तीन साल पहले का कपडे का हिसाब इस प्रकार दिया है।

१९२५ में खादी	१९२१ में मिल और विदेशी कपडा
पुरुषों के लिए	
१२ धोती जोडे और चादर ७२ गज	१२ धोती जोडे और चादर ७२ गज
३ कुरते ३० गज	कुरतों का कपडा ५० गज
कोट का कपडा (आजकल सिर्फ एक ही कोट पहनता है) ४गज	कोट ,, १० गज
दीपावलि के लिए गैरमामूली ०	मुतफार्रिक
स्त्रियों के लिए	
२ खादी साडियां १६ गज	१२ साडियां ९६ गज
१० मिल और विदेशी सूत की सडियां ८० गज	३ दूसरी साडियां २४ गज
जाकेट आदि के लिए	जाकेट आदि के लिए १० गज
लडकों के लिए	
१२ गज पहनने के लिए और ८ गज फुट कर	२० गज बच्चों का कपडा
नौकरों के लिए	
४ धोतियां और ३ तौलिये २० गज	४ धोतियां और ३ तौलिये
२५२ गज २२५)	३०२ गज ४९२)

मिल की साडियों तथा कुछ ६० गज खादी को छोड कर जोकि खरीदना पडेगी बाकी सारा कपडा घर के कते सूत से बनाया जायगा। इस तरह कपडे का कुल खर्च जिसमें कपास की कीमत और मिल साडियों की कीमत शामिल हैं २२५) होता है। अर्थात् २५०) या इससे ऊपर बचत कपडे में रहती है। इस कमखर्ची का ज्यादा तर कारण तो है नया सादा रहन-सहन जिसे कि इस खादी ने जीवित किया है। खर्च सब्बा सब्बा तो कम होता है कम लंबाई की धोतियां इस्तेमाल करने से और कीमती खादी न पहनने से। बढिया कपडे और शौकीनी का

निकल जाना जिसमें कि रुपया बरबाद होता था, कोई ऐसा वैसा फायदा नहीं है। पर सबसे बढ़ कर फायदा तो यह हुआ कि घर में मिहनत का रिवाज बढ़ने लगा और फुरसत का वक्त काम में लगने लगा। मिल तथा विदेशी कपड़े के मुकाबले में हाथ-कते कपड़े से कीमत में तथा टिकाऊपन में जो लाभ है उससे भी ज्यादह ध्यान देने योग्य बात यह है कि फुरसत के समय का उपयोग एक उत्पादक और अच्छे काम में होता है। गरीब लोगों के लिए तो रुपयों की जो कुछ बचत होती है वह भी बड़ी सहायक होती है। एक जगह २९ वर्ग गज कपड़े पर ६ से ज्यादह रु० की बचत हुई है। इस कुटुंब के लिए आवश्यक तमाम १२५ गज कपड़ा यदि इस तरह उन्हींके कते सूत से बनाया जाय तो उससे कोई ३०) की बचत होगी। यह उसकी कोई २० दिन की आमदनी के नजदीक पहुंच जाती है।

सारे गांव के कपड़े के खर्च का मोटा अंदाज ३६४०) या ७५७५ वर्ग गज कपड़ा है। खादी केवल लोक-प्रिय ही नहीं है बल्कि उसकी जड़ भी जम गई है। विदेशी और मिल का कपड़ा बहुत तेजी के साथ गांव में से लुप्त हो रहा है। पहले पहल दुपट्टे और शाल खादी के बनाये गये। धोती चादर तथा कुर्ते का कपड़ा पीछे। खादी की साड़ियां अभी अभी बनने लगी हैं। खादी के पहनाव में तथा तमाम विदेशी और मिल के कपड़े के त्याग में किस प्रकार तेजी से प्रगति हो रही है यह नीचे लिखे अंकों से मालूम होगा:—

(१) कनूर की जन संख्या	६४५
(२) बालिग लोगों की संख्या बच्चों को छोड़ कर	४७५
(३) खादी पहनने वालों की संख्या	९२
(४) (३) से (२) सैंकड़ा की कक्षा	२०

खादी पहनने वालों की संख्या जो ऊपर दी गई है सिर्फ उन लोगों की है जो खादी के सिवा किसी तरह का कपड़ा नहीं पहनते हैं और जिनके घर में एक रेशा भी विदेशी तथा मिल के सूत का नहीं है। यों तो कनूर का प्रायः हर आदमी अपने बदन पर कुछ न कुछ खादी पहनता है।

गांव में चार घर बुननेवालों के हैं और उनके पास चार करघे हैं। वे सब १० से १२ गज लंबाई का ताना बुनते हैं। इस सहूलियत से खुद सूत कातनेवालों को बड़ा लाभ होता है। यहां के कुटुम्बों के सूत की बुनाई की मजदूरी महासभा की ठहराई मजदूरी से कुछ अधिक है। क्योंकि खुद कातनेवाले आम तौर पर ज्यादह महीन सूत देते हैं और उसके लिए बुननेवालों को कुछ ज्यादह दाम देते हैं। कभी कभी तो मजूरी रुपये के रूप में नहीं बल्कि सूत के रूप में दी जाती है।

कनूर के उदाहरण का असर पड़ौस के गांव पुडूर पर भी पड़ा है। यद्यपि यह नहीं कह सकते कि खादी पहनने और खुद सूत कातने में यहां बहुत कुछ प्रगति हुई है, पर हां शुरूआत अच्छी हो चुकी है। कोई ५ फी सदी लोग बिलकुल खद्दर पहनते हैं। अभी तक १० घरों ने खुद कातना शुरू किया है। चरखे और करघे की हालत इस प्रकार है।

खुद अपना सूत कातनेवाले चरखे	१२
मजदूरी के लिए ,, ,,	४
खादी बुननेवाले करघे	१७
मिल का सूत ,,	०
कातनेवालों के घर कपास जमा	५०८ पौंड
सूत कता हुआ	११५½ पौंड
१९ जून को बुना कपड़ा	१०२ गज
कताई के लिए जमा सूत से कपड़ा बनने का अनुमान	५०८ गज या गांव की आवश्यकता का ¹⁄₁₅ भाग कपड़ा

इस गांव में कुल खुद कातने वाले घरों से जो नतीजे पैदा हुए हैं वे वैसे ही हैं जैसे कि कनूर में हुए हैं। जिन कुटुम्बों ने उनको अपनाया है, यद्यपि उनकी संख्या थोड़ी है, तथापि वे इसके विषय में बहुत सजग और उत्साही हैं और अपने रिश्तेदारों तथा इष्ट-मित्रों में उसका प्रचार करने के लिए उत्सुक हैं।"

बहुत दृष्टियों से यह प्रयोग आश्चर्य और आनंददायी है। बिना शोरगुल और शोहरत के शांति के साथ काम हो रहा है। और सो भी प्रायः बिना पूंजी के। यह तभी हो सका जब कि लोग अपने लिबास की रुचि और सामग्रियों में परिवर्तन करने तथा अपने फुरसत के समय का उपयोग करने के लिए तैयार हुए। गांव की आबादी ६४५ है। कपड़े के खर्च का अनुमान ३६४०) है। इसलिए जब तमाम ग्रामवासी खादी पहनने लगेंगे तब वे अपने गांव की आमदनी में ३६४०) बढ़ा लेंगे और सो भी अपने गपशप में बीतने वाले समय का उपयोग कर के। ग्राम-संगठन की ऐसी कोई तजवीज अबतक नहीं आई है जिसका फल इतना बढ़िया, प्रत्यक्ष और शीघ्र हो। यह खादी कार्य सहयोग का भी एक पदार्थपाठ है। और जब कि खादी ग्राम जीवन का एक स्थायी अंग हो जायगी, निस्वार्थ ग्राम कार्यकर्ता यदि चाहें तन्दुरुस्ती, शिक्षा और सामाजिक सुधार में भी तरक्की कर सकते हैं। असली स्वराज्य इसके सिवा और क्या है? जरा कल्पना कीजिए कि ऐसे हजारों गांव खादी के द्वारा एक दूसरे से सुश्रृंखलित हो गये हैं। तब आप देखेंगे कि स्वराज्य आपने मांगा नहीं कि मिला नहीं। क्योंकि जब भारतवर्ष विदेशी कपड़े के इस्तेमाल करने से इन्कार करना सीख जायगा तब वह ब्रिटिश लोगों के कितने ही अनिष्ट कामों को निर्जीव कर देगा और सच्चे स्वराज्य का रास्ता तैयार कर देगा। मुझे आशा है कि कनूर के लोग तब तक दम न लेंगे जब तक हर स्त्री पुरुष और बालक खादी के आदी न हो जाय। यह भी आशा की जाती है कि उसकी छूत अकेले पुडूर तक ही सीमित ही न रहेगी बल्कि वह एक गांव से दूसरे तक और दूसरे से तीसरे तक पहुंचेगी।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

आधी-खादी

एक लेखक ने महासभा-संस्थाओं की तरफ से आधी-खादी बनने और बेचे जाने का जिक्र किया है। यह बुराई काफी गंभीर है। महासभा-संस्था, जिसने कि खादी की प्रतिज्ञा की है, आधी-खादी से कोई वास्ता नहीं रख सकती। जबतक महासभा-वादी इस साधारण सिद्धान्त को नहीं समझ लेते कि आधी-खादी के बनाने से हाथ-कते सूत की तरक्की या सुधार रुकता है तबतक कताई बे-मन से हुआ करेगी। हाथ-कते सूत को तानी में लगाने से उसकी मजबूती की आजमाइश हो जाती है और यह हाथ-कते सूत के सुधार का सब से तेज तरीका है। यह मानना एक वहम है कि धीरे धीरे तानी में मिल का सूत लगना बंद हो जायगा। एक दिन इस कठिनाई का सामना करना ही होगा। कितनी ही महासभा-संस्थाओं ने तो उसका सामना कर भी लिया है। हाथकता-सूत बुनाने में कोई दिक्कत नहीं है, यदि अपने जिले में नहीं तो दूसरे जिले में बुनाया जा सकता है। इसलिए मैं चाहता हूं कि महासभा-संस्थाओं को आधी-खादी को बुनना या उससे संबंध रखना कतई बंद कर देना चाहिए। (यं० इं०)

टिप्पणियां

देशबन्धु-स्मारक

मैंने बड़े दु:ख के साथ बंगाल को छोड़ा है। मैं प्राय: बंगाल का निवासी-सा ही हो गया था। अब मैं रोज श्रीमती वासन्ती देवी के यहां तीर्थ-यात्रा के लिए न जा सकूंगा और अब मैं उन बंगालियों के हँस-मुख चेहरों को न देख सकूंगा जो रोज चंदा देने के लिए भिन्न भिन्न स्थानों से आया करते थे। मैं जानता हूं कि हम जो १० लाख पूरा नहीं कर पाये हैं उसका कारण देशबन्धु के स्मारक के प्रति भक्ति का या बंगालियों की इच्छा का अभाव नहीं, बल्कि चारों ओर संगठन की त्रुटियां हैं जिसके लिए हमी लोग जिम्मेवार हैं। यदि बंगाल के गांव गांव में हम पहुंच पाते तो कभी से सारी रकम पूरी हो जाती। फिर भी जो कुछ रकम मिली है वह बंगाल के अयोग्य नहीं है। मैंने मोटे तौर पर अन्दाज लगाया है जिससे मालूम होता है कि कोई २,५०,०००) वहां रहनेवाले मारवाड़ियों ने, कोई ६०,०००) वहां रहनेवाले गुजरातियों ने और शेष बंगाल के बंगालियों ने दी है, बंगाल के बाहर के बंगालियों ने बहुत ही थोड़ी रकम दी है। अब यह भार उन लोगों के सिर है जिनके कि जिम्मे स्मारक-कोष किया गया है कि वे उसके उद्देश को पूरा करें।

अब अ० भा० देशबन्धु स्मारक-कोष रहा। उसके चंदे के लिए अभी संगठित-रूप से कोशिश शुरू नहीं हुई है। पर श्री मणिलाल कोठारी ने अपना काम शुरू कर दिया है। जिस पारसी सज्जन से उन्होंने २५०००) दिलवाया है उन्होंने मुझसे कहा कि मणिलाल कोठारी की बात को टालना असंभव है। ५१०००) देनेवाले भाटिया सज्जन की भी यही हालत हुई होगी। मैं उनको यकीन दिलाता हूं कि यद्यपि आपका दान निस्सन्देह भारी है तो भी वह उस प्रयोजन के लिए बहुत ज्यादह नहीं है जिसके निमित्त वह लगाया जाने वाला है। देशबंधु के स्मारक के प्रति हम अपने कर्तव्य का पालन तबतक न कर पावेंगे जब तक हम खादी-कार्य के द्वारा विदेशी कपड़े को देश से न हटा देंगे। और यह बिना धन और जन के नहीं हो सकता। इसलिए मैं आशा करता हूं कि लोग इसका जवाब बहुत जल्दी और उदारतापूर्वक देंगे।

अबतक पूर्वोक्त रकमों के अलावा २३०३-१५-६ और कुछ कर प्राप्त हो चुके हैं, जिनमें २०१६-१२-६ पंडित जवाहरलाल के पास आये और १२८७-३-० नवजीवन कार्यालय में प्राप्त हुए हैं।

अखिल बंगाल देशबंधु स्मारक

लोग मुझसे पूछ रहे हैं कि क्या हम अभी अ० बं० दे० स्मा० कोष में चंदा दे सकते हैं? सो बा कायदा चंदा वसूली तो ३१ अगस्त को ही खतम हो गई। मगर फिर भी जो लोग देना चाहें वे उसके ट्रस्टियों के द्वारा दे सकते हैं। परंतु यदि कोई यह स्पष्ट रूप में न लिखेगा तो अबसे मेरे पास आई रकम अ० भा० दे० स्मा० में जमा की जायगी।

बढ़िया काम

मेरे सामने मजदूर-संघ अहमदाबाद के व्यवस्थापक के द्वारा किये गये चुपचाप कार्य की बढ़िया और केवल आवश्यक बातों से युक्त संक्षिप्त रिपोर्ट है। मजूरों के लड़कों में जो कुछ शिक्षाप्रचार का कार्य उक्त मजूर-संघ के द्वारा हो रहा है उसीका वर्णन उसमें है। श्रीमती अनसूया बहन की देखरेख में यह काम हो रहा है।

१९२४ में ८ दिन के मदरसे थे। आज ९ हैं। उनमें दो सब तरह के लड़कों के लिए हैं, छ: अछूतों के लिए और एक मुसलमानों के लिए। १९२४ में ११ रात्रि पाठशालायें थीं। आज १५ हैं। इनमें १ सबके लिए, ८ अछूतों के लिए, ५ मुसलमानों के लिए और १ वाघरियों के लिए। १९२४ में ११११ विद्यार्थी थे और हाजरी ९७९.४। उनमें ६९२ अछूत, २२१ छूत और २०६ मुसलमान थे। साल की शुरुआत में ११६६ विद्यार्थी थे जिनमें ७९८ अछूत, २१९ छूत और ७६९ मुसलमान और वाघरी थे। हाजरी थी ९०७.९२। इस समय १२८५ हैं। मामूली प्राथमिक मदरसों में जो विषय पढ़ाये जाते हैं उन सबको तो लड़के और लड़कियां पढ़ती ही हैं। पर इनके अलावा सूत-कताई और है। व्यवस्थापकों ने शुरू में चरखे को आजमाया था। इतने लड़के और लड़कियों में चरखे बहुत ही खर्च-तलब और असुविधाजनक पाये गये। क्योंकि उनके लिए बहुत जगह दरकार होती थी। तब उन्होंने तकली शुरू की, जिसे कि हर विद्यार्थी अपने पास रख सकता है। सैकड़ों लड़कों और लड़कियों को एक-साथ सूत कातते हुए देखना बड़ा उम्दा दृश्य था। उनकी कताई का औसत फी घण्टा ३० से ४० गज था। अबतक उन्होंने २ मन ८ सेर अच्छा सूत कात डाला है।

एक ऐसी पाठशाला भी है जिसमें १६ अछूत लड़के रहते भी हैं और पढ़ते भी हैं। इनमें से पांच ६ रुपये के हिसाब से खाने पीने का खर्च देते हैं। बाकी यों ही रहते हैं। वे धुनना, कातना और बुनना सीखते हैं। १९२४ में उन्होंने १। मन सूत काता और १२५ गज खादी बुनी। १९२४ में ६६ शिक्षक थे। आज ७७ हैं। कुल खर्च २२२५४-८-४ है, जिसमें से १२५०) मासिक मिल-मालिक-संघ की तरफ से दिया जाता है। यह रकम तिलक-स्वराज्य-कोश के ब्याज में से दी जाती है जो कि संघ के सदस्यों की ओर से दिया गया और मजदूरों के कल्याण के लिए सुरक्षित रक्खा गया था। ६०) रु. मासिक का दान श्री मंगलभदास किसनदास की तरफ से मिलता है। उस आखरी पाठशाला का खर्च प्रांतीय समिति की तरफ से दिया जाता है।

सबसे बढ़कर ध्यान खींचनेवाली बात तो यह है कि अछूत लड़कों की बहुत बड़ी तादाद उन मदरसों में शिक्षा पाती है। कहते हैं, कि उनके माता-पिताओं से इसके लिए तकाजा नहीं करना पड़ता। वे खुशीसे अपने लड़कों को भेज देते हैं। उलटा और लड़कों के मा-बापों को ही ललचाना और उनसे तकाजा करना पड़ता है।

यह कहने की जरूरत ही नहीं है कि ये मदरसे न सरकार से किसी तरह की सहायता पाते हैं, और न किसी तरह की उसकी देखरेख उनके ऊपर है।

लड़कों के साफ-सुथरेपन पर खास तौर पर ध्यान दिया जाता है। अवश्य ही इन स्कूलों की तुलना भारतवर्ष के किसी भी प्राथमिक स्कूल से बखूबी हो सकती है। मैं तमाम शिक्षकों का ध्यान विद्यार्थियों की स्वच्छता और सुव्यवस्थितता की ओर दिलाता हूं। इसके लिए किसी खास कोशिश की जरूरत नहीं है। सिर्फ वे पढ़ाई शुरू होने के पहले एक कतार में सब लड़कों को खड़ा कर के उनके दांत, नख, कान, आंख वगैरह देखें। मैंने इन साधारण बातों की उपेक्षा उन स्कूलों में भी देखी है जिनको माडल स्कूल कहते हैं।

क्या यह अति-विश्वास है?

एक आदरणीय मित्र, जिन्हें कि मेरे उचित कार्य करने की ख्याति-रक्षा करने का बड़ा ख्याल है, पूछते हैं कि आपने जो अभी स्वराजियों को पूरे बल के साथ पुष्टि दी है वह उचित ही है इसका विश्वास आपको किस तरह है? क्या आपने हिमाकत के

बराबर जबरदस्त भूलें नहीं की हैं ? क्या आप नहीं देखते कि आपके अपरिवर्तनवादी मित्र उनकी दृष्टि में आपकी इस असंगति पर बड़ी दुविधा में पड़ गये हैं ? कहीं आप अपनी स्थिति पर अति-विश्वास तो नहीं कर रहे हैं ?

मैं ऐसा नहीं समझता । क्योंकि सत्य-निष्ठ मनुष्य को सदा ऐसा विश्वास होना ही चाहिए — उसकी सत्यभक्ति का तकाजा है कि वह सोलहों आना विश्वास रक्खे । उसकी यह सुध कि मनुष्य का स्वभाव स्खलनशील है — भूल कर बैठने वाला है — उसे नम्र बनाये बिना न रहेगा और इसलिए ज्यों ही उसे अपनी भूल दिखाई देगी, वह तुरन्त पीछे कदम हटाने के लिए तैयार रहेगा । इस बात से कि उसने पहले हिमालय के बराबर जबरदस्त भूलें की हैं, उसके विश्वास में कोई अन्तर नहीं पड़ता । उसकी भूलों की स्वीकृति और उनके लिए किया गया प्रायश्चित्त, उसे भावी कार्य के लिए और मजबूत बना देता है । भूल का ज्ञान सत्य-भक्त को किसी बात को मानने और अनुमान निकालने में अधिक चौकन्ना बना देता है; पर एक बार जहां उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि उसका विश्वास अचल रहना चाहिए । उसकी भूलों का यह परिणाम चाहे हो कि उसके विचार और निर्णय पर लोग जो अपना अवलंबन रखते हैं वह डगमगा जाय, पर एक बार जहां वह एक परिणाम पर पहुंच चुका तो फिर उसे अपने विचार की सत्यता पर सन्देह न करना चाहिए ।

यह बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि मेरी भूलें जो कुछ हुई हैं वे अनुमान में — गिन्ती करने में तथा मनुष्यों के संबंध में अपना खयाल बनाने में ही हुई हैं, सत्य और अहिंसा की वास्तविक प्रकृति को देखने में अथवा उनके प्रयोग में नहीं । निःसन्देह इन गलतियों तथा तुरन्त उनकी स्वीकृतियों ने मुझे सत्य और अहिंसा के गर्भितार्थ के भीतरी मर्म को समझने में अधिक निश्चल बना दिया है । क्योंकि मुझे इस बात का निश्चय हो चुका है कि मेरे अहमदाबाद, बंबई और बारडोली में सविनय भंग मुलतवी रखने के प्रस्ताव ने भारत की स्वाधीनता और दुनिया की शान्ति के कार्य की प्रगति ही की है । मुझे इस बात का विश्वास हो चुका है कि इस स्थगित कर देने के कारण हम आज स्वराज्य के अधिक नजदीक हैं, बनिस्बत न करने की अवस्था के । और यह मैं कहता हूं क्षितिज पर मेरे सामने मोटे मोटे हरफों में 'अनुत्साह' शब्द के लिखे रहते हुए भी । मेरा ऐसा गहरा विश्वास होने के कारण ही मैं स्वराजियों तथा अन्य बातों संबधी अपनी वर्तमान स्थिति पर विश्वास किये बिना नहीं रह सकता । इसका उद्गम-स्थान एक ही वस्तु है— सत्य और अहिंसा के गर्भितार्थ का सजीव परिज्ञान ।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

राष्ट्रभावना में द्वेष का स्थान

कितनी ही संस्थाओं ने गांधीजी की उपस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न किया । एक संस्था ने पूर्वोक्त विषय पर बोलने के लिए गांधीजी को निमंत्रित किया था ।

गांधीजी ने शुरू में ही "जालिम पर प्रेम किस तरह किया जा सकता है" इस प्रश्न की चर्चा शुरू की । 'दक्षिण आफ्रिका में जितनी सरकारें हुई सबके कानून में काले-गोरे का भेद था, और यहां भी वैसा ही है । यदि मनुष्य का दिमाग ठिकाने न हो तो वे कानून तथा उनमें से प्रकट भारतीयों का द्वेष तो भारतीयों से गोरों के प्रति द्वेष करावेगा ही । प्रेम एक सक्रिय बल है· किन्तु जालिम का द्वेष किये बिना रह सकते हैं कि नहीं यह प्रश्न है । बहुत से युवक यह मानते हैं कि राष्ट्र से प्रेम करनेवाला ऐसा नहीं कर सकता । यह स्वाभाविक है । इसीलिए उनको दोष कैसे दें ? यह अपार हानि है । इससे द्वेष अधोगति के रास्ते ले जाता है । तिरस्कार और द्वेष के परिणाम योरप में अभी ताजे ही देख सकते हैं । हिन्दुस्तान संसार को नया पाठ क्यों न सिखावे ? क्या एक लाख अंग्रेजों का तीस करोड़ हिन्दुओं को द्वेष करना आवश्यक है ? मैं समझता हूं कि इससे मनुष्यत्व कलंकित होता है, भारत कलंकित होता है ।

अब उपाय क्या ?

परंतु तिरस्कार को निर्मूल करना असम्भव सा मालूम होता है । गांधीजी ने कहा, तो तिरस्कार भले ही करो, द्वेष भले ही करो परतु उसे कर्ता की ओर से खींच कर कृत्य की ओर ले जाओ । कृत्य के प्रति आपका तिरस्कार होगा तो आप उस काम से दो कोस दूर रहेंगे । कृत्य के साथ असहयोग करेंगे। परंतु कर्ता की तो सेवा ही करते रहेंगे । इसके बाद उन्होंने जो विचार प्रकट किये वे सदा के लिए हृदय में अंकित करने योग्य हैं । उन्होंने कहा—

"पाप से घृणा करो, पापी से घृणा न करो । हम सब पाप से युक्त हैं । फिर भी हम चाहते हैं कि संसार हमें सहन करे, निबाहे । तब अंग्रेजों को भी हम क्यों न निबाहें ? ईश्वर जानता है कि अंग्रेज राजकर्ताओं के पाप की टीका मुझ से अधिक सख्त और निडर दूसरे किसीने न की होगी, वर्तमान शासन-प्रथा की दुष्टता की निंदा मुझसे अधिक कठोर किसीने न की होगी । फिर भी उस प्रथा के प्रवर्तकों या संचालकों से मुझे जरा भी घृणा नहीं । अपने विषय में तो मेरा दावा है कि मैंने उनके प्रति प्रेम रक्खा है और फिर भी उनके अपराध के प्रति मैं अंधा नहीं । हम प्रेम तभी करें जब किसी में गुण हों, तो क्या इसे प्रेम कह सकते हैं ? यदि मैं अपने धर्म का पालन करने वाला हूं, यदि मैं मानव-जाति के प्रति अपना कर्तव्य पालन करता हूं तो मुझे मनुष्य-जाति की दोष-पात्रता, अपने विरोधियों की न्यूनता और पाप के देखने पर उनके प्रति घृणा नहीं, बल्कि प्रेम करना चाहिए। मैंने तो प्रचलित शासन प्रणाली को राक्षसी कहा है और अब भी कहता हूं । परन्तु इसलिए यदि उसके संचालकों को सजा दिलाने को षड्यन्त्र रचने लगूं तो बस मेरा खात्मा समझिए । असहयोग द्वेष या घृणा का मंत्र नहीं, प्रेम का मंत्र है। कितने ही सत्याग्रही और असहयोगी केवल नामधारी हैं, यह मैं जानता हूं । वे कदम कदम पर अपने धर्म का ध्वंस करते हैं, यह मुझे पता है । परंतु इस प्रेम-मंत्र के रहस्य के विषय में तो बिलकुल सन्देह ही नहीं है । इसका रहस्य यह है कि स्वयं कष्ट उठा कर विरोधी को जीतना, स्वयं संकट सहन कर जालिम को नम्र बनाना । सत्याग्रह का रहस्य यही है कि जो धर्म पिता और पुत्र में है वही एक समूह का दूसरे समूह के प्रति, शासक और शासित में पालन किया जाय । पुत्र पिता के और पिता पुत्र के पाप के प्रति अपनी आंख मूंद रखे तो उसका प्रेम अंधा है । पर उसके पाप को जानते हुए यदि प्रेम से उसे जीते, दुःख सहन करके, प्रायश्चित्त कर के तप कर के जीते तो ही उस प्रेम में विवेक है । यह विवेक-युक्त प्रेम सुधारक का प्रेम है । और यह प्रेम सब दुःखों के निवारण की कुंजी है ।"

(नवजीवन) म० ह० दे०

पश्चिम की समस्या

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक ३

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, आश्विन बदी १, संवत् १९८२ गुरुवार, ३ सितम्बर, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

मिल और चरखा

सूत कातने वाली मिलों से संबंध रखने वाला एक मासिक पत्र बंबई से निकलता है — टेक्सटाइल जरनल। सूत कातने वाली नई मिल खडी करना हो तो उसमें आजकल कितना खर्च पडता है तथा कितना लाभ होता है उसके अंक उसमें ब्यौरे-सहित दिये गये हैं। जो शख्स यह पूछते हैं कि मिलों से चरखा किस तरह बढ कर है उन्हें इसपर खूब विचार करना चाहिए। [illegible] की गई है कि २० हजार तकुए चलाने वाली मिल खडी करनी हो तो कुल २० लाख की पूंजी दरकार होती है। उसका ब्योरा इस तरह है —

यन्त्र-सामग्री—एक हजार अश्व-बल का एक स्टीम इंजिन, कातने-संबंधी जुदी जुदी क्रियाओं के यंत्र जैसे कि ड्राइंग, स्लाबिंग, इंटर, रोविंग और रींगफ्रेम; धुनकने, लपेटने और गांठें बांधने के यंत्र और उससे संबंध रखनेवाला कारखाना टेस्टींग यंत्र इत्यादि इत्यादि की कीमत ८,६०,०००)

इन यंत्रों के विदेशों से जहाज में लाने का किराया, चुंगी, बीमा तथा बंदर में उतारने का खर्च फी सदी ८४,०००)

जमीन मकान तथा रेल्वे साइडिंग वगैरह के खर्च के २,२५,०००)

रुई, कोयले तथा स्टोर्स का जत्था खरीद रखने के लिए पूंजी ५,००,०००)

यंत्रों को मिल में जमाने और चलाने का खर्च १२,०००)

मिल चलाने का मासिक खर्च

मजदूरों का मासिक वेतन	१२,०००)
स्टोर्स, मरम्मत तथा बदली	१०,०००)
ईंधन,	७,५००)
तेल	१,५००)
मजदूरों आदि की देख-भाल रखने वालों का वेतन	३,०००)
दफ्तर-खर्च	२,०००)
तार	५००)
यंत्रों की कीमत ९,२४,०००) की घिसाई के ५) फी सैकडा के हिसाब से एक मास के	३,८५०)
मकान आदि के सवा दो लाख रु० की घिसाई आदि [illegible] की सदी के हिसाब से प्रति मास	४७०)
मकान, यंत्र, रुई, इत्यादि माल की कीमत १६,६०,९००) का बीमा खर्च ॥।) फी सदी के हिसाब से एक मास के	१,०८०)
४२,८६०×६ मास =	२,५७,१६०)
कुल	१९,२८,१६०)

छः मास की पूंजी को सतत रोक रखना मिल-मालिक के लिए अनिवार्य है।

जब २० लाख की कुल पूंजी हो तो २० हजार तकुएवाली मिल इस तरह चल सकती है। उसमें हर माह १२,०००) मजदूर-खर्च के लगाये गये हैं वे विचार करने योग्य हैं। ऐसी मिल में अंदाजन ६०० मजदूर भिन्न भिन्न विभागों में काम करते हों तो उन्हें २०) पडता है। यहां की मिलों में कातनेवालों को २२ से २५) तक और कोकडे एकत्र करना आदि काम में लडकों और स्त्री-मजूरों को १० से १५) वेतन मिलता है। इस हिसाब से २०) औसत कम नहीं है।

इस मिल में २० अंक का सूत हर तकुए पर साढे छः औंस रोज तैयार होता है अर्थात् एक साल में ($6\frac{1}{2}$ औंस×२०,००० तकुए×३६० दिन) ४ करोड ६८ लाख औंस अथवा २९। लाख पौंड सूत होता है। उसका परता तथा मुनाफा इस प्रकार है —

एक पौंड रुई की कीमत उचित मिश्रण किये बाद	०—१०—०
सूत बनाने का खर्च फी पौंड	०—२—१०
धुनकने और कातने में रुई की नुकसानी १५) फी सदी के हिसाब से	०—१—२
एक पौंड सूत की बिक्री पर मुनाफा	०—१—८
एक पौंड सूत बेचने की कीमत	१—०—०

इतने काम पर एक महीने में जो आमदनी होती है उसका हिसाब इस तरह निकलता है —

१ छः सौ मजदूरों को ओसतन् २०) वेतन मिलता है।

२ मजदूर को २,५३९) प्रति मास मुनाफे में से मिलते हैं।

३ और शेयर होल्डरों को १३ ७ प्रति वर्ष प्रति सैकड़ा ब्याज मिलता है, अर्थात् १००) वाले २० हजार शेयर लेने वाले को एक मास में २०,८५१) मिलेंगे।

इस हिसाब में मिल का तीसों दिन चलना माना गया है। छुट्टी, हड़ताल अथवा अन्य कारणों से मिल बंद रहे अथवा कम घण्टे काम करे तो उतनी ही आमदनी कम होगी। इस हिसाब में मजदूर को जहां १) मिलता है तहां शेयर होल्डर तथा एजंट को २-१-९ मिलता है। और विदेश से आने वाले स्टोर, कोयले, तेल, कर, दफ्तर, बीमा आदि मिल कर २-१०-६ खर्च होता है।

अब इन २० लाख रुपयों से चरखा चलाने की कल्पना करें। इसके लिए सारी पूंजी जमा होने तक राह देखने की जरूरत नहीं। मिल में २० लाख रुपयों से २० हजार तकुए चलते हैं। अर्थात् एक तकुए के लिए १००) हुए। और जब वह दिन भर चले तब १९½ तोला सूत २० अंक का होता है। सौ रुपये में आश्रम-नमूने के सागौन की लकड़ी के गोल चरखे १४, अथवा बेलगांव की बाजी में सब से अधिक कात कर इनाम ले जाने वाले बिहार-नमूने के २०, या अकाल में संकट-निवारण का बढ़िया काम कर दिखाने वाले सतीश बाबू के खादी-प्रतिष्ठान के २५ चरखे आते हैं। मद्रास, मलाबार अथवा मध्यदेश में जहां लकड़ी सस्ती है और बढ़ई की मजूरी कम है पांच अथवा इससे भी कम रुपये में चरखा बन सकता है। हमारे हिसाब के लिए हम यों गिनती करें कि सौ रुपये में १६ चरखे के हिसाब से १६ लाख रुपये में २,७६,००० चरखे मिलेंगे। शेष ४ लाख रुपये में से फी सौ चरखे पर ४०) के हिसाब से व्यवस्था-खर्च १,०२,४००) और कोई तीन लाख रुपये रुई में लगेंगे। यह भी जानने योग्य है कि मिल में रुई अनेक यन्त्रों से हो कर निकलती है इससे उसका कस कम हो जाता है और इस कारण जिस रुई से मिल २० अंक का सूत देती है उसीसे चरखा कोई ३० अंक का सूत दे सकता है। काम की रचना यदि ठीक ठीक हो सके और लोगों में उमंग पैदा की जा सके तो थोड़े ही वर्ष में रुई में रुकनेवाली पूंजी भी बच सकती है। क्योंकि घर घर चलने वाले चरखे के लिए कपास घर के आंगन अथवा पड़ोस के खेत दे सकते हैं। कातना कोई मुश्किल काम नहीं। उसके लिए तत्परता और श्रद्धा की जरूरत है। फी कुटुम्ब एक चरखा २० अंक का रोज सवा तोला अर्थात् ५२५ गज कात ले तो एक साल में, अनध्याय के ४० दिन छोड़ कर, ३२० दिन में दस पौण्ड सूत तैयार हो सकता है। इस प्रकार तैयार हुई रुई या सूत पर बीमा, दलाली, छोटे बड़े व्यापारियों का मुनाफा, गांठें बांधने की मजदूरी, दुकान या कोठार का किराया और, तार, डांक, जहाज तथा रेल का खर्च तो पड़ेगा ही क्यों? एक साल में दस पौंड अर्थात् रोजाना सवा तोला कातने के लिए १ से २ घण्टे समय चाहिए। शेष समय में खाली चरखे पर घर के दूसरे लोग अथवा पड़ोसी कात सकते हैं। उसे हिसाब में न लें तो भी २,५,००० चरखे से २५,६०,००० पौंड सूत होता है। तकली का इस्तेमाल करने पर उससे जो सूत तैयार होगा सो जुदा ही। इतनी ही पूंजी पर चलने वाली मिल के तकुए सारा दिन और सारा साल काम करें तो २९ लाख पौंड सूत तैयार होता है। और सच पूछिए तो मिलें ३६० दिन चलती भी नहीं।

फी घर दस पौंड २० अंक का सूत जो तैयार हुआ उसे बुनवाने में (१ इंच में ४२ तार के हिसाब से) ३६ इंच अर्ज का लगभग ५६ गज अथवा ३० इंच अर्ज का ६६ गज कपड़ा बनता है। बुनाई यदि ढीली हो तो कुछ अधिक अथवा सूत मोटा कता हो तो कुछ कम कपड़ा बनेगा। हिसाब से और जरूरत के लायक ही कपड़ा बर्तनेवाले देहाती अथवा गरीब वर्ग के हजारों कुटुंब को एक साल के लिए आम तौर पर इतना कपड़ा बस होता है। चरखे की बनाई में लकड़ी तथा मजदूरी की जो रकम लगी वह सब देश ही में रही। परन्तु मिल खड़ी करने में ९-१० लाख रुपये विदेश चले जाते हैं। उसे जारी रखने के लिए भी हर साल काफी रुपये विदेश भेजना पड़ते हैं। ऐसी छोटी सी मिल एक साल में ९०,०००) का कोयला और ४२,०००) का तेल खा जाती है, यह क्या गौर करने लायक नहीं है? इतना माल पैदा करने में कितने लोग दरकार होते होंगे? फिर कितनी ही मिलों के लिए तो कपास भी मिस्र, पूर्व आफ्रिका अथवा अमेरिका में खरीदा जाता है। धुएं के बने के बिना चरखे से गांव गांव में जो सूत पैदा होता है उससे मिल के मकान के २। लाख रु. बच जाते हैं। और एजण्ट तथा शेयर होल्डर को जो हर साल तीन लाख रु. मुनाफे के मिलते हैं वे सब मिहनत करनेवाले और कातनेवाले कुटुंबों में एक-सा बट जाते हैं।

हड़ताल का भय, मिल की दुर्घटायें, विलायती माल के लिए रुपया हुण्डी के द्वारा भेजने में लगनेवाला नुकसान, धनी और मजदूर का संघर्षण, मजदूरों की कमी, माल के भाव में एकाएक घटा-बढ़ी और उसपर खेले जानेवाले सट्टों से होनेवाली बरबादी, ट्रेड मार्कवाले माल का अनुकरण और उससे मालवालों में परस्पर चलनेवाले मामले-मुकदमे, मिल में एक ही जगह एकत्र रखने तथा माल को विदेश भेजने में होनेवाली चोरियां और उससे उत्पन्न होनेवाले मामलों के लिए समय और रुपये की बरबादी— ऐसे अनेक प्रश्न मिल-उद्योग से निकट संबंध रखते हैं। इस प्रकार की तमाम कठिन स्थितियों से गृह-उद्योग हमें बचा लेगा।

मजदूर देहात और खेतों को छोड़ कर अनेक परिस्थितियों तथा शहर के प्रलोभनों के वश हो कर मिलों में काम करने के लिए आते हैं। वहां उन्हें खुली हवा और स्वतन्त्र जीवन के बदले आरोग्य-नाशक हवा में तथा दिमाग को कुंद कर देने वाले शोरगुल में काम करना पड़ता है। इनके किशोर बालक घर घर भटकते रहते हैं और स्त्रियां नन्हे बच्चों को साथ ले कर दिन भर काम करती हैं। कितनों ही को शराब की चाट पड़ जाती है और अन्त को बरबाद हो जाते हैं। चरखा इन सब से उन्हें भी बचा लेगा।

और सब से जरूरी फायदा तो यह होगा कि राम-नाम का रटन सिखाने वाली और शान्ति दिलाने वाली सुन्दर कला, जो भारतवर्ष को विरासत में मिली है, और जो नेस्त-नाबूद हो जाने के किनारे आ पहुंची थी, फिर से सजीवन होगी और इससे योरपीय महाभारत जैसे कठिन समय में विदेशी यंत्रों और उनके साधनों पर लटक रहने की पराधीनता से सदा के लिए हम बच जायगे।

(नवजीवन) छगनलाल खुशालचंद गांधी

बंगाल की सफर का अन्त

बंगाल की सफर अगस्त मास के अन्त में पूरी होगी। जो सोचा था उससे कोई डेढ़ महीना ज्यादह रहा हूंगा। बंगालियों का जो परिचय इस बार हुआ है वह पहले न हुआ था। अनेक तरह के बंगालियों का मीठा अनुभव मुझे हुआ है। पर इस समय मैं उन अनुभवों का वर्णन करना नहीं चाहता। ये सतरें तो मैं गुजरातियों को लक्ष्य कर के लिख रहा हूं।

दादाभाई शताब्दी के सिलसिले में मैं ३ता० को बम्बई पहुंचूंगा। ४ता० को शताब्दि का उत्सव मना कर ५ता० को आश्रम पहुंचने की आशा रखता हूं। ता०९ को आश्रम छोड़ देना होगा। इन चार दिनों में मैं बहुतेरे कामों को निबटाने की आशा रखता हूं। उसमें काठियावाड़ राजकीय परिषद् के काम का हिसाब देना भी चाहता हूं। परिषद् ने खादी को प्रधान-पद दिया है। वह काम किस दरजे तक हुआ है उसका हिसाब देवचन्द भाई देंगे। मेरी दृष्टि में जितना काम करना विचारा था उसके हिसाब से ठीक काम हुआ है। कार्यकर्ता खाली नहीं बैठ रहे।

अब रहा राजकीय काम। इसका भार कुछ अंशों तक मैंने अपने सिर लिया था। यद्यपि मैं पिछले दिनों गुजरात में न रहा फिर भी मैं उसे भूला नहीं हूं। इसका अर्थ यह नहीं कि कुछ सफलता मिली है। यहां तो मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि मैंने जो सलाह काठियावाड़ को दी है उसके लिए मुझे जरा भी पछतावा नहीं है। मेरा अनुभव मुझे अपनी सलाह पर दृढ़ करता है।

देशी राज्यों में जहां जहां अन्धेर हो रहा है उसे दूर करने का प्रश्न विकट है। दूर करना असंभव नहीं। पर उसका संभव है प्रजा की शक्ति बढ़ने से और राजाओं को शिक्षा देने से। प्रजा की शक्ति बाहर के आन्दोलन से नहीं बढ़ सकती, बल्कि उसे शिक्षा देने से बढ़ेगी। इसलिए राजकीय प्रश्न का सच्चा अर्थ रचनात्मक कार्य ही है। फिर इस बात में भले ही मत-भेद हो कि वह चरखा हो या और कुछ। पर वह समय नजदीक आ रहा है जब सब लोग इस बात को कुबूल करेंगे कि राजनैतिक सवालों का सच्चा हल लोक-शिक्षा में है। लोकशिक्षा का अर्थ अक्षर-ज्ञान नहीं। बल्कि मूर्च्छा से लोगों की जागृति। लोगों को अपने विषय में ज्ञान होना। यह ज्ञान लौकिक कार्यों के द्वारा ही हो सकता है, बातों से नहीं।

इसका अर्थ यह नहीं कि हर तरह का बाहरी आन्दोलन निरर्थक है। मैं सं. इं. के द्वारा कह चुका हूं कि उसे स्थान है। पत्रकार वह अवश्य करें। उसका असर उतना अवश्य होगा जितना कि उसमें सत्य और मर्यादा होगी। पर उसे प्रधानता नहीं मिल सकती। वह गौण है और उसका अवलंबन है सहज आन्तरिक अर्थात रचनात्मक कार्य की सफलता। मुरदे में सांस फूंकने से उसमें जान नहीं आ जाती। जीवित प्राणी की सांस बन्द हो गई हो और उसमें प्रयत्न करने की शक्ति हो तो सांस फूंकना सहायता देता है। यही बात समाज की है। आन्दोलन सहायता-रूप है। मूल वस्तु नहीं। दुखियों के कष्टों की कथा सारी दुनिया कितनी ही गाती फिरे पर यदि दुखियों में ही कुछ जान न हो तो सारा आन्दोलन निरर्थक होगा। ऐसी कितनी ही आधुनिक मिसालें हैं। यदि दक्षिण आफ्रिका के भारतवासियों में कुछ भी दम न हो तो यहां के प्रयत्नों के होते हुए भी उनकी हालत कमजोर ही रहेगी। काठियावाड़ राजकीय परिषद् को शान्ति क्षेत्र पसन्द करना है। (न० जी०) मो० क० गांधी

स्व० डा० भाण्डारकर

लोकमान्य तिलक-संबंधी अपने संस्मरण लिखते हुए गांधीजी ने लिखा है कि जब दक्षिण आफ्रिका के संग्राम के विषय में मैं पूना के लोकमत को तैयार करने के लिए वहां गया तो लोकमान्य ने सुझाया कि यदि तीव्र पक्षवाले पूने में सभा सफलता-पूर्वक करना हो तो सब पक्षों के लिए पूज्य और तटस्थ सभापति खोजना चाहिए और उन्होंने डा० भाण्डारकर का नाम सूचित किया था। पूना के वायुमण्डल में तटस्थ रहना और सर्वमान्य होना कोई आसान बात न थी। फिर भी डा० भाण्डारकर को अन्ततक यह स्थिति प्राप्त रही। पिछली ऋषिपंचमी के दिन ८९ साल की वृद्धावस्था में जब उन्होंने देह-त्याग किया तब पूना के हर पक्ष के और संस्था के प्रतिनिधि उस विद्वान के प्रति अपने अन्तिम कर्तव्य का पालन करने के लिए ओंकारेश्वर के घाट पर उपस्थित हुए थे। संस्कृत विद्या के असाधारण विद्वान् और भाषाशास्त्री के नाते सारी दुनिया में उनकी ख्याति थी। महाराष्ट्र में आदर्श शिक्षक, शिष्यवत्सल गुरु, धर्मनिष्ठ और पवित्र समाज-सुधारक के नाते वे पूज्य थे। समाज-सुधारकों में क्रियावान, स्पष्टवक्ता और सत्यनिष्ठ अग्रणी के रूप में आदरणीय थे। बंबई-विश्वविद्यालय को उनके वचन पर सदा ध्यान देना पड़ता। और सरकार भी जानती थी कि यह विद्या-व्यासंगी ब्राह्मण हमारा निस्पृह है, पर खुशामदिया नहीं। परन्तु यह प्रत्येक पद कठिन तपश्चर्या के बाद ही उन्हें प्राप्त हुआ था। आज जब कि भारतवर्ष के पण्डित संशोधन-कार्य में दुनिया के पण्डितों की पंक्ति में सहज ही बैठ सकते हैं तब हमें खयाल नहीं हो सकता कि इस स्थिति को लाने के लिए हमारे पहले जमाने के विद्वानों को कितना कष्ट सहना पड़ा था और कितना धीरज रखना पड़ा था। डा० भाण्डारकर के पास संस्कृत-विद्या का पाठ लेनेवाले गोरे प्रोफेसरों को उनके ऊपर नियुक्त करने में सरकार को उस समय कुछ शरम नहीं मालूम होती थी। डा० भाण्डारकर को लोगों की तरफ से भी कुछ कम न सहना पड़ा था। अपने समाज की खुशामद करना तो वे जानते ही न थे, पर उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि समाज-सेवा के लिए शान्ति-पूर्वक बिना गुस्सा किये मार सहना भी वे जानते थे। लोकमान्य जब किसी पर टीका करते तब यह नहीं हो सकता था कि वे जरा भी दया रक्खें। उनकी कड़वी टीका पर एक बार डा० भाण्डारकर को अपने दिल का दर्द प्रकट करना पड़ा था। फिर भी जब पूना में सरकार ने मद्य-पान-निषेध का विरोध किया तब सरकार को झाड़ने के अर्थ सभापति-पद के लिए लोकमान्य डा० भाण्डारकर को ले आ सके थे। डा० भाण्डारकर ने सरस्वती के अनन्य उपासक और जिम्मेवार नागरिक के रूप में जो आदर्श लोगों के सम्मुख उपस्थित किया है उसका अनुकरण और पालन अति-उत्साही अधीर युवकों को अवश्य करना चाहिए। 'केसरी' ने एक ही वाक्य में उनके जीवन की खूबी इस प्रकार बता दी है— "संतति, सम्पत्ति, विद्वत्ता, सम्मान, दीर्घायु, आरोग्य, राज-दरबार और विद्वन्मण्डल में बहुमान — ये सब बातें सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर के भाग्य में थीं। उनका उपयोग करते हुए भी पवित्र रहा उनका आचरण, उनकी सादी रहन-सहन, निर्व्यसनता, निरभिमान और तेजस्वी प्रकृति, इत्यादि गुणों के कारण ही उनकी सत्ता सुंदर अंगूठी में जड़े हुए हीरे की तरह सुशोभित थी।"

(नवजीवन) का०

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन वदी १, संवत् १९८२

पश्चिम की समस्या

एक योरपियन मित्र इस प्रकार लिखते हैं—

" पश्चिम के भूखों मरनेवाले लाखों लोगों के हित के लिए क्या उपाय करें ? आप क्या तदबीर बताते हैं ? भूखों मरनेवाले लाखों लोगों से मेरा मतलब है योरप और अमेरिका के किसानों और मजदूरों से, जो कि अवनति के गड्ढे में गिरे जा रहे हैं, जो घोर असह्य दारिद्र मय जीवन व्यतीत करते हैं, जो किसी प्रकार के स्वराज्य के द्वारा अपने भावी सुख का स्वप्न नहीं देख सकते, जो शायद भारत के लाखों लोगों से भी अधिक निराश हैं; क्योंकि ईश्वर के प्रति श्रद्धा, धर्म-जात सान्त्वना उनसे दूर चली गई है और एक-मात्र द्वेष ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है।

" जो फौलादी पंजा भारतीय राष्ट्र को कुचल रहा है वही वहां भी अपनी करामात दिखा रहा है । वही आसुरी प्रणाली इन स्वतन्त्र देशों में भी अपना काम कर रही है; राजनीति की वहां कुछ नहीं चलती, क्योंकि वहां लालची लोगो ने अपनी शक्तियों को खूब एकत्र कर रक्खा है। दोष और पाप वहां की जनता को उजाड रहे हैं । वे अपने जीवन के इस नरक से निकलने की कोशिश हर सूरत से उसे, और भी बडा नरक बना कर, करते हैं। धर्म से मिलनेवाली आशा का मार्ग उनके लिए खुला नहीं है, क्यों कि ईसाई-धर्म ने सदियों से सत्ताधारियों और लोभी लोगों का साथ दे कर अपनी साख को गवां दिया है ।

" मेरा खयाल है कि महात्माजी इसका यह जवाब देंगे कि यदि सारी पश्चिमी दुनिया का सर्वनाश अबतक नहीं हो चुका है, तो इसका एक ही उपाय है बडे पैमाने पर सुव्यवस्थित शान्तिमय प्रतिकार का प्रयोग। परन्तु योरपियन भूमि और मस्तिष्क में अहिंसा की कोई परंपरा नहीं है । यहांतक कि इस सिद्धान्त के प्रचार में भी भारी दिक्कतें होंगी, तो फिर उसके यथावत् ज्ञान और प्रयोग की तो बात ही दूर है ! "

इन मित्र के द्वारा शुद्ध अन्तःकरण से उपस्थित किये गये इस प्रश्न में निहित समस्या मेरी कक्षा के बाहर है। इसलिए मैं उसका उत्तर देने की कोशिश करने में हिचकिचाता हूं । प्रश्नकर्ता के और मेरे बीच जो मित्रभाव है उसकी स्वीकृति के स्वरूप में ही मैं यह उत्तर दे रहा हूं । हां, मुझे पता है कि मेरी इस राय की वकत नहीं है, या उतनी ही हो सकती है जितनी कि हर एक विचार-पूर्ण युक्ति की। न तो मैं योरप की उस बीमारी का निदान ही जानता हूं और न उसका इलाज ही, उस अर्थ में जिसमें कि मैं भारत के रोग के निदान और चिकित्सा दोनों के जानने का दावा करता हूं ।

फिर भी मेरा मन कहता है कि असल में देखा जाय तो क्या योरप — यद्यपि योरप को राजनैतिक स्व-राज्य प्राप्त है — और क्या भारत दोनों को एक ही रोग है। केवल राजनैतिक सत्ता के एक हाथ से निकल कर दूसरे हाथ में चले जाने से मेरी महत्वाकांक्षा को सन्तोष न होगा, हालां कि मैं भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिए सत्ता का इस प्रकार हस्तान्तरित होना परम आवश्यक मानता हूं । योरप के लोग निःसन्देह राजनैतिक सत्ता तो रखते हैं पर स्वराज्य नहीं । एशिया और आफ्रिका के लोगों को वे अपने आंशिक लाभ के लिए लूटते हैं और उनके शासक-वर्ग या शासक-जाति उन्हें प्रजासत्ता के पवित्र नाम पर लूटते हैं । सो यदि जड को देखें तो रोग वही दिखाई देता है जो कि भारतवर्ष को है । इसलिए इलाज भी वही काम दे सकेगा । यदि सब प्रकार के ढकोसले को दूर कर दें तो योरप की जनता की यह लूट हिंसा के ही बल पर जारी है ।

जनता के द्वारा हिंसा का अवलंबन होने से यह रोग कदापि दूर न होगा । अब तक के अनुभव यह दिखलाते हैं कि हिंसा के द्वारा मिली सफलता थोडे ही दिनों तक जीवित रही है । उससे अधिक हिंसा की उत्पत्ति हुई है । अब तक जो कुछ प्रयोग हुए हैं वे हैं भिन्न भिन्न प्रकार के हिंसा-काण्ड तथा हिंसक की इच्छा पर आधार रखनेवाले कृत्रिम प्रतिबन्ध । पर ऐन वक्त पर ये प्रतिबन्ध कुदरती तौर पर टूट गये हैं । इसलिए, मुझे ऐसा मालूम होता है, आगे-पीछे चल कर योरप की जनता को भी, यदि उन्हें अपनी मुक्ति की आकांक्षा होगी, तो अहिंसा का ही अवलंबन करना पडेगा । यह बात कि सामूहिक रूप से या तुरंत वे आज इसे ग्रहण नहीं कर सकते मुझे चिन्तित नहीं कर सकती । इस विशाल कालचक्र में कुछ हजार वर्ष तो एक क्षण के बराबर हैं । किसी न किसी को तो अटल श्रद्धा के साथ आरंभ करना ही होगा । मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि योरप की जनता भी उसे अपनावेगी। परन्तु समय के विषय में अहिंसा का विशाल प्रयोग उतना आवश्यक नहीं है जितना कि मुक्ति के अर्थ को निश्चित रूप से ग्रहण कर लेना है ।

जनता का उद्धार किस स्थिति से होगा ? स्थूल कल्पना करने और उसका उत्तर देने से कि 'लूट और पतन से' काम न चलेगा । क्या इसका उत्तर यह नहीं है कि वे उस दरजे को प्राप्त करना चाहते हैं जो आज पूंजीवालों को प्राप्त है ? यदि यही बात है तो यह अकेले हिंसा के ही बल पर प्राप्त हो सकता है । पर यदि वे धन-सत्ता की बुराई को दूर करना चाहते हैं, दूसरे शब्दों में यदि वे धन-सत्ता वालों के दृष्टि-बिन्दु को बदलना चाहते हैं, तो वे श्रमजीवियों की कमाई वस्तु का अधिक न्यायोचित बटवारा कराने की कोशिश करेंगे। बस, यह हमें अविकार सन्तोष और सादगी पर ले जाता है जिन्हें कि हम नये दृष्टिबिन्दु के अनुसार अपनी खुशी से स्वीकार करेंगे । तब जीवन का लक्ष्य भौतिक सामग्रियों की वृद्धि न रहेगा, बल्कि सुख और आराम को कायम रखते हुए उनकी सीमा-बद्धता होगा । हम उस वस्तु को प्राप्त करने का खयाल छोड देंगे जिसे कि हम प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि हम उस वस्तु को लेने से इन्कार करेंगे जो कि सब लोगों को न मिलती हो। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि आर्थिक दृष्टि से योरप की जनता से ऐसी प्रार्थना की जाय तो उसको सफल होना चाहिए और यदि ऐसे प्रयोग में कुछ अच्छी सफलता हुई तो उससे बहुत भारी और अज्ञात आध्यात्मिक परिणाम उत्पन्न होंगे । मैं इस बात को नहीं मानता कि आध्यात्मिक सत्य अपने ही क्षेत्र में काम करता है । बल्कि इसके प्रतिकूल वह जीवन के मामूली कार्यों के द्वारा ही अभिव्यक्त होता है । इस तरह वह आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों पर भी अपना प्रभाव डालता है । यदि योरप की जनता मेरे द्वारा उपस्थित इस दृष्टि को स्वीकार करने के लिए राजी की जा सके तो यह ज्ञात हो जायगा कि इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए हिंसाकाण्ड की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है और वे अहिंसा से प्रतिफलित होने वाले स्पष्ट सिद्धान्तों का पालन कर के ही अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर सकेंगे । और यह

भी हो सकता है कि मुझे जो बात भारतवर्ष के लिए स्वाभाविक और साध्य दिखाई पड़ती है वह भारत की सुस्त जनता में पैवस्त होने के लिए ज्यादह समय ले, बनिस्बत कर्मिष्ठ योरपीय जनता के। पर यहां फिर मुझे यह बात कह देनी चाहिए कि मेरी तमाम दलीलें कल्पना और अनुमान पर अवलंबित हैं और इसलिए उनका उतना ही मूल्य समझना चाहिए।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

महारोग

हिन्दुस्तान किसानों का देश है। यों तो सारी पृथ्वी किसानों की है। परन्तु दूसरे देशों के लोग अकेली खेती पर निर्वाह नहीं करते। कितने ही देशों के लोग शिकार पर अपना गुजारा करते हैं। इंग्लैंड हुनर पर जीता है। अपने लिए आवश्यक बहुतेरा अनाज बाहर से लाता है। परन्तु हिन्दुस्तान का आधार तो एक-मात्र खेती ही है। यदि पानी न बरसे तो लोगों को भूखों मरने की नौबत आ जाती है। चौमासे में किसानों को बादलों का मुंह ताकते रहना पड़ता है।

परन्तु खेती तो थोड़े ही लोग बारहों मास कर सकते हैं। इस कारण करोड़ों लोग चार छः मास तक बे-रोजगार रहते हैं। इससे हम काहिल हो गये हैं। हमेशा से हमारी यह हालत नहीं रही है। जब हम खुद अपने कपड़े तैयार करते थे तब करोड़ों लोग उद्योगी रहते थे। आज वही करोड़ों लोग आलस्य में दिन गवांते हैं। उनकी आंखों में तेज नहीं, आशा नहीं; उनके चेहरों पर उत्साह नहीं। हमारी ऐसी दीन दशा हो गई है मानों आलस्य हमारा स्वभाव ही बन बैठा हो। किसान की काहिली मध्यम वर्ग में तो अवश्य ही है। काहिल कौम को स्वराज्य हरगिज नहीं मिल सकता। काहिली विनाश का कारण है। लाखों लोगों में भ्रमण करते हुए मैंने देखा है कि लोग बातें करते हुए अथवा गुम-सुम बैठे रहते हुए नहीं थकते। यदि मैं जागरूक न रहूं तो मेरे आस-पास अनेक लोग बैठ रहें और समझें कि हम पुण्य कर रहे हैं।

यह काहिली हमारा महारोग है। हमारी कंगाली उसका चिह्न है। मैं मानता हूं कि हमारी कंगाली का कारण हमारे देश से धन का बाहर चला जाना अथवा वही नहीं है। बल्कि कंगाली और ह्रास का कारण हमारा आलस्य है। और आलसी आदमी यदि गुलाम न हो तो क्या हो? काहिल आदमी संसार में कभी स्वावलंबी नहीं हुए, न होंगे।

यह काहिली किस तरह दूर हो सकती है? कुछ न कुछ उद्यम करने से। ऐसा कौन-सा उद्यम है जिसे करोड़ों मनुष्य कर सकते हैं? मेरी नजर में तो एक ही है — चरखा। यदि कोई जन-हित के लिए चरखे से अधिक अच्छा उद्यम खोज सके तो वह शौक से चरखा न काते। मेरा तो पहले से ही यह कहना है कि चरखा निरुद्यमी को उद्यमी बनाने का सर्वोत्तम साधन है। परन्तु यदि कोई इससे अधिक कारगर सार्वजनिक साधन बतावेगा तो उसे मेरा मस्तक अपने आप वंदन करेगा। मुझे ऐसा कहने वाले तो बहुत मिलते हैं जो खुद उद्यमी हैं। पर इससे क्या सारा हिन्दुस्तान उद्यमी हो गया? हिन्दुस्तान में दस-बीस करोड़पति हैं, पचीस-पचास राजा हैं; पर इससे क्या सब करोड़पति और राजा हो गये? सुखी लोग भी जब हिन्दुस्तान के दुःख में अपनेको दुःखी मानेंगे तब हम अपनेको एक-राष्ट्र कह सकेंगे। श्रीकृष्ण जसों को भी अपने लिए अनावश्यक होते हुए लोकसंग्रह के लिए उद्यम करना पड़ा था। और केवल स्वार्थ-प्रेरित उद्यम बस नहीं। करोड़ों लोग जिस उद्यम को स्वार्थ-वश करेंगे उसे लोकनायक, या लोकसेवक कहिए, परमार्थ के लिए करेंगे। यदि वे न करें तो स्वार्थ के लिए उद्यम करनेवाले भी मोह में या भ्रम में पड़ कर उसका त्याग करते हैं। यहां तो निरुद्यमी को उद्यमी बनाना है। और उद्यम भी ऐसा सिखलाना है जिससे हर शख्स का और समाज का कल्याण हो। ऐसा उद्यम चरखा ही हो सकता है। इसीलिए मैं चरखे को कामधेनु कहता हूं। एकबार लोग यदि वक्त की कीमत को समझ लें तो दूसरी बातें अपने आप सूझ जायंगी।

एण्ड्र्यूज साहब ने दो सवाल पूछे हैं—'मवेशी का इन्तजाम अच्छा न होने के कारण करोड़ों का नुकसान हर साल होता है। और लोग मैले का सदुपयोग नहीं करते इससे करोड़ों का खाद फजूल जाता है और बीमारियां फैलती हैं। आप जो चरखे पर इतना जोर देते हैं तो मवेशी और गंदगी के सवाल पर जोर दे कर करोड़ों रुपये सहज बचाने की कोशिश क्यों नहीं करते?' सो मवेशी की हिफाजत के लिए गो-रक्षा के काम का भार मैंने उठाया है। गंदगी का सवाल बड़ा टेढ़ा है। और उसका भी कारण है कुछ अंश में आलस्य ही। यदि लोग उद्यम की कीमत समझ लें तो मवेशी का तथा गंदगी का सवाल तुरंत हल हो जाय। यदि चरखे जैसा आसान और तुरंत फलदायी उद्यम लोग न करें तो महा-प्रयत्न के बाद फल देनेवाला पशुओं का या गंदगी का मसला लोग किस तरह समझेंगे? इस तरह जिस दृष्टि से देखिए उसी दृष्टि से एक ही चीज दिखाई देगी। हिन्दुस्तान का महारोग आलस्य है, और उसे दूर करने का एक ही उपाय है चरखा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

आगामी महासमिति

मैं आशा करता हूं कि महासमिति का हर सदस्य आगामी महासमिति की बैठक में हाजिर हो कर उसकी चर्चा में शरीक हुए और अपनी राय जाहिर किये बिना न रहेगा। दैवयोग से किसी कारणवश किसीको रुक जाना पड़े तो बात दूसरी है। महासभा के विधान में जो परिवर्तन सूचित किया गया है वह उसी अवस्था में ठीक माना जा सकता है जब कि एकमत से आग्रहपूर्वक उसकी जरूरत दिखाई जाय। यह एकमत और आग्रह किस प्रकार साबित हो सकता है? बहुत-कुछ असुविधा और यदि आवश्यक हो तो हानि सहकर भी हर एक सदस्य के उपस्थित होने से। सदस्यों के यह मान लेने से कि अमुक बात होना निश्चित है, काम न चलेगा। उपस्थित सदस्य जो मुनासिब समझेंगे करेंगे। अनुपस्थिति जिम्मेवारी के भाव के अभाव का चिह्न माना जायगा — हां, यदि अनुपस्थिति का ठीक कारण बता दिया जायगा तो बात दूसरी है। सदस्यों को यह बात जानना चाहिए कि मैंने इस साल उन्हें अबतक तकलीफ नहीं दी है और यदि यह आवश्यक प्रसंग उपस्थित न होता तो मैं उन्हें अब भी तकलीफ न देता। मेरी राय में महासमिति की बैठक और उसके निमित्त होनेवाला खर्च तभी उचित माना जा सकता है जब कि कोई नई नीति निर्माण करनेवाली हो, या शिक्षादायक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास होने वाले हों। पहले विचार यह था कि समिति की बैठक १ अक्टूबर को बंबई में की जाय। पर यह सुझाया गया कि बैठक यदि जल्दी हो तो सदस्यों को सहूलियत होगी और यदि पटना उसका स्थान रक्खा जाय तो और भी अच्छा। ऐसा मुकाम तो शायद ही हो जो सब को समान-रूप से सुविधाजनक हो। जब बंबई का विचार किया गया था तब बंगाली विचलित हुए

थे । अब पटना नियत करने से मद्रुर शिष्य में विरोध होता है । यदि मैं तमाम सदस्यों और तमाम प्रान्तों को इस बात पर कि पटने की तजवीज ठीक ही हुई है, सन्तुष्ट कर सकूं तो क्या बात हो ! मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि बहुतेरे लोगों के यह मानने पर ही कि पटना सब के लिए बहुत ही अनुकूल जगह होगी, और खास कर इस सबब से कि पण्डित मोतीलालजी ने अपने धारासभावाले साथियों के साथ सलाह कर के यही इच्छा प्रदर्शित की, पटना नियत किया गया है । और जब मैंने देखा कि पटना रखने से पण्डितजी की तन्दुरस्ती और अच्छी तरह कायम रक्खी जा सकेगी, तब मैंने पटना निश्चित करने में आगा-पीछा न किया । अभी वे ताकतवर या बिल्कुल चंगे नहीं हो पाये हैं । दमे का प्रकोप बड़ी चिन्ता और सावधानी के साथ अभी दब ही पाया है । इसलिए मैं आशा करता हूं कि कोई सदस्य केवल इसलिए कि पटना स्थान रक्खा गया है, गैरहाजिर न रहेगा ।

अ० भा० चरखा-संघ

यदि सब बातें ठीक ठीक हुईं तो मेरा यह भी इरादा है कि अ० भा० चरखा संघ का भी मंगलाचरण करूं । इसीलिए मैं चाहूंगा कि वे तमाम कार्यकर्ता जो इसके श्रीगणेश में दिलचस्पी रखते हों, महासमिति के दिनों में पटना आवें, और अपनी अपनी कीमती सूचनायें पेश करें, फिर वे महासमिति के सदस्य हों या न हों । मैं उन्हें सलाह दूंगा कि वे बाबू राजेन्द्रप्रसाद को अपने आने और ठहरने के मुकाम की सूचना दे दें । यदि वे यह चाहते हों कि बाबू राजेन्द्रप्रसाद उनके स्थान और भोजन पान का भी प्रबंध करें तो वे समय पर ही उन्हें इत्तिला कर दें । मैंने राजेन्द्र बाबू से अनुरोध किया है कि वे पत्रों में भोजन आदि के खर्च की तादाद प्रकाशित कर दें ।

सब दलों को क्यों नहीं ?

जो खयाल मेरे दिमाग में घूम रहा है वह यह है कि आगामी महासभा का कार्य हलका कर दूं, महासभावादियों में जो कुछ मतभेद हों उन्हें ठीक-ठाक कर दूं और यदि हो सके तो महासभा में सब दल के लिए एक हो कर काम करने की सुविधायें कर दूं, जिससे कि महासभा नई नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण और चर्चा करने के लिए आजाद रहे । यहां यह कहा जा सकता है कि तब फिर मैं और दल के लोगों को भी पटना क्यों नहीं बुलाता ? मैंने इस मामले पर बहुत गौर किया है और मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि इस अवस्था में ऐसे निमंत्रण से कुछ फल न निकलेगा । जब तमाम महासभावादियों के सामने अपना कार्य स्पष्ट हो जायगा और जब उनमें एकदिली हो जायगी तब उपयुक्त समय होगा इस विषय में आगे कदम बढ़ाने का । महासभावादियों तथा अन्य दलवालों के मत-भेद सब को मालूम हैं और वे स्पष्ट हैं । पहले पहल खुद महासभावादियों को ही यह विचार करना उचित है कि वे किस हदतक आगे आ सकते हैं और तब दूसरे दलों के नेताओं के साथ परामर्श करें । तब तक मुझे अपनी तरफ से यह आश्वासन दे कर ही सन्तोष मानना पड़ेगा कि मैं सब दलों को एक मंच पर लाने की अपनी अभिलाषा में किसीसे पीछे नहीं हूं । पर मैं जानता हूं कि जब कि मतभेद शुरू से अंततक है तब दुनिया भर की इच्छा रखते हुए भी एक मंच निर्माण करना मुश्किल होता है । मनुष्य-प्रकृति भी रसायन की तरह है । परस्पर विरोधी वस्तुओं के संयोग का फल होता है विच्छेद । हर महासभावादी जिस बात को चाहता है और चाहना चाहिए, वह है वास्तविक एकता या सम्मेलन जिसका परिणाम हो बल, न कि पैबन्द लगाना जो कि उलटा कौम को कमजोर बना देगा और इसीलिए उसकी तरक्की को पीछे हटावेगा ।

बिहार में खादी

पुरलिया से एक मित्र लिखते हैं —

" आप पुरलिया पधारने वाले हैं, इसलिए अब सब लोग खादी खरीदने लगे हैं— जब तक आप यहां रहें तब तक आपको दिखाने के लिए । आपकी अवाई के समाचार से कुछ लोगों को अपने खादी पहनने की प्रतिज्ञा की याद होने लगी है और कुछ लोग तो लोगों की नुक्ताचीनी से बचने के लिए खरीद रहे हैं । अब जो शख्स आम तौर पर विलायती कपड़ा पहनता है, पर सिर्फ कुछ मौकों पर खादी पहनता है, वह ढोंगी नहीं तो क्या है ? और यदि आपके आगमन से ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती हो तो फिर उससे फायदा ही क्या ? पाखण्डी लोगों से कभी किसी देश के स्वराज्य को सहायता नहीं मिली है । एक समय था जब कि मैं विवाहोत्सव के अवसर पर खादी के कपड़े भेंट किया करता था । पर तजरिबे से मैंने देखा कि यहां शुद्ध खादी मिलना प्रायः असम्भव है । शुद्ध खादी के नाम पर आम तौर पर जापान और भारतीय मिलों की खादी बिकती है और स्वराज्य आश्रम से जो खादी मैंने खरीदी उसमें ताना मिल के सूत का था । "

इस खत से दो मार्के के सवाल पैदा होते हैं । एक तो यह कि कभी कभी खादी पहनना अच्छा है या नहीं ? इस सिद्धान्त के अनुसार कि ' कुछ नहीं से कुछ अच्छा है ' प्रसंगोपात्त खादी पहनने को प्रोत्साहन मिलना चाहिए । हम घर-बनी, घर-बुनी और घर-कती खादी बेचना चाहते हैं । ऐसी अवस्था में ऐसी खादी की जितनी मांग होगी अच्छा ही है और जो लोग प्रसंग प्रसंग पर उसका इस्तेमाल करते हैं, संभव है कि वे हमेशा के लिए ऐसा करने लगें । इसलिए मैं हर मौके पर उसके इस्तेमाल को प्रोत्साहन दूंगा । और न मैं इस बात की ही पुष्टि कर सकता हूं कि जो लोग कभी कभी खादी पहनते हैं वे आवश्यक-रूप से ढोंगी और पाखण्डी हैं । जो शख्स अपने असली रूप को छिपा कर अपनेको कुछ और ही दिखलाता है वह पाखण्डी है, जो इस प्रकार डींग नहीं हांकता वह नहीं । जो शख्स चुपके से शराब पीता है, पर जो अपने पड़ोसी को यह विश्वास दिलाता है कि उसने शराब छोड़ दी है वह पाखण्डी है मगर जो शख्स अपनी शराबखोरी की आदत को नहीं छिपाता है, पर समाज में अथवा मित्र के सामने नहीं पीता है वह पाखण्डी नहीं है । बल्कि एक विचारशील और समझदार आदमी है और उसके उस दुर्व्यसन से छूट जाने की पूरीपूरी आशा है । ऐसी अवस्था में पुरलिया के जो लोग मेरे आगमन के उपलक्ष्य में खादी खरीदते हुए पाये जाते हैं, वे यदि इसलिए खरीदते हैं कि मुझे यह विश्वास हो जाय कि उन्होंने कभी दूसरा कपड़ा पहना ही नहीं तो वे अवश्य पाखण्डी हैं । पर मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता कि ऐसे किसी बुरे विचार से वे खादी खरीद रहे होंगे । मेरे लिए यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि बहुतेरे लोगों ने अभी मिल का बना हुआ कपड़ा पहनना, फिर वह देशी मिलों का हो या विदेशी मिलों का, छोड़ा नहीं है । पर वे कभी कभी खादी पहनना बुरा नहीं समझते और चूंकि अब खादी पहनना महासभा का पहनाव हो गया है, वे लोग जो कि कभी कभी महासभा के कामकाज में शरीक होते हैं खादी पहनना उचित समझते हैं । ऐसी अवस्था में यद्यपि मैं यह चाहूंगा कि बिहार के तमाम भाई-बहन को इक

लिए खादी खरीदते हैं कि मेरे दौरे के समय महासभा के जलसों में शरीक हो सकें, सदा-सर्वदा खादी धारण किया करें। तथापि मैं उनके कभी कभी खादी पहनने पर उनकी निंदा नहीं कर सकता। इससे बिहार की बचत की खादी बिक जायगी और उतना रुपया अधिक खादी बनाने के लिए मिल जायगा। यह लाभ छोटा होते हुए भी कुछ जरूर है।

पत्र-लेखक की दूसरी बात ज्यादह गंभीर है। नकली माल से बचने का एक ही तरीका है और वह यह कि खरीददार माल की शुद्धता का विश्वास होने ही पर माल खरीदें। महासभा की संस्थायें या खादी-मण्डल इस बुराई को बंद करने, कम से कम रोकने में बहुत-कुछ मदद कर सकती हैं। पत्रलेखक कहते हैं कि तमाम मुख्य मुख्य केन्द्रों में महासभा की तरफ से खादी-भण्डार खोलने चाहिए। इस तरह की कुछ न कुछ कोशिश की गई थी। पर यह सवाल है रुपये का और संघटन का। अ० भा० चरखा-संघ ऐसी ही बुराई का इन्तजाम करने के उद्देश से कायम करने का विचार किया गया है। पर तबतक मैं पत्रलेखक जैसे सज्जनों से आग्रह करूंगा कि वे सुविधा के अभाव में खादी को छोड़ न दें। खादी और चरखे का सफल संघटन तभी हो सकेगा जब हम अपने सर्वोत्तम गुणों का उपयोग करेंगे और इसीलिए मैं अक्सर कहता हूं कि चरखे को अपनाने से हम स्वराज्य तक पहुंच जावेंगे।

गो-रक्षा

जिन लोगों ने मुझपर अ० भा० गोरक्षा-मण्डल की जिम्मेवारी का भार डाला है तथा जिन्होंने उसका मंगलाचरण किया है वे इत्मीनान रक्खें कि उसका काम-काज मेरे ध्यान से बाहर नहीं रहा है। पर हां, मैं इस विषय का जितना ही अध्ययन करता हूं उतना ही उसकी कठिनाई को पहचानता जाता हूं। गो-रक्षा के साथ ही, जिस अर्थ में कि मैंने इस शब्द का प्रयोग किया है, न केवल भारतवर्ष की पशु-जाति के कल्याण की और हिन्दू धर्म की मुक्ति की ही श्रृंखला जुड़ी हुई है बल्कि एक बड़े दरजे तक देश का आर्थिक कल्याण भी जुड़ा हुआ है। और दिन पर दिन यह विश्वास मेरे हृदय में दृढ़-मूल होता जा रहा है कि इस समस्या का निपटारा खास कर हिन्दुओं के और आम तौर पर भारतवासियों के इस मण्डल के साधनों की स्वीकृति पर अवलंबित है। इस उद्देश से कि मैं गो-रक्षा-संबंधी सब प्रकार के साहित्य का अध्ययन कर सकूं मैं तमाम स्थानिक संस्थाओं को तथा उन लोगों को जो कि पशुओं के प्रश्न में दिलचस्पी रखते हैं, सरकार के कृषि-विभाग तथा प्रान्तीय सरकारों को भी निमंत्रण देता हूं कि वे ऐसा साहित्य तथा पशु प्रश्न और दूध-शालाओं एवं चमड़े के कारखानों के संचालन से संबंध रखने वाले अंक मुझे पहुंचाने की कृपा करें। मण्डल की समिति की बैठक इस मास की ३ ता० को बंबई में होगी, जिसमें मैं मन्त्री तथा स्थायी खजानची के नाम प्रस्तावित करने की आशा रखता हूं। मैं यह भी आशा करता हूं कि जिन सज्जनों ने कुछ सदस्य बनाने का काम अपने जिम्मे लिया था वे अपने अंगीकृत कार्य की पूर्ति की सूचना दे सकेंगे। जो साहित्य आदि मैंने मांगा है वह इस पते से भेजा जा सकता है —

मंत्री अ० भा० गो-रक्षा-मण्डल,
सत्याग्रहाश्रम, साबरमती

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हमारी गंदगी

गंदगी के संबंध में मैंने दूसरी जगह एण्ड्रयूज सा० के प्रश्न की चर्चा की है। फिर भी उसका विचार स्वतंत्र-रूप से करने की आवश्यकता है।

शौच के हमारे नियम निहायत उम्दा हैं। स्नान हमेशा अवश्य करना चाहिए। परन्तु इन तमाम क्रियाओं का रहस्य हम नहीं जानते, इससे यह एक रिवाज-भर रह गया है। अथवा वहम के कारण हम ऐसा मानते हैं कि कैसे भी गंदे से पानी का स्पर्श हमें पवित्र और स्वर्ग का अधिकारी बना देता है। विज्ञान तो हमें यह सिखाता है कि वही स्नान गुणकारक होता है जो निर्मल जल से बदन मल कर किया जाता है। महज पानी के छींटे बदन पर डाल लेने से अथवा यों ही पानी उंडेल कर मैले कपड़े पहनने से लाभ तो कुछ नहीं उलटा नुकसान होता है। हमारे पैखाने तो इस पृथिवी पर ही मानों नरक की खान हैं। उनमें बैठना पाप ही है। जरा ही उद्यम से, विचार से, विवेक से हम उसमें सुधार कर सकते हैं। उसमें खर्च का सवाल ही नहीं है। सिर्फ ज्ञान की आवश्यकता है। गरीब से गरीब आदमी भी यदि चाहे तो शौच के नियम का पालन कर सकता है। हां, उसे अपना मैला देखने या साफ करने में घिन न होनी चाहिए। किसान को यह घिन नहीं होती। किसान तो बड़े गंदे तरीके से मैल की गाड़ियां भरते हैं।

अहमदाबाद, कानपुर आदि शहरों में जो गंदगी रहती है उसका कारण गरीबी नहीं, बल्कि घोर अज्ञान और काहिली है। मदरास में तो मैंने साहूकारों के महल्ले में ५० साल के धनिक आदमी को रास्ते में सुबह टट्टी जाते हुए देखा है। इस दृश्य का जब मैं विचार करता हूं तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हरद्वार में पवित्र गंगा का किनारा यात्रीलोग सुबह-शाम दुर्गंधित कर डालते हैं। वहां बैठना और चलना असंभव हो जाता है। भले आदमी कितनी ही जगह तो ज्यों के त्यों नदी में जा कर आबदस्त लेते हैं। सोनप्रयाग पर जल तक नहीं ले जाते। त्रिचनापल्ली में नदी में मैला यों आंखों से देख सकते हैं!!! और इसी पानी से नहाते हैं, इसीको पीते हैं। बंगाल के पोखरे नहाने-धोने तथा मवेशी और इन्सान के पानी पीने के काम में आते हैं।

परन्तु एण्ड्रयूज सा० के मित्र की शिकायत तो और ही है। वे कहते हैं— किसान जहां चाहे तहां टट्टी-पेशाब कर के जमीन खराब करते हैं। उसपर पानी बरसता है। और वह सारा मैला पानी में मिल जाता है। लाखों लोग नंगे पैर चलते हैं, इससे उन्हें नारू निकलते हैं, पेचिश वगैरह रोग होते हैं। असंख्य लोग तकलीफ पाते हैं और बे-शुमार बे-मौत मर जाते हैं। इस मैले का बढ़िया खाद बन सकता है। चीन के लोग उसका खाद बना कर करोड़ों रुपये बचाते हैं। हिन्दुस्तान के लोग क्यों न बचावें और तन्दुरुस्त भी रहें? दक्षिण अमेरिका में पहले हिन्दुस्तान की तरह हालत थी। पुरुषार्थ से उन्होंने २० साल में उसे बदल डाला और वहां के लोग बहुतेरे रोगों से बच गये।"

हम भी मन में धार लें तो बच सकते हैं। किस तरह बच सकते हैं, इसका विचार अगले सप्ताह में करेंगे। (नवजीवन)

सीरामपुर सरकारी वस्त्र-शाला

फरीदपुर परिषद के समय एक छोटी सी प्रदर्शनी भी की गई थी। पाठक इसे न भूले होंगे। उसमें सीरामपुर की वस्त्र-शाला के करघे और चरखे आये थे और उन्हें देख कर गांधीजी को उस वस्त्र-शाला को देखने की इच्छा हुई थी। वह अब पूरी हुई। वह एक सरकारी संस्था है। छोटी-सी है पर बड़ी अच्छी तरह चल रही है। बंबई इलाके में सरकारी हुनर-शालायें हैं परन्तु कहीं करघे और बुनाई पर इतना जोर दिया जाता देखा नहीं गया — चरखे पर तो कहीं भी नहीं। जब हम गये २०-२५ चरखे पर विद्यार्थी बढ़िया सूत तेजी के साथ कात रहे थे।

स्वराज्य या मौत

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक २

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, भाद्रपद सुदी ८, संवत् १९८२ गुरुवार, २७ अगस्त, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

मनुष्य-मात्र का बन्धुत्व

कलकत्ते के ईसाई-समाज के सम्मुख गांधीजी ने दो व्याख्यान दिये। एक भारतीय क्रिश्चन मिशनरी सोसायटी के सभ्योंके सामने और दूसरा ईसाई युवक समाज में।

पहले भाषण का विषय था मनुष्य-मात्र में भ्रातृभाव। हिन्दुस्थानी ईसाई ही उसमें अधिक संख्या में थे। आरम्भ में गांधीजी ने १८९३ से भी अधिक पुराना अपना सम्बन्ध ईसाइयों के साथ बता कर कहा कि उनमें से कितनों ही ने कभी भारतवर्ष को न देखा था। फिर भी मातृभूमि के प्रति उनका बड़ा प्रेम था। यह देख कर मुझे स्वभावतः आश्चर्य हुआ था। उनमें से अधिकांश लोग गिरमिटिया मां-बाप के सन्तान थे और सर विलियम हन्टर ने उनकी स्थिति को गुलामी के आसपास की स्थिति कहा था। "यह मैं आपसे इसलिए कहता हूं कि आपको इस बात की कल्पना हो जाय कि हमारे इन देशबन्धुओं को विदेश में जाकर उस गुलामी से छूटने और सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने में कितनी दिक्कत और मिहनत उठानी पड़ी होगी। उनमें से कितने ही आज विलायत में शिक्षा पा कर आ गये हैं, कितने ही फुटकर रोजगार करते हैं। बोर-युद्ध और जुलू बलवे के जमाने में उनके कितने ही युवकों ने सरकार को अपनी सेवा अर्पित की थी। कुछ तो मेरे ही घर में परवरिश पाये थे और उनमें से दो तो बॅरिस्टर हो गये थे। इससे आप जान सकेंगे कि वहां हिन्दुस्थानी ईसाइयों के साथ मेरा कैसा सम्बन्ध था। वहां एक भी ऐसा देशी ईसाई न होगा जिसे मैं न पहचानता होऊं और इस सम्बन्ध के कारण आज मुझे आपके सामने मनुष्यमात्र के बन्धुत्व पर बोलते हुए आनन्द होता है। अब वहां हमारे जिन भाइयों की विडम्बना हो रही है उन्हें मनुष्यमात्र के बन्धुत्व का क्या ख्याल आ सकता है? वे तो कहेंगे कि जहां से हिन्दुस्थानियों को निकालने का, अथवा एक अंग्रेज की मालिकी वाले अखबार ने जैसा कि कहा है, वहां से भूखों मार मार कर उन्हें निकालने का प्रयत्न वहां की सरकार कर रही है वहां बन्धुत्व किस तरह हो सकता है, यह हमारी समझ में नहीं आता। फिर भी मैंने आपके समक्ष इस विषय पर बोलना इसीलिए स्वीकार किया है कि ऐसी विडम्बना के समय और बुरे दिन में ही मनुष्य के प्रति मनुष्य के बन्धुत्व की सच्ची आवश्यकता होती है"।

मेरी योग्यता

"बहुत बार मेरी स्तुति की जाती है। उसे मैं एक कान से सुन कर दूसरे कान से निकाल देता हूं। पर आज आपने जिस गुण का आरोप मुझपर किया है उसे स्वीकार करने को जी चाहता है। आप कहते हैं कि मनुष्यमात्र के बन्धुत्व पर बोलने का हक यदि किसीको हो तो वह आपको अवश्य होना चाहिए। मैं इस बात को मानता हूं। मैंने अनेक बार यह देखने की कोशिश की है कि मैं अपने शत्रु का से घृणा कर सकता हूं या नहीं—यह देखने का नहीं कि प्रेम कर सकता हूं या नहीं, पर यह देखने का कि घृणा कर सकता हूं या नहीं — और मुझे ईमानदारी के साथ परन्तु पूरी पूरी नम्रता के साथ कहना चाहिए कि मुझे नहीं मालूम हुआ कि मैं उससे घृणा कर सकता हूं। मुझे यह याद नहीं आता कि कभी किसी भी मनुष्य के प्रति मेरे मन में तिरस्कार उत्पन्न हुआ हो। मैं नहीं समझ सकता कि यह स्थिति मुझे किस तरह प्राप्त हुई है। पर आपसे यह कहता हूं कि जीवन भर मैं इसीका आचरण करता आया हूं।

बन्धुत्व किसे कहते हैं?

बन्धुत्व का अर्थ यह नहीं कि जो आपके भाई बनें, जो आप को चाहें उनके आप भाई बनें। यह तो सौदा हुआ — बदला हुआ। बन्धुत्व में व्यापार नहीं होता। मेरा धर्म तो मुझे यह शिक्षा देता है कि बन्धुत्व मनुष्यत्व के साथ नहीं, प्राणिमात्र के साथ होना चाहिए। कितनी ही मानवदया-सभायें इंगलैंड में मासिक पत्र निकालती हैं। एक में तीस पैंतीस साल पहले मैंने 'मेरा भाई बैल' नाम की कविता पढ़ी थी। उसमें यह उपदेश बड़ी मनोहर रीति से दिया गया था कि मनुष्य को चाहिये कि वह प्राणिमात्र पर प्रेम करे। मैं उसपर मुग्ध हो गया था। उस समय मुझे हिन्दुधर्म का बहुत कम ज्ञान था। मेरे आसपास के वायुमंडल से, मेरे माता-पिता से तथा स्वजनों से जो कुछ मिल सकता था मिला था। तो भी इतना तो मैं समझ ही गया था कि सब धर्म प्राणिमात्र के बन्धुत्व का उपदेश करते हैं। पर मैं आज इस व्यापक बन्धुत्व की बात करना नहीं चाहता। मैं तो यह बात यह दिखलाने के लिए करता हूं कि यदि हम अपने शत्रु के साथ भी प्रेम करने के लिए तैयार न हुए तो हमारा बन्धुत्व और कुछ नहीं, एक दम्भमात्र है। दूसरी तरह से कहूं कि जिसने अपने

हृदय में बन्धुत्व के भाव को स्थान दिया है वह यह नहीं कहने दे सकता कि उसका कोई शत्रु है। लोग चाहे हमें अपना शत्रु मानते रहें पर हम ऐसा दावा न करें।

शत्रु को भाई कैसे समझें ?

"तब सवाल यह होता है कि जो हमें अपना शत्रु समझते हैं उनके साथ प्रेम किस तरह करें ? प्रतिदिन मुझे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई लोगों की चिट्ठियां मिलती हैं, जिनमें वे कहते हैं कि यह बात गलत है कि हम शत्रु को मित्र मान सकते हैं। हिन्दू लेखक लिखते हैं कि जो गाय हमारे लिए प्राणसमान प्रिय है उसको मारने वाले मुसलमान के साथ प्रेम किस तरह हो सकता है ? ईसाई लेखक पूछते हैं कि अस्पृश्यता को मानने वाले, अपने भाइयों को अछूत समझ कर दलित करने वाले हिन्दुओं के साथ प्रेम किस तरह करें ? लेखक यदि मुसलमान हो तो वह पूछता है कि बुत-परस्त हिन्दुओं के साथ महब्बत कैसे हो सकती है ? उन तीनों से मेरा यह कहना है कि 'आपका बन्धुत्व बेकार है—यदि आप अपने वर्णित इन लोगों को न चाह सकते हों' परन्तु इस तिरस्कार-भाव का अर्थ क्या है ? इसके मूल में भय है या सहिष्णुता ? यदि हम सब एक ईश्वर की सन्तान हैं तो हम एक दूसरे से क्यों डरें, अथवा हमसे भिन्न मत रखनेवाले से द्वेष क्यों करें ? पर जिस कृत्य से हम घृणा करते हों वह क्या किसी मुसलमान को करने दें ? मेरा बन्धुत्व उत्तर देता है 'हां' ! और इसमें इतनी बात अधिक जोड़ता हूं 'आप अपनेको कुरबान कर दीजिए। जो वस्तु आपको प्रिय हो, यदि आप उसकी रक्षा करना चाहते हों तो आप बिना किसीपर हाथ उठाये उसके लिए मर जाइए।' मुझे ऐसी घटनाओं का अनुभव है। आपके अन्दर यदि प्रेम के साथ कष्ट सहने की हिम्मत हो तो आप पाषाण—हृदय को भी पानी पानी कर सकोगे। बदमाश यदि आपसे ज्यादा बलवान हो तो आप हाथ उठा कर क्या करेंगे ? वह आपको जीत कर अधिक बदमाशी न करेगा ? दुष्टता की आग विरोध के घी से अधिक नहीं धधकती ? क्या इतिहास इस बात का साक्षी नहीं है ? और क्या इतिहास में ही ऐसे उदाहरण नहीं मिलते कि अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुंच जाने वालों ने बड़े बड़े विकराल पशुओं को वश में कर लिया है ? पर इस पराकाष्ठा की अहिंसा को जाने दें। इसके लिए तो महा शूरवीर योद्धा से भी अधिक बहादुरी की जरूरत है। और जिसके प्रति आपके मन में तिरस्कार हो उसके साथ लड़ कर मर जाने के डर से बैठ रहने की अपेक्षा तो लड़ लेना अच्छा है। कायरता और बन्धुत्व परस्पर-विरोधी हैं। संसार शत्रु के साथ प्रीति करने की बात को स्वीकार नहीं करता। ईसा के अनुयायी योरप में भी अहिंसा के सिद्धान्त का मजाक उड़ाया जाता है। वहां से कोई साहब लिखते हैं, अहिंसा का सिद्धान्त अधिक समझाइए, तो कोई कहते हैं हिन्दुस्तान में बैठे बैठे आप भले ही ऐसी बातें कीजिए। योरप में आप ऐसा नहीं कर सकते, और कितने ही लिखते हैं कि ईसाई-धर्म तो आज पाखण्ड हो रहा है, ईसाई लोग ईसा के सन्देश को नहीं समझते, इस तरह उसके पहुंचाने की जरूरत है कि हम समझ जायं। तीनों की दृष्टियों से तीनों का कथन ठीक है, पर मुझे कहना होगा कि यदि शत्रु को चाहने का सिद्धान्त स्वीकार न करें तो बन्धुत्व की बातें करना हवा में महल बनाना है। कितने ही स्त्री-पुरुष मुझसे पूछते हैं कि क्या लोग कहीं वैर-भाव को छोड़ सकते हैं ? मैं कहता हूं 'हां।' हमें अपने मनुष्यत्व का पूरा भान नहीं, इसीसे वैर नहीं छोड़ा जाता। डार्विन कहता है, हम बन्दर के वंशज हैं। यदि यह सच हो तो हम अभी मनुष्य की दशा प्राप्त नहीं कर पाये हैं।

डा॰ आनाक्सिसफर्ड ने लिखा है कि मैंने पेरिस में मनुष्यों के रूप में सिंह, शेर, भालू और सांप को विचरते हुए देखा है। इस पशुत्व को मिटाने के लिए मनुष्य का भय छोड़ने की आवश्यकता है। डर अपने अन्दर बल उत्पन्न कर के दूर किया जा सकता है हथियार से सुसज्जित हो कर नहीं। महाभारत ने वीर का भूषण अथवा वीर का गुण क्षमा बताया है। जनरल गार्डन का एक पुतला है, उसकी बहादुरी बताने के लिए उसके हाथ में तलवार नहीं, बल्कि एक छड़ी रक्खी गई है। यदि मैं शिल्पकार होता और मैं गार्डन की मूर्ति बनाता तो मैं उन्हें अदब के साथ सीना ताने हुए खड़ा बनाता और नीचे लिखे शब्द उच्चार करता हुआ बनाता—'चाहे कितने ही प्रहार करो, बिना भय के, बिना वैर के उन्हें झेलने के लिए यह सीना खुला हुआ है।' यह है मेरे वीर का आदर्श। ऐसे वीर जगत में अमर हो गए हैं। ईसाई-धर्म ने ऐसे शूरवीरों को जन्म दिया है। हिन्दू-धर्म और इस्लाम ने भी दिया है। मुझे यह कहना ठीक नहीं मालूम होता कि इस्लाम तलवार का धर्म है। इतिहास ऐसा नहीं सिखलाता।

ये तो व्यक्तियों की बातें हैं। जातियों के निर्वैर हो जाने के भी उदाहरण हैं। ज्यों ज्यों हम बन्धुत्व का सबक सीखते जायंगे और उसके अनुसार चलते जायंगे त्यों त्यों वह व्यापक होता जायगा। क्वेकर तथा टाल्स्टाय कथित दुखोबोर का इतिहास क्या कहता है ?

निर्वैर हो सकते हैं ?

"परन्तु योरप के कितने ही नामी लेखक तथा भारत के बड़े लेखक कहते हैं कि ऐसा समय कभी नहीं आ सकता कि मनुष्य-जाति निर्वैर हो जाय। इसी बात पर मेरा विवाद है। मैं उलटा यह कहता हूं कि मनुष्य जबतक निर्वैर नहीं हो जाता तबतक वह मनुष्य नहीं बन सकता, अपने धाम को नहीं पहुंच सकता। हम चाहें या न चाहें, हमें इसी रास्ते जाना होगा, और आज मैं आपसे यह कहने आया हूं कि लाचार हो कर इस रास्ते जाने की अपेक्षा स्वेच्छा से क्यों न जायें ? यह बात जरा विचित्र मालूम होगी कि मुझे ईसाइयों के सामने यह बात करना पड़ती है। परन्तु हिन्दुओं के सामने भी यही बात करना पड़ती है। कितने ही ईसाई तो मुझे कहते हैं कि हजरत ईसा की निर्वैरता का उपदेश केवल उनके १२ शिष्यों के ही लिए था। हिन्दुस्तान में अहिंसा के विरोधी लोग कहते हैं कि अहिंसा से नामर्दी फैलेगी। मैं आपसे कहने के लिए आया हूं कि यदि भारतवर्ष अहिंसक न बनेगा तो उसका सत्यानाश समझिए, दूसरी तमाम कौमों का नाश समझिए। भारतवर्ष तो एक भारी भूखण्ड है। वह यदि हिंसक हो जाय तो और खण्डों की तरह वह भी दुर्बल पर सीनाजोरी करेगा और यदि ऐसा हुआ तो इसका क्या फल होगा, इसकी कल्पना कर लीजिए।

राष्ट्रीयता में बन्धुत्व है ?

"मेरी राष्ट्रीयता में प्राणिमात्र का समावेश होता है, संसार की समस्त जातियों का समावेश होता है। और यदि मैं भारतवर्ष को अहिंसा का कायल कर सकूं तो भारत सारे जगत को भी कुछ चमत्कार दिखा सकेगा। मैं नहीं चाहता कि भारत दूसरे राष्ट्रों की चिताभस्म पर खड़ा हो। मैं चाहता हूं कि भारत आत्म-बल प्राप्त करे और दूसरे राष्ट्रों को बलवान बनावे। दूसरे राष्ट्र हमें बल का मार्ग नहीं दिखा रहे हैं। इसलिए मुझे इस अचल सिद्धान्त का आश्रय लेना पड़ा है कि मैं कभी उस विधान को स्वीकार न करूंगा जिसका आधार पशु-बल हो।

स्वराज्य के बाद खादी इसलिए घर घर फैल जायगी कि फिर उसके पहनने में कोई डर न रह जायगा। इसके अलावा लोगों को राष्ट्रीय सरकार के जिला बोर्डों आदि से प्रोत्साहन भी मिलेगा। और सब से बढ़कर ऐसा कानून बन जायगा कि विदेशी कपड़ा पहनना जुर्म है, जैसा कि हर कौम ने अपने घरेलू उद्योग धन्धों को तरक्की देने के लिए किया है।

(२) स्वराज्य के बिना स्थायी हिन्दू-मुस्लिम-एकता नहीं हो सकती। इसके कारण ये हैं—

मेरे लड़कपन में मेरे एक चचा ने एक किस्सा कहा था। दो नौजवान बड़े दोस्त थे, मानों एक जान दो कालिब। उनके मा-बापों को यह पसन्द न था और वे इन दोनों में दुश्मनी कराना चाहते थे। उन्होंने यह ढिंढोरा पिटवाया कि जो इन दोनों दोस्तों में झगड़ा करा देगा उसको अच्छा इनाम दिया जायगा। एक बूढ़ी औरत ने जिसको लोग कुटनी कहते थे, इसका बीड़ा उठाया। वह उनके पास गई और एक को दूसरे से अलहदा अपने पास बुलाया - मगर इस तरह कि जिससे दूसरा देख ले। उसने अपना मुंह उसके कान को लगाया और ऐसा दिखाया कि मानो कुछ कह रही है, पर हकीकत कहा कुछ नहीं और चली गई। वह अपने दोस्त के पास गया तो उसने पूछा कि बुढ़िया ने क्या कहा? बिचारे ने जवाब दिया कि कुछ नहीं। अब कुदरती तौर पर उस दोस्त के मन में शुबह पैदा हुआ। उसने खुद अपनी आंखों बुढ़िया का मुंह उसके (दूसरे दोस्त के) कान के पास देखा, मगर वह नहीं जान पाता कि उसका उद्देश क्या था और फल क्या हुआ? दोनों में लड़ाई हो गई और बुढ़िया ने इनाम पाया।"

ठीक इसी तरह महात्माजी हिन्दू-मुसलमानों में तब तक पूरी एकता की उम्मीद न कीजिए जबतक कि एक तीसरी ताकत दोनों के बीच में मौजूद है, जिसके कि पास न केवल इस देश की बल्कि सारे ब्रिटिश साम्राज्य की साधन-सामग्री है और जो अच्छी तरह जानती है कि मेरी हस्ती इस देश की जुदी जुदी जातियों की फूट और बाहमी झगड़े पर ही अवलम्बित है और जो कि हरवक्त उनमें झगड़े कराने की कोशिश करती रहती है। आप बहुत चाहते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता स्वराज्य की सड़क बन जाय, पर अगर आप फिर फिर इसपर विचार करेंगे तो यकीनन आप इस नतीजे पर पहुंचेंगे कि इस सरकार का तख्ता उलट देना और स्वराज्य की स्थापना करना ही इस देश की भिन्न भिन्न जातियों में सुलह और एकता करने की सड़क होगी, न कि सुलह और एकता स्वराज्य की।

स्वराज्य के पहले स्थायी एकता असम्भव है।

(३) अछूतपन भी इस देश में स्वराज्य के पहले दूर नहीं हो सकता। इसके सबब ये हैं—देश के लिए जो कुछ भी अच्छा काम किया जाता है यह सरकार और उसकी प्रेरणा से उसके देशी मित्र—देशी राज्य उसका विरोध करते हैं। अस्पृश्यता-निवारण में देश का हित है और इसलिए सरकार उसका आड़े-टेढ़े रास्ते से विरोध करवाती रहेगी। वाइकोम में सत्याग्रहियों को सरकार ने कितना तंग किया! एक तो अछूतों को हिन्दू-मंदिर में कुछ हक और सुविधा दिलाने का विरोध खुद सनातनी हिन्दू ही करेंगे, दूसरे क्या यह सच नहीं है कि सरकार अछूतों के खिलाफ उनकी मदद करेगी? ऐसी हालत में आप जबतक कि इस सरकार को न हटादें कैसे इसमें सफलता प्राप्त कर सकते हैं? महात्माजी, अभी तो देश की हर बुरी बात के लिए अकेली यह सरकार ही जिम्मेवार है। आपके इस कार्यक्रम को देश के अधिकांश लोगों ने अपनाया है; पर इस सरकार की हस्ती के बदौलत ही वह पूरा नहीं हो पाया है।

अपने त्रिविध कार्यक्रम के संबंध में आप जो कुछ कहते हैं उसमें बहुत सत्यांश है। फिर भी मैं अदब के साथ कहता हूं कि आप कुछ दर्जे तक अमली-पन को नजर-अन्दाज करते हैं। और हम आपके सैनिक वफादारी के साथ अपने बस भर आप के हुक्मों की तामील करते हैं। पर मेरी प्रार्थना है कि कृपा कर के स्वराज्य की बात पर पहले विचार कीजिए और बातों पर पीछे। एक-मात्र स्वराज्य ही तमाम राष्ट्रीय दुःखों को दूर कर सकता है। आप पहले ही कह चुके हैं कि यदि इस साल के अन्त तक लोग खादी कार्यक्रम को पूरा न कर सकेंगे तो देश को ऐसा कार्यक्रम दूंगा कि जिससे तमाम स्वराज्य के मतवालों के लिए या तो स्वराज्य होगा या मौत, कृपया जल्दी कीजिए नहीं तो सब काम मन्द पड़ जायगा। वह समय अब तकरीब आ पहुंचा है जब कि आप अपना वह कार्यक्रम प्रकाशित करें और कौम को पुकारें—'या तो स्वराज्य लो, या मर मिटो।'"

लेखक की दलीलों में कुछ सत्यांश जरूर है। पर उनका यह कहना बिल्कुल गलत है कि तमाम बुराइयों की जड़ यह सरकार ही है; क्योंकि इस कहावत में क्या बहुत-कुछ सत्यांश नहीं है कि लोग वैसी ही सरकार को पाते हैं जिस लायक कि वे होते हैं? यदि हम ऐसे लोग न होते जो कि आसानी से उल्लू बना दिये जाते हैं या दबा दिये जाते हैं तो हम ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लालोचप्पो या बल के वशीभूत न हो गये होते और चरखा और खादी को न छोड़ बैठते होते। यदि हम हिन्दू और मुसल्मान आपस में भाइयों की तरह रहे होते तो ब्रिटिशों के प्रतिनिधि हम लोगों में फूट न डाल सकते। और, अछूतपन की हस्ती के लिए सरकार को दोष देना उसकी तौहीन करना है। यदि सरकार को सनातनी हिन्दुओं के विरोध का डर न होता तो मुमकिन था कि वह बहुत पहले अछूतपन को बहुत-कुछ कम कर सकी होती। मैं एक भी ऐसी मिसाल को नहीं जानता जिसमें सरकार ने इस सुधार में रुकावट डाली हो। वाइकमवाले मामले में ब्रिटिश सरकार को दोष देना गलती है। उसका एकमात्र कारण है देशी सरकार की कम हिम्मती। मेरा वर्तमान सरकार अर्थात शासन-प्रणाली से कोई प्रेम नहीं है। पर यदि मैं अपने क्रोध के आवेश में विवेक-शक्ति को खो बैठूं तो मैं इस सरकार को मिटाने में समर्थ न हो सकूंगा। 'शैतान को भी उसका हिस्सा दो' यह एक अच्छी कहावत है और ध्यान में रखने योग्य है।

पर हां, मुझे यह खटका जरूर है, पूरा पूरा है कि जब खादी में इतनी शक्ति आ जायगी कि वह विदेशी कपड़े को देश से निकाल सके तो यह सरकार सहन कर के उसके गला घोंटने का प्रयत्न करेगी। मैं यह मानना नहीं चाहता कि यह बलवाइयों का लिबास है या उसके ऐसा होने की आवश्यकता है। हां, बात यह है कि सरकारी हलकों में खादी के खिलाफ कुछ न कुछ प्रचार होता रहता है। मुझसे कहा गया है कि खादी पहनने वालों पर तथा खादी के मुकामों पर नजर रक्खी जाती है। सरकारी हलकों में पहनने वालों को वे सुविधायें नहीं दी जाती जो उनके खादी न पहनने की अवस्था में दी गई होती। परन्तु हरखास और आम को खादी को अपनाने से कोई नहीं रोकता। निश्चय ही स्वराज्य आसमान से तो टपक पड़ेगा नहीं। वह तो फल होगा हमारे धैर्य का, अध्यवसाय का, अविराम कठिन परिश्रम का, साहस का और वायुमंडल की बुद्धिपूर्वक कदर करने का। लेखक दैवी शक्ति की बात करते हैं; पर वह भी प्रार्थना-पूर्वक किये गये कठिन परिश्रम को ही मिल सकती है। जिसका शरीर या मन शिथिल है उसको नहीं। बिना श्रम के प्रार्थना वैसी ही

जैसी कि आचरण के बिना श्रद्धा—बिना पानी की नदी। इसलिए चाहे हम स्वराज्य के पहले विदेशी कपड़े को सोलहों आना देश से न हटा सकें, पर हम खादी का एक 'अच्छा दृश्य' तो खड़ा कर सकते हैं। अच्छा, कहिए, महासभावादी को राष्ट्रीय कामों के लिए खादी पहनने और चर्खा कातने से कौन रोकता है? या क्या उनसे खादी पहनने और चर्खा कातने की उम्मीद तब की जाय जब स्वराज्य स्थापित हो जायगा? क्या हम वे फरिश्ते हैं जो राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की राह देखते बैठे कि वह आ कर हमारे पंख फड़फड़ा देगी? हो सकता है कि स्वराज्य के पहले भिन्न भिन्न जातियों में आदर्श एकता न हो; पर काम चलाने लायक एकता होने में क्या रुकावट है? क्या यह सच बात नहीं है कि हम एक दूसरे को इतना अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं कि जिससे वास्तव में स्वराज्य की इच्छा ही नहीं होती?

पत्र-लेखक एक गलती कर रहे हैं। सरकार के कार्य के सम्बन्ध में उनका खयाल गलत है। वे यह समझते हैं कि आदर्श सरकार वह है जो हमारे लिए हर बात का हुक्म जारी कर दिया करे जिससे हमें कोई बात सोचने तक की जरूरत न रहे। पर सच बात यह है कि आदर्श सरकार वह है जो कम से कम हुकूमत करती हो। वह स्वराज्य ही नहीं है जो लोगों के लिए कुछ भी करना—धरना बाकी नहीं छोड़ता। वह तो विद्यार्थी की अवस्था है। आज हमारी हालत यही है। लेखक अभी उस स्थिति से ऊपर उठने में समर्थ नहीं मालूम होते पर यदि हमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो हममें से अधिकांश लोगों को अपनी अजनू नाबालगी से आगे बढ़कर वयस्कता का अनुभव करना होगा। हमें कम से कम उन उन बातों में तो जरूर अपना शासन आप करना चाहिए जिनमें कि मदान्ध सत्ता प्राणपण से हमारा विरोध नहीं कर रही है। त्रिविध कार्यक्रम स्व-शासन-विषयक हमारी क्षमता की कसौटी है। यदि हम अपनी तमाम कमजोरियों का दोष मौजूदा सरकार पर लगाते रहेंगे तो हम उन्हें कदापि दूर न कर सकेंगे।

लेखक मुझे बेलगांव में कही अपनी इस बात की याद दिलाते हैं कि यदि सम्भवतः इस साल के अखीर में हम बहुत आगे न बढ़ गये तो मैं कोई ऐसा रास्ता निकालूंगा जिससे हम अपना अन्तिम निर्णय कर लें और कह दें 'बस या तो स्वराज्य लेंगे या मर मिटेंगे।' वे अपने मन में शायद किसी ऐसी उथलपुथल की बात समझ रहे हैं जिसमें हिंसा और अहिंसा का सब भेद भुला दिया जायगा। ऐसे क्रम से हम स्वेच्छाचार को पहुँचेंगे, आत्म-शासन को नहीं। वह स्वेच्छाचार और कुछ नहीं, अराजकता होगी, जो कि आत्मा की गुलामी या दबाव से हर हालत में बेहतर है; पर वह ऐसी अवस्था है जिसके लाने में मैं न केवल कारणीभूत न हूंगा बल्कि जिसके लिए मैं स्वभावतः अयोग्य हो गया हूं। और मैं स्वराज्य लेने या मर मिटने का जो कुछ उपाय बताऊंगा वह हर हालत में गोलमाल और अराजकता से दूर रहेगा। इस लिए मेरा स्वराज्य औरों के खून का फल न होगा, बल्कि स्वयंस्फूर्त लगातार कुरबानियों का फल होगा। मेरा स्वराज्य खून-खराबी के द्वारा किसीसे अपने हकों का छीनना न होगा, बल्कि वह सत्ता का प्राप्त करना होगा जो कि कर्तव्य के अच्छी तरह सचाई के साथ पालन करने का सुन्दर और स्वाभाविक फल होगा। इस लिए उसमें नेतृत्व के ढंग का काफी ओहदा होगा, नारो* के ढंग का नहीं। अभी तो मेरे पास कोई युद्ध तैयार नहीं है; पर लेखक के इस विश्वास को मैं भी मानता हूं कि ईश्वर ही उसका रास्ता बतावेगा। मैं उस चिन्ह की राह देख रहा हूं। वह तभी दिखाई दे सकता है, दिखाई देता है, जब कि क्षितिज घोर अंधकार से व्याप्त हो। पर मैं इतना जानता हूं कि वह तब दिखाई देगा जब देश में ऐसे युवा-युवतियों का एक दल निर्माण हो जायगा जिन्हें देश के लिए काम में, काम में और महज काम में पूरा मौका मिलता हो।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

* वह रोम का बादशाह था, जो कि अपने नगर को जलने की खुशी के आमोदमें बंसी बजाता रहा [illegible] है।

एक-लिपि

यदि हमको अपना यह दावा मजबूत बनाना हो कि हम एक-राष्ट्र हैं तो हमें बहुतेरी बातें एक-सी रखना पड़ेंगी। भिन्न भिन्न धर्म-मतों और पन्थों के रहते हुए भी हमारे यहां संस्कृति की एकता तो है। हमारी त्रुटियां भी एक-सी हैं। मैं यह दिखलाने की कोशिश कर ही रहा हूं कि पहनाव के लिए एक तरह की वस्त्र-सामग्री केवल इष्ट ही नहीं आवश्यक भी है। हमें एक-भाषा की भी जरूरत है—देशी भाषाओं की जगह पर नहीं, बल्कि उनके अलावा। और आम तौर पर यह बात मान ली गई है कि वह माध्यम हिंदुस्तानी ही होना चाहिए, जो कि हिन्दी और उर्दू के मिलाप का फल हो और जिसमें न तो भारी भरी संस्कृत के शब्द हों और न अरबी या फारसी के। अब हमारे रास्ते में सब से बड़ी बाधा है हमारी देशी-भाषाओं की अनेक लिपियां। यदि हम एक-लिपि को अपना सकें तो हम अपने एक-भाषा-संबंधी वर्तमान स्वप्न को सच बनाने के रास्ते की एक भारी रुकावट दूर कर देंगे।

लिपियों की बहुतायत एक नहीं अनेक तरह से बाधक है। वह ज्ञान-प्राप्ति के रास्ते में एक जबरदस्त विघ्न है। आर्य-भाषाओं में इतनी समानता है कि यदि हमें उनकी विविध लिपियों को सीखने में बहुतेरा समय नष्ट न करना पड़े तो हम कितनी ही भाषाओं को बिना अधिक कठिनाई के जान सकें। जैसे-यदि किसी मनुष्य को थोड़ा भी संस्कृत का ज्ञान हो तो उसे कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनुपम रचनाओं का स्वाद लेने में कोई कठिनाई न होगी, यदि वे देवनागरी लिपि में प्रकाशित हों। परन्तु बंगला-लिपि तो मानों अ-बंगालियों को एक नोटिस ही है—'मुझे न छुओ'। इसी तरह यदि बंगाली देवनागरी-लिपि को जानते हों तो वे तुलसीदास की अद्भुत सुन्दरता और आध्यात्मिकता का तथा दूसरे कितने ही हिन्दी लेखकों की कृतियों का रसास्वाद कर सकते हैं। जब कि मैं १९०५ में भारतवर्ष को लौटा तब, मैं समझता हूं, कलकत्ते की किसी एक समिति से मेरा पत्रव्यवहार हुआ था जो कि एक-लिपि-विस्तार के लिए प्रयत्न कर रही थी। मुझे उस संस्था के कामकाज का हाल मालूम नहीं है; पर यदि कुछ उत्साही लगन वाले कार्यकर्ता धार लें तो इस दिशा में बहुत पक्का और सार-रूप काम हो सकता है। हां, इस काम की मर्यादायें जरूर हैं और वे स्पष्ट हैं। सारे हिन्दुस्तान के लिए एक-लिपि का होना एक दूरवर्ती आदर्श है। परन्तु उन सब लोगों के लिए जो कि संस्कृत से उत्पन्न होने वाली भाषायें जिनमें दक्षिण की भाषायें भी शामिल हैं, बोलते हैं, एक लिपि का होना व्यावहारिक आदर्श है, यदि हम सिर्फ अपनी प्रान्तीयता को दूर कर दें। उदाहरण के लिए एक गुजराती के लिए गुजराती-लिपि पर चिपटे रहना कोई खास गुण नहीं है। प्रान्त-भाव अच्छी चीज है जब कि वह देशभक्ति की बड़ी धारा को

सहायक होती हो । इसी तरह देशभक्ति भी उसी हद तक अच्छी चीज है जिस हद तक वह बड़ी धारा विश्व-भक्ति को सहायक होती हो । वह प्रान्त भक्ति जो कहती है कि भारतवर्ष अपने घर गया, हमारे लिए गुजरात ही सब कुछ है, बुरी चीज है । गुजरात का नाम यहां मैंने इसलिए लिया है कि एक तो वह इस बात में अपवाद का ठिकाना है, और दूसरे मैं खुद एक गुजराती हूं । गुजरात में तो थोड़े-बहुत भाग्य से उन लोगोंने जिन्होंने कि प्रारम्भिक शिक्षा के सिद्धान्तों को स्थिर किया है, देवनागरी को अनिवार्य करना तय किया है । इसलिए वहां हर एक गुजराती लड़का या लड़की, जिसने किसी मदरसे में तालीम पाई है, देवनागरी और गुजराती दोनों लिपियों को जानती है । यदि उन्होंने सिर्फ देवनागरी लिपि ही तय की होती तो और भी अच्छा होता । हां, पुरातत्व के प्रेमियों को तो अवश्य पुराने ग्रन्थों और लेखों को पढ़ने के लिए गुजराती लिपि पढ़नी होगी । परन्तु गुजराती लड़कों की शक्ति दूसरे उपयोगी श्रम के लिए बच रहती, यदि उन्हें दो के बजाय एक ही लिपि पढ़नी होती । जिस समिति ने महाराष्ट्र में शिक्षा-योजना तैयार की वह और भी अधिक विचारवान थी । उसने सिर्फ देवनागरी लिपि को ही कायम रक्खा । फल यह हुआ है कि एक महाराष्ट्रीय तुलसीदास के ग्रन्थों को उतने ही अच्छे प्रकार कम से कम पढ़ अवश्य सकता है जितने कि तुकाराम के ग्रन्थों को, और गुजराती और हिन्दुस्तानी भी उतने ही अच्छी तरह तुकाराम के ग्रन्थों को पढ़ सकते हैं ।

परन्तु बंगाल में इसके विपरीत निर्णय हुआ, जिसको हम सब लोग जानते हैं और जिसे कि बहुतेरे शोचनीय मानते हैं । भारत की सब से समृद्ध भाषा के जौहर तक पहुंचना मानों जानबूझ कर अत्यन्त कठिन बना दिया गया है । और इस बात के लिए कि देवनागरी ही सर्व-सामान्य लिपि हो, मैं समझता हूं, किसी प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता न होगी; क्योंकि यही तो एक ऐसी लिपि है जिसे भारत के अधिकांश भाग के लोग जानते हैं । उसका प्रचार ही उसके पक्ष में यह फैसला देता है ।

ये विचार मेरे मन में इसलिए उत्पन्न हो रहे हैं कि अभी मन में खटक गया था, एक असली सवाल हल करने के लिए मेरे सामने पेश किया गया था । वहां एक ऐसी जाति है जो बिहार के हिन्दी-भाषी और उड़ीसा के उड़िया-भाषी लोगों के बीच में है । सवाल यह था कि उनके बच्चों की पढ़ाई का कैसा इन्तजाम करें ? उन्हें उड़िया सिखाई जाय या हिन्दी ? उन्हें अपनी ही मातृभाषा के द्वारा शिक्षा दी जाय और उनकी लिपि देवनागरी रहे या कोई नई ईजाद की जाय ? उत्कल-वासियों का पहले पहल यह विचार हुआ कि उनको उड़िया लोगों में शामिल कर लिया जाय । बिहारी लोग उन्हें बिहारियों में मिलाना चाहेंगे और यदि उस जाति के बड़े-बूढ़ों से पूछा जाय तो शायद वे कुदरती तौर पर कहेंगे कि हमारी बोली उड़िया और बिहारी से कम नहीं है और उसकी लिपि भी जरूर बननी चाहिए और उसके लिए यदि कोई नई ईजाद की हुई लिपि न हो जैसा कि एक दो जगह वर्तमान युग में होता हुआ मैंने देखा है, तो इसबात में खींचा-तानी होगी कि लिपि देवनागरी रहे या उड़िया ? अखिल भारत को विचार-पथ में रखने का प्रयत्न करते हुए मैंने उन मित्रों से कहा कि उनके लिए यह तो उचित है कि वे उड़िया-भाषी लोगों में उड़िया भाषा को अनुकूल बनावें; पर इस जाति के लोगों को हिन्दी सिखानी चाहिए और कुदरती तौर पर लिपि भी देवनागरी होनी चाहिए । जो नीति इस प्रकार की बोली को स्थायी और अलग रूप देना चाहती है — इसकी संकुचित और दूसरे से अलग कर रहती है, वह राष्ट्र-धर्म और विश्वभाव के प्रतिकूल है । मेरी नाकिस राय में तमाम अनुन्नत और अलिखित बोलियां महान हिन्दुस्थानी के प्रवाह में शामिल हो जानी चाहिए । यह बड़ी ऊंची कुर्बानी होगी कोई खुदकुशी न होगी । यदि सुसंस्कृत हिन्दुस्थान के लिए हमें एक-भाषा बनाना है तो हमें भाषाओं और लिपियों की वृद्धि और भिन्नता की इस बढ़ती को रोकना होगा । हमको जरूर एक-भाषा तैयार करनी होगी । उसकी शुरूआत कुदरती तौर पर लिपि से हो होगी और अबतक हिन्दू-मुसलिम प्रश्न हल न होगा देश के हिन्दू लोगों में ही यह मर्यादित रहेगी । यदि मेरी चलती तो देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों का, अन्य प्रान्तीय लिपियों के अलावा, हर प्रान्त में पढ़ना अनिवार्य कर देता और मैं भिन्न भिन्न देशी भाषाओं के मुख्य ग्रन्थों को देवनागरी लिपि में छपवाता और साथ ही उसका अक्षरशः अनुवाद भी हिन्दुस्थानी में छपवाता । दुर्भाग्यवश अबतक थोड़े ही महासभा-वादियों ने देवनागरी लिपि सीखने की और उससे भी थोड़ों ने उर्दू-लिपि सीखने की तकलीफ गवारा की है ।

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

खादी कार्यकर्ताओं का लेखा

नीचे लिखे अंक स्वयं खादी कार्य की स्थिति बतलाते हैं । मुझे खुशी है कि प्रायः सब केन्द्रों ने अपनी रिपोर्ट जल्दी भेज दी है—

केन्द्र	पूरा समय काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की संख्या	ग्रेजुएट	वैतनिक या अवैतनिक	अधिक से अधिक मासिक वेतन	कम से कम मासिक वेतन	औसत	कुल खर्च
१. तामिलनाड खादी मण्डल	२३	१	वैतनिक	८०)	१५)	३३।)४	७१०)
२. अखिल भारतवर्षीय खादी मण्डल	२४	६	२ अवैतनिक २२ वैतनिक	१५०)	१०)	६३।।	१५०४)
३. खादी प्रतिष्ठान बंगाल	८८	१३	४ अवैतनिक ८४ वैतनिक	१००)	१०)	२६)	२३४५)
४. गुजरात खादी मण्डल	३२	५	वैतनिक	१००)	१५)	४३।।)	१४०२)
५. पंजाब खादी मण्डल	१५	१	वैतनिक	१५०)	२०)	५०)	७५०)
६. मध्यभारत (हिन्दी)	६		वैतनिक	४०)	१०)	१८)	१०७)

सभी क्यों नहीं दे देते?

वार्षिक	मूल्य ४)
छ मास का	,, २)
एक प्रति का	,, -)।
विदेशों के लिए	७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ५] [अंक १

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, भाद्रपद सुदी १, संवत् १९८१ गुरुवार, २० अगस्त, १९२५ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

स्वराज्य-संबंधी घोषणा

एक आदरणीय सज्जन ने मुझे एक पत्र भेजा है। वह इतना युक्तिसंगत और अच्छा है कि उसमें लिखी तमाम बातों से सहमत न होते हुए भी मैं उसे प्रकाशित करना चाहता हूं। परन्तु खुद पत्र-लेखक ने ही ऐसे सबल कारण पेश किये हैं कि उसका अधिकांश और अत्यन्त मनोरंजक भाग प्रकाशित न [illegible] कहा है कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर मेरी तरफ से दिया गया जोर, तथा उसके प्राप्त करने के तरीके का फल यह हुआ है कि कम से कम कुछ समय के लिए तो दिन दिन मन-मुटाव बढ़ता जा रहा है। उसके बाद वे मुझे सलाह देते हैं कि अब आगे आप इसे न तानिए, न खींचिए और इस तरह पत्र को समाप्त करते हैं—

"अब आप अपने किये और न किये कामों के अनपेक्षित फलों को देख ही रहे हैं। अब मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप सर्व-साधारण पर यह अच्छी तरह स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दें कि जिस स्वराज्य को मैं अपने देश के लिए तुरत प्राप्त करना चाहता हूं वह है (आधुनिक) प्रजासत्तात्मक राज्य। राज्य लोगों के धार्मिक विश्वास का कोई ख्याल न करेगा, धर्म के मामले में 'किसी प्रकार की अनिवार्यता न होगी' कोई शख्स महज अपने जन्म के बदौलत (जैसे अछूत, दलित आदि) किसी बात से या कहीं जाने से वंचित न रहेगा, और राज्य का यही सूत्र रहेगा — 'सब को एकसा मौका मिले,' हां-इसमें इस नीति का [illegible] हुए हैं [illegible] प्रदान करते हुए देखे गये हैं [illegible] उनकी [illegible] का बल प्राप्त नहीं [illegible] पर उत्साहित [illegible] जाय इसका [illegible] किया जाय, न कि महज उसके [illegible] के लिहाज से [illegible] नागरिक को अपने जीवन में कार्य करने का स्वतन्त्र क्षेत्र मिलना चाहिए — [illegible] के कारण न किसीके साथ खास रिआयत की जाय न किसी के रास्ते में रुकावट डाली जाय,— यह राज्य के हर विभाग का अमिट नियम होगा।

"भिन्न भिन्न जातियों के प्रधान नेताओं से इन सिद्धान्तों को स्वीकार करा लीजिए; बस आप आधे से ज्यादह भारत-माता के बालकों में एकता स्थापित करने के युद्ध में विजय पा जायंगे। पर यह घोषणा-पत्र तो आपको अपने तथा अपने प्रमित हिन्दू-मुसलमान-भाइयों के लिए पर ही देना उचित है। यदि अली-भाइयों से, खिलाफतियों की तरफ से ऐसी घोषणा आप करा सकें तो बहुत अच्छा होगा।"

हिन्दू-मुस्लिम-एकता के संबंध में मैंने पहले से अन्दाज कर लिया था कि पत्र-लेखक क्या सलाह देंगे। मैं इस बात से सहमत हूं कि महज उसके लिए मेरे कहते रहने से, जैसा कि मैं अबतक करता आया हूं, कुछ लाभ न होगा। मैं इसी बात पर सन्तुष्ट हूं कि मेरी कृति ही खुद मेरी तरफ से कहे। अब जहांतक स्वराज्य संबंधी घोषणा से संबंध है, मैं इस सलाह को सोलहों आना मान लेता हूं और पाठकों से कहता हूं कि लेखक के द्वारा सूचित इस घोषणा को वे मेरी ही घोषणा समझें।

ईसाई भारतीयों के लिए

उस दिन मुझे एक ऐसी सभा में व्याख्यान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जिसमें भारतीय ईसाई लोग अधिक संख्या में सम्मिलित होनेवाले थे; पर पीछे उसमें युरोपीय ईसाइयों की संख्या अधिक हो गई थी। इसलिए मुझे जो भाषण करना था उसका रूप बदल देना पड़ा। तो भी उस भाषण के कुछ अंशों का सार यहां पर देता हूं जिससे मालूम हो जायगा कि जो शख्स उनके बीच में भिन्न भिन्न प्रसंगों और परिस्थितियों में रहा है उसने उनके सम्बन्ध में क्या अनुभव किया है और क्या सोचा है?

जब मैं युवा था तब मुझे याद है कि एक हिन्दू ईसाई हो गया था। उस कस्बे के सब लोगों ने यही समझा कि ईसाई होने का मतलब है ईसा-मसीह के नाम पर मांस खाना शराब पीना, तथा अपनी राष्ट्रीय पोशाक को छोड़ देना। कुछ वर्षों बाद मुझे यह मालूम हुआ, जैसा कि कई ईसाई पादरी कहते हैं कि ईसाई हो जाने से [illegible] जाते हैं और आजादी का जीवन व्यतीत करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि [illegible] छूट कर अमीरों की जिन्दगी बसर करते हैं। चूंकि मैं सारे भारत में घूमता रहता हूं, मैंने कई ऐसे

भारतीय ईसाइयों को देखा है जो अपने जन्म के लिए, अपने बुजुर्गों के धर्म के लिए और बुजुर्गों की प्राचीन पोशाक के लिए प्रायः शर्मिंदा होते हैं। अब-गोरे भाइयों का यूरोपियनों की नकल करना तो बुरा हुई है पर भारतीय ईसाइयों का उनकी नकल करना तो एकदम अपने देश के प्रति और अपने नये धर्म के प्रति अत्याचार करने के तुल्य है। न्यू टेस्टामेंट में एक जगह लिखा है कि यदि अपने पड़ोसियों को दुख पहुंचता ही तो गोमांस न खाना चाहिए। मैं समझता हूं इसमें शराब पीना और अपनी पोशाक बदलना भी शामिल है। प्राचीन बुरी बातों को छोड़ने की अचल प्रवृत्ति की मैं प्रशंसा कर सकता हूं। लेकिन जहां बुराई का कोई प्रश्न नहीं है, इतना ही नहीं, बल्कि जहां प्राचीन बातें लाभदायक भी हैं तहां उनको छोड़ना मेरे ख्याल में एक जुर्म है जब कि यह हरकत उनके मित्रों और सम्बन्धियों के दिलों को गहरी चोट पहुंचानेवाली है। धर्मान्तर करने का यह अर्थ नहीं है कि हम राष्ट्रीयता को छोड़ दें। धर्म-परिवर्तन का अर्थ यह होना चाहिए कि हम पुराने जमाने की बुराइयों को छोड़ दें और नये जमाने की अच्छी बातों को ग्रहण करें। इतना ही नहीं बल्कि नये जमाने में भी जो बुरी बातें हैं उन्हें भी छोड़ दें। इसलिए धर्म-परिवर्तन का अर्थ यह है कि हम अपना जीवन अपने देश के लिए और उससे भी अधिक ईश्वर के लिए और अपनी आत्मा को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए समर्पण कर दें।

बहुत वर्ष पहले मैं स्वर्गीय कालीचरण बनर्जी से मिला था। यदि मुझे पहले उनके ईसाई होने की बात मालूम न होती तो मैं उनके घर के रहनसहन से कभी नहीं जान सकता था कि वे ईसाई हैं। आजकल के भारतीय घरों के मुआफिक ही उनका मकान था; जिसमें मामूली ढंग का साज-सामान था। वह महान पुरुष मामूली हिंदू बंगाली जैसे कपड़े पहने हुए थे। मैं जानता हूं कि भारतीय ईसाइयों में भी बड़ा परिवर्तन हो रहा है। बहुत-से ईसाई अपनी प्राचीन सादगी की तरफ झुक रहे हैं, और अपने देश की सेवा करने की इच्छा कर रहे हैं। पर अभी उनकी गति बहुत धीमी है। अब बहुत समय तक इंतजार करने की जरूरत नहीं है। इसमें बहुत प्रयत्न करने की भी जरूरत नहीं है। परन्तु मुझसे कहा गया है और यह टिप्पणी लिखते समय एक ईसाई का भेजा पत्र मेरे सामने पड़ा है, जिसमें वह लिखता है कि मैं तथा मेरे मित्र परिवर्तन करने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं; क्योंकि हमारे बड़े-बूढ़े उसका विरोध करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि हमपर बुरी तरह नजर रक्खी जाती है और राष्ट्रीय हलचलों के साथ हमारे किसी भी तरह के लगाव की जबरदस्त निन्दा की जाती है। स्वर्गीय आचार्य रुद्र और मैं अक्सर इस कुप्रवृत्ति पर विचार किया करते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि वे किस तरह इसको शोचनीय बताते थे। वे इस बात पर भारी खेद प्रकट करते थे कि अब उनके लिए अपनी पुरानी युरोपियन आदतों को बदलने का समय निकल गया है। पाठकों को यह खबर देकर अपने उन स्वर्गीय मित्र की मैं प्रशंसा ही कर रहा हूं। क्या सचमुच यह बात शोचनीय नहीं है कि बहुतेरे ईसाई भारतीय अपनी मातृभाषा को छोड़ दें, अपने लड़कों को लड़कपन से सिर्फ अंग्रेजी ही बोलना सिखावें? क्या इस तरह वे उस कौम से जिसके अन्दर उन्हें रहना है एकबारगी ही अपना नाता नहीं तोड़ लेते और उससे दूर नहीं हट जाते? पर इसके जवाब में शायद वे यह सफाई पेश करें कि इसतरह बहुतेरे हिन्दू और मुसल्मानों ने भी राष्ट्रीयता को छोड़ दिया है। परन्तु इस दलील से कि 'तुम भी ऐसे ही हो' कुछ काम नहीं निकल[illegible] करने मैं एक समालोचक के तौर पर नहीं बल्कि एक मित्र के तौर, यदि लिख रहा हूं, जो कि पिछले तीस साल से सैकड़ों ईसाई भा[illegible] और से घनिष्ठ संबंध रखता है। मैं चाहता हूं कि मेरे पादरी मित्र मुकर्रर ईसाई भारतीय उसी भाव में इसको ग्रहण करें जिसमें कि[illegible] को पंक्तियां लिखी गई हैं। मैं हृदय की एकता के नाम पर [illegible] उसीके लिए यह लिख रहा हूं; क्योंकि मैं चाहता हूं कि भिन्न भिन्न धर्म-मतवाली इस भारतभूमि के लोगों में वह हृदयैक्य स्थापित हो। प्रकृति में हम उसकी बाहरी विविधता के अन्दर छिपी हुई एकता को अनुभव करते हैं। धर्म-मत इस प्राकृतिक नियम का अपवाद नहीं है। धर्म-मत मनुष्य-जाति को इसीलिए प्राप्त हुए हैं कि वे इस आमूलाग्र एकता के साक्षात्कार की गति का कदम आगे बढ़ावें।

सम्मति-वय

श्रीमती दोरोथी जिनराजदास ने एक गश्ती चिट्ठी बड़ी धारासभा में उपस्थित होने वाले सम्मति-वय को कम से कम १४ साल तक बढ़ाने के बिल के संबंध में भेजी है। उसकी एक प्रति उन्होंने मुझे भी भेजने की कृपा की है। उसे मैं यहां देता हूं—

"बड़ी धारासभा के आगामी अधिवेशन में बालक-रक्षा-कानून उपस्थित होने वाला है। मैं यह पत्र आपको इस उद्देश से भेज रही हूं कि आप उसकी पुष्टि के लिए अपना प्रभाव खर्च करें। मेरा यह दृढ विचार है कि यदि भारतवर्ष को दुनिया में एक सम्मानित राष्ट्र होना ही तो, उसके माथे से यह बाल-माताओं का कलंक मिट जाना चाहिए।

"पिछली दफा जब यह बिल पेश हुआ था तब देश में और धारासभा में इसे भारी पुष्टि मिली थी और मैं समझती हूं कि इस आगामी अधिवेशन में इसे पास कराने में विशेष कठिनाई न होगी यदि कुछ लोकमत इसके पक्ष में प्रकाशित किया जाय। जहां तक मैं जानती हूं देश में खास कर स्त्रियों के द्वारा बहुतेरी सभायें इस बिल की पुष्टि में हो रही हैं और मुझे यह निश्चय है कि देश की अधिकांश स्त्रियों की इच्छा के अनुकूल ही यह बात है कि लड़कियों की शादी की उम्र १४ साल तक बढ़ा दी जाय।

"मुझे यकीन है कि यदि आप अपनी राय उसके हक में प्रकाशित कर सकें और स्त्रियों और पुरुषों को इसकी पुष्टि करने के तथा दैनिक जीवन में इसके सिद्धान्तों का पालन करने के महत्व को जता सकें तो इस बिल की स्वीकृति के मार्ग में बड़ी सहायता पहुंचेगी।"

मुझे कबूल करना होगा कि मुझे इस बिल के विषय में कुछ मालूम नहीं है, मगर मेरा यह दृढ मत है कि केवल १४ ही नहीं बल्कि १६ साल तक सम्मति-वय (लड़कियों की शादी की उम्र) बढ़ा दी जाय। ऐसी अवस्था में मैं उस बिल के मजमून के संबंध में कुछ [illegible] है [illegible] उस हर हलचल को [illegible] अवस्था में लड़की का विवाह करना और किशोर वय को [illegible] अनीतिपूर्ण और निर्दय व्यवहार है और बचाना। १४ साल [illegible] वाह-विधि को कानून की स्वीकृति न मिलना मेरी राय में एक [illegible] खुद ही नीति-विरुद्ध है उसे किसी भी ऐसी किसी भी [illegible] चलों के आधार पर जायज न मान लेना चाहिए। चाहिए। जो रिवा[illegible] बाल-माताओं के स्वास्थ्य को बरबाद होते हुए सन्दिग्ध संस्कृत[illegible] यदि बाल-विवाह की भीषणता के साथ बढ़ाद[illegible] [illegible]ने कितनी [illegible]
[illegible] है, को

बाल-वैधव्य को जोड़ दिया जाय तो फिर इस मानवी दुःख और शोक-काण्ड की परिपूर्णता ही समझिए। सम्मति-वय को बढ़ाने के लिए किया गया कोई भी उचित कानून अवश्य ही मेरी पुष्टि प्राप्त करेगा। पर मुझे यह बात दुःख के साथ मालूम है कि मौजूदा कानून भी लोकमत की पुष्टि के अभाव में निष्फल सिद्ध हुआ है। और बातों की तरह इस विषय में भी सुधारकों का मार्ग कठिन है। यदि सर्व-साधारण हिन्दुओं के चित्त पर कुछ भी सच्चा असर डालना हो तो लगातार आन्दोलन की जरूरत उसके लिए है। जो लोग कि भारतीय बालिकाओं को कम उम्र में ही बुढ़ापे से तथा मृत्यु से और हिन्दू-धर्म को दुबले-पतले चूहों जैसे बच्चे पैदा करने के लिए जिम्मेवार होने से बचाने के शुभ और उच्च कार्य में लगे हुए हैं उनकी मैं हर तरह से सफलता चाहता हूं।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

अहिंसा की समस्या

ऐसे प्रश्न मुझसे बराबर पूछे जाते हैं कि कब अहिंसा का और कब हिंसा का अवलंबन करना चाहिए और किस समय क्या कर्तव्य है। कितने ही सवाल तो ऐसे होते हैं कि जिनसे पूछने वाले का अज्ञान प्रकट होता है। और कुछ ऐसे भी होते हैं जिनसे उनके संकट का परिचय मिलता है। एक पंजाबी ने प्रश्न पूछा है। उसका उत्तर लिखने योग्य है। वह इस प्रकार है —

'शेर भालू इत्यादि आ कर पशु और मनुष्य को उठा ले जायं तो क्या करें? अथवा पानी में जन्तु इत्यादि हों तो क्या करें?'

मेरी अल्पमति के अनुसार मामूली जवाब तो यही है कि जब शेर, भालू इत्यादि का उपद्रव हो तब उनका नाश अनिवार्य है। पानी में रहनेवाले जन्तुओं का नाश अनिवार्य है। अनिवार्य हिंसा हिंसा न रहकर अहिंसा नहीं हो जाती। हिंसा को हिंसा के ही रूप में जानना चाहिए। मुझे इस बात में कोई शक नहीं है कि यदि कोई बिना शेर-भालू का नाश किये अपना काम चला ले तो वह उत्तम है; पर यह करेगा कौन? वही जो शेर-भालू से डरता नहीं, बल्कि मित्र की तरह उनसे मिल सकता हो। डर कर जो हिंसा नहीं करता वह तो हिंसा कर ही चुका है। चूहा बिल्ली के प्रति अहिंसक नहीं। उसका मन तो निरन्तर बिल्ली की हिंसा करता रहता है। निर्बल होने के कारण वह बिल्ली को मार नहीं सकता। हिंसा करने का पूरा सामर्थ्य रखते हुए भी जो हिंसा नहीं करता है वही अहिंसा-धर्म के पालन करने में समर्थ होता है। जो मनुष्य स्वेच्छा से और प्रेमभाव से किसीकी हिंसा नहीं करता वही अहिंसा धर्म का पालन करता है। अहिंसा का अर्थ है प्रेम, दया, क्षमा। शास्त्र उसका वर्णन वीर के गुण के रूप में करते हैं। यह वीरता शरीर की नहीं, बल्कि हृदय की। शरीर से क्षीण पुरुष भी औरों की मदद से घोर हिंसा करते हुए देखे गये हैं। शरीर से बलवान् होते हुए भी युधिष्ठिर जैसे विराटराज जैसों को क्षमाप्रदान करते हुए देखे गये हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जबतक हृदय का बल प्राप्त नहीं होता तबतक मनुष्य अहिंसा धर्म का पालन नहीं कर सकता। आजकल की वणिक् अहिंसा अहिंसा नहीं। इसमें तो बहुत बार घोर निर्दयता दिखाई देती है और अज्ञान तो उसमें अवश्य ही है।

हमारी इस दुर्बलता को मैं जानता हूं। इसीलिए मैंने खेड़ा में महायुद्ध के समय स्वयंसेवक सिपाहियों को भरती करने का महाप्रयत्न किया था और इसीसे मैंने उस समय कहा था कि ब्रिटिश सल्तनत ने जो अनेक घोर कृत्य किये हैं उनमें उसका एक अति घोर कृत्य यह है कि उसने लोगों को निःशस्त्र कर के निर्वीर्य बना दिया है। आज भी मेरी वही दृष्टि है। जिसके मन में भय मौजूद रहा है वह यदि निःशस्त्र रह कर भय को दूर नहीं कर सकता तो वह अवश्य लाठी या उससे भी जल्दी शस्त्र का अवलंबन करे।

अहिंसा एक महाव्रत है। तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आना पालन असंभव है। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ यहां त्याग और ज्ञान करना चाहिए। जिसे जमीन की मालिकी का मोह है उससे अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। किसान के लिए अपनी जमीन की रक्षा करना लाजिमी है। शेर भालू से उसकी रक्षा करनी ही पड़ेगी जो किसान शेर, भालू अथवा चोर इत्यादि को दण्ड देने के लिए तैयार न हो उसे खेत छोड़ देने के लिए हमेशा तैयार रहना पड़ेगा।

अहिंसा-धर्म का पालन करने के लिए मनुष्य को शास्त्र तथा रिवाज की मर्यादा का पालन करना चाहिए। शास्त्र हिंसा की आज्ञा नहीं देता; परन्तु प्रसंग-विशेष पर हिंसा-विशेष को अनिवार्य समझ कर उसकी छुट्टी देता है। जैसा कि कहते हैं मनुस्मृति में प्राणी-विशेष के वध की इजाजत है। वध की आज्ञा नहीं है। उसके बाद विचार में उन्नति हुई और यह तय हुआ कि कलिकाल में वह अपवाद न रहे। इसलिए वर्तमान रिवाज हिंसा-विशेष को क्षंतव्य मानता है और मनुस्मृति की कितनी ही हिंसा का प्रतिबन्ध करता है। शास्त्र ने इतनी छूट रक्खी है। उससे आगे बढ़ने की दलील स्पष्टतः गलत है। धर्म संयम में है, स्वच्छन्दता में नहीं। जो मनुष्य शास्त्र की दी हुई छूट से लाभ नहीं उठाता वह धन्यवाद का पात्र है। संयम की कोई मर्यादा नहीं। इसलिए अहिंसा की भी कोई मर्यादा नहीं। संयम का स्वागत दुनिया के तमाम शास्त्र करते हैं। स्वच्छन्दता के विषय में शास्त्रों में भारी मतभेद है। समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता है। दूसरे कोण अगणित हैं। अहिंसा और सत्य ये समस्त धर्मों का समकोण है। जो आचार इस कसौटी पर न उतरे वह त्याज्य है। इसमें किसीको शंका करने की आवश्यकता नहीं। अधूरे आचार की इजाजत चाहे हो। अहिंसा-धर्म का पालन करनेवाला निरन्तर जागरूक रह कर अपने हृदय-बल को बढ़ावे और प्राप्त छूटों के क्षेत्र को संकुचित करता जाय। भोग हरगिज धर्म नहीं। संसार का ज्ञानमय त्याग ही मोक्ष-प्राप्ति है। संसार का सर्वथा त्याग हिमालय के शिखर पर भी नहीं है। हृदय की गुफा, सच्ची गुफा है। मनुष्य को चाहिए कि वह उसमें छुप कर सुरक्षित रह कर संसार में रहते हुए भी उससे अलिप्त रह कर अनिवार्य कार्यों में प्रवृत्त होते हुए विचरण करे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

गांधीजी-लिखित

दक्षिणी अफ्रिका का सत्याग्रह

(पूर्वार्द्ध)

मूल्य सर्वसाधारण से ॥)

नवजीवन-संस्था, अहमदाबाद

सूचना

सस्ती-साहित्य-माला, अजमेर के स्थायी ग्राहकों को लागत-मात्र मूल्य ।≈) पर मिलेगा। माला के स्थायी ग्राहक इस पते पर फरमायश करें—

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मण्डल,
अजमेर

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, भाद्रपद सुदी १, संवत् १९८२

वंग-केसरी

सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की मृत्यु क्या हुई मानों भारत के राजनैतिक जीवन से ऐसा पुरुष उठ गया जो अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप उसपर छोड़ गया है। नये आदर्श और नई आशायें ली हुई जनता की नजरों में यदि वे पीछे हट गये तो क्या हुआ? हमारा वर्तमान हमारे भूतकाल का ही तो परिणाम है। सर सुरेन्द्रनाथ जैसे पथ-दर्शक लोगों के बहुमूल्य कार्य के बिना वर्तमान समय के आदर्श और उच्च आकांक्षाओं का होना संभव ही न था। एक ऐसा समय था जब कि विद्यार्थी लोग उनको अपना आराध्य देव समझते थे, जब कि देश के राष्ट्रीय कामों में उनकी सलाह लेना अनिवार्य समझा जाता था और उनके वक्तृत्व से लोग मन्त्र-मुग्ध से हो जाते थे। जब हमें बंग-भंग के समय की दिल दहला देनेवाली घटनाओं का स्मरण होता है तब उसके साथ ही सर सुरेन्द्र की उस समय की गई अनुपम सेवाओं की स्मृति कृतज्ञता और अभिमान-पूर्वक हुए बिना नहीं रह सकती। ऐसे ही समय में सर सुरेन्द्रनाथ को अपने कृतज्ञ देश-बन्धुओं से 'कभी न झुकने वाला' की पदवी मिली थी। बंग-भंग के युद्ध की भीषण स्थिति में भी सर सुरेन्द्र कभी डावांडोल न हुए, कभी निराश न हुए। वे अपनी पूरी शक्ति के साथ उस आन्दोलन में कूद पड़े थे। उनके उत्साह से सारे बंगाल में उत्साह फैल गया। सरकार की 'नान्यथा' को 'अन्यथा' करने के दृढ़ संकल्प में वे अचल रहे। उन्होंने हमको हिम्मत और दृढ़ता की शिक्षा दी। उन्होंने हमें मदान्ध अधिकारियों से 'नहीं' कहना सिखलाया।

राजनैतिक क्षेत्र के अनुसार ही शिक्षा विभाग में भी उनका काम बहुत ऊंचे दरजे का था। रिपन कालेज के द्वारा हजारों विद्यार्थियों को उनकी सीधी देख-रेख और लगातार असर में रहने के कारण बड़ी उदार शिक्षा मिली। अपने नियमित जीवन के कारण वे हमेशा तन्दुरुस्त और सशक्त बने रहे और उन्हें दीर्घ जीवन — हिन्दुस्तान में समझा जाने वाला दीर्घ जीवन — मिला। अन्त समय तक वे अपनी मानसिक शक्तियों को कायम रख सके। ७७ वर्ष की उमर में अपने दैनिक 'बंगाली' पत्र का सम्पादन भार लेना कोई मामूली शक्ति का काम न था। अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति कायम रहने के सम्बन्ध में उनकी ऐसी दृढ़ धारणा थी कि दो मास पहले जब मुझे बारकपुर में उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब उन्होंने मुझ से कहा था कि मैं ९१ वर्ष की आयु तक जीवित रहने की उम्मीद करता हूं। इसके बाद मुझे जीने की इच्छा नहीं है। क्योंकि उसके बाद मेरी शक्ति कायम न रह सकेगी। पर भाग्य ने तो उसका उलटा कर दिखाया। बिना सूचना दिये ही उसने उन्हें हमसे छीन लिया। किसीको इसकी कल्पना तक न थी। गुरुवार ता. ६ के प्रातःकाल तक उनकी मृत्यु का कोई चिन्ह दिखाई नहीं दिया। यद्यपि आज उनका शरीर हमारे बीच में नहीं है तो भी उनकी देश-सेवा तो कभी भुलाई नहीं जा सकती। वर्तमान भारत के निर्माण कर्ताओं में उनका नाम सदा अमर रहेगा।

(मं० ई०) मोहनदास करमचंद गांधी

के प
नि मैं नवजीवन
ग लिख
ही " से घां

सभी क्यों नहीं दे देते?

" ईसाई नीचे लिखा अपने ढंग के पत्रों का एक नमूना है। दी जाय पंक्तियां। अपरिवर्तनवादी' लोगों के हस्ताक्षर इसपर हैं— प्रायः सब सीके लिए आपके इस अभिवचन पर कि महासभा स्वराजियों होगा। साहब धर्म-मत जिससे कि महासभा मुख्यतः राजनैतिक संस्था है क्या चीज? नि हो। प्र अपरिवर्तनवादियों के दिल को धक्का लगे बिना क्या राजनैतिक है कैसा अ, पहले तो यही बताइए कि राजनैतिक का को दूसरे रूप में अ नहीं पिछले साल आपका स्थगित कि लार्ड बरकनहेड के भाषण से उत्पन्न न था' यदि फ़ासला किया जा सके' पिछले साल आपने भरा क्यों वह ठहराव किया था। क्या उन्होंने बेलगांव में की गई अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ईमानदारी से उसका पालन किया है? किस बात ने उन्हें रोका था? आप जानते ही हैं कि बहुतेरे अपरिवर्तनवादियों को वह ठहराव पसन्द न था, पर आपके खातिर उन्होंने उसे अपनी मरजी के खिलाफ मंजूर किया था। अब फिर आपने अपने इस अभिवचन के द्वारा बिना ही उनसे मशवरा किये, अपरिवर्तनवादियों को एक तरफ ढकेल दिया है। आपने एकबार जहां उसे मंजूर किया कि अपरिवर्तनवादियों को भी अपनी इच्छा के खिलाफ उसे मंजूर करना ही पड़ेगा। वे उसमें यों ही खींचे जा रहे हैं।

"क्या धारा-सभा का कार्यक्रम ही एक-मात्र राजनैतिक कार्यक्रम है? क्या धारासभायें सविनय भंग अथवा कर न देने की बात में देश का बल बढ़ावेंगी? साहब, आपके नेतृत्व में महासभा एक काम करनेवाली संस्था हो गई थी और अब फिर आप उसे एक ऐसी सभा का रूप दे रहे हैं, जहां कि लोग कोरा जबानी विरोध करते रहें। आज तो महासभा-समितियां कम से कम कताई-संघ, खादी-भण्डार या खादी-दुकान तो है; पर अब से वे महज चर्चा-समितियां रह जायेंगी।

"आपने प्रस्ताव किया है कि रुपया या उसकी जगह खुद-काता सूत बतौर फीस के लिया जाय। परन्तु महाराष्ट्र-दल को न तो यही पसन्द है और न खादी पहनना ही। वे उसका विरोध संगठित कर रहे हैं और यदि इस साल नहीं तो दूसरे साल उसे हटवा देंगे। चरखा-संघ आप महासभा के बाहर क्यों नहीं स्थापित करते, और स्वराजियों को सब कुछ क्यों नहीं दे डालते?"

लेखकगण इस बात को भूल जाते हैं कि मैं किसी दल के नेता होने का या किसी दल को रखने का दावा नहीं करता। और इसका कारण यदि और कुछ नहीं तो सिर्फ यही है कि मैं निरन्तर अपना पैतरा बदलता हुआ दिखाई देता हूं। बात यह है कि बदलती हुई स्थिति के अनुकूल अपनेको बनाते हुए भी मुझे अपनेको अन्दर वैसा ही ज्यों का त्यों बनाये रखना है। मेरी जरा भी इच्छा नहीं है कि किसीको अपने साथ खींचूं। मैं हमेशा लोगों के दिल और दिमाग दोनों तक अपना निहोरा पहुंचाता हूं। आगामी महासमिति की बैठक में मैं उम्मीद करता हूं कि इस विषय पर खुल्लमखुल्ला बिला पसोपेश के चर्चा हो और उसमें मेरी राय अनेकों की रायों में एक राय मानी जाय। संभव है यह बहुतों को एक निरर्थक बात मालूम हो। पर यदि मैं अपनी राय को खुल्लमखुल्ला जोर के साथ प्रकाशित करता रहूंगा तो वे लोग जो कि यह समझते होंगे कि हम खींचे जा रहे हैं, तुरन्त ही मेरा प्रतिकार करेंगे। परन्तु आखिर मैंने सिवा इसके कि देश

के शिक्षित समाज के मन की बात को ठीक ठीक समझ लिया है, और किया ही क्या है? मैं शिक्षित समुदाय से जबरदस्ती महासभा को छीन लेना नहीं चाहता। शिक्षित समाज की परिणति हो कर उसे इस नये विचार को ग्रहण करने की आवश्यकता है। यह काम उन लोगों का नहीं है जिनका विश्वास १९२० की विशेष प्रकार की असहयोगविधि से हट गया है, कि वे उसे फिर आजमायश का मौका दें और एक तीसरी चीज का पता लगावें। यह तो मुझ जैसे उन लोगों का जो अब भी उस तरह के असहयोग में विश्वास रखते हैं, काम है कि वे उसकी मौजूदा उपयोगिता को प्रत्यक्ष कर दिखावें जिससे कि शंकाशील लोग उसके फिर कायल हो सकें। पर हां, मैं यह बात कुबूल करता हूं कि मैं उन लोगों के सामने जो कि अपने आन्तरिक विश्वास के कारण असहयोग में शामिल नहीं हुए थे, बल्कि तुरन्त उद्धार की जो आशा उससे बंधी थी उससे खिंच कर आये थे, कोई गरमागरम और जोशीली तजवीज पेश नहीं कर सकता। परन्तु जब कि वह अपेक्षित मुक्ति उन्हें न मिली और इस कारण यदि वे अपने कार्यक्रम का ही, उसमें जो कुछ हो सकता हो सुधार कर के, सहारा लें तो उन्हें कौन दोष लगा सकता है? और, जिन लोगों ने पुराने तर्ज के अनुसार सक्रिय राजनैतिक जीवन व्यतीत किया है वे चुपचाप बैठे कैसे रह सकते हैं जब कि मुझ जैसे 'स्वामी' लोग चरखे जैसे 'मामूली खिलौने' से एक जबरदस्त सक्रिय कार्यक्रम बनाने की उम्मीद रखते हैं। उन्होंने महासभा को जन्म दिया था। उनका मत चरखे के पक्ष में बदल जाने के बाद ही महासभा चरखा-संघ का रूप धारण कर सकती है। तबतक मुझे राह देखनी चाहिए।

मुझे पता नहीं महाराष्ट्र दल क्या करेगा, अथवा क्या न करेगा? वह अथवा और कोई कताई को मताधिकार में रुपये के साथ ही स्थान देने का अथवा खादी पहनने को मताधिकार के अंग बनाने का विरोध बराबर कर सकता है। इसी तरह और लोग भी कताई और खादी को कायम रखने पर जोर दे सकते हैं। यदि हम प्रायः एकमत से किसी निर्णय पर न पहुंचेंगे तो कानपुर महासभा की बैठक के पहले किसी किस्म के परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती। हम खुशी से लोगों की रायों को दोष लगा सकते हैं: पर यह असहिष्णुता का लक्षण होगा। हर शख्स को अपने कार्यक्रम में श्रद्धा होनी चाहिए और यदि वह अकेला भी रह जाय तो आवश्यकता पड़ने पर उसे अकेला ही पूरा करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

तजरिबे से मुझे मालूम होता है कि देश में चरखा तथा धारा-सभा दोनों के कार्यक्रमों के लिए जगह है। ऐसी अवस्था में जहां सिद्धान्त-रूप में मैं अपने धारासभा-संबंधी विचारों पर दृढ़ रहूं वहां मुझे धारा-सभा में जानेवाले उन लोगों की सहायता करनी चाहिए जिनके द्वारा मेरे आदर्शों की अधिक अच्छी सेवा होने की आशा हो, जिनमें प्रतिकार की अधिक शक्ति हो और जिनकी अधिक श्रद्धा चरखे और खादी में हो। ऐसे लोग आम तौर पर स्वराजी ही हैं।

इस नई तजवीज के अन्दर चरखा-संघ एक आवश्यक वस्तु हो जाती है। परन्तु जबतक महासभा उसे आश्रय देना चाहे तबतक वह उसीकी छत्रछाया में होना चाहिए। महासभा के प्रति मेरा इतना आदर है कि मैं उसके बिना अपना काम चलाना नहीं चाहता। यही तो एक ऐसी संस्था है जिसने अबतक अच्छे-बुरे दिनों में ही जमानों को देखा है। शिक्षित भारतवासियों के परिश्रम और धैर्य का यह फल है। मैं जानबूझ कर ऐसा कोई काम न करूंगा जिससे उसकी उपयोगिता घटती हो।

अन्त में आगामी महासमिति के संबंध में कोई शख्स किसी बात को पहले से निर्णीत न मान ले। हर शख्स का कर्तव्य है कि उसमें शरीक हो, सब की बात सुनने के लिए तैयार रहे, अपना जो कुछ स्वतंत्र मत और विचार हो उसे देशहित को सामने रख कर निश्चयता-पूर्वक प्रकट करे।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

जमशेदपुर में

जमशेदपुर

जमशेद पुर स्व० जमशेदजी ताता की सृष्टि है। पहले जहां एक छोटा-सा गांव था वहां आज लोहे और फौलाद के उद्योग का एक नगर स्थापित हो गया है और १ लाख ६ हजार की आबादी है। कितने ही साल से इस नगर को देखने की इच्छा गांधीजी को थी। जब १९१६ में बिहार में थे तब गवर्नर सर एडवर्ड गेट ने कहा था कि जमशेदपुर देखे बिना न जाइएगा। इस नगर और इस उद्योग की उत्पत्ति का इतिहास लिखने का यह स्थान नहीं है। जमशेदजी ताता के जीवन-चरित का एक उज्वल अध्याय इस इतिहास से भरा हुआ है। अंगरेजों और अमेरिकनों का यह गर्व खण्डित करने के लिए कि हिन्दुस्तान में लोहे का कारखाना हो ही नहीं सकता, फौलाद पैदा हो ही नहीं सकता, पतरे (टीन) बन ही नहीं सकते, इस कारखाने की स्थापना हुई। और आज १०-१२ बरस में इसकी जो वृद्धि हुई है उसे देख कर दिङ्मूढ़ हो जाना पड़ता है। लड़ाई में जब सरकार को फौलाद और लोहे के सामान की बहुत तंगी पड़ने लगी तब लाखों टन सामान इस कम्पनी ने दिया था। नजदीक से कच्चा लोहा आता है, डोलो माइट पत्थर भी नजदीक ही मिलता है, और बंगाल खानों के कोयले से कोक बना कर तीनों के मिश्रण से शुद्ध लोहा और फौलाद बनता है। इनके भीमकाय कारखाने हैं — ३० हजार मजदूर काम करते हैं, जिनमें २५० योरपियन हैं। अग्निहोत्री की वेदी की तरह अथवा पारसियों की अगियारी की तरह ये कारखाने रात-दिन चलते हैं—यदि कारखाने नहीं तो आग अवश्य रात-दिन धधकती रहती है।

अग्निहोत्री की वेदी और अगियारी की उपमा दे तो दी, परन्तु इस उपमा की धार्मिकता कारखानों में भी अनुभूत होती हो तो? धर्म-क्रिया से जो शान्ति, और आत्मा की उन्नति होती है वह इन कारखानों में भी होती हो तो? परन्तु वह शान्ति और उन्नति कहीं हुई देखी जाती है! आज तो अशान्ति है। जमशेदजी ताता ने इस खयाल से यह मालूम किया था कि यह कारखाना भारत के लिए भारी श्रेयस्कर हो जायगा। वे इसके जन्म के पहले ही चल बसे। पर शायद उनके उच्च हेतु भी, इस कारखाने की तरह, पूर्ण हुए दिखाई देंगे।

उद्योग-नगरों में जो जो दूषण दिखाई देते हैं उनसे उद्योग-नगर भी मुक्त नहीं है। हां, यह सच है कि बहुतेरे दोषों को दूर करने का प्रयत्न अवश्य किया गया है। कितनी ही कठिनाइयां तो लगभग अनिवार्य थीं। पश्चिमी उद्योग धंधे का यहां प्रवेश करने और पश्चिम के साथ सफलता-पूर्वक प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए आरंभ में पश्चिम पर अवलंबित रहना लाजिमी था— पश्चिम की यन्त्र-सामग्री, पश्चिम के लोगों की अधीनता, और उनकी अर्धनग्नता-माल समस्त दूषणों को सहे ही छुटकारा था। दस वर्ष के उद्योग के फल-स्वरूप आज कठिन से कठिन मिहनत और भारी सावधानी के बहुतेरे काम अंगरेजों और अमेरिकनों की तरह भारतीय भी करते हैं। पर गोरों को अभिवचन दे दे

कर यहां लाये हैं, इसलिए उसीके अनुसार वेतन उन्हें मिलता है। उसी काम को करने वाला हिन्दुस्तानी उससे आधा भी वेतन शायद नहीं पाता। पतरों के कारखाने में हमने देखा कि वेल्स का एक चपल कारीगर आग में जलते हुए लाल पतरे को बड़े चिमटे से रोटी की तरह उथलपुथल कर दूसरे यन्त्र में डाल रहा है। उतनी ही फुरती से काम करने वाले हिन्दुस्तानी भी देखे। पर दोनों को एक-सा वेतन नहीं मिलता। फौलाद की बड़ी बड़ी चलती हुई पटरियां चली जाती हैं। उनपर सावधानी से नजर रखना और बराबर कट जाने के बाद बाकी रहा टुकड़ा चिमटे से उठा कर फेंकना, काले नाग को चिमटे में पकड़ने से भी कठिन है। पर हिन्दुस्तानियों को यह करते हुए भी देखा। अनेक विभागों के निरीक्षक पहले अंगरेज थे। उनकी जगह हिन्दुस्तानी आज उन्हीं की तरह कुशलता से काम करते हैं; परन्तु उन्हें बराबर वेतन नहीं मिलता। इसमें कम्पनी का दोष उतना नहीं है जितना यों दिखाई देता है। असाधारण साहस-पूर्ण उद्योग के विकास के लिए कुशल विदेशियों को लालच दे दे कर लाना पड़ा और जबतक उनके साथ किया इकरार कायम है तबतक यह विषमता कैसे न रहेगी? कम्पनी के शुभ हेतुओं पर ध्यान रख कर इस वस्तुस्थिति को कुछ समय तक तो गवारा ही करनी होगी।

धीरे धीरे हिन्दुस्तानियों को ही अंगरेजों की जगह रखने के लिए कम्पनी ने एक उद्योग-शाला कायम की है। उसमें हिन्दुस्तान से हर साल २३ उम्मीदवार लिये जाते हैं। सायन्स के ग्रेज्युएट ही लिये जाते हैं, और उनपर हर साल हर व्यक्ति २०००) कम्पनी खर्च करती है। पांच साल कम्पनी में काम करने की प्रतिज्ञा पर कम्पनी २००-२५०) से शुरू कर के ६५०-७००) की तनख्वाह तक ले जाती है। यह प्रयत्न स्तुत्य है।

नगर की रचना कंपनी के इंजिनियर ने ही की है। इसमें भी गोरे लोगों के साथ की गई शर्तों के कारण काले-गोरे का भेद दिखाई पड़ता है। रचना में जमीन की विशालता ने सहायता पहुंचाई है; परन्तु कम्पनी ने ऐसे मकान बनाये हैं जिनसे एक हद तक वेतन पाने वाले ही लाभ उठा सकते हैं। मकानों की संख्या भी कम है। इससे चार कमरों वाले एक मकान में कम वेतनवाले चार चार कुटुम्ब भी रहते हुए बहुत देखे जाते हैं। फिर भी सफाई का इन्तजाम ठीक होता हुआ दिखाई देता है।

आरोग्य के लिए कम्पनी की ओर से अस्पताल है। इसमें सब की दवा और शुश्रूषा मुफ्त की जाती है। जो लोग काम नहीं करते हैं उन्हें भी दवा मुफ्त दी जाती है। कारखाने में इतनी सारी स्त्रियां काम करती हैं फिर भी आश्चर्य है कि एक भी स्त्री-डाक्टर नहीं है। गांधीजी अस्पताल देखने गये थे। सफाई और सामग्री से उन्हें सन्तोष हुआ। एक अंगरेज रोगी पड़ा पड़ा पढ़ रहा था। गांधीजी ने उससे पूछा— 'क्यों तुम्हारा समय पढ़ने में ही जाता है?' उसने उत्तर दिया 'जी हां'। तब गांधीजी कहते हैं— 'मैं जो तुम्हारी नर्स होता तो चरखा कतवाता।'

वाटर वर्क्स कम्पनी का निर्जी है। उससे सारे नगर को पानी मिलता है। शहर के बड़े भाग का मैला आदि गटरों के मार्फत साफ हो कर उसका प्रवाही खाद बनता है और उससे खेती को लाभ पहुंचता है।

आठ आठ घण्टे शारीरिक काम करनेवालों में सार्वजनिक जीवन न होने का कोई कारण नहीं— हालां कि बहुत अनुकूलता नहीं होती है। बड़े बड़े कर्मचारियों ने तो क्लब, वाचनालय आदि खोल लिये हैं; परन्तु छोटे कारीगरों के लिए कुछ सुविधा नहीं। और सार्वजनिक जीवन के अभाव में खादी आदि का प्रचार कहां हो सकता है? यों अगर ताता कम्पनी मन में लावे तो ३० हजार मजदूरों को खादी पहना सकती है। कर्मचारियों के क्लब में पारसी सेक्रेटरी की लड़की ने गांधीजी के गले में [illegible] माला पहनाई और हंसते हुए कहा— 'साहब स्वदेशी की [illegible]' गांधीजी ने तुरत उत्तर दिया— 'हां, गनीमत है कि इतना स्वदेशी रहे हो।'

यों यहां के जीवन को देखें तो कह सकते हैं कि प[illegible] सुधार का असर यहां बड़ा कष्टदायी हुआ है। कारखानों में काम करते समय तो पतलून इत्यादि पहनना ही पड़ते हैं— फि[illegible] कारखाने से फारिग हो कर शाम को लोग साहब बन कर निकलते हैं। देशी शराब की दो और अंगरेजी शराब की एक दुकान का लाइसेन्स कंपनी ने ले लिया है और उनमें हजारों रुपये मासिक की शराब बिकती है। शराबखोरी के कारण जुर्मों की संख्या भी बेहद है। बहुत समय पहले किर्लोसकर बन्धु का खेती के औ[जारों] का कारखाना देखा था। वह इस कारखाने के मुकाबले में हाथी के सामने चींटी के पैर के बराबर है। परन्तु वहां जो [illegible] स्वास्थ्य, सुख-साधन देखे वे इस नगर में न दिखाई दिये।

ऐसी हालत में ताता कम्पनी के सिर पश्चिम के साथ स्पर्धा करके उसमें विजय प्राप्त करने के साथ ही अपने [illegible] लाखों जीवों के श्रेय की चिन्ता रखने की महाविकट [illegible] पूरी करने का भार भी है।

परन्तु यह सारा भार कम्पनी के सिर डालने के [illegible] चारी खुद ही उठा लें— इस उद्देश से ऐसे उद्यो[ग] मजदूर-मण्डलों की रचना की जाती है। यहां भी [illegible] मण्डल था। दो वर्ष पहले कम्पनी से उसका [illegible] हड़ताल हुई, उपद्रव हुआ और गोलियां भी [illegible] इतिहास पुराना है। बात यह थी कि कम्पनी मण्ड[ल] [illegible] करने से इन्कार करती थी। मण्डल के मन्त्री श्री सेठी को उसने अपने यहां से हटा भी दिया था। मण्डल को कम्पनी मान्य कराने के लिए उसके सभापति श्री एण्ड्रयूज [illegible] लगातार प्रयत्न करते रहते थे, पर अबतक वह विफल गया था। इसीके लिए अब की एण्ड्रयूज साहब ने गांधीजी को आग्रह कर के बुलाया था। पिछले साल कम्पनी और मजदूर-मण्डल का झगड़ा निपटाने के लिए देशबन्धु और पण्डित नेहरू नियुक्त किये गये थे। देशबन्धु का स्वर्गवास हो चुका। और पण्डितजी बीमार रहा करते हैं, इस लिए उनकी जगह पण्डित जवाहरलाल आये थे। गांधीजी के आगमन के [illegible] श्री ताता के साथ एण्ड्रयूज साहब और जवाहरलालजी की [illegible] बातचीत हुई। गांधीजी से भी अनुरोध किया गया कि वे उसमें सम्मिलित हों और इस सब का परिणाम अच्छा हुआ। श्री ताता ने स्वीकार किया कि मजदूर-मण्डल के संगठन को कम्पनी मान्य करती है— यही नहीं, बल्कि मण्डल का चन्दा मजदूरों के वेतन से काट कर देने में कम्पनी उसे सहायता भी देगी। श्री सेठी को फिर से नौकरी देने की भी आशा उन्होंने दिलाई।

इस शुभ परिणाम को प्रकट करने का भी काम गांधीजी को सौंपा गया था और उन्होंने उसे कम्पनी के [illegible] में हुई विराट् सभा में प्रकाशित किया। एक अंग्रेजी भाषण में [illegible] समझौते का वर्णन किया और मजदूरों तथा मालिकों के संबंध का विवेचन भी किया। वह महत्व-पूर्ण है। उसका बहुतांश यहां देता हूं। यहां मुझे यह भी बता देना चाहिए कि देशबन्धु-स्मारक के लिए नगर ने एक अच्छी रकम एकत्र की। [illegible] में ६५०) नकद तथा ३००-४००) के [illegible] और से ५००) मिले थे। इस तथा एक [illegible]

है, हुआ । नगर ने अपनी तरफ से ५०००) महासम[illegible] किये थे । इस महीने के अन्त तक हो कर बजट मिला है । अभिनन्दन-पत्र तथा यह का[illegible]दे के लिए कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए

एण्ड्रयूज सा० के साथ संबंध

[illegible] के इस सबसे बड़े साहसपूर्ण उद्योग को देखने [illegible]त दिनों से थी, परन्तु इस बार उसकी सफलता का मण्डल-के अध्यक्ष मेरे सगे भाई से भी ज्यादह [illegible] आग्रह । उन्होंने मुझसे कहा था कि बंगाल छोड़ने [illegible] आ कर मजूरों का कुछ सेवा करना । उनका कहना [illegible] नहीं रहा जा सकता — इनके साथ मेरा ऐसा कि उससे अधिक शायद ही किसीके साथ हो । हिन्दुस्तान में और ये ठहरे अंगरेज । फिर भी [illegible] पर दिन बढ़ता ही गया है । और वे मानते हैं [illegible]म के बदौलत एक ऐसा दिन आवेगा जब कि [illegible] हिन्दुस्तानी में ऐसा ही बन्धुत्व स्थापित हो [illegible] ईश्वर के हाथ है, मनुष्य तो अपने बस-भर [illegible] हमारी ओर से यह कोशिश चौबीसों घण्टे [illegible]ी काम के लिए हम लोग जीवित रहना [illegible]निया की खूं-खराबी से ऊब उठे हैं, [illegible] मनुष्य, एक-दूसरे का गला काटते हैं, [illegible], तलवार के फैसले के बजाय आत्म-[illegible] फैसला दुनिया मान्य करे, यह हमारी [illegible]

मुझे पता [illegible] एक-दूसरे से मिलते हैं और [illegible] है । इनके अनुरोध से ही मैं यहां [illegible] कि यदि आप इनसे ऐसी [illegible] जिससे ताता और आपके बीच विरोध बढ़े [illegible] देंगे । कारण कि इनका काम झगड़ा बढ़ाना [illegible] है । आपने जो इन्हें अपना अध्यक्ष बनाया [illegible] है कि वे आपकी सेवा के द्वारा भारत की भी [illegible] और इसी काम के लिए वे मुझे यहां लाये हैं ।

ताता की उदारता

[illegible] मिहमानदारी में हम दो दिन तक रहे । उन्होंने अपना [illegible] दिखाया और अब भी अपना अपार [illegible] रहे हैं [illegible] मैं तो पारसी-जाति का छोटा भाई हूं । [illegible] सहवास में मेरा जीवन व्यतीत हुआ है । [illegible]तनी मदद मेरी की है उतनी शायद ही किसी [illegible] कौमने की । इसलिए पारसियों के पास जाते समय [illegible] संकोच नहीं होता । जब मैं दक्षिण आफ्रिका में था [illegible]ता ने मेरी बहुत सहायता की थी । २५०००) का [illegible] वाले वही थे । इतना ही नहीं उन्होंने यह भी [illegible] फिर चाहिए तो मंगा लीजिएगा । इसलिए ताताओं [illegible] ऋणी हूं । आज भी श्री ताता ने बहुत प्रेम [illegible] कुछ पहले का मतभेद चला आता था उसे दूर [illegible] जवाहरलाल, एंड्रयूज सा० और इन्होंने मिल कर [illegible] है उसका मैं साक्षी हूं ।

समझौता

[illegible] पहली बात यह है कि आपके मंडल को कम्पनी [illegible] इसका अर्थ यह कि आपकी बातों को सुनने के [illegible] के परि[illegible] दूसरी बात यह है कि कंपनी [illegible] देगी । मजूरलोग इसका तो बात की बात में कर बैठते हैं, पर ये होते हैं डरपोक । सभासद होने का मन होते हुए भी वे सभासदों में अपना नाम लिखाने से डरते हैं । अब आज के समझौते से आपको कंपनी का आशीर्वाद मिला है । श्री ताता ने यह स्वीकार किया है कि आपके वेतन में से यदि आप चंदा देना चाहेंगे तो वे ऐसी व्यवस्था कर देंगे । आपके दिलों में से डर को निकाल दीजिए । श्री ताता आपकी भलाई चाहते हैं । उन्होंने मुझसे कहा है कि मैं अपने काम करने वालों को अपने बच्चों के समान समझता हूं । मुझसे या मेरे कर्मचारियों से चाहे भूल हो जाय पर मेरा हेतु निर्मल है । मैं मजूरों को खिलाकर खाना चाहता हूं । वे लोग सुखी रहें, यही मेरी इच्छा है । यह सब भाव साबित करने के लिए ही उन्होंने आपके मण्डल को आशीर्वाद दिया है । आपके चंदे को ये एकत्र करेंगे; पर उसपर इनका दखल कभी न रहेगा । तीसरी बात यह है कि आपके मंत्री को संदेह के कारण जो अलग कर दिया था उसपर भी इन्होंने विचार किया है । किसी आदमी को रखना न रखना कम्पनी की मरजी की बात है । परन्तु एण्ड्रयूज सा० ने चाहा कि श्री सेठी को उनकी जगह वापिस मिले और आपके मैनेजर ने भी उन्हें फिरसे स्वीकार करने की तैयारी दिखाई । सो श्री सेठी की शराफत की परीक्षा हो सके, इसलिए श्री ताता ने कहा है कि मैं उन्हें फिर जगह दिलाने का प्रयत्न करूंगा । मुझे आशा है कि दूसरे डिरेक्टर भी आपत्ति न करेंगे ।

मजूरों का कर्तव्य

इन तीन बातों का तो फैसला हो गया; पर अब आप लोगों का क्या कर्तव्य है । मैं मजूर इसलिए बना हूं कि मजूरी की खूबी और उसकी त्रुटियों को पहचानूं । इसीलिए आपके साथ रहता हूं और फिरता हूं । मुझे आशा है कि आप लोग कंपनी की वफादारी से सेवा करेंगे और आपके मण्डल के नियमानुसार आप चलेंगे । अपने कामों से आप ऐसा साबित कर दीजिए कि जिस प्रेम-भाव से श्री ताता ने फैसला किया है उसके आप योग्य थे, एण्ड्रयूज योग्य थे, आप एण्ड्रयूज के योग्य थे । एण्ड्रयूज आपसे कुछ महीना नहीं लेते । वे तो निःस्वार्थ भाव से काम करते हैं । मुझे आशा है कि ऐसा समय कभी न आवेगा जब कि मुझे यह सुनना पड़े कि देखो, जो कुछ आपने किया उसका यह परिणाम है । आप लोग जो कुछ करें एण्ड्रयूज की सलाह ले कर करें । मैं धनवानों की मित्रता का इसीलिए इच्छुक हूं कि वे गरीबों को पेट भर के पैसा दें और पीछे अपने लिए पैसा इकट्ठा करें । पर गरीब को भूखों मार कर न खावें । आज यह नियम नहीं है । इसीलिए पूंजी परिश्रम से डरती है और परिश्रम पूंजी से रूठता है । परन्तु मेरी इच्छा है कि इस तरह के पारस्परिक सम्बन्ध को नष्ट कर दोनों में प्रेम का संबंध कायम हो । इसमें आप लोग मेरी मदद करें ।

मैं आपसे एक दो बातें चाहता हूं । मैं जो काम कर रहा हूं उसके मुकाबले में जो आप कर रहे हैं, वह कुछ भी नहीं है । आप हजारों मन लोहा पैदा करते हैं । पर मैं तो हिन्दुस्तान के लोगों के हृदय को स्पर्श कर के सोना निकालना चाहता हूं । इसके लिए धन की जरूरत है । और इसके लिए आपकी मदद की आवश्यकता है । आप धन द्वारा तथा देहातियों की बनाई खादी को धारण कर के मदद कर सकते हैं । आप यह मजूरी तो पेट भरने के लिए करते हैं । पर मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान के लिए भी आध घण्टा ज्यादह मजूरी करो । आध घण्टा चरखा चलाओ और खादी पहनो । इसके अलावा दो और प्रतिज्ञायें

आपसे चाहता हूं । शराब शैतान की बनाई चीज है । मगर शराब पीकर बहन, औरत और मां का भेद भूल जाता है । मां और बहन को औरत मान लेता है, मुंह से गंदी गालियां निकालता है । इस शैतान से अपनेको बचाओ । शराब छोड दो, रंडीबाजी छोड दो । शराब का चस्का रंडीबाजी में लगा देता है । जो शख्स अपनी बहन पर बुरी नजर डालता है, वह मनुष्य काहे का ? यदि आप देश के सेवक, चौकीदार, सच्चे सपूत बनना चाहते हों तो रंडीबाजी छोड दो । जब मनुष्य इन्सान न रह कर हैवान बनता है तब ईश्वर उससे रूठ जाता है । आपके अन्दर बहादुर खालसा तथा पठान लोग हैं । मैं उनसे कहता हूं कि आप अपनी बहादुरी हिन्दुस्तान को बचाने में, अपनी बहनों की रक्षा में खर्च करो । जब शैतान आपके अन्दर घुस जाय तब डूब मरो, अथवा मर्दानगी हो तो खंजर भोंक कर मर जाओ, पर अपनी बहन की आबरू न बिगाडो । यदि आप स्वराज्य चाहते हों तो इन दो बातों से दूर भागो । ईश्वर आपको सन्मति दें कि आप मेरा कथन समझ लें और उसके अनुसार चलने की शक्ति प्राप्त करें ।"

एक और भाषण

शाम को एक छोटा-सा जलसा हुआ । उसमें कर्मचारी लोग थे । वहां के भाषण में अंगरेजों और भारत-वासियों के संबंध-विषयक उद्गार उल्लेख-योग्य हैं:

"मैंने सुना है कि आपका परस्पर संबंध मीठा है । परमात्मा करें यह अक्षरशः सच हो । इस महा-उद्योग में एक साथ काम करना बड़े भाग्य की बात है । आप लोग उद्योग के खातिर तो अपने कारखाने के अन्दर एकता और प्रेम रखते होंगे; परन्तु मैं चाहता हूं कि कारखाने के बाहर भी ऐसा ही प्रेम-भाव रक्खो, भाई-बहन जैसे रहो, किसीको अपनेसे हीन न समझो, अपनेको भी किसीसे हीन न समझो । यदि आप ऐसा करेंगे तो आपका यह एक छोटा-सा स्वराज्य ही हो जायगा ।

"मैं समय समय पर कहता आया हूं कि मैं असहयोगी हूं और सविनय भंग का हामी हूं । पर यह असहयोग अन्त को सहयोग करने के ही लिए है । मुझे झूठा सहयोग पसन्द नहीं । सौ टंच का सोना ही मुझे पसंद है । इसीलिए मैं असहयोगी बना हुआ हूं । फिर भी मेरा असहयोग मुझे माइकल ओ'डायर और डायर की मित्रता करने से नहीं रोक सकता । क्योंकि मेरा असहयोग दुष्टता के साथ है, दुष्ट प्रथा के साथ है, दुष्ट प्रथा के प्रचलित करने वालों के साथ नहीं । मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि बुरे काम करनेवाले के साथ भी प्रीति करो । और असहयोग मेरे धर्म का ही एक अंग है । यह सब मैं आपको खुश करने के लिए नहीं कह रहा हूं — किसीको खुश करने के लिए कोई बात कहने की आदत मुझे नहीं — मैं तो साफ बात, खरी बात कहनेवाला आदमी हूं, और इसी रीति से दूसरे के हृदय में सीधा प्रवेश करना चाहता हूं । जरा देर के लिए उसमें असफल भी होऊं तो चिन्ता नहीं । मेरा अनुभव है कि अन्त में तो सत्य को लोग अवश्य ही सुनते और समझते हैं । अतएव यह इच्छा कि आपके पारस्परिक संबंध में मिठास रहे, मेरे सच्चे हृदय की इच्छा है । इसी प्रकार मेरे हृदय से प्रार्थना निकलती है कि आप [illegible] साथ रह कर काम करते हुए भारत को [illegible] में [illegible], और बाहर की दुनिया को शान्ति का सन्देश भारत से दिखाओ । कारण कि अंगरेजों और भारतवासियों का यह समागम तभी सफल सार्थक होगा जब बन्धुत्व और प्रीति के प्रचार के लिए हम एक-साथ रहेंगे । माता की सेवा करते हुए आप भारतमाता की भी सेवा करो और हमेशा यह समझते रहो कि केवल इस [illegible] के ही लिए नहीं, बल्कि इससे भी अधिक उन्नत काम के लिए परिश्रम कर रहे हैं ।"

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

दानशीलता में विवेक

मारवाडी भाइयों की दानशीलता स्तुत्य है । पर [illegible] विवेक की आवश्यकता है । कार्नेगी अरब-पति [illegible] उन्हें विचारे पुस्तकालय स्थापित करने का शौक था । इसपर [illegible] के अध्यापकों ने उन्हें सावधान रहने की चेतावनी दी और [illegible] कि आपको ज्ञानी की सलाह लेकर दान करना उचित है । सलाह सब दानवीरों को देने की और उन्हें उसपर [illegible] की आवश्यकता है । यह मानने का कोई कारण नहीं है कि [illegible] प्रकार के दान से पुण्य ही होता है । मारवाडी भाई [illegible] गो-रक्षक हैं । वे इस काम में खूब धन लगाते हैं । परन्तु [illegible] हमेशा विवेक से काम नहीं लिया जाता । यदि गोरक्षा [illegible] सम्भावना किसीसे भी हो तो वह है मारवाडी भाइयों के [illegible] से । क्योंकि गोरक्षा मुख्यतः द्रव्य का और व्यापारिक बुद्धि [illegible] प्रश्न है । ये दोनों उनके पास है । यदि विवेक-पूर्वक उपयोग हो तो उनके हाथों विशाल पैमाने पर यथार्थ [illegible] होगी । (नवजी[illegible]

खादी-कार्यकर्ताओं का लेखा

अ० भा० खादी-मण्डल के मन्त्री ने सब प्रान्तों को, [illegible] खादी कार्यकर्ताओं की सूची मय उनकी लियाकत, काम [illegible] वेतन के भेजने के सम्बन्ध में, एक पत्र भेजा था । अभी [illegible] केवल बिहार, युक्तप्रान्त, उत्कल, आसाम, महाराष्ट्र, बंगाल, [illegible] और कर्नाटक इन सात प्रान्तों से लेखा आया है । जिन प्रा[illegible] में खादी-कार्य जोरों से चल रहा है अभी तक उन्होंने [illegible] लेखा नहीं भेजा है । जिन प्रान्तों ने अपना लेखा भेजा [illegible] भी पूरा नहीं है । मसलन बिहार ने ३२ वैतनिक और २ अवै[illegible] कार्यकर्ताओं के नाम दिये हैं पर वहां के खास कार्य-क[illegible] में से कुछ के नाम फिर भी छूट गये हैं । कई केन्द्रों के [illegible] दर्ज हैं; पर मलखाचक का नाम ही वहां नहीं है । बंगाल से [illegible] अभय-आश्रम ने अपनी सूची भेजी है; पर उसमें भी डा. [illegible] बनर्जी, श्री हरिपाद चटर्जी और अन्नदा बाबू के [illegible] छोड दिये हैं । कर्नाटक की सूची में भी श्री गंगाधरराव [illegible] का नहीं है जिन्होंने बेलगांव महासभा के बाद से ही अपना [illegible] समय खादी के काम में लगा दिया है । केवल महाराष्ट्र की पूरी और दुरुस्त मालूम होती है ।

खैर, जो कुछ अधूरा और संक्षिप्त विवरण मिला है वह अपने ढंग का दिलचस्प है । वैतनिक कार्य-कर्ताओं की [illegible] १४८ है जिनको कुल ३४२९) मासिक वेतन [illegible] में दिया है, अर्थात् औसतन् २३) प्रति कार्यकर्ता पडता है । अवै[illegible] कार्य-कर्ताओं की संख्या ५८ है । यद्यपि कुछ लोगों की सम्बन्धी लियाकत का उल्लेख नहीं है, फिर भी जो कुछ है मालूम होता है कि उनमें १६ बी. ए., तीन वकील और [illegible] अण्डर ग्रेजुएट हैं । अधिक से अधिक वेतन [illegible]) [illegible] कम से कम ४) दिया जाता है । प्रायः सब कार्यकर्ता [illegible] समय काम करते हैं । अवैतनिक लोगों में पूरा समय [illegible] में स्त्रियां भी हैं । सब मिला कर कुल १२८ [illegible] का उल्लेख हुआ है ।

(यं० इं०) [illegible]

जय, काल-विनाशिनि काली जय-जय
जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे ॥
ारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥
ाम । गौरीशंकर सीताराम ॥
ाम । ब्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
राम । पतितपावन सीताराम ॥

[संस्करण १,६५,०००]

जिसमें दूसरे किसीका अहित होता हो—ऐसी बात न कभी सोचो, न कभी कहो, न कभी करो और न कभी समर्थन ही करो। जिससे परिणाममें दूसरोंका अहित होता है, उससे अपना हित कभी हो ही नहीं सकता।

अतएव अपना हित चाहते हो तो जिसमें दूसरेका हित होता हो—सदा वही सोचो, सदा वही कहो, सदा वही करो और सदा उसीका समर्थन करो।

इससे सबका हित होगा और सबके रूपमें अभिव्यक्त भगवान् प्रसन्न होंगे।

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु. ९.००
विदेशमें रु. १३.२५
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मूल्य
रु० ९.००
विदेशमें १३.२५
(१५ शिलिंग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवान् अग्निदेव